





दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५







4995

ओ३म

4995



अहो वेद

भाषा भाष्य

प्रथम-भाग



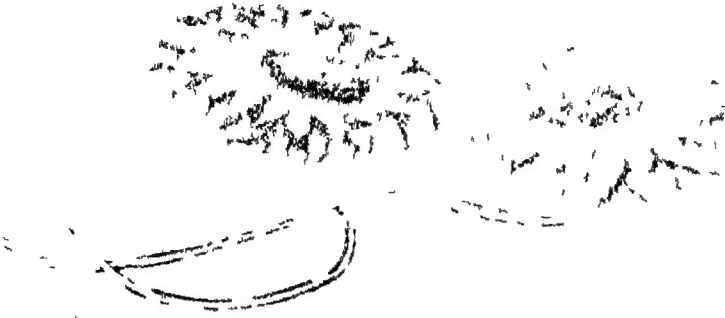
प्रकाशक—

पंडिता राकेश रानी

मंत्री— दयानन्द संस्थान

१३८, २०, १९९९, भाग १, दिल्ली २

पूरमास : ५६६६३६



### परम पिता परमात्मा की अमृत वाणी के प्रकाशन यज्ञ की सफलता के लिए प्राप्त आहुतिया

१ श्री डा० नारायणदास जी, गोहाटी	२००१-००	१७ श्री प० रामस्वरूप जी, जींद	५०१-००
२ श्री मनोहर विद्यालंकार, दिल्ली	१००१-००	१८ श्री बनदेव बानप्रस्थी, चांदपुर	५०१-००
३ श्री राय रतन लाल जी, गाजियाबाद	१००१-००	१९ श्रीमती माता जानकी देवी तथा	
४ श्री अनन्त राम जी गुप्त, कानपुर	१००१-००	श्री कलनवाम जी, दिल्ली की स्मृति में	५०१-००
५ श्री महिला केन्द्रीय तथा, प्रभुतसर	१००१-००	२० डा० जगन्नाथ जी व श्रीमती भगवती देवी	
६ श्री ममाज लक्ष्मण बाजार, शिमला	१००१-००	की स्मृति में	५०१-००
७ श्री धीरधरका गोयल दिल्ली	१००१-००	२१ श्रीमती कोशल्या देवी, प्रभुतसर	५०१-००
८ श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्रीमती दुर्गादेवीजी,		२२ श्री एच० पी० धार्य, बेलगाछी	५०१-००
गोहाटी	१००१-००	२३ श्री लालामाई, लक्ष्मण भाई, मन्सूर	५०१-००
९ श्री बाबा हरिदास बनारसी आश्रम,		२४ श्री बी० शिवानन्द, नैताल	५०१-००
जोनायका	१००१-००	२५ श्री लाल बेनीराम जी, करनाल	५०१-००
१० श्री वैद्य बागोराज प्रायुर्वेदालंकार,		२६ श्रीमती राज सुरी, दिल्ली	५०१-००
दीनानगर	१००१-००	२७ भारत टेक्सटाइल्स, कलकत्ता	५०१-००
११ श्रीमती चन्द्रकाता विद्यालंकार, नागपुर	५०१-००	२८ श्री मायादास भगवानदास, तिनसुकिया	५०१-००
१२ श्री किशनलाल रामचन्द्र, हैदराबाद	५०१-००	२९ श्री बनारसीदास गुप्ता, दिल्ली	५०१-००
१३ श्री मन्त्री जयें समाज, जींद	५०१-००	३० श्री सुर्यकांत मिश्र, कडकी	५०१-००
१४ श्री मा० बहोप्रसाद गुप्त, जींद	५०१-००	३१ श्रीमती प्रभवती दरगम, उवालापुर	५०१-००
१५ श्री प० हरिद्वन्द्व जी, जींद	५०१-००	३२ श्री वेदप्रकाश अग्रवाल, आगरा ज्वाबनी	५०१-००
१६ श्री माता भगवती देवी जी जींद	५०१-००	३३ स्वर्णीया सुशीला देवी धर्मपत्नी श्री आनन्दप्रिय	
		जसपुर, नैनीताल, की स्मृति में—	५०१-००



मूल्य ७१)



मुद्रक—

श्रीमती मिहिरल

महावीर चौराज, दिल्ली-६



दयानन्द संस्थान द्वारा

प्रकाशित प्रथम संस्करण

दोपमाला, सवत् २०३०



अपनी ओर से

## परमात्मा की दिव्य वाणी जन-जन को अपित है

आज से १ अरब, ६० करोड़, २६ लाख, ४६ हजार तेहत्तर (१,६०,२६,४६,०००) वर्ष पूर्व जब सृष्टि का आरम्भ हुआ और जब मनुष्य की उत्पत्ति हुई, तब परमपिता परमात्मा ने मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए जो मार्ग-दर्शक ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य, अगिरा ऋषियों के अन्तर में प्रकट किया, उसे ही 'भूति' या 'वेद' के नाम से जाना जाता है। जन्म पिता अपने पुत्र को चलना-पढ़ना सिखाकर सब भाँति उसका कल्याण चाहता है ऐसे ही सर्व सृष्टि के रक्षयिता प्रभु द्वारा सृष्टि के आरम्भ में अपने पुत्रों के लिए ऐसे निर्देश देने आवश्यक थे जिनके द्वारा समस्त सृष्टि पदार्थों का उचित प्रयोग करके मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त कर अपनी जीवन यात्रा पूर्ण कर सकें।

'वेद' ईश्वरीय ज्ञान है। वह ऐसी दिव्य वाणी है जो दश-काल-इतिहास-की सीमाओं में न बंधकर समान रूप से, सदा सब को कल्याण का निर्देशन करती है। ससार के सब से प्राचीन ग्रन्थ के रूप में 'वेद' की गौरव गरिमा के सम्मुख सभी विद्वान् एक मत में नत मस्तक हैं। "वेद" का अर्थ है 'ज्ञान', और ज्ञान का लक्ष्य है निर्माण, कल्याण, उत्थान। बुराईया, पाप हमारे निकट नहीं आए और हम सत्य, न्याय, नैतिकता के मार्ग पर चलते हुए विज्ञान द्वारा भौतिक पदार्थों का स्व-हित के लिए प्रयोग कर सकें। ज्ञान हमारा नेतृत्व करे और विज्ञान हमारी मुख मुविधा का कारण हो, हम जीवन के प्रत्येक चरण में आनन्द-मुग्धा का पान करने रहें।

"धर्म की पावन गंगा का प्रवाह प्रभु ने 'वेद' रूप में धरती पर प्रवाहित किया। आदि सृष्टि में महाभारत काल पर्यन्त मनुष्य जाति 'वेद-मार्ग' पर चलते हुए उत्कर्ष की राह पर बढ़ती रही। किन्तु दुर्भाग्य-वश स्वार्थ और अज्ञान के बशीभूत हो प्रभु का ज्ञान विस्मृत होता गया और जैसे सूर्य व छिपने पर नाना दीपक जल उठते हैं वैसे ही वेद-भानु के अस्त होने ही मनुष्य कृत नाना मत मतान्तरों का उदय हुआ, मनुष्य-और मनुष्य के मध्य विभिन्न दीवार खड़ी हो गयी, धरती अन्धकार में डूबती गयी।

१६ वीं शताब्दी के मध्य में जब भारत राष्ट्र पराधीनता और अज्ञान के कारण निराशा के सागर में डूब रहा था तब प्रभु कृपा से एक दिव्य विभूति ने भगवान् दयानन्द के रूप में फिर से वेद के प्रचार-प्रसार का व्रत लिया। ऋषि दयानन्द ने बताया कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" और कहा कि जब तक मनुष्य-जाति 'वेद' के, प्रभु के बताये मार्ग पर नहीं चलेगी तब तक उसका कल्याण नहीं होगा।

मानव मात्र के कल्याणार्थ और जनमानस का अन्धकार दूर कर प्रकाश प्रसारित करने के पावन लक्ष्य से यह आनन्द और उन्नति का पावन संगीत, प्रभु की वाणी की करुणा की वाणी और ज्ञान की अमृत गंगा का पुण्य प्रवाह, "वेद-भाष्य" के रूप में हमने धरती के हर घर-आगन में प्रतिष्ठित करने का व्रत लिया है।

हमारी प्रबल कामना है कि संसार का प्रत्येक मनुष्य, मनुष्य कृत ग्रन्थों के माया जाल से मुक्त हो, प्रभु के दिव्य स्वरों का, संगीत सुन अपना जीवन सफल करे। 'वेद' की ज्योति से ज्योतिर्मय हो, मनुष्य प्रभु पुत्र बन धरती पर साकार स्वर्ण लाने में समर्थ हो। श्रद्धा से, आदर से, भावना से, पक्षपात त्याग 'वेद' का पाठ कीजिए, मनन कीजिए, दिव्य वर्णन के गहन भावों पर चिन्तन कर उन्हें जीवन में ढालिए, आपका जीवन मंगलमय हो जाएगा। शान्ति आपके घर-आगन में ज्योति-मुग्धा रस-बार बरसाएगी।

एक पिता की सन्तान, धरती के ४०० करोड़ पुत्र और पुत्रिया अपने हृदय मंदिर में सत्य-ज्ञान की प्रतिष्ठा करे तो परमात्मा स्वयं प्रकाश से हमारे जीवन का हर अन्धकार हर लेंगे। जीवन की यात्रा मंगलमय हो, जीवन के प्रतिक्षण में आनन्द बरसे, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता मिलती रहे, इसके लिए यह प्रभु की अमर वाणी हम आपको शुभ कामनाओं सहित अपित करते हैं।

यह भी प्रभु की असीम अनुकम्पा का एक अनुपम उदाहरण है कि हम जैसे साधन विहीन व्यक्ति के मन ने जब इस पवित्र ज्ञान के प्रसार का व्रत लिया तो प्रभु का आशीर्वाद मुक्तहस्त हो हम पर बरसा। ससार के ज्ञात इतिहास में प्रथम बार (१२,५००) बारह हजार पाँच सौ प्रतिया एक साथ वेद भक्तों को अपित करने का मौभाग्य (सागत से अत्यन्त अल्प मूल्य पर) प्राप्त करना क्या प्रभु के आशीर्वाद के बिना संभव था ?

हमारी एकमात्र इच्छा है कि वह दिन शीघ्र आए जब परमात्मा के इस अनुपम ज्ञान भंडार को हम धरती के हर आगन में विभिन्न भाषाओं के अनुवाद सहित पहुँचाने में समर्थ हो। सभी प्रभु पुत्र प्रभु के दिखाए मार्ग पर चल, और यह धरती स्वर्ग बन जाए। अज्ञान पाप और दुखों का नेत्र भी कहीं शेष न रहे। सब प्रभु की वाणी का पढ़ें। ऋचाओं का संगीत सुनें। शाश्वत् ज्ञान की ज्योति से मन का, यस्मिन्क का अन्ध-कार मिटा हम वह लक्ष्य पाने जिसे पाने के लिए हमें यह मनुष्य शरीर मिला है।

वेद-भाष्य-प्रकाशन यज्ञ के संयोजक बने आचार्य जगदीश विद्यार्थी और प० मनोहर विद्यालंकार। इन दोनों वेद भक्तों ने अपनी पूर्ण शक्ति से यज्ञ की सफलता हेतु प्रयत्न किए। आचार्य जगदीश विद्यार्थी ने शुद्ध मुद्रण व संपादन के गुह्यतम कार्य भार में योग देकर पवित्र यज्ञ की सफलता का पुण्य प्राप्त किया। परम तपस्वी साधक श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती ने प्रचार प्रसार में आशीर्वाद और सक्रिय सहयोग देकर हमें सदा प्रोत्साहित किया। वैदिक साहित्य संस्थान दीनानगर के अध्यक्ष स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने १००० प्रतियाँ मंगाकर वेद-प्रचार यज्ञ में अपनी भद्रा का परिचय दिया।

विद्वद्बर्ग आचार्य श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री ने अपने अमूल्य परामर्श से समय-समय पर हमारा मार्ग दर्शन किया। जिससे अनेक जटिल समस्याएँ सुलझी और पथ प्रशस्त हुआ। दर्शन वाचस्पति आचार्य उदयवीर शास्त्री प० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, आचार्य श्री प० रत्नचन्द्र शास्त्री एकादश तीर्थ, ने भी समय-समय पर प्रकाशन यज्ञ की सफलता के लिए अपना आशीर्वाद प्रदान किया। मुद्रण व्यवस्था में श्री प० चन्द्रमोहन शास्त्री के सहयोग से ही यह ग्रन्थ इस रूप में हम भेंट कर रहे हैं। कु० ज्योत्स्ना एम० ए० व श्रीमती राकेश रानी ने व्यवस्था का पूर्ण भार सम्भाला। हम हृदय से सभी सहयोगियों विद्वानों के प्रति आभारी हैं।

प्रभु की असीम अनुकम्पा से जो व्रत हम ने लिया था उस का प्रथम चरण पूर्ण हुआ। तीन चरण अभी शेष हैं। वे भी शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण होंगे, प्रभु और वेद के भक्तों का आशीर्वाद ज्ञान की गंगा धरती पर बहाने के लिए हमें सदा प्राप्त होता रहेगा, इसी विश्वास से हम बढ़ते जा रहे हैं।

अन्तर्यामिन् प्रभो ! आप से अधिक कौन ज्ञान सकता है हमारे हृदय की भावना को। बस ऐसी कृपा करो कि जीवन का हर सांस आपके ज्ञान का संगीत गुंजाता रहे। धरती के प्रत्येक मन मंदिर में 'वेद' की कल्याणी वाणी की भक्तिया हम गुंजा सकें। परम पिता परमात्मन् ! आशीर्वाद दो, आप के आशीर्वाद से ही यज्ञ सफल होगा और सारी धरती के सारे पूजा स्थानों में, परिवारों में, विद्या मंदिरों में आप के ज्ञान 'वेद' का, और वेद के विज्ञान का विकास होगा।

अपित है यह पावन ज्ञान ग्रन्थ, धर्म ग्रन्थ,  
आपके पवित्र हाथों में, इस आशीर्वाद के  
साथ कि प्रभु आप को 'वेद' की ज्योति से  
ज्योतिर्मय करे।

- भारतेन्दु नाथ

अध्यक्ष

दयानन्द-संस्थान

१५६७ हरद्वार सिंह मार्ग

नई दिल्ली-५



# भूमिका

ओ३म् मह नांवतु मह नौ हुनक्तु । मह वायं करवावहे  
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहे । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

तेल्लिरीय आरण्यक । नवम प्रपाठक । प्रथम अनुवाक

हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! आपकी कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें । और हम सब लोग परम प्रीति से मिलके सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्ती राज्य आदि मामग्री से आनन्द को आपके अनुग्रह से सदा भोगें । हे कृपानिधे ! आपके सहाय से हम लोग एक दूसरे के सामर्थ्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहे । हे प्रकाशमय सब विद्या के देने वाले परमेश्वर ! आपके सामर्थ्य से ही हम लोगों का पड़ा पड़ाया सब ससार में प्रकाश को प्राप्त हो । हे प्रीति के उत्पादक ! आप एसी कृपा कीजिए कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें किन्तु एक दूसरे के मित्र होके सदा वन ।

जो ब्रह्म अनन्त आदि विशेषणों से युक्त है जिसकी वेद विद्या सनातन है उस की अत्यन्त प्रेम भक्ति से मैं नमस्कार करके इस वेद भाष्य के बनाने का आरम्भ करता हूँ । ईश्वर की कृपा के सहाय से सब मनुष्यों, के हित के लिए इस वेद भाष्य का विधान मैं करता हूँ । इस वेदभाष्य में अप्रमाण लेख कुछ भी नहीं किया जाता है, किन्तु जो ब्रह्मा से लेके व्यास पर्यन्त मुनि और ऋषि हुए हैं उनको जो व्याख्या दीनी है उससे युक्त ही यह वेद-भाष्य बनाया जायगा । और इस भाष्य में वेदों का जो सत्य अर्थ है सो समार में प्रसिद्ध हो कि वेदों के सनातन अर्थ को सब लोग यथावत् जान लें, इसलिए यह प्रयत्न मैं करता हूँ सो परमेश्वर के सहाय से यह काम अच्छे प्रकार सिद्ध हो, यही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है । आप की कृपा के सहाय से सब विघ्न हम से दूर रहे कि जिससे इस वेदभाष्य के करने का हमारा अनुष्ठान सुख में पूर्ण हो । यह वेद भाष्य आप की कृपा से सपूर्ण होके सब मनुष्यों का सदा उपकार करने वाला हो और आप अन्तर्यामी की प्रेरणा से सब मनुष्यों का इस वेद भाष्य में श्रद्धा सहित अत्यन्त उत्साह हो, जिस से वेद भाष्य करने में जो हम लोगों का प्रयत्न है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त हो । इसी प्रकार से आप हमारे और सब जगत् के ऊपर कृपा दृष्टि करते रहे, जिस से इस बड़े सत्य काम को हम लोग सहज से सिद्ध करें ।

जगदीश्वर की अच्छी प्रकार प्रणाम करके संवत् १९३४ माघ शीर्ष शुक्ल ६ सोमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूँ । इस ऋग्वेद में पदार्थों की स्तुति होती है । अर्थात् ईश्वर ने जिस में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है । इसलिए विद्वान् लोगों को चाहिए कि ऋग्वेद को प्रथम पढ़ के उन मन्त्रों से ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्यन्त सब पदार्थों को यथावत् जान समार में उपकार के लिए प्रयत्न करें । ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिस से सब पदार्थों के गुणों और स्वभावों का वर्णन किया जाए, वह ऋक् और वेद अर्थात् जो यह सत्य-सत्य ज्ञान का हेतु है, इन दो शब्दों से ऋग्वेद शब्द बनता है । 'अग्निमीळे' यहाँ से लेके 'यथा वः सुमहामति' इस अंत के मन्त्र पर्यन्त ऋग्वेद में आठ अष्टक और एक-एक अष्टक में आठ-आठ अध्याय हैं, सब जम्मा मिल के ६४ होते हैं ।

और आठो अष्टक के सब वर्ग २०२४ होते हैं । तथा इसमें दस मंडल हैं । प्रथम मंडल में २४ अनुवाक और १९१ सूक्त तथा १९७६ मन्त्र, दूसरे मंडल में ४ अनुवाक, ४३ सूक्त, ४२६ मन्त्र, तीसरे में पाँच अनुवाक, ६२ सूक्त, ६१७ मन्त्र हैं । चौथे में ५ अनुवाक, ५८ सूक्त, ५८६ मन्त्र हैं । पाँचवें मंडल में ६ अनुवाक, ८७ सूक्त ७२७ मन्त्र हैं । छठे मंडल में ६ अनुवाक, ७५ सूक्त, ७६५ मन्त्र हैं । सातवें में ६ अनुवाक, १०४ सूक्त, ८४१ मन्त्र हैं । आठवें में १० अनुवाक, १०३ सूक्त, १७०६ मन्त्र हैं । नवम् में ७ अनुवाक, ११४ सूक्त, १०६७ मन्त्र हैं । और दशम मंडल में १२ अनुवाक, १६१ सूक्त, १७५४ मन्त्र हैं । तथा दसो मंडल में ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०५८६ मन्त्र हैं । सब सज्जनों को उचित है कि इस बात को ध्यान में कर लें जिस से किसी प्रकार का गड़बड़ न हो ।

हे सर्वविद्यामय सर्वार्थवित् जगदीश्वर ! हम पर आप कृपा धारण करें जिस से हम लोग बिघ्नों से सदा अलग रहे और सत्य अर्थ सहित इस वेद भाष्य को सपूर्ण बना के आप के बनाए वेदों के सत्य अर्थ की विस्तार रूप जो कीर्ति है उसको जगत् में सदा के लिए बढ़ावें—और इस भाष्य को देख के वेदों के अनुसार सत्य का अनुष्ठान कर के हम सब श्रेष्ठ गुणों से युक्त सदा हो । इसलिए हम लोग आप की प्रार्थना प्रेम से सदा करते हैं । इस को आप कृपा से शीघ्र सुने । जिस से यह जो सब का उपकार करने वाला वेदभाष्य का अनुष्ठान है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त हो ।

—(स्वामी) दयानन्द सरस्वती



॥ ओ३म् ॥

# ऋग्वेद

-हिन्दी भाष्य-

~महर्षि दयानन्द सरस्वती











भौतिक अग्नि ही को कलाधी मे समुक्त करते से ( विवे विवे ) प्रतिदिन ( योषम् ) आत्मा और शरीर की पुष्टि करने वाला ( यथासम् ) जो उत्तम कीर्ति का बढाने वाला और ( वीरवत्तम् ) जिसको अच्छे-अच्छे विद्वान् वा शूरवीर लोग चाहते हैं ( रयिम् ) विद्या और सुवर्णादि उत्तम उस धन को सुगमता से ( अस्मत् ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार मे दो अर्थों का ग्रहण है। ईश्वर की आज्ञा से रहने तथा शिल्पविद्या सम्बन्धि कार्यों की मित्र के लिए भौतिक अग्नि को सिद्ध करने वाले मनुष्यों की अभ्यर्थ, अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता, सो धन प्राप्त होता है, तथा मनुष्य जिस धन से कीर्ति की वृद्धि और जिम धन को पाके वीर पुरुषों से युक्त होकर नाना मुखा से युक्त होने है, सब को उचित है कि उस धन को अवश्य प्राप्त करें ॥ ३ ॥

उक्त भौतिक अग्नि और परमेश्वर किस प्रकार के हैं,

यह भेद अगले मन्त्र मे जनाया है—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इवेष्टुं गच्छति ॥ ४ ॥

पदार्थ— ( अग्ने ) हे परमेश्वर । आप ( विश्वतः ) सर्वत्र व्याप्त होकर ( यम् ) जिस ( अध्वरम् ) हिमा आदि दीपग्रहित ( यज्ञम् ) विद्या आदि पदार्थों के दानरूप यज्ञ को ( परिभू ) सब प्रकार से पालन करनेवाला है, ( स इम् ) वही यज्ञ ( इष्टुम् ) विद्वानों के बीच मे ( गच्छति ) फैलके जगत् को सुख प्राप्त करता है।

तथा ( अग्ने ) जो यह भौतिक अग्नि ( विश्वतः ) पृथिव्यादि पदार्थों के साथ अनेक दोषों मे अलग होकर ( यम् ) जिस ( अध्वरम् ) विनाश आदि दोषों से रहित ( यज्ञम् ) शिल्पविद्यामय यज्ञ को ( परिभू ) सब प्रकार से मित्र करता है ( स इम् ) वही यज्ञ ( इष्टुम् ) अच्छे-अच्छे पदार्थों मे ( गच्छति ) प्राप्त होकर सब को लाभकारी होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है। जिम कारण व्यापक परमेश्वर अपनी सत्ता से उक्त यज्ञ की निरन्तर रक्षा करता है, इसी से वह अच्छे-अच्छे गुणों के दान का हेतु होता है। इसी प्रकार ईश्वर मे दिव्यगुणयुक्त अग्नि भी रखा है कि जो उत्तम शिल्पविद्या का उत्पन्न करने वाला है। उन गुणों को केवल धार्मिक, उद्योगी और विद्वान् मनुष्य ही प्राप्त होने के योग्य होता है ॥ ४ ॥

किर भी परमेश्वर और भौतिक अग्नि किस प्रकार के हैं

सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है

अग्निर्होता कविकर्तुः सन्त्यश्चित्रध्रुवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ॥ ५ ॥

पदार्थ— जो ( सत्य ) अविनाशी ( देव ) आप-मे-आप प्रकाशमान ( कविकर्तुः ) मन्त्र है, जिसने परमाणु आदि पदार्थ आप उनके उत्तम-उत्तम गुण रच के दिखलाया हैं, जो सब विद्यायुक्त वेद का उपदेश करता है, और जिसमे परमाणु आदि पदार्थों द्वारा सृष्टि के उत्तम पदार्थों का दर्शन होता है, वही कवि अर्थात् मन्त्र ईश्वर है। तथा भौतिक अग्नि भी स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों मे कलायुक्त होकर दण-देशान्तर मे गमन करानेवाला दिखलाया है। ( चित्रध्रुवस्तमः ) जिसका अग्नि आश्चर्य-कामी ध्रुव है, वह परमेश्वर ( देवेभिः ) विद्वानों के साथ समागम करने से ( आगमत् ) प्राप्त होता है।

तथा जो ( सत्य ) श्रेष्ठ विद्वानों का हित अर्थात् उनके लिए सुखरूप ( देव ) उत्तम गुणों का प्रकाश करने वाला ( कविकर्तुः ) सब जगत् को जानने और रचने-हारा परमात्मा और जो भौतिक अग्नि सब पृथिवी आदि पदार्थों के साथ व्यापक और शिल्पविद्या का मुख्य हेतु ( चित्रध्रुवस्तमः ) जिसको अदभुत अर्थात् अति आश्चर्यरूप सुनते हैं, वह दिव्य गुणों के साथ ( आगमत् ) जाना जाता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र मे श्लेषालङ्कार है— सब का आधार, मन्त्र, सब का रचनेवाला, विनाशरहित, अनन्त शक्तिमान् और सब का प्रकाशक आदि गुण हेतुआ के पाए जाने से अग्नि शब्द के द्वारा परमेश्वर, और आकर्षणादि गुणों मे मूर्तिमान् पदार्थों का धारण करनेवाला गुणों के होने से भौतिक अग्नि का भी ग्रहण होता है। सिवाय इसके मनुष्यों की यज्ञ भी जानना उचित है कि विद्वानों के समागम और समागम पदार्थों को उनके गुण सहित विचारन मे परमदयानु परमेश्वर अनन्त सुखदाता और भौतिक अग्नि शिल्पविद्या का मित्र करने वाला होता है ॥ ५ ॥

यह पहला वर्ग समाप्त हुआ।

अब अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तन्मन्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

पदार्थ— हे ( अङ्गिरः ) ब्रह्माण्ड के अङ्ग । पृथिवी आदि पदार्थों का प्राण-रूप और शरीर के अङ्गों को अन्तर्गामीरूप से स्वरूप हाकर रक्षा करनेवाले हान मे यही अङ्गिर शब्द मे ईश्वर लिया है। ( अङ्ग ) हे सब के मित्र ( अग्ने ) परमेश्वर । ( यत् ) जिम हेतु से आप ( दाशुषे ) निर्लोभता से उत्तम-उत्तम पदार्थों के दान करने वाले मनुष्य के लिए ( भद्रम् ) कल्याण, जो कि शिष्ट विद्वानों के योग्य है उनकी, ( करिष्यसि ) करने हैं, सो यह ( तवेत् ) आपही का ( सत्यम् ) सत्य वस्तु-जीव है ॥ ६ ॥

भाषार्थ— जो न्याय, दया, कल्याण और सब का मित्रभाव करने वाला परमेश्वर है, उसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है। क्योंकि इस प्रकार सुख देने का स्वभाव और सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है, दूसरे का नहीं, जैसे शरीरधारी अपने शरीर को धारण करता है वैसे ही परमेश्वर सब ससार को धारण करता है, और इसी से इस ससार की यथावत् रक्षा और स्थिति होती है ॥ ६ ॥

उक्त परमेश्वर कैसे उपासना करके प्राप्त होने के योग्य है

इसका विधान अगले मन्त्र में किया है—

उप त्वामे द्विवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भवंत एवमसि ॥ ७ ॥

पदार्थ— ( अग्ने ) हे सब के उपासना करने योग्य परमेश्वर ! हम लोग ( विवेदिवे ) अनेक प्रकार के विज्ञान होने के लिए ( धिया ) अपनी बुद्धि और कर्मी से आपकी ( भवंत ) उपासना को धारण और ( दोषावस्तः ) रात्रि-दिन मे निरन्तर ( नमः ) नमस्कार आदि करते हुए ( एवमसि ) आप के धारण को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ— हे सब को देखने और सब मे व्याप्त होने वाले उपासना के योग्य परमेश्वर ! हम लोग सब कामों के करने मे एक साथ भी आप को नहीं भूलते, इसी से हम लोग को अधर्म करने मे कभी इच्छा भी नहीं होती, क्योंकि जो सर्वशे सब का ग्राही परमेश्वर है, वह हमारे सब कामों को देखता है, इस निश्चय से ॥ ७ ॥

किर भी वह परमेश्वर किस प्रकार का है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

राजन्तमध्वराणां गोपायुतस्य दीर्घिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

पदार्थ— ( स्वे ) अपने ( दमे ) उस परम ध्यानन्द पद मे कि जिस में बड़े-बड़े दुखों से छुटकर मोक्षसुख को प्राप्त हुए पुरुष रसण करते हैं, ( वर्धमानम् ) सब मे बड़ा ( राजन्तम् ) प्रकाशस्वरूप ( अध्वराणां ) पृथ्वी यज्ञादिक अच्छे-अच्छे कर्म और धार्मिक मनुष्य तथा ( गोपायु ) पृथिव्यादिकों की रक्षा ( यतस्य ) सत्यविद्या युक्त चारों वेदों और कार्य जगत् के अनादि कारण के ( दीर्घिविम् ) प्रकाश करने वाले परमेश्वर को हम लोग उपासना-योग से प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ— जैसे विनाश और अज्ञान आदि दीप रहित परमात्मा अपने अन्तर्गामी-रूप मे सब जीवों को सत्य का उपदेश तथा श्रेष्ठ विद्वान् और सब जगत् की रक्षा करना हुआ अपनी सत्ता और परम ध्यानन्द मे प्रभूत हो रहा है, वैसे ही परमेश्वर के उपासक भी ध्यानन्दित, बुद्धियुक्त होकर विज्ञान में विहार करने हुए परम ध्यानन्द रूप विशेष फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

वह परमेश्वर कितने समान किनकी रक्षा करता है,

सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

स नः पितेव सूनवेऽग्रे सृपायनो भव । सचंश्च नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

पदार्थ— हे ( स ) उक्त गुणयुक्त ( अग्ने ) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! ( पितेव ) जैसे पिता ( सूनवे ) अपने पुत्र के लिए उत्तम ज्ञान का देन वाला होता है, वैसे ही आप ( न ) हम लोगों के लिए ( सृपायनः ) शोभन ज्ञान, जो कि सब सुखों का साधक और उत्तम-उत्तम पदार्थों का प्राप्त करने वाला है, उसके देने वाले होकर ( नः ) हम लोगों का ( स्वस्तये ) सब सुख के लिए ( स्वस्त्य ) संयुक्त कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को उत्तम प्रयत्न और ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिए कि—हे भगवन् ! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम-उत्तम शिक्षा देकर उनको सुख गुण और श्रेष्ठ कर्म करने योग्य बना देता है, वैसे ही आप हम लोगों को सुख गुण और सुख कर्मों मे युक्त सदैव कीजिए ॥ ९ ॥

इस प्रथम सूक्त मे पहिले पाँच मन्त्रों के द्वारा श्लेषालङ्कार से व्यवहार और परमार्थ की विद्याओं का प्रकाश किया, और चार मन्त्रों से ईश्वर की उपासना और स्वभाव वर्णन किया है।

यह पहला सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अब नवमस्य द्वितीयसूक्तस्य मनुष्यव्याख्या ॥ १-३ वायु, ४-६ इन्द्रवायु, ७-९ मित्रावरुणो च देवता । १, २ विशीलिकामध्या निबुद्गायत्री; ३-५, ७-९ गायत्री, ६ निबुद्गायत्री च छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

अब द्वितीय सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र मे उन पदार्थों का वर्णन

किया है कि जिन्होंने सब पदार्थ शोभित कर रखे हैं—

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकुताः । तेषां पाहि अधी हवम् ॥ १ ॥

पदार्थ— ( वरंस ) हे ज्ञान से देखने योग्य ( वायो ) अनन्त बलयुक्त सब के प्राणरूप अन्तर्गामी परमेश्वर ! आप हमारे हृदय मे ( यावाहि ) प्रकाशित होजिए । कैसे आप है कि जिन्होंने ( इमे ) इन प्रत्यक्ष ( सोमा ) ससारी पदार्थों को ( अरंकुताः ) अरकून अर्थात् सुशोभित कर रखा है। ( तेषाम् ) आप ही उन पदार्थों के रक्षक हैं, हमने उनकी ( पाहि ) रक्षा भी कीजिए और ( हवम् ) हमारी स्तुति को ( अधी ) सुनिए।

तथा ( वरंस ) स्पर्णादि गुणों से देखने योग्य ( वायो ) सब प्रतिमान् पदार्थों का आधार और प्राणियों के जीवन का हेतु भौतिक वायु ( यावाहि ) सब को प्राप्त होता है कि जिस भौतिक वायु ने ( इमे ) प्रत्यक्ष ( सोमा ) ससार के पदार्थों को ( अरंकुताः ) शोभायमान किया है, वही ( तेषाम् ) उन पदार्थों की ( पाहि ) रक्षा का हेतु है और ( हवम् ) जिसमे सब प्राणी लोग कहने और सुनने रूप व्यवहार का ( अधी ) कहने-सुनते हैं ॥ १ ॥

आगे ईश्वर और भौतिक वायु के पक्ष में प्रमाण दिखलाते हैं— ( प्रमाणम् ) इस प्रमाण मे वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु पुष्टिकारी और जीवों को यथायोग्य कामों मे पहुँचाने वाले गुणों से ग्रहण किये गये हैं। ( अवातो ) जो-जो पदार्थ अन्तर्गामी में हैं उनमें प्रथमगामी वायु अर्थात् उन पदार्थों से रमण करने वाला कहलाता है, तथा सब जगत् को जानने से वायु शब्द करके परमेश्वर का ग्रहण होता है। तथा मनुष्य लोग वायु से अत्यायाम करके और उनके गुणों के ज्ञान द्वारा परमेश्वर और शिल्पविद्यामय यज्ञ को जान सकता है। इस अर्थ से वायु शब्द करके ईश्वर और

भौतिक का ग्रहण होता है। अथवा जो बराबर जगत् में व्याप्त हो रहा है, इस अर्थ से वायु अथवा परमेश्वर का तथा जो सब जगत् को परिचिन्त से घेर रहा है इस अर्थ से भौतिक वायु का ग्रहण होता है, क्योंकि परमेश्वर अन्तर्निहित और भौतिक वायु प्राणरूप से संसार में रहने वाले हैं। इन्हीं दो अर्थों की कहने वाली वेद की (वायवा याहि०) यह श्रुति जाननी चाहिए।

इसी प्रकार से इस श्रुति का (वायवा याहि०) इत्यादि व्याख्यान निरुक्तकार ने भी किया है, जो संस्कृत में देख लेना वही भी वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु इन दोनों का ग्रहण है जैसे—(वायुः सोमस्य०) वायु अर्थात् परमेश्वर उत्पन्न हुए जगत् की रक्षा करने वाला और उसमें व्याप्त होकर उसके प्रश-प्रश के साथ भर रहा है। इस अर्थ से ईश्वर का तथा सामवल्ली आदि आश्रयों के रस हरने और समुद्रादिकों के जल को ग्रहण करने से भौतिक वायु का ग्रहण जानना चाहिए। (वायुर्वा अ०) इत्यादि वाक्यों में वायु की अग्नि के अर्थ में भी लिया है। परमेश्वर का उपदेश है कि मैं वायुरूप होकर इस जगत् को आप ही प्रकाश करता हूँ, तथा मैं ही अन्तर्निहित लोक में भौतिक वायु को अग्नि के तुल्य पल्पित और यज्ञादिकों को वायुमण्डल में पहुँचाने वाला हूँ ॥ १ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में ब्रह्मालङ्कार है। जैसे परमेश्वर के नामधेय से रचे हुए वाक्य नियत ही सुशोभित होते हैं, वैसे ही जो ईश्वर का रक्षा हुआ भौतिक वायु है, उसकी धारणा से भी सब पदार्थों की रक्षा और शोभा तथा जैसे जीव की प्रेमभक्ति से ही हुई स्तुति को सर्वगत ईश्वर प्रतिक्रिया सुमना है, वैसे ही भौतिक वायु के निमित्त से जीव शब्दों के उच्चारण और श्रवण करने को समर्थ होता है ॥ १ ॥

उक्त परमेश्वर और भौतिक वायु किस प्रकार स्तुति करने योग्य हैं,

तो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

**वायं उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः । सुतसोमा अहर्विदः ॥२॥**

पदार्थ—(वायो) हे अन्न जनक ईश्वर जो-जो (अहर्विदः) विज्ञान-रूप प्रकाश को प्राप्त होने (सुतसोमा) शोधित आदि पदार्थों के रस को उत्पन्न करने (जरितारः) स्तुति और स्तुति करने वाले विद्वान् लोग हैं, वे (उक्थेभिः) वेदोक्त श्लोकों से (त्वाम्) आपको (अच्छा) साक्षात् करने के लिए (जरन्ते) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

आचार्य—यहाँ ब्रह्मालङ्कार है। इस मन्त्र से जो वेदादि शास्त्रों में कहे हुए स्तुतियों के निमित्त स्तोत्र हैं, उन से व्यवहार और परमार्थ विद्या की निधि के लिए परमेश्वर और भौतिक वायु के गुणों का प्रकाश किया गया है ॥ २ ॥

पूर्वोक्त स्तोत्रों का जो अर्थ और उच्चारण का निमित्त है

उसका प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

**वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषं । उरूची सोमपीतये ॥३॥**

पदार्थ—(वायो) हे वेद विद्या के प्रकाश करने वाले परमेश्वर (तव) आपकी (प्रपृञ्चती) सब विद्याओं के सम्बन्ध में विज्ञान का प्रकाश करने, और (उरूची) अनेक विद्याओं के प्रयोजनों का प्राप्त करने वाली (धेना) चार वेदों की वाणी है, जो (सोमपीतये) जानने योग्य समीचीन पदार्थों के निरन्तर विचार करने, तथा (दाशुषं) निष्कण्टका से प्रीति के साथ विद्या देने वाले पुरुषार्थी विद्वान् को (जिगाति) प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

आचार्य—यहाँ भी ब्रह्मालङ्कार है। हमारे मन्त्र में जिस वेदवाणी से परमेश्वर और भौतिक वायु के गुण प्रकाश किये हैं, उस का फल और प्राप्ति इस मन्त्र में प्रकाशित की है। अर्थात् प्रथम अर्थ से वेद विद्या और हमारे से जीवों की वाणी का फल और उसकी प्राप्ति का निमित्त प्रकाश किया है ॥ ३ ॥

अब जो स्तोत्रों से प्रकाशित पदार्थ हैं, उनकी वृद्धि और रक्षा के

निमित्त का अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

**इन्द्रवायु इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्द्रो वासुशन्ति हि ॥४॥**

पदार्थ—(इमे सुता) जैसे प्रत्यक्ष जलक्रियामय यज्ञ और प्राप्ति होने योग्य भोग (इन्द्रवायु) सूर्य और पवन के योग से प्रकाशित होते हैं। (इन्द्रवा०) यहाँ 'इन्द्र' शब्द के लिए अष्टावेद के मन्त्र का प्रमाण दिखलाना है—(इन्द्रो०) सूर्यलोच ने अपनी प्रकाशमान किरण तथा पृथिवी आदि लोक अपने आकर्षण अर्थात् पदार्थ खींचने के माध्यम से पुष्टता के साथ स्थिर करके धारण किये हैं कि जिससे वे 'म परासुदे' अपने अपने अग्रगण्य अर्थात् घूमने के मार्ग को छोड़कर इधर-उधर हटके नहीं जा सकते हैं ॥ ४ ॥

(इमे बिबिध०) सूर्यलोक भूमि आदि लोकों की प्रकाश के धारण करने के हेतु से उनका रोकने वाला है, अर्थात् वह अपनी खींचने की शक्ति से पृथिवी के किलारे और मेघ के जल के झोत को रोक रहा है। जैसे आकाश के बीच में फँका हुआ मिट्टी का डेला पृथिवी की आकर्षण शक्ति से पृथिवी ही पर लीटकर पड़ा हुआ है, इसी प्रकार दूर भी ठहरे हुए पृथिवी आदि लोकों को सूर्य ही ने आकर्षण शक्ति की खींच में धारण कर रखा है। इससे यही सूर्य बड़ा भारी आकर्षण प्रकाश और वर्षा का निमित्त है। (इन्द्र०) यही सूर्य भूमि आदि लोकों में ठहरे हुए रस और मेघ को ब्रेवन करनेवाला है। भौतिक वायु के विषय में 'वायवा याहि०' इस मन्त्र की व्याख्या में जो प्रमाण कहे हैं, वे यहाँ भी जानने चाहिए।

अथवा जिस प्रकार सूर्य और पवन सत्ता के पदार्थों को प्राप्त होते हैं, वैसे उनके साथ इन निमित्तों के द्वारा सब प्राणी अन्न आदि तृप्ति करनेवाले पदार्थों के सुखों की कामना कर रहे हैं। (इन्द्रवा०) जो जलक्रियामय यज्ञ और प्राप्ति होने योग्य भोग हैं, वे (हि) जिस कारण से पूर्वोक्त सूर्य और पवन के संयोग से (उत्पत्ति) प्रकाशित होते हैं, इसी कारण (प्रयोभिः) अन्नादि पदार्थों के योग से सब प्राणियों को सुख प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में परमेश्वर ने प्राप्त होने योग्य और प्राप्त कराने वाले इन दो पदार्थों का प्रकाश किया है ॥ ४ ॥

अब पूर्वोक्त सूर्य और पवन जिन्हें ईश्वर ने धारण किया है वे किस-किस कर्म की सिद्धि के निमित्त रचे गये हैं, इस विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

**वायविन्द्रस्य चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुप द्रवत् ॥५॥**

पदार्थ—हे (वायो) जानस्वरूप ईश्वर। आपके धारण किये हुए (वाजिनीवसू) प्रातःकाल के तुल्य प्रकाशमान (इन्द्रस्य) पूर्वोक्त सूर्यलोक और वायु (सुतानाम्) आपके उत्पन्न किये हुए पदार्थों का (चेतथः) धारण और प्रकाश करके उन को जीवों के दृष्टिगोचर करते हैं, इसी कारण वे (द्रवत्) वीघ्रता से (आयातमुप) उन पदार्थों के समीप होते रहते हैं ॥ ५ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में परमेश्वर की सत्ता के अवलम्ब से उक्त इन्द्र और वायु अपने-अपने कार्य करने का समर्थ होते हैं, यह वर्णन किया है ॥ ५ ॥

यह तीसरा वर्ग समाप्त हुआ।

पूर्वोक्त इन्द्र और वायु के शरीर के भीतर और बाहरले कार्यों का

अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

**वायविन्द्रस्य सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मन्त्रित्वा धिया मरा ॥६॥**

पदार्थ—(वायो) हे सब के अन्तर्धामी ईश्वर। जैसे आपके धारण किये हुए (मरा) संसार के सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (इन्द्रस्य) अन्तरिक्ष में स्थित सूर्य का प्रकाश और पवन हैं, वैसे (मन्त्र) जीव मन में (इत्था) धारण, पालन, वृद्धि और क्षय हेतु से सोम आदि सब शोधार्थों के रस को (सुन्वतः) उत्पन्न करने हैं, उसी प्रकार (मरा) शरीर में रहने वाले जीव और प्राणवायु उस शरीर में सब धातुओं के रस को उत्पन्न करके (इत्था) धारण, पालन, वृद्धि और क्षय हेतु से (मन्त्र) सब अङ्गों को जीव प्राप्त होकर (धिया) धारण करने वाली वृद्धि और कर्मों से (निष्कृतम्) कर्मों के फलों को (आयातमुप) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

आचार्य—ब्रह्माण्डस्य सूर्य और वायु सब संसारी पदार्थों को बाहर से तथा जीव और प्राण शरीर के भीतर के अङ्ग आदि सबको प्रकाश देने और पुष्ट करने वाले हैं, परन्तु ईश्वर के आचार की अपेक्षा सब स्थानों में रहती है ॥ ६ ॥

ईश्वर पूर्वोक्त सूर्य और वायु को दूसरे नाम से अगले मन्त्र में स्पष्ट करता है—

**मित्रं हुवे पृतदंसं वरुणं च रिशार्दसम् । धियं घृताचीं सार्धन्ता ॥७॥**

पदार्थ—मित्र विद्या का चाहने (पृतदंसम्) मित्र जन, सब सुखों के देने वाला (मित्रम्) ब्रह्माण्ड और शरीर में रहने वाले सूर्य तथा (रिशार्दसम्) रोग और शत्रुओं के नाश करने वाला (वरुणं च) शरीर के बाहर और भीतर रहने वाले प्राण और अपानरूप वायु को (हुवे) प्राप्त होऊँ, अर्थात् बाहर और भीतर के पदार्थ जिस-जिस विद्या के लिए रचे गये हैं, उन सब का उस-उस के लिए उपयोग करूँ ॥ ७ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र आदि जलस्थलों से सूर्य के आकर्षण से वायु द्वारा जल आकाश में उठकर वर्षा होने से सब की वृद्धि और रक्षा होती है, वैसे ही प्राण और अपान आदि ही से शरीर की रक्षा और वृद्धि होती है। इसलिए मनुष्यों को प्राण, अपान आदि वायु के निमित्त से व्यवहार विद्या की सिद्धि करके सब के साथ उपकार करना उचित है ॥ ७ ॥

किस हेतु से ये दोनों साधन्य वाले हैं, यह विद्या अगले मन्त्र में कही है—

**क्रुतेन मित्रावरुणावृतावृतावृतावृता । क्रतुं बृहन्तमासाथे ॥८॥**

पदार्थ—(क्रुतेन) सत्यस्वरूप ब्रह्म के नियम में बँधे हुए (वृतावृता) ब्रह्मज्ञान बढ़ाने, जल के खींचने और वर्षा (वृतावृता) ब्रह्म की प्राप्ति कराने के निमित्त तथा उचित समय पर अवबृष्टि के करने वाले (मित्रावरुणा) पूर्वोक्त मित्र और वरुण (वृतावृता) अनेक प्रकार के (क्रतुम्) जगत्कृत यज्ञ को (आसाथे) व्याप्त होने हैं ॥ ८ ॥

आचार्य—परमेश्वर के आश्रय से उक्त मित्र और वरुण ब्रह्मज्ञान के निमित्त, जल वर्षा करने वाले सब मूर्तिमान् वा अमूर्तिमान् जगत् को व्याप्त होकर उस की वृद्धि विनाश और व्यवहारी की सिद्धि करने में हेतु होते हैं ॥ ८ ॥

वे हमारे लिए किन किन पदार्थों के धारण करने वाले हैं, इस बात का

प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

**कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरूक्षया । दसं दधाते अपसम् ॥९॥**

पदार्थ—(तुविजाती) जो बहुत कारणों से उत्पन्न और बहुतों में प्रसिद्ध (उरूक्षया) संसार के बहुत-से पदार्थों में रहने वाले (कवी) दर्शनादि व्यवहार के हेतु (मित्रावरुणा) पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं, वे (नः) हमारे (वक्षम्) बल तथा [अपसम्] सुख वा दुःखयुक्त कर्मों को (दधाते) धारण करते हैं ॥ ९ ॥

आचार्य—जो ब्रह्माण्ड में रहने वाले जल और कर्म के निमित्त पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं उन से क्रिया और विद्याओं की पुष्टि तथा धारणा होती है ॥ ९ ॥

यह दूसरा सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ।





अथास्य द्वाविंशत्यं तृतीयसूक्तस्य अनुच्छन्दा अविः । १-३ अश्विनोः  
४-६ इन्द्रः । ७-९ विश्वेदेवाः । १०-१२ सरस्वती देवता । १, २,  
४-१०, १२ गायत्री; २ निबुद्धायात्री, ४, ११ पिपीलिका-  
मध्यानिबुद्धायात्री च अन्व । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ तृतीय सूक्त का प्रारम्भ करते हैं । इसके आदि के मन्त्र में अग्नि और  
अन्न अश्वि नाम से लिया है—

**अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्पतम् ॥१॥**

पदार्थ—हे विद्या के चाहने वाले मनुष्यों ! तुम लोग ( द्रवत्पाणी ) गीघ्र  
वेग का निमित्त पदार्थ विद्या के व्यवहार सिद्धि करने में उत्तम हेतु ( शुभस्पती )  
शुभ गुरुओं के प्रकाश को पालने और ( पुरुभुजा ) अनेक खान पीने के पदार्थों के देने  
में उत्तम हेतु ( अश्विना ) अर्थात् जल और अग्नि तथा ( यज्वरी ) शिल्प विद्या का  
सम्बन्ध करने वाली ( इष ) अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देने वाली  
कारीगरी की क्रियाओं को ( चनस्पतम् ) अन्न के समान अति प्रीति से सेवन किया  
करो ॥ १ ॥

अथ 'अश्विनी' शब्द के विषय में निरुक्त आदि के प्रमाण दिखलाते हैं— हम लोग  
अच्छी-अच्छी सवारियों को सिद्ध करने के लिए (अश्विना) पूर्वोक्त जल और अग्नि को  
जिनके गुरुओं से अनेक सवारियों की सिद्धि होती है, तथा (यज्वरी) जो कि शिल्प विद्या  
में अच्छे-अच्छे गुरुओं के प्रकाश और सूर्य के प्रकाश से अन्तर्गम्य में विमान आदि  
सवारियों से मनुष्यों को पहुँचाने वाले होते हैं, ( ता ) उन दोनों को शिल्प विद्या की  
सिद्धि के लिए ग्रहण करते हैं । मनुष्य जहाँ-जहाँ साधे हुए अग्नि और जल के सम्बन्ध  
युक्त रथों से जाते हैं, वहाँ सोमविद्या वाले विद्वानों का विद्या प्रकाश निकट ही है ।

(अन्व०) इस निरुक्त में जो कि द्युस्थान शब्द है, उस से प्रकाश में रहनेवाले  
और प्रकाश में युक्त सूर्य, अग्नि, जल और पृथिवी आदि पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं ।  
उन पदार्थों में दो-दो के या दो-दो के 'अश्वि' कहते हैं, वे सब पदार्थों में प्राप्त होने वाले  
हैं, उन में से यहाँ अश्वि शब्द करके अग्नि और जल का ग्रहण करना ठीक है, क्योंकि  
जल अपने वेगादि गुण और रस से तथा अग्नि अपने प्रकाश और वेगादि अश्वों से सब  
जगत् को व्याप्त होता है । इसी से अग्नि और जल का अश्वि नाम है । इसी प्रकार  
अपने अपने गुणों से पृथिवी आदि भी दो-दो पदार्थ मिलकर अश्वि कहान है ।

अबकि पूर्वोक्त अश्वि धारण और हवन करने के लिए शिल्प विद्या के व्यवहारों  
अर्थात् कारीगरियों के निमित्त विमान आदि सवारियों में जोड़े जाते हैं, सब सब  
कलाओं के साथ उन सवारियों के धारण करने वाले, तथा जब उक्त कलाओं से ताहित  
अवस्तु बनाये जाते हैं, सब अपने अपने से उन सवारियों को बनाने वाले होते हैं, उन  
अश्वियों को 'तुफरी' भी कहते हैं, क्योंकि तुफरी शब्द के अर्थ में वे सवारियों में वेगादि  
गुरुओं के देने वाले समझे जाते हैं । इस प्रकार वे अश्वि कलाधरो में मयुक्त किये हुए  
जल से परिपूर्ण देखने योग्य महासागर हैं । उन में अच्छी प्रकार जाने-आने वाली नौका  
अर्थात् जहाज आदि सवारियों में जो मनुष्य स्थित होते हैं, उन के जाने-आने के लिए  
होते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में ईश्वर ने शिल्पविद्या को सिद्ध करने का उपदेश किया  
है, जिससे मनुष्य कलायुक्त सवारियों को बनाकर ससार में अपने तथा अन्य लोगों  
के उपकार से सब सुख प्राप्त ॥ १ ॥

किर वे अश्वि किस प्रकार के हैं, सो उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिषण्या वनंत गिरः ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वानों ! तुम लोग ( पुरुदंससा ) जिनसे शिल्पविद्या के लिए  
अनेक कर्म सिद्ध होते हैं ( धिषण्या ) जो सवारियों में वेगादिकों की तीव्रता के  
उत्पन्न करने में प्रबल ( नरा ) उस विद्या के फल का देनेवाले और (शवीरया)  
वेग देनेवाली ( धिया ) क्रिया से कारीगरी में युक्त करने योग्य अग्नि और जल हैं,  
वे ( गिरः ) शिल्पविद्या के गुरुओं की बतानेवाली वार्ताओं को ( वनतम् ) सेवन  
करनेवाले हैं इसलिए इनसे अच्छी प्रकार उपकार लेते रहो ॥ २ ॥

भाषार्थ—यहाँ भी अग्नि और जल के गुरुओं को प्रत्यक्ष दिखाने के लिए  
मध्यम पुरुष का प्रयोग है । इस से सब कारीगरों का चाहिए कि नीत्र वेग देनेवाली  
कारीगरी और अपने पुरुषार्थ से शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए उक्त अश्वियों की अच्छी  
प्रकार से योजना करे । जो शिल्पविद्या को सिद्ध करने की इच्छा करत है, उन पुरुषों  
को चाहिए कि विद्या और हस्तक्रिया से उक्त अश्वियों का प्रसिद्ध करके उनसे उप-  
योग लेवें ॥ २ ॥

**दक्षा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तवर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्त्तनी ॥३॥**

पदार्थ—हे ( युवाकवः ) एक दूसरी से मिली वा पृथक् क्रियाओं को सिद्ध  
करने ( सुताः ) पदार्थविद्या के सार को सिद्ध करने, प्रकट करने ( वृक्तवर्हिष )  
उसके फल को दिखानेवाले विद्वान् लोगो ! ( रुद्रवर्त्तनी ) जिनका प्राणमार्ग है,  
वे ( दक्षा ) दुःखों के नाश करनेवाले ( नासत्या ) जिनमें एक ही गुण मिथ्या नहीं  
( आयातम् ) जो अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करानेवाले हैं, उन पूर्वोक्त  
अश्वियों को जब विद्या से उपकार में ले आयागें उस समय तुम उत्तम सुखों को प्राप्त  
होगोगे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—परमेश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है कि हे मनुष्यों ! तुम  
को सब सुखों की सिद्धि से दुःखों के विनाश के लिए शिल्पविद्या में अग्नि और जल  
का यथावत् उपयोग करना चाहिए ॥ ३ ॥

परमेश्वर ने अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से अपना और सूर्य का उपदेश किया है—

**इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अश्वीभिस्तना पृतासः ॥४॥**

पदार्थ—( चित्रभानो ) हे आश्चर्यप्रकाशयुक्त ( इन्द्र ) परमेश्वर ! आप

हमको कृपा करके प्राप्त हूँ । कैसे आप हैं कि जिनमें ( अश्वीभिः ) कारियों  
के भागों से ( तना ) सब संसार में विस्तृत ( पृतासः ) । पवित्र और ( त्वायवः )  
आपके उत्पन्न किये हुए व्यवहारों से युक्त ( सुताः ) उत्पन्न हुए मूर्तिमान् पदार्थ  
उत्पन्न किये हैं, हम लोग जिनमें उपकार लेनेवाले होते हैं, इससे हम लोग आप ही  
के शरणगत हैं ।

दूसरा अर्थ—जो सूर्य अपने गुरुओं से सब पदार्थों को प्राप्त होता है, वह  
( अश्वीभिः ) अपनी किरणों से ( तना ) संसार में विस्तृत ( त्वायवः ) उसके  
निमित्त से जीनेवाले ( सुतासः ) पवित्र ( सुताः ) संसार के पदार्थ हैं, वही इन उन  
को प्रकाशयुक्त करता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यहाँ इन्द्रशब्द का समझना । जो-जो इस मन्त्र में परमेश्वर और  
सूर्य के गुण और कर्म प्रकाशित किये गये हैं, इनसे परमार्थ और व्यवहार की सिद्धि  
के लिए अच्छी प्रकार उपयोग लेना सब मनुष्यों को योग्य है ॥ ४ ॥

ईश्वर ने अगले मन्त्र में अपना प्रकाश किया है—

**इन्द्रा याहि धियेषिनो विमज्जुतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाचतः ॥५॥**

पदार्थ—( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! ( धिया ) निरन्तर ज्ञानयुक्त बुद्धि का उत्तम  
कर्म से ( इवितः ) प्राप्त होने और ( विमज्जुतः ) बुद्धिमान् विद्वान् लोगों के जानने  
योग्य आप ( ब्रह्माणि ) ब्राह्मण अर्थात् जिन्होंने वेदों का अर्थ और ( सुतावतः )  
विद्या के पदार्थ जानें, तथा ( वाचतः ) जो यज्ञविद्या के अनुष्ठान से सुख उत्पन्न  
करनेवाले हैं, इन सबों को कृपा से ( उपायाहि ) प्राप्त हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो सब कार्यग्रहण की उत्पत्ति करने  
में आदिकारण परमेश्वर हैं, उनको शुद्ध बुद्धि विज्ञान से साक्षात् करना चाहिए ॥ ५ ॥

ईश्वर ने अगले मन्त्र में भौतिक वायु का उपदेश किया है—

**इन्द्रा याहि तनुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥६॥**

पदार्थ—( हरिवः ) जो वेगादिगुणयुक्त ( तनुजानः ) गीघ्र चलनेवाला  
( इन्द्र ) भौतिक वायु है, वह ( सुते ) प्रत्यक्ष उत्पन्न वागी के व्यवहार में ( नः )  
हमारे लिए ( ब्रह्माणि ) वेद के स्तोत्रों को ( आयाहि ) अच्छी प्रकार प्राप्त करता  
है, तथा वह ( न ) हम लोगों के ( जन ) अन्नादि व्यवहार को ( दधिष्व ) धारण  
करता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो शरीरस्थ प्राण है वह सब क्रिया का निमित्त होकर खाना, पीना,  
पकाना, ग्रहण करना और त्यागना आदि क्रियाओं से कर्म का करना तथा शरीर में  
रहिय आदि धातुओं के विभागों को जगह-जगह में पहुँचानेवाला है, क्योंकि वही शरीर  
आदि की पुष्टि और नाम का हेतु है ॥ ६ ॥

वह पाँचवाँ कर्म समाप्त हुआ ॥

ईश्वर ने अगले मन्त्रों में विद्वानों के सत्कार और आचरणों का प्रकाश किया है—  
**ओमांसश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गंत । दान्वासो दाशुषः सुतम् ॥७॥**

पदार्थ—( ओमांसः ) जो अपने गुरुओं से ससार के जीवों की रक्षा करने,  
ज्ञान से परिपूर्ण, विद्या और उपदेश में प्रीति रखने, विज्ञान से तृप्त, यथार्थ निश्चय-  
युक्त, शुभ गुरुओं को देने और सब विद्याओं को सुनाने, परमेश्वर के जानने के लिए  
पुरुषार्थों, श्रेष्ठ विद्या के गुरुओं की इच्छा से दृष्ट गुरुओं के नाश करने, अत्यन्त ज्ञान-  
वान् ( चर्षणीधृतः ) सत्य उपदेश से मनुष्यों के सुख के धारण करने और कराने  
( दाशुषः ) अपने शुभ गुरुओं में सब की निर्भय करनेवाले ( विश्वेदेवासः ) सब  
विद्वान् लोग हैं, वे ( दाशुषः ) मज्जन मनुष्यों के सामने ( सुतम् ) सोम आदि पदार्थ  
और विज्ञान का प्रकाश ( आ गत ) नित्य करने रहें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—ईश्वर विद्वानों को आज्ञा देता है कि—तुम लोग एक जगह पाठ-  
शाला में अथवा हथ-उधर देशदेशान्तरो में अमते हुए अज्ञानी पुरुषों को विद्यारूपी  
ज्ञान देके विद्वान् किया करो, जिससे सब मनुष्य विद्या धर्म और श्रेष्ठ शिक्षा युक्त  
होके अच्छे-अच्छे कर्मों से युक्त होकर सदा सुखी रहें ॥ ७ ॥

**विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमागन्त तूर्णयः । उक्षा इव स्वसराणि ॥८॥**

पदार्थ—हे ( अप्तुरः ) मनुष्यों को शरीर और विद्या आदि का सब देने और  
( तूर्णयः ) उस विद्या आदि के प्रकाश करने में शीघ्रता करनेवाले ( विश्वेदेवासः )  
सब विद्वान् लोगो ! जैसे ( स्वसराणि ) दिनों को प्रकाश करने के लिए ( उक्षा  
इव ) सूर्य की किरण जाती-जाती हैं, वैसे ही तुम भी मनुष्यों के समीप ( सुतम् )  
कर्म, उपामना और ज्ञान को प्रकाश करने के लिए ( आगस्त ) नित्य आया-जाया  
करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानकार है । ईश्वर ने जो आज्ञा दी है इसको सब  
विद्वान् निश्चय करके जान लेवें कि विद्या आदि शुभ गुरुओं के प्रकाश करने में किसी  
को कभी थोड़ा भी विलम्ब वा आलस्य करना योग्य नहीं है । जैसे दिन की निकाली  
में सूर्य सब मूर्तिमान् पदार्थों का प्रकाश करता है, वैसे ही विद्वान् लोगों को भी विद्या  
के विषयों का प्रकाश सदा करना चाहिए ॥ ८ ॥

विद्वान् लोग कैसे स्वभाववाले होकर कैसे कर्मों को लेवें, इस विषय

को ईश्वर ने अगले मन्त्र में बताया है—

**विश्वे देवासो अस्मिन् एहिमायासो अद्भुः । मेधं जुषन्त वक्ष्यः ॥९॥**

पदार्थ—( एहिमायासः ) हे क्रिया में बुद्धि रखनेवाले ( अस्मिन् ) बुद्धिमान्  
से परिपूर्ण ( अद्भुः ) दोहरहिन ( वक्ष्यः ) संसार की सुख पहुँचानेवाले ( विश्वे )  
सब ( देवासः ) विद्वान् लोगो ! तुम ( मेधम् ) ज्ञान और क्रिया से सिद्ध करने  
योग्य यज्ञ को प्रीतिपूर्वक यथावत् सेवन किया करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इसका आशय होता है कि—हो विद्वान् लोगो ! तुम दूसरे के विनाश और मोह से रहित तथा भ्रष्टी विद्या से विजायते होकर सब मनुष्यों को सदा विद्या से सुख देते रहो ॥ १॥

विद्वानों को किस प्रकार की बाणी की इच्छा करनी चाहिए,

इस विषय को अपने मन्त्र में ईश्वर ने कहा है—

**पावका नः सरस्वती वार्जैर्भिर्वाग्मिनीवती । यज्ञं वन्दु धियावसुः ॥१०॥**

भाषार्थ—( वाग्मिनीः ) जो सब विद्या की प्राप्ति के निमित्त अन्न आदि पदार्थ हैं, और जो उनके साथ ( वाग्मिनीवती ) विद्या से सिद्ध की हुई विद्याओं में युक्त ( विद्यावसुः ) शुद्ध कर्म के साथ काम देने और ( पावका ) पवित्र करनेवाले व्यवहारों को चितानेवाली ( सरस्वती ) जिसमें प्रज्ञा योग्य ज्ञान आदि गुण हैं ऐसी उत्तम सब विद्याओं की देनेवाली बाणी है, वह हम लोगों के ( वन्दु ) शिल्पविद्या के महिमा और कर्मरूप यज्ञ की ( वन्दु ) प्रकाश करनेवाली हो ॥ १० ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि वे ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ से सत्य विद्या और सत्य ब्रह्मसुक्त कामों में कुशल और सब के उपकार करनेवाली बाणी को प्राप्त करें, यह ईश्वर का उपदेश है ॥ १० ॥

ईश्वर ने यह बाणी किस प्रकार की है, इस बात का उपदेश अपने

मन्त्रों में किया है—

**चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥**

भाषार्थ—( सूनृतानाम् ) जो मिथ्या बचन के नाश करने, सत्य बचन और सत्य कर्म को सदा सेवक करने ( सुमतीनाम् ) अत्यन्त उत्तम बुद्धि और विद्यावाले विद्वानों की ( चेतन्ती ) समझने तथा ( चोदयित्री ) शुभ गुणों को प्रहरण करनेवाली ( सरस्वती ) बाणी है, वही सब मनुष्यों के शुभ गुणों के प्रकाश करनेवाले यज्ञ आदि कर्म चारण करनेवाली होती है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्यायुक्त और छल आदि दोषरहित विद्वान् मनुष्यों की सत्य उपदेश करनेवाली यथार्थ बाणी है, वही सब मनुष्यों के सत्य ज्ञान होने के लिए योग्य होती है, अविद्वानों की नहीं ॥ ११ ॥

**महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा विराजति ॥ १२ ॥**

भाषार्थ—जो ( सरस्वती ) बाणी ( केतुना ) घुम कर्म प्रथवा श्रेष्ठ बुद्धि से ( अर्णः ) शब्दरूपी समुद्र की ( प्रचेतयति ) जनानेवाली है, वही मनुष्यों की ( विद्या ) सब बुद्धियों को विशेष करके प्रकाश करती है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकोपमेयलुप्तोपमानाकार दिखलाया है । जैसे वायु से तरङ्गयुक्त और सूर्य से प्रकाशित समुद्र अपने रत्न और तरङ्गों से युक्त होने के कारण बहुत उत्तम व्यवहार और रक्षादि की प्राप्ति में बड़ा भागी माना जाता है, वैसे ही जो आकाश और वेद का अनेक विधादि गुणवाला शब्दरूपी महासागर उस को प्रकाश करनेवाली वेदवाणी और विद्वानों का उपदेश है, वही माधारण मनुष्यों की यथार्थ बुद्धि का बढ़ानेवाला होता है ॥ १२ ॥

और जो दूसरे सूक्त की विद्या का प्रकाश करके क्रियाओं का हेतु अग्निशब्द का अर्थ और उसके सिद्ध करनेवाले विद्वानों का लक्षण तथा विद्वान् होने का हेतु सरस्वती शब्द से सब विद्याप्राप्ति का निमित्त बाणी के प्रकाश करने से जान लेना चाहिए कि हमारे सूक्त के अर्थ के साथ तीसरे सूक्त के अर्थ की सङ्गति है ।

[ यह ] प्रथम अनुवाक, तीसरा सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथास्य दशमस्य ऋतुसप्तस्य मनुष्यत्वा ऋषिः । इन्द्रो वेदता । १, २, ४-६

गायत्रीः १ विराट्गायत्रीः १० निषड्गायत्री च छन्दः । यद्वजः स्वरः ॥

अब चौथे सूक्त का आरम्भ करते हैं । ईश्वर ने इस सूक्त के पहले मन्त्र में

उक्त विद्या के पूर्ण करनेवाले साधन का प्रकाश किया है—

**सुरूपकृत्नुमृतयं सुदुधामिव मोदुहं । जुहुमसि यविंयवि ॥ १ ॥**

भाषार्थ—जैसे दूध की इच्छा करनेवाला मनुष्य दूध दोहने के लिए सुलभ दुधानेवाली गौओं को दोहके अपनी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है, वैसे हम लोग ( यविंयवि ) सब दिन अपने निकट स्थित मनुष्यों को ( कृतये ) विद्या की प्राप्ति के लिए ( सुरूपकृत्नुमृतयं ) परमेश्वर जो कि अपने प्रकाश से सब पदार्थों को उत्तम रूपयुक्त करनेवाला है उसकी ( जुहुमसि ) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य गाय के दूध को प्राप्त होने पर प्रयोजन को सिद्ध करते हैं, वैसे ही विद्वान् धार्मिक पुरुष भी परमेश्वर की उपासना से श्रेष्ठ विद्या आदि गुणों की प्राप्ति होकर अपने-अपने काम्यों की पूर्ण करते हैं ॥ १ ॥

अपने मन्त्र में ईश्वर ने इन्द्र मन्त्र से सूर्य के गुणों का वर्णन किया है—

**उप नः सन्नना गहि सौमस्य सौमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मर्दः ॥ २ ॥**

भाषार्थ—( सौमपाः ) जो सब पदार्थों का रसक और ( गोदाः ) तेज के व्यवहार को देनेवाला सूर्य अपने प्रकाश से ( सौमस्य ) उत्पन्न हुए कार्यरूप अयस् से ( सन्नना ) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों के प्रकाश करने की अपनी किरणों द्वारा समुक्त ( अपाहि ) आता है, इसी से यह ( नः ) हम लोगों तथा ( इद्रेवतो ) पुरुषार्थ से अपने-अपने पदार्थों को प्राप्त होनेवाले पुरुषों को ( मर्दः ) धामन्य बढ़ाता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—जिस प्रकार सब जीव सूर्य के प्रकाश में अपने अपने कर्म करने को प्रवृत्त होते हैं, उस प्रकार रात्रि में सुख से तृप्ति हो सकते हैं ॥ २ ॥

जिसने सूर्य को जगाया है, उस परमेश्वर ने अपने जानने का उपाय अपने मन्त्र में जगाया है—

**अथा ते अन्तर्मानां विद्याम् सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥**

भाषार्थ—हे परम ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! ( ते ) आपके ( अन्तर्मानाम् ) निकट अर्थात् आपको जानकर आपके समीप तथा आपकी आज्ञा में रहनेवाले विद्वान् लोग, जिनकी ( सुमतीनाम् ) वेदाविशाल परीपकाररूपी धर्म करने में श्रेष्ठ बुद्धि हो रही है, उनके समागम से हम लोग ( विद्याम् ) आपको जान सकते हैं, और आप ( नः ) हमको ( अगहि ) आप्त अर्थात् हमारे आत्माओं में प्रकाशित हुईए, और ( अथ ) इसके अनन्तर कृपा करके अन्तर्यामिरूप से हमारे आत्माओं में स्थित हुए ( नातिख्यः ) सत्य उपदेश को मन रोकिए, किन्तु उसकी प्रेरणा सदा किया कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जब मनुष्य इन धार्मिक श्रेष्ठ विद्वानों के समागम से शिक्षा और विद्या को प्राप्त होते हैं, तभी पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के ज्ञान द्वारा माना प्रकार से सुखी होकर फिर वे अन्तर्यामी ईश्वर के उपदेश को छोड़कर कभी इधर-उधर नहीं भ्रमते ॥ ३ ॥

मनुष्य विद्वानों के समीप जाकर क्या करें और वे इनके साथ कैसे बनें,

इस विषय का उपदेश ईश्वर ने अपने मन्त्र में किया है—

**परं हि विग्रमस्तुतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥**

भाषार्थ—हे विद्या की अपेक्षा करनेवाले मनुष्यों ! जो विद्वान् तुम और ( ते ) तेरे ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिए ( आ वरम् ) श्रेष्ठ विज्ञान को देता हो, उस ( विपश्चितम् ) श्रेष्ठ बुद्धिमान ( अस्तुतम् ) हिमा आदि प्रधर्मरहित ( इन्द्रम् ) विद्या, परमेश्वरयुक्त ( विपश्चितम् ) यथार्थ सत्य कहनेवाले मनुष्य के समीप जाकर उस विद्वान् से ( पृच्छ ) अपने मन्त्रों पूछ, और फिर उनके कहे यथार्थ उत्तरों को ग्रहण करके औरों के लिए भी उपदेश कर, परन्तु जो मनुष्य अविद्वान् अर्थात् मूर्ख, ईर्ष्या करने वा कपट और स्वार्थ में संयुक्त हो उससे तु ( परं हि ) सदा दूर रह ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को यही योग्य है कि प्रथम सत्य का उपदेश करनेवाले, वेद पढ़े हुए और परमेश्वर की उपासना करनेवाले विद्वानों को प्राप्त होकर अन्धवी प्रकार उनके साथ प्रश्नोत्तर की रीति से अपनी सब गल्लियाँ निवृत्त करे, किन्तु विद्याहीन मूर्ख मनुष्य का सङ्ग वा उनके दिए हुए उत्तरों में विषवास कभी न करे ॥ ४ ॥

ईश्वर ने फिर इसी विषय का उपदेश अपने मन्त्र में किया है—

**उत ब्रवन्तु नो निद्रो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इवः ॥ ५ ॥**

भाषार्थ—जो परमेश्वर की ( इवः ) सेवा को चारण किये हुए, सब विद्या, धर्म और पुरुषार्थ में वर्तमान हैं, वे ही ( नः ) हम लोगों के लिए, सब विद्याओं का उपदेश करें, और जो ( निद्रो ) नास्तिक ( चिदः ) निन्दक वा भूत मनुष्य हैं, वे सब हम लोगों के निवास स्थान से ( निरारत ) दूर चले जायें, किन्तु ( उत ) निश्चय करके और देशों से भी दूर हो जायें अर्थात् अशर्मा पुरुष किसी देश में न रहें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि आप्त धार्मिक विद्वानों का सङ्ग कर और मूर्खों के सङ्ग को सर्वथा छोड़के ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिए कि जिससे सर्वत्र विद्या की बुद्धि, अविद्या की हानि, मानने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार, दुष्टों को दण्ड, ईश्वर की उपासना आदि शुभ कर्मों की वृद्धि और अशुभ कर्मों का विनाश निश्च होता रह ॥ ५ ॥

यह सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अब मनुष्यों को कौसा स्वभाव चारण करना चाहिए, इस विषय का

उपदेश ईश्वर ने अपने मन्त्र में किया है—

**उत नः सुभगौ अरिर्वोचैर्युदेस कृण्वः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥**

भाषार्थ—हे ( इन्द्रम् ) दुष्टों को दण्ड देने वाले परमेश्वर ! हम लोग ( इन्द्रस्य ) आप के दिये हुए ( शर्मणि ) नित्य सुख वा आज्ञा पालने में ( स्याम ) प्रवृत्त हो, और ये ( कृण्वः ) सब मनुष्य प्रीति के साथ मनुष्यों के लिए सब विद्याओं को ( आरिः ) उपदेश से प्राप्त करें, जिससे सत्य के उपदेश को प्राप्त हुए ( नः ) हम लोगों को ( अरिः, उत ) शत्रु भी ( सुभगाम् ) श्रेष्ठ विद्या ऐश्वर्ययुक्त जानें वा कहें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जब सब मनुष्य विरोध को छोड़कर सब के उपकार करने में प्रयत्न करते हैं, तब शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, जिससे सब मनुष्यों को ईश्वर की कृपा से निरन्तर उत्तम आनन्द प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

परमेश्वर प्रार्थना करने योग्य क्यों हैं, यह विषय अपने मन्त्र में प्रकाशित किया है—

**हमाशुयाशवै भर यज्ञिभ्यं तृमाद्वनम् । पतयन्मन्द्यत्सस्वम् ॥ ७ ॥**

भाषार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! आप अपनी कृपा करके हम लोगों के अर्थ ( आशवै ) यानों में सब सुख वा वेगादि गुणों की कीमती प्राप्ति के लिए जो ( आशुयः ) वेग आदि गुणवाले अग्नि-वायु आदि पदार्थ ( यज्ञिभ्यम् ) यज्ञरूपि राज्य के महिमा की कीमती ( इन् ) जल और पृथिवी आदि ( तृमाद्वनम् ) जो मनुष्यों को अत्यन्त आनन्द देनेवाले तथा ( पतयन् ) स्वाधिपन को करनेवाले वा ( मन्द्यत्सस्वम् ) जिसमें आनन्द को प्राप्त होने वा विद्या के जननेवाले मित्र हों ऐसे ( भर ) विज्ञान आदि वस्तुओं को हमारे लिए चारण कीजिए ॥

भाषार्थ—ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य पर कृपा करता है, धावत करनेवाले पर नहीं, क्योंकि जब तक मनुष्य श्रेष्ठ-श्रेष्ठ पुरुषार्थ नहीं करता तब तक ईश्वर की कृपा



और अपने किये हुए कर्मों से प्राप्त हुए पदार्थों की रक्षा भी करने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्यों को पुरुषार्थी होकर ही ईश्वर की कृपा का भागी होना चाहिए ॥ ७ ॥

किर भी परमेश्वर ने सूर्यलोक के स्वभाव का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—  
अस्य पीत्वा शतक्रतो धनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥

पदार्थ—ह पुरुषोत्तम ! जैसे यह ( धन ) मूर्तिमान् होके सूर्यलोक ( अस्य ) जलरम्भ का ( पीत्वा ) पीकर ( वृत्राणाम् ) मेघ के आच्छादित जलबिन्दुओं को वषट्के सब ओषधि आदि पदार्थों को प्राप्त करके सब की रक्षा करता है, वैसे ही हे ( शतक्रतो ) असंख्य कर्मों के करनेवाले शूरवीरो ! तुम लोग भी सब रोग और धर्म के विरोधी दुष्ट शत्रुओं का नाश करनेहारि हाकर ( अस्य ) हम जगत् के रक्षा करनेवाले ( अभवः ) हुआ। इसी प्रकार जा ( वाजेषु ) दण्ड के साथ युद्ध में प्रबलमान धार्मिक और ( वाजिनम् ) शूरवीर पुण्य है, उसकी ( प्रावः ) अच्छी प्रकार रक्षा सदा करने रहिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में सुत्पापमालङ्कार है। जैसे जो मनुष्य दुष्टों के साथ धर्मपूर्वक युद्ध करता है, उगी का ही विजय होता है और का नहीं। तथा परमेश्वर भी धर्मपूर्वक युद्ध करनेवाले मनुष्यों का ही सहाय करनेवाला होता है और का नहीं ॥ ८ ॥

किर इन्द्र शब्द से अगले मन्त्र में ईश्वर का प्रकाश किया है—

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ! धनानामिन्द्र सातये ॥९॥

पदार्थ—ह ( शतक्रतो ) असंख्य वस्तुओं में विज्ञान रखनेवाले ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर ! हम लोग ( धनानाम् ) पूर्ण विद्या और राज्य का सिद्ध करनेवाले पदार्थों का ( सातये ) सुखभाग वा अच्छे प्रकार स्वयं गरन के लिए ( वाजेषु ) गुदादि व्यवहारा में ( वाजिनम् ) विजय करानेवाले और ( तम् ) उक्त गुणयुक्त ( त्वा ) आपकी ही ( वाजयामः ) नित्य प्राणि जानन और जनान का प्रयत्न करते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य दुष्टों को युद्ध में निबल करना तथा जितेन्द्रिय वा विद्वान् होकर जगदीश्वर की आज्ञा का पालन करता है, वही उत्तम धन वा युद्ध में विजय का अर्थात् सब शत्रुओं को जीतने वाला होता है ॥ ९ ॥

किर भी वह परमेश्वर कैसा है और क्यों स्तुति करने योग्य है, इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

यो रायोऽवनिर्महान्सुपारः सुन्वतः सर्वा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यों ! जो बड़ो-से-बड़ा ( सुपार ) अच्छी प्रकार सब कामनाओं की परिपूर्णा करनेहारि ( सुन्वतः ) प्राप्त हुए सोमविद्या वाले धर्मात्मा पुरुष को ( सर्वा ) मित्रता में सुख देने, तथा ( रायः ) विद्या सुवर्ण आदि धन का ( अवनिः ) रक्षक और हम समार में उक्त पदार्थों में जीवों का पहुँचाने और उनका देने वाला करुणामय परमेश्वर है, ( तस्मै ) उस की तुम लोग ( गायत ) नित्य पूजा किया करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—किसी मनुष्य को केवल परमेश्वर की स्तुति मात्र ही करने से सन्तोष न करना चाहिए किन्तु उस की आज्ञा में रहकर और ऐसा समझकर कि परमेश्वर मुझको सर्वत्र देखता है, इसलिए अधर्म से निवृत्त होकर और परमेश्वर के सहाय की इच्छा करके मनुष्य को सदा उद्योग ही में वर्तमान रहना चाहिए ॥ १० ॥

उस तीसरे सूक्त की कही हुई विद्या में, धर्मात्मा पुरुषों को परमेश्वर का ज्ञान सिद्ध करना तथा आत्मा और शरीर के स्थिर भाव, आरोग्य की प्राप्ति तथा दुष्टों के विजय और पुरुषार्थ से चक्रवर्ति राज्य को प्राप्त होना, इत्यादि अर्थ द्वारा हम चौथे सूक्त के अर्थ की सङ्गति समझती चाहिए।

यह चौथा सूक्त और आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ वशाचरमास्य पञ्चमसूक्तस्य मधुचक्ष्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ बिराङ्गायत्री,  
२ आर्च्युष्णिगः, ३ पिपीलिकामध्या निचुद्गायत्री, ४, १० गायत्री,  
५-७, ९ निचुद्गायत्री, ८ पावनचुद्गायत्री च छन्दः ।  
१, ३-१० षड्जः; २ ऋक्षम स्वरः ॥

पाँचवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर और स्पर्शगुण वाले वायु का प्रकाश किया है—

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सर्वायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( स्तोमवाहसः ) प्रशमनीय गुणयुक्त वा प्रशमा कराने और ( सर्वायः ) सब से मित्रभाव में वर्तने वाले विद्वान् लोगो ! तुम और हम लोग सब मिलके परस्पर प्रीति के साथ मुक्ति और शिल्प विद्या को सिद्ध करने में ( आनिवीतः ) स्थित हो, अर्थात् उनकी निरन्तर अच्छी प्रकार से यत्नपूर्वक साधना करने के लिए ( इन्द्रम् ) परमेश्वर वा बिजली में जुड़े हुए वायु का ( अभिप्रगायतः ) अर्थात् उसके गुणों का उपदेश करें और सुनें कि जिससे वह अच्छी रीति से सिद्ध की हुई विद्या सब को प्रकट हो जावे, ( तु ) और उस से तुम सब लोग सब सुखों को ( एतः ) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भाषार्थ—जब तक मनुष्य हठ, छल और अभिमान को छोड़कर सत्य प्रीति के साथ परस्पर मित्रता करके परीपकार करने के लिए तन, मन और धन से यत्न नहीं करते, तब तक उन के सुखों और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति कभी नहीं हो सकती ॥ १ ॥

किर भी अगले मन्त्र में उन्हीं दोनों के सुखों का प्रकाश किया है—

पुरुतमं पुरुषाभीशानं वार्येणाम् । इन्द्र सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मित्र विद्वान् लोगो ! ( वार्येणाम् ) अत्यन्त उत्तम ( पुरुषाम् ) आकाश से लेके पृथिवी पर्यन्त असंख्य पदार्थों को ( ईशानम् ) रखने में समर्थ ( पुरुतमम् ) दुष्ट स्वभाव वाले जीवों को खानि प्राप्त कराने वाले ( इन्द्रम् ) और श्रेष्ठ जीवों को सब ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के—तथा ( वार्येणाम् ) अत्यन्त उत्तम ( पुरुतमम् ) आकाश से लेके पृथिवी पर्यन्त बहुत से पदार्थों की विद्याओं के साधक ( पुरुषाम् ) दुष्ट जीवों वा कर्मों के भोग के निमित्त और ( इन्द्रम् ) जीवमात्र को सुख-दुःख देने वाले पदार्थों के हेतु भौतिक वायु के—गुणों का ( अभिप्रगायतः ) अच्छी प्रकार उपदेश करो। और ( तु ) जो कि ( सुते ) रम खींचने की क्रिया से प्राप्त वा ( सोमे ) उम विद्या से प्राप्त होने योग्य ( सचा ) पदार्थों के निमित्त कार्य है, उनका उक्त विद्याओं से सब के उपकार के लिए यथायोग्य मुक्त करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पीछे के मन्त्र से इस मन्त्र में 'मसाय' ; तु, अभिप्रगायत' इन तीन शब्दों को अर्थ के लिए लेना चाहिए। इस मन्त्र में यथा-योग्य व्यवस्था करके उन के किये हुए कर्मों का फल देने से ईश्वर तथा इन कर्मों के फल भोग कराने के कारण वा विद्या और सब क्रियाओं के साधक होने से भौतिक अर्थात् समागी वायु का ग्रहण किया है ॥ २ ॥

वे तुम, हम और सब प्राणियों के लिए क्या करते हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

स या नो योग आ भुवन्स गये स पुरन्ध्याम् । गमद्वाजैभिरा स नः ॥३॥

पदार्थ—( स ) पूर्वोक्त इन्द्र परमेश्वर और राशवान् वायु ( नः ) हम लोगों के ( योगे ) सब सुख के सिद्ध कराने वाले वा पदार्थों को प्राप्त कराने वाले योग तथा ( स ) वे ही ( राये ) उत्तम धन के लाभ के लिए और ( सः ) वे ( पुरन्ध्याम् ) अनक शास्त्रों की विद्याओं से युक्त बुद्धि में ( आ भुवन्स ) प्रकाशित हो। इसी प्रकार ( स ) वे ( वाजैभिः ) उत्तम घन्ने और विमान आदि सवारियों के सह वर्तमान ( नः ) हम लोगों को ( गमद्वाजैः ) उत्तम सुख होने का ज्ञान देता तथा यह वायु भी इस विद्या की सिद्धि में हेतु होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस में भी श्लेषालङ्कार है। ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य का सहायकारी होता है आनमी का नहीं, तथा राशवान् वायु भी पुरुषार्थी ही ने कार्यसिद्धि का निमित्त होता है क्योंकि किसी प्राणी को पुरुषार्थ के बिना धन वा बुद्धि का और इनके बिना उत्तम सुख का लाभ कभी नहीं हो सकता। इसलिए सब मनुष्यों का उद्योगी अर्थात् पुरुषार्थी आशावाले अवश्य होना चाहिए ॥ ३ ॥

ईश्वर ने अपने आप और सूर्यलोक का गुण सहित चौथे मन्त्र से प्रकाश किया है—

यस्य संस्थे न वृष्वते हरीं समस्तु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥४॥

पदार्थ—ह मनुष्यों ! तुम लोग ( यस्य ) जिस परमेश्वर वा सूर्य के ( हरी ) पदार्थों को प्राप्त करने वाले बल और पराक्रम तथा प्रकाश और आकर्षण ( संस्थे ) इस मसार में वर्तमान है, जिन के सहाय से ( समस्तु ) युद्धों में ( शत्रवः ) वैरी लोग ( न वृष्वते ) अच्छी प्रकार बल नहीं कर सकते, ( तस्मै ) उस ( इन्द्राय ) परमेश्वर वा सूर्य लोक को उनके गुणों की प्रशंसा कह और सुन के यथावत् जानलो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस में श्लेषालङ्कार है। जब तक मनुष्य लोग परमेश्वर को अपना इष्ट देव समझने वाले और बलवान् अर्थात् पुरुषार्थी नहीं होते, तब तक उनको दुष्ट शत्रुओं की निर्बलता करने का सामर्थ्य भी नहीं होता ॥ ४ ॥

ये ससारी पदार्थ किसलिए उत्पन्न किये गये और कैसे हैं, ये किस से पवित्र किये जाते हैं, इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

सुतपाव्ने सुता इमे शुच्यो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याक्षिरः ॥५॥

पदार्थ—परमेश्वर ने वा वायु सूर्य से जिस कारण ( सुतपाव्ने ) अपने उत्पन्न किये हुए पदार्थों की रक्षा करने वाले जीव के तथा ( वीतये ) ज्ञान वा भोग के लिए ( दध्याक्षिरः ) जो धारण करने वाले उत्पन्न होते हैं, तथा ( शुच्यः ) जो पवित्र ( सोमासः ) जिन से अच्छे व्यवहार होते हैं, वे सब पदार्थ जिसने उत्पादन करके पवित्र किये हैं, इसी से सब प्राणी लोग इन को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब ईश्वर ने सब जीवों पर कृपा करके कर्मों के अनुसार यथायोग्य फल देने के लिए सब कार्य रूप जगत् को रक्षा और पवित्र किया है, तथा पवित्र करने वाले सूर्य और पवन को रक्षा है, उसी हेतु से सब जड़ पदार्थ वा जीव पवित्र होते हैं। परन्तु जो मनुष्य पवित्र गुण-कर्मों के ग्रहण से पुरुषार्थी होकर ससारी पदार्थों से यथावत् उपयोग लेते तथा सब जीवों को उनके उपयोगी कराते हैं, वे ही मनुष्य पवित्र और सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

यह नवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ईश्वर ने, जीव क्या करके पूर्वोक्त उपयोग के ग्रहण करने की समर्थ होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्यादि परमेश्वर्ययुक्त ( सुक्रतो ) श्रेष्ठ कर्म करने और उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् मनुष्य ! ( त्वम् ) तु ( सद्यः ) शीघ्र ( सुतस्य ) ससारी पदार्थों के रस के ( पीतये ) पात्र वा ग्रहण और ( ज्यैष्ठ्याय ) अत्युत्तम कर्मों के अनुष्ठान करने के लिए ( वृद्धः ) विद्या आदि शुभ गुणों के ज्ञान के ग्रहण और सब के उपकार करने में श्रेष्ठ ( अजायथाः ) हो ॥ ६ ॥

**आचार्य—**ईश्वर जीव के लिए उपदेश करता है कि—हे मनुष्य ! तू जब तक विद्या में बृद्ध होकर अच्छी प्रकार परोपकार न करेगा, तब तक तुम्हें मनुष्यपद और सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति कभी न होगी, इस से तू परोपकार करने वाला सदा हो ॥ १ ॥

उक्त काम के आचरण करने वाले जीव को आशीर्वाद कौन देता है, इस बात का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

**आ त्वा विभन्तश्चाश्वः सोमांस इन्द्र गिर्विशः । शन्ते सन्तु प्रचेतसे ॥७॥**

**पदार्थ—**हे धार्मिक ( गिर्विशः ) प्रसास के योग्य कर्म करने वाले ( इन्द्र ) विद्वन् जीव ! ( आश्वः ) वेगादि गुणा सहित सब क्रियाओं से व्याप्त ( सोमांस ) सब पदार्थ ( त्वा ) तुम्हें ( आश्विनम् ) प्राप्त हो, तथा इन पदार्थों को प्राप्त हुए ( प्रचेतसे ) बृद्ध ज्ञान वाले ( ते ) ठीक लिए ( शन्ते ) ये सब पदार्थ मेरे अनुग्रह से सुख करने वाले ( सन्तु ) हों ॥ ७ ॥

**आचार्य—**ईश्वर ऐसे मनुष्यों को आशीर्वाद देता है कि जो मनुष्य विद्वान्, परोपकारी होकर अच्छी प्रकार नित्य उद्योग करके इन सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, वही सदा सुख को प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं ॥ ७ ॥

ईश्वर ने उक्त अर्थ के ही प्रकाश करने वाले इन्द्र मन्त्र का अगले मन्त्र में भी प्रकाश किया है—

**त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वासुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥८॥**

**पदार्थ—**हे ( शतक्रतो ) असंख्य कर्मों के करने और अनन्त विज्ञान के जानने वाले परमेश्वर ! जैसे ( स्तोमाः ) वेद के स्तोत्र तथा ( उक्था ) प्रशमनीय स्तोत्र आपको ( अवीवृधन् ) अत्यन्त प्रसिद्ध करते हैं, वैसे ही ( न ) हमारी ( गिर ) विद्या और सत्य-आचरणयुक्त वाणी भी ( त्वाम् ) आपको ( वर्धन्तु ) प्रकाशित करें ॥ ८ ॥

**आचार्य—**जो विश्व में पृथिवी, सूर्य आदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रचे हुए पदार्थ हैं, वे सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले तथा धन्यवाद देने के योग्य परमेश्वर ही को प्रसिद्ध करके जानते हैं कि जिस में न्याय और उपकार आदि ईश्वर के गुणों को अच्छी प्रकार जानने के विद्वान् भी वैसे ही कर्मों में प्रवृत्त हो ॥ ८ ॥

यह जगदीश्वर हमारे लिए क्या करे, तो अगले मन्त्र में वर्णन किया है—

**अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौस्या ॥९॥**

**पदार्थ—**जो ( अक्षितोतिः ) नित्य ज्ञान वाला ( इन्द्र ) सब ऐश्वर्य युक्त परमेश्वर है, वह कृपा करके हमारे लिए ( यस्मिन् ) जिस व्यवहार में ( विश्वानि ) सब ( पौस्या ) पुरुषार्थ से युक्त बल है ( इन्द्रम् ) हम ( सहस्रिणम् ) असंख्य कर्म करने वाले ( वाजम् ) पदार्थों के विज्ञान को ( सनेत् ) सम्यक् सेवन कराये कि जिससे हम लोग उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

**आचार्य—**जिस की सत्ता से ससार के पदार्थ बलवान् होकर अपने-अपने व्यवहारों में वर्तमान हैं, उन सब बल आदि गुणों से उपकार लेकर विश्व के नाना प्रकार के सुख भोगने के लिए हम लोग पूरा पुरुषार्थ करें, तथा ईश्वर हम प्रयोजन में हमारा सहाय करे, इसलिए हम लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

किस की रक्षा से पुरुषार्थ सिद्ध होता है, इस विषय का प्रकाश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है—

**मा नो मर्त्ता अभिद्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्विशः । ईशानो यवया वधम् ॥१०॥**

**पदार्थ—**हे ( गिर्विशः ) वेद का उत्तम-उत्तम शिक्षाओं से सिद्ध की हुई वाणियों के द्वारा सेवा करने योग्य सर्वशक्तिमान् ( इन्द्र ) सब के रक्षक ( ईशान ) परमेश्वर ! आप ( नः ) हमारे ( तनूनाम् ) शरीरों का ( वधम् ) नाश, दोष सहित ( मा ) कभी मत ( यवय ) कीजिए तथा आपके उपदेश से ( मर्त्ताः ) ये सब मनुष्य लोग भी ( नः ) हम से ( अभिद्रुहन् ) वैर कभी न करें ॥ १० ॥

**आचार्य—**कोई मनुष्य धन्याय से किसी प्राणी को मारने की इच्छा न करे, किन्तु परस्पर सब मित्र भाव से वर्त्ते, क्योंकि जैसे परमेश्वर बिना अपराध के किसी का तिरस्कार नहीं करता, वैसे ही सब मनुष्यों को भी करना चाहिए ॥ १० ॥

इस पञ्चम सूक्त की विद्या से मनुष्यों को किस प्रकार पुरुषार्थ और सब का उपकार करना चाहिए इस विषय के कहने से श्रीवेद सूक्त के अर्थ के साथ इसकी सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह पाँचवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ दशमोऽध्यायः अथ दशमः सूक्तस्य मनुष्यव्याख्याः । १-३ इन्द्रः; ४, ६, ८, ९

मर्त्ताः; ४, ७ मर्त्ता इन्द्रवधः; १० इन्द्रवध वेदताः । १, २, ४-७, ९, १०

पावनी; २ विश्वरूपवाणी; ४, ८ निद्रुहवाणी च अन्यः । अर्थः स्वरः ॥

इन्द्रोऽस्य के प्रथम मन्त्र में व्याख्याय काव्यों में किस प्रकार से किन-किन पदार्थों को संयुक्त करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है—

**युञ्जन्ति अश्वमर्षं चरन्तं परि तस्मिन् । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥**

**पदार्थ—**जो मनुष्य ( अश्वम् ) अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त होने वाले हिसारहित

सब सुख को करने ( अश्वम् ) सब जगत् को जानने वा सब म व्याप्त ( परितस्मिन् ) सब मनुष्य वा स्थावर-जङ्गम पदार्थ और चराचर जगत् में भरपूर हो रहा है ( अश्वम् ) उस महान् परमेश्वर को उपासना योग द्वारा प्राप्त होते हैं, वे ( दिवि ) प्रकाशरूप परमेश्वर और बाह्य सूर्य वा पवन के बीच में ( रोचनाः ) ज्ञान से प्रकाशमान होके ( रोचन्ते ) आनन्द में प्रकाशित होते हैं ।

तथा जो मनुष्य ( अश्वम् ) बाह्य देश में रूप का प्रकाश करने तथा धर्म रूप होने से ज्ञान गुणयुक्त ( अश्वम् ) सर्वत्र गमन करने वाले ( अश्वम् ) महान् सूर्य और धर्म को शिल्प विद्या में ( परितस्मिन् ) सब प्रकार से युक्त करते हैं, वे जैसे ( दिवि ) सूर्यादि के गुणों के प्रकाश में पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे ( रोचनाः ) तेजस्वी होके ( रोचन्ते ) नित्य उत्तम-उत्तम आनन्द से प्रकाशित होते हैं ॥ १ ॥

**आचार्य—**जो लोग विद्या-अभ्यास में निरन्तर उद्योग करने वाले होते हैं, वे ही सब सुखों को प्राप्त होते हैं । इसलिए विद्वान् को उचित है कि पृथिवी आदि पदार्थों से उपयोग लेकर सब प्राणियों को लाभ पहुँचावे कि जिस में उनको भी सम्पूर्ण सुख मिले ॥ १ ॥

उक्त सूर्य और धर्म आदि के कौनसे गुण हैं, और वे कहां-कहां उपयुक्त करने योग्य हैं, तो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

**युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्टू नृवाहसा ॥ २ ॥**

**पदार्थ—**जो विद्वान् ( अस्य ) सूर्य और धर्म के ( काम्या ) सब के इच्छा करने योग्य ( शोणा ) अपने-अपने वर्ण के प्रकाश करनेवाले वा गमन के हेतु ( धृष्टू ) दृढ़ ( विपक्षसा ) विविध कला और जल के अङ्ग धूमने वाले पाँचरूप यन्त्रों से युक्त ( नृवाहसा ) अच्छी प्रकार सवारियाँ में जुड़े हुए मनुष्यादिकों का देश दशान्तर में पहुँचाने वाले ( हरी ) आकर्षण और वेग तथा सुखलपक्ष और कृपापक्ष रूप वा घोड़े जिन से सबका हर्षण किया जाना है, इत्यादि श्रेष्ठ गुणों की पृथिवी, जल और आकाश में तान-तान के लिए अपने-अपने रथों में ( युञ्जन्ति ) जाई ॥ २ ॥

**आचार्य—**ईश्वर उपदेश करता है कि—मनुष्य लोग जब तक भू, जल आदि पदार्थों के गुण, ज्ञान और उन के उपकार से भू, जल और आकाश में जाने-जाने के लिए अच्छी सवारियों को नहीं बनाते, तब तक उनको उत्तम राज्य और धन आदि उत्तम सुख नहीं मिल सकते ॥ २ ॥

जितने सत्कार के सब पदार्थ उत्पन्न किये हैं, वह कौंसा है, यह बात अगले मन्त्र में प्रकाशित की है—

**केतुं कृण्वन्नेकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुष्जिह्वजायथाः ॥ ३ ॥**

**पदार्थ—**( मर्या ) हे मनुष्य लोगो ! जो परमात्मा ( अकेतवे ) अज्ञानरूपी अन्धकार के विनाश के लिए ( केतुम् ) उत्तम ज्ञान, और ( अपेशसे ) निर्धनता शत्रुत्व तथा कुरूपता विनाश के लिए ( पेशः ) सुवर्ण आदि धन और श्रेष्ठ रूप को ( कृण्वन् ) उत्पन्न करता है, उसको तथा सब विद्याओं का ( समुष्जिह्वः ) जो ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्तने वाले हैं उनसे मिल-मिलकर जानके ( अजायथा ) प्रसिद्ध होजिए । तथा हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू भी उस परमेश्वर के सहाय से ( अजायथा ) इस विद्या को यथावत् प्राप्त हों ॥ ३ ॥

**आचार्य—**मनुष्यों का प्रति रात्रि के चौथे प्रहर में आलस्य छोड़कर कुरती से उठकर अज्ञान और शत्रुता के विनाश के लिए प्रयत्न वाले होकर तथा परमेश्वर के ज्ञान और सत्कारी पदार्थों से उपकार लेने के लिए उत्तम उपाय सदा करना चाहिए ॥ ३ ॥

अगले मन्त्र में वायु के कर्मों का उपदेश किया है—

**आदहं स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥**

**पदार्थ—**जैसे ( मरुत ) वायु ( नाम ) जल और ( यज्ञियम् ) यज्ञ के योग्य देश को ( दधाना ) सब पदार्थों को धारण किये हुए ( पुनः ) फिर-फिर ( स्वधामनु ) जनों में ( गर्भत्वम् ) उनके समूहरूपी गर्भों का ( एरिरे ) सब प्रकार से प्राप्त होना कपाने, वैसे ( आदहं ) उसके उपरान्त वर्षा करत है, ऐसे ही वायु-वायु जला को चढ़ाने, वर्षाने है ॥ ४ ॥

**आचार्य—**जो जल सूर्य वा धर्म के सहाय से छोटा-छोटा हो जाता है, उस का धारण कर और मेघ के आकार का बना क वायु ही उसे फिर-फिर वर्षाना है, उसीसे सब का पालन और सब को सुख होता है ॥ ४ ॥

उन पक्षों के साथ सूर्य क्या करता है, तो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

**वीरु चिदारुजन्तुभिर्गुहां चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्त्रिया अनु ॥५॥**

**पदार्थ—**( वीरु ) जैसे मनुष्य लोग अपने पास के पदार्थों को उठाते धरते हैं, ( चिदिन्द्र ) वैसे ही सूर्य भी ( वीरु ) दृढ़ बल से ( उस्त्रियाः ) अपनी किरणों के द्वारा नसारी पदार्थों को ( अविन्द ) प्राप्त होता है, ( अनु ) उनके अनन्तर सूर्य उनको छेदन करके ( आरुजन्तुभिः ) मङ्ग करने और ( वह्निभिः ) आकाश आदि देशों में पहुँचाने वाले पवन के साथ ऊपर नीचे करता हुआ ( गुहा ) अन्तरिक्ष अर्थात् पोल में सदा चढ़ाता-गिराता रहता है ॥ ५ ॥

**आचार्य—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे बलवान् पवन अपने वेग से भारी भारी दृढ़ वृक्षों को तोड़-फोड़ डालने और उनको ऊपर नीचे-गिराने रहते हैं, वैसे ही सूर्य भी अपनी किरणों से उनका छेदन करता रहता है, इस से वे ऊपर-नीचे गिरते रहते हैं । इसी प्रकार ईश्वर के नियम से सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश को भी प्राप्त होते रहते हैं ॥ ५ ॥

यह ग्यारहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



किर वे पवन कैसे हैं, तो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

**देवयन्तो यथा मतिमच्छां चिद्वसुं गिरः । महामनूषत भूतम् ॥ ६ ॥**

पदार्थ—जैसे ( देवयन्तः ) सब विज्ञानयुक्त ( गिरः ) विद्वान् अनुष्ण ( चिद्वसुम् ) मुखकारक पदार्थविद्या से युक्त ( महाम् ) अत्यन्त बड़ी ( मतिम् ) बुद्धि ( भूतम् ) सब शास्त्रों के श्रवण और कथन को ( अच्छा ) अच्छी प्रकार ( अनुषत ) प्रकाश करते हैं, वैसे ही अच्छी प्रकार साधन करने से वायु भी शिल्प वर्णात् सब कारीगरी को ( भूतम् ) सिद्ध करते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानद्वारा है। मनुष्यों को वायु के उत्तम गुणों का ज्ञान, सब का उपकार और विद्या की वृद्धि के लिए प्रयत्न मदा करना चाहिए जिससे सब व्यवहार सिद्ध हो ॥ ६ ॥

उक्त पदार्थ किस के सहाय से कार्य के सिद्ध करने वाले होते हैं, तो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

**इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अविभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥**

पदार्थ—यह वायु ( अविभ्युषा ) भय दूर करने वाली ( इन्द्रेण ) परमेश्वर की सत्ता के साथ ( सम्जग्मानः ) अच्छी प्रकार प्राप्त हुआ तथा वायु के साथ सूर्य ( संवृक्षसे ) अच्छी प्रकार दृष्टि में आता है, ( हि ) जिस कारण ये दोनों ( समानवर्चसा ) पदार्थों में प्रसिद्ध बनवान् है, इसीसे वे सब जीवों को ( मन्दू ) आनन्द के देने वाले होते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—ईश्वर ने जो अपनी व्याप्ति और सत्ता से सूर्य और वायु आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, इन सब पदार्थों के बीच में से सूर्य और वायु ये दोनों मुख्य हैं, क्योंकि इन्हीं के धारण, आकर्षण और प्रकाश के योग से सब पदार्थ सुशोभित होते हैं। मनुष्यों को चाहिए कि इनको विद्या और उपकार लेने के लिए धृत करें ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त व्यवहार किस प्रकार से नित्य वर्तमान है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अनवधैरभिधुभिर्भवः सहस्वदूर्ध्वति । गुणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥**

पदार्थ—जो यह ( भवः ) सुख और पालन होने का हेतु यज्ञ है, वह ( इन्द्रस्य ) सूर्य की ( अनवधैः ) निर्दोष ( अभिधुभिः ) सब ओर से प्रकाशमान और ( काम्यैः ) प्राप्ति की इच्छा करने के योग्य ( गुणैः ) किरणों वा पवनो के साथ मिलकर सब पदार्थों को ( सहस्वत् ) जैन दृढ़ होते हैं, वैसे ही ( अर्धति ) श्रेष्ठ गुण करने वाला होता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो शुद्ध, अत्युत्तम होम के योग्य पदार्थों के अग्नि में किये हुए होम से मिद्ध किया हुआ यज्ञ है, वह वायु और सूर्य की किरणों की शुद्धि के द्वारा रोग-नाश करने के हेतु से सब जीवों को सुख देकर बनवान् करता है ॥ ८ ॥

अगले मन्त्र में गमनस्वभाव वाले पवन का प्रकाश किया है—

**अतः परिज्मन्वा गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नुज्जते गिरः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—जिस वायु में वागी का सब व्यवहार सिद्ध होता है, वह ( परिज्मन् ) सर्वत्र गमन करता हुआ सब पदार्थों को तबे ऊपर पहुँचाने वाला पवन ( अतः ) इस पृथिवी स्थान में जलकणों का ग्रहण करके ( अप्यनाह ) ऊपर पहुँचता और फिर ( दिवः ) सूर्य के प्रकाश से ( वा ) अथवा ( रोचनात् ) जो कि रुचि का बढ़ाने वाला मेघमण्डल है, उसमें जल को गिराता हुआ तबे पहुँचाता है, ( अस्मिन् ) इसी बाहर और भीतर रहने वाले पवन में सब पदार्थ स्थिति का प्राप्त होत है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—यह बनवान् वायु अपने गमन-आगमन गुण से सब पदार्थों के गमन-आगमन, धारण तथा शब्द के उच्चारण और श्रवण का हेतु है ॥ ९ ॥

अगले मन्त्र में सूर्य के कर्म का उपदेश किया है—

**इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रमहो वारजसः ॥ १० ॥**

पदार्थ—हम लोग ( इतः ) इस ( पार्थिवात् ) पृथिवी के संयोग ( वा ) और ( दिवः ) इस अग्नि के प्रकाश ( वा ) लोकलोकान्तों पर्यन्त चन्द्र और तारादि लोकों से भी ( सातिम् ) अच्छी प्रकार पदार्थों का विभाग करते हुए ( वा ) अथवा ( रजसः ) पृथिवी आदि लोकों से ( महः ) अति विस्तारयुक्त ( इन्द्रम् ) सूर्य को ( इमहे ) जानते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—सूर्य की किरण पृथिवी में स्थित हुए जलादि पदार्थों को भिन्न-भिन्न करके बहुत छोटे-छोटे कर देती हैं, इसीसे वे पदार्थ पवन के साथ ऊपर को चढ़ जाते हैं, क्योंकि वह सूर्य सब लोकों से बड़ा है ॥ १० ॥

सूर्य और पवन से जैसे पुरुषार्थ की सिद्धि करनी चाहिए तथा वे लोक जगत् में किम प्रकार से वर्तते रहते हैं और कैसे उनसे उपकार की सिद्धि होती है, इन प्रयोजनों में पौर्वर्त्त मुक्त के अर्थ के साथ छठे सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिए।

यह छठा सूक्त और बारहवां वगं समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तमस्य सूक्तस्य मनुष्यव्याप्तिः । इन्द्रो देवता । १, २, ३-७ वायवी । २, ४ निबुद्धवायवी, ८, १० पिपीलिकान्वयानिबुद्धवायवी, ६ पावनिबुद्धवायवी वा ज्ञानः । अर्थः स्वरः ॥

अब सातवें सूक्त का आरम्भ है। इस में अथवा मन्त्र के द्वारा इन्द्र शब्द से तीन अर्थों का प्रकाश किया है—

**इन्द्रमिदं गायिनीं बृहदिन्द्रमर्कभिरर्किजः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥**

पदार्थ—जो ( गायिनीः ) गान करनेवाले और ( अर्किजः ) विचारणीय विद्वान् हैं, वे ( अर्कभिरः ) सत्कार करने के पदार्थ सत्य-भावण, शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए कर्म, मन्त्र और विचार से ( वाणीः ) चारों वेद की वाणियों को प्राप्त होने के लिए ( बृहत् ) सबसे बड़े ( इन्द्रम् ) परमेश्वर ( इन्द्रम् ) सूर्य और ( इन्द्रम् ) वायु के गुणों के ज्ञान से ( अनूषत ) यथावत् स्तुति करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि मनुष्यों को वेदमन्त्रों के विचार से परमेश्वर, सूर्य और वायु आदि पदार्थों के गुणों को अच्छी प्रकार जानकर सब के सुख के लिए उनसे प्रयत्न के साथ उपकार लेना चाहिए ॥ १ ॥

पूर्व मन्त्र में इन्द्र शब्द से कहे हुए तीन अर्थों में से वायु और सूर्य का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

**इन्द्र इद्वर्योः सचा सम्मिदल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥**

पदार्थ—जिस प्रकार यह ( सम्मिदलः ) पदार्थों में मिलने तथा ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य का हेतु स्पर्शगुणवाला वायु, अपने ( सचा ) सब में मिलनेवाले और ( वचोयुजा ) वाणी के व्यवहार को वक्तव्यवाले ( हर्म्योः ) हरने और प्राप्त करने वाले गुणों का ( आ ) सब पदार्थों में युक्त करता है, वैसे ही ( वज्री ) संवत्सर वा तापवाला ( हिरण्ययः ) प्रकाशस्वरूप ( इन्द्रः ) सूर्य भी अपने हरण और ग्राहण गुणों का सब पदार्थों में युक्त करता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में सुप्तोपमानद्वारा है। जैसे वायु के संयोग में वज्र, श्रवण आदि व्यवहार तथा सब पदार्थों के गमन-आगमन, धारण और स्पर्श होते हैं, वैसे ही सूर्य के योग से पदार्थों के प्रकाश और छेदन भी होते हैं ॥ २ ॥

इसके अनन्तर कितने, किसलिए सूर्यलोक बनाया है, तो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

**इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयद्वि । वि गोभिरद्विभैरयत् ॥ ३ ॥**

पदार्थ—( इन्द्रः ) जो सब समार का बनानेवाला परमेश्वर है, उसने ( दीर्घाय ) निरन्तर, अच्छी प्रकार ( चक्षसे ) दर्शन के लिए ( द्वि ) सब पदार्थों के प्रकाश होने के निमित्त जिस ( सूर्यम् ) प्रसिद्ध सूर्यलोक को ( आरोहयत् ) लोकों के बीच में स्थापित किया है, वह ( गोभिः ) जो अपनी किरणों के द्वारा ( अन्नम् ) मेघ को ( रौहयत् ) अनेक प्रकार से वर्षा होने के लिए ऊपर बढ़ाकर बारबार वर्षाता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—रचने की इच्छा करनेवाले ईश्वर ने सब लोकों में दर्शन, धारण और आकर्षण आदि प्रयोजनों के लिए प्रकाशरूप सूर्यलोक को सब लोकों के बीच में स्थापित किया है, इसी प्रकार यह हर एक ब्रह्माण्ड का नियम है कि वह अणु-अणु में जल को ऊपर खेंचकर पवन के द्वारा ऊपर स्थापन करके बार-बार सतार में वर्षाता है, इसी से यह वर्षा का कारण है ॥ ३ ॥

इन्द्र शब्द के व्यवहार को दिलाकर अब प्रार्थनारूप से अगले मन्त्र में परमेश्वरार्थ का प्रकाश किया है—

**इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्रामिहूतिभिः ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर! ( इन्द्र ) परमेश्वर्य देने तथा ( उग्रः ) सब प्रकार से अनन्त पराक्रमवान् आप ( सहस्रप्रधनेषु ) अमरस्यात वन को देनेवाले चक्रवर्त्ति राज्य को सिद्ध करनेवाले ( वाजेषु ) महायुद्धों में ( उग्रभिः ) अत्यन्त सुख देने वाली ( कृतिभिः ) उत्तम-उत्तमपदार्थों की प्राप्ति तथा पदार्थों के विज्ञान और आनन्द में प्रवेश कर्तने से हम लोगों की ( अव ) रक्षा कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—परमेश्वर का यह स्वभाव है कि युद्ध करनेवाले वर्णार्था पुरुषों पर अपनी कृपा करना है और शालमिया पर नहीं। इसी से जो मनुष्य जितेन्द्रिय, विद्वान्, पक्षपात को छोड़नेवाले शरीर और आत्मा के बल से अत्यन्त पुण्यार्थी तथा शालस्य को छोड़े हुए धर्म से बड़े-बड़े युद्धों को जीतके प्रजा का निरन्तर पालन करते हैं, वे ही महाभाग्य को प्राप्त होके सुखी रहते हैं ॥ ४ ॥

किर भी उक्त अर्थ और सूर्य तथा वायु के गुणों का प्रकाश शब्दों से मन्त्र में किया है—

**इन्द्र वयं महापुन इन्द्रमर्कं हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हम लोग ( हवामहे ) बड़े-बड़े भारी संग्रामों में ( इन्द्रम् ) परमेश्वर का ( हवामहे ) अधिक स्मरण करते रहते हैं, और ( वज्रं ) छोटे-छोटे संग्रामों में भी इसी प्रकार ( वज्रिणम् ) किरणवाले ( इन्द्रम् ) सूर्य वा जलवाले वायु का जो कि ( वृत्रेषु ) मेघ के अङ्गों में ( वृत्रम् ) युक्त होनेवाले इन के प्रकाश और सब में गमनागमनादि गुणों के समान विद्या, न्याय, प्रकाश और वृत्तों के द्वारा सब राज्य का वर्तमान विदित करना आदि गुणों का धारण सब दिन करते रहें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लोकाद्वारा है। जो बड़े-बड़े सारी और छोटे-छोटे संग्रामों में ईश्वर को सर्वव्यापक और रक्षा करनेवाला मान के धर्म और उत्साह के

साथ दुष्टों के मुँह करके भी मनुष्यों का अथवा विषय होता है। तथा जैसे ईश्वर भी सूर्य और चन्द्र के निमित्त के वर्षा आदि के द्वारा ससार का अत्यन्त सुख सिद्ध किया करता है, वैसे मनुष्य लोगों को भी पदार्थों को निमित्त करके कार्यसिद्धि करनी चाहिए ॥ ५ ॥

यह तैरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

मनुष्यों को परमेश्वर की प्रार्थना किस प्रयोजन के लिए करनी चाहिए, या सूर्य किसका निमित्त है, इसविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स नो हृषन्मुं चरं सजादावचपां हृषि अस्मभ्यमप्रतिष्कृतः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( हृषन् ) सुखों के वर्धन और ( सजादावचपां ) सत्यज्ञान को देने वाले ( सः ) परमेश्वर ! आप ( अस्मभ्यम् ) जो कि हम लोग आपकी आज्ञा का अपने पुरुषार्थ में बर्तमान हैं, उनके लिए ( अतिष्कृतः ) निश्चय करनेहारे ( नः ) हमारे ( अहम् ) उस आनन्द करनेहारे प्रयोजन मोक्ष का द्वार ( चरम् ) जानलाभ को ( अवाचि ) क्षीण दीजिए ।

तथा हे परमेश्वर ! जो यह आपका बनाया हुआ ( हृषन् ) जल को वर्धन और ( सजादावचपां ) उत्तम-उत्तम पदार्थों को प्राप्त करनेवाला ( अतिष्कृतः ) अपनी कक्षा ही में स्थिर रहता हुआ सूर्य ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( अहम् ) आकाश में रहने वाले इस ( चरम् ) मेघ को ( अवाचि ) भूमि में गिरा देता है ॥ ६ ॥

आचार्य—जो मनुष्य अपनी दृढ़ता से सत्यविद्या का अनुष्ठान और नियम से ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, उसके आत्मा में से अविद्यारूपी अन्धकार का नाश अन्तर्यामी परमेश्वर कर देता है, जिससे वह पुत्र्य वर्ग और पुरुषार्थ को कभी नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥

किर भी अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर का प्रकाश किया है—

तुज्जेतुं ज्ये य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।

न विन्दे अस्य सुष्ठुतिम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—( ये ) जो ( वज्रिणः ) अनन्त पराक्रमवान् ( इन्द्रस्य ) सब दुर्गों के विनाश करनेहारे ( अयम् ) इस परमेश्वर के ( तुज्जेतुं ) पदार्थ पदार्थ के देने में ( उत्तरे ) सिद्धांत से निश्चित किये हुए ( स्तोमाः ) स्तुतियों के समूह हैं, उनसे भी ( अयम् ) परमेश्वर की ( सुष्ठुतिम् ) शोभायमान स्तुति का पार में जीव ( न ) नहीं ( विन्दे ) पा सकता है ॥ ७ ॥

आचार्य—ईश्वर ने इस ससार में प्राणियों के सुख के लिए इन पदार्थों में अपनी शक्ति से जितने दुष्टांत वा उनमें जिस प्रकार की रचना और अलग-अलग उनके गुण उनसे उपकार लेने के लिए रखे हैं, उन सब के जानने को मैं अल्प-बुद्धि पुरुष होने से समर्थ कभी नहीं हो सकता और न कोई मनुष्य ईश्वर के गुणों की समाप्ति जानने को समर्थ है, क्योंकि जगदीश्वर अनन्त गुण और अनन्त सामर्थ्यवाला है, परन्तु मनुष्य उन पदार्थों से जितना उपकार लेने को समर्थ हो उतना सब प्रकार से लेना चाहिए ॥ ७ ॥

परमेश्वर मनुष्यों को कैसे प्रसन्न होता है, सो अर्थ अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

वृषां यूथेव वंसगः कुष्टीरियर्यो जसा । ईशानो अमतिष्कृतः ॥ ८ ॥

पदार्थ—जैसे ( वृषा ) वीर्यवाता, रक्षा करनेहारा ( वंसगः ) यथायोग्य गाय के विभागी का सेवन करनेहारा बैल ( ओजसा ) अपने बल से ( यूथेव ) गाय के समूहों को प्राप्त होता है, वैसे ही ( वंसगः ) धर्म के सेवन करनेवाले पुरुष को प्राप्त होने और ( वृषा ) शुभ गुणों की वर्धा करनेवाला ( ईशानः ) ऐश्वर्यवान् जगत् का रक्षकवाला परमेश्वर अपने ( ओजसा ) बल से ( कुष्टीः ) धर्मात्मा मनुष्यों को तथा ( वंसगः ) अलग-अलग पदार्थों को पहुँचाने और ( वृषा ) जल वर्धन-वाला सूर्य ( ओजसा ) अपने बल से ( कुष्टीः ) आकर्षण आदि व्यवहारों को ( इमति ) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमा और श्लेषालङ्कार हैं। मनुष्य ही परमेश्वर को प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि वे ज्ञान की वृद्धि करने के स्वभाववाले होते हैं। और धर्मात्मा ज्ञानवाले मनुष्यों का परमेश्वर को प्राप्त होने का स्वभाव है। तथा जो ईश्वर ने रचकर कक्षा में स्थापन किया हुआ सूर्य है, वह अपने सामने अर्थात् समीप के लोकों को चुम्बक पत्थर और लोहे के समान लीचने को समर्थ रहता है ॥ ८ ॥

सब प्रकार से सब का सहायकपरी परमेश्वर ही है, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

य एकश्चर्यणीनां वसुनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—( यः ) जो ( इन्द्रः ) दुष्ट शत्रुओं का विनाश करनेवाला परमेश्वर ( चर्यणीनाम् ) मनुष्य ( वसुनाम् ) मणि आदि आठ विनाश के स्थान, और ( पञ्च ) जो नीच, मध्यम, उत्तम, उत्तमतर और उत्तमतर बुण्वाले पाँच प्रकार के ( क्षितीनाम् ) पृथिवी लोक हैं, उन्हीं के बीच ( इरज्यति ) ऐश्वर्य के देने और सब के सेवा करने योग्य परमेश्वर है, वह ( एकः ) अद्वितीय और सब का सहाय करने वाला है ॥ ९ ॥

आचार्य—जो सब का स्वामी अन्तर्यामी व्यापक और सब ऐश्वर्य का देने वाला, जिसमें कोई दूसरा ईश्वर और जिसकी किसी दूसरे की सहाय की इच्छा नहीं है, वही सब मनुष्यों को दुष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है। जो मनुष्य उस परमेश्वर

को छोड़ के दूसरे को इष्टदेव मानता है, वह भाग्यहीन बड़े-बड़े धोर दुःखों को सदा प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

उक्त परमेश्वर सर्वोपरि विराजमान है, इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रं वो विष्वत्सपरि हवामहे जनैभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

पदार्थ—हम लोग जिस ( विष्वत्सः ) सब पदार्थों वा ( जनैभ्यः ) सब प्राणियों से ( परि ) उत्तम-उत्तम गुणों के द्वारा श्रेष्ठतर ( इन्द्रम् ) पृथिवी में राज्य देनेवाले परमेश्वर का ( हवामहे ) बार-बार अपने हृदय में स्मरण करते हैं, वही परमेश्वर ( नः ) है मित्र लोगो ! तुम्हारे और हमारे पूजा करने योग्य इष्टदेव ( केवलः ) केवलमात्र स्वरूप एक ही है ॥ १० ॥

आचार्य—ईश्वर इस मन्त्र में सब मनुष्यों के हित के लिए उपदेश करता है—हे मनुष्यो ! तुम को अत्यन्त उचित है कि मुझे छोड़कर उपासना करने योग्य किसी दूसरे देव को कभी मत मानो, क्योंकि एक मुझ को छोड़कर कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। जब वेद में ऐसा उपदेश है तो जो मनुष्य अनेक ईश्वर वा उसके अवतार मानता है, वह सब से बड़ा मूर्ख है ॥ १० ॥

इस सप्तम सूक्त में जिस ईश्वर ने अपनी रचना के सिद्ध रहने के लिए अन्तरिक्ष में सूर्य और वायु स्थापन किये हैं, वही एक सर्वशक्तिमान् सर्वदोषरहित और सब मनुष्यों का पूज्य है। इस व्याख्यान से इस सप्तम सूक्त के अर्थ के साथ छठे सूक्त के अर्थ की मङ्गति जाननी चाहिए।

यह दूसरा अनुवाक, सातवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अवास्थ वसन्त्याष्टमसूक्तस्य मनुष्यन्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ५, ८ निबुद्धनायत्री, २ प्रतिच्छायायत्री । ३, ४, ६, ७, ९ गायत्री, १० वर्चमाना गायत्री च छन्दः । वज्र स्वरः ॥

अब अष्टमसूक्त के प्रथम मन्त्र में यह उपदेश है कि ईश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से कंसा धन प्राप्त करना चाहिए—

ऐन्द्रं सानसि रयि सजित्वानं सदा महम् । वर्षिष्ठमृतये भर ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारी ( उन्नये ) रक्षा, पुष्टि और सब सुखों की प्राप्ति के लिए ( वर्षिष्ठम् ) जो अच्छी प्रकार वृद्धि करने वाला ( सानसिम् ) निरन्तर सेवन के योग्य ( सदा महम् ) दुष्टशत्रु तथा हानि वा दुष्टों के संहने का मुख्य हेतु ( सजित्वानम् ) और तुल्य शत्रुओं का जिताने वाला ( रयिम् ) धन है, उस को ( सानसि ) अच्छी प्रकार दीजिए ॥ १ ॥

आचार्य—सब मनुष्यों को सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी ईश्वर का आश्रय लेकर अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ चक्रवर्ति राज्य के आनन्द को बढ़ाने वाली विद्या की उन्नति, सुखों आदि धन और सेना आदि बल सब प्रकार से रखना चाहिए, जिससे अपने आप को और सब प्राणियों को सुख हो ॥ १ ॥

कैसे धन से परम सुख होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

नि येन मुष्टिहृत्थया नि वृत्रा रुणधामहे । त्वोतासो न्यवेता ॥ २ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! ( त्वोतासः ) आप के सकाश से रक्षा को प्राप्त हुए हम लोग ( येन ) जिस पूर्वोक्त धन से ( मुष्टिहृत्थया ) बाहुयुद्ध और ( रुणधामहे ) अश्व आदि सेना की सामग्री से ( निवृत्रा ) निश्चित शत्रुओं को ( निवृणधामहे ) रोकें अर्थात् उनको निर्बल कर सकें, ऐसे उत्तम धन का दान हम लोगों के लिए कृपा से कीजिए ॥ २ ॥

आचार्य—ईश्वर के सेवक मनुष्यों को उचित है कि अपने शरीर और बुद्धिबल को बहुत बढ़ावें, जिससे श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का अपमान सदा होता रहे, और जिससे शत्रुजन उनके मुष्टिप्रहार को न सह सकें, इन्द्र-उत्तर छिपते, भागते फिरें ॥ २ ॥

मनुष्य किसको बारण करने से शत्रुओं को जीत सकते हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयैम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अनन्त बलवान् ईश्वर ! ( त्वोतासः ) आपके सकाश से रक्षा आदि और बल को प्राप्त हुए ( वज्रम् ) हम लोग धार्मिक और शूरवीर होकर अपने विजय के लिए ( वज्रम् ) शत्रुओं के बल का नाश करने का हेतु आग्नेयान्नादि अस्त्र और ( घना ) श्रेष्ठ शस्त्रों का समूह जिनको कि भाषा में तीप, बलूक, तलवार और बलुच-बाण आदि करके प्रसिद्ध कहते हैं, जो युद्ध की सिद्धि में हेतु हैं, उनको ( आददीमहि ) ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार हम लोग आपके बल का आश्रय और सेना की पूर्ण सामग्री के द्वारा ( स्पृधः ) ईर्ष्या करने वाले शत्रुओं को ( युधि ) सभाम में ( अजेय ) जीतें ॥ ३ ॥

आचार्य—मनुष्यों को उचित है कि धर्म और ईश्वर के आश्रय से शरीर की पुष्टि और विद्या के द्वारा आत्मा का बल तथा युद्ध की पूर्ण सामग्री, परस्पर अविरोध और उत्साह आदि श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करके दुष्ट शत्रुओं को पराजय करने से अपने और सब प्राणियों के लिए सुख सदा बढ़ाते रहें ॥ ३ ॥



किस-किस के सहाय से उक्त सुख सिद्ध होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

**वयं शूरैर्भिरस्तुभिर्गिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासनायाम् पृतन्यतः ॥ ४ ॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) युद्ध में उन्माह के देनेवाले परमेश्वर ! ( त्वया ) आपको अन्तर्यामी इन्द्रदेव मानकर आपकी कृपा से धर्मयुक्त व्यवहारा में अपन सामर्थ्य के ( युजा ) योग करने वाले के योग से ( वयम् ) युद्ध के करने वाले हम लोग ( अस्तुभिः ) सब शस्त्र-धर्मो के बनाने में चतुर ( शूरैभिः ) उत्तमों में उत्तम शूर-वीरो के साथ होकर ( पृतन्यतः ) सेना आदि बल से युक्त होकर लड़ने वाले शत्रुओं को ( सासनायाम् ) बार-बार मारे, अर्थात् उन का निर्बल कर दें, इस प्रकार शत्रुओं का जीतकर न्याय के साथ चक्रवर्ति राज्य का पालन करें ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**शूरता दो प्रकार की होती है, एक तो शरीर की पुष्टि और दूसरी विद्या तथा धर्म से युक्त आत्मा की पुष्टि इन दोनों में परमेश्वर की रचना के कर्मों को जानकर न्याय, धीरज, उत्तम स्वभाव और उद्योग आदि से उत्तम-उत्तम गुणों से युक्त होकर सभापवन्ध के साथ राज्य का पालन और दृष्ट शत्रुओं का निर्गोध अर्थात् उनको मरवा कायर करना चाहिए ॥ ४ ॥

उक्त कार्यसहाय करनेहारा जगदीश्वर किस प्रकार का है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है

**महाँ इन्द्र परश्च तु मांस्त्वमस्तु वज्रिणो । द्यौर्न मथिना शवः ॥ ५ ॥**

**पदार्थ—**( न ) जिसे मूर्तिमान् समार को प्रकाशयुक्त करने के लिए ( द्यौः ) सूर्यप्रकाश ( प्रथिना ) विस्तार में प्राप्त होता है, वैसे ही जो ( महान् ) सब प्रकार में अत्यन्तगुण, अत्यन्तम स्वभाव, अत्यन्त सामर्थ्ययुक्त और ( पर ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( इन्द्रः ) सब अशक्त की रक्षा करने वाला परमेश्वर है, सोर ( वज्रिणो ) न्याय की रीति से दण्ड देने वाले परमेश्वर ( तु ) जो कि आपन सहायस्वरूपी हेतु से हम का विजय देता है, उसी की यह ( महिम्नम् ) महिमा ( च ) तथा बल है ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । धार्मिक युद्ध करने वाले मनुष्या का उचिन्त है कि जो शूरवीर युद्ध में अग्नि और मनुष्यों के साथ होकर दण्ड शत्रुओं पर अपना विजय दृष्टा है उसका धन्यवाद अन्तर्गत शक्तिमान् जगदीश्वर की देना चाहिए कि जिससे निर्भीमान् होकर मनुष्यों ने राज्य की मदद बढ़ती होती रहें ॥ ५ ॥

यह पन्द्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

मनुष्यों को कैसे होकर युद्ध करना चाहिए, यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

**समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनिती । विप्रांसो वा धियायवः ॥ ६ ॥**

**पदार्थ—**( विप्रांस ) जो अत्यन्त वृद्धिमान् ( गरः ) मनुष्य हैं, वे (समोहे) समार के निमित्त शत्रुओं को जीतने के लिए ( आशत ) उत्तर हैं, ( वा ) अथवा ( धियायवः ) जो कि विज्ञान देने की इच्छा करने वाले हैं, वे ( लोकस्य ) सन्तानों के ( सनिती ) विद्या की शिक्षा में ( आशत ) उद्योग करते रहें ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि—इस समार में मनुष्या को दो प्रकार का काम करना चाहिए । इनमें से जो विद्वान् हैं वे अपने शरीर और सेना का बल बढ़ाते और दूसरे उत्तम विद्या की वृद्धि करके शत्रुओं के बल का मदेव तिरस्कार करते रहें । मनुष्यों को जब-जब शत्रुओं के साथ युद्ध करने की इच्छा हो तब-तब सावधान होकर प्रथम उनकी सेना आदि पदार्थों से कम-से-कम अपना दोगुना बल करके उनके पराजय में प्रजा की रक्षा करनी चाहिए । तथा जो विद्याओं के पढ़ाने की इच्छा करने वाले हैं, वे शिक्षा देने योग्य पुत्र वा कन्याओं का यथायाग्य विद्वान् करने में अन्वेष प्रकार यत्न करें, जिसमें शत्रुओं के पराजय और अज्ञान का विनाश में चक्रवर्ति राज्य और विद्या की वृद्धि सदैव बनी रहें ॥ ६ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्यलोक के गुणों का व्याख्यान किया है

**यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वरापो न काकुद्रः ॥ ७ ॥**

**पदार्थ—**( समुद्र इव ) जैसे समुद्र को जल ( आपो न काकुद्रः ) शब्दों के उच्चारण आदि व्यवहारों के करने वाले प्राण वाणी को सेवन करने है, वैसे ( कुक्षिः ) सब पदार्थों में रग वा खींचने वाला तथा ( सोमपातमः ) साम प्रधान समार में पदार्थों का रक्षक जो सूर्य है, वह ( उर्वो ) सब पृथिवी का सेवन वा सेवन करता है ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । ईश्वर ने जैसे जल की स्थिति और वृष्टि का हेतु समुद्र तथा वाणी के व्यवहार का हेतु प्राण बनाया है वैसे ही सूर्यलोक वर्षा होने, पृथिवी के खींचने, प्रकाश और रमविभाग करने का हेतु बनाया है, इसी से सब प्राणियों के अनेक व्यवहार सिद्ध होते हैं ॥ ७ ॥

उक्त अर्थों के निमित्त और कार्य का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

**एवा हस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पका शागवा न दाशुषे ॥ ८ ॥**

**पदार्थ—**( पका शागवा न ) जैसे ग्राम और कटहर आदि वृक्ष, पकी डाली और फलयुक्त होने से प्राणियों को सुख देनेहारे होते हैं ( अह्य हि ) वैसे ही इस परमेश्वर की ( गोमती ) जिसको बहुत से विद्वान् सेवन करने वाले हैं, वा ( सूनृता ) प्रिय और मत्स्यवचन प्रकाश करने वाली ( विरप्शी ) महाविद्यायुक्त और ( मही ) सब को मत्कार करने योग्य आरों वेद की वाणी है, या ( दाशुषे ) पढ़ने में मन लगाने वालों को सब विद्याओं का प्रकाश करने वाली है ।

तथा ( अह्य हि ) जैसे इस सूर्यलोक की ( गोमती ) उत्तम मनुष्या के सेवन करने योग्य ( सूनृता ) प्रीति के उत्पादन करने वाले पदार्थों का प्रकाश करने वाली

( विरप्शी ) बड़ी-से-बड़ी ( मही ) बड़े-बड़े गुणयुक्त दीप्ति है, वैसे वेदवाणी ( दाशुषे ) राज्य की प्राप्ति के लिए राज्यकर्तों में बिखर देने वाली को सुख देने वाली होती है ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विविध प्रकार से फलफूलों से युक्त ग्राम और कटहर आदि वृक्ष नाना प्रकार के फलों के देने वाले होकर सुख देनेहारे होते हैं, वैसे ही ईश्वर से प्रकाश की हुई वेदवाणी बहुत प्रकार की विद्याओं को देने-हारी होकर सब मनुष्यों को परम आनन्द देनेवाली है । जो विद्वान् लोग इसको पढ़के धर्मात्मा होते हैं, वे ही वेदों का प्रकाश और पृथिवी में राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

जो मनुष्य ऐसा करते हैं, उनको क्या सिद्ध होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

**एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे ( ते ) आपके ( विभूतयः ) जो-जो उत्तम ऐश्वर्य और ( ऊतयः ) रक्षा विज्ञान आदि गुण युक्त को प्राप्त ( सन्ति ) है, वैसे ( मावते ) मेरे लुप्त ( दाशुषे चित् ) सब के उपकार और धर्म में मन को बन जाने पुरुष का ( सद्य एव ) शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश इस गीत से किया है कि—जब मनुष्य पुरुषार्थी होकर सबका उपकार करने वाले और धार्मिक होते हैं, तभी वे पूर्ण ऐश्वर्य और ईश्वर की यथायोग्य रक्षा आदि को प्राप्त हाके नवत्र सत्कार के योग्य होते हैं ॥ ९ ॥

उक्त सब प्रशंसा किस की है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

**एवा हस्य काम्या स्तोम उक्थ च संस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥**

**पदार्थ—**( अह्य ) जो-जो इन चार वेदों के ( काम्ये ) अत्यन्त मनोहर ( सस्ये ) प्रशंसा करने योग्य कर्म वा ( स्तोम ) स्तोत्र है, ( च ) तथा ( उक्थम् ) जिनमें परमेश्वर के गुणों का कीर्तन है, वे ( इन्द्राय ) परमेश्वर की प्रशंसा के लिए हैं । जैसा वह परमेश्वर है कि जो ( सोमपीतये ) अपनी व्याप्ति से सब पदार्थों के अश-अश में रम रहा है ॥ १० ॥

**भाषार्थ—**जैसे इस समार में अच्छे-अच्छे पदार्थों की रचना विशेष देखकर उस रचने वाले की प्रशंसा होती है, वैसे ही समार के प्रसिद्ध अत्युत्तम पदार्थों तथा विशेष रचना को देखकर ईश्वर ही को धन्यवाद दिये जाते हैं । इस कारण से परमेश्वर की स्तुति के समान वा उससे अधिक किसी की स्तुति नहीं हो सकती ॥ १० ॥

इस प्रकार जो मनुष्य ईश्वर की उपासना और वेदोक्त कर्मों के करने वाले हैं, वे ईश्वर के आश्रित हाके वेद-विद्या से आत्मा के सुख और उत्तम क्रियाओं से शरीर के सुख का प्राप्त होने हैं, वे परमेश्वर ही की प्रशंसा करते रहें । इस अभिप्राय से इस आठवें सूक्त के अर्थ की पूर्णतः सातवें सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह आठवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ नवमस्य वराहस्य सूक्तस्य मनुष्यत्वा अर्थः । इन्द्रो देवता ।

१, ३, ७, १० निबृह्णायत्री; २, ४, ८, ९ गायत्री;

५, ६ पिपीलिकासध्यानिबृह्णायत्री च छन्दः ।

वदन्तः स्वरः ॥

अथ नवम सूक्त के आरम्भ के मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर और सूर्य

का प्रकाश किया है—

**इन्द्रेहि मन्मन्धमो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महौ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥**

**पदार्थ—**जिसे प्रकार स ( अभिष्टिः ) प्रकाशमान ( महान् ) पृथिवी आदि में बहुत बड़ा ( इन्द्रः ) वह सूर्यलोक है, वह ( ओजसा ) बल वा ( विश्वेभिः ) सब ( सोमपर्वभिः ) पदार्थों के भङ्गी के साथ ( अन्धतः ) पृथिवी आदि, अन्नादि पदार्थों के प्रकाश से ( एहि ) प्राप्त होता और ( मत्सि ) प्राणियों को आनन्द देता है, वैसे ही हे ( इन्द्र ) सर्वव्यापक ईश्वर ! आप ( महान् ) उत्तमों में उत्तम ( अभिष्टिः ) सर्वज्ञ और सब ज्ञान के देनेवाले ( ओजसा ) बल वा ( विश्वेभिः सोमपर्वभिः ) सब पदार्थों के अर्थों के साथ वर्तमान होकर ( एहि ) प्राप्त होते और ( अन्धतः ) भूमि आदि, अन्नादि उत्तम पदार्थों को देकर हमको ( मत्सि ) सुख देते हो ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में शब्द और लुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे ईश्वर इस समार के परमाणु-परमाणु में व्याप्त होकर सब की रक्षा निरन्तर करता है; वैसे ही सूर्य भी सब लोकों से बड़ा होने से अपने सम्मुख हुए पदार्थों को आकर्षण का प्रकाश करके अन्धे प्रकार स्थापन करता है ॥ १ ॥

शिल्पविद्या के उत्तम साधन जल और अग्नि का वर्णन अगले मन्त्र में किया है—

**एमेन सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रि विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥**

**पदार्थ—**हे विद्वानो ! ( सुते ) उत्पन्न हुए इस समार में ( विश्वानि ) सब सुखों के उत्पन्न होने के अर्थ ( मन्दिने ) ऐश्वर्य प्राप्ति की इच्छा करने तथा ( चक्रिम् ) आनन्द बढ़ाने वाले ( चक्रये ) पुरुषार्थ करने के स्वभाव और ( इन्द्राय ) परम ऐश्वर्य होने वाले मनुष्य के लिए ( चक्रिम् ) शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए

साधनों में ( पुण्यम् ) इन ( ईशम् ) जल और अग्नि को ( आसृजत ) प्रति प्रकाशित करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—विद्वानी को उचित है कि इस समार में पृथिवी में लेके ईश्वरपरमेश्वर पदार्थों के विशेषज्ञान, उत्तम भित्ति विद्या में सब मनुष्यों को उत्तम-उत्तम किया सिखाकर सब सुखों का प्रकाश करना चाहिए ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर का प्रकाश किया है—

मत्स्वा सुशिश मन्दिभिः स्तोमैर्भिर्विष्वक्वर्षणे । सधैषु सर्वनेष्व ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( विष्वक्वर्षणे ) सब समार को देखने तथा ( सुशिश ) श्रेष्ठज्ञान-युक्त परमेश्वर । आप ( मन्दिभिः ) जो विज्ञान वा ध्यान के करने वा करानेवाले ( स्तोमैर्भिः ) वेदोक्त स्तुतिरूप गुणप्रकाश करनेवाले स्तोत्र है उनसे स्तुति को प्राप्त होकर ( एषु ) इन प्रत्यक्ष ( सर्वनेषु ) ऐश्वर्य देनेवाले पदार्थों में हम लोगों को ( सखा ) युक्त करके ( मत्स्वा ) अच्छे प्रकार धान्यवत् कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जिसने संसार के प्रकाश करने वाले सूर्य को उत्पन्न किया है, उसकी स्तुति करने में जो श्रेष्ठ पुरुष एकाग्रचित्त है, प्रथम सब को देखने वाले परमेश्वर को जानकर सब प्रकार से धार्मिक और पुरुषार्थी होकर सब ऐश्वर्य को उत्पन्न और उस की रक्षा करने में मिलकर रहते हैं, वे ही सब सुखों को प्राप्त होने के योग्य वा भीरो का भी उत्तम-उत्तम सुखों के देव वाले हो सकते हैं ॥ ३ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति स्वामुदहासत । अजोषा इषमं पतिम् ॥ ४ ॥

पदार्थ ( इन्द्र ) हे परमेश्वर । जो ( ते ) आपकी ( गिर ) देववाणी है, वे ( असृग्रम् ) सब में उत्तम, सब की इच्छा पूर्ण करने वाले ( पतिम् ) सब के पालन करनेवाले ( स्वाम् ) वेदा के बन्धु आप को ( उदहासत ) उत्तमता के साथ जनता है, और जिन वेदवागियों का आप ( अजोषा ) सबन करते हो, उन्हीं से मैं भी ( प्रति ) उक्त गुणयुक्त आपको ( असृग्रम् ) अनेक प्रकार से वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जिम ईश्वर ने प्रकाश किया हुए वेदों से जैसे अपने-अपने स्वभाव, गुण और कम प्रकट किये हैं, वैसे ही वे सब लोगों को जानने योग्य है, क्योंकि ईश्वर के सत्य स्वभाव के साथ अत्यन्तगुण और कम है, उन को हम अत्यन्त योग्य अपने सामर्थ्य से जानने को समर्थ नहीं हो सकते । तथा जैसे हम लोग अपने-अपने स्वभाव, गुण और कमों को जानते हैं वैसे भीरो को उनका यथावत् जानना कठिन होता है, इसी प्रकार सब विद्वान् मनुष्यों को वेदवाणी के बिना ईश्वर आदि पदार्थों को यथावत् जानना कठिन जाना है । इसलिये प्रत्यक्ष से वेदों को जानकर उन के द्वारा सब पदार्थों से उपकार लना तथा उन्हीं ईश्वर का अपना इष्टदेव और पालन करनेवाला मानना चाहिए ॥ ४ ॥

ईश्वर की उपासना से क्या लाभ होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है -

सं चोदय चित्रमवाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदितं विभु प्रभु ॥ ५ ॥

पदार्थ—ह ( इन्द्र ) कदापि सब सुखों के देने वाले परमेश्वर । ( ते ) आपकी सृष्टि में जो-जा ( वरेण्यम् ) प्रति श्रेष्ठ ( विभु ) उत्तम-उत्तम पदार्थों से पूरा ( प्रभु ) बड़े-बड़े प्रभावों का हेतु ( चित्रम् ) जिसमें श्रेष्ठ विद्या चक्रवर्ति राज्य से मित्र हान वाले मांग, सुवर्ग और हाथी आदि अच्छे-अच्छे अद्भुत पदार्थ हाने हैं, ऐसा ( राध ) धन ( असत् ) हो, सो-मा कृपा करके हम लोगों के लिए (सबोदय) प्रेरणा करके प्राप्त कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को ईश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से आत्मा और शरीर के सुख के लिए विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति वा उनकी रक्षा और उन्नति तथा सत्य मांग वा उत्तम दानादि धन अच्छी प्रकार से मदेव सेवन करना चाहिए जिससे दारिद्र्य और भालस्य से उत्पन्न होने वाले दुखों का नाश होकर अच्छे-अच्छे भोग करने योग्य पदार्थों की वृद्धि होती रहे ॥ ५ ॥

यह सत्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अन्तर्यामी ईश्वर हम लोगों को कैसे-कैसे कामों में प्रेरणा करे, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

अस्मान्नु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युञ्ज यज्ञस्वनः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( तुविद्युञ्ज ) अत्यन्त विद्यादिधनयुक्त ( इन्द्र ) अन्तर्यामी ईश्वर । ( रभस्वतः ) जो आलस्य को छोड़के कार्यों के आरम्भ करने (यज्ञस्वतः) सत्कीर्तिरहित ( अस्मान् ) हम लोग पुरुषार्थी विद्या, धर्म और सर्वोपकार से नित्य प्रयत्न करने वाले मनुष्यों को ( तत्र ) श्रेष्ठ पुरुषार्थ में ( राये ) उत्तम-उत्तम धन की प्राप्ति के लिए ( तुविद्युञ्ज ) अच्छी प्रकार युक्त कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि इस सृष्टि में परमेश्वर की आज्ञा के अप्रकृत वर्तमान तथा पुनर्वाणी और यज्ञस्वी होकर विद्या तथा राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति के लिए सदैव उपाय करे । इसी से उक्त गुण वाले पुरुषों को ही लक्ष्मी से सब प्रकार का सुख मिलता है, क्योंकि ईश्वर ने पुरुषार्थी सज्जनों के लिए ही सब सुख रचे हैं ॥ ६ ॥

किर भी उक्त धन कंसा है, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है --

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु अर्वा बृहत् । विश्वायुधंक्षितम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अनन्त विद्यायुक्त सब को धारण करनेवाले ईश्वर । आप ( अस्मे ) हमारे लिये ( गोमत् ) जो धन, श्रेष्ठ वाणी और अच्छे-अच्छे उत्तम पुरुषों को प्राप्त कराने ( वाजवत् ) नागा प्रकार के धम्म आदि पदार्थों को प्राप्त

कराने वा ( विश्वायुधं ) पूर्ण भी सर्व वा अधिक आयु को बढ़ाने ( पृथु ) प्रति विस्तृत ( बृहत् ) अनेक शुभ गुणों से प्रसिद्ध अत्यन्त बड़ा ( क्षितम् ) प्रतिदिन बढ़ने वाला ( अर्वा ) जिस में अनेक प्रकार की विद्या वा सुवर्ण आदि धन सुनने से जाता है, उस धन को ( संवेहि ) अच्छे प्रकार नित्य के लिए दीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य का धारण, विषयो की सम्पत्ता का त्याग, भोजन आदि व्यवहारों के श्रेष्ठ नियमों से विद्या और चक्रवर्ति राज्य की लक्ष्मी को सिद्ध करके सम्पूर्ण आयु भोगने के लिए पूर्वोक्त धन के जोड़ने की इच्छा अपने पुरुषार्थ द्वारा करे कि जिसमें इस समार का वा परमाय का दूढ़ और विशाल अर्वा प्रति श्रेष्ठ सुख सदैव बना रहे, परन्तु यह उक्त सुख केवल ईश्वर की प्रार्थना से ही नहीं मिल सकता, किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करना भी अवश्य उचित है ॥ ७ ॥

अस्मे धेहि अर्वा बृहद् धुम्नं सहस्रसातम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त बलयुक्त ईश्वर । आप ( अस्मे ) हमारे लिए ( सहस्रसातम् ) अमर्याद सुखों का मूल ( बृहद् ) नित्य वृद्धि को प्राप्त होने योग्य ( धुम्नम् ) प्रकाशमय ज्ञान तथा ( अर्वा ) पूर्वोक्त धन और ( रथिनीरिषः ) अनेक रथ आदि साधन महित सेनाओं को ( धेहि ) अच्छे प्रकार दीजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर । आप कृपा करके जो अत्यन्त पुरुषार्थ के साथ, जिस धन के द्वारा बहुत-से सुखों को सिद्ध करने वाली सेना प्राप्त होती है, उसको हम लोगों में नित्य स्थापन कीजिए ॥ ८ ॥

किर भी यह इन्द्र कंसा है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है --

वसोरिन्द्र वसुपति र्गार्भिर्गुणन्तं ऋम्यम् । होम गन्तारमृतये ॥ ९ ॥

पदार्थ—( र्गार्भिः ) वेदवागों में ( गुणन्तः ) स्तुति करने हुए हम लोग ( वसु-पतिम् ) अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्यलोक, द्यौः आदित् प्रकाशमान लोक, चन्द्रलोक और नक्षत्र आदित् जितने तारे खिलते हैं, इन सब का नाम वसु है, क्योंकि ये ही निवास के स्थान हैं, इनका पति, स्वामी और रक्षक ( वसुपतिम् ) वदमन्त्रों के प्रकाश करने वाले ( वसोरिन्द्रम् ) सब का अन्तर्यामी अर्थात् अपनी अर्थात् से सब जगह प्राप्त होने तथा ( इन्द्रम् ) सब के धारण करने वाले परमेश्वर को ( वसोः ) समार में सुख के साथ बाम कराने का हेतु जो विद्या आदि धन है उसकी ( अन्तये ) प्राप्ति और रक्षा के लिए ( होम ) प्रार्थना करने हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो ऐश्वर्य का निमित्त, समार का स्वामी, सब व्यापक इन्द्र परमेश्वर है, उसकी प्रार्थना और ईश्वर के श्राद्ध आदि गुणों की प्रशंसा, पुरुषार्थ के साथ सब प्रकार से प्रति श्रेष्ठ विद्या, राज्यलक्ष्मी आदि पदार्थों को प्राप्त होकर उनकी उन्नति और रक्षा मचा करे ॥ ९ ॥

किस प्रयोजन के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए सो अगले मन्त्र

में प्रकाश किया है—

सुतेसुते न्यौकसे बृहद् बृहत् एदग्निः । इन्द्राय शुषमंचति ॥ १० ॥

पदार्थ—जो ( एदग्निः ) सब श्रेष्ठ गुण और उत्तम सुखों को प्राप्त होनेवाला विद्वान् मनुष्य ( सुतेसुते ) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में ( बृहते ) सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों में महान् सब में व्याप्त ( न्यौकसे ) निश्चित जिसके निवासस्थान है, ( इत् ) उन्हीं ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए करने ( बृहत् ) सब प्रकार से बड़े हुए ( शुषम् ) बल और मूल्य को ( अा ) अच्छी प्रकार ( अर्चति ) समर्पण करना है, वही बलवान् होता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—जब शत्रु मनुष्य भी सब में व्यापक मङ्गलमय, उपमारहित परमेश्वर के प्रति नम्र होता है, तो जो ईश्वर की आज्ञा और उसकी उपासना में वर्तमान मनुष्य हैं, वे ईश्वर के लिए नम्र क्यों न हो ? जो ऐसे हैं वे ही बड़े-बड़े गुणों से महात्मा होकर सब में मत्कार किये जाने के योग्य होते, और वे ही विद्या और चक्रवर्ति राज्य के धान्य को प्राप्त होते हैं । जो उन से विपरीत हैं व उस धान्य को कभी प्राप्त नहीं हो सकते ॥ १० ॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द के वर्णन, उत्तम-उत्तम धन आदि की प्राप्ति के अर्थ ईश्वर की प्रार्थना और अन्न पुरुषार्थ करने की आज्ञा के प्रतिपादन करने से इस नम्र सूक्त के अर्थ की सर्वांग आर्थ सूक्त के साथ मिलती है, ऐसा समझना चाहिए ।

यह नवमा सूक्त और अठारहवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥



अथ द्वादशार्थस्य वसामस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा अविः । इन्द्रो देवता ।

१—३, ५, ६ बिराड्गुण्डप्, ४ भुरिगुण्डिक्, ७, ९—१२

अनुण्डप्, = निष्पुण्डुण्डप् छन्दः । १—३, ५—१२

गान्धारः, ४ ऋचम् स्वरः ॥

अथ वसाम सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में इस बात का प्रकाश किया है कि कौन-कौन पुरुष किस-किस प्रकार से इन्द्रसंज्ञक परमेश्वर का पूजन करते हैं—

गार्गन्ति त्वा गायत्रियोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

अज्ञानस्त्वा अतकृत उद्देशमिव येमिरे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( अतकृतो ) असंख्यात कर्म और उत्तम ज्ञानयुक्त परमेश्वर ।



( ब्रह्माण ) जैसे वेदों को पढ़कर उत्तम-उत्तम क्रिया करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ उपदेश गुरु और अच्छी-अच्छी शिक्षाओं से ( ब्रह्म ) अपने वश को ( उच्छिन्ने ) प्रशस्त गुणयुक्त करके उद्यमवान् करते हैं, वैसे ही ( गायत्रिण ) जिन्होंने गायत्रि अर्थात् प्रशंसा करने योग्य छन्द, राग आदि पढ़े हुए धार्मिक और ईश्वर की उपासना करने वाले हैं, वे पुरुष ( त्वा ) आपकी ( गायत्रि ) सामवेदादि के गानों से प्रशंसा करते हैं, तथा ( अक्षिण ) धर्म अर्थात् जो वेद के मन्त्र पढ़ने के नित्य अभ्यासी हैं, वे ( अक्षन् ) सब मनुष्यों को पूजने योग्य ( त्वा ) आपका ( अर्चन्ति ) नित्य पूजन करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सब मनुष्यों को परमेश्वर ही की पूजा करनी चाहिए अर्थात् उसकी आज्ञा के अनुकूल वेदविद्या को पढ़कर अच्छे-अच्छे गुणों के साथ अपने और अन्यो के वश को भी पुरुषार्थी करते हैं, वैसे ही अपने आप को भी होना चाहिए। और जो परमेश्वर के सिवाय दूसरे का पूजन करने वाला पुरुष है, वह कभी उत्तम फल को प्राप्त होने योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि न तो ईश्वर की ऐसी आज्ञा ही है, और न ईश्वर के समान कोई दूसरा पदार्थ है कि जिसका उसके स्थान में पूजन किया जावे। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर ही का गान और पूजन करे ॥ १ ॥

किर भी ईश्वर को कैसे जानें, तो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

यत्सानोः सानुमानहृदय्यस्पष्टं कर्त्तव्यम् ।

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

पदार्थ—जंत (यूथेन) वायुगुण अथवा सुख के साधन हेतु पदार्थों के साथ ( वृष्णि ) वर्षा करने वाला सूर्य अपने प्रकाश के द्वारा ( सानो ) पर्वत के एक शिखर से ( सानुम् ) दूसरे शिखर को ( वृरि ) बहुधा ( आरुहत् ) प्राप्त होता ( अस्पष्ट ) स्पष्ट करता हुआ ( एवति ) कम से अपनी कक्षा में घूमता और घुमाता है, वैसे ही जो मनुष्य कम से एक कर्म को सिद्ध करने के दूसरे को ( कर्त्तव्यम् ) करने को ( वृरि ) बहुधा ( आरुहत् ) आरम्भ तथा ( अस्पष्ट ) स्पष्ट करता हुआ ( एवति ) प्राप्त होता है, उस पुरुष के लिए ( इन्द्र ) सर्वज्ञ ईश्वर उन कर्मों के करने को ( सानो ) अनुक्रम से ( अर्थम् ) प्रयोजन के विभाग के साथ ( वृरि ) अच्छी प्रकार ( चेतति ) प्रकाश करता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में भी 'इव' शब्द की अनुवृत्ति से उपमालङ्कार समझना चाहिए। जैसे सूर्य अपने सम्मुख के पदार्थों का वायु के साथ बारबार क्रम से अच्छी प्रकार आक्रमण, आकषण और प्रकाश करके सब पृथिवी लोको को घुमाता है, वैसे ही जो मनुष्य विद्या में करने योग्य अनेक कर्मों को सिद्ध करने के लिए प्रयत्न होता है, वही अनेक क्रियाओं से सब कार्यों के करने को समर्थ हो सकता तथा ईश्वर की सृष्टि में अनेक सुखों को प्राप्त हुना, और उसी मनुष्य को ईश्वर भी अपनी कृपा दृष्टि से देखता है, भानसी को नहीं ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर और सूर्यलोक का प्रकाश किया है—

युष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यमा ।

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुति चर ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( सोमपा ) उत्तम पदार्थों के रक्षक ( इन्द्र ) सब में व्याप्त होनेवाले ईश्वर ! जैसे आपका रत्न हुआ सूर्यलोक जो अपने ( केशिना ) प्रकाश युक्त बल और आकषण अर्थात् पदार्थों के खींचने का सामर्थ्य जा कि ( वृषणा ) वर्षा के हेतु और ( कक्ष्यमा ) अपनी-अपनी कक्षाओं में उत्पन्न हुए पदार्थों को घूर्णन करने अथवा ( हरी ) हरण और व्याप्त स्वभाववाले घोड़ों के समान और आकषण गुरु हैं, उनको अपने-अपने कार्यों में जोड़ता है, वैसे ही आप ( न ) हम लोगों को भी सब विद्या के प्रकाश के लिए उन विद्याओं में ( युष्वा ) युक्त कीजिए। ( अथ ) इसके अनन्तर आपकी स्तुति में प्रवृत्त जो ( न ) हमारी ( गिराम् ) वाणी हैं, उनका ( उपश्रुतिम् ) श्रवण ( चर ) स्वीकार वा प्राप्त कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में सुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को सब विद्या पढ़ने के पीछे उत्तम क्रियाओं की कुशलता में प्रवृत्त होना चाहिए। जैसे सूर्य का उत्तम प्रकाश ससार में वर्तमान है, वैसे ही ईश्वर के गुण और विद्या के प्रकाश का सब में उपयोग करना चाहिए ॥ ३ ॥

मनुष्यों को परमेश्वर से क्या-क्या माँगना चाहिए, तो अगले मन्त्र में

प्रकाश किया है—

एहि स्तोमौ अभि स्वराभि गृहीणा स्व ।

अथ च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) स्तुतिकर्त्ता के योग्य परमेश्वर ! जैसे कोई सब विद्याओं से परिपूर्ण विद्वान् ( स्तोमान् ) आपकी स्तुतियों के अर्थों को ( अभिस्वर ) यथावत् स्वीकार करता-कराता वा गाता है, वैसे ही ( न ) हम लोगों को प्राप्त कीजिए। तथा हे ( वसो ) सब प्राणिमयों को बसाने वा उनमें बसनेवाले ! कृपा से हम प्रकार प्राप्त होके ( न ) हम लोगों के ( स्तोमां ) वेदस्तुति के अर्थों को ( सवा ) विज्ञान और उत्तम कर्मों का संयोग कराके ( अभिस्वर ) अच्छी प्रकार उपदेश कीजिए ( ब्रह्म च ) और वेदार्थ को ( अभिगृहीहि ) प्रकाशित कीजिए। ( अथ च ) हमारे लिए होम, ज्ञान और शिल्पविद्यारूप क्रियाओं को ( वर्धय ) नित्य बढ़ाए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में सुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष वेदविद्या वा सत्य के संयोग से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते हैं, उनके हृदय में ईश्वर

अन्तर्भावित्व में वेदमन्त्रों के अर्थों को यथावत् प्रकाश करके निरन्तर उनके लिए सुख का प्रकाश करता है, इससे उन पुरुषों में विद्या और पुरुषार्थ कभी लप्त नहीं होते ॥ ४ ॥

किर भी ईश्वर किस प्रकार का है, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वथेनं पुरुनिष्विधे ।

अक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥

पदार्थ—( यथा ) जैसे कोई मनुष्य अपने ( सुतेषु ) सन्तानों और ( सख्येषु ) मित्रों के उपकार करने को प्रवृत्त होके सुखी होता है, वैसे ही ( अक्रो ) सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ( पुरुनिष्विधे ) पुष्कल शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने और धर्मयुक्त कामों में विचरनेवाले ( इन्द्राय ) सब के मित्र और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले धार्मिक जीव के लिए ( उक्थम् ) विद्या आदि गुणों के बढ़ानेवाले ( शंस्यम् ) प्रशंसा ( च ) और ( उक्थम् ) उपदेश करने योग्य वेदोक्त स्तोत्रों के अर्थों का ( रारणत् ) अच्छी प्रकार प्रकाश करके सुखी बना रहे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। इस ससार में जो-जो शोभयुक्त रचना, प्रशंसा और भक्त्युक्त हैं, वे सब परमेश्वर ही की अनन्त शक्ति का प्रकाश करते हैं, क्योंकि जैसे सिद्ध किये हुए पदार्थों में प्रशंसायुक्त रचना के अनेक गुण उन पदार्थों के रचनेवाले की ही प्रशंसा में हेतु हैं, वैसे ही परमेश्वर की प्रशंसा जानने वा प्रार्थना के लिए है। इस कारण जो-जो पदार्थ हम ईश्वर से प्रार्थना के साथ चाहते हैं, सो-ना हमारे अत्यन्त पुरुषार्थ के द्वारा ही प्राप्त होने योग्य हैं, केवल प्रार्थनामात्र से नहीं ॥ ५ ॥

कित-कित पदार्थों की प्राप्ति के लिए ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए, तो

अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

तमित्संखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।

स शक्र उत नः शक्रिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जा ( न ) हमारे लिए ( इवमान ) सुखपूर्वक रमण करने योग्य विद्या, आरोग्यता और सुखगति धन का देनेवाला, विद्यादि गुणों का प्रकाशक और निरन्तर रक्षक तथा दुःख दोष वा शत्रुओं के विनाश और अपने धार्मिक सज्जन अर्त्तों के ग्रहण करने ( शक्र ) अनन्त सामर्थ्ययुक्त ( इन्द्र ) दुःखों का विनाश करनेवाला जगदीश्वर है, वही ( वसु ) विद्या और वक्रवर्ति राज्यदि परम धन देने की ( शक्रत् ) समर्थ है, ( तमित् ) उन्नी को हम लोग ( उत ) वेदादि शास्त्र, सब विद्वान्, प्रत्यक्षादि प्रमाण और अपने भी निश्चय से ( सखित्वे ) मित्रों और अच्छे कर्मों के होने के निमित्त ( तम् ) उन्नी को ( राये ) पूर्वोक्त विद्यादि धन का अर्थ और ( तम् ) उन्नी को ( सुवीर्ये ) श्रेष्ठ गुणों से युक्त उत्तम पराक्रम की प्राप्ति के लिए ( ईमहे ) याचते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि सब सुख और शुभ गुणों की प्राप्ति के लिए परमेश्वर ही की प्रार्थना करे, क्योंकि वह अद्वितीय, सर्वमित्र, परमेश्वर्यवान्, अनन्त शक्तिमान् ही उक्त पदार्थों के देने में समर्थ है ॥ ६ ॥

यह उन्नीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर और सूर्यलोक का प्रकाश किया है—

सुविश्रुतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यज्ञः ।

गवामपं व्रजं वृधि कृणुष्व राधौ अद्रिषः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जैसे यह ( अद्रिष ) उत्तम प्रकाशादि धनवाला ( इन्द्र ) सूर्य-लोक ( सुनिरजम् ) मुख से प्राप्त होने योग्य ( त्वादातम् ) उसी से सिद्ध होनेवाले ( यज्ञ ) जल को ( सुविश्रुतम् ) अच्छी प्रकार विस्तार को प्राप्त ( गवाम् ) किरणों के ( व्रजम् ) समूह को ससार में प्रकाश होने के लिए ( अपवृधि ) फैलाता तथा ( राध ) धन को प्रकाशित ( कृणुष्व ) करता है, वैसे हे ( अद्रिष ) प्रशंसा करने योग्य ( इन्द्र ) महायशस्वी सब पदार्थों के यथायोग्य बढ़ाने वाले परमेश्वर ! आप हम लोगों के लिए ( गवाम् ) अपने विषय को प्राप्त होनेवाली मन आदि इन्द्रियों के ज्ञान और उत्तम-उत्तम सुख देनेवाले पशुओं के ( व्रजम् ) समूह को ( अपवृधि ) प्राप्त करके उनके सुख के बरबाजे खोल तथा ( सुविश्रुतम् ) देश-देशान्तर में प्रसिद्ध और ( सुनिरजम् ) सुख से करने और व्यवहारों में यथायोग्य प्रतीत होने के योग्य ( यज्ञ ) कीर्ति को बढ़ानेवाले अत्युत्तम ( त्वादातम् ) आपके ज्ञान से युद्ध किया हुआ ( राध ) जिससे कि अनेक सुख सिद्ध हो, ऐसे विद्या सुखगति धन को हमारे लिए ( कृणुष्व ) कृपा करके प्राप्त कीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और सुप्तोपमालङ्कार है। हे परमेश्वर ! जैसे आपने सूर्यादि जगत् को उत्पन्न करके अपना यज्ञ और संसार का सब सुख प्रसिद्ध किया है, वैसे ही आप की कृपा से हम लोग भी अपने मन आदि इन्द्रियों को बुद्धि के साथ विद्या और धर्म के प्रकाश से युक्त तथा सुखपूर्वक सिद्ध और अपनी कीर्ति, विद्या-धन और वक्रवर्ति राज्य का प्रकाश करके सब मनुष्यों को निरन्तर भानन्वित और कीर्तिमान् करें ॥ ७ ॥

किर अगले मन्त्रों में ईश्वर का प्रकाश किया है—

नदि त्वा रोदसी उमे अघायमाणमिन्वतः ।

जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अक्षम्यं धनुहि ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! ये ( उमे ) दोनों ( रोदसी ) सूर्य और पृथिवी

जिस ( अथर्ववेदः ) पूजा करने योग्य आपकी ( नहि ) नहीं ( इत्यतः ) व्याप्त हो सकते, सो आप हम लोगों के लिए ( अथर्ववेदः ) जिससे हमको प्राप्त हुए मिले ( अथर्वः ) कर्मों की ( अथर्वः ) विजयपूर्वक आप करने के लिए हमारे ( नः ) हमियों को ( अथर्ववेदः ) अच्छी प्रकार पूजाकर काम्यों में सयुक्त कीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—जब कोई पूजे कि ईश्वर कितना बड़ा है, तो उसका उत्तर यह है कि जिसको सब आकाश आदि बड़े-बड़े पदार्थ भी घेर में नहीं ला सकते, क्योंकि वह अनन्त है। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि उसी परमात्मा का सेवन, उत्तम-उत्तम कर्म करने और श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति के लिए उसी की प्रार्थना करते रहें। जब जिसके गुण और कर्मों की गणना कोई नहीं कर सकता, तो कोई उसके अन्त पाने को समर्थ कैसे हो सकता है ? ॥ ८ ॥

आभर्तुर्गर्भं भूमीं हव नृ चिदधिष्व मे गिरः ।

इन्द्र स्तोममिह मम कृष्णा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—( आभर्तुर्गर्भं ) हे निरन्तर अवगमनरूप कर्णवाले ( इन्द्र ) सर्वान्तर्यामि परमेश्वर ( चिदधिष्व ) जैसे प्रीति बढ़ानेवाले मित्र अपनी ( युजः ) साथ विद्या और उत्तम-उत्तम गुणों में युक्त होनेवाले मित्र की ( गिरः ) बाणियों की प्रीति के साथ युक्तता है, वैसे ही आप ( तु ) भी हम ही ( मे ) मेरी ( गिरः ) स्तुति तथा ( कृष्णा ) प्रहृण करने योग्य सत्य वचनों की ( युजः ) सुनि। तथा ( मम ) मेरी ( स्तोमम् ) स्तुतियों के समूह को ( अन्तरम् ) अपने ज्ञान के बीच ( चिदधिष्व ) कारण करके ( युजः ) पूर्वोक्त कामों में उक्त प्रकार से युक्त हुए हम लोगों की ( अन्तरम् ) भीतर की बुद्धि को ( कृष्णा ) कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जो सर्वत्र जीवों के किये हुए वासी के व्यवहारों का यथावत् अवगणन करनेवाला, सर्वाधार, अन्तर्-र्यामी, जीव और अन्त कारण की यथावत् बुद्धि का हेतु तथा सब का मित्र ईश्वर है, वही एक जानने वा प्रार्थना करने योग्य है ॥ ९ ॥

किर भी मनुष्य परमेश्वर को कैसा जानें, इस विषय का अगले

मन्त्र में प्रकाश किया है—

विद्या हि त्वा वृषन्तम वाजेषु हवनभुतम् ।

वृषन्तमस्य हमह उति सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग ( वाजेषु ) सवामों में ( हवनभुतम् ) प्रार्थना को सुनन योग्य और ( वृषन्तमम् ) अभीष्ट कामों के अच्छी प्रकार देने और जाननेवाले ( त्वा ) आपको ( विद्मः ) जानते हैं, ( हि ) जिस कारण हम लोग ( वृषन्तमम् ) अतिशय करके श्रेष्ठ कामों को मेघ के समान वर्षानेवाले ( तव ) आपकी ( सहस्रसातमाम् ) अच्छी प्रकार अनेक सुखों को देनेवाली जो ( उतिम् ) रक्षा, प्राप्ति और विज्ञान है, उनको ( हमह ) अधिक-से-अधिक मानते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सब कामों की सिद्धि देने और मुझ में शत्रुओं के विजय के हेतु परमेश्वर ही देनेवाला है, जिसने इस ससार में सब प्राणियों के सुख के लिए अनन्यतः पदार्थ उत्पन्न वा रक्षित किये हैं, उस परमेश्वर वा उसकी आज्ञा का आश्रय करके सर्वथा उपाय के साथ अपना वा सब मनुष्यों का सब प्रकार से मुख सिद्ध करना चाहिए ॥ १० ॥

किर परमेश्वर कैसा और मनुष्यों के लिए क्या करता है, इस विषय का

अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।

नध्यमायुः म सु तिर कृधि सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे ( कौशिक ) सब विद्याओं के उपदेशक और उनके अर्थों के निरन्तर प्रकाश करनेवाले ( इन्द्र ) सर्वान्तर्यामि परमेश्वर ( मन्दसानः ) आप उत्तम-उत्तम स्तुतियों की प्राप्त हुए और सब को यथायोग्य जानते हुए ( नः ) हम लोगों के ( सुतम् ) यत्न से उत्पन्न किये हुए सोमादि रस वा प्रिय वस्तुओं से की हुई स्तुतियों का ( मा ) अच्छी प्रकार ( पिब ) पान कराइए ( सु ) और कृपा करके हमारे लिए ( नध्यमायुः ) नवीन ( आयुः ) अर्थात् निरन्तर जीवन को ( अमृतिम् ) कीजिए, तथा ( मः ) हम लोगों में ( सहस्रसाम् ) अनेक विद्याओं के प्रकट करने वाले ( अमृतिम् ) वैदवत्ता पुरुष को भी ( कृधि ) कीजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने प्रेम से विद्या का उपदेश करनेवाला होकर अर्थात् जीवों के लिए सब विद्याओं का प्रकाश सर्वथा शुद्ध परमेश्वर की स्तुति के साथ प्रत्यक्ष करते हैं, वे सुख और विद्यायुक्त पूर्ण आयु तथा अमिष भाव को प्राप्त होकर सब विद्या चाहनेवाले मनुष्यों को प्रेम के साथ उत्तम-उत्तम विद्या से विद्वान् करते हैं ॥ ११ ॥

उक्त सब स्तुति ईश्वर ही के गुणों को कीर्तन करती हैं, इस विषय का

अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

परि त्वा गिर्वयो गिर इमा भवन्तु चिन्तः ।

इदामनु इदयो जुहा भवन्तु सुष्टयः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे ( गिर्वयः ) वेदों तथा विद्वानों की बाणियों से स्तुति की प्राप्ति में योग्य परमेश्वर ! ( चिन्तः ) इस ससार में ( इमा ) जो वेदों का विद्वान् कर्मों की कही हुई ( गिरः ) स्तुति है, वे ( परि ) सब प्रकार से सब की स्तुतियों

से सेवन करने योग्य जो आप हैं, उनको ( भवन्तु ) प्रकाश करनेवाली हो, और इसी प्रकार ( इदयो ) बुद्धि को प्राप्त होने योग्य ( सुष्टयः ) प्रीति की देनेवाली स्तुतियाँ ( सुष्टयः ) जिससे सेवन करते हैं, वे ( इदामनु ) जो कि निरन्तर सब काम्यों में अपनी उन्नति को आप ही बढ़ानेवाले आप का ( भवन्तु ) अनुभव करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे भगवन् परमेश्वर ! जो-जो मनुष्य प्रशंसा है सो-सो आपकी ही है, तथा जो-जो सुख और आनन्द की बुद्धि होती है सो-सो आप ही को सेवन करके विशेष बुद्धि को प्राप्त होती है। इस कारण जो मनुष्य ईश्वर तथा सृष्टि के गुणों का अनुभव करते हैं, वे ही प्रसन्न और विद्या की बुद्धि को प्राप्त होकर ससार में पूज्य होते हैं ॥ १२ ॥

जो लोग कम से विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण और ईश्वर की प्रार्थना करके अपने उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर परमेश्वर की प्रशंसा और वन्दना करते हैं, वे ही अविद्या आदि दुष्ट गुणों की निवृत्ति में शत्रुओं को जीत कर तथा अधिक धनस्वाध्याय और विद्वान् होकर सब मनुष्यों को सुख उत्पन्न करके सदा आनन्द में रहते हैं। इस अर्थ से इस दशम सूक्त की सङ्गति नवम सूक्त के साथ जाननी चाहिए ॥ १२ ॥ १० ॥ २० ॥

यह दशम सूक्त और बीसवीं वर्ग पूरा हुआ ॥

ॐ

अथात्माष्टर्चस्वकावशस्तस्वमेता मायुष्मन्तस्व अवि । इन्द्रो देवता ।

अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब आरम्भें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। तथा पहले मन्त्र में इन्द्र

शब्द से ईश्वर का विज्ञाप करनेवाले पुरुष का उपदेश किया है—

इन्द्रं विश्वा अवीधन्तसमुद्रव्यवसं गिरः ।

रथीसं रथीनां वाजानां सत्यतिम्पतिम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हमारी ये ( विश्वाः ) सब ( गिरः ) स्तुतियाँ ( समुद्रव्यवसं ) जो आकाश में अपनी व्यापकता से परिपूर्ण ईश्वर, वा जो नौका आदि पूर्ण सामग्री से शत्रुओं को जीतनेवाले मनुष्य ( रथीनाम् ) जो बड़े-बड़े युद्धों में विजय करने वा करनेवाले ( रथीसम् ) जिसमें पृथिवी आदि रथ अर्थात् सब जीवाओं के साधन, तथा जिसके युद्ध के साधन बड़े-बड़े रथ हैं, ( वाजानाम् ) अच्छी प्रकार जिनमें जय और पराजय प्राप्त होते हैं, उनके बीच ( सत्यतिम् ) जो विनाशरहित प्रकृति आदि द्रव्यों का पालन करनेवाला ईश्वर, वा सत्पुरुषों की रक्षा करनेवाला मनुष्य ( पतिम् ) जो चराचर जगत् और प्रजा के स्वामी, वा मज्जनों की रक्षा करनेवाले और ( इन्द्रम् ) विजय के देनेवाले परमेश्वर के वा शत्रुओं को जीतनेवाले धर्मात्मा मनुष्य के ( अवीधन्तम् ) गुणानुवादी को नित्य बढ़ाती रहें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब वेदवाणी परमेश्वर्ययुक्त, सब में रहने, सब जगत् रमण करने, सत्य स्वभाव तथा धर्मात्मा सज्जनों को विजय देनेवाले परमेश्वर और धर्म वा बल से दुष्ट मनुष्यों को जीतने तथा धर्मात्मा वा सज्जन पुरुषों की रक्षा करनेवाले मनुष्य का प्रकाश करती है। इस प्रकार परमेश्वर वेदवाणी से सब मनुष्यों को प्राप्ता देता है ॥ १ ॥

सख्ये तं इन्द्र वाजिनो मा मय शवसस्पते ।

त्वामभि म णौनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( शवसः ) अनन्तबल वा सेनाबल के ( पते ) पालन करनेवाले ईश्वर वा अग्र्यस्य । ( अमिषेतरम् ) प्रत्यक्ष शत्रुओं को जीतने वा जीतनेवाले ( अपराजितम् ) जिस का पराजय कोई भी न कर सके ( त्वा ) उस आप को ( वाजिनः ) उत्तम विद्या वा बल से अपने शरीर के उत्तम बल वा समुदाय को जानते हुए हम लोग ( णौनुमः ) अच्छी प्रकार आप की बात-बार स्तुति करते हैं, जिससे ( इन्द्र ) हे मन्त्र प्रजा वा सेना के स्वामी । ( ते ) आप जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष के साथ ( सख्ये ) हम लोग मित्रभाव करके शत्रुओं वा दुष्टों से कभी ( मा मय ) भय न करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने वा अपने धर्मानुष्ठान से परमात्मा तथा शूरवीर आदि मनुष्यों में मित्रभाव अर्थात् प्रीति रखते हैं, वे बलवाले होकर किसी मनुष्य से पराजय वा भय को प्राप्त कभी नहीं होते ॥ २ ॥

पूर्वाग्निन्द्रस्य रानयो न वि दस्यन्त्युतयः ।

यदी वाजस्य गोमंतः स्तोत्रभ्यो महेते मघम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—( यधि ) जो परमेश्वर वा सभा और सेना का स्वामी ( स्तोत्रभ्यः ) जो जगदीश्वर वा सृष्टि के गुणों की स्तुति करने वाले धर्मात्मा विद्वान् मनुष्य हैं, उनके लिए ( वाजस्य ) जिसमें सब सुख प्राप्त होते हैं उस व्यवहार, तथा ( गोमंतः ) जिसमें उत्तम पृथिवी, गौ आदि पशु और बाली आदि छन्दिया वर्तमान हैं, उसके सम्बन्धी ( यजम् ) विद्या और सुखरादि धन को ( महेते ) देता है, तो हम ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर तथा सभा सेना के स्वामी की ( वृष्यः ) मनातन प्राचीन ( रातयः ) दान-शक्ति तथा ( अतयः ) रक्षा हैं, वे कभी ( न ) नहीं ( विदस्यन्ति ) नाश को प्राप्त होती, किन्तु नित्य प्रति बुद्धि ही को प्राप्त रहती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी श्लेषालङ्कार है। जैसे ईश्वर वा राजा की इस संसार में शान्ति और रक्षा निश्चय स्थापयुक्त होती है, वैसे अन्य मनुष्यों को भी प्रजा के बीच में विद्या और निर्भयता का निरन्तर विस्तार करना चाहिए। जो ईश्वर न



होता तो यह जगत् कैसे उत्पन्न होता ? तथा जो ईश्वर सब पदार्थों को उत्पन्न करके सब मनुष्यों के लिए नहीं देता तो मनुष्य लोग कैसे जी सकेंगे ? इस से सब काम्यों का उत्पन्न करने और सब सुखों का देने वाला ईश्वर ही है, अन्य कोई नहीं, यह बात सब को माननी चाहिए ॥ ३ ॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्य और सेनापति के गुणों का उपदेश किया है—

**पुराभिन्द्ुर्युवा कविरमिताजा अजायत ।**

**इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुंरुदुतः ॥ ४ ॥**

पदार्थ—जो यह ( अमिताजा ) अनन्त बल वा जनयामा ( वज्री ) जिसके सब पदार्थों को प्राप्त करनेवाले शम्भुमयूह वा किरण हैं, और ( पुरा ) मिन हुए शत्रुओं के तगर वा पदार्थों का ( चिन्तु ) अपने प्रताप वा ताप से नाश वा अलग-अलग करने ( युवा ) अपने गुणों से पदार्थों का मल करने वा कराने तथा ( कवि ) राजनीति, विद्या वा दृश्य पदार्थों का अपने किरणों से प्रकाश करने वाला ( पुंरुदुतः ) बहुत विद्वान् वा गुणों से स्तुति करने योग्य ( इन्द्र ) सेनापति और सूर्यलोक ( विश्वस्य ) सब जगत् के ( कर्मण ) कार्यों को ( धर्ता ) अपने बल और आकषण गुण से वाग्य करने वाला ( अजायत ) उत्पन्न होता और हुआ है, वह सदा जगत् के व्यवहारों की सिद्धि का हेतु है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैम ईश्वर का रत्ना और धारण किया हुआ यह सूर्य लोक अपने वज्र रूपी किरणों से सब भूमिमान् पदार्थों का अलग-अलग करने तथा बहुत से गुणों का हेतु और अपने आकषण रूप गुण से पृथिवी आदि लोकों का धारण करने वाला है, वस ही सेनापति को उचित है कि शत्रुओं के बल का छेदन नाम, दाम और दण्ड से शत्रुओं को भिन्न-भिन्न करके बहुत उत्तम गुणों को ग्रहण करता हुआ भूमि में अपने राज्य का पालन करे ॥ ४ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्य के गुणों का उपदेश किया है—

**त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।**

**त्वा देवा अबिभ्युपस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥**

पदार्थ—( अद्रिव ) जिसमें मेघ विद्यमान है ऐसा जा सूर्य लोक है, व ( गोमत ) जिसमें अपने किरण विद्यमान है उस ( अबिभ्युष ) भयर्हित ( बलस्य ) मेघ के ( बिलस्य ) जलमयूह को ( अपाव ) अलग-अलग करने वाला है, ( स्वास ) हम सूर्य को ( तुज्यमानास ) अपनी-अपनी कक्षाओं में अलग करने हुए ( देवा ) पृथिवी आदिलोक ( आविषु ) विशेष करके प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जैम सूर्यलोक अपनी किरणों से मेघ के वर्धन-वर्धन बढ़ाने को छिन्न-भिन्न करके भूमि पर गिराता हुआ जल की वर्षा करता है क्योंकि यह मेघ उसकी किरणों में ही स्थिर रहता, तथा इसके चारों ओर आरुपण अर्थात् खींचने के गुणों से पृथिवी आदि लोक अपनी-अपनी कक्षा में उत्तम-उत्तम नियम से घूमते हैं, इसीसे समय के विभाग या उत्तरायण, दक्षिणायन तथा ऋतु मास पक्ष, दिन, वर्षा पल आदि हो जाते हैं, वैसे ही गुण वाला सेनापति होता उचित है ॥ ५ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है—

**तवाहं शूर गतिभिः प्रत्यायं भिन्वुमावर्तन ।**

**उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥**

पदार्थ—ह ( शूर ) धार्मिक और युद्ध में कुप्टा की निवृत्ति करने तथा विद्या, बल, पराक्रम वाला और पुण्य । जो ( तव ) आपके निर्भयता आदि दानों में मैं ( सिन्धुस ) समुद्र के समान गम्भीर वा मुख देनेवाले आपना ( आवदन् ) निरन्तर कहता हुआ ( प्रत्यायम् ) प्रतीत करके प्राप्त होता हूँ । ह ( गिर्वण ) मनुष्यों की स्तुतियों में मग्न करने योग्य । जो ( ते ) आपके ( तस्य ) युद्ध राज्य वा शिल्पविद्या के महायक ( कारव ) कारीगर हैं, वे भी आप का शूरवीर ( विदुष्टे ) जानते तथा ( उपातिष्ठन्त ) समीपस्थ होकर उत्तम काम करते हैं, वे सब दिन सुखी रहते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर सब मनुष्यों का आज्ञा देता है कि—जैसे मनुष्यों का धार्मिक प्रणमनीय गमाव्याध वा सेनापति मनुष्यों के अभय-दान में निर्भयता का प्राप्त होकर जैसे समुद्र के गुणों को जानते हैं वैसे ही उत्तम पुरुष के आश्रय में अच्छी प्रशंसा जानकर उनका पसिद्ध करना चाहिए तथा मनुष्यों के निवारण से सब सुखों के लिए परस्पर विचार भी करना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्य के गुणों का उपदेश किया है—

**मायाभिर्न्द्रि मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।**

**विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेपां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥**

पदार्थ—ह परमेश्वर्य को प्राप्त कराने तथा शत्रुओं की निवृत्ति करने वाले शूरवीर मनुष्य । ( त्वम् ) तू उत्तम बुद्धि, सेना तथा शरीर के बल में युक्त होके ( मायाभि ) विशेष बुद्धि के व्यवहारों से ( शुष्णम् ) जो धर्ममा सज्जनों का वित्त व्याकुल करने ( मायिनम् ) दुर्बुद्धि, दुःख देने वाला सब का शत्रु मनुष्य है, उसका ( अवातिर ) पराजय किया कर, ( तस्य ) उसके मार्ग में मे ( मेधिरा ) जो शास्त्रों को जानने तथा दुष्टों का मारने में अति प्रवीण मनुष्य है, वे ( ते ) तने सज्जनों में सुखी और अन्नादि पदार्थों को प्राप्त हो ( श्रवाम् ) उन धर्ममा पुरुषों के महाय से शत्रुओं के बलों को ( उत्तिर ) अच्छी प्रकार निवारण कर ॥ ७ ॥

भाषार्थ—बुद्धिमान् मनुष्यों को ईश्वर आज्ञा देता है कि—साम, दाम, दण्ड और भेद की युक्ति से दुष्ट और शत्रुजनों की निवृत्ति करके विद्या और चक्रवर्ति राज्य

की यथावत् उत्पत्ति करनी चाहिए । तथा जैसे इस ससार में कपटी, छली और दुष्ट पुरुष बुद्धि को प्राप्त न हो, वैसे उपाय निरन्तर करना चाहिए ॥ ७ ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

**इन्द्रमीशानमोजमाभि स्तोमा अनूषत ।**

**नहसं यस्य रातय उत वा मन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥**

पदार्थ—( यस्य ) जिस जगदीश्वर के ये सब ( स्तोमा ) स्तुतियों के समूह ( सहस्रम् ) हजारों ( उत वा ) अथवा ( भूयसी ) अधिक ( रातय ) दान ( मन्ति ) है, उम ( ओजसा ) अनन्त बल के साथ वसन्तमान ( ईशानम् ) कारण से सब जगत् को रचने वाले तथा ( इन्द्रम् ) सकल ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर के ( अन्ध-नूषत ) सब प्रकार में गुण कीर्तन करते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जिम दयालु ईश्वर ने प्राणियों के मुख के लिए जगत् में अनेक उत्तम-उत्तम पदार्थ अपने पराक्रम से उत्पन्न करके जीवों को दिये हैं, उसी बल के स्तुतिविषय सब धनवाद होते हैं, इसलिए सब मनुष्यों को उसी का आश्रय लेना चाहिए ॥ ८ ॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द में ईश्वर की स्तुति, निर्भयता-सम्पादन, सूर्यलोक के कार्य, शूरवीर के गुणों का वर्णन, दुष्ट शत्रुओं का निवारण, प्रजा की रक्षा तथा ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से कारण के द्वारा जगत् की उत्पत्ति आदि के विधान से इस ग्यारहवें सूक्त की सङ्गति दर्शव सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिए ।

यह प्रथम मण्डल में तीसरा अनुवाक, ग्यारहवाँ सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ द्वावशब्दस्य द्वादशसूक्तस्य काण्वो मेवातिभिर्द्रवि । अग्निर्वैवता ।

गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

अब बारहवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

**अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्वेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् ॥ १ ॥**

पदार्थ—क्रिया करने की इच्छा करने वाले हम मनुष्य लोग ( अस्य ) प्रत्यक्ष मित्र करने योग्य ( यज्ञस्य ) शिल्पविद्यायुक्त यज्ञ के ( सुकृतम् ) जिससे उत्तम-उत्तम क्रिया मित्र दानों तथा ( विश्वेदसम् ) जिस में कारीगरों को सब शिल्प आदि साधनों का लाभ होता है, ( होतारम् ) यानों में वेग आदि को देने ( दूतम् ) पदार्थों का एक देश से दूसरे देश का प्राप्त करने ( अग्निम् ) सब पदार्थों को अपने तज में छिन्न-भिन्न करने वाले भौतिक अग्नि को ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि—यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष से विद्वानों ने जिसके गुण प्रसिद्ध किये हैं तथा पदार्थों का ऊपर नीचे पहुँचाने से दूत रचना तथा शिल्पविद्या में जो कलायन्त्र बनते हैं, उनके चलाने में हेतु और विमान आदि यानों में वेग आदि क्रियाओं का देने वाला भौतिक अग्नि अच्छी प्रकार विद्या से सब सज्जनों के उपकार के लिए निरन्तर ग्रहण करना चाहिए, जिससे सब उत्तम-उत्तम सुख हा ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में दो प्रकार के अग्नि का उपदेश किया है—

**अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विदपतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥**

पदार्थ—जैसे हम लोग ( हवीमभि ) ग्रहण करने योग्य उपामनादिकों तथा शिल्पविद्या के मानना में ( पुरुप्रियम् ) बहुत सुख कराने वाले ( विदपतिम् ) प्रजाओं के पालन हेतु और ( हव्यवाहम् ) देने लेने योग्य पदार्थों का देने और इश्वर-उत्तर पहुँचाने वाले ( अग्निम् ) परमेश्वर, प्रसिद्ध अग्नि और बिजुली को ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी सदा ( हवन्त ) उस का ग्रहण करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। और गिच्छे मन्त्र से 'वृणीमहे' इस पद की अनुवृत्ति आनी है। ईश्वर सब मनुष्यों के लिए उपदेश करता है कि—ह मनुष्यों ! तुम लोगों को विद्वान् अर्थात् बिजुली रूप तथा प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि से कलाकोशल आदि मित्र करके दान सुख सदैव भोगने और सुगमने चाहिए ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

**अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तर्वाहिषे । अग्नि होता न ईदयः ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) स्तुति करने योग्य जगदीश्वर ! जो आप ( इह ) इस स्थान में ( जज्ञान ) प्रकट कराने या ( होता ) हवन किये हुए पदार्थों को ग्रहण करने तथा ( ईदय ) खाज करने योग्य ( अग्नि ) है, सो ( न ) हम लोग और ( वृक्तर्वाहिषे ) अन्तरिक्ष में होम के पदार्थों को प्राप्त करनेवाले विद्वान् के लिए ( देवान् ) दिव्यगुणयुक्त पदार्थों को ( आवह ) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए ॥ ३ ॥

जो ( होता ) हवन किये हुए पदार्थों का ग्रहण करने तथा ( जज्ञानः ) उनकी उत्पत्ति करानेवाला ( अग्ने ) भौतिक अग्नि ( वृक्तर्वाहिषे ) जिसके द्वारा होम करने योग्य पदार्थ अन्तरिक्ष में पहुँचाये जाते हैं, वह उस अस्त्विज के लिए ( इह ) इस स्थान में ( देवान् ) दिव्यगुणयुक्त पदार्थों को ( आवह ) सब प्रकार से प्राप्त करना है । इस कारण ( नः ) हम लोगों को वह ( ईदयः ) खोज करने योग्य ( अग्नि ) होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे मनुष्यों ! जिस प्रत्यक्ष अग्नि में सुगन्धि आदि गुणयुक्त पदार्थों का होम किया करते हैं, जो उन पदार्थों के साथ अन्तरिक्ष में ठहरनेवाले वायु और मेघ के जल को शुद्ध करके इस संसार में

दिव्यं मुख उत्पन्न करता है, इस कारण हम लोगों को इस अग्नि के गुणों की खोज करना चाहिए, यह ईश्वर की आज्ञा सब को अवश्य माननी योग्य है ॥ ३ ॥

अगले मन्त्र में भीतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

**ताँ उ॒शतो वि बौध॒य॒ पद॒मे यासि॑ दूर॒यम् । दे॒वैरा सं॒त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥४॥**

पदार्थ—यह ( अग्ने ) अग्नि ( यत् ) जिस कारण ( बर्हिषि ) अन्तरिक्ष में ( देवैः ) दिव्य पदार्थों के सञ्चय से ( दूरयम् ) दूर भाव को ( आयासि ) सब प्रकार से प्राप्त होता है, ( ताँ ) उन दिव्य गुणों को ( बौधय ) विवित कराने वाला होता और उस पदार्थों के ( संत्सि ) दोषों का विनाश करता है, इस से सब मनुष्यों को विद्या सिद्धि के लिए इस अग्नि की ठीक-ठीक परीक्षा करके प्रयोग करना चाहिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—परमेश्वर आज्ञा देता है कि— हे मनुष्यो ! यह अग्नि तुम्हारा दूत है, क्योंकि ज्वलन किये हुए परमाणुरूप पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाता और उत्तम उत्तम भोगों की प्राप्ति का हेतु है। इस से सब मनुष्यों को अग्नि के जो प्रसिद्ध गुण हैं, उनको ससार में अपने कार्यों की सिद्धि के लिए अवश्य प्रकाशित करना चाहिए ॥ ४ ॥

उक्त अग्नि फिर भी रक्षा करता है, सो इनके मन्त्र में प्रकाशित किया है—

**श्रु॒ता॒हव॒न दी॒दिवः॒ प्रति॑ ध्य॒ रिषतो॑ द॒ह । अ॒मे त्वं र॑स॒स्विनः॑ ॥ ५ ॥**

पदार्थ—( श्रुताहवन ) जिसमें भी तथा जल क्रिया मिश्र होने के लिए छोड़ा जाता और जो अपने ( दीदिवः ) शुभ गुणों से पदार्थों को प्रकाश करने वाला है, ( त्वम् ) वह ( अग्ने ) अग्नि ( रसस्विनः ) जिन मनुष्यों में राक्षस प्रचलित दुष्ट-स्वभाववाले और निन्दा से भरे हुए मनुष्य विद्यमान हैं, तथा जो ( रिषतः ) हिंसा के हेतु दोष और शत्रु हैं उनका ( प्रति दह स्व ) अनेक प्रकार से विनाश करता है, हम लोगों को चाहिए कि उस अग्नि को कार्यों में निर्य सयुक्त करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो अग्नि इस प्रकार सुगन्ध्यादि गुणवाले पदार्थों से संयुक्त होकर सब दुर्गन्ध धावि दोषों को निवारण करके सब के लिए सुखदायक होता है, वह अच्छे प्रकार काम में लाना चाहिए। ईश्वर का यह वचन सब मनुष्यों को मानना उचित है ॥ ५ ॥

वह अग्नि कैसे प्रकाशित होता और किस प्रकार का है, सो इनके

मन्त्र में उपदेश किया है—

**अ॒ग्निना॒ग्निः स॒मि॒धये॒ क॒विर्गृ॒हप॒तिर्धु॒षा । ह॒व्य॒वा॒इ जु॒ह्वा॒स्यः॑ ॥ ६ ॥**

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो ( जुह्वास्यः ) जिस का मुख ज्वाला तेज और ( कविः ) कान्तवर्धन प्रधातु जिसमें स्थिरता के साथ दृष्टि नहीं पड़ती, तथा जो ( धुषा ) पदार्थों के साथ मिलने और उनको पृथक्-पृथक् करने ( हव्यवाइ ) होम किये हुए पदार्थों को देशान्तरो में पहुँचाने और ( गृहपतिः ) स्थान तथा उनमें रहने वालों का पालन करनेवाला है, उससे ( अग्निः ) यह प्रत्यक्ष रूपान्तर पदार्थों को जलाने, पृथिवी और सूर्यलोक में ठहरनेवाला अग्नि ( अग्निना ) विजुली में ( समिधये ) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, उसे बहुत कामों को सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो यह सब पदार्थों में मिला हुआ विद्युत् रूप अग्नि कहाला है, उसी से प्रत्यक्ष यह सूर्यलोक और भीतिक अग्नि प्रकाशित होते हैं, और फिर जिसमें छिपे हुए विद्युत् रूप होके रहते हैं, जो इनके गुण और विद्या की ग्रहण करके मनुष्य लोग उपकार करें, तो उनसे अनेक व्यवहार सिद्ध होकर उनको अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है, यह जगदीश्वर का वचन है ॥ ६ ॥

अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है—

**क॒विम॒ग्निमु॒प॒ स्तु॒हि स॒त्यध॑र्माण॒मध्व॑रे । दे॒वम॑मी॒वाच॑त॒नम् ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू ( अध्वरे ) उपासना करने योग्य व्यवहार में ( सत्यधर्माणम् ) जिसके धर्म नित्य और सनातन हैं, जो ( अमीवाचतनम् ) अज्ञान धादि दोषों का विनाश करने तथा ( कविम् ) सब की बुद्धियों को अपने सर्वज्ञता से प्राप्त होकर ( देवम् ) सब सुखों का देनेवाला ( अग्निम् ) सर्वज्ञ ईश्वर है, उस को ( उपस्तुहि ) मनुष्यों के समीप प्रकाशित कर ॥ ७ ॥

हे मनुष्य ! तू ( अध्वरे ) करने योग्य यज्ञ में ( सत्यधर्माणम् ) जो कि अविनाशी गुण और ( अमीवाचतनम् ) ज्वरादि रोगों का विनाश करने तथा ( कविम् ) सब रक्त पदार्थों को दिकाने वाला और ( देवम् ) सब सुखों का दाता ( अग्निम् ) भीतिक अग्नि है, उसको ( उपस्तुहि ) सब के समीप सदा प्रकाशित करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को सत्यविद्या से धर्म की प्राप्ति तथा क्लृप्तविद्या की सिद्धि के लिए ईश्वर और भीतिक अग्नि के गुण अलग-अलग प्रकाशित करने चाहिये जिससे प्राणियों को रोग धादि के विनाशपूर्वक सब सुखों की प्राप्ति अथावत् हो ॥ ७ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर का उपदेश किया है—

**य॒स्त्वाम॑ग्ने॒ ह॒वि॒र्धति॑ दू॒तं दे॒व स॒प॒र्य॒ति । तस्य॑ स्म॒ प्रा॒विता॑ भ॒व ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे ( देव ) तब के प्रकाश करनेवाले ( अग्ने ) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! जो मनुष्य ( हविर्धतिः ) देने-लेने योग्य वस्तुओं का पालन करनेवाला ( यः ) जो मनुष्य ( दूतम् ) ज्ञान देनेवाले आपका ( सपर्यति ) सेवन करता है,

( तस्य ) उस सेवक मनुष्य के आप ( प्राविता ) अच्छी प्रकार जनानेवाले ( भव ) हों ॥ ८ ॥

( यः ) जो ( हविर्धतिः ) देने लेने योग्य पदार्थों की रक्षा करनेवाला मनुष्य ( देव ) प्रकाश और दाहगुणवाले ( अग्ने ) भीतिक अग्नि का ( सपर्यति ) सेवन करता है, ( तस्य ) उस मनुष्य का वह अग्नि ( प्राविता ) नाना प्रकार के सुखों से रक्षा करनेवाला ( भव ) होता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। दूत शब्द का अर्थ दो पक्ष में मग-भना चाहिए, अर्थात् एक इस प्रकार से कि सब मनुष्यों में ज्ञान का पहुँचाना ईश्वर पक्ष, तथा एक देश से दूसरे देश में पदार्थों का पहुँचाना भीतिक पक्ष में ग्रहण किया गया है। जो आत्मिक अर्थात् परमेश्वर में विश्वास रखनेवाले मनुष्य अपने हृदय में सर्वसाक्षी का ध्यान करते हैं, वे पुरुष ईश्वर से रक्षा को प्राप्त होकर पापों से बचकर धर्मात्मा हुए अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं, तथा जो युक्ति से विमान धादि रथों में भीतिक अग्नि को संयुक्त करते हैं, वे भी युद्धादिकों में रक्षा को प्राप्त होकर भीरों की रक्षा करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

**यो अ॒ग्निं दे॒ववी॑तये॒ ह॒वि॒र्ध्मा॑ आ॒विवा॑सति । तस्मै॑ पा॒वक॑ मृ॒ळय॑ ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे ( पावक ) पवित्र करने वाले ईश्वर ! ( यः ) जो ( हविर्धमान् ) उत्तम-उत्तम पदार्थ वा कर्म करने वाला मनुष्य ( देववीतये ) उत्तम-उत्तम गुण और भोगों की परिपूर्णता के लिए ( अग्निम् ) सब सुखों के देा वाप आपको ( आविवासति ) अच्छी प्रकार सेवन करता है, ( तस्मै ) उस सेवन करने वाले मनुष्य को आप ( मृळय ) सब प्रकार सुखी कीजिए ॥ ९ ॥

यह जो ( हविर्धमान् ) उत्तम पदार्थ वाला मनुष्य ( देववीतये ) उत्तम भोगों की प्राप्ति के लिए ( अग्निम् ) सुख करने वाले भीतिक अग्नि का ( आविवासति ) अच्छी प्रकार सेवन करता है, ( तस्मै ) उसको यह अग्नि ( पावक ) पवित्र करने वाला होकर ( मृळय ) सुखयुक्त करता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य अपने मत्प भाव, कर्म और विज्ञान से परमेश्वर का सेवन करते हैं, वे दिव्य गुण, पवित्र कर्म और उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं। तथा जिससे यह दिव्य गुणों का प्रकाश करने वाला अग्नि रक्षा है, उस अग्नि से मनुष्यों को उत्तम-उत्तम उपकार लेने चाहिये इस प्रकार ईश्वर का उपदेश है ॥ ९ ॥

**स नः॑ पा॒वक॑ दी॒दिवो॒ऽध्वं दे॒वाँ इ॒हा ब॒ह । उप॑ य॒ज्ञं ह॒वि॒रच॑ नः ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( दीदिव ) अपने सामर्थ्य से प्रकाशवान् ( पावक ) पवित्र करने तथा ( अग्ने ) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाले ( सः ) जगदीश्वर ! आप ( नः ) हम लोगों के मुख के लिए ( इह ) इस समार में ( देवान् ) विद्वानों को ( आबह ) प्राप्त कीजिए तथा ( नः ) हमारे ( यज्ञम् ) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ और ( हविः ) देने-लेने योग्य पदार्थों को ( उपाबह ) हमारे समीप प्राप्त कीजिए ॥ १० ॥

( यः ) जो ( दीदिवः ) प्रकाशमान तथा ( पावक ) शुद्धि का हेतु ( अग्ने ) भीतिक अग्नि अच्छी प्रकार कलायन्त्रों में युक्त किया हुआ ( नः ) हम लोगों के मुख के लिए ( इह ) हमारे समीप ( देवान् ) दिव्य गुणों को ( आबह ) प्राप्त करता है, वह ( नः ) हमारे तीन प्रकार के उक्त ( यज्ञम् ) यज्ञ को तथा ( हविः ) उक्त पदार्थों को प्राप्त होकर सुखों को ( उपाबह ) हमारे समीप प्राप्त करता रहता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस प्राणी को किसी पदार्थ की इच्छा उत्पन्न हो, वह अपनी कामसिद्धि के लिए परमेश्वर की प्रार्थना और पुरुषार्थ करे। जैसे इस वेद में जगदीश्वर के गुण, स्वभाव तथा धर्मों में प्रतिपादित किये हुए दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे मनुष्यों को उनके अनुकूल कर्म के अनुष्ठान से अग्नि धादि पदार्थों के गुणों को ग्रहण करके अनेक प्रकार व्यवहार की सिद्धि करनी चाहिए ॥ १० ॥

**स नः॑ स्त॒वान् आ॒ भ॒र गाय॑त्रेण॒ नवी॑यसा । र॒यि॒ वी॒र॒वती॑भिर्ध॒म् ॥११॥**

पदार्थ—हे भगवन् ! ( सः ) जगदीश्वर आप ! ( नवीयसा ) अच्छी प्रकार मन्त्रों के नवीन पाठ गानयुक्त ( गायत्रेण ) गायत्री छन्द वाले प्रगाथों से ( स्तवान् ) स्तुति को प्राप्त किये हुए ( नः ) हमारे लिए ( रयिम् ) विद्या और चक्रवर्ति राज्य में उत्पन्न होने वाले धन तथा जिम में ( वीरवतीम् ) अच्छे-अच्छे वीर तथा विद्वान् हो, उस ( इवम् ) मज्जनों के इच्छा करने योग्य उत्तम क्रिया का ( आभर ) अच्छी प्रकार धारण कीजिए ॥ ११ ॥

( सः ) उक्त भीतिक अग्नि ( नवीयसा ) अच्छी प्रकार मन्त्रों के नवीन नवीन पाठ तथा गानयुक्त स्तुति और ( गायत्रेण ) गायत्री छन्द वाले प्रगाथों से ( स्तवान् ) गुणों के माय ग्रहण किया हुआ ( रयिम् ) उक्त प्रकार का धन ( नः ) और ( वीरवतीम्, इवम् ) उक्त गुण वाली उत्तम क्रिया को ( आभर ) अच्छी प्रकार धारण करता है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। तथा पहले मन्त्र से 'चकार' की अनुवृत्ति की है। हर एक मनुष्य को वेद धादि के नवीन-नवीन अध्ययन से वेद की उच्चारण क्रिया प्राप्त होती है, इस कारण 'नवीयसा' इस पद का उच्चारण किया है। जिन धर्मात्मा मनुष्यों ने यथावत् शब्दार्थपूर्वक वेद के पठने और वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान से जगदीश्वर को प्रसन्न किया है, उन मनुष्यों को वह उत्तम-उत्तम विद्या धादि धन तथा श्रुता धादि गुणों को उत्पन्न करने वाली श्रेष्ठ कामना को देता है, क्योंकि जो वेद के पठने और परमेश्वर के सेवन से युक्त मनुष्य हैं, वे अनेक सुखों का प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥

**अ॒ग्ने शृ॒क्त्रेण॑ शो॒चि॒वा वि॒न्वाभि॑र्दे॒वह॑तिभिः । इ॒मं स्तो॑मं जुष॒स्व नः॑ ॥१२॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) प्रकाशमय ईश्वर ! आप कृपा करके ( शृक्त्रेण ) अनन्त



वीर्य के माध ( होषिवा ) शुद्ध करने वाले प्रकाश तथा ( विश्वाभिः ) विद्वान् और वेदों की प्राणियों से सब प्राणियों के लिए ( न ) हमारे ( इवम् ) इस प्रत्यक्ष ( स्तोमम् ) स्तुतिसमूह को ( कुवस्व ) प्रीति के साथ सेवन कीजिए ॥ १२ ॥

यह ( अग्ने ) भौतिक अग्नि ( विश्वाभिः ) सब ( देवहृतिभिः ) विद्वान् तथा वेदों की प्राणियों से अग्नी प्रकाश सिद्ध किया हुआ ( कुवस्व ) अपनी कान्ति वा ( होषिवा ) पवित्र करने वाले प्रकाश से ( न ) हमारे ( इवम् ) इस ( स्तोमम् ) प्रशंसा करने योग्य कथा की कुशलता को ( कुवस्व ) सेवन करता है ॥ २ ॥ १२ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। दिव्य विद्याओं के प्रकाशक होने से केव शब्द से वेदों का ग्रहण किया है। जब मनुष्य लोग मर्य प्रेम के माध वेदवाणी से जगदीश्वर की स्तुति करने हैं, तब वह परमेश्वर उन मनुष्यों को विद्यादान से प्रशन्न करता है, वैसे ही यह भौतिक अग्नि भी विद्या से कलाकोशल से युक्त किया हुआ ईंधन आदि पदार्थों में टहनकर सब क्रियाकाण्ड का सेवन करता है ॥ १२ ॥

इस बारहवें सूक्त के अर्थ की अग्नि शब्द के अर्थ के याग से ग्यारहवें सूक्त के अर्थ से मङ्गल जाननी चाहिए।

यह बारहवां सूक्त और तेईसवां वग समाप्त हुआ ॥

५१

अपात्य द्वावशस्य त्रयोदशसूक्तस्य मेधातिथि कथं ऋविः । इधम समिद्धोऽग्निः ,  
तनूनपात्, नराशम, इव, बहिः, वेधीद्वार, उवासानकता, बन्धी होतारी  
प्रवेतसी, सरस्वतीडा भारत्यस्तितो देव्य, त्वष्टा, वनस्पतिः,  
स्वाहाकृतपदश्च द्वावश देवताः । गायत्री छन्द । बह्वज स्वरः ॥

अब तेरहवें सूक्त के अर्थ का आरम्भ करते हैं। इसके प्रथम मन्त्र में परमेश्वर के गुणों का उपदेश किया है —

सुममिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( होत ) पदार्थों को देने और ( पावक ) शुद्ध करने वाले ( अग्ने ) विश्व के ईश्वर । जिस हेतु से ( सुममिद्धः ) अग्नी प्रकाशवान् आप कृपा करके ( न ) हमारे ( च ) तथा ( हविष्मते ) जिसके बहुत हवि अर्थात् पदार्थ विद्यमान हैं उस विद्वान् के लिए ( देवान् ) दिव्य पदार्थों को ( आबह ) अग्नी प्रकाश प्राप्त करते हैं, इसमें मैं आपका निरन्तर ( यक्षि ) मत्कार करता हूँ ॥ १ ॥

जिसमें यह ( पावक ) पवित्रता का हेतु ( होत ) पदार्थों का ग्रहण करने तथा ( सुममिद्धः ) अग्नी प्रकाश वाला ( अग्ने ) भौतिक अग्नि ( न ) हमारे ( च ) तथा ( हविष्मते ) उक्त पदार्थ वाले विद्वान् के लिए ( देवान् ) दिव्य पदार्थों को ( आबह ) अग्नी प्रकाश प्राप्त करता है, इससे मैं उक्त अग्नि को ( यक्षि ) काव्यसिद्धि के लिए अपने अभीषेकनी करता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य बहुत प्रकार की मामरी को ग्रहण करके विमान आदि यानों में सब पदार्थों के प्राप्त कराने वाले अग्नि की अग्नी प्रकाश योजना करता है, उस मनुष्य के लिए वह अग्नि नाना प्रकार के सुखों की सिद्धि कराने वाला होता है ॥ १ ॥

अगले मन्त्र में शरीर आदि की रक्षा करने वाले भौतिक अग्नि के गुण वर्णन किये हैं —

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेभु न कवे । अथा कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—जो ( तनूनपात् ) शरीर तथा ओषधि आदि पदार्थों के छोटे-छोटे अणुओं का भी रक्षा करने और ( कवे ) सब पदार्थों का दिखाने वाला अग्नि है, वह ( देवेभु ) विद्वानों तथा दिव्य पदार्थों में ( वीतये ) सुख प्राप्त होने के लिए ( अथा ) आज ( न ) हमारे ( मधुमन्तम् ) उत्तम-उत्तम रमयुक्त ( यज्ञम् ) यज्ञ का ( कृणुहि ) निश्चित करता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—जब अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों का दहन होता है, तभी वह यज्ञ वायु आदि पदार्थों को शुद्ध तथा शरीर और ओषधि आदि पदार्थों की रक्षा करके अनेक प्रकार के रमों को उत्पन्न करता है, तथा उन शुद्ध पदार्थों के भाग में प्राणियों के विद्या, ज्ञान और वन की वृद्धि भी होती है ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में मनुष्यों के प्रशंसा करने योग्य भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है —

नराशंसमिह प्रियमग्निम् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—मैं ( अग्निम् ) इस ( यज्ञे ) अनुष्ठान करने धार्म्य यज्ञ तथा ( इह ) संसार में ( हविष्कृतम् ) जो कि होम करने योग्य पदार्थों से प्रदीप्त किया जाता है, और ( मधुजिह्वम् ) जिसकी काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुल्लिङ्गिनी और विश्वरूपी ये अग्नि प्रकाशमान चपल उवाणारूपी जीमें हैं ( प्रियम् ) जो सब जीवों की प्रीति देने और ( नराशंसम् ) जिस सुख की मनुष्य प्रशंसा करते हैं, उस के प्रकाश करने वाले अग्नि को ( उपह्वये ) समीप प्रज्वलित करता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ— जो भौतिक अग्नि इस संसार में होम के निमित्त युक्ति से ग्रहण किया हुआ प्राणियों की प्रमत्तता कराने वाला है, उस अग्नि की साज जीमें है। अर्थात् काली जोकि सुपेद आदि रज्जु का प्रकाश करने वाली, कराली—सहने में कठिन, मनोजवा—मन के समान वैशवाली, सुलोहिता—जिसका उत्तम रक्तवर्ण है, सुधूम्रवर्णा जिसका सुन्दर धुमलासा वर्ण है, स्फुल्लिङ्गिनी—जिससे बहुत से चिन्तने उठने हो, तथा विश्वरूपी—जिसका सब रूप है। ये देवी अर्थात् अतिशय करके

प्रकाशमान और लेलायमाना—प्रकाश से सब जगह जानेवाली सप्त प्रकार की जिह्वा है, अर्थात् सब पदार्थों को ग्रहण करने वाली होती है। इस उक्त सात प्रकार की अग्नि की जीमों से सब पदार्थों में मनुष्यों को उपकार लेना चाहिए ॥ ३ ॥

उक्त अग्नि इस प्रकार उपकार में लिया हुआ जिसका हेतु होता है, जो उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईदित आ वह । असि होता मनुर्वितः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो ( अग्ने ) भौतिक अग्नि ( मनुः ) विद्वान् लोग जिसको मानते हैं तथा ( होता ) सब सुखों का देने और ( ईदितः ) मनुष्यों को स्तुति करने योग्य ( असि ) है, वह ( सुखतमे ) अत्यन्त सुख देने तथा ( रथे ) गमन और विहार करने वाले विमान आदि मन्त्रियों में ( हित ) स्थापित किया हुआ ( देवान् ) दिव्य भोगों को ( आबह ) अग्नी प्रकाश वेशान्तर में प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को बहुत कलाओं से सयुक्त पृथिवी, जल और अन्तरिक्ष में गमन का हेतु तथा अग्नि वा जल आदि पदार्थों से मनुष्य तीन प्रकार का रथ कल्याणकारक तथा अत्यन्त सुख देनेवाला होकर बहुत उत्तम-उत्तम काम्यों की सिद्धि को प्राप्त करानेवाला होता है ॥ ४ ॥

फिर वह भौतिक अग्नि उक्त प्रकार से किया में युक्त किया हुआ क्या करता है, तो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

स्तृणीत बहिरानुपमृत्पृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षुषम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( मनीषिणः ) बुद्धिमान् विद्वानों । ( यत्र ) जिस अन्तरिक्ष में ( अमृतस्य ) जलमयूह का ( चक्षुषम् ) दर्शन होता है, उस ( यत्रामृतम् ) चारों ओर से घिरे और ( मृत्पृष्ठम् ) जल से भरे हुए ( बहिः ) अन्तरिक्ष को ( स्तृणीत ) होम के धूम से आच्छादन करो, उसी अन्तरिक्ष में अन्य भी बहुत पदार्थ जल आदि को जानो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—विद्वान् लोग अग्नि में जो मृत् आदि पदार्थ छोड़ने हैं, वे अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर वहाँ के ठहरे हुए जल को शुद्ध करते हैं, और वह शुद्ध हुआ जल सुगन्धि आदि गुणों से सब पदार्थों को आच्छादन करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है ॥ ५ ॥

अब अगले मन्त्र में घर, यज्ञशाला और विमान आदि रथ अनेक द्वारों के सहित बनाने चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है—

वि श्रयन्तामृतादृधो द्वारो देवीरसन्तः । अथा नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( मनीषिणः ) बुद्धिमान् विद्वानों । ( यष्ट ) आज ( यष्टवे ) यज्ञ करने के लिए घर आदि के ( अस्त्यस्तः ) अलग-अलग ( यष्टावृक्षः ) सत्य सुख और जल के वृद्धि करनेवाले ( देवी ) तथा प्रकाशित ( द्वारः ) दरवाजों का ( नूनम् ) निश्चय से ( विश्रयन्ताम् ) सेवन करो, अर्थात् अग्नी रचना से उनका बनाओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को अनेक प्रकार के द्वारों के घर, यज्ञशाला और विमान आदि यानों को बनाकर उनमें स्थिति होम और वेशान्तरों में जाना-आना करना चाहिए ॥ ६ ॥

यह चौबीसवां वर्ण समाप्त हुआ ॥

उक्त कर्म से दिनरात सुख होता है, तो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है—

नक्तोषमा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बहिरासदं ॥ ७ ॥

पदार्थ—मैं ( अस्मिन् ) इस घर तथा ( यज्ञे ) सङ्कत करने के कामों में ( सुपेशसा ) अग्नी रूपावले ( नक्तोषमा ) रात्रिदिन को ( उपह्वये ) उपकार में लाता हूँ, जिस कारण ( न ) हमारा ( बहिः ) निशासस्थान ( आसदं ) सुख की प्राप्ति के लिए हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में विद्या से सर्वत्र उपकार लेवें, क्योंकि रात्रिदिन सब प्राणियों के सुख का हेतु होता है ॥ ७ ॥

अब अगले मन्त्र में उन अग्निवों का उपदेश किया है कि जो शुद्ध करनेवाले विद्युत्कूप से अग्रसिद्ध और प्रत्यक्ष स्थूलरूप से प्रसिद्ध हैं—

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा देव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—मैं क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करनेवाला इस घर में जो ( नः ) हमारे ( इवम् ) प्रत्यक्ष ( यज्ञम् ) दहन वा शिल्पविद्यामय यज्ञ को ( यक्षताम् ) प्राप्त करते हैं, उन ( सुजिह्वा ) सुन्दर पूर्वोक्त सात जीम ( होतारा ) पदार्थों का ग्रहण करने ( कवी ) तीव्र दर्शन देने और ( देव्या ) दिव्य पदार्थों में रहनेवाले प्रसिद्ध और अग्रसिद्ध अग्निवों को ( उपह्वये ) उपकार में लाता हूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे एक बिजुली, बेग आदि अनेक गुणवाला अग्नि है इसी प्रकार प्रसिद्ध अग्नि भी है। तथा ये दोनों सकल पदार्थों के वेदने में और अग्नी प्रकाश क्रियाओं में नियुक्त किये हुए शिल्प आदि अनेक काव्यों की सिद्धि के हेतु होते हैं। इसलिए इन्हीं से मनुष्यों को सब उपकार लेने चाहिए ॥ ८ ॥

वहाँ तीन प्रकार की किया का प्रयोग करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इत्था सरस्वती मही तिस्रो देवीर्योगुषः । बहिः सीदन्स्वस्त्रिधः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वानों ! तुम लोग एक ( इत्था ) जिससे स्तुति होती, दूसरी

( सरस्वती ) जो अनेक प्रकार विज्ञान का हेतु, और तीसरी ( मही ) बड़ों-में-बड़ी पूजनीय भीति है, वह ( अग्निः ) हिसारहित और ( अमोघः ) बुझों का सम्पादन करानेवाली ( देवी ) प्रकाशवान् तथा दिव्य गुणों को सिद्ध कराने में हेतु जो ( सिद्धः ) तीन प्रकार की बाणी है, उसको ( गहिः ) घर-घर के प्रति ( सीधम् ) यथावत् प्रकाशित करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को 'इह' जो कि पटनपाठन की प्रेरणा देनेवाली, 'सरस्वती' जो उपदेशक शान का प्रकाश कराने और 'मही' जो सब प्रकार से प्रशंसा करने योग्य है, ये तीनों बाणी कुतर्क से खटन करने योग्य नहीं है, तथा सब सुख के लिए तीनों प्रकार की बाणी सर्वैक स्वीकार करनी चाहिए, जिससे निश्चलता से भविष्य का नाश हो ॥ ६ ॥

किर वहाँ क्या-क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**इह त्वष्टारमग्निं विश्वं पृथुं ह्ये । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥**

पदार्थ—मैं जिस ( विश्वकपम् ) सर्वव्यापक ( अग्निम् ) सब वस्तुओं के धारो होने तथा ( त्वष्टारम् ) सब दुःखों के नाश करने वाले परमात्मा को ( इह ) इस घर में ( उपह्वये ) अच्छी प्रकार आह्वान करता हूँ, वही ( अस्माकम् ) उपासना करनेवाले हम लोगों का ( केवलः ) इष्ट और स्तुति करने योग्य ( अस्तु ) हो ॥ १० ॥

और मैं ( विश्वकपम् ) जिसमें सब गुण हैं, ( अग्निम् ) सब साधनों के धारो होने तथा ( त्वष्टारम् ) सब पदार्थों को अपने तेज से अलग अलग करनेवाले भौतिक अग्नि के ( इह ) इस शिल्पविद्या में ( उपह्वये ) जिसको युक्त करता हूँ, वह ( अस्माकम् ) हवन तथा शिल्पविद्या के सिद्ध करनेवाले हम लोगों का ( केवलः ) अत्युत्तम साधन ( अस्तु ) होता है ॥ २ ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अनन्त सुख देनेवाले ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिए, तथा जो यह भौतिक अग्नि सब पदार्थों का छेदन करने, सब रूप, गुण और पदार्थों का प्रकाश करने, सब से उत्तम और हम लोगों की शिल्पविद्या का अतिशय साधन है, उसका उपयोग शिल्पविद्या में यथावत् करना चाहिए ॥ १० ॥

यह अग्नि किससे प्रज्वलित हुआ इन काव्यों को सिद्ध करता है,

इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अवं सृजा वनस्पते देवं देवेभ्यो हविः । प्र ढातुरस्तु चेतनम् ॥ ११ ॥**

पदार्थ—जो ( देव ) फल आदि पदार्थों को देनेवाला ( वनस्पति ) वनों के वृक्ष और घोषधि आदि पदार्थों को अधिक दृष्टि के हेतु में पालन करनेवाला ( देवेभ्यः ) दिव्य गुणों के लिए ( हविः ) हवन करने योग्य पदार्थों को ( अवाप्तुम् ) उत्पन्न करता है, वह ( प्रधातुः ) सब पदार्थों की श्रद्धा चाहने वाले विद्वान् जन के ( चेतनम् ) विज्ञान को उत्पन्न करनेवाला ( अस्तु ) होता है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों से पृथिवी तथा सब पदार्थ जलमय युक्ति से क्रियाओं में युक्त किये हुए अग्नि से प्रदीप्त होकर रोगों की निर्मूलता से बुद्धि और बल को देने के कारण ज्ञान के बढ़ाने के हेतु होकर दिव्यगुणों का प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥

इस क्रियाकाण्ड को मनुष्य लोग किस प्रकार से करें, सो उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

**स्वाहा यज्ञं कुणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवां उप ह्वये ॥ १२ ॥**

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के सिद्ध यज्ञ करने और करानेवाले विद्वानो ! तुम लोग जैसे जहाँ ( यज्वनः ) यज्ञकर्त्ता के ( गृहे ) घर, यज्ञशाला तथा कलाकुशलता से सिद्ध हुए विमान आदि यानों में ( इन्द्राय ) परमेश्वर्य की प्राप्ति के लिए परम विद्वानों को बुला के ( स्वाहा ) उत्तम श्रियासमूह के साथ ( यज्ञम् ) जिस तीनों प्रकार के यज्ञ को ( कुणोतनम् ) सिद्ध करने वाले हो, वैसे वहाँ मैं ( देवान् ) उन उक्त चतुर श्रेष्ठ विद्वानों को ( उपह्वये ) प्रार्थना के साथ बुलाता रहूँ ॥ १२ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग विद्या तथा क्रियावान् होकर अथायोग्य बने हुए स्वानों में उत्तम विचार से क्रियासमूह से सिद्ध होनेवाले कर्मकाण्ड को निर्य करते हुए और वहाँ विद्वानों को बुलाकर वा आपही उनके समीप जाकर उनकी विद्या और क्रिया की चतुराई को प्रह्ला करें। हे सज्जन लोगो ! तुमको विद्या और क्रिया की कुशलता आलस्य से कभी नहीं छोड़नी चाहिए, क्योंकि ऐसी ही ईश्वर की आज्ञा सब मनुष्यों के लिए है ॥ १२ ॥

इस तरहवें सूक्त के अर्थ की अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के उपकार लेने के विधान से बारहवें सूक्त के अग्निप्राथ के साथ संगति जाननी चाहिए।

यह तरहवें सूक्त और मन्त्रोत्तरां वर्ण दूरा हुआ ॥



अथास्य इत्यस्यैव मनुष्यसमुत्पत्त्यै कर्मो मेधातिथिर्हविः ।

विश्वेदेवा देवताः । वायमी जम्भः । अज्यः स्वरः ॥

अब चौदहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मन्त्र में बहुत पदार्थों के साथ सर्वोप करानेवाले ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है—

**देभिर्मरुतो हुषो विरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्माहि यज्ञि च ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर ! आप ( एभिः ) इन ( विश्वेभिः ) सब ( देवेभिः ) दिव्य गुण और विद्वानों के साथ ( सोमपीतये ) सुख करनेवाले पदार्थों

के पीने के लिए ( हुषः ) सत्कारादि व्यवहार तथा ( गिर ) वेदवाणियों को ( माहि ) प्राप्त हुआ ॥ १ ॥

जो वह ( अग्ने ) भौतिक अग्नि ( एभिः ) इन ( विश्वेभिः ) सब ( देवेभिः ) दिव्यगुण और पदार्थों के साथ ( सोमपीतये ) जिससे सुखकारक पदार्थों का पीना हो, उस यज्ञ के लिए ( हुषः ) सत्कारादि व्यवहार तथा ( गिर ) वेदवाणियों को ( माहि ) प्राप्त करता है, उसको ( एभिः ) इन ( विश्वेभिः ) सब ( देवेभिः ) विद्वानों के साथ ( सोमपीतये ) उक्त सोम के पीने के लिए ( यज्ञि ) स्वीकार करता हूँ, तथा ईश्वर के ( हुषः ) सत्कारादि व्यवहार और वेदवाणियों को ( माहि ) संगत अर्थात् अपने मन और कामों में अच्छी प्रकार सर्वैक यथाशक्ति बारण करता हूँ ॥ २ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिन मनुष्यों को व्यवहार और परमार्थ के सुख की इच्छा हो, वे वायु, जल और पृथिवीमयादि अन्न तथा विमान आदि रथों के साथ अग्नि को स्वीकार करके उत्तम क्रियाओं को सिद्ध करते और ईश्वर की आज्ञा का सेवन, वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करने रहते हैं, वे ही सब प्रकार से आनन्द भोगते हैं ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द के अर्थों का उपदेश किया है—

**आ त्वा कस्या अहूत गृणन्ति विप्र ते धियः ।**

**देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर ! जैसे ( कणा ) मेधावी विद्वान् लोग ( त्वा ) आपका ( गृणन्ति ) पूजन तथा ( अहूत ) प्रार्थना करते हैं, वैसे ही हम लोग भी आपका पूजन और प्रार्थना करें। हे ( विप्र ) मेधाविन् विद्वन् ! जैसे ( ते ) तेरी ( धियः ) बुद्धि जिस ईश्वर के ( गृणन्ति ) गुणों का कथन और प्रार्थना करती है, वैसे हम सब लोग परस्पर मिलकर उसी की उपासना करते रहे। हे मङ्गलमय परमात्मन् ! आप कृपा करके ( देवेभिः ) उत्तम गुणों के प्रकाश और भोगों के देने के लिए हम लोगों को ( आगहि ) अच्छी प्रकार प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

हे ( विप्र ) मेधावी विद्वन् मनुष्य ! जैसे ( कणा ) अन्य विद्वान् लोग ( अग्ने ) अग्नि को ( गृणन्ति ) गुण प्रकाश और ( अहूत ) शिल्पविद्या के लिए युक्त करते हैं, वैसे तुम भी करो। जैसे ( अग्ने ) यह अग्नि ( देवेभिः ) दिव्यगुणों के साथ ( आगहि ) अच्छी प्रकार अपने गुणों को विदित करता है और ( ते ) तेरी ( धियः ) बुद्धि अग्नि के ( गृणन्ति ) जिन गुणों का कथन तथा ( अहूत ) अधिक-से अधिक मानती है, उससे तुम बहुत-से काव्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को इस समार में ईश्वर के रचे हुए पदार्थों को देखकर यह कहना चाहिए कि ये सब धन्यवाद और स्तुति ईश्वर ही में घटती हैं ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में सब देवों में से कई एक देवों का उपदेश किया है—

**इन्द्रवायू बृहस्पति मित्राग्नि पुषण भगम् । आदित्यान् मार्कन गन्धम् ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे ( कणा ) बुद्धिमान् विद्वान् लोगो ! आप क्रिया तथा आनन्द की सिद्धि के लिए ( इन्द्रवायू ) बिजुली और पवन ( बृहस्पतिम् ) बड़े-से-बड़े पदार्थों के पावनहेतु सूर्यलोच ( मित्रा ) प्राण ( अग्निम् ) प्रसिद्ध अग्नि ( पुषणम् ) घोषधियों के समूह के पुष्टि करनेवाले वज्रलोक ( भगम् ) सुखी के प्राप्त करानेवाले जक्रवति आदि राज्य के धन ( आदित्यान् ) बारहों महीने और ( मार्कनम् ) पवनो के ( गन्धम् ) समूह को ( अहूत ) ग्रहण तथा ( गृणन्ति ) अच्छी प्रकार जानके समुक्त करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'कणा', 'अहूत' और 'गृणन्ति' इन तीन पदों की अनुवृत्ति आती है। जो मनुष्य ईश्वर के रचे हुए उक्त इन्द्र आदि पदार्थों और उनके गुणों को जानकर क्रियाओं में समुक्त करने हैं, वे आप सुखी होकर सब प्राणियों को सुखयुक्त सर्वैक करते हैं ॥ ३ ॥

उक्त पदार्थ इस प्रकार संयुक्त किये हुए किस-किस कार्य को सिद्ध करते हैं,

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**प्र वो भ्रियन्त इन्द्रो मरुता मादयिषण्वः । इप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैंने धारण किये, पूर्व मन्त्र में इन्द्र आदि पदार्थ कह आये हैं, उन्हीं से ( मध्वः ) मधुर गुणवाले ( मरुता ) जिनसे उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं ( मादयिषण्वः ) आनन्द के निमित्त ( इप्सा ) जिन से बल अर्थात् सेना के लोग अच्छी प्रकार आनन्द को प्राप्त होते और ( चमूषदः ) जिनसे बिकट मनुष्यों की सेनाओं में स्थिर होते हैं, उन ( इन्द्रः ) रसवाले सोम आदि घोषधियों के समूह के समूहों की ( च. ) तुम लोगों के लिए ( भ्रियन्ते ) अच्छी प्रकार धारण कर रहे हैं, तैसे तुम लोग भी मेरे लिए इन पदार्थों को धारण करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों के प्रति कहता है कि जो मेरे रचे हुए पहले मन्त्र में प्रकाशित किये बिजुली आदि पदार्थों से ये सब पदार्थ, धारण करके मैंने पुष्ट किये हैं, तथा जो मनुष्य इनसे अधिक वा शिल्पशास्त्रों की रीति से उत्तम रस के उत्पादन और शिल्प काव्यों की सिद्धि के साथ उत्तम सेना के सम्पादन होने से रोगों का नाश तथा विजय की प्राप्ति करते हैं, वे लोग माना प्रकार के सुख भोगते हैं ॥ ४ ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है—

**इति स्वपवस्वयः कस्यासो वृक्षार्हिः । हविर्धन्तो अरकृतः ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! हम लोग जिनके ( हविर्धन्तः ) देने-लेने और



भाजन करने योग्य पदार्थ विद्यमान है, तथा ( अरुण ) जो सब पदार्थों को सुशो-  
भित करनेवाले है, ( अरुण ) जिनका अपनी रक्षा चाहने का स्वभाव है वे  
( कर्मास ) बुद्धिमान और ( अरुण ) यथाकाल यज्ञ करनेवाले विद्वान् लोग  
जिन ( स्वाम् ) सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले आपकी ( ईच्छा ) स्तुति करते हैं,  
उसी आपकी स्तुति करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर ! जिस आपने सब  
प्राणियों के मुख के लिए सब पदार्थों का रखरखाव धारण किया है, इससे हम लोग  
आपकी स्तुति, सब की रक्षा की इच्छा, शिक्षा और विद्या से सब मनुष्यों को  
भूषित करते हुए उत्तम क्रियाओं के लिए निरन्तर अच्छी प्रकार यत्न करते हैं ॥ ५ ॥

ईश्वर के रहे हुए बिजुली आदि पदार्थ जैसे गुण वाले हैं, तो अगले  
मन्त्र में उपदेश किया है—

**घृतपृष्ठा मनोयुजा ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्मोमपीतये ॥६॥**

पदार्थ—ये विद्वान् ! जो युक्ति से मयुक्त किये हुए ( घृतपृष्ठा ) जिनके  
पृष्ठ अर्थात् आधार में जल है ( मनोयुज ) तथा जो उत्तम ज्ञान में रथा में युक्त  
किये जाते ( अक्षय ) आत्मा, पदार्थ या यानों की दूर देश में पहुँचानेवाले अग्नि  
आदि पदार्थ हैं, जो ( मोमपीतये ) जिसमें मोम आदि पदार्थों का पीना होता है  
उस यज्ञ के लिए ( त्वा ) उस भूषित करने योग्य यज्ञ का और ( देवान् ) दिव्य-  
गुण, दिव्य-भोग और वस्तु आदि अलंकारों को ( आह्वयन्ति ) अच्छी प्रकार प्राप्त  
करते हैं, उनको सब मनुष्य यथाशक्त अपने-अपने कामों को सिद्ध करने के लिए  
ठीक-ठीक प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मेरा आदि पदार्थ है, वे ही जल को ऊपर-नीचे अर्थात् अन्त-  
रिक्ष को पहुँचाने और वहाँ से वर्षाते हैं, और ताराव्यय यन्त्र से चलाई हुई बिजुली  
मन के देश के समान आत्माओं को एक देश से दूसरे देश में प्राप्त करती है । इसी  
प्रकार सब मुखों को प्राप्त करानेवाले ये ही पदार्थ हैं ऐसी ईश्वर की आज्ञा है ॥ ६ ॥

यह अक्षीसर्वा सर्ग समाप्त हुआ ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है—

**तान यजत्रां ऋताध्वोऽग्ने पत्नीवत्सृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥७॥**

पदार्थ—ह ( अग्ने ) जगदीश्वर ! आप ( यजत्रां ) जो कला आदि पदार्थों  
में संयुक्त करने योग्य तथा ( ऋताध्व ) मत्स्यता और यज्ञादि उत्तम कर्मों की वृद्धि  
करने वाले हैं, ( तान् ) उन विद्युत् आदि पदार्थों को श्रेष्ठ करते हो, उन्हीं में हम  
लोगों को ( पत्नीवत् ) प्रशंसायुक्त स्त्रीवाले ( सृधि ) कीजिए । हे ( सुजिह्व )  
श्रेष्ठता में पदार्थों की धारणाशक्तिवाले ईश्वर ! आप ( मध्वः ) मधुर पदार्थों के  
रस को कृपा करके ( पायय ) पिनाइए ॥ ७ ॥

( सुजिह्व ) जिसकी लपट में अच्छी प्रकार होम करने हैं, सो यह ( अग्ने )  
भौतिक अग्नि ( ऋताध्व ) उन जल की वृद्धि करानेवाले ( यजत्रां ) कलाओं  
में संयुक्त करने योग्य ( तान् ) विद्युत् आदि पदार्थों को उत्तम ( सृधि ) करता है,  
और वह अच्छी प्रकार कलायन्त्रों में संयुक्त किया हुआ हम लोगों को ( पत्नीवत् )  
पत्नीवान् अर्थात् श्रेष्ठ गृहस्थ ( सृधि ) कर देता, तथा ( मध्वः ) मीठे-मीठे पदार्थों  
के रस को ( पायय ) पिनाने का हेतु होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लोचालङ्कार है । मनुष्यों को अच्छी प्रकार ईश्वर के  
आराधन और अग्नि की क्रियाकुशलता से रससारादि को रखकर तथा उपकार में  
लाकर गृहस्थ आश्रम में सब कामों को सिद्ध करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर उक्त पदार्थ किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**ये यजत्रा य ईडधाम्ने तं पिबन्तु जिह्वया । मधोऽग्ने वर्षत्कृति ॥८॥**

पदार्थ—ये ( ये ) जो मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थ ( यजत्रा ) कलादिकों में  
संयुक्त करते हैं ( ते ) वे, वा ( ये ) जो गुणवाने ( ईडधाम्ने ) सब प्रकार से खोजने  
योग्य है ( ते ) वे ( जिह्वया ) ज्वालारूपी शक्ति में ( अग्ने ) अग्नि में ( वर्षत्कृति )  
यज्ञ के विशेष-विशेष काम करने में ( मधो ) मधुगुणा के अणुओं का ( पिबन्तु )  
यथावत् पीने हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस जगत् में सब संयुक्त पदार्थों से दो प्रकार का कर्म  
करना चाहिए अर्थात् एक तो उनके गुणों का जानना, दूसरा उनमें कार्य की सिद्धि  
करना । जो विद्युत् आदि पदार्थ सब भूतिमान पदार्थों से रस का ग्रहण करके फिर  
छोड़ देते हैं, इससे उनकी बुद्धि के लिए सुगन्धि आदि पदार्थों का होम निरन्तर करना  
चाहिए, जिसमें वे सब प्राणियों का मुख सिद्ध करने वाले हो ॥ ८ ॥

किस प्रकार के मनुष्य उन गुणों का ग्रहण कर सकते हैं, इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

**आकीं सूर्यस्य रोचनाद्विधान् देवाँ उपर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥९॥**

पदार्थ—जो ( होता ) होम में खोजने योग्य वस्तुओं का खन लेने वाला  
( विप्रः ) बुद्धिमान विद्वान् पुरुष है, वही ( सूर्यस्य ) चराचर के आत्मा परमेश्वर  
वा सूर्यलोक के ( रोचनात् ) प्रकाश से ( इह ) हम जन्म वा लोक में ( उपर्बुधः )  
प्रातः काल को प्राप्त होकर सूर्यो का चिताने वाला ( विश्वान् ) ममस्त ( देवान् )  
श्रेष्ठ भोगों को ( वक्षति ) प्राप्त होता या कराता है, वही सब विद्याओं को प्राप्त  
होके आनन्दयुक्त होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लोचालङ्कार है । जो ईश्वर इन पदार्थों को उत्पन्न  
नहीं करता तो कोई पुरुष उपकार लेनेका समर्थ नहीं हो सकता, और जब मनुष्य निद्रा

में स्थित होते हैं, तब कोई मनुष्य किसी भोग करने योग्य पदार्थ को प्राप्त नहीं हो  
सकता, किन्तु जाग्रत अवस्था को प्राप्त होकर उनके भोग करने को समर्थ होता है ।  
इससे इस मन्त्र में 'उपर्बुधः' इस पद का उच्चारण किया है । सत्तार के इन पदार्थों  
से बुद्धिमान मनुष्य ही किया की सिद्धि को कर सकता है, अन्य कोई नहीं ॥ ९ ॥

किसके साथ मैं यह विद्युत् अग्नि क्रियाओं की सिद्धि करने वाला होता है, तो  
अगले मन्त्र में कहा है—

**विश्वेभिः सोम्यं मध्वं इन्द्रं वायुना । पिबामिन्नस्य धार्यभिः ॥१०॥**

पदार्थ—( अग्ने ) यह अग्नि ( इन्द्रेण ) परम ऐश्वर्य कराने वाले ( वायुना )  
स्पर्श वा गमन करने वाले पवन के और ( मिन्नस्य ) सब में रहने तथा सब के प्राण-  
रूप होकर बर्तने वाले वायु के साथ ( विश्वेभिः ) सब ( धार्यभिः ) स्थानों से  
( सोम्यम् ) सामसम्पादन के योग्य ( मधु ) मधुर आदि गुणयुक्त पदार्थ को ( पिब )  
ग्रहण करता है ॥ १० ॥

भावार्थ—यह विद्युत् रूप अग्नि ब्रह्माण्ड में रहने वाले पवन तथा शरीर में  
रहने वाले प्राणों के साथ बर्तमान होकर सब पदार्थों से रस को ग्रहण करके उगलता  
है, इससे यह मुख्य शिल्पविद्या का साधन है ॥ १० ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है—

**त्वं होता मनुर्हितोऽयं यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥११॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अतिशय करके पूजन करने योग्य जगदीश्वर ! आप  
( मनुर्हितः ) मनुष्य आदि पदार्थों के धारण करने और ( होता ) सब पदार्थों के  
देने वाले हैं ( त्वम् ) जो ( यज्ञेषु ) क्रियाकाण्ड को आदि लेकर ज्ञान होने पर्यन्त  
करने योग्य यज्ञों में ( सीदसि ) स्थित हो रहे हो, ( त ) सो आप ( न ) हमारे  
( इमम् ) इस ( अध्वरम् ) ग्रहण योग्य सुख के हेतु यज्ञ को ( यज ) सगत अर्थात्  
इसकी सिद्धि को दीजिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने सब मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर आदि पदार्थों  
को उत्पन्न करके धारण किया है, तथा जो यह सब कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड में  
अतिशय पूजने के योग्य है, वही इस जगत् रूपी यज्ञ को सिद्ध करके हम लोगों को  
सुखयुक्त करता है ॥ ११ ॥

फिर अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

**युष्वा हरुषी रथे हरितो देव रोहितः । तामिदं देवाँ इहा वह ॥१२॥**

पदार्थ—( देवः ) विद्वान् मनुष्य ! तू ( रथे ) पृथिवी, समुद्र और अन्तरिक्ष  
में जाने-आने के लिए विमान आदि रथ में ( रोहितः ) नीची-ऊँची जगह उतारने-  
चढ़ाने ( हरितः ) पदार्थों की हरने ( हरुषी ) लाल रङ्गयुक्त तथा गमन कराने-  
वाली ज्वाला अर्थात् लपटों को ( युष्वा ) युक्त कर और ( तामि ) इनसे ( इहा )  
समागम में ( देवान् ) दिव्यक्रियासिद्ध व्यवहारों को ( आह्वय ) अच्छी प्रकार प्राप्त  
कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वानों को कला और विमान आदि यानों में अग्नि आदि पदार्थों  
को संयुक्त करके इनसे इस सत्तार में मनुष्यों के मुख के लिए दिव्य पदार्थों का प्रकाश  
करना चाहिए ॥ १२ ॥

सब देवों के गुणों के प्रकाश तथा क्रियाओं के समुदाय से इस बौद्धिपूर्वक सूक्त  
की सङ्गति पूर्वोक्त नेरहर्षे सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिए ।

यह चौदहवाँ सूक्त और सत्ताईसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥



अब ऋग्वेदस्य पञ्चमस्कन्धस्य अष्टमोऽध्यायः । अतः इन्द्र, मरुतः,  
त्वष्टा, अग्निः, इन्द्र, मित्रावरुणौ, इन्द्रियोदा, अग्निवन्,  
देवता । गायत्री छन्दः । ध्वज स्वरः ॥

अब पञ्चमस्कन्ध का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में ऋतु-ऋतु में रस की  
उत्पत्ति और गति का वर्णन किया है—

**इन्द्र मोमं पिबं ऋतुना त्वां विशन्तिवन्दवः । मत्सरास्तदौकसः ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! यह ( इन्द्र ) समय का विभाग करने वाला सूर्य ( ऋतुना )  
वसन्त आदि ऋतुओं के साथ ( मोमम् ) शोषण आदि पदार्थों के रस को ( पिब )  
पीता है, और ये ( तदौकसः ) जिनके अन्तरिक्ष, वायु आदि निवास के स्थान तथा  
( मत्सरास्तः ) आनन्द के उत्पन्न करने वाले हैं, वे ( इन्द्रम् ) जनों के रस  
( ऋतुना ) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ ( त्वा ) इस प्राणी वा प्राणी को क्षण-  
क्षण ( आविशन्तु ) आवेश करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—यह सूर्य वर्ष, उत्तरायण दक्षिणायन, वसन्त आदि ऋतु, चैत्र आदि  
बारहों महीने, शुक्ल और कृष्णपक्ष, दिनरात मूर्ध्व जो तीक्ष्ण कलाओं का संयोग,  
कला जो ३० [ तीक्ष्ण ] काष्ठा का संयोग, काष्ठा जो अठारह निमेष आदि समय  
के विभागों को प्रकाशित करता है, जैसे मनुष्य ने कहा; और उन्हीं के साथ  
सब शोषणियों के रस और सब स्थानों से जनों को जीवता है, वे फिरणों के साथ  
अन्तरिक्ष में स्थित होते हैं, तथा वायु के साथ आते-जाते हैं ॥ १ ॥

अब ऋतुओं के साथ पवन आदि पदार्थ सब को जींचते और पवित्र करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**मस्तः पिबंत ऋतुना पोषाद्यं पुनीतन । यूयं हि ह्य सुदानवः ॥२॥**

पदार्थ—ये ( मस्तः ) पवन ( ऋतुना ) मस्त आदि ऋतुओं के साथ सब रसों को ( पिबंत ) पीते हैं, वे ही ( पोषाद्यं ) अपने पवित्रकारक गुण से ( यजन् ) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ को ( पुनीतन ) पवित्र करते हैं, तथा ( हि ) जिस कारण ( यूयम् ) वे ( सुदानवः ) पदार्थों के अच्छी प्रकार दिलानेवाले ( स्व ) हैं, इससे वे युक्ति के साथ क्रियाओं में युक्त हुए कार्य्यों को सिद्ध करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—ऋतुओं के अनुक्रम से पवनो में भी यथायोग्य गुण उत्पन्न होते हैं, इसीसे वे त्रसरेण आदि पदार्थों के हेतु होते हैं, तथा अग्नि के बीचमें सुगन्धित पदार्थों के होन द्वारा वे पवित्र होकर प्राणिमात्र को सुखसयुक्त करते हैं, और वे ही पदार्थों के देनेलेने में हेतु होते हैं ॥ २ ॥

अब ऋतुओं के साथ विद्युत् अग्नि क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अभि यज्ञं गृणीहि नो भवो नेष्टः पिबं ऋतुना ।**

**त्वं हि रजधा असिं ॥ ३ ॥**

पदार्थ—यह ( नेष्टः ) शुद्धि और पुष्टि आदि हेतुओं से सब पदार्थों का प्रकाश करनेवाली बिजुली ( ऋतुना ) ऋतुओं के साथ रसों को ( पिबं ) पीती है, तथा ( हि ) जिस कारण ( रजधाः ) उत्तम पदार्थों की धारण करनेवाली ( असिं ) है, ( त्वम् ) सो यह ( ज्वाह ) सब पदार्थों की प्राप्ति करानेवाली ( नः ) हमारे इस ( यजन् ) यज्ञ को ( अभिगृणीहि ) सब प्रकार से ग्रहण करती है, इसलिए तुम लोग इससे सब कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो बिजुली अग्नि की सूक्ष्म अवस्था है, सो सब स्थूल पदार्थों के अवयवों में व्याप्त होकर उनको धारण और खेदन करती है, इसीसे यह प्रत्यक्ष अग्नि उत्पन्न होके उसी में विलय हो जाता है ॥ ३ ॥

अग्नि भी ऋतुओं का सयोजक होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अग्ने देवाँ इहा बह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिबं ऋतुना ॥४॥**

पदार्थ—यह ( अग्ने ) प्रसिद्ध वा अप्रसिद्ध भौतिक अग्नि ( इहा ) इस ससार में ( ऋतुना ) ऋतुओं के साथ ( त्रिषु ) तीन प्रकार के ( योनिषु ) जन्म, नाम और स्थानरूपी लोकों में ( देवान् ) अष्ट गुणों से युक्त पदार्थों को ( मा बह ) अच्छी प्रकार प्राप्त करता ( सादय ) हननकर्ता ( परिभूष ) सब और से भूषित करता और सब पदार्थों के रसों को ( पिबं ) पीता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—दाह गुणयुक्त यह अग्नि अपने रूप के प्रकाश से सब ऊपर-नीचे वा मध्य में रहने वाले पदार्थों को अच्छी प्रकार सुशोभित करता, होम और शिल्पविद्या में सयुक्त किया हुआ दिव्य-दिव्य सुखों का प्रकाश करता है ॥ ४ ॥

ऋतुओं के साथ वायु क्या-क्या कार्य करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**ब्राह्मणादिन्द्र गन्धसः पिबा सोममृतेरनु । तवेदि सख्यमस्तुतम् ॥५॥**

पदार्थ—जो ( इन्द्र ) ऐश्वर्य वा जीवन का हेतु वायु ( ब्राह्मणात् ) बड़े का अवयव ( राक्षसः ) पृथिवी आदि लोकों के घन से ( अनुभूतम् ) अपने-अपने प्रभाव से पदार्थों के रस को हर्नेवाले मस्त आदि ऋतुओं के अनुक्रम से ( सोमम् ) सब पदार्थों के रस को ( पिबं ) ग्रहण करता है, इससे ( हि ) निश्चय से ( तव ) उस वायु का पदार्थों के साथ ( अस्तुतम् ) अविनाशी ( सख्यम् ) मित्रपन है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जगत् के रचने वाले परमेश्वर ने वायु आदि पदार्थों में जो-जो नियम स्थापन किये हैं उन-उन को जानकर कार्य्यों को सिद्ध करना चाहिए । और उनमें सिद्ध किये हुए घन से सब ऋतुओं में सब प्राणियों के अनुकूल हित सम्पादन करना चाहिए तथा युक्ति के साथ सेवन किये हुए पदार्थ मित्र के समान होते और इससे विपरीत शत्रु के समान होते हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ५ ॥

अब वायुविशेष प्राण वा उदान ऋतुओं के साथ क्या-क्या प्रकाश करते हैं, इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**युवं दक्षं धृतवत मित्रावरुण दुळमम् । ऋतुना यज्ञमाशाये ॥ ६ ॥**

पदार्थ—( युवम् ) ये ( धृतवत ) बलों को धारण करनेवाले ( मित्रावरुणौ ) प्राण और अपान ( ऋतुना ) ऋतुओं के साथ ( दुळमम् ) जो कि शत्रुओं को दुःख के साथ वर्षण कराने योग्य ( यजन् ) बल तथा ( यजन् ) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ को ( आशाये ) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो सब का मित्र बाहर आने वाला प्राण तथा शरीर के भीतर रहनेवाला उदान है; इन्हीं से प्राणी ऋतुओं के साथ सब संसाररूपी यज्ञ और बल को धारण करके व्याप्त होते हैं, जिससे सब व्यवहार सिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

यह अष्टादशवीं वर्ष बुरा हुआ ॥

किर अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

**द्रविणोदा द्रविणसो ब्राह्मस्तासो अच्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥**

पदार्थ—( द्रविणोदाः ) जो विद्या, बल, राज्य और वनादि पदार्थों का देने और दिव्य गुणवाला परमेश्वर तथा उत्तम घन आदि पदार्थ देने और दिव्य गुणवाला भौतिक अग्नि है, जिस ( अच्वरे ) देव को ( ब्राह्मस्तासो ) स्तुतिसमूह, ग्रहण वा हनन और पत्थर आदि यज्ञ सिद्ध करनेवाले शिल्पविद्या के पदार्थ हाथ में हैं जिनके ऐसे जो ( द्रविणसो ) यज्ञ करने वा द्रव्यसंपादक विद्वान् हैं, वे ( अच्वरे ) अनुष्ठान करने योग्य क्रियामाध्य हिसा के योग्य और ( यज्ञेषु ) अग्निहोत्र आदि अवसमेष पर्यन्त वा शिल्पविद्यामय यज्ञों में ( ईळते ) पूजन वा उसके गुणों का खोज करके सयुक्त करते हैं वे ही मनुष्य सदा आनन्दयुक्त रहते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में शेषालङ्कार है । सब मनुष्यों को सब कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड यज्ञों में परमेश्वर ही की पूजा तथा भौतिक अग्नि, होम वा शिल्पादि कार्यों में अच्छी प्रकार सयुक्त करने योग्य है ॥ ७ ॥

उक्त अग्नि ही सब पदार्थों का देने वा उनका दिलानेवाला है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्वरे । देवेषु ता वनामहे ॥८॥**

पदार्थ—हम लोगों के ( यानि ) जिन ( देवेषु ) विद्वान् वा दिव्य सूर्य आदि अर्थात् शिल्पविद्या से सिद्ध विमान आदि पदार्थों में ( वसूनि ) जो विद्या, चक्रवर्ति राज्य और प्राप्त होने योग्य उत्तम धन ( शृण्वरे ) सुनने में आने तथा हम लोग ( वनामहे ) जिनका सेवन करते हैं ( ता ) उन का ( द्रविणोदाः ) जगदीश्वर ( न ) हम लोगों के लिए ( ददातु ) देवे तथा अच्छी प्रकार मिट्ट किया हुआ भौतिक अग्नि भी देता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—परमेश्वर ने इस ससार में जीवों के लिए जो पदार्थ उत्पन्न किये हैं, उपकार में सयुक्त किये हैं, उन पदार्थों से जितने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष वस्तु से सुख उत्पन्न होते हैं, वे विद्वानों ही के मङ्गल से सुख देनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥

यज्ञ करनेवाले मनुष्यों को ऋतुओं में करने योग्य कार्य्यों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्राहृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( द्रविणोदाः ) यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाला विद्वान् मनुष्य यज्ञों में सोम आदि श्रवणियों के रस को ( पिपीषति ) पीने की इच्छा करता है, वैसे ही तुम भी उन यज्ञों को ( नेष्ट्रात् ) विद्वान् से ( जुहोत ) देनेलेने का व्यवहार करो, तथा उन यज्ञों को विधि के साथ सिद्ध करके ( अहृतुभिः ) ऋतु-ऋतु के संयोग से सुखों के साथ ( प्रतिष्ठत ) प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और उनकी विद्या को सदा ( इष्यत ) जानो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को अच्छे ही काम सीखने चाहिए, दुष्ट नहीं, और सब ऋतुओं में सब सुखों के लिए यथायोग्य कर्म करना चाहिए तथा जिस ऋतु में जो देश, स्थिति करने वा जाने-आने योग्य हो, उसमें उसी समय, स्थिति वा जाना-आना तथा उस देश के अनुसार खाना-पीना, वस्त्र-धारणादि व्यवहार करके सब व्यवहारों में सुखों को निरन्तर मेहनत करना चाहिए ॥ ९ ॥

किर ऋतु-ऋतु में ईश्वर का ध्यान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**यज्ञा तुरीयमुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अथ स्वा नो ददिर्भेव ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( द्रविणोदाः ) आत्मा की शुद्धि करनेवाले विद्या आदि घनदायक ईश्वर ! हम लोग ( यत् ) जिस ( तुरीयम् ) स्थूल, सूक्ष्म, कारण और परम कारण आदि पदार्थों में चौथी सख्या पूरण करने वाले ( स्वा ) आपको ( अहृतुभिः ) पदार्थों को प्राप्त करानेवाले ऋतुओं के योग में ( यजामहे स्वम् ) सुखपूर्वक पूजते हैं, सो आप ( न ) हमारे लिए वनादि पदार्थों को ( अथ ) निश्चय करके ( ददिर्भेव ) देनेवाले ( भव ) हूँ ॥ १० ॥

भाषार्थ—परमेश्वर तीन प्रकार के अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप जगत् से अलग होने के कारण चौथा है, जो कि सब मनुष्यों को सर्वव्यापी, सब का अन्तर्धामी और आधार, नित्य पूजन करने योग्य है, उसको छोड़कर ईश्वरबुद्धि करके किसी दूसरे पदार्थ की उपासना न करनी चाहिए, क्योंकि इससे भिन्न कोई कर्म के अनुसार जीवों को फल देने वाला नहीं है ॥ १० ॥

किर ऋतुओं के साथ नैऋत्य और चन्द्रमा के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अश्विना पिबंत मधु दीर्घानी शुचिवता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥११॥**

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! तुम ( शुचिवता ) पदार्थों की शुद्धि करने ( यज्ञवाहसा ) होम किये हुए पदार्थों को प्राप्त कराने तथा ( दीर्घानी ) प्रकाशहेतु-रूप अग्निवाले ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्रमा ( मधु ) मधुर रस को ( पिबंतम् ) पीते हैं, जो ( ऋतुना ) ऋतुओं के साथ रसों को प्राप्त करते हैं, उनको यथावत् जानो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि मैंने जो सूर्य, चन्द्रमा तथा इस प्रकार



मिले हुए अन्य भी दो-दो पदार्थों कायों की सिद्धि के लिए संयुक्त किये हैं, हे मनुष्यो तुम्हें वे अच्छी प्रकार सब ऋतुओं के सुख तथा व्यवहार की सिद्धि को प्राप्त करते हैं। इनको सब लोग समझें ॥ ११ ॥

फिर भी भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरमि । देवान देवयते यज ॥ १२ ॥**

पदार्थ—जा ( सन्त्य ) क्रियाओं के विभाग में अच्छी प्रकार प्रकाशित होने-वाला भौतिक अग्नि ( गार्हपत्ये ) गृहस्था के व्यवहार में ( ऋतुना ) ऋतुओं के साथ ( यज्ञनी ) तीन प्रकार के यज्ञ को प्राप्त करने वाले ( अमि ) है, सा ( देवयते ) यज्ञ करनेवाले विद्वान् के लिए शिल्पविद्या में ( देवान् ) दिव्य व्यवहारों का ( यज ) संगम करता है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जा विद्वानों में सब व्यवहार रूप कामों में ऋतु-ऋतु के प्रति विद्या के साथ अच्छी प्रकार प्रयाग किया हुआ अग्नि है, सो मनुष्य आदि प्राणियों के लिए दिव्य सुखा को प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

जो सब देवा के अनुयायी वसन्त आदि ऋतु है, उनके यथायोग्य गुण प्रतिपादन से बौद्धिक सुख के अर्थ के साथ इस पन्द्रहव मूक्त के अर्थ की मूर्ति जाननी चाहिए।

यह पन्द्रहवाँ सूक्त और उनसोसवाँ वर्ण पूरा हुआ ॥



अथ सवस्वस्य बोद्धव्यसूक्तस्य काव्यो मेधातिथिर्ह्यसि ।  
इन्द्रो देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ॥

अब सोलहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य के गुणों का उपदेश किया है—

**आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं स.मपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षमः ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिन ( वृषणम् ) वर्षा करनेवाले सूर्यलोक का ( सोमपीतये ) जिस व्यवहार में साम अर्थात् आर्षाधियों के अर्क निवेष्ट हुए पदार्थों का पान किया जाता है, उसके लिए ( सूरचक्षमः ) जिनका सूर्य में दर्शन होता है, ( हरयः ) हरण करनेवाले किरण प्राप्त करते हैं ( त्वा ) उसको तू भी प्राप्त हा, जिसका सब कारिगर् लोग प्राप्त होते हैं, उसको सब मनुष्य ( आबहन्तु ) प्राप्त हा। हे मनुष्यो ! जिसको हम लोग जानते हैं ( त्वा ) उसको तुम भी जाना ॥ १ ॥

भाषार्थ—सूर्य की प्रत्यक्ष दीप्ति सब रसा के हरण, सब का प्रकाश करने तथा वर्षा करानेवाली है, वह यथायोग्य अनुकूलता के साथ सेवन करने से मनुष्यों को उत्तम-उत्तम सुख देती है ॥ १ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्यलोक के गुणों का ही उपदेश किया है—

**इमा धाना घृतस्तुवो हरी इहोप वसतः । इन्द्र सुवर्तमे ग्ये ॥ २ ॥**

पदार्थ—( हरी ) जा पदार्थों को हरनेवाले सूर्य के कृपा वा शुक्ल पक्ष है, वे ( इह ) इस लोक में ( इमा ) इन ( धाना ) दीप्तियों का तथा ( इन्द्रम् ) सूर्यलोक का ( सुवर्तमे ) जो बहुत अच्छी प्रकार सुखहेतु ( रये ) रमण करने योग्य विमान आदि रथा के ( उप ) समीप ( वसतः ) प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस ससार में रात्रि और दिन, शुक्ल तथा कृष्णपक्ष, दक्षिणायन और उत्तरायण हरण करनेवाले कहलाते हैं, उनसे सूर्यलोक आनन्दरूप व्यवहारों को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से तीन अर्थों का उपदेश किया है

**इन्द्रं प्रातर्होमम् इन्द्रं प्रयत्पध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हम लोग ( प्रातः ) नित्य प्रति ( इन्द्रम् ) परम गण्य देनेवाले ईश्वर का ( प्रयत्पध्वरे ) बुद्धिप्रद उपासना यज्ञ में ( हवामहे ) आह्वान करें। हम लोग ( प्रयति ) उत्तम ज्ञान देनेवाले ( अघ्वरे ) क्रिया से मिष्ट होने योग्य यज्ञ में ( प्रातः ) प्रतिदिन ( इन्द्रम् ) उत्तम ऐश्वर्यमायक विद्युत् अग्नि को ( हवामहे ) क्रियाओं में उपदेश कह सुनने संयुक्त करें, तथा हम लोग ( सोमस्य ) सब पदार्थों के सार रस का ( पीतये ) पीने के लिए ( प्रातः ) प्रतिदिन यज्ञ में ( इन्द्रम् ) बाह्य या शरीर के भीतर प्राण को ( हवामहे ) विचार में लावें, और उसके मिष्ट करने का विचार करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर प्रतिदिन उपासना करने योग्य है, और उसकी ही आज्ञा के अनुकूल वर्तना चाहिए, बिजुली तथा जो प्राणरूप वायु है उसकी विद्या से पदार्थों का भोग करना चाहिए ॥ ३ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से वायु के गुणों का उपदेश किया है—

**उप नः सुतमा गंहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः । सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥**

पदार्थ—( हि ) जिस कारण यह ( इन्द्र ) वायु ( केशिभिः ) जिनके बहुत से केश अर्थात् किरण विद्यमान हैं वे ( हरिभिः ) पदार्थों के हरने वा स्वीकार करने वाले अग्नि, विद्युत् और सूर्य के साथ ( नः ) हमारे ( सुतम् ) उत्पन्न किये हुए

होम वा शिल्प आदि व्यवहार के ( उपागहि ) निकट प्राप्त होता है, इससे ( त्वा ) उसको ( सुते ) उत्पन्न किये हुए होम वा शिल्प आदि व्यवहारों में हम लोग ( हवामहे ) धरणा करते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो पदार्थ हम लोगों की शिल्प आदि व्यवहारों में उपकारयुक्त करने चाहिए, वे अग्नि, विद्युत्, सूर्य और वायु ही के निमित्त से प्रकाशित होते तथा जाते-मान है ॥ ४ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में इन्द्र के गुणों का उपदेश किया है—

**सेमं नः स्तोममा गृध्रपेदं सर्वनं सुतम् । गौरो न तृषितः पिब ॥ ५ ॥**

पदार्थ—उक्त सूर्य ( नः ) हमारे ( इमम् ) अनुष्ठान किये हुए ( स्तोमम् ) प्रणमनीय यज्ञ वा ( सवन्म् ) ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले क्रियाकाण्ड को ( न ) जैम ( तृषितः ) प्यामा ( गौर ) गौरगुणविशिष्ट हिरण ( उपागहि ) समीप प्राप्त होता है, वैसे ( नः ) यह ( इमम् ) इस ( सुतम् ) उत्पन्न किये ओषधि आदि रस को ( पिब ) पीता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अत्यन्त प्यासे मृग आदि पशु और पक्षी बेग से बौझकर नदी, तलाब आदि स्थान को प्राप्त होते जल को पीते हैं, वैसे ही यह सूर्यलोक अपनी बेगवती किरणों से ओषधि आदि को प्राप्त होकर उसके रस को पीता है, सो यह विद्या की वृद्धि के लिए मनुष्यों को यथावत् उपयुक्त करना चाहिए ॥ ५ ॥

यह तीसवाँ वर्ण पूरा हुआ ॥

अब वायु किस लिए किसमें कितन पदार्थों के रस को पीता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**इमे सोमाम इन्द्रवः सुतासो अधि बर्हिषि । ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥**

पदार्थ—जो ( अधि बर्हिषि ) जिसमें सब पदार्थ वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उस अन्तरिक्ष में ( इमे ) ये ( सोमासः ) जिनसे सुख उत्पन्न होते हैं, ( इन्द्रवः ) और सब पदार्थों को पीना करनेवाले रस है, वे ( सहसे ) बल आदि गुणों के लिए ईश्वर ने ( सुतासः ) उत्पन्न किये हैं ( तान् ) उन्हीं को ( इन्द्र ) वायु क्षण-क्षण में ( पिब ) पिया करता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—ईश्वर ने इस ससार में प्राणियों के बल आदि वृद्धि के लिए जितने मूर्तिमान् पदार्थ उत्पन्न किये हैं, सूर्य से छिन्न-भिन्न किये हुए उनको पवन अपने निकट करके धारण करता है, उसके संयोग से प्राणी-प्राणी बलपराक्रमवाले होते हैं ॥ ६ ॥

उक्त वायु कैसे गुणवाला है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः । अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥**

पदार्थ—मनुष्यों को जैसे यह वायु प्रथम ( सुतम् ) उत्पन्न किये हुए ( सोमम् ) सब पदार्थों के रस को ( पिब ) पीता है, ( अयः ) उसके अन्तर ( ते ) जो उस वायु का ( अग्रियः ) अग्र्युत्तम ( हृदिस्पृग् ) अन्तःकरण में सुख का स्पर्श करानेवाला ( स्तोमः ) उसके गुणों से प्रकाशित होकर क्रियाओं का समूह विदित ( अस्तु ) हो, वैसे काम करने चाहिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों के लिए उत्तम गुण तथा शुद्ध किया हुआ यह पवन अत्यन्त सुलकारी होता है ॥ ७ ॥

**विश्वमित् सर्वनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥**

पदार्थ—यह ( वृत्रहा ) मेघ को हनन करनेवाला ( इन्द्रः ) वायु ( सोम-पीतये ) उत्तम-उत्तम पदार्थों का पिलानेवाला तथा ( मदाय ) आनन्द के लिए ( इत् ) निश्चय करके ( सवन्म् ) जिससे सब सुखों को सिद्ध करते हैं, उस ( सुतम् ) उत्पन्न हुए ( विश्वम् ) जगत् को ( गच्छति ) प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वायु आकाश में अपने गमनागमन में सब ससार को प्राप्त होकर मेघ की वृष्टि करने या सब में वेगवाला होकर सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है। इसके बिना कोई प्राणी किसी व्यवहार को मिष्ट करने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

**सेमं नः काममा पूण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्वाम त्वा स्वाध्वः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) असंख्यत कामों को मिष्ट करने वाले, अत्यन्तविशाल युक्त जगदीश्वर ! जिन ( त्वा ) आपकी ( स्वाध्वः ) अच्छे प्रकार ध्यान करनेवाले हम लोग ( स्वामः ) नित्य स्तुति करें, ( स ) सो आप ( गोभिः ) इन्द्रिय, पृथिवी, विद्या का प्रकाश और पशु तथा ( अश्वैः ) शीघ्र चलने और चलाने वाले अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़े, हाथी आदि से ( नः ) हमारी ( कामम् ) कामनाओं को ( आपूण ) सब ओर से पूरण कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—ईश्वर में यह सामर्थ्य सर्वत्र रहता है कि पुरुषार्थ, बर्मात्मा मनुष्यों का उन के कर्मों के अनुसार सब कामनाओं से पूर्ण करना तथा जो संसार में परम उत्तम-उत्तम पदार्थों का उत्पादन तथा धारण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, इससे सब मनुष्यों को उनी परमेश्वर की नित्य उपासना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

मनुष्यों के सम्पादन को सूर्य और वायु आदि पदार्थ हैं, उनके ब्यायोग्य प्रति-  
पादन से पूर्व पन्द्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ इस सोलहवें सूक्त के अर्थ की संगति समझनी  
चाहिए ।

यह सोलहवाँ सूक्त और इसतीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

ॐ

अथास्य मन्त्रार्थस्य सप्तदशसूक्तस्य काण्वो वेदातिथिः । इन्द्रावरुणौ देवते ।

१, २, ७, ८ गायत्री; २ पञ्चमध्याह्निराद्यावत्री, ४ पावनिकृद्गायत्री,

५ धुरिगायत्री गायत्री, ६ निष्कृद्गायत्री, ८ पिपीलिकामध्या-

निष्कृद्गायत्री च अन्व । अन्व स्वर ॥

अब सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है । इसके पहले मन्त्र में इन्द्र और वरुण के  
गुणों का उपदेश किया है—

इन्द्रावरुणयोरहं मन्त्राजोर्व आ हृणे । ता नो मृच्छात ईदृशे ॥ १ ॥

पदार्थ—मैं जिन ( मन्त्राजोः ) अर्द्धी प्रकार प्रकाशमान ( इन्द्रावरुणयो )  
सूर्य और चन्द्रमा के गुणों से ( अहं ) रक्षा को ( आहृणे ) अर्द्धी प्रकार स्वीकार  
करता हूँ, और ( ता ) वे ( ईदृशे ) अर्द्धवर्ति राज्य सुखरूप व्यवहार में ( न )  
हम लोगों को ( मृच्छात ) सुखयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—जैसे प्रकाशमान, मन्त्रा के उपकार करने, सब सुखों के देने, अन्व-  
हारों के हेतु और अर्द्धवर्ति राजा के समान सब की रक्षा करनेवाले सूर्य और चन्द्रमा  
हैं, वैसे ही हम लोगों को भी होना चाहिए ॥ १ ॥

अब इन्द्र और वरुण से संयुक्त किये हुए अग्नि और जल के  
गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्यक्षीनाम् ॥ २ ॥

पदार्थ—जो ( हि ) निश्चय करके ये सप्रयोग किये हुए अग्नि और जल  
( मावतः ) मेरे समान पण्डित तथा ( विप्रस्य ) बुद्धिमान् विद्वान् के ( हवं )  
पदार्थों का लेना-देना करनेवाले होम वा शिल्प व्यवहार को ( गन्तारा ) प्राप्त होते  
तथा ( चर्यक्षीनाम् ) पदार्थों के उठानेवाले मनुष्य आदि जीवों के ( धर्तारा ) धारण  
करनेवाले ( हवं ) होते हैं, इससे मैं इनको अपने सब कामों की ( अवसे ) किया  
की सिद्धि के लिए ( आहृणे ) स्वीकार करता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थ—पूर्वमन्त्र से इस मन्त्र में 'मावत' इस पद का ग्रहण किया है ।  
विद्वानों से युक्ति के साथ कलायन्त्रों में युक्त किये हुए अग्नि, जल अब कलाओं से  
बल में आते हैं, तब रथों को भी घाटी चलाने, उनमें बैठे हुए मनुष्य आदि प्राणी पदार्थों  
के धारण करने और सब को सुख देनेवाले होने हैं ॥ २ ॥

इस प्रकार साजे हुए ये दोनों किल-किलके हेतु होते हैं, इस  
विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अनुकामं तर्पयेथाभिन्द्रावरुण राय आ । ता वा नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो ( इन्द्रावरुण ) अग्नि और जल ( अनुकामम् ) हर एक कार्य  
में ( राय ) धनों की देकर ( तर्पयेथाम् ) तृप्ति करते हैं, ( ता ) उन ( काम् )  
दोनों को हम लोग ( नेदिष्ठम् ) अर्द्धी प्रकार अपने निकट जैसे हो, वैसे ( ईमहे )  
प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जिस प्रकार अग्नि और जल के गुणों को जल  
कर क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए ये दोनों बहुत उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त  
करें, उस युक्ति के साथ कार्य्यों में अर्द्धी प्रकार इनका प्रयोग करना चाहिए ॥ ३ ॥

उक्त कार्य के करने से क्या होता है, इस विषय का उपदेश  
अगले मन्त्र में किया है—

युवाकु हि शचीनां युवाकुं सुमतीनाम् । भूयाम बाजदाब्जान् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हम लोग ( हि ) जिस कारण ( शचीनाम् ) उत्तम वाणी वा श्रेष्ठ  
कर्मों के ( युवाकु ) मेल तथा ( बाजदाब्जान् ) विद्या वा अन्न के उपदेश करने वा  
जैसे और ( सुमतीनाम् ) श्रेष्ठ बुद्धिवाले विद्वानों के ( युवाकु ) पृथग्भाव करने को  
( भूयाम ) समर्थ होवें, इस कारण से इनकी साथ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को तथा भालस्य छोड़कर अर्द्ध कामों का सेवन तथा  
विद्वानों का समागम निरूप्य करना चाहिए, जिससे अविद्या और दरिद्रता जड़ मूल से  
नष्ट हों ॥ ४ ॥

फिर इन्द्र और वरुण किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले  
मन्त्र में किया है—

इन्द्रः सहस्रदाब्जान् वरुणः संस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥

पदार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो ( इन्द्रः ) अग्नि, विजुनी और  
सूर्य ( हि ) जिस कारण ( सहस्रदाब्जान् ) अर्द्धवर्ति धन के देनेवालों के मध्य में  
( उक्थ्यः ) उत्तमता से कार्य्यों की सिद्ध करनेवाले ( भवति ) होते हैं, तथा जो  
( वरुणः ) जल, पवन और चन्द्रमा की ( संस्यानाम् ) प्रसन्नता पदार्थों में उत्तमता

से कार्य्यों के साधक हैं, इससे जानना चाहिए कि उक्त विजुनी आदि पदार्थ ( उक्थ्यः )  
साधुता के साथ विद्या की सिद्धि करने में उत्तम हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—पहिले मन्त्र में इस मन्त्र में 'हि' इस पद की अनुवृत्ति है । जितने  
पृथिवी आदि वा अन्न आदि पदार्थ दान आदि के साधक हैं उनमें अग्नि, विजुनी और  
सूर्य मुख्य हैं, इसमें सब को चाहिए कि उनके गुणों का उपदेश करके उनकी श्रुति  
वा उनका उपदेश सुनें और करें, क्योंकि जो पृथिवी आदि पदार्थों में जल, वायु और  
चन्द्रमा अपने-अपने गुणों के साथ प्रशंसा करने और जानने योग्य हैं, वे क्रियाकुशलता  
में संयुक्त किये हुए उन क्रियाओं की सिद्धि करानेवाले होने हैं ॥ ५ ॥

यह बत्तीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

फिर उन दोनों से मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिए, इस विषय का  
उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तयोग्दिबंवा वयं मनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हम लोग जिन इन्द्र और वरुण के ( अवसा ) गुण, ज्ञान वा उनके  
उपकार करने से ( इत ) ही जिन सुख और उत्तम धनो को ( मनेम ) सेवन करें  
( तयोः ) उनके निमित्त से ( च ) और उनसे पाये हुए अमम्यात धन को  
( निधीमहि ) स्थापित करें, अर्द्धात् कोश आदि उत्तम स्थानों में भर्ते, और जिन  
धनो से हमारा ( प्ररेचनम् ) अर्द्धी प्रकार अत्यन्त खर्च ( उत ) भी ( स्यात् )  
सिद्ध हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अग्नि आदि पदार्थों के उपयोग से प्राप्त  
धन का सम्पादन और उनकी रक्षा वा उन्नति करके ब्यायोग्य खर्च करने में विद्या  
और राज्य की वृद्धि से सब के हित की उन्नति करनी चाहिए ॥ ६ ॥

कैसे धन के लिए उपाय करना चाहिए, इस विषय का उपदेश  
अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्सु जिग्युषंस्कृतम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो अर्द्धी प्रकार किया कुशलता में प्रयोग किये हुए ( अस्मान् )  
हम लोगों को ( जिग्युषः ) उत्तम विजययुक्त ( कृतम् ) करते हैं, ( वाम ) उन  
इन्द्र और वरुण को ( चित्राय ) जो कि आश्चर्यरूप राज्य, सेना, नौकर, पुत्र,  
मित्र, रत्न, हाथी, घोड़े आदि पदार्थों में भग्न हुआ ( राधसे ) जिससे उत्तम-उत्तम  
सुखों की सिद्धि करने हैं, उस सुख के लिए ( अहम् ) मैं मनुष्य ( हुवे ) ग्रहण  
करता हूँ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अर्द्धी प्रकार साधन किये हुए मित्र और वरुण को  
कामों में युक्त करने हैं, वे माना प्रकार के धन आदि पदार्थ वा विजय आदि सुखों को  
प्राप्त होकर आप सुखमयुक्त होते तथा औरों को भी सुखमयुक्त करते हैं ॥ ७ ॥

फिर उन से क्या-क्या सिद्ध होता है, इस विषय का उपदेश  
अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रावरुण न नु वां सिवासन्तीषु धीषा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो ( सिवासन्तीषु ) उत्तम कर्म करने को चाहते और ( धीषु )  
शुभ-अशुभ वृत्तान्त धारण करनेवाली बुद्धियों में ( नु ) शीघ्र ( नु ) जिस कारण  
( अस्मभ्यम् ) पुरुषार्थी विद्वानों के लिए ( शर्म ) दुःखविनाश करने वाले उत्तम  
सुख का ( यच्छतम् ) अर्द्धी प्रकार विस्तार करते हैं, इससे ( वाम् ) उन  
( इन्द्रावरुणौ ) इन्द्र और वरुण को कार्य्यों की सिद्धि के लिए मैं निरन्तर ( हुवे )  
ग्रहण करता हूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'हुवे' पद का ग्रहण किया है । जो  
मनुष्य शास्त्र से उत्तमता को प्राप्त हुई बुद्धियों से शिल्प आदि उत्तम व्यवहारों में  
उक्त इन्द्र और वरुण को अर्द्धी रीति से युक्त करते हैं, वे ही इस सत्तार में सुखों  
को फेलाते हैं ॥ ८ ॥

उक्त इन्द्र और वरुण के ब्यायोग्य गुणकीर्तन करने की योग्यता का  
अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

प्र वामभोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधायै सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—मैं जिस प्रकार से इस सत्तार में जिन इन्द्र और वरुण के गुणों की  
यह ( सुष्टुति ) अर्द्धी स्तुति ( आहोतु ) अर्द्धी प्रकार व्याप्त होवे, उसकी  
( हुवे ) ग्रहण करता हूँ, और ( याम् ) जिस ( सधस्तुतिम् ) कीर्ति के साथ शिल्प-  
विद्या की ( वाम् ) जो ( इन्द्रावरुणौ ) इन्द्र और वरुण ( आवासे ) बढ़ाते हैं, उस  
शिल्पविद्या की ( हुवे ) ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में शानकलुप्तापमानाकार है । मनुष्यों को जिस पदार्थ  
के जैसे गुण हैं उनको वैसे ही जानकर और उनसे सदैव उपकार ग्रहण करना चाहिए,  
इस प्रकार ईश्वर का उपदेश है ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त सोलहवें सूक्त के अनुयोगी मित्र और वरुण के अर्थ का इस सूक्त में  
प्रतिपादन करने से इस सत्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ सोलहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति  
करनी चाहिए ।

यह चौथा अनुवाक, सत्रहवाँ सूक्त और तेतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ



अथ नवर्चस्य अष्टादशस्य सूक्तस्य काण्डो मेधातिथिर्हविः । १ - ३ ब्रह्मणस्पति ,  
४ बृहस्पतीग्रसोमा , ५ बृहस्पतिवशिरो , ६ - ८ सहस्रस्पति , ९ सहस्रस्पति-  
भाराशसो च वेवता । १ चिराद्गायत्री , २, ७, ९ गायत्री , ३,  
६, ८ पिपीलिकामध्यानिचद्गायत्री , ४ निचद्गायत्री ,  
५ पावनिचद्गायत्री च छन्दः । षड्ज स्वर ॥

अथ अठारहवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में यजमान  
ईश्वर की प्रार्थना करे, इस विषय का उपदेश किया है --

**सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥**

पदार्थ ( ब्रह्मणस्पते ) वेद के स्वामी ईश्वर । ( य ) जा मैं ( औशिज )  
विद्या के प्रकाश में समार को विदित होनवाला और विद्वाना के पुत्र के समान है,  
उस मुझ को ( सोमानम् ) पशव्य मिद्ध करने वाले यज्ञ का कर्त्ता ( स्वरणम् )  
शब्द, अर्थ के सम्बन्ध का उपदेश और ( कक्षीवन्तम् ) कक्षा अर्थात् हाथ वा श्रु-  
तियों की क्रियाओं में होनवाली प्रशमनीय शिल्पविद्या का कृपा से सम्पादन करने  
वाला ( कृणुहि ) कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जा कोई विद्या के प्रकाश  
में प्रसिद्ध मनुष्य है, वही पढ़ाने वाला और सम्पूर्ण शिल्पविद्या के प्रसिद्ध करने योग्य  
है । क्योंकि ईश्वर भी ऐसे ही मनुष्य का अपने अनुग्रह से चाहता है ।

फिर वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

**यो रेवान यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । म नः मिषक्तु यस्तुरः ॥ २ ॥**

पदार्थ—( य ) जो जगदीश्वर ( रेवान् ) विद्या आदि अनन्त धनवान्,  
( व ) जो ( पुष्टिवर्धन ) शरीर और आत्मा की पुष्टि बढ़ाने तथा ( वसुवित् )  
सब पदार्थों का जानने ( अमीवहा ) अविद्या आदि रोगों का नाश करने तथा ( य )  
जो ( तुर ) शीघ्र सुख करनेवाला वेद का स्वामी जगदीश्वर है, ( म ) मो ( न )  
हम लोगों को विद्या आदि धना के माध ( मिषक्तु ) अच्छी प्रकार सयुक्त करे ॥ २ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य सत्यभावग आदि नियमों से सयुक्त ईश्वर की आज्ञा  
का अनुष्ठान करते हैं वे अविद्या आदि रोगों से रहित और शरीर वा आत्मा की पुष्टि-  
बढ़ने होकर चक्रवर्ति राज्य आदि धन तथा सब रागों को हरनेवाली आर्षधियों का  
प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर की प्रार्थना का प्रकाश किया है—

**मा नः शंसो अरक्षो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षां णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे ( ब्रह्मणस्पते ) वेद वा ब्रह्माण्ड के स्वामी जगदीश्वर । आप  
( अरक्ष ) जा दान आदि धर्मरहित मनुष्य है, उस ( मर्त्यस्य ) मनुष्य के सम्बन्ध  
से ( न ) हमारी ( रक्ष ) रक्षा कीजिए जिससे कि वह ( न ) हम लोगों के बीच  
में कोई मनुष्य ( धूर्ति ) विनाश करने वाला न हो, और आपकी कृपा में जो ( न )  
हमारा ( शंस ) प्रशमनीय यज्ञ अर्थात् व्यवहार है वह ( मा प्रणङ् ) कभी नष्ट न  
होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य को धर्म अर्थात् छल-कपट करने वाले मनुष्य का सङ्ग  
न करना तथा अन्याय में किसी की हिंसा न करनी चाहिए किन्तु सब की न्याय ही  
से रक्षा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्रादिकों के कार्यों का उपदेश किया है—

**म पा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।**

**मोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥**

पदार्थ—उक्त इन्द्र ( ब्रह्मणस्पति ) ब्रह्माण्ड का पालन करने वाला जगदी-  
श्वर और ( सोम ) सोमलता आदि ओषधियों का रस समूह ( यम् ) जिस ( मर्त्यम् )  
मनुष्य आदि प्राणी को ( हिनोति ) उन्नतियुक्त करने है ( स ) वह ( वीर )  
शत्रुआ का जीतने वाला वीर पुरुष ( न रिष्यति ) निश्चय है कि वह विनाश का  
प्राप्त कभी नहीं होता ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वायु विद्युत् सूर्य और सोम आदि ओषधियों के गुणों  
को ग्रहण करके अपने कार्यों को सिद्ध करने है, वे कभी दुःखी नहीं हान ॥ ४ ॥

कैसे वे रक्षा करनेवाले होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहमः ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हे ( ब्रह्मणस्पते ) ब्रह्माण्ड के पालन करने वाले जगदीश्वर । ( त्वम् )  
आप ( अहम् ) पाणों से जिसको ( पातु ) रक्षा करते हैं, ( तम् ) उस धर्मात्मा  
यज्ञ करने वाले ( मर्त्यम् ) विद्वान् मनुष्य की ( सोमः ) सोमलता आदि ओषधियों  
के रस ( इन्द्र ) वायु और ( दक्षिणा ) जिससे वृद्धि को प्राप्त होते हैं, वे सब ( पातु )  
रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अधर्म से दूर रहकर अपने सुखों के बढ़ाने की इच्छा  
करते हैं, वे ही परमेश्वर के सेवक और उक्त सोम, इन्द्र और दक्षिणा इन् पदार्थों को  
युक्ति के साथ सेवन कर सकते हैं ॥ ५ ॥

यह चौतीसवाँ वर्ण पूरा हुआ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

**सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनि मेधाभ्यासिषम् ॥ ६ ॥**

पदार्थ—मैं ( इन्द्रस्य ) जो सब प्राणियों को ऐश्वर्य देने ( काम्यम् ) उत्तम  
( सनिम् ) पापपुण्य कर्मों के यथायोग्य फल देने और ( प्रियम् ) सब प्राणियों को  
प्रसन्न करने वाले ( अद्भुतम् ) आश्चर्यमय गुण और स्वभाव ( सदसस्पतिम् ) और  
जिसमें विद्वान् धार्मिक न्याय करने वाले स्थित हो, उस सभा के स्वामी परमेश्वर की  
उपासना और सब उत्तम गुण स्वभाव परीपकारी सभापति को प्राप्त होके ( मेधाभ्या )  
उत्तम ज्ञान को धारण करने वाली बुद्धि को ( अयासिषम् ) प्राप्त होऊँ ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य सवशक्तिमान्, सब के अधिष्ठाता और सब आनन्द के  
देने वाल परमेश्वर की उपासना करते और उन्कष्ट न्यायाधीश को प्राप्त होते हैं, वे  
ही सब शास्त्रों के बाध में प्रसिद्ध कियाया से युक्त बुद्धियों को प्राप्त और पुरुषार्थी  
होकर विद्वान् होते हैं ॥ ६ ॥

वही सब जगत् को रचता है, इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**यस्मादने न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यस्मात् ) जिस ( विपश्चितः ) अनन्त विद्या वाले  
सवशक्तिमान् जगदीश्वर के ( ऋते ) विना ( यज्ञ ) जो कि दृष्टिगोचर ससार है,  
मैं ( चन ) कभी ( न सिध्यति ) सिद्ध नहीं हो सकता, ( स ) वह जगदीश्वर सब  
मनुष्यों की ( धीनाम् ) बुद्धि और कर्मों के ( योगम् ) सयोग को ( इन्वति ) व्याप्त  
होता वा जानता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— व्यापक ईश्वर सब में रहने वाले और व्याप्त जगत् का नित्य  
सम्बन्ध है वही सब ससार को रचकर तथा धारण करके सब की बुद्धि और कर्मों को  
अच्छी प्रकार जानकर सब प्राणियों के लिए उनके शुभ-मशुभ कर्मों के अनुसार सुख-  
दुःखरूप फल को देता है । कभी ईश्वर को छोड़के अपने आप स्वभाव मात्र से सिद्ध  
होने वाला अर्थात् जिस का कोई स्वामी न हो ऐसा ससार नहीं हो सकता, क्योंकि  
जब पदार्थों के अवेदन होने से यथायोग्य नियम के साथ उत्पन्न होने की योग्यता  
कभी नहीं होती ॥ ७ ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**आदृधोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥**

पदार्थ—जो उक्त सर्वज्ञ सभापति देव परमेश्वर ( प्राञ्चम् ) सब में व्याप्त  
और जिसको प्राणी अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं, ( हविष्कृतिम् ) होम करने योग्य  
पदार्थों का जिस में व्यवहार और ( अध्वरम् ) क्रियाजन्य अर्थात् क्रिया से उत्पन्न  
होने वाले जगत् रूप यज्ञ में ( होत्राणि ) होम सिद्ध करानेवाली क्रियाओं को ( कृणोति )  
उत्पन्न करता तथा ( आदृधोति ) अच्छी प्रकार बढ़ाता है, फिर वही यज्ञ ( देवेषु )  
दिव्य गुणों में ( गच्छति ) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिस कारण परमेश्वर सकल समार को रचता है, इस से सब  
पदार्थ परस्पर अपने-अपने सयोग में बढ़ने, और ये पदार्थ क्रियामययज्ञ और शिल्पविद्या  
में अच्छी प्रकार सयुक्त किये हुए बड़े-बड़े सुखों को उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**नराशंसं सुधृष्टमपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सधमखमम् ॥ ९ ॥**

पदार्थ—मैं ( न ) जैसे प्रकाशमय सूर्यादिकों के प्रकाश से ( सधमखमम् )  
जिस में प्राणी स्थिर होते और जिसमें जगत् प्राप्त होता है, ( सप्रथस्तमम् ) जो  
बड़े-बड़े आकाश आदि पदार्थों के साथ अच्छी प्रकार व्याप्त ( सुधृष्टम् ) उत्तमता  
से सब समार को धारण करने ( नराशंसम् ) सब मनुष्यों का अवश्य स्तुति करने योग्य  
पूर्वोक्त ( सबसस्पतिम् ) सभापति परमेश्वर का ( अध्वरम् ) ज्ञानदृष्टि से देखता हूँ  
वैसे तुम भी सभाओं के पति को प्राप्त होके न्याय से सब प्रजा का पालन करके नित्य  
दर्शन करा ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमानद्वार है । जैसे मनुष्य सब जगह विस्तृत हुए  
सूर्यादि के प्रकाश का देखता है, वैसे ही सब जगह व्याप्त ज्ञानप्रकाश रूप परमेश्वर  
का जानकर सुख के विस्तार को प्राप्त होता है ।

इस मन्त्र में 'सदसस्पतिम्' इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिए ॥ ९ ॥

पूर्व मन्त्रहमें सूक्त के अर्थ के साथ मित्र और वरुण के साथ अनुयोगी बृहस्पति  
आदि अर्पों के प्रतिपादन से इस अठारहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह अठारहवाँ सूक्त और पेंतीसवाँ वर्ण पूरा हुआ ॥

५६

अथ नवर्चस्यैकोनविंशस्य सूक्तस्य काण्डो मेधातिथिर्हविः । अग्निर्मरुतहव  
वेवताः । १, ३ - ८ गायत्री, २ निचद्गायत्री, ९ पिपीलिका—

मध्यानिचद् गायत्री च छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

अथ उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में अग्नि के गुणों का  
उपदेश किया है—

**प्रति त्वं चारुमध्वं गोपीथाय म हूयसे । मरुद्भिर्गन् आ गंहि ॥ १ ॥**

पदार्थ—जो ( अग्ने ) भीतिक अग्नि ( मरुद्भिः ) विशेष पर्वणों के साथ





## अथ द्वितीयोऽध्यायः

॥

विश्वानि देव सवितरुदितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

अध्यायार्थ—विश्वस्य सृष्टस्य काव्यो मेधातिथिर्हवि । अथो देवताः । १, २, ६, ७ गायत्री, ३ विराड्गायत्री, ४ निबृह्मगायत्री, ५, ८ पिपीलिकामध्यानिबृह्मगायत्री च छन्धः । बह्वः स्वरः ॥

अथ दूसरे अध्याय का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र में ऋभु की स्तुति का प्रकाश किया है—

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विमैभिरामदा । अकारि रत्नधातमः ॥१॥

पदार्थ—( विमैभि ) ऋभु अर्थात् बुद्धिमान् विद्वान् लोग ( जातवा ) अपने मूल से ( देवाय ) अच्छे-बुद्धि गुरुओं के भोगों से युक्त ( जन्मने ) दूसरे जन्म के लिए ( रत्नधातम ) अर्थात् प्रति सुन्दरता से सुखों की विमानवाली जैसी ( अयम् ) विद्या के विचार से प्रत्यक्ष की हुई परमेश्वर की ( स्तोमः ) स्तुति है, वह जैसे जन्म के भोग करनेवाली होती है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पुनर्जन्म का विधान जानना चाहिए । मनुष्य जैसे कर्म किया करने है, वैसे ही जन्म और भोग उनको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

किर वे विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

य इन्द्राय बह्वोयुजा ततश्चर्धनमा हरी । शमीभिर्यज्ञमांशत ॥ २ ॥

पदार्थ ( ये ) जो ऋभु अर्थात् उत्तम बुद्धिमान् विद्वान् लोग ( जनता ) अपने विज्ञान में ( बह्वोयुजा ) बाँटिया स मित्र किये हुए ( हरी ) गमन और भारण गुरुओं का ( ततश्च ) प्रति सूक्ष्म करत और उनका ( शमीभि ) दण्डा से कलायन्त्री को घुमाके ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य्य प्राप्त के लिए ( यज्ञम् ) पुरुषार्थ से सिद्ध करन योग्य यज्ञ का ( आंशत ) परिपूर्ण करन है, व सुखों को बड़ा सकते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् पदार्थों के संयोग का वियोग में धारण, आकर्षण वा वेगादि गुणों को जानकर क्रियाया से शिल्पव्यवहार आदि यज्ञ का मित्र करते हैं, वे ही उत्तम-उत्तम ऐश्वर्य्य को प्राप्त होत हैं ॥ २ ॥

वे उक्त विद्वान् किससे क्या-क्या सिद्ध करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

तत्तन्नासत्याभ्यां परिज्मानं मुख रथम् । तत्तन् धेनुं मन्वर्द्ध्याम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो बुद्धिमान् विद्वान् लोग ( नासत्याभ्याम् ) अग्नि और जल से ( परिज्मानम् ) जिससे सब जगह में जाना-जाना बन उस ( मुखम् ) सुशोभित विस्तारवान् ( रथम् ) विमान आदि रथ का ( तत्तन् ) क्रिया से बनाते हैं, वे ( मन्वर्द्ध्याम् ) सब जान को पूर्ण करने वाली ( धेनुम् ) वाणी को ( तत्तन् ) सूक्ष्म करत हुए धीरे-धीरे प्रकाशित करते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अज्ञ, उपाङ्ग और उपवेदों के साथ वेदों को पढ़कर उनसे प्राप्त हुए विज्ञान से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर कलायन्त्री से सिद्ध होन वाले विमान आदि रथों में संयुक्त करके उनको सिद्ध किया करते हैं, वे सभी दुःख और दरिद्रता आदि दोषों को नहीं देखते ॥ ३ ॥

किर वे विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युवाना पितरा पुनः मृत्यमन्त्रा ऋजुयवः । ऋभ्वो विष्टयक्रत ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो ( ऋजुयव ) कर्मों से अपनी सरलता को चाहने और ( सत्य-मन्त्रा ) सत्य अर्थात् यथार्थ विचार के करने वाले ( ऋभ्व ) बुद्धिमान् सज्जन पुरुष हैं, वे ( विष्टी ) व्याप्त होने ( युवाना ) मन-अप्रेल स्वभाव वाले तथा ( पितरा ) पालन हेतु पूर्वोक्त अग्नि और जल को क्रिया की मित्र के लिए आरम्भ्य ( अक्रत ) अच्छी प्रकार प्रयुक्त करते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो आत्मस्य वा छोड़े हुए सत्य में प्रीति रखन और मरण बुद्धिमान् मनुष्य हैं, वे ही अग्नि और जल आदि पदार्थों से उपकार लेने को समर्थ हो सकते हैं ॥ ४ ॥

किर वे किससे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सं वो मदांमो अगमतेन्द्रं च मस्तर्बता । आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मेधावी विद्वानो ! तुम लोग ( मस्तर्बता ) जिसके सम्बन्धी पवन है, उस ( इन्द्रेण ) विद्युत् की वा ( राजभिः ) प्रकाशमान् ( आदित्येभिः ) सूर्य की किरणों के साथ युक्त करते हो, इससे ( मदांमः ) विद्या के आनन्द ( वः ) तुम लोगों को ( अगमते ) प्राप्त होते हैं, इससे तुम लोग उनसे ऐश्वर्य्यवाले हो जाते ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग अब वायु और विद्युत् का आलम्ब लेकर सूर्य की किरणों के समान आनेवादि अस्त्र, अग्नि आदि सत्य और विमान आदि चीजों को सिद्ध करने हैं, तब वे मनुष्यों को जीत राजा होकर सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

यह पदार्थ कर्म लगाएत हुआ ॥

उक्त कार्य के करने में किसका सामर्थ्य होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उत स्य चमसं नवं स्वष्टुर्द्वयस्य निष्कृतम् । अकर्तं चतुरः पुनः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जब विद्वान् लोग जो ( स्वष्टुः ) शिली अर्थात् कारीगर ( द्वयस्य ) विद्वान् का ( निष्कृतम् ) सिद्ध किया हुआ काम सुख का देनेवाला है ( त्वम् ) उस ( नवम् ) नवीन दृष्टिगोचर कर्म को देखकर ( उत ) निश्चय से ( पुनः ) उसके अनुसार फिर ( चतुरः ) दू, जल, अग्नि और वायु से सिद्ध होने वाले मिश्रणों को ( अकर्तं ) अच्छी प्रकार सिद्ध करते हैं, तब आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग किसी क्रियाकुशल कारीगर के निकट बैठकर उसकी चतुराई का दृष्टिगोचर करके फिर सुख के साथ कारीगरी के काम करने को समर्थ हो सकते हैं ॥ ६ ॥

इस प्रकार से सिद्ध किये हुए इन पदार्थों से क्या काम सिद्ध होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ते नो रत्नानि धत्तन भिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् ( सुशस्तिभिः ) अच्छी-बुद्धी प्रशंसा वाली क्रियाओं से ( साप्तानि ) जो सात सख्या के वर्ग अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासियों के कर्म, यज्ञ का करना, विद्वानों का सत्कार तथा उनसे मिलाप और दान अर्थात् सब के उपकार के लिए विद्या का देना है, इससे ( एकमेकम् ) एक-एक कर्म करके ( भि ) विगुणित सुखों को ( सुन्वते ) प्राप्त करते हैं ( ते ) वे बुद्धिमान् लोग ( न ) हमारे लिए ( रत्नानि ) विद्या और सुखोंवादि चीजों को ( धत्तन ) अच्छी प्रकार धारण करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो ब्रह्मचारी आदि चार आश्रमों के कर्म तथा यज्ञ के अनुष्ठान आदि तीन प्रकार के हैं उनको मन, वाणी और शरीर से यथावत करें । इस प्रकार मिलकर सात कर्म होते हैं, जो मनुष्य इनको किया करते हैं उनके बड़, उपदेश और विद्या से रत्नों को प्राप्त होकर सुखी होते हैं । वे एक-एक कर्म को मित्र वा समाप्त करके दूसरे का प्रारम्भ करें, इस क्रम से शान्ति और पुरुषार्थ से सब कर्मों का सेवन करने रहे ॥ ७ ॥

वे उक्त कर्म को करके किसको प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

अधारयन्त बह्वयोऽग्रजन्त सुकृत्यया । भागं देवेभु यज्ञिषम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो ( बह्वयः ) सत्तार में शुभकर्म वा उत्तम गुणों को प्राप्त कराने वाले बुद्धिमान् सज्जन पुरुष ( सुकृत्यया ) श्रेष्ठ कर्म से ( देवेभु ) विद्वानों में रहकर ( यज्ञिषम् ) यज्ञ से मित्र कर्म को ( अधारयन्त ) धारण करने हैं, वे ( भागम् ) आनन्द को निरन्तर ( अभजन्त ) सेवन करते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि अच्छे कर्म वा विद्वानों की सङ्गति तथा पूर्वोक्त यज्ञ के अनुष्ठान के द्वारा व्यवहार सुख से लेकर मोक्षपर्यन्त सुख की प्राप्ति करनी चाहिए ॥ ८ ॥

उन्नीसवें सूक्त में कहे हुए पदार्थों से उपकार लेने को बुद्धिमान् ही समर्थ होते हैं । इन अधिप्रार्य से इस बीसवें सूक्त के अर्थ का मेल पड़ने उन्नीसवें सूक्त के साथ जानना चाहिए ।

यह बीसवाँ सूक्त और दूसरा वर्ग पूरा हुआ ॥

॥

अथर्वविश्वस्य षडध्वंस्य सृष्टस्य काव्यो मेधातिथिर्हवि । इन्द्राग्नी देवते ।

१, ३, ४, ६, गायत्री, २ पिपीलिकामध्यानिबृह्मगायत्री, ५ निबृह्मगायत्रीछन्दः । बह्वः स्वरः ॥

अब इसीसर्वे सूक्त का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र में इन्द्र और अग्नि के गुण प्रकाशित किये हैं—

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरिस्तोममुभयसि । ता सोमं सोमपातया ॥ १ ॥

पदार्थ ( इह ) इस सत्तार में होमादि शिल्प जो ( सोमपाता ) पदार्थों के अत्यन्त पालन के निमित्त और ( सोमम् ) सत्तारी पदार्थों की निरन्तर रक्षा करने वाले ( इहेन्द्राग्नी ) वायु और अग्नि हैं ( ता ) उनको मैं ( उपह्वये ) अपने समीप काम की सिद्धि के लिए यज्ञ में लाता हूँ, और ( तयोः ) उनके ( हवः ) और ( स्तोमम् ) गुणों के प्रकाश करने को हम लोग ( उभयसि ) इच्छा करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को वायु और अग्नि के गुण जानने की इच्छा करनी चाहिए क्योंकि कोई भी मनुष्य उनके गुणों के उपदेश वा अवलोकन के बिना उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता है ॥ १ ॥

किर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ता यज्ञेषु न सैसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गापयेधुं गायत ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( नरः ) यज्ञ करने वाले मनुष्यों ! तुम वित्त पूर्वोक्त ( इहेन्द्राग्नी )

वायु और अग्नि के ( प्रशंसन ) गुरुओं की प्रकाशित तथा ( शुभ्रता ) सब जगह कामों में प्रदीप्त करते हैं ( ता ) उनकी ( वायव्य ) वायवीय जल वाले वेद स्तोत्रों में ( अमृत ) अमृत अग्नि स्तोत्रों से गाये ॥ २ ॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य अध्ययन के बिना वायु और अग्नि के गुरुओं के ज्ञान से उनसे उपकार लेने की समर्थ नहीं हो सकता ॥ २ ॥

ये किस उपकार के करने वाले होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ता मित्रस्य प्रवृत्तस्य इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

वार्थ—जैसे विद्वान लोग वायु और अग्नि के गुरुओं की जानकर उपकार लेते हैं, वैसे हम लोग भी ( ता ) उन पूर्वोक्त ( मित्रस्य ) सब के उपकार करनेवाले और सब के मित्र के ( प्रवृत्तस्य ) प्रशंसनीय सुख के लिए तथा ( सोमपीतये ) सोम अर्थात् जिस व्यवहार में ससारी पदार्थों की अच्छी प्रकार रक्षा होती है उसके लिए ( ता ) उन ( सोमपा ) सब पदार्थों की रक्षा करने वाले ( इन्द्राग्नी ) वायु और अग्नि को ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में सुतोपमालकार है । जब मनुष्य मित्रपन का आशय लेकर एक दूसरे के उपकार के लिए विद्या से वायु और अग्नि को काव्यों में संयुक्त करके रक्षा के साथ पदार्थ और व्यवहारों की उन्नति करते हैं तभी वे सुखी होते हैं ॥

किर ये कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उग्रा सन्ता हवामहे उपेदं सर्वं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

वार्थ—हम लोग विद्या की सिद्धि के लिए जिन ( उग्रा ) तीव्र ( सन्ता ) वर्तमान ( इन्द्राग्नी ) वायु और अग्नि का ( हवामहे ) उपदेश वा श्रवण करते हैं वे ( उग्रा ) इस प्रयत्न ( सन्ता ) अर्थात् जिससे पदार्थों की उत्पन्न और ( सुतम् ) उत्तम मिलपकिया से सिद्ध किये हुए व्यवहार को ( उपागच्छताम् ) हमारे निकटवर्ती करते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को जिस कारण से दृष्टिगोचर हुए तीव्र वेग अग्नि गुरु वाले वायु और अग्नि मिलपकियायुक्त व्यवहार में सम्पूर्ण काव्यों के उपयोगी होते हैं, इससे इनको विद्या की सिद्धि के लिए काव्यों में संयुक्त करना चाहिए ॥ ४ ॥

ता महान्ता सवस्वपी इन्द्राग्नी रक्षं उज्जतम् । अग्रजाः सन्त्विजिणः ॥ ५ ॥

वार्थ—मनुष्यों ने जो अच्छी प्रकार विद्या की कुशलता में संयुक्त किये हुए ( महान्ता ) बड़े-बड़े उत्तम गुरु वाले ( ता ) पूर्वोक्त ( सवस्वपी ) सभाओं के मित्र ( इन्द्राग्नी ) वायु और अग्नि हैं, जो ( रक्षं ) दृष्ट व्यवहारों को ( उज्जतम् ) नाश करते लोग उनसे ( अग्रजाः ) मनुज ( अग्रजा ) पुत्राविरहित ( सन्त्विजिणः ) हैं, उनका उपयोग सब लोग श्रेय न करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को योग्य है कि जो सब पदार्थों के स्वरूप वा गुरुओं से अधिक वायु और अग्नि हैं उनको अच्छी प्रकार जानकर क्रियाव्यवहार में संयुक्त करें तो वे दुःखों को निवारण करके अनेक प्रकार की रक्षा करने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

किर ये किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तेन सत्येन जाशृतमधि मचेतुनं पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

वार्थ—जो ( इन्द्राग्नी ) प्राण और बिजुली है वे ( तेन ) उस ( सत्येन ) अधिनामी गुरुओं के समूह से ( मचेतुनं ) जिस में मानव से बिल प्रफुल्लित होता है ( पदे ) उस सुखप्रद व्यवहार में ( अविनाशितम् ) प्रसिद्ध गुरुवाले होते और ( शर्म ) उत्तम सुख को भी ( यच्छतम् ) देते हैं, उनको क्यों उपयुक्त न करना चाहिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो नित्य पदार्थ है उनके गुरु भी नित्य होते हैं, जो सरीर में वा बाहर रहने वाले प्राणवायु तथा बिजुली है वे अच्छी प्रकार श्रवण किये हुए चेतनता कराने वाले होकर सुख देने वाले होते हैं ॥ ६ ॥

बीसवें सूक्त में कहे हुए बुद्धिमानों की पदार्थविद्या की सिद्धि के वायु और अग्नि मुख्य हेतु होते हैं, इस अभिप्राय के जानने से पूर्वोक्त बीसवें सूक्त के अर्थ के साथ इस श्रुतीसर्व सूक्त के अर्थ का मेल जानना चाहिए ।

यह इन्कीसवीं सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथर्ववेदविश्वामित्रस्य आर्विषस्य सूक्तस्य काव्यों मेधातिथिः । १-४ अविनाशिताः

५-८ सविता, ९-१० अग्निः, ११ देवः, १२ इन्द्राग्नीवज्रान्मन्त्राः,

१३-१४ आद्यापुत्रिणी; १५ पुत्रिणी, १६ विष्णुर्वैश्वानराः

१७-२१ विष्णुर्वैश्वानराः । २-३, ५, ११, १७, १८

विष्णुर्वैश्वानराः, ४-५, ७, ९-११,

१३-१४, १६, २०-२१ नायगी; ६, १६

विष्णुर्वैश्वानराः; १५ विष्णुर्वैश्वानराः

अन्तः । अन्तः । अन्तः ॥

अब बाईसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके पहले मन्त्र में अविनाशिता के गुरुओं का उपदेश किया है -

मातृगुजा वि बौध्याभिवावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

वार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! जो ( मातृगुजा ) गायत्रीविद्या-सिद्धि यन्त्रकलाओं

में पहले जल देनेवाले ( अविनाशिता ) अग्नि और पृथिवी ( इह ) इस मिलपकियायुक्त में ( गच्छताम् ) प्राप्त होते हैं, इससे उनकी ( अस्य ) हम ( सोमस्य ) उत्पन्न करने योग्य सुख समूह को ( पीतये ) प्राप्ति के लिए तुम हम को ( विष्णुर्वैश्वानरा ) अच्छी प्रकार विदित कराइए ॥ १ ॥

भाषार्थ - सित्य काव्यों की सिद्धि करने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को चाहिए कि उस में भूमि और अग्नि का पहले प्रहण करें, क्योंकि इनके बिना विमान आदि यानों की सिद्धि वा गमन का सम्भव नहीं हो सकता ॥ १ ॥

किर ये किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या सुरथा रक्षितमोमा देवा दिविस्वृक्षा । अभिना ता हवामहे ॥ २ ॥

वार्थ—हम लोग ( या ) जो ( दिविस्वृक्षा ) आकाशमार्ग से विमान आदि यानों को एक स्थान से दूसरे स्थान में बीच पहुँचाने ( रक्षितमोमा ) निरन्तर प्रशंसनीय रक्षकों को सिद्ध करने वाले ( सुरथा ) जिनके योग से उत्तम-उत्तम रथ मित्र होते हैं ( देवा ) प्रकाशवि गुरुवाले ( अविनाशिता ) व्याप्तिस्वभाववाले पूर्वोक्त अग्नि और जल हैं, ( ता ) उन ( उग्रा ) एक दूसरे के साथ समीप करने योग्यों को ( हवामहे ) प्रहण करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्यों के लिए अत्यन्त मित्र कराने वाले अग्नि और जल हैं वे सित्यविद्या में संयुक्त किये हुए कार्यसिद्धि के हेतु होते हैं ॥ २ ॥

ये किया में किससे संयुक्त हो सकते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

या वां कक्षा मधुमत्पश्चिना सूरतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥

वार्थ—हे उपदेश करने वा सुनने तथा पढ़ने-पढ़ाने वाले मनुष्यों ! ( वा ) तुम्हारे ( कक्षा ) गुरुप्रकाश करनेवालों की ( या ) जो ( सूरतावती ) प्रशंसनीय बुद्धि से सहित ( मधुमत्पश्चिना ) मधुरगुणयुक्त ( कक्षा ) बाणी है ( तया ) उससे तुम ( यज्ञं ) अष्ट शिक्षात्मक वस्तु को ( मिमिक्षतम् ) प्रकाश करने की इच्छा नित्य किया करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—उपदेश के बिना किसी मनुष्य को ज्ञान की बुद्धि कुछ भी नहीं हो सकती, इससे सब मनुष्यों को उत्तम विद्या का उपदेश तथा श्रवण निरन्तर करना चाहिए ॥ ३ ॥

इसको करके अविनाशिता के योग से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नहि वामन्ति दूरक यत्रा रथेन गच्छथः । अविना सोमिनीं गृहम् ॥ ४ ॥

वार्थ—हे रथों के रचने वा चलानेवाले मनुज लोग ! तुम ( यत्र ) जहाँ उक्त ( अविनाशिता ) अविनाशिता से संयुक्त ( रथेन ) विमान आदि यान से ( सोमिनी ) जिनके प्रशंसनीय पदार्थ विद्यमान हैं उस पदार्थविद्या वाले के ( गृहम् ) घर को ( गच्छथः ) जाते हो वह दूर स्थान भी ( वा ) तुम को ( दूरक ) दूर ( नहि ) नहीं है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जिस कारण अग्नि और जल के योग से युक्त किया हुआ रथ अति दूर स्थानों में भी बीच पहुँचाता है, इससे तुम लोगों को भी इस मिलपकिया का अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिए ॥ ४ ॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर का नाम देने वाले परमेश्वर का प्रकाश किया है—

हिरण्यपाकिभूतये सवितारमुप ह्वये । स चेता देवता पदम् ॥ ५ ॥

वार्थ—मैं ( अहम् ) प्रीति के लिए जो ( पदम् ) सब चराचर जगत् को प्राप्त और ( हिरण्यपाकिभूतये ) जिससे व्यवहार में सुवर्ण आदि रत्न मिलते हैं उस ( सवितारम् ) सब जगत् के अन्तर्गामी ईश्वर को ( उपह्वये ) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ ( स ) वह परमेश्वर ( चेता ) ज्ञानस्वरूप और ( देवता ) पूज्यतम देव है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों के द्वारा, चेतनमय सब जगह प्राप्त होने और निरन्तर पूजन करने योग्य प्रीति का एक पुञ्ज और सब ऐश्वर्यों का देनेवाला परमेश्वर है वही निरन्तर उपासना के योग्य है, इस विषय में इसके बिना कोई दूसरा पदार्थ उपासना के योग्य नहीं है ॥ ५ ॥

यह चौथा वर्ग पूरा हुआ ॥

किर उस परमेश्वर की स्तुति करनी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अपां मपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥

वार्थ—हे धार्मिक विद्वन् मनुष्य ! जैसे मैं ( अहम् ) रक्षा आदि के लिए ( अपातम् ) जो सब पदार्थों को व्याप्त होने अन्त आदि पदार्थों के बलाने तथा ( मपातम् ) अधिनामी और ( सवितारम् ) सकल ऐश्वर्यों के देने वाले परमेश्वर की स्तुति करता हूँ, वैसे तु भी उसकी ( उपस्तुहि ) निरन्तर प्रशंसा कर । हे मनुष्यों ! जैसे हम लोग जिसके ( व्रतानि ) निरन्तर धर्मयुक्त कर्मों को ( उश्मसि ) प्राप्त होने की कामना करते हैं, वैसे ( तस्य ) उसके गुरु, कर्म और स्वभाव को प्राप्त होने की कामना तुम भी करो ॥ ६ ॥



भाषार्थ—जैसे विद्वान् मनुष्य परमेश्वर की स्तुति करके उसकी आज्ञा का आचरण करता है, वैसे तुम लोगों को भी उचित है कि उस परमेश्वर के रचे हुए संसार में अनेक प्रकार के उपकार ग्रहण करो ॥ ६ ॥

अपने मन्त्र में सविता शब्द से ईश्वर और सूर्य के मुखों का उपदेश किया है—

**विभक्तार्हं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधमः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग ( नृचक्षसम् ) मनुष्यों में अत्यधिक-रूप से विज्ञान प्रकाश करने ( वसोः ) पदार्थों से उत्पन्न हुए ( चित्रस्य ) अद्भुत ( राधमः ) विद्या, सुवर्ण वा चक्रवर्ति राज्य आदि धन के यथायोग्य ( विभक्तारम् ) जीवों के कर्म के अनुकूल विभाग से फल देने वा ( सवितारम् ) जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर और ( नृचक्षसम् ) जो प्रतिमान द्रव्यों का प्रकाश करने ( वसोश्चित्रस्य, राधमः ) उक्त धन सम्बन्धी पदार्थों को ( विभक्तारम् ) अलग-अलग व्यवहारों में चलाने और ( सवितारम् ) ऐश्वर्य हेतु मृग्यलोक को ( हवामहे ) स्वीकार करें वैसे तुम भी उनका ग्रहण करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमानाङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जिसने परमेश्वर मयशक्तिधन वा सर्वज्ञता से सब जगत् की रचना करके सब जीवों को उनके कर्मों के अनुसार सुख-दुःखफल को देता और जिस सूर्यलोक अपने ताप वा छेदनशक्ति से प्रतिमान द्रव्यों का विभाग और प्रकाश करता है इससे तुम भी सब को श्वायत्पूर्वक दृष्टि या मुख और यथायावत् व्यवहार में चलाने विद्यादि शुभ गुरों को प्राप्त करोगे ॥ ७ ॥

कैसे मनुष्य इस उपकार को ग्रहण कर सकें, तो अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

**सखाय आ नि पादत सविता स्तोम्यां नु नः ।**

**दाता राधामि शुम्भति ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तम लाग सदा ( सखायः ) आपस में मित्र मुख वा उपकार करने वाले हाथर ( आनिपादतः ) सब प्रकार स्थित रहें और जो ( स्तोम्यां ) प्रशंसनीय ( नः ) हमारे लिए ( राधामि ) अनेक प्रकार के उत्तम धनो का ( दाता ) देनेवाला ( सविता ) सकल ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर ( शुम्भति ) सब का सुशोभित करता है उसकी ( नु ) शीघ्रता के साथ निम्न प्रशंसा करो । तथा हे मनुष्यों ! जो ( स्तोम्यां ) प्रशंसनीय ( नः ) हमारे लिए ( राधामि ) उक्त धन का ( शुम्भति ) सुशोभित कराना वा उनका ( दाता ) देने का हन् ( सविता ) ऐश्वर्य धन का निमित्त सूर्य है उसकी ( नु ) निरय शीघ्रता के साथ प्रशंसा करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों का परस्पर मित्रभाव के बिना कभी सुख नहीं हो सकता। इसमें सब मनुष्यों का याग्य है कि एक दूसरे के साथी होकर जगदीश्वर वा अग्निमय सूर्यादि का उपदेश कर वा सुनकर उनमें सुखों के लिए सदा उपकार ग्रहण करें ॥ ८ ॥

किर अगले मन्त्र में अग्नि के गुरों का उपदेश किया है—

**अग्ने पत्नीरिहा वह देवनामुद्यतीरुप । त्वष्टारं मोमपीतये ॥ ९ ॥**

पदार्थ—( अग्ने ) जो यह भौतिक अग्नि ( मोमपीतये ) जिस व्यवहार में होम आदि पदार्थों का ग्रहण होता है उसके लिए ( देवनाम् ) इकतीस जो कि पृथिवी आदि लोक हैं उनकी ( उद्यतीः ) अपने-अपने आधार के गुणों का प्रकाश करने वाली ( पत्नीः ) स्त्रीजन वर्तमान अदिति आदि पत्नी और ( त्वष्टारम् ) छेदन करने वाले सूर्य वा कारीगर को ( उवाचह ) अपने सामने प्राप्त करता है उसका प्रयोग ठीक-ठीक करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को उचित है कि जो बिजुली, प्रसिद्ध अग्नि और सूर्यरूप से तीन प्रकार का भौतिक अग्नि शिल्पविद्या की विधि के लिए पृथिवी आदि पदार्थों के सामर्थ्य प्रकाश करने में मुख्य हेतु है उसी का स्वीकार करें और इस शिल्पविद्या-रूपी यज्ञ में पृथिवी आदि पदार्थों के सामर्थ्य का पत्नी नाम विधान किया है उसको जानें ॥ ९ ॥

वे कीन-कीन देवपत्नी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**आ आ अग्र इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वसूत्रीं धिषणीं वह ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे ( यविष्ठ ) पदार्थों को भिन्नान वा उन में मिलान वाले ( अग्ने ) क्रियापूजन विद्वन् । तू ( इह ) शिल्पकार्यों में ( यवसे ) प्रवेश करने के लिए ( आ ) पृथिवी आदि पदार्थ ( होत्राम् ) होम किये हुए पदार्थों को बहान ( भारतीम् ) सूर्य की प्रभा ( वसूत्रीम् ) स्वीकार करने योग्य दिन-रात्रि और ( धिषणीम् ) जिसमें पदार्थों का ग्रहण करते हैं उस वाणी को ( आचह ) प्राप्त हो ॥ १० ॥

भाषार्थ—विद्वानों को इस ससार में मनुष्य जन्म पाकर वेद द्वारा सब विद्या प्रत्यक्ष करनी चाहिए क्योंकि कोई भी विद्या पदार्थों के गुण और स्वभाव को प्रत्यक्ष किये बिना मफल नहीं हो सकती ॥ १० ॥

यह वाच्यार्थ वर्ण पूरा हुआ ॥

अब विद्वानों की स्थिति भी उक्त कार्यों को करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अग्नि नो देवीरवमा महः सम्मैणा सुपरीः ।**

**अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥**

पदार्थ—( अच्छिन्नपत्राः ) जिस के अविच्छिन्न कर्मसाधन और ( देवीः,

नपत्नीः ) जो किया कुशलता में बहुत विद्वान् पुरुषों की स्थिति है वे ( अग्नेः ) अग्नि ( अग्नेः ) मुखसम्बन्धी घर ( अग्नेः ) रक्षा में प्रवेश आदि कर्मों के साथ ( नः ) हम लोगों को ( अच्छिन्नपत्राः ) अच्छी प्रकार मिलें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जैसी विद्या, गुण, कर्म और स्वभाव वाले पुरुष हैं उनकी स्थिति भी वैसी ही होनी ठीक है, क्योंकि जैसा तुल्य रूप, विद्या, गुण, कर्म, स्वभाव वाली को मुख का सम्भव होता है, वैसा अन्य को कभी नहीं हो सकता। इससे सभी अपने समान पुरुष वा पुरुष अपने समान स्थितियों के साथ आपस में प्रसन्न होकर स्वयंवर विधान से विवाह करके सब कर्मों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

किर वे कैसी देवपत्नी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**इन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्रायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग ( इह ) इस व्यवहार में ( स्वस्तये ) अविनाशी प्रशंसनीय मुख वा ( सोमपीतये ) ऐश्वर्यों का जिस में भोग होता है उस कर्म के लिए जैसा ( इन्द्राणीम् ) सूर्य ( वरुणानीम् ) वायु वा जल और ( अग्रायीम् ) अग्नि की शक्ति हैं, वैसी स्त्रियों को पुरुष और पुरुषों को स्त्रियों ( उपह्वये ) उपयोग के लिए स्वीकार करें वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमाङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर का बनाय हुए पदार्थों के आश्रय में अविनाशी, निरन्तर मुख की प्राप्ति के लिए उपयोग करके परस्पर प्रसन्नता युक्त स्त्री और पुरुष का विवाह करें, क्योंकि पुरुष स्त्री-पुरुष और पुरुषार्थ के बिना किसी मनुष्य को कुछ भी ठीक-ठीक मुख का सम्भव नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

शिल्पविद्या में भूमि और अग्नि मुख्य साधन हैं, इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

**महीं यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।**

**पिपृतां नो मरीमभिः ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे उपदेश के करने और सुनने वाले मनुष्यों ! तुम दोनों जो ( महीं ) बड़े-बड़े गुरु वाले ( यौः ) प्रकाशमय बिजुली, सूर्य आदि और ( पृथिवी ) अप्रकाश वाले पृथिवी आदि लोकों का नमूना ( मरीमभिः ) धारण और पुष्टि करने वाले गुरों में ( नः ) हमारे ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) शिल्पविद्यामय यज्ञ ( च ) और ( नः ) हम लोगों को ( पिपृताम् ) मुख के साथ अज्ञों से अच्छी प्रकार पूरा करते हैं, वे ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) शिल्पविद्यामय यज्ञ को ( मिमिक्षताम् ) सिद्ध करने की इच्छा करो तथा ( पिपृताम् ) उन्हीं से अच्छी प्रकार सुखों की परिपूर्ति करो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—‘यौः’ यह नाम प्रकाशमान लोकों का उपलक्षण अर्थात् जो जिसका नाम उच्चारण किया हो वह उनके समस्त सब पदार्थों के बहान करने के होता है तथा ‘पृथिवी’ यह बिना प्रकाश वाले लोकों का है। मनुष्यों को इन से प्रयत्न के साथ सब उपकारों को ग्रहण करके उत्तम-उत्तम सुखों की सिद्ध करना चाहिए ॥ १३ ॥

उक्त दो प्रकार के लोकों से क्या-क्या करना चाहिए, इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**तयोरिदं धृतवत्पयो विमां रिहन्ति धीतिभिः । गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥**

पदार्थ—जो ( विमाः ) बुद्धिमान् पुरुष जिन से प्रशंसनीय होते हैं ( तयोः ) उन प्रकाशमय और अप्रकाशमय लोकों के ( धीतिभिः ) धारण और आकर्षण आदि गुरों से ( गन्धर्वस्य ) पृथिवी को धारण करने वाले वायु का ( ध्रुवे ) जो सब जगत् भरा निश्चल ( पदे ) अन्तरिक्ष स्थान है, उस में विमान आदि यानों को ( रिहन्ति ) गमनागमन करते हैं वे प्रशंसित होके, उक्त लोकों के आश्रय से ही ( वृत्तवत् ) प्रशंसनीय जल वाले ( पदे ) रस आदि पदार्थों को ग्रहण करते हैं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को पृथिवी आदि पदार्थों से विमान आदि यान बनाकर उनकी कलाओं में जल और अग्नि के प्रयोग से भूमि, समुद्र और आकाश में जाना-पाना चाहिए ॥ १४ ॥

यह भूमि किस लिए और कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**स्योना पृथिवि सवातृक्षग निवेक्षनी । यच्छा नः सर्वं समर्थः ॥ १५ ॥**

पदार्थ—जो यह ( पृथिवी ) अति विस्तार युक्त ( स्योना ) अत्यन्त सुख देने तथा ( सवातृक्षग ) जिस में दुःख देने वाले कण्टक आदि न हों ( निवेक्षनी ) और जिस में सुख से प्रवेश कर सकें, वैसी ( नः ) होती है, सो ( नः ) हमारे लिए ( सप्रथ ) विस्तारयुक्त, सुखकारक पदार्थ वालों के साथ ( सर्वम् ) उत्तम सुख को ( यच्छा ) देती है ॥ १५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि—यह भूमि ही सब प्रतिमान पदार्थों के रखने की जगह और अनेक प्रकार के सुखों की कराने वाली और बहुत रत्नों को आर्पण कराने वाली होती है—ऐसा जानें ॥ १५ ॥

यह यज्ञ कर्म समाप्त हुआ ॥

यस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अतो यथा भवन्ति यो यतो विष्णुर्विष्णवे ।**

**पृथिव्याः सप्त धामनिः ॥ १६ ॥**

**वार्थ—**(यसः) जिस सप्त वर्तमान भिन्न कारण से (विष्णुः) बराबर सप्तर में व्यापक जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी को लेकर (सप्त) सात अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट्, परमाणु और प्रकृति पर्यन्त लोकों को (धामनिः) जो सब पदार्थों को धारण करते हैं उनके साथ (विष्णवे) रहता है (अतः) उसी से (येनः) विद्वान् लोग (यः) हम लोगों को (यथा) उक्त लोकों की विद्या को समझने का प्राप्त कराते हुए हमारी रक्षा करते रहें ॥ १६ ॥

**वार्थ—**विद्वानों के उपदेश के बिना किसी मनुष्य को पञ्चाक्षर सृष्टिविद्या का बोध नहीं हो सकता। ईश्वर के उद्देश्य करने के बिना किसी पदार्थ का साकार रूप नहीं बन सकता और इन दोनों कारणों के जाने बिना कोई मनुष्य पदार्थों से उपकार होने की समर्थ नहीं हो सकता ॥ १६ ॥

ईश्वर ने इस संसार को किसने प्रकार का रचा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**इदं विष्णुर्विष्णवे त्रेधा नि दधे पदम् । समूह्यमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥**

**वार्थ—**मनुष्य लोग जो (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (त्रेधा) तीन प्रकार का (इदम्) यह प्रत्यक्ष या परमेश्वर (पदम्) प्राप्त होने वाला जगत् है, उनका (विष्णवे) अर्थात् प्रकृति और परमाणु आदि के पद वा भग्नो को ग्रहण कर सावधान अर्थात् सारी रक्षा करता और जिसमें (अस्य) इस तीन प्रकार के जगत् का (समूह्यम्) अर्थात् प्रकार तर्क से जानने योग्य और आकाश के बीच में रहने वाला परमाणुमय जगत् है उसको (पांसुरे) जिसमें उत्तम-उत्तम मिट्टी आदि पदार्थों के अति सूक्ष्म कण रहते हैं, उनको आकाश में (विष्णवे) धारण किया है।

जो प्रजा का शिर अर्थात् उत्तम मान कारणात्प और जो विद्या आदि भग्नो का शिर अर्थात् उत्तम फल आनन्दरूप तथा जो प्राणों का शिर अर्थात् प्रीति उत्पादन करने वाला सुख है, वे सब 'विष्णु' कहलाते हैं, यह श्रीराम आचार्य का मत है। 'यथा' प्रत्यक्ष इसी का हमारे कहने से कारणों से कार्य की उत्पत्ति की है ऐसा जानना चाहिए। 'इदं न बुध्यते' जो इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होते वे परमाणु आदि पदार्थ अन्तरिक्ष में रहते भी हैं परन्तु आँखों से नहीं देखते। 'इदं त्रेधा नि दधे' इस तीन प्रकार के जगत् को जानना चाहिए, अर्थात् एक प्रकाशरहित पृथिवीरूप, दूसरा कारणात्प जो कि देखने में नहीं आता, और तीसरा प्रकाशमय सूर्य आदि लोक है। इन मन्त्र में विष्णु शब्द से व्यापक ईश्वर का ग्रहण है ॥ १७ ॥

**वार्थ—**परमेश्वर ने इस संसार में तीन प्रकार का जगत् रचा है अर्थात् एक पृथिवीरूप, दूसरा अन्तरिक्ष आकाश में रहने वाला परमाणु रूप और तीसरा प्रकाशमय सूर्य आदि लोक तीन आधारेण है, इनमें से आकाश में वायु के आधारे रहने वाला जो कारणात्प है, वही पृथिवी और सूर्य आदि लोकों का बसाने वाला है और इस जगत् को ईश्वर के बिना कोई बनाने की समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि किसी का ऐसा सामर्थ्य ही नहीं ॥ १७ ॥

किर बहु सर्वव्यापक जगदीश्वर क्या-क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**श्रीं पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।**

**अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥**

**वार्थ—**जिस कारण यह (अदाभ्यः) अपने अधिभागीय से किसी की हिसा में नहीं आ सकता (गोपाः) और सब संसार की रक्षा करने वाला, सब जगत् को (धारयन्) धारण करने वाला (विष्णुः) संसार का अन्तर्गामी परमेश्वर (श्रीं) तीन प्रकार के (धर्माणि) ज्ञान, ज्ञानने और प्राप्त होने योग्य पदार्थों और अज्ञानों को (विष्णवे) विद्वान् करता है, इसी कारण से सब पदार्थ उत्पन्न होकर अपने-अपने (अर्थात्) धर्मों को धारण कर सकते हैं ॥ १८ ॥

**वार्थ—**ईश्वर के धारण के बिना किसी पदार्थ की स्थिति सम्भव नहीं हो सकती। उस की रक्षा के बिना किसी के व्यवहार की तिथि भी नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

किर व्यापक परमेश्वर के किये हुए कम मनुष्य भिन्न वेकें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**विष्णोः कर्माणि प्रपद्यत यतो ब्रह्मणि पश्यथे ।**

**इन्द्रस्य पुत्र्यः सखा ॥ १९ ॥**

**वार्थ—**हे मनुष्यो! तुम जो (इन्द्रस्य) श्रीराम का (पुत्र्यः) अर्थात् कर्माणि के पदार्थों से संयोग करने वाले विद्या, कर्म और साक्षात् हैं, उनमें व्यापक होके रहने का (सखा) सब सुखों के सम्प्राप्त करने के विना (अतः) जिससे श्रीराम (ब्रह्मणि) कर्म लोकों और व्यापक करने का उद्देश्य कर्मों को (पश्यथे) प्राप्त होता है, उन (विष्णोः) सर्वव्यापक, बुद्ध और सर्वव्यापक विद्वान् लोग सावधान बाने परमेश्वर के (कर्माणि) जो कि जगत् की रक्षा, आरक्षण,

व्याप और प्रयत्न करना आदि कार्य हैं, उनको तुम लोग (पश्यथ) अच्छे प्रकार विहित करो ॥ १९ ॥

**वार्थ—**क्योंकि सब के भिन्न जगदीश्वर ने पृथिवी आदि लोक तथा जीवों के साक्ष्य अहित सारी रखे हैं इसी से सब प्राणी अपने-अपने कार्यों के करने की समर्थ होते हैं ॥ १९ ॥

यह कहा जाता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**तद्विष्णोः परमं पदं सदा वश्यन्ति सूरयः । दिवी च चक्षुराततम् ॥ २० ॥**

**वार्थ—**(सूरयः) धार्मिक, बुद्धिमान्, पुण्यवादी, विद्वान् लोग (विष्णोः) व्यापक आनन्दस्वरूप परमेश्वर का विस्तृत (परमम्) उत्तम-से-उत्तम (पदम्) चाहते, जानने और प्राप्त होने योग्य उक्त वा वक्ष्यमाण पद है (तत्) उन को (सदा) सब काल में विमल, शुद्ध ज्ञान के द्वारा अपने आत्मा में (वश्यन्ति) देखते हैं ॥ २० ॥

**वार्थ—**इस मन्त्र में उपमात्कार है। जैसे प्राणी सूर्य के प्रकाश में कुछ नेत्रों से प्रतिमान् पदार्थों को देखते हैं वैसे ही विद्वान् लोग निर्मल विज्ञान से विद्या वा श्रेष्ठ विचारयुक्त बुद्ध अपने आत्मा में जगदीश्वर को सब ध्यानशी से युक्त और प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद को देखकर प्राप्त होते हैं। इस की प्राप्ति के बिना कोई मनुष्य सब सुखों को प्राप्त होने में समर्थ नहीं हो सकता। इस से इनकी प्राप्ति के निमित्त सब मनुष्यों को निरन्तर यत्न करना चाहिए ॥ २० ॥

जैसे मनुष्य उक्त पद को प्राप्त होने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**तद्विष्णो विष्णवे जायमानः समिन्धते । विष्णोर्व्यपारं पदम् ॥ २१ ॥**

**वार्थ—**(विष्णोः) व्यापक जगदीश्वर का (यत्) जो उक्त (परमम्) सब उत्तम गुणों से प्रकाशित (वक्ष्यम्) प्राप्त होने योग्य पद है (तत्) उसको (विष्णवे) अनेक प्रकार के जगदीश्वर के गुणों की प्रशंसा करते बाने (जायमानः) उत्कर्ष में जागृत (विष्णवे) बुद्धिमान् सज्जन पुरुष हैं, वे ही (समिन्धते) अच्छे प्रकार प्रकाशित करके प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

**वार्थ—**जो मनुष्य विद्या और धर्मोपरणरूप मोक्ष की छोड़कर विद्या और धर्मोपरण में जाग रहे हैं, वे ही सच्चिदानन्दस्वरूप सब प्रकार से उत्तम, सब को प्राप्त होने योग्य निरन्तर सर्वव्यापी विष्णु अर्थात् जगदीश्वर की प्राप्ति होते हैं ॥ २१ ॥

पहिले सूक्त में जो भी पदों के अर्थ कहे थे उनके सहचारी अग्नि, सविता, अग्नि, देवी, इन्द्राणी, वसुधानी, धामाणी, धामापृथिवी, भूमि, विष्णु और इनके अर्थों का प्रकाश इस सूक्त में किया है इससे पहले सूक्त के माथ इस सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिए।

यह सातवां कां समाप्त हुआ।

यह आठवां सूक्त और चौथा अनुवाक समाप्त हुआ।



अथार्य अनुचितानुवाक तयोर्विषय सुक्तस्य साधो मेवातिभिर्वा विः । १ वायुः, २, ३ इन्द्राणी; ४—५ मिथ्यावरणी; ७—८ इन्द्रोन्मत्तान्; १०—१२ विष्णो-देवा, १३—१४ पूषा; १५—२२ आपः; २३, २४ अग्निरथ देवताः । १—१८ गन्धर्वः; १९ पुर उष्णिक्; २० अनुवृद्ध, २१ प्रतिष्ठा, २२—२४ अनुवृद्ध व अर्थात् । १—१८ अक्षयः १९ अक्षयः, २० गन्धर्वः । २१ अक्षयः, २२—२४ गन्धर्वरथ स्वराः ॥

अथ तेदसर्वे सुक्त का आरम्भ है, इस के पहले मन्त्र में वायु के गुण प्रकाशित किये हैं—

**तीव्राः सोमांस आ गन्धाशीर्वन्तः सुता इमे ।**

**वायो तान् प्रस्वितान् पिब ॥ १ ॥**

**वार्थ—**जो (इमे) (तीव्राः) तीव्र वेगवान् (आशीर्वन्तः) जिनकी कामना अत्यन्त हीन है (सुताः) उत्पन्न हो चुके वा (सोमांसः) प्रत्यक्ष में होते हैं (तान्) उन सब को (पिब) पवन (वायु) सर्वथा प्राप्त होता है तथा वही उन (प्रस्वितान्) इश्वर-उत्तर प्रति सूक्ष्मरूप से अलायमानों को (पिब) अपने भीतर कर लेता है ॥ १ ॥

**वार्थ—**प्राणी जिनको प्राप्त होने की इच्छा करते और जिन के बड़ापन होते हैं, सब को पवन ही प्राप्त करके अर्थात् श्वर करता है, इससे जिन पदार्थों के तीव्रता का जीवन गुण है उन को अर्थात् जानने मनुष्य लोग उन से उपकार लेते हैं ॥ १ ॥



अब अगले मन्त्र में परस्पर संयोग करने वाले पदार्थों का प्रकाश किया है—

**समा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥**

**पदार्थ—** हम लोग ( अस्म्य ) इस प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष ( सोमस्य ) उत्पन्न करने वाले समार के सुव के ( पीतये ) भोगन के लिए ( दिविस्पृश्या ) जो प्रकाश-युक्त आकाश में विमान आदि यानों को पहुँचाने और ( देवा ) दिव्यगुण वाले ( उभा ) दोनों ( इन्द्रवायू ) अग्नि और पवन हैं उन को ( हवामहे ) साधने की इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

**भाषार्थ—** जो अग्नि पवन और जो वायु अग्नि से प्रकाशित होता है, जो ये दोनों परस्पर आकाशयुक्त अर्थात् सहायकारी हैं, जिनसे सूर्य प्रकाशित होता है, मनुष्य लोग जिनको माय और युक्ति के साथ नित्य क्रियाकुशलता में सम्प्रयोग करते हैं, जिनके मित्र बनने में मनुष्य बहुत से सुखों को प्राप्त होते हैं, उन के जानने की इच्छा क्यों न करनी चाहिए ॥ २ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**इन्द्रवायू मनोजुवा विमा हवन्त उतये । सतस्त्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥**

**पदार्थ—** ( विमा ) विद्वान् लोग ( उतये ) क्रियासिद्धि की इच्छा के लिए ( सतस्त्राक्षा ) जिन में अत्यन्त बल अर्थात् इन्द्रियवत् साधन सिद्ध होते ( धिय ) शिल्प कर्म के ( स्पती ) पालने और ( मनोजुवा ) मन के समान वेगवाले हैं उन ( इन्द्रवायू ) विद्युत् और पवन को ( हवन्ते ) ग्रहण करते हैं, उन के जानने की इच्छा अन्ध लोग भी क्यों न करें ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—** विद्वानों को उचित है कि शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए अत्यन्त बलवत् व्यवहारों को सिद्ध करानेवाले वेग आदि गुणयुक्त विद्युत् और वायु के गुणों की क्रियासिद्धि के लिए अच्छे प्रकार सिद्ध करना चाहिए ॥ ३ ॥

इस विद्या के प्राप्त करानेवाले प्राण और उवाह हैं इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है

**मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पुतदक्षमा ॥ ४ ॥**

**पदार्थ—** ( वयम् ) हम पुरुषार्थी लोग ( सोमपीतये ) जिस में सोम अर्थात् अपने अनुकूल सुखों को देने वाले रसयुक्त पदार्थों का पान होता है उस व्यवहार के लिए ( वरुणं ) पवित्र बल करने वाले ( जज्ञाना ) विज्ञान के हेतु ( मित्रम् ) जीवन के निमित्त बाहर वा भीतर रहनेवाले प्राण और ( वयम् ) जो अवासरूप ऊपर को धाता है उस बल करनेवाले उदान वायु का ( हवामहे ) ग्रहण करने हैं उनको तुम लोग भी क्यों न जानना चाहिए ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—** मनुष्य को प्राण और उदान वायु के बिना सुखों का भोग और बल का सम्बन्ध कभी नहीं हो सकता, इस हेतु से इन के सेवन की विद्या का ठीक-ठीक जानना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**ऋतेन यावता ह्यधातस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥**

**पदार्थ—** मैं ( धी ) जो ( ऋतेन ) परमेश्वर ने उत्पन्न करके धारण किये हुए ( ऋतावधौ ) जल का बढाव और ( ऋतस्य ) यथावत्स्वरूप ( ज्योतिष ) प्रकाश के ( पती ) पालन करने वाले ( मित्रावरुणा ) सूर्य और वायु हैं उनको ( हुवे ) ग्रहण करता हूँ ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—** न सूर्य और वायु के बिना जल और ज्योति अर्थात् प्रकाश की योग्यता, न ईश्वर के उत्पादन किये बिना सूर्य और वायु की उत्पत्ति का सम्भव है, और न इन के बिना मनुष्यों के व्यवहारों की सिद्धि हो सकती है ॥ ५ ॥

यह अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ।

फिर वे क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**वरुणः प्राविता भुवन्मित्रा विश्वाभिस्सृतिभिः । कस्ता नः सुरार्धमः ॥ ६ ॥**

**पदार्थ—** जैसे यह अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ ( वरुण ) बाहर वा भीतर रहनेवाला वायु ( विश्वाभिः ) सब ( सृतिभिः ) रक्षा आदि निमित्तों से सब प्राणियों को पदार्थों के द्वारा ( प्राणिना ) मुक्त प्राप्त करने वाला ( भुवन् ) होता है ( मित्रम् ) और सूर्य भी जो ( न ) हम लोगों को ( सुरार्धमः ) सुन्दर विद्या और चक्रवर्ति राज्य सम्बन्धी धनयुक्त ( करत्ताम् ) करते हैं जैसे विद्वान् लोग इन से बहुत कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे हम लोग भी इसी प्रकार इन का सेवन क्यों न करें ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—** इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । क्योंकि इन उक्त वायु और सूर्य का आश्रय करके सब पदार्थों के रक्षा आदि व्यवहार सिद्ध होते हैं, इसलिए विद्वान् लोग भी इन से बहुत कार्यों को सिद्ध करके उत्तम-उत्तम धनो को प्राप्त होने हैं ॥ ६ ॥

अब अगले मन्त्र में वायु के सहायरी इन्द्र के गुण उपदेश किये हैं —

**मस्तर्वन्तं हवामहे इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृप्तु ॥ ७ ॥**

**पदार्थ—** हम मनुष्य । जैसे इन संसार में हम लोग ( सोमपीतये ) पदार्थों के भोगन के लिए जिन ( मस्तर्वन्तम् ) पवनो के सम्बन्ध से प्रसिद्ध होने वाली ( इन्द्रम् )

विजली को ( हवामहे ) ग्रहण करते हैं ( सजूर् ) जो सब पदार्थों में एकत्री करने वाली ( गच्छेन ) पवनो के समूह के साथ ( न ) हम लोगों को ( मस्तर्वन्तम् ) अच्छे प्रकार तृप्त करती है वैसे उसको तुम लोग भी सेवन करो ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—** इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि सहायकारी पवन के बिना अग्नि कभी प्रज्वलित होने को, समर्थ और उक्त प्रकार विजली रूप अग्नि के बिना किसी पदार्थ की बढ़ती का सम्भव नहीं हो सकता, ऐसा जानें ॥ ७ ॥

अब वे पवनो के समूह किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**इन्द्रज्येष्ठा मरुतुणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम भ्रुवा हवम् ॥ ८ ॥**

**पदार्थ—** जो ( पूषरातयः ) सूर्य के सम्बन्ध में पदार्थों को देने ( इन्द्रज्येष्ठाः ) जिन के बीच में सूर्य बड़ा प्रशसनीय हो रहा है और ( देवासः ) दिव्य गुण वाले ( विश्वे ) सब ( मरुतुणाः ) पवनो के समूह ( मम ) मेरे ( हवम् ) कार्य करने योग्य शब्द व्यवहार को ( भुत ) सुनाने हैं वे ही आप लोगों को भी सुनावें ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—** कोई भी मनुष्य जिन पवनो के बिना कहना, सुनना और पृष्ठ होनादि व्यवहारों को प्राप्त होने की समर्थ नहीं हो सकता जिनके मध्य में सूर्यलोक सब से बड़ा विद्यमान, जो इसके प्रदीपन कराने वाले हैं, जो यह सूर्यलोक अग्निरूप ही है, जिन और जिस विजुली के बिना कोई भी प्राणी अपनी बायीं के व्यवहार करने को भी समर्थ नहीं हो सकता इत्यादि इन सब पदार्थों की विद्या को जानने मनुष्यों को मदा सुखी होना चाहिए ॥ ८ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण महमा युजा । मा नो दुःसंस ईषत ॥ ९ ॥**

**पदार्थ—** हे विद्वान् लोगो ! आप जा ( सुदानव ) उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने ( सहसा ) बल और ( युजा ) अपने अनुचरों ( इन्द्रेण ) सूर्य वा विजुली के मायी होकर ( वृत्रम् ) मेघ को ( हत ) छिन्न-भिन्न करते हैं उनसे ( नः ) हम लोगों के ( दुःसंसः ) दुःख करानेवाले ( मा, ईषत ) कभी मत हूजिए ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—** हम लोग ठीक पुरुषार्थ और ईश्वर की उपासना करके विद्वानों की प्रार्थना करते हैं कि जिससे हम लोगों को जो पवन, सूर्य की किरण वा विजुली के माय मेघमण्डल में रहने वाले जब को छिन्न-भिन्न और वर्षा करके और फिर पृथिवी से जल समूह को उठाकर ऊपर को प्राप्त करते हैं, उनकी विद्या मनुष्यों को प्रयत्न से अवश्य जाननी चाहिए ॥ ९ ॥

**विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृथ्निमातरः ॥ १० ॥**

**पदार्थ—** विद्या की इच्छा करने वाले हम लोग ( हि ) जिस कारण से जो ज्ञान-क्रिया के निमित्त में शिल्प व्यवहारों को प्राप्त कराने वाले ( उग्रा ) सीधाला वा श्रेष्ठ वेग के महित और ( पृथ्निमातरः ) जिनकी उत्पत्ति का निमित्त आकाश वा अन्तरिक्ष है इस से उन ( विश्वान् ) सब ( देवान् ) दिव्यगुणों के सहित उत्तम गुणों के प्रकाश करने वाले वायुओं को ( हवामहे ) उत्तम विद्या की सिद्धि के लिए जानना चाहते हैं ॥ १० ॥

**भाषार्थ—** जिस से यह वायु आकाश ही से उत्पन्न, आकाश में भ्राने-जाने और तेजस्विभाव वाले हैं, इससे विद्वान् लोग कार्य के अर्थ इनका स्वीकार करते हैं ॥ १० ॥

यह नवम वर्ग समाप्त हुआ ।

अब अगले मन्त्र में पवन और विजुली के गुण उपदेश किये हैं—

**जयतामिव तन्यतुर्मस्तमिति वृष्णया । यच्छुभं यायना नरः ॥ ११ ॥**

**पदार्थ—** हे ( नर ) धर्मयुक्त शिल्पविद्या के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो ! आप लोग भी ( जयतामिव ) जैसे विजय करने वाले योद्धाओं के सहाय से राजा विजय को प्राप्त होता और जैन ( मस्तम् ) पवनो के समूह से ( वृष्णया ) वृक्षों आदि गुणयुक्त ( तन्यतु ) अपने वेग को अति शीघ्र विस्तार करने वाली विजुली मेघ को जीतती है वैसे ( यत् ) जितना ( शुभम् ) कल्याणयुक्त सुख है उस सब को प्राप्त हूजिए ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—** इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग दूर-बीरो की सेना में मनुष्य के विजय वा जैसे पवनो के बिसने से विजुली के वन को चलाकर दूरस्थ देशों को जा वा आनेवादि कार्यों की सिद्धि को करके सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुमका भी विज्ञान वा पुरुषार्थ करके इनसे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों को निरन्तर बढ़ाना चाहिए ॥ ११ ॥

फिर वे पवन किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**हस्काराद्भ्युतस्पर्य्यतो जाता अंबन्तु नः । मस्तौ वृक्ष्यन्तु नः ॥ १२ ॥**

**पदार्थ—** हम लोग जिस कारण ( हस्कारात् ) अति प्रकाश से ( जाता ) प्रकट हुई ( विद्युत् ) जोकि कणलता के साथ प्रकाशित होती है वे विजुली ( नः ) हम लोगों के सुखों को ( मस्तम् ) प्राप्त करती हैं, जिससे उनको ( पर ) सब प्रकार से माधते और जिससे ( मस्तम् ) पवन ( न ) हम लोगों को ( वृक्ष्यन्तु ) सुखयुक्त करते हैं ( अतः ) इससे उनको भी शिल्प आदि कार्यों से ( पर ) अच्छे प्रकार से साधें ॥ १२ ॥

आचार्य—मनुष्य जब पहले वायु फिर बिजुली उस के अनन्तर जल, पृथिवी और धोषधियों की विद्या को जानते हैं तब अन्धे प्रकार गुणों को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

अब अन्धे मन्त्र में सूर्यलोक के मन्त्र प्रकाशित किये हैं—

**आ पूषन्निर्वर्हिषामाहुणे धर्ष्य दिवः । आजा नष्ट यथा पशुम् ॥१३॥**

पदार्थ—जैसे कोई पशुओं का पालने वाला मनुष्य ( पशुम् ) सो गये ( पशुम् ) गो आदि पशुओं को प्राप्त होकर प्रकाशित करता है वैसे यह ( आजा ) परिपूर्ण किरणों ( पूषन् ) पदार्थों को पुष्ट करनेवाला सूर्यलोक ( दिवः ) अपने प्रकाश से ( निर्वर्हिषम् ) जिस से विविध धातुवर्णरूप अन्तरिक्ष विहित होता है ( पशुम् ) प्रारण करनेवाले पशुओं को ( आजा ) अन्धे प्रकार प्रकाश करता है ॥ १३ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जैसे पशुओं को पालने वाले अनेक काम करके, वो आदि पशुओं को पुष्ट करके, उनके गुण आदि पदार्थों से मनुष्यों को सुखी करते हैं, वैसे ही यह सूर्यलोक विविध-विविध लोकों से युक्त आकाश वा आकाश में रहनेवाले पदार्थों को, अपनी किरण वा आकर्षण शक्ति से पुष्ट करके प्रकाशित करता है ॥ १३ ॥

अब अन्धे मन्त्र में पूषन् शब्द से ईश्वर की सर्वज्ञता का प्रकाश किया है—

**पूषा राजानमाहुःशिरपशुह्यं गुहा हितम् । अविन्दन्निर्वर्हिषम् ॥१४॥**

पदार्थ—जिस से यह ( आजा ) पूर्ण प्रकाश वा ( पूषा ) जो अपनी व्याप्ति से सब पदार्थों को पुष्ट करता है वह जगदीश्वर ( पूषा, हितम् ) आकाश वा बुद्धि में अन्धोपम्य स्थापन किये हुए वा स्थित ( निर्वर्हिषम् ) जो अनेक प्रकार के कार्य की करता ( शिरपशुह्यं ) अत्यन्त युक्त ( राजानम् ) प्रकाशमान प्राणवायु और जीव को ( अविन्दन् ) जानता है इससे वह सर्वशक्तिमान् है ॥ १४ ॥

आचार्य—जिस कारण जगत् का रचने वाला ईश्वर सब को पुष्ट करनेवाले हृदयस्थ प्राण और जीव को जानता है इससे सब का जानने वाला है ॥ १४ ॥

फिर अन्धे मन्त्र में उस ईश्वर के ही गुणों का उपदेश किया है—

**उतो स मन्त्रिभ्युभिः बहुयुक्तां अनुसेविषत् । गोभिर्यव न चर्कुषत् ॥१५॥**

पदार्थ—जैसे बेटी करने वाला मनुष्य हर एक धर्म की सिद्धि के लिए भूमि को ( बहुयुक्तम् ) बारम्बार जोता है ( न ) वैसे ( स ) वह ईश्वर ( मन्त्रिभ्युभिः ) जो मैं धर्मरक्षा, पुनर्प्राप्ति हूँ उसके लिए ( ह्युभिः ) स्निग्ध, मनोहर पदार्थों और वस्तु आदि ( यव ) अ ( मन्त्रिभ्युभिः ) मनुष्यों को ( युक्तान्, गोभिः ) गो, हाथी और बाटे आदि पशुओं के साथ युक्तयुक्त और ( यवम् ) सब आदि धर्म को ( अनुसेविषत् ) बारम्बार हमारे अनुकूल प्राप्त करे इससे मैं उसी को इष्टदेव मानता हूँ ॥ १५ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जैसे सूर्य वा बेटी करने वाला किरण वा हल आदि से बारम्बार भूमि को आकर्षित वा खन, वो और वायु आदि की प्राप्ति कर सचिकन कर पदार्थों के सेवन के साथ वस्तु आदि अ मनुष्यों को सुखों से संयुक्त करता है, वैसे ईश्वर भी समय के अनुकूल सब जीवों को कर्मों के अनुसार रस को उत्पन्न वा मनुष्यों के विभाग से उक्त मनुष्यों को सुख देने वाली करता है ॥ १५ ॥

यह वसर्वा वर्ण समाप्त हुआ ॥

अब अन्धे मन्त्र में जल के गुण प्रकाशित किये हैं—

**अन्धयो यन्त्यन्धभिर्जामयो अध्वरीपताम् । पृञ्चतीर्मेधुना पयः ॥१६॥**

पदार्थ—जैसे माद्यों को ( जामय ) भाई लोग अनुकूल आचरण से सुख सम्पादन करते हैं वैसे ये ( अन्धयः ) रक्षा करने वाले जल ( अध्वरीपताम् ) जो हम लोग अपने आप की रक्षा करने की इच्छा करते हैं उनको ( मेधुना ) मधु-गुण के साथ ( पयः ) सुलकारक रस को ( अन्धभिः ) मार्गों से ( पृञ्चती ) पहुँचाने वाले ( भक्ति ) प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में सुप्तोपमासङ्कार है । जैसे बन्धुजन अपने भाई को अन्धे प्रकार पुष्ट करके सुख करते हैं, वैसे ये जल ऊपर-नीचे जाने-आते हुए मित्र के समान प्राणियों के सुखों का सम्पादन करते हैं और इनके बिना प्राणी वा अप्राणी की उन्नति नहीं हो सकती, इससे ये रस की उत्पत्ति के द्वारा सब प्राणियों का माता-पिता के सुख पालन करते हैं ॥ १६ ॥

फिर ये जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अन्धे मन्त्रों में किया है—

**अधूया उप सूर्ये यामिर्वा सूर्यः सह । ता नो दिन्वन्त्वध्वरम् ॥१७॥**

पदार्थ—( याः ) जो ( अधूः ) जल वृष्टिगोचर नहीं होते ( सूर्ये ) सूर्य वा इस के प्रकाश के सन्ध में वर्तमान हैं ( या ) प्रववा ( यामिः ) जित जलों के ( सह ) साथ सूर्यलोक वर्तमान है ( ताः ) वे ( याः ) हमारे ( अध्वरम् ) हिसा-रहित सुखरूप वस्तु को ( अध्वरिण्युः ) प्रत्यक्ष सिद्ध करते हैं ॥ १७ ॥

आचार्य—जो जल पृथिवी आदि भूमिमात्र पदार्थों से सूर्य की किरणों के द्वारा क्षिप्त-भिन्न अर्थात् कण-कण होता हुआ सूर्य के सामने ऊपर को जाता है, वही ऊपर से वृष्टि के द्वारा गिरा हुआ पान आदि व्यवहार वा विज्ञान आदि पानों में अन्धे प्रकार संयुक्त निम्ना हुआ सुख बढ़ाता है ॥ १७ ॥

**अयो वेवीर्यं ह्ये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुष्यः कर्ष्य हविः ॥१८॥**

पदार्थ—( यत्र ) जिस व्यवहार में ( गावः ) सूर्य की किरणें ( सिन्धुष्यः )

समुद्र और नदियों से ( वेवीः ) दिव्य गुणों को प्राप्त करने वाले ( अयः ) जलों की ( पिबन्ति ) पीती हैं उन जलों को ( नः ) हम लोगों के ( हविः ) हवन करने योग्य पदार्थों के ( कर्ष्यम् ) उत्पन्न करने के लिए मैं ( अध्वर्युः ) अन्धे प्रकार स्वी-कार करता हूँ ॥ १८ ॥

आचार्य—सूर्य की किरणें जितना जल क्षिप्त-भिन्न अर्थात् कण-कण कर वायु के संयोग से खँबती हैं उतना ही वहाँ से निकल होकर भूमि और धोषधियों को प्राप्त होता है । विद्वान् लोगों को वह जल, पान, स्नान और शिल्पकार्य आदि में समुक्त कर नाना प्रकार के सुख सम्पादन करने चाहिए ॥ १८ ॥

**अपस्वन्तर्युतमप्यु मेवजमपासुत मर्षस्तये । वेवा भवत वाजिनः ॥१९॥**

पदार्थ—ह ( वेवा ) विद्वानो ! तुम ( मर्षस्तये ) अपनी उत्तमता के लिए ( अप्यु ) जलों के ( जमः ) भीतर जो ( जमपसुतम् ) मार डालने वाला, रोग का निवारण करने वाला मनुष्यरस ( जम ) तथा ( अप्यु ) जलों में ( मेवजम् ) शीघ्र है उनको जानकर ( अपासु ) उन जलों की क्याकुशलता से ( वाजिनः ) उत्तम श्रेष्ठ जान वाले ( भवत ) हो जाओ ॥ १९ ॥

आचार्य—हे मनुष्यों ! तुम मनुष्यकी रस वा शोषण वाले जलों से शिल्प और वैद्यकशास्त्र की विद्या से उनके गुणों को जानकर कार्य सिद्धि वा सब रोगों की निवृत्ति निर्य करो ॥ १९ ॥

**असु मे सोमो अज्वीदन्तर्विन्धानि मेवजा ।**

**अग्निं च विन्वन्तुवमापश्च विन्वन्मेवजीः ॥ २० ॥**

पदार्थ—जैसे यह ( सोम ) धोषधियों का राजा चन्द्रमा वा सोमलता ( मे ) मेरे लिए ( असु ) जनों के ( अज्वी ) बीच में ( विन्धानि ) सब ( मेवजा ) शोषण ( च ) तथा ( विन्वन्तुवमापश्च ) सब जगत् के लिए सुख करने वाले ( अग्निम् ) बिजुली को ( अज्वीवम् ) प्रविष्ट करता है इसी प्रकार ( विन्वन्मेवजीः ) जिनके निमित्त से सब धोषधियों होती हैं वे ( आप ) जब भी अपने में उक्त सब धोषधियों और उक्त गुण वाले अग्नि को जानते हैं ॥ २० ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासङ्कार है । जैसे सब पदार्थ अपने गुणों से अपने-अपने स्वभावों और अपने धोषधियों की पुष्टि करने वाले चन्द्रमा और जो धोषधियों में मुख्य सोमलता है वे दोनों जल के निमित्त और ग्रहण करने योग्य सब धोषधियों का प्रकाश करने हैं, वैसे सब धोषधियों के हेतु जल अपने अन्त-गंत समस्त सुखों का हेतु मेव का प्रकाश और जो जलों में धोषधियों का निमित्त और जो जल में अग्नि का निमित्त है ऐसा जानना चाहिए ॥ २० ॥

अब अन्धे मन्त्र में अग्नि का उपदेश किया है—

**आपः पृथीत मेवजं वरुणं तन्नेह मम । ज्योक् च सूर्ये द्यौः ॥२१॥**

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सब पदार्थों को व्याप्त होने वाले प्राण ( वरुणम् ) सूर्यलोक के ( द्यौः ) दिव्यलोक वा ( ज्योक् ) बहुत काल जीवने के लिए ( मम ) मेरे ( तन्नेह ) शरीर के लिए ( वरुणम् ) श्रेष्ठ ( मेवजम् ) रोग नाश करने वाले व्यवहार को ( पृथीत ) परिपूर्णता में प्रकट कर देते हैं उनका सेवन युक्ति से ही करना चाहिए ॥ २१ ॥

आचार्य—प्राणों के बिना कोई प्राणी वा वृक्ष आदि पदार्थ बहुत काल शरीर प्रारण करने को समर्थ नहीं हो सकते, इससे सुखा और व्यास आदि रोगों के निवारण के लिए परम अर्थात् उत्तम-से-उत्तम धोषधियों को सेवने से योग्यवृत्ति से प्राणों का सेवन ही परम उत्तम है, ऐसा जानना चाहिए ॥ २१ ॥

**इदमापः म वहत यत्किञ्च दुर्गतिं मयि ।**

**यद्वाहमभिद्रोह यद्वा शेष उतानृतम् ॥ २२ ॥**

पदार्थ—मैं ( मत् ) जैसा ( किम् ) कुछ ( मयि ) कर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझ में ( इदम् ) पुष्ट स्वभाव के अनुष्ठान से उत्पन्न हुआ पाप ( मत् ) वा श्रेष्ठता से उत्पन्न हुआ पुण्य ( मत् ) प्रववा ( मत् ) अत्यन्त क्रोध से ( अभिद्रोहम् ) प्रत्यक्ष किसी से द्वेष करता वा मित्रता करता ( मत् ) प्रववा ( मत् ) जो कुछ अत्यन्त ईर्ष्या से किसी सज्जन को ( शोभे ) आप देता वा किसी को कृपावृष्टि से बाहता हुआ जो ( अनुत्तम् ) भूड ( उत्त ) वा सत्य काम करता हूँ ( इदम् ) सो यह सब आचरण किये हुए को ( आप ) मेरे प्राण मेरे साथ होके ( प्रवहन् ) अन्धे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

आचार्य—मनुष्य जैसा कुछ पाप वा पुण्य करते हैं, सो ईश्वर अपनी व्यास व्यवस्था से उनको प्राप्त करता ही है ॥ २२ ॥

**आयो अद्यान्वचारिष रसेन समगस्महि ।**

**पयस्वानश्च आ गतिं त मा सं सुज बर्षसा ॥ २३ ॥**

पदार्थ—हम लोग जो ( रसेन ) स्वाभाविक रसगुण संयुक्त ( आपः ) जल हैं उनको ( समगस्महि ) अन्धे प्रकार प्राप्त होते हैं जिनसे मैं ( पयस्वानम् ) रस युक्त शरीर वाला होकर जो कुछ ( अद्यान्वचारिषम् ) विद्वानों के अनुचरण अर्थात् अनुकूल उत्तम काम करके उसको प्राप्त होता और जो यह ( अन्ने ) नीतिक अग्नि ( मा ) मुझ को इस जन्म और जन्मांतर अर्थात् एक जन्म से दूसरे जन्म में ( आगहि ) प्राप्त होता है अर्थात् वही पिछले जन्म में ( तम् ) उसी कर्मों के नियम से पालने वाले ( मा ) मुझे ( अन्ने ) आज वर्तमान भी ( बर्षसा ) दीप्ति से ( संसृज ) सम्बन्ध करता है उन और उनको भूमि से सेवन करना चाहिए ॥ २३ ॥

भाषार्थ—सब प्राणियों को पिछले जन्म में किये हुए पुण्य वा पाप का फल वायु, जल और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा इस जन्म वा अगले जन्म में प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

वह अग्नि किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सं मांने धर्षसा सृज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युमं अस्य देवा इन्द्रो विद्यास्सह ऋषिभिः ॥ २४ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो ( ऋषिभिः ) वेदार्थ जानने वालों के ( सह ) माय ( देवा ) विद्वान् लोग और ( इन्द्र ) परमात्मा ( अग्ने ) भौतिक अग्नि ( धर्षसा ) दीप्ति ( प्रजया ) सन्तान आदि पदार्थ और ( आयुषा ) जीवन से ( या ) मुझे ( ससृज ) मनुज करता है उस और ( मे ) मेरे ( अस्य ) इस जन्म के कारण को जानने और ( विद्यात् ) जानता है इससे उनका संग और उसकी उपासना नित्य करें ॥ २४ ॥

भाषार्थ—जब जीव पिछले शरीर को छोड़कर अगले शरीर को प्राप्त होता है तब उनके साथ स्वाभाविक मानव अग्नि जाता है वही फिर शरीर आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है जो जीवों के पाप-पुण्य और जन्म का कारण है उसका वे ऋषि तत्त्व विद्वान् ही परमेश्वर के सिवाय जानते हैं किन्तु परमेश्वर तो निश्चय के साथ यथायोग्य जीवों के पाप वा पुण्य को जानकर, उनके कर्म के अनुसार शरीर देकर, सुख-दुःख का भोग कराता ही है ॥ २४ ॥

पूर्व सूक्त से कहे हुए अग्नि आदि पदार्थों के अनुपपत्ति जो वायु आदि पदार्थ हैं, उनके वर्णन से पिछले आदिमंत्र से कर्म के साथ इस तेईसवें सूक्त के अर्थ की सङ्गीत जाननी चाहिए ॥

वह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

ॐ

अथास्य पञ्चवक्त्रस्य अनुविष्टस्य सूक्तस्य आजीर्गत्। सुमःशोपः कुन्तिषो वैश्वान्विषो देवरातिष्ठ'चि' । १ प्रजापतिः । २ अग्निः । ३—५ सविता ज्यौ वा

१—१५ वक्त्रस्य देवता । १, २, ६—१५ विष्टस्य,

३—५ आयुषी ज्यौ । १, २, ६—१५

वैश्वान्वि, ६—५ वक्त्रस्य स्वरी ॥

अब चौबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहले मन्त्र में प्रजापति का प्रकाश किया है—

कस्य नूनं कंतमस्यामृतानां मनामहे चारुं देवस्य नाम ।

को नो मया अदितये पुनर्दन्तिपतरं च ह्येयं मातरं च ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग ( कस्य ) कैसे गुण कर्म स्वभाव युक्त ( कंतमस्त ) किस बहुत ( अमृतानाम् ) उत्पत्ति, विनाशरहित, अनादि मोक्षप्राप्त जीवों और जो जगत् के नित्य कारण के मध्य में व्यापक अमृतस्वरूप अनादि तथा एक पदार्थ ( देवस्य ) प्रकाशमान सर्वोत्तम सुखों को देने वाले देव का निश्चय के साथ ( चारु ) सुन्दर ( नाम ) प्रसिद्ध नाम को ( मनामहे ) जानें कि जो ( पुनर् ) निश्चय करके ( क ) कीन सुखस्वरूप देव ( न ) मोक्ष को प्राप्त हुए भी हम लोगों को ( बहुत ) बड़ी, कारणरूप, नाश रहित ( अदितये ) पृथिवी के बीच में ( पुन ) पुनर्जन्म ( वात् ) देता है । जिस म कि हम लोग ( पितरम् ) पिता ( च ) और ( मातरम् ) माता ( च ) और स्त्री, पुत्र, वन्धु आदि को ( पुनर्दन्तिपतरं ) देवता की इच्छा करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में प्रश्न का विषय है कौन ऐसा पदार्थ है जो मनातन अर्थात् अविनाशी पदार्थों में भी सनातन अविनाशी है कि जिसका अत्यन्त उत्कर्ष युक्त नाम का स्मरण करे वा जाने और कौन देव हम लोगों के लिए किस-किस हेतु ने एक जन्म से दूसरे जन्म का सम्पादन करना और अमृत वा आनन्द के कारण बानी सुख का प्राप्त कराकर भी फिर हम लोगों को माना-पिता से दूसरे जन्म में शरीर को धारण कराता है ॥ १ ॥

इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में प्रकाशित किये हैं—

अग्नेयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुं देवस्य नाम ।

स नो मया अदितये पुनर्दन्तिपतरं च ह्येयं मातरं च ॥ २ ॥

पदार्थ—हम लोग जिस ( अग्ने ) आनन्दस्वरूप ( अमृतानाम् ) विनाश धर्म रहित पदार्थ वा मोक्ष प्राप्त जीवों में ( अमृतस्य ) अमृति, विमृत अद्वितीय, स्वरूप ( देवस्य ) सब जगत् के प्रकाश करने वा ससार में सब पदार्थों के देने वाले परमेश्वर वा ( चारु ) पवित्र ( नाम ) गुणा को गान करना ( मनामहे ) जानते हैं ( स ) वही ( न ) हमको ( बहुत ) बड़े-बड़े गुण वाली ( अदितये ) पृथिवी के बीच में ( पुन ) फिर जन्म ( वात् ) देता है जिससे हम लोग ( पुनः ) फिर ( पितरम् ) पिता ( च ) और ( मातरम् ) माता ( च ) और स्त्री, पुत्र, वन्धु आदि को ( पुनर्दन्तिपतरं ) देवता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हम मनुष्य । हम लोग जिस अनादि स्वरूप, सदा अमर रहने वा जो हम सब लोगों के किये हुए पाप और पुण्य के अनुसार यथायोग्य सुख-दुःख फल देने वाले अमर्त्येश्वर देव को निश्चय करते और जिसकी न्याययुक्त व्यवस्था से पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं हम लोग भी उसी को जानो किन्तु इससे अन्य दूसरा कोई उक्त

कर्म करने वाला नहीं है । ऐसा निश्चय हम लोगों को है कि वही अमर्त्येश्वर को पृथिवी और जीवों का भी महाकर्म के अन्त में फिर पाप-पुण्य की सुस्वप्ना से जितने माता और स्त्री आदि के बीच में अनुपमजन्म धारण कराता है ॥ २ ॥

फिर वह अमर्त्येश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभि त्वा देव सवितरीशानं वाय्वीशाम् । सदाभ्यन्मागदीमहे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( सविता ) पृथिवी आदि पदार्थों की उत्पत्ति वा ( वायु ) रक्षा करने और ( देव ) सब आनन्द के देने वाले अमर्त्येश्वर हम लोग ( वाय्वीशाम् ) स्वीकार करने योग्य पृथिवी आदि पदार्थों की ( आभ्यन्मा ) यथायोग्य व्यवस्था करके ( आभ्यन्मा ) सब के सेवा करने योग्य ( त्वा ) आपकी ( सदा ) सब काल में ( अभि ) ( ईमहे ) प्रत्यक्ष याचने हैं अर्थात् आप ही से सब पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों द्वारा—जो सब का प्रकाशक, सफल जगत् की उत्पत्ति वा सब की रक्षा करने वाला अमर्त्येश्वर है वही सब समय में उपासना करने योग्य है क्योंकि इनको छोड़के अन्य किसी की उपासना करके ईश्वर की उपासना का फल चाहें तो कभी वही हो सकता, इससे इसकी उपासना के विषय में कोई भी मनुष्य किसी दूसरे पदार्थ का स्थान कभी न करे ॥ ३ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर ने अपना ही प्रकाश किया है—

यथिद्धि त इत्था मगः अक्षमानः पुरा निदः । अद्भ्यो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे जीव । जैसे ( अद्भ्यः ) सब से निश्चयापूर्वक बताने वाला ईश्वर दोषरहित में ईश्वर ( इत्था ) इस प्रकार सुख के लिए ( नः ) जो ( अक्षमानः ) स्तुति ( भग ) और स्वीकार करने योग्य बन है उसको ( ते ) तेरे कर्मात्मा के लिए ( हि ) निश्चय करके ( हस्तयोः ) हाथों में धामने का फल जैसे बर्तन के साथ प्रसन्ननीय बन को ( दधे ) धारण करता हूँ और जो ( निदः ) सब की निद्रा करने द्वारा है उस के लिए उस मन समूह का विनाश कर देता हूँ जैसे तुम लोग भी किया करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यहाँ वाचकसुतोपमानद्वारा है । जैसे मैं ईश्वर सब के निर्विक मनुष्य के लिए दुःख और स्तुति करने वाले के लिए सुख देता हूँ वैसे तुम भी सदा किया करो ॥ ४ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर ही का प्रकाश किया है—

मगंभक्तस्य ते वयमुदक्षेम तवावसा । मुर्दानं राय आरमे ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर । जिससे हम लोग ( भगवत्स्य ) जो सब के सेवने योग्य पदार्थों का यथायोग्य विभाग करने वाले ( ते ) आपकी कीर्ति को ( उदक्षेम ) अत्यन्त उन्नति के साथ उपासना ही कि उनसे ( तव ) आपकी ( अवसा ) रक्षणार्थ कृपादृष्टि से ( रायः ) अत्यन्त धन के ( मुर्दानम् ) उत्तम-ते-उत्तम भाग को प्राप्त होकर ( आरमे ) आरम्भ करने योग्य अवधारण में निरर्थक प्रवृत्त हो अर्थात् उत्तरी प्राप्ति के लिए नित्य प्रयत्न कर सकें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अपने किया, कर्म से ईश्वर की आज्ञा में प्राप्त होते हैं वे ही उनमें रक्षा को सब प्रकार से प्राप्त और सब मनुष्यों में उत्तम ऐश्वर्य वाले होकर प्रशमा का प्राप्त होते हैं क्योंकि वही ईश्वर जीवों को उनके कर्मों के अनुसार न्याय व्यवस्था से विभाग कर फल देता है इससे ॥ ५ ॥

तुम वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नहि ते सत्रं न सद्यो न मन्यु वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।

नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्नि ये वातस्य मभिनन्त्यम्भ्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर । ( अमम् ) प्रखण्ड राज्य को ( पतयन्तः ) इश्वर-उधर बलायमान होते हुए ( आपुः ) दे लांकलोकाल्दार ( न ) नहीं ( आपुः ) व्याप्त होने हैं और न ( वयः ) पक्षी भी ( न ) नहीं ( सह ) जल को ( न ) नहीं ( मन्यु ) जो कि दुष्टों पर काध है उनको भी ( न ) नहीं व्याप्त होते हैं ( न ) नहीं वे ( अनिमिषम् ) निरन्तर ( चरन्ती ) बहने वाले ( अम्भ्यम् ) जल वा प्रलय आपके सामर्थ्य को ( प्रविमन्ति ) परिमाण कर सकते और ( ये ) जो ( अम्भ्यम् ) वायु के वेग हैं वे भी आपकी मत्ता का परिमाण ( न ) नहीं कर सकते इसी प्रकार और भी सब पदार्थ आपकी ( अम्भ्यम् ) मत्ता का निर्वेध भी नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

भाषार्थ—ईश्वर के अत्यन्त सामर्थ्य होने से उनका परिमाण वा उसकी बराबरी कोई कर सकता है । ये सब लोक चलते हैं परन्तु लोकों के चलने से उनमें व्याप्त नहीं । जो कि जो सब जगत् पूरी है वह कभी चलेगा ? इस ईश्वर की उपासना किसी जीव का पूर्ण धर्माधिकार राज्य वा सुख कभी नहीं हो सकता । ईश्वर का प्रेम वा विनाश रहित परमेश्वर की सदा उपासना करने की योग्य है ॥ ६ ॥

अब अगले मन्त्र में वायु और सविता के गुण प्रकाशित करते हैं—

अबुधे गजा वरुणो वनस्याध्वं मृणं ददते पूतदक्षः ।

नीचीनाः स्थुर्गन्ताः कुभ्र एषः । अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हम लोग ( अमम् ) प्रखण्ड राज्य को ( पतयन्तः ) इश्वर-उधर बलायमान होते हुए ( आपुः ) दे लांकलोकाल्दार ( न ) नहीं ( आपुः ) व्याप्त होने हैं और न ( वयः ) पक्षी भी ( न ) नहीं ( सह ) जल को ( न ) नहीं ( मन्यु ) जो कि दुष्टों पर काध है उनको भी ( न ) नहीं व्याप्त होते हैं ( न ) नहीं वे ( अनिमिषम् ) निरन्तर ( चरन्ती ) बहने वाले ( अम्भ्यम् ) जल वा प्रलय आपके सामर्थ्य को ( प्रविमन्ति ) परिमाण कर सकते और ( ये ) जो ( अम्भ्यम् ) वायु के वेग हैं वे भी आपकी मत्ता का परिमाण ( न ) नहीं कर सकते इसी प्रकार और भी सब पदार्थ आपकी ( अम्भ्यम् ) मत्ता का निर्वेध भी नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हम मनुष्य । हम लोग जिस अनादि स्वरूप, सदा अमर रहने वा जो हम सब लोगों के किये हुए पाप और पुण्य के अनुसार यथायोग्य सुख-दुःख फल देने वाले अमर्त्येश्वर देव को निश्चय करते और जिसकी न्याययुक्त व्यवस्था से पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं हम लोग भी उसी को जानो किन्तु इससे अन्य दूसरा कोई उक्त



उस पर (स्वयम्) अपनी किरणों को (बली) छोड़ता है जिसकी (नीचीमाः) नीचे की गिरनी हुई (केतवः) किरणों (एवाप्) इस सत्ता के पदार्थों (उपरि) पर (इष्टु) ठहरती हैं (अन्तरिक्ष) जो उनके बीच में जल और (बुध्म) मेघादि पदार्थ (स्युः) हैं और जो (केतवः) किरणों वा प्रज्ञान (अस्मे) हम लोगो से (निहिताः) स्थिर (स्युः) होते हैं उनको यथावत् जानो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जिससे यह सूर्यरूप के न होने से अन्तरिक्ष का प्रकाश नहीं कर सकता इससे जो ऊपरली वा निचली किरणें हैं वे ही मेघ की निमित्त हैं जो उनमें जल के परमाणु रहते हैं वे बलि सूक्ष्मता के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते इसी प्रकार वायु धूमिल और पृथिवी आदि के भी अतिसूक्ष्म अवयव अन्तरिक्ष में रहते तो अवश्य हैं परन्तु वे भी दृष्टिगोचर नहीं होते ॥ ७ ॥

अब अगले मन्त्र में वरुण शब्द से आत्मा और वायु के गुणों का प्रकाश करते हैं—

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थासन्वेतवा उ ।

अपदे पादा मतिधातवेऽकस्तापवक्ता हृदयाविध्वित् ॥ ८ ॥

पदार्थ—(चित्) जैसे (अपवक्ता) मिथ्यावादी, छली, दुष्ट स्वभावयुक्त पराये पदार्थ को लेने और (हृदयविध्वित्) अन्याय से परपीड़ा करनेवाले शत्रु को दुष्ट बन्धनों से बंध में रखने हैं वैसे जो (वरुण, राजा) प्रतिश्रेष्ठ और प्रकाशमान परमेश्वर वा श्रेष्ठता और प्रकाश का हेतु वायु (सूर्याय) सूर्य के (अन्वेतवः) गम-नागमन के लिए (उरुम्) विस्तारयुक्त (पन्थाय) मार्ग को (चकार) सिद्ध करते (उत) और (अपदे) जिसके कुछ भी बाधुप बिह्व नहीं है उस अन्तरिक्ष में (मतिधातवे) धारण कराने के लिए सूर्य के (पादा) जिनसे जाना और जाना बने उन गमन और आगमन गुणों को (अक) सिद्ध करते हैं (उ) और जो परमात्मा सब का धर्ता (हि) और वायु इस काम के मित्र करने का हेतु है उसकी सब मनुष्य उपासना और प्राण का उपयोग क्यों न करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने निश्चय के साथ सब से बड़े सूर्यलोक के लिए बड़ी-सी कक्षा अर्थात् उसके घूमने का मार्ग बनाया है, जो इसको वायुरूपी ईधन से प्रदीप्त करता और सब लोक अन्तरिक्ष में अपनी-अपनी परिधिभूत है, किसी लोक का किसी लोकान्तर के साथ सङ्ग नहीं है किन्तु सब अन्तरिक्ष में ठहरे हुए अपनी-अपनी परिधि पर चारों ओर घूमा करने है और जो आपस में ईश्वर और वायु के आकर्षण और धारण-शक्ति से अपनी-अपनी परिधि को छोड़कर इधर-उधर चलने को समर्थ नहीं हो सकते तथा परमेश्वर और वायु के बिना अन्य कोई भी इनका धारण करने वाला नहीं है। जैसे परमेश्वर मिथ्यावादी, अधर्म करनेवाले से पूषक है वैसे प्राण भी हृदय के विदीर्ण करनेवाले रोग से अलग है, उसकी उपासना वा कार्यों में योजना सब मनुष्य क्यों न करें ॥ ८ ॥

अब जो राजा और प्रजा के मनुष्य हैं वे किस प्रकार के हों

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शतं तै राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।

बाधस्व दूरे निर्रति पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्ष्यस्त ॥ ९ ॥

पदार्थ—(राजन्) हे प्रकाशमान प्रजाध्यक्ष प्रजाजन वा जिस (भिषज) सर्वरोग निवारण करनेवाले (तै) आपकी (शतम्) असंख्यात श्रेष्ठता और (सहस्रम्) असंख्यात (गभीरा) गहरी (उर्वी) विस्तारयुक्त भूमि है उस (निष्-तिम्) भूमि की (त्वम्) आप (सुमति) उत्तम बुद्धिमान् होकर रक्षा कर, जो दुष्ट स्वभावयुक्त प्राणी के (प्रमुमुक्षि) दुष्ट कर्मों को छुड़ावे और जो (पराचैः) धर्म से अलग होने वाले ने (कृतम्) किया हुआ (एव) पाप है उसको (अस्तु) हम लोगो से (दूरे) दूर रखिए और उन दुष्टों को उनके कर्म के अनुकूल फल देकर आप (बाधस्व) उनकी ताड़ना और हम लोगो के दोषों को भी निवारण किया कीजिए ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि जो सभाध्यक्ष और प्रजा के उत्तम मनुष्य पाप वा सर्वरोग निवारण और पृथिवी के धारण करने, अत्यन्त बुद्धि, बल देकर दुष्टों को दण्ड दिलाने वाले होते हैं वे ही सेवा के योग्य हैं और यह भी जानना कि किसी का किया हुआ पाप भाग के बिना निवृत्त नहीं होता और इसके निवारण के लिए कुछ परमेश्वर की प्रार्थना वा अपना पुण्यार्थ करना भी योग्य नहीं है किन्तु यह तो है जो कर्म जीव वर्तमान में करना वा करेगा उसकी निवृत्ति के लिए तो परमेश्वर की प्रार्थना वा उपदेश भी होता है ॥ ९ ॥

जो लोक अन्तरिक्ष में बिछाई पड़ते हैं वे किस के ऊपर वा किसने धारण किये हैं

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अमी य अक्ष्ण निहितास उच्चा नक्तं ददश्रे कुहं चिद्विषयुः ।

अदृग्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशचन्द्रमा नक्तमेति ॥ १० ॥

पदार्थ—हम पूछते हैं कि ये (अमी) अत्यन्त और अप्रत्यक्ष (अक्षः) सूर्यचन्द्रतारादिक लक्षणलोक किसने (वरुणा) ऊपर को (निहितास) यथायोग्य अपनी-अपनी कक्षा में ठहराये हैं क्यों ये (नक्तम्) रात्रि में (बहुम्) दीप्त पड़ते हैं और (विचा) दिन में (कुहं) कहाँ (ईयुः) जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर—जो (वरुणस्य) परमेश्वर वा सूर्य के (अदृग्धानि) हिमालय (व्रतानि) निधन वा कर्म हैं जिन से ये ऊपर ठहरे हैं (नक्तम्) रात्रि में (विचाकशत्) प्रकाश

प्रकाश प्रकार प्रकाशमान होते हैं वे कहीं नहीं जाते न आते हैं किन्तु आकाश के बीच में रहते हैं (अक्षः) चन्द्र आदि लोक (एति) अपनी-अपनी दृष्टि के सामने आते और दिन में सूर्य के प्रकाश वा किसी लोक की छाड़ से नहीं दीखते हैं वे प्रश्नों के उत्तर हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है तथा इस मन्त्र के पहले भाग से प्रश्न और पिछले भाग से उनका उत्तर जानना चाहिए कि जब कोई किसी में पूछे कि ये लक्षणलोक अर्थात् तारागण किसने बनाये और किसने धारण किये हैं और रात्रि में दीखने तथा दिन में कहीं जाते हैं ? इनके उत्तर ये हैं कि ये सब ईश्वर ने बनाये और धारण किये हैं इनमें आप ही प्रकाश नहीं किन्तु सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशमान हात है और ये कहीं नहीं जाते किन्तु उड़े हुए दीखते नहीं और रात्रि में सूर्य की किरणों से प्रकाशमान होकर दीखते हैं ये सब धन्यवाद देने योग्य ईश्वर के ही कर्म है ऐसा सब सज्जनों को जानना चाहिए ॥ १० ॥

फिर वह वरुण कंसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

तत्त्वां यामि ब्रह्मणा बन्दमानस्तदा शान्ते यजमानो हविभिः ।

अहंङ्मानो वरुणेह बोध्युर्हंस मा न आयुः प्र मौषीः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (उपशान) सर्वथा प्रशमनीय (वरुण) जगदाश्वर ! जिस (त्वा) आपका आश्रय लेके (यजमान) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ करने वाला विद्वान् (हविभिः) होम आदि साधनों से (तत्) अत्यन्त सुख की (आशास्ते) आशा करता है उन आप को (ब्रह्मणा) वेद से स्मरण और अभिवादन तथा (अहंङ्मानः) आपका अनादर अर्थात् अपमान नहीं करता हुआ मैं (यामि) आपको प्राप्त होता हूँ आप कृपा करके मुझे (इह) इस सत्ता में (बोधि) बोधयुक्त कीजिए और (न) हमारी (आयुः) उमर (वा, प्रमोषीः) मत व्यर्थ खोइए अर्थात् अति शीघ्र मेरे आत्मा को प्रकाशित कीजिए ॥ १ ॥ (तत्) सुख की इच्छा करता हुआ (यजमान) तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला जिस (उपशान) अत्यन्त प्रशमनीय (वरुण) सूर्य को (आशास्ते) चाहता है (त्वा) उस सूर्य को (ब्रह्मणा) वेदोक्त क्रियाकुशलता से (बन्धमान) स्मरण करता हुआ (अहंङ्मानः) किन्तु उसके गुणों को न भूलता और (इह) इस सत्ता में (तत्) उक्त सुख की इच्छा करता हुआ मैं (यामि) प्राप्त होता हूँ कि जिस से यह (उपशान) अत्यन्त प्रशमनीय सूर्य हमको (बोधि) विदित होकर (नः) हम लोगो की (आयुः) उमर (वा, प्रमोषी) न नष्ट करे अर्थात् अच्छे प्रकार बढ़ावे ॥ २ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को वेदोक्त रीति से परमेश्वर और सूर्य को जानकर सुखों को प्राप्त होना चाहिए और किसी मनुष्य को परमेश्वर वा सूर्यविद्या का अनादर न करना चाहिए सर्वदा ईश्वर की आज्ञा का पालन और उसके रचे हुए जो सूर्यादिक पदार्थ हैं उन के गुणों को जानकर उनसे उपकार लेके अपनी उमर निरन्तर बढ़ानी चाहिए ॥ ११ ॥

तदिदं तद्विवा महामाहुस्तदयं केतौ हृद आ वि चष्टे ।

शुनः शेषो यमहृद्गृभीतः सो अस्माज्जा वरुणो मुमोक्षु ॥ १२ ॥

पदार्थ—विद्वान् लोग (नक्तम्) रात (विवा) दिन जिस ज्ञान का (आहु) उपदेश करते हैं (तत्) उस और जो (महाम्) विद्याधन की इच्छा करने वाले मेरे लिए (हृद्) मन के साथ आत्मा के बीच में (केतः) उत्तम बोध (आविचष्टे) सब प्रकार से सत्य प्रकाशित हाता है (तद्वि) उसी वेद बोध अर्थात् विज्ञान को मैं मानता, कहता और करता हूँ (यम्) जिसको (शुनः शेषः) अत्यन्त ज्ञान वाले विद्याव्यवहार के लिए प्राप्त और परमेश्वर वा सूर्य का (अहंङ्) उपदेश करते हैं जिस से (वरुण) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान परमेश्वर हमारी उपासना को प्राप्त होकर (अस्मान्) हम पुण्यार्थी धर्मात्माओं को पाप और दुखों से (मुमोक्षु) छुड़ावे और उक्त सूर्य भी अच्छे प्रकार जाना और त्रियाकुशलता से युक्त किया हुआ बोध (महाम्) विद्याधन की इच्छा करने वाले मुझ को प्राप्त होता है (सः) हम लोगो को योग्य है कि उस ईश्वर की उपासना और सूर्य का उपयोग यथावत् किया करे ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को इस प्रकार उपदेश करना तथा मानना चाहिए कि विद्वान्, वेद और ईश्वर हमारे लिए जिस ज्ञान का उप-देश करते हैं तथा हम जो अपनी शुद्ध बुद्धि से निश्चय करते हैं वही मुझ को और हे मनुष्यो ! तुम सब लोगों को स्वीकार करके पाप और अधर्म करने से दूर रक्खा करे ॥ १२ ॥

शुनः शेषो अहृद्गृभीतस्त्रिष्वदित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।

अर्वेन राजा वरुणः समुज्याद्विद्वान् अर्द्धो वि मुमोक्षु पाशान् ॥ १३ ॥

पदार्थ—जैसे (शुनः शेषः) उक्त गुणवाला विद्वान् (त्रिषु) कर्म, उपासना और ज्ञान में (आविष्यम्) धर्माधीन परमेश्वर का (अहंङ्) आह्वान करता है वह हम लोगो से (गृभीतः) स्वीकार किया हुआ उक्त तीनों कर्म, उपासना और ज्ञान को प्रकाशित करता है और जो (द्रुपदेषु) क्रियाकुशलता की सिद्धि के लिए विमान आदि यानों के खम्भों में (बद्ध) निधन से युक्त किया हुआ वायु ग्रहण किया है वैसे वह लोगों को भी ग्रहण करना चाहिए जैसे-जैसे गुणवाले पदार्थों को (अवबध्) अति प्रशमनीय (वरुण) अत्यन्त श्रेष्ठ (राजा) और प्रकाशमान परमेश्वर (अवबध्मयात्) पुण्य-पुण्य बनाकर सिद्ध करे वह हम लोगो को भी वैसे ही गुण-वाले कामों में संयुक्त करे। हे भगवन् परमेश्वर ! आप हमारे (पाशान्) बन्धनों को (विमुक्षु) बार-बार छुड़ाइए। इसी प्रकार हम लोगो की क्रियाकुशलता

में संयुक्त किये हुए प्राण आदि पदार्थ (पाशान्) सकल वरिष्ठस्त्री बन्धनो को (विमुक्तोक्तु) बार-बार छुड़वा देवे वा देते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में भी मुक्तोपमा और श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर ने जिस-जिस गुण वाले जो-जो पदार्थ बनाये हैं उन-उन पदार्थों के गुणों की प्रभावत् जानकर इन-इन को कर्म, उपासना और ज्ञान में नियुक्त करे। जैसे परमेश्वर न्याय्य प्रथात् न्याययुक्त कर्म करता है वैसे ही हम लोगों को भी कर्म नियम के साथ नियुक्त कर जो बन्धनो के करनेवाले पापारम्भक कर्म हैं उनको दूर से ही छोड़कर पुण्यरूप कर्मों का सदा सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥

अथ ते हेच्छो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिर्मिमाहे हविर्भिः ।

क्षयंअस्मभ्यमसुर प्रचेता राजकेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ १४ ॥

पदार्थ—ह (राजन्) प्रकाशमान (प्रचेत) अत्युत्तम विज्ञान (असुर) प्राणों से रमने (वरुण) अत्यन्त प्रशंसनीय (अस्मभ्यम्) हम को विज्ञान देनेवाले भगवन् जगदीश्वर । जिसलिए हम लोगों के (कृतानि) किये हुए (एनांसि) पापों को (क्षयम्) विनाश करने हुए (अवशिष्टम्) विज्ञान प्रादि दान से उनके फलों को शिथिल अच्छे प्रकार करते हैं इसलिए हम लोग (नमोभि) नमस्कार वा (यज्ञेभि) कर्म, उपासना, ज्ञान और (हविर्भि) होम करने योग्य अच्छे-अच्छे पदार्थों से (ते) आपका (हेछ) निरादर (अव) न कभी (मिमाहे) करना जानने और मुख्य प्राण की भी बिधा को चाहते हैं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जिन मनुष्यों ने परमेश्वर के रचे हुए समार में पदार्थों के प्रकट किये हुए बोध से, किये हुए पाप कर्मों को फलों से शिथिल कर दिया वैसे अनुष्ठान करें। जैसे भ्रजानी पुरुष को पापफल दुःखी करते हैं वैसे भ्रजानी पुरुष को दुःख नहीं दे सकते ॥ १४ ॥

किर भी अगले मन्त्र में वरुण सब हो का प्रकाश किया है—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

अथा वयमादित्य व्रते तवानागमो अदितये म्याम ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (वरुण) स्वीकार करने योग्य ईश्वर ! आप (अस्मत्) हम लोगों से (अवमम्) निकृष्ट (मध्यमम्) मध्यम प्रथात् निकृष्ट में कुछ विषय (उत्) और (उदुत्तमम्) अति दृढ अत्यन्त दुःख देने वाले (पाशम्) बन्धन को (अवध-वाध) अच्छे प्रकार नष्ट कीजिए (अथ) इसके अनन्तर हे (आदित्य) विनाश-रहित जगदीश्वर ! (तव) उपदेश करने वाले सब के गुरु आपके (व्रते) मत्स्याचरण कपी व्रत को करके (अनागम) निरपगधी होके हम लोग (अदितये) अत्यन्त प्रथात् विनाशरहित सुख के लिए (म्याम) नियत होवें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो ईश्वर की आज्ञा को यथावत् नित्य पालन करते हैं वे ही पवित्र और सब दुःख बन्धनो में अलग होकर सुखों का निरन्तर प्राप्ति होते हैं ॥ १५ ॥

तेईसव सूक्त के कहे हुए वायु प्रादि अर्थों के अनुकूल प्रजापति प्रादि अर्थों के कहने से हम जीवीगर्भ सूक्त की उक्त सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

प्रथमाष्टक के प्रथमाध्याय में यह पञ्चहर्ष वर्ण तथा प्रथम मण्डल के षष्ठानुवाक में जीवीगर्भ सूक्त समाप्त हुआ ॥ २४ ॥



अथैकविंशत्पुत्रस्य पञ्चविंशस्य सूक्तस्याजीर्गसि शुन न्ये ऋषिः । वरुणो वेचता । गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

अब पञ्चीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहले मन्त्र में परमेश्वर ने हृष्टान्त के साथ अपनी प्रार्थना का प्रकाश किया है—

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि यच्चिद्यवि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (देव) सुख देने वाले (वरुण) उत्तमो-मै-उत्तम जगदीश्वर ! आप (यथा) जैसे भ्रजान से किसी राजा वा मनुष्य के (विश) प्रजा वा सन्तान प्रादि (यच्चि द्यवि) प्रतिदिन अपराध करते हैं किन्हीं कामों को नष्ट कर देते हैं वह उन पर न्याययुक्त वण्ड और करुणा करता है वैसे ही हम लोग (ते) आपका (यत्) जो (व्रतम्) सत्य आचरण प्रादि नियम हैं (हि) उन को कदाचित् (प्रमिणीवसि) भ्रजानपन से छोड़ देते हैं उसका यथायोग्य न्याय (चित्) और हमारे लिए करुणा करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे भगवन् जगदीश्वर ! जैसे पिता प्रादि विद्वान् और राजा छोटे-छोटे अल्पबुद्धि, उन्मत्त बालकों पर करुणा, न्याय और शिक्षा करते हैं वैसे ही आप भी प्रतिदिन हमारे ऊपर न्याय, करुणा और शिक्षा करने वाले हैं ॥ १ ॥

किर भी अगले मन्त्रों में उक्त अर्थ ही का प्रकाश किया है—

मा नो वधाय हव्ये जिहीहानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥

पदार्थ—हे वरुण जगदीश्वर ! आप जो (जिहीहानस्य) भ्रजान से हमारा अनादर करे उसके (हव्ये) मारने के लिए (न) हम लोगों को कभी (मा रीरध)

प्रेरित और प्रवृत्त मत कीजिए, इसी प्रकार (हव्यमव्य) जो हमारे सामने लज्जित हो रहा है उस पर (मन्यवे) कोच करने की हम लोगों को (मा रीरधः) कसी मत प्रवृत्त कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! जो अल्पबुद्धि भ्रजानी जन अपनी भ्रजानता से तुम्हारा अपराध करे तुम उसको वण्ड ही देने को मत प्रवृत्त होवो और वैसे ही जो अपराध करके लज्जित हो अर्थात् तुम से क्षमा करवावे तो उस पर कोच मत करो किन्तु उसका अपराध सहो ॥ २ ॥

वि मृच्छीकायं ते मनो रथीरश्वं न संदितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (वरुण) जगदीश्वर ! हम लोग (रथीः) रथवाले के (संदिताम्) रथ में जोड़ हुए (अवमम्) घोड़े के (न) समान (मृच्छीकाय) उत्तम सुख के लिए (ते) आपके सम्बन्ध में (गीर्भिः) पवित्र वाशियों द्वारा (मनः) ज्ञान (विमोहहि) बाँधते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे भगवन् जगदीश्वर ! जैसे रथ के स्वामी का अश्व घोड़े को चारों ओर से बाँधता है वैसे ही हम लोग आपका जो वेदोक्त ज्ञान है उसको अपनी बुद्धि के अनुसार मन में दृढ़ करते हैं ॥ ३ ॥

किर भी उसी अर्थ को हृष्टान्त से अगले मन्त्र में सिद्ध किया है—

परा ऽ मे विमन्यवः पतन्ति वस्य शृष्टये । वयो न वसतीरुषं ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जैसे (वय) पक्षी (वसतीः) अपने रहने के स्थानों को छोड़-छोड़ दूर देश को (उपपतन्ति) उड़ जाते हैं (न) वैसे (मे) मेरे निवास स्थान से (वस्य शृष्टये) अत्यन्त घन होने के लिए (विमन्यवः) अनेक प्रकार के कोच करने वाले पुष्ट जन (वरापतन्ति, हि) दूर ही चले जावें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे उड़ाने हुए पक्षी दूर जाके बमते हैं वैसे ही कोची जीव मुझ से दूर बसे और मैं भी उनसे दूर बसूँ जिससे हमारा उलटा स्वभाव और धन की हानि कभी न होवे ॥ ४ ॥

किर वह वरुण कैंता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुण कगमहे । मृच्छीकायोरुचसंसम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हम लोग (कदा) कब (मृच्छीकाय) अत्यन्त सुख के लिए (उरुचसंसम्) जिसको बंद अनेक प्रकार से बरान करते और (नरम्) सब को सन्मार्ग पर चलाने वाले उस (वरुणम्) परमेश्वर को सेवन करके (क्षत्रश्रियम्) चक्रवर्ति राज्य की लक्ष्मी को (कगमहे) अच्छे प्रकार सिद्ध करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके सब सुख और चक्रवर्ति राज्य न्याय के साथ सदा सेवन करने चाहिए ॥ ५ ॥

यह सोलहवाँ वर्ण पूरा हुआ ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य और वायु का प्रकाश किया है—

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

पदार्थ—य (प्रयुच्छत) आनन्द करते हुए (वेनन्ता) बाजा बजाने वाली के (न) समान सूर्य और वायु (धृतव्रताय) जिसने सत्य भावण प्रादि नियम वा क्रियाभय यज्ञ धारण किया है उस (दाशुषे) उत्तम दान प्रादि धर्म करने वाले पुरुष के लिए (तत्) जो उसका होम में चढ़ाया हुआ पदार्थ वा विमान प्रादि रथों की रचना (दात्) उमी को (समानम्) बराबर (आशाते) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रति हर्ष करने वाले बाजे बजाने में प्रति कुशल हो पुरुष बाजों को लेकर चलाकर बजाने हैं वैसे ही सिद्ध किये विद्या के धारण करने वाले मनुष्य से होमे हुए पदार्थों को सूर्य और वायु बालन करके धारण करते हैं ॥ ६ ॥

उक्त विद्या को यथावत् कीन जानता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥

पदार्थ—(यः) जो (समुद्रियः) समुद्र प्रथात् अन्तरिक्ष वा जलमय प्रसिद्ध समुद्र में अपने पुरुषार्थ से युक्त विद्वान् मनुष्य (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्ग से (पतताम्) जाने-पाने वाले (वीनाम्) विमान सब लोक वा पक्षियों के और समुद्र में जाने वाली (नावः) नौकाओं के (पद्म्) रचन, चालन, ज्ञान और मार्ग की (वेद) जानता है वह शिल्पविद्या की सिद्धि के करने की समर्थ हो सकता है अन्य नहीं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—ईश्वर ने वेदों में अन्तरिक्ष, भू और समुद्र में जाने-पाने वाले मानों की विद्या का उपदेश किया है उनको सिद्ध करने को जो पूर्ण विद्या, शिक्षा और हस्तक्रियाओं के कलाकीशल में कुशल मनुष्य होता है वही उन्हें बनाने में समर्थ हो सकता है ॥ ७ ॥

किर वह क्या जानता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥

पदार्थ—(यः) जो (धृतव्रतः) सत्य नियम विद्या और बल को धारण

करने वाला विद्वान् मनुष्य ( ब्रह्मात्मन् ) जिन में माना प्रकार के संसारी पदार्थ उत्पन्न होते हैं ( द्रव्य ) बारह ( आत्मः ) महीनों और जो ( उपजावले ) उन में अधिक मास अर्थात् तेरहवाँ महीना उत्पन्न होता है उसको ( वेद ) जानता है वह काल के सब धर्मधर्मों को जानकर उपकार करने वाला होता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे परमेश्वर सर्वज्ञ होने से सब लोक वा काल की व्यवस्था को जानता है वैसे मनुष्यों को सब लोक तथा काल के महिमा की व्यवस्था को जानकर, एक क्षण भी धर्म नहीं खोना चाहिए ॥ ८ ॥

**वेद वातस्य वसुनिमुरोर्गन्धस्य बृहत्तः । वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥**

पदार्थ—जो मनुष्य ( ब्रह्मन् ) सब जगह जाने वाले ( उरो ) अत्यन्त गुणवान् ( बृहत्तः ) बड़े, अत्यन्त बलशाली ( वातस्य ) वायु के ( वसुनिम् ) मार्ग को ( वेद ) जानता है ( ये ) और जो पदार्थ इस में ( अध्यासते ) इस वायु के आधार से स्थित हैं उनके भी ( वसुनिम् ) मार्ग को ( वेद ) जाने वह भूगोल-संगोल के गुणों का जानने वाला होता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों में परिमाण वा गुणों से बड़ा, सब सृष्टि वाले पदार्थों का धारण करने वाला वायु है उसका कारण अर्थात् उत्पत्ति और जाने-माने के मार्ग और जो उस में स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ उद्धरे हैं उनको भी यथावन्ता से जान इनसे अनेक कार्य सिद्ध कर-करके सब प्रयोजनों को सिद्ध कर लेता है वह विद्वानों में गणनीय विद्वान् होता है ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस वायु को ठीक-ठीक जानता है वह किसको प्राप्त होता है  
इस विषय का उपदेश अगले अर्थों में किया है—

**नि वसाद् धृतव्रतो वरुणः पस्त्याश्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥**

पदार्थ—जैसे ( वसतः ) सत्य नियम पालने ( सुक्रतुः ) अच्छे-अच्छे कर्म वा उत्तम बुद्धियुक्त ( वरुणः ) अति श्रेष्ठ सभा, सेना का स्वामी ( पस्त्याशु ) अत्युत्तम घर आदि पदार्थों से युक्त प्रजाधो में ( साम्राज्याय ) चक्रवर्ती राज्य को करने की योग्यता से युक्त मनुष्य ( आनिवसाद् ) अच्छे प्रकार स्थित होता है वैसे ही हम लोगों को भी होना चाहिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परमेश्वर सब प्राणियों का उत्तम राजा है वैसे जो ईश्वर की आज्ञा में वर्तमान धार्मिक-शरीर और बुद्धि, बल-युक्त मनुष्य है वे ही उत्तम राज्य करने योग्य होने हैं ॥ १० ॥

**अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वा अभि पर्यति ।**

**कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥**

पदार्थ—जिस कारण जो ( चिकित्वा ) सब को चेताने वाला धार्मिक, सकल विद्याधो को जानने, व्याप करने वाला मनुष्य ( या ) जो ( विश्वानि ) सब ( कृतानि ) अपने किये हुए ( च ) और ( कर्त्वा ) जो धामे करने योग्य कर्मों और ( अद्भुतानि ) आश्चर्यरूप वस्तुओं को ( अभिपर्यति ) सब प्रकार से देखता है ( अतः ) इसी कारण वह न्यायाधीश होने को समर्थ होता है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जिस प्रकार ईश्वर सब जगह व्याप्त और सर्वशक्तिमान् होने से सृष्टि रचनादि कृपी कर्म और जीवों के तीनों कालों के कर्मों को जानकर इनको उन-उन कर्मों के अनुसार फल देने को योग्य है, इसी प्रकार जो विद्वान् मनुष्य पहले हो गये उनके कर्मों और धामे अनुष्ठान करने योग्य कर्मों के करने में युक्त होता है वही सब को देखता हुआ सब के उपकार करने वाले उत्तम-से-उत्तम कर्मों को कर सब का न्याय करने को योग्य होता है ॥ ११ ॥

**म नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।**

**प्र ण आयूषि तारिषत् ॥ १२ ॥**

पदार्थ—जैसे ( आदित्यः ) अविनाशी परमेश्वर, प्राण वा सूर्य ( विश्वाहा ) सब दिन ( न ) हम लोगों को ( सुपथा ) अच्छे मार्ग में चलाने और ( नः ) हमारी ( आयूषि ) उमर ( तारिषत् ) सुख के साथ परिपूर्ण ( करत् ) करते हैं वैसे ही ( सुक्रतुः ) श्रेष्ठ कर्म और उत्तम-उत्तम जिससे ज्ञान हो वह ( आदित्यः ) विद्या धर्म प्रकाशित न्यायकारी मनुष्य ( विश्वाहा ) सब दिनों में ( नः ) हम लोगों को ( सुपथा ) अच्छे मार्ग में ( करत् ) करें और ( नः ) हम लोगों की ( आयूषि ) उमरों को ( तारिषत् ) सुख से परिपूर्ण करें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । जो मनुष्य ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियता आदि से प्रायु बढ़ाकर धर्म मार्ग में विचरते हैं उन्हीं को जगदीश्वर अनुगृहीत कर आनन्द युक्त करता है । जैसे प्राण और सूर्य अपने बल और तेज से अन्ध-नीचे स्थानों को प्रकाशित कर प्राणियों को सुख के मार्ग से युक्त करके उचित समय पर दिन-रात आदि सब कालविभागों को अच्छे प्रकार सिद्ध करते हैं वैसे ही अपने आत्मा, शरीर और सेना के बल से न्यायाधीश मनुष्य धर्मयुक्त छोटे, मध्यम और बड़े कर्मों के प्रचार से धर्मयुक्त को छोड़ा उत्तम और नीच मनुष्यों का विभाग सदा किया करे ॥ १२ ॥

किर वह वचन किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले अर्थों में किया है—

**विभ्रवद्रापि हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्भिजम् ।**

**परि स्पशो नि चैदरे ॥ १३ ॥**

पदार्थ—जैसे इस वायु वा सूर्य के तेज में ( स्पशः ) स्पर्शवान् अर्थात्

स्थूल, सूक्ष्म सब पदार्थ ( निर्भिजम् ) स्थिर होते हैं और वे दोनों ( वचनः ) वायु और सूर्य ( निर्भिजम् ) बृहत् ( हिरण्यम् ) धन्यादिक्य पदार्थों को ( विभ्रत् ) धारण करते हुए ( व्रपि ) बल, तेज और निद्रा को ( परिबस्त ) सब प्रकार से प्राप्त कर जीवों के ज्ञान को ठीप लेते हैं वैसे ( निर्भिजम् ) बृहत् ( हिरण्यम् ) ज्योतिर्भय प्रकाशयुक्त को ( विभ्रत् ) धारण करता हुआ ( व्रपिम् ) निद्रादि के हेतु रात्रि को ( परिबस्त ) निवारण कर अपने तेज से सब को ठीप लेता है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे वायु बल का करनेहारा होने से सब अग्नि आदि स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों को धरके प्रकाश में गमन और घागमन करता हुआ चलता और जैसे सूर्यलोक भी स्वयं प्रकाशरूप होने से रात्रि को निवारण कर अपने प्रकाश से सब को प्रकाशता है वैसे विद्वान् लोग भी विद्या और उत्तम शिक्षा के बल से सब मनुष्यों को धारण कर धर्म में बल धन्य सब मनुष्यों को चलाया करें ॥ १३ ॥

**न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्माणो जनानाम् ।**

**न देवमभिमतयः ॥ १४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम सब लोग ( जनानाम् ) विद्वान्, धार्मिक वा मनुष्य आदि प्राणियों से ( दिप्सवः ) झूठे अभिमान और झूठे व्यवहार को चाहने वाले क्रूरजन ( यम् ) जिस ( देवम् ) दिव्य गुणवाले वाले परमेश्वर वा विद्वान् को ( न, दिप्सन्ति ) विरोध से न चाहें ( द्रुह्माणः ) द्रोह करने वाले जिस को द्रोह से ( न ) न चाहें तथा जिसके साथ ( अभिमतयः ) अभिमानी पुरुष ( न ) अभिमान से न हों उन उपासना करने योग्य परमेश्वर वा विद्वानों को जानो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जो हिंसक, परद्रोही, अभिमानयुक्त जन हैं वे अज्ञानपन से परमेश्वर वा विद्वानों के गुणों को जानकर उनसे उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकते इसलिए सब मनुष्यों को योग्य है कि उनके गुण, कर्म और स्वभाव का सर्वप्रमाण करें ॥ १४ ॥

**उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥**

पदार्थ—( यः ) जो हमारे ( उदरेषु ) अर्थात् भीतर ( उत ) और बाहर भी ( अस्माभिः ) पूर्ण ( यथा ) प्रशंसा के योग्य कर्मों को ( आचक्रे ) सब प्रकार से करता है जो ( मानुषेषु ) जीवों और जब पदार्थों में सर्वथा कीर्ति को किया करता है सो वरुण, परमात्मा वा विद्वान् सब मनुष्यों को उपासनीय और सेवनीय क्यों न होवे ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जिस सृष्टि करनेवाले अन्तर्यामी जगदीश्वर ने परोपकार वा जीवों को उनके कर्म के अनुसार भोग कराने के लिए सम्पूर्ण जगत् कल्प-कल्प में रचा है जिस की सृष्टि में पदार्थों के बाहर-भीतर चलने वाला वायु सब कर्मों का हेतु है और विद्वान् लोग विद्या का प्रकाश और अविद्या का हनन करनेवाले प्रयत्न कर रहे हैं इसलिए इस परमेश्वर के धन्यवाद के योग्य कर्म सब मनुष्यों को जानने चाहिए ॥ १५ ॥

**परां मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरन् । इच्छन्तीरुचक्षसम् ॥ १६ ॥**

पदार्थ—जैसे ( गव्यूतीः ) अपने स्थानों को ( इच्छन्तीः ) जाने की इच्छा करती हुई ( गावः ) गो आदि पशुजाति के ( न ) समान ( मे ) मेरी ( धीतयः ) कर्म की वृत्तियाँ ( उचक्षसम् ) बहुत विज्ञान वाले मुझ को ( परायन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं वैसे सब कर्त्ताओं को अपने-अपने किये हुए कर्म प्राप्त होते ही हैं ऐसा जानना योग्य है ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा निश्चय करना चाहिए कि जैसे गो आदि पशु अपने-अपने वेग के अनुसार दौड़ते हुए चाहें हुए स्थान को पहुँचकर बक जाते हैं वैसे ही मनुष्य अपनी बुद्धि, बल के अनुसार परमेश्वर, वायु और सूर्य आदि पदार्थों के गुणों को जानकर बक जाते हैं । किसी मनुष्य की बुद्धि वा शरीर का वेग ऐसा नहीं हो सकता कि जिसका अन्त न हो सके जैसे पक्षी अपने-अपने बल के अनुसार आकाश को जाते हुए आकाश का पार कोई भी नहीं पाता इसी प्रकार कोई मनुष्य विद्या विषय के अन्त को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता है ॥ १६ ॥

मनुष्यों को यथायोग्य विद्या किस प्रकार प्राप्त होनी चाहिए इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**सं नु वींश्वावै पुनर्यतो मे मन्वाभृतम् । होतैव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥**

पदार्थ—( यतः ) जिस से हम आचार्य और शिष्य दोनों ( होतैव ) जैसे यज्ञ कराने वाला विद्वान् ( नु ) परस्पर ( क्षदसे ) अविद्या और रोगजन्य दुःखान्धकार विनाश के लिए ( मन्वाभृतम् ) विद्वानों के उपदेश से जो धारण किया जाता है उस यजमान के ( प्रियम् ) प्रियसम्पादन करने के समान ( मन्वा ) मधुर गुण विनिष्ट विज्ञान का ( वींश्वावै ) उपदेश नित्य करें कि उससे ( मे ) हमारी और तुम्हारी ( पुनः ) बार-बार विद्यावृद्धि होवे ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ कराने और करनेवाले प्रीति के साथ मिलकर यज्ञ को सिद्ध कर पूर्ण करते हैं वैसे ही गुरु शिष्य मिलकर सब विद्याओं का प्रकाश करें । सब मनुष्यों को इस बात की चाहना निरन्तर रखनी चाहिए कि जिससे हमारी विद्या की वृद्धि प्रतिदिन होती रहे ॥ १७ ॥

किर जी वे क्या-क्या करें इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

**दर्शसु विश्वदर्शत दर्शं रथमभि समि । एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम ( अभिमतयः ) जित व्यवहारों में उत्तम और



निकुण्ट बानों का सहना होता है उनमें ठहर कर ( विश्ववर्षात् ) जो विद्वानों की ज्ञानदृष्टि से देखने के योग्य परमेश्वर है उसको ( वर्षात् ) बारम्बार देखने ( रथम् ) विमान आदि यानों को ( नु ) भी ( वर्षात् ) पुन पुन देखके सिद्ध करने के लिए ( मे ) मेरी ( गिर ) वाणियों को ( जुषत ) सदा सेवन करो ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जिससे धामा आदि गुणों से युक्त मनुष्यों को यह जानना योग्य है कि प्रश्न और उत्तर के व्यवहार के किये बिना परमेश्वर का जानने और शिल्पविद्या सिद्ध विमान आदि रथा का कभी बनाने को शक्य नहीं और जो उनमें गुण हैं उनके जानने के लिए सदैव प्रयत्न करना चाहिए ॥ १८ ॥

फिर वह कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**इमं मे वरुण श्रुधी त्वमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥**

पदार्थ—हे ( वरुण ) सब से उत्तम विपश्चित् । ( अद्य ) आज ( अवस्यु ) अपनी रथा वा विज्ञान का चाहता हुआ मैं ( त्वाम् ) आपकी ( आ चके ) प्रच्छेद प्रकार प्रशमा करता हूँ । आप ( मे ) मेरी को हुई ( हवम् ) ग्रहण करने योग्य स्तुति को ( श्रुधि ) श्रवण कीजिए तथा मुझ को ( मृळय ) विद्यादान से सुख दीजिए ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जैसे परमात्मा, जो उपासकों द्वारा निश्चय से सत्य भाव और प्रेम के साथ की हुई स्तुतियों को अपने सर्वज्ञपन में यथावत् सुनकर उनके अनुकूल स्तुति करने वालों का सुख दता है वैसे विद्वान लोग भी आत्मिक मनुष्यों की योग्य प्रशंसा को सुन सुखयुक्त किया करें ॥ १९ ॥

फिर वह परमात्मा कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**स्व विश्वस्य मेधिर दिवश्च गमश्च राजनि । म यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥**

पदार्थ—हे ( मेधिर ) अत्यन्त विज्ञानयुक्त वर्गा विद्वन् । ( स्वस् ) आप, जैसे ईश्वर ( दिवश्च ) प्रकाशवान् मय्य आदि ( च ) वा अन्य ( म् ) प्रकाशरहित पृथिवी आदि ( विश्वस्य ) सब नीचा के ( यामनि ) जिस-जिस काल में जीवों का आना-जाना होता है उस-उस में प्रकाशित हो रहें हैं ( स ) वह हमारी स्तुतियों का सुनकर आनन्द देने है वैसे होकर इस राज्य के मध्य में ( राजनि ) प्रकाशित हुआ और हमारी स्तुतियों का ( प्रतिश्रुधि ) सुनिए ॥ २० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परब्रह्म ने इस सभ्य समाज के दा भेद किया है एक प्रकाश वाला मय्य आदि और दूसरा प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक, जो इनकी उत्पत्ति वा विनाश का निर्मित कारण काल है उसमें सदा एकसा रहने वाला परमेश्वर सब प्राणियों के राक्षस से उत्पन्न हुई बातों का भी श्रवण करता है इससे कभी अधर्म के अनुष्ठान की कल्पना भी मनुष्यों की नहीं करनी चाहिए वैसे इस सृष्टिकर्म को जानकर मनुष्यों को ठीक ठीक वर्तना चाहिए ॥ २० ॥

**उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥**

पदार्थ—हे अविद्यान्धकार के नाश करनेवाले जगदीश्वर ! आप ( न ) हम लोगों के ( जीवसे ) बहुत जीने के लिए हमारे ( उरामम् ) श्रेष्ठ ( मध्यमम् ) मध्यम दुःखरूपी ( पाशम् ) बन्धनों को ( उमुमुग्धि ) अश्लेष प्रकार छोड़ा है तथा ( अवाधमानि ) जो हमारे दापक्षी निकुण्ट बन्धन हैं उनका भी ( व्यवच्युत ) विनाश कीजिए ॥ २१ ॥

भाषार्थ—जैसे गार्मिक, परोपकारी विद्वान् होकर ईश्वर की प्रार्थना करते हैं जगदीश्वर उनके सब दुःख बन्धनों को छोड़कर सुखयुक्त करता है वैसे कर्म हम लोगों को क्या न करन चाहिए ॥ २१ ॥

बीबीमर्वे सूक्त में कहे हुए प्रजापति आदि ऋषियों के बीच जो वरुण शब्द है उसके अर्थ को इस पञ्चीसवें सूक्त में कहने में इस सूक्त के अर्थ की सगति पहले सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिए ॥

यह पहिले अष्टक और दूसरे अध्याय में उन्नीसवाँ वर्ग और पहिले अण्डल में

छठे अनुवाक में पञ्चीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

५५

अथास्य वराहस्य षड्विंशस्य सूक्तस्याजीगति शुभ शेष ऋषि । अग्नि-  
वेत्ता । १, ८, ९ आर्षी उणिक् छन्द, ऋषभ स्वर ।

२, ६ निचुद्गायत्री, ३ प्रतिष्ठागायत्री, ४, १० गायत्री,  
५, ७ विराड्गायत्री च छन्द । षड्ज स्वर ॥

अब छब्बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके पहले मन्त्र में यज्ञ कराने और करने वालों के गुण प्रकाशित किये हैं—

**वसिष्ठा नि मियेध्य वज्राण्यूर्जो पते । सेमं नो अश्वर यज ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( ऊर्जम् ) बल पराक्रम और अन्न आदि पदार्थों के ( पते ) पालन करने और कराने वाले तथा ( मियेध्य ) अग्नि द्वारा पदार्थों को फैलाने वाले विद्वन् ( वज्राणि ) वस्त्रों को ( वसिष्ठ ) धारण कर ( म ) वह तू ( हि ) ही ( न ) हम लोगों के ( इमम् ) इस प्रत्यक्ष ( अश्वरम् ) तीन प्रकार के यज्ञ को ( यज ) सिद्ध कर ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । यज्ञ करने वाला विद्वान् हस्तक्रियाओं में बहुत पदार्थों को सिद्ध करने वाले विद्वानों का स्वीकार और उनका सत्कार कर

अनेक कार्यों को सिद्ध कर सुख को प्राप्त करे वा करावे । कोई भी मनुष्य उत्तम विद्वान् पुरुषों के सङ्ग किये बिना कुछ भी व्यवहार वा परमार्थरूपी कार्य को सिद्ध करने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर वह किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः ।**

**अग्ने दिविरमता वचः ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे ( यविष्ठ ) अत्यन्त बल वाले ( अग्ने ) यजमान ! जो ( मन्मभिः ) जिसम पदार्थ जाने जाने हैं उन पुरुषार्थों के साथ वर्तमान ( वरेण्यः ) स्वीकार करने योग्य ( होता ) सुख देने वाला ( नः ) हम लोगों के ( दिविरमता ) जिनसे अत्यन्त प्रकाश होता है उससे प्रसिद्ध ( वचः ) वाणी को ( यज ) सिद्ध करता है उसी का ( सदा ) सब काल में सङ्ग करना चाहिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र में ( यज ) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्या का योग्य है कि मज्जन मनुष्यों के सङ्ग से सकल कामनाओं को सिद्ध करें इसके बिना कोई भी मनुष्य सुखी रहने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ २ ॥

फिर वह किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**आ हि ष्मा सूनवे पितापिथ्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( पिता ) पालन करनेवाला ( सूनवे ) पुत्र के ( सखा ) मित्र ( सख्ये ) मित्र के और ( आपि ) सुख देने वाला विद्वान् ( आपये ) उत्तम गुण व्याप्त होने वाले विद्यार्थी के लिए ( आप्यजति ) अश्लेष प्रकार यत्न करता है । वैसे परस्पर प्रीति के साथ कार्यों को सिद्ध कर ( हि ) निश्चय करके ( म् ) वर्तमान में उपकार के लिए तुम सङ्गत हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अपने लड़कों को सुखसम्पादक उन पर कृपा करनेवाला पिता स्वमित्रों को सुख देने वाला मित्र और विद्यार्थियों को विद्या देने वाला विद्वान् अनुकूल वर्तता है वैसे ही सब मनुष्य सब के लिए अश्लेष प्रकार निरन्तर यत्न करे ऐसा ईश्वर का उपदेश है ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**आ नो वही रिशादमो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यथा ) जैसे ( रिशादस ) दुष्टों के मारने वाले ( वरुण ) सब विद्याओं में श्रेष्ठ ( मित्र ) सब का सुहृद् ( अर्यमा ) न्यायकारी ( मनुष ) सभ्य मनुष्य ( नः ) हम लोगों के ( वही ) सब सुख के देने वाले आसन में बैठने हैं वैसे आप भी बैठिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सभ्यतापूर्वक सभाचतुर मनुष्य सभा में बैठे वैसे ही सब मनुष्यों को सब दिन वर्तना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर वह कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**पूव्ये द्वोतरस्य नो मन्दस्व मुख्यस्य च । इमा उ धु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हे ( पूव्ये ) पूर्व विद्वानों द्वारा बना हुए मित्र ( होत ) यज्ञ करने वा कराने वाले विद्वन् । तू ( नः ) हमारे ( अस्य ) हम ( मुख्यस्य ) मित्रकर्म की ( मन्दस्व ) इच्छा कर ( उ ) निश्चय है कि हम लोगों को ( इमा ) ये जो प्रत्यक्ष ( गिर ) वेदविद्या से सत्कार की हुई वाणी हैं उनको ( श्रुधि ) अश्लेष प्रकार सुन और सुनाया कर ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों से मित्रता रखकर उत्तम शिक्षा और विद्या का पढ़-सुन और विचारके विद्वान् हों ॥ ५ ॥

यह बीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

फिर यज्ञ आदि करने-कराने वाले हम लोगों को क्या करना चाहिए

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**यच्चिद्धि शश्वता तना देवदंवं यजामहे । त्वे इद्व्ययते हविः ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग ( यत् ) जिससे ये ( शश्वता ) अनादि ( तना ) विस्तारयुक्त कारण म ( इत् ) ही उत्पन्न हैं । इससे उन ( देव-देवम् ) विद्वान् विद्वान् और सब पृथिवी आदि दिव्यगुण वाले पदार्थ-पदार्थों को ( वित् ) भी ( यजामहे ) मज्जित अर्थात् सिद्ध करते हैं ( त्वे ) उसमें ( हि ) ही ( हवि ) हवन करने योग्य वस्तु ( हवते ) छाड़त हैं वैसे तुम भी किया करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस संसार में जितने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष पदार्थ हैं वे सब अनादि अति विस्तार वाले कारण से उत्पन्न हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर हम लोगों को परस्पर किस प्रकार वर्तना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**प्रियो नो अस्तु निरपतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।**

**प्रियाः स्वप्रया वयम् ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( स्वगन्ध ) जिन्होंने अग्नि का सुसकारक किया

५५

हे वे हम लोग ( विद्याः ) राजपुरुष को प्रिय हैं जैसे ( होता ) यज्ञ का करने-कराने ( अग्निः ) स्तुति के योग्य भर्मात्मा ( अरेण्यः ) स्वीकार करने योग्य विद्वान् ( विद्वान् ) प्रजा का स्वामी साम्राज्य ( न ) हम को प्रिय है वैसे अन्य मनुष्य भी हों ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे हम लोग मन्त्र के साथ मित्रभाव से वर्तते हैं, और वे सब लोग हम लोगों के साथ मित्रभाव और प्रीति में वर्तते हैं, वैसे आप लोग भी वर्तें ॥ ७ ॥

फिर वे कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्वयं हि वार्यं देवासीं दधिरे च नः । स्वयं मनामहे ॥ ८ ॥

पदार्थ—जैसे ( स्वयं ) उत्तर अग्निपुरुष ( देवाः ) दिव्यगुण वाले विद्वान् ( न ) वा पृथिवी आदि पदार्थ ( न ) हम लोगों के लिए ( वार्यम् ) स्वीकार करने योग्य पदार्थों की ( दधिरे ) धारण करते हैं वैसे हम लोग ( स्वयं ) अग्नि के उत्तम अनुष्ठान युक्त होकर इनसे विद्यासमूह को ( मनामहे ) जानते हैं वैसे हम भी जानें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में सुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर ने इस सत्ता में जितने पदार्थ उत्पन्न किये हैं उनके जानने के लिए विद्याओं का सम्पादन करके कार्यों की सिद्धि करे ॥ ८ ॥

फिर किसलिए उस ईश्वर की प्रार्थना करना और मनुष्यों को परस्पर

कैसे वर्तना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अथा न उभयैषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( अमृत ) अविनाशितस्वरूप जगदीश्वर ! आप की कृपा से जैसे उत्तम गुण, कर्मों के ग्रहण से ( अथ ) अनन्तर ( न ) हम लोग जोकि विद्वान् वा मूर्ख हैं ( उभयैषाम् ) उन दोनों प्रकार के ( मर्त्यानाम् ) मनुष्यों की ( मिथः ) परस्पर सत्ता में ( प्रशस्तयः ) प्रशंसा ( सन्तु ) हो वैसे सब मनुष्यों की हों ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जब तक मनुष्य राग वा द्वेष को छोड़कर परस्पर उपकार के लिए विद्या शिक्षा और पुरुषार्थ से उत्तम-उत्तम कर्म नहीं करते तब तक वे सुखों के सम्पादन करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे। इसलिए सब को योग्य है कि परमेश्वर की आज्ञा में वर्तमान होकर सब का कल्याण करे ॥ ९ ॥

फिर वे कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विश्वेभिर्ग्रे अभिमिरिं यद्भिदं वचः । चनों धाः सहसो यदो ॥ १० ॥

पदार्थ—हे ( यदो ) शिल्पकर्म में चतुर के अपत्य, कार्यरूप अग्नि के उत्पन्न करनेवाले ( यदो ) विद्वान् ! जैसे आप सब सुखों के लिए ( सहस ) अपने बल-स्वरूप से ( विश्वेभिः ) सब ( अग्निभिः ) बिद्युत्, सूर्य और प्रसिद्ध कार्यरूप अग्निगो से ( यद्भिदं ) इस प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष ( वचः ) संसार के व्यवहाररूप यज्ञ और ( यद्भिदं ) हम लोगों से कहा हुआ ( वचः ) विद्यायुक्त प्रशंसा का वाक्य ( वचः ) और खाने, स्वाद लेने, चाटने और बूझने योग्य पदार्थों को ( धाः ) धारण कर चुका हो वैसे तू भी सदा धारण कर ॥ १० ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को निम्नलिखित ज्ञान-कार्य में युक्त करें जो कारणरूप नित्य अग्नि है उससे ईश्वर की रचना में बिजली आदि कार्यरूप पदार्थ सिद्ध होते हैं फिर उनसे जो सब जीवों के अन्न को पचाने वाले अग्नि के समान अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन सब अग्नियों को कारणरूप अग्नि ही धारण करता है। जितने अग्नि के कार्य हैं वे वायु के निमित्त से ही प्रसिद्ध होते हैं उन सब पदार्थों को सत्तारी लोग धारण करते हैं अग्नि और वायु के बिना कभी किसी पदार्थ का धारण नहीं हो सकता, इत्यादि ॥ १० ॥

पहले सूक्त में वरुण के अर्थ के अनुषङ्गी अर्थात् सहायक अग्नि शब्द के इस सूक्त में प्रतिपादन करने से पिछले सूक्त के अर्थ के साथ इस छन्दोमय सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पहले अष्टक के दूसरे अध्याय का इक्कीसवाँ वर्ण तथा पहले अष्टक के छठे अनुवाक का छब्बीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ २६ ॥



अथ अथोवर्णस्य सप्तविंशत्यं सुक्तस्याजीगति शुन सेप ऋषिः । १-१२ अग्निः विश्वेदेवा देवताः । १-१२ गायत्री, १३ त्रिविष्टप छन्दः ।

१-१२ वर्णः, १३ ध्वजः स्वरश्च ॥

अब सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहले मन्त्र में अग्नि का प्रकाश किया है—

अस्वं न त्वा वारवन्तं बन्ध्या अग्निं नभोभिः ।

सञ्जाजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग ( नभोभिः ) नमस्कार, स्तुति और अन्न आदि पदार्थों के साथ ( वारवन्तम् ) उत्तम केशवाले ( अश्वम् ) वेगवान् घोड़े के ( न ) समान ( अध्वराणाम् ) राज्य के पालन, अग्निहोत्र से लेकर शिल्प पर्यन्त यज्ञों में ( सञ्जा-

जन्तम् ) प्रकाशयुक्त ( त्वा ) आप विद्वान् को ( बन्ध्या ) स्तुति करने को प्रवृत्त हुए सेवा करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् स्वविद्या के प्रकाश आदि गुणों से अपने राज्य में अविद्या अन्धकार को निवारण कर प्रकाशित होते हैं वैसे परमेश्वर सर्वज्ञपन आदि से सर्वत्र प्रकाशमान है ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में सन्तान के गुण प्रकाशित किये हैं—

स धा नः सन्तुः शर्वसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।

मीढवाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

पदार्थ—जो ( सन्तुः ) धर्मात्मा पुत्र ( शर्वसा ) अपने पुरुषार्थ, बल आदि गुण से ( पृथुप्रगामा ) अत्यन्त विस्तारयुक्त विमानादि रथों से उत्तम गमन करने तथा ( मीढवान् ) योग्य सुख का सीखने वाला है वह ( नः ) हम लोगों की ( स ) ही उत्तम किया से धर्म और शिल्प कार्यों को करने वाला ( बभूयात् ) हो।

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या सुशिक्षा से धार्मिक सुशील पुत्र अनेक अनुकूल कर्मों को करके पिता-माता आदि के सुखों को नित्य सिद्ध करता है वैसे ही बहुत गुण वाला यह भौतिक अग्नि विद्या के अनुकूल रीति से सप्रयुक्त किया हुआ हम लोगों के सब सुखों को सिद्ध करता है ॥ २ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स नो दूराच्छामाच्च नि मर्यादयायोः । पाहि सदमिद्विषायुः ॥ ३ ॥

पदार्थ—( विषायुः ) जिससे समस्त आयु सुख से प्राप्त होती है ( स ) वह जगदीश्वर वा भौतिक अग्नि ( अयायो ) जो पाप करना चाहते हैं उन ( मर्यादया ) शत्रुजनों से ( दूरात् ) दूर वा ( आत्मात् ) समीप में ( नः ) हम लोगों की वा हम लोगों के ( सवः ) सब सुख रहने वाले शिल्पव्यवहार वा वेहादिकों की ( नि पाहि ) निरन्तर रक्षा करता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों से उपासना किया हुआ ईश्वर वा गम्यक सेवित विद्वान् युद्ध में मनुष्यों से रक्षा करने वाला वा रक्षा का हेतु होकर शरीर आदि वा विमानादि की रक्षा करके हम लोगों के लिए सब आयु देता है ॥ ३ ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर का प्रकाश किया है—

इमम् पु त्वमस्माकं सनि गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वीचः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अनन्त विद्यामय जगदीश्वर ! ( त्वम् ) सब विद्याओं का उपदेश करने और सब मङ्गलों के देने वाले आप जैसे सृष्टि के आदि में ( देवेषु ) पुष्पात्मा अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा नामक मनुष्यों के आत्माओं में ( नव्यांसम् ) नवीन-नवीन बोध कराने वाला ( गायत्रम् ) गायत्री आदि छन्दों से युक्त ( सुतमम् ) जिन में सब प्राणी सुखों का सेवन करते हैं उन चारों वेदों का ( प्रवीचः ) उपदेश किया और अगले कल्प-कल्पों में फिर भी करेंगे वैसे उसको ( उ ) विविध प्रकार से ( अस्माकम् ) हमारे आत्माओं में ( पु ) अच्छे प्रकार कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! आप ने जैसे ब्रह्मा आदि महर्षि धार्मिक विद्वानों के आत्माओं में वेद द्वारा बोध का प्रकाश कर उनको उत्तम सुख दिया वैसे ही हम लोगों के आत्माओं में बोध प्रकाशित कीजिए जिससे हम लोग विद्वान् होकर उत्तम-उत्तम धर्मकार्यों को सदा करते रहें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों के प्रति विद्वानों को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! ( परमेषु ) उत्तम ( मध्यमेषु ) मध्यम आनन्द के देने वाले वा ( वाजेषु ) सुख प्राप्तियोग्य युद्धों वा उत्तम अन्नादि में ( अन्तमस्य ) जिस प्रत्यक्ष सुख मिलने वाले सप्राप्त के बीच में ( नः ) हम लोगों को ( आशिक्षः ) सब विद्याओं की शिक्षा कीजिए इसी प्रकार हम लोगों के ( वस्वः ) धन आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों को ( आशिक्षः ) अच्छे प्रकार स्वीकार कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस प्रकार जिन धार्मिक पुरुषार्थों पुरुषों से सेवन किया हुआ विद्वान् सब विद्याओं को प्राप्त कराके उनको सुखयुक्त करे तथा इस जगत् में उत्तम, मध्यम और निकृष्ट भेद से तीन प्रकार के भोग, लोक और मनुष्य हैं इन को यथाबुद्धि विद्या देता रहे ॥ ५ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विभस्तासि वित्रभानो सिन्धौरूपा उपाक आ ।

सथो दाक्षुषं सरसि ॥ ६ ॥

पदार्थ—जैसे हे ( वित्रभानो ) विविधविद्यायुक्त विद्वन् मनुष्य ! आप ( सिन्धो ) समुद्र की ( ऊर्मा ) तरंगों में जल के किन्दुकणों के समान सब पदार्थविद्या के ( विभस्ता ) अलग-अलग करने वाले ( अति ) हैं और ( दाक्षुषे ) विद्या का ग्रहण वा अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य के लिए ( उपाके ) समीप, सत्य बोध उपदेश को ( सथः ) समीप ( आशिक्षः ) अच्छे प्रकार बर्षित हो वैसे भाग्यशाली विद्वान् आप हम सब लोगों के सत्कार के योग्य हैं ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र के जलकण अलग हुए आकाश को प्राप्त होकर वहाँ इकट्ठे होकर बँधते हैं वैसे ही विद्वान् अपनी विद्या से सब पदार्थों का विभाग करके उनका बार-बार मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाश किया करते हैं ॥ ६ ॥

फिर वह कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**यमं प्रे पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥**

**पदार्थ—**हे (यम) सेनाध्यक्ष ! आप (यम्) जिस युद्ध करनेवाले (मर्त्यम्) मनुष्य को (पृत्सु) सेनाओं के बीच (अवा) रखा करें (यम्) जिस वारिक शूरवीर को (वाजेषु) सशस्त्री में (जुना) प्रेरें जो इस (शश्वती) अनादि काल से वर्तमान (इष) प्रजा को निरन्तर रखा करें इस कारण से (स) तो आप हमारे (यन्ता) नियमों में चलानेवाले नायक बनिए इस प्रकार हम प्रतिज्ञा करते हैं ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**जैसे जगदीश्वर अनादि काल से वर्तमान प्रजा की रक्षा, रचना और व्यवस्था करने वाला है वैसे जो मनुष्य इस मर्त्यव्यापी सब प्रकार की रक्षा करनेवाले परमेश्वर की उपासना कर यथोक्त काम करता है उसको कभी पीड़ा या राजय नहीं होता ॥ ७ ॥

**नकिरस्य सहस्य पर्यता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवायः ॥ ८ ॥**

**पदार्थ—**हे (सहस्य) सहनशील विद्वन् ! (नकि) जो धर्म की सयादा उत्लंघन न करने और (पर्यता) सब पर पूर्ण कृपा करने वाले आप (यस्य) जिस (कयस्य) युद्ध करने और शत्रुओं को जीतने वाले शूरवीर पुरुष का (श्रवाय) श्रवण करने योग्य (वाज) युद्ध करना (अस्ति) होता है उसको सब उत्तम पदार्थ सदा दिया कीजिए इस प्रकार आप का नियोग हम लोग करते हैं ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**जैसे कोई भी जीव अनन्त शुभ गुणयुक्त परिणाम सहित सब से उत्तम परमेश्वर के गुणों की न्यूनता या उसका परिणाम करने को योग्य नहीं हो सकता जिसका सब ज्ञान निर्भ्रम है वैसे जो मनुष्य वर्तता है वही सब राजकार्यों का स्वामी नियत करना चाहिए ॥ ८ ॥

**स वाजं विश्वर्चषिर्वाग्निस्तु तर्त्ता । विमैभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥**

**पदार्थ—**जा (विश्वर्चषि) जिसके सब मनुष्य रक्षा के योग्य (तर्त्ता) शत्रु निमित्तक दुःखों के पार पहुँचाने वाला (सनिता) ज्ञान और सुख का विभाग करके देनेहारा सेनापति हमारी सेना में (विमैभि) बुद्धि चातुर्ययुक्त पुरुष (वर्चषि) छोड़े आदि से सहित हो हमको (वाग्निम्) युद्ध में विजय की प्राप्ति और शत्रुओं का पराजय करनेहारा सेनापति है वही हमारे बीच में सेना स्वामी (अस्तु) हो ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्यों को सब दुःखरूपी सागर से पार करने और युद्ध में विजय देने वाला विद्वान् है वही अच्छे विद्वानों के समागम से सेना का प्रधिपति होने योग्य है ॥ ९ ॥

**जराबोध तद्विविद्विद्वि विविशे यज्ञियाय । स्तोम रुद्राय दशीकम् ॥ १० ॥**

**पदार्थ—**हे (जराबोध) गुण, कीर्तन से प्रकाशित होनेवाले सेनापति ! आप जिससे (विविशे) प्राणी-प्राणी के सुख के लिए (यज्ञियाय) यज्ञ कर्म के योग्य (रुद्राय) दुष्टों को रूढ़ाने वाले के लिए सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाले (दशीकम्) इतने योग्य (स्तोमम्) स्तुतिसमूह, गुण, कीर्तन को (विविद्वि) व्याप्त करते हो (तत्) इससे माननीय हो ॥ १० ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में पूर्णोपमालङ्कार है। युद्धविद्या के जानने वाले के गुणों को श्रवण किये बिना इस का ज्ञान नहीं होता और जो प्रजा के सुख के लिए अति तीव्र स्वभाव वाले शत्रुओं के बल के नाश करनेहारे भूतों को अच्छी प्रकार शिस्त करता है वही प्रजापालन में योग्य होता है ॥ १० ॥

अब अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुण प्रकाशित किये हैं -

**स नो मह्यं अनिमानो धूमकेतुः पुरुषश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११ ॥**

**पदार्थ—**मनुष्यों को योग्य है कि जो (धूमकेतु) जिसका धूम अवा के समान (पुरुषश्चन्द्र) बहुतों को आनन्द देने (अनिमान) जिसका निमान अर्थात् परिमाण नहीं है (महान्) अत्यन्त गुणयुक्त भौतिक अग्नि है (स) वह (धिये) उत्तम कर्म वा (वाजाय) विज्ञानरूप वेग के लिए (न) हम लोगों को (हिन्वतु) तृप्त करता है ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—**जो सब प्रकार श्रेष्ठ किसी के छिन्न-भिन्न करने में नहीं आता, सब का आधार, सब आनन्द का देने वाला वा विज्ञानसमूह परमेश्वर है और जिसने महागुण युक्त भौतिक अग्नि रचा है वही उत्तम कर्म वा शुद्ध विज्ञान में हम लोगों को सदा प्रेरणा करे ॥ ११ ॥

फिर वह कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**स रेवो इव विस्पतिर्देव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरभिर्दृष्टानुः ॥ १२ ॥**

**पदार्थ—**हे विद्वन् मनुष्य ! तुम जो (देव्यः) देवों में कुशल (केतुः) रोग को दूर करने में हेतु (विस्पति) प्रजा को पालने वाला (दृष्टानु) बहुत प्रकाशयुक्त (रेवाम् इव) अत्यन्त बल वाले के समान (अग्निः) सब को सुख प्राप्त

करनेवाला अग्नि (उक्थैः) वेदोक्त स्तोत्रों के साथ सुना जाता है उसको (शृणोतु) सुन और (नः) हम लोगों के लिए सुनाइए ॥ १२ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पूर्ण बल वाला विद्वान् मनुष्य सब भोगने योग्य पदार्थों से सब मनुष्यों को सुख संयुक्त करता और सब की वात्सर्ष्यों को सुनता है वैसे ही जगदीश्वर सबकी भी हुई स्तुति को सुनकर उनको सुखसंयुक्त करता है ॥ १२ ॥

अब अगले मन्त्र में सब का अवश्य सत्कार करना है इस बात का प्रकाश किया है—

**नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।**

**यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृत्ति देवाः ॥ १३ ॥**

**पदार्थ—**हे (देवा) सब विद्याओं को प्रकाशित करने वाले विद्वानों ! हम लोग (महद्भ्यः) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों के लिए (नमः) सत्कार, धन्य (यजाम) करें और दें (अर्भकेभ्यः) थोड़े गुणवाले विद्याधियों के (नमः) तृप्ति (युवभ्यः) युवावस्था से जो बल वाले विद्वान् हैं उनके लिए (नमः) सत्कार (आशिनेभ्यः) समस्त विद्याओं में व्याप्त जो बड़े विद्वान् हैं उनके लिए (नमः) सेवापूर्वक देते हुए (यदि) जो सामर्थ्य के अनुकूल विचार में (शक्नवाम) समर्थ हो तो (ज्यायसः) विद्या आदि उत्तम गुणों से अति प्रशंसनीय (देवान्) विद्वानों से (ज्यायसः) अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण करें इसी प्रकार हम सब (शंसम्) इन की स्तुति-प्रशंसा को (वाग्नि) कभी न काटें ॥ १३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में ईश्वर का यह उपदेश है कि मनुष्यों को चाहिए अग्निमान छोड़कर अन्नादि से सब उत्तम जनो का सत्कार करें अर्थात् जितना बल पदार्थ आदि उत्तम बातों से अपना सामर्थ्य हो उतना उनका सत्कार करके विद्या प्राप्त कर किन्तु उनकी कमी निन्दा न करें ॥ १३ ॥

पिछले सूक्त में अग्नि का वर्णन है उसको अच्छे प्रकार जानने वाले विद्वान् ही होते हैं उनका वहाँ वर्णन करने से छद्मीसर्व सूक्तार्थ के साथ इस सत्ताईसवें सूक्त की सगति जाननी चाहिए ।

यह पहले अष्टक के दूसरे अध्याय का बीबीसवाँ वर्ग और पहिले अष्टक के

छठे अनुष्ठाक का सत्ताईसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ २७ ॥



अब नवचत्वारिंशत्विंशत् सूक्तस्याजीगतिः शुनःशेष ऋषिः । इन्द्रयज्ञतोमा

वेचता । १—६ अनुष्टुप्, ७—९ गायत्री च छन्दसी । १—६

गान्धारः, ७—९ ऋग्वेद स्वरो ॥

अब अट्ठाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके पहले मन्त्र में कर्म के अनुष्ठान करने वाले जीव को जो-जो करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

**यत्र प्रावा पृथुशुभ्र ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।**

**उल्लखलसुतानामवेदिन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त कर्म के करनेवाले मनुष्य ! तुम (यत्र) जिन यज्ञ आदि व्यवहारों में (पृथुशुभ्रः) बड़ी जड़ का (ऊर्ध्वः) जो भूमि से कुछ ऊँचे रहने वाले (प्रावा) पत्थर और मूल को (सोतवे) धन्य आदि कूटने के लिए (भवति) युक्त करने हो उन में (उल्लखलसुतानाम्) उल्लखली-मूल के कूटे हुए पदार्थों को ग्रहण करके उनकी सदा उत्तमता के साथ रक्षा करो (उ) और अच्छे विचारों से युक्ति के साथ पदार्थ सिद्ध होने के लिए (जल्गुलः) इसको नित्य ही खलाया करो ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम यव आदि ओषधियों के असार निकालने और मार लेने के लिए भारी से पत्थर में जैसा चाहिए वैसा गड़वा करके उसको भूमि में गाड़ो और वह भूमि से कुछ ऊँचा रहे जिससे कि नाज के मार वा असार का निकालना अच्छे प्रकार बने उस में यव आदि धन्न स्थापन करके मूलन से उसको कूटो ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**यत्र द्राविं जघनाधिषवण्या कृता ।**

**उल्लखलसुतानामवेदिन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥**

**पदार्थ—**हे (य) भीतर, बाहर के शरीर साधनों से ऐश्वर्य वाले विद्वन् मनुष्य ! तुम (द्राविं जघना) दो जघों के समान (यत्र) जिस व्यवहार में (अधिषवण्या) अच्छे प्रकार वा असार अलग-अलग करने के पात्र अर्थात् शिलबट्टे होते हैं उनको (कृता) अच्छे प्रकार सिद्ध करके (उल्लखलसुतानाम्) शिलबट्टे से शुद्ध किये हुए पदार्थों के सकाश से सार को (अब) प्राप्त हो (उ) और उत्तम विचार से (इत्) उसी को (जल्गुलः) बार २ पदार्थों पर रक्का ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे दोनों जाँघों के सहाय से मार्ग का चलना-चलाना सिद्ध होता है वैसे ही एक ती पत्थर की शिला नीचे रखें और दूसरा ऊपर से पीसने के लिए बट्टा जिसको हाथ में लेकर पदार्थ पीसे जाएँ इन से ओषधि आदि पदार्थों को पीसकर यथावत् भक्ष्य आदि पदार्थों को सिद्ध करके खावें यह भी दूसरा साधन उल्लखली मूल के समान बनाना चाहिए ॥ २ ॥



अथ अगले मन्त्र में यह विद्या कैसे ग्रहण करनी चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

यत्र नारीपच्यमपच्यम् च शिक्षते ।

उलूखलसुतानामवेदिन्द्र जलगुलः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) इन्द्रियों के स्वामी जीव ! तू ( यत्र ) जिस कर्म में घर के बीच ( नारी ) स्त्रियों काम करने वाली अपनी सज्जि स्त्रियों के लिए ( उलूखल-सुतानाम् ) उक्त उलूखलों से सिद्ध की हुई विद्या को ( अपच्यमम्, अपच्यम् ) ( य ) अर्थात् जैसे बालना-निकालनादि किया करनी होती है वैसे उस विद्या को ( शिक्षते ) शिक्षा से ग्रहण करती और कराती है उसको ( उ ) अनेक तर्कों के साथ ( जलगुलः ) सुनो और इस विद्या का उपदेश करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यह उलूखलविद्या जो भोजनादि के पदार्थ सिद्ध करने वाली है गृहस्वस्थि कार्य करने वाली होने से यह विद्या स्त्रियों को नित्य ग्रहण करनी और अन्य स्त्रियों को सिखानी भी चाहिए जहाँ पाक सिद्ध किये जाते हैं वहाँ ये सब उलूखल आदि साधन स्थापन करने चाहिए क्योंकि इन के बिना कूटना, पीसना आदि किया सिद्ध नहीं हो सकती ॥ ३ ॥

इस के सम्बन्धी और भी सारण कर अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

यत्र मन्यां विप्र्रतै रश्मीन्यमित्वा इव ।

उलूखलसुतानामवेदिन्द्र जलगुलः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सुल की इच्छा करने करने वाले विद्वन् मनुष्य ! तू ( रश्मीन्, इव, अमित्वा ) जैसे सूर्य अपनी किरणों को वा सारथि जैसे घोड़े आदि पशुओं की रस्मियों को ( यत्र ) जिस क्रिया से सिद्ध होने वाले व्यवहार में ( मन्याम् ) वृत्त आदि पदार्थों के निकालने के लिए मन्त्रियों को ( विप्र्रतै ) अनेक प्रकार बाँधते हैं वहाँ ( उलूखलसुतानाम् ) उलूखल से सिद्ध हुए पदार्थों को ( इव ) वैसे ही सिद्ध करने की इच्छा कर ( उ ) और ( इत् ) उसी विद्या को ( जलगुलः ) मुक्ति के साथ उपदेश कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ईश्वर उपदेश करता है कि हे विद्वानो ! जैसे सूर्य अपनी किरणों के साथ भूमि को आकर्षण शक्ति से बाँधता और जैसे सारथि रश्मियों से घोड़े को नियम में रखता है वैसे ही मन्त्र, बाँधने और चलाने की विद्या से दूध आदि वा भोषधि आदि पदार्थों से मक्खन आदि पदार्थों को मुक्ति के साथ सिद्ध करो ॥ ४ ॥

उक्त उलूखल से क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यच्चिदि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।

इह धमर्त्तम वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( उलूखलक ) उलूखल से व्यवहार लेने वाले विद्वन् ! तू ( यत् ) जिस कारण ( हि ) प्रसिद्ध ( गृहेगृह ) घर-घर में ( युज्यसे ) उक्त विद्या का व्यवहार बरता है ( इह ) इस ससार गृह वा स्थान में ( जयताम् ) शत्रुओं को जीतने वालों के ( दुन्दुभिः ) नगारों के ( इव ) समान ( धमर्त्तम् ) जिस में अच्छे शब्द निकलें वैसे उलूखल के व्यवहार को ( वद ) इस विद्या का उपदेश करे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सब घरों में उलूखल और मूसल का स्थापन करना चाहिए जैसे शत्रुओं के जीतने वाले शूरवीर मनुष्य अपने नगरो को बचाकर युद्ध करते हैं वैसे ही रस चाहने वाले मनुष्यों को उलूखल में यत्र आदि भोषधियों को डालकर मुसल से कूटकर दूध आदि दूरकरके सार-सार लेना चाहिए ॥ ५ ॥

किर वह किसलिए ग्रहण करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।

अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( वातः ) वायु ( इव ) ही ( वनस्पते ) वृक्ष आदि पदार्थों के ( अग्रम् ) ऊपरले भाग को ( उत ) भी ( विवाति ) अच्छे प्रकार पहुँचाता ( स्म ) पहुँचा या पहुँका ( अथो ) इसके भ्रमन्तर ( इन्द्राय ) प्राणियों के लिए ( सोमम् ) सब भोषधियों के सार को ( पातवे ) पान करने को सिद्ध करता है वैसे ( उलूखल ) ऊँचरी में यत्र आदि भोषधियों के समुदाय के सार को ( सुनु ) सिद्ध कर ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब पवन सब वनस्पतियों, भोषधियों को अपने वेग से स्पर्श कर बढ़ाता है तभी प्राणी उनकी उलूखल में स्थापन करके उनका सार ले सकते और रस भी पीते हैं इस वायु के बिना किसी पदार्थ की वृद्धि वा पुष्टि सम्भव नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

किर मूलन और उलूखल कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्मुतः । हरीवांशीसि वसंता ॥ ७ ॥

पदार्थ—( आयजी ) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को प्राप्त होने वाले ( वाज-

सातमा ) सवाओं को जीतते हैं ( ता ) वे स्त्री-पुरुष ( अन्धांसि ) भन्नों को ( वसंता ) साते हुए ( हरी ) बोंकों के ( इव ) समान उलूखल आदि से ( उच्चा ) जो अति उत्तम काम हैं उनको ( विजर्मुतः ) अनेक प्रकार से सिद्ध कर चारण करते रहें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे लाने वाले घोड़े रथ आदि को बहते हैं वैसे ही मूलन और ऊँचरी से पदार्थों को भलग-भलग करने आदि अनेक कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥ ७ ॥

किर वे कैसे करने चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ता नो अद्य वनस्पती कृष्यापृष्वेभिः सोतुभिः ।

इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो ( सोतुभिः ) रस बीचने में बहुत ( कृष्यापृष्वेभिः ) बड़े विद्वानों ने ( कृष्यापृष्वेभिः ) अति स्थूल ( वनस्पती ) काठ के उखली मूसल सिद्ध किये हो जो ( नः ) हमारे ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले व्यवहार के लिए ( अद्य ) आज ( मधु-मत्सु ) मधुर आदि प्रशसनीय गुरु वाले पदार्थों को ( सुतम् ) सिद्ध करने के हेतु होते हो ( ता ) वे सब मनुष्यों को साबने योग्य हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे पत्थर के मूसल और ऊँचरी होते हैं वैसे ही काष्ठ, लोहा, पीतल, चाँदी, सोना तथा धातु के भी किये जाते हैं, उन उत्तम उलूखल मूसलों से मनुष्य भोषध आदि पदार्थों के अविषय अर्थात् रस आदि बीचने के व्यवहार करें ॥ ८ ॥

किर उनसे क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उच्छिष्टं चम्बोर्भर सोमं पवित्रं वा सृज । निषेहि गोरधि स्वचि ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! तुम ( चम्बोः ) वेदल और सवारों की सेनाओं के समान ( उच्छिष्टम् ) शिफा करने योग्य ( सोमम् ) सर्व रोगविनाशक बलपुष्टि और बुद्धि को बढ़ाने वाले उत्तम भोषधि के रस को ( उच्छ्रज् ) उत्कृष्टता में चारण कर उससे दो सेनाओं को ( पवित्रम् ) उत्तम ( आसृज ) कीजिए ( नो ) पृथिवी के ( अचि ) ऊपर अर्थात् ( स्वचि ) उस की पीठ पर उन सेनाओं को ( निषेहि ) स्थापन करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि दो प्रकार की सेना रखे अर्थात् एक तो सवारों की दूसरी वेदनों की । उनके लिए उत्तम रस और शस्त्र आदि सामग्री इकट्ठी करें अच्छी शिक्षा और भोषधि देकर शुद्ध बलपुष्ट और नीरोग कर पृथिवी पर एक चक्र राज्य नित्य करें ॥ ९ ॥

सत्ताईसवें सूक्त में अग्नि और विद्वान् जिस-जिस गुरु को कहे हैं मूसल और ऊँचरी आदि साधनों को ग्रहण कर भोषध्यादि पदार्थों से ससार के पदार्थों से अनेक प्रकार के उत्तम-उत्तम पदार्थ उत्पन्न करें इस अर्थ का इस सूक्त में सम्पादन करने से सत्ताईसवें सूक्त के कहे हुए अर्थ के साथ अष्टाईसवें सूक्त की सज्जि है यह जानना चाहिए ॥ ९ ॥

यह पहिले अष्टक के दूसरे अध्याय का २६वाँ वर्ग और पहले मण्डल के छठे अनुवाक का २८वाँ सूक्त समाप्त हुआ ।

ॐ

अथ सप्तचर्चस्वीकोनविंशत्य सुक्तस्याजीर्गसिः शुनसेप ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

पञ्चमिषकण्डः । पञ्चमः खण्डः ॥

अथ उपतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से न्यायाधीश के गुणों का प्रकाश किया है—

यच्चिदि सत्य सोमपा अनामस्ता इव स्पसि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वरवेषु शुभिषु सहस्रेषु तुवीमय ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( सोमपाः ) उत्तम पदार्थों की रक्षा करने वाले ( तुवीमय ) अनेक प्रकार के प्रशंसनीय वस्तुयुक्त ( सत्य ) अविनाशि स्वरूप ( इन्द्र ) उत्तम ऐश्वर्य-प्राप्तक न्यायाधीश ! आप ( यच्चिदि ) जो कभी हम लोग ( अनामस्ताइव ) अप्रश-सनीय गुरु सामर्थ्य वालों के समान ( स्पसि ) हो ( तु ) तो ( नः ) हम लोगों को ( सहस्रेषु ) असंख्यात ( शुभिषु ) अच्छे सुल देने वाले ( गोषु ) पृथिवी, इन्द्रियों वा गो-बैल ( अवेषु ) घोड़े आदि पशुओं में ( हि ) ही ( आशंसय ) प्रशंसा वाले कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे घालस्य के कारण मनुष्य अश्वेष्ट अर्थात् कीर्ति रहित होते हैं वैसे हम लोग भी जो कभी हो तो यह न्यायाधीश हम लोगों को प्रशंसनीय पुष्पाय और गुरुयुक्त करे जिस से हम लोग पृथिवी आदि राज्य और बहुत उत्तम-उत्तम हाथी, घोड़े, गौ, बैल आदि पशुओं को प्राप्त होकर उनका पालन वा उनकी वृद्धि करके उन के उपकार से प्रशंसा वाले हो ॥ १ ॥

किर वह विद्वतियुक्त समाख्यल कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शिमिन् वाजानां पते शचीवस्त्व दसना ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वरवेषु शुभिषु सहस्रेषु तुवीमय ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( शिमिन् ) प्राप्त होने योग्य प्रशंसनीय ऐहिक वा पारमाधिक

सुखों को देनेहारे (शचीव.) बहुविध प्रज्ञा वा कर्मयुक्त (बभ्रुवाम्) बड़े-बड़े युद्धों के (पते) पालन करने और (तुवीमय) अनेक प्रकार के प्रशसनीय विद्यात्मक युक्त (इन्द्र) परमेश्वर्य सहित सभाध्यक्ष ! जो (तु) आप की (रक्षा) वेद-विद्यायुक्त वाणी सहित श्रिया है उससे आप (सहस्रं) हजारों (शुभ्रिषु) शोभन विमान आदि रख वा उनके उत्तम साधन (गोषु) सत्य भाषण और शास्त्र की शिक्षा सहित वाक आदि इन्द्रियाँ (अश्वेषु) तथा वेग आदि गुण वाले अग्नि आदि पदार्थों से युक्त घोड़े आदि व्यवहारों में (नः) हम लोगों को (आशंसय) अच्छे गुणयुक्त कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार जगदीश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवन् ! कृपा करके जैसे न्यायाधीश अत्युत्तम राज्य आदि को प्राप्त कराता है वैसे हम लोगों को पृथिवी के राज्य, सत्य बोलने और शिल्पविद्या आदि व्यवहारों की सिद्ध करने में बुद्धिमान् नित्य कीजिए ॥ २ ॥

फिर वह क्या-क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

निष्पापया मिथूदशा सस्तामबुध्यमाने ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमय ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (तुवीमय) अनेक प्रकार के धनयुक्त (इन्द्र) अविद्यारूपी निद्रा और दोषों को दूर करने वाले विद्वन् ! जो-जो (मिथूदशा) विषयासक्ति अर्थात् छोटे काम वा प्रमाद अच्छे कामों के विनाश को दिला देने वाले वा (अबुध्यमाने) जो निवारक शरीर और मन (सस्ताम्) ध्यान और पुरुषार्थ का नाश करते हैं उन को आप (निष्पापय) अच्छे प्रकार निवारण कर दीजिए (तु) फिर (सहस्रं) हजारों (शुभ्रिषु) प्रशसनीय गुण वाले (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थों वा (अश्वेषु) वस्तु-वस्तु में रहने वाले अग्नि आदि पदार्थों में (नः) हम लोगों को (आशंसय) अच्छे गुण वाले कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को शरीर और आत्मा के आलस्य को दूर छोड़के उत्तम कर्मों में नित्य प्रयत्न करना चाहिए ॥ ३ ॥

मनुष्यों को कैसे बीरों को ग्रहण करके शत्रु निवारण करना चाहिए

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमय ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (तुवीमय) विद्या, सुवर्ण, सेना आदि धनयुक्त (शूर) शत्रुओं के बल को नष्ट करने वाले सेनापते ! आप के (अरातयः) जो दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन हैं वे (ससन्तु) सो जावें और जो (रातयः) दान आदि धर्म के कर्ता हैं (त्या) वे (बोधन्तु) जाग्रत होकर शत्रु और मित्रों को जानें (तु) फिर हे (इन्द्र) अत्युत्तम ऐश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष सेनापते वीरपुरुष ! तु (सहस्रं) हजारों (शुभ्रिषु) अच्छे-अच्छे गुण वाले (गोषु) गी वा (अश्वेषु) घोड़े, हाथी, सुवर्ण आदि धनो में (नः) हम लोगों को (आशंसय) शत्रुओं के विजय से प्रशंसा वाला कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—हम लोगों को अपनी सेना में शूर मनुष्य ही रखकर आनन्दित करने चाहिए जिससे भय के मारे दृष्ट शत्रुजन जैसे निद्रा में शान्त होते हैं वैसे सर्वदा हो जिससे हम लोग निष्कटक अर्थात् बेखटके चक्रवर्ति राज्य का सेवन नित्य करें ॥ ४ ॥

फिर वह और कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समिन्द्र गर्भं मृण नुवन्तं पापयामुया ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमय ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! तु (गर्भम्) गदह के समान (अमुया) हमारे पीछे (पापया) पाप रूप मिथ्याभाषण से युक्त भवाही और भाषण आदि कपट से हम लोगों की (नुवन्तम्) स्तुति करने हुए शत्रु का (समृण) अच्छे प्रकार दण्ड दे (तु) फिर (तुवीमय) हे बहुत-म विद्या वा धर्मरूपी धनवाले (इन्द्र) न्यायाधीश तु (सहस्रं) हजारों (शुभ्रिषु) शुद्धभाव वा धनयुक्त व्यवहारों से ग्रहण किय हुए (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थों वा (अश्वेषु) हाथी घोड़ा आदि पशुओं के निमित्त (नः) हम लोगों का (आशंसय) अच्छे व्यवहार करने वाले अपराध रहित कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जो सभा स्वामी न्याय से अपने सिंहासन पर बैठकर गदहा जैसे कूले और खोटे शब्द के उच्चारण से शत्रुओं की निन्दा करते हुए जन को दण्ड दे और सत्यवादी धार्मिक जन का सत्कार करे । जो धन्याय के साथ शत्रुओं के पदार्थों को लेने है उनको दण्ड देके जिमका जो पदार्थ हो वह उसको दिला देवे इस प्रकार सनातन न्याय करने वालों के धर्म में प्रवृत्त पुरुष का सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥ ५ ॥

अब अगले मन्त्र में अशुद्ध वायु के निवारण का विधान किया है—

पताति कुण्डूणाच्या दूरं वातो वनादधि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमय ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (तुवीमय) अनेकविध धनो को सिद्ध करनेहारे (इन्द्र) सर्वोत्कृष्ट

विद्वान् ! आप जैसे (वातः) पवन (कुण्डूणाच्या) कुटिलगति से (वनात्) जगत् और सूर्य की किरणों से (अधि) ऊपर वा इनके नीचे से प्राप्त होकर आनन्द करता है वैसे (तु) बारंबार (सहस्रं) हजारों (अश्वेषु) वेग आदि गुण वाले घोड़े आदि (गोषु) पृथिवी, इन्द्रिय, किरण और औषाण (शुभ्रिषु) शुद्ध व्यवहारों में सब प्राणियों और अप्राणियों को सुशोभित करता है वैसे (नः) हम को (आशंसय) प्रशंसित कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिए कि यह पवन सब जगह जाता हुआ अग्नि आदि पदार्थों से अधिक कुटिलता से गमन करनेहारा और बहुत से ऐश्वर्यों की प्राप्ति तथा पशु पक्षादि पदार्थों के व्यवहार, उनके बढ़ने-घटने और समस्त वाणी के व्यवहार का हेतु है ॥ ६ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सर्वे परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदारवम् ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमय ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (तुवीमय) अनन्त बलयुक्त (इन्द्र) सब शत्रुओं के विनाश करने वाले जगदीश्वर ! आप जो (नः) हमारे (सहस्रं) अनेक (शुभ्रिषु) शुद्ध कर्मयुक्त व्यवहारों वा (गोषु) पृथिवी के राज्य आदि व्यवहार तथा (अश्वेषु) घोड़े आदि सेना के अग्रे में विनाश का कगने वाला व्यवहार हो उस (परिक्रोशम्) सब प्रकार से कसाने वाले व्यवहारों को (जहि) विनष्ट कीजिए तथा जो (नः) हमारा शत्रु हो (कृकदारवम्) उस दुःख देने वाले को भी (जम्भया) विनाश को प्राप्त कीजिए इस रीति से (तु) फिर (नः) हम लोगों को (आशंसय) शत्रुओं से पृथक् कर सुखयुक्त कीजिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार जगदीश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमात्मन् ! आप हम लोगों में जो दुष्ट व्यवहार अर्थात् छोटे चलन तथा जो हमारे शत्रु हैं उनको दूरकर हम लोगों के लिए सकल ऐश्वर्य दीजिए ॥ ७ ॥

पिछले सूक्त में पदार्थविद्या और उसके साधन कहे हैं उनके उपादान अत्यन्त प्रसिद्ध करानेहारे ससार के पदार्थ हैं जो कि परमेश्वर ने उत्पन्न किये हैं उस सूक्त में उन पदार्थों से उपकार ले सकने वाली सभाध्यक्ष सहित सभा होती है उसके वर्णन करने से पूर्वोक्त अद्वैतसर्व सूक्त के अर्थ के साथ इस उन्तीसवें सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिए ।

यह प्रथम अष्टक के दूसरे अध्याय का सत्ताईसवाँ वर्ण वा प्रथम मण्डल के

छठे अनुवाक का उन्तीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

५१

अथ द्वाविंशत्यध्याय त्रिंशत्सप्तस्य सूक्तस्याजीमतिः शुभःशेष इति । १-१६ इन्द्र.,

१७-१९ अश्विनौ, २०-२२ उवादेवताः । १-१०, १२-१५,

१७-२२ गायत्री, ११ पादनिचूङ्गायत्री, १६ त्रिष्टुप् च

छन्दसि । १-२२ वज्रः, १६ बृहत्तवच स्वर ॥

अब तीसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीरों के गुणों का प्रकाश किया है—

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।

मंहिष्ठ मिश्र इन्दुभिः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष मनुष्य ! (यथा) जैसे खेती करने वाले किसान (क्रिविम्) कुए को लोढ़ प्राप्त होकर उसके जल में खेतों का (मिश्रम्) सींचन है और जैसे (वाजयन्तः) वगयुक्त वायु (इन्दुभिः) जलों से (शतक्रतुम्) जिस से अनेक कर्म होते हैं (मंहिष्ठम्) बड़े (इन्द्रम्) सूर्य को सींचने वैसे तू भी प्रजाओं को सुखों से अभिषिक्त कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य पहले कुए को खादकर उसके जल में ज्ञान-पान और खेत बगीचे आदि स्थानों के सींचने से सुखी होते हैं वैसे ही विद्वान् लोग यथायोग्य कलायन्त्रों में अग्नि को जोड़के उसकी सहायता से कलों में जल को स्थापन करके उनको चनाने में बहुत कार्यों को सिद्ध करके सुखी होते हैं ॥ १ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

पदार्थ—जो शुद्धगुण-कर्म-स्वभावयुक्त विद्वान् है उसी से यह जो भी तेक अग्नि है वह (निम्नम्, नः) जैसे नीचे स्थान को जाते हैं वैसे (शुचीनाम्) शुद्ध कलायन्त्र वा प्रकाश वाले पदार्थों का (शतम्) सौगुना (वा) अथवा (समाशिराम्) जो सब प्रकार से पकाए जावें उन पदार्थों का (सहस्रम्) वा हजारगुणा (आ, इत, उ) आधार और दाह गुण वाला (रीयते) जानता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । यह अग्नि, सूर्य और बिजली जित के प्रसिद्ध रूप—सैकड़ों पदार्थों की शुद्धि करता है और पचाने योग्य पदार्थों में हजारों पदार्थों को अपने वेग से पकाता है जैसे जल नीची जगह को जाता है वैसे ही वह अग्नि ऊपर को जाता है । इन अग्नि और जल को लौट पीट करने अर्थात् अग्नि को नीचे जल को ऊपर स्थापन करने से वा दोनों के संग्राम से वेग आदि गुण उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

फिर वह किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**सं यन्महाय शुष्मिण रूना सस्योदरे । समुद्रो न व्यथी दधे ॥ ३ ॥**

वार्थ—( हि ) अपने निष्य मे ( ब्रह्म ) आनन्द और ( शुष्मिणे ) प्रसन्नोय बल और ऊर्ध्व जिस व्यवहार में हो उसके लिए ( समुद्रः न ) जैसे समुद्र ( व्यथ ) अनेक व्यवहार ( न ) सेकड़ेह हजार गुणी सहित ( दधे ) जो किया है उन क्रियाओं को ( सस्ये ) अच्छे प्रकार धारण करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे समुद्र के मध्य में अनेक गुण, रत्न और जीव-जन्तु और अगाध जल है वैसे ही अग्नि और जल के मकाश से प्रयत्न के साथ बहुत प्रकार का उपकार लेना चाहिए ॥ २३ ॥

फिर भी उसका अगले मन्त्र में प्रकाश किया है—

**अयमु ते समंतसि कपोतं च गर्भधिम । वचस्तत्त्विक ओदसे ॥ ४ ॥**

वार्थ—( अयम् ) यह इन्द्र अग्नि जोकि परमेश्वर का रूपा है ( उ ) हम जानते हैं कि जैसे ( गर्भधिम ) कबूतरी को ( कपोत इव ) कबूतर प्राप्त हो वैसे ( नः ) हमारी ( वचः ) वाणी को ( समोदसे ) अच्छे प्रकार प्राप्त होना है और ( वित् ) वही सिद्ध किया हुआ ( नः ) हम लोगों को ( तत् ) पूर्व कहे हुए बल प्रादि गुण बढ़ाने वाले आनन्द के लिए ( वचस्ति ) निरन्तर प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कबूतर वेग से कबूतरी को प्राप्त होता है वैसे ही शिल्पविद्या से सिद्ध किया हुआ अग्नि अनुकूल अर्थात् जमी चाहिए वही गति को प्राप्त होता है। मनुष्य इस विद्या का उपदेश वा श्रवण से पा सकते हैं ॥ ४ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सभा वा सेना के स्वामी का उपदेश किया है—

**स्त्रोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनुता ॥ ५ ॥**

वार्थ—हे ( गिर्वाह ) जानने योग्य पदार्थों के जानने और सब दु को के नाश करने वाले तथा ( राधानाम् ) जिन पृथ्वी प्रादि पदार्थों में सुख मिद्ध होते हैं उन के ( पते ) पालन करने वाले सभा वा सेना स्वामी विद्वन् । ( यस्य ) जिन ( ते ) आप का ( सूनुता ) श्रेष्ठता से सब गुण का प्रकाश करने वाला ( विभूतिः ) अनेक प्रकार का ऐश्वर्य है सो आप के सकाश से हम लोगों के लिए ( स्त्रीजम् ) स्तुति ( न ) हमारे पूर्वोक्त ( ब्रह्म ) आनन्द और ( शुष्मिणे ) बल के लिए ( अस्तु ) हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले तीसरे मन्त्र में “महाय, शुष्मिणे, न” इन तीन पदों की अनुवृत्ति है। हम लोगों को सब का स्वामी जो वेदोक्त गुणों से परिपूर्ण विज्ञानरत, ऐश्वर्ययुक्त और यथायोग्य न्याय करने वाला सभाध्यक्ष वा सेनापति विद्वान् है उसी को न्यायाधीश मानना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर यह सभाध्यक्ष वा सेनापति कंसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहे ॥ ६ ॥**

वार्थ—हे ( शतक्रतो ) अनेक प्रकार के कर्म वा अनेक प्रकार की बुद्धियुक्त सभा वा सेना के स्वामी जो आप के सहाय के योग्य हैं उन सब कार्यों में हम ( सख-बावहे ) परस्पर कष्ट-सुख सम्मति से चलें और ( न ) हम लोगों की ( ऊतये ) रक्षा करने के लिए ( ऊर्ध्व ) सबसे ऊंचा ( तिष्ठ ) बैठ इस प्रकार आप और हम सब में से प्रतिजन अर्थात् दो-दो होकर ( बाजे ) युद्ध तथा ( अन्येषु ) अन्य कर्तव्य जोकि उपदेश वा श्रवण है उस को नित्य करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—सत्य आचार-विचारणीय और ध्यानावस्थान पुरुषों को वाच्य है कि जो अपने आत्मा में अन्तर्गामी जगदीश्वर है उस की आज्ञा से सभापति वा सेनापति के साथ सत्य और मिथ्या वा करने और न करने योग्य कामों का निश्चय किया करें। इसके बिना कभी किसी को विजय या मन्त्र बोध नहीं हो सकता। जो सर्वव्यापी जगदीश्वर न्यायाधीश को मान कर वा धार्मिक दूरवीर को सेनापति करके शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं उन्हीं का निश्चय में विजय होता है औरों का नहीं ॥ ६ ॥

फिर ईश्वर वा सेनाध्यक्ष कैसे है इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमृतये ॥ ७ ॥**

वार्थ—हम लोग ( सखायः ) परस्पर मित्र होकर अपनी ( ऊतये ) उन्नति वा रक्षा के लिए ( योगे योगे ) अति कठिना से प्राप्त होने वाले पदार्थ-पदार्थ में वा ( वाजेवाजे ) युद्ध-युद्ध में ( तवस्तरम् ) जो अच्छे प्रकार बेदों से जाना जाना है उस ( इन्द्रम् ) सब से विजय देने वाले जगदीश्वर वा बुद्ध शत्रुओं को दूर करने और आत्मा वा शरीर के बल वाले धार्मिक सभाध्यक्ष को ( हवामहे ) बुलावें अर्थात् बार-बार उसकी विज्ञप्ति करते रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर मित्रता सम्पादन कर अस्त्र-पदार्थों की रक्षा और सब जगह विजय करना चाहिए तथा परमेश्वर और सेनापति का नित्य आश्रय करना चाहिए और यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उक्त आश्रय से ही उत्तम कार्यसिद्धि होने के योग्य हो सो ही नहीं किन्तु विद्या और पुरुषार्थ भी उनके लिए करने चाहिए ॥ ७ ॥

वह किसके साथ प्राप्त हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**आ घां गमद्वादि श्रवत्सहस्रिणीभिरुतिभिः । वाजैभिरुप नो हवाम ॥ ८ ॥**

वार्थ—( वति ) जो वह सभा वा सेना का स्वामी ( नः ) हम लोगों की

( आ हवाम् ) प्रार्थना की ( श्रवत् ) श्रवण करे ( घ ) वही ( सहस्रिणीभिः ) हजारों प्रशसनीय पदार्थ प्राप्त होते हैं जिन में उन ( उतिभिः ) रक्षा प्रादि व्यवहार वा ( वाजेभिः ) अन्न, ज्ञान और युद्ध निमित्तक विजय के साथ प्रार्थना को ( उपागमत् ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जहाँ मनुष्य सभा वा सेना के स्वामी का सेवन करते हैं वहाँ सभा-ध्यक्ष अपनी सेना के अन्न वा अन्नादि पदार्थों के साथ उनके समीप स्थिर होता है इस की सहायता के बिना किसी को मन्त्र-सत्य सुख वा विजय नहीं होने है ॥ ८ ॥

अब ईश्वर और सभाध्यक्ष की प्रार्थना सब मनुष्यों को करनी चाहिए

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अनु प्रतनम्यैकमो हुवे तुविप्रति नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥**

वार्थ—हे मनुष्य ! ( ते ) तेरा ( पिता ) जनक वा आचार्य ( यम् ) जिस ( प्रतनम्य ) मनातन कारण वा ( ओकसः ) सब के उद्धरणे योग्य आकाश के सकाश से ( तुविप्रतिम् ) बहुत पदार्थों को प्रसिद्ध करने और ( नरम् ) सब की यथायोग्य कार्यों में लपाने वाले परमेश्वर वा सभाध्यक्ष का ( पूर्वं ) पहले ( हुवे ) आह्वान करता रहा उन का मैं भी ( अनुहुवे ) तदनुकूल आह्वान वा स्तवन करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—ईश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम को श्रीरो के लिए ऐसा उपदेश करना चाहिए कि जो अनादि कारण से अनेक प्रकार के कार्यों को उत्पन्न करता है, तथा जिस की उपासना पहले विद्वानों ने की वा भवके करने और अगले करेंगे उसी की उपासना नित्य करनी चाहिए। इस मन्त्र में ऐसा विषय है कि कोई किसी से पूछे कि तुम किसकी उपासना करते हो उस के लिए ऐसा उत्तर देवे कि जिस की तुम्हारे पिता वा सब विद्वान् जन करने तथा वेद जिस निराकार, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, अज और अनादिस्वरूप जगदीश्वर का प्रतिपादन करते हैं उसी की उपासना मैं निरन्तर करता हूँ ॥ ९ ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना के विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**तं त्वां वयं विश्ववारं शास्महे पुरुहूत । सखे वमो जरितुभ्यः ॥ १० ॥**

वार्थ—हे ( विश्ववार ) समार को अनेक प्रकार सिद्ध करने ( पुरुहूत ) मन्त्र से स्तुति को प्राप्त होने ( वमो ) सब में रहन वा सबको अपने में बसाने वाले ( सखे ) सब के मित्र जगदीश्वर ! ( तम् ) पूर्वीक ( त्वा ) आपकी ( वयम् ) हम लोग ( जरितुभ्यः ) स्तुति करने वाले धार्मिक विद्वानों से ( आ ) सब प्रकार से ( शास्महे ) आशा करने हैं अर्थात् आपका विशेष ज्ञान प्रकाश हम सब में होने की इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों के समागम ही से सब जगत के रचन, सब के पूजन योग्य, सब के मित्र, सब के आधार, पिछले मन्त्र से प्रतिपादित किये हुए परमेश्वर के विज्ञान वा उपासना की नित्य इच्छा करनी चाहिए क्योंकि विद्वानों के उपदेश के बिना किसी को यथार्थ विशेष ज्ञान नहीं हो सकता है ॥ १० ॥

फिर सभा सेनाध्यक्ष के प्राप्त होने की इच्छा करने का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अस्माकं शिप्रिणीनां मोमपाः सोमपात्राम् । सखे वज्रिन्तसखीनाम् ॥ ११ ॥**

वार्थ—( सोमपा ) उत्पन्न किये हुए पदार्थों की रक्षा करने वाले ( वज्रिन् ) सब अधिधारी अन्धकार के विनाशक उत्तम ज्ञानयुक्त ( सखे ) ममस्त सुख देने और ( सोमपात्राम् ) सासारिक पदार्थों की रक्षा करने वाले ( सखीनाम् ) सब के मित्र हम लोगों के तथा ( सखीनाम् ) सब का हित चाहनेवाली ( शिप्रिणीनाम् ) वा इस लोक और परलोक के व्यवहार ज्ञानवाली हमारी मित्रियों का सब प्रकार से प्रधान ( त्वा ) आप को ( वयम् ) करने वाले हम लोग ( आशास्महे ) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र में “त्वा, वयम्, आ, शास्महे” इन चार पदों की अनुवृत्ति है। सब पुरुष वा सब स्थितियों को परस्पर मित्र-भाव का वर्तन कर व्यवहार की सिद्धि के लिए परमेश्वर की प्रार्थना वा आर्य राज-विद्या और धर्ममन्त्र प्रयत्न के साथ सदा सम्पादन करनी चाहिए ॥ ११ ॥

अब उस सभाध्यक्ष को क्या-क्या उपदेश करने के योग्य है यह अगले मन्त्र में कहा है—

**तथा तदस्तु मोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु ।**

**यथा त उग्रमभीष्टये ॥ १२ ॥**

वार्थ—हे ( सोमपा ) सासारिक पदार्थों में जीवों की रक्षा करने वाले ( वज्रिन् ) सभाध्यक्ष ! जैसे हम लोग ( इष्टये ) अपने सुख के लिए ( ते ) आप शस्त्रास्त्रवित् ( सखे ) मित्र की मित्रता के अनुकूल जिस मित्राचरण को ( उग्रमभिः ) चाहते और करते हैं ( तथा ) उसी प्रकार से आपकी ( तत् ) मित्रता हमारे में ( अस्तु ) हो, आप ( तथा ) वैसे ( कृणु ) कीजिए ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे सब का हित चाहने वाला और सकलविद्यायुक्त सभा सेनाध्यक्ष निरन्तर प्रजा की रक्षा करे वैसे ही प्रजा सेना के मनुष्यों को भी उनकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १२ ॥

उस में क्या-क्या स्थापन करके सब मनुष्यों को सुखयुक्त होना चाहिए

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**रेवतीर्नः सधमाद् इन्द्रं सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदम् ॥ १३ ॥**

वार्थ—( क्षुमन्तः ) जिन के अनेक प्रकार के अन्न विद्यमान हैं वे हम लोग



( यामि ) जिन प्रजाओं के साथ ( सधमावे ) आनन्दयुक्त एक स्थान में जैसे आनन्दित होवें वैसे ( त्विवाजा ) बहुत प्रकार के विद्याबोधवाणी ( वेदो ) जिनके प्रसस्तीय धन है वे प्रजा ( इन्द्र ) परमेश्वर के निमित्त ( सत्य ) हों ॥ १३ ॥

भाषार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमाकार है। मनुष्यों को सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष सहित सभाओं में सब राज्य, विद्या और धर्म के प्रचार करने वाले कार्य स्थापित करके सब सुख भोगना वा भोगाना चाहिए। और वेद की आज्ञा से एक से रूप, स्वभाव और एकसी विद्या वाले तथा युवा अवस्था के स्त्री और पुरुषों की परस्पर इच्छा से स्वयं-वर विधान से विवाह होने योग्य हैं। वे अपने घर के कार्यों में तथा एक दूसरे के सत्कार में नित्ययत्न करें। और वे ईश्वर की उपासना वा उनकी आज्ञा तथा सत्पुरुषों की आज्ञा में सदा चित्त देवें किन्तु उक्त व्यवहार में विरुद्ध व्यवहार में कभी किसी पुरुष वा स्त्री का अणभर भी न रहना चाहिए ॥ १३ ॥

फिर वह कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ य त्वावात्मनाः स्तोतृभ्यो धृष्यवियानः ।

ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे ( धृष्यो ) प्रति धृष्ट ( त्वना ) अपनी कुशलता से ( आप्त ) सर्वविद्यायुक्त मन्त्र के उपदेश करने और ( इयान ) राज्य के जानने वाले राजान् । ( त्वावान् ) आप से ( च ) आप ही हो जो आप ( चक्रयो ) रथ के पहियों की ( अक्षयो ) घुरी के ( न ) समान ( स्तोतृभ्य ) स्तुति करने वालों की ( आचरणो ) आप्त होते हो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार और प्रतीपालङ्कार है। जैसे पहियों की घुरी रथ को धारण करने वाली घूमती हुई भी अपने ही में ठहरीसी रहती है और रथ को देशान्तर में प्राप्त करने वाली होती है वैसे ही आप राज्य में व्याप्त होकर सहाय्योप्य नियम में रहते हो ॥ १४ ॥

फिर उसके सेवन से क्या फल होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ यद्दुर्बः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) अनेकविध विद्या, बुद्धि वा कर्मयुक्त राजसभा स्वामिन् ! आप स्तुति करने वाले धार्मिक जनो से ( सत् ) जो आप का ( दुर्ब ) सेवन है उनकी प्राप्त होकर ( शचीभिः ) रथ के योग्य कर्मों में ( अक्षम् ) उनकी घुरी के ( न ) समान उन ( जरितृणाम् ) स्तुति करने वाले धार्मिक जनो की ( कामम् ) कामनाओं की ( आ, चरणो ) अच्छी प्रकार पूरी करने हो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वानों का सेवन विद्यार्थियों के अभीष्ट अर्थान् उन की इच्छा के अनुकूल कामों को पूरा करता है वैसे परमेश्वर का सेवन धार्मिक मज्जन मनुष्यों का अभीष्ट पूरा करता है इसलिए सबको चाहिए कि परमेश्वर की सेवा नित्य करे ॥ १५ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसे और क्या करता है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है

अश्वदिन्द्रः प्रोमृथाङ्गिजाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।

स नो हिरण्यरथं दंसनावात्मनः सनिता मनये स नोऽदान् ॥ १६ ॥

पदार्थ—( इन्द्र ) जगत् का रचने वाला ईश्वर ( शश्वत् ) अनादि सनातन कारण से ( नानदद्भिः ) सड़क और गजना आदि मन्दो का कर्मी हुई अचेतन बिजली और नदी और जीव तथा ( शाश्वसद्भिः ) प्रति प्रसस्तीय प्राण वाले चर वा ( प्रोमृथाङ्गि ) स्थूल जो कि अचर हैं उन कार्यरूपी पदार्थों से ( धनानि ) पृथिवी सुवर्ण और विद्या आदि धनो को ( जिगाय ) प्रकृतिना अर्थात् उन्नति को प्राप्त करता है ( स ) वह ( दंसनावान् ) कर्मों का फल देनेवाला और माधनो से संयुक्त ईश्वर ( न ) हमारे लिए ( हिरण्यरथम् ) ज्योति वाले सूर्य आदि लोक वा सुवर्ण आदि पदार्थों के प्राप्त कराने वाले पदार्थ और विमान आदि रथों को ( अवात् ) प्रत्यक्ष करता है ( स ) वह ( न ) हमको सुखों के ( सनये ) भोग के लिए ( सनिता ) विद्या, कर्म और उपदेश से विभाग करने वाला होकर सब सुखों को ( अवात् ) देता है वैसे सभा, सेनापति और न्यायाधीश भी बनें ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जैसे जगदीश्वर सनातन कारण से चर अचर कार्यों को उत्पन्न करके इन से सब जीवों का सुख देता है वैसे सभा सेनापति, न्यायाधीश लोग सब सभा सेना और न्याय के भ्रमों को सिद्ध कर सब प्रजा को निरन्तर आनन्दयुक्त करें। जैसे इस से भिन्न और कोई समार का रचने वा कर्म फल का देने और ठीक न्याय से राज्य का पालन करने वाला नहीं हो सकता वैसे वे भी सब कार्य करें ॥ १६ ॥

फिर वे कैसे हों इसका प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

अश्विनावाश्ववत्येषा यातं शवीरया । गोमहसा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे ( वत्सा ) दारिद्र्य विनाश करनेवाले ( अश्विनी ) बिजली और पृथिवी के समान विद्या और क्रियाकुशल शिल्पी लोगो ! तुम ( वत्सा ) चाही हुई ( अश्ववत्या ) वेग आदि गुणयुक्त ( शवीरया ) देशान्तर को प्राप्त कराने वाली गति के साथ ( हिरण्यवत् ) जिसके सुवर्ण आदि साधन हैं और ( गोमहत् ) जिस में सिद्ध किये हुए धन से सुख प्राप्त कराने वाली बहुत सी क्रिया है उस रथ को ( आवातम् ) अच्छे प्रकार देशान्तर को पहुँचाइए ॥ १७ ॥

भाषार्थ—यूवकों अश्वि अर्थात् सूर्य और पृथिवी के गुणों से चलाया हुआ

रथ शीघ्रगमन से भूमि, जल और अन्तरिक्ष में गति करता है इसलिए इसको शीघ्र साधना चाहिए ॥ १७ ॥

फिर वे किस प्रकार के हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समानयोजनो हि वा रथो दत्तावमर्त्यः । समुद्रे अम्बिनेयते ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे ( वत्सी ) मार्ग चलने की पीड़ा को हटानेवाले ( अश्विनी ) उक्त अश्वि के समान शिल्पकारी विद्वानो ! ( वात् ) तुम्हारा सिद्ध किया हुआ ( समयोजन ) जिस में तुल्य गुण से अश्व लगाये हों ( अमर्त्य ) जिसके लौकिक से मनुष्य आदि प्राणी न लगे हो वह ( रथ ) नाव आदि रथसमूह ( समुद्रे ) जल से पूर्ण सागर वा अन्तरिक्ष में ( अश्ववत्या ) वेग आदि गुणयुक्त ( शवीरया ) देशान्तर को प्राप्त करानेवाली गति के साथ ( ईयते ) समुद्र के पार और बार को प्राप्त कराने वाला होता है उस को सिद्ध कीजिए ॥ १८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से “अश्ववत्या, शवीरया” इन दो पदों की अनुवृत्ति है। मनुष्यों की जो अग्नि वायु और जलयुक्त कलायन्त्रों से सिद्ध की हुई नाव है वे नित्यरेह समुद्र के अन्त को जल्दी पहुँचाती हैं। ऐसी-ऐसी नावों के बिना अभीष्ट समय में चाहें हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

न्यः अन्यस्य मुर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि धामन्यदीयते ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे अश्विनी विद्यायुक्त शिल्पि लोगो ! तुम दोनों ( समयोजन ) को कि विनाश करने योग्य नहीं है उस ( रथस्य ) विमान आदि यान के ( मुर्धनि ) उत्तम अङ्ग अग्रभाग में जो एक और ( अन्धत् ) दूसरा नीचे की ओर कलायन्त्र बनाओ तो वे दो चक्र समुद्र वा ( वात् ) आकाश पर भी ( निधेमथुः ) देश-देशान्तर में जाने के वास्ते बहुत अच्छे हो। इन दोनों चक्रों से जुड़ा हुआ रथ जहाँ चाहो वहाँ ( ईयते ) पहुँचाने वाला होता है ॥ १९ ॥

भाषार्थ—शिल्पि विद्वानों को योग्य है कि जो शीघ्र जाने-आने के लिए रथ बनाना चाहें तो उस के आगे एक-एक कलायन्त्रयुक्त चक्र तथा सब कलाओं के घूमने के लिए दूसरा चक्र नीचे भाग में रखके उस में यन्त्र के साथ जल और अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग करे इस प्रकार रखे हुए यान भार सहित शिल्पि विद्वान् लोगों को भूमि, समुद्र और अन्तरिक्ष मार्ग से सुखपूर्वक देशान्तर को प्राप्त कराते हैं ॥ १९ ॥

अब इस विद्या के उपयोग करने वाले प्रातःकाल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

कस्तं उपः कथमिये भुजे मतीं अमर्त्यं । कं नक्षसे विभावरी ॥ २० ॥

पदार्थ—हे विद्याप्रियजन ! जो यह ( अमर्त्यं ) कारण प्रवाह रूप से नाश-रहित ( कथमिये ) कथनप्रिय ( विभावरी ) और विविध जगत् को प्रकाश करने वाली, ( उवा ) प्रातःकाल की बेला ( भुजे ) सुख भोग करने के लिए प्राप्त होती है उसको प्राप्त होकर तू ( कम् ) किस मनुष्य को ( नक्षसे ) प्राप्त नहीं होता और ( क ) कौन ( मर्त् ) मनुष्य ( भुजे ) सुख भोगने के लिए ( ते ) तेरे आश्रय को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में कावचार्थ है। कौन मनुष्य इस काल की सूक्ष्म गति जो व्यर्थ खोने के आयोग्य है उसको जाने। जो पुरुषार्थ का आरम्भ का आदि समय प्रातःकाल है उसके निश्चय से प्रातःकाल उठकर, जब तक सोने का समय न हो एक भी क्षण व्यर्थ न खोवे। इस प्रकार समय की सार्थकता को जानते हुए मनुष्य सब काल सुख भोग सकते हैं, किन्तु धानस्य करने वाले नहीं ॥ २० ॥

फिर वह बेला कैसे जाननी चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वयं हि ते अपमन्महान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुधि ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे कालविद्यावित् जन ! जैसे ( वयम् ) समय के प्रभाव को जानने वाले हम लोग जो ( चित्रे ) आश्चर्यरूप ( अरुधि ) कुछ एक लाल गुणयुक्त उषा है उस को ( आ मन्तात् ) प्रत्यक्ष समीप वा ( आपराकात् ) एक नियम किये हुए दूर देश से ( अश्वे ) नित्य शिक्षा के योग्य घोड़े पर बैठके जाने-आने वाले के ( न ) समान ( अमन्महि ) जानें वेगे इस को तू भी जान ॥ २१ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल का यथायोग्य उपयोग लेना जानते हैं उनके पुरुषार्थ से समीप वा दूर के सब कार्य सिद्ध होते हैं। इस से किसी मनुष्य को भी क्षण भर भी व्यर्थ काल न खोना चाहिए ॥ २१ ॥

फिर वह कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं त्येमिरा गहि वाजैभिर्द्विहृतिर्दिवः । अस्मे रयि नि धारय ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे काल के माहात्म्य को जानने वाले विद्वन् ! ( त्वम् ) तू जो ( विव ) सूर्य किरणों से उत्पन्न हुई उस की ( द्विहृति ) लक्ष्मी के समान प्रातःकाल की बेला ( त्येभिः ) अपने उत्तम अवयव अर्थात् दिन-महीना आदि विभागों से वह हम लोगों को ( वाजैभिः ) अश्व आदि पदार्थों के साथ प्राप्त होती और बनादि पदार्थों की प्राप्ति का निमित्त होती है उस से ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( रयिम् ) विद्या सुवर्णादि धनो को ( निधारय ) निरन्तर ग्रहण कराओ और ( आपहि ) इस

प्रकार विद्या की प्राप्ति कराने के लिए प्राप्त हुआ कीजिए कि जिससे हम लोग भी स्वयं की निरर्थक न छोड़ें ॥ २२ ॥

आचार्य—जो मनुष्य काल की धर्म नहीं छोड़ें उन का सब काल सब कार्यों की सिद्धि करनेवाला होता है ॥ २२ ॥

इस मन्त्र में पिछले सूक्त के अनुवर्गी “इन्द्र, अग्नि और इन्द्रा” समय के वर्तमान से पिछले सूक्त के अनुवर्गी धर्मों के साथ इस सूक्त के धर्म की सञ्ज्ञा जाननी चाहिए ।

यह पहले अष्टक दूसरे अध्याय में इकतीसवाँ धर्म तथा पहले अष्टक में छठा अनुवाक और तीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३० ॥



अथाध्यायसर्वस्वकारिणात्मस्य सुखात्वात्तद्विद्वत्सोऽहिरण्यस्यैवः । अग्निर्वैवता ।

१—७, २—१५, १७ जगती छन्दो निवाचः स्वरः । ८, १६, १८  
त्रिष्टुप् च छन्दः । वचनः स्वरः ॥

यह इकतीसवाँ सूक्त का आरम्भ है । उसके पहिले अष्टक में  
ईश्वर का प्रकाश किया है—

स्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सर्वा ।

सर्वं व्रते कवयो विद्वानापसोऽजायन्त मस्तो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) आप ही प्रकाशित और विज्ञानस्वरूपयुक्त जगदीश्वर ! जिस कारण ( त्वम् ) आप ( प्रथमः ) अनादिस्वरूप अर्थात् जगत्कल्प के आदि में सदा वर्तमान ( अङ्गिराः ) ब्रह्माण्ड के पृथिवी भाग, शरीर के हस्त, पाद आदि अङ्गों के स्वरूप अर्थात् अन्तर्धानी ( ऋषिः ) सर्व विद्या से परिपूर्ण वेद के उपदेश करने और ( देवानाम् ) विद्वानों के ( देवः ) आनन्द उत्पन्न करने ( शिवः ) मङ्गलमय तथा प्राणियों की मङ्गल देने तथा ( सर्वा ) उनके दुःख दूर करने में सहाय-कारी ( अभवः ) होते ही और जो ( विद्वानापसः ) ज्ञान के हेतु काम युक्त (अपसः) धर्म की प्राप्ति मनुष्य ( त्वम् ) आप की ( व्रते ) आज्ञा, नियम में रहते हैं, इससे वही ( अजायन्तः ) प्रकाशित अर्थात् ज्ञान वाले ( कवयः ) कवि, विद्वान् (अजायन्तः) होते हैं ॥ १ ॥

आचार्य—जो ईश्वर की आज्ञा पालन, धर्म और विद्वानों के संग के सिवाय और कुछ काम नहीं करते उनकी परमेश्वर के साथ मित्रता होती है, फिर उस मित्रता से उनके आत्मा में सद्विद्या का प्रकाश होता है, और वे विद्वान् होकर उत्तम काम का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के सुख देने के लिए प्रसिद्ध होते हैं ॥ १ ॥

फिर यह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषमि व्रतम् ।

विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्रिमाता शयुः कतिधा चिदायवै ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सब दुःखों के नाश करने और सब दुष्ट शत्रुओं के दाह करनेवाले जगदीश्वर वा सभासेनाध्यक्ष ! जिस कारण ( त्वम् ) आप ( प्रथमः ) अनादिस्वरूप वा पहले मानने योग्य ( शयुः ) अलय में सब प्राणियों को सुलाने ( मेधिरो ) सृष्टि समय में सब को चिताने ( द्रिमाता ) प्रकाशवान् वा अप्रकाशवान् लोको के निर्माण अर्थात् सिद्ध करने वा तद्विद्या को जनाने वाले ( अङ्गिरस्तमः ) जीव, प्राण और मनुष्यों में अत्यन्त उत्तम ( विभुः ) सर्वव्यापक वा सभा सेना के अङ्गों से शत्रु बलों में व्याप्त स्वभाव ( कविः ) और सब को जानने वाले हैं ( चित् ) उसी कारण से ( आयवे ) मनुष्य वा ( विश्वस्मै ) सब ( भुवनाय ) ससार के लिए ( देवानाम् ) विद्वान् वा सूर्य और पृथिवी आदि लोको के ( ज्ञतम् ) धर्मयुक्त नियमों को ( कतिधा ) कई प्रकार से ( परिभूषति ) सुशोभित करते हो ॥ २ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । परमेश्वर वेद द्वारा वा उसके पढ़ाने से विद्वान् मनुष्य के विद्या धर्मरूपी व्रत वा लोको के नियमरूपी व्रत को सुशोभित करता है । जिस ईश्वर ने सूर्य आदि प्रकाशवान् वा वायु, पृथिवी आदि अप्रकाशवान् लोकमनुह रचा है वह सर्वव्यापी है । जो ईश्वर की रची हुई सृष्टि से विद्या की प्रकाशित करता है वह विद्वान् होता है । उस ईश्वर और विद्वानों के बिना कोई मन्त्र-विद्या वा कारण से कार्यरूप सब लोको के रचने, धारण और जानने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ २ ॥

स्वमग्ने प्रथमो मातरिर्धन आविर्भव सुकृत्या विवस्वते ।

अरेजेतां रोदसी होतृर्ह्येऽसन्नोऽभारमयजो महो वसो ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) परमात्मन् वा विद्वन् ! ( प्रथमः ) अनादिस्वरूप वा समस्त कार्यों में अग्रगन्ता ( त्वम् ) आप जिस ( सुकृत्या ) श्रेष्ठ बुद्धि और कर्मों की सिद्ध करानेवाले पवन से ( होतृर्ह्ये ) होतागों को ग्रहण करने योग्य ( रोदसी ) विद्युत् और पृथिवी ( अरेजेताम् ) अपनी कक्षा में घूमा करते हैं उस ( मातरिर्धने ) अपनी आकाश रूपी माता में सोने वाले पवन वा ( विवस्वते ) सूर्यलोक के लिए उनकी ( आभिः, अन्न ) प्रकट कराएँ । हे ( वसो ) सब को निवास करानेवाले ! आप शत्रुओं का ( अभारमयः ) विनाश कीजिए जिनसे ( अहः ) बड़े-बड़े ( भारम् )

भारयुक्त यान की ( अयवः ) देश-देशान्तर में पहुँचाते ही उनका बोध हमको कराएँ ॥ ३ ॥

आचार्य—कारण रूप अग्नि अपने कारण और वायु के निमित्त से सूर्य रूप से प्रसिद्ध तथा अन्धकार विनाश करने पृथिवी वा आकाश का धारण करता है । वह यज्ञ वा शिल्पविद्या के निमित्त से कलायन्त्रों में संयुक्त किया हुआ बड़े-बड़े भारयुक्त विमान आदि यानों की धीम ही देश-देशान्तर में पहुँचाता है ॥ ३ ॥

फिर यह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

त्वमग्ने मनवे धामवाशयः पुरुरवसे सुकृते सुकृतरः ।

आत्रेण यत्पित्रोर्मुच्यंसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर ! ( सुकृतरः ) अत्यन्त सुकृत कर्म करने वाले ( त्वम् ) सर्वप्रकाशक आप ( पुरुरवसे ) जिसके बहुत से उत्तम-उत्तम विद्या-युक्त वचन हैं और ( सुकृते ) अच्छे-अच्छे कर्मों को करने वाला है उस ( मनवे ) मानवान् विद्वान् के लिए ( धाम् ) उत्तम सूर्यलोक को ( आवाशयः ) प्रकाशित किये हुए हैं । विद्वान् लोग ( आत्रेण ) वन और विज्ञान के साथ वर्तमान ( पूर्वम् ) पूर्वकल्प वा पूर्वजन्म में प्राप्त होने योग्य और ( अपरम् ) इसके आगे जन्म-मरण आदि से अलग प्रतीत होने वाले आपको ( पुनः ) बार-बार ( अनयन् ) प्राप्त होते हैं । हे जीव ! तू जिस परमेश्वर को वेद और विद्वान् लोग उपदेश से प्रतीत कराते हैं जो ( त्वा ) तुम्हें ( आत्रेण ) वन और विज्ञान के साथ वर्तमान ( पूर्वम् ) पिछले ( अपरम् ) अगले देह को प्राप्त कराता है और जिसके उत्तम ज्ञान से मुक्त दशा में ( पित्रोः ) माता और पिता से तू ( पर्यामुच्यसे ) सब प्रकार के दुःख से छूट जाता तथा जिसके नियम से सृष्टि से महाकल्प के अन्त में फिर ससार में आता है उसका विज्ञान वा सेवन तू ( आ ) अच्छे प्रकार कर ॥ ४ ॥

आचार्य—जिस जगदीश्वर ने सूर्य आदि जगत् रचा वा जिस विद्वान् ने सुशिक्षा का ग्रहण किया जाता है उस परमेश्वर वा विद्वान् की प्राप्ति अच्छे कर्मों से होती है तथा चक्रवर्ति राज्य आदि धन का सुख भी वैसे ही होता है ॥ ४ ॥

त्वमग्ने वृषमः पुष्टिवर्द्धन उद्यतस्त्वमे भवसि भवाय्यः ।

य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्ने विषं आविवांससि ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) यज्ञक्रिया फलवित् जगद्गुरो परेश ! जो ( त्वम् ) आप ( अग्ने ) प्रथम ( उद्यतस्त्वमे ) जन्म अर्थात् होम और ग्रहण करने वाली वस्तु बढ़ाने के पात्र को अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले मनुष्य के लिए ( भवाय्यः ) सुलने-सुलाने योग्य ( वृषमः ) और सुख वषति वाले ( एकायुः ) एक साथ गुण कर्म स्वभाव युक्त वर्तमान तथा रूप ( पुष्टिवर्द्धनः ) पुष्टि-वृद्धि करने वाले ( भवसि ) होते हैं ( यः ) जो आप ( वषट्कृतिम् ) जिसमें कि उत्तम-उत्तम क्रिया की जाए ( आहुतिम् ) तथा जिससे धर्मयुक्त आचरण किये जाएँ उसका विज्ञान कराते हैं ( विषः ) प्रजा पुष्टि-वृद्धि के साथ उन आप और सुखों को ( आविवांससि ) अच्छे प्रकार से सेवन करती है ॥ ५ ॥

आचार्य—मनुष्यों को उचित है कि पहले जगत् का कारण बहुज्ञान और यज्ञ की विद्या में जो क्रिया, जिस प्रकार के होम करने योग्य पदार्थ उनको अच्छे प्रकार जानकर उनकी यथायोग्य क्रिया जानने में छुड़ वायु और वर्षा जल की बुद्धि के निमित्त जो पदार्थ है उनका होम अग्नि में करने से इस जगत् में बड़े-बड़े, उत्तम-उत्तम सुख बढ़ते हैं और उनसे सब प्रजा आनन्दयुक्त होती है ॥ ५ ॥

अब ईश्वर का उपासक वा प्रजा पालनेवाला पुरुष क्या-क्या कृत्य करे

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वमग्ने वृजिनवर्त्तनि नरं सकमन पिपर्षि विदधे विचर्षणे ।

यः शूरसाता परितकम्ये धने दग्नेभिश्चित्समृता हंसि भूर्यसः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( सकमन् ) सब पदार्थों का सम्बन्ध कराने ( विचर्षणे ) धनेक प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार देखने वाले ( अग्ने ) राजनीतिविद्या से शोभाय-मान सेनापते ! ( यः ) जो तू ( विदधे ) धर्मयुक्त यज्ञरूपी ( शूरसाता ) सशस्त्र में ( दग्नेभिः ) थोड़े ही साधनों से ( वृजिनवर्त्तनिम् ) अधर्म मार्ग में चलने वाले ( नरम् ) मनुष्य और ( भूयसः ) बहुत शत्रुओं का ( हंसि ) हननकर्ता है और ( समृता ) अच्छे प्रकार मर्य कर्मों का ( पिपर्षि ) पालनकर्ता है । ( परितकम्ये ) सब और से देखने योग्य ( अग्ने ) मनुष्य, विद्या और चक्रवर्ति राज्य आदि धन की रक्षा करने के निमित्त आप हमारे सेनापति हूँ ॥ ६ ॥

आचार्य—परमेश्वर का यह स्वभाव है कि जो पुरुष अधर्म छोड़ धर्म करने की इच्छा करते हैं उनको अपनी कृपा से शीघ्र ही धर्म में स्थिर करता है । जो धर्म से युद्ध वा धन की सिद्ध करना चाहते हैं उनकी रक्षा कर उनके कर्मों के अनुसार उनके लिए धन देता और जो छोटे आचरण करते हैं उनको उनके कर्मों के अनुसार वृद्ध देता है । जो ईश्वर की आज्ञा में वर्तमान धर्मात्मा थोड़े भी युद्ध के पदार्थों से युद्ध करने को प्रवृत्त होते हैं ईश्वर उन्हीं को विजय देता है औरों को नहीं ॥ ६ ॥

फिर यह ईश्वर जीवों के लिए क्या करता है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

त्वं तमग्ने अमृतत्वं उत्तमे मर्षे दधासि भवसे दिवेदिवे ।

यस्तावृषाण उभयाय जन्मने मर्यः कुणोषि प्रय आ च सूर्ये ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर ! आप ( यः ) जो ( सूरिः ) बुद्धिमान्





( पश्चिमि ) पावते ही ( स. ) ऐसे धर्मरामा, परोपकारी, विद्वान् आप ( विव. ) सूर्य के प्रकाश की ( उष्मा ) उपमा पाते हो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सब के सुख करने वाले पुरुषार्थी मनुष्य यत्न के साथ धर्मों को करते हैं वे जैसे सूर्य सब को प्रकाशित करके सुख देता है वैसे ही सब को सुख देने वाले होते हैं। जैसे युद्ध में प्रवृत्त हुए योनों को शस्त्रों के घातों से बहुर बचाता है वैसे ही सभापति राजा और राजजन सब धार्मिक मजनों की सब दुःखों से रक्षा करते रहे ॥ १५ ॥

यह पहले अष्टक के दूसरे अध्याय में चौतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

इमामिंशे शरणि मीमृषो न ममध्वानं यमगाम दूरात् ।

आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भूमिरसृष्टिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सब को सहने वाले सर्वोत्तम विद्वन् ! जो आप ( सोम्यानाम् ) शास्त्रादि गुणयुक्त ( मर्त्यानाम् ) मनुष्यों को ( आपि ) प्रीति से प्राप्त ( पिता ) और सर्वपापक ( प्रमति ) उत्तम विद्यायुक्त ( भूमि ) नित्य भ्रमण करने और ( अष्टिकृत् ) वेदार्थ का बोध कराने वाले हैं तथा ( न ) हमारी ( इमाम् ) हम ( शरणिम् ) विद्यानाशक अविद्या को ( मीमृष ) अत्यन्त दूर करानेहारे हैं वे आप और हम ( यम् ) जिसको हम लोग ( दूरात् ) दूर से उत्पन्न करने ( इमम् ) वक्ष्यमाण ( अष्टिकृत् ) धर्मयार्ग के ( अगाम ) सम्मुख आते उनकी सेवा करें ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जब मनुष्य सत्य भाव से अच्छे मार्ग को प्राप्त करना चाहते हैं, तब जगदीश्वर उनकी उत्तम ज्ञान का प्रकाश करने वाले विद्वानों का सग करने के लिए प्रीति और जिज्ञासा अर्थात् उनके उपदेश के जानने की इच्छा उत्पन्न करता है इससे वे श्रद्धालु हुए अत्यन्त दूर भी बसने वाले सत्यवादी योगी विद्वानों के समीप जा उनका सगकर असीष्ट बोध प्राप्त कर धर्मरामा होते हैं ॥ १६ ॥

मनुष्वदमे अङ्गिस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववक्तुचे ।

अच्छं याथा वहा देव्यं जनमा मादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे ( शुभे ) पवित्र ( अङ्गिर ) प्राण के समान धारण करने वाले ( अग्ने ) विद्याओं से सर्वत्र व्याप्त सभाध्यक्ष ! आप ( मनुष्वत् ) मनुष्यों के जाने-आने के समान वा ( अङ्गिरस्वत् ) शरीर में व्याप्त प्राण वायु के सदृश गज्य कर्म में व्याप्त पुरुष के तुल्य वा ( यातिवत् ) जैसे पुरुष यत्न के माग कामों की मित्र करने-कराते हैं वा ( पूर्ववत् ) जैसे उत्तम प्रतिष्ठा वाले विद्वान् विद्या देने वाले हैं वैसे ( प्रियम् ) सब को प्रसन्न करनेहारे ( अङ्गिम् ) विद्वानों में प्रति चतुर ( जनम् ) मनुष्य को ( अच्छं ) अच्छे प्रकार ( याथाहि ) प्राप्त हुआ उस मनुष्य को विद्या और धर्म की और ( बह ) प्राप्त कीजिए तथा ( बर्हिषि, सवने ) उत्तम मोक्ष के साधन में ( यासावय ) स्थित और ( यक्षि ) वहाँ उसको प्रतिष्ठित कीजिए ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जिन मनुष्यों ने विद्या, धर्मानुष्ठान और प्रेम से सभापति की सेवा की है वह उनका उत्तम-उत्तम धर्म के कामों में लगाता है ॥ १७ ॥

फिर वह कंसा है इस का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वाङ्मध्वं शक्तीं वा यत्तं चक्रमा विदा वा ।

उत प्र णैष्यमि वस्यो अस्मान्तं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सर्वोत्कृष्ट विद्वन् ! आप ( ब्रह्मणा ) वेदविद्या ( वाज-वत्या ) उत्तम धम्म, युद्ध और विज्ञान वा ( शक्ति ) आत्म सामर्थ्य ( सुमत्या ) श्रेष्ठ विचार ( न ) हमारे लिए ( वस्य ) अत्यन्त धन ( अमिसृज ) सब प्रकार से प्रकट कीजिए ( उत ) और आप ( विदा ) अपने उत्तम ज्ञान से ( वाङ्मध्वं ) नित्य उन्नति को प्राप्त हुआ ( ते ) आपका ( यत् ) जो प्रेम है वह हम लोग ( चक्रम् ) करें और आप ( अस्मान् ) हम लोगों को ( प्रणैषि ) श्रेष्ठ बोध को प्राप्त कीजिए ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य वेद की गीति से धर्मयुक्त व्यवहार का करते हैं वे ज्ञान-वान् और श्रेष्ठमति वाले होकर जिस उत्तम विद्वान् की सेवा करते हैं, वह उन को श्रेष्ठ सामर्थ्य और उत्तम विद्यासयुक्त करता है ॥ १८ ॥

इस सूक्त में सेनापति आदि के अनुयायी अर्थों के प्रकाश से पिछले सूक्त के साथ इस सूक्त की सर्गाति जाननी चाहिए ।

यह पहले अष्टक में दूसरे अध्याय का पंतीसवाँ वर्ग वा पहले मण्डल के सातवें अनुवाक में इकतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

५५

अथ पञ्चवसवस्य द्वाविंशस्य सप्ततस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तुप ऋषिः । इन्द्रो वैवता ।  
त्रिष्टुप् छन्दः । ऋत स्वरः ॥

अथ वसीसर्वे सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहले मन्त्र में इन्द्र सव्य से सूर्यलोक की उषमा करके राजा के गुणों का प्रकाश किया है—

इन्द्रस्य नु कीर्योणि प्र वीचं यानि चकार प्रथमानि वजी ।

अह्वहिमन्वपस्तर्दे प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जैसे ( इन्द्रस्य ) सूर्य के ( यानि )

जिन ( प्रवक्ष्यामि ) प्रसिद्ध ( वीर्योणि ) पराक्रमों को कहो उनको मैं भी ( नु, प्रवोचम् ) भीष कहूँ जैसे वह ( वक्षी ) सब पदार्थों के छेदन करने वाले किरणों से युक्त सूर्य ( अहिम् ) मेघ को ( अहम् ) हनन करके वर्षाता, उस मेघ के अवयव रूप ( अथ ) जलो को नीचे-ऊपर ( चकार ) करता उसको ( तर्दे ) पृथिवी पर गिराता और ( पर्वतानाम् ) उन मेघों के सकाश से ( प्रवक्षणा ) नदियों को छिन्न-भिन्न करके बहाता है वैसे मैं शत्रुओं को मारूँ उनको ध्वज-उधर फेंकूँ और उनको तथा किला आदि स्थानों से युद्ध करने के लिए आई सेनाओं को छिन्न-भिन्न करूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ यह अग्निमय सूर्यलोक जैसे अपने स्वाभाविक गुणों से युक्त घननादि, प्रकाश, चाकर्षण, दाह, छेदन और वर्षा की उत्पत्ति के निमित्त कामों को दिन-रात करता है वैसे जो प्रजा के पालन में नरपर राजपुरुष है उनको भी नित्य प्रति करना चाहिए ॥ १ ॥

फिर वह सूर्य तथा सभापति क्या करता है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

अह्वहि पर्वते शिश्रियाणं त्रष्टस्मै वज्रं स्वयं ततक्ष ।

वाभा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जमुरापः ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे यह ( त्रष्टा ) सूर्यलोक ( पर्वते ) मेघमण्डल में ( शिश्रि-याणम् ) रहने वाले ( स्वयम् ) गर्जनशील ( अहिम् ) मेघ का ( अहम् ) मारता है ( ततक्ष ) छोटता है। इस कर्म से ( वाभा धेनव इव ) बछड़ों को प्रीतिपूर्वक चाहती हुई गौधों के समान ( स्यन्दमानाः ) चलते हुए ( अञ्जः ) प्रकट ( आपः ) जल ( समुद्रम् ) जल से पूर्ण समुद्र को ( अवजमु ) नदियों के द्वारा जात हैं वैसे ही सभाध्यक्ष राजा का चाहिए कि किला में रहने वाले दुष्ट शत्रु को मारे इस शत्रु के लिए उत्तम शस्त्र छोड़े इस प्रकार उसके बछड़ों को चाहने वाली गौधों के समान चलते हुए प्रसिद्ध प्राणों को अन्तारक्ष में प्राप्त करे, उन कण्टक शत्रुओं को मारके प्रजा को सुख देवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से अन्त-रिक्ष में रहने वाले मेघ को भूमि पर गिराकर जगत् को जिलाता है वैसे ही सेनापति किला, पर्वत आदि में रहने वाले शत्रु को भी पृथिवी में गिरा के प्रजा को निरन्तर सुखी करता है ॥ २ ॥

फिर वह कंसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वृषायमाणोऽक्षणीत मोमं त्रिकद्वकेष्वपि वत्सुतस्य ।

आ सार्यकं मघवादत् वज्रमहभेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो ( वृषायमाणः ) वीर्यवृद्धि का आचरण करता हुआ सूर्यलोक मेघ के समान ( वत्सुतस्य ) इस उत्पन्न हुए जगत् के ( त्रिकद्वकेषु ) जिनकी उत्पत्ति, स्थिरता और विनाश य तीन कला व्यवहार में वसति वाले हैं उन पदार्थों में ( मोमम् ) उत्पन्न हुए रस को ( अक्षणीत ) स्वीकार करना ( अपि वत् ) उसको अपने ताप में भर नेता और ( मघवा ) यह बहुत सा धन दिलाता वाला सूर्य ( सार्यकम् ) शस्त्र-रूप ( वज्रम् ) किरण समूह को ( आदत् ) लेने हुए के समान ( अहीनाम् ) मेघों में ( प्रथमजाम् ) प्रथम प्रकट हुए ( एनम् ) इस मेघ को ( अहम् ) मारता है। वैसे गुरु, कर्म, स्वभावयुक्त पुरुष सेनापति का अधिकार पाने योग्य होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बैल-वीर्य को बड़ा, बलवान् हो सुखी होता है वैसे सेनापति दूध आदि पीकर बलवान् होवे और जैसे सूर्य रस को पी अच्छे प्रकार बरसाता है वैसे शत्रुओं के बल को खींच अपना बल बढ़ाके प्रजा में सुखों की वृद्धि करे ॥ ३ ॥

फिर वह किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यदिन्द्राहन्मधमजामहीनामान्मायिनाममिनाः पोत मायाः ।

आत्सूर्य्यं जनयन्धामुषासं तादीत्ना शत्रु न किलऽविविस्ते ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जैसे ( इन्द्र ) सब पदार्थों को विदीर्ण अर्थात् छिन्न-भिन्न करने वाला सूर्यलोक ( अहीनाम् ) छोटे-छोटे मेघों के मध्य में ( प्रथमजाम् ) संगार के उत्पन्न होने के समय में उत्पन्न हुए मेघ को ( अहम् ) हनन करता है। जिनकी ( मायिनाम् ) सूर्य के प्रकाश का आवरण करने वाली बड़ी-बड़ी घटा उठती हैं उन मेघों की ( माया ) उक्त अन्धकार रूप घटाओं को ( प्रामिनाः ) अच्छे प्रकार हरता है ( तादीत्ना ) तब ( यत् ) जिस ( सूर्य्यम् ) किरणसमूह ( उवसम् ) प्रातः-काल और ( धाम् ) अपने प्रकाश को ( प्रबलयन् ) प्रकट करता हुआ दिन उत्पन्न करता है ( न ) वैसे ही तू शत्रुओं को ( विविस्ते ) प्राप्त हुआ उनकी छल-कपट आदि मायाओं का हनन कर और उस समय सूर्यरूप न्याय का प्रसिद्ध करके सत्य विद्या के व्यवहाररूप सूर्य का प्रकाश किया कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कोई राजपुरुष अपने वीर्यों के बल और छल का निवारण कर और उनको जीतके अपने राज्य में सुख तथा न्याय का प्रकाश करता है वैसे ही सूर्य भी मेघ की घटाओं की घनता और अपने प्रकाश के छापने वाले मेघ को निवारण कर अपनी किरणों को फैला मेघ को छिन्न-भिन्न और अन्धकार को दूर कर अपनी वीर्य की प्रसिद्ध करता है ॥ ४ ॥

फिर वह सूर्य उस मेघ को कैसा करता है इस विषय का उपदेश  
अगले मन्त्र में किया है—

**अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।**

**स्कन्धासीव कुलिशेना विवृणोति शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हे महावीर सेनापते ! आप जैसे ( इन्द्र ) सूर्य वा बिजुली (वहता) प्रतिविस्तार युक्त ( कुलिशेन ) अत्यन्त बारबासी तलवार रूप ( वज्रेण ) पदाथों के छिन्न-भिन्न करनेवाले प्रतिताप युक्त किरणसमूह से ( विवृणोति ) कटे हुए ( स्कन्धासीव ) कन्धों के समान ( व्यसन् ) छिन्न-भिन्न धक्के जैसे हों वैसे ( वृत्र-तरन् ) अत्यन्त सघन ( वृत्रम् ) मेघ को ( अहन् ) मारता है अर्थात् छिन्न-भिन्न कर पृथिवी पर बरसाता है और वह ( वधेन ) सूर्य के गुणों से मृतकवत् होकर ( अहि ) मेघ ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( उपपृक् ) ऊपर ( वधते ) सोता है वैसे ही वैरियों का हनन कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमा और उपमालङ्कार है । जैसे कोई अति-तीक्ष्ण तलवार आदि शस्त्रों से शत्रुओं के शरीर को छेदन कर भूमि में गिरा देता और वह मरा हुआ शत्रु पृथिवी पर सो जाता है वैसे ही वह सूर्य और बिजुली मेघ के अङ्गों को छेदन कर भूमि में गिरा देती और वह भूमि में गिरा हुआ सोते के समान दीख पड़ता है ॥ ५ ॥

फिर वे कैसे युद्ध करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अयोदेवं दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविवाधमृजीधम् ।**

**नातारीदस्य समृति वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥**

पदार्थ—( दुर्मद ) दुष्ट अभिमानी ( अयोदेव ) युद्ध की इच्छा न करने वाले पुरुष के समान मेघ ( अयोध्वम् ) पदाथों के रस को इकट्ठे करने और ( तुवि-वाधम् ) बहुत शत्रुओं को मारनेहारे के तुल्य ( महावीरम् ) अत्यन्त बलयुक्त शूरवीर के समान सूर्यलोक को ( आहुते ) इध्वा से पुकारते हुए के सदृश वर्तता है जब उसको रोते हुए के सदृश सूर्य ने मारा तब वह मारा हुआ ( इन्द्रशत्रुः ) सूर्य का शत्रु मेघ ( पिपिषे ) सूर्य से पिस जाता है और वह ( रुजम् ) इस सूर्य की ( वध-नाम् ) ताड़नाओं के ( समृतिम् ) समूह को ( नातारीत् ) सह नहीं सकता और ( हि ) निश्चय है कि इस मेघ के शरीर से उत्पन्न हुई ( रुजानाः ) नदियाँ पर्वत और पृथिवी के बड़े-बड़े टीनों को छिन्न-भिन्न करती हुई बहती हैं वैसे ही सेनाधो में प्रकाशमान सेनाध्यक्ष शत्रुओं में चेष्टा किया करे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मेघ ससार के प्रकाश के लिए सूर्य के वर्तमान प्रकाश को अकस्मात् पृथिवी से उठा और रोककर उसके साथ युद्ध करते हुए के समान वर्तता है तो भी वह मेघ सूर्य के सामर्थ्य का पार नहीं पाता । जब यह सूर्य मेघ को मारकर भूमि में गिरा देता है तब उसके शरीर के अवयवों से निकले हुए जलो से नदी पूर्ण होकर समुद्र में जा मिलती है वैसे राजा को उचित है कि शत्रुओं को मारके निर्मूल करवा रहे ॥ ६ ॥

फिर वह मेघ कैसा होकर पृथिवी पर गिरता है इस विषय का उपदेश  
अगले मन्त्र में किया है—

**अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानो जघान ।**

**वृष्णो वध्निः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुषा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे सब सेनाधो के स्वामी ! आप ( वृत्र ) जैसे मेघ ( वृष्ण ) वीर्य मीचने वाले पुरुष की ( प्रतिमानम् ) समानता का ( बुभूषन् ) चाहते हुए ( वध्नि ) निर्बल, नपुंसक के समान जिस ( इन्द्रम् ) सूर्यलोक के प्रति ( अपृतन्यत् ) युद्ध के लिए इच्छा करने वाले के समान ( व्यस्त ) इस मेघ के ( सानो, अधि ) पर्वत के शिखरों के समान बहनों पर सूर्यलोक ( वज्रम् ) अपने किरण रूपी वज्र को ( आशयान् ) छोड़ता है उस से मरा हुआ मेघ ( अपादहस्त ) पैर-हाथ कटे हुए मनुष्य के तुल्य ( व्यस्त ) अनेक प्रकार फैला पड़ा हुआ ( पुरुषा ) अनेक स्थानों में ( अशयत् ) सोता सा मालूम देता है वैसे इस प्रकार के शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर सदा जीना कीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जैसे कोई निर्बल पुरुष बड़े बलवान् के साथ युद्ध चाहें वैसे ही वृत्र मेघ सूर्य के साथ प्रवृत्त होता है और जैसे अन्त में वह मेघ सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर पराजित हुए के समान पृथिवी पर गिर पड़ता है वैसे जो अर्मात्मा, बलवान् पुरुष के सङ्ग लड़ाई को प्रवृत्त होता है उसकी भी ऐसी ही वधा होती है ॥ ७ ॥

फिर वे दोनों परस्पर क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**नवं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।**

**याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्षेभूव ॥ ८ ॥**

पदार्थ—ओ राजाधिराज ! आप जैसे यह ( वृत्र ) मेघ ( महिना ) अपनी महिमा से ( पर्यतिष्ठत् ) सब ओर से एकता को प्राप्त और ( अहि ) सूर्य के ताप ने मारा हुआ ( तासाम् ) उन जलो के बीच में स्थित ( पत्सुतः ) पादों के तले सोनेवाला-सा ( वृत्रम् ) होता है उस मेघ का शरीर ( मनः ) मननशील अन्त-कारण के सदृश ( रुहाणा ) उत्पन्न होकर बलने वाली नदी जो अन्तरिक्ष में रहने

वाले ( वृत्रम् ) ही ( धाः ) जो अन्तरिक्ष में वा भूमि में रहने वाले ( आपः ) जल ( जलम् ) विहीन तट वाले ( शयानम् ) सोते हुए के ( न ) मुख्य ( वृत्रम् ) महाप्रवाहयुक्त नद को ( वृत्रम् ) जाते और वे जल ( न, वृत्रम् ) इस पृथिवी के साथ प्राप्त होते हैं वैसे सब शत्रुओं को बांधके वश में कीजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमा और उपमालङ्कार है । जितना जल सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर पवन के साथ मेघमण्डल को जाता है वह सब जल मेघरूप ही हो जाता है । जब मेघ के जल का समूह अत्यन्त बढ़ता है तब मेघ घनी-घनी घटाओं से बुलबुल-बुलबुलके सूर्य के प्रकाश को ढीप लेता है । उसको सूर्य अपनी किरणों से जब छिन्न-भिन्न करता है तब इधर-उधर भाये हुए जल बड़े-बड़े नद, ताल और समुद्र आदि स्थानों को प्राप्त होकर सोते हैं वह मेघ भी पृथिवी को प्राप्त होकर जहाँ-तहाँ सोता है अर्थात् मनुष्य आदि प्राणियों के पैरों में सोता-सा मालूम होता है, वैसे अर्थात्मिक मनुष्य भी प्रथम बढ़के शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

फिर वह कैसा होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जमार ।**

**उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीदनुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे सभापते ! ( वृत्रपुत्रा ) जिसका मेघ लङ्के के समान है वह मेघ की माता ( नीचावयाः ) निकृष्ट उमर को प्राप्त हुई । ( सुः ) पृथिवी और ( उत्तरा ) ऊपरली अन्तरिक्ष नामवाली ( अभवत् ) है ( अस्या ) इसके पुत्र मेघ के ( वध ) वध अर्थात् ताड़न का ( इन्द्र ) सूर्य ( अवधमार ) करता है इससे इसका ( नीचावयाः ) निकृष्ट उमर को प्राप्त हुआ ( पुत्रः ) पुत्र मेघ ( अवधः ) नीचे ( आसीत् ) गिर पड़ता है और जो ( वानुः ) सब पदाथों की बने वाली भूमि जैसे ( सहवत्सा ) बछड़े के साथ ( धेनुः ) गाय ही ( न ) वैसे अपने पुत्र के साथ ( वध ) सोती-सी दीखती है वैसे आप अपने शत्रुओं को भूमि के साथ सोते के सदृश किया कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मेघ की दो माता हैं एक पृथिवी दूसरी अन्तरिक्ष अर्थात् इन्ही दोनों से मेघ उत्पन्न होता है । जैसे कोई गाय अपने बछड़े के साथ रहती है वैसे ही जब जल का समूह मेघ अन्तरिक्ष में जाकर ठहरता है तब उसकी माता अन्तरिक्ष अपने पुत्र मेघ के साथ और जब वह वर्षा से भूमि को आता है तब भूमि उस अपने पुत्र मेघ के साथ सोती-सी दीखती है । इस मेघ को उत्पन्न करने वाला सूर्य है इसलिये वह पिता के स्थान में समझा जाता है । उस सूर्य की भूमि वा अन्तरिक्ष दो स्त्री के समान हैं । वह पदाथों से जल को बाधु के द्वारा लीच-कर जब अन्तरिक्ष में फैकता है तब वह पुत्र—मेघ प्रमत्त के सदृश बढकर उठता और सूर्य के प्रकाश को ढक लेता है तब सूर्य उसको मारकर भूमि में गिरा देता अर्थात् भूमि में वीर्य छोड़ने के समान जल पहुँचाता है । इस प्रकार यह मेघ कभी ऊपर, कभी नीचे होता है वैसे ही राजपुरुषों को उचित है कि कंटकपूर्ण शत्रुओं को इधर-उधर निर्जित करके प्रजा का पालन करें ॥ ९ ॥

फिर उस मेघ का शरीर कैसा और कहाँ स्थित होता है इस विषय का उपदेश  
अगले मन्त्र में किया है—

**अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।**

**वृत्रस्य निशयं वि चरन्त्यापो दीर्घन्तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे सभास्वामिन् ! तुम को चाहिए कि जिस ( वृत्रस्य ) मेघ के ( अनिवेशनानाम् ) जिनको स्थिरता नहीं होती ( अतिष्ठन्तीनाम् ) जो सदा बहने वाले हैं उन जलो के बीच ( निष्यन् ) निश्चय करके स्थिर ( शरीरम् ) जिसका छेदन होता है ऐसा शरीर है वह ( काष्ठानाम् ) सब दिशाओं के बीच ( निहितम् ) स्थित होता है । तथा जिसके शरीर रूप ( अव ) जल ( दीर्घम् ) बड़े ( तमः ) अन्धकार रूप घटाओं में ( विचरन्ति ) इधर-उधर जाते हैं वह ( इन्द्रशत्रुः ) मेघ उन जलो में इकट्ठा वा अलग-अलग, छोटा-छोटा बहल रूप होके ( अशयत् ) सोता है । वेने ही प्रजा के द्रोही शत्रुओं को उनके सहायियों के सहित बांधके सब दिशाओं में सुलाना चाहिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । सभापति को योग्य है कि जैसे यह मेघ अन्तरिक्ष में ठहरने वाले जलो में सूक्ष्मता के कारण नहीं दीखता, फिर जब बनाकार वर्षा के द्वारा जल का समुदाय रूप होता है तब वह देखने में आता है और जैसे ये जल एक क्षण भी स्थित नहीं होते हैं किन्तु सर्वदा ऊपर जाते वा नीचे आते रहते हैं और जो मेघ के शरीर रूप हैं वे अन्तरिक्ष में रहते हुए अति सूक्ष्म होने से नहीं दीख पड़ते, वैसे बड़े-बड़े बल वाले शत्रुओं को भी अल्प बल वाले करके वशीभूत किया करे ॥ १० ॥

फिर सूर्य उस मेघ के प्रति क्या करता है इस विषय का उपदेश  
अगले मन्त्र में किया है—

**दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।**

**अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्वार ॥ ११ ॥**

पदार्थ—हे सभापते ! ( पणिनेव ) गाय आदि पशुओं के पालने और ( गावः ) गौओं को यथायोग्य स्थानों में रोकने वाले के समान ( दासपत्नीः ) अति बल देने वाला मेघ जिनका पति के समान और ( अतिष्ठन् ) रहता करने वाला है वे ( निरुद्धा ) रोके हुए ( आपः ) जल ( अतिष्ठन् ) स्थित होते हैं उन ( अशयत् ) जलों का ( वत् ) जो ( विलम् ) गत अर्थात् एक गढ़े के समान स्थान ( अपिहि

सम्) उदीप-ता रक्षा (असीम्) है उस (असीम्) मेघ को सूर्य (असीम्) मारता है मारकर (सम्) उस जल की (असीम्) कटावट खोद देता है जैसे आप मनुष्यों को कुष्ठाचार से रोकने व्याय अर्थात् अस्मार्थ को प्रकाशित रखिए ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे गोपाल अपनी गीर्वा को अपने मनुकुल स्थानी में रोक रखता और फिर उस स्थान का दर-बाजा खोल के निकाल देता है, और जैसे मेघ अपने मण्डल में जलों का द्वार रोकके उन जलों को बहा में रखता है वैसे सूर्य उस मेघ को लाड़ना देता और जल की कटा-वट को तोड़के अच्छे प्रकार उसे बरसाता है वैसे ही राजपुरुषों को चाहिए कि मनुष्यों को रोककर प्रजा का वधायोग्य पालन किया करें ॥ ११ ॥

फिर वे दोनों परस्पर क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्य्यो धारो अमवस्तादिन्द्र सुके यक्षा मत्यहन्देव एकः ।

अर्य्यो गा अजयः शूर सोममवांसुजः सत्सि सप्त सिन्धून् ॥ १२ ॥

वार्थ—हे (शूर) वीर के तुल्य अमरहित (इन्द्र) मनुष्यों को विदीर्षा करनेहारे सेना के स्वामी ! आप जैसे (यत्) जो (अर्य्य) वेग धादि गुणों में निपुण (वार) स्वीकार करने योग्य (एक) असहाय और (मेघ) उत्तम-उत्तम वानादिगुण वाला मेघ सूर्य के साथ युद्ध करनेहारा (अर्य्य) होता है (सुके) किराण्णी वक्ष में अपने बहूनों के जाल की (मत्यहन्) छोड़ता है अर्थात् किराण्णी को उस वन जाल से रोकता है सूर्य उस मेघ को जीतकर (गा) उससे अपनी किराण्णी को (अर्य्य) अलग करता अर्थात् एक देश से दूसरे देश में पहुँचाता और (सोमन्) पदार्थों के रस को (अजय) जीतता है इस प्रकार करता हुआ वह सूर्यलोक जलों को (सत्सि) ऊपर-नीचे जाने-आने के लिए सब लोको में बिखर होने वाले (सिन्धून्) बड़े-बड़े जलधारा, नदी, कुँआ और साधारण ताबाब के चार जल के स्थान पृथिवी पर और समीप, बीच और दूर देश में रहने वाले तीन जलधारा इन (सप्त) सात जलधारा को (अवांसुज) उत्पन्न करता है वैसे शत्रुओं में वैष्ठा करते हो (सत्) इसी कारण (स्वा) आपकी युद्धों में हम लोग अधिकजिता करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे यह मेघ सूर्य के प्रकाश को छीप देता है सब सूर्य अपनी किराण्णी से उसको छिन्न-भिन्न कर भूमि में जल को वर्षाता है। इसी से यह सूर्य उस जल समुदाय को लाने के लिए समुद्रों को रचने का हेतु होता है वैसे प्रजा का रक्षक राजा मनुष्यों को बाँध मस्त्रों से काट और नीच गति को प्राप्त कराके प्रजा को अमर्युक्त मार्ग में चलाने का निमित्त होने ॥ १२ ॥

इन दोनों के इस युद्ध में किस का विजय होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नास्मि विद्युन् तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्भ्रादुर्नि च ।

इन्द्रश्च यद्युधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥

वार्थ—हे सेनापते ! आप जैसे मेघ ने (अस्मि) इस सूर्यलोक के लिए छोड़ी हुई (विद्युत्) बिजुली (न, सिषेध) इसकी कुछ कटावट नहीं कर सकती (तन्यतुः) उस मेघ की गर्जना भी उस सूर्य को (न, सिषेध) नहीं रोक सकती और वह (अहिः) मेघ (याम्) जिस (ह्रादुर्निम्) गर्जना धादि गुणवाली (मिहम्) बरसा को (च) भी (अकिरत्) छोड़ता है वह भी सूर्य की (न, सिषेध) हानि नहीं कर सकती है यह (इन्द्रः) सूर्यलोक अपनी किराण्णी पूर्ण सेना से युक्त (उत्त) और अपनी (अपरीभ्यः) भव्य सेना से युक्त (अहिः) मेघ (च) भी ये दोनों (युधयते) परस्पर युद्ध किया करते हैं (यत्) अधिक बलयुक्त होने के कारण (मघवा) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्यलोक उस मेघ को (च) भी (विजिग्ये) अच्छे प्रकार जीत लेता है वैसे ही अमर्युक्त पूर्ण बल सम्पादन करके मनुष्यों को विजय कीजिए ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को योग्य है कि जैसे वृष अर्थात् मेघ के जितने बिजली धादि युद्ध के साधन हैं, वे सब सूर्य के आगे सूत्र अर्थात् सब प्रकार निर्बल और बड़े हैं, और सूर्य के युद्धसाधन उसकी अपेक्षा से बड़े-बड़े हैं, इसी से सर्वदा सूर्य ही का विजय और मेघ का पराजय होता रहता है वैसे ही अमर्युक्त मनुष्यों को जीते ॥ १३ ॥

फिर उन दोनों में परस्पर क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अह्येयतारं कम्पश्य इन्द्र हृदि यसै जघ्नुषो भीरगच्छत् ।

नय च यज्वति च सवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४ ॥

वार्थ—हे इन्द्र ! जोड़ा जिस युद्ध व्यवहार में मनुष्यों का (जघ्नुषः) हनने वाले (ते) आपका प्रभाव (अहे) मेघ के गर्जन धादि शब्दों से प्राणियों की (यत्) जो (भीः) भय (अजघ्नुषः) प्राप्त होता है विद्वान् लोग उस मेघ के (वातायम्) देश-देशान्तर में पहुँचाने वाले सूर्य को छोड़ और (जम्) किसको देखें ? सूर्य से लाड़ना को प्राप्त हुआ मेघ (भीत) डरे हुए (अवेय, न) बाज के समान (च) भूमि में गिरके (अजघ्नुषः) अनेक (अजघ्नुषः) जल बहाने वाले नदी वा नावियों को पूरित करता है (यत्) जिस कारण सूर्य अपने प्रकाश आकर्षण और श्रेष्ठ धादि गुणों से बड़ा है इसी से (रजांसि) सब लोकों को (अतरोः) तरता अर्थात् प्रकाशित करता है इसके समान आप हैं वे आप (हृदि) अपने मन में जिसकी मनु (अजघ्नुषः) देखी उसी को मारा करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजसेना के वीर पुरुषों को योग्य है कि जैसे किसी से पीड़ा को पाकर डरा हुआ श्येन पक्षी इधर-उधर, गिरता-पड़ता उड़ता है वा सूर्य से अनेक प्रकार की ताड़ना और आकर्षण को प्राप्त होकर मेघ इधर-उधर देश-देशान्तर में अनेक नदी वा नहरों को पूरित करता है इस मेघ की उत्पत्ति का सूर्य से भिन्न कोई निमित्त नहीं है। और जैसे अजघ्नुष में प्राणियों को भय होता है वैसे ही मेघ के बिजली और गर्जना धादि गुणों से भय होता है उस भय का दूर करने वाला भी सूर्य ही है तथा सब लोकों के व्यवहारों का अपने प्रकाश और आकर्षण धादि गुणों में चलाने वाला है वैसे ही दुष्ट मनुष्यों को जीता करे। इस मन्त्र में (अजघ्नुषः) यह पद संख्या का उपलक्षण होने से असंख्यात अर्थ में है ॥ १४ ॥

फिर उक्त सूर्य कीता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा अमस्य च अक्षिणो वज्रबाहुः ।

सेदु राजा सयति चर्षणीनामरात्र नेभिः परि ता बभूव ॥ १५ ॥

वार्थ—सूर्य के समान (अक्षिणः) शस्त्रास्त्रयुक्त बाहु (इन्द्रः) दुष्टों का निवारणकर्ता (यातः) गमन धादि व्यवहार को बताने वाला सभापति (अव-सितस्य) निश्चित बराबर जगत् (अमस्य) क्षान्ति करने वाले मनुष्य धादि प्राणियों (अक्षिणः) सींगों वाले गाय धादि पशुओं और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (अरात्रम्) पहियों को चारने वाले (नेभिः) घुरी के (न) समान (रात्रा) प्रकाशमान होकर (ता) उत्तम तथा नीच कर्मों के कर्ताओं को सुख-दुःखों को तथा (चर्षति) उक्त लोकों को (परिचरति) पहुँचाता और निवास करता है (उ, इत्) वैसे ही (तः) वह सभी के (रात्रा) व्याय का प्रकाश करने वाला (बभूव) होने ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार और पूर्व मन्त्र के (रजांसि) इस पद की अनुवृत्ति पाती है। राजा को चाहिए कि—जैसे रथ का पहिया घुरियों को चलाता है, और जैसे यह सूर्य नराचर, बान्त-बान्त संसार में प्रकाशमान होकर सब लोकों को चारण किये हुए उन को अपनी-अपनी कक्षा में चलाता है; सूर्य के बिना प्रति निकट स्तितमान् लोक की चारण, आकर्षण, प्रकाश और मेघ की वर्षा धादि काम किसी से नहीं हो सकते हैं—वैसे अमर्युक्त प्रजा का पालन किया करे ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य और मेघ के युद्ध वर्णन करने से इस सूक्त की पिछले सूक्त में प्रकाशित किये अग्न मन्त्र के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए।

यह पहले अष्टक के दूसरे अध्याय में अक्षीसर्वा वर्ण और पहिले अष्टक के सातवें अनुवाक में अक्षीसर्वा सूक्त और दूसरा अध्याय भी समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥



अथ पञ्चवक्त्रस्य वयस्त्रिंशस्य सप्तस्यैव हिरेण्यस्य च हि । इन्द्रो वेचता ।

१, २, ४, ८, १२, १६ निष्पत्तिः निष्पत्तिः, ३, ६, १०

निष्पत्तिः, ४, ७, ११ निष्पत्तिः निष्पत्तिः, १४, १५, १६ निष्पत्तिः

पञ्चवक्त्रस्य । पञ्चवक्त्रः पञ्चवक्त्रः ।

निष्पत्तिः अथैव स्वरस्य ॥

अथ तेलीसर्वा सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से इन्द्र और सभापति का प्रकाश किया है—

एतायामोप गच्छन्त इन्द्रमस्माकं सु अमर्षति वावृधाति ।

अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

वार्थ—हे मनुष्यो ! (अमर्षन्) अपने आत्मा, गी धादि पशु और युद्ध इन्द्रियों की इच्छा करने वाले हम लोग जो (अस्माकम्) हम लोगो और (अमर्षन्) इस जगत् के (कुविद्) अनेक प्रकार के (रायः) उत्तम धनो को (वावृधाति) बढ़ाता और जो (आत्) इसके अनन्तर (नः) हम लोगो के लिए (अनामृणः) हिंसा और वधपातरहित होकर (गवाम्) मनु धादि इन्द्रिय, पृथिवी धादि लोक तथा गी धादि पशुओं के (परम्) उत्तम (केतम्) ज्ञान को बढ़ाता और अज्ञान का (आवर्जते) नाश करता है उस (कुप्रमर्षन्) उत्तम मानयुक्त (इन्द्रम्) परमेश्वर और न्यायकर्ता को (अपत्याम्) प्राप्त होती है वैसे तुम लोग भी (एत) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—यहाँ उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि ससार में अविद्या का नाश तथा विद्या के दान से जो उत्तम-उत्तम धनो को बढ़ाता है, उस परमेश्वर की आज्ञा का पालन और उपासना करके उसी से शरीर तथा आत्मा का बल निर्य बढ़ावे। इसकी सहायता के बिना कोई भी मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी फल प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर वह होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपेहं धनयामर्षतीत् शुष्टां न श्येनो वसति पतामि ।

इन्द्रं नमस्यन्नुपेभिरर्कैः स्तोत्रम्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥

वार्थ—(वः) जो (हव्यः) ग्रहण करने योग्य ईश्वर (स्तोत्रम्यः) अपनी स्तुति करने वालों के लिए वन देने वाला (अस्ति) है उस (अमर्षतीत्) वध धादि इन्द्रियों से धनोचर (अमर्षन्) धन देने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को



( नमस्कृत्य ) नमस्कार करता हुआ ( अहम् ) मैं ( न ) जैसे ( जुष्टाम् ) पूर्व काल में सेवक किये हुए ( वसतिम् ) पौंसले की ( वनेन ) बाज पक्षी प्राप्त होता है वैसे ( वामन् ) गतिशील इस ससार में ( उपमेभि ) उपमा देने के योग्य ( अर्क ) अनेक सूर्य प्रकाशों में ( इत् ) ही ( उपपत्ताभि ) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे श्वेन अर्थात् वेगवान् पक्षी अपने पहले सेवन किये हुए भोजन देने वाले रक्षक को स्थानान्तर से चलकर प्राप्त होता है वैसे ही परमेश्वर का नमस्कार करते हुए मनुष्य उसी के बनाये इस ससार के सूर्य आदि लोकों के दूरान्तो से ईश्वर का निश्चय करके उसी की प्राप्ति करे क्योंकि अतः इस ससार में रहे हुए पदार्थ है वे सब रचने वाले का निश्चय कराते हैं और रचने वाले के बिना किसी जड़ पदार्थ की रचना कभी नहीं हो सकती जैसे इस व्यवहार में रचने वाले के बिना कुछ भी पदार्थ नहीं बन सकता वैसे ही ईश्वर की सृष्टि में भी जानना चाहिए। बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे निश्चय हो जाने पर भी जो ईश्वर का अनादर करके नास्तिक हो जाते हैं उनको यह बड़ा भ्रम मान ल्योकर प्राप्त होता है ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के गुण प्रकाशित किये हैं—

नि सर्वेसेन इणुधीरैस्तु समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।

चोष्क्यमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिभूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥

**पदार्थ**—हे ( अविप्रवृद्ध ) महोत्तमगुणयुक्त । ( इन्द्र ) शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाले ( सर्वेसेन ) जिनके सब सेना ( पणि ) सत्य व्यवहारी ( चोष्क्यमाण ) सब शत्रुओं का भगनेवाले आप ( भूरि ) बहुत ( इणुधीन् ) जिनमें बाण रक्षे जात हैं उसकी धरके जैसे ( अर्ध ) वैश्य ( गा ) पशुओं की ( समजति ) चलाता और खवाता है वैसे ( व्यस्त ) शत्रुओं को दूबन्धनों में बाँध और ( अस्मत् ) हम से ( वामम् ) अस्विकार कर्म का कर्ता ( मा नूः ) मत हो जिससे ( यस्य ) आपका प्रताप ( वष्टि ) प्रकाशित हो और आप विजयी हो ॥ ३ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में तुल्योपमालङ्कार है। राजा को चाहिए कि जैसे वैश्य गौधोका पालन तथा चराकर दुग्धादिको से व्यवहार सिद्ध करता है और जैसे ईश्वर से उत्पन्न हुए सब लोकों में बड़े सूर्यलोक की किरणों बाण के समान छेदन करनेवाली सब पदार्थों में प्रवेश करके वायु से ऊपर नीचे पहुँचाकर सब पदार्थों को रस सहित बनाकर सुख मिष्ट करती हैं, इसके समान वह भी राजा का पालन करे ॥ ३ ॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से उसी के गुणों का उपदेश किया है—

वधीर्हि दस्यु धनिन धनेन एकश्चरन्नुपशाकेभिर्गिन्द्र ।

धनोरधि विधुणक्ते व्यायभयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

**पदार्थ**—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्ययुक्त शूरवीर । एकाकी आप जैसे ईश्वर या सूर्यलोक ( उपशाकेभि ) सामर्थ्यरूपी कर्मों से ( एक ) एक ही ( चरन् ) जानना हुआ दुष्टों को मारता है वैसे ( धनेन ) वज्ररूपी शस्त्र से ( वस्युम् ) बल और अन्धकार म दमने के घन को हरन वाले दुष्ट का ( वधी ) नाश कीजिए और ( विधुणक् ) अश्वमं से धर्मात्माओं को हृत् देते वालों के नाश करनेवाले आप ( धनेन ) धनपू के ( अधि ) ऊपर बाणों को निकालकर दुष्टों का निवारण करके ( धनिनम् ) धार्मिक धनादय की वृद्धि कीजिए जैसे ईश्वर की निन्दा करने वाले तथा सूर्यलोक के शत्रु भेदावयव ( धनेन ) सामर्थ्य वा किरण समूह से नाश को ( व्यायन् ) प्राप्त होते हैं वैसे ( हि ) निश्चय करके ( ते ) तुम्हारे ( अयज्वान ) यज्ञ का ना करने तथा ( सनका ) अधर्म से औरों के पदार्थों का भक्षण करने वाले मनुष्य ( प्रेतिम् ) मरण को ( ईयु ) प्राप्त हो वैया यत्न कीजिए ॥ ४ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में वाचकतुल्योपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर शत्रुओं से रहित है, तथा सूर्यलोक भी मेघ से निवृत्त हो जाता है वैसे ही मनुष्यों को चार, डाकू या शत्रुओं को मार और धनवाले धर्मात्माओं की रक्षा करके शत्रुओं में अवश्य रहित होना चाहिए ॥ ४ ॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के काम का उपदेश किया है—

परां चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।

प्र यद्विवो हरिवः स्थातस्त्र निरवतां अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥

**पदार्थ**—हे ( हरिव ) प्रशान्त सेना आदि के साधन घोड़े, हाथियों से युक्त ( प्रस्थात ) युद्ध में स्थित होने और ( उग्र ) दुष्टों के प्रति तीव्रग त्रत धारण करने वाले ( इन्द्र ) सेनापति ( चित् ) जैसे हरण, आकर्षण गुणयुक्त किरणवान् युद्ध में स्थित होने और दुष्टों को अत्यन्त ताप देने वाला सूर्यलोक ( रोदस्यो ) अन्तरिक्ष और पृथिवी का प्रकाश और आकर्षण करता हुआ मेघ के अवयवों को छिन्न-भिन्न कर उसका निवारण करता है वैसे आप ( यत् ) जो ( अयज्वानः ) यज्ञ के ना करने वाले ( यज्वभि ) यज्ञ के करने वालों से ( स्पर्धमाना ) ईर्ष्या करने हैं वैसे ( शीर्षाः ) अपने शिरों को ( ते ) तुम्हारे मकाश से ( ववृजु ) छोड़ने वाले हो वैसे उन ( अयज्वान् ) सत्याचरण आदि यत्नों से रहित मनुष्यों को ( निरधम ) अन्धे प्रकार दण्ड देकर शिक्षा कीजिए ॥ ५ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य दिन, पृथिवी और प्रकाश का धारण तथा मेघ रूप अन्धकार का निवारण करके वृष्टि द्वारा सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, वैसे ही मनुष्यों का उत्तम-उत्तम गुणों का धारण, और छोटे गुणों का त्याग, धार्मिकों की रक्षा और अधर्मीं दुष्ट मनुष्यों को दण्ड देकर शिक्षा, उत्तम

शिक्षा और धर्मोपदेश की वर्षा से सब प्राणियों को सुख देके सत्य के राज्य का प्रचार करना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर उसका क्या कार्य है यह उपदेश अवश्य मन्त्र में किया है—

अयुत्सन्नवद्यस्य सेनामयातयन्त सितथो नवग्वाः ।

वृषायुधो न वध्र्यो निरष्टाः प्रवृद्धिगिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥

**पदार्थ**—हे ( नवग्वा ) नवीन-नवीन शिक्षा वा विद्या के प्राप्त करने ( वृषायुध ) प्रति प्रबल शत्रुओं के साथ युद्ध करने ( चितयन्तः ) युद्धविद्या से युक्त ( सितथ ) मनुष्यों । आप ( अयवद्यस्य ) जिस उत्तम गुणों से प्रशसनीय सेनाध्यक्ष की ( सेनाम् ) सेना को ( अयातयन्त ) उत्तम शिक्षा से युक्तवाली करके शत्रुओं के साथ ( अयुत्सन् ) युद्ध की इच्छा करो जिस ( इन्द्रात् ) शूरवीर सेनाध्यक्ष से ( वध्र्य ) निर्बल नपुंसकों के ( न ) समान शत्रु लोग ( निरष्टाः ) दूर-दूर भागते हुए ( प्रवृद्धि ) पलायन यात्रा मार्गों में ( आयन् ) निकल जावें उस पुरुष को सेनापति कीजिए ॥ ६ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य शरीर और आत्मबल वाले शूरवीर धार्मिक मनुष्य को सेनाध्यक्ष और सर्वथा उत्तम सेना को सम्पादन करके जब दुष्टों के साथ युद्ध करते हैं तभी जैसे सिंह के समीप में बकरी और मनुष्य के समीप से भीरु मनुष्य और सूर्य के ताप से मेघ के अवयव नष्ट होते हैं वैसे ही उक्त वीरों के समीप से शत्रु लोग सुख में रहित और पीठ दिखाकर दृष्ट-उद्धर भाग जाते हैं । इससे सब मनुष्यों को इस प्रकार का सामर्थ्य सम्पादन करके राज्य का शोक करना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के काम का उपदेश किया है—

त्वमेतान् रुदतो जसतश्चायोधयो रजम इन्द्र पारे ।

अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसभावः ॥ ७ ॥

**पदार्थ**—हे ( इन्द्र ) सेना के ऐश्वर्य से युक्त सेनाध्यक्ष । ( रजम् ) आप ( एतान् ) इन दूमरे की पीछा दें, दुष्ट कम करने वाले ( रुदतः ) गेते हुए जीवा ( च ) और ( दस्युम् ) डाकूओं को दण्ड दीजिए तथा अपने भूत्यों को ( जसतः ) अनेक प्रकार के भोजन आदि देने हुए आनन्द करने वाले मनुष्यों को उनके साथ ( अयोधय ) अन्धे प्रकार युद्ध कराइए और इन धर्म के शत्रुओं को ( रजसः ) पृथिवी लोक के ( पारे ) परभाग में करके ( अवादह ) भस्म कीजिए इसी प्रकार ( दिव ) उत्तम शिक्षा में ईश्वर धर्म, शिल्प, युद्धविद्या और परोपकार आदि के प्रकाशन से ( उच्चा ) उत्तम-उत्तम कम वा सूखों को ( प्रसुन्वत ) मिष्ट करने तथा ( आस्तुवत ) गुणस्तुति करने वालों की ( प्राव ) रक्षा कीजिए और उनकी ( शसम् ) प्रशंसा का प्राप्त कीजिए ॥ ७ ॥

**भाषार्थ**—मनुष्यों वा युद्ध के लिए अनेक प्रकार के कर्म करने चाहिए । पहले अपनी सेना के मनुष्यों की पुष्टि, आनन्द तथा दुष्टों का बल वा उत्साहभङ्ग नित्य करना चाहिए जैसे सूर्य अपनी किरणों से सबको प्रकाशित करके मेघ के अन्धकार निवारण के लिए प्रवृत्त होता है वैसे सब काल में उत्तम कर्म वा गुणों के प्रकाश और दुष्ट कर्म दोषों की निवृत्ति के लिए नित्य यत्न करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर अगले मन्त्रों में इन्द्र के कृत्य का उपदेश किया है—

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।

न हिंवानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशौ अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥

**पदार्थ**—जैसे जिनको सूर्य ( पर्यवधात् ) सब ओर से धारण करता है ( ते ) वे मेघ के अवयव बादल सूर्य के प्रकाश को ( स्पशौ ) बाधने वाले ( पृथिव्या ) पृथिवी का ( परीणहम् ) चारों ओर से घेर हुए के समान ( चक्राणासः ) युद्ध करने हुए ( हिरण्येन ) प्रकाशरूप ( मणिना ) मणियों जैसे ( सूर्येण ) सूर्य के तेज से ( शुम्भमाना ) शोभायमान ( हिंवानास ) मनुष्यों को सम्पादन करते हुए ( इन्द्रम् ) सूर्यलोक को ( न ) नहीं ( तितिरु ) उल्लंघन कर सकते हैं वैसे ही सेनाध्यक्ष अपने धार्मिक शूरवीर आदि को शत्रुजन जैसे जीतने का समर्थ न हो वैया प्रयत्न सब नाग किया करे ॥ ८ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में वाचकतुल्योपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर ने सूर्य के साथ प्रकाश आकर्षण आदि कर्मों का निबन्धन किया है, वैसे ही विद्या, धर्म, न्याय शूरवीरों की सेनादि सामर्थ्य को प्राप्त हुए पुरुष के साथ इस पृथिवी के राज्य का नियोजन किया है ॥ ८ ॥

परि यद्विन्द्र रोदसी उमे अयुभोजीर्भहिना विश्वतः सीम् ।

अयन्यमानौ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

**पदार्थ**—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य का योग करने वाले राजन् । आपको योग्य है कि जैसे सूर्यलोक ( महिना ) अपनी महिमा में ( उमे ) दोनों ( रोदसी ) प्रकाश और भूमि को ( सीम् ) जीवों के मुख की प्राप्ति के लिए ( विश्वतः ) सब प्रकार आकर्षण से पालन करता और ( अयन्यमानौ ) ज्ञानसम्पादक ( ब्रह्मभिः ) बड़े धार्मिक-साहि बलयुक्त किरणों से ( दस्युम् ) मेघ और ( अयन्यमानान् ) सूर्यप्रकाश के रोकने वाले मेघ के अवयवों को ( निरधमम् ) चागे और से अपने तापरूप अग्नि से निवारण करता है वैसे सब प्रकार अपनी महिमा से प्राणियों के सुख के लिए ( उमे ) दोनों ( रोदसी ) प्रकाश और पृथिवी का ( पर्यवधुभोजीः ) भोग कीजिए इसी प्रकार

हे ( इन्द्र ) राज्य के ऐश्वर्य से युक्त सेनाध्यक्ष शूरीर पुरुष । आप ( अन्धमानः ) विद्या की कक्षा से युक्त हठ, दुरोध रहित ( अक्षयः ) वेद के ज्ञान के वाले विद्वानों से ( अन्धमानान् ) भगानी, दुराधी मनुष्यों को ( अभिमिरक्षन् ) साक्षात्कार, शिक्षा कराया कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यलोक सब पृथिव्यादि भूतमान् लोकों का प्रकाश, आकर्षण से धारण और पालन करने वाला होकर मेघ और रात्रि के अन्धकार को निवारण करता है वैसे ही हे मनुष्यो । आप लोग उत्तम शिक्षित विद्वानों से मुखों की मूढ़ता छोड़ा और दुष्ट शत्रुओं को शिक्षा दिलाकर बड़े राज्य के सुख का भोग नित्य कीजिए ॥ ६ ॥

न ये दिवः पृथिव्या अन्तर्मापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।

युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निज्योतिषा तमसो गा अदुस्तम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे सभा के स्वामी । आप जैसे इस मेघ के ( ये ) जो बह्लादि अवयव ( दिवः ) सूर्य के प्रकाश और ( पृथिव्याः ) अन्तरिक्ष की ( अन्तः ) मर्यादा को ( मायु ) नहीं प्राप्त होते ( मायाभिः ) अपनी गर्जना, अन्धकार और बिजुली आदि माया से ( अन्धमानः ) पृथिवी का ( नृ, पर्यभूवन् ) अन्धे प्रकार आच्छादन नहीं कर सकते हैं उन पर ( वृषभ ) वृष्टिकर्ता ( इन्द्र ) खेदन करनेहारा सूर्य ( युजम् ) प्रहार करने योग्य ( वृषभ ) किरण समूह को फेंकके ( ज्योतिषा ) अपने तेज प्रकाश से ( तमस ) अन्धेरे को ( निचक्र ) निकाल देता और ( गाः ) पृथिवी लोकों को वर्षा से ( अनुवृत्तम् ) पूर्ण कर देता है । वैसे ही आप ऐसा बतवि करें जिससे शत्रुजन ग्याय के प्रकाश और भूमि के राज्य के अन्त को न पावें, धन देनेवाली राजनीति का नाश न कर सकें । उन बैरियों पर अपनी प्रभुता, विद्यादान से अविद्या की निवृत्ति और प्रजा को सुखी से पूर्ण किया कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि सूर्य के तेजस्व स्वभाव और प्रकाश के सदृश कर्म कर और सब शत्रुओं के अन्यायरूप अन्धकार का नाश करके धर्म से राज्य का सेवन करें । क्योंकि छली-कपटी लोगो का राज्य स्थिर कभी नहीं होता इससे सब को खलादि होय रहित, विद्वान् होके शत्रुओं की माया में न फँसके राज्य का पालन करने के लिए अवश्य उद्योग करना चाहिए ॥ १० ॥

अनु स्वधर्मभ्रज्जापौ अम्यावर्धत मध्य आ नाज्यानाम् ।

सधीचीनेन मनमा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हर्मनाह्रभियन् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे सेना के अध्यक्ष । आप जैसे ( अम्य ) इस मेघ का शरीर ( नाज्यानाम् ) नदी, तडाग और समुद्रों में ( आवर्धत ) जैसे इस मेघ में स्थित हुए ( आयः ) जल सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर ( अनुस्वभासम् ) अन्त-अन्त के प्रति ( अक्षरन् ) प्राप्त होते और जैसे यह मेघ ( सधीचीनेन ) साथ चलने वाले ( ओजिष्ठेन ) अत्यन्त बलयुक्त ( हर्मना ) हनन करने के साधन ( मनसा ) मन के सदृश वेग से इस सूर्य के ( अमिष्ठन् ) प्रकाशयुक्त दिनों को ( अहन् ) अन्धकार से ढीप लेता और जैसे सूर्य अपने साथ चलने वाले किरणसमूह के बल वा वेग से ( तम् ) उस मेघ को ( अहन् ) मारता और अपने ( अमिष्ठन् ) प्रकाशयुक्त दिनों का प्रकाश करता है वैसे नदी, तडाग और समुद्र के बीच नौका यदि साधन के सहित अपनी सेना को बड़ा तथा इस युद्ध में प्राण आदि सब इन्द्रियों को अन्नादि पदार्थों से पुष्ट करके अपनी सेना से ( तम् ) उस शत्रु को ( अहन् ) मार कीजिए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली द्वारा मेघ को मारकर पृथिवी पर गिराई हुई वृष्टि यव आदि अन्न को बढ़ाती और नदी, तडाग, समुद्र के जल को बढ़ाती है वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि सब प्रकार शुभ गुणों की वर्षा से प्रजासुख, शत्रुओं का मारण और विद्या-वृद्धि से उत्तम गुणों का प्रकाश करके धर्म का सेवन करें ॥ ११ ॥

न्याविध्यदिलीविशस्य हृद्धा वि शुक्लिणमभिनच्छुण्णमिन्द्रः ।

यावत्तरी मयवन्वावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे ( मयवन् ) अत्यन्त धनदाना महाधनयुक्त वीर । आप जैसे ( इन्द्रः ) बिजुली आदि बलयुक्त सूर्यलोक ( इलीविशस्य ) पृथिवी के गडों में सोने वाले मेघ के सम्बन्धी ( हृद्धा ) दृढरूप बह्लादिकों को ( अभिनत् ) भिन्न-भिन्न करता और अपना ( यावत् ) जितना ( तर ) बल और ( यावत् ) जितना ( ओजः ) पराक्रम है उस से युक्त हुए ( वज्रेण ) किरण समूह से ( शुक्लिणम् ) मीलों के समान ऊँचे ( शुक्लम् ) ऊपर चढ़ने पदार्थों को सुखाने वाले मेघ को ( व्याविध्यत् ) नष्ट और ( पृतन्युम् ) सेना की इच्छा करते हुए ( शत्रुम् ) शत्रु के समान मेघ का ( अवधी ) हनन करता है वैसे शत्रुओं में चेष्टा किया करें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली अवयवों को भिन्न-भिन्न और जल को वर्षा कर सब का सुखयुक्त करती है, वैसे ही सब मनुष्यों को उचित है कि उत्तम-उत्तम शिक्षायुक्त सेना से दुष्ट गुण वाले दुष्ट मनुष्यों को उपदेश दे और अस्त्र-अस्त्र वृष्टि से शत्रुओं का निवारण कर प्रजा में सुखों की वृष्टि निरन्तर किया करें ॥ १२ ॥

फिर वह कंसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषमेणा पुरोऽमेत् ।

सं वज्रेणासृजद्वृषमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥

पदार्थ—जैसे ( अम्य ) इस सूर्य का ( सिध्मः ) विजय प्राप्त करने वाला वेग ( सिध्मेन ) तीक्ष्ण ( वृषमेण ) वृष्टि करनेवाले तेज से ( शत्रून् ) मेघ के

अवयवों की ( अजिगात् ) प्राप्त होता और इस मेघ के ( पुर ) नगरो के सदृश समुदायी को ( अमेत् ) भेदन करता है जैसे ( अजिगात् ) अन्धमन खेदन करने वाली ( इन्द्रः ) बिजुली ( वृषम् ) मेघ को ( वज्रेण ) तेज से ( समसृजत् ) मिलाता है, तथा ( स्वाय ) अपने ( मतिम् ) ज्ञान से ( प्रतिरत् ) अन्धे प्रकार पीसा करता है वैसे ही इस सेनाध्यक्ष की होना चाहिए ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली मेघ के अवयव बहली को तीक्ष्ण वेग से छिन्न-भिन्न और भूमि में गिरकर उसको वष में करती है वैसे ही सभासेनाध्यक्ष को चाहिए कि बुद्धि, शरीर-बल वा सेना के वेग में शत्रुओं को छिन्न-भिन्न और शत्रु के अन्धे प्रहार से पृथिवी पर गिराकर अपनी सम्मति में लावे ॥ १३ ॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र के कृत्य का उपदेश किया है—

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिन्वाकन्यावो युध्यन्तं वृषमं दशधुम् ।

शफच्युतो रेणुनैस्त धामच्छवैत्रयो नृषाणां तस्यौ ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे इन्द्र सभापते । जैसे सूर्यलोक ( यस्मिन् ) जिस युद्ध में ( युध्यन्तम् ) युद्ध करने हुए ( वृषम् ) वृष्टि के करने वाले ( वृषम् ) दश दिशाओं में प्रकाशमान मेघ के प्रति ( कुत्सम् ) वज्र मारके जगत् की ( प्राव ) रक्षा करता है और ( शवैत्रेव ) भूमि का पुत्र मेघ ( शफच्युतः ) गी आदि पशुओं के तुरों के चित्तों में गिरी हुई ( रेणु ) धूलि ( धाम् ) प्रकाशयुक्त लोक को ( नृषाणां ) प्राप्त होती है उस को ( नृषाणां ) मनुष्यों के लिए ( चाकन् ) वह कान्ति वाला मेघ ( उत्तस्यौ ) उठता और मुखों को देता है वैसे सभा सहित आपको प्रजा के पालन में यत्न करना चाहिए ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्यलोक अपनी किरणों से पृथिवी पर मेघ को गिराकर सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है वैसे ही हे सभाध्यक्ष, नृ भी सेना, शिक्षा और अस्त्रबल से शत्रुओं को अन्तव्यस्त कर नीचे गिराके प्रजा की रक्षा निरन्तर किया कर ॥ १४ ॥

फिर इन्द्र का क्या कृत्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आवः शमं वृषमं तुग्रधास्तु क्षेत्रजेवे मयवच्छिवत्र्यं गाम् ।

ज्योक् चिदत्र तस्विवांसो अक्रञ्चयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे ( मयवन् ) बड़े धन के हेतु सभा के स्वामी । आप जैसे सूर्यलोक ( क्षेत्रजेवे ) अन्नादि सहित पृथिवी के राज्य को प्राप्त कराने के लिए ( शिवत्र्यम् ) भूमि के ढीप लेने में कुशल ( वृषम् ) वर्षण स्वभाव वाले मेघ के ( तुग्रधास्तु ) जलो में ( गाम् ) किरण समूह को ( प्राव ) प्रवेश करता हुआ ( शमयताम् ) शत्रु के समान आचरण करने वाले उन मेघावयवों के ( अधरा ) नीचे के ( वेदना ) दुष्टों को वेदनारूप पापफलों को ( तस्विवांस ) स्थापित हुई किरण ( ज्योक् ) निरन्तर ( अक्रन् ) खेदन करती है ( अत्र ) और फिर इस भूमि में वह मेघ ( अक्रन् ) गमन करता है उसके ( चित् ) समान शत्रुओं का निवारण और प्रजा को सुख दिया कीजिए ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अन्तरिक्ष से मेघ के जल को भूमि पर गिराके सब प्राणियों के लिए सुख देता है वैसे सेनाध्यक्षों को चाहिए कि शत्रुओं को बाँधकर धार्मिक मनुष्यों की रक्षा करके सुखों का भोग करें और कारावें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य और मेघ के युद्ध के वर्णन तथा उपमान-उपमेय अलङ्कार वा मनुष्यों के युद्धविद्या के उपदेश करने से पिछले सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह तीसरा वर्ण तंतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

॥

अथार्य द्वावसर्गस्य अनुविशस्य सूक्तस्य हिरण्यसूप आङ्गिरस ऋषिः । अश्विनी देवते । १, ६ विराट् जगती, २, ३, ७, ८ निषुज्जगती, ५, १०, ११ जगती छन्दः । निषाव स्वर । ४ भुरिक् बिष्टुप् छन्दः । १२ निषुत् त्रिष्टुप् छन्दः । अँवत स्वर । ६ भुरिक् पङ्क्तिस्तछन्दः । पञ्चमः स्वर ॥

अब बीतीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में अश्वि के वृष्टान्त से कारोणरों के गुणों का उपदेश किया है—

त्रिदिवो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वी याम उत गतिरभिना ।

युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वासंसोऽम्यायं सेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे परम्पर उपकारक और मित्र ( अम्यायं सेन्या ) माक्षात कार्य-सिद्धि के लिए मिले हुए ( नवेदसा ) सब विद्याओं के ज्ञान के वाले ( अश्विना ) अपने प्रकाश से व्याप्त सूर्य-चन्द्रमा के समान सब विद्याओं में व्याप्त कारोण लोगो । आप ( मनीषिभिः ) सब विद्वानों के साथ, दिनों के साथ ( हिम्या इव ) शीतकाल की रात्रियों के समान ( नः ) हम लोगो के ( अद्या ) इस वर्तमान दिवस में शिल्पकार्य के साधक ( अश्वत्थम् ) हुआ ( हि ) जिस कारण ( युवोः ) आपके सकाश से ( अश्वत्थम् ) कलायन्त्र को सिद्ध कर यानसमूह को चलाया करे जिनसे ( नः ) हम लोगों को ( वासंसः ) रात्रि, दिन के बीच ( रात्रि ) वेगादि गुणों से दूर दश को

प्राप्त होते ( उत ) और ( बाव् ) आपके सकाश से ( बिभुः ) सब मार्ग में चलने वाला ( बावः ) रथ प्राप्त हुआ हम लोगों को देशान्तर को सुख से ( बिः ) तीन बार पहुँचाने इसलिए आपका सङ्ग हम लोग करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाजकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे रात्रि वा दिन की क्रम से संपत्ति होती है वैसे संपत्ति करें। जैसे विद्वान् लोग पृथिवी विकारों के ज्ञान, कला, कौशल और यन्त्रादिको को रचकर उनके घुमाने और उनमें घण्ट्यादि के संयोग से भूमि, समुद्र वा आकाश में जाने-आने के लिए यानों को सिद्ध करते हैं। वैसे ही मनुष्य को भी विमानादि यान सिद्ध करने चाहिए। क्योंकि इस विद्या के बिना किसी के हाथियार का नाश वा लक्ष्मी की वृद्धि कभी नहीं हो सकती इससे इस विद्या में सब मनुष्यों को धन्यन्त प्रयत्न करना चाहिए। जैसे मनुष्य लोग हेमन्त ऋतु में बस्त्रों को अच्छे प्रकार धारण करते हैं वैसे ही सब प्रकार कील, कला, यन्त्रादिको से यानों को संयुक्त रखना चाहिए ॥ १ ॥

फिर उनसे क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अथः पयस्यो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इन्द्रिः ।

अथः स्कम्भासः स्कम्भास आरमे त्रिनेत्रं याथस्त्रिंश्वभिना दिवा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे अग्नि अर्थात् वायु और बिजुली के समान सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं को यथावत् जानने वाले विद्वान् लोगो! आप जिस ( मधुवाहने ) मधुर गुरुयुक्त द्रव्यों की प्राप्ति के हेतु ( रथे ) विमान में ( अथ ) तीन ( पयसः ) यज्ञ के समान घुमाने के कला चक्र और ( अथ ) तीन ( स्कम्भासः ) बन्धन के लिए लक्ष ( स्कम्भासः ) स्थापित और धारण किये जाते हैं, उसमें स्थित अग्नि और जल के समान कार्यसिद्धि करने ( बिः ) तीन बार ( नक्तम् ) रात्रि और ( बिः ) तीन बार ( दिवा ) दिन में इच्छित स्थान को ( उपवाहः ) पहुँचाने वहाँ भी आपके बिना कार्यसिद्धि कदापि नहीं होती। मनुष्य जिस में बैठके ( सोमस्य ) ऐश्वर्य की ( वेना ) प्राप्ति को करनी हुई कामना वा चन्द्रलोक की कार्त्तिको प्राप्त होते और जिसको ( आरमे ) आरम्भ करने योग्य गमनागमन व्यवहार में ( विश्वे ) सब विद्वान् ( इत् ) ही ( बिभुः ) जानते हैं उस ( उ ) अद्भुत रथ को ठीक-ठीक सिद्ध कर अभीष्ट स्थानों में शीघ्र जाया-आया करा ॥ २ ॥

भाषार्थ—भूमि, समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को योग्य है कि तीन चक्र, अग्नि के घर और स्तम्भयुक्त यान को रच कर उसमें बैठ कर एक दिन रात में भूगोल, समुद्र, अन्तरिक्ष मार्ग से तीन-तीन बार जाने को समर्थ हो सकें उस यान में इस प्रकार के लक्ष रचने चाहिए कि जिसमें कलावयव अर्थात् काष्ठ, लोष्ठ आदि लक्षों के अवयव स्थित हो फिर वहाँ अग्नि जल का सप्रयोग कर चलाने। क्योंकि इनके बिना कोई मनुष्य शीघ्र भूमि, समुद्र, अन्तरिक्ष में जाने-आने को समर्थ नहीं हो सकता। इस से इनकी सिद्धि के लिए सब मनुष्यों को बड़े-बड़े मन्त्र अवश्य करने चाहिए ॥ २ ॥

फिर उनसे सिद्ध किये हुए यानों से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

समाने अहन्त्रिरं वद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।

त्रिर्वाजवतीरिचो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) अग्नि जल के समान यानों को सिद्ध करके प्रेरणा करने और चलाने तथा ( वद्यगोहना ) निन्दित दुष्ट कर्मों को दूर करनेवाले विद्वान् मनुष्यों! ( युवम् ) तुम दोनों ( समाने ) एक ( अहन् ) दिन में ( मधुना ) जल से ( यज्ञम् ) ग्रहण करने योग्य शिल्पादि विद्यासिद्धि करने वाले यज्ञ को ( बिः ) तीन बार ( मिमिक्षतम् ) सीधने की इच्छा करो और ( अथ ) आज ( अस्मभ्यम् ) शिल्पविद्याओं को सिद्ध करने और करनेवाले हम लोगों के लिए ( दोषा ) गत्रियों और ( उषसः ) प्रकाश को प्राप्त हुए दिनों में ( त्रि ) तीन बार यानों को ( पिन्व-तम् ) सेवन करो और ( वाजवती ) उत्तम-उत्तम सुखदायक ( इव ) इच्छासिद्धि करनेवाले लोकादि यानों को ( त्रि ) तीन बार ( पिन्वतम् ) प्रीति से सेवन करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—शिल्पविद्या को जानने और कलायन्त्रों से यान को चलाने वाला—ये दोनों प्रतिदिन शिल्पविद्या से यानों को सिद्ध कर तीन प्रकार अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और मानसिक सुख के लिए धन आदि अनेक उत्तम-उत्तम पदार्थों को इकट्ठा कर सब प्राणियों को सुखयुक्त करें जिसमें दिन-रात में सब लोग अपने पुरुषार्थ से इस विद्या की उन्नति कर और आलस्य को छोड़के उसके उत्साह में उसकी रक्षा में निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ३ ॥

फिर उनसे क्या कार्य करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिर्वर्तिर्यतं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुमाव्यं त्रेषेव शिस्तम् ।

त्रिर्नान्यं बहुतमभिना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरं पिन्वतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) विद्या देने वा ग्रहण करने वाले विद्वान् मनुष्यों! ( युवम् ) तुम दोनों ( अस्मे ) हम लोगों के ( वर्ति ) मार्ग को ( त्रि ) तीन बार ( वातम् ) प्राप्त हुआ करो तथा ( सुमाव्यं ) अच्छे प्रकार प्रवेश करने योग्य ( अनुव्रते ) जिसके अनुकूल सत्याचरण व्रत है उस ( जने ) वृद्धि के उत्पादन करने वाले मनुष्य के निमित्त ( त्रिः ) तीन बार ( वातम् ) प्राप्त हुआ और शिष्य के लिए ( त्रेषेव ) तीन प्रकार अर्थात् हस्तक्रिया, रक्षा और यान चालन के ज्ञान को शिक्षा करते हुए अध्यापक के समान ( अस्मे ) हम लोगों को ( त्रिः ) तीन बार ( शिस्तम् ) शिक्षा और ( नान्यम् ) समृद्धि होने योग्य शिल्प ज्ञान को ( त्रिः )

तीन बार ( बहुतम् ) प्राप्त करो और ( अक्षरं ) जैसे नदी तालाब और समुद्र आदि अलाव्य मेघ के सकाश से जल को प्राप्त होते हैं वैसे हम लोगों को ( पृक्षः ) विद्या-संपर्क को ( त्रिः ) तीन बार ( पिन्वतम् ) प्राप्त कराओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमाजकार हैं। शिल्पविद्या के जानने वाले मनुष्यों को योग्य है कि विद्या की इच्छा करने वाले अनुकूल बुद्धिमत् मनुष्यों को पदार्थविद्या पढ़ा और उत्तम-उत्तम शिक्षा बार-बार देकर कार्य को सिद्ध करने में समर्थ करे और उनको भी चाहिए कि इस विद्या का सम्पादन करके यथावत् धनुरादी और पुरुषार्थ से सुखों के उपकार को ग्रहण करें ॥ ४ ॥

फिर वे किस कार्य के साधक हैं इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

त्रिर्नो रथि बहुतमभिना युवं त्रिर्द्वताता त्रिस्तावत् धियः ।

त्रिः सौभगत्वं त्रिस्तु भवोसि नस्त्रिं वां सूरं दुहिता रुद्रधम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( द्वेताता ) शिल्पविद्या और यज्ञसम्पत्ति के मुख्य कारण वा विद्वान् तथा शुभ गुरुओं को बड़ाने और ( अश्विना ) आकाश पृथिवी के तुल्य प्राणियों को सुख देने वाले विद्वान् लोगो! ( युवम् ) आप ( नः ) हम लोगों के लिए ( रथिम् ) उत्तम यान ( त्रिः ) तीन बार अर्थात् विद्या, राज्य, श्री की प्राप्ति और रक्षण किया-क्या ऐश्वर्य को ( बहुतम् ) प्राप्त करो ( नः ) हम लोगों की ( धियः ) बुद्धियों ( उत ) और बल को ( त्रिः ) तीन बार ( बहुतम् ) प्रवेश कराइए ( नः ) हम लोगों के लिए ( त्रिस्तु ) तीन अर्थात् शरीर, आत्मा और मन के सुख में रहने और ( सौभगत्वं ) उत्तम ऐश्वर्य के उत्पन्न करनेवाले पुरुषार्थ को ( त्रिः ) तीन अर्थात् भृत्य, सत्तान और स्वार्थ भाषादि के मिश्रणको प्राप्त कीजिए ( उत ) और ( अश्वसि ) वेदादि शास्त्र वा वनों को ( त्रिः ) शरीर, प्राण और मन की रक्षा सहित प्राप्त करते और ( बाव् ) जिन धर्मियों के सकाश से ( सूरः ) सूर्य की ( दुहिता ) पुत्री के समान कान्ति ( नः ) हम लोगों के ( रथम् ) विमानादि यानसमूह को ( त्रिः ) तीन अर्थात् प्रेरक, साधक और चालन किया से ( अश्वत् ) ले जाती है उन दोनों को हम लोग शिल्पकार्यों में अच्छे प्रकार युक्त कर ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अग्नि भूमि के अवयव से शिल्पकार्यों को सिद्ध और वृद्धि बढ़ाकर सौभाग्य और उत्तम अन्नादि पदार्थों को प्राप्त हो तथा इस सब सामग्री से सिद्ध हुए यानों में बैठके-बैठ देशान्तरो का जा-आ और व्यवहार द्वारा वन को बढ़ा कर सदा धान्य में रहें ॥ ५ ॥

फिर उनसे क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिं दक्षमद्रुधः ।

ओमानं शंयोर्ममकाय सुनवं त्रिधातु शर्म वहतं शुमस्पती ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( शुमस्पती ) कल्याणकारक मनुष्यों के कर्मों की पालना करने और ( अश्विना ) विद्या की ज्योति को बड़ाने वाले शिल्पि लोगो! आप दोनों ( नः ) हम लोगों के लिए ( अश्वम् ) जलो से ( दिव्यानि ) विद्यादि उत्तम गुरु प्रकाश करनेवाले ( भेषजा ) रसमय सोमादि शोषधियों को ( त्रि ) तीन ताप निवारणार्थ ( दक्षम् ) दीजिए ( उ ) और ( पार्थिवानि ) पृथिवी के विकारयुक्त शोषधि ( त्रिः ) तीन प्रकार से दीजिए और ( ममकाय ) मेरे ( शर्म ) और स अथवा विद्यापुत्र के लिए ( शयो ) सुख तथा ( ओमानम् ) विद्या में प्रवेश और क्रिया के बोध कराने वाले रसमय व्यवहार को ( त्रिः ) तीन बार कीजिए और ( त्रिधातु ) लोहा, ताँबा पीतल इन तीन धातुओं के सहित धू, जल और अन्तरिक्ष में जाने वाले ( शर्म ) गृहस्वरूप यान को मेरे पुत्र के लिए ( त्रिः ) तीन बार ( बहुतम् ) पहुँचाइए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो जल और पृथिवी में उत्पन्न हुई रोग नष्ट करने वाली शोषधि है उनका त्रिविध ताप निवारण के लिये भोजन किया करें और अनेक धातुओं से युक्त काष्ठमय घर के समान यान को बना उत्तम-उत्तम यव आदि शोषधि स्थापन, अग्नि के घर में अग्नि को काष्ठों से प्रज्वलित, जल के घर में जलो का स्थापन, भाप के बल यानों को चला, व्यवहार के लिए देश-देशान्तरो को जा और वहाँ से आकर जन्मी अपने देश को प्राप्त हो इस प्रकार करने से बड़े-बड़े सुख प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

यह जीवा कर्म समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमसायतम् ।

तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) अत्य व्यवहार रहित ( यजता ) भेल करने तथा ( रथ्या ) विमानादि यानों को प्राप्त करानेवाले ( अश्विना ) जल और अग्नि के समान कारीगर लोगो! तुम दोनों ( पृथिवी ) भूमि वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर ( त्रिः ) तीन बार ( पृथिवीमसायतम् ) शयन करो ( आत्मेव ) जैसे जीवात्मा के समान ( वात ) प्राण ( स्वसराणि ) अपने काम्यों में प्रवृत्त करने वाले दिनों को नित्य-नित्य प्राप्त होते हैं जैसे ( गच्छतम् ) देशान्तरो को प्राप्त हुआ करो और जो ( नः ) हम लोगों के ( त्रिधातु ) सोना, चाँदी आदि धातुओं से बनाये हुए यान ( परावत ) दूर स्थानों को ( तिस्रः ) ऊँची-नीची और सम बाल चलते हुए मनुष्यादि प्राणियों को पहुँचाते हैं उन की कार्यसिद्धि के अर्थ हम लोगों के लिए बनाओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाजकार है। ससार सुख की इच्छा करने वाले पुरुष जैसे जीव अन्तरिक्ष आदि भागों से दूसरे शरीरों की शीघ्र प्राप्त होता और वायु शीघ्र चलता है वैसे ही पृथिव्यादि विकारों से कलायन्त्रयुक्त यानों को रच और



उत्तमं अग्निं यज्ञं आदि का अच्छे प्रकार प्रवीण करके आगे हुए दूर देशों को भी प्र पहुँचा करें। इस काम के बिना संसार सुख होने संभव नहीं है ॥ ७ ॥

किर के बीसे हैं और उन से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**त्रिरभिना सिन्धुभिः सप्तमाहमिष्य आहावाक्षेवा हविष्कृतम् ।**

**तिस्रः पृथिवीरूपरि प्रवा दिवी नाहं रक्षेये धर्मिरकुमिर्हितम् ॥ ८ ॥**

वार्थ—हे ( प्रवा ) गमन कराने वाले ( अग्निना ) सूर्य और वायु के समान कारीगर लोगो ! आप ( सप्तमाहमिष्यः ) जिन की सप्त धर्मात् पृथिवी, अग्नि, सूर्य, वायु, विष्णु, जल और आकाश सात माता के तुल्य उत्पन्न करने वाले हैं ( उभ ) ( सिन्धुभिः ) नदियों और ( कुमिः ) दिन ( अहोभिः ) रात्रि के साथ जिसके ( रक्षेये ) ऊपर, नीचे और मध्य में चलने वाले ( आहावा ) जलाधार मार्ग हैं उस ( प्रवा ) तीन प्रकार से ( हविष्कृतम् ) ग्रहण करने योग्य सीधे हुए ( नाहम् ) सब दुःखों से रहित ( हितम् ) स्थित प्रथम की ( उपरि ) ऊपर बढ़ाके ( तिस्रः ) स्थूल, अक्षरेण और परमाणु नाम वाली तीन प्रकार की ( पृथिवी ) विस्तारयुक्त पृथिवी और ( विषा ) अकारणस्वक फिरोली को प्राप्त कराके उस की इधर-उधर बसा और नीचे बढाके इससे सब जगत् की ( मि ) तीन बार ( रक्षेये ) रक्षा कीजिए ॥ ८ ॥

वार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि—सूर्य वायु के छेदन, आकाश और बुद्धि करानेवाले गुणों से मदी बसती तथा हवन किया हुआ अन्न दुर्गन्धादि दोषों का निवारण कर सब दुःखों से रहित सुखों को सिद्ध करता है। दिन-रात सुख बढता है इसके बिना कोई प्राणी जीने को समर्थ नहीं हो सकता इससे इस की बुद्धि के लिए यत्नरूप कर्म नित्य करें ॥ ८ ॥

किर उनसे क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**कः श्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य कः श्रयो बन्धुरो ये सनीष्ठाः ।**

**कदा योगो वाजिनो रासमस्य येन यज्ञं नास्त्योपसायः ॥ ९ ॥**

वार्थ—हे ( वासत्या ) सत्य गुण और स्वभाव वाले कारीगर लोगो ! तुम दोनों ( यज्ञम् ) दिव्यगुणयुक्त विमान आदि यान से जाने-बाने योग्य मार्ग को ( कः ) कब ( उपसायः ) शीघ्र जैसे निकट पहुँच जावें वैसे पहुँचते हो और ( येन ) जिस से पहुँचते हो उस ( रासमस्य ) मन्त्र करनेवाले ( वाजिनः ) प्रसन्ननीय वेग से युक्त ( वाजिनः ) रथ, वाहन आदि सामग्री से पूर्ण ( रथस्य ) और भूमि, जल, अन्तरिक्ष मार्ग में रमण करानेवाले विमान में ( कः ) कहाँ ( श्री ) तीन ( चक्रा ) चक्र रचने चाहिए और इस विमानादि यान में ( ये ) जो ( सनीष्ठाः ) बराबर बन्धनों के स्थान वा ध्वनि रहने का घर ( बन्धुर ) नियमपूर्वक चलाने के हेतु कोष्ठ होते हैं उनका ( योयः ) योग ( यः ) कहाँ रहना चाहिए—ये तीन प्रश्न हैं ॥ ९ ॥

वार्थ—इस मन्त्र में कहे हुए तीन प्रश्नों के ये उत्तर जानने चाहिए—विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुषों को उचित है कि रथ के आदि, मध्य और अन्त में सब कलाओं के बन्धनों के आधार के लिए तीन बन्धन विशेष सम्पादन करें तथा तीन कला भूमने-धुमाने के लिए सम्पादन करें—एक मनुष्यों के बैठने, दूसरी अग्नि की स्थिति और तीसरी जल की स्थिति के लिए करके जब-जब चलने की इच्छा हो तब-तब यथायोग्य जलकाष्ठों की स्थापन, अग्नि को युक्त और कला की वायु से प्रदीप्त करके भाप के वेग से चलाये हुए यान से शीघ्र दूर स्थान को भी निकट के समान जाने में समर्थ होवें क्योंकि इस प्रकार किये बिना निर्विघ्नता से स्थानान्तर को कोई मनुष्य शीघ्र नहीं जा सकता ॥ ९ ॥

किर उनसे क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**आ नास्त्या गच्छतं ह्यतं हविर्मध्यः पिवतं मधुपेर्मिरासभिः ।**

**युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्र घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥**

वार्थ—हे शिल्पि लोगो ! तुम दोनों ( वासत्या ) जल और अग्नि के सदृश जिस ( हवि ) सामग्री का ( गच्छतं ) हवन करते हो उस हवि से सुद्ध हुए ( मधु ) मधुर जल ( मधुपेभिः ) सुद्ध जल पीने वाले ( आसभिः ) अपने सुखों से ( पिवतम् ) पियो और हम लोगों को आनन्द देने के लिए ( मृताय ) बहुत जल की कलाओं से युक्त ( चित्रम् ) वेगादि आश्चर्य्य गुणसहित ( रथम् ) विमानादि यानों से देशान्तरों को ( गच्छतम् ) शीघ्र जाओ-आओ ( युवोः ) तुम्हारा जो रथ ( उषसः ) प्रातःकाल से ( पूर्वं ) पहले ( सविता ) सूर्यलोक के समान प्रकाशमान ( इष्यति ) शीघ्र चलता है ( हि ) वही ( घृतम् ) सत्य सुख के लिए समर्थ होता है ॥ १० ॥

वार्थ—जब यानों में जल और अग्नि को प्रदीप्त करके चलाते हैं तब वे यान और स्थानों को शीघ्र प्राप्त कराते हैं उन में जल और भाप के निकलने का एक ऐसा स्थान रथ सेवें कि जिस में होकर भाप के निकलने से वेग की बृद्धि होवे। इस विद्या का जानने वाला ही अच्छे प्रकार सुखों को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

**आ नास्त्या त्रिभिर्कादक्षैरिह देवेभिर्यासं मधुपेयमभिना ।**

**मापुस्वारिहं नी रपांसि मृतं सेधतं देवो भवतं सचाभुवा ॥ ११ ॥**

वार्थ—हे शिल्पि लोगो ! तुम दोनों ( वासत्या ) सत्यगुण स्वभावयुक्त ( सचाभुवा ) मेल करानेवाले जल और अग्नि के समान ( देवेभिः ) विमानों के

साथ ( इह ) इन उत्तम यानों में बैठके ( त्रिभिः ) तीन दिन और तीन रात्रियों में महासमुद्र के पार और ( एकादक्षभिः ) ग्यारह दिन और ग्यारह रात्रियों में भूगोल पृथिवी के अन्त को ( वासन् ) पहुँचो ( देवः ) शत्रु और ( रपांसि ) पापों को ( निम्नगतम् ) अच्छे प्रकार दूर करो ( मधुपेयम् ) मधुर गुणयुक्त पीने योग्य द्रव्य और ( मापुः ) उमर को ( अक्षारिहम् ) प्रयत्न से बढाओ उत्तम सुखों को ( सेधतम् ) सिद्ध करो और मनुष्यों को जीतने वाले ( भवतम् ) होओ ॥ ११ ॥

वार्थ—जब मनुष्य ऐसे यानों में बैठ कर उनकी चलाते हैं तब तीन दिन और तीन रात्रियों में सुख से समुद्र के पार तथा ग्यारह दिन और ग्यारह रात्रियों में ब्रह्माण्ड के चारों ओर जाने में समर्थ हो सकते हैं। इसी प्रकार करते हुए विद्वान् लोग सुखयुक्त पूर्ण भाग्य को प्राप्त हो दुःखों को दूर और मनुष्यों को जीतकर अक्रान्ति-राज्य भोगने वाले होते हैं ॥ ११ ॥

**आ नो अग्निना त्रिवृता रथेनार्वाञ्च रयि बहत सुवीरम् ।**

**भृशन्तां वामवसे जोहवीमि वृषे च नो भवतं वाजसातो ॥ १२ ॥**

वार्थ—हे कारीगरी मे चतुरजनों ! ( अग्निना ) अन्न कराने वाले ( अग्निना ) वृद्ध विद्या बलयुक्त आप दोनों जल और पवन के समान ( त्रिवृता ) तीन धर्मात् स्थूल, जल और अन्तरिक्ष में पूर्णगति से जाने के लिए वर्तमान ( रथेन ) विमान आदि यान से ( न ) हम लोगों को ( अर्वाञ्चम् ) ऊपर से नीचे प्रभीष्ट स्थान को प्राप्त होने वाले ( सुवीरम् ) उत्तम वीर युक्त ( रयिम् ) अक्रान्ति राज्य से सिद्ध हुए धन को ( वाजसातो ) अच्छे प्रकार प्राप्त होके पहुँचाइए ( च ) और ( नः ) हम लोगों के ( वाजसातो ) सङ्ग्राम में ( वृषे ) वृद्धि के अर्थ विजय को प्राप्त कराने वाले ( भवतम् ) हुआए जैसे मैं ( अक्षसे ) रक्षादि के लिए ( मापुः ) तुम्हारा ( जोहवीमि ) बार-बार ग्रहण करता हूँ वैसे आप मुझ को ग्रहण कीजिए ॥ १२ ॥

वार्थ—जब अग्नि से प्रयुक्त किये हुए रथ के बिना कोई मनुष्य स्थूल, जल और अन्तरिक्ष मार्गों में शीघ्र जाने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे राज्यप्री, उत्तम सेना और वीर पुरुषों को प्राप्त होके ऐसे विमानादि यानों से युद्ध में विजय पा सकते हैं। इस कारण इस विद्या में मनुष्य सदा युक्त हों ॥ १२ ॥

पूर्व सूक्त से इस विद्या के सिद्ध करने वाले इन्द्र मन्त्र के अर्थ का प्रतिपादन किया तथा इस सूक्त से इस विद्या के साधक अग्नि धर्मात् आवापृथिवी आदि अर्थ प्रतिपादन किये हैं इस से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए।

यह पाँचवाँ वर्ण और बीतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

॥

अथैकादशमं अध्यायं यजुर्वेदस्य सूक्तस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूय आदि । आदिमस्य

मन्त्रस्याग्निमित्रावधनी रात्रिः सविता च । २—११ सविता च देवता ।

१ विराट् जगती, २ लिङ्गजगती जम्ब । निषादः स्वरः ।

२, ४, १०, ११ । विराट् लिङ्गपु, ३, ४, ६

लिङ्गपु जम्ब । लैवतः स्वरः । ७, ८ पुरिक्

पक्त्वित्यजम्बः । यजम्बः स्वरः ॥

अथ वेतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में अग्नि आदि के गुणों को जानके सब प्रयोजन सिद्ध करे इस विषय का वर्णन किया है—

**हयाम्यग्निं मध्यं स्वस्तये हयामि मित्रावरुणावहावसे ।**

**हयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं हयामि द्व सवितारमृतये ॥ १ ॥**

वार्थ—मैं ( इह ) इस शरीर धारणादि व्यवहार में ( स्वस्तये ) उत्तम सुख होने के लिए ( मध्यम् ) शरीर धारण के आदि साधन ( अग्निम् ) रूप गुण-युक्त अग्नि के ( हयामि ) ग्रहण की इच्छा करता हूँ ( अक्षसे ) रक्षाणादि के लिए ( मित्रावरुणी ) प्राण वा उदान वायु को ( हयामि ) स्वीकार करता हूँ ( जगतः ) संसार को ( निवेशनीम् ) निद्रा में निवेश कराने वाली ( रात्रीम् ) सूर्य के प्रभाव से अन्धकार रूप रात्रि को ( हयामि ) प्राप्त होता हूँ ( अक्षसे ) निवासिद्धि की इच्छा के लिए ( देवम् ) द्योतनात्मक ( सवितारम् ) सूर्यलोक को ( हयामि ) ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

वार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि दिन-रात सुख के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से उपकार को ग्रहण करके सब सुखों को प्राप्त होवें क्योंकि इस विद्या के बिना कभी किसी पुरुष को पूर्ण सुख सम्भव नहीं हो सकता ॥ १ ॥

अथ अगले मन्त्र में सूर्यलोक के गुणों का उपदेश किया है—

**आ कुण्णेन रजसा बसैमानो निवेशयन्मृतं मर्त्यं च ।**

**हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥**

वार्थ—यह ( सविता ) सब जगत् को उत्पन्न करने वाला ( देवः ) सब से अधिक प्रकाशयुक्त परमेश्वर ( आह्वयेन ) अपनी आकर्षण शक्ति से ( रजसा ) सब सूर्यादि जोशों के साथ व्यापक ( वर्तमानः ) हुआ ( मृतम् ) अन्तर्धामिक्य वा वेद द्वारा मोक्ष साधक सत्य ज्ञान ( च ) और ( मर्त्यम् ) कर्मों और प्रलय की व्यवस्था से सरणयुक्त जीवों को ( निवेशयन् ) अच्छे प्रकार स्थापन करता हुआ

(हिरण्यवेन) यशोमय (रथेन) ज्ञानस्वरूप रथ से युक्त (भुवनानि) लोको को (पश्यन्) देखता हुआ (आयाति) अच्छे प्रकार सब पदार्थों का प्राप्त होता है ॥ १ ॥ यह (सविता) प्रकाश, वृष्टि और रमा का उत्पन्न करने वाला (कृष्णोऽसि) प्रकाश रहित (रजसा) पृथिवी आदि लोकों के साथ (आवर्तमानः) अपनी आकर्षण शक्ति से वर्तमान इस जगत् में (अमृतम्) वृष्टि द्वारा अमृतस्वरूप रम (अ) तथा (अमृतम्) काल व्यवस्था से मरण का (निवेत्तयन्) अपने-अपने सामर्थ्य में स्थापन करता हुआ (हिरण्यवेन) प्रकाशस्वरूप (रथेन) गमन शक्ति से (भुवनानि) लोकों को (पश्यन्) दिखाता हुआ (आयाति) अच्छे प्रकार वर्षा आदि रूपों की अलग-अलग प्राप्ति कराता है ॥ २ ॥

**भाषार्थ**— इस मन्त्र में शेषालकार है। जैसे पृथिवी आदि लोक मनुष्यादि प्राणियों का, वा सूर्यलोक अपने आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों को, वा ईश्वर अपनी सत्ता से सूर्यादि लोकों को धारण करता है। ऐसे क्रम में सब लोकों का धारण होता है। इसके बिना अन्तरिक्ष में किसी अत्यन्त भारयुक्त लोक की अपनी परिधि में स्थिति होने का सम्भव नहीं होती और लोकों के घने बिना अणु, सूक्ष्म, प्रहर, दिन, रात, पक्ष, मान, ऋतु और सवत्सर आदि कालों के अवयव उत्पन्न नहीं हो सकते ॥ २ ॥

**अब वायु और सूर्य के दृष्टान्त के साथ अगले मन्त्र में शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है—**

**याति देवः प्रवता यात्युदता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।**

**आ देवो याति सविता पंगवतोऽय विश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**— जैसे (विश्व) सब (दुरिता) दुष्ट दुष्टों को (अप, बाधमान) दूर करता हुआ (यजत) सगम करने योग्य (देव) अथवा आदि ज्ञान का प्रकाशक वायु (प्रवता) नीचे मार्ग में (याति) जाता-आता और (उदता) ऊर्ध्व मार्ग से (याति) जाता आता है और जैसे सब दुष्ट देने वाले अन्धकारादिकों को दूर करता हुआ (यजत) सगम होकर योग्य (सविता) प्रकाशक सूर्यलोक (शुभ्राभ्याम्) शुद्ध (हरिभ्याम्) काल वा शुक्लवर्णों से (परावत) दूरस्थ पदार्थों को अपनी किरणों से प्राप्त होकर पृथिव्यादि लोकों को (आयाति) सब प्रकार प्राप्त होता है वैसे शूरवीरों के लिए लोग मैदानों आदि माधमी स्थिति ऊर्ध्व-नीचे मार्ग में जा-आना शत्रुओं को जीतकर प्रजा की रक्षा निरन्तर किया करे ॥ ३ ॥

**भाषार्थ**— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर की उत्पन्न की हुई सृष्टि में वायु नीचे, ऊपर वा समगति में चलता हुआ नीचे के पदार्थों को ऊपर और ऊपर के पदार्थों का नीचे करता है और जैसे दिन, रात वा आकर्षण, धारण गुण वाले अपने किरणमयूह से युक्त सूर्यलोक अन्धकारादिकों के दूर करने से दुष्टों का विनाश कर सुख और सुखों का विनाश कर दुष्टों को प्रकट करता है वैसे ही ममापति आदि का भी अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ३ ॥

**फिर भी अगले मन्त्र में उन दोनों के दृष्टान्त से राजकार्य का उपदेश किया है**

**अभीवृत्तं कुशनेर्विश्वरूपं हिरण्यप्रसम्यं यजतो बृहन्तम् ।**

**आस्याद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजामि तविपी दधानः ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**— हम मन्त्र के स्वामी राजन ! आप जैसे (यजत) सगम करने वा प्रकाश का देने वाला (चित्रभानु) चित्र-विचित्र दीप्ति युक्त (सविता) सूर्यलोक वा वायु (कुशने) लीक्षण करने बान किरण वा विविध रूपों से (बृहन्तम्) बड़े (हिरण्यप्रसम्य) जिस में सुवर्ण वा ज्योति शान्त करने योग्य हा (अभीवृत्तम्) आगे और से वर्तमान (विश्वरूपम्) जिसके प्रकाश वा ज्ञान में बहुत रूप है उस (रथम्) रमणीय रथ (कृष्णा) आकर्षण वा कृष्णवर्णयुक्त (रजामि) पृथिव्यादि लोकों और (तविपीम्) बल को (दधान) धारण करता हुआ (आस्यात्) अच्छे प्रकार स्थित होता है वैसे अपना वर्त्ताव कीजिए ॥ ४ ॥

**भाषार्थ**— इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य आदि की उत्पत्ति का निमित्त, सूर्य आदि लोक का धारण करने वाला बलवान् सब लोकों और आकर्षणकारी बल का धारण करता हुआ, वायु विचरता है और जैसे सूर्यलोक अपने समीप स्थलों को धारण और सब रूप विषय का प्रकट करता हुआ बल वा आकर्षण शक्ति से सब को धारण करता है। और इन दोनों के बिना किसी स्थूल वा सूक्ष्म वस्तु का धारण सम्भव नहीं होता वैसे ही राजा को चाहिए कि उत्तम गुणों से युक्त होकर राज्य वा धारण किया करे ॥ ४ ॥

**फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—**

**वि जनाञ्छ्रयावाः शितिपादौ अख्यन् रथ हिरण्यप्रसम्यं वहन्तः ।**

**शश्वद्विशः सवितुर्देव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥**

**पदार्थ**— हे सज्जन पुरुष ! जैसे-जिस (देव्यस्य) विद्वान् वा दिव्य पदार्थों में उत्पन्न होने वाले (सवितु) सूर्यलोक की (उपस्थे) गोद अर्थात् आकर्षण शक्ति में (विश्व) सब (भुवनानि) पृथिवी आदि लोक (तस्थु) स्थित होते हैं उनके (शितिपादौ) अपने श्वेत अधरों से युक्त (शश्वद्विशः) प्राप्ति होने वाले किरण (जनाञ्) विद्वानों (हिरण्यप्रसम्य) जिस में ज्योतिरूप अग्नि के मुक्त के समान स्थान है उस (रथम्) विमान आदि यान और (शश्वत्) अनादि रूप (विशः) प्रजाओं को (वहन्तः) धारण और बढ़ाते हुए (अख्यन्) अनेक प्रकार प्रकट होते हैं वैसे तेरे समीप विद्वान् लोग रहें और तू भी विद्या तथा धर्म का प्रचार कर ॥ ५ ॥

**भाषार्थ**— हे मनुष्यो ! तुम जैसे सूर्यलोक के प्रकाश वा आकर्षण आदि गुण सब जगत् को धारणपूर्वक यथायोग्य प्रकट करते हैं, और जो सूर्य के समीप लोक है

वे सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, जो अनादि रूप प्रजा है उसका भी वायु धारण करता है इस प्रकार होने से सब लोक अपनी-अपनी परिधि में स्थित होते हैं वैसे तुम मनुष्यों को धारण और अपने-अपने अधिकारों में स्थित होकर अन्य सब को त्याग मार्ग में स्थापन किया करो ॥ ५ ॥

**फिर भी वायु और सूर्य के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—**

**तिस्त्रो धावः सवितुर्देव उपस्थौ एका यमस्य भुवने विरावाद् ।**

**आणि न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**— हे विद्वन् ! तू (रथ्यम्) रथ आदि के चलाने योग्य (आणिम्) सधाम को जीतने वाले राजभृत्यों के (अ) समान इस (सवितुः) सूर्यलोक के प्रकाश में जो (तिस्त्र) तीन अर्थात् (धावः) सूर्य, अग्नि और विद्युत् रूप के साधनों से युक्त (अधितस्थुः) स्थित होते हैं उन में से (द्वौ) दो प्रकाश वा भूगोल सूर्य-मण्डल के (उपस्था) समीप में रहते हैं और (एका) एक (विरावाद्) शूरवीर, ज्ञानवान् प्राप्ति स्वभाव वाले जीवों को सहने वाली बिजुली रूप दीप्ति (यमस्य) नियम करने वाले वायु के (भुवने) अन्तरिक्ष में ही रहती है और जो (अमृता) कारणरूप में नाशरहित अमृत-तारे आदि लोक हैं वे इस सूर्यलोक के प्रकाश में प्रकाशित होकर (अधितस्थुः) स्थित होते हैं (य) जो मनुष्य (उ) वादविवाद से इन का (चिकेतत्) जाने और उस ज्ञान को (इह) इस संसार वा विद्या में (ब्रवीतु) अच्छे प्रकार उपदेश करे उसी के समान होके हम को मनुष्यों का उपदेश किया करे ॥ ६ ॥

**भाषार्थ**— इस मन्त्र में उपमालकार है। ईश्वर ने अग्निरूप कारण से सूर्य, अग्नि और बिजुली रूप तीन प्रकार की दीप्ति रखी है जिन के द्वारा सब कार्य सिद्ध होते हैं। जब कोई ऐसा पूछे कि जीव अपने शरीरों को छोड़के जिस यम के स्थान को प्राप्त होते हैं वह कौन है तब उत्तर देने वाला अन्तरिक्ष में रहने वाले वायु को प्राप्त होने है ऐसा कहे। जैसे युद्ध में रथ, भृत्य आदि सेना के अङ्गों में स्थित होते हैं वैसे मरे और जीने हुए जीव वायु के अवलम्ब से स्थित होते हैं। पृथिवी, अन्धमा और नक्षत्रादि लोक सूर्यप्रकाश के आश्रय से स्थित होते हैं। जो विद्वान् हो वही प्रश्नों के उत्तर कह सकता है, सूख नहीं। इसलिए मनुष्यों को सूखे अर्थात् अनाप्तों के कहने में विश्वास और विद्वानों के कथन में अथवा कभी न कर्णी चाहिए ॥ ६ ॥

**फिर इस सूर्यलोक के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—**

**वि सुपर्णो अन्तरिक्षायख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।**

**केदानी सूर्यः कश्चिकेत कतमां धां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**— हे विद्वज्जन ! जैसे यह सूर्यलोक जो (असुर) सब के लिए प्राण-दाता अर्थात् रात्रि में साथ दुष्टों का उदय के समय खेलता देने (गभीरवेपा) जिसका कम्पन गभीर अर्थात् सूक्ष्म होने से साधारण पुरुषों के मन में नहीं बैठता (सुनीथ) उत्तम प्रकार से पदार्थों की प्राप्ति करने और (सुपर्ण) उत्तम पवन स्वभाव विरगयुक्त सूर्य (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष में उठते हुए सब लोकों को (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है (केदानीम्) इस वर्तमान समय रात्रि में (क) कहाँ है ? इस बात को (कः) कौन (चिकेत) जानता तथा (कतमां) बहुतां में किम् (धाम्) प्रकाश को (अस्य) इस सूर्य के (रश्मि) किरण (आततान) व्याप्त हो रहे हैं इस बात को भी कौन जानता है ? अर्थात् कोई-कोई जो विद्वान् है वे ही जानने हैं सब साधारण पुरुष नहीं। इसलिए सूर्यलोक का स्वरूप और गति आवि को तू जान ॥ ७ ॥

**भाषार्थ**— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब यह भूगोल अपने अमण से सूर्य के प्रकाश का आच्छादन कर अन्धकार करता है तब साधारण मनुष्य पूछते हैं कि अब वह सूर्य कहाँ गया ? उस प्रश्न का उत्तर से समाधान करे कि पृथिवी के दूसरे पृष्ठ में है। जिसका चलना अति सूक्ष्म है जैसे वह मूर्ख मनुष्यों से जाना नहीं जाता वैसे ही महाशय मनुष्यों का आशय भी अविद्वान् लोग नहीं जान सकते ॥ ७ ॥

**फिर इसके कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—**

**अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।**

**हिरण्यप्रसः सविता देव आगाह्यद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**— हे सज्जन ! जैसे जो (हिरण्यप्रसः) जिस के सुवर्ण के समान ज्योति हैं वह (सविता) वृष्टि उत्पन्न करने वाला (देव) अतिनात्मक सूर्यलोक (पृथिव्या) पृथिवी से सम्बन्ध रखने वाली (अष्टौ) आठ (ककुभः) विशा अर्थात् चार दिशा और चार उपदिशाओं (त्री) तीन भूमि, अन्तरिक्ष और प्रकाश के अर्थात् ऊपर, नीचे और मध्य में उठरने वाले (धन्व) प्राप्त होने योग्य (योजना) सब वस्तु के आधार तीन लोकों और (सप्त) सात (सिन्धून्) भूमि, अन्तरिक्ष वा ऊपर स्थित हुए जलसमुदायों को (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है वह (दाशुषे) मर्वापकारक विद्यादि उत्तम पदार्थ देने वाले यजमान के लिए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य (रत्ना) पृथिवी आदि वा सुवर्ण आदि रमणीय रत्नों को (वहत्) धारण करता हुआ (आगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी वर्त्तों ॥ ८ ॥

**भाषार्थ**— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह सूर्यलोक सब मूर्तिमान् पदार्थों का प्रकाश छेदन वायु द्वारा अन्तरिक्ष में प्राप्त और वहाँ से नीचे गिरकर रमणीय सुखों को जीवों के लिए उत्पन्न करता है और पृथिवी में स्थित उनवास श्रेण पयस्त अन्तरिक्ष में स्थूल, सूक्ष्म, लघु और गुरु रूप से स्थित हुए जलो

कौं अर्पति जिनका सप्तसिंधु नाम है आकर्षणशक्ति के धारण करता है वैसे सब विद्वान् लोग विद्या और धर्म से सब प्रजा को धारण करके सब को आनन्द में रखते ॥ ८ ॥

फिर वह क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**हिरण्यपाणिः सविता विश्वर्षणिर्भे आवापृथिवी अन्तरीयते ।**

**अपायीवां वाधते वेति सूर्यमभिकृष्णेन रजसा धातुमोति ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे सभापते ! जैसे ( हिरण्यपाणिः ) जिसके हिरण्यरूप ज्योति हाथों के समान ग्रहण करने वाले है ( विश्वर्षणिः ) पदार्थों को छिन्न-भिन्न और ( सविता ) रसों को उत्पन्न करने वाला सूर्यलोक ( उभे ) दोनों ( आवापृथिवी ) प्रकाशभूमि को ( अन्तः ) अन्तरिक्ष के मध्य में ( इधरे ) प्राप्त ( अमीबाधम् ) रोग, पीडा का ( अपवाधते ) निवारण ( सूर्यम् ) सब का प्राप्त होने वाले अपने किरण-समूह को ( अभिधेति ) साक्षात् प्रकट और ( कृष्णेन ) पृथिवी प्रादि प्रकाश रहित ( रजसा ) लोहसमूह के साथ अपने ( धाम् ) प्रकाश को ( आरुणोति ) प्राप्त करता है वैसे भुक्त को भी होना चाहिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभापते ! जैसे यह सूर्यलोक बहुत लोकों के साथ आकर्षण मन्त्रध्व से वर्तमान सब वस्तुमात्र को प्रकाशित करता हुआ प्रकाश तथा पृथिवीलोक का भेद करता है वैसे स्वभावयुक्त आप हूजिए ॥ ९ ॥

अब अगले मन्त्र में वायु के गुणों का उपदेश किया है—

**हिरण्यहस्तो असुरः सुनीयः सुमृच्छीकः स्वर्वां यात्वर्वाह ।**

**अपसेध्वक्षसो यातुधानानस्थादेवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे सभापते ! आप जैसे यह ( हिरण्यहस्तः ) जिसका चलना हाथ के समान है ( असुरः ) प्राणों की रक्षा करने वाला ऊप गुण रहित ( सुनीयः ) सुन्दर रीति से सब को प्राप्त होने ( सुमृच्छीकः ) उत्तम व्यवहारों से सुखयुक्त करने और ( स्वर्वाहम् ) उत्तम-उत्तम स्पर्श प्रादि गुण वाला ( अर्वाहम् ) अपने नीचे-ऊपर टेढ़े जान वाले वेगों को प्राप्त होता हुआ वायु चारों ओर से चलता है तथा ( प्रति-दोषम् ) राज्ञि-राज्ञि के प्रति ( गृणानः ) गुण कथन से स्तुति करने योग्य ( देवः ) सुखदायक वायु दुखों को निवृत्त और सुखों को प्राप्त करके ( अस्थात् ) स्थित होता है वैसे ( रक्षसः ) दुष्ट कर्म करने वाले ( यातुधानम् ) जिनमें पीडा प्रादि दुख होते हैं उन डाकुओं को ( अपसेधम् ) निवारण करने हुए खेठों को प्राप्त हूजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभापते ! जैसे यह वायु अपने आकर्षण और बल प्रादि गुणों से सब पदार्थों को व्यवस्था में रखता है और जैसे दिन में चार प्रबल नहीं हो सकते हैं वैसे आप भी हूजिए जिस जगदीश्वर ने बहुत गुणयुक्त सुख प्राप्त करने वाले वायु प्रादि पदार्थ रचे हैं उमी को सब वध्य-बाद देने योग्य हैं ॥ १० ॥

अब अगले मन्त्र में हनु शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है

**ये ते पन्थाः सवितः पूर्वार्सांऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।**

**तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुग्री रक्षा च नो अधि च ब्रहि देव ॥ ११ ॥**

पदार्थ—हे ( सवितः ) सकल जगत् के रचने और ( देवः ) सर्व सुख देने वाले जगदीश्वर ! ( ये ) जो ( ते ) आपके ( अरेणवः ) जिनमें कुछ भी भूलि के अंशों के समान विघ्नरूप मल नहीं है तथा ( पूर्वार्साः ) जो हमारी अपेक्षा से प्राचीनो ने सिद्ध और सेवन किये हैं ( सुकृताः ) अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए ( पन्थाः ) मार्ग ( अन्तरिक्षे ) अपने व्यापकता रूप ब्रह्माण्ड में वर्तमान हैं ( तेभिः ) उन ( सुग्रीभिः ) सुखपूर्वक सेवन करने योग्य ( पथिभिः ) मार्गों से ( नः ) हम लोगों की ( अद्य ) आज ( रक्षा ) रक्षा कीजिए ( च ) और ( नः ) हम लोगों के लिए सब विद्याओं का ( अधि ) उपदेश ( च ) भी कीजिए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे ईश्वर ! आपने जो सूर्य प्रादि लोकों के घूमने और प्राणियों के सुख के लिए आकाश वा अपने महिमा रूप ससार में शुद्ध मार्ग रचे हैं जिन में सूर्यादि लोक यथानियम से घूमते और सब प्राणी विचरते हैं उन सब पदार्थों के मार्गों तथा गुणों का उपदेश कीजिए कि जिससे हम लोग इधर-उधर बलायमान न हों ॥ ११ ॥

इस सूक्त में सूर्यलोक, वायु और ईश्वर के गुणों का प्रतिपादन करने से चौंती-सबे सूक्त के साथ इस सूक्त की समाप्ति जाननी चाहिए ॥

यह सातवां वर्ग सातवां अनुवाक और पंतीतवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

५३

अब विद्वान्मन्त्र्य अर्वाभित्य सुकृतस्य धीरः काव्यः अधिः । अग्निर्वज्रता । १, १२

भूरिगुण्डुपुं धन्व । वाय्वारः स्वरः । २ निवृत्तस्य पक्षितः, ४ निवृत्तस्य पक्षितः,

१०, १५ निवृत्तस्य पक्षितः, १६ निवृत्तस्य पक्षितः, २० सतः पक्षितः

पक्षितः । पक्षितः स्वरः । ३, ११ निवृत्तस्य पक्षितः, ५, १६ निवृत्तस्य पक्षितः,

६ भूरिगुं पक्षितः, ७ पक्षितः, ८ स्वरः पक्षितः, ९ निवृत्तस्य पक्षितः

पक्षितः, १३ उपरिपक्षितः पक्षितः, १४ निवृत्तस्य पक्षितः, १७

निवृत्तस्य पक्षितः, १८ पक्षितः पक्षितः । अन्त्यः स्वरः ॥

अब अतीसबे सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में अग्नि शब्द से

ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

**प्र वीं यहं पुंरुणां विषां देवयतीनाम् ।**

**अग्नि सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे य सीमिदन्म ईळते ॥ १ ॥**

पदार्थ—हम लोग जैसे ( अन्म ) अन्य परोपकारों, धर्मात्मा, विद्वान् लोग ( सूक्तेभिः ) जिन में अच्छे प्रकार विद्या कही है उन ( वचोभिः ) वेद के धर्म-ज्ञान-युक्त वचनों से ( देवयतीनाम् ) अपने लिए विषय-भोग वा दिव्य-गुणों की इच्छा करने वाले ( पुंरुणाम् ) बहुत ( वः ) तुम ( विषाम् ) प्रजा लोगों के सुख के लिए ( यम् ) जिस ( वचनम् ) अन्तः गुणयुक्त ( अग्निम् ) परमेश्वर की ( सीम् + ईळते ) सब प्रकार स्तुति करते हैं वैसे उस ( इम् ) ही की ( प्रेमहे ) अच्छे प्रकार पाचना और गुणों का प्रकाश करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे तुम पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् लोग प्रजा के सुख की सम्पत्ति के लिए सर्वव्यापी परमेश्वर का निश्चय तथा उपदेश करके प्रगल्भ से जानते हो वैसे ही हम लोग भी उसके गुण प्रकाशित करें। जैसे ईश्वर अग्नि प्रादि पदार्थों के रचन और पालन से जीवों में सब सुखों को धारण करता है वैसे हम लोग भी सब प्राणियों के लिए सदा सुख वा विद्या को सिद्ध करते रहें ऐसा जानो ॥ १ ॥

फिर अगले मन्त्र में उक्त विषय का उपदेश किया है—

**जनांसो अग्निं दधिरे सहोद्वधं हविर्धन्तो विधेम ते ।**

**म त्वं नो अद्य सुमनां इहाविता भवा वाजेषु संत्य ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे ( सन्म ) सब वस्तु देनेहारे ईश्वर ! जैसे ( हविर्धन्तः ) उत्तम देने-नेने योग्य वस्तु वाले ( जनांसः ) विद्या में प्रसिद्ध हुए विद्वान् लोग जिस ( ते ) आपके आश्रय का ( दधिरे ) धारण करते हैं वैसे उन ( सहोद्वधम् ) बल को बढ़ाने वाले ( धानम् ) सब के रक्षक आप को हम लोग ( विधेम ) सेवन करें ( सः ) सो ( सुमना ) उत्तम ज्ञान वाले ( त्वम् ) आप ( अद्य ) आज ( नः ) हम लोगों के ( इह ) समार और ( वाजेषु ) युद्धों में ( अविता ) रक्षक और सब विद्याओं में प्रवेश कराने वाले ( भवा ) हूजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को एक अद्वितीय परमेश्वर की उपासना से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए, क्योंकि विद्वान् लोग परमेश्वर के स्थान में अन्य वस्तु को उपासना भाव से स्वीकार कभी नहीं करते। इसी कारण उनका युद्ध वा इस समार में कभी पराजय नहीं दीख पड़ना क्योंकि वे धार्मिक होते हैं। और ईश्वर की उपासना न करने वाले उनका जीतने में समर्थ नहीं होते, क्योंकि ईश्वर जितनी रक्षा करने वाला है उनका पराजय कैसे हो सकता है ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्र में जैतिक अग्नि के दृष्टान्त से राजपूतों के गुणों का उपदेश किया है—

**प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।**

**महस्तं सतो वि चर्गन्त्यर्चयौ दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे विद्वन् राजपूत ! जैम हम लोग ( विश्ववेदसम् ) सब शिल्प-विद्या का हेतु ( होतारम् ) ग्रहण करने और ( दूतम् ) सब पदार्थों को तपाने वाले अग्नि को ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं वैसे ( त्वा ) तुम को भी ग्रहण करते हैं तथा जैसे ( महः ) महागुणविशिष्ट ( सतः ) सत्कारणरूप से नित्य अग्नि के ( भानवः ) किरण सब पदार्थों में ( स्पृशन्ति ) सम्बन्ध करते और ( अर्चयः ) प्रकाशरूप ज्वाला ( विवि ) द्योनात्मक सूर्य के प्रकाश में ( विश्वरन्तः ) विशेष करके प्राप्त होती हैं वैसे तेरे भी सब काम होने चाहिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे अपने काम में प्रवीण राजपूत ! जैसे सब मनुष्य महाप्रकाशादिगुणयुक्त अग्नि को पदार्थों की प्राप्ति वा अप्राप्ति के कारण दूत के समान जान और शिल्पकार्यों को सिद्ध करके सुखों को स्वीकार करते और जैसे इस बिजुली रूप अग्नि की दीप्ति सब जगह वर्तती है और प्रसिद्ध अग्नि की दीप्ति छोटी होने तथा वायु के छेदक होने से ध्वजकाण करने वाली होकर ज्वाला ऊपर जाती है वैसे तू भी अपने कामों में प्रवृत्त हो ॥ ३ ॥

फिर वह दूत कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**देवासंस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रतर्पिन्धते ।**

**विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्तं ददाश मर्यैः ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि, विद्या, श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशमान सभापते ! ( यः ) जो ( ते ) तेरा ( दूतः ) दूत ( अर्यः ) मनुष्य तेरे लिए ( धनम् ) विद्या, राज्य, सुखप्राप्ति भी को ( वराजः ) देता है तथा जो ( त्वया ) तेरे साथ शत्रुओं का ( जयति ) जीतता है ( मित्रः ) सबका सुहृद् ( वरुणः ) सब से उत्तम ( अर्यमा ) न्यायकारी ( देवातः ) ये सब सभ्य विद्वान् मनुष्य जिसको ( सविन्धते ) अच्छे प्रकार प्रशंसित जानकर स्वीकार के लिए सुभ गुणों से प्रकाशित करें जो ( त्वा ) तुम और सब प्रजा को प्रसन्न रखें ( सः ) वह दूत ( प्रतर्पन् ) जो कि कारणरूप से अनावि है ( विश्वम् ) राज्य को सुरक्षित रखने की योग्य होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य सब आस्थाओं में प्रवीण राजधर्म को ठीक-ठीक जानने, पर-अपर इतिहासों के ज्ञेता, धर्मात्मा, निर्मयता से सब विषयों के वक्ता,



सुरवीर दूतों और उत्तम राजा सहित सभासदों के बिना राज्य को पाने, पालने, बढ़ाने और परोपकार में लगाने की समर्थ नहीं हो सकते इस से पूर्वोक्त प्रकार ही से राज्य की प्राप्ति आदि का विधान सब लोग सदा किया करें ॥ ४ ॥

फिर यह कैसा है इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है—

मन्द्रो होता गृहपतिरमे दूतो विश्वामसि ।

त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) शरीर और आत्मा के बल से सुकोषित ! जिस से आप ( अग्ने ) पदार्थों की प्राप्ति करने से सुख का हेतु ( होता ) सुखों के देने ( गृह-पति ) गृहकार्यों का पालन ( दूतः ) दुष्ट शत्रुओं को तप्त और क्षेदन करने वाले ( विश्वाम् ) प्रजापति के ( पतिः ) रक्षक ( अग्नि ) हैं इससे सब प्रजा ( ध्रुवा ) जिन ( विश्वा ) सब ( ध्रुवा ) निष्पन्न ( संगतानि ) सम्यक् युक्त समयानुकूल प्राप्त हुए ( व्रता ) धर्मयुक्त कर्मों को ( देवा ) धार्मिक विद्वान् लोग ( अकृण्वत ) करते हैं उनका सेवन ( त्वे ) आप के रक्षक होने से सदा कर सकती हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो प्रशस्त राजा, दूत और सभासद होते हैं वे ही राज्य का पालन कर सकते हैं इनसे विपरीत मनुष्य नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

अब अग्नि के वृष्टान्त से राजपुरुषों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वे इदमे सुमने यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।

स त्वसो अद्य सुमनां उतापरं यक्षि देवान्सुवीर्या ॥ ६ ॥

हे ( यविष्ठ्य ) पदार्थों के मेल करने में बलवान् ( अग्ने ) सुख देनेवाले राजन् ! जैसे होता है ( अग्ने ) अग्नि में ( विश्वम् ) सब ( हविः ) उत्तमता से सत्कार किया हुआ पदार्थ ( अहूयते ) जाला जाता है वैसे जिस ( सुमने ) उत्तम ऐश्वर्य-युक्त ( त्वे ) आप में न्याय करने का काम स्थापित करते हैं सो ( सुमनाः ) अच्छे मन-वाले ( त्वम् ) आप ( अद्य ) आज ( उता ) और ( अपरम् ) दूसरे दिन भी ( न ) हम लोगों को ( सुवीर्या ) उत्तम वीर्य वाले ( देवान् ) विद्वान् ( इम् ) ही ( यक्षि ) बताइये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमन्त्रोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग वृद्धि में पवित्र होम करने योग्य वृत्तादि पदार्थों को होमके सत्कार के लिए सुख उत्पन्न करते हैं वैसे ही राजपुरुष वृष्टों को बन्दीपर में जालके सज्जनों को धान्य सदा दिया करें ॥ ६ ॥

फिर उसी मन्त्र का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

त धेमित्या नमस्विन उप स्वराजमासते ।

होत्राभिरभि मनुषः समिन्वते तितित्वसो अति स्त्रियः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो ( नमस्विनः ) उत्तम सत्कार करनेवाले ( मनुषः ) मनुष्य ( होत्राभिः ) हवनयुक्त सत्य क्रियाओं से ( स्वराजम् ) अपने राजा ( जनिम् ) जानवान् सभाध्यक्ष को ( य ) ही ( उपासते ) उपासना और ( तम् ) उसी का ( समिन्वते ) प्रकाश करते हैं वे मनुष्य ( स्त्रियः ) हिंसा, नाश करने वाले शत्रुओं को ( अति तितित्वसो ) अच्छे प्रकार जीतकर पार हो सकते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य, सभाध्यक्ष की उपासना करने वाले भूय और सभासदों के बिना अपने राज्य की सिद्धि को प्राप्त होकर शत्रुओं से विजय को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

फिर पूर्वोक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

घ्नन्तो वृत्रमर्तरन्ध्रोदसी अप उरु भयाय चक्रिरे ।

मुवत्कएवे वृषा घम्प्याहुतः क्रन्ददधो गर्विष्ठिषु ॥ ८ ॥

पदार्थ—राजपुरुष ! जैसे बिजुली, सूर्य और उस के किरण ( वृत्रम् ) मेघ का क्षेदन करने और बर्षाते हुए आकाश और पृथिवी को जल से पूर्ण तथा इन कर्मों की प्राणियों के सत्कार में अधिक निवास के लिए करते हैं वैसे ही शत्रुओं को ( घ्नन्तः ) मारते हुए ( रोदसी ) प्रकाश और अन्धेरे में ( अपः ) कर्मों को करे और सब जीवों को ( अर्तरम् ) दुःखों के पार करे तथा ( गर्विष्ठिषु ) गाय आदि पशुओं के सत्कार में ( क्रन्दत् ) शब्द करते हुए ( अर्तवः ) छोड़े के समान ( अहूतः ) राज्याधिकार में नियत किया ( वृषा ) सुख की वृष्टि करने वाला ( उरुभयाय ) बहुत निमान के लिए ( कम्पे ) बुद्धिमान् ने ( घम्प्यौ ) बहुत ऐश्वर्य को धरता हुआ सुखी ( भुवत् ) होवे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे बिजुली, अग्नि भौतिक और सूर्य यही तीन प्रकार के अग्नि मेघ को छिन्न-भिन्न कर सब लोगों को जल से पूर्ण करते हैं उनका यह कर्म सब प्राणियों के अधिक सुख के लिए होता है, वैसे ही सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिए कि कष्टकर शत्रुओं को मारके प्रजा को निरन्तर नृत्त करें ॥ ८ ॥

अब अगले मन्त्र में सभापति के गुणों का उपदेश किया है—

सं सीदस्व महौं असि शोचस्व देववीतमः ।

वि धूममग्ने अरुष मियेध्य सुत्र प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( तेजस्विन् ) विद्याविनययुक्त ( मियेध्य ) प्राज्ञ ( अग्ने ) विद्वान्

सभापते ! जो आप ( अहम् ) बड़े-बड़े गुणों से युक्त ( असि ) हैं सो ( देववीतमः ) विद्वानों की व्याप्त होमहारे आप न्याय धर्म में स्थित होकर ( संसीदस्व ) सब दोषों का नाश कीजिए और ( शोचस्व ) प्रकाशित कीजिए । हे ( प्रशस्तः ) प्रशंसा करने योग्य राजन् ! आप ( अरुषम् ) धूम सवृष मल से रहित ( वशतम् ) देखने योग्य ( अरुषम् ) रूप को ( सुत्र ) उत्पन्न कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—प्रशंसित बुद्धिमान् राजपुरुषों को चाहिए कि अग्नि के समान तेजस्वी और बड़े-बड़े गुणों से युक्त हो और श्रेष्ठ गुणवाले पृथिवी आदि भूतों के तत्त्व को जानके प्रकाशमान होते हुए निर्मल देखने योग्य रूप को उत्पन्न करें ॥ ९ ॥

मनुष्य किस प्रकार के पुरुष को सभाध्यक्ष करें ? इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।

यं कयसो मेध्यातिथिर्धनस्पृत् यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे ( हव्यवाहन ) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं की प्राप्ति कराने वाले सभ्यजन ! ( यम् ) जिस विचारशील ( यजिष्ठम् ) अत्यन्त यत्न करने वाले ( त्वा ) आप को ( देवासः ) विद्वान् लोग ( मनवे ) विचारने योग्य राज्य की शिक्षा के लिए ( इह ) इस पृथिवी में ( दधुः ) धारण करने ( यम् ) जिस शिक्षा पाये हुए ( धनस्पृत् ) विद्या, सुवर्ण आदि वन से युक्त आपको ( मेध्यातिथिः ) पवित्र अतिथियों से युक्त सभापक ( कयसः ) विद्वान् पुरुष स्वीकार करता ( यम् ) जिस सुख की वृष्टि करने वाले ( त्वा ) आप को ( वृषा ) सुखों का फैलाने वाला धारण करता और ( यम् ) जिस स्तुति के योग्य आप को ( यमुपस्तुतः ) समीपस्थ सज्जनों की स्तुति करने वाला राजपुरुष धारण करता है उन आप को हम लोग सभापति के अधिकार में नियत करते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस वृष्टि में सब मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् और धन्य सब श्रेष्ठ, बहुर पुरुष मिलके जिस विचारशील ग्रहण योग्य वस्तुओं की प्राप्ति कराने वाले, धूम गुणों से वृष्टित विद्या सुवर्णादिजनयुक्त, समा के योग्य पुरुष को राज्य शासन के लिए नियुक्त करें वही पिता के सुख्य पालन करनेवाला जन राजा होवे ॥ १० ॥

फिर सभाध्यक्षादि लोग अग्नि आदि पदार्थों से कैसे उपकार लेवें

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यमग्नि मेध्यातिथिः कयस ईध ऋतादधि ।

तस्य प्रेवी दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्नि र्धयामसि ॥ ११ ॥

पदार्थ—( मेध्यातिथिः ) पवित्र सेवक शिष्यवर्गों से युक्त ( कयसः ) विद्या-सिद्ध कर्मकाण्ड में कुशल विद्वान् ( ऋतादधिः ) मेघमण्डल के ऊपर से सामर्थ्य होने के लिए ( यम् ) जिस ( अग्निम् ) दाहयुक्त सब पदार्थों के काटने वाले अग्नि को ( ईधः ) प्रदीप्त करता है ( तस्य ) उस अग्नि के ( ईधः ) वृत्तादि पदार्थों को मेघमण्डल में प्राप्त करने वाले किरण ( य ) अत्यन्त ( दीदियुः ) प्रज्वलित होते हैं और ( इमाः ) वे ( ऋचः ) वेद के मन्त्र जिस अग्नि के गुणों का प्रकाश करते हैं ( तम् ) उसी ( अग्निम् ) अग्नि को सभाध्यक्षादि राजपुरुष हम लोग शिल्पक्रिया सिद्धि के लिए ( र्धयामसि ) बढ़ाते हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिए कि होता आदि विद्वान् लोग वायु वृष्टि के शोचक हवन के लिए जिस अग्नि को प्रकाशित करते हैं जिस के किरण ऊपर को प्रकाशित होते और जिसके गुणों को वेदमन्त्र कहते हैं उसी अग्नि को राज्यसाधक क्रियासिद्धि के लिए बढ़ावें ॥ ११ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में उन्हीं राजपुरुषों के गुणों का उपदेश किया है—

रायस्पृधि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।

त्वं वाजस्य अत्यस्य राजसि स नो मृळ महौं असि ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे ( स्वधावः ) भोगने योग्य वस्तुआदि पदार्थों से युक्त ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्वी सभाध्यक्ष ! ( हि ) जिस कारण ( ते ) आपकी ( देवेष्वा ) विद्वानों के ( आप्यम् ) ग्रहण करने योग्य मित्रता ( अस्ति ) है इसलिए आप ( रायः ) विद्या, सुवर्ण और ऋचवर्ति राज्यादि वनों को ( स्पृधिः ) पूर्ण कीजिए जो आप ( महान् ) बड़े-बड़े गुणों से युक्त ( असि ) हैं और ( अत्यस्य ) सुनने के योग्य ( वाजस्य ) युद्ध बीच में प्रकाशित होते हैं ( सः ) सो ( स्वम् ) पुत्र के सुख प्रजा की रक्षा करने हारे आप ( न ) हम लोगों को ( मृळ ) सुखयुक्त कीजिए ॥ १२ ॥

भाषार्थ—वेदों का जानने वाले उत्तम विद्वानों में मित्रता रखते हुए सभा-ध्यक्षादि राजपुरुषों को उचित है कि अन्न, धन आदि पदार्थों के कोशों को निरन्तर बड़े-बड़े सुख देने वाले हों ॥ १२ ॥

फिर यह सभाध्यक्ष कैसा होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऊर्ध्व ऊ वृ ण ऊतये तिष्ठा देवो न संविता ।

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदक्षिर्भिर्वाधर्निर्विह्यामहे ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप ( देवः ) सब को प्रकाशित करनेहारे ( संविता ) सूर्यलोका के ( न ) समान ( न ) हम लोगों की रक्षा के लिए ( ऊर्ध्वः ) ऊँचे आसन पर ( सुतिष्ठ ) सुनीहित कीजिए ( वृ ) और ( ऊतये ) उत्पत्ति

की प्राप्ति हुए ( ब्रह्मण्य ) बुद्ध के ( ब्रह्मिण ) सेवन करने वाले हुए। इसलिये हम लोग ( अग्निमिः ) यज्ञ के साधनों को प्रसिद्ध करने तथा ( ब्रह्मिणः ) सब मनुष्यों में यज्ञ करने वाले विद्वानों के साथ ( ब्रह्मिण्यम् ) विविध प्रकार के शब्दों से आप की स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—सूर्य के समान प्रति तेजस्वी सभापति को चाहिए कि सभाम सेवन से दुष्ट शत्रुओं को हटाके सब प्राणियों की रक्षा के लिए प्रसिद्ध विद्वानों के साथ सभा में ऊँचे आसन पर बैठे ॥ १३ ॥

फिर वह सभापति कैसा होवे यह अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्ध्वो नः पाद्विंशो नि केतुना विश्वं समन्विषं दह ।

ऊर्ध्वो न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप ( केतुना ) बुद्धि के दान से ( नः ) हम लोगों को ( अन्तः ) दूसरे का पदार्थ हरणरूप पाप से ( निषादि ) निरन्तर रक्षा कर ( विश्वम् ) सब ( अन्विषम् ) अन्वेषण से दूसरे के पदार्थों को खाने वाले शत्रुमात्र को ( दह ) अच्छे प्रकार जलाइए और ( ऊर्ध्वः ) सब से उत्कृष्ट आप ( चरथाय ) ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिए ( नः ) हम लोगों को ( ऊर्ध्वान् ) बड़े-बड़े गुण, कर्म और स्वभाव वाले ( ऊर्ध्वान् ) कीजिए तथा ( नः ) हम को ( देवेषु ) धार्मिक विद्वानों में ( जीवसे ) जीवन प्राप्ति होने के लिए ( विदाः ) सेवा को ( विदाः ) प्राप्त कीजिए ॥ १४ ॥

भाषार्थ—अच्छे गुण, कर्म और स्वभाव वाले सभाध्यक्ष राजा को चाहिए कि राज्य की रक्षा, नीति और दण्ड के भय से सब मनुष्यों को पाप से हटा सब शत्रुओं को मार और विद्वानों की सब प्रकार सेवा करके, प्रजा में ज्ञान, सुख और जीवन बढ़ाने के लिए सब प्राणियों को सुमनुष्ययुक्त सदा किया करे ॥ १४ ॥

फिर उस सभाध्यक्ष राजा से प्रजा और सेवा के जन क्या-क्या प्रार्थना करें

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तराव्याः ।

पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठथ ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे ( बृहद्भानो ) बड़े-बड़े विद्यादि ऐश्वर्य के तेजवाने ( यविष्ठथ ) अत्यन्त तपसावस्था युक्त ( अग्ने ) सब से मुख्य सब की रक्षा करनेवाले मुख्य सभाध्यक्ष महाराज ! आप ( रीषे ) कपटी, भ्रमरी ( अराव्या ) बान, चर्म रहित कृपण ( रक्षसः ) महाहिंसक दुष्ट मनुष्य से ( नः ) हम को ( पाहि ) बचाइए ( रीषत ) सब को दुःख देने वाले सिंह आदि दुष्ट जीव और दुष्टाचारी मनुष्य से हम को पुनः रक्षिए ( उत ) और ( वा ) भी ( जिघांसतो ) मारने की इच्छा करते हुए शत्रु से हमारी रक्षा कीजिए ॥ १५ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि सब प्रकार रक्षा के लिए सर्वरक्षक, भ्रमोन्मत्ति की इच्छा करने वाले सभाध्यक्ष की सर्वदा प्रार्थना करें और अपने आप भी दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य आदि प्राणियों से, और सब पापों से मन, बासी और शरीर से दूर रहे क्योंकि रहने के बिना कोई मनुष्य सर्वदा सुखी नहीं रह सकता ॥ १५ ॥

फिर अगले मन्त्र में उसी सभाध्यक्ष का उपदेश किया है—

धनेव विश्वमिव जह्वरावणस्तपुर्जम्भ यो अस्मभ्यम् ।

यो मर्त्यः शिशीति अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

पदार्थ—( तपुर्जम्भ ) शत्रुओं को सताने और नाश करने के शस्त्र बाँधने वाले सेनापते ! ( विश्वम् ) सर्वथा सेनादि बलों से युक्त होके आप ( जह्वरावण ) दान रहित शत्रुओं को ( धनेव ) धन के समान ( विश्वम् ) विशेष करके जीत और ( यः ) जो ( मर्त्यः ) मनुष्य ( अत्यक्तुभिः ) रात्रियों से ( अत्यक्तुभिः ) हमारा शीही ( अतिशयशीते ) प्रति हिंसा करता हो ( सः ) वह ( रिपुः ) बैरी ( नः ) हम लोगों को पीड़ा देने में ( मा ईशत ) मत समर्थ होवे ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा प्रयुक्त है। सेनाध्यक्षों के लोग जैसे लोहे के जन से लोहे और पाषाणों के लोहे हैं वैसे ही धर्ममूर्ति दुष्ट शत्रुओं के शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर दिन-रात धर्मात्मा प्रजाजनों के पालन में तत्पर हो जिस से शत्रु-जन इन प्रजाओं को दुःख देने की गर्भ न हो सकें ॥ १६ ॥

फिर इन सभाध्यक्षों के राजपुरुषों के गुण अग्नि के दृष्टान्त से

अगले मन्त्र में कहे हैं—

अग्निर्विष्णे सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौमगम् ।

अग्निः प्रार्थन्मिषोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् ( अग्निः ) भौतिक अग्नि के समान ( साता ) युद्ध में ( उपस्तुतम् ) उपगत स्तुति के योग्य ( सुवीर्यम् ) अच्छे प्रकार शरीर और आत्मा के बल, पराक्रम ( अग्निः ) विद्युत् के सुवृक्ष ( कण्वाय ) उसी बुद्धिमान् के लिए ( सौमगम् ) अच्छे ऐश्वर्य की ( अग्निः ) किसी से अन्वित किया हुआ वेता है ( अग्निः ) पापक के तुल्य ( विष्णुः ) मित्रों को ( कण्वाय ) पालन करता ( उत ) और ( अग्निः ) आठारामिन् ( उपस्तुतम् ) शुभ गुणों से स्तुति करने योग्य ( मेध्यातिथिम् ) कारी-पर विद्वान् की सेवा बड़ी पुरुष राजा होने की योग्य होता है ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तुतिप्रमाणप्रकार है। जैसे यह भौतिक अग्नि विद्वानों द्वारा ग्रहण किया हुआ उन के लिए बल, पराक्रम और सौभाग्य की देकर भिक्षुविद्या में प्रवीण और उनके मित्रों की सेवा रक्षा करता है वैसे ही प्रजा और सेवा के शत्रुपुरुषों से प्रार्थना किया हुआ यह सभाध्यक्ष राजा उन के लिए बल, पराक्रम, उत्साह और ऐश्वर्य का धामध्य देकर बुद्धिमान् में प्रवीण और उनके मित्रों को सब प्रकार पाले ॥ १७ ॥

सब मनुष्य सभाध्यक्ष के मिलके दुष्टों को कैसे मारें इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

अग्निना तुर्वशं यदु परावत उग्रार्देवं हवामहे ।

अग्निनेयववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीति दस्यवे सहः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हम लोग जिस ( अग्निना ) अग्नि के समान तेजस्वी सभाध्यक्ष राजा के साथ मिलके ( उग्रार्देवं ) तेज स्वभाव वाले को जीतने की इच्छा करने तथा ( तुर्वशम् ) शीघ्र ही दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करनेवाले ( यदु ) दूसरे का मन मारने के लिए बल करते हुए शत्रु पुरुष को ( परावत ) दूसरे से ( हवामहे ) युद्ध के लिए बुलायें यह ( दस्यवे ) अपने विशेष बल से दूसरे का पदार्थ हरनेवाले शत्रु का ( सह ) तिरस्कार करने योग्य बल बाजा ( अग्निः ) प्रमणी सभाध्यक्ष राजा ( नववास्त्वं ) एकान्त में नवीन घर बनाने ( बृहद्रथम् ) बड़े-बड़े रमण के साधन रखों वाले ( तुर्वीति ) हिसक दुष्टपुरुषों को यहाँ ( नयत् ) कैद में रखे ॥ १८ ॥

भाषार्थ—सब धार्मिक पुरुषों को चाहिए कि तेजस्वी सभाध्यक्ष राजा के साथ मिलके वेग से अन्य पदार्थों को हरने, लोटे स्वभावयुक्त और अपने विजय की इच्छा करनेवाले शत्रुओं को बुला उनके पर्यतादि एकान्त स्थानों में बने हुए घरों को गिराकर और उनको बाँध के कैद में रखे ॥ १८ ॥

फिर उन राजपुरुषों का सहायक जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शस्वते ।

दीदेय कस्य कृतजात उज्जितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) परमात्मन् ! ( यम् ) जिस ( त्वाम् ) आप को ( शस्वते ) धनादि स्वयम् ( कृतजाय ) जीवों की रक्षा के लिए ( कृष्टयः ) सब विद्वान् मनुष्य ( नमस्यन्ति ) पूजते और हे विद्वान् लोगो ! जिसको आप ( दीदेय ) प्रकाशित करते हैं उस ( ज्योतिः ) ज्ञान के प्रकाश करने वाले परब्रह्म को ( उज्जितः ) सत्याचरण से प्रसिद्ध ( उज्जितः ) आनन्दित ( यम् ) विद्वान्मनुष्य में ( कृष्टयः ) बुद्धिमान् मनुष्य में ( विद्वे ) स्थापित करता है उसकी सब मनुष्य उपासना करें ॥ १९ ॥

भाषार्थ—सब के पूजने योग्य परमात्मा के कृपाकटाक्ष से प्रजा की रक्षा के लिए राज्य के अधिकारी सब मनुष्यों को योग्य है कि सत्य व्यवहार की प्रसिद्धि से बर्मात्माओं को आनन्द और दुष्टों को ताड़ना दें ॥ १९ ॥

अब उस सभापति के प्रति क्या-क्या उपदेश करें इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

स्वेषासी अग्नेरभवन्तो अर्चयौ भीमासो न प्रतीतये ।

रक्षस्विनः सद्मिधातुमावतो विश्वं समन्विषं दह ॥ २० ॥

पदार्थ—हे तेजस्वी सभास्वामिन् ! आप ( अग्नेः ) सूर्य, विद्युत् और प्रसिद्ध रूप अग्नि की ( स्वेषासः ) प्रकाशस्वरूप ( भीमासः ) भयकारक ( अर्चयः ) आत्मा के ( नः ) समान जो ( अवन्तः ) निन्दित रोग करनेवाले ( रक्षस्विनः ) राजस प्रयात् निन्दित पुरुष हैं उन और ( अग्निम् ) बल से दूसरे के पदार्थों को हरनेवाले शत्रु को ( दह ) ही ( दह ) अच्छे प्रकार अस्म कीजिए और ( प्रतीतये ) विज्ञान वा उत्तम सुख की प्रतीति के लिए ( विश्वम् ) सब ( सवम् ) ससार तथा ( शत्रुमावतः ) मेरे समान प्राप्त होने वालों की रक्षा कीजिए ॥ २० ॥

भाषार्थ—सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों और प्रजा के मनुष्यों को चाहिए कि जिस प्रकार अग्नि आदि पदार्थ बल आदि को अस्म कर देते हैं वैसे दुःख देने वाले शत्रुजनों के विनाश करें। इस प्रकार प्रयत्नों द्वारा सदा प्रजारक्षण करते रहें ॥ २० ॥

इस युक्त में सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर तथा दूत के दृष्टान्त से भौतिक अग्नि के गुणों का वर्णन, दूत के गुणों का उपदेश, अग्नि के दृष्टान्त से राजपुरुषों के गुणों का वर्णन, सभापति का कृत्य, सभापति होने के अधिकारी का कथन, अग्नि आदि पदार्थों से उपयोग लेने की रीति, मनुष्यों की सभापति से प्रार्थना, सब मनुष्यों की सभाध्यक्ष के साथ मिलके दुष्टों का मारना और राजपुरुषों के सहायक जगदीश्वर के उपदेश से इस युक्त के अर्थ की पूर्ण युक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए।

वह ज्योतिर्मा युक्त और प्यारहवां का समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

अथार्षे पञ्चवर्षावस्य सप्तविंशत्यस्य सप्तस्य धीरः कथं ब्रुविः । सप्तो हेवता ।  
१, २, ४, ६-८, १२ गायत्री, ३, ६, ११, १४ निषुव-  
गायत्री, ५ विराट् गायत्री, १०, १५ विधीलिकान्वया निषुव-  
गायत्री, १९ पावननिषुवगायत्री च ब्रुवः । ब्रुवः स्वरः ॥

अथ सेतीसर्वे सुक्त का आरम्भ है । इस सुक्त के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को वायु के  
गुणों से क्या-क्या उपकार लेना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

**क्रीळ वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथे शुभम् । कण्वा अभिप्र गायत ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( कण्वा ) मेधावी विद्वान्मनुष्यों ! तुम जो ( वः ) आप लोगों  
के ( अमर्वाणम् ) घोड़ों के योग से रहित ( रथे ) विमानावियानों में ( क्रीळम् )  
क्रीड़ा का हेतु किया में ( शुभम् ) शोभनीय ( मारुतम् ) पवनो का समूह रूप ( शर्धः )  
बल है उसको ( अभि प्रगायत ) अच्छे प्रकार सुनो वा उपदेश करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि जो पवन प्राणियों के चेष्टा, बल,  
वेग, यान और मगल आदि व्यवहारों को सिद्ध करते हैं, इससे इनके गुणों की परीक्षा  
करके इन पवनो से यथायोग्य उपकार ग्रहण करें ॥ १ ॥

फिर वे विद्वान् कैसे होने चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**ये पृथ्वीमिर्भृष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः ।**

**अजायन्त स्वमानवः ॥ २ ॥**

पदार्थ—( ये ) जो ( पृथ्वीभिः ) पदार्थों को सींचने ( भृष्टिभिः ) व्यव-  
हारों को प्राप्त और ( अञ्जिभिः ) पदार्थों को प्रकट करानेवाली ( वाशीभिः )  
वाशियों के ( साकम् ) साथ क्रियाओं के करने की चतुर्गति में प्रयत्न करते हैं वे  
( स्वमानवः ) अपने ऐश्वर्य के प्रकाश से प्रकाशित ( अजायन्त ) होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यों ! तुम लोगों को उचित है कि ईश्वर की रची  
हुई इस कार्यसृष्टि में जैसे अपने-अपने स्वभाव के प्रकाश करनेवाले वायु के मकाश  
में जन की वृष्टि, चेष्टा का करना, अग्नि आदि की प्रसिद्धि और वाणी के व्यवहार  
अर्थात् कहना, सुनना, स्पर्श करना आदि मिट्ट होने हैं वैसे ही विद्या और धर्मादि  
शुभ गुणों का प्रचार करो ॥ २ ॥

फिर वे विद्वान् लोग इन पवनो से क्या-क्या उपकार लेवें इस विषय का  
उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामञ्चित्रमृक्षते ॥ ३ ॥**

पदार्थ—मैं ( यत् ) जिस कारण ( एषाम् ) इन पवनो की ( कशाः ) रज्जु  
के समान चेष्टा के साधन नियमों को प्राप्त करानेवाली क्रिया ( हस्तेषु ) हस्त आदि  
प्रज्ञो में हैं इससे सब चेष्टा और जिससे प्राणी व्यवहार सम्बन्धी वचन का ( वदान् )  
बोलते हैं उसको ( इहेव ) जैसे इस स्थान में स्थित होकर बसे करता और ( शृण्वे )  
श्रवण करता हैं और जिससे सब प्राणी और अप्राणी ( यामम् ) सुख हेतु व्यवहारों  
के प्राप्त करनेवाले मार्ग में ( चित्रम् ) आश्चर्यपूर्ण कर्म को ( मृक्षते ) निरन्तर  
सिद्ध करते हैं उसके करने को समर्थ उसी से मैं भी होता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । पदार्थ विद्या की इच्छा  
करनेवाले विद्वानों को चाहिए कि मनुष्य आदि प्राणी जितने कर्म करते हैं उन सबों  
के हेतु पवन है । जो वायु न हो तो कोई मनुष्य कुछ भी कर्म करने में समर्थ न हो सके  
और दूरस्थान मनुष्य से उच्चारण किये हुए शब्द निकट के उच्चारण के समान वायु  
की चेष्टा के बिना कोई भी कह वा सुन न सके और मनुष्य मार्ग में चलने आदि  
जितने बल वा पराक्रमयुक्त कर्म करते हैं वे सब वायु ही के योग से होते हैं । इस से  
यह निश्चित है कि वायु के बिना कोई नेत्र के चलाने का भी समर्थ नहीं हो सकता । इस-  
लिए इसके शुभ गुणों की लोचन सर्वदा किया करें ॥ ३ ॥

फिर वे विद्वान् लोग वायु से किस-किस प्रयोजन के लिए क्या-क्या करें  
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**प्र वः शर्धोय घृष्ट्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणं । देवसं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यों ! जो ये पवन ( वः ) तुम लोगों के ( शर्धाय )  
बल प्राप्त करनेवाले ( घृष्ट्वये ) जिसके लिए परस्पर लड़ते-झड़ते हैं उस ( शुष्मिणो )  
अत्यन्त प्रशंसित बलयुक्त व्यवहार वाले ( त्वेषद्युम्नाय ) प्रकाशमान यश के लिए हैं  
तुम लोग उनके नियोग से ( देवसम् ) ईश्वर से दिये वा विद्वानों से पढ़ाय हुए  
( ब्रह्म ) वेद को ( प्रगायत ) अच्छे प्रकार पढ़जादि भव्यों में स्तुतिपूर्वक गाय  
करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर के कहे हुए वेदों को पढ़, वायु  
के गुणों को जान और यश वा बल के कर्मों का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के लिए  
सुख देवें ॥ ४ ॥

फिर इन के योग से क्या-क्या होता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

**प्र शसा गोष्वध्वं क्रीळ यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वादृधे ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान्मनुष्यों ! तुम ( यत् ) जो ( गोषु ) पृथिवी आदि सूत  
वा वाणी आदि इन्द्रिय तथा गौ आदि पशुओं में ( क्रीळम् ) क्रीड़ा के निमित्त  
( जम्भम् ) नहीं हनन करने योग्य वा इन्द्रियों के लिए हितकारी ( मारुतम् )

पवनो का विकाररूप ( रसस्य ) भोजन किये हुए अन्नादि पदार्थों से उत्पन्न ( जम्भे )  
जिससे गावों का संचलन हो मुख में प्राप्त होके शरीर में स्थित ( शर्धे ) बल ( वादृधे )  
वृद्धि को प्राप्त होता है उसको मेरे लिए नित्य ( प्रशंस ) शिक्षा करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो वायु सम्बन्धी शरीर आदि में क्रीड़ा  
और बल का बढ़ाना है उसको नित्य बढ़ावे और जितना रस आदि आन है वह सब  
वायु के मयोग से होता है, इससे परस्पर हम प्रकार शिक्षा करनी चाहिए कि जिससे  
सब लोगों को वायु के गुणों की विद्या विदित हो जावे ॥ ५ ॥

फिर इन पवनो में मनुष्यों को क्या-क्या करना वा जानना चाहिए

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च गमश्च धृतयः । यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यों ! ( धूनुथ ) शत्रुओं को कैंपाते वाले ( नरः )  
नीतियुक्त ( यत् ) ये तुम लोग ( दिवश्च ) प्रकाशवाले सूर्य आदि ( च ) वा उनके  
सम्बन्धी और तथा ( गमः ) पृथिवी ( च ) और उनके सम्बन्धी प्रकाश रहित लोकों  
को ( सीम् ) सब धार में अर्थात् तृण, वृक्ष आदि अवयवों के सहित ग्रहण करके  
कैंपाते हुए वायुओं के ( न ) समान शत्रुओं का ( गमश्च ) नाश कर दुष्टों को जब  
( धूनुथ ) अच्छे प्रकार कैंपाओ तब ( च ) तुम लोगों के बीच में ( कः ) कौन  
( वर्षिष्ठ ) यथावत् धेष्ट विद्वान् प्रसिद्ध न हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विद्वान् राजपुरुषों को चाहिए कि  
जैसे कोई बलवान् मनुष्य निर्बल मनुष्य के केशों का ग्रहण करके कैंपाता है और जैसे  
वायु सब लोको का ग्रहण तथा चलायमान करके अपनी-अपनी परिधि में प्राप्त करते  
हैं वैसे ही सब शत्रुओं को कैंपा और उन के स्थानों से चलायमान करके प्रजा की रक्षा  
करें ॥ ६ ॥

फिर वे राजा और प्रजाजन कैसे होने चाहिए इस विषय का उपदेश अगले

मन्त्र में किया है—

**नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे प्रजासिन्हा के मनुष्यों ! जिस सभापति राजा के भय से, वायु के  
बल से ( गिरिः ) जल को रोकने, गर्जना करने वाले ( पर्वत ) मेघ, शत्रु लोका  
( जिहीत ) भागते हैं वह ( मानुषः ) सभाध्यक्ष राजा ( च ) तुम लोगों के  
( यामाय ) यथार्थ व्यवहार चलाने और ( मन्यवे ) क्रोधरूप ( उग्राय ) नीग्र दण्ड  
देने के लिए राज्यव्यवस्था को ( दध्रे ) धारण कर सकता है ऐसा तुम लोग  
जानो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे प्रजा सेनाध्यक्ष मनुष्यों ! तुम  
लोगों के सब व्यवहार वायु के समान राजव्यवस्था ही से ठीक-ठीक चल सकते हैं  
और जब तुम लोग अपने नियमोपनियमों पर नहीं चलते हो तब तुमको सभाध्यक्ष  
राजा वायु के समान शीघ्र दण्ड देता है और जिसके भय से वायु से मेघों के समान  
शत्रुजन पलायमान होते हैं उसको तुम लोग पिता के समान जानो ॥ ७ ॥

फिर उन पवनो के योग से क्या होता है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

**येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वी इव विस्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् लोगों ! ( येषाम् ) जिन पवनो के ( अज्मेषु ) पहँचाने,  
फँकने आदि गुणों में ( भिया ) भय से ( जुजुर्वीनिव ) जैसे बुद्धावस्था को प्राप्त  
हुआ ( विस्पतिः ) प्रजा की पालना करने वाला राजा शत्रुओं से कैंपाता है वैसे  
( पृथिवी ) पृथिवी आदि लोक ( यामेषु ) अपने-अपने चलने रूप परिधि मार्गों में  
( रेजते ) चलायमान होते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कोई राजा जीर्ण अवस्था को  
प्राप्त हुआ रोग वा शत्रुओं के भय से कैंपाता है वैसे पवनो में सब प्रकार धारण किये  
हुए पृथिवी आदि लोक घूमते हैं । और सूत्र के समान बंधे हुए वायु के बिना किसी  
लोक की स्थिति वा भ्रमण सम्भव नहीं हो सकते ॥ ८ ॥

फिर वे वायु कैसे गुण वाले हैं इन विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**स्थिरं हि जानंमेषां वयो मातुर्निरंतवे । यत्सीमन्तं द्विता शयः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( येषाम् ) इन पवनो का ( यत् ) जो ( स्थिरम् )  
निश्चल ( जानम् ) जन्मस्थान आकाश ( शयः ) बल और जिसमें ( द्विता ) शब्द  
और स्पष्ट गुण का योग है जिसके आश्रय से ( वयः ) पक्षी ( मातुः ) अन्तरिक्ष  
के बीच में ( सीम् ) सब प्रकार ( निरंतवे ) निरन्तर जान-माने को समर्थ होते हैं  
उन वायुओं को आप लोग ( जानुः ) पश्चात् विशेषता से जानिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—ये कार्यरूप पवन आकाश में उत्पन्न होकर दधर-उधर जाते-आते  
हैं, जहाँ-जहाँ अवकाश है वहाँ जिनका सब प्रकार गमन सम्भव होता है और जिनकी  
अनुकूलता से सब प्राणी जीवन को प्राप्त होकर बल वाले होते हैं उनको युक्ति के साथ  
तुम लोग सेवन किया करो ॥

फिर वे कैसे काम करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वतत । वाश्रा अभिजु यातवे ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे राजप्रजा के मनुष्यों ! आप लोगों ( त्ये ) के अन्तरिक्ष में रहने  
वा ( सूनवः ) प्राणियों के गर्भ छुड़ाने वाले पवन ( अभिजुः ) जिनकी सम्मुख जवा  
ही ( वाश्रा ) उन शब्द करती वा बछड़ों को सब प्रकार प्राप्त होती हुई गौश्रौं के  
समान ( गिरः ) वाणी वा ( काष्ठाः ) जलों की ( अज्मेषु ) जाने के मार्गों में ( उ



धीरे ( कथम् ) प्राप्त होने को विस्तार करते दुसरी के समान सुख का ( यत् अस्मत् ) अन्धे प्रकार विस्तार कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में सुप्तोपमालङ्कार है। राजा और प्रजा के मनुष्यों की जानना चाहिए कि जैसे वे वायु ही वाणी और जलों को बलाकर विस्तृत करके अन्धे प्रकार शब्दों को व्यवहार करते हुए गमनायमन, जन्म-बुद्धि और नाम के हेतु हैं वैसे ही शुभाशुभ कर्मों का मनुष्यों सुख-दुःख का निमित्त है ॥

यह तेरहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

फिर वे राजपुरुष क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्यं चिद् वा दीर्घं पृथुं मिहो नपात्तमर्धमम् ।

अथ विवर्तयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम लोग जैसे ( मिहः ) वर्षाजल से सींचने वाले पवन ( यामभिः ) अपने जाने के मार्गों से ( य ) ही ( स्यम् ) उस ( नपात्तम् ) जल को न गिराने और ( अर्धमम् ) गीला न करनेवाले ( पृथुम् ) बड़े ( चिद् ) भी ( दीर्घम् ) स्थूल मेघ को ( प्रवर्तयन्ति ) भूमि पर गिरा देते हैं वैसे मनुष्यों को गिराकर प्रजा को आनन्दित करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे पवन ही मेघ के निमित्त बहुत जल को ऊपर पहुँचाकर परस्पर घिसने से बिजुली को उत्पन्न कर उस न गिरने योग्य तथा न गीला करने और बड़े आकार वाले मेघ को भूमि में गिराते हैं वैसे ही धर्म-विरोधी सब व्यवहारों को छोड़ें और सुझावें ॥

फिर वे राजप्रजाजन वायु के समान कर्म करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मस्तो यद् वो बलं जनों अचुच्यवीतन । गिरिरं चुच्यवीतन ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे ( मस्तः ) पवनो के समान सेनाध्यक्षादि राजपुरुषो ! तुम लोग ( यत् ) जिन कारण ( ब ) तुम्हारा ( ह ) प्रसिद्ध ( बलम् ) सेना आदि दृढ़ बल है इसलिए जैसे वायु ( गिरिरं ) मेघों को ( अचुच्यवीतन ) इधर-उधर आकाश, पृथिवी में घुमाया करते हैं वैसे ( जनाम् ) प्रजा के मनुष्यों को ( अचुच्यवीतन ) अपने-अपने उत्तम व्यवहारों में प्रेरित करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है। सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे वायु मेघों को इधर-उधर घुमाकर बरसते हैं वैसे ही प्रजा के सब मनुष्यों को न्याय की व्यवस्था से अपने-अपने कर्मों में, भालरथ छोड़ा के सदा नियुक्त करते रहें ॥ १२ ॥

वे वायुओं से क्या-क्या उपकार लेवें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यद् यान्ति मस्तः सं ह्रवतेऽध्वजा । शृणोति कश्चिदेवाम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—जैसे ( यत् ) वे ( मस्तः ) पवन ( यान्ति ) जाते-घाते हैं वैसे ( अध्वजम् ) विद्यामार्ग में कारीगर विद्वान् लोग ( ह ) स्पष्ट ( समाबुधते ) मिलके अन्धे प्रकार परस्पर उपदेश करते हैं और ( एवाम् ) इन वायुओं की विद्या को ( कश्चित् ) कोई विद्वान् पुरुष ( शृणोति ) सुनता और जानता है, सब साधारण पुरुष नहीं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस वायुविद्या को कोई विद्वान् ही ठीक-ठीक जान सकता है जड़-बुद्धि नहीं जान सकता ॥ १३ ॥

मनुष्यों को वायुओं से क्या-क्या काय्य लेना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र यात शीर्षमाशुभिः सन्ति करवेषु वो दुवः ।

तजो पु मादयाध्वै ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम लोग ( आशुभिः ) शीघ्र ही गमनायमन कराने वाले यानों से ( शीर्ष ) शीघ्र वायु के समान ( प्र यात ) अन्धे प्रकार अभीष्ट स्थान को प्राप्त हुआ करो जिन ( करवेषु ) बुद्धिमान् विद्वानों में ( व ) तुम लोगों की ( दुवः ) सत् क्रिया है ( तजो ) उन विद्वानों में तुम लोग ( मादयाध्वै ) सुन्दर रीति से प्रसन्न रहो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—राजा और प्रजा के विद्वानों को चाहिए कि वायु के समान अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाने-आने के लिए विमानादि यान बनाके अपने कार्यों को निरन्तर सिद्ध करें और धर्मार्थों की सेवा तथा पुष्टों का ताड़ने में सर्वत्र आनन्दित रहें ॥ १४ ॥

फिर वे वायु किस-किस प्रयोजन के लिए हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्ति हि म्मा मदाय वः स्मसि म्मा नयमेवाम् ।

विरवं चिदाशुजीवसे ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यों ! ( एवाम् ) जानी है विद्या जिन की उन धर्मों के सकाश से ( हि ) जिस कारण ( वः ) निश्चय करके ( वः ) तुम लोगों के ( मदाय ) आनन्दपूर्वक ( अस्ति ) जीने के लिए ( विरवं ) सब ( चिदाशुजीवसे ) व्यवस्था

है इसी प्रकार ( वयम् ) आप से उपदेश को प्राप्त हुए हम लोग ( चित् ) भी ( स्मसि, वः ) निरन्तर होंवें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जैसे योगाभ्यास करके प्राणविद्या और वायु से विकारों को ठीक-ठीक जानने वाले पथ्यकारी विद्वान् लोग आनन्दपूर्वक सब प्रायु भोगते हैं वैसे धर्म मनुष्यों को भी चाहिए कि उन विद्वानों से उस वायुविद्या का ज्ञानके सम्पूर्ण प्रायु भोगें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में धर्म के प्रकाश करने वाले सब चेष्टा, बल और वायु के निमित्त वायु और उस वायुविद्या को जानने वाले राजा, प्रजा, धर्म और विद्वानों के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥ १५ ॥

यह चौदहवाँ वर्ण और सत्तीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

॥

अथः स पञ्चवक्षस्योऽष्टाष्टिकाः सूक्तस्य धीर कथं ब्रुविः । मस्तो देवताः ।

१, ८, ११, १३, १५ गायत्री, २, ६, ७, ९, १०

विष्णु गायत्री, ३, ४ पार्वानकृत, ५, १२

मिमीलिकामध्या मिश्रतु, १४ पञ्चमध्या

विराड्गायत्री छन्द । षड्जः स्वर ॥

अब अङ्गीसर्व सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मन्त्र में वायु के समान मनुष्यों को होना चाहिए इस विषय का वर्णन किया है—

कद्धं नूनं कंधमियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे दृङ्गवर्हिषः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( कंधमिया ) सत्य कथाओं से प्रीति करानेवाले ( दृङ्गवर्हिष ) ऋत्विज् विद्वान् लोगो ! ( न ) जैसे ( पिता ) उत्पन्न करनेवाला जनक ( पुत्रम् ) पुत्र को ( हस्तयोः ) हाथों से धारण करता है, और जैसे पवन, लोको को धारण कर रहे है वैसे ( कद्धं ) कथ प्रसिद्धि से ( नूनम् ) निश्चय करके यज्ञ कर्म को ( दधिध्वे ) धारण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकसुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पिता हाथों से अपने पुत्र को ग्रहण कर शिक्षापूर्वक पालना तथा अन्धे कार्यों में नियुक्त करके सुखी होता और जैसे पवन सब लोकों को धारण करते हैं वैसे जो मनुष्य विद्या से यज्ञ का ग्रहण कर युक्ति से अन्धे प्रकार सेवन करते हैं वे ही सुखी होते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार प्रयत्न करने चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

कं नूनं कद्धो अर्थं गन्तां दिवो न पृथिव्याः ।

कं वो गायो न रण्यन्ति ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम ( न ) जैसे ( कत् ) कब ( नूनम् ) निश्चय से ( पृथिव्या ) भूमि के वाष्प और ( दिवः ) प्रकाश कर्मवाले सूर्य की ( गाय ) किरणों ( अर्थम् ) पदार्थों को ( गन्तां ) प्राप्त होती हैं वैसे ( कं ) कहीं ( वः ) तुम्हारे अर्थ को ( गन्तां ) प्राप्त होते हो जैसे ( गाय ) गौ आदि पशु अपने बछड़ों के प्रति ( रण्यन्ति ) शब्द करते हैं वैसे तुम्हारी गाय आदि शब्द करते हुएों के समान वायु कहीं शब्द करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यों ! जैसे सूर्य की किरणें पृथिवी में स्थित हुए पदार्थों को प्रकाशित करती हैं वैसे तुम भी विद्वानों के समीप जाकर, कहीं पवनों का नियोग करना चाहिए ऐसा पूछकर अर्थों को प्रकाशित करो और जैसे गौ अपने बछड़ों के प्रति शब्द करके दौड़ती हैं वैसे तुम भी विद्वानों की सङ्गति को प्राप्त हो, तथा हम लोगों की इन्द्रियाँ वायु के समान कहीं स्थित होकर अर्थों को प्राप्त होती हैं ऐसा पूछकर निश्चय करो ॥ २ ॥

कं वः सुजा नय्यासि मस्तः कं सुविता । क्वो विभानि सौभगा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( मस्तः ) वायु के समान शीघ्र गमन करनेवाले मनुष्यों ! तुम लोग विद्वानों के समीप प्राप्त होकर ( वः ) आप लोगों के ( विभानि ) सब ( नय्यासि ) नवीन ( सुजा ) सुख ( क्व ) कहीं, सब ( सुविता ) प्रेरणा कराने वाले गुण ( वः ) कहीं और सब नवीन ( सौभगा ) सौभाग्य प्राप्त कराने वाले कर्म ( क्वो ) कहीं हैं ऐसा पूछो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे शुभ कर्मों से वायु के समान शीघ्र चलनेवाले मनुष्यों ! तुम लोगों को चाहिए कि विद्वानों से पूछ कर—जिस प्रकार नवीन क्रिया की सिद्धि के निमित्त कर्म प्राप्त होंवें वैसे अन्धे प्रकार निरन्तर यत्न किया करो ॥ ३ ॥

वे राजपुरुष जैसे होने चाहियें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यथयं पृथिव्यातरो मर्त्तसिः स्यातन । स्तोता वी अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( पृथिव्यातरो ) जिन वायुओं का माता आकाश है उनके सब ( मर्त्तसिः ) मरणधर्म युक्त राजा और प्रजा के पुरुषों ! आप पुरुषार्थयुक्त ( यत् ) जो अपने-अपने कर्मों में ( स्वात्म ) हों तो ( व ) तुम्हारी ( स्तोता ) रक्षा करने वाला सभाध्यक्ष राजा ( अमृतः ) अमृत सुखयुक्त ( स्यात् ) होंवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—राजा और प्रजा के पुरुषों को उचित है कि भालरथ छोड़ वायु के समान अपने-अपने कर्मों में नियुक्त होंवें, जिससे सब का रक्षक सभाध्यक्ष राजा मनुष्यों से भारा नहीं जा सके ॥ ४ ॥

अगले मन्त्रों में किया है—

पराधीन - हे राजा धीर प्रजा के जनो ! आप लोग ( न ) जैसे ( भुग )  
 हिरन ( यत्ने ) खाने योग्य धाम को खाने के निमित्त प्रवृत्त होता है वैसे ( ब )  
 तुम्हारा ( जरिता ) विद्याभोग का दाता ( प्रजोष्य ) असेवनीय प्रथार्थ पृथक् ( मा भूत् )  
 न होवे तथा ( यमस्य ) निग्रह करने वाले वायु के ( पथा ) मार्ग से ( मोप गात् )  
 कभी अलप्य होकर मृत्यु को प्राप्त न हो, वैसा काम किया करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे हिम युक्ति से निरन्तर घास खाकर सुखी हात है ऐसे प्राणवायु की विलास को जानने वाला मनुष्य यन्त्रिके माध्यम द्वारा विहार कर यम के मार्ग का अर्थात् मृत्यु को प्राप्त नहीं होना और सम्पूर्ण अवस्था को भोगके सुख में शरीर को छोड़ता है ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे अध्यायक लोगो ! आप जंग ( पराशरा ) उत्तम, मध्यम और निकृष्ट ( बुद्धि ) दुख से हटने योग्य ( निष्कृति ) वायु के गेग करने वा दुख देनेवाली गति ( तृष्णया ) व्यास वा लाभ गति के ( सह ) साथ ( न ) हम लोगो को ( मोषधीष्ट ) कमी न प्राप्त हो और ( मावधीत् ) बीच में न मारे किन्तु जो इन पवनो की मुख्य देने वाली गति है वह हम लोगो को नित्य प्राप्त होवे जैसा प्रयत्न किया कीजिए ॥ ६ ॥

आवाज—पवनो की दो प्रकार की गति होती है एक मुख्यकारक और दूसरी दुष्क करनेवाली उनमें से जो उत्सम नियमों से मेघन की हुई रोगों का हनन करती हुई शरीर आदि के मुख का हेतु है वह प्रथम और जो बड़े नियम और प्रमाद से उत्पन्न हुई क्लेश दुष्क और रोष की वेलें वाली वह दूसरी, इन्हो के मध्य में से मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर के अनुग्रह और आपन पुत्रधार्यों में पृथ्वी गति को उत्पन्न करके दूसरी गति का नाश करके मुख की उन्नति करें और जो पिपासा आदि धर्म हैं वह वायु के निमित्त से तथा जो नाभ का वेग है वह अज्ञान से ही उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

फिर वे कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियामः ।

मिहं कुण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥

पदार्थ - हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे ( धन्यम् ) अन्नरिक्त में ( तृष्णा ) बाहर-भीतर घिसने से उत्पन्न हुई बिजुली से प्रदीप्त ( अमवन्त ) जिन का रोगी और गमनागमन रूप वालों के साथ सम्बन्ध है ( हादियास ) प्राणियों के जीने के निमित्त वायु ( अवाताम् ) हिमा रजित ( मिहम् ) सींचने वाली बृष्टि को ( धा-कुण्डलि ) अशुद्ध प्रकार सम्पादन करते हैं और इनका ( सत्यम् ) सत्य कर्म है ( चित् ) जैसे ही सत्य कर्म का अनुष्ठान किया करो ॥ ७ ॥

भावाव—मनुष्या को चाहिए कि जैसे अन्तर्गम में रहने तथा मत्स्यगुण और स्वभाव वाले पवन दृष्टि के हेतु हैं वे ही युक्ति से सेवन किये हुए अनुकूल होकर सुख देते और युक्ति रहित सेवन किये प्रतिफल होकर दुःखदायक होते हैं वैसे युक्ति से अस्मान्मूल कमों का सेवन करें ॥ ७ ॥

ये मनुष्य किस के समान रथा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वाश्रेव विद्यन् मिमाति वत्सं न माता सिपक्ति ।

यद्वेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥

पदार्थ—है मनुष्यो ! आप लोग ( यत ) जो ( एषाम् ) इन वायुओं के योग से उत्पन्न हुई ( बिभृन् ) बिभ्रुनी ( चाश्वेव ) जैसी गी आपने ( बतसम् ) बछड़े को इच्छा करती हुई सेवन करती है वैसे ( विहम् ) वृष्टि को ( मिमाति ) उत्पन्न करनी और इच्छा करती हुई ( आता ) मातृ देने वाली माता पुत्र को दूध से ( सिष्वित्वा ) जैसे सीखती है वैसे पदार्थों को सेवन करती है ( वृष्टि ) धर्षा को ( प्रसजि ) करती है वैसे शुभ गुण, कर्मों से एक दूसरे के सुख करनेहारे हुआ ॥ ८ ॥

**भावार्थ** इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगो को उचित है कि जैसे अपने-अपने बछड़ो का सेवन करने के लिए इच्छा करती हुई गी और अपने छोटे बालक को सेवन करनेवागी माता उन्हें स्पर्श से शब्द करके उनकी आर डीहती हैं वैसे बिजुनी बड़-बड़े शब्दों को करती हुई मेघ के अवयवों के सेवन के लिए ढीहती है ॥ ८ ॥

ये वायु क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले भाग में किया है—

दिवा चित्तमः कृषन्ति पर्जन्येनोद्वाहेन । यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थ — हे विद्वान् लोग ! आप (यत्) जो पवन (उद्वाहेन) जलो को धारण वा प्राप्त करनेवाले (पर्वन्मेन) मेघ से (विषा) दिन में (तम) ग्रन्थ-काररूप रात्रि के (क्षित्) समान ग्रन्थकार (कृष्णित्) करते हैं (पृथिवीम्) भूमि को (व्यव्यन्तित्) मेघ के जल से आर्द्र करते हैं उनका युक्ति से सेवन करो ॥ ६ ॥

**भावार्थ**—इस मन्त्र में उपमात्मक रूप है। पवन ही जल के प्रवयवों को कठिन कर, घनाकार मेघ द्वारा दिन में भी अंधकार उत्पन्न करके फिर बिजली को पैदा कर उस बिजली से उन मेघों के प्रवयवों को छिन्न-भिन्न और पृथिवी में गिरकर जलो

से स्निग्ध करके धनेक ओषधि प्रावि समूहों को उत्पन्न करते हैं उनका उपदेश विद्वान् लोग ग्रन्थ मनुष्यों को भदा किया करें ॥ ६ ॥

फिर इन पक्षों के योग से क्या होता है इस विषय का उपरोक्त अंगरेज सचिव ने किया है—

अथ स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्य पार्थिवम् । अरैजन्त प्र मानुषाः ॥१०॥

पदार्थ—हे (मानुष्या) मननशील मनुष्यों ! तुम जिन ( जस्ताम् ) पदार्थों के ( स्वभाव ) शब्द के उत्पन्न होने के ( ग्रन्थ ) मनस्तर ( विशिष्टम् ) सब ( पाणिजम् ) पृथिवी में विदित वस्तुमान का ( सद्य ) स्थान कपिता और प्राणिमात्र ( प्रारेजन्त ) शब्द प्रकार कम्पित ह्वान है इस प्रकार जानो ॥ १० ॥

**आवाच** — हे ज्योतिष शास्त्र के विद्वान लोगो ! आप पवनो के योग ही से सब मूर्तिमान् द्रव्य चेष्टा को प्राप्त होते, प्राणी लोग बिजुली के भयकर शब्द से भय को प्राप्त होकर कम्पन होते और भूगोल आदि प्रतिक्षण भ्रमण किया करते हैं ऐसा निश्चित समझो ॥ १० ॥

फिर वे मनुष्य पक्षों से क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले अग्र में किया है—

मरुतो वीळुयाणिभिंश्चिन्ना रोधस्वतीरनु । यातेमस्विद्रयामभिः ॥ ११ ॥

पदार्थ—ह ( मत्त ) योगाभ्यासी योगव्यवहार सिद्धि चाहने वाले पुरुषो !  
 तुम लोग ( अक्षिप्रवासि ) निरन्तर गमनशील ( जीकृपाणिनि ) दृढ़ बलरूप  
 ग्रहण के साथक व्यवहार वाले पवनो के साथ ( रोचस्वती ) बहुत प्रकार के बाँध  
 वा प्रावरण और ( विषा ) घातक्य गुण वाली नदी वा नादियों के ( ईन्, अन् )  
 अनुकूल ( यात ) प्राप्त हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ - पवनो मे गमन, बन प्रीर व्यवहार के हेतु का स्वाभाविक धर्म है प्रीर ये निश्चय ही नदियो को बनाने वाले, नाडियो के मध्य मे गमन करते हुए चर्धिर, रसादि को शरीर के भ्रमवशो मे प्राप्त करते है इस कारण योगी लोग योगाभ्यास और प्रम्य मनुष्य बल प्रादि के साधनरूप वायुप्रो से बडे-बडे उपकार ग्रहण करें ॥ ११ ॥

स्थिरा वः सन्तु नेमयो गथा अश्वास एषाम् ।

सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! ( ब. ) तुम्हारे ( एवम् ) इन पवनो के सकाश से ( सुसंस्कृताः ) उत्तम शिल्पविद्या में सम्स्कार किये हुए ( नेमय ) कलाचक्र युक्त ( रथा. ) विमान आदि रथ ( अभीशय ) मार्गों को व्याप्त करनेवाले ( प्रगणस ) अग्नि आदि वा घोड़ों के सदृश ( स्थिराः ) दृढ़ बलयुक्त ( सन्सु ) होंवें ॥ १२ ॥

**भाषार्थ—** ईश्वर उपादेश करता है—हे मनुष्या ! तुम को चाहिए कि अनेक प्रकार के कलाचक्र युक्त विमान आदि यानों को रचकर उनमें जलदी सन्नतवाले अग्नि, जल के सम्प्रयाग वा पवनो के योग से सुखपूर्वक जाने-आने और शत्रुओं को जीतने आदि सब व्यवहारों को सिद्ध करो ॥ १२ ॥

फिर इस विमानादि विद्या का उपदेशक विद्वान् कंसा होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अच्छा वदा तना गिरा जराथै ब्रह्मणस्पतिम् ।

अग्निं मित्रं न दर्शयाम ॥ १३ ॥

पदार्थ हे सब विद्या के जानने वाले ब्रह्मन् । तु ( न ) जैसे ( ब्रह्मणः ) वेद के पढ़ाने और उपदेश से ( पतिम् ) पालनहारे ( ब्रह्मात्मन् ) देवने योग्य ( अभिन्नम् ) तेजस्वी ( मिश्रम् ) मिश्र को मिश्र उपदेश करना है जैसे ( जरायुं ) गुरुज्ञान के लिए ( तना ) गुणों के प्रकाश को बढानेहारी ( गिरा ) अपनी वेदयुक्त वाणी से विभानार्थ यानविद्या का ( अछ्छा ब्र ) अछ्छे प्रकार उपदेश कर ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वान् मनुष्यो । तुम लोगों को चाहिए कि जैसे प्रिय मित्र अपने प्रिय वैजस्वो वेदापदेशक मित्र को सेवा श्रौर गुणों की स्तुति में तृप्त करता है वैसे सब विद्यार्थी का ध्यानार करने वाली वेदवाणी से विमानार्ति यानों के रचने की विद्या का उम के गुणज्ञान के लिए निरन्तर उपदेश करो ॥ १३ ॥

फिर उस विद्वान् का पढ़ाया शिष्य कौसा होना चाहिए इस विषय का  
उपदेश अगले मन्त्र में किया है —

मिमीहि श्लोकमास्यै पर्जन्यइव ततनः । गायं गायत्रमुक्थ्यम् ॥१४॥

पदार्थ- हे विद्वन् । तू (आत्मे) अपने मुख से (श्लोकम्) वेद की शिक्षा  
 मे युक्त वागी को (विसीहि) निभाए कर और उम वागी को (परोक्ष इव)  
 जैसे मेघ वृष्टि करता है वैसे (ततनः) फैला और (उच्छ्वसम्) कहने योग्य (गाय-  
 त्रम्) गायत्री छन्द वाले स्तोत्ररूप वैदिक सूक्तों को (गाय) पढ़ तथा पढ़ा ॥ १४ ॥

भावार्थ — इस मन्त्र से उपभालकार है। हे विद्वानो से विद्या पढ़े हुए मनुष्यो । तुम लोगो को उचित है कि सब प्रकार प्रयत्न के साथ अपनी वाणी को वेदविद्या से सुसंस्कृत करके, वाष्पस्पति के समान वक्ता होकर वायु आदि पदार्थों के गुणों की स्तुति तथा उपदेश किया करो ॥ १४ ॥

फिर वह विद्वान् क्या करे इस विषय का उपदेश जगत्से मन्त्र में किया है—

वन्दस्व मार्तण्डं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा अंसजिह ॥१५॥

परार्थ-हे विद्वन् मनुष्य ! तू जैसे (ब्रह्म) हम सब व्यवहार में (करने) हम लोगो

के मध्य में ( ब्रह्मः ) बड़ी विद्या और वायु से युक्त बृद्ध पुरुष सत्पावरण करनेवाले ( ब्रह्मन् ) होवें वैसे ( अकिंलयम् ) प्रसूनीय ( स्वेद्यम् ) अग्नि प्रादि प्रकाशवान् ब्रह्मों से युक्त ( पञ्चभुक् ) अपने आत्मा के व्यवहार की इच्छा के हेतु ( मांस्तम् ) वायु के इस ( गन्धम् ) समूह की ( चक्षुषम् ) कामना कर ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में सुप्तोपमालकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे पवन कार्यों को सिद्ध करने के साधन होने से सुख देने वाले होवें वैसे विद्या और अपने पुरुषार्थ से प्रयत्न किया करें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्त की सगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तहर्षा वर्ग और अष्टोत्तरी सुप्त समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

॥

अथ दक्षार्चस्यैकीनक्षत्रारिहस्य सुस्तस्य धोरपुत्र कथं ब्रुविः। मयतो वेवताः।

१, २, ६, पञ्चाङ्गहृती, ७ उपरिष्ठाद्विराट् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।

२, ८, १० विराट् सतः पङ्क्तिः, ४, ६ निष्पत्तयः पङ्क्तिद्वयम्।

पञ्चमः स्वरः। ३ अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

अथ उनलाजीसर्वे सुक्त का आरम्भ है। फिर वे विद्वान् लोग परस्पर किस-किस प्रकार सहाय करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

य यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ।

कस्य क्रत्वा मस्तुः कस्य वर्षसा कं याथ कं ह भूतयः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( मस्तुः ) विद्वान् लोगो! आप ( यत् ) जो ( भूतयः ) सब को केंपाने वाले वायु ( शोचिर्न ) जैसे सूर्य की ज्योति और वायु पृथिवी पर दूर से गिरते हैं इस प्रकार ( परावतः ) दूर से ( कस्य ) किमके ( मानम् ) परिमाण का ( अक्षयम् ) छोड़ देते ( इत्था ) इसी हेतु से ( कस्य ) सुखस्वरूप परमात्मा के ( क्रत्वा ) कर्म वा ज्ञान और ( वर्षसा ) रूप के साथ ( कम् ) सुखदायक देश को ( याथ ) प्राप्त होते हो—इन प्रश्नों के उत्तर दीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। सुख की इच्छा करनेवाले विद्वान् पुरुषों को चाहिए कि जैसे सूर्य की किरणें दूर देश से भूमि को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाशित करती हैं वैसे ही अभिमान को दूर से त्यागके सब सुख देने वाले परमात्मा और भाग्यशाली परमविद्वान् से वायु के गुण, कर्म, स्वभाव और मार्ग को ठीक-ठीक जानके उन्हीं में रमण करें। ये वायु का ज्ञान कराने के साधन कारण कारणस्वरूप से स्थित और कारण में ही लीन हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ ईश्वर इनको उपदेश और आशीर्वाद देकर सब से कहता है कि तुमको क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुर्दे वीरू उत्त मंतिष्कमै।

युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे धार्मिक मनुष्या! ( वः ) तुम्हारे ( आयुधा ) आग्नेय प्रादि अस्त्र और तलवार, धनुष बाण, भुसु डी ( बन्दूक ) शलघ्नी ( तोप ) प्रादि अस्त्र-अस्त्र ( पराणुर्दे ) शत्रुओं को व्याधा करनेवाले युद्ध ( उत्त ) और ( मंतिष्कम् ) रोकने-बाँधने और मारने रूप कर्मों के लिए ( स्थिरा ) दृढ़, निरन्तरायी ( वीरू ) दृढ़ बड़े-बड़े उत्तम बलयुक्त ( तविषी ) प्रशस्त सेना ( पनीयसी ) अतिशय करके स्तुति करने योग्य वा व्यवहार की मित्र करनेवाली ( अस्तु ) हो और पूर्वोक्त पदार्थ ( मायिनः ) कण्ट प्रादि अश्वमर्चिण युक्त ( मर्त्यस्य ) दुष्ट मनुष्यों के ( मा ) कभी मत हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—धार्मिक मनुष्य ही परमात्मा के कृपापात्र होकर सदा विजय को प्राप्त होते हैं दुष्ट नहीं। परमात्मा भी धार्मिक मनुष्यों ही को आशीर्वाद देता है पापियों को नहीं। पुण्यात्मा मनुष्यों को उचित है कि उत्तम-उत्तम अस्त्र-अस्त्र रखकर उनके केंकने का अभ्यास करके सेना को उत्तम शिक्षा देकर शत्रुओं का निरोध वा पराजय करके न्याय से मनुष्यों की निरन्तर रक्षा किया करें ॥ २ ॥

अथ अगले मन्त्र में विद्वान् मनुष्यों के कार्य का उपदेश किया है—

परा ह यत् स्थिरं ह्य नरो वर्त्तयथा गुरु।

वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( नरः ) नीतियुक्त मनुष्यों! तुम जैसे ( वनिनः ) सम्यक् विभाग और सेवन करने वाले किरण सम्बन्धी वायु अपने बल से ( यत् ) जिन ( पर्वतानाम् ) पहाड़ और मेघों ( पृथिव्याः ) और भूमि को ( व्याशाः ) चारों दिशाओं में व्यास-वत् व्याप्त होकर उस ( स्थिरम् ) दृढ़ और ( गुरु ) बड़े-बड़े पदार्थों को धरते और वेग से वृक्षादि को उखाड़के तोड़ देते हैं वैसे विजय के लिए शत्रुओं की सेनाओं को ( पराहृय ) अच्छे प्रकार नष्ट करो और ( ह ) निश्चय से इन शत्रुओं को ( विज-संघम् ) तोड़-फोड़, डलट-पण्ट कर अपनी कीर्ति से ( व्याशाः ) दिशाओं को ( व्या-धन ) अनेक प्रकार व्याप्त करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कल्पोपमालकार है। जैसे वेगयुक्त वायु वृक्षादि को उखाड़, तोड़, फेंकोड़ देते और पृथिव्यादि को धरते हैं वैसे धार्मिक न्यायाधीश

अधर्माचारों को रोकके धर्मयुक्त न्याय से प्रजा का धारण करें और सेनापति दृढ़ बलयुक्त हो उत्तम सेना का धारण, शत्रुओं को मार, पृथिवी पर वर्त्तवति राज्य का सेवन कर सब विद्याओं में अपनी उत्तम कीर्ति का प्रचार करें और जैसे प्राण सब से अधिक प्रिय होते हैं वैसे राजपुरुष विजय व शील द्वारा प्रजा को प्रिय हो ॥ ३ ॥

फिर वे विद्वान् किस प्रकार के हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नहि वः शत्रुर्विदिदे अथि घवि न भूम्यां गिशादसः।

युष्माकमस्तु तविषी तना युना रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥

हे ( रिशादसः ) शत्रुओं के नाशकारक ( रुद्रासः ) अन्यायकारी मनुष्यों को हलाने वाले वीर पुरुष! ( वित् ) जो ( युष्माकम् ) तुम्हारे ( आधृषे ) प्रगल्भ होने वाले व्यवहार के लिए ( तना ) विस्तृत ( युना ) बलादि सामग्री युक्त ( तविषी ) सेना ( अस्तु ) हो तो ( अविद्यवि ) न्याय प्रकाश करने में ( वः ) तुम लोगों की ( शत्रु ) विरोधी शत्रु ( नू ) भीन् ( नहि ) नहीं ( विदिदे ) प्राप्त हो और ( भूम्याम् ) भूमि के राज्य में भी तुम्हारा कोई गणुष्य विरोधी उत्पन्न न हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे पवन आकाश में शत्रु रहित विजयते हैं वैसे मनुष्य विद्या, धर्म, बल, पराक्रमवाले न्यायाधीश हा सब की शिक्षा दे और दुष्ट शत्रुओं को दण्ड देके शत्रुओं से रहित होकर रहा करें ॥ ४ ॥

फिर वे कैसे कर्म करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र वैपयन्ति पर्वतानि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।

प्रो आरत मस्तो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विक्षा ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( मस्तः ) वायुज्ज बलिष्ठ और प्रिय ( देवासः ) न्यायाधीश सेनापति सभाध्यक्ष विद्वान् लोगो! तुम जैसे वायु ( वनस्पतीन् ) बड़े और पिप्पल प्रादि वनस्पतियों को ( वैपयन्ति ) केंपाने और जेने ( पर्वतान् ) मेघों को ( विञ्चन्ति ) पृथक्-पृथक् कर देते हैं वैसे ( दुर्मदा इव ) मदोन्मत्तों के समान वर्त्तते हुए शत्रुओं को युद्ध से ( प्रो आरत ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुईए और ( सर्वया ) सब ( विक्षा ) प्रजा के साथ सुख से वर्त्तिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे राजधर्म में वर्त्तने वाले विद्वान् लोग दण्ड में बमण्डी डाकुओं को बश में करके धर्मात्मा प्रजाओं का पालन करते हैं वैसे तुम भी अपनी प्रजा का पालन करो और जैसे पवन भूगोल के चारों ओर विचरते हैं वैसे आप लोग भी सर्वत्र जाओ-प्राप्तो।

यह अष्टारहर्षा वर्ग समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

फिर मनुष्यों को किस के साथ इन की युक्त करके कार्यों को सिद्ध करना

चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपो रथेषु पृथ्वीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।

आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदवीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( मानुषा ) विद्वान् लोगो! तुम ( वः ) अपने ( यामाय ) स्वानान्तर में जाने के लिए ( प्रष्टिः ) प्रश्नोंतरादि विद्या व्यवहार से विदित ( रोहितः ) रक्त गुणयुक्त अग्नि ( पृथिवी ) स्थल, जल, अन्तरिक्ष में जिन को ( वित्, उपो-वहति ) अच्छे प्रकार चलाता है जिनके शब्दों को ( अश्रोत् ) सुनते और ( अवी-भयन्त ) भय का प्राप्त होते हैं उन ( रथेषु ) रथों में ( युग्ध्वं ) वायुओं को ( आ-युग्ध्वम् ) युक्त करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—यदि मनुष्य यानों में जल, अग्नि और वायु को युक्त कर उन में बैठ गमनागमन करे तो सुख से ही सबत्र जाने-पाने में समर्थ हो ॥ ६ ॥

फिर वे कैसे ही इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ वो मधू तनाय क रुद्रा अवी वृणीमहे।

गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेतथा कण्वाय विभ्युषे ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( रुद्रा ) दुष्टों को रोदन करानेवाले ४४ वर्ष पर्यन्त प्रसङ्गित ब्रह्मर्षय सेवन से सकल विद्याओं को प्राप्त विद्वान् लोगो! ( वः ) जैसे हम लोग ( वः ) आप लोगों के लिए ( अवसा ) रक्षादि से ( मधू ) मीध ( मूत्रम् ) निश्चित ( कम् ) सुख का ( वृणीमहे ) सिद्ध करते हैं ( इत्था ) ऐसे तुम भी ( वः ) हमारे वास्ते ( अथ ) सुखवदके रक्षादि कर्म ( गन्त ) किया करो और जैसे ईश्वर ( विभ्युषे ) दुष्ट प्राणी वा दु खों से भयभीत ( तनाय ) सब को सद्बिद्या और धर्म के उपदेश से सुखकारक ( कण्वाय ) आप्त विद्वान् के धर्म रक्षा करता है वैसे तुम और हम मिलके सब प्रजा की रक्षा नडा किया करे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे मेधावी विद्वान् लोग वायु प्रादि के द्रव्य और गुणों के योग से भय को निवारण करके सुरस्त सुखी होते हैं वैसे हम लोगो को भी होना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर तुम को उन से क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले

मन्त्र में किया है—

युष्मेषितो मस्तो मर्त्येषित आ यो नो अमृ ईषते।

वि तं युयोत शर्वसा व्योर्जसा वि युष्माकाभिस्तुतिभिः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( मस्तः ) विद्वानो! तुम ( वः ) जो ( अमृ ) विरोधी मित्र-



संघ रहित ( बुध्धेचितः ) तुम लोगो को जीतने और ( मर्त्यचितः ) मनुष्यों से विजय की इच्छा करनेवाला शत्रु ( नः ) हम लोगो को ( ईवते ) मारता है उस को ( शत्रुता ) बलयुक्त सेना वा ( व्योजसा ) अनेक प्रकार के पराक्रम और ( बुध्मा-काभिः ) तुम्हारी कृपापात्र ( कृतिभिः ) रक्षा, प्रीति, तृप्ति, ज्ञान आदिको से युक्त सेनाओं से ( विधुयोत ) विधेयता से दूर कर दीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो स्वार्थी, परोपकार से रहित, दूसरे को पीड़ा देने में अत्यन्त प्रगल्भ शत्रु हैं उन को विद्या वा शिक्षा के द्वारा खोटे कर्मों से निवृत्त कर वा उत्तम सेना बल को सम्पादन कर युद्ध से जीत उनका निवारण करके सब के हित का विस्तार करें ॥ ८ ॥

फिर उन से शोधे वा प्ररे हुए वा क्या क्या कर इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतमः ।

असामिभिर्मरुत आ न उतिभिर्गन्तां वृष्टिं न विद्युनः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( प्रयज्यवः ) अच्छे प्रकार परोपकार करने ( प्रचेतसः ) उत्तम ज्ञानयुक्त ( मरुतः ) विद्वान् लोगो ! तुम ( असामिभिः ) नाश रहित ( कृतिभिः ) रक्षा, सेना आदि से ( नः ) जैसे विद्युन् सूर्य, बिजुली आदि ( वृष्टिम् ) वर्षा कर सुखी करने हे वैसे ( नः ) हम लोगो को ( असामिभिः ) अग्निके सुख ( ववः ) दीजिए ( हि ) निश्चय से दुष्ट शत्रुओं को जीतने के वास्ते ( कण्वम् ) और आप्त विद्वान् के समीप नित्य ( प्रागन्तः ) अच्छे प्रकार जाया कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—इन मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पवन सूर्य बिजुली आदि वर्षा करके सब प्राणियों के सुख के लिए अनेक प्रकार के फल, पत्र पुष्प, अन्न आदि को उत्पन्न करते हैं वैसे विद्वान् लोग भी सब प्राणिमात्र का वेदविद्या देकर उत्तम-उत्तम सुखों को निरन्तर सम्पादन करें ॥ ९ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

असाम्योजो विभृथा सुदानवोऽसामि धृतयः शवः ।

ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इधुं न सुजत द्विषम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे ( धृतयः ) दुष्टों को कैंपाने ( सुदानवः ) उत्तम दान स्वभाव ( शवः ) विद्वान् लोगो ! तुम ( नः ) जैसे ( परिमन्यवः ) सब प्रकार क्रोधयुक्त शूरवीर मनुष्य ( द्विषम् ) शत्रु के प्रति ( इधुम् ) बाण आदि शस्त्र समूहों को छोड़ते हैं वैसे ( ऋषिद्विषे ) वेद, वेदों को जाननेवाले और ईश्वर के विरोधी दुष्ट मनुष्यों के लिए ( असामि ) अग्निके ( श्रोजः ) विद्या, पराक्रम ( असामि ) सम्पूर्ण ( शवः ) बल को ( बिभृथः ) धारण करो और उस शत्रु के प्रति शस्त्र वा अस्त्रों को ( सुजतः ) छोड़ो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धार्मिक शूरवीर मनुष्य क्रोध को उत्पन्न कर शत्रुओं के प्रहारों से प्रहारों को जीत निष्कण्टक राज्य को प्राप्त होकर प्रजा को सुखी करते हैं वैसे ही सब मनुष्य वेद, विद्वान् वा ईश्वर के विरोधियों के प्रति सम्पूर्ण बल, पराक्रमों से शस्त्र-अस्त्रों को छोड़ उनको जीतकर ईश्वर, वेद, विद्या और विद्वान् युक्त राज्य को सम्पादन करें ॥ १० ॥

इस सूक्त में वायु और विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की सगति जाननी चाहिए।

यह उन्तालीसवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥ १६ ॥



अशाठर्बस्य चत्वारिंशस्य सूक्तस्य घोरपुत्र कथं ऋषि । बृहस्पतिर्ब्रह्मा १, २, ८ निबुधुपरिष्टः/बृहतीछन्दः, ५ पद्या बृहतीछन्दः । मध्यम स्वर ।

३, ७ आर्षोत्रिष्टुप्छन्दः । श्वेत स्वर । ४, ६ शत

पङ्क्तिनिष्ठपङ्क्तिछन्दः । पञ्चम स्वर ॥

अन्तालीसवें सूक्त का आरम्भ है। फिर मनुष्यों को उचित है कि वेदविद्य जनों को कैसे उपदेश करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वमेहे ।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशुर्भवा सचा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( ब्रह्मणस्पते ) वेद की रक्षा करनेवाले ( इन्द्र ) अग्निके विद्यादि परमेश्वरयुक्त विद्वन् ! जैसे ( सचा ) विज्ञान से ( देवयन्तः ) सत्य विद्याओं की कामना करने ( सुदानवः ) उत्तम दान स्वभाव वाले ( मरुतः ) विद्याओं के सिद्धान्तों के प्रचार के अभिलाषी हम लोग ( त्वा ) आपको ( ईमहे ) प्राप्त होते और जैसे सब धार्मिक जन ( उपप्रयन्तु ) समीप आने वैसे आप ( प्राशुः ) सब सुखों के प्राप्त करानेवाले ( भवः ) हजिए और सब के हितार्थ प्रयत्न कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्य पुत्रवार्थ से विद्वानों का सग, उनकी सेवा, विद्या, योग, धर्म और सब का उपकार करना आदि उपायों से समग्र विद्याओं के अध्येता परमात्मा के विज्ञान और प्राप्ति से सब मनुष्यों को प्राप्त हों और इसी से अग्र्य सब को सुखी करें ॥ १ ॥

फिर वे लोग आपस में कैसे बतें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्य उपव्रते धने हिते ।

सुवीर्य मरुत आ स्वय्यन्दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( सहसस्पुत्रः ) बहुरूप और विद्यादि गुणों से शरीर, आत्मा के पूर्ण बलयुक्त के पुत्र ! ( यः ) जो ( मर्यः ) विद्वान् मनुष्य ( त्वाम् ) तुम को सब विद्या ( उपव्रते ) पढ़ाता हो और हे ( मरुतः ) बुद्धिमान् लोगो ! आप जो ( वः ) आप लोगों को ( हिते ) कल्याणकारक ( भवे ) सत्यविद्यादि धन से ( आचके ) तृप्त करें ( इत् ) उसी के लिए ( स्वय्यन्धः ) उत्तम विद्या विषयों में उत्पन्न ( सुवीर्यम् ) अत्युत्तम पराक्रम को तुम लोग धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य पढ़ने-पढ़ाने आदि धर्मयुक्त कर्मों ही से एक दूसरे का उपकार करके सुखी हों ॥ २ ॥

फिर वे लोग अन्योऽग्र्य कैसे बतें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्यंतु सूनुता ।

अच्छा वीर नयै पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( ब्रह्मणः ) वेदों का ( पति ) प्रचार करनेवाले ! आप जिस ( पङ्क्तिराधसम् ) धर्मात्मा और वीर पुरुषों को सिद्धिकारक ( मर्यम् ) हितकारक ( अच्छावीरम् ) बुद्धि, पूर्ण शरीर, आत्मबलयुक्त वीरों की प्राप्ति के हेतु ( यज्ञम् ) पठन-पाठन, श्रवण आदि क्रिया रूप यज्ञ को ( प्रेतु ) प्राप्त होते और हे विद्यायुक्त स्त्री ! ( सूनुता ) उस वेदवाणी की शिक्षा सहित ( देवी ) सब विद्या सुशीलता में प्रकाशमान होकर आप भी जिस यज्ञ को प्राप्त हों उस यज्ञ को ( देवाः ) विद्वान् लोग ( नः ) हम लोगो को ( प्रययन्तु ) प्राप्त करावें ॥ ३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि जिससे विद्या की वृद्धि होती जाए ॥ ३ ॥

विद्वान् और अन्य मनुष्यों को एक-दूसरे के साथ क्या करना चाहिए

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यो वाघते ददाति सूनरं वसु म धत्ते अक्षिति श्रवः ।

तस्मा इत्तौ सुवीरामा यजामहे सुप्रतृत्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—( यः ) जो मनुष्य ( वाघते ) विद्वान् के लिए ( सूनरम् ) जिससे उत्तम मनुष्य हो उस ( वसु ) धन को ( धत्ते ) देता है और जिस ( अनेहसम् ) हिंसा के अयोग्य ( सुप्रतृत्तिम् ) उत्तमता में शीघ्र प्राप्ति कराने ( सुवीराम् ) जिस से उत्तम शूरवीर प्राप्त हो ( इत्तौ ) पृथिवी वा वाणी को हम लोग ( आयजामहे ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं उस से ( सः ) वह पुरुष ( अक्षिति ) जा कभी क्षीणता को न प्राप्त हो उस ( श्रवः ) धन और विद्या के श्रवण को ( वत्ते ) करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर, वाणी, मन और धन से विद्वानों का सेवन करता है वही अक्षय विद्या को प्राप्त हो और पृथिवी के राज्य को भोगकर मुक्ति को प्राप्त होता है। जो पुरुष वाणीविद्या को प्राप्त होने हैं, वे विद्वान् दूसरे को भी पाण्डित कर सकते हैं आलसी अविद्वान् पुरुष नहीं ॥ ४ ॥

अब ईश्वर कैसे है उसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्त्यम् ।

यस्मिन्नन्त्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो ( ब्रह्मणस्पतिः ) बड़े भारी जगत् और वेदों का पति स्वामी न्यायाधीश ईश्वर ( नूनम् ) निश्चय करके ( उक्त्यम् ) कहने-सुनने योग्य वेदवचनों में होने वाले ( मन्त्रम् ) वेदमन्त्र-समूह का ( प्रवर्तितः ) उपदेश करता है वा ( यस्मिन् ) जिस जगदीश्वर से ( इन्द्र ) बिजुली ( वरुणः ) समुद्र, चन्द्र, तारे, आदि लोकान्तर ( मित्रः ) प्राण ( अर्यमा ) वायु और ( देवाः ) पृथिवी आदि लोक और विद्वान् लोग ( ओकांसि ) स्थानों को ( चक्रिरे ) किये हुए हैं, उसी परमेश्वर का हम लोग सत्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जिस ईश्वर ने वेदों का उपदेश किया है, जो सब जगत् में व्याप्त होकर स्थित है, जिसमें सब पृथिवी आदि लोक रहते और मुक्ति समय में विद्वान् लोग निवास करते हैं, उसी परमेश्वर की उपासना करें, इस से भिन्न किसी की नहीं ॥ ५ ॥

यह बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ २० ॥

अब अगले मन्त्र में सब मनुष्यों के लिए वेदों के पढ़ने का अधिकार है

इस विषय का उपदेश किया है—

तमिद्वीचेमा विदथेनु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।

इमां च वाचं प्रतिर्यथा नरो विश्वेदामा वो अश्रवत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( देवाः ) विद्वानो ! ( वः ) तुम लोगों के लिए हम लोग ( विदथेनु ) जानने योग्य पढ़ने-पढ़ाने आदि व्यवहारों में जिस ( अनेहसम् )

अहिंसनीय, सर्वेश्वर, रक्षणीय, बोधरहित (शत्रुबन्धु) कल्याणकारक (मन्त्रम्) शत्रुओं की मर्त्य करानेवाले मन्त्र अर्थात् क्षुत्तिसमूह को (बीजेन) उपदेश करें (सम्) उस वेद की (इत्) ही तुम लोग ग्रहण करो (इत्) जो (इत्तम्) इस (बाधम्) वेदवाणी को (प्रतिहृष्य) बार-बार जानो तो (विद्या) सब (बाधा) प्रहसनीय बाणी (सः) तुम लोगों को (अवनवत्) प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को योग्य है कि विद्या के प्रकार के लिए मनुष्यों को निरन्तर धर्म, भक्त, उपाङ्ग, रहस्य, स्वर और हस्तक्रिया सहित वेदों का उपदेश करें और ये लोग अर्थात् मनुष्यमात्र इन विद्वानों से सब वेदविद्या को सन्धान करें। जो कोई पुरुष सुख चाहे तो वह विद्वानों के संग से विद्या को प्राप्त करे तथा इस विद्या के बिना किसी को सत्य सुख नहीं होगा इस से पढ़ने-पढ़ाने वालों को प्रयत्न से सकल विद्याओं को ग्रहण करना वा कराना चाहिए ॥ ६ ॥

कोई मनुष्य विद्वान् को प्राप्त होकर ही विद्या को ग्रहण कर सकता है

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

को वैद्यन्तमन्नध्वज्जनं को वृक्षवर्हिषम् ।

मम दाभ्यान् पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत् अयं दधे ॥ ७ ॥

पदार्थ—(कः) कौन मनुष्य (वैद्यन्तम्) विद्वानों की कामना करने और (क) कौन (वृक्षवर्हिषम्) सब विद्याओं से कुशल सब ऋतुओं में यज्ञ करनेवाले (ध्वजम्) सकल विद्याओं में प्रकट हुए मनुष्य को (अवनवत्) प्राप्त तथा कौन (दाभ्यान्) दावणील पुरुष (पस्त्याभिर) प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे और कौन (पस्त्याभिः) उत्तमगृह वाली भूमि में (अन्नध्वजम्) सब के अन्तर्गत चलनेवाले वायु से युक्त (अयम्) निवास करने योग्य घर को (दधे) धारण करे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्य विद्याप्रचार की कामना वाले उत्तम विद्वान् को नहीं प्राप्त होते और न सब दावणील होकर सब ऋतुओं में सुखरूप घर को धारण कर सकते हैं, किन्तु कोई भाग्यशाली विद्वान् मनुष्य ही इन सब को प्राप्त हो सकता है ॥ ७ ॥

यै विद्वान् का कौसा राज्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उप क्षत्रं पृथ्वीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।

नास्यैवर्त्ता न तक्ता महाधने नाभे अस्ति वज्रिणः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (क्षत्रम्) राज्य को (पृथ्वीत) सम्बन्ध तथा (सुक्षितिम्) उत्तमोत्तम भूमि की प्राप्ति करानेवाले व्यवहार को (दधे) धारण करता है (अस्य) इस सर्व सभाध्यक्ष (वज्रिण) बली के (राजभिः) राजपूतों के साथ (अये) युद्ध भीति में अपने मनुष्यों को कोई भी शत्रु (न) नहीं (हन्ति) मार सकता (न, महाधने) नहीं महाधन की प्राप्ति के हेतु बड़े युद्ध में (वर्त्ता) बिपरीत वृत्ति वाला और (न) इस वीर्य वाले के समीप (अभे) छोटे युद्ध में (चित्) भी (तक्ता) बल को उत्पन्न करने वाला कोई (अस्ति) होता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो राजपुरुष महाधन की प्राप्ति के निमित्त बड़े युद्ध वा छोटे युद्ध में शत्रुओं को जीन व बौधके निवारण करने और धर्म से प्रजा का पालन करने में समर्थ होते हैं, वे इस सत्कार में आनन्द को भागकर परमात्म में भी बड़े भारी आनन्द को भोगते हैं ॥ ८ ॥

उनतालीसवें सूक्त में कहे हुए विद्वानों के कार्यरूप धर्म के साथ ब्रह्माण-स्पति आदि शब्दों के अर्थों के सम्बन्ध से पूर्व सूक्त की सगति जाननी चाहिए ।

यह बालीसवाँ सूक्त और इसकीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥ ४० ॥ २१ ॥



अथ नवर्चस्यैकवर्त्तारिणस्य सुस्तस्य और कण्व ऋषिः । १—३, ७—६

वज्रमित्रार्चम् । ४—९ आदित्याश्च देवताः । १, ४, ५, ८

पायणी । २, ३, ६ । विराङ्गायणी ७, ९

निबृङ्गायणी च छन्द । यज्ञः स्वर ॥

अथ इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है । अनेक वीरों से रक्षित राजा भी कभी शत्रु से पीड़ित होता ही है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नृचित्स दम्भ्यते जनः ॥ १ ॥

पदार्थ—(प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानवान् (वरुणः) उत्तम गुरु वा श्रेष्ठ होने से सभाध्यक्ष होने योग्य (मित्रः) सब का मित्र (अर्यमा) पशुपात छोड़कर न्याय करने की समर्थ्य ये सब (वसु) जिस मनुष्य वा राज्य तथा देश की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (सः, चित्) वह भी (जनः) मनुष्य आदि (नु) जल्दी सब शत्रुओं से कदाचित् (अम्भ्यते) मारा जाता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब से उत्कृष्ट सेना, सभाध्यक्ष, सब के मित्र, पुत्र, पढ़ाने वा उपदेश करनेवाले धार्मिक मनुष्य को स्थायीपण करें, तथा उन विद्वानों के सकाश से रक्षा आदि की प्राप्ति हो, सब शत्रुओं को शीघ्र मार और अक्रान्तिराज्य का पालन करके सब के हित का सम्पादन करें। किसी को भी शत्रु से भय करना योग्य नहीं है क्योंकि जिनका जन्म हुआ है उनका मृत्यु अवश्य होता है, इसलिए मृत्यु से डरना मूर्खों का काम है ॥ १ ॥

यह रक्षा किन्ना हुआ किन्को प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यं बाहुतेष पिप्रति यान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्वे एधते ॥ २ ॥

पदार्थ—ये वरुण आदि धार्मिक विद्वान् लोग (बाहुतेष) जैसे शूरवीर बाहुबलों से चोर आदि का निवारण कर दुःखों को दूर करते हैं वैसे (वसु) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य को (पिप्रति) सुखों से पूर्ण करते और (रिषः) हिंसा करनेवाले शत्रु से (पिप्रति) बचाते हैं (सः) वे (सर्वः) समस्त मनुष्यमात्र (अरिष्टः) सब विघ्नो से रहित होकर वेदविद्या आदि उत्तम गुरुओं से नित्य (एधते) वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सभा और सेनाध्यक्ष के सहित राजपुरुष बाहुबल वा उपाय के द्वारा शत्रु, डाकू, चोर आदि और दरिद्रता का निवारण कर मनुष्यों की अन्धे प्रकार रक्षा, पूर्ण सुखों का सम्पादन, सब विघ्नों को दूर, पुकारार्थ से संयुक्त कर, ब्रह्मण्य सेवन वा विषयों की विपत्ता छोड़ने से शरीर की वृद्धि और विद्या वा उत्तम शिक्षा से आत्मा की उन्नति करते हैं; वैसे ही प्रजाजन भी किया करें ॥ २ ॥

फिर ये राजपुरुष क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि दुर्गा वि द्विषः पुरो व्रन्ति राजान एवाम् ।

नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (राजानः) उत्तम कर्म वा गुरु से प्रकाशमान राजा लोग (एवाम्) इन शत्रुओं के (दुर्गा) दुःख से जाने योग्य परकोटी और (पुरः) नगरो को (वि, व्रन्ति) छिन्न-भिन्न करते और (द्विषः) शत्रुओं की तथा (दुरिता) दुःखों को (वि, तिरौ नयन्ति) नष्ट कर देते हैं, वे अक्रान्ति राज्य को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो अग्राय करनेवाले मनुष्य धार्मिक मनुष्यों को पीड़ा देकर पुर्ण में रहते और फिर साकर दुःखी करते हैं उनको नष्ट और धोखों के पालन करने के लिए विद्वान्, धार्मिक राजपुरुषों को चाहिए उनके परकोट और नगरों का विनाश और शत्रुओं को छिन्न-भिन्न, मार और बशीभूत करके धर्म से राज्य का पालन करें ॥ ३ ॥

फिर ये क्या सिद्ध करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते ।

नात्रावस्वादो अस्ति वः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जहाँ (आदित्यास) अन्धे प्रकार से अज्ञतालीस वर्षयुक्त ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर, आत्मा के बल सहित होने से सूर्य के समान प्रकाशित हुए अविनाशी धर्म को जानने वाले विद्वान् लोग रक्षा करनेवाले हों वा जहाँ इन से जिस (अनृक्षरः) कण्टक, गड़ड़ा, चोर, डाकू, अविद्या, अधर्माचरण से रहित सरल (सुगः) सुख से जानने योग्य (पन्था) जल, स्थल, अन्तरिक्ष में जाने के लिए वा विद्या, धर्म, न्याय प्राप्ति के मार्ग का सम्पादन किया हो उस और (अनृक्षः) ब्रह्म, सत्य वा यज्ञ को (यते) प्राप्त होने के लिए तुम लोगों को (वः) इस मार्ग में (अवकाश) भय (नास्ति) कभी नहीं होता ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को भूमि समुद्र अन्तरिक्ष में रथ, नौका, विमानों के लिए सरल, दृढ़, कण्टक, चोर, डाकू भय आदि दोष रहित मार्गों का सम्पादन करना चाहिए; जहाँ किसी को कुछ भी दुःख वा भय न होवे। इन सब को सिद्ध करके अक्षय्य चक्रवर्ति राज्य का संग करना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर ये कित की रक्षा कर कित को प्राप्त होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा ।

प्र वः स धीतये नमत् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (आदित्या) सकल विद्याओं से सुसम्पन्न प्रकाशमान (नरः) स्थाययुक्त राज-सभासदो। आप लोग (धीतये) सुखों को प्राप्त करानेवाली क्रिया के लिए (यम्) जिस (यज्ञम्) राजधर्मयुक्त व्यवहार को (ऋजुना) शुद्ध, सरल (पथा) मार्ग से (नयथ) प्राप्त होते हो (स) वह (वः) तुम लोगों को (प्रवक्षते) नष्ट करनेद्वारा नहीं होता ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'न' इस पद की अनुवृत्ति है। जहाँ विद्वान् लोग सभा सेनाध्यक्ष सभा में रहने वाले भूस्थ होकर विनयपूर्वक न्याय करते हैं वहाँ सुख का नाम कभी नहीं होता ॥ ५ ॥

फिर यह रक्षा को प्राप्त होकर कित को प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स रत्नं मर्त्यो बभु विश्वं तोकमुत स्मना । अच्छा गच्छत्यस्तुतः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (मर्त्यः) हिंसा रहित (मर्त्यः) मनुष्य है (सः) वह (स्मना) आत्मा, मन वा प्राण से (विश्वम्) सब (रत्नम्) मनुष्यों के मनों के रक्षण करानेवाले (बभु) उत्तम-से-उत्तम द्रव्य (उत) और (तोकम्)

सब उत्तम गुरगो से युक्त पुत्रों को ( अथवा गच्छति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—विद्वान् मनुष्यों से अच्छे प्रकार रक्षा किये हुए मनुष्य आदि प्राणी सब उत्तम-से-उत्तम पदार्थ और मन्त्रानों को प्राप्त होते हैं । रक्षा के बिना किसी पुरुष का प्राणी की बढ़ती नहीं होती ॥ ६ ॥

सबको क्या करके इस सुख को प्राप्त करना चाहिए, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम् ॥

महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥

पदार्थ—हम लोग ( सखाय ) सब के मित्र होकर ( मित्रस्य ) सब के सखा ( अर्यम् ) न्यायाधीश ( वरुणस्य ) और सब से उत्तम अथवा के ( महि ) बड़े ( स्तोमम् ) गुण-स्तुति के समूह को ( कथा ) किस प्रकार से ( राधाम ) सिद्ध करें और किस प्रकार हम को ( प्सरः ) सुखों का भोग सिद्ध होवे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जब कोई मनुष्य किसी से पूछे कि हम किस प्रकार से मित्रता, न्याय और उत्तम विद्याओं को प्राप्त होवें तो वह उनको ऐसा कहे कि परस्पर मित्रता, विद्यादान और परोपकार ही से यह सब प्राप्त हो सकता है । इसके बिना कोई भी मनुष्य किसी सुख को सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

सभाष्यक आदि लोग प्रजाजनों के साथ क्या-क्या प्रतिष्ठा करें

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् ॥

सुम्नैर्गि आ विवासे ॥ ८ ॥

पदार्थ—मैं ( मा ) मित्ररूप तुमको ( घ्नन्तम् ) मारते हुए जन से ( मा प्रतिवोचे ) सम्भाषण भी न करूँ ( मा ) तुम को ( शपन्तम् ) कोसते हुए मनुष्य से प्रिय ( मा वोचे ) न बोलूँ किन्तु ( सुम्नै ) सुखों से सहित तुम को सुख देनेहारे ( गि ) ही ( देवयन्तम् ) दिव्यगुरगो की कामना करनेहारे की ( आविवासे ) अच्छे प्रकार सेवा सदा किया करूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मनुष्य को योग्य है कि न अपने शत्रु और न मित्र के शत्रु में प्रीति करे । मित्र की रक्षा और विद्वानों की प्रियवाक्य, भोजन, वस्त्र, पान आदि से सेवा करनी चाहिए, क्योंकि मित्र रहित पुरुष सुख की वृद्धि नहीं कर सकता, इससे विद्वान् लोग बहुत से धर्मात्माओं को मित्र करें ॥ ८ ॥

जो कहे और जिनको आगे कहते हैं उन चार दुष्टों से नित्य भय करके उनका विश्वास कभी न करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

चतुरंश्चिदमानाद् विभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥

पदार्थ—मनुष्य ( चतुर ) मारने, शाप देने और ( दबमानाद् ) विषाद देने और ( निधातोः ) अन्याय से दूसरे के पदार्थों को हरनेवाले इन चार प्रकार के मनुष्यों का विश्वास न करे ( चित् ) और इन से ( विभीयात् ) नित्य डरे और ( दुरुक्ताय ) दुष्ट वचन कहने वाले मनुष्य के लिए ( न स्पृहयेत् ) इन को मित्र करने की इच्छा कभी न करे ॥

भाषार्थ—मनुष्य दुष्ट कर्म करने वा दुष्ट वचन बोलने वाले मनुष्यों का सग और विश्वास तथा मित्र से द्राह, दूसरे का अपमान और विश्वासघात आदि कर्म कभी न करे ॥ ९ ॥

इस सूक्त में प्रजा की रक्षा, शत्रुओं को जीतना, मार्ग का शोधना, यान की रचना और उनका चलाना, द्रव्यों की उन्नति करना, थोड़े के साथ मित्रता, दुष्टों से विश्वास न करना और अधर्माचरण से नित्य डरना; इस प्रकार कथन से पूर्व—सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की सञ्ज्ञा जाननी चाहिए ।

यह पहले अष्टक के तीसरे अध्याय में तेईसवाँ वर्ग और पहले मण्डल में इकतालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

ॐ

अथ वषात्स्य द्विचत्वारशस्य सूक्तस्य धीरः कण्व आर्य । पूषा देवता ।

१, ६ निष्वगायत्री, २, ३, ४-८, १० गायत्री,

४ विराड् गायत्री च छन्द । वज्रः स्वरः ॥

अथ अयालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में प्रवास करने हुए मनुष्य मार्ग में किस-किस पदार्थ की इच्छा करें इस विषय का उपदेश किया है—

सम्पूर्णध्वनस्तिर व्यहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( पूषन् ) सब जग का पोषण करनेवाले ( नपात् ) नाश रहित ( देव ) दिव्य गुरा सम्पन्न विद्वन् । तुझ के ( ध्वनः ) मार्ग से ( चित्तिर ) पार होकर हम को भी पार कीजिए ( सक्ष्वाः ) रोगरूपी दुष्टों के वेग को ( विमुचः ) दूर कीजिए ( पुर ) पहले ( न ) हम लोगों को ( प्रसक्तम् ) उत्तम-उत्तम गुरगो में प्रसक्त कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्य जैसे परमेश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञा के पालन से सब दुष्टों के पार होकर सब सुखों को प्राप्त करें; इसी प्रकार धर्मात्मा, सब के मित्र परोपकार करनेवाले विद्वानों के समीप वा उनके उपदेश से अविद्या जालरूपी मार्ग से पार होकर विद्यारूपी सूर्य को प्राप्त करें ॥ १ ॥

जो वर्म और राज्य के भागों में विघ्न करते हैं उनका निवारण करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यो नः पूषन् यो वृको दुःरोव आदिदेशति ।

अप स्म त पथो जहि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( पूषन् ) सब जगत् को विद्या से पुष्ट करनेवाले विद्वन् ! आप ( य ) जो ( वृक् ) पाप करने ( दुःरोव ) दुष्ट में शयन कराने योग्य ( वृक् ) स्तेन अर्थात् दुष्ट देनेवाला खोर ( नः ) हम लोगों को ( आदिदेशति ) उद्देश करके पीडा देता हो ( तम् ) उस दुष्ट स्वभाव वाले को ( वृक् ) राजधर्म और प्रजामार्ग से ( अवजहि ) नष्ट वा दूर कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि शिक्षा, विद्या तथा सेना के बल से दूसरे के धन को लेनेवाले शत्रु और खोरों को मार सर्वथा दूरकर, निरन्तर अधिक राजनीति के मार्गों को भय रहित करें । जैसे जगदीश्वर दुष्टों को उनके कर्मों के अनुसार दण्ड के द्वारा शिक्षा देता है वैसे हम लोग भी दुष्टों को दण्ड द्वारा शिक्षा देकर अष्ट स्वभावयुक्त करें ॥ २ ॥

किर इस मार्ग से किन-किन का निवारण करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अप त्वं परिपन्थिनं सुवीचाणं हुरक्षितम् । दूरमधि सुतेरज ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् ! आप ( त्वम् ) उस ( परिपन्थिनम् ) प्रतिकूल चलनेवाले डाकू ( सुवीचाणम् ) चोर-कर्म से भ्रान्त को फोड़कर, दृष्टि का आच्छादन कर दूसरे के पदार्थों को हरने ( हुरक्षितम् ) उत्कोचक अर्थात् हाथ में दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करनेवाले, अनेक प्रकार से चोरों को ( सुते ) राजधर्म और प्रजामार्ग से ( दूरम्, अध्यपाज ) उन पर दण्ड और शिक्षा कर दूर कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—चोर अनेक प्रकार के होते हैं कोई डाकू, कोई कपट से हरने, कोई मोहित करके दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने, कोई रात में सुरग लगाकर ग्रहण करने, कोई उत्कोचक अर्थात् हाथ से छीन लेने, कोई नाना प्रकार के व्यवहारी दुकानों में बैठ छल से पदार्थों को हरने, कोई शुल्क अर्थात् रिश्वत लेने, कोई मृष्य होकर स्वामी के पदार्थों को हरने, कोई छल-कपट से दूसरों के राज्य को स्वीकार करने, कोई धर्मोपदेश से मनुष्यों को भ्रमाकर गुरु बन शिष्यों के पदार्थों को हरने, कोई प्राड्विवाक अर्थात् वकील होकर मनुष्यों को विवाद में फँसाकर पदार्थों को हर लेने और कोई न्यायमन पर बैठ प्रजा से धन लेके अन्याय करने वाले इत्यादि हैं, इन सब को खोर जानो, इन को सब उपायों से निकाल कर मनुष्यों को धर्म से राज्य का पालन करना चाहिए ॥ ३ ॥

किर इन पूर्वोक्त खोरों की क्या गति करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं तस्य द्याविनोऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे सेनासभाध्यक्ष ! ( त्वम् ) आप ( तस्य ) उस ( द्याविन ) प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष औरों के पदार्थों को हरनेवाले ( कस्यचित् ) किसी ( अघशंसस्य तपुषिम् ) खोरों की सेना को ( पदाभितिष्ठ ) बल से बशीभूत कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—न्याय करने वाले मनुष्यों को उचित है कि किसी अपराधी खोर को दण्ड दिए बिना कभी न छोड़े नहीं तो प्रजा पीडाग्रस्त होकर नष्ट-भ्रष्ट होने से राज्य का नाश हो जाए, इस कारण प्रजा की रक्षा के लिए दुष्ट कर्म करनेवाले अपराध किय हुए माता, पिता, पुत्र, आचार्य्य और मित्र आदि को भी अपराध के अनुसार ताड़ना अवश्य देनी चाहिए ॥ ४ ॥

किर वह न्यायाधीश कंसा होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ तच्चै दस मन्तुमः पूषन् वी वृणीमहे । येन पितृनचोदयः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( वृक् ) दुष्टों को नाश करने ( मन्तुम् ) उत्तम ज्ञानयुक्त ( पूषन् ) सर्वथा पुष्टि करनेवाले विद्वन् ! आप ( येन ) जिस रक्षादि से ( चित् ) अवस्था वा ज्ञान से बड़ों को ( अचोदय ) प्रेरणा करो ( तत् ) उस ( ते ) आपके ( वृक् ) रक्षादि को हम लोग ( आबुणीमहे ) सर्वथा स्वीकार करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जैसे प्रेम प्रीति के साथ सेवा द्वारा पिता, अध्यापक तथा ज्ञान वा अवस्था से बड़ों को तृप्त करें वैसे ही सब प्रजाओं के सुख के लिए दुष्ट मनुष्यों को दण्ड देके धार्मिकों को सदा सुखी रखें ॥ ५ ॥

किर वह न्यायाधीश प्रजा में क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणां कृधि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( विश्वसौभग ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त होने ( हिरण्यवाशीमत्तम ) प्रतिशय सत्य के प्रकाशक, उत्तम कीर्ति और सुशिक्षित वाणीयुक्त सभाध्यक्ष ! आप ( न ) हम लोगों के लिए ( सुषणा ) सुख से सेवन करने योग्य ( धनानि ) विद्याधर्म और चक्रवर्ति राज्य की लक्ष्मी से सिद्ध किये हुए धनो को प्राप्त कराके ( अथ ) पशुचान् हम लोगों को सुखी ( कृधि ) कीजिए ॥ ६ ॥



पदार्थ—ईश्वर के अनन्त लोभाय वा सहासेना न्यायधीन राजा को चकवर्ति राज्य आदि लोभाय होने से इन दोनों के आश्रय से मनुष्यों के असंख्यात विघ्न, सुखों आदि धनों की प्राप्ति से अत्यन्त सुखों के भोग को प्राप्त होना वा कराना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर वह हम लोगों को किस प्रकार का करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अति नः सन्धतां नय सुगानः सुपथा कृणु । पूर्वभिह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥**

भाषार्थ—हे ( पुषन् ) सब को पुष्ट करनेवाले जगदीश्वर वा प्रजा का पोषण करनेवाले सभाध्यक्ष विद्वन् ! आप ( इह ) इस ससार वा जन्म में ( सन्धता ) विज्ञानयुक्त विद्या, धर्म को प्राप्त हुए ( नः ) हम लोगों को ( सुगानः ) सुखपूर्वक जाने के योग्य ( सुपथा ) उत्तम विद्या, धर्मयुक्त विद्वानों के मार्ग से ( अतिनय ) अत्यन्त प्रयत्न से चलाइए और हम लोगों को उत्तम विद्यादि धर्म मार्ग से ( कृणु ) उत्तम कर्म या उत्तम प्रज्ञा से ( विदः ) जानने वाले कीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए कि हे जगदीश्वर ! आप कृपा करके धर्म मार्ग से हम लोगों को अलग कर धर्म मार्ग में लिये चलाइए । तथा विद्वान् से पूछना वा उनका सेवन करना चाहिए कि हे विद्वन् ! आप हम लोगों को सुद्ध सरल वेदविद्या से सिद्ध किये हुए मार्ग में सदा चलाया कीजिए ॥ ७ ॥

फिर उनसे किसको प्राप्त होना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अभि द्युवर्षसं नय न नवज्जारो अध्वने । पूर्वभिह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे ( पुषन् ) सभाध्यक्ष ! इस ससार वा जन्मान्तर में ( अध्वने ) श्रेष्ठ मार्ग के लिए हम लोगों को ( द्युवर्षसम् ) उत्तम यज्ञ आदि धोषधि होने वाले देश को ( अभिनय ) सब प्रकार प्राप्त कीजिए और ( कृणु ) उत्तम कर्म वा प्रज्ञा को ( विदः ) प्राप्त कीजिए जिससे इस मार्ग में चलकर हम लोगों में ( नवज्जारो ) नवीन-नवीन सन्तान ( नः ) न हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे सभाध्यक्ष ! आप अपनी कृपा से श्रेष्ठ देश वा उत्तम गुण हम लोगों को दीजिए और सब दुखों को निवारण कर सुखों को प्राप्त कीजिए । हे सहासेनाध्यक्ष ! विद्वान् लोगों को विनयपूर्वक पालन से विद्या पढ़ाकर इस राज्य में सुखयुक्त कीजिए ॥ ८ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्थुदर्म् । पूर्वभिह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे ( पुषन् ) सहासेनाधिपते ! आप हम लोगों को ( शग्धि ) सुख देने के लिए समर्थ ( पूर्धि ) सब सुखों की पूर्ति कर ( यंसि ) दुष्ट कर्मों से पृथक् रह ( शिशीहि ) सुखपूर्वक सो, वा दुष्टों का खेदन कर ( प्राप्ति ) सब सेना वा प्रजा के अङ्गों को पूर्ण कीजिए और हम लोगों के ( उदरम् ) उदर को उत्तम धानों से ( इह ) इस प्रजा के सुख से पूर्ण तथा ( कृणु ) युद्ध विद्या को ( विदः ) प्राप्त कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सभा सेनाध्यक्ष से भिन्न इस सप्ताह में कोई नामधेय को देने वा सुखों से प्रलभ्य करने, पुष्टार्थ को देने, और-डाकुओं से भय निवारण करने, सबको उत्तम भोग देने और न्यायविद्या का प्रकाश करने वाला, अन्य नहीं हो सकता, इससे दोनों का आश्रय सब मनुष्य करें ॥ ९ ॥

उसका आश्रय लेकर कैसे होना वा क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**न पुषणं मेथामसि सुकैरभि गृहीमसि । वद्वनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( सुकैः ) वेदोक्त स्तोत्रों से ( पुषणम् ) सभा और सेनाध्यक्ष को ( अभिनूणीमसि ) गुणशालपूर्वक स्तुति करते हैं ( वस्मन् ) शत्रु को ( मेथामसि ) मारते हैं । ( वद्वनि ) उत्तम वस्तुओं की ( ईषहे ) याचना करते हैं और आपस में द्वेष कभी ( नः ) नहीं करते वैसे तुम भी किया करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । किसी मनुष्य को सुखता से सहास्यक्ष की आज्ञा की छोड़ शत्रु की याचना न करनी चाहिए किन्तु वेदों के राजनीति को जानके इन दोनों के सहाय से शत्रुओं को मार, विज्ञान वा सुखों आदि धनों को प्राप्त होकर सुपात्रों के लिए दान देकर विद्या का विस्तार करना चाहिए ॥ १० ॥

इस सूक्त में पुषन् शब्द का वर्णन, शक्ति का बढ़ाना दुष्ट शत्रुओं का निवारण, सम्पूर्ण ऐश्वर्य की प्राप्ति, सुमार्ग में चलना, बुद्धि वा कर्म का बढ़ाना कहा है । इस से इस सूक्त के अर्थ की संगति पूर्व सूक्तार्थ के साथ जाननी चाहिए ।

यह पञ्चोत्तरां वने और वयोलोत्तरां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अब नववर्षस्य प्रथमवर्षारित्य सुवर्षस्य धीरः कण्व ऋषिः । १,२,४—६

वृद्ध, ३ मित्रावरुणी, ७—८ सोमवर्ष देवता । १—४,७,८

गायत्री, ५ विराट् गायत्री, ६ पादविष्णु गायत्री व छन्दः ।

वचनः स्वरः । २ अनुवृत्तुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

अब तैत्तलीसर्वे सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में वृद्ध शब्द के अर्थ का उपदेश किया है—

**कद्रुद्राय प्रवर्तसे भीष्महृष्टमाय तव्यसे । बोचेम शन्तमं हृदे ॥ १ ॥**

पदार्थ—हम लोग ( कत् ) कब ( प्रवर्तसे ) उत्तम ज्ञानयुक्त ( भीष्महृष्टमाय ) प्रतिश्रय करके सेवन करने वा ( तव्यसे ) अत्यन्त बृद्ध ( हृदे ) हृदय में रहने वाले ( हृष्टाय ) परमेश्वर, जीव वा प्राण वायु के लिए ( शन्तमम् ) अत्यन्त सुखरूप वेद का ( बोचेम ) अच्छे प्रकार उपदेश करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—वृद्ध शब्द से तीन धर्मों का ग्रहण है, परमेश्वर, जीव और वायु, उनमें से परमेश्वर अपने सर्वज्ञान से जिसने जैसा पाप कर्म किया उस कर्म के अनुसार फल देने से उसको रोदन करानेवाला है । जीव निश्चय करके मरते समय धर्म सम्बन्धियों की इच्छा करता हुआ शरीर को छोड़ता है, सब अपने पाप रोता है । और वायु शूल धावि पीड़ा कर्म से रोदन कर्म का निमित्त है । इसलिए इन तीनों को वृद्ध समझना चाहिए ॥ १ ॥

फिर वह क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**यथा नो अदितिः कर्तृ पश्वे नृभ्यो यथा गवै ।**

**यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥**

पदार्थ—( यथा ) जैसे ( तोकाय ) उत्पन्न हुए बालक के लिए ( अदितिः ) माता ( यथा ) जैसे ( पश्वे ) पशु समूह के लिए पशुओं का पालक ( यथा ) जैसे ( नृभ्यः ) मनुष्यों के लिए राजा ( यथा ) जैसे ( गवै ) इन्द्रियों के लिए जीव वा पृथिवी के लिए लेती करनेवाला ( कर्तृ ) सुखों को करता है वैसे ( नः ) हम लोगों के लिए ( रुद्रियम् ) परमेश्वर वा पवनो का कर्म प्राप्त हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे माता, पिता, पुत्र के लिए गोपाल पशुओं के लिए और राजसभा प्रजा के लिए सुखकारी होते हैं वैसे ही सुखा के करने और करानेवाले परमेश्वर और पवन भी हैं । विद्या और पुष्टार्थ के बिना सुख नहीं मिलता ॥ २ ॥

अब सब के साथ विद्वान् लोग कैसे बर्ते इस का उपदेश किया है—

**यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विरवै सजोषसः ॥ ३ ॥**

पदार्थ—( यथा ) जैसे ( मित्रः ) सखा वा प्राण ( वरुणः ) उत्तम उपदेष्टा वा उदान ( यथा ) जैसे ( रुद्रः ) परमेश्वर ( नः ) हम लोगों को ( चिकेतति ) ज्ञानयुक्त करते हैं ( यथा ) जैसे ( विरवै ) सब ( सजोषसः ) स्वतुल्य प्रीति-सेवन करनेवाले विद्वान् लोग सब विद्याधियों के जानने वाले होते हैं, वैसे यथार्थवक्ता पुरुष सबको जानाया करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग सब मनुष्यों को मित्रता और उत्तम शील धारण कराकर उनके लिए यथार्थ विद्याधियों की प्राप्ति कराते हैं और जैसे परमेश्वर ने वेद द्वारा सब विद्याधियों का प्रकाश किया है, वैसे धर्म्यापकों को भी सब मनुष्यों को विद्यायुक्त करना चाहिए ॥ ३ ॥

फिर वह सब कैसा है इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**माथपति मेधपति रुद्रं जलाषमेवजम् । तच्छ्रयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( माथपतिम् ) स्तुति करने वालों के पालक ( मेधपतिम् ) यज्ञ वा पवित्र पुरुषों की पालना करनेवाले ( जलाषमेवजम् ) जिससे सुख के लिए भेषज अर्थात् धोषध हो उस ( वज्रम् ) परमेश्वर के आश्रय होकर ( तत् ) उस विज्ञान वा ( शयोः ) व्यावहारिक, पारमार्थिक सुख से भी ( सुम्नम् ) मोक्ष के सुख की ( ईषहे ) याचना करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य स्तुति यज्ञ वा दुखों के नाश करनेवाली धोषधियों की प्राप्ति करानेवाले परमेश्वर, विद्वान् और प्राणायाम के बिना विज्ञान और लौकिक सुख वा मोक्ष सुख प्राप्त करने के योग्य नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

फिर वह कैसा है इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**यः शुक्र इव रूयौ हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठौ देवानां वसुः ॥ ५ ॥**

पदार्थ—( यः ) जो पूर्व कहा हुआ वृद्ध सेनापति ( सुव्यं ) शुक्र इव ) तेजस्वी शुद्ध भास्कर सूर्य के समान ( हिरण्यमिव ) सुवर्ण के तुल्य प्रीतिकारक ( वैश्रवाम् ) सब विद्वान् वा पृथिवी आदि के मध्य में ( श्रेष्ठः ) अत्युत्तम ( वसुः ) सम्पूर्ण प्राणिमात्र का बसाने वाला ( रोचते ) प्रीतिकारक हो उसको सेना का प्रधान करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जैसे परमेश्वर सब ज्योतियों का ज्योति, आनन्दकारियों का आनन्दकारी, श्रेष्ठों का श्रेष्ठ विद्वान् का विद्वान्, आचार्यों का आचार्य है, वैसे ही जो न्यायकारियों में न्यायकारी, आनन्द देने वालों में आनन्द देने वाला, श्रेष्ठ स्वभाव वालों में श्रेष्ठ स्वभाव वाला,

विद्वानों में विद्वान् और वास हेतुओं का वासहेतु और पुरुष हो उसको सभाध्यक्ष बनाए या मानें ।

यह प्राप्ति के लिए क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**शब्दः करत्यर्चते सुगं मेघाय मेघ्ये । नृम्यो नारिम्यो गवे ॥ ६ ॥**

पदार्थ—जो स्रस्वामी ( न ) हम लोगों की ( अर्चते ) भयजति ( मेघाय ) मेघजति ( मेघ्ये ) मेघ-बकरी ( नृम्यः ) मनुष्य जाति ( नारिम्यः ) स्त्री जाति और ( गवे ) गोजाति के लिए ( सुगम् ) सुगम ( शम् ) सुख को ( करति ) निरन्तर करने वही न्यायाधीश करना चाहिए ॥६॥

भाषार्थ—मनुष्यों को अपने सुख तथा अपने वा पराये मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिए परमेश्वर की प्रार्थना, विद्वानों की सहायता, प्राणवायुओं का यथावत् उपयोग और अपना पुरुषार्थ करना चाहिए ॥६॥

अब अगले मन्त्र में यह के गुणों का उपदेश किया है—

**अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् ।**

**महि श्रवस्तुविनृष्णम् ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे ( सोम ) जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष आप ! ( अस्मे ) हम लोगों के लिए वा हम लोगों के ( शतस्य ) बहुत ( नृणाम् ) और पुरुषों के ( तुविनृष्णम् ) अनेक प्रकार के धन ( महि ) पूज्य वा बहुत ( श्रव ) विद्या का श्रवण और ( श्रियम् ) राज्यलक्ष्मी को ( धेहि निधेहि ) स्थापन कीजिए ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । कोई प्राणी परमेश्वर की कृपा सभाध्यक्ष की सहायता वा अपने पुरुषार्थ के बिना पूर्ण विद्या, पशु, चक्रवर्ति राज्य और लक्ष्मी को प्राप्त नहीं हो सकता ॥७॥

फिर यह किसका निवारण करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**या नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजं मज ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्दो ) मुधिसा से घात करनेवाले सभाध्यक्ष ! ( न ) हम लोगों को ( सोमपरिबाधः ) जो उत्तम पदार्थों को सब प्रकार दूर करनेवाले विरोधी पुरुष हैं वे, हम पर ( आ जुहुरन्त ) प्रबल न हों और ( मारातयो ) जो दान आदि धर्मरहित हठ करनेवाले मर हैं वे, भी हम पर प्रबल न हों । ( नः ) हम लोगों को इन शत्रुओं को ( बाधे ) युद्ध में पराजय करने को ( आभज ) अच्छे प्रकार युक्त कीजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । मनुष्यों को अत्यन्त उत्तम बल के साहित्य से तथा युद्ध द्वारा सब शत्रुओं को जीतकर न्याययुक्त राज्य का पालन करना चाहिए ॥ ८ ॥

फिर सोम की प्रजा कंसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**यास्तं प्रजा अमृतस्य परस्मिन्वामन्वृतस्य ।**

**मूर्धा नामा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे ( सोम ) विज्ञान के देनेवाले ( वेनः ) कमनीयस्वरूप ( मूर्धा ) सर्वोत्तम ! सोम तु ( अमृतस्य ) सत्यस्वरूप वा सत्यप्रिय ( अमृतस्य ) नाशरहित ( नामा ) रिशर सुख के बन्धनरूप ( वामन् ) न्याय वा आनन्दमय स्थान में वर्तमान ईश्वर के समान न्यायकारी है ( ते ) तेरी ( या ) जो ( प्रजाः ) प्रजा हैं उनको ( आभूषन्ती ) सब प्रकार भूषणयुक्त होने की ( वेनः ) इच्छा कर और उनको ( वेन ) सब विद्याओं से प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जहाँ मनुष्य, ईश्वर ही की उपासना करनेवाले अत्युत्तम सभाध्यक्ष का आश्रय करते हैं वहाँ वे सुख के क्षेत्र को भी नहीं प्राप्त होते । जैसे परमेश्वर और सभाध्यक्ष श्रेष्ठ आचरण करने वाले मनुष्यों की इच्छा करते हैं वैसे ही प्रजा में रहने वाले मनुष्य परमेश्वर वा सभाध्यक्ष की मित्य इच्छा करें क्योंकि इस के बिना बहुत सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ९ ॥

इस सूक्त में यह शब्द के अर्थ का वर्णन, सब सुखों का प्रतिपादन, मित्रपन का आचरण, परमेश्वर वा सभाध्यक्ष के आश्रय से सुखों की प्राप्ति, एक ईश्वर ही की उपासना, परमसुख की प्राप्ति और सभाध्यक्ष का आश्रय करना कहा है इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सैतालीसवाँ सूक्त और सत्ताईसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥ २७ ॥



अथ अनुवृत्तार्थस्य अनुवृत्तार्थस्य सूक्तस्य प्रत्यक्ष ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१, ५ उपरिष्ठाद्विराड्बृहती, ३ निबुधुपरिष्ठाद्वृहती, ७, ११ निबुधुव्या-

बृहती, १२ भुरिग्वृहती, १३ पञ्चाद्वृहती क छन्दः ।

मध्यमः स्वरः । २, ४, ६, ८, १४ विराड् सतः-

पङ्क्तिः, १० विराड् विस्तारपङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः । ९ आर्षाभिन्नुद् छन्दः ।

अथतः स्वरः ॥

अथ सैतालीसवाँ सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में अग्नि शब्द के सम्बन्ध से विद्वानों की कामना करनी चाहिए यह उपदेश किया है—

**अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।**

**आ दाशुषं जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( विवस्वत् ) स्वप्रकाशस्वरूप वा विद्याप्रकाशयुक्त ( अमर्त्य ) मरण धर्म से रहित वा साधारण मनुष्य-स्वभाव से विलक्षण ( जातवेदः ) उत्पन्न हुए पदार्थों को जानने वा प्राप्त होनेवाले ( अग्ने ) जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस से ( उषस् ) आप ( अद्य ) आज ( दाशुषं ) पुरुषार्थी मनुष्य के लिए ( उषसः ) प्रातःकाल से ( चित्रम् ) अद्भुत ( विवस्वत् ) सूर्य के समान प्रकाश करनेवाले ( राधः ) धन को देते हो वह आप ( उषर्बुधः ) प्रातःकाल में जागनेवाले विद्वानों को ( आबह ) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की आज्ञा पालन के लिए अपने पुत्रवार्थ से परमेश्वर वा आत्मस्व रहित उत्तम विद्वानों का आश्रय लेकर चक्रवर्ति राज्य, विद्या और राज्यलक्ष्मी का स्वीकार करना चाहिए । सब विद्याओं के जाननेवाले विद्वान् लोग, जो उत्तम गुण युक्त और अपने करने योग्य श्रेष्ठ कर्म हैं उन को मित्य करें और जो दुष्ट कर्म हैं उस को कभी न करें ॥ १ ॥

फिर विद्वानों के सग के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**जुष्टो हि दूतोऽसि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।**

**सजूरधिम्यामुपसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) पाषक के समान राजविद्या के जाननेवाले विद्वन् ! ( हि ) जिस कारण आप ( जुष्ट ) प्रसन्न प्रकृति और ( दूतः ) शत्रुओं को ताप करानेवाले होकर ( अध्वराणाम् ) अहिमयीय यज्ञों को सिद्ध करते ( रथीः ) प्रशसनीय रथयुक्त ( हव्यवाहनः ) देने-लेने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होने ( सजूरः ) अपने तुल्यो के भेदन करनेवाले ( असि ) हो इससे ( अस्मे ) हम लोगों में ( अधिविद्याम् ) वायु जान ( उषसा ) प्रातःकाल में सिद्ध हुई क्रिया से सिद्ध किये हुए ( बृहत् ) बड़े ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रमकारक ( श्रवः ) सब विद्या के श्रवण का निमित्त धन को ( धेहि ) धारण कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—कोई मनुष्य विद्वानों के सग के बिना, विद्या को प्राप्त करने शत्रु विजय रूप उत्तम पराक्रम, व चक्रवर्ति राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता और अग्नि, जल आदि के योग के बिना उत्तम व्यवहार की सिद्धि भी नहीं कर सकता ॥ २ ॥

फिर कैसे मनुष्य को स्वीकार करे इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।**

**धूमकेतुं भास्वीजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरभिर्यम् ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हम लोग ( अद्य ) आज मनुष्य जन्म वा विद्या की प्राप्ति समय को प्राप्त होकर ( व्युष्टिषु ) अनेक प्रकार की कामनाओं में ( भास्वीजीकम् ) कामनाओं के प्रकाश ( यज्ञानाम् ) अग्निहोत्र आदि अश्वमेध पर्यन्त वा योग उपासना ज्ञान शिल्पविद्यारूप यज्ञों के मध्य ( अध्वरभिर्यम् ) अहिमयीय यज्ञों की श्री, शोभा ( धूमकेतुम् ) जिस का धूम ही ध्वजा है ( वसुम् ) सब विद्याओं का धर वा बहुत धन की प्राप्ति का हेतु ( पुरुप्रियम् ) बहुतों को प्रिय ( वसुम् ) पदार्थों को दूर पहुँचाने वाले ( अग्निम् ) भौतिक अग्नि के मनुष्य विद्वान् दूत को ( वृणीमहे ) अंगीकार करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि विद्या वा राज्य की प्राप्ति के लिए सब विद्याओं के कथन करने वा सब बातों का उत्तर देने वाले विद्वान् को दूत बनाएँ और बहुत गुणों के योग से बहुत कार्यों को प्राप्त करानेवाली विजुली को स्वीकार करके सब कार्यों को सिद्ध करें ॥ ३ ॥

फिर किस प्रकार के विद्वान् को ग्रहण करें इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

**श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषं ।**

**देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥**

पदार्थ—मैं ( व्युष्टिषु ) विशिष्ट पढ़ने के योग्य कामनाओं में ( यातवे ) प्राप्ति के लिए ( दाशुषं ) दाता ( जनाय ) आत्मिक विद्वान् मनुष्य के अर्थ ( अष्टम् ) अति उत्तम ( यविष्ठम् ) परम बलवान् ( जुष्टम् ) विद्वान् से प्रसन्न वा सेवित ( स्वाहुतम् ) अच्छे प्रकार बुलाके सत्कार के योग्य ( जातवेदसम् ) सब पदार्थों में व्याप्त ( अतिथिम् ) सेवा करने के योग्य ( अग्निम् ) अग्नि के तुल्य वर्तमान सज्जन अतिथि और ( देवान् ) दिव्यगुण वाले विद्वानों को ( अच्छा ) अच्छे प्रकार सत्कार करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को उचित ही है कि उत्तम धर्म, बलवाले, प्रसन्न स्वभाव वाले और सब के उपकारक विद्वान् अतिथियों का ही सत्कार करें जिस से सब जनों का हित हो ॥ ४ ॥

**स्त्विध्यामि त्वामहं विवस्वत्यामृत भोजन ।**

**अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥**

पदार्थ—(अनुत्त) अविनाशिरूप (भोजन) पालनकर्ता (विशेष) प्रसाद करने (हृष्यवाह) समे-देने योग्य पदार्थों को प्राप्त करनेवाले (अग्ने) परमेश्वर (अहम्) में (विश्वस्य) सब जगत् के (वातारम्) रक्षक (विश्विष्णु) प्रत्यक्ष प्रजन करनेवाले (अनुत्तम्) नित्यस्वरूप (त्वा) तेरी ही (स्तवि-क्यामि) स्तुति करूँगा ॥ ५ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को योग्य है कि सब जगत् के रक्षक, भोज देनेवाले तथा विद्या, काम, धान्य के देने वाले वा उपासना करने योग्य परमेश्वर को छोड़ अन्य किसी का भी ईश्वरभाव से आश्रय या स्तुति न करें ॥ ५ ॥

फिर वह अग्नि कैसा है, किस के लिए क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुशंसो बोधि यृणते यविष्ठय मधुजिह्वः स्वाहुतः ।

प्रस्कम्बस्य प्रतिरभायुर्जीवसे नमस्या देव्यं जनय ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (यविष्ठय) अत्यन्त बलवान् (नमस्य) पूजने योग्य विद्वन् । (मधुजिह्वः) यक्षुर ज्ञानरूप जिह्वा युक्त (सुशंसः) उत्तम स्तुति से प्रसंसित (स्वाहुतः) सुख से आह्वान, बुलाने योग्य (प्रस्कम्बस्य) उत्तम मेधावी विद्वान् के (जीवसे) जीवन के लिए (आयुः) जीवन को (प्रतिरम्) दुःखों से पार करते जो आप (गृह्यते) सत्य की स्तुति करते हुए मनुष्य के लिए आशु का (बोधि) बोध कीजिए और जिस से (देव्यम्) विद्वानों में उत्पन्न हुए (जनय) मनुष्य की रक्षा करते हो इस से सत्कार के योग्य हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो सब से उत्कृष्ट विद्वान् है उसी का सत्कार करें ऐसे ही इस का प्रच्छेद प्रकार आश्रय कर सब उमर और विद्या को प्राप्त करें ।

फिर वह अग्नि किस प्रकार का है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

होतारं विश्वेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।

स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवा इ द्रवत ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुत विद्वानों से बुलाये हुए (अग्ने) विशिष्ट ज्ञानयुक्त विद्वन् । (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानयुक्त (विशः) प्रजा जिस (होतारम्) हवन के कर्ता (विश्वेदसम्) सब सुख प्राप्त (त्वा) आप को (हि) निश्चय करके (समिन्धते) प्रच्छेद प्रकार प्रकाश करती है (सः) सो आप (इह) इन युद्ध आदि कर्मों में उत्तम ज्ञानवाले (देवान्) सुरवीर विद्वानों को (आवह) प्रच्छेद प्रकार प्राप्त हुईए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—विद्वानों के सहाय के बिना, प्रजा के सुख वा दिव्य गुरुओं की प्राप्ति और शत्रुओं पर विजय नहीं हो सकती इस से यह सब मनुष्यों को प्रयत्न के साथ सिद्ध करना चाहिए ॥ १ ॥

फिर वह कैसा और किस के सहाय से किस को प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सवितारमुषसमश्विना भगमग्नि व्युष्टिषु क्षपः ।

कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (स्वध्वर) उत्तम यज्ञ वाले विद्वन् । जो (सुतसोमाः) उत्तम पदार्थों को सिद्ध करते (कण्वासः) मेधावी विद्वान् लोग (व्युष्टिषु) कामनाओं में (सवितारम्) सूर्यप्रकाश (उषसम्) प्रातःकाल (अश्विना) वायुजल (भगम्) ऐश्वर्य (अग्निम्) विद्युत् (क्षपः) रात्रि और (हव्यवाहम्) होम करने योग्य द्रव्यों को प्राप्त करनेवाले (त्वा) आपको (इन्धते) प्रच्छेद प्रकार प्रकाशित करते हैं, वह आप भी उनको प्रकाशित कीजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब क्रियाओं में दिन रात, प्रयत्न से सूर्य आदि पदार्थों को सयुक्तकर वायु, वृष्टि की वृद्धि करनेवाले शिल्परूप यज्ञ का प्रकाश करके कार्यों को सिद्ध करें और विद्वानों के संग से इनके गुण आने ॥ ८ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

पतिर्ध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।

उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवा अद्य स्वर्हसः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् । जो तू (हि) नियन्त्रण करके (अध्वराणां) यज्ञ और (विशाम्) प्रजाओं के (पतिः) पालक (असि) हो इससे आप (अद्य) आज (सोमपीतये) अमृतकपी रसों के पीने रूप व्यवहार के लिए (उषर्बुधः) प्रातःकाल में जागने वाले (स्वर्हसः) विद्याकपी सूर्य के प्रकाश से यथावत् देखने वाले (देवान्) विद्वान् का दिव्यगुणों को (आवह) प्राप्त हुईए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—समासेनाश्रयादि विद्वान् लोग विद्या पदार्थों के प्रजापालनादि यज्ञों की रक्षा के लिए प्रजा में दिव्य गुणों का प्रकाश नित्य किया करें ॥ ९ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्ने पूर्वा अनुवसी विभावसो दीदेय विश्वदर्शतः ।

असि ग्रामेयविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (विभावसो) विशेष दीप्ति को बसाने वाले (अग्ने) विद्या को प्राप्त करनेवाले विद्वन् । (विश्वदर्शतः) सभी को देखने योग्य आप (पूर्वाः) पहले व्यतीत (अनु) फिर (अवसः) आने वाली धीर वर्तमान प्रभान और रात-दिनों को (दीदेय) जानकर एक क्षण भी व्यर्थ न खोवें । आप ही (ग्रामेषु) मनुष्यों के निवास योग्य ग्रामों में (अविता) रक्षा करनेवाले (असि) हो और (यज्ञेषु) यज्ञमें आदि मिल्य पर्यन्त क्रियाओं में (मानुष) मनुष्य व्यक्ति (पुरोहितः) सब साधनों के द्वारा सब सुखों को सिद्ध करने वाले (असि) हो ॥ १० ॥

भाषार्थ—विद्वान् सब दिन एक क्षण भी व्यर्थ न खोवें, सर्वथा बहुत उत्तम-उत्तम कार्यों के अनुष्ठान के लिए सब दिनों को जानकर, निरन्तर प्रजा की रक्षा वा यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला हो ॥ १० ॥

फिर वह किस प्रकार का हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।

मनुष्यैव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य विद्यासम्पन्न (अग्ने) भौतिक अग्नि के समान उत्तम पदार्थों को सम्पादन करनेवाले मेधावी विद्वन् । हम लोग (मनुष्य) तीन प्रकार के यज्ञ के (साधनम्) मुख्य सा क (होतारम्) हवन करने वा प्रहरण करने वाले (मृत्विजम्) यज्ञसाधक (प्रचेतसम्) उत्तम विज्ञानयुक्त (जीरम्) वेगवान् (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यस्वभाव से रहित वा स्वरूप से नित्य (दूतम्) प्रशस्तनीय वृद्धियुक्त वा पदार्थों की देशान्तर में प्राप्त करने वाले (त्वा) आपको (मनुष्यैव) मनमणीय मनुष्य के समान (धीमहि) निरन्तर धारण करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । और आठवें मन्त्र से 'सुतसोमास', कण्वास' इन दो पदों की अनुवृत्ति है । विद्वान् अग्नि आदि साधन और द्रव्य आदि सामग्री के बिना यज्ञ की सिद्धि नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यदेवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।

सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्जान्तेऽर्चयः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (मित्रमहः) मित्रों में बड़े पूजनीय विद्वन् । (यद्) जो आप (सिन्धोरिव) समुद्र की (प्रस्वनितासः) शब्द करती हुई (ऊर्मयः) लहरों के सदृश और (अग्नेः) अग्नि की (अर्चयः) दीप्तियों के तुल्य (आजान्ते) प्रकाशित होते हैं, और (पुरोहितः) अग्रगामी तथा (अन्तरः) सध्यस्थ होकर (देवानाम्) विद्वानों के (दूत्यम्) दूत के कर्म वा स्वभाव को (यासि) प्राप्त होते हैं, सो आप हम लोगों से सत्कार के योग्य क्यों न हो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! तुम जैसे परमेश्वर सबका मित्र, पूजनीय, पुरोहित, अन्तर्यामी होकर दूत के समान सत्य-असत्य कर्मों को जानता है, जिस इश्वर की अनन्त दीप्ति विद्यरती है वह इश्वर सबका पिता, रचने वा पालन करनेवाला है । जैसे न्यायकारी महाराज सब को उपासने योग्य है, वैसे उत्तम दूत भी राजपुरुषों को माननीय होता है ॥ १२ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अधि भुत्कर्णं वह्निभिर्दधैरग्ने सयावभिः ।

आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (भुत्कर्णं) श्रवण करनेवाले (अग्ने) विद्याप्रकाशक विद्वन् । आप प्रीति के साथ (सयावभिः) तुल्य जाने वाले (वह्निभिः) सत्याचार के भार धरनेवाले मनुष्य आदि (दधैः) विद्वान् और दिव्यगुणों के नाथ (अस्माकम्) हम लोगों की वार्त्ताओं को (भुवि) सुनों, तुम और हम लोग (मित्रः) सब के हितकारी (अर्यमा) न्यायाधीश (प्रातर्यावाणः) प्रतिदिन पुरुषार्थ से युक्त (सर्वे) सब (अध्वरम्) अहिमनीय पहले कहे हुए यज्ञ को प्राप्त होकर (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में (आसीदन्तु) ज्ञान को प्राप्त हो वा स्थित हो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब विद्याओं को श्रवण किये हुए धार्मिक मनुष्यों को राजव्यवहार में विशेष करके युक्त करें । विद्वान् लोग शिक्षा से युक्त श्रुतियों से सब कार्यों को मित्र करें और सर्वदा ध्यातव्य को छोड़ निरन्तर पुरुषार्थ में शतन करें । इसके बिना निश्चय है कि व्यवहार वा परमार्थ कभी सिद्ध नहीं होते ॥ १३ ॥

फिर वे विद्वान् कैसे होवें इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अण्वन्तु स्तोमं मस्तः सुदानवोऽग्निजिह्वा कृतावृधः ।

पिबंतु सोमं वस्त्रो घृतव्रतोऽश्विन्यामुषसां सजुः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! (अग्निजिह्वाः) जिनकी अग्नि के समान शब्दविद्या प्रकाशित हुई जिह्वा है (अस्तावृधः) सत्य के बढ़ानेवाले (सुदानवः) उत्तम दानवीर (मस्तः) विद्वान् ! तुम लोगों के (स्तोमम्) स्तुति वा न्यायप्रकाश को (अण्वन्तु) श्रवण करो, इसी प्रकार प्रतिदिन (सजुः) तुल्य सेवने (वस्त्रः) अष्ट (घृतव्रतः) सत्य व्रत का धारण करनेवाले सब मनुष्यजन (उषसां) प्रभात



(अधिकम्याम्) व्याप्तिशील सभा, सेना, शाला, धर्मार्थ, अध्वर्युओं के साथ (सोमम्) पदार्थविद्या से उत्पन्न हुए आनन्दरूपी रस को (पिबतु) पीओ ॥१४॥

भाषार्थ—विद्या, धर्म वा राजसभाओं से जो आजा प्रकाशित हो सब मनुष्य उसका अवलम्ब तथा अनुष्ठान करें। जो सभासद् हो वे भी पक्षपात को छोड़कर प्रतिदिन सब के लिए सब मिलकर जैसे अविद्या, अधर्म, अन्याय का नाश होवे वैसा यत्न करें ॥१४॥

इस सूक्त में धर्म की प्राप्ति, दूत का करना, सब विद्याओं का अवलम्ब, उत्तम बी की प्राप्ति, श्रेष्ठ मङ्ग, स्तुति और सत्कार, पदार्थविद्याओं, सभाध्यक्ष, दूत और यज्ञ का अनुष्ठान, मित्रादिकों का ग्रहण, परस्पर मिलकर सब काम्यों की सिद्धि, उत्तम व्यवहारों से नियति, परस्पर विद्या, धर्म, राजसभाओं को सुनकर अनुष्ठान करना कहा है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए।

यह तीसरी वर्ण और चत्वारिंशती सूक्त समाप्त हुआ ॥

॥

अथ दशार्चस्य पञ्चवत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कम्भः काण्व ऋषिः । अग्निर्वेदाश्च वेदताः । १ भुरिगुणिकः, ५ उष्णिक् छन्दः । ऋषभ स्वरः । २,

३, ७, ८ अनुष्टुप् ४ निबृहनुष्टुप् । ६, ९, १०

विराडनुष्टुप् ५ छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

अथ पंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है। इसके पहले मन्त्र में बिजुली के दुष्टान्त से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

त्वमग्ने वरुणिरह रुद्रा आदित्या उत ।

यज्ञा स्वध्वरं जन्मनुजार्तं घृतप्रपम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्तमान विद्वन् ! आप (इह) इस ससार में (वसन्) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त हुए पण्डित (वृद्धान्) जिन्होंने चत्वारिंश वर्ष ब्रह्मचर्य किया हो उन महाबली विद्वान् और (आदित्यान्) जिन्होंने अष्टतालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य किया हो उन महाविद्वान् लोगों को (उत) और भी (घृतप्रपम्) यज्ञ से सिद्ध हुए घृत से भोजन करने वाले (मनुजार्तम्) मननशील मनुष्य से उत्पन्न हुए (स्वध्वरम्) उत्तम यज्ञ को सिद्ध करनेहारे (जन्म) पुरुषार्थी मनुष्य को (यज्ञ) समागम करगया कर ॥१॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अग्ने पुरुषों का कम-से-कम चौबीस और अधिक-से-अधिक अष्टतालीस वर्ष तक और कन्याओं को कम से-कम सोलह और अधिक से-अधिक चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करावें, जिनमें सम्पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को पाकर परीक्षा और स्वयंवर विधि से विवाह करें जिनमें सब सुखी रहे ॥१॥

फिर वह विद्वान् क्या करे इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अग्नीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।

ताम्रौहिदम्ब गिर्विश्वर्याश्रितमा वड ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (रोहिदम्ब) वेग आदि गुणयुक्त (गिर्विश्व) वाणियों से सवित (अग्ने) विद्वन् ! (वडम्) आप इस ससार में जो (विचेतसः) नाना प्रकार के शास्त्रोक्त ज्ञानयुक्त (अग्नीवान्) यथार्थ विद्या के सेवन करनेवाले (देवा) दिव्य गुणवान् विद्वान् (दाशुषे) दानशील पुरुषार्थी मनुष्य के लिए सुख देते हैं (ताम्) उन (अर्योश्चर्याश्रितम्) भूमि आदि तताम दिव्य गुण वालों को (हि) निश्चय करके (आवह) प्राप्ति दिलाए ॥२॥

भाषार्थ—जब विद्वान् विद्याधियों को तैत्तिरीय पृथिवी आदि तैत्तिरीय पदार्थों की विद्या को अच्छे प्रकार साक्षात्कार कराते हैं तब वे बिजुली आदि अनक पदार्थों से उत्तम-उत्तम व्यवहारों की सिद्धि कर सकते हैं ॥२॥

फिर वह विद्वान् क्या करे इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् ।

अक्रिस्वन्मन्त्रित मस्कण्वस्य अधी हवम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (जातवेद) उत्पन्न हुए पदार्थों को जाननेहारे (मन्त्रित) बड़े द्रव्ययुक्त विद्वन् ! आप (मियमेधवत्) विद्याप्रिय बुद्धि वाले के तुल्य (अक्रिस्वत्) तीन अर्थात् शरीर, अन्य प्राणी और मन आदि इन्द्रियों के द्वारा से रहित के समान (विरूपवत्) अनेक प्रकार के रूपवान् के तुल्य (अक्रिस्वत्) धातुओं के स्वरूप प्राणों के सदृश (प्रस्कण्वस्य) उत्तम मेधाओं मनुष्य के (हवम्) खेने-खेने, पढ़ाने योग्य व्यवहार को (अधी) अवलम्ब किया करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यों ! जैसे सब के प्रिय करने वाले लोग शरीर, वाणी और मन के दोषों से रहित नाना विद्याओं को प्रत्यक्ष करने और अपने प्राण के सामन सब जानते हुए विद्वान् मनुष्यों के प्रिय काम्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे तुम भी किया कर ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् लोग उसको किसके लिए प्रेरणा करें इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

महिकेव उतये प्रियमेधा अहवत ।

राजन्तमध्वराणामग्नि शुक्रं शोचिषा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे महाविद्वानो ! (महिकेवः) जिनके बड़े-बड़े शिल्पविद्या की सिद्ध करनेवाले कारीगर हो ऐसे (प्रियमेधा) सत्यविद्या वा शिक्षाओं की प्राप्ति करानेवाली मेधा बुद्धियुक्त आप लोग (अध्वराणाम्) पालनीय व्यवहाररूपी कर्मों की (उतये) रक्षा आदि के लिए (शुक्रं) शुद्ध सीधकारक (शोचिषा) तेज से (राजन्तम्) प्रकाशमान (अग्निम्) प्रसिद्ध वा बिजुली रूप आग के सदृश सभापति को (अहवत) उपदेश वा उससे अवलम्ब किया कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ—कोई मनुष्य धार्मिक बुद्धिमानी के सङ्ग के बिना उत्तम-उत्तम व्यवहारों की सिद्धि करने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को योग्य है कि इनके सङ्ग से इन विद्याओं का साक्षात्कार अवश्य करें ॥ ४ ॥

फिर वह किससे जानने को समर्थ होवे इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

घृताहवन सन्त्येमा उषु अधी गिरः ।

याभिः कण्वस्य सुनवो हवन्तेऽवसे स्वा ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (सन्त्ये) सुनवों की क्रियाओं में कुशल (घृताहवन) बी को अच्छे प्रकार ग्रहण करनेवाले विद्वन् मनुष्य ! जैसे (कण्वस्य) मेधावी विद्वान् के (सुनवः) पुत्र, विद्यार्थी (अवसे) रक्षा आदि के लिए (याभिः) जिन वेद-वाणियों से जिन (स्वा) तुम्हको (हवन्ते) ग्रहण करते हैं सो आप (उ) भी उनसे उनकी (इमा) इन प्रत्यक्ष (गिर) वाणियों को (सुधुषि) अच्छे प्रकार सुनो और ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य इस ससार में विदुषी माता, विद्वान् पिता और सब उत्तर देने वाले आचार्य आदि से शिक्षा वा विद्या को ग्रहण कर परमार्थ और व्यवहार को सिद्ध कर विज्ञान और शिल्प को करने में प्रवृत्त होता है वे सब सुनवों को प्राप्त होता है, भालमी कभी नहीं होते ॥ ५ ॥

फिर उसको किस प्रकार ग्रहण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वा चित्रश्रवस्तम हवन्ते विश्व जन्तवः ।

शोचिष्केषां पुरुषियासं हव्याय वोळ्हवे ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (चित्रश्रवस्तम) अत्यन्त श्रद्धावान् अन्न वा अवलम्ब से व्युत्पन्न (पुरुषियासं) बहुता को तृप्त करनेवाले (अग्ने) बिजुली के तुल्य विद्याओं में व्यापक विद्वन् ! जो (जन्तवः) प्राणी लोग (विश्व) प्रजाओं में (वोळ्हवे) विद्या प्राप्ति करानेहारे (हव्याय) करने योग्य पठन-पाठनरूप यज्ञ के लिए जिस (शोचिष्केषां) जिसके उचित आचरण है उम (हव्याम्) आपको (हवन्ते) ग्रहण करते हैं, वह आप उन को विद्या और शिक्षा देकर विद्वान् और शीलयुक्त शीघ्र कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अनेक गुणयुक्त अग्नि के समान विद्वान् को प्राप्त होकर विद्याओं को ग्रहण करें ॥ ६ ॥

फिर उसको किस प्रकार जानकर धारण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

नि स्वा होतारमुत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।

श्रुत्केणं सप्रथस्तमं विप्रां अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बहुभूत सत्पुरुष ! जो (विप्रा) मेधावी, विद्वान् लोग (दिविष्टिषु) पवित्र पठन-पाठन क्रियाओं में अग्नि के तुल्य जिस (होतारम्) ग्रहणकारक (ऋत्विजम्) ऋतुओं को सगत करने (वसुवित्तमम्) सब विद्याओं को सुनने (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त विस्तार के साथ वर्तने (वसुवित्तमम्) पदार्थों को ठीक-ठीक जाननेवाले (स्वा) तुम्हको (दधिरे) धारण करते हैं उन को तू भी धारण कर ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य उत्तम कार्यसिद्धि के लिए प्रयत्न करने और चक्रवर्ती राज्य, श्री और विद्याधन की सिद्धि करने को समर्थ हो सकते हैं वे शोक को प्राप्त नहीं होते ॥ ७ ॥

फिर उसको कैसा जानें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।

वृज्जा विभ्रतो हविग्ने मसीय दाशुषे ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्तमान विद्वन् ! जैसे क्रियाओं में कुशल (दाशुषे) दानशील मनुष्य के लिए (प्रयः) अन्न (वृज्ज) बड़े सुख करनेवाले (हवि) दान-लेने योग्य पदार्थ और (आ) प्रकाशकारक क्रियाओं को (विभ्रत) धारण करने हुए (सुतसोमा) ऐश्वर्ययुक्त (विप्रा) विद्वान् लोग (त्वा) तुम्हको (अचुच्यवुः) सब प्रकार प्राप्त हो वैसे तू भी इनको प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिए जिस प्रकार उत्तम सुख हो उसको विद्याविशेष परीक्षा से प्रत्यक्ष कर अनुक्रम से सबको ग्रहण करावें जिससे इन लोगों के सब काम सिद्ध होवें ॥ ८ ॥

इस के अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य किसके लिए क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

प्रातर्याणः सहस्रकृत सोमपेयाय सन्त्य ।

इहाद्य दैव्यं जन्म बहिरा सादया वसो ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (सहस्रकृत) सबको सिद्ध करने (सम्बन्ध) जो संभजनीय क्रियाओं में कुशल विद्वानों में सज्जन (बसो) ध्येष्ट गुणों में बसने वाले विद्वन् । तु (इह) इस विद्या व्यवहार में (अथ) आज (सोमवेद्याय) सोमरस के पीने के लिए (प्रातर्भाष्य) प्रातःकाल पुरुषार्थ को प्राप्त होनेवाले विद्वानों और (वैध्वम्) विद्वानों में कुशल (अथ) पुरुषार्थयुक्त धार्मिक मनुष्य और (बहिः) उत्तम आसन को (आस्ताव्य) प्राप्त कर ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य उत्तम गुणयुक्त मनुष्यों को ही उत्तम वस्तु देते हैं ऐसे मनुष्यों का ही संग सब करें । कोई भी मनुष्य विद्या वा पुरुषार्थयुक्त मनुष्यों के संग वा उपदेश के बिना पवित्र गुण, पवित्र वस्तुओं और दिव्य सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

अर्वाञ्च वैद्यं जनयसे यस्व संहृतिभिः ।

अथ सोमः सुदानवस्तं पाततिरो अहम् ॥ १० ॥

पदार्थ—(हे सुदानव) उत्तम दानशील विद्वान् लोगो ! आप (संहृतिभिः) तुल्य आह्वानयुक्त क्रियाओं से (अर्वाञ्चम्) वेगादि गुणवाले घोड़ों को प्रान्त करने वा करनेवाले (वैद्यम्) दिव्य गुणों से प्रवृत्त (तिरोअहम्) चोर आदि का तिरस्कार करनेहारे दिन में प्रसिद्ध (जनम्) पुरुषार्थ में प्रकट हुए मनुष्य की (पात) रक्षा कीजिए और जैसे (अथम्) यह (सोम) पदार्थों का समूह सब के सत्कारार्थ है, वैसे (अने) हे विद्वन् ! (तम्) उसका तु भी (यस्व) सत्कार कर ॥ १० ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सर्वदा सज्जनों को बुला, सत्कार कर सब पदार्थों का विज्ञान, सोचन और उनसे उपकार ग्रहण करना चाहिए और उत्तरोत्तर इसकी जानकारी इस विद्या का प्रचार किया करें ॥ १० ॥

इस सूक्त में वसु, रुद्र और आदित्यों की गति तथा प्रमाण आदि कहा है इससे हम सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥ ४५ ॥

यह पैतालीसवाँ सूक्त और बत्तीसवाँ वयं समाप्त हुआ ॥

५५

अथ पञ्चवक्त्रं च दक्षत्वारिषस्य सुतस्य प्रसक्तम् अवि । अविनो वेष्टे । १, १०, विराट्पायत्री, ३, ६, ११, १२, १४, गायत्री, २, ४, ५,

७—६, १३, १५ निचुद्गायत्री क छन्दः । बह्वृच स्वरः ॥

अथ क्षयालीसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके पहले मन्त्र में उषा और सूर्य-चन्द्र के वृष्टान्त से बिजुली स्त्रियों का प्रकाश किया है—

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुपे वामश्विना बृहत् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे बिजुलि ! तू—जैसे (एषो) यह (अपूर्व्या) किसी पूर्ववर्ती के द्वारा न बनाई गई (विष) सूर्यप्रकाश से उत्पन्न हुई (प्रिया) सब की प्रीति को बढ़ाने वाली (उषा) दाहनील उषा अर्थात् प्रातःकाल की बेला (बृहत्) बड़े दिन को प्रकाशित करती है वैसे मुझको (व्युच्छति) प्रानन्दित करती है और जैसे वह (वाम श्विना) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य पढ़ाने और उपदेश करनेहारी स्त्रियों के (स्तुपे) गुणों का प्रकाश करती है, वैसे मैं भी तुझको सुखों में बसाऊ और तेरी प्रशंसा भी करूँ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्रियाँ सूर्य, चन्द्र और उषा के सदृश सब प्राणियों को सुख देती हैं, वे प्रानन्द को प्राप्त होती हैं इनसे बिपरीत कभी प्रानन्द को प्राप्त नहीं हो सकती ॥ ११ ॥

किर मे अश्वि कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

या दस्त्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥ १२ ॥

पदार्थ—ह मनुष्यों ! तुम लोग (या) जो (दस्त्रा) वृद्धों को नष्ट करने वाले (सिन्धुमातरा) समुद्र व नदियों के प्रमाणकारक (मनोतरा) मन के समान पार करनेहारे (धिया) कर्म से (रयीणाम्) धनो के (देवा) वेनेहारे (वसुविदा) बहुत धन को प्राप्त करानेवाले अग्नि और जल के तुल्य वर्तमान अध्यापक और उपदेशक है उनकी सेवा करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जैसे कारीगर लोगो से ठीक-ठीक प्रयुक्त किये हुए अग्नि, जल-यानों को मन के वेग के समान तुरन्त पहुँचाने वाले वा बहुत धन को प्राप्त कराने वाले होते हैं, उसी प्रकार अध्यापक और उपदेशकों को होना चाहिए ॥ १२ ॥

वक्ष्यन्ते वां ककुहासो जूषायामधि विष्टपि । यद्वा रथो विभिष्यतात् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! जो (जूषायां) वृद्धावस्था में वर्तमान (ककुहास) बड़े विद्वान् (वाम्) तुम शिल्पविद्या पढ़ने-पढ़ाने वालों को विद्याओं का (वक्ष्यन्ते) उपदेश करें तो (वाम्) आप लोगों का बनाया हुआ (रथ) विमानादि सवारी (विभि) पक्षियों के तुल्य (विष्टपि) अन्तरिक्ष में (अधि) ऊपर (पतात्) चले ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बड़े ज्ञानियों के समीप से कारीगरी और शिक्षा को ग्रहण करें तो विमानादि सवारियों को रचके पक्षी के तुल्य आकाश में जाने-आने को समर्थ होंगे ॥ १३ ॥

हविषां जारो अपां पिपर्सि पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य वर्षणिः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (नरा) नीति के सिखाने-पढ़ाने और उपदेश करनेहारे लोगो ! तुम जैसे (जारः) विभागकर्ता (पपुरिः) अश्वों प्रकार प्रति (पिता) पालन

करने (कुटस्य) कुटिल मार्ग को (वर्षणि) दिललानेहारा सूर्य (हविषा) आहुति से बढकर (अपाम्) जलो के योग से (पिपर्सि) पूर्णकर प्रजाओं का पालन करता है, वैसे प्रजा का पालन करो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे सविता वर्षा के द्वारा प्राणी और अप्राणियों को पुष्ट करता है वैसे ही सब को पुष्ट करें ॥ १४ ॥

आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पार्त सोमस्य धृष्णुया ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) पवित्रगुण स्वभावयुक्त (मतवचसा) ज्ञान से बोलने वाले मभा सेना के पति ! (वाम्) तुम्हारे (आदार) सब प्रकार से शत्रुओं को विदारगकर्ता गुण हैं उनसे और (धृष्णुया) प्रगल्भता से (सोमस्य) ऐश्वर्य्य और (मतीनाम्) मनुष्यों की (पातम्) रक्षा करो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि दृढ़ बल युक्त सेना से शत्रुओं की जीत अपनी प्रजा के ऐश्वर्य्य की निरन्तर वृद्धि किया करें ॥ १५ ॥

किर सूर्य्य चन्द्रमा के सभा न सभापति क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

या नः पीपदश्विना ज्योतिर्मती तमस्तिरः ।

तामस्मे रासाथामिषम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) मभासेनाध्यक्षो ! जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा की (ज्योतिर्मती) उत्तम प्रकाशयुक्त कान्ति (तम) रात्रि का निवारण करके प्रभात और सुकलपक्ष से सबका पोषण करती है वैसे (तामस्मे) हमारी अविद्या को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर (न) हम सबको (ताम्) उस (इषम्) अन्न आदि को (रासाथाम्) दिया करो ॥ १६ ॥

भाषार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस प्रकार सूर्य्य और चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर प्राणियों को सुखी करत हैं वैसे ही सभा और सेना के अध्यक्षों का चाहिए कि अन्धकार को दूर कर प्रजा को सुखी करें ॥ १६ ॥

आ नो नावा मतीनां पार्त पाराय गन्तवै । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) व्यवहार करनेवाले कारीगरो ! आप (मतीनाम्) मनुष्यों की (नावा) नौका से (पाराय) पार (गन्तवै) जाने के लिए (नः) हमारे वास्ते (आथातम्) प्राप्त हुईए और (रथम्) विमान आदि यान समूहों को (युञ्जाथाम्) युक्तकर चलाइए ॥ १७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि रथ से स्थल अर्थात् सूखे में, नाव से जल में विमान से आकाश में जाया-आया करें ॥ १७ ॥

किर वह यान किस प्रकार का बनाना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज इन्द्रवः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! जो (वाम्) आप लोगो का (पृथु) बिस्तृत (रथ) यानसमूह अर्थात् अनेकविध सवारी हैं उनको (सिन्धूनाम्) समुद्रों के (तीर्थे) तरानेवाले में (अरित्रम्) यान रोकने और बहुत जल के बाह्य ग्रहणार्थ लोहे का साधन (विष) प्रकाशमान बिजुली अग्न्यादि और (इन्द्रवः) जलाधि को आप (धिया) क्रिया से (युयुज्) युक्त कीजिए ॥ १८ ॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य अग्नि जल आदि से बननेवाले यान अर्थात् सवारी के बिना पृथिवी, समुद्र और अन्तरिक्ष में सुख से जाने-आने में समर्थ नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

किर मे कारीगर क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दिक्स्क्वाम इन्द्रवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वत्रि कुहं धित्सथः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (क्वाम) मेधावी विद्वान् लोगो ! तुम इन कारीगरो से पूछो कि तुम लोग (सिन्धूनाम्) समुद्रों के (पदे) मार्ग में जो (विष) प्रकाश-मान् अग्नि और (इन्द्रवः) जल आदि हैं उन्हें और (स्वम्) धनता (वत्रिम्) सुन्दर रूपयुक्त (वसु) धन (कुहं) कहाँ (धित्सथः) धरने की इच्छा करते हो ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की शिक्षा के अनुकूल अग्नि, जल के प्रयोग से युक्त यानों पर स्थित होके राजा-प्रजा के व्यवहार की सिद्धि के लिए समुद्रों के छोर तक जावें-आवें तो बहुत उत्तमोत्तम धन को प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥

इस विषय का उत्तर अगले मन्त्र में दिया है—

अभूदु मा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः ।

व्यस्यजिह्वयाऽसितः ॥ १० ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! तुम लोग जैसे (असितः) अश्व अर्थात् जिस का किसी के साथ बन्धन नहीं है (आः) प्रकाशयुक्त (सूर्यः) सूर्य के (अंशवे) किरणों के विभागार्थ (जिह्वया) जीभ के समान (व्यस्यत्) प्रसिद्धि से सम्मुख प्रकाशमान (अभूत्) होता है वैसे उसी पर यान का स्थापन कर उचित स्थान में (हिरण्यम्) सुवर्णादि उत्तम पदार्थों को धरो ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे सवारी पर चलने वाले मनुष्यों ! तुम दिशाओं के जानने वाले चम्बक, ध्रुवग्र और सूर्यादि कारण से दिशाओं को जान, यानों को चलाया और ठहराया भी करो जिससे अन्ति में पड़कर अन्यत्र गमन न हो, अर्थात् जहाँ जाना चाहते हो ठीक वही पहुँचो, गटकना न हो ॥ १० ॥

फिर उसी उत्तर का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अधुं पारमेतवे पन्थां ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि सुतिर्दिवः ॥११॥**

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि समुद्र के ( पारम् ) पार ( एतवे ) जाने के लिए जहाँ ( विव ) प्रकाशमान सूर्य और ( ऋतस्य ) जल का ( विलुति. ) अनेक प्रकार गमनार्थ ( पन्था ) मार्ग ( अभुत् ) हा वहाँ स्थिर होके ( साधुया ) उत्तम सवारी से सुलपूर्वक देश-देशान्तरो का ( अदर्शि ) देखें तो भीमन्त क्यों न हों ॥११॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र जाने जाने के लिए सीधे और शुद्ध मार्गों को रच और विमानादि यानों से इच्छापूर्वक गमन करके नाना प्रकार के सुखों को प्राप्त करें ॥११॥

फिर सभा और सेनापति अधिवर्षों से क्या पाना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**सत्तदिदश्चिनोर्गो जग्ता प्रति भूपति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥१२॥**

पदार्थ—जो ( जग्ता ) स्तुति करनेवाला विद्वान् मनुष्य ( पिप्रतो ) पूर्ण करनेवाले ( अधिवर्षो ) सभा और सेनापति से ( सोमस्य ) उत्पन्न हुए जगत् के बीच ( मदे ) धानन्दयुक्त व्यवहार में ( अब ) रक्षादि का ( प्रतिभूषति ) प्रलङ्घन करना है ( सत्तत् ) उम-उम सुख को ( इत् ) ही प्राप्त होना है ॥१२॥

भाषार्थ—कोई भी विद्वानो में शिक्षा वा क्रिया को ग्रहण किय बिना सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता इसमें उसका खोज नित्य करना चाहिए ॥१२॥

फिर वे अधिवर्षों कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**वावसाना विवस्वति सोमस्य पीन्या गिरा ।**

**मनुष्वच्छू आ गतम् ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे ( वावसाना ) अत्यन्त सुख में वसाने ( गच्छू ) मनुष्यों के उत्पन्न करनेवाले पढ़ाने और सत्य के उपदेश करनेवाले ! आप ( विवस्वति ) सूर्य के प्रकाश में ( सोमस्य ) उत्पन्न हुए जगत् के मध्य में ( पीन्या ) रक्षाकपी क्रिया वा ( गिरा ) वाणी से हमको ( मनुष्वत् ) रक्षा करनेवाले मनुष्यों के तुल्य ( आ, गतम् ) सब प्रकार प्राप्त हुआ ॥१३॥

**अथ चतुर्थाऽध्यायाऽऽरम्भः ॥**

**ओ ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यज्जुं तन्न आ सुव ॥१॥**

अथ इत्यर्थस्य सप्तचत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रत्यक्ष ऋषि । अधिवर्षो वेधते । १,५

निचृत्यप्या बृहती, ३,७ पथ्या बृहती, ६ बिगद पथ्या बृहती

च छन्दः । मध्यम स्वर । २,६,८ निचृत्तस्य पङ्क्तिः,

४,१० सप्त पङ्क्तिस्तुल्य । पञ्चम स्वर ॥

अब इसके आगे चौथे अध्याय के भाष्य का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में अधिवर्षों से क्या सिद्ध करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

**अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमं ऋतावृधा ।**

**तमश्चिना पिबतं तिरो अह्यं ध्रुवं रत्नानि दाशुपे ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( ऋतावृधा ) जल वा यथार्थ शिल्पक्रिया से बढ़ानेवाले ! ( अधिवर्षा ) सूर्य, वायु के तुल्य सभा और सेना के ईश ! ( वाम् ) जा ( अयम् ) यह ( मधुमत्तम ) अत्यन्त मधुरादि गुणयुक्त ( सोम. ) यान, व्यापार वा वैद्यक शिल्पक्रिया से हम ने ( सुत ) सिद्ध किया है ( तम् ) उस ( तिरो अह्यम् ) तिरस्कृत दिन में उत्पन्न हुए रस को तुम लोग ( पिबतम् ) पीओ और विद्यादान करनेवाले विद्वान् के लिए ( रत्नानि ) रमणीय सुवर्णादि को ( दाशुपे ) धारण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—सभा के अध्यक्ष आदि मदा ओषधियों के सेवन से अच्छे प्रकार बलवान् होकर प्रजा की शोभाओं को बढ़ावें ॥ १ ॥

उत्तसे सिद्ध किये हुए यान से क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

**निबन्धुरेण विवृता सुपेशसा रथेना यातमश्चिना ।**

**कण्वांसो वां ब्रह्म कृषन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे ( अधिवर्षा ) पावक और जल के तुल्य सभा और सेना के ईश ! तुम लोग जैसे ( कण्वास ) बुद्धिमान् लोग ( अध्वरे ) अग्निहोत्रादि वा शिल्पक्रिया से सिद्ध यज्ञ में जिस ( निबन्धुरेण ) तीन बन्धनयुक्त ( विवृता ) तीन शिल्पक्रिया के प्रकारों से पूरित ( सुपेशसा ) उत्तम रूप वा मोने से जटित ( रथेन ) विमान आदि यान से देशदेशान्तरो में शीघ्र जा-आके ( ब्रह्म ) अन्नादि पदार्थों को ( कृषन्ति ) करते हैं वैसे उससे देशदेशान्तर और दीपदीपास्तरो को ( आयातम् )

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! तुम जिस प्रकार परोपकारी मनुष्य प्राणियों के निवास और विद्याप्रकाश के दान से सुखी को प्राप्त करते हैं, वैसे तुम भी उनकी बहुत सुख प्राप्त कराओ ॥१३॥

इन् अधिवर्षों से क्या प्राप्त करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**सुवोरुपा अनु श्रियं परिजमनोरुपाचरन् । ऋता वनथो अक्रुऽभिः ॥१४॥**

पदार्थ—हे ( ऋता ) उचित गुण सुन्दरस्वरूप सभासेनापते ! जैसे ( उवा. ) प्रभात समय ( अक्रुभि. ) रात्रियों के साथ ( उपाचरन् ) प्राप्त होता है वैसे जिन ( परिजमनो ) सर्वत्र गमनकर्ता पदार्थों को प्रकाश से फँकनेवाले सूर्य और चन्द्रमा के सदृश बलमान ( सुवो ) आपका ध्याय और रक्षा हमको प्राप्त होवे आप ( अक्रुभि. ) उत्तम लक्ष्मी को ( अनुजमनः ) अनुकूलता से सेवन कीजिए ॥१४॥

भाषार्थ—राजा और प्रजाजनो को चाहिए कि परस्पर प्रीति से बड़े ऐश्वर्यों को प्राप्त करके मदा सबके उपकार में यत्न किया करें ॥१४॥

फिर वे अधिवर्षों हम लोगों के लिए क्या क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**उभा पिबतमश्चिनोभा नः शर्म यच्छतम् ।**

**अविद्रियाभिरुतिभिः ॥ १५ ॥ ३५ ॥**

पदार्थ—हे सभा और सेना के ईश ! ( अधिवर्षा ) सम्पूर्ण विद्या और सुख में व्याप्त होनेवाले ! तुम दोनों अमृतकूप ओषधियों के रस को ( पिबतम् ) पीओ और ( उभा ) दोनों ( अविद्रियाभि ) अल्पजित क्रियायुक्त ( अतिभि ) रक्षाओं से ( नः ) हमको ( शर्म ) सुख ( यच्छतम् ) देओ ॥१५॥

भाषार्थ—जो सभा और सेनापति आदि राजपुरुष प्रीति और विनय से प्रजा की पालना करें तो प्रजा भी उनकी रक्षा अच्छे प्रकार करें ॥१५॥

इस सूक्त में उवा और अधिवर्षों का प्रत्यक्षार्थ बरान किया है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह पंतीसवाँ बर्ग छपालीसवाँ सूक्त और तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

इति श्रीमत्परिब्राजकाचार्य महाविद्वान् धीयुत स्वामी बिरबानन्त सरस्वतीजी के शिष्य दयानन्दसरस्वती स्वामी ने आर्यभाषा से सुगोभित प्रमाण सहित ऋग्वेदभाष्य के तीसरे अध्याय को पूर्ण किया ॥ ३ ॥

॥

आओ-आओ ( तेवाम् ) उन बुद्धिमानों के ( हवम् ) ग्रहण करने योग्य विद्याओं के उपदेश को ( शृणुतम् ) सुनो और अन्नादि समृद्धि को बढ़ाया करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमानद्वार है । मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सङ्ग से पदार्थविज्ञानपूर्वक यज्ञ और शिल्पविद्या की हरतक्रिया का साक्षात् करके व्यवहार कार्यों को सिद्ध करें ॥२॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**अधिना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।**

**अथाद्य दंसा वसु विभ्रता रथं दाश्रांसमुप गच्छतम् ॥३॥**

पदार्थ—हे ( अधिवर्षा ) सूर्य, वायु के समान कर्म करनेवाले और ( दंसा ) दुःखों के दूर करनेवाले ! ( वसु ) सबसे उत्तम धन को ( विभ्रता ) धारण करने तथा ( ऋतावृधा ) यथार्थ गुणसयुक्त प्राप्ति साधन से बड़े हुए सभा और सेना के पति आप ( अद्य ) आज वर्तमान दिन में ( मधुमत्तमम् ) अत्यन्त मधुरादि गुणों से युक्त ( सोमम् ) बीर रस की ( पातम् ) रक्षा करो ( अथ ) तत्पश्चात् पर्वोक्त ( रथे ) विमानादि यान में स्थित होकर ( दाश्रांसम् ) देन वाले मनुष्य के ( उपागच्छतम् ) समीप प्राप्त हुआ कीजिए ॥३॥

भाषार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जैसे वायु से सूर्य-चन्द्रमा की पुष्टि और अन्धरे का नाश होता है वैसे ही सेना के पतियों से प्रजास्थ प्राणियों की सन्तुष्टि, दुःखों का नाश और धन की वृद्धि होती है ॥३॥

**विषधस्थे बर्हिषि विश्वेदेसा मध्वा यज्ञं विमिक्षतम् ।**

**कण्वांसो वां सुतसोमा अभिधवो युवां हवन्ते अश्चिना ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे ( विश्वेदेसा ) अखिल घनों के प्राप्त करनेवाले ( अधिवर्षा ) रात्रियों के धर्म में स्थित सभा सेनाओं के रक्षक ! आप जैसे ( अभिधव ) सब प्रकार से विद्याओं के प्रकाशक और विद्युदादि पदार्थों के साधक ( सुतसोमा ) उत्पन्न पदार्थों के दाहक ( कण्वासः ) मेधावी विद्वान् लोग ( विषधस्थे ) जिस में तीनों भूमि जल पवन स्थिति के लिए हों उस ( बर्हिषि ) घन्तरिक्ष में ( मध्वा ) मधुर रस से ( वाम् ) आप और ( अहम् ) शिल्पकर्म को ( हवन्ते ) ग्रहण करते हैं वैसे ( विमिक्षतम् ) सिद्ध करने की इच्छा करो ॥४॥

भाषार्थ—जैसे मनुष्य लाग विद्वानों से विद्या सीख, यान रच और उसमें जल आदि युक्त करके शीघ्र जाने-आने के लिए समर्थ होते हैं वैसे अन्य उपाय से नहीं, इसलिये उसमें परिश्रम अवश्य करें ॥४॥



किर वे क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यामिः कयवमभिष्टिभिः प्रावतं शुवमभिनः ।

तामिः चक्षुःस्माँ अवतं शुभस्पती यातं सोममृतावुधा ॥५॥

पदार्थ—हे ( अमृतवुधा ) मत्स्य अनुष्ठान से बढनेवाले ( शुभस्पती ) कल्याणकारक कर्म वा अष्ट गुणसमूह के पालक ! ( अविभना ) सूर्य और चन्द्रमा के गुणयुक्त सभा सेनाध्यक्ष ! ( शुवम् ) आप दोनों ( यामि ) जिन ( अमि-  
ष्टिभिः ) इच्छाओं से ( सोमम् ) अपने ऐश्वर्य और ( कयवम् ) मेधावी विद्वान् की ( पालम् ) रक्षा करते हैं उनसे ( अस्वाम् ) हम लोगों की ( सु ) अच्छे प्रकार ( अस्वाम् ) रक्षा कीजिए और जिनसे हमारी रक्षा करें उनसे सब प्राणियों की ( अस्वाम् ) रक्षा कीजिए ॥५॥

भाषार्थ—सभा और सेना के पति राजपुरुष जैसे अपने ऐश्वर्य की रक्षा करें वैसे ही प्रजा और सेनाओं की रक्षा सदा किया करें ॥५॥

यहाँ पहला वर्ग समाप्त हुआ ॥

किर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुदासं दक्षा वसु विभ्रंता रवे पृष्टां बहतमभिनः ।

रथि समुद्रादुत वा दिवस्पत्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( दक्षा ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ( वसु ) विद्यादि धन समूह को ( विभ्रंता ) धारण करते हुए ( अविभना ) वायु और बिजुली के समान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त ! आप जैसे ( सुदासं ) उत्तम सेवकयुक्त ( रवे ) विमानादि यान में ( समुद्रात् ) सागर वा अन्तरिक्ष से ( उत ) और ( दिव ) प्रकाशयुक्त सूर्य से पार ( पृष्टः ) सुखप्राप्ति की निमित्त ( पुरुस्पृहम् ) जो बहुतों की इच्छित हो उस ( रथिम् ) राज्यलक्ष्मी को धारण करते हैं वैसे ( अस्मे ) हमारे लिए (परिभक्तम्) धारण कीजिए ॥६॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि सेना और प्रजा के अर्थ नाना प्रकार का धन और समुद्रादि के पार जाने के लिए विमान आदि यान रखकर सब प्रकार सुख की उन्नति करें ॥६॥

किर वे क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधिं तुर्वशं ।

अतो रथेन सुवृता न आ गतं साक सूर्यस्य रश्मिभिः ॥७॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) सत्य-गुण-कर्म स्वभाव वाले सभा सेना के ईश ! आप ( यत् ) जिन ( सुवृता ) उत्तम अङ्गों से परिपूर्ण ( रथेन ) विमान आदि यान से ( यत् ) जिस ( परावति ) दूर देश में गमन करने तथा ( तुर्वशं ) वेद और शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् जन के ( अधिष्ठ ) ऊपर स्थित होते हैं ( अतः ) इससे ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( रश्मिभिः ) किरणों के ( साकम् ) साथ ( न ) हम लोगों को ( आगतम् ) सब प्रकार प्राप्त हुईए ॥७॥

भाषार्थ—राजसभा के पति जिस सवारी से अन्तरिक्ष मार्ग से देशान्तर जाने में समर्थ हों वे उसको प्रयत्न से बनायें ॥७॥

किर वह किस हेतु वाले हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरथियो बहन्तु सवनेदुप ।

इषं पृञ्चन्ता सुकृतं सुदानं वा बहिः सिदतं नरा ॥८॥

पदार्थ—हे ( अर्वाञ्चा ) घोड़े के समान वेगों को प्राप्त ( पृञ्चन्ता ) सुलो के करानेवाले ( नरा ) सभा सेनापते ! आप, जो ( वाम् ) तुम्हारे ( सत्य ) भाप आदि अश्वयुक्त ( सुकृते ) सुन्दर कर्म करने ( सुदानं ) उत्तम दाता मनुष्य के लिए ( इषम् ) धर्म की इच्छा वा उत्तम अन्न आदि ( बहिः ) आकाश वा अष्ट पदार्थ ( सबन्ता ) यज्ञ की सिद्धि की क्रिया ( अध्वरथियो ) और पालनीय चक्रवर्ती राज्य की लक्ष्मियों को ( आग्रहन्तु ) प्राप्त करावे उन पुरुषों का (उपसीदतम्) सङ्ग सदा किया करो ॥८॥

भाषार्थ—राजा और प्रजाजनों को चाहिए कि आपस में उत्तम पदार्थों को देने-लेकर सुखी हो ॥८॥

किर वे क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यस्त्वचा ।

येन शम्बूदृष्टुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) सत्याचरण करनेवाले सभासेना के स्वामी ! आप ( येन ) जिस ( सूर्यस्त्वचा ) सूर्य की किरणों के समान भास्वर ( रथेन ) गमन करानेवाले विमानादि यान से ( आगतम् ) अच्छे प्रकार आगमन करें ( तेन ) उससे ( वासुषे ) दानशील मनुष्य के लिए ( मध्वः ) मधुरगुणयुक्त ( सोमस्य ) पदार्थ समूह के ( पीतये ) पान वा भोग के अर्थ ( वसु ) कार्यक्ष्मी द्रव्य को ( दृष्टुम् ) प्राप्त कराइए ॥९॥

भाषार्थ—राजपुरुष जैसे अपने हित के लिए प्रयत्न करते हैं उसी प्रकार प्रजा के सुख के लिए भी प्रयत्न करें ॥९॥

किर उनके प्रति प्रजाजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उच्येभिरर्वागवसे पुरुवधं अर्केभ्य नि ह्वयामहे ।

शश्वत्कवराणां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरभिनः ॥१०॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( पुरुवधम् ) बहुत विद्वानों में बसनेवाले ( अविभना ) वायु और सूर्य के समान वर्तमान धर्म और ध्याय के प्रकाशक ! ( अर्केभ्यः ) रक्षादि के अर्थ हम लोग ( उच्येभ्यः ) वेदोक्त स्तोत्र वा वेदविद्या के जाननेवाले विद्वानों के इष्ट वचनों के ( अर्के ) विचार से जहाँ ( कवराणाम् ) विद्वानों की ( प्रिये ) प्यारी ( सदसि ) सभा में आप लोगों को ( निह्वयामहे ) प्रतिशय भड़ा कर बुलाते हैं वहाँ आप लोग ( अर्वाक् ) पीछे ( शश्वत् ) सनातन ( कम् ) सुख को प्राप्त होओ ( न ) और ( हि ) निश्चय से ( सोमम् ) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रसों को ( पपथु ) पिओ ॥ १० ॥

भाषार्थ—राजप्रजाजनों को चाहिए कि विद्वानों की सभा में जाकर नित्य उपदेश सुनें जिससे सब करने और न करने योग्य विषयों का बोध हो ॥ १० ॥

यहाँ राजा और प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह दूसरा वर्ग और सतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

॥

अथाऽस्य बीजशब्दस्याऽऽव्ययत्वात्सिद्धं सूक्तस्य प्रसक्त्य ऋषिः । उवा हेवता । १, ३, ७, ९ विराट् पण्यावृहती, ५, ११, १३, निष्पत्त्यावृहती, १२ बृहती, १५ पण्यावृहती च छन्दः । मध्यमः स्वरः । ४, ६, १४ विराट्

सतः पङ्क्तिः, २, १०, १६ निष्पत्तः पङ्क्तिः,

८ पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अठतालीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में उवा के समान

पुत्रियों के गुण होने चाहिये इस विषय का उपदेश किया है—

सह वामेन न उषो वृणुञ्छा दुहितर्दिवः ।

सह धुम्नेन बृहता विभावरी राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( विष ) सूर्यप्रकाश की ( दुहित ) पुत्री के समान ( उष ) उषा के तुल्य वर्तमान ( विभावरी ) विविध दीप्तियुक्त ( देवि ) विद्या सुशिक्षाओं से प्रकाशमान कन्या ( दास्वती ) प्रशस्त दानयुक्त ! तू ( बृहता ) बड़े ( धुम्नेन ) प्रशंसित प्रकाश ( धुम्नेन ) स्यादप्रकाश के सहित ( राया ) विद्या चक्रवर्ति राज्यलक्ष्मी के ( सह ) सहित ( न ) हम लोगों को ( वृणुञ्छ ) विविध प्रकार प्रेरणा कर ॥ १ ॥

भाषार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कोई स्वामी भृत्य को वा भृत्य स्वामी को सचेत कर व्यवहारों में प्रेरणा करता है और जैसे उषा अर्थात् प्रातःकाल की वेला प्राणियों को पुरुषार्थ युक्त कर बड़े-बड़े पदार्थ समूह वा सुख से युक्त कर आनन्दित तथा सायंकाल में सब व्यवहारों से निवृत्त कर आरामस्थ करती है वैसे ही माता, पिता, विद्या और अच्छी शिक्षा आदि व्यवहारों में अपनी कन्याओं को प्रेरणा करें ॥ १ ॥

किर वह उषा कैसे और क्या करती है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

अम्बावतीर्गोमतीर्विश्वसृविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।

उदीर्य प्रति मा सुवृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( उषः ) उषा के सदृश स्त्रि ! तू जैसे यह शुभ गुणयुक्ता उषा है वैसे ( अम्बावती ) प्रशसनीय व्याप्तियुक्त ( गोमती ) बहुत गो आदि पशु सहित ( विश्वसृविद ) सब वस्तुओं को अच्छे प्रकार जानने वाली ( सुवृता ) अच्छे प्रकार प्रियादियुक्त वाणियों को ( च्यवन्ते ) सुख में निवास के लिए ( भूरि ) बहुत ( उदीर्य ) प्रेरणा कर और जो व्यवहारों से ( च्यवन्त ) निवृत्त होते हैं उन को ( मघोनाम् ) धनवानों के सकाश से ( राध ) उराम-से-उत्तम धन को ( चोद ) प्रेरणा, कर उन से ( मा ) मुझे ( प्रति ) आनन्दित कर ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छी शोभायमान उषा सब प्राणियों को सुख देती है वैसे स्त्रियाँ अपने पतियों को निरन्तर सुख दिया करें ॥ २ ॥

किर वह कैसे हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उवासोषा उच्छाक्च नु देवी जीरा रथानाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दधिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥३॥

पदार्थ—जो स्त्री उषा के समान ( जीरा ) वेगयुक्त ( देवी ) सुख देने वाली ( रथानाम् ) आनन्ददायक वानों के मध्य ( उवास ) बसती है ( ये ) जो ( अस्याः ) इस सती स्त्री के ( आचरणेषु ) धर्मयुक्त आचरणों में ( समुद्रे, न ) जैसे सागर में ( श्रवस्यवः ) अपने आप विद्या के सुनने वाले विद्वान् लोग उत्तम नौका से जाते-आते हैं वैसे ( दधिरे ) प्रीति को करते हैं वे पुरुष अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस को अपने समान विदुषी और सर्वथा अनुकूल स्त्री मिलती है वह सुख को प्राप्त होता है और नहीं ॥ ३ ॥

जो प्रभात समय में योगाभ्यास करते हैं वे किसको प्राप्त होते हैं  
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उषो ये ते म याभेभु युञ्जते मनो दानाय सूर्यः ।

अत्राह तत्कण्ठं एषां कण्ठतमो नारं गृणाति गृणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो ( सूर्य ) स्तुति करने वाले विद्वान् लोग ( ते ) आप से उपदेश पाके ( अत्र ) इस ( उष. ) प्रभात के ( याभेभु ) ग्रहण में ( दानाय ) विद्यादि दान के लिए ( मन ) विज्ञानयुक्त चित्त को ( प्रयुञ्जते ) प्रयुक्त करते हैं वे जीवन्मुक्त होने हैं और जो ( कण्ठ. ) मेघावी ( एषाम् ) इन ( गृणाम् ) प्रधान विद्वानों के ( नारं ) नामों को ( गृणाति ) प्रशंसित करता है वह ( कण्ठतम ) प्रतिशय मेघावी होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य एकान्त, पवित्र, निरुपद्रव देश में स्थिर होकर यमादि संयमान्त उपासना के नव अंगों का अभ्यास करते हैं वे निर्मल आत्मा होकर ज्ञानी, आप्त और निष्ठ होते हैं और जो इनका संग और सेना करते हैं वे भी शुद्ध भक्त करणों के आत्मयोग के ज्ञान के अधिकारी होते हैं ॥ ४ ॥

फिर वह उषा क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ धा योषेव सुनरुपा याति प्रभुञ्जती ।

जग्यन्ती वृज्जं पद्वीयत उन्पातयति पक्षिणः ॥५॥३॥

पदार्थ—जो ( योषेव ) सस्त्री के समान ( प्रभुञ्जती ) अच्छे प्रकार भोगती ( सुनरी ) अच्छे प्रकार प्राप्त होती ( जग्यन्ती ) जीर्णविस्था को करती ( उषा. ) प्रातः समय ( पद्वी ) पक्षियों के मुख्य ( वृज्जम् ) मार्ग को ( ईयते ) प्राप्त होती हुई ( याति ) जाती और ( पक्षिणः ) पक्षियों को ( उन्पातयति ) उड़ानी है उस काल में सब को योगाभ्यास ( ध ) ही करना चाहिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जैसे प्रातः काल की वेला निर्मल तथा सब प्रकार से सुख की देने वाली, योगाभ्यास का कारण है उसी प्रकार स्त्रियों को होना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर वह कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वि या सृजति समन व्यर्थिनः पदं न वेस्योदती ।

वयो न किंष्टे पतिषांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ॥६॥

पदार्थ—हे योगाभ्यास करनेवाली स्त्रिय ! आप जैसे ( वा ) जो ( घोवती ) आर्द्रता को करती हुई ( न किं. ) शब्द को न करती ( वाजिनीवती ) बहुत क्रियाशील का निमित्त ( उष. ) प्रातः समय ( व्यर्थिनः ) प्रशस्त अर्थ वाले का ( पदम् ) प्राप्ति के योग्य के समान ( समनम् ) सुन्दर संग्राम को जैसे ( विवेति ) व्याप्त होती है जिस की ( व्युष्टौ ) दहन करने वाली कान्ति में ( पतिषांस ) पतनशील ( वयः ) पक्षी ( आसते ) स्थिर होते हैं वह वेला ( ते ) तेरे योगाभ्यास के लिए है, इसको तू जान ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे स्त्रियाँ व्यवहार से अपने पदार्थों को प्राप्त होती हैं वैसे उषा अपने प्रकाश से अधिकार को प्राप्त होती हैं जैसे वह दिन को उत्पन्न और सब प्राणियों को उठाकर अपने-अपने व्यवहार में प्रवर्तमान कर रात्रि को निवृत्त करती और दिन के हाने से दाह को भी उत्पन्न करती है वैसे ही सब स्त्रियों को भी होना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर उषा के समान स्त्रियाँ हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एषायुक् परावतः सूर्यस्यादर्यनादधि ।

शतं रथेभिः सुमगोषा इय वि यात्यभि मानुषान् ॥७॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे ( एषा ) यह ( उषा ) प्रातः काल ( परावतः ) दूर देश से ( सूर्यस्य ) सूर्यमण्डल के ( उदयनात् ) उदय में ( अधि ) उपरान्त ( अर्धमययुक्त ) ऊपर से, सम्मुख से गब में युक्त होती है जिस प्रकार ( इयम् ) यह ( सुमगा ) उत्तम अर्धवर्णयुक्त ( रथेभिः ) रमणीय यानों में ( शतम् ) असंख्यात ( मानुषान् ) मनुष्यादिकों का ( विधाति ) विविध प्रकार प्राप्त होती है वैसे तुम भी युक्त होगी ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ नियम में अपने पतियों की सेवा करती हैं। जैसे उषा से सब पदार्थों का दूर देश में संयोग होता है वैसे दूरस्थ कन्या, पुत्रों का युवावस्था में स्वयंवर विवाह करना चाहिए जिससे दूर देश में रहनेवाले मनुष्यों से प्रीति बढ़े। जैसे निकटगया का विवाह दुःखदायक होता है वैसे ही दूरस्थों का विवाह आनन्दप्रद होता है ॥ ७ ॥

फिर वह कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।

अप द्वेपो मघोनीं दुहिता दिव उषा उच्छदप सिधः ॥८॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! तुम जैसे ( मघोनी ) प्रशंसनीय धननिमित्त ( सूनरी ) अच्छे प्रकार प्राप्त करनेवाली ( विश्व. ) प्रकाशमान सूर्य की ( दुहिता ) पुत्री के सदृश ( उषा ) प्रकाशने वाली प्रभात की वेला ( विश्वम् ) सब जगत् को ( चक्षसे ) देखने के लिए ( ज्योतिः ) प्रकाश को ( कृणोति ) करती है और ( सिधः ) हिसक ( द्वयः ) द्वेप करनेवाले शत्रुओं को ( अपोच्छत् ) दूर करती है वैसे पति आदिकों में वर्त्ता ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सती स्त्री बिचनों को दूर कर कर्त्तव्य कर्मों को सिद्ध करती है, वैसे ही उषा डाकू, चोर, शत्रु आदि को दूर कर कार्य की सिद्ध करानेवाली होती है ॥ ८ ॥

फिर वह कैसी होके क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।

आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥९॥

पदार्थ—हे ( विश्व. ) सूर्य के प्रकाश की ( दुहितः ) पुत्री के मुख्य कर्मों ! जैसे ( उषा ) प्रकाशमान उषा ( भानुना ) सूर्य और ( चन्द्रेण ) चन्द्रमा से ( अस्मभ्यम् ) हम पुरुषार्थी लोगों के लिए ( भूरि ) बहुत ( सौभगम् ) ऐश्वर्य के समूहों को ( आवहन्ती ) सब ओर से प्राप्त कराती ( दिविष्टिषु ) प्रकाशित क्षमियों में ( व्युच्छन्ती ) निवास कराती हुई ससार को प्रकाशित करती है वैसे ही तू विद्या और शमादि से ( आ भाहि ) सुशोभित हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विदुषी धार्मिक कन्या माता और पिता दोनों के कुलों को उज्ज्वल करती है वैसे उषा सूर्य, चन्द्रमा आदि की छाँटी दोनों मनुष्यों की वस्तुओं को प्रकाशित करती है ॥ ९ ॥

फिर वह उषा कैसी होकर किससे क्या करे इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

विश्वम्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वियदुच्छसि रनरि ।

सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रधि चित्रामये हवम् ॥१०॥४॥

पदार्थ—हे ( सुनरि ) अच्छे प्रकार व्यवहारों को प्राप्त ( विभावरि ) विविध प्रकाशयुक्त ( चित्रामये ) चित्र-विचित्र धन से सुशोभित स्त्रिय ! जैसे उषा ( बृहता ) बड़े ( रथेन ) रमणीय स्वरूप का विमानादि यान में विद्यमान, जिसमें ( विश्वस्य ) सब प्राणियों के ( प्राणम् ) प्राण और ( जीवनम् ) जीविका की प्राप्ति का सम्भव होता है वैसे ही ( त्वे ) तेरे में जाता है ( यत् ) जो तू ( न ) हम लोगों को ( व्युच्छसि ) विविध प्रकार वास करती है वह तू हमारे ( हवम् ) सुनने-सुनाने योग्य वाक्यों को ( श्रधि ) सुन ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उषा से सब प्राणि-मात्र को सुख होते हैं वैसे ही पतिव्रता स्त्री से प्रसन्न पुरुष को सब आनन्द होते हैं ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उषो वाजं हि वस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।

तेना वह सुकृतो अध्वगो उप ये त्वां गृणन्ति वक्ष्यः ॥११॥

पदार्थ—हे ( उष ) प्रभात वेला के मुख्य वर्तमान स्त्रिय ! तू ( य ) जो ( विश्व ) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभावयुक्त ( सुकृत. ) उत्तम कर्म करनेवाला तेरा पति है उय ( मानुष, जने ) विद्या, धर्मादि गुणों से प्रसिद्ध मनुष्य में ( वाजम् ) जान वा घन को ( हि ) निश्चय करके ( वस्व ) सम्यक् प्रकार से सेवन कर ( ये ) जो ( अध्वगः ) प्राप्ति करनेवाले विद्वान् मनुष्य जिस कारण से ( अध्वरान् ) अध्वर, यज्ञ वा अहिमनीय विद्वानों की ( उपगृणन्ति ) अच्छे प्रकार स्तुति करते और तुभका उपदेश करते हैं ( तेन ) उसमें उनको ( आबह ) सुखों को प्राप्त कराती रह ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य जैसे सूर्य उषा को प्राप्त होके दिन को कर सब को सुख देता है वैसे अपनी स्त्रियों को भूषित करते हैं उनको स्त्रियाँ भूषित कर इस प्रकार परम्परा प्रीति उपकार से सदा सुखी रहे ॥ ११ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

विश्वान्देवा आ वक्ष सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुपस्त्वम् ।

मास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

पदार्थ—हे ( उष ) प्रभात वेला के मुख्य स्त्रिय ! मैं ( सोमपीतये ) सोम आदि पदार्थों को पीने के लिए ( अन्तरिक्षात् ) ऊपर से ( विश्वान् ) अखिल ( देवान् ) दिव्य गुणयुक्त पदार्थों और जिस तुभको प्राप्त होता है उन्हीं को तू भी ( आबह ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, हे ( उष. ) उषा के समान हित करने और ( सा ) तू ( सब ) इष्ट पदार्थों को प्राप्त करानेवाली ( अस्मासु ) हम लोगों में ( गोमत् ) इन्द्रिय, किरण और पृथिवी आदि से ( अश्वावत् ) और अत्युत्तम तुरंगों से युक्त ( सुवीर्यम् ) उत्तम वीर्य पराक्रमकारक ( वाजम् ) विज्ञान वा घन को ( धा ) धारण कर ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वह उषा अपने प्रादुर्भाव से शुद्ध वायु, जल प्रकाश आदि दिव्य गुणों को प्राप्त कराके दीशों का नाश कर सब उत्तम पदार्थ समूह को प्रकट करती है वैसे उत्तम स्त्री गृह कार्य में हो ॥ १२ ॥

फिर वह कैसी होकर क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अहसत ।

सा नो रयि विश्वारं सुपेशसमुषा ददातु सुगम्यम् ॥१३॥

पदार्थ—हे स्त्रिय ! ( यस्या. ) जिस के सकाश से मे ( रुशन्तः ) चोर, डाकू अन्धकार आदि का नाश और ( भद्रा ) कल्याण करनेवाली ( अर्चयः ) दीप्ति ( प्रत्यवृत्त ) प्रत्यक्ष होती है ( सा ) जैसे वह ( उषा ) सूर्य के देनेवाली

प्रभात की वेला ( नः ) हम लोगों के लिए ( विश्ववारम् ) सब प्राणप्रादन करने योग्य ( सुवेशसम् ) शोभनरूपयुक्त ( रविम् ) चक्रवर्ति राज्यलक्ष्मी ( सुव्यम् ) सुख की ( वराति ) देती है वैसे होकर तू भी हम को सुखदायक हो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिन की निमित्त उषा के बिना सुख से कार्य सिद्ध नहीं होने और स्वरूप की प्राप्ति भी नहीं होती वैसे ही सती स्त्री के बिना यह सब नहीं होता ॥ १३ ॥

फिर वह किस प्रयोजन के लिए समर्प होती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्वं जतयं जुहुरेऽवसे महि ।

सा नः स्तोमो अभि गृणीहि राघसोषः शुकेण शोचिषा ॥१४॥

पदार्थ—हे उषा के तुल्य वर्तमान ( महि ) महागुणविशिष्ट पण्डिता स्त्रि । ( ये ) जो ( पूर्वं ) अध्ययन किये हुए वेदार्थ के जाननवाले विद्वान् लोग ( जतयं ) अत्यन्त गुण प्राप्ति वा ( अघसे ) रक्षण आदि प्रयोजन के लिए ( त्वाम् ) तुम्हें ( जुहुरे ) प्रसन्नित करें तो ( सा ) तू ( शुकेण ) शुद्ध कामो के हेतु ( शोचिषा ) अर्घ्यप्रकाश से युक्त ( राघसा ) बहुत धन से ( नः ) हमारे ( चित् ) ही ( स्तोमान् ) स्तुतिसमूहों को ( हि ) निश्चय से ( अभि ) सम्मुख होकर ( गृणीहि ) स्वीकार कर ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जिन्होंने वेदों को अध्ययन किया वे पूर्व ऋषि, और जो वेदों को पढ़ते हो उनको नवीन ऋषि मानें, और जैसे विद्वान् लोग पदार्थों को जानकर उपकार लेते हैं वैसे धन्य पुरुषों को भी करना चाहिए। किसी मनुष्य को सुखों की चालचलन पर न चाना चाहिए और जैसे विद्वान् लोग अपनी विद्या से पदार्थों के गुणों का प्रकाश कर उपकार करते हैं, जैसे यह उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करती है वैसे ही विदुषी स्त्रियाँ विश्व को सुभूषित करती रहें ॥ १४ ॥

फिर वह क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उपो यदथ मानुना वि द्वागं वृणवो दिवः ।

प्र नो यच्छतादृक् पृथु छदिः प्र देवि गोमतीरिपः ॥१५॥

पदार्थ—हे ( देवि ) दिव्य गुणयुक्त स्त्रि । जैसे ( उषा ) प्रभात समय ( अथ ) इस दिन में ( मानुना ) अपने प्रकाश से ( द्वागं ) गृहादि वा इन्द्रियों के प्रवेश और निकलने के निमित्त ( प्राणैः ) अन्धे प्रकार प्राप्त होती और जैसे ( नः ) हम लोगों के लिए ( यत् प्रवृत्तम् ) हिमक प्राणियों से रहित ( पृथु ) सब ऋतुओं के स्थान और अवकाश के योग्य होने से विशाल ( छदिः ) शुद्ध प्राणप्रादन से प्रकाशमान धर और जैसे ( विवः ) प्रकाशादि गुण ( गोमती ) बहुत ज्ञान किरणों से युक्त ( इव ) इच्छामो को देती है वैसे ( वि प्रवृत्ततात् ) सम्पूर्ण दिया कर ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उषा अपने प्रकाश से अतीत, वर्तमान और आनेवाले दिनों में सब मार्ग और द्वारों को प्रकाश करती है वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि सब ऋतुओं में सुख देनेवाले धर्मों को रच, उनमें सब भोग्य पदार्थों का स्थापन कर और वह सब स्त्री के अधीन कर प्रति दिन सुखी रहे ॥ १५ ॥

फिर वह किससे क्या वे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सञ्ज्ञा राया बृहता विश्वंशसा विमिक्षा समिद्धाभिरा ।

सं यज्ञेन विश्वतुरोपो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥१६॥५॥

पदार्थ—हे ( उषा ) प्रातः समय के समतुल्य वर्तमान ( वाजिनीवति ) प्रशसनीय क्रियायुक्त ( महि ) पूजनीय विदुषी स्त्रि । तू जैसे ( उषा ) सब रूप को प्रकाश करनेवाली प्रातः समय की वेला ( विश्वेशसा ) सब सुन्दर रूपयुक्त ( बृहता ) बड़े ( विश्वतुरा ) सब को प्रवृत्त करनेवाले ( संयज्ञेन ) विद्या, धर्मोदि गुण प्रकाशयुक्त ( राया ) प्रशसनीय धन ( समिद्धाभिः ) भूमि, वाणी, नीति और ( संवाजैः ) अन्धे प्रकार युक्त मन्त्र, विज्ञान से ( नः ) हम लोगों को सुख देती है वैसे ही हमसे तू हमें सुख दे ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वानों की वस्तुएँ शिक्षा से उषा के गुण का ज्ञान उससे पुरुषार्थसिद्धि फिर उससे सब सुखों की निमित्त वस्तुएँ प्राप्त होती हैं वैसे ही माता की शिक्षा से पुत्र उत्तम होते हैं अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

इस सूक्त में उषा के दुष्टान्त से कन्या और स्त्रियों के लक्षणों का प्रतिपादन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह अद्वितीयता सूक्त और पवित्रा वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथास्य वस्तुष्वर्च्यकोनपञ्चाशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्य ऋषिः । उषा वेवता ।

निचुवगुष्टुप छन्द । गाम्भारः स्वर ।

अब उनवासवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में उषा के दुष्टान्त से स्त्रियों के कर्म का उपदेश किया है—

उषो मदेमिरा गीह दिवश्चिद्रोचनादधि ।

वहन्स्वस्वस्वस्व उप स्वा सोमिनी गृहम् ॥१७॥

पदार्थ—हे सुम गुणों से प्रकाशमान स्त्रि । जैसे ( उषा ) उषा कल्याण-निमित्त ( रोचनात् ) अन्धे प्रकार प्रकाशमान से ( अधि ) ऊपर ( मदेमिः ) कल्याणकारक गुणों से अन्धे प्रकार आती है वैसे ही तू ( आगहि ) प्राप्त हो और जैसे यह ( दिवः ) प्रकाश के समीप प्राप्त होती है वैसे ही ( स्वा ) तुझका ( अवरण-व्यस्य ) रक्त गुणविशिष्ट छेदन करके भोक्ता ( सोमिनी ) उत्तम पदार्थ वाले विद्वान् के ( गृहम् ) निवास स्थान को ( उपवहन्तु ) समीप प्राप्त करें ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जिस उषा की, भूमि-समूक्त सूर्य के प्रकाश से उत्पत्ति है, वह दिन रूप परिणाम को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाशित करती हुई सबको आह्लादित करती है, वैसे ही ब्रह्मचर्य, विद्या, योग से युक्त स्त्री अष्ट हो ॥ १७ ॥

फिर वह कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उपस्त्वम् ।

तेना सुभ्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥१८॥

पदार्थ—हे ( दिवः ) प्रकाशमान सूर्य की ( दुहित ) पुत्री के तुल्य ( उषा ) वर्तमान स्त्रि । तू ( यम् ) जिस ( सुपेशसम् ) सुन्दर रूप ( सुखम् ) आनन्दकारक ( रथम् ) कीड़ा के साधन यान के ( यमध्यस्था ) ऊपर बैठने वाले प्राणी आनन्द को बढ़ाते हैं ( तेन ) उस रथ से ( सुभ्रवसम् ) उत्तम अवस्थायुक्त ( जनम् ) विद्वान् मनुष्य की ( प्राव ) अन्धे प्रकार रक्षा आदि कर ॥ १८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग जैसे सूर्य के प्रकाश से सुख की प्राप्ति होती है वैसे ही विदुषी स्त्री से घर का काम और पुत्रों की उत्पत्ति होती है—ऐसा जानकर उनसे उपकार लेवें ॥ १८ ॥

फिर वह कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

वयश्चिरे पतत्रिणो द्विपुचतुषदजुनि ।

उषः प्रारम्भतुर्गु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥१९॥

पदार्थ—हे स्त्रि । जैसे ( अजुनि ) अन्धे प्रकार प्रवृत्त का निमित्त ( उषः ) उषा ( दिवः ) सूर्यप्रकाश से ( अन्तेभ्यः ) समीप से ( ऋतुम् ) ऋतुओं को सिद्ध और ( द्विपुच ) मनुष्यादि तथा ( चतुष्यतः ) पशु आदि का बोध कराती हुई सबको प्राप्त होके जैसे इससे ( पतत्रिणः ) नीचे-ऊँचे उड़नेवाले ( वयः ) पक्षी ( प्रारम्भ ) इष्ट-उत्तर जाते ( चित् ) वैसे ही ( ते ) तेरे गुण हो ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे उषा मुहूर्त, प्रहर, दिन, मास, ऋतु, अयन अर्थात् दक्षिणायन और वर्षों का विभाग करती हुई सब प्राणियों के व्यवहार और चेतना को विभक्त करती है वैसे ही स्त्री सब गृहकृत्यों को पृथक् पृथक् करे ॥ १९ ॥

फिर वह कैसे और क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।

तां त्वामुष्वयवो गीभिः कण्वा अहूयत ॥२०॥६॥

पदार्थ—हे ( वयवः ) । पृथिवी आदि वस्तुओं को समुक्त और नियुक्त करनेवाले ( कण्वा ) बुद्धिमान् लोग जैसे ( उषा ) उषा ( व्युच्छन्ती ) विविध प्रकार से असाते वाली ( हि ) निश्चय ही ( रश्मिभिः ) किरणों से ( रोचनम् ) रक्षिकारक ( विद्वन् ) सब समार को ( आभासि ) अन्धे प्रकार प्रकाशित करती है वैसे ( ताम् ) उम ( त्वाम् ) तुम्हें स्त्री को ( गीभिः ) वेदशिक्षायुक्त अपनी वाणियों से ( अहूयत ) प्रसन्नित करें ॥ २० ॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिए कि उषा के गुणों के तुल्य स्त्री उत्तम होती है इस बात को समझें और सब को उपदेश करें ॥ २० ॥

इसमें उषा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह उनवासवों सूक्त और छठा वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथास्य प्रयोदशार्थस्य पञ्चाशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्य ऋषिः । सूर्यो वेवता । १,६

निचुवगायत्री, २,४,८,९ पिपीलिका मध्या निचुवगायत्री, ३ गायत्री,

५ पञ्चमध्या विराड्गायत्री विराड्गायत्री च छन्द । वज्र स्वर ।

१०,११ निचुवगुष्टुप् १२,१३ अनुष्टुप् च छन्द । गाम्भारः स्वर ॥

अब पञ्चासवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में कैसे लक्षण वाला सूर्य है

इस विषय का उपदेश किया है—

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशो विश्वाय सूर्यम् ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों । तुम जैसे ( केतवः ) किरणों ( विश्वाय ) सबके ( दृशे ) दीखने ( उ ) और दिखलाने के योग्य व्यवहार के लिए ( त्यम् ) उस ( जातवेदसम् ) उत्पन्न किये हुए पदार्थों को प्राप्त करनेवाले ( वेवम् ) प्रकाशमान ( सूर्यम् ) रविमण्डल को ( उदहन्ति ) ऊपर बढ़ते हैं वैसे ही गृहाश्रम का सुख देने के लिए सुशोभित स्त्रियों को विवाह विधि से प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भाषार्थ—धार्मिक माता-पिता आदि विद्वान् लोग—जैसे घोड़े रथ को और किरणें सूर्य को बहान करता है ऐसे ही विद्या और धर्म के प्रकाश युक्त अपने तुल्य स्त्रियों से सब पुरुषों का विवाह करावें ॥ २१ ॥



किर कीन किसके लिए क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अप स्ये सायवीं यथा नक्षत्रा यन्त्यङ्गभिः । सूर्यं विश्वचक्षसे ॥२॥**

पदार्थ—हे स्त्री-पुरुषों ! तुम ( यथा ) जैसे ( अस्तुभिः ) रात्रियों के साथ ( नक्षत्रा ) नक्षत्र आदि अथर्वहित लोक और ( सायवीं ) वायु ( विश्वचक्षसे ) विश्व के दिखाने वाले ( सूर्यं ) सूर्यलोक के धर्म ( अपयन्ति ) संयुक्त-विमुक्त होते हैं वैसे ही विवाहित स्त्रियों के साथ संयुक्त-विमुक्त हुआ करो ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे रात्रि में नक्षत्र चन्द्रमा के साथ और प्राण शरीर के साथ रहते हैं वैसे विवाह करके स्त्री पुरुष आपस में रहा करें ॥२॥

किर वे कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अदृश्रमस्य केतवो वि ररमयो जनां अनु । आजन्तो अग्रयौ यथा ॥३॥**

पदार्थ—( यथा ) जैसे ( अस्तु ) इस सविता के ( आजन्त ) प्रकाशमान ( अग्रयौ ) प्रज्वलित ( केतवः ) जमाने वाली ( ररमयो ) किरणें ( जनाम् ) अनुप्रादि प्राणियों को ( अनु ) अनुकूलता से प्रकाश करती हैं वैसे मैं अपनी विवाहित स्त्री और अपने पति ही को समागम के योग्य देखूँ अन्य को नहीं ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे प्रज्वलित हुए अग्नि और सूर्यादिक बाहर सब में प्रकाशमान हैं वैसे ही अन्तरात्मा में ईश्वर का प्रकाश वर्तमान है इसके जानने के लिए सब मनुष्यों को प्रयत्न करना योग्य है। उस परमात्मा की आज्ञा से परस्त्री के साथ पुरुष और परपुरुष के सग स्त्री व्यभिचार को सर्वथा छोड़के पाणिगृहीत अपनी-अपनी स्त्री और अपने-अपने पुरुष के साथ ऋतुगामी ही होंगे ॥३॥

किर वह सूर्य कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृद्दसि सूर्ये । विश्वमाभासि रोचनम् ॥४॥**

पदार्थ—हे ( सूर्ये ) चराचर के आत्मा ईश्वर ! जिससे ( विश्वदर्शतो ) विश्व के दिखाने और ( तरणि ) शीघ्र सबका आक्रमण करने ( ज्योतिष्कृत् ) स्वप्रकाशस्वरूप आप ! ( रोचनम् ) रुचिकारक ( विश्वम् ) सब जगत् को प्रकाशित करते हैं इन्हीं से आप स्वप्रकाशस्वरूप हैं ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य और बिजुली बाहर-भीतर रहने वाले सब स्थूल पदार्थों को प्रकाशित करते हैं वैसे ही ईश्वर भी सब वस्तुमान को प्रकाशित करता है ॥४॥

किर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्हुदंषि मानुषान् ।**

**प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥५॥७॥**

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप ( देवानाम् ) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के ( विश ) प्रजा ( मानुषान् ) मनुष्यों को ( प्रत्यङ्हुदंषि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो और सबके आत्माओं में ( प्रत्यङ् ) प्राप्त होते हो इससे ( विश्वं स्वर्दृशे ) सब सुखों के देखने के धर्म सबों के ( प्रत्यङ् ) प्रत्यगात्मरूप से उपासनीय हो ॥५॥

भाषार्थ—क्योंकि ईश्वर सब कही व्यापक, सबके आत्मा का जाननेवाला और सब कर्मों का साक्षी है इसलिए वही सब सज्जनों द्वारा नित्य उपासना करने के योग्य है ॥५॥

**येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तज्जनां अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥**

पदार्थ—हे ( पावक ) पवित्रकारक ( वरुण ) सबसे उत्तम जगदीश्वर ! आप ( येन ) जिस ( चक्षसा ) विज्ञान प्रकाश से ( भुरण्यन्तम् ) धारण वा पोषण करते हुए लोको या ( जनाम् ) मनुष्यादि को ( अनुपश्यसि ) अच्छे प्रकार देखते हो उस ज्ञानप्रकाश से हम लोगों को कृपापूर्वक संयुक्त कीजिए ॥६॥

भाषार्थ—परमेश्वर की उपासना के बिना किसी मनुष्य की विज्ञान वा पवित्रता सम्भव नहीं हो सकती। इससे सब मनुष्यों को एक परमेश्वर ही की उपासना करनी चाहिए ॥६॥

किर वह ईश्वर क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**वि द्यामेषि रजस्पृध्वहा मिमानो अङ्गभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥७॥**

पदार्थ—हे ( सूर्य ) चराचराजन्त परमेश्वर ! आप जैसे सूर्यलोक ( अस्तुभिः ) प्रसिद्ध रात्रियों से ( पृथु ) विस्तारयुक्त ( रज ) लोकमनुह और ( अङ्ग ) दिनों को ( मिमान ) निर्माण करता हुआ ( पृथु ) बड़े बड़े ( रज ) लोकों को प्राप्त होके नियम व्यवस्था करता है वैसे हम लोगों के ( जन्मानि ) पहले-पिछले और वर्तमान जन्मों को ( पश्यन् ) देखते हुए ( द्यामेषि ) अनेक प्रकार से जानने और प्राप्त होने वाला हो ॥७॥

भाषार्थ—जिसने सूर्य आदि लोक बनाये और सब जीवों के पाप-पुण्य को देखके ठीक ठीक उनके सुख दुःख रूप फलों को देता है वही सबका सत्य-स्वरूप व्यापकारी राजा है ऐसा सब मनुष्य जानें ॥७॥

किर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥**

पदार्थ—हे ( विचक्षण ) सबको देखने ( देव ) सुख देनेवाले ( सूर्य ) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! जैसे ( सप्त ) हगितादि सात ( हरित ) जिनसे रसों को हरता है वे किरणें ( शोचिष्केशम् ) पवित्र दीप्तिवाले सूर्यलोक को ( रथे )

रमणीय सुन्दरस्वरूप रथ में ( वहन्ति ) प्राप्त करते हैं वैसे ( त्वा ) आपकी सायवी आदि वेदस्य मात छन्द प्राप्त कराते हैं ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। हे मनुष्यों ! जैसे रात्रियों के बिना सूर्य का दर्शन नहीं हो सकता वैसे ही वेदों को ठीक जाने बिना परमेश्वर का दर्शन नहीं हो सकता ऐसा निश्चय जानो ॥८॥

**अयुक्तं सप्त गन्धुवः सरो रथस्य नृत्यः ।**

**तामिर्यासि स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे ईश्वर ! जैसे ( सूरः ) सब का प्रकाशक ( जल ) पूर्वोक्त सात ( गन्धुवः ) नाग से रहित ( गन्धुवः ) बुद्धि करने वाली किरणों को ( रथस्य ) रमणीय स्वरूप जगत् में ( अयुक्तं ) युक्त करता और उनके सहित प्राप्त होता है वैसे आप ( तामि ) उन ( स्वयुक्तिभिः ) अपनी युक्तियों से सब संसार को संयुक्त रखते हो ऐसा हम को दृढ़ निश्चय है ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो सूर्य के समान स्वयं प्रकाशस्वरूप, आकाश के तुल्य सर्वत्र व्यापक, उपासकों का पवित्रकर्ता परमात्म है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है ॥९॥

**उद्वन्तमसस्पति ज्योतिष्यन्त उत्तरम् ।**

**देवं देवत्रा सूर्यमगन्तु ज्योतिरुचमम् ॥१०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( ज्योति ) ईश्वर से उत्पन्न किये प्रकाशमान सूर्य को ( उद्वन्त ) देखते हुए ( जयम् ) हम लोग ( तमस ) प्रज्जानान्धकार के भलग होके ( ज्योतिः ) प्रकाशस्वरूप ( उत्तरम् ) सबसे उत्तम, प्रलय से ऊर्ध्व वर्तमान वा प्रलय करनेवाले ( देवत्रा ) देव, मनुष्य, पृथिव्यादिकों में व्यापक ( देवम् ) सुख देने ( उत्तमम् ) उत्कृष्ट गुण-कर्म-स्वभावयुक्त ( सूर्यम् ) सर्वात्मा ईश्वर को ( पश्यन् ) सब प्रकार प्राप्त होवें वैसे तुम भी उसको प्राप्त होओ ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को योग्य है—कि परमेश्वर के सदृश कोई भी उत्तम पदार्थ नहीं और न इसकी प्राप्ति के बिना कोई मनुष्य मुक्ति सुख को प्राप्त हो सकता है ऐसा निश्चित जानें ॥१०॥

**उद्यम्य मित्रमह आरोहन्तुत्तरं दिवम् ।**

**हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥११॥**

पदार्थ—हे ( मित्रमह ) मित्रों से सत्कार के योग्य ( सूर्य ) सब ओषधि और रोगनिवारण विद्याओं के जाननेवाले विद्वन् ! आप जैसे सूर्य ( अह ) आज ( उद्यम ) उदय को प्राप्त हुआ वा ( उत्तराम् ) कारणरूपी ( दिवम् ) दीप्ति को ( आरोहन् ) अच्छे प्रकार करता हुआ अन्धकार का निवारण कर दिन को प्रकट करता है वैसे मेरे ( हृद्रोगम् ) हृदय के रोगों और ( हरिमाणम् ) हृत्पण्डील चोर आदि को ( नाशय ) नष्ट कीजिए ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धेरा और चोरादि निवृत्त हो जाते हैं वैसे उत्तम वैद्य की प्राप्ति से कुपथ्य माद रोगों का निवारण हो जाता है ॥११॥

किर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दधमसि ।**

**अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दधमसि ॥१२॥**

पदार्थ—जैसे श्रेष्ठ वैद्य लोग कहे वैसे हम लोग ( शुकेषु ) शुकों के समान किये हुए कर्मों और ( रोपणाकासु ) लेप आदि क्रियाओं से ( मे ) मेरे ( हरिमाणम् ) चित्त को खँवनेवाले रोगनाशक ओषधियों को ( दधमसि ) धारण करें ( अथो ) इसके पश्चात् ( हारिद्रवेषु ) जो सुखहर्ने और मल बहाने वाले रोग हैं उनमें ( मे ) अपने ( हरिमाणम् ) हृत्पण्डील चित्त को ( निदधमसि ) निरन्तर स्थिर करें ॥१२॥

भाषार्थ—मनुष्य लेपनादि क्रियाओं से रोगों का निवारण करके बल को प्राप्त होवें ॥१२॥

किर मनुष्य किस प्रकार प्रजाओं का पालन करें इस विषय को

अगले मन्त्र में कहा है—

**उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।**

**द्विचन्तम्महं गन्धयन्मो अहं द्विषते रथम् ॥१३॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! यथा ( अयम् ) यह ( आदित्य ) नाशरहित सूर्य ( उदगात् ) उदय को प्राप्त होता है वैसे तू ( विश्वेन ) अस्मिन् ( सहसा ) बल के साथ उदित हो जैसे तू ( अहम् ) धार्मिक मनुष्य के ( द्विषन् ) द्वेष करते हुए शत्रु को ( रथम् ) मारता हुआ वर्तता है वैसे ( अहम् ) मैं ( द्विषते ) शत्रु के लिए वधूँ। जैसे यह शत्रु शत्रु को मारता है वैसे इसको मैं भी मारूँ जो मुझे न मारे उसे मैं भी ( जो रथम् ) न मारूँ ॥१३॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अनन्त बलयुक्त परमेश्वर के, बल के निमित्त प्राण वा बिजुली के वृष्टान्त से बर्तके सत्पुरुषों के साथ मित्रता कर सब प्रजाओं का पालन यथावत् किया करें ॥१३॥

इस सूक्त में परमेश्वर वा अग्नि के कार्य-कारण के दृष्टान्त से राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए।  
यह आठवाँ वर्ग, नवम अनुवाक और पचासवाँ सूक्त समाप्त हुआ।

॥

अथास्य पञ्चवक्त्रस्यैकपञ्चाशस्य सुवत्सर्गागिरसः सव्य ऋचिः। इन्द्रो वेचता। १, २,  
१० जगती, २, ५, ८ विराट् जगती, ११-१३ निषुक्जगती वा छन्दः।

निवाहः स्वरः। ३, ४ सुरिक् विष्टुप्, ६, ७ विष्टुप्,  
१४, १५ विराट् विष्टुप् वा छन्दः। ध्वजतः स्वरः॥

अथ इकावन्तर्धे सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मन्त्र में इन्द्र सव्यार्थ के समान विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

अभि त्वं मेघं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्।

यस्य धावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम (अर्णवम्) समुद्र के तुल्य (त्वम्) उम (मेघम्) वृष्टि द्वारा सेवन करनेवाले (पुरुहूतम्) बहुत विद्वानों के स्तुत (अृग्मियम्) आकाशों से मान करने योग्य (मंहिष्ठम्) गुणों से बड़े (इन्द्रम्) समग्र ऐश्वर्य से युक्त शत्रुओं को विदारण करनेवाले राजा को (गीर्भि) मत्स्य प्रशासित वाणियों से (अभिभवत) हर्षित करो और सूर्य के (धावः) किरणों के (न) समान (वस्व) जिसका (भुजे) भोग के लिए (मानुषा) मनुष्यों के हित करनेवाले गुण (विचरन्ति) विचरते हैं उस (वस्व) धन के देनेवाले (विप्रम्) विद्वान् का (अभ्यर्चत) सदा सत्कार करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो बहुत गुणों के योग से सूर्य के सदृश विद्यायुक्त राजा हो, उसीका सत्कार सदा किया करे। इसके बिना किसी को सुख भोग नहीं होता है ॥१॥

किर वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

अभीमवन्तस्त्रभिष्टिभूतयोऽन्तरिक्षप्रान्तविषीभिर्गवतम्।

इन्द्रं दक्षाय क्रभवां मदच्युतं शतक्रतु जवनी सूचताऽर्हत् ॥२॥

पदार्थ—हे सेनापते! जिस आपकी (ऊतय) रक्षा प्रजा का पालन करती है (दक्षाय) विज्ञानबद्ध पीछे काय को सिद्ध करनेवाले (अभिव) मेधावी, विद्वान् लोग जिस (स्वभिष्टिम्) उत्तम हृदियुक्त (अन्तरिक्षप्रान्तम्) अपने तेज से अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश में सबको मुख से पूर्ण करने (मदच्युतम्) हर्षादि को पृथक् रखने अथवा शत्रुओं के मद अर्थात् गर्व को नष्ट करनेवाले (शतक्रतुम्) अनेक कर्मों के कर्ता (विषीभि) बल आकर्षण आदि गुणों से युक्त सेना से (आवृत्तम्) मयुक्त (इन्द्रम्) विजुली के सदृश वर्त्तमान आपकी (अभ्यवन्तम्) कार्यों को करने के लिए सब प्रकार से बद्धियुक्त करते हैं जिसको (जवनी) वेगयुक्त (सूचता) अन्नादि पदार्थों को सिद्ध करनेवाले राजनीति (आर्हत्) बलके प्राप्त होवे उस आपकी रक्षा हम किया करें ॥२॥

भावार्थ—धर्मात्मा बुद्धिमान लोग जिसका आश्रय करें उसी का शरण ग्रहण सब मनुष्य करें ॥२॥

त्वङ्मात्रमङ्गिरोऽभ्योऽङ्गुणोऽपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित्।

ससेनं चिद्विमदायावहो वस्वाजावर्द्धि वावमानस्य नर्चयन् ॥३॥

पदार्थ—हे (ससेन) सेना से सहित सेनाध्यक्ष! आप जैसे सूर्य (अङ्गिरोऽभ्यो) आकाशस्वरूप पवनो से (अङ्गिम्) पर्वत और मेघ के तुल्य वर्त्तमान (अभ्यो) जिसमें तीन अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख नहीं हैं उस (आजी) सङ्ग्राम में शत्रुओं के बल को (अपावणोः) दूर कर देते हो (वावसा-नस्य) ठाँकने वाले शत्रुपक्ष की सेना को (नर्चयन्) नवाते के समान कंवाते हुए (चिद्विमदाय) विविध भानन्द के वास्ते (वसु) धन को (आवहः) अच्छे प्रकार प्राप्त कर (उत) और (गातुवित्) भूगर्भ विद्या के जाननेवाले आप (शत-दुरेषु) असंख्य मेघ के अवयवों में उठे हुए पदार्थों के समान उकी हुई अपनी सेना को नवाते हो तो आप सत्कार के योग्य हो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। सेनापति आदि जबतक सूर्य के समान पराक्रमी नहीं होते तब तक शत्रुओं को नहीं जीत सकते ॥३॥

किर वह जिसके समान क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

स्वमपात्रविधानाङ्गोरपाधायः पर्वते दानुमहसु।

इन्द्रं यद्विन्द्रं अत्रसावधीरहिमादिस्तुर्वं दिव्यारोहयो दृशे ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) जगदीश्वर! (यत्) जिस कारण (त्वम्) आप जैसे सूर्य (अपात्रम्) जलों के (अधिधाना) आच्छादनों को दूर करता है जैसे शत्रुओं के बल को (अपावणोः) दूर करते हो जैसे (पर्वते) मेघ से (दानुमहसु) उत्तम शिखरयुक्त (वसु) द्रव्य वा जल को (अत्रसावः) चारण करता और (अवसा) बल से (अहिम्) व्याप्त होने योग्य (वज्रम्) मेघ को (अवधीः) मारता है जैसे शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करते हो और जैसे किरणसमूह (स्तुर्वं) सूर्य को (अरोहयो) अच्छे प्रकार स्थापित करते हैं वैसे न्याय के प्रकाश से युक्त हैं इससे राज्य करने के योग्य हैं ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो मेघ के द्वार का सेवन एवं आकर्षण कर अन्तरिक्ष में स्थापन कर, वर्षा कर वा सबको प्रकाश करके सुखी को देता है उस सूर्य को ईश्वर ने ही रचकर स्थापन किया है ऐसा जाने ॥४॥

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधामियं अधि शुप्तावजुह्वत।

त्वं पिमोर्नृमणः मारुजः पुरः म ऋजिन्वानं दस्युहृत्येषाविथ ॥५॥६॥

पदार्थ—हे (मनुष्य) मनुष्यों में मन रखनेवाले सभाध्यक्ष! (त्वम्) आप (पुर) प्रथम (स्वधामि) अन्नादि पदार्थों से (पिमोः) न्याय को पूर्ण करनेवाले न्यायाधीशों की आज्ञा और (ऋजिन्वानम्) ज्ञान आदि सरल गुणों से युक्त की (प्राविथ) रक्षा कर और जो (मायिम) निन्दित दुष्टि वाले (मायाभि) कपट कलादि से वा (शुप्ता) साने के उपरान्त पराये पदार्थों को (अजुह्वत) हरण करते हैं उन डाकू आदि दुष्टों को (अपाधम) दूर कीजिए और उनको (दस्युहृत्येषु) डाकूओं के हननरूप सप्रामो में (मारुज) छिन्न-भिन्न कर दीजिए ॥५॥

भावार्थ—जो सभाध्यक्ष अपने सत्यरूपी न्याय से उत्तम वा दुष्ट कर्मों के करनेवाले मनुष्यों के लिए फलो को देकर दोनों की यथायोग्य रक्षा करता है वही इस जगत् में सत्कार के योग्य होवे ॥५॥

त्वं कुत्सं शुष्णहृत्येषाविथारन्धयोऽतिथिवायु शम्बरम्।

महान्तश्चिद्विदं नि क्रभीः पदा मनादेव दस्युहृत्याय जज्ञिषे ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन्! शत्रुवीर मनुष्य! जिसमें (त्वम्) तू (पदा) पाद में आक्रान्त हुए शत्रुसमूह को मारनेवाले के (चित्) समान (शुष्णहृत्येषु) शत्रुओं के बलों के हनने योग्य व्यवहारे में (महान्तम्) महागुणविशिष्ट (कुत्सम्) शम्बर वज्र को धारण करके प्रजा की (प्राविथ) रक्षा करते और दुष्टों को (अरन्धय) मारते हो (अतिथिवायु) अतिथियों के जाने-माने को शुद्ध मार्ग के लिए (अजुह्व) असत्यातगुणविशिष्ट (शम्बरम्) बल का (विरयता) क्रम से बढ़ाते हो (मनात्) अच्छे प्रकार सेवन से (पदा) पदाक्रान्त शत्रुसेना का नाश करते हो (दस्युहृत्याय) शत्रुओं के मारने रूप व्यवहार के लिए (एव) ही (जज्ञिषे) उत्पन्न हुए हो इससे हम लोग आप का सत्कार करने हैं ॥६॥

भावार्थ—सभाध्यक्षों की योग्य है कि शत्रुओं को मार, श्रेष्ठों की रक्षा, मार्गों को शुद्ध और अमर्याद बल को धारण कर शत्रुओं के लिए अत्यन्त प्रभाव बढ़ावे ॥६॥

किर वह सभा आदि का अध्यक्ष कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्मिता तव गर्धः सोमपीथाय हर्पणे।

तव वज्रश्रिकिने बाह्वाहिनी वृश्वा शत्रोश्च विश्वानि वृण्व्या ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य! (त्वे) आप में जो (विश्वा) सब (तविषी) बल (हिता) स्थापित किया हुआ (सध्र्यग्) माय सेवन करनेवाला (गर्धः) धन (सोमपीथाय) मुख करनेवाले पदार्थों के भोग के लिए (हर्पणे) हर्षयुक्त करता है (तव) आपके (बाह्वो) भुजाओं में (वृश्वा) धारण किया (वज्रः) शस्त्रसमूह है जिससे आप (विक्रिने) सुखों को जानने हो उससे हम लोगों के (विश्वानि) सब (वृण्व्या) वीरों के लिए हित करनेवाले बल की (वृश्वा) रक्षा और (शत्रो) शत्रु के बल का नाश कीजिए ॥७॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठों में बल उत्पन्न हो ता उससे सब मनुष्यों को सुख होवे, जो दुष्टों में बल होवे तो उससे सब मनुष्यों को दुःख होवे, इससे श्रेष्ठों के सुख की वृद्धि और दुष्टों के बल की हानि निरन्तर करनी चाहिए ॥७॥

किर वह सभाध्यक्ष क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

वि जानीष्वार्यान्वे च दस्यवो बहिष्मते रन्ध्रया शासद्व्रतान्।

शाकी भव भजमानस्य चोदिता विभवेता तं सधमादेषु चाकन ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्य! तू (बहिष्मते) उनमें सुखादि गुणों के उत्पन्न करने वाले व्यवहार की सिद्धि के लिए (आर्यान्) सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को (विजानीहि) जान और (ये) जो (दस्यव) परपीडा करने वाले अधर्मी दुष्ट मनुष्य हैं उनको जानकर (बहिष्मते) धर्म की सिद्धि के लिए (रन्ध्रयः) गार और उन (अकृतान्) सत्यभाषणरहित धर्म रहित मनुष्यों को (शासत्) शिक्षा करते हुए (यजमानस्य) यज्ञ के कर्त्ता का (चोदिता) प्रेरणाकर्त्ता और (शाकी) उत्तम अति, सामर्थ्य की (अव) सिद्ध कर जिससे (ते) तेरे उपदेश वा सङ्ग से (सधमादेषु) सुखों के साथ वर्त्तमान स्थानों में (ता) उन (विश्वानि) सब कर्मों को सिद्ध करने की (इत्) ही मैं (चाकन) इच्छा करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—मनुष्यों को दस्यु अर्थात् दुष्ट स्वभाव को छोड़कर आर्य अर्थात् श्रेष्ठ स्वभावों के आश्रय से वर्त्तना चाहिए। ये ही आर्य हैं जो उत्तम विद्यादि के प्रचार से सबके उत्तम भोग की सिद्धि और अधर्मी दुष्टों के निवारण के लिए निरन्तर बल करते हैं। निश्चय ही कोई मनुष्य आर्यों के संग उनसे अध्ययन वा उपदेशों के बिना यथावत् विद्वान् धर्मात्मा आर्यस्वभावयुक्त नहीं हो सकता। इससे निश्चय ही आर्यों के गुरु और कर्मों को सेवन कर और दस्यु कर्मों को छोड़कर निरन्तर सुखी रहना चाहिए ॥८॥

अनुव्रताय रन्धयन्वपवतानाभूमिरिन्द्रः रन्धयन्वनाभुवः ।

वृद्धस्य चिद्धैतो यामिनस्ततः स्तवानो वस्रो वि जघान सन्दिहः ॥६॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो ( इन्द्र ) परम विद्या आदि ऐश्वर्य, सभा, शाला, सेना और न्याय का अध्यक्ष ( आभूमि ) उत्तम धीरों को शिक्षा करनेवाली क्रियाओं के साथ वर्तमान ( अनुव्रताय ) अनुकूल धर्मयुक्त त्रुतों के धारण करने वाले धर्म मनुष्य के लिए ( अपवतान् ) मिथ्याभाषणादि दुष्ट कर्मयुक्त दस्यु मनुष्यों को ( रन्धयन् ) प्रति ताड़ना करता हुआ ( वनाभुव ) धर्मात्माओं से विरुद्ध पापी मनुष्य को ( इन्धयन् ) शिथिल करता ( इन्धत ) व्याप्तियुक्त ( वसत ) गुण दोषों से बहनेवाले ( वृद्धस्य ) ज्ञानादि गुणों से युक्त श्रेष्ठ की ( स्तवान ) स्तुति कर्ता ( वस्र ) अधर्म का नाश ( सविह ) धर्माधर्म को सवेह से निश्चय करने वाला ( याम् ) सूर्यप्रकाश के ( चित् ) समान विद्या के प्रकाश को विस्तारयुक्त करना हुआ दुष्टों को ( बिजघान ) विधोष करके मारता है उसी कुल को सुभूषित करनेवाले धर्म मनुष्य को सभाधिपति रूप में स्वीकार कर राजधर्म का यथावत् पालन करे ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। सब धार्मिक मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों को प्रविद्या से निवारण और विद्या पदा विद्वान् करके धर्माधर्म के विचारपूर्वक निश्चय में धर्म का ग्रहण और अधर्म का त्याग करें। सदैव धर्मों का सङ्ग, दस्युओं के सङ्ग का त्यागकर सबसे उत्तम व्यवस्था में रहें ॥६॥

फिर वह सभाध्यक्ष कंसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों किया है—

तक्षग्रत् उशना सहसा सहो वि रोदमी मज्जना वाधते श्वः ।

आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्मभि श्रवः ॥१०१०॥

पदार्थ—हे ( नृमण ) मनुष्यों में मन देनेवाले ( उशना ) कामयमान विद्वन् । आप ( सहसा ) अपने सामर्थ्य से शत्रुओं के ( सह ) बल का हनन करके जैसे सूर्य ( रोदमी ) धर्म और प्रकाश को करता है वैसे ( मज्जना ) शुद्ध बल से ( श्व ) शत्रुओं के बल को ( बिबाधते ) बिनाहन वा ( वातक्षत् ) छेदन करते हो और ( ते ) आपके ( मनोयुज ) मन से युक्त होनेवाले भृत्य ( त्वा ) आपका आश्रय लेके ( ते ) आपके ( वातस्य ) बलयुक्त वायु के सम्बन्धी ( आपूर्यमाणम् ) न्यूनता रहित ( अब ) श्वरग और अन्नादि को ( अम्बावहन् ) प्राप्त होवे ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालकार है। विद्वान् सेनाध्यक्ष के बिना पृथिवी के राज्य की व्यवस्था, शत्रुओं के बल की हानि, विद्यादि सद्गुणों का प्रकाश, और उत्तम अन्नादि की प्राप्ति नहीं होती ॥१०॥

मन्दिष्ट यदुशनं काव्ये मर्चो इन्द्रो वङ्कु वङ्कुतगाधि तिष्ठति ।

उग्रो ययि निरपः स्नातसासृजद्वि शुष्णस्य दृष्टिता ऐर्यत्पुरः ॥११॥

पदार्थ—हे ( मन्दिष्ट ) अतिशय करके स्तुति करनेवाले जो ( उग्र ) दुष्टों को मारनेवाले ( इन्द्र ) सभाध्यक्ष । आप जैसे सूर्य ( स्नातसा ) ओतों से ( अप ) जलो को बहाता है वैसे ( उशने ) अतीव सुन्दर ( ययि ) जिम ( काव्ये ) कवियों के काम में जो ( वङ्कु ) कुटिल ( वङ्कुतरा ) प्रतिशय करके कुटिल बालवाले शत्रु और उदासी मनुष्यों के ( अधितिष्ठति ) राज्य में अधिष्ठाता होते हो जैसे सविता ( सत्वा ) अपने गुणों से ( ययिम् ) मेघ को ( निरसृजत् ) निरप सज्जन करता है वैसे ( शुष्णस्य ) बल की ( दृष्टिता ) वृद्धि करानेवाली क्रियाओं को ( पुर ) पहले ( ऐर्यत् ) प्राप्त करते हो सो आप सबके द्वारा सत्कार करने योग्य हो ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालकार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो कवि, सब शास्त्र का वक्ता, कुटिलता का विनाश करनेवाला दुष्टों, पर कठोर, श्रेष्ठों पर कोमल, सर्वथा बल को बढ़ानेवाला पुरुष है, उसी को सभा आदि के अधिकारों में युक्त करें ॥११॥

आ स्मगा रथं वृषपाणेषु तिष्ठति शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।

इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाक्नोऽनर्वाणं श्लोकमा गेहसे दिवि ॥१२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) उत्तम ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष । जिमसे तू ( यथा ) जैसे विद्वान् लाभ पदार्थविद्या को सिद्ध करके गुणों को प्राप्त होन और जो ( शार्यातस्य ) धीर पुरुष के ( येषु ) जिन ( सुतसोमेषु ) उत्तम रसों से युक्त ( वृषपाणेषु ) पुष्टि करने वाले सोमलतादि पदार्थों अर्थात् वैद्यक शास्त्र की नीति से प्रति श्रेष्ठ बनाये हुए और उत्तम व्यवहारा में ( प्रभृता ) धारण किये हो वैसे उनको प्राप्त होंके ( मन्दसे ) आनन्दित होने और ( अनर्वाणम् ) अग्नि आदि अश्व सहित पशु आदि अश्व रहित (श्लोकम्) सब प्रवयवों से सहित रथ के मध्य ( स्म ) ही ( आतिष्ठसि ) स्थित और उसकी ( चाक्नम् ) इच्छा करते हैं और ( बिधि ) प्रकाशरूप सूर्यलोक में ( आरोहसे ) आरोहण करते हो ( रथ ) इसीलिए आप योग्य हो ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। विमानादि यान और विद्वानों के सङ्ग के बिना किसी मनुष्य को सुख नहीं हो सकता इससे विद्वानों की सभा और पदार्थों के ज्ञान का उपयोग करके सब मनुष्यों को आनन्द में रहना चाहिए ॥१२॥

अदंदा अभी महते वन्धस्यवे कक्षीवते वृष्यामिन्द्र सुन्वते ।

मेनाऽभवो वृषणश्चस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥

पदार्थ—हे ( सुक्रतो ) शोभनकर्मयुक्त ( इन्द्र ) शिल्पविद्या को जाननेवाले विद्वन् ! तू ( वन्धस्यवे ) अपने को शास्त्रोपदेश की इच्छा करने वा ( महते ) महागुण विशिष्ट ( सुन्वते ) शिल्पविद्या को सिद्ध करने ( कक्षीवते ) विद्याप्राप्त भय गुली वाले मनुष्य के लिए जिस ( वृष्याम् ) छेदनभेदनरूप ( अभि ) धीधी भी शिल्पक्रिया को ( अब्धा ) देते हो ( सवनेषु ) प्रेरणा करनेवाले कर्मों में ( प्रवाच्या ) अच्छे प्रकार कथन करने योग्य ( मेना ) वाणी ( वृषणश्चस्य ) शिल्पक्रिया की इच्छा करनेवाले ( ते ) आपके ( विश्वा ) सब कार्य हैं ( ता, इत् ) उन ही के सिद्ध करने को समर्थ ( अब्ध ) इजिए ॥१३॥

भाषार्थ—विद्वान् मनुष्यों को अग्नि आदि पदार्थों का विद्याशान करके सब मनुष्यों के लिए हित के काम करने चाहिए ॥१३॥

फिर वह कैसे गुणवाला हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रो अभ्रायि सुध्यों निरेके पञ्चेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।

अन्धयुगेव्यु रन्धयुर्वस्युगिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥१४॥

पदार्थ—जो ( अन्धयु ) अपने प्रबो ( गव्य ) अपने गौ पृथिवी, इन्द्रिय, किरणों ( रन्धयु ) अपने रथ और ( वस्यु ) अपने द्रव्यों की इच्छा और ( प्रयन्ता ) अच्छे प्रकार नियम करनेवाले के ( इत् ) समान ( इन्द्र ) विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् ( राय ) धर्मों को ( क्षयति ) निवासयुक्त करता है वह ( सुध्य ) जो उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् मनुष्य हैं उनसे ( दुर्य ) गृहसम्बन्धी ( यूप ) जन्म के ( न ) समान ( इन्द्र ) विद्यादि ऐश्वर्यवान् ( निरेके ) शकारहित ( पञ्चेषु ) शिल्पादि व्यवहारों में ( स्तोम ) स्तुति करने योग्य ( अभ्रायि ) सेवनयुक्त होता है ॥१४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे सूर्य से बहुत उत्तम-उत्तम कार्य सिद्ध होते हैं वैसे विद्वान् और अग्निजलादि से रथ की सिद्धि के द्वारा धन की प्राप्ति होती है ॥१४॥

अब अगले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

इदममो वृषभाय स्वगजे सत्यशुभ्राय तवसेवाचि ।

अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीगः स्मत् गिभिस्तव शर्मन्त्याम ॥१५॥११॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परम पूजनीय सभापते ! जैसे ( सूरिभि ) विद्वानों ने ( वृषभ ) सुख की वृष्टि करने ( सत्यशुभ्राय ) विनाशरहित बलयुक्त ( तवसे ) प्रति बल से प्रवृद्ध ( स्वगजे ) अपने आप प्रकाशमान परमेश्वर को ( इदम् ) इस ( नभ ) सत्कार को ( अवाचि ) कहा है वैसे हम भी करें। ऐसा करके हम लोग ( तव ) आपके ( अस्मिन् ) इस जगत् वा इस ( वृजने ) दुखों को दूर करनेवाले बल से युक्त ( शर्मन् ) गृह में ( स्मत् ) अच्छे प्रकार सुखी ( स्वाय ) होवें ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालकार है। सब मनुष्यों को विद्वानों के साथ रहकर परमेश्वर ही की उपासना, पूर्ण प्रीति से विद्वानों का सङ्ग कर परम आनन्द को प्राप्त करना और कराना चाहिए ॥१५॥

इस सूक्त में सूर्य, अग्नि और बिजुनी आदि पदार्थों का वर्णन, बलादि की प्राप्ति अनेक अलङ्कारों के कथन से विविध धर्मों का वर्णन और सभाध्यक्ष तथा परमेश्वर के गुणों का प्रतिपादन किया है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति माननी चाहिए ॥

यह ग्यारहवाँ वर्ण और इक्ष्वाकनर्वा सूक्त समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥



अथाऽस्य पञ्चवर्षाचस्य द्विपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरस सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ८, धुरिक् त्रिष्टुप्, ७ त्रिष्टुप्, ९, १० स्वरान् त्रिष्टुप् १२, १३,

१५ निचृतिष्टुप्छन्दः । धेवत स्वर । २, ४ निचृजगती, ५, १४

जगती, ६, ११ विराट् जगती च छन्दः । निषाद स्वर ॥

अब बाचनवें सूक्त का आरम्भ है। इसके पहले मन्त्र में इन्द्र कंसा है

इस विषय का उपदेश किया है—

त्यं सु मेघं महया स्वर्विदं अतं यस्य सुभ्यः साकमीरते ।

अत्यं न वाजं हवनस्पदं रथमेन्द्रं वृष्ट्यामवसे सुष्टिर्भिः ॥१॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस परमैश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष के ( वातम् ) धसंख्यात ( सुम्भ ) सुखों को उत्पन्न करनेवाले कारीगर लोग ( सुष्टिर्भिः ) दुखों को दूर करनेवाली उत्तम क्रियाओं के ( साकम् ) साथ ( अत्यम् ) अश्व के ( न ) समान अग्नि, जलादि से ( अब्धे ) रक्षादि के लिए ( हवनस्पदम् ) सुखपूर्वक आकाश मार्ग में प्राप्त करनेवाले ( वाक्वम् ) वेगयुक्त ( इक्ष्वा ) परमोत्कृष्ट ऐश्वर्य के दाता ( स्वविदम् ) जिससे आकाश मार्ग से जा-आ सके उस ( रथम् ) विमान आदि यान को ( इरते ) प्राप्त होते हैं और जिससे मैं ( वृष्ट्याम् ) बर्तता हूँ ( त्यम् ) उस ( मेघम् ) सुख की बधनि बाने की हे विद्वन् ! तू उनका ( सुमह्य ) अच्छे प्रकार सत्कार कर ॥ १॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे अश्व को युक्त कर रथ आदि की बजाते हैं वैसे अग्नि आदि से यानों को चला के कार्यों को सिद्ध करें ॥ १ ॥



किर बहु केषा हो इस विषय का उपदेश अगले सर्गों में किया है—

स पर्वतो न ध्वजेष्वप्युतः सहस्रमूर्तिस्तविषीषु वाहये ।

इन्द्रो यद्वज्रमवधीमदीहृतमुज्ज्वलीसि जहृषाणो अन्धसा ॥२॥

पदार्थ—हे राजप्रजापति ! जैसे ( वज्रसे ) धारकों में ( अच्युतः ) सत्य सामर्थ्ययुक्त ( अर्थात् ) जलों को ( उज्ज्वल ) बल पकड़ता हुआ ( इन्द्र ) सविता ( नवीवृत्तम् ) नदियों से युक्त वा नदियों को चलाने वाले ( वृजम् ) मेघ को ( अवधीत् ) मारता है ( स ) वह ( पर्वत ) पर्वत के ( न ) समान ( वज्रसे ) बड़ता है जैसे ( यत् ) जो तु शत्रुओं को मार ( सहस्रमूर्ति ) असंख्यात रक्षा करने वाले ( तविषीषु ) बलों में ( जहृषाणम् ) बार-बार हथों को प्राप्त करता हुआ ( अन्धसा ) अन्नादि के साथ वत्तमान बार-बार बड़ाता रह ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के सदृश सेना धारि को धारण कर और मेघ के तुल्य अन्नादि सामग्री के साथ वर्तमान होके बलों को बड़ाता है वह पर्वत के समान स्थिर, सुखी हो शत्रुओं को मारकर राज्य के बढाने में समर्थ होता है ॥ २ ॥

स हि द्रो द्रिषु वज्र ऊधनि चन्द्रध्वजो मदद्दो मनीषिभिः ।

इन्द्र तमह्ये स्वपस्यया धिया मंहिष्ठराति स हि पमिरन्धसः ॥३॥

पदार्थ—जो ( ऊधनि ) प्रातः काल में ( द्रिषु ) अन्धकारावत व्यवहारों में ( द्रिः ) अन्धकार से प्राप्त द्वार ( चन्द्रध्वजम् ) कुण्ड अर्थात् अन्तरिक्ष में सुवर्ण वा चन्द्रमा के वर्णों से युक्त ( मदद्दो ) हथों से बड़ा हुआ ( अन्धसा ) अन्नादि को ( पमिः ) पूर्ण करनेवाला ( वज्र ) कूप के समान मेघ है उसके तुल्य ( मनीषिभिः ) मेधाविधियों के साथ ( हि ) निश्चय करके वर्तमान सभाध्यक्ष है ( तम् ) उस ( मंहिष्ठरातिम् ) अत्यन्त पूजनीय दानयुक्त ( इन्द्रम् ) विद्वान् को ( स्वपस्यया ) उत्तम कर्मयुक्त व्यवहार में होने वाली ( धिया ) बुद्धि से मैं ( इन्द्र ) आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जो मेघ के तुल्य प्रजापालन और सूर्यवत् सुखों की वर्षा करता है उस परमेश्वरयुक्त पुरुष को सभाध्यक्ष का अधिकार दें ॥ ३ ॥

आ यं पृथन्ति दिवि सधर्षहिषः समुद्रं न सुभ्रः स्वा अमिष्टयः ।

तं वृत्रहृत्ये अनु तस्थुस्तयः शुष्मा इन्द्रमवाता अहुतप्सवः ॥४॥

पदार्थ—( सधर्षहिषः ) उत्तम स्थान आसनयुक्त ( शुष्मः ) उत्तम होने वाले मनुष्य ( अवाता ) वायु के चलाने से रहित नदियाँ ( समुद्रम् ) जैसे सागर वा आकाश को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे जिस ( इन्द्रम् ) सभासदों सहित सभापति को ( वृत्रहृत्ये ) जिसमें मेधावयवों के हनन तुल्य हनन होता उस सभा में ( स्वा ) अपने ( अमिष्टयः ) शुभेच्छा युक्त ( शुष्मा ) बल सहित ( अहुतप्सवः ) कुटिलता रहित सूर्यरूप ( ऊतयः ) सुरक्षित प्रजा ( आपुनन्ति ) सुखी करें ( तम् ) परमेश्वरकारक और पुरुष के ( अनुतस्थुः ) अनुकूल न्वित होवें वही चक्रवर्ती राज्य करने को योग्य होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे नदी समुद्र वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर स्थिर होती है वैसे ही सभासदों के सहित विद्वान् को प्राप्त होकर सब प्रजा स्थिर सुखवाली होती है ॥ ४ ॥

अभि स्वष्टेहि मदे अस्य पुध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे संस्क्रुतयः ।

इन्द्रो यद्वज्री धृयमाणो अन्धसा मिनदलस्य परिधीरिव त्रितः ॥५॥१२॥

पदार्थ—( यत् ) जो सूर्य के समान ( स्वष्टिम् ) अपने शस्त्रों की वृष्टि करता हुआ ( धृयमाणः ) शत्रुओं को प्रगल्भता दिखाने द्वारा ( वज्री ) शत्रुओं को छेदन करनेवाले शस्त्रसमूह से युक्त ( इन्द्रः ) सभाध्यक्ष ( मदे ) हथों में ( अस्त्रम् ) इस ( पुध्यत ) युद्ध करते हुए ( बलस्य ) शत्रु के ( त्रितः ) ऊपर, मध्य और टेढ़ी तीन दिशाओं से ( परिधीरिव ) सब प्रकार ऊपर की गोल दिशा के समान बल को ( अभिभिन्नत् ) सब प्रकार से भेदन करता है उसके ( अन्धसा ) अन्नादि का जल से ( रघ्वीरिव ) जैसे जल से पूर्ण नदियाँ ( प्रवणे ) नीचे स्थान में जाती हैं वैसे ( ऊतयः ) रक्षा धारि ( तम् ) गमन करती हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जल नीचे स्थान को जाता है वैसे सभाध्यक्ष मन्त्र होकर विनय को प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

किर बहु सभाध्यक्ष किसके तुल्य क्या करता है इस विषय का उपदेश

अगले सर्ग में किया है -

परीं घृणा चरति तित्विषे शबोऽपो वृत्वी रजसो बुधमाश्रयत् ।

वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गुमिन्धनो निजघन्य हन्वीरिन्द्र तन्यतुम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान वर्तमान सभाध्यक्ष ! जैसे ( तित्विषे ) प्रकाश के लिए ( यत् ) जिस सूर्य का ( शबः ) बल वा ( घृणा ) दीप्ति ( ईन् ) जल को ( परिचरति ) सेवन करती है ( दुर्गुमिन्धनः ) दुःख से जिसका बहण हो ( बुधम् ) मेघ का ( घृण्यन् ) शरीर ( रजसः ) अन्तरिक्ष के मध्य में ( आशः ) जल को ( वृत्वी ) आवरण करके ( अश्रयत् ) सोता है उसकी ( हन्वी ) धारण पीछे के मुख के अवयवों में ( तन्यतुम् ) बिजली को छोड़कर उसे ( प्रवणे ) नीचे ( निजघन्य ) मार कर गेर देता है वैसे वर्तमान होकर न्याय में प्रवृत्त हुआ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि वे सूर्य वा मेघ के समान वर्तने विद्या और न्याय की वर्षा का प्रकाश करें ॥ ६ ॥

किर बहु केषा है इस विषय का उपदेश अगले सर्गों में किया है—

इदं न हि त्वा न्युपन्त्युर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।

त्वष्टां चित्ते युज्यं वाहये शर्वस्ततश्च वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७॥

पदार्थ—( इन्द्र ) बिजली के समान वर्तमान ( ते ) आप के ( बर्धना ) बढानेवाले ( ब्रह्माणि ) बड़े-बड़े धन ( अर्थात् ) तरंग धारि ( वृजम् , न ) जैसे नदी जनस्थान को प्राप्त होती है वैसे ( हि ) निश्चय करके ज्योतिषों को ( न्युपन्ति ) प्राप्त होने है वह ( त्वष्टा ) मेधाजयव वा मूर्तिमान् द्रव्यों का छेदन करनेवाले ( शर्वः ) बल ( अभिभूत्योजसम् ) ऐश्वर्ययुक्त पराक्रम तथा ( युज्यम् ) युक्त करने योग्य ( वज्रम् ) प्रकाशसमूह का प्रहार करके सब पदार्थों को ( ततश्च ) छेदन करता है वैसे आप भी हुआ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जल नीचे स्थानों को जाकर स्थिर वा स्वच्छ होता है वैसे ही राजपुरुष उत्तम-उत्तम गुणयुक्त तथा विनय वाले पुरुष को प्राप्त होकर स्थिर और शुद्ध करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

जघन्वा उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्रं वृत्रं मनुषे मातृयक्षपः ।

अयं च तथा बाहोर्वज्रमायसमधार्यो दिव्या सूर्यं द्रो ॥८॥

पदार्थ—हे ( संभृतक्रतो ) क्रियाप्रज्ञाओं का धारण किये हुए ( इन्द्र ) मेधावयवों का छेदन करनेवाले सूर्य के समान शत्रुओं को ताड़नेवाले सभापति ! आप जैसे सूर्य अपने किरणों से ( वृत्रम् ) मेघ को ( जघन्वाम् ) गिराता हुआ ( अपः ) जलों को ( मनुष्यो ) मनुष्यों को ( मातृयक्षम् ) पृथिवी पर प्राप्त करता हुआ प्रजा को धारण करता है वैसे ही प्रजा की रक्षा के लिए ( बाहो ) बल तथा आकर्षणों से समान भुजाओं के मध्य ( आयसम् ) लोहे के ( वज्रम् ) किरण समूह के तुल्य शस्त्रों को ( आमारयः ) अच्छे प्रकार धारण कीजिए, वीरों को कराइए और सब मनुष्यों को सुख देने के लिए ( विभिः ) शुद्ध व्यवहार में ( सूर्यम् ) सूर्यमण्डल के समान न्याय और विद्या के प्रकाश को ( द्रो ) दिखाने के लिए ( अयं च तथा ) सब प्रकार से प्रदान कीजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्यलोक बल और आकर्षण गुणों द्वारा सब लोकों के धारण से जल का आकर्षण कर वर्षा से दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है वैसे ही सभा सब गुणों का धर, धनकार्य में मुपात्रों को सुमार्ग की प्रवृत्ति के लिए दान देकर प्रजा के लिए आनन्द को प्रकट करे ॥ ८ ॥

किर बहु क्या करे इस विषय का उपदेश अगले सर्गों में किया है—

वृहत्स्वबन्धुममयद्युक्ष्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।

यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वेनृषाचो मरुतोऽमदभन्तु ॥९॥

पदार्थ—जो ( मानुषप्रधना ) मनुष्यों को उत्तम धन प्राप्त करने तथा ( मृषाचः ) मनुष्यों को कर्म में संयुक्त करनेवाले ( मरुतः ) प्राण धारि हैं वे ( इन्द्रम् ) बिजली को प्राप्त होकर ( यत् ) जिस ( वृहत् ) बड़े ( स्वबन्धुम् ) अपने आह्लादकारक प्रकाश से युक्त ( अमयत् ) उत्तम ज्ञान ( उक्ष्यम् ) प्रशंसनीय ( रू ) मुख को ( अकृण्वतः ) सम्पादन करते हैं और ( यत् ) जो ( भियसा ) दुःख के भय से ( विषः ) प्रकाशमान, मोक्ष मुख का ( रोहणम् ) आरोहण ( ऊतयः ) रक्षा धारि होती है उन को करके ( अमयवन् ) उसके अनुकूल आनन्द करते हैं वे मनुष्य मुख्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—विद्याधन, राज्य, पराक्रम, बल वा पुरुषों की सहायता से सब जित धार्मिक विद्वान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उन के लिये उत्तम सुख उत्पन्न करते हैं ॥ ९ ॥

यौश्चिदस्यामवाँ अहंः स्वनादयौयवीक्ष्यसा वज्र इन्द्र ते ।

वृत्रस्य यद्वज्रघानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवमाभिनच्छिरः ॥१०॥१३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य के हेतु सेनापति ! जो ( अस्य ) इस ( ते ) आप का और हम सूर्य का ( यौ ) प्रकाश ( अहं ) ( वृत्रघानस्य ) रोकनेवाले मेघ के ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए ( वृजस्य ) आवरण कारक जल के अवयवों को ( अयोधवीत् ) मिलाता वा पृथक् करता है ( चित् ) वैसे ( अमयान् ) जलकारी ( वज्रः ) वज्र के ( स्वनात् ) शब्दों से ( भियसा ) और भय से ( शवसा ) बल के माथ शत्रु लोग आगते हैं ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी के समान ( मदे ) आनन्दकारी व्यवहार में वर्तमान शत्रु का ( छिरः ) शिर ( अभिवत् ) काटते हैं तो आप हम लोगों का पालन कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के किरण और बिजली मेघ के साथ प्रवृत्त होती हैं वैसे ही सेनापति धारि के साथ सेना को होना चाहिए ॥ १० ॥

यदिन्विन्द्र पृथिवी दशसुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।

अजाह ते मध्वन् विश्रुतं सहो धामनु शवसा बर्धया भुवत् ॥११॥

पदार्थ—हे ( मध्वन् ) उत्कृष्ट धन और विद्या के ऐश्वर्य से युक्त ( इन्द्र ) तथा सेनाध्यक्ष ! आप ( यत् ) जो ( दशसुजिः ) दश इन्द्रियों से ( पृथिवी ) भूमि को जीगते हो ( ते ) आप के ( बर्धना ) सब सुख प्राप्त कराने वा ( शवसा , बर्धः )

बल से ही ( धाम् ) राज्य पालन ( अनुविभूतम् ) अनुकूल कीर्ति करने वाला पशु ( सह ) बल ( भुवन् ) होवे उससे युक्त होके आप प्रयत्न कीजिए जिससे (अत्र) हम राज्य में ( कृष्टय ) मनुष्य लोग ( विश्वम् ) सब ( ग्रहानि ) दिनों को ( इत् ) ही सुख से ( सु ) जन्दी ( सतनन्त ) विस्तार करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे अपने राज्य में सुखों की वृद्धि और अनेक प्रकार से गुणों की प्राप्ति हो वैसे अनुष्ठान करें ॥ ११ ॥

किर इस जगत् का राजा परमात्मा कैसा है इस का उपदेश किया है—

त्वमस्य पारे रज्जमो व्योमनः स्वभृत्योजा अवसे धृषन्मनः ।

चकृवे भूमिं प्रतिमानमोजमोऽपः स्वः परभूरेप्या दिवम् ॥१२॥

पदार्थ—हे ( धृषन्मन ) अनन्त प्रगल्भ विज्ञानयुक्त जगदीश्वर ! जो ( परिभू ) सब प्रकार होने ( स्वभृत्योजा ) अपने ऐश्वर्य वा पराक्रम से ( त्वम् ) आप ( अवसे ) रक्षा आदि के लिए ( अस्य ) इस सभाग के ( रज्जस ) पृथिवी आदि लोकों तथा ( व्योमन ) आकाश के ( पारे ) अवरभाग में भी ( एषि ) प्राप्त है और आपने ( ओजस ) पराक्रम आदि के ( प्रतिमानम् ) अवशिष्ट ( स्व ) सुख ( विषम् ) शुद्ध विज्ञान के प्रकाश ( भूमिम् ) भूमि और ( अप ) जलो को ( आचकृवे ) अच्छे प्रकार किया है उन आपकी हम सब लोग उपामना करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सब से उनम, सबसे परे वर्तमान होकर अपने सामर्थ्य से लोकों को रनेके उन म सब प्रकार म व्याप्त हो, धारण कर सब को व्यवस्था में युक्त करता हुआ जीवों के पाप-पुण्य की व्यवस्था करने से न्यायाधीश होकर वर्तता है वैसे ही न्यायाधीश भी राज्य को करता हुआ सब के लिए सुखों को उत्पन्न करे ॥ १२ ॥

किर वह परब्रह्म कैसा है इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋध्वीरस्य वृत्तः पतिर्भूः ।

विश्वमात्रां अन्तरिक्षं महित्वा मत्पमद्वा नर्किर्गन्धस्त्वावान् ॥१३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो ( त्वम् ) आप ( पृथिव्या ) विस्तृत आकाश और ( भुव ) भूमि के ( प्रतिमानम् ) परिमाणकर्ता तथा ( वृत्त ) महाबलयुक्त ( ऋध्वीरस्य ) बड़े गुणयुक्त तगत का वा महावीर मनुष्य के ( पति ) पालन करनेवाले ( भू ) हैं तथा आप ( विश्वम् ) सब जगत् ( अन्तरिक्षम् ) अनेक लोकों के मध्य म अन्तःस्थस्वरूप आकाश और ( मत्पमद्वा ) कारणरूप से ध्वनिशी अष्टे प्रकार परीक्षा किये हुए चारों धरो द्वारा प्रकट हुए सत्य को ( महित्वा ) बड़ी व्याप्ति से व्याप्त हाकर ( अद्वावा ) माक्षात् पूरा करते हो इस से ( त्वावान् ) आपके मद्ग ( अन्ध ) दूरग ( नर्कि ) विद्यमान कोई भी नहीं है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सब जगत् का रचयिता परिमाणकर्ता व्यापक और सत्य का प्रकाश करनेवाला है, इसलिए ईश्वर के सदृश कोई भी पदार्थ न हुआ और न होगा ऐसा समझकर, हम लोग उसी की उपासना करें ॥ १३ ॥

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न मिन्धवो रज्जमो अन्तमानशुः ।

नोत स्वर्गं मदे अस्य युध्यन् एको अन्यसंकुचे विश्वमानुषक ॥१४॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस ( रज्जस ) ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर की ( अनुव्यच ) अनन्तव्याप्ति के अनुकूल वर्तमान ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश अप्रकाशयुक्त लोक और चन्द्रमादि भी ( अन्धम् ) अन्तर्ध्यात् सीमा को ( न ) नहीं ( आनशु ) प्राप्त होते हैं । हे परमात्मा ! जैसे ( स्वर्गं ) अपनी पदार्थों की वर्णों के प्रति ( नोत ) आनन्द में ( युध्यन् ) युद्ध करते हुए मेघ का सूर्य के सामने विजय नहीं हाता वैसे ( एक ) महाय रहित अद्वितीय जगदीश्वर ( अन्धम् ) अपने से भिन्न द्वितीय ( विश्वम् ) जगत् को ( आनशु ) अपनी व्याप्ति से युक्त किया है इससे आप उपासना के योग्य हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर के किसी गुण की कोई मनुष्य वा कोई लोक सीमा को ग्रहण नहीं कर सकता और जैसे जगदीश्वर पापयुक्त कर्म करनेवाले मनुष्यों के लिए दू लक्ष्म फल देने में पीडा देता, दुष्टों को ताड़ना, और सूर्य मेघाजयवों की विदारण करता हुआ, युद्ध करनेवाले मनुष्य के समान वर्तता है, वैसे ही सब मज्जन मनुष्यों को वर्तना चाहिए ॥ १४ ॥

किर ईश्वरोपासक कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आर्चयन्न परतः मस्मिन्नाजौ विश्वं देवासीं अमदन्तु त्वा ।

वृत्रस्य यद्वृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्य ॥१५॥१४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वरयुक्त सभा सेना के स्वामी ! ( यत् ) जो ( त्वम् ) आप ( भूष्टिमता ) प्रशमनीय नीति वाले न्याय अवहार से युक्त ( वधेन ) हनन से ( वृत्रस्य ) अधर्मी मनुष्य के समान ( आनम् ) प्राण को ( जघन्य ) मर्द करते हो उन ( त्वा ) आपको ( सस्मिन् ) सब ( आजौ ) सभाय वा ( अम् ) इन आप में श्रद्धा करनेवाले ( विश्वेदेवास ) सब विद्वान् और ( अमत् ) अस्तिव्यज्ज लोग ( न्यायम् ) नित्य सत्कार करते हैं हमसे वे प्रजा के प्राणी ( प्रत्यन्वमम् ) सब को आनन्दित करके आप आनन्दित होते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो एक परमेश्वर की उपामना, विद्या को ग्रहण और शत्रुओं को ताड़ विजय को प्राप्त कर प्रजा को निरन्तर आनन्दित करते हैं वे ही धार्मिक विद्वान् सुखी रहते हैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में विद्वान्, विबुली आदि, अग्नि और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बातें सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

अर्चकावशर्कस्य त्रिपञ्चाशस्य सुवतरयाज्ञिरस सध्य ऋषिः । इन्द्रो देवताः १, ३

निष्कजगती, २ भूरिजगती, ४ जगती, ५, ७ विराजगती व

छन्द । निषाद स्वर । ६, ८, ९ त्रिष्टुप्, १० भूरिक्

त्रिष्टुप् व छन्द । ध्रुवत स्वर । ११ सत

पङ्क्तिछन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब उपदेश सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में मनुष्यों को धर्म विचार कर क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है—

न्युष्टु वाचं प्र महे भंगमहे गिर इन्द्राय सदेने विवस्वतः ।

न चिद्धि रत्नं ममतामिवाविदम दुष्टुतिर्द्विणोदेषु शस्यते ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( महे ) महामुखप्रापक ( सदेने ) स्थान में ( इन्द्राय ) परमेश्वर के प्राप्त करने के लिए ( न्यु ) शुभ लक्षणयुक्त ( वाचम् ) वाणी को ( निभरामहे ) निश्चित धारण करते हैं स्वप्न में ( ससतामि ) सोने हुए पुरुषों के समान ( गिर ) सूर्यप्रकाश में ( रत्नम् ) रमणीय सुवर्णों के समान ( गिर ) स्तुतियों को धारण करते हैं किन्तु ( इविणोदेषु ) सुवर्णों वा विद्यादिकों के देने वाले हम लोगों में ( दुष्टुति ) दुष्ट स्तुति और पाप की कीर्ति अर्थात् निन्दा ( न प्रशस्यते ) श्रेष्ठ नहीं होती वैसे तुम भी होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । मनुष्यों का जैसे निद्रा में स्थित हुए मनुष्य आराम को प्राप्त होते हैं वैसे सर्वदा विद्या और उत्तम शिक्षाओं से सत्कार की हुई वाणी को स्वीकार प्रशसनीय कर्म का सेवन और निन्दा को दूर कर स्तुति का प्रकाश करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरमि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।

शिक्षानरः प्रदिवा अकामकर्शनः मग्वा सविभ्यस्तमिदं गृणीममि ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्वान् ! जो ( अकामकर्शन ) आनन्दयुक्त मनुष्यों को कृश ( शिक्षानर ) शिक्षाओं को प्राप्त करने वा ( सविभ्य ) मित्रों के ( सखा ) मित्र ( पति ) पालन करने वा ( इन् ) ईश्वर के तुल्य सामर्थ्ययुक्त आप ( अश्वस्य ) व्याप्तिकारक अग्नि आदि वा तुरग आदि के द्वारा को प्राप्त होके सुख देने वाली ( गो ) बागी वा दूध देने वाली गो के ( दुर ) सुख देनेवाले द्वारा को जान ( यवस्य ) उत्तम धन आदि धन ( प्रदिवा ) उत्तम विज्ञान, प्रकाश और ( वसुन ) उत्तम धन देनेवाले ( अति ) है ( तम् ) उस आप की ( इवम् ) पूजा वा सत्कारपूर्वक ( गृणीममि ) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तापमालकार है । परमेश्वर के तुल्य धार्मिक विद्वान् के बिना किसी के लिए सब पदार्थ वा सब सुखों के देने वाला कोई नहीं है परन्तु जो निश्चय करके सबके मित्र शिक्षाओं का प्राप्त किय हुए मनुष्य है वे ही इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं आलसी मनुष्य नहीं ॥ २ ॥

किर वह कैसा है वह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

शचीव इन्द्र पुरुकृद्युमत्तम तवेदिदमभितंशेकिते वसु ।

अतः सङ्गम्याभिभूत आ भर त्वायतो जगितुः काममूनयीः ॥३॥

पदार्थ—हे ( शचीव ) प्रशसनीय प्रजा, वाणी और कर्मयुक्त ( युमत्तम ) अतिशय करके सर्वज्ञता विद्याप्रकाशयुक्त ( पुरुकृत् ) बहुत सुखों के दाता ( इन्द्र ) परमेश्वरयुक्त जगदीश्वर वा ऐश्वर्यप्रापक सभापति विद्वान् ! आप की कृपा वा आपके सहाय से मनुष्य ( अभित ) सब धोर से ( इवम् ) इस ( वसु ) उत्तम धन को ( अकिते ) जानता है । हे ( अभिभूते ) शत्रुओं के पराजय करनेवाले ! जिस कारण आप ( त्वायत ) आप वा उसके आत्मा की इच्छा करते हुए ( जगितु ) स्तुति करनेवाले धार्मिक भक्तजन की ( कामम् ) इष्टसिद्धि को ( आभर ) पूर्ण करें ( अत ) इस पुरुषार्थ से आप की ( सङ्गम्या ) ग्रहण करके मैं वर्तता है और आप मुझे सब कामों से पूर्ण कीजिए आपकी इच्छा करने हुए स्तुति करनेवाले मेरी इष्टसिद्धि को ( मोनयी ) कभी क्षीण मत कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को निश्चय ही परमेश्वर वा विद्वान् मनुष्य के संग के बिना सब कामनाओं की पूर्ति करना सम्भव नहीं है । इससे इसी की उपासना वा विद्वान् मनुष्य का सम्मर्ग करके इष्टसिद्धि को सम्पादन करना चाहिए ॥ ३ ॥

एभिर्धुभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुध्वा नो अमंति गोभिर्ध्विना ।

इन्द्रं दस्युं दुरयन्त इन्दुभिर्युतद्वयसः समिधा रंभेमहि ॥४॥

पदार्थ—हम लोग जो ( एभिर्धुभिः ) विज्ञान वा सुख से अविद्या, दरिद्रता तथा मुन्दर रूप को ( निरुध्वा ) निरोध वा ग्रहण करता हुआ ( सुमनाः ) उत्तम विज्ञानयुक्त सम्मर्ग्य है उसकी प्राप्ति कर उसके सहाय वा ( एभिः ) इन

भाषार्थ—सब मनुष्यों को परस्पर निश्चित मैत्री, सब स्त्री-पुरुषों को उत्तम विद्यावृत्त जितेन्द्रियता आदि गुणों को ग्रहणकर धीर कराके पूर्ण प्रायु का भोग करना चाहिए ॥११॥



इस सूक्त में विद्वान् सभाष्यक्ष तथा प्रजा के पुरुषों को परस्पर प्रीति से वर्तमान रहकर सुख को प्राप्त करना कहा है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सोलहवीं वर्ग और तिरपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥



अथाऽस्यैकाग्रार्थस्य चतुःपञ्चाशस्य सूक्तास्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ४, १० विराट्जगती, २, ३, ५ निबृजजगती, ७ जगती

च छन्दः । निषाद स्वरः । ६ विराट् त्रिष्टुप्, ८, ९,

११ निबृत् च छन्दः । धैवत स्वरः ॥

अथ सोऽवनवे सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

मा नो अस्मिन्मयवन् पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शर्वमः परीणशे ।

अक्रन्दयो नद्यो रोस्वद्वना कथा न क्षोणीभियसा समारत ॥१॥

पदार्थ—हे (अवन्) उत्तम धनयुक्त जगदीश्वर । जो आप (पृत्स्व) सेनापति (अस्मिन्) इस जगत् और (परीणशे) सब प्रकार से नष्ट करनेवाले (अहसि) आप में हम लोगों को (आक्रन्दय) मत फँसाइए जिस (ते) आप के (शर्वम) बल के (अन्तः) अन्त को कोई भी (नहि) नहीं पा सकता वह आप (नद्यो) नदियों के समान हमको मत भ्रमाइए (भियसा) भय से (अरोस्वद्वत्) बार बार मत रुलाइए जो आप (क्षोणी) बहुत गुणयुक्त पृथिवी के निर्माण व धारण करने को समर्थ हैं इसलिए मनुष्य आपको (कथा) क्यों (न) नहीं (समारत) प्राप्त होवे ॥१॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो परमेश्वर अनन्त होने से नश्य भाव के साथ, उपासना किया हुआ दुःख उत्पन्न करनेवाला धर्म मार्ग से निवृत्त कर मनुष्यों को सुखी करता है, तथा अनन्त स्वरूप गुण होने से कोई भी उसके अन्त को ग्रहण नहीं कर सकता । इससे उस ईश्वर की उपासना को छोड़के कौन भ्रमागा पुरुष दूसरे की उपासना करे ॥१॥

फिर वह कंसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्चो शक्राय शाकिने शचीवते शृष्वन्तपिन्द्रं मह्यं अभि ष्टुहि ।

यो धृष्णुना शर्वसा रोदसी उमे वृषा वृषत्वा वृषभो नृक्षते ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम जैसे (वृषा) जल वषति और (वृषभ) वर्षा के निमित्त बादलों को प्रसिद्ध करानेहारा सूर्य (वृषत्वा) सुखों की वर्षा के तत्त्व और (धृष्णुना) वृद्धता आदि गुणयुक्त (शर्वसा) आकर्षण बल से (उमे) दोनों (रोदसी) आवापृथिवी को (नृक्षते) निरन्तर प्रसिद्ध करता है जैसे (यः) जो तु राज्य का यथायोग्य प्रबन्ध करता है उस (शाकिने) प्रशसनीय शक्ति आदि गुणयुक्त (शचीवते) प्रशसित बुद्धिमान् (शक्राय) समर्थ के लिए (अर्च) सत्कार कर उस सबके न्याय को (शृष्वन्तम्) ध्वज करने वाले (इन्द्रम्) प्रशसनीय ऐश्वर्ययुक्त सभाष्यक्ष का (मह्यम्) सत्कार करता हुआ (अभिष्टुहि) गुणों की प्रशंसा किया कर ॥२॥

भाषार्थ—जो गुणों की अधिकता होने से सार्वभौम सभाष्यक्ष धर्म से सब को शिक्षा देकर धर्म के नियमों में स्थापन करता है इसी का पद मनुष्यों को लेवन का आश्रय करना चाहिए ॥२॥

फिर वह सभाष्यक्ष कंसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्चो दिवे बृहते शूर्प्यवचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।

बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्या वृषभो रथो हि वः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तू (यस्य) जिस (वृषत) प्रधामिक दुष्टों का कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करनेवाले सभाष्यक्ष का (वृषत्) दृढ़ कर्म करने वाला (अस्र) क्रियासाधक विद्वान् (हि) निश्चय करके है जो (बृहच्छ्रवा) महाश्रवण युक्त (असुर) जैसे प्रजा देनेवाले (पुर) पूर्व (हरिभ्याम्) हरण-आहरण करने वा सुशिक्षित घोड़ों से युक्त मेघ (विवे) सूर्य के धर्म वर्तना है जैसे (वृषभ) पूर्वाक्त वषति वालों के प्रकाश करनेवाले (रथ) यानमूह को (बर्हणा) वृद्धि से (कृत) निर्मित किया है उस (बृहते) विद्यादि गुणों से वृद्ध (विवे) शुभगुणों के प्रकाश करनेवाले के लिए (स्वक्षत्रम्) अपने राज्य बढ़ा और (शूर्यम्) बल तथा निपुणतायुक्त (वच) विद्या, शिक्षा प्राप्त करनेवाले वचन का (अर्च) पूजन अर्थात् उनके सहाय युक्त शिक्षा कर ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को अपना राज्य, ईश्वर द्वारा दृष्ट सभाष्यक्ष द्वारा प्रशसित एक मनुष्य के रूप में राजा के प्रशासन से रहित राज्य के रूप में सम्पादन करना चाहिए जिससे कभी दुःख, अन्याय, अलस्य, अज्ञान और शत्रुओं के परस्पर विरोध से प्रजा पीड़ित नहीं होवे ॥ ३ ॥

फिर वह सभाष्यक्ष कंसा होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

त्वं दिवो बृहतः मानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।

यन्मायिनो ब्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छ्रिता गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४॥

पदार्थ—हे सभाष्यक्ष ! जो (धृषत्) शत्रुओं का ध्वंस करता (त्वम्) आप जैसे सूर्य (बृहत्) महा मलय, शुभ गुणयुक्त (विवे) प्रकाश से (मानु)

सेवने योग्य मेघ के शिखरों पर (शितान्) अतितीक्ष्ण (अज्ञानिन्) ज्ञेय-भेद करने से बाधस्वरूप बिजली और (गभस्तिन्) बलरूप किरणों का प्रसार कर (शम्बरम्) मेघ को (भिनत्) काटके भूमि में गिरा देता है जैसे शस्त्र और अस्त्रों को जलाके अपने (त्वम्) आत्मा से दुष्ट मनुष्यों को (अवकोपय) कोप करावे (अज्ञानिन्) निन्दित मनुष्यादि समूहों वाले (मायिन) कपटादि दोषयुक्त मनुष्यों को विदीर्ण करते और उनके निवारण के लिए (पृतन्यसि) अपने व्याघ्रादि गुणों की प्रकाश करनेवाली विद्या वा वीर पुरुषों से युक्त सेना को इच्छा करते हो सी आप राज्य के योग्य होते हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जगदीश्वर पापकर्म करनेवाले मनुष्यों के लिए अपने अपने पाप के अनुसार दुःख के फलों को देकर यथा योग्य पीडा देता है इसी प्रकार सभाष्यक्ष को चाहिए कि शस्त्रों और अस्त्रों की शिक्षा से धार्मिक धूर वीर पुरुषों की सेना को सिद्ध और दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्यों का निवारण करके धर्मयुक्त प्रजा का निरन्तर पालन करे ॥ ४ ॥

नि यद्वृणक्षि श्वमनस्य मूर्द्धनि शुष्णस्य चिद् ब्रन्दिनो रोस्वद्वना ।

प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे सभाष्यक्ष विद्वन् ! (यत्) जो आप जैसे सविता (वना) रश्मियुक्त मेघ का निवारण करता है जैसे (प्राचीनेन) सनातन (बर्हणावता) अनेक प्रकार वृद्धियुक्त (अनसा) विज्ञान से (इक्षन्स्य) प्राणवबलवान् (शुष्णस्य) शोषणकर्ता के (मूर्द्धनि) उत्तम अङ्ग में प्रहार के (चित्) समान (ब्रन्दिन्) निन्दित कर्म करनेवाले दुष्ट मनुष्यों को (रोस्वत्) रोदन कराते हुए (यत्) जिस कारण (अद्य) आज (निबृजक्षि) निरन्तर उन दुष्टों को धनय करते हो इससे (चित्) भी (त्वा) आप के (कृणव) मारने को (क) कोई भी समर्थ (परि) नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परमेश्वर अपने अनादि विज्ञानयुक्त न्याय से सब को शिक्षा देता और काट-काटकर गिराता है जैसे ही सम्पत्ति आदि धर्म से सब को शिक्षा देवे और शत्रुओं को नष्ट-अष्ट करे ॥ ५ ॥

त्वमाविथ नयं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीति वयं शतक्रतो ।

त्वं रथमेतं कृत्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥६॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) बहुत वृद्धियुक्त विद्वन् सभाष्यक्ष ! जिस कारण (त्वम्) आप (नयम्) मनुष्यों में कुशल (तुर्वशम्) उत्तम (यदुं) यत्न करनेवाले मनुष्य की रक्षा (त्वम्) आप (तुर्वीतिम्) दोष वा दुष्ट प्राणियों को नष्ट करनेवाले (वयम्) ज्ञानवान् मनुष्य की रक्षा और (त्वम्) आप (कृत्ये) सिद्ध करने योग्य (धने) विद्या, चक्रवर्ति राज्य से सिद्ध हुए द्रव्य के विषय (एतस्मिन्) वेगादि गुण वाले धर्मवादि से युक्त (रथम्) सुन्दर रथ की (आविथ) रक्षा करते और (त्वम्) आप दुष्टों के (नव) नौ सहायक (नवतिम्) नब्बे अर्थात् निन्ताणवे (पुर) नगरों को (इक्ष्मय) नष्ट करते हो इस कारण इस राज्य में आप ही का आश्रय हम लोगों को करना चाहिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो राज्य की रक्षा करने में समर्थ न होवे उस को राजा कभी न बनावे ॥ ६ ॥

फिर उस सभाष्यक्ष को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

त वा ॥३॥ तत्पतिः शूशुवज्जनों रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।

उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (रातहव्यः) हव्य पदार्थों को देने (तत्पतिः) सत्पुरुषों का पालन करने (जन्) उत्तम गुण और कर्मों से महित वर्तमान (राजा) न्याय, विनयादि गुणों से प्रकाशमान सभाष्यक्ष (प्रतिशतम्) शास्त्र-शास्त्र के प्रति प्रजा को (इक्षति) न्याय में स्थापित करता (वा) अथवा (शूशवत्) राज्य करने की जानता है और जो (राधसा) न्याय करके प्राप्त हुए धन से (वान्) दानवीर्य हुआ (उक्था) कहने योग्य वेदस्तोत्र वा वचनों को (अभिगृणाति) सब मनुष्यों के लिए उपदेश करता है (अस्मै) हम सभाष्यक्ष के लिए (दिव उपरा) जैसे सूर्य के प्रकाश से मेघ उत्पन्न होकर भूमि को (पिन्वते) सींचता है वैसे सब सुखों को (पिन्वते) सेवन करे (त) वही राज्य कर सकता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । कोई भी मनुष्य उत्तम विद्या, विनय, न्याय और वीर पुरुषों की सेना के ग्रहण वा अनुष्ठान के बिना राज्य पर शासन करने, शत्रुओं के जीतने और सब सुखों का प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता, इसलिए सभाष्यक्ष को इन बातों का अवश्य अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर वह क्या करे, यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

अममं क्षत्रमसमा मनीषा म सौमपा अर्पसा मन्तु नेमै ।

ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृण्यं च ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाष्यक्ष ! जो (ददुषः) दान करते हुए (ते) आप का (असमम्) समता रहित कर्म वा सावृष्य रहित (क्षत्रम्) राज्य तथा (असमा) समता वा उपमा रहित (मनीषा) बुद्धि होने ली (ने) जो (नेमै) सब (सौमपा) सोम आदि ओषधिरसों के पीनेवाले धार्मिक विद्वान् पुरुष (अपसा) कर्म से (स्थविरम्) वृद्ध (वृण्यम्) शत्रुओं के बलनाशक सुख वषति

वाले के लिए कल्याणकारक (अहि) महासुखयुक्त (अन्नम्) राज्य को (प्रबलवर्धन) बढ़ाते हैं वे सब आप की सभा में बैठने योग्य सभासद (अ) और भृत्य (सन्तु) होंगे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को प्रजा से और प्रजा में रहनेवाले पुरुषों को राज-पुरुषों से विरोध कभी न करना चाहिए किन्तु परस्पर प्रीति का उपकार बुद्धि के साथ सब राज्य को सुखी से बढ़ाना चाहिए क्योंकि इस प्रकार किये बिना राज्य पालन की व्यवस्था निश्चित नहीं हो सकती ॥ ८ ॥

**तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाध्वमूषदध्वमसा इन्द्रपानाः ।**

**व्यश्नुहि तर्षया काममेवामथा मनो वसुदेवाय कृष्व ॥९॥**

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! जैसे (एते) वे (बहुलाः) बहुत सुख वा कर्मों को देनेवाले (इन्द्रपानाः) परमेश्वर्य के हेतु सूर्य को प्राप्त होनेवाले (अमसाः) मेघ सब कर्मों को पूर्ण करते हैं वैसे (अद्रिदुग्धाः) मेघ वा पर्वतों से प्राप्तविद्या (अमूषदध्वः) सेनाओं में स्थित शूरवीर पुरुष (तुभ्यम्) आप को सुप्त करें तथा आप हम को (वसुदेवाय) सुन्दर धन देने के लिए (मनः) मन (कृष्व) कीजिए और आप इन को (तर्षय) सुप्त वा (एवाम्) इन की (कामनाम्) कामना पूर्ण कीजिए (अथ) इस के अनन्तर (इत्) ही सब कामनाओं को (व्यश्नुहि) प्राप्त हूँ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—सभा आदि के अध्यक्ष उत्तम शिक्षा वा पालन से उत्पादन किये हुए शूरवीरों और प्रजा की निरन्तर पालना करके इनके लिए सब सुखों को दें और वे प्रजा के पुरुष भी सभाध्यक्षादिकों को निरन्तर सन्तुष्ट रखें जिससे सब कामना पूर्ण हों ॥ ९ ॥

अब वह सूर्य के समान क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया गया है—

**अपामतिष्ठत् धरुणह्वरन्तमोज्ज्वलस्य जठरेषु पर्वतः ।**

**अभीमिन्द्रो नद्यो वज्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्रन्ते ॥१०॥**

पदार्थ—हे सभे ! (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य देनेवाले आप जैसे सूर्य (धरुणस्य) मेघ सम्बन्धी (अपाम्) जलों के (अन्तः) मध्यस्थ (जठरेषु) जहाँ से वर्षा होती है उनमें (धरुणह्वरन्) धारण करनेवाला कुटिल कर्मों का हेतु (सः) प्रत्यक्षकार (अतिष्ठत्) स्थित है उसका निवारण कर (वज्रिणा) रूप से सह वर्णमान जो (पर्वतः) पर्वतों आकाश में उठने द्वारा मेघ (ईम्) जल को (अभि) सम्मुख गिराता है जिससे (प्रवणेषु) नीचे स्थानों में (अनुष्ठाः) अनुकूलता से बहनेवाली (विश्वा) सब (हिताः) प्रतिक्षणा करनेवाली (नद्यः) नदियाँ (जिघ्रन्ते) समुद्र पर्यन्त चली जाती हैं वैसे आप हूँ ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणालंकार है। जैसे सूर्य जिस जल को आकर्षण कर अन्तरिक्ष में पहुँचाता और उस को वायु धारण करता है अब वह जल मिल तथा पर्वताकार होकर सूर्य के प्रकाश का आचरण करता है उस को बिजुली खेलन करके भूमि में गिरा देती है। उस से उत्पन्न हुई, नाना रूपयुक्त नीचे जानेवाली चलती हुई नदियाँ पृथिवी, पर्वत और वृक्षादिकों को छिन्न-भिन्न कर, फिर वह जल समुद्र वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर बार-बार इसी प्रकार बवंता है, सभाध्यक्षादिकों को भी वसा होना चाहिए ॥ १० ॥

फिर सभा के अध्यक्ष के हृत्पत्र का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**स श्रेष्ठमधि धा शुभ्रमस्मे अहि सत्रं जनापार्किन् तव्यम् ।**

**रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरिग्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११॥१८**

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर्य-सम्पादक सभाध्यक्ष ! जो (जनावाह) जनो को सहन करनेवाले आप (अस्मे) हम लोगों के लिए (श्रेष्ठम्) सुख (तव्यम्) बलयुक्त (अहि) महासुखदायक पूजनीय (अन्नम्) राज्य को (अधि, धाः) अच्छे प्रकार सर्वोपरि धारण कर (मघोनः) प्रबलनीय धन वा (नः) हम लोगों की (रक्षा) रक्षा (च) और (सूरिन्) बुद्धिमत् विद्वानों की (पाहि) रक्षा कीजिए (च) और (नः) हम लोगों के (स्वपत्या) धन (च) और (इषे) उत्तम भयपत्ययुक्त (इषे) इष्टरूप राजसन्धी के लिए (अन्नम्) कीर्तिकारक धन की (धाः) धारण करते हो (सः) वह आप हम लोगों से सत्कार योग्य क्यों न हों ॥ ११ ॥

भाषार्थ—सभाध्यक्ष को योग्य है कि सब प्रजा की अच्छे प्रकार रक्षा कर और सब मिथितों को विद्वान् बना कर चकवर्ति राज्य वा धन की उन्नति करे ॥११॥ इस सूक्त में सूर्य, बिजुली, सभाध्यक्ष, शूरवीर और राज्य की पालना आदि का विधान किया है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सञ्ज्ञित जाननी चाहिए ।

यह अक्षरहर्षा वर्ण और वीज्यवर्ण सूक्त समाना हुआ ॥



अथास्याज्ज्वलस्य पञ्चमयज्ज्वलस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ४ अगती, २, ५—७ मित्रव्यवती, ३, ८ विराज्यवती

च अन्नः । निपातः स्वरः ॥

अब मन्त्रपत्रों सूक्त के पहले मन्त्र में सभाध्यक्ष के मुखों का उपदेश किया है—

**दिविर्भिक्षस्य वरिमा वि पमथ इन्द्रं न महा पृथिवी चन मति ।**

**मीमस्तुविष्मान् चर्षाभिभ्य आतपः शिशीति वज्रं तेजसे न वसंगः ॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अस्य) इस सविता के (विभ.) प्रकाश से (वरिमा) उत्तमता का भाव (महा) बड़ाई से (विपमथे) विशेष करके प्रसिद्ध होता है (पृथिवी) जिसके बराबर भूमि (चन) भी तुल्य (न) नहीं और न (आतपः) सब प्रकार प्रतापयुक्त (वसंगः) बलवान् विभागकर्ता के समान सविता (पृथिवी) भूमि के (प्रति) मध्य में (तेजसे) प्रकाशार्थ (वज्रम्) किरणों को (शिशीति) प्रति नीतल उदक में प्रक्षेप करता है वैसे जो दुष्टों के लिए भयकर, वर्मात्माओं के वास्ते सुखदाता होके प्रजाओं का पालन करे वह सब से सत्कार के योग्य है, अन्य नहीं ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणालंकार है। जैसे सूर्यमण्डल सब लोकों से उत्कृष्ट, गुणयुक्त और बड़ा है और जैसे साँब गोसमूहों में उत्तम और बलवान् होता है वैसे उत्कृष्ट गुणयुक्त बड़े मनुष्य को सभा आदि का पति बनाना चाहिए और वे सभाध्यक्षादि दुष्टों को भय देने और धार्मिकों के लिए आप भी वर्मात्मा होके सुख देनेवाले सदा हों ॥ १२ ॥

फिर वह कैसे गुण वाला हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**सो अर्खवो न नद्यः समुद्रियः मतिं यृष्णाति विञ्चिता वरीमभिः ।**

**इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म श्रीजसा पनस्यते ॥१३॥**

पदार्थ—जो (इन्द्रः) सभाध्यक्ष सूर्य के समान (सोमस्य) वैद्यक विद्या से सम्पादित वा स्वभाव से उत्पन्न हुए रस के (पीतये) पीने के लिए (वृषायते) बल के समान आचरण करता है (स) वह (युध्मः) युद्ध करनेवाला पुरुष (न) जैसे (विञ्चिताः) नाना प्रकार के देशों का सेवन करनेवाली (नद्यः) नदियाँ (अर्खवः) समुद्र को प्राप्त होके स्थिर होती और जैसे (समुद्रियः) सागरी में चलने योग्य नौकादि यान समूह पार पहुँचाता है जैसे (सनात्) निरन्तर (श्रीजसा) बल से (वरीमभिः) धर्म वा शिल्पी किया से (पनस्यते) व्यवहार करनेवाले के समान आचरण और पृथिवी आदि के राज्य को (प्रतिगृष्णाति) ग्रहण कर सकता है वह राज्य करने और सरकार के योग्य है उस को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकमुत्प्रेषणालंकार है। जैसे समुद्र नाना प्रकार के रस और नाना प्रकार की नदियों को अपनी महिमा से अपने में धारण करता है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि भी अपने प्रकार के पदार्थ और अपने प्रकार की सेनाओं को स्वीकार कर दुष्टों को जीत और श्रेष्ठों की रक्षा करके अपनी महिमा फैलावे ॥ १३ ॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्यस्य धर्मणाभिरजयसि ।**

**प्र वीर्येण देवताति चेकिते विन्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥१४॥**

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! जो (देवता) विद्वान् (उग्रः) दीवकारी (पुरोहितः) पुरोहित के समान उपकार करनेवाले (त्वम्) आप जैसे बिजुली (पर्वतम्) मेघ के आश्रय करनेवाले वृक्षों के (न) समान (वीर्येण) पराक्रम से (भोजसे) पालन वा भोग के लिए (सम्) उस शत्रु को हनन कर (अहः) बड़े (नृम्यस्य) धन और (धर्मणाम्) धर्मों के योग से (अतीरजयसि) अतिशय ऐश्वर्य करते हो और जो आप (विजयस्व) सब (कर्मणे) कर्मों को (प्रवेकिते) जानते हो वह आप हम लोगों में राजा हूँ ॥१४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो मनुष्य प्रवृत्ति का आश्रय और धन का सम्पादन करके भोगों को प्राप्त करते हैं वे सभाध्यक्ष के सहित विद्या, बुद्धि, विनय और धर्मयुक्त और पुरुषों की सेना को प्राप्त होकर दुष्ट जनों के विषय में तेजवारी और वर्मात्माओं में क्षमायुक्त हो, सब के हितकारक होते हैं ॥ १४ ॥

फिर वह कैसा कर्म करे, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**स इदं नमस्युर्मिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रव्रवाण इन्द्रियम् ।**

**वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमैण धेनां मघवा यदिन्वति ॥१५॥**

पदार्थ—(वत्) जो मध्यापक वा उपदेशकर्ता (वने) एकान्त में एकाग्रचित्त से (जनेषु) प्रसिद्ध मनुष्यों में (चारु) सुन्दर (इन्द्रियम्) मन को (वृषाणः) अच्छे प्रकार कहता (हर्यतः) और सब को उत्तम बोध की कामना करता वृषा (प्रव्रवति) समर्थ होता है (वृषा) दूध (मघवा) प्रशंसित विद्या और बलवान् (छन्दुः) स्वच्छन्द (वृषा) सुख बपनिवाला (क्षेमैण) रक्षण के सहित (धेनाम्) विद्या, शिक्षायुक्त वाणी को (इन्वति) व्याप्त करता है (स इत्) वही (नमस्युभिः) नम्र विद्वानों से (वचस्यते) प्रशंसा को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

भाषार्थ—उत्तम विद्वान् सभाध्यक्ष सब मनुष्यों के लिए सब विद्याओं को प्राप्त करके सब को विद्यायुक्त, बहुभुत, सुरक्षित वा स्वच्छन्दतायुक्त करे कि जिससे सब सत्येह मृत्यु होकर सदा सुखी रहे ॥ १५ ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**स इन्द्रानि समिधानि मज्जमानां कुणोति युध्म श्रीजसा जनेभ्यः ।**

**अथा चन अर्धवति त्विषीमत् इन्द्राय वज्रं निपनिघ्नते वधस् ॥१६॥१९॥**

पदार्थ—जो ( स० ) वह ( युष्म० ) युद्ध करनेवाला उपदेशक ( मन्मना ) बल वा ( श्रीजसा ) पराक्रम से युक्त होके ( अनेम्य ) मनुष्यादिको के सुख के लिए उपदेश से ( महानि ) बड़े पूजनीय ( समिधानि ) सभाओं को जीतनेवाले के तुल्य भविष्य विजय को ( कुर्याति ) करता है ( ब्रह्मन् ) ब्रह्मप्रहार के समान शत्रुओं के ( ब्रह्मन् ) मारने को ( निघनिष्मते ) मारनेवाले के समान आचरण करता है तो ( ब्रह्म ) इस के अनन्तर ( इत् ) ही ( ब्रह्मन् ) इस ( सिद्धीयते ) प्रशंसनीय प्रकाशयुक्त ( इन्द्राय ) परमेश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले के लिए सब मनुष्य लोग ( जन् ) भी ( अद्भुति ) प्रीति से सत्य का धारण करते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्य मेघ को उत्पन्न, काट और वर्षा करके अपने प्रकाश में सब मनुष्यों को आनन्दयुक्त करता है वैसे ही अध्यापक और उपदेशक श्रवणपरम्परा को निवारण कर विद्या, न्यायादि का प्रकाश करके सब प्रजा को सुखी करें ॥५॥

फिर वह क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा इमया वृधान ओजसा विनाशयन् ।  
ज्योतीषी कृत्वब्रह्मकाणि यज्यवेदं सुकृतुः सतर्वा अपः सृजत् ॥६॥

पदार्थ—जो ( सुकृतु ) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्मयुक्त ( ओजसा ) पराक्रम से ( इमया ) पृथिवी के साथ ( वृधान ) बढ़ता हुआ और ( श्रवस्युः ) अपने आत्मा के वास्ते अन्न की इच्छा से सब शत्रुओं का श्रवण कराता हुआ ( श्रवस्ये ) राज्य के अनुष्ठान के वास्ते ( सतर्वा ) जाने-आने को ( कृत्रिमाणि ) किये हुए ( ब्रह्मकाणि ) चोरादि रहित ( सदनानि ) मार्ग और सुन्दर घरों को सुशोभित ( कृत्वम् ) करता हुआ ( अपः ) जलो का वर्षानिहारा ( ज्योतीषी ) चन्द्रादि नक्षत्रों का प्रकाशित करते हुए सूर्य के तुल्य ( विनाशयन् ) भविष्य का नाश करता हुआ राज्य ( श्रवसृजत् ) बनावे, वही सब मनुष्यों को माता, पिता मित्र और रक्षक मानने योग्य है ॥६॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । सब मनुष्य, जो सूर्य के मनुष्य विद्या धर्म और राजनीति का प्रचारकर्त्ता होके सब मनुष्यों को उत्तम बोधयुक्त करता है वह सब मनुष्यादि प्राणियों का कल्याणकारी है, ऐसा जानें ॥६॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

दानाय मनः सोमपावब्रह्मस्तु नेर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रदा कृधि ।  
यमिष्ठासः सारथ्यो य इन्द्र ते न त्वा केता आदन्नुवन्ति भूणीयः ॥७॥

पदार्थ—हे ( वन्दनश्रुन् ) स्तुति वा भाषण के सुनने-सुनाने और ( सोम-पावन् ) श्रेष्ठ रसों के पीनेवाले ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष । ( ते ) आपका ( मन ) मन ( दानाय ) पुत्रों को विद्यादि दान के लिए ( ब्रह्मस्तु ) अच्छे प्रकार हावे जैसे वायु वा सूर्य के ( अर्वाञ्चा ) वेगादि गुणों का प्राप्त कराने वाली ( हरी ) धारणाकर्त्तृता गुण और जैसे ( सूर्याय ) पोषक ( यमिष्ठासः ) प्रति-शय करके यमन करता ( सारथ्यः ) रथों का चलाने वाले सारथि घोड़े आदि को मुक्तिदा कर नियम में रखते हैं वैसे तु सब मनुष्यादि का धर्म में बला और सब में ( केता ) शास्त्रीय प्रजाओं का ( आकृधि ) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए, इस प्रकार करने से ( ये ) जो तेरे शत्रु हैं वे ( ते ) तेरे वश में हो जाएँ, जिससे ( त्वा ) तुम्हका ( न दन्नुवन्ति ) दुःखित न कर सकें ॥७॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे उत्तम मारुति घोड़े का अच्छे प्रकार शिक्षा देकर नियम में बलाही है और जैसे तिच्छाई करनेवाला ॥७॥ नियन्ता है वैसे धार्मिक पदाने और उपदेश करनेहार विद्वान् मत्यावस्था और मत्य-उपदेशों से सबको सत्याचार में निश्चित करें । इन दोनों के बिना मनुष्यों का धर्मात्मा बनाने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥७॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अप्रक्षितं वसुं बिभर्षि हस्तयोरपाळ्ढं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।  
आवृतासोऽवतासो न कर्षुमिस्तनूषु ते कतव इन्द्र भूरयः ॥८॥२०॥

पदार्थ— हे ( इन्द्र ) सभाध्यक्ष । ( वसु ) प्रशंसायुक्त वृ जिस ( अप्र-क्षितम् ) क्षयरहित ( वसु ) धर्म और ( अपाळम् ) शत्रुओं में असह्य ( सह ) बल को ( तन्वि ) गरीर में ( हस्तयो ) हाथ में धारित न फल के समान ( बिभर्षि ) धारण करता है जो ( आवृतासः ) मुली में युक्त ( अवतासः ) अच्छे प्रकार रक्षित मनुष्यों के ( न ) समान ( ते ) आपकी ( भूरयः ) बहुत शान्त्र विद्यायुक्त ( कतवः ) बुद्धि और कर्मों का ( कर्षुमि ) पुरुषार्थ मनुष्य ( तनूषु ) शरीरों में धारण करते हैं उनको मैं ( दधे ) धारण करता हूँ ॥८॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे सभायद् वा विद्वान् लोग क्षय रहित विज्ञान बल, धन, श्रवण और बहुत उत्तम कर्मों का धारण करते हैं वैसे ही ये सब कर्म प्रजा के मनुष्यों का भी धारण करने चाहिए ॥८॥

इस सूक्त में सूर्य, प्रजा और सभाध्यक्ष के कृत्य का वर्णन किया है, इसी से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह बीसवाँ वर्ग और पचपनवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥



अथास्य वरुणस्य वदपञ्चाशस्य सूक्तास्यागिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ३, ४, निषङ्गजगती, २ जगती च छन्दः । निषाद स्वर ।

५ त्रिष्टुप्, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वर ॥

अब अन्त्यर्ध सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक के गुणों का उपदेश किया है—

एष प्र पूर्वाग्व तस्य चन्निषोऽत्यो न योषामुदयस्त सुर्वणिः ।

दक्षं महे पाययते हिरण्यं रथमावृत्त्या हरियोगमृभ्यसम् ॥ १ ॥

पदार्थ— जो ( एष ) यह ( सुर्वणि ) धारण वा पोषण करनेवाला मन्त्र का अध्यापक वा सूर्य ( न ) जैसे ( अत्यः ) छोटा घोड़ियों से सयोग करता है वैसे ( योषाम् ) विदुषी स्त्री से युक्त होके ( तस्य ) उस परमेश्वर्य की प्राप्ति के लिए ( चन्निष ) भोगों को करनेवाली ( पूर्वा ) मनातन प्रजा को ( अन्निष्यस्त ) अच्छे प्रकार भ्रमों वा निकृष्टता में निवृत्त कर वह उम प्रजा के वास्ते ( महे ) पूजनीय मार्ग में कान आदि इन्द्रियों को ( आवृत्त्या ) युक्तकर ( हिरण्यम् ) बहुत तेज वा सुवर्ण ( मृभ्यसम् ) मनुष्यादिको के प्रक्षेपण करनेवाला ( हरियोगम् ) अग्नियुक्त वा भ्रवावि युक्त हुए ( वक्षम् ) बल, चतुरता वा शिल्पी मनुष्ययुक्त ( रथम् ) यानसमूह को ( आवृत्त्या ) सामग्री से आच्छादन करके सुखलीरसी को ( पाययते ) पान कराता है, वह सबसे मान को प्राप्त होता है ॥१॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में श्लेष और उपमालकार हैं । उपदेशक अपने सुख विदुषी स्त्री के साथ विवाह करके, जैसे आप पुरुषों को उपदेश और बालकों को पढ़ावे वैसे उस की स्त्री स्त्रियों को उपदेश और कन्याओं को पढ़ावे । ऐसा करने से किसी और में भविष्य और भय से दुःख नहीं हो सकता ॥१॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

तं गूर्तयो नेमभिषः परीणसः समुद्र न मञ्चरंशे मनिष्यवः ।

पति दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरि न वेना अधि रोह तेजसा ॥२॥

पदार्थ— हे कन्ये ! तु ( मञ्चरंशे ) अच्छे प्रकार समागम में ( न ) जैसे ( मनिष्यवः ) मम्यक् विविध देशों का सेवन करनेहारी नदियाँ ( समुद्रम् ) सागर को प्राप्त होती हैं और ( न ) जैसे बहल ( गिरिम् ) मेघ को प्राप्त होते हैं वैसे जो ( परीणसः ) बहुत ( नेमभिषः ) प्राप्त होने योग्य इष्ट सुखदायक ( गूर्तयः ) उद्यमयुक्त बुद्धिमती ब्रह्मचारिणी और ( वेना ) बुद्धिमान् ब्रह्मचारी समाधत्तन के पश्चात् परस्पर प्रीति के साथ विवाह करें ( दक्षस्य ) हे कन्ये ! नू सब विद्याओं में प्रति चतुर ( विदथस्य ) पूर्णविद्यायुक्त विद्वान् से विद्या को प्राप्त हुए ( पतिम् ) स्वामी को ( अभिरोह ) प्राप्त हो ( तेजसा ) अतीव तेज से ( तम् ) उसको प्राप्त होके ( सह ) बल को ( नू ) शीघ्र प्राप्त हो ॥२॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में उपमालकार है । सब लड़के और लड़कियों का योग्य है कि यथाक्त ब्रह्मचर्य के सेवन में सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़कर पूर्ण यवावस्था में अपने तुल्य गुरु कर्म और स्वभावों की परस्पर परीक्षा करके अतीव प्रेम के साथ विवाह कर पुन जो पूर्ण विद्यावाले हो तो लड़का-लड़कियों को पढ़ाया करें, जो क्षत्रिय हो तो राजपालन और न्याय किया करें, जो वैश्य हो तो अपने वश के कर्म और जो शूद्र हो तो अपने कर्म किया करें ॥२॥

स त्वर्णिर्महो अरेणु पौंस्य गिरेर्मर्दिनं आजने तुजा शवः ।

येन शुष्णं मायिनमायसो मदं दध्र आभृषु रामयन्नि दामनि ॥३॥

पदार्थ— हे स्त्री ! तू ( अरेणु ) शीघ्र मुखकारी ( दध्र ) बल से पूर्ण ( आयसः ) विज्ञान में युक्त ( महो ) सर्वोत्कृष्ट ( पौंस्य ) पुरुषार्थयुक्त व्यवहार में प्रवीण ( तुजा ) दुःखों का नाशक ( आभृषु ) सब प्रकार सबको सुभूषितकारक ( अरेणु ) क्षयरहित कर्म को ( मदं ) हषित होने में ( रामयत् ) क्रीडा का हेतु ( शवः ) उत्तम बल को प्राप्त होके ( न ) जैम ( गिरे ) मेघ के ( मर्दिन ) उत्तम शिखर ( आजने ) प्रकाशित होते हैं वैसे ( तम् ) उस ( शुष्णम् ) बलयुक्त ( मायिनम् ) प्रत्युत्तम बुद्धिमान् वर को ( येन ) जैम बल से ( दामनि ) सुखदायक गृहाश्रम में स्वीकार करती हो वैसे ( स ) वह वर भी तुम्हें उमी बल से प्रेमबद्ध करे ॥३॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है । प्रति उत्तम विवाह वह है जिस में तुरय रूप स्वभावयुक्त कन्या और वर का सम्बन्ध होवे, परन्तु कन्या में वर का बल और प्रायः बड़ीदा वा दूना होना चाहिए ॥३॥

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिष्वत्पुषमं न सूर्यः ।

यो धृष्णुना शर्वसा बाधते तम इयति रेणु बृहदहंरिष्वणिः ॥४॥

पदार्थ— हे स्त्री ! ( य ) जो ( अहंरिष्वणि ) अहिंसक, धार्मिक और पापी लोगों का विवेककर्त्ता पुरुष ( धृष्णुना ) दृढ़ ( शर्वसा ) बल से ( न ) जैसे ( सूर्यः ) रवि ( उषसम् ) प्रातः समय को प्राप्त होके ( बृहत् ) बड़े ( तमः ) अन्धकार को दूर कर देता है वैसे तेरे दुःख को दूर कर देता है । हे पुरुष ! ( यवि ) जो ( स्वावृषा ) तुम्हें सुख से बढ़ानेहारी ( तविषी ) पूर्ण बलयुक्त ( देवी ) विदुषी अतीव प्रिया स्त्री ( रेणुम् ) रमणीय स्वरूप तुम्हको ( इयति ) प्राप्त होती है और ( ऊतये ) रक्षादि के वास्ते ( इन्द्रम् ) परम सुकप्रव तुम्ह ( सिष्वत् ) उत्तम सुख से युक्त करती है सो तू और वह स्त्री दोनों एक दूसरे के आनन्द के लिए सदा वर्त्ता करो ॥४॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं । जब स्त्री से प्रमन्न पुरुष और पुरुष से प्रमन्न स्त्री होवे तभी गृहाश्रम में निरन्तर आनन्द बढ़े ॥४॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—



वि यस्मिन् धर्ममयुक्तं रजोऽतिष्ठितो दिव आतांसु बर्हिणा ।

स्वर्मीह्ये यन्मद इन्द्र इव्याऽहन् वृत्रं निरपायीवो अर्थावम् ॥५॥

पदार्थ—हे परमेश्वर्युक्त ( इन्द्र ) सभेश । जैसे ( धौम्यः ) कोमल करनेवाले से सिद्ध हुआ ( यत् ) जो सुय ( विजः ) प्रकाश वा आकर्षण से ( आतांसु ) विशाघो मे ( तिरः ) तिरछा किया हुआ ( बर्हिणा ) वृद्धियुक्त ( अर्थावम् ) कारणरूप वा प्रबाहुरूप से धविनाशी ( अर्थावम् ) आधारकर्ता ( रजः ) पृथिवी आदि सब लोको को ( अतिष्ठितः ) विशेष करके स्थापन करता और ( सवे ) धानन्दयुक्त ( स्वर्मीह्ये ) अन्तरिक्ष में वर्तमान ( ह्यर्था ) हर्ष उत्पन्न कराने योग्य कर्मों को करता हुआ ( यत् ) जिस ( वृत्रम् ) मेघ को ( अहन् ) नष्ट कर ( अपायम् ) जलो के ( अर्थावम् ) समुद्र को सिद्ध करता है जैसे अपने राज्य और न्याय को धारण कर शत्रुओं को मार अपनी स्त्री को धानन्द दिया कर ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालकार है । जैसे सूर्यलोक अपने प्रकाश और आकर्षणगुणों से सब लोकों को अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण कराता, सब दिशाओं में अपने तेज वा रस का विस्तार और वर्षा की उत्पन्न करता हुआ प्रजा के पालन का हेतु होता है, वैसे स्त्री-पुरुषों को भी वर्तना चाहिए ॥५॥

किर बहु सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं दिवो धर्षणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सद्नेषु माहिनः ।

त्वं सुतस्य भवे अग्निषा अपो वि वृत्रस्य सभया पाप्यारुजः ॥६॥२१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्युक्त सभाध्यक्ष ! ( माहिनः ) पूजनीय महत्त्व गुणवान् ( त्वम् ) आप ( ओजसा ) बल से जैसे मविता ( विजः ) दिव्य-गुणयुक्त प्रकाश से ( पृथिव्याः ) पृथिवी और पदार्थों का ( धर्षणम् ) आधार है वैसे ( सद्नेषु ) गृहादिकों में ( धिषे ) धारण करने हो वा जैसे बिजुली ( वृत्रस्य ) मेघ को मारकर ( अपः ) जलो को वर्षाती है वैसे ( त्वम् ) आप ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए वस्तुओं के ( सवे ) धानन्दकारक व्यवहार में ( सभया ) यथानमय ( अग्निः ) जलो की वर्षा से सबको मृत्यु देते हो वैसे ( पाप्याः ) बुराईकारक क्रिया में शत्रुओं को ( व्यरुजः ) मरणाप्राय करके ( अग्निषाः ) सुख को प्राप्त कीजिए ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालकार है । जैसे विद्वान् सूर्य के समान राज्य को सुप्रकाशित कर शत्रुओं को निवारके प्रजा का पालन करते हैं, वैसे ही हम लोगों को भी अनुष्ठान करना चाहिए ।

इस सूक्त में सूर्य वा विद्वान् के गुण वर्णन से हम सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इषकीसवाँ वर्ग और छपनवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥



अथ वृद्धस्य सप्तपञ्चाशस्य सुतस्यगिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २,

४ जगती, ३ चिराद्, ६ निबृजगती छन्दः । निवादः स्वरः ।

५ मुरिक्रिष्टुप् छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अथ सत्तावनवें सूक्त का आरम्भ है । किर सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्र महिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मति भरे ।

अपाभिष प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शर्वसे अपावृतम् ॥१॥

पदार्थ—जैसे मैं ( यस्य ) जिस सभा आदि के ( शर्वसे ) बल के लिए ( अपावृतम् ) नीचे स्थान में ( अपाभिष ) जलो के समान ( अपावृतम् ) दान वा भोग के लिए प्रसिद्ध ( विश्वायु ) पूर्ण आयुयुक्त ( दुर्धरम् ) दुष्ट जनों द्वारा दुःख से धारण करने योग्य ( राधः ) विद्या, राज्य से सिद्ध हुआ जन और ( अतिष्ठः ) विज्ञान की ( सत्यशुष्माय ) सत्य बलो के निमित्त ( तवसे ) बलवान् ( बृहद्रये ) बड़े उत्तम-उत्तम धनयुक्त ( बृहते ) गुणों से बड़े ( महिष्ठाय ) अत्यन्त दान करने वाले सभाध्यक्ष के लिए ( प्रवरे ) उत्तम रीति से धारण करता है वैसे तुम भी धारण कराओ ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे जन्म ऊँचे देश से आकर नीचे देश आयात् जलाशय को प्राप्त होके स्वच्छ, स्थिर होता है, वैसे नम्र बलवान् पुरुषार्थी धार्मिक विद्वान् मनुष्य को प्राप्त हुआ विद्यारूप धन निश्चल होता है । जो राजलक्ष्मी को प्राप्त होके सब के हित ध्याय वा विद्या की वृद्धि तथा शरीर, आत्मा के बल की उन्नति के लिए देता है उसी शूरवीर विद्यादि देने वाले सभा शाला सेनापति मनुष्य का हम लोग अभिवेक करें ॥१॥

किर बिजुली के कृष्णता से सभा आदि के अध्यक्ष के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अथ ते विश्वमनु दासद्विष्टय आपो निम्नोव सर्वना हविष्मतः ।

यत्पर्वते न समशीत ह्यत इन्द्रस्य वज्रः अश्विंता हिरण्ययः ॥२॥

पदार्थ—( यत् ) जिस ( हविष्मतः ) उत्तम दानप्रदायकर्ता ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष का ( हिरण्ययः ) ज्योतिःस्वरूप ( वज्रः ) मन्दरूप किरण

( पर्वते ) मेघ मे ( न ) जैसे ( अश्विंता ) हिंसा करनेवाला होता है वैसे ( हविस्तः ) उत्तम व्यवहार ( समशीत ) प्रसिद्ध हो ( अथ ) इसके अनन्तर ( ते ) आपके समाश्रय से ( विश्वम् ) सब जगत् ( सर्वना ) ऐश्वर्य का ( आपः ) जल ( निम्नोव ) जैसे नीचे स्थान का जाते हैं वैसे ( इष्टये ) अभीष्ट सिद्धि के लिए ( ह ) निश्चय करके ( अन्वसत् ) हो उसी सभाध्यक्ष वा बिजुली का हम सब मनुष्यों को समाश्रय वा उपयोग करना चाहिए ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकमुत्तोपमालकार है । जैसे पर्वत वा मेघ का समाश्रय कर सिंह आदि वा जल, रक्षा को प्राप्त होकर स्थित होते हैं, जैसे नीचे स्थानों में रहने वाला जलसमूह सुख देने वाला होता है, वैसे ही सभाध्यक्ष के आश्रय से प्रजा स्थिररूप से सुखी होवे ॥२॥

किर बहु कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ मरा पनीयसे ।

यस्य धाम अवेसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नार्यसे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तू ( यस्य ) जिस सभाध्यक्ष का ( धाम ) विद्यादि सुखों का धारण करनेवाला ( अवेसे ) श्रवण वा ध्वनि के लिए है जिसने ( यस्यसे ) विज्ञान के वास्ते ( हरितः ) विशाघो के ( न ) समान ( नाम ) प्रसिद्ध ( इन्द्रियम् ) प्रशंसनीय बुद्धिमान् आदि वा वक्ष्य आदि ( अकारि ) किया है ( अस्मै ) इस ( भीमाय ) दुष्ट वा पापियों का भय देने ( पनीयसे ) यथायोग्य व्यवहार न्युक्ति करने योग्य सभाध्यक्ष के लिए ( शुभ्र ) शोभायमान शुद्धिकारक ( अहितनीय ) वर्णयुक्त यश ( उषः ) प्रातःकाल के ( न ) समान ( नमसा ) नमस्ते वाक्य के माथ ( समध्वर ) अच्छे प्रकार धारण वा पोषण कर ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । मनुष्यों को समुचित है कि जैसे प्रातःकाल सब अन्नकार का निवारण और सब को प्रकाश से धानन्दित करता है वैसे ही धन्य हो को भय करनेवाले मनुष्य को गुणों की अधिकता से स्तुति, सत्कार वा सन्नामादि व्यवहारों में स्थापन करें । जैसे दिक्षा व्यवहार की जनानेहारी होती है वैसे ही जो विद्या, उत्तम शिक्षा, सेना, विनय, न्यायादि से सब को सुभूषित बन, धन आदि से संयुक्त कर सुखी कर उसीको सभा आदि अधिकारों में सब मनुष्यों को अधिकार देना चाहिए ॥३॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और सभा के अध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुषदुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।

नठि त्वदन्यो गिर्वशो गिरः मयत् क्षोणीरिव प्रति नो ह्यं तद्वचः ॥४॥

पदार्थ—हे ( प्रभूवसो ) मयर्थ वा सुखों में वास देने ( गिर्वश ) वेद-विद्या से सत्कार की हुई बागियों से मेकनीय ( पुरुषदुत ) बहुतों से स्तुति करनेवाले ( ह्यं ) कर्मनीय वा सर्वमुखप्रापक ( इन्द्र ) जगदीश्वर ! ( ते ) आप की कृपा के सहाय से हम लोग ( मयत् क्षोणीरिव ) जैसे शूरवीर शत्रुओं को मारते हुए पृथिवी-राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे ( नः ) हम लोगों के लिए ( गिरः ) वेद-विद्या से अधिकृष्ट बागियों को प्राप्त कराने की इच्छा करनेवाले ( त्वत् ) आप से ( अन्वः ) भिन्न ( नहि ) कोई भी नहीं है ( तत् ) उन ( वचः ) वचनों को सुन वा प्राप्त कर जो ( इमे ) ये सम्मुख मनुष्य वा ( ये ) जो ( ते ) दूर रहने वाले मनुष्य और ( वयम् ) हम लोग परस्पर मिलकर ( ते ) आपके शासन होकर ( त्वारभ्य ) आपके सामर्थ्य का आश्रय करके निर्भय हुए ( प्रचरामसि ) परस्पर सदा सुखयुक्त विचरते हैं ॥४॥

भाषार्थ—जो मनुष्य परब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु की उपासना नहीं करते, और उससे उपदिष्ट वेद प्रलिपादित मत से भिन्न मत नहीं मानते, वे ही यहाँ पूज्य होते हैं ॥४॥

किर बहु कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मधवन्काममा पृथ ।

अनु ते यौव्वृहती वीर्यं मम ह्यं च ते पृथिवी नैम ओजसे ॥५॥

पदार्थ—हे ( मधवन् ) उत्तम धनयुक्त ( इन्द्र ) सेनादि बल वाले सभाध्यक्ष ! जिस ( ते ) आपका जो ( भूरि ) बहुत ( वीर्यम् ) पराक्रम है जिस के हम लोग ( स्मसि ) आश्रित और जिस ( तव ) आपकी ( इयम् ) यह ( वृहती ) बड़ी ( वीः ) विद्या विनययुक्त न्यायप्रकाश और राज्य के वास्ते ( पृथिवी ) भूमि ( ओजसे ) बलयुक्त के लिए और भोगने के लिए ( नैमे ) नम्र के समान है वह आप ( अन्वः ) इस ( स्तोतुः ) स्तुतिकर्ता के ( कामम् ) कामना को ( आयुज ) परिपूर्ण करें ॥५॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर के अनन्त वीर्य का आश्रय करके सब कामनाओं की सिद्धि वा पृथिवी के राज्य की प्राप्ति करके निरन्तर सुखी रहे ॥५॥

किर ईश्वर का उपासक कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुहं वज्रैश्च वज्रिन्पर्वशश्वकर्त्तिथ ।

अवांसुजो निवृत्ताः सर्ववा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं महः ॥६॥२२॥१०॥

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) प्रशस्त शस्त्रविद्यावित् ( इन्द्र ) दुष्टों के विदारण करनेवाले सभाध्यक्ष ! जो ( त्वम् ) आप ( महाम् ) अष्ट ( उषम् ) कीर्ति पुरुषों की सत्कार के योग्य उत्तम बड़ी सेना को ( अवांसुजः ) बनाएँ और ( वज्रैश्च )

वज्र से जैसे सूर्य ( पर्यन्तम् ) मेघ को छिन्न-भिन्नकर ( निष्ठाः ) निवृत्त हुए ( अयः ) जलो को चारण करना और पुन पृथिवी पर गिराता है वैसे शत्रुदल को ( पर्यन्तः ) भग-भंग से ( अक्षयम् ) छिन्न-भिन्नकर शत्रुओं का निवारण करते हो ( सभा ) कारणा रूप से सत्यस्वरूप ( विश्वम् ) जगत् का अर्थात् राज्य को चारण करके ( केवलम् ) असहाय ( सह ) बल को ( सत्त्वम् ) सबका सुख से आने-आने के न्यायमार्ग से बलन को ( दक्षिणम् ) चरते हो ( तम् ) उस आपको सभा आदि के पति हम लोग स्वीकार करते हैं ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमालकार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो शत्रुओं के छेदन, प्रजा के पालन में तत्पर बन और विद्या में युक्त है उसी को सभा आदि का रक्षक अधिष्ठाना स्वामी बनावे ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और सभाध्यक्ष आदि के गुणों के वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बाईसवाँ वग और सत्तावनवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥



अथ मन्त्रस्याष्टपञ्चाशत्स्य सूक्तस्य शोतव्यो मोक्षः श्रुतिः। अग्निर्वेत्ता। १,५ जगती  
२ विराट् जगती, ४ निष्कण्ठजगती च छन्दः। निषाद स्वरः। ३ त्रिष्टुप्,  
६,७,९ निष्कण्ठद्विष्टुप्, ८ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। वैवत स्वरः ॥

अथ अष्टावनवै सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मन्त्र में अग्नि के वृष्टान्त से जीव के गुणों का उपदेश किया है—

नृचिंस्तहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यदूतो अमवद्विस्वतः।

वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! ( यत् ) जो ( चित् ) विद्युत् के समान स्वप्रकाश ( अमृत ) स्वस्वरूप से नाशरहित ( सहोजा ) बल का उत्पादन करनेवाला ( होता ) कर्मफल का भोक्ता सब मन और शरीर आदि का धर्ता ( दूतः ) सब को चलानेवाला ( अमवद्विस्वतः ) होता है ( देवताता ) दिव्य पदार्थों के मध्य में दिव्यस्वरूप ( साधिष्ठेभिः ) अधिष्ठानों में साथ वर्तमान ( पथिभिः ) मार्गों से ( रजः ) पृथिवी आदि लोकों को ( भु ) शीघ्र बनानेवाले ( विवस्वतः ) स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर के मध्य में वर्तमान होकर ( हविषा ) ग्रहण किये हुए शरीर के सहित ( नि तुन्दते ) निरन्तर जन्म-मरण आदि में पीड़ित होता और अपने कर्मों के फलों का ( विवासति ) सेवन और अपने कर्म में ( व्यापने ) सब प्रकार से वनता है सो जीवात्मा है ऐसा तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों! तुम अनादि अर्थात् उत्पत्तिरहित, सत्यस्वरूप, ज्ञानमय, आनन्दस्वरूप, मन्त्रशक्तियुक्त, स्वप्रकाश, सब का धारक और सब विषय के उत्पादक, देश, काल और वस्तुओं के परिच्छेद से रहित और सर्वत्र व्यापक परमेश्वर में निश्चय व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध से जो अनादि निरत्य चेतन, अल्प, एकदेशस्थ और अल्पज है वही जीव है ऐसा निश्चित जानो ॥ १ ॥

फिर वह कंसा है, यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

आ स्वमदम् युवमानो अजरस्तृण्विष्यन्तसेषु तिष्ठति।

अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयमचिक्रदत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! तुम जो ( युवमान ) सयोग और विभागकर्ता ( अजर ) अरादि रोग रहित देह आदि की ( अविष्यन् ) रक्षा करनेवाला होता हुआ ( अतसेषु ) आकाशादि पदार्थों में ( तिष्ठति ) स्थित होता ( प्रुषितस्य ) पूर्ण परमात्मा में कार्य का सेवन करता हुआ ( न ) जंम ( अत्य ) छोटा ( पृष्ठम् ) अपनी पीठ पर भार का वहता है वैसे देहादि को वहता है ( न ) जैसे ( विष ) प्रकाश में ( सानु ) पर्वत के शिखर या मेघ की घटा प्रकाशित होती है वैसे ( रोचते ) प्रकाशमान होता है जैसे ( स्तनयन् ) बिजुली जल करती है वैसे ( अचिक्रदत् ) सर्वथा शब्द करता है जो ( स्वम् ) अपने किये ( अदम् ) भोक्तव्य कर्म को ( तृणु ) शीघ्र ( आ ) सब प्रकार में भागता है वह देह का धारण करनेवाला जीव है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमालकार है। जो पूर्ण ईश्वर से धारण किया हुआ, आकाशादि तत्वों में प्रयत्नकर्ता सब बुद्धि आदि का प्रकाशक, ईश्वर के न्याय नियम में अपने किये शुभाशुभ कर्म के सुखदुःखस्वरूप फल का भोगता है सो इस शरीर में स्वतन्त्रकर्ता भोक्ता जीव है ऐसा सब मनुष्य जानें ॥ २ ॥

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः।

रथो न विष्टृञ्जमान आयुषु व्यानुषग्वार्यो देव ऋयवति ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! तुम जो ( रुद्रेभिः ) प्राणों और ( वसुभिः ) वाम देनेवाले पृथिवी आदि पदार्थों के साथ ( निषत् ) म्वर, बलता फिरता ( होता ) देहादि का धारण करनेवाला ( पुरोहित ) प्रथम ग्रहण करने योग्य ( रयिषाळ ) धन का सहनकर्ता ( अमर्त्य ) मरण धर्म रहित ( क्राणा ) कर्मों का कर्ता ( ऋञ्जमान ) जो किये हुए कर्म को प्राप्त होता ( विष्टृ ) प्रजापति में ( रथो न ) रथ के समान शरीर सहित होके ( आयुषु ) बाल्यादि जीवनवस्थाओं में ( व्यानुषक् ) अनुकूलता से वर्तमान ( वार्यो ) उत्तम पदार्थ और सुख को ( अमर्त्यः ) विविध प्रकार सिद्ध करता है वही ( देवः ) शुद्ध प्रकाशस्वरूप जीवात्मा है ऐसा जानो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो पृथिवी में प्राणों के साथ वेष्टा, मन के अनुकूल रथ के समान शरीर के साथ क्रीडा, श्रेष्ठ वस्तु और सुख की इच्छा करते हैं वे ही जीव हैं, ऐसा सब लोग जानें ॥ ३ ॥

वि वातजुतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुह्विः सृण्या तुविष्वणिः।

तृषु यदग्ने वनिनी वृषायसे कुण्णन्त एम रुशदूमे अजर ॥४॥

पदार्थ—हे ( रुशदूमे ) अपने स्वभाव की लहरीयुक्त ( अजर ) वृद्धावस्था से रहित ( अग्ने ) बिजुली के तुल्य वर्तमान जीव! जो तू ( अतसेषु ) आकाशादि व्यापक पदार्थों में ( विविष्वणिः ) ठहरता ( यत् ) जो ( वातजुतः ) वायु का प्रेरक और वायु के समान वेग वाला ( तुविष्वणिः ) बहुत पदार्थों का सेवक ( जुह्विः ) ग्रहण करने के साधनरूप क्रियाओं और ( सृण्या ) धारण तथा हननरूप कर्म से सह वर्तमान ( वनिनी ) विद्युत् युक्त प्राणों को प्राप्त होके तू ( तृषु ) शीघ्र ( वृषायसे ) बलवान् होता है जिस ( ते ) तेरे ( कुण्णन्त ) कर्षणरूप गुण को हम लोग ( एम ) प्राप्त होते हैं सो तू ( वृषा ) वृषा अभिमान को छोड़के अपने स्वरूप को जान ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है कि जैसा मैंने जीव के स्वभाव का उपदेश किया है वही तुम्हारा स्वरूप है यह निश्चित जानो ॥ ४ ॥

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्यं अवं वाति वंसगः।

अभिवजन् नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो! ( वंसगः ) भिन्न-भिन्न पदार्थों को प्राप्त होता ( वातचोदितः ) प्राणों से प्रेरित ( तपुर्जम्भः ) जिम का मुख के समान प्रताप, वह जीव अग्नि के सदृश जैसे ( यूथे ) सेना में ( साह्यम् ) हतनशील और ( अवं वाति ) सब शरीर को वेष्टा करता है जो विस्तृत होके दुःखों का हनन करता जो ( अभिवजन् ) जाना-प्राता हुआ ( चरथम् ) चरनेवाले ( नक्षितम् ) नक्षत्रों ( रजः ) कारण के सहित लोकसमूह को ( पाजसा ) बल से भरता जो ( स्थातुः ) स्थिर वृक्ष में बैठे हुए ( पतत्रिणः ) पक्षी के समान ( भयते ) भय करता है सो तुम्हारा आत्मस्वरूप है इस प्रकार तुम लोग जानो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और ग्रहकार, प्राण अर्थात् प्राणादि दशवायु, इन्द्रिय अर्थात् ओर्वादि दश इन्द्रियों का प्रेरक इन का धारक और नियन्ता स्वामी, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान आदि गुण वाला है वह इस देह में जीव है ऐसा निश्चित जानो ॥ ५ ॥

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयि न चारुं सुहवं जनेभ्यः।

होतारमग्ने अतिथि वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश स्वप्रकाशस्वरूप जीव! तू जिस ( रथा ) तुम को ( भृगवः ) परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् ( मानुषेषु ) मनुष्यों में ( जनेभ्यः ) विद्वानों से विद्या को प्राप्त होके ( चारुम् ) सुन्दरस्वरूप ( सुहवम् ) सुखों के देनेवाले ( रयिम् ) धन के ( न ) समान ( होतारम् ) होतार ( अतिथिम् ) अनियत स्थिति अर्थात् अतिथि क सदृश देह-देहान्तर-परि-स्थान स्थानान्तर में जानेवाला ( वरेण्यम् ) ग्रहण करने योग्य ( शेवम् ) मुलरूप जीव को प्राप्त होके ( दिव्याय ) शुद्ध ( जन्मने ) जन्म के लिए ( मित्रं न ) मित्र के सदृश तुमको ( आवधुः ) सब प्रकार चारण करते हैं उसी को जीव जान ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे मनुष्य विद्या वा लक्ष्मी तथा मित्रों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे ही जीव के स्वरूप को जानने वाले विद्वान् लोग अत्यन्त सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

होतारं सप्त जुह्वा यजिष्ठं यं वाघती वृणते अध्वरेषु।

अग्नि विष्वेधामरति वृनां मपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! जिस के ( सप्त ) सात ( जुह्वः ) सुख की इच्छा के साधन हैं उस ( होतारम् ) सुखों के दाता ( यजिष्ठम् ) अतिमय सगति में निपुण ( विष्वेधाम् ) सब ( वस्तुनाम् ) पृथिव्यादि लोकों को ( अरतिम् ) प्राप्त होने हारा ( यम् ) जिस को ( वाघतः ) बुद्धिमान् लोग ( प्रयसा ) प्रीति से ( अध्वरेषु ) अहिंसनीय पुराणों में ( अग्निम् ) अग्नि के सदृश ( वृणते ) स्वीकार करने हैं उस ( रत्नम् ) रमणीयानन्दस्वरूप वाले जीव को मैं ( यामि ) प्राप्त होता और ( सपर्यामि ) सेवा करता हूँ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अपने आत्मा को जान के परब्रह्म को जानते हैं वे ही मोक्ष पाते हैं ॥ ७ ॥

अथ आत्मन योगिजन क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोत्रम्यो मित्रमहः शर्म यच्छ।

अग्ने गृणन्महंस उरुष्योर्जो नपात्पुभिरायसीभिः ॥८॥

पदार्थ—हे ( सहसः ) पूर्ण ब्रह्मचर्य से शरीर और विद्या से आत्मा के बलयुक्त जन का ( सूनो ) पुत्र ( मित्रमहः ) सब के मित्र और पूजनीय ( अग्ने ) अग्निवत् प्रकाशमान विद्वन्! ( नपात् ) नीच कक्षा में न गिरनेवाला तू ( अहः ) आज अपने आत्मस्वरूप के उपदेश से ( न ) हम को ( अहंसः ) पापाचरण से ( बाहि ) घलग रक्षा कर ( अच्छिद्रा ) छेद-भेद रहित ( शर्म ) सुखों को ( यच्छ ) प्राप्त कर ( स्तोत्रम्यः ) विद्वानों से विद्याओं की प्राप्ति हम को करा। हे विद्वन्! तू आत्मा की ( पुशस्तम् ) स्तुति के कर्ता को ( आयसीभिः ) सुवर्ण आदि आभूषणों

की ईश्वर की रक्षकता ( भूमिः ) रक्षा करने में समर्थ अन्न आदि क्रियाओं के साथ ( ऊर्ध्वः ) पराक्रम के बल से ( उरध्वः ) पुनः से पुनः ॥ ८ ॥

आचार्य—हे आत्मा और परमात्मा की कामनेवाले योगी लोगो ! तुम आत्मा और परमात्मा के उपदेश से सब मनुष्यों को दुःख से दूर करके निरन्तर सुखी किया करो ॥ ८ ॥

फिर वह सभापति संसा है, वह विषय अगले अन्ध में कहा है—

मवा वरुथं गृहते विभावा मवा मधवन्मधवन्मः शर्म ।

उरुप्यामं अहंसो गृहन्तं प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे ( मधवन् ) उत्तम धनवाले ( अन्धे ) विज्ञान आदि गुणयुक्त सभाध्यक्ष विद्वन् ! तू ( गृहते ) गुणों के कीर्तन करनेवाले और ( मधवन्मधवन् ) विद्यादि धनयुक्त विद्वानों के लिए ( वरुथं ) घर को और ( शर्म ) सुख को ( विभावाः ) प्राप्त करा तथा आप भी घर और सुख को ( मवा ) प्राप्त हो ( गृहन्तं ) स्तुति करते हुए मनुष्य की ( अहंस ) पाप से ( मक्षु ) शीघ्र ( उरध्वः ) रक्षा कर और आप भी पाप से अन्ध ( अन्धे ) हूँ; ऐसा जो ( धियावसुः ) प्रज्ञा वा कर्म से वास कराने योग्य ( प्रातः ) प्रति दिन प्रज्ञा की रक्षा करता है वह सुखों को ( जगम्यात् ) प्रतिशय करके प्राप्त होने ॥ ९ ॥

आचार्य—मनुष्यों को योग्य है कि जो विद्वान् धर्म वा विनय में सब प्रज्ञा को शिक्षा देकर पालना करता है उसी को सभा आदि का अध्यक्ष करें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि वा विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अष्टाध्यायी सूक्त और औचित्यार्थ अर्थ समाप्त हुआ ॥



अथास्य सप्तर्षीकोनपठितस्य सूक्तस्य गौतमो नोवा ऋषिः । अग्निर्वैश्वानरो देवता ।

१ निवृत्तं विष्टुप्, २, ४ विराट् विष्टुप्, ५—७ विष्टुप् छन्दः ।

वैश्वानरः स्वरः । ३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उनसठवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम अन्ध में अग्नि और

ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

वया इदं अग्र्यस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेषु जनी उपमिद्यन्थ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( वैश्वानर ) सम्पूर्ण को नियम में रखनेवाले ( अन्धे ) जगदीश्वर ! जिस ( ते ) आप के सकाश से जो ( अन्ये ) भिन्न ( विश्वे ) सब ( अमृता ) अविनाशी ( अग्र्य ) सूर्य आदि ज्ञानप्रकाशक पदार्थों के तुल्य जीव ( त्वे ) आप में ( वयाः ) शाखा के ( इत् ) समान बढ़के ( मादयन्ते ) आनन्दित होते हैं जो आप ( क्षितीनाम् ) मनुष्यादिकों के ( नाभि ) मध्यवर्ति ( असि ) हो ( जनीम् ) मनुष्यादिकों को ( उपमिद्यं ) धर्मविद्या में स्थापित करते हुए ( स्थूणेषु ) धारण करनेवाले अन्ध के समान ( अग्र्यम् ) सब को नियम में रखते हो वही आप हमारे उपास्य देवता हो ॥ १ ॥

आचार्य—जैसे वृक्ष अपनी शाखा और अन्धे गृह को धारण करके आनन्दित करते हैं वैसे ही परमेश्वर हम को धारण करके आनन्द देता है ॥ १ ॥

फिर वह संसा है, इस विषय का उपदेश अगले अन्ध में किया है—

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदस्ती रोदस्योः ।

तं स्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानरं ज्योतिरिदायौ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( वैश्वानर ) सब ससार के नायक ! जो आप ( अग्निः ) बिजुली के समान ( दिवः ) प्रकाश वा ( पृथिव्याः ) भूमि के मध्य समान ( मूर्धा ) उत्कृष्ट और ( नाभिः ) मध्यवर्तिव्यापक ( अवधत् ) होते हो ( अन्धे ) इन सब लोकों की रचना के अनन्तर जो ( रोदस्योः ) प्रकाश और अप्रकाश रूप सूर्यादि और भूमि आदि लोकों के ( अरतिः ) आप व्यापक होने के अध्यक्ष ( अवधत् ) होते हो जो ( आर्याम् ) उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाले मनुष्य के लिए ( ज्योतिः ) ज्ञान प्रकाश वा मूर्त द्रव्यों के प्रकाश को ( इत् ) ही करते हैं जिस ( देवम् ) प्रकाशमान ( स्वा ) आपकी ( देवासः ) विद्वान् लोग ( अजनयन्त ) प्रकाशित करते हैं वा जिस बिजुली-रूप अग्नि को विद्वान् लोग "अजनयन्त" प्रकट करते हैं ( तन् ) उस आप ही की उपासना हम लोग करें ॥ २ ॥

आचार्य—जिस जगदीश्वर ने आर्य अर्थात् उत्तम मनुष्यों के विज्ञान के लिए सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले वेदों की प्रकाशित किया है तथा जो सबसे उत्तम सब का आधार जगदीश्वर है उस को जानकर मनुष्यों की उसी की उपासना करनी चाहिए ॥ २ ॥

आ सूर्यं व रश्मयो भ्रवासां वैश्वानरे दधिरेऽप्रा वसूनि ।

या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस इस द्रव्यसमूह जगत् के आप ( राजा ) प्रकाशक ( अग्निः ) हैं ( तस्य ) उस के मध्य में ( वा ) जो ( पर्वतेषु ) पर्वतों में ( वा ) जो ( ओषधीषु ) ओषधियों में जो ( अप्सु ) जलों में और ( मानुषेषु ) जो मनुष्यों में ( वसूनि ) द्रव्य हैं उन सब को ( सूर्यं ) सत्रिंशत्लोक में ( रश्मयः ) किरणों के

( न ) समान ( अग्ना वैश्वानरे ) आप में ( भ्रवासाः ) निश्चल प्रजाओं को विद्वान् लोग ( आधिरः ) धारण कराते हैं ॥ ३ ॥

आचार्य—इस अन्ध में उपमालकार है तथा पूर्व अन्ध से 'देवास' इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे प्राणी प्रकाशमान सूर्य की विद्यमानता में सब कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे जगदीश्वर की उपासना से सब कार्य सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार करते हुए मनुष्यों को कभी सुख और धन का नाश तथा दुःख वा दरिद्रता नहीं होते ॥ ३ ॥

अब अगले अन्ध में पुनरोत्तम के गुणों का उपदेश किया है—

बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो न दक्षः ।

स्वर्षते सत्यशुभाय पूर्वीर्वैश्वानराय नृत्तमाय यज्ञीः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जैसे ( सूनवे ) पुत्र के लिए ( बृहती इव ) महागुणयुक्त माता वर्तती है जैसे ( रोदसी ) प्रकाश भूमि और ( ब्रह्म ) बहुर ( मनुष्यः ) पढ़ानेवाले विद्वान् मनुष्य पिता के ( न ) समान ( होता ) देने-लेने वाला विद्वान् ईश्वर वा सभापति विद्वान् प्रसन्न होता है जैसे विद्वान् लोग इस ( स्वर्षते ) प्रशसनीय सुख में वर्तमान ( सत्यशुभाय ) सत्यवलयुक्त ( नृत्तमाय ) पुत्रों में उत्तम ( वैश्वानराय ) परमेश्वर के लिए ( पूर्वीः ) सनातन ( यज्ञीः ) महागुण लक्षणयुक्त ( गिर ) वेदवाणियों को ( बहिरः ) धारण करते हैं वैसे ही उस परमेश्वर के उपासक सभाध्यक्ष में सब मनुष्यों को वर्तना चाहिए ॥ ४ ॥

आचार्य—इस अन्ध में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे भूमि वा सूर्यप्रकाश सब को धारण करके सुखी करते हैं, जैसे पिता वा अध्यापक पुत्र के हित के लिए प्रयत्न होता है, जैसे परमेश्वर प्रजासुख के वाहने वर्तना है, वैसे सभापति प्रज्ञा के अर्थ वर्त, इस प्रकार सब वेदवाणियों प्रतिपादन करती हैं ॥ ४ ॥

फिर वह संसा हो, इस विषय का उपदेश अगले अन्ध में किया है—

दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानरं प्र रिरिने महित्वम् ।

राजां कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिष्वकथं ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( जातवेद ) जिससे वेद उत्पन्न हुए, वेदों को जानने वा उनको प्राप्त कराने तथा उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान ( वैश्वानर ) सबको प्राप्त होने वाले ( प्रजापते ) जगदीश्वर ! जिस ( ते ) आपका ( महित्वम् ) महागुणयुक्त प्रभाव ( बृहत ) बड़े ( विष ) सूर्यादि प्रकाश से ( चित् ) भी ( रिरिने ) अधिक है जो आप ( कृष्टीनाम् ) मनुष्यादि ( मानुषीणाम् ) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओं के ( राजा ) प्रकाशमान अधीश ( असि ) हो और जो आप ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिए ( युधा ) सप्राप्त से ( वरिषः ) सेवा को ( वरिषः ) प्राप्त कराने हो तो आप ही हम लोगों के न्यायाधीश हूँ ॥ ५ ॥

आचार्य—इस अन्ध में श्लेष अलकार है। सभा में रहने वाले मनुष्यों को अनन्त सामर्थ्यवान् तथा सबके अधिष्ठाता होने से परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए और महागुण गुणयुक्त होने से सभा आदि के अध्यक्ष सर्वाधिकारी बन कर युद्ध से दुष्टों को जीत के प्रज्ञा-पालन करके विद्वानों की सेवा तथा मस्तक को सदा करना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर वह संसा है, इस विषय का उपदेश अगले अन्ध में किया है—

प्र न महित्वं वृषभस्य वोचं यं पुरषो बृहहसं सचन्ते ।

वैश्वानरो दस्युमभिर्जघन्यो अधूनोत्काष्ठा अब शम्बरं मेत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—( तन् ) जिस परमेश्वर को ( पुरषः ) विद्वान् लोग अपने आत्मा के साथ ( सचन्ते ) युक्त करते हैं जैसे ( अग्निः ) सर्वत्र व्यापक विद्युत् ( बृहहसं ) मेघ के नाशकर्ता सूर्य को दिसलाती है जैसे ( वैश्वानरः ) सम्पूर्ण प्रज्ञा को नियम में रखने वाला सूर्य ( दस्युम् ) डाकू के तुल्य ( शम्बरम् ) मेघ को ( जघन्यान् ) हनन करता ( अधूनोत् ) कपाता ( अबभेत् ) विदीर्ण करता है जिसके बीच में ( काष्ठाः ) विषा भी व्याप्य हैं उस ( वृषभस्य ) सब से उत्तम सूर्य के ( महित्वम् ) महिमा को मैं ( नु ) शीघ्र ( प्रवीक्ष्यम् ) प्रकाशित करूँ वैसे सब विद्वान् लोग किया करें ॥ ६ ॥

आचार्य—इस अन्ध में वाचकलुप्तोपमालकार है। जिसकी महिमा को सब ससार प्रकाशित करता है वही अनन्त शक्तिमान् परमेश्वर सब की उपासना के योग्य है ॥ ६ ॥

अब अगले अन्ध में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।

शासन्नेये शतिनीभिर्गमिः पुंस्त्रीये जर्तते स्रुतावान् ॥ ७ ॥ २५ ॥

पदार्थ—जो ( विश्वकृष्टीः ) सबके उत्पन्नकर्ता ( यजतः ) पूजन के योग्य ( विभावा ) विशेष करके प्रकाशमान ( स्रुतावान् ) प्रशंसनीय अग्नादि का आधार ( वैश्वानरः ) सबको प्राप्त करानेवाला ( अग्निः ) सूर्य के समान जगदीश्वर अपने जगत्कृत् ( अहिम्ना ) महिमा के साथ ( भरद्वाजेषु ) धारण करने वा जानने योग्य पृथिवी आदि पदार्थों में ( शतिनीभिः ) असंख्यात गतियुक्त क्रियाओं से सहित ( पुंस्त्रीये ) बहुल प्राणियों में प्राप्त ( शासन्नेये ) असंख्यात विभागयुक्त क्रियाओं से सिद्ध हुए संसार में वर्तता है उसका जो मनुष्य ( जर्तते ) अर्चन, पूजन करता है वह निरन्तर सत्कार को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥



**भाषार्थ**—जो असंख्यात पदार्थों में समख्यात क्रियाओं का हनु विद्युत् के समान ईश्वर है वही सब जगत् को धारण करता है जो मनुष्य उसकी विद्या को जानता है वह सदा महिमा को प्राप्त होता है ॥७॥

इस सूक्त में वैश्वानर शब्दार्थ वर्गान से हमके ग्रन्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पद्योसर्वा वर्ग और उन्मथवां सूक्त समाप्त हुआ ॥



**अथास्य पञ्चमस्य तष्टितमस्य सूक्तस्य गीतमो नोधा ऋषिः । अग्निर्वेत्ता । १ विराट्**  
**त्रिष्टुप्, ३, ५ त्रिष्टुप् च छन्दः । ध्रुवत स्वरः । २, ४ भुरिक्**  
**पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**अब साठवें सूक्त का आरम्भ है, फिर वह ईश्वर कंसा है, यह विषय**  
**अगले मन्त्रों में कहा है—**

**वकिं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राच्यं द्रुतं सद्यो अर्थम् ।**  
**द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं गतिं भरद्भृगवे मातरिश्वा । १॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( मातरिश्वा ) अन्तरिक्ष में ज्वलन करता वायु ( भृगवे ) भूजने वा पकाने के लिए ( विदथस्य ) युद्ध के ( केतुम् ) भवजा के समान ( यशसम् ) कीर्तिकारक ( सुप्राच्यम् ) उत्तमता से चलाने के योग्य ( द्रुतम् ) देशान्तर को प्राप्त करने ( रातिम् ) दान का निमित्त ( प्रशस्तम् ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( द्विजन्मा-जम् ) वायु वा कारण से जन्मसहिम् ( भरद्भृगवे ) सब को वहनेहारे अग्नि को ( रयिमिव ) उत्तम लक्ष्मी के समान ( सद्यो अर्थम् ) शीघ्रगामी पृथिव्यादि द्रव्य को ( भरत् ) धरता है वैसे तुम भी काम किया करो ॥१॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं । जैसे वायु, अग्नि आदि वस्तु का धारण करके सब चराचर लोको का धारण करता है उसे राजपुरुष विद्या-धर्म धारणपूर्वक प्रजाओं को न्याय में रखें ॥१॥

**अस्य शासुरुभयांसः मचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्त्ताः ।**

**दिचश्चित्पुवां न्यसादि होतापृच्छथो विरपतिर्विभु वेधाः ॥ २॥**

**पदार्थ**—( ये ) जो ( हविष्मन्त ) उत्तम नामधीयुक्त ( उशिज ) शुभ गुण कर्मों की कामना करनेहारे ( उभयांस ) राजा और प्रजा के ( मर्त्ता ) मनुष्य जिस ( अस्य ) इस ( शासु ) मत्स्य न्याय के शासन करनेवाले ( विभु ) प्रजाओं में ( सचन्ते ) सयुक्त होते हैं जो ( होता ) शुभ कर्मों का ग्रहण करने हारा ( आपृच्छथ ) सब प्रकार के प्रश्नों के पूछने योग्य ( वेधा ) विविध विद्या का धारण करनेवाला ( चित्पति ) प्रजाओं का स्वामी ( विभु ) प्रकाश के ( पुर्वं ) पूर्व स्थित सूर्य के ( चित् ) समान धार्मिक जनों ने जो राज्यपालन के लिए नियुक्त किया हो ( च ) वही सब मनुष्यों को आश्रय करने के योग्य है ॥ २॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालकार है । मनुष्यों को योग्य है कि जो विद्वान् धर्मात्मा और न्यायाधीशों से प्रणमा को प्राप्त हो, जिनके शील से सब प्रजा मनुष्य हो, उनकी सेवा पिता के समान सब लोग करें ॥२॥

**तं नव्यंसी हृद आ नायमानमस्मत्सुकीर्त्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।**

**यमृत्विजो बृजने मानुषामः प्रयस्वन्त आयवो जीर्जन्त ॥ ३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्य ! जैसे ( ऋत्विज ) ऋतुओं के योग्य कर्मकर्त्ता ( प्रयस्वन्त ) उत्तम विज्ञान युक्त ( आयवः ) मत्स्याज्मत्स्य का विवेक करनेहारे ( हृद ) सब के मित्र ( मानुषांस ) विद्वान्मनुष्य जानने की इच्छा करनेवालों को ( बृजने ) अधर्म रहित भवमार्ग में ( जीर्जन्त ) विद्याओं से प्रकट कर देने है जिस ( आयमानम् ) प्रसिद्ध हुए ( मधुजिह्वम् ) स्वादिष्ट भाग का ( नव्यसी ) अति नूतन प्रजा सेवन करती है ( तम् ) उसको ( अस्मत् ) हम से प्राप्त हुई शिक्षा से युक्त ( सुकीर्त्ति ) अति प्रशंसा के योग्य तू ( आश्या ) अच्छे प्रकार भोग कर ॥३॥

**भाषार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि जो अधर्म को छुड़ाने के धर्म का ग्रहण कराते हैं उनका सब प्रकार से सम्मान किया करें ॥३॥

**उशिक पवित्रो वसुमानुषेषु वरेण्यो होताधायि विभु ।**

**दमूना गृहपतिर्दम आ अभिर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४॥**

**पदार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि जो ( उशिक ) सत्य की कामनायुक्त ( पवित्र ) अग्नि के सुत्य पवित्र करने ( वसु ) वास कराने ( वरेण्य ) स्वीकार करने योग्य ( दमूना ) दम अर्थात् शान्तियुक्त ( गृहपति ) गृह का पालन करने तथा ( रयिपति ) धनो को पालने ( अग्नि ) अग्नि के समान ( मानुषेषु ) युक्तिपूर्वक आहार-विहार करने वाले मनुष्य ( विभु ) प्रजा और ( वरे ) गृह में ( रयीणाम् ) राज्य आदि धन और ( होता ) सुखों का देने वाला ( भुवत् ) होवे वही प्रजा में राजा ( अयायि ) धारण करने योग्य है ॥४॥

**भाषार्थ**—मनुष्यों को उचित है कि अधर्मी मूर्खजन को राज्य की रक्षा का अधिकार कदापि न दें ॥४॥

**तं स्वां वयं पतिमध्रे रयीणां प्र संमामो मतिभिर्गोतमासः ।**

**आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मधू धियावसुर्जमम्यात् ॥ ५॥ २६॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) पावकवत्पवित्र स्वरूप विद्वन् ! जैसे ( धियावसुः ) बुद्धियों में बसाने वाला ( मतिभिः ) बुद्धिमानों के साथ ( वाजंभरम् ) वेग को धारण करनेवाले को ( प्रातः ) प्रति दिन ( आशुमम्यात् ) असे शीघ्र चलनेवाले घोड़े को जोड़के स्थानान्तर को तुरन्त जाते-आते है वैसे ( मधू ) शीघ्र ( रयीणाम् ) चक्रवर्ति राज्यलक्ष्मी आदि धनो के ( पतिम् ) पालन करनेवाले को ( जगम्यात् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे । वैसे ( तम् ) उस ( स्वा ) तुम को ( मर्जयन्तः ) शुद्ध कराते हुए ( गोतमासः ) प्रतिशय करके स्तुति करनेवाले ( वयम् ) हम लोग ( प्रमंसावः ) स्तुति से प्रमसित करते हैं ॥५॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं । जैसे मनुष्य उत्तम यान अर्थात् सवारियों में घोड़ों को जोड़कर शीघ्र देशान्तर को जाते हैं वैसे ही विद्वानों के सङ्ग से विद्या के पाराज्वार को प्राप्त होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में शरीर और यान आदि में समुक्त करने योग्य अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छन्दोसर्वा वर्ग और साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥



**अथास्य षोडशस्यैकवष्टितमस्य सूक्तस्य गीतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो वेत्ता ।**

**१, १४, १६ विराट् त्रिष्टुप्, २, ७, ९ निचुत् त्रिष्टुप् छन्दः ।**

**ध्रुवत स्वरः । ३, ४, ६, ८, १०, १२ पङ्क्तिः, ५,**

**१५ विराट् पङ्क्तिः, ११ भुरिक पङ्क्तिः, १३ निचुत्**

**पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥**

**अब इकतठवें सूक्त का आरम्भ है । उसके पहले मन्त्र में सत्ता आदि का**

**अध्ययन कंसा हो इस विषय का उपदेश किया है—**

**अस्मा इदु प्र यंसं तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।**

**ऋचीषमायाभिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १॥**

**पदार्थ**—हे विद्वान् लोगो ! जैसे मैं ( उ ) वितर्कपूर्वक ( प्रयः ) तृप्ति करने वाले अन्न के ( न ) सभान ( तवसे ) बलवान् ( तुराय ) कार्यमिद्धि के लिए शीघ्र करता ( ऋचीषमाय ) स्तुति करने को प्राप्त होने तथा ( अभिगवे ) शत्रुओं से असह्य वीरो को प्राप्त होनेहारे ( माहिनाय ) उत्तम-उत्तम गुणों से बड़े ( अस्मै ) इस ( इन्द्राय ) सभाध्यक्ष के लिए ( इत् ) ही ( ओहम् ) प्राप्त करनेवाले ( स्तोमम् ) स्तुति को ( राततमा ) प्रतिशय करके योग्य ( ब्रह्माणि ) संस्कार किये हुए अन्न वा धनो को ( प्र, हर्मि ) देना है वैसे तुम भी किया करो ॥१॥

**भाषार्थ**—मनुष्यों को चाहिए कि स्तुति के योग्य पुरुषों को राज्य का अधिकार देकर उनके लिए यथायोग्य कर द्वारा प्राप्त धनो को देकर उत्तम-उत्तम अन्नादिको से सदा संस्कार करे और राजपुरुषों को चाहिए कि प्रजा के पुरुषों का संस्कार करें ॥१॥

**फिर वह कंसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—**

**अस्मा इदु प्रयं च प्र यंसि भरोम्यांगूष बाधे सुवृत्ति ।**

**इन्द्राय इदा मनसा मनीषा प्रत्याय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् मनुष्य ! तुम ( अस्मै ) इस ( प्रत्याय ) प्राचीन, सबके मित्र ( पत्ये ) स्वामी ( इन्द्राय ) शत्रुओं को विदारण करनेवाले के लिए ( प्रयं च ) जैसे प्रीतिकारक अन्न वा धन वैसे ( प्रयंसि ) मुख देते हो जिस परमेश्वरयुक्त धार्मिक के लिए मैं सब सामग्री अर्थात् ( इदा ) इन्द्र ( मनीषा ) बुद्धि ( मनसा ) विज्ञानपूर्वक मन से ( सुवृत्ति ) उत्तमता से गमन करानेवाले यान का ( भरोमि ) धारण करता वा पुष्ट करता है जैसे ( आङ्गूषम् ) युद्ध में प्राप्त हुए शत्रु को ( बाधे ) ताड़ना देता जिस वीर के वास्ते सब प्रजा के मनुष्य ( धियो ) बुद्धि वा कर्म को ( मर्जयन्त ) शुद्ध करते हैं उस पुरुष के लिए ( इत् ) ही ( उ ) तर्क के साथ मैं भी बुद्धि तथा कर्मों को शुद्ध करूँ ॥२॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालकार है । मनुष्यों को उचित है कि पहले परीक्षा किये, पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक, सबके उपकार करनेवाले, प्राचीन पुरुष को सभा का अधिपति करें तथा इससे विद्वन् मनुष्य को स्वीकार नहीं करें, और सब मनुष्य उसके प्रिय आचरण करें ॥२॥

**फिर वह कंसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—**

**अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षी भरोम्यांगूषमास्येन ।**

**मंहिषुमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृत्तिभिः स्रि वावृधथै ॥ ३॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( अस्मै ) इस सभाध्यक्ष के लिए ( मतीनाम् ) मनुष्यों के ( वावृधथै ) अत्यन्त बढ़ाने को ( आश्वेन ) मुख से ( सुवृत्तिभिः ) जिन में अच्छे प्रकार अधर्म और अविद्या छोड़ तर्क ( अश्वोक्तिभिः ) श्रेष्ठ बचन

स्तुतियों से ( इत् ) भी ( उ, त्यम् ) उत्ती ( उपम् ) उपमा करने योग्य ( स्वर्णम् ) सुखी को प्राप्त कराने ( आङ्गुष्मम् ) स्तुति को प्राप्त किये हुए ( महिम्नम् ) प्रतिपाद्य करके विद्या से बड़ ( सूरिम् ) शास्त्रों की जाननेवाले विद्वान् को ( अग्रामि ) धारण करता है, जैसे तुम लोग भी किया करो ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विद्वानों द्वारा मनुष्यों के सुख के लिए सबसे उत्तम उपमाहित यत्न किया जाता है, वैसे इसके सत्कार के वास्ते सब मनुष्य भी प्रयत्न किया करें ॥३॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।

गिरिश्व गिर्वोहसे सुहृद्भीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( मेधिराय ) अच्छे प्रकार जानने ( गिरिश्व ) विद्यायुक्त वाणिज्यों को प्राप्त करानेवाले ( अस्मे ) इस ( इन्द्राय ) विद्या की बहिष् करानेवाले विद्वान् ( इत् ) ही के लिए ( उ ) तर्कपूर्वक ( रथम् ) यानसमूह के ( न ) समान ( तत्सिनाय ) यानसमूह के बन्धन के लिए ( तष्टेव ) तीक्ष्ण करनेवाले कारीगर के तुल्य ( विश्वमिन्वं ) सब विज्ञान को प्राप्त कराने ( सुहृत्सि ) जिससे सब दोषों को छोड़ते हैं उस ( स्तोमम् ) शास्त्रों के अभ्यासयुक्त स्तुति ( न ) और ( गिरः ) वेदवाणियों की ( सहिनोमि ) सम्यक् बढ़ाता है वैसे तुम भी प्रयत्न किया करो ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे रथ के बनाने वाला बड़ रथ की बनाने के लिए उत्तम बन्धनों सहित यन्त्रकलाओं को अच्छे प्रकार रखकर अपने प्रयोजनों को सिद्ध करता और सुखपूर्वक भा, जाकर भानभित होता है वैसे ही मनुष्य विद्वान् का आश्रय लेकर उसके सन्तन्ध से धर्म, धर्म, काम और मोक्ष को सिद्ध करके सदा भानन्द में रहें ॥४॥

अस्मा इदु सप्तमिष्व भवस्येन्द्रायार्क जुह्वाः समञ्जे ।

वीरं दानौकसं बन्द्यै पुरां गुरुश्रवसं दमार्णम् ॥५॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( भवस्य ) अपने करने की इच्छा ( जुह्वा ) विद्याओं के लेने-देने वाली क्रियाओं से ( अस्मे ) इस ( इन्द्राय ) परमेश्वर्य प्राप्त करनेवाले ( इत् ) सभाध्यक्ष का ही ( उ ) विशेष तर्क के साथ ( बन्द्यै ) स्तुति कराने के लिए ( सप्तमिष्व ) वेगवाले घोड़े के समान ( गुरुश्रवसम् ) जिसने सब शास्त्रों के श्रवणों का प्रहरण किया है ( पुराम् ) शत्रुओं के नगरो के ( दमार्णम् ) विदारण करने वा ( दानौकसम् ) वान वा स्थानयुक्त ( अर्कम् ) सत्कार के हेतु ( वीरम् ) विद्या शीर्यादि गुणयुक्त वीर ( इत् ) ही को ( समञ्जे ) अच्छे प्रकार कामना करता है वैसे तुम भी कामना किया करो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे मनुष्य रथ में घोड़े को जोड़ उसके ऊपर स्थित होकर जाने-भाने से कार्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे वर्तमान विद्वान् मनुष्य वीर पुरुषों के सङ्ग से सब कार्यों को सिद्ध करें ॥५॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वजं स्वपस्तमं स्वयं रणाय ।

वृत्रस्य चिद्दिद्येन मयं तुजशीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो ( त्वष्टा ) प्रकाश करने ( ईशान ) समर्थ ( कियेधाः ) कितना की धारण करनेवाला शत्रुओं को ( तुजम् ) मारता हुआ ( वृत्रस्य ) मेघ के ऊपर अपने किरणों को छोड़ता ( चिद् ) प्राप्त होते हुए सूर्य के समान ( स्वयम् ) सुख के हेतु ( स्वपस्तमम् ) प्रतिपाद्य करके उत्तम कर्मों के उत्पन्न करनेवाला ( वज्रम् ) किरणसमूह को ( तक्षत् ) छेदन करते हुए सूर्य के ( चित् ) समान ( अस्मे ) हम ( रणाय ) सङ्ग्राम के वास्ते जिस ( मयं ) जीवननिमित्त स्थान को ( तुजता ) काटते हुए ( येन ) जिस वज्र से शत्रुओं को जीतता है ( इदु ) उत्ती को समा आदि का अध्ययन करना चाहिये ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे सूर्य अपने प्रताप से मेघ को छिन्न-भिन्न कर भूमि में जल को गिराकर सब को सुखी करता है वैसे ही सभा आदि का अध्ययन विद्या, विनय वा शस्त्र-ग्रन्थों के सीखने-सिखाने से युद्धों में कुशल सेना को सिद्ध कर शत्रुओं को जीतकर सब प्राणियों को भानन्दित किया करे ॥६॥

अस्येदु मातुः सर्वनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वा ।

मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७॥

पदार्थ—जो ( अस्म ) इस ( मातुः ) शत्रु और अपने बल का परिमाण करनेवाले सभाध्यक्ष ( सर्वनेषु ) ऐश्वर्यों में ( महः ) बड़े ( पचतम् ) परिपक्व ( मातुः ) सुन्दर ( पितुम् ) सत्कार किये हुए अन्न को ( पपिवान् ) खाने-पीने तथा ( सहीयान् ) प्रतिपाद्य करके सहन करनेवाला वीर मनुष्य ( अस्मा ) अन्नों को ( अस्मा ) प्रक्षेपण करने ( मुषायत् ) अपने को बोर की इच्छा करते हुए के तुल्य ( विध्यः ) सब विद्याओं के अङ्गों में व्यापक ( अद्रिम् ) पर्वतलंकार ( वराहम् ) मेघ को ( तिरो ) नीचे ( विध्यत् ) गिराते हुए सूर्य के समान शत्रुओं को ( तक्षत् ) छेदन करके ( इदु ) वही मनुष्य सेताध्यक्ष होने के योग्य होता है ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य अन्न-जल के रसों को बोर के समान हरता वा रक्षा करता हुआ अपने किरणों से मेघ को इकट्ठा करके प्रकट करता हुआ छिन्न-भिन्न कर गिराकर विजय को प्राप्त होता है, वैसे ही सेना आदि अध्ययन के सेना आदि ऐश्वर्यों में स्थित हुए शूरवीर पुरुष शत्रुओं का पराजय करें ॥७॥

अस्मा इदु प्राथिवेवपत्नीरिन्द्रायाकर्महिरस्य ऊवुः ।

परि द्यावापृथिवी जंभ उर्वी नास्य ते महिमानं परि ॥८॥

पदार्थ—हे सभापति ! जैसे यह सूर्य ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और भूमि को ( जंभ ) धारण करता वा जिसके वश में ( उर्वी ) बहुधा रूपप्रकाश युक्त पृथिवी है ( अस्म ) जिस इस सभाध्यक्ष के ( अहिहस्य ) मेघों के हनन व्यवहार में ( चित् ) प्रकाशभूमि की ( महिमानम् ) महिमा के ( न परि स्त ) सब प्रकार सेवन को समर्थ नहीं हो सकते वैसे उस ( अस्मे ) इस ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाले सभाध्यक्ष के लिए ( इदु ) ही ( वेवपत्नीः ) विद्वानों से पालनीय पतिव्रता स्त्रियों के सङ्ग ( ज्वा ) वेदवाणी ( अर्कम् ) दिव्य गुण सम्पन्न धर्मनीय वीर पुरुष को ( पृथ्वीः ) सब प्रकार सत्पुत्रों के समान विस्तृत करती है वही राज्य करने के योग्य होता है ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य के प्रताप और महत्व के प्रागे पृथिवी आदि लोकों की गणना स्वल्प है, वैसे ही पूर्ण विद्यावाले पुरुष की महिमा के प्रागे भूषण की गणना तुच्छ है ॥८॥

अब सूर्य सभाध्यक्ष कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्येदेव प्र रिरिरे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।

स्वराब्जिन्द्रो दम आ विश्वगूर्धः स्वरिरमंत्रो नवक्षे रणाय ॥९॥

पदार्थ—जो ( विश्वगूर्धः ) सब भोज्य वस्तुओं को भक्षण करने ( स्वरिः ) उत्तम अनुवाला ( अमंत्रः ) ज्ञानवान् ज्ञान का हेतु ( स्वराद् ) अपने आप प्रकाश सहित ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त सूर्य वा सभाध्यक्ष ( इमे ) उत्तम घर वा सत्तार में ( रणाय ) सङ्ग्राम के लिए ( आचक्षते ) रोष वा अच्छे प्रकार बात करता है वा जिसकी ( विश्वः ) प्रकाश ( पृथिव्याः ) भूमि और ( अन्तरिक्षात् ) अन्तरिक्ष से ( इत् ) भी ( परि ) सब प्रकार ( महित्वम् ) पूज्य वा महागुणविरहित महिमा ( प्र रिरिरे ) विशेष है उस ( अस्म ) इस सूर्य वा सभाध्यक्ष का ( एव ) ही कार्यों में उपयोग वा सहायि में अधिकार देना चाहिए ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। मनुष्यों को, जैसे सूर्य पृथिव्यादिकों से गुण वा परिणाम के द्वारा अधिक है, वैसे ही उत्तमगुण युक्त सभा आदि के भविष्यति राजा को अधिकार देकर सब कार्यों की सिद्ध करनी चाहिए ॥९॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्येदेव शर्वसा शुषन्तं वि वृक्षद्वेष्टेण वृत्रमिन्द्रः ।

गा न त्राणा अवनीरमुच्चदमि अवीं दावने सचैताः ॥१०॥२८॥

पदार्थ—जो ( सचैताः ) तुल्य ज्ञानवान् ( इन्द्र ) सेनाधिपति ( अस्म ) इस सभाध्यक्ष ( एव ) ही के ( शर्वसा ) बल तथा ( वृक्षेण ) तेज से ( शुषन्तम् ) छेप से क्षीण हुए ( वृक्षम् ) प्रकाश के आवरण करनेवाले मेघ के समान आवरण करनेवाले शत्रु को ( विषुषत् ) छेदन करता है वह ( गाः ) पशुओं के पालने वाले बन्धन से छुड़ाकर वन को प्राप्त करते हुए के ( न ) समान ( अवीं ) पृथिवी को ( त्राणाः ) आवरण किये हुए जल के तुल्य ( दावने ) देनेवाले के लिए ( एव ) अन्न को ( इन् ) भी ( अम्यमुच्चत् ) सब प्रकार से छोड़ता है वह राज्य करने को समर्थ होता है ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालंकार है। जैसे बिजुली के सहाय से सूर्य वा सूर्य के सहाय से बिजुली बड़े विश्व को प्रकाशित और मेघ को छिन्न-भिन्न कर भूमि में गिरा देती है, जैसे ग्वाला गीधों को बन्धन से छोड़कर सुखी करता है, वैसे ही सभा सेना के अध्यक्ष मनुष्य न्याय की रक्षा और शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर और धामिकों को दुःखरूपी बन्धनों से छुड़ाकर, सुखी करें ॥१०॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वेष्टेण सीमयच्छत् ।

ईशानकुवाशुर्वे दशस्यन्तुर्वीतये गार्ध तुर्वणिः कः ॥११॥

पदार्थ—( अस्म ) इस सभाध्यक्ष के ( त्वेषसा ) विद्या, न्याय बल के साथ जो वर्तमान शूरवीर बिजुली के समान ( रन्त ) रमण करते हैं ( सिन्धवः ) समुद्र के समान ( वक्षेण ) शस्त्र से ( सीम् ) सब प्रकार शत्रु की सेनाओं को ( पर्यच्छत् ) निग्रह करता है वह ( वाशुर्वे ) दानशील मनुष्य के ( ईशानकुम् ) ऐश्वर्ययुक्त करने वाला ( तुर्वीतये ) शीघ्र करनेवालों के लिए ( वषास्यन् ) दशन के समान धावरण करता हुआ ( तुर्वणि ) शीघ्रकरने वालों को सेवन करनेवाला मनुष्य ( वाश्वम् ) शत्रुओं का विलोडन ( क ) करता है ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य सभाध्यक्ष वा सूर्य के सहाय से शत्रु वा मेघादिकों को जीतकर पृथिवी के राज्य का सेवन कर सुखी और प्रतापी होता है, वह सब शत्रुओं का विलोडन करने योग्य है ॥११॥

अस्मा इदु प्र भंरा तृतुजानो वृत्राय वज्रपीशानः कियेधाः ।

गोर्न पर्व वि रदा तिरिष्येव्यवर्णीस्यपां चरधै ॥१२॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! ( कियेधाः ) कितने गुणों को धारण करनेवाला ( ईशान ) ऐश्वर्ययुक्त ( तृतुजानः ) शीघ्र करनेहारे आप जैसे सूर्य ( अपाम् ) जलों के सम्बन्ध से ( अवर्णीसि ) जलों के प्रवाहों को ( चरधै ) बहाने के धर्म ( वृत्राय ) मेघ के वास्ते वर्तता है वैसे ( अस्मे ) इस शत्रु के वास्ते शस्त्र को

( प्र ) अच्छे प्रकार ( भर ) धारण कर ( तिरस्का ) टेढ़ी गतिवाले वस्त्र से ( पोशे ) वाशियों के विभाग के समान ( पर्व ) उसके अङ्ग-अङ्ग को काटने को ( इच्छन् ) इच्छा करता हुआ ( इदु ) ऐसे ही ( विरभ ) अनेक प्रकार हुनन कीजिए ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे सेनापते ! आप, जैसे प्राण वायु से तालु आदि स्थानों में जीभ का ताड़न कर भिन्न-भिन्न प्रकार वा पदों के विभाग प्रसिद्ध होते हैं वैसे ही सभाध्यक्ष शत्रुबल को छिन्न-भिन्न और अङ्गों को विभागयुक्त करके इसी प्रकार शत्रुओं को जीता करे ॥१२॥

अब वह सभाध्यक्ष क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्येदु प्र ब्रूहि पृथ्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उवधैः ।

युधे यदिष्णान आयुधान्युघायमाशो निरिष्याति शत्रून् ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! ( यत् ) जो सभा आदि का पति जैसे ( आयुधमात्र ) मरे हुए के समान आचरण करनेवाले ( आयुधानि ) तोप, बन्दूक, तलवार आदि शस्त्र-अस्त्रों को ( इष्णान् ) नित्य-नित्य सम्हालते और शोधते हुए ( नव्य ) नवीन शस्त्रास्त्र विद्या को पढ़े हुए आप ( युधे ) सधाम में ( शत्रून् ) दुष्ट शत्रुओं को ( निरिष्याति ) मारते हो उस ( तुरस्य ) शीघ्रतायुक्त ( अस्य ) सभापति आदि के ( इत् ) ही ( उवधैः ) कहने योग्य वचनों से ( पृथ्याणि ) प्राचीन सत्पुरुषों ने किये ( कर्माणि ) करने योग्य और करने वाले को अत्यन्त इष्ट कर्मों को करता है वैसे ( प्र ब्रूहि ) अच्छे प्रकार कहो ॥१३॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सभाध्यक्ष आदि के विद्या, विनय, न्याय और शत्रुओं को जीतना आदि कर्मों की प्रशंसा करके और उत्साह देकर इनका सदा सरकार करें तथा इन सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों द्वारा, शस्त्रास्त्र चलाते की शिक्षा और शिल्पविद्या की चतुराई को प्राप्त हुए सेना में रहनेवाले और पुरुषों को जीतकर प्रजा की निरन्तर रक्षा करें ॥१३॥

फिर वह कंसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अस्येदु भिया गिर्यश्च हृडा धावा च भूमा जुषस्तुजेते ।

उपो वेनस्य जोगुवान ओणि सद्यो भुवदीर्घाय नोधाः ॥१४॥

पदार्थ—जो ( जोगुवान ) अव्यक्त शब्द करने ( नोधा ) सेना का नायक सभा आदि का अध्यक्ष ( सद्य ) शीघ्र ( दीर्घाय ) पराक्रम के सिद्ध करने के लिए ( जुषत् ) हो जैसे सूर्य में ( हृडा ) पुष्ट ( गिर्य ) मेघ के समान ( अस्य ) इस ( वेनस्य ) मेघावी के ( इत् उ ) ही ( भिया ) भय से ( च ) शत्रु जन कम्पायमान होते हैं जैसे ( धावा ) प्रकाश ( च ) और भूमि ( जुषते ) कौपते है वैसे ( अनुषः ) मनुष्य लोग भय को प्राप्त होते हैं वैसे हम लोग उस सभाध्यक्ष के ( उपो ) निकट भय को प्राप्त न ( भूम ) हो और वह सभाध्यक्ष भी ( ओणिम् ) दुल को दूरकर सुख को प्राप्त होता है ॥१४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । यह सब को निश्चय समझना चाहिए कि विद्या आदि उत्तम गुण तथा ईश्वर से जगत् की उत्पत्ति के बिना सभाध्यक्ष आदि प्रजा का पालन करने में, जैसे सूर्य सब लोकों को प्रकाशित तथा धारण करने में समर्थ होता है, समर्थ नहीं हो सकते । इसलिए विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों का ग्रहण और परमेश्वर की स्तुति करना उचित है ॥१४॥

फिर उक्त सभाध्यक्ष और विद्वत् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

## अथ पञ्चमाध्यायाऽऽरम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितुर्गिरितानि परा सुव । यद्भद्रं तस्मात् आ सुव ॥१॥

अथ त्रयोदशसंख्य द्विविधतमस्य सूक्तस्य गौतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ४, ६ विराडाधी त्रिष्टुप्, २, ५, ८, निषादाधी त्रिष्टुप्, १०-१३

आधी त्रिष्टुप्छन्दः । १-२, ४-६, ८-१३ ध्रुवत स्वरः । ३, ७ ऋ

भुरिगाधी पङ्क्तिछन्दः । पञ्चम स्वर ॥

अब पाँचवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इसके प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में ईश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का वर्णन किया है—

प्र मन्महे शवसानाय शुषमाङ्गूषं गिर्विशसे अङ्गिरस्वत् ।

सुषुक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायाचामार्कं नरे विभुताय ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे हम ( सुषुक्तिभिः ) दोषों को दूर करने-हारी क्रियाओं से ( शवसानाय ) ज्ञान-बलयुक्त ( गिर्विशसे ) वाशियों से स्तुति के योग्य ( ऋग्मियाय ) ऋचाओं से स्तुत्य ( नरे ) न्याय करने ( विभुताय ) अनेक गुणों के साथ वर्तमान होने के कारण श्रवण करने योग्य ( स्तुवते ) शत्रु की प्रशंसा वाले सभाध्यक्ष के लिए ( अङ्गिरस्वत् ) प्राणों के बल के समान ( शुषम् ) बल और ( अर्कम् ) पूजा करने योग्य ( आङ्गूषम् ) विज्ञान और स्तुति समूह को ( अर्चाम् ) पूजा करें और ( प्रमन्महे ) मार्गें और उससे प्रार्थना करें वैसे तुम भी किया करो ॥१॥

अस्मा इदु त्वदनु दाय्येषामेको वदने भूरेरीशानः ।

प्रेतशं सूर्यं पस्पृधानं सौवर्ण्ये सुधिवामदिन्द्रः ॥१५॥

पदार्थ—जैसे विद्वानों ने ( एवाम् ) इन मनुष्यादि प्राणियों को सुख ( दायि ) दिया हो वैसे जो ( एकः ) उत्तम सहाय रहित ( भूरेः ) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य का ( ईशानः ) स्वामी ( इन्द्रः ) सभा आदि का पति ( सूर्यः ) सूर्यमण्डल में है वैसे ( सौवर्ण्ये ) उत्तम-उत्तम धोड़ों से युक्त सेना में ( वत् ) जिस ( पस्पृधानम् ) परस्पर स्पर्धा करते हुए ( सुधिवम् ) उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले ( एतन्मम् ) बोधे की ( अनुबध्ने ) यथायोग्य याचना करता है ( स्यत् ) उस को ( अस्मै ) इस ( इदु ) सभाध्यक्ष ही के लिए ( प्रावत् ) अच्छे प्रकार रक्षा करे वह सभा के योग्य होता है ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को उचित है कि जो बहुत सुख देनेवाला तथा बोधों की विद्या को जाननेवाला और उपमा रहित पुरुषार्थी विद्वान् मनुष्य है उसीको प्रजा की रक्षा में नियुक्त करें, और विजुली की विद्या का ग्रहण भी अवश्य करें ॥१५॥

फिर वह सभाध्यक्ष कौसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एवा तं हारियोजना सुवृक्षीन्द्र अक्षाणि गोतमासो अक्रन् ।

एषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥२६॥

पदार्थ—हे ( हारियोजना ) यानी में बोधे का अग्नि आदि पदार्थ युक्त होने वालों को पढ़ने वा जाननेवाले ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले ( धियावसु ) बुद्धि और कर्म के निवास करनेवाले आप जो ( एषु ) इन स्तुति तथा विद्या पढ़नेवाले मनुष्यों में ( विश्वपेशसम् ) सब विद्यारूप गुणयुक्त ( विश्वम् ) धारण वाली बुद्धि को ( प्रातः ) प्रतिदिन ( मक्षु ) शीघ्र ( धिया ) अच्छे प्रकार धारण करते हैं सो जिनको ये सब विद्या ( जगम्यात् ) बार-बार प्राप्त होवें ( गोतमासः ) अत्यन्त सब विद्याओं की स्तुति करनेवाले ( ते ) आपके लिए ( एव ) ही ( सुवृक्षि ) अच्छे प्रकार दोषों को भ्रमण करनेवाले बुद्धि किये हुए ( अक्षाणि ) बड़े-बड़े सुख करनेवाले अग्नि को देने के लिए ( अक्रन् ) सम्पादन करने हैं उनकी अच्छे प्रकार सेवा कीजिए ॥१६॥

भाषार्थ—परोपकारी विद्वानों को उचित है कि नित्य प्रयत्नपूर्वक अच्छी शिक्षा और विद्या के दान से सब मनुष्यों को अच्छी शिक्षा से युक्त विद्वान् करें तथा मनुष्यों को चाहिए कि पढ़ानेवाले विद्वानों को अपने निष्कपट मन, वाणी और कर्मों से प्रसन्न करने की ठीक-ठीक पकाये हुए अन्न आदि पदार्थों से निश्च सेवा करें । क्योंकि पढ़ने और पढ़ाने से भिन्न दूसरा कोई उत्तम धर्म नहीं है । इसलिए सब मनुष्यों को परस्पर प्रीतिपूर्वक विद्या की बुद्धि करनी चाहिए ॥१६॥

इस सूक्त में सभाध्यक्ष आदि का वर्णन और अग्निविद्या का प्रचार करना आदि कहा है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह उन्नीसवाँ वर्ण बोधा अध्याय इकसठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

इति श्रीपुतपरिब्राजकाचार्य्येण श्रीपुतमहाविद्वया विरजाम्बसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण वयानम्बसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्य्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये अनुबोद्ध्याय समाप्तिमगात् ।

५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना से सुख को प्राप्त होते हैं वैसे सभाध्यक्ष के आश्रय से व्यवहार और परमार्थ सुखों को निम्न करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को इस विषय में क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।

येना नः पूर्वं पितरः पदद्वा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( वः ) तुम वा ( नः ) हम लोगों को ( अङ्गिरस ) प्राणादि विद्या और ( पदद्वा ) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जाननेवाले ( महे ) बड़े ( शवसानाय ) ज्ञानबलयुक्त सभाध्यक्ष के लिए ( महि ) बहुत अन्न का ( अर्चन्तः ) स्तुकार करते हुए ( पूर्वं ) पहले सब विद्याओं को पढ़ते हुए ( पितरः ) विद्यादि सद्गुणों से रक्षा करनेवाले विद्वान् लोग ( येन ) जिस विज्ञान वा कर्म से ( गाः ) विद्या, प्रकाशयुक्त वाशियों को ( अविन्दन् ) प्राप्त हों उनका तुम लोग ( प्रमरध्वम् ) अरुणपोषण सदा किया करो ॥२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे विद्वान् लोग वेद, सृष्टिकर्म और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से कहे हुए धर्मयुक्त मार्ग से चलते हुए सब प्रकार परमेश्वर का पूजन करके सब के हित की धारण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो ॥२॥



किर मनुष्यों को पूर्वोक्त कृत्य किसलिए करना चाहिए यह विषय  
अगले मन्त्र में कहा है—

**इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टी विदत्तरमा तनयाय दासिम् ।**

**बृहस्पतिर्भिनदद्भि विदवृगाः समुत्तियाभिर्वावशन्त नरः ॥३॥**

पदार्थ—हे ( नर ) सुखों को प्राप्त करनेवाले मनुष्यों ! जैसे ( सरमा ) विद्या, धर्मादि बोधों को उत्पन्न करनेवाली माता ( तनयाय ) पुत्र के लिए ( दासिम् ) भक्त्युत्पन्न करनेवाली पदायों को ( विदवृ ) प्राप्त करती है । जैसे ( बृहस्पतिः ) बड़े-बड़े पदार्थों को रक्षा करनेवाला सभाध्यक्ष जैसे सूर्य ( उज्जि-  
वर्माभिः ) किरणों से ( अङ्गिरसः ) मेघ को ( विदवृ ) विदारण और ( वा ) सुशिक्षित वाणिज्यों की ( विदवृ ) प्राप्त करता है वैसे तुम भी ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर्य वाले परमेश्वर, सभाध्यक्ष या सूर्य ( वा ) और ( अङ्गिरसाय ) विद्या, धर्म और राज्य वाले विद्वानों की ( इष्टी ) इष्ट की सिद्ध करनेवाली नीति में विद्यादि उत्तम गुणों का ( संवावशन्त ) अच्छे प्रकार बार-बार प्रकाश करो जिससे सब संसार में पुष्टगुण भव्य हों ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को उचित है कि माता के समान प्रजा में वर्त, सूर्य के समान विद्यादि उत्तम गुणों का प्रकाश कर ईश्वर की कही वा विद्वानों से अनुष्ठान की हुई नीति में स्थित हो और सब के उपकार को करते हुए, विद्यादि सद्गुण के ध्यान में सदा मग्न रहें ॥३॥

मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**स सुष्टुमा स स्तुमा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वयोनवर्गैः ।**

**सरयुभिः फलिगमिन्द्र शक्र बलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥४॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त ( शक्र ) शक्ति को प्राप्त करनेवाले सभाध्यक्ष ! ( स ) वह आप ( नवर्गैः ) नवों से प्राप्त हुई गति वा ( दशग्वैः ) दश दिशाओं से जाने ( सरयुभिः ) सब शास्त्रों में विज्ञान करनेवाली गतियों से युक्त ( विप्रैः ) बुद्धिमान् विद्वानों के साथ जैसे सूर्य ( सुष्टुमा ) उत्तम इन्द्र, गुण और क्रियाओं के स्थिर करने वा ( स्तुमा ) धारण करनेवाले ( रवेण ) शस्त्रों के शब्द से जैसे सूर्य ( सप्त ) सात संख्या वाले के मध्य में वर्तमान ( स्वरेण ) उदात्तादि वा षड्जादि स्वर से ( अङ्गिरः ) बलयुक्त ( फलिगम् ) मेघ का हनन करता है वैसे शक्रों को ( शक्रः ) विदारण करते हो ( स ) सो आप हम लोगों से ( स्वयं ) स्तुति करने योग्य हो ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे बिजुली अपने उत्तम-उत्तम गुणों से वर्तमान हुई जीवन के हेतु मेघ की उत्पत्ति आदि कार्यों को सिद्ध करती है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि अत्यन्त उत्तम-उत्तम विद्या, बल से युक्त जनो के साथ वर्तमान रहके विद्यारूपी न्याय के प्रकाश से अन्याय वा दुष्टों का निवारण कर चक्रवर्ति राज्य का पालन करें ॥४॥

किर यह सभाध्यक्ष कैसे हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वैरुषसा सूर्येण गोभिरन्ध्रः ।**

**वि भूयसां अप्रथय इन्द्र सानुं दिवो रज उपरमस्तभायः ॥५॥१॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शक्रों के ( दस्म ) नाश करनेवाले सभाध्यक्ष ! ( गृणान ) उपदेश करते हुए आप जैसे बिजुली ( अङ्गिरोभिः ) प्राण ( उज्जिवा ) प्रातःकाल के ( सूर्येण ) सूर्य के प्रकाश तथा ( गोभिः ) किरणों से ( अन्ध्रः ) अन्ध को प्रकट करती है वैसे धर्मराज्य और सेना की ( विजः ) प्रकट करो वैसे बिजुली की ( अप्रथय ) विविध प्रकार से विस्तृत कीजिए जैसे सूर्य ( भूयसा ) पृथिवी में श्वेद ( विजः ) प्रकाश के ( सानुं ) ऊपरले भाग ( रज ) सब लोकों और ( उपरम् ) मेघ को ( अस्तभायः ) समुक्त राज्य की सेना को विस्तार युक्त कीजिए । शक्रों का बन्धन करते हुए आप हम सब लोगों से स्तुति करने के योग्य हो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को प्रातःकाल सूर्य के किरण और प्राणों के समान उक्त गुणों का प्रकाश करके दुष्टों का निवारण करना चाहिए । जैसे सूर्य प्रकाश को फैला और मेघ को उत्पन्न कर वर्षाता है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि मनुष्यों को प्रजा में उत्तम विद्या उत्पन्न करके सुखों की वर्षा करनी चाहिए ॥५॥

किर भी इस सभाध्यक्ष के कैसे कर्तव्य हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चार्हतममस्ति दंसः ।**

**उपह्वरे यदुपरा अर्पिन्वन्मध्वर्षीसो नद्यः चतस्रः ॥६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम लोगों को उचित है कि ( दस्म ) इस ( दस्मस्य ) शक्र भक्त्युत्पन्न करनेवाले सभाध्यक्ष या बिजुली के ( उपह्वरे ) कुटिलतायुक्त व्यवहार में ( यत् ) जो ( प्रयक्षतमम् ) अत्यन्त पूजने योग्य ( चार्हतम् ) प्रतिगुण्य ( दंसः ) विद्या वा सुखों के जानने का हेतु ( कर्म ) कर्म ( अस्ति ) है ( तदु ) उसको जानकर धारण करना वा जिनके इस प्रकार के कर्म से ( मध्वर्षीसः ) मधुर जलवाती ( नद्यः ) नदी और ( चतस्रः ) चार ( उपराः ) दिशा ( अर्पिन्वन् ) सेवन वा सेवन करती हैं उन दोनों की विद्या से अच्छे प्रकार सेवन करना चाहिए ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि अति उत्तम-उत्तम कर्मों का सेवन, यज्ञ का अनुष्ठान और राज्य का पालन करके सब दिशाओं में कीर्ति की वर्षा करें ॥६॥

किर सभाध्यक्ष कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**द्विता वि वेत्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरैकैः ।**

**मगो न मेने परमे व्योमधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥७॥**

पदार्थ—जैसे विद्वानों से जो ( सनीळे ) समीप ( स्तवमानेभिः ) स्तुतियुक्त ( अर्कः ) स्तोत्रों से ( सनजा ) सनातन कारण से उत्पन्न हुई ( द्विता ) दो अर्थात् प्रजा और सभाध्यक्ष को ( विवक्षः ) विशेष करके स्वीकार किया जाता है वैसे मनुष्य ( अयास्यः ) अनायास से सिद्ध करनेवाला ( सुदंसाः ) उत्तम कर्मयुक्त में जैसे ( परमे, व्योमन् ) उत्तम अन्तरिक्ष में ( रोदसी ) प्रकाश और भूमि को ( मगो न ) सूर्य के समान विद्वान् ( मेने ) मानता और ( अवारयत् ) धारण करता है वैसे इसको धारण करता और मानता है ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे सभाध्यक्ष का अध्यक्ष ऐश्वर्य को और सूर्य प्रकाश तथा पृथिवी को धारण करता है वैसे ही न्याय और विद्या का धारण करें ॥७॥

अब रात्रि और दिन के बुध्दन्त से स्त्री और पुरुष किस प्रकार वर्तव्य करें

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**सनादिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवां बुवती स्वेभिरैवैः ।**

**कृष्णेभिरैकोषा रुक्मिर्वपुभिरा चरतो अन्यान्या ॥८॥**

पदार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम जैसे ( सनात् ) सनातन कारण से ( विवन् ) सूर्य प्रकाश और ( भूमा ) भूमि को प्राप्त होकर ( पुनर्भुवां ) बार-बार, पम्प्राय से उत्पन्न होके ( बुवती ) पुनरावस्था को प्राप्त हुए स्त्री-पुरुष के समान ( विरूपे ) विविध रूप से युक्त ( अक्षा ) रात्रि ( उज्जिवा ) दिन ( स्वेभिः ) अणु आदि अवयव ( कृष्णभिः ) प्राप्ति के हेतु कृपादि गुणों के साथ ( वपुभिः ) अपनी आकृति आदि शरीर वा ( कृष्णेभिः ) परस्पर आकर्षणों को ( एवै ) प्राप्त करनेवाले गुणों के साथ ( अन्यान्या ) भिन्न-भिन्न परस्पर मिले हुए ( पम्प्राचरतः ) जाते-भाते हैं वैसे स्वयंवर अर्थात् परस्पर की प्रसन्नता से विवाह करके एक-दूसरे के साथ प्रीतियुक्त होके सदा आनन्द में वर्त ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे चक्र के समान सर्वदा परिवर्तनशील रात्रि, दिन परस्पर समुक्त रहते हैं, वैसे विवाहित स्त्री और पुरुष अत्यन्त प्रेम के साथ वर्तव्य करें ॥८॥

किर वे कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**सनेमि सूर्यं स्वपस्यमानः सुनुदौधार श्वसा सुदंसाः ।**

**आमासु चिदधिपे पक्रमन्तः पर्यः कृष्णासु रुक्मिद्रोहिणीषु ॥९॥**

पदार्थ—जो ( स्वपस्यमानः ) उत्तम कर्मों को करते हुए के समान ( सुदंसाः ) उत्तम कर्मयुक्त ( श्वसात् ) शुभ गुणों की प्राप्ति करता हुआ सूर्य जैसे ( सूनः ) सत्पुत्र अपने माता-पिता का पोषण करते हुए के समान रात्रि दिन ( सनेमि ) प्राचीन ( सख्यम् ) मित्रपन के कालावधियों को ( आमासु ) धारण करता और ( रोहिणीषु ) उत्पन्नशील ( कृष्णासु ) सब प्रकार से पकी हुई ( विजः ) और ( आमासु ) कच्ची पोषणियों के ( अन्तः ) मध्य में ( पयः ) रस को धारण करता है वैसे ( श्वसा ) बल के साथ गृहाश्रम की ( रुक्मि ) धारण कर ॥९॥

भाषार्थ—विद्वानों को जैसे ये दिन-रात कच्चे-पक्के रसों के उत्पन्न करने और उत्पन्न हुए पदार्थों की वृद्धि वा नाश करनेवाले सबों के समान वर्तमान हैं वैसे सब मनुष्यों के साथ वर्तना योग्य है ॥९॥

**सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।**

**पुरू सहसा जनयो न पत्नीर्दिवस्यन्ति स्वसारो अहयाण्यम् ॥१०॥२॥**

पदार्थ—जैसे ( अवनीः ) हिसारहित ( अवनीः ) भूमि सब की रक्षा ( पुनर्भुवां ) बहुत हजार ( जनयः ) उत्पन्न करनेवाले पति ( पत्नीः न ) जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हैं वैसे ( सनीळाः ) समीप में वर्तमान ( जनताः ) नाशरहित विद्वान् लोग ( सहोभिः ) विद्या, योग, धर्म बलों से ( सनात् ) सनातन ( व्रता ) सत्य धर्म के धारणों की ( रक्षन्ते ) रक्षा करते हैं और जैसे ( स्वसारः ) बहिन ( अहयाण्यम् ) लज्जा को अप्राप्त अपने भाई की ( पुनर्भुवां ) सेवा करती हैं वैसे विद्या और धर्म ही को सेवते हैं वे मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे पति अपनी स्त्रियों, बहिन अपने भाइयों तथा विद्यार्थी आचार्यों की सेवा से सुख और विद्याओं को प्राप्त होते हैं वैसे धर्मराजा, विद्वान् पुरुष और स्त्रियों घर में बसते हुए भी मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

किर भी स्त्रिय और रात्रि कैसे तथा इनके जाननेवाले विद्वान् लोग कैसे हैं

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**सनायुवो नवसा नव्यो अर्कैर्वैश्वर्यो मतयो दस्म ददुः ।**

**वर्ति न पत्नीरवातीरुक्षन्ती स्पृशन्ति त्वा श्वसावन्मनीषाः ॥११॥**

पदार्थ—हे ( श्वसावन् ) बलयुक्त ( दस्म ) अधिवाचकाल विनाशक सभापते ! सूर्य जैसे ( सनायुवाः ) सनातन कर्म के करनेवालों के समान धारण करते ( नवसा )

धन वा नमस्कार तथा ( अर्थः ) मन्त्र अर्थात् विचारों के साथ वर्तमान ( बलवत् ) अपने लिए विद्या धनो और ( मनीषा ) विद्वानों की इच्छा करने ( मत्तय ) सबको जाननेवाले विद्वान् लोग ( न ) जैसे ( नव्यः ) नवीन ( उद्यम्यः ) काम की वेष्टा मे युक्त ( पत्नी ) स्त्री ( उद्यम्यम् ) काम की इच्छा करनेवाले ( पतिम् ) पति का ( स्पर्शम् ) आलिङ्गन करती हैं और जैसे ( बहु ) कुटिल गति को प्राप्त होने वालों को जानते हैं वैसे ( त्वा ) तुमको प्रजा सेवें ॥११॥

भावार्थ— इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है। मनुष्यों को समझना चाहिए कि जैसे स्त्री-पुरुषों के साथ वर्तमान होने से सन्तानों की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रात-दिन के एक साथ वर्तमान होने से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं और जैसे सूर्य का प्रकाश और पृथिवी की छाया के बिना रात और दिन सम्भव नहीं, वैसे ही स्त्री-पुरुष के बिना मैथुनी सृष्टि नहीं हो सकती ॥११॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य और सभापति आदि के गुणों का उपवेश किया है—

सनादेव तव रायो गमस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति द्रम ।

धुमाँ अमि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥१२॥

पदार्थ— हे ( वस् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ( शचीव ) उत्तम बुद्धि वा वाली से युक्त ( इन्द्र ) उत्तम धनवाले सभाध्यक्ष ! जो आप ( धुमान् ) विद्यादि श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश से युक्त ( क्रतुमान् ) बुद्धि से विचारकर कर्म करने वाले ( धीरः ) ध्यानी ( अमि ) हैं उस ( तव ) आपके ( गमस्तौ ) राजनीति के प्रकाश में ( सनात् ) सनातन से ( राय ) धन ( नंब ) नहीं ( क्षीयन्ते ) क्षीण तथा ( तव ) आपके प्रबन्ध से ( न ) नहीं ( उपवस्यन्ति ) नष्ट होते हैं सो आप अपनी ( शचीभिः ) बुद्धि, वाणी और कर्म से ( न ) हम लोगों को ( शिक्षा ) उपदेश दीजिए ॥१२॥

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि जो सनातन वेद के ज्ञान से शिक्षा को और सभापति आदि के अधिकांश को प्राप्त हाके प्रजा का पालन करे उसी मनुष्य को धर्मात्मा जाने ॥१२॥

फिर सभाध्यक्ष के गुणों का उपवेश किया है—

सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतश्चद्रव्यं हरियोजनाय ।

सुनीथाय नः श्वसान नोधाः प्रातर्मधू धियावसुर्जगम्यान् ॥१३॥३॥

पदार्थ— हे ( श्वसान ) बलयुक्त ( इन्द्र ) उत्तम धनवाले सभाध्यक्ष ( धियावसु ) बुद्धि और कर्म के साथ बसनेवाले ( गोतम ) अत्यन्त स्तुति के योग्य तथा ( नोधाः ) स्तुति करनेवाले आप ( हरियोजनाय ) मनुष्यों के समाधान के लिए ( नव्यम् ) नवीन ( चद्रव्यं ) बड़े धन को ( अतस्तत् ) क्षीण करने हो ( न ) हम लोगों को ( सुनीथाय ) सुखों की प्राप्ति के लिए ( प्रातः ) प्रतिदिन ( मधू ) शीघ्र ( सनायते ) सनातन के समान आचरण करते हो तथा ( न ) हम लोगों के सुखों के लिए ( जगम्यात् ) प्राप्त हो ॥१३॥

भावार्थ— सभापति आदि को चाहिए कि मनुष्यों के हित के लिए प्रतिदिन नवीन-नवीन धन और धन की उत्पन्न करें। जैसे प्राणवायु मनुष्यों को सुख देता है वैसे ही सभाध्यक्ष सब को सुखी कर ॥१३॥

इस सूक्त में ईश्वर, सभाध्यक्ष, दिन, रात, विद्वान्, सूर्य और वायु के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्कति जाननी चाहिए ॥

यह वासठवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ नवमस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य गोतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ७, ९  
भुरिगावी पङ्क्तिः छन्दः, ३ विराट् पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चम स्वर । २, ४  
विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वर । ५ भुरिगावी जगती  
छन्दः । निषाद स्वर । ६ स्वराङ्गावी बृहती  
छन्दः । मध्यम स्वर ॥

अब त्रैसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपवेश किया है—

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मेर्धावां जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।

यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदध्वा भिया दृक्कासः किरणा नैजन् ॥१॥

पदार्थ— हे ( इन्द्र ) उत्तम सम्पदा के देनेवाले परमात्मन ! जो ( त्वम् ) आप ( महान् ) गुणों से धन ( जज्ञानः ) प्रसिद्ध ( शुष्मे ) बलादि के ( अमे ) प्रकाश में ( ह ) निश्चय करके ( धावापृथिवी ) प्रकाश और पृथिवी को ( धा ) धारण करते हो ( ते ) आपके ( अध्वा ) उत्पत्ति रहित सामर्थ्य के ( भिया ) भय से ( ह ) ही ( यत् ) जो ( विश्वा ) सब ( गिरयः ) पर्वत वा मेघ ( दृक्कासः ) दृढ़ हुए ( चित् ) और ( किरणा ) कान्ति ( नैजन् ) कभी कल्प को नहीं प्राप्त होते ॥ १ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जो परमेश्वर अपने सामर्थ्य और बल आदि से सब जगत् को रच के दृक्ता से धारण

करता है उसी की सर्वदा उपासना करें। सूर्यलोक ने अपने आकाश आदि गुणों से पृथिवी आदि जिन लोकों को धारण किया है उन को भी परमेश्वर का बनाया और धारण किया जायें ॥ १ ॥

अब अगले मन्त्र में सभापति आदि के गुणों का उपवेश किया है—

आ यद्धरीन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धौ ।

येनाविहर्ष्यतक्रता अमित्रान् पुर इष्णासिं पुरुहूत पूर्वीः ॥२॥

पदार्थ— हे ( अविहर्ष्यतक्रतो ) दुष्ट बुद्धि और पाप कर्मों से रहित ( पुरुहूत ) बहुत विद्वानों से मत्कार को प्राप्त करानेवाले सभाध्यक्ष ! आप ( यत् ) जिस कारण ( विव्रता ) नाना प्रकार के नियमों के उत्पन्न करनेवाले ( हरी ) सेना और ग्राह्य के प्रकाश को ( आवे ) अन्धे प्रकार जानते हो ( वेन ) जिस वज्र से ( अमित्रान् ) शत्रुओं को मारते तथा जिससे उनके ( पूर्वीः ) बहुत ( पुर ) नगरों को ( इष्णासिं ) जीतने के लिए इच्छा करते और शत्रुओं के पराजय और अपने विजय के लिए प्रतिष्ठा जाते हो इससे ( जरिता ) सब विद्याओं की स्तुति करने वाला मनुष्य ( ते ) आपके ( बाह्वो ) भुजाओं के बल के आश्रय में ( वज्रम् ) वज्र को ( आधात् ) धारण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— सभापति आदि को उचित है कि इस प्रकार के उत्तम स्वभाव, गुण और कर्मों का स्वीकार करें, जिससे सब मनुष्य इस कर्म को देख तथा शिष्ट होकर निष्कण्टक राज्य के सुख को सदा भोगें ॥ २ ॥

फिर वह सभाध्यक्ष कंसा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृमुक्षा नर्यस्त्वं पाद ।

त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आपौ यूने कुन्साय धुमते मचाहन् ॥३॥

पदार्थ— हे ( इन्द्र ) उत्तम सम्पदा के देनेवाले सभाध्यक्ष ! ( त्वम् ) आप जिस कारण ( सत्य ) जीव स्वरूप से बनादि है जिस कारण ( त्वम् ) आप ( वृक्षम् ) दृढ़ हो तथा जिस कारण ( त्वम् ) आप ( अमुक्षा ) गुणों से बड़े ( नर्यः ) मनुष्यों के बीच बतुर और ( पाद ) सहनशील हो इससे ( वृजने ) जिससे शत्रुओं को प्राप्त होते हैं ( पृक्ष ) समुक्त इकट्ठे होते हैं जिस में उस ( आपौ ) सग्राम में ( सचा ) शिष्टों के सम्बन्ध से ( कुन्साय ) शस्त्रों का धारण किय ( धुमते ) उत्तम प्रकाशयुक्त ( यूने ) अगीर और आत्मा के बल को प्राप्त हुए मनुष्य के लिए ( शुष्णम् ) पूर्ण बल को देते हो। जिस कारण आप शत्रुओं को ( मचाहन् ) मारते तथा ( एतान् ) इन धर्मात्मा श्रेष्ठ पुरुषों का पालन करते हो इससे पूजने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ— सभा और सभापति के बिना शत्रुओं का पराजय और राज्य का पालन किसी से नहीं हो सकता। इसलिए श्रेष्ठ गुण वालों की सभा और सभापति से इन सब काव्यों को सिद्ध कराना मनुष्यों का मुख्य काम है ॥ ३ ॥

त्वं ह स्यदिन्द्र चोदीः सर्वा वृजं यद्विजिन्वृषकर्मवृक्षाः ।

यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूर्योनावकृतो वृथापाद् ॥४॥

पदार्थ— हे ( विजिन् ) उत्तम शस्त्रों के धारण करने तथा ( इन्द्र ) उत्तम गुणों के जाननेवाले सभाध्यक्ष ! जिस कारण ( त्वम् ) आप ( ह ) निश्चय करके ( स्यत् ) उस ( वृजम् ) शत्रु को ( पराचैः ) दूर ( चोदीः ) कर देते हो इसी कारण श्रेष्ठ पुरुषों के धारण और पालन करने को समर्थ हो। हे ( वृषकर्मन् ) श्रेष्ठ मनुष्यों के समान उत्तम कर्मों के करनेवाले सभाध्यक्ष ! ( यत् ) जिस कारण आप ( सर्वा ) सब के मित्र हो इसी में मित्रों की रक्षा करते हो। हे ( शूर ) निर्भय सेनाध्यक्ष ! ( यत् ) जो आप ( ह ) निश्चय करके ( वस्यन् ) दूसरे के पदार्थों को छीन लेने वाले दुष्टों को ( वृक्षम् ) दूर से ( वि ) विशेष करके छेदन करते हो इससे प्रजा की रक्षा करने के योग्य हो। हे ( वृषमणः ) शूरवीरो में विचारशील सभाध्यक्ष ! आप जिस कारण सुखों को ( उन्माः ) पूर्ण करते हो इस से सत्कार करने के योग्य हो। तथा हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण आप ( वृथापाद् ) सहज स्वभाव से सहन करनेवाले हो इससे ( योनी ) घर में रहनेवाले सब मनुष्यों के सुखों को पूर्ण करते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि जैसे सूर्य अपने प्रकाश में सब को धानन्दित कर तथा मेघ को उत्पन्न करके वर्षाता है और अन्धकार को निवारण करके अपने प्रकाश को फैलाता है वैसे ही सभाध्यक्ष विद्यादि उत्तम गुणों से सब को सुखी शरीर वा आत्मा के बल को सिद्ध, धर्म, शिक्षा, अभय आदि की वर्षा अधर्मरूपी अन्धकार और शत्रुओं का निवारण करके राज्य में प्रकाशित होवे ॥ ४ ॥

त्वं ह स्यदिन्द्रारिषयन्दृक्कस्य चिन्मत्तानामयुष्टौ ।

व्यस्मदा काष्ठा अर्वते वर्धनेव वज्रिच्छन्निधिमित्रान् ॥५॥४॥

पदार्थ— हे ( अरिषयन् ) अपने शरीर से हिंसा, अधर्म की इच्छा नहीं करनेवाले ( वज्रिन् ) उत्तम आयुधों से युक्त ( इन्द्र ) सभापति ! ( त्वम् ) आप ( ह ) प्रसिद्ध ( अस्मत् ) हम लोगों से ( अर्वते ) बोधे आदि धर्मों से युक्त सेना के लिए ( व्याव ) अनेक प्रकार स्वीकार करते हो ( स्यत् ) उस ( दृक्कस्य ) स्मिर राज्य ( चित् ) और ( मत्तानाम् ) प्रजा के मनुष्यों को शत्रुओं की ( अयुष्टौ ) अप्रीति होने में ( वर्धनेव ) जैसे सूर्य मेघों को काटता ( अमित्रान् ) वैसे धर्मविरोधी शत्रुओं को ( काष्ठा ) दिशाओं के प्रति ( इन्निधि ) मारो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हम मन्त्र में उपमानकार है। सभा, सभापति आदि को उचित है कि राज्य तथा सेना में प्रीति और शत्रुओं में द्वेष उत्पन्न करके जैसे सूर्य मेघों का निश्च छेदन करता है वैसे दुष्ट शत्रुओं का सदैव छेदन किया करे ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को ईश्वर और सभापति आदि के सहाय की इच्छा कहीं-कहीं करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वां ह त्वदिन्द्राणीसातो स्वर्मीकहे नर आज्ञा हवन्ते ।

तव स्वधाव इयमा संमर्य ऊतिर्वाजैवतसाय्या भूत् ॥६॥

पदार्थ—हे ( स्वधाव ) उत्तम धन्य धीर ( इन्द्र ) श्रेष्ठ ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष ( नर ) राजनीति के जानने वाले मनुष्य ( त्वात् ) उस ( अर्वासातो ) विजय की प्राप्ति करानेवाले शूरवीर बोधा मनुष्यों का सेवन ही जिस ( स्वर्मीकहे ) सुख के सीपने से युक्त ( आजी ) सधाम मे ( त्वाम् ) आपकी ( ह ) निश्चय करके ( आहवन्ते ) पुकारते हैं । जिस कारण ( तव ) आप की जो ( इयम् ) यह ( समर्य ) सधाम वा ( वाजेषु ) विज्ञान, धन्य धीर सेनादिकों में ( वतसाय्या ) निरन्तर सुखों की प्राप्ति करानेवाले ( ऊतिः ) रक्षण आदि क्रिया है वह हम लोगों को प्राप्त ( भूत् ) होवे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लोचालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि सब धर्म-सम्बन्धि कार्यों में ईश्वर वा सभाध्यक्ष का सहाय लेके सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करें ॥ ६ ॥

फिर अगले मन्त्र में सभापति आदि के गुणों का उपदेश किया है—

त्वं ह त्वदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।

वर्हिन् यत्सुदासे वृथा वर्गहो राजन्वर्तिवः पूर्वं कः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) उत्तम शस्त्रों से युक्त ( राजन् ) प्रकाश करने तथा ( इन्द्र ) विजय के देनेवाले सभा के सभापति । जो आपके ( सप्त ) सभा, सभासद् सभापति, सेना, सेनापति, भूत, प्रजा ये सात हैं उन्हीं के साथ प्रेम से वर्तमान होके शत्रुओं के साथ ( युध्यन् ) युद्ध करते हुए जिस कारण तुम उन-उन शत्रुओं के ( पुरः ) नगरो को ( वर्हः ) विदारण करते हो । जो आप ( वर्गहो ) प्राप्त होने योग्य राज्य के ( पुरुकुत्साय ) बहुत मनुष्यों को ग्रहण करने योग्य ( पूर्वं ) पूर्ण सुख के लिए ( वत् ) जो ( वर्हिः ) सेवन करने योग्य पदार्थों को ( सुदासे ) उत्तम दान करनेवाले मनुष्यों से युक्त देश में ( वर्हिः ) अन्तरिक्ष के ( न ) समान ( कः ) करने हो ( वत् ) जो ( वृथा ) व्यर्थ काम करनेवाले मनुष्य हो ( त्वत् ) उनको ( वर्क् ) वज्रित करते हो । इस कारण हम सब लोगों को सत्कार करने योग्य हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य सब जगत् के हित के लिए मेघ को वर्षाता है वैसे ही सब का स्वामी सभापति सब का हित सिद्ध करे ॥ ७ ॥

अब सभाध्यक्षादि और विद्युत् अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।

यया शूर प्रत्यस्वमभ्यं यमि त्मनमूर्जं न विश्वधं शरध्वे ॥८॥

पदार्थ—हे बिजुली के समान ( परिज्मन् ) सब ओर से दुष्टों के नष्ट करने ( विश्वध ) विश्व के धारण करने ( शूर ) निर्भय ( देव ) विद्या और शिक्षा के प्रकाश करने और ( इन्द्र ) सुखों के देनेवाले सभाध्यक्ष ! जैसे ( त्वम् ) आप ( यया ) जिससे ( न ) हम लोगों के ( त्मनम् ) आत्मा को ( शरध्वे ) चलायमान होने को ( ऊर्जम् ) धन्य वा पराक्रम के ( न ) समान ( वसि ) दुष्ट काम से रोक देते हो ( त्वम् ) उस ( चित्राम् ) अद्भुत सुखों को करनेवाली ( इधम् ) इच्छा वा धन्य को ( अस्वमभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( आपो न ) जलों के समान ( प्रतिपीपय ) बार-बार पिलाते हो वैसे हम भी आप का अच्छे प्रकार प्रसन्न करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस धन्य क्षुधा का धार जल तृप्ता को निवारण करके सब प्राणियों की मुखी करते हैं, वैसे सभापति आदि को सुखी करें ॥ ८ ॥

फिर भी उक्त सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अकारि त इन्द्र गोतर्मेभिर्जहाण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।

सुपेशं वाजमा भरा नः प्रातर्मधू धियावसुर्जगम्पात् ॥९॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सभा आदि के पति । ( ते ) आप के जिन ( गोतर्मेभिः ) विद्या में उत्तम शिक्षा की प्राप्त हुए शिक्षित पुरुषों से ( नमसा ) धन्य और धन ( हरिभ्याम् ) बल और पराक्रम से जिन ( अकारि ) अच्छे प्रकार प्रशंसा किये हुए ( जहाणि ) बड़े-बड़े धन्य धीर धनों को ( अकारि ) करते हैं उनके साथ ( नः ) हम लोगों के लिए उन को जैसे ( धियावसुः ) कर्म और बुद्धि से सुखों में बसानेवाला विद्वान् ( सुपेशम् ) उत्तमरूपयुक्त ( वाजम् ) विज्ञान समूह को ( प्रातः ) प्रतिदिन ( जगम्पात् ) पुनः-पुनः प्राप्त होवे और इस का धारण करे वैसे आप पूर्वोक्त सब को ( नक्षु ) शीघ्र ( आभर ) सब ओर से धारण कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जैसे बिजुली सूर्य आदि रूप से सब जगत् को पुष्ट करती है वैसे सभाध्यक्ष आदि भी उत्तम धन और श्रेष्ठ गुणों से प्रजा का पुष्ट करें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में ईश्वर सभाध्यक्ष और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ।

यह अंशकर्म सूक्त और चौथी वर्ग समाप्त हुआ ॥

५॥

अब पञ्चदशमस्य ऋतु वषट्कृतस्य सूक्तस्य गीतमो मोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१,४,६,८,१४ विराहजगती, २,३,५,७,१०—१३

निबृज्जगती, ८,१२ जगती छन्द । निवावः स्वरः ।

१५ निबृज्जगती छन्द । चंदा स्वरः ॥

अब बीसवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है । उसके पहले मन्त्र में वायु के गुणों के वृष्टान्त से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

इष्टो शर्द्वीय सुमत्वाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भयः ।

अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदधेष्वाभुवः ॥१॥

पदार्थ—हे ( नोधः ) स्तुति करनेवाले मनुष्य । ( आभुवः ) अच्छे प्रकार उत्पन्न होनेवाले ( अपः ) कर्म वा प्राणों के समान ( धीर ) समय से रहनेवाला विद्वान् ( सुहस्त्यः ) उत्तम हस्तक्रियाओं में कुशल में ( मनसा ) विज्ञान धीर ( मरुद्भयः ) पवनो के सकाश से ( विदधेष् ) युद्धादि चेष्टामय यज्ञों में ( गिरः ) वाली ( सुवृक्तिः ) उत्तमता से दुष्टों को रोकनेवाली क्रिया को ( समञ्जे ) अपनी इच्छा से ग्रहण करता है वैसे ही तू ( प्रभर ) धारण कर ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जानना चाहिए कि जितनी चेष्टा, भावना, बल, विज्ञान, पुरुषार्थ, धारण करना, छोड़ना, कहना, सुनना, बढ़ना, नष्ट होना, भूख, प्यास आदि हैं वे सब वायु के निर्मित से ही होते हैं । जिस प्रकार हम विद्या का भी जानता हैं वैसे ही तुम भी ग्रहण करो ऐसा उपदेश सर्वदा करना चाहिए ॥ १ ॥

फिर भी उक्त वायु कैसे है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ते जज्ञिरे दिव ऋष्यासं उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।

पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्त्वानो न द्रप्तिनो घोरवर्षसः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों । तुम लोगों को उचित है कि जो ( रुद्रस्य ) जीव वा प्राण के सम्बन्धी पवन ( विषः ) प्रकाश से ( जज्ञिरे ) उत्पन्न होते हैं जो ( सूर्या इव ) सूर्य के किरणों के समान ( ऋष्यासः ) ज्ञान के हेतु ( उक्षणः ) मेचन और ( पावकासः ) पवित्र करनेवाले ( शुचयः ) शुद्ध जो ( सत्त्वानः ) बल, पराक्रमवाले प्राणियों के ( न ) समान ( मर्या ) मरणवर्षयुक्त ( असुराः ) प्रकाशरहित ( अरेपसः ) पापों से पृथक् ( द्रप्तिनः ) नाना प्रकार के मोहों से युक्त ( घोरवर्षसः ) भयङ्कर हैं ( ते ) उन्हीं के सग से विद्यादि उत्तम गुणों का ग्रहण करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जैसे ईश्वर की सृष्टि में मिह, हाथी और मनुष्य आदि प्राणी बनवान् होते हैं वैसे वायु भी है । जैसे सूर्य की किरणों पवित्र करने वाली हैं वैसे वायु भी । इन दोनों के बिना रोग का नाश, मरण और जन्म आदि व्यवहार नहीं हो सकते । इससे मनुष्यों को चाहिए कि इनके गुणों को जानके सब कार्यों में यथावत् सप्रयोग करें ॥ २ ॥

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्धनो ववक्षुराभ्रगावः पर्वता इव ।

इच्छा चिद्विधा भुवनानि पार्थिवा प्र व्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों । तुम लोग जो ये ( पर्वता इव ) पर्वत वा मेघ के समान धारण करनेवाले ( युवान ) पदार्थों के मिलाने तथा पृथक् करने में बड़े बलवान् ( अभोग्धनः ) भोजन करने तथा मरने से पृथक् ( अभ्रगावः ) किरणों को नहीं धारण करनेवाले अर्थात् प्रकाशरहित ( अजराः ) जन्म लेके बूढ़ होना फिर मरना इत्यादि कामों से रहित तथा कारणरूप से नित्य ( रुद्रा ) ज्वर आदि की पीडा से खलने वाले वायु जीवों को ( ववक्षुः ) रुष्ट करते हैं ( ववक्षुः ) बल से ( पार्थिवाः ) भूगोल आदि ( दिव्यानि ) प्रकाश के रहनेवाले सूर्य आदि लोक ( चित् ) और ( विद्वान् ) सब ( भुवनानि ) लोक ( इच्छा ) बुद्धि, स्थिति को भी ( व्यावयन्ति ) चलायमान करते हैं उन को विद्या से यथावत् जानकर कार्यों के बीच लगाओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जैसे मेघ जलों के आधार और पर्वत ओषधी के आधार हैं वैसे ही ये सभाग-वियोग करनेवाले सबके आधार शुक्त-दुष्ट के हेतु नित्य, रूपरहित, स्पर्श ग्राह्यवाने पवन है ऐसा समझना योग्य है । और इसके बिना जल, अग्नि और भूगोल तथा इनके परमाणु भी जाने-प्राने में समर्थ नहीं हो सकते ॥ ३ ॥

चित्रैरक्षिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।

असंख्येवा नि मिमृक्षुर्गुह्यः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों । तुम लोग जो ये ( व्यञ्जते ) इधर-उधर चलने तथा ( नर ) पदार्थों को प्राप्त करनेवाले पवन ( चित्रैः ) आश्चर्यरूप क्रिया गुण और स्वभाव तथा ( अक्षिभिः ) प्रकट करना आदि धर्मों से ( शुभे ) सुन्दर ( वपुषे ) शरीर के धारण के लिए ( व्यञ्जते ) विशेष करके प्राप्त होते हैं जो ( वक्षसु ) हृदयों में ( रुक्मान् ) बिजुली तथा जठराग्नि के प्रकाशों को ( अघियेतिरे ) यत्न-पूर्वक सिद्ध करते ( स्वधया ) पृथिवी, आकाश तथा धन्य के ( साकम् ) साथ ( जावन्ते ) उत्पन्न होते और ( विषः ) सूर्य आदि के प्रकाशों का उत्पन्न करते हैं ( एवात् ) इन पवनो के योग से ( असेषु ) बल, पराक्रम के मूल कन्धों में ( विभिन्नुः ) सब पदार्थसमूह को प्राप्त हो सकते हैं उनको यथावत् जानकर अपने कार्यों में सम्प्रयुक्त करो ॥ ४ ॥



भाषार्थ—विद्वानो को उचित है कि ऐसे विलक्षण गुणवाले वायुओं को जानकर शुद्ध सुखों को भोगें ॥५॥

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिर्गकत ।

दुहन्त्यूर्ध्विष्यानि भूतयो भूमिं पिबन्ति पर्यसा परिजयः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये ( ईशानकृतः ) जीवों को ऐश्वर्य युक्त करने ( धुनयः ) धूमि के वर्षाने, वृक्ष आदि के कम्पाने ( रिशादसः ) जीवों को दुख देनेवाले रोगों के नाश करने ( भूतयः ) मर पदार्थों को कम्पाने और ( परिजयः ) सब और से पदार्थों को जीर्ण करनेवाले वायु ( तविषीभिः ) अपने बल से ( विद्युत् ) बिजुली आदि को ( अकत ) उत्पन्न करने हैं तथा जो ( पर्यसा ) जल वा रस से ( ऊष ) उषा को ( दुहन्ति ) पूरा करने हैं जा ( भूमिम् ) पृथिवी ( विष्यानि ) शुद्ध जल आदि वस्तु तथा उत्तम कार्यों का ( पिबन्ति ) सेवन वा सेवन करते हैं ( वातान् ) उन पवनो को जानो ॥५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारे लिए परमेश्वर वायु के गुणों का उपदेश करता है कि कहे वा न कहे गुणवाले वायु, बिजुली को उत्पन्न करके वर्षा द्वारा भूमि पर ओषधि आदि के संचन से सब प्राणियों को सुख देनेवाले होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥५॥

पिबन्त्यपो मरुतः सुदानवः पर्यो घृतवद्विष्येष्वाभुवः ।

अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे ( आभुव ) अच्छे प्रकार उत्पन्न होने तथा ( सुदानवः ) उत्तम दान देने के हेतु ( मरुत ) पवन ( विष्येषु ) यज्ञों से ( घृतवत् ) घृत के तुल्य ( पर्य ) जल वा रस को ( पिबन्ति ) सेवन वा सेवन करते हैं ( मिहे ) वीर्य वृष्टि के लिए ( अत्यम् ) थोड़े के ( न ) समान ( अक्ष ) प्राण, जल वा अन्नरिक्त के अवयवों को ( विनयन्ति ) नाना प्रकार से प्राप्त करते हैं ( उत्सम् ) और कूप के समान ( अक्षितम् ) नाशरहित ( स्तनयन्तम् ) शब्द करते हुए ( वाजिनम् ) उत्तम वेगवान् पुरुष का ( दुहन्ति ) पूरा करते हैं वैसे हो और उनकी कार्यों में लगाओ ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकानुपमाप्रमाण हैं। जैसे यज्ञ में घृत आदि पदार्थ, क्षेत्र पशु आदि की तृप्ति के लिए कूप और थोड़ी सेवन के लिए थोड़ा है वैसे विद्या से संप्रयोग किये हुए पवन सब कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥६॥

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।

मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीर्युध्वम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( यत ) जैसे ( महिषास ) बड़े-बड़े सेवन करने योग्य गुणों से युक्त ( चित्रभानव ) चित्र-विचित्र दीप्तिवान् ( मायिन ) उत्तम बुद्धि होने के हेतु ( स्वतवस ) अपने बल से बलवान् ( रघुष्यद ) अच्छे स्वाद के कारण वा उत्तम चलन क्रिया से युक्त ( गिरयो न ) मेघों के समान जलों को तथा ( हस्तिनः ) हाथी और ( मृगा इव ) बलवाले हिरनों के समान वगैरह वायु ( वना ) जल वा वनों को ( खादथ ) भक्षण करते हैं वैसे इन ( तविषी ) जलों को ( आरुणीषु ) प्राप्त होते हैं सुख जिन्हो में उन सेना और यानों की क्रियाओं में ( युध्वम् ) ठीक-ठीक विचारपूर्वक संयुक्त करो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा प्रमाण हैं। मनुष्यों को चाहिए कि पवनो के बिना हमारे चलना, पाना, यान का चलना आदि काम सिद्ध नहीं हो सकते, इससे इन वायुओं का विमान और नौका आदि यानों में संयुक्त करके अग्नि-जलों के संयोग से यानों का शीघ्र चलाया करें ॥७॥

सिद्धा इव नानदति प्रचैतमः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदमः ।

क्षपो जिबन्तः पृषतीभिर्हृष्टिभिः समिन्सबाधः शवमाहिमन्यवः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये ( प्रचैतस ) उत्तम विज्ञान होने के हेतु ( सुपिश ) सुन्दर अवयवों के करनेवाले ( सिद्धा ) पदार्थों को अपने नियम से रखनेवाले ( अहिमन्यव ) मेघ की वर्षा का ज्ञान करानेवाले वायु ( इत् ) ही ( हृष्टिभिः ) व्यवहारों के प्राप्त करने और ( पृषतीभिः ) अपने गमनागमन वेगादिगुणों से ( क्षप ) रात्रि को ( सज्जन्त ) तृप्त करने हुए ( विश्ववेदस ) सब कर्मों के प्राप्त करनेवाले पवन ( शवसा ) अपने बलों में ( सिद्धा इव ) मिहों के समान तथा ( पिशा इव ) बड़े बलवान् हाथियों के समान ( नानदति ) अत्यन्त शब्द करने हैं उनको कार्यों की सिद्धि के लिए यथावत् संयुक्त करो ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा प्रमाण हैं। हे मनुष्यो ! तुम ऐसा जानो कि जितना बल, पराक्रम, जीवन, सुनता-विचारना आदि क्रिया हैं वे सब वायु के मकार से ही होती हैं ॥ ८ ॥

रोदमी आ वंदता गणाश्रियो नृषाचः शूराः शवमाहिमन्यवः ।

आ वन्दुरेण्यमतिर्न दर्शता विद्युन्म तस्यो मरुतो रथेषु वः ॥९॥

पदार्थ—हे ( गणाश्रिय ) एकट्ठे होके शोभा को प्राप्त होने ( नृषाचः ) मनुष्यों को कर्मों में संयुक्त करने और ( अहिमन्यवः ) अपनी व्याप्ति को जाननेवाले ( शूरा ) शूरवीर के तुल्य ( मरुत ) शिल्पविद्या के जाननेवाले ऋत्विज् विद्वान् लोग जो ( अमतिर्न ) जैसे रूप तथा ( वंदता ) देखने योग्य ( विद्युन्म ) बिजुली ( तस्यो ) वर्तमान होती वैसे वर्तमान वायु ( वन्दुरेण्य ) यान यन्त्रों के बन्धनों

में जो ( शवसा ) बल से ( रोदमी ) प्रकाश और भूमि को धारण करते हैं तथा जो ( व ) तुम लोगों के ( रथेषु ) रथों में जोड़े हुए कार्यों की सिद्धि करते हैं उनका हम लोगों के लिए ( आश्रय ) उपदेश कीजिए ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा प्रमाण हैं। मनुष्यों को ऐसा जानना योग्य है कि सब मूर्तिमान् द्रव्यों के आधार, शूरवीरता और शिल्पविद्या के कार्यों के हेतु पवन ही हैं ॥९॥

विश्ववेदसो गयिभिः समोकसः संमिरलासस्तविषीभिर्विर्णिनः ।

अस्तां इषुं दधिरे गमस्त्योरनन्तशुष्मा हृषस्वादयो नरः ॥१०॥७॥

पदार्थ—हे ( नर ) विद्या को प्राप्त होनेवाले मनुष्यो ! तुम लोग जो ( समोकस ) जिन से अच्छे प्रकार निवास होता है ( संमिरलासः ) अग्नि आदि आर तत्त्वों के साथ अत्यन्त मिले हुए ( इषुम् ) दूध वा दूध आ विशेष छोड़ते हुए ( हृषस्वादय ) रसों का वर्षानेवाले पदार्थों के खानेवाले ( अन्नशुष्मा ) अन्नत बलवान् ( विरणिन ) बड़े ( विश्ववेदस ) सब पदार्थों की प्राप्ति के हेतु हाके सब पदार्थों को हथर-उधर चलानेवाले वायु ( गयिभिः ) चक्रवर्ति राज्य की शोभा आदि तथा ( तविषीभिः ) बल, पराक्रम, सेना आदि प्रजा और ( गमस्त्योः ) किरण युक्त सूर्य वा प्रसिद्ध अग्नि के समान भूजाओं में बल को ( दधिरे ) धारण करते हैं उनके गुणों को ठीक-ठीक जानकर उनमें विद्या, शिक्षा और धान के चलाने की क्रियाओं को ग्रहण करो ॥१०॥

भाषार्थ—मनुष्य विद्वानो तथा वायु आदि पदार्थविद्या के बिना परलोक और इस लोक के सुखों की सिद्धि कभी नहीं कर सकते ॥१०॥

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोबुध उज्जिघ्रन्त आपथ्यो न पर्वतान् ।

मत्वा अयासः स्वस्रतो ध्रुव्युतो दुधकृतो मरुतो आजहृष्टयः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग ( आपथ्यो न ) अच्छे प्रकार ( हिरण्ययेभिः ) सुवर्ण आदि के याग से प्रकाशरूप ( पविभिः ) पवित्र वस्तुओं के रथ से मार्ग में चलाने के समान ( आजहृष्टय ) जिन से व्यवहार प्राप्त कराने वाली कान्ति प्रसिद्ध हो ( दुधकृत ) धारण करनेवाले बलादि से उत्पन्न करने ( ध्रुव्युत ) निश्चल आकाश से चलायमान ( स्वस्रत ) अपने गुणों की प्राप्ति हाके चलनेवाले ( पयोबुध ) जल वा रात्रि के बढानेवाले ( मत्वा ) यज्ञ के योग्य ( अयास ) प्राप्ति होने के स्वभाव से युक्त ( मरुत ) पवन ( पर्वतान् ) मेघ वा पर्वतों का ( उज्जिघ्रन्ते ) नष्ट करते हैं उन पवनो के गुणों को जानकर अपने कार्यों में संयुक्त करो ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा प्रमाण है। मनुष्यों को चाहिए कि जिन वायुओं से वृष्टि आदि की उत्पत्ति होती है उनका युक्ति के साथ सेवन किया करें ॥११॥

किर वायुनो के समुदाय कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

घृष्ट पावक ननिनं विचर्षणि रुद्रस्य स्रुनुं हवसां गृणीमसि ।

रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्वत श्रिये ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( हवसा ) दान और ग्रहण से ( श्रिये ) विद्या, शिक्षा और चक्रवर्ति राज्य की प्राप्ति के लिए जिस ( रुद्रस्य ) मुख्य वायु के ( स्रुनुम् ) पुत्र के समान वर्तमान ( विचर्षणिम् ) भेद करने तथा ( ननिनम् ) सन्नाम करनेवाले ( घृष्टम् ) घिसने के स्वभाव से युक्त ( पावकम् ) पवित्र करनेवाले ( तवसम् ) महाबलवान् ( रजस्तुरम् ) लोका का शीघ्र चलाने ( मृजीषिणम् ) उत्तम बुद्धि होने के कारण और ( वृषणम् ) वृष्टि करनेवाले ( शश्वतम् ) पवनो के ( गणम् ) समूह का ( गृणीमसि ) उपदेश करते हैं उसको तुम भी ( सश्वत ) जानो ॥१२॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वायुममुदाय के बिना हमारे कोई काम सिद्ध नहीं हो सकते ऐसा निश्चय तथा वायुविद्या को स्वीकार करके अपने कार्यों की सिद्धि अवश्य करें ॥१२॥

किर वे उक्त वायु कैसे गुणवाले हैं यह विषय कहा है—

प्र नू म मर्त्तः शवसा जनां अतिं तस्यौ व ऊती मरुतो यमावत ।

अवीर्द्धिर्वाजं भरते धना नृभिर्गपृच्छथं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) युक्ति से सेवन किये हुए वायु के समान तुम ( यम् ) जिस मनुष्य की ( शवसा ) रक्षा आदि करते हो ( स ) वह ( मर्त्तः ) मनुष्य ( ऊती ) रक्षा आदि के सहित ( शवसा ) विद्याक्रियायुक्त बल ( अवीर्द्धिः ) बाढ़ों और ( नृभिः ) मनुष्यों के साथ ( वाजम् ) वेग अन्न ( वः ) तुम ( धनम् ) मनुष्यादि प्राणियों और ( धना ) धनो को पूछने योग्य ( पृच्छथम् ) बुद्धि वा कर्मों को ( नृ ) शीघ्र ( प्रवर्तते ) अच्छे प्रकार धारण करता ( अतिं ) अच्छे प्रकार निवास युक्त करता, आत्मा और अन्तःकरण से ( पुष्यति ) बल को पुष्ट करता हुआ ( तस्यौ ) स्थित होता है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य प्राणवायु की विद्या को जानकर उपयोग करते हैं वे बलवान्, प्रतिष्ठा को प्राप्त हैं और दुःख तथा शत्रुओं को जीतकर उत्तम हाथी, घोड़े, मनुष्य, बल और बुद्धि से युक्त हाके सदा सब को पुष्ट करते हैं ॥१३॥

चर्कुन्म्यं मरुतः पृत्सु दुष्टं धुमन्तं शुष्मं मघर्बत्सु वचन ।

धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) युक्ति से सेवन किये हुए वायु के समान तुम ( यम् ) जिस मनुष्य की ( शवसा ) रक्षा आदि करते हो ( स ) वह ( मर्त्तः ) मनुष्य ( ऊती ) रक्षा आदि के सहित ( शवसा ) विद्याक्रियायुक्त बल ( अवीर्द्धिः ) बाढ़ों और ( नृभिः ) मनुष्यों के साथ ( वाजम् ) वेग अन्न ( वः ) तुम ( धनम् ) मनुष्यादि प्राणियों और ( धना ) धनो को पूछने योग्य ( पृच्छथम् ) बुद्धि वा कर्मों को ( नृ ) शीघ्र ( प्रवर्तते ) अच्छे प्रकार धारण करता ( अतिं ) अच्छे प्रकार निवास युक्त करता, आत्मा और अन्तःकरण से ( पुष्यति ) बल को पुष्ट करता हुआ ( तस्यौ ) स्थित होता है ॥ १४ ॥

**पदार्थ—**हे (वचनः) पवनवद्वर्तमान मनुष्यो ! जैसे हम (पुंसु) सेनाओं में (अहर्त्यम्) बार-बार करने योग्य कार्यों में कुशल (पुष्टम्) दुःख से पार होने योग्य (सुमन्तम्) प्रति प्रकाशयुक्त (शुष्मम्) सुखानेवाले बल को (मज्जन्तु) प्रशंसनीय वनयुक्त राजकार्यों में (अनसृजन्तु) धन से प्रसन्न वा सेवा को प्राप्त हुए (अकम्प्यम्) कहने-सुनने योग्य (विश्वचर्चयिन्) सब को देखाने योग्य (लोकम्) पुत्र तथा (सन्तम्) विद्वान् पीन को प्राप्त होके (अतं हिमाः) हेमन्त-ऋतुयुक्त सी वर्ष पर्यन्त (पुष्यम्) बल पराक्रम आदि से पुष्ट होवें वैसे कम करके तुम भी सुख को (वचन) धारण करो ॥१४॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग पवनो के योग से हमारे बिजुली, यन्त्र, बैल, सी वर्ष पर्यन्त जीना और शरीर आदि में पुष्टि का होना ये सब काम होते हैं इसलिए इन बावुओं की विद्या को युक्ति के साथ जानकर इनसे उपयोग लिया करते हैं वैसे अन्य लोग भी आचरण करें ॥१४॥

**नृ हिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।**

**सहस्रिणं शस्तिर्न शुशुवांसं प्रातर्मक्ष धियावसुर्जगम्यात् ॥१५॥॥११॥**

**पदार्थ—**हे (वचनः) पवन के तुल्य वर्तमान ! जैसे विद्वान् लोग (अस्मासु) हम लोगों में (स्थिम्) निश्चल (वीरवन्तम्) प्रशंसा करने योग्य वीरपुत्रों से युक्त (शस्तिवाहम्) सत्य के सहन करनेवाले (रयिम्) विद्या, राज्य और सुवर्ण आदि धन को धारण करें और (धियावसुः) बुद्धि और कर्मों से युक्त विद्वान् (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त हो वैसे उन को तुम (प्रातः) प्रतिदिन (मक्षु) शीघ्र (वत्) धारण करो ॥१५॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे प्रति प्रशंसा करने योग्य बुद्धिमान् विद्या, पुत्रधर्मों से युक्त विद्वान् वायु आदि पदार्थों के सकाश से दुःख, निश्चल बहुत सुखों को सिद्ध करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे तुम भी इस विद्या को प्राप्त होकर आनन्द भोगो ॥१५॥

इस सूक्त में वायु के गुणों का उपदेश करने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति बनानी चाहिए ॥

यह प्यारहवां अनुष्ठाक चौसठवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य पञ्चमवर्षितस्य सूक्तस्य पराक्षर ऋषिः । अग्निर्वैवता । १, २, ३, ४ निवृत्त्यङ्कितः, ४ विराट्पङ्क्तिवर्धनम् । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पैंसठवें सूक्त का आरम्भ है। इस के पहले मन्त्र में सर्वत्र व्यापक अग्नि शब्द का वाक्य जो पदार्थ है उस का उपदेश किया है—

**पश्वा न तापुं गुहा चतर्न्तं नमो युजानं नमो बहन्तम् ।**

**सजोषा धीराः पदैरनु गमन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः ॥१॥**

**पदार्थ—**हे सर्वविद्यायुक्त मनेष ! (विश्वे) सब (यजत्राः) सर्वात् प्रिय (सजोषाः) तुल्य प्रीति को सेवन करनेवाले (धीराः) बुद्धिमान् लोग (पदैः) प्रत्यक्ष प्राप्त गुणों के नियम से (न) जैसे (वह्ना) पशु के ले जानेवाले (तापुम्) चोर को प्राप्त कर आनन्द होता है वैसे जिस (गुहा) गुफा में (वतन्तम्) व्याप्त (मनः) ब्रह्म के समान आत्मा का (युजानम्) समाधान करने (नमः) सत्कार को (बहन्तम्) प्राप्त करते हुए (त्वा) आपको (अनुगमन्) अनुकूलतापूर्वक तथा (उपसीदन्) समीपस्थित होते हैं उस आप को हम लोग भी इस प्रकार प्राप्त होके आप के समीप स्थित होते हैं ॥१॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे वस्तु को बुराये हुए चोर के पाद आदि अङ्ग वा स्वरूप देखने से उस को पकड़कर बुराये हुए पशु आदि पदार्थों को प्राप्त करते हैं वैसे ही अन्तःकरण में उपदेश करनेवाले, सब के आधार, विज्ञान से जानने योग्य परमेश्वर तथा बिजुलीरूप अग्नि को जान और प्राप्त होके सब आनन्दों को स्वीकार करो ॥१॥

फिर उसको किस प्रकार का हम लोग जानें यह विषय कहा है—

**ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्मुवत् परिष्टिर्धौर्न भूम ।**

**वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिन्विभृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥२॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! (न) जैसे विद्वान् लोग (परिष्टिः) सब प्रकार खोजने योग्य (धौ) सूर्य के प्रकाश के तुल्य (गुर्मुवत्) होकर सब पदार्थों को दृष्टिगोचर करता है वैसे (ऋतस्य) सत्य, धर्म, स्वरूप, आत्मा विज्ञान से (व्रता) सत्यभाषण आदि नियमों को (अनुम्) प्राप्त होकर आचरण करते हैं तथा जैसे वे (ऋतस्य) कारणरूपी सत्य की (योना) योनि अर्थात् निमित्त में स्थित (सुजातम्) अच्छी प्रकार प्रसिद्ध (सुशिन्विभृतम्) अच्छे पढ़ानेवाले सभापति की (पन्वा) स्तुति करने योग्य कर्म से (ईम्) पृथिवी को (आयः) जल वा प्राण को (वर्धति) बढ़ाकर ज्ञानयुक्त कर देते हैं वैसे हम लोग (भूम) होवें और तुम भी होओ ॥२॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के प्रकाश से सब पदार्थ दृष्टि में आते हैं वैसे ही विद्वानों के संग से वेदविद्या के उत्पन्न होने और वर्णमोचरण की प्रवृत्ति में परमेश्वर और बिजुली आदि पदार्थ अपने-अपने गुण-कर्म-स्वभावों से अच्छे प्रकार देखे जाते हैं ऐसा तुम लोग जानकर अपने विचार से निश्चित करो ॥२॥

फिर वह परमात्मा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**पुष्टिर्न रप्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न मुज्म क्षोदो न शम्भु ।**

**अत्यो नाज्मन्सर्गप्रतक्रः सिन्धुर्न क्षोदः क ई वराते ॥३॥**

**पदार्थ—**जो मनुष्य उस परमेश्वर को (रप्वा) सुख से प्राप्त करानेवाला (पुष्टिः) शरीर, आत्मा और इन्द्रियों की पुष्टि के (न) समान (क्षोदः) जल (शम्भु) सुख सम्पन्न करनेवाले के (न) समान तथा (अज्मन्) मार्ग में (अत्यः) थोड़े के समान (सर्गप्रतक्रः) जल को संकोच करनेवाले (सिन्धुः) समुद्र (क्षोदः) जल के (न) समान (ईम्) जमाने तथा प्राप्त करने योग्य परमेश्वर वा बिजुलीरूप अग्नि को (कः) कौन विद्वान् मनुष्य (वराते) स्वीकार करता है ॥३॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। कोई विद्वान् मनुष्य ही परमेश्वर को प्राप्त होके और बिजुलीरूप अग्नि को जानके उससे उपकार लेने को समर्थ होता है। जैसे उत्तम पुष्टि, पृथिवी का राज्य, मेघ की वृष्टि, उत्तम जल, उत्तम थोड़े और समुद्र बहुत सुखों को प्राप्त कराने हैं। वैसे ही परमेश्वर और बिजुली भी सब आनन्दों को प्राप्त कराते हैं। परन्तु इन दोनों का जानने वाला विद्वान् मनुष्य दुर्लभ है ॥३॥

अब भौतिक अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**जामिः सिन्धूनां भ्रातैव स्वस्त्रामिभ्याम् राजा वनान्यसि ।**

**यद्वातज्जतो वना व्यस्थादग्निर्ह दासि गेमा पृथिव्याः ॥४॥**

**पदार्थ—**(वत्) जो (वातज्जतः) वायु से वेग को प्राप्त हुआ (जामिः) अग्नि (वना) वनों का (दासि) छेदन करता तथा (पृथिव्याः) पृथिवी के (ह) निश्चय करके (रोमा) रोमों के समान छेदन करना है वह (सिन्धूनाम्) समुद्र और नदियों के (जामिः) सुख प्राप्त करानेवाला वनपु (स्वस्त्राम्) बहनों के (भ्रातैव) भाई के समान तथा (व्यस्थाम्) हाथियों की रक्षा करनेवाले पीनवानों को (राजम्) राजा के समान (व्यस्थात्) स्थित होता और (वनानि) वनों को (व्यसि) अनेक प्रकार भक्षण करता है ॥४॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जब मनुष्य यान-वाहन आदि कार्यों में वायु से सयुक्त किये हुए अग्नि को प्रयुक्त करते हैं तब वह बहुत कार्यों को सिद्ध करता है ऐसा सब मनुष्य को जानना चाहिए ॥४॥

फिर वह सनेश कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**शसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषभुत् ।**

**सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेमाः ॥५॥॥११॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (अप्सु) जलो में (हंसः) हंस पक्षी के (न) समान (सीदन्) जाता-आता, डूबता-उछलता हुआ (विशाम्) प्रजाओं को (उषभुत्) प्रातः काल में बोध कराने वा (क्रत्वा) अपनी बुद्धि वा कर्म से (चेतिष्ठः) अत्यन्त ज्ञान करनेवाले (सोमः) भोषधिसमूह के (न) समान (ऋतप्रजातः) कारण में उत्पन्न होकर वायु-जल में प्रसिद्ध (वेधः) पुष्ट करने वाले (शिश्वा) बछड़ा आदि में (पशु) गौ आदि के (न) समान (विभुः) व्यापक हुआ (दूरेमाः) दूरदेश में दीप्तियुक्त बिजुली आदि अग्नि के समान (व्यसिति) प्राण, अपान आदि को करता है, उस को शिल्पादि कार्यों में संप्रयुक्त करो ॥५॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बिजुली के बिना किसी मनुष्य के व्यवहार की सिद्धि नहीं हो सकती इस अग्नि विद्या से परीक्षा करके कार्यों में संयुक्त किया हुआ अग्नि बहुत सुखों को सिद्ध करता है ॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर, अग्निरूप बिजुली के वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए।

यह पैंसठवां सूक्त और नवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य पञ्चमवर्षितस्य सूक्तस्य शाक्य पराक्षर ऋषिः । अग्निर्वैवता ।

१ पङ्क्ति, २ भुरिक्पङ्क्तिः ३, निवृत्त्यङ्कितः, ४, ५

विराट्पङ्क्तिवर्धनम् । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ छान्दस्य सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इस के प्रथम मन्त्र में पूर्वोक्त अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

**रयिर्न चित्रा सूर्यो न संदगायुर्न प्राणो नित्यो न क्षुः ।**

**तक्वा न भूर्गिर्वेना सिषक्नि पयो न चेनुः शुचिर्विभावा ॥१॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! आप सब लोग (रयिर्न) द्रव्य समूह के समान (चित्रा) आश्चर्य सुनानेवाले (सूर्यः) सूर्य के (न) समान (संक्षुः) अच्छे प्रकार दिखानेवाला (अयुः) जीवन के (न) समान (प्राणः) सब शरीर में रहनेवाला (नित्यः) कारणरूप से अविनाशित्वरूप वायु के (न) समान (क्षुः) कार्यरूप से वायु के पुत्र के तुल्य वर्तमान (ययः) दूध के (न) समान (चेनुः) दूध देने वाली गौ (तक्वा) चोर के (न) समान (सिषक्नि) धारण करने (विभावा) अनेक पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (शुचिः) पवित्र अग्नि (वना) वन वा किरणों को (सिषक्नि) संयुक्त होता वा संयोग करता है उसको यथावत् जानके कार्यों में उपयुक्त करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। मनुष्यों का उचित है कि जिस ईश्वर ने प्रजा के हित के लिए बहुत गुणवान् धनक कार्यों के उपयोगी, मत्स्य स्वभाव वाले इस अग्नि को रखा है उसी की सदा उपासना करें ॥ १ ॥

फिर वह मनुष्य कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—  
दाधार क्षेमयोको न रण्यो यवो न पको जेतो जनानाम् ।  
ऋषिर्न स्तुम्या विश्व प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥२॥

पदार्थ—जो मनुष्य ( ओक ) घर के ( न ) समान ( रण्य ) रमणीय-स्वरूप ( पक ) पके ( यव ) सुख करनेवाले यव के ( न ) समान ( ऋषि ) मन्त्रों के अथवा जाननेवाले विद्वान् के ( न ) समान ( स्तुम्या ) सत्कार के योग्य ( वाजी ) वेगवान् घोड़े के समान ( प्रीत ) कमनीय ( विश्व ) प्रजापति से ( प्रशस्त ) श्रेष्ठ ( जनानाम् ) मनुष्य आदि प्राणियों को ( जेतो ) सुख प्राप्त करानेवाला ( वयो ) जीवन ( दधाति ) धारण करता है वह ( क्षेमम् ) रक्षा को ( दाधार ) धारण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जीवन के निमित्त ब्रह्मचर्यादि कर्मों को काम की मित्रि के लिए अच्छे प्रकार जानके युक्तिपूर्वक आहार और व्यवहार के अथवा यथायोग्य पदार्थों का धारण करते हैं वे बहुत काल पर्यन्त जीके सदा सुखी होते हैं ॥२॥

दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।

चित्रो यदभ्राद् भेतो न विश्व रथो न रुष्यी त्वेषः समस्तु ॥३॥

पदार्थ—( यत् ) जो मनुष्य ( क्रतु ) बुद्धि वा कर्म के ( न ) समान ( नित्य ) प्रविनाशि स्वभाव ( जायेव ) भार्या के समान ( योनावरं ) कारण रूप में ( रुष्यम् ) झलकरता ( त्वेष ) शुद्ध, शुक्लवाँ के ( न ) समान ( विश्व ) प्रजापति से शुद्ध करने ( रथ ) सुवर्णादि से निमित्त विमानादि यान के ( न ) समान ( रुष्यी ) रुचि करनेवाले कर्म वा गुणयुक्त ( दुरोकशोचिः ) दूरस्थानों में दीप्तियुक्त ( विश्वस्मै ) सब जगत् के लिए सुख करने ( समस्तु ) समग्रों में ( चित्र ) अद्भुत स्वभावयुक्त ( अभ्राद् ) आप ही प्रकाशमान होने से शुद्ध ( त्वेष ) प्रदीप्त स्वभाव वाला है वही अक्रान्ति राजा होने के योग्य होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि जो ज्ञान और कर्मकाण्ड के समान सदा यत्नमान अनुकूल स्त्री के समान सब सुखों का निमित्त, सूर्य के समान शुभगुणों को प्रकाश करने, आश्चर्य गुणवाले रथ के समान मोक्ष में प्राप्त करने, वीर के समान युद्धों में विजय करनेवाला हो वह राज्यसम्पत्ति को प्राप्त होता है ॥३॥

सेनेव सृष्टमं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्प्रेषप्रतीका ।

यमो ह जातो यमो जनिन्वं जारः कनीना पनिर्जनीनाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! तुम लोग जो मेनापति ( यम ) नियम करनेवाला ( जात ) प्रकट ( यम ) मर्यादा नियमकर्ता ( जनिन्वं ) जन्मादि कारणायुक्त ( कनीनाम् ) कल्याणवत् वर्तमान रात्रियों के ( जार ) आयु का हननकर्ता सूर्य के समान ( जनीनाम् ) उत्पन्न हुई प्रजापति का ( पति ) पालनकर्ता ( सृष्टा ) प्रेरित ( सेनेव ) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वीर पुरुषों की विजय करनेवाली सेना के समान ( दद्युत् ) शत्रुओं के ऊपर शस्त्र-अग्न्य चलानेवाले ( त्वेषप्रतीका ) दीप्तियों के प्रतीति करनेवाले ( दिद्युत् ) विद्युत् की समान ( अमम् ) अपरिपक्व विज्ञानयुक्त जन को ( दधाति ) धारण करता है उसका सेवन करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि विद्या से अच्छे प्रयत्न द्वारा जैसे उन्नत शिक्षा से मित्र की हुई सेना शत्रुओं को जीतकर विजय करती है जैसे धनुर्वेद के जाननेवाले विद्वान् लोग शत्रुओं के ऊपर शस्त्रों को छोड़ उनका छेदन करके भगा देने हैं वैसे उन्नत सेनापति सब दुःखा का नाश करता है ॥४॥

तं वश्रथा वयं वमत्याऽस्तं न गावो नक्षन्त इदम् ।

मिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरनोभवन्त गावः स्वर्हसीके ॥५॥१०॥

पदार्थ—जो ( वश्रथा ) चरक ( वमत्या ) घाम करने योग्य पृथिवी के सह वर्तमान ( गाव ) गायें ( न ) जैसे ( अस्तम् ) घर का ( नक्षन्ते ) प्राप्त होती जैसे ( गाव ) किरण ( स्वर्हसीके ) खेवने के हेतु व्यवहार में ( इदम् ) सूर्य को ( नक्षन्ते ) प्राप्त होते हैं ( न ) जैसे ( सिन्धु ) समुद्र ( नीची ) नीचे के ( क्षोदः ) जल को प्राप्त होता है वैसे ( व. ) तुम लोगों का ( प्रीनोत् ) प्राप्त होता है उसी की सेवा हम लोग करें ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकानुपमासकार है। जो सभापति आदि इस प्रकार परमेश्वर का सेवन और विद्युत् अग्नि को मित्र करते हैं उनको जैसे गौ घर और किरण सूर्य को प्राप्त होते हैं और जैसे मनुष्य समुदाय को प्राप्त होके माना प्रकार के कामों को सुशोभित करता है वैसे ही सज्जन पुरुषों को उचित है कि अन्तर्यामी परमेश्वर की उपासना तथा विद्युत् विद्या को यथावत् सिद्ध करके अपनी सब कामनाओं को पूर्ण करें ॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर और अग्नि से गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह आसठवर्ष सूक्त तथा दशवर्ष वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ पञ्चवर्षस्य सत्यवर्षितमस्य सूक्तस्य शास्त्रः पराशर ऋषिः । अग्निर्वैवता ।  
१, २, ४ निष्कृत् पङ्क्तिः, ३ पङ्क्तिः, ५ विराट्पङ्क्तिः पङ्क्तिः ।

पञ्चम स्वर ॥

अथ सप्तवर्षस्य सूक्त का प्रारम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् कैसा हो इस विषय को कहा है—

वनैषु जायुर्मे तेषु मित्रो वृणीते भृष्टि राजैवाजुर्व्यम् ।

क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवंत्स्वाधीर्होता हव्यवाद् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वान् ( वनैषु ) सम्यक् सेवन योग्य पदार्थ ( जायु ) जीतने के हेतु सूर्य के समान ( अजुर्व्यम् ) युद्ध विद्या से सङ्गत सेना के तुल्य योग्य ( भृष्टिम् ) शीघ्रता करनेवाले को ( राजैव ) राजा के समान ( क्षेम ) रक्षक ( साधु ) सत्पुरुष के समान ( भद्र ) कल्याणकारी ( क्रतुर्न ) उत्तम बुद्धि और कर्मकर्मा के तुल्य ( स्वाधी ) अच्छे प्रकार धारण करने ( होता ) देने तथा अनुग्रह करने और ( हव्यवाद् ) लेने-देने योग्य पदार्थों का प्राप्त कराने वाला ( भुवत् ) हो तथा धर्मात्मा मनुष्यों को ( वृणीते ) स्वीकार करें उसका सदा सेवन करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों का संग करके सर्वत्र आनन्द भोग करें ॥१॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

हस्ते दधानो नृम्या विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।

विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तृष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥२॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( नर ) प्राप्ति करनेवाला मनुष्य जैसे ( धियन्धा ) प्रजा कर्म को धारण करनेवाले ( तृष्टान् ) विद्यापति को तीक्ष्ण करनेवाले ( मन्त्रान् ) वेदों के अवयव वा विचाररूपी मन्त्रों को ( विदन्ति ) जानते ( अशंसन् ) स्तुति करते हैं। जैसे देनेवाला उदार मनुष्य ( हस्ते ) हाथ में ( विश्वानि ) सब ( नृम्या ) बनों को ( दधान ) धारण किया हुआ अन्य सुपात्र मनुष्यों को देता है। जैसे ( गुहा ) सब विद्यापति में युक्त बुद्धि में ( निषीदन् ) स्थित हुआ ईश्वर वा योगी विद्वान् ( अत्र ) इस ( अमे ) विज्ञान आदि में ( देवान् ) विद्वान् दिव्य गुणों को ( धात् ) धारण करता है, वैसे होते हैं, वे अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमासकार है। हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जो अन्तर्यामी आत्मा सत्य-भूत का उपदेश करता और बाह्य अध्ययन करानेवाला विद्वान् वर्तमान है उसको छोड़कर किसीकी उपासना वा सगत कभी मत करो ॥२॥

अथ अगले मन्त्रों में ईश्वर और विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भं धां मन्त्रेभिः सत्यैः ।

मिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरमे गुहा गुहं गाः ॥३॥

पदार्थ—ह ( अजे ) पूर्णविद्यायुक्त विद्वान् । तू जैसे परमात्मा ( सत्यै ) सत्य लक्षणा से प्रकाशित ज्ञानयुक्त ( मन्त्रेभिः ) विचारों में ( क्षाम् ) भूमि को ( दाधार ) अपने बल से धारण करता ( पृथिवीम् ) अन्नरिक्त में स्थित जो अन्य लोक ( क्षाम् ) तथा प्रकाशमय सूर्यादि लाको को ( तस्तम्भ ) प्रतिबन्धयुक्त करता और ( मिया ) प्रीतिकारक ( पश्वानि ) प्राप्त करने योग्य जानों को प्राप्त कराता है ( गुहा ) बुद्धि में स्थित हुए ( गुहम् ) गूढ़ विज्ञान भीतर के स्थान को ( गाः ) प्राप्त हो वा होते हैं ( पश्वः ) बन्धन से हम लोगों की रक्षा करता है वैसे धर्म में प्रजा की ( निपाहि ) निरन्तर रक्षा कर और ( अजो न ) न्यायकारी ईश्वर के समान हुआ ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमासकार है। जैसे परमेश्वर वा जीव कभी उत्पन्न वा नष्ट नहीं होता वैसे कारण भी विनाश में नहीं आता, जैसे परमेश्वर अपने विज्ञान बल आदि गुणों से पृथिवी आदि जगत् को रचकर धारण करता है वैसे सत्य विचारों से सभाध्यक्ष राज्य का धारण करे जैसे प्रिय मित्र अपने मित्र को दुःख के बन्धनों से पृथक् करके उत्तम-उन्नत सुखों को प्राप्त कराता है वैसे ईश्वर और सूर्य भी सब सुखों को प्राप्त कराते हैं, जैसे अन्तर्यामिरूप से ईश्वर जीवादि को धारण करके प्रकाश करता है वैसे सभाध्यक्ष सत्य-न्याय से राज्य और सूर्य अपने आकर्षणादि गुणों से जगत् को धारण करता है ॥३॥

य ई चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद् धारायुतस्य ॥

वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिदक्षिणि प्र ववाचास्मै ॥४॥

पदार्थ—( य. ) जो मनुष्य ( गुहा ) बुद्धि तथा विज्ञान में ( ईम् ) विज्ञान-स्वरूप ( भवन्तम् ) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष को ( चिकेत ) जानता है ( य ) जो ( ऋतस्य ) सत्य विद्यारूप चारों वेद जल के ( धाराम् ) धारणी वा प्रवाह को ( आससाव ) प्राप्त कराता है ( ये ) जो मनुष्य ( ऋता ) सत्यों को ( सपन्त ) सयुक्त करते हुए ( वसूनि ) विद्या, सुवर्ण आदि वनों को ( विश्व-तन्ति ) ग्रन्थियुक्त करते हैं जिस लिए परमेश्वर ने ( प्रववाच ) कहा है ( आत् ) इसके पीछे ( इत् ) उसीके लिए सब सुख प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। किसी मनुष्य को परमेश्वर की उपासना वा विज्ञान, सत्यविद्या और उत्तम आचरणों के बिना सुख प्राप्त नहीं हो सकते ॥४॥



अब अगले मन्त्र में ईश्वर और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन किया है—

वि यो वीरुस्तु रोधन्मह्त्विजो मजा उत मध्वन्तः ।

चिचिरां दमं विश्वायुः सर्वेषु धीराः संमार्थं चक्रुः ॥५॥११॥

पदार्थ—हे ( धीराः ) ज्ञानवाले विद्वान् मनुष्यों ! ( सन्मार्थ ) अच्छे प्रकार जान कर ( सर्वेषु ) जैसे घर वा संधान के लिए जिस लाभ को ( चक्रुः ) करते हो वैसे ( यः ) जो जगदीश्वर वा विजुली ( मह्त्विजः ) सत्कार करके ( वीरुस्तु ) रचना विशेष से निरोध प्राप्त हुए कारण कार्य इन्हीं में ( मजाः ) प्रजा ( विरोधत् ) विशेष करके आबरण करता है जो ( उत, मध्वन्तः ) उत्पन्न होने वालों में भी ( अन्तः ) मध्य में वर्तमान है जो ( उत, विश्वायुः ) पूर्ण वायु युक्त भी ( चिचिरां ) अच्छे प्रकार जानने वाला ( दमे ) शान्तियुक्त घर तथा ( मध्वन्तः ) प्राण वा जलो के मध्य में प्रजा को धारण करता है उसकी सेवा अच्छे प्रकार करो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालकार हैं । मनुष्यों को चाहिए कि जो अन्तर्गमिक रूप तथा रूप वेगादि गुणों को प्रजा में नियत करता है उसी जगदीश्वर की उपासना और विद्युत् अग्नि को अपने कार्यों में समुक्त करके जैसे विद्वान् लोग घर में स्थित हुए संधान में शान्ति को जीतकर सुखी करते हैं वैसे सुखी करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर सभाष्यका और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सगति जाननी चाहिए ॥

यह सड़सठवाँ सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अब पञ्चाशत्पाठवर्धितमस्य सूक्तस्य शास्त्रस्य परास्तराद्विः । अग्निर्वेदता ।

१, ४, निचुत्पड्वित्, २, ३, ५ पड्वित्तद्वयम् ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे ईश्वर और विद्युत् अग्नि कैसे गुणवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्रीशम्पं स्थादिवं भुरग्युः स्थातुभरयंपक्तुन् व्यूणोत् ।

परि यदैवामेको विश्वेषां भुवदेवो देवानां महित्वा ॥१॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( भुरग्युः ) धारण वा पोषण करने वाला ( श्रीशम्पं ) परिपक्व करता हुआ मनुष्य ( विश्वम् ) प्रकाश करनेवाले परमेश्वर वा विद्युत् अग्नि के ( उपस्थात् ) उपस्थित होवे और ( स्थातुः ) स्थावर ( भरयम् ) जङ्गम तथा ( भक्तुन् ) प्रकट प्राप्त करने योग्य पदार्थों को ( व्यूणोत् ) माच्छादन वा स्वीकार करता है वह ( एवम् ) इन वर्तमान ( विश्वेषाम् ) सब ( देवानाम् ) विद्वानों के बीच ( एकः ) सहाय रहित ( देवः ) दिव्य गुणयुक्त ( महित्वा ) पूजा को प्राप्त होकर ( विश्वम् ) विश्व अर्थात् ऐश्वर्य को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । कोई मनुष्य परमेश्वर की उपासना वा विद्युत् अग्नि के आश्रय को छोड़कर सब परमार्थ और व्यवहार के सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

आदिते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यदेव जीवो जनिष्ठाः ।

मजन्त विश्वे देवत्वं नाम क्रतुं संपन्तो अमृतमेवैः ॥२॥

पदार्थ—हे ( देवः ) जगदीश्वर ! आप का आश्रय करके ( यत् ) जो ( विश्वे ) सब ( जनिष्ठाः ) प्रतिज्ञान युक्त ( संपन्तः ) एक सम्मत विद्वान् लोग ( एवैः ) प्राप्तिकारक गुणों और ( शुष्कात् ) वर्मानुष्ठान के तप से ( ते ) आपके ( देवत्वम् ) दिव्य गुण प्राप्त करने वाले ( क्रतुम् ) बुद्धि और कर्म ( नामः ) प्रसिद्ध अर्थयुक्त संज्ञा की सिद्ध ( जुषन्तः ) प्रीति से सेवा करें वे ( अमृतम् ) सत्य रूप को ( मजन्तः ) सेवन करते हैं वैसे ( अमृतम् ) मोक्ष को ( जीवो ) इच्छादि गुण-वाला चेतनस्वरूप मनुष्य ( आत् ) इस से अनन्त ( इत् ) ही इस सब को प्राप्त हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्य परमेश्वर की उपासना वा आज्ञानुष्ठान के बिना व्यवहार और परमार्थ के सुखों को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ २ ॥

फिर वे ईश्वर और विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

ऋतस्य प्रेषां ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।

यस्तुभ्यं दास्याद्यो वा ते शिशात्स्मै चिकित्वात्रयि दयस्व ॥३॥

पदार्थ—जिस ईश्वर वा विद्युत् अग्नि से ( विश्वे ) सब ( प्रेषाः ) अच्छी प्रकार जिन की इच्छा की जाती है वे बोधसमूह को प्राप्त होते हैं ( ऋतस्य ) सत्य विज्ञान तथा कारण का ( अपांसि ) धारण और ( विश्वायुः ) सब वायु प्राप्त होती है उस का आश्रय करके जो ( ऋतस्य ) स्वरूप प्रवाह से सत्य के बीच वर्तमान विद्वान् लोग ( अपांसि ) ग्राह्ययुक्त कर्मों को ( चक्रुः ) करते हैं ( यः ) जो मनुष्य इस विद्या को ( तुभ्यम् ) ईश्वर उपासना धर्म पुरुषार्थयुक्त मनुष्य के लिए ( दास्यात् ) देवे वा उस से ग्रहण करे ( वः ) जो ( चिकित्वात् ) जानबान् मनुष्य ( ते ) तेरे लिए ( शिशात् ) शिखा करे वा तुम्ह से शिखा लेवे ( तस्मै ) उस के लिए आप ( रयिम् ) सुवर्णादि धन को ( दयस्व ) दीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिए ईश्वर की रचना के बिना जब कारण से कुछ भी कार्य उत्पन्न वा नष्ट होने तथा आश्रय के बिना आश्रय भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता । और कोई मनुष्य कर्म के बिना कारण भर भी स्थित नहीं हो सकता । जो विद्वान् विद्या आदि उत्तम गुणों को अन्य सज्जनों के लिए देते तथा उनसे ग्रहण करते हैं, उन्हीं दोनों का सत्कार करें औरों का नहीं ॥ ३ ॥

फिर अष्टमापक और त्रिष्य कैसे हों यह विषय कहा है—

होता निषतो मनोरपत्ये स चिन्वासां पती रयीणाम् ।

इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्देभैरमूराः ॥४॥

पदार्थ—जो ( निषतः ) सर्वत्र स्थित ( मनोः ) मनुष्य के ( अपत्ये ) सन्तान में ( रयीणाम् ) राज्यधी आदि धनों का ( होता ) देने वाला है ( सः ) वह ईश्वर विद्युत् अग्नि ( आत्मा ) इन प्रजापति का ( पतिः ) पालन करने वाला है । हे ( अमूराः ) मूकपन आदि गुणों से रहित ज्ञानवाले ( स्वैः ) अपने ( देभैः ) शिक्षा सहित अनुराई आदि गुणों के साथ ( तनूषु ) शरीरों में वर्तमान होते हुए ( मिथः ) परस्पर ( रेतः ) विद्या, शिक्षारूपी वीर्य का विस्तार करते हुए तुम लोग इस की ( समिच्छन्तः ) अच्छे प्रकार शिक्षा करो ( चित् ) और तुम सब विद्याओं को ( नु ) शीघ्र ( जानतः ) अच्छे प्रकार जानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि परस्पर मित्र हो और समग्र विद्याओं को शीघ्र जानकर निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४ ॥

फिर वे पढ़ने और पढ़ानेहारे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ते अस्य शासं तुरासः ।

वि राय और्णोदुरं पुरुषुः पिपेक्ष नाकं स्तुमिर्दमूनाः ॥५॥१२॥

पदार्थ—( ये ) जो ( तुरासः ) अच्छे कर्मों को शीघ्र करने वाले मनुष्य ( पितुः ) पिता के ( पुत्राः ) पुत्रों के ( नः ) समान ( अस्य ) जगदीश्वर वा सत्पुरुष की ( शासन् ) शिक्षा को ( श्रोषन्ते ) सुनते हैं वे सुखी होते हैं जो ( दमूनाः ) शान्तिवाला ( पुरुषः ) बहुत अन्नादि पदार्थों से युक्त ( स्तुभिः ) प्राप्त करने योग्य गुणों से ( रायः ) धनो के ( और्णोत् ) स्वीकारकर्ता तथा ( नाकम् ) सुख को स्वीकार कर और ( दुरः ) हिंसा करने वाले शत्रुओं के ( पिपेक्षः ) अवयवों को पृथक्-पृथक् करता है उसी की सेवा सब मनुष्य करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जानना चाहिए कि ईश्वर की आज्ञापालन बिना किसी मनुष्य को कुछ भी सुख का सम्भव नहीं होता तथा जितेन्द्रियता आदि गुणों के बिना मनुष्य को सुख प्राप्त नहीं हो सकता । इससे ईश्वर की आज्ञा और जितेन्द्रियता आदि का सेवन अवश्य करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह अड़सठवाँ सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



पञ्चाशत्पाठवर्धितमस्य सूक्तस्य शास्त्रस्य परास्तराद्विः । अग्निर्वेदता ।

१ पड्वित्, २, ३ निचुत्पड्वित्, ४, भुरिक्पड्वित्,

५ विराट् पड्वित्तद्वयम् । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पत्राः संमीची दिवो न ज्योतिः ।

परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य ( उषः ) प्रातः काल की बेला के ( जारः ) वायु के हस्ता सूर्य के ( नः ) समान ( शुक्रः ) वीर्यवान् शुद्ध ( शुशुक्वाँ ) शुद्ध कराने ( पत्राः ) अपनी विद्या से पूर्ण ( भुवः ) भूमि के मध्य ( विश्वः ) प्रकाश से ( संमीची ) पृथिवी को प्राप्त हुए ( ज्योतिः ) दीप्ति के ( नः ) समान ( परिः ) सब प्रकार ( प्रजातः ) प्रसिद्ध उत्पन्न ( क्रत्वा ) उत्तम बुद्धि वा कर्म के साथ वर्तमान ( देवानाम् ) विद्वानों के ( पुत्रः ) पुत्र के तुल्य पढ़ने वाला सब विद्याओं को पढ़ के ( पिता ) पढ़ाने वाला ( बभूथः ) होता है उस का सेवन सब मनुष्य करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । विद्यार्थी हुए बिना कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता, और किसी मनुष्य को विजुली आदि विद्या तथा उसके संप्रयोग के बिना बड़ा भारी सुख भी नहीं हो सकता ॥ १ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

वेधा अहमो अभिर्विज्ञानमधर्न गोनां स्वाद्यां पितृनाम् ।

जने न श्रेव आहृत्यः सन्मथ्ये निषतो रणो दुरोणे ॥२॥

पदार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि जो ( गोवान् ) गौओं के ( ऊधः ) दूध के स्थान के ( नः ) समान ( जने ) गुणों से उत्तम, सेवन योग्य मनुष्य में ( श्रेवः ) सुख करने वाले के ( नः ) समान ( वेधा ) पूर्ण ज्ञानयुक्त ( अहमो ) मोह रहित ( स्वाद्यां ) स्वादिष्ट ( पितृनाम् ) अन्नो का भोक्ता ( दुरोणे ) घर में ( रणः ) रमण करने वाला ( आहृत्यः ) आह्वान करने योग्य सभा के मध्य में ( निषतः )

स्थित ( विज्ञानम् ) सब विद्या का अनुभव करता हुआ ( अग्निः ) अग्नि के मुख्य ज्ञानप्रकाश से युक्त सभाध्यक्ष है उस का सदा सेवन करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जैसे गीर्धों का ऐन दूध आदि से सब को सुख देता है वैसे विद्वान् मनुष्य सब का उपकारी होता है वैसे ही सब में अभिव्याप्त जीव के मध्य में अन्तर्ध्यामी रूप से व्याप्त ईश्वर पक्षपात को छोड़के न्याय करता है वैसे सभा आदि में स्थित सभापति तुम सब को सुख कराने वाले होओ ॥ २ ॥

पुत्रो न जातो रण्यो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।

विशो यदह्ने नृभिः सनीळा अभिर्द्वैत्वा विशान्यश्याः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! ( वत् ) जो ( अग्निः ) अग्नि के मुख्य सभाध्यक्ष ( दुरोणे ) गृह में ( जातः ) उत्पन्न हुआ ( पुत्रः ) पुत्र के ( न ) समान ( रण्यः ) रमणीय ( वाजी ) अश्व के ( न ) समान ( प्रीतः ) आनन्ददायक ( विशः ) प्रजा को ( बितारीत् ) दुःखों से छुड़ाता है ( अह्ने ) व्याप्त होने वाले व्यवहार में ( सनीळा ) समानस्थान ( विशः ) प्रजाधो को ( विशान्यः ) सब ( देवता ) विद्वानों के गुण कर्मों को प्राप्त करता है उस को तू ( अश्याः ) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को विज्ञान और विद्वानों के सङ्ग के बिना सब सुख प्राप्त नहीं हो सकते ऐसा जानना चाहिए ॥ ३ ॥

नकिष्ट एता व्रता भिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टि चकथे ।

तत्तु ते दसो यदहन्तसमानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो ( ते ) आप के ( एता ) ये ( व्रता ) व्रत हैं वे कोई भी ( नकि ) नहीं ( भिनन्ति ) हिंसा कर सकते हैं ( यत् ) जो आप ( एभ्यः ) इन ( नृभ्यः ) मनुष्यों के लिए ( यत् ) जिस ( श्रुष्टिम् ) शीघ्र सत्यविद्यासमूह को ( चकथे ) करते हो वा ( रपांसि ) सत्कर्म और व्यक्त उपदेशयुक्त वचनों को ( विवे ) प्राप्त करते हो तथा ( यत् ) जो ( ते ) आप का ( इवम् ) यह ( समान ) विद्यादि गुणों से मुख्य ( नृभिः ) मनुष्यों के साथ ( वंसः ) कर्म है ( तत् ) उसको ( तु ) कोई मनुष्य ( नकि ) नहीं ( अहन् ) हनन कर सकता जो ( युक्तः ) युक्त होकर आप करने हो उसको हम लोग भी सत्य ही जानते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि जैसे परमेश्वर वा पूर्णविद्यायुक्त विद्वान् पक्षपात छोड़कर मनुष्यादि प्राणियों में सत्य उपकार करने वाले कर्मों के साथ बर्ताव करें वैसे सदा वर्तें ॥ ४ ॥

उषो न जारो विभावोऽस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।

स्मना वहन्तो दुरो व्यूष्वभवन्त विश्वे स्वर्दृशीके ॥५॥१३॥

पदार्थ—जो ( उषः ) प्रातः काल के ( न ) समान ( जारः ) दुःख का नाश करने वाला ( अस्रः ) किरणों के समान ( संज्ञातरूपः ) अन्धो प्रकार रूप जानने ( विभावः ) सब प्रकाश करने वाला है उसको मनुष्य ( चिकेतत् ) जाने ( अस्मै ) उस ईश्वर वा विद्वान् के लिए सब कुछ उत्तम पदार्थ समर्पण करे। हे मनुष्यो ! जैसे इस प्रकार करते हुए ( विश्वे ) सब विद्वान् लोग ( स्मना ) आत्मा से ( स्वः ) सुख प्राप्त करने वाले विद्यासमूह को ( वहन्तः ) प्राप्त होते हुए ( दृशीके ) देखने योग्य व्यवहार में ( दुरः ) मनुष्यों को ( व्यूष्वन् ) मारते तथा सज्जनों की प्रशंसा करते हैं वैसे तुम भी मनुष्यों का मारो तथा ( नवन्तः ) सज्जनों की स्तुति करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष, उपमा और लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जो मूर्ख के समान विद्या का प्रकाशक अग्नि के समान सब दुःखों को भस्म करनेवाला परमेश्वर वा विद्वान् है उसको अपने आत्मा से आश्रय कर दुष्ट-व्यवहारों को त्याग और सत्यव्यवहारों में स्थित होकर सदा सुख की प्राप्ति हो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् बिजुली और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनहत्तरवाँ सूक्त तथा तेरहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ षड्वचस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य परास्परश्रुतिः । अग्निर्वेत्ता । १, ४

बिराट्पङ्क्तिः, २ पङ्क्तिः, ३, ५ निष्पत् पङ्क्तिः, ६

माधुषी पङ्क्तिवृद्धन्वः । पञ्चम स्वरः ॥

अथ सत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है। इसके पहले मन्त्र में

मनुष्यों के गुणों का उपदेश किया है—

वनेम पूर्वीर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।

आ हैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥१॥

पदार्थ—हम लोग जो ( सुशोकः ) उत्तम दीप्तियुक्त ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् ( अग्निः ) ज्ञान आदि गुण वाला ( अयम् ) ईश्वर वा मनुष्य ( मनीषा ) बुद्धि तथा विज्ञान से ( पूर्वीः ) पूर्व हुई प्रजा और ( विश्वानि ) सब ( हैव्यानि ) दिव्य गुण वा कर्मों से सिद्ध हुए ( व्रता ) विद्याधर्मानुष्ठान और ( मानुषस्य )

मनुष्य आदि में हुए ( जन्मस्य ) श्रेष्ठ विद्वान् मनुष्य के ( जन्म ) शरीरधारण से उत्पत्ति को ( अयम् ) अन्धो प्रकार प्राप्त करता है उसका ( आश्रयेम ) अन्धो प्रकार विभाग से सेवन करें ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जिस जगदीश्वर वा मनुष्य के कार्य कारण और जीव प्रजा शुद्ध गुण और कर्मों को व्याप्त किया करे उसी की उपासना वा सत्कार करना चाहिए क्योंकि इसके बिना मनुष्य जन्म ही व्यर्थ जाता है ॥१॥

फिर यह केता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथां ।

अद्रीं चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥२॥

पदार्थ—हम लोग जो जगदीश्वर वा जीव (अपाम्) प्राण वा जलों के (अमृत) बीच (गर्भः) स्तुति योग्य वा भीतर रहने वाला (वनानाम्) सम्यक् सेवा करने योग्य पदार्थ वा किरणों में (गर्भः) गर्भ के समान आच्छादित (अद्रीं) पर्वत आदि बड़े-बड़े पदार्थों में (चित्) भी गर्भ के समान (दुरोणे) घर में गर्भ के समान (विश्वः) सब चेतन तत्त्वस्वरूप (अमृत) नाशरहित (स्वाधीः) अन्धो प्रकार पदार्थों का चिन्तन करने वाला (चिदस्मा) प्रजाधो के बीच प्रकाश वायु के (न) समान बाह्यदेशों में भी सब दिव्य गुण कर्मयुक्त व्रतों को (अमृतः) प्राप्त होने (अमृतः) उसके लिए सब पदार्थ हैं उसका (आश्रयेम) सेवन करें ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। पूर्व मन्त्र से (अमृतः, अनेम, विश्वानि, हैव्यानि, व्रता) इन पाँच पदों की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के बिना कोई भी वस्तु अव्याप्त नहीं है और चेतनस्वरूप जीव अपने कर्म के फलभोग से एक क्षण भी अलग नहीं रहता। इससे उस सब में अभि-व्याप्त अन्तर्ध्यामी ईश्वर को जानकर सर्वदा पापों को छोड़कर धर्मयुक्त कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए। जैसे पृथिवी आदि कार्य रूप प्रजा अनेक तत्त्वों के संयोग से उत्पन्न और वियोग से नष्ट होती है वैसे यह ईश्वर जीव कारणरूप आदि वा संयोग वियोग से अलग होने से अनादि है ऐसा जानना चाहिए ॥२॥

फिर यह मनुष्य कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स हि क्षपावीं अग्नी रयीणां दाशद्योऽस्मा अरं सूकेः ।

एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥३॥

पदार्थ—हे (चिकित्वः) ज्ञानवान् जगदीश्वर वा (विद्वान्) जानने वाले (य) जो (अपामान्) जिस में उत्तम बहुत राशि हैं (अग्निः) सब सुखों की देने वाली बिजुली के समान (अमृतः) इन (रयीणाम्) विद्या रत्न, राज्य आदि पदार्थों की (अमृतः) पूर्णप्राप्ति के लिए (एता) इन (अमृतः) पूर्ण (सूक्ते) उत्तम वचनों से (भूमः) बहुत (देवानाम्) दिव्यगुण वा विद्वानों के (जन्म) जन्म (मर्तान्) मनुष्य (च) मनुष्य से भिन्नों को (दाशत्) देते हो (सः) तो आप (हि) निश्चय करके इनकी (नि पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिए ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो परमेश्वर वेद अन्तर्ध्यामित्र द्वारा तथा उपदेशों से सब मनुष्यों के लिए सब विद्याओं को देता है मनुष्यों को उसकी उपासना तथा सत्सङ्ग करना चाहिए ॥३॥

फिर यह मनुष्य कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्यातुश्च रथमृतप्रवीतम् ।

अराधि होता स्वर्निषत्तः कुण्वन् विश्वान्यपासि सत्या ॥४॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो (अराधि) सिद्ध हुआ वा (वन्) जिस परमेश्वर तथा जीव को (पूर्वीः) सनातन (क्षपः) शान्तियुक्त राशि (विरूपाः) नाना प्रकार के रूपों से युक्त प्रजा (वर्धान्यं) बढ़ाती है जिसने (स्यातु) स्थित जगत् के (मृतप्रवीतम्) सत्य कारण से उत्पन्न वा जल से बलावे हुए (रथम्) रमण करने योग्य ससार वा यान को बनाया जो (स्वः) सुखस्वरूप वा सुख करनेहारा (विषत्) निरन्तर स्थित (होता) ग्रहण करने वा देने वाला (विश्वानि) सब (सत्या) सत्य धर्म से शुद्ध हुए (अपांसि) कर्मों को (कुण्वन्) करता हुआ वर्तता है उसको जाने वा सत्सङ्ग करें ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जिस परमेश्वर का ज्ञान कगने वाली यह सब प्रजा है वा जिसको जानना चाहिए, जिसके उत्पन्न करने के बिना किसी की उत्पत्ति का सम्भव नहीं होता, जिसके पुष्टार्थ के बिना कुछ भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता और जो सत्यमानी, मत्प्रकारी, मत्प्रवादी हो उसीका मदा सेवन करें ॥४॥

फिर ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

गोषु प्रशस्ति वनेषु भिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्गाः ।

वि त्वा नरः पुरुषा संषर्यन् गितुर्न जित्रं वि वेदो भरन्त ॥५॥

पदार्थ—हे (भरन्त) सब विश्व वा सब गुणों की धारण करने वाले जगदीश्वर ! जिस कारण (पुरुषा) बहुत दान करने योग्य आप (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थों में (बलिम्) संवरण (स्वः) आदित्य (वनेषु) किरणों में (प्रशस्तिम्) उत्तम व्यवहार और (न) हम लोगों को (विषिषे) विशेष धारण करते हो (विष्वे) सब (नरः) इससे विद्वान् लोग जैसे (पुरुषाः) पुत्र (वित्रेः) मृदा-वस्था को प्राप्त हुए (पितुः) पिता के सकाश से (वेदः) विद्याधन को (भरन्त) धारण करें (न) वैसे (त्वा) आप का (संषर्यन्) सेवन करते हैं ॥५॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में उपमालकार है। हे मनुष्यो ! तुम सब लोग जिस जगदीश्वर ने सनातन कारण से सब कार्य अर्थात् स्थूलरूप वस्तुओं को उत्पन्न करके स्वर्ग आदि गुणों को प्रकाशित किया है, जिसकी सृष्टि में उत्पन्न हुए सब पदार्थों के पिता पुत्र के समान सब जीव दायभायी हैं जो सब प्राणियों के लिए सब सुखों को देता है उसीकी आत्मा मन, वाणी और शरीर और धनो से सेवा करो ॥५॥

किर वह सभाध्यक्ष कैंसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**साधुर्न शुभ्रस्तेव शूरो यातैव भीमस्त्वेवः समस्तु ॥६॥१४॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम जो ( गुरु ) दूसरे के उत्कर्ष की इच्छा करने वाले ( साधुः ) परोपकारी मनुष्य के ( न ) समान ( अस्ता इव ) मनुष्यों के ऊपर शस्त्र पहुँचाने वाले ( शूरः ) शूरवीर के समान ( भीमः ) भयकर ( यातैव ) तथा दण्ड प्राप्त करने वाले के समान ( समस्तु ) संघर्षों में ( स्वेव ) प्रकाशमान परमेश्वर वा सभाध्यक्ष है उसका नित्य सेवन करो ॥६॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालकार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग परमेश्वर वा धर्मात्मा विद्वान् को छोड़कर मनुष्यों को जीतने और दण्ड देने तथा सुखों का बढ़ाने वाला धर्म कोई अपना राजा नहीं है ऐसा निश्चय करके सब लोग परोपकारी होके सुखों को बढ़ाओ ॥६॥

इस सूक्त में ईश्वर मनुष्य और सभा आदि अध्येक्ष के गुणों का वर्णन होने के इस सूक्त की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सत्तरवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥



अथ दशार्चस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य परासरण्यः । अग्निर्वैवता । १, ६, ७

त्रिष्टुप्, २, ५ त्रिष्टुप् त्रिष्टुप्, १, ४, ८, १० त्रिष्टुप्

त्रिष्टुप्छन्दः । वैवतः स्वरः । ६ भुरिकपङ्क्तिछन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ दशहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में सभाध्यक्ष आदि के गुणों का उपदेश किया है ॥

**उप प्र जिन्वन्शुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जर्नयः सनीळाः ।**

**स्वसारः श्यावीमरुषीमजुषश्चिन्मुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥१॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम विद्वान् लोग जिस ( नित्यम् ) व्यवहार रहित, स्वल्प से नित्य, अविनाशी ( जिन्वन् ) प्राणवर्णमूलकर्म और स्वभावयुक्त परमेश्वर वा सभाध्यक्ष के ( सनीळाः ) एक ईश्वर के बीच रहने से समानस्थान वाले ( जगत् ) प्रजा वा ( उशन्ती ) शोभायमान ( स्वसारः ) युवती भगिनी ( उज्ज्वलम् ) शोभायमान अपने-अपने ( पतिम् ) पालन करनेवाले पति के ( न ) समान तथा ( गावः ) किरण वा वेनु ( श्यावीम् ) घुमते वहाँ से युक्त वा ( अरुषीम् ) अत्यन्त लालचर्ण वाली ( उच्छन्तीम् ) विशेष बास कराती हुई ( उज्ज्वलम् ) प्रातःकाल की बेला के ( न ) समान ( अजुषम् ) सेवन करके ( जिन्वन् ) अत्यन्त तृप्त रहो ॥ १ ॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालकार है। सब मनुष्यों को चाहिए कि जैसे धर्मात्मा विदुषी स्त्री विवाहित पति का और धर्मात्मा विद्वान् मनुष्य विवाहित स्त्री का सेवन करता है, जैसे प्रातःकाल होते ही किरण वा गौ आदि पशु पृथिवी आदि पदार्थों का सेवन करते हैं वैसे ही परमेश्वर वा सभाध्यक्ष का निरन्तर सेवन करें ॥१॥

किर कित की कौन कैसे सेवा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**वीळु चिद् दृळ् पितरों न उष्यैरद्रि रजमङ्गिरसो रवेण ।**

**चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्ताः ॥२॥**

**पदार्थ**—हम लोगों को चाहिए कि जो ( पितरः ) ज्ञानी मनुष्य ( उष्ये ) कहे हुए उपदेशों से ( न ) हम लोगों के ( वीळु ) दृढ़ ( केतुम् ) प्रज्ञा ( वीळु ) बल ( स्व, चित् ) और सुख को ( उष्ये ) किरण वा ( गातुम् ) पृथिवी के समान ( अहः ) तथा दिन और ( बृहत् ) बड़े ( विदुः ) चोतमान पदार्थों के समान ( विविदुः ) जानते हैं वा ( अगिरसः ) वायु ( रवेण ) सूर्यसमूह से ( अग्निम् ) मेघ को ( उष्यन् ) पृथिवी पर गिराते हुए के समान ( अस्मि ) हम लोगों के दुःखों को ( वीळुः ) नष्ट करने हैं उनको सेवा ॥२॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। मनुष्यों को चाहिए कि पूर्णविद्यायुक्त विद्वानों का सेवन तथा विद्या बुद्धि को उत्पन्न करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फलों का सेवन करें ॥२॥

जैसे ब्रह्मचर्याश्रम का सेवन करके पुण्य विद्वान् होते हैं वैसे स्त्रियों की भी होना योग्य है यह विषय कहा है—

**दधन्मृतं धनयमस्य भीतिमादिद्वयोर्दिविष्वोर्द्विभृजाः ।**

**अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा बर्धयन्तीः ॥३॥**

**पदार्थ**—जो ( विभृजाः ) विशेष धारण करने वाली ( दिविष्वः ) भूषण आदि से युक्त ( अतृष्यन्तीः ) तुल्ला आदि दोषों से युक्त ( बर्धयन्तीः ) उन्नति करने वाली कुमारी कन्या ( देवाः ) विद्या गुणों को प्राप्त होकर ( अतृष्यन्तीः ) वैश्य के ( इत् ) समान ( अतृष्यन्तीः ) सत्य विज्ञान को ( अतृष्यन्तीः ) विद्याजनयुक्त कर ( अतृष्यन्तीः )

इसके अनन्तर ( अतृष्यन्तीः ) ब्रह्मचर्य की ( भीतिम् ) धारणा को ( बध्नु ) धारण कर ( अतृष्यन्तीः ) अन्न के समान वर्तमान ( अतृष्यन्तीः ) कर्म ( देवान् ) विद्वान् ( जन्म ) और विद्या की प्राप्ति को ( अतृष्यन्तीः ) अतृष्यन्तीः प्रकार ( अतृष्यन्तीः ) प्राप्त होती है वेदादि शास्त्रों की विदुषी होकर सब सुखों को प्राप्त होती हैं ॥३॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे वैश्य लोग धर्म के अनुकूल धन का संभय करते हैं वैसे ही कन्या विवाह से पहले ब्रह्मचर्यपूर्वक पूर्ण विदुषी पढ़ाने वाली स्त्रियों को प्राप्त हो पूर्णशिक्षा और विद्या का ग्रहण तथा विवाह करके प्रजासुख को सम्पादन करे। विवाह के पीछे विद्याध्ययन का समय नहीं समझना चाहिए। किसी पुरुष वा स्त्री को विद्या के पढ़ने का अधिकार नहीं है ऐसा किसी को नहीं समझना चाहिए किन्तु सर्वथा सबको पढ़ने का अधिकार है ॥३॥

किर उन स्त्रियों को कैसा होना चाहिए इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

**मथीघर्दी विभृतो मातरिषां गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत ।**

**आर्दी राज्ञे न सहीयसे सच्चा सच्चा दूत्यर्धगवायो विवाय ॥४॥**

**पदार्थ**—( भगवान् ) अनेकविध पदार्थविद्या से पदार्थों को व्यवहार में लानेहारों के तुल्य विद्याग्रहण की हुई कन्याओं। जैसे यह ( विभृतः ) अनेक प्रकार की पदार्थविद्या का धारण करने वाला ( श्येतः ) प्राप्त होने का ( जेन्यः ) और विषय का हेतु तथा ( मातरिषां ) अन्तरिक्ष में सोने आदि विहारों का करने वाला वायु ( अतृष्यन्तीः ) जो ( दूत्यर्धम् ) दूत का कर्म है उसको ( आर्दीराज्ञे ) अतृष्यन्तीः प्रकार स्वीकार करता और ( गृहे-गृहे ) घर-घर अर्थात् कलायन्त्रों के कोठे-कोठे में ( ईम् ) प्राप्त हुए अग्नि को ( अर्दीराज्ञे ) मचता है ( अतृष्यन्तीः ) अथवा ( सहीयसे ) यज्ञ से सहने वाले ( राज्ञे ) राजा के लिए ( न ) जैसे ( ईम् ) विजय सुख प्राप्त कराने वाली सेना ( सच्चा ) सङ्गति के साथ ( सन् ) वर्तमान ( दूत्यर्धम् ) होती है वैसे विद्या के योग से सुख कराने वाली होओ ॥४॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है। विद्याग्रहण के बिना स्त्रियों को कुछ भी सुख नहीं होता जैसे आदिवासी का ग्रहण किये हुए सूड़ पुरुष उत्तमलक्षण युक्त विद्वान् स्त्रियों को पीड़ा देते हैं, वैसे विद्या, शिक्षा से रहित स्त्री अपने विद्वान् पतियों को दुःख देती हैं। इससे विद्या ग्रहण के अनन्तर ही परस्पर प्रीति के साथ स्वयंवर विधान से विवाह कर निरन्तर सुखयुक्त होना चाहिए ॥४॥

किर सूर्य के समान अध्येक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

**महे यत्पित्र ई रसं दिवे करव त्सरस्पृशन्त्यधिकित्वान् ।**

**सुजदस्ता धृषता दिधुमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषि धात् ॥५॥१५॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को जैसे ( अतृष्यन्तीः ) जो ( कः ) सुखदाता ( पुण्यः ) स्पर्श करने ( अतृष्यन्तीः ) फेंकने ( अधिकित्वान् ) जानने ( देवः ) विद्या प्रकाश के देखने वाला सूर्य ( महे ) बड़े ( दिवे ) प्रकाश के देने से पालन करने वाले ( दिवे ) प्रकाश के लिए ( ईम् ) प्राप्त करने योग्य ( रसम् ) घोषण के फल को ( अतृष्यन्तीः ) रचता ( ईम्, त्सरत् ) अन्धकार को दूर करता ( स्वायां ) अपनी ( दुहितरि ) कन्या के समान उषा में ( त्विषिम् ) प्रकाश वा तेज को ( धात् ) धारण करता उसके अनन्तर ( विधुम् ) दीप्ति को ( धृषता ) दृढ़ता से सुख देता है वैसे किया करो ॥५॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। सब माता-पिता आदि मनुष्यों को अपने-अपने मन्त्रानो में विद्यास्थापन करना चाहिए। जैसे प्रकाशमान सूर्य सबको प्रकाश करके आनन्दित करता है वैसे ही विद्यायुक्त पुत्र वा पुत्री सब सुखों को देते हैं ॥५॥

किर भी अध्येक्ष के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**स्व आ यस्तुम्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु धून ।**

**वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विर्वा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥६॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) विज्ञानप्रद ! ( वर्धो, द्विर्वा ) विद्या और शिक्षा से बार-बार बढ़ानेहार आप जैसे मजिना ( स्वे ) अपने ( दमे ) घर में ( तुम्यम् ) तुम को ( नमः ) अन्न ( आवासात् ) अतृष्यन्तीः प्रकार देता ( आविभाति ) और अत्यन्त प्रकाश को करता ( वा ) अथवा ( अतृष्यन्तीः ) इस जगत् की ( वयः ) अवस्था को ( यासत् ) पहुँचाता है वैसे ( यः ) जो शिष्य अपने घर में तुम्हारे लिए अन्न देता अर्थात् यथायोग्य सत्कार करता और आप से गुणों को प्राप्त हुआ प्रकाशित होता अथवा इस अपने पुत्र आदि की अवस्था को पहुँचाता अर्थात् औषधि आदि पदार्थों में नीरोगता को प्राप्त करता है और ( राया ) विद्यादि धन ( सरथम् ) मनोहर कर्म का गुणों के सहित ( यम् ) जिस मनुष्य को ( जुनासि ) व्यवहार में चलाते हो उन सबको ( अनुधून् ) प्रतिदिन ( उशतः ) अति उत्तम कीजिए ॥६॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जो तुम्हारे पिता अर्थात् उत्पन्न करने वाले वा पढ़ाने वाले आचार्य तुम्हारे लिए उत्तम शिक्षा के सूर्य के समान विद्याप्रकाश वा अन्नादि देकर सुखी रखते हैं उनका निरन्तर सेवन करो ॥६॥

किर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अग्निं विश्वा अभि पूषः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यज्ञीः ।**

**न जायिमिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥७॥**

**पदार्थ**—जो ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् ज्ञान का हेतु ( नः ) हम लोगों को



( वेदेभ्यः ) विद्वान् वा दिव्यगुणों में ( प्रवर्तिष्य ) उत्तम ज्ञान को ( विद्याः ) प्राप्त करता ( यः ) जीवन का ( विवर्तितः ) विशेष ज्ञान कराता है उस ( अग्निम् ) अग्नि के समान विद्वान् ( विद्वान् ) सब ( पुंसः ) विद्यासम्पर्क करने वाले पुत्र वा दीप्ति ( समुद्रम् ) समुद्र वा ( जम्बतः ) नदी के समान बरीर को गमन कराते हुए ( सप्त ) सात प्रधातु प्राण, प्रपान, ध्यान, उदान, समान इन पाँच के धीरे सूत्ररूप आत्मा के समान तथा ( यज्ञीः ) यज्ञिर वा बिजुली आदि की गतियों के ( न ) समान ( अभिलक्षणे ) सम्बन्ध करती हैं जिससे हम लोग मूर्ख वा दुष्ट देने वाली ( जानिभिः ) स्त्रियों के साथ ( न ) नहीं वसे ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकानुत्प्रेषणमालकार है। जैसे समुद्र को नदी वा प्राणों को बिजुली आदि गतिसंयुक्त करती हैं वैसे ही मनुष्य सब पुत्र वा कन्या ब्रह्मचर्य से विद्या वा व्रतों को सम्प्राप्त करके युवावस्था वाले होकर विद्या से सन्तानों को उत्पन्न कर उनको इसी प्रकार विद्या शिक्षा सदा ग्रहण करावें। पुत्रों के लिए विद्या वा उत्तम शिक्षा करने के समान कोई बड़ा उपकार नहीं है ॥ ७ ॥

फिर वह अध्यापक कौसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ यद्विधे नृपति तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं औरभीकं ।

अग्निः शर्धेनवद्यं युवानं स्वाध्वं जनयस्त्वदयच्छ ॥८॥

पदार्थ—हे युवते ! जैसे ( यौ ) प्रकाशस्वरूप ( अग्निः ) विद्युत् ( अभीके ) सग्राम में ( इधे ) इच्छा की पूर्णता के लिए ( यत् ) जो ( निवर्तितम् ) स्थापन किये हुए ( शुचि ) पवित्र ( रेतः ) वीर्य और ( तेजः ) प्रगल्भता को ( आनट् ) प्राप्त करती है उससे युक्त तू वैसे ( शर्धम् ) बली ( अयच्छन् ) निन्दारहित ( युवानम् ) युवावस्था वाले ( स्वाध्वम् ) उत्तम विद्यायुक्त विद्वान् ( नृपतिम् ) मनुष्यों में राजमान पति को स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त होके ( आजनयत् ) सन्तानों को उत्पन्न ( च ) और प्रविद्या दुष्ट को ( सूषयत् ) दूर कर ॥ ८ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को जानना चाहिए कि कभी उत्तम विद्या वा प्रदीप्त अग्नि के समान विद्वान् के बिना व्यवहार और परमार्थ के सुख प्राप्त नहीं होते और अपने सन्तानों का विद्या देने के बिना माता-पिता आदि कृतकृत्य नहीं हो सकते ॥८॥

विद्या से क्या प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकं सत्रा सृगे वस्व ईशे ।

राजांना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! तुम विद्वान्मनुष्य जैसे ( जन ) सकल्पविकल्परूप भ्रन्त करण की वृत्ति के ( न ) समान वा ( सूरः ) प्राणियों के गर्भों को बाहर करनेवागी प्रागुत्थ बिजुली के तुल्य विमान आदि यानों से ( अध्वनः ) मार्गों को ( सद्य ) शीघ्र ( एति ) जाता और ( यः ) जो ( एक ) सहायग्रहित एकाकी ( सत्रा ) सत्य गुण, कर्म और स्वभाव वाला ( वस्व ) द्रव्यों को शीघ्र ( ईशे ) प्राप्त करता है वैसे ( गोषु ) पृथिवीराज्य में ( प्रियम् ) प्रीतिकारक ( अमृतम् ) सब सुखों दुखों के नाश करने वाले अमृत की ( रक्षमाणा ) रक्षा करने वाले ( सुपाणी ) उत्तम व्यवहारों से युक्त ( मित्रावरुणौ ) सब के मित्र सब से उत्तम ( राजांना ) सभा वा विद्या के अध्यक्षों के सदृश होके धर्म, धर्म, काम और मोक्ष को सिद्ध किया करो ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकानुत्प्रेषणमालकार है। जैसे मनुष्य विद्या और विद्वानों के संग के बिना विमानादि यानों को रक्ष और उनमें स्थित होकर देश देशान्तर में शीघ्र जाना-पाना, सत्य विज्ञान, उत्तम द्रव्यों की प्राप्ति और धर्मात्मा राजा राज्य के सम्पादन करने को समर्थ नहीं हो सकते वैसे स्त्री और पुरुषों में निरन्तर विद्या और शरीरबल की उन्नति के बिना सुख की बढ़ती कभी नहीं हो सकती ॥९॥

फिर वह कौसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

मा नौ अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।

नमो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्यां अभिशस्तेरधाहि ॥१०॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सब विद्याओं को प्राप्त हुए विद्वन् ! ( जरिमा ) स्तुति के योग्य ( कवि ) पूर्णविद्या को ( बिबुः ) जानने वाले ( सन् ) होकर आप ( नमोऽय न ) जैसे प्राकाश सब रूप वाले पदार्थों का अपने में नाश के समय गुप्त कर लेता है वैसे ( न ) हम लोगों के ( पुरा ) प्राचीन ( पित्र्याणि ) पिता आदि से भाये हुए ( सख्या ) मित्रता आदि कर्मों को ( अभि प्र मर्षिष्ठा ) नष्ट मत कीजिए और ( तस्या ) उम ( अभिशस्ते ) नाश को ( अधीहि ) अच्छी प्रकार स्मरण रखिए इसी प्रकार हाकर जो सुख को ( मिनाति ) नष्ट करता है उसको दूर कीजिए ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकानुत्प्रेषणमालकार है। जैसे रूप वाले पदार्थ सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर अन्तरिक्ष में नहीं दीखते वैसे हम लोगों के मित्रपन आदि व्यवहार नष्ट न होवें किन्तु हम सब लोग विरोध सर्वथा छोड़कर परस्पर मित्र होके सब काल में सुखी रहें ॥१०॥

इस सूक्त में ईश्वर, सभाध्यक्ष, स्त्री, पुरुष और बिजुली, विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ मंगति समझनी चाहिए ॥

यह इकहत्तरवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ इन्द्राव्यय द्विस्तुतितमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१,२,५,६,८, विराट् त्रिष्टुप्, ऋचतः स्वरः, ४,१० त्रिष्टुप्,

७ त्रिष्टुप् छन्दः । ३,८ भुरिकपङ्क्तिस्तच्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया है इसके पहले मन्त्र में मनुष्यों को वेदों के पढ़ने-पढ़ाने से क्या-क्या फल होता है

इस विषय को कहा है—

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरुषि ।

अग्निर्भुवद्रथिपति रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥१॥

पदार्थ—जो ( अग्निः ) अग्नि के तुल्य विद्वान् मनुष्य ( वेधसः ) सब विद्याओं के धारण और विमान करनेवाले ( शश्वतः ) अनादि स्वरूप परमेश्वर के सम्बन्ध से प्रकाशित हुए ( पुरुषि ) बहुत ( सत्रा ) सत्य धर्म के प्रकाश करने तथा ( अमृतानि ) मोक्षपर्यन्त धर्मों को प्राप्त करनेवाले ( विद्या ) सब ( मर्ष्या ) मनुष्यों को सुख होने के हेतु ( काव्या ) सर्वज्ञ निमित्त वेदों के स्तोत्र हैं उन को ( हस्ते ) हाथ में प्रत्यक्ष पदार्थ के तुल्य ( दधान ) धारण कर तथा विद्या प्रकाश को ( चक्राणः ) करता हुआ धर्मावरण को ( नि कः ) निश्चय करके सिद्ध करता है वह ( रयीणाम् ) विद्या, चक्रवर्ति राज्य आदि धनो का ( रथिपतिः ) पालन करने वाला धीपति ( भुवत् ) होता है ॥१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! अनन्त सत्यविद्यायुक्त अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर ने तुम लोगों के हित के लिए जिन अपने विद्यामय अनादि रूप वेदों को प्रकाशित किया है उनको पढ़-पढ़ा और धर्मात्मा विद्वान् होकर धर्म, धर्म, काम, मोक्ष आदि फलों को सिद्ध करो ॥१॥

जो लोग इन उक्त वेदों को पढ़ते हैं वे ही सदा आनन्द में रहते हैं और जो

नहीं पढ़ते उनका परिश्रम व्यर्थ जाता है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

अस्मे वत्सं परि पन्तं न विन्दभिच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।

अमयुवः पदध्व्यो धियन्धास्तस्युः पदे परमे चर्वग्ने ॥२॥

पदार्थ—जो ( विश्वे ) सब ( अमृता ) उत्पत्तिमृत्युरहित अनादि ( अमूराः ) मृततादि दोषरहित ( अमयुवः ) अम से युक्त ( पदध्व्यः ) सुखों को प्राप्त ( धियन्धा ) बुद्धि वा कर्म को धारण करने वाले ( इच्छन्तः ) अडालू होकर मनुष्य ( अस्मे ) हम लोगों को ( वत्सम् ) पुत्रवत्सुखों में निवास कराती हुई प्रसिद्ध चारों वेद से युक्त वारुणी के ( सन्तम् ) वर्तमान को ( परिबिन्धन् ) प्राप्त करने हैं वे ( अग्ने , वाक् ) श्रेष्ठ जैसे ही वैसे परमात्मा के ( परमे ) सब से उत्तम ( पदे ) प्राप्त होने योग्य सुखरूपी मोक्ष पद में ( तस्युः ) स्थित होते हैं और जो नहीं जानने वे उम ब्रह्म पद को प्राप्त नहीं होते ॥२॥

भाषार्थ—सब जीव अनादि हैं जो इनके बीच मनुष्य देहधारी है उनके प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम सब लोग वेदों को पढ़-पढ़ाकर भ्रमण से जानवाले पुरुषार्थी होके सुख भोगो क्योंकि वेदार्थज्ञान के बिना कोई भी मनुष्य सत्य विद्याओं को प्राप्त नहीं हो सकता इससे तुम लोगों को वेदविद्या की वृद्धि निरन्तर करनी उचित है ॥२॥

फिर वे उन वेदों को किसलिए पढ़ें इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्रामिच्छुचि धृतेन शुचयः सपर्यान् ।

नामानि चिहधरे याज्ञियान्यसृदयन्त तन्वः सुजाताः ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( यत् ) जो ( शुचयः ) पवित्र ( सुजाताः ) विद्याक्रियाओं में उत्तम कुशलता से प्रसिद्ध मनुष्य ( शुचिम् ) पवित्र ( त्वाम् ) तुमको ( तिस्रः ) तीन ( शरदः ) ऋतु वाले मन्त्रमंत्रों को ( सपर्यान् ) सेवन करें वे ( इत् ) हो ( याज्ञियानि ) कर्म, उपमना और ज्ञान को सिद्ध करने योग्य व्यवहार ( नामानि ) धर्मज्ञान सहित सज्ञाओं को ( चिहधरे ) धारण करें ( धृत् ) और ( धृतेन ) धृति वा जल के साथ ( तन्वः ) शरीरों को भी ( असृदयन्त ) चलावें ॥३॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य वेदविद्या के बिना पढ़े विद्वान् नहीं हो सकता और विद्याओं के बिना निश्चय करके मनुष्यजन्म की सफलता तथा पवित्रता नहीं होती इसीलिए सब मनुष्यों को उचित है कि इस धर्म का सेवन निरन्तर करें ॥३॥

वेदों को पढ़ने वाले किस प्रकार के हो इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

आ रादसी बृहती वेविद्वानाः प्र रुद्रियां जत्रिरे यज्ञियासः ।

विदन्मतो नेमथिता चिकित्वानग्नि पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४॥

पदार्थ—जो ( रुद्रिया ) वृष्ट शत्रुओं को रलाने वाले के सम्बन्धी ( वेविद्वाना ) अत्यन्त ज्ञानयुक्त ( यज्ञियासः ) यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् लोग ( बृहती ) बड़े ( नेवसी ) भूमि राज्य वा विद्या प्रकाश को ( आबिधरे ) धारण पोषण करते और समग्र विद्याओं का जानते हैं उनसे विज्ञान को प्राप्त होकर जो ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् ( नेमथिता ) प्राप्त पदार्थों का धारण करने वाला

(कर्तृः) मनुष्य (धरते) सबसे उत्तम (पदे) प्राप्त करने योग्य मोक्ष पद में (सन्निवृत्तम्) स्थित हुए (अग्निम्) परमेश्वर को (प्रविष्टम्) जानता है वही सुख भोक्ता है ॥४॥

आचार्य—मनुष्यों को चाहिए कि वेद के जाननेवाले विद्वानों से उत्तम नियम द्वारा वेदविद्या को प्राप्त हो, विद्वान् होने परमेश्वर तथा उनके रत्ने हुए जगत् को जान अन्य मनुष्यों के लिए निरन्तर विद्या देवे ॥४॥

किर वे विद्वान् कैसे हों यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

संजानाना उप सीदभभिभु परनीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।

रिक्विवांसस्तन्वः कुवत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रसमाणाः

॥५॥१७॥

पदार्थ—जो (संजानानाः) अच्छी प्रकार जानते हुए (पत्नीवन्त) प्रसन्न होकर विद्यायुक्त पक्ष को जाननेवाली स्त्रियों के सहित (रसमाणाः) धर्म और विद्या की रक्षा करते हुए विद्वान् लोग (रिक्विवांसः) विशेष करके पापों से युक्त (अभिभु) अघातों से (उपसीदन्) सम्मुख समीप बैठना जानते हैं तथा (नमस्यन्) नमस्कार करने योग्य परमेश्वर और पढ़ानेवाले विद्वान् का (नमस्यन्) सत्कार करते और (निमिषि) अधिक विद्या के होने से स्पष्टयुक्त निरन्तर व्यवहार में क्षण-क्षण में (सख्युः) मित्र के (सखा) मित्र के समान (स्वाः) अपने (तन्वः) शरीरों को (कुवत) बल और रोगरहित करते हैं वे मनुष्य साम्यवादी होते हैं ॥५॥

आचार्य—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर और विद्वान् के सत्कार किये बिना किसी मनुष्य को विद्या के पूर्ण सुख नहीं हो सकते। इसलिये मनुष्यों को चाहिए कि सत्कार करने योग्य मनुष्यों का ही सत्कार और अयोग्यों का असत्कार करें ॥ ५ ॥

इन विद्वानों को विद्या से किसको जान के बर्तना योग्य है इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्रिः सप्त यद्गुणानि त्वे इत्यदाविदन् निहिता यज्ञियांसः ।

तेभिरक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूश्च स्थातृधरथं च पाहि ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यों ! जैसे (त्वे) कोई (यज्ञियांस) यज्ञ के सिद्ध करनेवाले विद्वान् (यत्) जिन (निहिता) व्यापित विद्यादि धनरूप (गुणानि) गुण वा सब प्रकार करने (पदा) प्राप्त होने योग्य (सप्त) सात अर्थात् चार वेदों और तीन क्रियाकौशल, विज्ञान और पुरुषार्थों की (त्रिः) अवस्था, मनन और विचार करने से (अभिभु) प्राप्त करते हैं वैसे तुम भी इन को प्राप्त होओ। वे जानने की इच्छा करनेवाले सज्जन ! जैसे (सजोषा) समान प्रीति के सेवन करने वाले (तेभिः) उन्होसे (अमृतम्) धर्म, धर्म, काम और मोक्षरूपी सुख (पशून्) पशुओं के सुख्य भूखत्तयुक्त मनुष्य वा पशु आदि (च) औरभृत्य आदि (स्थातृन्) भूमि आदि स्थावर (च) और राज्य रत्नानि सम्पदा (धरथम्) मनुष्य आदि अङ्गम (च) और स्त्री, पुत्र आदि की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं। वैसे इन की तू (इत्) भी (पाहि) रक्षा कर ॥ ६ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों का अनुकरण करें सुखों का नहीं जैसे सज्जन पुरुष उत्तम कार्यों में प्रवृत्त होते और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देते हैं वैसे ही सब मनुष्य करें ॥ ६ ॥

किर भी अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

विद्वं अग्रे वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् शुरुषो जीवसे धाः ।

अन्तर्विद्वं अर्चन्तो देवयानानतन्द्रो वृतो अमवो हविर्वाट् ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब सुख प्राप्त करानेवाले जगदीश्वर ! जिस कारण (अन्तर्विद्वान्) अन्तःकरण के सब व्यवहारों को तथा (विद्वान्) बाहर के कार्यों को जाननेवाले (अतन्द्रः) आलस्य रहित (हविर्वाट्) विज्ञान आदि प्राप्त कराने वाले आप (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (वयुनानि) विज्ञानों को (जीवसे) जीवन के लिए (शुरुषः) प्राप्त करने योग्य सुखों को (व्यानुषक्) अनुकूलतापूर्वक (विद्याः) विविध प्रकार से धारण करते हो वेद द्वारा (देवयानान्) विद्वानों के जाने-जाने वाले (अर्चन्तः) मार्गों के (वृत) विज्ञान करानेवाले (अमव) होते हो इससे आप का सत्कार हम लोग अवश्य करें ॥ ७ ॥

आचार्य—जो प्रार्थना वा सेवन किया हुआ ईश्वर धर्ममार्ग वा विज्ञान को विचारकर सुखों को देता है उस का सेवन अवश्य करना चाहिए ॥ ७ ॥

किर वे ब्रह्म के जाननेवाले विद्वान् कैसे होते हैं इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

स्वाध्वो दिव आ सप्त यही रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।

विद्वद्वाप्यं सरमा एव्यसुर्व येना नु कं मानुषी योजते चिद ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे-जैसे (स्वाध्वः) सब के कल्याण की यथावत् विचारने (व्यृतज्ञा) सत्य के जाननेवाले (देव) जिस पुरुषार्थ से (यही) बड़े (सप्त) सात सख्या वाले (विद्यः) सुख के मुख्य विद्या (रायः) प्रति उत्तम धनो के (दुरः) प्रवेश के स्थानों को (व्यानुषक्) जानते तथा (सरमा) बोध के समान करनेवाली (मानुषी) मनुष्यों की (चिद) प्रज्ञा (इव) पृथ, तिष्ठत (इवम्) दोषों का नाश (एवम्) पशु और इन्द्रियों के हितकारक सुख को (यु) भीष (विद्यम्) प्राप्त होती है वैसे इस कर्म का सदा सेवन करो ॥ ८ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को यह योग्य है कि जैसी विद्या को पढ़ें वैसी ही कष्ट-दुःख छोड़कर सब मनुष्यों को पढ़ावे और उपदेश करें जिस से मनुष्य लोग सब सुखों को प्राप्त हों ॥ ८ ॥

किर वे कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्यः कुयवानासो अमृतत्वाय गानुम् ।

महा मदङ्गिः पृथिवी वि तस्ये माता पुत्रैर्गदित्थिर्धायसे वेः ॥९॥

आचार्य—जैसे (जो) ये (अमृतत्वाय) मोक्षार्थ सुख होने के लिए (गानुम्) भूमि के समान बोध के कोश को (कुयवानास) सिद्ध करने हुए विद्वान् लोग (महाङ्गिः) अतिसुख करनेवाले गुणों के साथ (विद्या) सब (स्वपत्यानि) उत्तम शिक्षायुक्त पुत्रादिकों को (महा) बड़े-बड़े गुणों से (धायसे) धारण के लिए (पृथिवी) भूमि के तुल्य (पुत्रैः) पुत्रों के साथ (माता) माता के समान (गदित्थिः) प्रकाशस्वरूप सूर्य स्थान पदार्थों में (वेः) व्यापित करनेवाले पक्षी के समान (मातस्यु) स्थित होते हैं वैसे मैं इस कर्म का (वित्तये) विशेष करके ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को विद्वानों के समान अपने सन्तानों को विद्या-शिक्षा से युक्त करके धर्म, धर्म, काम और मोक्ष रूपी सुखों को प्राप्त करना चाहिए ॥ ९ ॥

किर वे विद्वान् किस का धारण करते हैं यह विषय कहा है—

अधि धियं नि दधुश्चरुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।

अथ क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः म नीचीरमे अक्षीरजानन् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—जैसे (यत्) जो (अमृता) मरण-जन्म रहित मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अस्मिन्) इस लोक में (धियम्) विद्या तथा राज्य के ऐश्वर्य की शोभा को (अधिनिधु) अधिक धारण (चरुम्) श्रेष्ठ व्यवहार (विद्यः) प्रकाश और विज्ञान से (अक्षी) बाहर-भीतर से देखने की विद्याओं को (अकृण्वन्) सिद्ध करते (सृष्टाः) उत्पन्न की हुई (सिन्धवः) नदियों के (न) समान (अथ) अनन्तर सुखों को (क्षरन्ति) देते हैं (नीची) निरन्तर सेवन करने तथा (अक्षी) प्रभात के समान सब सुख प्राप्त करनेवाली विद्या और क्रिया को (प्राजानन्) अच्छा जानते हैं वैसे हे (अग्ने) विद्वान् मनुष्य ! तू भी यथाशक्ति सब कर्मों को सिद्ध कर ॥ १० ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यों ! तुम लोग यथायोग्य विद्वानों के आचरण को स्वीकार करो और अविद्वानों का नहीं। तथा जैसे नदी सुखों के होने की हेतु होती है वैसे सब के लिए सुखों को उत्पन्न करो ॥ १० ॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

यह बहस्तरवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

५६

अथ वज्रार्थस्य विसप्ततितमस्य सूक्तस्य पराक्षर ऋषिः । अग्निर्वैवता १, २,

४, ५, ७, ८, १०, निवृत्तिवद्वृत्, ३, ६ चिद्वृत्; ८

विराद्विद्वृत्छन्दः । वीरत स्वरः ॥

अथ तिस्रतरवे सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

रयिर्न यः पितृविचो वयोधाः सुमणीतिभिकितुषो न शासुः ।

स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतैव मद्रुमं विधतो वि तारीत् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम (यः) जो विद्वान् (पितृविच) पिता-पितामहादि अध्यापकों से प्रतीत विद्यायुक्त हुए (रयि) धनसमूह के (न) समान (वयोधाः) जीवन को धारण करने (सुमणीति) उत्तम नीतियुक्त तथा (विभिकितुषो) उत्तमविद्या वाले (शासुः) उपदेशक मनुष्य के (न) समान (स्योनशी) विद्या, धर्म और पुरुषार्थयुक्त सुख में सोने (प्रीणान्) प्रमन्न तथा (अतिथिः) महाविद्वान् भ्रमण और उपदेश करनेवाले परोपकारी मनुष्य के (न) समान (विधतः) वा सब व्यवहारों को विधान करता है उस के (होतैव) देने-लेनेवाले (मद्रुम) घर के मुख्य वर्तमान शरीर का (वितारीत्) सेवन और उस से उपकार लेके सब को सुख देता है उसका नित्य सेवन और उस से परोपकार कराया करो ॥ १ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्याधर्माभुष्ठान, विद्वानों का संव तथा उत्तम विचार के बिना किसी मनुष्य को विद्या और सुशिक्षा का साक्षात्कार, पदार्थों का ज्ञान नहीं होता और निरन्तर भ्रमण करनेवाले अतिथि विद्वानों के उपदेश के बिना कोई मनुष्य सन्देशरहित नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को अच्छा आचरण करना चाहिए ॥ १ ॥

किर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

देवो न यः संविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।

पुरुषशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( य. ) जो ( सविता ) सूर्य ( देवः ) दिव्य गुण के ( न ) समान ( सत्यवत् ) मत्स्य को जानने वा जाननेवाला विद्वान् ( ज्ञेयः ) बुद्धि वा कर्म से ( विद्वान् ) सब ( ब्रह्मानि ) बलों की ( विपत्ति ) रक्षा करता है ( पुत्रप्रदायः ) बहुतों में प्रति श्रेष्ठ ( अमर्त्यः ) उत्तम स्वरूप के ( न ) समान ( सत्यः ) अविनाशित्वरूप ( विविधायाः ) धारण वा पापण करनेवाले ( आत्मेभ्यः ) आत्मा के समान ( सेवः ) मत्स्यरूप अध्यापक वा उपदेष्टा ( भूत् ) है उस का सेवन करके विद्या की उन्नति करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य विद्वानों के सत्संग से सत्यविद्या, बल, सुख और सौन्दर्य प्रादि के प्राप्त होने को समर्थ हो सकते हैं इस से इन दोनों का सेवन निरन्तर करें ॥ २ ॥

देवो न यः पृथिवी विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।

पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( य. ) जो ( देव ) अच्छे सुखों का देने वाला परमेश्वर वा विद्वान् ( पृथिवीम् ) भूमि के समान ( विश्वधाया ) विश्व को धारण करनेवाले ( हितमित्रः ) मित्रा को धारण किये हुए ( राजा ) सभा प्रादि के अध्यक्ष के ( न ) समान ( उपक्षेति ) जानता वा निवास कराता है तथा ( पुरःसदः ) प्रथम शत्रुओं को मारने वा युद्ध के जानने ( शर्मसदः ) सुख में स्थिर होने और ( वीरा ) युद्ध में शत्रुओं के फँकने वाले के ( न ) समान तथा ( अनवद्या ) विद्यासौन्दर्यादि शुद्धगुणयुक्त ( नारी ) नर की स्त्री ( पतिजुष्टेव ) जो कि पति की सेवा करनेवाली उस के समान सुखों में निवास कराता है उस को सदा सेवन करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य लोग परमेश्वर वा विद्वानों के साथ प्रेम-प्रीति से बचने के बिना सब बल वा सुखों को प्राप्त नहीं हो सकते इस से इन्हो के साथ सदा प्रीति करें ।

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिदमग्रे सचन्त भित्तिषु ध्रुवाम् ।

अधि धुम्नं नि दधुर्भ्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विज्ञान करानेवाले विद्वन् ! ( रयीणाम् ) विद्या और सब पृथिवी के राज्य से मित्र किये हुए धनो के ( धरुण ) धारण करनेवाले ( विश्वायुः ) सम्पूर्ण जीवनयुक्त आप ( अस्मिन् ) इस मनुष्य जन्म वा जगत् में सहायकारी ( भव ) हूँ जो ( ध्रुवि ) बहुत ( धुम्नम् ) विद्याप्राकाशरूपी धन और कीर्ति को धारण करते हो ( तत् ) उन ( नित्यम् ) निरन्तर ( इदम् ) प्रदीप्त ( त्वा ) आप को ( अयम् ) वृद्ध ( भित्तिषु ) भूमियों में जो ( नरः ) नयन करनेवाले सब मनुष्य ( अधिनिधुः ) धारण करे और ( इमे ) शान्तियुक्त घर में ( आसन्नम् ) सेवन करें उन का सेवन नित्य किया करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस जगदीश्वर ने अनेक पदार्थों को रच कर धारण किया है और जिस विद्वान् न जाना है उसकी उपासना वा मत्संग के बिना किसी मनुष्य को सुख नहीं होता ऐसा जानो ॥ ४ ॥

परमेश्वर की कृपा और विद्वानों के सङ्ग से मनुष्यों को क्या-क्या

प्राप्त होता है यह अगले मन्त्र में कहा है—

वि पृथ्वी अग्रे मध्वानो अश्रुर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।

सनेम वाजं समिधेव्यर्थो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) मुखस्वरूप विद्वान् आपके उपदेश से जैसे ( अर्थः ) स्वामी वा वैश्य ( भागम् ) सेवनीय पदार्थों के समान ( मध्वानः ) मत्कारयुक्त धनवाले ( ददतः ) दानशील ( सूरयः ) मेधावी लोग ( समिधेषु ) मशामो तथा ( देवेषु ) विद्वान् वा दिव्यगुणों में ( भागम् ) विज्ञान को ( दधाना ) धारण करते हुए ( श्रवसे ) श्रवण करने योग्य कीर्ति के लिए ( पुत्र ) अत्युत्तम धन और ( विश्वम् ) सब ( आयुः ) जीवन को ( दधयः ) विशेष करके भोगों वा ( विसनेम ) विशेष करके सेवन करें वैसे हम भी किया करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाधलुक्तोपमालङ्कार है। मनुष्य ईश्वर और विद्वानों के सहाय और अपने पुरुषार्थ में सब सुखों को प्राप्त हो सकते हैं अन्यथा नहीं ॥ ५ ॥

अब विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूष्नीः पीपयन्त धुमंहाः ।

परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्तरद्रिम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे ( वावशानाः ) अत्यन्त शोभायमान ( स्मदूष्नीः ) बहुत दूध देनेवाली ( धेनवः ) गायें ( पीपयन्तः ) दूध प्रादि से बढ़ाती हैं जैसे ( धुमंहाः ) प्रकाश से भिन्न-भिन्न किरणों ( परावतः ) दूरदेश में ( अग्निम् ) मेघ को ( समया ) समय पर वर्षति है ( सिन्धवः ) नदियाँ ( सस्तरः ) बहती हैं वैसे तुम ( सुमतिम् ) उत्तम विज्ञान को ( भिक्षमाणाः ) जिज्ञासा से ( वि ) विशेष जानकर अन्य मनुष्यों के लिए विद्या और सुशिक्षापूर्वक ( ऋतस्य हि ) मेघ से उत्पन्न हुए जल के समान सत्य ही की वर्या करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाधलुक्तोपमालङ्कार है। जैसे यज्ञ से सम्पत् प्रसार जोधा हुआ जल शक्ति को बढ़ाने वाला होकर विज्ञान को बढ़ाता है वैसे ही धर्मात्मा विद्वान् हो ॥ ६ ॥

हे मनुष्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वे अग्रे सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यक्षिणांसः ।

नहा च चक्रुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) पढ़ानेवाले विद्वन् ! जो ( दिवि ) प्रकाशस्वरूप ( त्वे ) आप के समीप स्थित हुए ( भिक्षमाणाः ) विद्याओं की शिक्षा करनेवाले ( यक्षिणांसः ) अध्ययनरूप कर्मचतुर विद्वान् लोग ( सुमतिम् ) उत्तम बुद्धि को ( दधिरे ) धारण करते तथा ( श्रवः ) श्रवण वा धन को ( सधुः ) धारण करते हैं ( नहा ) रात्रि ( च ) और ( उवसा ) दिन के साथ ( कृष्णम् ) वयाम ( अरुणम् ) लाल ( वर्णम् ) वर्णों को ( च ) तथा इन से भिन्न वर्णों से युक्त पदार्थों को धारण करते हैं ( च ) और ( विरूपे ) विरुद्ध रूपों का विज्ञान ( चक्रुः ) करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—परमेश्वर की सृष्टि के विज्ञान के बिना कोई मनुष्य पूर्ण विद्वान् होने को समर्थ नहीं होता। जैसे रात्रि, दिवस भिन्न-भिन्न रूप वाले हैं वैसे ही अनुकूल और विरुद्ध वर्मादि के विज्ञान से सब पदार्थों को जानने उपयोग में लें ॥ ७ ॥

फिर सृष्टिकर्ता ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यान् राये मर्तान्सुपूदो अग्रे ते स्याम मध्वानो वयं च ।

छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर ! जो आप ( यान् ) जिम ( सुपूदः ) अय-बुद्धि धर्मयुक्त ( मर्तान् ) मनुष्यों को ( राये ) विद्यादि धन के लिए ( सिसक्षि ) सयुक्त करते हो ( ते ) वे ( वयम् ) हम लोग ( मध्वानः ) प्रशंसा योग्य धनवाले ( स्याम ) होवें ( च ) और जो आप ( छायेव ) शरीरों की छाया के समान ( विश्वम् ) सब ( भुवनम् ) जगत् और ( रोदसी ) आकाश, पृथिवी और ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष को ( आपप्रिवान् ) पूर्ण करनेवाले हो उन आप की सब लोग उपासना करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर की उपासना और अपने पुरुषार्थ से आप विद्यादि धनवाले होकर सब मनुष्यों को भी करें ॥ ८ ॥

फिर वे मनुष्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

अर्वीक्षरये अर्वतो नृभिर्नृन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।

ईशानासः पितृवितस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्रुः ॥९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सब सुखों के प्राप्त करनेवाले परमेश्वर ! आप से ( त्वोता ) रक्षित हम लोग ( अर्वविभः ) प्रशंसा योग्य धोड़ों से ( अर्वतः ) धोड़ों को ( नृभिः ) विद्यादिश्रेष्ठगुणयुक्त मनुष्यों से ( नृन् ) शिक्षा धर्मवाले मनुष्यों और ( वीरैः ) शौर्यादियुक्त वीरवीरों से ( वीरान् ) शूरता प्रादि गुणवाले वीरवीरों की प्राप्ति ( वनुयाम ) होने को चाहे और पाचना करें। आप की कृपा में ( पितृवितस्य ) पिता के भोगे हुए ( रायः ) धन के ( ईशानासः ) समर्थ स्वामी हम लोग हैं और ( सूरयः ) मेधावी विद्वान् ( नः ) हम लोगो को ( शतहिमा ) सौ हेमन्त ऋतु पर्यन्त ( अश्रुः ) प्राप्त होते रहे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल बर्तने और अपने पुरुषार्थ के बिना उत्तम विद्या और पदार्थों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते इस से इस का सदा अनुष्ठान करना उचित है ॥ ९ ॥

फिर उस को उस के सहाय से क्या प्राप्त होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एता तं अग्न उचयानि वेधो जुष्टानि मन्तु मनसे हृदे च ।

शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवमरुत दधानाः ॥१०॥

पदार्थ—हे ( देवः ) सब के अन्त करण से रहने से सबको बुद्धिप्रद धर्ता ( अग्ने ) विज्ञान के देनेवाले जगदीश्वर ! ( ते ) आपकी कृपा से ( एता ) उचयानि वेधवचन हम लोगों के ( मन्तु ) मन ( च ) और ( हृदे ) आत्मा के लिए ( जुष्टानि ) सेवन किये हुए प्रीतिकारक ( सन्तु ) होवें वे ( ते ) आपके सम्बन्ध से ( यमम् ) नियम करते ( देवमरुतम् ) विद्वानों से सेवन किये हुए ( श्रवः ) श्रवण को ( दधाना ) धारण करते हुए ( सुधुरः ) उत्तम पदार्थों के धारण करने वाले हम लोग ( रायः ) धनो के प्राप्त होने को ( अधि शकेम ) समर्थ हों ॥ १० ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि आप सब सुखों को प्राप्त होकर और सब के लिए प्राप्त करावें ॥ १० ॥

इस सूक्त में ईश्वर, अग्नि, विद्वान् और सूर्य के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी उचित है ॥

यह तिहतरवां सूक्त बीसवीं वर्ग और बारहवां अनुवाक पूरा हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य पञ्चसप्ततितमस्य सुतस्य राष्ट्रयो गीतम् अविः । अग्निर्देवता ।

१, २, ३, ४ निष्पुण्यामीः १, ४, ५ नायमीः ४, ७, ८

विषादगायत्री च छन्दः । अक्षरः स्वरः ॥

अथ चौहत्तरवें सुक्त का आरम्भ किया जाता है इसके प्रथम मन्त्र में

ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

**उपमयन्तीं आध्वरं मन्त्रं बोधेमासये । आरे अस्मे च शयन्ते ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( उपमयन्तः ) समीप प्राप्त होने वाले हम लोग इस ( अस्मे ) हम लोगों के ( आरे ) दूर ( च ) और समीप में ( शयन्ते ) अवसर करते हुए ( अस्मे ) परमेश्वर के लिए ( अन्वयम् ) हिसारहित ( मन्त्रम् ) विचार को निरन्तर ( बोधे ) उपदेश करें जैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासकार है । मनुष्यों को चाहिए कि बाहर-भीतर व्याप्त होके हम लोगों के दूर समीप व्यवहार के कर्मों को जानते हुए परमात्मा को जानकर अध्वर्य से अलग होकर सत्यधर्म का सेवन करके आनन्दयुक्त रहें ॥ १ ॥

फिर यह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**यः स्नीहितीष्टु पूर्व्यः सैवम्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्वाशुषे गयम् ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( पूर्व्यः ) पूर्वज विद्वान् लोगों ने साक्षात्कार किये हुए असीमेश्वर ( सैवम्मानासु ) एक दूसरे के सज्ज चलती हुई ( स्नीहितीष्टु ) स्नेह करनेवाली ( कृष्टिषु ) मनुष्य भावि प्रजा में ( वाशुषे ) विचारि सुख गुण देनेवाले के लिए ( गयम् ) मन को ( अरक्षद् ) रक्षा करता है उस ( अन्वयम् ) ईश्वर के लिए ( अन्वयम् ) हिसारहित ( मन्त्रम् ) विचार को हम लोग ( बोधे ) कहें, जैसे तुम भी कहा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासकार है । पूर्व मन्त्र से “अन्वये, अन्वयम्, अन्वयम्, बोधे” इन चार पदों की अनुवृत्ति पाती है । प्रजा ने रहनेवाले किसी जीव की परमेश्वर के बिना रक्षा और सुख नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को उचित है कि इस का सेवन सर्वदा करें ॥ २ ॥

**उत अवनतु जन्तव उदमिर्हृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥३॥**

पदार्थ—जो ( रणेरणे ) युद्ध-युद्ध में ( धनञ्जयः ) धन से जिताने वाला ( जन्तव ) जेब को लपट करनेवाले सूर्य के समान ( अमिः ) परमेश्वर ( वाशुषे ) विद्या, सुख गुणों के दान करनेवाले मनुष्य के लिए ( गयम् ) मन को ( उदमिः ) उत्पन्न करता है ( उत ) और भी जिस का विद्वान् लोग उपदेश करते हैं ( जन्तवः ) सब मनुष्य ( अन्वयम् ) हिसारहित ( मन्त्रम् ) उन्हीं के विचार को ( उत वाशुषु ) परस्पर उपदेश करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो तुम जिसके आश्रय से शत्रुओं के पराजय द्वारा अपने विजय से राज्य, धन की प्राप्ति होती है उस परमेश्वर का निरन्तर सेवन किया करो ॥ ३ ॥

**यस्य दूतो असि जये वेधि हव्यानि वीतये । दस्मत्कुणोष्यध्वरम् ॥४॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप ( यस्य ) जिस मनुष्य के ( वीतये ) विद्वान् के लिए अग्नि के तुल्य ( दूतः ) दुःख नाश करनेवाले ( असि ) हैं ( जये ) धर में ( हव्यानि ) हवन करने योग्य उत्तम इक्षु, गुणकर्मों को ( वेधि ) प्राप्त वा उत्पन्न करते हो ( दस्मत् ) दुःख नाश करनेवाले ( अन्वयम् ) अग्निहोत्रादि यज्ञ के समान विद्याविज्ञान को बढ़ानेवाले यज्ञ को ( कुणोषि ) सिद्ध करते हो उसका सब मनुष्य सेवन करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासकार है । जिस मनुष्य ने परमेश्वर के समान विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने वाले की चाहना की है उसको कभी दुःख नहीं होता ॥ ४ ॥

फिर यह विद्वान् कैसा हो इस विषय का अगले मन्त्रों में कहा है—

**तमिस्तुहव्यमक्रिः सुदेवं संहसा यज्ञे । जना आहुः सुवर्हिषम् ॥५॥२१**

पदार्थ—हे ( अक्रिः ) अक्षुण्ण के रसरूप ( संहसा ) बल के ( यज्ञे ) पुनरुप विद्वान् मनुष्य जिस तुमको जिजुली के तुल्य ( सुदेवम् ) दिव्यगुणों के देने ( सुवर्हिषम् ) विज्ञानयुक्त ( सुवर्हिषम् ) उत्तम ग्रहण करनेवाले धातुको ( जना ) विद्वान् लोग ( आहुः ) कहते हैं ( तम् ) उसको ( इत् ) ही हम लोग सेवन करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासकार है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के संग वे पदार्थविद्या को जान और सम्यक् परीक्षा करके अन्य मनुष्यों को ज्ञासावें ॥ ५ ॥

**आ च बहोसि तां इह देवां उय प्रसस्तये । हव्या सुधन्त्र वीतये ॥६॥**

पदार्थ—हे ( सुधन्त्र ) अच्छे आनन्द के देनेवाले विद्वान् आप ( इह ) संसार में ( प्रसस्तये ) प्रशंसा ( च ) और ( वीतये ) सुखों की प्राप्ति के लिए जिन ( हव्या ) ग्रहण के योग्य ( देवां ) दिव्य गुणों वा विद्वानों को ( उपसंहारि ) समीप में सब प्रकार प्राप्त हो ( ज्ञान् ) उन आप को हम लोग प्राप्त करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जब तक मनुष्य परमेश्वर के जानने के लिए धनद्विधा विद्वान् पुरुषों के विद्या और अग्नि भादि पदार्थों से उपकार लेने में ठीक-ठीक पुरुषार्थ नहीं करते तब तक पूर्ण विद्या की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

**न यीरुपमिदरस्यः श्रुत्ये रथस्य कञ्चन । यद्वै यासि हव्यम् ॥७॥**

पदार्थ—हे ( अन्वयम् ) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वन् ! आप जैसे ( यीरुपमिदरस्यः ) अत्यन्त शब्द करने ( अन्वयम् ) शीघ्र चलनेवाले यानों से अत्यन्त वेगकारक ( श्रुत्ये ) जिस अग्नियुक्त और ( योः ) चलने-चलानेवाले ( रथस्य ) विमावादि यानसमूह के बीच स्थिर होके ( हव्यम् ) दूत के तुल्य अपने कर्म को ( यासि ) प्राप्त होते हो मैं उस अग्नि के समीप और शब्दों को ( कञ्चन ) कभी ( न ) नहीं ( श्रुत्ये ) सुनता ( किन्तु ) प्राप्त होता है तू भी नहीं सुन सकता परन्तु प्राप्त हो सकता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासकार है । मनुष्य लोग शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए यान और यन्त्रादिकों में युक्त अत्यन्त गमन करनेवाले अग्नि के समीपस्थ शब्द के निकट अन्य शब्दों को नहीं सुन सकते ॥ ७ ॥

**त्वोतो वाज्यह्वयोऽग्नि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वो अग्ने अस्थात् ॥८॥**

पदार्थ—हे ( अन्वयम् ) विद्यायुक्त जैसे ( वाज्यह्वः ) शीघ्रयान मार्गों को प्राप्त करानेवाले अग्नि भादि ( अपरः ) और भिन्न देश वा भिन्न कारीगर ( त्वोतो ) आप से संगम को प्राप्त हुआ ( वाजी ) प्रशंसा के योग्य वेगवाला ( दाश्वान् ) दाता ( पूर्वस्मात् ) पहले स्थान से ( अग्नि ) सम्मुख ( प्रास्थात् ) देशान्तर को चलानेवाला होता है जैसे अन्य मन भादि पदार्थ भी हैं ऐसा तू जान ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासकार है । मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि शिल्पविद्यासिद्ध यन्त्रों के बिना अग्नि यानों का चलानेवाला नहीं होता ॥ ८ ॥

**उत धुमस्तुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषं ॥९॥**

पदार्थ—हे ( देव ) दिव्य गुण, कर्म और स्वभाववाला ( अन्वयम् ) अग्नि-यत् प्रजा से प्रकाशित विद्वन् ! तू ( दाशुषे ) देने के स्वभाववाले काम्यों के अध्वर्य ( उत ) प्रथवा ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिए ( धुमस्तु ) अच्छे प्रकाशवाले ( बृहत् ) बड़े ( सुवीर्यम् ) अच्छे पराक्रम को ( विवाससि ) सेवन करता है जैसे हम भी उसका सेवन करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो कार्यों के स्वामी होवें उन विद्वानों के सकाश से विद्या और पुरुषार्थ करके विद्वान् तथा मूर्खों को बड़े-बड़े उपकारों का ग्रहण करना चाहिए ॥ ९ ॥

इस सूक्त में ईश्वर, विद्वान् और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त की सङ्गति है ।

यह चौहत्तरवाँ सुक्त और बाईसवाँ वर्ष समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य पञ्चसप्ततितमस्य सुतस्य राष्ट्रयो गीतम् अविः । अग्निर्देवता ।

१ नायमी, २, ४, ५ निष्पुण्यामी, ३ विषाद गायत्री छन्दः ।

अक्षरः स्वरः ॥

अथ पञ्चहत्तरवें सुक्तार्थ का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में

विद्वान् लोग कैसे हों इस विषय का उपदेश किया है—

**जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्तरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥१॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ( आसनि ) अपने मुख में ( हव्या ) भोजन करने योग्य पदार्थों को ( जुह्वानः ) खानेवाले आप जो विद्वानों का ( सप्रथस्तमम् ) धतिविस्तार युक्त ( देवप्तरस्तमम् ) विद्वानों को अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार वा ( वचः ) वचन है ( तम् ) उसको ( जुषस्व ) सेवन करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य युक्तिपूर्वक भोजन, पान और चेष्टाओं से युक्त ब्रह्मचारी हों वे शरीर और आत्मा के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर उससे विद्वान् क्या कहें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अथा ते अक्रिस्तमापे वेधस्तम प्रियम् । बोधेन ब्रह्म सानति ॥२॥**

पदार्थ—हे ( अक्रिस्तम ) सब विद्याओं के जानने और ( वेधस्तम ) अत्यन्त धारण करनेवाले ( अन्वयम् ) विद्वन् ! जैसे हम लोग वेदों को पढ़के ( ब्रह्म ) इसके पीछे ( ते ) तुम्हें ( सानति ) सदा से वर्तमान ( प्रियम् ) प्रीतिकारक ( ब्रह्म ) चारों वेदों का ( बोधेन ) उपदेश करें जैसे ही तू कर ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासकार है । वेदादि सत्यशास्त्रों के उपदेश के बिना किसी मनुष्य को परमेश्वर और विद्युत् अग्नि भादि पदार्थों के विषय का ज्ञान नहीं होता ॥ २ ॥

फिर यह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**कस्मै जामिर्जानानायेम को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नासि धितः ॥३॥**

पदार्थ—हे ( अन्वयम् ) विद्वन् ! ( जानानां ) मनुष्यों के बीच ( ते ) आपका ( कः ) कौन मनुष्य ( ह ) निश्चय करके ( जामिः ) जाननेवाला है ( कः ) ( दाश्वध्वरः ) दान देने और रक्षा करनेवाला है तू ( कः ) कौन है और ( कस्मिन् ) किस में ( धितः ) आश्रित ( अग्नि ) है इस सब बात का उत्तर दे ॥ ३ ॥

पदार्थ—बहुत मनुष्यों में कोई ऐसा होता है कि जो परमेश्वर और धर्म्यादि पदार्थों को ठीक-ठीक जाने और जानावे क्योंकि ये दोनों अत्यन्त आश्चर्य्य गुण, कर्म और स्वभाव वाले हैं ॥

त्वं जामिर्जनानामग्रे मित्रो असि प्रियः । सखा मखिन्म ईडयः ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पण्डित जिस कारण (जमानाम्) मनुष्यों को (जामि) जल के मुख्य मुख देने वाले (मित्र) सबके मित्र (प्रिय) कामना को पूर्ण करनेवाले, योग्य विद्वान् (स्वम्) आप (सखिन्म) सबके मित्र मनुष्यों को (ईडयः) स्तुति करने योग्य (सखा) मित्र हो इसीसे सबको देने योग्य विद्वान् (असि) हो ॥४॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उस परमेश्वर और उस विद्वान् मनुष्य की सेवा क्यों नहीं करनी चाहिए कि जो ससार में विद्यादि शुभगुण और सबको सुख देता है ॥४॥

यज्ञो नो मित्रावरुण यज्ञो देवाँ कृतं बृहत् ।

अग्रे यक्षि स्वं दमम् ॥५॥ व० २३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वन् मनुष्य ! जिस कारण (स्वम्) आप अपने (दमम्) उत्तम स्वभावकपी घर को (यक्षि) प्राप्त होते हैं इसीसे (नः) हमारे लिए (मित्रावरुण) बल और पराक्रम के करनेवाले प्राण और उदान को (यज) अरोग कीजिए (बृहत्) बड़े-बड़े विद्यादिगुणयुक्त (कृतम्) सत्य विज्ञान को (यज) प्रकाशित कीजिए ॥५॥

भाषार्थ—जैसे परमेश्वर का परोपकार के लिए न्याय आदि शुभ गुण देने का स्वभाव है वैसे ही विद्वान् को भी अपना स्वभाव रखना चाहिए ॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर, अग्नि और विद्वान् के गुणा का बरान होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सगति समझनी चाहिए ॥

यह पञ्चहस्तरवाँ सूक्त और तेईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवर्णस्य वदसप्ततितमस्य सूक्तस्य राह्मणो गोतम ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१,३,५ निबृत्तजिष्टुप्, २,४ विराट् जिष्टुप्छन्द ।

चंडत स्वर ॥

अथ छिहस्तरवाँ सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

का त उपैतिर्मनसो वराय भुवन्दसे शन्तमा का मनीषा ।

को वा यज्ञेः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥१॥

पदार्थ—ह (अग्ने) शान्ति क देनेवाले विद्वन् मनुष्य ! (ते) तुम अति श्रेष्ठ विद्वान् की (का) कौन (उपैति) सुखों का प्राप्त करनेवाली नीति (मनस) चित्त की (वराय) श्रेष्ठता के लिए (भुवत्) शोनी है (का) कौन (शान्तमा) सुख का प्राप्त करनेवाली (मनीषा) बुद्धि होती है (क) कौन मनुष्य (वा) निश्चय करके (ते) आपके (वक्षम्) बल को (यज्ञे) पढ़ने पढ़ाने आदि यज्ञों को (परि) सब ओर से (आप) प्राप्त होता है (वा) अथवा हम लोग (केन) किस प्रकार क (मनसा) मन से (ते) आपके लिए क्या (दाशेम) दें ॥१॥

भाषार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर और विद्वान् की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमात्मन् वा विद्वन् पुरुष ! आप कृपा करके हमारी बुद्धि के लिए श्रेष्ठ बुद्धि और श्रेष्ठ बल को दीजिए जिससे हम लोग आपका ज्ञान और प्राप्त होके सुखी हो ॥१॥

फिर उस विद्वान् की प्रार्थना किसलिए करनी चाहिए इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

एषमं इह होता नि बीदादब्धः सु पुरस्ता भवा नः ।

अवता त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यज्ञो महे सीमनसाय देवान् ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सबके उपकार करनेवाले विद्वन् ! (एषमं) अहिसक हम लोगों को सेवा करने योग्य आप (इह) इस ससार में (होता) देने वाले (नः) हम लोगों को (आ, इहि) प्राप्त हुआ (सु) अच्छे प्रकार (नि) नित्य (सीमं) ज्ञान दीजिए (पुरस्ता) पहले प्राप्त करनेवाले (भव) हुआ जिस (त्वा) आपको (विश्वमिन्वे) सब ससार को तृप्त करनेवाले (रोदसी) विद्याप्रकाश और भूगोल का राज्य अथवा आकाश और पृथिवी (अवतात्) प्राप्त हों सो आप (महे) बड़े (सीमनसाय) मन का वैशाल्य छड़ाने के लिए (देवान्) विद्वान् दिव्य गुरुओं की स्वात्मा में (यज) सगत कीजिए ॥२॥

भाषार्थ—इस प्रकार सत्यभाव से प्रार्थना किया हुआ परमेश्वर और सेवा किया हुआ धर्मात्मा विद्वान् सब सुख मनुष्यों को देता है ॥२॥

फिर यह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

य सु विश्वावक्षसा धर्ष्यसे भवा यज्ञानामभिस्तियावा ।

अथा बह सोमपति हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुशत्रे ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) दुष्टों को शिक्षा करनेवाले समाध्यक्ष जिस प्रकार आप (विश्वान्) सब (वक्षसः) दुष्ट मनुष्यों वा दोषों का (य) अच्छे प्रकार (वक्षि) नाश करते हैं इसी कारण (यज्ञानाम्) जो जानने योग्य कारीगरी है उन के साधकों की (अभिस्तियावा) हिंसा से रक्षा करनेवाले (सु) अच्छे प्रकार (भव) हुआ जैसे सूर्य (हरिभ्याम्) धारण और आकर्षण से सब सुखों को प्राप्त करता है वैसे (सोमपतिम्) ऐश्वर्यों के स्वामी को (आवह) प्राप्त हुआ (अथ) इसके पीछे (अस्मै) इस (सुशत्रे) विद्या, विज्ञान, अच्छी शिक्षा, राज्यादि धनों के देनेवाले आप के लिए हम लोग (आतिथ्यम्) सत्कार (चकृम) करते हैं ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर ने जगत् में प्राणियों के वास्ते सब पदार्थ दिये हैं वैसे जो मनुष्य उत्तम विद्या और शिक्षा देवे उसी का सत्कार करें अन्य का नहीं ॥३॥

प्रजावता वचसा वहिरासा च हुवे नि च सत्सृष्टि देवेः ।

वेपि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥४॥

पदार्थ—हे (यजत्र) दाता (वह्नि) सुखों को प्राप्त करनेवाले (सु) (इह) इस ससार में (देवे) विद्वानों के माथ (सत्सि) सभा में (प्रजावता) प्रजा की सम्मति के अनुकूल (वचसा) वचनों से (बोधि) बोध कराता है जिस से (होत्रम्) हवन करने योग्य (य) और (पोत्रम्) पवित्र करनेवाले वस्तुओं को (उत) भी (नि) निरन्तर (बोधि) प्राप्त होता है (जनित) सुखोत्पन्न करने वाले (प्रयन्त) प्रयत्न से तू जैसे (वसूनाम्) पूर्णव्यादि पदार्थों का जाननेवाला है वैसे मैं (आसा) मुझ से तेरी (य) अन्य विद्वानों की भी (आवुहे) स्तुति करता हूँ ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य परमेश्वर और धार्मिक विद्वानों के सहाय और सग स भुक्ति को प्राप्त होकर सब श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त हो ॥४॥

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्दवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।

एवा होतः सत्यतर त्वमद्यायै मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥५॥ २४॥

पदार्थ—हे (सत्यतर) अतिशय सत्याचारनिष्ठ (होत) सत्यप्रवृत्त करनेवाले दाता (अग्ने) विद्वान् (यथा) जैसे कोई धार्मिक विद्वान् विद्याधी (विप्रस्य) बुद्धिमान् अध्यापक, विद्वान् (मनुष) मनुष्य के अनुकूल होके सब का सुखदायक होना है वैसे (एव) ही (स्वम्) तू (अयजः) इसी समय (कविभि) पूर्ण विद्यायुक्त बहुदर्शी विद्वानों के माथ (कविः) विद्वान् बहुदर्शी (सन्) होके जिन (हविभि) ग्रहण करने योग्य गुण, कर्म, स्वभावों के साथ (देवान्) विद्वान् और दिव्य गुणों को (अयज) प्राप्त होता है उस (मन्द्रया) आनन्द करनेवाली (जुह्वा) दान क्रिया में हम को (यजस्व) प्राप्त हो ॥५॥

भाषार्थ—जैसे कोई मनुष्य विद्वाना से सब विद्याओं को प्राप्त सब का उपकारक हो सब प्राणियों को सुख दे सब मनुष्यों का विद्वान् करके आनन्दित होता है वैसे ही आप अर्थात् पूर्ण विद्वान् धार्मिक होना है ॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सगति समझनी चाहिए ।

यह छहस्तरवाँ सूक्त और चौबीसवाँ वर्ग पूरा हुआ ।



अथ पञ्चवर्णस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य राह्मणो गोतम ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१ निबृत्तजिष्टुप्छन्द, पञ्चम स्वर, २ निबृत्तजिष्टुप्,

३—५ विराट् जिष्टुप् छन्द । चंडत स्वर ॥

अथ सप्तहस्तरवाँ सूक्त का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में

विद्वान् कैसा हो यह विषय कहा है ॥

कथा दाशेमाग्रे कास्मै देवजुष्टोच्यते मामिने गीः ।

यो मर्त्येष्वसृत् क्रतावा होता यजिष्ठ इत्कुणोति देवान् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग विद्वानों के साथ होते हैं वैसे (यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मयुक्त शरीरादि में (असृत्) मृत्युरहित (क्रतावा) सत्य गुण, कर्म, स्वभाव युक्त (होता) दाता और ग्रहण करनेवाला (यजिष्ठः) अत्यन्त सत्सगी (देवान्) दिव्य गुरु वा दिव्य पदार्थों वा विद्वानों को (कुणोति) करता है (अस्मै) इस उपदेशक (मामिने) दुष्टों पर क्रोधकारक (अग्ने) सत्यासत्य जाननेवाले के लिए (का) कौन (कथा) किस हेतु से (देवजुष्टा) विद्वानों ने सेवन की हुई (गीः) वाणी (उच्यते) कही है जम (सु) ही को (दाशेम) विद्या दें वैसे तुम भी किया करो ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् ईश्वर की स्तुति और विद्वानों को सेवन करके दिव्य गुणों का प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होता है वैसे ही हम लोगों को सेवन करना चाहिए ॥१॥

किं बहु विद्वान् केषां हो इह विषय को समझे मनो में कहा है ॥

यो अंधरेषु सन्तम कृतावा होता तमु नवीमिरा कृणुष्वम् ।

अभिर्येष्टैर्वाय देवान्स वा बोधाति मनसा यजाति ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग ( वः ) जो ( अग्निः ) विज्ञानस्वरूप परमेश्वर वा विद्वान् ( अंधरेषु ) सदैव ग्रहण करने योग्य यज्ञों में ( सन्तमः ) अत्यन्त आनन्द को देनेहारा तथा ( कृतावा ) शुभ गुण, कर्म और स्वभाव से सत्य है ( होता ) सब जगत् और विज्ञान का देनेवाला है तथा ( तम् ) जो ( नवीमि ) मनुष्य के लिए ( देवान् ) विज्ञान प्राप्ति केष्ट गुणों को ( बोधाति ) अच्छे प्रकार जाने ( वः ) और ( यजाति ) संगत करे इसलिए ( तम् उ ) उसी परमेश्वर वा विद्वान् को ( नवीमिः ) नमस्कार वा यज्ञों से प्रसन्न ( वा कृणुष्वम् ) करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में अनेकालंकार हैं। परमेश्वर और वर्मात्मा मनुष्य के बिना मनुष्यों को विद्या का देने वाला दूसरा कोई नहीं है तथा उन दोनों को जोड़ के उपासना तथा सत्कार भी किसी का न करना चाहिए ॥ २ ॥

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रयीः ।

त मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्पमारीः ॥३॥

पदार्थ—( देवयन्तीः ) कामनायुक्त ( धारीः ) ज्ञानवाली ( विश ) प्रजा ( मेधेषु ) पढ़ने-पढ़ाने और सप्राप्त प्राप्ति यज्ञों में ( तम् ) उस ( दस्पम् ) दुःख नाश करनेवाले को सभाध्यक्ष मानकर ( ब्रुवन् ) सबसे उत्तम ( उपब्रुवते ) कहती है कि जो ( मित्रः ) सबका मित्र ( वः ) जैसा ( क्रतुः ) हो ( स हि ) वही सब प्रकार ( क्रतुः ) बुद्धि और सुकर्म से युक्त ( सः ) वही ( मर्यः ) मनुष्यपद का रखनेवाला और ( सः ) वही ( साधुः ) सबका उपकार करने तथा अष्ट मार्ग में चलनेवाला विद्वान् ( अद्भुतस्य ) आश्चर्य कर्मों से युक्त सेवा का ( रयीः ) उत्तम रखवाला रयी होवे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो सबसे अधिक गुण कर्मों और स्वभाव तथा सबका उपकार करनेवाला सज्जन मनुष्य है उसी की सभाध्यक्ष का अधिकार देके राजा माने अर्थात् किसी एक मनुष्य को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देवे किन्तु शिष्ट पुरुषों की जो सभा है उसके अधीन राज्य के सब काम रखें ॥ ३ ॥

स नो नृणां वृत्तमो रिशादा अभिगिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।

तनां च ये मधवानः शविष्ठा वाजप्रवृता इष्यन्त मन्म ॥४॥

पदार्थ—जो ( वः ) हमारे ( नृणाम् ) मनुष्यों के बीच ( नृत्तम् ) अत्यन्त उत्तम मनुष्य ( अग्निः ) पाबक के तुल्य अधिक ज्ञान प्रकाशवाला ( मधवाः ) रहण प्राप्ति से ( गिरः ) बाणी और ( धीतिम् ) धारणा को चाहता है ( सः ) वह मनुष्य हमारे बीच में सभाध्यक्ष के अधिकार को ( वेतु ) प्राप्त हो जो ( नृणाम् ) मनुष्यों में ( रिशादा ) शत्रुओं को नष्ट करनेहारे ( वाजप्रवृताः ) विज्ञान प्राप्ति गुणों से शोभायमान ( शविष्ठा ) अत्यन्त बलवान् ( मधवानः ) प्रशंसित बनवाले ( तनां ) विस्तृत बनो की और ( मन्म ) विज्ञान ( वः ) विद्या प्राप्ति अच्छे-अच्छे गुणों की ( इष्यन्त ) इच्छा करते हैं, इसी से हमारी सभा में वे लोग सभासद् हों ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अत्युत्तम सभाध्यक्ष मनुष्यों के सहित सभा बनाके राज्य व्यवहार की रक्षा से चक्रवर्ति राज्य की शिक्षा करें इसके बिना कभी स्थिर राज्य नहीं हो सकता इसलिए पूर्वोक्त कर्म का अनुष्ठान करके एक को राजा नहीं मानना चाहिए ॥ ४ ॥

एवाभिर्गतिर्मेभिर्कृतावा विमैभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।

स एषु युञ्ज पीपयस्स वाजं स पुष्टि याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥ २५ ॥

पदार्थ—( गोतमेभिः ) अत्यन्त स्तुति करनेवाले ( विमैभिः ) वृद्धिमान् लोगों से जो ( जातवेदाः ) ज्ञान और प्राप्त होनेवाला ( कृतावा ) सत्य हैं गुण, कर्म और स्वभाव जिसके ( अग्निः ) वह ईश्वर स्तुति किया जाता और ( अस्तोष्ट ) जिसकी विद्वान् स्तुति करता है ( एष ) वही ( एषु ) इन धार्मिक विद्वानों में ( चिकित्वान् ) ज्ञानवाला ( युञ्जम् ) विद्या के प्रकाश को प्राप्त होता है ( सः ) वह ( वाजम् ) उत्तम अम्मादि पदार्थों को ( पीपयस् ) प्राप्त कराता और ( सः ) वही ( जोषम् ) प्रसन्नता और ( पुष्टिम् ) आनुषों की समता को ( वा याति ) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अष्ट वर्मात्मा विद्वानों के साथ उनकी सभा में रहकर उनसे विद्या और गिज्ञा को प्राप्त होके सुखों का सेवन करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर, विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति सम्भवी चाहिए ।

यह सप्तहस्तर्षी सूक्त और पञ्चोत्तरा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चोत्तराव्यस्तपतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः ।

अग्निर्वेदता । गायत्री छन्दः । पद्य स्वरः ॥

अथ सप्तहस्तर्षी सूक्त का आरम्भ किया जाता है इसके प्रथम मन्त्र में उनही विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ।

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । धुमैरभि प्र णौनुमः ॥१॥

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) पदार्थों के जाननेवाले ( विचर्षणे ) सबसे प्रथम देने योग्य परमेश्वर ! जिस प्रापकी जैसे ( गोतमाः ) अत्यन्त स्तुति करनेवाले ( धुमैः ) धन और विमानादिक गुणों तथा ( गिरा ) उत्तम वाणियों के साथ ( अभि ) चारों ओर से स्तुति करते हैं और जैसे हम लोग ( अभि, प्रणोनुमः ) अत्यन्त नम्र होके ( त्वा ) प्रापकी प्रशंसा करते हैं वैसे सब मनुष्य करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। सब मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना और विद्वानों का सज्ज करके विद्या का विचार करें ॥ १ ॥

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । धुमैरभि प्र णौनुमः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे जनपते ( रायस्कामः ) धन की इच्छा करनेवाला ( गोतमः ) विद्वान् मनुष्य ( गिरा ) बाणी से ( त्वा ) तेरी ( दुवस्यति ) सेवा करता है वैसे ( तम् उ ) उसी प्रापकी ( धुमैः ) अष्ट कीर्ति के साथ वर्तमान हम लोग ( अभि ) सब ओर से ( प्रणोनुमः ) अति प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को ऐसा विचार अपने मन में सदैव रखना चाहिए कि परमेश्वर की उपासना और विद्वान् मनुष्य के सन के बिना हम लोगों की धन की कामना पूरी कभी नहीं हो सकती ॥ २ ॥

तमु त्वा वाजसातममक्षिरस्वद्वामहे । धुमैरभि प्र णौनुमः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( धुमैः ) पुण्यकपी कीर्तियों के साथ जिस ( वाजसात-मम् ) अतिप्रशंसित बोधों से युक्त विद्वान् की ओर ( त्वा ) प्रापकी हम लोग ( हवामहे ) स्तुति करें ( उ ) अच्छे प्रकार ( अक्षिरस्वत् ) प्रशंसित प्राण के समान ( अभि ) सब ओर से ( प्रणोनुमः ) सत्कार करते हैं तो तुम ( तम् ) उसी की स्तुति और प्रणाम किया करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग विद्वान् को उक्त प्रकार के सत्कार से सन्तुष्ट करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करो ॥ ३ ॥

तमु त्वा वृत्रहन्तं यो दस्यूरवधुनुवे । धुमैरभि प्र णौनुमः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( वः ) जो ( त्वम् ) तू ( दस्युम् ) महादुष्ट डाकुओं को ( वृत्रहन्तम् ) कम्पाके नष्ट करता है ( तम् ) उसी ( वृत्रहन्तम् ) मेघ बघनिवाले सूर्य के समान ( त्वा ) तेरी ( धुमैः ) कीर्तिकांश शस्त्रों के सहित हम लोग ( अभि ) सम्मुख होके ( प्रणोनुमः ) सब प्रकार स्तुति करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग जिसका कोई शत्रु न हो ऐसा विद्वान् सभाध्यक्ष जो कि दुष्ट शत्रुओं को परास्त कर सके उसकी सदैव सेवा करो ॥ ४ ॥

अवीचाम रहूगणा अग्रये मधुमद्वचः । धुमैरभि प्र णौनुमः ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! ( रहूगणा ) अग्रयणयुक्त पापियों के समूह के त्याग करनेवाले तुम जैसे ( धुमैः ) उत्तम कीर्ति के साथ वर्तमान ( अग्रये ) विद्वान् के लिए ( मधुमत् ) शिष्ट ( वचः ) बचन बोलते हो वैसे हम भी ( अवीचाम ) बोला करें। जैसे हम लोग उनको ( अभि प्रणोनुमः ) नमस्कारादि से प्रसन्न करते हैं वैसे तुम भी किया करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को अत्यावश्यक है कि वर्मयुक्त कीर्तिवाने मनुष्यों ही की प्रशंसा करें अन्य की नहीं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुण कथन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह सप्तहस्तर्षी सूक्त और छन्दोसर्षी वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ द्वादशर्षस्य नवसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्वेदता ।

१ विराट् शिष्टद्वयः २, ३ निष्पन्न शिष्टद्वय छन्दः । अंशतः स्वरः ।

४ आषुर्द्विकः ५, ६ निष्पन्नद्विक छन्दः । अक्षरः स्वरः ।

७, ८, १०, ११ निष्पन्नात्यन्ती, ९, १२

गायत्री छन्दः । पद्य स्वरः ॥

अथ उतासीवै सूक्त का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में

विद्यत् अग्निं कीता है इस विषय का उपदेश किया है ।

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वातं व भजीमान ।

शुचिभ्राजा वषसो नवेदा यज्ञस्वतीर्यस्युवो न सत्याः ॥१॥

पदार्थ—हे कुमारि ब्रह्मचर्ययुक्त कन्याओ ! ( रजसः ) ऐश्वर्य के ( विसारे ) स्फिरता में ( हिरण्यकेशः ) हिरण्य सुवर्णवत् वा प्रकाशवत् न्याय के प्रचार करने वाले ( शुचिः ) शत्रुओं को कम्पाने वाले ( अहिः ) मेघ के समान ( भजीमान् )



की प्रशस्ति करने ( वात्सल्य ) बापु के तुल्य ( ज्येष्ठः ) प्रातःकाल के समान ( सुविधायाः ) पवित्र विद्याविज्ञान से युक्त ( ज्येष्ठः ) अविद्या का निवेद्य करने वाली विद्यायुक्त ( ज्येष्ठः ) उत्तम कीर्तियुक्त ( ज्येष्ठः ) प्रशस्त कर्म करने वाली के ( न ) समान तुल्य ( सत्या ) सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाली होती ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो कन्याएँ कीर्ति प्राप्त करने पर्यन्त बहुचर्य सेवन और जितेन्द्रिय होकर छद्म धारण करती हैं, कल्प, व्याकरण, निवेद्य, छन्द और ज्योतिष। उपाङ्ग धर्मात् सीमांता, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त तथा आयुर्वेद धर्मात् वैद्यक विद्या आदि को पढ़ती हैं वे संसारस्थ मनुष्यजाति की शोभा करनेवाली होती हैं ॥१॥

फिर वह विज्ञान कैसा हो वह विषय इनके मन्त्रों में कहा है—

आ तं सुपर्णा अभिनन्तं एवैः कृष्णो नौनाथ इषभो यदीदम् ।

शिवाभिर्न स्मर्यमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे ( सुपर्णा ) किररों ( आभिनन्त ) सब ओर से वर्षा को प्रेरणा करती हैं ( एवैः ) प्राप्त होनेवाले गुराँ के सहित ( कृष्णः ) धाकधर्य करता ( इषभः ) वर्षानेवाला सूर्य ( इदम् ) जल को वर्षाता है वैसे विद्या की ( नौनाथ ) प्रशस्त वृष्टि करे तथा ( स्तनयन्त्यभ्रा ) सदा प्रसन्न वदन ( शिवाभिः ) शुभ गुणकर्मयुक्त कन्याओं के साथ तत्तुल्य बहुचारियों के विवाह के ( न ) समान सुख को ( यद्भिः ) जो ( अगात् ) प्राप्त हो और जैसे ( इषभः ) मेघ ( स्तनयन्ति ) गर्जते तथा ( मिहः ) वर्षा के जल ( आपतन्ति ) वर्षते हैं वैसे विद्या को अध्ययन से ( तैः ) तुम को क्या अप्राप्त हो धर्मात् सब सुख प्राप्त हों ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालंकार है। जिन विद्वान् बहुचारियों की विदुषी बहुचारिणी स्त्री हों वे पूर्ण सुख को क्यों न प्राप्त हों ॥२॥

यदीदृतस्य पर्यसा पियानो नयन्तस्य पथिमी रजिष्ठः ।

अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वर्चं पृच्छन्त्युपरस्य योनीं ॥३॥

पदार्थ—( यत् ) जब ( इदृतस्य ) उदक के ( पर्यसा ) रस को ( पियानः ) पीनेवाला ( रजिष्ठः ) अत्यन्त बूझीयुक्त ( पथिमी ) मार्गों से ( उपरस्य ) मेघ के ( योनी ) कारणरूप मण्डल में ( ईम् ) जल को ( नयन् ) प्राप्त करता हुआ ( अर्यमा ) निमन्ता सूर्य ( मित्रः ) प्राण ( वरुणः ) उदान और ( परिज्मा ) सब ओर जाने-आने वाला जीव ( इदृतस्य ) सत्य के ( त्वर्चम् ) त्वचाकूप उपरि भाग को ( पृच्छन्ति ) सम्पन्न करते हैं तब सब के जीवन का सम्भव होता है ॥३॥

भावार्थ—जब कार्य और कारण में रहनेवाले प्राण और जलादि पदार्थों के साथ जीव सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं तब शरीरों के धारण करने को समर्थ होते हैं ॥३॥

अग्ने वाजस्य गोमंत ईशानः सहसो यदो ।

अस्मे धेहि जातवेदो महि अर्चः ॥४॥

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) प्राप्त विज्ञान ( अग्ने ) विद्युत् के समान विद्या प्रकाशयुक्त विद्वन् ( सहसः ) बलयुक्त पुत्र के ( यदो ) पुत्र ( गोमन्त ) वन से युक्त ( वाजस्य ) अन्न के ( ईशानः ) स्वामी आप ( अस्मे ) हम लोगों में ( महि ) बड़े ( अर्चः ) विद्याधरणा को ( धेहि ) धारण कीजिए ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य विदुषी माता और विद्वान् पिताओं के सन्तान होके माता-पिता और आचार्य से विद्या की शिक्षा को प्राप्त होकर बहुत अन्नादि ऐश्वर्य और विद्याओं को प्राप्त हो वे अन्य मनुष्यों में भी यह सब बढ़ावें ॥४॥

स ईशानो वसुष्कविग्निरीक्रेन्यो गिरा ।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥५॥

पदार्थ—हे ( पुर्वणीक ) बहुत सेनाओं से युक्त जो तू जैसे ईशानो से ( अग्निः ) अग्नि प्रकाशमान होता है वैसे ( इशानः ) प्रकाशमान ( गिरा ) वाणी से ( ईक्रेन्यः ) स्तुति करने योग्य ( वसुः ) मुख में बसनेवाला और ( कविः ) सर्व-शास्त्रविद् होता है ( स ) सो ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( रेवत् ) बहुत धन करने वाला सब विद्या के अध्ययन को ( दीदिहि ) प्रकाशित करे ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। पूर्व मन्त्र से 'अग्ने' इस पद की अनुवृत्ति पाती है। जैसे बिजुली, प्रसिद्ध पावक, सूर्य, अग्नि सब मूर्ति-मान् द्रव्य को प्रकाश करता है वैसे सर्वविद्याविस्तृष्य सब विद्या का प्रकाश करता है ॥५॥

क्षपो रजश्च त्मनाग्ने वस्तोस्तोषसः ।

स तिमजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥६॥ २७ ॥

पदार्थ—हे ( तिमजम्भ ) तीव्र मुख में बोलनेवाले ( अग्ने ) विद्वन् ! ( रजश्च ) व्याय, वित्त से प्रकाशमान तू ( त्मना ) अपने आत्मा से जैसे सूर्य ( अर्चः ) रात्रियों को निवेद्य करके ( स ) वह ( वस्ती ) दिन ( जल ) और ( उज्ज्वलः ) प्रभातों का विद्यमान करता है वैसे धार्मिक सज्जनों में विद्या और विनय का प्रकाश ( उत ) और ( रक्षसः ) दुष्टाचारियों को ( प्रतिबह ) प्रत्यक्ष दण्ड कर ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सविता निकट प्राप्त वस्तु को प्रकाशित कर वृष्टि करके सब वस्तु की रक्षा और वाचकलुप्तोपमालंकार का विचारण करता है वैसे सज्जन राजा लोग धार्मिकों की रक्षाकर दुष्टों के दण्ड से राज्य की रक्षा करें ॥६॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश इनके मन्त्रों में किया है—

अवा नो अग्र उतिभिर्गायत्रस्य प्रमर्मेणि । विश्वास्तु धीषु बन्ध ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अभिवादन और प्रशंसा करने योग्य ( अग्ने ) विद्वान् स्वल्प सभाध्यक्ष आप ( उतिभिः ) रक्षण आदि से ( गायत्रस्य ) गायत्री के प्रत्यक्ष वा ध्यानकारक व्यवहार का ( प्रमर्मेणि ) अच्छी प्रकार रक्षण का धारण हो जिसमें उस तथा ( विश्वास्तु ) सब ( प्रजास्तु ) बुद्धियों में ( नः ) हम लोगों को ( अग्र ) रक्षा कीजिए ॥७॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि जो सभाध्यक्ष विद्वान् हमारी बुद्धि को सुख करता है उसका मत्कार करें ॥७॥

आ नो अग्ने रयि भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वास्तु वृत्सु दुष्टरम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) दान देने वा दिलातेवाले सभाध्यक्ष आप ( नः ) हम लोगों के लिए ( विश्वास्तु ) सब ( वृत्सु ) सेनाओं में ( सत्रासाहम् ) सरप का सहन करते हैं जिससे उस ( वरेण्यम् ) अच्छे गुण और स्वभाव होने का हेतु ( दुष्टरम् ) मनुष्यों के दुःख से तरने योग्य ( रयिम् ) अच्छे द्रव्यसमूह को ( आग्र ) अच्छी प्रकार धारण कीजिए ॥८॥

भावार्थ—मनुष्यों को सभाध्यक्ष आदि के आश्रय और प्रशस्ति पदार्थों के विज्ञान के बिना सम्पूर्ण सुख प्राप्त कभी नहीं हो सकता ॥८॥

आ नो अग्ने सुचेतुनां रयि विश्वायुपोषसम् । माहीकं धेहि जीवसे ॥९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विज्ञान और सुख के देनेवाले विद्वन् ! आप ( नः ) हमारे ( जीवसे ) जीवन के लिए ( सुचेतुना ) अच्छे विज्ञान से युक्त ( विश्वायु-पोषसम् ) सम्पूर्ण अवस्था में वृष्टि करने ( माहीकम् ) सुखों के सिद्ध करनेवाले ( रयिम् ) धन को ( धेहि ) सब प्रकार धारण कीजिए ॥९॥

भावार्थ—मनुष्यों को अच्छी प्रकार सेवा किया हुआ विद्वान् विज्ञान और धन को वेके पूर्ण आयु भोगने के लिए विद्या धन को देता है ॥९॥

फिर जो इनके मन्त्रों में विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश किया है—

प्र पुतास्तिम्मशोक्षिषे वाचो गोतमाग्नये । भवोरस्व सुम्नधुगिरिः ॥१०॥

पदार्थ—हे ( गोतम ) अत्यन्त स्तुति और ( सुम्नधु ) सुख की इच्छा करने वाले विद्वन् ! तू ( तिम्मशोक्षिषे ) तीव्र बुद्धि प्रकाशवाले ( अग्नये ) विज्ञान रूप और विज्ञानवाले विद्वान् के लिए ( पुताः ) पवित्र करनेवाली ( विरः ) विद्या की शिक्षा और उपदेश से युक्त वाणियों को धारण करते हैं उन ( वाचः ) वाणियों को ( प्रभरस्व ) सब प्रकार धारण कर ॥१०॥

भावार्थ—जिस कारण परमेश्वर और परमविद्वान् के बिना कोई दूसरा सत्यविद्या के प्रकाश करने को समर्थ नहीं होता इसलिए ईश्वर की सदा सेवा करनी चाहिए ॥१०॥

यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिदुषे अंघ्र ॥११॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विज्ञान देनेवाले ( यः ) जो विद्वान् आप ( अन्ति ) समीप और ( दूरे ) दूर ( नः ) हमारे लिए ( अभिदासति ) अभीष्ट वस्तुओं को देने और ( पदीष्ट ) प्राप्त होते हो ( स ) सो आप ( अस्माकम् ) हमारी ( इत् ) ही ( अंघ्र ) बुद्धि करनेवाले ( अंघ्र ) कीजिए ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यों को उस ईश्वर की सेवा अवश्य क्यों नहीं करनी चाहिए जो बाहर-भीतर सर्वत्र व्यापक होके ज्ञान देता है तथा जो विद्वान् दूर वा समीप स्थित होके सत्य उपदेश से विद्या देता है ॥११॥

महस्ताक्षो विचर्षणिर्गन्धी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( उक्थ्यः ) स्तुति करने योग्य ( महस्ताक्षः ) असंख्य नेत्रों की सामर्थ्य से युक्त ( विचर्षणिः ) साक्षात् देखनेवाला ( होता ) अच्छे-अच्छे विद्या आदि पदार्थों को देनेवाला ( अग्निः ) परमेश्वर ( रक्षांसि ) दुष्टकर्म वा दुष्टकर्मवाले प्राणियों को ( सेधति ) दूर और वेदों का ( गृणीते ) उपदेश करता है वैसे तू हो ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। परमेश्वर वा विद्वान् जिन कर्मों के करने की आज्ञा देवे उनको करो और जिनका निषेध करें उनको छोड़ दो ॥१२॥

इस सूक्त में धार्मिक ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इसके अर्थ की पूर्ण सुताय के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

यह उपासीर्वा सूक्त और अष्टाईसर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ ब्रह्मर्षिस्वामिर्निर्दिष्टमथ सुवराज्यं राहुगणो योतयन् शक्तिः । इत्यो वेदता ।

१, १३ निम्बुवस्तस्यमन्त्रः ॥ ४, ६, ८, १०, १३, १४

विश्वरूपः निम्बुवस्तः । अथमन्त्रः स्वरः । २-४, ७, १२,

१५ धुरिण्युहो । ८, १६ भुवोऽर्चनः ।

अथमन्त्रः स्वरः ॥

अथ अस्तीर्षं सुक्त का धारण्य किया जाता है । इसके अथम मन्त्र में सभापति आदि का वर्णन किया है—

इत्था हि सोम इन्मदै अथा चकार वर्धनम् ।

शविष्ठ वज्रिभोजसा पृथिव्या निः प्रशा अद्विमर्षस्तु स्वराज्यम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( शविष्ठ ) बलयुक्त ( वज्रिन् ) सत्मास्त्रविद्या से सम्पन्न सभापति जैसे सूर्य ( अहिम् ) मेघ को जैसे ( इन्द्र ) चारों वेद के जाननेवाला ( भोजसा ) अपने पराक्रम से ( पृथिव्याः ) विस्तृत भूमि के मध्य ( अथे ) आगम्य और ( सोमे ) ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले में ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य की ( अन्वर्धनम् ) अनुकूलता से सत्कार करता हुआ ( इत्था ) इस हेतु से ( वर्धनम् ) बढ़ती की ( चकार ) करे जैसे ही तू सब अभ्याचारणों को ( इत्थि ) ही ( निश्चयाः ) दूर कर दे ॥१॥

आचार्य—मनुष्यों को चाहिए कि चक्रवर्तिराज्य की सामग्री इकट्ठी कर और उसकी रक्षा करके विद्या और सुख की निरन्तर वृद्धि करें ॥१॥

किर बहु सभाप्यस्य आदि कंसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

स त्वामदद्दृष्ट्वा मदः सोमः श्वेनाभृतः सुतः ।

येना वृत्रं निरद्व्यो जघन्य वज्रिभोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) सत्त्व और अस्त्रों की विद्या को धारण करनेवाले और सभाप्यस्य ( येन ) जिस न्याय बलनि और मद करनेवाले जो कि राज पक्षी के समान धारण किया जावे उस उत्पादन किये हुए पदार्थों के समूह से तू ( भोजसा ) पराक्रम से ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य की ( अन्वर्धनम् ) शिक्षानुकूल किये हुए जैसे सूर्य ( अद्व्यः ) जलो से अलग कर ( वृत्रम् ) जल को स्वीकार धर्मात् पत्थर सा कठिन करते हुए मेघ को निरन्तर छिन्न-भिन्न करता है जैसे प्रजा से अलग कर प्रजा सुख को स्वीकार करते हुए शत्रु को ( निर्वर्धनम् ) छिन्न-भिन्न करते हो ( सः ) वह ( दृष्ट्वा, मदः, श्वेनाभृतः सुतः ) उक्त गुणवाला ( सोमः ) पदार्थों का समूह ( त्वा ) तुझ को ( अमदत् ) आनन्दित करावे ॥२॥

आचार्य—इस मन्त्र में सुतोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जिन पदार्थों और कामों से प्रजा प्रमत्त हो उनसे प्रजा की उन्नति करें और शत्रुओं की निवृत्ति करके धर्मयुक्त राज्य की नित्य प्रशंसा करें ॥२॥

मेघर्भाहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।

इन्द्रं वृम्यं हि ते शवो हनौ वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परम सुखकारक जैसे सूर्य का ( वज्र ) किरणसमूह ( वृम्यम् ) मेघ को ( हनः ) मारता और ( शवः ) जलों को ( निर्वसते ) नियम में रक्षता है जैसे जो ( ते ) आपके शत्रु हैं उन शत्रुओं का हनन करके ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करता हुआ ( हि ) निश्चय करके ( वृम्यम् ) धन की ( प्रेहि ) प्राप्त हो ( शवः ) बल को ( वज्रीहि ) चारों ओर से बढ़ा शरीर और आत्मा के बल से ( धृष्णुहि ) दृढ़ हो तथा ( जया ) जीत को प्राप्त हो इस प्रकार करते हुए ( ते ) आपका पराजय ( न ) होगा ॥३॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकनुतोपमालङ्कार है । जो राजपुरुष सूर्यप्रकाश के तुल्य प्रसिद्ध कीर्ति वाले हैं वे राज्य के ऐश्वर्य के भोगनेहारे होते हैं ॥३॥

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्य निर्दिवः ।

सृजा मरुवतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्य के केनेहारे ! तू जैसे सूर्य ( वृम्यम् ) मेघ का लाइनकर ( भूम्याः ) पृथिवी के ( अधि ) ऊपर ( इमाः ) ये ( जीवधन्याः ) जीवों में अनावि की मित्रि मे हितकारक ( मरुवतीः ) मनुष्यादि प्रजा के व्यवहारों की सिद्ध करनेवाले ( शवः ) जलों को ( निर्वर्धनम् ) नित्य पृथिवी में पहुँचाता है और ( विचः ) प्रकाशों को प्रकट करता है जैसे अश्विनियों को दण्ड दे बर्माचारण का प्रकाश कर ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) पद्यायोग्य सत्कार करता हुआ प्रजाशासन किया कर और नामा प्रकार के सुखों को ( निर्वर्धनम् ) निरन्तर सिद्ध कर ॥४॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकनुतोपमालङ्कार है । जो राज्य करने की इच्छा करे वह विद्या, धर्म और विज्ञेयनीति का प्रचार करके आप बर्मात्मा होकर सब प्रजाओं में पिता के समान बनें ॥४॥

किर उस सभाप्यस्य के कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानु वज्रेण हीकितः ।

अभिक्रम्याव जिघ्रतेऽपः समीय चोदमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे ( इन्द्रः ) सूर्य ( वज्रेण ) किरणों से ( वृत्रस्य ) मेघ के ( अपः ) जलों को ( अभिक्रम्याव ) आक्रमण करके ( सानुम् ) मेघ के

के शिखरों को छेदन करता है जैसे ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करता हुआ राजा ( जिघ्रते ) हनन करनेवाले ( समीय ) प्राप्त हुए शत्रु के पराजय के लिए अपनी सेनाओं को ( चोदयन् ) प्रेरणा करता हुआ ( वीर्यतः ) कुछ शत्रु के बल के आक्रमण से सेना को छिन्न-भिन्न करके ( हीकितः ) प्रजाओं से अनावर को प्राप्त होता हुआ शत्रु पर कोष को ( अपः ) कर ॥५॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकनुतोपमालङ्कार है । जो सूर्य के समान अविद्या अन्धकार को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर दुष्टों की दण्ड और बर्मात्माओं का सत्कार करते हैं वे विद्वानों में सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥५॥

अधि सानो नि जिघ्रते वज्रेण शतपर्वणा ।

मन्दान इन्द्रो अन्वसः सविम्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे ( इन्द्रः ) विद्युत् अग्नि ( शतपर्वणा ) असंख्यात भस्मे-भस्म कर्मों से युक्त ( वज्रेण ) अपने किरणों से मेघ के ( सानावधि ) अवयवों पर प्रहार करता हुआ ( निजिघ्रते ) प्रकाश को रोकनेवाले मेघ के लिए सर्वत्र प्रतिकूल रहता है जैसे ही जो भाप ( शत्रुम् ) उत्तम रीति से शिक्षायुक्त बापी की ( इच्छति ) इच्छा करते हैं सो ( सविम्यः ) मित्रों के लिए ( मन्दानः ) आगम्य बढ़ाते हुए और ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करते हुए ( अन्वसः ) धन के दाता हों ॥६॥

आचार्य—इस मन्त्र में श्लेबलुतोपमालङ्कार है । जैसे सब जगत् का उपकार करनेवाला सूर्य है वैसे ही सभाप्यस्य आदि को भी होना चाहिए ॥६॥

इन्द्र तुम्यमिदं विवोञ्जुर्च वज्रिनीप्यम् ।

यद् त्वं मायिनं वृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्निः ) मेघ शिखरवत् पर्वतादि युक्त स्वराज्य से सुसूचित ( वज्रिन् ) अत्युत्तम सत्मास्त्रों से युक्त ( इन्द्र ) सभे ! ( यत् ) जिससे ( त्वम् ) उस ( मायिनम् ) कपटी ( मृगम् ) मृग के तुल्य पदार्थ भोगने वाले को ( मायया ) बुद्धि से ( इ ) निश्चय करके ( वज्रीः ) हनन करता है ( विवः ) सूर्य के समान ( अनुत्तम् ) स्वाधीन पुरुषार्थ से प्रहारा किये हुए ( वीर्यम् ) पराक्रम को ग्रहण करके ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करता हुआ ( तमु ) उसी दुष्ट को दण्ड देता है उस ( तुम्यमिद् ) तेरे ही लिए उत्तम-उत्तम धन हम लोग देवें ॥ ७ ॥

आचार्य—जो प्रजा की रक्षा के लिए सूर्य के समान शरीर और आत्मा तथा न्यायविद्याओं का प्रकाश करके कपटियों को दण्ड देते हैं वे राज्य के बढ़ाने और करों को प्राप्त होने में समर्थ होते हैं ॥७॥

किर भी अगले मन्त्र में पूर्वोक्त सभाप्यस्य और सूर्य के गुणों का वर्णन किया है—

वि ते वज्रासोऽभस्थिरमवर्ति नाध्याऽअनु ।

महर्च इन्द्र वीर्यं बाहोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ! जो ( ते ) तेरे ( वज्रासः ) सत्मास्त्रयुक्त वृक्षर सेना ( अवर्तिम् ) नव्य ( नाध्याः ) तारनेवाली नौकाओं को ( अनुव्यस्तिरम् ) अनुकूलता से व्यवस्थित करते हैं और जो ( ते ) तेरे ( बाहो ) भुजाओं में ( महर्चः ) बड़ा ( वीर्यम् ) पराक्रम और ( ते ) तेरे भुजाओं में ( बलम् ) बल ( हितम् ) स्थित है उससे ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) पद्यावत् सत्कार करता हुआ राज्यलक्ष्मी को तू प्राप्त हो ॥८॥

आचार्य—जो विद्वान् राज्य के बढ़ाने की इच्छा करें वे बड़े अग्निवज्र से चलाने योग्य नौकाओं को बनाकर द्वीपान्तरों में जा-आके, व्यवहार से धन आदि के लाभों को बढ़ाके अपने राज्य को धन-धान्य से सुसूचित करें ॥८॥

किर राजपुरुषों को क्या करना चाहिए वह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सहस्रं साकमर्चत परि द्रोमत विशतिः ।

शतिनमन्वर्जोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम लोग जो सभाप्यस्य ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करता हुआ वर्तमान होता है ( एनम् ) उसका आश्रय करके उस अपने राज्य को सब प्रकार से अधर्माचरण से ( परिच्छोमत ) रोको ( साकम् ) परस्पर मिलके ( सहस्रम् ) असंख्यात गुणों से युक्त पुरुषों से सहित ( अर्चत ) सत्कार करो । जिसको ( विशतिः ) बीस ( शता ) सैकड़ें ( अनु ) अनुकूलता से ( अनौनवः ) स्तुति करो जो ( उद्यतम् ) प्रसिद्ध ( ब्रह्म ) वेद वा धर्म को ( अर्चन् ) सत्कार करता हुआ वर्त्तता है उस ( इन्द्राय ) अधिक सम्पत् वाले सभाप्यस्य के लिए अनुकूल होके स्तुति करो ॥९॥

आचार्य—मनुष्यों को विरोध के बिना छोड़े परस्पर सुख कभी नहीं होता । मनुष्यों को उचित है कि विद्या तथा उत्तम सुख से रहित और निन्दित मनुष्य को सभाप्यस्य आदि का अधिकार कभी न दें ॥ ९ ॥

किर भी पूर्वोक्त सभाप्यस्य के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रो वृत्रस्य तविर्षी निरहन्तसहसा सहः ।

सहस्रस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्या अस्तुजदर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥१०॥

पदार्थ—जो ( इन्द्रः ) सभाप्यस्य विद्युद्गुण सूर्य ( वृम्यम् ) मेघ को नष्ट करने के समान शत्रु को ( अस्तुजम् ) मारता हुआ निरन्तर हनन करता है तथा जो ( सहस्रम् ) अस्त्र से सूर्य जैसे ( वृत्रस्य ) मेघ के बल को जैसे शत्रु के ( तविर्षीम् )

बल को ( निरहम् ) निरस्त हनन करता और ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करता हुआ सूर्य को ( अनुजम् ) उत्पन्न करता है ( तत् ) वहीं ( अन्व ) इसका ( भवत् ) बड़ा ( पोष्यम् ) पुरुषार्थरूप बल के ( सह ) सहन का हेतु है ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य अत्यन्त बल और तेज से सब का आकर्षण और प्रकाश करता है वैसे सभाध्यक्ष आदि को भी उचित है कि अपने अत्यन्त बल से सुभ गुणों के आकर्षण और न्याय के प्रकाश से राज्य की शिक्षा करें ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इमे चित्तव मन्यवे वेपंते भियसा मही ।

यदिन्द्र वज्रिभोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीर्गर्वन्न स्वराज्यम् ॥११॥

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) अस्त्रविद्या को ठीक-ठीक जाननेवाले ( इन्द्र ) सभाध्यक्ष राजन् ( यत् ) जिस ( तव ) आपके ( भोजसा ) सेना के बल से जैसे सूर्य के आकर्षण और ताड़न से ( इमे ) ये ( मही ) लोक ( वेपंते ) कम्पते हैं उनके समान जो आप ( भियसा ) भयबल से ( मन्यवे ) कोष की शान्ति के लिए शत्रुलोक ( अनु ) अनुकूल होके कम्पते रहते हैं जैसे ( अवस्थानम् ) बहुत वायु से युक्त सूर्य ( वृत्रम् ) मेघ को मारता है वैसे ही ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करता हुआ ( चित् ) और शत्रु को ( अवधी ) मारा कर ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सभाध्यक्ष के होने से सुलपूर्वक प्रजा के मनुष्य अच्छे मार्ग में चलते-चलाते हैं वैसे ही सूर्य के आकर्षण से सब भूगोल इधर-उधर चलते-फिरते हैं। जैसे सूर्य मेघ को वधकै सब प्रजा का पालन करता है वैसे सभा और सभापति आदि को भी चाहिए कि शत्रु और शत्रुवाय का नाश करके विद्या और न्याय के प्रचार से प्रजा का पालन करें ॥ ११ ॥

फिर भी सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

न वेपसा न तन्यतेन्द्र वृत्रो वि बीभयत् ।

अम्येनं वज्रे आयसः सदस्रभृष्टिरायतार्चन्न स्वराज्यम् ॥१२॥

पदार्थ—हे सभापति ! ( स्वराज्यमन्वर्धनम् ) अपने राज्य का सत्कार करता हुआ तू जैसे ( वृत्र ) मेघ ( वेपसा ) वेग से ( इन्द्रम् ) सूर्य को ( न बीभीषयत् ) भय प्राप्त नहीं करा सकता और उस मेघ से प्रकाश की हुई ( तन्यता ) बिजुली से भी भय को ( न ) नहीं दे सकता ( एनम् ) इस मेघ के ऊपर सूर्यप्रेरित ( सहस्रभृष्टिः ) सहस्र प्रकार के दाह से युक्त ( आयसः ) मोहे के शस्त्र वा आग्नेयास्त्र के तुल्य ( वज्रः ) वज्ररूप किरण ( अम्येनम् ) चारों ओर से प्राप्त होता है वैसे शत्रुओं पर आप हज़िए ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। जैसे मेघ आदि सूर्य को नहीं जीत सकते वैसे ही शत्रु भी धर्मात्मा, सभा और सभापति का तिरस्कार कभी नहीं कर सकते ॥ १२ ॥

फिर भी अगले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है—

यद् वृत्रं तव चाशनि वज्रेण समयोधयः ।

अहिमिन्द्र जिघांसता दिवि ते बह्वधे शवोऽर्चन्न स्वराज्यम् ॥१३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त सन्नेह ! ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करता हुआ तू ( यत् ) जैसे ( चित् ) आकाश में सूर्य ( अशनिम् ) बिजुली का प्रहार करके ( वृत्रम् ) कुटिल ( अहिम् ) मेघ का ( बह्वधे ) हनन करता है वैसे ( वज्रेण ) शस्त्रास्त्रों के सहित अपनी सेनाओं का शत्रुओं के साथ ( समयोधयः ) अच्छे प्रकार युद्ध करा शत्रुओं की ( जिघांसता ) मारने वाले ( तव ) आपके ( शवः ) बल धर्मात् सेना का विजय हो इस प्रकार वर्तमान करनेवाले ( ते ) आपका ( व ) यश बढ़ेगा ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य अपने बहुत-से किरणों से बिजुली और मेघ का परस्पर युद्ध कराता है वैसे ही सभापति आग्नेयादि अस्त्रयुक्त सेना का शत्रु-सेना के साथ युद्ध करावे। इस प्रकार के सेनापति का कभी पराजय नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

फिर इस सभाध्यक्ष को क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्रं वेविज्यते भियार्चन्न स्वराज्यम् ॥१४॥

पदार्थ—हे ( अद्रिवः ) बहुमेघयुक्त सूर्य के समान ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष ! ( यत् ) जब ( ते ) आपके ( अभिष्टने ) सर्वथा उत्तम न्याययुक्त व्यवहार में ( स्था ) स्थावर ( जगच्च ) और अजगच्च ( रेजते ) कम्पायमान होता है तथा जो ( त्वष्टा ) शत्रुच्छेदक सेनापति है ( तव ) उसके ( मन्यवे ) कोष के लिए ( भियार्चित् ) भय से भी ( वेविज्यते ) उद्भिन्न होता है तब आप ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करते हुए सुखी हो सकते हैं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे सूर्य के योग से प्राणधारी अपने-अपने कर्म में वर्तते और सब भूगोल अपनी कक्षा में यथावत् भ्रमण करते हैं वैसे ही सभा से प्रशासन किये राज्य के संयोग से सब मनुष्यादि प्राणी धर्म के साथ अपने-अपने व्यवहार में वर्तके सम्मान से अनुकूलता से गमनागमन करते हैं ॥ १४ ॥

अब ईश्वर और महाविद्वान् को प्राप्त होकर विद्वान् लोग क्या-क्या करें-

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्मन्त्रमुत्तमं देवां ओजांसि सन्दधुर्चन्न स्वराज्यम् ॥१५॥

पदार्थ—जो ( परः ) उत्तमगुणयुक्त राजा ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का ( अन्वर्धनम् ) अनुकूलता से सत्कार करता हुआ वर्तता है, जिस राज्य में ( देवः ) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् लोग ( मन्त्रम् ) धन को ( अनुम् ) और बुद्धि वा पुरुषार्थ को ( उत्त ) और भी ( ओजांसि ) शरीर, आत्मा और मन के पराक्रमों को ( सधुः ) धारण करते हैं तथा जिस परमेश्वर को प्राप्त होकर हम लोग ( वीर्या ) विद्या आदि वीर्यों को ( अधीमसि ) प्राप्त होवें उस ( इन्द्रम् ) अमन्तपराक्रमी जगदीश्वर वा पूर्ण वीर्ययुक्त राजा को प्राप्त होकर ( क ) कौन मनुष्य धन को ( नु ) शीघ्र ( नहि यत् ) प्राप्त हो उस राज्य में कौन पुरुष धन को तथा बुद्धि वा बलों को शीघ्र नहीं धारण करता ॥ १५ ॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य परमेश्वर वा महाविद्वान् की प्राप्ति के बिना उत्तम विद्या और श्रेष्ठ सामर्थ्य को नहीं प्राप्त हो सकता इस हेतु से इनका सदा आश्रय करना चाहिए ॥ १५ ॥

फिर मनुष्य उनको प्राप्त होकर किसको प्राप्त होते हैं इस विषय को कहा है—

यामधर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमन्तत ।

तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वधेन्द्र उक्था सममृतार्चन्न स्वराज्यम् ॥१६॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम लोग जैसे ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य की उन्नति से सब का ( अन्वर्धनम् ) सत्कार करता हुआ ( दध्यङ् ) उत्तम गुणों को प्राप्त होने वाला ( ब्रह्माणि ) हिंसा आदि दोषरहित ( पिता ) वेद का प्रवक्ता अध्यापक वा ( अनु ) विज्ञानवाला मनुष्य ये ( याम् ) जिस ( धियम् ) शुभ विद्या आदि गुण क्रिया के धारण करनेवाली बुद्धि को प्राप्त होकर जिस व्यवहार में सुखों को ( अन्ततः ) विस्तार करते हैं वैसे इस को प्राप्त होकर ( तस्मिन् ) उस व्यवहार में सुखों का विस्तार करो और जिस ( इन्द्रम् ) अच्छे प्रकार सेवित परमेश्वर से ( पूर्वधा ) पूर्व पुरुषों के तुल्य ( ब्रह्माणि ) उत्तम अन्न धन ( उक्था ) कहने योग्य वचन प्राप्त होते हैं ( तस्मिन् ) उसको सेवित कर तुम भी उनको ( सममृत ) प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्य परमेश्वर की उपासना करनेवाले विद्वानों के सग प्रीति के सद्गुण कर्म करके सुन्दर बुद्धि, उत्तम अन्न, धन और वेदविद्या से सुशिक्षित संभावणों को प्राप्त होकर उनको सब मनुष्यों के लिए देना चाहिए ॥ १६ ॥

इस सूक्त में सभा आदि अध्यक्ष, सूर्य, विद्वान् और ईश्वर शब्दार्थ का वर्णन करने से पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिए ॥

यह अस्तीर्षा सूक्त और इस्तीर्षा वर्ग समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में इन्द्र, मरुत्, अग्नि, सभा आदि के अध्यक्ष और अपने राज्य का पालन आदि का वर्णन करने से अनुर्थ अध्याय के साथ पञ्चम अध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिए ॥

इति श्रीमत्परिब्राजकाचार्य श्रीयुताविराजानन्दसरस्वतीस्वामीजी के शिष्य श्रीमहोपाध्याय-सरस्वतीस्वामी ने आर्यभाषा से सुशुद्धित आग्नेयभाष्य में पञ्चम अध्याय पूरा किया ॥



## अथ प्रथमाष्टके षष्ठाध्यायारभ्यते ॥

विश्वानि देव सवितरुदितानि परा सुव । यज्ञं तन्न वा सुव ॥

अथ नवमर्त्यकाशीतितमस्य सुस्तस्य राहुतयो गीतस्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ।  
१, ७, ८ विराट् पङ्क्तिः; २-६, ९ निबृहस्तारपङ्क्तिः ।  
पञ्चमः स्वरः । २ पुरिष् बहुती कृत् । अन्त्यः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में सभापति के पुत्रों का उपवेश किया है—

इन्द्रो यदाय वावृधे शर्वसे वृत्रहा वृभिः ।

तमिन्महस्वाजिभूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

पदार्थ—हम लोग जो ( वृत्रहा ) सूर्य के समान ( इन्द्र ) सेनापति ( वृभिः ) बुरावर नायकों के साथ ( शर्वसे ) बल और ( वज्रम् ) आनन्द के लिए ( वावृधे ) बढ़ता है जिस को ( महत्सु ) बड़े ( वाजिभू ) सभाओं ( उत ) और ( अर्भे ) छोटे सभाओं में ( हवामहे ) बुलाते और ( तमिन् ) उसी को ( ईम् ) सब प्रकार से सेनाध्यक्ष करने हैं ( स ) वह ( वाजेषु ) सभाओं में ( न. ) हम लोगों की ( वाजिभू ) अच्छे प्रकार रक्षा करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो पूर्ण विद्वान्, प्रति बलिष्ठ, धार्मिक सब का हित चाहनेवाला, शस्त्रास्त्र क्रिया और शिक्षा में प्रतिष्ठित भूय और वीर पुरुष योद्धाओं में पिता के समान देशकाल के अनुकूलता से युद्ध करने के लिए समय के अनुकूल व्यवहार जाननेवाला हो उसी को सेनापति करना चाहिए अन्य को नहीं ॥ १ ॥

किर वह कैसा हो इस विषय का उपवेश अगले मन्त्र में किया है—

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।

असि द्रुस्य विद्वधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥

पदार्थ—हे वीर सेनापते ! जो तू ( हि ) निश्चय करके ( भूरि ) बहुत ( सेन्यः ) सेनायुक्त ( असि ) है ( भूरि ) बहुत प्रकार से ( पराददिः ) शत्रुओं के बल को नष्ट कर ग्रहण करनेवाला है ( द्रुस्य ) छोटे ( चित् ) और ( महत् ) बड़े युद्ध का जीतनेवाला ( असि ) है ( वृषः ) बल से बढ़नेवाले वीरों को ( शिक्षसि ) शिक्षा करता है उस ( सुन्वते ) विजय की प्राप्ति करनेहारे ( यजमानाय ) युवदाता के ( ते ) तेरे लिए ( भूरि ) बहुत ( वसु ) धन प्राप्त हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे सेनापतियों से सेना शिक्षित, पाली और सुखी की जाती है वैसे सेनास्य भूत्यों से सेनापतियों का पालन और उसको आनन्दित करना योग्य है ॥ २ ॥

किर इनको परस्पर कैसे बर्ताव रखना चाहिए तो कहा है—

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।

युक्त्वा मंदव्युता हरी कं हनः कं वसी दधोऽस्मां इन्द्र वसी दधः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेना के स्वामी ! ( वत् ) जब ( आजय ) सभा ( उदीरते ) उत्कण्ठता से प्राप्त हो तब ( धृष्णवे ) दुकता के लिए ( वना ) बवों को ( वीर्यते ) बरता है सो तू ( मंदव्युता ) बड़े बलिष्ठ ( हरी ) चाक्यों को रणार्थ से ( युक्त्वा ) युक्त कर ( कं ) किसी शत्रु को ( हनः ) मार ( कं ) किसी मित्र को ( वसी ) धन कोष से ( वत् ) चारण कर और ( अस्मा ) हमको ( वसी ) धन में ( वत् ) अधिकारी कर ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जब युद्ध करना हो तब सेनापति लोग सवारी शतघ्नी ( तोष ) भुशुषी ( वज्रक ) भावि शस्त्र, आनेय भावि अस्त्र और भोजन आच्छादन आदि सामग्री को पूर्ण करके किन्हीं शत्रुओं को मार, किन्हीं मित्रों का सत्कार कर युद्धार्थ कर्मों से धर्मात्मा जनो को संयुक्तकर युक्ति से युद्ध कराके सदा विजय को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

किर सेनापति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

क्रत्वा महीं अनुवधं भीम आ वावृधे शर्वः ।

श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिमी हरिवान्वये हस्तयोर्बज्रमायसम् ॥४॥

पदार्थ—जो ( हरिवान् ) बहुत उत्तम शस्त्रों से युक्त ( शिमी ) शत्रुओं को रक्षाने ( भीमः ) और भय देनेवाला ( महान् ) बड़ा ( ऋष्वः ) प्राप्ति विद्या सेनापति ( श्रियः ) बल ( श्रिये ) शोभा और लक्ष्मी के धर्म ( उपाकयोः ) सपीप में प्राप्त हुई अपनी और शत्रुओं की सेना के समीप ( हस्तयोः ) हाथों में ( वायसम् ) जोहि आदि से बनाये हुए ( वज्रम् ) शस्त्रसमूह को चारण करके शत्रुओं को जीतता है वही राज्याधिकारी होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो बुद्धिमान् बड़े-बड़े उत्तम गुणों से युक्त शत्रुओं को पराजित, सेनाओं का शिक्षक, अत्यन्त युद्ध करनेहारा पुरुष है उसको सेनापति करके धर्म से राज्य के पालन की न्यायव्यवस्था करनी चाहिए ॥ ४ ॥

अथ अगले मन्त्र में ईश्वर के पुत्रों का उपवेश किया है—

आ पंभो पार्थिवं रजो बद्धधे रौचना दिवि ।

न त्वावीं इन्द्र कञ्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥५॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त ईश्वर ! जिससे ( कञ्चन ) कोई भी ( त्वावान् ) तेरे सदृश ( न जातः ) न हुआ ( न जनिष्यते ) न होगा और तू ( विश्वम् ) जगत् को ( ववक्षिथ ) यथायोग्य नियम से प्राप्त करता है और जो ( पार्थिवम् ) पृथिवी और आकाश में वर्तमान ( रजः ) परमाणु और लोक में ( आप्यो ) सब ओर से व्याप्त हो रहा है ( दिवि ) प्रकाशरूप सूर्यादि जगत् में ( रौचना ) प्रकाशमान भूगोलों की ( अतिबद्धधे ) एक-दूसरे वस्तु के बर्बाद से बड़ करता है वह सबका उपास्य देव है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! आप लोग जिसने सब जगत् को रचके व्याप्त कर रक्षित किया है जो जन्म और उपमा से रहित, जिसके तुल्य कुछ भी वस्तु नहीं है तो उस परमेश्वर से अधिक कुछ कैसे होवे ! इसकी उपासना को छोड़के अन्य किसी पृथक् वस्तु का ग्रहण या ग्रहणना मत करो ॥ ५ ॥

किर वह परमात्मा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो अयो मर्त्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।

इन्द्रोऽस्मभ्यं शिक्षतु वि मञ्जा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यः ) जो ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य का देनेहारा ( अयः ) ईश्वर ( ते ) तुझ ( दाशुषे ) दाता और ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( भूरि ) बहुत ( वसु ) धन को ( मर्त्तभोजनम् ) वा मनुष्यों के भोजनार्थ पदार्थ को ( पराददाति ) देता है उस ईश्वर निमित्त पदार्थों की आप हमको सदा ( शिक्षतु ) शिक्षा करो और ( तव ) आपके ( राधसः ) शिक्षित कार्यरूप धन का मैं ( भक्षीय ) सेवन करूँ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो ईश्वर हम जगत् को रच, चारण कर जीवों को न देता तो किसी को कुछ भी भोग-सामग्री प्राप्त न हो सकती । जो यह परमात्मा वेद द्वारा मनुष्यों को शिक्षा न करता तो किसी को विद्या का लेख भी प्राप्त न होता इससे विद्वान् को योग्य है कि सबके सुख के लिए विद्या का विस्तार करना चाहिए ॥ ६ ॥

किर वह ईश्वर का उपासक कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मर्दमेदे हि नो ददिर्पुथा गवामृजुक्रतुः ।

सं वृत्राय पुरु शतोभयाहस्त्या वसुं शिशीहि राय आ भर ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( ऋजुक्रतुः ) सरल ज्ञान और कर्मयुक्त ( दधिः ) दाता आप ईश्वर की आज्ञापालन और उपासना से ( मर्दमेदे ) आनन्द-आनन्द में ( हि ) निश्चय से ( वः ) हमारे लिए ( उभयाहस्त्या ) दोनों हाथों की क्रिया से उत्तम ( पुरु ) बहुत ( शता ) सैकड़ों ( वसु ) द्रव्यों का ( शिशीहि ) प्रबन्ध कीजिए ( गवाम् ) किरण इन्द्रियों और पशुओं के ( पूषा ) समूहों की ( आभर ) चारों ओर से चारण कर ( रायः ) जनो को ( वृत्राय ) सम्पत् ग्रहण कर ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो सब आनन्दों का देनेवाला, सब साधन, साध्य रूप पदार्थों का उत्पादक सब धनो को देता है वही ईश्वर हमारा उपास्य है अन्य नहीं ॥ ७ ॥

किर वह सभापति कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मादयस्व सुते सच्चा शर्वसे शूर राधसे ।

विद्या हि त्वा पुक्वसुमुप कामान्तससुज्महेऽथा नोऽविता भव ॥८॥

पदार्थ—हे ( शूर ) पुष्ट दोष और शत्रुओं का निवारण करनेहारे हम ( सुते ) इस उत्तम जगत् में ( पुक्वसुम् ) बहुतों को बसानेवाले ( रथा ) आपका ( उप ) आश्रय करके ( अथ ) पश्चात् ( कामान् ) अपनी कामनाओं को ( ससुज्महे ) सिद्ध करते हैं ( हि ) निश्चय करके ( विद्वन् ) जानते भी हैं तू ( वः ) हमारा ( अविता ) रक्षक ( भव ) हो और हम जगत् में ( सच्चा ) संयुक्त ( शर्वसे ) बलकारक ( राधसे ) धन के लिए ( मादयस्व ) आनन्द कराया कर ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को सेनापति के आश्रय के बिना शत्रु का विजय, काम की सिद्धि अपना रक्षण, उत्तम धन, बल और परम सुख प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

अथ ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पते त इन्द्र अन्तबो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।

अन्तर्हि ख्यो जनानामयो वैदौ अदाशुपां तेषां नो वेद आ भरा ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ! जिस ( ते ) तेरी सृष्टि में जा ( पते ) वे ( अन्तबः ) जीव ( वार्यम् ) स्वीकार के योग्य ( विश्वम् ) जगत् को ( पुष्यन्ति ) पुष्ट करते हैं ( तेषाम् ) धन ( जनानाम् ) मनुष्य आदि प्राणियों के ( अन्तः ) अन्त में वर्तमान ( अदाशुषाम् ) दानादि कर्मरहित मनुष्यों के

( अर्थ ) ईश्वर तू ( ते ) जिससे सुख प्राप्त होता है उसको ( हि ) निश्चय करके ( क्व ) उपदेश करता है वह तू ( न ) हमारे लिए ( वेद ) विज्ञान रूप धन का ( अक्षर ) दान कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर बाहर-भीतर, सबत्र व्याप्त होकर सब भीतर-बाहर के व्यवहारों को जानता, सत्य उपदेश और सब जीवों के हित की इच्छा करता है उसका आश्रय लेकर परमार्थ और व्यवहार सिद्ध करके सुखों को तुम प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सेनापति ईश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति पूर्व सूक्तार्थ के साथ समझनी चाहिए ॥

यह बयासीवाँ सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ बडर्चस्य द्व्यशोतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गौतम ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ४ निष्वास्तारपङ्क्तिः, २, ३, ५ विराडास्तारपङ्क्तिः ।

पञ्चम स्वरः । ६ विराड् जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अथ बयासीवें सूक्त का आरम्भ है । परमात्मा का उपासक सेनापति कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उपो षु शृणुही गिरा मर्षन्मातया इव ।

यदा नः सन्तावतः कर आदर्थास इषोजा न्विन्द्र ते हरी ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेनापते ! जो ( ते ) आपके ( हरी ) चारणाऽऽकर्षण के लिए बोड़े वा अग्नि प्रादि पदार्थ हैं उनको ( तु ) शीघ्र ( योज ) युक्त करो । प्रियवाणी बोलनेवाले विद्वान् से ( अर्थवासे ) यात्रा कीजिए । हे ( मधवन् ) अच्छे गुणों के प्राप्त करनेवाले ( न ) हमारी ( गिर ) बाणियों को ( उपोऽशृणुहि ) समीप होकर सुनिए ( आत् ) पश्चात् हमारे लिए ( अतवा इवेत् ) विपरीत आचरण करनेवाले जैसे ही ( मा ) मत हो ( यदा ) जब हम तुम से सुखों की याचना करते हैं तब आप ( न ) हमको ( सन्तावतः ) सत्य वाणीयुक्त ( कर ) कीजिए ॥ १ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे राजा ईश्वर के सेवन वा सेनापति से पालन की हुई सेना सुखों को प्राप्त होती है जैसे सभाध्यक्ष, प्रजा और सेना के अनुकूल वर्तमान करें वैसे उनके अनुकूल प्रजा और सेना के मनुष्यों को आचरण करना चाहिए ॥ १ ॥

अक्षरमीमदन्त इव प्रिया अभूवत ।

अस्तौषत स्वमानवो विप्रा नविष्टया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सभापते ! जो ( ते ) तेरे ( हरी ) चारण आकर्षण करनेवाले बाह्य वा घोड़े हैं उनको तू हमारे लिए ( न्योज ) शीघ्र युक्त कर । हे ( स्वमानव ) स्वप्रकाशमन्त्र रूप मूर्त्यादि के तुल्य ( विप्रा ) बुद्धिमान लोगो ! आप ( नविष्टया ) अतिशय नवीन ( मती ) बुद्धि के सहित होके ( प्रिया ) प्रिय हुईए सबके लिए सब शास्त्रों की ( हि ) निश्चय से ( अस्तौषत ) प्रशमा आप किया कीजिए शत्रु और दुःखों को ( अवावृवत ) छुड़ाए ( अस्तन् ) विद्यादि शुभगुणों में व्याप्त हुईए ( अमीमदन्त ) अतिशय करके आनन्दित हुईए और हमको भी ऐसे ही कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि श्रेष्ठ गुणकर्म स्वभावयुक्त सब प्रकार उत्तम आचरण करनेवाले सेना और सभापति तथा सत्योपदेशक प्रादि के गुणों की प्रशंसा और कर्मों से नवीन-नवीन विज्ञान और पुरुषार्थ को बढ़ाकर सदा प्रमन्नता से आनन्द का भोग करें ॥ २ ॥

सुसंहश त्वा वयं मर्षवन्विषीमहि ।

प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशां अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥३॥

पदार्थ—हे ( मधवन् ) परमपूजित धनयुक्त ( इन्द्र ) सुखप्रद ! जैसे ( वयम् ) हम ( सुसहस्रम् ) कल्याण दृष्टियुक्त ( त्वा ) आपके ( न्विषीमहि ) प्रशंसित करें वैसे हमसे सहित होके ( पूर्णवन्धुर ) समस्त सत्य प्रबन्ध और प्रेम युक्त ( स्तुत ) प्रशंसा को प्राप्त होके आप जो प्रजा के शत्रु हैं उनको ( न ) शीघ्र ( वशात् ) वश करो जो ( ते ) आपके ( हरी ) मूल के चारणाकर्षणादि गुणवत् सुशिक्षित भव्य हैं उनको ( अनुयोज ) युक्त करो विजय के लिए ( नूनम् ) निश्चय करके ( प्रयाहि ) अच्छे प्रकार जाया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकनृत्तोपमालङ्कार है । जब मनुष्य सबके द्रष्टा परमेश्वर की स्तुति करनेवाले सभापति का आश्रय लेते हैं तब इन शत्रुओं का शीघ्र निग्रह कर सकते हैं ॥ ३ ॥

म घा तं वृषं रथमग्निं तिष्ठति गोविदम् ।

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमविद्याधनयुक्त ( य ) जो आप ( हारियोजनम् ) अग्नि वा घोड़ों से युक्त किये इस ( पूर्णम् ) सब सामग्री से युक्त ( पात्रम् ) रक्षा निमित्त ( रथम् ) रथ को बनाना ( चिकेतति ) जानते हो ( सः ) सो उस रथ में

( हरी ) वेगादिगुणयुक्त घोड़ों को ( न्योज ) शीघ्र युक्त कर । हे ( इन्द्र ) सेनापते ! जो ( ते ) आपके ( वृषणम् ) शत्रु के सामर्थ्य का नाशक ( गोविदम् ) जिससे मूल का राज्य प्राप्त हो ( तम् ) उस रथ पर ( अतिष्ठति ) बैठे ( य ) वही विजय को प्राप्त क्यों न होवे ॥४॥

भावार्थ—सेनापति को योग्य है कि शिक्षा बल से दृष्ट-पुष्ट हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्र, अस्त्रादि सामग्री से पूर्ण सेना को प्राप्त करके शत्रुओं को जीता करे ॥४॥

फिर वह सेनापति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

युक्तस्तं अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।

तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याहन्धंसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सबको सुख के देनेवाले ( शतक्रतो ) असंख्य उत्तम बुद्धि और क्रियाओं से युक्त ( ते ) आपके जो सुशिक्षित ( हरी ) घोड़े हैं उनको रथ में तू ( न्योज ) शीघ्र युक्त कर जिस ( ते ) तेरे रथ के ( एक ) एक घोड़ा ( दक्षिण ) दाहिने ( उत ) और ( सव्य ) बाईं ओर ( अस्तु ) हो ( तेन ) उस रथ पर बैठ शत्रुओं को जीतके ( प्रियाम् ) प्रतिप्रिय ( जायाम् ) स्त्री को साथ बैठा ( मन्दानः ) आप प्रसन्न और उसको प्रसन्न करता हुआ ( यान्धंसः ) धन्नादि सामग्री के ( उपयाहि ) समीपस्थ होके तुम दोनों शत्रुओं को जीतने के अर्थ जाया करो ॥५॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि अपनी राणी के साथ अच्छे सुशिक्षित घोड़ों से युक्त रथ में बैठके युद्ध में विजय और व्यवहार में आनन्द को प्राप्त होवें । जहाँ-जहाँ युद्ध में वा भ्रमण के लिए जावें वहाँ-वहाँ उत्तम कारीगरों से बनाये सुन्दर रथ में स्त्री के सहित स्थित होके ही जावें ॥५॥

फिर उसके भृत्य क्या करें और उस रथ से वह क्या करें इस विषय को

अगले मन्त्र में कहा है—

युनजिं ते अक्षणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गर्भस्थोः ।

उत्वा सुतासौ रभमा अमन्दिषुः पृषवान्विजित्सु पत्न्यामवः ॥६॥

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) उत्तम शस्त्रयुक्त सेनाध्यक्ष ! जैसे मैं ( ते ) तेरे ( अक्षणा ) धन्नादि से युक्त नौका रथ में ( केशिना ) सूर्य की किरण के समान प्रकाशमान ( हरी ) घोड़ों को ( युनजिं ) जोड़ता हूँ जिस में बैठके तू ( गर्भस्थो ) हाथों में घोड़ों की रस्मी को ( दधिषे ) धारण करता है उस रथ में ( उपप्रयाहि ) अभीष्ट स्थानों को जा जैसे बल वेगादि युक्त ( सुतास ) सुशिक्षित ( भृत्या ) नौकर लोग जिस ( त्वा ) तुझको ( उ ) अच्छे प्रकार ( उदमन्दिषुः ) आनन्दित करें वैसे इनको तू भी आनन्दित कर और ( पृषवान् ) शत्रुओं की शक्तियों को रोकनेवाला तू अपनी ( पत्न्या ) स्त्री के साथ ( सव्यम् ) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो अश्वारोही की शिक्षा, सेवा करनेवाले और उनको सवारियों में चलानेवाले भृत्य हों वे अच्छी शिक्षायुक्त हों और अपनी स्त्रियादि को भी अपने से प्रसन्न रखके आप भी उनमें यथावत् प्रीति कर सर्वदा युक्त होके सुपरीक्षित स्त्री प्रादि में धर्म कार्यों को साधा करें ॥६॥

इस सूक्त में सेनापति और ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

यह बयासीवाँ सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ बडर्चस्य त्र्याशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गौतम ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ३—५ निष्कजगती, २ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।

६ त्रिष्टुप्छन्दः । बँबलः स्वरः ॥

अथ बयासीवें सूक्त का आरम्भ है फिर वह कैसे रथ में बैठा हुआ कामों को सिद्ध करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुग्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।

तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो वितचंसः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सब की रक्षा करनेवाले राजन् ! जो ( मर्त्य ) अच्छी शिक्षायुक्त धार्मिक मनुष्य ( तव ) तेरी ( अतिभि ) रक्षा प्रादि से रक्षित भृत्य ( अश्वावति ) उत्तम घोड़ों से युक्त रथ में बैठके ( गोषु ) पृथिवी के विभागों में युद्ध के लिए ( प्रवसः ) प्रपन्न ( गच्छति ) जाता है उससे तू प्रजाओं को ( सुग्रावी ) अच्छे प्रकार रक्षा कर ( तमित् ) सती को ( यथा ) जैसे ( विजे-तस ) वेतनारहित जड़ ( आपः ) जल वा वायु ( अशीतः ) चारों ओर से ( सिन्धुम् ) नदी को प्राप्त होते हैं वैसे ( भवीयसा ) अत्यन्त उत्तम ( वसुना ) धन से तू प्रजा को ( पूजि ) युक्त करता है वैसे ही सब प्रजा और राजपुरुष पुरुषार्थ करके एकत्र से संयुक्त हो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सेनापति प्रादि राजपुरुषों को योग्य है कि भृत्य अपने-अपने अधिकार के कर्मों में यथायोग्य न बनें, उन-उनको अच्छे प्रकार दण्ड और जो न्याय के अनुकूल बनें उनका सत्कार कर शत्रुओं को जीत,

प्रजा की रक्षा कर, पुरुषों को प्रशन्न रखके राजकार्यों को सिद्ध करना चाहिए। जो इसी पुरुष अपराधीके योग्य दण्ड और अच्छे कर्मकर्ता के योग्य प्रतिष्ठा किये बिना यथावत् राज्य की व्यवस्था को स्थिर करने को समर्थ नहीं हो सकता इससे इस कर्म का अनुष्ठान सदा करना चाहिए ॥१॥

किर विद्वान् भोग क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आपो न देवीरूपं यान्ति होत्रियमवः पर्यन्ति वितर्तं यथा रजः ।

प्राचैर्देवासः प्र गीयन्ति देवेषु ब्रह्मभिर् योषयन्ते वरा इव ॥२॥

पदार्थ—जो ( देवासः ) विद्वान् भोग मेघ को ( आपो न ) जैसे जल प्राप्ता होते हैं वैसे ( देवीः ) विदुषी स्त्रियों को ( उपयन्ति ) प्राप्त होते हैं और ( वरा ) जैसे ( प्राचे ) प्राचीन विद्वानों के साथ ( वितर्तम् ) विमल और जैसे ( रजः ) परमाणु आदि जगत् का कारण ( होत्रियम् ) देने-लेने के योग्य ( अवः ) रक्षा को ( योषयन्ति ) देवते हैं ( वरा इव ) उत्तम पतिव्रता विदुषी स्त्रियों के समान ( ब्रह्मभिः ) वेद और ईश्वर की आज्ञा में प्रसन्न ( देवेषु ) अपने आत्मा को विद्वान् होने की चाहनायुक्त ( प्रययन्ति ) नीतिपूर्वक करते और ( योषयन्ते ) इसका सेवन करते औरों को ऐसा कराते हैं वे निरन्तर सुखी क्यों न हों ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। किस हेतु से विद्वान् और अविद्वान् भिन्न-भिन्न कहते हैं इस का उत्तर—जो धर्मयुक्त शुद्ध क्रियाओं को करे, सब के शरीर और आत्मा का यथावत् रक्षण करना जानें और भूगर्भादि विद्याओं से प्राचीन आर्य विद्वानों के मुख्य वेदद्वारा ईश्वरप्रणीत सत्यधर्म मार्ग का प्रचार करें वे विद्वान् हैं और जो इन से विपरीत हों वे अविद्वान् हैं इस प्रकार निरूपण से जानें ॥ २ ॥

किर वे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अधि द्यौरदधा उक्थ्यैवर्चो यतस्तुवा मिथुना या संपर्यतः ।

असंयत्ता व्रते तं क्षेति पुष्यति मद्रा शक्रियजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे ( या ) जो ( यतस्तुवा ) साधनोपासनयुक्त पठाने और उपदेश करनेहारे ( मिथुना ) दोनों मिलके ( इयोः ) अपना और पराया कल्याण करके जो ( उक्थ्यम् ) प्रशंसा के योग्य ( उक्थः ) वचन को ( संपर्यतः ) सेवन करते हैं वैसे इस का तू ( अर्चया ) धारण कर जो ( असंयत ) अजितेन्द्रिय भी ( ते ) तेरे ( व्रते ) सत्यभावगादि नियम पालने में ( क्षेति ) निवास करता है उस में ( मद्रा ) कल्याण करनेहारी ( शक्तिः ) सामर्थ्य ( क्षेति ) बसती है और वह ( पुष्यति ) पुष्ट होता है तब ( सुन्वते ) ऐश्वर्य प्राप्ति होनेवाले ( यजमानाय ) सब को सुख के दाता के लिए निरन्तर सुख कैसे न बढ़े ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परोपकारबुद्धि से सब के शरीर और आत्मा के मध्य पुष्टि और विद्याबल को उत्पन्न कर विरोध छोड़के धर्मयुक्त व्यवहार को सेवन करके निरन्तर सब मनुष्यों को सत्य व्यवहार में प्रवृत्त करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वयं इन्द्राग्रयः शम्या ये सुकृत्यपा ।

सर्वे पणोः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्रय ) अग्नि विद्या को प्रदीप्त करनेहारे ( वे, नरः ) नायक मनुष्यों ! आप जैसे ( सुकृत्यपा ) सुकृतयुक्त ( शम्या ) कर्म और ( पणोः ) प्रशसनीय व्यवहार करनेवाले के उपदेश से ( प्रथमम् ) पहले ( वयं ) उमर को ब्रह्मचर्य के लिए ( आदधिरे ) सब प्रकार से धारण करते हैं वे ( सर्वम् ) सब ( भोजनम् ) भोजन को भोग और पालन को ( समविन्दन्त ) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं ( आत् ) इस के अनन्तर जैसे ( अ गिरा, ) प्राणवत् प्रिय बखड़ा ( पशुम् ) अपनी माता को प्राप्त होके भोजनित होता है वैसे आप ( अश्वावन्तम् ) उत्तम घोड़ों से युक्त ( गोमन्तम् ) श्रेष्ठ गाय और भूमि आदि के सहित राज्य को प्राप्त होके भोजनित हुए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। कोई भी मनुष्य ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़े बिना साज्जोपाज्ज विद्याओं को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते और विद्या सत्कर्म के बिना राज्याधिकार को प्राप्त होने योग्य नहीं होते उक्त प्रकार से रहित मनुष्य सत्य सुख को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

किर वे किससे किसको प्राप्त होते हैं यह विषय कहा है—

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पयस्तते ततः सूर्या व्रतपा वेन आजनि ।

आ गा आजदुश्ना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

पदार्थ—जैसे ( प्रथमः ) प्रसिद्ध विद्वान् ( अथर्वा ) हिसारहित ( पयः ) सन्मान को ( तते ) विस्तृत करता है जैसे ( वेन ) बुद्धिमान् ( व्रतपाः ) सत्य का पालन करनेहारा सब प्रकार (आजनि) प्रसिद्ध होता है जैसे ( ततः ) विस्तृत ( सूर्यः ) सूर्यलोक ( गाः ) पृथिवी में देशों को ( आजत् ) धारण करके बुझाता है जैसे ( काव्यः ) कवियों में शिक्षा को प्राप्त ( उत्तमा ) विद्या की कामना करने वाला विद्वान् विद्याओं को प्राप्त होता है वैसे हम लोग ( यज्ञैः ) विद्या के पढ़ने-पढ़ाने सत्संगयोगादि क्रियाओं से ( यमस्य ) सब जगत् के नियन्ता परमेश्वर के ( सचा ) साथ ( जातम् ) प्राप्त हुए ( अमृतम् ) मोक्ष को ( आजामहे ) प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सत्य मार्ग में स्थित होके सत्यक्रिया और विज्ञान से परमेश्वर की जानकी मोक्ष की इच्छा करें वे विद्वान् मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

किर वह किस प्रकार से क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

बहिर्वा यत्स्वपत्याय हृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।

ग्रावा यव ददति कारुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रययति ॥६॥

पदार्थ—( यव ) जिस ( विधि ) प्रकाशयुक्त व्यवहार में ( उक्थ्य ) कथनीय व्यवहारों में निपुण प्रशसनीय शिल्प कर्मों का कर्ता ( हृज्यते ) परमेश्वर्य को प्राप्त करानेहारा विद्वान् ( अभिपित्वेषु ) प्राप्त होने के योग्य व्यवहारों में ( यत् ) जिस ( स्वपत्याय ) सुन्दर सन्तान के अर्थ ( बहिः ) विज्ञान को ( वृज्यते ) छोड़ता है ( अर्कः ) पूजनीय विद्वान् ( श्लोकम् ) मत्स्यवाणी को ( वा ) विचारपूर्वक ( आघोषते ) सब प्रकार सुनाता है ( ग्रावा ) मेघ के समान गम्भीरता से ( बहति ) बोलता है ( वा ) अथवा ( रययति ) उत्तम उपदेशों को करता है वहाँ ( तस्मै ) उसी सन्तान को विद्या प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—विद्वान् लोगों को योग्य है कि जैसे जल छिन्न-भिन्न होकर आकाश में जा वहाँ से वर्षके सुख करता है वैसे कुव्यसनों को छिन्न-भिन्न कर विद्या को ग्रहण करके सब मनुष्यों को सुखी करे। जैसे सूर्य धन्वकार का नाश और प्रकाश करके सब प्राणियों को सुखी और दुष्ट चीरों को दुःखी करता है वैसे मनुष्यों के अज्ञान का नाश विज्ञान की प्राप्ति कराके सब को सुखी करे। जैसे मेघ गजना कर और वर्षके दुःख को छोड़ा सुख करता है वैसे ही सत्योपदेश की वृष्टि से अधर्म का नाश धर्म के प्रकाश से सब मनुष्यों को भानन्दित किया करें ॥६॥

इस सूक्त में सेनापति और उपदेशक के कर्तव्य-गुणों का वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के माध्य सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह त्रयासीवाँ सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ विशाखस्य अनुरागीतमस्य सुभक्तस्य राहुगणो गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१,२—४ निबृहन्नुष्टुप्, २ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः

६ भुरिगुणिक, ७-९ उगुणिक छन्दः । ऋचमः स्वरः । १०,१२

विराडास्तारपङ्क्तिः ११ आस्तारपङ्क्तिः २० पङ्क्तिछन्दः ।

पञ्चमः स्वरः । १२-१५ निबृहन्वागीछन्दः । वज्रः स्वरः ।

१६ निबृहन्नुष्टुप्, १७ विराड् त्रिष्टुप्, १८ त्रिष्टुप्,

१९ आर्चो त्रिष्टुप् छन्दः । शैवतः स्वरः ॥

अथ चौरासीवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके पहले मन्त्र में

सेनापति के गुणों का उपदेश किया है—

असांवि सोम इन्द्र ते शर्विष्ठ धृष्णवा गहि ।

आ स्वां पृथक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यां न रश्मिभिः ॥१॥

पदार्थ—हे ( वृष्णो ) प्रगल्भ ( शर्विष्ठ ) प्रशंसित बलयुक्त ( इन्द्र ) परमेश्वर्य देनेहारे सत्पुरुष ( ते ) तेरे लिए जो ( सोमः ) अनेक प्रकार के रोगों को विनाश करनेहारी ओषधियों का सार हम ने ( असांवि ) सिद्ध किया है जो तेरी ( इन्द्रियम् ) इन्द्रियों को ( सूर्यं ) सविता ( रश्मिभिः ) किरणों से ( रजः ) लोको का प्रकाश करने के ( न ) नुसल प्रकाश करे उस को तू ( आगहि ) प्राप्त हो वह ( स्वा ) तुझे ( आपूणम् ) बल और आरोग्यता से युक्त करे ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। प्रजा सेना और पाठ-शालाओं की सभाओं में स्थित पुरुषों को योग्य है कि अच्छे प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्रजा सेना और पाठशालाओं में अग्र्यक्ष करके सब प्रकार से उसका सत्कार करना चाहिए वैसे सम्मजनों की भी प्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥१॥

किर उसका सत्कार किस प्रकार करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रमिदरी वःतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।

ऋषीणां च स्तुतीरूपं यज्ञं च मानुषाणाम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम जिस ( अप्रतिधृष्टशवसम् ) अहिंसित अत्यन्त बलयुक्त ( ऋषीणाम् ) वेदों के अर्थ जाननेहारे की ( स्तुती ) प्रशंसा को प्राप्त ( च ) महागुणसम्पन्न ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों ( च ) और प्राणियों के विद्या-दान सरक्षणात्मक ( यज्ञम् ) यज्ञ को पालन करनेहारे ( इन्द्रम् ) प्रजा सेना और समा आदि ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाले को ( हरी ) दुःखहरण स्वभाव की, बल, वीर्य, नाम, गुरुरूप अथवा ( उपवहतः ) प्राप्त होते हैं उसको ( इत् ) ही सदा प्राप्त हुआ ॥२॥

भाषार्थ—जो प्रशंसा, सत्कार, अधिकार को प्राप्त हैं उनके बिना प्राणियों को सुख नहीं हो सकता तथा सत्यक्रिया के बिना चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति और रक्षण नहीं हो सकते इस हेतु से सब मनुष्यों को यह अनुष्ठान करना उचित है ॥ २ ॥

किर सेनापति अपनी सेना के मृत्यों को क्या आज्ञा देवे इस विषय को

अगले मन्त्रों में कहा है—

आ तिष्ठ वृत्रहृत्र्यं युक्ता ते अक्षणा हरी ।

अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावां कृणोतु वःनुना ॥३॥



पदार्थ—हे ( ब्रह्मन् ) मेघ को सविता के समान शत्रुओं के भारनेहारे सूर-वीर ( ते ) तेरे जिम ( ब्रह्मणा ) अन्नादिसामग्री से युक्त शिल्पि वा सारथियो ने बनाये हुए ( हरी ) पदार्थ को पहुँचानेवाले जलाम्नि वा घोड़े ( युक्ता ) युक्त हैं उस ( अर्वाचोन्म ) भूमि, जल में नीचे ऊपर आदि को जानेवाले ( रथम् ) रथ में तू ( प्रातिष्ठ ) बैठ ( प्राबा ) मेघ के समान ( वसुम् ) गुन्धर मधुर बाणों में वषट्त्व को ( सुहृन्मोषु ) अच्छे प्रकार कर उमरो ( ते ) तेरा ( मन ) विज्ञान बीरों को अच्छे प्रकार उत्साहित किया करे ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभापतियों को योग्य है कि सेना में दो प्रकार के अधिकारी रखें उनमें एक सेना का सहाय और दूसरा अच्छे भाषणों से योद्धाओं को उत्साहित करे जब युद्ध हो तब सेनापति अच्छी प्रकार परीक्षा और उत्साह से शत्रुओं के साथ ऐसा युद्ध करावे कि जिसने निश्चित विजय हो और जब युद्ध बन्द हो जाए तब उपदेशक योद्धा और सब सेवकों को धर्मयुक्त कर्म के उपदेश से अच्छे प्रकार उत्साहित करें ऐसे करनेहारे मनुष्यों का कभी पराजय नहीं हो सकता ॥३॥

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

शुक्रस्य त्वाम्यक्षरन्धारा ऋतस्य सदेने ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं को विदारण करनेहारे जिस ( त्वा ) तुझे जो ( धाराः ) बाणी ( ऋतस्य ) सत्य ( शुक्रस्य ) पराक्रम के ( सदेने ) स्थान में ( अम्यक्षरम् ) प्राप्त करती है उनको प्राप्त होके ( इमम् ) इस ( सुतम् ) अच्छे प्रकार से सिद्ध किये उत्तम ओषधियों के रस को ( पिब ) पी उनसे ( ज्येष्ठम् ) प्रशंसित ( अमर्त्यम् ) साधारण मनुष्य को अप्राप्त दिव्यस्वरूप ( मदम् ) आनन्द को प्राप्त होके शत्रुओं को जीत ॥४॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य विद्या और अच्छे भोजन पान के बिना पराक्रम को प्राप्त होने को समर्थ नहीं और इस के बिना सत्य का विज्ञान और विजय नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

फिर किस प्रकार के सभाध्यक्ष का सत्कार करें इस विषय को

अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्राय नूनमर्चतोऽथानि च ब्रवीतन ।

मुता अमत्सुग्निद्वो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥५॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिसको ( मुताः ) सिद्ध ( इन्द्राय ) उत्तम रसीले पदार्थ ( अमत्सुः ) आनन्दित करने जिस का ( ज्येष्ठम् ) उत्तम ( सहः ) बल प्राप्त हो उस ( इन्द्राय ) सभाध्यक्ष को ( नमस्यता ) नमस्कार करो और उस को मुख्य कामों में युक्त करके ( नूनम् ) निश्चय से ( अर्चत ) सत्कार करो ( अथानि ) अच्छे-अच्छे वचनों से ( ब्रवीतन ) उपदेश करो उसमें सत्कारों को ( च ) भी प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो मव का सत्कार करे, शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके परोपकारी हो उसका छोड़के अन्य का सेनापति आदि अधिकारों में कभी स्थापन न करें ॥ ५ ॥

फिर वह कैसे हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

नकिष्टवद्रथीतरा हरी यदिन्द्र यच्छसे ।

नकिष्टवानु मज्जना नकिः स्वश्व आनशे ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेना के धारण करनेहारे सेनापति ! ( यत् ) जो तू ( रथीतर ) अतिशय करके रथयुक्त यात्रा है सो ( हरी ) अग्न्यादि वा घोड़ों को ( नकिः , यच्छसे ) क्या रथ में नहीं देता अर्थात् युक्त नहीं करता क्या ( त्वा ) तुम को ( मज्जना ) बल से कोई भी ( नकिः , आनशे ) व्याप्त नहीं हो सकता क्या ( त्वत् ) तुम में अधिक कोई भी ( स्वश्वः ) अच्छे घोड़ों वाला ( नकिः ) नहीं है इस से तू सब अङ्गों से युक्त हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम सेनापति को इस प्रकार उपदेश करो कि क्या तू सब में बड़ा है क्या तेरे तुल्य कोई भी नहीं है क्या कोई नेरे जीतन को भी समर्थ नहीं है। इससे तू निर्भयमानता से सावधान होकर वर्त्ता कर ॥ ६ ॥

फिर वह कैसे है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

य एक इन्द्रियते वसु मतीय दाशुचै ।

ईशानो अमर्तिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग ) मित्र मनुष्य ! ( यः ) जो ( इन्द्र ) सभा आदि का अध्यक्ष ( एक ) सहायरहित ( इत् ) ही ( दाशुचै ) दाता ( अमर्तिष्कुत ) मनुष्य के लिए ( वसु ) प्रणय को ( विद्यते ) बहुत प्रकार देता है और ( ईशानः ) समर्थ ( अमर्तिष्कुतः ) निश्चल है उसी को सेना आदि में अध्यक्ष कीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो सहायरहित भी निर्भय होके युद्ध से नहीं हटता तथा अत्यन्त शूर है उसी को सेना का स्वामी करा ॥ ७ ॥

कदा मर्त्तमगधस पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥८॥

पदार्थ—( अग ) शीघ्रकर्ता ( इन्द्रः ) सभा आदि का अध्यक्ष ( पदा ) विज्ञान वा धन की प्राप्ति से ( क्षुम्पमिव ) जैसे सर्व फल को ( स्फुरत् ) चलाता

है वैसे ( अराजसम् ) अनरहित ( मर्त्तम् ) मनुष्य को चलाओगे ( कदा ) किस काल में ( नः ) हम को उक्त प्रकार से अर्थात् विज्ञान वा धन की प्राप्ति से जैसे सर्व फल को चलाता है वैसे ( गिरः ) बाणियों को ( शुश्रवत् ) सुन कर सुनाओगे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो दरिद्रों को भी धनयुक्त, भालसिधियों को पुरुषार्थी और श्वखरहिनो को श्वखरयुक्त करे उस पुरुष ही को सभा आदि का अध्यक्ष करो। कब यहाँ हमारी बात को सुनोगे और हम कब आप की बात को सुनेंगे ऐसी आशा हम करते हैं ॥ ८ ॥

यश्चिद्भि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवांसति ।

उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥९॥

पदार्थ—हे ( अग ) मित्र ! तू जो ( सुतावान् ) अन्नादि पदार्थों से युक्त ( इन्द्रः ) परमेश्वर्य का प्रापक ( बहुभ्य ) मनुष्यों से ( त्वा ) तुम को ( आविवांसति ) सेवा करता है जो शत्रुओं का ( उग्रम् ) अत्यन्त ( शवः ) बल ( तत् ) उस को ( चिद्भि ) भी ( आपत्यते ) प्राप्त होता है ( तम् , हि ) उसी को राजा मानो ॥९॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो शत्रुओं के बल का हनन करके तुम को दुःखों से हटाकर सुखयुक्त करने की समर्थ हो तथा जिसके भय और पराक्रम से शत्रु नष्ट होते हैं उसी सेनापति करके आनन्द को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

स्वादोरित्था विभूषतो मध्वं पिबन्ति गौर्यैः ।

या इन्द्रेण सयावर्गिष्ठणा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१०॥६॥

पदार्थ—वैसे ( ब्रह्मणा ) मुख के वषट्ति ( इन्द्रेण ) सूर्य के साथ ( सयावरी ) तुल्य गमन करनेवाली ( वस्वी ) पृथिवी ( गौर्यैः ) किरणों से ( स्वराज्यम् ) अपने प्रकाशरूप राज्य के ( शोभसे ) शोभा के लिए ( वस्वीरन्ति ) हर्ष का हेतु होती हैं वे ( इत्था ) इस प्रकार से ( स्वावो ) स्वादयुक्त ( विभूषतो ) व्याप्त वाले ( मध्वः ) मधुर आदि भुण्ण को ( पिबन्ति ) पीती हैं वैसे तुम भी वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अपनी सेना के पति और वीर पुरुषों की सेना के बिना निज राज्य की शोभा तथा रक्षा नहीं हो सकती। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य के बिना स्थित और वायु के बिना जल का आकर्षण करके वषट्ति के लिए समर्थ नहीं हो सकती वैसे सेनाध्यक्ष के बिना और राजा के बिना प्रजा आनन्द करने को समर्थ नहीं हो सकती ॥१०॥

फिर उसके सम्बन्धियों-गुणों का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

ता अस्य पृश्नानायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( अस्य ) इस ( इन्द्रस्य ) सूर्य वा सेना के अध्यक्ष की ( पृश्नानायुवः ) अपने को स्पष्ट करनेवाली अर्थात् उलट-पलट अपना स्पर्श करना चाहती ( पृश्नयः ) स्पष्ट करती और ( प्रिया ) प्रमत्त करनेहारी ( धेनवः ) किरण वा गी वा बाणी ( सोमम् ) ओषधि रस वा एष्य को ( श्रीणन्ति ) सिद्ध करती और ( सायकम् ) दुर्गुणों को क्षय करनेहारे ताप वा शरत्रसमूह को ( हिन्वन्ति ) प्रेरणा देती है ( वस्वी ) और वे पृथिवी से सम्बन्ध करनेवाली ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य के ( अनु ) अनुकूल हाती हैं उनको प्राप्त होओ ॥११॥

भाषार्थ—जैसे गोपाल की गी जल, रस का पी निज सुख को बढ़ाकर आनन्द को बढ़ाती है वैसे ही सेनाध्यक्ष की सेना और सूर्य की किरण ओषधियों में वैद्यकशास्त्र के अनुकूल वा उत्पन्न हुए परिपक्व रस को पीकर विजय और प्रकाश को करके आनन्द कराती है ॥११॥

फिर वे क्या करती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरुषि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य का सत्कार करता हुआ व्यापारीश सबका पालन करता है वैसे ( अस्य ) इस अध्यक्ष के ( नमसा ) धन वा वज्र के साथ वर्त्तमान ( प्रचेतसः ) उत्तम ज्ञानयुक्त सेना ( सहः ) बल को ( सपर्यन्ति ) सेवन करती हैं ( ताः ) जो ( अस्य ) सेनाध्यक्ष के ( पूर्वचित्तये ) पूर्वज्ञान के लिए ( पुरुषि ) बहुत ( व्रतानि ) सत्यमात्रण नियम आदि का ( सश्चिरे ) प्राप्त होती हैं ( ताः ) उन ( वस्वीः ) पृथिवी सम्बन्धियों को देशों के आनन्द भोगने के लिए सेवन करो ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सामग्री, बल और अच्छे नियमों के बिना बहुत राज्य आदि के मुक्त नहीं प्राप्त होते इस हेतु से यम-नियमों के अनुकूल जैसा चाहिए वैसा इसका विचार करके विजय आदि धर्मयुक्त कर्मों को मिट्ट करे ॥१२॥

फिर उस राजा के इत्थ का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इन्द्रो दधीषो अस्यभिर्द्विप्राण्यमर्तिष्कुतः । जयानं नवतीर्नव ॥१३॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जैसे ( अमर्तिष्कुतः ) सब ओर से स्थिर ( इन्द्रः ) सूर्यलोक ( अमर्तिष्कः ) अस्थिर किरणों से ( नवतीर्नवः ) निन्नामने प्रकार के दिशाओं के अवयवों को प्राप्त हुए ( दधीषः ) जो धारण करनेहारे वायु आदि को

प्राप्त होते हैं उन (बुद्धिमान) मेघ के सूक्ष्म अवयव रूप प्रलों को (अन्तर्गत) हनन करता है जैसे तू अपने अश्वों, शत्रुओं का हनन कर ॥१३॥

भाषार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालंकार है। वही सेनापति होने के योग्य होता है जो सूर्य के समान कुष्ठ शत्रुओं का हस्ता और अश्वों सेना का रक्षक है ॥१३॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इच्छन्मन्त्रस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपभितम् । तद्विद्वच्छर्यणावति ॥१४॥**

पदार्थ—जैसे (इच्छ) सूर्य (अन्तर्गत) शीघ्रगामी मेघ का (धनु) जो (शर्यणावति) आकाश में (पर्वतेश्वर) महादेव या मेघों में (अपभितम्) आश्रित (शिरः) उत्तमाङ्ग के समान अवयव है उस को खेद करती है जैसे शत्रु की सेना के उत्तमाङ्ग के नाश की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ सेनापति सुखों को (विभत्) प्राप्त होवे ॥१४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य आकाश में रहने-हारे मेघ का खेदकर भूमि में गिराता है वैसे पर्वत और किलों में भी रहनेहारे कुष्ठ शत्रुओं का हनन करके भूमि में गिरा देवे इस प्रकार किये बिना राज्य की व्यवस्था स्थिर नहीं हो सकती ॥१४॥

अब राजा का सूर्य के समान करने योग्य कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अन्नाह गोरमन्वत नाम त्वष्टुर्पीड्यम् । इत्या चन्द्रमसो गृहे ॥१५॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे (अन्न) इस जगत् में (नाभ) प्रसिद्ध (गोः) पृथिवी और (चन्द्रमस) चन्द्रलोक के मध्य में (त्वष्टुः) खेद करनेहारे सूर्य का (अपीड्यम्) प्राप्त होनेवालों में योग्य प्रकाशरूप व्यवहार है (इत्या) इस प्रकार (अमन्वत) मानते हैं वैसे (अह) निश्चय से जाके (गृहे) बरों में व्यायप्रकाशावर्तों ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि ईश्वर की विद्यावृद्धि की हानि और विपरीतता नहीं हो सकती सब काल सब क्रियाओं में एकरस सृष्टि के नियम होते हैं जैसे सूर्य का पृथिवी के साथ आकर्षण और प्रकाश प्राप्ति सम्बन्ध है वैसे ही अन्य भूगोलों के साथ। क्योंकि ईश्वर के स्थिर किये नियम का व्यवहार अवर्तमान भूल कभी नहीं होती ॥१५॥

फिर सेनापति के योग्य कर्म का उपदेश करते हैं—

**को अद्य युक्ते धुरि गा अतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायुन् ।**

**आसन्निधून् हृत्स्वसो मयोभून् एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१६॥**

पदार्थ—(क) कौन (अद्य) इस समय (अतस्य) सत्य आचरण सम्बन्धी (शिमीवतः) उत्तम क्रियायुक्त (भामिन) शत्रुओं के ऊपर क्रोध करने (युक्ते) शत्रुओं को जिनका दुर्लभ साहस कर्म उनके समान आचरण करने (आसन्निधून्) अच्छे स्थान में बाण पहुँचाने (हृत्स्वसः) शत्रुओं के हृदय में शस्त्रप्रहार करने और (मयोभून्) स्वराज्य के लिए सुख करनेहारे श्रेष्ठ वीरों को (धुरि) सन्नाम में (युक्ते) युक्त करता है वा (य) जो (एषां) इनकी जीविका के निमित्त (गा.) भूमियों को (अमृणधत्) समृद्धियुक्त करे (सः) वह (जीवात्) बहुत समय पर्यन्त जीवे ॥१६॥

भाषार्थ—सबका अध्ययन राजा सबको प्रकट आज्ञा देवे सब सेना वा प्रजास्य पुरुषों को सत्य आचरणों में नियुक्त करे सर्वदा उनकी जीविका बढ़ाके भाग बहुत काल पर्यन्त जीवे ॥१६॥

अब अगले मन्त्रों में प्रधानोत्तर से राजधर्म का उपदेश किया है—

**क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्र को अन्ति ।**

**कस्तोकाय क इमांयोत गयेऽधि ब्रवन्वेऽ को जनाय ॥१७॥**

पदार्थ—हे सेनापते! सेनाओं में स्थित भृत्यों में (क) कौन शत्रुओं को (ईषते) मारता है (क) कौन शत्रुओं से (तुज्यते) मारा जाता है (कः) कौन युद्ध में (बिभाय) भय को प्राप्त होता है (क) कौन (सन्तम्) राजधर्म में वर्तमान (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य के दाता को (मंसते) जानता है (क) कौन (स्तोकाय) सन्तानों के (अन्ति) समीप में रहता है (क) कौन (इमां) हाथी के उत्तम होने के लिए शिक्षा करता है (उत) और (क) कौन (राजे) बहुत धन करने के लिए वर्तता और (तन्वे) शरीर और (अनाय) मनुष्यों के लिए (अविश्वत्) आज्ञा देवे इसका उत्तर भाग कहिए ॥१७॥

भाषार्थ—जो अद्वितीय वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और अन्य शुभ गुणों से युक्त होते हैं वे विजयादि कर्मों को कर सकते हैं जैसे राजा सेनापति को अपनी सेना के सब नौकरों की व्यवस्था को पूछे वैसे सेनापति भी अपने अधीन छोटे सेनापतियों को स्वयं सब बातें पूछे जैसे राजा सेनापति को आज्ञा देवे वैसे स्वयं सेना के प्रधान पुरुषों को करने योग्य कर्म की आज्ञा देवे ॥१७॥

**को अग्निमीदृते हविषा घृतेन स्रवा यजाता क्रतुभिर्धेविभिः ।**

**कस्मै देवा आ वंशानांशु होम को मंसते वीतिहोमः सुदेवः ॥१८॥**

पदार्थ—हे विद्वन्! (क) कौन (वीतिहोमः) विज्ञान और अष्ट क्रियायुक्त पुरुष (हविषा) विचार और (घृतेन) धी से (अग्निम्) अग्नि को (ईदृते) ऐश्वर्य प्राप्ति का हेतु करता है (क) कौन (क्रवा) धर्म से (अग्निभिः) निश्चल (अनुभि) वसन्तादि ऋतुओं से (यजातां) नाम और क्रियायज्ञ को करे (देवाः) विद्वान् लोग (कस्मै) किसके लिए (होम) बहुधा वा दान को (आशु) शीघ्र (आवशान्) प्राप्त करावे कौन (सुदेवः) उत्तम विद्वान् इस सबको (मंसते) जानता है इस का उत्तर कहिए ॥१८॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! किस साधन वा कर्म से अग्निविद्या को प्राप्त हो और किससे ज्ञान और क्रियायज्ञ वा सिद्ध होवे किस प्रयोजन के लिए विद्वान् लोग यज्ञ का विस्तार करते हैं ॥१८॥

फिर ईश्वर और सना आदि के अध्ययनों को कैसे जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**त्वमङ्ग प्रशंसिषा देवः संविष्टु मर्त्यम् ।**

**न त्वदन्यो मघवन्सि मर्दितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१९॥**

पदार्थ—हे (अङ्ग) मित्र (संविष्टु) परमबलयुक्त! जिससे (त्वम्) तू (देवः) विद्वान् है इससे (मर्त्यम्) मनुष्य को (प्रशंसिषा) प्रशंसित कर। हे (मघवन्) उत्तम धन के दाता (इन्द्र) दुःखों के नाशक! जिससे (त्वम्) तुमसे (अन्यः) मित्र कोई भी (अविष्टा) सुखदायक (नास्ति) नहीं है इससे (ते) तुम्हें (वचः) बर्मेयुक्त वचनों का (ब्रवीमि) उपदेश करता हूँ ॥१९॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि असाधारण उत्तम कर्म करने सदा सुख देनेहारे धार्मिक मनुष्य के साथ ही मित्रता करके एक दूसरे को सुख देने का उपदेश किया करें ॥१९॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन् ।**

**विश्वं च न उपमिमीहि मानुष वधूनि वर्षणिभ्य आ ॥२०॥८॥१३॥**

पदार्थ—हे (वसो) सुख में वास करनेहारे (ते) आपके (राधांसि) धन (अस्मान्) हमको (कदाचन) कभी भी (ना दभन्) दुःखदायक न हो (ते) तेरी (कृत्या) रक्षा (अस्मान्) हमको (ना) मत दुःखदायी होवे। हे (मानुष) जैसे तू (वर्षणिभ्य) उत्तम मनुष्यों को (विश्वं) विश्वान् आदि सब प्रकार के (वधूनि) वनों को देता है वैसे हम को भी वे (व) और (नः) हमको विद्वान् धार्मिकों की (आ) सब ओर से (उपमिमीहि) उपमा को प्राप्त कर ॥२०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। वे ही धार्मिक मनुष्य हैं जिन का लीर, मन और धन सब को सुखी करे, वे ही प्रशंसा के योग्य हैं जो जगत् के लिए प्रयत्न करते हैं ॥२०॥

इस सूक्त में सेनापति के गुण वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की सगति पूर्व सूक्तार्थ के संग जाननी चाहिए ॥

यह चौरासीवां सूक्त और आठवां अर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ द्वादशजन्मस्य वज्राजोषितमस्य सूक्तस्य राहणसो गोतम ऋषिः । मन्त्रो वेदतः ।

१,२,६,११ जगती, ३,७,८ त्रिष्टुप्जगती; ४,६,१०

विराज्जगती छन्दः । भिषावः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप्,

१२ त्रिष्टुप्छन्दः । वेदतः स्वरः ।

फिर वे सेनाध्यक्ष आदि कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामेन्द्रस्य सुनवः सुदंससः ।**

**रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे ब्रूधे मर्दन्ति वीरा विदधेष्टु घृध्वयः ॥२१॥**

पदार्थ—(ये) जो (शुम्भन्ते) कुष्ठों के सलाखों के (सुनवः) पुत्र (सुदंससः) उत्तम कर्म करनेहारे (घृध्वयः) धानन्दयुक्त (वीराः) वीरपुरुष (हि) निश्चय (याम्) मार्ग में जैसे अलकारी से सुशोभित (जनयः) सुशील स्त्रियों के (न) सुख और (सप्तयः) अश्व के समान शीघ्र जाने-पानेहारे (मरुतः) वायु (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के धारण के समान (ब्रूधे) बढ़ाने के धर्म राज्य का धारण करते (विदधेष्टु) सन्नामों में विजय को (चक्रिरे) करते हैं वे (शुम्भन्ते) अच्छे प्रकार शोभायुक्त और (मवन्ति) धानन्द को प्राप्त होते हैं उनसे तू प्रजा का पालन कर ॥२१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त हुई पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतियों का अथवा स्त्रीव्रत सदा अपनी स्त्रियों ही से प्रसन्न ऋतुगामी पति लोग अपनी स्त्रियों का सेवन करके सुखी और जसे पुनर बलवान् छोड़े मार्ग में शीघ्र पहुँचाने धानन्दित करते हैं वैसे धार्मिक राजपुरुष सब प्रजा को धानन्दित किया करें ॥२१॥

**त उक्षितासौ महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अर्धे चक्रिरे सधः ।**

**अचैन्तो अर्के जनयन्त इन्द्रियमधि अर्थो दधिरे पृश्निमातरः ॥२२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (उक्षितासः) वृष्टि में पृथिवी का सेवन करने-हारे (पृश्निमातरः) जिनकी आकाश माता है (ते) वे (रुद्रासः) वायु (विधि) आकाश में (सधः) स्थिर (महिमानम्) प्रतिष्ठा को (अध्यागत) अधिक प्राप्त होते और उतीको (अधिचक्रिरे) अधिक करते और (इन्द्रियम्) धन को (चक्रिरे) धारण करते हैं वैसे (अर्के) पूजनीय का (अर्चन्तः) पूजन करते हुए भाग लोग (विधि) लक्ष्मी को (जनयन्तः) बढ़ाके धानन्दित रहो ॥२२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे वायु वृष्टि का निमित्त होके उत्तम सुखों को प्राप्त करते हैं वैसे सभाध्यक्ष लोग विद्या से सुशिक्षित होके परस्पर उपकारी और प्रीतियुक्त होवे ॥२२॥

गोमातरो यच्छुभयन्ते अस्मिन्स्तनुषु शुभ्रा दधिरे विरुध्यतः ।

बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप बर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत् ) जो ( गोमातरः ) पृथिवी के समान माता वाले ( विश्वमतः ) विशेष अलकृत ( शुभ्रा ) शुद्ध स्वभावयुक्त शूरवीर लोग जैसे प्राण ( तनुषु ) शरीरों में ( अस्मिन् ) प्रसिद्ध विज्ञानादि गुणमिमित्तों से ( शुभयन्ते ) शुभ कर्मों का आचरण कराके शोभायमान करते हैं ( विरुध्यन्ते ) जगत् के सब पदार्थों का ( अनुबध्निरे ) अनुकूलता से बारण करते हैं ( एषाम् ) इनके सम्बन्ध से ( घृतम् ) जल ( रीयते ) प्राप्त और ( बर्त्मानि ) मार्गों को जाते हैं वैसे ( अभिमातिनम् ) अभिमान युक्त शत्रुगण का ( अपबाधन्ते ) बाध करते हैं उनके साथ तुम लोग विजय को प्राप्त होओ ॥३॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे वायुधर्मों से अनेक सुख और प्राण के बल से पुष्ट होती है वैसे ही शुभगुणयुक्त विद्या, शरीर और आत्मा के वनयुक्त सभाष्यको से प्रजाजन अनेक प्रकार के रक्षणों को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर वे क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वि ये भ्राजन्ते सुमस्वास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।

मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्ववा वृषवातासः पृषतीरयुग्धम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ये ) जो ( मनोजुवा ) मन के समान वेगवाले ( मरुतः ) वायुधर्मों के ( चित् ) समान ( वृषवातासः ) शस्त्र और अस्त्रों के ऊपर वर्षाने वाले मनुष्यों से युक्त ( सुमस्वास ) उत्तम शिल्पविद्या सम्बन्धी वा सभाष्यरूप क्रियाधर्मों के करनेहारे ( ऋष्टिभिः ) यन्त्र कलाधर्मों को चलानेवाले दुष्टों और ( अच्युता ) अक्षय ( ओजसा ) बल, पराक्रमयुक्त सेना से शत्रु की सेनाधर्मों को ( प्रच्यावयन्तः ) नष्ट-अष्ट करते हुए ( व्यावयन्ते ) अच्छे प्रकार शोभायमान होते हैं उनके साथ ( यत् ) जिन ( रथेषु ) रथों में ( पृषतीः ) वायु से युक्त जलो को ( अयुग्धम् ) समुक्त करो उनसे शत्रुधर्मों को जीतो ॥४॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि मन के समान वेगयुक्त विमानादि यानों में बल, अग्नि और वायु को समुक्त कर उससे बैठके सर्वत्र भूगोल में जा-आके शत्रुधर्मों को जीतकर प्रजा को उत्तम रीति से पालके शिल्पविद्या से कर्मों को बढ़ाके सबका उपकार किया करें ॥४॥

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्धं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।

उत्तारुपस्य वि व्यन्ति धाराधर्मवोदभिर्व्युन्दन्ति भूमं ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे विद्वान् शिल्पी लोग ( यत् ) जिन ( रथेषु ) विमानादि यानों में ( पृषतीः ) अग्नि और पवनयुक्त जलो को ( अयुग्धम् ) समुक्त करें ( उत ) और ( अद्रिम् ) मेघ को ( रंहयन्तः ) अपने वेग से चलाते हुए ( मरुतः ) पवन जैसे ( अच्युतस्य ) घोड़े के समान ( वाजे ) युद्ध में ( व्यन्ते ) चमड़े के तुल्य काष्ठ आतु और चमड़े से भी मढ़े कलाधर्मों में ( व्यन्ति ) जलो में ( धारा ) उनके प्रवाहों को ( व्यन्ति ) काम की समाप्ति करने के लिए समर्थ करते हुए ( भूमं ) भूमि को ( व्युन्दन्ति ) गीली करते धर्मवत् रथ को चलाते हुए जल टपकाने जाते हैं वैसे उन यानों से अन्तरिक्ष मार्ग से देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जा-आके लक्ष्मी को बढ़ाओ ॥५॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्य ! जैसे वायु बादलों को समुक्त करता है वैसे शिल्पिलोग उत्तम शिक्षा और हस्तक्रिया अग्नि आदि अच्छे प्रकार जाने हुए वेगकर्ता पदार्थों के योग से स्थानान्तर का प्राप्त होके कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥५॥

फिर वे क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुध्वदो रघुपत्वानः प्र जिगात वाहुभिः ।

सीदता बर्हिर्लु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्यसः ॥६॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जा ( रघुध्वदः ) गमन करने-करानेहारे ( रघुपत्वानः ) घोड़े वा बहुत गमन करनेवाले ( मरुतः ) वायुधर्मों के समान ( सप्तयः ) शीघ्र चलनेहारे अश्व ( वः ) तुम को ( वहन्तु ) देश-देशान्तर में प्राप्त करें उनको ( वाहुभिः ) बल, पराक्रमयुक्त हाथों से ( जिगातः ) उत्तम गतिमान् करो उनसे ( उत ) बहुत ( बर्हिः ) उत्तम घासन पर ( आसीदतः ) बैठके आकाशादि में गमनागमन करो जिनसे तुम्हारे ( लु ) स्थान ( कृतम् ) सिद्ध ( भवेत् ) होवें उनसे ( मध्वः ) मधुर ( अन्यसः ) अन्नो को प्राप्त होके हमको ( मादयध्वम् ) आनन्दित करो ॥६॥

भाषार्थ—सभाष्यशादि मनुष्य लोग क्रियाकौशल से शिल्पविद्या से सिद्ध करने योग्य कार्यों को करके अच्छे भोगों को प्राप्त हों कोई भी मनुष्य इस जगत् में पदार्थविज्ञान क्रिया के बिना उत्तम भोगों को प्राप्त होने में समर्थ नहीं होता इससे इस काम का नित्य अनुष्ठान करना चाहिए ॥६॥

फिर वे क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तैऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरू चक्रिरे सदेः ।

विष्णुर्यद्वावद्बृषसं मदच्युतं वयो न सीदन्नाधि बर्हिषि प्रिये ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( विष्णुः ) सूर्यवत् शिल्पविद्या में निपुण मनुष्य ( प्रिये ) प्रत्यन्त सुन्दर ( बर्हिषि ) आकाश में ( बृषणम् ) अग्नि जल की वर्षायुक्त विमान के ( अचिरीवन् ) ऊपर बैठके ( वयो न ) जैसे पक्षी आकाश में उड़ते और भूमि में आते हैं वैसे ( यत् ) जिस ( मदच्युतम् ) हर्ष को प्राप्त दुष्टों को रोकनेहारे मनुष्यों

की ( वावत् ) रक्षा करता है उसको जो ( स्वतवसः ) स्वकीय बलयुक्त मनुष्य प्राप्त होते हैं ( ते ह ) वे ही ( महित्वना ) महिमा से ( अवर्धन्तः ) बढ़ते हैं और जो विमानादि यानों में ( आतस्थुः ) बैठके ( उत ) बहुत सुखसाधक ( सदेः ) स्थान को जाते-आते हैं वे ( नाकम् ) विशेष सुख ( चक्रिरे ) करते हैं ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे पक्षी आकाश में सुखपूर्वक जाते-आते हैं वैसे ही साङ्गोपाङ्ग शिल्पविद्या को साक्षात् करके उससे उत्तम यानादि सिद्ध करके अच्छी सामग्री को रखके बढ़ाते हैं वे ही उत्तम प्रतिष्ठा और धन को प्राप्त होकर नित्य बड़ा करते हैं ॥७॥

फिर वे वायु कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शूरा इवेद्युधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।

मयन्ते विश्वा भुर्वना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंशो नरः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो वायु ( शूरवत् ) शूरवीरों के समान ( इत् ) ही मेघ के साथ ( युधयो न ) युद्ध करनेवाले के समान ( जग्मयः ) जाने-प्रानेहारे ( पृतनासु ) सेनाधर्मों में ( श्रवस्यवः ) अन्नादि पदार्थों को अपने लिए बढ़ानेहारे के समान ( येतिरे ) यत्न करते हैं ( राजान इव ) राजाधर्मों के समान ( त्वेषसंशः ) प्रकाश को दिखानेहारे ( नरः ) नायक के समान हैं जिन ( मरुद्भ्यः ) वायुधर्मों से ( विश्वा ) सब ( भुवना ) संसारस्थ प्राणी ( भवन्ते ) डरते हैं उन वायुधर्मों का अच्छी युक्ति से उपयोग करो ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे भयरहित पुरुष युद्ध से निवृत्त नहीं होते जैसे युद्ध करनेहारे लड़ने के लिए शीघ्र दौड़ते हैं जैसे क्षुधातुर मनुष्य भोजन की इच्छा और जैसे सेनाधर्मों में युद्ध की इच्छा करते हैं जैसे दण्ड देनेहारे न्यायाधीशों से अन्यायकारी मनुष्य उद्विग्न होते हैं वैसे ही कुपयकारी अच्छे प्रकार उपयोग न करनेहारे मनुष्य वायुधर्मों से भय को प्राप्त होते और अपनी मर्यादा में रहते हैं ॥८॥

फिर वे सभाष्यका आदि कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्यं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्त्तयत् ।

धस इन्द्रो नर्यपांसि कर्त्तव्येहन्वृत्रं निरपामौजदर्शयम् ॥९॥

पदार्थ—प्रजा और सेना में स्थित पुरुष जैसे ( स्वपाः ) उत्तम कर्म करता ( त्वष्टा ) छेदन करनेहारा ( इन्द्रः ) सूर्य ( कर्त्तव्ये ) करने योग्य ( नर्यपांसि ) कर्मों को और ( यत् ) जिस ( सुकृतम् ) अच्छे प्रकार सिद्ध किये ( हिरण्यम् ) प्रकाश-युक्त ( सहस्रभृष्टिम् ) जिससे हजारहू पदार्थ पकते हैं उस ( वज्रम् ) वज्र का प्रहार करके ( धस ) मेघ का ( इन्द्रम् ) हनन करता है ( अपामौजः ) जलो के ( अर्शवम् ) समुद्र को ( निरीज्यत् ) निरन्तर सरल करता है वैसे दुष्टों को ( पर्वकर्त्तव्यम् ) क्षिन्न-भिन्न करता हुआ शत्रुधर्मों का हनन करके ( नरिः ) मनुष्यों में श्रेष्ठों का ( वावत् ) धारण करता है वह राजा होने को योग्य होता है ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य मेघ का धारण, हनन और वर्षाके समुद्र को भरता है वैसे सम्राट्पति लोग विद्या, न्याययुक्त प्रजा के पालन का धारण करके धर्मविद्या अन्याययुक्त दुष्टों का ताड़न करके सबके हित के लिए सुखसागर को पूर्ण भरें ॥९॥

फिर वे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजमा दाह्वाणं चिदिबभिदुर्वि पर्वतम् ।

धमन्तो वायं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रयानि चक्रिरे ॥१०॥

पदार्थ—जैसे ( मरुतः ) वायु ( ओजसा ) बल से ( अवतम् ) रक्षणादि का निमित्त ( दाह्वाणम् ) बढ़ाने के योग्य ( पर्वतम् ) मेघ को ( चिदिबु ) विदीर्ण करत और ( ऊर्ध्वम् ) ऊँचे को ( नुनुद्रे ) से जाते हैं वैसे जो ( वायम् ) वायु से लेके शस्त्रास्त्र समूह को ( धमन्तः ) कंपाते हुए ( सुदानवः ) उत्तम पदार्थ के दात करनेहारे ( सोमस्य ) उत्पन्न हुए जगत् के मध्य में ( मदे ) हृव में ( रयानि ) सशामो में उत्तम साधनों को ( चक्रिरे ) करते हैं ( ते ) वे राजाधर्मों के ( चित् ) समान होते हैं ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्य लोग इस जगत् में जन्म पा विद्या, शिक्षा का ग्रहण और वायु के समान कर्म करके सुखों को भोगें ॥ १० ॥

फिर वे किसके लिए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

जिष्मं नुनुद्रेऽवतं तथा दिशासिञ्चन्तुस्सं गोतमाय तृणजं ।

आ गच्छन्तीमवसा चित्रमानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥११॥

पदार्थ—जैसे दाता लोग ( अवसत् ) निम्नदेशस्थ ( जिह्वत् ) कुटिल ( उत्सत् ) कूप को खोदके ( तृणजं ) तुषायुक्त ( गोतमाय ) बुद्धिमान् पुरुष को ( ईम् ) जल से ( अतिवत् ) तृप्त करके ( तथा, विशा ) उस अभीष्ट दिशा से ( नुनुद्रे ) उसकी तुषा को दूर कर देते हैं जैसे ( चित्रमानवः ) विविध प्रकाश के आधार प्राणों के समान ( धामभिः ) जन्म, नाम और स्थानों से ( विप्रस्य ) विद्वान् के ( अवसा ) रक्षण से ( कामम् ) कामना को ( तर्पयन्तः ) पूर्ण करते और सब ओर से सुख को ( आगच्छन्ति ) प्राप्त होते हैं वैसे उत्तम मनुष्यों को हीना चाहिए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जैसे मनुष्य कूप की खोद खेत वा बगीचे आदि को सींचके उसमें उत्पन्न हुए अन्न और फलादि से प्राणियों को तृप्त करके सुखी करते हैं वैसे ही सभाष्यका आदि लोग वेदशास्त्रों में विमोक्ष विद्वानों को कामों से पूर्ण करके



इनसे विद्या, उत्तम शिक्षा और धर्म का प्रचार कराके सब प्राणियों को आनन्दित करें ॥ ११ ॥

फिर उनसे मनुष्यों को क्या-क्या आशा करनी चाहिए इस विषय को

अगले मन्त्र में कहा है—

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयि नो घत्त हृषणः सुवीरम्

॥१२॥१०॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यों ! तुम लोग ( वः ) वायु के समान ( वः ) सुन्दारे ( या ) जो ( त्रिधातूनि ) वात, पित्त, कफयुक्त शरीर भववा लोहा, सोना, चांदी आदि वातयुक्त ( शर्म ) घर ( सन्ति ) हैं ( तानि ) उन्हें ( शशमानाय ) विज्ञानयुक्त ( दाशुषे ) दाता के लिए ( यच्छताधि ) बेजो और ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए भी वैसे घर ( विवन्त ) प्राप्त करो । हे ( वृषणः ) सुख की वृद्धि करनेवाले ( न ) हमारे लिए ( सुवीरम् ) उत्तम वीर की प्राप्ति करनेवाले ( रयिम् ) धन को ( अघत्त ) धारण करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—सभाध्यक्ष आदि लोगों को योग्य है कि सुख दुःख की अवस्था में सब प्राणियों को अपने आत्मा के समान मानके सुख, अनादि से युक्त करके पुनवत् धर्म और प्रजा सेना के मनुष्यों को योग्य है कि उनका सत्कार पिता के समान करें ॥ १२ ॥

इस सूक्त में वायु के समान सभाध्यक्ष राजा और प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की संगति पूर्व सूक्तार्थ के साथ समझनी चाहिए ॥

यह पितासीमा सूक्त और इसका धर्म समाप्त हुआ ॥

॥

अथ इसावस्य पञ्चशीतितन्त्रस्य सुक्तस्य राहुण्यो गोतम ऋषिः । मरुतो देवताः ।

१, ४, ८, ९ गायत्री; २, ३, ७ पिपीलिकान्त्या निषुङ्गायत्री ।

५, ६, १० निषुङ्गायत्री च छन्दः । ऋचः स्वरः ॥

फिर यह गृहस्य कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मरुतो यस्य हि सयं पाथा दिवो विमहसः ।

स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( विमहस ) नाना प्रकार के पूजनीय कर्मों के कर्ता ( दिव ) विद्यान्यायप्रकाशक तुम लोग ( मरुत ) वायु के समान विद्वान् जन ( यस्य ) जिसके घर में ( पाथा ) रक्षक हो ( स हि ) वही ( सुगोपातमः ) अच्छे प्रकार ( जन ) मनुष्य होवे ॥ १ ॥

भाषार्थ—जैसे प्राण के बिना शरीरादि का रक्षण नहीं हो सकता वैसे सत्योपदेशकर्ता के बिना प्रजा की रक्षा नहीं होती ॥ १ ॥

यज्ञैर्वी यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( यज्ञवाहस ) सत्सङ्गरूप प्रिय यज्ञों को प्राप्त करनेवाले विद्वानो ! तुम लोग ( मरुतः ) वायु के समान ( यज्ञै ) अपने ( वा ) पराये बढ़ने-पड़ाने और उपदेशरूप यज्ञों से ( विप्रस्य ) विद्वान् ( वा ) वा ( मतीनाम् ) बुद्धिमानों के ( हवम् ) परीक्षा के योग्य पठन-पाठनरूप व्यवहार को ( शृणुता ) सुना लीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जानने-जानने वा क्रियाओं से सिद्ध यज्ञों से युक्त होकर अन्य मनुष्यों को युक्त करा यथावत् परीक्षा करके विद्वान् करना चाहिए ॥ २ ॥

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमत्तस्य । स गन्ता गोऽमतिं व्रजे ॥ ३ ॥

पदार्थ—( वाजिनः ) उत्तम विज्ञानयुक्त विद्वानो ! तुम ( यस्य ) जिस क्रियाकुशल विद्वान् ( वा ) पढ़ानेवाले के समीप से विद्या को प्राप्त हुए ( विप्रम् ) विद्वान् को ( अमत्तस्य ) सूक्ष्म प्रजायुक्त करते हो ( सः ) वह ( गोमतिं ) उत्तम इन्द्रिय विद्या प्रकाशयुक्त ( व्रजे ) प्राप्त होने के योग्य मार्ग में ( उत ) भी ( गन्ता ) प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—तीव्र बुद्धि और नित्य विद्या सिद्ध विमानादि यानों के बिना मनुष्य देशदेशान्तर में सुख से जाने-आने की समर्थ नहीं हो सकते उस कारण अति पुरुषार्थ से विमानादि यानों को यथावत् सिद्ध करें ॥ ३ ॥

फिर उन शिक्षित मनुष्यों से क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्य वीरस्य बहिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्न शस्यते ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आपके सुशिक्षित ( अस्य ) इस ( वीरस्य ) वीर का ( सुतः ) सिद्ध किया हुआ ( सोम ) ऐश्वर्य ( दिविष्टिषु ) उत्तम इष्टिरूप कर्मों से सुखयुक्त व्यवहारों में ( उक्थम् ) प्रशंसित वचन ( बहिषि ) उत्तम व्यवहार के करने में ( शस्यते ) आनन्द ( च ) और सद्बिद्यादि गुणों का समूह ( अस्यते ) प्रशंसित होता है अन्य का नहीं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वानों की शिक्षा के बिना मनुष्यों में उत्तम गुण उत्पन्न नहीं होते इससे इसका अनुष्ठान नित्य करना चाहिए ॥ ४ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्य औचत्वा सुवो विन्वा यश्वधीरभिः । सूरं चित्सत्सुवीरिभिः ॥ ५ ॥ ११

पदार्थ—हे मनुष्यों ! आप लोग ( अस्य ) इस सुशिक्षित विद्वान् के ( इव, चित् ) समान ( विन्वाः ) सब ( सत्सुवीः ) प्राप्त होने के योग्य ( आचुषः ) सब और से सुखयुक्त ( यश्वधीः ) मनुष्यरूप प्रजा को जैसे किरणें ( सूरम् ) सूर्य को प्राप्त होती हैं वैसे ( अमिषोवन्तु ) सब और से सुखों ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से युक्त अच्छे प्रकार परीक्षित सुख सक्षम युक्त सम्पूर्ण विद्याओं का वेत्ता, बुद्धिमान, प्रतिबली, पढ़ानेवाला, अच्छे सहाय से सहित, पुरुषार्थी, धार्मिक विद्वान् है वही धर्म, धर्म, काम और मोक्ष को प्राप्त होता है इससे विद्वत् मनुष्य नहीं ॥ ५ ॥

हम सब मिलके क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पूर्वीमहि ददाश्विम् शरङ्गिर्मरुतो वयम् । अवीमिष्वर्षीनाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) सभाध्यक्ष आदि सज्जनों ! जैसे तुम लोग ( पूर्वीभिः ) प्राचीन सनातन ( शरङ्गिः ) सब ऋतु वा ( अवीमि ) रक्षा आदि अच्छे-अच्छे व्यवहारों से ( अर्षीनाम् ) सब मनुष्यों के सुख के लिए अच्छे प्रकार अपना बर्ताव बर्त रहे हो वैसे ( हि ) निश्चय से ( वयम् ) हम प्रजा, सभा और पाठशालास्य आदि प्रत्येक शाला के पुरुष आप लोगों को सुख ( वचाशिव ) देंगे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब ऋतु में ठहरने वाले वायु प्राणियों की रक्षा कर उनको सुख पहुँचाते हैं वैसे ही विद्वान् लोग सबके सुख के लिए प्रवृत्त हो, न कि किसी के दुःख के लिए ॥ ६ ॥

उनकी रक्षा और शिक्षा वाया हुआ मनुष्य कैसा होता है इस विषय को कहा है—

सुमगः स मयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यैः । यस्य प्रयांसि पर्वथ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( मयज्यवः ) अच्छे-अच्छे यज्ञादि कर्म करनेवाले ( मरुतः ) सभाध्यक्ष आदि विद्वानो ! तुम ( यस्य ) जिसके लिए ( प्रयांसि ) अत्यन्त प्रीति करने योग्य मनोहर पदार्थों को ( पर्वथ ) परसते प्रयात् से हो ( स ) वह ( मर्त्यैः ) मनुष्य ( सुमगः ) अच्छे बन और ऐश्वर्ययुक्त ( अस्तु ) हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जिन मनुष्यों के सभाध्यक्ष आदि विद्वान् रक्षा करनेवाले हैं वे क्योंकि सुख और ऐश्वर्य को न पावें ॥ ७ ॥

उनके सङ्ग से मनुष्य को क्या जानना चाहिए यह अगले मन्त्र में कहा है—

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यश्वसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( नरः ) मनुष्यों ! तुम सभाध्यक्षादिकों के सग ( वा ) पुरुषार्थ से ( शशमानस्य ) जानने योग्य ( सत्यश्वसः ) जिसमें नित्य पुरुषार्थ करना हो ( वेनतः ) जो सब शास्त्रों से सुना जाता हो तथा कामना के योग्य और ( स्वेदस्य ) पुरुषार्थ से सिद्ध होता है उस ( कामस्य ) काम को ( विद ) जानो प्रयात् उसको स्मरण से सिद्ध करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—कोई पुरुष विद्वानों के सग के बिना सत्य काम और अच्छे बुरे को जान नहीं सकता इससे सबको विद्वानों का सग करना चाहिए ॥ ८ ॥

अब और मनुष्यों को उन सभाध्यक्ष आदि मनुष्यों से कैसे प्रार्थना करनी चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यूयं तत्सत्यश्वस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( सत्यश्वसः ) नित्य बलयुक्त सभाध्यक्ष आदि सज्जनों ! ( यूयम् ) तुम ( महित्वना ) उत्तम यश से ( तत् ) उस काम को ( आविः ) प्रकट ( कर्त ) करो कि जिससे ( विद्युता ) बिजुली के लोहे से बनाये हुए शस्त्र वा आग्नेयादि धत्तों के समूह से ( रक्षः ) छोटे काम करनेवाले दुष्ट मनुष्यों को ( विध्यता ) ताड़ना देते हुए मेरी सब कामना सिद्ध हों ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर प्रीति और पुरुषार्थ के साथ विद्युत् आदि पदार्थविद्या और अच्छे-अच्छे गुणों को पाकर दुष्ट स्वभावी और दुर्गुणी मनुष्यों को दूरकर नित्य अपनी कामना सिद्ध करें ॥ ९ ॥

फिर वे क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।

उयोतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे ( सत्यश्वसः ) नित्य बलयुक्त सभाध्यक्ष आदि सज्जनों ! जैसे तुम ( महित्वना ) अपने उत्तम यश से ( गूहम् ) गुप्त करने योग्य व्यवहार को ( गूहता ) छिपी और ( विश्वम् ) समस्त ( तमः ) अविद्या रूपी अन्धकार को जो ( अत्रिणम् ) उत्तम सुख का विनाश करने वाला है उसको ( वि+यात ) दूर पहुँचाओ तथा हम लोग ( यत् ) जो ( उयोतिः ) विद्या के प्रकाश को ( उश्मसि ) चाहते हैं उसको ( कर्त ) प्रकट करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में 'महत्', सत्यश्वसः, महित्वना' इन तीनों पदों की अनुवृत्ति है । सभाध्यक्षादि को परमपुरुषार्थ से निरन्तर राज्य की रक्षा करनी तथा अधिकांश अन्धकार और मनुष्यजन दूर करने चाहिए तथा विद्या, धर्म और सज्जनों के सुखों का प्रचार करना चाहिए ॥ १० ॥

इस सूक्त में जैसे शरीर में ठहरनेवाले प्राण आदि पवन जाहे हुए सुखों को मिट कर सबकी रक्षा करते हैं वैसे ही सभाध्यक्षादिकों को चाहिए कि समस्त राज्य की यथावत् रक्षा करें ॥

इस धर्म के वर्णन से इस सूक्त में कहे हुए धर्म की उस पिछले

सूक्त के धर्म के साथ एकता जाननी चाहिए ॥

यह पितासीमा सूक्त और बारहवां धर्म समाप्त हुआ ॥

॥

अथास्य वदुषस्य सप्ताशीतितमस्य सुतस्य राहुगजपुत्रो मोतम ऋषिः । मयतो वेवताः ।

१, २, ५ विराट् ऋषिः, ३ अगती, ६ निचुल्लगती छन्दः ।

निघातः स्वरः । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । अक्षतः स्वरः ॥

अथ सप्ताशीतौ सुत का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में पूर्वोक्त सभाध्यक्ष कैसे होते हैं यह उपदेश किया है—

प्रत्यक्षसः प्रतवसो विगृह्णोऽनानता विधुरा ऋजीविणः ।

जुष्टवमासो वृत्तमासो अक्षिभिर्व्यनजे के चिदुसा इव स्तुभिः ॥१॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि सज्जनों ! आप लोगों को ( के, चित् ) उन लोगों की प्रतिदिन रक्षा करनी चाहिए जोकि अपनी सेनाओं में ( स्तुभिः ) शत्रुओं को लज्जित करने के गुणों से ( अक्षिभिः ) प्रकट राजा और उत्तम ज्ञान आदि व्यवहारों के साथ बर्ताव रखने और ( उक्ता इव ) जैसे सूर्य की किरण जल को छिन्न-भिन्न करती हैं वैसे ( प्रत्यक्षसः ) शत्रुओं को अच्छे प्रकार छिन्न-भिन्न करते हैं तथा ( प्रतवस ) प्रबल जिनके सेनाजन ( विगृह्ण ) समस्त पदार्थों के विज्ञान से महानुभाव ( अनानता ) कभी शत्रुओं के मामले में न दोन हुए और ( अक्षिभुराः ) न कम्पे हो ( ऋजीविणः ) समस्त विद्याओं को जाने और उत्कर्षयुक्त सेना के शत्रुओं को इकट्ठे करें ( जुष्टवमासः ) राजा लोगों ने जिनकी बार-बार चाहना कभी हो ( वृत्तमासः ) सब कार्यों को यथायोग्य व्यवहार में अत्यन्त चतुर्ता वाले हो ( व्यनजे ) शत्रुओं के बलों को धूल में उड़ाने का सत्कार किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य की किरणें तीव्र प्रतापवाली हैं वैसे प्रबल प्रतापवाले मनुष्य जिन के समीप ह क्योकर उन की हार हो । इस से सभाध्यक्ष आदिको को उक्त लक्षणवाले पुरुष अच्छी शिक्षा, सत्कार और उत्साह देकर रखने चाहिए बिना ऐसा किये कोई राज्य नहीं कर सकते हैं ॥ १ ॥

सभाध्यक्ष के काम वाले मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उपहरेषु यदचिन्वं ययिं वयं इव मरुतः केन चित्पथा ।

भोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥२॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) सभा आदि कानों में नियत किये हुए मनुष्यों ! तुम ( उपहरेषु ) प्राप्त हुए टेढ़े-सूँचे भूमि आकाशादि मार्गों में ( रथेषु ) विमान आदि रथों पर बैठ ( वयं इव ) पक्षियों के समान ( केनचित् ) किसी ( पथा ) मार्ग से ( यत् ) जिस ( ययिं ) प्राप्त होने योग्य विजय को ( अचिन्वं ) सम्पादन करो, जाओ-आओ उस को ( अर्चते ) जिस का सत्कार करते और सभा आदि कानों के मधीश जिस को प्यारे हैं उस के लिए देओ जो ( वः ) तुम्हारे रथ ( कोशाः ) देवों के समान आकाश में ( भोतन्ति ) चलते हैं उन में ( मधुवर्णम् ) मधुर और निर्मल जल ( वृत्तम् ) जल को ( उप+वा+उक्षत ) अच्छे प्रकार उपसिक्त करो अर्थात् उन रथों के आग और पवन के कलशों के समीप अच्छे प्रकार छिड़को ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि विमान आदि रथ बनाकर उन में आग, पवन और जल के चरों में आग, पवन, जल धरकर कलो से उनको चलाकर उन की भाप रोक रथों को ऊपर ले जाएं जैसे कि पक्षेक वा मेघ जाते हैं वैसे आकाश मार्ग से असीम स्थान को जा-आकर व्यवहार से धन और युद्ध सर्वथा जीत वा राज्यधन को प्राप्त होकर उन धन आदि पदार्थों से परोपकार कर निरभिमानी होकर सब प्रकार के आनन्द पावें और उन आनन्दों को सब के लिए पहुँचावें ॥ २ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

प्रेषामजसेषु विधुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यदं युजते शुभे ।

ते क्रीड्यो धुनयो आजगृह्यः स्वयं महित्वं पनयन्त धृतयः ॥३॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( क्रीड्य ) अपने सत्य बालचलन को वर्तते हुए ( धुनयः ) शत्रुओं को बर्मावे ( आजगृह्यः ) ऐसे तीव्र शस्त्रों वाले ( धृतयः ) जो कि युद्ध की क्रियाओं में विचरते वे वीर ( शुभे ) श्रेष्ठ विजय के लिए ( अजसेषु ) सभाओं में ( प्र+युजते ) प्रयुक्त अर्थात् प्रेरणा को प्राप्त होते हैं ( ते ) वे ( महित्वम् ) बड़प्पन जैसे ही वैसे ( स्वयम् ) आप ( ह ) ही ( पनयन्त ) व्यवहारों को करते हैं ( एषाम् ) इन के ( यामेषु ) उन मार्गों में कि जिन में मनुष्य आदि प्राणी जाते हैं चलत हुए रथों में ( भूमिः ) धरती ( विधुरा + इव + एजते ) ऐसी कम्पती है कि मानो जीतज्वर में पीड़ित लड़की कम्पे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे शीघ्र चलने वाले वृक्ष पवन तूफान प्रोषधि और धूल को कम्पाते हैं वैसे ही धीमे की सेना के रथों के पहियों के प्रहार से धरती और उनके शस्त्रों की चोटों से डरनेहारे मनुष्य कम्पा करते हैं और जैसे व्यापार वाले मनुष्य व्यवहार से धन का पाकर बड़े धनवान् होते हैं वैसे ही सभा आदि कामों के मधीश शत्रुओं के जीतने से अपना बड़प्पन और प्रतिष्ठा विख्यात करते हैं ॥ ३ ॥

फिर सेनायुक्त सेना का अधीश वीर कैसा होता है

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स हि स्वसृष्टपदं यो युवां गयोः या ईशानस्तविषीमिरावृतः ।

असि सत्य ऋणयावाऽन्योऽस्या धियः प्राविताया हृषा गणः ॥४॥

पदार्थ—हे सेनापते ! ( सः ) ( हि ) वही तू ( अथा ) जिस से सब विद्या जानी जाती है उस बुद्धि से युक्त ( गयोः ) शीतल, मन्द, सुगन्धित में सुखरूपी वर्षा करने में समर्थ ( गणः ) पवनो के समान वेग-बलयुक्त ( स्वसृत् ) अपने लोगों

को प्राप्त होनेवाला ( स्वसृष्टः ) वा मेघ के वेग के समान जिसके धीरे हैं ( गयोः ) तथा जानी को पहुँचा हुआ ( गणः ) अच्छे सज्जनों में गिनती करने के योग्य ( ईशानः ) परिपूर्णसामर्थ्य युक्त ( सत्यः ) सज्जनों में सीधे स्वभाव वा ( ऋणयावा ) दूसरी का ऋण चुकानेवाला ( अन्योऽस्याः ) प्रसंसनीय और ( अस्याः ) इस ( धियः ) बुद्धि वा कर्म की ( प्राविता ) रक्षा करनेहारा ( तविषीभिः ) परिपूर्ण बलयुक्त सेनाओं से ( आवृतः ) युक्त ( असि ) है ( अथ ) इसके अनन्तर हम लोगों के सत्कार करने योग्य भी है ॥ ४ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य और विद्या परिपूर्ण धारीरिक और आत्मिक बल युक्त अपनी सेना से रक्षा को प्राप्त सेनापति सेना की निरन्तर रक्षा करके शत्रुओं को जीतके प्रजा का पालन करे ॥ ४ ॥

फिर वे क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पितुः मत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।

यदीमिन्द्रं शम्युषवाण आशुतादिभामानि यज्ञियानि दधिरे ॥५॥

( ऋणयावा ) प्रशंसित स्तुतियों वाले हम लोग ( मत्नस्य ) पुरातन अनादि ( पितुः ) पालनेहारे जगदीश्वर की व्यवस्था से अपने कर्म के अनुसार पाये हुए मनुष्य देह के ( जन्मना ) जन्म में ( सोमस्य ) प्रकट ससार के ( चक्षसा ) दर्शन में जिन ( यज्ञियानि ) शिल्प आदि कर्मों के योग्य ( भामानि ) जलों को ( वदामसि ) तुम्हारे प्रति उपदेश करे वा ( यत् ) जो ( ईम् ) प्राप्त होने योग्य ( इन्द्रम् ) बिजुली, अग्नि के तेज को ( शमि ) कर्म के निमित्त ( जिह्वा ) जीभ वा वाणी ( प्रजिगाति ) स्तुति करती है उन सब को तुम लोग ( आशत ) प्राप्त होओ और ( आत्-इत् ) उसी समय इन को ( दधिरे ) सब लोग धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि इस मनुष्य देह को पाकर पितृभाव के परमेश्वर की आज्ञापालन रूप प्रार्थना, उपासना और परमेश्वर का उपदेश संसार के पदार्थ और उनके विशेष ज्ञान से उपकारों को लेकर अपने जन्म को सफल करें ॥ ५ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखावयः ।

ते वाशीमन्त इध्मिणो अमीरवो बिद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥६॥

पदार्थ—जो ( भानुभिः ) दिन-दिन से ( कम् ) सुख को ( श्रियसे ) सेवन करने के लिए ( ते ) वे ( प्रियस्य ) प्रेम उत्पन्न करानेवाले ( मारुतस्य ) कला के पवन वा प्राणवायु के ( धाम्नः ) घर से विद्या वा जल को ( सम्+निमिक्षिरे ) अच्छे प्रकार छिड़कना चाहते हैं ( ते ) वे शिल्पविद्या के जाननेवाले होते हैं तथा जो ( रश्मिभिः ) अग्निकिरणों से सुख के सेवन के लिए कलाओं से पानों को चलाते हैं वे शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान का ( बिद्रे ) लाभ पाते हैं ( ऋक्वभिः ) जिन में प्रशंसनीय स्तुति विद्यमान है उन से जो सुख के सेवन करने के लिए ( सुखावयः ) अच्छे-अच्छे पदार्थों के भोजन करनेवाले होते हैं ( ते ) वे धारोपपन्न को पाते हैं ( वाशीमन्त ) प्रशंसित जिन की बारों वा ( इध्मिणः ) विशेष ज्ञान हैं वे ( अमीरवः ) निर्भय पुरुष प्रेम उत्पन्न करनेहारे प्राणवायु वा कलाओं के पवन के घर से युद्ध में प्रवृत्त होते हैं वे विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन सृष्टिपदार्थविद्या को पा अनेक उपकारों को ग्रहण कर उस विद्या के पढ़ने और पढ़ाने से वाचाल अर्थात् बात-चीत में कुशल हो और शत्रुओं को जीतकर अच्छे आचरण में वर्तमान होने हैं वे ही सदा सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजा-प्रजाओं के कर्त्तव्य काम कहे हैं इस कारण इस सूक्त के अर्थ से पिछले सूक्त के अर्थ की संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह सप्ताशीतौ सूक्त और तेरहवाँ वर्ण भी पूरा हुआ ॥

॥

अथास्य वदुषस्याष्टाशीतितमस्य सुतस्य राहुगजपुत्रो मोतम ऋषिः । मयतो वेवताः ।

१ पङ्क्तिः, २ ध्रुवपङ्क्तिः, ५ निचुल्लपङ्क्तिःछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

१ निचुल्लपङ्क्तिः, ४ विराट्पङ्क्तिः छन्दः । अक्षतः स्वरः ।

६ निचुल्लपङ्क्तिः छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ छ मन्त्रों वाले अष्टाशीतौ सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से

फिर भी सभाध्यक्ष आदि का उपदेश किया है—

आ विद्युन्मज्जिर्मस्तः स्वकै रथैर्मियात ऋष्टिमज्जिरश्मपणैः ।

आ वरिष्ठया न ऽपा वयो न पन्तता सुमायाः ॥१॥

पदार्थ—हे ( सुमायाः ) उत्तम बुद्धिवाले ( मस्तः ) सभाध्यक्ष वा प्रजा पुरुषों ! तुम ( नः ) हमारे ( ऋष्टिमा ) अत्यन्त बुढ़ाये से ( इवा ) उत्तम आत्म आदि पदार्थों ( स्वकै ) श्रेष्ठ विचारवाले विद्वानों ( ऋष्टिमज्जिभिः ) तारविद्या में चलाने के अर्थ दण्ड और शस्त्रास्त्र ( अश्मपणैः ) शक्ति आदि पदार्थ कभी कोई के गमन के साथ वर्तमान ( विद्युन्मज्जि ) जिस में कि तार बिजली है उस ( रथैभिः ) विमान आदि रथों में ( वयः ) पक्षियों के ( नः ) समान ( पन्तता ) उड़ जाओ ( आ ) उड़ जाओ ( यात ) जाओ ( आ ) जाओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे पक्षेक ऊपर नीचे आके जाते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को सुख से जाते हैं वैसे अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए तारविद्यायुक्त प्रयोग से चलाये हुए विमान आदि यानों से आकाश और भूमि वा जल में अच्छे प्रकार जा-आके असीम देवों को सुख से जा-आके अपने कामों की सिद्ध करके निरन्तर सुख को प्राप्त हों ॥ १ ॥

उत्तर कामों से वे क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**तैज्ज्णेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथत्तुमिरथैः ।**

**रथमो न चित्रः स्वधित्वान् पथ्या रथस्य जह्वनन्त भूम ॥२॥**

**पदार्थ—**जैसे कारीगरी को जाननेहारे विद्वान् लोग ( शुभे ) उत्तम व्यवहार के लिए ( अथर्ववेदः ) अच्छे प्रकार अग्नि के ताप से लाल ( पिशङ्गैः ) वा अग्नि और जल के संयोग की उठी हुई भापों से कुछेक श्वेत ( रथत्तुमि ) जो कि विमान आदि रथों को चलानेवाले अर्थात् अति शीघ्र उन को पहुँचाने के कारण धाग और पानी की कलों के चरुम्पी ( अथर्वः ) धोड़े हैं उन के साथ ( रथस्य ) विमान आदि रथ की ( पथ्या ) वज्र के तुल्य पहियों की धार से ( स्वधित्वान् ) प्रशसित वज्र से अन्तरिक्ष वायु को काटने ( जह्वन् ) और उत्तेजना रखनेवाले ( चित्र ) शूरता, धीरता, बुद्धिमत्ता आदि गुणों से अद्भुत मनुष्य के ( न ) समान मार्ग को ( अजह्वन्त ) हनन करते और देश-देशान्तर को जाते-आते हैं ( तै ) वे ( रथम् ) उत्तम ( कम् ) सुख को ( आवाप्सि ) चारों ओर से प्राप्त होते हैं वैसे हम भी ( भूम ) इस को करके आनन्दित होंगे ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्त और उपमालङ्कार हैं । जैसे शूरवीर अच्छे शस्त्र रखनेवाला पुरुष वेग से जाकर शत्रुओं को मारता है वैसे मनुष्य वेगवाले रथों पर बैठ देश-देशान्तर को जा-आके शत्रुओं को जीतते हैं ॥ २ ॥

अब सभाध्यक्षादिकों को उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**भ्रिये कं वो अथि तनुषु वाक्षिमिधा वना न कुण्वन्त ऊर्ध्वा ।**

**गुष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासौ धनयन्ते अद्रिम् ॥३॥**

**पदार्थ—**हे ( मरुतः ) सभाध्यक्षादि सज्जनों ! जो ( नः ) तुम्हारे ( तनुषु ) शरीरों में ( भ्रिये ) लक्ष्मी के लिए ( कम् ) सुख ( ऊर्ध्वा ) अच्छे सुख को प्राप्त करनेवाली ( वाक्षीः ) वेदवाणी ( वेधा ) शुद्ध बुद्धियों को ( वना ) ऊँचे-ऊँचे बनने पठों के ( न ) समान ( अथि + कुण्वन्ते ) अधिभूत करते हैं अर्थात् उनके आचरण के लिए अधिकार देते हैं । हे ( सुजाता ) विद्यादि श्रेष्ठ गुणों में प्रसिद्ध उत्तम सज्जनों ! जो ( तुविद्युम्नासः ) बहुत विद्या प्रकाशों वाले महात्मा जन ( गुष्मभ्यम् ) तुम लोगों के लिए ( कम् ) अत्यन्त सुख जैसे हो वैसे ( अद्रिम् ) पर्वत के समान ( धनयन्ते ) बहुत धन प्रकाशित कराते हैं, वे तुम लोगों को सदा सेवन करन योग्य हैं ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मेघ वा कुप जल से सिंचे हुए वन और उपवन, बाग-बगीचे अपने फलों से प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे विद्वान् लोग विद्या और अच्छी शिक्षा द्वारा अपने परिश्रम के फल से सब मनुष्यों को सुख देते हैं ॥ ३ ॥

**अहानि गृधाः पर्या ब आगुरिमां धियै वार्कग्या च देवीम् ।**

**ब्रह्मं कृण्वन्तो गोतमासो अकैरूर्ध्वं तनुद्र उत्सर्धि पिबथ्यै ॥४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यों ! जो ( गृधाः ) सब प्रकार से अच्छी अधिकारिता करनेवाले ( गोतमासः ) अत्यन्त ज्ञानवान् सज्जन ( ब्रह्म ) धन, धन्य और वेद का पठन ( कृण्वन्तः ) करते हुए ( अकैः ) वेदमन्त्रों से ( अहानि ) दिनों दिन ( ऊर्ध्वम् ) उत्कर्षता से ( पिबथ्यै ) पीने के लिए ( उत्सर्धिम् ) जिस भूमि में कुप नियत किये जावें उसके समान ( आ + गुरु ) सर्वथा उत्कर्ष होने के लिए ( नः ) तुम्हारे सामने होकर प्रेरणा करते हैं वे ( वार्कग्याम् ) जल के तुल्य निर्मल होने के योग्य ( देवीम् ) प्रकाश को प्राप्त होती हुई ( इमां ) इस ( विषयम् ) धारणवती बुद्धि ( च ) और धन को ( परि + आ + भुम् ) सब कहीं से अच्छे प्रकार प्राप्त होके, धन्य को प्राप्त कराते हैं वे सदा सेवा के योग्य हैं ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे ज्ञान गौरव चाहने वालों ! जैसे मनुष्य प्यास बुझाने आदि प्रयोजनों के लिए परिश्रम के साथ कुंआ, बावरी, तलाब आदि खुदवाकर अपने कामों का सिद्ध करते हैं वैसे आप लोग अत्यन्त पुरुषार्थ और विद्वानों के सग से विद्या के अभ्यास को जैसा चाहिए वैसा करके समस्त विद्या से प्रकाशित उत्तम बुद्धि को पाकर उसके अनुकूल क्रिया को सिद्ध करो ॥ ४ ॥

विद्वान् मनुष्यों को क्या-क्या शिक्षा दे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**एतस्यैव योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।**

**पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदं प्रान्विधावतो वराहन् ॥५॥**

**पदार्थ—**हे ( मरुतः ) मनुष्यों ! तुम ( गोतमः ) विद्वान् के ( न ) तुल्य ( वः ) विद्या का ज्ञान चाहनेवाले तुम लोगों को ( वन् ) जो ( योजनम् ) जोड़ने योग्य विमान आदि यान ( हिरण्यचक्रान् ) जिनके पहियों में सोने का काम वा अति कम-कम हो उन ( अयोदं ) बड़ी लोहे की कीलोंवाले ( वराहन् ) अच्छे शब्दों को करने ( विधावतो ) न्यारे-न्यारे मार्गों को चलनेवाले विमान आदि रथों को ( एतत् ) प्रत्यक्ष ( पश्यन् ) देखके ( ह ) ही ( सस्वः ) उपदेश करता है ( स्थत् ) वह उसका उपदेश किया हुआ तुम लोगों को ( अचेति ) चेत कराता है उसको तुम जानके मानो ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे अगली-पिछली बातों को जाननेवाला विद्वान् अच्छे-अच्छे काम करके आनन्द भोगता है वैसे आप लोग भी विद्या से सिद्ध हुए कामों को करके सुखों को भोगो ॥ ५ ॥

अब विद्या ज्ञान चाहने वाला पुरुष उनमें जैसे वर्तकर क्या ग्रहण करे

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**एषा स्या वीं मरुतोऽनुभ्रवीं प्रति शोभति वाघतो न वाणी ।**

**अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधा गर्भस्थोः ॥ ६ ॥ १४ ॥**

**पदार्थ—**हे ( मरुतः ) मनुष्यों ! तुम लोगों की जो ( एषा ) यह कही हुई वा ( स्या ) कहने की है वह ( अनुभ्रवीं ) इष्टसुख धारण करानेहारी ( वाणी ) वाक् ( वाघतः ) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने-करानेहारे विद्वान् के ( न ) समान विद्याओं का ( प्रति + शोभति ) प्रतिबन्ध करती अर्थात् प्रत्येक विद्या को स्थिर करती हुई ( भासाम् ) विद्या के कामों की ( गर्भस्थोः ) भुजाओं में ( अनु स्वधाम् ) अपने साधारण सामर्थ्य के अनुकूल प्रतिबन्ध करती है तथा ( वृथा ) झूठ व्यवहारों को ( अस्तोभयत् ) रोक देती है इस वाणी को आप लोगों से हम सुनें ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे ऋतु-ऋतु में यज्ञ करानेवाले की वाणी यज्ञ कामों का प्रकाश कर दोषों को निवृत्त करती है वैसे ही विद्वानों की वाणी विद्याओं का प्रकाश कर अधिज्ञा को निवृत्त करती है । इसलिए सब मनुष्यों को विद्वानों के सग का निरन्तर सेवन करना चाहिए ॥ ६ ॥

इस सूक्त में मनुष्यों को विद्यासिद्धि के लिए पढ़ने-पढ़ाने की रीति प्रकाशित की है इससे इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है ॥

॥

अपास्वकोनवतितमस्य दशार्धस्य सूक्तस्य राहृगणपुत्रो गोतम ऋषि । विषवे देवः देवता । १, ५ निषङ्गजगती, २, ३, ७ जगती छन्दः । निषाद स्वरः ।

४ भुरिक् निष्पु, ८ विराट् निष्पु, ९, १० निष्पु छन्दः ।

अन्त स्वरः । ६ स्वराट् हुहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अब नवासीवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से सब विद्वान् लोग कैसे हों और सचारी मनुष्यों के साथ कैसे अपना वर्तव करें यह उपदेश किया है—

**आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।**

**देवा नो यथा सदमिद् वृधे असमप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिधे ॥१॥**

**पदार्थ—**( यथा ) जैसे जो ( विश्वतः ) सब ओर से ( भद्राः ) सुख करने और ( क्रतवः ) अच्छी क्रिया वा शिल्पयज्ञ में बुद्धि रखनेवाले ( अदब्धासः ) अहिंसक ( अपरीतासः ) न त्याग के योग्य ( उद्भिदः ) अपने उत्कर्ष से दुःखों का विनाश करनेवाले ( असमप्रायुवः ) जिनकी उमर का क्या नाश होना प्रतीत न हो ( देवाः ) ऐसे दिव्यगुणवाले विद्वान् लोग जैसे ( न ) हम लोगों को ( तवम् ) विज्ञान पर को ( धा, यन्तु ) अच्छे प्रकार पहुँचावें वैसे ( दिवेदिधे ) प्रतिदिन ( न ) हमारे ( वृधे ) सुख के बढ़ाने के लिए ( रक्षितारः ) रक्षा करनेवाले ( इत् ) ही ( असन् ) हो ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ, सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर सब सुख पहुँचाता है वैसे ही विद्वान् लोग, विद्या और शिल्पयज्ञ सुख करनेवाले होते हैं, यह जानना चाहिए ॥ १ ॥

सब मनुष्यों को विद्वानों से क्या-क्या पाना चाहिए यह अगले मन्त्र में कहा है—

**देवानां भद्रा सुमतिर्ह्ययुतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।**

**देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२॥**

**पदार्थ—**( वयम् ) हम लोग ( ऋजुवताम् ) अपने को कीमलता चाहते हुए ( देवानाम् ) विद्वान् लोगों की ( भद्रा ) सुख करनेवाली ( सुमति ) श्रेष्ठ बुद्धि वा अपने को निरभिमानीता चाहनेवाले ( देवानाम् ) दिव्य गुणों की ( रातिः ) विद्या का दान और अपने को सरलता चाहते हुए ( देवानाम् ) दया से विद्या की वृद्धि करना चाहते हैं उन विद्वानों का सुख देनेवाला ( सख्यम् ) मित्रपन है वह सब ( न ) हमारे लिए ( अभि, नि, वत्सताम् ) सम्मुख नित्य रहे । और उक्त समस्त व्यवहारों को ( उप, सेदिम ) प्राप्त हो और उक्त जो ( देवा ) विद्वान् लोग हैं वे ( नः ) हम लोगों के ( जीवसे ) जीवन के लिए ( आयुः ) उमर को ( प्र, तिरन्तु ) अच्छी शिक्षा से बढ़ावें ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**उत्तम विद्वानों के सङ्ग और ब्रह्मचर्य आदि नियमों के बिना किसी के शरीर और आत्मा का बल नहीं बढ़ सकता इससे सबको चाहिए कि इन विद्वानों का सङ्ग नित्य करें और जितेन्द्रिय रहे ॥ २ ॥

मनुष्य किस से किन्हीं पाकर विश्वासयुक्त पदार्थ में विश्वास करें

यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**तान्पूर्वया निविदां हमहे वयं भगं मित्रमदिति दक्षमसिधम् ।**

**अप्यमयं वरुणं सोममधिना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यों ! जैसे ( वयम् ) हम लोग ( पूर्वया ) सनातन ( निविदा ) वेदवाणी जिससे सब प्रकार से निश्चित किये हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं उससे कहे हुए वा जिनको कहेंगे ( तान् ) उन सब विद्वानों को वा ( अविधम् ) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा नहीं करता उस ( वयम् ) ऐश्वर्य युक्त ( विषयम् ) सबका मित्र ( अविधम् ) समस्त विद्याओं का प्रकाश ( वरुणम् ) और उनकी चतुराग्र्यों वाला विद्वान् ( अप्यमयम् ) स्वायकारी ( वरुणम् ) उत्तम गुणयुक्त दुष्टों का बन्धनकर्ता ( सोमम् ) सृष्टि के क्रम से सब पदार्थों का निचोड़ करनेवाला



तथा जो शास्त्रचित है उस (अविद्या) विद्या के पढ़ने-पढ़ाने का काम रखनेवाले वा जल और आग दो-दो पदार्थों को (हमने) स्तुति करते हैं और जो संग से उत्पन्न हुई (सरस्वती) विद्या और (सुभगा) श्रेष्ठ शिक्षा से युक्त बाणी (नः) हम लोगों को (अयः) मुख (करत्) करें वैसे तुम भी करो और बाणी तुम्हारे लिए भी वैसे कहें ॥ ३ ॥

भावार्थ—कोई भी वेदोक्त लक्षणों के बिना विद्वान् और मुखों के लक्षण जान नहीं सकता और न उनके बिना विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा से सिद्ध की हुई बाणी सुख करनेवाली हो सकती है इससे सब मनुष्य वेदार्थ के विशेष ज्ञान से विद्वान् और मुखों के लक्षण जानकर, विद्वानों का संग कर, मुखों का संग छोड़के समस्त विद्या वाले हों ॥ ३ ॥

फिर वे क्या करें यह अगले मन्त्र में कहा है—

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।

तद्वावांशः सोमसुतो मयोभुवस्तदधिना शृणुतं धिष्या युवम् ॥४॥

पदार्थ—हे (धिष्या) शिल्पविद्या के उपदेश करने और (अविद्या) पढ़ने पढ़ाने वाले ! (युवम्) तुम दोनों जो (शृणुतम्) सुनो (तत्) उस (मयोभु) मुखदायक उत्तम (भेषजम्) सब दुखों को दूर करनेवाली भोज्य को (न) हम लोगों के लिए (वात) पवन के तुल्य वायु (वातु) प्राप्त करे वा (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि जो (माता) माता के समान मान-सम्मान देने की निदान है वह (तत्) उस मान करनेवाले जिससे कि अत्यन्त मुख होता और समस्त दुख की निवृत्ति होती है भोज्य को प्राप्त करावे वा (द्यौः) प्रकाशमय सूर्य (पिता) पिता के तुल्य जो रक्षा का निदान है वह (तत्) उस रक्षा करनेवाले जिससे कि समस्त दुख की निवृत्ति होती है भोज्य को प्राप्त करे वा (सोमसुतः) भोज्यियों का रस जिससे निकाला जाए (तत्) वह कर्म तथा (वावांशः) भेष आदि पदार्थ (तत्) जो उनसे रस का निकालना वा जो (मयोभुव) मुख के करानेवाले उक्त पदार्थ हैं वे (तत्) उस क्रियाकुशलता और अत्यन्त दुःख की निवृत्ति कराने वाले भोज्य को प्राप्त करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—शिल्पविद्या की उन्नति करनेवाले जो उसके पढ़ने-पढ़ानेवाले विद्वान् हैं वे जितना पढ़के समझें उतना अर्थ सबके मुख के लिए नित्य प्रकाशित करें जिससे हम लोग ईश्वर की सृष्टि के पवन आदि पदार्थों से अनेक उपकार लेकर सुखी हो ॥ ४ ॥

मनुष्यों को सर्वविद्या के प्रकाश करनेवाले जगदीश्वर की आश्रयता, स्तुति, प्रार्थना और उपासना करके सब विद्या की सिद्धि के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ

करना चाहिए यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

तमीशानं जगत्स्तस्युपस्पतिं धिय जन्ममवसे हमहे वयम् ।

पृषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदन्धः स्वस्तये ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यथा) जैसे (पृषा) पुष्टि करनेवाला परमेश्वर (न) हम लोगों के (वेदसाम्) विद्या आदि धर्मों की (वृधे) वृद्धि के लिए (रक्षिता) रक्षा करनेवाला (स्वस्तये) सुख के लिए (अवसे) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा से प्राप्त न हुआ हो (पृषा) सब प्रकार की पुष्टि का दाता और (पायु) सब प्रकार से पालना करनेवाला (असत्) होने वैसे तू हो जैसे (वयम्) हम (अवसे) रक्षा के लिए (तम्) उम सृष्टि का प्रकाश करने (जगत्) जगत् और (तस्युप) स्थावर-मात्र जगत् के (पतिम्) पालनेवाले (धिष्यम्) समस्त पदार्थों का चिन्तनकर्ता (जन्मम्) सुखों से तृप्त करने (ईशानम्) गमस्त सृष्टि की विद्या के विधान करनेवाले ईश्वर को (हमहे) आवाहन करते हैं वैसे तू भी कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमा लङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिए कि वैसे अपना व्यवहार करें जैसा ईश्वर के उपदेश के अनुकूल हो, और जैसे ईश्वर सबका अधिपति है वैसे मनुष्यों को भी सदा उत्तम विद्या और शुभ गुणों की प्राप्ति और अच्छे पुरुषार्थ से सब पर आधिपत्य सिद्ध करना चाहिए और जैसे ईश्वर विज्ञानमय पुरुषार्थयुक्त, सब सुखों को देनेवाला, ससार की उन्नति और सबकी रक्षा करनेवाला, सब के सुख के लिए प्रवृत्त हो रहा है वैसे ही मनुष्यों को भी होना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को किस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके किस की इच्छा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥

पदार्थ—(वृद्धश्रवाः) संसार में जिसकी कीर्ति वा ध्वनि आदि सामग्री अति उन्नति को प्राप्त है वह (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) शरीर के सुख को (वृद्धातु) धारण करावे (विश्ववेदाः) जिसको समार का विज्ञान और जिसका सब पदार्थों में स्मरण है वह (पूषा) पुष्टि करनेवाला परमेश्वर (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) आनुषों की समता के सुख को धारण करावे जो (अरिष्टनेमिः) दुःखों का वध के तुल्य विनाश करनेवाला (तार्क्ष्यः) और जानने के योग्य परमेश्वर है वह (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) इन्द्रियों की मान्तिरूप सुख को धारण करावे और जो (बृहस्पतिः) वेदवाणी का प्रभु परमेश्वर है वह (नः) हम लोगों को (स्वस्ति) विद्या से आत्मा के सुख को धारण करावे ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ के बिना किसी को शरीर, इन्द्रिय और आत्मा का परिपूर्ण सुख नहीं होता इससे उसका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्यों को कैसा होना चाहिए

यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

पृषदश्वा मरुतः पृथिमातरः शुभ याचानो विदधेयु जग्मयः ।

अग्निजिह्वा मरुतः सूर्यसप्तो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥७॥

पदार्थ—हे (शुभयाचानः) जो श्रेष्ठ व्यवहार की प्राप्ति कराते (अग्निजिह्वाः) और अग्नि को हवनयुक्त करनेवाले (मरुतः) विचारशील (सूर्यसप्तः) जिनके प्राण और सूर्य में प्रसिद्ध वचन वा दर्शन हैं (पृषदश्वाः) सेना में रण-विरग घोड़ों से युक्त पुरुष (विदधेयु) जो कि संप्राम वा यशों में (जग्मय) जाते हैं वे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (इह) इस ससार में (न) हम लोगों को (अवसा) रक्षा आदि व्यवहारों के साथ (पृथिमातरः) आकाश से उत्पन्न होनेवाले (मरुतः) पवनों के तुल्य (आ-अवसन्) धारें, प्राप्त हुआ करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा लङ्कार है। जैसे बाहर और भीतर के पवन सब प्राणियों के सुख के लिए प्राप्त होते हैं वैसे विद्वान् लोग सबके सुख के लिए प्रवृत्त हों ॥ ७ ॥

मनुष्यों को ऐसा करके क्या-क्या करना चाहिए यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनुभिर्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) सगम करनेवाले (देवाः) विद्वान् ! आप लोगों के संग से (तनुभिः) बड़े हुए बलवाने शरीर (स्थिरैः) दृढ़ (अङ्गैः) पुष्ट शिर आदि अङ्ग वा ब्रह्मवर्षादि नियमों से (तुष्टुवांसः) पदार्थों के गुणों की स्तुति करते हुए हम लोग (कर्णेभिः) कानों से (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक पढ़ना-पढ़ाना है उसको (शृणुयाम) सुने-सुनावें (अक्षभिः) बाहरी, भीतरली आँखों से जो (भद्रम्) शरीर और आत्मा का सुख है उसको (पश्येम) देखें इस प्रकार उक्त शरीर और अङ्गों से जो (देवहितम्) विद्वानों की हित करने वाली (आयु) अवस्था है उसको (वि, अशेम) बार-बार प्राप्त हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वान्, आप्त और सज्जनों के संग के बिना कोई सत्य-विद्या का वचन, सत्य-दर्शन और सत्य-व्यवहारमय अवस्था को नहीं पा सकता और न इनके बिना किसी का शरीर और आत्मा दृढ़ हो सकता है इससे सब मनुष्यों को यह उक्त व्यवहार वर्तना योग्य है ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् लोग विद्याधियों के साथ कैसे बर्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

शतमिषु शरदो अन्ति देवा यत्रा नक्षत्रा जरसं तन्नाम् ।

पत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्य रीरिषतायुर्गन्तोः ॥९॥

पदार्थ—हे (अन्ति) विद्या आदि सुख साधनों से जीनेवाले (देवाः) विद्वान् ! तुम जिस सत्य व्यवहार में (तन्नाम्) अपने शरीरों के (शतम्) सौ (शरदः) नय (जरसम्) बुढ़ापन का (चक्र) व्यतीत कर सको (यत्र) जहाँ (न) हमारे (अवस्था) मध्य में (पत्रासः) पुत्र लोग (इत्) ही (पितरः) अवस्था और विद्या से युक्त बुढ़ (नु) शीघ्र (भवन्ति) होते हैं उस (आयु) जीवन को (गन्तोः) प्राप्त होने को प्रवृत्त हुए (नः) हम लोगों को शीघ्र (मा रीरिषत) नष्ट मत कीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस विद्या में बालक भी बुढ़ होते वा जिस शुभ आचरण में बुढ़ावस्था होती है वह सब व्यवहार विद्वानों के संग से ही हो सकता है विद्वानों को चाहिए कि यह उक्त व्यवहार सबको प्राप्त करावें ॥ ९ ॥

अब इन विद्वानों के संग से क्या-क्या सेवने और जानने योग्य है यह विषय

अगले मन्त्र में कहा है—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनिस्त्वम् ॥१०॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको चाहिए कि (द्यौः) प्रकाशयुक्त परमेश्वर वा सूर्य आदि प्रकाशमय पदार्थ (अदितिः) अविनाशी (अन्तरिक्षम्) आकाश (अदिति) अविनाशी (माता) मा वा विद्या (अदितिः) अविनाशी (सः) वह (पिता) उत्पन्न करने वा पालनेवाला पिता (सः) वह (पुत्रः) शरीर अर्थात् निज विवाहित पुरुष से उत्पन्न वा क्षेत्र अर्थात् नियोग करके दूसरे से क्षेत्र में हुआ वा विद्या से उत्पन्न पुत्र (अदितिः) अविनाशी है तथा (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् वा दिव्य गुणवाले पदार्थ (अदितिः) अविनाशी हैं (पञ्च) पाँचो ज्ञानेन्द्रिय और (जना) जीव जी (अदितिः) अविनाशी हैं इस प्रकार जो कुछ (जातम्) उत्पन्न हुआ वा (जनिस्त्वम्) होनेवाला है वह सब (अदितिः) अविनाशी अर्थात् नित्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में कारणरूप वा प्रवाहरूप से सब पदार्थ नित्य मानकर दिव्य आदि पदार्थों की अदिति सज्ञा है। जहाँ-जहाँ वेद में अदिति शब्द पड़ा है वहाँ-वहाँ प्रकरण की अनुकूलता से दिव्य आदि पदार्थों में से जिस-जिस की योग्यता हो उस-उस का ग्रहण करना चाहिए। ईश्वर, जीव और प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इनके अविनाशी होने से इनकी भी अदिति सज्ञा है ॥ १० ॥

इस सूक्त में विद्वान्, विद्यार्थी और अष्टाश्वमेध यज्ञों का विद्वेदे देव ऋषि के अन्तर्गत होने से वर्णन किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की विस्तृत सूक्त के अर्थ के साथ संयति है ऐसा जानना चाहिए ॥

यह नवमोऽथ सूक्त और सोमहोमं वर्ग समाप्त हुआ—

॥

अथास्य नवमोऽथ सूक्तस्य सुक्तस्य रङ्गगणपुत्रो गोतम ऋषिः । विद्वेदे देवा देवताः । १, ८, पिपीलिकामध्या निबृह्मगायत्री, २, ७ गायत्री ।

३ पिपीलिकामध्या विराड्गायत्री, ४ विराड् गायत्री, ५, ६

निबृह्म गायत्री च छन्दः । वङ्गः स्वरः । ६ निबृह्मिष्टुप्छन्दः ।

गायत्रः स्वरः ॥

अथ नवमोऽथ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर वह विद्वान् मनुष्यों में कैसे वर्तित करे यह उपदेश किया है—

**ऋक्षुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥१॥**

पदार्थ—जैसे परमेश्वर धार्मिक मनुष्यों को धर्म प्राप्त कराता है वैसे ( देवैः ) दिव्य गुण, कर्म और स्वभाववाले विद्वानों से ( सजोषा ) समान प्रीति करनेवाला ( वरुणः ) श्रेष्ठ गुणों में वर्तने ( मित्र ) सबका उपकारी और ( अर्यमा ) न्याय करनेवाला ( विद्वान् ) धर्मात्मा, सज्जन, विद्वान् ( ऋक्षुनीति ) लोभी नीति से ( नः ) हम लोगों को धर्मविद्यामार्ग को ( नयतु ) प्राप्त करावे ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । परमेश्वर वा प्राप्त मनुष्य सत्यविद्या के दाहक स्वभाववाले पुरुषार्थी मनुष्य को उत्तम धर्म और उत्तम क्रियाओं को प्राप्त कराता है, और को नहीं ॥ १ ॥

फिर वे विद्वान् कैसे बनें और क्या करें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—  
**ते हि वस्वो वसवानास्ते अममूरा महोमिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥२॥**

पदार्थ—( ते ) वे पूर्वोक्त विद्वान् ( वसवानाः ) अपने गुणों से सबको ढाँपते हुए ( हि ) निश्चय से ( महोमिः ) प्रशंसनीय गुण और कर्मों से ( विश्वाहा ) सब दिनों में ( वस्वः ) वन आदि पदार्थों की ( रक्षन्ते ) रक्षा करते हैं तथा जो ( अममूरा ) भूदत्तप्रभावरहित धार्मिक विद्वान् हैं ( ते ) वे प्रशंसनीय गुण, कर्मों से सब दिन ( व्रता ) सत्यपालन आदि नियमों को रक्षते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—विद्वानों के बिना किसी से वन और धर्मयुक्त आचार रक्षे नहीं जा सकते । इसलिए सब मनुष्यों को नित्य विद्याप्रचार करना चाहिए जिससे सब मनुष्य विद्वान् होके धार्मिक हों ॥ २ ॥

**ते अस्मभ्यं शर्म यंसमृता मर्त्येभ्यः । बार्धमाना अप द्विषः ॥३॥**

पदार्थ—जो ( द्विषः ) दुष्टों को ( अप, बाधमानाः ) दुर्गति के साथ निवारण करते हुए ( अमृता ) जीवनयुक्त विद्वान् हैं ( ते ) वे ( अस्मभ्यं, अस्मभ्यम् ) अस्मदादि मनुष्यों के लिए ( शर्म ) सुख (यसम्) देवें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों से शिला को पाकर छोटे स्वभाव वालों को दूरकर नित्य आनन्दित हों ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे वर्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

**वि नः पथः सुविताय चियन्तिवन्द्रो मस्तः । पूषा मगो वन्द्यासः ॥४॥**

पदार्थ—जो ( इन्द्रः ) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त वा ( पूषा ) दूसरे का पालनपोषण करनेवाला ( मगो ) और उत्तम आभ्युपगामी ( वन्द्यासः ) स्तुति और सत्कार करने योग्य ( वस्तः ) मनुष्य हैं वे ( नः ) हम लोगों को ( सुविताय ) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ( पथः ) उत्तम मार्गों को ( वि, चियन्तु ) नियत कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों से ऐश्वर्य, पुष्टि और सौभाग्य पाकर उस सौभाग्य की योग्यता की ओरों की भी प्राप्त करावे ॥ ४ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**उत नो धियो भोजग्राः पृषन् विष्णवेव्यावः ।**

**कर्ता नः स्वस्तिमस्तः ॥ ५ ॥ १७ ॥**

पदार्थ—हे ( पृषन् ) विद्या और उत्तम शिक्षा से पोषण करने वा ( विष्णो ) समस्त विद्याओं में व्यापक होने ( एवमाव ) वा जिससे सब व्यवहार हो उस अग्राध बोध को प्राप्त होनेवाले विद्वान् लोगो ! तुम ( नः ) हम लोगों के लिए ( भोजग्राः ) इन्द्रिय अग्रगामी जिनमें हो उन ( धियो ) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्मों को ( कर्ता ) प्रसिद्ध करो ( उत ) उसके पश्चात् ( नः ) हम लोगों को ( स्वस्तिमस्तः ) सुखयुक्त करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—पढ़नेवालों को चाहिए कि पढ़ानेवाले जैसी विद्या की शिक्षा करें वैसे उनका ग्रहण कर अच्छे विचार से नित्य उन्नति करें ॥ ५ ॥

विद्या से क्या उत्पन्न होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**मधु वातां ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।**

**माध्वीर्नः सन्वोषधीः ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे पढ़ानेवालो ! जैसे तुम्हारे लिए और ( ऋतायते ) अपने को सत्य व्यवहार चाहनेवाले पुरुष के लिए ( वाता ) वायु ( मधु ) मधुरता और ( सिन्धवः ) समुद्र वा पवित्रा ( मधु ) मधुर गुण को ( क्षरन्ति ) वर्षा करती हैं । वैसे ( नः ) हमारे लिए ( माध्वीः ) सौमलता आदि माध्वी ( माध्वी ) मधुर गुण के विशेष ज्ञान करानेवाली ( सन्तु ) हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे पढ़ानेवालो ! तुम और हम ऐसा अच्छा यत्न करें कि जिससे सृष्टि के पदार्थों से समग्र आनन्द के लिए विद्या से उपकारों को ग्रहण कर सकें ॥ ६ ॥

फिर हम किसके लिए कित पुरुषार्थ को करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**मधु नरंभुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु यौरस्तु नः पिता ॥७॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ( नः ) हम लोगों के लिए ( नक्तम् ) रात्रि ( मधु ) मधुर ( उषसः ) दिन मधुर गुणवाले ( पार्थिवम् ) पृथिवी में ( रजः ) भूत और वसरेण आदि छोटे-छोटे भूमि के कणके ( मधुमत् ) मधुर गुणों से युक्त, सुख करनेवाले ( उत ) और ( पिता ) पालन करनेवाली ( धी ) सूर्य की कान्ति ( मधु ) मधुरगुण वाली ( भस्तु ) हो वैसे तुम लोगों के लिए भी हो ॥७॥

भाषार्थ—पढ़ानेवाले लोगों से जैसे मनुष्यों के लिए पृथिवीस्थ पदार्थ आनन्ददायक हो वैसे सब मनुष्यों को गुण, ज्ञान और हस्तक्रिया से विद्या का उपयोग करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर हम लोगों को किस लिए विद्या का अनुष्ठान करना चाहिए—

**मधुमासो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥८॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ( नः ) हम लोगों के लिए ( मधुमान् ) जिस में प्रशस्तित मधुर सुख है ऐसा ( वनस्पति ) वनों में रक्षा के योग्य वट आदि वृक्षों का समूह वा मेघ और ( सूर्यः ) ब्रह्माण्ड में स्थिर होनेवाला सूर्य वा शरीरों में उहरनेवाला प्राण ( मधुमान् ) जिसमें मधुर गुणों का प्रकाश है ऐसा ( अस्तु ) हो तथा ( नः ) हम लोगों के हित के लिए ( गावः ) सूर्य की किरणें ( माध्वी ) मधुर गुणवाली ( भवन्तु ) हों वैसे तुम लोग हमको शिक्षा करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् लोगो ! आओ तुम और हम मिलके ऐसा पुरुषार्थ करें कि जिससे हम लोगों के सब काम सिद्ध हों ॥ ८ ॥

फिर ईश्वर और विद्वान् लोग मनुष्यों के लिए क्या-क्या करते हैं

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**शशो मित्रः शं वरुणः शशो भवत्वय्यमा ।**

**शश इन्द्रो बृहस्पतिः शशो विष्णुरुक्रमः ॥९॥१८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे हमारे लिए ( उषक्रम ) जिसके बहुत पराक्रम है वह ( मित्रः ) सबका सुख करनेवाला ( नः ) हम लोगों के लिए ( शम् ) सुखकारी वा जिसके बहुत पराक्रम है वह ( वरुणः ) सब में शक्ति उन्नति वाला हम लोगों के लिए ( शम् ) शान्ति सुख का देनेवाला वा जिसके बहुत पराक्रम है वह ( अर्यमा ) न्याय करनेवाला ( नः ) हम लोगों के लिए ( शम् ) आरोग्य सुख का देनेवाला जिसके बहुत पराक्रम है वह ( बृहस्पतिः ) महत् वेदविद्या का पालने वाला वा जिसके बहुत पराक्रम है वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर्य देनेवाला ( नः ) हम लोगों के लिए ( शम् ) ऐश्वर्य सुखकारी वा जिसके बहुत पराक्रम है वह ( विष्णुः ) सब गुणों में व्याप्त होनेवाला परमेश्वर तथा उक्त गुणोंवाला विद्वान्, सज्जन पुरुष ( नः ) हम लोगों के लिए पूर्वोक्त सुख और ( शम् ) विद्या में सुख देनेवाला ( भवतु ) हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—परमेश्वर के समान मित्र, उत्तम न्याय का करनेवाला ऐश्वर्यवान् बड़े-बड़े पदार्थों का स्वामी तथा व्यापक सुख देनेवाला और विद्वान् के समान प्रेम उत्पादन करने, धार्मिक सत्य व्यवहार वर्तने, विद्या आदि वनों को देने और विद्या पालनेवाला शुभ गुण और सत्कर्मों में व्याप्त महापराक्रमी कोई नहीं हो सकता । इससे सब मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, निरन्तर विद्वानों की सेवा और संग करके नित्य आनन्द में रहें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढ़ानेवालों के और ईश्वर के कर्त्तव्य तथा उनके फल का कथन है इससे इस सूक्त के अर्थ के साथ विस्तृत सूक्त के अर्थ की सम्यक् जानकारी चाहिए ।

यह नवमोऽथ सूक्त और अष्टाश्वमेध वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथास्य त्रयोविंशतिः अष्टमोऽथ सूक्तस्य सुक्तस्य रङ्गगणपुत्रो गोतम ऋषिः । सोमो

देवताः । १, ३, ४ स्वराट् पङ्क्तिः, २ पङ्क्तिः, १८, २० भुरिपङ्क्तिः,

२२ विराट्पङ्क्तिःछन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ पादनिबृह्मगायत्री, ६, ८,

९, ११ निबृह्मगायत्री, ७ बर्धमाना गायत्री, १०, १२ गायत्री,

११, १४ विराड्गायत्री, १५, १६ पिपीलिकामध्या निबृह्मगायत्री;

च छन्दः । वङ्गः स्वरः । १७ परोक्षितछन्दः ।

छन्दः स्वरः । १८, २१, २३ निबृह्मिष्टुप्

छन्दः । वीर्यः स्वरः ॥

अथ त्रैविंश मन्त्र वाले अष्टमोऽथ सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में सोम शब्द के अर्थ का उपदेश किया है—

त्वं सोमं प्र चिक्वितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्याम् ।

तव प्रणीती पितरौ न इन्दो देवेषु रत्नममजन्त धीराः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रो ) सोम के समान ( सोम ) समस्त ऐश्वर्ययुक्त ( त्वम् ) परमेश्वर वा प्रति उत्तम विद्वान् । जिस ( मनीषा ) मन को वश में रखनेवाली बुद्धि से ( चिक्वित ) जानते हो वा ( तव ) आपकी ( प्रणीती ) उत्तम नीति से ( धीराः ) ध्यान और धैर्ययुक्त ( पितर ) जानी लोग ( देवेषु ) विद्वान् वा दिव्य गुण, कर्म और स्वभावों में ( रत्नम् ) अत्युत्तम धन को ( प्र, अमजन्त ) सेवते हैं उससे शान्तिगुणयुक्त धाम ( न ) हम लोगों को ( रजिष्ठम् ) अत्यन्त सीधे ( पन्याम् ) मार्ग को ( अनु ) अनुकूलता में ( नेषि ) पहुँचाने हो इससे ( त्वम् ) आप हमारे सत्कार के योग्य हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । जैसे परमेश्वर अथवा अत्यन्त उत्तम विद्वान्, अविद्या विनाश करके विद्या और धर्ममार्ग को पहुँचाता है, वैसे ही वैद्यकशास्त्र की रीति से सेवन किया हुआ सोम आदि ओषधियों का समूह सब रोगों का विनाश करके सुख पहुँचाता है ॥ १ ॥

परमेश्वर और विद्वान् कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं सोमं क्रतुभिः सुक्रतुर्भुस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।

त्वं वृषां वृषत्वेभिर्मदित्वा घन्नेभिर्धूम्यभवो नृचक्षाः ॥२॥

पदार्थ—हे ( सोम ) शान्तिगुणयुक्त परमेश्वर वा उत्तम विद्वान् । ( त्वम् ) आप ( क्रतुभिः ) उत्तम बुद्धि, कर्मों से ( सुक्रतु ) श्रेष्ठ बुद्धिशाली वा श्रेष्ठ काम करनेवाले तथा ( दक्षैः ) विज्ञान आदि गुणों से ( सुदक्ष ) अति श्रेष्ठ जानी ( विश्ववेदाः ) और सब विद्या पाये हुए ( नृ ) होते हैं वा ( त्वम् ) आप ( नृचक्षाः ) बड़े-बड़े गुणों वाले होने से ( वृषत्वेभिः ) विद्यारूपी सुखों की ( वृषा ) वर्षा और ( घन्नेभिः ) कीर्ति और चक्रवर्ति आदि राज्य धर्मों से ( घन्ने ) प्रशंसित धनी ( नृचक्षा ) मनुष्यों में दर्शनीय ( अभव ) होते हो । इससे ( त्वम् ) आप सबसे उत्तम उत्कर्षयुक्त हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । जैसे अच्छी रीति से सेवन किया हुआ सोम आदि ओषधियों का समूह बुद्धि, चतुराई, वीर्य और धनो को उत्पन्न करता है, वैसे ही अच्छी उपासना को प्राप्त हुआ ईश्वर वा अच्छी सेवा को प्राप्त हुआ विद्वान् उक्त बुद्धि आदि को उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्वीरं तव सोम धाम ।

शुचिष्ठ्वर्मसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवामि सोम ॥३॥

पदार्थ—हे ( सोम ) महा ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर वा विद्वान् । जिससे ( त्वम् ) आप ( प्रियो ) प्रसन्न ( मित्र ) मित्र के ( न ) तुल्य ( शुचि ) पवित्र और पवित्रता करनेवाले ( असि ) हैं तथा ( अर्यमेव ) यथार्थन्याय करनेवाले के समान ( दक्षाय्य ) विज्ञान करनेवाले ( असि ) हैं । हे ( सोम ) शुभ कर्म और गुणों में प्रेरक ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ ( राज ) सब जगत् के स्वामी वा विद्याप्रकाशयुक्त । ( ते ) आपके ( व्रतानि ) मत्प्रकाश करनेवाले काम हैं जिसमें ( तव ) आपका ( बृहत् ) बड़ा ( वीर्यम् ) अत्यन्त गुणों से अथाह ( धाम ) जिसमें पदार्थ धरे जाएँ वह स्थान है इससे आप ( नृ ) शीघ्र और सदा उपासना और सेवा करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालकार है । मनुष्य जैसे-जैसे इस सृष्टि में, सृष्टि की रचना के निम्नो में ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभावों को देखके अच्छे-अच्छे यत्न करें वैसे-वैसे विद्या और सुख उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतैर्वोषधीष्वपु ।

तेभिर्नो विश्वैः सुमना अद्वैलन् गजन्तमोम प्रति हव्या गुभाय ॥४॥

पदार्थ—हे ( सोम ) सबको उत्पन्न करनेवाले ( राजन् ) राजा । ( ते ) आपके ( या ) जो ( धामानि ) नाम, जन्म और स्थान ( दिवि ) प्रकाशमय सूर्य आदि पदार्थ वा दिव्य व्यवहार में वा ( या ) जो ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में वा ( या ) जो ( पर्वतैः ) पर्वतों वा ( ओषधीषु ) ओषधियों वा ( अप्सु ) जलो में हैं ( तेभिः ) उन ( विश्वैः ) सबसे ( अद्वैलन् ) घनादर न करते हुए ( सुमना ) उत्तम ज्ञानवाले आप ( हव्या ) देने-लेने योग्य कामों को ( न ) हमको ( प्रति, गुभाय ) प्रत्यक्ष ग्रहण कराइए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे जगदीश्वर अपनी रची सृष्टि में वेद के द्वारा इस सृष्टि के क्रमों को दिखाकर सब विद्याओं का प्रकाश करता है वैसे विद्वान् पढ़े हुए अंग और उपाङ्ग सहित वेदों और हस्तक्रिया से कलाओं की चतुराई को दिखाकर सबको समस्त विद्याएँ ग्रहण करावें ॥ ४ ॥

फिर वह सोम कैसे है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं गजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥५॥

पदार्थ—हे ( सोम ) समस्त ससार के उत्पन्न करने वा सब विद्याओं के देनेवाले । ( त्वम् ) परमेश्वर वा पाठशाला आदि व्यवहारों के स्वामी विद्वान् । आप ( सत्पतिः ) अविनाशी जो जगत् कारण वा विद्यमान कार्य जगत् है उसके पालनेवाले ( असि ) हैं ( जत ) और ( त्वम् ) आप ( वृत्रहा ) दुख देनेवाले दुष्टों के विनाश करनेवाले ( राजा ) सबके स्वामी, विद्या के अग्र्यस्त हैं वा जिस कारण ( त्वम् ) आप ( भद्र ) अत्यन्त सुख करनेवाले हैं वा ( क्रतु ) समस्त

बुद्धियुक्त वा बुद्धि देनेवाले ( असि ) हैं इसी से आप सब विद्वानों के सेवने योग्य हैं ॥ ५ ॥ द्वितीय—(सोम) सब ओषधियों का गुणदाता सोम ओषधि ( त्वम् ) यह ओषधियों में उत्तम ( सत्पति ) ठीक-ठीक पध्य करनेवाले जनों की पालना करनेवाला है ( जत ) और ( त्वम् ) यह सोम ( वृत्रहा ) मेघ के समान दोषों का नाशक ( राजा ) रोगों के विनाश करने के गुणों का प्रकाश करनेवाला है वा जिस कारण ( त्वम् ) यह ( भद्र ) सेवने के योग्य वा ( क्रतु ) उत्तम बुद्धि का हेतु है इसीसे वह सब विद्वानों के सेवने के योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । परमेश्वर, विद्वान्, सोमलता आदि ओषधियों का समूह में समस्त ऐश्वर्य की प्रकाश करने, श्रेष्ठों की रक्षा करने और उनके स्वामी, दुख का विनाश करने और विज्ञान के देनेवाले और कल्याणकारी हैं—ऐसा अच्छी प्रकार जानके सबको इनका सेवन करना योग्य है ॥ ५ ॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥६॥

पदार्थ—हे ( सोम ) श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा देनेवाले परमेश्वर वा श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा देता जो ( त्वम् ) सो यह ( च ) और आप ( नः ) हम लोगों के ( जीवानुम् ) जीवन को ( वशः ) वश होने के गुणों का प्रकाश करने वा ( प्रियस्तोत्र ) जिनके गुणों का कथन प्रेम करने-कराने वाला है वा ( वनस्पतिः ) सेवनीय पदार्थों की पालना करनेवाले वा यह सोम जङ्गली ओषधियों में अत्यन्त श्रेष्ठ है इस व्यवस्था से इन दोनों को जानकर हम लोग शीघ्र ( न, मरामहे ) अकालमृत्यु और घनायास मृत्यु न पावें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । जो मनुष्य, ईश्वर की आज्ञा पालने वाले विद्वानों और ओषधियों का सेवन करते हैं वे पूरी आयु पाते हैं ॥ ६ ॥

त्वं सोम महे भगं त्वं यून् ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥७॥

पदार्थ—हे ( सोम ) परमेश्वर वा सोम अर्थात् ओषधियों का समूह ( त्वम् ) विद्या और सोमाय के देनेवाले आप वा यह सोम ( ऋतायते ) अपने को विशेष ज्ञान की इच्छा करनेवाले ( महे ) अति उत्तम गुणयुक्त ( यून् ) ब्रह्मचर्य्य और विद्या से शरीर और आत्मा की तरफ अवस्था को प्राप्त हुए ब्रह्मचारी के लिए ( भगम् ) विद्या और धनराशि तथा ( त्वम् ) आप ( जावसे ) जीने के अर्थ ( दक्षम् ) बल को ( दधासि ) धारण कराने से सबको चाहने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । मनुष्यों को परमेश्वर, विद्वान् और ओषधियों के सेवन के बिना सुख सम्भव नहीं है, इससे यह अनुष्ठान सबको नित्य करने योग्य है ॥ ७ ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षां राजन्धायतः ।

न रिच्येत त्वावतः सर्वा ॥८॥

पदार्थ—हे ( सोम ) सबके मित्र वा मित्रता देनेवाला ( त्वम् ) आप वा यह ओषधिसमूह ( विश्वतः ) समस्त ( अथायत ) अपने को दोष की इच्छा करते हुए वा दोषकारी से ( न ) हम लोगों की ( रक्षा ) रक्षा कीजिए वा यह ओषधि-गज रक्षा करता है, हे ( राजन् ) सबकी रक्षा का प्रकाश करनेवाले । ( त्वावतः ) तुम्हारे समान पुरुष का ( सर्वा ) कोई मित्र ( न ) न ( रिच्येत ) विनाश को प्राप्त होवे वा सबका रक्षक जो ओषधिगण इसके समान ओषधि का सेवनेवाला पुरुष विनाश को न प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । मनुष्यों का इस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके उत्तम यत्न करना चाहिए कि जिससे धर्म के छोड़ने और अधर्म के ग्रहण करने की इच्छा भी न उठे । धर्म और अधर्म की प्रवृत्ति में मन की इच्छा ही कारण है, उसकी प्रवृत्ति और उसके रोकने से कभी धर्म का त्याग और अधर्म का ग्रहण उत्पन्न न हो ॥ ८ ॥

सोम किन् से रक्षा करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

सोम यास्तं मयोभुव उतयः सन्ति दाशुषे । तामिर्नोऽविता भव ॥९॥

पदार्थ—हे ( सोम ) परमेश्वर । ( याः ) जा ( ते ) आपकी वा सोम आदि ओषधिगण की ( मयोभुव ) सुख को उत्पन्न करनेवाली ( उतय ) रक्षा आदि क्रिया ( दाशुषे ) दानी मनुष्य के लिए ( सन्ति ) हैं ( तामिः ) उनसे ( न ) हम लोगों के ( अविता ) रक्षा आदि के करनेवाले ( भव ) हुआ वा जो यह ओषधिगण होता है इनका उपयोग हम लोग सदा करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जिन प्राणियों की परमेश्वर, विद्वान् और अच्छी मित्र की हुई ओषधि रक्षा करनेवाली होती है वे कहां से दुःख देखें ? ॥ ९ ॥

फिर सोम क्या करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपार्गहि ।

सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥ २० ॥

पदार्थ—हे ( सोम ) परमेश्वर वा विद्वान् । जिससे ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) विद्या की रक्षा करनेवाले वा शिल्प कर्मों से मित्र किये हुए यज्ञ को तथा ( इदम् ) इस विद्या और धर्मसंयुक्त ( वचः ) वचन को ( जुजुषाणः ) प्रीति से सेवन करते हुए ( त्वम् ) आप ( उपार्गहि ) समीप प्राप्त होते हैं वा यह सोम आदि ओषधिगण समीप प्राप्त होता है ( नः ) हम लोगों की ( वृधे ) वृद्धि के लिए ( भव ) हुआ वा उक्त ओषधिगण होवे ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । जब विज्ञान से ईश्वर, सेवा तथा कृतज्ञता से विद्वान् और वैद्यकविद्या वा उत्तम क्रिया से ओषधियाँ मिलती हैं तब मनुष्यों को सब सुख प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥



किर बहु सोम बीसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**सोमं गीर्भिष्टवावयं वर्धयायो वचोविदः । सुखीको न आ विश ॥११॥**

**वचार्थ—**हे ( सोम ) जानने योग्य गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमेश्वर ! जिस कारण ( सुखीकोः ) अच्छे सुख के करनेवाले बंध, आप और सोम आदि घोषविगण ( नः ) हम लोगों को ( आ, विश ) प्राप्त हो इससे ( स्वा ) आपको और उस घोषविगण को ( वचोविदः ) जानने योग्य पदार्थों को जानते हुए ( वयम् ) हम ( गीभिः ) विद्या से सुख की हुई वाणियों से नित्य ( वर्धयानः ) बढ़ाते हैं ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। ईश्वर विद्वान् और घोषविगण के मुख्य प्राणियों को कोई सुख देनेवाला नहीं है। इससे उत्तम शिक्षा और विद्याऽध्ययन से उक्त पदार्थों के बोध की वृद्धि करके मनुष्यों को नित्य उनका उपयोग करना चाहिए ॥ ११ ॥

**वयस्फानो अभीवहा वसुविपुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१२॥**

**वचार्थ—**हे ( सोम ) परमेश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण आप वा यह उत्तमोच्च ( नः ) हम लोगों के ( वयस्फानः ) प्राणों के बढ़ाने वा ( अभीवहा ) अधिष्ठा आदि दोषों तथा ज्वर आदि दुःखों के विनाश करने वा ( वसुविपु ) द्रव्य आदि पदार्थों के ज्ञान कराने वा ( सुमित्रः ) जिन से उत्तम कामों के करनेवाले मित्र होते हैं वैसे ( पुष्टिवर्धनः ) शरीर और आत्मा की पुष्टि को बढ़ानेवाले ( भव ) हुआ वा यह घोषविगण हम लोगों को यथायोग्य उक्त गुण देनेवाला होवे इससे आप और यह हम लोगों के सेवने योग्य हैं ॥ १२ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। प्राणियों को ईश्वर और घोषविगणों के सेवन और विद्वानों के सङ्ग के बिना रोगनाश बलवृद्धि, पदार्थों का ज्ञान, वन की प्राप्ति तथा मित्रमिलाप नहीं हो सकता इससे उक्त पदार्थों का यथायोग्य आश्रय और सेवा सब को करनी चाहिए ॥ १२ ॥

**सोमं रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेव्वा । मय्येव स्व ओषधे ॥१३॥**

**वचार्थ—**हे ( सोम ) परमेश्वर ! जिस कारण आप ( न ) हम लोगों के ( हृदि ) हृदय में ( न ) जैसे ( यवसेवु ) खाने योग्य घास आदि पदार्थों में ( गावः ) गौ रमती है वैसे वा जैसे ( स्वे ) अपने ( ओषधे ) घर में ( मय्येव ) मनुष्य विरमता है वैसे ( आ ) अच्छे प्रकार ( रारन्धि ) रमिए वा ओषधिसमूह उक्त प्रकार से रने, इससे सबके सेवन योग्य आप वा यह हैं ॥ १३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में श्लेष और दो उपमालंकार हैं। हे जगदीश्वर ! जैसे अत्यक्षता से गौ और मनुष्य अपने भोजन करने योग्य पदार्थों वा स्थान में उत्साहपूर्वक रमण करते हैं वैसे हम लोगों के आत्मा में प्रकाशित हुआ, जैसे पृथिवी आदि कार्म्य पदार्थों में प्रत्यक्ष सूर्य की किरणें प्रकाशमान होती हैं वैसे हम लोगों के आत्मा में प्रकाशमान हुआ। इस मन्त्र में असम्भव होने से विद्वान् का ग्रहण नहीं किया ॥ १३ ॥

**यः सोमं सख्ये तवं रारण्देव मर्त्यैः । तं दत्तं सचते कविः ॥१४॥**

**वचार्थ—**हे ( देव ) दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाले वा अच्छे गुणों का हेतु ( सोम ) वैद्यराज विद्वान् वा यह उत्तम घोषधि ! ( यः ) जो ( त्वं ) आप वा इसके ( सख्ये ) मित्रपन वा मित्र के काम में ( दत्तः ) शरीर और आत्मबलयुक्त ( कविः ) वर्णनीय वा अग्राह्य प्रजायुक्त ( मर्त्यैः ) मनुष्य ( रारण्त् ) सबाद करता और ( सचते ) सम्बन्ध रखता है ( त्वं ) उस मनुष्य को सुख क्यों न प्राप्त होवे ॥ १४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। जो मनुष्य परमेश्वर, विद्वान् वा उत्तम घोषधि के साथ मित्रता करते हैं वे विद्या को प्राप्त होकर कभी दुःखप्रापी नहीं होते ॥ १४ ॥

**उरुध्या णो अमिश्रस्तेः सोम नि पाक्षंहसः ।**

**सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥ २१ ॥**

**वचार्थ—**हे ( सोम ) रक्षा करने और ( सुशेवः ) उत्तम सुख देनेवाले ( सखा ) मित्र ! जो आप ( अमिश्रस्तेः ) सुखविनाश करनेवाले काम से ( नः ) हम लोगों को ( उरुध्या ) बचाओ वा ( अंहसः ) अधिष्ठा तथा ज्वरारिद्वेग से हम लोगों की ( नि ) निरन्तर ( पाहि ) पालना करो और ( नः ) हम लोगों के सुख करनेवाले ( एधि ) होओ वह आप हम को सत्कार करने योग्य क्यों न होवें ॥ १५ ॥

**भाषार्थ—**मनुष्यों द्वारा अच्छी प्रकार सेवा किया हुआ बंध, उत्तम विद्वान्, समस्त अधिष्ठा आदि राजगणों से प्रलग कर उनकी आनन्दित करता है। इस से यह सदैव संगम करने योग्य है ॥ १५ ॥

**आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृण्यम् ।**

**भवा वाजस्य संगथे ॥ १६ ॥**

**वचार्थ—**हे ( सोम ) अत्यन्त पराक्रमयुक्त बंधक शास्त्र को जाननेवाले विद्वन् ! ( ते ) आप का ( विश्वतः ) सम्पूर्ण सृष्टि से ( वृण्यम् ) कीर्त्यवानों में उत्तम पराक्रम है वह हम लोगों को ( सम् + एतु ) अच्छी प्रकार प्राप्त हो तथा आप ( आप्यायस्व ) उन्नति को प्राप्त और ( वाजस्य ) वेगवाली सेना के ( संगथे ) संगम में रोगनाशक ( भव ) हुआ ॥ १६ ॥

**भाषार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् और घोषविगणों का सेवन कर बल और विद्या को प्राप्त हो समस्त सृष्टि की अत्युत्तम विद्याओं की उन्नति कर

मनुष्यों को जीत और शत्रुओं की रक्षा कर शरीर और आत्मा की पुष्टि निरन्तर बढ़ावें ॥ १६ ॥

**आ प्यायस्व मदित्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।**

**भवा नः सुभवंस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥**

**वचार्थ—**हे ( मदित्तम ) अत्यन्त प्रशंसित आनन्दयुक्त ( सोम ) विद्या और ऐश्वर्य के देनेवाले ! आ ( सुभवंस्तमः ) बहुभूत वा अच्छे मन्त्रादि पदार्थों से युक्त ( सखा ) आप मित्र हैं तो ( नः ) हम लोगों के ( वृधे ) उन्नति के लिए ( भव ) हुआ और ( विश्वेभिः ) समस्त ( अंशुभिः ) सृष्टि के सिद्धान्तभागों से ( आ ) अच्छे प्रकार ( प्यायस्व ) वृद्धि को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

**भाषार्थ—**जो उत्तम विद्वान् समस्त उत्तम घोषविगण से सृष्टिक्रम की विद्याओं में मनुष्यों का उन्नति करता है, उस का अनुगमन सब को करना चाहिए ॥ १७ ॥

किर बहु क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**सं ते पर्यासि सभु यन्तु वाजाः सं वृण्यान्यभिमातिवाहः ।**

**आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रयोस्युत्तमानि धिष्व ॥१८॥**

**वचार्थ—**हे ( सोम ) ऐश्वर्य को पहुँचानेवाले विद्वन् ! ( ते ) आपके जो ( वृण्यानि ) पराक्रमवाले ( पर्यासि ) जल वा मन्त्र हम लोगों को ( संयन्तु ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो और ( अभिमातिवाहः ) जिनसे शत्रुओं को तहें वे ( वाजाः ) संग्राम ( सम् ) प्राप्त हों उनसे ( दिवि ) विद्याप्रकाश में ( अमृताय ) मोक्ष के लिए ( आप्यायमानः ) बूढ़ बलवाले आप वा उत्तम रस के लिए बूढ़ बलकारक घोषविगण ( उत्तमानि ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( अमांसि ) वचनों वा मन्त्रों को ( संधिष्व ) चरण कीजिए वा करता है ॥ १८ ॥

**भाषार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि विद्या और पुखार्य से विद्वानों के संग घोषविगणों के सेवन और पच्य से जो-जो प्रशंसित कर्म, प्रशंसित गुण और श्रेष्ठ पदार्थ प्राप्त होते हैं उनका चरण और उनकी रक्षा तथा धर्म, धर्म, कामों की सिद्धि कर मोक्ष की सिद्धि करें ॥ १८ ॥

किर बहु कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।**

**गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुय्यीन् ॥१९॥**

**वचार्थ—**हे ( सोम ) परमेश्वर वा विद्वन् ! ( ते ) आपके वा इस घोषवि-समूह के ( या ) जो ( विश्व ) समस्त ( धामानि ) स्थान वा पदार्थ ( हविषा ) विद्यादान वा ग्रहण करने की क्रियाओं से ( यज्ञम् ) क्रियामय यज्ञ को ( यजन्ति ) संगत करते हैं ( ता ) वे सब ( ते ) आपके वा इस घोषविगणसमूह के हम लोगों को प्राप्त हों जिससे आप ( परिभूः ) सबके ऊपर विराजमान होने ( गयस्फानः ) घन बढ़ाने और ( प्रतरणः ) दुःख से प्रत्यक्ष तारनेवाले ( सुवीरः ) उत्तम-उत्तम वीरों से युक्त ( अवीरहा ) अच्छी शिक्षा और विद्या से कायरों को भी सुख देनेवाले ( अस्तु ) हो इससे हम लोगों के ( दुय्यीन् ) उत्तम स्थानों को ( चर ) प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। कोई भी सृष्टि के पदार्थों के गुणों को जिन जगते उनसे उपकार नहीं ले सकता, इससे विद्वानों के संग से पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्यन्त यथायोग्य सब पदार्थों को जानकर मनुष्यों को चाहिए कि क्रिया-सिद्धि सदैव करें ॥ १९ ॥

किर बहु क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**सापो वेनु सोमो अर्वेन्तमाशु सोमो वीर कर्मण्य ददाति ।**

**सादन्यं विद्वध्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२०॥२२॥**

**वचार्थ—**( यः ) जो समाध्यक्ष आदि ( अस्मै ) इस चर्मरत्ना पुरुष को ( सादन्यम् ) घर बनाने के योग्य सामग्री ( विद्वध्यम् ) यज्ञ वा युद्धों में प्रशसनीय तथा ( सभेयम् ) सभा में प्रशसनीय सामग्री और ( पितृश्रवणम् ) ज्ञानी लोग जिससे सुने जाते हैं ऐसे व्यवहार को ( वशात् ) देता है वह ( सोमः ) सोम अर्थात् समाध्यक्ष आदि सोमलतादि घोषधि के लिए ( वेनुम् ) वाणी को ( आशुम् ) शीघ्र गमन करनेवाले ( अर्वेन्तम् ) धन को या ( सोमः ) उत्तम कर्मकर्त्ता सोम ( कर्मण्यम् ) अच्छे-अच्छे कामों से सिद्ध हुए ( वीरम् ) विद्या और शूरता आदि गुणों से युक्त मनुष्य को ( वशाति ) देता है ॥ २० ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। जैसे विद्वान् उत्तम शिक्षा को प्राप्त वाणी का उपदेश कर अच्छे पुखार्य को प्राप्त होकर कार्यसिद्धि कराते हैं वैसे ही सोम घोषविगणों का समूह श्रेष्ठ बल और पुष्टि को कराता है ॥ २० ॥

किर बहु कैसा है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

**अर्वाळ्हा युस्तु पृतनासु पमिं स्वर्वाभप्सां वृजनस्य गोपाम् ।**

**मरेषुवां सुसिति सुश्रवंसं जयन्तं स्वामनु मदेम सोम ॥२१॥**

**वचार्थ—**हे ( सोम ) सेना आदि कार्यों के अधिपति ! जैसे सोमलतादि घोषविगण ( वस्तु ) संग्रामों में ( अर्वाळ्हा ) मनुष्यों से तिरस्कार को न प्राप्त होने योग्य ( पृतनासु ) सेनाओं में ( पमिन् ) सब प्रकार की रक्षा करनेवाले ( वृजनस्य )

पराक्रम के ( शीघ्रताम् ) रक्षक ( भरेवृक्षम् ) राज्यसामग्री के साधक बाणों को बनवानेवाले ( सुकृतिम् ) जिसके राज्य में उत्तम-उत्तम भूमि है ( स्वर्णम् ) सबके सुखदाता ( अष्टासुम् ) जलों को देनेवाले ( सुधनसम् ) जिसके उत्तम यश वा वचन सुने जाते हैं ( अयसम् ) विजय के करनेवाले ( स्वम् ) आपकी रोगरहित करके आनन्दित करता है वैसे उसको प्राप्त होकर हम लोग ( अनुमतेः ) अनुमोद को प्राप्त होंगे ॥ २१ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपासकार है। मनुष्यों को सब गुणों से युक्त सेनाध्यक्ष और समस्त गुण करनेवाले सोमलता आदि ओषधियों के विज्ञान और सेवन के बिना कभी उत्तम राज्य और आरोग्यपन प्राप्त नहीं हो सकता इससे उक्त प्रबन्धों का आश्रय सबको करना चाहिए ॥ २१ ॥

स्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।

त्वमा तन्त्रोर्वेन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२॥

पदार्थ—हे ( सोम ) समस्त गुणयुक्त आरोग्यपन और बल के देनेवाले ईश्वर ! जिस कारण ( स्वम् ) आप ( इमाः ) प्रत्यक्ष ( विश्वाः ) समस्त ( ओषधीः ) रोगों का विनाश करनेवाली सोमलता आदि ओषधियों को ( अजनय ) उत्पन्न करते हो ( स्वम् ) आप ( अप ) जलों ( स्वम् ) आप ( गाः ) इन्द्रियों और किरणों को प्रकाशित करते हो ( स्वम् ) आप ( ज्योतिषा ) विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा के प्रकाश से ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को ( उष ) बहुत ( गा ) अच्छी प्रकार ( तन्त्रम् ) विस्तृत करते हो और ( स्वम् ) आप उक्त विद्या आदि गुणों से ( तमः ) अविद्या, निन्दित शिक्षा वा अन्धकार को ( वि ववर्थ ) स्वीकार नहीं करते इससे आप सब लोगों से सेवा करने योग्य हैं ॥ २२ ॥

भाषार्थ—जिस ईश्वर ने नाना प्रकार की सृष्टि बनाई है वही सब मनुष्यों की उपासना के योग्य दृष्टदेव है ॥ २२ ॥

देवेन नो मनसा देव सोम गयो भागं सहसावक्षमि युध्य ।

मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयैभ्यः प्र चिकित्सा गविष्ठौ ॥२३॥२३॥

पदार्थ—हे ( सहसावक्षम् ) प्रत्यक्ष बलवान् ( देव ) दिव्यगुणसम्पन्न ( सोम ) सर्वविद्या और सेना के अध्यक्ष ! आप ( देवेन ) दिव्यगुणयुक्त ( अवसा ) विचार से ( रावः ) राज्यपन के लाभ को ( अभि ) शत्रुओं के सम्मुख ( युध्य ) युद्ध कीजिए जो आप ( नः ) हमारे लिए वन के ( भागम् ) भाग के ( ईक्षिषे ) स्वामी हो उस ( त्वा ) तुमको ( गविष्ठौ ) इन्द्रिय और भूमि के राज्य के प्रकाशों की सङ्कलितियों में शत्रु ( वा तन्त्रम् ) पीड़ायुक्त न करें आप ( वीर्यस्य ) पराक्रम को ( अवयैभ्यः ) अपने और पराये योद्धाओं से ( मा प्रचिकित्सा ) सहाययुक्त मत हो ॥ २३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परमोत्तम सेनाध्यक्ष और ओषधिविद्या का आश्रय और युद्ध में प्रवृत्ति कर उन्माह के साथ अपनी सेना को जोड़ और शत्रुओं की हाना का पराजय कर चक्रवर्ति राज्य के ऐश्वर्य को प्राप्त हो ॥ २३ ॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढ़ाने वालों आदि की विद्या के पढ़ने आदि कामों की सिद्धि करनेवाले सोम शब्द के अर्थ के कथन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह इक्ष्यानर्था सूक्त और तेईसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ।



अथाऽष्टावशर्षस्य दिनवतितमस्य सूक्तस्य राहृगणपुत्रो गोतम ऋषिः । उवाच वेदता ।

१, २ निष्कृजगती, ३ जगती, ४ विराट् जगती छन्दः । निषाद स्वरः ।

५, ७, १२ विराट् ऋष्टुप्, ६, १० निष्कृतिष्ठुप्, ८, ९ ऋष्टुच्छन्दः ।

अंबतः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिस्तच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

१३ निष्कृत्परोष्णिक्, १४, १५ विराट्परोष्णिक्,

१६—१८ उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ अठारह ऋचा बाले जानबे सूक्त का आरम्भ है । इस के प्रथम मन्त्र से उषस् शब्द के अर्थसम्बन्धी कामों का उपदेश किया है—

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जने ।

निष्कृष्वाना आयुधानीव धृष्यावः प्रति गावोऽरूपीर्यन्ति मातरं ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम जो ( एता ) देखे जाते ( उ ) और जो ( त्या ) देखे नहीं जाते अर्थात् दूर देश में वनमान हैं वे ( उषसः ) प्रातःकाल के सूर्य के प्रकाश ( केतुम् ) सब पदार्थों के ज्ञान को ( अक्रत ) करते हैं जो ( रजसः ) भूगोल के ( पूर्वे ) आधे भाग में ( भानुम् ) सूर्य के प्रकाश को ( अञ्जने ) पहुँचाती और ( निष्कृष्वाना ) दिन-रात को सिद्ध करती हैं वे ( आयुधानीव ) जैसे वीरों की युद्ध विद्या से छोड़े हुए बाण आदि मस्त्र सूक्ष्मे-तिरछे जाते-भाते हैं वैसे ( धृष्यावः ) प्रगल्भता के गुणों को देने ( अरुषी ) लालगुणयुक्त और ( मातरः ) माता के तुल्य सब प्राणियों का मान करनेवाली ( प्रतिगावः ) उस सूर्य के प्रकाश के प्रत्यागमन अर्थात् क्रम से घटने-बढ़ने से जगह-जगह में ( यन्ति ) घटती-बढ़ती से पहुँचती हैं उनको तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस सृष्टि में सदैव सूर्य का प्रकाश भूगोल के आधे भाग को प्रकाशित करता है और आधे भाग में अन्धकार रहता है । सूर्य के प्रकाश के बिना

किसी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता । सूर्य की किरणें क्षण-क्षण भूगोल आदि लोको के घूमने से गमन करती-सी दीख पड़ती हैं जो प्रातःकाल के रक्त प्रकाश अपने-अपने देश में हैं वे प्रत्यक्ष और दूसरे देश में हैं वे अप्रत्यक्ष वे सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रातःकाल की वेला सब लोकों में एकसी सब दिशाओं में प्रवेश करती हैं । जैसे शस्त्र आगे-पीछे जाने से सीधी-उलटी चाल को प्राप्त होते हैं वैसे अनेक प्रकार के प्रातः प्रकाश भूगोल आदि लोकों की चाल से सीधी-तिरछी चालों से युक्त होते हैं यह बात मनुष्यों को जाननी चाहिए ॥ १ ॥

फिर वे प्रातःकाल की वेला कैसी हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उदपसन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुस्त ।

अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुक्मन्तं भानुमरुवीरशिभ्रयुः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो ( अरुणा ) रक्तगुण वाली ( स्वायुजः ) और अच्छे प्रकार सब पदार्थों से युक्त होती हैं वे ( उषसः ) प्रातःकालीन सूर्य की ( भानवः ) किरणें ( वृथा ) मिथ्या-सी ( उत ) ऊपर ( अयुस्तम् ) पड़ती हैं अर्थात् उन में ताप न्यून होता है इससे भीतल-सी होती हैं और उनसे ( गाः ) पृथिवी आदि लोक ( अरुषी ) रक्त गुणों से ( अयुस्तम् ) युक्त होने हैं जो ( अरुषीः ) रक्त गुणवाली सूर्य की उक्त किरणें ( वयुनानि ) सब पदार्थों का विशेष ज्ञान वा सब कामों को ( अक्रन् ) करती हैं, वे ( वृथा ) पिछले-पिछले ( रुक्मन्तम् ) अन्धकार के छेदक ( भानुम् ) सूर्य के समान अलग-अलग दिन करनेवाले सूर्य का ( अशिभ्रयुः ) सेवन करती हैं उनका सेवन युक्ति से करना चाहिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो सूर्य की किरणें भूगोल आदि लोकों का सेवन अर्थात् उन पर पड़ती हुई कम-कम से चलती जाती हैं वे प्रातः और सायंकाल के समय भूमि के सयोग से लाल होकर बादलों को लाल कर देती हैं । और जब ये प्रातःकाल लोकों में प्रवृत्त अर्थात् उदय को प्राप्त होती हैं तब प्राणियों को सब पदार्थों के विशेष ज्ञान होते हैं जो भूमि पर गिरी हुई साल वर्षों की हैं वे सूर्य के आश्रय होकर उसको लाल कर ओषधियों का सेवन करती हैं उनका सेवन जागरितावस्था में मनुष्यों को करना चाहिए ॥ २ ॥

फिर वे क्या करती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिमिः समानेन योजनेना परावतः ।

इयं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—सूर्य की किरणें ( विष्टिमिः ) अपनी व्याप्तियों से ( समानेन ) समान ( योजनेन ) योग से अर्थात् सब पदार्थों में एकती व्याप्त होकर ( परावतः ) दूर देश में ( न ) जैसी ( नारी ) पुरुषों के अनुकूल स्त्रियों ( सुकृते ) बलिष्ठ ( सुदानवे ) उत्तम दाता ( सुन्वते ) ओषधि आदि पदार्थों के रस निकालके सेवन करती ( यजमानाय ) और पुरुषार्थी पुरुष के लिए ( विश्वेदह ) समस्त उत्तम-उत्तम ( अयसः ) कर्मों और ( इष्टम् ) अन्नादि पदार्थों को ( आवाहन्तीः ) अच्छे प्रकार प्राप्त करती हुई उन के ( अह ) दुःखों के विनाश से ( अर्चन्ति ) सत्कार करती हैं वैसे उषा भी है उन का सेवन यथायोग्य सब को करना चाहिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने-अपने पति का सेवन कर उनका सत्कार करती हैं वैसे ही सूर्य की किरणें भूमि को प्राप्त हुई वहाँ से निवृत्त हो और अन्तरिक्ष में प्रकाश प्रकट कर समस्त वस्तुओं को पुष्ट करके सब प्राणियों को सुख देती हैं ॥ ३ ॥

फिर वे कैसी हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अधि पेशांसि वपते नृत्तरिवापौण्डते वस उन्नेव बर्जहम् ।

ज्योतिर्विश्वस्म सुवनाय कृष्वती गावो न व्रजं व्युपा आवर्त्तमः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( उषा ) सूर्य की किरण ( नृत्तरिवा ) जैसे नाटक करनेवाला वा नट वा नाचनेवाला वा बहुरूपिया अनेक रूप धारण करता है वैसे ( पेशांसि ) नाना प्रकार के रूपों को ( अधिवपते ) उहराती है वा ( वसः, उन्नेव ) जैसे गी अपनी छाती को वैसे ( बर्जहम् ) अन्धेरे को नष्ट करनेवाले प्रकाश के नाशक अन्धकार को ( अप, ऊण्ते ) ढांपती वा ( विवर्त्तम् ) समस्त ( सुवनाय ) उत्पन्न हुए लोक के लिए ( ज्योति ) प्रकाश का ( कृष्वती ) करती हुई ( वसः, गावो, न ) जैसे निवासस्थान को गी जाती है वैसे स्थानान्तर को जाती और ( तम ) अन्धकार को ( व्याव ) अपने प्रकाश से ढांप लेती है वैसे उत्तम स्त्री अपने पति को प्रसन्न करे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सूर्य की केवल ज्योति है वह दिन कहाता और जो तिरछी हुई भूमि पर पड़ती है वह ( उषा ) प्रातःकाल की वेला कहाती है, उसके बिना समार का पालन नहीं हो सकता इससे इस विद्या की भावना मनुष्यों को अवश्य होनी चाहिए ॥ ४ ॥

प्रत्यर्ची रुक्मदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्रम् ।

स्वरं न पेशो विदधेऽवज्जञ्चित्रं दिवो दृहिता भानुमभ्रेत् ॥५॥२४॥

पदार्थ—जिस ( अरुणा ) इस प्रातः समय अन्धकार के विनाशरूप उषा की ( वसः ) अन्धकार का नाश करनेवाली ( अर्धिः ) दीप्ति ( अम्बम् ) बड़े ( कृष्णम् ) काले वर्णरूप अन्धकार को ( बाधते ) अलग करती है जो ( विवः ) प्रकाश रूप सूर्य की ( दृहिता ) पुत्री के तुल्य ( स्वस्वम् ) तपनेवाले सूर्य के ( न ) समान ( अम्बम् ) अद्भुत ( भानुम् ) कान्ति ( वेशः ) रूप की ( अम्बेत् )

आश्वय करती है वा जैसे अश्विज लोग ( विष्वक् ) वस की क्रियाओं से ( अश्वम् ) प्राप्त होते हैं वैसे ( विष्वक् ) विविध प्रकार से स्मर होती है वह प्रातः समय की बेला हम लोगों को ( अश्वमति ) प्रतीत होती है ॥ ५ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो सूर्य की दीप्ति आप ही उजाळा करती हुई सबको प्रकाशित करती है, वह प्रातःकाल की बेला सूर्य की पुत्री के समान है ऐसा शब्द मनुष्यों को मानना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर वह कैसी है और इससे जीव क्या करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—  
अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुनां कुणोति ।

श्रिये छन्दो न स्मर्यते विभ्राती सुप्रतीका सौमनसायाजीवः ॥६॥

पदार्थ—जो ( विष्वक् ) विद्या और राज्य की प्राप्ति के लिए ( अश्वम् ) वेदों के ( न ) समान ( उच्छन्ती ) अन्धकार को दूर करती और ( विभ्राती ) विविध प्रकार के मूर्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित और ( सुप्रतीका ) पदार्थों की प्रतीति कराती है वह ( उषाः ) प्रातःकाल की बेला सबके (सौमनसाय) वासिक जनों के मनोरञ्जन के लिए ( वयुनां ) प्रबलनीय वा मनोहर कामों को ( कुणोति ) कराती ( अजीवः ) अन्धकार को निगल जाती और ( स्मर्यते ) ध्यानन्द देती है उससे ( अश्वम् ) इस ( तमसः ) अन्धकार के ( वारम् ) पार को प्राप्त होते हैं वैसे दुःख के परे ध्यानन्द को हम ( अतारिष्म ) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालंकार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे यह उषा कर्म, ज्ञान, ध्यानन्द, पुरुषार्थ व वन-प्राप्ति के समान दुःखरूपी अन्धकार के निवारण का निदान प्रातःकाल की बेला है वैसे इस बेला में उत्तम पुरुषार्थ से प्रयत्न करके दुःख की बढ़ती और दुःख का नाश करें ॥ ६ ॥

फिर वह कैसी है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भास्वती नेत्री सूनृतांनां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।

मजावतो वृचतो अश्वबुध्यानुवो गोअग्रो उप मासि वाजान् ॥७॥

पदार्थ—जैसे ( सूनृतामान् ) अच्छे-अच्छे काम वा धन आदि पदार्थों को ( भास्वती ) प्रकाशित ( नेत्री ) और मनुष्यों को व्यवहारों की प्राप्ति कराती वा ( दिवः ) प्रकाशमान सूर्य की ( दुहिता ) कन्या के समान ( उषा ) प्रातः समय की बेला ( गोतमेभिः ) समस्त विद्याओं को अच्छे प्रकार कहने-सुनने वाले विद्वानों से स्तुति की जाती है वैसे इसकी मैं ( स्तवे ) प्रशंसा करूँ। हे स्वि ! जैसे यह उषा ( मजावतः ) प्रशंसित प्रजायुक्त ( वृचतः ) वा शंसा आदि कामों के बहुत मायको से युक्त ( अश्वबुध्यान् ) जिनसे वेगवान् घोड़ों को बार-बार चेतन्य करें ( गोअग्रान् ) जिनसे राज्य भूमि आदि पदार्थ मिलें उन ( वाजान् ) सप्राप्तों को ( उपमासि ) समीप प्राप्त करती है अर्थात् जैसे प्रातःकाल की बेला से अन्धकार का नाश होकर सब प्रकार के पदार्थ प्रकाशित होते हैं वैसे तू भी हो ॥ ७ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सब गुणों से युक्त सुलझरी कन्या से पिता, माता सुखी होते हैं वैसे ही प्रातःकाल की बेला के गुण अश्वगुण प्रकाशित करनेवाली विद्या से विद्वान् लोग सुखी होते हैं ॥७॥

फिर उससे क्या मिलता है और वह क्या करती है यह विषय

अगले मन्त्र में कहा है—

उषस्तमस्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।

सुदंसंश्रवसा या विभासि वाजमद्वता सुभगे बृहन्तम् ॥८॥

पदार्थ—जो ( वाजप्रवृत्ता ) सूर्य की गति से उत्पन्न हुई ( सुभगा ) जिसके साथ अच्छे-अच्छे ऐश्वर्य के पदार्थ संयुक्त होते हैं वह ( उषा ) प्रातः समय की बेला है वह जिस ( सुवससा ) अच्छे कर्मवाले ( श्रवसा ) पृथ्वी आदि धन के साथ वर्तमान वा ( अश्वबुध्यम् ) जिसकी सहायता से बड़े सिंहाये जाते ( दासप्रवर्गम् ) जिससे सेवक अर्थात् दास-शर्मा काम करनेवाले रह सकते हैं ( सुवीरम् ) जिससे अच्छे लीखे हुए वीरजन हों उस ( बृहन्तम् ) सर्वथा अत्यन्त बड़ते हुए और ( यशसम् ) सब प्रकार प्रशंसायुक्त ( रयिम् ) विद्या और राज्य धन को ( विभासि ) अच्छे प्रकार प्रकाशित करती है ( तम् ) उसको मैं ( अश्वम् ) पाऊँ ॥ ८ ॥

आचार्य—जो लोग प्रातःकाल की बेला के गुण अश्वगुणों को अताने वाली विद्या से अच्छे-अच्छे यत्न करते हैं वे यह सब वस्तु पाकर सुख से परिपूर्ण होते हैं, दूसरे नहीं ॥ ८ ॥

फिर वह उषा कैसी है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विभ्रानि देवी भुवनाभिचक्ष्यां प्रतीची अश्वरुविष्या वि भाति ।

विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥९॥

पदार्थ—हे स्वि ! जैसे ( प्रतीची ) सूर्य की जाल से परे को ही जाती और ( चरसे ) व्यवहार करने वा सुख और दुःख भोगने के लिए ( विष्वक् ) सब ( जीवम् ) जीवों को ( बोधयन्ती ) धिताती हुई ( देवी ) प्रकाश को प्राप्त ( उषाः ) प्रातःसमय की बेला ( अनायोः ) मान के समान आचरण करने वाले ( विष्वक् ) जीवमान की ( वाचम् ) वाणी को ( अविदत् ) प्राप्त होती ( अश्वः ) और जीवों के समान सब वस्तु के विज्ञाई पढ़ने का निदान ( विद्वानि ) समस्त ( पुत्रानां ) लोको को ( अविचक्ष्यां ) सब प्रकार से प्रकाशित करती हुई ( अविद्या ) पृथिवी के साथ ( विभासि ) अच्छे प्रकार प्रकाशित होती है वैसे तू भी हो ॥९॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे मती स्त्री सब प्रकार से अपने पति को आनन्दित करती है वैसे प्रातःकाल की बेला समस्त जगत् को आनन्द देती है ॥९॥

फिर वह उषा कैसी है और क्या करती है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पुनः पुनर्जायमाना पुराणी संमानं वर्णमभि शुम्भमाना ।

अघ्नीं कृत्स्नविजं आमिनाना मर्षस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥१०॥२५॥

पदार्थ—जो ( अघ्नी ) कुत्ते और हिरणों को भारेहारी बूकी के समान वा जैसे ( कृत्स्न ) खेद करनेवाली श्वेती ( विजः ) इधर-उधर चलते हुए पक्षियों का खेद करती है वैसे ( आमिनाना ) हस्तिका ( मर्षस्य ) मरने-जीनेहारे जीव-मान की ( आयुः ) आयु को ( जरयन्ती ) हीन करती हुई ( पुनः पुनः ) दिनोदिन ( आयमाना ) उत्पन्न होनेवाली ( समानम् ) एकसे ( वर्णम् ) रूप को ( अमिनाना ) सब ओर से प्रकाशित करती हुई वा ( पुराणी ) सदा से वर्तमान ( देवी ) प्रकाशमान प्रातःकाल की बेला है वह जागरित होके मनुष्यों को सेवने योग्य है ॥१०॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे छिपके वा देखते-देखते भेड़िये की स्त्री बूकी वन के जीवों को लोड़ती और जैसे बाजिनी उड़ते हुए पक्षियों को विनाश करती है वैसे ही यह प्रातःसमय की बेला सोते हुए हम लोगों की आयु को बीरे-बीरे अर्थात् दिनों दिन काटती है ऐसा जान और धालस छोड़कर हम लोगों को रात्रि के चौथे प्रहर में जागके विद्या, धर्म और परोपकार आदि व्यवहारों में निरत उचित वस्त्रि रक्षना चाहिए। जिनकी इस प्रकार की बुद्धि है वे लोग धालस्य और अचर्म के बीच में कैसे प्रवृत्त हों ॥१०॥

व्युपर्वती दिवो अन्तां अबोधयप स्वसारं सनुतयुयोति ।

प्रमिनती मनुष्यां युगानि योषां जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो प्रातःकाल की बेला जैसे ( योषा ) कामिनी स्त्री ( जारस्य ) अभिचारी, लम्पट, कुमार्गी पुरुष की उमर का नाश करे वैसे सब आयु को ( सनुतः ) निरन्तर ( प्रमिनती ) नाश करती ( स्वसारम् ) और अपनी बहिन के समान जो रात्रि है उसको ( व्युपर्वती ) ढाँपती हुई ( अपयुयोति ) उसको दूर करती अर्थात् दिन से भलग करता है और आप ( वि ) अच्छी प्रकार ( भाति ) प्रकाशित होती जाती है ( चक्षसा ) उस प्रातःसमय की बेला के निमित्त उससे दर्शन ( विष्वक् ) प्रकाशमान सूर्य के ( अन्तान् ) समीप के पदार्थों को और ( मनुष्यां ) मनुष्यों के सम्बन्धी ( युगानि ) वर्षों को ( अबोधयि ) जनाती है उसका सेवन तुम युक्त से किया करो ॥११॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जारकर्म करनेहारे पुरुष का उमर का विनाश करती है, वैसे सूर्य से सम्बन्ध रखनेहारे अन्धकार की निवृत्ति से दिन को प्रसिद्ध करनेवाली प्रातःकाल की बेला है ऐसा जानकर रात और दिन के बीच युक्ति के साथ वस्त्रि वर्तकर पूरी आयु को भोगें ॥११॥

पशुश्च चित्रा सुभगा प्रधाना सिन्धुर्न सोदं उर्विया व्यञ्जैत् ।

अभिन्ती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दशाना ॥१२॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ( न ) जैसे ( पशुम् ) गाय आदि पशुओं को पाकर वैश्य बढ़ता और ( न ) जैसे ( सुभगा ) सुन्दर ऐश्वर्य करनेहारी ( प्रवृत्ता ) तरंगों से शब्द करती हुई ( सिन्धुः ) प्रति वेगवती नदी ( जीवः ) जल को पाकर बढ़ती है वैसे सुन्दर ऐश्वर्य करनेहारी प्रातःसमय की बेला पक्षियों के शब्दों से शब्दवाली और कोसों फैलती हुई ( चित्रा ) चित्र-विविध प्रातःसमय की बेला ( उर्विया ) पृथिवी के साथ ( सूर्यस्य ) मार्तण्डमण्डल की ( रश्मिभिः ) किरणों से ( व्रतानां ) जो देखी जाती है वह ( अभिन्ती ) सब प्रकार से रक्षा करती हुई ( दैव्यानि ) विद्वानों में प्रसिद्ध ( व्रतानि ) सत्य पालन आदि कामों को ( व्यञ्जैत् ) व्याप्त हो अर्थात् जिसमें विद्वान् जन नियमों को पालते हैं वैसे प्रतिदिन अपने नियमों को पालती हुई ( चेति ) जानी जाती है उस प्रातःसमय की बेला की विद्या के अनुसार बर्ताव रखकर निरन्तर सुखी हों ॥१२॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे पशुओं की प्राप्ति के बिना वैश्य लोग वा जल की प्राप्ति के बिना नदी-नद आदि प्रति उत्तम सुख करनेवाले नहीं होते, वैसे प्रातःसमय की बेला के गुण अतानेवाली विद्या और पुरुषार्थ के बिना मनुष्य प्रबलित ऐश्वर्यवाले नहीं होते ऐसा जानना चाहिए ॥१२॥

मनुष्यों को इससे क्या जानना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उषस्तच्छिप्रमा मराऽस्मभ्यं वाजिनीवति ।

येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१३॥

पदार्थ—हे तीर्थाग्यकारिणी स्वि ! ( वाजिनीवति ) उत्तम क्रिया और धन आदि ऐश्वर्ययुक्त तू ( उषा ) प्रसात के तुल्य ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( चित्रम् ) अद्भुत सुखकर्ता वन को ( आश्वम् ) वारण कर ( येन ) जिससे हम लोग ( लोकम् ) पुत्र ( न ) और इसके पालनार्थ ऐश्वर्य ( तनयम् ) पोत्रादि ( च ) स्त्री, मृत्य और भूमि के राज्यादि को ( धामहे ) वारण करें ॥१३॥

आचार्य—मनुष्यों से प्रातः समय से लेके समय के विभागों के योग्य अर्थात् समय-समय के अनुसार व्यवहारों को करके ही सब सुख के साधन और सुख प्राप्त किये जा सकते हैं, इससे उनको वह अनुष्ठान नित्य करना चाहिए ॥१३॥



फिर वह क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले अर्थों में किया है—

उषो अयेह गौमत्यभावति विभावरी ।

रेवदस्मे व्युच्छ सूनुतावति ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे ( गौमति ) जिसके सम्बन्ध में गी होती ( अश्वभावति ) घोड़े होते तथा ( सूनुतावति ) जिसके प्रशंसनीय काम हैं वह ( विभावरी ) अला-  
लाय बढ़ती हुई दीप्तिवाली ( उषः ) प्रातःसमय की बेला ( अस्मे ) हम लोगों  
के लिए ( रेवत् ) जिसमें प्रशंसित बन हो उस सुख को ( वि, उच्छ ) प्राप्त कराती  
है उससे हम लोग ( अद्य ) आज ( इह ) इस जगत् में सुखों को ( वामहे ) धारण  
करते हैं ॥१४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में 'वामहे' इस पद की अनुवृत्ति प्राप्ती है, मनुष्यों को  
चाहिए कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर जब तक फिर न सोवें तब तक अर्थात् दिन  
भर निरालसता से उत्तम यत्न के साथ विद्या, धन और राज्य तथा धर्म, धर्म, काम  
और मोक्ष, इन पदार्थों को सिद्ध करें ॥१४॥

युक्त्वा हि वाजिनीवत्यश्वो अद्यारुणो उषः ।

अथा नो विश्वा सौमगान्या वह ॥१५॥२६॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे ( वाजिनीवति ) जिस में ज्ञान वा गमन करानेवाली  
क्रिया है वह ( उषः ) प्रातः समय की बेला ( अश्वान् ) लाल ( अश्वान् ) चमकमाती  
फैलती हुई किरणों का ( युक्त्वा ) संयोग करती है ( अथ ) पीछे ( न ) हम लोगो  
के लिए ( विश्वा ) समस्त ( सौमगानि ) सौभाग्यपन के कामों को अच्छे प्रकार प्राप्त  
कराती ( हि ) ही है जैसे ( अद्य ) आज तू शुभगुणों को युक्त और ( आवह ) सब  
और से प्राप्त कर ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । प्रतिदिन निरन्तर पुरुषार्थ  
के विना मनुष्यों को ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं होती, इससे उनको चाहिए कि ऐसा  
पुरुषार्थ नित्य करें जिससे ऐश्वर्य बढ़े ॥१५॥

फिर उससे क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अश्विना वसिस्मदा गोमदसा हिरण्यवत् ।

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो ( वसा ) कला-कौशलादि निमित्त  
से दुःख आदि की निवृत्ति करनेहारे ( समनसा ) एकसे विचार के साथ वर्तमान के  
तुल्य ( अश्विना ) अग्नि, जल ( अस्मत् ) हम लोगो के ( गोमत् ) जिसमें इन्द्रियाँ  
प्रशंसित होती वा ( हिरण्यवत् ) प्रशंसित सुवर्ण आदि पदार्थ वा विद्या आदि गुणों  
के प्रकाश विद्यमान वा ( वसि ) धाने-जाने के काम में वर्तमान उस ( अर्वाक् )  
नीचे अर्थात् जल, स्थलों तथा अन्तरिक्ष में ( रथम् ) रमण करानेवाले विमान  
आदि रथ समूह को ( म्यायच्छतम् ) अच्छे प्रकार नियम में रखते हैं वे उषाकाल से  
युक्त अग्नि, जल तथा उनसे युक्त उक्त रथ समूह को प्रतिदिन सिद्ध करते हैं जैसे तुम  
लोग भी सिद्ध करो ॥१६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि  
प्रतिदिन क्रिया और चतुराई तथा अग्नि और जल आदि से विमान आदि यानों  
को सिद्ध करके नित्य उन्नति का प्राप्त होनेवाले धन को प्राप्त करके सुखयुक्त  
हों ॥१६॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न उर्जं बह्वतमश्विना युवम् ॥१७॥

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानो ! ( युवम् )  
तुम लोग जो ( अश्विना ) अग्नि और वायु ( जनाय ) मनुष्य समूह के लिए  
( विवः ) सूर्य के ( ज्योतिः ) प्रकाश को ( वा, चक्रथुः ) अच्छे प्रकार सिद्ध करते  
हैं ( इत्था ) इसलिये ( न ) हम लोगो के लिए ( श्लोकम् ) उत्तम वाणी और  
( उर्जम् ) पराक्रम वा अन्नादि पदार्थों को ( आ, बह्वतम् ) सब प्रकार से प्राप्त  
कराओ ॥१७॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि पवन और बिजुली के विना सूर्य का प्रकाश  
नहीं होता और न उन दोनों ही के विद्या और उपकार के विना किसी की विद्या-  
सिद्धि होती है—ऐसा जान ॥१७॥

फिर वे अग्नि और पवन कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एह देवा मयोभुवा दत्ता दिरेण्यवर्त्तनी ।

उषर्बुधो बहन्तु सोमपीतये ॥१८॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो ( देवा ) दिव्यगुणयुक्त ( मयोभुवा )  
सुख की भावना कराहारे ( दिरेण्यवर्त्तनी ) प्रकाश के वर्त्तन को रखते और  
( दत्ता ) विद्या के उपयोग को प्राप्त हुए समस्त दुःख का विनाश करनेवाले अग्नि,  
पवन ( उषर्बुधः ) प्रातःकाल की बेला को जतानेहारी सूर्य की किरणों को प्रकट  
करते हैं उनसे ( सोमपीतये ) जिस व्यवहार में पुष्टि शान्त्यादि तथा गुणवाले पदार्थों  
का पान किया जाता है उसके लिए सब मनुष्यों को सामर्थ्य ( इह ) इस संसार में  
( आबहन्तु ) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥१८॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि उत्पन्न हुए दिनों में भी अग्नि और पवन के  
बिना पदार्थ भोगना सम्भव नहीं यह जानकर अग्नि और पवन से उपयोग लेने का  
पुरुषार्थ नित्य करें ॥१८॥

इस सूक्त में उषा और अश्वि पदार्थों के गुणों के वर्णन से पूर्व सूक्त के अर्थ  
के साथ इस सूक्तार्थ की संगति जाननी चाहिए ॥

यह वागवां सूक्त और सत्साईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ द्वावसान्वस्य त्रयोदशतितमस्य सूक्तस्य रघुमरणुषो गीतम श्रुतिः ।

अग्नीषोमीवेति । १ अनुष्टुप्, २ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

२ तुरिगुणितछन्दः । श्रवण स्वरः । ४ स्वराद् पक्षितछन्दः ।

पञ्चम स्वरः । ५, ७, निवृत्तिछन्दः, ६ विराडनुष्टुप्, ८

स्वरादनुष्टुप्, १२ त्रिष्टुप्छन्दः । वेतः स्वरः । ९—११

गान्धी छन्दः । पञ्च स्वरः ॥

अथ तिरान्वे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने और परीक्षा लेने वालों—  
के प्रति विद्यार्थी क्या-क्या कहें यह विषय कहा है—

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।

प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥१॥

पदार्थ—हे ( वृषणा ) विद्या और उत्तम शिक्षा देनेवाले ( अग्नीषोमी )  
अग्नि और चन्द्र के समान विशेष ज्ञान और शान्ति गुणयुक्त, पढ़ाने और परीक्षा लेने  
वाले विद्वानो ! तुम दोनों ( मे ) मेरा ( प्रतिपूतानि ) जिनमें अच्छे-अच्छे अर्थ  
उच्चारण किये जाते हैं उन गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदस्य सूक्तों और ( हवम् )  
इस ( हवम् ) ग्रहण करने-कराने योग्य विद्या के शब्द अर्थ और सम्बन्ध युक्त बचन  
को ( सुशृणुतम् ) अच्छे प्रकार सुनो ( दाशुषे ) और पढ़ने में चित्त देनेवाले मुझ  
विद्यार्थी के लिए ( मयः ) सुख की ( हव्यतम् ) कामना करो इस प्रकार विद्या के  
प्रकाशक ( भवतम् ) हुआ ॥१॥

भाषार्थ—किसी मनुष्य को पढ़ाने और परीक्षा के विना विद्या की सिद्धि  
नहीं होती और कोई मनुष्य पूरी विद्या के विना किसी दूसरे को पढ़ा और उसकी  
परीक्षा नहीं कर सकता, और इस विद्या के विना समस्त सुख नहीं होता इससे विद्या का  
सम्पादन नित्य करें ॥१॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्ययति ।

तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वर्च्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्नीषोमी ) पढ़ाने और परीक्षा लेनेवाले विद्वानो ! ( यः )  
जो पढ़नेवाला ( अद्य ) आज ( वाम् ) तुम्हारे ( हवम् ) इस ( वचः ) विद्या के  
बचन को ( सपर्ययति ) सेवे ( तस्मै ) उसके लिए ( स्वर्च्यम् ) जो अच्छे-अच्छे  
घोड़ों से युक्त ( सुवीर्यम् ) उत्तम-उत्तम बल जिस विद्याभ्यास से हो उस ( गवां )  
इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के ( पोषम् ) सर्वथा शरीर और आत्मा की पुष्टि  
करनेहारे सुख को ( धत्तम् ) दीजिए ॥२॥

भाषार्थ—जो ब्रह्मचारी विद्या के लिए पढ़ाने और परीक्षा करनेवालों के  
प्रति उत्तम प्रीति करके उनकी नित्य सेवा करता है वही बड़ा विद्वान् होकर सब  
सुखों को पाता है ॥२॥

अब उक्त अग्नि सोम शब्दों से भौतिक सम्बन्धी कार्यों का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

अग्नीषोमा य आहुति यो वां दाशाद्विष्कृतिम् ।

स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्ध्वंभवत् ॥३॥

पदार्थ—( यः ) सबके हित को चाहनेवाला और ( यः ) जो यज्ञ का  
अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य ( अग्नीषोमा ) भौतिक अग्नि और पवन ( वाम् )  
इन दोनों के बीच ( विष्कृतिम् ) होम करने के योग्य पदार्थ का कारणात्मक  
( आहुतिम् ) भूत आदि उत्तम-उत्तम सुगन्धितादि पदार्थों से युक्त आहुति को  
( दाशात् ) देवे ( सः ) वह ( प्रजया ) उत्तम-उत्तम सन्तानयुक्त प्रजा से ( सुवी-  
र्यम् ) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त ( विश्वम् ) समग्र ( आयुः ) आयु को ( अयवत् ) प्राप्त  
होवे ॥३॥

भाषार्थ—जो विद्वान् वायु, वृष्टि, जल और ओषधियों की शुद्धि के लिए  
अच्छे संस्कार किये हुए हवि को अग्नि के बीच होमके श्रेष्ठ सोमलतादि ओषधियों  
की प्राप्ति कर उनसे प्राणियों को सुख देते हैं वे शरीर, आत्मा के बल से युक्त होते  
हुए पूर्ण सुख करनेवाली आयु को प्राप्त होते हैं धन्य नहीं ॥३॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले अर्थों में कहा है—

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणि गाः ।

अवातिगत्तं वृसयस्य शेषोऽविन्दतज्ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥४॥

पदार्थ—जो ( अग्नीषोमा ) वायु और विद्युत् ( यत् ) जिस ( अवसम् )  
रक्षा आदि ( पणिसम् ) व्यवहार को ( अमुष्णीतम् ) चोरी प्रसिद्धाप्रसिद्ध ग्रहण  
करते ( गाः ) सूर्य की किरणों का विस्तार कर ( अवातिगत्तम् ) अन्धकार का

विनाश करते (अग्निः) अनेकों पदार्थों से (एकम्) एक (अग्निः) सूर्य के प्रकाश को (अग्निः) प्राप्त कराते हैं जिन्हें (अग्निः) धोनेवाले सूर्य का (अग्निः) धोनेवाला भाग लोकों को प्राप्त होता है (अग्निः) इनका (तत्) वह (अग्निः) पराक्रम (अग्निः) विदित है सब कोई जानते हैं ॥४॥

आचार्य—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि जितना प्रसिद्ध अन्वकार को धोव देने और सब लोकों की प्रकाशित करनेहारा तंत्र होता है उतना सब कारणरूप पवन और बिजुली की उत्तेजना से होता है ॥४॥

युवमेतानि दिवि रौचनान्यग्निश्च सोम सकृत् अधत्तम् ।

युव सिन्धूरभिर्वास्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चत गृभीतान् ॥ ५ ॥

पदार्थ—(युवम्) ये (सन्धुः) एकसा काम देनेवाले दो धर्मात् (अग्निः) बिजुली (यः) और (सोमः) बहुत पुष्प को उत्पन्न करनेहारा पवन (दिवि) तारमण में जो (रौचनानि) प्रकाश हैं (एतानि) इनको (अधत्तम्) धारण करते हैं (युवम्) ये दोनों (सिन्धुः) समुद्रों को धारण करते धर्मात् उनके जल को सोखते हैं उन (गृभीतान्) सोखे हुए नदी, नद, समुद्रों को वे (अग्निः) बिजुली और पवन (अधत्तम्) निम्नित (अग्निः) उनके प्रवाहरूप रमण की रोकनेहारे हेतु से (अमुञ्चतम्) छोड़ते हैं अर्थात् वर्षा के निमित्त से उनके लिये हुए जल को पृथिवी पर छोड़ते हैं ॥५॥

आचार्य—मनुष्यों को जानना चाहिए कि पवन और बिजुली ये ही दोनों सब लोकों के सुख के कारण आदि व्यवहार के कारण हैं ॥५॥

फिर वे क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आन्य दिवो मातरिषा जभारामध्नादन्यं परि ज्येनो अद्भः ।

अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोर् यज्ञाय चक्रशुर् लोकम् ॥६॥२८॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम लोग जो (ब्रह्मणा) परमेश्वर से (वावृधाना) उन्नति को प्राप्त हुए (अग्निः) अग्नि और पवन (अधत्तम्) जान और क्रियामय यज्ञ के लिए (अधत्तम्) बहुत प्रकार (लोकम्) जो देखा जाता है उस लोकसमूह को (अधत्तम्) प्रकट करते हैं उनमें से (मातरिषा) पवन जो आकाश में सोनेवाला है वह (अग्निः) सूर्य आदि लोक से (अधत्तम्) और दूसरा अप्रसिद्ध जो कारण लोक है उसको (आ, जभार) धारण करता है तथा (अधत्तम्) वेगवान् घोड़े के समान दौड़नेवाला अग्नि (अधत्तम्) मेघ से (अधत्तम्) मचा करता है उनको जानकर उपयोग में लाओ ॥६॥

आचार्य—हे मनुष्यों ! तुम लोग जो पवन और बिजुली के दो रूप हैं एक कारण और दूसरा कार्य उनमें जो पहला है वह विशेष ज्ञान से जानने योग्य और जो दूसरा है वह प्रत्यक्ष इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य है जिसके गुण और उपकार जाने हैं उस पवन वा अग्नि से कारणरूप में उक्त अग्नि और पवन प्रवेश करते हैं, यही सुगम मार्ग है जो कार्य के द्वारा कारण में प्रवेश होता है ऐसा जानो ॥६॥

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हयैतं वृषणा जुषेथाम् ।

सुशस्मीणा स्वर्सा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम लोग जो (वृषणा) वर्षा होने के निमित्त (सुशस्मीणा) श्रेष्ठ सुख करनेवाले (अग्निः) अग्नि और पवन (अधत्तम्) प्रस्थितस्य देशान्तर में पहुँचनेवाले (हविषः) होमे हुए भी आदि को (वीतम्) व्याप्त होते (हविषः) पाते (जुषेथाम्) सेवन करते और (स्वर्सा) उत्तम रक्षा करनेवाले (भूतम्) होते हैं (अधत्तम्) इसके पीछे (हि) इसी कारण (यजमानाय) जीव के लिए अनन्त (शम्) सुख को (वत्तम्) धारण करते तथा (योः) पदार्थों को अलग-अलग करते हैं उनको अन्धे प्रकार उपयोग में लाओ ॥७॥

आचार्य—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि प्राग में जितने सुगन्धियुक्त पदार्थ होमे जाते हैं सब पवन के साथ आकाश में जा मेघमण्डल के जल को सोख और सब जीवों के सुख के हेतु होकर उसके धनस्तर धर्म, धर्म, काम और भोज की सिद्धि करनेहारे होते हैं ॥७॥

ऐसे उत्तमता से काम में लाये हुए वे दोनों क्या करते हैं

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यो अग्नीषोमा हविषा सपराह्वद्रीचा मनसा यो धृतेन ।

तस्य व्रतं रक्षतं पातमहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो विद्वान् मनुष्य (हविषा) उत्तम विद्वानों का सत्कार करते हुए (मनसा) मन से वा (धृतेन) धी और जल तथा (हविषा) अन्धे संस्कार किये हुए हवि से (अग्निः) अग्नि और पवन को (सपराह्व) सेवे और (यः) जो क्रिया करनेवाला मनुष्य इनके गुणों को जाने (तस्य) उन दोनों के (वत्तम्) सत्यभावण आदि शील की ये दोनों (रक्षतम्) रक्षा करते (महसः) क्षुधा और ज्वर आदि रोग से (वत्तम्) नष्ट होने से बचाते (विशे) प्रजा और (जनाय) सेवक जन के लिए (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (शर्म) सुख वा धर को (यच्छतम्) देते हैं ॥८॥

आचार्य—जो मनुष्य अग्निहोवादि कर्म से वायु और वर्षा की बुद्धि द्वारा सब वस्तुओं की पवित्र करता है वह सब प्राणियों को सुख देता है ॥८॥

फिर वे करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नीषोमा सर्वेदसा सहृती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवधुः ॥९॥

पदार्थ—जो (सहृती) एकसी वाणीवाले (सर्वेदसा) बराबर होमे हुए पदार्थ से युक्त (अग्निः) अग्नि और पवन के सिद्ध करनेहारे अग्नि और पवन (देवत्रा) विद्वान् वा दिव्य युगों में (सहृती) सम्भावित होते हैं वे (गिरः) वाणियों को (वनतम्) अन्धे प्रकार सेवते हैं ॥९॥

आचार्य—मनुष्य लोग—यज्ञ आदि उत्तम कामों से वायु के शोभे बिना प्राणियों को सुख नहीं हो सकता इससे इसका—अनुष्ठान नित्य करें ॥९॥

इसके अनुष्ठान करनेवाले को क्या होता है इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

अग्नीषोमावनेन वां यो वां धृतेन वाञ्छति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो मनुष्य (वां) इनके बीच (अग्निः) इस (धृतेन) धी वा जल से प्राणियों को देता है वा (वां) इनकी उत्तेजना से उपकारों को ग्रहण करता है उसके लिए (अग्नीषोमा) बिजुली और पवन (बृहत्) बड़े विद्वान् और सुख को (दीदयतम्) प्रकाशित करते हैं ॥१०॥

आचार्य—जो मनुष्य क्रियायज्ञों का अनुष्ठान करते हैं, वे इस सत्कार में अत्यन्त सौभाग्य को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

फिर वे क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्नीषोमाविमानि नो युव हव्या जुजोषतम् ।

आ यातमुर्पनः सचां ॥ ११ ॥

पदार्थ—(युवम्) जो (अग्निः) अग्नि और पवन (न) हम लोगों के (हव्या) इन (हव्या) देने-लेने योग्य पदार्थों को (जुजोषतम्) बार-बार सेवन करते हैं वे (सचां) यज्ञ के विशेष विचार करनेवाले (न) हम लोगों को (उप, आ यातम्) अन्धे प्रकार मिलते हैं ॥११॥

आचार्य—जब यज्ञ से सुगन्धित द्रव्ययुक्त अग्नि, वायु सब पदार्थों को समीक से स्पर्श करते हैं तब सब की पुष्टि होती है ॥११॥

अग्नीषोमा पिपृतमवैतो न आ प्यायन्तामुस्त्रिया हव्यद्वदः ।

अस्मे बलानि मध्वत्सु धत्तं कृणुत नो अघ्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥१२॥२६॥

पदार्थ—हे राजप्रजा के पुरुषों ! तुम (अग्नीषोमा) पालन के हेतु अग्नि और पवन के समान (नः) हम लोगों के (अघ्वरं) घोड़ों को (पिपृतम्) पालो जैसे (हव्यद्वदः) दूध, दही आदि पदार्थों की देनेवाली (उस्त्रिया) गी (आ, प्यायन्ताम्) पुष्ट हो वैसे (नः) हम लोगों के (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्र बहुत सुख के हेतु (अघ्वरम्) व्यवहार रूपी यज्ञ को (मध्वत्सु) प्रशंसित धनयुक्त स्थान व्यवहार वा विद्वानों में (कृणुतम्) प्रकट करो (अस्मे) हम लोगों के लिए (बलानि) बलों को (धत्तम्) धारण करो ॥१२॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालकार है । पवन और बिजुली के बिना किसी की बल और पुष्टि नहीं होती, इससे इन को विचारपूर्वक कामों में लागू चाहिए ॥१२॥

इस सूक्त में पवन और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छंदे अघ्वाय का उत्तरीसवाँ वर्ण और प्रथम मण्डल का चौदहवाँ अनुष्टुप् तथा तिरावर्वा सूक्त समाप्त हुआ—



अथार्य श्रीशक्राक्षस्य अनुसन्धितस्य सुक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । अग्निर्वेदसा ।

१, ४, ५, ७, ९, १० निषुञ्जगती, १२—१४ विराट् जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः । २, ३, १५ निषुञ्ज, ६ स्वरान् निषुञ्ज, ११ भूरिक्

निषुञ्ज, ८ निषुञ्ज निषुञ्ज छन्दः । वेदतः स्वरः । १५ भूरिक्

वङ्गितव्यम् । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सोमह ऋषिवाले होरागर्भ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि शब्द से विद्वान् और नीतिक अग्नि का उपदेश किया है—

इमं स्तोममर्हति जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।

मद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यन्ने सरुये वा रिचामा वयं तव ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्यादि गुणों से विदित विद्वन् ! जैसे (वयम्) हम लोग (मनीषया) विद्या, क्रिया और उत्तम शिक्षा से उत्पन्न हुई बुद्धि से (अर्हते) योग्य (जातवेदसे) जो उत्पन्न हुए जगत् के पदार्थों को जानता है वा उत्पन्न हुए कार्यरूप द्रव्यों में विद्यमान उस विद्वान् के लिए (रथमिव) जैसे विहार करानेहारे विमान आदि वाहन को वैसे (इमम्) कार्य्यों में प्रवृत्त इस (स्तोमम्) गुराकीर्तन की (संसद्यन्ने) प्रशंसित करें वा (अस्य) इस (तव) आपके (वयम्) मित्रपण के निमित्त (संसद्यन्ने) जिस में विद्वान् स्थित होते हैं उस सभा में (नः) हम लोगों को

भाषार्थ—समाध्यक्षादिको को चाहिए कि यत्न के साथ प्रजा में अयोध्या उप-  
शो के पठन-पाठन आदि कार्यों का निवारण करके दूरस्थ तथा समीपस्थ मनुष्यों



की मित्र के समान मानके सब प्रकार से प्रेमभाव उत्पन्न करें जिससे परस्पर निश्चय आनन्द बढ़े ॥१॥

अथ शिल्पि और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है—

यद्युक्ता अरुणा रोहिता रये वार्तजूता उपमस्येव ते रवः ।

आदिन्वसि वनिनी धूमकेतुनागने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१०॥

पदार्थ—( अग्ने ) समस्त शिल्पव्यवहार के ज्ञान देनेवाले शिल्पि या चतुर विद्वन् । जिस कारण आप ( यत् ) जो कि ( ते ) आपके वा इस अग्नि के ( धूमकेतुः ) पदार्थों के खानेहारे बलवान् बल के समान वा ( वार्तजूता ) पवन के वेग के समान वेगयुक्त ( अरुणा ) सीधे स्वभाव ( रोहिता ) दुर्बल आदियुक्त होते ( रवे ) विमान आदि यानों में जोड़ने के योग्य हैं उनको ( धूमकेतुः ) जुड़वाते हैं वा यह भौतिक अग्नि जुड़वाता है उस रव से निकला जो ( रवः ) अग्नि के साथ वर्तमान ( धूमकेतुः ) जिसमें धूम ही पताका है उस रव से सब व्यवहारों को ( इच्छति ) व्याप्त होते ही वा यह भौतिक अग्नि उक्त प्रकार से व्यवहारों को व्याप्त होता है इससे ( आत् ) पीछे ( वनिनी ) जिन को अच्छे विभाग वा सूर्यकिरणों का सम्बन्ध है ( तव ) उन आपके वा जिस भौतिक अग्नि की किरणों का सम्बन्ध है उसके ( सख्ये ) मित्रपन में ( वयम् ) हम लोग ( मा, रिषाम ) पीड़ित न हो ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमाकार है । जिसमें शिल्पी और भौतिक अग्नि सर्वहित करनेवाले कामों की सिद्ध कर सकते हैं उससे विमान आदि यानों की सम्भावना करती योग्य है ॥१०॥

अथ स्वनादुत बिम्बुः पतत्रिणीं द्रप्ता यत्तं यवसादो व्यस्थिरन् ।

सुगं तत्तं तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्नौ सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥११॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) समस्त विज्ञान देनेहारे शिल्पिन् । ( यत् ) जब ( ते ) तुम्हारे ( वयसावः ) अनादि पदार्थों को खानेहारे ( द्रप्ताः ) हवयुक्त भूष वा जपट आदि गुण ( सुगम् ) उस मार्ग को कि जिसमें सुख से जाते हैं ( बिम्बुः ) अनेक प्रकारों से ( व्यस्थिरन् ) स्थिर होवें ( तत् ) तब ( ते ) आपके वा इस भौतिक अग्नि के ( तावकेभ्यः ) जो आपके वा इस अग्नि के सिद्ध किये हुए रथ हैं उन ( रथेभ्यः ) विमान आदि रथों से ( पतत्रिणीः ) पक्षियों के तुल्य यन्त्र ( बिम्बुः ) उरें ( अथ ) उसके अनन्तर ( उत ) एक निश्चय के साथ ही उन रथों के ( स्वनात् ) शब्द से पक्षियों के समान बड़े हुए यन्त्र बिलाय जाते हैं ऐसे ( तव ) आपके वा इस अग्नि के ( सख्ये ) मित्रपन में ( वयम् ) हम लोग ( मा, रिषाम ) मत अप्रसन्न हो ॥११॥

भाषार्थ—जब आग्नेय अस्त्र-शस्त्र और विमानादि यानयुक्त सेना इकट्ठी कर शत्रुओं के जीतने के लिए वेग से जाकर अस्त्रों के प्रहार वा अच्छे आनन्दित शब्दों से शत्रुओं के साथ युद्ध किया जाता है तब निश्चय ही विजय होता है, यह मनुष्यों को जानना चाहिए । यह स्थिर विजय, निश्चय ही विद्वानों के विरोधियों तथा अग्न्यादि बिद्यारहित पुरुषों का कभी नहीं हो सकता । इससे सब दिन इसका अनुष्ठान करना चाहिए ॥११॥

अथ सभापति आदि के गुणों का उपदेश करते हैं—

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।

मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) समस्त ज्ञान देनेहारे सभा आदि के अधिपति ! जिस कारण आपने ( मित्रस्य ) मित्र वा ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ के ( धायसे ) धारण वा संतोष के लिए जो ( वयम् ) यह प्रत्यक्ष ( अवयाताम् ) वर्णविरोधी ( मरुताम् ) मरने-जीनेवाले मनुष्यों का ( अद्भुतः ) अद्भुत ( हेळः ) अनादर किया है उससे ( वयम् ) हम ( नः ) हम लोगों के ( मनः ) मन को ( पुनः ) बार-बार ( मृळा ) अच्छे प्रकार आनन्दित करो ऐसे ( सु नो ) हो इससे ( तव ) तुम्हारे ( सख्ये ) मित्रपन में ( वयम् ) हम लोग ( मा, रिषाम ) मत बेमन हो ॥१२॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सभाध्यक्ष के श्रेष्ठों के पालन और दुष्टों के शासन को जानकर सदा आचरण करें ॥१२॥

किर ईश्वर और सभापति आदि के साथ मित्रभाव क्यों करना चाहिए

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवा देवानोऽसि मित्रो अद्भुतो वसुधैवकुतमसि चारुर्ध्वरे ।

धर्मन्स्वयाम तव सप्रथस्तमेऽग्नौ सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण आप ( अग्ने ) न छोड़ने योग्य उपासनास्पी यज्ञ वा संग्राम में ( देवानाम् ) दिव्यगुणों से परिपूर्ण विद्वान् वा दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में ( देवः ) दिव्यगुणसम्पन्न ( अद्भुतः ) आश्चर्य-पूर्ण गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त ( चारुः ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( मित्रः ) बहुत सुख करने और सब दुःखों का विनाश करनेवाले ( असि ) हैं तथा ( वसुधाम् ) बसने और बसावेवाले मनुष्यों के बीच ( वसुः ) बसने और बसानेवाले ( असि ) हैं इस कारण ( तव ) आपके ( सप्रथस्तमे ) अच्छे प्रकार प्रति कीले हुए गुण कर्म स्वभावों के साथ वर्तमान ( धर्मन् ) सुख में ( वयम् ) हम लोग अच्छे प्रकार निश्चित ( स्वाम ) हैं और ( तव ) आपके ( सख्ये ) मित्रपन में कभी ( मा, रिषाम ) बेमन न हो ॥१३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । किसी मनुष्य को भी परमेश्वर और विद्वानों की सुख देनेवाली मित्रता चिरस्थायी नहीं होती इससे इसे प्राप्त करने के लिए हम मनुष्यों को स्थिर मति के साथ प्रवृत्त होना चाहिए ॥१३॥

किर कौनों के साथ सब को प्रेमभाव करना चाहिए यह विषय

अगले मन्त्र में कहा है—

तत्तं मद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जग्ने मृळ्यत्तमः ।

दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुपेऽग्नौ सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) समस्त विज्ञान देनेवाले ईश्वर वा विद्वन् ! ( यत् ) जिस कारण ( स्वे ) अपने ( दमे ) दमन किये हुए संसार में ( समिद्धः ) अच्छे प्रकार प्रकाशित ( सोमाहुतः ) और ऐश्वर्य करनेवाले गुण और पदार्थों से बुद्धि को प्राप्त किये हुए अग्नि के समान ( मृळ्यत्तमः ) अत्यन्त सुख देनेहारे आप सब विद्वानों से ( जग्ने ) अर्चन पूजन की प्राप्त होते हैं वा ( दाशुपे ) उत्तम शील के निमित्त अपना वर्तमान वर्तमान हुए मनुष्य के लिए ( रत्नम् ) अति रमणीय ( द्रविणम् ) कर्कशता राज्य आदि कामों से सिद्ध धन ( च ) और विद्या आदि अच्छे गुणों को ( दधासि ) धारण करते हैं ( तत् ) इस कारण ऐसे ( ते ) आपके ( मद्रम् ) सुख करनेवाले स्वभाव को ( वयम् ) हम लोग कभी ( मा, रिषाम ) मत भूलें किन्तु ( तव ) आपके ( सख्ये ) मित्रपन में अच्छे प्रकार स्थिर हो ॥१४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । मनुष्यों को चाहिए कि वेदप्रमाण और मण्डिकम के प्रमाण तथा सत्पुरुषों, ईश्वर और विद्वान् के काम वा स्वभाव को मन में धरके सब प्राणियों के साथ मित्रता वर्तकर सदा विद्या-धर्म और शिक्षा की उन्नति करें ॥१४॥

किर वे कौनों हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते मर्षताता ।

यं मद्रेण शर्वसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥१५॥

पदार्थ—हे ( सुद्रविण ) अच्छे-अच्छे धनों के देने और ( अदिते ) विनाश को न प्राप्त होनेवाले जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण ( त्वम् ) आप ( सर्वसा ) समस्त व्यवहार में ( वयम् ) जिस मनुष्य के लिए ( अनागास्त्वम् ) निरपराधता को ( ददाशः ) देते हैं तथा ( यम् ) जिस मनुष्य को ( मद्रेण ) सुख करनेवाले ( शर्वसा ) शारीरिक, आत्मिक बल और ( प्रजावता ) जिस में प्रशंसित पुत्र आदि हैं उन ( राधसा ) विद्या, सुवर्ण आदि धन से युक्त करके अच्छे व्यवहार में ( चोदयासि ) लगाते हैं इससे आप की वा विद्वानों की शिक्षा में वर्तमान जो हम लोग अनेकों प्रकार स यत्न करें ( ते ) वे हम इस काल में स्थिर ( इयाम ) हो ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । जिस मनुष्य में अन्तर्दामी ईश्वर धर्मशीलता को प्रकाशित करता है वह मनुष्य विद्वानों के संग प्रीति करता हुआ सब प्रकार के धन और अच्छे-अच्छे गुणों को पाकर सदा सुखी होता है, इससे इस काम को हम लोग भी निरर्थक करें ॥१५॥

स त्वमग्ने सौमगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।

तस्यो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१६॥

पदार्थ—हे ( देव ) सबसे कामना के योग्य ( अग्ने ) जीवन और ऐश्वर्य के देने-हारे जगदीश्वर ! जो ( त्वम् ) आप ने उत्पन्न किये वा रोग छूटने की प्रीतिधियों की देने-हारे विद्वान् जो आप ने बतलाये ( मित्र ) प्राण ( वरुणः ) उदान ( अदितिः ) उत्पन्न हुए समस्त पदार्थ ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) भूमि ( उत ) और ( द्यौः ) विश्व का प्रकाश हैं वे ( नः ) हम लोगों को ( माहन्ताम् ) उन्नतिके निमित्त हों ( तव ) और वह सब वृत्तान्त ( अस्माकम् ) हम लोगों को ( सौमगत्वस्य ) अच्छे-अच्छे ऐश्वर्यों के देने का ( आयुः ) जीवन का ज्ञान है ( इह ) इस कार्यकाल जगत् में ( न ) वह ( विद्वान् ) समस्त विद्या की प्राप्ति करानेवाले जगदीश्वर आप वा प्रमाणपूर्वक विद्या देनेवाला विद्वान् आप दोनों ( प्रतिर ) अच्छे प्रकार दुःखों से तारो ॥१६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर और विद्वानों के आश्रय से पदार्थविद्या को पाकर इस संसार में सौभाग्य और आयु को बढ़ावें ॥१६॥

इस वृत्त में ईश्वर सभाध्यक्ष विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन है इससे इस वृत्तार्थ की पूर्ण सूक्ष्मार्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

इस अध्याय में सभापति के उपदेश और उसके काम आदि का वर्णन है इससे इस वृत्त अध्याय के धर्म की पञ्चमाध्याय के धर्म के साथ एकता समझनी चाहिए ॥

यह भीमान् संवत्सियों में भी आचार्य भीमूत महाविद्वान् विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी उनके शिष्य इयानन्द सरस्वती स्वामीजी के बगल आर्यभाषा से जोधित सुप्रभाषों से युक्त आचर-भाष्य के प्रवचनात्मक में वृत्त अध्याय समाप्त हुआ ॥

## अथ सप्तमाध्यायारम्भः

विश्वानि देव सवितर्दृशितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।

अथारम्भः पञ्चमवर्तितमस्यैकादशवर्तस्य सप्तमस्याङ्गिरसः कुत्सः ऋषिः । सत्यगुणविशिष्टोऽग्निः  
गुह्योऽग्निर्वा वेदता । १, २, विराट् विष्टुप्, २, ७, ८, ११, विष्टुप्,

४, ५, ६, १० निष्टुत्रिष्टुप् छन्दः । वेदतः स्वरः ।

६ भुरिक्पङ्क्तिवृत्तः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ रात्रिं धीरं दिनं कौंसे हँ इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

इहै विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्त्या वत्समुप धापयेते ।

हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाङ्मुक्ता अन्यस्या ददशे सुवर्चाः ॥१॥

वार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( विरूपे ) उजले धीर अन्धेरे से अलग-अलग रूप धीर ( स्वर्थे ) उत्तम प्रयोजनवाले ( इ ) दो अर्थात् रात धीर दिन परस्पर ( चरतः ) वस्तुवत् वर्तते धीर ( अन्यान्त्या ) परस्पर ( वत्सम् ) उत्पन्न हुए ससार का ( उपधापयेते ) खान-पान कराते हैं ( अन्यस्याम् ) दिन से अन्य रात्रि में ( स्वधावान् ) जो अपने गुण से धारण किया जाता वह बोध धि आदि पदार्थों का रस जिस में विद्यमान है ऐसा ( हरिः ) उज्जता आदि पदार्थों का निवारण करनेवाला चन्द्रमा ( भवति ) प्रकट होता है वा ( अन्यस्याम् ) रात्रि से अन्य दिवस होनेवाली बेला में ( मुक्ता ) धातुपवान् ( सुवर्चा ) अच्छे प्रकार उज्जता करनेवाला सूर्य ( ववने ) देखा जाना है वे रात्रिदिन संबंधी वस्तुमान हैं इनको रेखागणित आदि गणित-विद्या से जानकर इनके बीच उपयोग करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जैसे दिन रात-कभी निवृत्त नहीं होते किन्तु सर्वदा बने रहते हैं अर्थात् एक देश में नहीं तो दूसरे देश में होते हैं वैसे जो काम रात धीर दिन में करने योग्य हो उनको बिना आलस के करके सब कामों की सिद्धि करें ॥ १ ॥

अथ दिन-रात का व्यवहार विज्ञाओं के निश से अगले मन्त्र में कहा है—

दशमं त्वष्टुर्जनयन्तं गर्भमन्तन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।

तिग्मानीकं स्वयंशसं जनेषु विरोचमानं परिं वीं नयन्ति ॥२॥

वार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( अन्तन्द्रास ) जो एक नियम के साथ रहने में ईश्वरानुमता आदि गुणों से युक्त ( युवतयः ) जवान स्त्रियों के समान एक दूसरे के साथ मिलने का न मिलने से सब कभी अजर-अमर रहनेवाली ( दश ) दश दिशा ( त्वष्टुः ) बिजुली वा पवन के ( इवम् ) इस प्रत्यक्ष अहोरात्र म प्रसिद्ध ( गर्भम् ) समस्त व्यवहार का कारणरूप ( विभृत्रम् ) जो कि अनेकों प्रकार की क्रिया को धारण किये हुए ( तिग्मानीकम् ) जिस में अत्यन्त तीक्ष्ण मेनाजन विद्यमान जो ( जनेषु ) गणित विद्या के जाननेवाले मनुष्यों में ( विरोचमानम् ) अनेक रीति से प्रकाशमान ( स्वयंशसम् ) अनेक गुण कर्म स्वभाव और प्रशंसायुक्त ( सीम ) प्राप्त होने के योग्य उम दिन-रात के व्यवहार को ( जनयन्तः ) उत्पन्न करती धीर ( परि ) सब धीर से ( नयन्ति ) स्वीकार करती हैं उनको तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जिनके देश काल का नियम अनुमान में नहीं आता ऐसी अन्तरूप पूर्व आदि क्रम से प्रसिद्ध सब व्यवहारों की सिद्धि करनेवाली दश दिशा है उनमें नियमयुक्त व्यवहारों की सिद्धि करें, इनमें किसी को विरुद्ध व्यवहार न करना चाहिए ॥ २ ॥

किर बहु दिन और रात क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्रीणि जाना परिं भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।

पूर्वाम्नु म विशं पार्थिवानामृतं मशासद्दि दधावनुष्टु ॥३॥

वार्थ—हे गणितविद्या को जाननेवाले मनुष्यो ! जो दिनरात ( पूर्वम् ) पूर्व ( प्र, दिशम् ) प्रवेश जिस का कि मनुष्य उपवेश किया करते हैं उसको ( अमृष्टम् ) तथा उसके अनुकूल ( पार्थिवानाम् ) पृथिवी धीर अन्तरिक्ष में विवित हुए पदार्थों के बीच ( अमृतम् ) वस्तु आदि अमृतों को ( मशासत् ) प्रेरणा देता हुआ ( अमृतम् ) तदनन्तर उनका ( वि, वशी ) विधान करता है ( अमृतम् ) इस दिन रात का ( एकम् ) एक पर्व ( दिवि ) सूर्य में एक ( समुद्र ) समुद्र में धीर ( एकम् ) एक ( अमृतम् ) प्राण आदि पवनो में है तथा इस दिनरात के अमृत ( जीति ) अर्थात् मृत, अविष्यत् और वर्तमान के पृथग्भाव से उत्पन्न ( जाना ) मनुष्यों में हुए व्यवहारों को ( परि, भूषन्ति ) शोभित करते हैं इन सब को जानो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—दिनरात आदि समय के अमृतों की मत्ता के बिना मृत, अविष्यत् और वर्तमान कालों की सम्भावना भी नहीं हो सकती, धीर न इनके बिना कोई अमृत सम्भव है । जो सूर्य और अन्तरिक्ष में टहरे हुए पवन की गति से समय के व्यवहार अर्थात् दिनरात्रि आदि प्रसिद्ध हैं उन सब को जानके सब मनुष्यों को चाहिए कि व्यवहारसिद्धि करें ॥ ३ ॥

किर बहु दिनरात्रि के समय का समूह कौंसा है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

क इमं वां निष्यमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधार्मिः ।

बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥४॥

वार्थ—जो ( बह्वीनाम् ) अनेकों अन्तरिक्ष और भूमि तथा दिशाओं वा ( अपसाम् ) जलो के ( उपस्थात् ) समीपस्थ व्यवहार से ( गर्भः ) अच्छा आच्छादन करनेवाला ( स्वधावान् ) जिस में कि प्रशंसित अपने अङ्ग विद्यमान हैं ( महान् ) व्याप्ति आदि गुणों से युक्त ( वत्सः ) किन्तु अपनी व्याप्ति से सर्वोपरि सबको ढाँपने वा ( कविः ) क्रम-क्रम से वृष्टिगत होनेवाला समय ( निः, चरति ) निरन्तर अर्थात् एकतार चल रहा है धीर ( स्वधार्मिः ) सूर्य वा भूमि के साथ ( मातुः ) माता के तुल्य पालनेहारी रात्रियों को ( जनयतः ) प्रकट करता है ( इमम् ) इस ( निष्यम् ) निश्चय से एक से रहनेवाले समय को ( कः ) कौन मनुष्य ( का, चिकेत ) अच्छे प्रकार जान मके ( वः ) इन समय के व्यवहारों अर्थात् क्षण, वड़ी, प्रहर, दिन, रात, मास, वर्ष आदि के स्वरूप को भी कौन जान सके ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिए कि जिस का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बोध है, जो अपने समस्त काम विभागों को प्रकट करता, सब कामों में व्याप्त होता, जिस में सब जगत् एकरस रहता है उस समय को कोई विद्वान् जान सकता है सब कोई नहीं ॥ ४ ॥

आविष्टयो वर्धते चारुसु जिज्ञानामूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थे ।

उभे त्वष्टुर्विभृत्युर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥५॥१॥

वार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस ( जायमानात् ) प्रसिद्ध ( त्वष्टुः ) छेदन करने अर्थात् सब को धर्वाध को पूरी करनेहारे समय से ( उभे ) दोनों रात्रि धीर दिन ( विभृत्युः ) सब को ढरपाते हैं वा जिसमें ( प्रतीची ) पछाहू की दिशा प्रकट होती है वा उक्त रात्रिदिन सब व्यवहारों का ( प्रति, जोषयेते ) सेवन तथा जो समय ( उपस्थे ) काम करनेवालों के समीप ( स्वयंशा ) अपनी कीर्ति अर्थात् प्रशंसा का प्राप्ता होता वा ( जिज्ञानाम् ) कुटिलो से ( ऊर्ध्वः ) ऊपर-ऊपर अर्थात् उन के शुभ कर्म में नहीं व्यतीत होता ( चासु ) इन दिशा वा प्रजाजनों में ( चासु ) सुन्दर ( आविष्टयः ) प्रकट हुए व्यवहारों में प्रसिद्ध ( वर्धते ) और उन्नति को पाता है उस ( सिंहम् ) हम तुम सब को काटनेहारे समय को तुम लोग यथावत् जानो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि ससार की उत्पत्ति के समय से जो उत्पन्न हुआ अग्नि है वह छेदन गुण से ऊर्ध्वगामी अर्थात् जिस की लपट ऊपर को जाती और काष्ठ आदि पदार्थों में अपनी व्याप्ति से बढ़ता धीर सूर्यरूप से दिशाओं का बोध करनेवाला है वह भी काल से उत्पन्न होकर समय पाकर ही नष्ट होता है ॥ ५ ॥

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाध्रा उप तस्थुरेवैः ।

स दक्षाणां दक्षपतिर्वभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥६॥

वार्थ—( भद्रे ) सुख देनेवाले ( उभे ) दोनों रात्रि धीर दिन ( भेने ) प्रीति करती हुई स्त्रियों के ( न ) समान ( यम् ) जिस समय को ( जोषयेते ) सेवन करते हैं ( गावाः ) बछड़ों को चाहती हुई ( गावः ) गोधों के ( न ) समान समय के धीर अथ अर्थात् महिने, वध आदि ( एवै ) सब व्यवहार को प्राप्त करनेवाले गुणों के साथ ( उपस्थे ) समीपस्थ होते हैं वा ( दक्षिणतो ) दक्षिणाग्रयन काल के विभाग से ( हविर्भिः ) यज्ञसामग्री करके जिस समय को विद्वान् जन ( प्रज्जन्ति ) चाहते हैं ( स ) वह ( वसाञ्जान् ) विद्या और क्रिया की कुशलताओं में चतुर विद्वान् अत्युत्तम पदार्थों में ( वसपतिः ) विद्या तथा चतुराई का पालनेहारा ( वभूवः ) होता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । मनुष्यों को चाहिए कि रात-दिन आदि समय के प्रत्येक व्यवहार का अच्छी तरह सेवन करें, वैसे ही उनमें यज्ञ के अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ व्यवहारों का ही आचरण करें और अधर्म व्यवहार वा अयोग्य काम कभी न करें ॥ ६ ॥

उद्यंयमीति सधितेव बाहू उभे सिचिं यतते भीम क्रुञ्जन् ।

उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्माज्जवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥७॥

वार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( भीम ) भयंकर ( उच्छुक्रम् ) सब को प्राप्त होता हुआ काल ( मातृभ्यः ) मान करनेहारे क्षण आदि अपने धर्मयों से ( सधितेव ) जैसे सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से भूगोल आदि लोकों का धारण करता है वैसे ( उद्यंयमीति ) बार-बार नियम रखता है ( बाहू ) बल और पराक्रम वा ( उभे ) सूर्य और पृथ्वी ( सिचिं ) वा वर्षा के द्वारा सींचनेवाले पवन धीर धनि की ( यतते ) व्यवहार में लाता है वह काल ( अकम् ) निरन्तर ( मुक्त्वा ) पराक्रम को ( सिमस्मात् ) सब जगत् से ( उच् ) ऊपर की श्रेणी को ( जहाति ) धुँवाता धीर ( नवा ) नवीन ( वसना ) आच्छादन को ( जहाति ) छोड़ता है यह जानो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों से जिस काल से सूर्य आदि जगत् प्रकट होता है धीर जो क्षण आदि अंशों से सब का आच्छादन करता सब के नियम का हेतु वा सबकी प्रवृत्ति का अधिकारण है उसको जानके समय के अनुसार काम करने चाहिये ॥ ७ ॥

किर बहु काल क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वैर्यं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सवने गोमिरिद्धिः ।

कविर्बुध्नं परि मर्ह्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥८॥

वार्थ—मनुष्यों को चाहिए (यत्) जो (संपृञ्चानः) ध्वजा परिचय करता-कराता हुआ (कविः) जिस का कम से वर्णन होता है वह समय (सवने) मृगन में (गोमिः) सूर्य की किरणों वा (गिरिः) प्राण आदि पवनों से (उत्पन्न) उत्पन्न होनेवाले (स्वैर्यम्) मरौहर (बुध्नम्) प्राण और जल सम्बन्धी विज्ञान और (कृणुत) पश्य को (कृणुते) करता है तथा जो (धीः) उत्तम बुद्धि वा किया (परि, मर्ह्यते) सब प्रकार से बुद्ध होती है (सा) वह (देवताता) ईश्वर और विद्वानों के साथ (समितिः) विशेष ज्ञान की मर्यादा (बभूव) होती है इस समयस्त उक्त व्यवहार को जानकर बुद्धि को उत्पन्न करें ॥ ८ ॥

वार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि काल के बिना कार्य स्वरूप उत्पन्न होकर नष्ट हो जाय यह होता ही नहीं, और न ब्रह्मचर्य आदि के सेवन बिना वास्तविक करनेवाली बुद्धि होती है। इस कारण काल के परमसूक्ष्म स्वरूप को जानकर बोझ भी समय व्यर्थ न करें, किन्तु ध्यात्य छोड़के समय के अनुकूल व्यवहार और परमार्थ काम का सदा अनुष्ठान करें ॥ ८ ॥

फिर उस समय के सेवन करने से क्या होता है यह विषय

अगले मन्त्र में कहा है—

उरु ते जयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।

विस्वमिरग्ने स्वयंशोभिरिदोऽदब्धेभिः पायुभिः पाहस्मान् ॥९॥

वार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आपके सम्बन्ध से जैसे सूर्य जैसे (इदः) प्रकाशमान हुआ समय (विद्वेभिः) समस्त (स्वयंशोभिः) अपने प्रशंसित गुण, कर्म और स्वभावोंसे (अदब्धेभिः) वा किसी में न मिट सकें ऐसे (पायुभिः) अनेक प्रकार के रक्षा आदि व्यवहारों से युक्त (विरोचमानम्) विविध प्रकार से प्रकाशमान (बुध्नम्) प्रथम कहे हुए अन्तरिक्ष को (उरु) वा बहुत (जयः) जिससे आयु व्यतीत करते हैं उस वृत्त को वा (पाहस्मान्) हम लोगों को और (महिषस्य) बड़े लोक के (धाम) स्थानान्तर को (पर्येति) पर्याय से प्राप्त होता है वैसे हमारी (पाहि) रक्षा कर और उस की सेवा कर ॥ ९ ॥

वार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि विभूतियों के बिना सूर्य आदि कार्य जगत् की बार बार सत्ता नहीं होती और न उससे पृथक् हम लोगों का कुछ भी काम अच्छी प्रकार होता है ॥ ९ ॥

अब समय वा अग्नि किस प्रकार का है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

धन्वन्त्स्रोतः कण्ठे गातुमूर्मि शुक्रैरुर्मिरिभि नक्षति क्षाम् ।

विष्ठा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥१०॥

वार्थ—हे मनुष्यों ! जो समय वा बिजुलीरूप आग (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (स्रोतः) जिससे और-और वस्तु वा जल प्राप्त होते हैं उस (गातुम्) प्राप्त होने योग्य (ऊर्मिन्) प्रातः समय की बेला वा जल की तरंग को (कण्ठे) प्रकट करता है वा (शुक्रैः) शुद्ध क्रम वा किरणों और (उर्मिभिः) पदार्थ प्राप्त कराने हारे तरंगों से (क्षाम्) भूमि को भी (अभि, नक्षति) सब ओर से व्याप्त और प्राप्त होता है वा जो (जठरेषु) भीतरले व्यवहारों और पेट के भीतर धन्व आदि पचाने के स्थानों में (विष्ठा) समस्त (सनानि) न्यारे-न्यारे पदार्थों को (धत्ते) स्थापित करता वा जो (प्रसूषु) पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन में वा (नवासु) नवीन प्रजाजनों में (अन्तः) भीतर (चरति) विचरता है उसको यथावत् जानो ॥ १० ॥

वार्थ—प्राप्त विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि व्यापनशील काल और बिजुलीरूप अग्नि को जानकर उनके निमित्त से अनेक कामों को यथावत् सिद्ध करें ॥ १० ॥

फिर वे काल और भौतिक अग्नि कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एषा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।

तन्वी मिश्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उव धौः ॥११॥

वार्थ—हे (पावक) पवित्र (अग्ने) विद्वन् ! समय और बिजुली रूप भौतिक अग्नि (यः) हम लोगों के (समिधा) अच्छे प्रकार को प्राप्त किये हुए अपने भाव से वा ई वन आदि (वृधानः) बढ़ता वा बुद्ध कराता हुआ जिस (रेवत्) परम उत्तम धनवान् (अवसे) सुनने तथा ध्वन के लिए (एव) ही अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है (उव) और (तत्) इससे (मिश्रः) प्राण (वक्त्रः) उदान (अदितिः) अन्तरिक्ष आदि (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि वा (धौः) बिजुली का प्रकाश (यः) हम लोगों की (मावहन्ताम्) बुद्धि देते हैं वैसे आप हम लोगों को (वि, भाहि) प्रकाशित करो वा काल वा भौतिक अग्नि प्रकाशित होता है ॥ ११ ॥

वार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। काल और भौतिक अग्नि की विधा के बिना किसी की विद्यायुक्त बन नहीं प्राप्त हो सकता, और न कोई समय के अनुकूल बर्ताव बिना प्राणादिकों से यथावत् उपकार ले सकता है। इससे इस समस्त उक्त व्यवहार को जानके सब कार्य की सिद्धिकर सदा आनन्द करना चाहिए ॥ ११ ॥

इस मन्त्र में काल और अग्नि के गुणों के वर्णन से इस मन्त्र के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिए ॥

अग्नि

अब मन्त्रार्थस्य पञ्चवतितमस्य सूक्तस्याङ्कुरसः कुस्त अग्निः । इविशोवा अग्निः

मुदोऽग्निर्वा देवता । विद्वत्पुण्ड्रः । गाम्भारः स्वरः ।

अब अब आवावाके क्षियामर्षे सुक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में

अग्नि सन्ध से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है ॥

स प्रत्नया सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळघत्त विश्वा ।

आपश्च मित्रे धिषणा च साधेन्देवा अग्नि धारयन् द्रविणोदाम् ॥१॥

वार्थ—जो (देवाः) विद्वान् लोग (द्रविणोदाम्) द्रव्य के देनेहारे (अग्निम्) परमेश्वर वा भौतिक अग्नि को (धारयन्) धारण करते-कराते हैं वे सब कामों को (साधन्) सिद्ध करते वा कराते हैं उनके (आयः) प्राण (च) और विद्या पढ़ाना आदि काम (मित्रे) मित्र (धिषणा, च) और बुद्धि हस्तक्षिपा से सिद्ध होती है जो मनुष्य (सहसा) बल से (प्रत्नया) प्राचीनों के समान (आयमान) प्रकट होता हुआ (विश्वा) समस्त (काव्यानि) विद्वानों के किये कार्यों को (सद्यः) भीघ्र (बळ्) यथावत् (अपश्च) धारण करता है (तः) वह विद्वान् और सुखी होता है ॥ १ ॥

वार्थ—मनुष्य ब्रह्मचर्य और विद्या की प्राप्ति के बिना कवि नहीं हो सकता और न कविता के बिना परमेश्वर वा बिजुली को जानकर कार्यों को कर सकता है। इससे उक्त ब्रह्मचर्य आदि नियम का अनुष्ठान नित्य करना चाहिए ॥ १ ॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है ॥

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिभाः प्रजा अर्जनयन्मनुनाम् ।

विवस्वता चक्षसा धामपरच देवा अग्नि धारयन् द्रविणोदाम् ॥२॥

वार्थ—मनुष्यों को जो (पूर्वया) प्राचीन (निविदा) वेदवाणी (कव्यता) जिससे कि कविताई आदि कामों का विस्तार करें उससे (मनुनाम्) विचारशील पुरुषों के समीप (आयो) सनातन कारण से (इभाः) इन प्रत्यक्ष (प्रजाः) उत्पन्न होनेवाले प्रजाजनों को (अर्जनयन्) उत्पन्न करता है वा (विवस्वता, चक्षसा) सब पदार्थों को विस्तारनेवाले सूर्य से (क्षाम्) प्रकाश (अप) जल (च) पृथिवी वा भौतिक आदि पदार्थों तथा जिस (द्रविणोदाम्) धन देनेवाले (अग्निम्) परमेश्वर को (देवाः) आप्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते हैं (तः) वह नित्य उपासना करने योग्य है ॥ २ ॥

वार्थ—ज्ञानवान् अर्थात् चेतना के बिना उत्पन्न किये, कार्य करने-वाला कोई जड़ पदार्थ आप नहीं उत्पन्न हो सकता। इससे समस्त जगत् के उत्पन्न करनेहारे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को सब मनुष्य मानें, अर्थात् जब तृणमात्र आपसे नहीं उत्पन्न हो सकता तो यह कार्य जगत् कैसे उत्पन्न हो सके। इससे इसको उत्पन्न करनेवाला जो चेतनरूप है वही परमेश्वर है ॥ २ ॥

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतसृञ्जसानम् ।

ऊर्जः पुवं भरतं सुप्रदानं देवा अग्नि धारयन् द्रविणोदाम् ॥३॥

वार्थ—हे मनुष्यों ! जो (प्रथमम्) समस्त उत्पन्न जगत् के पहले वर्तमान (यज्ञसाधम्) विज्ञान, योगाभ्यासादि यज्ञों से जाना जाता (असृञ्जसानम्) विवेक आदि साधनों से अच्छे प्रकार सिद्ध किया जाता (आहुतम्) विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (आरीः) प्राप्त होने योग्य (विशः) प्रजाजनों और (भरतम्) धारणा वा पुष्टि करनेवाला (सुप्रदानम्) जिससे कि ज्ञान देना बनता है उस (ऊर्जः) कारणरूप पवन से (पुवं) प्रसिद्ध हुए प्राण को उत्पन्न करने और (द्रविणोदाम्) धन आदि पदार्थों के देनेवाले (अग्निम्) जगदीश्वर को (देवाः) विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (तम्) उस परमेश्वर की तुल्य नित्य (इळत) स्तुति करो ॥ ३ ॥

वार्थ—हे जिज्ञासु अर्थात् परमेश्वर का विज्ञान चाहनेवाले मनुष्यों ! तुम जिस ईश्वर ने सब जीवों के लिए सब सृष्टियों को उत्पन्न करके प्राप्त कराया है, वा जिसने सृष्टि को धारण करनेहारा पवन और सूर्य रचा है, उसको छोड़के अन्य किसी की कभी ईश्वरभाव से उपासना मत करो ॥ ३ ॥

स मातरिष्वा पुरुवारपुष्टिर्विद्व गातुं तनेयाय स्वर्वित् ।

विष्ठा गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्नि धारयन् द्रविणोदाम् ॥४॥

वार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिस ईश्वर ने (तनेयाय) अपने पुत्र के समान जीव के लिए (स्वर्वित्) सुख का पहुंचानेहारा (गातुम्) वाणी को (विद्वत्) प्राप्त कराया (पुरुवारपुष्टिः) जिससे अत्यन्त समस्त व्यवहार के स्थापक करने की पुष्टि होती है वह (मातरिष्वा) अन्तरिक्ष में सोने और बाहर-भीतर रहनेवाला पवन बनाया है जो (विष्ठा) प्रजाजनों का (गोपा) पालने और (रोदस्योः) उजले-अन्धेरे को बलनिहारे लोकसमूहों का (जनिता) उत्पन्न करने वाला है जिस (द्रविणोदाम्) धन देनेवाले के तुल्य (अग्निम्) जगदीश्वर को (देवाः) उक्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (तः) वह सब दिन हृष्टदेव मानने योग्य है ॥ ४ ॥

वार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। पवन के निमित्त के बिना किसी की वाणी प्रवृत्त नहीं हो सकती न किसी की पुष्टि हो सकती है। और ईश्वर के बिना इस जगत् की उत्पत्ति और रक्षा नहीं होती, ऐसा समझना चाहिए ॥ ४ ॥



नक्षोषासा वर्णमामेभ्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।

धावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोको ! जिसकी सृष्टि में ( बर्णम् ) स्वरूप धर्मात् उत्पन्न मात्र को ( धामेभ्याने ) बार-बार विनाश न करते हुए ( समीची ) संग को प्राप्त ( नक्षोषासा ) रात्रि-दिवस वा ( धावाक्षामा ) सूर्य और भूमिलोक ( शिशुम् ) बालक को ( धापयेते ) दुग्धपान करानेवाले माता-पिता के समान रस आदि का पान कराते हैं जिस की उत्पन्न की विजुली से युक्त ( रुक्मः ) आप ही प्रकाशस्वरूप प्राण ( अन्तः ) सब के बीच ( वि, भाति ) विशेष प्रकाश को प्राप्त होता है जिस ( द्रविणोदाम् ) अनादि पदार्थ देनेहारे के समान ( एकम् ) अद्वितीयमात्र स्वरूप ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( देवाः ) आप्त विद्वान् जन ( धारयन् ) धारण करते वा कराते हैं वही सब का पिता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमाकार है । जैसे दूध पिलाये जानेवाले बालक के समीप स्थित दो स्त्रिया उस बालक को दूध पिलाती हैं, वैसे ही दिन और रात्रि तथा सूर्य और पृथिवी हैं । जिसके नियम से ऐसा होता है वह सबका उत्पन्न करनेवाला कैसे न हो ॥ ५ ॥

रायां बुध्नः सङ्गमनो बध्नां यज्ञस्य केतुर्मन्साधनो वेः ।

अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( वेः ) मनोहर ( यज्ञस्य ) अच्छे प्रकार समझाने योग्य विद्याबोध को ( बुध्नः ) समझाने और ( केतुः ) सब व्यवहारों को अनेक प्रकारों से चितानेवाला ( अमृतसाधनः ) वा विचारयुक्त कामों को सिद्ध कराने तथा ( रायः ) विद्या, चक्रवर्ति राज्यधन और ( बध्नाम् ) तैत्तिरीय देवताओं में अग्नि पृथिवी आदि षाठ देवताओं का ( संगमनः ) अच्छे प्रकार प्राप्त करानेवाला है वा ( अमृतत्वम् ) मोक्षमार्ग को ( रक्षमाणासः ) रक्षा करनेवाले ( देवाः ) आप्त विद्वान् जन जिस ( द्रविणोदाम् ) अनन्त पदार्थ देनेवाले के समान सब जगत् को देनेहारे ( अग्निम् ) परमेश्वर को ( धारयन् ) धारण करते वा कराते हैं ( एनम् ) उसी को तुम लोग इष्टदेव मानो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जीवनयुक्त अर्थात् देहाभिमान आदि को छोड़े हुए वा शरीरत्यागी मुक्तविद्वान् जन जिसका आश्रय लेकर आनन्द को प्राप्त होते हैं वही ईश्वर सब के उपासना करने योग्य है ॥ ६ ॥

न च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम ।

सतश्च गोपां भवतश्च भूरैर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस को ( देवाः ) विद्वान् जन ( नः ) शीघ्र और ( च ) विलम्ब से वा ( पुरा ) कार्य से पहले ( च ) और बीच में ( रयीणाम् ) वर्तमान पृथिवी आदि कार्य द्रव्यों के ( सवनम् ) उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के निमित्त वा ( जातस्य ) उत्पन्न कार्यजगत् के ( च ) नाश होने तथा ( जायमानस्य ) जगत् के अन्त में फिर उत्पन्न होनेवाले कार्यरूप जगत् के ( च ) फिर इसी प्रकार जगत् के उत्पन्न और विनाश होने में ( क्षाम् ) अपनी व्याप्ति से निवाम के हेतु वा ( पुरे ) व्यापक ( सतः ) अनादिवर्तमान विनाशरहित कारणरूप तथा ( च ) कार्यरूप ( भवतः ) वर्तमान ( च ) भूत और भविष्यत् उक्त जगत् के ( गोपाम् ) रक्षक और ( द्रविणोदाम् ) अनन्त पदार्थों को देनेवाले ( अग्निम् ) जगदीश्वर को ( धारयन् ) धारण करते वा कराते हैं उसी एक सर्ववर्तिमान् जगदीश्वर को धारण करो वा कराओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीन कालों का जाननेवाला ईश्वर के अतिरिक्त प्रभु तथा कार्य कारण वा पापी और पुण्यात्मा जनों के कामों की व्यवस्था करनेवाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है सब यह मनुष्यो को मानना चाहिए ॥ ७ ॥

द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।

द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रसते दीर्घमायुः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( द्रविणोदा ) धन आदि पदार्थों का देनेवाला ( तुरस्य ) शीघ्र सुख करनेवाले ( द्रविणसः ) द्रव्यसमूह के विज्ञान को ( प्र, यंसत् ) नियम में रक्खे वा जो ( द्रविणोदाः ) पदार्थों का विभाग जतानेवाला ( सनरस्य ) एक दूसरे से जो अलग किया जाए उस पदार्थ वा व्यवहार के विज्ञान को नियम में रक्खे वा जो ( द्रविणोदाः ) शूरता आदि गुणों का देनेवाला ( वीरवतीम् ) जिससे प्रशंसित और होंवे उस ( द्रव्यम् ) अन्नादि प्राप्ति की चाहना को नियम में रक्खे वा जो ( द्रविणोदाः ) जीवनविद्या का देनेवाला ( नः ) हम लोगों के लिए ( दीर्घम् ) बहुत समय तक ( आयुः ) जीवन ( रसते ) देवे उस ईश्वर की सब मनुष्य उपासना करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस परम गुरु परमेश्वर ने वेद के द्वारा सर्व पदार्थों का विशेष ज्ञान कराया है उसका आश्रय करके यथायोग्य व्यवहारों का अनुष्ठान कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए बहुत काल पर्यन्त जीवन की रक्षा करो ॥ ८ ॥

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक अवसे वि भाहि ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९॥

पदार्थ—हे ( पावक ) आप पवित्र और संसार को पवित्र करने तथा ( अग्ने ) समस्त मंगल प्रकट करनेवाले परमेश्वर ! ( समिधा ) जिससे समस्त व्यवहार प्रकाशित होते हैं उस वेदविद्या से ( वृधानः ) नित्य वृद्धियुक्त जो आप ( नः ) हम लोगों को ( रेवत् ) राज्य आदि प्रशंसित भीमान् के लिए वा ( अवसे ) समस्त विद्याओं के ज्ञान और अग्नी की प्राप्ति के लिए ( एव ) ही ( वि, भाहि ) अनेक प्रकार से प्रकाशमान कराते हैं ( तत् ) उन आपके बनाये हुए ( मित्रः ) ब्रह्मचर्य के नियम से बल को प्राप्त हुआ प्राण ( वरुणः ) ऊपर की उठानेवाला उदान वायु ( अदितिः ) अन्तरिक्ष ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) भूमि ( उत ) और ( द्यौः ) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक ( नः ) हम लोगों के ( मामहन्ताम् ) सरकार के हेतु हों ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी विद्या के बिना यथार्थ विज्ञान नहीं होता वा जिसने भूमि से लेके आकाशपर्यन्त सृष्टि बनाई है और हम लोग जिसकी उपासना करते हैं तुम लोग भी उसी की उपासना करो ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि शब्द के गुणों के वर्णन से इसके धर्म की पूर्व सूक्तार्थ के

साथ संगति है यह जानना चाहिए ।

यह ज्ञानवां सूक्त और चौथा वर्ण पूरा हुआ ॥

॥

अथास्य सप्तमवतितमस्याष्टमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । अग्निर्वेत्ता

१, ७, ८ पिथीजिकामध्यामिन्वा गायत्री । २, ४, ५ गायत्री,

३, ६ मिच्छावायत्री च छन्दः । वज्रः स्वरः ॥

अब आठ ऋषि वाले सप्तमवत सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम तीन मन्त्रों में सभाध्यक्ष कैसा हो यह उपदेश किया है—

अप नः शोशुचदधमग्ने शुशुभ्या रयिम् । अप नः शोशुचदधम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सभापते ! आप ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) रोग और आनन्दरूपी पाप का ( अप, शोशुचत् ) बार-बार निवारण कीजिए ( रयिम् ) धन को ( अप ) अच्छे प्रकार ( शुशुभ्या ) शुद्ध और प्रकाशित कराइए तथा ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) मन, बचन और शरीर से उत्पन्न हुए पाप की ( अप, शोशुचत् ) शुद्धि के धर्म दण्ड दीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—सभाध्यक्ष को चाहिए कि सब मनुष्यों के लिए जो-जो उनका अहितकारक कर्म और प्रमाद है उसको दूर करके निरालस्य से धन की प्राप्ति करावे ॥ १ ॥

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदधम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सभाध्यक्ष ! जिन आपको ( वसूया ) जिससे धपने को धनो की चाहना हो ( सुगातुया ) जिसमें अच्छी पृथिवी हो और ( सुक्षेत्रिया ) नाज बोने को जो कि अच्छा खेत हो वह जिस नीति से हो उससे ( नः ) तथा शस्त्र और अस्त्र बाधनेवाली सेना से हम लोग ( यजामहे ) सग्र बेते हैं वे आप ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) दुष्ट व्यसन को ( अपशोशुचत् ) दूर कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—पिछले मन्त्र से 'अग्ने' इस पद की अनुवृत्ति आती है । सभाध्यक्ष को चाहिए कि शान्तिवचन कहने, दुष्टों को दण्ड देने और शत्रुओं को पनस्पष्ट फूट कराने की क्रियाओं से नीति को अच्छे प्रकार प्राप्त होके प्रजाजनों के दुःख को नित्य दूर करने के लिए उद्यम करे प्रजाजन भी ऐसे पुरुष ही को सभाध्यक्ष करें ॥ २ ॥

प्र यदुमन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सुरयोः । अप नः शोशुचदधम् ॥३॥

पदार्थ—हे अग्ने सभापते ! ( यत् ) जिन आप की सभा में ( एषाम् ) इन मनुष्य आदि प्रजाजनों के बीच ( अस्माकासः ) हम लोगों में से ( प्र, सुरयोः ) अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वान् ( नः ) और वीर पुरुष हैं वे सभासद् हों ( अमिष्ठः ) प्रति कल्याण करनेहारे ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) शत्रुजन्य दुःखरूप पाप को ( प्र, अप, शोशुचत् ) दूर कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में भी 'अग्ने' इस पद की अनुवृत्ति आती है । जब विद्वान् सभा आदि के अर्चीक आप्त अर्थात् प्रामाणिक सत्य वचन को कहनेवाले सभासद् और आस्थिक, भारीरिक्त बल से परिपूर्ण सेवक हो, तब राज्यपालन और विजय अच्छे प्रकार होते हैं इसके विपरीत उलटा ही बंग होता है ॥ ३ ॥

फिर उसके सभासद् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न यत्ते अग्ने सुरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदधम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) आप उत्तर-प्रत्युत्तर से कहनेवाले ( यत् ) जिन ( ते ) आपके जैसे ( सुरयोः ) पूरी विद्या पढ़े हुए विद्वान् सभासद् हैं उन ( ते ) आपके वैसे ही ( वयम् ) हम लोग भी ( प्र, जायेमहि ) प्रजाजन हों और ऐसे तुम ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) विरोधरूप पाप को ( प्र, अप, शोशुचत् ) अच्छे प्रकार दूर कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस सत्तर में जैसे अमिष्ठ सभा आदि के अर्चीक मनुष्य हों वैसे ही प्रजाजनों को भी होना चाहिए ॥ ४ ॥

अब नीतिक अग्नि कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदधम् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम ( वत् ) जिस ( सहस्रवतः ) प्रसिद्धि बलवाले ( अग्नेः ) भौतिक अग्नि की ( भस्मवः ) उज्ज्वला करती हुई किरणें ( विद्युतः ) सब जगह से ( अत्यन्त ) फैलाती हैं वा जो ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) अतिदूर को ( अघ, सोशुचत् ) दूर करता है उसको कामों में अच्छे प्रकार जोड़ो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस बिजुली के बिना ऐसा कोई प्रतिमान् पदार्थ नहीं जो अलग हो अर्थात् सब में बिजुली व्याप्त है और जो भौतिक अग्नि शिल्पविद्या से कामों में लगाया हुआ धन इकट्ठा करनेवाला होता है वह मनुष्यों को अच्छे प्रकार जानना चाहिए ॥ ६ ॥

अथ ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अर्प नः शोशुचदधम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( विश्वतोमुख ) सब में व्याप्त होने और अन्तर्यामिण में सब को शिक्षा देने वाले जगदीश्वर ! जिस कारण ( स्वं, हि ) आप ही ( विश्वतः ) सब ओर से ( परिभूः ) सब के ऊपर विराजमान ( असि ) हैं इससे ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) दुष्ट स्वभाव संग्रहण पाप को ( अघ, सोशुचत् ) दूर कराइए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—सत्य प्रेमभाव से प्रार्थना किया हुआ अन्तर्यामी जगदीश्वर मनुष्यों के आत्मा में सत्य उपदेश से मनुष्यों को पाप से अलग कर शुभगुण, कर्म और स्वभाव में प्रवृत्त करता है । इससे यह नित्य उपासना करने योग्य है ॥ ६ ॥

द्विषो नो विश्वतोमुखवाति नावेव पारय । अर्प नः शोशुचदधम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( विश्वतोमुख ) सबसे उत्तम ऐश्वर्य से युक्त परमात्मन् ! आप ( नावेव ) जैसे नाव से समुद्र के पार हो वैसे ( नः ) हम लोगों को ( द्विषः ) जो धर्म से दूरे करनेवाले अर्थात् उससे विद्वद् चलनेवाले उन से ( अति, पारय ) पार पहुँचाइए और ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) शत्रुओं से उत्पन्न हुए दुःख को ( अघ, सोशुचत् ) दूर कीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे न्यायाधीश नाव में बैठकर समुद्र के पार वा निर्जन जङ्गल में डाकुओं को रोकके प्रजा की पालना करता है वैसे ही अच्छे प्रकार उपासना को प्राप्त हुआ ईश्वर अपने उपासकों के काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक कभी शत्रुओं को भीष्ट निवृत्त कर जितेन्द्रियता आदि गुणों को देता है ॥ ७ ॥

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्वा स्वस्तये । अर्प नः शोशुचदधम् ॥८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! ( नः ) तो आप कृपा करके ( नः ) हम लोगों के ( स्वस्तये ) सुख के लिए ( नावया ) नाव से ( सिन्धुमिव ) जैसे समुद्र को पार होते हैं वैसे दुःखों के ( अति, पर्वा ) अत्यन्त पार कीजिए ( नः ) हम लोगों के ( अघम् ) अशान्ति और आलस्य को ( अघ, सोशुचत् ) निरन्तर दूर कीजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पार करनेवाला मल्लाह सुखपूर्वक मनुष्य आदि को नाव से समुद्र के पार करता है वैसे तारनेवाला परमेश्वर विशेष ज्ञान से दुःखसागर से पार करता है और वह शीघ्र सुखी करता है ॥ ८ ॥

इस सूक्त में सभाष्यक अग्नि और ईश्वर के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सत्तानर्वा सूक्त और पाँचवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथास्याष्टनवतितमस्य ऋक्स्य सूक्तस्यऋक्सः कुरक्ष ऋषिः । वैश्वानरो देवता ।

१ विराद्विष्टुष्वन्तः, २ त्रिष्टुप्, ३ निबृत्तिष्वुष्ट्वन्तः । वैवतः स्वरः ॥

अथ अष्टानर्वा सूक्त का आरम्भ है । उसके अर्थ में मन्त्रों में ईश्वर और भौतिक अग्नि कैसे हैं यह विषय कहा है—

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामग्निः ।

इतो जातो विश्वमिदं वि चण्डे वैश्वानरो यंतते सूर्येण ॥१॥

पदार्थ—जो ( वैश्वानरः ) समस्त जीवों को यथायोग्य व्यवहारों में बलाने वाला ईश्वर वा आठारगि ( इतः ) कारण से ( जातः ) प्रसिद्ध हुए ( इवम् ) इस प्रत्यक्ष ( कम् ) सुख को ( विश्वम् ) वा समस्त जगत् की ( विशिष्ट ) विशेष भाव से विखलाता है और जो ( सूर्येण ) प्राण वा सूर्यलोक के साथ ( यतते ) चल करनेवाला होता है वा जो ( भुवनानाम् ) लोकों का ( अग्निः ) सब प्रकार से चल है तथा जिस भौतिक अग्नि से सब प्रकार का धन होता है वा ( राजा ) जो न्यायाधीश सबका अधिकार है तथा प्रकाशमान बिजुलीरूप अग्नि है उस ( वैश्वानरस्य ) समस्त पदार्थों को देनेवाले ईश्वर वा भौतिक अग्नि की ( सुमती ) अष्ट मति में अर्थात् जो कि अत्यन्त उत्तम अनुपम ईश्वर की प्रसिद्धि की हुई मति वा भौतिक अग्नि से अतीव प्रसिद्ध हुई मति है उस में ( हि ) ही ( वयम् ) हम लोग ( स्याम ) स्थिर हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सबसे बड़ा व्याप्त होकर सब जगत् को प्रकाशित करता है उसी के उत्तम गुणों से प्रसिद्ध उस की आज्ञा में नित्य प्रवृत्त होओ तथा जो सूर्य आदि की प्रकाश करनेवाला अग्नि है उस की विद्या की सिद्धि में भी प्रवृत्त होओ । इसके बिना किसी मनुष्य की पूर्ण धन नहीं हो सकती ॥ १ ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।

वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥२॥

पदार्थ—जो ( अग्निः ) ईश्वर वा भौतिक अग्नि ( दिवि ) दिव्यगुण सम्पन्न जगत् में ( पृष्टः ) विद्वानों के प्रति पूजा जाता वा जो ( पृथिव्याम् ) अन्तरिक्ष वा भूमि में ( पृष्टः ) पूजने योग्य है वा जो ( पृष्टः ) पूजने योग्य ( वैश्वानरः ) सब मनुष्यमान को सत्य व्यवहार में प्रवृत्त करानेवाला ( अग्निः ) ईश्वर और भौतिक अग्नि ( विश्वा ) समस्त ( ओषधीः ) सोमसत्ता आदि ओषधियों में ( आ, विवेश ) प्रविष्ट हो रहा और ( सहसा ) बल आदि गुणों के साथ वर्तमान ( पृष्टः ) पूजने योग्य है वह ( नः, सः ) हम लोगों को ( विश्वा ) दिन में ( रिषः ) भारनेवाले से और ( नक्तम् ) रात्रि में भारनेवाले से ( पातु ) बचावे वा भौतिक अग्नि बचाता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के समीप जाकर ईश्वर वा बिजुली आदि अग्नि के गुणों को पूजकर ईश्वर की उपासना और अग्नि के गुणों से उपकारों का आश्रय करके हिंसा में न उहरे ॥ २ ॥

अथ ईश्वर और विद्वान् कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मात्पायो मघवानः सचन्ताम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३॥

पदार्थ—हे ( वैश्वानर ) सब मनुष्यों में विद्या का प्रकाश करनेवाले ईश्वर वा विद्वान् ! जो ( तव ) आपका ( सत्यम् ) सत्यशील है ( तत् ) वह ( अस्मान् ) हम लोगों को प्राप्त ( अस्तु ) हो जो ( मित्रः ) मित्र ( वरुणः ) उत्तम गुणयुक्त स्वभाववाला मनुष्य ( अदितिः ) समस्त विद्वान् जन ( सिन्धुः ) अन्तरिक्ष में ठहरनेवाला जल ( पृथिवी ) भूमि और ( द्यौः ) बिजुली का प्रकाश ( मामहन्ताम् ) उन्नति देवे ( तत् ) वह ऐश्वर्य ( नः ) हम लोगों को प्राप्त हो वा ( मघवानः ) जिनके परम सत्कार करने योग्य विद्याधन है वे विद्वान् वा राजा लोग जिन ( द्यौः ) विद्या और राज्यश्री को ( सचन्ताम् ) निःसन्देह युक्त करें उनको हम लोग ( उत ) और भी प्राप्त हों ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ईश्वर और विद्वानों से सत्यशील, कर्मयुक्त धन, धार्मिक मनुष्य और क्रिया कौशलयुक्त पदार्थविद्याधनों को पुरुषार्थ से पाकर समस्त सुख के लिए अच्छे प्रकार यत्न करे ॥ ३ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों से सम्बन्ध रखने वाले कर्म के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह अष्टारहवाँ सूक्त और छठा वर्ग पूरा हुआ ॥



अथास्यैकवर्षकोनशततमस्य सूक्तस्यऋषिः कश्यप ऋषिः । जातवेदा अग्निर्वेदता । निबृत्ति विष्टुष्वन्तः । वैवतः स्वरः ॥

अथ एक ऋचा वाले निम्नानर्वा सूक्त का आरम्भ है उसमें ईश्वर कैसा है यह वर्णन किया है—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दंहाति वेदः ।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१॥७॥

पदार्थ—जिस ( जातवेदसे ) उत्पन्न हुए चराचर जगत् को जानने और प्राप्त होनेवाले वा उत्पन्न हुए सर्व पदार्थों में विद्यमान जगदीश्वर के लिए हम लोग ( सोमम् ) समस्त ऐश्वर्ययुक्त सांसारिक पदार्थों का ( सुनवाम ) निबोड़ करते हैं अर्थात् यथायोग्य सबको वर्तते हैं और जो ( मरातीयतः ) अश्वमियों के समान बर्ताने रखनेवाले दुष्ट जन के ( वेदः ) जन को ( नि, दंहाति ) निरन्तर नष्ट करता है ( सः ) वह ( अग्निः ) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर जैसे मल्लाह ( नावेव ) मौका से ( सिन्धुम् ) नदी वा समुद्र के पार पहुँचाता है वैसे ( नः ) हम लोगों को ( अति ) अत्यन्त ( दुर्गाणि ) दुर्गति और ( अतिदुरिता ) अतीव दुःख देनेवाले ( विश्वा ) समस्त पापाचरणी के ( पर्षत् ) पार करता है वही इस जगत् में खोजने के योग्य है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मल्लाह कठिन, बड़े समुद्रों में अत्यन्त विस्तारवाली नावों से मनुष्यादिकों को सुख से पार पहुँचाते हैं वैसे ही अच्छे प्रकार उपासना किया हुआ जगदीश्वर दुःखरूपी बड़े भारी समुद्र में स्थित मनुष्यों को विज्ञानादि दानों से उसके पार पहुँचाता है । इसलिए उसकी उपासना करनेवाला ही मनुष्य शत्रुओं को हराके उत्तम वीरता के आनन्द को प्राप्त हो सकता है और का क्या सामर्थ्य है ? ॥ १ ॥

इस सूक्त में ईश्वर के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ।

यह निम्नानर्वा सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथाऽप्येकोनविंशत्यस्य शततमस्य सूक्तस्य धृवागिरो अहाराजस्य पुत्रभूता धावागिरा  
अध्यायान्वरीचसहदेवमयमानसुरावस्य अध्यायः । इन्द्रो देवता । १, ५ पङ्क्तिः ,

२, १३, १७ स्वराट् पङ्क्तिः , ६, १०, १६ भुरिक् पङ्क्तिः ।

पञ्चमः स्वरः । ३, ४, ११, १८ विराट् ऋग्वेदः, ७—८, १२,

१४, १५, १६ निषुक् ऋग्वेदः संबलः स्वरः ॥

अथ उन्नीस अध्यायः बाले तीर्थे सूक्त का धारणः है उसके प्रथम मन्त्र में

सूर्यलोक कंसा है यह विषय कहा है—

स यो वृषा वृष्येभिः समीका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।

सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र उती ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( य ) जो ( वृषा ) वर्षा का हेतु ( समीकाः ) जिसमें समीचीन निवास के स्थान हैं ( सतीनसत्वा ) जो जल को इकट्ठा करता ( हव्य ) धीरे प्रहण करने योग्य ( मरुत्वान् ) जिसके प्रशंसित पवन हैं जो ( भरेषु ) अत्यन्त ( दिवः ) प्रकाश तथा ( पृथिव्या ) भूमिलोक ( स ) धीरे समस्त मूर्तिमान् लोको वा पदार्थों के बीच ( सम्राट् ) अध्याय प्रकाशमान ( इन्द्र ) सूर्यलोक है ( स ) वह जैसे ( वृष्येभिः ) उत्तमता में प्रकट होनेवाली किरणों से ( भरेषु ) पालन धीरे पृष्टि करानेवाले पदार्थों में ( नः ) हमारे ( उती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए ( भवतु ) होता है वैसा उत्तम-उत्तम यत्न करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो परिमाण से बड़ा, वायुमय, कारण से प्रकट धीरे प्रकाशस्वरूप सूर्यलोक है उससे विद्यापूर्वक प्रत्येक उपकार लेवे ॥१॥

अथ ईश्वर और विद्वान् कैसे कर्मवाले हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यस्यानात्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।

वृषन्तमः सखिभिः स्वैरिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र उती ॥२॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस परमेश्वर वा विद्वान् सभाध्यक्ष के ( भरेभरे ) कारण करने योग्य पदार्थ-पदार्थ वा युद्ध-युद्ध में ( सूर्यस्येव ) प्रत्यक्ष सूर्यलोक के समान ( वृत्रहा ) पापियों के यथायोग्य पापफल को देने से धर्म को छिपानेवालों का विनाश करता धीरे ( शुष्म ) जिस में प्रशंसित बल है वह ( यामः ) मर्यादा का होना ( अनात्तः ) पूर्ण धीरे शत्रुघ्नो ने नहीं पाया ( अस्ति ) है ( सः ) वह ( वृषन्तमः ) अत्यन्त सुख बढ़ानेवाला तथा ( मरुत्वान् ) प्रशंसित सेना जनयुक्त वा जिसकी सृष्टि में प्रशंसित पवन है वह ( इन्द्र ) परमेश्वर्यवान् ईश्वर वा सभाध्यक्ष सज्जन ( स्वैभिः ) अपने सेवकों के ( एवै ) पाये हुए प्रशंसित जानों धीरे ( सखिभिः ) धर्म के अनुकूल आज्ञा पालनेहार मित्रों से उपायना धीरे प्रशमा को प्राप्त हुआ ( नः ) हम लोगों के ( उती ) रक्षा आदि व्यवहारों के सिद्ध करने के लिए ( भवतु ) हो ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष धीरे उपमालकार है । मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि यदि सूर्यलोक तथा आप्त विद्वान् के गुण धीरे स्वभावों का पार तुल्य से जानने योग्य है तो परमेश्वर का तो क्या ही कहना है ? इन दोनों के आश्रय के बिना किसी की पूर्ण रक्षा नहीं होती इससे इनके साथ सदा मित्रता रखें ॥२॥

दिवो न यस्य रेतसो दुर्गानाः पन्थासो यन्ति श्वसापरीताः ।

तरद्वेषाः सासहिः पौंस्यैर्भिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र उती ॥३॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस ईश्वर वा सभाध्यक्ष वा उपदेश करनेवाले विद्वान् के ( दिवः ) सूर्यलोक के ( नः ) समान ( रेतसः ) पराक्रम की ( श्वसा ) प्रबलता से ( अपरीताः ) न छोड़े हुए ( दुर्गानाः ) व्यवहारों के पूर्ण करनेवाला ( तरद्वेषाः ) जिनमें विरोधों के पार ही वे ( पन्थासः ) मार्ग ( यन्ति ) प्राप्त होते धीरे जाते हैं वा जो ( पौंस्यैभिः ) बलों के साथ वर्तमान ( सासहिः ) अत्यन्त सहन करनेवाला ( मरुत्वान् ) जिसकी सृष्टि में प्रशंसित प्रजा है वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् परमेश्वर वा सभाध्यक्ष ( नः ) हम लोगों के ( उती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए ( भवतु ) हो ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेष धीरे उपमालकार है । जैसे सूर्य के प्रकाश से समस्त मार्ग अच्छी प्रकार देखने धीरे गमन करने योग्य तथा डाकू चोर धीरे कांटों से रहित प्रतीत होते हैं, वैसे वेदद्वारा परमेश्वर वा विद्वान् के मार्ग अच्छे प्रकार प्रकाशित होते हैं । निश्चय ही उनमें चले बिना कोई मनुष्य धीरे आदि दोषों से अलग नहीं हो सकता इससे सबको चाहिए कि इन मार्गों से नित्य चलें ॥३॥

सो अङ्गिरोमिरङ्गिस्तमो भूद्वेषा वृषभिः सखिभिः सत्वा सन् ।

ऋग्मिर्मरुग्मी गातुमिज्येष्टो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र उती ॥४॥

पदार्थ—जो ( अङ्गिरोमिः ) अगो में रसरूप प्राणी के साथ ( अङ्गिस्तमः ) अत्यन्त प्राण के समान वा ( वृषभिः ) सुख की वर्षा के कारणों से ( वृषा ) सुख सीधनेवाला वा ( सखीभिः ) मित्रों के साथ ( सत्वा ) मित्र वा ( ऋग्मिभिः ) ऋग्वेद के पद्यों के साथ ( मरुग्मी ) ऋग्वेदो वा ( गातुभिः ) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वारिणियों से ( ज्येष्ठः ) प्रशंसा करने योग्य ( सन् ) हुआ ( भूत् ) है ( सः ) वह ( मरुत्वान् ) अपनी सृष्टि में प्रजा को उत्पन्न करनेवाला वा अपनी सेना में प्रशंसित वीरपुरुष रखनेवाला ( इन्द्र ) ईश्वर धीरे सभापति ( नः ) हम लोगों के ( उती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए ( भवतु ) हो ॥४॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो यथावत् उपकार करनेवाला सब से उत्कृष्ट परमेश्वर वा सभापति का अध्यक्ष विद्वान् है उसको नित्य सेवन करो ॥४॥

किर वह सेना आदि का अधिपति कंसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—  
स सुवृभिर्न रुद्रेभिर्भुवो नृपाद्यो सासह्यो अभिलान् ।

सनीळेभिः श्रवस्यानि तूवेन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र उती ॥५॥८॥

पदार्थ—( मरुत्वान् ) जिसकी सेना में प्रशंसित वीरपुरुष हैं वा ( सासह्यान् ) जो शत्रुघ्नो का तिग्मकार करता है वह ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्यवान् सभापति ( सुवृभिः ) पुत्र वा पुत्रों के तुल्य सेवकों के ( नः ) समान ( सनीळेभिः ) अपने समीप रहनेवाले ( रुद्रेभिः ) जो कि शत्रुघ्नो को रलाते हैं उनके धीरे ( मरुत्वा ) बड़े बुद्धिमान् मन्त्री के साथ वर्तमान ( श्रवस्यानि ) अनादि पदार्थों में उत्तम वीर-जनो को इकट्ठा कर ( नृपाद्यो ) जो कि शूरवीरो के सहने योग्य है उस सभा में ( अभिलान् ) शत्रुजनों को ( तूवेन् ) मारता हुआ उत्तम यत्न करता है ( सः ) वह ( नः ) हम लोगों के ( उती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए ( भवतु ) हो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो सेना आदि का अधिपति पुत्र के तुल्य सत्कार किये हुए धीरे शस्त्र-प्रश्नों से सिद्ध होनेवाली युद्धविद्या से शिक्षा दिये हुए सेवकों के साथ वर्तमान बलसम्पन्न सेना को अच्छे प्रकार संगठित कर अति कठिन सभाम में भी दुष्ट शत्रुघ्नो को हराता हुआ धीरे धार्मिक मनुष्यों की पालना करता हुआ चक्रवर्ति राज्य कर सकता है । वही सारी सेना तथा प्रजा के जनो द्वारा सदा सत्कार करने योग्य है ॥५॥

स मनुष्योः समर्दनस्य कर्त्तास्माकं भित्तयः सूर्य सनत् ।

अस्मिन्नहन्तस्यपतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र उती ॥६॥

पदार्थ—जो ( मनुष्योः ) क्रोध का मारने वा ( समर्दनस्य ) जिसमें भ्रान्त है उसका ( कर्त्ता ) करने धीरे ( सत्ययः ) सज्जन तथा उत्तम कामों को पालने हारा ( पुरुहूतः ) वा बहुत विद्वान् धीरे शूरवीरों ने जिसकी स्तुति धीरे प्रशंसा की है ( मरुत्वान् ) जिसकी सेना में अच्छे-अच्छे वीरजन हैं ( इन्द्रः ) वह परमेश्वर्यवान् सेनापति ( अस्माकंभिः ) हमारे धीरे, आत्मा धीरे बल के तुल्य बलों से युक्त वीर ( मनुष्योः ) मनुष्यों के साथ वर्तमान होता हुआ ( सूर्यम् ) सूर्य के प्रकाश तुल्य युद्ध न्याय को ( सनत् ) अच्छे प्रकार सेवन करे ( सः ) वह ( अस्मिन् ) आज के दिन ( नः ) हम लोगों के ( उती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए निरन्तर ( भवतु ) हो ॥ ६ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्य को प्राप्त होकर सब पदार्थ अलग-अलग प्रकाशित हुए भ्रान्त के करनेवाले होते हैं, वैसे ही धार्मिक न्यायाधीशों को प्राप्त होकर पुत्र, पौत्र, स्त्री तथा सेवकों के साथ वर्तमान विद्या, धर्म धीरे न्याय में प्रसिद्ध आचरणवाले होकर मनुष्य कल्याण करनेवाले होते हैं । जो सर्वथा क्रोध का अपने वश में करने धीरे सब प्रकार से नित्य प्रसन्नता व भ्रान्त देनेवाला होता है, वही सेनाधीश नियत करने योग्य होता है । जो भूतकाल के इतिहास को जाननेवाला तथा वर्तमान काल में विचारशील तथा शीघ्र निर्णय करने वाला है वही सबदा विजय प्राप्त करता है दूसरा नहीं ॥ ६ ॥

तमूतयो रणयञ्चूरसानौ तं क्षेमस्य भित्तयः कृण्वत त्राम् ।

स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र उती ॥७॥

पदार्थ—जिसको ( उतयः ) रक्षा आदि व्यवहार सेवन करे ( तम् ) उस सेना आदि के अधिपति को ( शूरसातौ ) जिसमें वीरों का सेवन होता है उस सभाम में ( भित्तयः ) मनुष्य ( त्राम् ) अपनी रक्षा करनेवाला ( कृण्वत ) करें जो ( क्षेमस्य ) अत्यन्त कुशलता का करनेवाला है ( तम् ) उसको अपनी पालना करनेहारा किये हुए उक्त सभाम में ( रणयन् ) रतं अर्थात् बार-बार उसी की विनती करें जो ( एकः ) अकेला सभाध्यक्ष ( विश्वस्य ) समस्त ( कणस्य ) कणायुष्पी काम को करने में ( ईक्षे ) समर्थ है ( सः ) वह ( मरुत्वान् ) अपनी सेना में प्रशंसित वीरों को रखने वा ( इन्द्र ) सेना आदि की रक्षा करनेहारा ( नः ) हम लोगों के ( उती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए ( भवतु ) हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो अकेला भी अनेक योद्धाओं को जीतता है उसका उत्साह सभाम धीरे व्यवहारों में अच्छे प्रकार बढ़ावे । प्रोत्साहन से वीरों में जीसी शूरता होती है वैसे निश्चय ही किसी धीरे प्रकार से नहीं होती ॥ ७ ॥

किर वह किस प्रकार का हो वह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तमप्यन्त शर्वस उत्सवेषु नरो नरगवसे त धनाय ।

सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र उती ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( नरम् ) सब काम को यथायोग्य चलातेहारे जिस मनुष्य को ( जवसः ) विद्या-बल तथा धन आदि प्रत्येक बल ( अत्यन्तः ) प्राप्त हो ( तम् ) उस अत्यन्त प्रबल युद्ध करने से भी युद्ध करनेवाले सेना आदि के अधिपति को ( उत्सवेषु ) उत्सव अर्थात् भ्रान्त के कामों में सत्कार देओ तथा ( तम् ) उस को ( नरः ) श्रेष्ठाधिकार पानेवाले मनुष्य ( अन्धे ) रक्षा आदि व्यवहारों धीरे ( अनायः ) उत्तम धन पाने के लिए प्राप्त होवे जो ( अन्धे ) अन्धे के तुल्य करने-हारे ( तवसि ) अन्धे में ( ज्योतिः ) सूर्य आदि के उज्ज्वले रूप प्रकाश ( चित् ) ही को ( विवत् ) प्राप्त होता है ( सः ) वह ( मरुत्वान् ) अपनी सेना में उत्तम



वीरो को राखनेहारा ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् सेनापति वा सभापति ( नः ) हम लोगों के ( ऊँती ) अच्छे आनन्दों के लिए ( भवतु ) हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। हे मनुष्यो! जो शत्रुओं को जीत और धार्मिकों की पालना कर विद्या और धन की उन्नति करता है, जिसको पाकर सूर्य प्रकाश के समान विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं उस मनुष्य को आनन्द भोग के दिनों में आश्चर्य सत्कार देवें क्योंकि ऐसा किये बिना किसी को अच्छे कामों में उत्साह नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

स सव्येन यमति त्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृहीता कृतानि ।

स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वाभो भवत्विन्द्र उती ॥९॥

पदार्थ—जो ( सव्येन ) सेना के दाहिनी ओर खड़ी हुई अपनी सेना से ( क्रावतः ) अत्यन्त बल बढ़े हुए शत्रुओं को ( चित् ) भी ( यमति ) दंग से चलाता है वह उन शत्रुओं का जीतनेहारा होता है जो ( दक्षिणे ) दाहिनी ओर में खड़ी हुई उस सेना से ( संगृहीता ) ग्रहण किये हुए सेना के धनो तथा ( कृतानि ) किये हुए कामों को यथोचित नियम से लाता है ( सः ) वह अपनी सेना की रक्षा कर सकता है जो ( कीरिणा ) शत्रुओं के गिराने के प्रबन्ध से ( चित् ) भी उनके ( लज्जिता ) अच्छी प्रकार इकट्ठे किये हुए ( धनानि ) धनों को ले लेता है ( सः ) वह ( मरुत्वाभः ) अपनी सेना में उत्तम-उत्तम वीरों को राखनेहारा ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् सेनापति ( नः ) हम लोगों के ( ऊँती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए ( भवतु ) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सेना की रचनाओं और सेना के धनो की शिक्षा वा रक्षा के विशेष ज्ञान को तथा पूर्ण युद्ध की सामग्री को इकट्ठा कर सकता है वही शत्रुओं को जीतने और प्रजा की रक्षा करने के योग्य है ॥९॥

स द्यावेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वेभिः कृष्टिभिर्विद्य ।

स पौंस्यैभिराभिभूरशस्तोमरुत्वाभो भवत्विन्द्र उती ॥१०॥९॥

पदार्थ—जो ( मरुत्वाभः ) अपनी सेना में उत्तम वीरों को राखनेहारा ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् सेना आदि का अधीश ( द्यावेभिः ) धर्मों में रहनेवाले प्रजाजनों के साथ ( सनिता ) अच्छे प्रकार अलग-अलग किये हुए धनो को अंगता है ( सः ) वह आनन्दित होता है जो ( विदे ) युद्धविद्या तथा विजयों को जिस से जाने उस क्रिया के लिए ( रथेभिः ) सेना के विमान आदि शस्त्रों और ( विश्वेभिः ) समस्त ( कृष्टिभिः ) शिल्प कामों की प्रति कुशलताओं से प्रकाशमान हो ( सः ) वह और जो ( अशस्तीः ) शत्रुओं की बड़ाई करने योग्य क्रियाओं को जानकर उनका ( अभिभूः ) तिरस्कार करनेवाला है ( सः ) वह ( पौंस्यैभिः ) उत्तम शरीर और आत्मा के बल के साथ वर्तमान ( पुः ) शीघ्र ( अशः ) आज ( नः ) हम लोगों के ( ऊँती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए ( भवतु ) होवे ॥१०॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि जो पुर, नगर और ग्रामों का अच्छे प्रकार रक्षा करनेवाला, वा पूर्ण सेनाओं की सामग्री सहित, जिसने कलाकौशल तथा शस्त्र-अस्त्रों से युद्ध क्रिया को जाना हो और परिपूर्ण विद्या तथा बल से पुष्ट, शत्रुओं के पराजय से प्रजा की पालना करने में प्रसन्न होता है वही सेना आदि का अधिपति करने योग्य है अन्य नहीं ॥१०॥

किर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स जामिभिर्यत्समजाति मीळहेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।

अपां लोकस्य तनयस्य जेपे मरुत्वाभो भवत्विन्द्र उती ॥११॥

पदार्थ—जो ( अपां ) प्राप्त हुए मित्र, शत्रु और उदासीनों वा ( लोकस्य ) आलोकों के वा ( तनयस्य ) पौत्र आदि क बीच वर्तित रहता हुआ ( यत् ) जब ( मीळहे ) समानों में ( एवै ) प्राप्त हुए ( जामिभिः ) शत्रुजनों के सहित ( अजामिभिः ) बन्धुवर्गों से अन्य शत्रुओं के सहित ( वा ) अथवा उदासीन मनुष्यों के साथ विरोधभाव प्रकट करता हुआ ( पुरुहूतः ) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त वा युद्ध में बुलाया हुआ ( मरुत्वाभः ) अपनी सेना में उत्तम वीरों को रखने वाला ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् सेना आदि का अधीश ( जेपे ) उक्त अपने बन्धु आद्यों को उत्साह और उत्कर्ष देने वा शत्रुओं के जीत लेने का ( समजाति ) अच्छा उक्त जानता है तब ( सः ) वह ( नः ) हम लोगों के ( ऊँती ) रक्षा आदि व्यवहार के लिए समर्थ ( भवतु ) हो ॥११॥

भावार्थ—इस राज्यव्यवहार में गृहस्थ को छोड़ किसी ब्रह्मचारी, वनस्थ वा यति की प्रशंसा होने योग्य नहीं है। और न कोई अच्छे मित्र और बन्धुजनों के बिना युद्ध में शत्रुओं को परास्त कर सकता है। ऐसे धार्मिक विद्वान् के अतिरिक्त कोई सेना आदि का अधिपति होने योग्य नहीं है यह जानना चाहिए ॥११॥

स वज्रभृष्टस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीध ऋभ्रा ।

अग्नीषो न शर्वसा पाञ्चजन्यो मरुत्वाभो भवत्विन्द्र उती ॥१२॥

पदार्थ—( अग्नीषः ) जो अपनी सेना से शत्रुओं की सेनाओं के मारनेहारों के ( न ) समान ( वज्रभृत् ) अति कराल शस्त्रों को धाँपने ( वसुहा ) बाण, चोर, लम्पट, लबाड़ आदि दुष्टों को मारने ( भीमः ) उन को डर और ( उग्रः ) अति कठिन दण्ड देने ( सहस्रचेताः ) हजारहों अच्छे प्रकार के ज्ञान प्रकट करने वाला ( अतनीधः ) जिस के सैकड़ों यथायोग्य व्यवहारों के वर्तित हैं ( पाञ्चजन्यः ) जो सब विद्याओं से युक्त पढ़ाने, उपदेश करने, राज्यसम्बन्धी सभा सेना और सब अधिकारियों के अधिकारताओं में उत्तमता से हुआ ( मरुत्वाभः ) और अपनी सेना में

उत्तम वीरों को राखनेवाला ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् सेना आदि का अधीश ( ऋभ्रा ) अग्नीष ( वज्रभृत् ) बलवान् सेना से शत्रुओं को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ( सः ) वह ( नः ) हम लोगों के ( ऊँती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए ( भवतु ) होवे ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। मनुष्यो को जानना चाहिए कि कोई मनुष्य शत्रुवर्ग के विशेष ज्ञान और उसके यथायोग्य प्रयोग तथा शत्रुओं के मारने में भय देने वाले तीव्र अग्राध सामर्थ्य और प्रबल बड़ी हुई सेना के बिना सेनापति नहीं हो सकता। और ऐसे हुए बिना शत्रुओं का पराजय और प्रजा का पालन हो सके यह भी सम्भव नहीं, ऐसा जानें ॥१२॥

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रथः शिमीवान् ।

तं संचन्ते मनुयस्तं धनानि मरुत्वाभो भवत्विन्द्र उती ॥१३॥

पदार्थ—जिस सभाध्यक्ष का ( स्मत् ) काम के वर्तित की अनुकूलता का ( स्वर्षाः ) सुख से सेवन और ( रथः ) भारी कोलाहल शब्द करनेवाला ( शिमीवान् ) जिस से प्रशंसित काम होते हैं वह ( वज्रः ) शस्त्र और अस्त्रों का समूह ( मनुयः ) अच्छे जनों को बुलाता और दुष्टों को चलाता है ( तस्य ) उस के ( दिवः ) सूर्य के ( त्वेषः ) उजले के ( न ) समान गुण, कर्म और स्वभाव प्रकाशित होते हैं जो ऐसा है ( तम् ) उसको ( संचन्ते ) उत्तम सेवा प्रयात् सज्जनों के किये हुए उत्साह ( संचन्ते ) सेवन करते और ( तम् ) उसको ( धनानि ) समस्त धन सेवन करते हैं इस प्रकार ( मरुत्वाभः ) जो सभाध्यक्ष अपनी सेना में उत्तम वीरों को रखनेवाला ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् तथा ( नः ) हम लोगों के ( ऊँती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए यत्न करता है वह हम लोगों का राजा ( भवतु ) होवे ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। सभासद्, भृत्य, सेना और प्रजाजनों को चाहिए कि ऐसे उत्तम कामों का सेवन करें जिनसे बढ़े हुए विद्या, न्याय, धर्म वा पुरुषार्थ सूर्य के समान प्रकाशित हो। क्योंकि ऐसे कामों के बिना उत्तम सुखों का सेवक, धन और रक्षा हो नहीं सकती। इस से ऐसे काम सभाध्यक्ष आदि को करने योग्य हैं ॥१३॥

यस्याजसं शर्वसा मानमुदयं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।

स पारिषत्क्रतुर्मिर्मन्दसानो मरुत्वाभो भवत्विन्द्र उती ॥१४॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस सभा आदि के अधीश के ( शर्वसा ) शारीरिक तथा धार्मिक बल से युक्त प्रजाजन ( मानम् ) सत्कार ( उदयम् ) वेदविद्या तथा ( सीम् ) धर्म, न्याय की मर्यादा को ( विश्वतः ) सब ओर से ( मज्जाम् ) निरन्तर पालन और जो ( रोदसी ) विद्या के प्रकाश और पृथिवी के राज्य को भी ( परिभुजत् ) अच्छे प्रकार पालन करे जो ( ऋषिभिः ) उत्तम बुद्धिमानों के कामों के साथ ( मन्त्रसाधः ) प्रशंसा आदि से परिपूर्ण हुआ सुखों से प्रजाओं को ( पारिषत् ) पालता है ( सः ) वह ( मरुत्वाभः ) अपनी सेना में उत्तम वीरों का रखनेवाला ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् सभापति ( नः ) हम लोगों के ( ऊँती ) रक्षा आदि व्यवहारों को सिद्ध करनेवाला निरन्तर ( भवतु ) होवे ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्यो का मान, दुष्टों का तिरस्कार, पूरी विद्या, धर्म की मर्यादा, पुरुषार्थ और आनन्द कर सके वही सभाध्यक्ष आदि अधिकार के योग्य हो ॥ १४ ॥

अब इस समस्त प्रजा का कर्ता ईश्वर कैसा है

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपञ्चन शर्वसो अन्तर्मापुः ।

स प्रविवा त्वर्षसा इमो दिवश्च मरुत्वाभो भवत्विन्द्र उती ॥१५॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर के ( शर्वसः ) बल की ( अन्तर्मा ) अन्तर्मा को ( देवता ) दिव्य उत्तमजनों में ( देवाः ) विद्वान् लोग ( नः ) नहीं ( मर्ताः ) साधारण मनुष्य ( नः ) नहीं ( आपः ) तथा ( आपः ) अन्तरिक्ष वा प्राण भी ( आपुः ) नहीं पाते जो ( त्वर्षसा ) अपने बलरूप सामर्थ्य से ( इमः ) पृथिवी ( दिवः ) सूर्यलोक तथा ( नः ) और लोकों को ( प्रविवा ) रथ के व्याप्त हो रहा है ( सः ) वह ( मरुत्वाभः ) अपनी प्रजा को प्रशंसित करनेवाला ( इन्द्रः ) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ( नः ) हम लोगों के ( ऊँती ) रक्षा आदि व्यवहारों के लिए निरन्तर उद्यत ( भवतु ) होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—क्या अत्यन्त गुण, कर्म, स्वभाववाले उस परमेश्वर का पार कोई ले सकता है जो अपने सामर्थ्य से ही प्रकृतिरूप, अति सूक्ष्म, समातन कारका से सब पदार्थों की स्थूलरूप में उत्पन्न कर उनकी पालना और प्रलय के समय उनका विनाश करता है? वह सबके उपासना करने के योग्य क्यों न होवे? ॥ १५ ॥

अब शिल्पिजनों द्वारा सेनाधिकां में प्रयुक्त किया हुआ अग्नि कैसा होता है

और क्या करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

रोहिष्ठावा सुमर्दशुर्लामीर्धुषा राय ऋजार्धस्य ।

वृषंश्वन्तं विभ्रती धृष्टे रथं मन्द्रा चिकेत नाहुंषीषु विशु ॥१६॥

पदार्थ—जो ( ऋजार्धस्य ) सीधी बाल से बने हुए जिसके कोई वेग वाले उस सभा आदि के अधीश का सम्बन्ध करनेवाले शिल्पियों को ( सुमर्दः ) जिसका उत्तम चलना ( लतामीः ) प्रशंसित जिसमें सौन्दर्य ( धृषा ) और जिस का प्रकाश ही निवास है वह ( रोहिष् ) नीचे से लाल ( ध्यावा ) ऊपर से काली

अग्नि की उवाचा ( वृष ) लोहे की अच्छी-अच्छी बनी हुई कलाशो में प्रयुक्त की गई ( वृषवन्तम् ) वेगवाले ( रथम् ) विमान आदि यान समूह को ( विधत्ते ) धारण करती हुई ( अग्निः ) प्रानन्द की देनेहारी ( नाहुषी ) मनुष्यों के इन ( वृष ) सन्तानों के निमित्त ( राधे ) धन की प्राप्ति के लिए वर्तमान है उसको जो ( विधत्ते ) अच्छे प्रकार जाने वह धनी होता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—जब विमानों के चलाने आदि कार्यों में ईश्वरों से अच्छे प्रकार प्रयुक्त किया अग्नि जलता है तब उसके दो प्रकार के रूप देख पड़ते हैं—एक कमकदार दूसरा काला इमीमें अग्नि को प्रयामकणशिव कहते हैं जैसे थोड़े के शिर पर कान दीखते हैं वैसे अग्नि के शिर पर प्रयाम कज्जल की शिखा होती है । यह अग्नि कामों में अच्छे प्रकार प्रयुक्त किया हुआ बहुत प्रकार के धन की प्राप्ति कराकर प्रजाजनों को प्रानन्दित करता है ॥ १६ ॥

किर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एतत्पथं इद्र वृष्ण उक्थं वार्धगिरा अभि गृणन्ति राधः ।

अज्ञाधः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥१७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमविद्या ऐश्वर्य से युक्त सभाध्यक्ष ! जो ( वार्धगिरा ) उत्तम प्रशंसित विद्वान् की बाणियों से प्रशंसित पुरुष ( एत् ) इस प्रत्यक्ष ( ते ) आपके ( उक्थम् ) प्रणसा करने योग्य बचन वा काम को सब लोग ( अभिगृणन्ति ) आप के मुख पर कहते हैं वह श्रीर ( स्यत् ) भगला वा धनुमान करने योग्य आप का ( राधः ) धन ( वृष्ण ) शरीर श्रीर आत्मा की प्रसन्नता के लिए होता है तथा जो ( अम्बरीषः ) शब्दशास्त्र के जानने ( सहदेवः ) विद्वानों के साथ रहने ( भयमानः ) प्रथमचरण से डरकर उससे प्रानग वस्ताव वृत्तने श्रीर दुष्टों को भय करनेवाले ( सुराधाः ) जो कि उत्तम-उत्तम धनो से युक्त ( अज्ञाधः ) जिन की सीधी, बड़ी-बड़ी राजनीति है श्रीर ( प्रष्टिभिः ) प्रश्नों से पूछे हुए समाधानों को वेते हैं वे हम लोगों को सेवने योग्य कैसे न हो ? ॥ १७ ॥

भावार्थ—जब विद्वान् उत्तम प्रीति के साथ उपदेशों को करते हैं तब भवान् जन विषयस्त होकर उन उपदेशों को सुन, अच्छी विद्याओं को धारण कर घनाइय होके प्रानन्दित होते हैं ॥ १७ ॥

किर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

दस्युश्छिन्नयूश्च पुरुहूत एवैहृत्वा पृथिव्या शर्वा नि बर्हीति ।

सनत्सेत्रं सखिभिः श्वित्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥१८॥

पदार्थ—( सुवज्र ) श्रेष्ठ अस्त्र श्रीर शस्त्रों के समूहवाला ( पुरुहूतः ) बहुतों से सत्कार किया हो वह ( शर्वा ) समस्त दुष्टों का विनाश करनेवाला, सभा आदि का अधीश ( श्वित्येभिः ) श्वेत धर्मात् स्वच्छ तेजस्वी ( सखिभिः ) मित्रों के साथ श्रीर ( एवै ) प्रशंसित ज्ञान वा कर्मों के माध्य ( दस्युः ) डाकुओं को ( हृत्वा ) अच्छे प्रकार मार ( श्वित्युः ) शान्त, भाविक सज्जनों ( च ) श्रीर शूर्य आदि को ( सनत् ) पाले, दुष्टों को ( नि, बर्हीत् ) दूर करे जो ( पृथिव्याम् ) अपने राज्य से युक्त भूमि में ( सनत् ) अपने निवासस्थान ( सूर्यम् ) सूर्यलोक, ( अपः ) प्रारा श्रीर जलों को ( सनत् ) सदा ( सनत् ) सेवन करे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो सज्जनों सहित सभापति अधमयुक्त व्यवहार को निवृत्त श्रीर धर्म्य व्यवहार का प्रचार करके विद्या-युक्ति से मित्र व्यवहार का सेवनकर प्रजा के दुष्टों को नष्ट करे वह सभा आदि का अध्यक्ष सबको मानने योग्य होवे, अन्य नहीं ॥ १८ ॥

किर वह कैसा है श्रीर उसके सहाय से हम लोग क्या पावे इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है—

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्त्रा नो अस्त्रपरिहृताः सनुयाम वाजम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः मिन्धुः पृथिवी उत योः ॥१९॥

पदार्थ—जो ( इन्द्र ) प्रशंसित विद्या श्रीर ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् ( नः ) हम लोगों के लिए ( विश्वाहा ) सब दिनों ( अधिवक्त्रा ) अधिक-प्रधिक उपदेश करनेवाला ( अस्त्र ) हो उससे ( अस्त्रपरिहृताः ) सब प्रकार कुटिलता की छोड़े हुए हम लोग जिस ( वाजम् ) विशेष ज्ञान का ( सनुयाम ) दूसरे को देवें श्रीर सेवन करें ( नः ) हमारे ( तत् ) उम विज्ञान को ( मित्र ) मित्र ( वरुणः ) श्रेष्ठ सज्जन ( अदितिः ) अन्तरिक्ष ( सिन्धुः ) समुद्र, नदी ( पृथिवी ) भूमि ( उत ) श्रीर ( योः ) सूर्य आदि प्रकाशयुक्त लोकों का प्रकाश ( मामहन्ताम् ) मान से बढ़ावे ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों का उचित है कि जो नित्य विद्या का देनेवाला है उसकी सीधेपन से सेवा करके विद्याओं को पाकर मित्र, श्रेष्ठ आकाश, नदियों, भूमि श्रीर सूर्य आदि लोकों से उपकार ग्रहण करके सब मनुष्यों में सत्कार के साथ रहना चाहिए । कभी विद्या छिपानी नहीं चाहिए किन्तु सबको यह प्रकट करनी चाहिए ॥ १९ ॥

इस सूक्त में सभा आदि के अधिपति, ईश्वर श्रीर पढ़नेवालों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ एकता समझनी चाहिए ॥

यह सीमा सूक्त श्रीर ग्यारहवां वन पुरा हुआ ॥



अथार्षकसततमर्षकाराज्यस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सुस्तः श्वितः । इन्द्रो देवता । १, ४

मित्रजगती, २, ४, ७ विराजगती छन्दः । निवाहः स्वरः । ३ पुरिक्

मित्रदुप्, ६ स्वरान् मिष्टुप् ८, १० मिष्टुत् मिष्टुप्, ८, ११

मिष्टुप् छन्दः । चैवतः स्वरः ॥

अथ एकतो एकत्वे सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

शाला का अधीश कैसा होवे यह विषय कहा है—

म मन्त्रिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्तुजिन्धना ।

अवस्यो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥१॥

पदार्थ—तुम लोग ( यः ) जो उपदेश करने वा पढ़ानेवाला ( मन्त्रिणः ) ऐसे पाठ से कि जिसमें उत्तम बाणियों की धारणा शक्ति की धनैक प्रकार से वृद्धि हो उससे मूलपन को ( निः, अहन् ) निरन्तर हने उस ( जिन्धने ) प्रानन्दी पुरुष श्रीर प्रानन्द देनेवाले के लिए ( पितुमत् ) अच्छा बनाया हुआ धन धर्मात् पूरी, कचोरी, लड्डू, बालूगानी, जलेबी, इमरनी आदि अच्छे-अच्छे पदार्थों वाले भोजन श्रीर ( वज्रः ) प्यारी वाणी को ( वज्रदक्षिणः ) अच्छे प्रकार निवेदन कर उसका सत्कार करो । श्रीर ( अवस्यः ) अपने को रक्षा आदि व्यवहारों की चाहते हुए ( कृष्णगर्भाः ) जिन्होंने रेखागणित आदि विद्याओं के मर्म खोले हैं वे हम लोग ( सख्याय ) मित्र के काम वा मित्रपन के लिए ( वृषणम् ) विद्या की वृद्धि करने-वाले ( वज्रदक्षिणम् ) जिससे प्रविद्या का विनाश करनेवाली वा विद्यादि धन देने-वाली दक्षिणा मिले ( मरुत्वन्तम् ) जिसके समीप प्रशंसित विद्यावाले ऋत्विज् धर्मात् आप यज्ञ करें, दूसरे को करावें, ऐसे पढ़ानेवाले हो, उस अध्यापक धर्मात् उत्तम पढ़ानेवाले को ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं उसको तुम लोग भी अच्छे प्रकार सत्कार के साथ स्वीकार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिससे विद्या लेवें उनका सत्कार मन, बचन, कर्म श्रीर धन से सदा करें । श्रीर पढ़ानेवालों को चाहिए कि जो पढ़ाने योग्य हो उन्हें अच्छे यत्न के साथ उत्तम-उत्तम शिक्षा देकर विद्वान् करें । सबदा श्रेष्ठों के साथ मित्रभाव रख उत्तम-उत्तम काम में चित्तवृत्ति की स्थिरता रखें ॥ १ ॥

अथ सभा श्रीर सेना का अध्यक्ष क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यो व्यसं जाह्वाणेन मन्युना यः शम्बर यो अहन् पिप्रमव्रतम् ।

इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२॥

पदार्थ—( यः ) जो सभा सेना आदि का अधिपति ( इन्द्रः ) शमस्त ऐश्वर्य को प्राप्त ( जाह्वाणेन ) सज्जनों को सन्तोष देनेवाले ( मन्युना ) अपने कोशे से दुष्ट श्रीर मनुजों का ( व्यसम् नि, अहन् ) ऐसा मारे कि जिससे कन्वा अलग हो जाए वा ( यः ) जो शूरता आदि गुणों से युक्त श्रीर ( शम्बरम् ) अधर्म से सम्बन्ध करनेवाले को अत्यन्त मारे वा ( यः ) धर्मात्मा सज्जन पुरुष ( पिप्रम् ) जो कि अधर्मी अपना पेट भरता उसको निरन्तर मारे श्रीर ( यः ) जो प्रति बलवान् ( अहन्तम् ) जिसके कोई नियम नहीं धर्मात् ब्रह्मचर्य सत्यपालन आदि व्रतों को नहीं करता उसको ( अशुषम् ) अपने से अलग करे उम ( शुष्णम् ) बलवान् ( अशुषम् ) शाकरहित, हर्षयुक्त ( मरुत्वन्तम् ) अच्छे प्रशंसित पढ़नेवालों को रखनेहारे सकल ऐश्वर्ययुक्त सभापति को ( सख्याय ) मित्रों के काम वा मित्रपन के लिए हम लोग ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो प्रचण्ड कोष से दुष्टों को मारकर विद्या की उन्नति के लिए ब्रह्मचर्यादि नियमों को प्रचारित, मूलपन श्रीर जोटी सिखावटों को रोकके सबके सुखके लिए निरन्तर अच्छा यत्न करे उसीको मित्र मानें ॥ २ ॥

अथ ईश्वर श्रीर सभाध्यक्ष कैसे-कैसे गुणवाले होते हैं यह विषय

अगले मन्त्र में कहा है—

यस्य चावापृथिवी पौंस्य महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।

यस्येन्द्रस्य सिन्धनः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३॥

पदार्थ—हम लोग ( यस्य ) जिस ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर्यवान् जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष राजा के ( व्रते ) सामर्थ्य वा शील में ( महत् ) अत्यन्त उत्तम गुण श्रीर ( पौंस्यम् ) पुरुषार्थयुक्त बल है ( यस्य ) जिसका ( चावापृथिवी ) सूर्य श्रीर भूमि के सदा सहनशीलता श्रीर नीति का प्रकाश वर्तमान है ( यस्य ) जिसके ( व्रतम् ) सामर्थ्य वा शील को ( तरुण ) चन्द्रमा वा चन्द्रमा का शान्ति आदि गुण ( यस्य ) जिसके सामर्थ्य श्रीर शील को ( सूर्यः ) सूर्यमण्डल वा उसका गुण ( सश्चति ) प्राप्त होता श्रीर ( सिन्धनः ) समुद्र प्राप्त होते हैं उस ( मरुत्वन्तम् ) शमस्त प्राणियों से श्रीर समय-ममय पर यज्ञादि करनेहारे से युक्त सभाध्यक्ष को ( सख्याय ) मित्र के काम वा मित्रपन के लिए ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में शिवपालकृार है । मनुष्यों को चाहिए कि जिस परमेश्वर के सामर्थ्य के बिना पृथिवी आदि लोकों की स्थिति अच्छे प्रकार नहीं होती तथा जिस सभाध्यक्ष के स्वभाव श्रीर वस्ताव की प्रकाश के समान विद्या, पृथिवी के समान सहनशीलता, चन्द्रमा के तुल्य शान्ति, सूर्य के तुल्य नीति का प्रकाश श्रीर समुद्र के समान गम्भीरता है उसको छोड़के श्रीर को अपना मित्र न बनावें ॥ ३ ॥

अथ सभाध्यक्ष कैसा होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।

वीकोरिचिन्द्रो यो अमुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४॥

五



अथ इयमिच्छासतसर्वकायार्थस्य सूक्तस्याङ्गिरस कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता ।  
१ जगती, ३, ५ — ८ निचुञ्जगती छन्दः । निषाद स्वरः । २, ४, ६  
स्वरः अष्टिष्टुप्; १०, ११ निचुत् अष्टिष्टुप्छन्दः । चैवत स्वरः ॥  
अथ शाला आदि के अर्घ्यज को क्या-क्या स्वीकार कर कंसा होना चाहिए  
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है —

इमां ते धियं प्र भरे मद्भो महामस्य स्तोत्रे धिषणा यत् आनजे ।

तमुत्सवे च प्रसवे च सामिहिमिन्द्र देवासः शर्वसामदभानु ॥१॥

पदार्थ—हे सर्वविद्या देनेवाले शाला आदि के अधिपति ! ( यत् ) जो  
( ते, अस्य ) इन आप की ( धिषणा ) विद्या और उत्तम शिक्षा की हुई वाणी  
( अथवा ) सब लोगो ने चाही, प्रकट की और समझी है जिन ( ते ) आपके  
( इमान् ) हम ( अह ) बड़ी ( महीम् ) सरकार करने योग्य ( धिषन् ) बुद्धि को  
( स्तोत्रे ) प्रशमनीय व्यवहार में ( अर्घ्ये ) अर्पित वगे अर्थात् स्वीकार करे वा  
( उत्सवे ) उत्सव ( च ) और साधारण काम में वा ( प्रसवे ) पुत्र आदि के  
उत्पन्न होने और ( च ) गमी होने में जिन ( सामिहिम् ) अति अमान करने  
( इन्द्रम् ) विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले आप की ( देवासः ) विद्वान्  
जन ( शाला ) बल से ( अन्तु, अमन् ) आनन्द दिलाते वा आनन्दित होते हैं  
( तम् ) उन आप की मैं भी अनुमोदित करूँ ॥१॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि सब धार्मिक विद्वानों की विद्या, बुद्धियों  
और कामों की बारण और उन की स्तुति कर उत्तम-उत्तम व्यवहारों का सेवन करें ।  
जिन से विद्या और सुख मिलते हैं वे विद्वान् जन सब को सुख और दुःख के व्यवहारों  
में सरकारपुक्त करके ही सदा आनन्दित करें ॥१॥

अथ ईश्वर और अध्यापक के काम से क्या होता है यह विषय

अगले मन्त्र में कहा है—

अस्य अर्वा नद्यः सप्त विभ्रति यावासा मा पृथिवी दर्शतं वपुः ।

अस्मे सूर्याचन्द्रमसामिचक्षं अद्वे कर्मिन्द्र चरतो वितर्तुस् ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य के देनेवाले ! ( अस्य ) नि शेष  
विद्यायुक्त जगदीश्वर का वा समस्त विद्या पढ़ानेवाले आप लोगों का ( अथ ) सामर्थ्य  
वा अन्न और ( सप्त ) सात प्रकार की स्वादयुक्त जनवाली ( नद्यः ) नदी  
( वस्तुम् ) देखने और ( वितर्तुम् ) अनेक प्रकार के नौका आदि पदार्थों से तरने  
योग्य महानद में तरने के अर्थ ( कम् ) सुखकरनेवाले ( वपुः ) रूप को ( विभ्रति )  
बारण करती वा पोषण कराती तथा ( यावासा मा ) प्रकाश और भूमि मिलकर वा  
( वृषिकी ) अन्तरिक्ष ( सूर्याचन्द्रमसा ) सूर्य और चन्द्रमा आदि लोक धरते पुष्ट  
कराते हैं वे सब ( अस्मे ) हम लोगो के ( अविचक्षे ) मुख के सम्मुख रखने  
( अद्वे ) और अद्वा कराने के लिए प्रकाश और भूमि वा सूर्य चन्द्रमा दो-दो  
( अस्तः ) प्राप्त होने तथा अन्तरिक्ष प्राप्त होता और भी उक्त पदार्थ प्राप्त  
होते हैं ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में शेषालङ्कार है । परमेश्वर की रचना से पृथिवी  
आदि लोक और उनमें रहने वाले पदार्थ अपने-अपने रूप की बारण करके सब  
आश्रयों के देखने और अद्वा के लिए ही और सुख को उत्पन्न कर गमनागमन के  
निमित्त होत हैं । किसी प्रकार विद्या के बिना इन सामागिक पदार्थों से सुख नहीं  
होता, इस से सब को चाहिए कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के सग से  
जोकरसम्बन्धी विद्या का पाकर सदा सुखी होवें ॥२॥

फिर सेना का अधिपति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है —

सं स्मा रथं मघवन्मार्वा मातये जैत्रं यं तं अनुमदाम सक्रमे ।

आजा न इन्द्र मनसा पुरुषुत त्वायदभ्यो मघवञ्चर्म यच्छ नः ॥३॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) प्रशंसित और मान करने योग्य धनयुक्त ( इन्द्र )  
वर्येश्वर्य के देनेवाले सेना के अधिपति ! आप ( न ) हम लोगो के ( सातये )  
बहुत से धन की प्राप्ति होने के लिए ( जैत्रम् ) जिससे सप्राप्तो में जीते ( तम् )  
उस ( स्म ) अद्भुत अद्भुत गुणों को प्रकाशित करनेवाले ( रथम् )  
विमान आदि रथमूह को जुता के ( आजा ) जहाँ शत्रुओं से वीर जा-जा मिलें  
उस ( संगमे ) सग्राम में ( प्र, अथ ) पहुँचाओ अर्थात् अपने रथ को वहाँ ले जाओ,  
कौन रथ को ? कि ( यम् ) जिस ( ते ) आपके रथ को हम लोग ( अन्तु, महान् )  
पीछे से सराहें । हे ( पुरुषुत ) बहुत शूरवीर जनों से प्रशंसा को प्राप्त ( मघवन् )  
प्रशंसित धनयुक्त ! आप ( मनसा ) विशेष ज्ञान से ( त्वायदभ्यम् ) अपने को आप  
की चाहना करते हुए ( न. ) हम लोगो के लिए अद्भुत ( शर्म ) सुख को ( यच्छ )  
देवो ॥३॥

भाषार्थ—जब शूरवीर सेवकों के साथ सेनापति को सग्राम करने को जाना  
होता है तब परस्पर अर्थात् एक दूसरे का उत्साह बढ़ाकर, अच्छे प्रकार रक्षा शत्रुओं  
के साथ अच्छा युद्ध और उनकी हार द्वारा अपने जनों को आनन्द देकर शत्रुओं को  
भी किसी प्रकार सन्तोष दकर सदा अपना वर्त्ताव रखना चाहिए ॥३॥

फिर उसके साथ क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है —

अयं जयेम त्वया युजा व्रतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।

अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुग कुंघि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्या रुज ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के बल को विदीर्ण करनेवाले सेना आदि के  
अधीन ! तुम ( भरेभरे ) प्रत्येक सग्राम में ( अस्माकम् ) हम लोगो के ( वृत्तम् )

स्वीकार करने योग्य ( अंशम् ) सेवविभाग का ( अथ ) रक्षा, वाहो, जानो,  
प्राप्त होओ अपने में रमाओ, मांगो प्रकाशित करो उससे आनन्दित होने आदि  
क्रियाओं से स्वीकार करो वा भोजन, वस्त्र, धन, धान कोश की बाँटी तथा  
( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( वरिवः ) अपना सेवन ( वृत्तम् ) सुगम  
( कुंघि ) करो । हे ( मघवन् ) प्रशंसित बलवाले ! तुम ( वृष्या ) अस्त्र धरति  
वालों की शस्त्रबुद्धि के लिए हितरूप अपनी सेना से ( शत्रूणां ) शत्रुओं की  
सेनाओं को ( प्र, रुज ) अच्छी प्रकार काटो और ऐसे साधा ( रथ्या, युजा ) जो  
आप उनके साथ ( वयम् ) युद्ध करनेवाले हम लोग शत्रुओं के बलों को ( उत् वृत्तम् )  
उत्तम प्रकार से जीतें ॥४॥

भाषार्थ—राजपुरुष जब-जब युद्ध करने को प्रवृत्त होवें तब-तब धन, शस्त्र,  
धान, कोश, सेना आदि सामग्री को पूरी कर और प्रशंसित सेना के अधीन से रक्षा  
को प्राप्त करके प्रशंसित विचार और युक्ति से शत्रुओं के साथ युद्ध कर उनकी सेनाओं  
को सदा जीतें । ऐसे पुरुषार्थ के बिना किये किसी की जीत नहीं हो सकती । इससे  
इस वर्त्ताव को सदा बर्तें ॥४॥

फिर उनको परस्पर युद्ध में कंसे वर्तना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्सरवसा विपन्यवः ।

अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृत् मनस्तव ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ययायोग्य वीरों के रखनेवाले ! तुम ( धनानाम् )  
राज्य की विभूतियों के ( सातये ) अलग-अलग बाँटने के लिए ( स्म ) आनन्द ही  
के साथ जिसमें ( तव ) तुम्हारी ( मनः ) विचार करनेवाली चित्त की वृत्ति  
( निभृत् ) निरन्तर धरी हो उस ( अस्माकम् ) हमारे ( जैत्रम् ) जो बड़ा बड़  
जिससे शत्रु जीते जाएँ ( रथम् ) ऐसे विजय करानेवाले विमानादि धान ( हि )  
ही को ( आतिष्ठ ) अच्छे प्रकार स्वीकार कर स्थित हो । हे ( वरत् ) बारण  
करनेवाले ! तुम्हारी आज्ञा में अपना वर्त्ताव रखते हुए ( अथवा ) रक्षा आदि आपके  
गुणों के साथ वर्त्तमान ( जना ) अनेक प्रकार ( हवमानाः ) चाहें हुए ( विपन्यवः )  
विविध व्यवहारों में अतुर बुद्धिमान् ( जना. ) जन ( इमे ) ये प्रत्यक्षता से परीक्षा  
किये हम लोग ( स्मा ) तुम्हारे अनुकूल ( हि ) ही वर्त्ताव रखें ॥५॥

भाषार्थ—जब मनुष्य युद्ध आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होवें तब विरोध, ईर्ष्या  
हर् और आलस्य को छोड़ एक दूसरे की रक्षा में तत्पर हो शत्रुओं की जीत, और  
जीते हुए धनो को बाँटकर सेनापति आदि लड़ने वालों की योग्यता के अनुकूल उनके  
सत्कार के लिए बर्तें, जिससे लड़ने का उत्साह भागे भी बढे । सर्वथा न देना प्रश्रिय-  
कर, और देना प्रसन्नता करनेवाला होता है यह विचार कर सदा उन व्यवहार को  
बर्तें ॥५॥

फिर वह सेनापति कंसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मैकर्मच्छतमूर्तिः खजङ्गुरः ।

अकल्प इन्द्रः मतिमानमोजसाथा जना वि ह्यन्ते सिषासवः ॥६॥

पदार्थ—हे सभापति ! जिन आपकी ( गोजिता ) पृथिवी की जिताने-  
वाली ( बाहू ) अत्यन्त बल पराक्रमयुक्त भुजा ( अथ ) इसके अनन्तर जो आप  
( इन्द्र ) अनेक ऐश्वर्ययुक्त ( अोजसा ) बल से ( कर्मैकर्मम् ) प्रत्येक को  
काम में ( अमितक्रतुः ) अतुल बुद्धिवाले ( अकल्प ) और बड़े बड़े समथजनों से  
अधिक ( सिमः ) व्यवस्था से शत्रुओं के बाँधने और ( खजङ्गुरः ) सग्राम करने-  
वाले ( अतमूर्तिः ) जिनकी सैकड़ों रक्षा आदि क्रिया हैं ( प्रतिमानम् ) जिनको  
अत्यन्त सामर्थ्यवालों की उपमा दी जाती है उन आपको ( सिषासवः ) सेवन  
करने की इच्छा करनेवाले ( जना ) विद्वान्जन ( वि, ह्यन्ते ) चाहते हैं ॥६॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो सर्वथा समर्थ, प्रत्येक काम के करने  
को जानता औरों से न जीतने योग्य आप सबको जीतनेवाला, सबके चाहन योग्य  
और अनुगम मनुष्य हो उसको सेनाधिपति करके विजय आदि कामों को साथें ॥६॥

फिर वह कंसा और क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत्तं शतानमघवञ्च भूर्यस उत्सदसाद्रिग्वि कृष्टिषु अरवः ।

अमाश्रं र्मा धिषणां तित्विषे मक्षधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥७॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) अमरुशत ऐश्वर्य से युक्त सेनापति ! ( ते )  
आपका ( कृष्टिषु ) मनुष्यों में ( अथ. ) कीर्तन अवण वा धन ( शतान् )  
सैकड़ों से ( उत् ) ऊपर ( रिग्वि ) निकल गया ( सहस्रात् ) हजारों से ( उत् )  
ऊपर ( अ ) और ( भूर्यस. ) अधिक से भी ( उत् ) ऊपर अर्थात् अधिक निकल  
गया ( अथ ) इसके अनन्तर ( अमाश्रम् ) परिमाणरहित ( रवा ) आपकी ( मही )  
महा गुणयुक्त ( धिषणा ) विद्या और अच्छी शिक्षा को पाये हुई वाणी वा बुद्धि  
( तित्विषे ) प्रकाशित करती है । हे ( पुरन्दर ) शत्रुओं के पुरों के विदारनेवाले  
( वृत्राणि ) जैसे मेघ के अग अर्थात् बड़लों का सूर्य हनन करता है वैसे आप  
शत्रुओं को ( जिघ्नसे ) मारते हो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि  
जैसे सूर्य अथवा और मेघ आदि का हनन करके अपरिमित अर्थात् जिसका  
परिमाण न हो सके उस अपने तज को प्रकाशित करके सब तेज वाले पदार्थों से  
बड़के वर्त्तमान है वैसे विद्वान् को सभा का अधीन मानके शत्रुओं को जीतें ॥७॥

अथ ईश्वर और सभापति कंसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्रिविष्टिभातुं प्रतिमानमोजसस्तिष्ठो भूमीर्द्विपते त्रीणि रोचना ।

अतीदं विश्वं धुवनं वषसिथाशत्रिन्द्र अनुषां सनाबसि ॥८॥

पदार्थ—हे ( त्रुपते ) मनुष्यों के स्वामी ईश्वर वा राजन् ! ( इन्द्र ) बहुत ऐश्वर्य से युक्त ( अशत्रुः ) शत्रुहीन भाप ( त्रिविष्टिभातु ) जिस में तीन प्रकार की पृथिवी बल, तेज, पवन आकाश की व्याप्ति अर्थात् परिपूर्णता है उस संसार को ( प्रतिमानम् ) परिमाण वा उपमान जैसे हो बैसे ( सनात् ) सनातन कारण वा ( ओजसः ) बल वा ( अनुषा ) उरन्म किये हुए काम से ( तिष्ठः ) तीन प्रकार ( भूमीः ) अर्थात् नीचली ऊपरली और बीचली उत्तम, अधम और मध्यम भूमि तथा ( त्रीणि ) तीन प्रकार के ( रोचना ) प्रकाशयुक्त विद्या शब्द और सूर्य और न्याय करने बल और राज्यपालन आदि काम के तुम दोनों यथायोग्य निर्वाह करनेवाले ( वसि ) हो और उत्तम पञ्चभूतमय ( इन्द्रम् ) इस ( विश्वम् ) समस्त ( धुवनम् ) जिसमें कि प्राणी होते हैं उम जगत् के ( वसि वषसि ) अतीव निर्वाह करने की इच्छा करते हो इससे ईश्वर उपासना करने योग्य और विद्वान् भाप सत्कार करने योग्य हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जिसकी उपमा नहीं है जो ईश्वर कारण से सब कार्यरूप जगत् को रच और उस की रक्षाकर उस का संहार किया करता है वही इष्टदेव मानने योग्य है, तथा जो अनुल सामर्थ्ययुक्त सभापति प्रसिद्ध न्याय आदि गुणों से समस्त राज्य को सन्तुष्ट करता है वह भी सदा सत्कार करने योग्य है ॥ ८ ॥

अब सेना का अध्ययन कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूव पृतनासु सासहिः ।

सेमं नः कास्म्युपमनुसुद्धिदमिन्द्रः कृणोतु मसवे रथं पुरः ॥९॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जिस कारण ( त्वम् ) भाप ( पृतनासु ) अपनी वा काष्ठी की सेनापति में ( सासहिः ) अतीव सहनशील ( बभूव ) होते हैं इससे ( देवेषु ) विद्वानों में ( प्रथमम् ) पहले ( त्वाम् ) समग्र सेना के अधिपति तुमको ( हवामहे ) हम लोग स्वीकार करते हैं जो ( इन्द्र ) समस्त ऐश्वर्य के प्रकट करनेवाले भाप ( वसवे ) जिस में वीरजन बिलाये जाते हैं उस राज्य में ( उन्निवन्म ) पृथिवी का विदारण करके उत्पन्न होनेवाले काष्ठ विशेष से बनाये हुए ( रथम् ) विमान आदि रथ को ( पुरः ) भागे करते हैं ( सः ) वह भाप ( नः ) हम लोगों के लिए ( इन्द्रम् ) इस ( उपमनुसुम् ) समीप में मानने योग्य ( कास्म्यु ) किया कौशल काम के करनेवाले जन को ( कृणोतु ) प्रसिद्ध करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो उत्तम विद्वान् अपनी सेना के पालन और मनुष्यों के बल को विदारने में चतुर, शिल्पकार्यों को जाननेवाला, सर्वप्रिय तथा युद्ध में भागे रहकर अत्यन्त युद्ध करता है उसी को सेना का अधीश्वर मानें ॥ ९ ॥

फिर वह क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं जिगेथ न धनां कृगेधियामेवजा मघवन्महत्सु च ।

स्वामुग्रमवेसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥१०॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) परम सराहने योग्य धन आदि सामग्री लिये हुए ( इन्द्र ) शत्रुओं के विदारनेवाले सेनापति ! जो ( त्वम् ) भाप चतुरङ्ग अर्थात् चोतरफी नाकेबन्दी की सेना सहित ( मघेषु ) बड़े ( महत्सु ) बड़े ( च ) और अधम ( अजा ) सभामों में शत्रुओं को ( जिगेथ ) जीते हुए हो और उक्त सभामों में ( वना ) धन आदि पदार्थों को ( न ) न ( उरोचिच ) रोकते हो उन ( उग्रम् ) शत्रुओं के बल को विहीन करने में अत्यन्त बली ( त्वाम् ) भाप को ( अबसे ) रक्षा आदि के लिए स्वीकार करके हम लोग शत्रुओं को ( शिशीमसि ) अच्छे प्रकार निर्मूल नष्ट करते हैं ( अघ ) इस के अनन्तर धार भी ऐसा कीजिए कि ( हवनेषु ) प्रदूषण करने योग्य कामों में ( नः ) हम लोगों को ( बोधय ) प्रवृत्त कराइए ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य शत्रुओं और समय को पाकर धनो को जीतनेवाला, श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा करनेवाला और दुष्टों को छिन्न-भिन्न करनेवाला हो, वही सब को सेनापति का अधीश्वर मानना चाहिए ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विधाहेन्द्रो अभिवक्ता नो अस्त्वपंरिहृताः सनुयाम वाजम् ।

तसो मित्रो बरुगो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत योः ॥११॥

पदार्थ—( अपरिहृताः ) आजा को पाये हुए हम लोग जो ( विधाहा ) सब शत्रुओं को मारनेवाला ( इन्द्रः ) परमेश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष ( नः ) हम लोगों को ( अभिवक्ता ) यथावत् शिक्षा देनेवाला ( अस्तु ) हो उस के लिए ( वाजम् ) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न को ( सनुयाम ) देवें जिससे ( तत् ) उसको ( न ) हम लोगों के ( मित्र ) मित्रजन ( बरुगः ) उत्तम गुणयुक्त ( अदितिः ) समस्त विद्वान्, अन्तरिक्ष ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत ) और ( योः ) सूर्यलोक ( आम्हन्ताम् ) बढ़ावे ॥ ११ ॥

भाषार्थ—सब सेवकों की यह रीति हो कि जब उनका स्वामी जैसी आज्ञा करे उसी समय उस को बैसे ही करें और जो समय विद्या पढ़ा हो उसीसे उपदेश सुनने चाहिए ॥ ११ ॥

इस सूक्त में शाला आदि के अधिपति ईश्वर पढ़ानेवाले और सेनापति के बर्तन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ से एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकलौ बोवा सूक्त और पञ्चहर्षा बर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ अष्टोत्तरसततमस्याष्टर्षस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स्य ऋषिरिन्द्रो देवता ।

१, १, २, १ निबृत्तिष्वुपु; २, ४ विराट् निबृत्तुपु;

७, ८ निबृत्तुष्वुपु. । ब्रह्मत् स्वरः ॥

अथ एकलौ तीनवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से यह उपदेश है कि ईश्वर का कार्य अत्यन्त बड़ा है—

तथं इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।

समेदमन्यद्विष्यन्त्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥१॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो ( ते ) भाप वा जीव की सृष्टि में ( इन्द्रम् ) यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सामर्थ्य ( परमम् ) प्रबल, प्रति उत्तम ( इन्द्रियम् ) परम ऐश्वर्ययुक्त भाप और जीव का एक बिन्दु जिस को ( कवयः ) बुद्धिमान् विद्वान् जन ( पराचैः ) ऊपर के बिन्दुओं से सहित ( पुरा ) प्रथम ( आधारयन्त ) धारण करते हुए ( अमा ) सब को सहने वाली पृथिवी ( इन्द्रम् ) इस वर्तमान बिन्दु को धारण करती जो ( विधि ) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक में वर्तमान वा जो ( अन्त्यम् ) उस से निम्न कारण में वा ( अन्त्य ) इस संसार के बीच में है इसको ( ईम् ) जल धारण करता वा जो ( अन्त्यम् ) और विलक्षण न लेके कार्य में होता है ( तत् ) उस मन्त्र को ( समनेव ) जैसे युद्ध में सेना जुटे ऐसे ( केतुः ) विज्ञान देनेवाले होते हुए भाप वा जीव प्रकाशित करता यह सब इस जगत् में ( संपृच्यते ) सम्बन्ध होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! इस जगत् में जो-जो रचना विशेष युक्त अच्छी-अच्छी वस्तु वर्तमान है वह सब परमेश्वर की रचना से ही प्रसिद्ध है वह तुम जानो, क्योंकि ऐसा बिचित्र जगत् विधाता के बिना कभी बनना सम्भव नहीं इससे निश्चय है कि इस जगत् का रचनेवाला परमेश्वर है और जीव सम्बन्धी सृष्टि का रचनेवाला जीव है ॥ १ ॥

अब इस जगत् में परमेश्वर से बनाया हुआ यह सूर्य क्या काम करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

स धारयत् पृथिवीं पप्रयच्छ वज्रैश्च हत्वा निरपः संसर्ज ।

अहसहिमभिन्द्रौहिषं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( मघवा ) सूर्यलोक ( शचीभिः ) कामों से ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( धारयत् ) धारण करता अपने तेज ( च ) और बिजुली आदि को ( पप्रयत् ) फैलाता उस अपने तेज से सब जगत् को प्रकाशित करता ( वज्रैश्च ) अपने किरणसमूह से मेघ को ( हत्वा ) मारके ( अपः ) जलों को ( निः, सिसर्जं ) निरन्तर उत्पन्न करता फिर ( अहिम् ) मेघ को ( अहन् ) हनता ( रोहिणम् ) रोहिणी नक्षत्र में उरन्म हुए मेघ को ( अभिमत् ) विदारण करता ( व्यसम्, वि, अहन् ) केवल साधारण ही विदारता हो तो नहीं किन्तु कट जाय भूजा आदि जिसकी ऐसे अण्ड मुण्ड मुण्ड उहण्ड वीर के समान विशेष करके मेघों को हनता है ( स ) वह सूर्यलोक ईश्वर ने रचा है यह जानो ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को यह देखना चाहिए कि प्रसिद्ध जो सूर्यलोक है वह मेघों के विदारण, लोको के आकर्षण और प्रकाश आदि कामों से जल वर्षा द्वारा पृथिवी को धारण और अग्रकट अर्थात् अन्धकार से ढँपे हुए जो पदार्थों को प्रकाशित कर सब प्राणियों को व्यवहार में चलाता है वह परमात्मा के बनाये बिना कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता ॥ २ ॥

अब सेना आदि का अध्ययन कैसा हो यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

स जातुर्भर्मा अहधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्दि दासीः ।

विद्वान् वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्याय्य सहां वर्षया घुम्नमिन्द्र ॥३॥

पदार्थ—हे ( वज्रि ) प्रशंसित शस्त्रसमूह युक्त ( इन्द्र ) अच्छे-अच्छे पदार्थों के देनेवाले सेना आदि के स्वामी ! जो ( जातुर्भर्मा ) उत्पन्न हुए सांसारिक पदार्थों को धारण ( अहधानः ) और अच्छे कामों में प्रीति करनेवाले ( विद्वान् ) विद्वान् भाप ( अस्व ) इस दुष्ट जन की ( दासीः ) नष्ट होनेवाली दासी प्रधान ( पुरः ) नगरियों को ( वस्ये ) दुष्ट काम करते हुए जन के लिए ( विभिन्दन् ) विनाश करते हुए ( चरत् ) विचरते हो ( सः ) वह भाप श्रेष्ठ सज्जनों के लिए ( हेतिम् ) सुख के बढ़ाने वाले वज्र को ( आय्यम् ) श्रेष्ठ वा प्रति श्रेष्ठों के इस ( सह ) बल ( घुम्नम् ) धन ( ओज ) और पराक्रम को ( वर्षय ) बढ़ाया करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य समस्त डाकू, चोर, लबाड, लम्पट लड़ाई करनेवालों का विनाश और श्रेष्ठों को हर्षित कर शारीरिक तथा आत्मिक बल का सम्पादन कर धन आदि पदार्थों से सुख को बढ़ाना है वही सब का अर्द्ध करने योग्य है ॥ ३ ॥

तद्वृषे मानुषेमा युगानि कीर्त्तन्य मघाव नाम विभ्रत ।

उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यदं सुतुः श्रवसे नाम दधे ॥४॥

पदार्थ—जो ( मघवा ) बहुत बनोवाला ( सुतुः ) वीर का पुत्र ( वज्री ) प्रशंसित शस्त्र-अस्त्र बाँधे हुए सेनापति जैसे सूर्य प्रकाशयुक्त है वैसे प्रकाशित होकर ( ऊर्ध्वे ) ऊपर की योग्यता के लिए वा ( वस्युहत्याय ) जिसके लिए डाकूओं को हनन किया जाय उस ( अबसे ) जन के लिए ( इमा ) इन ( मानुषा ) मनुष्यों में होनेवाले ( युगानि ) वर्षों को तथा ( कीर्त्तन्यम् ) कीर्त्तनीय ( नाम ) प्रसिद्ध और जल को ( विभ्रत् ) धारण करता हुआ ( उपप्रयन् ) उत्तम महारथा के समीप जाता हुआ ( वत् ) जिस ( नाम ) प्रसिद्ध काम को ( दधे ) धारण

करता है ( तत् ) उस उत्तम काम को ( ह ) निश्चय से हम लोग भी धारण करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है। जैसे सूर्य काल के अवयव अर्थात् संवत्सर, महीना, दिन, रात्री आदि और जल को धारण कर सब प्राणियों के सुख के लिए अम्बकार का विनाश करके सब को सुख देता है वैसे ही सेनापति सुखपूर्वक संवत्सर और कौति को धारण करके शत्रुओं के विनाश द्वारा सब के लिए धन उत्पन्न करे ॥ ४ ॥

मनुष्यों को उससे कौन-कौन काम धारण करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य वचन वीर्योय ।

स गा अविन्दत्सो अविन्ददधान् स ओषधीः सो अपः स बनानि ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सः ) वह सेनापति सूर्य के तुल्य ( गा. ) भूमियों को ( अविन्दत् ) प्राप्त होता ( स. ) वह ( अविन्ददधान् ) बड़े पदार्थों को ( अविन्दत् ) प्राप्त होता ( स. ) वह ( ओषधीः ) ओषधियों अर्थात् गेहूँ, उड़द, मूग, चना आदि को प्राप्त होता ( सः ) वह ( अपः ) सूर्य जलों को जैसे जैसे कर्मों को प्राप्त होता ( स ) तथा वह सूर्य ( बनानि ) किरणों को जैसे जैसे जगलों को प्राप्त होता है ( वचन ) इस ( इन्द्रस्य ) सेना बल युक्त सेनापति के ( तत् ) उस कर्म की वा ( इन्द्रम् ) इस ( भूरि ) बहुत ( पुष्टम् ) बड़ा ( अत् ) सत्य के धारण को तुम ( वचनम् ) देखो और ( वीर्योय ) बल होने के लिए ( वचनम् ) धारण करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जो श्रेष्ठ जनों के सत्य धारण से प्राप्त है उसी को धारण करें। उसके बिना सत्य और सब पदार्थों का लाभ नहीं होता ॥ ५ ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

भूरिकर्मणे वृषभाय वृषणे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।

य आदस्या परिपन्थीष शूरोऽयं जवनो विभज्येति वेदः ॥६॥

पदार्थ—हम लोग ( यः ) जो ( शूरा ) निम्न शूरवीर पुरुष ( आदस्य ) आदर-सत्कार कर ( परिपन्थीष ) जैसे सब प्रकार से मार्ग में चले हुए बाकू दूसरे का धन आदि सर्वस्व हर लेते हैं वैसे चोरों के प्राण और उनके पदार्थों को छीन-छान हर लेवे वह ( विभज्येति ) विभाग अर्थात् श्रेष्ठ और दुष्ट पुरुषों को भलग-भलग करता हुआ उनमें से ( अयं जवनः ) जो यज्ञ नहीं करते उनके ( वेदः ) धन को ( एति ) छीन लेता उस ( भूरिकर्मणे ) भारी काम के करनेवाले ( वृषभाय ) श्रेष्ठ ( वृषणे ) सुख पहुँचानेवाले ( सत्यशुष्माय ) नित्य बली सेनापति के लिए जैसे ( सोमम् ) ऐश्वर्य्य समूह को ( सुनवाम ) उत्पन्न करें वैसे तुम भी करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है। मनुष्यों का चाहिए कि जो बाकू के समान डीठ व साहसी चोरों के धन आदि पदार्थों को हर, सज्जनों का आदर कर पुरुषार्थी बलवान् उत्तम-से-उत्तम हो उसी को सेनापति करें ॥ ६ ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

तदिन्द्र प्रेवं वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रणाबोधयोऽहिम् ।

अनु त्वा परनीहिषितं वयं विरवं देवांसो अमदन्तु त्वा ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेनापति ! आप ( ससन्तम् ) सोते हुए वा चिन्ता-रहित ( अहिम् ) सूर्य वा शत्रु को ( यत् ) जो ( वज्रणे ) तीक्ष्ण शस्त्र से ( अवीर्यः ) सभेत् कराते हो ( तत् ) सो ( वीर्यम् ) अपने को ( प्रेवं ) प्रकट-सा ( चकर्थ ) करते हो ( अनु ) उसके पीछे ( वृषितम् ) उत्पन्न हुआ है आनन्द जिन को उन ( त्वा ) आपकी ( वस्ती ) आपकी स्त्रीजन और ( वयः ) जानवान् ( विरवं ) समस्त ( देवास्य ) विद्वान् जन भी ( त्वा ) आपकी ( अमदन्तु ) अनुकूलता से प्रसन्न करते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है। बलवान् सेनापति द्वारा दुष्ट जीव तथा दुष्ट शत्रुजन मारे जाते हैं ॥ ७ ॥

शुष्मां पिमं कुयवं वृषमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेनापति ( यदा ) जब सूर्य ( शुष्मम् ) बलवान् ( कुयवम् ) जिससे कि यवादि होते और ( पिमम् ) जल आदि पदार्थों को परिपूर्ण करता उस ( वृषम् ) मेघ वा ( शम्बरस्य ) अत्यन्त बर्धनेवाले बलवान् मेघ की ( पुरः ) पूरी-भरी बटा और वृषमिन्द्र की हनता है वैसे शत्रुओं की नगरियों को ( मि, अवीर्यः ) मारते हो ( तत् ) तब ( मित्र ) मित्र ( वरुणः ) उत्तम गुणयुक्त ( अदितिः ) अन्तरिक्ष ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत ) और ( यौः ) सूर्यलोक ( नः ) हम लोगों के ( मामहन्ताम् ) सरकार कराने के हेतु होते हैं ।

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है। मनुष्यों को चाहिए कि सूर्य के गुणों की उपमा के अनुसार अपने अपने गुणों द्वारा सेवकाधिकों और पृथिवी आदि जोको से उपकारों को ले और शत्रुओं का मारकर निरन्तर सुखी हो ॥ ८ ॥

इस सूक्त में ईश्वर, सूर्य और सेनापति के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥ यह एकसौ तीनों सूक्त और सत्तरहवीं वर्ष समाप्त हुआ ॥

५१

अथास्य नवर्चस्य चतुरधिकशतसमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः, २, ४, ५ स्वराद पङ्क्तिः, ६ भुरिक् पङ्क्तिः, ७ पञ्चमः स्वराः । ३, ७ अष्टपङ्क्तिः, ८, ९ निष्पत्तिः, १० अष्टपङ्क्तिः । अष्टपङ्क्तिः स्वराः ॥

अब अब कहा जाने एकसौ बार सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर सभापति क्या करे यह उपदेश कहा है—

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वी ।

विमुच्या वयोंऽज्ञसायाश्चान्दोपा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) न्यायाधीश ! ( ते ) आपके ( निषदे ) बैठने के लिए ( योनिः ) जो राज्य सिंहासन हम लोगों ने ( अकारि ) किया है ( तम् ) उस पर आप ( या निषीद ) बैठो और ( स्वानः ) हिनहिनाते हुए ( अर्वा ) चोड़े के ( न ) समान ( प्रपित्वे ) पहुँचने योग्य स्थान में किसी समय पर जाना चाहते हुए आप ( वयः ) पक्षी वा अवस्था की ( अवसाय ) रक्षा आदि व्यवहार के लिए ( अज्ञसायाः ) दौड़ते हुए चोड़ों को ( विमुच्या ) छोड़के ( होवा ) राजा वा ( वस्तो ) दिन में ( वहीयसः ) आकाश मार्ग से बहुत शीघ्र पहुँचानेवाले अग्नि आदि पदार्थों को जोओ अर्थात् विमानादि रथों को अग्नि, जल आदि की कलाओं से युक्त करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है। न्यायाधीशों को चाहिए कि न्यायासन पर बैठके चालू प्रसिद्ध वादों से अर्थात्, प्रत्यर्थात् अर्थात् वादी और प्रतिवादी को अच्छी प्रकार समझकर प्रतिदिन यथोचित न्याय करके उन सबको प्रसन्न कर सुखी करें। अत्यन्त परिश्रम से प्रायु की अवस्था हानि होती है, इस को विचार कर बहुत शीघ्र जाने-माने के लिए क्रियाकौशल से अग्नि आदि के प्रयोग द्वारा विमान आदि यानों को अवश्य रचें ॥ १ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ओ त्वे नर इन्द्रमृतये गुर्न चिन्तान्तस्यो अर्ध्वनो जगम्यात् ।

देवांसो मनुं दासस्य अजन्ते न आ वक्षन्सुविताय वर्णम् ॥२॥

पदार्थ—( त्वे ) जो ( नरः ) सज्जन ( मृतये ) रक्षा के लिए ( इन्द्रम् ) सभा सेना आदि के अधीश के ( सद्यः ) शीघ्र ( ओ, गु. ) सम्मुख प्राप्त होते हैं ( ताम् ) उन को ( चिन्त ) भी यह सभापति ( अर्ध्वनः ) श्रेष्ठ मार्गों को ( जगम्यात् ) निरन्तर पहुँचावे । तथा जो ( देवासः ) विद्वान् जन ( दासस्य ) अपने सेवक के ( मनुम् ) क्रोध को ( इक्षन्म् ) निवृत्त करें ( ते ) वे ( नः ) हम लोगों की ( सुविताय ) प्रेरणा को प्राप्त हुए दास के लिए ( वर्णम् ) प्राज्ञ पालन करने को ( नु ) शीघ्र ( आ, वक्षन् ) पहुँचावे ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो प्रजा वा सेना के जन सत्य की रक्षा के लिए सभा आदि के अधीशों की शरण को प्राप्त हों उन की वे यथावत् रक्षा करें। जो विद्वान् लोग वेद और उत्तम शिक्षाओं से मनुष्यों के क्रोध आदि दोषों को निवृत्त कर शान्ति आदि गुणों का सेवन करावें वे सब को सेवन करने के योग्य हैं ॥ २ ॥

अब राजा और प्रजा परस्पर कैसे बनें यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है—

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।

क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्याता प्रवणो शिफायाः ॥३॥

पदार्थ—( केतवेदा ) जिसने धन जान लिया है वह राजपुरुष ( त्मना ) अपने से प्रजा के धन को ( अव, भरते ) अपना कर धर लेता है अर्थात् धन्याय से ले लेता है और जो प्रजापुरुष ( त्मना ) अपने से ( केनम् ) व्याज पर व्याज ले लेकर बढ़ाये हुए वा और प्रकार धन्याय से बढ़ाये हुए राजधन को ( अव भरते ) अपने से लेता है वे दोनों ( क्षीरेण ) जल से पूरे भरे हुए ( उदन् ) जलाशय अर्थात् नद-अधियों में ( स्नात ) नहाते हैं उससे ऊपर से कुछ होते भी जैसे ( कुयवस्य ) बर्ष और अर्धर्ष से मिले जिसके व्यवहार हैं उस पुरुष की ( योषे ) अगले-पिछले विवाह की परस्पर विरोध करती हुई स्त्रियाँ ( शिफायाः ) अति काट करती हुई नदी के ( प्रवणो ) प्रबल बहाव में गिर कर ( हते ) नष्ट ( स्याताम् ) हों वैसे ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो प्रजा का विरोधी राजपुरुष वा राजा के विरोधी प्रजापुरुष हैं वे दोनों निश्चय ही सुखोन्मत्त नहीं कर सकते हैं और जो राजपुरुष पक्षपात से अपने प्रयोजन के लिए प्रजापुरुषों को पीड़ा देके धन इकट्ठा करता तथा जो प्रजापुरुष चोरी वा कपट आदि से राजधन का नाश करता है, वे दोनों जैसे एक पुरुष की ही पानी परस्पर कलह करके क्रोध से नदी के बीच गिर के मर जाती हैं वैसे ही—शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इससे राजपुरुष प्रजा के साथ और प्रजापुरुष राजा के साथ विरोध छोड़के परस्पर सहायकारी होकर सदा अपना वर्तन रक्खें ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे वर्तन करें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—



युयाय नाभिस्वरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरस्ते गच्छि शूरः ।

अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पर्यो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥४॥

पदार्थ—जब ( शूरः ) निम्न शत्रुओं का मारनेवाला शूरवीर ( प्र, पूर्वाभिः ) प्रजाजनों के साथ ( तिस्ते ) राज्य का यथावत् न्याय कर पार होता और ( राछि ) उस राज्य में प्रकाशित होता है तब ( आयोः ) प्राप्त होने योग्य ( अयस्व ) मेघ की ( नाभिः ) अन्धकारों और से घुमड़ी हुई बादलों की वन ( युयोप ) सब को मोहित करती है अर्थात् राजधर्म से प्रजासुख के लिए जलवर्षा भी होती है वह थोड़ी नहीं किन्तु ( अञ्जसी ) प्रसिद्ध ( कुलिशी ) जो सूर्य के किरण-रूपी वज्र से सब प्रकार रही हुई अर्थात् सूर्य के विकट आतप से सूखने से बची हुई ( वीरपत्नी ) बड़ी-बड़ी नदी जिन से बड़ा वीर समुद्र ही है वे ( पर्यः ) जल को ( हिन्वानाः ) हिडोलती हुई ( उदभिः ) जलो से ( भरन्ते ) भर जाती हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—अच्छे राज्य से प्रजा में सब सुख होते हैं और बिना अच्छे राज्य के कुछ और दुःख का विषय उपद्रव होते हैं । इससे वीर पुरुषों को चाहिए कि रीति से राज्य पालन करें ॥४॥

प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।

अथ स्मा नो मघवञ्छुतादिन्मा नो मघेव निष्पपी परा दाः ॥५॥

पदार्थ—समा आदि के स्वामी ने ( यत् ) जो ( नीथा ) न्याय रखा को पहुँचाई हुई प्रजा ( दस्योः ) पराया वन हलनेवाले बाकू के ( ओकः ) घर के ( न ) समान पानी-सी ( अर्वाक्ष ) देव पड़ती है ( स्या ) वह ( अच्छा ) अच्छा ( जानती ) जानती हुई ( सधम् ) घर को ( प्रति, गात् ) प्राप्त होती अर्थात् घर को लौट जाती है । हे ( मघवन् ) समा आदि के स्वामी ! ( निष्पपी ) स्त्री के साथ निरन्तर लगे रहनेवाले तू ( न ) हम लोगों को ( मघेव ) जैसे भनो को जैसे ( मा, परा, दाः ) मत बिगाड़ ( अथ ) इस के अनन्तर ( नः ) हम लोगों के ( अहंतात् ) निरन्तर करने योग्य काम से ( इत् ) ही विरुद्ध व्यवहार मत ( हम ) दिखावे ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अच्छा, दूढ़, सुरक्षित घर चोरी या झोत, गर्मी और वर्षा से अनुपम और वन आदि पदार्थों की रक्षा करता है वैसे ही समापति राजाओं द्वारा अच्छी पाली हुई प्रजा इन को पालती है । जैसे कामीजन अपने शरीर, धर्म, विद्या और अच्छे आचरण को बिगाड़ता, और जैसे पाये हुए बहुत धनो को अनुपम ईर्ष्या और अभिमान से अन्यायो में फँस कर बहात है वैसे उक्त राजाजन प्रजा का विनाश न करे किन्तु प्रजा के किये हुए निरन्तर उपकारों को जानकर अभिमान छोड़ और प्रेम बढ़ाकर इन्हे सदा पालें, और दुष्ट शत्रुजनों से शत्रु के पलायन न करें ॥५॥

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सोऽअप्स्वनागास्त्व आ भञ्ज जीवशंसे ।

मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत्सोऽन्द्रियाय ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) मभा के स्वामी जिन ( ते ) आपके ( महते ) बहुत और प्रशंसा करने योग्य ( इन्द्रियाय ) धन के लिए ( नः ) हम लोगों का ( अश्रितम् ) अज्ञाभाव है ( सः ) वह ( त्वम् ) आप ( नः ) हम लोगों के ( भुजम् ) भोग करने योग्य प्रजा को ( अन्तराम् ) बीच में ( मा ) मत ( आरोरिष ) दिखाइए मत मारिए और ( सः ) सो आप ( सूर्ये ) सूर्य, प्राण ( अणु ) जल ( अनागास्वे ) और निष्पाप में तथा ( जीवशंसे ) जिस में जीवों की प्रशंसा स्तुति हो उस व्यवहार में उपमा को ( आ, भञ्ज ) अच्छे प्रकार भजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—समापतियों द्वारा जो प्रजाजन अज्ञा से राज्य व्यवहार की सिद्धि के लिए बहुत धन देवों के कभी मारने योग्य नहीं, और जो बाकू वा चोर हैं वे सबैव साहसा देने योग्य हैं । जो समापति के अधिकार को पावे वह सूर्य के तुल्य न्यायविद्या का प्रकाश, जल के समान शान्ति और तुष्टि कर, अन्याय और अपराध का त्याग और प्रजा के प्रशंसा करने योग्य व्यवहार का सेवन कर राज्य को प्रसन्न करे ॥ ६ ॥

किर इन दोनों को परस्पर कौती प्रतिष्ठा करनी चाहिए

यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

अथा मन्ये अस्मै अथायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।

मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्व्यो वयं आसुति दाः ॥७॥

पदार्थ—हे ( पुरुहूत ) अनेकों से सत्कार पाये हुए ( इन्द्र ) परमेश्वर्य देने और शत्रुओं का नाश करनेवाले समापति ! ( वृषा ) अति सुख वधनेवाले आप ( अकृते ) विला किये बिचारे ( योना ) निमित्त में ( मा ) हम लोगों के ( वयः ) पत्नीष्ट अन्न और ( आसुतिम् ) सन्तान को ( मा, दाः ) मत छिन्न भिन्न करो और ( क्षुध्यद्व्यः ) भूखों के लिए अन्न-जल आदि ( अथायिः ) वरो हम लोगों को ( महते ) बहुत प्रकार के ( धनाय ) धन के लिए ( चोदस्व ) प्रेरणा कर ( अथ ) इस के अनन्तर ( अस्मै ) इस उक्त काम के लिए ( ते ) तेरी ( अत् ) यह अज्ञा वा सत्य आचरण में ( अन्ते ) मानता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—न्यायाधीश आदि राजपुरुषों को चाहिए कि जिन्होंने अपराध न किया हो उन प्रजाजनों को कभी ताड़ना न करें । सदा इनसे राज्य कर लेवें, तथा इन की अच्छी प्रकार पाल और उल्लस कर विद्या और पुण्यार्थ के बीच प्रवृत्त कराकर आनन्दित करावें । समापति आदि के इस सत्य काम को प्रजाजनों को सबैव मानना चाहिए ॥ ७ ॥

मा नो वषीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मौषीः ।

आण्डा मा नो मघवञ्छुक्त निभेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुवाणि ॥८॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) प्रशंसित वनयुक्त ( शाक ) सब व्यवहार के करने को समय ( इन्द्र ) शत्रुओं को विनाश करने वाले समा के स्वामी आप ( मा ) हम प्रजासुख मनुष्यों को ( मा, वषीः ) मत मारिए ( मा, परा, दाः ) अन्याय से दुष्ट मत कीजिए स्वाभाविक काम और ( नः ) हम लोगों के ( सहजानुवाणि ) जो जन्म से सिद्ध उन के बलमान ( प्रिया ) प्यारे ( भोजनानि ) भोजन पदार्थों को ( मा, प्र, मौषीः ) मत चोरिए ( नः ) हमारे ( आण्डा ) अच्छे के समान जो गर्भ में स्थित हैं उन प्राणियों को ( मा, निभेत् ) विदीर्ण मत कीजिए ( नः ) हम लोगों के ( पात्रा ) सोने-चांदी के पात्रों को ( मा, भेत् ) मत बिगाड़िए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे समापति ! तू अन्याय से किसी को न मारके किसी भी आधिक सज्जन से विमुख न होकर चोरी-चकारी आदि दोषरहित होकर-जैसे परमेश्वर दया का प्रकाश करता है वैसे ही अपने राज्य के काम करने में प्रवृत्त हो । ऐसे बर्तव्य के बिना प्रजा राजा से समुष्ट नहीं हो पाती ॥ ८ ॥

किर प्रजा को इस समापति के साथ क्या प्रतिष्ठा करनी चाहिए—

अर्वाक्षेहि सोमकामं त्वाहुर्यं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि ह्यमानः ॥९॥१०॥

पदार्थ—हे समापति ! ( स्वा ) आप को ( सोमकामम् ) कूटे हुए पदार्थों के रस की कामना करनेवाला ( आहुः ) बतलाते हैं, इससे आप ( अर्वाक्षः ) अन्तरङ्ग व्यवहार में ( मा, इहि ) आधो ( अयम् ) यह जो ( सुत ) निकाला हुआ पदार्थों का रस है ( तस्य ) उस को ( मदाय ) हर्ष के लिए ( पिबा ) पिबो ( उरुव्यचाः ) जिसका बहुत और अनेक प्रकार का पूजन सत्कार है वह आप ( जठरे ) जिस से सब व्यवहार होते हैं उस पेट में ( आ, वृषस्व ) आसेवन कर अर्थात् उक्त पदार्थ को अच्छी प्रकार पीओ तथा हम लोगों से ( ह्यमान ) प्रार्थना किये जाने पर ( पितेव ) जैसे प्रेम करता हुआ पिता पुत्र की सुनता है वैसे ( नः ) हमारी ( शृणुहि ) सुनिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—प्रजाजनों को चाहिए कि समापति आदि राजपुरुषों को ज्ञान-पान-वस्त्र, धन, धान और भौडी-मीठी बातों से सदा आनन्दित बनाएँ और राजपुरुषों को चाहिए कि प्रजाजनों को पुत्र के समान निरन्तर पालें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में समापति राजा और प्रजा के करने योग्य व्यवहार के बर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ समति जाननी चाहिए ॥

यह एकती बार सूक्त और उन्नीसवीं वर्ण पूरा हुआ ॥

ॐ

अथैकोनविंशत्युक्तस्य पञ्चाधिकशततमस्य सूक्तस्याप्यश्रित आचिरागिरसः कुत्सो

वा । विष्टेदेवा देवताः । १, २, १२, १६, १७, निचुत्पक्षितः, ३, ४,

६, ६, १५, १८, विराट्पक्षितः, ८, १०, स्वराट्पक्षितः,

११, १४, पक्षितः। पञ्चमः स्वरः । ५ निचुत्पक्षितः,

७ भुरिबृहती, १३ महाबृहती क्षवः । मध्यमः स्वरः ।

१६ निचुत्पक्षितः क्षवः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ एकती पञ्चमे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से

अन्त्रलोक कौता है इस विषय को कहा है—

चन्द्रमा अप्सन्तरा सुपणो धावते दिवि ।

न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो विषं मे अस्य रौदसी ॥१॥

पदार्थ—हे ( रौदसी ) सूर्य वा भूमि के तुल्य राजा और प्रजा जनसमूह ( मे ) मुक्त पदार्थ बिद्या जाननेवाले की उत्तेजना से जो ( अणु ) प्राणरूपी पवनों के ( अन्तः ) बीच ( सुपणः ) अच्छा गमन करने वा ( अन्त्रमा ) आनन्द देनेवाला अन्त्रलोक ( दिवि ) सूर्य के प्रकाश में ( आ, धावते ) अति शीघ्र द्रुतता है और ( हिरण्यनेमयः ) जिनको सुवर्णरूपी अमक-दमक है वे ( विद्युतः ) बिजुली ( नः ) तुम लोगों की ( पदम् ) विचारवाली शिल्प चतुराई को ( न ) नहीं ( विन्दन्ति ) पाती हैं अर्थात् तुम उनको यथोचित काम में नहीं लाते हो ( अस्य ) इस पूर्वोक्त विषय को तुम ( विस्म ) जानो ॥१॥

भाषार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुषों, अन्त्रमा की छाया और अन्तरिक्ष के जल के संयोग से भीतलता का जो प्रकाश है उसको जानो, तथा जो बिजुली दमकती है वे आकाश से देखने योग्य हैं और जो विलाय जाती है उनका चिह्न भी आँख से देखा नहीं जा सकता । इस सब को जानकर सुख का सम्पादन करो ॥१॥

किर वे राजा और प्रजा कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अर्धमिद्रा उ अर्धिन आ जाया युवते पतिम् ।

तुज्जाते वृध्ययं पर्यः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रौदसी ॥२॥

पदार्थ—जैसे ( अर्धिन ) प्रशंसित प्रयोजनवाले जन ( अर्धम् ) जो प्राप्त होता है उसको ( उ ) ही ( वित्तम् ) पति का ( जाया ) सम्बन्ध करनेवाली स्त्री के सजाव ( आ, युवते ) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हैं ( उ ) या तो जैसे राजा

प्रजा जिस (ब्रह्मण्य) श्रेष्ठों में उत्तम (पयः) धर्म (इत्) धीर (रसम्) स्वादिष्ठ भोगधियों से निकाले रस को (परिचाय) सब धीर से लेके पुत्रों को (बुद्ध्याते) दूर करते हैं वैसे उस-उसको में भी (बुद्धे) बढ़ाऊँ। शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है। वैसे स्त्री अपनी इच्छा के अनुकूल पति को वा पति अपनी इच्छा के अनुकूल स्त्री को वाकर परस्पर प्रानन्दित करते हैं वैसे प्रयोजन सिद्ध कराने में तत्पर बिजुली, पृथिवी और सूर्य प्रकाश की बिद्या के ग्रहण से पदार्थों को प्राप्त होकर सदा सुख देती है। इस बिद्या को जाननेवालों के संग के बिना, इस बिद्या का ज्ञान कठिन है, धीर दुःख का विनाश भी अशक्य प्रकार नहीं हो सकता। इससे सबको चाहिए कि इस बिद्या को यत्न से लेवे ॥२॥

इस जगत् में विद्वान् जन कैसे पुछने के योग्य हैं यह अगले मन्त्र से उपदेश किया है—

यो बुद्धेवा अदः स्वरुष पादि दिवस्परि।

मा सोम्यस्य शंसुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रौदसी ॥३॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! तुम लोगों से (दिवः) सूर्य के प्रकाश से (परि) ऊपर (अदः) वह प्राप्त होनेवाला (स्वरुषः) सुख (कदा, चन) कभी (मा, अयं, पादि) उत्पन्न नहीं हुआ है। हम लोग (सोम्यस्य) ऐश्वर्य के योग्य (शंसुवः) सुखकारक व्यवहार की (शु, शूने) सुन्दर उन्नति में विरुद्ध भाव से चलनेवाले कभी (मा, भूम) मत होवें, शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि इस संसार में धर्म और सुख से विरुद्ध काम न करें और पुत्रार्थ से निरन्तर सुख की उन्नति करें ॥३॥

फिर पुछने और समाधान देनेवालों को परस्पर कैसे बर्ताव रखकर बिद्या की वृद्धि करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि बौचबि।

कथं ऋतं पुर्वं गतं कस्तद्विभर्त्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रौदसी ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! मैं आपके प्रति जिस (अवमम्) रक्षा प्रादि करने वाले उत्तम वा निष्कण्ट (अवमम्) समस्त बिद्या से परिपूर्ण (पृच्छाम्य) पूर्वजों द्वारा सिद्ध किया (अवमम्) सत्य मार्ग वा उत्तम जल स्थान (कथं) कहा (गतम्) गया (कः) धीर कौन (नूतन) नवीनजन (तत्) उसको (विभर्त्ति) कारण करता है इसको (पृच्छामि) पूछना है (स) सो (इत) इधर-उधर से बात-चीत वा पदार्थों को जानते हुए आप (तत्) उस सब विषय को (विबोचति) विवेक कर कहो। शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना ॥४॥

भावार्थ—विद्या को चाहनेवाले बह्वाचारियों को चाहिए कि विद्वानों के समीप जाकर उनके प्रकार के प्रश्नों को करके और उनसे उत्तर पाकर विद्या को बढ़ावें। धीर है पढ़ानेवाले विद्वानो ! तुम कहो 'स्वागतम्' मामो धीर हम से इस संसार के पदार्थों की बिद्या को सब प्रकार से जानकर धीरों को पढ़ाकर सत्य धीर असत्य को यथार्थभाव से समझाओ ॥४॥

फिर ये परस्पर कैसे क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अमी ये देवाः स्थनं त्रिष्या रौचने दिवः।

कदं ऋतं कदन्तं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रौदसी ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम (दिवः) प्रकाश करनेवाले सूर्य के (रौचने) प्रकाश में (त्रिष्य) तीन अर्थात् नाम, स्थान और जन्म में (अमी) प्रकट और अप्रकट (ये) जो (देवाः) दिव्य गुणवाले पृथिवी प्रादि लोक (मा) चारो ओर (स्थनं) हैं (क्व) इनके बीच (अहन्तम्) सत्य कारण (कत्) कहा और (अहन्तम्) कार्यरूप (क्व) कहा और (क्व) उनके (प्रत्ना) पुराने पदार्थ तथा उनका (आहुतिः) होम अर्थात् विनाश (क्व) कहा होता है इन सब प्रश्नों के उत्तर कहो। शेष मन्त्र का अर्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिए ॥५॥

भावार्थ—प्रश्न—जब सब लोकों की आहुति अर्थात् प्रलय होता है तब कार्यकारण और जीव कहां ठहरते हैं ? इस का उत्तर—सर्वव्यापी ईश्वर और आकाश में कारणरूप से सब जगत् और अच्छी गाढ़ी नींव में सोते हुए के समान जीव रहते हैं। एक-एक सूर्य के प्रकाश और आकर्षण के विषय में जितने-जितने लोक हैं उतने-उतने सब ईश्वर ने बनाये, धारण किये तथा इनकी व्यवस्था की है यह जानना चाहिए ॥५॥

फिर इनको परस्पर क्या-क्या पूछना और समाधान करना चाहिए

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

कदं ऋतस्य धर्षसि कदंरुणस्य चक्षणम्।

कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रौदसी ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (क्व) इन स्थूल पदार्थों के (अहन्तम्) सत्य कारण का (धर्षसि) धारण करनेवाला (कत्) कहा है (वक्षणम्) जल प्रादि कार्यरूप पदार्थों का (वक्षणम्) देखना (कत्) कहा है तथा (मह) महान् (धर्षणम्) सूर्यलोक का जो (वक्ष्य) अति गम्भीर दुःख से ध्यान य धाने योग्य व्यवहार है उस को (कत्) किस (पथा) मार्ग से हम (अति, क्रामेम) पार हों अर्थात् उस विद्या से परिपूर्ण हों। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥६॥

भावार्थ—विद्या को चाहनेवाले पुरुषों को चाहिए कि विद्वानों के समीप जाकर कार्य धीर कारण की बिद्या के मार्ग विषयक प्रश्नों को कर, उनसे उत्तर पाकर, क्रियाकुशलता से कामों को सिद्ध करके, दुःख का नाश कर, सुख पावें ॥६॥

अब विद्वान् जन इनके उत्तर ऐसे देंगे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अहं सो अस्मि यः पुग सुते वदामि कानि चित्।

त मा व्यन्त्याधोऽहं न तृणजं मृगं वित्तं मे अस्य रौदसी ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अहम्) संसार का उत्पन्न करनेवाला (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (कानि, चित्) किन्हीं व्यवहारों को (पुग) सृष्टि के पूर्व वा विद्वान् में उत्पन्न हुए संसार में किन्हीं व्यवहारों को बिद्या की उत्पत्ति से पहले (वदामि) कहता हूँ (सः) वह मैं सेवन करने योग्य (अस्मि) हूँ (तम्) जन्म (मा) मुझको (आप्य) अच्छी प्रकार चिन्तन करनेवाले आप लोग जैसे (वृक) चार वा व्याघ्र (तृणजम्) व्यासे (मृगम्) हिरन को (न) वैसे (व्यन्ति) चाहो। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैंने सृष्टि को रचके वेद द्वारा जैसे-जैसे उपदेश किये हैं उनको वैसे ही ग्रहण करो और उपासना करने योग्य मुझे छोड़के अन्य किसी को उपासना कभी मत करो। जैसे कोई मृगया रसिक और वा व्याघ्र हिरन को प्राप्त करना चाहता है वैसे ही सब दोषों को निर्मूल कर मेरी चाहना करो, और ऐसे विद्वान् को भी चाहो ॥७॥

अब न्यायाधीश के समीप दाद-बिबाद करनेवाले बाही प्रतिवादी जन अपने

कुछ क्लेश का निवेदन करें और वह उन का न्याय यथावत् करें इस

विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सं मा तपन्त्यभितः सप्तनारिव पर्शवः।

मूषो न शिश्रा व्यदन्ति माध्यः स्तातारं

ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रौदसी ॥८॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्य उत्तम विचारयुक्त वा अनेकों उत्तम-उत्तम कर्म करनेवाले न्यायाधीश ! (ते) आप की प्रजा वा सेना में रहने और (स्तोतारम्) धर्म को गानेवाले (मा) मुझे (पर्शवः) धीरों को मारने और तीर के रहनेवाले अनुष्य प्रादि प्राणी (सप्तनारिव, अभित, सन् तपन्ति) जैसे एक पति को बहुत स्त्रियाँ दुष्टी करती हैं ऐसे दुःख देते हैं। जो (आप्य) दूसरे के मन में व्यथा उत्पन्न करनेवाले (मूषः) मूषे जैसे (शिश्रा) अशुद्ध सूतों की (वि, व्यदन्ति) विदार-विदार अर्थात् काट-काट खाते हैं (न) वैसे (मा) मुझ को सताप देते हैं उन अन्याय करनेवाले जनो को तुम यथावत् शिक्षा करो। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानिए ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे न्यायाध्यक्ष प्रादि मनुष्यो ! तुम जैसे सोतेकी स्त्री अपने पति को कष्ट देती है वा जैसे अपने प्रयोजन मात्र का बनाव-बिगाद देनेवाले बूढ़े पराये पदार्थों का नाश करते हैं, और जैसे व्यभिचारिणी कन्या प्रादि कामिनी स्त्री दामिनी की तरह दमकती हुई कामीजन के लिङ्ग प्रादि रोग के द्वारा उस के धर्म, धर्म, काम और मोक्ष के अनुष्ठान में रुकावट डालकर उस कामीजन को पीडा देती हैं, वैसे ही जो डाकू, चोर, भूठ की प्रतीति और भूठे कामों की बातों से हम लोगों को क्लेश देते हैं, उन को अच्छी प्रकार दण्ड देकर हम लोगों को तथा उनको भी निरन्तर पालो। ऐसा किये बिना राज्य का ऐश्वर्य निरन्तर नहीं बढ़ सकता ॥८॥

अब न्यायाधीशों के साथ प्रजाजन कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता।

त्रितस्तद्वेदाप्यः स जामित्वाय रेमति वित्तं मे अस्य रौदसी ॥९॥

पदार्थ—जहाँ (अमी) (ये) ये (सप्त) पात (रश्मय) किरणों के समान नीति प्रकाश हैं (तत्र) वहाँ (मे) मेरी (नाभिः) सब नतीं को बाँधने वाली नाभि (आतता) फैली है जिस में निरन्तर मेरी स्थिति है (तत्) उस को जो (आप्यः) सज्जनों में उत्तम जन (त्रित) तीनों अर्थात् मूल, अविध्यत् और वर्तमान काल से (वेद) जाने अर्थात् रात-दिन विचारे (तः) वह पुरुष (जामित्वाय) राज्य भोगने के लिए कन्या के तुल्य (रेमति) प्रजाजनों की रक्षा तथा प्रशंसा और चाहना करता है। शेष अर्थ प्रथम मन्त्रार्थ के समान जानो ॥९॥

भावार्थ—जैसे सूर्य के साथ किरणों की शोभा और सज्ज है वैसे राजपुरुषों के साथ प्रजाजनों की शोभा और सज्ज हो। तथा जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान को यथावत् जानता है वह प्रजा के पालने में पितृवत् होकर समस्त प्रजाजनों का मनोरञ्जन कर सकता है, धन्य नहीं ॥९॥

फिर ये परस्पर कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।

देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रौदसी ॥१०॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष प्रादि सज्जनों ! तुमको जैसे (अमी) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष (उक्षण) जल सींचने वा सुख सींचनेवाले बड़े (पञ्च) धर्म, पवन, बिजुली, मेघ और सूर्यमण्डल का प्रकाश (महः) अपार (दिवः) दिव्यगुण और

पदार्थयुक्त आकाश के ( मध्ये ) बीच ( तत्पुः ) स्थिर हैं और जैसे ( सध्रीबीनाः ) एक साथ रहनेवाले गुण ( वैद्यका ) विद्वानों में ( नि, वाचुः ) निरन्तर वर्तमान हैं वैसे ( ये ) जो निरन्तर वर्तमान हैं उन प्रजा तथा राजाओं के संगियों के प्रति विद्या और न्याय प्रकाश की बात ( पु ) कीज ( प्रवाच्यम् ) कहनी चाहिए। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य आदि घटपटादि पदार्थों में संयुक्त होकर बृष्टि आदि के द्वारा अत्यन्त सुख को उत्पन्न करते हैं और समस्त पृथिवी आदि पदार्थों में आकर्षणशक्ति से वर्तमान हैं वैसे ही सभाष्यका आदि बड़े-बड़े उत्तम गुणों से युक्त मनुष्यों को सिद्ध करके, न्याय और प्रीति के साथ वर्तकर इन्हें निरन्तर सुखी करें ॥१०॥

फिर इन राजपुत्रों के साथ प्रजापुत्रों के वर्तन रखें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**सुप्रस्था एत आसते मध्यं आरोधने दिवः ।**

**ते संघन्ति पथो वृकं तरन्तं यक्ष्मतिरपो विंशं मे अस्य रौदसी ॥११॥**

पदार्थ—हे प्रजाजनों ! आप लोग जैसे ( एते ) ये ( सुप्रस्था ) सूर्य्य की किरणों ( विंशं ) सूर्य्य के प्रकाश से युक्त आकाश के ( मध्ये ) बीच ( आरोधने ) हकावट में ( आसते ) स्थिर हैं और जैसे ( ते ) वे ( तरन्तम् ) पार कर देनेवाली ( वृकम् ) बिजुली को गिराके ( यक्ष्मतिः ) बड़ों के वर्तन रखते हुए ( अपः ) जलों और ( पथः ) मार्गों को ( संघन्ति ) सिद्ध करते हैं वैसे ही आप लोग राज कामों को सिद्ध करो। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर के नियमों में सूर्य की किरणों आदि पदार्थ यथावत् वर्तमान हैं वैसे ही तुम प्रजापुत्रों को भी राजनीति के नियमों में वर्तना चाहिए। जैसे ये सभाष्यका आदि जन दुष्ट मनुष्यों की निवृत्ति करके प्रजाजनों की रक्षा करते हैं, वैसे तुम लोगों द्वारा भी ये ईप्सा, अभिमान आदि दोषों को निवृत्त करके, रक्षा करने योग्य हैं ॥११॥

फिर विद्वान्जन इनके प्रति क्या-क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।**

**ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो विंशं मे अस्य रौदसी ॥१२॥**

पदार्थ—हे ( देवास ) विद्वानों ! आप जैसे ( सिन्धवः ) समुद्र ( सत्यम् ) जल की ( अर्षन्ति ) प्राप्ति करावे और ( सूर्यः ) सूर्य्यमण्डल ( तातान ) उसका विस्तार कराता अर्थात् वर्षा कराता है वैसे जो ( ऋतम् ) वेद सुष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, विद्वानों के आचरण अनुभव अर्थात् आप ही आप कोई बात मन से उत्पन्न होना और आत्मा की शुद्धता के अनुकूल ( नव्यम् ) उत्तम नवीन-नवीन व्यवहारों और ( उक्थ्यम् ) प्रशंसनीय वचनों में होनेवाला ( हितम् ) सबका प्रेमयुक्त पदार्थ ( सत् ) उसको ( सुप्रवाचनम् ) अच्छी प्रकार पढ़ाना, उपदेश करना, जैसे बने वैसे प्राप्त कीजिए। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्रों से जल उठकर ऊपर को जाकर सूर्य के ताप से फैलकर बरसके सब प्रजाजनों को सुख देता है, वैसे विद्वान्जनों को नित्य नवीन नवीन विचार से गूढ़ विद्याओं को जान और प्रकाशित कर सबके हित का सम्पादन और सत्य धर्म के प्रचार से प्रजा को निरन्तर सुख देना चाहिए ॥१२॥

फिर विद्वान् प्रजाजनों में क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**अग्ने त्वं त्यदुक्थ्यं देवेभ्यस्त्याप्यम् ।**

**स न सत्ता मनुष्वदा देवान्**

**यं विदुष्टरो विंशं मे अस्य रौदसी ॥१३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) समस्त विद्याओं को जाने हुए विद्वन् ! ( त्वं ) आपका ( त्यत् ) वह जो ( त्याप्यम् ) पाने योग्य ( मनुष्वत् ) मनुष्यों में जैसा हो वैसा ( उक्थ्यम् ) प्रति उत्तम विद्यावचन ( देवेभ्यः ) विद्वानों में ( अस्ति ) है ( स ) वह ( सत्तः ) अधिष्ठा आदि दोषों को नाश करनेवाले ( विदुष्टरः ) प्रति विद्वान् आप ( न ) हम लोगों को ( देवासः ) विद्वानों से ( त्याप्यम् ) संगति को कराइए अर्थात् विद्वानों की पदवी को पहुँचाइए। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान है ॥१३॥

भाषार्थ—जो समस्त विद्याओं को पढ़ाकर वा विद्वान् बनाने में कुशल है उससे समस्त विद्या और धर्म के उपदेशों को सब मनुष्य ग्रहण करें, और से नहीं ॥१३॥

फिर वह विद्वान् वहाँ क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।**

**अग्निर्हव्या सुप्रदति देवो देवेभ्य मेधिरो विंशं मे अस्य रौदसी ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( सत्तः ) विज्ञानवान् दुःख हरनेवाला ( देवान् ) विद्वान् वा दिव्य-दिव्य क्रिया योगों का ( होता ) ग्रहण करनेवाला ( विदुष्टरः ) अत्यन्त ज्ञानी ( अग्निः ) अष्ट विद्या का जानने वा समझने वाला ( मेधिरो ) बुद्धिमत् ( देवेभ्यः ) विद्वानों में ( देवः ) प्रशंसनीय विद्वान् मनुष्य ( मनुष्वत् ) जैसे उत्तम मनुष्य अष्ट कर्मों का अनुष्ठान कर पापों को छोड़ सुखी होते हैं वैसे ( हव्या )

देने देने योग्य पदार्थों को ( अग्निः, वा, सुप्रदति ) अच्छी रीति से अत्यन्त देता है उस उत्तम विद्वान् से विद्या और शिक्षा को ग्रहण करना चाहिए ॥१४॥

भाषार्थ—ऐसा भाग्यहीन कौन होवे जो विद्वानों से विद्या और शिक्षा न लेके इनका विरोधी हो ॥१४॥

फिर जैसे इस को पावे वह उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**अस्मा कुणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।**

**व्यूणीति हृदा मर्ति नव्यो जायतामृतं विंशं मे अस्य रौदसी ॥१५॥**

पदार्थ—हम लोग जो ( ऋतम् ) सत्यस्वरूप ( वरुणः ) परमेश्वर वा ( वरुणः ) सब से उत्तम विद्वान् ( गातुविदम् ) वेदवाणी के जाननेवाले को ( कुणोति ) करता है ( तम् इमहे ) उससे मांगते हैं उसकी कृपा से जो ( नव्यः ) नवीन विद्वान् ( हृदा ) हृदय से ( मर्तिम् ) विशेषज्ञान को ( व्यूणीति ) उत्पन्न करता है अर्थात् उत्तम-उत्तम रीतियों को विचारता है वह हम लोगों के बीच ( जायताम् ) उत्पन्न हो। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥१५॥

भाषार्थ—किसी मनुष्य पर पिछले पुण्य इकट्ठे होने और विशेष शुद्ध क्रिया-कारण कर्म करने के बिना परमेश्वर की दया नहीं होती और उक्त व्यवहार के बिना कोई पूरी विद्या नहीं पा सकता। इससे सब मनुष्यों को परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि हम लोगों में परिपूर्ण विद्यावान् अच्छे-अच्छे गुण, कर्म, स्वभावयुक्त मनुष्य सदा हो। ऐसी प्रार्थना को नित्य प्राप्त हुआ परमात्मा सर्वव्यापकता से उनके आत्मा का प्रकाश करता है यह निश्चय है ॥१५॥

अब यह मार्ग कंसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।**

**न स देवा अतिक्रमे सं मर्तासो न पश्यथ विंशं मे अस्य रौदसी ॥१६॥**

पदार्थ—हे ( देवा ) विद्वान् लोगो ! ( असौ ) यह ( आदित्यः ) अधि-नामी सूर्य के तुल्य प्रकाश करने वाला ( यः ) जो ( पन्थाः ) वेद से प्रतिपादित मार्ग ( दिवि ) समस्त विद्या के प्रकाश में ( प्रवाच्यम् ) अच्छे प्रकार से कहने योग्य जैसे हो वैसे ( कृतः ) ईश्वर ने स्थापित किया ( स ) वह तुम लोगों की ( अतिक्रमे ) उल्लंघन करने योग्य ( न ) नहीं है। हे ( मर्तासः ) केवल मरने-जीनेवाले विचार रहित मनुष्यों ! ( तम् ) उस पूर्वोक्त मार्ग को तुम ( न ) नहीं ( पश्यथ ) देखते हो। शेष मन्त्रार्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिए ॥१६॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो वेदोक्त मार्ग है वही सत्य है ऐसा जान और समस्त सत्यविद्याओं का प्राप्त होकर सदा धानन्वित हो। वह वेदोक्त मार्ग विद्वानों को कभी खण्डन करने योग्य नहीं, और यह मार्ग विद्या के बिना विशेष जाना भी नहीं जाता ॥१६॥

फिर वह कंसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**त्रितः कूपेऽवहितो देवान्धवत उतयै ।**

**तच्छुभ्राव बृहस्पतिः कृत्स्नं हूरणादुरु विंशं मे अस्य रौदसी ॥१७॥**

पदार्थ—जो ( उतः ) बहुत ( तत् ) उस विद्या के पाठ को ( शुभ्राव ) सुनता है वह विज्ञान को ( कृत्स्नम् ) प्रकट करता हुआ ( ब्रितः ) विद्या, शिक्षा अष्टाचर्य्य इन तीन विषयों का विस्तार करने अर्थात् इनकी बढ़ाने ( कूपे ) कूपा के आकार अपने हृदय में ( अवहितः ) स्थिरता रखने और ( बृहस्पतिः ) बड़ी वेदवाणी का पालनेहारा ( हूरणात् ) जिस व्यवहार में धर्म है उससे अलग होकर ( उतयै ) रक्षा, ध्यान, कान्ति, प्रेम, तृप्ति आदि अपनेको सुखों के लिए ( देवान् ) दिव्य गुणयुक्त विद्वानों वा दिव्य गुणों को ( हवते ) ग्रहण करता है। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥१७॥

भाषार्थ—जो मनुष्य वा देहधारी जीव अपनी बुद्धि से प्रयत्न के साथ पण्डितों से समस्त विद्याओं को सुन, मान, विचार और प्रकट कर छोटे गुण, स्वभाव वा छोटे कामों को छोड़कर विद्वान् होता है वह आत्मा और शरीर की रक्षा आदि को पाकर बहुत सुख पाता है ॥१७॥

**अरुणो मां सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।**

**उज्जिहीते निचर्या तष्टेव पृष्ट्यामयी विंशं मे अस्य रौदसी ॥१८॥**

पदार्थ—जो ( अरुणः ) समस्त विद्याओं को प्राप्त होता वा प्रकाशित करता ( वृकः ) शान्ति आदि गुणयुक्त, चन्द्रमा के समान विद्वान् ( मा, सकृत् ) मुझको एक बार ( पथा, यन्तम् ) अच्छे मार्ग से चलते हुए को ( ददर्श ) देखता वा युक्त गुणयुक्त महीना आदि काल विभागों को करनेवाले चन्द्रमा के तुल्य विद्वान् अच्छे मार्ग से चलते हुए को देखता है वह ( निचर्या ) यथायोग्य समाधान देकर ( पृष्ट्यामयी ) पीठ में क्लेशरूप रोगवान् ( तष्टेव ) शिल्ली विद्वान् जैसे शिल्प व्यवहारों को समाप्ता वैसे ( उज्जिहीते ) उत्तमता से समाप्ता ( हि ) ही है। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिए ॥१८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् चन्द्रमा के तुल्य शान्तस्वभाव और सूर्य के तुल्य विद्या के प्रकाश को कर संसार में समस्त विद्याओं को फैलाता है वही प्राप्त अर्थात् अति उत्तम विद्वान् है ॥१८॥

फिर उससे युक्त हम लोग कैसे होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—



एनाङ्गुषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ध्याम वृजने सर्ववीराः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः ॥१९॥

पदार्थ—जिम ( एना ) इस ( आङ्गुषेण ) परम विद्वान् से ( सर्ववीरा ) समस्त वीरजन ( इन्द्रवन्त ) जिनका परमेश्वर्ययुक्त सभापति है वे ( वयम् ) हम लोग ( वृजने ) विद्याधर्मयुक्त बल मे ( अभि, ध्याम ) अभिमूढ हों, अर्थात् सब प्रकार से उसमें प्रवृत्त हों ( न ) हम लोगों के ( तत् ) उस विज्ञान को ( मित्र ) प्राण ( वरुण ) उदान ( अदिति ) अन्तरिक्ष ( सिन्धु ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत ) और ( यौ ) सूर्य प्रकाश वा विद्या का प्रकाश ये सब ( वामहन्ताम् ) बढ़ावें ॥ १९ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिसके पढ़ाने से विद्या और अच्छी शिक्षा बढ़े उसके साथ से समस्त विद्याओं का सर्वथा निश्चय करें ॥ १९ ॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुण और कर्म के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह एकलौ पौचवाँ सूक्त पन्द्रहवाँ अनुवाक और तेईसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥



अथ बहुतरस्य शततमस्य सप्तवर्षस्य सुतस्याङ्गिरस कुतस्तद्विधिः । विद्वे  
वेवा वेवताः । १-६ अगतीष्वन्धः । निषाद स्वरः । ७ मिषूत्  
त्रिषूत्पुण्यः । वंशतः स्वरः ।

अथ एकलौ छःवाँ सूक्त प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में सप्ताह में स्थित  
विद्वानों के गुण और कामों का वर्णन किया है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमभिमतये मारुतं शशं अदितिं हवामहे ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्माभ्यो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥१॥

पदार्थ—( सुदानव ) उत्तम-उत्तम दान प्रादि वामवाले ( वसव ) विद्यादि ज्ञान गुणों में बसनेवाले विद्वानों । तुम लोग ( रथम् ) विमान प्रादि यान को ( न ) जैसे ( दुर्गात् ) भूमि जल वा अन्तरिक्ष के कठिन मार्ग से बचा लाते हो वैसे ( न ) हम लोगों को ( विश्वस्मात् ) समस्त ( अहसः ) पाप के आचरण से ( निष्पिपर्त्तन ) बचाओ, हम लोग ( ऊतये ) रक्षा प्रादि प्रयोजन के लिए ( इन्द्रम् ) बिजुली वा परम ऐश्वर्यगाले सभाध्यक्ष ( मित्रम् ) सबके प्राणरूपी पवन वा सर्व मित्र ( वरुणम् ) काम करानेवाले उदान वायु वा श्रेष्ठ गुणयुक्त विद्वान् ( अग्निम् ) सूर्य प्रादि रूप धरित वा ज्ञानवान् जन ( अदितिम् ) माता, पिता, पुत्र उत्पन्न हुए समस्त जगत् वा उसके कारण वा जगत् की उत्पत्ति ( मारुतम् ) पवन वा मनुष्यों से सम्बन्ध ( शशः ) बल को ( हवामहे ) अपने काम की सिद्धि के लिए स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे मनुष्य अच्छी प्रकार बनाए हुए विमान प्रादि यान से प्रति कठिन मार्गों से भी सुख से गमनागमन करके कामों की सिद्धि कर समस्त परिश्रम प्रादि दुःख से छूटते हैं वैसे ही ईश्वर की सृष्टि के पृथिवी प्रादि पदार्थों वा विद्वानों को ज्ञान, उपकृत होकर उनका अच्छे प्रकार सेवन कर बहुत सुख प्राप्त कर सकते हैं ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

त आदित्या आ गन्ता सर्वतारतये भूत देवा वृत्रतूयंषु शम्भुवः ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्माभ्यो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥२॥

पदार्थ—हे ( देवा ) दिव्य गुणवाले विद्वान् जनो । जैसे ( आदित्या ) कारारूप से नित्य दिव्य गुणवाले जो सूर्य प्रादि पदार्थ हैं ( ते ) वे ( वृत्रतूयंषु ) मेघावयवों अर्थात् बदलों का हिसन विनाश करना जिसमें होता है उन सग्राहों में ( शम्भुव ) सुख की भावना करानेवाले होते हैं वैसे ही आप लोग हमारे समीप की ( आ, गन्ता ) ग्राहों और आकर शत्रुओं का हिसन जिनमें हो उन सग्राहों में ( सर्वतारतये ) समस्त सुख के लिए ( शम्भुवः ) सुख की भावना करानेवाले ( भूत ) होओ । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे ईश्वर के बनाये हुए पृथिवी प्रादि पदार्थ सब प्राणियों के उपकार के लिए हैं वैसे ही सबके उपकार के लिए विद्वानों की नित्य अपना वस्ति रखना चाहिए । जैसे अच्छे दूढ़ विमान प्रादि यान पर बैठ देश-देशान्तर को जा-आकर व्यापार का विजय सेवन और प्रतिष्ठा को प्राप्त हो दरिद्रता और अपयश से छूटकर सुखी होते हैं वैसे ही विद्वान् जब अपने उपवेश से विद्या को प्राप्त कराकर सब को सुखी करें ॥ ३ ॥

अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्माभ्यो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥३॥

पदार्थ—( देवपुत्रे ) जिनके दिव्य गुण अर्थात् अच्छे-अच्छे विद्वान् जन वा अच्छे रत्नों से युक्त पर्वत प्रादि पदार्थ पालनेवाले हैं वा जो ( ऋतावृधा ) सत्य कारण से बढ़ते हैं वे ( देवी ) अच्छे गुणवाले भूमि और सूर्य का प्रकाश जैसे ( न ) हम लोगों की रक्षा करते हैं वैसे ही ( सुप्रवाचना ) जिनका अच्छा पढ़ाना और अच्छा उपदेश है वे ( पितरः ) विशेष ज्ञानवाले मनुष्य हम लोगों को ( उत )

निश्चय से ( अवन्तु ) रक्षादि व्यवहारों से पालें । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के मुख्य समझना चाहिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे दिव्य प्रोचियों और प्रकाश प्रादि गुणों से भूमि और सूर्यमण्डल सबको सुख से बढ़ाते हैं वैसे ही आप विद्वान् जन सब मनुष्यों को अच्छी शिक्षा और पढ़ाई से विद्या प्रादि अच्छे गुणों में वृद्धि करके सुखी करते हैं । और जैसे उत्तम रथ पर बैठके दुःख से बाने योग्य मार्ग के पार सुखपूर्वक जाकर समग्र क्लेश से छूटके सुखी होते हैं वैसे ही वे उक्त विद्वान् दृष्ट गुण कर्म और स्वभाव से प्रलग कर हम लोगों को धर्म के आचरण में बढ़ावें ॥ ३ ॥

फिर कैसे वेको को उपयोग में लावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नराशंसं वाजिनं वाजयन्मिह सयद्वीरं पूषणं सुनैरीमहे ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्माभ्यो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् । जैसे ( वाजयन् ) उत्तमोत्तम पदार्थों के विशेष ज्ञान कराने वा युद्ध करानेहारे हम लोग ( इह ) इस सृष्टि में ( सुनैरी ) सुखों से युक्त ( नराशंसम् ) मनुष्यों के प्रार्थना करने योग्य विद्वान् को तथा ( वाजिनम् ) विशेष ज्ञान और युद्धविद्या में कुशल ( सयद्वीरम् ) जिस के शत्रुओं को काट करनेहारे और जो ( पूषणम् ) शरीर वा आत्मा की पुष्टि करानेहारा है उस सभाध्यक्ष को ( ईमहे ) प्राप्त होवें वैसे ही शुभ गुणों की याचना कर । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के मुख्य जानना चाहिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हम लोग शुभ गुणों से युक्त सुखी मनुष्यों को मित्रता से प्राप्त होकर, श्रेष्ठ यानयुक्त शिल्पियों के समान दुःख से पार हो ॥ ४ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वृहस्पते सदमिधः सुगं कृधि शं योर्यचे मनुहितं तदीमहे ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्माभ्यो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥५॥

पदार्थ—हे ( वृहस्पते ) परम अध्यापक अर्थात् उत्तम रीति से पढ़ानेवाले ( ते ) आप का जो ( मनुहितम् ) मन का हिन करनेवाला ( धम् ) सुख वा ( यो ) धर्म, धर्म और मोक्ष की प्राप्ति करना है तथा ( यत् ) जो ( सवम् इत् ) सदैव तुम ( न ) हमारे लिए ( सुगम् ) सुखकर ( कृधि ) करो अर्थात् सिद्ध करो ( तत् ) उस उक्त समस्त सुख को हम लोग ( ईमहे ) मांगते हैं । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के मुख्य समझना चाहिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जैसे गुरुजन से विद्या ली जाती है, वैसे ही सब विद्वानों से विद्या लेकर दुःखों का विनाश करें ॥ ५ ॥

फिर पढ़ाने और पढ़नेवाले क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहृष्यं शचीपतिं काटे निबाळह ऋषिरह्मदूतये ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्माभ्यो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥६॥

पदार्थ—( कुत्स ) विद्यारूपी वस्त्र लिये वा पदार्थों को छिन्न-भिन्न करने ( निबाळहः ) निरन्तर सुखों को प्राप्त करानेवाला ( ऋषि ) गुरु और विद्यार्थी ( काटे ) जिस में समस्त विद्याओं की बर्षा होती है उस अध्यापन व्यवहार में ( ऊतये ) रक्षा प्रादि के लिए जिस ( ऋषिहणम् ) शत्रुओं को विनाश करने वा ( शचीपतिम् ) वेदवाणी के पालनेहारे ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्यवान् शाला प्रादि के प्रवीण को ( अह्मत् ) बुलावें हम लोग भी उसी को बुलावें । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के मुख्य जानना चाहिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—विद्यार्थी को कपटी पढ़ानेवाले के समीप नहीं ठहरना चाहिए किन्तु प्राप्त विद्वानों के समीप ठहर और विद्वान् होकर श्रद्धिजनो के स्वभाव से युक्त होना चाहिए और अपने आत्मा की रक्षा के लिए अधर्म से डरकर धर्म में सदा स्थिर रहना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः ॥७॥

पदार्थ—जो ( देवै ) विद्वानों वा दिव्य गुणों के साथ वर्तमान ( अयुच्छन् ) प्रमाद न करता हुआ ( त्राता ) सब की रक्षा करनेवाला ( देवः ) विद्वान् है वह ( नः ) हम लोगों की ( नि, पातु ) निरन्तर रक्षा करे तथा ( देवो ) दिव्य गुण भरी सब गुण अगरी ( अदितिः ) प्रकाशयुक्त विद्या सब की ( त्रायताम् ) रक्षा करे ( तत् ) उस पूर्वोक्त समस्त कर्म को ( न ) और हम लोगों को ( मित्र ) मित्रजन ( वरुणः ) श्रेष्ठ विद्वान् ( अदितिः ) अखण्डित नीति ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) भूमि ( उत ) और ( यौ ) सूर्य का प्रकाश ( वामहन्ताम् ) बढ़ावें अर्थात् उन्नति दें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जो अप्रमादी, विद्वानों से विद्वान्, विद्या की रक्षा करनेवाला विद्यादान से सब के सुख का बढ़ाता है उस का सत्कार करके विद्या और धर्म का प्रचार सगार में करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक ही छ.वाँ सूक्त और चौबीसवाँ वर्ण पूरा हुआ ॥

॥

अथ अमुकस्य सप्तोत्तराक्षतस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुतश्च ॥ विद्वे देवा देवताः १ विराट् मिष्टुपुः २ मिष्टुपुः ३ मिष्टुपुः

४ अङ्गः १ बँवतः स्वरः ॥

अथ तीन ऋचावाले एक ही सातवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम अङ्ग से समस्त विद्वान् जन कैसे हैं यह उपदेश किया है—

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता वृक्ष्यन्तः ॥

आ वोऽर्वाची सुमतिर्वैष्ट्याद्दोभिद्या वरिवोविसरासत् ॥१॥

पदार्थ—हे ( वृक्ष्यन्तः ) हे आनन्दित करते हुए ( आदित्यासः ) सूर्य के मुख्य विद्यापीठ से प्रकाश को प्राप्त विद्वानो ! तुम जो ( देवानाम् ) विद्वानों की ( वक्तः ) संगति से सिद्ध हुआ शिल्प काम ( सुम्नम् ) सुख की ( प्रति, एति ) प्रतीति कराता है उसको प्रकट करनेहारे ( भवता ) होओ ( या ) जो ( वः ) तुम लोगों को ( बँहो ) विशेष ज्ञान जैसे हो वैसे ( अर्वाची ) इस समय की ( सुमतिः ) उत्तम बुद्धि ( वैष्ट्यात् ) वर्त रही है वह ( बिद् ) भी हम लोगों के लिए ( वरिवोविसरा ) ऐसी हो कि जिससे उत्तम जनो की अच्छी प्रकार सुश्रूषा ( आ, असत् ) सब और से होवे ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस संसार में विद्वानों को चाहिए कि उन्होंने अपने पुरुषार्थ से जो शिल्पकिया प्रत्यक्ष कर रखी है, उन्हें सब मनुष्यों के लिए प्रकाशित करें, जिससे बहुत मनुष्य शिल्पकियाओं को करके सुखी हो ॥१॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

उप नो देवा अवसा गमन्वङ्गिरसां सामभिः स्तुयमानाः ॥

इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुङ्गिरादित्यैर्नो अदितिः अयं यंसत् ॥२॥

पदार्थ—( सामभिः ) सामवेद के गानों से ( स्तुयमानाः ) स्तुति को प्राप्त होते हुए ( अदितिः ) पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्य वा बारह महानो ( मरुङ्गिरः ) विद्वानों वा पवनो और ( इन्द्रियैः ) जनो के सहित ( इन्द्रः ) सभाध्यक्ष ( भवतः ) वा पवन ( अदितिः ) विद्वानों का पिता वा सूर्य प्रकाश और ( देवाः ) विद्वान् जन ( अङ्गिरसाम् ) प्राणविद्या के जाननेवालों ( न ) हम लोगों के ( अवसा ) रक्षा आदि व्यवहार से ( उप, आ, गमन्तु ) समीप में सब प्रकार से आवें और ( न ) हम लोगों के लिए ( अयं ) सुख ( यंसत् ) दें ॥२॥

भाषार्थ—ज्ञान सीखनेवाले जिन विद्वानों के समीप वा विद्वान् जिन विद्याधियों के समीप जायें वे विद्या, धर्म और अच्छी शिक्षा के व्यवहार को छोड़कर और कर्म कभी न करें, जिससे दुःख की हानि होके निरन्तर सुख की सिद्धि हो ॥२॥

तन्न इन्द्रस्तद्रुणस्तदमिस्तर्ह्यमा तत्सविता जनो धात् ॥

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत ध्यौः ॥३॥

पदार्थ—जैसे ( मित्रः ) मित्रजन ( वरुणः ) श्रेष्ठ विद्वान् ( अदितिः ) अक्षयित आकाश ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) भूमि ( उत ) और ( ध्यौः ) सूर्य आदि का प्रकाश ( नः ) हम को ( मामहन्ताम् ) आनन्दित करते हैं ( तत् ) वैसे ( इन्द्रः ) बिजुली वा वनाद्य जन ( न ) हमारे लिए ( तत् ) उस जन वा अन्न को अर्थात् उन के दिये हुए अनादि पदार्थ को ( वरुणः ) जन वा गुणों से उत्कृष्ट ( तत् ) उस शरीरसुख को ( अग्निः ) पावक अग्नि वा न्यायमार्ग में चलानेवाला विद्वान् ( तत् ) उस आरामसुख को ( अर्वासा ) नियमकर्ता पवन वा न्यायकर्ता सभाध्यक्ष ( तत् ) इन्द्रियों के सुख को ( सविता ) सूर्य वा धर्म कार्यों में प्रेरणा करनेवाला धर्मज्ञ जन ( तत् ) उस सामाजिक सुख और ( जनः ) अन्न को ( धात् ) बारण करता वा बारण करे ॥३॥

भाषार्थ—जैसे संसारस्थ पृथिवी आदि पदार्थ सुख देनेवाले हैं वैसे ही विद्वानों को सुख देनेवाला होना चाहिए ॥३॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्त की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक ही सातवाँ सूक्त और पच्चीसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथाष्टोत्तरस्य सप्ततमस्य अथोवाचस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुतश्च ॥ इन्द्राग्नी

देवते १, २, १२ मिष्टुपुः २, ३, ४, ११ विराट्

मिष्टुपुः ७, ८, १०, १३ मिष्टुपुः अङ्गः १ बँवतः स्वरः ॥

४ धुरिक् पङ्क्तिः, २ पङ्क्तिः अङ्गः १ पङ्क्तिः स्वरः ॥

अथ एक ही सातवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम अङ्ग से दो-दो

दृष्टव्य पदार्थों वा गुणों का उपदेश किया है—

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ॥

तेना यातं सरथं तस्थिवासाया सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१॥

पदार्थ ( यः ) जो ( चित्रतमः ) एकी एका अद्भुत गुण और किया को लिये हुए ( रथः ) विमान आदि वाहनसमूह ( वामः ) इन ( तस्थिवासा ) ठहरे हुए ( इन्द्राग्नी ) पवन और अग्नि की प्राप्त होकर ( चित्रवानि ) सब ( भुवनानि ) भूगोल के स्थानों की ( अभि, चष्टे ) सब प्रकार से दिखाता है ( अथ ) इस के अनन्तर जिससे ये दोनों अर्थात् पवन और अग्नि ( सरथम् ) रथ आदि सामग्री सहित सेवा वा उत्तम सामग्री को ( आ, वातम् ) प्राप्त हुए अच्छी प्रकार अभीष्ट स्थान को पहुँचाते हैं तथा ( सुतस्य ) ईश्वर के उत्पन्न किये हुए ( सोमस्य ) सोम आदि के रस को ( चित्रतम् ) पीते हैं ( तेन ) उससे समस्त शिल्पी मनुष्यों को सब जगह जाना-भाना चाहिए ॥१॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि कलाओं में अच्छी प्रकार प्रयुक्त करके चलाये हुए वायु और अग्नि आदि पदार्थों से युक्त विमान आदि रथों से आकाश समुद्र और भूमि भागों में एक देश से दूसरे देशों की जा-आकर सर्वथा अपने अभिप्राय की सिद्धि से आनन्दरस भोगें ॥१॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुष्यञ्च वरिमतां गभीरम् ॥

तावौ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( यावत् ) जितना ( उरुष्यञ्च ) बहुत व्याप्ति अर्थात् पूरेपन और ( वरिमतां ) बहुत स्थूलता के साथ वर्तमान ( गभीरम् ) गहिरा ( भुवनम् ) सब वस्तुओं के ठहरने का स्थान ( इवम् ) यह प्रकट-अप्रकट ( विश्वम् ) जगत् ( अस्ति ) है ( तावत् ) उतना ( अयम् ) यह ( सोम ) उत्पन्न हुआ पदार्थों का समूह है उसका ( अयसे ) विज्ञान कराने को ( इन्द्राग्नी ) वायु और अग्नि ( सरथम् ) परिपूर्ण हैं इससे ( युवभ्याम् ) उन दोनों से ( पातवे ) रक्षा आदि के लिए उतने बोध और पदार्थ को स्वीकार करो ॥२॥

भाषार्थ—विचारशील पुरुषों को यह अवश्य जानना चाहिए कि जहाँ-जहाँ प्रतिमान लोक हैं वहाँ-वहाँ पवन और बिजुली अपनी व्याप्ति से वर्तमान हैं । जितना मनुष्यों का सामर्थ्य है वहाँ तक इन के गुणों को जान कर और पुरुषार्थ से उपयोग लेकर परिपूर्ण सुखी होवें ॥२॥

चक्राये हि सध्रञ्च उनाम भद्रं संधीचीना वृत्रहणा उत रथः ॥

ताविन्द्राग्नी सध्रञ्चञ्चा निषद्या वृणः सोमस्य वृषणा वृषेयाम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( संधीचीना ) एक साथ मिलने और ( वृषहृणी ) मेघ के हननेहारे ( सध्रञ्चञ्चा ) और एक साथ बड़ाई करने योग्य ( निषद्या ) नित्य स्थिर होकर ( वृणः ) पुष्टि करते हुए ( सोमस्य ) रसवान् पदार्थसमूह की ( वृषणा ) पुष्टि करनेहारे ( इन्द्राग्नी ) पूर्व कहे हुए अर्थात् पवन और सूर्यमण्डल ( अयम् ) वृष्टि आदि काम से परम सुख करनेवाले ( सध्रञ्च ) एक सग प्रकट होते हुए ( नाभ ) जल को ( वृषाये ) करते हैं ( उत ) और कार्यसिद्धि करनेहारे ( रथः ) होते ( वृषेयाम् ) और सुखरूपी बर्षा करते हैं ( तौ ) उनकी ( हि ) ही ( आ ) अच्छी प्रकार जानो ॥३॥

भाषार्थ—मनुष्यों को अत्यन्त उपयोग करनेहारे वायु और सूर्यमण्डल को जानके कैसे उपयोग में न लाना चाहिए ॥३॥

समिदेष्वभिष्वानजाना यतस्तेचा बर्हिर्ह तित्तिराणा ॥

तीन्निः सोमैः परिक्षितेभिर्वाग्नेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम ( यतस्तेचा ) जिनसे सब अर्थात् होम करने के काम में जो सूँचा होती है उनके समान कलाकर विद्यमान ( तित्तिराणा ) वा जो यन्त्रकलादिको से ढाँपे हुए होते हैं ( आनजाना ) वे आप प्रसिद्ध और प्रसिद्ध करनेवाले ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली अर्थात् पवन और बिजुली ( तीन्निः ) तीक्ष्ण और वेगादिगुणयुक्त ( सोमैः ) रसरूप जलो से ( परिक्षितेभिः ) सब प्रकार की की हुई मित्रादियों के सहित ( सविदेषु ) अच्छी प्रकार जलते हुए ( अभिष्व ) कलाकारों की अग्नियों के होते ( अर्वाक् ) पीछे ( बर्हिः ) अन्तरिक्ष में ( यातम् ) पहुँचाते हैं ( उ ) और ( सौमनसाय ) उत्तम से उत्तम सुख के लिए ( आ ) अच्छी प्रकार आते भी हैं उनकी अच्छी शिक्षा कर कार्यसिद्धि के लिए कलाओं में लगावे चाहिए ॥४॥

भाषार्थ—जब शिल्पियों से पवन और बिजुली कार्यसिद्धि के अर्थ कलायन्त्रों की क्रियाओं से युक्त किये जाते हैं तब ये सर्वसुखों के लाभ के लाभ के लिए समर्थ होते हैं ॥४॥

अथ ऐश्वर्ययुक्त स्वामी और शिल्पविद्या की क्रियाओं में कुशल

शिल्पीजन के कार्यों को अगले अङ्ग में कहा है—

यानीन्द्राग्नी चक्रधुर्वीर्याणि यानि रूपाभ्युत वृषयानि ॥

या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) स्वामी और सेवक ( बान् ) तुम्हारे ( यानि ) जो ( बीर्वाणि ) पराक्रमयुक्त काम ( यानि ) जा ( रूपाणि ) शिल्पविद्या से सिद्ध विन्न-विचित्र, अद्भुत जिनका रूप वे विमान आदि यान और ( बृहन्वाणि ) पुरुषार्थयुक्त काम ( या ) वा जो तुम दोनों के ( प्रसन्नानि ) प्राचीन ( शिवाणि ) मङ्गलयुक्त ( सख्या ) मित्रों के काम हैं ( तेभि ) उनसे ( सुतस्य ) निकाले हुए ( सोमस्य ) ससारी वस्तुओं के रस को ( पिबतम् ) पिओ ( उत्त ) और हम लोगों के लिए ( अक्षुषु ) उनसे सुख करो ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में इन्द्र शब्द से धनाध्य और अग्नि शब्द से विद्यावान् शिल्पी का ग्रहण किया जाता है, विद्या और पुरुषार्थ के बिना कामों की सिद्धि कभी नहीं होती और न मित्रभाव के बिना सर्वदा व्यवहार सिद्ध हो सकता है इससे उक्त काम सर्वदा करने योग्य हैं ॥१॥

फिर वे दोनों कैसे हैं यह अगले मन्त्रों में कहा है—

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानोऽयं मामो असुरैर्नो विहव्यः ।

तां सत्यां ब्रह्ममस्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥६॥

पदार्थ—हे स्वामी और शिल्पीजनों ! ( बान् ) तुम्हारे लिए ( प्रथमम् ) पहले ( यत् ) जो मैंने ( अब्रवम् ) कहा वा ( असुरैः ) विद्याहीन मनुष्यों की ( वृणानः ) बड़ाई की हुई ( विहव्यः ) अनेकों प्रकार से ग्रहण करने योग्य ( अब्रवम् ) यह प्रत्यक्ष ( सोमः ) उत्पन्न हुआ पदार्थों का समूह तुम्हारा है उससे ( न ) हम लोगों की ( स्याम् ) उस ( सत्याम् ) सत्य ( ब्रह्मम् ) प्रीति को ( अभि, आ, यातम् ) अच्छी प्रकार प्राप्त होओ ( अथ ) इसके पीछे ( हि ) एक निश्चय के साथ ( सुतस्य ) निकाले हुए ( सोमस्य ) ससारी वस्तुओं के रस को ( पिबतम् ) पिओ ॥६॥

भाषार्थ—जन्म के समय में सब मूर्ख होते हैं और फिर विद्या का अध्ययन करके विद्वान् भी हो जाते हैं इससे विद्याहीन मूर्खजन ज्येष्ठ और विद्वान्जन कनिष्ठ गिने जाते हैं। सबको यही चाहिए कि कोई हो परन्तु उसके प्रति सौची ही कहें किन्तु किसी के प्रति असत्य न कहें ॥६॥

यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यदब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥७॥

पदार्थ—हे ( वृषणी ) सुखरूपी वर्षा के करनेहारे ( यजत्रा ) अच्छी प्रकार मिलकर सत्कार करने के योग्य ( इन्द्राग्नी ) स्वामी सेवकों ! तुम दोनों ( यत् ) जिस कारण ( स्वे ) अपने ( दुरोणे ) घर में वा ( यत् ) जिस कारण ( ब्रह्मणि ) ब्राह्मणों की सभा और ( राजनि ) राजजनों की सभा ( वा ) वा और सभा में ( अब्रव ) आनन्दित होते हो ( अतः ) इस कारण से ( परि, आ, यातम् ) सब प्रकार से आओ ( अथ, हि ) इसके अनन्तर एक निश्चय के साथ ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए ( सोमस्य ) ससारी पदार्थों के रस को ( पिबतम् ) पिओ ॥७॥

भाषार्थ—जहा-जहा स्वामी और शिल्पी वा पढ़ाने और पढ़नेवाले वा राजा और प्रजाजन जावें वा आवें वहा-वहा सभ्यता से स्थित हो, विद्या और शान्तियुक्त वचन को कह और अच्छे शील का ग्रहण कर मर्य कहें और मुनें ॥७॥

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यदब्रह्मण्वनुषु पूरुषु स्थः ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) स्वामि-शिल्पिजनों ! तुम दोनों ( यत् ) जिस कारण ( यदुषु ) उत्तम यत्न करनेवाले मनुष्यों में वा ( तुर्वशेषु ) जो हितक मनुष्यों को वश में करें उन में वा ( यत् ) जिस कारण ( इहोषु ) द्रोहिजनों में वा ( अनुषु ) प्राण अर्थात् जीवन सुख देनेवालों में तथा ( पूरुषु ) जो अच्छे गुण विद्या वा कामों में परिपूर्ण हैं उन में यथोचित अर्थात् जिस से जैसा चाहिए वैसा व्यवहार करनेवाले ( स्थः ) हो ( अतः ) इस कारण से सब मनुष्यों में ( वृषणी ) सुखरूपी वर्षा करते हुए ( आ, यातम् ) अच्छे प्रकार आओ ( हि ) एक निश्चय के साथ ( अथ ) इस के अनन्तर ( सुतस्य ) निकाले हुए ( सोमस्य ) जगत् के पदार्थों के रस को ( परि, पिबतम् ) अच्छी प्रकार पिओ ॥८॥

भाषार्थ—जो न्याय और सेना के अधिकार को प्राप्त हुए मनुष्यों में यथा-योग्य वर्तमान हैं सब मनुष्यों को चाहिए कि उनको ही उन कामों में स्थापन अर्थात् मानकर कामों को सिद्ध करें ॥८॥

फिर वे, भौतिक इन्द्र और अग्नि कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) न्यायाधीश और सेनाधीश ! ( यत् ) जो तुम दोनों ( अवमस्याम् ) निकृष्ट ( मध्यमस्याम् ) मध्यम ( उत्त ) और ( परमस्याम् ) उत्तम गुणवाली ( पृथिव्याम् ) अपनी राज्यभूमि में अधिकार पाये हुए ( स्थः ) हो वे सब कभी सब की रक्षा करने योग्य हो ( अतः ) इस कारण हम उक्त राज्य में ( परि, वृषणी ) सब प्रकार सुखरूपी वर्षा करनेहारे होकर ( आ, यातम् ) आओ ( हि ) एक निश्चय के साथ ( अथ ) इस के उपरान्त उम राज्यभूमि में ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए ( सोमस्य ) ससारी पदार्थों के रस को ( पिबतम् ) पिओ यह एक अर्थ हुआ ॥९॥ ( यत् ) जो ये ( इन्द्राग्नी ) पवन और बिजुली ( अवमस्याम् ) निकृष्ट ( मध्यमस्याम् ) मध्यम ( उत्त ) वा ( परमस्याम् ) उत्तम गुणवाली

( पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( स्थः ) हैं ( अतः ) इस में यहाँ ( परि, वृषणी ) सब प्रकार से सुखरूपी वर्षा करनेवाले होकर ( आ, यातम् ) आते और ( अथ ) इस के उपरान्त ( हि ) एक निश्चय के साथ जो ( सुतस्य ) निकाले हुए ( सोमस्य ) पदार्थों के रस को ( पिबतम् ) पीते हैं उन को कामसिद्धि के लिए कलाओं में संयुक्त करके महान् लाभ सिद्ध करना चाहिए ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट गुण कर्म और स्वभाव के भेद से जो-जो राज्य हैं वहाँ-वहाँ वसे ही उत्तम, मध्यम, निकृष्ट गुण, कर्म और स्वभाव के मनुष्यों को स्थापन कर और अकर्मवीर राज्य करके सब की आनन्द भोगना-भोगवाना चाहिए ऐसे ही इस सृष्टि में ठहरे और सब लोकों में प्राप्त होते हुए पवन और बिजुली को जान और उनका अच्छे प्रकार प्रयोग कर तथा काम्यों की सिद्धि करके दारिद्र्य दोष सब का नाश करना चाहिए ॥९॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१०॥

पदार्थ—इस मन्त्र का अर्थ पिछले मन्त्र के समान जानना चाहिए ॥१०॥

भाषार्थ—इन्द्र और अग्नि दो प्रकार के हैं एक तो वे कि जो उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव में स्थिर वा पवित्र भूमि में स्थिर हैं वे उत्तम और जो अपवित्र गुण, कर्म, स्वभाव में वा अपवित्र भूमि आदि पदार्थों में स्थिर होते हैं वे निकृष्ट वे दोनों प्रकार के पवन और अग्नि ऊपर-नीचे सर्वत्र चलते हैं इससे दोनों मन्त्रों से ( अवम ) और ( परम ) शब्द जो पहले प्रयोग किये हुए हैं उन से दो प्रकार के ( इन्द्र ) और ( अग्नि ) के अर्थ को समझाया है ऐसा जानना चाहिए ॥१०॥

अब भौतिक इन्द्र और अग्नि कहाँ-कहाँ रहते हैं यह जगेश अगले मन्त्र में किया है—

यदिन्द्राग्नी दिवि षो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वसु ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥११॥

पदार्थ—( यत् ) जिस कारण ( इन्द्राग्नी ) पवन और बिजुली ( दिवि ) प्रकाशमान आकाश में ( यत् ) जिस कारण ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( यत् ) वा जिस कारण ( पर्वतेषु ) पर्वतों ( अप्सु ) जलों में और ( ओषधीषु ) ओषधियों में ( स्थः ) वर्तमान हैं ( अतः ) इस कारण ( परि, वृषणी ) सब प्रकार से सुख की वर्षा करनेवाले वे ( हि ) निश्चय से ( आ, यातम् ) प्राप्त होते ( अथ ) इस के अनन्तर ( सुतस्य ) निकाले हुए ( सोमस्य ) जगत् के पदार्थों के रस को ( पिबतम् ) पीते हैं ॥११॥

भाषार्थ—जो धनञ्जय पवन और कारणरूप अग्नि सब पदार्थों में विद्यमान हैं वे जैसे के वैसे जाने और क्रियाओं में जोड़े हुए बहुत कामों को सिद्ध करते हैं ॥११॥

फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्यं दिवः स्वधया मादयेथे ।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१२॥

पदार्थ—( यत् ) जिस कारण ( इन्द्राग्नी ) पवन और बिजुली ( उदिता ) उदय को प्राप्त हुए ( सूर्यस्य ) सूर्यमण्डल के वा ( दिवः ) अन्तरिक्ष के ( मध्ये ) बीच में ( स्वधया ) अन्न और जल से सबको ( मादयेथे ) हर्ष देने हैं ( अतः ) इससे ( वृषणा ) सुख की वर्षा करनेवाले ( परि ) सब प्रकार से ( आ, यातम् ) आते अर्थात् बाहर और भीतर से प्राप्त होते और ( हि ) निश्चय है कि ( अथ ) इसके अनन्तर ( सुतस्य ) निकाले हुए ( सोमस्य ) जगत् के पदार्थों के रस को ( पिबतम् ) पीते हैं ॥१२॥

भाषार्थ—पवन और बिजुली के बिना किसी लोक या प्राणी की रक्षा और जीवन नहीं होते हैं। इस में समार की पालना में य ही मुख्य है ॥१२॥

अब धनपति और सेनापति कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है—

एवेन्द्राग्नी पपिवासां सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनान ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत्त योः ॥१३॥

पदार्थ—( मित्र ) मित्र ( वरुणः ) श्रेष्ठ गुणयुक्त ( अदितिः ) उत्तम विद्वान् ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत्त ) और ( योः ) सूर्य का प्रकाश जिनको ( न ) हम लागे क लिए ( मामहन्ताम् ) बड़ावें ( तत्, एक ) उन्हीं ( विश्वा ) समस्त ( धनानि ) धनो को ( सुतस्य ) पदार्थों के निकाले हुए रस को ( पपिवासां ) पिये हुए ( इन्द्राग्नी ) अति धनी वा युद्धविद्या में कुशल वीरजन ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( संजयतम् ) अच्छी प्रकार जीतें अर्थात् सिद्ध कर ॥१३॥

भाषार्थ—विद्वान् बलिष्ठ धार्मिक कोशस्वामी और सेनाध्यक्ष और उत्तम पुरुषार्थ करनेवालों के बिना विद्या आदि धन नहीं बढ़ सकते हैं जैसे मित्र आदि अपने मित्रों के लिए सुख देते हैं वैसे ही कोशस्वामी और सेनाध्यक्ष आदि प्रजाजनों के लिए सुख देते हैं इससे सबको चाहिए कि इनकी सदा पालना करें ॥१३॥



इस सूक्त में पवन और बिजुली आदि के गुणों के वर्णन से उनके धर्म की पहचान  
सूक्त के धर्म के साथ मंगल जाननी चाहिए ॥

यह एकसी आठवां सप्त और सत्ताईसवां वर्ण पूरा हुआ ॥



अथ नवोत्तराशतसमस्याष्टचर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरस सुतस्य ऋषिः । इन्द्राग्नी

वेदेते । १, २, ४, ९, ८ निबृत्तिविष्णुप, २, ५ विष्णुप,

७ विराट् विष्णुप ऋग्वेद । अथवा स्वयं ॥

अथ एकसी नववें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से फिर वे भौतिक  
अग्नि और बिजुली कैसे हैं यह उपदेश किया है—

वि ह्यह्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।

नान्या युवस्त्रमतिरस्ति महां स वां धिर्यं वाजयन्तीमतसम् ॥१॥

पदार्थ—जैसे ( इन्द्राग्नी ) बिजुली और जो दृष्टिगोचर अग्नि है उनको  
( इच्छन् ) चाहता हुआ ( वस्य ) जिन्होंने चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य किया है  
उनमें प्रथमस्त्रीय मैं तथा ( ज्ञास ) जो ज्ञाताजन हैं उनको वा जानने योग्य पदार्थों  
को ( सजातान् ) वा एक सग हुए पदार्थों को ( उत ) और ( वा ) विद्यार्थी वा  
समझाने वालों को ( अमता ) विशेष ज्ञान से जानने की इच्छा करता हुआ  
( युवत् ) सब वस्तुओं को यथायोग्य कार्य में लगवानेहारा मैं इनको ( हि )  
निश्चय से ( वि, अह्यम् ) औरों के प्रति उत्तमता के साथ कहूँ जैसे तुम लोग भी  
कहो जो मेरी ( प्रवृत्तिः ) प्रबल मति ( अस्ति ) है वह तुम लोगों को भी हो  
( न, अम्या ) और न हो जैसे मैं ( वाम् ) तुम दोनों पढ़ाने-पढ़नेवालों से  
( वाजयन्तीम् ) समस्त विद्यार्थी को ज्ञानेवाली ( विद्यम् ) उत्तम बुद्धि को  
( अतसम् ) सूक्ष्म कर्त्तृ प्रार्थना बहुत कठिन विषयों को सुगमता से जानूँ जैसे ( स )  
यह पढ़ाने और पढ़नेवाला इसको ( अह्यम् ) मेरे लिए सूक्ष्म करे ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो लुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यों की योग्यता यह है कि  
अच्छी प्रीति और पुरुषार्थ से श्रेष्ठ विद्या आदि का बोध कराते हुए प्रति उत्तम बुद्धि  
उत्पन्न कराकर व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करानेवाले कामों को अवश्य  
सिद्ध करें ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अथर्वं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुक्त वां वा स्यान्नात् ।

अथा सोमस्य प्रयती युषम्याभिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥२॥

पदार्थ—जो ( वाम् ) वे ( भूरिदावत्तरा ) अतीव बहुत से धन की प्राप्ति  
करानेवाले ( इन्द्राग्नी ) बिजुली और भौतिक अग्नि हैं वा जो उक्त इन्द्राग्नी  
( विजामातु ) विरोधी जमाई ( स्यान्नात् ) साने से ( उत, वा ) अथवा और  
( वा ) अन्य जनों से धनों को दिलाते हैं यह मैं ( अथर्वम् ) सुन चुका हूँ ( अथ, हि )  
अभी ( युषम्याम् ) इनसे ( सोमस्य ) ऐश्वर्य प्रार्थना पदार्थों की प्राप्ति  
करनेवाले व्यवहार के ( प्रयती ) अच्छे प्रकार देने के लिए ( नव्यम् ) नवीन  
( स्तोमम् ) गुरु के प्रकाश को मैं ( जनयामि ) प्रकट करता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को बिजुली आदि पदार्थों के गुणों का ज्ञान और उनके  
अच्छे प्रकार कार्य में युक्त करने से नवीन-नवीन कार्य की सिद्धि करनेवाले कला-  
यन्त्र आदि का विधान कर अनेक कामों को बनाकर धर्म, धर्म और अपनी कामना  
की सिद्धि करनी चाहिए ॥ २ ॥

फिर उनको क्या करना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मा छैन्न रश्मीरिति नाध्रमाणाः पितृणां शक्तीरनुयच्छमाणाः ।

इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यग्नी विषणाया उपस्थे ॥३॥

पदार्थ—जैसे ( वृषण ) बलवान् जन जो ( अग्नी ) कभी विनाश को न  
प्राप्त होनेवाले हैं ( ता ) उन इन्द्र और अग्नियों को अच्छी प्रकार जान  
( इन्द्राग्निभ्याम् ) इनसे ( विषणाया ) प्रति विचारयुक्त बुद्धि के ( उपस्थे ) समीप  
में स्थिर करने योग्य प्रार्थना उस बुद्धि के साथ में लाने योग्य व्यवहार में ( कम् )  
सुख को पाकर ( नव्यम् ) आनन्दित होते हैं वा उस सुख की चाहना करते हैं जैसे  
( पितृणाम् ) रक्षा करनेवाले ज्ञानी विद्वानों वा रक्षा से अनुयोग को प्राप्त हुए बसन्त  
आदि ऋतुओं के ( रश्मीन् ) विद्यायुक्त ज्ञानप्रकाशों को ( नाध्रमाणा ) ऐश्वर्य के  
साथ चाहते ( शक्तीः ) वा सामर्थ्यों को ( अग्नीं विषणाया ) अनुकूलता के साथ  
नियम में लाते हुए हम लोग आनन्दित होते ( हि ) ही हैं और ( इति ) ऐसा  
जानके इन विद्यार्थी की जड़ को हम लोग ( वा, वेदम् ) न काटें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ऐश्वर्य की कामना करते हुए लोगों को कभी विद्वानों का सग और  
उनकी सेवा को छोड़ तथा बसन्त आदि ऋतुओं का यथायोग्य अच्छी प्रकार ज्ञान  
और सेवा का त्याग न कर अपना वर्तव्य रक्षना चाहिए और विद्या तथा बुद्धि की  
उन्नति और व्यवहारसिद्धि उत्तम प्रयत्न के साथ करनी चाहिए ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

युषाम्यां देवी विषणा मदावेन्द्राग्नी सोममुद्यती मुनोति ।

तावन्विना मद्रहस्ता मृषाणी आ धावन्त मधुना पुष्कलमप्सु ॥४॥

पदार्थ—जो ( सोमम् ) ऐश्वर्य की ( उद्यती ) कान्ति करानेवाली  
( देवी ) अच्छी-अच्छी शिक्षा और शास्त्रविद्या आदि से प्रकाशमान ( विषणा )  
बुद्धि ( मदाय ) आनन्द के लिए ( युषाम्याम् ) जिन से कामों को ( मुनोति ) सिद्ध  
करती है उस बुद्धि से जो ( इन्द्राग्नी ) बिजुली और भौतिक अग्नि ( अह्यम् ) कलायरो  
के जन के स्वानों में ( मधुना ) जल से ( पुष्कलम् ) सम्पर्क प्रार्थना सम्बन्ध करते  
हैं वा ( मद्रहस्ता ) जिनके उत्तम सुख के करनेवाले हाथों के तुल्य गुरु ( मृषाणी )  
और अच्छे-अच्छे व्यवहार वा ( अविषणा ) जो सब में व्याप्त होनेवाले हैं ( ता )  
वे बिजुली और भौतिक अग्नि रथों में अच्छी प्रकार लगाये हुए उनको ( आ,  
धावन्तम् ) चलाते हैं ॥४॥

भाषार्थ—मनुष्य जब तक अच्छी शिक्षा, उत्तम विद्या और क्रियाकौशलयुक्त  
बुद्धियों को सिद्ध नहीं करते हैं तब तक बिजुली आदि पदार्थों से उपकार को नहीं  
ले सकते इससे इस काम को अच्छे यत्न से सिद्ध करना चाहिए ॥४॥

युषामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुभ्रव वृषहस्ये ।

तावासद्यां बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥५॥

पदार्थ—मैं ( वसुन ) धन के ( विभागे ) सेवन व्यवहार में ( वृषहस्ये )  
वा जिस में मनुष्यों और मेघों का हनन हो उस संघास में ( युषाम् ) ये दोनों  
( इन्द्राग्नी ) बिजुली और साधारण अग्नि ( तवस्तमा ) अतीव बलवान् और बल  
के देनेवाले हैं यह ( शुभ्रव ) सुनता हूँ इस से ( ता ) वे दोनों ( चर्षणी ) अच्छे  
सुख को प्राप्त करनेवाले ( अस्मिन् ) इस ( बर्हिषि ) समीप में बहनेवाले ( यज्ञे )  
शिल्पव्यवहार के निमित्त ( सुतस्य ) उत्पन्न किये विमान आदि रथ को ( आसद्य )  
प्राप्त होकर ( मादयेथां ) आनन्द देते हैं ॥५॥

भाषार्थ—मनुष्य जिन से धन का विभाग करते हैं वा मनुष्यों को जीतने  
समस्त पृथिवी पर राज्य कर सकते हैं उनको कार्य की सिद्धि के लिए कैसे न  
यथायोग्य कामों में युक्त करें ॥५॥

अथ पवन और बिजुली कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिन्वाथे दिवश्च ।

प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्पन्या ॥६॥

पदार्थ—( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली ( अम्या, विषा, भुवना ) और  
समस्त लोकों को ( महित्वा ) प्रशंसित कराके ( पृतनाहवेषु ) सेनाओं से प्रवृत्त  
होते हुए युद्धों में ( चर्षणिभ्यः ) मनुष्यों से ( प्र, पृथिव्या ) अच्छे प्रकार पृथिवी  
वा ( प्र, सिन्धुभ्यः ) अच्छे प्रकार समुद्रों वा ( प्र, गिरिभ्यः ) अच्छे प्रकार पर्वतों  
वा ( प्र, विषा ) और अच्छे प्रकार सूर्य से ( प्र, अति रिरिन्वाथे ) अत्यन्त बढ़  
कर प्रतीत होते प्रार्थना कलायन्त्रों के सहाय से बढ़कर काम देते हैं ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पवन और बिजुली के  
समान बड़ा कोई लोक नहीं है क्योंकि ये दोनों सब लोकों को व्याप्त होकर  
उड़ते हुए हैं ॥६॥

अब पढ़ाने और पढ़नेवाले कैसे होते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में

इन्द्र और अग्नि नाम से किया है—

आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।

इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरों न आसन् ॥७॥

पदार्थ—( वज्रबाहू ) जिनके वज्र के तुल्य बल और वीर्य हैं वे ( इन्द्राग्नी )  
हैं पढ़ने और पढ़ानेवाले । तुम दोनों जैसे ( इमे ) ये ( सूर्यस्य ) सूर्य की  
( रश्मयः ) किरणें हैं और ( ते ) रक्षा आदि करते हैं और जैसे ( पितर )  
पितृजन ( येभिः ) जिना कर्मों से ( न ) हम लोगों के लिए ( सपित्वम् ) समान  
व्यवहारों की प्राप्ति करने वा विज्ञान को देकर उपकार के करनेवाले ( आसन् )  
हाते हैं वैसे ( शचीभिः ) अच्छे काम वा उत्तम बुद्धियों से ( अस्मान् ) हम लोगों  
को ( आ, भरतम् ) स्वीकार करो ( शिक्षतम् ) शिक्षा देओ और ( नु ) भीष्ट  
( अथवा ) पालो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जो अच्छी  
शिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाशकर्ता और माता-पिता के तुल्य  
कृपा से रक्षा करने वा पढ़ानेवाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त और  
दूसरा पढ़नेवाला है उन दोनों का नित्य सत्कार करो इस काम के बिना कभी विद्या  
की उन्नति होने का सम्भव नहीं है ॥७॥

फिर वे दोनों कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पुरन्दरा शिक्षतं वज्रहस्ताऽस्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरैषु ।

तस्माँ मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः ॥८॥

पदार्थ—जो ( पुरन्दरा ) मनुष्यों के पुरो को विध्वंस करनेवाले वा  
( वज्रहस्ता ) जिन का विद्यारूपी वज्र हाथ के समान है वे ( इन्द्राग्नी ) उपदेश के  
सुनने वा करनेवाले तुम जैसे ( विष ) सुहृज्जन ( वरुण ) उत्तम गुरुयुक्त  
( अदिति ) अन्तरिक्ष ( सिन्धु ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत ) और ( यौः )  
सूर्य का प्रकाश ( न ) हम लोगों को ( मामहन्ताम् ) उन्नति देता है जैसे

( अस्मान् ) हम लोगों को ( तत् ) उन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान की ( शिक्षात् ) शिक्षा देनी और ( अर्थः ) संग्राम आदि व्यवहारों में ( अक्षयम् ) रक्षा आदि करो ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मित्र आदि जन अपने मित्रादिकों की रक्षा कर और उन्नति करते या एक दूसरे की अनुकूलता में रहते हैं वैसे उपदेश के सुनने और सुनानेवाले परस्पर विद्या की बुद्धि कर प्रीति के साथ मित्रपन में वर्तित रहें ॥६॥

इस सूक्त में इन्द्र और अग्नि शब्द के अर्थ का वर्णन है इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकलौ नववां सूक्त और अन्तीसवां वर्ण पुरा हुआ ॥



अथ दशोत्तरशततमस्य नववर्णस्य सूक्तत्याजिरसः कुत्स ऋषिः । ऋजवो देवताः ।

१, ४ जगती, २, ३, ७ विराड्जगती, ६, ८ निबृज्जगती

छन्दः । निषादः स्वरः । ५ निबृत्त्रिष्टुप्, ६ विष्टुष्टुष्टुः ।

चैवत स्वर ॥

अथ एकलौ वशवै सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वान् मनुष्य

कैसे अपना वर्तित रहें यह उपदेश किया है—

तत् मे अपस्तुतुं तायेत पुनः स्वादिष्टा धीतिरुचया शस्यते ।

अयं समुद्र इह विश्वदैव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृणुत ऋभवः ॥१॥

पदार्थ—( ऋभवः ) हे बुद्धिमान् विद्वानो ! तुम लोग जैसे ( इह ) इस लोक में ( अयम् ) यह ( विश्वदैव्यः ) समस्त अच्छे गुणों के योग्य ( समुद्रः ) समुद्र है और जैसे तुम लोगों में ( स्वाहाकृतस्य ) सत्य वाणी से उत्पन्न हुए धर्म के ( उच्यते ) कहने के लिए ( स्वादिष्टा ) अतीव मधुर गुणवाली ( धीतिः ) बुद्धि ( शस्यते ) प्रसंनीय होती है ( उ ) वा जैसे ( मे ) मेरा ( तत् ) बहुत कैला हुआ अर्थात् सबको विवित ( अयः ) काम ( तायेत ) पालना करता है ( तत् उ, पुनः ) वैसे फिर तो हम लोगों को ( समु, तृणुत ) अच्छा सुप्त करो ॥ १॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे समस्त रत्नों से भरा हुआ समुद्र दिव्य गुणयुक्त है वैसे ही धार्मिक पढ़ानेवालों को चाहिए कि मनुष्यों में सत्य काम और अच्छी बुद्धि का प्रचार कर दिव्य गुणों की प्रसिद्धि करें ॥ १॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आमोगयं प्र यविच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।

सौधन्वनासश्चितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( प्राञ्चः ) प्राचीन ( अपाका ) रोटी आदि का स्वयं पाक तथा यज्ञादि कर्म न करनेवाले सन्यासी जनो ! आप जो ( के, चित् ) कोई जन ( मम ) मेरे ( आमोगयं ) विद्या में अच्छी प्रकार व्याप्त होने की कामना किये ( यत् ) जिस ( या भोगयम् ) अच्छी प्रकार भोगने के पदार्थों में प्रशंसित भोग की ( इच्छन्त ) चाह रहे हैं उनको उसी भोग को ( प्र, ऐतम् ) प्राप्त करो । हे ( सौधन्वनासः ) मनुष्य बाण के बाँधने वालों में अतीव बलुरो ! जब तुम ( भूमना ) बहुत ( चरितस्य ) किये हुए काम के ( सविषुः ) ऐश्वर्य से युक्त ( दाशुषः ) दान करनेवाले के ( गृहम् ) घर को ( आमोगच्छत ) आओ तब जिज्ञासुओं अर्थात् उपदेश सुननेवालों के प्रति सवि धर्म के ग्रहण करने का उपदेश करो ॥ २॥

भाषार्थ—हे गृहस्थ आदि मनुष्यो ! तुम सन्यासियों से सत्य विद्या को पाकर कहीं दान करनेवालों की समा में जाकर वहाँ युक्ति से बैठ और निरभिमानता से वर्तकर विद्या और विनय का प्रचार करो ॥ २॥

फिर वे कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

तत्सविता वीऽमृतत्वमासुवदगोषं यच्छ्रव्यन्त ऐतन ।

त्यं चिच्चममसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकुण्ठा चतुर्वयम् ॥३॥

पदार्थ—हे बुद्धिमानो ! तुम जो ( सविता ) ऐश्वर्य का देनेवाला विद्वान् ( व ) तुम्हारे लिए ( यत् ) जिस ( अमृतत्वम् ) मोक्षभाव के ( आ, अमुत् ) अच्छे प्रकार ऐश्वर्य का योग करे ( तत् ) उसका ( अगोष्टम् ) प्रकट ( अक्षयम् ) सुनाते हुए सब विद्याओं को ( ऐतम् ) समझाओ ( असुरस्य ) जो प्राणों में रम रहा है उस मेघ के ( चमसम् ) जिस में सब भोजन करते हैं अर्थात् जिससे उत्पन्न हुए अन्न को सब खाते हैं ( त्यम् ) उस ( भक्षणम् ) सूर्य के प्रकाश को निगल जाने के ( चित् ) समान ( चतुर्वयम् ) जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं ऐसे ( एकम् ) एक ( सन्तम् ) अपने वर्तित को ( अकुण्ठा ) करो ॥ ३॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे मेघ प्राण की पुष्टि करनेवाले अन्न आदि पदार्थों को देनेवाला होकर सुखी करता है वैसे ही आप लोग विद्या के दान करने वाले होकर विद्याधियों को विद्वान् कर सुन्दर उपकार करो ॥ ३॥

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाद्यतो मर्चासः सन्तोऽभमृतस्वमानशुः ।

सौधन्वना ऋभवः सुरक्षसः संवत्सरे समपृच्छन्त धीतिभिः ॥४॥

पदार्थ—जो ( सौधन्वना ) अच्छे ज्ञानवाले ( सुरक्षसः ) अर्थात् जिन का प्रबल ज्ञान है ( वाद्यतो ) वा वाणी को अच्छे कहने, सुनने ( मर्चासः ) सरने और जीनेवाले ( ऋभवः ) बुद्धिमान् जन ( संवत्सरे ) वर्ष में ( धीतिभिः ) निरन्तर पुरुषार्थयुक्त कामों से कार्यसिद्धि का ( समपृच्छन्त ) सम्बन्ध रखते अर्थात् काम का ढङ्ग रखते हैं वे ( तरणित्वेन ) शीघ्रता से ( विष्ट्वी ) व्याप्त होनेवाले ( शमी ) कामों को करते ( सन्तः ) हुए ( अभमृतत्वम् ) मोक्षभाव को ( आनशुः ) प्राप्त होते हैं ॥ ४॥

भाषार्थ—जो मनुष्य प्रत्येक अणु अच्छे-अच्छे पुरुषार्थ करते हैं वे संसार से लेके मोक्ष पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त होकर सुखी होते हैं किन्तु घालसी मनुष्य कभी सुखों को नहीं प्राप्त हो सकते ॥ ४॥

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनैकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।

उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु भवं हृच्छमानाः ॥५॥३०॥

पदार्थ—जो ( उपस्तुता ) तीर घानेवालों से प्रशंसा को प्राप्त हुए ( नाधमाना ) और लोगों से अपने प्रयोजन से याचे हुए ( अमर्त्येषु ) अविनाशी पदार्थों में ( अमः ) अन्न को ( हृच्छमाना ) चाहते हुए ( ऋभवः ) बुद्धिमान् जन ( तेजनेन ) अपनी उत्तेजना से ( क्षेत्रमिव ) क्षेत्र के समान ( जेहमानम् ) प्रयत्नों को सिद्ध करानेवाले ( एकम् ) एक ( उपमम् ) उपमा रूप अर्थात् अति श्रेष्ठ ( पात्रम् ) जानो के समूह का ( वि, ममु ) विशेष मान करते हैं वे सुख पाते हैं ॥ ५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य क्षेत्र की ओत, बीज और सम्यक् रक्षा कर उससे अन्न आदि को पाके उसका भोजन कर आनन्दित होते हैं वैसे वेद में कहे हुए कलाकीयास से प्रशंसित यानों को रखकर उनमें बैठ और उन्हें चला और एक देश से दूसरे देश में जाकर व्यवहार वा राज्य से धन को पाकर सुखी होते हैं ॥५॥

अथ सूर्य की किरणें कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचैव घृतं जुहवाम विद्याना ।

तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिबो रजः ॥६॥

पदार्थ—( ये ) जो ( ऋभवः ) सूर्य की किरणें ( तरणित्वा ) शीघ्रता से ( वाजम् ) पृथिवी आदि अन्न पर ( अग्रहण ) चढ़ती और ( विचः ) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच ( रजः ) लोकसमूह को ( सश्चिरैः ) प्राप्त होती हैं और ( स्रुचैः ) इस ( अन्तरिक्षस्य ) आकाश के बीच वर्तमान हुई ( नृभ्यः ) मनुष्यों के लिए ( स्रुचैः ) जैसे होम करने के पात्र से घृत को छोड़ें वैसे ( घृतम् ) जल तथा ( पितु ) अन्न को प्राप्त कराती हैं उनके सकाश से हम लोग ( विद्याना ) जिससे विद्वान् सत् असत् का विचार करता है उस ज्ञान से ( मनीषाम् ) विचार वाली बुद्धि को ( आ, जुहवाम ) ग्रहण करें ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे ये सूर्य की किरणें लोक लोकांतरों को चढ़कर जल वर्षा और उससे शोषधियों का उत्पन्न कर सब प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे राजावि जन प्रजाओं को सुखी करें ॥६॥

फिर श्रेष्ठ विद्वान् हमारे लिए कित से क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऋसुर्न इन्द्रः शर्वसा नवीयानृभुर्वाजैर्भिवसुर्भिवसुर्दिदः ।

युष्माकं देवा अवसादनि मियेभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७॥

पदार्थ—जो ( नवीयान् ) अतीव नवीन ( ऋभुः ) बहुत विद्याओं का प्रकाश करनेवाला विद्वान् जैसे ( इन्द्रः ) सूर्य अपने प्रकाश और आकर्षण से सबको आनन्द देता है वैसे ( शर्वसा ) विद्या और उत्तम शिक्षा के बल से ( नृ ) हमको सुख देवे या जो ( ऋभुः ) धीरबुद्धि आयुर्दा और सम्यक्ता का प्रकाश करनेवाला ( वाजैभिः ) विज्ञान, अन्न और सन्नामी से या ( वसुभिः ) चक्रवर्ती राज्य आदि के धनो से ( वसु ) आप सुख में बसने और ( विचः ) दूसरों को सुख का देनेवाला होता है उससे अपने राज्य के और सेनाजनों के ( शर्वसा ) रक्षा आदि व्यवहार के साथ वर्तमान ( देवा ) विद्या और अच्छी शिक्षा को चाहते हुए हम विद्वान् लोग ( मिये ) प्रीति उत्पन्न करनेवाले ( अहनि ) दिन में ( पृत्सुतीरम् ) अच्छे ऐश्वर्य के विरोधी ( युष्माकम् ) तुम मनुजनों की ( पृत्सुती ) उन सेनाओं के जो कि सम्बन्ध करनेवालों को ऐश्वर्य पहुँचानेवाली हैं ( अग्निः ) सम्मुख ( तिष्ठेम ) स्थिर होवें अर्थात् उनका तिरस्कार करें ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अपने प्रकाश से तेजस्वी समस्त चर और अचर जीवों और समस्त पदार्थों के जीवन कराने से आनन्दित करता है वैसे विद्वान् शरीर और विद्वानों में अच्छे विद्वान् के सहायों से युक्त हम लोग अच्छी शिक्षा की हुई, प्रसन्न और पुष्ट अपनी सेनाओं से जो सेना को लिये हुए हैं उन मनुष्यों का तिरस्कार कर धार्मिक प्रजाजनों को पाक चक्रवर्ति राज्य की निरन्तर सेवें ॥७॥

फिर वे विद्वान् क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

निश्चर्मण ऋभवो गार्गपिशत स वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।

सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिघ्री युवाना पितरांकुशोतम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( ऋभवः ) बुद्धिमान् मनुष्यो ! तुम ( चर्मणः ) चर्म ( गार्गः ) गौ की ( गार्गपिशत ) निरन्तर अवधवी करो अर्थात् उसके चर्म आदि को खिलाने-पिलाने से पुष्ट करो ( पुनः ) फिर ( वत्सेना ) उसके बच्चे के साथ

( वासतम् ) उस माता गौ को ( संवसुजत ) युक्त करी। हे ( लौकिकमात्र )। अनुवर्षविक्रयकृत ( नरः ) और व्यवहारी को यथायोग्य वसतिवाले विद्वानो। तुम ( स्वयम्भवा ) सुन्दर जिसमें काम बने उस चतुराई से ( विद्वो ) अच्छे जीवनयुक्त बुद्धे ( पितरः ) अपने माँ-बाप को ( सुभवा ) युवावस्थावालों के सदृश ( अष्टमोत्तम ) निरन्तर करो ॥६॥

भाषार्थ—विद्वाने कहे हुए काम के बिना कोई भी राज्य नहीं कर सकते इससे मनुष्यों को चाहिए कि उन कामों का सदा अनुष्ठान किया करें ॥६॥

अब सेनाध्यक्ष कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

वाजैभिर्नो वाजसातावविद्वत्पुत्रोऽन्द्र चित्तमा दर्पि राधः ।

तस्यो मितो वरुणा मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त सेनाध्यक्ष ! ( ऋभुमान् ) जिनके अश्वसित बुद्धिमानजन विद्यमान हैं वे आप ( नः ) हमारे लिए जिस ( राधः ) बल को ( मित्रः ) सुहृत्सम ( वरुणः ) श्रेष्ठ गुरुयुक्त ( अदितिः ) अन्तरिक्ष ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत ) और ( द्यौः ) सूर्य का प्रकाश ( मामहन्ताम् ) बढ़ावे ( तत् ) उस ( चित्तम् ) अद्भुत बल को ( अविद्वत् ) व्याप्त हुआई अर्थात् सब प्रकार समझिए और ( नः ) हम लोगों को ( वाजैभिः ) अन्नादि सामग्रियों से ( वाजसती ) संभ्रम से ( आरविः ) आदरयुक्त कीजिए ॥६॥

भाषार्थ—कोई सेनाध्यक्ष बुद्धिमानों के सहाय के बिना शत्रुओं को जीत नहीं सकता ॥६॥

इस सूक्त में बुद्धिमानों के काम और गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह इकतीसवाँ वर्ण और एकतीसवाँ सूक्त पूरा हुआ ॥



अथ पञ्चमसंस्कृतस्य द्वादशोत्तरस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः ।

ऋभुर्वा देवता । १-४ जगती छन्द । निषाद. स्वरः ।

५ त्रिष्टुप् छन्द । ऋषत. स्वरः ।

अब एकतीसवाँ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में शिल्पविद्या के चतुर बुद्धिमान् क्या करे यह उपदेश किया है—

तसन्नर्थं सुवर्तं विद्वन्नापसस्तसन्नहरीं इन्द्रवाहा वृषणवस् ।

तसन्नं पितृभ्यामभवो युवद्वयस्तसन्नवत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१॥

पदार्थ—जो ( पितृभ्याम् ) स्वामी और शिक्षा करनेवालों से युक्त ( विद्वन्नापस ) जिनके अति विचारयुक्त कर्म हों वे ( ऋभवः ) क्रिया में चतुर मेधावीजन ( वृषणवस् ) जिनमें विद्या और शिल्पक्रिया के बल से युक्त मनुष्य निवास करते-कराते हैं ( हरी ) उन एक स्थान से दूसरे स्थान को भीष्ट पहुँचाने तथा ( इन्द्रवाहा ) परमेश्वर्य को प्राप्त करनेवाले जन और अग्नि को ( तसन्नं ) अति सूक्ष्मता के साथ मिश्र करें वा ( सुवर्तम् ) अच्छे-अच्छे कोठे पर कोठे युक्त ( रथम् ) विमान आदि रथ को ( तसन्नं ) अति सूक्ष्म क्रिया से बनावें वा ( वयः ) अवस्था को ( तसन्नं ) विस्तृत करें तथा ( वत्साय ) सन्तान के लिए ( सचाभुवम् ) विशेष ज्ञान की आवश्यकता कराती हुई ( मातरम् ) माता का ( युवत् ) मेल जैसे ही वैसे ( तसन्नं ) उसे उन्नति देवे वे अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त होंगे ॥ १ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जन जब तक इस संसार में कार्य के दर्शन और गुणों की परीक्षा से कारण को नहीं पहुँचते हैं तब तक शिल्पविद्या को नहीं सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ नो यज्ञाय तसत ऋभुमद्वयः कत्वे दशाय सुप्रजावतीभिषम् ।

यथा स्याम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥२॥

पदार्थ—हे बुद्धिमानो ! तुम ( नः ) हमारी ( अज्ञाय ) जिससे एक दूसरे से पदार्थ मिलाया जाता है उस शिल्पक्रिया की सिद्धि के लिए वा ( कत्वे ) उत्तम ज्ञान और न्याय के काम और ( दशाय ) बल के लिए ( ऋभुमत् ) जिसमें अश्वसित मेधावी अर्थात् बुद्धिमान् जन विद्यमान हैं उस ( वयः ) जीवन को तथा ( सुप्रजावतीम् ) जिसमें अच्छी प्रजा विद्यमान हो अर्थात् प्रजाजन प्रसन्न होने हो ( इवम् ) उस चाहे हुए अन्न को ( आतसत ) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो ( यथा ) जैसे हम लोग ( सर्ववीरया ) समस्त वीरों से युक्त ( विशा ) प्रजा के साथ ( धासथा ) निवास करें तुम भी प्रजा के साथ निवास करो वा जैसे हम लोग ( शर्धाय ) बल के लिए ( तत् ) उस ( पु, इन्द्रयम् ) उत्तम विज्ञान और बल को कारण करें वैसे तुम भी ( नः ) हमारे बल होने के लिए उत्तम ज्ञान और बल को ( आतसत ) आरक्ष करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस संसार में विद्वानों के साथ अविद्वान् और अविद्वानों के साथ विद्वान् जन प्रीति से मिल्य अपना वर्तन रखें इस काम के बिना शिल्पविद्यासिद्धि, उत्तम बुद्धि-बल और श्रेष्ठ प्रजाजन कभी नहीं हो सकते ॥ २ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ तसत सातिभस्मभ्यम्भवः साति रथाय सातिमवैते नरः ।

साति नो जैत्र्यं सं महेत विश्वहा जामिमजामि पृतनासु सक्षणिम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( ऋभवः ) शिल्पक्रिया में अति चतुर ( नरः ) मनुष्यो ! तुम ( भस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( विश्वहा ) सब दिन ( रथाय ) विमान आदि यानसमूह की सिद्धि के लिए ( सातिम् ) अलग-अलग चीजों की सिलावट को ( या, तसत् ) उत्तम शस्त्र के लिए ( सातिम् ) अलग-अलग चीजों की सिलावट को ( या, तसत् ) सब प्रकार से सिद्ध करो और ( पृतनासु ) सेनाओं में ( सातिम् ) विद्यादि उत्तम-उत्तम पदार्थ वा ( जामिम् ) प्रसिद्ध और ( अजामिम् ) अप्रसिद्ध ( सक्षणिम् ) सहन करनेवाले शत्रु को जीतके ( नः ) हमारे लिए ( जैत्र्यम् ) जीत देनेहारी ( सातिम् ) उत्तम भक्ति को ( तम्, महेत ) अच्छे प्रकार प्रशंसित करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन हमारी रक्षा करने और शत्रुओं को जीतनेहारे हैं उनका उत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

इसका किस लिए हम उत्कार करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ऋभुसणमिन्द्रमा हुब ऊतय ऋभुन्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।

उभा मित्रावरुणा नूनमग्निना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥४॥

पदार्थ—मैं ( इत्ये ) रक्षा आदि व्यवहार के लिए ( ऋभुसणम् ) जो बुद्धिमानों को बसाता वा समझता है उस ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्ययुक्त उत्तम बुद्धिमान् को ( आहुते ) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ। मैं ( सोमपीतये ) पदार्थों के निकाले हुए रस के पिलानेहारे यज्ञ के लिए ( वाजान् ) जो कि अतीव ज्ञानवान् ( मरुतः ) और ऋतु-ऋतु में अर्थात् समय-समय पर यज्ञ करने वा कारातेहारे ( ऋभुम् ) ऋषिज हैं उन बुद्धिमानों को स्वीकार करता हूँ मैं ( उभा ) दोनों ( मित्रावरुणा ) सबके मित्र, सबसे श्रेष्ठ ( अग्निना ) समस्त अच्छे-अच्छे गुणों में रहनेहारे पढ़ने और पढ़ानेहारे को स्वीकार करता हूँ जो ( जिषे ) उत्तम बुद्धि पाने के लिए ( सातये ) या बाँट-बूट के लिए वा ( जिषे ) शत्रुओं के जीतने को ( नः ) हम लोगों के समझाने वा बढ़ाने को समर्थ हैं ( ते ) विद्वान् जन हम लोगों को ( नूनम् ) एक निश्चय से ( हिन्वन्तु ) बढ़ावें और समझावें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो शास्त्र में दक्ष, सत्यवादी, क्रियाओं में अति चतुर और विद्वानों का सेवन करते हैं वे अच्छी शिक्षायुक्त उत्तम बुद्धि को प्राप्त हो और शत्रुओं को जीतकर कैसे न उन्नति को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

फिर वह मेधावी श्रेष्ठ विद्वान् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

ऋभुर्भर्याय सं शिशातु साति समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।

तस्यो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

पदार्थ—हे मेधावी ( समर्यजित् ) सप्रामो के जीतनेवाले ( ऋभुः ) प्रशंसित विद्वान् ! ( वाजः ) वेगादि गुरुयुक्त आप ( भर्याय ) सभ्रम के अर्थ प्राये शत्रुओं का ( संशिशातु ) अच्छी प्रकार नाश कीजिए ( अस्मान् ) हम लोगों की ( अविष्टु ) रक्षा आदि कीजिए जैसे ( नः ) हम लोगों के लिए जो ( मित्रः ) मित्र ( वरुणः ) उत्तम गुरुवाला ( अदितिः ) विद्वान् ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत ) और ( द्यौः ) सूर्य का प्रकाश ( मामहन्ताम् ) सिद्ध करें उन्नति देवें वैसे ही आप ( तत् ) उस ( सातिम् ) पदार्थों के अलग-अलग करने को हम लोगों के लिए सिद्ध कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—विद्वानो का यही मुख्य कार्य है कि जो जिशासु अर्थात् ज्ञान चाहने वाले विद्या के न पढ़े हुए विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा और विद्यादान से बढ़ावें जैसे मित्र आदि सख्यन वा प्राण आदि पवन सब की वृद्धि करके उन को सुखी करते हैं वैसे ही विद्वान् जन भी अपना वर्तन रखें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में बुद्धिमानों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह बत्तीसवाँ वर्ण और एकतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमसंस्कृतस्य द्वादशोत्तरस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । आदिने मन्त्रे प्रथमपादस्य आवापृथिवी, द्वितीयस्याग्निः, त्रितीयस्य सूक्तस्याग्निर्वा देवता ।

१, २, ६, ७, १३, १४, १७, १८, २०—२२ त्रिष्टुप् जगती;

४, ८, ९, ११, १२, १४, १६, २३ जगती; १६ विराट्

जगती छन्द । निषाद. स्वरः । ३, ५, २४, विराट् त्रिष्टुप्;

१० भुरिक्त्रिष्टुप्; २५ त्रिष्टुप् छन्दः । ऋषत. स्वरः ॥

अब एकतीसवाँ सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में

सूर्य और भूमि के गुणों का कथन किया है—

ईडे धावापृथिवी पूर्वचिन्तयेऽग्निं धर्मं सुरुचं यामगिष्टये ।

यामिर्मरं कारमंशाय जिन्वथस्वामिन्तु पु उतिमिरभिना गतम् ॥१॥



पदार्थ—हे (अश्विना) विद्याओं में व्याप्त होनेवाले अध्यापक और उप-देशक। आप जैसे (वाचम्) मार्ग में (पूर्वविश्वसे) पूर्व विद्वानों में सञ्चित किये हुए (इष्टसे) अभीष्ट सुख के लिए (आवापुर्वी) सूर्य का प्रकाश और भूमि (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से युक्त (अरे) सग्राम में (अर्धम्) प्रतापयुक्त (सुखम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त और रक्षित (अग्निम्) विद्युत् रूप अग्नि को प्राप्त होते हैं वैसे (ताभिः) उन रक्षाओं से (अशाय) भाग के लिए (आरम्) जिस में क्रिया करते हैं उस विषय को (सु, जिवन्व) उत्तमता से प्राप्त होते हैं (उ) तो कार्यसिद्धि करने के लिए (आ, गतम्) सदा आरंभ इस हेतु से मैं (इष्टे) आप की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार है। हे मनुष्यों! जैसे प्रकाशयुक्त सूर्यादि और अग्निप्रकारयुक्त भूमि आदि लोक सब धर आदिकों के विनये और आचार के लिए होते और बिजुली के साथ सम्बन्ध करके सब के कारण करनेवाले होते हैं वैसे तुम भी प्रजा में वर्त्ता करो ॥ १ ॥

अब पढ़ाने और उपदेश करनेवालों के विषय में अगले मन्त्रों में कहा है—

युवोर्दानाय सुमरा असञ्चतो रथमा तंस्त्वुर्वचसं न मन्तवे।

यामिर्धियोऽवथः कर्मभिष्टये तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वानों! (सुमरा) जो अच्छे प्रकार धारण वा पोषण करते कि जो प्रति भ्रान्त्य के सिद्ध करनेवाले हैं वा (असञ्चत) जो किसी दुरे कर्म और कुसंग में नहीं मिलते वे सज्जन (मन्तवे) विशेष जानने के लिए जैसे (अवथ, न) सब ने प्रज्ञा के साथ विख्यात किये हुए अत्यन्त बुद्धिमान् जन को प्राप्त होवे वैसे (युवो) आप लोगों के (रथम्) जिस विमान आदि यान को (आ, तस्यु) अच्छे प्रकार प्राप्त होकर स्थिर होने हैं उसके साथ (उ) और (यामिः) जिन से (अथ) उत्तम बुद्धियों को (कर्मम्) काम के बीच (इष्टसे) चाहे हुए सुख के लिए (अवथ) राखते हैं (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ तुम (दानाय) सुख देने के लिए हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासकार है। हे मनुष्यों! जो तुम को उत्तम बुद्धि की प्राप्ति करावें उनकी सब प्रकार से रक्षा करो जैसे आप लोग उन का सेवन करें वैसे ही वे लोग भी तुम को शुभ विद्या का बोध कराया करें ॥ २ ॥

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्जना।

यामिर्धेनुमस्वः पिवन्थो नरा तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३॥

पदार्थ—हे (नरा) विद्या व्यवहार में प्रधान (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोगो! (युवम्) तुम दोनों (दिव्यस्य) अतीव शुद्ध (अमृतस्य) नाश-रहित परमात्मा के (अमृतस्य) अनन्त बल के साथ जो परमात्मा के सम्बन्ध में प्रजाजन हैं (तासाम्) उन (विशाम्) प्रजाओं (प्रशासने) शिक्षा करने में (अवथ) निवास करते हो (उ) और (यामिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं (अस्वम्) जो दुष्ट काम को न उत्पन्न करती हैं उस (धेनुम्) सब सुख वर्णने वाली बाणो का (पिवन्थो) सेवन करते हो (ताभिः) उन रक्षाओं के साथ (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार हम लोगों को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—वे ही धन्य विद्वान् हैं जो प्रजाजनों को विद्या, अच्छी शिक्षा और सुख की वृद्धि होने के लिए प्रसन्न करने और उनके शरीर तथा आत्मा के बल को निरप्य बढ़ावा करते हैं ॥ ३ ॥

फिर वे दोनों कंसे हैं यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

यामिः परिज्मा तनयस्य मज्जना द्विमाता तूष्ण तरणिर्विभूषति।

यामिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या और उपदेश की प्राप्ति करनेवाले विद्वान् लोगो! (यामिः) जिन से (द्विमाता) दोनों अग्नि और जल का प्रमाण करने वाला (तूष्ण) शीघ्र करनेवालों में (तरणि) उछलता-सा अतीव वेगवाला (परिज्मा) सर्वत्र गमन करता वायु (तनयस्य) अपने से उत्पन्न अग्नि के (मज्जना) बल ने (सु, विभूषति) अच्छे प्रकार सुशोभित होता (उ) और (यामिः) जिन में (त्रिमन्तु) कर्म, उपासना और ज्ञान विद्या को माननेवाला (विचक्षण) विविध प्रकार में सब विद्याओं को प्रत्यक्ष करनेवाला (अभवत्) होवे (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षाओं में सहित हम सब लोगों का विद्या देने के लिए (आ, गतम्) प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार है। मनुष्यों को योग्य है कि प्राण के समान प्रीति और मन्त्रातियों के समान उपकार करने से सबके लिए विद्या की उन्नति किया करें ॥ ४ ॥

यामी रेभं निवृत्तं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयत् स्वर्हसे।

यामिः कखं प्रसिषासन्तमार्वतं तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥५॥

पदार्थ—(अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करनेवालों! तुम (यामिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सितम्) शुद्ध धर्मयुक्त (निवृत्तम्) निरन्तर स्वीकार किये हुए शास्त्रबोध की (रेभम्) स्तुति और (अव्ययम्) गुरुओं की प्रशंसा करनेवाले को (स्व) सुख के (वृषो) देखने के अर्थ (अव्यय) जलो

से (उत्, ऐरयत्) प्रेरणा करो और (यामिः) जिन से (सितम्) विभाग कराने को इच्छा करनेवाले (अव्ययम्) बुद्धिमान् विद्वान् की (प्र, अव्ययम्) रक्षा करो (ताभिः, उ) उन्हीं रक्षाओं से हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) उत्तमता से आइए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की अच्छे प्रकार रक्षाकर उनसे विद्याओं को प्राप्त हो जलादि पदार्थों से शिल्पविद्या को सिद्ध करके बढ़ते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

यामिरन्तकं जसमानमार्णे भुज्युं यामिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः।

यामिः कर्कथुं वर्यं च जिन्वथस्तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभा सेना के स्वामी विद्वान् लोगो! आप (यामिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (आरथे) सब धोर से युद्ध होने में (अन्तकम्) दुःखों के नाशक और (जसमानम्) शत्रुओं को मारते हुए पुरुष और (यामिः) जिन (अव्यथिभिः) पीड़ा रहित भ्रान्त्यकारक रक्षाओं से (भुज्युम्) पालनेवाले पुरुष को (जिजिन्वथुः) प्रसन्न करते (च) और (यामिः) जिन रक्षाओं से (कर्कथुम्) कारीगरी करनेवाले (अव्ययम्) जाता पुरुष की (जिन्वथ) प्रसन्नता करते हो (ताभिः, उ) उन्हीं रक्षाओं के साथ हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आइए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—रक्षा करनेवाले और अधिष्ठाताओं के बिना योद्धा लोग शत्रुओं के साथ सग्राम में युद्ध करने और प्रजाओं के पालने को समर्थ नहीं हो सकते जो प्रबन्ध से विद्वानों की रक्षा नहीं करते वे पराजय को प्राप्त होकर राज्य करने को समर्थ नहीं होते ॥ ६ ॥

यामिः शुचन्ति धनसां सुपसदं तप्त धर्ममोम्यावन्तमत्रये।

यामिः पृथिनगुं पुरुकुत्तमार्वतं तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥७॥

पदार्थ—हे (अश्विना) उपदेश करने और पढ़ानेवालों! तुम दोनों (यामिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अत्रये) जिसमें आध्यात्मिक, प्राणि-भौतिक और आधिर्बैविक दुःख नहीं हैं उस व्यवहार के लिए (शुचन्ति) पवित्रकारक (अव्ययम्) धन के विभागकर्ता (सुपसदम्) अच्छी सभावाले (तप्तम्) ऐश्वर्ययुक्त (अव्ययम्) उत्तम यज्ञवान् (मोम्यावन्तम्) रक्षकों को प्राप्त होनेवाले पुरुष प्रशंसित जिसके हैं उस की और (यामिः) जिन रक्षाओं से (पृथिनगुम्) विमानादि से अन्तरिक्ष में जानेवाले (पुरुकुत्तम्) बहुत शस्त्रास्त्रयुक्त पुरुष की (अव्ययम्) रक्षा करें (ताभिः, उ) उन्हीं रक्षाओं से हम लोगों को (सु, आ, गतम्) उत्तमता से प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को योग्य है कि धर्मात्माओं की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना से सत्यविद्याओं का प्रकाश करें ॥ ७ ॥

अब सभा और सेना के अध्यक्ष ब्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यामिः शचीभिर्दृष्टणा परावृजं प्रान्धं श्राणं चक्षस एतवे कथः।

यामिर्धर्षिकां प्रसिताममुच्चतं तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥८॥

पदार्थ—हे (युवना) सुख के वर्णनेवाले (अश्विना) सभा और सेना के अचीनो! तुम (यामिः) जिन (शचीभिः) रक्षा सम्बन्धी कामों और प्रजाओं से (परावृजम्) विरोध करनेवाले (अव्ययम्) अविद्याकारयुक्त (अव्ययम्) अधिर के तुल्य वर्त्तमान पुरुष को (अव्ययम्) विद्यायुक्त वाणी के प्रकाश के लिए (एतवे) शुभ विद्या प्राप्त होने को (प्र, कथ) अच्छे प्रकार योग्य करो और (यामिः) जिन रक्षाओं से (प्रसिताम्) निगली हुई (वर्षिकाम्) छोटी चिट्ठिया के समान प्रजा को दुःखों से (अमुच्चम्) छाड़ाओ (ताभिः) उन्हीं (ऊतिभिः) रक्षाओं से हम लोगों को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—सभा और सेना के पति को योग्य है कि अपनी विद्या और धर्म के आश्रय से प्रजाओं में विद्या और विनय का प्रचार करके अविद्या और अधर्म के निवारण से सब प्राणियों को अभयदान निरन्तर किया करें ॥ ८ ॥

फिर वे दोनों क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

यामिः मिन्धुं मधुमन्तमसञ्चतं वसिष्ठ यामिरजरावजिन्वतम्।

यामिः कुत्सं श्रतयं नर्यमार्वतं तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥९॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (अजरी) जरावस्था रहित विद्वानो! तुम (यामिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (मधुमन्तम्) मधुर गुणयुक्त (मिन्धुम्) समुद्र को (असञ्चतम्) जानो वा (यामिः) जिन रक्षाओं से (वसिष्ठम्) जो अत्यन्त धर्मादि कर्मों में बसेवाला उमकी (अजिन्वतम्) प्रसन्नता करो वा (यामिः) जिनसे (कुत्सम्) बच्चा मिले हुए (श्रतयम्) अवरण से प्रतिश्रेष्ठ (नर्यम्) मनुष्यों में अत्युत्तम पुरुष को (अव्ययम्) रक्षा करो (ताभिः) उन्हीं रक्षाओं के साथ हमारी रक्षा के लिए (स्वागतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञविधि से सब पदार्थों को अच्छे प्रकार शोधन कर सबका सेवन और रोगों का निवारण करके सर्व सुखी रहें ॥ ९ ॥

फिर वे दोनों कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**यामिर्विश्वली वनसारं यथै सहस्रमोह आजावर्जितम् ।**

**यामिर्विश्वमरुतं प्रेषिमावर्तं तामिरू पु ऊतिभिरभिना गतम् ॥१०॥**

पदार्थ—हे (अभिना) सेना और युद्ध के अधिकारी लोगो ! (यामि.) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सहस्रमोह) असंख्य पराक्रमों से वन जिससे है उस (आजो) सग्राम में (विषयजम्) प्रजा के पालन करनेहारों को ग्रहण करने (वनसारं) और पुष्कल वन देनेहारी (अवर्जितम्) न नष्ट करने योग्य अपनी सेना को (अविनाशितम्) प्रसन्न करो वा (यामिः) जिन रक्षाओं से (वज्रम्) मनोहर (प्रेम्णम्) और अशुभों के नाश के लिए प्रेरणा करने योग्य (अवर्जितम्) मोड़ों वा अग्न्यादि पदार्थों के वेगों में उसम की (आवर्तम्) रक्षा करो (तामिरू) उन्हीं रक्षाओं के साथ प्रजापालन के लिए (स्वागतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिए ॥१०॥

भाषार्थ—मनुष्यों को यह अवश्य जानना चाहिए कि शरीर, आत्मा की वृद्धि और अच्छे प्रकार शिक्षा की हुई सेना के बिना युद्ध में विजय और विजय के बिना प्रजापालन, वन का संवर्धन और राज्य की वृद्धि होने को योग्य नहीं है ॥१०॥

फिर वे दोनों किसके लिए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यामिः सुदानु औशिजाय वसिजं दीर्घवसे मधु कोशो अक्षरत् ।**

**कक्षीवन्तं स्तोतारं यामिरावर्तं तामिरू पु ऊतिभिरभिना गतम् ॥११॥**

पदार्थ—हे (सुदानु) अच्छे प्रकार दान करनेवाले (अभिना) अध्यापक और उपदेशक विद्वानो ! (यामि) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (दीर्घवसे) जिसके बड़े-बड़े विद्यादि पदार्थ, धन और धन विद्यमान उस (वसिजं) व्यवहार करनेवाले (औशिजाय) उत्तम बुद्धिमान के पुत्र के लिए (कोशः) मेघ (मधु) मधुर गुणयुक्त जल को (अक्षरत्) वर्षता वा तुम (यामिः) जिन रक्षाओं से (कक्षीवन्तम्) उत्तम सहाय से युक्त (स्तोतारम्) विद्या के गुणों की प्रशंसा करनेवाले जन की (आवर्तम्) रक्षा करो (तामिरू) उन्हीं रक्षाओं से सहित हमारी रक्षा करने को (स्वागतम्) अच्छे प्रकार गीत आया कीजिए ॥११॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि जो द्वीप-द्वीपान्तर और देशदेशान्तर में व्यापार करने के लिए जावें-भावें उनकी रक्षा का प्रयत्न करें ॥११॥

अब शिल्प-वृष्टान्त से सभापति और सेनापति के काम का उपदेश किया है—

**यामी रमा क्षोदसाद्रः पिपिन्वधुरनम् यामी रथमावर्तं जिषे ।**

**यामिस्त्रिशोक उस्त्रिया उदाजतं तामिरू पु ऊतिभिरभिना गतम् ॥१२॥**

पदार्थ—हे (अभिना) अध्यापक और उपदेशको ! आप दोनों (यामिः) जिन शिल्पक्रियाओं से (उदगः) जल के (क्षोदसा) प्रवाह के साथ (रताम्) जिसमें प्रशंसित जल विद्यमान हो उस नदी की (पिपिन्वधु) पूरी करो अर्थात् नहर आदि के प्रबन्ध से उसमें जल पहुँचाओ वा (यामि) जिन जाने-जाने की बातों से (जिषे) शत्रुओं को जीतने के लिए (अनवधम्) बिन बोझों के (रथम्) विमान आदि रथसमूह को (आवर्तम्) रक्षा करो वा (यामिः) जिन सेनाओं से (त्रिशोक) जिनकी दुष्टगुण, कर्म, स्वभावों में शोक है वह विद्वान् (उस्त्रिया) किरणों में हुए विद्युत् प्रणि की बिलकों को (उदाजत) ऊपर को पहुँचावे (तामिरू) उन्हीं (ऊतिभिः) सब रक्षाओं से युक्त वस्तुओं से (स्वागतम्) हम लोगों के प्रति अच्छे प्रकार आइए ॥१२॥

भाषार्थ—जैसे सब शिल्पशास्त्रों में चतुर विद्वान् विमानादि यानों में कला-यन्त्रों को रचके उनमें जल, विद्युत् आदि का प्रयोग कर यन्त्र से कलाओं को चला अपने अभीष्ट स्थान में जाना-भाना करता है वैसे ही सभा सेना के पति किया करें ॥१२॥

फिर वे किसके समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**यामिः सूर्य परियायः परावर्ति मन्धातारं सैत्रपत्येष्वावर्तम् ।**

**यामिर्विमं म भरद्वाजमावर्तं तामिरू पु ऊतिभिरभिना गतम् ॥१३॥**

पदार्थ—हे (अभिना) शिल्पविद्या के स्वामी और भृत्यो ! तुम दोनों (यामि) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (परावर्ति) दूर देश में (सूर्यम्) प्रकाशमान सूर्य के समान (मन्धातारम्) विमानादि यान से भीष दूर देश को पहुँचानेवाले बुद्धिमान को (यामिः) सब और से पर्याप्त हीमो (यामि) जिन रक्षाओं से (अवर्तम्) माण्डलिक राजाओं के काम में उसकी (आवर्तम्) रक्षा करो और (भरद्वाजम्) विद्या सवगुणों के कारण करनेवालों को समझानेवाले (विमं) मेधावी पुरुष की (आवर्तम्) अच्छे प्रकार रक्षा करो (तामिरू, उ) उन्हीं रक्षाओं से हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) प्राप्त हुईए ॥१३॥

भाषार्थ—व्यवहार करनेवाले मनुष्यों से विमानादि यानों के बिना दूसरे देशों में जाना-भाना नहीं हो सकता इससे बड़ा लाभ नहीं हो सकता इस कारण मात्र विमानादि की रचना अवश्य सदा करनी चाहिए ॥१३॥

अब प्रजा सेनाजन और सभाजन की परस्पर क्या-क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यामिर्महामतिथिग्वं कक्षोजुवं दिवीदासं शम्बरहृत्य आवर्तम् ।**

**यामिः पूर्वमेव असदस्युमावर्तं तामिरू पु ऊतिभिरभिना गतम् ॥१४॥**

पदार्थ—हे (अभिना) राजा और प्रजा में शूरवीर पुरुषो ! तुम दोनों (शम्बरहृत्य) सेना वा दूसरे के बल पराक्रम का मारना जिसमें हो उस युद्धादि व्यवहार में (यामि) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (वहाम्) बड़े प्रशंसनीय (तिथिग्वं) प्रतिधियों को प्राप्त होने (कक्षोजुवम्) जलो को चलाने और (विषोदासम्) दिव्य विद्यारूप क्रियाओं के देनेवाले सेनापति की (आवर्तम्) रक्षा करो वा जिन रक्षाओं से (पूर्वमेव) शत्रुओं के नगर विदीर्ण हो जिससे उस सग्राम में (असदस्यम्) डाकुओं से बड़े हुए श्रेष्ठ जन की (आवर्तम्) रक्षा करो । (तामि) उन्हीं रक्षाओं से हमारी रक्षा के लिए (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आइए ॥१४॥

भाषार्थ—प्रजा और सेना के मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्या में निपुण, धार्मिक पुरुष को सभापति कर उसकी सब प्रकार रक्षा करके सबको भय देनेवाले दुष्ट डाकू को पारके धाप सुखों को प्राप्त हो और सबको सुखी करें ॥१४॥

मनुष्यों को बंध और शिल्पविद्या में पुरुषार्थ रक्षनेवाले जन किस लिए सेवन

करने योग्य है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**यामिर्विषं विपिपानमुपस्तुतं कलि यामिर्विस्तजानि दुवस्वथः ।**

**यामिर्विषमुत पृथिमावर्तं तामिरू पु ऊतिभिरभिना गतम् ॥१५॥**

पदार्थ—हे (अभिना) राज-प्रजाजनो ! तुम (यामिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (विपिपानम्) विशेषकर भोषणियों के रसों को जो पीने के स्वभाव वाला (उपस्तुतम्) धागे प्रतीत हुए गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (कलिम्) जो सब दुःखों से दूर करने वा ज्योतिष शास्त्रोक्त गणितविद्या को जाननेवाला (विस्तजानिम्) और जिसने हृदय को प्रिय, सुन्दर स्त्री पाई हो उस (वज्रम्) रोग निवृत्ति करने के लिए वमन करते हुए पुरुष की (दुवस्वथः) सेवा करो (यामिः) वा जिन रक्षाओं से (व्यवस्वम्) विविध मोड़ों वा अग्न्यादि पदार्थों से युक्त सेना वा यान की सेवा करो (उत्) और (यामिः) जिन रक्षाओं से (पृथिम्) विशाल बुद्धिवाले पुरुष की (आवर्तम्) रक्षा करो (तामिः, उ) उन्हीं से शारीर्य को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार सब और से प्राप्त हुईए ॥१५॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सर्वदुःखों के द्वारा उत्तम भोषणियों के सेवन से रोगों का निवारण, बल और बुद्धि को बढ़ा, सेना के अव्यय और विस्तृत पुरुषार्थयुक्त शिल्पजन की सम्यक् सेवा कर शरीर और आत्मा के सुखों को प्राप्त हों ॥१५॥

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यामिर्नरा शयवे यामिरत्रये यामिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।**

**यामिः शारीराजतं स्युमरश्मये तामिरू पु ऊतिभिरभिना गतम् ॥१६॥**

पदार्थ—हे (नरा) उत्तम कार्य में प्रवृत्ति करानेवाले (अभिना) सब विद्याओं के पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वान् लोगो ! तुम दोनों (पुरा) प्रथम (यामि) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (शयवे) सुख से शयन करनेवाले को शान्ति वा (यामिः) जिन रक्षाओं से (अत्रये) शरीर, मन, वाणी के दोषों से रहित पुरुष के लिए सब सुख और (यामि) जिन रक्षाओं से (मनवे) मननशील पुरुष के लिए (गातुम्) पृथ्वी वा उत्तम वाणी को (ईषथुः) प्राप्त करने की इच्छा करो वा (यामि) जिन रक्षाओं से (स्युमरश्मये) सूर्यवत् संयुक्त न्याय प्रकाश करनेवाले पुरुष के लिए सुख की इच्छा करो वा जिनमें शत्रुओं को (शारी) वाणी की गतिधियों को (आवर्तम्) प्राप्त कराओ (तामिरू) उन्हीं रक्षाओं से अपनी सेनाओं की रक्षाओं के लिए (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार उत्साह को प्राप्त हुईए ॥१६॥

भाषार्थ—अध्यापक और उपदेशकों को यह योग्य है कि विद्या और धर्म के उपदेश से सब जनों को विद्वान्, धार्मिक करके पुरुषार्थयुक्त निरन्तर किया करें ॥१६॥

अब सभापति और सेनापति को कंसा अनुष्ठान करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यामिः पठर्वा जठरस्य मज्जनाभिर्नादीदेच्छित इन्द्रो अजम्भा ।**

**यामिः शयीतमवथो महाधने तामिरू पु ऊतिभिरभिना गतम् ॥१७॥**

पदार्थ—हे (अभिना) सभा और सेना के अधीश ! तुम दोनों (यामि) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (पठर्वा) पढ़नेवाले विद्याधियों को जो प्राप्त होता वा (अजम्भा) बल से (जठरस्य) जठर के मध्य (चितः) सञ्चित किये (इन्द्र) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि के (न) समान (अजम्भा) जिसमें शत्रुओं को गिराते हैं उस बड़े-बड़े धन की प्राप्ति करानेहारे युद्ध में (आ, अवीवत्) अच्छे प्रदीप्त हों वा (यामि) जिन रक्षाओं से (अव्ययम्) हिसा करनेहारे प्राप्त पुरुष की (अव्ययः) रक्षा करो (तामिरू) उन्हीं रक्षाओं से प्रजा सेना की रक्षा के लिए (सु, आ, गतम्) आया-जाया कीजिए ॥१७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है । जैसे कोई गीर्वाणियों से शोभायमान राजा रक्षाधीन की रक्षा करे और मारने योग्यो को मारे और जैसे अग्नि वन का दाह करे वैसे शत्रु की सेना को भस्म करे और शत्रुओं के बड़े-बड़े धनों को प्राप्त कराकर धानवित्त कराने वैसे ही सभा और सेना के पति काम किया करें ॥१७॥

अब सब राजाजनों को किस के मुख्य सुख भोगने चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहा है—

याभिर्ऋतो मनसा निरप्यथोऽग्र गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।

याभिर्मनुं शूरमिषा ममावतं ताभिर्ऋ पु ऊतिभिर्ऋतिना गतम् ॥१८॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) जाननेहारे विद्वन् ! तुम ( मनसा ) विज्ञान से विद्या और धर्म का सब को बोध करा । हे ( अश्विना ) सेना के पालन और युद्ध करानेहारे जन ! तुम ( याभि ) जिन ( ऊतिभि ) रक्षाओं के साथ ( गोअर्णस ) पृथिवी जल के ( विवरे ) अवकाश में ( निरप्यथ ) सग्राम करने योग्य ( अग्रम् ) उत्तम विजय को ( गच्छथ ) प्राप्त होते वा ( याभि ) जिन रक्षाओं से ( शूरम् ) शूरवीर ( मनुम् ) मननशील मनुष्य को ( ममावतम् ) मम्यक रक्षा करो ( ताभिर्ऋ ) उन्हीं रक्षा और ( इषा ) इच्छा से हमारी रक्षा के लिए ( सु, आ, गतम् ) उचित समय पर आया कीजिए ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्वान् विज्ञान से सब सुखों को सिद्ध करता है वैसे सब राज-पुरुषों को अनेक साधनों से पृथिवी, नदी और समुद्र में आकाश के मध्य में शत्रुओं को जीतके सुखों को अर्द्ध प्रकार प्राप्त होना चाहिए ॥ १८ ॥

अब स्त्री-पुरुष को कैसे और कब विवाह करना चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहयुग धं वा याभिर्ऋणोर्गशिक्षतम् ।

याभिः सुदास ऊहयुः सुदेव्यताभिर्ऋ पु ऊतिभिर्ऋतिना गतम् ॥१९॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) पढ़ने-पढ़ानेहारे ब्रह्मचारी लोग ! तुम ( याभि ) जिन ( ऊतिभि ) रक्षाओं से ( विमदाय ) विविध आनन्द के लिए ( पत्नी ) पति के साथ यज्ञमन्त्र करनेवाली विदुषी स्त्रियाँ को ( न्यूहयुग ) निश्चय में ग्रहण करो ( वा ) वा ( याभि ) जिन रक्षाओं से ( अरणी ) ब्रह्मचारिणी कन्याओं को ( धं ) ही ( आ, अशिक्षतम् ) अर्द्ध प्रकार शिक्षा करा और ( याभिः ) जिन रक्षाओं द्वारा ( सुदासे ) अर्द्ध प्रकार दान करने में ( सुदेव्यम् ) उत्तम विद्वानों में उत्पन्न हुए विज्ञान को ( ऊहयु ) प्राप्त कराओ ( ताभिः ) उन रक्षाओं से विद्या ( उ ) और विनय को ( सु, आ, गतम् ) अर्द्ध प्रकार प्राप्त कीजिए ॥ १९ ॥

भाषार्थ—सुख पाने की इच्छा करनेवाले पुरुष और स्त्रियों का धर्म से संवित, ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और युवावस्था को प्राप्त हाकर अपनी तुल्यता में ही विवाह करना योग्य है अथवा ब्रह्मचर्य ही में ठहरके सबदा स्त्री पुरुषों को अर्द्ध शिक्षा करना योग्य है क्योंकि सुल्य गुणकमस्वभाव वाले स्त्री-पुरुषों के बिना गृहाश्रम को धारण करके कोई किञ्चित् भी सुख वा उत्तम सन्तान को प्राप्त होने में समर्थ नहीं होते इससे इसी प्रकार विवाह करना चाहिए ॥ १९ ॥

अब सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों को कैसा होना चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिर्वथो याभिर्ऋणुम् ।

आभ्यावती सुभराभृतस्तुभं ताभिर्ऋ पु ऊतिभिर्ऋतिना गतम् ॥२०॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सभा और सेना के अधीशो ! तुम दोनों ( ददाशुषे ) विद्या और सुख देनेवाले के लिए ( याभि ) जिन ( ऊतिभिः ) रक्षा आदि क्रियाओं से ( शन्ताती ) सुख के कर्ता ( भवतः ) होने वा ( याभि ) जिन रक्षाओं से ( भुज्युम् ) सुख के भोक्ता वा पालन करनेहारे को ( अवथः ) रक्षा करने वा ( याभि ) जिन रक्षाओं से ( अश्रिणुम् ) परमेश्वर्यवाले इन्द्र और ( ओभ्यावतीम् ) रक्षा करनेहारे विद्वानों में उत्पन्न जो उत्तम विद्या उसमें युक्त ( सुभराम् ) जिन से कि अर्द्ध प्रकार सुखों का ( आभृतस्तुभम् ) और मत्स्य का धारण होना है उस नीति की रक्षा करते ही ( ताभिर्ऋ ) उन्हीं रक्षाओं से मत्स्य को ( सु, आ, गतम् ) अर्द्ध प्रकार प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भाषार्थ—राजादि राजपुरुषों को योग्य है कि सब को सुख दें और प्राप्त पुरुषों की विद्या और नीति को धारण कर कस्याग को प्राप्त होवें ॥ २० ॥

फिर उन लोगों को क्या-क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।

मधु म्रिय भरथो यस्मरद्वस्यस्ताभिर्ऋ पु ऊतिभिर्ऋतिना गतम् ॥२१॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सभा और सेना के अधीशो ! तुम दोनों ( याभिः ) जिन ( ऊतिभिः ) रक्षादि क्रियाओं से ( असने ) फेंकने में ( कृशानुम् ) दुर्बल को ( दुवस्यथ ) सेवा करो वा ( याभिः ) जिन रक्षाओं से ( जवे ) वेग में ( म्रियः ) युवावस्था युक्त वीरों ( अर्वन्तम् ) और घोड़े की ( आवतम् ) रक्षा करो ( उ ) और ( सरद्वस्यः ) युद्ध में विजय करनेवाले सेनादि जनो से ( यत् ) जो ( म्रियम् ) कामना के योग्य है उस मधु मीठे अन्न आदि पदार्थ को ( भरथः ) धारण करो ( ताभिः ) उन रक्षाओं से युक्त होकर राज्यपालन के लिए ( सु, आ, गतम् ) अर्द्ध प्रकार आया कीजिए ॥ २१ ॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि बुद्धि से पीड़ित प्राणियों और युवावस्था वाले स्त्री पुरुषों की व्यभिचार से रक्षा करें और घोड़े आदि सेना के अङ्गों

की रक्षा के लिए सब प्रिय वस्तु को धारण करें प्रतिक्षण सम्हाल से सब को बढ़ावा करें ॥ २१ ॥

फिर उनको युद्ध में कैसा आचरण करना चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहा है—

याभिर्ऋ गोषुयुधं नृपाद्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिवन्धः ।

याभीरथो अवथो याभिर्वन्तस्ताभिर्ऋ पु ऊतिभिर्ऋतिना गतम् ॥२२॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सभासेना के अध्यक्ष ! तुम दोनों ( नृपाद्ये ) वीरों को सहन और ( साता ) सेवन करने योग्य सग्राम में ( याभिः ) जिन ( ऊतिभि ) रक्षाओं में ( गोषुयुधम् ) पृथिवी पर युद्ध करनेहारे ( नरम् ) मायक का ( जिवन्धः ) प्रगल्भ करो ( याभि ) वा जिन रक्षाओं से ( क्षेत्रस्य ) स्त्री और ( तनयस्य ) सन्तान को प्रसन्न रखो ( उ ) और ( याभिः ) जिन रक्षाओं से ( रथान् ) रथों ( अवन्तः ) और घोड़ों की ( अवथः ) रक्षा करो ( ताभिः ) उन रक्षाओं से सब प्रजाओं की रक्षा करने को ( सु, आ, गतम् ) अर्द्ध प्रकार प्रवृत्त कीजिए ॥ २२ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का योग्य है कि युद्ध में शत्रुओं को मार अपने भूख्य आदि की रक्षा करके सेना के अङ्गों को बढ़ावें और स्त्री, बालक, युद्ध के देखनेवाले और दूतों को कभी न मारें ॥ २२ ॥

अब वे राजजन दुष्टों की निवृत्ति और अवेष्टों की रक्षा कैसे करें

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुं प्र त्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।

याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावन्तं ताभिर्ऋ पु ऊतिभिर्ऋतिना गतम् ॥२३॥

पदार्थ—हे ( शतक्रतु ) असंख्योत्तम बुद्धिकर्मयुक्त ( अश्विना ) सभा सेना के पति ! आप दोनों ( याभि ) जिन ( ऊतिभि ) रक्षा आदि से सूर्य-चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होकर ( आर्जुनेयम् ) सुन्दर रूप के साथ सिद्ध किये हुए ( कुत्सम् ) वज्र का ग्रहण करके ( त्वीतिम् ) हिंसक ( दभीतिम् ) दम्भी ( ध्वसन्तिम् ) नीच गति को जानेवाले पापी को ( प्र, आवतम् ) अर्द्ध प्रकार मारो ( च ) और ( याभि ) जिन रक्षाओं से ( पुरुषन्तिम् ) बहुते को अलग बाँटनेवाले की ( प्र, आवतम् ) रक्षा करो ( ताभिः , उ ) उन्हीं रक्षाओं से धर्म की रक्षा करने को ( सु, आ, गतम् ) अर्द्ध प्रकार तत्पर कीजिए ॥ २३ ॥

भाषार्थ—राजादि मनुष्यों को योग्य है कि शस्त्रास्त्र के प्रयोगों को जान, दुष्ट शत्रुओं का निवारण करके जितने इस समार में अवधर्मयुक्त कर्म हैं उतनों का धर्मोपदेश से निवारण कर नाना प्रकार की रक्षा का विधान कर प्रजा का अर्द्ध प्रकार पालन करके परम आनन्द का भोग किया करें ॥ २३ ॥

अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिए

इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अपन्स्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दत्ता वृषणा मनीषाम् ।

अद्यत्येऽवसे नि ह्वये वा दृधे च नो भवन्तं वाजमातौ ॥२४॥

पदार्थ—हे ( वक्ता ) सबके दुःखनिवारक ( वृषणा ) सुख की वषणिहारे ( अश्विना ) अध्यापक उपदेशक लोग ! तुम दोनों ( अस्मे ) हम में ( अपन्स्वतीम् ) बहुत पुत्र-पौत्र करनेहारी ( वाचम् ) वाणी को ( कृतम् ) कीजिए ( अद्यत्ये ) खलादि दोषरहित व्यवहार में ( न ) हमारी ( अवसे ) रक्षादि के लिए ( मनीषाम् ) योग विज्ञानवाली बुद्धि को कीजिए ( वाजमातौ ) युद्धादि व्यवहार में ( न ) हमारी ( च ) और अन्य लोगों की ( दृधे ) बुद्धि के लिए निरन्तर ( अवतम् ) उद्यत कीजिए इसी के लिए ( वाम् ) तुम दोनों को मैं ( निह्वये ) नित्य बुलाता हूँ ॥ २४ ॥

भाषार्थ—कोई भी पुरुष आप्त विद्वानों के समागम के बिना पूर्ण विद्यायुक्त, वाणी और बुद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता, न इन दोनों के बिना शत्रुओं का जय और सब धोर से बढ़ती को प्राप्त हो सकता है ॥ २४ ॥

धुभिर्ऋभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।

तजो मित्रो वरुणा मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२५॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) पूर्वोक्त अध्यापक और उपदेशक लोग ! तुम दोनों ( धुभि ) दिन और ( अश्विभि ) रात्रि ( परिष्टेभिः ) हिंसा के प्रयोग्य ( सौभगेभि ) सुन्दर ऐश्वर्यों के साथ वर्तमान ( अस्मान् ) हम लोगों की सर्वदा ( परि, पातम् ) सब प्रकार रक्षा कीजिए ( तत् ) तुम्हारे उस काम की ( मित्रः ) सबका सुहृद ( वरुणः ) धर्मोपदेशियों में उत्तम ( अश्विभिः ) माता ( सिन्धुः ) समुद्र वा नदी ( पृथिवी ) भूमि वा आकाशत्व वायु ( उत ) और ( द्यौः ) विद्युत् वा सूर्य का प्रकाश ( न ) हमारे लिए ( मामहन्ताम् ) बार-बार बढ़ावें ॥ २५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुक्तोपमासकार है । जैसे माता और पिता अपने अपने सन्तानों, सखा, मित्रो और प्राण शरीर को प्रसन्न करते हैं और समुद्र गम्भीरतादि, पृथिवी वृक्षादि और सूर्य प्रकाश को धारण कर और सब प्राणियों को



सुखी करके उपकार को उत्पन्न करते हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे सब सत्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त कराके सबको इष्ट सुख से युक्त किया करें ॥ २५ ॥

इस सूक्त में सूर्य पृथिवी आदि के गुणों और सभा सेना के अध्यक्षों के कर्तव्यों तथा उनके किये परोपकारादि कर्मों का वर्णन किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।  
यह संतीसवाँ बगं और एकसी बारहवाँ सूक्त पूरा हुआ ॥

इस अध्याय में दिन-रात्रि अग्नि और विद्वान् आदि के गुणों के वर्णन से इस सप्तमाध्याय में कहे अर्थों की सप्ताध्याय में कहे अर्थों के साथ संगति जाननी चाहिए ।

इति श्रीपरमहंसपरिव्रजकाचार्याणां महाविभुषां श्रीधुतविरजानन्वसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्विद्वद्वरेण इमानन्वसरस्वतीस्वामिना विरचिते आर्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥



## अथाष्टमोऽध्यायः ॥

त्रिभानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

अथास्य विद्यासुखस्य त्रयोवशोत्तरातस्तमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः ।  
उवाच वेवता । द्वितीयस्यार्थस्य रात्रिरपि । १. ३, ६, १२, १७  
निष्कृतिः ऋग्वेद, १ ऋग्वेद, ७, १८-२० विराट् ऋग्वेद, खन्वः ।  
अवतः स्वरः । २, ५ स्वरान्द पङ्क्ति, ४, ८, १०, ११,  
१५, १६ भुरिक् पङ्क्ति, १३, १४  
निष्कृतिः ऋग्वेद, १ ऋग्वेद, स्वरः ।

अब आठवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाञ्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट बिम्बा ।  
यथा प्रसूतो सवितुः सवायं एवा रात्र्युपसे योनिमारैक ॥१॥

पदार्थ—( अथा ) जैसे ( प्रसूता ) उत्पन्न हुई ( रात्री ) निशा ( सवितु ) सूर्य के सम्बन्ध से ( सवाय ) ऐश्वर्य के हेतु ( उषसे ) प्रातःकाल के लिए ( योनिम् ) घर-घर को ( आरैक ) अलग-अलग प्राप्त होती है वैसे ही ( चित्रः ) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाला ( प्रकेत ) बुद्धिमान् विद्वान् जिस ( इवम् ) इस ( ज्योतिषाम् ) प्रकाशको के बीच ( श्रेष्ठम् ) अतीवोत्तम ( ज्योतिः ) प्रकाश-स्वरूप ब्रह्म को ( आ, एवात् ) प्राप्त होता है ( एव ) उसी ( बिम्बा ) व्यापक परमात्मा के साथ सुखैश्वर्य के लिए ( अजनिष्ट ) उत्पन्न होता और दुःखस्थान से पृथक् होता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्योदय को प्राप्त होकर अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर दुःख दूर हो जाता है इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर को जानने के लिए प्रयत्न किया करें ॥१॥

अब रात्रि और प्रभातवेला के व्यवहार को अगले मन्त्रों में कहा है—

कशद्वत्मा कशती श्रेत्यागादारैर्गु कृष्णा सदनान्यस्याः ।

समानवन्धु अमृतं अनूची द्यावा वर्णं शरत आमिनाने ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह ( कशद्वत्मा ) प्रकाशित सूर्यरूप ब्रह्म के की कामना करनेहारी वा ( कशती ) लाल-लालसी ( श्रेत्या ) सुखसमययुक्त अर्थात् गुलाबी रङ्ग की प्रभातवेला ( आ, एवात् ) प्राप्त होती है ( कृष्णा, उ ) इस अद्भुत उषा के ( सदनानि ) स्थानों को प्राप्त हुई ( कृष्णा ) काले वर्णवाली रात ( आरैक ) अछड़े प्रकार अलग-अलग बसती है वे दोनों ( अमृतं ) प्रवाह रूप से नित्य ( आमिनाने ) परस्पर एक दूसरे को फँकती हुई सी ( अनूची ) वर्तमान ( द्यावा ) अपने-अपने प्रकाश से प्रकाशमान ( समानवन्धु ) दो सहोदर वा दो मित्रों के तुल्य ( वर्णम् ) अपने-अपने रूप को ( शरत ) प्राप्त होती है उन दोनों का युक्ति से सेवन किया करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस स्थान में रात्रि बसती है उसी स्थान में कालान्तर में उषा भी बसती है इन दोनों से उत्पन्न हुआ सूर्य जानो दोनों माताओं से उत्पन्न हुए लड़के के समान हैं और ये दोनों सदा बन्धु के समान जाने-पानेवाली उषा और रात्रि हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥२॥

समानो अध्वा स्वस्तीरनन्तस्तमन्यान्यां शरतो देवशिष्टे ।

न मैथेसे न तस्थतुः सुमेके नक्तोवासा समनसा विरूपे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन ( स्वस्ती ) बहनों के समान बर्ताने रखने वाली रात्रि और प्रभातवेलाओं का ( अनन्तः ) अर्थात् सीमारहित आकाश ( समानः ) तुल्य ( अध्वा ) मार्ग है जो ( देवशिष्टे ) परमेश्वर के शासन अर्थात् यथावत् नियम को प्राप्त ( विरूपे ) विरुद्धरूप ( समनसा ) तथा समान चित्तवाले मित्रों के तुल्य वर्तमान ( सुमेके ) और नियम में छोटी हुई ( नक्तोवासा ) रात्रि

और प्रभातवेला ( तन् ) उस अपने नियम को ( अध्वाया ) अलग-अलग ( शरतः ) प्राप्त होती और वे कदाचित् ( न ) नहीं ( मैथेसे ) नष्ट होती और ( न, तस्थतु ) न ठहरती है उनको तुम लोग यथावत् जानो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विरुद्ध स्वरूपवाले मित्र लोग इस नि सीम, अनन्त आकाश में न्यायाधीश के नियम के साथ ही नित्य वर्तते हैं वैसे रात्रि-दिन परमेश्वर के नियम में नियत होकर वर्तते हैं ॥३॥

फिर उषा का विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

मास्वती नेत्री सृन्तानामचैति चित्वा वि दुरां न आवः ।

माप्या जगद्गृध्रं नो गयो अम्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्यो ! तुम लोगों को जो ( मास्वती ) अतीवोत्तम प्रकाशवाले ( सृन्तानाम् ) वाली और जागृत के व्यवहारों को ( नेत्री ) प्राप्त करने और ( चित्वा ) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाली ( उषा ) प्रभातवेला ( नः ) हमारे लिए ( दुरां ) दारो ( चि, आवः ) को प्रकट करती हुई-सी वा जो ( नः ) हमारे लिए ( जगत् ) सत्कार का ( माप्या ) अछड़े प्रकार अर्पण करके ( रायः ) धनो को ( चि, अम्यत् ) प्रसिद्ध करती है ( उ ) और ( विश्वा ) सब ( भुवनानि ) लोकों का ( अजीगर्भ ) अपनी व्याप्ति से निगलती-मी है वह ( अचेति ) अवश्य जाननी है ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो उषा सब जगत् को प्रकाशित करके सब प्राणियों को जगा, सब संसार में व्याप्त होकर सब पदार्थों को वृष्टि द्वारा समर्थ करके पुरुषार्थ में प्रवृत्त करा बनादि की प्राप्ति करा माता के समान सब प्राणियों को पालती है इससे आलस्य में उत्तम प्रातः समय की बेला व्यर्थ न गवानी चाहिए ॥ ४ ॥

जिह्मश्रे चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उं त्वम् ।

दभ्रं पश्यदस्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( त्वम् ) तू जो ( उर्विया ) अनेकारूपयुक्त ( मघोनि ) अधिक धन प्राप्त करानेहारी ( उषा ) प्रातःवेला ( विश्वा ) सब ( भुवनानि ) लोकों को ( अजीगर्भः ) निगलती ( जिह्मश्रे ) वा जो टेढ़े सोने अर्थात् सोने में टेढ़ापन को प्राप्त हुए जन के लिए वा ( चरितवे ) विचारने को ( विचक्षे ) विविध प्रकृष्टता के लिए ( मघोन्याभे ) सब और से सुख के भोग जिसमें हो उस पुरुषार्थ से युक्त क्रिया के लिए ( इष्टये ) वा जिसमें मिलते हैं । उस धन के लिए वा ( रायः ) धनो के लिए वा ( पश्यदस्य ) देखने हुए मनुष्यों के लिए ( दभ्रम् ) छोटे-से ( उ ) भी वस्तु को प्रकाश करती है उस उषा को जान ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य रात्रि के चौथे प्रहर में जागकर शयन पर्यन्त व्यर्थ समय को नहीं जाने देते वे ही सुखी होने हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

सत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।

विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् सभाध्यक्ष राजन् ! जैसे ( उषा ) प्रातःवेला अपने प्रकाश से ( विश्वा ) सब ( भुवनानि ) लोकों को ( अजीगर्भः ) ढाक लेती है वैसे ( त्वम् ) तू ( अभिप्रचक्षे ) अछड़े प्रकार शास्त्र बोध से सिद्ध वाणी आदि व्यवहाररूप ( सत्राय ) राज्य के लिए और ( त्वम् ) तू ( श्रवसे ) अवगण और धन के लिए ( त्वम् ) तू ( इष्टये ) इष्ट सुख और ( महीये ) सत्कार के लिए और ( त्वम् ) तू ( इत्यै ) सङ्कति प्राप्ति के लिए ( विसदृशा ) विविध धर्मयुक्त व्यवहारों के अनु-मूल ( अर्थमिव ) द्रव्यों के समान ( जीविता ) जीवनादि को सदा सिद्ध किया कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्या विनय से प्रकाशमान सत्पुरुष सब समीपस्थ पदार्थों को व्याप्त होकर उनके गुणों के प्रकाश से

समस्त धर्मों को सिद्ध करनेवाले होते हैं वैसे राजादि पुरुष विद्या, न्याय और धर्मादि को सब ओर से व्याप्त होकर चक्रवर्ती राज्य की यथावत् रक्षा से सब आनन्द को सिद्ध करें ॥ ६ ॥

अब उषा के वृष्टान्त से विदुषी स्त्री के व्यवहार को अगले मन्त्रों में कहा है—

एषा दिवो दुहिता प्रत्यर्क्षि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।

विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अग्रेह सुमगे व्युच्छ ॥७॥

पदार्थ—जैसे ( शुक्रवासाः ) शुद्ध पराक्रमयुक्त ( विश्वस्य ) समस्त ( पार्थिवस्य ) पृथिवी में प्रसिद्ध हुए ( वस्वः ) धन की ( ईशाना ) अच्छे प्रकार सिद्ध करनेवाली ( व्युच्छन्ती ) और माना प्रकार के अन्धकारों को दूर करती हुई ( एषा ) यह ( दिवः ) सूर्य की ( युवती ) जवान अर्थात् अति पराक्रमवाली ( दुहिता ) पुत्री प्रभातवेला ( प्रत्यर्क्षि ) बार-बार देख पड़ती है वैसे ही ( सुमगे ) उत्तम भाग्यवती ( उषः ) सुख में निवास करनेवाली विदुषी । ( अथ ) आज तू ( इह ) यहां ( व्युच्छ ) दुःखों को दूर कर ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब ब्रह्मचर्य किया हुआ सन्मार्गस्थ जवान विद्वान् पुरुष अपने मुख्य अपने विद्यायुक्त ब्रह्मचारिणी, सुन्दर रूप, बल, पराक्रमवाली, साध्वी, अच्छे स्वभावयुक्त, सुख देनेवाली युवती अर्थात् बीसवें वय से बीसवीं वर्ष की आयु युक्त कन्या से विवाह करे तभी विवाहित स्त्री-पुरुष उषा के समान सुप्रकाशित होकर सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

परायतीनामन्वेति पार्थ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।

व्युच्छन्ती जीवमुदीयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥८॥

पदार्थ—हे उत्तम सीमाय बहानेवाली स्त्रि ! जैसे यह ( उषाः ) प्रभात वेला ( शश्वतीनाम् ) प्रवाहरूप से अनादिस्वरूप ( परायतीनाम् ) पूरे व्यतीत हुई प्रभातवेलाओं के पीछे ( आयतीनाम् ) आनेवाली वेलाओं में ( प्रथमा ) पहली ( व्युच्छन्ती ) अन्धकार का विनाश करती और ( जीवम् ) जीव को ( उदीयन्ती ) कामों में प्रवृत्त कराती हुई ( कम् ) किसी ( जन, मृतम् ) मृतक के समान सोये हुए जन को ( बोधयन्ती ) जगाती हुई ( पार्थ ) आकाश मार्ग को ( अन्वेति ) अनुकूलता से जाती है वैसे ही तू पतिव्रता हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सीमाय की इच्छा करने वाली स्त्रियाँ उषा के मुख्य भूत, भविष्यत् वर्तमान समयों में हुई उत्तमशील पतिव्रता स्त्रियों के सनातन वेदोक्त धर्म का आश्रय कर अपने-अपने पति को सुखी करती और उत्तम शोभावाली होती हुई सन्तानों को उत्पन्न कर और सब ओर से पालन करके उन्हें सत्य विद्या और उत्तम शिक्षाओं का बोध कराती हुई सदा आनन्द को प्राप्त करावें ॥ ८ ॥

उषो यदग्निं समिधं चर्क्य वि यदावश्वक्षसा सूर्यस्य ।

यन्मानुषान् यक्ष्यमाणान् अजीगस्तदेवेषु चक्रे भद्रमपनः ॥९॥

पदार्थ—हे ( उषः ) प्रभात वेला के समान वर्तमान विदुषी स्त्रि ! ( यत् ) जो तू ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( चर्क्य ) प्रकाश से ( समिधे ) अच्छे प्रकार प्रकाश के लिए ( अग्निम् ) विद्युत् अग्नि का प्रदीप्त ( चर्क्य ) करती है वा ( यत् ) जो तू दुःखों को ( वि, आश ) दूर करती वा ( यत् ) जो तू ( यक्ष्यमाणान् ) यज्ञ के करनेवाले ( मानुषान् ) मनुष्यों को ( अजीग ) प्राप्त होकर प्रसन्न करती है ( तत् ) सो तू ( देवेषु ) विद्वान् पतियों में वसकर ( भद्रम् ) कल्याण करनेवाले ( अण् ) मन्त्रानों को उत्पन्न ( चक्रे ) किया कर ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य की सम्बन्धिनी प्रातःकाल की वेला सब प्राणियों के साथ सयुक्त होकर सब जीवों को सुखी करती है वैसे साध्वी विदुषी स्त्री अपने पतियों को प्रसन्न करती हुई उत्तम सन्तानों के उत्पन्न करने की समर्थ होती हैं इतर दुष्ट आर्था वेसा काम नहीं कर सकती ॥ ९ ॥

किपात्या यत्तमपा भवाति या व्युषुषारिच नूनं व्युच्छान् ।

अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीप्याना जोषण्यभिरेनि ॥१०॥

पदार्थ—हे स्त्रि ( यत् ) जैसे ( याः ) जो ( पूर्वाः ) प्रथम गत हुई प्रभात वेला सब पदार्थों को ( कियति ) कितने ( समय ) समय ( व्युषुः ) प्रकाश करती रहती ( या, च ) और जो ( व्युच्छान् ) स्थिर पदार्थों की ( वावशाना ) कामना-सी करती ( प्रदीप्याना ) और प्रकाश करती हुई ( कृपते ) अनुग्रह करती ( नूनम् ) निश्चय से ( या, भवाति ) अच्छे प्रकार होती अर्थात् प्रकाश करती उसके मुख्य यह दूसरी विद्यावती विदुषी ( अम्प्राभिः ) और स्त्रियों के साथ ( जोषण्येति ) प्रीति को अनुकूलता से प्राप्त होती है वैसे तू मूक पति के साथ सदा वर्त्ता कर ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । ( प्रम ) कितने समय तक उषाकाल होता है, ( उत्तर ) सुमोदय से पूरक पाँच बड़ी उष काल होता है ( प्रम ) कौन स्त्री सुख को प्राप्त होती है, ( उत्तर ) जो अन्य विदुषी स्त्रियों और अपने पतियों के साथ सदा अनुकूल रहती है और वे स्त्री प्रसन्नता को भी प्राप्त होती हैं जो कृपाशु होती हैं वे स्त्री पतियों को प्रसन्न करती हैं । जो पतियों के अनुकूल वर्त्तती हैं वे सदा सुखी रहती हैं ॥ १० ॥

फिर प्रभात विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इयुष्टे ये पूर्वतरामपर्यन्धुच्छन्तीभुषसं मस्योसः ।

अस्मामिन् नु प्रतिचक्ष्याऽभुदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥११॥

पदार्थ—( ये ) जो ( अर्थात् ) मनुष्य लोग ( अयुच्छन्तीम् ) जगाती हुई ( पूर्वतराम् ) अति प्राचीन ( उवसम् ) प्रभातवेला को ( ईयुः ) प्राप्त होवें ( ते ) वे ( अस्माभिः ) हम लोगों के साथ सुख को ( अपश्यम् ) देखते हैं जो प्रभातवेला हमारे साथ ( प्रतिचक्ष्या ) प्रत्यक्ष से देखते योग्य ( अभुत् ) होती है वह ( नु ) शीघ्र सुख देनेवाली होती है ( च ) और ( ये ) जो ( अपरीषु ) आनेवाली उषाओं में व्यतीत हुई उषा को ( पश्यान् ) देखें ( ते ) वे ( ओ ) हि सुख को ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य उषा के पहले शयन से उठ आश्रमिक कर्म करके परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे बुद्धिमान् और धार्मिक होते हैं जो स्त्री-पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके प्रीति से आपस में बोलते चालते हैं वे अनेकविध सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

फिर उषा के प्रसंग से स्त्रीविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यावयद्दंवा अतपा अतेजाः सुम्नावरीं स्रुता ईरयन्ती ।

सुमङ्गलीर्विभ्रती देवतीतिमिहाधोषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥१२॥

पदार्थ—हे ( उषः ) उषा के समान वर्तमान विदुषी स्त्रि ! ( यावयद्दंवाः ) जिसने देवयुक्त कर्म दूर किये ( अतपा ) सत्य की रक्षक ( अतेजाः ) सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध ( सुम्नावरी ) जिसमें प्रशंसित सुख विद्यमान वा ( सुमङ्गलीः ) जिनमें सुन्दर मङ्गल होते उन ( स्रुता ) वेदादि सत्यशास्त्रों की सिद्धांतवाणियों को ( ईरयन्ती ) शीघ्र प्रेरणा करती हुई ( अष्टतमा ) अतिशय उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त ( देवकीतिम् ) विद्वानों की विशेष नीति को ( विभ्रती ) बार-बार करती हुई तू ( इह ) यहां ( अथ ) आज ( व्युच्छ ) दुःख को दूर कर ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभात वेला मन्धकार का निवारण, प्रकाश का प्रावर्धन करा धार्मिकों को सुखी और औरादि को पीड़ित करके सब प्राणियों को आनन्दित करती है वैसे ही विद्या, धर्म, प्रकाशवती शमादि गुणों के युक्त विदुषी उत्तम स्त्री अपने पतियों से सन्तानोत्पत्ति करके अष्टौ शिक्षा से अविद्यान्धकार को छुड़ा विद्याका सूर्य को प्राप्त करा कुल को सुभूषित करें ॥ १२ ॥

शश्वत्परोषा व्युवास देव्येथी अद्यदं ध्याओ मयोनी ।

अथ व्युच्छादुत्तरां अनु द्यनजरामृता चरति स्वधामिः ॥१३॥

पदार्थ—हे ! स्त्रि ( पुरा ) प्रथम ( देवी ) अत्यन्त प्रकाशमान ( मयोनी ) प्रशंसित धन प्राप्ति करनेवाली ( अजरा ) पूर्ण युवावस्थायुक्त ( अमृता ) रोगरहित ( उषा ) प्रभातवेला के समान ( उवास ) वास कर और ( अथो ) इसके अनन्तर जैसे प्रभातवेला ( उत्तरात् ) आगे आनेवाले ( अनु, द्युम् ) दिनों के अनुकूल ( स्वधाभिः ) अपने आर बारण किये हुए पदार्थों का साथ ( शश्वत् ) निरन्तर ( वि, चरति ) विचरती और मन्धकार को ( वि, उच्छात् ) दूर करती तथा ( अद्य ) वर्तमान दिन में ( इवम् ) इस जगत् की ( व्याध ) विविध प्रकार से रक्षा करती है वैसे तू हो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे स्त्रि ! जैसे प्रभात वेला कारण और प्रवाहरूप से नित्य हुई तीनों कालों में प्रकाश करने योग्य पदार्थों का प्रकाश करके वर्तमान रहती है वैसे आत्मपन से नित्यस्वरूप तू तीनों कालों में स्थित सत्य व्यवहारों को विद्या और सुशिक्षा से प्रकाश करके पुत्र-पौत्र, ऐश्वर्यादि सीमाययुक्त होके सदा सुखी हो ॥ १३ ॥

व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदपं कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।

प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥१४॥

पदार्थ—हे स्त्रियों ! तुम जैसे ( प्रबोधयन्ती ) सोतो को जगाती हुई ( देवी ) दिव्यगुणयुक्त ( उषा ) प्रातः समय की वेला ( व्यञ्जिभिः ) प्रकट करनेवाले गुराँ के साथ ( वि, चरति ) आकाश से ( आतासु ) सर्वत्र व्याप्त दिशाओं में सब पदार्थों को ( व्यञ्जित् ) विशेष कर प्रकाशित करती ( निर्णिजम् ) वा निश्चितरूप ( कृष्णाम् ) कृष्णवर्ण रात्रि को ( अपाव ) दूर करती वा ( अश्वैः ) रक्षादि गुणयुक्त ( अश्वैः ) आपनशील किरणों के साथ वर्तमान ( सुयुजा ) अच्छे युक्त ( रथेन ) रमणीय स्वरूप से ( या, याति ) जाती है उसके समान तुम लोग वर्त्ता करो ॥१४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातः समय की वेला दिशाओं में व्याप्त है वैसे कन्या लोग विद्याओं में व्याप्त होवें वा जैसे यह उषा अपने अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान रहती है वैसे यह कन्याजन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान हों जैसे यह उषा अन्धकार का निवारण, रूप प्रकाश की उत्पन्न करती है वैसे वे कन्याएँ मूर्खता आदि का निवारण कर सुसम्पत्तादि शुभ गुराँ से सदा प्रकाशित रहें ॥१४॥

आवहन्ती पोष्या वाय्वीणि चित्रं केतुं कुण्ठे चेकिताना ।

इयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥१५॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! तुम जैसे ( उषा ) प्रातर्बला ( पोष्य ) पुष्टि कराने और ( वार्याणि ) स्वीकार करने योग्य बनादि पदार्थों को ( आश्रयणी ) प्राप्त कराती और ( वैकिताना ) अत्यन्त चिताती हुई ( चित्रम् ) प्रदत्त ( केतुम् ) किरण को ( कुर्याते ) करती अर्थात् प्रकाशित करती है ( विभातीनाम् ) विशेष कर प्रकाशित करती हुई सूर्यकान्तियों और ( ईयुषीनाम् ) चलती हुई ( शक्वतीनाम् ) अनादि रूप बड़ियों की ( अक्षमा ) पहली ( अपसा ) दृष्टान्तरूप ( व्यस्यत् ) व्याप्त होती है वैसे ही शुभ गुण कर्मों में ( भारत ) विचरा करो ॥१५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग यह निश्चित जानो कि जैसे प्रातःकाल से आरम्भ करके कर्म उत्पन्न होते हैं वैसे स्त्रियों के आरम्भ से घर के कर्म हुआ करते हैं ॥१५॥

उदीर्ध्व जीवो अमुर्ने आशादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।

अरिक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस उषा की उत्तेजना से ( नः ) हम लोगों का ( जीवः ) जीवन का धर्ता इच्छाविगुणयुक्त ( अमुः ) प्राण ( आ, अणात् ) सब और से प्राप्त होता ( ज्योतिः ) प्रकाश ( प्र, अणात् ) प्राप्त होता ( तव ) रात्रि ( जप, इति ) दूर हो जाती और ( यातवे ) जाने-माने को ( पञ्चाम् ) मार्ग ( अरिक् ) अलग प्रकट होता जिससे हम लोग ( सूर्याय ) सूर्य को ( आ, अणम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते तथा ( यत्र ) जिसमें प्राणी ( आयुः ) जीवन को ( प्रतिरन्ते ) प्राप्त होकर आनन्द से बिताते हैं उसको जानकर ( उदीर्ध्वम् ) पुरुषार्थ करने में चेष्टा किया करो ॥१६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तोत्रोपमालंकार है । जैसे यह प्रातःकाल की उषा सब प्राणियों को जगाती अणुकार को निवृत्त करती है और जैसे सायंकाल की उषा सबको काम्यों से निवृत्त करके सुलाती है अर्थात् माता के समान सब जीवों को अच्छे प्रकार पालन कर व्यवहार में नियुक्त कर देती है वैसे ही सज्जन विदुषी स्त्री होती है ॥१६॥

स्युमना वाच उदिपति वहिः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।

अथा तदुच्छ गुणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७॥

पदार्थ—हे ( मघोनि ) प्रशंसित धनयुक्त त्वि ! तू ( अस्मे ) हमारे और ( गुणते ) प्रशंसा करते हुए ( पत्ये ) पति के धर्म जो ( प्रजावत् ) बहुत प्रजायुक्त ( आयुः ) जीवन का हेतु धन है ( तत् ) वह ( अथ ) धाज ( नि, विदीहि ) निरन्तर प्रकाशित कर जो तेरा ( रेभः ) बहुधन ( स्तवान ) गुण प्रशंसाकर्ता ( वहिः ) धनि के समान निर्वाह करनेहारा पति तेरे लिए ( विभाती ) प्रकाशवती ( उषसः ) प्रभातवेलाओं को जैसे सूर्य वैसे ( स्युमना ) सकल विद्याओं से युक्त प्रिय ( वाचः ) वेदवाणियों को ( उत्, इयति ) उत्तमता से जानता है उसको तू ( उच्छ ) अच्छा निवास कराया कर ॥१७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तोत्रोपमालंकार है । जब स्त्री-पुरुष सहृदभाव से परस्पर विद्या और अच्छी शिक्षाओं को ग्रहण कर उत्तम धन, धनादि वस्तुओं का सचय करके सूर्य के समान धर्म-न्याय का प्रकाश कर सुख में निवास करते हैं सभी गृहाश्रम के पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

किर उषःकाल के प्रसंग से स्त्री-पुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्यीय ।

वायोरेव मृन्तानामुदकं ता अश्वदा अरनवत्सोमसुत्वा ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ( वाः ) जो ( मृन्तानाम् ) श्रेष्ठ वायु और अन्नादि की ( उषसः ) उरुच्छता से प्राप्ति में ( वायोरेव ) जैसे वायु से ( गोमतीः ) बहुत गी वा किरणों वाली ( उषसः ) प्रभातवेला वर्तमान है वैसे विदुषी स्त्री ( दाशुषे ) सुख देनेवाले ( मर्त्यीय ) मनुष्य के लिए ( व्युच्छन्ति ) सुख दूर करती और ( अश्वदाः ) अश्व धावि पशुओं को देनेवाली ( सर्ववीरा ) जिनके होते समस्त वीरजन होते हैं ( ताः ) उन विदुषी स्त्रियों को ( सोमसुत्वा ) ऐश्वर्य की सिद्धि करनेहारा जन ( अरनवत् ) प्राप्त होता है वैसे ही इनको प्राप्त होओ ॥१८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकस्तोत्रोपमालंकार हैं । ब्रह्मचारी लोगों को योग्य है कि समावर्तन के पश्चात् अपने सद्गुण विद्या, उत्तम शीलता, रूप और सुन्दरता से सम्पन्न हृदय को प्रिय, प्रभातवेला के समान प्रशंसित ब्रह्मचारिणी कम्पार्थ से विवाह करके गृहाश्रम में पूर्ण सुख करें ॥१८॥

माता देवानामदितैरनीकं यस्स्य केतुर्हृती वि भाहि ।

प्रकृतिरुक् प्रपणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्वारे ॥१९॥

पदार्थ—हे ( विश्ववारे ) समस्त कल्याण को स्वीकार करनेहारी कुमारी ! ( यस्स्य ) गृहाश्रम व्यवहार में विद्वानों के शकारादि कर्म की ( केतुः ) जतनेहारी पदार्थों के समान प्रसिद्ध ( अदितैः ) उत्पन्न हुए सन्तान की रक्षा के लिए ( अनीकम् ) सेना के समान ( प्रकृतिरुक् ) प्रशंसा करने और ( ब्रह्मती ) अत्यन्त सुख की बढ़ानेहारी ( देवानाम् ) विद्वानों की ( माता ) जन्मती हुई ( ब्रह्मती ) वैदिकी या परमेश्वर के ज्ञान के लिए प्रभातवेला के समान ( विभाहि ) विशेष प्रकाशित हो ( नः ) हमारे ( अने ) कुटुम्बीजन में प्रीति को ( आ, अणम् ) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया कर और ( नः ) हम को सुख में ( व्युच्छ ) स्थिर कर ॥१९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तोत्रोपमालंकार है । सत्पुरुष को योग्य है कि उत्तम विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे जिससे अच्छे सन्तान हो और ऐश्वर्य निरूप बढ़ा करे । क्योंकि स्त्री सम्बन्ध से उत्पन्न हुए दुःख के मुख्य हम ससार में कुछ भी बढ़ा कष्ट नहीं है उससे पुरुष सुखशरा स्त्री की परीक्षा करके वाणिग्रहण करे और स्त्री को भी योग्य है कि हृदय के प्रिय अतीव प्रशंसित रूप गुणवाने पुरुष ही का वाणिग्रहण करे ॥१९॥

यच्चित्रमपने उपसो वहन्तीजानायं शशमानायं मद्रम् ।

तस्यो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत धौः ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( उषसः ) उषा के समान स्त्री ( शशमानाय ) प्रशंसित गुणयुक्त ( ईकानाय ) सगर्भील पुरुष के लिए और ( न ) हमारे लिए ( यत् ) जो ( चित्रम् ) प्रदत्त ( मद्रम् ) कल्याणकारी ( अणम् ) सन्तान की ( बह्वन्ति ) प्राप्ति कराती वा जिन स्त्रियों से ( मित्रः ) सखा ( वरुणः ) उत्तम पिता ( अदितिः ) श्रेष्ठ माता ( सिन्धुः ) समुद्र वा नदी ( पृथिवी ) भूमि ( उत ) और ( धौः ) विद्युत् वा सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ पालन करने योग्य है उन स्त्रियों वा ( तत् ) उस सन्तान को निरन्तर ( मामहन्ताम् ) उपकार में लगाया करो ॥२०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तोत्रोपमालंकार है । श्रेष्ठ विद्वान् ही सन्तानों को उत्पन्न अच्छे प्रकार रक्षित और उनकी अच्छी शिक्षा करके उनके बढ़ाने को समर्थ होते हैं जो पुनश्च स्त्रियों और जो स्त्री पुरुषों का सकार करती है उनके कुल में सब सुख निवास करते हैं और दुःख भाग जाते हैं ॥२०॥

इस सूक्त में रात्रि और प्रभात समय के गुणों का वर्णन और इनके वृष्टान्त से स्त्री पुरुषों के कर्तव्य कर्म का उपदेश किया है इससे इस सूक्त के धर्म की पूर्व सूक्त के धर्म के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसी तरहवां सूक्त और बीच वर्ण समाप्त हुआ—



अथवाचकस्य चतुर्विंशोत्तरशततमस्यास्य सूक्तस्याङ्कितः कुरस ऋचिः ।

श्रो वेवता । १ जगती, २, ७ निचुजगती, ३, ६, ८, ९

चिराद् जगती च छन्दः । निचावः स्वर । ४, ५, ११

गुरिक् त्रिष्टुप्, १० निचुत् त्रिष्टुप्छन्दः ।

चैवतः स्वरः ॥

अथ ग्यारह ऋचावाले एकसी बीचहवां सूक्त का आरम्भ है

उसके प्रथम मन्त्र में विद्वत्विषय को कहते हैं—

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।

यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नातुरम् ॥२१॥

पदार्थ—हम अध्यापक वा उपदेशक लोग ( यथा ) जैसे ( द्विपदे ) मनुष्यादि ( चतुष्पदे ) और गौ आदि के लिए ( शम् ) सुख ( अस्तम् ) होवे ( अस्मिन् ) इस ( ग्रामे ) बहुत घरोवाले नगर आदि ग्राम में ( विश्वम् ) समस्त चराचर जीवादि ( अनातुरम् ) पीढ़ारहित ( पुष्टम् ) पुष्टि को प्राप्त ( अस्तम् ) हों तथा ( तवसे ) बलयुक्त ( क्षयद्वीराय ) जिसके दोषों के नाश करनेहारे और पुरुष विश्वमान ( रुद्राय ) उस बबालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करनेहारे ( कपर्दिने ) ब्रह्मचारी पुरुष के लिए ( इमाः ) प्रत्यक्ष प्राप्तो के उपदेश और वेदादि शास्त्रों के बोध से संयुक्त ( मतीः ) उत्तम प्रज्ञाओं को ( प्र, भरामहे ) बारण करते हैं ॥२१॥

भाषार्थ—मनुष्योपमालंकार । जब प्राप्त, सत्यवादी, धर्मात्मा, वेदों के ज्ञाता पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वान् तथा पढ़ाने और उपदेश करनेहारी स्त्री उत्तम शिक्षा से ब्रह्मचारी और श्रोता पुरुषों तथा ब्रह्मचारिणी और सुनेहारी स्त्रियों को विद्यायुक्त करते हैं तभी वे लोग शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर सब संसार को मुक्ती कर देते हैं ॥२१॥

जब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहा जाता है—

मुक्ता नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।

यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२२॥

पदार्थ—हे ( रुद्र ) दृष्ट शत्रुओं को रूतानेहारे राजन् ! जो हम ( क्षयद्वीराय ) विनाश किये शत्रु सेनास्थ वीर जिसमें उस ( ते ) आप के लिए ( नमसा ) अन्न वा सत्कार से ( विधेम ) विधान करें अर्थात् मेवा करें उन ( न ) हम लोगों को तुम ( मुच्छं ) सुखी कर और ( नः ) हम लोगों के लिए ( मयः ) सुख ( कृधि ) कीजिए हे ( रुद्र ) न्यायाधीश ( मनुः ) मननशील ( पिता ) पिता के समान आप ( यत् ) जो रोगों का ( शम् ) निवारण ( च ) ज्ञान ( यो ) दुष्टों का अलग करना ( न ) और गुणों की प्राप्ति का ( आयेजे ) सब प्रकार सङ्ग कराते हो ( तत् ) उसको ( अश्याम ) प्राप्त होवे ( उत ) वे ही हम लोग ( तव ) पुरोहारी ( प्रणीतिषु ) उत्तम नीतियों में प्रवृत्त होकर निरन्तर सुखी हों ॥२२॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि स्वयं सुखी होकर सब प्रजाओं को सुखी करे इस काम में अलस्य कभी न करे और प्रजाजन राजनीति के नियम में वर्तके राजपुरुषों को सदा प्रसन्न रखे ॥ २ ॥



अश्यामं ते सुमतिं देवयज्यया अयदीरस्य तव रुद्र मीदवः ।

सुम्नायबिद्विषो अस्माकमा चरशिष्टवीग जुहवाम ते हविः ॥३॥

पदार्थ—हे (मीदव) प्रजा को सुख से सींचने और (रुद्र) सत्योपदेश करनेवाले मभाध्यक्ष राजन् । हम लोग (देवयज्यया) विद्वानों की सगति और सत्कार से (अयदीरस्य) वीरो का निवास करनेहारे (तव) तेरी (सुमतिम्) श्रेष्ठ प्रज्ञा को (अश्याम) प्राप्त होवें जो (सुम्नयन) सुख कराता हुआ तू (अस्माकम्) हमारी (अरिष्टवीरा) हिंसारहित वीरोवाली (विश) प्रजाओं को (आ, चर) सब ओर से प्राप्त हो उस (ते) तेरी प्रजाओं को हम लोग (इत्) भी प्राप्त हो और (ते) तरे लिए (हवि) देने योग्य पदार्थ को (जुहवाम्) दिया करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—राजा को योग्य है कि प्रजाओं को निरन्तर प्रसन्न रखें और प्रजाओं को उचित है कि राजा को आनन्दित करें जो राजा प्रजा से कर लेकर पालन न करे तो वह राजा डाकुओं के समान जानना चाहिए जो पालन की हुई प्रजा राजभक्त न हो वे भी चोर के तुल्य जाननी चाहिए इसीलिए प्रजा राजा को कर देती है कि जिससे वह हमारा पालन करे और राजा इसलिए पालन करता है कि जिससे प्रजा मुझको कर दें ॥ ३ ॥

त्वेपं वयं रुद्रं यज्ञसार्धं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।

आरे अस्मदैव्यं हेळो अस्पतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥४॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षा आदि के लिए जिस (त्वेपम्) विद्या, न्याय प्रकाशवान् (वङ्कुम्) दुष्ट शत्रुओं के प्रति कुटिल (कविम्) समस्त शास्त्रों को क्रम-क्रम से देखने और (यज्ञसार्धम्) प्रजापामनरूप यज्ञ को सिद्ध करने-हारे (देव्यम्) विद्वानों से कुशल (वङ्कुं) शत्रुओं को रोकनेहारे को (नि, ह्वयामहे) अपना सुख-दुःख का निवेदन करें तथा (वयम्) हम लोग जिस (अस्य) इस रुद्र की (सुमतिम्) अर्मानुकूल उत्तम प्रज्ञा को (आ, वृणीमहे) सब ओर से स्वीकार करें । (इत्) वही सभाध्यक्ष (हेळ) धार्मिक जनो का अनावर करने-हारे धार्मिक जनो को (अस्पतु) हम से (आरे) दूर (अस्पतु) निकाल दें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे प्रजाजन राजा को स्वीकार करते हैं वैसे राजपुरुष भी प्रजा की आज्ञा को माना करें ।

यव वंछजन के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दिबो वंगहर्मरुषं कपदिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।

हस्ते बिभ्रद् भेषजा वाय्याणि शर्म वर्यं छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥५॥५॥

पदार्थ—हम लोग (नमसा) भक्त और सेवा से जो (हस्ते) हाथ से (भेषजा) रोगनिवारक औषध (वाय्याणि) और ग्रहण करने योग्य साधनों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (शर्म) धर, सुख (वर्यम्) कवच (छर्दि) प्रकाशयुक्त शस्त्र और अस्त्रादि को (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (यंसत्) नियम से रखे उस (कपदिनम्) जटाजूट अह्वारी, बंध, विद्वान् वा (विश) विद्यान्याय-प्रकाशित व्यवहारों वा (वराहम्) भेष के तुल्य (अवयम्) चाड़े आदि की (त्वेपम्) वा प्रकाशमान (रूपम्) सुन्दर रूप की (निह्वयामहे) नित्य स्पर्शा करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बंध के मित्र पथ्यकारी, जितेन्द्रिय उत्तम शीलवाले होते हैं वे ही इस जगत् में रोगरहित और राज्यादि को प्राप्त होकर सुख को बढ़ाते हैं ॥ ५ ॥

फिर बंध और उपदेश करनेवाले कैसे अपना बर्ताव करें

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।

रास्वा च नो अमृत मर्त्तमोर्जनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६॥

पदार्थ—हे (अमृत) मरण दुःख दूर कराने तथा आयु बढ़ानेहारे वैद्यराज वा उपदेशक विद्वन् । आप (न) हमारे (त्मने) शरीर (तोकाय) छोट-छोटे बाल-बच्चे (तनयाय) जवान बेटे (च) और सेवक, वैतनिक वा आयुषिक भृत्य अर्थात् चाकरो के लिए (स्वादोः) स्वादिष्ट से (स्वादीयः) स्वादिष्ट अर्थात् सब प्रकार स्वादवाला जो खाने में बहुत अच्छा लगे उस (मर्त्तमोर्जनम्) मनुष्यों के भोजन करने के पदार्थ को (रास्व) देघो जो (इवम्) यह (मरुताम्) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेहारे विद्वानों को (वर्धनम्) बढ़ानेवाला (वच) वचन (पित्रे) पालना करने (वराय) और दुष्टों को रलानेहारे सभाध्यक्ष के लिए (उच्यते) कहा जाता है उससे हम लोगों को (मृळ) सुखी कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—बंध और उपदेश करनेवाले को यह योग्य है कि आप नीरीय और सत्याचारी होकर सब मनुष्यों के लिए औषध देने और उपदेश करने से उपकार कर सब की निरन्तर रक्षा करें ॥ ६ ॥

यव न्यायाधीश कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वी रुद्र रीरिषः ॥७॥

पदार्थ—(रुद्र) न्यायाधीश दुष्टों को रलानेहारे सभापति (नः) हम लोगों में से (महान्तम्) बड़े वा पड़े-लिखे मनुष्य को (मा) मत (वधीः) मारो (उत) और (नः) हमारे (अर्भकम्) बालक को (मा) मत मारो (नः) हमारे (उक्षितम्) स्त्रीसम करने में समर्थ युवावस्था से परिपूर्ण मनुष्य को (मा) मत मारो (उत) और (न) हमारे (उक्षितम्) वीर्यसेवन से स्थित हुए गर्भ को (मा) मत मारो (न) हम लोगों के (पितरम्) पालने और उत्पन्न करने-हारे पिता वा उपदेश करनेवाले को (मा) मत मारो (उत) और (मातरम्) मान सम्मान और उत्पन्न करनेहारी माता वा विदुषी स्त्री को (मा) मत मारो (नः) हम लोगों की (प्रियाः) स्त्री आदि के प्यारे (तन्वीः) शरीरों को (मा) मत मारो और अन्यायकारी दुष्टों को (रीरिषः) मारो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ईश्वर पक्षपात को छोड़के धार्मिक सज्जनों को उत्तम कर्मों के फल देने से सुख देता और पापियों को पाप का फल देने से पीड़ा देता है वैसे तुम लोग भी अच्छा यत्न करो ॥ ७ ॥

फिर राजजन कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

या नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्रा हवामहे ॥८॥

पदार्थ—हे (रुद्र) दुष्टों को रलानेहार सभापति ! (हविष्मन्तः) जिनके प्रज्ञासयुक्त सत्कार के उपकार करने के काम हैं वे हम लोग जिस कारण (सवम्) स्थिर वर्तमान ज्ञान को प्राप्त (हवामहे) आप ही को (हवामहे) अपना करते हैं इससे (भामितः) क्रोध को प्राप्त हुए आप (नः) हम लोगों के (तोके) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक वा (तनये) बालिकाओं से जो ऊपर है उस बालक में (मा, रीरिषः) घात मत करो (न) हम लोगों के (आयौ) जीवन विषय में (मा) मत हिंसा करो (नः) हम लोगों के (गोषु) गौ आदि पशुसंघात में (मा) मत घात करो (नः) हम लोगों के (अश्वेषु) घोड़ों में (मा) घात मत करो (न) हमारे (वीरान्) वीरों को (मा) मत (वधीः) मारो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—क्रोध को प्राप्त हुए सज्जन राजपुरुषों को किसी का अन्याय से हनन न करना चाहिए और गौ आदि पशुओं की सदा रक्षा करनी चाहिए । प्रजा-जनों को भी राजा के आश्रय से ही निरन्तर आनन्द करना चाहिए और सबों को मिलकर ईश्वर की ऐसी प्रार्थना करना चाहिए कि हे परमेश्वर आपकी कृपा से हम लोग बाल्वावस्था में विवाह आदि बुरे काम करके पुत्रादिको का विनाश कभी न करें और वे पुत्र आदि भी हम लोगों के विरुद्ध काम को न करें तथा सभार का उपकार करनेहारे गौ आदि पशुओं का कभी विनाश न करें ॥ ८ ॥

फिर राज प्रजाजन परस्पर कैसे वर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

उपं ते स्तोमानं पशुपादवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नयस्मे ।

मद्रा हि तं सुमतिर्मृक्यत्तमार्था वयमव इत्तं वृणीमहे ॥९॥

पदार्थ—हे (मरुताम्) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करानेहारे की (वित) पालन करते हुए दुष्टों को रलानेहारे सभापति ! (हि) जिस कारण मैं (पशुपादव) जैसे पशुओं का पालनेहारा चरवाहा अहीर गौ आदि पशुओं से दूध, दही, घी, मट्ठा आदि लेके पशुओं के स्वामी को देता हूँ वैसे (स्तोमान्) प्रशसनीय रत्न आदि पदार्थों को (ते) आपके लिए (उप, प्रा, अकरम्) आगे करता हूँ इस कारण आप (अस्मे) मेरे लिए (सुम्नम्) सुख (रास्व) देघो (अव) इसके अनन्तर जो (ते) आपकी (मृक्यत्तमा) सब प्रकार से सुख करनेवाली (मद्रा) सुखरूप (सुमति) श्रेष्ठ मति और जो (ते) आपका (अव) रक्षा करना है उस मति और रक्षा करने को (वयम्) हम लोग जैसे (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (इत्) देने आप भी हम लोगों का स्वीकार करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । प्रजापुरुष राजपुरुषों से राजनीति और राजपुरुष प्रजापुरुषों से प्रजाव्यवहार को जान जानने योग्य को जाने हुए सनातन धर्म का आश्रय करें ॥ ९ ॥

फिर राजा-प्रजा के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

आरे तं गोघ्नमुत पुरुषघ्नं अयदीर सुम्नयस्मे तं अस्तु ।

मृळा च नो अधि च अहि देवाधा च नः शर्म यच्छ दिवर्हीः ॥१०॥

पदार्थ—हे (अयदीर) दूरवीर जनों का निवास कराने और (देव) दिव्य अच्छे-अच्छे कर्म करनेहारे विद्वान् सभापति ! (पुरुषघ्नम्) पुरुषों को मारने (च) और (गोघ्नम्) गौ आदि उपकार करनेहारे पशुओं के विनाश करनेवाले प्राणी को निवारके (ते) आप के (च) और (अस्मे) हम लोगों के लिए (सुम्नम्) सुख (अस्तु) हो (अव) इसके अनन्तर (नः) हम लोगों को (मृळा) सुखी कीजिए (च) और मैं आप को सुख देऊँ आप लोगों को (अधि) अधिक उपदेश देघो (च) और मैं आपको अधिक उपदेश करूँ (दिवर्हीः) व्यवहार और परमार्थ के बढ़ानेवाले आप (नः) हम लोगों के लिए (अस्मे) घर का सुख (वृष्य) कीजिए (च) और आपको सुख देऊँ सब हम लोग धर्मात्माओं के (आरे) निकट और दुराचारियों से दूर रहें ॥ १० ॥

आचार्य—मनुष्यों को चाहिए कि धर्म के साथ पशु और मनुष्यों के विनाश करनेवाले दुराचारियों से दूर रहें और अपने से उनका दूर निवास करावें । राजा और प्रजाजनों को परस्पर एक दूसरे से उपदेश कर समा बना और सब की रक्षा व्यवहार और परमार्थ का सुख सिद्ध करना चाहिए ॥ १० ॥

फिर अश्वपक और उपदेशकों के व्यवहारों को अपने मन्त्र में कहा है—  
अर्वाचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवै ह्यो मस्तवान् ।  
तस्मिन् मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१॥

पदार्थ—( अश्वपक ) अपनी रक्षा चाहते हुए हम लोग ( अस्मै ) इस मान करने योग्य सभाध्यक्ष के लिए ( नमः ) “नमस्ते” ऐसे वाक्य को ( अर्वाचाम ) कहें और वह ( अश्वपक ) बलवान् ( ह्यो ) विद्या पदा हुआ सभापति ( तत् ) उस ( न ) हमारे ( हवै ) बुलानेवाले प्रशस्तीवाक्य का ( शृणोतु ) सुनो हे मनुष्यों ! जो ( नः ) हमारे “नमस्ते” शब्द को ( मित्र ) प्राण ( वरुणः ) श्रेष्ठ विद्वान् ( अदितिः ) अन्तरिक्ष ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत ) और ( द्यौः ) प्रकाश बढ़ाने है अर्थात् उक्त पदार्थों को जाननेवाले सभापति को बार-बार “नमस्ते” शब्द कहा जाता उसको पाप ( मामहन्ताम् ) बार-बार प्रशंसायुक्त करें ॥ ११ ॥

आचार्य—प्रजापुरुषों को राजा लोगों के प्रिय आचरण नित्य करने चाहिए और राजा लोगों को प्रजाजनों के कहे वाक्य सुनने योग्य हैं ऐसे सब राजा प्रजा मिलकर न्याय की उन्नति और अन्याय को दूर करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में ब्रह्मचारी, विद्वान्, सभाध्यक्ष और सभासद आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जानने योग्य है ॥ यह एकलौ चौबहवाँ सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ षड्वचस्य पञ्चवचसोत्तरतमस्यास्य सूक्तस्याङ्गिरस कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता ।  
१, २, ६, निबृत् त्रिष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४, ५, त्रिष्टुप्छन्दः ।  
अंशत स्वरः ॥

अब ६ छ ऋचावाले एकलौ पन्ध्रहवै सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है—

चित्रं देवानामुद्गादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्रेः ।

आप्ता द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगत्स्तस्थुषंश्च ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( अनीकम् ) नेत्र से नहीं देखने में आता तथा ( देवानाम् ) विद्वान् और अच्छे-अच्छे पदार्थों वा ( मित्रस्य ) मित्र के समान वर्तमान सूर्य वा ( वरुणस्य ) आनन्द देनेवाले जल चन्द्रलोक और अपनी व्याप्ति आदि पदार्थों वा ( अग्ने ) बिजुली आदि अग्नि वा और सब पदार्थों का ( चित्रम् ) अव्युत् ( चक्षुः ) दिखानेवाला है वह ब्रह्म ( उद्गाता ) उत्कृष्टता से प्राप्त है । जो जगदीश्वर ( सूर्यः ) सूर्य के अमान ज्ञान का प्रकाश करनेवाला विद्वान् से परिपूर्ण ( जगत् ) जङ्गम ( च ) और ( तस्थुषः ) स्थावर अर्थात् बराबर जगत् का ( आत्मा ) अन्तर्यामी अर्थात् जिसने ( अन्तरिक्षम् ) आकाश ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और भूमिलोक को ( आ, अप्रा ) अच्छे प्रकार परिपूर्ण किया अर्थात् उनमें आप भर रहा है उसी परमात्मा को तुम लोग उपासना करो ॥१॥

आचार्य—जो देखने योग्य परिमाणवाला पदार्थ है वह परमात्मा होने को योग्य नहीं । न कोई भी उस अव्यक्त सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के बिना समस्त जगत् को उत्पन्न कर सकता है और न कोई सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप अन्तःअन्तर्यामी बराबर जगत् के आत्मा परमेश्वर के बिना ससार के धारण करने, जीवों को पाप और पुण्य को साक्षीपन और उनके अनुसार जीवों को सुख-दुःखरूप फल देने को योग्य है न इस परमेश्वर की उपासना के बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पाने को कोई जीव समर्थ होता है इससे यही परमेश्वर उपासना करने योग्य इष्टदेव सबको मानना चाहिए ॥१॥

फिर ईश्वर का कृत्य अपने मन्त्र में कहा है—

सूर्यो देवीमुखसं रोचमाना मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।

यत्ना नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जिस ईश्वर ने उत्पन्न कस्के ( कक्षा ) नियम में स्थापन किया यह ( सूर्यः ) सूर्यमण्डल ( रोचमानाम् ) रुचि कराने ( देवीम् ) और सब पदार्थों को प्रकाशित करनेवाली ( उक्ताम् ) प्रातः काल की बेला को उसके होने के ( वक्ष्यते ) पीछे जैसे ( मर्यः ) पति ( योषाम् ) अपनी स्त्री को प्राप्त हो ( न ) वैसे ( अभ्येति ) सब ओर से दौड़ा जाता है ( यत् ) जिस विद्यमान सूर्य में ( देवयन्तः ) मनोहर चाल-चलन से सुन्दर गणितविद्या को जानते-जानाते हुए ( नरः ) ज्योतिषविद्या के भावों को दूसरों की समझ में पहुँचानेवाले ज्योतिषीजन ( युगानि ) पौर्णमासी संवत्सरो की गणना से ज्योतिष में युग वा सत्ययुग, त्रेतायुग, क्षत्रिययुग और कलियुग को जान ( भद्राय ) उत्तम सुख के लिए ( भद्रम् ) उस उत्तम सुख के ( प्रति, वितन्वते ) प्रति विस्तार करते हैं उसी परमेश्वर की सबका उत्पन्न करनेवाला तुम लोग जानो ॥२॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमासकार है । हे विद्वानो ! तुम लोगों से जिस ईश्वर ने सूर्य को बनाकर प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थापन किया उसके आश्रय से गणित आदि समस्त व्यवहार सिद्ध होते हैं वह ईश्वर क्यों न सेवन किया जाए ॥२॥

फिर सूर्य के काम का अगले मन्त्रों में वर्णन किया है—

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतन्वा अनुमाद्यासः ।

नमस्यन्तो दिव आ पृथमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति मघः ॥३॥

पदार्थ—( भद्रा ) सुख कर्णहार ( अनुमाद्यासः ) आनन्द करने के गुण से प्रशंसा के योग्य ( नमस्यन्तः ) सत्कार करते हुए विद्वान्जन जो ( सूर्यस्य ) सूर्यलोक को ( चित्रा ) चित्र-विचित्र ( एतन्वा ) इन प्रत्यक्ष पदार्थों को प्राप्त होती हैं ( अश्वाः ) बहुत व्याप्त होनेवाली किरणें ( हरितः ) विद्या और ( द्यावापृथिवी ) आकाश-भूमि को ( सद्यः ) शीघ्र ( परि, यन्ति ) सब ओर से प्राप्त होती ( दिव ) तथा प्रकाशित करने योग्य पदार्थ के ( पृथमः ) पिछले भाग पर ( आ, अस्थुः ) अच्छे प्रकार ठहरती हैं उनको विद्या से उपकार में लाओ ॥३॥

आचार्य—मनुष्यों को याद है कि श्रेष्ठ, बढ़ानेवाले शास्त्रवेत्ता विद्वानो को प्राप्त हो उनका सत्कार कर उनसे विद्या पढ़ गणित आदि क्रियाओं की चतुराई को ग्रहण कर सूर्यसम्बन्धि व्यवहारों का अनुष्ठान कर कार्यसिद्धि करें ॥३॥

तत् सूर्यस्य देवः तन् महित्वं मध्या कर्त्तव्यं तत् सं जमार ।

यदेदयं हरितः सधम्यादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( यदा ) जब ( तत् ) वह पहले मन्त्र में कहा हुआ ( सूर्यस्य ) सूर्यमण्डल के ( मध्या ) बीच में ( वितन्वते ) व्याप्त ब्रह्म इस सूर्य के ( देवत्वम् ) प्रकाश ( महित्वम् ) बढ़ावन ( कर्त्तव्यं ) और काम का ( सं जमार ) संहार करता अर्थात् प्रलय समय सूर्य के समस्त व्यवहार को हर लेता ( आत् ) और फिर जब सृष्टि को उत्पन्न करता है तब सूर्य को ( अयुक्त ) युक्त अर्थात् उत्पन्न करता और नियत कक्षा में स्थापन करना है सूर्य ( सधम्यात् ) एक स्थान से ( हरितः ) दिशाओं को अपनी किरणों से व्याप्त होकर ( सिमस्मै ) नमस्त लोक के लिए ( वास ) अपने निवास का ( तनुते ) विस्तार करता तथा जिस ब्रह्म के तत्त्व से ( रात्री ) रात्रि होती है ( तत्, इत् ) उसी ब्रह्म की उपासना तुम लोग करा तथा उमी को जगत् का कर्त्ता जानो ॥ ४ ॥

आचार्य—हे सज्जनों ! यद्यपि सूर्य आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों का धारण करता है पृथिवी आदि लोको से बड़ा भी वर्तमान है ससार का प्रकाश कर व्यवहार भी कराता है तो भी यह सूर्य परमेश्वर के उत्पादन धारण और आकर्षण आदि गुणों के बिना उत्पन्न होने, स्थिर रहने और पदार्थों का आकर्षण करने को समर्थ नहीं हो सकता न इस ईश्वर के बिना ऐसे-ऐसे लोक-लोकान्तरो की रचना, धारण और इन के प्रलय करने को कोई समर्थ होता है ॥ ४ ॥

तन् मितस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते योरुपस्थे ।

अनन्तमन्यद्रुशंस्य पाजः कृष्णमन्यद्वरितः सं भरन्ति ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम लोग जिस के सामर्थ्य से ( मित्रस्य ) प्राण और ( वरुणस्य ) उदान का ( अभिचक्षे ) समुख दर्शन होने के लिए ( द्यौः ) प्रकाश के ( उपस्थे ) समीप में ठहराया हुआ ( सूर्यः ) सूर्यलोक अनेक प्रकार ( रूपम् ) प्रत्यक्ष देखने योग्य रूप को ( कृणुते ) प्रकट करता है ( मय्य ) इस सूर्य के ( अयत् ) सब से अलग ( यत् ) लाल भाग के समान जलते हुए ( पाजः ) बल तथा रात्रि के ( अयत् ) अलग ( कृष्णम् ) काले-काले अन्धकार रूप को ( हरितः ) दिशा-विदिशा ( स, भरन्ति ) धारण करती हैं ( तत् ) उस ( अनन्तम् ) देश काल और वस्तु के विभाग से शून्य परब्रह्म का सेवन करो ॥ ५ ॥

आचार्य—जिस के सामर्थ्य से रूप दिन और रात्रि की प्रप्ति का निमित्त सूर्य श्वेत कृष्ण रूप के विभाग से दिन-रात्रि को उत्पन्न करता है उस अनन्त परमेश्वर को छोड़कर किसी और की उपासना मनुष्य नहीं करें यह विद्वानो को निरन्तर उपदेश करना चाहिए ॥ ५ ॥

अथा देवा उदिता सूर्यस्य निरहसः पिपृता निरवधात् ।

तस्मिन् मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

पदार्थ—हे ( देवा ) विद्वानो ! ( सूर्यस्य ) समस्त जगत् को उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर की उपासना से ( उदिता ) उदय अर्थात् सब प्रकार से उत्कर्ष की प्राप्ति में प्रकाशमान हुए तुम लोग ( मिः ) निरन्तर ( अवधात् ) निन्दित ( अहसः ) पाप आदि कर्म से ( निष्पिपृता ) निर्गत होओ अर्थात् अपने आत्मा, मन और शरीर आदि को दूर रखो तथा जिस को ( मित्रः ) प्राण ( वरुणः ) उदान ( अदितिः ) अन्तरिक्ष ( सिन्धुः ) समुद्र ( पृथिवी ) पृथिवी ( उत ) और ( द्यौः ) प्रकाश आदि पदार्थ सिद्ध करते हैं ( तत् ) वह वस्तु वा कर्म ( नः ) हम लोगों को सुख देता है उस को तुम लोग ( अद्य ) आज ( मामहन्ताम् ) बार-बार प्रशंसित करो ॥ ६ ॥

आचार्य—मनुष्यों को चाहिए कि पाप से दूर रह धर्म का आचरण और जगदीश्वर की उपासना कर शान्ति के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की परिपूर्णा सिद्धि करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सूर्य शब्द से ईश्वर और सूर्यमण्डल के अर्थ का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ।

यह प्रथम मण्डल में सोलहवाँ अनुवाक एकसौ पञ्चहत्तरा सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथास्य पञ्चविंशत्यस्य सोऽशीत्यस्य सूक्तस्य कक्षीयानुवि । अविनी वेवते ।

१, १०, २२, २३ विराट्त्रिष्टुप्, २, ८, ९, १२—१५, १८,

२०, २४, २५, मिथुनत्रिष्टुप्, ३—५, ७, २१ त्रिष्टुप्छन्दः ।

वैवत. स्वरः । ६, १६, १९ भुरिक्पङ्क्तिः, ११ पङ्क्तिः, १७

स्वगाट् पङ्क्तिस्तच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पञ्चोस आवाले एकसौ सोलहवें सूक्त २॥ आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से अविनीविद्या के विषय का वर्णन किया है—

नासस्याभ्या बर्हिर्वि म वृञ्जे स्तोमौ इयर्भ्यभ्रियैव वातः ।

यावर्भगाय विमदाय जायां सैनाजुवां न्यूहतृ रथेन ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( नासत्याभ्याम् ) सच्चे पुण्यात्मा शिल्पी अर्थात् कारीगरो ने जोड़े हुए ( रथेन ) विमानादि रथ से ( यौ ) जो ( सैनाजुवा ) वेग के साथ सेना को चलानेहारे दो सेनापति ( अर्भगाय ) छोटे बालक वा ( विमदाय ) विशेष जिससे आनन्द होवे उस जवान के लिए ( जायाम् ) स्त्री के समान पदार्थों को ( न्यूहतृ ) निरन्तर एक देश से दूसरे देश को पहुँचाते हैं वैसे अश्व दान करता हुआ मैं ( स्तोमौ ) मार्ग के सूँचे होने के लिए बड़े-बड़े पृथिवी पर्वत आदि को ( बर्हिर्वि ) बड़े हुए जल को जैसे वैसे ( म, वृञ्जे ) छिन्न-भिन्न करता तथा ( वातः ) पवन जैसे ( अविन्येव ) बहलो को प्राप्त हो वैसे एक देश को ( इयमि ) जाता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । रथ आदि यानों में उपकारी किये पृथिवी विकार जल और अग्नि आदि पदार्थ क्या-क्या अद्भुत कार्यों को सिद्ध नहीं करते हैं ? ॥ १ ॥

अथ युद्ध के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वीर्यपत्नमिराशुहेमनिर्वा देवानां वा जूतिभिः शशदाना ।

तद्रासभो नामस्या सहस्रमाजा यमस्य प्रवने जिगाय ॥२॥

पदार्थ—हे ( शशदाना ) पदार्थों को यथायोग्य छिन्न-छिन्न करनेहारे ( नासत्या ) सत्यस्वभावी सभापति और सेनापति ! आप जैसे ( वीर्यपत्नभिः ) बल से गिरते और ( आशुहेमभिः ) शीघ्र पहुँचाते हुए पदार्थों से ( वा ) अथवा ( वैवासाय ) विद्वानों की ( जूतिभिः ) जिन से अपना बाढ़ा हुआ काम मिले, सिद्ध हो उन युद्ध की क्रियाओं से ( वा ) निश्चय कर अपने कामों को निरन्तर तर्क-वितर्क से सिद्ध करने हो वैसे ( तत् ) उस आचरण को करता हुआ ( रासभः ) कहे हुए उपयोग को जो प्राप्त उस पृथिवी आदि पदार्थसमूह के समान पुरुष ( प्रवने ) उत्तम-उत्तम गुण जिस में प्राप्त होने उस ( राजा ) सभाम में ( यमस्य ) समीप आये हुए मृत्यु के समान शत्रुओं के ( सहस्रम् ) असंख्यात वीरों को ( जिगाय ) जीते ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे अग्नि वा जल वन वा पृथिवी को प्रवेश कर उस को जलाता वा छिन्न-भिन्न करता है वैसे अत्यन्त वेग करनेहारे बिजुली आदि पदार्थों से किये हुए शस्त्र और अस्त्रों से शत्रुजन जीतने चाहिए ॥ २ ॥

अथ नाव आदि के बनाने की विद्या का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

तुग्रौ ह भुज्युमश्चिनोदमेवे रयि न कश्चिन् ममृवां अवाहाः ।

तमूहयुनौभिगत्स्मन्वतीमिरन्तरिक्षमुद्रिपौदकाभिः ॥३॥

पदार्थ—हे ( अविनी ) पवन और बिजुली के समान बलवान् सेनाधीशो ! तुम ( तुप ) शत्रुओं का मारनेवाला सेनापति शत्रुजन के मारने के लिए जिस ( भुज्युम् ) राज्य की पालना करने वा मुख भोगनेहारे पुरुष को ( उवमेवे ) जिस के जलो से ससार सींचा जाता है उस समुद्र में जैसे ( कश्चित् ) कोई ( ममृवान् ) भरता हुआ ( रयिम् ) धन को छोड़े ( न ) वैसे ( अवाहा ) छोड़ता है ( तम्, ह ) उसी को ( अपोवकाभिः ) जल जिन में आते-जाते ( अन्तरिक्षमुद्रिम् ) अवकाश में चलती हुई ( आत्मन्वतीभिः ) और प्रशसायुक्त विचारवाले क्रिया करने में उत्तम पुरुष जिन में विद्यमान उन ( नौभिः ) नावों से ( ऊहयु ) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाया ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे कोई मरण चाहता हुआ मनुष्य धन पुत्र आदि के मोह से छूट के शरीर से निकल जाता है वैसे युद्ध चाहते हुए शत्रु को मनुष्य करना चाहिए । जब मनुष्य पृथिवी के किसी भाग से किसी भाग को समुद्र उतर कर शत्रुओं के जीतने को जाया चाहें तब पुष्ट बड़ी-बड़ी कि जिनमें भीतर जल न जाता हो और जिन में आत्मज्ञानी विचार वाले पुरुष बैठे हो और जो अस्त्र-अस्त्र आदि युद्ध की सामग्री से शोभित हों उन नावों के साथ जावें ॥ ३ ॥

तिस्रः सपस्त्रिहोतिवर्जान्निर्वासत्या भुज्युमूहयुः पतङ्गैः ।

समुद्रस्य धन्वर्भाद्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपङ्क्तिः पङ्क्त्यैः ॥४॥

पदार्थ—( नासत्या ) सत्य से परिपूर्ण सभापति और सेनापति ! तुम दोनों ( तिस्रः ) तीन ( अथ ) रात्रि ( अवा ) तीन दिन ( अतिवर्जितम् ) अतीव चलते हुए पदार्थ ( पतङ्गैः ) जो थोड़े के समान वेगवाले हैं उन के साथ वर्तमान ( पङ्क्त्यैः ) जिन में जल्दी ले जानेहारे छ कलों के धर विद्यमान उन ( सपस्त्रिहः ) सैकड़ों पग के समान वेगयुक्त ( त्रिभिः ) भूमि, अन्तरिक्ष और जल में चलनेहारे ( रथैः ) रमणीय सुन्दर मनोहर विमान आदि रथों से ( भुज्युम् ) राज्य की पालना करनेवाले को ( समुद्रस्य ) जिस में अच्छे प्रकार परमाणुरूप जल आते हैं उस अन्तरिक्ष वा ( धन्वन् ) जिस में बहुत बालू है उस भूमि वा ( भाद्रस्य ) कीच के सहित जो समुद्र उस के ( पारे ) पार में ( त्रिः ) तीन बार ( ऊहयु ) पहुँचायो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य जो तीन दिन रात्रि में समुद्र आदि स्थानों के पार-पार जावें-आवेंगे तो कुछ भी सुख दुर्लभ रहेगा किन्तु कुछ भी नहीं ॥ ४ ॥

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रमथे समुद्र ।

यदन्विना ऊहयुर्भुज्युमस्तौ शतारिवां नावमातस्थिवांसम् ॥५॥८॥

पदार्थ—हे ( अविनी ) विद्या में व्याप्त होनेवाले सभा सेनापति ! ( यत् ) जो तुम दोनों ( अनारम्भणे ) जिस में आने-जाने का आरम्भ ( अनास्थाने ) ठहरने की जगह और ( अग्रमथे ) पकड़ नहीं है उस ( समुद्रे ) अन्तरिक्ष वा सागर में ( शतारिवाम् ) जिस में जल की बाढ़ लेने को मौ बल्ली वा सौ लम्बे लगे रहते और ( नावम् ) जिस को चलते वा पठाते उस नाव को बिजुली और पवन के वेग के समान ( ऊहयु ) बहावों और ( अस्तम् ) जिस में दुखों को दूर करें उस घर में ( आतस्थिवांसम् ) धरे हुए ( भुज्युम् ) खाने-पीने के पदार्थ समूह को ( अवीरयेवाम् ) एक देश से दूसरे देश को ले जाओ ( तत ) उन तुम लोगों का हम सदा सत्कार करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि निरालम्ब मार्ग में अर्थात् जिस में कुछ ठहरने का स्थान नहीं है वहाँ विमान आदि यानों से ही जावें जबतक युद्ध में लड़ने वाले वीरों की जैसी चाहिए वैसी रक्षा न की जाय तबतक शत्रुजीते नहीं जा सकते, जिसमें मौ बल्ली विद्यमान है वह बड़े फैलाव की नाव बनाई जा सकती है । इस मन्त्र में शत शब्द असंख्यातवाची भी लिया जा सकता है इससे अतिदीर्घ नौका का बनाना हम मन्त्र में जाना जाता है, मनुष्य जितनी बड़ी नौका बना सकते हैं उतनी बड़ी बनानी चाहिए । इस प्रकार शीघ्र जानेवाला पुरुष भूमि और अन्तरिक्ष में जाने-आने के लिए भी यानों को बनावे ॥ ५ ॥

यमन्विना ददयुः श्वेतमश्रमघाश्याय शशदिस्त्वस्ति ।

तद्रां दात्र महिं कीर्त्तन्यं भूत पैदो वाजी सदभिद्वयौ अयः ॥६॥

पदार्थ—हे ( अश्वेना ) जल और पृथिवी के समान शीघ्र सुख के देनेहारे सभासेनापति ! तुम दोनों ( अघाश्याय ) जो मारने के न योग्य और शीघ्र पहुँचाने वाला है उस वैश्य के लिए ( यम् ) जिन ( श्वेतम् ) अच्छे बड़े हुए ( अश्वम् ) मार्ग में व्याप्त प्रकाशमान बिजुलीरूप अग्नि को ( ददयुः ) देते हो तथा जिससे ( शशत् ) निरन्तर ( स्वस्ति ) सुख को पाकर ( वा ) तुम दोनों की ( कीर्त्तन्यम् ) कीर्त्ति होने के लिए ( महिं ) बड़े राज्यपद ( दात्रम् ) और देने योग्य ( इत् ) ही पदार्थ को ग्रहण कर ( पैदो ) सुख से ले जानेहारा ( वाजी ) अच्छा जानवान् पुरुष उस ( श्वम् ) रथ को कि जिस में बैठते हैं रथके ( अयं ) वाणिज्यी ( हव्य ) पशुओं के देने योग्य ( भूत ) होता है ( तत्, इत् ) उसी पूर्वोक्त विमानादि को बनावो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो सभा और सेना के अधिपति वणिज्यों की भली भाँति रक्षा कर रथ आदि यानों में बैठकर दीप-दीपान्तर में पहुँचावें वे बहुत धनयुक्त होकर निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

युषं नरा स्तुवते पञ्चियाय कक्षीवते आदत्तं पुरन्विम् ।

कारोतराच्छाफादस्वस्य वृष्णः शतं कुम्भां असिश्चतं सुरायाः ॥७॥

पदार्थ—हे ( नरा ) जिनको पाये हुए सभा सेनापति ! ( युषम् ) तुम दोनों ( पञ्चियाय ) पदों में प्रसिद्ध होनेवाले ( कक्षीवते ) अच्छी सिलावट की सीसे और ( स्तुवते ) स्तुति करते हुए विद्यार्थी के लिए ( पुरन्विम् ) बहुत प्रकार की बुद्धि और अच्छे मार्ग को ( अरवत् ) विन्ताओं तथा ( वृष्णः ) बलवान् ( अश्वस्य ) थोड़े के समान अग्नि सम्बन्धी ( कारोतरात् ) जिससे व्यवहारों को करते हुए शिल्पी लोग तर्क के साथ पार होते हैं उस ( कक्षत् ) धूर के समान जल सींचने के स्थान से ( सुरायाः ) सींचे हुए रस से भरे ( क्षतम् ) ली ( कुम्भान् ) घड़ों को ले ( असिश्चतम् ) सींचा करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो शास्त्रवेत्ता अध्यापक, विद्वान् जिस वास्तुपूर्वक इन्द्रियों की विषयों से रोकने आदि गुणों से युक्त सज्जन विद्यार्थी के लिए शिल्पकार्य अर्थात् कारीगरी सिक्काने की हाथ की चतुराईयुक्त बुद्धि उत्पन्न कराते अर्थात् सिक्काने हैं वह प्रशसायुक्त शिल्पी अर्थात् कारीगर होकर रथ आदि को बना सकता है । शिल्पी-



जन जिस भान भर्मात् उत्तम विमान आदि रथ में बलशर से जन सीध धीर नीचे भ्राम जलाकर भाषों से उसे चलाते हैं उससे वे धोनों से जैसे जैसे विजुली आदि पदार्थों से भी एक देश से दूसरे देश को जा सकते हैं ॥७॥

**हिमेनाभिं प्रंसमवारयेथां पितृवतीमूर्जमस्मा अधश्चम् ।**

**श्रुवीसे अत्रिमभिनावनीतमुज्जिन्यधुः सर्वगणं स्वस्ति ॥८॥**

वार्थ—हे (अविना) मजानुष्ठान करनेवाले पुरुषो ! तुम दोनों (हिमेग) भीतल जल से (अग्निम्) भाग और (अंशम्) रात्रि के साथ दिन को (अवारयेथां) रिवारी भर्मात् बिताओ (अस्मै) इसके लिए (विजुलीम्) प्रशंसित धन्ययुक्त (ऊर्जम्) बलशरी नीति को (अधश्चम्) पुष्ट करो और (श्रुवीसे) दुःख से जिस की आभा जाती रही उस व्यवहार के (अत्रिम) भोगने-हारे (अवनीतम्) धीरे प्राप्त कराये हुए (सर्वगणम्) जिसमें समस्त उत्तम पदार्थों का समूह है उस (स्वस्ति) सुख को (उज्जिन्यधुः) उन्नति देओ ॥८॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिए कि इस संसार के सुख के लिए यज्ञ से शोधे हुए जल से और जनों के रखने से प्रति उष्णता (बुझी) दूर करें। अच्छे बनाये हुए धन्य से बल उत्पन्न करें और यज्ञ के आचरण से तीन प्रकार के दुःख को निवार के सुख को उन्नति दें ॥८॥

**परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाधुधं चक्रयुजिह्वारम् ।**

**क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥९॥**

वार्थ—हे (नासत्या) भ्राम-यवन के समान वर्तमान मभापति और सेनाधिपति ! तुम दोनों (जिह्वारम्) जिस की टेढ़ी लगन और (उच्चाधुधम्) उससे जिसमें ऊँचा अन्तरिक्ष भर्मात् अवकाश उत्त रथ आदि को (अधश्चम्) रखो और अनेक कामों की सिद्धि (चक्रयुः) करो और उसको यथायोग्य व्यवहार में (परा, अनुदेथाम्) लगाओ जो (गोतमस्य) प्रतीक स्मृति करनेवाले के रथ आदि पर (तृष्यते) प्यासे के लिए (पायनाय) पीने को (रायः) नाकरूप जल जैसे (क्षरन्) गिरने है (न) वैसे (सहस्राय) असङ्गता (राये) धन के लिए भर्मात् धन देने के लिए प्रसिद्ध होता है वैसे रथ आदि को बनाओ ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। शिल्पी लोगों को विमानादि यानों में जिसमें बहुत मीठे जल की धार आवे ऐसे कुण्ड को बना भाग से उस विमान आदि यान को चला उसमें सामग्री को घर एक देश से दूसरे देश को जा और असत्यात धन पाके परोपकार का सेवन करना चाहिए ॥९॥

अब सामान्य से विधि का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**जुजुष्वो नासत्योत वत्रि प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।**

**प्रातिरतं जह्रितस्यायुर्देसादिस्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१०॥९॥**

वार्थ—हे (नासत्या) राजधर्म की सभा के पति ! तुम दोनों (च्यवानात्) भोगे हुए-से (द्रापिमिव) कवच के समान (वत्रिम्) अच्छे विभाग करने-वाले को (प्रामुञ्चतम्) भली भाँति सुख से पृथक् करो (उत) और (जुजुष्वः) बुद्धे, विद्यावान्, शास्त्रज्ञ पढ़ानेवाले से (कनीनाम्) यौवनपन से तेजधारिणी ब्रह्मचारिणी कन्याओं की शिक्षा (अकृणुतम्) करो (आत्) इसके अनन्तर नियत समय की प्राप्ति में उन में से एक-एक (इत्) ही का एक-एक (पतिम्) रक्षक पति करो। हे (वत्सा) बच्चों के समान प्राण के देनेहारो ! (जह्रितस्य) त्यागी की (आयुः) आयु को (प्रातिरतम्) अच्छे प्रकार पार लो पहुँचाओ ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। राजपुरुष और उपदेश करनेवालों को देनेवालों का दुःख दूर करना चाहिए। विद्यार्थी म प्रवृत्ति करते हुए कुमार और कुमारियों की रक्षा कर विद्या और अच्छी शिक्षा उनको दिलवाना चाहिए, बालकपन में भर्मात् पच्चीस वर्ष के भीतर पुरुष और सोलह वर्ष के भीतर स्त्री के विवाह का रोक इसके उपरान्त अठ्ठासीस वर्ष पर्यन्त पुरुष और चौबीस वर्ष पर्यन्त स्त्री का स्वयंवर विवाह कराकर सबके आत्मा और शरीर के बल को पूर्ण करना चाहिए ॥१०॥

**तद्गो नरा शंस्य राध्यं चाभिष्टिमजासत्या धरूथम् ।**

**यद्विदांसां निधिमिवापगृहमुदशतादूपधुर्वन्दमाय ॥११॥**

वार्थ—हे (नरा) धर्म की प्राप्ति (नासत्या) और सदा सत्य की पालना करने और (विदांसां) समस्त विद्या जाननेवाले धर्मराज, सभापति विद्वानों ! (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (शंस्यम्) प्रशसनीय (न) और (राध्यम्) सिद्ध करने योग्य (अभिष्टिमम्) जिसमें जाहे हुए प्रशंसित सुख है (धरूथम्) जो स्वीकार करने योग्य (अपगृहम्) जिसमें गुप्तपन अलग ही गया ऐसा जो प्रथम कहा हुआ गुहाभ्रम सम्प्रतिष्ठा कर्म है (तत्) उसको (निधिमिव) धन के कोष के समान (वर्षताम्) सुन्दर रूप से (वन्दमाय) सब और से सत्कार करने योग्य सम्मान और प्रशंसा के लिए (उत्, ऊर्जम्) उच्च अंशों को पहुँचाओ भर्मात् उन्नति देओ ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। हे मनुष्यों ! विद्यानिधि के घरे सुख देनेवाला धन कोई भी तुम मत जानो। न इस कर्म की बिना जाहे हुए सम्मान और सुख मिल सकते हैं और न सत्यासत्य के विचार से निर्णीत ज्ञान के बिना विद्या की बुद्धि होती है यह जानो ॥११॥

**तद्गो नरा सनये दंसं उग्रमाविष्करोमि तन्यतुर्न इष्टिम् ।**

**दृष्यक ह यन्मधाधर्वखो वामद्वंस्व शीर्णां प्रयदीसुवाचं ॥१२॥**

वार्थ—हे (नरा) अच्छी नीतियुक्त सभा सेना के पतिजनों ! (वाम्) तुम दोनों से (दृष्यक) विद्या धर्म का धारण करनेवालों का आदर करनेवाला (आधर्वख) रक्षा करते हुए का संतान में (सनये) सुख के भली भाँति सेवन करने के लिए जैसे (तन्यतु) विजुली (इष्टिम्) वर्षा को (न) वैसे (यत्) जिस (उग्रम्) उत्कृष्ट (वत्) कर्म को (आविष्करोमि) प्रकट करता हूँ जो (यत्) विद्वान् (वाम्) तुम दोनों के लिए और मेरे लिए (अधर्वख्य) शीघ्र गमन करनेवाले पदार्थ के (शीर्णां) शिर के समान उत्तम काम से (यधु) मधुर (ईष्ट) शास्त्र के बोध को (ह, प्रोवाच) कहे (तत्) उसे तुम दोनों ताक में निरन्तर प्रकट करो ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे विद्वानों के बिना किसी को भी सुख नहीं होता है वैसे विद्वानों और विद्या के बिना सुख और बुद्धि बढ़ना और इसके बिना भ्रम आदि पदार्थ नहीं मिट जाते हैं इससे इस कर्म का अनुष्ठान मनुष्यों को सदा करना चाहिए ॥१२॥

**अजोह वीन्ना सत्या करा वां भहे यामन्युरुभुजा पुरन्धिः ।**

**अतं तच्छासुरिव वत्रिमत्या हिरण्यहस्तमभिनावदत्तम् ॥१३॥**

वार्थ—हे (नासत्या) असत्य अज्ञान के विनाश से सत्य का प्रकाश करने (पुरुभुजा) बहुत ज्ञानन्दो के भोगने तथा (अविना) शुभगुण और विद्या से व्याप्त होनेवाले भर्मापको ! जो (पुरन्धि) बहुत विद्या युक्त विद्वान् (वत्रिमत्या) प्रशंसित जिसकी वृद्धि है उस उत्तम स्त्री के (करा) कर्म करते हुए दो पुत्रों का (भहे) अत्यन्त (यामन्) सुख भोगने के लिए (अजोहवीत्) निरन्तर ग्रहण करे और (वाम्) तुम दोनों का जो (भुत्) सुना पड़ा है (तत्) उसको (शासुरिव) जैसे पूर्ण विद्यायुक्त पढ़ानेवाले से शिष्य ग्रहण करे वैसे निरन्तर ग्रहण करे वे तुम दोनों विद्या चाहनेवाले सब जनों के लिए जो ऐसा है कि (हिरण्यहस्तम्) जिसमें हाथ में सुवर्ण आता है उस पढ़े-सीखे बोध को (अवत्तम्) निरन्तर देओ ॥१३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। हे विद्वानों ! जैसे विद्वान् जन विदुषी स्त्री का पाणिग्रहण कर महाभ्रम के व्यवहार को सिद्ध करे वैसे बुद्धिमान विद्याधियों का समग्र कर पूर्ण विद्याप्रचार को करो और जैसे पढ़ानेवाले से पढ़ने वाले विद्या का समग्र कर आनन्दित होते हैं वैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष अपने तथा अग्रे के मन्तानों की उत्तम शिक्षा से विद्या देकर सदा प्रसुखित हों ॥१३॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिए यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

**आस्यो वृकस्य वर्तिकामभीकं युवं नंग नासत्यामुमुकम् ।**

**उतो कवि पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४॥**

वार्थ—(पुरुभुजा) बहुत जनो को सुख का भोग कराने (नासत्या) झूठ से भ्रमण रहन (नरा) और सुखों को पहुँचानेवाले सभा सभापतियों ! (युवम्) तुम दोनों (अभीके) जाहे हुए व्यवहार में (वृकस्य) भेड़िया के (आस्य) मुख से (वर्तिकाम्) चिड़िया के समान सब मनुष्यों को अविद्याजन्य दुःख से (अमुमुकम्) छुड़ाओ (उतो) अग्रे (ह) भी (युवम्) तुम दोनों सब विद्याओं को (विचक्षे) विख्यात करने का (कृपमाणम्) कृपा करनेवाले (कविम्) विद्या के पारंगत पुरुष को (अकृणुतम्) सिद्ध करो ॥१४॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सुखरूप सबके बाह हुए विद्या ग्रहण करने के व्यवहार में सब मनुष्यों को प्रवृत्त करके जिसका दुःख फल है उस अन्यायरूप काम से निवृत्त करके उन सब प्राणियों पर कृपाकर सुख दें ॥१४॥

**अरित्र हि वेरिवाच्छंदि पद्यमाजा खेलस्य परितकम्यायाम् ।**

**सद्यो जङ्घामायसीं विरपलायं धनं हिते ससैवे प्रत्यधत्तम् ॥१५॥**

वार्थ—हे सभा सेनाधिपति ! तुम दोनों से (आजा) सभाम में (परि-तकम्यायाम्) रात्रि में (खेलस्य) शत्रु के खण्ड का (अरित्रम्) स्वाभाविक अरित्र अर्थात् शत्रुजनों की अलग-अलग बनी हुई टोली-टोली की चालाकियाँ (वेरिब) उड़ते हुए पक्षी का जैसे (वर्णम्) पल काटा जाय वैसे (सद्य) शीघ्र (अच्छंदि) छिन्न-भिन्न की जाएँ तथा तुम (हिते) सुख बढ़ानेवाले (धने) सुवर्ण आदि धन के निमित्त (विरपलायं) प्रजाजनों को सुख पहुँचानेवाली नीति के लिए (आयसीम्) लोहे के विकार से बनी हुई (जङ्घाम्) जिससे कि मारते हैं उसकी खाल को (ससैवे) मनुष्यों पर जाने भर्मात् बढ़ाई करने के लिए (हि) ही (प्रत्यधत्तम्) प्रत्यक्ष धारण करो ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। प्रजाजनों की पालना करने में अत्यन्त बिल दिये हुए भद्र राजा आदि जनों को चाहिए कि पक्षेक के पक्षों के समान कुष्टों के अरित्र को धुड़ में छिन्न-भिन्न करें। शास्त्र और अस्त्रों को धारण कर प्रजाजनों की पालना करें। क्योंकि जो प्रजाजनों से कर लिया जाता है उसका बदला देना उन अवाजनों की रक्षा करना ही असम्भवा चाहिए ॥१५॥

शतं मेघान् वृक्षै चक्षदानमृज्जाद्वं तं पितान्धं चकार ।

तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दत्ता मिषजावनर्वन् ॥१६॥

पदार्थ—जो ( वृक्ष ) वृक्षी अर्थात् चोर की स्त्री के लिए ( शतम् ) सैकड़ों ( मेघान् ) ईर्ष्या करनेवाले को देवे वा जो ऐसा उपदेश करे और जो चोरों में सूखे घोड़ों वाला हो ( तम् ) उस ( चक्षदानम् ) स्पष्ट उपदेश करने वा ( मृज्जाद्वम् ) सूधे घोड़ेवाले को ( पितान् ) प्रजाजनों की पालना करनेवाला राजा जैसे ( अन्धम् ) अन्धा दुखी होवे वैसे दुखी ( चकार ) करे । हे ( नासत्या ) सत्य के साथ बर्ताव रखने और ( दत्ता ) रागों का विनाश करनेवाले धर्मराज सम्रापति ( मिषजो ) वैद्यजनों के तुल्य बर्ताव रखनेवालों ! तुम दोनों जो धज्जानी कुमारों से चलनेवाला धर्मिचारी और रोगी है ( तस्मै ) उस ( अन्धम् ) अन्धानों के लिए ( विचक्षे ) अनेकविध देखने को ( अक्षी ) व्यवहार और परमार्थ विचारणीय धर्मों को ( दत्ता, दधत्तम् ) अच्छे प्रकार पुष्ट करो ॥ १६ ॥

भाषार्थ—सभा के सहित राजा हिंसा करनेवाले चोर, कपटी, छली मनुष्यों को कारागार में अन्धों के समान रखकर और अपने उपदेश अर्थात् धार्मिक शिक्षा और व्यवहार की शिक्षा से अन्धता कर धर्म और विद्या में प्रीति रखनेवालों को उनकी प्रकृति के अनुकूल मोक्षार्थ देकर उनको प्रारोग्य करे ॥ १६ ॥

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्ण्येवातिष्ठद्वेता जयन्ती ।

विश्वं देवा अन्यमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेधे ॥१७॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) अच्छे विज्ञान का प्रकाश करनेवाले सभा सेनापति जनों ! ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( दुहिता ) जो दूरदृष्ट में हित करनेवाली कन्या जैसी कान्ति प्राप्त समय की बेला और ( कार्ष्ण्ये ) काठ आदि पदार्थों के समान ( वा ) तुम लोगों की ( जयन्ती ) शत्रुओं का जीतनेवाली सेना ( अन्धता ) बाधे से जुड़े हुए ( रथम् ) रथ को ( दत्ता, दधत्तम् ) स्थित हो अर्थात् रथ पर स्थित होवे वा जिसको ( विश्वे ) समस्त ( देवा ) विद्वान् जन ( हृद्भिः ) अपने चित्तों से ( समु, समन्यन्त ) अनुमान करें उसको ( उ ) तो ( श्रिया ) शुभ लक्षणों वाली लक्ष्मी अर्थात् अच्छे धन से युक्त सेना को तुम लोग ( ज, सचेधे ) अच्छे प्रकार इकट्ठा करो ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । हे मनुष्यों ! समस्त विद्वानों ने प्रशंसा की हुई शस्त्र-प्रस्त्र, वाहन तथा धर्म सामग्री आदि सहित बनवती सेना को सिद्ध कर जैसे सूर्य अपना प्रकाश करे वैसे तुम लोग धर्म और न्याय का प्रकाश कराओ ॥ १७ ॥

यद्यप्येत दिवोदासाय वर्त्तिर्भरद्वाजायाभिना ह्यन्ता ।

रेवदुवाह सचनो रथी वां वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ॥१८॥

पदार्थ—हे ( ह्यन्ता ) चलने ( युक्ता ) योग्यात्म्य करने और ( अविनाश ) शत्रु सेना में व्याप्त होनेवाले सभा सेना के पतिशो ! तुम दोनों ( विश्वेवासाय ) न्याय और विद्या प्रकाश के देनेवाले ( भरद्वाजाय ) जिसके पुष्ट होते हुए पुष्टिमान् वेगवाले घोड़ा है उसके लिए ( यत् ) जिस ( वर्त्ति ) वर्त्तमान ( रेवत् ) अत्यन्त धनयुक्त गृह आदि वस्तु को ( अविनाशम् ) प्राप्त होओ ( च ) और जो ( वृषम् ) तुम दोनों का ( वृषभ ) विजय की वर्षा करानेवाला ( शिशुमार ) जिससे धर्म को उत्पन्न करने के चलानेवाले का विनाश करता है जो कि ( सचन ) समस्त अपने सेनाओं में युक्त ( रथ ) मनाहर विमानादि रथ तुम लोगों को बाढ़े हुए स्थान में ( उवाह ) पहुँचाता है उसकी ( च ) तथा उक्त गृह आदि की रक्षा करो ॥ १८ ॥

भाषार्थ—राजा आदि राजपुरुषों को अपनी समस्त सामग्री न्याय से राज्य की पालना करने ही के लिए बनानी चाहिए ॥ १८ ॥

रयि सुक्षत्र स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।

आ जहावीं समनसोप वाजैस्त्रिरहो भागं दधतीमयातम् ॥१९॥

पदार्थ—हे ( समनसा ) समान विज्ञानवाले ( वहन्ता ) उत्तम सुख को प्राप्त हुए ( नासत्या ) सत्यधर्म-पालक सभा सेना के अधिपतियों ! तुम दोनों सनातन न्याय के सेवन से ( रयिम् ) धनसमृद्ध ( सुक्षत्रम् ) अच्छे राज्य ( स्वपत्यम् ) अच्छे सन्तान ( आयुः ) बिरकाल जीवन ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम को और ( वाजैः ) जान वा वेगयुक्त भूतयादिकों के साथ वर्त्तमान ( जहावीम् ) छोड़ने योग्य शत्रुओं की सेना की विरोधिताई इस सेना को तथा ( अहम् ) बिन के ( नागम् ) सेवने योग्य विभाग अर्थात् समय को और ( चि ) तीन बार ( वृषतीम् ) धारण करती हुई सेना के ( जय, दत्ता, दधत्तम् ) समीप अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

भाषार्थ—कोई विद्या और सत्यन्याय के सेवन के बिना धन आदि पदार्थों को प्राप्त हो और इनकी रक्षा कर सुख नहीं कर सकता है इससे धर्म के सेवन से ही राज्य आदि प्राप्त हो सकता है ॥ १९ ॥

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नङ्गमृहयू रजोभिः ।

विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वतां अजरयु अयातम् ॥२०॥११॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) सत्य धर्म के पालनेवाले सभासेनाधीशों ! तुम दोनों जैसे ( अजरयु ) जीर्णता आदि दोषों से रहित सूर्य और चन्द्रमा ( सुगेभिः ) जिनमें कि सुख से पमन हो उन मार्ग और ( रजोभिः ) जोकों के साथ ( नङ्गम् ) राजि

और ( पर्वताम् ) श्रेष्ठ वा पहाड़ों की अवायोध्य व्यवहारों में लाते हैं ( विभिन्दुना ) विविध प्रकार से क्षिप्त-भिन्न करनेवाले ( रथेन ) रथ से सेना को अवायोध्य कार्य में ( अजरयु ) पहुँचाओ ( विश्वतः ) सब ओर से ( सीम् ) सर्वांग को ( परिविष्टम् ) व्याप्त होओ ( जाहुषम् ) प्राप्त होने योग्य नगरादि के राज्य को पाकर पर्वत के तुल्य शत्रुओं को ( चि, अयातम् ) विभेद कर प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे राजा के सभासम्पन्न धर्म के अनुकूल मार्गों से राज्य पाकर किले में वा पर्वत आदि स्थानों में उठरे हुए शत्रुओं को बग में करके अपने प्रभाव का प्रकाशित करते हैं वैसे सूर्य और चन्द्रमा पृथिवी के पदार्थों को प्रकाशित करते हैं । जैसे इन सूर्य और चन्द्रमा के निकट न होने से अन्धकार उत्पन्न होता है वैसे राजपुरुषों के अभाव में अन्धकार अन्धकार प्रवृत्त हो जाता है ॥ २० ॥

एकस्या वस्तोराधत्तं रणाय वशमक्षिना मनये सहसा ।

निरहत्तं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१॥

पदार्थ—हे ( वृषणी ) शस्त्र-प्रस्त्र की वर्षा करनेवाले ( इन्द्रवन्ता ) बहुत ऐश्वर्ययुक्त ( वृषिना ) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य सभा और सेना के धर्माधीशों ! ( दुच्छुना ) जिससे सुख निकल गया उन शत्रु सेनाओं को जैसे अन्धकार और मेघों को सूर्य जीतता है वैसे ( एकस्याः ) एक सेना के ( रणाय ) संग्राम के लिए जो पठाना है उससे ( वस्तोः ) एक दिन के बीच ( आवत्तम् ) अपनी सेना के विजय को चाहो और उन सेनाओं को अपने ( वशम् ) वश में लाकर ( सहसा, सनवे ) हजारों घनादि पदार्थों को भोगने के लिए ( पृथुश्रवसः ) जिनके बहुत धन आदि पदार्थ हैं और ( अवरातीः ) जो किसी को सुख नहीं देती उन शत्रु सेनाओं को ( निरहत्तम् ) निरन्तर मारो ॥ २१ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्य और चन्द्रमा के उदय से अन्धकार की निवृत्ति होकर सब प्राणी सुखी होते हैं वैसे धर्मरूपी व्यवहार से शत्रुओं और धर्म की निवृत्ति होने से धर्मात्मा जन अच्छे राज्य में सुखी होते हैं ॥ २१ ॥

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुवा चक्रयुः पारवे वाः ।

शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तूर्यं पिप्ययुर्गाम् ॥२२॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) सत्य विज्ञानयुक्त सभासेनाधीशों ! तुम दोनों ( शचीभिः ) अपनी बुद्धियों से ( शरस्य ) मारनेवाले की ओर से धाय ( नीचात् ) नीच कामों का सेवन करते हुए ( अवतात् ) हिंसा करनेवाले से ( चित् ) और ( आर्चत्कस्य ) दूसरों की प्रशंसा करने वा सत्कार करते हुए शिष्टजन की ओर से धाये ( उवा ) उत्तम कर्म को सेवते हुए रक्षा करनेवाले से प्रजाजनों को ( पारवे ) पालने के लिए बल को ( वा, चक्रयु ) अच्छे प्रकार करो ( चित् ) और ( सयवे ) सोते हुए और ( जसुरये ) हिसक जनों के लिए ( स्तूर्यम् ) जो नोका आदि यानों में अच्छा है उस ( वाः ) जल और ( गाम् ) पृथिवी को ( पिप्ययु ) बढ़ाओ ॥ २२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! तुम शत्रुओं के नाशक और मित्रजनों की प्रशंसा करनेवाले जन का सत्कार करो और उसके लिए पृथिवी देओ । जैसे पवन और सूर्य भूमि और वृक्षों से जल को खेंच और वर्षाकर सबको बढ़ाते हैं वैसे ही उत्तम कामों से सत्कार का बढ़ाओ ॥ २२ ॥

अथ पढ़ाने और उपदेश करनेवाले क्या करें यह विषय अपने मन में कहा है—

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजुयते नासत्या शचीभिः ।

पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्यं ददशुर्निर्वकाय ॥२३॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) असत्य के छोड़ने से सत्य के ग्रहण करने, पढ़ने और उपदेश करनेवालों ! तुम दोनों ( शचीभिः ) अच्छी शिक्षा देनेवाली शशिधियों से ( अवस्यते ) अपनी रक्षा और ( स्तुवते ) धर्म को चाहते हुए ( ऋजुयते ) सीधे स्वभाववाले के समान वर्तनेवाले ( कृष्णियाय ) आकर्षण के योग्य अर्थात् बुद्धि जिसको चाहती उस ( विष्णुकाय ) संसार पर दया करनेवाले ( दर्शनाय ) धर्म-धर्मों को देखते हुए मनुष्य के लिए ( पशुम्, न ) जैसे पशु को प्रत्यक्ष दिखावे वैसे और जैसे ( नष्टमिव ) लोभे हुए वस्तु को दूध के बतावे वैसे ( विष्णाप्यम् ) विद्या में रमे हुए विद्वानों को जो बोध प्राप्त होता है उसको ( ववयुः ) देओ ॥ २३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालकार हैं । शस्त्र के वस्तु उपदेश करने और विद्या पढ़ानेवाले विद्वान् जन जैसे प्रत्यक्ष गी आदि पशु को वा छिपे हुए वस्तु को दिखाकर प्रत्यक्ष कराते हैं वैसे धर्म, धन आदि गुणों से युक्त बुद्धिमान् भीता वा अध्येताओं को पृथिवी से लेके ईश्वर पर्यन्त पदार्थों का विज्ञान देनेवाली शशिधियों को प्रत्यक्ष कराते और इस विषय में कपट और धालस्य आदि निम्नित कर्म कभी न करें ॥ २३ ॥

दश राजीरक्षिबेना नव धनवन्दनं अथितमप्यवन्तः ।

विप्रतं रेममुदनि प्रहृक्मुक्षिन्यधुः सोममिव सुवेण ॥२४॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) असत्य को छोड़कर सत्य का ग्रहण करने पढ़ाने और उपदेश करनेवालों ! तुम दोनों जैसे ( शचीभिः ) अच्छी शिक्षा देनेवाली शशिधियों से ( कृष्णियाय ) धर्मज्ञान करनेवाले युद्ध के साथ वर्त्तमान शिष्यजन ( ऋजुयन्तम् )

शकादशस्य बाजिनो जनाय सतं कुर्यात् असिञ्जत मधुनाम् ॥६॥



**पदार्थ**—हे (पश्चिम) प्राप्त होने योग्यो मे प्रसिद्ध हुए (कलीकता) शिक्षा करनेवाले विद्वान् के साथ वर्तमान (नासत्या) सत्य व्यवहार करनेवाले (नर) मनुष्यों मे उत्तम सबको अपने-अपने ह्य मे लगानेवाले सभासेनाधीशो । तुम दोनों जो (परिचय) सब प्रकार से जिसमे जानते है उस मार्ग को (वाजिन) वेगवान् (अवस्थ) घोड़े की (शफान्) टाप के समान बिजुली के वेग से (अवस्थ) अच्छे गुणो और उत्तम विद्याओ मे प्रसिद्ध हुए विद्वान् के लिए (मधुमा) जलो के (शतम्) सैकड़ो (कुम्भान्) बडो को (अतिवृत्तम्) सुख से सोचो अर्थात् भग (तत्) उस (बान्) तुम लोगो के (अवस्थ) प्रशंसा करने योग्य काम को हम जानते है ॥६॥

**भाषार्थ**—राजपुरुषों को चाहिए कि मनुष्य आदि प्राणियों के सुख के लिए मार्ग में अनेक बडो के जल से नित्य सींचाव कराया करें जिससे बोड़े, बेल आदि के पेरो की खूद न मे धूल न उड़े । और जिसमे मार्ग मे अपनी मैला के जन सुख से आर्ध-जार्ध इस प्रकार ऐसे प्रशंसित कामो को करके प्रजाजनों को निरन्तर आनन्द दें ॥६॥

फिर अध्यापक और उपदेश करनेवालों के गुण अगले मन्त्र में कहते हैं—

**युवं नरा स्तुवते कृष्णिष्याय विष्णुष्यै ददधुर्विज्वकाय ।  
घोषायै चित्पितृषुर्दुरोणे पतिर्ज्यैन्त्या अभिनावदत्तम् ॥७॥**

**पदार्थ**—हे (नरा) सब कामो मे प्रधान और (अभिना) सब विद्याओं मे व्याप्त सभासेनाधीशो । (युवम्) तुम दोनों (कृष्णिष्याय) खेती के काम की योग्यता रखने और (स्तुवते) सत्य बोलनेवाले (पितृषु) जिसके समीप विद्या विज्ञान देनेवाले स्थित होत (विद्वकाय) और जो सभा पर व्या करता है उस राजा के लिए (दुरोणे) धर म (विष्णुष्यै) जिस पुरुष से खेती के भरे हुए कामो को प्राप्त होता उस खेती रखनेवाले पुरुष को (दधु) देवो (विज्व) और (ज्यैन्त्यै) बुद्धिपन को प्राप्त करनेवाली (घोषायै) जिसमे प्रशंसित शब्द वा गी आदि के रहन के विशेष स्थान हैं उस खेती के लिए (पतिषु) स्वामी अर्थात् उस की रक्षा करनेवाले को (अवत्तम्) देवो ॥ ७ ॥

**भाषार्थ**—राजा आदि न्यायाधीश खेती आदि कामो के करनेवाले पुरुषो से सब उपकार पालना करनेवाले पुरुष और मन्त्र न्याय को प्रजाजनों को देकर उन्हें पुरुषार्थ मे प्रवृत्त करें । इस कार्य को गिद्ध को प्राप्त हुए प्रजाजनों से धर्म के अनुकूल अपने भाग को यथायोग्य ग्रहण करें ॥ ७ ॥

फिर वहाँ राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**युवं श्यावाय रुक्षर्त्तामदत्तं महः क्षाणस्याश्विना कण्वाय ।  
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वा यक्षार्पणाय श्रवो अभ्यधत्तम् ॥८॥**

**पदार्थ**—हे (युवणा) बलवान् (अश्विना) बहुत ज्ञान-विज्ञान की बातें सुने जाने हुए सभा सेनाधीशो । (युवम्) तुम दोनों (महः) बड़े (क्षोण्णाय) पढ़ानेवाले के तीर से (श्यावाय) शानी (कण्वाय) बुद्धिमान् के लिए (वृक्षतीम्) प्रकाश करनेवाली विद्या को (अवत्तम्) देवो तथा (यम्) जो (बान्) तुम दोनों का (प्रवाच्यम्) अभी भीति कहने योग्य शास्त्र (कृतम्) करने योग्य काम और (अव) सुतना है (तत्) उस को तथा (नाक्षत्राय) उत्तम उत्तम व्यवहारो मे मनुष्य आदि का पदुचानहार जनों मे स्थित हात हुए के लड़के को (अभ्यधत्तम्) अपने पर धारण करो ॥ ८ ॥

**भाषार्थ**—सभाध्यक्ष पुरुष से जिस प्रकार का उपदेश अच्छे बुद्धिमानो के प्रति किया जाता हो वैसा ही सब लोको के स्वामी के लिए उपदेश करें हम ही सब मनुष्यों के प्रति वत्तिव करना चाहिए ॥ ८ ॥

अब वहाँ तारविद्या के मूल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**पुरु वपीस्यश्विना दधाना नि पेश्वे उहधुराशुमर्धम् ।  
महस्रमा वाजिनमप्रतीतमट्टिनं श्रवस्यं तन्त्रम् ॥९॥**

**पदार्थ**—हे (अश्विना) शक्ति जनो । (पुरु) बहुत (वर्षाति) रूपो को (दधाना) धारण किय हुए तुम दोनों (पेश्वे) शीघ्र जाने के लिए (अवस्थम्) पृथिवी आदि पदार्थो मे हुए (अप्रतीतम्) गुप्त (वाजिनम्) वेगवान् (अहिहन्तम्) सब के मारनेवाले (महस्रमा) हजारो कर्मो को सेवन करने (आशुम्) शीघ्र पहुँचानेवाले (तन्त्रम्) और समुद्र आदि से पार उतारनेवाले (अवस्थम्) बिजुली रूप अग्नि को (न्यूहयु) चलाओ ॥ ९ ॥

**भाषार्थ**—तेसे शीघ्र पहुँचानेवाले बिजुली आदि अग्नि के बिना एक देश से दूसरे देश को सुख से जाने-आने तथा शीघ्र समाचार लेने की कोई समर्थ नहीं हो सकता है ॥ ९ ॥

अब बिजुली आदि पदार्थरूप ससार का बनाने वाला परमेश्वर ही उपासनीय है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**एतानि वा भवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।  
यद्वा पञ्चासौ अभिना हवन्ते यातमिवा च विदुषे च वाजम् ॥१०॥**

**पदार्थ**—हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले (अश्विना) सभा सेनाधीशो । (बान्) तुम दोनों के (एतानि) ये (अवस्था) अन्न आदि पदार्थो मे उत्तम प्रशंसा योग्य कर्म हैं इस कारण (बान्) तुम दोनों (वृक्षसः) विशेष ज्ञान देनेवाले मित्र जन (यत्) जिस (रोदस्योः) पृथिवी और सूर्य के (सवनम्) धाधार-रूप (ब्रह्माङ्गूषम्) विद्याओ के ज्ञान देनेवाले (ब्रह्म) सर्वज्ञ परमेश्वर को (हवन्ते) ध्यान मार्ग से ग्रहण करते (च) और जिस का तुम लोग (यातम्) प्राप्त होते हो उस के (वाजम्) विज्ञान को (इव) इच्छा और (च) अच्छे यत्न तथा योगाभ्यास से (विदुषे) विद्वान् के लिए बली भाँति पदुवाओ ॥ १० ॥

**भाषार्थ**—सब मनुष्यों को चाहिए कि सब का धाधार, सब को उपासना के योग्य, सब का रक्नेहारा ब्रह्म जिन उपायो से जाना जाता है उन से ज्ञान औरों के लिए भी ऐसे ही बनाकर पूर्ण ध्यान को प्राप्त हों ॥ १० ॥

फिर बिजुली की विद्या का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

**सूनोर्मानेनाभिना गृणाना बाजं विप्राय धुरणा रदन्ता ।**

**अगस्त्ये ब्रह्मणा वायुधाना स विप्रलौ नासत्यारिणीतम् ॥११॥**

**पदार्थ**—हे (रदन्ता) अच्छे लिखनेवाले । (सूनोः) अपने लड़के के समान (मानेन) सरकार से (विप्राय) अच्छी सुख रखनेवाले बुद्धिमान् जन के लिए (बाजम्) सच्चे बोल को (गृणाना) उपदेश और (धुरणा) सुख धारण करते हुए (नासत्या) सत्य से भरे पूरे (वायुधाना) बुद्धि की प्राप्त और (ब्रह्मणा) वेद से (अगस्त्ये) जानने योग्य व्यवहारों मे उत्तम काम के निमित्त (विप्रलौ) प्रजाजनों के पालनेवाली विद्या को (अश्विना) प्राप्त होते हुए सभासेनाधीशो । तुम दोनों मित्रपने से प्रजा के साथ (समरिणीतम्) मिलो ॥ ११ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र मे सुप्तापमालङ्कार है । जैसे माता-पिता सन्तानों और सन्तान माता पिताओं, पढ़ानेवाले पढ़नेवालो और पढ़नेवाले पढ़ानेवालों, पति स्त्रियो और स्त्री पतियो को तथा मित्र मित्रो को परस्पर प्रसन्न करते है वैसे ही राजा प्रजाजनों और प्रजा राजजनों को निरन्तर प्रसन्न करें ॥ ११ ॥

**कुह यान्तां सुष्टिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुता ।**

**हिरण्यस्येव कलशं निखातमुद्रुपथुर्दशमे अभिनाहन ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे (यान्ता) गमन करने (नपाता) न गिरने (वृषणा) अष्ट कामनाओ की वर्षा करान और (शयुता) सात हुए प्राणियों की रक्षा करनेवाले (अश्विना) सभा सेनाधीशो । तुम दोनों (ब्रह्म) दशव (अहन्) दिन (हिरण्यस्येव) सुवर्ण के (निखातम्) बीच मे पाल (कलशम्) बडो का समान (दिवः) विज्ञानयुक्त (काव्यस्य) पवित्रार्थ की (मुद्रुतिम्) अच्छी बड़ाई का (कुह) कहाँ (उद्रुपथु) उत्कप स बोन हो ॥ १२ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे घनाढ्यजन सुवर्ण आदि धातुओ के वासनो मे दुध, घी दही, आदि पदार्थो का धर और उग का पका कर खात हुए प्रशंसा पाते है वैसे दो शिल्पजन हम विद्या और न्यायमार्गो मे प्रजाजनों का प्रवेश कराकर धर्म और न्याय के उपदेशो से उन का पक्क कर राज्य और धन के सुख को भोगते हुए प्रशंसित कहा हों ? इस का यह उत्तर है कि धार्मिक विद्वान् जनों में हों ॥ १२ ॥

फिर जवान अवस्था ही में विवाह करना अवश्य है यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

**युव च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवान चक्रधुः शचीभिः ।**

**युवो रथं दुहिता येस्य सह श्रिया नासत्याधुरीत ॥१३॥**

**पदार्थ**—हे (नासत्या) मन्त्र वर्त्तिव वर्त्तनवाला (अश्विना) शरीर और आत्मा के बल मे युक्त सभासेनाधीशो । (युवम्) तुम दोनों (शचीभिः) अच्छी बुद्धियो वा कर्मो के साथ वर्त्तमान अपने सन्तानो का अनी-भाँति सेवा कर जवान (चक्रधु) करो (पुन) फिर (युवो) तुम दोनों की युवती अर्थात् यौवन अवस्था का प्राप्त (येस्य) मूय को की हुई प्राण काल की सेवा के समान (दुहिता) कन्या (श्रिया) वन, शीघ्र, विद्या वा सेवा के (सह) साथ वर्त्तमान (च्यवानम्) गमन और (जरन्तम्) प्रशंसा करनेवाले (युवानम्) जवानी से परिपूरा (रथम्) रमण करने योग्य मनाहर पति की (अधुरीत) भरे और पुत्र भी ऐसा जवान होता हुआ युवती स्त्री को घर ॥ १३ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र मे सुप्तापमालङ्कार है । माता-पिता आदि को अतीव योग्य है कि जब अपने सन्तान पूर्ण अच्छी सिखावट, विद्या, शरीर और आत्मा के बल, रूप, लावण्य, स्वभाव, आयोग्यपन धर्म और ईश्वर को जानते आदि उत्तम गुणो के साथ वर्त्तिव रखने को समर्थ हो तब अपनी इच्छा और परीक्षा के साथ प्राप ही स्वयंवर विधि से दोनों मुन्दर, समान गुण, कर्म, स्वभाव युक्त पूरे जवान बली लड़की-लड़के विवाह कर ऋतु समय मे साथ का संयोग करनेवाले होकर धर्म के साथ अपना वर्त्तिव वर्त्तकर प्रजा अर्थात् अच्छे सन्तानो को उत्पन्न करें यह उपदेश देना चाहिए बिना इसके कभी कुल की उन्नति होने के योग्य नहीं है इससे सज्जन पुरुषों को ऐसा ही सदा करना चाहिए ॥ १३ ॥

**युवं तुग्राय पुष्येभिरेवैः पुनर्मन्याभंभवतं युवाना ।**

**युव मुज्युमर्षो मिः समूद्रादिभिर्हृष्युर्क्रेतिरथैः ॥१४॥**

पदार्थ—हे ( पुनर्मन्वी ) बार-बार जाननेवाले ( युवाना ) युवावस्था को प्राप्त विद्या पढ़े हुए स्त्री-पुरुषों । ( युवम् ) तुम दोनों ( युवाय ) बल के लिए ( पूर्वभिः ) अगले सज्जनों से किये हुए ( एवम् ) विज्ञान आदि उत्तम व्यवहारों से सुखी ( अग्रवत् ) हीमो ( युवम् ) तुम दोनों ( विभिः ) आकाश में उड़नेवाले पक्षियों के समान ( अक्षभिः ) जिन से हाल में लगे उन जोड़े हुए सरल बाल से चलाने और ( अक्षैः ) शीघ्र जानेवाले बिजुली आदि पदार्थों से बने हुए विमानादि यन्त्रों से ( अक्षैः ) अग्राध जल से भरे हुए ( समुद्रात् ) समुद्र से पार ( मज्जम् ) शरीर और आत्मा की पालना करनेवाले पदार्थों को ( निरुह्य ) निर्वाहो अर्थात् निरन्तर पहुँचाओ ॥ १४ ॥

आचार्य—स्त्री-पुरुष अगले महारथा, अक्षि-नक्षत्रियों ने किये जो काम हैं उन का आचरण कर धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से शीघ्रपूर्व विद्याओं को पाकर किया की कुशलता से विमान आदि नावों को बनाकर सुगोल के सब ओर बिहार कर निरन्तर आनन्दयुक्त हों ॥ १४ ॥

अजोह्वीदधिना तौत्रयो वा प्रोक्तः समुद्रमध्यविजैरान्वान् ।

निरुह्यः कुबुजा रथेन मनोजवता वृक्षणा स्वस्ति ॥१५॥१५॥

पदार्थ—हे ( वृक्षणा ) उत्तम बलवाले ( अश्विना ) विद्या और उत्तम बीजों से व्याप्त स्त्री-पुरुषों । तुम दोनों जो ( वाम् ) सुहृदा ( अक्षैः ) बल से सिद्ध हुआ ( प्रोक्तः ) उत्तमता से प्राप्त ( अक्षभिः ) जिन को व्याप्य वा कष्ट नहीं है ( अग्रवत् ) जो निरन्तर मग्न करनेवाला सेना का समुदाय है वह ( समुद्रम् ) समुद्र का ( अजोह्वीत् ) बार-बार तिरस्कार करे अर्थात् उससे उत्तीर्ण हो उसकी अन्धीरता न गिने ( तम् ) उस उत्तम सेना समुदाय को ( कुबुजा ) सुन्दरता से जुड़े ( मनोजवता ) मन के समान वेग से जाते हुए ( रथेन ) रमणीय विमान आदि यानसमुदाय से ( स्वस्ति ) सुखपूर्वक ( निरुह्यः ) निर्वाहो अर्थात् एक देश से दूसरे देश को पहुँचाओ ॥ १५ ॥

आचार्य—जब ब्रह्मचर्य किये पुरुष शत्रुओं के विजय के लिए समुद्र के पार जाता चाहे तब स्त्री और सेना के साथ ही वेगवान् यानों से जावे-भावे ॥ १५ ॥

किर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अजोह्वीदधिना वत्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चते वृक्षस्य ।

वि जयुषा ययधुः मान्वद्वैजातं विष्वाचीं अहतं विषेण ॥१६॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) शीघ्र जानेहारे समासेनाधीशो । ( वत्तिका ) संग्राम में बलमान सेना ( यत्सीम् ) जिस समय ( वाम् ) तुम दोनों को ( अजोह्वीत् ) निरन्तर बुलावे तब उस का ( वृक्षस्य ) भेड़िया क ( वाम् ) मुख में जैसे वैसे शत्रुमण्डल से ( अमुञ्चतम् ) छुड़ाओ अर्थात् उसकी जीतो और अपनी सेना को बचाओ तुम दोनों ( जयुषा ) जय देनेवाले अपने रथ से ( अहम् ) पर्वत के ( साधु ) शिखर को ( वि, ययधुः ) विविध प्रकार जाओ और ( विष्वाचम् ) विविध गतिवाले शत्रुमण्डल के ( अहतम् ) उत्पन्न हुए बल को ( विषेण ) उस का विपर्यय करनेवाले विपरूप अपने बल से ( अहतम् ) विनाशो, नष्ट करो ॥ १६ ॥

आचार्य—राजपुरुष जैसे बलवान्, दयालु शूरवीर बघेल के मुख से छेरी को छुटाता है वैसे डाकुओं के भय से प्रजाजनों को अलग रखें । जब शत्रुजन पर्वतों में बलमान भार नहीं जा सकते हो तब उन के अन्न-पान आदि की विदूषित कर उन को बश में लावें ॥ १६ ॥

शतं मेघान् वृक्षे मासहानं तमः प्रणीतमश्वेन पित्रा ।

आप्ती ऋजाश्चै अश्विनावधत्तं ज्योतिर्मध्यं चक्रपुर्विचक्षे ॥१७॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सभा सेनाधीशो । तुम दोनों जिस ( अश्वेन ) अग्रगण्य ( पित्रा ) प्रजा पालनहारे न्यायधीश न ( तमः ) दुःखरूप अन्धकार ( प्रणीतम् ) भली-भाँति पहुँचाया उस ( वृक्षे ) भेड़िनी के लिए ( अहतम् ) सैकड़ों ( मेघान् ) मेढों को ( मासहानम् ) देने हुए के समान प्रजाजनों को पीड़ा देते हुए राज्याधिकारी को छुड़ाओ, अलग करो ( अश्विनाश्चै ) अच्छे सीधे हुए घोड़े आदि पदार्थों से युक्त मेघा में ( अश्वी ) अश्वों का ( आ, अश्वत्तम् ) आधान करो अर्थात् दृष्टि देओ वहाँ के बने-बिगड़े व्यवहार को दिवांग और ( अश्वाय ) अश्वों के समान अज्ञानी के लिए ( विचक्षे ) विज्ञानपूर्वक देखने के लिए ( ज्योतिः ) विद्याप्रकाश को ( चक्रम् ) प्रकाशित करो ॥ १७ ॥

आचार्य—हे समासेना आदि के पुरुषों । तुम लोग प्रजाजनों में अश्वाय से भेड़िनी अपने प्रयोजन के लिए भेड़ बकरो में जैसे प्रवृत्त होती है वैसे अश्व रखनेवाले अपने भूत्यों को अच्छे ढण्ड देकर अश्व धर्मात्मा भूत्यों में प्रजाजनों में सूर्य के समान रक्षा आदि व्यवहारों को निरन्तर प्रकाशित करो जैसे आलवाला कुएँ से अश्वों को बचाकर सुख देता है वैसे अश्वार करनेवाले भूत्यों से पीड़ा को प्राप्त हुए प्रजाजनों को अलग रखो ॥ १७ ॥

किर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सुनमन्धाय मरमह्यस्ता वृकीरधिना वृषसा नरेति ।

जारः कनीनहव वक्षदानं ऋजाभः शतमेकं च मेघान् ॥१८॥

पदार्थ—हे ( वृषणा ) सुख बलि और ( नरा ) धर्म-धर्म का विवेक करनेहारे ( अश्विना ) सभा-सेनाधीशो । ( सा ) वह ( वृकीः ) बोर की स्त्री ( शतम् ) सौ ( च ) और ( एकम् ) एक ( मेघान् ) भेड़-मेढों को ( अमुञ्चतम् ) हाँक कर जैसे बुलावे ( इति ) इस प्रकार वा ( अश्विनाश्चै ) सीधी बाल चलने-

हारे बोडोवाला ( वक्षदानम् ) जिससे कि विद्या बचन दिया जाता है उस ( जारः ) बुढ़े वा जारकर्य करनेहारे चलाक ( कनीनहव ) प्रकाशमान मनुष्य के समान तुम ( अश्वाय ) अश्वों के लिए ( अरम् ) पोषण अर्थात् उसकी पालना और ( सुनम् ) सुख बारिश करो ॥ १८ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपकालकार है । राजपुरुष अश्विना से अश्व हो रहे जनों को अश्वायकारियों से उत्तम सती स्त्रियों को लपट वेषवाबाजों से जैसे भेड़ियों से भेड़ बकरो को बचाव वैसे निरन्तर बच कर पाल ॥ १८ ॥

मही वामुतिरधिना मयोभूस्तं सप्तं धिष्यथा सं स्थीथः ।

अथा युवामिदं वृक्षत् पुरंश्चिरागच्छतं सीं वृषणावर्धयिषिः ॥१९॥

पदार्थ—हे ( वृषणा ) सुख बलिवाले ( धिष्यथा ) बुद्धिमान् ( अश्विना ) सभा और सेना में अधिकार पाये हुए जनों । ( वाम् ) तुम दोनों की जो ( मही ) मही ( उत्त ) और ( मयोभू ) सुख को उत्पन्न करनेवाली ( अतिः ) रक्षा आदि वृक्ष नीति है उससे ( वाम् ) तुम दोनों के अश्वों को ( युवाम् ) तुम ( सं, स्थीथः ) भली भाँति बुर करो ( अथ ) इसके पीछे जो ( पुरंश्चिरः ) अति बुद्धिमान् जवान धीबल से पूर्ण स्त्री को ( अमुञ्चतम् ) बुलावे ( इत् ) उसीके समान ( अश्विना ) रक्षा आदि के साथ ( सीम् ) ही ( आ, अग्रवत्तम् ) आओ ॥ १९ ॥

आचार्य—राजपुरुषों को चाहिए कि अश्व से अश्वाय को अलग कर धर्म में प्रवृत्त, धरण भाये हुए जनों को अच्छे प्रकार पालके सब ओर से कृतकृत्य हों ॥ १९ ॥

अथ स्त्री-पुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अथेक्षुं दत्ता स्तय्यै विषक्रामविन्वतं शय्ये अश्विना गाम् ।

सुवं शचीभिर्विमदाय जायां न्युहधुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२०॥

पदार्थ—हे ( वत्ता ) तुम दूर करनेहारे ( अश्विना ) भूगर्भ विद्या को जानते हुए स्त्री पुरुषों । ( युवम् ) तुम दोनों ( शचीभिः ) कर्मों के साथ ( विषक्रामम् ) विविध प्रकार के पदार्थों से युक्त ( स्तय्यम् ) सुखों से ढाँपनेवाली नाव वा ( अवेक्षुम् ) नहीं बुझानेहारी ( गाम् ) गी को ( अविन्वतम् ) जलों से सीधो ( विषक्रामम् ) विशेष मदयुक्त अर्थात् पूर्ण युवावस्थावाले ( शय्ये ) नीते हुए पुरुष के लिए ( पुरुमित्रस्य ) बहुत मित्रवाले की ( योषाम् ) युवती कन्या को ( जायाम् ) पत्नीपद को ( न्युहधुः ) निरन्तर प्राप्त कराओ ॥ २० ॥

आचार्य—इस मन्त्र में लुप्तोपमालकार है । हे राजपुरुषों । तुम जैसे सबके मित्र की सुलक्षणा, मन लगती ब्रह्मचारिणी, पण्डिता, अच्छे शीन-स्वभाव की, निरन्तर सुख देनेवाली धर्मशील कुमारी को भाव्या करने के लिए स्वीकार कर उसकी रक्षा करते हो वैसे ही याम दास्य, दण्ड, भेद अर्थात् अन्ति किसी प्रकार का दबाव, दण्ड देना और एक से दूसरे को तोड़-फोड़ उसकी बेमन करना आदि राज कामों से शूर्य के राज्य को पाकर धर्म से सदैव उसकी रक्षा करो ॥ २० ॥

किर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यवं वृक्षेमाश्विना वपन्तेषु दृढन्ता मनुषाय दत्ता ।

अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोह ज्योतिश्चक्रधुरायीय ॥२१॥

पदार्थ—हे ( वत्ता ) तुम दूर करनेहारे ( अश्विना ) सुख में रहे हुए समासेनाधीशो । तुम दोनों ( मनुषाय ) विचारवान् मनुष्य के लिए ( वृक्षे ) जिन-जिन करनेवाले हल आदि वस्त्र-अस्त्र से ( वपन्ते ) यव आदि अन्न के समान ( वपन्ता ) बोते और ( इक्षुम् ) अन्न को ( दृढन्ता ) पूर्ण करते हुए तथा ( अग्रवत्तम् ) ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्तमान धार्मिक मनुष्य के लिए ( बकुरेण ) प्रकाशमान सूर्य ने किया ( ज्योतिः ) प्रकाश जैसे अन्धकार को वैसे ( दस्युम् ) दाकू दुष्ट प्राणी को ( अभि, वपन्ता ) धमि से जलाके हुए ( उत्त ) अश्वत्त बके राज्य को ( चक्रम् ) करो ॥ २१ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में लुप्तोपमालकार है । राजपुरुषों को चाहिए कि प्रजाजनों में जो कण्टक, लम्पट, चोर, भुटा और खरे बोलनेवाले दुष्ट मनुष्य हैं उनको रोक लाती आदि कामों से युक्त वेश्य प्रजाजनों की रक्षा और त्वंती आदि कामों की उन्नति कर अश्वत्त विस्तीर्ण राज्य का सवन करें ॥ २१ ॥

आथर्वणायांश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।

सं वां मधु प्रवोचहतायन्त्रां यदस्त्रावपिकश्यं वाम् ॥२२॥

पदार्थ—हे ( वत्तो ) तुम की निवृत्ति करने और ( अश्विना ) अच्छे कर्मों में प्रवृत्त करानेहारे समासेनाधीशो । ( वाम् ) तुम दोनों ( वत् ) जिस ( आथर्वणायां ) जिसके संशय कट गए उसके पुत्र के लिए तथा ( दधीचे ) विद्या और धर्मों को कारण किये हुए मनुष्यों की प्रशंसा करनेवाले के लिए ( अश्व्यम् ) घोड़ों में हुए ( शिरः ) उत्तम अङ्ग को ( प्रत्यैरयतम् ) प्राप्त करो ( स. ) वह ( अश्व्यम् ) अपने को सत्य व्यवहार चाहता हुआ ( वाम् ) तुम दोनों के लिए ( अश्विकश्यम् ) विद्या की कक्षाओं में हुए बोरों के प्रति जो वर्तमान उस ( अश्व्यम् ) शीघ्र समस्त विद्याओं में व्याप्त होनेवाले विद्वान् के ( मधु ) मधुर विज्ञान का ( प्र, वोचत् ) उपदेश करे ॥ २२ ॥

आचार्य—समासेनाधीश आदि राजजन विद्वानों में बड़ा करें और अच्छे कामों में प्रेरणा दें और वे तुम दोनों के लिए सत्य का उपदेश देकर प्रमाद और धर्म से निवृत्त करें ॥ २२ ॥

सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अभिना प्रावर्त मे ।

अस्मे रयि नास्तया बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥२३॥

पदार्थ—हे ( नास्तया ) सत्य व्यवहार युक्त ( कवी ) सब पदार्थों में बुद्धि को चलाने और ( अभिना ) विद्या की प्राप्ति करानेवाले सभासेनाधीशो ! ( बाम् ) तुम दोनों की ( सुमतिम् ) धर्मयुक्त उत्तम बुद्धि को मैं ( वा, चके ) अच्छे प्रकार सुनूँ तुम दोनों ( मे ) मेरे लिए ( विश्वा ) समस्त ( धियो ) बारम्बारती बुद्धियों को ( सदा ) सब दिन ( प्र, अवतम् ) प्रवेश कराओ तथा ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( बृहन्तम् ) अति बड़े हुए ( अपत्यसाचम् ) पुत्र-पौत्र आदि युक्त ( श्रुत्यम् ) सुनने योग्य ( रयिम् ) धन को ( रराथाम् ) दिया करो ॥ २३ ॥

भाषार्थ—विद्यार्थी और राजा आदि बृहन्त्यों को चाहिए कि शास्त्रवेत्ता विद्वानों के निकट से उत्तम बुद्धियों को लेवें और वे विद्वान् भी उनके लिए विद्या आदि धन को दे निरन्तर उन्हें अच्छी सिखावट सिखाके धर्मात्मा विद्वान् करें ॥२३॥

यस्य अध्यापक का कृत्य अगले मन्त्र में कहते हैं—

हिरण्यहस्तमभिना रराणा पुत्रं नरा वधिमत्या अदत्तम् ।

त्रिधा ह श्यावमभिना विकस्तमुज्जीवसं परयतं सुदान् ॥२४॥

पदार्थ—हे ( रराणा ) उत्तम गुणों के देने ( नरा ) श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति कराने और ( अभिना ) रक्षा आदि कर्मों में व्याप्त होनेवाले अध्यापको ! तुम दोनों ( हिरण्यहस्तम् ) जिसके हाथ में सुवर्ण आदि धन वा हाथ के समान विद्या और तेज आदि पदार्थ हैं उस ( वधिमत्या ) वृद्धि देनेवाली विद्या की ( वृक्षम् ) रक्षा करनेवाले जन की मेरे लिए ( अवतम् ) देओ । हे ( सुदान् ) अच्छे दानशील सज्जनों के समान वर्तमान ( अभिना ) ऐश्वर्ययुक्त पढ़ानेवालो ! तुम दोनों उस ( श्यावम् ) विद्या पाये हुए ( विकस्तम् ) धनको प्रकार विद्या देनेहारे मनुष्य को ( जीवसे ) जीवने के लिए ( ह ) ही ( त्रिधा ) तीन प्रकार अर्थात् मन, वाणी और शरीर की शिक्षा आदि के साथ ( उव, परयतम् ) प्रेरणा देओ अर्थात् समझाओ ॥ २४ ॥

भाषार्थ—पढ़ानेवाले सज्जन पुत्रों और पढ़ानेवाली स्त्रियाँ पुत्रियों को बड़ाचर्य निबन्ध में लगाकर इनके दूसरे विद्याबन्धन को सिद्ध कर जीवन के उपाय अच्छे प्रकार सिखाके समय पर उनके माता पिता को देवें और वे घर को पाकर भी उन गुरुजनों की शिक्षाओं को न भूलें ॥ २४ ॥

फिर स्त्री-पुरुष सब विद्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एतानि वामभिना वीर्याणि प्र पुष्याभ्यायवोऽवोचन् ।

ब्रह्म कुण्वन्तो वृषणा युवस्यां सुवीरांसो विदयमा वदेम ॥२५॥

पदार्थ—हे ( वृषणा ) विद्या के बर्णने और ( अविनी ) प्रशंसित कर्मों में व्याप्त स्त्रीपुरुषों ! ( वाम् ) तुम दोनों के जो ( एतानि ) ये प्रशंसित (पुष्याणि) अगले विद्वानों से नियत किये हुए ( वीर्याणि ) पराक्रमयुक्त काम हैं उनको (आयवः) मनुष्य (प्रायोचन्) भली-भाँति कहें (पुष्याम्) तद्वत् अवस्थावाले तुम दोनों के लिए ( ब्रह्म ) धन और धन को ( कुण्वन्त ) सिद्ध करते हुए ( सुवीरांसः ) जिनके अच्छी सिखावट और उत्तम विद्यायुक्त वीर पुत्र, पौत्र और सेवक हैं वे हम लोग ( विदयम् ) विज्ञान करानेवाले, पढ़ने-पढ़ानेरूप यह का ( वा, वदेम ) उपदेश करें ॥ २५ ॥

भाषार्थ—मनुष्य, जिन विद्वानों ने लोक के उपकारक विद्या और धर्मोपदेश के प्रचार करनेवाले काम किये वा जिनसे किये जाते हैं उनकी प्रशंसा और धन वा धन आदि से सेवा करें क्योंकि कोई विद्वानों के संग के बिना विद्या आदि उत्तम-उत्तम रत्नों को नहीं वा सकते । न कोई कपट आदि दोषों से रहित शास्त्र जाननेवाले विद्वानों के संग और उनसे विद्या पढ़ने के बिना अच्छी नीलता और विद्या की वृद्धि करने को समर्थ होते हैं ॥ २५ ॥

इस सूक्त में राजा-प्रजा और पढ़ने-पढ़ाने आदि कानों के बर्णन से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति है यह समझना चाहिए ॥

यह प्रथम अष्टक के आठवें अध्याय में सत्रहवाँ वर्ग और एकसौ सत्रहवाँ सूक्त पुरा हुआ ॥



अथास्वेकावशांस्याध्यादशोत्तरातसप्तमस्य सूक्तस्य कवीबामुविः । अभिनी देवते ।

१, ११ मुरिक पङ्क्तिः १४५५ । पञ्चम स्वर । २, ५, ७

त्रिष्टुप्, ३, ६, ९, १० त्रिष्टुप् ४, ८ विराट्

त्रिष्टुप् ५५ । औषतः स्वरः ॥

यस्य आरम्भ आवावाले एकसौ अठारहवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में विद्युवी स्त्री और विद्वान् पुरुष क्या करें यह विषय कहा है—

आ वां रथौ अभिना श्येनपत्वा सुमुष्कीकः स्ववौ यास्वर्वाक् ।

वां मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरा वृषणा वातरंहाः ॥२६॥

पदार्थ—हे ( वृषण ) बलवान् ( अभिना ) शिल्प कर्मों के जाननेवाले स्त्री-पुरुषों ! ( वाम् ) तुम दोनों को ( वाः ) जो ( त्रिवन्धुरः ) जिसमें नीचे, बीच

में और ऊपर बन्धन हों ( श्येनपत्वा ) बाज पक्ष के समान जानेवाला ( वातः ) रंहाः ) जिसका पवन के समान वेग ( मर्त्यस्य ) मनुष्य के ( वमसः ) मन से भी ( जवीयान् ) अत्यन्त जाने और ( सुमुष्कीकः ) उत्तम सुख देनेवाला ( स्ववौ ) जिसमें प्रशंसित पुरुष वा अपने पदार्थ विद्यमान हैं ऐसा ( रथः ) रथ है वह ( अर्वाक् ) नीचे ( वा, वातु ) आगे ॥२६॥

भाषार्थ—स्त्री-पुरुष जब ऐसे ज्ञान को उत्पन्न कर उपयोग में लावें तब ऐसा कौन सुख है जिसको वे सिद्ध नहीं कर सकें ॥२६॥

फिर राज्य के सहाय से स्त्री-पुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्रिवन्धुरेषां त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेश सुवृता यातमर्वाक् ।

पिन्वतं वा जिन्वतमर्बेतो नो बर्धयतमभिना वीरमस्मे ॥२७॥

पदार्थ—हे ( अभिना ) सभासेनाधीशो ! तुम दोनों ( त्रिवन्धुरेषां ) जो तीन प्रकार के बन्धनों से युक्त ( त्रिचक्रेश ) जिसमें कर्मों के तीन चक्कर लगे ( त्रिवृता ) और तीन घोड़ों के बन्धनों से युक्त जो ( सुवृता ) अच्छे-अच्छे मनुष्य वा उत्तम शूङ्गारों के साथ वर्तमान ( रथेन ) रथ है उससे ( अर्वाक् ) भूमि के नीचे ( वा, वातम् ) आगे ( वाः ) हम लोगों की ( वाः ) पृथिवी में जो भूमि है उनका ( पिन्वतम् ) सेवन करो ( अर्बेत ) राज्य पाये हुए मनुष्य वा घोड़ों को ( जिन्वतम् ) विद्याओं, सुख देओ ( अस्मे ) हम लोगों को और हम लोगों के ( वीरम् ) शूरवीर पुरुष को ( बर्धयतम् ) बड़ाओ, वृद्धि देओ ॥२७॥

भाषार्थ—राजपुरुष अच्छी सामग्री और उत्तम शास्त्रवेत्ता विद्वानों का सहाय के और सब स्त्री पुरुषों को समृद्धि और सिद्धियुक्त करके प्रशंसित हों ॥२७॥

प्रवद्यामना सुवृता रथेन दत्ताविमं शृणुतं श्लोकमर्धः ।

किमङ्ग वां मर्त्यवर्ति गमिष्ठाहुर्विप्रांसो अभिना पुराजाः ॥२८॥

पदार्थ—( प्रवद्यामना ) भली-भाँति बजनेवाले ( सुवृता ) अच्छे-अच्छे वाद्यनों से युक्त ( रथेन ) विमान आदि रथ से ( अर्धः ) पर्वत के ऊपर जाने और ( दत्तौ ) दान आदि उत्तम कर्मों के करनेवाले ( अभिना ) सभासेनाधीशो वा है स्त्री पुरुषों ! ( वाम् ) तुम दोनों ( इमम् ) इस ( श्लोकम् ) वाणी को ( शृणुतम् ) सुनो कि ( अङ्ग ) हे उक्त सज्जनों ! ( पुराजाः ) अगले बृद्ध ( विप्रांसः ) उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् जन ( गमिष्ठा ) अति चलते हुए तुम दोनों के ( प्रति ) प्रति ( किम् ) किस ( अर्वात् ) न वर्तने, न कहने योग्य निन्दित व्यवहार का ( आहुः ) उपवेश करते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं ॥२८॥

भाषार्थ—हे राजा आदि स्त्री-पुरुषों ! तुम जो-जो उत्तम विद्वानों ने उपवेश किया उसी-उसी को स्वीकार करो क्योंकि सत्पुरुषों के उपदेश के बिना संसार में मनुष्यों की उन्नति नहीं होती । जहाँ उत्तम विद्वानों के उपदेश नहीं प्रवृत्त होते हैं वहाँ सब अज्ञानरूपी अन्धेरे से डरे होकर पशुओं के समान वर्तन कर दुःख को ही पच द्वा करते हैं ॥२८॥

फिर वे स्त्री-पुरुष क्या करें यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

आ वां श्येनासौ अभिना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।

ये अप्तुरां दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयौ नास्तया वहन्ति ॥२९॥

पदार्थ—हे ( नास्तया ) सत्य के साथ वर्तमान ( अभिना ) सब विद्याधीशों में व्याप्त स्त्री-पुरुषों ! ( ये ) जो ( अप्तुराः ) अन्तरिक्ष में भी घ्रता करने ( दिव्यासः ) और अच्छे खेलनेवाले ( गृध्राः ) गृध्र पक्षियों के ( न ) समान ( प्रयः ) प्रीति किये अर्थात् चाहे हुए स्थान को ( अभि, वहन्ति ) सब ओर से पहुँचाते हैं वे ( श्येनासः ) बाज पक्ष के समान चलने ( पतङ्गाः ) सूर्य के समान निरन्तर प्रकाशमान ( आशवः ) और जीघ्रतायुक्त घोड़ों के समान अभि आदि पदार्थ ( रथे ) विमानादि रथ में ( युक्तासः ) युक्त किये हुए ( वाम् ) तुम दोनों को ( वा, वहन्ति ) पहुँचाते हैं ॥२९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे स्त्री-पुरुषों ! जैसे आकाश में अपने पक्षों से उड़ते हुए गृध्र आदि पक्षेक सुख से घाते-जाते हैं वैसे ही तुम अच्छे सिद्ध किये विमान आदि यानों से अन्तरिक्ष में आगे-आगे ॥२९॥

आ वां रथं युधतिस्तिष्ठदत्तं जुष्टवी नरा दुहिता सूर्यस्य ।

परि वामरवा वपुषः पतङ्गा वयौ वहन्स्वरूपा अभीके ॥३०॥

पदार्थ—हे ( नरा ) सब के नायक सभासेनाधीशो ! ( वपुषः ) सुन्दर रूप की ( जुष्टवी ) प्रीति को पाये हुए वा सुन्दर रूप की सेवा करती सुन्दरी ( युधतिः ) नयवीरवा ( दुहिता ) कन्या ( सूर्यस्य ) सूर्य की किरण जो प्रातःसमय की कैला जैसे पृथिवी पर उठते वैसे ( वाम् ) तुम दोनों के ( रथम् ) रथ पर ( वा, तिष्ठन् ) आ बैठे ( अभि ) इस ( अभीके ) संभ्राम में ( पतङ्गाः ) गमन करते हुए ( अश्वः ) लाल रङ्गवाले ( वयः ) पक्षेकों के समान ( अश्वः ) शीघ्रगामी अभि आदि पदार्थ ( वाम् ) तुम दोनों को ( परि, वहन्तु ) सब ओर से पहुँचाएँ ॥३०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य की किरणों सब ओर से घाती-जाती हैं वा जैसे पतितता उत्तम स्त्री पति को सुख पहुँचाती हैं वा जैसे पक्षेक ऊपर नीचे जाते हैं वैसे युद्ध में उत्तम यान और उत्तम वीर जन चाहे हुए सुख को सिद्ध करते हैं ॥३०॥



पदार्थ—हे (अश्विना) समासेमाधीनो । (याम्) तुम दोनों की  
 (शस्त्रम्) प्रशंसा के योग्य (प्रयामनि) अति उत्तम यान में जो (अर्वाणी)  
 पराक्रमयुक्त भीति और (ऊर्ध्वः, भीतिः) उन्नतियुक्त चारणा वा ऊँची चारणा  
 जिन समुच्चो ने (अवधिः) भारण की ने (विशः) दान द्यादि उत्तम कर्म करने-  
 वाले समुच्च (सम्, आ, अवधे) मली-मर्ति धारते हैं । जिस (रथम्) मनोहर  
 धियान द्यादि यान का सिलपी, कारक जन (आ, अवहृत्) भारोद्धार करता  
 अर्थात् उस पर चढ़ता है उस पर तुम शीघ्र चढ़ो । जिस (कर्मन्) उज्ज्वल सुगन्धि-  
 युक्त भोजन करने योग्य पदार्थ को (अस्थः) मनोहर रक्षा द्यादि व्यवहार हम  
 लोगों के लिए (मत्ति) प्राप्त करते हैं उसको (अति) तुम प्राप्त होओ और जिस  
 उज्ज्वल सुगन्धियुक्त भोजन करने योग्य पदार्थ का मैं (स्वदायि) स्वाद मूँ (अस्थ)  
 इसके स्वाद को तुम (अति) अतीति से प्राप्त होओ ॥ २ ॥

आचार्य—हे मनुष्यो ! तुम अच्छे बने हुए, रोगों का बिनाश करने और बल के देनेहारे अर्न्नों को भीनो। यात्रा में सब सामग्री को लेकर एक-दूसरे से प्रीति और रक्षा कर-करा देश-परदेश को जाया पर कही नीति को म छोड़ो ॥ २ ॥

फिर अगले मन्त्रों में स्त्री-पुरुष के करने योग्य काम का उपदेश किया है—  
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अर्म्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।

युवोरहं प्रवशे चैकिते रथो यदध्विना वहयः सूरिमा वरम् ॥३॥

पदार्थ—हे (अध्विना) स्त्री-पुरुषो ! (यत्) जो विद्वान् (चैकिते) कुछ करना जानता है वा जो (युवो) तुम दोनों का (रथ) प्रति सुन्दर रथ (मिथः) परस्पर युद्ध के बीच लड़ाई करनेहारा है वा जिस (वरम्) प्रति श्रेष्ठ (सूरिम्) युद्ध विद्या के जाननेवाले धार्मिक विद्वान् को तुम (वहयः) प्राप्त होते उसके साथ वर्तमान (अहं) शत्रुओं के बाधन वा उनको हरा देने में (यत्) जिस (शुभे) अच्छे गुण के पाने के लिए (प्रवशे) जिसमें बीर जाते हैं उस (रथे) सप्ताम में (पस्पृधानासः) ईर्ष्या से एक-दूसरे की बुझाते हुए (मखा) यज्ञ के समान उपकार करनेवाले (अमिता) न गिराये हुए (जायवो) शत्रुओं को जीतनेहारे बीर पुरुष (समर्म्मत) अच्छे प्रकार जाएँ उसके लिए (आ) उत्तम यत्न भी करें ॥ ३ ॥

आचार्य—राजपुरुष जब शत्रुओं को जीतने को अपनी सेना पठावे तब जिनहीन बन पाया, जो करे को जाननेवाले, युद्ध में बहुत शीरो से युद्ध करानेवाले विद्वान् जन के सेनाओं के साथ प्रवश्य जावें और तब सेना उन विद्वानों की अनुकूलता से युद्ध करे जिससे निश्चल विजय हो। जब युद्ध निश्चल हो सक जाय और अपने-अपने स्थान पर बीर बैठें तब उन सबको इकट्ठा कर आनन्द देकर जीतने के उग की बातचीत करें जिससे वे सब युद्ध करने के लिए उत्साह बाँधके शत्रुओं को प्रवश्य जीतें ॥३॥

युवं भुज्यु भुरमाणं विभर्गतं स्वयुक्तिमिनिवहन्ता पितृभ्य आ ।

यासिष्टं नृसिद्धिषणा विजेन्यं दिवौदासाय महि चेति वामवः ॥४॥

पदार्थ—(वृक्षणा) सुख वपति और सब गुणों में रमनेहारे सभासेनाधीशो ! (युवम्) तुम दोनों (वाम्) अपनी (भुरमाणम्) पुष्टि करनेवाले (भुज्युम्) भोजन करने के योग्य पदार्थों को (विभिः) पक्षियों ने (गतम्) पाये हुए के समान (स्वयुक्तिभिः) अपनी रीतियों से (पितृभ्य) राज्य की पालना करनेहारे वीरों के लिए (निवहन्ता) निरन्तर पहुँचाते हुए (महि) अतीव (प्रव) रक्षा करनेवाले पदार्थ और (वसि) जो सेनासमूह (चेति) जाना जाए उसको भी लेकर (विबोधासाय) विद्या का प्रकाश देनेवाले सेनाध्यक्ष के लिए (विजेन्यम्) जीतने योग्य शत्रुसेनासमूह को (आ, यासिष्टम्) प्राप्त होओ ॥४॥

आचार्य—सेनापतियों से जो सेनासमूह हृष्टपुष्ट अर्थात् चैनचान से भरा-पूरा, खाने-पीने से पुष्ट, अपने को चाहता हुआ जान पड़े उसको अनेक प्रकार के भोग और अच्छी निवाहट से युक्तकर अर्थात् उक्त पदार्थ उनको देकर आगे होनेवाले लाभ के लिए प्रवृत्त करा ऐसे सेनासमूह से युद्ध कर शत्रुजन जीते जा सकते हैं ॥४॥

युवोरध्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शार्ध्वम् ।

आ वां पतित्वं मख्याय जम्पुपी योषाष्टुलीत जेन्या युवां पती ॥५॥

पदार्थ—हे (अध्विना) सभासेनाधीशो ! (युवो) तुम अपने (शार्ध्वम्) बलों से युक्त (युवायुजम्) तुमने जोड़े (रथम्) मनोहर सेना आदि युक्त यान को (अस्य) इस राजकार्य के बीच में स्थिर हुए (वाणी) उपदेश करनेवालों के समान (वपुषे) अच्छे रूप के होने के लिए (येमतु) नियम में रखते हो (वाम्) तुम दोनों के (सख्याय) मित्रपन अर्थात् अतीव प्रीति के लिए (जेन्या) नियम करते हुओं में श्रेष्ठ (पती) पालना करनेहारे (युवाम्) तुम्हारे साथ (पतित्वम्) पतिभाव को (जम्पुपी) प्राप्त होनेवाली (योषा) यौवन अवस्था से परिपूर्ण शूद्राचारिणी युवती स्त्री तुम में से अपने मन से चाहे हुए एक पति को (आ, अष्टुलीत) अच्छे प्रकार बरे ॥५॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालङ्कार है। जैसे ब्रह्मचर्य्य करके यौवन अवस्था को पाये हुए विदुषी कुमारी कन्या अपने को प्यारे पति को पा निरन्तर उसकी सेवा करती है और जैसे ब्रह्मचर्य्य को किये हुए जवान पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाहती हुई स्त्री को पाकर आनन्दित होता है वैसे ही सभा और सेनापति सदा होवें ॥५॥

युवं रेमं परितुतेरुक्ष्यथो हिमेमं धर्मं परितुप्तमलम् ।

युवं ज्योर्वसं पिप्यथुर्गवि प्रं दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥६॥

पदार्थ—हे सब विद्यार्थी में व्याप्त स्त्री-पुरुषो ! जैसे (युवम्) तुम दोनों (ज्योर्वसं) धार्म्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ये तीन दुःख जिसमें नहीं हैं वह उत्तम के लिए (परितुते) तब और से दूसरे, विद्या-अर्थ में प्रसिद्ध हुए विद्वान् के विद्या की पाये हुए (परितुप्तम्) सब प्रकार क्लेश की प्राप्ति (रैमम्) समस्त विद्या की प्रशंसा करनेवाले विद्वान् मनुष्य की (हिमेमं) जीत से (धर्मम्) धर्म के समान (ज्योर्वसं) पालने अर्थात् शीत से धाम जैसे बचाया जाने वैसे पालने (युवम्) तुम दोनों (गवि) पृथिवी में (ज्योर्व) सोते हुए की (अवसत्) रक्षा आदि की (पिप्यथुः) बड़ाभी (वन्दनः) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार (दीर्घेण) लम्बी बहुत दिनों की (आयुषा) आयु से तुम दोनों के (तारि) पार किया वैसे हम लोग भी (प्र) प्रयत्न करें ॥६॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालङ्कार है। हे विवाह किये हुए स्त्री पुरुषो ! जैसे शीत से गरमी मारी जाती है वैसे अध्विना को विद्या से मारी जिससे धार्म्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ये तीन प्रकार के दुःख नष्ट हों। वैसे धार्मिक राजपुरुष और धादि को दूर कर सोते हुए प्रजाजनों की रक्षा करते हैं और वैसे सूर्य-चन्द्रमा सब जगत् को पुष्टि देकर जीवने के आनन्द को देनेवाले हैं वैसे इस जगत् में प्रवृत्त होओ ॥६॥

युवं वन्दनं निर्वर्तं जण्यया रथ न दंता करणा समिन्वथः ।

क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्रं या विधते दंसनां भुवत् ॥७॥

पदार्थ—हे (करणा) उत्तम कर्मों के करने वा (दंता) दुःख दूर करने-वाले स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (जण्यया) विद्यावृद्ध अर्थात् अतीव विद्या पढ़े हुए विद्वानों के योग्य विद्या से युक्त (निर्वर्तम्) जिसमें निरन्तर सत्य विद्यमान (वन्दनम्) प्रशंसा करने योग्य (विप्रम्) विद्या और अच्छी शिक्षा के योग से उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् को (रथम्) विमान आदि धान के (व) समान (समिन्वथः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ और (क्षेत्रात्) गर्भ के ठहरने की जगह से उत्पन्न हुए सन्तान के समान अपने निवास से उत्तम काम को (आ, जन्यः) अच्छे प्रकार प्रकट करो जो (अत्र) इस संसार में (वाम्) तुम दोनों का गुहाधर्म के बीच सम्बन्ध (प्र, भुवत्) प्रबल हो उसमें (विपन्यया) प्रशंसा करने योग्य धर्म की नीति से युक्त (दंसना) कामों को (विधते) विधान करने की प्रवृत्त हुए मनुष्यों के लिए उत्तम राज्य के अधिकारों को देओ ॥७॥

आचार्य—विचार करनेवाले स्त्रीपुरुष जन्म से लेके जब तक ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्या ग्रहण करें तब तक उत्तम शिक्षा देकर सन्तानों को यथायोग्य व्यवहारों में निरन्तर युक्त करें ॥ ७ ॥

अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।

स्वर्धतीरित उत्तीर्युवो गच्छति अभीकं अभवन्नभिष्टयः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्या के विचार में रमे हुए स्त्री-पुरुषो ! आप (स्वस्य) अपने (पितु) पिता के समान वर्तमान पढ़नेवाले से (परावति) दूर देश में भी ठहरे और (त्यजसा) संसार के सुख का छोड़ने से (निबाधितम्) कष्ट पाते हुए (कृपमाणम्) कृपा करने के शीलवाले सन्यासी की नित्य (अगच्छतम्) प्राप्त होओ (इत) इसी यति से (युवो) तुम दोनों के (अभीकं) समीप में (अहं) निश्चय से (गच्छति) अद्भुत (अभिष्टय) चाही हुई (स्वर्धतीः) जिनमें प्रशंसित सुख विद्यमान हैं (ऊतो) वे रक्षा आदि कामना (अभवन्) सिद्ध हों ॥ ८ ॥

आचार्य—सब मनुष्य पूरी विद्या जानने और शास्त्रसिद्धान्त में रमनेवाले राग-द्वेष और पक्षपात रहित सबके ऊपर कृपा करते, सर्वथा सत्ययुक्त असत्य को छोड़ें, इन्द्रियों को जीते और योग के सिद्धान्त को पाये हुए अगले-पिछले व्यवहार की जाननेवाले जीवन्मुक्त सन्यास के आश्रम में स्थित संसार में उपदेश करने के लिए नित्य भ्रमते हुए वेदविद्या के जाननेवाले सन्यासिजन को पाकर धर्म, धर्म, काम और मोक्षों की सिद्धियों को विधान के साथ पावें। ऐसे सन्यासी आदि उत्तम विद्वान् के सङ्ग और उपदेश के सुने बिना कोई भी मनुष्य यथार्थ बोध को नहीं पा सकता ॥८॥

उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।

युवं दधीचो मन आ विवासयोऽथा शिरः पति वामश्च्यं वदत् ॥९॥

पदार्थ—हे मगलयुक्त राजा और प्रजाजनों ! (युवम्) तुम दोनों जो (औशिज) मनोहर उत्तम पुरुष का पुत्र सन्यासी (मधे) मद में निमित्त प्रवर्तमान (स्या) वह (अक्षिका) शब्द करनेवाली माखी जैसे (अरपत्) गू जती है वैसे (वाम्) तुम दोनों को (मधुमत्) जिसमें प्रशंसित गुण हैं उस व्यवहार के तुरूप (हुवन्यति) अपने को देते-लेते चाहता है उस (सोमस्य) धर्म की प्रेरणा करने और (दधीच) विद्या धर्म की बारणा करनेहारे के तीर से (मनः) विज्ञान को (आ, विवासयः) अच्छे प्रकार सेवो (अथ) इसके अनन्तर (उत) तर्क-वितर्क से वह (वाम्) तुम दोनों के प्रति प्रीति से इस ज्ञान को और (अक्षिकम्) विद्या में व्याप्त हुए विद्वानों में उत्तम (शिरः) शिर के समान प्रशंसित व्याख्यान को (पति, वदत्) कहे ॥ ९ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में सुतोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे माखी पृथिवी में उत्पन्न हुए वृक्ष वनस्पतियों से रस, जिसको सहित काहते हैं उसको, लेकर अपने निवासस्थान में इकट्ठा कर आनन्द करती है वैसे ही योगविद्या के ऐश्वर्य्य को ग्रहण सत्य उपदेश से सुख का विधान करनेवाले ब्रह्म विचार में स्थिर विद्वान् सन्यासी के समीप से सत्यविद्या को सुनमान और विचारके सर्वदा तुम लोग सुनी होओ ॥ ९ ॥

अब बिजुलीरूप अग्नि से जो तारविद्या प्रकट होती है उसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

युवं पेद्वं पुक्वार्पयिमा स्पृधां श्वेतं संस्तरं दुवस्यथः ।

शार्ध्वैरमिथं पृतन्नासु दुष्टं चर्कुत्त्वमिन्द्रमिव चर्चनीसह्व ॥१०॥

पदार्थ—हे (अध्विना) सब विद्यार्थी में व्याप्त सभासेनाधीशो ! (युवम्) तुम दोनों (पेद्वं) पहुँचने वा जाने को (स्पृधां) राज्यों की ईर्ष्या से कुलने वालों की (पृतन्नासु) केशवों में (चर्कुत्त्वम्) निरन्तर कर्मों के योग्य (चर्चनी) अतीव धामन करने को बड़े हुए (दुवस्यथः) जिससे कि ब्रह्म देने योग्य काम होते हैं

( बुध्दरम् ) जो शत्रुओं से दुःख के साथ उलासा जा सकता ( अर्धशीलम् ) जिससे मनुष्य शत्रुओं को सहते जो ( अर्धः ) तोड़ने-फोड़ने योग्य पैंचों से बाँधा वा ( अर्धशत्रुम् ) जिसमें सब ओर बिजुली की प्रायः चमकती उस ( इन्द्रजिह्वा ) सूर्य के प्रकाश के समान वर्तमान ( सप्ततारम् ) संवेदों को तारने अर्थात् हृदय-उपर पहुँचानेवाले तारयन्त्र को ( बुध्दरम् ) मेवो ॥ १० ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में उपमानाकार है। जैसे मनुष्यों से बिजुली से सिद्ध की हुई तारविद्या से चाहे हुए काम सिद्ध किये जाते हैं वैसे ही सन्ध्यासी के सग से समस्त विद्याओं को पाकर धर्म आदि काम करने को समर्थ होते हैं। इन्हीं दोनों ने व्यवहार और परमार्थसिद्धि की जा सकती है इससे यत्न के साथ तद्विद्—तारविद्या अवश्य सिद्ध करनी चाहिए ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजा, प्रजा, सन्ध्यासी, महात्माओं की विद्या के विचार का आचरण करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछने सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह इक्कीसवीं वर्ण और एकली उन्नीसवीं सूक्त पूरा हुआ ॥



अथारव इन्द्रावर्चस्य विद्यापुस्तकतमस्य पुस्तकयोः शिशुपुत्रः कलीबानुविः। अविबनी वेधते ॥ १, १२ विपीलिकामध्या निचुवनाधो, २ भुरिग्याधो, १० मायजी, ११ विपीलिकामध्या विराट्पायधोऽधोः। अर्धः स्वरः। ३ स्वरार्धः ककुबुधिनः, ५ आधुं गिणः, ६ विराट्पायधुं गिणः, ८ भुरिगुधिनः। अर्धः स्वरः। ४ आधुं गिणः, ७ स्वरार्धः ककुबुधिनः, ९ भुरिगुधिनः। अर्धः स्वरः ॥

अथ एकली बीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम-द्वितीय मन्त्र में प्रवृत्तोरविधि का उपदेश करते हैं—

का राधदोलाश्विना वां को वां जोषं उभयोः।

कथा विद्यात्यप्रचेताः ॥१॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) गृहाभ्रम धर्म में व्याप्त स्त्री-पुरुषों! ( वांम् ) तुम ( उभयो ) दोनों की ( का ) कौन ( होना ) सेवा शत्रुओं के बल की लेने और उत्तम जीत देने की ( राधत् ) निद्रि करे ( वांम् ) तुम दोनों के ( जोषे ) प्रीति उत्पन्न करनेहारे व्यवहार में ( कथा ) वैसे ( कः ) कौन ( अप्रचेताः ) विद्या विज्ञान रहित अर्थात् मूढ़ शत्रुहार को ( विद्याति ) विद्यान करे ॥ १ ॥

भाषार्थ—सभासेनाधीश और और विद्वान् के व्यवहारों को जाननेहारे के साथ अपना व्यवहार करें फिर और और विद्वान् के हार देने और उनकी जीत को रोकने को समर्थ हो कभी किसी को मूढ़ के सहाय से प्रयोजन नहीं सिद्ध होता इससे सब दिन विद्वानों से मित्रता रखें ॥ १ ॥

विद्वांसाविद्वदुरः पृच्छेदविद्वानिस्थापरो अचेताः।

नृ चिक्षु मर्षे अक्रौ ॥२॥

पदार्थ—जैसे ( अचेताः ) अज्ञान ( अविद्वान् ) मूर्ख ( विद्वत्सो ) को विद्यावान् पण्डितजनों को ( दुरः ) शत्रुओं के मारने वा मन को व्यर्थत क्लेश देनेहारी बातों की ( पृच्छेन् ) पूछे ( इत्या ) ऐसे ( अपरः ) और विद्वान् महात्मा अपने बड़ से ( इत् ) ही ( नृ ) शीघ्र पूछे ( अक्रौ ) नहीं करनेवाले ( मर्षे ) मनुष्य के निमित्त ( चिक्षु ) भी ( नृ ) शीघ्र पूछे जिससे यह आलस्य को छोड़के पुरुषार्थ में प्रवृत्त हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्वान् विद्वानों की सम्मति से बर्ताने बर्तें वैसे और भी बर्तें। सर्वत्र विद्वानों को पूछकर सत्य और असत्य का निर्णय कर आचरण करें और मूढ़ को त्याग करें इस बात में किसी को कभी आलस्य न करना चाहिए क्योंकि बिना पूछे कोई नहीं जानता है इससे किसी को मूर्खों के उपदेश पर विश्वास न लाना चाहिए ॥ २ ॥

अथ अध्यापक और उपदेशक विद्वान् क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य।

मार्चद्वयमानो युवाकुः ॥३॥

पदार्थ—जो ( विद्वांसा ) पूरी विद्या पढ़े उत्तम प्राप्त अध्यापक तथा उपदेशक विद्वान् ( अद्य ) इस समय में ( नः ) हम लोगों के लिए ( मन्म ) मानने योग्य उत्तम वेदों में कहे हुए ज्ञान का ( वोचेतम ) उपदेश करें ( ता ) उन समस्त विद्या से उत्पन्न हुए प्रश्नों के उत्तर देने और ( विद्वांसा ) सब उत्तम विद्याओं के जतानेहारे ( वांम् ) तुम दोनों विद्वानों की हम लोग ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं जो ( वयमः ) सबके ऊपर दया करता हुआ ( युवाकुः ) मनुष्यों को समस्त विद्याओं के साथ सर्वोपकारनेहारा मनुष्य ( ता ) उन तुम दोनों विद्वानों का ( प्र, आर्चत् ) सत्कार करे उसका तुम सत्कार करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस संसार में जो जिसके लिए सत्य विद्याओं को देवे वह उसको मन, वाणी और शरीर से सेवा और कष्ट से विद्या की छिपावे उसको निरन्तर तिरस्कार करे ऐसे सब लोग मिल-मिलाके विद्वानों का मान और मूल्यों का अपमान निरन्तर करें जिससे सत्कार की पाये हुए विद्वान् विद्या के प्रचार करने में अच्छे-अच्छे यत्न करें और अपमान की पाये हुए मूर्ख भी करें ॥ ३ ॥

वि पृच्छामि पाक्याः न देवान्बद्धकृतस्याद्भुतस्य दस्त्रा।

पातं च सधंसो युवं च रभ्यंसो नः ॥४॥

पदार्थ—हे ( बद्धा ) दुःखों को दूर करने, पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानों! मैं ( युवम् ) तुम दोनों को ( सधंस ) अतीव विद्यावान् से भरे हुए ( रभ्यसः ) अत्यन्त उत्तम पुरुषार्थ युक्त ( पाक्या ) विद्या और योग के अभ्यास से जिनकी बुद्धि पक गई उन ( देवान् ) विद्वानों के ( न ) समान ( बद्धकृतस्य ) क्रिया से सिद्ध किये हुए शिल्पविद्या से उत्पन्न होनेवाले ( अद्भुतस्य ) आश्चर्य रूप काम के विज्ञान के लिए प्रश्नों को ( वि, पृच्छामि ) पूछता हूँ ( च ) और तुम दोनों उनके उत्तर देवों जिससे मैं तुम्हारी सेवा करता हूँ ( च ) और तुम ( न ) हमारी ( पातम् ) रक्षा करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जन बालक आदि बूढ़ पर्यन्त मनुष्यों को सिद्धान्त विद्याओं का उपदेश करें जिससे उनकी रक्षा और उन्नति होवे और वे भी उनकी सेवा कर अच्छे स्वभाव से पूछ कर विद्वानों के दिये हुए समाधानों को आचरण करें ऐसे हिलमिलके एक-दूसरे के उपकार से सब सुखी हों ॥ ४ ॥

म या घोषे भृगवाणे न शोमे यया वाचा यजति पञ्जियो वांम्।

भैष्युर्न विद्वान् ॥५॥२२॥

पदार्थ—हे समस्त विद्याओं में रहे हुए पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानों! ( पञ्जियो ) पाने योग्य बोधों को प्राप्त ( भैष्यु ) सब जनों के अभीष्ट सुख को प्राप्त होनेवाला मनुष्य ( विद्वान् ) विद्यावान् सज्जन के ( न ) समान ( यया ) जिस ( वाचा ) वाणी से ( वांम् ) तुम्हारा ( प्र, यजति ) अच्छा सत्कार करता है उस वाणी से मैं ( शोमे ) शोभा पाऊँ ( प्र ) जो बिजुली स्त्री ( भृगवाणे ) अच्छे गुणों से पक्की बुद्धिवाले विद्वान् के समान आचरण करनेवाला ( योषे ) उत्तम वाणी के निर्मित सत्कार करती ली ( न ) दीखती है उस वाणी से मैं उक्त स्त्री का ( प्र ) सत्कार करूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है। हे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानों! आप उत्तम शास्त्र जाननेहारे श्रेष्ठ सज्जन के समान सबके सुख के लिए नित्य प्रवृत्त रहो ऐसे बिजुली स्त्री भी हो। सब मनुष्य विद्याधर्म और अच्छे शील-युक्त होते हुए निरन्तर शोभायुक्त हो। कोई विद्वान् मूर्ख स्त्री के साथ विवाह न करे और न कोई पटी स्त्री मूर्ख के साथ विवाह करे किन्तु मूर्ख मूर्खा से और विद्वान् मनुष्य विदुषी स्त्री से सम्बन्ध करें ॥ ५ ॥

फिर पढ़ने-पढ़ाने की विधि का उपदेश अगले मन्त्रों में कहा है—

भुतं गायत्रं तर्कवानस्याहं चिद्धि गिरेभांविना वांम्।

आसी शुभस्पती दन् ॥६॥

पदार्थ—हे ( आसी ) रूपों के दिखानेहारी आँखों के समान वर्तमान ( शुभस्पती ) धर्म के पालने और ( अश्विना ) विद्या की प्राप्ति कराने वा उपदेश करनेहारे विद्वानों! ( वांम् ) तुम्हारे तीर से ( तर्कवानस्य ) विद्या पाये विद्वान् के ( चिद्धि ) भी ( गायत्रम् ) उस ज्ञान को जो गानेवाले की रक्षा करता है वा ( भुतम् ) सुने हुए उत्तम व्यवहार को ( आ, दन् ) ग्रहण करता हुआ ( अहम् ) मैं ( हि ) ही ( गिरेभां ) उपदेश करूँ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है। मनुष्यों को चाहिए कि जो-जो उत्तम विद्वानों से पढ़ा वा सुना है उस उस को धीरे धीरे नित्य पढ़ाया और उपदेश किया करें। मनुष्य जैसे धीरे से विद्या पावे वैसे ही देवे क्योंकि विद्यादान के समान कोई और धर्म बढ़ा नहीं है ॥ ६ ॥

युवं ह्यस्तं महो रन्धुर्व वा यच्चिरत्वंसतम्।

ता नो वसु सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥७॥

पदार्थ—हे ( वसु ) निवास करानेहारे अध्यापक-उपदेशकों! ( रन् ) धीरों को सुख देने हुए जो ( युवम् ) तुम ( यत् ) जिन पर ( ह्यस्तम् ) बैठो ( वा ) अथवा ( युवम् ) तुम दोनों ( न ) हम लोगों के ( सुगोपा ) अली-भांति रक्षा करनेहारे ( स्यातम् ) होधो वे ( महः ) बड़ा ( अघायो ) जो कि अपने को अध्याप करने से पाप चाहता ( वृकात् ) उस खोर-डाकू से ( न ) हम लोगों को ( पातम् ) पालो और ( ता ) वे ( हि ) ही आप दोनों ( निरततसतम् ) विद्या आदि उत्तम भूषणों से परिपूर्ण शोभायमान करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे सभा सेनाधीश और आदि के भय से प्रजाजनों की रक्षा करें वैसे ये भी सब प्रजाजनों के पालना करने योग्य हों। सब अध्यापक-उपदेशक तथा शिक्षक यदि मनुष्य धर्म में स्थिर हुए अधर्म का विनाश करें ॥ ७ ॥

अथ राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्रों में करते हैं—

मा कस्मै धातमर्भमिन्निर्णे नो माकुता नो गृहेभ्यो धेनवो गुः।

स्तनाभुजो अग्निन्धीः ॥८॥

पदार्थ—हे रक्षा करनेहारे सभासेनाधीशों! तुम लोग ( कस्मै ) किसी ( अग्निन्धी ) ऐसे मनुष्य के लिए कि जिस के मित्र नहीं अर्थात् सब का शत्रु ( नः ) हम लोगों को ( मा ) मत ( अग्निन्धीम् ) कहो। आप की रक्षा से ( न ) हम



लोगों की (स्तनाशुष) दूध भरने हुए बनों से अपने बछड़ों समेत मनुष्य आदि प्राणियों को पालती हुई (धेनुः) गीर्ण (अशिश्वी) बछड़ों से रहित अर्थात् बन्धा (वा) मत हो और वे हमारे (गृहस्थः) बरो से (अनुज) विदेश में मत (गु.) पहुँचें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—प्रजाजन राजजनों को ऐसी शिक्षा दें कि हम लोगों को शत्रुजन मत पीड़ा दें और हमारे गी, बेल, छोड़े आदि पशुओं को न चोर लें ऐसा आप मरन करो ॥ ८ ॥

हुहीयन् मित्रधितये युवाकुं राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।

इषे च नो मिमीतं धेनुमन्यै ॥९॥

पदार्थ—हे सब विद्याओं में व्याप्त सभासेनाधीशो ! तुम दोनों जो गीर्ण (हुहीयन्) दूध आदि से पूर्ण करती हैं उन को (नः) हमारे (मित्रधितये) जिससे मित्रों की धारणा हो तथा (युवाकु) सुख से भल वा दुःख से भलग होना हो उस (राये) धन के (च) और जीवन के लिए (मिमीतम्) मानो तथा (वाजवत्यै) जिस में प्रशंसित ज्ञान वा (धेनुमन्यै) गौ का सम्बन्ध विद्यमान है उस के (च) और (इषे) इच्छा के लिए (नः) हम को (मिमीतम्) प्रेरणा देओ अर्थात् पहुँचाओ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो गौ आदि पशु, मित्रों की पालना, ज्ञान और धन के कारण हो उन को मनुष्य निरन्तर राखे और सब को पुरुषार्थ के लिए प्रवृत्त करें जिससे सुख का मेल और दुःख से भलग रहे ॥ ९ ॥

अभिनौरसन रथमनसं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥१०॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (वाजिनीवतोः) जिन के प्रशंसित विज्ञानयुक्त सभा और सेना विद्यमान हैं उन (अभिनौरसोः) सभासेनाधीशों के (अनसं) अनस्य अर्थात् जिस में छोड़ा आदि नहीं लगते (रथम्) उस रथान करने योग्य विमानादि यान का (असनम्) सेवन करूँ और (तेन) उस से (भूरि) बहुत (चाकन) प्रकाशित होऊँ ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो भूमि, जल और अन्तरिक्ष में चलने के लिए विमान आदि यान बनाये जाते हैं उनमें पशु नहीं जोड़े जाते किन्तु वे पानी और अग्नि के कलायन्त्रों से चलते हैं ॥ १० ॥

अयं समह मा तनुह्यते जनां अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥११॥

पदार्थ—हे (समह) सत्कार के साथ वर्तमान विद्वन् ! आप जो (अयम्) यह (सुख) सुख अर्थात् जिस में अच्छे अच्छे अवकाश तथा (रथ) रथान विहार करने के लिए जिन में स्थित होते वह विमान आदि यान है जिससे पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (अनुह्यते) अनुकूल एकदेश से दूसरे देश को पहुँचाए जाते हैं उससे (मा) मुझे (जानाम्) वा मनुष्यों अथवा (सोमपेयम्) ऐश्वर्ययुक्त मनुष्यों के पीने योग्य उशम रस को (तनु) विस्तारो अर्थात् उन्नति देओ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो अत्यन्त उत्तम अर्थात् जिस से उशम और न बन सके उस यान का बनाने वाला शिल्पी हो वह सब को सत्कार करने योग्य है ॥ ११ ॥

अथ स्वप्नस्य निर्विदेऽमुञ्जतश्च रेवतः ।

उभा ताव सि नश्यतः ॥१२॥२३॥१७॥

पदार्थ—मैं (स्वप्नस्य) नींद (अमुञ्जत) आप भी जो नहीं भोगता उस (च) और (रेवतः) धनवान् पुरुष के निकट से (निर्विदे) उदासीन भाव को प्राप्त होऊँ (अथ) इसके अनन्तर जो (उभा) दो पुरुषार्थहीन हैं (ता) वे दोनों (वसि) सुख के रकने से (नश्यतः) नष्ट होत हैं ॥१२॥

भाषार्थ—जो ऐश्वर्यवान् न देने वाला वा जो दरिद्री उदारचित्त है वे दोनों भालसी होते हुए दुःख भोगनेवाले निरन्तर होते हैं इससे सब को पुरुषार्थ के निमित्त अवश्य यत्न करना चाहिए ॥१२॥

इस सूक्त में प्रश्नोत्तर पठन-पढ़ाने और राजधर्म के विषय का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गत समझनी चाहिए ॥

यह एकलौ बीसवाँ सूक्त सत्रहवाँ अनुवाक और तेईसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

५५

अथास्य पञ्चदशस्यैकविंशत्युत्तरशतस्य सुवस्योशिश कशीवान् ऋषिः ।

विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवता । १, ७, १३ मुरिक्पङ्क्तिश्चन्द्रः । पञ्चमः स्वरः ।

२, ८, १० त्रिष्टुप्, ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट्

त्रिष्टुप्, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् त्रिष्टुप्छन्दः । अथत स्वरः ॥

अथ १५ अथावाले एकलौ इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहले दो मन्त्रों में स्त्रीपुरुष कैसे बतलते हैं यह उपदेश किया है—

कदिस्था नृः पार्श्वं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।

प्र यदानइविश आ हर्म्यस्योरु कंसते अघ्वरे यजेत्रः ॥१॥

पदार्थ—हे पुरुष ! तू (अघ्वरे) न विनाश करने योग्य प्रजापालन रूप व्यवहार में (यजत्र) सग करनेवाला (तुरण्यन्) शीघ्रता करता हुआ जैसे ज्ञान चाहनेवाला (नृः) सिमाने योग्य बालक वा मनुष्यों का (पार्श्वम्) पालन करे तथा (देवयताम्) चाहते (अङ्गिरसां) और विद्या के सिद्धांत रस को पाये हुए विद्वानों की (यत्) जिन (गिरः) वेदविद्या की शिक्षारूप वाणियों को (श्रवत्) सुने उनको (इत्था) इस प्रकार से (कत्) कब सुनेगा और जैसे अमीरा राजा (हर्म्यस्य) स्थाय चर के बीच वर्तमान हुआ विनय से (विशः) प्रजाजनों को (प्राग्) प्राप्त होने (यज) और बहुत (आ, क सते) आक्रमण करे अर्थात् उनके व्यवहारों में बुद्धि को दीढ़ावे इस प्रकार का कब होगा ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे मास्त्रवेत्ता विद्वान् सब मनुष्यादि को सत्य बोध कराते और झूठ से रोकते हुए उत्तम जिज्ञा देते हैं वैसे अपने सन्तान आदि को आप निरन्तर अच्छी शिक्षा देओ जिससे तुम्हारे कुल में अयोग्य सन्तान कभी न उत्पन्न हों ॥१॥

स्तम्भीद्वां स धरुणं प्रुषायद्भुवाजाय द्रविणं नरो गोः ।

अनुं स्वजा मंहिषंस्तवां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥२॥

पदार्थ—जैसे (मंहिषः) बड़ा सूर्य (गौ) भूमि का धारण करनेवाला है वैसे (अनुं) सकल विद्याओं से युक्त आप्तबुद्धि मेधावी (नरः) धर्म और विद्या की प्राप्ति करनेवाला सज्जन (वाजाय) विज्ञान वा धर्म के लिए (अश्वस्य) व्याप्त होने योग्य राज्य की (स्वजाय) आप से उत्पन्न की गई (जान्) स्वीकार करने के योग्य (मातरम्) माता के समान पालनेवाली (मेनाम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से पार्श्व हुई वाणी को (परि, अश्वस्य) सब ओर से कहे वा जैसे सूर्य (जान्) प्रकाश को (स्तम्भीद्) धारण करे वैसे (स, ह) वही (गोः) पृथिवी पर (द्रविणम्) धन को बड़ा वेत को (अश्वम्) जल के समान (अनु, प्रुषायत्) सींचा करें ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो आप्त अर्थात् उत्तम शास्त्री विद्वान् के सग से विद्या-विनय और न्याय आदि का धारण करे वह सुख से बड़े और बड़ा सत्कार करने योग्य हो ॥२॥

अथ राजधर्मं विषयं को अगले मन्त्रों में कहा है—

नक्षत्रंमरुणीः पूर्य राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु धून ।

तक्षद्वां नियुतं तस्तम्भद्वां चतुष्पदे नयीय द्विपादे ॥३॥

पदार्थ—जो (तुर) तुरन्त आलस्य छोड़े हुए विद्वान् मनुष्य (चतुष्पदे) गोआदि पशु वा (द्विपादे) मनुष्य आदि प्राणियों वा (नय्याय) मनुष्यों में अति उत्तम महात्माजन के लिए (अनु, धून) प्रतिदिन (पूर्यम्) अगले विद्वानों से अनुष्ठान किये हुए (हवम्) देने-लेने योग्य और (अङ्गिरः) प्रातः समय की बेला लाल रंगवाली उजेली के समान राजनीतियों को (नक्षत्रं) प्राप्त हो (विद्युत्) नित्य कार्य में युक्त किये हुए (वज्रम्) शस्त्र अस्त्रों को (तक्षत्) तीक्ष्ण करके शत्रुओं को मारे तथा उनके (साम्) विद्या और न्याय के प्रकाश का (तस्तम्भम्) निबन्ध करे वह (अङ्गिरसाम्) अगो के रस अथवा प्राण के समान ग्यारे (विज्ञानम्) प्रजाजनों के बीच (राट्) प्रकाशमान राजा होता है ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विनय आदि से मनुष्य आदि प्राणी और गो आदि पशुओं को व्यतीत हुए आप्त, निष्कपट, सत्य-वादी राजाओं के समान पालते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं वे ही सुखों को पाते हैं और नहीं ॥३॥

अस्य मदे स्वर्ग्यं दा ऋतायापावृतमुस्त्रियाणामनीकम् ।

यद्द प्रसर्गं त्रिककुम्भिवर्त्तदप द्रहो मानुषस्य दुरो वः ॥४॥

पदार्थ (यत्) जो (त्रिककुम्भं) मनुष्य ऐसा है कि जिसकी पूर्व आदि दिशा सेना वा पठान और उपदेश करनेवालों से युक्त हैं (अस्य) इस प्रत्यक्ष (मानुषस्य) मनुष्य के (उन्वियाणाम्) गोओं के (प्रसर्गं) उत्तमता से उत्पन्न कराने रूप (वदे) आनन्द के निमित्त (ऋताय) सत्य व्यवहार व जल के लिए (अपोवृतम्) सुख और बलों से युक्त (स्वर्ग्यम्) विद्या और अच्छी शिक्षा रूप वचनों में श्रेष्ठ (अनीकम्) मेना को (दा) देवे तथा इन (द्रुहः) गो आदि पशुओं के द्रोही अर्थात् मारनेवाले पशुहंसक मनुष्यों को (मिबसंत) रोके, हिंसा न होने दे (दुरः) उक्त दुष्टों के द्वार (अप, वः) बन्द कर देवे (ह) वही अक्रवर्त्ती राजा होने को योग्य है ॥४॥

भाषार्थ—वे ही राजपुरुष उत्तम होते हैं जो प्रजास्थ मनुष्य और गो आदि प्राणियों के सुख के लिए हंसक दुष्ट पुरुषों की निवृत्ति कर धर्म में प्रकाशमान होते और जो परोपकारी होते हैं । जो अधर्म मार्गों को रोक धर्म मार्गों को प्रकाशित करते हैं वे ही राजाओं के योग्य होते हैं ॥४॥

तुभ्य पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणं सुरण्यु ।

शुचि यत्ते रेकण आर्यजन्त सबर्दुघायाः पयं उस्त्रियायाः ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे सज्जन ! (यत्) जिस (तुरणं) दूध आदि पदार्थ के पीने को जल्दी करते हुए (तुभ्यम्) तदे लिए (सुरण्यु) धारण और पुष्टि करनेवाले (पितरो) माता-पिता (सुरेतः) जिससे उत्तम धर्म उत्पन्न होता उस (पयः) दूध और (राधः) उत्तम सिद्धि करनेवाले धन की (अनीतम्) प्राप्ति करावें

धीरः सौम्यः ( वत् ) दूष्य भादि के पीने की अवस्था करते हुए जिस ( से ) तेरे लिए बमालु गो भादि पशुओं को रखनेवाले मनुष्य ( मनुष्यः ) जिससे एकसा मुख चारण करता होता है उस दूष्य को मरानेवाली ( अस्त्रिभ्यः ) उत्तम युधि होती हुई गौ के ( शुभि ) शुद्ध पवित्र ( पयः ) पीने योग्य दूष्य को ( ऐश्वर्यः ) प्रशंसित धन के समान ( आ, अस्त्रिभ्यः ) मली-भाति देई वैसे उन मनुष्यों की तु निरन्तर सेवा कर धीर उनके उपकार को कभी मत तोड़ ॥१॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग जैसे माता-पिता धीर विद्वानों की सेवा से धर्म के साध सुखों को प्राप्त होवें वैसे ही गो भादि पशुओं की रक्षा से धर्म के साथ मुख पावें इनके मन के विरुद्ध आचरण को कभी न करें क्योंकि ये सब का उपकार करने वाले प्राणी हैं ॥१॥

किं मनुष्य कंते जलं यह विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

अथ प्र जज्ञे तरिर्ममस प्र रौच्यस्या उपसो न सुरः ।

इन्दुर्धेभिराष्ट स्वेदुहवैः स्वेषां सिञ्चज्जरागामि धाम ॥२॥

पदार्थ—हे अष्टके कामों के अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य ! आप ( उच्यते ) प्रमात समय से ( सूरः ) सूर्य के ( न ) समान ( वैशिः ) जिससे ( स्वेदुहवैः ) अपने देने लेने के योग्य दूष्य भादि पदार्थों से ऐश्वर्य्य अर्थात् उत्तम पदार्थ सिद्ध होते हैं उनसे धीर ( ज्ञेयः ) ज्ञा भादि के योग से ( धाम ) यज्ञभूमि को ( अस्त्रिभ्यः ) सब धीर से सींचते हुए सज्जनों के समान ( अस्याः ) इस गौ के दूष्य भादि पदार्थों से ( प्र, रौचि ) संसार में मली-भाति प्रकाशमान हो धीर ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य्ययुक्त ( अस्याः ) प्रशंसित कामों को ( अष्टके ) प्राप्त हो ( तरिः ) दुःख से पार पहुँचे हुए मुख का विस्तार करने अर्थात् बढ़ानेवाले आप ( वसुः ) धानन्द भोगों ( अथ ) इसके अनन्तर ( प्र, ज्ञे ) प्रसिद्ध होओ ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा धीर वाचकलुप्तोपमासकार हैं । मनुष्य गो भादि पशुओं की रक्षा धीर उनकी वृद्धि कर वैद्यकशास्त्र के अनुसार इन पशुओं के दूष्य भादि को सेवते हुए बलिष्ठ धीर अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त निरन्तर हों, जैसे कोई हल, पट्टा भादि साधनों से युक्त के साथ जल को सिद्ध कर जल से सींचता हुआ धान भादि पदार्थों से युक्त होकर बल धीर ऐश्वर्य्य से सूर्य के समान प्रकाशमान होता है वैसे इन प्रशंसा योग्य कामों को करते हुए प्रकाशित हो ॥२॥

स्विध्या यदुनर्धितिरपस्यात् सूरौ अध्वरे परि रोधना गोः ।

यद् प्रभासि कृत्वा अनु धूननर्विशे पश्चिधे तुराय ॥३॥

पदार्थ—हे सज्जन मनुष्य ! तू ने ( यत् ) जो ऐसी उत्तम क्रिया कि ( स्विध्या ) जिससे सुन्दर मुख का प्रकाश होता वह ( वनविधिः ) बनों की चारणा अर्थात् रक्षा की धीर जो ( गो ) गौ की ( रोधना ) रक्षा होने के धर्म काम किये हैं उनसे तू ( अध्वरे ) जिसमें हिंसा भादि दुःख नहीं हैं उस रक्षा के निमित्त ( कृत्वा ) उत्तम कामों का ( अनु, धून ) प्रतिदिन ( सूर ) प्रेरणा देनेवाले सूर्यलोक के समान ( अनर्धिते ) लड़ा भादि गायिकों में जो बैठना होता उसके लिए धीर ( पश्चिधे ) पशुओं के बढ़ने की इच्छा के लिए धीर ( तुराय ) तीव्र जाने के लिए ( यत् ) जो ( ह ) निश्चय से ( प्रभासि ) प्रकाशित होता है सो आप ( पर्ववन्तात् ) अपने को उत्तम-उत्तम कामों की इच्छा करो ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार हैं । जो मनुष्य पशुओं की रक्षा धीर बढ़ने भादि के लिए बनों की रक्षा उन्हीं में उन पशुओं को चरा दूष्य भादि का सेवन कर लेती भादि कामों को यथावत् करें वे राज्य के ऐश्वर्य्य से सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं धीर गौ भादि पशुओं के मारने वाले नहीं ॥३॥

अष्टा महो दिव आदो हरी इह युम्नासाहममि यौधान उत्सम् ।

हरि यत्तं मन्दिनं दुस्तन हृषे गोरमसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( से ) तुम्हारे ( यत् ) जो ( यौधान ) युद्ध करनेवाले ( वृक्षे ) सुखों के बढ़ाने के लिए जैसे ( आदः ) रस भादि पदार्थ का भक्षण करने धीर ( अष्टा ) सब जगह व्याप्त होनेवाला सूर्यलोक ( महः ) बड़ी ( दिवः ) दीप्ति से अपने ( हरी ) प्रकाश धीर आकर्षण को ( अद्रिभिः ) मेघ वा पर्वतों के साथ प्रचरित करता है वैसे ( इह ) इस समार में ( उत्सम् ) कुर्ग को बनाय ( युम्ना-साहम् ) जिससे धन सहे जाते अर्थात् मिलते उस ( हरिम् ) बड़ा धीर ( मन्दिनम् ) मनोहर ( वाताप्यम् ) शुद्ध वायु से पाने योग्य ( गोरमसम् ) गोओं के बहपन को ( अद्रि, वृक्षम् ) सब प्रकार से पूर्ण करें वे आपको सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार हैं । हे मनुष्य ! तुम जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को धानन्द देकर अपनी आकर्षण-शक्ति से भूगोल का चारण करता है वैसे ही नदी, सोता, कुआँ, बावरी, तालाब भादि को बनाकर वन का पर्वतों में वास भादि को बढ़ा गौ धीर छोड़े भादि पशुओं की रक्षा धीर वृद्धि कर दूष्य भादि के सेवन से निरन्तर धानन्द को प्राप्त होओ ॥४॥

त्वमांसं प्रति वर्चयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृध्वा ।

कुत्साय यत्र पुकृत बन्धन्मुष्मन्तैः परियासि वधैः ॥५॥

पदार्थ—हे ( वज्रम् ) अष्टके प्रकार सेवन करते धीर ( पुकृत ) बहुत मनुष्यों के ईर्ष्या के साथ युवाये हुए मनुष्य ! ( त्वम् ) तू जैसे सूर्य ( दिवः ) दिव्य सुख देनेवाले प्रकाश से अश्वकार की दूर करके ( अश्मानम् ) व्याप्त होनेवाले

( अश्नीतम् ) अपने समीप आये हुए मेघ को छिन्न-भिन्न कर सत्कार में पहुँचाता है वैसे ( वज्रम् ) मेघावी अर्थात् धीरबुद्धिवाले पुरुष के साथ ( आश्वत् ) लोहे से बनाये हुए शस्त्र-अस्त्रों को लेके ( कुत्साय ) अश्व के लिए ( वृक्षम् ) शत्रुओं के पराक्रम को सुखानेवाले बल को चारण करता हुआ ( यत्र ) जहाँ गौओं के मारने-वाले हैं वहाँ उनको ( अन्तैः ) जिनकी संख्या नहीं उन ( वधैः ) गौहिनको को मारने के उपायो से ( परियासि ) सब धीर से प्राप्त होते हो उनको ( योः ) गो भादि पशुओं के समीप से ( प्रति, वर्चय ) लौटाओ भी ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार हैं । हे मनुष्य ! तुम लोग जैसे सूर्य मेघ को वर्षा धीर अश्वकार की दूर कर सबको हर्ष, धानन्दयुक्त करता है वैसे गो भादि पशुओं की रक्षा कर उनके मारनेवालों को रोक निरन्तर सुखी होओ । यह काम बुद्धिमानों के सहाय के बिना होने को सम्भव नहीं है इससे बुद्धिमानों के सहाय से ही उक्त काम का आचरण करो ॥५॥

किं मनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पुरा यत् सूरस्तमसो अपीतेस्मद्रिवः फलिमं हेतिसम्प ।

शुष्मस्य चित् परिहितं यदोजो दिवस्परि सुप्रथितं तदादः ॥६॥

पदार्थ—( अद्रिभिः ) जिनके राज्य में प्रशंसित पर्वत विद्यमान हैं वैसे विख्यात है राजन् ! आप जैसे ( सूर ) सूर्य ( फलिम् ) मेघ को छिन्न-भिन्न कर ( तमस ) अश्वकार के ( अपीते ) विनाश करनेवाले ( दिवः ) प्रकाश से प्रकाशित होता है वैसे अपनी सेना से ( तम् ) उस शत्रुबल को ( आ, अथ ) विचारो अर्थात् उसका विनाश करो ( यत् ) जिसको ( पुरा ) पहले निवृत्त करते रहे हो उसकी ( सुप्रथितम् ) अच्छा बांधकर ठहराओ ( यत् ) जो ( अस्य ) इसका ( परिहितम् ) सब धीर से मुख देनेवाला ( ओजः ) बल है ( तम् ) उसको निवृत्त कर ( शुष्मस्य ) सुखानेवाले शत्रु के ( परि ) सब धीर से ( चित् ) भी ( हेतिसम् ) वज्र को उसके हाथ से गिरा दो इससे यह गौओं का मारनेवाला न हो ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमासकार हैं । हे राजपुरुषों ! जैसे सूर्य मेघ को मार धीर उसकी भूमि में गिरा सब प्राणियों को प्रसन्न करता है वैसे ही गौओं के मारनेवाले को मार गो भादि पशुओं को निरन्तर सुखी करो ॥६॥

किं राजा धीर प्रजा का काम अगले मन्त्रों में कहा है—

अनु स्वा मही पाजमी अचक्रे धावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।

त्वं वृत्रमाशयानं सिगासु महो वज्रेण सिञ्चपो वराहुम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य्य को पाये हुए सभाध्यक्ष भादि सज्जन पुरुष ! ( त्वम् ) आप सूर्य जैसे ( वृत्रम् ) मेघ को छिन्न-भिन्न कर वैसे ( सिगासु ) बन्धनरूप नाकियों में ( महः ) बड़े ( वज्रेण ) शस्त्र धीर अस्त्रों के समूह से ( वराहुम् ) धर्मयुक्त उत्तम व्यवहार वा धार्मिकजनों के मारनेवाले दुष्ट शत्रु को मारके ( आशयानम् ) जिसने सब धीर से गाढ़ी नीद पाई उसके समान ( सिञ्चपो ) सुलाओ जिससे ( वही ) बड़े ( वाजसी ) रक्षा करनेवाला धीर अपने प्रकाश करने में ( अचक्रे ) न रुके हुए ( धावाक्षामा ) सूर्य धीर पृथिवी ( स्वा ) आपकी प्राप्त होकर उनसे से प्रत्येक ( कर्मन् ) राज्य के काम में तुमको अनुकूलता से धानन्द देवें ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार हैं । राजपुरुषों को चाहिए कि विनय धीर पराक्रम से दुष्ट शत्रुओं को बाध, मार धीर निवार अर्थात् उनको धार्मिक मित्र बनाकर समस्त प्रजाजनों को अष्टके कामों में प्रवृत्त करा धानन्दित करें ॥७॥

त्वमिन्द्र नयौ यां अवां वृन् तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान ।

यं तं काव्य उशनां मन्दिनं दाद्वृत्रहृषं पार्यन्ततक्ष वज्रम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) प्रजा पालनेवाले ( काव्य ) धीर उत्तम बुद्धिमान के पुत्र ( उशना ) धर्म की कामता करनेवाले ( त्वम् ) मनुष्यों में साधु व्येष्ट हुए जन ! ( त्वम् ) आप ( धान् ) जिन ( वहिष्ठान् ) अतीव विद्या धर्म की प्राप्ति करानेवाले ( वातस्य ) प्राण के बीच योगाभ्यास से ( सुयुजः ) अष्टके युक्त योगी ( वृन् ) धार्मिकजनों की ( अवा ) रक्षा करने हो उनके साथ धर्म के बीच ( तिष्ठ ) स्थिर होओ जो ( ते ) आपके लिए ( यम् ) जिस ( वृत्रहृषम् ) शत्रुओं के मारने-वाले धीर ( मन्दिनम् ) प्रशंसा के योग्य ( पार्यन्तम् ) जिससे पूर्ण काम बने उस मनुष्य को ( वात् ) देवें वा जो शत्रुओं पर ( वज्रम् ) अति तेज शस्त्र धीर अस्त्रों को ( तत्तत् ) ऊँके उस-उसके साथ भी धर्म से वरतें ॥८॥

भाषार्थ—जैसे राजपुरुष परमेश्वर की उपासना करने, पढ़ने धीर उपदेश करनेवाले तथा धीर उत्तम व्यवहारों में स्थिर प्रजा धीर सेनाजनों की रक्षा करें वैसे वे भी उनकी निरन्तर रक्षा किया करें ॥८॥

त्वं सूरौ हरितौ रामयो वृन् मरुचक्रमेतशो नायमिन्द्र ।

मास्यं पारं नवति नाभ्यानामपि कर्त्तव्यवर्त्तयोऽयं ज्यून ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्य्य के देनेवाले सभाध्यक्ष ! ( त्वम् ) आप ( नाभ्यम् ) यह ( सूरः ) सूर्यलोक जैसे ( हरितः ) किरणों को वा जैसे ( एतत् ) उत्तम बड़ा ( वज्रम् ) जिससे रथ दुरकता है उस पहिये की यथायोग्य काम में लगाता है ( न ) वैसे ( मरुचक्रम् ) विषयों में न संग करने धीर ( वृन् ) प्रजाजनों

की बर्ष की प्राप्ति करानेहारे मनुष्यों की ( भरत् ) पुष्टि और पालना करो तथा ( माध्यानाम् ) नौकाओं से पार करने योग्य जो ( नवतिम् ) जल में चमने के लिए नव्हे रथ हैं उनको ( पारश् ) समुद्र के पार ( प्रास्य ) उत्तमता से पहुँचावो । तथा उन उक्त पुरुषार्थी पुरुषों को ( अपि ) भी ( कलम् ) कृपाँ खुदान और कर्म करने को ( अवर्त्तय ) प्रवृत्त करावो और प्राप यहाँ हम लोगों को सदा ( रमय ) आनन्द से रमावो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में लुपापमा और श्लेषालंकार है । जैसे मृग्य सबको अपने-अपने कामों में लगाता है वैसे उत्तम शास्त्र जाननेवाले विद्वान् जन मूर्खजनों को शास्त्र और शरीर कर्म में प्रवृत्त कर सब सुखों को सिद्ध करावें ॥ १३ ॥

स्व नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीकै ।

अ नो वाजान् रथ्योऽश्वबुध्यानिषे यन्धि श्वसे सूनृतायै ॥१४॥

पदार्थ—( वज्रिव ) जिसकी प्रशंसित विशेष ज्ञानयुक्त नीति विद्यमान है सो ( इन्द्र ) अश्वों का विनाश करनेहारे हे सेनाध्यक्ष । ( रथ्य ) रथ का से जाने वाला होता हुआ ( रथम् ) तू ( अभीके ) सन्नाम में ( अस्या ) इस प्रत्यक्ष ( दुर्हणाया ) दुःख से मारने योग्य शत्रुओं की सेना और ( दुरितात् ) दुष्ट आचरण से ( न ) हम लोगों की ( पाहि ) रक्षा कर तथा ( इषे ) इच्छा ( अश्वसे ) सुनना वा श्रुति और ( सूनृतायै ) उत्तम मर्य तथा प्रिय वाली के लिए ( नः ) हम लोगों के ( अश्वबुध्याम् ) अन्तरिक्ष में हुए अग्नि आदि पदार्थों को चलाने का बढ़ाने को जो जानते उन्हें और ( वाजान् ) विशेष ज्ञान वा वेगयुक्त सन्बन्धियों को ( अ, यन्धि ) भली-भाँति से ॥ १४ ॥

भाषार्थ—सेनाधीश का चाहिए कि अपनी सेना को शत्रु के मारने से और दुष्ट आचरण से अलग रखे तथा वीरों के लिए बल तथा उनकी इच्छा के अनुकूल बल के बढ़ानेवाले पीने योग्य पदार्थ तथा पुष्कल अन्न दे उनको प्रसन्न और शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर प्रजा की निरन्तर रक्षा करें ॥ १४ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मा सा तं अस्पत्सुमतिर्वि दंसद्वाजप्रमहः समिषो वरत ।

आ नो भज मघवन गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥१५॥

पदार्थ—हे ( वाजप्रमह ) विशेष ज्ञान वा विद्वानों से अच्छे प्रकार सत्कार को प्राप्त किये ( मघवन ) और प्रशंसित सत्कार करने और वन से युक्त जगदीश्वर । ( ते ) आप की कृपा से जो ( सुमतिः ) उत्तम बुद्धि है ( सा ) सी ( अस्पत् ) हमारे निकट से ( मा ) मत ( वि, वस्तु ) विनाश को प्राप्त होवे सब मनुष्य ( इषः ) इच्छा और अन्न आदि पदार्थों को ( स, वरत् ) अच्छे प्रकार स्वीकार करें ( श्वसे ) स्वामी ईश्वर आप ( नः ) हम लोगों को ( गोषु ) पृथिवी, वाणी, धेनु और बर्ष के प्रकाशों से ( आ, भज ) चाहो जिससे ( मंहिष्ठाः ) अत्यन्त सुख और विद्या आदि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग ( ते ) आपके ( सधमाद ) प्रति आनन्द सहित ( स्याम ) आपके विचार में भग्न हो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि उत्तम बुद्धि आदि की प्राप्ति के लिए परमेश्वर को स्वामी मानें और उसकी प्रार्थना करें । जिससे ईश्वर के जैसे गुण, कर्म और स्वभाव है वैसे अपने सिद्ध करके परमात्मा के साथ आनन्द में निरन्तर स्थित हो ॥ १५ ॥

इस सूक्त में स्त्री-पुरुष और राजा प्रजा आदि के धर्म का वर्णन होने से

पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ॥

हे जगदीश्वर ! जैसे आपकी कृपाकटाक्ष का सहाय जिसको प्राप्त हुआ

उस मने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का भाष्य सुख से बनाया

वैसे आगे भी यह ऋग्वेदभाष्य मुझ से बन सके ॥

यह प्रथम अष्टक के आठवें अध्याय में छद्मीसर्वा वर्ग, प्रथम अष्टक, आठवाँ

अध्याय और एकसी इक्कीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्याजी श्रीपरमविद्वान् विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनी

शिष्येण परमहंसपरिब्राजकाचार्येण श्रीमह्यानन्दसरस्वतीस्वामिना

विरचिते आर्यभाषासमन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये

प्रथमाष्टकेऽष्टमोऽध्यायोऽसमाप्तः ॥



## अथ द्वितीयाष्टकारम्भः

### तत्र प्रथमोऽध्यायः

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

अ बहुस्य पञ्चवर्षस्य द्वाविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य कवीवान् ऋषिः ।

विश्वेदेवा देवताः । १, ५, १४ भुरिक् पञ्क्ति, ४ निचुत्यक्ति, ३, १५ स्वरपञ्क्ति, ६ विराट् पञ्क्तिश्च । पञ्चम

स्वरः । २, ६, १०, १३ विराट् त्रिष्टुप्, ८, १२

निचुत् त्रिष्टुप्, ७, ११ त्रिष्टुप् च इन्द्र ।

असत् स्वर ॥

अथ द्वितीय अष्टक के प्रथम अध्याय का आरम्भ है उसमें एकसी आईतरे सूक्त के प्रथम मन्त्र में सभापति के कार्य का उपदेश किया जाता है—

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळहुषं भरध्वम् ।

दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुधेव मरुतो रोदस्योः ॥१॥

पदार्थ—( रघुमन्यव ) थोड़े क्रोधवाले मनुष्यों । ( रोदस्योः ) सूनि और सूर्यमण्डल में जैसे ( भरत ) पवन विद्यमान वैसे ( ऋषुधेव ) जिसमें बाण भरे जाते उस धनुष में जैसे वैसे ( वीरैः ) वीर मनुष्यों के साथ वर्त्तमान तुम ( मीळहुषे ) सज्जनों के प्रति सुस्वरूपी वृष्टि करने और ( रुद्राय ) दुष्टों को हलानेहारे सभाध्यक्षों के लिए ( वः ) तुम लोगों की ( पान्तम् ) रक्षा करते हुए ( यज्ञम् ) सज्जम करने योग्य उत्तम व्यवहार और ( अन्धः ) अन्ध तथा ( दिवः ) विद्या प्रकाशों जो कि ( असुरस्य ) अविद्वानों के सम्बन्ध में वर्त्तमान उपदेश आदि उनको जैसे ( प्र, भरध्वम् ) धारण वा पुष्ट करो वैसे मैं इस तुम्हारे व्यवहार की ( अस्तोषि ) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पूर्णोपमा और वाचकलुप्तोपमा दो अलंकार हैं । जब मनुष्यों का योग्य पुरुषों के साथ अच्छा यत्न बनता है तब कठिन काम भी सहज से सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

अब स्त्री-पुरुषों के व्यवहार को अगले मन्त्र में कहा है—

पत्नीव पुर्वहृति वाष्ट्रध्या उपासानक्रा पुरुषा विदाने ।

स्तरीनात्क व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदशी हिरण्येः ॥२॥

पदार्थ—हे सरल स्वभावयुक्त उत्तम स्त्री । तू ( पत्नीव ) जैसे यज्ञादि कर्म में साथ रहनेवाली विद्वान् की स्त्री ( वाष्ट्रध्या ) वृद्धि करने को अर्थात् गृहस्थाश्रम आदि व्यवहारों के बढ़ाने को ( पुर्वहृतिम् ) जिसका पहले बुलाना होता अर्थात् सब कामों से जिसकी प्रथम सेवा करनी होती उस अपने पति को स्वीकार कर ( पुरुषा ) जो बहुत व्यवहार वा पदार्थों की धारणा करनेहारे ( विदाने ) जाने जाते उन ( उपासानक्रा ) रात्रिदिन के समान बत्तें बैरी बत्ती कर तथा ( सूर्यस्य ) सूर्यमण्डल की ( हिरण्येः ) सुवर्ण-सी चमकती हुई ज्योतिषों और ( श्रिया ) उत्तम शोभा से ( सुदशी ) जिस तेरा अच्छा दर्शन यह ( अस्मिन् ) कुर्ण के समान ( व्युतम् ) अनेक प्रकार बुने हुए विस्तारयुक्त वस्त्र को ( वसाना ) पहनती हुई ( स्तरी ) जैसे कलायन्त्रादिका के सयोग से ढापी हुई नाव हो ( न ) वैसी निरन्तर हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं । पतिव्रता स्त्री विद्यमान अपने पति को प्रसन्न करती और स्त्रीव्रत अर्थात् नियम से अपनी स्त्री में रमनेहारा पति जैसे दिनरात्रि सम्बन्ध से मिला हुआ वर्त्तमान है वैसे सम्बन्ध से वर्त्तमान कपड़े और गहने पहने हुए सुशोभित धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् प्रयत्न करें ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्रों में अच्छे मूर्खों के विचार और व्यवहार का उपदेश करते हैं—

ममत्तं नः परिज्या वसर्हा ममत्तं वातो अपां वृषण्वान् ।

शिशीतमिन्द्रापर्बता युवं नस्तन्नो विष्वे परिवस्यन्तु देवाः ॥३॥



पदार्थ—जैसे ( बलवर्ध ) निवास कराने की योग्यता को प्राप्त होता और ( परिष्कार ) पाये हुए पदार्थों को सब ओर से साता, अथवा दुष्प्रभाव ( न ) हम लोगों को ( भयम् ) प्रकटित करावे वा ( भयम् ) जनों की ( बुद्ध्याम् ) बर्धा करानेवाला ( कालः ) यवन हम लोगों को ( भयम् ) धमन्युक्त करावे । हे ( इन्द्रावर्ध ) सूर्य और मेघ के समान बलवान् बढ़ाने और उपदेश करनेवाला । ( भुक् ) तुम दोनों ( तः ) हम लोगों को ( शिष्यतम् ) प्रतिस्वीकृत बुद्धि से युक्त करो वा ( विष्णवे ) सब ( देवाः ) विद्वान् लोग ( नः ) हम लोगों के लिए ( वारि-वस्यन्तु ) सेवन प्रार्थना आशय करें जैसे ( तत् ) उन सबको सरकार युक्त हम लोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य जैसे हम लोगों को प्रसन्न करें वैसे हम लोग भी उन मनुष्यों को प्रसन्न करें ॥ ३ ॥

उत स्या मे यज्ञसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तीशिजो हवर्धै ।

य वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा गस्पिनस्यायोः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( मे ) मेरे ( यज्ञसा ) उत्तम यज्ञ में ( श्वेतनायै ) प्रकाश के लिए ( व्यन्ता ) अनेक प्रकार के बल से युक्त ( पान्ता ) रक्षा करनेवाले ( रथा ) वे पूर्वोक्त पढ़ाने और उपदेश करनेवाले ( हवर्धै ) हम लोगों के प्रहण करने को ( मातरा ) मान करनेवाले ( गस्पिनस्य ) प्रहण करने योग्य ( आयो ) जीवन प्रार्थना आयु के बढ़ाने को ( प्र ) प्रवृत्त होते हैं तथा जैसे तुम लोग ( अपान् ) जलो के ( नपातम् ) विनाशार्थित मातृ को वा जलो के न बिरने को ( प्र, कृणुध्वम् ) सिद्ध करो वैसे ( उन ) निश्चय से ( औशिजः ) कामना करते हुए का सन्तान में ( नः ) तुम लोगों की आयु को निरन्तर बढ़ाऊँ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सुन्दर सिद्धा से हम लोगों की आयु को तुम बढ़ाओ वैसे हम भी तुम्हारी आयु की उन्नति किया करें ॥ ४ ॥

आ वी रुवधुमीशिजो हवर्धै योषेव शंसमर्जुनस्य नंशै ।

प्र वः पुष्णे दावन आ अच्छा बोचेय वसुतातिमधेः ॥५॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( औशिजः ) विद्या की कामना करनेवाले का पुत्र में ( व ) तुम लोगों के ( रुवधुम् ) अन्धे कहे हुए उत्तम उपदेश के ( आ, हवर्धै ) प्रहण करने के लिए ( पुष्णे ) रूप के ( शंसम् ) प्रशंसित व्यवहार की वा ( योषेव ) विद्वानों की बाणी के समान दुःख के ( भले ) नाश और ( व ) तुम लोगों की ( पुष्णे ) पुष्टि करने तथा ( दावने ) हमरों को देने के लिए ( आनेः ) अग्नि के सकाश से जो ( वसुतातिम् ) धन उसको ही ( प्र, आ, अच्छा, बोचेय, ) उत्तमता से भली-भाँति अच्छा कहूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे वैद्यजन सब के लिए आरोग्यपन देके रोगों को जल्दी दूर कराते वैसे सब विद्यावान् सब को सुखी कर अन्धकी प्रतिष्ठावाले करें ॥ ५ ॥

अतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदेने विश्वतः सीम् ।

श्रोतुं नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरज्जिः ॥६॥

पदार्थ—हे ( मित्रावरुणा ) मित्र और उत्तमजन ( सुश्रोतु, मे ) मुझ अन्धे सुननेवाले के ( हमा ) इन ( हवा ) देने-लेने योग्य वचनों को ( श्रुतम् ) सुनो ( उत ) और ( सदेने ) सभा वा ( विश्वतः ) सब ओर से ( सीम् ) मर्यादा में ( श्रुतम् ) सुनो अर्थात् वहाँ की चर्चा को समझो तथा ( अद्भिः ) जलों से वैसे ( सिन्धुः ) नदी ( सुक्षेत्रा ) उत्तम खेती को प्राप्त हो वैसे ( औशुरातिः ) जिसका सुनना दूसरे को देना है वह ( न ) हम लोगों के वचनों को ( श्रोतु ) सुने ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानों को चाहिए कि सब के प्रश्नों को सुनके यथावत् उनका समाधान करें ॥ ६ ॥

स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पजे ।

अतरये प्रियरये दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुध्नानासीं अगमन् ॥७॥

पदार्थ—जैसे विद्वान् जन । ( पक्षे ) पदार्थों के पढ़ानेवाले ( अतरये ) सुने हुए रमण करने योग्य रथ वा ( प्रियरये ) प्रति मनोहर रथ में ( सद्यः ) कौम ( पुष्टिम् ) पुष्टि को ( वधाना ) चारण करते और दुःख को ( निरुध्ना-नासीः ) रोकते हुए ( अगमन् ) जायें वैसे हे ( वरुण ) गुणों से उत्तमता को प्राप्त और ( मित्र ) मित्र तुम ( पृक्षयामेषु ) जो पूछे जाते उनके यम-नियमों में ( गवां, शता ) सैकड़ों वचनों को प्राप्त होओ । और जो तुम्हारी ( रातिः ) दान देनेवाली स्त्री है ( सा ) वह ( वाम् ) तुम दोनों की ( स्तुषे ) स्तुति करती है वैसे मैं भी स्तुति करूँ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस ससार में विद्वान् अग्रे पुष्टार्थ से अनेको अद्भुत वानों को बनाते हैं वैसे औरों को भी बनाते चाहिए ॥ ७ ॥

अस्य स्तुषे महिमयस्य राघः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।

अनो यः पजेम्यौ वाजिनीवान्श्रावतो रयिनो मधं धुरिः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! राघ ( राघव ) इन्द्र ( अश्वत्थामत ) बहुत घोड़ों से युक्त ( रयिनः ) प्रशंसित रथ और ( महिमयस्य ) प्रशंसा करने योग्य उत्तम वनवाले जन के ( राघः ) जन की ( स्तुषे ) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हो उन भावके उस काम की ( सुवीराः ) सुन्दर शूरवीर मनुष्योंवाले हम लोग ( सचा ) सम्बन्ध से ( सनेम ) अन्धे प्रकार सेवें ( य ) जो ( नहुषः ) शुभ-प्रशुभ कामों से बधा हुआ ( मधः ) मनुष्य ( पजेम्यौ ) एक स्थान की पढ़ानेवाले यात्री से ( वाजिनीवाम् ) प्रशंसित वेदोक्त किया युक्त होता है वह ( धुरिः ) विद्वान् ( मधम् ) मेरे लिए इस वेदोक्त मिलपविद्या की देवे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे पुरुषार्थी मनुष्य समृद्धिमान् होता है वैसे सब लोगों को होना चाहिए ॥ ८ ॥

अनो यो मित्रावरुणावभिभृगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।

स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धंस आप यदी होत्राभिर्भुतावा ॥९॥

पदार्थ—हे सत्य उपदेश और यज्ञ करानेवालो ! ( यः ) जो ( ज्ञम् ) विद्वान् ( वाम् ) तुम दोनों के ( अपः ) प्राण अर्थात् बलों को ( मित्रावरुणा ) प्राण तथा उद्यम जैसे वैसे ( अभिभृक् ) आगे से द्रोह करता वा ( अक्ष्णयाध्रुक् ) कुटिलरीति से द्रोह करता हुआ ( न ) नहीं ( सुनोति ) उत्पन्न करता ( सः ) वह ( स्वयम् ) आप ( हृदये ) अपने हृदय में ( यक्ष्मम् ) राजरोग को ( नि, हन्ते ) निरन्तर चारण करता वा ( यत् ) जो ( भुतावा ) सत्य भाव से सेवन करनेवाला ( होत्राभिः ) प्रहण करने योग्य क्रियाओं से ( ईम् ) सब ओर से आपके व्यवहारों को प्राप्त होता है वह ( आप ) अपने हृदय में सुख को निरन्तर चारण करता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य परोपकार करनेवाले विद्वानों से द्रोह करता वह सदा दुःखी और जो ग्रीति करता है वह सुखी होता है ॥ ९ ॥

अथ युद्ध के विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

स ब्राधतो नहुषो दंसृजुतः शर्धेस्तरौ नरां मूर्धभवाः ।

विसृष्टरातिर्याति बाळहसुत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छुरं ॥१०॥२॥

पदार्थ—जो ( बंसृजुतः ) विनाश करनेवाले वीरों से प्रेरणा किया ( शर्धे-स्तरः ) अत्यन्त बलवान् ( मूर्धभवाः ) जिसका उद्यम के साथ सुनना और धन आदि पदार्थ ( विसृष्टरातिः ) जिसने अनेक प्रकार के दान आदि उत्तम-उत्तम काम सिद्ध किये ( बाळहसुत्वा ) जो प्रशंसित बल से चलने ( दुरः ) और शत्रुओं को मारनेवाला ( नहुषः ) मनुष्य ( नरां ) नायक वीरों की ( विश्वासु ) समस्त ( पृत्सु ) सेनाओं में ( सवम् ) शत्रुओं के मारनेवाले वीर सेनाजनों की ( इत् ) ही प्रहण कर ( ब्राधतः ) विरोध करनेवालों की युद्ध के लिए ( याति ) प्राप्त होता है ( सः ) वह विजय को पाता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अपने शत्रु से अधिक युद्ध की सामग्री को इकट्ठी कर अन्धे पुरुषों के सहाय से उस शत्रु को जीतें ॥ १० ॥

फिर उपदेश करनेवाले का कर्तव्य अगले मन्त्रों में कहा है—

अथ मन्ता नहुषो हर्व सूरैः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्त्राः ।

नमोजुवो यक्षिरवस्य राघः प्रशस्तये मदिना रथवते ॥११॥

पदार्थ—हे ( मन्त्रा ) धान्य करनेवाले ( राजानः ) प्रकाशमान सज्जनों ! तुम ( अमृतस्य ) आत्मरूप से मरणधर्म रहित ( सूरैः ) समस्त विद्याओं को जाननेवाले ( नहुषः ) विद्वान् जन के ( हवन् ) उपदेश को ( श्रोतः ) सुनो ( नमोजुवः ) विमान आदि से आकाश में गमन करते हुए तुम ( यत् ) जो ( निर-वस्य ) रक्षाहीन का ( राघः ) धन है उसको ( मन्त्र ) प्राप्त होओ ( यक्ष ) इसके धनान्तर ( मदिना ) बहूप्यन से ( प्रशस्तये ) प्रशंसित ( रथवते ) बहुत रथ वाले को धन देओ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो वरमेस्वर, परम विद्वान् और अपने आत्मा के सकाश से विरोधी नहीं होते और उनके उपदेशों का ग्रहण करें वे विद्याओं को प्राप्त हुए महाशय होते हैं ॥ ११ ॥

एतं शर्धे धाम यस्य सूरैरित्येवोचन् दशतयस्य नंशै ।

द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विष्वे सन्वन्तु प्रभृयेषु वाजम् ॥१२॥

पदार्थ—( वसुतातिः ) धन आदि ऐश्वर्ययुक्त में जैसे विद्वान् जन ( यस्य ) जिस ( वसतयस्य ) दश प्रकार की विद्याओं से युक्त ( सूरैः ) विद्वान् के सकाश से जिस ( शर्धे ) बलयुक्त ( धाम ) स्थान को ( यक्षोचन् ) कहें वा जो ( विष्वे ) सब विद्वान् ( वाजम् ) ज्ञान वा धन को ( रारन् ) देव ( येषु ) जिन ( प्रभृयेषु ) अन्धे चारण किये हुए पदार्थों में ( द्युम्नानि ) यज्ञ वा वनों का ( सन्वन्तु ) सेवन करें ( इति ) इस प्रकार उस ज्ञान और ( एतम् ) इन पूर्वोक्त सब पदार्थों का सेवन कर जो ( नंशै ) नाश करूँ ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् मनुष्य पूर्ण विद्याओं को जाननेवाले समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते हैं वे यशस्वी होते हैं ॥ १२ ॥

मन्दांमहे दशतयस्य चासोर्द्विर्त्यस्य च विभ्रंतो यन्त्यभा ।

किमिष्टास्व इष्टरश्मिरेत ईशानास्तस्वरुप ऋजते नृन् ॥१३॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( पञ्च ) पढ़ाने, उपदेश करने, पढ़ने और उपदेश सुननेवाले तथा सामान्य मनुष्य ( दशतयस्य ) दश प्रकार के ( भाषे ) विद्या सुख का धारण करनेवाले विद्वान् की विद्या को और ( अम्ना ) अच्छे सत्कार से सिद्ध किये हुए धनो को ( द्वि ) दो बार ( यस्मि ) प्राप्त होते हैं वा जो ( एते ) ये ( ईशानास्त ) समर्थ ( तस्य ) अविद्या, भ्रमज्ञान में डूबने वाले को ( ऋजते ) प्रसिद्ध करते हैं उन ( विभ्रंत ) विद्या सुख से सब की पुष्टि ( नृन् ) और विद्याओं की प्राप्ति करानेवाले मनुष्यों की हम लोग ( मन्दांमहे ) स्तुति करते हैं उनकी विद्या को पाकर मनुष्य ( इष्टास्व ) जिस को बोधे प्राप्त हुए वा ( इष्टरश्मि ) जिसने कला यन्त्रादिको की किरणें जोड़ी ऐसा ( किम् ) क्या नहीं होता है ? ॥१३॥

भाषार्थ—जो अच्छी शिक्षा से सब को विद्वान् करते हुए साधनों के चाहे हुए को सिद्ध करनेवाले समर्थ विद्वानों का सेवन नहीं करते वे अभीष्ट सुख को भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥१३॥

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्धस्तभो विश्वं वरिवस्यन्तु देवाः ।

अर्यो गिरः सद्य आ जम्बुवीरोस्त्राश्चाकन्तूमयैवस्मे ॥१४॥

पदार्थ—जो ( विश्वे, देवाः ) समस्त विद्वान् ( न. ) हम लोगों के लिए ( जम्बुवी. ) प्राप्त होने योग्य ( गिरः ) बालियों की ( सद्य ) शीघ्र ( आ, आकन्तु ) अच्छे प्रकार कामना करें वा ( जम्बुवे. ) अपने और दूसरों के निमित्त तथा ( अस्मे ) हम लोगों ने जो ( अर्यं. ) अच्छा बना हुआ जल है उस की कामना करें और जो ( अर्यं ) वैश्य प्राप्त होने योग्य सब देश, भाषाओं और ( जला. ) शीघ्रों की कामना करें उस ( हिरण्यकर्णम् ) कानों में कुण्डल और ( मणिग्रीवम् ) गले में मणियों को पहिने हुए वैश्य को ( तत् ) तथा उस उक्त व्यवहार और हम लोगों की ( आ, वरिवस्यन्तु ) अच्छे प्रकार सेवा करें उन सब की हम लोग प्रतिष्ठा करावें ॥१४॥

भाषार्थ—जो विद्वान् मनुष्य वा विदुषी पण्डिता स्त्री लड़कें-लड़कियों को शीघ्र विद्वान् और विदुषी करते वा जो बलिष् सभ देशों की भाषाओं को जानके देश-देशान्तर और दीप-दीपान्तर से धन को ला ऐश्वर्ययुक्त होते हैं वे सब को सब प्रकारों से सत्कार करने योग्य हैं ॥१४॥

अथ राजवर्चं विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अत्वारो मा मशर्कारस्य शिखस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।

रथो वा मिश्रावरुणा दीर्घाप्ताः सूर्यसंगमस्तिः सूर्यो नाधीत् ॥१५॥

पदार्थ—हे ( मिश्रावरुणा ) मिश्र और उत्तम जन ! जो ( वाम् ) तुम लोगों का ( रथ ) रथ है वह ( वा ) मुझको प्राप्त होवे जिस ( मशर्कारस्य ) दुष्ट शब्दों का विनाश करते हुए ( आयवसस्य ) पूर्ण सामग्री युक्त ( जिष्णोः ) शत्रुओं को जीतनेवाले ( राज्ञ ) श्वाय और विनय से प्रकाशमान राजा का ( स्यङ्ग-गमस्तिः ) बहुत किरणों से युक्त ( सूर. ) सूर्य के ( न ) समान रथ ( अधीत् ) प्रकाश करता तथा जिसके ( दीर्घाप्ताः ) जिनको अच्छे गुणों ने बहुत व्याप्ति है ( अत्वारः ) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास ये चार आश्रम तथा ( जयः ) सेवा आदि कामों के अधिपति, प्रजापति तथा मृत्युञ्जय ये तीन ( शिखः ) सिखाने योग्य हों वह राज्य करने को योग्य हो ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानकार है । जिस राजा के राज्य में विद्या और अच्छी शिक्षा युक्त सुख, कर्म, स्वभाव से नियमयुक्त धर्मात्मा जन चारों वर्णों और आश्रम तथा सेना, प्रजा और न्यायाधीश हैं वह सूर्य के तुल्य कीर्ति से अच्छी शोभा-युक्त होता है ॥१५॥

इस सूक्त में राजा-प्रजा और साधारण मनुष्यों के धर्म के वर्णन से इस सूक्त में कहे हुए धर्म की पिछले सूक्त के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकली जाईसर्वा सूक्त और तीसरा वर्ण समान हुआ ॥



पुनरित्यस्य त्रयोवर्णस्य त्रयोविंशत्युत्तरतमस्य सूक्तस्य दीर्घतमसः पुनः

कलीकामुवि. । उवा देवता, १, ३, ६, ७, ८, १०,

१३ विराट् जिष्टुप्, २, ४, ८, १२ मिष्टुप् जिष्टुप्,

३ मिष्टुप् च छन्दः । वंशत स्वरः । ११ भुरिक्

पङ्क्तिवृत्तः । पञ्चमः स्वरः.

अथ एकली तेईसर्व सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

स्त्री-पुरुष के विषय को कहते हैं—

पृथू रथो दक्षिण्याया अयोज्यैन देवासीं अमृतांसो अस्थुः ।

कुण्यादुदस्यादया विहायाधिकस्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१॥

पदार्थ—जो ( आशुवाय ) मनुष्यों के इस ( क्षयाय ) धर के लिए ( विहि-सन्ती ) रोगों को दूर करती हुई ( विहाया. ) बड़ी प्रशंसित ( अयं ) वैश्य की कन्या जैसे प्रातःकाल की बेला ( कुण्यात् ) अंधेरे से ( उदस्यात् ) ऊपर की उठती, उदय करती है वैसे विद्वान् ने ( अयोजि ) समुक्त की अर्थात् अपने सङ्ग की और वह ( पृथू ) इस विद्वान् को प्रतिभाव से युक्त करती अपना पति मानती तथा जिन स्त्री पुरुषों का ( दक्षिण्यायाः ) दक्षिण दिशा से ( पृथुः ) विस्तारयुक्त ( रथः ), रथ चलता है उनको ( अमृतांसः ) विनाश रहित ( देवांसः ) अच्छे-अच्छे गुण ( आ, अस्थुः ) उपस्थित होते हैं ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है । जो प्रातःसमय की बेला के गुणयुक्त अर्थात् शीतल स्वभाववाली स्त्री और चन्द्रमा के समान शीतल गुणवाला पुरुष हो उनका परस्पर विवाह हो तो निरन्तर सुख होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।

उवा व्यस्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अंगन्प्रथमा पूर्वहूतो ॥२॥

पदार्थ—( पूर्वहूती ) जिसमें बृहज्जनों का बुलाना होता उस गृहस्थाश्रम में जो ( पुनर्भूः ) विवाहे हुए पति के मर जाने पीछे नियोग से फिर सन्तान उत्पन्न करनेवाली होती वह ( वाजम् ) उत्तम ज्ञान को ( जयन्ती ) जीतती हुई ( बृहती ) बड़ी ( सनुत्री ) सब व्यवहारों को अलग-अलग करने और ( प्रथमा ) प्रथम ( युवतिः ) युवा अवस्था को प्राप्त होनेवाली नवोद्गा स्त्री जैसे ( उवाः ) प्रातःकाल की बेला ( विश्वस्मात् ) समस्त ( भुवनात् ) जगत् के पदार्थों से ( पूर्वा ) प्रथम ( अबोधि ) जानी जाती और ( उक्ता ) ऊँची-ऊँची वस्तुओं को ( वि, अस्थत् ) अच्छे प्रकार प्रकट करती वैसे ( आ, अगम् ) जाती है वह विवाह में योग्य होती है ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है । सब अग्न्या पञ्चीस वर्ष अपनी आयु को विद्या के अभ्यास करने में व्यतीत कर पूरी विद्यावाली होकर अपने समान पति से विवाह कर प्रातःकाल की बेला के समान अच्छे रूपवाली हो ॥ २ ॥

यद्य भागं विमजासि त्वस्य उषो देवि मर्यत्रा सुजाते ।

देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥३॥

पदार्थ—हे ( सुजाते ) उत्तम कीर्ति से प्रकाशित और ( देवि ) अच्छे लक्षणों से शोभा को प्राप्त सुलक्षणी कन्या ! तू ( अद्य ) आज ( नृथ ) व्यवहारों की प्राप्ति करानेवाले मनुष्यों के लिए ( उषः ) प्रातःसमय की बेला के समान ( यत् ) जिस ( भागम् ) सेबने योग्य व्यवहार का ( विमजासि ) अच्छे प्रकार सेबन करती और जो ( अद्य ) इस गृहाश्रम में ( दमूना ) मित्रों में उत्तम ( मर्यत्रा ) मनुष्यों में ( सविता ) सूर्य के समान ( देवः ) प्रकाशमान तेरा पति ( सूर्याय ) परमात्मा के विज्ञान के लिए ( न. ) हम लोगों को ( अनागसः ) विना अपराध के व्यवहारों को ( वोचति ) कहे उन तुम दोनों का सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है । जब दो स्त्री-पुरुष विद्या-बान्, धर्म का आचरण और विद्या का प्रचार करनेवाले सदा परस्पर प्रसन्न हों तब गृहाश्रम में अत्यन्त सुख का सेवन करनेवाले हों ॥३॥

गृहं गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवि अधि नामा दधाना ।

सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्वजते वक्षनाम् ॥४॥

पदार्थ—जो स्त्री जैसे प्रातःकाल की बेला ( गृहना ) दिन वा व्याप्ति है ( गृहगृहम् ) घर-घर को ( अग्रमग्रमिद्वजते ) उत्तम रीति के साथ अच्छी ऊपर से आती ( दिवेदिवि ) और प्रतिदिन ( नाम ) नाम ( वक्षना ) बरती अर्थात् दिन-दिन का नाम आदिस्ववार, सोमवार आदि बरती ( द्योतना ) प्रकाशमान ( वक्षनाम् ) पृथिवी आदि लोकों के ( अग्रमग्रम् ) प्रथम-प्रथम स्थान को ( अजते ) अजती और ( शश्वत् ) निरन्तर ( इत् ) ही ( आ, आगात् ) आती है वैसे ( सिषासन्ती ) उत्तम पदार्थ पति आदि का दिया चाहती हो वह घर के काम को सुशोभित करनेवाली हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है । जैसे सूर्य की कान्ति—धाम सब पदार्थों के अगले-अगले भाग को सेबन करती और नियम से प्रत्येक समय प्राप्त होती है वैसे स्त्री को भी होना चाहिए ॥ ४ ॥

ममस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुवः सूनुते प्रथमा ऊरुस्व ।

पश्चा स बंधया यो अघस्यं घाता जयैम स दक्षिण्या रवेन ॥५॥

पदार्थ—हे ( सूनुते ) सत्य आचरणयुक्त स्त्रि ! तू ( अघः ) प्रातःसमय की बेला के समान वा ( अघस्य ) ऐश्वर्य की ( स्वसा ) बहिन के समान वा ( वरुणस्य ) उत्तम पुरुष की ( जामिः ) कन्या के समान ( प्रथमा ) प्रथम प्रासा को प्राप्त हुई विद्याओं की ( ऊरुस्व ) स्तुति कर ( यः ) जो ( अघस्य ) अपराध का ( घाता ) धारण करनेवाला हो ( सन् ) उसको ( दक्षिण्या ) अच्छी सिखाई हुई सेना और ( रवेन ) विमान आदि आग से जैसे हम लोग ( जयैम )

नीतिं वैते तू ( वत्साः ) उसका तिरस्कार कर जो मनुष्य पापी हो ( सः ) वह ( वत्सा ) पीछा करने अर्थात् तिरस्कार करने योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाधकलुप्तोपमालंकार है। स्त्रियों को चाहिए कि अपने-अपने घर में ऐश्वर्य की उन्नति श्रेष्ठ रीति और पुष्टों का ताड़न निरन्तर किया करें ॥ ५ ॥

उद्दरतां सुनुता उत्पुनन्धीरुदयः शुशुचानासौ असुः ।

स्पर्शां वसुनि तमसापगूळहविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६॥

पदार्थ—हे सत्युषो ! ( सुनुता ) सत्यभाषणादि क्रियावान् होते हुए तुम ओष वैते ( पुनन्धीः ) शरीर के आश्रित क्रिया को धारण करती और ( शुशुचानासः ) निरन्तर पवित्र करातेवाले ( वत्साः ) अग्निवो के समान चमकती-दमकती हुई स्त्रियाँ ( उद्दरताम् ) उत्तमता से प्रेरणा देवे वा ( स्पर्शां ) चाहने योग्य ( वसुनि ) वन आदि पदार्थों को ( उषस्युः ) उन्नति से प्राप्त हों वा जैसे ( उषसः ) प्रभातसमय ( तमसा ) अन्धकार से ( अगूळहवः ) ढँपे हुए पदार्थों और ( विभातीः ) अन्धे प्रकाशों को ( उदाविष्कृण्वन्ति ) ऊपर से प्रकट करते हैं वैसे होमो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाधकलुप्तोपमालंकार है। जब स्त्रियाँ प्रभात समय की बेलाओं के समान वर्तमान अविद्या, मलापन आदि दोषों को निरासे कर बिछा और पाकपन आदि गुणों को प्रकाश कर ऐश्वर्य की उन्नति करती हैं तब वे निरन्तर सुखयुक्त होती हैं ॥ ६ ॥

अपान्यदेत्यभ्यन्यदैति विपुरुषे अहनी सं चरेते ।

वरिस्तोस्तमो अन्या गुहाकरघौदुषाः शोशुचता रयेन ॥७॥

पदार्थ—जो ( विपुरुषे ) संसार में व्याप्त ( अहनी ) रात्रि और दिन एक साथ ( सं, चरेते ) सम्भार करते अर्थात् भाते-जाते हैं उनमें ( वरिस्तो ) सब और से बसनेवाले अन्धकार और उजाले के बीच से ( गुहा ) अन्धकार से संसार को ढाँपनेवाली ( तम ) रात्रि ( अन्या ) और कामों को ( अकः ) करती तथा ( उषाः ) सूर्य के प्रकाश से पदार्थों को तपानेवाला दिन ( शोशुचता ) अत्यन्त प्रकाश और ( रयेन ) रमण करने योग्य रूप से ( अघौत् ) उजाला करता ( अघ्यत् ) अपने से मिला प्रकाश को ( अप, एति ) दूर करता तथा ( अघ्यत् ) अन्य प्रकाश को ( अघ्येति ) सब और से प्राप्त होता इस व्यवहार के समान स्त्री-पुरुष अपना वर्त्ताव बर्ते ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाधकलुप्तोपमालंकार है। इस जगत् में अन्धेरा, उजाला दो पदार्थ हैं जिनसे सदैव पृथिवी आदि लोको के आधे भाग में दिन और आधे में रात्रि रहती है। जो वस्तु अन्धकार को छोड़ता वह उजाले का ग्रहण करता और जितना प्रकाश अन्धकार को छोड़ता उतना रात्रि लेती दोनों पारी से सदैव अपनी व्याप्ति के साथ पाय-पाय हुए पदार्थ को ढाँपते और दोनों एक साथ वर्त्तमान हैं उनका जहाँ-जहाँ सयोग है वहाँ-वहाँ संघ्या और जहाँ-जहाँ वियोग होता अर्थात् अलग होते वहाँ-वहाँ रात्रि और दिन होता जो स्त्री-पुरुष ऐसे मिल और अलग होकर दुःख के कारणों को छोड़ते और सुख के कारणों को ग्रहण करते वे सदैव आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

सदृशीर्य सदृशीरितु श्रो दीर्घ संचन्ते वरुणस्य धामं ।

अनवद्यास्त्रिशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥८॥

पदार्थ—जो ( अद्य ) आज के दिन ( अनवद्याः ) प्रशंसित ( सद्योः ) एकसी ( उ ) अथवा तो ( इव ) प्रगले दिन ( सद्यो ) एकसी रात्रि और प्रभात बेला ( वरुणस्य ) पवन के ( दीर्घम् ) बड़े समय वा ( धाम ) स्थान को ( संचन्ते ) सयोग को प्राप्त होती और ( एकैका ) उनमें से प्रत्येक ( त्रिशतम्, योजनानि ) एकसौ बीस कोश और ( क्रतुम् ) कर्म को ( सद्यः ) शीघ्र ( परि, यन्ति ) पर्याप्त से प्राप्त होती हैं वे ( इत् ) व्यर्थ किसी को न खोना चाहिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे ईश्वर के नियम को प्राप्त हो गये, होते और होनेवाले रात्रि, दिन हैं उनका अन्वयापन नहीं होता वैसे ही इस सब संसार के कर्म का विपरीत भाव नहीं होता तथा जो मनुष्य आलस को छोड़, कृष्टिकर्म की अनुकूलता से अच्छा यत्न किया करते हैं वे प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्यवाले होते हैं और जैसे यह रात्रि दिन नियत समय आता और जाता वैसे ही मनुष्यों को व्यवहारों में सदा अपना वर्त्ताव रक्षना चाहिए ॥ ८ ॥

जानत्यहः प्रथमस्य नामं शुक्रा कृष्णार्दजनिष्ट त्रितीची ।

ऋतस्य योषा न भिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे ( प्रथमस्य ) विस्तरित पहले ( शुक्रा ) दिन वा दिन के आश्रित भाव का ( नाम ) नाम ( जानती ) जानती हुई ( शुक्रा ) सुख करनेवाली ( त्रितीची ) सूपेदी की प्राप्त होती हुई प्रभत-समय की बेला ( कृष्णात् ) काले रङ्गवाले अन्धेरे से ( अजनिष्ट ) प्रसिद्ध होती है वा ( ऋतस्य ) सत्य आचरणयुक्त मनुष्य की ( योषा ) स्त्री के समान ( अहरहः ) दिन-दिन ( आचरन्ती )

आचरण करती हुई ( निष्कृतम् ) उत्पन्न हुए वा निश्चय को प्राप्त ( धाम ) स्थान को ( न ) नहीं ( भिनाति ) भष्ट करती वैसे तू हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाधकलुप्तोपमालंकार है। जैसे प्रातः समय की बेला अन्धकार से उत्पन्न होकर दिन को प्रसिद्ध करती है दिन से विरोध करनेवाली नहीं होती वैसे स्त्री सत्य-आचरण से अपने माता-पिता और पति के कुल को उत्तम कीर्ति से प्रसन्न कर अपने स्वयं और पति के प्रति उनके अप्रसन्न होने का व्यवहार कुछ न करे ॥ ९ ॥

कन्यैव तन्वाशाशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।

संस्मथमाना युवतिः पुग्स्तादाविर्भासि कृणुषे विभाती ॥१०॥१॥

पदार्थ—हे ( देवि ) कामना करनेवाली कुमारी ! जो तू ( तन्वा ) शरीर के ( कन्यैव ) कन्या के समान वर्तमान ( शाशदानां ) व्यवहारों में प्रति तेजी दिखाती हुई ( इयक्षमाणम् ) अत्यन्त सज्ज करते हुए ( देवम् ) विद्वान् पति को ( एषि ) प्राप्त होती ( पुग्स्तात् ) और सम्मुख ( विभाती ) अनेक प्रकार शत्रुगणों से प्रकाशमान ( युवतिः ) बहानी को प्राप्त हुई ( संस्मथमाना ) मन्द-मन्द हँसती हुई ( वीक्षसि ) छाती आदि अङ्गों को ( आशिः, कृणुषे ) प्रसिद्ध करती है तो तू प्रभात की बेला की उपमा को प्राप्त होती है ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री पूरी विद्या, विद्या और अपने समान मनमाने पति को पाकर सुखी होती है वैसे ही और स्त्रियों को भी आचरण करना चाहिए ॥ १० ॥

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्व कृणुषे द्यो कम् ।

मद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तर्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥

पदार्थ—हे कन्या ! ( सुसंकाशा ) अच्छी सिखावट से सिखाई हुई ( योषा ) युवति ( मातृमृष्टेव ) पड़ी हुई पण्डिता माता ने सत्यशिक्षा देकर सुख की-सी जो ( द्यो ) देखने को ( तन्वम् ) अपने शरीर को ( आशिः ) प्रकट ( कृणुषे ) करती ( मद्रा ) और मज्जनरूप आचरण करती हुई ( कम् ) सुखस्वरूप पति को प्राप्त होती है तो ( त्वम् ) तू ( वितरम् ) सुख देनेवाले पदार्थ और सुख को ( व्युच्छ ) स्वीकार कर, हे ( उष ) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान स्त्रि ! जैसे ( अन्या ) और ( उषसः ) प्रभात समय ( न ) नहीं ( नशन्त ) बिनाश को प्राप्त होते वैसे ( ते ) तेरा ( तत् ) उक्त सुख न बिनाश को प्राप्त हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे प्रातःकाल की बेला नियम से अपने-अपने समय और देश को प्राप्त होती है वैसे स्त्री अपने-अपने पति को पाकर ऋतुधर्म को प्राप्त होवे ॥ ११ ॥

अश्वावतीर्गोमतीविश्ववारायुतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।

परां च यन्ति पुनरा च यन्ति मद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे ( सूर्यस्य ) सूर्यमण्डल की ( रश्मिभिः ) किरणों के साथ उत्पन्न ( यतमाना ) उत्तम यत्न करती हुई ( अश्वावती ) जिनकी प्रशंसित व्याप्तियाँ ( गोमती ) जो बहुत पृथिवी आदि लोक और किरणों से युक्त ( विश्ववाराः ) समस्त जगत् को अपने में लेती और ( मद्रा ) अच्छे ( नाम ) नामों को ( वहमाना ) सबकी बुद्धियों में पहुँचाती हुई ( उषसः ) प्रभातवेला नियम के साथ ( परा, यन्ति ) वीछे को जाती ( च ) और ( पुनः ) फिर ( च ) भी ( आ, यन्ति ) जाती हैं वैसे नियम से तुम अपना वर्त्ताव बर्तों ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाधकलुप्तोपमालंकार है। जैसे प्रभातवेला सूर्य के संयोग से नियम को प्राप्त है वैसे विवाहित स्त्रीपुरुष परस्पर प्रेम के स्थिर करनेवाले हो ॥ १२ ॥

ऋतस्य रश्मिर्मनुयच्छमाना भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।

उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥१३॥६॥

पदार्थ—हे ( उषा ) प्रातःसमय की बेला-सी अलखेली स्त्रि ! तू ( अद्य ) आज जैसे ( ऋतस्य ) जल की ( रश्मिम् ) किरण को प्रभात समय की बेला स्वीकार करती वैसे मन से प्यारे पति को ( अनुयच्छमाना ) अनुकूलता से प्राप्त हुई ( अस्मासु ) हम लोगों में ( भद्रं भद्रम्, क्रतुम् ) अच्छी-अच्छी बुद्धि वा अच्छे-अच्छे काम को ( धेहि ) धर ( सुहवा ) और उत्तम सुख देनेवाली होती हुई ( न ) हम लोगों को ( व्युच्छ ) ठहरा जिससे ( मघवत्सु ) प्रशंसित जनवाले ( अस्मासु ) हम लोगों में ( रायो ) शोभा ( च ) भी ( स्युः ) हों ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाधकलुप्तोपमालंकार है। जैसे श्रेष्ठ स्त्री अपने-अपने पति आदि की यथावत् सेवा कर बुद्धि और ऐश्वर्य को नित्य बढ़ाती है वैसे प्रभात समय की बेला भी है ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभात समय की बेला के वृष्टान्त से स्त्रियों के धर्म का वर्णन करने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त में कहे अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ तेईसवाँ सूक्त और छठा वर्ष पूरा हुआ ॥



अथ चतुर्विंशत्युत्तराशतसप्तस्य चतुर्विंशत्यस्य सूक्तस्य वैधर्म्यतः कवीनाम् ऋषिः ।

उवाच वेत्ता । १, २, ६, ८—१० निष्पत्तिः ४, ७,

११ निष्पत्तिः १२ विराट् निष्पत्तिः १३ विराट्

१३ भूरिक पठितः, ४ पठितः, ८ विराट्

पठितः १३ पठितः, ४ पठितः, ८ विराट्

अथ तेरह ऋचावाले एकली कीरीसब सूक्त का आरम्भ है उस के

प्रथम मन्त्र में सूर्यलोक के विषय का वर्णन किया है—

उवाच उच्छन्ती समिधाने अग्रा उच्छन्त्यस्य उर्विया ज्योतिरभूत् ।

देवा नो अत्र सविता अर्थः प्रासावीद् द्विपत्तं चतुष्पदित्यै ॥१॥

पदार्थ—जब (समिधाने) जलते हुए (अग्रा) अग्नि का निमित्त (सूर्यः) सूर्यमण्डल (उच्छन्) उदय होता हुआ (उर्विया) पृथिवी के साथ (ज्योतिः) प्रकाश को (अत्र) मिलाता तब (उच्छन्ती) अन्वकार को निकालती हुई (उवाच) प्रातःकाल की बेला उत्पन्न होती है ऐसे (अत्र) इस सप्ताह में (सविता) कामो में प्रेरणा देनेवाला (देव) उत्तम प्रकाशयुक्त सूर्य-मण्डल (नः) हम लोगों को (अर्थम्) प्रयोजन को (इत्यै) प्राप्त कराने के लिए (प्रासावीद्) सारांश को उत्पन्न करता तथा (द्विपत्तं) दो पगवाले मनुष्य आदि वा (चतुष्पत्) चार पगवाले चौपाये, पशु आदि प्राणियों को (तु) शीघ्र (प्र) उत्तमता से उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—पृथिवी का सूर्य की किरणों के साथ संयोग होता है वही संयोग तिरछा जाता हुआ प्रभात समय के होने का कारण होता है, जो सूर्य न हो तो अनेक प्रकार के पदार्थ अलग-अलग नहीं बने जा सकते ॥ १ ॥

अथ उवाच के दृष्टान्त से स्त्री के विषय को अनेक मन्त्रों में कहा है—

अभिनतो देव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।

ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां मथमोषा व्यधौत् ॥२॥

पदार्थ—हे स्त्रिय ! जैसे (उवाच) प्रातः समय की बेला (देव्यानि) दिव्य गुणवाले (व्रतानि) सत्य पदार्थ वा सत्य कर्मों को (अभिनती) न छोड़ती और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (प्रमिनती) अच्छे प्रकार व्यतीत करती हुई (शश्वतीनाम्) समातन प्रभातवेलाओं वा प्रकृतियों और (ईयुषीणाम्) हो गई प्रभातवेलाओं की (उपमा) उपमा दृष्टान्त और (आयतीनाम्) आनेवाली प्रभातवेलाओं में (प्रमना) पहली सप्ताह को (व्यधौत्) अनेक प्रकार से प्रकाशित कराती और जागते अर्थात् व्यवहारों को करते हुए मनुष्यों को धुक्ति के साथ सदा धैर्य करने योग्य है वैसे ही अपना वर्तन रख ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है । जैसे यह प्रातः समय की बेला विस्तारयुक्त पृथिवी और सूर्य के साथ चलनेवाली जितने पूर्व देश को छोड़ती उतने उत्तर देश को ग्रहण करती है तथा वर्तमान और व्यतीत हुई प्रातः समय की बेलाओं की उपमा और आनेवाली की पहली हुई कार्यरूप अणु का और अणु के कारण का अच्छे प्रकार ज्ञान कराती और सत्य कर्म के आचरण निमित्तक समय का अङ्ग होने से उमर को बढ़ाती हुई वर्तमान है वह सेवन की हुई बुद्धि और धारोम्य आदि अच्छे गुणों का देती है वैसे पण्डिता स्त्री हो ॥ २ ॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।

ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३॥

पदार्थ—जैसे ही (एषा) यह प्रातः समय की बेला (ज्योतिः) प्रकाश को (वसाना) ग्रहण करती हुई (समना) सप्ताह में (विश्व) सूर्य के प्रकाश की (दुहिता) लड़की-सी हम लोगों ने (पुरस्तात्) दिन के पहले (प्रत्यदर्शि) प्रतीति से देखी वा जैसे समस्त विद्या पढ़ा हुआ और जन (ऋतस्य) सत्य कारण के (पन्थाम्) मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से प्राप्त होता वा (साधु) अच्छे प्रकार जैसे ही वैसे (प्रजानतीव) विशेष ज्ञानवाली विदुषी पढ़ी हुई पण्डिता स्त्री के समान प्रभातवेला (विश्व) दिशाओं को (न) नहीं (मिनाति) छोड़ती वैसे अपना वर्तन वर्तनी हुई स्त्री उत्तम हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है । जैसे अच्छे नियम से वर्तमान हुई प्रातः समय की बेला सब का आनन्दित कराती और वह उत्तम अपने भाव को नहीं नष्ट करती वैसे स्त्रियाँ गृहस्थ धर्म में वर्तें ॥ ३ ॥

उपो अदर्शि शुन्धुवो न वक्षो नोधाह्वाविरकृत मियाणि ।

अश्वसन्न संसतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥४॥

पदार्थ—जैसे प्रभातवेला (वक्ष) पाये पदार्थ को (शुन्धुवः) सूर्य की किरणों के (न) समान वा (मियाणि) प्रिय वचना की (नोधाह्वा) सब शास्त्रों की स्तुति प्रशंसा करनेवाले विद्वान् के समान वा (अश्वसत्) भाजन के पदार्थों को पकानेवाले के (न) समान (संसतः) मोते हुए प्राणियों को (बोधयन्ती) निरन्तर जगाती हुई और (एयुषीणाम्) सब और से व्यतीत हो गई प्रभात वेलाओं की (शश्वत्तमा) अतीव समातन होती हुई (पुनः) फिर (आ, अगात्) आती और (आविरकृत) सप्ताह को प्रकाशित करती वह हम लोगों ने (उपो) समीप में (वक्षति) देखी वैसे स्त्री उत्तम होती है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो स्त्री प्रभातवेला का सूर्य के विद्वान् के समान अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्वान् करती है वह सब का सत्कार करने योग्य है ॥ ४ ॥

पूर्वे अर्धे रजसो अप्यस्य गावां जनित्र्यकुत म केतुम् ।

व्यु प्रथते वितरं वरीय ओमा पृथन्ती पित्रोरुपस्था ॥५॥७॥

पदार्थ—जैसे प्रातः समय की बेला कन्या के तुल्य (उवाच) दोनों लोको को (पृथन्ती) सुख से पुरती और (वितरं) अपने माता-पिता के समान भूमि और सूर्यमण्डल की (उपस्था) गोद में ठहरी हुई (वितरम्) जिससे विविध प्रकार के दुःखों के पार होते हैं उस (वरीयः) अत्यन्त उत्तम काम को (वि, व, वक्षते) विवेक करके तो विस्तारती तथा (गाम्) सूर्य की किरणों को (जनित्री) उत्पन्न करनेवाली (अप्यस्य) विस्तारयुक्त संसार में हुए (रजस) लोकसमूह के (पूर्व) प्रथम भागे वर्तमान (अर्धे) बाधे भाग में (केतुम्) किरणों को (प्र, धा, अकृत) प्रसिद्ध करती है वैसे वर्तमान करती हुई स्त्री उत्तम होती है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है । प्रभातवेला से प्रसिद्ध हुआ सूर्यमण्डल का प्रकाश भूगोल के बाधे भाग में सदा उजाला करता है और दूसरे बाधे भाग में रात्रि होती है उन दिन-रात्रि के बीच में प्रातः समय की बेला विराजमान है ऐसे निरन्तर रात्रि प्रभातवेला और दिन क्रम से वर्तमान है इस से क्या ध्याया कि जितना पृथिवी का प्रदेश सूर्यमण्डल के आगे होता उतने में दिन और जितना पीछे होता जाता उतने में रात्रि होती तथा साथ और प्रातःकाल की सन्धि में उवाच होती है इसी उक्त प्रकार से लोकों के घूमने के द्वारा ये साथ प्रातःकाल भी घूमते-से बिछाई देते हैं ॥ ५ ॥

एषेदेधा पुंस्तमा दशे कं नाजामि न परिं वृणक्ति जामिम् ।

अरेपसा तन्वाः शाशदाना नार्भादीपते न महो विभाती ॥६॥

पदार्थ—जैसे (अरेपसा) न कम्पते हुए निर्भय (तन्वा) शरीर से (शाशदाना) अति सुन्दरी (पुस्तमा) बहुत पदार्थों को चाहनेवाली स्त्री (वहो) देखने के लिए (कम्) सुख को पति के (न) समान (परि, वृणक्ति) सब और से (न) नहीं छोड़ती पति भी (जामिम्) अपनी स्त्री के (न) समान सुख को (न) नहीं छोड़ता और (अजामिम्) जो अपनी स्त्री नहीं उसको सब प्रकार से छोड़ता है वैसे (एष) ही (एषा) यह प्रातः समय की बेला (अर्भात्) बीडे से (इत्) भी (महः) बहुत सूर्य के तेज का (विभाती) प्रकाश कराती हुई बड़े फैलते हुए सूर्य के प्रकाश को नहीं छोड़ती किन्तु समस्त को (इषते) प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है । जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति को छोड़ और के पति का सङ्ग नहीं करती वा जैसे स्त्रीव्रत पुरुष अपनी स्त्री से मिल दूसरी स्त्री का सम्बन्ध नहीं करता और विवाह किये हुए स्त्रीपुरुष नियम और समय के अनुकूल सङ्ग करते हैं वैसे ही प्रातः समय की बेला नियम युक्त देश और समय को छोड़ अन्यत्र युक्त नहीं होती ॥ ६ ॥

अश्वातेव पुंस एति प्रतीची गत्तार्त्तगिव सनये धनानाम् ।

जायेव पर्य उशती सुवासा उवा हस्तेव नि रिणीते अप्सः ॥७॥

पदार्थ—यह (उवाच) प्रातः समय की बेला (प्रतीची) प्रत्येक स्थान को पहुँचती हुई (अश्वातेव) बिना भाई की कन्या जैसे (पुसः) पुत्र को प्राप्त हो उसके समान वा जैसे (गत्तार्त्तगिव) दुःखरूपी गढ़ में पड़ा हुआ जन (जनानाम्) धन आदि पदार्थों के (सनये) विभाग करने के लिए राजगृह को प्राप्त हो वैसे अब ऊँचे-नीचे पदार्थों को (एति) पहुँचती तथा (पर्य) अपने पति के निष् (उशती) कामना करती हुई (सुवासा) और सुन्दर वस्त्रोंवाली (अप्सः) विवाहिता स्त्री के समान पदार्थों का सेवन करती और (हस्तेव) हँसती हुई स्त्री के तुल्य (अप्सः) रूप को (नि रिणीते) निरन्तर प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में चार उपमालंकार हैं । जैसे बिना भाई की कन्या अपनी प्रीति से चाहें हुए पति को धाय प्राप्त हानी वा जैसे स्थायाधीश राजा राजपत्नी और धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिए न्यायासन अर्थात् राजगृह की जैसे हँसमुखी स्त्री आनन्दयुक्त पति को प्राप्त होती और अच्छे रूप से अपने हावभाव को प्रकाशित करती वैसे ही यह प्रातः समय की बेला है वह सबभन्ना चाहिए ॥ ७ ॥

स्वमा स्वस ज्यायस्यै योनिमरैगपैत्यस्याः प्रतिवक्ष्येव ।

व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्जयदके समनगा इव वाः ॥८॥

पदार्थ—हे कन्या ! जैसे (व्युच्छन्ती) अन्वकार का निवारण करती हुई (वा) पदार्थों को स्वीकार करनेवाली प्रातः समय की बेला (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ (अञ्जय) प्रसिद्ध रूप को (समनगा इव) निश्चय किये स्थान को जानेवाली स्त्री के समान (अवक्षते) प्रकाश कराती है वा जैसे (स्वसा) बहन (ज्यायस्यै) जेठी (स्वस) बहन के लिए (योनिम्) अपने स्थान को (अरैक्) छोड़ती अर्थात् उत्थान देती तथा (अस्याः) इस अपनी बहन के वर्तमान हाल को (प्रतिवक्ष्येव) प्रत्यक्ष देखके जैसे वैसे विवाह के लिए (अर्षति) दूर जाती है वैसे ही ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। गौरी बहिन जैसी बहिन के वर्तमान हाल को जान आप रविवर विवाह के लिए दूर भी उठते हुए अपने अनुकूल पति का ग्रहण करें। जैसे श्रान्त पतिव्रता स्त्री अपने-अपने पति को सेवन करती है वैसे अपने पति का सेवन करें, जैसे सूर्य अपनी कान्ति के साथ और कान्ति सूर्य के साथ नित्य अनुकूलता से बतें वैसे ही स्त्री पुरुष हो ॥ ८ ॥

**आसां पूर्वासामहंसु स्वसृणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।**

**ताः प्रेक्षन्वद्यप्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उपासः ॥९॥**

**पदार्थ—**जैसे (आसां) इन (पूर्वासाम्) प्रथम उत्पन्न जैसी (स्वसृणाम्) बहिनों में (अपरा) अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन (अहम्) किन्हीं दिनों से अपनी (पूर्वाम्) जैसी बहिन के (अभ्येति) आगे जावे और (पश्चात्) पीछे अपने घर को चली जावे वैसे (सुदिनाः) जिससे अच्छे-अच्छे दिन होते वे (उपासः) प्रातः समय की बेला (अस्मे) हम लोगों के लिए (पुनश्च) निश्चय युक्त (प्रत्यक्षत्) जिसमें पुरानी न की धरोहर है उस (रेवत्) प्रशंसित पदार्थ युक्त धन को (न्यवसीः) प्रतिदिन अत्यन्त मनीषा होती हुई प्रकाश करे (ताः) व (उच्छन्तु) अन्धकार को निराला करें ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**जैसे बहुत बहिन दूर-दूर देश में विवाही हुई होती उनमें कभी किसी के साथ कोई मिलती और अपने व्यवहार को कहती है वैसे पिछली प्रातः समय की बेला वर्तमान बेला के साथ संयुक्त होकर अपने व्यवहार को प्रतिष्ठ करती है ॥ ९ ॥

**प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।**

**रेवदुच्छ मघवद्व्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे स्मृतं जारयन्ती ॥१०॥८॥**

**पदार्थ—**हे (मघोनि) उत्तम धनयुक्त (उषः) प्रभातवेला के तुल्य वर्तमान स्त्री तू जो (मघवद्व्यमाना) अचेत नीद में डूबे हुए वा (पणयः) व्यवहार युक्त प्राणी प्रभात समय वा दिन में (ससन्तु) मोवें उनकी (पृणतः) पालना करनेवाले पुष्ट प्राणियों को प्रातः समय की बेला के प्रकाश के समान (प्र, बोधय) बोध करा । हे (मघोनि) असीव धन इकट्ठा करनेवाली (स्मृतं) उत्तम सत्यस्वभावयुक्त युवति । तू प्रभातवेला के समान (जारयन्ती) भवस्था व्यतीत कराती हुई (मघवद्व्यमाना) प्रशंसित धनवानों के लिए (रेवत्) उत्तम धन-युक्त व्यवहार जैसे ही वैसे (स्तोत्रे) स्तुति प्रशंसा करनेवाले के लिए (रेवत्) स्थिर धन की (उच्छ) प्राप्ति करा ॥ १० ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। किसी की रात्रि के पिछले ग्रह में वा दिन में न सोना चाहिए क्योंकि नींद और दिन के घाम आदि की अधिक गरमी के योग से रोगों की उत्पत्ति होने से तथा काम और व्यवस्था की हानि से। जैसे पुरुषार्थ की युक्ति से बहुत धन को प्राप्त होता वैसे सुखोदय से पहले उठकर यत्नवान् पुरुष दरिद्रता का त्याग करता है ॥ १० ॥

**अवेयमर्षवैधुवतिः पुरस्ताद्युक्ते गवामरुणानामनीकम् ।**

**वि नूनमुच्छादसति म केतुर्गृहमुप तिष्ठते अग्निः ॥११॥**

**पदार्थ—**जैसे (इयम्) यह प्रभातवेला (अवधुवतिः) लाली लिये हुए (गवाम्) सूर्य की किरणों के (अनीकम्) सेना के समान समूह को (मुच्छते) जोड़ती और (पुरस्ताद्युक्ते) पहले से बढ़ती है वैसे (युवतिः) पूरी चौबीस वर्ष की जवान स्त्री लाल रंग के गी आदि पशुओं के समूह को जोड़ती, पीछे उत्पत्ति को प्राप्त होती इससे (प्र, केतु) उठी है शिखा जिसकी वह बढ़ती हुई प्रभात बेला (अवधुवतिः) हो और (नूनम्) निश्चय से (व्यच्छात्) सबको प्राप्त हो (अग्निः) तथा सूर्यमण्डल का तरण ताप उत्कट घाम (गृहमुप) घर-घर (उप, तिष्ठते) उपस्थित हो। युवति भी उत्तम बुद्धिवाली होती निश्चय से सब पदार्थों को प्राप्त होती और इसका उत्कट प्रताप घर-घर उपस्थित होता अर्थात् सब स्त्री-पुरुष जानते और मानते हैं ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रभातवेला और दिन सदैव मिले हुए वर्तमान हैं वैसे ही विवाहित स्त्री-पुरुष मेल से अपना बतवि रक्खें और जिस नियम के जो पदार्थ हो उस नियम से उनकी पावें नब इनका प्रताप बढ़ता है ॥ ११ ॥

**उत्ते वर्यश्चिदमतेरपत्तमर्ष ये पितृभाजो व्युष्टौ ।**

**अमा मते वहसि भूरि वाममुषौ देवि दाशुषे मर्त्याय ॥१२॥**

**पदार्थ—**हे (वर्य) मनुष्यो ! (ये) जो (पितृभाज) धन का विभाग करनेवाले तुम लोग (चिद्व्युष्टौ) भी जैसे (वयः) अवस्था को (वहसते) बसीति से (उत्ते अवपत्तम्) उत्तमता के साथ प्राप्त होते वैसे ही (व्युष्टौ) विशेष निवास में (अमा) समीप के घर वा (मते) वर्तमान व्यवहार के लिए होओ और हे (उषः) प्रातःसमय के प्रकाश के समान विद्याप्रकाशयुक्त (देवि) उत्तम व्यवहार की देनेवाली स्त्री ! जो तू (व) भी (दाशुषे) देनेवाले (मर्त्याय) अपने पति के लिए तथा समीप के घर और वर्तमान व्यवहार के लिए (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसनीय व्यवहार की (वहसि) प्राप्ति करती उस (ते) तेरे लिए उत्त व्यवहार की प्राप्ति तेरा पति भी करे ॥ १२ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पहले ऊपर और नीचे जाते हैं वैसे प्रातःसमय की बेला रात्रि और दिन के ऊपर और नीचे जाती है तथा जैसे स्त्री पति के प्रियाचरण की करे वैसे ही पति भी स्त्री के प्यारे आचरण को करे ॥ १२ ॥

**किर कैसी स्त्री खेच हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—**

**अस्तीहृद्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीबुधध्वसुशतीरुपासः ।**

**युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥१३॥६॥**

**पदार्थ—**हे (उपासः) प्रभात बेलाओं के तुल्य (स्तोम्या) स्तुति करने के योग्य (वेची) विषय विद्या, गुणवाली पण्डिताओं । (ब्रह्मणा) वेद से (उपासो) कामना और कान्ति को प्राप्त होती हुई तुम (मे) मेरे लिए विद्याओं की (अस्तीहृद्वम्) स्तुति प्रशंसा करो और (अवीबुधध्वम्) हम लोगों की उत्पत्ति कराओ तथा (युष्माकम्) तुम्हारी (अवसा) रक्षा आदि से (सहस्रिणम्) जिसमें सहस्रो गुण विद्यमान (च) और जो (शतिनम्) सैकड़ों प्रकार की विद्याओं से युक्त (च) और (वाजम्) अङ्ग उपाङ्ग, उपनिषदों सहित वेदादि शास्त्रों का बोध उसको दूसरों के लिए हम लोग (सनेम) देंगे ॥ १३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातःवेला अच्छे गुण, कर्म और स्वभाव वाली है वैसे स्त्री हो और वैसे उत्तम गुण, कर्मवाले मनुष्य हों जैसे और विद्वान् से अपने प्रयोजन के लिए विद्या लेवें वैसे ही प्रीति से औरों के लिए भी विद्या देंगे ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभातवेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है वह जानना चाहिए ॥

यह एकती, चौबीसवां सूक्त और तथा वर्ण समाप्त हुआ ॥



**प्रातारत्नमिति पञ्चविंशत्पुस्तकसप्तमस्य सप्तमस्य सूक्तस्य वैधर्म्यस्य कवीशान्**

**अधि. । इत्यती वेधते । १, २, ७ त्रिष्टुप् छन्दः, २, ६ निचत्**

**त्रिष्टुप् छन्दः । अन्तः स्वरः । ४, ५ अपती छन्दः ।**

**निपादः स्वरः ॥**

अब सात ऋचा वाले एकसौ पञ्चीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके

प्रथम मन्त्र में इस सप्तर में कौन व्यवहार के योग्य होकर सब

सुखों को प्राप्त हो, इस विषय को कहते हैं—

**प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वा प्रतिगृह्णा नि धत्ते ।**

**तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्योवैण सचते सुवीरः ॥१॥**

**पदार्थ—**जो (चिकित्वा) विशेष ज्ञानवान् (प्रातरित्वा) प्रातःकाल में जागनेवाला (सुवीर) सुन्दर वीर मनुष्य (प्रातः रत्नम्) प्रभातसमय में रमण करने योग्य धानन्दमय पदार्थ को (दधाति) धारण करता और (प्रतिगृह्णा) दे, लेकर फिर (तम्) उसको (नि, धत्ते) नित्य धारण वा (तेन) उस (राय-स्योवैण) धन की पुष्टि से (प्रजाम्) पुत्र, पुत्र आदि सन्तान और (आयुः) आयु को (वर्धयमान) विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ाता हुआ (सचते) उसका सम्बन्ध करता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**जो धानस्य को छोड़, धर्म सम्बन्धी व्यवहार से धन को पा, उसकी रक्षा, उसका स्वयं भोग कर दूसरों को भोग करा और दे-लेकर निरन्तर उत्तम यत्न करे वह सब सुखों को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

इस सप्तर में कौन वर्तमान और वशाही कीर्तिमान् होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**सुगुरंसत्सुहिरयः स्यन्तौ बृहदस्मे वय इन्द्रो दधाति ।**

**यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वा मुक्षीजयेव पदिमुस्सिनाति ॥२॥**

**पदार्थ—**हे (प्रातरित्वा) प्रातः समय से लेकर अच्छा यत्न करनेवाले (व) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (वसुना) उत्तम धन के साथ (आयन्तम्) आते हुए (स्वा) तुम्हको (दधाति) धारण करता (वसन्) इस कार्य के लिए (बृहत्) बहुत (वय) बिरकाल तक जीवन और (मुक्षीजयेव) जो मूज से उत्पन्न होती उससे जैसे बाधना बने रैसे साधन से (पदिम्) प्राप्ति होते हुए धन को (उत्सिनाति) अत्यन्त बाधना अर्थात् सम्बन्ध करता वह (सुगुः) सुन्दर गीर्वाँ (सुहिरयः) अच्छे-अच्छे सुवर्ण आदि धनो और (वसन्) उत्तम-उत्तम चीड़ों वाला (वसन्) होवे ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**जो विद्वान् पाये हुए शिष्यों को उत्तम शिक्षा अर्थात् धर्म और विषय भोग की चञ्चलता के त्याग आदि के उपदेश से दीर्घ आयु युक्त विद्या और धनवाले करता है वह इस सप्तर से उत्तम कीर्तिमान् होता है ॥ २ ॥

किर इस सप्तर में स्त्री और पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छाष्टेः पुत्र वसुमता रथेन ।**

**अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य सयदीर्घं वर्धय सूनृताभिः ॥३॥**

**पदार्थ—**हे प्राणि ! मैं (अद्य) आज (वसुमता) प्रशंसित धनयुक्त (रथेन) मनीहर रमण करने योग्य रथ आदि यान से (प्रातः) प्रभात समय (इष्टे) चाहें हुए गृहार्थम के स्थान से (सुकृतम्) वर्मयुक्त काम की (इच्छा) इच्छा करता हुआ जिस (पुत्रम्) पवित्र बालक को (आयम्) पाऊँ उस

( सुतम् ) उत्पन्न हुए पुत्र को ( मत्सरस्य ) आनन्द करानेवाला जो ( भोजो ) स्त्री का शरीर उसके भाग से जो रस अर्थात् दूध उत्पन्न होता उस दूध को ( पायस ) पिला । हे वीर ! ( सुतानि ) विद्या, सत्यभावण आदि शुभगुणयुक्त बाणियों से ( जगदीशम् ) शत्रुओं का क्षय करनेवालों से प्रशंसित वीर पुरुष की ( कर्ष्य ) उन्नति कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—स्त्री-पुरुष पूरे ब्रह्मचर्य से विद्या का सग्रह और एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह कर धर्मयुक्त व्यवहार में पुत्र आदि सन्तानों को उत्पन्न करें और उनकी रक्षा कराने के लिए धर्मवती धायी को देवे और वह इस सन्तान को उत्तम शिक्षा से युक्त करे ॥ ३ ॥

फिर स्त्री-पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उपे क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवं ।

पूषन्तं च पपुर्णि च श्रवस्वयौ घृतस्य धारा उपं यन्ति विश्वतः ॥४॥

पदार्थ—जा ( सिन्धव ) बड़े नदों के समान ( मयोभुव ) सुख की भावना करानेवाले मनुष्य और ( धेनव ) दूध देनेवाली गायों के समान विवाही हुई स्त्री वा धायी ( ईजानम् ) यज्ञ करते ( च ) और ( यक्ष्यमाणम् ) यज्ञ करनेवाले पुरुष के ( उप, क्षरन्ति ) समीप आनन्द वर्षाएँ वा जा ( श्रवस्वयः ) आप मुनने की इच्छा करते हुए विद्वान् ( च ) और विदुषी स्त्री ( पूषन्तम् ) पुष्ट होते ( च ) और ( पपुर्णिम् ) पुष्ट हुए ( च ) भी पुरुष को शिक्षा देते हैं वे ( विश्वतः ) सब ओर से ( घृतस्य ) जल की ( धारा ) धाराओं के समान सुखों का ( उप, यन्ति ) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकगुणोपमानद्वारा है । जो पुरुष और स्त्री गृहा-श्रम में एक दूसरे के प्रिय आचरण और विद्याओं का आ-पाम करके सन्तानों का आनन्द कराने हैं वे निरन्तर सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

इस सत्तार में मनुष्यों को किन कामों से मोक्ष प्राप्त हो सकता है

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रिता यः पूणाति म हं देवेषु गच्छति ।

तस्मा आपो घृतमर्पन्ति सिन्धवस्तस्मा द्यं दक्षिणा पिन्वते मदां ॥५॥

पदार्थ—( य ) जो मनुष्य ( देवेषु ) दिव्यगुण वा उत्तम विद्वानों में ( गच्छति ) जाता है ( स, ह ) वही विद्या के ( श्रिता ) आश्रय का प्राप्त हुआ ( नाकस्य ) जिसमें किञ्चित् दुःख नहीं उस उत्तम सुख के ( पृष्ठे ) आधार ( अधि, तिष्ठति ) पर स्थिर होता वा ( पूणाति ) विद्या, उत्तम शिक्षा और अच्छे बर्तन हुए धन आदि पदार्थों से आप पुष्ट होता और सन्तानों को पुष्ट करता है ( तस्मै ) उसके लिए ( आप ) प्राण वा जल ( सदा ) सदा ( घृतम् ) घी ( अर्पन्ति ) वर्षाते तथा ( तस्मै ) उसके लिए ( द्यम् ) यह पढ़ाने से मिली हुई ( दक्षिणा ) दक्षिणा और ( सिन्धव ) नदी-नद ( सदा ) मदा ( पिन्वते ) प्रसन्नता करते हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकगुणोपमानद्वारा है । जो मनुष्य इस मनुष्य देव का आश्रय कर मनुष्यों का सग और धर्म के अनुकूल आचरण को मदा करने के सदैव सुखी होता है वा विद्वान् वा जा विदुषी गणितज्ञा स्त्री बालक जवान और बुढ़े मनुष्यों तथा कन्या धन्य धन्य और बुढ़ी स्त्रियों का निष्कपटता से विद्या और उत्तम शिक्षा का निरन्तर प्राप्त कराने वे इस सत्तार में समय सुख को प्राप्त होकर अन्त-काल में मोक्ष का प्राप्त होते हैं ॥५॥

फिर वारों वारों में स्थिर होनेवाले मनुष्य क्या करें

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दक्षिणावताभिदिमानि चित्रा दक्षिणावता दिवि ह्यसः ।

दक्षिणावन्ता अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥६॥

पदार्थ—( दक्षिणावताम् ) जिनके धर्म में इष्ट-दोष किय धन, विद्या आदि बहुत पदार्थ विद्यमान हैं उन मनुष्यों का ( इमानि ) य प्रत्यक्ष ( चित्रा ) चित्र-विचित्र अद्भुत सुख ( दक्षिणावताम् ) जिनके प्रशंसित धर्म के अनुकूल धन और विद्या की दक्षिणा का दान होता उन सज्जनों को ( दिवि ) उत्तम प्रकाश में ( सूर्यासि ) सूर्य के समान तजस्वोजन प्राप्त होते हैं ( दक्षिणावन्तः ) बहुत विद्या-दानयुक्त मनुष्य ( इत् ) ही ( अमृतम् ) मोक्ष का ( भजन्ते ) सेवन करते और ( दक्षिणावन्तः ) बहुत प्रकार का धर्मय दनहारों जन ( आयुः ) आयु के ( प्रतिरन्ते ) अच्छे प्रकार पार पहुँच अर्थात् पूरी आयु भोगते हैं ॥६॥

भावार्थ—जो ब्राह्मण सब मनुष्यों के सुख के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा का दान वा जो क्षत्रिय न्याय के अनुकूल व्यवहार से प्रजाजनों को धर्मदान वा जो वैश्यधर्म से इष्ट-दोष किय हुए धन का दान और जो बूढ़ मेवा दान करते हैं वे पूर्ण आयुवाले होकर इस जन्म और दूसरे जन्म में निरन्तर आनन्द को भोगते हैं ॥६॥

इस सत्तार में कौ प्रकार के पुरुष होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

मा पृणन्तो दुरितयेन आरन्मा जारिषुः सूर्यः सुवतासः ।

अन्यस्तेषां परिधिरेस्तु कश्चिदपृणन्तममि स यन्तु शोकाः ॥७॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ( पृणन्तः ) स्वयं वा अपने सन्तान आदि को पुष्ट करते हुए ( दुरितम् ) दुःख के लिए जा प्राप्त होता अर्थात् ( एनः ) पाप का आचरण ( मा, आ, अरन् ) मत करो और दुःख के लिए प्राप्त होनेवाला पापाचरण जैसे हो वैसे ( मा, जारिषु ) छोटे कामों को मत करो किन्तु ( सुवतासः ) उत्तम सत्य आचरणवाले ( सूर्यः ) विद्वान् होते हुए धर्म ही का आचरण करो और जो तुम्हारे अध्यापक हो ( तेषाम् ) उन धार्मिक विद्वानों तथा तुम लोगों के बीच ( कश्चित् ) कोई ( अन्यः ) भिन्न परिधि, मर्यादा अर्थात् तुम सबों को ढँपने, गुप्त रखने, मूल्यपन से बचानेवाला प्रकार ( अस्तु ) हो और ( अपृणन्तम् ) धर्म से न पुष्ट होने, न दूसरों को पुष्ट करनेवाले किन्तु धर्म से पुष्ट होने तथा धर्म ही से लोगों को पुष्ट करनेवाले मनुष्य को ( शोकाः ) शोक, विलाप ( अमि, सन्, यन्तु ) सब ओर से प्राप्त हो ॥७॥

भावार्थ—इस सत्तार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं एक धार्मिक और दूसरे पापी । ये दोनों अच्छे प्रकार अलग-अलग स्थान और आचरण वाले हैं अर्थात् जो धार्मिक हैं वे धर्मात्माओं के अनुकरण ही से धर्म-मार्ग में चलते और जो पुष्ट आचरण करनेवाले पापी हैं वे अधर्मी दुष्टजनों के आचरण ही से अधर्म में चलते हैं कभी कहीं धर्मात्माओं को अधर्मी दुष्टजनों के मार्ग में नहीं चलना चाहिए और अधर्मी दुष्टों को अपनी दुष्टता छोड़ धार्मिकों के मार्ग में चलना योग्य है इस प्रकार प्रत्येक जाति के पीछे धार्मिक और अधार्मिकों के दो मार्ग हैं उनमें धर्म करनेवालों को सुख और अधर्मी दुष्टों को दुःख सदा प्राप्त होते हैं ॥७॥

इस सूक्त में धर्म के अनुकूल आचरण का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकलौ पञ्चीसवाँ सूक्त और इशावा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अमन्वानित्यस्य सप्तचम्य षड्विंशत्युत्तरातमस्य सूक्तस्य १—५ कक्षीवान्, ६

भाष्यव्य, ७ रोमशा ब्रह्मविदो विधिः । विद्वानो देवताः । १—२,

४—५ निवृत्त त्रिष्टुप्, ६ त्रिष्टुप्छन्दः । चंडल स्वरः ।

६ ७ अनुष्टुप्छन्दः । पाण्यार. स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले एकलौ छविंशत सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में इस सत्तार के राज्य के अधिकार में कौन न स्थापन करने योग्य है

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अमन्वान् स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।

यो में सहस्रममिमीत सवान्तूर्तो राजा श्रवं इच्छमानः ॥१॥

पदार्थ—( य ) जो ( अमूर्तः ) हिमा आदि के दुःख को न प्राप्त और ( अम ) उत्तम उपदण सुनने की ( इच्छमानः ) इच्छा करता हुआ ( राजा ) प्रकाशमान सभाध्यक्ष ( सिन्धो ) नदी के समीप ( क्षियतः ) निरन्तर बसते हुए ( भाव्यस्य ) प्रसिद्ध होने योग्य ( मे ) मर निकट ( सहस्रम् ) हजार ( सवान् ) ऐश्वर्य योग्य ( अमन्वान् ) मन्दपनरहित तीव्र और ( स्तोमान् ) प्रशंसा करने योग्य विद्यासम्बन्धी विशेष ज्ञानों का ( मनीषा ) बुद्धि से ( अमिमीत ) निरन्तर मान करता उसको मे ( अधि ) अपने मन के बीच ( प्र, भरे ) अच्छे प्रकार धारण करूँ ॥१॥

भावार्थ—जब तक सकल शास्त्र ज्ञाननेहारे विद्वान् की आज्ञा से पुरुषार्थी विद्वान् न हो तब तक उसका राज्य के अधिकार में स्थापन न करे ॥१॥

कौन इस सत्तार में यश का विस्तार करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है—

शतं राज्ञा नार्धमानस्य निष्काञ्छतमन्वान प्रथेतान मय आदम् ।

शतं कक्षीव अमुरस्यां गोनां दिवि श्रवोऽजरमा तंतान ॥२॥

पदार्थ—जो ( कक्षीवान् ) विद्या के बहुत व्यवहारों को जानता हुआ विद्वान् ( अमुरस्य ) मेघ के समान उत्तम गुणी ( नार्धमानस्य ) ऐश्वर्यवान् ( राजा ) राजा के ( शतम् ) सौ ( निष्कान् ) निष्क, सुवर्णों ( प्रथेतान् ) अच्छे सिखाये हुए ( शतम् ) सौ ( अजरम् ) थोड़ी और ( दिवि ) आकाश में ( अजरम् ) अविनाशी ( गोनाम्, शतम् ) सूर्यमण्डल को सँकड़ो किरणों के समान ( अम ) श्रवमाण यश को ( आ, तंतान ) विस्तारता है उसको मैं ( सख ) शीघ्र ( आदम् ) स्वीकार करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—जो न्यायकारी विद्वान् राजा के समीप से सत्कार को प्राप्त होते वे यश का विस्तार करते हैं ॥२॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासा अस्थुः ।

पष्टिः सहस्रमनु गघ्यमागात् सनेत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अक्षाम् ॥३॥

पदार्थ—जिस ( स्वनयेन ) अपने धन आदि पदार्थ के पहुँचाने अर्थात् देनेवाले ने ( श्यावा ) सूर्य की किरणों के समान ( दत्ताः ) दिये हुए ( दश ) दस ( रथाः ) रथ ( वधूमन्तः ) जिसमें प्रशंसित बहुरे विद्यमान वे ( आ ) मुक्त सेनापति के ( उपास्थुः ) समीप स्थित होते तथा जो ( कक्षीवान् ) युद्ध में प्रशंसित



निष्कृष्टमायो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यस्य ) जिसकी ( सन्तु ) अच्छे प्रकार प्राप्ति करानेवाली क्रिया के निमित्त ( चित् ) ही ( वनेष ) वनों के समान ( बीज ) दूध ( स्थिरम् ) निश्चल बल को ( नि सहमान ) निरन्तर सहनशील बीरोवाला ( शुचत् ) सुनता हुआ शत्रुओं को ( यस्मै ) नियम से लाता अर्थात् उनके सुने हुए उस बल को छिन्न भिन्न कर उनके शत्रुता करने से रोकता वा जिस को शत्रु-जन ( नाशते ) नहीं प्राप्त होता वा ( अस्वासाह ) जो अपने धनुष से शत्रुओं को सहनेवाला शत्रुजनों को अच्छे प्रकार जीतता वा ( यत् ) जिसके विजय को शत्रुजन ( नाशते ) नहीं प्राप्त होता वा जो ( द्रुहन्तर ) द्रोह करनेवालों को तरता वह ( परशु ) फरसा वा कुल्हाड़ा के ( न ) समान ( पुर ) तीव्र बहुत प्रकार से ज्यों ही त्यों ( विश्वमता ) जिससे अनेक प्रकार की प्रीतियाँ हो उस ( ओजसा ) बल के साथ ( बीजान् ) प्रकाशमान ( द्रुहन्तरः ) द्रुहन्तर ( भवति ) होता अर्थात् जिस के महाय से प्रति द्रोह करनेवाले शत्रु को जीतता ( स, हि, चित् ) वही कभी विजयी होते हैं ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । मनुष्यो जो जानना चाहिए कि जो शत्रुओं से नहीं पराजित होता और अपने प्रशंसित बल से उनको जीत सकता है वही प्रजा पालने वालो म शिरोमणि होता है ॥३॥

फिर न्यायाधीशों को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

हृद्वा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे

तेजिष्ठाभिर्गणिभिर्दाष्टयवसेऽग्रये दाष्टयवसे ।

प्र यः पुरुणि गाहते तक्षद्वेनैव शोचिषा ।

स्थिरा चिदस्मा निरिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यथा ) जैसे विद्वान् ( तेजिष्ठानि ) अत्यन्त तेजवाली ( अरणिभि ) अरणियों से ( अस्मै ) हम ( विदे ) शास्त्रवेत्ता ( अस्ते ) रक्षा करनेवाले ( अस्मै ) अग्नि के समान वर्तमान सभाध्यक्ष के लिए ( दाष्टि ) आगिली को घिसने से काटता वा विद्वान् जन ( द्रुह, स्थिरा ) निश्चल ( चित् ) भी विज्ञानों के ( अनु, दु ) अनुक्रम से देखें जैसे ( य ) जो ( अस्ते ) रक्षा आदि करने के लिए ( दाष्टि ) काटता अर्थात् उक्त क्रिया का करता वा ( तक्षन् ) अपने तेज से जल आदि को छिन्न-भिन्न करता सूर्यमण्डल ( वनेष ) किरणों को जैसे जैसे ( शोचिषा ) न्याय और सेना के प्रकाश से ( पुरुणि ) बहुत शत्रुदलों को ( प्र, गाहते ) अच्छे प्रकार विलोडता वा ( ओजसा ) पराक्रम से ( स्थिराणि ) स्थिर कर्मों को ( नि ) निरन्तर प्राप्त होता ( चित् ) और ( ओजसा ) कोमल काम से ( अस्मा ) माने योग्य अस्मों को ( चित् ) भी ( नि, रिणाति ) निरन्तर प्राप्त होता है वह सुख को प्राप्त होता है ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालकार हैं । जैसे विद्वान्जन विद्या के प्रचार से मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कर सबको पुरुषार्थी बनाने हैं वैसे न्यायाधीश विद्वान् प्रजाजनों को उत्तमी करते हैं ॥४॥

फिर न्यायाधीशों को क्या अनुष्ठान वा आचरण करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तमस्य पृथमुपगसु धीमहि नक्रं

यः सुदशतरो दिवांतरादप्रायुधे दिवांतरात् ।

आदम्यायग्रभगवद्दीप्तु शर्म न मनवे

भद्रमभंमवो व्यन्तो अजरा अग्रयो व्यन्तो अजराः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( सुदशतर ) अतीव सुन्दर देखने योग्य पूरी कलाओं से युक्त चन्द्रमा के समान राजा ( अस्मै ) हम समार का ( दिवा-तरात् ) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्य से ( अप्रायुधे ) जो व्यवहार नहीं प्राप्त होता उसके लिए ( नक्तम् ) रात्रि में सब पदार्थों का दिखलाना-मा है ( तम् ) उस ( पृथम् ) उत्तम कामों का सम्बन्ध करनेवाले को ( दिवांतरात् ) अतीव प्रकाशवान् सूर्य के तुल्य उससे ( उपरासु ) दिवाओं में हम लोग ( धीमहि ) धारण करें अर्थात् सुनें ( आत् ) हमके अन्तर ( अस्मै ) हम मनुष्य का ( अभगवत् ) जिसमें प्रशंसित सब व्यवहारों का ग्रहण उस ( बीज ) दूध ( भक्तम् ) भवन किये वा ( अभगवत् ) न सेवन किये हुए ( अस्मै ) रक्षा आदि युक्त कर्म और ( आयु ) जीवन को ( सन्ने ) पुत्र के लिए ( न ) जैसे वैन ( शर्म ) घर को ( व्यन्त ) विविध प्रकार से प्राप्त होने हुए ( अजरा ) पूरी अवस्थावाले वा ( अग्रय ) बिजुली रूप अग्नि के समान ( व्यन्तः ) सब पदार्थों की कामना करने हुए ( अजरा ) वृद्धावस्था होने से रहित हम लोग धारण करें ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे चन्द्रमा तारागण और ओषधियों को पुष्ट करता है वैसे सज्जनों को प्रजाजनों का पालन-पोषण करना चाहिए जैसे सन्तानों को पिता-माता तृप्त करने हैं वैसे सब प्राणियों को हम लोग तृप्त करें ॥५॥

अब राजा आदि क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स हि शर्धो न मार्कतं तुविष्वणिर्गन्स्वतीपूर्वरास्विष्टनिरार्चैनास्विष्टनिः ।

आर्दद्व्यान्यादिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।

अर्ध स्मास्य हर्षतो हर्षवितो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभेन पन्थाम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( विश्व ) सब ( नर ) व्यवहारों की प्राप्ति करानेवाले मनुष्यो ! तुम ( हवीचतः ) जो बहुत आनन्द से भरा ( हर्षतः ) और जिससे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त हुआ ( अस्मै ) इस ( यज्ञस्य ) सज्ज करने अर्थात् पाने योग्य व्यवहार की ( शुभे ) उत्तमता के लिए ( न ) जैसे हो वैन ( पन्थाम् ) धर्मयुक्त मार्ग का ( जुषन्त ) सेवन करो ( अस्मै ) इसके अन्तर जो ( केतुः ) जानबान् ( आर्चिः ) ग्रहण करनेहारा ( अर्हणा ) सत्कार किये अर्थात् नम्रता के साथ हुए ( हर्षानि ) भोजन के योग्य पदार्थों को ( आर्चत् ) खावे वा ( मार्कतम् ) पवनों के ( शर्धः ) बल के ( न ) समान ( अग्नस्वतोषु ) जिनके प्रशंसित सन्तान विद्यमान उन ( उर्बरासु ) सुन्दरी ( आर्त्तनासु ) सत्य आचरण करनेवाली स्त्रियों के समीप ( तुविष्वणिः ) जिसकी बहुत उत्तम निरन्तर बोल-चाल ( इष्टनि ) और जो सत्कार करने योग्य है ( स, स्म ) वही विद्वान् ( इष्टनिः ) इच्छा करनेवाला ( हि ) निश्चय के साथ ( पन्थाम् ) न्याय मार्ग को प्राप्त होने योग्य हाता है ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालकार हैं । जो मनुष्य धर्म से इकट्ठे किये हुए पदार्थों का भोग करते हुए प्रजाजनों में धर्म और विद्या आदि गुणों का प्रचार करते हैं वे दूसरे से धर्म मार्ग का प्रचार करा सकते हैं ॥६॥

अब पढ़ाने-पढ़नेवाले कैसे बल इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्विता यदी कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्तं

उपवोचन्त भृगवो मध्वन्तो दाशा भृगवः ।

अग्निरीशे वद्वनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।

प्रियां अपिधार्वेनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत् ) जा ( कीस्तास ) उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् ( अभिद्यव ) जिनके भागे विद्या आदि गुणों के प्रकाश ( नमस्यन्तः ) जो धर्म का सेवन ( भृगव ) तथा अविद्या और अधर्म को नाश करते ज्ञान का ( मध्वन्तः ) मथते हुए ( भृगव ) और दुःखों को मिटाने हैं व ( दाशा ) विद्या दान के लिए विद्यार्थियों को ( द्विता ) जैसे दो का होना हो वैसे अर्थात् एक पर एक ( ईम् ) सम्मुख प्राप्त हुई विद्या ( उपवोचन्त ) और गुण का उपदेश करें वा जैसे ( एषाम् ) इन ( वसूताम् ) पृथिवी आदि लोको के बीच ( यः ) जो ( अग्निः ) शिल्पविद्या विषयक कामों का धारण करनेहारा ( शुचिः ) पवित्र और दूसरों को शुद्ध करने-हारा ( अग्निः ) अग्नि है वा जैसे ( मेधिरः ) उत्तम बुद्धिवाला ( प्रियाम् ) प्रसन्न चित्त और ( अपिधोन् ) श्रेष्ठ गुणों का धारण करने और दुःखों को ढीपने वाले विद्वानों को ( वनिषीष्ट ) यात्रे अर्थात् उनमें किसी पदार्थ को मागे वा ( मेधिरः ) सज्ज करनेवाला पुरुष देनेवालों को ( आ, वनिषीष्ट ) अच्छे प्रकार यात्रे वा विद्या की ( ईशे ) ईश्वरता प्रकट कर अर्थात् विद्या के अधिकार को प्रकाशित करें वैसे ही तुम उक्त विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों का सेवन करो ॥७॥

भाषार्थ—जो विद्यार्थी विद्वानों से नित्य विद्या माँगे उनके लिए विद्वान् भी नित्य ही विद्या को अच्छे प्रकार देखें क्योंकि इस देने-लेने के मुख्य कुछ भी उत्तम काम नहीं है ॥७॥

अब कैसे राजा और प्रजाजनों की उन्नति हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वासा त्वा विशा पतिं हवामहे

सर्वोमा समानं दम्पती भुजे मस्यगिर्वाहम् भुजे ।

अतिथिं मानुषाणा पितुर्न यस्यांसया ।

अग्नी च विश्वे अग्रताम आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे हम राग ( भुजे ) गीतर में विद्या का आनन्द भोगने के लिए ( विश्वासात् ) सब ( विश्वासा ) प्रजाजनों के वा ( सर्वासात् ) समस्त क्रियाओं के ( पतिम् ) पालनहारे अधिपति ( त्वा ) तुमका ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ( अग्नी ) और जैसे ( अग्नी ) वे ( देवेषु ) ( आ ) अच्छे प्रकार ( वयः ) विद्यादि गुणों का चाहनेवाले ( हव्या ) ग्रहण करने योग्य जानों का ग्रहण किये और ( आ, वयः ) अच्छे प्रकार विद्या आदि गुणों का पाये हुए ( विश्वे ) सब ( अग्रताम् ) अग्र अर्थात् विद्या प्रकाश से मृत्युदुःख से रहित हुए हम लोग ( यस्य ) जिसकी ( आसया ) बैठक के ( पितुः ) अन्त के ( न ) समान ( भुजे ) विद्यानन्द भोगने के लिए ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों के ( समानम् ) पक्षपात रहित ( अतिथिम् ) अतिथि के तुल्य सत्कार करने योग्य ( सत्यगिर्वाहम् ) सत्यवाणी की प्राप्ति करानेवाले तुम पालनेहारे को स्वीकार करते वैन ( दम्पतिम् ) स्त्री-पुरुष का सेवन करते हैं ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जब तक पक्षपात रहित समय विद्या को जाने हुए धर्मात्मा विद्वान् राज्य के अधिकारी नहीं होते हैं तब तक राजा और प्रजाजनों की उन्नति भी नहीं होती है ॥८॥

फिर राजा आदि कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वमेमे सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे

देवतातये रयिर्न देवतातये ।

शुष्मिन्तमो हि ते मदी शुष्मिन्तम उत क्रतुः ।

अधं स्मा ते परि चरन्त्यजर अष्टीवानो नाजर ॥९॥

भावाच—इस मन्त्र में वायुकुलुप्तोपमासंकार है। जैसे सूर्य और वायु सबको चारण और मेघ को वर्षाकर सब अंगत् का भागत्व करते वैसे विद्वान् जन वेद विद्या को चारण कर धीरों के भागमात्रों में अपने उपदेशों को वर्षा कर सब मनुष्यों को सब देते हैं ॥ ३ ॥



किर कीन विद्वान् सत्कार के योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स सुकृतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य

चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतनि ।

क्रत्वा वेधा इधूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।

यतो धृतश्रीरतिथिरजायत वद्विर्वेधा अजायत ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सुकृतु ) उत्तम बुद्धि और कर्मवाला ( पुरोहित ) प्रथम जिसने सिद्ध किया और ( अग्निः ) आग के समान प्रतापी वर्तमान ( बने, बने ) घर-घर में ( क्रत्वा ) उत्तम बुद्धि वा कर्म से ( यज्ञस्य ) विद्वानों के सत्काररूप कर्म को ( चेतति ) अच्छी चितोनी देते हुए के समान ( अध्वरस्य ) न छोड़ने ( यज्ञस्य ) किन्तु सज्ज करने योग्य उत्तम यज्ञ आदि काम का ( चेतति ) विद्वान् कराता वा जो ( क्रत्वा ) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्म से ( वेधा ) धीर बुद्धिवाला ( इधूयते ) बाण के समान विषयो में प्रवेश करता और ( विश्वा ) समस्त ( जातानि ) उत्पन्न हुए पदार्थों का ( पस्पशे ) प्रबन्ध करता वा ( यतः ) जिससे ( धृतश्रीः ) श्री का सेवन करता हुआ ( अतिथिः ) जिसकी कोई कहीं ठहरने की तिथि निश्चित नहीं वह सत्कार के योग्य विद्वान् ( अजायत ) प्रसिद्ध होवे और ( वद्विः ) वस्तु के गुणादिकों की प्राप्ति करानेवाले अग्नि के समान ( वेधा ) धीर बुद्धि पुरुष ( अध्वरस्य ) प्रसिद्ध होवे ( सः ) वही विद्वान् विद्या के उपदेश के लिए सबको अच्छे प्रकार आशय करने योग्य है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जो विद्वान् देश-देश, नगर-नगर, द्वीप-द्वीप, गाँव-गाँव और घर-घर में सत्य का उपदेश करते वे सबको सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

इस संसार में उत्तम सुख का विधान करनेवाले कीन होते हैं  
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृश्नतेऽग्रेर्वेण मरुतां न भोज्येपिराय न भोज्या ।

स हि प्या दानमिन्वति वधूनां च मज्मनां ।

स नस्त्रासते दुरितादभिदुतः शंसादद्यादभिदुतः ॥५॥१४॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( अस्य ) इस सेनापति की ( क्रत्वा ) बुद्धि और ( अग्नेः ) रक्षा आदि काम से ( मरुताम् ) पवनो और ( बने ) बिजुली, आग की ( इधिराय ) विद्या की प्राप्ति हुए पुरुष के लिए ( भोज्या ) भोजन करने योग्य पदार्थों के ( न ) समान वा ( भोज्या ) पालने योग्य पदार्थों के ( न ) समान पदार्थों का ( तविषीषु ) प्रशंसित बलयुक्त सेनाओं में ( पृश्नते ) सम्बन्ध करता वा जो ( हि ) ठीक-ठीक ( मज्मना ) बल से ( वधूनाम् ) प्रथम कक्षावाले विद्वानों तथा ( च ) पृथिव्यादि लोकों का ( दानम् ) जो दिया जाता पदार्थ उसको ( इन्वति ) प्राप्त होता वा जो ( न ) हम लोगों को ( अभिदुतः ) आगे आये हुए कुटिल ( दुरितात् ) दुःखवायी ( अभिदुतः ) सब और से टेढ़े, मेढ़े छोटे बड़े ( अद्याम् ) पाप से ( आसते ) उद्देग करता अर्थात् उठाता वा ( शंसत् ) प्रशंसा से संयोग कराता ( स एव ) वही सुख को प्राप्त होता और ( सः ) वह सुख करनेवाला होता तथा वही विद्वान् सब के सत्कार करने योग्य और वह सभी की और से रक्षा करनेवाला होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो उत्तम शिक्षा और विद्या के दान से पुष्टस्वभावी प्राणियों और अधर्म के आचरणों से निवृत्त कराके अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराते वे इस संसार में कल्याण करनेवाले वर्मात्मा विद्वान् होते हैं ॥ ५ ॥

किर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे

तरणिर्न शिश्रथछ्वस्यया न शिश्रथत् ।

विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।

विश्वस्मा इत्सुकृते वागमृण्वत्यग्निर्दारा व्यृतवति ॥६॥

पदार्थ—( विश्वः ) समग्र ( विहायाः ) विद्या आदि शुभगुणों में व्याप्त ( अरतिः ) उत्तम व्यवहार की प्राप्ति कराता और ( तरणिः ) तारनेवाला ( वधुः ) प्रथम श्रेणी का ब्रह्मचारी विद्वान् ( अरतिर्वसुः ) अपनी उत्तम उपदेश सुनने की इच्छा से जैसे ( अग्निः ) बिजुली न ( शिश्रथत् ) शिथिल हो वैसे ( न ) नहीं ( शिश्रथत् ) शिथिल हो वा ( वक्षिणे ) दाहिने ( हस्ते ) हाथ में जैसे आमलक घरे वैसे ( देवत्रा ) विद्वानों में मैं विद्या को ( हवे ) धारण करूँ वा ( विश्वस्मे ) सब ( इधूयते ) धनुष के समान आचरण करते हुए जनसमूह के लिए तू ( हव्यम् ) देने योग्य पदार्थ का ( भा, अहिषे ) तर्क-वितर्क करता ( इत् ) वैसे ही जो ( विश्वस्मे ) सब ( सुकृते ) सुकर्म करनेवाले जनसमूह के लिए ( दारा ) उत्तम व्यवहारों के द्वारों को ( व्यृतवति ) प्राप्त होता वह मुख ( इत् ) ही के ( वारम् ) स्वीकार करने को ( विश्वस्मिन् ) विशेषता से प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य सब व्यक्त पदार्थों को प्रकाशित कर सब के लिए सब सुखों को उत्पन्न करता वैसे हिंसा आदि दोषों से रहित विद्वान् जन विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्दित करते हैं ॥ ६ ॥

किर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स मानुषे वृजने शंतमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु

जेन्यो न विशपतिः प्रियो यज्ञेषु विशपतिः ।

स हव्या मानुषाणामिच्छा कृतानि पत्यते ।

स नस्त्रासते वरुणस्य धृतमर्हो वेवस्य धृतैः ॥७॥

पदार्थ—जो ( अग्निः ) तृप्ति करनेवाला है वह ( विशपतिः ) प्रजापति का पालक राजा ( नः ) हम लोगों को ( धृतैः ) हिसक से ( आसते ) बेमन कराता और ( सः ) वह ( धृतैः ) अविद्या का नाशने और ( महः ) बड़े ( वेवस्यः ) विद्या देनेवाले ( वरुणस्य ) उत्तम विद्वान् के पास से जो ( यज्ञेषु ) सज्ज करने योग्य व्यवहारों में ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों के ( इच्छा ) अच्छे सत्कारों से युक्त ( कृतानि ) सिद्ध किये शुद्ध वचन ( हव्या ) जो कि ग्रहण करने योग्य हों उनको स्थिर करता तथा ( सः ) वह सब को ( पत्यते ) प्राप्त होता वा ( यज्ञेषु ) अग्निहोत्र आदि यज्ञों में ( अग्निः ) अग्नि के समान वा ( जेन्यः ) विजयशील के ( नः ) समान ( विशपतिः ) प्रजापति का पालनेवाला ( मानुषे ) मनुष्यों के ( वृजने ) उस मार्ग में कि जिसमें गमन करते ( हितः ) हित सिद्ध करनेवाला ( अन्तमः ) अतीव सुख-कारी होता ( सः ) वह विद्वान् सब को सत्कार करने योग्य होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो धर्म-मार्ग में मनुष्यों को उपदेश से प्रवृत्त कराते, न्यायाधीश राजा के समान प्रजापति का पालने, डाकू आदि दृष्ट प्राणियों से जो डर उसको निवृत्त करानेवाले, विद्वानों के मित्रजन हैं वे ही अन्त-परम्परा अर्थात् कुमार के रोकनेवाले होने को योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

किसके मिलाप से क्या पाने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निं होतारमीळते वसुधितिं

प्रियं चेतिष्ठमरति न्यैरिरे हव्यवाहं न्यैरिरे ।

विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।

देवासो रयवमर्वसे वसूयवो गीर्भी रणं वसूयवः ॥८॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( देवासः ) विद्वान् जन जिस ( अग्निम् ) अग्नि के समान वर्तमान ( होतारम् ) देनेवाले ( वसुधितिम् ) जिसके कि धर्मों की धारणा है ( अरतिम् ) और जो विद्या पाये हुए हैं उस ( हव्यवाहम् ) देने-लेने योग्य व्यवहार की प्राप्ति कराने ( चेतिष्ठम् ) बिताने और ( प्रियम् ) प्रीति उत्पन्न करानेवाले विद्वान् के जानने की इच्छा किये हुए ( न्यैरिरे ) निरन्तर प्रेरणा देते वा ( विश्वायुम् ) जो सब विद्यादि गुणों के बोध को प्राप्त होता ( विश्ववेदसम् ) जिसका समग्र वेद, वन उस ( होतारम् ) ग्रहण करनेवाले ( यजतम् ) सत्कार करने योग्य ( कविम् ) पूर्णविद्यायुक्त और ( रणम् ) सर्वोपदेशक सत्यवादी पुरुष को ( वसूयवः ) जो धन आदि पदार्थों की इच्छा करते हैं उन के समान ( न्यैरिरे ) निरन्तर प्राप्त होते हैं वा जो ( वसूयवः ) धन आदि पदार्थों को चाहनेवाले ( अरतिम् ) रक्षा आदि के लिए ( गीर्भी ) अच्छी सत्कार की हुई वाशियों के ( रणम् ) सत्य बोलनेवाले की ( ईळते ) स्तुति करते हैं उन सबों की तुम भी स्तुति करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! विद्वान् लोक जिसकी सेवा और सज्ज से विद्यादि गुणों को पाते हैं उसी की सेवा और सज्ज से तुम लोगों को चाहिए कि इनको पाओ ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एक लो अद्वैतार्थवा सूक्त और यज्ञहवां वर्ण पूरा हुआ ॥

॥

अथ य त्वमित्यर्थेकावशांस्वैकोनत्रिंशद्भुतस्य शततमस्य सूक्तस्य पञ्चछेप ऋविः । इन्द्रो देवता । १, २ निष्कृष्यपिष्टः, ३ विशादस्यपिष्टस्यम् ।

गायत्रा स्वरः । ४ छष्टिः; ५, ११ मुरिगष्टिः; १० निष्कृष्यपिष्टः

ऊर्ध्व । अच्यमः स्वरः । ५ मुरिगतिशब्दरी ; ७ स्वरान्वति-

शब्दरी । पञ्चमः स्वरः । ५, ६ स्वरान्व शब्दरी ।

वैजतः स्वरः ॥

अथ ग्यारह ऋचा वाके एकसौ उगतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन क्या करें उस विषय को कहते हैं—

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसांतयेऽपाका संतमिषिर्पुण्यसि प्रानवद्य नयसि ।

सद्यश्चित्तममिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।

सास्माकमनवद्य त्तुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसांम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) इच्छा करनेवाले ( इन्द्र ) विद्वान् सभापति ! ( त्वम् ) आप ( विश्वामित्र ) पवित्र पदार्थों के अच्छे प्रकार विभाण करने के लिए ( यम् ) जिस ( अवाका ) पूर्ण ज्ञानवाले ( समस्तम् ) विद्यमान ( एवम् ) विद्वान् को रमण करने योग्य रथ को ( अथवासि ) प्राप्त कराने के समान विद्या को ( अथवासि ) प्राप्त करते हो ( य ) और हे ( अथवासि ) प्रशंसायुक्त ( यथा ) कामना करते हुए ( अथवासि ) चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति के लिए ( वाजिनम् ) प्रशंसित ज्ञानवान् के ( चित् ) समान ( तम् ) उसको ( सद्यः ) शीघ्र ( करः ) सिद्ध करें वा हे ( तुमुजाम् ) शीघ्र कार्यों के कर्ता ( अथवासि ) प्रशंसित गुणों से युक्त ( सः ) सो आप ( अस्माकम् ) हम ( वैवसावम् ) और बुद्धिवालों के ( न ) समान ( वैवसावम् ) बुद्धिमानों की ( इवाम् ) इस ( वाचम् ) उत्तम शिष्यायुक्त वाणी को सिद्ध करें अर्थात् उसका उपदेश करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन सब मनुष्यों को विद्या और किय आदि गुणों में प्रवृत्त कराते हैं वे सब और से चाहे हुए पदार्थों की सिद्धि कर सकते हैं ॥ १ ॥

किर विद्वान् कीसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स भ्रंथि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्विषय

इन्द्र मरुतये नृमिरसि प्रतृचये नृभिः ।

यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तर्हता ।

तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्ययुक्त सेनापति ! ( यः ) जो आप ( प्रतृचये ) शीघ्र प्रारम्भ करने के लिए ( नृभिः ) मुख्य अथवास्ता मनुष्यों के समान ( नृभिः ) अपने अधिकारी कामचारी मनुष्यों से ( मरुतये ) दूसरों की पालना करनेवाले राजजनों की स्पर्धा अर्थात् उनकी हार करने के लिए ( कासु-चित् ) किन्हीं ( पृतनासु ) सेनाओं में और ( इक्षाम्य ) राजकामों में अति चतुर ( अति ) हो वा ( य ) जो आप ( शूरैः ) निहड शूरवीरों के साथ ( स्वः ) सुख को ( सनिता ) अच्छे वाटनेवाले वा ( यः ) जो ( विप्रैः ) और बुद्धिवालों के साथ ( वाजम् ) विशेष ज्ञान को ( तर्हता ) पार होनेवाले ( वाजिनम् ) विशेष ज्ञानवान् ( अत्यम् ) व्याप्त होनेवाले के ( न ) समान ( पृक्षम् ) सुखों में सींचने वाले ( वाजिनम् ) घोड़े को धारण करते हो ( तम् ) उन आप को ( ईशानासः ) समर्थ जन ( इरधन्त ) जो प्रेरणा करनेवालों को धारण करते उनके जैसा धारण करें अर्थात् प्रेरणा दें और ( सः स्वः ) वही आप सब के न्याय को ( अति ) सुनें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् और न्यायाधीशों के साथ राजधर्म को प्राप्त करते वे प्रजाजनों में आनन्द को अच्छे प्रकार विद्वेनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

किर कौन ससार का उपकार करनेवाले होते हैं इस विषय को

अगले मन्त्र में कहा है—

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वन्ति

त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।

इन्द्रोत तुभ्यं तदिवे तद्रुद्राय स्वयंशसे ।

मित्राय वाचं वरुणाय समर्थः सुमृच्छीकाय समर्थः ॥३॥

पदार्थ—हे ( शूर ) शत्रुओं को मारनेवाले ( इन्द्र ) सभापति ( हि ) जिस कारण ( वस्मः ) शत्रुओं को विनाशनेहारे आप जिस ( कञ्चित् ) किसी ( स्वयम् ) धर्म के वापनेवाले कां ( वाषी ) पृथक् करत धीर ( वृषणम् ) विद्यादि गुणों के वर्णन ( वरुणम् ) वा दूसरे को उनकी प्राप्ति करानेवाले ( अर्थम् ) मनुष्य के समान ( मर्त्यम् ) मनुष्य को ( परिवृणक्षि ) सब और से छोड़त स्वतन्त्रता देत वा ( पिन्वन्ति ) उस का सेवन करते हैं इस कारण उस ( स्वयंशसे ) स्वकीति से युक्त ( मित्राय ) सब के मित्र के लिए वा ( तुभ्यम् ) आप के लिए ( तत् ) उस व्यवहार को ( वीरम् ) मैं कहूँ वा ( विप्रैः ) कामना करने ( वृषाय ) दुष्टों को हलाने ( वरुणाय ) श्रेष्ठ धर्म धारण करने ( सुमृच्छीकाय ) और उत्तम सुख करनेवाले के लिए ( समर्थः ) सब प्रकार के विस्तार से युक्त मनुष्य के समान ( समर्थः ) प्रसिद्धि अर्थात् उत्तम कीर्तियुक्त ( तत् ) उस उत्त आप के उत्तम व्यवहार को ( उत्त ) तर्क-वितर्क से ( स्वः ) ही कहूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सब मनुष्यों के लिए मित्रभाव से सत्य का उपदेश करते वा धर्म का सेवन करते वे परम सुख के देने वाले होते हैं ॥ ३ ॥

किर मनुष्यों को किस के साथ क्या करना चाहिए

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्माकं व इन्द्रमुद्रमसीष्टये

सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।

अस्माकं अश्वोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।

नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( अस्माकम् ) हमारे और ( यः ) तुम्हारे ( इन्द्रम् ) परम ऐश्वर्ययुक्त वा ( वाजेषु ) राजजनों को प्राप्त होने योग्य ( वृत्सुषु, कासु, चित् ) किन्हीं सेनाओं में ( प्रासहम् ) उत्तमता से सहनशील ( युजम् ) और योग्यासयुक्त वर्मात्मा पुरुष के समान ( प्रासहम् ) अतीव सहने ( युजम् ) और योग करनेवाले ( विश्वायुम् ) समग्र युज गुणों को पाये हुए ( सखायम् ) मित्रजन की ( इच्छये ) चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति के लिए ( उद्यमसि ) कामना करते हैं वैसे तुम भी कामना करो। हे विद्वन् ! ( अस्माकम् ) हमारी ( इच्छये ) रक्षा आदि होने के लिए आप ( वृत्सु ) वेद की ( यवः ) रक्षा करो ऐसे हुए पर ( यम् ) जिस ( विश्वम् ) समग्र ( अश्वम् ) शत्रुगण को ( स्तृणोषि ) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रताप से डीपते और ( यम् ) जिस विरोध करनेवाले को ( स्तृणोषि ) डीपते अर्थात् अपने प्रबल प्रताप से रोकते वह ( यम् ) शत्रु ( त्वा ) आप को ( नहि ) नहीं ( स्तरते ) डीपता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जितना सामर्थ्य हो सके उतने से बहुत मित्र करने को उत्तम यत्न करे परन्तु भवर्मी दुष्ट जन मित्र न करने चाहिए और न दुष्टों में मित्रपन का आचरण करना चाहिए ऐसा होने पर शत्रुओं का बल नहीं बढ़ता है ॥ ४ ॥

इस संसार में कौन सुख का देनेवाला होता है इस विषय को

अगले मन्त्र में कहा है—

नि पु नमातिमर्ति कयंस्य

चिषेजिष्ठाभिर्गणिभिर्नोतिमिस्त्राभिर्गुतिभिः ।

नेषि णो यथा पुराणेनाः शूर मन्यसे ।

विश्वानि पुरोगर्प पर्थि वहिगसा वहिर्नो अच्छ ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे ( उग्र ) तजस्वी ( शूर ) दुष्टों को मारनेवाले विद्वन् ! ( तेजिष्ठाभिः ) अतीव प्रतापयुक्त ( अरणिभिः ) सुख देनेवाली ( उग्रभिः ) तीव्र ( ऊर्तिभिः ) रक्षा आदि क्रियाओं ( न ) के समान ( ऊर्तिभिः ) रक्षाओं से ( अतिमर्तिम् ) अत्यन्त विचारवाली बुद्धि को ( नि, नमः ) नमो अर्थात् नम्रता के साथ बर्तों वा ( यथा ) जैसे ( अनेना ) पापरहित मनुष्य ( पुरा ) पहले उत्तम कामों की प्राप्ति करता वैसे ( न ) हम लोगों को आप ( मन्यसे ) जानते और ( सु, नेषि ) सुन्दरता से अच्छे कार्यों की प्राप्ति कराते वा ( आसा ) अपने पास ( वहिः ) पहुँचानेवाले के समान ( न ) हम को ( अच्छः, पर्थि ) अच्छे सींचते वा ( कयंस्य ) विशेष ज्ञान देने और ( पुरो ) पूरे विद्वान् मनुष्य के ( चित् ) भी ( वहिः ) पहुँचानेवाले आप ( विश्वानि ) समग्र दुष्टों को ( अघः ) दूर करते हो सो आप हम लोगों के सेवन करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्यों की बुद्धि को उत्तम रक्षा से बड़ा कर पाप कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न करता वही सभों को सुखों की पहुँचा सकता है ॥ ५ ॥

किसके लिए विद्या देनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

म तद्वैचयं भव्यायेन्द्वे हव्यो न

य इष्वान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।

स्वयं सो अस्मदा निदा वधैरजेत दुर्मतिम् ।

अयं स्रवेदघर्षोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥६॥

पदार्थ—मैं ( स्वयम् ) आप जैसे ( हव्यः ) स्वीकार करने योग्य ( रक्षोहा ) दुष्ट गुण कर्म न्वावधानों को मारनेवाला ( अन्मः ) विचार करने योग्य ज्ञान का ( रेजति ) संग्रह करते हुए के ( न ) समान ( यः ) जो ( इष्वान् ) ज्ञानवान् ( अन्मः ) जानने योग्य व्यवहार को ( रेजति ) संग्रह करता है ( तत् ) उस उपदेश करने योग्य ज्ञान को ( भव्याय ) जो विद्याग्रहण की इच्छा करनेवाला होता है उस ( इच्छये ) आर्द्र अर्थात् कोमल हृदयवाले के लिए ( प्र, बोधेयम् ) उत्तमता से कहूँ जो ( अस्मत् ) हम से शिक्षा पाकर ( वधैः ) मारन के उपायों से ( निदा ) निन्दा करनेहारो और ( दुर्मतिम् ) दुष्टमतिवाले जन को ( अजेत ) दूर करे ( सः ) वह ( अवतरम् ) अधोगुणी लज्जित मुखवाले पुरुष को ( क्षुद्रमिव ) तुच्छ आशयवाले के समान ( अयं, अवेत् ) उस के स्वभाव से विपरीत दण्ड देवे और ( अघर्षः ) जो पाप की प्रशंसा करता वह चोर, डाकू, लम्पट, लबाड़ आदि जन ( अयं, अवेत् ) अपने स्वभाव से अच्छे प्रकार उलटी चाल चले ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। अध्यापक विद्वान् जो शुभ गुण कर्म स्वभाववाले विद्यार्थी हैं उनके लिए प्रीति से विद्याओं को देवे, निन्दा करनेहारो चोरों को निकाल देवे और आप भी सदैव वर्मात्मा हो ॥ ६ ॥

किर माता आदि को सन्तान कैसे उपदेशों से समझाने चाहिए

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वनेम तद्वोत्रया चितन्त्या वनेम

रयि रयिवः सुवीर्यं रणं सन्तं सुवीर्यम् ।

दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि ।

आ सत्याभिरिन्द्रं यन्महतिभिर्नयं यन्महतिभिः ॥७॥

पदार्थ—हे (रथिः) धनवान् ! जैसे हम लोग (होत्रवा) ग्रहण करने योग्य (चित्तवन्) चेतानेवाली बुद्धिमती से जिस ज्ञान का (बनेन) अन्धे प्रकार सेवन करें वा (सुधीर्यम्) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त (रथिम्) धन तथा (सम्पत्) वर्तमान (रथम्) उपदेश करनेवाले (सुधीर्यम्) विद्या और ब्रह्म से उत्तम आत्मा के बल का (बनेन) सेवन करें वा (सुसन्तुभि) उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों और (ईम्) पाने योग्य (इवा) इच्छा से (सुसन्मानम्) दुष्टजन मान करनेहारे को जो मारनेवाला उमका (आ, पृथीमहि) अन्धे प्रकार सम्बन्ध करें तथा (सुसन्तुभि) धन वा यश की बातचीत से (यजन्) अन्धे प्रकार सज्ज करने योग्य व्यवहार के समान (सत्याभि) सत्य आचरण युक्त (सुसन्तुभि) धनविषयक बातों से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य का (आ) अन्धे प्रकार सम्बन्ध करें वैसे (तत्) उक्त समस्त व्यवहार को आप भजो और उस से सम्बन्ध करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमालङ्कार है। माता और पिता आदि को वा विद्वानों को चाहिए कि अपने सन्तानों को इस प्रकार उपदेश करें कि जो हमारे धर्म के अनुकूल काम हैं वे आचरण करने योग्य किन्तु और काम आचरण करने योग्य नहीं, ऐसे सत्याचरणों और परोपकार से निरन्तर ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिए ॥ ७ ॥

किर अनुष्य क्या करके कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रभा वो अस्मे स्वयंशोभिरुती परिवर्ग

इन्द्रो दुर्मतीनां दर्शिन दुर्मतीनाम् ।

स्वयं मा शिष्य्यै या न उपेये अत्रैः ।

हनेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥८॥

पदार्थ—हे मित्रो ! ( न ) तुम लोगों के लिए ( अस्मे ) और हमारे लिए ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् विद्वान् ( दुर्मतीनाम् ) दुष्ट बुद्धिवाले दुष्ट मनुष्यों के ( परिवर्ग ) सब और से सम्बन्ध में और ( दुर्मतीनाम् ) दुष्ट बुद्धिवाले दुराचारी मनुष्यों के ( वरीमन् ) प्रतिशय कर विदारने में ( स्वयंशोभि ) अपनी प्रशंसाओं और ( इन्द्रो ) रक्षा से ( प्रप्र, वक्षति ) उत्तमता से उपदेश करे ( या ) जो सेना ( न ) हम लोगों के ( उपेये ) समीप आने के लिए ( अत्रै ) प्रातयायी शत्रुजनों से ( क्षिप्ता ) प्रेरित की धर्मात् पठाई हो ( सा ) वह ( शिष्य्यै ) दूसरों को हनन कराने के लिए प्रवृत्त हुई ( स्वयम् ) आप ( ईम् ) सब और से ( हता ) नष्ट ( अस्ते ) ही किन्तु वह ( जूर्णि ) शीघ्रता करनेवाली के ( न ) समान ( न ) न ( वक्षति ) प्राप्त हो प्रार्थना शीघ्रता करने ही न पावे किन्तु तावत् नष्ट हो जावे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो दुष्टों के संग को छोड़ सत्संग से कीर्तिमान् हो कर प्रतीव प्रशंसित सेना से प्रजा की रक्षा करते हैं वे उत्तम ऐश्वर्यवाले होते हैं ॥ ८ ॥

किर उपदेश करनेवालों को कैसे बर्ताव रखना चाहिए  
इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वं न इन्द्र राया परीक्षसा याहि पथौ अनेहसा पुरो याक्षरक्षसा ।

सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।

पाहि नो दूरादारादमिष्टिभिः सदा पात्रमिष्टिभिः ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या वा ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! ( त्वम् ) आप ( परीक्षसा ) बहुत ( राया ) धन से ( नः ) हम लोगों को ( याहि ) प्राप्त हो और ( अनेहसा ) रक्षामय जो धर्म उससे ( अरक्षसा ) और जिसमें दुष्ट प्राणी विद्यमान नहीं उस ( पथा ) मार्ग से ( पुर ) प्रथम जो वर्तमान उनको ( याहि ) प्राप्त हो और ( न ) हमको ( पराके ) दूर देश में ( आ, सचस्व ) अन्धे प्रकार प्राप्त होओ मिलो और ( अस्तमीके ) समीप में हम लोगों को ( आ, सचस्व ) अन्धे प्रकार मिलो और जो ( अमिष्टिभि ) सब और से क्रियाओं से सज्ज करते उन ( दूरात ) दूर और ( आरात् ) समीप से ( न ) हम लोगों की ( याहि ) रक्षा करो और ( सदा ) सब कभी ( अमिष्टिभि ) सब और से बाही हुई क्रियाओं से हम लोगों की ( याहि ) रक्षा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—उपदेशकों को चाहिए कि धर्म के अनुकूल मार्ग से आप प्रवृत्त हो और सब को प्रवृत्त कराकर अपने उपदेश के द्वारा समीपस्थ और दूरस्थ पदार्थों का संग्रह भ्रम मिटाने और सत्यविज्ञान की प्राप्ति कराने में सब की निरन्तर अन्धरी रक्षा करें ॥ ९ ॥

किर अनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं न इन्द्र राया तरूपसोत्र चित्

त्वा महिमा संक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।

ओजिष्ठ वातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।

अन्यमस्मद्रिषेः कं चिद्विषो रिरिक्षन्तं चिद्विषः ॥१०॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त राजन् ! ( त्वम् ) आप ( सचस्व ) जिससे शत्रुओं के बलों को पार होते उस काल और ( राया ) उत्तम लक्ष्मी से ( अनेह ) अत्यन्त ( अरक्षसे ) रक्षा आदि सुख के लिए वा ( मित्रम् ) मित्र के ( न ) समान ( अरक्षसे ) रक्षा आदि व्यवहार के लिए जिन ( त्वा ) आपको ( अमिष्टा ) बहुजन, प्रताप ( सज्जत् ) मिले सो आप ( चित् ) भी ( न ) हम लोगों की रक्षा करो । हे ( ओजिष्ठ ) प्रतीव प्रतापी ( अमिष्ट ) रक्षा करनेवाले ( अमर्त्य ) अपनी कीर्ति-कलाप से मरण-धर्मरहित ( वात ) राज्य पाजनेहारे आप ( कं, चित् ) किसी ( रथम् ) रमण करने योग्य रथ को प्राप्त होओ । हे ( अमिष्ट ) बहुत मेघों वाले सूर्य के समान तेजस्वी आप ( अमर्त्य ) हम लोगों से ( कं, चित् ) किसी ( अन्यम् ) और ही को ( रिरिषे ) मारो । हे ( अमिष्ट ) पर्वत भूमियों के राज्य से युक्त आप ( रिरिक्षन्तम् ) हिंसा करने की इच्छा करते हुए ( उज्जम् ) तीव्र प्राणी को ( चित् ) भी मारो, ताड़ना देओ ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों की यही महिमा है कि श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की हिंसा करना ॥ १० ॥

किर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पाहि न इन्द्र सुष्ठुत सिधौऽवयाता

सदमिदुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।

इन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।

अवा हि त्वा जनिता जीजनद्रसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्रसो ॥११॥

पदार्थ—हे ( सुष्ठुत ) उत्तम प्रशंसा को प्राप्त ( इन्द्र ) सभापति ! ( अवयाता ) विरुद्ध मार्ग को जाते और ( देवः ) सत्य न्याय की कामना अर्थात् सोच करते ( सन् ) हुए ( दुर्मतीनाम् ) दुष्ट मनुष्यों के ( सवम् ) स्थान के ( इत् ) समान ( दुर्मतीनाम् ) दुष्ट बुद्धिवाले मनुष्यों के प्रकार का विनाश कर ( सिधौ ) दुष्ट के हेतु पाप से ( नः ) हम लोगों की ( पाहि ) रक्षा करो । हे ( वसो ) सज्जनों में बसनेहारे ( जनिता ) उत्पन्न करनेहारा पिता शुभ जिस ( रक्षोहणम् ) दुष्टों के नाश करनेहारे ( त्वा ) आपको ( जीजनत् ) उत्पन्न करे । वा हे ( वसो ) विद्याओं में बास अर्थात् प्रवेश करानेहारे ! जिन रक्षा करनेवाले ( त्वा ) आप को ( जीजनत् ) उत्पन्न करे सो ( हि ) ही आप ( अवा ) इसके अनन्तर ( पापस्य ) पाप आचरण करनेवाले ( रक्षसः ) राक्षस अर्थात् धीरों को पीड़ा देनेहारे के ( इन्ता ) मारनेवाले तथा ( आवात ) मेरे समान ( विप्रस्य ) बुद्धिमान् धर्मात्मा पुरुष की ( जनिता ) रक्षा करनेवाले हुए ॥ ११ ॥

इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमालङ्कार है। यही विद्वानों का प्रशंसा करने योग्य काम है जो पाप का खण्डन और धर्म का मण्डन करना, किसी को दुष्ट का संग और श्रेष्ठजन का त्याग न करना चाहिए ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों और राजजनों के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एकही उन्नीसवाँ सूक्त और सत्रहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

एन्द्रेत्यस्य वसवस्य विश्वान्तरस्य शततमस्य सूतस्य पञ्चक्षेप ऋषिः । इन्द्रो

देवता । १, ५ भुरिगण्डि, २, ३, ६, ९, स्वरावष्टि, ४, ८

अष्टिद्वयम् । मध्यम स्वर । ७ निष्कृत्यष्टिद्वयम् ।

गान्धार स्वर । १० विराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।

वैजयन्त स्वर ॥

अब इस ऋचावाले एकही तीसरे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम दो मन्त्रों में राजा और प्रजाजन, आपस में प्रीति के साथ वर्तें

इस विषय को कहा है—

एन्द्र याक्षुप नः पगवतो नायमच्छा विदधानीव

सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।

हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।

पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्यवान् राजन् ! ( अयम् ) यह शत्रुजन ( विदधानीव ) सप्रामो को जैसे वैसे आकर प्राप्त होता इससे आप ( न ) हम लोगों के समीप ( परावत ) दूर देश से ( न ) मत ( उपायाहि ) बाइए किन्तु निकट से आइए ( सत्पति ) धार्मिक सज्जनों का पति ( राजेव ) जो प्रकाशमान उसके समान ( सत्पति ) सत्याचरण की रक्षा करनेवाले आप हमारे ( अस्तम् ) घर को प्राप्त हो ( प्रयस्वन्तः ) अत्यन्त प्रयत्नशील ( वयम् ) हम लोग ( सचा ) सम्बन्ध से ( सुते ) उत्पन्न हुए सत्तार में ( वाजसातये ) युद्ध के विभाग के लिए और ( वाजसातये ) पदार्थों के विभाग के लिए ( पुत्रासः ) पुत्रजन जैसे ( पितरम् ) पिता को ( न ) वैसे ( मंहिष्ठम् ) प्रति सत्कारयुक्त ( त्वा ) आपको ( अयम् ) अन्धे प्रकार ( हवामहे ) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥



भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। समस्त राजप्रजाजन पिता और पुत्र के समान इस सत्तार में वर्तकर पुरुषार्थी हो ॥ १ ॥

पिवा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः

कोशेन सिद्धमवतं न वसंसस्तावपाणो न वसंसः।

मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे।

आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सभापति ! ( तावपाण ) प्रतीव व्यासे ( वसंस ) बल के ( न ) समान बलिष्ठ ( वसंस ) अच्छे विभाग करनेवाले प्राप ( अद्रिभिः ) शिलाखण्डों से ( सुवानम् ) निकालने के योग्य ( कोशेन ) मेघ से ( अक्षतम् ) बड़े ( सिद्धम् ) और समुक्त किये हुए के ( न ) समान ( सोमम् ) सुन्दर पीवधियों के रस को ( पिब ) अच्छे प्रकार पिबो ( तुविष्टमाय ) प्रतीव बहुत प्रकार ( धायसे ) धारणा करनेवाले ( मदाय ) धानन्द के लिए ( हर्यताय ) और कामना किये हुए ( ते ) प्राप के लिए यह दिव्य प्रोषणियों का रस प्राप्त होवे अर्थात् चाहे हुए ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अहा, विश्वेव ) सब दिन जैसे वा ( सूर्यम् ) सूर्यमण्डल को ( हरितः ) दिवा विदिवा ( न ) जैसे वैसे ( त्वा ) प्राप को जो लोग ( आ, यच्छन्तु ) अच्छे प्रकार निरन्तर ग्रहण करे वे सुख को प्राप्त हों ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो बड़े साधन और छोटे साधनो और आयुर्वेद अर्थात् वैद्यकविद्या की रीति से बड़ी-बड़ी प्रोषणियों के रसों को बनाकर उनका सेवन करते वे आरोग्यवान् होकर प्रयत्न कर सकते हैं ॥ २ ॥

फिर कौन परमात्मा को जान सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अविन्द्विवो निहितं गुहां निधि

वेने गर्भं परिवीतमश्विन्यन्ते अन्तरश्मनि।

ब्रजं वज्री गवामिव सिपासन्नङ्गिरस्तमः।

अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता दार इषः परीवृताः ॥३॥

पदार्थ—जो ( वज्री ) शासन के लिए दण्ड धारण किये हुए ( वज्र, गवामिव ) जैसे गौधों के समूह गोशाला में गमन करते, जाते-आते वैसे ( सिपासन् ) जनो को ताड़ना देने अर्थात् दण्ड देने की इच्छा करता हुआ अथवा जैसे ( अङ्गिरस्तमः ) अति श्रेष्ठ ( इन्द्र ) परमेश्वर्यवान् सूर्य ( इषः ) इच्छा करने योग्य ( परीवृताः ) अन्धकार से ढँपी हुई धीधियों को खोले वैसे ( परीवृता ) ढँपी हुई ( इषः ) इच्छाओं और ( दारः ) द्वारों को ( अपावृणोत् ) खोले तथा ( अन्तरे ) देश काल वस्तु भेद से न प्रतीत होते हुए ( अश्वनि ) आकाश में ( अश्वनि ) वर्तमान मेघ के ( अन्तः ) बीच ( परिवीतम् ) सब द्वार से व्याप्त और अति मनोहर जल वा ( वेः ) पक्षी के ( गर्भम् ) गर्भ के ( न ) समान ( गुहा ) बुद्धि में ( निहितम् ) स्थित ( निधिम् ) जिस में निरन्तर पदार्थ धरे जायें उस निधिरूप परमात्मा को ( विबः ) विज्ञान के प्रकाश से ( अविन्द्वत् ) प्राप्त होता है वह अतुल सुख को प्राप्त होता है ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है। जो योग के ग्रंथ धर्म विद्या और सत्सङ्ग के अनुष्ठान से अपनी आत्मा में स्थित परमात्मा को जानें वे सूर्य जैसे अन्धकार को बँधे अपने सगियों की अविद्या छुड़ा विद्या के प्रकाश को उत्पन्न कर सब को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त कराके उन्हें आनन्दित कर सकते हैं ॥ ३ ॥

इस संसार में कौन अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दाहृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः सखेव

तिग्मममनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत्।

संविद्यान ओजसा शवोमिन्द्र मज्जना।

तवैव वृषं वनिनो नि वृश्मि परस्वेव निवृश्मि ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! प्राप जैसे सूर्य ( अहिहत्याय ) मेघ के मारने को ( तिग्मम् ) तीव्र अपने किरणरूपी वज्र को ( स, वज्रत् ) तीव्रता करता वैसे ( गभस्त्योः ) अपनी मुजाओं के ( अश्वमेध ) जल के समान ( असनाय ) फेंकने के लिए तीव्र ( वज्रम् ) शस्त्र को निरन्तर धारण करके ( दाहृहाण ) दोषों का विनाश करते ( इन्द्र ) और विद्वान् होते हुए शत्रुओं को ( स, इषत् ) अति सूक्ष्म करते अर्थात् उनका विनाश करने वा हे ( इन्द्र ) दुष्टों का दोष नाशनेवाले प्राप ( वृषम् ) वृक्ष को ( मज्जना ) बल से ( तवैव ) जैसे बड़ई आदि काटने-हारा वैसे ( ओजसा ) पराक्रम और ( शवोमि ) सेना आदि बलों के साथ ( संविद्यानः ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए ( वनिनः ) मन वा बहुत किरणों जिनके विद्यमान उनके समान दोषों को ( नि, वृश्मि ) निरन्तर काटते वा ( परस्वेव ) जैसे फरसा से कोई पदार्थ काटता वैसे अविद्या अर्थात् मूर्खपन को अपने ज्ञान से ( नि वृश्मि ) काटते हो वैसे हम लोग भी करें ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो मनुष्य प्रमाद और अलस्य आदि दोषों को अलग कर सत्तार में गुणों को निरन्तर धारण करते हैं वे सूर्य की किरणों के समान यहाँ अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर इस सत्तार में कौन प्रकाशित होते हैं इस विषय को

अगले मन्त्र में कहा है—

स्वं वृथा नयं इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो

रथौ इव वाजयतो रथौ इव।

इत उत्तीरयुजत समानमर्थमक्षितम्।

धेनुरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५॥१८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या के अधिपति ! ( त्वम् ) प्राप जैसे ( नद्य ) नदी ( समुद्रम् ) समुद्र को ( वृथा ) निष्प्रयोजन भर देती वैसे ( रथानिव ) रथों पर बैठनेहारों के समान ( वाजयत ) संग्राम करते हुएों को ( रथानिव ) रथों के समान ही ( सत्तवे ) जाने को ( अच्छा, असृज ) उत्तम रीति से कलातन्त्रों से युक्त भागों को बनावें वा ( जनाय ) धर्मयुक्त व्यवहार में प्रसिद्ध मनुष्य के लिए जो ( विश्वदोहसः ) समस्त जगत् को अपने गुणों से परिपूर्ण करते उनके समान ( मनवे ) विचारशील पुरुष के लिए ( विश्वदोहसः ) सत्तार सुख को परिपूर्ण करनेवाले होते हुए प्राप ( धेनुरिव ) दूध देनेवाली गौधों के समान ( इत ) प्राप्त हुई ( ज्ञतीः ) रक्षादि क्रियाओं और ( अक्षितम् ) अक्षय ( समानम् ) समान अर्थात् काम के तुल्य ( अर्थम् ) पदार्थ का ( समुद्रजत ) योग करते हैं वे अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो पुरुष गौधों के समान सुख, रथ के समान धर्म के अनुकूल मार्ग का अवलम्ब कर धार्मिक न्यायाधीश के समान होकर सबको अपने समान करते हैं वे इस संसार में प्रशंसित होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य कितने क्या पाकर कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमां ते वाच वसूयन्त आयवो रथं न धीरः

स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः।

शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्।

अत्यमिव शर्वसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥६॥

पदार्थ—हे ( विप्र ) मेधावी और बुद्धिवाले जन ! जिन ( ते ) प्रापके निकट से ( इनाम् ) इस ( वाचम् ) विद्या धर्म और सत्ययुक्त वाणी को प्राप्त ( आयवः ) विद्वान्-जन ( वसूयन्त ) अपने को विज्ञान आदि धन चाहते हुए ( स्वपा ) जिसके उत्तम धर्म के अनुकूल काम वह ( धीरः ) वीरपुरुष ( वचम् ) प्रशंसित रमण करने योग्य रथ को ( न ) जैसे वैसे ( अतक्षिषुः ) सूक्ष्मबुद्धि को स्वीकार करें वा ( शुम्भन्तः ) शोभा को प्राप्त हुए ( यथा ) जैसे ( वाजेषु ) सशानो में ( जेन्यम् ) जिससे शत्रुओं को जीतते उस ( वाजिनम् ) अति चतुर वा संग्रामयुक्त पुरुष को ( अत्यमिव ) घोड़ा के समान ( शर्वसे ) बल के लिए और ( सातये ) अच्छे प्रकार विभाग करने के लिए ( धनानि ) द्रव्य आदि पदार्थों के समान ( विश्वा ) समस्त ( धना ) विद्या आदि पदार्थों को प्राप्त होकर ( सुम्नाय ) सुख और ( सातये ) समोग के लिए ( त्वम् ) प्राप को ( अतक्षिषुः ) उत्तमता से स्वीकार करे वा अपने गुणों से ढाँपें वे सुखी होते हैं ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो उपदेश करनेवाले धर्मात्मा विद्वान्जन से समस्त विद्याओं को पाकर विस्तारयुक्त बुद्धि अर्थात् सब विषयों में बुद्धि फैलानेहारे होते हैं वे समग्र ऐश्वर्य को पाकर, रथ घोड़ा और वीरपुरुष के समान धर्म के अनुकूल मार्ग को प्राप्त होकर कृतकृत्य होते हैं ॥६॥

इस संसार में कौन ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं इस विषय को

अगले मन्त्र में कहा है—

भिनस्पुगो नवतिमिन्द्र पुग्वे दिवोदासाय महि

दाशुपे नृतो वज्रेण दाशुपे नृतो।

अतिथिग्वाय शम्बरं गिरिग्नो अवांमरत्।

महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

पदार्थ—हे ( नृतो ) अपने शत्रुओं को युद्ध आदि में बलाने वा ( नृतो ) विद्या की प्राप्ति के लिए अपने शरीर की चेष्टा करने ( इन्द्र ) और दुष्टों का विनाश करनेवाले ! जो प्राप ( वज्रेण ) शस्त्र वा उपदेश से शत्रुओं की ( नवतिम् ) नब्बे ( पुग्वे ) नगरियों की ( भिनत् ) विदारते, नष्ट-भ्रष्ट करते वा ( महि ) बड़ापन पाये हुए सत्कारयुक्त ( दिवोदासाय ) इच्छित पदार्थों को अच्छे प्रकार देने-वाले और ( दाशुपे ) विद्यादान किये हुए ( पुग्वे ) पूरे साधनों से युक्त मनुष्य के लिए सुख को धारण करते तथा ( अतिथिग्वाय ) अतिथियों को प्राप्त होने और ( दाशुपे ) दान करनेवाले के लिए ( उग्रः ) तीक्ष्ण स्वभाव अर्थात् प्रचण्ड प्रतापवान् सूर्य ( गिरेः ) पर्वत के प्रागे ( शम्बरम् ) मेघ को जैसे वैसे ( ओजसा ) अपने पराक्रम से ( महि ) बड़े-बड़े ( धनानि ) धन आदि पदार्थों के ( दयमान )

देनेवाले ( ओजसा ) अपने पराक्रम से ( विश्वा ) समस्त ( धनानि ) धनों को ( अबाधत् ) धारण करते तो आप किञ्चित् भी दुःख का कैसे प्राप्त होवे ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस मन्त्र में “नवतिम्” यह पद बहुतां का बोध कराने के लिए है जो शत्रुओं को जीतते, प्रतिपत्तियों का सत्कार करते और धार्मिकों को विद्या आदि गुण देते हुए वर्तमान हैं वे सूर्य जैसे मेघ को वैसे समस्त ऐश्वर्यों को धारण करते हैं ॥७॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्रः समस्तसु यजमानमार्थं प्रावद्विष्वेषु शतमूर्तिराजिषु स्वर्माग्निहेष्वाजिषु ।

मनवे शासदध्वतान त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।

दक्षश्च विश्वं तत्पाणमौषति न्यर्शमानमौषति ॥८॥

पदार्थ—जो ( शतमूर्ति ) अर्थात् जिसमें असंख्यता रक्षा हाती वह ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्यवान् राजा ( स्वर्माग्निहेष्वाजिषु ) जिनमें मुख्य मिष्टचन किया जाता उन ( अजिषु ) प्राप्त हुए ( अजिषु ) सग्रामों में धार्मिक शूरवीरों के समान ( विश्वेषु ) समग्र ( समस्तसु ) सग्राम में ( यजमानम् ) अभय के देनेवाले ( मार्थम् ) उत्तम गुण कर्म स्वभाववाला पुरुष को ( प्रावत् ) अच्छे प्रकार पाले या ( मनवे ) विचारणीय धार्मिक मनुष्य की रक्षा के लिए ( अरन्धयत् ) दुष्ट आचरण करनेवाले डाकुओं को ( शासत् ) शिक्षा देवे और इनकी ( त्वचम् ) सम्बन्ध करनेवाली खाल को ( कृष्णाम् ) खैलता हुआ ( अरन्धयत् ) नष्ट करे वा अग्नि जैसे ( विश्वम् ) सब पदार्थ मात्र को ( दधत् ) जलावे और ( तत्पाणाम् ) पियासे प्राणी को ( औषति ) दाहे, अति जलन देवे ( न ) वैसे ( अरन्धयत् ) प्राप्त हुए शत्रुगण को ( न्योषति ) निरन्तर जलावे वही चक्रवर्ति राज्य करने योग्य होता है ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिए कि श्रेष्ठों के गुण कर्म स्वभावों को स्वीकार और दुष्टों के गुण कर्म स्वभावों का त्याग कर श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों को ताड़ना देकर धर्म में राज्य की शासना करें ॥८॥

फिर इस सत्कार में विद्वानों को कैसा होना चाहिए

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ह्रस्वक्रं प्र बृहज्जात ओजसा प्रपिस्वे

वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति ।

उशना यत्परावतोऽजंगमत्यै कवे ।

सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिग्हाविश्वेव तुर्वणिः ॥९॥

पदार्थ—हे ( कवे ) विद्वन् ! ( यत् ) जो ( ओजसा ) अपने बल से ( अरुणः ) लालरंगयुक्त ( तुर्वणिः ) मेघ को छिन्न-भिन्न करता और ( जात ) प्रकट होता हुआ ( सूर ) सूर्यमण्डल जैसे ( विश्वेवाहा ) सब दिनों का वा ( प्रपिस्वे ) उत्तरायण में ( बृहत् ) महान् ( अक्रम ) चाक के समान वर्तमान जगत् को ( प्र ) प्रकट करता वैसे और ( तुर्वणि ) दुष्टों की हिसा करनेवाले उत्तमोत्तम ( मनुषेव ) मनुष्य के समान ( विश्वा ) समस्त ( सुम्नानि ) सुखों और ( वाचम् ) वाणी का ( आ ) अच्छे प्रकार प्रकट करे वा सूर्य जैसे ( मुषायति ) खण्डन करनेवाले के समान आचरण करता वैसे ( उशान ) समर्थ हातें हुए ( उशना ) विद्यादि गुणों से कान्तियुक्त आप ( ऊतय ) रक्षा आदि व्यवहार के लिए ( परावत ) पर अर्थात् दूर में ( अजंगम् ) प्राप्त हो और दुष्टों को ( मुषायति ) खण्ड-खण्ड करे तो सबका सत्कार करने योग्य है ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सूर्य के तुल्य विद्या, विनय और धर्म का प्रकाश करनेवाले सबकी उन्नति के लिए अच्छा यत्न करते हैं वे आप भी उन्नतियुक्त होते हैं ॥९॥

फिर राजा और प्रजाजनों को परस्पर कैसे वसना चाहिए

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स नो नव्यैर्भिर्दुर्कर्मपन्नयैः पुरां दर्शः पायुभिः पाहि शमैः ।

दिवोदासेभिर्गिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥

पदार्थ—( द्यौः ) जिसके वर्णनेवाले मेघ के कामों के समान काम वह ( पुरां ) शत्रुगणों को ( दर्शः ) दूरने, विदारने, विनाशने ( इन्द्र ) और सबकी रक्षा करनेवाले हे सभापति ( दिवोदासेभिः ) जो प्रकाश देनेवाली ( स्तवाम् ) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त हुए हैं ( सः ) वह आप ( नव्योभिः ) नवीन ( नव्यैः ) प्रशंसा करने योग्य ( शमैः ) सुखों और ( पायुभिः ) रक्षाओं से ( द्यौः ) जैसे सूर्य ( अहोभिरिव ) दिनों से वैसे ( न ) हम लोगों की ( पाहि ) रक्षा करें और ( वावृधीथा ) वृद्धि को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजपुरुषों को सूर्य के समान विद्या, उत्तम शिवा और धर्म के उपदेश से प्रजाजनों को उत्साह देना और उनकी प्रशंसा करनी चाहिए और वैसे ही प्रजाजनों को राजजन वर्तने चाहिए ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजाजन के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ तीसवाँ सूक्त और १६ उन्नीसवाँ वर्ण पूरा हुआ ॥



इन्द्रायेत्यस्य सप्तर्षस्य एकत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य पञ्चदश ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, २ निष्पत्यष्टि, ४ विराडत्यष्टिः । गान्धारः स्वरः ।

३, ५, ६, ७ भुरिगष्टिः । मध्यमः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले एकसौ इकतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में

यह किस का राज्य है । इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इन्द्राय हि द्यौर्मसुरो अनमन्तेन्द्राय

मही पृथिवी वरीमभिर्द्युमन्ताता वरीमभिः ।

इन्द्रं विश्वं सजोषसो देवासां दधिरे पुरः ।

इन्द्राय विश्वा सर्वानानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जिस ( इन्द्राय ) परमेश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिए ( द्यौः ) सूर्य ( द्यौरः ) और मेघ वा जिस ( इन्द्राय ) परमेश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिए ( मही ) बड़ी प्रकृति और ( पृथिवी ) भूमि ( वरीमभिः ) स्वीकार करने योग्य व्यवहारों से ( द्युमन्ताता ) प्रशंसा के विभाग अर्थात् अलग-अलग प्रतीति होने के निमित्त ( अनमन्त ) नमो, नम्रता को धारण करे वा जिस ( इन्द्राय ) सर्वदुःख विनाशने-वाले परमेश्वर को ( सजोषस ) एक-सी प्रीति करनेहार ( विश्वे ) समस्त ( देवास ) विद्वान्जन ( पुर ) सत्कारपूर्वक ( दधिरे ) धारण करें उस ( इन्द्राय ) परमेश्वर के लिए ( हि ) ही ( मानुषा ) मनुष्यों के इन व्यवहारों के समान ( वरीमभिः ) स्वीकार करने योग्य धर्मों से ( विश्वा ) समस्त ( सर्वानानि ) ऐश्वर्य जो ( मानुषा ) मनुष्य सम्बन्धी हैं वे ( रातानि ) दिए हुये ( सन्तु ) होये इसको जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जानना चाहिए कि जितना कुछ यहाँ कार्यकारणत्मक जगत् और जितने जीव वर्तमान हैं यह सब परमेश्वर का राज्य है ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिए

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वेषु हि त्वा सधनेषु तुज्जते समानमेकं

वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।

तं त्वा नावं न पर्षणिं शुषस्यं धुरि धीमहि ।

इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तामैभिरिन्द्रमायवः ॥२॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! ( पृथक्, पृथक् ) अलग-अलग ( सनिष्यवः ) उत्तमता से सेवनेवाले ( वृषमण्यवः ) जिनका बल के क्रोध के समान क्रोध वे हम लोग जिन ( समानम् ) सर्वत्र एक रस व्याप्त ( एकम् ) जिनका दूसरा कोई सहायक नहीं उन ( स्वः ) सुखस्वरूप ( त्वा ) आपको ( विश्वेषु ) समग्र ( सधनेषु ) ऐश्वर्य आदि पदार्थों में विद्वान् लोग जैसे ( तुज्जते ) राखते अर्थात् मानते-जानते हैं वैसे ( हि ) ही ( त्वम् ) उन ( त्वा ) आपको ( शुषस्यं ) बलवान् पुरुष के ( धुरि ) धारण करनेवाले काठ पर ( पर्षणिम् ) सींचने योग्य ( नावम् ) नाव के ( न ) नमान ( धीमहि ) धारण करे वा ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्य करानेवाले सूर्यमण्डल को जैसे उसके ( आयवः ) चागे और घूमते हुए लोक वैसे वा जैसे ( यज्ञैः ) विद्वानों के सङ्ग और सेवनों से ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्य को ( न ) वैसे ( चितयन्त ) अच्छे प्रकार चिन्तन करते हुए ( आयवः ) पुरुषार्थ को प्राप्त होने-वाले हम लोग ( स्तामैभिः ) स्तुतियों में आपकी प्रशंसा करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् जन जिस सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध, बुद्ध और मुक्तस्वभाव, सर्वत्र एकरस, व्यापी, सबका आधार, सब ऐश्वर्य देनेवाले, एक भद्र है कि जिसकी तुल्यता का दूसरा नहीं उस परमात्मा की उपासना करते वही निरन्तर सबको उपासना करने योग्य है ॥ २ ॥

फिर सब की किसकी उपासना करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वि त्वा ततस्ते मिथुना अवस्यवो

व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः ससन्त इन्द्र निःसृजः ।

यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्तो समृहमि ।

आविष्करिर्दधृषं सवामुवं वज्रमिन्द्र सवामुवं ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्य के देनेहारे जगदीश्वर । ( सख्यः ) सहते हुए ( निःसृजः ) निरन्तर अनेकानेक व्यवहारों को उत्पन्न करने ( अवस्थः ) और अपनी रक्षा चाहनेवाले ( निःसृजः ) अतीव सम्पन्न ( मिथुना ) स्त्री और पुरुष दो-दो अने ( स्वा ) आपकी प्राप्त होके ( स्वस्थ ) जाने योग्य ( गन्धर्व ) गौरी के लिए हित करनेवाले अर्थात् जिसमें आराम पाने को गौरी जाती उस गोडा आदि स्थान के ( साता ) सेवन में जैसे दुःख छूटें वैसे दुःखों को ( विततम् ) छोड़ते हैं । हे ( इन्द्र ) दुःखों का विनाश करनेवाले ( यत् ) जो ( गन्धर्व ) गौरी के समान आचरण करते ( हा ) दो ( स्व ) सुखस्वरूप आपकी ( वन्ता ) प्राप्त होते हुए ( जना ) स्त्री-पुरुषों को ( आविष्कारितम् ) प्रकट करते हुए आप ( समूहसि ) उनको अच्छे प्रकार चेतना देते ही उन ( सखाभुवम् ) समवयम् सम्बन्ध में प्रसिद्ध होते हुए ( वक्ष्यम् ) दुष्टों को वष्य के समान दण्ड देने ( वक्ष्यम् ) सबको सींचने ( सखाभुवम् ) और सत्य की भावना करानेवाले आपकी वे दोनों मिश्र उपासना करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो पुरुष और स्त्री सब जगत् को प्रकाशित करने, उत्पन्न करने, वारण करने और देनेवाले सर्वात्म्यामी जगदीश्वर ही का सेवन करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

फिर कौन क्या करके क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पुरवः पुरो यदिन्द्र

शारदीगवातिरः सामहानो अवातिरः ।

शासस्तर्पिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।

महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सबके वारण करनेहारे । जैसे ( पुरवः ) मनुष्य ( ते ) आपके ( अस्य ) हम ( वीर्यस्य ) पराक्रम के ( पुर ) प्रथम प्रभाव को ( विदुः ) जानें वैसे और भी जानें और ( यत् ) जो ( सामहान ) सहन करता हुआ जन ( इमाः ) इन प्रजा और ( शारदी ) शरद् ऋतुसम्बन्धी ( अप ) जलो को ( अवातिर ) प्रकट करे वैसे आप भी जानो और ( अवातिर ) प्रकट करो । हे ( अवस ) बल के ( पते ) स्वामी ( इन्द्र ) सबकी रक्षा करनेहारे । जैसे आप जिस ( अयज्यम् ) यज्ञ न करनेहारे ( मर्त्यम् ) मनुष्य को ( शास ) सिलाओ वा जो ( मन्दसान ) कामना करता हुआ ( महीम् ) बड़ी ( पृथिवीम् ) पृथिवी को पाकर ( इमाः ) इन ( अप ) प्राणी के समान वर्तमान प्रजाजनों को पीडा देवे ( तम् ) उसको आप ( अमुष्णा ) चुराओ, छिपाओ और हम भी सिलावें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो बर्मात्मा सज्जनों के प्रभाव को जान कर बर्माचरण करते हैं वे दुष्टों को सिलसला सकते हैं अर्थात् उनकी दुष्टता दूर होने को अच्छी निगा से सकते हैं ॥ ४ ॥

फिर प्रजा की रक्षा करनेहारे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आदिते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदैषु

वृषभशिजो यवाविथ सखीयतो यदाविथ ।

चकथे कारमैम्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।

ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णात श्रवस्यन्तः सनिष्णात ॥५॥

पदार्थ—हे ( वृषभ ) आनन्द को वर्णित हुए विद्वन् ! ( यत् ) जो बर्मात्मा जन ( ते ) आपके ( अस्य ) इस ( वीर्यस्य ) पराक्रम के प्रभाव से ( मदैषु ) आनन्दों में वर्तमान ( चर्किरः ) धर्म की कामना करते हुए जन ( चर्किरम् ) दुष्टों को निरन्तर दूर करे वा ( अवस्थः ) अपने को अन्न की इच्छा करते हुए ( प्रवन्तवे ) अच्छे विभाग करने को ( पृतनासु ) मनुष्यों में ( सनिष्णात ) सेवन करें अर्थात् ( अन्वागन्वात् ) अलग-अलग ( मन्त्रम् ) गद्दी को जैसे मेघ वैसे ( कारम् ) जो किया जाता उस कार का ( सनिष्णात ) सेवन करें उन ( सखीयतः ) मित्र के समान आचरण करने हुए जनो को आप ( आविथ ) पालो ( यत् ) जिस कारण जिनको ( आविथ ) पालो इससे उनको पुरुषार्थवाले ( चकथे ) करो ( पृथ्वः ) इन धार्मिक सज्जनों से सब राज्य की पालना करो और जो आपके कार्यकारी पुरुष हो ( ते ) वे भी धर्म से ( आविथ ) ही प्रजाजनों की पालना करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य प्रजा की रक्षा करने में अधिकार पाये हुए हैं वे धर्म के साथ प्रजा पालने की इच्छा करते हुए उत्तम यत्नवान् हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य कित से क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उतो नो अस्या उपसो जुषेत शर्कस्य बोधि

हविषो हवीमभिः स्वर्पाता हवीमभिः ।

यदिन्द्र हन्तवे मृषो हवा वज्रिन् विकेतसि ।

आ मे अस्य वेवसो नवीयसो मन्म भुधि मयवीसः ।६॥

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) प्रशंसित वाक्पुत्र विद्वान् ! ( इन्द्र ) दुष्टों का संहार करनेवाले आप जैसे ( शर्कस्य ) सूर्य और ( अस्या ) इस ( उपस ) प्रभात-वेला के प्रभाव से जन सचेत होते, जागते हैं वैसे ( न ) हम लोगों को ( बोधि ) सचेत करो ( हि, उत्तो ) और निश्चय से ( स्वर्पाता ) सुखों के अलग-अलग करने में ( हवीमभिः ) स्पर्धा करने योग्य कामों के समान ( हवीमभिः ) प्रशंसा के योग्य कामों से ( हविष ) देने योग्य पदार्थ का ( जुषेत ) सेवन करो ( यत् ) जो ( वृषा ) बल के समान बलवान् आप ( मूषः ) संधामों में स्थित शत्रुओं को ( हन्तवे ) मारने को ( विकेतसि ) जानो ( नवीयसः ) अतीव नवीन विद्या पढ़ने वाले ( वेवस ) बुद्धिमान ( मे ) मुझ विद्यार्थी और ( अस्य ) इस ( नवीयस ) अत्यन्त नवीन पढ़ानेवाले विद्वान् के ( मन्म ) विज्ञान उत्पन्न करनेवाले वाक्पुत्र को ( आविथि ) अच्छे प्रकार सुनो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्य से प्रकट हुई प्रभातवेला से जागे हुए जन सूर्य के प्रकाश में अपने-अपने व्यवहारों का आरम्भ करते हैं वैसे विद्वानों से सुबोध किये मनुष्य विशेष ज्ञान के प्रकाश में अपने-अपने कामों को करते हैं । जो दुष्टों की निवृत्ति और श्रेष्ठों की उत्तम सेवा वा नवीन पढ़े हुए विद्वानों के निकट से विद्या का ग्रहण करते हैं वे चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति में सिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

फिर राजा और प्रजाजनों को किस को छोड़ क्या करना चाहिए,

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं तमिन्द्र बावृधानो अस्मपुरमित्यन्तं

तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।

जहि यो नो अघायति नृणुष्व सुश्रवंस्तमः ।

रिष्टं न यामक्ष्य भूत दुर्मतिर्विश्वाप भूत दुर्मतिः ॥७॥२०॥

पदार्थ—हे ( तुविजात ) बहुतों में प्रसिद्ध ( शूर ) शत्रुओं को मारनेवाले ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त ( सुश्रवंस्तमः ) अतीव सुन्दरता से सुननेहारे और ( बावृधानः ) बढते हुए ( अस्मदम् ) हम लोगों में अपनी इच्छा करनेवाले ( त्वम् ) आप ( वज्रेण ) वाक्पुत्र से ( अविश्रयन्तम् ) मनुष्य करते हुए ( मर्त्यम् ) मनुष्य को ( जहि ) मारो ( य ) जो ( नः ) हम लोगों के लिए ( अघायति ) अपना दुष्कर्म चाहता है ( तम् ) उस ( मर्त्यम् ) मनुष्य को मारो और जो ( यामन् ) रात्रि में ( दुर्मति ) दुष्टमतिवाला मनुष्य ( अप, भूत ) अप्रसिद्ध हो, छिपे उसको ( रिष्टम् ) दो मारनेवाले ( न ) जैसे मारें वैसे ( जहि ) मारो अर्थात् मर्यन्त दण्ड देओ जो ( दुर्मति ) दुष्टमति हो वह ( विश्वा ) समस्त हम लोगों से ( अप, भूत ) छिपे, दूर हो, यह आप ( श्रुक्ष्य ) सुनो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो धार्मिक राजा और प्रजाजन ही वे सब शत्रुहृद्यों से डर, बैर करने और पराधा माल हरनेवाले दुष्टों को मार धर्म के अनुकूल राज्य की शिक्षा और बेखटक मार्ग कर विद्या की वृद्धि करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में श्रेष्ठ और दुष्ट मनुष्यों का सत्कार और ताड़ना के वर्णन से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ सज्जति है

यह जानना चाहिए ॥

यह एकली इक्कीसवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ त्वयेत्यथ वक्षस्य इति शत्रुहृदयस्य शततमस्य सूक्तस्य पदच्छेपः ।

इन्द्रो देवताः । १, २, ५, ६ विराडत्यष्टिद्वयम् । गान्धार स्वर ।

२ भुरिगतिशक्करी छन्दः । वक्षसः स्वर । ४ निष्कण्डि-

छन्दः । मध्यमः स्वर ॥

फिर युद्ध समय में सेनापति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वया वयं मघवन पृथ्वे घन इन्द्रत्वोताः

सासहाम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।

नेदिष्ठे अस्मिन्नन्यधि वोचानु सुन्वते ।

अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( मघवन ) परम प्रशंसित बहुत धनवाले ( इन्द्रत्वोताः ) अत्युत्तम ऐश्वर्ययुक्त जो आप उन्हीं पाले हुए ( वयम् ) हम लोग ( त्वया ) आपके साथ ( पृथ्वे ) अगले महाधर्मों ने किये ( वने ) वन के निमित्त ( पृतन्यतः ) मनुष्यों के समान आचरण करते हुए मनुष्यों को ( सासहाम ) निरन्तर सह ( वनुष्यतः ) और सेवन करनेवालों का ( वनुयाम ) सेवन करें तथा ( भरे ) रक्षा में ( कृतम् ) प्रसिद्ध हुए को ( वाजयन्तः ) समभाते हुए हम लोग ( अस्मिन् ) इस ( यज्ञे ) यज्ञ में तथा ( भरे ) संग्राम में ( कृतम् ) उत्पन्न हुए व्यवहार को ( विचयेम ) विशेष कर लोचें और ( नेदिष्ठे ) अति निकट ( अस्मिन् ) इस



( अहनि ) आज के दिन ( सुव्रते ) व्यवहारों की मित्रि करते हुए आप मत्स्य उपदेश ( नु ) शीघ्र ( अविबोध ) सबके उपगन्त करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि धार्मिक सेनापति के साथ प्रीति और उत्साह कर शत्रुओं को जीतने की प्रति उत्तम धन का समूह सिद्ध करे और सेनापति समय-समय पर अपनी वस्तुता से शूरता आदि गुणों का उपदेश कर शत्रुओं के साथ अपने सैनिकजनों का युद्ध करावे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वर्जेषि भरं आपस्य वक्मन्पुपुर्धुधः

स्वस्मिन्नज्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नज्जसि ।

अहन्निद्रो यथा विदे शीघ्रशीघ्रोपनाच्यः ।

अस्मत्ता तै सध्रक् मन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( यथ ) जैसे ( सध्रक् ) साथ जानेवाला ( इन्द्र ) सूर्यमण्डल ( स्वर्जेषि ) सुख से जीतनेवाले ( विदे ) जानवान् पुरुष के लिए ( शीघ्रशीघ्रो ) शिर मध्ये ( उपवाच्य ) समीप कहने योग्य है वैसे ( भरे ) सग्राम में ( आपस्य ) पूर्ण बल ( क्राणस्य ) करते हुए समय के विभाग ( उषधुध ) लक्ष काल अर्थात् रात्रि के चौथे प्रहर में जागे हुए तुम लोग ( वक्मन् ) उपदेश में जैसे ( स्वस्मिन् ) अपने ( अज्जसि ) व्यवहार के निमित्त वैसे ( स्वस्मिन् ) अपने ( अज्जसि ) चाहें हुए व्यवहार में जैसे मेघ को सूर्य ( अहन् ) मार्गमा वैसे शत्रुओं को मारो जो ( अस्मत्ता ) हम लोगों के बीच ( भद्रा ) कल्याण करनेवाले ( रातय ) दान आदि काम ( ते ) तुम ( भद्रस्य ) कल्याण करनेवाले के ( रातय ) दानों के समान हो वे ( ते ) तरे ( सन्तु ) हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमाकार है । जो सभापति सब शूरवीरों का अपने समान मत्कार करता है वह शत्रुओं का जीतकर सबके लिए सुख द सकता है, सग्राम में अपने पदार्थ शत्रुओं के लिए और शत्रुओं के अपने लिए करन चाहिए ऐसे एक-दूसरे में प्रीति का साथ विरोध छोड़ उत्तम जय प्राप्त करनी चाहिए ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्

यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारमि क्षयम् ।

वि तद्वीचिरथं द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।

स या विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्रयो गवेषणः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( गवेषण ) जो वाणी की उच्छ्वा करता है उस ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् के समान ( ते ) आपका ( प्रत्नथा ) प्राचीन ( यस्मिन् ) जिस ( यज्ञे ) व्यवहार में ( अतस्य ) सत्य का ( शुशुक्वनम् ) प्रतिप्रकाशित ( क्षयम् ) निवास का ( वारम् ) स्वीकार करने को ( वा ) जल और ( क्षयम् ) प्राप्त होने योग्य पदार्थ के समान जो ( प्रय ) प्रीति करनेवाले वचन को ( अकृण्वत ) उच्चारण करे उनके ( तत् ) उस पूर्वोक्त वचन को ( तु ) तो आप प्राप्त ( अस्ति ) है ( अथ ) इसके अनन्तर ( द्विता ) दो का होना जैसे हो वैसे ( रश्मिभिः ) किरणों के साथ ( अन्त ) भीतर जिसको ( पश्यन्ति ) देखते हैं ( तत् ) उसको तू ( वि, बोधे ) अच्छे प्रकार कह और ( स ) वह ( बन्धु-क्षिद्रम् ) बन्धुओं को निवास कराने हुए पुरुषों के लिए ( गवेषण ) किरणों को इष्ट सूर्य के समान ऐश्वर्यवान् मैं ( अन्तु, विदे ) अनुकूलता से जानता हूँ ( य ) उसी को आप भी जानो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जो मत्स्य गुणों में प्रीति करते हैं वे विद्वान् होते और जो विद्वान् हो वे सूर्य के प्रकाश से सब पदार्थों को हाथ में आमले के समान देख सकते हैं ॥ ३ ॥

फिर जोन चक्रवर्ति राज्य करने को योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नू इत्था तै पूर्वथा प्रवाच्यं

यदङ्गिरोभ्योऽष्टुणोरपं व्रजमिन्द्र शिक्षापं व्रजम् ।

पेभ्यः समान्या दिशाऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च ।

सुन्वद्भ्यो रन्ध्यां कं चिद्व्रतं हृणायन्तं चिद्व्रतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) पदानों से प्रज्ञान का गिनाश करनेवाले ! ( शिक्षन् ) विद्या का प्रहरण कराते हुए आप ( अप, व्रजम् ) न जानने योग्य कुटिलगामी के समान ( व्रजम् ) अवसर्गमार्गी जन को ( अपावृणो ) मत स्वीकार करो ( अङ्गिरो-भ्यः ) प्राणों के समान विद्वान् जनों ने ( यत् ) जो ( पूर्वथा ) प्राचीन ढङ्गों से ( प्रवाच्यम् ) अच्छे प्रकार कहने योग्य उसकी ( च ) भी ( नु ) शीघ्र ग्रहण

करो जो आप ( इन्द्र ) इन विद्वान् और ( सुन्वद्भ्यम् ) पदार्थों के सार को लीकते हुए ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( समान्या ) एक-सी वर्तमान ( दिशा ) दिशा से शत्रुओं को ( अ, योत्सि ) अच्छे प्रकार लड़ते-लड़ते ( च ) और ( जेषि ) जीतते वा ( हृणायन्तम् ) हिरण के समान कूदने-फादते हुए ( अचतम् ) सत्य-भाषणादि व्यवहार रहित पुरुष के ( चित् ) समान ( अचतम् ) झूठे आचार से युक्त जन को ( रन्ध्या ) मारो ( च ) और वैसे ( क, चित् ) किसी दुष्ट को दण्ड देने के बिना मत छोड़ो ( इत्था ) ऐसे वर्तते हुए ( ते ) आपको इस जन्म और परजन्म में आनन्द की सिद्धि होगी इसको जानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जिनके राज्य में दुष्ट वचन कहनेवाले और अधिक व्यवहारी नहीं हैं वे चक्रवर्ति राज्य करने का समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करके क्या कर सकते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स यज्जनान क्रतुभिः शूर ईक्षयदने हिते

तरुणन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।

तस्मा आयुः प्रजावदिद्राधे अर्चन्त्योजसा ।

इन्द्र ओक्ष्यं दिधिपन्न धीतयो देवा अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! ( श्रवस्यव ) अपने को सुनने में चाहना करनेवालों के समान वत्समान ( श्रवस्यव ) अपने को सुनने की इच्छा करनेवाले तुम जैसे ( क्रतुभिः ) बुद्धि वा कर्मों से ( यन् ) जिन ( जनान् ) धार्मिक जनों का ( हिते ) सुख करनेवाले ( धने ) धन के निमित्त ( तरुणन्त ) पार करो उद्धार करो और ( प्रयक्षन्त ) दुष्टों को दण्ड दमो और जो ( शूर ) निर्भय शूरवीर पुरुष ( समीक्षयन् ) जान कराये व्यवहार का दमवि ( तस्मै ) उसकी लिए ( प्रजावत् ) जिसमें बहुत सन्तान विद्यमान वह ( आयुः ) आयु हो । हे उत्तम विचारशील पुरुषों ! तुम ( धीतय ) धारणा करने हुआ क ( न ) समान ( धीतय ) धारणा करनेवाले होते हुए परम ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर में ( ओक्षयम् ) धरो में जो श्रेष्ठ व्यवहार उसका मित्र कर ( देवान् ) विद्वानों को ( अच्छ ) अच्छा ( दिधिपन्त ) उपदेश करत, समझाने हैं वे आप ( आधे ) दुष्ट व्यवहारों की बाधा के लिए ( ओजसा ) पराक्रम से ( अर्चन्ति ) सत्कार करते शत्रुओं के समान कष्ट में ( इन् ) ही रक्षा करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमाकार है । जो विद्वानों के सङ्ग और सेवा में विद्याओं को पाकर पुरुषार्थ से परम ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं वे सब जानवान् पुरुषों को सुखयुक्त कर सकते हैं ॥ ५ ॥

फिर सेना जन परस्पर कैसे बर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा

यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।

दूरे चत्तायच्छन्सद् गहनं यदिनक्षत् ।

अस्माक शत्रन्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्पीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( पुरोयुधा ) पहले युद्ध करनेवाले ( इन्द्रापर्वता ) सूर्य और मेघ के समान वर्तमान सेनाधीशों ! ( युवम् ) तुम ( य ) जो ( न ) हम लोगों की ( पृतन्यात् ) सेना को बाधे ( तम् ) उसको ( वज्रेण ) पत्ते तीक्ष्ण शस्त्र वा अस्त्र अर्थात् कलाकौशल से बने हुए शस्त्र से ( अप, हतम् ) अत्यन्त मारो जैसे तुम दोनों बिस-जिसको ( हतम् ) मारो ( त, तम् ) उस-उसको ( इत् ) ही हम लोग भी मारें और बिस-जिसको हम लोग मारें ( त, तम् ) उस-उसको ( इत् ) ही तुम मारो । हे ( शूर ) शूरवीर ! ( वर्मा ) शत्रुओं को विदीर्ण करते हुए आप जिन ( अस्माकम् ) हमारे ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( विश्वतः ) सब ओर से ( वरपीष्ट ) दूरी विदीर्ण करो इनको हम लोग भी ( विश्वतः ) सब ओर से ( परि ) सब प्रकार दूरें, विदीर्ण दूरें ( यत् ) जो ( चत्ताय ) भागे हुए के लिए ( गहनम् ) कठिन व्यवहार को ( दूरे ) दूर में ( अस्सत् ) स्वीकार करे और शत्रुओं की सेना को ( हनयत् ) व्याप्त हो उसकी तुम निरन्तर रक्षा करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । सेना पुरुषों को जो सेनापति आदि पुरुषों के शत्रु हैं वे अपने भी शत्रु जानने चाहिए शत्रुओं से परस्पर फूट की न प्राप्त हुए धार्मिक जन उन शत्रुओं को विदीर्ण कर प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजधर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकली बलौसर्वा सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

उभे इत्यस्य सप्तम्यस्य अर्धस्त्रिशतस्य सप्ततमस्य सूक्तस्य पञ्चम्यस्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १ निष्पद्यन्तः । अथवा स्वरः । २, ३, निष्पद्यन्तः ।

४ स्वराङ्गमुत्पद्यन्तः । गान्धारः स्वरः । ५ आर्षो गान्धारीकम् ।

गान्धारः स्वरः । ६ स्वराङ्गं गान्धारीकम् । निषादः

स्वरः । ७ विराड्छिन्दस्वः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ सात ऋचा बाले एकस्मिन् तैत्तिरीयं सूक्तं का भारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में कैसे स्थिर राज्य हो इस विषय का उल्लेख किया है—

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरन्दिन्द्राः ।

अभिच्छलय यत्र हता अमित्रा वेलस्थानं परि तृह्णा अशेरन् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( अमित्रा ) जिनमें अविद्यमान राजजन हैं उन ( महीः ) पृथिवी भूमियों का ( अभिच्छलय ) सब धोर से संग कर अर्थात् उनको प्राप्त होकर ( ऋतेन ) सत्य से ( उभे ) दोनों ( रोदसी ) प्रकाश और पृथिवी को ( पुनामि ) पवित्र करता हूँ और ( द्रुहः ) द्रोह करनेवालों को ( सं दहामि ) अच्छी प्रकार जलाता हूँ ( यत्र ) जहाँ ( वेलस्थानम् ) बिलस्थान को प्राप्त ( परि, तृह्णाः ) सब धोर से मारे ( हताः ) मरे हुए ( अमित्रा ) मित्रभाव रहित शत्रुजन ( अशेरन् ) सोवें वही मैं यत्न करता हूँ वैसे तुम भी आचरण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणमालकार है । सब मनुष्यों को यह निरन्तर इच्छा करनी चाहिए कि सत्यव्यवहार से राज्य की उन्नति पवित्रता शत्रुओं की निवृत्ति और निर्वैर निश्चय राज्य हो ॥ १ ॥

फिर शत्रुजन कैसे मारने चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अभिच्छलया चिदद्विवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।

छिन्धि बटुरिणा पदा महावटुरिणा पदा ॥२॥

पदार्थ—हे ( अद्विवः ) मेघ के समान वर्तमान शूरवीर तू प्रशंसित बल को ( अभिच्छलय ) सब धोर से पाकर ( यातुमतीनाम् ) जिसमें बहुत हिमक मार-बाढ़ करनेवाले विद्यमान उन सेनाओं के ( महावटुरिणा ) बड़े-बड़े रग से युक्त ( पदा ) चौथे भाग से जैसे ( चित् ) वैसे ( बटुरिणा ) लपटे हुए ( पदा ) शत्रुओं के चौथे भाग से वा अपने पैर से दबाके ( शीर्षा ) शत्रुओं के शिरो को ( छिन्धि ) छिन्न-भिन्न कर ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणमालकार है । जो अपने बल की उन्नति कर शत्रुओं के बलों को छिन्न-भिन्न कर उनको पैर से दबाता है वह राज्य करने के योग्य होता है ॥ २ ॥

फिर शत्रुओं की सेना कैसे मारनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अवासां मयवज्रहि शर्षा यातुमतीनाम् ।

वेलस्थानके अर्मके महावेलस्थे अर्मके ॥३॥

पदार्थ—हे ( मयवज्र ) परम धन युक्त राजन् ! ( अर्मके ) जो वृक्ष पट्टेवालेहारे और ( वेलस्थानके ) जिसमें बिलयुक्त स्थान हैं उनके समान ( अर्मके ) वृक्ष पट्टेवालेहारे ( महावेलस्थे ) बड़े-बड़े गड़ों से युक्त स्थान में ( अवासां ) इन ( यातुमतीनाम् ) जिसका सेनाओं के ( शर्षा ) बल को ( मय, जहि ) छिन्न-भिन्न करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—सेनावीरो को चाहिए कि शत्रुओं की सेनाओं को अतीव दुःख से जाने योग्य गड़ों आदि से युक्त स्थान में गिराकर मारे ॥ ३ ॥

यासां तिस्रः पञ्चाशतौऽभिच्छलैरपावपः ।

तत्सु तै मनायति तत्सु तै मनायति ॥४॥

पदार्थ—हे परम उत्तम धनयुक्त राजन् ! ( यासाम् ) जिन शत्रुसेनाओं के बीच ( तिस्रः ) तीन वा ( पञ्चाशतः ) पचास सेनाओं की ( अभिच्छलैः ) चारों ओर से जाने-माने आदि व्यवहारों से ( अपावपः ) दूर पहुँचाओ उन सेनाओं का ( तत्सु ) वह पहुँचाना ( तै ) तेरे लिए ( सुजनायति ) अपने अच्छे मन के समान आचरण करता फिर भी ( तत्सु ) वह ( तै ) तेरे लिए ( सुजनायति ) अपने अच्छे मन के समान आचरण करता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ऐसा बल बढ़ावें जिससे एक ही ओर पचास दृष्ट शत्रुओं को बीते धोर अपने बल की रक्षा करे ॥ ४ ॥

फिर राजसर्पों को क्या करके क्या बढ़ाना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पिशाङ्गमृष्टिमृष्टां पिशाचिमिन्द्र सं मृण । सर्वं रक्षो नि र्हय ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) पुष्टों को विदीर्ष करनेवाले राजजन ! आप ( पिशाङ्गमृष्टिम् ) अच्छे प्रकार पीला बना होने से जिस पाक होता ( मृष्टिम् ) उस निरन्तर भयंकर ( पिशाचिम् ) पीसने दुःख देनेवाले जन को ( सम्मृष्टम् ) अच्छे प्रकार मारो और ( सर्वम् ) समस्त ( रक्षः ) दुष्टजन को ( निर्वहय ) निकालो ॥५॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि पुष्ट शत्रुओं को निर्मूल कर सब सज्जनों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ५ ॥

फिर उत्तम मनुष्यों को किसकी निवृत्ति कर क्या प्रचार करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अवर्मह इन्द्र दादहि अधी नः शुशोच हि धौः क्षा

न भीषाँ अद्विवो घृणां भीषाँ अद्विवः ।

शुष्मिन्तमो हि शुष्मिर्भिर्वैरैः प्रभिरिपसैः ।

अपुरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्त्वभिस्त्रिस्तपैः शूर सत्त्वभिः ॥६॥

पदार्थ—हे ( अद्विवः ) प्रशंसित मेघ युक्त सूर्य के समान वर्तमान ( इन्द्रः ) उत्तम गुणों से प्रकाशित पुरुष ! आप ( क्षा ) नीचे को मुख रखनेवाले कुटिल को ( दादहि ) बिदारो, मारो ( नः ) हम लोगों की ( शुशोच ) शोचो, हमारे प्यास को ( अधी ) सुनो और ( धौः ) प्रकाश जैसे ( क्षाः ) भूमियों को ( नः ) वैसे ( महः ) अत्यन्त रक्षा करो । हे ( अद्विवः ) प्रशंसित पर्वतवाले ! आप ( हि ) ही ( भीषा ) भय से ( घृणात् ) प्रकाशित के समान व्याप को प्रकाश करो और ( भीषा ) भय से पुष्टों को दण्ड देओ । हे ( शूर ) निर्भय निम्न शूरवीर पुरुष ! ( शुष्मिन्तमः ) जिनके अतीव बल विद्यमान ( अपुरुषघ्नः ) जो पुरुषों को न मारने-वाले आप ( अद्विवः ) तीक्ष्ण स्वभाववाले ( शुष्मिभिः ) बली पुरुषों के साथ तीक्ष्ण शत्रुओं के ( भीषः ) मारने के उपायों से ( इयसैः ) जाते हो सो आप ( त्रिस्तपैः ) इक्कीस ( सत्त्वभिः ) विद्वानों के साथ ही वर्तव्य रखो । हे ( अप्रतीत ) न प्रतीत होनेवाले गूढ़ विचारयुक्त ( शूरः ) पुष्टों को मारनेवाले आप ( हि ) ही ( सत्त्वभिः ) पदार्थों से युक्त होओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकमुत्प्रेषणमालकार है । वाचक पुरुष को नीचपन की निवृत्ति और उत्तमता का प्रचार कर प्रशंसित बल की उन्नति के लिए शूरवीर पुरुषों से प्रजाजनों को अच्छे प्रकार रक्षा कर दण्ड प्राप्त और एक जीव से दण्ड इन्द्रियों के समान पुरुषाण कर यथायोग्य पदार्थों की वृद्धि प्राप्त करने योग्य है ॥ ६ ॥

फिर क्या करके और किसकी निवृत्ति कर मनुष्य ससर्प होते हैं

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वनोति हि सुवन्धयं परीणसः

सुन्वानो हि प्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।

सुन्वान इत्सिपासति सहस्रा वाज्यवृतः ।

सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवँ रयि ददात्याभुवँ ॥७॥२२॥१६॥

पदार्थ—जो ( इन्द्रः ) सुख देनेवाला ( सुन्वानावः ) पदार्थों का सार निकालते हुए पुरुष को ( आभुवम् ) जिसमें अच्छे प्रकार सुख होता उस ( रयिम् ) धन को ( ददाति ) देता है वह ( सुन्वानः ) पदार्थों के सारों को प्रकट करता हुआ ( सवृतः ) प्रकट ( वाजी ) प्रशस्त ज्ञानवान् पुरुष ( सहस्रा ) हजारों ( देवानाम् ) विद्वानों के ( यज, द्विषः ) प्रति शत्रुओं को ( इत् ) ही ( सिपासति ) प्रलग करने को चाहता है जो ( यज, द्विषः ) अत्यन्त वैर करनेवालों को प्रलग करना चाहता है वह सब के लिए ( आभुवम् ) जिसमें उत्तम सुख हो उस धन को ( ददाति ) देता है और जो ( हि ) निश्चय से ( सुन्वानः ) पदार्थों के सार को सिद्ध करता हुआ ( यजति ) संग करता है ( स्म ) वही ( परीणसः ) बहुत पदार्थों और ( सवन् ) पर को ( सुन्वानः ) सिद्ध करता हुआ ( हि ) ही सुख ( वनोति ) माँगता है ॥७॥

भाषार्थ—जो सब में मित्रता की भावना कराकर सब के शत्रुओं की निवृत्ति कराते हैं वे सब के सुख करानेवाले होकर सब के लिए बहुत सुख दे सकते हैं ॥७॥

इस सूक्त में श्रेष्ठों की पालना और पुष्टों की निवृत्ति से राज्य की स्थिरता का वर्णन है इससे इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकस्मिन् तैत्तिरीयं सूक्तं, बार्हस्पत्यं वर्ग और उन्नीसवां अनुवाक पूरा हुआ ॥



आत्मेत्यस्य बहुचस्य ऋग्वेदशतस्य सप्ततमस्य सूक्तस्य पञ्चम्यस्य ऋषिः ।

वायुर्देवता । १, ३ निष्पद्यन्तः, २, ४ विराड्छिन्दस्वः ।

गान्धारः स्वरः । ५ अर्षिः, ६ विराड्छिन्दस्वः ।

मध्यमः स्वरः ॥

अथ ऋः ऋचा बाले एकस्मिन् तैत्तिरीयं सूक्तं का भारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् कैसे हों इस विषय को कहा है—

आ स्वा जुषो रारहासा

अभि मया वायो वहन्तिह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।

ऊर्ध्वा ते अनु सृत्ता मनेस्तिष्ठतु जानती ।

नियुत्वंता रयेना याहि दावने वायो मयस्य दावने ॥१॥

पदार्थ—हे (बायो) पवन के समान वर्तमान विद्वन् ! (इह) इस संसार में (सोमस्य) धीवशि आदि पदार्थों के रस को (पूर्वपीतये) भगने सज्जनों के पीने के समान (पूर्वपीतये) जो पीना है उसके लिए (पुषः) वेगवान् (राहवा) छोड़नेवाले पवन (त्वा) आपको (प्रयः) प्रीतिपूर्वक (अग्नि, वा, बहुषु) चारों ओर से पहुँचावे । हे (बायो) जानवान् पुरुष ! जिस (ते) आप के (अग्नि) उन्नतियुक्त प्रति उत्तम (सूता) प्रिय वाली (आवती) और जानवती हुई स्त्री (अन) मन के (अन, तिष्ठतु) अनुकूल स्थित हो सो आप (सकस्य) यज्ञ के सम्बन्ध में (बावने) दान करने वाले के लिए जैसे वैसे (बावने) देनेवाले के लिए (निमुत्तता) जिसमें बहुत छोटे विद्यमान हैं उस (रश्मि) रमण करने योग्य मान से (आ, याहि) आओ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । विद्वान् लोग सर्व प्राणियों में प्राण के समान प्रिय होकर अनेक छोड़ो से जुटे हुए रथों से आवें-भावें ॥ १ ॥

किं मनुष्यों को किसका सेवन कर क्या प्राप्त करना चाहिए  
इस विषय की भगले मन्त्र में कहा है—

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्द्वोऽस्मत्क्राणासः सुकृता  
अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।  
पदे क्राणा इरध्वै दक्षं सचन्त ऊतयः ।  
सधीचीना निपुतो दावने धिय उप अवत ई धियः ॥२॥

पदार्थ—हे (बायो) पवन के समान मनोहर विद्वन् ! (यत्) जो (अस्मत्) हम लोगों से (क्राणासः) उत्तम कर्म करते हुए (अभिद्यवः) जिनके चारों ओर से विद्या के प्रकाश विद्यमान (सुकृताः) जो सुन्दर उत्तम कर्मवाले (अभिद्यवः) और सब ओर से सूर्य की किरणों के समान अत्यन्त प्रकाशमान (इरध्वः) आर्द्रचित्त (क्राणाः) पुरुषार्थ करते हुए सज्जनों के समान (अभिद्यवः) और सुख की कामना करते हुए (त्वा) आपको (अवन्तु) चाहें वे (ह) ही (ऊतयः) रक्षा आदि क्रियावान् (क्राणा) कर्म करनेवाले (अवन्तु) बल को (गोभिः) भूमियों के साथ (इरध्वै) प्राप्त होने को (सचन्त) युक्त होते अर्थात् सम्बन्ध करते हैं । जो (बावने) दान के लिए (सधीचीनाः) साथ सत्यकार पाने वा जाने-मानेवाले (निपुत) नियुक्त की अर्थात् किसी विषय में लगायी हुई (धियः) बुद्धियों का (उप, अवत) उपदेश करते हैं वे (ईम्) सब ओर से (धियः) कर्मों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य विद्वानों का सेवन करते और सत्य का उपदेश करते हैं वे शरीर और आत्मा के बल को कैसे न प्राप्त हों ॥ २ ॥

किं विद्वानों को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय की भगले मन्त्र में कहा है—

वायुर्दुहं रोहिता वायुररूपा  
वायु रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।  
प्र बोधया पुरन्धि जारः आ संसतीमिव ।  
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (धुरि) सब के आधारभूत जगत् में (वोळ्हवे) पदार्थों के पहुँचाने को (वहिष्ठा) अतीव पहुँचानेवाला (वायु) पवन (वोळ्हवे) देशान्तर में पहुँचाने के लिए (धुरि) चलाने के मुख्य माग से (रोहिता) लाल-लाल रंग के अग्नि आदि पदार्थों को वा (वायु) पवन (अरूपा) पदार्थों को पहुँचाने में समर्थ जल वृक्षा आदि पदार्थों को (वायु) पवन (अजिरा) फेंकने योग्य पदार्थों को (रथे) रथ में (युक्ते) जोड़ता है अर्थात् कलाकीशय से प्रेरणा को प्राप्त हुआ उन पदार्थों का सम्बन्ध करता है इस से आप (जारः) क्रूर पुरुष जैसे (संसतीमिव) सोती हुई स्त्री को जगावे वैसे (पुरन्धिम्) बहुत उत्तम बुद्धिमती स्त्री को (प्राबोधय) भली-भाँति बोध कराओ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी का (प्र, चक्षय) उत्तम व्याख्यान करो अर्थात् उनके गुणों को कहो (उषसः) दाह आदि के करनेवाले पदार्थों अर्थात् अग्नि आदि को कलायन्त्रादिकों में (वासय) बसाओ, स्थापन करो और (अवसे) सम्बेशादि सुनने के लिए (उषसः) दिनों को (वासय) तार बिजुली की विद्या से स्थिर करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है । जो पवन के समान अच्छा यत्न करते और उत्तम वर्मात्मा के समान मनुष्यों को बोध कराते हैं वे सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाश और सहनशीलता से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

किं कौन मनुष्य कल्याण करने वाले होते हैं इस विषय की  
भगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्यमुषामः सुचयः परावर्ति मद्रा वस्त्रा तन्वते  
दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।  
तुभ्यं धेनुः संवर्तुया विश्वा वधनि दोहते ।  
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (सुचयः) शुद्ध (उवाचः) प्राप्त, समय के पवन (परावर्ति) दूर देश में (वसु) जिनमें मनुष्य मन का दमन करते उन (रश्मिषु) किरणों में और (नव्येषु) नवीन (रश्मिषु) किरणों में वैसे (तुभ्यम्) तेरे लिए (चित्रा) चित्र-विचित्र अद्भुत (मद्रा) सुख करनेवाले (वस्त्रा) वस्त्र वा ढाँपने के अन्य पदार्थों का (तन्वते) विस्तार करते वा जैसे (संवर्तुया) सब कामों को पूर्ण करती हुई (धेनुः) वाली (तुभ्यम्) तेरे लिए (विश्व) समस्त (वधनि) घनों को (दोहते) पूरा करती वा जैसे (अजनयः) न उत्पन्न होनेवाले (मरुतः) पवन (वक्षणाभ्यः) जो जलादि पदार्थों को बहानेवाली नदियों में (विष) प्रकाश के बीच (वक्षणाभ्यः) बहानेवाली किरणों से जल का (आ) अच्छे प्रकार विस्तार करते वंसा तु हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य किरणों के समान न्याय के प्रकाश और अच्छी शिक्षायुक्त वाली के समान वस्तुता बोलचाल और नदी के समान अच्छे गुणों की प्राप्ति करते वे समय सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

किं मनुष्य कैसे अपना वर्तन बर्तें इस विषय की भगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेष्वा इषणन्त  
सुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।  
त्वां त्सारी दसमानो मर्गमीदृ तन्ववीयै ।  
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्योत्पासि धर्मणा ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (अर्जना) धर्म से (असुर्यात्) दुष्टों के निज व्यवहार से (पासि) रक्षा करते हो वा (धर्मणा) धर्म के साथ (विश्वस्मात्) समग्र (भुवनात्) संसार से (पासि) रक्षा करते हो तथा (त्सारी) तिरछे-बाँके चलते और (दसमानः) शत्रुओं का सहार करते हुए आप (तन्ववीयै) जिसमें चोरो का सम्बन्ध नहीं उस मार्ग में (भगम्) ऐश्वर्य की (ईदृ) प्रशंसा करते उन (त्वाम्) आप को जो (अपाम्) जल वा कर्मों की (भुर्वणि) धारणावाले व्यवहार में (इषणन्त) चाहते हैं वे (तुरण्यवः) पालना और (शुचयः) पवित्रता करनेवाले (शुक्रासः) शुद्ध वीर्य (उषाः) तीस जन (नवेव) धानन्दों में (भुर्वणि) और पालन-पावण करनेवाले व्यवहार में (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (इषणन्तः) इच्छा करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों की योग्यता है कि जो जिनकी रक्षा करें उनकी वे भी रक्षा करें, दुष्टों की निवृत्ति से ऐश्वर्य को चाहें और कभी दुष्टों में विश्वास न करें ॥ ५ ॥

त्वम्वां वायवेषामपूर्यः सोमानां प्रथमः  
पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।  
उतो विहुत्सतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।  
विश्वा इत्ते धेनवो दुह आशिरं घृतं दुहत आशिरम् ॥६॥२३॥

पदार्थ—हे (बायो) प्राण के समान वर्तमान परम बलवान् (अपूर्यः) जो भगलों में नहीं प्रसिद्ध किये वे अपूर्व गुणी (त्वम्) आप (न) हमारे (सुतानाम्) उत्तम क्रिया से निकाले हुए (सोमानाम्) ऐश्वर्य करनेवाले बड़ी-बड़ी धीवशिपयों के रसों के (पीतिम्) पीने को (अर्हसि) योग्य हो और (प्रथमः) विख्यात आप (एषाम्) इन उक्त पदार्थों के रसों के (पीतिमर्हसि) पीने को योग्य हो जो (ते) आपको (विश्वः) समस्त (धेनवः) गौएँ (इत्) ही (आशिरम्) भोगने के (घृतम्) वास्त्युक्त घृत को (दुहते) पूरा करती और (आशिरम्) अच्छे प्रकार भोजन करने योग्य दुग्ध आदि पदार्थों को (दुहते) पूरा करती उनकी और (ववर्जुषीणाम्) निरन्तर दोषों का त्याग करती हुई (विहुत्सतीनाम्) जिन में विशेषता से होम करनेवाला विचारशील मनुष्य विद्यमान उन (विश्वाम्) प्रजाओं की (उतो) निश्चय से पालना कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । राजपुरुषों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य और उत्तम धीवश के सेवन और योग्य आहार-विहारों से शरीर आत्मा के बल की उन्नति कर धर्म से प्रजा की पालना करने में स्थिर हो ॥ ६ ॥

इस सूक्त में पवन के दुष्टान्त से शूरवीरों के न्यायविषयों में प्रजा कर्म के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकही चौतीसवाँ सूक्त और तेईसवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

५॥

स्तीर्यमित्यस्य नवर्षस्य पञ्चविंशतुत्तरस्य सप्ततमस्य सूक्तस्य पञ्चमोऽष्टाद्विः ।

वायुर्वेत्ता १, २, निषवस्यष्टिः १, २, ४, विराडत्यष्टिः १, २, ४ ।

वाय्वारः स्वरः १, २, ४ मुरिणष्टिः १, २, ४

निषवस्यष्टिः १, २, ४ अष्टिः १, २, ४ । मय्यमः स्वरः १, २

यद्य नव आवाकाले एकस्ती पीतीसर्वं सूक्तं का आरम्भ है इस के प्रथम



मन्त्र में कौन किसके किस से किस की प्राप्ति हो  
इस विषय को कहा है—

स्तीर्णं बहिर्यं नो याहि वीतये

सहस्रैष नियुता नियुत्वते शतिनीमिर्नियुत्वते ।

तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।

प्र तं सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस ( देवाय ) दिव्यगुण के लिए ( तुभ्यम् ) ( हि ) आपकी ही ( पूर्वपीतये ) प्रथम रस प्रादि पीने की ( देवाः ) विद्वान् जन ( येमिरे ) निवम करें उन ( से ) आप के ( मदाय ) भ्रान्त्य और ( क्रत्वे ) उत्तम बुद्धि के लिए ( मधुमन्तः ) प्रशंसित मधुरगुणयुक्त ( सुतासः ) उत्पन्न किये हुए पदार्थ ( अस्थिरन् ) अच्छे प्रकार स्थिर हो और सुलक्षण ( अस्थिरम् ) स्थिर हो जैसे सो आप ( नः ) हमारे ( स्तीर्णम् ) डेपे हुए ( बहि ) उत्तम विशाल घर की ( वीतये ) सुख पाने के लिए ( उप, याहि ) पास पहुँचो ( नियुत्वते ) जिसके बहुत बड़े विद्यमान उसके लिए ( सहस्रैष ) हजारों ( नियुता ) निश्चित व्यवहार से पास पहुँचो और ( शतिनीमिः ) जिन में सैकड़ों और विद्यमान उन सेनाओं के साथ ( नियुत्वते ) बहुत बल से मिले हुए के लिए अर्थात् अत्यन्त बलवान् के लिए पास पहुँचो ॥ १ ॥

भाषार्थ—विद्या और धर्म को जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों को सदा बुलाया करें उनकी सेवा और सङ्ग से विशेष ज्ञान की उन्नति कर नित्य भ्रान्त्युक्त हो ॥ १ ॥

किर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहा है—

तुभ्याय सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्वर्हा वसानः

परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्पति ।

तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु ह्यते ।

वह वायो नियुतो यावस्मयुजेषां यावस्मयुः ॥२॥

पदार्थ—हे ( वायो ) विद्वन् ! आप ( नियुतः ) कला-कौशल से नियत किये हुए थोड़ी को जसे पवन जैसे अपने यानों को एक देश से दूसरे देश की ( वह ) पहुँचाओ और ( शुक्राः ) प्रसन्नचित्त ( अस्मयुः ) दूरे समान आचरण करते हुए ( याहि ) पहुँचो ( अस्मयुः ) मेरे समान आचरण करते हुए आओ जिस ( तव ) आप का ( अयम् ) यह ( आयुषु ) जीवनो और ( देवेषु ) विद्वानों में ( सोमः ) श्रोत्रधियाण के समान ( भागः ) सवन करने योग्य भाग है वा जो आप ( ह्यते ) स्तुति किये जाते हैं सो ( वसानः ) वस्त्र प्रादि ओढ़े हुए ( शुक्रा ) शुद्ध व्यवहारों का ( अर्पति ) प्राप्त होते हैं जो ( अयम् ) यह ( अद्रिभिः ) मेघों से ( परिपूतः ) सब ओर से पवित्र हुआ ( सोमः ) चन्द्रमा के समान प्रशंसा किया जाता वा ( कोशम् ) मेघ की ( वर्यमर्षति ) सब ओर से प्राप्त होता उसके समान ( स्वर्हा ) जाहे हुए वस्त्रों का ( वसानः ) धारण किये हुए आप प्राप्त होवें उन ( तुभ्यम् ) आप के लिए उक्त सब वस्तु प्राप्त हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य प्रशंसित कपड़े पहने पहिने हुए सुन्दर रूपवान् अच्छे आचरण करते हैं वे सर्वत्र प्रशंसा की प्राप्ति होते हैं ॥ २ ॥

किर राजा को प्रजाजनों से क्या लेना चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहा है—

आ नो नियुद्धिः शतिनीमिर्ध्वरं संस्रिणीमिरुप याहि

वीतये वायो हव्यानि वीतये ।

तवायं भाग ऋत्विजः सरश्मिः सूर्य सचा ।

अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥३॥

पदार्थ—हे ( वायो ) विद्वन् ! ( तव ) आपके जो ( अध्वर्युभिः ) अपने को यज्ञ की इच्छा करनेवालों ने ( भरमाणा ) धारण किये मनुष्य ( अयंसत ) निवृत्त होवें सुख जैसे हो जैसे ( अयंसत ) निवृत्त हों अर्थात् सांसारिक सुख को छोड़ें जिस आप का ( सूर्य ) सूर्य के बीच ( सचा ) अच्छे प्रकार संयोग की हुई ( शुक्राः ) शुद्ध किरणों के समान ( सरश्मिः ) प्रकाशों के साथ वर्तमान ( ऋत्विजः ) जिस का आहुत सम्य प्राप्त हुआ वह ( अयम् ) यह ( भागः ) भाग है सो आप ( वीतये ) व्याप्त होने के लिए ( हव्यानि ) प्रहृष्ट करने योग्य पदार्थों की ( उपयाहि ) समीप पहुँचें, प्राप्त हो । हे ( वायो ) प्रशंसित बलयुक्त जो ( शतिनीमिः ) प्रशंसित सैकड़ों सङ्गी से युक्त सेनाओं के साथ वा ( सहस्रिणीभिः ) जिन में बहुत हजार शूरवीरों के समूह उन सेनाओं के साथ वा ( नियुद्धिः ) पवन के गुप्त के समान थोड़ी से ( वीतये ) कामना के लिए ( नः ) हम लोगों के ( अध्वर्युः ) राज्यपालनरूप यज्ञ को प्राप्त होते उनकी आप ( आ ) आकर प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालंकार है । राजपुरुषों को चाहिए कि मनुष्यों के बल से चाँगुना वा अधिक बल कर कुछ मनुष्यों के साथ युद्ध करें और वे प्रति वर्ष प्रजाजनों से जितना कर लेना योग्य हो उतना ही लेवें तथा सदैव समीक्षा विद्वानों की सेवा करें ॥ ३ ॥

किर मनुष्यों को किस के समान होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ वां रथो नियुत्वान्वसदवसेऽमि प्रयांसि

सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।

पिबंतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।

वायवा चन्त्रेण राघसा गंतमिन्द्रश्च राघसा गंतम् ॥४॥

पदार्थ—हे समानेनाधीशो ! जो ( वाम् ) तुम्हारा ( नियुत्वान् ) पवन के समान वेगवान् ( रथ ) रथ ( वीतये ) भ्रान्त्य की प्राप्ति के लिए ( सुधितानि ) अच्छे प्रकार धारण किये हुए ( प्रयांसि ) प्रीति के अनुकूल पदार्थों की ( अन्धसः ) चारों ओर से अच्छे प्रकार पहुँचें और ( अन्धसः ) विजय की प्राप्ति वा ( वीतये ) धर्म की प्रवृत्ति के लिए ( हव्यानि ) देने योग्य पदार्थों की चारों ओर भली-भाँति पहुँचावे वे तुम जैसे ( इन्द्र ) बिजुली रूप भ्रान ( च ) और पवन धावें जैसे ( राघसा ) जिससे सिद्धि की प्राप्ति होते उस पदार्थ के साथ ( आ, गंतम् ) आओ जो ( अन्ध ) मीठे ( अन्धसः ) भ्रान का ( पूर्वपेयम् ) अंगुलि मनुष्यों के पीने योग्य ( वाम् ) और तुम दोनों के लिए ( हितम् ) सुखरूप भाग है उस को ( पिबंतम् ) पिओ और ( चन्त्रेण ) सुवर्णरूप ( राघसा ) उत्तम सिद्धि करनेवाले जन के साथ ( आन्धसम् ) आओ । हे ( वायो ) पवन के समान प्रिय ! आप उत्तम सिद्धि करने वाले सुवर्ण के साथ सुखभोग को ( आ ) प्राप्त होओ और हे ( वायो ) दुष्टों की हित करनेवाले ! लेने-देने योग्य पदार्थों की भी ( आ ) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालंकार है । जैसे पवन और बिजुली सब में अभिव्याप्त होकर सब वस्तुओं का सेवन करते जैसे सज्जनों को चाहिए कि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए सब साधनों का सेवन करें ॥ ४ ॥

किर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ वां धियो बभ्रुतुरध्वरो उपेममिन्दुं मर्षजन्त

वाजिनमाशुमस्यं न वाजिनम् ।

तेषां पितमस्म्यु आ नो गन्तमिहोत्था ।

इन्द्रवायु सुतानामद्रिभिर्धुव मदाय वाजदा धुवम् ॥५॥ २४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रवायु ) सूर्य और पवन के समान समानेनाधीशो ! जो उपदेश करने वा पढ़ानेवाले विद्वान् जन ( वाम् ) तुम्हारे ( धियो ) बुद्धि और कर्मों वा ( बभ्रुतुः ) हिसा न करनेवाले जनो ( इन्द्रम् ) इस ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्य्य और ( वाजिनम् ) प्रशंसित वेगयुक्त ( आशुम् ) काम में शीघ्रता करनेवाले ( वाजिनम् ) अनेक शुभ लक्षणों से युक्त ( अत्यम् ) निरन्तर गमन करते हुए घोड़े के ( न ) समान ( आ, बभ्रुः ) अच्छे प्रकार वस्त्रों काव्य में लावें और इस परमेश्वर्य्य को ( उप, मर्षजन्त ) समीप में अत्यन्त शुद्ध कर ( तेवान् ) उनके ( अद्रिभिः ) अच्छे प्रकार पत्थर वा उखली-मूषलों से ( सुतानाम् ) सिद्ध किये अर्थात् कूट-पीट कर बनाय हुए पदार्थों के रस की ( मदाय ) भ्रान्त्य के लिए ( युवम् ) तुम ( पिबंतम् ) पीओ तथा ( अत्यम् ) हम लोगों के समान आचरण करते हुए ( वाजदा ) विशय ज्ञान देनेवाले ( युवम् ) तुम दोनों इस ससार में ( ऊर्या ) रक्षा प्रादि उत्तम किया से ( नः ) हम लोगों की ( आगन्तम् ) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो उपदेश करने और पढ़ानेवाले मनुष्यों की बुद्धियों की शुद्ध कर अच्छे शिष्याय हुए घोड़े के समान पराक्रम युक्त कराते वे भ्रान्त्य सेवनवाले होते हैं ॥ ५ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता

ह्राध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।

एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।

युवायवोऽति रोमायव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे परम ऐश्वर्य्ययुक्त और ( वायो ) पवन के समान बलवान् पुरुष !

जो ( इमे ) वे ( इह ) इस संसार में ( अध्वर्युभिः ) यज्ञ की वाहना करनेवालों ने ( अध्वु ) जलो में ( सुता ) उत्पन्न की ( सोमाः ) बड़ी-बड़ी श्रोत्रधि ( भरमाणाः ) पुष्टि करती हुई तुम दोनों की ( अयंसत ) देवें और ( शुक्राः ) शुद्ध वे ( अयंसत ) लेवें वा जो ( एते ) वे ( आशवः ) इकट्ठे होते और ( युवायव ) तुम दोनों की इच्छा करते हुए ( सोमासः ) ऐश्वर्य्ययुक्त ( अव्यया ) नाशरहित ( अति, रोमाय ) अतीव रोमा अर्थात् नारियल की जटाधों के आकार ( अति, अव्यया ) सनातन सुखों के समान ( तिरः ) ओरों से तिरछे ( पवित्रम् ) शुद्ध करनेवाले पदार्थों और ( वाम् ) तुम दोनों की ( अधि, असृक्षत ) चारों ओर से सिद्ध करें उनको तुम पीओ और अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिनके सेवन से दुःख और भारोग्र्य मुक्त वेह और आत्मा होते हैं तथा जो भक्त करण को शुद्ध करते उनका तुम नित्य सेवन करो ॥ ६ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अति वायो ससतो याहि शश्वतो

यत्र प्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रं गच्छतम् ।

वि सुनुता ददशे रीयते धृतमा पूर्णया नियुता

याथो अध्वरमिन्द्रं याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) पवन के समान बलवान् विद्वन् । आप ( ससतः ) अविद्या को उत्पन्न किये और ( शश्वतः ) सनातन विद्या से युक्त पुरुषों को ( याहि ) प्राप्त होओ ( यत्र ) जहाँ ( प्रावा ) और बुद्धि पुरुष ( अति, वदति ) अत्यन्त उपदेश करता ( तत्र ) वहाँ आप ( अ ) और ( इन्द्र ) ऐश्वर्ययुक्त मनुष्य ( गच्छतम् ) जाओ और ( गृहम् ) घर ( गच्छतम् ) जाओ जहाँ ( सुनुता ) उत्तम-मिक्षा युक्त सत्यप्रिय बाली ( वि, ददशे ) विशेषता से देखी जाती और ( धृतम् ) प्रकाशित विज्ञान ( प्रा, रीयते ) अच्छे प्रकार सम्बद्ध होता अर्थात् मिलता वहाँ ( पूर्णया ) पूरी ( नियुता ) पवन की जान के समान जाल से जो आप ( इन्द्रः, अ ) और ऐश्वर्ययुक्त जन ( अध्वरम् ) अहिंसादि लक्षण वर्णों को ( याथ ) प्राप्त होते हैं वे तुम दोनों ( अध्वरम् ) यज्ञ को ( याथः ) प्राप्त होते हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग जिस देश वा स्थान में शास्त्रवेत्ता प्राप्त विद्वान् सत्य का उपदेश करें उनके स्थान पर जाके उनके उपदेश को नित्य सुना करें, जिससे विद्यायुक्त बाली और सत्य विज्ञान और धर्मज्ञान को प्राप्त हों ॥ ७ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अत्राह तद्देधे मध्व आहुति यमश्चस्यमुपतिष्ठन्त

जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।

साकं गावः सुवते पच्यन्ते यवो न तं वाय

उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) पवन के समान विद्वन् । जो पढ़ाने और उपदेश करने-वाले ( अत्राह ) यही निश्चय से ( तत् ) उस विषय को ( देधे ) प्राप्त कराते वा ( अश्वत्थम् ) जैसे पीपलवृक्ष को पत्तेक बैसे ( जायवः ) जीतनेहारे ( यम् ) जिन आपके ( उपतिष्ठन्त ) समीप स्थित हों और ( मध्वः ) मधुर विज्ञान के ( आहुतिम् ) सब प्रकार ग्रहण करने को उपस्थित हों ( ते ) वे ( अस्मे ) हम लोगों के बीच ( जायवः ) जीतनेहारे शूर ( सन्तु ) हो ऐसे अच्छे प्रकार आचरण करते हुए ( ते ) आपकी ( गावः ) गौएँ ( साकम् ) साथ ( सुवते ) ब्याली ( यव ) मिखा वा पृथक् पृथक् व्यवहार साथ ( पच्यन्ते ) सिद्ध होता तथा ( धेनवः ) गौएँ जैसे ( अप, दस्यन्ति ) नष्ट नहीं होती ( अ ) वैसे ( धेनव ) बाली ( न, अप, दस्यन्ति ) नहीं नष्ट होती ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सब मनुष्यों से श्रेष्ठ मनुष्यों के सङ्ग की कामना और आपस में प्रीति की जाए तो उनकी विद्या बल की हानि और भेद बुद्धि न उत्पन्न हो ॥ ८ ॥

किर राजा को युद्ध के लिए कौन पढ़ाने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमे ये ते सु वायो बाह्वोऽजसोऽन्तर्नदी ते

पतयन्त्युक्ष्णो महि ब्राधन्त उक्ष्णः ।

धन्वेन चित्रे अनाशवो जीराश्चिदगिरौकमः ।

सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) विद्वन् । ( ये ) जो ( इमे ) ये योद्धा लोग ( ते ) आपके सहाय से ( बाह्वोऽजसः ) भजाओ के बल के ( अन्तः ) बीच ( सु, पतयन्ति ) पालनेवाले के समान आचरण करते उनको ( उक्ष्णः ) सींचने से समर्थ कीजिए ( ये ) जो ( ते ) आपके उपदेश से ( महि ) बहुत ( ब्राधन्त ) बढ़ते हुए अच्छे प्रकार पालनेवाले के समान आचरण करते हैं उनको ( उक्ष्णः ) बल देनेवाले कीजिए जो ( धन्वेन ) अन्तरिक्ष में ( नदी ) नदी के ( चित् ) समान वर्तमान ( अनाशवः ) किसी में व्याप्त नहीं ( जीरा ) वेगवान् ( चिदगिरौकमः ) जिनका अविद्यमान वाणी के साथ ठहरने का स्थान ( दुर्नियन्तवः ) जो दुःख से ग्रहण करने के योग्य वे ( रश्मयः ) किरण जैसे ( सूर्यस्येव ) सूर्य को वैसे ( चित् ) और ( हस्तयोः ) अपनी भुजाओं के प्रताप से शत्रुओं ने ( दुर्नियन्तवः ) दुःख से ग्रहण करने योग्य अच्छी पालना करनेवाले के समान आचरण करें उन वीरों का निरन्तर स्तुति करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । राजपुरुषों को चाहिए कि बाहुबलयुक्त शत्रुओं से न डरनेवाले और पुरुषों को सेना में सर्वत्र रक्वें जिससे राज्य का प्रताप सदा बढ़े ॥ ९ ॥

इस सूक्त में मनुष्यों का परस्पर बर्तान कहने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सुक्तार्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥  
ग्रह एकली पेंतीसवाँ सूक्त और पञ्चीसवाँ अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥

अथ प्रस्वित्यस्य सप्तर्षस्य बृहन्निरुत्तरस्य साततमस्य सूक्तस्य पञ्चम्येव ऋषिः ।

मित्रावरुणौ वेवते । वृष्टसप्तमयोर्मन्त्रोक्ता वेवता । १, ३, ५, ६

स्वराद्वयष्टिः । गान्धारः स्वरः । २ निषुवष्टिद्वयः ।

४ मुरिगष्टिद्वयः । मध्यमः स्वरः । ७ त्रिषुवष्टिद्वयः ।

वेवतः स्वरः ॥

अथ सात ऋचावाले एकली छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में कौन कौन से क्या लेकर कैसे हों इस विषय को कहा है—

प्र सु ज्येष्ठं निचिराम्यां बृहन्नमो

हव्यं मतिं भरता मृळ्यद्भ्यां स्वादिष्टं मृळ्यद्भ्याम् ।

ता सन्नाजा धृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।

अर्थेनोः सत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं न चिदाधृषे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( मृळ्यद्भ्याम् ) सुख देते हुओं के समान ( निचिराम्याम् ) निरन्तर सनातन ( मृळ्यद्भ्याम् ) सुख करनेवाले अग्न्यापक उपदेशक के साथ ( ज्येष्ठम् ) अतीव प्रशंसा करने योग्य ( स्वादिष्टम् ) अत्यन्त स्वाधु ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य पदार्थ ( बृहत् ) बहुत-सा ( नमः ) धन और ( मतिम् ) बुद्धि को ( प्र ) शीघ्र ( प्र, सु, भरता ) अच्छे प्रकार सुन्दरता से स्वीकार करो और ( यज्ञेयज्ञे ) प्रत्येक यज्ञ में ( उपस्तुता ) प्राप्त हुए गुराओं से प्रशंसा को प्राप्त ( धृतासुती ) जिनका धी के साथ पदार्थों का सार निकालना ( सन्नाजा ) जो अच्छी प्रकाशमान ( ता ) उन उक्त महाशयो को भली-भाँति ग्रहण करो ( अथ ) इसके अनन्तर ( एनो ) इन दोनों का ( अन्नम् ) राज्य ( आधृषे ) ढिठाई देने की ( चित् ) और ( देवत्वम् ) विद्वत्ता ( आधृषे ) ढिठाई देने को ( कुतश्चना ) कहीं से ( न ) न नष्ट हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो बहुत काल से प्रवृत्त पढ़ाने और उपदेश करनेवालों के समीप से विद्या और अच्छे उपदेशों को शीघ्र ग्रहण करते वे अन्तर्गत राजा होने के योग्य होते हैं और न इनका ऐश्वर्य कभी नष्ट होता है ॥ १ ॥

किर मनुष्य क्या पाकर कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अदर्शि गातुरवे वरीयसी पन्था

ऋतस्य समयस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।

सुप्तं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।

अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वयं उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥

पदार्थ—जिससे ( उरवे ) बहुत बड़े के लिए ( वरीयसी ) अतीव श्रेष्ठ ( गातः ) भूमि ( अवशि ) दीखती वा जहाँ सूर्य के ( रश्मिभिः ) किरणों के समान ( रश्मिभिः ) किरणों के साथ ( चक्षुः ) नेत्र ( ऋतस्य ) जल और ( भगस्य ) सूर्य के समान धन का ( पन्था ) मार्ग ( समयस्त ) मिलता वा ( मित्रस्य ) मित्र ( अर्यम्णः ) न्यायाधीश और ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ पुरुष का ( सुप्तम् ) प्रकाश लोकस्य ( सावनम् ) जिसमें स्थिर होते वह घर प्राप्त होता ( अथ ) अथवा जैसे ( वयः ) बहुत पत्तेक ( बृहत् ) एक बड़े काम को वैसे जो ( वयः ) मनोहर धन ( उपस्तुत्यम् ) समीप में प्रशंसीय ( बृहत् ) बड़े ( उक्थ्यम् ) और कहने योग्य काम को आरण करते ( च ) और दो मिलकर किसी काम को ( दधाते ) धारण करते वे सब सुख पाते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के प्रकाश से भूमि पर माग दीखती है वैसे ही उत्तम विद्वानों के सङ्ग में सत्य विद्याओं का प्रकाश होता है वा जैसे पत्तेक उत्तम प्राश्रय स्थान पाकर आनन्द पाते हैं वैसे उत्तम विद्याओं को पाकर मनुष्य सदा सुख पाते हैं ॥ २ ॥

किर विद्वानों को किसके समान क्या पाना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ज्योतिष्मतीमदिति धारयत्क्षिति

स्वर्वातीमा सचेते दिवेदिवे जायवासां दिवेदिवे ।

ज्योतिष्मत् क्षत्रमांशाते आदित्या दानुनस्पती ।

मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जोनोर्ज्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे ( आदित्या ) सूर्य और प्राण ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन ( स्वर्वातीम् ) बहुत सुख करनेवाले ( धारयत्क्षितिम् ) और भूमि को धारण

करते हुए ( अयोतिष्मतीम् ) प्रकाशवान् ( अविस्मिन् ) सुलोक का ( आसद्येते ) सब धीर से सम्बन्ध करते हैं जैसे ( वासवज्जन् ) जिसके अन्धे प्रयत्न करनेवाले मनुष्य हैं वह ( अयमा ) न्यायाधीश ( अयम् ) श्रेष्ठ प्राण तथा ( वासवज्जन् ) पुत्रवार्थवान् पुरुष ( मित्र ) सबका प्राण धीर ( वानुम् ) दान की ( वती ) पालना करनेवाले ( वानुवर्त्ता ) सब काम में लगे हुए सभासेनाधीश ( विवेचिषे ) प्रतिदिन ( अयोतिष्मत् ) बहुत न्याययुक्त ( अत्रम् ) राज्य की ( आस्ताते ) प्राप्त होते ( तथा ) उनके प्रभाव से समस्त प्रजा धीर सेनाजन् अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जो सूर्य प्राण धीर योगिजन के समान सचेत होकर विद्या विनय धीर धर्म से सेना धीर प्रजाजनों को प्रसन्न करते हैं वे अत्यन्त यश पाते हैं ॥३॥

फिर इस संसार में मनुष्यों को कैसे बर्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अयं मित्राय वरुणाय शंसतः ।

सोमो भूत्ववपानेष्वाभंगो देवो देवेष्वाभंगः ।

तं देवासो जुषेरत् विश्वे अथ सजोषसः

तथा राजाना करथो यदीमं कृतावाना यदीमं ॥४॥

पदार्थ—जैसे ( अयम् ) यह ( अवपानेषु ) अत्यन्त रक्षा आदि व्यवहारों में ( मित्राय ) सबके मित्र धीर ( वरुणाय ) सबसे उत्तम के लिए ( आभंग ) समस्त ऐश्वर्य ( अन्तस्य ) धनीव सुख ( सोम ) धीर सुखयुक्त ऐश्वर्य करनेवाला न्याय ( धृत् ) ही जैसे जो ( देव ) सुख अन्धे प्रकार देनेवाला ( देवेषु ) विषय विद्वानों और विषय गुणों में ( अत्रम् ) समस्त सौभाग्य हो ( तत् ) उसको ( अथ ) आज ( सजोषसः ) समान धर्म का सेवन करनेवाले ( विश्वे ) समस्त ( देवासः ) विद्वान् जन ( जुषेरत् ) सेवन कर वा उससे प्रीति करें और जैसे ( यत् ) जिस व्यवहार की ( राजाना ) प्रकाशमान सभासेनापति ( करथ ) करें ( तथा ) जैसे उस व्यवहार को हम लोग ( ईमं ) मांगते धीर जैसे ( कृतावाना ) सत्य का सम्बन्ध करनेवाले ( यत् ) जिस काम को करें जैसे उसको हम लोग भी ( ईमं ) पावें, मांगें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा धीर वाचकलुप्तोपमालकार है। इस संसार में जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् धर्म के अनुकूल व्यवहार से ऐश्वर्य की उन्नति कर सबके उपकार करनेहारे काम में लगे रहते हैं वा जैसे सत्य को जानने की इच्छा करनेवाले धार्मिक विद्वानों को याचते अर्थात् उनसे अपने प्रिय पदार्थ को मांगते जैसे सब मनुष्य अपने ऐश्वर्य को अन्धे काम में लगे रहें और विद्वान् महाशयों से विद्याओं की याचना करें ॥४॥

फिर विद्वान् किसके लिए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो मित्राय वरुणाय विधज्जनोऽनर्वाणं

तं परि पातो अंहसो द्वाभ्यां स मर्त्तमंहमः ।

तमर्यमाभि रक्षत्यज्यन्तमनु व्रतम् ।

उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तौमैराभूषति व्रतम् ॥५॥

पदार्थ—हे सभासेनाधीशो ! ( यः ) जो ( जन् ) यश से प्रसिद्ध हुआ ( मित्राय ) सर्वोपकार करने ( वरुणाय ) धीर सबसे उत्तम स्वभाववाले मनुष्य के लिए तुम दोनों से ( अविधत् ) सेवा करे ( तम् ) उस ( अनर्वाणम् ) वैर आदि दोषों से रहित ( मर्त्तम् ) मनुष्य को ( अहसः ) दृष्ट आचरण से तुम दोनों ( परिपातः ) सब धीर से बचाओ तथा ( तम् ) उस ( द्वाभ्यां ) विद्या देनेवाले मनुष्य को ( अंहस ) पाप से बचाओ ( य ) जो ( अर्यमा ) न्याय करनेवाला सज्जन ( व्रतम् ) सत्य आचरण करने धीर ( अज्यन्तम् ) अपने को कोमलपन चाहते हुए मनुष्य की ( अभिरक्षति ) सब धीर से रक्षा करता उसकी तुम दोनों ( अभू ) पीछे रक्षा करो जो ( एनो ) इन दोनों के ( उक्थै ) कहने योग्य उपदेशों से ( व्रतम् ) सुन्दर शील की ( परिभूषति ) सब धीर से सुशोभित करता

वा ( स्तीर्नः ) प्रज्ञा करने योग्य व्यवहारों से ( व्रतम् ) सुन्दर शील की ( आभूषति ) अन्धे प्रकार शोभित करता उसको सब विद्वान् निरन्तर पालें ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् जन जो नीम धर्म धीर धर्म को जानना चाहें तथा धर्म का ग्रहण धीर धर्म का त्याग करना चाहें उनको पक्ष धीर उपदेश कर विद्या धीर धर्म आदि शुभ गुण, कर्म धीर स्वभाव से सब धीर से सुशोभित करें ॥५॥

फिर मनुष्यों को किसके समान क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां

मित्राय वोचं वरुणाय मीळहुषे सुमृळीकाय मीळहुषे ।

इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।

ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वत् ! जैसे मैं ( बृहते ) बहुत ( दिवे ) प्रकाश करनेवाले के लिए वा ( रोदसीभ्याम् ) प्रकाश धीर पृथिवी से ( मित्राय ) सबके मित्र ( वरुणाय ) श्रेष्ठ ( मीळहुषे ) शुभ गुणों से सीकने ( सुमृळीकाय ) सुख करने धीर ( मीळहुषे ) अन्धे प्रकार सुख देनेवाले जन के लिए ( नम ) सत्कार बचन ( वोचम् ) कहूँ जैसे आप कहो। वा जैसे मैं ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्यवाले ( अग्निम् ) अग्नि के समान वर्तमान ( भुक्षम् ) प्रकाशयुक्त ( अर्यमन्सम् ) न्यायाधीश धीर ( भगम् ) धर्म सेवनेवाले को कहूँ जैसे आप ( उष, स्तुहि ) उसके समीप प्रवृत्ता करो वा जैसे ( जीवन्तः ) प्राण धारण किय जीवते हुए हम लोग ( प्रजया ) अन्धे सन्तान आदि सहित प्रजा के साथ ( ज्योक् ) निरन्तर ( सचेमहि ) सम्बद्ध हो धीर ( सोमस्य ) ऐश्वर्य की ( ऊती ) रक्षा आदि क्रिया के साथ ( सचेमहि ) सम्बद्ध हो जैसे आप भी सम्बद्ध होओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में अनेक वाचकलुप्तोपमालकार हैं। मनुष्यों को विद्वानों के समान चाल-चलन कर पदार्थविद्या के लिए प्रवृत्त हो तथा प्रजा धीर ऐश्वर्य को पाकर निरन्तर आनन्दयुक्त होना चाहिए ॥६॥

फिर विद्वान् जन इस संसार में किसके समान बर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मसीमहि स्वयंशसो मरुङ्गः ।

अग्निमित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्रयाम मघवानो वयं च ॥७॥

पदार्थ—जैसे ( मरुङ्गः ) प्राणों के समान श्रेष्ठ जनो के साथ ( अग्नि ) बिजुली आदि रूपवाला अग्नि ( मित्र ) सूर्य ( वरुण ) चन्द्रमा ( शर्म ) सुख को ( यंसन् ) देते हैं जैसे ( तत् ) उस सुख को ( इन्द्रवन्तः ) बहुत ऐश्वर्ययुक्त ( स्वयंशसः ) जिनके अपना यश विद्यमान है ( वयम् ) हम लोग ( देवानाम् ) सत्य की कामना करनेवाले विद्वानों की ( ऊती ) रक्षा आदि क्रिया से ( मसीमहि ) जानें ( च ) धीर इससे ( वयम् ) हम लोग ( मघवान ) परम ऐश्वर्ययुक्त हुए कल्याण को ( अश्रयाम ) भोगें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे इस संसार में पृथिवी आदि पदार्थ सुख धीर ऐश्वर्य करनेवाले हैं जैसे ही विद्वानों की सिखावट धीर उनके सङ्ग हैं। इनसे हम लोग सुख धीर ऐश्वर्यवाले होकर निरन्तर आनन्दयुक्त हो ॥७॥

इस सूक्त में वायु धीर इन्द्र आदि पदार्थों के दृष्टान्तों से मनुष्यों के लिए विद्या धीर उत्तम शिक्षा का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

इस अध्याय में क्रोध आदि का निवारण, अन्न आदि की रक्षा और परमेश्वर्य की प्राप्ति पर्यन्त अर्थ कहे हैं। इससे हम अध्याय में कहे हुए अर्थों की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह अध्याय में दूसरे अष्टक में पहला अध्याय धीर छबीसवाँ वर्ग तथा प्रथम मण्डल में एकली छत्तीसवाँ सूक्त पूरा हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्याणां परमविद्वद्वां बिरजानन्तरस्वतोत्थामिना

शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना बिरचिते आर्यभाषासम्मिते

सुप्रभातयुक्त आश्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्याय समाप्त ॥



## अथ द्वितीयाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितरुदितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

सुषुमेत्यस्य विष्णवस्य सप्तविंशत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य पञ्चमे पञ्चि ।  
मित्रावरुणो देवते । १ निष्कृष्टवरी छन्दः । २ विराट्छन्दः ।  
गान्धारः स्वरः । ३ भुरिगतिछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दूसरे अष्टक में द्वितीय अध्याय का आरम्भ और तीन ऋचावाले एकती  
संतीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य इस सत्तार में  
किसके समान वर्त्त इस विषय को कहा है—

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमांसो मत्सरा इमे ।

आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः ।

इमे वा मित्रावरुणा गवांशिरः सोमांसः शुक्रा गवांशिरः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान  
( दिविस्पृशा ) शुद्ध व्यवहार में स्पृष्ट करनेवाले ( राजाना ) प्रकाशमान सभा-  
विनायीशो ! जो ( इमे ) ये ( अद्रिभिः ) मेघों से ( गोश्रीता ) किरणों को प्राप्त  
( मत्सराः ) आनन्दप्राप्त हम लोग ( सुषुमा ) किसी व्यवहार को सिद्ध करें उनको  
( वात् ) तुम दोनों ( आयातम् ) आओ अच्छे प्रकार प्राप्त होओ जो ( इमे ) ये  
( मत्सराः ) आनन्द पहुँचानेवाले ( सोमांस ) सोमवस्ती आदि घोषधि हैं उनको  
( अस्मत्रा ) हम लोगों से अच्छी प्रकार पहुँचाओ जो ( इमे ) ये ( गवांशिरः )  
गौएँ वा इन्द्रियों से व्याप्त होते उनके समान ( शुक्रा ) शुद्ध ( सोमा ) ऐश्वर्ययुक्त  
पदार्थ और ( गवांशिरः ) गौएँ वा किरणों से व्याप्त होते उनको और ( त )  
हम लोगों के ( उपागन्तम् ) समीप पहुँचो ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालकार है । इस जगत् में जैसे पृथिवी  
आदि पदार्थ जीवन के हेतु हैं वैसे मेघ अतीव जीवन देनेवाले हैं जैसे ये सब वर्त्त रहे  
हैं वैसे मनुष्य वर्त्त ॥१॥

अब ओषधि आदि पदार्थों के रस के पीने आदि के विषय को  
अगले मन्त्रों में कहा है—

इम आ यातमिन्द्रवः सोमांसो दध्याशिरः सुतामो दध्याशिरः ।

उत वासुषसो बुधि माकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।

सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताष पीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—हे पकाने वा पड़नेवाले ! जो ( वाक् ) सुन्दर ( मित्राय ) मित्र  
के लिए ( पीतये ) पीने को और ( वरुणाय ) उत्तम जन के लिए ( ऋताष )  
सत्याचरण और ( पीतये ) पीने को ( उत ) प्रभातवेला के ( बुधि ) प्रबोध में  
सूर्यमण्डल की ( रश्मिभिः ) किरणों के ( साकम् ) साथ घोषधियों का रस ( सुत )  
सब और से सिद्ध किया गया है उसको तुम ( आयातम् ) प्राप्त होओ तथा ( वात् )  
तुम्हारे लिए ( इमे ) ये ( इन्द्रवः ) गीले वा टपकते हुए ( सोमांस ) दिव्य  
ओषधियों के रस और ( दध्याशिरः ) जो पदार्थ दही के साथ भोजन किये जाते  
उनके समान ( दध्याशिरः ) दही से मिले हुए भोजन ( सुतासः ) सिद्ध किये गये हैं  
( उत ) उन्हें भी प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि इस सत्तार में जितने रस वा आषधियों  
को सिद्ध करें उन सबको मित्रपन और उत्तम कर्म सेवने को तथा भ्रान्त्यादि दोषों  
के नाश करने को समर्पण करें ॥ २ ॥

तां वा धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।

अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।

अय वा मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥३॥१॥

पदार्थ—हे ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान के समान सर्वमित्र और  
सर्वोत्तम सज्जनों ! ( नः ) हमारे ( अर्वाञ्चा ) अभिमुख होत हुए तुम ( वात् )  
तुम्हारी जिस ( वासरीम् ) निवास करानेवाली ( धेनुम् ) धेनु ( न ) समान  
( अद्रिभिः ) पत्थरों से ( अंशुम् ) बड़ी हुई सोमवस्ती को ( दुहन्ति ) दुहते जलाति  
से पूर्ण करते वा ( अद्रिभिः ) मेघों से ( सोमपीतये ) उत्तम ओषधि रस जिसमें  
पीये जाते उसके लिए ( सोमम् ) ऐश्वर्य को ( दुहन्ति ) परिपूर्ण करते ( तात् )  
उसको ( अस्मत्रा ) हमारे ( उपागन्तम् ) समीप पहुँचाओ जो ( अयम् ) यह  
( नृभिः ) मनुष्यों ने ( सोम ) सोमवस्ती आदि लताओं का रस ( सुत ) सिद्ध  
किया है वह ( वात् ) तुम्हारे लिए ( आपीतये ) अच्छे प्रकार पीने को ( सुतः )  
सिद्ध किया गया है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे दूध देनेवाली गौएँ सुको को  
पूरा करती हैं वैसे युक्ति से सिद्ध किया हुआ सोमवस्ती आदि का रस सब रोगों का  
नाश करता है ॥ ३ ॥

इस सूक्त में मोमलता के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण  
सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह एकती संतीसवाँ सूक्त और पहला वर्ग पूरा हुआ ॥



प्रमेयस्य वसुध्वत्स्याष्टाविंशत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य पञ्चमे पञ्चि ।  
पूषा देवता । १, ३ निष्कृष्टवृष्टिः । २ विराट्छन्दः ।  
गान्धारः स्वरः । ४ भुरिगतिछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले एकती अष्टीसवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम  
मन्त्र में पुष्टि करनेवाले की प्रशंसा विषय को कहा है—

प्रमं पुष्णस्तुविजातस्य शस्यते

महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।

अचीमि सुमन्यमहमन्त्युति मयोभुवम् ।

विश्वस्य यो मन आगुयुवे मखो देव आगुयुवे मखः ॥ १ ॥

पदार्थ—जिस ( अस्य ) इस ( तुविजातस्य ) बहुता में प्रसिद्ध ( पुष्णः )  
प्रजा की रक्षा करनेवाले राजपुरुष का ( महित्वम् ) बड़प्पन ( प्रमं, शस्यते ) अतीव  
प्रशंसित किया जाता वा जिस ( अस्य ) इसके ( तवस ) बल की ( स्तोत्रम् )  
स्तुति ( न, तन्दते ) प्रणमक जन न नष्ट करते अर्थात् न छोड़ते और विद्या  
को ( न, तन्दते ) न नष्ट करने हैं वा ( य ) जो ( मख ) विद्या पाये हुए  
( देव ) विद्वान् ( विश्वस्य ) सत्तार के ( मन ) अन्त कारण को ( आगुयुवे )  
सब और से बौधता अर्थात् अपनी आर खीचता वा जो ( मख ) यज्ञ के समान  
वर्त्तमान सुख का ( आगुयुवे ) प्रबन्ध बाँधता है इस ( अस्मत्स्य ) अपने निकट  
रक्षा आदि किया रखने और ( मयोभुवम् ) सुख की भावना करनेवाले प्रजापोषक  
का ( सुमन्यम् ) सुख चाहता हुआ ( अहम् ) मैं ( अचीमि ) सत्कार करता हूँ ॥१॥

भाषार्थ—जो शुभ, अच्छे कर्मों का आचरण करते हैं वे अत्यन्त प्रशंसित  
होते हैं । जो सुशीलता और नम्रता से सबके चित्त को धर्मयुक्त व्यवहारों में बाँधते  
हैं वे ही सबका सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

म हि त्वां पूषन्नजिरं न यामनि

स्तोमेभिः कृणव ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।

हुवे यज्ञा मयोभुव देवं सख्याय मर्त्यः ।

अस्माकमाङ्गुपान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( पूषन् ) पुष्टि करनेवाले ! ( यथा ) जैसे आप ( मृधः )  
सप्राप्तों को ( ऋणव ) प्राप्त करो अर्थात् हम लोगों को पहुँचाओ वा ( उष्ट्रः )  
उष्ट्र के ( न ) समान ( मृध ) सप्राप्तों को ( पीपरो ) पार कराओ अर्थात् उनसे  
उद्धार करो वैसे ( स्तोमेभिः ) स्तुतियों से ( यामनि ) पहुँचानेवाले व्यवहार में  
( अजिरम् ) जानवान् अर्थात् प्रति प्रवीण के ( न ) समान ( रत्ना ) आपकी  
( प्र, कण्ठे ) प्रशंसित करता हूँ और आपकी मे ( हुवे ) हठ से कुलाता हूँ ( यत् )  
जिस कारण ( सख्याय ) मित्रपन के लिए ( मयोभुवम् ) सुख करनेवाले ( देवम् )  
मनोहर ( रत्ना ) आपकी ( मर्त्य ) मरण धर्म मनुष्य में हठ से कुलाता हूँ इस  
कारण ( अस्माकम् ) हमारे ( आङ्गुपान् ) विद्या पाये हुए वीरों को ( द्युम्निनः )  
यज्ञस्वी ( कृधि ) करो और ( वाजेषु ) सप्राप्तों में ( द्युम्निनः ) प्रशंसित कीर्ति  
वाले ( हि ) ही ( कृधि ) करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो मनुष्य बुद्धिमान् विद्याधियों को  
विद्यावान् करें, शत्रुओं का जीतें वे अच्छी कीर्ति के साथ माननीय हों ॥ २ ॥

यस्य ते पुषन्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा

चित्सन्तोऽजसा बुभुजिर इति क्रत्वा बुभुजिरे ।

तामनु त्वा नवीयसी नियुतं राय ईमहे ।

अहंकमान उत्थांस सरी भव वाजैवाजे सरी भव ॥३॥

पदार्थ—हे ( पूषन् ) पुष्टि करनेवाले विद्वन् ! ( यस्य ) जिस ( ते )  
आपकी ( सख्ये ) मित्रता में ( क्रत्वा ) उत्तम बुद्धि से ( अजसा ) रक्षा आदि के  
साथ ( विपन्यवः ) विशेषता से अपनी प्रशंसा चाहनेवाले जन ( नियुतम् ) अत्यन्त

(राजः) राज्यलक्ष्मियों को (कुमुदिरे) भोगते हैं (इति) इस प्रकार (चित्) ही (सन्तः) होते हुए (कत्वा) उत्तम बुद्धि से जिस प्रसन्नता राज्यधी को (कुमुदिरे) भोगते हैं (ताम्) उस (नवीयसीम्) धनीय नवीन उत्त की को भोर (अपु) अनुकूलता से (त्वा) आपको हम लोग (ईमहे) मांगते हैं। हे (उत्सवः) बहुत प्रसन्नतायुक्त विद्वन्। हम लोगों से (अहेच्छमानः) अनार को न प्राप्त होते हुए आप (आवेवाके) प्रत्येक सधाम में (सरी) प्रसन्नता जाता जन जिसके विद्यमान ऐसे (अव) हजिए धीर धर्मयुक्त व्यवहार में भी (सरी) उत्त गुणी (अव) हजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो बुद्धिमानों के संग भोर मित्रपन से नवीन-नवीन विद्या को प्राप्त होते हैं वे प्राप्त उत्तम ज्ञानवान् होकर विजयी होते हैं ॥ ३ ॥

अस्या ऊ ष ण उर्प सातये भुवोऽहेच्छमानो

ररिषां अजाश्रवस्यतामजाश्र

ओ वृ त्वा वृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।

नहि त्वा पूषजतिमन्य आधृणे न ते सख्यमपह्वे ॥४॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करनेवाले ! (अजाश्रव) जिनके छेरी भोर थोड़े विद्यमान हैं ऐसे (अवस्यताम्) अपने को बन चाहनेवालों से (अजाश्रव) जिनकी छेरी थोड़े के तुल्य उनके समान हे विद्वन्। आप (नः) हमारे लिए (अस्याः) इस उत्तम बुद्धि के (सातये) बांटने को (ररिषान्) देनेवाले भोर (अहेच्छमान) सत्कारयुक्त (सुप, भुवः) उत्तमता से समीप में हजिए। हे (आधृणे) सब भोर से प्रकाशमान पुष्टि करनेवाले पुरुष ! मैं (ते) आपके (सख्यम्) मित्रपन भोर मित्रता के काम को (न) न (अपह्वन्ते) छिपाऊँ (त्वा) आपका (नहि, अतिमन्ये) अत्यन्त मान्य न करूँ किन्तु यथायोग्य आपको मानूँ (उ) भोर (ओ) हे (इत्थ) दुःख मिटानेवाले (स्तोमेभिः) स्तुतियों से युक्त (साधुभिः) सज्जनों के साथ वर्तमान हम लोग (त्वा) आपको (सु, वृतीमहि) अच्छे प्रकार निरन्तर वरों अर्थात् आपके अनुकूल रहे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। धार्मिक विद्वानों के साथ प्रसिद्ध मित्रभाव को वर्तकर सब मनुष्यों को चाहिए कि बहुत प्रकार की उत्तम-उत्तम बुद्धियों को प्राप्त होवें भोर कभी किसी शिष्ट पुरुष का तिरस्कार न करें ॥ ४ ॥

इस सूक्त में पुष्टि करनेवाले विद्वान् वा धार्मिक सामान्य जन की प्रशंसा के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए।

यह एकलौ अक्षरीसर्वा सूक्त भोर दूसरा वर्ण पूरा हुआ ॥

ॐ

अस्तिवत्सर्वकावशर्त्तुकोनवर्त्तारिप्रभुत्वरस्य ज्ञातमस्य सूक्तस्य परब्रह्मण्ये ।  
विद्ये देवा देवताः विभागश्च । १ विद्येदेवा । २ निजावर्त्तु । ३—४ अविद्यन् ।  
५ इन्द्रः । ७ अग्निः । ८ सत्यः । ९ इन्द्राग्नी । १० बृहस्पतिः । ११ विद्येदेवा ।

१, १० निबृहस्पतिः । २, ३ विराड्पि । ४ अष्टिद्वयः । गान्धारः स्वरः ।

८ स्वराहस्पतिः ४, ९ भुरिगस्पतिः । ७ अष्टिद्वयः ।

अध्ययः स्वरः । ५ निबृहस्पतिः । अध्ययः स्वरः ॥

११ भुरिक् पविक् तद्वयः । पञ्चम स्वरः ॥

अब एकलौ उल्लाससर्व सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में पुरुषार्थ की प्रशंसा का वर्णन करते हैं—

अस्तु श्रौचद् पुरो अग्निं धिया दध

आ नु तच्छर्षो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।

यद् क्राणा विवस्वति नामा मंदायि नव्यसी ।

अथ प्र व न उर्प यन्तु धीतयो देवा अच्छा न धीतयः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (धीतयः) भद्र गुणियों के (न) समान (धीतयः) धारणा करनेवाले आप (धिया) कर्म से (नः) हम (देवान्) विद्वान् जनों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (उप, यन्तु) समीप में प्राप्त होओ जिन्होंने (विवस्वति) सूर्यमण्डल में (नामा) मध्यभाग की आकर्षण विद्या अर्थात् सूर्यमण्डल के प्रकाश में बहुत से प्रकाश को मन्त्रकलाओं से धीतयों के एकत्र उमकी उल्लास करने में (नव्यसी) धनीय नवीन उत्तम बुद्धि वा कर्म (सदाधि) सम्यक् दिया उन (क्राणा) कर्म करने के हेतु (इन्द्रवायू) विष्णु की भोर प्राण (ह) ही को हम लोग (सु, वृणीमहे) सुन्दर प्रकार से धारण करें मैं जिस (शौचद्) हविष् पदार्थों को देनेवाले विद्या, बुद्धि (पुरः) पूर्ण (अग्निम्) विद्वत् भोर (विवस्व) शुद्ध प्राणी में हुए (सर्वः) बल को (आ, वृ) अच्छे प्रकार धारण करूँ (यत्) जिन प्राण, विद्वत् जन्य सुख को हम लोग (प्र, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करें (अथ) इसके अनन्तर (तत्) वह सुख सबको (नु यन्तु) लीज प्राप्त हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे भद्रगुणी सब कर्मों में उपयुक्त होती हैं वैसे तुम लोग भी पुरुषार्थ में युक्त होओ जिससे तुम में बल बढ़े ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यद् स्यान्मित्रावरुणाधृताध्याददाये

अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।

युवोरित्थाधि सखस्वधस्याम हिरण्ययम् ।

धीमिथन मनसा स्वेमिरक्षभिः सोमस्य स्वेमिरक्षभिः ॥२॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणी) प्राण भोर उशन के समान वर्तमान सनासेना-धीम पुरुषो ! (सख्यम्) धीरों में (मनसा) उत्तम बुद्धि के साथ (धीमिः) कामों से (सोमस्य) ऐश्वर्य के (स्वेमिः) निज उत्तमोत्तम ज्ञान वा (अक्षभिः) प्राणों के समान (स्वेमिः) अपने (अक्षभिः) इन्द्रियों के साथ वर्त्ताव रखते हुए हम लोग (युवो) तुम्हारे धीरों में (हिरण्ययम्) सुवर्णमय धन को (अभि, अपव्याम) अधिकता से देखें (अन) भोर भी (यत्) जो सत्य है, (त्यत् ह) उसी को (अत्तात्) सत्य जो धर्म के अनुकूल व्यवहार उससे ग्रहण करें (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोध के व्यवहार से (दक्षस्य) बल के साथ (अनृतम्) सिद्ध व्यवहार को छोड़ें तुम भी (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोधकपी व्यवहार से सिद्ध व्यवहार को छोड़ो जैसे आप सत्य व्यवहार से सत्य (अभि, आ वदाये) अधिकता में ग्रहण करा (इत्था) इस प्रकार हम लोग भी ग्रहण करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। मनुष्यों को सत्य ग्रहण भोर असत्य का त्याग कर अपने पुरुषार्थ से पूरा बल भोर ऐश्वर्य सिद्ध कर अपना अन्त करण भोर अपने इन्द्रियों को सत्य काम में प्रयुक्त करना चाहिए ॥२॥

अब विद्वानों के विषय में अगले मन्त्रों में कहा है—

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अक्षिना श्रावयन्तव

श्लोकमायवो युवा हव्याभ्याः यवः ।

युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।

प्रचायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दक्षा हिरण्यये ॥३॥

पदार्थ—हे (अक्षिना) विद्या भोर न्याय का प्रकाश करनेवाले विद्वानो ! (श्लोकम्) तुम्हारे यश का (आभावरुणाधृता) सब भोर से अवरुण करते हुए वे (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (युवाम्) तुम्हारी (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (युवाम्) तुम्हारे (अभि) सम्मुख (हव्या) देने योग्य होम के पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए फिर केवल इतना ही नहीं किन्तु हे (व्या) दुःख दूर करनेवाले (विश्ववेदसा) समग्र ज्ञानयुक्त उत्त विद्वानो ! जैसे (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमय (रथे) विहार की सिद्धि करनेवाले रथ में (पवयः) चार वा पहिये के समान (प्रचायन्ते) मधुरपने आदि को धरते हैं वैसे (युवोः) तुम्हारे सहाय से (हिरण्यये) सुवर्णमय रथ में (विद्या) समग्र (अभि) अधिक (श्रियः) सम्पत्तियों को (अ) भोर (पृक्षः) अन्नादि पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो पूरा विद्या की प्राप्ति के निमित्त विद्वानों का आश्रय करते हैं वे अनवान्य भोर ऐश्वर्य आदि पदार्थों से पूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥

अचेति दक्षा व्युः नाकमृण्वयो युञ्जते

वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।

अधि वां स्याम वन्धुरे रथे दक्षा हिरण्यये ।

पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥४॥

पदार्थ—हे (व्या) दुःख दूर करनेवाले विद्वानो ! आप जिस (नाकम्) पु ऊरहित व्यवहार को (अप्यण्वयः) प्राप्त कराते हो तथा (विविष्टिषु) आकाश मार्गों में (वाम्) तुम्हारे (रथयुज) रथों को युक्त करनेवाले अग्नि आदि पदार्थ वा (विविष्टिषु) दिव्य व्यवहारों से (अध्वस्मानः) नीच दशा में न गिरनेवाले जन (युञ्जते) रथ को युक्त करते हैं तो (अचेति) ज्ञान होता है, जाना जाता है इससे (उ) ही। हे (व्या) दुःख दूर करने (रथ) लोक को (अनुशासता) अनुकूल शिक्षा देने (अञ्जसा) साक्षात् (रजः) ऐश्वर्य की (शासता) शिक्षा देने (पथेव) जैसे मार्ग से वैसे आकाशमार्ग में (यन्ती) चलानेवाले (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमय (वन्धुरे) दृढ़ बन्धनों से युक्त (रथे) विमान आदि रथ में हम लोग (अभि, व्याम) प्रविष्टित हों, बैठें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वानों को प्राप्त हो, शिल्प विद्या पद भोर विमानादि रथ को सिद्ध कर अन्तरिक्ष में जाते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

शचीर्मिनः शचीवसु दिवा नहं दशस्यतम् ।

मा वां रात्रिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥५॥३॥

पदार्थ—हे (अक्षिना) उत्तम बुद्धि का वास करानेवाले विद्वानो ! तुम (विद्या) धिन वा (नक्तम्) रात्रि में (अक्षिभिः) कर्मों से (न) हम लोगों को विद्या (वत्सत्यम्) देओ (वाम्) तुम्हारा (रातिः) देना (कदा, चन)

कभी ( या ) मत ( उप, वसत् ) नष्ट हो ( अस्मत् ) हम लोगों से ( राति ) देना ( कदा, जन ) कभी मत नष्ट हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ— इस सप्ताह में अध्यापक और उपदेशक अच्छी शिक्षायुक्त वाणी में दिन-रात विद्या का उपदेश करें जिससे किसी की उदारता नष्ट न हो ॥ ५ ॥

वृ चिन्द्र वृषपाणां इन्द्र इमे सुता

अद्विषताम उद्भिदस्तुभ्यं सुतासं उद्भिदः ।

ते त्वा पन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।

गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवंमान आ गहि सुमृच्छीको न आ गहि ॥६॥

पदार्थ— हे ( वृषन् ) मेव न समर्थ प्रति बलवान् ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त जन । जो ( इमे ) य ( तुभ्यम् ) तुम्हारे लिए ( वृषपाणां ) मेघ जिनसे वर्षत वे वर्षाविन्दु जिनके पान ऐसे ( अद्विषताम ) जो मेघ से उत्पन्न ( उद्भिदः ) पृथिवी को विद्याप्राप्त करके प्रसिद्ध हान ( इन्द्र ) और रसवान् वृक्ष ( सुता ) उत्पन्न हुए तथा ( उद्भिदः ) जो विदारण भाव को प्राप्त अर्थात् कूट-पीट बनाये हुए शीघ्र प्रादि पदार्थ ( सुतासं ) उत्पन्न हुए हैं ( ते ) वे ( दावने ) मुझ देने-वाले ( महे ) बड़े ( चित्राय ) अद्भुत ( राधसे ) धन के लिए ( त्वा ) आपको ( पन्दन्तु ) प्रानन्दित करें । हे ( गिर्वाहः ) उपदेशरूपी वाणियों की प्राप्ति कराने-हारे आप ( गीर्भि ) शास्त्रयुक्त वाणियों से ( स्तवंमान ) गुणों का कीर्तन करते हुए ( न ) हम लोगों के प्राप्ति ( आ, गहि ) प्राप्तो तथा ( सुमृच्छीकः ) उत्तम सुख देनेवाले होते हुए हम लोगों के प्रति ( आ, गहि ) आओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि उन्हीं वाषधि और शोषधरमों का सेवन करें कि जो प्रसाद न उत्पन्न करें, जिससे ऐश्वर्य की उन्नति हो ॥ ६ ॥

ओ पू णीं अग्ने श्रृणुहि त्वमीच्छितां

देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजेभ्यो यज्ञियेभ्यः ।

यद् त्स्यामङ्गिरोभ्यो धेनु देवा अर्दन्त ।

वि तां दुहे अर्यमा कर्त्तरि मर्चां एष ता वेद मे सचा ॥७॥

पदार्थ— हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हम लोगों में ( ईक्षित ) स्तुति प्रशंसायुक्त किये हुए ( त्वम् ) आप ( यज्ञियेभ्यः ) यज्ञानुष्ठान करने की योग्य ( देवेभ्यः ) विद्वानों और ( यज्ञियेभ्यः ) प्रबलमेधादि यज्ञ करने की योग्य ( राजेभ्यः ) राज्य करनेवाले न्यायाधीशों के लिए ( ब्रवसि ) कहते हो इस कारण आप ( न ) हमारे वचन को ( जो, वृ, श्रृणुहि ) शोभनता जैसे हो वैसे ही सुनिए । हे ( देवा ) विद्वानों ( यत् ) ( ह, त्स्याम् ) जिस प्रसिद्ध ही ( धेनुम् ) गुणों की परिपूर्ण करनेवाली वाणी का तुम ( अङ्गिरोभ्यः ) प्राण विद्या के ज्ञानवाली के लिए ( अर्दन्त ) देखो ( ताम् ) उसको और जिसका ( कर्त्तरि ) कर्म करनेवाले के निम्न ( सचा ) सहानुभूति करनेवाला ( अर्यमा ) न्यायाधीश ( वि दुहे ) पूर्ण करता है ( ताम् ) उस वाणी को ( मे ) मेरा ( सचा ) मर्यादा ( एष ) यह न्यायाधीश ( वेद ) जानता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ— अध्यापकों की योग्यता यह है कि सब विद्यार्थियों की निष्कपटता में समस्त विद्या प्रतिदिन पढ़ाई की परीक्षा कर लिए उनका पढ़ा हुआ सुनें जिसमें पढ़े हुए की विद्याविजन न भूलें ॥ ७ ॥

मो घृ वो अस्मदभि नानि पौंस्या

मना भूवन्धुम्नानि मात जांरिषुर्म्मत्पुगेन जांरिषुः ।

यद्वाश्रित्रं गुगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।

अस्मासु तन्मरुतो यच्च दृष्टं दिष्टता यच्च दृष्टम् ॥८॥

पदार्थ— हे ( मरुत ) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेवाले विद्वानों ! ( व. ) तुम्हारे ( ताभि ) वे ( सचा ) सनातन ( पौंस्या ) पुरुषों में उत्तम बल ( अस्मत् ) हम लोगों में ( मो, अभि, भूवन् ) मत निस्कृत हो जा ( पुरा, उत ) पहले भी ( जांरिषु ) नष्ट हुए ( उत ) वे भी ( धुम्नानि ) यज्ञ वा धन ( अस्मत् ) हम लोगों से ( मा, जांरिषु ) फिर नष्ट न होवें ( यत् ) जो ( व ) तुम्हारा ( गुगे-युगे ) युग-युग में ( यज्ञम् ) अद्भुत ( अमर्त्यम् ) अविनाशी ( नव्यम् ) नवीनता में हुआ यज्ञ ( यत्, व ) और जो ( दृष्टम् ) शत्रुओं की दुःख से पार होने योग्य बल ( यत्, व ) और जो ( दृष्टम् ) शत्रुओं की दुःख से पार होने योग्य काम ( घोषात् ) वाणी से तुम ( विष्णु ) धारण करो ( तत् ) वह समस्त ( अस्मासु ) हम लोगों में ( घृ ) अच्छापन जैसे हो वैसे धारण करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ— मनुष्यों को इस प्रकार आत्मसा, इच्छा और प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे बल यज्ञ, धन, आयु और राज्य नित्य बढ़े ॥ ८ ॥

दध्यद् ह मे जुनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः

कण्वो अत्रिर्भुविदुस्ते मे पूर्वं मनुर्विदुः ।

तेषां देवेभ्योतिरस्माकं तेषु नाभयः ।

तेषां भूतानां नमे गिरेन्द्राभी आ नमे गिरा ॥९॥

पदार्थ— जो ( दध्यद् ) धारण करनेवालों को प्राप्त होनेवाला ( पूर्वः ) शुभ गुणों से परिपूर्ण ( अङ्गिराः ) प्राण विद्या का जाननेवाला ( प्रियमेधः ) धारणावती बुद्धि जिसको प्रिय वह ( अत्रिः ) सुखी का भोगनेवाला ( मनु ) विचारशील और ( कण्व ) मेधावीजन ( मे ) मेरे ( महि ) महान् ( जनुषम् ) विद्यारूप जन्म को ( ह ) प्रसिद्ध ( विदुः ) जानते हैं ( ते ) वे ( मे ) मेरे ( पूर्व ) शुभ गुणों से परिपूर्ण पिछले जन यह ( मनु ) जानवान् है यह भी ( विदुः ) जानते हैं ( तेषाम् ) उनका ( देवेभ्यः ) विद्वानों में ( आयतिः ) अच्छा विस्तार है ( अस्माकम् ) हमारे ( तेषु ) उनमें ( नाभयः ) सम्बन्ध है ( तेषां ) उनके ( पदेन ) पाने योग्य विज्ञान और ( गिरा ) वाणी से मैं ( आ, नमे ) अच्छे प्रकार नष्ट होता हूँ जो ( इन्द्राभी ) प्राण और विजुली के समान अध्यापक और उपदेशक हो उनको मैं ( गिरा ) वाणी से ( आ, नमे ) नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जगत में जो विद्वान् हैं वे ही विद्वान् के प्रभाव को जानने योग्य हान है किन्तु क्षुद्राशय नहीं, जो जिनसे विद्या ग्रहण करें वे उनके प्रियाचरण का मदा अनुष्ठान करें सब इतर जनों को प्राप्त विद्वानों के मार्ग ही से चलना चाहिए किन्तु और मूर्खों के मार्ग से नहीं ॥ ९ ॥

होता यज्ञद्विनीं वन वाय्यं बृहस्पतिर्यजति

वेन उक्षभिः पुरुवारिभिरुक्षभिः ।

जग्मूमा दूर आदिशं श्लोकमद्रेरथ तमना ।

अधारायदग्निर्दानि सुकृतुः पुरु सन्नानि सुकृतुः ॥१०॥

पदार्थ— ( होता ) मद्गुणों का ग्रहण करनेवाला जन ( पुरुवारिभिरुक्षभिः ) जिनके स्वीकार करने योग्य गुण हैं उन ( उक्षभिः ) महारामजनों के साथ जिस ( वाय्यम् ) स्वीकार करने योग्य जन का ( यक्षत् ) सज्ज कर वा जिनके स्वीकार करने योग्य गुण उन ( उक्षभिः ) महारामजनों के साथ वसमान ( वेनः ) कामना करने और ( बृहस्पति ) बड़ी वाणी की पालना करनेवाला विद्वान् जिस स्वीकार करने योग्य का ( यजति ) सज्ज करता है ( सुकृतुः ) सुन्दर बुद्धिवाला जन ( तमना ) आपसे जिन ( पुरु ) बहुत ( सन्नानि ) प्राप्त होने योग्य पदार्थों को ( अधारायत् ) धारण करावे वा ( सुकृतुः ) उत्तम काम करनेवाला जन ( यज्ञे ) मेघ से ( अद्विषताम ) जलों को जैसे वने ( दूर, आदिशम् ) दूर में जो कहा जाए उस विषय और ( श्लोकम् ) वाणी को धारण करावे उस सबको ( वनिम् ) प्रशंसनीय विद्या किरणों जिनके विद्यमान हैं वे मज्जन ( वन ) अच्छे प्रकार सेवें ( यज्ञ ) इसके अनन्तर इस उक्त समस्त विषय को हम लोग भी ( जग्मूम् ) ग्रहण करें ॥ १० ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे मेघ से छूटे हुए जल समस्त प्राणी-प्रप्राणियों अर्थात् जड़-वैतनों को जिलाते उनकी पालना करते हैं वैसे वेदादि विद्याओं के पढ़ने-पढ़ानेवालों से प्राप्त हुई विद्या सब मनुष्यों को बुद्धि देती है और जैसे महाराम शास्त्रवेत्ता विद्वानों के साथ सम्बन्ध से सज्जन लोग जानने योग्य विषय को जानते हैं वैसे विद्या के उत्तम सम्बन्ध से मनुष्य चाहे हुए विषय को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

ये देवासो दिव्येकांश स्थ पृथिव्यामध्यैकांश स्थ ।

अप्सुक्षितो महिर्नैकांश स्थ ते देवामो यज्ञमि जुषध्वम् ॥११॥१॥

पदार्थ— हे ( देवाम ) विद्वानों ! तुम ( ये ) जो ( दिवि ) सूर्यादि लोक में ( एकांश ) दश प्राण और म्यारहवा जीव ( स्थ ) हैं वा जो ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( एकांश ) उक्त एकांश गंगा के ( अग्नि, स्थ ) अधिष्ठित हैं वा जो ( महिना ) महत्त्व के साथ ( अप्सुक्षित ) अन्तर्गति वा जलो में निवास करनेवाले ( एकांश ) दशेन्द्रिय और एक मन ( स्थ ) हैं ( ते ) वे जैसे हैं वैसे उनको जानके हे ( देवास ) विद्वानों ! तुम ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) सज्ज करने योग्य व्यवहाररूप यज्ञ को ( जुषध्वम् ) प्रीतिपूर्वक मनन करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ— ईश्वर के इस मूर्ष्टि में जो पदार्थ सूर्यादि लोकों में हैं अर्थात् जो अन्यत्र वर्तमान हैं वे ही यहाँ हैं जिनमें यहाँ हैं उनमें ही वहाँ और लोकों में हैं उनकी यथावत् जानके मनुष्यों को यावद्वैत निरन्तर करना चाहिए ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के शील का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सज्जति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकलौ उमतालोतवां वृषत, चौथा वर्ग और बीसवां अनुवाक समाप्त हुआ ॥

॥

वेदिवध इत्येष प्रयोवाचस्य जत्वारिषासुतस्य ज्ञातस्य सूरतस्य धीर्धत्तमा ऋषिः ।

अग्निर्वैवता । १, ५, ८ जगती । २, ७, ११ विराट्प्रागती । ३, ४, ६

निष्पृज्यपती व क्षन्तः । निवाहः स्वर । भुरिक्थिदुप् । १०,

१२ निष्पृज्यपती । वैवतः स्वरः । १३ पक्षिगच्छन् ।

पञ्चमः स्वरः ॥

यह एकलौ वालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के पुत्रार्थ और गुणों का विषय कहा है—

वेदिषदं प्रियवामाय सुधुतं वासिमिव प्र भरा योनिमग्रयं ।

वस्त्रेणैव वासया मन्यमा शुचिं ज्योतीरथं शुक्लवर्णं तमोहनम् ॥१॥



पदार्थ—हे विद्वन् ! आप ( अन्नमा ) जिससे मानते-जाते उस विचार से ( वेदिवदे ) जो वेदी में स्थिर होता जन ( अन्नवे ) अग्नि के लिए ( वासिनिम् ) जिससे प्राणों की धारण करते उस अन्न के समान हवन करने योग्य पदार्थ को जैसे वैसे ( प्रियधामास ) जिसको स्वाम्य प्यारा उस ( सुधुत् ) सुन्दर कान्तिवाम विद्वान् के लिए ( प्रोनिम् ) घर का ( प्र, घर ) अच्छे प्रकार धारण कर और ( व्योती-रयम् ) ज्योति के समान ( समोहनम् ) अन्वकार का विनाश करनेवाले ( शुक्कवर्णम् ) शुद्धस्वरूप ( शुचिम् ) पवित्र मनोहर यान को ( वस्त्रेलेष ) पट वस्त्र से जैसे ( वासव ) ढाँपे ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमाकार है। जैसे होतान्न प्राण में समिधाकण काष्ठों को अच्छे प्रकार स्थिर कर और उसमें घृत आदि हवि का हवन कर इस प्राण को बढ़ाते हैं वैसे शुद्ध जन को भोजन और आच्छादन अर्थात् वस्त्र आदि से विद्वान् जन बढ़ावें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अभि द्विजन्मा त्रिद्वजमृज्यते सवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।

अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिर्नो मृष्ट वारसाः ॥२॥

पदार्थ—जिसने ( सवत्सरे ) सवत्सर पूरे हुए पर ( त्रिद्वत् ) कर्म, उपासना और ज्ञानविषय में जो साधनरूप से बसमान उम ( जन्मम् ) भोगने योग्य पदार्थ वा ( मृज्यते ) उपाजन किया वा ( अन्यस्य ) और के ( आसा ) मुख और ( जिह्वया ) जीभ के माथ ( ईम् ) बही अन्न ( पुनः ) बार-बार ( जग्धम् ) खाया हो वह ( त्रिजग्धमा ) विद्या में द्वितीय जन्मवाला ब्राह्मण, अग्नि और वैश्व कुल का जन ( अभि, वावृधे ) मज और से बढ़ता ( जेन्यः ) विजयशील और ( वृषा ) बैल के समान प्रत्यन्त बली होता है हमसे ( अन्येन ) और भिन्नवर्ण के साथ ( वारसा ) समस्त दोषों की निवृत्ति करनेवाला तु ( वनिर्नः ) जलों को ( नि, मृष्ट ) निरन्तर शुद्ध कर ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है। जो मनुष्य अन्न आदि बहुत पदार्थ इकट्ठे कर उनको बना और भोजन करते वा दूसरों को कराते तथा हवन आदि उत्तम कामों से वर्षों की शुद्ध करते हैं वे अत्यन्त बली होते हैं ॥२॥

कृष्णप्रतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।

प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृपुच्युतमा सास्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥३॥

पदार्थ—जिस ( प्राचाजिह्वम् ) दुग्ध के देने से पहले अच्छे प्रकार जीभ निकालने ( ध्वसयन्तम् ) गोदी से नीचे गिरने ( तृपुच्युतम् ) वा भीघ गिरे हुए ( प्रा, सास्यम् ) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करने अर्थात् उठा लेने ( कुपयम् ) गोपित रखने योग्य और ( पितुः ) पिता का ( वर्धनम् ) यश वा प्रेम बढ़ानेवाले ( शिशुम् ) बालक को ( सक्षिता ) एक मास रहनेवाली ( मातरा ) धायी और माता ( अभि, तरेते ) दुग्ध से उत्तीर्ण करनी ( अस्य ) इस बालक की वे ( उभा ) दोनों माताएँ ( कृष्णप्रतौ ) विद्वानों के उपदेश में वित्त के आकर्षण धर्म को प्राप्त हुई ( वेविजे ) निरन्तर कम्पती है अर्थात् डरती है कि कश्चित् बालक को दुग्ध न हो ॥३॥

भाषार्थ—भलेबुरे का ज्ञान बढ़ान, रोग आदि बड़े क्लेशों को दूर करने और प्रेम उत्पन्न करनेवाले विद्वानों के उपदेश को पाये हुए भी बालक की माता अर्थात् दूध पिलानेवाली धाय और उत्पन्न करनेवाली निज माता अपने प्रेम से संबंधा करती हैं ॥३॥

सुमुखो मनवे मानवस्यते रघुद्रवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।

अममना अजिगसो रघुष्यदो वार्तजूता उप युज्यन्त आशवः ॥४॥

पदार्थ—जो ( सुमुखः ) सत्कार से छूटने की इच्छा करनेवाले हैं वे जैसे ( रघुद्रवः ) स्वादिष्ठ अन्नो को प्राप्त हानवाले ( जुवः ) वेगवान् ( असमनाः ) एकमात्र जिनका मन न हो ( अजिगसः ) जिनको शील प्राप्त है ( रघुष्यदः ) जो सम्प्राप्तों में चलनेवाले ( वार्तजूताः ) और पवन के समान वेगयुक्त ( आशवः ) सुभ गुणों में व्याप्त ( कृष्णसीतासः ) जिनके कि सेतो का काम निकालनेवाली हलकी यष्टि विद्यमान वे सेतीहारे सेती के कामों का ( उ ) तर्क-वितर्क के माथ ( उप, युज्यन्ते ) उपयोग करते हैं वैसे ( मानवस्यते ) अपने को मनुष्यों की इच्छा करने-वाले ( मनवे ) मननशील विद्वान्, योगी पुरुष के लिए उपयोग करें ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है। जैसे सेती करनेवाले जन सेतो को अच्छे प्रकार जोड़ने बोले योग्य भली-भाँति करके और उसमें बीज बोकर फलवान् होते हैं वैसे मुमुक्षु पुरुष धर्म-नियम से इन्द्रियों को खींच और शम अर्थात् शान्तिभाव से मन को शान्त कर अपने आत्मा की पवित्र कर ब्रह्मवेत्ता जनों की सेवा करें ॥४॥

आदस्य ते चसयन्तो वृथैरते कृष्णमध्वं महि वर्षः करिंक्रतः ।

यस्सी महीमवर्नि प्राप्ति मर्षशदमिन्वसन्तनयमेति नानन्दत् ॥५॥५॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( कृष्णम् ) काले वर्ण के ( अम्वम् ) न होनेवाले ( महि ) बड़े ( वर्षः ) वर्ष को ( चसयन्तः ) बिनाश करते हुए से ( करिंक्रतः ) अत्यन्त कार्य करनेवाले जन ( वृथाः ) मिथ्या ( वृथैरते ) प्रेरणा करते हैं ( ते ) वे

( अम्वम् ) हम मोक्ष की प्राप्ति को नहीं योग्य हैं जो ( महीम् ) बड़ी ( अम्वनिम् ) पृथिवी की ( अमि, अम्वशत् ) सब ओर से अत्यन्त सहता ( अमिन्वसन् ) सब ओर से श्वास लेता ( मानवत् ) अत्यन्त बोलता और ( स्तनमम् ) बिजुली के समान गर्जना करता हुआ अच्छे गुणों को ( सीम् ) सब ओर से ( एति ) प्राप्त होता है ( आत् ) इसके अनन्तर वह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥५॥

भाषार्थ—जो मनुष्य इस संसार में शरीर का आश्रय कर अधर्म करते हैं वे बड़-बड़न को पाते हैं और जो शास्त्रों को पढ़ योग्याभ्यास कर धर्म का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं की मुक्ति होती है ॥५॥

कौन मनुष्य इस जगत् में शोभावमान होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

भूषण योऽधि बभ्रूषु नमन्ते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।

ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्यभिः ॥६॥

पदार्थ—( य ) जो ( भूषन् ) धलकृत करता हुआ ( न ) ता ( बभ्रूषु ) धर्म की धारणा करनेवालों में ( अधि, नमन्ते ) अधिक नम्र होता वा ( पत्नीः ) यज्ञसम्बन्ध करनेवाली स्त्रियों को ( रोरुवत् ) अत्यन्त बातचीत कह सुनाता वा ( वृषेव ) बैल के समान बल को और ( दुर्यभिः ) दुःख से पकड़ने योग्य ( भीमः ) भयकर सिंह ( शृङ्गा ) सींगों को ( न ) जैसे वैसे ( ओजायमानः ) बैल के समान आचरण करता हुआ ( तन्वश्च ) शरीर को ( च ) भी ( शुम्भते ) सुन्दर शोभावमान करता वा ( दविधाव ) निरन्तर चलाता अर्थात् उनसे चेष्टा करता वह अत्यन्त सुख को ( अभि, एति ) प्राप्त होता है ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है। जो मनुष्य सिंह के तुल्य मनुष्यों से बड़ा हो, बैल के तुल्य प्रति बली, पुष्ट, नीरोग शरीरवाले बड़ी प्रोबन्धियों के सेवन से सब सज्जनों को शोभित करें वे इस जगत् में शोभावमान होते हैं ॥६॥

म संस्तिरो विष्टिर सं गृमायति जानमेव जानतीर्नित्य आ शये ।

पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यदूर्पैः पितोः कृष्णते सचा ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( सः ) वह ( संस्तिरः ) अच्छा ढाँपने ( विष्टिरः ) वा मुख फैलानेवाला विद्वान् ( सं, गृमायति ) सुन्दरता से अच्छे पदार्थों का ग्रहण करता वैसे ( जानन् ) जानता हुआ ( नित्य ) नित्य में ( जानतीः ) जानवती उत्तम स्त्रियों के ( एव ) ही ( आ, समे ) पास सोता है। जो ( पितोः ) माता-पिता के ( अन्यात् ) और ( देव्यम् ) विद्वानों में प्रसिद्ध ( वर्पः ) रूप को ( अपि, यन्ति ) निश्चय से प्राप्त होते हैं वे ( पुनः ) बार-बार ( कृष्णते ) बढ़ते हैं और ( कृष्णते ) उत्तम-उत्तम काम्यों को भी करते हैं वैसे तुम भी ( सचा ) मिला हुआ काम किया करो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है। जिन विद्वानों के साथ विधुवी स्त्रियों का विवाह होता है वे विद्वान् जन नित्य बढ़ते हैं, जो उत्तम गुणों का ग्रहण करते वे यहाँ पुरुषार्थों होकर जन्मान्तर में भी सुखयुक्त होते हैं ॥७॥

तमग्रवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मन्त्राः प्रायवे पुनः ।

तासौ जरां प्रमुञ्चयेति नानन्ददत्तं परं जनयन् जीवमस्तुतम् ॥८॥

पदार्थ—जो ( अग्रवः ) अग्रगण्य ( केशिनीः ) प्रशंसनीय केसोवाली युवावस्था को प्राप्त होती हुई कन्या ( तम् ) उस विद्वान् पति को ( स, रेभिर ) सुन्दरता से कहती हैं वे ( हि ) ही ( प्रायवे ) पठाने अर्थात् दूसरे देश उस पति के पहुँचाने को ( मन्त्राः ) मरी सी हों ( पुनः ) फिर उसी के घर आते समय ( ऊर्ध्वा ) ऊँची पदवी पायी हुई-सी ( तस्थुः ) स्थिर होती है जो ( अस्तुतम् ) नष्ट न किया गया ( परम् ) सबको इष्ट ( अस्तुम् ) ऐसे प्राण को वा ( जीवम् ) जीवात्मा को ( नानवत् ) निरन्तर रटावे और ( तासाम् ) उक्त उन कन्याओं के ( जरां ) बुढ़ापे को ( प्रमुञ्चयन् ) अच्छे प्रकार छोड़ता और विद्याधों को ( जनयन् ) उत्पन्न कराता हुआ उत्तम मिलाधों का प्रचार कराता है वह उत्तम जन्म ( एति ) पाता है ॥८॥

भाषार्थ—जो कन्याजन ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याधों का अभ्यास करती हैं वे इस संसार में प्रशंसित हो और बहुत सुख भोग जन्मान्तर में भी उत्तम सुख को प्राप्त होती हैं और जो विद्वान् लोग भी शरीर और धारमा के बल को नष्ट नहीं करते वे बुढ़ावस्था और रोगों से रहित होते हैं ॥८॥

अधीवासं परि मात् रिहन्नहं तुविशेभिः सत्त्वभिर्याति वि जयः ।

वयो दधत्पट्टे रेरिहत्सदानु श्येनीं सचते वर्त्तनीरहं ॥९॥

पदार्थ—हे वीर ! जैसे ( जयः ) वेगयुक्त अग्नि ( मात् ) मान देनेवाली पृथिवी के ( अविधासम् ) ऊपर से शरीर को जिससे ढाँपते उस वस्त्र के समान वास आदि को ( परि, रिहन् ) परित्याग करता हुआ ( अहं ) प्रसिद्ध में ( तुविशेभिः ) बहुत सब्जोंवाले ( सत्त्वभिः ) प्राणियों के साथ ( वि, याति ) विविध प्रकार से प्राप्त होता है और जैसे ( वर्त्तनिः ) वर्त्तमान ( श्येनी ) बाज पक्षी की स्त्री बाजिनी ( वयः ) अवस्था की ( वयत् ) धारण करती हुई ( पट्टे ) पगोंवाले द्विपद, चतुष्पद प्राणी के लिए ( सचते ) प्राप्त होती है वैसे दुष्टों को ( अहं, रेरिहत् ) अनुक्रम से बार-बार छोड़ते हुए आप ( सचा ) सदा ( अहं ) ही उनको निग्रह स्थान को पहुँचाओ ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है। हे मनुष्यो! जैसे धर्मिण्यगलादिकों को जलाता वा पर्वतों को तोड़ता वैसे धर्म्याय और धर्ममात्माओं की निवृत्ति कर और दुष्टों के अभिमानों को तोड़के सत्य धर्म का तुम प्रचार करो ॥१॥

अस्माकमग्रे मयवत्सु दीदिद्विधं शसीवान्वृषभो दमूनाः।

अवास्या शिशुमतीरदीर्घर्षेयं युत्सु परिजर्भुराणः ॥१०॥६॥

पदार्थ—हे ( धर्मे ) पाक के समान वर्तमान विद्वन् ! ( वृषभः ) श्रेष्ठ ( दमूनाः ) इन्द्रियों का दमन करनेवाले ( वषसीवान् ) प्राणवान् और ( परिजर्भुराणः ) सब ओर से पुष्ट होते हुए आप ( अस्माकम् ) हमारे ( युत्सु ) संग्राम और ( वषवत्सु ) बहुत हैं धन जिनमें उन बरों वा मित्रवर्गों में ( वषवः ) कवच के समान ( शिशुमती ) प्रशंसित बालकोवाली स्त्री वा प्रजाओं को ( दीर्घि ) प्रकाशित करो ( अथ ) इसके अनन्तर दुःखों को ( अवास्या ) विरुद्धता से दूर पहुँचा सुखों को ( अवीर्षे ) प्रकाशित करो ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे विद्वन् ! संग्राम में जैसे कवच से शरीर संरक्षित किया जाता है वैसे न्याय से प्रजाजनों की रक्षा कीजिए और युद्ध में स्त्रियों को न मारिए, जैसे धनी पुरुषों की स्त्रियाँ नित्य आनन्द भोगती हैं वैसे ही प्रजाजनों को आनन्दित कीजिए ॥१०॥

इदमग्रे सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते।

यसं शुक्रं तन्वोऽरोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा स्वम् ॥११॥

पदार्थ—हे ( धर्मे ) विद्वन् ! ( दुर्धितात् ) दुःख के साथ धारण किये हुए व्यवहार ( उ ) या तो ( प्रियात् ) प्रिय व्यवहार से ( सुधितम् ) सुन्दर धारण किया हुआ ( इदम् ) यह ( अस्मभ्यं ) मेरा मन ( ते ) तुम्हारा ( प्रेयः ) अतीव प्यारा ( अस्तु ) हो और ( यत् ) जो ( ते ) तुम्हारे ( चित् ) निश्चय के साथ ( तन्वः ) शरीर का ( शुचि ) पवित्र करनेवाला ( शुक्लम् ) शुद्ध पराक्रम ( अविरोधते ) अधिकतर प्रकाशमान होता है ( तेन ) उससे ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( स्वम् ) आप ( रत्नम् ) मनोहर वन का ( वा, वनसे ) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं ॥११॥

भाषार्थ—मनुष्यों को दुःख से सोच न करना चाहिए और न सुख से हर्ष मानना चाहिए जिससे एक दूसरे के उपकार के लिए चित्त अच्छे प्रकार लगाया जाए और जो ऐश्वर्य हो वह सबके सुख के लिए बाँटा जाए ॥११॥

रथाय नावमुत नौ गृहाय नित्यारिणं पद्वीं रास्यग्रे।

अस्माकं वीराँ उत नौ मघानो जनोंश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥

पदार्थ—हे ( धर्मे ) शिल्पविद्या पाये हुए विद्वन् ! आप ( या ) जो ( अस्माकम् ) हमारे ( वीराँ ) वीरों ( उत ) और भी ( अघोन ) धनवान् ( जनान् ) मनुष्यों और ( नः ) हम लोगों को ( च ) श्री समुद्र के ( पारयात् ) पार उतारे ( च ) और ( या ) जो हम को ( जगं ) सुख को अच्छे प्रकार प्राप्त करे उस ( नित्यारिणम् ) नित्य बड़ बन्धनयुक्त जल की गहराई की परीक्षा करते हुए स्तम्भों तथा ( पद्वीम् ) पर्वतों के समान प्रशंसित पहियों से युक्त ( नावम् ) बड़ी नाव को ( न ) हमारे ( रथाय ) समुद्र आदि में रमण के लिए ( उत ) वा ( गृहाय ) घर के लिए ( रासि ) बैठे हो ॥१२॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिए कि जैसे मनुष्य और घोड़े आदि पशु पर्वतों से चलते हैं वैसे चलनेवाली बड़ी नाव रथके और एक द्वीप से दूसरे द्वीप वा समुद्र में युद्ध प्रयत्न व्यवहार के लिए जा-आ कर ऐश्वर्य की उन्नति निरन्तर करें ॥१२॥

अभी नौ अग्र उक्थमिज्जुगुर्यां चावाक्षामा सिन्धवश्च स्वर्गुर्ताः।

गव्यं यव्यं यन्तौ दीर्घाहर्षं वरमरुण्यो वरन्त ॥१३॥७॥

पदार्थ—जैसे ( चावाक्षामा ) अन्तरिक्ष और भूमि ( सिन्धवः ) समुद्र और नदी तथा ( अरुण्यः ) उष काल ( च ) और ( वरम् ) उत्तम रत्नादि पदार्थ ( इवम् ) अन्न ( उक्थम् ) प्रशंसनीय ( अरुण्यम् ) गी का दूध आदि वा ( यव्यम् ) गी के होनेवाले सेत की ( यन्तः ) प्राप्त होते हुए ( स्वर्गुर्ताः ) अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से उद्यत ( वीर्या ) बहुत ( अग्रा ) विनों को ( वरम् ) स्वीकार करें वैसे हे ( धर्मे ) विद्वन् ! ( नः ) हम लोगों को ( अभि, इत्, जुगुर्याः ) सब ओर से उद्यम ही में लगाइए ॥१३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है। मनुष्यों को सदा पुरुषार्थी होना चाहिए, जिन यानों से भूमि, अन्तरिक्ष, समुद्र और नदियाँ में सुख से शीघ्र जाना हो उन यानों पर चढ़कर प्रतिदिन रात्रि के चौथे प्रहर में उठकर और दिन में न सोकर सदा प्रयत्न करना चाहिए जिससे उद्यमी ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

इस सूक्त में विद्वानों के पुरुषार्थ और गुणों का वर्णन होने से सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ पालीसवाँ सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



बह्विधैवस्य जयोवर्षास्यैकचरवारिषासुतरस्य साततमस्य सूक्तस्य वीर्यतमा ऋषिः ॥

अभिर्भवता ॥ १—३, ५, ११ जगती ॥ ४, ७, ९, १०

निबृज्जगती छन्दः। निवाह स्वरः ॥ ५ स्वरान्द निबृज्जगती ॥ ५ भुक्ति

निबृज्जगती ॥ वेषत स्वरः ॥ १२ भुक्ति पङ्क्तिः ॥ १३ स्वरान्द

पङ्क्तिः छन्दः ॥ पञ्चम स्वरः ॥

अब एकसौ इकतालीसवाँ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं—

बह्विधा तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहस्रो यतो जनिं।

यदीमुप हर्तते साधते मतिर्हृतस्य घेना अनयन्त सस्रतः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! ( यत् ) जिस ( बर्हातम् ) देखने योग्य ( देवस्य ) विद्वान् के ( भर्गः ) शुद्ध तेज के प्रति मेरी ( मतिः ) बुद्धि ( उपहृते ) जाती कार्यसिद्धि करती और ( सस्रतः ) जो समान सत्य मार्ग को प्राप्त होती है ( बह्विधः ) सत्य व्यवहार की ( घेनाः ) बाणियों को ( ईम् ) सब ओर से ( अनयन्तः ) सत्यता की पहुँचाती तथा ( यतः ) जिस कारण ( सत् ) वह तेज ( सहस्रः ) विद्याबल से ( जनिः ) उत्पन्न होता उस कारण ( बह्विधा ) वह सत्य तेज अर्थात् विद्वानों के गुणों का प्रकाश इस प्रकार अर्थात् उक्त रीति से ( वपुषे ) अपने मूर्ख के लिए तुम लोगों से ( धायि ) धारण किया जाए ॥१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिस उत्तम बुद्धि और सत्य आचरण से विद्यावानों का देखने योग्य स्वरूप धारण किया जाता और काम सिद्ध किया जाता उस बाणी और उस सत्य आचार को तुम नित्य स्वीकार करो ॥१॥

पृथो वपुः पितुमाश्रित्य आ शये द्वितीयमा सप्तविंशसु मातृषु।

तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमति जनयन्त योषणः ॥२॥

पदार्थ—( मित्य ) नित्य ( पितुमान् ) प्रशंसित अन्नयुक्त में पहले ( वृषः ) पूछने कहने योग्य ( वपुः ) सुन्दर रूप का ( आ शये ) आशय लेता अर्थात् आश्रित होता है ( अस्य ) इस ( वृषभस्य ) यज्ञादि कर्म द्वारा जल वषनिवाले का मेरा ( द्वितीयम् ) दूसरा सुन्दर रूप ( सप्तविंशसु ) सात प्रकार की कल्याण करने ( मातृषु ) और मान्य करनेवाली माताओं के समीप ( आ ) अच्छे प्रकार वर्तमान और ( तृतीयम् ) तीसरा ( दशप्रमतिम् ) दश प्रकार की उत्तम मति जिसमें होती उस सुन्दर रूप को ( दोहसे ) कामों की परिपूर्णता के लिए ( योषणः ) प्रत्येक व्यवहारों को मिलानेवाली स्त्री ( जनयन्तः ) प्रकट करती हैं ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है। जो मनुष्य इस जगत् में सात प्रकार के लोको में ब्रह्मचर्य से प्रथम गृहाश्रम से दूसरे और वानप्रस्थ वा सन्यास से तीसरे कर्म और उपासना के विज्ञान को प्राप्त होते हैं दश इन्द्रियों, दश प्राणों के विषयक मन, बुद्धि, चित्त, महकार और जीव के ज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥२॥

निर्येदी बुध्रान्महिषस्य वर्षस ईशानासः शर्वसा क्रन्तं सूरयः।

यदीमनु प्रदिवो मध्वं आधवे गुहा सन्तं मातरिणा मथायति ॥३॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( ईशानासः ) ऐश्वर्ययुक्त ( सूरयः ) विद्वान् जन ( शर्वसा ) बल से जैसे ( आधवे ) सब ओर से धन आदि के भरण करने के निमित्त ( मातरिणा ) प्राणवायु जाठराग्नि को ( मथायति ) मथता है वैसे ( महिषस्य ) बड़े ( वर्षसः ) रूप अर्थात् सूर्यमण्डल के सम्बन्ध में स्थित ( बुध्रान् ) अन्तरिक्ष से ( ईम् ) इस प्रत्यक्ष व्यवहार को ( अनुकम् ) अनुक्रम से प्राप्त हों वा ( मध्वः ) विशेष ज्ञानयुक्त ( प्रदिवः ) कान्तिमान् आराम के ( गुहा ) गुहाशय में अर्थात् बुद्धि में ( सन्तम् ) वर्तमान ( ईम् ) प्रत्यक्ष ( यत् ) जिस ज्ञान को ( मिषकम् ) निरन्तर क्रम से प्राप्त हो उससे वे सुखी होते हैं ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है। वे ही ब्रह्मवेत्ता विद्वान् होते हैं जो धर्मानुष्ठान योग्याभ्यास और सत्सङ्ग करके अपने आत्मा की जान परमात्मा की जानते हैं और वे ही मुमुक्षुजनों के लिए इस ज्ञान को विवित कराने के योग्य होते हैं ॥३॥

प्र यत्पितुः परमासीयते पर्या पृथुधो वीरुधो दंसु रोहति।

उभा यदस्य जनुपं यदिवन्त आदियत्रिष्ठो अभवद्वृणा शुचिः ॥४॥

पदार्थ—पुरुष से ( परयात् ) उत्कृष्ट उत्तम यत्न के साथ ( यत् ) जो ( अस्य ) प्रत्यक्ष पृथुजाति का सम्बन्धी ( पितुः ) प्रन्न ( प्रणीयते ) प्राप्त किया जाता है वा जो ( वपुः ) दूसरों के दबाने आदि के निमित्त से ( पृथुधः ) अत्यन्त भोगों को इष्ट ( वीरुधः ) अत्यन्त पीढ़ी हुई लताओं पर ( पथ्यरोहति ) चारों ओर से पौढ़ता है ( आत् ) और ( इवन्तः ) प्रिय इस यजमान का ( यत् ) जो ( अनुवन् ) जन्म ( अभवत् ) हो तथा ( यत् ) जो ( शुचिः ) पवित्र ( वृणा ) चमक दमक हो उन ( उभा ) दोनों को ( इत् ) ही ( यत्रिष्ठः ) अत्यन्त तबज जन प्राप्त होवे ॥४॥

भाषार्थ—मनुष्यों की चाहिए कि धन और मोक्ष सबसे सेबे और संस्कार किये अर्थात् बनाये हुए उस धन के भोजन से समस्त सुख होता है ऐसा ध्यान रखना चाहिए ॥४॥

आदिन्मातृरात्रिंशत्वात्वा शुचिरिहस्यमान उर्विया वि वाहये ।

अनु यत्पूर्वा अर्हस्सनाजुवो नि नव्यसीध्वरासु धावते ॥ ५ ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो ( वासु ) जिन ( नव्यसीध्व ) अत्यन्त नवीन और ( धावरासु ) पिछली ओषधियों के निमित्त ( नि, धावते ) निरन्तर शीघ्र जाता है वा ( वात् ) जो ( सनाजुव ) सनातन वेगवाली ( पूर्वाः ) पिछली ओषधियों को ( अनु, अर्हत् ) बढ़ाता है वह उन ओषधियों में ( आ, शुचिः ) अच्छे प्रकार पवित्र और ( अर्हस्सनाजुवः ) विनाश को न प्राप्त होता हुआ ( उर्विया ) बहुत प्रकार ( विवाहये ) विशेषता से बढ़ता है ( वात् ) इसके पीछे ( इत् ) ही ( मातृः ) माता के समान मान करनेवाली ओषधियों को ( आ, अविशत् ) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष वैद्यक विद्या को पढ़, बढ़ी-बढ़ी ओषधियों का युक्ति के साथ सेवन करते हैं वे बहुत बढ़ते हैं। ओषधी को प्रकार की होती है अर्थात् पुरानी और नवीन उनमें जो विचक्षण चतुर होते हैं वे ही बीरोग होते हैं ॥ ५ ॥

आदिद्वोत्तारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पृथ्वानासं ऋज्जते ।

देवान्यत्क्रत्वा मज्जनां पुरुषुतो मर्षं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥

पदार्थ—( वात् ) जो ( पुरुषुतः ) बहुतों से प्रसता किया हुआ ( विश्वधा ) विश्व को धारण करनेवाला ( क्रत्वा ) कर्म वा विशेष बुद्धि से और ( मज्जना ) बल से ( धायसे ) धारणा के लिए ( शंसन् ) प्रशंसायुक्त ( मर्षन् ) मनुष्य को और ( देवान् ) दिव्य गुणों को ( वेति ) प्राप्त होता है उसको ( वात् ) और ( होतारम् ) देनेवाले को जो ( पृथ्वानासं ) सम्बन्ध करते हुए जन ( दिविष्टिषु ) सुन्दर यज्ञों में ( भगमिव ) धन ऐश्वर्य के समान ( वृणते ) सेवत हैं वे ( इत् ) ही वृत्तों को ( ऋज्जते ) भूजने हैं अर्थात् जलाते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अच्छे वैद्य का रत्न के समान सेवन करते हैं वे नरीर और आत्मा के बलवाने होकर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्यारो न वक्वां जराणा अनाकृतः ।

तस्य पतमन्दशुषः कृष्णजैदमः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

पदार्थ—( वात् ) जो ( यजत ) सङ्ग करने और ( वक्वा ) कहनेवाला ( अनाकृतः ) रक्षावट को न प्राप्त हुआ ( वातचोदितः ) धारण वा पवन से प्रेरित विद्वान् ( ह्यारः ) कुटिलता करते हुए अग्नि के ( न ) समान ( व्यध्वन् ) विशेषता से स्थिर है ( तस्य ) उस ( शुचिजन्मनः ) पवित्र जन्मा विद्वान् के ( पतम् ) चाल-चलन में ( कृष्णजैदम् ) काले मारने हैं जिसके उस ( वक्वः ) जलाते हुए ( आ, व्यध्वनः ) अच्छे प्रकार विरुद्ध मार्गवाले अग्नि के ( रजः ) कण के समान ( जराणा ) प्रशंसा स्तुति होती है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो धर्म में अच्छी स्थिरता रखते हैं वे सूर्य के समान प्रसिद्ध होते हैं और उनकी की हुई कीर्ति सब दिशाओं में विराजमान होती है ॥ ७ ॥

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो धामकैभिरुषेभिरीयते ।

आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सरयः शूरस्येव त्वेषादीपते वयः ॥ ८ ॥

पदार्थ—( कृष्णासः ) जो जीवते हैं वे ( सरयः ) विद्वान् जन जैसे ( शिक्वभिः ) कीली और बन्धनों से ( कृत ) सिद्ध किया ( धाम ) आकाश को ( अरुषेभिः ) लाल रङ्गवाले ( अरुषेभिः ) अज्ञों के साथ ( यातः ) प्राप्त हुआ ( रथ ) रथ ( ईयते ) चलता है ( न ) वैसे वा ( वयः ) पक्षी और ( शूरस्येव, त्वेषात् ) शूरवीर के प्रकाशित व्यवहार से जैसे वैसे कलाकुशलता से ( ईयते ) देखते हैं वे सुख पाते हैं, हे विद्वन् ! ( वात् ) इसके अनन्तर जो आप अग्नि के समान पापों को ( अलि ) जलाते हो ( अस्य ) इन ( ते ) आपकी सुख होता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उत्तम विमान से अन्तरिक्ष में घाना-जाना सुख से जन करते हैं वैसे विद्वान् जन विद्या से धर्म सम्बन्धी मार्ग में विचरने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

त्वया क्षमे वरुणो धृतव्रतो मितः शाश्वदे अर्यमा सुदानवः ।

यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुराक्ष नेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( क्षमे ) विद्वन् ! जैसे ( त्वया ) तुम्हारे साथ ( वात् ) जो ( विश्वः ) ओष्ठ ( वृतव्रतः ) सत्य व्यवहार को धारण किये हुए ( मित्र ) सब का मित्र और ( अर्यमा ) न्यायाधीश ( सुदानवः ) अच्छे दानशील ( हि ) ही होते हैं वैसे उनके संग से आप ( नेमिः ) पहिमा ( धरान्, व ) धर्मों की वैसे ( विश्वथा ) वा वैसे सब प्रकार से ( विनुः ) ईश्वर व्यापक है वैसे ( यत्तुना ) उत्तम बुद्धि से ( परिभूरः ) सर्वोपरि ( बीम् ) सब और से ( अनु, अजायथाः ) अनुक्रम से होनी जिससे दुःख को ( शाश्वदे ) नष्ट करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर न्यायकारी और सब विद्याओं में प्रवीण है वैसे विद्वानों के संग से बुद्धिमान् न्यायकारी और पूरी विद्यावाला ही ॥ ९ ॥

स्वममे शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।

त त्वा नु नव्यं सदसो युवन्वयं भगं न कारे मंहिरत्न धीमहि ॥ १० ॥

पदार्थ—हे ( सहस्रः ) बलसम्बन्धी ( युवन् ) यौवनभाव को प्राप्त ( यविष्ठ ) अत्यन्त तरुण ( मंहिरत्न ) प्रशंसा करने योग्य गुणों से रमणीय ( अन्वे ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् ! जो ( त्वम् ) आप ( शशमानाय ) प्रथम को उत्कर्षके, धर्म को प्राप्त हुए ( सुन्वते ) और ऐश्वर्य को उत्पन्न करनेवाले उत्तम जन के लिए ( रत्नम् ) रमणीय ज्ञान वा उसके साधन को और ( देवतातिम् ) परमेश्वर को ( इन्वसि ) ध्यान-योग से व्याप्त होते हो ( तम् ) उन ( नव्यम् ) नवीन विद्वानों से प्रसिद्ध ( त्वा ) आपको ( कारे ) कर्तव्य व्यवहार में ( भगम् ) ऐश्वर्य के ( न ) समान ( वयम् ) हम लोग ( नु ) शीघ्र ( बीमहि ) धारण करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो प्रथम को छोड़ धर्म का अनुष्ठान कर परमात्मा को प्राप्त होते हैं वे अति रमणीय आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

अस्मे रयि न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पृथ्वासि धर्षसिम् ।

ररमीरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंस्युत आ च सुक्रतुः ॥ ११ ॥

पदार्थ—जो ( सुक्रतुः ) उत्तम बुद्धिवाला विद्वन् ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( स्वर्थम् ) जिससे अच्छा प्रयोजन हो वा जो धनार्थ साधनों से रहित उस ( रयिम् ) धन के ( न ) समान ( दमूनसम् ) इन्द्रियों को विषयों में दबा देने के समानरूप ( जपम् ) ऐश्वर्य का और ( दक्षम् ) चतुर के ( न ) समान ( धर्षसिम् ) धारण करनेवाले का ( पृथ्वासि ) सम्बन्ध करता वा ( ररमीरिव ) जैसे किरणों की वैसे ( ऋते ) सत्य व्यवहार में ( देवानाम् ) विद्वानों के ( उभे ) दो ( जन्मनी ) भगते-पिछले जन्म ( च ) और ( शंसन् ) प्रशंसा को ( यः ) जो ( आ, वयसि ) बढ़ाता है वह हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सूर्य की किरणों के समान सब को धर्म-सम्बन्धी पुरुषार्थ में संयुक्त करते हैं और आप भी वैसे ही वर्तते हैं वे भगते-पिछले जन्मों को पवित्र करते हैं ॥ ११ ॥

उत नः सुद्योत्मा जीराक्षो होवा मन्द्रः शृणवन्चन्द्रयः ।

स नो नेषधेवतैरमूरोऽभिर्वां सुषितं वस्यो अचच्छ ॥ १२ ॥

पदार्थ—जो ( मन्द्रः ) प्रकाशयुक्त ( चन्द्रयः ) जिसके रश्मि में चाँदी-सोना विद्यमान जो ( सुद्योत्मा ) उत्तम प्रकाशवाला ( जीराक्षः ) जिसके वेगवान् बहुत धोके वह ( होवा ) दानशील जन ( नः ) हम लोगों को ( शृणवन् ) सुने ( उत ) और जो ( अमूरोः ) गमनशील ( वस्यः ) निवास करने योग्य ( अग्निः ) अग्नि के समान प्रकाशमान जन ( सुषितम् ) उत्पन्न किये हुए ( वासम् ) अच्छे रूप को ( नेषधेवतैः ) अतीव प्राप्ति करानेवाले गुणों से ( अचच्छ ) अच्छा ( नेषत् ) प्राप्त करे ( स ) वह ( नः ) हम लोगों के बीच प्रससित होता है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो सब के न्याय का सुननेवाला, सांगोपांग सामग्रीसहित विद्या-प्रकाश युक्त सब विद्या के उत्साहियों को विद्यायुक्त करता है वह प्रकाशमान होता है ॥ १२ ॥

अस्तांन्यमिः शिमीवज्जिरकैः साञ्जाज्याय प्रतरं दधानः ।

अमी च ये मधवानो वयं च मिहं न सूरौ अति निष्टतन्युः ॥ १३ ॥

पदार्थ—जो ( शिमीवज्जिरकैः ) प्रशंसित कर्मों से युक्त ( अमी ) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ ( प्रतरम् ) शत्रुबलों को जिससे तरें उस सेनागण को ( दधानः ) धारण करता हुआ ( अग्निः ) सूर्य के समान सुशीलता से प्रकाशित ( साञ्जाज्याय ) चक्रवर्ति राज्य के लिए ( अस्तांनि ) स्तुति पाता है ( च ) और ( ये ) जो ( अमी ) वे ( मधवान ) परमपूजित धनयुक्त जन ( सूरः ) सूर्य ( मिहम् ) वर्षा की ( न ) जैसे वैसे विद्या को ( अति, नि, तन्युः ) अतीव निरन्तर विस्तारें उस पूर्वोक्त सज्जन ( च ) पीछे कहे हुए जनों की ( वयम् ) हम लोग प्रशंसा कर ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जो धार्मिक विद्वानों से अच्छी शिक्षा को पाये हुए धर्म से राज्य का विस्तार करते हुए प्रयत्न करते हैं वे ही राज्य, विद्या और धर्म के उपदेश में अच्छे प्रकार स्थापन करने योग्य हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ सङ्गति वर्तमान है यह जानना चाहिए ॥

यह एकलौ इकतालीसवां सूक्त और नववां वर्ग पूरा हुआ ॥



सविद्ध इत्यथ यथोदस्यैव द्विविधैरित्युत्तरस्य वाततनस्य सूक्तस्य बीर्धतमा

व्याधिः । १-४ अग्निः । ५ बहिः । ६ देव्यो द्वारः । ७ उवासानवता ।

८ देव्यो होतारो । ९ सरस्वतीकानारव्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः ।

१२ स्वाहाकृतिः । १३ इन्द्रस्य देवताः । १, २, ५, ६, ८,

९ मिथुनमुष्टु । ४ स्वरावमुष्टु । ३, ७, १०-१२

अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १३ धुरिपुष्पिणः

छन्दः । ऋचमः स्वरः ॥



अथ तेरह आचार्याले एकसौ व्यासीसर्वे सुवत्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में  
आचार्यक और अध्येता के विषय को कहते हैं—

समिद्धो अग्र आ वह देवाँ अग्र यतस्त्वे ।

तन्तुं तनुष्व पूर्ण्य सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) पावक के समान उत्तम प्रकाशवाले ( समिद्धः ) विद्या से प्रकाशित पढ़ानेवाले विद्वन् ! आप ( अग्र ) आज के दिन ( सुतसोमाय ) जिसने बड़ी-बड़ी श्रेष्ठियों के रस निकाले और ( यतस्त्वे ) यज्ञपात्र उठाये है उस यज्ञ करनेवाले ( दाशुषे ) दानशील जन के लिए ( देवान् ) विद्वानों की ( आ, वह ) प्राप्ति करो और ( पूर्ण्यम् ) प्राचीनों के किये हुए ( तनुष्व ) विस्तार को ( तनुष्व ) विस्तारो ॥ १ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालकार है । जैसे बालकपन और तरुण अवस्था में माता और पिता आदि सम्मानों को सुखी करें वैसे पुत्रलोक ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़, युवावस्था को प्राप्त और विवाह किये हुए अपने माता-पिता आदि को आनन्द देवें ॥ १ ॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

पृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।

यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( तनूनपात् ) शरीर को लपट करनेवाले विद्वन् ! आप ( मावतः ) मेरे सदृश ( दाशुषः ) दानशील ( शशमानस्य ) और दुःख उत्सर्जन किये ( विप्रस्य ) मेवादी जन के ( यतस्त्वे ) बहुत घृत और ( मधुमन्तम् ) प्रशस्त मधुरादि गुणों से युक्त ( गन्धम् ) यज्ञ का ( उप, मासि ) परिमाण करनेवाले हो ॥ २ ॥

आचार्य—विद्यार्थियों को विद्वानों की सज्जति कर विद्वानों के सदृश होना चाहिए ॥ २ ॥

शुचिः पावको अमृतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।

नराशंसस्त्रिा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो ( पावकः ) पवित्र करनेवाले अग्नि के समान ( अमृतः ) आश्चर्य गुण, कर्म, स्वभाववाला ( शुचिः ) पवित्र ( यज्ञियः ) यज्ञ करने योग्य ( नराशंसः ) नरों से प्रशंसा को प्राप्त और ( देवः ) कामना करता हुआ जन ( देवेषु ) विद्वानों में ( दिवः ) कामना से ( मध्वा ) मधुर शर्करा वा सहज से ( यज्ञम् ) यज्ञ का ( त्रि ) तीन बार ( आ, मिमिक्षति ) अन्धे प्रकार खींचने वा पूरा करने की इच्छा करता है वह सुख पाता है ॥ ३ ॥

आचार्य—जो मनुष्य बालकपन, जबानी और बुझावे में विद्याप्रचाररूपी व्यवहार को करें वे कायिक, वाचिक और मानसिक सुखों को प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥

ईक्षितो अग्र आ वहन्द् चित्रमिह प्रियम् ।

इयं हि त्वां मतिर्मेमाच्छां सुनिह वच्यते ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( सुनिह ) मधुरभाषिणी जिह्वावाले ( अग्ने ) सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप विद्वन् ! ( ईक्षितः ) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप ( इह ) इस जन्म में ( प्रियम् ) प्रीति करनेवाले ( चित्रम् ) चित्र-विचित्र नानाप्रकार के ( वच्यते ) परमेश्वर्य को ( आ, वह ) प्राप्त करो जो ( मतिः ) मेरी ( इयम् ) यह ( मतिः ) प्रज्ञा बुद्धि तुमसे ( अग्र ) अन्धे ( वच्यते ) कही जाती है ( हि ) वही ( त्वा ) आपको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

आचार्य—सबको पुरुषार्थ से विद्वानों की बुद्धि पाकर महान् ऐश्वर्य का अन्धका संग्रह करना चाहिए ॥ ४ ॥

स्तृणानासो यतस्त्वे बहिर्यज्ञे स्वध्वरे ।

वृज्जे देवव्यवस्तममिन्द्राय श्रमं सप्रथः ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो ( स्वध्वरे ) उत्तम शोभायुक्त ( वज्र ) विद्यादानरूप यज्ञ में ( इन्द्राय ) परमेश्वर्य के लिए ( सप्रथः ) प्रख्यात गुणों के साथ वर्तमान ( बहिः ) बड़े ( देवव्यवस्तमम् ) विद्वानों से अतीव व्याप्त ( श्रमं ) श्रम को ( स्तृणानास ) हाँपते हुए ( यतस्त्वे ) उद्यम को प्राप्त होने हैं वे दुःख और दरिद्रपन का ( वृज्जे ) त्याग कर देते हैं ॥ ५ ॥

आचार्य—उद्यम करनेवालों के बिना लक्ष्मी और राज्यश्री प्राप्त नहीं होती तथा जो अतीव उत्तम विद्वानों के निवास से समुक्त श्रम में अन्धे प्रकार बसते हैं वे अविद्या और दरिद्रता की निष्कार लपट करते हैं ॥ ५ ॥

वि श्रयन्तामृताह्वः प्रये देवेभ्यो महीः ।

पावकासः पुरुस्वहो द्वारो देवीरसश्वतः ॥ ६ ॥ १० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिए जो ( पावकासः ) पवित्र करनेवाली ( अमृताह्वः ) सत्य आचरण और उत्तम ज्ञान से बढ़ाई हुई

( पुरुस्वह ) बहुतों से चाही जाती ( द्वार ) द्वारों के समान ( देवीः ) मनोहर ( अमृताह्वः ) परस्पर एक दूसरे से मिलक्षण ( महीः ) प्रशंसनीय वाणी वा पृथिवी जितकी ( प्रये ) प्रीति के लिए विद्वान् जन कामना करते उनका आप लोग ( वि श्रयन्ताम् ) विशेषता से आश्रय करें ॥ ६ ॥

आचार्य—मनुष्यों को सबके उपकार के लिए विद्या, अन्धे शिक्षायुक्त वाणी और रत्नों को प्रसिद्ध करनेवाली भूमियों की कामना करनी चाहिए और उनके आश्रय से पवित्रता करनी चाहिए ॥ ६ ॥

आ मन्दमाने उपाके नहोपासां सुपेशसा ।

यह्नी क्रतस्य मातरा सीदतां बहिः सुमत् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप जैसे ( क्रतस्य ) सत्य व्यवहार का ( मातरा ) माता करानेवाली ( यह्नी ) कारण से उत्पन्न हुई ( उपाके ) एक-दूसरे के साथ वर्तमान ( सुपेशसा ) उत्तम रूपयुक्त और ( मन्दमाने ) कल्याण करनेवाली ( नहोपासां ) गति और प्रभातवना ( आ, सीदताम् ) अन्धे प्रकार प्राप्त हों वैसे ( आ, सुमत् ) जिसमें बहुत आनन्द को प्राप्त होते हैं उस ( बहिः ) उत्तम घर को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

आचार्य—जैसे दिन-रात्रि समस्त प्राणी-अप्राणी को नियम से अपनी-अपनी क्रियाओं में प्रवृत्त कराता है वैसे सब विद्वानों को सर्वसाधारण मनुष्य उत्तम क्रियाओं में प्रवृत्त करने चाहिए ॥ ७ ॥

मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा देव्या कवी ।

यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्मद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( मन्द्रजिह्वा ) जिह्वा प्रशस्त जिह्वा है वे ( जुगुर्वणी ) अत्यन्त उद्यमी ( होतारा ) ग्रहण करनेवाले ( देव्या ) दिव्य गुणों में प्रसिद्ध ( कवी ) प्रबल प्रज्ञायुक्त आचार्यक और उपदेशक लोग ( न ) हम लोगों के लिए ( दिविस्पृशम् ) प्रकाश में सलग्नता कराने तथा ( सिध्म ) मज्जल करनेवाले ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) विद्यादि की प्राप्ति के साधक व्यवहार का ( यक्षताम् ) सज्ज करते हैं वैसे तुम भी सज्ज करो ॥ ८ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालकार है । जैसे विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहार के साथ परस्पर सग करते हैं वैसे साधारण मनुष्यों को भी होना चाहिए ॥ ८ ॥

शुचिर्देवेष्वपिता होत्रा मरुत्सु भारती ।

इळा सरस्वती मदी बहिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो ( देवेषु ) विद्वानों में ( अपिता ) समर्पण की हुई ( होत्रा ) देने-लेने योग्य क्रिया वा ( मरुत्सु ) स्तुति करनेवालों में ( भारती ) आरण-योषण करनेवाली ( शुचिः ) पवित्र ( इळा ) प्रशंसा के योग्य ( सरस्वती ) प्रशस्त विद्या का सम्बन्ध रखनेवाली ( मदी ) और बड़ी ( यज्ञियाः ) यज्ञ सिद्ध कराने के योग्य क्रिया ( बहिः ) समीप प्राप्त बड़े हुए व्यवहार को ( सीदन्तु ) प्राप्त होंगे उनको समस्त विद्यार्थी प्राप्त होंगे ॥ ९ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालकार है । विद्यार्थियों को ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि जो विद्वानों में विद्या वा वाणी वर्तमान है वह हम को प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

तसंस्तुरीपमद्भुतं पुरु धारं पुरु त्मना ।

त्वष्टा पोषाय वि ध्यंतु राये नाभा नो अस्वयुः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( अस्वयुः ) हम लोगों की कामना करनेवाले ( त्वष्टा ) विद्या और धर्म से प्रकाशमान आप ( न ) हम लोगों के ( पुरु ) बहुत ( पोषाय ) पोषण करने के लिए और ( राये ) धन होने के लिए ( नाभा ) नाभि में प्राण के समान ( वि, ध्यंतु ) प्राप्त हों और ( त्मना ) आत्मा से जो ( तुरीयम् ) तुरन्त रक्षा करनेवाला ( अद्भुतम् ) अद्भुत आश्चर्यरूप ( पुरु, वा, धारम् ) बहुत वा पूरा धन है ( तत् ) उसको ( न ) हम लोगों के लिए प्राप्त कीजिए ॥ १० ॥

आचार्य—जो विद्वान् हम लोगों की कामना करें उसकी हम लोग भी कामना करें । जो हम लोगों की कामना न करें उसकी हम लोग भी कामना न करें, इससे परस्पर विद्या और सुख की कामना करते हुए आचार्य और विद्यार्थी लोग विद्या की उन्नति करें ॥ १० ॥

अवसृजन्तु त्मना देवान्यक्षि वनस्पते ।

अग्निर्हव्या सुपुदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे ( वनस्पते ) रश्मियों के पति सूर्य के समान वर्तमान ! आप जिस कारण ( त्मना ) आत्मा से ( देवान् ) विद्या की कामना करते हुओं को ( उपावसृजन् ) अपने समीप नाना प्रकार की विद्या से परिपूरित करते हुए ( देवेषु ) प्रकाशमान लोगों में ( मेधिरः ) अत्यन्त दीपते हुए ( मेधिरः ) सज्ज करानेवाले ( अग्निः ) जैसे अग्नि ( हव्या ) होम से देने योग्य पदार्थों को ( सुपुदति ) सुगवता से ग्रहण कर परमाणु रूप आरम्भ करता है वैसे विद्या का ( यक्षि ) सज्ज करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमाकार है। जैसे सूर्यमण्डल धुंधली आदि विषय पदार्थों में दिव्यरूप हुआ जन को बर्णित है वैसे विद्वान् जन सत्कार के विद्यार्थियों में विद्या की बर्णना करते हैं ॥११॥

पुण्यमर्हं अस्तुर्वै विन्देवाय वायवे ।

स्वाहा गायत्र्यैवसे हव्यमिन्द्राय कर्चन ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( स्वाहा ) सत्य किया से ( वायवे ) जिसके बहुत पुष्टि करनेवाले गुण ( वायवे ) जिसमें प्रशंसायुक्त विद्या की स्तुति करनेवाले ( विन्देवाय ) वा सत्य विद्वान् जन विद्यमान ( वायवे ) प्राप्त होने योग्य ( गायत्र्यैवसे ) गानेवाले की पढ़ा करता हुआ जिनसे रूप प्रकट होता उस ( हव्यम् ) परमेश्वर के लिए ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य कर्म को ( कर्चन ) करो ॥१२॥

भाषार्थ—जिस धन से पुष्टि, विद्या, विद्वानों का सत्कार, वेदविद्या की प्रशंसा और सर्वोपकार हो वही धन सन्तुष्टी बन है और नहीं ॥१२॥

स्वाहाकुतान्या गद्यं हव्यानि दीतये ।

इन्द्रा गहि भधी हव्यं स्वां हव्यते अध्वरे ॥१३॥११॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर को पुष्ट करनेवाले विद्वान् ! आप ( अध्वरे ) न मष्ट करने योग्य व्यवहार में ( दीतये ) विद्या की प्राप्ति के लिए ( स्वाहा-कुतानि ) सत्य किया से ( हव्यानि ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को ( उपागहि ) प्राप्त होओ जिन ( स्वाह ) तुम्हारी ( हव्यते ) विद्या का ज्ञान चाहते हुए विद्यार्थी जन स्तुति करते हैं सो आप ( आ, गहि ) आओ और ( हव्यम् ) स्तुति को ( भुवि ) सुनो ॥१३॥

भाषार्थ—आप्यपक जितना ज्ञान विद्यार्थियों को पढ़ावे उसकी प्रतिदिन वा प्रतिमास परीक्षा करे और विद्यार्थियों में जो जिनको विद्या देवे वे उनकी तन, मन, धन से सेवा करें ॥१३॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढ़ानेवालों के गुणों और विद्या की प्रशंसा होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ लगति जाननी चाहिए ॥

यह एकलौ ब्यालीसवां सूक्त और व्याख्या बर्ण पूरा हुआ ॥



अथ प्रत्यक्षीनित्यस्याष्टर्चस्य विद्यार्थारिद्रादुत्तरवातसमस्य सुवत्स्य दीर्घतया ऋचिः ।

अग्निर्हवता । १, ७ निष्-जगती, २, ३, ५ विराड्जगती,

४, ६ जगती वा छन्दः । निषाद स्वर । ८ निष्पत्

जिह्वप् छन्दः । ऋचत स्वर ॥

अथ विद्वानो के विषय में कहा है—

प्र तव्यंसीं नव्यंसीं धीतिमग्र्यं वाचो मति महसः सूनवे भरे ।

अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदृत्स्वियः ॥१॥

पदार्थ—मैं ( अपां, नपात् ) जलो के बीच ( व ) जो न गिरता वह सूर्य ( पृथिव्याम् ) पृथिवी पर जैसे वैसे जो ( वसुभिः ) प्रथम कक्षा के विद्वानों के ( सह ) साथ ( प्रिय ) प्रीतियुक्त ( होता ) ग्रहण करनेवाला ( ऋत्स्वियः ) ऋतुओं की योग्यता रखता हुआ ( नि, असीदृत् ) निरन्तर स्थिर होता है उस ( सहसः ) शरीर और आत्मा के बलयुक्त अप्यपक के सकाश से ( अग्र्ये ) अग्नि के समान तीक्ष्ण बुद्धि ( सुनवे ) पुत्र वा शिष्य के लिए ( वाचः ) वाणी की ( नव्यसीत् ) अत्यन्त बलवती ( नव्यसीत् ) अतीव नवीन ( धीतिम् ) जिससे विजय को धारण करें और उस धारणा और ( मतिम् ) उत्तम बुद्धि को ( स, भरे ) अन्धे प्रकार धारण करता है ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमाकार है। विद्वानों की योग्यता है कि जैसे सूर्य जलो की धारणा करनेवाला है वैसे पवित्र बुद्धिमान् प्रिय वाचरण करने और शीघ्र विद्यार्थियों को ग्रहण करनेवाले विद्यार्थियों को लेकर विद्या का विज्ञान शीघ्र उत्पन्न करावे ॥१॥

अथ ईश्वर विषय अगले मन्त्र में कहते हैं—

स ज्ञायमानः परमे व्योमन्याविरभिरभवन्मावरिभ्यः ।

अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्जना प्र द्यावाशोचिः पृथिवी अरोचयत्

॥ २ ॥

पदार्थ—जो ( मावरिभ्यः ) अन्तरिक्षस्थ वायु के लिए ( अग्निः ) अग्नि के समान ( भरते ) उत्तम ( व्योमनि ) आकाश के तुल्य सब में व्याप्त, सबकी रक्षा करने आदि गुणों से युक्त ब्रह्म में ( ज्ञायमानः ) उत्पन्न हुआ हम लोगों के लिए ( शोचिः ) प्रकट ( अवयवम् ) होवे उस ( अस्य ) प्रत्यक्ष ( समिधानस्य ) उत्तमता के प्रकाशमान जन का ( शोचिः ) पवित्रभाव ( कृत्वा ) प्रकाश और कर्म वा ( अवयवम् ) इस के साथ ( ज्ञायमानः, पृथिवी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( प्रादी-चयत् ) प्रकाशित करावे ( सः ) वह पढ़ा हुआ जन सबका कल्याणकारी होता है ॥२॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग विद्यार्थियों को प्रयत्न के साथ विद्या, अच्छी शिक्षा और सर्व श्रेष्ठियुक्त करें तो वे सर्वदेव कल्याण का सेवन करनेवाले होंगे ॥२॥

किर विद्वानों के विषय में कहा है—

अस्य त्वेवा अजरा अस्य भानवः सुसंस्थाः सुप्रतीकस्य सुसुतः ।

मात्स्वसो अत्यर्कन सिन्धवोऽमे रैजन्ते असंसन्तो अजराः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( सुसंस्थाः ) सत्य और अत्यन्त की ज्ञानदृष्टि से देखनेवाले ( सुप्रतीकस्य ) सुन्दर प्रतीति युक्त ( सुसुतः ) सब और से प्रशंसनीय ( अमे ) सूर्य के ( भानवः ) किरणों के समान ( अस्य ) इस आध्यापक के ( अजराः ) विनाशरहित ( त्वेवा ) विद्या और धर्म के प्रकाश होते हैं और वे ( अस्य ) इस ब्रह्मण्य के ( अजरा ) अजर-अमर ( असंसन्तो ) जागते हुए ( मात्स्वसो ) विद्या प्रकाशकपी बलवाले ( सिन्धवः ) प्रवाहक्य उक्त तेज ( अमृत ) राशि के ( न ) समान अविद्यान्धकार को ( अग्नि, ऐक्यते ) अतिक्रमण करते हैं ॥३॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या के प्रकाश करने, अविद्यान्धकार के विनाश करने और सबको आनन्द देनेवाले होते हैं वे ही मनुष्यों के शिरोमणि होते हैं ॥ ३ ॥

किर ईश्वर के विषय में कहा है—

यधेगिरे भृगवो विश्वेदसं नामा पृथिव्या भुवनस्य मज्जना ।

अग्निं तं गीर्भिर्हिन्दुहि स्व आ दमे य एको वसो वरुणो न राजति ॥४॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! ( अम् ) जिस ( विश्वेदसम् ) अन्धे संसार के वेला परमात्मा को ( भृगवः ) विद्या से धविद्या को भू जनवाले ( एगिरे ) सब और से जाने वा ( यः ) जो ( एकः ) एक अति श्रेष्ठ, आप्त ईश्वर ( मज्जना ) अत्यन्त बल से ( वरुणः ) अति श्रेष्ठ के ( न ) समान ( पृथिव्याः ) अन्तरिक्ष के वा ( भुवनस्य ) लोक में उत्पन्न हुए ( अम् ) अनन्य पदार्थ के ( नामा ) बीच में अपनी व्याप्ति से ( राजति ) प्रकाशमान है ( तम् ) उस ( अग्निम् ) सूर्य के समान ईश्वर जो कि ( त्वे ) अपने अर्थात् तेरे ( वसे ) परक्य हव्याकाश में वर्तमान है उसको ( गीर्भिः ) प्रशंसित वाणियों से ( आ, हिन्दुहि ) जानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों से जानने योग्य सबमे सब प्रकार व्याप्त प्रथमा के योग्य, सच्चिदानन्दवादि लक्षणयुक्त सर्वशक्तिमान्, अद्वितीय, अति-सूक्ष्म आप ही प्रकाशमान अन्तर्यामी परमेश्वर है उसको योग के अङ्गी के अनुष्ठान की सिद्धि से अपने हृदय में जानो ॥ ४ ॥

अथ विद्वान् के विषय में अगले मन्त्रों में कहा है—

न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।

अग्निर्जम्भेस्तिगितैरसि भवेति योधो न सन्नन्तः बना न्युज्जते ॥ ५ ॥

पदार्थ—( यः ) जो ( अग्निः ) आग ( मरुतामिव ) पवन वा विद्वानों के ( स्वनः ) शब्द के समान ( सृष्टा, सेनेव ) मनुदल में चक्रमूलादि रचना से रची हुई सेना के समान वा ( यथा ) जैसे ( दिव्या ) कारण वा वायु आदि कार्य द्रव्य में उत्पन्न हुई ( यथा ) विज्ञानी के वैसे ( वराय ) स्वीकार करने के लिए ( न ) नहीं हो सकता अर्थात् तेजी के कारण रुक नहीं सकता ( स ) वह ( तिगितैः ) तीक्ष्ण ( जम्भेः ) स्फूर्तिथो से ( अग्निः ) भक्षण करता अर्थात् लकड़ी आदि को खाता है ( योधः ) योधा के ( न ) समान ( शन्नन्तः ) शत्रुओं को ( भवेति ) नष्ट करता अर्थात् अनुविद्या में प्रविष्ट किया हुआ मनुदल को भूँजता है और ( बना ) बनी को ( नि, ऋज्जते ) निरन्तर सिद्ध करता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—प्रबल वायु के प्रेरित, अति जलता हुआ अग्नि शत्रुओं को मारने के तुल्य पदार्थों को बलाता है वह सहसा नहीं रुक सकता ॥ ५ ॥

कुविभो अग्निरुचयस्य वीरसदसु कुविदसुभिः काममावर्त्त ।

बोदः कुविस्तुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया वृणे ॥६॥

पदार्थ—जो ( कुवित् ) बड़ा ( अग्निः ) बिजुली आदि रूपवाला अग्नि ( नः ) हमारे लिए ( उचयस्य ) उचित पदार्थ का ( वीः ) व्यापक ( सत् ) हो वा ( वसुभिः ) बसानेवालों के साथ ( कुवित् ) बड़ा ( वसुः ) बसानेवाला ( कामम् ) काम को ( आवर्त्त ) अलीनाति स्वीकार करे वा ( सातये ) विमान के लिए ( कुवित् ) बड़ा प्रशंसित जन ( बोदः ) प्रेरणा दे वा ( धियः ) बुद्धियों को ( कुविस्तु ) बलवती करे ( तम् ) उस ( शुचिप्रतीकम् ) पवित्र प्रतीति देनेवाले जन की ( यथा ) इस ( विद्या ) बुद्धि वा कर्म से ( वृणे ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो बिजुली के समान उचित काम प्राप्त कराने और अत्यन्त बुद्धि बल देनेवाले बड़े प्रशंसित विद्वान् अपनी बुद्धि से सब मनुष्यों को विद्वान् करते हैं उनकी सब लोग प्रशंसा करें ॥ ६ ॥

धृतमतीकं व क्रत्स्व्यं धूर्षदमग्नि मित्रं न समिधानं ऋज्जते ।

इन्द्रानो अक्रो विद्वेषु दीर्घकृत्स्वयामिदं नो वसते धियम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सविधान ) अच्छे प्रकार प्रकाशमान विद्वान् ( व ) तुम्हारे लिए ( वृषभम् ) हिमको मे स्थिर होते हुए ( वृषभकीम् ) जो वत का प्राप्त होता उस ( अग्निम् ) धान को ( अतस्मिन् ) सत्य व्यवहार के बर्तनेवाले ( मित्रम् ) मित्र के ( न ) सदान ( अतस्मिन् ) प्रमिद करता है ( उ ) और जो ( इन्द्रान् ) प्रकाशमान होता हुआ वा ( अक्ष ) प्रीति ने त्रिमको न दबा पाया वह ( विवर्षेण ) संप्राप्ति में ( वीर्यम् ) निरन्तर प्रकाशित होता हुआ ( नः ) हम लोगो की ( शुक्लरात्रिम् ) शुद्धस्वरूप ( धियम् ) प्रज्ञा को ( उद्यते ) उत्तम रखता है उसको तुम हम पिता के समान सेवें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बिजुली के समान समस्त शुभ गुणों की खान, मित्र के समान सुख का वन, संप्राप्ति में वीर के तुल्य शत्रुओं को जीतने और दुःख का विनाश करनेवाला है उस विद्वान् का आश्रय कर सब मनुष्य विद्याओं को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अप्रयुक्तं यच्छुद्धिर्गमं शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शम्भैः ।

अदंभेभिरदपितेभिरिष्टेनमिषाभिः परि पाहि नो जाः ॥८॥१२॥

पदार्थ—हे ( इष्टे ) सरकार करने योग्य तथा ( अग्ने ) विद्या विज्ञान के प्रकाश से युक्त धर्म के समान विद्वान् ! आप ( अप्रयुक्तम् ) प्रमाद को न करत हुए ( यच्छुद्धिर्गमं ) प्रमादरहित विद्वानों के साथ वा ( शिवेभिः ) कल्याण करनेवाले ( पायुभिः ) रक्षक ( शम्भैः ) सुखप्रापक विद्वानों के साथ ( नः ) हम लोगो की ( पाहि ) रक्षा करो तथा ( जाः ) सुखों की उत्पत्ति करनेवाले आप ( अग्नि मिषाभिः ) निरन्तर आलस्यरहित ( अदंभेभिः ) हिमा और ( अदपितेभिः ) मोहादि दोषरहित विद्वानों के साथ ( नः ) हम लोगो की ( परि, पाहि ) सब ओर से रक्षा करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को निरन्तर यह चाहना और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि धार्मिक विद्वानों के साथ धार्मिक विद्वान् हमारी निरन्तर रक्षा करें ।

इस सूक्त में विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की विस्तृत सूक्त के अर्थ के साथ सज्जित जाननी चाहिए ॥

यह एकलौ तैत्तलीसवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



एतीत्यस्य सप्तमस्य वसुधवर्षादिशुक्लस्य शततमस्य सूक्तस्य वीथतमा ऋचि ।

अग्निर्देवता । १, ३ - ५, ७ निवृत्तजगती, १ जगती छन्द ।

निवाड स्वर । ६ भुरिकपड वितस्छन्दः । पञ्चम स्वर ॥

यह एकलौ तैत्तलीसवां सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेश करनेवालों के विषय को कहते हैं -

एति प्र होता व्रतमस्य माययोध्वी दधानः शुचिपेशस धियम् ।

अग्नि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृत्तो या अस्य धाम प्रथमं ह निसंते ॥१॥

पदार्थ—जो ( होता ) मनुष्यों का ग्रहण करनेवाला पुरुष ( मायया ) उत्तम बुद्धि से ( अथ ) इस शिक्षा करनेवाले के ( व्रतम् ) सत्पाचरण शील को ( दक्षिणम् ) और उत्तम ( शुचिपेशसम् ) पवित्र ( धियम् ) बुद्धि वा कर्म को ( दधानम् ) धारण करता हुआ ( प्र, क्रमते ) व्यवहारों में चलता है वा ( या ) जो ( अस्य ) इसकी ( अग्नि ) विज्ञानयुक्त ( दक्षिणावृत्त ) दक्षिणा का आच्छादन करनेवाली बुद्धि है उनको और ( प्रथमम् ) प्रथम ( धाम ) धाम को ( निसंते ) जो प्रीति को पहुँचाता है ( ह ) वही अत्यन्त बुद्धिमान होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य शास्त्रवेत्ता विद्वान् के उपदेश और पढ़ाने से विद्यायुक्त बुद्धि को प्राप्त होते हैं वे सुशील होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अभी मृतस्य दाहना अनूपत योनी देवस्य सदनं परीवृताः ।

अपामुपस्थे विभृते यदावसदर्थ स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अतस्मिन् ) सत्य विज्ञान के ( बोहना ) पूरा करनेवाली ( परिवृता ) वस्त्रादि से ढेरी हुई अर्थात् सज्जावती पण्डिता स्त्री ( देवस्य ) विद्वान् के ( सदनं ) स्थान वा ( योनी ) घर में ( अपामुपस्थे ) सम्मुख में प्रार्थना करती है वा ( यत् ) जो वायु ( अपाम् ) जलों के ( उपस्थे ) समीप में ( विभृत ) विशेषता से धारण किया हुआ ( आवसत् ) अच्छे प्रकार बसे ( अथ ) इसके अनन्तर जैसे विद्वान् ( स्वधा ) जलों को ( अधयत् ) पिये वा ( याजि ) जिन क्रियाओं से ( ईम् ) सब ओर से उनको ( ईयते ) प्राप्त होता है वैसे उन सभी के समान तुम भी वर्तों ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे आकाश में जल स्थिर हो और वहाँ से वर्षकर समस्त जगत् को पुष्ट करता है वैसे विद्वान् जन चित्त में विद्या की स्थिर कर सब मनुष्यों को पुष्ट करे ॥ २ ॥

युयुषतः सर्वयसा तदिदं पुं समानमर्थं वितरिषता मिथः ।

आर्दी भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्ळुर्न रस्मीन्समयस्त सारथिः ॥३॥

पदार्थ—जब ( सर्वयसा ) समान अवस्थावाले दो शिष्य ( समानम् ) तुल्य ( वयु ) स्वरूप को ( युयुषतः ) मिलाने अर्थात् एक-दूसरे की उन्नति करने को चाहते हैं ( तदिम् ) तभी ( वितरिषता ) अर्थात् अनेक प्रकार से ( मिथः ) परस्पर ( अर्थम् ) धनादि पदार्थों की सिद्धि करने की इच्छा करते हैं ( आत् ) इसके अनन्तर ( ईम् ) सब ओर से ( भगः ) ऐश्वर्यवाला पुरुष जैसे ( हव्यः ) स्वीकार करने योग्य हो ( न ) वैसे उक्त विद्यार्थियों में से प्रत्येक ( सारथिः ) सारथि जैसे ( वोळ्ळु ) पदार्थ पहुँचानेवाले घोड़े आदि की ( रस्मीन् ) रस्सियों का ( न ) बैसे ( अस्मत् ) हम अध्यापक आदि जनों से पढ़ाईयों को ( सभायस्त ) भली-भाँति स्वीकार करता और उपदेशों को ( सम् ) भली-भाँति स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक कपट-छद्म के बिना धीरो को अपने तुल्य करने की इच्छा से उन्हें विद्वान् करें वे उत्तम ऐश्वर्य को पाकर जितेन्द्रिय हो ॥ ३ ॥

यमी द्वा सर्वयसा सपर्यतः समाने योनां मिथुना समौकसा ।

विषा न नक्तं पलितो युवांजनि पुरु चरंभजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥

पदार्थ—( सर्वयसा ) समान अवस्थायुक्त ( द्वा ) दो ( समान ) तुल्य ( योनां ) उत्पत्ति स्थान में ( मिथुना ) मैथुन कर्म करनेवाले स्त्री-पुरुष ( समौकसा ) समान घर के साथ वर्तमान ( विषा ) दिन ( नक्तम् ) रात्रि के ( न ) समान ( यम् ) जिम ( ईम् ) प्रत्यक्ष बालक का ( सपर्यतः ) सेवन करें, उसको पालें वह ( भजरो ) जरा अवस्थावाली रागरहित ( मानुषा ) मनुष्य सम्बन्धी ( युगा ) वर्षों को ( पुरु ) बहुत ( चरन् ) चलता, भोगता हुआ ( पलितः ) सुपद बालीवाला भी हो तो ( युवा ) जवान, तरुण अवस्थावाला ( अजनि ) प्रकट होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रीति के साथ वर्तमान स्त्री-पुरुष धर्मसम्बन्धी व्यवहार से पुत्र का उत्पन्न कर उसे अच्छी शिक्षा दे धीलवान् कर सुखी करते हैं वैसे समान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले दो विद्वान् शिष्यों को सुशील करते हैं । वा जैसे दिन-रात्रि के साथ वर्तमान भी अपने स्थान में रात्रि को निवृत्त करता वैसे अज्ञानियों के साथ वर्तमान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वान् मोह में नहीं लगते हैं वा जैसे किया है पूरा ब्रह्मचर्य जिन्होंने वे रूपलावण्य और बलादि गुणों से युक्त सन्तान को उत्पन्न करते हैं वैसे ये सत्य पढ़ाने और उपदेश करने से सब का पूरा आत्मबल उत्पन्न करते हैं ॥ ४ ॥

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश त्रिंशो देवं मर्तांस ऊतयं हवामहे ।

यनोरथिं प्रवत आ स ऋणस्यभिर्ब्रजं विवृणुना नवाधित ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( मर्तांस ) नरणाधर्मा मनुष्य हम लोग ( ऊतये ) रक्षा आदि के लिए जिस ( देवम् ) विद्वान् को ( हवामहे ) स्वीकार करते वा ( दश ) दश ( धीतयो ) हाथ पैरों की छत्र गुलियों के समान ( त्रिंश ) प्रजा जिसको ( हिन्वन्ति ) प्रमत्त करती हैं ( तम्, ईम् ) उमी को तुम लोग ग्रहण करो जो अनुविद्या का जाननेवाला ( यनो ) धनुष के ( अथि ) ऊपर आरोप कर छोड़े ( प्रवत ) जाते हुए बाणों को ( अधित ) धारण करता अर्थात् उनका सम्भान करता है ( स ) वह ( अभिब्रजन्ति ) सब ओर से जाते हुए विद्वानों के साथ ( नवा ) नवीन ( वयुना ) उत्तम-उत्तम जानों को ( आ, अन्वन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे हाथों की छत्र गुलियों से भोजन आदि की क्रिया करने से शरीरादि बढ़ते हैं वैसे विद्वानों के अध्यापन और उपदेशों की क्रिया से प्रजाजन बढ़ि पाते हैं वा जैसे अनुबोध का जाननेवाला शत्रुओं को जीतकर रस्ते को प्राप्त होता है वैसे विद्वानों के सङ्ग के फल को जाननेवाला जन उत्तम जानों को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

त्वं ह्यग्ने विष्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।

एनीं त एते बृहती अभिश्रियां हिग्ययी वक्वरी बर्हिगशांते ॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वन् ! ( त्वं, हि ) आप ही ( पशुपाइव ) पशुओं की पालना करनेवाले के समान ( त्मना ) अपने से ( विष्यस्य ) अन्तरिक्ष में हुई वृष्टि आदि के विज्ञान को ( राजसि ) प्रकाशित करते वा ( त्वम् ) आप ( पार्थिवस्य ) पृथिवी में जाने हुए पदार्थों के विज्ञान का प्रकाश करते हो ( एते ) ये प्रत्यक्ष ( एनी ) अपनी-अपनी कक्षा में घूमनेवाले ( बृहती ) अर्थात् विस्तारयुक्त ( अभिश्रिया ) सब ओर से शोभायमान ( हिग्ययी ) बहुत हिरेण्य जिनमें विद्यमान ( वक्वरी ) प्रशंसित सूर्यमण्डल और भूमण्डल वा ( ते ) आपके ज्ञान के अनुकूल ( बर्हिः ) बृद्धि को ( आशांते ) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे ऋद्धि और सिद्धि पूरी लक्ष्मी को करती हैं वैसे आत्मबान् पुरुष परमेश्वर और पृथिवी के राज्य में अच्छे प्रकार प्रकाशित होता जैसे पशुओं का पालनेवाला प्रीति से अपने पशुओं की रक्षा करता है वैसे सभापति अपने प्रजाजनों की रक्षा करें ॥६॥



अथै शुष्यं प्रति ह्ये सद्वो मन्त्र स्वधाव ऋतवात सुकतो ।

या विशतः प्रत्यङ्मुखं दर्शतो रथः संदष्टौ पितुर्माह्वयः ॥७॥

पदार्थ—हे ( मन्त्र ) प्रशस्तीय ( स्वधाव ) प्रशंसित धनवाले ( ऋतवात ) सत्य व्यवहार से उत्पन्न हुए ( सुकतो ) सुन्दर कर्मों से युक्त ( अथै ) विजुली के समान वर्तमान विद्वन् । ( य ) जो ( विशतः ) सबके ( प्रत्यङ्मुखं ) प्रति जाने वा सबसे सत्कार लेनेवाले ( सद्वो ) प्रच्छेद करने में ( बर्तत ) दर्शनीय ( रथः ) मन्द शास्त्र की जाननेवाले विद्वान् आप ( अथ ) निवास के लिए घर ( पितुर्माह्वयः ) धनयुक्त जैसे हो जैसे ( अथि ) हैं सो आप जो मेरी अभिलाषा का ( यथ ) वचन है ( तत् ) उसको ( शुष्यं ) सेवा और ( प्रति, ह्ये ) मेरे प्रति कामना करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो प्रशंसित बुद्धिवाले अथवा योग्य आहार-विहार से रहते हुए सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध धर्म के अनुकूल कर्म और बुद्धि रखनेवाले शास्त्रज्ञ विद्वानों के समीप से विद्या और उपदेशों की चाहते और सेवा करते हैं वे सबसे उत्तम होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकलौ पेंतालीसवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



तं पृच्छतेऽस्य पञ्चवर्षस्य पञ्चवर्षवारिशावुत्तरस्य शततमस्य सूतस्य दीर्घतमा ऋषिः ।

अग्निर्वेचता । १ विराट्जगती, २, ५ निर्वृजगती च छन्द ।

निवाह स्वर । ३, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द । ध्रुवतः स्वर ॥

अब एकलौ पेंतालीसवाँ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में उपदेश करने योग्य और उपदेश करनेवालों के गुणों का वर्णन करते हैं—

तं पृच्छता स जगामा वेद स चिकित्वाँ ह्येन सा न्वीयते ।

तस्मिन्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन् निष्ठयः स वाजस्य श्वंसः श्रमिणस्पतिः ॥१॥

॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( स ) वह विद्वान् सत्य मार्ग में ( जगाम ) चलता है ( स ) वह ( वेद ) वेद का जानता है ( स ) वह ( चिकित्वाँ ) विज्ञानयुक्त सुखों को ( ह्येन ) प्राप्त होता ( स ) वह ( न ) शीघ्र अपने कर्त्तव्य को ( ह्येन ) प्राप्त होता है ( तस्मिन् ) उसमें ( प्रशिषः ) उत्तम-उत्तम शिक्षा ( सन्ति ) विद्यमान है ( तस्मिन् ) उसमें ( इष्ठयः ) सत्सङ्ग विद्यमान है ( स ) वह ( वाजस्य ) विज्ञानमय ( श्वंसः ) बल वा ( श्रमिणः ) बलयुक्त सेनासमूह वा राज्य का ( पति ) पालनेवाला स्वामी है ( तम् ) उसको तुम ( पृच्छतः ) पूछो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त धार्मिक और यत्नशील सबका उपकारी सत्य की पालना करनेवाला विद्वान् हो उसके आश्रय जो पढ़ाना और उपदेश है उनसे सब मनुष्य चाहे हुए काम और विषय को प्राप्त हो ॥ १ ॥

फिर उली विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तमिपृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनैव धीरो मनमा यदग्रभीत ।

न मृष्यते प्रथमं नापरं वचांस्य क्रत्वा सचने अप्रहपितः ॥२॥

पदार्थ—( अप्रहपितः ) जो अतीव मोह को नहीं प्राप्त हुआ वह ( धीरः ) ध्यानवान् विचारशील विद्वान् ( स्वेनैव ) अपने समान ( मनसा ) विज्ञान से ( यत् ) जिस ( वचः ) वचन की ( अग्रभीतः ) ग्रहण करता है वा जो ( अस्य ) इस शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वान् की ( क्रत्वा ) बुद्धि वा कर्म के साथ ( सचने ) सम्बन्ध करता है वह ( प्रथमम् ) प्रथम ( न ) नहीं ( मृष्यते ) सत्य को प्राप्त होता और वह ( अपरम् ) पीछे भी ( न ) नहीं सत्य को प्राप्त होता है जिसको ( सिमः ) सर्व मनुष्यमात्र ( न ) नहीं ( वि, पृच्छति ) विशेषता से पूछता है ( तस्मिन् ) उसी को विद्वान् जन ( पृच्छन्ति ) पूछते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । आप्त जिन्होंने धर्मादि पदार्थ साक्षात्कार किये वे शास्त्रवेत्ता मोहादि दोषरहित विद्वान् याग्यायास से पवित्र किये हुए आत्मा से जिस-जिस को सत्य वा असत्य निश्चय करें वह-वह अच्छा निश्चय किया हुआ है यह और मनुष्य मानें । जो सनका सङ्ग न करके सत्य-असत्य के निर्णय को जाना चाहते हैं वे कभी सत्य-असत्य का निर्णय नहीं कर सकते इससे आप्त विद्वानों के उपदेश से सत्य-असत्य का निर्णय करना चाहिए ॥ २ ॥

तमिपृच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृण्वद्वांसि मे ।

युष्मैषस्तत्तुरियज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रमः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप ! ( एक ) अकेले ( मे ) मेरे ( विश्वानि ) समस्त ( वचांसि ) वचनों को ( शृण्वत् ) सुनें जो ( रमः ) बड़ा महारथा ( युष्मैषः ) जिसको बहुत सज्जनों ने प्रेरणा दी हो ( तत्तुरियः ) की दुःख से सभी

को तारनेवाला ( यज्ञसाधनः ) विद्वानों के सत्कार जिसके साधन अर्थात् जिसकी प्राप्ति करानेवाले ( अच्छिद्रोतिः ) जिससे नहीं लपिहत हुई रजशादि किया ( शिशुः ) और जो अविद्यादि दोषों को छिन्न भिन्न करे, सबके उपकार करने को अच्छा पाल ( समाह्वयः ) भली-भाँति ग्रहण करे ( तम् ) उसको ( अर्चन्ती ) बुद्धिमत्ती कन्या ( गच्छन्ति ) प्राप्त होती ( तस्मिन् ) और उसी को ( जुह्व ) विद्या विज्ञान की ग्रहण करनेवाली कन्या प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यो ने जो जाना और जो-जो पढ़ा उस-उस की परीक्षा जैसे अपने आप पढ़ानेवाले विद्वान् को देवें जैसे कन्या भी अपनी पढ़ानेवाली को अपने पढ़े हुए की परीक्षा देवें ऐसे करने के बिना सत्यासत्य का सम्यक् निर्णय होने के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥

उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।

अभि श्वान्त मृशते नान्ये मुदे यदी गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जनो ! ( यत् ) जो ( युज्येभिः ) युक्त करने योग्य पदार्थों के साथ ( सद्यः ) शीघ्र ( जातः ) प्रसिद्ध हुआ ( उपस्थायम् ) अणु-अणु उपस्थान करने को ( चरति ) जाता है वा ( तत्सारः ) कुटिलता से जावे वा ( उवाचम् ) परिपक्व पूरे ज्ञान को ( अभिमुशते ) सब ओर से विचारता है वा बुद्धियान् जन ( यत् ) जिस ( नान्यः ) भति आनन्द और ( मुदे ) सामान्य हर्ष होने के लिए ( अपिष्ठितम् ) स्थिर हुए की और ( उशतीः ) कामना करती हुई पण्डिताओं को ( ईम् ) सब ओर से ( गच्छन्ति ) प्राप्त होते उसको तुम ( समारतः ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बालक और जो कन्या शीघ्र पूर्ण विद्यायुक्त होते हैं और कुटिलतादि दोषों को छोड़ शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होकर सबका विद्या तथा सुख होने के लिए बार-बार प्रयत्न करते हैं वे जगत् को आनन्द देनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

स ई मृगो अप्यो वनगुरुष्व त्वच्युपमस्या नि धायि ।

व्यग्रवीद्वयुना मत्स्यस्योऽभिर्विद्रौ कृतचिद्धि सत्यः ॥५॥१४॥

पदार्थ—विद्वानों से जो ( अप्यः ) जलो के योग्य ( वनगुरुः ) वनगामी ( मृगः ) हिरण के समान ( उपमस्याम् ) उपमा रूप ( त्वचिः ) त्वनिर्गम्य मे ( उप, नि, धायि ) समीप निरन्तर घरा जाता है वा जो ( ऋतचितः ) सत्य व्यवहार को इकट्ठा करनेवाला ( अग्निः ) अग्नि के समान विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान ( विद्याम् ) सब विद्याओं को जाननेवाला पण्डित ( मत्स्यः ) मनुष्यों के लिए ( वयुना ) उत्तम उत्तम ज्ञानों का ( ईम् ) ही ( वि व्यग्रवीत् ) विशेष करके उपदेश देता है ( स, हि ) वही ( सत्यः ) सज्जनों में साधु है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे मृगावृत्त मृग जल पीने के लिए वन में डोलता-डोलता जलको पाकर आनन्दित होता है वैसे विद्वान् जन शुभ आचरण करनेवाले विद्याधियों को पाकर आनन्दित होते हैं और जो शिक्षा पाकर योगों को नहीं देत वे लुप्तशय और असत्य पापी होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में उपदेश करने और उपदेश सुननेवालों के कर्त्तव्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकलौ पेंतालीसवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



त्रिमूर्दानित्यस्य पञ्चवर्षस्य वद्वत्वारिशावुत्तरस्य शततमस्य सूतस्य दीर्घतमा

ऋषिः । अग्निर्वेचता । १, २ विराट्जगती, ३, ५ त्रिष्टुप्,

४ निर्वृजगती च छन्द । ध्रुवतः स्वर ।

अब एकलौ छयालीसवाँ सूक्त का आरम्भ है, इसमें अग्नि और विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

त्रिमूर्दानं सप्तरश्मि गृणीषेऽनूनमग्नि पित्रोरुपस्थे ।

निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रौचनार्पमिवांसम् ॥१॥

पदार्थ—हे धारणशील उत्तम बुद्धिवाले जन ! जिससे तू ( पित्रो ) पालने-वाले पवन और आकाश के ( उपस्थे ) समीप में ( निषत्तम् ) निरन्तर प्राप्त ( त्रिमूर्दानम् ) तीनों निकृष्ट, मध्यम और उत्तम पदार्थों में शिर रखनेवाले ( सप्तरश्मिम् ) मात गायत्री आदि छन्दों वा भूरादि सात लोकों में जिसकी प्रकाशरूप किरणें हो ऐसी ( अनूनम् ) हीनपने से रहित और ( अस्थः ) इस ( चरतः ) अपनी गति से व्याप्त ( ध्रुवस्य ) निषत्तल ( दिवः ) सूर्यमण्डल के ( विश्वा ) समस्त ( रौचना ) प्रकाशों को ( आपमिवांसम् ) जिसने सब ओर से पूर्ण किया उस ( अग्निम् ) बिजुली रूप आग के समान वर्तमान विद्वान् की ( गृणीषे ) स्तुति करता है सो तू विद्या पाने योग्य होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे तीन बिजुली, सूर्य और प्रसिद्ध अग्नि रूपों से अग्नि चराचर जगत् के कार्यों को सिद्ध करनेवाला है वैसे विद्वान् जन समस्त विश्व का उपकार करनेवाले होते हैं ॥ १ ॥

उक्षा महां अभि ववक्ष एने अजरस्तस्यावित ऊर्तिर्ऋषः ।

उर्ध्वाः पदो नि दधाति सानौ गिहन्त्युधौ अरुवासौ अस्य ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( उर्ध्वाः ) पृथिवी से ( अहान् ) बड़ा ( उक्षा ) वर्षा जल से सींचनेवाला ( अजर ) हानिरहित ( ऋषः ) गतिमान् सूर्य ( एने ) इन अन्तरिक्ष और भूमिमण्डल को ( अभि, ववक्ष ) एकत्र करता है ( इत, ऊर्ति ) वा जिससे रक्षा आदि क्रिया प्राप्त होती ऐमा होता हुआ ( पद. ) अपने अंगों को ( नि, दधाति ) निरन्तर स्थापित करता है ( अरुव ) इस सूर्य की ( अरुवासः ) मष्ट होती हुई किरणों ( सानौ ) अलग-अलग विस्तृत जगत् में ( ऊधः ) जलस्थान को ( गिहन्ति ) प्राप्त होती हैं वा जो ब्रह्माण्ड के बीच में ( तस्थौ ) स्थिर है उसके समान तुम लोग होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को जैसे सूर्यात्मा वायु भूमि और सूर्यमण्डल को चारण करके संसार की रक्षा करता है वा जैसे सूर्य पृथिवी से बड़ा है वैसे वर्तमान वर्तना चाहिए ॥ २ ॥

समानं वस्सममि संचरन्ती विष्वग्धेन वि परतः सुमेकं ।

अनपवृष्यां अध्वनो यिमाने विश्वान् केतां अधि महो दधाने ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्यलोक और भूमिमण्डल दोनों ( समानम् ) तुल्य ( वस्सम् ) बछड़े के समान वर्तमान विन-रात्रि को ( अभि, सं, चरन्ती ) सब ओर से अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए ( सुमेकं ) सुन्दर जिनका त्याग करना ( अध्वनः ) मार्ग से ( अनपवृष्यान् ) न दूर करने योग्य पदार्थों को ( यिमाने ) बनावट करनेवाले ( मह ) बड़े-बड़े ( विश्वान् ) समग्र ( केतान् ) चीजों को ( अधि, दधाने ) अधिकता से चारण करते हुए ( केतु ) गौधों के समान ( विष्वक्, वि, परतः ) सब ओर से विचार रहे हैं वैसे इन्हें जान, पसपात को छोड़ सब कामों को पूरा करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय गुणों के आकर्षण और प्रकाश करनेवाले नानाविध मार्गों का निर्माण करते हुए जेमु के समान सबकी पुष्टि करते हुए समग्र विद्याओं को चारण करते हैं वे दुःखरहित होते हैं ॥ ३ ॥

धीरांसः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।

सिषांसन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुभावरैभ्यो अभवत् सूर्यो नृन् ॥४॥

पदार्थ—जो ( धीरांसः ) ध्यानवान् ( कवयः ) विविध प्रकार के पदार्थों से आक्रमण करनेवाली बुद्धियुक्त विद्वान् ( हृदा ) हृदय से ( नाना ) अनेक ( नृन् ) भुक्तियों की ( रक्षमाणा ) रक्षा करने और ( सिषांसन्तः ) अच्छे प्रकार विभाग करने की इच्छा करते हुए ( सूर्यः ) सूर्य के समान अर्थात् जैसे सूर्यमण्डल ( सिन्धुम् ) नदी के जल को स्वीकार करता वैसे ( अजुर्यम् ) हानिरहित ( पदम् ) प्राप्त करने योग्य पद को ( नयन्ति ) प्राप्त होते हैं वे परमात्मा को ( परि, अपश्यन्त ) सब ओर से देखते अर्थात् सब पदार्थों में विचारते हैं जो ( एभ्यः ) इनमें विद्या और उत्तम शिक्षा को पाके ( आधिः ) प्रकट ( अभवत् ) होता है वह भी उस पद को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालकार है । जो सब को आत्मा के समान सुख-दुःख की व्यवस्था में जान न्याय का ही आश्रय करते हैं वे अव्यय पद को प्राप्त होते हैं जैसे सूर्य जल को वर्षाकर नदियों को भरता, पूरी करता है वैसे विद्वान् जन सत्य वचनों की वषाकर मनुष्यों के आत्माओं को पूर्ण करते हैं ॥ ४ ॥

दिदक्षेप्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अभीय जीवसे ।

पुरुता यदभवत्क्षरहेभ्यो गर्भेभ्यो मधवा विश्वदर्शितः ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत् ) जो ( मह ) ही ( एभ्यः ) इन ( गर्भेभ्यः ) स्तुति करने के योग्य उत्तम विद्वानों से ( मह. ) बहुत और ( अभीय ) अल्प ( जीवसे ) जीवन के लिए ( पुरुता ) बहुतों में ( मधवा ) परम प्रतिष्ठित वनयुक्त ( विश्वदर्शितः ) समस्त विद्वानों से देखने के योग्य ( दिदक्षेप्यः ) वा देखने की इच्छा से चाहने योग्य ( काष्ठासु ) दिशाओं में ( जेन्य ) जीतनेवाला अर्थात् दिग्विजयी ( ईळेन्यः ) और स्तुति प्रशंसा करने के योग्य ( पुरु ) सब ओर से उत्पन्न ( परि, अभवत् ) हो सो सब को सत्कार करने के योग्य है ।

भाषार्थ—जो दिशाओं में व्याप्त कीर्ति अर्थात् दिग्विजयी प्रसिद्ध वनयुक्तों को जीतनेवाले उत्तम विद्वानों से बिना उत्तम शिक्षाओं को पाये हुए शुभ गुणों से वर्धनीय जन हैं वे संसार के भङ्गल के लिए समर्थ होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एकसी क्षयातीक्ष्ण्यं सुक्त और पञ्चहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



कथेत्यस्य पञ्चमर्चस्य सप्तचत्वारिंशदुत्तरस्य साततमस्य सुक्तस्य दीर्घतमा ऋचिः ।

अग्निर्वेत्ता । १, २, ४, २ निषुत्निषुत्पुः २ विराट् निषुत्पुः

ऊधः । वेत्तः स्वरः ॥

अब एकसी सौतातीक्ष्ण्यं सुक्त का आरम्भ है इसमें निम्न और अविन के गुणों का वर्णन करते हैं—

कथा तं अग्ने शुचयन्त आयोर्देदाश्वार्जैर्मिराक्षणाः ।

उभे यत्नोके तनये दधाना क्रुतस्य सामंजस्यन्त देवाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ( दधानाः ) देनेवाले ( आयोः ) विद्वन् ! जो आप ( ते ) उन तुम्हारे ( यत् ) जो ( बाधेभिः ) विमानादि गुणों के साथ ( आश्वार्जः ) शीघ्र विभाग करनेवाले ( तनये ) पुत्र और ( लोके ) पीन आदि के निमित्त ( उभे ) दो प्रकार के चरित्रों को ( दधानाः ) चारण किये हुए ( शुचयन्तः ) पवित्र आचहार अपने को चाहते हुए ( देवाः ) विद्वान् जन हैं वे ( सामन् ) सामवेद में ( क्रुतस्य ) सत्य व्यवहार का ( कथा ) कहे ( रक्षयन्तः ) बच-बचाव करें ॥१॥

भाषार्थ—सब अध्यापक, विद्वान् जन, उपदेशक, शास्त्रवेत्ता वर्जित विद्वान् को पूछें कि इस लोग कैसे पढ़ावें यह उन्हें अच्छे प्रकार सिखाइ, क्या सिखाइ ? कि जैसे ये विद्या तथा उत्तम शिक्षा को प्राप्त इन्द्रियों को जीतनेवाले धार्मिक पढ़नेवाले हैं वैसे आप लोग पढ़ावें यह उत्तर है ॥१॥

बोधां मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रमृतस्य स्वभावः ।

पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दाकंस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( स्वभावः ) प्रकृतित अन्नवाले ( यविष्ठ ) अत्यन्त तक्षण ! तू ( मे ) मेरे ( अस्य ) इस ( मंहिष्ठस्य ) प्रतीव बुद्धियुक्त ( प्रमृतस्य ) उत्तमता से चारण किये हुए ( वचसः ) वचन को ( बोध ) जान । हे ( अग्ने ) विद्वानों मे उत्तम विद्वान् ! जैसे ( वन्दाक ) बधना करनेवाला मैं ( ते ) तेरे ( तन्वं ) शरीर को ( यविष्ठ ) अभिवर्धन करता हूँ वा जैसे ( त्व ) दूसरा कोई जन ( पीयति ) जल आदि को पीता है वा जैसे ( त्व. ) दूसरा कोई और जन ( अनुगृणाति ) अनुकूलता से स्तुति प्रशंसा करता है वैसे मैं भी होऊँ ॥२॥

भाषार्थ—जब आचार्य के समीप शिष्य पढ़े तब पिछले पढ़े हुए की परीक्षा लेने, पढ़ने से पहले आचार्य को नमस्कार उसकी बधना करे और जैसे अन्य और बुद्धिवाले पढ़ें वैसे आप भी पढ़ें ॥२॥

ये पायवो मामतेयं तं अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।

ररक्ष तान्सुकुतो विश्वेदेदा विप्सन्त इद्रिपवो नाहं देभुः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( ते ) आपके ( ये ) जो ( पश्यन्तः ) अच्छे देखनेवाले ( पायवः ) रक्षा करनेवाले ( मामतेयम् ) प्रजा का अपत्य जो कि ( अन्धम् ) अविद्यायुक्त हो उनको ( दुरितात् ) दुष्ट आचरण से ( ररक्षन् ) बचाते हैं ( तान् ) उन ( सुकृत ) सुकृती उत्तम कर्म करनेवाले जनों को ( विश्वेदेदाः ) समस्त विज्ञान के जाननेवाले आप ( ररक्ष ) पावें जिससे ( विप्सन्तः ) हम लोगों को मारने की इच्छा करते हुए ( इत ) भी ( रिपवः ) शत्रुजन ( न, मह ) नहीं ( देभुः ) मार सकें ॥३॥

भाषार्थ—जो विद्यायुक्त जन अच्छे को कूप से जैसे वैसे मनुष्यों को अविद्या और अंधम के आचरण से बचावें उनका पितरों के समान सत्कार करे और जो दुष्ट आचरणों में विरावें उनका दूर से त्याग करे रहे ॥३॥

यो नी अग्ने अररिवा अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु यर्क्षाष्ट तन्वं दुरुक्षतैः ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( य ) जो ( अररिवान् ) दुष्टों को प्राप्त करता हुआ ( अघायुः ) अपने को अपराध की इच्छा करनेवाला ( अरातीवा ) न देनेवाले जन के समान आचरण करता ( द्वयेन ) दो प्रकार के कर्म से वा ( दुरुक्षतैः ) दुष्ट उक्तियों से ( न. ) हम लोगों को ( मर्चयति ) कहता है उससे जो हमारे ( तन्वाम् ) शरीर को ( अग्न, मृष्टीष्ट ) पीछे भावें ( सः ) वह हमारा और ( अस्मै ) उक्त व्यवहार के लिए ( पुन ) बार-बार ( अग्नः ) विचारशील ( गुरुः ) उपदेश करनेवाला ( अस्तु ) होवे ॥४॥

भाषार्थ—जो मनुष्यों के बीच दुष्ट शिक्षा देते वा दुष्टों को सिखाते हैं वे छोड़ने योग्य और जो सत्य शिक्षा देते वा सत्य वर्ताने करनेवाले को सिखाते हैं वे मानने के योग्य हों ॥४॥

उत वा यः संहस्य प्रविद्वान्मत्तो यमं मर्चयति द्वयेन ।

अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे ( संहस्य ) बनाविक में प्रसिद्ध होने ( स्तवमान ) और सज्जनों की प्रशंसा करनेवाले ( अग्ने ) विद्वन् ! तू ( यः ) जो ( प्रविद्वान् ) उत्तमता से जाननेवाला ( अतः ) मनुष्य ( द्वयेन ) अध्यापन और उपदेश रूप से ( मर्चयन् )

पदार्थ—(वः) जो (कालः) व्याप्त होनेवाला (नमस्वः) आकाश म  
प्रसिद्ध पवन उसके (न) समान (कविः) कम-कम से पदार्थों में व्याप्त होनेवालों  
कुछिवाला वा (जर्वा) बौड़ा और (सूरः) सूर्य के (न) समान (वक्त्रवान्) ।



वर्णिमान् ( ज्ञातात्मा ) असक्यात पदार्थों में विशेष ज्ञान रखनेवाला जन ( ज्ञातिजीम् ) कीड़ाविलासी, आनन्द भोगनेवाले जनो की ( पुरम् ) पुरी को ( आशीवेल् ) अच्छे प्रकार प्रकाशित करे वह ग्याय करने योग्य होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो असक्यात पदार्थों की विद्याओं को जाननेवाला अच्छी शोभा-युक्त नगरी को बसावे वह ऐश्वर्यों से सूर्य के समान प्रकाशमान हो ॥ ३ ॥

अग्निं द्विजन्मा त्री रौचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।

होता यजिष्ठो अपां सधस्थं ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( द्विजन्मा ) दो अर्थात् आकाश और वायु से प्रसिद्ध जिसका जन्म होता ( होता ) आकर्षण शक्ति से पदार्थों को ग्रहण करने और ( यजिष्ठः ) प्रतिशय करके सज्जत होनेवाला अग्नि ( अपाम् ) जलो के ( सधस्थे ) साध के स्थान में ( त्री ) तीन ( रौचनानि ) अर्थात् सूर्य, बिजुली और भूमि के प्रकाशों को और ( विश्वा ) समस्त ( रजांसि ) लोकों को ( शुशुचान् ) प्रकाशित करता हुआ ( अस्थात् ) सब ओर से स्थित हो रहा है वैसे तुम होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्या और बर्गसयुक्त व्यवहार में विद्वानों के सज्ज से प्रकाशित हुए स्थान के निमित्त अनुष्ठान करते हैं वे समस्त अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों के ग्रहण करने के योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि अवस्था ।

मत्तो यो अस्मै सुतुको ददाशं ॥५॥१८॥

पदार्थ—( यः ) जो ( सुतुकः ) सुखर विद्या से बढ़ा, उन्नति को प्राप्त हुआ ( मत्तः ) मनुष्य ( अस्मै ) इस विद्यार्थी के लिए विद्या को ( ददाशं ) देता है वा ( यः ) जो ( द्विजन्मा ) गर्भ और विद्या शिक्षा से उत्पन्न हुआ ( होता ) उत्तम गुणप्राप्ती ( विश्वा ) समस्त ( अवस्था ) सुनने में प्रसिद्ध हुए ( वार्याणि ) स्वीकार करने योग्य विषयों को ( दधे ) धारण करता है ( सः, अयम् ) सो यह पुण्यवान् होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जिसको विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त माता-पिताओं से एक जन्म और दूसरा जन्म आचार्य और विद्या से हो वह द्विज होता हुआ विद्वान् हा ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्न्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सज्जति जाननी चाहिए ॥

यह एकसौ पचासवाँ सूक्त और अठारहवाँ बर्ग समाप्त हुआ ॥



पुत्रावेत्यस्य त्रिष्टयस्य पञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य वीर्यतमा ऋषिः ।

अग्निर्वैवता । १, ३ भुरिगायत्रीछन्दः । ऋजु स्वरः ।

२ निबृद्विण्छन्दः । ऋषभ स्वरः ॥

अब एकसौ पचासवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

पुरु त्वा दाश्वान् वीचेऽरिंश्चे तव स्विदा ।

तोदस्यैव शरण आ महस्यं ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( दाश्वान् ) दान देने और ( अरि ) व्यवहारों की प्राप्ति करानेवाला मैं ( महस्यं ) महान् ( तोदस्यैव ) व्याधा देनेवाले के जैसे वैसे ( तव ) आपके ( रिंश्चे ) ही ( आ, शरणे ) अच्छे प्रकार घर में ( त्वा ) आपको ( पुर, आ, वीचे ) बहुत भली-भाँति से कहूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो जिसका रक्सा हुआ सेवक हो वह उसकी आज्ञा का पालन करके कृतार्थ होवे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।

कदा चन प्रजिगतो अदैवयोः ॥२॥

पदार्थ—मैं ( अदैवयो ) जो नहीं विद्वान् है उनको ( प्रजिगत ) जा उत्तमता से निरन्तर प्राप्त होता हुआ ( अररुषः ) अहिंसक ( व्यनिनस्य ) विशेषता से प्रशंसित प्राण का निमित्त ( धनिनः ) बहुत धनयुक्त जन है उसके ( प्रहोषे ) उसको अच्छे ग्रहण करनेवाले के लिए ( कदा, चन ) कभी प्रिय वचन न कहूँ ऐसे ( चित् ) तू भी मत बोल ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो अधिविद्वान् पढ़ाने और उपदेश करनेवालों के सग को छोड़ विद्वानों का सङ्ग करता है वह सुखों से युक्त होता है ॥ २ ॥

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो ब्राधन्तमो दिवि ।

ममेतं अये वनुषः स्याम ॥३॥१९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! जैसे हम लोग ( वनुष ) मलय सबको बाँटनेवाले ( ते ) आपके उपकार करनेवाले ( विप्र, ब्रह्म, स्याम ) उत्तम ही प्रकार से होंगे । वा हे ( विप्र ) धीर बुद्धिवाले जन ! जैसे ( सः ) वह ( मर्त्यः ) मनुष्य ( वाचस्तमः ) भतीव उन्नति को प्राप्त जैसे ( महः ) बड़ा ( चन्द्रः ) चन्द्रमा ( दिवि ) आकाश में वर्तमान है वैसे तू भी अपना वर्तमान रख ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिव्यादि पदार्थों को जाने हुए विद्वान् जन विद्याप्रकाश में प्रवृत्त होते हैं वैसे धीर जनो को भी वर्तमान रखना चाहिए ॥ ३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सज्जति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ पचासवाँ सूक्त और उन्नीसवाँ बर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ मित्रमित्यस्य नववर्षस्यकपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य वीर्यतमा ऋषिः ।

मित्रावर्गो वैवता । १ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । वैवतः स्वरः ।

२—४ विराद् जगती । ६, ७ जगती, ८, ९

निबृजजगती च छन्दः । निवाहः स्वरः ॥

अब नव ऋषिवाले एकसौ इक्यावन सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में मित्रावर्ग के विशेष लक्षणों को कहते हैं—

मित्रं न यं सिम्या गोष्ठं गव्यवः स्वाध्योंविदथं अप्सु जीर्जनम् ।

अरैजेतां रोदसी पाजसा गिरा मतिं प्रियं यजतं अनुषामवः ॥१॥

पदार्थ—( प्रियम् ) जो प्रसन्न करता वा ( यजतम् ) सग करने योग्य ( यम् ) जिस अग्नि को ( अनुषाम् ) मनुष्यों के ( अब ) रक्षा आदि के ( प्रति ) प्रति वा ( स्वाध्यों ) जिनकी उत्तम धीरबुद्धि वे ( गोष्ठं ) गोष्ठों में ( गव्यवः ) गोष्ठों की इच्छा करनेवाले जन ( मित्र, न ) मित्र के समान ( विदथं ) यज्ञ में ( सिम्या ) कर्म से ( अप्सु ) प्राणियों के प्राणों में ( जीर्जनम् ) उत्पन्न कराते अर्थात् उस यज्ञ कर्म द्वारा वर्षा और वर्षा स झल्ल होत और अन्नो से प्राणियों के जठराग्नि को बढ़ाते हैं उस अग्नि के ( पाजसा ) बल ( गिरा ) रूप उत्तम शिक्षित वाणी से ( रोदसी ) मूयमण्डल और पृथिवीमण्डल ( अरैजेताम् ) कम्पायमान होने हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् प्रजापालना किया चाहते हैं वे मित्रता कर समस्त जगत् की रक्षा करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यद्ध न्यद्वां पुरुमीळःस्य मोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।

अथ क्रतुं विदतं गातुमचेत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥२॥

पदार्थ—हे ( वृषणा ) गाय आदि की वर्षा कराते दुष्टों की शक्ति को बाँधते हुए अध्यापक और उपदेशकों । तुम दोनों ( पुरुमीळःस्य ) बहुत गुणों से सीधे हुए ( पस्त्यावतः ) प्रशंसित घोड़ेवाले ( मोमिनः ) बहुत ऐश्वर्ययुक्त मज्जन की ( वृषणः ) बुद्धि का ( यत्, ह ) जो निश्चय के साथ ( स्वाभुवः ) उत्तमता से परोपकार में प्रसिद्ध होनेवाले जन ( मित्रासः ) मित्रों के ( न ) समान ( प्र, दधिरे ) अच्छे प्रकार धारण करते ( पस्त ) उनकी ( गातुम् ) पृथिवी को ( विदतम् ) प्राप्त होओ ( अथेत ) इसके अनन्तर भी ( वाम् ) तुम दोनों का ( अर्चते ) सत्कार करते हुए जन की ( भुतम् ) सुनो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मित्र के समान सब जनों में उत्तम बुद्धि को स्थापन कर विद्याओं का स्थापन करने हैं वे अच्छे भाग्यशाली होते हैं ॥ २ ॥

आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्य वृषणा दक्षसे महे ।

यदीमृताय भरथो यद्वैते प्र होत्रया शिम्या वीथो अच्वरम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( वृषणा ) विद्या की वर्षा करानेवाले ( यत् ) जो ( रोदस्योः ) अन्तरिक्ष और पृथिवी के बीच वर्तमान ( क्षितयः ) मनुष्य ( महे ) अत्यन्त ( वरते ) आत्मबल के लिए ( वाम् ) तुम दोनों का ( प्रवाच्यम् ) अच्छे प्रकार कहने योग्य ( जन्म ) जन्म को ( भूषन् ) सुशोभित करें उनके सग से ( यत् ) जिस कारण ( अर्चते ) प्रशंसित विज्ञानवाले ( ऋताय ) सत्यविज्ञान-युक्त सज्जन के लिए ( होत्रया ) ग्रहण करने योग्य ( शिम्या ) अच्छे कर्मों से युक्त क्रिया से ( अच्वरम् ) अहिंसा धर्मयुक्त व्यवहार को तुम ( आ, भरथ ) अच्छे प्रकार धारण करते हो और ( ईम् ) सब ओर से उसको ( प्र, वीथ ) व्याप्त होने हो इसमें आद्य प्रशंसा करने योग्य हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् बाल्यावस्था से लेकर पुत्र और कन्याओं को विद्या की अग्नि उन्नति दिलाते हैं वे सत्य के प्रचार से सबको विभूषित करते हैं ॥ ३ ॥

प्र सा क्षितिरसुर या महिं प्रिय ऋतावानावृता धौषथो बृहत् ।

युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुव गां न धुर्युप युजाथे अपः ॥४॥

**पदार्थः**—हे ( आत्माकाया ) सत्य आचरण करनेवाले ( अक्षुर ) प्राण के समान बलवान् मित्र-वश्य राज-प्रजा जन ! ( युष्मत् ) तुम दोनों जिस कारण ( बृहत् ) प्रति उन्नति को प्राप्त ( विभ ) प्रकाश ( बलम् ) बल और ( अवः ) कर्म को ( धुरि ) गाड़ी चलाने की धुरि के निमित्त ( आधुवन् ) अच्छे प्रकार होने वाले ( गाम् ) प्रचल बल के ( न ) समान ( उप, मुञ्चन्वाये ) उपयोग में लाते हो और ( बृहत् ) अत्यन्त ( अतम् ) सत्य व्यवहार को ( आधोवन् ) विशेषता से आध्यापमान कर प्रख्यात करते हो इससे तुम दोनों को ( वा ) जो ( महि ) अत्यन्त ( प्रिया ) सुखकारिणी ( भित्तिः ) भूमि है ( ता ) वह ( प्र ) प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

**भाषार्थः**—इम मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्य का आचरण करते और उसका उपदेश करते हैं वे असंख्य बल को प्राप्त होकर पृथिवी के राज्य को अंगते हैं ॥ ४ ॥

**मही अत्र महिना वारंमुण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।**

**स्वरन्ति ता उपरताति द्येमा निघ्नं उपसस्तस्ववीरिव ॥५॥ २०॥**

**पदार्थः**—हे पढ़ाने और उपदेश करनेवाले सज्जनों ! तुम दोनों ( तस्ववीरिव ) जो सेनाजनों को व्याप्त होता उसके समान ( अत्र ) इम ( मही ) पृथिवी में ( महिना ) बहपन से ( उपरताति ) मेघों के आकाशवाले अर्थात् मेघ जिसमें आते-जाते उस अन्तरिक्ष में ( सूर्यम् ) सूर्यमण्डल का ( द्या, निघ्नम् ) मर्यादा माने निरन्तर गमन करती हुई ( उषसः ) प्रभातवेलाओं के समान ( अरेणवः ) जो दुष्टों को नहीं प्राप्त ( तुज ) सज्जनों से वृद्ध की हुई ( धेनवः ) जो दुग्ध पिनाती हैं वे भी ( सवाम् ) अपन गोओं में ( वारम् ) रबीकार करने योग्य ( आ, स्वरन्ति ) सब और से शब्द करती हैं ( ता ) उनको ( अण्वन्धः ) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

**भाषार्थः**—इम मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे दूध देनेवाली गीएँ सब प्राणियों को प्रसन्न करती हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करनेवाले जन विद्या और उत्तम शिक्षा को अच्छे प्रकार देकर सब मनुष्यों को सुखी करें ॥ ५ ॥

**आ वांमृताय केशिनीरनुषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्थयः ।**

**अव न्मनां सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥६॥**

**पदार्थः**—हे ( मित्र ) मित्र और ( वरुण ) श्रेष्ठ विद्वानो ! ( मृ ) यहाँ ( मृताय ) सत्याचरण के लिए ( केशिनी ) चमक-चमकवाली सुन्दरी स्त्री ( वाम् ) तुम दोनों की ( अनुषत ) स्तुति करे वहाँ ( वरुण ) तुम दोनों ( गातुम् ) सत्य स्तुति को ( द्या, अर्चन् ) अच्छे प्रकार प्रशंसित करते हो ( त्वमा ) अपने से ( विप्रस्य ) धीरबुद्धि-युक्त सज्जन की ( धिय ) उत्तम बुद्धियों को ( अव, सृजतम् ) निरन्तर उत्पन्न करा और ( पिन्वतम् ) उपदेश द्वारा सीधों ( मन्मनाम् ) और मान करती हुई को ( इरज्यथ ) ऐश्वर्ययुक्त करो ॥ ६ ॥

**भाषार्थः**—जा यहाँ प्रशसायुक्त स्त्रियाँ और जो पुरुष हैं वे अपने समान पुरुष स्त्रियों के साथ सयोग करें अर्थात् वे और विद्या से विशेष ज्ञान की उन्नति कर ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥ ६ ॥

**यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।**

**उपाह तं गच्छथो वीथो अघ्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥७॥**

**पदार्थः**—हे अध्यापक और उपदेशको ! ( य ) जो ( शशमान ) सब विषयों को पार होता हुआ ( कवि ) अत्यन्त बुद्धियुक्त ( होता ) सब विषयों को ग्रहण करनेवाला ( मन्मसाधन ) जिस का विज्ञान ही माधन वह सज्जन ( यज्ञ ) मिल के किये हुए कर्मों से ( वाम् ) तुम दोनों को सुख ( दाशति ) देता है और ( यजति ) तुम्हारा सत्कार करता है ( त, ह ) उसीके ( अस्मयू ) हमारी इच्छा करते हुए तुम ( उप, गच्छथ ) सग पहुँचे हो वे आप ( अह ) मे रोक-टोक ( अघ्वरम् ) हिंसा रहित व्यवहार को ( गच्छथम् ) प्राप्त होओ और ( गिरः ) सुन्दर शिक्षा की हुई वाणी और ( सुमतिम् ) सुन्दर विशेष बुद्धि को ( अघ्व ) उत्तम रीति से ( वीथः ) चाहो ॥ ७ ॥

**भाषार्थः**—जो इस संसार में सत्यविद्या की कामना करनेवाले सबके लिए विद्या-दान से उत्तम शीलपन का सम्पादन करते हुए सुख देते हैं वे सब को सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

**युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुतिषु ।**

**अरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽहृष्यता मनसा रेवदाशाथे ॥८॥**

**पदार्थः**—हे अध्यापकोपदेशक सज्जनों ! जो ( यज्ञैः ) यज्ञों से ( गोभिः ) और सुन्दर शिवाय वारिणों से ( अञ्जते ) कामना करते हैं ( ऋतावाना ) और सत्य आचरण का सम्मान रखनेवाले ( प्रथमा ) आदि में होनेवाले तुम दोनों को ( मनसः ) प्रसन्नकरण के ( प्रयुतिषु ) प्रयोगों को उत्साहों में जैसे ( न ) जैसे व्यवहारों में ( अरन्ति ) पुष्ट करते हैं तथा ( वाम् ) तुम दोनों की शिक्षाओं को पाकर ( संयता ) संयमयुक्त ( अहृष्यता ) हर्ष-मोहरहित ( मन्मना ) विज्ञानरूप ( मनसा ) मन से ( गिरः ) वारिणों और ( रेवत् ) बहुत बलों से अरे हुए ऐश्वर्य को पुष्ट करते हैं और तुमको ( आशाथे ) प्राप्त होते हैं उनको तुम मित्र पढ़ाओ और सिखाओ ॥ ८ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! जो तुमको विद्या प्राप्ति के लिए बड़ा से प्राप्त होवे और जो जितेन्द्रिय धार्मिक हो उन सभी को अच्छे यत्न के साथ सिखावान् और धार्मिक करो ॥ ८ ॥

**रेवदयौ दद्याथे रेवदाशाथे नरां मायामिरितऊति माहिनम् ।**

**न वां द्यावोऽहमिनोति सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मधम् ॥९॥**

**पदार्थः**—हे ( नरा ) अग्रगामी जनो ! जो तुम ( मायामिः ) मानने योग्य बुद्धियों से ( माहिनम् ) अत्यन्त पूज्य और बड़ा भी ( इतऊति ) इधर से रखा जिससे उस ( यव ) प्रति रम्य मनोहर ( रेवत् ) प्रशंसित वनयुक्त ऐश्वर्य को ( दद्याथे ) आरण करते हो और ( रेवत् ) बहुत ऐश्वर्ययुक्त व्यवहार को ( आशाथे ) प्राप्त होते हो उन ( वाम् ) आपकी ( देवत्वं ) विद्वत्ता को ( द्यावः ) प्रकाश( न ) नहीं ( अहमिः ) जिनो के साथ दिन अर्थात् एकता रसमय ( न ) नहीं ( उत ) और ( सिन्धवः ) बड़ी-बड़ी नदी-नद ( न ) नहीं ( आनशुः ) व्याप्त होते अर्थात् अपने-अपने गुणों से तिरस्कार नहीं कर सकते, जीत नहीं सकते, अधिक नहीं होते तथा ( पणयः ) व्यवहार करते हुए वन ( अशुर्मधम् ) तुम्हारे महत् ऐश्वर्य को ( न ) नहीं व्याप्त होते जीत सकते ॥ ९ ॥

**भाषार्थः**—जिस-जिस को विद्वान् प्राप्ता करते हैं उस-उस को इतर सामान्य जन प्राप्त नहीं होते, विद्वानों के उपमा विद्वान् ही होते हैं और नहीं होते ॥ ९ ॥

इस सूक्त में मित्र-वरुण के लक्षण अर्थात् मित्र-वरुण शब्द से लक्षित अध्यापक और उपदेशक आदि का वर्णन किया। इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकही एकावनवां सूक्त और इक्कीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



**पूजित्यस्य सप्तर्चस्य द्विपञ्चाशत्तरस्य ज्ञातमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋचिः ।**

मित्रावरुणौ देवते । १, २, ४—६ ऋष्टुप्, ३ विराट् ऋष्टुप्;

७ निष्ठा ऋष्टुप् छन्दः । अक्षरः स्वरः ॥

अब एकही वाचनवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने-पढ़ाने और उपदेश करने, उपदेश सुननेवालों के विषय को कहते हैं—

**युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवौ ह सर्गाः ।**

**अवातिरतमन्तानि विश्वं ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥१॥**

**पदार्थः**—हे ( मित्रावरुणा ) प्राण उदान के समान वर्तमान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले ! जो ( युवम् ) तुम लोग ( पीवसा ) स्थूल ( वस्त्राणि ) वस्त्रों को ( वसाथे ) धोवते हो वा जिन ( युवो ) तुम्हारे ( अच्छिद्राः ) छेद-भेद रहित ( मन्तवः ) जानने योग्य ( ह ) ही पदार्थ ( सर्गाः ) रचने योग्य हैं जो तुम ( विश्वा ) समस्त ( अन्तानि ) मिथ्याभाषण आदि कामों को ( अवातिरतम् ) उत्सवते पार होते और ( अन्तेन ) सत्य से ( सचेथे ) सग करते हो वे तुम हम लोगों को क्या न सत्कार करने योग्य होते हो ॥ १ ॥

**भाषार्थः**—मनुष्यों को सदैव स्थूल छिद्ररहित वस्त्र पहिन कर जानने के योग्य दोषरहित वस्त्र आदि पदार्थ निर्माण करने चाहिएँ और सदैव आरण किये हुए सत्याचरण से असत्याचरणों को छोड़ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अच्छे प्रकार सिद्ध करने चाहिएँ ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**एतच्च न त्वो वि चिकेत देवां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋचावान् ।**

**त्रिरभि हन्ति चतुरभिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥२॥**

**पदार्थः**—( त्वः ) कोई ही ( एषाम् ) इन विद्वानों में जो ऐसा है कि ( ऋचावान् ) बहुत स्तुति और सत्य-प्रसन्न की विवेचना करनेवाली मतियों से युक्त ( कविशस्त ) मेधावी कवियों से प्रशंसित किया ( सत्यः ) धर्म्यभित्तारी ( मन्त्रः ) विचार है ( एतत् ) इसको ( चिकेतत् ) विशेषता से जानता है और जो ( अतुरभिः ) चारों देवों को प्राप्त होता वह ( उग्र ) तीव्र स्वभाववाला ( देवनिदः ) जो विद्वानों की निन्दा करते हैं उनको ( हन्ति ) मारता और ( त्रिरभिम् ) जो तीनों अर्थात् वाणी, मन और शरीर से प्राप्त किया जाता है ऐसे उत्तम पदार्थों को जानता है उक्त वे सब ( प्रथमाः ) आदिस अर्थात् अग्रगामी अगुणा ( ह ) ही हैं और वे प्रथम ( चतुर ) ही ( अजूर्यन् ) बुद्धि होते हैं ॥ २ ॥

**भाषार्थः**—जो मनुष्य विद्वानों की निन्दा को छोड़ निन्दकों को निवारके सत्य-ज्ञान को प्राप्त हो सत्यविद्याओं को पढ़ाते हुए और सत्य का उपदेश करते हुए विस्तृत सुख को प्राप्त होते हैं वे अन्य हैं ॥ २ ॥

**अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वो मित्रावरुणा चिकेत ।**

**गमो भारं अरस्या चिदस्य ऋतं पिपत्येवृत्तं नि तारीह ॥३॥**

**पदार्थः**—हे ( मित्रावरुणा ) श्रेष्ठ मित्र पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वानो ! जो ( पद्वतीनाम् ) प्रशंसित विभागवाली क्रियाओं में ( प्रथमा ) प्रथम ( अवात् )

विना विभावनामी विद्या ( वृत्ति ) प्राप्त होती है ( तत् ) उसको ( वाम् ) तुम से ( वाः ) जीन ( वा, विवेक ) जाने और जो ( वर्यः ) बहुत करनेवाला जन ( वारम् ) पुष्टि को ( वा, वरति ) सुनोचित करता वा अच्छे प्रकार बारह करता है ( विद् ) और भी ( वर्य ) इस सत्ता के बीच ( वृत्तम् ) सत्य व्यवहार को ( विपत्ति ) पूर्ण करता है तो ( अमृतम् ) मिथ्या भावना आदि काम को ( वि, सारम् ) निरन्तर उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

आचार्य—जो कुछ की छोड़ सत्य को बारह कर अपने सब सामान इकट्ठे करते हैं वे सत्य विद्या को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

अप्रत्यक्षित्परि जार कनीनां पदयामसि नोपनिषदमानम् ।

अनवपूजा वितता वसानं मियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥४॥

वार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( कनीनाम् ) कामना करती हुई प्रजाओं की ( जारम् ) अवस्था करनेवाले ( प्रत्यक्षम् ) अच्छे यत्न करते ( उपनिषदमानम् ) समीप प्राप्त होते ( अनवपूजा ) सम्बन्ध रहित अवस्था प्राप्त करने के पदार्थ को ( वितता ) फैले हैं उनको ( वसन्तम् ) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हुए सूर्य के समान ( मित्रस्य ) मित्र वा ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ विद्वान् के ( इत् ) ही ( प्रियम् ) प्रिय ( वाम् ) सुखसाधक वर को ( परि, वरमानम् ) देवते हैं इससे विरक्त ( न ) न हों जैसे तुम भी इसको प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

आचार्य—मनुष्य लोग जैसे रात्रियों के निहन्ता अपने प्रकार का विस्तार करते हुए सूर्य को देखकर काव्यों को सिद्ध करते हैं वैसे अविद्यान्वकार का नाश और विद्या का प्रकाश करनेवाले प्राप्त अध्यापक और उपदेशक के सग को पाकर स्वेषों को नष्ट करें ॥ ४ ॥

अनन्धो जातो अनमीशुरवा कनिक्कदत्तपतयदूर्ध्वसानुः ।

अविर्षं ब्रह्म जुजुष्युवान् म मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥५॥

वार्थ—जो ( युवान् ) युवावस्था को प्राप्त जन ( अनमीशुः ) नियम करनेवाली किरणों से रहित ( अववर्ष ) जिसके जल्दी चलनेवाले चोड़े नहीं ( कनिक्कदत्तम् ) और बार-बार शब्द करता वा ( पतयत् ) गमन करता हुआ ( जातः ) प्रसिद्ध हुआ और ( ऊर्ध्वसानुः ) जिसके ऊपर को शिखा ( अर्वा ) प्राप्त होनेवाले सूर्य के समान ( मित्रे ) मित्र वा ( वरुणे ) उत्तम जन के निमित्त ( वाम् ) स्वान की ( गृणन्तः ) प्रशंसा करते हुए ( अविर्षम् ) विरक्त-रहित ( ब्रह्म ) वृद्धि को प्राप्त जन आदि पदार्थों से मुक्त अन्न को ( म, जुजुषुः ) खेवें वे बलवान् होते हैं ॥ ५ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे घोड़े वा रथ आदि सवारी से रहित आकाश के बीच ऊपर को स्थित सूर्य ईश्वर के अवलम्ब से प्रकाशमान होता है वैसे विद्वानों की विद्या के आधारभूत मनुष्य बहुत जन और अन्न को पाकर अमृत्युक्त व्यवहार में बिराजमान होते हैं ॥ ५ ॥

आ धेनवो मामसेयमवन्तीर्ब्रह्ममियं पीपयन्तस्स्मिन्धनम् ।

पितृो मिश्रेत वयुनानि विद्वानासाविवांसजदित्तिमुख्येत् ॥६॥

वार्थ—जैसे ( धेनवः ) धेनु, गौएँ ( लस्मिन् ) अपने ( ऊर्ध्वम् ) ऐन से हुए दूध से बछड़ों को पुष्ट करती हैं वैसे जो स्त्री ( ब्रह्ममियम् ) वेदाध्ययन जिस को प्रिय उस ( मामसेयम् ) समस्त से जाने हुए अपने पुत्र को ( अन्धन्तीः ) रक्षा करती हुई ( अ, पीपयन् ) उसकी वृद्धि, उन्नति करती हैं वा जैसे ( विद्वान् ) विद्यावान् जन ( आसा ) मुख से ( पितृः ) अन्न की ( भिक्षेत् ) याचना करे और ( अविर्षम् ) न नष्ट होनेवाली विद्या का ( आविवांसम् ) सब धोर से सेवन करता हुआ ( वयुनानि ) उत्तम जानों को ( उच्छेत् ) सेवे जैसे पढ़ानेवाले पुरुष धीरों को विद्या और सिखावट का ग्रहण करावें ॥ ६ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे माता जन अपने लड़कों को दूध आदि के देने से बढ़ाती है वैसे विद्वान् स्त्री और विद्वान् पुरुष कुमार और कुमारियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से बढ़ावें, उन्नतिपुक्त करें ॥ ६ ॥

आ वा मित्रावरुणा हव्यजुष्टि नमसा देवावरुणा बभूव्याम् ।

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सखा अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७॥२२॥

वार्थ—हे ( देवी ) दिव्य स्वभाववाले ( मित्रावरुणा ) मित्र और उत्तम जन ! जैसे मैं ( वाम् ) तुम दोनों की ( नमसा ) अन्न से ( हव्यजुष्टिम् ) ग्रहण करने योग्य सेवा को ( आ, बभूव्याम् ) अच्छे प्रकार वरूँ वैसे तुम दोनों ( अवव्या ) रक्षा आदि काम से ( अस्माकम् ) हमारे ( पृतनासु ) मनुष्यों में ( ब्रह्म ) जन की वृद्धि कराएँ । हे विद्वान् ! जो ( अस्माकम् ) हमारी ( दिव्या ) वृद्ध ( सुपारा ) जिससे कि सुख के साथ सब कामों की परिपूर्णता हो ऐसी ( वृष्टिः ) वृष्टि की वृत्ति देनेवाली वृत्ति है उसको ( सखाः ) सहो ॥ ७ ॥

आचार्य—जैसे विद्वान् जन अति प्रीति से हमारे लिए विद्याओं को देवें वैसे हम लोग इनकी अत्यन्त भद्रा से सेवें जिससे हमारी वृद्ध प्रशंसा सर्वत्र विरहित हो ॥७॥

इस सूक्त में पढ़ाने और उपदेश करनेवाले तथा उनके शिष्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकलौ वाचनवाँ सूक्त और वाईसवाँ वर्ग पुरा हुआ ॥

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सखा अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७॥२२॥

विभावकरी देवता १, २ विष्णु त्रिभुवः । ३ विष्णुः ।

देवताः स्वरः । ४ सुरिण्डवृत्तिः । ५ स्वरः ।

यह एकलौ वेदमन्त्र सूक्त का आरम्भ है । इसके अन्त में

किर मित्र वरुण के पुत्रों का वर्णन करते हैं—

यजामहे वां महः सजोषां हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।

वृतेष्टतस्नु अध यद्गामस्मे अर्ध्वयवो न धीतिभिर्मरन्ति ॥१॥

वार्थ—हे ( वृतेष्टम् ) वृत्त फैलाने ( मित्रावरुणा ) मित्र और श्रेष्ठ जनो ! ( वाम् ) तुम दोनों का ( सजोषा ) समान प्रीति किये हुए हम लोग ( वीतिभिः ) अंगुलिओं से ( अर्ध्वयवः ) अधिष्ठा धर्म की कामनावालों के ( न ) समान ( हव्येभिः ) देने योग्य ( नमोभिः ) अन्नादि पदार्थों से ( वृतेः ) और भी आदि रसों से ( ब्रह्म ) अत्यन्त ( यजामहे ) सत्कार करते हैं ( अर्ध्व ) इससे अवन्तर ( वत् ) जिस व्यवहार को ( वाम् ) तुम दोनों के लिए और ( अर्ध्व ) हमारे लिए विद्वान् जन ( भरन्ति ) बारह करते हैं उस व्यवहार को बारह करो ॥१॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे यजमान अग्निहोत्र आदि अनुष्ठानों से सबके सुख को बढ़ाते हैं वैसे समस्त विद्वान् जन अनुष्ठान करें ॥१॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रस्तुतिर्वी धाम न प्रयुक्तरियामि मित्रावरुणा सुशुक्तिः ।

अनक्ति यद्वा विदथेसु होता सुम्नं वां सुरिष्टेषणावियसन ॥२॥

वार्थ—हे ( वृषणी ) सुख वृष्टि करनेवाले ( मित्रावरुणा ) मित्र और श्रेष्ठ जन ( इयम् ) प्राप्त होने की इच्छा करता हुआ ( सुरिः ) विद्वान् ( सुशुक्तिः ) जिसका सुन्दर रोकना ( प्रस्तुति ) और उत्तम स्तुति ( होता ) वह ग्रहण करनेवाला ( प्रयुक्ति ) उत्तम युक्ति में ( धाम ) स्वान के ( न ) समान ( वाम् ) तुम दोनों को ( अर्ध्वयव ) प्राप्त होता है । वा ( वत् ) जो विद्वान् ( वाम् ) तुम दोनों से ( विदथेसु ) विद्वानों ने ( अमरन्ति ) कामना करता है वा ( वाम् ) तुम दोनों के लिए ( सुम्नम् ) सुख देता है उसकी मैं प्राप्त होता हूँ ॥२॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो मनुष्य पाप करने और प्रशंसित गुणों को ग्रहण करनेवाले जिनको विद्वानों का सङ्ग प्यारा है और सबके लिए सुख देनेवाले होते हैं वे कल्याण की सेवनेवाले होते हैं ॥२॥

पीपायं भेनुरदितिर्कृताय जनाय मित्रावरुणा इविदे ।

हिनोति यद्वा विदथे सपर्यन्तस रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥

वार्थ—हे ( मित्रावरुणा ) सत्य उपदेश करनेवाले मित्रावरुणो ! ( वत् ) जो ( अविर्षः ) अलविष, विनाश को नहीं प्राप्त हुई ( भेनुः ) दूध देनेवाली गी के समान ( इविदे ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को देता उस ( वृताय ) सत्य व्यवहार को प्राप्त हुए ( जनाय ) प्रसिद्ध विद्वान् के लिए ( सुम्नम् ) सुख को ( पीपाय ) बढ़ाता और ( विदथे ) विद्वान् के निमित्त ( वाम् ) तुम दोनों की ( सपर्यन्तम् ) सेवा करता हुआ ( रातहव्यः ) जिसने ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिये वह ( होता ) देनेवाले ( मानुषः ) मनुष्य के ( न ) समान ( हिनोति ) वृद्धि को प्राप्त कराता है और ( स ) वह जन उत्तम होता है ॥३॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो विद्वान् देने-लेने में कुशल पढ़ाने और उपदेश करनेवाले सबको उन्नति देते हैं वे पुन पुनः के सबसे अधिक उन्नति को पाते हैं ॥३॥

उत वां विष्णु मद्यास्वन्धो गाव आर्धश्च पीपयन्त देवीः ।

उतो नो अस्य पुर्यः पतिर्दन्वीतं पातं पर्यस उत्तियायाः ॥४॥

वार्थ—हे मित्र और वरुण, श्रेष्ठजन ! जैसे ( देवीः ) दिव्य ( गावः ) गायी ( गावः, व ) और जन ( वृतायु ) वृत्ति करने योग्य ( विष्णुः ) प्रजापती में ( वाम् ) तुम दोनों को ( पीपयन्त ) उन्नति देते हैं ( उत ) और ( अन्धः ) अन्न अच्छे प्रकार देवें ( उतो ) और ( पुर्यः ) पूर्वजों से नियत किया हुआ ( पतिः ) पालना करनेवाला ( न ) हमारे ( अन्धः ) पढ़ाने के काम सम्बन्धी ( उत्तियायाः ) दुग्ध देनेवाली गी के ( पर्यसः ) दूध को ( वत् ) देता हुआ वर्तमान है वैसे तुम दोनों विद्या को ( वीतम् ) व्याप्त होओ और दुग्ध ( पातम् ) पिओ ॥४॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो वहाँ पीछों के समान सुख देनेवाले और प्राण के समान मित्र प्रजापतियों में वर्तमान हैं वे इस संसार में अमृत आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥४॥

इस सूक्त में मित्र और वरुण के पुत्रों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकलौ वेदमन्त्र सूक्त और सैंतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



पदार्थ—जो ( तिथीबलः ) प्रगल्भ कर्मयुक्त अध्यापक और उपदेशक की उत्तीर्णता से ( सवरत्नम् ) अच्छे प्रकार प्राप्ति करानेवाले ( स्वेत् ) प्रकाश की भाँति होकर ( सत्वादि ) मनुष्य के लिए ( प्रतिषीधनात्मम् ) अच्छे प्रकार बारस किये हुए व्यवहार की ( उद्वहति ) बढावा है वह ( तुल्यः ) सम्यक् तपस्यावाला

सज्जन पुरुष ( ब्रह्म ) जो ( इन्द्राविष्णु ) बिजुली और सूर्य के समान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले तुम दोनों ( धृष्टु ) एक देश से दूसरे देश को पदार्थ पहुँचा देनेवाले ( कृष्णानोः ) बिजुली रूप धारा की ( असन्नाम् ) पहुँचाने की क्रिया को जैसे ( इत् ) ही ( उदाहरण ) सेवते हो ( इत्या ) इसी प्रकार से ( वाम् ) तुम दोनों को सेवें ॥२॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है। जो तपस्वी जितेन्द्रिय होते हुए विद्या का अभ्यास करते हैं वे सूर्य और बिजुली के समान प्रकाशितात्मा होते हैं ॥२॥

ता ई वर्द्धन्ति महस्य पौंस्यं नि पातरा नयति रेतसे भुजे ।

दधाति पुत्रोऽवैरं परं पितुर्नामं तृतीयमधि रोचने दिवः ॥३॥

पदार्थ— जो बिजुली म्रियों ( प्रस्य ) हम लड़के के ( रेतसे ) वीर्य बढ़ाने और ( भुजे ) भोगादि पदार्थ प्राप्त होने के लिए ( ग्रीह ) अत्यन्त ( पौंस्यम् ) पुरुषार्थ को ( ईम ) सब और से ( वर्द्धन्ति ) बढ़ाती हैं वह ( ता. ) उनकी ( नयति ) प्राप्त होता है इसमें कारण यह है कि जिससे ( पुत्र ) पुत्र ( पितुः ) पिता और माता की उत्तेजना से शिक्षा को प्राप्त हुआ ( दिव ) प्रकाशमान सूर्यमण्डल के ( अभि, रोचने ) ऊपरी प्रकाश में ( अवैरम् ) निकुण्ट ( परम् ) उत्कृष्ट वा पिछले-अगले वा उरले और ( तृतीयम् ) तीसरे ( नाम ) नाम को तथा ( नि, पातरा ) निरन्तर मान करनेवाले माता-पिता को ( दधाति ) धारण करता है ॥३॥

भाषार्थ— वे ही माता-पिता हितंभी होते हैं जो अपने सन्तानों को दीर्घ ब्रह्मचर्य से पूरी विद्या, उत्तम शिक्षा और युवावस्था को प्राप्त करा विवाह कराते हैं। वे ही प्रथम ब्रह्मचर्य दूसरी पूरी विद्या, उत्तम शिक्षा और तृतीय युवावस्था को प्राप्त होकर सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं ॥३॥

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसानस्यं त्रातुरं धृक्स्थं मीळ्हुषः ।

यः पार्थिवानि त्रिभिर्दिग्गामभिरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४॥

पदार्थ— ( य ) जो ( विगामभि ) विविध प्रशसायुक्त ( त्रिभि ) तीन सन्ध, रजस, तमो गुणों के साथ ( उरगायाय ) बहुत प्रशंसित ( जीवसे ) जीवन के लिए ( पार्थिवानि ) पृथिवी के किरणों से उत्पन्न हुए ( इत् ) ही पदार्थों को ( उच, क्रमिष्ट ) क्रम से अत्यन्त प्राप्त होता है ( तत्तत् ) उस-उस ( त्रातु ) रक्षा करनेवाले ( इदस्य ) समर्थ ईश्वर के समान ( प्रस्य ) किये हुए ब्रह्मचर्य जितेन्द्रिय इस ( अशुक्लस्य ) चोरी आदि दोषरहित ( मीळ्हुषः ) वीर्य सेवन समर्थ पुरुष के ( पौंस्यम् ) पुरुषार्थ को ( इत् ) ही हम लोग ( गृणीमसि ) प्रशंसा करते हैं ॥४॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है। मनुष्यों को चाहिए कि मूल से निरकाल तक जीने के लिए दीर्घ ब्रह्मचर्य का अच्छे प्रकार सेवन कर आरोग्य और धातुओं की समता बढ़ाने में शरीर के बल और विद्या, धर्म तथा योगाभ्यास के बढ़ाने से आत्मबल को उन्नति कर सर्वत्र सुख में रहे। जो लोग हम ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं वे बाल्यावस्था में स्वयंवर विवाह कभी नहीं करने इसके बिना पूर्ण पुरुषार्थ की सम्भावना नहीं है।

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्होऽभिन्त्याय मत्यां भुरण्यति ।

तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५॥

पदार्थ— जो ( मत्यां ) मनुष्य ( स्वर्होऽभिन्त्याय ) मूल देनेवाले ( प्रस्य ) इस ब्रह्मचारी के ( द्वे, क्रमणे ) दो अनुक्रम से चलनेवाले धर्मात् वस्तुवि वर्तनेवाले शरीरबल तथा आत्मबल की ( अभिन्त्याय ) सब धार से प्रख्यात करने को ( भुरण्यति ) धारण करता है वह ( पतयन्तः ) ऊपर-नीचे आने हुए ( पतत्रिणः ) पंखवाले ( वय ) पनेरु ( चन ) भी ( इत् ) जैसे किसी पदार्थ का विस्तार करें जैसे भी ( प्रस्य ) इस ब्रह्मचारी के ( तृतीयम् ) तीसरे विद्या जन्म का ( नकि, दधर्षति ) तिरस्कार नहीं करता है ॥५॥

भाषार्थ— जो माता-पिता अपने सन्तानों की ब्रह्मचर्य के अनुक्रम से विद्याजन्म की बढ़ाते हैं वे अपने सन्तानों को दीर्घ आयुवाने, बलवान्, सुन्दर, शीलयुक्त करके निर्य हर्षित होते हैं ॥५॥

चतुर्भिः साकं नवति च नामभिश्चक्र न वृत्त व्यतीग्वीविपत् ।

बृहच्छरीरो विमिमान् ऋक्भिर्भ्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥६॥२५॥

पदार्थ— जो ( विमिमान् ) विशेषता से धातुओं की वृद्धि का निर्माण करता हुआ ( बृहच्छरीर ) बली, स्थूल शरीरवाला ( ऋक्भ्यः ) पञ्चीस वर्ष की अवस्था से निकल गया ( युवा ) किन्तु युवावस्था को प्राप्त ब्रह्मचारी ( वृत्तम् ) गोल ( चक्रम् ) चक्र के ( न ) समान ( चतुर्भिः ) चार ( नामभिः ) नामों के ( साकम् ) साथ ( नवति, च ) और मन्त्रे धर्मात् औरानवे नामों से ( व्यतीन् ) विशेषता से जिनको बल प्राप्त हुआ उन बलवान् योद्धाओं को एक भी ( अवीविपत् ) धरयन्त भ्रमाता है वह ( बृहच्छरीरम् ) प्रशंसित गुण, कर्म, स्वभावों से ( साहवम् ) प्रतिष्ठा के साथ बुलाने को ( प्रति, एति ) प्राप्त होता है ॥६॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में उपमालकार है। जो अड़तालीस वर्ष भर अकण्ठित ब्रह्मचर्य का सेवन करता है वह अकेला भी गोलचक्र के समान औरानवे योद्धाओं

को भ्रमा सकता है। मनुष्यों में इस वर्ष तक बाल्यावस्था, पञ्चीस वर्ष तक कुमारवस्था तदनन्तर छबीसवें वर्ष के आरम्भ से युवावस्था पुरुष की होती है और सत्रहवें वर्ष से कन्या की युवावस्था का आरम्भ है इसके उपरान्त जो स्वयंवर विवाह को करते-कराते हैं वे महाभाग्यशाली होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में अध्यापकोपदेशक और ब्रह्मचर्य के फल के वर्णन से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ पञ्चपनवीं सूक्त और पञ्चोत्तवीं वर्ग पूरा हुआ ॥

॥

अवेत्यस्य पञ्चचक्षुष्य बटपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य वीर्यतमा ऋचिः ।

विष्णुर्वेत्ता । १ निष्त्विष्टद्विष्ट, २ विराट् निष्द्विष्ट, ५ स्वरट् निष्द्विष्ट

छन्द । वीर्यतः स्वर । ३ निष्त्विष्टजगती, ४ जगती छन्दः ।

निषादः स्वर ॥

अथ पाँच ऋचावाले एक सौ छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से

विद्वान् अध्यापक अध्यापकों के गुणों को कहते हैं —

मवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतधुम्न एवया उ समयाः ।

अधा ते विष्णो विदुषां चिदर्थः स्तोमो यज्ञश्च राध्वी हविर्म्मता ॥१॥

पदार्थ— हे ( विष्णो ) समस्त विद्याओं में व्याप्त । ( ते ) तुम्हारा जो ( अर्थ ) बढ़ने ( स्तोम ) और स्तुति करने योग्य व्यवहार ( यज्ञः, च ) और सज्जन करने योग्य ब्रह्मचर्य नामवाला यज्ञ ( हविर्म्मता ) प्रशस्त विद्या देने और ग्रहण करने से युक्त व्यवहार ( राध्वी ) अच्छे प्रकार सिद्ध करने योग्य है उसका अनुष्ठान आरम्भ कर ( अथ ) इसके अनन्तर ( शेव्य ) सुखी करने योग्य ( मित्र ) मित्र के ( न ) समान ( एवयाः ) रक्षा करनेवालों को प्राप्त होनेवाला ( उ ) तर्क-वितर्क के साथ ( समयाः ) उत्तम प्रसिद्धियुक्त ( विदुषा ) और ध्यात, उत्तम विद्वान् के साथ ( चित् ) भी ( घृतासुतिः ) जिससे घृत उत्पन्न होता ( विभूतधुम्नः ) और जिससे विशेष बल वा यश हुए हो ऐसा तू ( अथ ) हो ॥१॥

भाषार्थ— विद्वान् जन जिस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप यज्ञ की वृद्धि, स्तुति और उत्तमता से सिद्ध करने की इच्छा करते हैं उसका अच्छे प्रकार सेवन कर विद्वान् होके सबका मित्र हो ॥ १ ॥

यः पृथ्व्यां वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।

यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोर्भिर्युज्य चिदभ्यसत् ॥२॥

पदार्थ— ( यः ) जो ( नवीयसे ) अत्यन्त विद्या पढ़ा हुआ नवीन ( सुम्-ज्जानये ) सुन्दरता से पाई हुई विद्या से प्रसिद्ध ( पृथ्व्यां ) पूर्वज विद्वानों ने अच्छी सिखावटी से सिखाया हुआ ( वेधसे ) केषाची अर्थान् धीर ( विष्णवे ) विद्या में व्याप्त होने का स्वभाव रखनेवाले के लिए विज्ञान ( ब्रवाशति ) देता है वा ( यः ) जो ( अस्य ) इस ( महत ) मत्कार करने योग्य जन के ( महि ) महान प्रशंसित ( जातम् ) उत्पन्न हुए विज्ञान को ( ब्रवत् ) प्रकट कह ( उ ) और ( श्रवोर्भिः ) श्रवण, मनन और निदिध्यासन धर्मात् अत्यन्त धारण करने, विचारने से अत्यन्त उत्पन्न हुए ( युज्यम् ) समाधान के योग्य विज्ञान का ( अभ्यसत् ) अभ्यास करे ( स , चित् ) वही विद्वान् हो और ( इत् ) वही पढ़ाने को योग्य हो ॥ २ ॥

भाषार्थ— जो निष्कपटता से बुद्धिमान् विद्यार्थियों को पढ़ाते वा उनको उपदेश देते हैं और जो धनयुक्त व्यवहार से पढ़ते और अभ्यास करते हैं वे सब अतीव विद्वान् और धार्मिक होकर बड़े सुख का प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

तमु स्तोतारः पुर्य यथा विद क्रुतस्य गर्भे जनुषां पिपर्त्तन ।

आस्यं जानन्तो नाम चिद्विज्ञान महस्ते विष्णो सुमति भञ्जामहे ॥३॥

पदार्थ— हे ( स्तोतार ) समस्त विद्यार्थी की स्तुति करनेवाले सज्जनों । ( यथा ) जैसे तूम ( जनुषा ) विद्याजन्म से ( पुर्यम् ) पूर्व विद्वानों ने किये हुए ( तम् ) उस प्राप्त अध्यापक विद्वान् की ( चिद्वि ) जानी और ( क्रुतस्य ) सत्य व्यवहार के ( गर्भम् ) विद्या-सम्बन्धी बोध को ( उ ) तर्क-वितर्क से ( पिपर्त्तन ) पालो वा विद्याओं से और सेवा से पूरा करो। तथा ( अस्य ) इसका ( चित् ) भी ( नाम ) नाम ( आ, जानन्तः ) अच्छे प्रकार जानते हुए ( चिद्विज्ञान ) कहो, उपदेश करो जैसे हम लोग भी जानें, पालें और पूरा करें। हे ( विष्णो ) सकल विद्याओं में व्याप्त विद्वन् । हम जिन ( ते ) धाय से ( महः ) महती ( सुमतिन् ) सुन्दर बुद्धि को ( भञ्जामहे ) भजते, सेवते हैं सो आप हम लोगों को उत्तम शिक्षा दें ॥ ३ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में उपमालकार है। मनुष्य विद्या की वृद्धि के लिए शास्त्रवक्ता अध्यापक को पाकर और उसकी उत्तम सेवा कर सत्यविद्याओं को अच्छे यत्न से ग्रहण करके पूरे विद्वान् हो ॥ ३ ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमभिना क्रतुं सचन्त मास्तस्य वेधसः ।

दाधार दंसमुत्तममहर्विदं ब्रजं च विष्णुः सत्त्विषां अपोर्णुते ॥४॥

पदार्थ— जो ( सत्त्विषां ) बहुत पवनरूप मित्रोंवाला ( विष्णुः ) अपनी दीप्ति से व्यापक सूर्यमण्डल ( उत्तमम् ) प्रशंसित ( ब्रजम् ) बल को ( दाधार )

धारण करे और ( अहिम्नः ) जो दिनों को प्राप्त होता अर्थात् जहाँ दिन होता उस ( अहिम्नः ) प्राप्त हुए देश को ( अहिम्नः ) प्रकाशित करता उस ( अहिम्नः ) इस ( अहिम्नः ) पवनरूप महाप्रवाले ( अहिम्नः ) विधाता सूर्यमण्डल के ( अहिम्नः ) उस ( अहिम्नः ) कर्म को ( अहिम्नः ) अष्ट ( राजा ) प्रकाशमान सज्जन और ( अहिम्नः ) उस कर्म को ( अहिम्नः ) अध्यापक और उपदेशक लोग ( अहिम्नः ) प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार है। जैसे और सज्जन प्राप्त विद्वान् से विद्या ग्रहण कर उत्तम बुद्धि की उत्पत्ति कर पूरे बल को प्राप्त होते हैं वा जैसे जहाँ-जहाँ सविता अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे वहाँ-वहाँ उस सवितृमण्डल के महत्त्व को देखके समस्त छोटे मोटे भूमी निर्बन्धी जन पूर्ण विद्यावाले से विद्या और शिक्षाओं को पाकर अविद्यारूपी अन्धकार को निवृत्त करें ॥ ४ ॥

आ यो विवाय सचयाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृतरः ।  
वेधा अजिन्वस्त्रिषस्थ आयमुतस्य भागे यजमानमामजत् ॥५॥ २६ ॥ २१ ॥

वार्थ—( यः ) जो ( दैव्यः ) विद्वानो का सम्बन्धी ( त्रिषस्थः ) कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों में स्थित ( सुकृतरः ) अतीव उत्तम कर्मवाला ( विष्णुः ) विद्या को प्राप्त ( वेधाः ) वेधावी और बुद्धि सज्जन ( सचयाय ) धर्म सम्बन्ध को प्राप्त ( सुकृते ) धर्मार्था ( इन्द्राय ) परमेश्वर्यवान् जन के लिए ( अहिम्नः ) सत्य के ( भागे ) सेवने के निमित्त ( आयम् ) समस्त शुभ गुण, कर्म और स्वभावों में उत्तमान ( यजमानम् ) विद्या देनेवाले को ( आ, अमजत् ) अच्छे प्रकार सेवे और जो सबको विद्या और शिक्षा देने से ( अजिन्वत् ) प्राप्त पीषण करे वह पूरे सुख को ( आ, विवाय ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानो के प्रिय किये को जानने, माननेवाले सुकृति सर्वविद्या-वेत्ता जन सत्य, धर्म विद्या पहुँचाने से सब जनों को सुख देते हैं वे अजित सुख भोगनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् अध्यापक और अध्येताओं के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिए ॥

यह एक ही उत्पन्नवाँ सूक्त, छम्बीसवाँ वर्ण और इक्कीसवाँ अनुवाक पूरा हुआ ॥



अबोधोयस्य बहुस्य सप्तदश्याशुतरस्य शतसप्तस्य सुवस्य दीर्घतमा अहिम्नः ।  
अहिम्नो देवते, १ विष्णुः, ५ निचूत् विष्णुः, ६ विराट् विष्णुः छन्दः ।  
वेधतः स्वरः २, ४ जगती, ३ निचूजगती छन्दः । निवाह स्वरः ॥

अब छ अहिम्नोवाले एक ही सत्तावनवें सूक्त का आरम्भ है उसमें अहिम्न के गुणों को कहते हैं—

अबोधोयस्य उदैति सूर्यो व्युःश्वन्द्रा मद्भावा अहिम्नः ।  
आयुक्षातामहिना यातवे रथं प्रासावीदेवः सविता जगत् पृथक् ॥१॥

वार्थ—जैसे ( अहिम्नः ) विद्युदादि अग्नि ( अबोधः ) जाना जाता है ( उदैति ) पृथिवी से अलग ( सूर्यः ) सूर्य ( उदैति ) उदय होता है ( मही ) बड़ी ( अहिम्नः ) मानव देनेवाली ( उदैति ) प्रभातवेला ( अहिम्नः ) फैलती, उजेली देती है वा ( सविता ) ऐश्वर्य करनेवाला ( देवः ) विष्वगुणी सूर्यमण्डल ( अहिम्नः ) अपने किरण समूह से ( जगत् ) मनुष्यादि प्राणिमात्र जगत् को ( पृथक् ) अलग ( प्रासावीत् ) अच्छे प्रकार प्रेरणा देता है वैसे ( अहिम्नः ) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् ( यातवे ) जाने के लिए ( रथम् ) विमानादि यान को ( आयु-क्षाताम् ) युक्त करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार है। जैसे विजुली, सूर्य और प्रभातवेला अपने प्रकाश से आप प्रकाशित हो समस्त जगत् को प्रकाशित कर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशक लोग पदार्थ तथा ईश्वर सम्बन्धी विद्याओं को प्रकाशित कर समस्त ऐश्वर्य की उत्पत्ति करावें ॥ १ ॥

यद्यज्ञाये हवणमहिना रथं घृतेन नो मधुना अत्रमुसतम् ।  
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिवन्तं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥

वार्थ—हे ( अहिम्नः ) सभा और सेना के अधीनो ! तुम ( यत् ) जिससे ( अहिम्नः ) शत्रुओं की शक्ति को रोकनेवाले ( रथम् ) विमान आदि यान को ( अहिम्नः ) युक्त करते हो इसके ( घृतेन ) जल और ( मधुना ) मधुरादि गुणयुक्त रस से ( नः ) हम लोगों के ( अत्रम् ) अजित कुल को ( अत्रम् ) सीधे ( अत्रम् ) हमारी ( पृतनासु ) सेनाओं में ( ब्रह्म ) ब्राह्मण कुल को ( जिवन्तम् ) प्रसन्न करो और ( वयम् ) हम प्रजा-सेनाजन ( शूरसाता ) शूरों के सेवने योग्य संघाम में ( धना ) धनों को ( अत्रम् ) सेवन करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को राजनीति के अङ्गों से राज्य की रक्षक बनादि की बड़ा और संघामों को जीतकर सबके लिए सुख की उत्पत्ति करनी चाहिए ॥ २ ॥

अर्वाक् त्रिषको मधुवाहिनो रथो जीराधो अहिनीर्यात् सुधुतः ।  
त्रिषधुरो मधवा विश्वसीमः शं न आ वसद्विपदे चतुषपदे ॥३॥

वार्थ—जो ( अहिम्नः ) विद्वानो की क्रिया में कुशल सज्जनों की उत्तम भावा से ( सुधुतः ) सुन्दर प्रशंसित ( मधुवाहनः ) जल से बहाने योग्य ( त्रिषको ) जिसमें तीन चक्कर ( जीराधः ) वेगरूप घोड़े और ( त्रिषधुरः ) तीन बन्धन विद्यमान वा ( विश्वसीमः ) समस्त सुन्दर ऐश्वर्य, भोग जिसमें होते वह ( अर्वाक् ) नीचले देश अर्थात् जल आदि में चलनेवाला ( मधवा ) प्रशंसित धनयुक्त ( रथः ) रथ ( नः ) हमारे ( त्रिषधे ) द्विपाद मनुष्यादि वा ( अत्रम् ) चौपाय गौ आदि प्राणी के लिए ( अत्रम् ) सुख का ( आ, वसत् ) आवाहन करावे और हम लोगों को ( वातु ) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिए जिससे पदार्थविद्या से प्रशसायुक्त यानों की बनाने की समर्थ हों ऐसे करने के बिना समस्त सुख होने की योग्य नहीं ॥ ३ ॥

आ न ऊर्जे वहतमहिना युवं मधुमत्या नः कशपा मिमिक्षतम् ।  
प्रायुस्तारिष्टं नी रषांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सच्चाभुवा ॥४॥

वार्थ—हे ( अहिम्नः ) अध्यापक और उपदेशक ! ( युवं ) तुम दोनों ( मधुमत्या ) बहुत जल वाष्पों के बेगों से युक्त ( कशपा ) गति वा शिक्षा से ( नः ) हम लोगों के लिए ( ऊर्जेम् ) पराक्रम की ( आ, वहतम् ) प्राप्ति करो ( मिमिक्षतम् ) पराक्रम की प्राप्ति कराने की इच्छा ( नः ) हमारी ( आभुः ) उमर को ( प्र, तारिष्टम् ) अच्छे प्रकार पार पट्टेवालों ( द्वेषः ) वैरभावयुक्त ( रषांसि ) पापों को ( नि, सेधतम् ) दूर करो, हम लोगों को ( मृक्षतम् ) कुछ करो और हमारे ( सच्चाभुवा ) सहकारी ( भवतम् ) होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोग ऐसी शिक्षा कर कि जिससे हम लोग सब के मित्र होकर पक्षपात से उत्पन्न होनेवाले पापों को छोड़ अभीष्ट सिद्धि पानेवाले हो ॥ ४ ॥

युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु मुदनेष्वन्तः ।  
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीरश्विनौवैरयेथाम् ॥५॥

वार्थ—हे ( वृषणा ) जल वर्षा करानेवाले ( अहिम्नो ) सूर्य और चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक ( युवं ) तुम दोनों ( जगतीषु ) विविध पृथिवी आदि सृष्टियों में ( गर्भम् ) गर्भ के समान विद्या के बोध को ( धत्थः ) भरते हो ( युवं, ह ) तुम्हीं ( विश्वेषु ) समस्त ( मुदनेषु ) लोक-लोकान्तरों के ( अन्तः ) बीच ( अग्निम् ) अग्नि को ( च ) भी ( ऐरेयेथाम् ) बलाओं तथा ( युवम् ) तुम ( अपः ) जला और ( वनस्पतीन् ) वनस्पति आदि वृक्षों को ( च ) इलाओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासकार है। मनुष्य जैसे यहाँ सूर्य और चन्द्रमा विराजमान हुए पृथिवी में वर्षा से गर्भ धारण कराकर समस्त पदार्थों को उत्पन्न कराते हैं वैसे विद्यारूप गर्भ को धारण कराके समस्त सुखों को उत्पन्न करावें ॥ ५ ॥

युवं ह स्थो भिषजां मेघजेभिरथो ह स्थो रथ्याः राधर्येमः ।  
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥६॥

वार्थ—हे विद्यादि सद्गुणों में व्याप्त सज्जनों ! ( युवं, ह ) तुम्हीं ( मेघजेभिः ) रोग दूर करनेवाले वैद्यों के साथ ( भिषजा ) रोग दूर करनेवाले ( रथः ) हो ( अथो ) इसके अनन्तर ( ह ) निश्चय से ( राधर्येभिः ) रथ पहुँचाने वाले अश्वदिकों के साथ ( रथ्याः ) रथ में प्रवीण रथवाले ( रथः ) हो ( अथो ) इसके अनन्तर हे ( उग्रा ) तीव्र स्वभाववाले सज्जनों ! ( यः ) जो ( हविष्मान् ) बहुदानयुक्त जन ( वामः ) तुम दोनों के लिए ( मनसा ) विज्ञान से ( ददाश ) देता है अर्थात् पदार्थों का अर्पण करता है ( ह ) उसी के लिए ( क्षत्रम् ) राज्य को ( अग्निः, अथः ) अधिकता से धारण करते हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जब मनुष्य विद्वान् वैद्यों का सग करते हैं तब वैद्यक विद्या को प्राप्त होते हैं जब गूर दाता होते हैं तब राज्य धारण कर और प्रशंसित होकर निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अहिम्नो के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एक ही सत्तावनवाँ सूक्त और सत्ताईसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में सोम आदि पदार्थों के प्रतिपादन से इस दशवें अध्याय के अर्थों की नवम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

इति श्रीपरमहंसपरिब्रजकाचार्याणां श्रीमत्परमविभूषा विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनो  
शिष्येण परमहंसपरिब्रजकाचार्येण श्रीमहायानम्बरसरस्वतीस्वामिना विरचिते  
आर्यमातासमन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाध्याये  
द्वितीयाध्यायः समाप्तमगम् ॥२॥





## अथ द्वितीयाष्टके तृतीयाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितरुदितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

यस्य इति बहुवचसाष्टपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋचि ।

अध्वनी देवते १, ४, ५ निबृत्तिवृत्तः, २ वृत्तः छन्दः ।

वैवत स्वरः । १ भुरिक् पङ्क्तिवृत्तः । पञ्चम स्वरः ।

६ निबृत्तवृत्तः छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ द्वितीयाष्टके तृतीयाध्याय का आरम्भ है उसमें एक सौ अष्टावनव सूरत के प्रथम मन्त्र में शिक्षा करनेवाले और शिष्य के कर्मों का वर्णन करते हैं—

बभूवृद्रा पुंरुमन्तु बृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।

दक्षा ह यद्रेष्यं औच्यो वां प्र यत्सस्त्राथे अर्कवाभिरूती ॥१॥

पदार्थ—हे सभा शालावीशो ! ( यत् ) जो ( वाम् ) तुम दोनों का ( औच्यः ) उचित अर्थात् प्रशंसितो मे हुआ ( रेण्य ) धन है उस धन को ( यत् ) जो तुम दोनों ( अर्कवाभि ) प्रशंसित ( ऊतो ) रक्षामो से हम लोगों के लिए ( सस्त्राथे ) प्राप्त कराते हा वे ( ह ) ही ( बृधन्ता ) बढ़ते हुए ( पुंरुमन्तु ) बहुतों से मानने योग्य ( वृषा ) दुष्ट के नष्ट करनेहारे ( वृषणा ) बलवान् ( वसु ) निवास दिलानेवाले ( दक्षा ) चालीस वर्ष लो ब्रह्मचर्य से धर्मपूर्वक विद्या पढ़े हुए सज्जनों ( अभिरूती ) इष्ट सिद्धि के निमित्त ( न ) हमारे लिए सुख ( प्र, दश-स्यतम् ) उत्तमता से देवो ॥१॥

भाषार्थ—जो सूर्य और पवन के समान सबका उपकार करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

को वां दाशस्सुमतये चिदस्यै वसू यद्वेये नमसा पदे गोः ।

जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणैव मनसा चरन्ता ॥२॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( वसू ) सुखों में निवास करनेहारे सभाशालावीशो तुम ( अस्मै ) प्रत्यक्ष ( सुमतये ) सुन्दर बुद्धि के लिए ( नमसा ) अन्न आदि से ( गो ) पृथिवी के ( पदे ) प्राप्त होने योग्य स्थान में ( पुरन्धी ) पुर, ग्राम को धारण करती हुई ( रेवती ) प्रशंसित धनयुक्त नगरियों का ( वेये ) धारण करते हो और ( कामप्रेणैव ) कामना पूर्ण करनेवाले ( मनसा ) विज्ञानवान् अन्तःकरण से ( चरन्ता ) प्राप्त होते हुए तुम दोनों ( अस्मै ) हम लोगों के लिए ( जिगृतम् ) आग्रह हो उन ( वाम् ) आपके लिए इस मति को ( चित् ) भी ( क ) कोन ( वासत् ) देवे ॥२॥

भाषार्थ—जो पूर्णविद्या और कामनावाले पुरुष मनुष्यों को सुन्दर बुद्धिवाले करने को प्रयत्न करते हैं वे पृथिवी में सत्कारयुक्त होते हैं ॥२॥

युक्रो ह यद्वां तौग्रथाय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पञ्जः ।

उपं वामवः शरखं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥३॥

पदार्थ—हे सभाशालावीशो ! ( वाम् ) तुम दोनों का ( यत् ) जो ((तौग्रथाय ) बलों में उत्तम बल, उसके लिए ( युक्तः ) युक्त ( वेः ) सभी की पालना करनेवाला ( पञ्ज ) बलवान् में ( अर्णसः ) बल के ( मध्ये ) बीच ( धायि ) विधान किया जाता है अर्थात् जल सम्बन्धी काम के लिए युक्त किया जाता है तथा ( अर्णसः ) बल को ( शूरः ) शूर जैसे ( न ) वैसे ( पतयद्भिः ) इधर उधर दौड़ाते हुए ( एवैः ) पदार्थों को प्राप्ति करनेवालों के साथ ( वाम् ) सुम्हारे ( वामः ) रथ आदि काम को और ( शरखम् ) आश्रय को ( उप, गमेयम् ) निकट प्राप्त हाऊँ उस मुझको ( ह ) ही तुम बुद्धि देवो ॥३॥

भाषार्थ—जो जिज्ञासु पुरुष साधन और उपसाधनों से अध्यापक प्राप्त विद्वानों के आश्रय को प्राप्त हो वे विद्वान् होते हैं और जो अच्छे प्रकार प्रीति के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ाते हैं वे इस ससार में पूज्य होते हैं ॥३॥

उपस्तुतिरोच्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतलिणी वि दुग्धाम् ।

मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्मनि खादति सास् ॥४॥

पदार्थ—हे सभाशालावीशो ! ( वाम् ) तुम दोनों का ( यत् ) जो ( दशतयः ) दशगुणा ( एध ) ई धन ( बद्धः ) निरन्तर युक्त किया और ( चितः ) संचित किया हुआ अग्नि ( धाक् ) भूमि को ( प्र, धाक् ) जलावे जैसे ( स्मनि ) अपने में ( वाम् ) मुझको ( मा ) मत ( खादति ) खावे ( इमे ) ये ( पतलिणी ) नष्ट कराने के लिए कुशिका ( औच्यम् ) उचित-उचित कामों में उत्तम ( वाम् ) मुझे ( मा ) मत ( वि, दुग्धाम् ) अपूर्ण करें, मेरी परिपूर्णता को मत नष्ट करें और ( उपस्तुतिः ) समीप प्राप्त हुई स्तुति भी ( उच्यते ) सेवे ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमाकार है । जैसे ईश्वरों से निवात स्थान में अच्छे प्रकार बड़ा हुआ अग्नि पृथिवी और काष्ठ आदि पदार्थों को जलाता

है वैसे मुझे शोकपूर्ण अग्नि मत जलावे और अज्ञात वा कुशील मत प्राप्त हों किन्तु शान्ति और विद्या निरन्तर बढ़े ॥४॥

न मां गरग्रथौ मातृत्वा दासा यदीं सुसमुन्धमवाधुः ।

शिरो यदस्य त्रैतनो वितस्तु स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( दासाः ) सुख देनेवाले दासजन ( सुसमुन्धम् ) अति सूखे स्वभाववाले ( यत् ) जिस मुझे ( ईम् ) सब धोर से ( अवाधुः ) पीड़ित करें उस ( मा ) मुझे ( मातृत्वाः ) माताओं के समान मान करने-कराने वाली ( ग्ध ) नवियाँ ( न ) न ( गरग्रथौ ) निगलें, न गलावे, ( यत् ) जो ( त्रैतन ) तीन अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुखों का विस्तार करनेवाला ( दासः ) सेवक ( स्वयम् ) इस मेरे ( शिरः ) शिर को ( वितस्तु ) विविध प्रकार से पीड़ा देवे वह ( स्वयम् ) आप अपने ( उरः ) वक्षःस्थल और ( अंसी ) स्कन्धों को ( अवि, ग्ध ) काटे ॥५॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ऐसा प्रयत्न करें जिससे नदी और समुद्र आदि न डूबा मरें । शूद्र आदि दासजन सेवा करने पर नियत हुआ भी बालस्वयं अति सूखे स्वभाववाले स्वामी को पीड़ा दिया करता अर्थात् उनका काम मन से नहीं करता इससे उसकी मित्रा देवे और अनुचित करने में ताड़ना भी दे तथा अपने अपने शरीर के अङ्गों की सदा पुष्टि करें ॥५॥

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।

अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥१॥

पदार्थ—जो ( दीर्घतमा ) जिससे दीर्घ अन्वकार प्रकट होता वह ( अपामर्तेव ) समता में कुशलजन ( ब्रह्मे ) दशमे ( युगे ) वर्ष में ( जुजुर्वान् ) रोगी हो जाता है जो ( सारथिः ) रथ ठोकनेवाले जन के समान ( अपाम ) विद्या विज्ञान और योगज्ञान में व्याप्त ( यतीनाम् ) सन्यासियों के ( अर्धम् ) प्रयोजन को प्राप्त होता वह ( ब्रह्मा ) सकल वेदविद्या का जाननेवाला ( भवति ) होता है ॥६॥

भाषार्थ—जो इस ससार में अत्यन्त अविद्या, अज्ञानयुक्त लोभादुर हैं वे भीष्म रोगी होते और जो पक्षपातरहित सन्यासियों के सकाश से हर्ष-शोक तथा निन्दा-स्तुति रहित, विज्ञान और आनन्द को प्राप्त होते हैं वे आप दुष्ट के पारगामी होकर औरों को भी उसके पार करते हैं ॥६॥

इस सूक्त में शिष्य और शिक्षा देनेवाले के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ अष्टावनव सूक्त और प्रथम वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथवेत्यस्य पञ्चवचस्य एकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋचि । सावापुषिव्यो देवते । १ विराट् जगती, २, ३, ४, निबृत्तजगती, ४ जगती च छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अथ एकसौ उनसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विष्णुजी के विषय में कहा है—

प्र यावां यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदधेषु प्रचेतसा ।

देवेभ्यो देवपुत्रे सुदसंसेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( ये ) जो ( ऋतावृधा ) कारण से बढ़े हुए ( प्रचेतसा ) उत्तमता से प्रबल ज्ञान करनेहारे ( देवपुत्रे ) दिव्य प्रकृति के अर्णों से पुत्रों के समान उत्पन्न हुए ( सुदसंसा ) प्रशंसित कर्मवाले ( मही ) बढ़े ( यावां-पृथिवी ) सूर्यमण्डल और भूमिमण्डल ( यज्ञैः ) मिले हुए व्यवहारों से ( विदधेषु ) जानने योग्य पदार्थों में ( देवेभ्यः ) दिव्य जलादि पदार्थों और ( धिया ) कर्म के साथ ( वार्याणि ) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को ( प्रभूषतः ) सुश्रूषित करते हैं और आप उनकी ( प्र, स्तुषे ) प्रशंसा करते हैं ( इत्यादि ) इस प्रकार उनकी हम लोग भी प्रशंसा करें ॥१॥

भाषार्थ—जो मनुष्य उत्तम यत्न के साथ पृथिवी और सूर्यमण्डल के गुण, कर्म, स्वभाव को यथावत् जानें वे अतुल सुख से श्रूषित हो ॥१॥

उत मन्ये पितरद्भो मनीं मातुर्महि स्वतवस्तद्वीमभिः ।

सुरेतसा पितरा भूमं चक्रतुर्क मजायां अमृतं वरीमभिः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! मैं अकेला ( हवीमभिः ) स्तुति करने योग्य सुखों के साथ जिस ( अद्भुतः ) दोहराहित ( पातः ) माता ( उत ) और ( विभुः ) पिता के

( स्वयम्भुवः ) अपने बलबाने ( बहिः ) बड़े ( जगः ) मन को ( जग ) बहुत ( जग्ये ) 'आन' ( सत् ) उसको ( सुरेतसा ) सुन्दर पराक्रमवाले ( वितरा ) माता-पिता के समान बर्तमान भूमि और सूर्य ( बरीयभिः ) स्वीकार करने योग्य गुणों से ( प्रजायाः ) मनुष्य आदि सृष्टि के लिए ( अयुतम् ) अमृत के समान बर्तमान ( पुनः ) बड़ा उत्साहित ( अकम्पुः ) करते हैं अर्थात् निरुपव्यवहारी से प्रोत्साहित करते, मचीन नहीं रहने देते हैं ॥२॥

भाषार्थ—जैसे माता-पिता लड़कों को अच्छे प्रकार पालन कर उनको बढ़ाते हैं वैसे भूमि और सूर्य प्रजाजनों के लिए सुख की उन्नति करते हैं ॥२॥

ते सुनवः स्वपसः सुदंससो मही जगुर्मातरां पूर्वचिन्त्ये ।

स्थातुश्च सस्यं जगत्तश्च धर्म्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्रपाविनः ॥३॥

पदार्थ—जो ( स्वपसः ) सुन्दर कर्म और ( सुदंससः ) शोभन कर्मयुक्त व्यवहारवाले जन ( पूर्वचिन्त्ये ) पूर्व पहली जो चित्ति अर्थात् किसी पदार्थों का इकट्ठा करना है उसके लिए ( जगुः ) प्रसिद्ध होते हैं ( ते ) वे ( मही ) बड़ी ( मातरा ) मान करनेवाली माताओं को जानें । हे माता-पिताओं ! जो तुम ( स्थातुः ) स्थावर धर्मवाले ( च ) और ( जगत् ) जङ्गल जगत् के ( च ) भी ( धर्म्मणि ) साधर्म्य में ( अद्रपाविनः ) इकले ( पुत्रस्य ) पुत्र के ( सस्यम् ) सस्य ( पदम् ) प्राप्त होने योग्य पदार्थ की ( पाथः ) रक्षा करते हो उनकी ( सुनवः ) पुत्रजन निरन्तर सेवा करें ॥३॥

भाषार्थ—क्या भूमि और सूर्य सबके पालन के निमित्त नहीं हैं ? जो पिता-माता बराबर जगत् का विज्ञान पुत्रों के लिए ग्रहण कराते हैं वे इतकसे क्यों न हों ? ॥३॥

ते मायिनीं मयिरे सुप्रचेतसो जामी सयौनी मिथुना समौकसा ।

नव्येनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्र अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४॥

पदार्थ—जो ( सुप्रचेतसः ) सुन्दर प्रसन्नचित्त ( मायिनि ) प्रसन्नित बुद्धि वा ( सुदीतयः ) सुन्दर विद्या के प्रकाशवाले ( कवयः ) विद्वान् जन ( समौकसा ) समीचीन जिनका निवास ( मिथुना ) ऐसे दो ( लघोनी ) समान विद्या वा निमित्त ( जामी ) सुख भोगनेवालों को प्राप्त हो या जानकर ( दिवि ) बिजुली और सूर्य के तथा ( समुद्र ) अन्तरिक्ष वा समुद्र के ( अन्तः ) बीच ( नव्येनव्यम् ) नवीन-नवीन ( तन्तुम् ) विस्तृत वस्तुविज्ञान को ( मयिरे ) उत्पन्न करते हैं ( ते ) वे सब विद्या और मुक्तों का ( आ, तन्वते ) अच्छे प्रकार विस्तार करते हैं ॥४॥

भाषार्थ—जो मनुष्य प्राप्त अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त हो विद्याओं को प्राप्त हो या भूमि और बिजुली को जान समस्त विद्या के कामों को हाथ में धारण कर समान साक्षात् कर प्रोरो को उपदेश देते हैं वे ससार को शोभित करनेवाले होते हैं ॥४॥

तद्वा गौ अथ संवितुर्वरेण्यं वय देवस्य प्रसवे मनामहे ।

अस्यभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुनां रयि धत्तं वसुमन्तं शतग्विनेभ्यः ॥५॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! ( वयम् ) हम लोग ( अथ ) आज ( संवितुः ) जगत् के उत्पन्न करने ( देवस्य ) और प्रकाश करनेवाले ईश्वर के ( प्रसवे ) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में जिस ( वरेण्यम् ) स्वीकार करने योग्य ( राशः ) द्रव्य को ( मनामहे ) जानते हैं ( तत् ) उस ( शतग्विनेभ्यः ) सैकड़ों गौधोवाले ( वसुमन्तम् ) नाना प्रकार के धनो से युक्त ( रयिम् ) धन को ( सुचेतुना ) सुन्दर ज्ञान से ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( द्यावापृथिवी ) भूमिमण्डल और सूर्यमण्डल के समान तुम ( अस्तम् ) धारण करो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमात्कार है । विद्वान् जन जैसे द्यावा-पृथिवी सब प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे सबकी विद्या और धन की उन्नति से सुखी करें ॥५॥

इमं सूक्तं मे बिजुली और भूमि के समान विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इमं सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सज्जति समझनी चाहिए ॥

यह एक ही अवसंज्ञा सूक्त और दूसरा वर्ण समाप्त हुआ ॥

५५

ते हीत्यस्य पञ्चमर्थस्य षष्ठ्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य शीर्षतमा ऋषिः ।

द्यावापृथिवी देवते । १ विराट् जगती, २—५ विश्वजगती क्षन्धः ।

निषादः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले एक ही श्राद्ध सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में द्यावापृथिवी के वृष्टान्त से मनुष्यों के उपकार करने का वर्णन करते हैं—

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुषु ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।

सुजन्मनी धिषणं अन्तरीयते देवो देवी धर्म्मिणा सूर्यः शुचिः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो ( विश्वशम्भुषु ) ससार में सुख की भावना करनेवाले ( ऋतावरी ) सत्य कारण से युक्त ( धारयत्कवी ) अनेक पदार्थों की

धारणा कराते और प्रबल जिन का देवता ( सुजन्मनी ) सुन्दर जन्मवाले ( धिषणे ) उत्कट सहनशील ( देवी ) निरन्तर दीपते हुए ( द्यावापृथिवी ) बिजुली और अन्तरिक्षलोक ( जनेना ) अपने धर्म से अर्थात् अपने मान से ( रजसः ) लोकों का ( धनः ) अपने बीच में भरते हैं । जिन उक्त द्यावापृथिवी में ( शुचिः ) पवित्र ( देवः ) विष्व गुणवाला ( सूर्यः ) सूर्यलोक ( ईश्वर ) प्राप्त होता है ( ते ) उन दोनों को ( हि ) ही तुम अच्छे प्रकार जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जैसे सब लोकों के वायु बिजुली और आकाश ठहरने के स्थान हैं वैसे ईश्वर उन वायु आदि पदार्थों का धारण है । इस सृष्टि में एक-एक ब्रह्माण्ड के बीच एक-एक सूर्यलोक है यह सब जानें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अपने मन्त्र में कहा है—

उर्य्यवसा महिनी असन्धता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।

सुष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीममि रूपैरवांसयत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( पिता ) पालन करनेवाला विद्युदग्नि ( यत् ) जिस ( रोदसी ) सूर्य और भूमिमण्डल को ( रूपैः ) शुक्र, कृष्ण, हिरत, पीतादि रूपों से ( सीम् ) सब ओर से ( अस्मवांसयत् ) ढोपता है उन ( असन्धता ) निरक्षण रूपवाले ( महिनी ) बड़े ( उर्य्यवसा ) बहुत व्याप्त होनेवाले ( सुष्टमे ) सुन्दर अत्यन्त उत्कृष्टता से सहनेवाले ( वपुष्ये ) रूप में प्रसिद्ध हुए सूर्यमण्डल और भूमिमण्डलों के ( न ) समान ( माता ) माण्य करनेवाली स्त्री ( पिता, च ) और पालना करनेवाला जन ( भुवनानि ) जिन में प्राणी होते हैं उन लोकों की ( रक्षतः ) रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे समस्त प्राणियों को भूमि और सूर्यमण्डल पालते और धारण करते हैं वैसे माता-पिता सन्तानों की पालना और रक्षा करते हैं । जो जलों और पृथिवी या इन के विकारों में रूप दिखाई देता है वह व्याप्त अग्नि ही का है यह समझना चाहिए ॥ २ ॥

स वहिः पुत्रः पित्रोः पवित्वान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।

चेतुं च पृथिनं वृषभं सुरेतसं विश्वाक्षा शुक्रं पयौ अस्य दुक्षत ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( पवित्वान् ) जिसके बहुत शुद्ध कर्म बर्तमान ( पित्रोः ) तथा जो वायु और आकाश के ( पुत्रः ) सन्तान के समान बर्तमान है ( स ) वह ( वहिः ) पदार्थों की प्राप्ति करनेवाला अग्नि ( भुवनानि ) लोकों को ( पुनाति ) पवित्र करता है । जो ( चेतुम् ) गौ के समान बर्तमान बाण्णी ( सुरेतसम् ) सुन्दर जिस का बल जो ( वृषभम् ) सब लोकों को रोकनेवाला ( पृथिनम् ) सूर्य है उस ( शुक्रम् ) शीघ्रता करनेवाले को और ( पयः ) दूध को ( च ) और ( पवित्वान् ) सब दिनों को पवित्र करता है जिस को ( धीरः ) ध्यानवान् पुरुष ( मायया ) उत्तम बुद्धि से जानता है ( अस्य ) उस अग्नि की उत्तेजना से अशीष्ट सिद्धि को तुम ( पुनात ) पूरी करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य समस्त लोकों को धारण करता और पवित्र करता है वैसे सुपुत्र कुल को पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥

अयं देवानामपमामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।

वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४॥

पदार्थ—जो ( अयम् ) यह ( देवानाम् ) पृथिवी आदि लोकों के ( अप-साम् ) कर्मों के बीच ( अपस्तमः ) अतीव क्रियावान् है वा ( य ) जो ( विश्व-शम्भुवा ) सब में सुख की भावना करनेवाले कर्म से ( रोदसी ) सूर्यलोक और भूमिलोक को ( जजान ) प्रकाश करता है वा ( य ) जो ( सुक्रतूयया ) उत्तम बुद्धि कर्म और ( स्कम्भनेभिः ) रक्षापटों से और ( अजरेभिः ) हानिरहित प्रबन्धों के साथ ( रजसी ) भूमिलोक और सूर्यलोक का ( वि, ममे ) विविध प्रकार से मान करता उस की मैं ( समानृचे ) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने आदि काम जिस जगदीश्वर के होते हैं जो निश्चय के साथ कारण से समस्त माना प्रकार के कार्य को रचकर अनन्त बल से धारण करता है उसी को सब लोग सदैव प्रशंसित करें ॥ ४ ॥

ते नो गृणाने महिनी महि अवं सत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।

येनामि कुक्षीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजौ अस्मे समिन्वतम् ॥५॥

पदार्थ—जो ( गृणाने ) स्तुति किये जाते हुए ( महिनी ) बड़े ( द्यावा-पृथिवी ) भूमि और सूर्य लोक हैं ( ते ) वे ( नः ) हम लोगों के लिए ( बृहत् ) अत्यन्त ( महि ) प्रशंसनीय ( अवं ) अन्न और ( अन्नम् ) राज्य को ( धासथः ) धारण करें ( येन ) जिससे हम लोक ( विश्वहा ) सब दिनों ( कुक्षीः ) मनुष्यों का ( अमि, ततनाम ) सब ओर से विस्तार करें और उस ( पनाय्यम् ) प्रशंसा करने योग्य ( ओजः ) पराक्रम को ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( समिन्वतम् ) अच्छे प्रकार बढ़ावें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमात्कार है । जो जन भूमि के गुणों को जाननेवालों की विद्या को जानके उससे उपयोग करना जानते हैं वे अत्यन्त बल को पाकर सब पृथिवी का राज्य कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में आवापृथिवी के दृष्टान्त से मनुष्यों को उपकार ग्रहण करना कहा। इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है वह समझना चाहिए ॥  
यह एक ही साठवाँ सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

किञ्चित्स्थस्य चतुर्वर्षस्य एकवर्षमुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋचि ।

ऋभको वेवताः । १ विराट् जगती, २, ५, ६, ८, १० निबृज्जगती,

७, १० जगती च छन्दः । निवाव स्वरः । ३ निबृत् जगत्पु, ४,

१३ भूरिक् जगत्पु, ६ स्वरट् जगत्पु, ११ जगत्पु छन्दः ।

वेवत स्वरः । १४ स्वरट् पञ्च कितवृत्तः । पञ्चम स्वरः ॥

यद्य चोवृत् ऋचावाले एक ही इकसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ से मेधावी अर्थात् धीरबुद्धि के कर्मों को कहते हैं—

किमु भ्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूर्यकद्यदृचिम ।  
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽप्ये आतद्रेण इदभूतिमृदिम ॥१॥

पदार्थ—हे ( आत ) बन्धु ( अग्ने ) विद्वन् । ( य ) जो ( महाकुल ) बड़े कुलवाला ( दूर्य ) शीघ्रगामी पुरुष ( चमसम् ) मेघ को प्राप्त होता है उस की हम लोग ( न ) नहीं ( निन्दिम ) निन्दा करते ( य ) हम लोगों को ( किम् ) क्या ( भ्रेष्ठः ) श्रेष्ठ ( किम् ) क्या ( उ ) तो ( यविष्ठः ) अतीव जबान पुरुष ( आजगन् ) बार-बार प्राप्त होता है ( यत् ) जिसको हम लोग ( ऊचिम ) कहें सो ( किम् ) क्या ( इत्यम् ) दूतपन वा दूत के काम को ( ईयते ) प्राप्त होता है उस को प्राप्त होके ( इत् ) ही ( कत् ) कब ( भूतिम् ) ऐश्वर्य को ( ऊचिम ) कहें उपदेश करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—जिज्ञासु जन विद्वानों को ऐसा पूछें कि हमको उत्तम विद्या कैसे प्राप्त हो और कौन इस विद्या विषय में श्रेष्ठ बलवान् दूत के समान पदार्थ है, किस को पाकर हम लोग सुखी हों ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले अश्वों में कहा है—

एकं चमसं चतुरं कृणोतन तद्वै देवा अभवन् तद् आगमम् ।  
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२॥

पदार्थ—हे ( सौधन्वना ) उत्तम मनुष्यों में कुशल ! जिस ( एकम् ) इकेले ( चमसम् ) मेघ को ( देवा ) विद्वान् जन ( च ) तुम लोगों के प्रति ( अभवन् ) कहें अर्थात् उसके गुणों का उपदेश करें ( तत् ) उसको तुम लोग ( कृणोतन ) करो और जिसको ( यः ) तुम लोगों की उत्तेजना से मैं ( आगमम् ) प्राप्त होऊँ ( तत् ) उसको करो ( यवि ) जो ( देव ) विद्वानों के ( साकम् ) साथ ( चतुरः ) वायु, अग्नि, जल, भूमि, इन चारों को पूछो तो अपने काम को सिद्ध ( एव ) ही ( करिष्यथ ) करा और ( यज्ञियास ) यज्ञ के अनुष्ठान के योग्य ( भविष्यथ ) होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों की उत्तेजना से प्रश्नोत्तरो से विद्याओं को पाकर उस में कहे हुए कामों को करते हैं वे विद्वान् होते हैं। पिछले प्रश्नों के यहाँ ये उत्तर हैं कि जो हम लोगों में विद्या में अधिक है वह श्रेष्ठ। जो जितेन्द्रिय है वह अत्यन्त बलवान्। जो अग्नि है वह दूत और जो पुरुषार्थसिद्धि है वह विभूति है ॥ २ ॥

अग्नि दूतं प्रति यदब्रवीतनाम्नः कर्षो रथं उतेह कर्षः ।

धेनुः कर्षो युवशा कर्षा द्वा तानि आतरन् वः कृत्येमसि ॥३॥

पदार्थ—हे ( आत ) बन्धु, विद्वन् । ( यत् ) जो ( अश्वः ) शीघ्रगामी ( कर्षः ) करने योग्य अर्थात् कसायश्वादि सिद्ध होनेवाला नानाविध शिल्पक्रिया-जन्य पदार्थ ( उत ) अथवा ( इह ) यहाँ ( रथ ) रमण करने का साधन ( कर्ष ) करने योग्य विमान आदि यान है उसको ( अग्निम् ) बिजुली आदि ( दूतम् ) दूत कर्मकारी अग्नि के ( प्रति ) प्रति जो ( अब्रवीतन ) कहे उसके उपदेश से जो ( कर्षो ) करने योग्य ( धेनु ) वासी है वा जो ( कर्षा ) करने योग्य ( युवशा ) मिले अग्निले व्यवहारों से विस्तृत काम हैं वा जो अग्नि और वाणी ( द्वा ) दो हैं ( तानि ) उन सबको ( वः ) तुम्हारी उत्तेजना से सिद्ध ( कृत्ये ) कर हम लोग ( धेनु, अश्व, इमसि ) अनुक्रम से उक्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो जिसके लिए सत्य विद्या को कहे और अग्नि आदि से कर्तव्य का उपदेश करे वह उसको बन्धु के समान जाने और वह करने योग्य कामों को सिद्ध कर सके ॥ ३ ॥

चक्रवांसं ऋभवस्तदपृच्छत ष्वेदंभुधः स्य दूतो न आजगन् ।

यदावाक्यमसाम्भतुरः कृतानादिष्वष्टा मास्वन्तन्यांनजे ॥४॥

पदार्थ—हे ( चक्रवांसः ) कर्म करनेवाले ( ऋभवः ) मेधावी सज्जनों ! ( यः ) जो ( दूत ) दूत ( न ) हमारे प्रति ( अश्व, आजगन् ) बार-बार प्राप्त

होके ( स्यः ) वह ( वः ) कहीं ( अभूत् ) उत्पन्न हुआ है ( तत्, इत् ) उन ही को विद्वानों के प्रति आप लोग ( अपृच्छत ) पूछो। जो ( ष्वेदः ) सूक्ष्मता करने-वाला ( अश्वः ) जब ( अब्रवीत् ) मेघों को ( अब्रवीत् ) विख्यात करे तब वह ( चतुरः ) चार पदार्थों को अर्थात् वायु, अग्नि, जल और भूमि को ( कृतम् ) किये हुए अर्थात् पदार्थविद्या से उपयोग में लिये हुए जाने ( आत् ) और ( इत् ) वही ( ग्नात् ) गमन करने योग्य भूमियों के ( अस्त ) बीच यानों को ( मि, अग्नये ) बतावे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के समीप में उत्तम विद्या और विद्या को पाकर समस्त सिद्धान्तों के उत्तरों को जान कार्यों में अत्युत्तम योग करने हैं वे बुद्धिमान् होते हैं ॥ ४ ॥

हनमैनां इति त्वष्टा यदब्रवीत्क्षमं ये देवपानमनिन्दिषुः ।

अन्या नामानि कृष्वते सुते सचै अन्यैरेनान्कन्यानामभिः स्परत् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( त्वष्टा ) छिन्न-भिन्न करनेवाला सूर्य के समान विद्वान् ( अत् ) जिस ( देवपानम् ) किरण वा द्रव्यों से पीने योग्य ( चमसम् ) मेघ जल को ( अब्रवीत् ) कहता है ( यः ) जो इसकी ( अनिन्दिषु ) निन्दा करें उन ( एनाम् ) इनको हम लोग ( हनाम् ) मारें, नष्ट करें। जो ( सचाम् ) समुक्त ( अन्यैः ) और ( नामभिः ) नामों से ( अन्या ) और ( नामाभिः ) नामों को ( सुते ) उत्पन्न किये हुए व्यवहार में ( कृष्वते ) प्रसिद्ध करते हैं ( एनाम् ) इन जनों को ( कन्या ) कुमारी कन्या ( स्परत् ) प्रसन्न करे ( इति ) इस प्रकार से उनके प्रति तुम भी वतों ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों की निन्दा करें, विद्वानों में मूल्य बुद्धि और मूल्यों में बिदबुद्धि करें वे ही खल सबको तिरस्कार करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो हरीं युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।

ऋभुर्विभ्वा वाजो देवा अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( इन्द्र ) बिजुली के समान परमेश्वर्यकारक सूर्य ( हरी ) चारण आकर्षण कर्मों की विद्या को ( युयुजे ) युक्त करे ( अश्विना ) शिल्पविद्या वा उसकी क्रिया हथोड़ी के सिलानेवाले विद्वान् जन ( रथम् ) रमण करने योग्य विमान आदि यान को जोड़ें ( बृहस्पतिः ) बड़े-बड़े पदार्थों की पालना करनेवाले सूर्य के समान तुम लोग ( विश्वरूपाम् ) जिसमें समस्त अर्थात् छोटे, बड़े मोटे, पतले, टेढ़े, बकुचे, काले, पीले, रङ्गीले, चटकीले रूप विद्यमान हैं उस पृथिवी को ( उप, आजत ) उत्तमता से जानो ( ऋभुः ) धनञ्जय सूबात्मा वायु के समान ( विभ्वा ) अपने व्याप्ति बल से ( वाज ) अन्न को जैसे बैसे ( देवान् ) विद्वानों को ( अगच्छत ) प्राप्त होओ और ( स्वपस ) अन्न के सुन्दर घमसम्बन्धी काम हैं ऐसे हुए तुम ( यज्ञियम् ) जो यज्ञ के योग्य ( भागम् ) सेवन करने योग्य भोग हैं उसको ( ऐतन ) जानो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो बिजुली के समान कार्य को युक्त करने, शिल्पविद्या के समान सब कार्यों को यथायोग्य व्यवहारों में लगाने, सूर्य के समान राज्य की पालनेवाले, बुद्धिमानों के समान विद्वानों का सङ्ग करने और धार्मिक के समान कर्म करनेवाले मनुष्य हैं वे सौभाग्यवान् होते हैं ॥ ६ ॥

निश्चर्म्यो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ता कृणोतन ।

सौधन्वना अश्वदश्वमतस्त युक्त्वा रथमुप देवा अयातन ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम ( धीतिभिः ) घड़-गुलियों के समान वारणाधों से ( चर्मण ) शरीर की त्वचा के समान शरीर के ऊपरी भाग का सम्बन्ध रखनेवाली ( गाम् ) पृथिवी को ( अरिणीत ) प्राप्त होओ ( या ) जो ( जरन्ता ) स्तुति-प्रशंसा करने हुए ( युवशा ) युवा विद्याधियों को समीप रखनेवाले शिल्पी हों ( ता ) वे कारीगरों के कामों में अच्छे प्रकार प्रयत्न हुए ( निरङ्गुणोतन ) निरन्तर उन शिल्पकार्यों को करे। ( सौधन्वना ) उत्तम मनुष्य में कुशल होते हुए सज्जन ( अश्वान् ) वेगवान् पदार्थ में ( अश्वम् ) वेगवाले पदार्थ को ( अतस्त ) छोड़ो और बेग देने में ठीक करो। और ( रथम् ) रथ को ( युक्त्वा ) जोड़के ( देवान् ) दिव्य भोग वा दिव्य गुणों को ( उपायातन ) उपगत होओ, प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य घड़-गुलियों के समान कर्म के करने और शिल्पविद्या में प्रीति रखनेवाले पदार्थ के गुणों को जानकर गान आदि कार्यों में उनका उपयोग करते हैं वे दिव्य भोगों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा पा पिबता मुञ्जनेजन्म ।

सौधन्वना यदि तमेव हयैथ तृतीयं वा सबने मादयाधै ॥८॥

पदार्थ—हे ( सौधन्वना ) उत्तम मनुष्यवालों में कुशल अच्छे बंधों ! तुम पय्य भोजन चाहनेवालों से ( इदम् ) इस ( उदकम् ) जल को ( पिबत ) पिओ ( इदम् ) इस ( मुञ्जनेजन्म् ) मूज के तुणों से गुड़ किये हुए जल को पिओ ( वा ) अथवा ( मेव ) नहीं ( पिबत ) पिओ ( इति ) इस प्रकार से ( यः ) ही ( अब्रवीतन ) कही औरों को उपदेश देओ ( यवि ) जो ( तत् ) उसको ( हयैथ ) चाहो तो ( तृतीये ) तीसरे ( सबने ) ऐश्वर्य में ( यः ) ही निरन्तर ( अतयाधै ) आनन्दित होओ ॥ ८ ॥



**भावार्थ—**इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। ब्रह्म वा माता-पिताओं को चाहिए कि समस्त रोमी और सन्तानों के लिए प्रथम ऐसा उपदेश करे कि तुमको भारीरूप और आत्मिक सुख के लिए यह सेवन करना चाहिए, यह न सेवन करना चाहिए, यह अनुष्ठान करना चाहिए यह नहीं। जिस कारण से पूर्ण आत्मिक और आरीरिक सुखयुक्त निरन्तर हों ॥ ८ ॥

**आपो भूयिष्ठा इत्येको अन्नवीदभिर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अन्नवीत् ।**

**वर्धयन्ती बहुभ्यः प्रेको अन्नवीदता वर्दन्तश्चमसाँ अपिशत ॥६॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! तुम जैसे ( एक ) एक पुरुष समुक्त पृथिवी प्रादि पदार्थों में ( आपः ) जल ( भूविष्ठा ) अधिक है ( इति ) ऐसा ( अन्नवीत् ) कहता है ( अन्न ) और दूसरा ( अग्निः ) अग्नि ( भूविष्ठः ) अधिक है ( इति ) ऐसा ( अन्नवीत् ) उत्तमता से कहता है तथा ( एक ) कोई ( बहुभ्यः ) बहुत पदार्थों में ( वर्धयन्तीम् ) बढ़ती हुई भूमि को अधिक ( अन्नवीत् ) बतलाता है इसी प्रकार ( अन्न ) मरुत बातों को ( वर्दन्तः ) कहते हुए मज्जन ( चमसान् ) मेघों के समान पदार्थों को ( अपिशत ) अलग-अलग करे ॥ ६ ॥

**भावार्थ—**इस संसार में स्थूल पदार्थों के बीच कोई जल को अधिक, कोई अग्नि को अधिक और कोई भूमि को बड़ी-बड़ी बतलाते हैं परन्तु स्थूल पदार्थों में भूमि ही अधिक है इस प्रकार सत्य-विज्ञान में मेघ के अवयवों का जो ज्ञान उसके समान सब पदार्थों को अलग-अलग कर सिद्धान्तों की सब परीक्षा करें इस काम के बिना यथार्थ पदार्थविद्या को नहीं जान सकते ॥ ६ ॥

**श्रोणामेकं उदकं गामवाजति मांसमेकं पिशति सुनयाभृतम् ।**

**आ निम्रुचः शकुदेको अपाभरत्किं स्विप्नुमेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥**

**पदार्थ—**जैसे ( एक ) विद्वान् ( श्रोणां ) सुनने योग्य ( गाम् ) भूमि और ( उदकम् ) जल को ( गामवाजति ) जानता, कलायन्त्रों से उसको प्रेरणा देता है वा जैसे ( एक ) इकेला ( सुनया ) हिंसा से ( गामवाजति ) अच्छे प्रकार आरणा किये हुए ( मांसम् ) मरे हुए के अङ्ग के टुकड़े को ( पिशति ) अलग करता है वा जैसे ( एकः ) एक ( निम्रुचः ) नित्य प्राप्त प्राणी ( शकुत् ) मल के समान ( अपः, आ, अपभरत् ) पदार्थ को उठाता है जैसे ( पितरी ) माता-पिता ( पुत्रेभ्यः ) पुत्रों के लिए ( किं स्विप् ) क्या ( उपावतुः ) समीप में चाहे ॥ १० ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है। जो पिता-माता जैसे गीए बछड़े को सुख चाहती दुख से बचाती, वा बहेलिया मास का लेके अनिष्ट को छोड़ें वा वैद्य रोगी के मल को दूर करे जैसे पुत्रों को दुर्गुण से पृथक् कर शिक्षा और विद्यायुक्त करते हैं वे मन्तान के सुख को पाने हैं ॥ १० ॥

**उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वः स्वपस्यया नरः ।**

**अगोहस्य यदमस्तना गृहे तदधेदमभवां नानु गच्छथ ॥११॥**

**पदार्थ—**हे ( नरः ) नेता अग्रगन्ता जनो ! तुम ( उद्वत्स्वया ) अपने को उत्तम काम की इच्छा से ( अस्मै ) इस गवादि पशु के लिए ( निवत्सु ) नीचे और ( उद्वत्सु ) ऊँचे प्रदेशों में ( तृणम् ) काटने योग्य घास को और ( अपः ) जलो का ( अकृणोतना ) उरान्न करो। हे ( ऋमभः ) मेधावी जनो ! तुम ( यत् ) जो ( अगोहस्य ) न लुकाय रखने योग्य के ( गृहे ) घर में वस्तु है ( तत् ) उस को ( न ) न ( अस्तस्मै ) दष्ट करो ( अपः ) इस उत्तम समय में ( इवम् ) इसके ( अनु, पच्छम ) पीछे चलो ॥ ११ ॥

**भावार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि ऊँचे-नीचे स्थलों में पशुओं के रखने के लिए जल और घास प्रादि पदार्थों को रल्ले और अरक्षित धर्मात् गिरे पड़े वा प्रत्यक्ष में बड़े हुए दूसरे के पदार्थों को भी अन्याय से ले लेने की इच्छा कभी न करें। धर्म, विद्या और बुद्धिमान् जनो का सङ्ग सबैव करें ॥ ११ ॥

**समील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वितात्या पितरा व आसतुः ।**

**अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राज्वीत्प्रो तस्मा अन्नवीतन ॥१२॥**

**पदार्थ—**हे विद्याविजनों ! तुम ( समील्य ) मिल मिलता के ( यत् ) जो ( भुवना ) भूमि प्रादि लोक हैं उनको ( पर्यसर्पत ) सब ओर से जानो तब ( वः ) तुम्हारे ( तात्या ) उस समय होनेवाले ( पितरा ) माता-पिता अर्थात् विद्याध्ययन समय के माता-पिता ( वः, स्वित् ) कहीं ( आसतु ) निरन्तर बसें ( यः ) और जो ( वः ) तुम्हारी ( करस्नम् ) भुजा को ( आददे ) पकड़ता है वा जिसको ( अन्नपत ) अपराध हुए पर कोसों ( वः ) जो भाचार्य तुमको ( प्र, अन्नवीत् ) उपदेश सुनावे ( तस्मै ) उसके लिए ( प्रो, अन्नवीतन ) प्रिय वचन बोलो ॥ १२ ॥

**भावार्थ—**जब पढ़ानेवालों के समीप विद्यार्थी आते तब वे यह पूछने योग्य हैं कि तुम कहीं के हो, तुम्हारा निवास कहीं है, तुम्हारे माता-पिता का क्या नाम है, क्या पढ़ना चाहते हो, प्रखण्डित बहुधर्म करोगे वा न करोगे इत्यादि पूछके ही इनको विद्या ग्रहण करने के लिए बहुधर्म की शिक्षा देवें और शिष्यजन पढ़ानेवालों की निन्दा और उनके प्रतिकूल आचरण कभी न करें ॥ १२ ॥

**सुबुध्वासं ऋमवस्तदपृच्छतागौह क इदं नो अबुधुवत् ।**

**चानं वस्तो बोधयितारमन्नवीत्सवत्सर इदमद्या व्यस्यत ॥१३॥**

**पदार्थ—**हे ( सुबुध्वासः ) सोनेवाले ( ऋमभः ) बुद्धिमान् जनो ! तुम जिस काम को ( अबुधुवत् ) पूछो और जिसको ( वि, व्यस्यत ) प्रतिज्ञा करो ( तत्, इवम् ) उस इस काम को ( नः ) हम लोगों को ( वः ) कौन ( अबुधुवत् ) जानावे। हे ( अगोह्य ) न गुप्त रखने योग्य ( वस्तः ) डौपने-छिपानेवाला ( वानम् ) काव्यों में प्रेरणा देने और ( बोधयितारम् ) सुभाषुम विषय जाननेवाले को जैसे जिस विषय को ( अन्नवीत् ) कहे कैसे जैसे उस ( इवम् ) प्रत्यक्ष विषय को ( सवत्सरे ) एक वर्ष में वा ( वः ) वाच तू कह ॥ १३ ॥

**भावार्थ—**बुद्धिमान् जन जिस-जिस विषय को विद्वानों को पूछकर निश्चय करें उस उसको मूल निबुद्धि जन निश्चय नहीं कर सकें, जड़ मन्दमति जन जितना एक सवत्सर में पढ़ता है उतना बुद्धिमान् एक दिन में ग्रहण कर सकता है ॥ १३ ॥

**दिवा यान्ति मरुतो भूम्याभिरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।**

**अग्नियीति वरुणः समुद्रेयुष्मां इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( शवसः ) बलवान् के सन्तान ( नपातः ) पतन नहीं होता जिन का वे विद्वानो तुम जैसे ( मरुतः ) पवन ( विवा ) सूर्यमण्डल के साथ ( याति ) जाते हैं ( अयम् ) यह ( अग्निः ) विजुली रूप अग्नि ( युष्मा ) पृथिवी के साथ और ( वातः ) लोको के बीच का वायु ( अन्तरिक्षेण ) अन्तरिक्ष के साथ ( याति ) जाता है ( वरुणः ) उवान् वायु ( अग्निः ) जल और ( समुद्रेः ) सागरों के साथ ( याति ) जाता है जैसे ( युष्मां ) तुमको ( इच्छन्तः ) चाहते हुए जन जावें ॥ १४ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है। जैसे सूर्य, पवन, भूमि, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष तथा वरुण और जलो का एक साथ निवास है जैसे मनुष्य विद्या और विद्वानों के साथ वास कर नित्य सुखयुक्त और बली होवें ॥ १४ ॥

इस सूक्त में मेधावी के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकतो इकसठवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥



मा नो मित्र इत्यस्य द्वाविंशत्यस्य द्विषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋचिः ।

मित्रावयो लिङ्गोक्ता देवताः । १, २, ६, १०, १७, २० निचत्

त्रिष्टुप्, ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप्; ५ विराट् त्रिष्टुप्, ९, ११,

२१ भुरिक् त्रिष्टुप्, १२ स्वरान् त्रिष्टुप् सङ्गः । ब्रह्मस्वरः । १३,

१४ भुरिक् पङ्क्तिः, १५, १६, २२ स्वरान् पङ्क्तिः; १६

विराट् पङ्क्तिःसङ्गः । पङ्क्त्यम स्वरः । ३ निचुङ्गगती

छन्दः । मित्राव. स्वरः ॥

यद्य एकतो वासठवं सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में जोड़े और विजुली ऊच से व्याप्त जो अग्नि है उस की विद्या का वर्णन करते हैं -

**मा नो मित्रो वरुणो अयमायुरिन्द्रं ऋभुक्षा मरुतः परि रयन् ।**

**यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामीं विदथं वीर्याणि ॥१॥**

**पदार्थ—**ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेहारे हम लोग ( मित्रे ) सप्राप्त में ( यत् ) जिस ( वाजिन ) वेगवान् ( देवजातस्य ) विद्वानों के वा दिव्य गुणों से प्रवृत्त हुए ( सप्तैः ) जोड़े के ( वीर्याणि ) पराक्रमों को ( प्रवक्ष्यामः ) कहेंगे उस ( नः ) हमारे जोड़ों के पराक्रमों को ( मित्र ) मित्र ( वरुण ) श्रेष्ठ ( अयमा ) न्यायाधीश ( आयु ) जाता ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् ( ऋभुक्षा ) बुद्धिमान् और ( मरुतः ) ऋत्विज लोग ( मा, परि, रयन् ) छोड़के मत कहे और उसके अनुकूल उसकी प्रशंसा करें ॥ १ ॥

**भावार्थ—**मनुष्यों को प्रशंसित, बलवान्, अच्छे सीले हुए जोड़े ग्रहण करने चाहिए जिससे सर्वत्र विजय और ऐश्वर्यों को प्राप्त हो ॥ १ ॥

किर उसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है -

**यन्निर्णिजा रेक्शमा प्रावृतस्य राति गृभीतां मुखतो नयन्ति ।**

**सुमाङ्गो मेम्यद्विभरूप इन्द्रावृणोः प्रियमय्येति पार्थः ॥२॥**

**पदार्थ—**( यत् ) जो ( निर्णिजा ) नित्य शुद्ध ( रेक्शमा ) घन से ( प्रावृतस्य ) ढके हुए ( गृभीताम् ) ग्रहण किये ( रातिम् ) देने को ( मुखतः ) मुख से ( यन्ति ) प्राप्त करते अर्थात् मुख से कहते हैं और जो ( मेम्यत् ) प्रजानियों में निरन्तर मारता-पीटता हुआ ( विवक्ष्यन् ) जिस के सब रूप विद्यमान ( सुमाङ्गः ) सुन्दरता से पूछता और ( अयः ) नहीं उत्पन्न होता अर्थात् एक बार पूर्णभाव से विद्या पढ़ बार-बार विद्वता से नहीं उत्पन्न होता वह विद्वान् जन ( इन्द्रावृणोः ) ऐश्वर्यवान् और पुष्टिमान् प्राणियों के ( प्रियम् ) मनोहर ( पार्थः ) जल को ( लब्धेति ) निश्चय से प्राप्त होता है वे सब सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

**भावार्थ—**जो व्याय से संवित किये हुए घन से मुख्य धर्म सम्बन्धी काम करते हैं वे परोपकारी होते हैं ॥ २ ॥

एष छागः पुरो अथैन वाजिनां पूष्णो भागो नीयते विश्वेदेव्यः ।

अभिप्रियं यत्पुरोवाशमर्वाता त्वष्टेदेन सौभवसाय जिन्वति ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस पुरुष ने ( वाजिना ) वेगवान् ( अथैन ) घोड़े के साथ ( एष ) यह प्रत्यक्ष ( विश्वेदेव्यः ) समस्त दिव्य गुणों में उत्तम ( पूष्ण ) पुष्टि का ( भागः ) भाग ( छागः ) छाग ( पुरः ) पहले ( नीयते ) पहुँचाया वा ( यत् ) जो ( त्वष्टा ) उत्तम रूप सिद्ध करनेवाला जन ( सौभवसाय ) सुन्दर धर्मों में प्रसिद्ध धर्म के लिए ( अर्वाता ) विशेष ज्ञान के साथ ( एवम् ) इस ( अभिप्रियम् ) सब धीरे से प्रिय ( पुरोवाशम् ) सुन्दर बनाये हुए धर्म को ( इत् ) ही ( जिन्वति ) प्राप्त होता है वह सुखी होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य घोड़े की पुष्टि के लिए खेरी का दूध उनको पिलाते धीरे अच्छे बनाये हुए धर्म को खाते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

यद्विच्यमृतुशो देवयानं त्रिमानुषाः पर्यन्व नयन्ति ।

अत्रा पूष्णः मथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्वजः ॥४॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( मानुषा ) मनुष्य ( मृतुशः ) बहुत ऋतुओं में ( विच्यम् ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में उत्तम ( देवयानम् ) विद्वानों की यात्रा सिद्ध करनेवाले ( अथमो ) शीघ्रगामी रथ की ( चिः ) तीन बार ( परिचयन्ति ) सब धीरे से प्राप्त होते अर्थात् स्वीकार करते हैं वा जो ( अत्र ) इस जगत् में ( देवेभ्यः ) दिव्य गुणों के लिए ( पूष्णः ) पुष्टि करनेवाले का ( मथमः ) पहला ( भागः ) लेवने योग्य भाग ( प्रतिवेदयन् ) अपने गुण को प्रत्यक्षता से बनाता हुआ ( अजः ) पाने योग्य छाग ( यज्ञम् ) सज्ज करने योग्य व्यवहार को ( एति ) प्राप्त होता है उनको धीरे इस छाग को सब सज्जन बचायोग्य स्वीकारयुक्त करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो समस्त ऋतुओं के सुख सिद्ध करनेवाले यानों को रथ, घोड़े धीरे बकरे आदि पशुओं को बढ़ाकर जगत् का हित सिद्ध करते हैं वे शारीरिक, वाहिक और मानसिक तीनों प्रकार के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

होताध्वयुरावया अभिमिन्यो प्रावग्राम उत शंस्ता सुविमः ।

तेन यज्ञेन स्वरङ्कतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पूणध्वम् ॥५॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( होता ) यज्ञ सिद्ध कराने ( अथमः ) अपने को मष्ट होने की इच्छा करने ( आवयाः ) अच्छे प्रकार मिलने ( अभिमिन्यः ) धर्म को प्रकाशित करने ( प्रावग्रामः ) प्रशंसा को ग्रहण करने ( उत ) धीरे ( शंस्ता ) प्रशंसा करनेवाला ( सुविमः ) सुन्दर बुद्धिमान् विद्वान् है ( तेन ) उससे साथ ( स्विष्टेन ) उत्तम चाहे धीरे ( स्वरङ्कतेन ) सुन्दर पूर्ण किये हुए ( यज्ञेन ) यज्ञकर्म से ( वक्षणाः ) नदियों को तुम ( आ, पूणध्वम् ) अच्छे प्रकार पूर्ण करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्य दुर्गन्ध के निवारण धीरे सुख की उन्नति के लिए यज्ञ का अनुष्ठान कर सर्वत्र देशों में सुगन्धित जलो को वर्षा कर नदियों को परिपूर्ण करें अर्थात् जल से भरें ॥ ५ ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।

ये चार्वते पचनं संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६॥

पदार्थ—( ये ) जो ( यूपव्रस्का ) खम्भे के लिए काष्ठ काटनेवाले ( उत ) धीरे भी ( ये ) जो ( यूपवाहा ) खम्भे को प्राप्त करनेवाले जन ( अश्वयूपाय ) घोड़ों के बाँधने के लिए ( चालम् ) किसी विशेष बल को ( तक्षति ) काटते हैं ( ये, च ) धीरे जो ( अर्चते ) घोड़े के लिए ( पचनम् ) पकाने का ( संभरन्ति ) धारण करते धीरे पुष्टि करते हैं जो ( तेषाम् ) उनके बीच ( उतो ) निश्चय से ( अभिगूर्तिः ) सब धीरे से उद्यमी हैं वह ( न ) हम लोगों को ( इन्वतु ) प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं के बाँधने के लिए काष्ठ के खम्भे वा लूटे बनाते हैं वा जो घोड़ों के रखन को पदार्थ दाना, घास, चारा, बूबसास आदि बनाते हैं वे उद्यमी होकर सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

उप प्रागात्सुमन्त्रेऽध्याये मन्त्रं देवानामाशा उप धीतपृष्ठः ।

अन्वेन विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चक्रमा सुबन्धुम् ॥७॥

पदार्थ—जिसने ( देवानाम् ) विद्वानों का धीरे ( मे ) मेरे ( जन्म ) विज्ञान धीरे ( प्रागात् ) प्राप्ति की इच्छाओं को ( उप, अध्याये ) समीप होकर धारण किया वा जो ( सुबन्धुः ) सुन्दर मानता ( धीतपृष्ठः ) सिद्धान्तों में व्याप्त हुआ विद्वान् जन उक्त ज्ञान धीरे उक्त आशाओं को ( उप, प्र, अगात् ) समीप होकर अच्छे प्रकार प्राप्त हो वा जो ( चक्रमा ) वेदार्थज्ञानवाले ( विप्राः ) धीरे-बुद्धि जन ( सुबन्धुम् ) जिसके सुन्दर भाई हैं उसको ( जन्तु, मधन्ति ) अनुमोदित करते हैं ( एवम् ) इस सुबन्धु सज्जन को उक्त ( देवानाम् ) व्याप्त साक्षात् कृतज्ञानसिद्धान्त विद्वान् जनों को ( पुष्टे ) पुष्टियुक्त व्यवहार में हम लोग ( चक्रमा ) करें अर्थात् नियत करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के सिद्धान्त किये हुए विज्ञान का धारण कर सवन्धुत्व हो विद्वान् होते हैं वे शरीर और आत्मा की पुष्टि से युक्त होते हैं ॥ ७ ॥

यद्वाजिनो दामं सन्दानमर्वातो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।

यद्वा धास्य प्रभृतमास्येऽतृणं सर्वा ता ते अपि देवेभ्यस्तु ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( धास्य ) इस ( अर्वातः ) शीघ्र दूधरे-स्थान की पहुँचानेवाले ( वाजिन ) बलवान् घोड़े की ( यत् ) जो ( संदानम् ) अच्छे प्रकार दी जाती ( दाम ) धीरे घोड़ों को दान करती अर्थात् उनके बल को दाबती हुई लगाम है ( या ) जो ( शीर्षण्या ) शिर में उत्तम ( रशना ) व्याप्त होनेवाली ( रज्जु ) रस्सी है ( यत्, वा ) अथवा जो ( धास्य, च ) इसी के ( धास्ये ) मुख में ( तृणम् ) तृणबीरुष घास ( प्रभृतम् ) अच्छे प्रकार भरी ( अस्तु ) हो ( ता ) वे ( सर्वा ) समस्त ( ते ) तुम्हारे पदार्थ ( देवेभ्यः ) विद्वानों में ( अपि ) भी हों ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो घोड़ों को सुगन्धित, अच्छे इन्ध्रिय दमन करनेवाले उत्तम गहन से युक्त धीरे पुष्ट कर इनसे कार्यों को सिद्ध करते हैं वे समस्त दिव्य आदि व्यवहारों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ ८ ॥

यदश्वस्थ क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।

यदस्तेयोः शमितुर्यमखेषु सर्वा ता ते अपि देवेभ्यस्तु ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( क्रविषः ) कमण्ठील अर्थात् बाल से ढेर रखनेवाले ( अश्वस्थ ) घोड़े का ( यत् ) जिस ( रिप्तम् ) लिये हुए मन को ( मक्षिका ) लम्ब करती अर्थात् भिनभिमाती हुई माखी ( मक्ष ) काटी है ( वा ) अथवा ( यत् ) जो ( स्वधितौ ) आप धारण किये हुए ( स्वरौ ) हीसना धीरे कष्ट से चिल्लाता है ( शमितु ) यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले के ( हस्तयोः ) हाथों में ( यत् ) जो है धीरे ( यत् ) जो ( मखेषु ) जिनमें आकाश नहीं विद्यमान है उन मखों में ( अस्ति ) है ( ता ) वे ( सर्वा ) समस्त पदार्थ ( ते ) तुम्हारे हो तथा यह सब ( देवेभ्यः ) विद्वानों में ( अपि ) भी ( अस्तु ) हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मृत्यों को छोड़े दुर्गन्ध लेप रहित, सुष्ठ माखी धीरे शीघ्र से रहित राखने चाहिए अपने हाथ तथा रज्जु आदि से उत्तम नियम कर अपने इच्छानुकूल बाल बलवाना चाहिए ऐसा करने से घोड़े उत्तम काम करते हैं ॥ ९ ॥

यद्वर्ध्वमुदरस्यापवाति य आमस्यं क्रविषो गन्धो अस्ति ।

सुकृता तच्छमितारः कुण्वन्तु मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥१०॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( शमितारः ) प्राप्त हुए धर्म को सिद्ध करने, बनाने वाले आप ( यः ) जो ( उदरस्य ) उदर में ठहरा हुआ ( आमस्यं ) कच्चे ( क्रविषः ) क्रम से निकलने योग्य धर्म का ( गन्धः ) गन्ध ( अपवाति ) मगानवायु के द्वारा जाता, निकलता है वा ( यत् ) जो ( अश्वस्थम् ) ताबने के योग्य ( अस्ति ) है ( यत् ) उसकी ( कुण्वन्तु ) काटी ( उत ) धीरे ( मेधम् ) प्राप्त हुए ( शृतपाकम् ) परिपक्व पदार्थ को ( पचन्तु ) पकाओ ऐसे उसे सिद्ध कर ( सुकृता ) सुन्दरता से बनाये हुए पदार्थों को खाओ ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य उदररोग निवारण के लिए अच्छे बनाये धर्म धीरे घोषणियों को खाते हैं वे सुखी होते हैं ॥ १० ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।

मा तज्जुष्यामा श्रिपन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशवृष्यो रातमस्तु ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( निहतस्य ) निरन्तर चलानेवाला हुए ( ते ) तुम्हारे ( अग्निना ) कोषाग्नि से ( पच्यमानात् ) तपाये हुए ( गात्रात् ) शरीर से ( यत् ) जो शस्त्र ( अग्नि, शूलम् ) लखके शूल के समान पीडाकारक शत्रु के सम्मुख ( अश्व, वावति ) चलाया जाता है ( यत् ) वह ( जुष्याम् ) भूमि में ( मा, आ, निवत् ) न गिरे वा लगे धीरे वह ( तृणेषु ) घासादि में ( मा ) मत धारित हो किन्तु ( उशवृष्यः ) आपके पदार्थों की चाहना करनेवाले ( देवेभ्यः ) दिव्य गुणी शत्रु के लिए ( रातम् ) दिया ( अस्तु ) हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—बलिष्ठ विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि लगाम में शस्त्र चलाने के समय विचारपूर्वक ही शस्त्र चलावे जिससे क्रोधपूर्वक चला शस्त्र भूमि आदि में न पड़े किन्तु शत्रुओं को मारनेवाला हो ॥ ११ ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरमिर्निरेति ।

ये चार्वतो मांसमिहामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

पदार्थ—( ये ) जो लोग ( वाजिनम् ) जिसमें बहुत प्रत्यादि पदार्थ विद्यमान उस भोजन की ( पक्वं ) पकाने से अच्छा बना हुआ ( परिपश्यन्ति ) सब धीरे से देखते हैं वा ( ये ) जो ( ईम् ) बल को पका ( वाजः ) कहते हैं ( ये, च ) धीरे जो ( अर्चते ) प्राप्त हुए प्राणी के ( वासिर्मानम् ) बल के न प्राप्त होने को ( उतो ) सर्व-विशेष से ( उपासते ) सेवा करते हैं ( तेषाम् ) उपासकों ( अभिगूर्तिः ) उद्यम धीरे ( सुरमिः ) सुयुग्म ( नः ) हम लोगों की ( इन्वतु )

व्याप्त का प्राप्त हो । हे विद्वन् ! तू ( इति ) इस प्रकार अर्थात् मांसादि अन्नस्य के त्याग से रोगों को ( निर्हृत् ) निरन्तर दूर कर ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो लोग अन्न और जल को शुद्ध करना, पकाना, उसका भोजन करना जानते और मांस को छोड़कर भोजन करते वे ब्रह्मी होते हैं ॥ १२ ॥

यन्नीलंशं मांसपचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।

ऊष्मणापिधानां चरुणामङ्गाः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥१३॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( मांसपचन्याः ) मांसाहारी जिसमें मांस पकाते हैं उस ( उखाया ) पाक सिद्ध करनेवाली बटलोई का ( नीलपत्रम् ) निरन्तर निरीक्षण करते, उसमें वैमनस्य कर ( या ) जो ( यूष्ण ) रस के ( आसेचनानि ) अच्छे प्रकार सेवन के आधार वा ( पात्राणि ) पात्र वा ( ऊष्मणा ) गरमपन उत्तम पदार्थ ( अविधाना ) बटलोईयो के मुख ढाँपने की तकनियों ( चरुणाम् ) अन्न आदि के पकाने के आधार बटलोई कड़ाही आदि बर्तनों के ( अङ्गाः ) लक्षण हैं उनको अच्छे जानसे और ( आश्वम् ) घोड़े को ( परिभूषन्ति ) सुशोभित करते हैं वे ( सूनाः ) प्रत्येक काम में प्रेरित होते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य मांसादि के पकाने के दोष से रहित बटलोई के बरने, जल आदि उसमें छोड़ने अग्नि को जलाने और उसको ढकनो से ढाँपने को जानते हैं वे पाकविद्या में कुशल होते हैं । जो घोड़े को अच्छा सिखा उनको सुशोभित कर चलाते हैं वे तुल से मार्ग को जाते हैं ॥ १३ ॥

निक्रमयं निषर्दनं विवर्तनं यच्च पदवीशमर्वतः ।

यच्च पयो यच्च घासि जयाम सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

पदार्थ—हे घोड़े के मिलावेवाले ! ( अर्धतः ) शीघ्र जानेवाले घोड़े का ( यत् ) जो ( निक्रमयम् ) निश्चित चलना ( निषर्दनम् ) निश्चित बैठना ( विवर्तनम् ) नाना प्रकार चलाना-फिराना ( पदवीशम्, च ) और पिछाड़ी बाँधना तथा उसको उठाना है और यह घोड़ा ( यत्, च ) जो ( पयो ) पीता ( यत्, घासि, च ) और जो घास को ( जयाम् ) खाता है ( ता ) वे ( सर्वा ) समस्त उक्त काम ( ते ) तुम्हारे ही और समस्त ( देवेषु ) विद्वानों में ( अपि ) भी ( अस्तु ) हो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जैसे सुन्दर सिखाये हुए घोड़े सुशील, अच्छी चाल चलनेवाले होते हैं वैसे विद्वानों की गिना पाये हुए जन सम्य होते हैं । जैसे घोड़े आहार भर पी, आके पकाते हैं वैसे विचक्षणबुद्धि विद्या से तीव्र पुरुष भी हों ॥ १४ ॥

मा त्वाऽग्निर्वैन्योद्धूयमग्निर्मौखा भ्राजन्त्यभि विक्त्र जघ्निः ।

इष्टं वीतमभिगृह्य वपदकुत तं देवासः प्रति गृह्णन्त्यश्वम् ॥१५॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस ( इष्टम् ) इष्ट अर्थात् जिससे यज्ञ वा सङ्ग किया जाता ( वपदकुतम् ) जो क्रिया से सिद्ध किये हुए ( वीतम् ) व्याप्त होनेवाले ( अभिगृह्यन् ) सब ओर से उधमी ( अश्वम् ) घोड़े के समान शीघ्र पहुँचनेवाले बिजुली रूप अग्नि को ( देवासः ) विद्वान् जन ( त्वा ) तुम्हें ( प्रति, गृह्णन्ति ) प्रतीति से ग्रहण करते हैं ( तम् ) उसको तुम ग्रहण करो सो ( वृष्यन्ति ) धूम में गन्ध रखनेवाला ( अग्नि ) अग्नि ( मा, ध्वन्योत् ) मत ध्वनि से मत बहुत शब्द से और ( भ्राजन्ती ) प्रकाशमान ( उखा ) अन्न पकाने की बटलोई ( जघ्निः ) अन्न गन्ध लेती हुई अर्थात् जिसके भीतर से भाप उठ लौटके उसी में जाती वह ( मा, अभि, विक्त्र ) मत अन्न को अपने में से सब ओर अलग करे, उगले ॥१५॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि वा घोड़े से रथों को चलाते हैं वे लक्ष्मी से प्रकाशमान होते हैं जो अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमते हैं वे रोग और कष्ट के शब्दों से पीड़्यमान नहीं होते हैं ॥१५॥

यदश्वाय वासं उपस्तृणन्त्यधीवास या हिरण्यान्यस्मै ।

संदानमर्वन्त पदवीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१६॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन ( अस्मै ) इस ( अश्वाय ) घोड़े के लिए ( यत् ) जिस ( वासः ) घोड़ने के बस्त्र को ( उपस्तृणन्ति ) उठाते वा जिस ( अधीवासम् ) ऐसे आरक्षामा आदि को कि जिसके ऊपर ढाँपने का बस्त्र पड़ता वा ( संवासा ) समीचीन जिससे वायु बनता उस यज्ञ आदि को ( अर्धमस्तम् ) प्राप्त करते हुए ( पदवीशम् ) प्राप्त पदार्थ को बाँटने, छिन्न-भिन्न करनेवाले अग्नि को उठाते ढाँपते, कलाहरी में लगाते हैं और उससे ( वा ) जिन ( प्रिया ) प्रिय, मनोहर ( हिरण्यानि ) प्रकाशमान पदार्थों को ( देवेभ्यः ) विद्वानों में ( या, यामयन्ति ) बिस्तारते हैं वे उन पदार्थों को पाकर भीमान् होते हैं ॥१६॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बिजुली आदि रूपवाले अग्नि के उपयोग करते और उसको बढ़ाने की जाने तो बहुत सुखों को प्राप्त हों ॥१६॥

यसै सादे महसा शुकृतस्य पाण्य्या वा कश्या वा तुतोद ।

सुखेव ता हविषीं अघ्वरेषु सर्वा ता ते अक्षणा सुदयामि ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यत् ) जो ( ते ) तेरे ( सादे ) स्थित होने में ( महसा ) अत्यन्त बल से ( शुकृतस्य ) शीघ्र उत्पन्न किये हुए पदार्थ के ( पाण्य्या ) छिनेवाले पदार्थ से ( वा ) वा ( कश्या ) जिससे प्रेरणा दी जाती उस कोड़े से घोड़े को ( तुतोद ) प्रेरणा देवे ( वा ) वा ( अघ्वरेषु ) न नष्ट करने योग्य यज्ञों में ( हविष ) होमने योग्य वस्तु के ( सुखेव ) जैसे सुखा से काम बनें वैसे ( ता ) उन कामों को प्रेरणा देवे ( ता ) उन ( सर्वा ) सब ( ते ) तेरे कामों को ( अक्षणा ) बन से में ( सुदयामि ) अलग-अलग करता हूँ ॥१७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपसालकार है । जैसे विद्वान् जन कोड़े वा बेंत से घोड़े को, पनेड़ी से बैलो को, अकुश से हाथी को अच्छी ताड़ना दे उनको शीघ्र चलाते हैं वैसे ही कलामन्त्रों से अग्नि को अच्छे प्रकार चलाकर विमान आदि यानों का शीघ्र चलावे ॥१७॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वह्नीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।

अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परंप्पररनुषुष्या वि शंस्त ॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वज्जन ! तुम ( देवबन्धोः ) प्रकाशमान पृथिव्यादिकों के सम्बन्धी ( वाजिनः ) वेगवाने ( अश्वस्य ) शीघ्रगामी अग्नि की जो ( स्वधितिः ) बिजुली ( समेति ) अच्छे प्रकार जाती है उसको और ( चतुस्त्रिंशत् ) चौतीस प्रकार की ( वह्नी ) टेढ़ी-मेढ़ी गतियों को ( वि, शंस्त ) तड़काधो अर्थात् कलों को ताड़ना व उन गतियों को निकालो तथा ( परंप्पर ) प्रत्येक समस्थल पर ( अनुषुष्य ) अनुकूलता से कलामन्त्रों का शब्द कराकर ( अच्छिद्रा ) दो टूक होने, छिन्न-भिन्न होने से रहित ( गात्रा ) अङ्ग और ( वयुना ) उत्तम ज्ञान, कर्मों को ( कृणोत ) करो ॥१८॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस कारण से बिजुली उत्पन्न होती है वह कारण सब पृथिव्यादिकों में व्याप्त है । इससे बिजुली की ताड़ना आदि से किसी का भग-भग न हो उतनी बिजुली काम में लाओ । जो अग्नि के गुणों को जानकर यथा-योग्य क्रिया से उस अग्नि का प्रयोग किया जाए तो कौन काम न सिद्ध होने योग्य हो अर्थात् सभी यथेष्ट काम बनें ॥१८॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

एकस्त्वहुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।

या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यमौ ॥१९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( ते ) तेरी विद्या और क्रिया से सिद्ध किये हुए ( स्वष्ट ) बिजुलीरूप ( अश्वस्य ) व्याप्त अग्नि का ( एक ) एक ( ऋतु ) यमन्तारि ऋतु ( विशस्ता ) छिन्न-भिन्न करनेवाला अर्थात् भिन्न-भिन्न पदार्थों में लगानेवाला और ( द्वा ) दो ( यन्तारा ) उसको नियम में रखनेवाले ( भवतः ) होते हैं ( तथा ) उसी प्रकार से ( या ) जो ( गात्राणाम् ) शरीरों के ( ऋतुषु ) ऋतु-ऋतु में काम उनको और ( पिण्डानाम् ) अनेक पदार्थों में सघातों के जो-जो अङ्ग हैं ( ताता ) उन-उनका काम में प्रयोग में ( कृणोमि ) कराता हूँ और ( अमौ ) अग्नि में ( प्र, जुहोमि ) होमता हूँ ॥१९॥

भाषार्थ—जो सब पदार्थों के छिन्न भिन्न करनेवाले ऋतु के अनुकूल पाये हुए पदार्थों में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि के काम और सृष्टिक्रम नियम करनेवालों और प्रशंसित गुणों को जान अभीष्ट कामों को सिद्ध करते हुए मोटे-मोटे लकड़ आदि पदार्थों को आग में छोड़ बहुत कामों को सिद्ध करें वे शिल्पविद्या को जानने-वाने कैसे न हों ? ॥१९॥

मा त्वा तपस्त्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तव आ तिष्ठिपसे ।

मा तं गृधुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( ते ) तेरा ( त्रिय ) मनोहर ( आत्मा ) आत्मा ( अपियन्तम् ) मरते हुए ( त्वा ) तुम्हें ( मा, तपत् ) मत कष्ट देवे और ( स्वधितिः ) अश्व के समान बिजुली तेरे ( तव ) शरीरों को ( या, या, तिष्ठिपत् ) मत डेर करे तथा ( गृधु ) अभिकाङ्क्षा करनेवाला प्राणी ( असिना ) सलवार से ( ते ) तेरे ( अविशस्ता ) न मारे हुए अर्थात् निर्धायक और ( छिद्रा ) छिद्र इन्द्रिय सहित ( गात्राणि ) अंगों को ( अतिहाय ) अतीव छोड़ ( मिथू ) परस्पर एकता ( मा, क ) मत करे ॥२०॥

भाषार्थ—जो मनुष्य योगाभ्यास करते हैं वे मृत्यु रोग से नहीं पीड़ित होते और उनको जीवन में रोग भी दुःखी नहीं करते हैं ॥२०॥

न वा उ एतन्त्रियसे न रियसि देवा इदं पि पथिभिः सुगेभिः ।

हरी ते युञ्ज्रा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी घुरि रासमस्य ॥२१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! यदि जो ( ते ) तुम्हारे मन वा आत्मा यथायोग्य करने में ( युञ्ज्रा ) युक्त ( हरी ) बारण और भाकथंश गुणवाले ( पृषती ) वा सीचने वाले जल का गुण रखते हुए ( अभूताम् ) होते हैं उनका जो ( उपास्थात् ) उपस्थान करे वा ( रासमस्य ) शब्द करते हुए रथ आदि की ( घुरि ) घुरी में ( वाजी ) वेग तुल्य हो तो ( एतत् ) इस उक्त रूप को पाकर ( न, न, त्रियसे ) नहीं मरते



( न, उ ) अथवा तो न ( रिष्यति ) किसी को मारते हो धीर ( सुनेभि ) सुख-पूर्वक श्रमसे जाते हैं उन ( पथिभि ) मार्गों से ( इत् ) ही ( बेबात् ) विद्वानों का दिव्य पदार्थों को ( एभि ) प्राप्त होते हैं ॥२१॥

भाषार्थ—जो योगाभ्यास से समाहित चित्त दिव्य योगी जनों को अच्छे प्रकार प्राप्त हो धर्मयुक्त भाग्य में चलते हुए परमात्मा में अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे मोक्ष पाये हुए होते हैं ॥२१॥

सुगन्धं नो वाजी स्वर्णं पुंसः पुत्रो उत विश्वापुषं रयिम् ।

अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनता हविष्मान् ॥२२॥

पदार्थ—जैसे यह ( वाजी ) वेगवान् अग्नि ( नः ) हमारे ( सुगन्धम् ) सुन्दर गोम्रो में हुए पदार्थ जिसमें है उसको ( स्वर्णम् ) सुन्दर घोड़े में उत्पन्न हुए वा ( पुस ) पुरुषस्ववाले ( पुत्रो ) पुत्रो ( उत ) और ( विश्वापुषम् ) सबकी पुष्टि देनेवाले ( रयिम् ) धन की ( कृणोतु ) करे सो ( अदिति ) अक्षयित न नाश को प्राप्त हुआ ( न ) हमको ( अनागास्त्वं ) पापपने में रहित ( अश्वम् ) राज्य को प्राप्त करे सो ( हविष्मान् ) मिले है होम योग्य पदार्थ जिसमें वह ( अश्व ) शक्तिशील अग्नि ( न ) हम लोगों को ( वनताम् ) सेवे वैसे हम लोग इसको सिद्ध करें ॥२२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो पृथिवी धादि की विद्या से गौ, घोड़े और पुरुष सन्तानों की पूरी पुष्टि और धन को उचित करके श्री भगामी अथर्वरूप अग्नि की विद्या से राज्य को बढ़ाके निष्पाप होके सुखी हो वे धीरों को भी ऐसे ही करें ॥२२॥

इस सूक्त में अथर्वरूप अग्नि की विद्या का प्रतिपादन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सर्गवि है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ बासठवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



यवकन्ध इति त्रयोदशार्चस्य त्रिविधयुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋचि ।

अश्वोऽग्निर्वेत्ता १, ६, ७ १३ त्रिविधं, २ धुरिक् त्रिविधं, ३, ८

बिराट् त्रिविधं, ५, ९, ११ त्रिविधं त्रिविधं, १२ अश्वत्थम् । अश्वत्थम् स्वर ।

४, १०, १२ धुरिक् पञ्चविधं, १३ अश्वत्थम् स्वर ॥

अथ एकसौ तिरैतद्वै सूक्त का आरम्भ है । उसके आदि से विद्वान् और विजुली के गुणों को कहते हैं—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।

श्वेनस्य पसा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं तं अर्चन् ॥१॥

पदार्थ—हे ( अर्चन् ) विज्ञानवान् विद्वन् ! ( यत् ) जिस कारण तू ( समुद्रात् ) अन्तरिक्ष से ( उत ) अथ ( वा ) वा ( पुरीषात् ) पूर्ण कारण से ( उद्यन् ) उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के तुल्य ( जायमान ) उत्पन्न होता ( अश्वम् ) पहले ( अश्वम् ) शब्द करता है जिस ( ते ) तेरा ( श्वेनस्य ) बाज के ( पसा ) पक्षों के समान ( हरिणस्य ) हरिण के ( बाहू ) बाधा करनेवाली भुजा के तुल्य ( उपस्तुत्यम् ) समीप से प्रशंसा के योग्य ( महि, जातम् ) बड़ा उत्पन्न हुआ काम साधक अग्नि है सो सबको सत्कार करने योग्य है ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से विद्याभो की पढते हैं वे सूर्य के समान प्रकाशमान, बाज के समान वेगवान् और हरिण के समान कूदते हुए प्रशंसित होते हैं ॥१॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एषां प्रथमो अर्ध्यतिष्ठत् ।

गन्धर्वो अस्य रश्नामगृष्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥२॥

पदार्थ—हे ( वसव ) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए सज्जनों ! तुम जिस ( यमेन ) नियमकर्ता वायु से ( वसम् ) दिये हुए ( एषम् ) इस पूर्वोक्त प्रशंसित अग्नि को ( त्रित ) अनेकों पदार्थों वा अनेकों व्यवहारों को करनेवाला ( इन्द्र ) विजुलीरूप अग्नि ( आयुनक् ) शिल्प कामों में नियुक्त करे ( प्रथम ) वा प्रख्यातिमान् पुरुष ( एनम् ) इस उक्त प्रशंसित अग्नि का ( अर्ध्यतिष्ठत् ) अधिष्ठाना ही वा ( गन्धर्व ) पृथिवी को धारण करनेवाला वायु ( अस्य ) इसकी ( रश्नाम् ) स्नेह किया को और ( सूरात् ) सूर्य से ( अश्वम् ) श्री भगवान् करानेवाले अग्नि को ( गृष्णात् ) ग्रहण करे उसको ( निरतष्ट ) निरन्तर काम में लाओ ॥२॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश से पाई हुई विद्या को ग्रहण कर विजुली से उत्पन्न हुए कारण से फैले, वायु से धारण किये, सूर्य से प्रकट हुए, श्री भगामी अग्नि को प्रयोजन में लाते हैं वे दरिद्रपन के नाश करनेवाले होते हैं ॥२॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्चन्सि त्रितो गुह्यं वनेन ।

असि सोमैव समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( यम ) नियम का करनेवाला ( असि ) है ( आदित्यः ) अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठ होनेवाला सूर्यरूप ( असि ) है ( अर्चन् ) सन्नैव प्राप्त है ( गुह्यम् ) गुप्त करने योग्य ( वनेन ) शील से ( त्रित ) अच्छे प्रकार व्यवहारों का करनेवाला ( असि ) है ( सोमैव ) अन्नमा वा घोषधि गण से ( समया ) समीप में ( विपृक्त ) अपने रूप से अलग ( असि ) है ( ते ) उस अग्नि के ( दिवि ) दिव्य पदार्थ में ( त्रीणि ) तीन ( बन्धनानि ) प्रयोजन अगले लोगों ने ( आहु ) कहे हैं उस को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो गृह अग्नि पृथिव्यादि पदार्थों में वायु और घोषधियों में प्राप्त है जिस के पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य में बन्धन है उस का सब मनुष्य जानें ॥ ३ ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।

उतेष्व मे वरुणश्छन्दस्पर्षम्यत्रां त आहुः परमं जनित्रम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( अर्चन् ) विशेष ज्ञानवाले सज्जन ! ( यम् ) जहाँ ( ते ) तेरा ( परमम् ) उत्तम ( जनित्रम् ) जन्म ( आहु ) कहते हैं वहाँ मेरा भी उत्तम जन्म है ( वरुण ) श्रेष्ठ तू जैसे ( छन्दस् ) बलवान् होता है वैसे मैं बलवान् होता हूँ जैसे ( ते ) तेरे ( त्रीणि ) तीन ( अन्तः ) भीतर ( समुद्रे ) अन्तरिक्ष में ( त्रीणि ) तीन ( अप्सु ) जलो में ( त्रीणि ) तीन ( दिवि ) प्रकाशमान अग्नि में भी ( बन्धनानि ) बन्धन ( आहुः ) अगले जनों ने कहे हैं ( उतेष्व ) उतों के समान ( मे ) मेरे भी हैं ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे अग्नि के कारण सूक्ष्म और स्थूल रूप है वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के भी हैं वैसे सब उत्पन्न हुए पदार्थों के तीन स्वरूप हैं । हे विद्वन् ! जैसे तुम्हारा विद्या जन्म उत्तम है वैसे मेरा भी हो ॥ ४ ॥

इमा तै वाजिन्वमार्जैरानामा शफानां सनितुर्निधाना ।

अत्रा ते मद्रा रश्ना अपश्यस्युतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥५॥

पदार्थ—हे ( वाजिन् ) विज्ञानवान् सज्जन ! जो ( इमा ) ये ( ते ) आप के ( शफानाम् ) कस्याप को देनेवाले व्यवहारों के ( अश्वमार्जैरानाम् ) शोषन वा जो ( इमा ) ये ( सनितु ) अच्छे प्रकार विभाग करते हुए आपके ( निधाना ) पदार्थों के स्थापन करते हैं ( या ) जो ( ते ) आप के ( अतस्य ) सत्य कारण के ( मद्रा ) सेवन और ( रश्नाः ) स्थाव देने योग्य पदार्थों को ( गोपा ) रक्षा करनेवाले ( अभिरक्षन्ति ) सब ओर से पालते हैं उन सब पदार्थों को ( अत्र ) यहाँ मैं ( अपश्यस् ) देखूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अनुक्रम अर्थात् एक के पीछे एक, एक के पीछे एक ऐसे क्रम से समस्त पदार्थों के कारण और सयोग को जानते हैं वे पदार्थवेत्ता होते हैं ॥५॥

आत्मानं ते मनसारादज्ञानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।

शिरों अपश्यं पथिभिः सुमेभिररेणुभिर्जहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं ( ते ) तेरे ( आत्मानम् ) सब के अधिष्ठाता आत्मा को ( मनसा ) विज्ञान से ( आरात् ) दूर से वा निकट से ( अपश्यम् ) देखूँ वैसे तू मेरे आत्मा को वक्ष जैसे मैं तेरे ( अत्र ) पालने को वा ( पतत्रि ) गिरने के स्वभाव को और ( शिर ) जो सेवन किया जाता उस शिर को देखूँ वैसे तू मेरे उक्त पदार्थ को देख जैसे ( अरेणुभिः ) धूल से रहित ( सुमेभिः ) सुख से जिनमें जाते उन ( पथिभिः ) मार्गों से ( जहमानम् ) उत्तम यत्न करते ( दिवा ) अन्तरिक्ष में ( पतयन्तम् ) जाते हुए ( पतङ्गम् ) प्रत्येक स्थान में पहुँचनेवाले अग्नि-रूप जोड़े को ( अज्ञानाम् ) देखूँ वैसे तू भी देख ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो अपने वा पराये आत्मा के जाननेवाले विज्ञान से उत्पन्न कार्यों की परीक्षा द्वारा कारण गुणों को जानते हैं वे सुख से विद्वान् होते हैं जो विन बड़े, विन घूल के सयोग अन्तरिक्ष में अग्नि धादि पदार्थों के योग से विमानादिकों को चलाने हैं वे दूर देश को भी शीघ्र जाने को योग्य होते हैं ॥ ६ ॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।

यदा ते मर्तो अनु भोगमानकादिद्र्यसिष्ठ औषधीरजीगः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यदा ) जब ( प्रसिष्ठ ) अतीव जानेवाला ( मर्त्त ) मनुष्य ( अनु, भोगम् ) अनुकूल भोग को ( आनन्द ) प्राप्त होता है तब ( आत्, इत् ) उसी समय ( औषधीः ) यथावि घोषधियों को ( अजीगः ) निरन्तर प्राप्त हो जैसे ( अत्र ) इस विद्या और योगाभ्यास व्यवहार में मैं ( ते ) तुम्हारे ( जिगीषमाणम् ) जीतने की इच्छा करनेवाले ( उत्तमम् ) उत्तम ( रूपम् ) रूप को ( आ, अपश्यम् ) अच्छे प्रकार देखूँ और ( गोः ) पृथिवी के ( पदे ) पाने योग्य स्थान में ( ते ) आप के ( इवः ) घनादिकों को प्राप्त होऊँ वैसे आप भी ऐसा विधान कर इस उक्त व्यवहारादि को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—सद्योगी पुरुष ही को अच्छे-अच्छे पदार्थ भोग प्राप्त होते हैं किन्तु धालस्य करनेवाले को नहीं, जो मन्त्र के साथ पदार्थविद्या का ग्रहण करते हैं वे अग्नि उत्तम प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्योर्ध्वं अनु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।

अनु द्वातास्तव सरूपमीधुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥८॥

पदार्थ—हे (अवन्) जोड़े के समान वर्तमान ! (स्वा) तेरे (अनु) पीछे (रथः) विमानादि रथ फिर (अनु) पीछे (अवन्) सरण धर्म रखनेवाला मनुष्य फिर (अनु) पीछे (गन्धः) गीर्ण धीर (कमीलान्) कामना करते हुए सज्जनों को (अनु) पीछे (अग) देखवें तथा (आस्तात्) सत्य आचरणों में प्रसिद्ध (देवाः) विद्वान् जन (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम को (अनु, अनिरे) अनुकूलता से मित्र करते हैं वे उक्त विद्वान् (तव) तेरी (सख्यम्) मित्रता वा मित्र के काम को (अनु, ईदुः) अनुकूलता से प्राप्त होंगे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे अग्नि के अनुकूल विमानादि यानों को मनुष्य प्राप्त होते हैं वैसे अध्यापक धीर उपदेशक के अनुकूल विज्ञान को प्राप्त होते हैं जो विद्वानों की मित्र करते हैं वे सत्याचरणीय धीर पराक्रमवान् होते हैं ॥ ८ ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयं अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।

देवा इदस्य हविरग्रमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ऐसा है कि (हिरण्यशृङ्गः) जिस के तेजःप्रकाश शृङ्गों के समान हैं तथा जिस (अस्य) इस विजुलीरूप अग्नि के (मनोजवाः) यन के समान वेगवाले (अव) प्राप्तिसाधक वायु (पादा) जिन से चरें उन पैरों के समान हैं वह (अवर) एक निराला (इन्द्र) सूर्य (आसीत्) है धीर (य) जो (प्रथमः) विज्यात (अर्वन्तम्) वेगवाले अथवा अग्नि का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता होता जिस (अस्य) इसके सम्बन्ध में (हविरग्रम्) जाने योग्य होने के पदार्थ (इत्) ही को (देवाः) विद्वान् वा भूमि आदि तैत्तिष देव (आयन्) प्राप्त हैं वह बहुतां में व्याप्त होनेवाला विजुली के समान अग्नि है ऐसा जानो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस जगत् में तीन प्रकार का अग्नि है, एक प्रति सूक्ष्म जो कारण रूप कहाता दूसरा वह जो सूक्ष्म भूतिमान् पदार्थों में व्याप्त होनेवाला और तीसरा स्थूल सूर्यादि स्वरूपवाला जो इस को गुण, कर्म, स्वभाव से जान कर इस का अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ९ ॥

ईमान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शुरणासो दिव्यासो अत्याः ।

इंसाइव श्रेणिशो यतन्ते यदासिषुर्दिव्यमज्ममन्वाः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यत्) जो (सिलिकमध्यमासः) स्थान में प्रसिद्ध हुए (ईमान्तासः) कम्पन जिन का अन्त (शुरणासः) हिसक अर्थात् कला-यन्त्र को प्रबलता से ताड़ना देते हुए प्रकाशमान (दिव्यासः) दिव्यगुण, कर्म, स्वभाववाले (अस्याः) निरन्तर जानेवाले (अव्याः) शीघ्र जानेवाले अग्न्यादि रूप जोड़े (इंसाइव) हमों के समान (श्रेणिशः) पङ्क्ति-सी किये हुए वर्तमान (सं, यतन्ते) अच्छा प्रयत्न कराते हैं और (दिव्यम्) अन्तरिक्ष में हुए (अज्मम्) मार्ग को (आसिषु) व्याप्त होते हैं उन वायु, अग्नि और जलादिकों को कार्यों में अच्छे प्रकार लगाओ ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो शिलिकादि यन्त्रों से अर्थात् जिन में कोठे-दर-कोठे कलाओं के होते हैं उन यन्त्रों से विजुली आदि उत्पन्न कर और विमान आदि यानों में उन का सप्रयोग कर कार्यसिद्धि को करते हैं वे मनुष्य बड़ी भारी लक्ष्मी को पाते हैं ॥ १० ॥

तव शरीरं पययिष्वर्बन्तं चितं वार्तइव धर्जीमान् ।

तव शृङ्गाणि विष्टिता पुरुषार्ण्येषु जर्जुराणा चरन्ति ॥११॥

पदार्थ—हे (अवन्) गमनशील जोड़े के समान वर्तान् रखनेवाले ! जैसे (पययिष्वत्) गमनशील विमान आदि यान वा (तव) तेरा (शरीरम्) शरीर वा (धर्जीमान्) गतिवाला (वार्तइव) पवन के समान तव तेरा (चितम्) चित्त वा (पुरुषा) बहुत (अरव्येषु) वनों में (विष्टिता) विशेषता से ठहरे हुए (जर्जुराणा) अत्यन्त पुष्ट (शृङ्गाणि) सींगों के तुल्य ऊँचे वा उत्कृष्ट अत्युत्तम काम अग्नि से (चरन्ति) चलत हैं वैसे (तव) तेरे इन्द्रिय धीर प्राण वर्तमान हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जिन्हों से चलाई हुई विजुली मन के समान जाती वा पर्वतों के चिखरों के समान विमान आदि यान रचे हैं धीर जो वन की आग के समान अग्नि के चरों में अग्नि जलाकर विमान आदि रथों को चलाते हैं वे सर्वत्र भूगोल में विचरते हैं ॥ ११ ॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।

अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कथयौ यन्ति रेमाः ॥१२॥

पदार्थ—जो (दीध्यानः) देदीप्यमान (अजः) काररूप से अजगत् (अजी) वेगवान् (अर्वा) जोड़े के समान अग्नि (देवद्रीचा) विद्वानों का सत्कार करते हुए (अमसा) मन से (अस्य) इस कलाधर के (ससनम्) ताड़न को (उप, प्रागात्) सब प्रकार से प्राप्त किया जाता है जिस से इसका (नाभिः) मध्यम (पुरः) मध्यम से धीर (पश्चात्) पीछे (नीयते) प्राप्त किया जाता है जिस को (रेमाः) अजविद्या को जाने हुए (कथयः) मेधावी बुद्धिमान् जन (अनु, वन्ति) अनुपम हैं चाहते हैं उस को सब सर्व ॥ १२ ॥

भाषार्थ—धींधना वा ताड़ना आदि शिल्पविद्याओं के बिना अग्नि आदि पदार्थों के सिद्ध करनेवाले नहीं होते हैं ॥ १२ ॥

उपप्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वा अच्छा पितरं मातरं च ।

अद्या देवाश्शुष्टमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्य्याणि ॥१३॥

पदार्थ—(यत्) जो (देवान्) विद्वान् वा दिव्य भोग धीर गुरुओं को (शुष्टमः) प्रतीव सेवता हुआ (अर्वा) अग्नि आदि पदार्थरूपी जोड़ों को (अद्य) आज के दिन (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (मातरम्) उत्पन्न करनेवाली माता (पितरं, च) धीर जन्म करानेवाले पिता वा अध्यापक को (अच्छा, उप प्रागात्) अच्छे प्रकार सब धीर से प्राप्त होता (अद्य) अद्य (वाग्वै) देनेवाले के लिए (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्य सुख धीर (हि) निश्चय से (गम्याः) गमन करने योग्य प्यारी स्त्रियों वा प्राप्ता होने योग्य क्रियाओं की (आ, शास्ते) भाषा करता है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो माता-पिता और आचार्य से शिक्षा पाये प्रशसित स्त्रियों के निवासी विद्वानों के सङ्ग की प्रीति रखनेवाले सब के सुख देनेवाले वर्तमान हैं वे यही उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वान् धीर विजुली के गुरुओं का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकलौ तिरसठवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अस्येत्यस्य द्विपञ्चाशच्चस्य अनुषष्टयुत्तरस्य सततस्य सुस्तस्य दीर्घतमा ऋषिः ।

अस्येत्यारम्य गौरीमिमायेत्येतदन्तानामेकवत्परिणतो मन्त्राणां विधेदेवः । तस्याः

समुद्रा इत्यस्याः पूर्वभागस्य वाक् । उत्तराङ्गस्याय । शकमयमित्यस्या

पुरोभागस्य शकभूमः । अरमभागस्य सोम । अय केशिन इत्यस्या

अग्निवायुसूर्याः । अत्वारिवागित्यस्या वाक् । इन्द्रमित्यस्याः कृत्स्नं

नियामनित्यस्याय च सूर्य । द्वादशप्रचय इत्यस्याः सवस्तरात्मा

कावः । यस्ते स्तन इत्यस्याः सरस्वती । यस्तेत्यस्याः

साध्याः । समानमेतदित्यस्याः सूर्य वर्णयो वाङ्मनो वा ।

दिव्यं पुण्यमित्यस्याः सरस्वान् सूर्यो वा देवता ॥

१, ६, २७, ३५, ४०, ५० विराट् त्रिष्टुप्, ३—८, ११, १८, २६,

३१, ३३, ३४, ३७, ४३, ४६, ४७, ४८ त्रिष्टुप्, त्रिष्टुप्,

२, १०, १३, १६, १७, १८, २१, २४ २८, ३२, ५२

त्रिष्टुप्, १४, ३६, ४१, ४४, ४५ पुरिक्

त्रिष्टुप् छन्दः । वीरतः स्वरः ॥

१२, १५, २३ अगती, २६, ३६ त्रिष्टुप्छन्दो छन्दः । निवाहः स्वरः ।

२० पुरिक् चङ्कित, २२, २५, ५८ स्वरान् चङ्कितः, ३०, ३८ चङ्कित-

छन्दः । पञ्चम स्वरः । ४२ पुरिक् बहुती छन्दः । मध्यम स्वरः ।

५१ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । गार्ग्यः स्वरः ॥

अब एकलौ बीसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

तीन प्रकार के अग्नि के विषय को कहते हैं—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यर्नः ।

तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापस्यं विरपतिं सप्तपुत्रम् ॥१॥

पदार्थ—(वामस्य) शिल्प के गुरुओं से प्रशसित (पलितस्य) वृद्धावस्था को प्राप्त (अस्य) इस सज्जन का विजुलीरूप पहला (होतु) देने वा हुन करने-वाले (तस्य) उस के (भ्राता) अनु के समान (अस्य) पदार्थों का अक्षण करनेवाला (अध्यमः) पृथिवी आदि लोको में प्रसिद्ध हुआ दूसरा धीर (घृतपृष्ठः) घृत वा जस जिस के पीठ पर अर्थात् ऊपर रहता वह (अस्य) इसके (भ्राता) भ्राता के समान (तृतीयः) तीसरा (अस्ति) है (अस्य) यही (सप्तपुत्रम्) सात प्रकार के तत्त्वों से उत्पन्न (विरपतिम्) प्रजाजनों की पालना करनेवाले सूर्य को मैं (अपश्यम्) देखूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमासकार है । इस अक्षत् में तीन प्रकार का अग्नि है एक विजुलीरूप, दूसरा काष्ठादि में जलता हुआ सूर्यस्थ धीर तीसरा वह है जो कि सूर्यमण्डलस्थ होकर समस्त जगत् की पालना करता है ॥ १ ॥

अब अग्नि के प्रयोग से विमान आदि यान के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिनाभि चक्रमजर्भमर्धं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥२॥

पदार्थ—(यत्र) जहाँ (एकचक्रम्) एक सब कक्षाओं के घूमने के लिए चित्त में अचक्र है उस (रथम्) विमान आदि यान को (सप्तनामा) सप्तनामों

वाला ( एकः ) एक ( अक्षः ) शीघ्रगामी वायु वा अग्नि ( बहति ) पहुँचाता है वा जहाँ ( सप्त ) सात कलों के घर ( युक्तजन्ति ) युक्त होने हैं वा जहाँ ( इमा ) ये ( विद्यवा ) समस्त ( भवना ) लोकलोकान्तर ( अक्षि, तस्युः ) अधिष्ठित होते हैं वहाँ ( अनन्तम् ) प्राकृत प्रसिद्ध घोड़ों से रहित ( अजरम् ) और जीर्णता से रहित ( त्रिनाभि ) तीन जिम में बन्धन उप ( चक्रम् ) एक चक्र को गिल्ली जन स्थापन करें ॥ २ ॥

भाषार्थ— जो लोग बिजुली और जलादि रूप घोड़ों से युक्त विमानादि रथ को बना मधु लोको के अधिष्ठान अर्थात् जिस में सब लोक उहर्ते हैं उस आकाश में गमनागमन मुख से करें वे समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त हो ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्युः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यम्वाः ।

सप्त स्वमारी अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३॥

पदार्थ— ( यत्र ) जिस में ( गवाम् ) किरणों के ( सप्त ) सात ( नाम ) नाम ( निहिता ) निरन्तर घरे स्थापित किये हुए हैं और वहाँ ( स्वसार ) बहना के समान वर्तमान ( सप्त ) सात कला ( अभि, स, नवन्ते ) समान मिलती हैं ( सप्त ) सात ( प्रवा ) शीघ्रगामी अग्नि पदार्थ ( बहति ) पहुँचाते हैं उस ( इमम् ) इस ( सप्तचक्रम् ) सात चक्रवाले ( रथम् ) रथ को ( ये ) जो ( सप्त ) सातजन ( अक्षि, तस्युः ) अधिष्ठित होते हैं वे इस जगत् में सुखी होने हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकुप्तोपमालकार है। जो स्वामी, अध्यापक, अध्याप्य, रचनेवाले, नियमकर्ता और चलानेवाले अनेक चक्र और तत्वादियुक्त विमानादि यानों को रचने को जानते हैं वे प्रशंसित होते हैं। जिन म छेदन वा आकर्षण गुणवाले किरण वर्तमान हैं वहाँ प्राण भी है ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था विभर्ति ।

भूम्या असुरसृगात्मा च स्विक्को विद्वांसमुप गात्पष्टुमेतत् ॥४॥

पदार्थ— ( यन् ) जिस ( प्रथमम् ) प्रकृत प्रथम अर्थात् सृष्टि के पहले ( जायमानम् ) उत्पन्न होते हुए ( अस्थन्वन्तम् ) हड्डियों से युक्त देह को ( भूम्या ) भूमि के बीच ( अनस्था ) हड्डियों में रहित ( असु ) प्राण ( असुक् ) अधिर और ( आत्मा ) जीव ( विभर्ति ) धारण करता उसको ( च, स्विक् ) कभी भी ( क ) कौन ( ददर्श ) देखता है ( क ) और कौन ( एतत् ) इस उक्त विषय के ( प्रष्टुम् ) पूछने को ( विद्वांसम् ) विद्वान् के ( उप, गात् ) समीप जावे ॥ ४ ॥

भाषार्थ— जब सृष्टि के पहले ईश्वर ने सब के शरीर बनाये तब कोई जीव इन का देखनेवाला न हुआ। जब उनमें जीवात्मा प्रवेश किये तब प्राण आदि वायु, अधिर आदि धातु और जीव भी मिलकर देह को धारण करते हुए और चेष्टा करते हुए इत्यादि विषय की प्राप्ति के लिए विद्वान् को काई ही पूछने को जाता है किन्तु सब नहीं ॥ ४ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाऽविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।

वस्ते वक्त्रेऽधि सप्त तन्तून् वि तन्तिरे कवय ओतवा उं ॥५॥१४॥

पदार्थ— जो ( कवय ) बुद्धिमान जन ( ओतवा ) विस्तार के लिए ( वक्त्रे ) देखने योग्य ( वस्ते ) सन्तान के निमित्त ( सप्त ) सात ( तन्तून् ) विस्तृत धातुओं को ( अधि, तन्तिरे ) अनेक प्रकार से अधिक-अधिक विस्तारते हैं ( उं ) उन्हीं ( देवानाम् ) दिव्य विद्वानों के ( एना ) इन ( निहिता ) स्थापित किये हुए ( पदानि ) प्राप्त होने वा जानने योग्य पदों को, अधिकारों को ( अविजानन् ) न जानता हुआ ( पाक ) ब्रह्मचर्यादि तपस्या से परिपक्व होने योग्य मैं ( मनसा ) अन्तःकरण से ( पृच्छामि ) पूछता हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ— मनुष्यों को योग्य है कि बाल्यावस्था को लेकर अविदित शास्त्रों को विद्वानों से पढ़कर दूसरों को पढ़ाने से सब विद्याओं को फैलावें ॥ ५ ॥

अचिकित्वाश्चितुषश्चिद्व्र कवीन्पृच्छामि विद्वाने न विद्वान् ।

वि यस्तस्तम् षड्दिमा रजोऽस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६॥

पदार्थ— ( अचिकित्वा ) अविद्वान् मैं ( चित् ) भी ( अक्षः ) इस विद्याव्यवहार में ( चिकितुषः ) अज्ञानरूपी रोग के दूर करनेवाले ( कवीन् ) पूरी विद्यायुक्त आप्तविद्वानों को ( विद्वान् ) विद्यावान् ( विद्वाने ) विशेष जानने के लिए ( न ) जैसे पूछे वैसे ( पृच्छामि ) पूछता हूँ ( य ) जो ( वद ) छ ( इमा ) इन ( रजोऽसि ) पृथिवी आदि स्थल तत्वों को ( चि, तस्तम् ) इकट्ठा करता है ( अजस्य ) प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण वा जीव के ( रूपे ) रूप में ( किम् ) क्या ( स्विदेकम् ) ही ( एकम् ) एक हुआ है इस को तुम कहो ॥ ६ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे अविद्वान् विद्वानों को पूछने विद्वान् होते हैं वैसे विद्वान् भी परम विद्वानों को पूछकर विद्या की वृद्धि करें ॥ ६ ॥

इह ब्रवीतु य ईमं वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।

शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वस्त्रि वसाना उदकं पदापुः ॥७॥

पदार्थ— हे ( ब्रह्म ) प्यारे ( यः ) जो ( अस्य ) इस ( वामस्य ) प्रशंसित ( वे ) पक्षी के ( निहितम् ) घरे हुए ( पदम् ) पद को ( वे ) जानता है वह ( इह ) इस प्रश्न में ( ईम् ) सब ओर से उत्तर ( ब्रवीतु ) कह देवे जैसे ( वसाना ) भूल घोड़े हुई ( गाव ) गौएँ ( क्षीरम् ) दूध को ( दुहते ) पूरा करती अर्थात् दुहाती है वा वक्ष ( पदा ) पग से ( उदकम् ) जल को ( अपुः ) पीते हैं वैसे ( शीर्ष्णः, अस्य ) इस के मिर के ( वस्त्रिम् ) स्वीकार करने योग्य सब व्यवहार को जाने ॥ ७ ॥

भाषार्थ— जैसे पक्षी अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं वैसे ही सब लोक अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं, जैसे, गौएँ बछड़ों के लिए दूध दकर बहती हैं वैसे कारण कार्यों को बढ़ाने है वा जैसे वृक्ष जड़ से जल पीकर बढ़ते हैं वैसे कारण से कार्य बढ़ता है ॥ ७ ॥

अब सूर्यादिकों की कार्य कारण व्यवस्था को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।

सा बीभर्तुर्भरसा निर्विद्धा नमस्वन्त ददुपवाकमीयुः ॥८॥

पदार्थ— ( बीभर्तुः ) जो भयङ्कर ( गर्भरसा ) जिस के गर्भ में रसरूप विद्यमान ( निर्विद्धा ) निरन्तर बँधी हुई ( सा ) वह ( माता ) पृथिवी ( बीती ) धारण से ( अग्रे ) सृष्टि के पूर्व ( पितरम् ) सूर्य के ( ऋते ) विना सब का ( आ, बभाज ) अच्छे प्रकार सेवन करती है जिस को ( हि ) निश्चय के साथ ( मनसा ) विज्ञान से ( स, जग्मे ) मज्जत होते, प्राप्त होते उस को प्राप्त होकर ( नमस्वन्त ) प्रशंसित धन्ययुक्त होकर ( इत् ) ही ( उपवाकम् ) जिस में वचन मिलता उस भाग को ( ईयु ) प्राप्त हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ— यदि सूर्य के विना पृथिवी हो तो अपनी शक्ति से सब को क्यों न धारण करे जो पृथिवी न हो तो सूर्य आप ही प्रकाशमान कैसे न हो इस कारण इस सृष्टि में अन्न-अन्न स्वभाव से सब पदार्थ स्वतन्त्र हैं और सापेक्ष व्यवहार में परतन्त्र भी हैं ॥ ८ ॥

युक्ता मातासीधुरि दक्षिणाया अतिष्ठुर्गर्भे वृजनीष्वन्तः ।

अधीमेदन्तोऽनु गामपश्यद्विभक्त्यं त्रिषु योजनेषु ॥९॥

पदार्थ— जो ( गर्भ ) ग्रहण करने के योग्य पदार्थ ( वृजनीषु ) वृजनीय कक्षों में ( अन्त ) भीतर ( अतिष्ठत् ) स्थिर होता है जिसके ( दक्षिणाया ) दाहिनी ( धुरि ) धारण करनेवाली धुरी में ( माता ) पृथिवी ( युक्ता ) जड़ी हुई ( आसीत् ) है और ( वरस ) बछड़ा ( गाम ) गौ को जैसे वैसे ( अधीमेत् ) प्रक्षेप करता है तथा ( त्रिषु ) तीन ( योजनेषु ) बन्धनों में ( विभक्त्यम् ) समस्त पदार्थों में हुए भाग को ( अनुपश्यत् ) अनुकूलता से देखता है वह पदार्थ विद्या के जानने को योग्य है ॥ ९ ॥

भाषार्थ— इस मन्त्र में वाचकुप्तोपमालकार है। जैसे गर्भरूप में चलते हुए बहलो में विराजमान है वैसे सबका मान्य देनेवाली भूमि आकर्षणों से युक्त है, जैसे बछड़ा गौ के पीछे जाता है वैसे वह भूमि सूर्य का अनुभ्रमण करती है जिसमें समस्त सुषेद, हरे, पीले, लाल आदि रूप हैं वही सबका पालन करनेवाली है ॥ ९ ॥

तिस्रो मातृस्त्रीन्यितृन्विभ्रदेकं ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।

मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्यं पृष्ठं विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥१०॥१५॥

पदार्थ— जो ( तिस्र ) तीन ( मातृ ) उत्तम, मध्यम अथवा भूमिों तथा ( त्रीन् ) अग्नि, बिजुली और सूर्यरूप तीन ( यितृन् ) पालक अग्नि्यों को ( ईम् ) सब ओर से ( विश्वम् ) धारण करता हुआ ( ऊर्ध्वम् ) ऊपर, ऊँचा ( एक ) एक सूत्रात्मा वायु ( तस्यौ ) स्थिर होता है जो विद्वान् जन उसको ( अक्ष, ग्लापयन्ति ) कहते सुनते अर्थात् उसके विषय में बातलाप करते हैं तथा ( विश्वमिन्वाम् ) जो सबसे न सेवन की गई ( विश्वविभ्रम् ) सब लोग उसको प्राप्त होते उस ( वाचम् ) वाणी को ( मन्त्रयन्ते ) सब ओर से विचारपूर्वक गुप्त कहते हैं वे ( अमुष्यम् ) उस दूरस्थ ( विश्व ) प्रकाशमान सूर्य के ( पृष्ठम् ) परभाग में विराजमान होते हैं वे ( न ) नहीं कुछ को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ— जो सूत्रात्मा वायु, अग्नि, जल और पृथिवी को धारण करता है उसको अभ्यास से जानके सत्य वाणी का शरीर के लिए उपदेश करे ॥ १० ॥

अब विशेष कर काल की व्यवस्था को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्षेति चक्रं परि दामृतस्य ।

आ पुत्रा अग्रे मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्युः ॥११॥

पदार्थ— हे ( ज्ञाने ) विद्वान् ! तू ( अक्षः ) इस ससार में जो ( द्वादशारम् ) जिसके बारह अङ्ग हैं वह ( चक्रम् ) चक्र के समान वर्तमान सवस्तर ( दाम् ) प्रकाशमान सूर्य के ( परि, वर्षेति ) सब ओर से निरन्तर वर्तमान है ( तस्य ) वह ( जराय ) हानि के लिए ( नहि ) नहीं होता है जो इस ससार में ( ऋतस्य ) सत्य कारण से ( सप्त ) सात ( शतानि ) सौ ( विंशतिः ) बीस ( च ) भी ( मिथुनास ) सयोग से उत्पन्न हुए ( पुत्रा ) पुत्रों के समान वर्तमान तत्त्व विषय ( आ, तस्युः ) अपने-अपने विषयों से लगे हैं उनकी जान ॥ ११ ॥

भाषार्थ— काल अनन्त अपरिणामी और विभु वर्तमान है न उसकी कभी उत्पत्ति है और न नाश है इस जगत् के कारण में सात सौ बीस को तत्त्व हैं वे मिलके



स्वयं ईश्वर के निर्माण किये हुए योग से उत्पन्न हुए हैं इनका कारण धातु और नित्य है अतःकाल अलग-अलग इन तत्त्वों को प्रत्यक्ष में न जाने तब तक विद्या की वृद्धि के लिए मनुष्य यत्न किया करे ॥ ११ ॥

**पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरोषिणाम् ।**

**अथेमे अन्य उपरे विषयज्ञां सप्तचक्रे चरन् आहुरपितम् ॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( पञ्चपादम् ) अणु, सुहृत्, प्रहर, दिवस, पक्ष, ये पाँच पक्ष जिसके ( पितरम् ) पिता के तुल्य पालना करनेवाले ( द्वादशाकृतिम् ) बारह महीने जिनका आकार ( पुरोषिणम् ) और मिले हुए पदार्थों की प्राप्ति वा हिंसा करनेवाले अर्थात् उनकी मिलावट को अलग-अलग करनेवाले सप्तचक्र को ( दिव ) प्रकाशमान सूर्य के ( परे ) परले ( अर्धे ) धातु भाग में विद्वान् ( आहु ) कहते हैं, बताते हैं ( अथ ) इसके अन्तर ( इमे ) ये ( अन्ये ) और विद्वान् जन ( चरन् ) जिसमें छः ऋतु आकार और ( सप्तचक्रे ) सात चक्र धूमने की परिधि विद्यमान उस ( उपरे ) मेघमण्डल में ( विषयज्ञां ) वाणी के विषय को ( अपितम् ) स्थापित ( आहुः ) कहते हैं उसको जानो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम इस मन्त्र में काल के अवयव कहने को अभीष्ट हैं जिस विष्णु, एकरस, सनातन काल में समस्त जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयान्त सम्बन्ध होता है उसके सूक्ष्मत्व से उस काल का बोध कठिन है इससे इसको प्रत्यक्ष से जानो ॥ १२ ॥

**पञ्चारे चक्रे परिवर्त्तमाने तस्मिन्ना तस्युर्ध्वनानि विश्वा ।**

**तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( पञ्चारे ) जिसमें पाँच तत्त्व आकार हैं ( परिवर्त्तमाने ) और जो सब ओर से वर्तमान ( तस्मिन् ) उस ( चक्रे ) पहिये के समान घुलकते हुए पञ्चमन्त्र के पञ्चोक्ति में ( विद्या ) समस्त ( भुवनानि ) लोक ( आ, तस्यु ) अन्त्य प्रकार स्थिर होते हैं ( तस्य ) उसका ( अक्ष ) अगला भाग अर्थात् जो उसमें प्रथम ईश्वर है वह ( न ) नहीं ( तप्यते ) कष्ट को प्राप्त होता अर्थात् समार के सुख दुःख की अनुभव नहीं करता ( सनाभिः ) और जिसका समान बन्धन है अर्थात् किया के साथ में लगा हुआ है और ( भूरिभारः ) जिनमें बहुत भार है, बहुत कार्य-कारण आरोपित हैं वह काल ( सनात् ) सनातनपन से ( नैव ) नहीं ( शीर्यते ) नष्ट होता ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जैसे यह चक्ररूप कारण, काल, आकाश और दिशात्मक जगत् परमेश्वर में व्याप्य है वैसे ही काल, आकाश और दिशाओं में कार्यकारणात्मक जगत् व्याप्य है ॥ १३ ॥

**सनेभि चक्रमज्जरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता बहन्ति ।**

**सूर्यस्य चक्षु रजसैत्यावृतं तस्मिन्नापिता भुवनानि विश्वा ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सनेभि ) समान नभि, नाभिवाला ( अक्षरम् ) जरा दोष ने रहित ( चक्रम् ) चक्र के समान वर्तमान कालचक्र ( उत्तानायां ) उत्तम बिलारे हुए जगत् में ( वि, ववृते ) विशेष कर बार-बार धाता है और उस काल-चक्र को ( दश ) दश प्राण ( युक्ताः ) युक्त ( बहन्ति ) बहाते हैं । जो ( सूर्यस्य ) सूर्य का ( चक्षु ) व्यक्ति, प्रकटता करनेवाला भाग ( रजसा ) लोको के साथ ( आभूतम् ) सब ओर से आवरण को ( एति ) प्राप्त होता है अर्थात् ढँप जाता है ( तस्मिन् ) उसमें ( विद्या ) समस्त ( भुवनानि ) भूगोल ( आपिता ) स्थापित हैं ऐसा तुम जानो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो विष्णु नित्य और सब लोको का आधार, समय वर्तमान है उसी काल की गति से सूर्य आदि लोक प्रकाशित होते हैं ऐसा सब लोगों को जानना चाहिए ॥ १४ ॥

अब पृथिव्यादिकों की रचना विशेष की व्याख्या करते हैं—

**साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षष्ठ्यमा ऋषयो देवजा इति ।**

**तेषामिष्टानि विदितानि धामन्यः स्थात्रे रजन्ते विकृतानि रूपशः ॥१५॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम ( साकंजानाम् ) एक साथ उत्पन्न हुए पदार्थों के बीच में जिस ( एकजम् ) एक कारण से उत्पन्न महत्त्व को ( सप्तथम् ) सातवाँ ( आहुः ) कहते हैं जहाँ ( वद् ) छ ( देवजाः ) देवीप्यमान बिजुली से उत्पन्न हुए ( यमाः ) नियन्ता अर्थात् सबको यथायोग्य व्यवहारों से बलनेवाले ( ऋषयः ) आप सब में मिलनेवाले ऋतु वर्तमान हैं ( तेषाम् ) उनके बीच जिन ( धामन्यः ) प्रत्येक स्थान में ( इष्टानि ) मिले हुए पदार्थों को ईश्वर ने ( विदितानि ) रखा है और जो ( रूपशः ) रूपों के साथ ( विकृतानि ) अवस्थांतर को प्राप्त हुए ( स्थात्रे ) स्थित कारण के बीच ( रजन्ते ) चलायमान होते उन सबको ( इत् ) ही ( इति ) इस प्रकार से जानो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो इस जगत् में पदार्थ हैं वे सब ब्रह्म के निश्चित किये हुए व्यवहार से एक साथ उत्पन्न होते हैं । यहाँ रचना में कम की आकाङ्क्षा नहीं है क्योंकि परमेश्वर के सर्वव्यापक और अनन्त सामर्थ्यवाला होने से इससे वह आप अचलित हुआ सब भुवनों को चलाता है और वह ईश्वर विकाररहित होता हुआ सबको विकारयुक्त करता है जैसे कम से ऋतु वर्तमान हैं और अपने-अपने चिह्नों को

समय-समय में उत्पन्न करते हैं वैसे ही उत्पन्न होते हुए पदार्थ अपने-अपने गुणों को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

अब विद्वान् और बिजुली लियों के विषय को कहते हैं—

**स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः पर्यदक्षणां वि चेतबन्धः ।**

**कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितृष्यितासत् ॥१६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिनको ( अक्षणां ) विज्ञानवान् पुत्र ( पश्यत् ) देखे ( अम्बः ) और अम्ब अर्थात् अज्ञानी पुत्र ( न ) नहीं ( वि, चेतत् ) विविध प्रकार से जाने और जिनको ( सतीः ) विद्या तथा उत्तम शिक्षादि शुभ गुणों से युक्त ( स्त्रियः ) स्त्रियाँ ( आहुः ) कहती हैं ( तां ) उन्हीं ( मे ) मेरे ( पुंस ) पुत्रों को जानो ( यः ) जो ( कविः ) विप्रमया करने अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में कम-कम से पहुँचानेवाली बुद्धि रखनेवाला ( पुत्रः ) पवित्र, वृद्धि को प्राप्त पुत्र ( ता ) उन इष्ट पदार्थों को ( ईम् ) सब ओर से ( आ, विजानात् ) अन्त्य प्रकार जाने ( स ) वह विद्वान् हो और ( यः ) जो विद्वान् हो ( सः ) वह ( पितुः ) पिता का ( पिता ) पिता ( असत् ) हो यह तुम ( चिकेत ) जानो ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जिसको विद्वान् जानते हैं उसको अविद्वान् नहीं जान सकते, जैसे विद्वान् जन पुत्रों को पढ़ाकर विद्वान् करें वैसे विद्वधी स्त्रियाँ कन्याओं को विद्वधी करें । जो पृथ्वी से लेके ईश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभावों को जान वर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करते हैं वे जवान भी बुढ़ों के पिता होते हैं ॥ १६ ॥

किर पृथिव्यादिकों के कार्यकारण विषय को जगत् मन्त्रों में कहा है—

**अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रन्ती गौरुदस्यात् ।**

**सा कद्गीची क स्विदर्थं परागात्स्वं स्विस्तृते नहि यूथे अन्तः ॥१७॥**

पदार्थ—जो ( वत्सम् ) उत्पन्न हुए मनुष्यादि ससार को ( बिभ्रन्ती ) धारण करती हुई ( गीः ) गमन करनेवाली जिस ( परेण ) परले वा ( अवरेण ) उरले ( वद् ) प्राप्त करनेवाले गमनरूप चरण से ( अव ) नीचे से ( अवरेण ) उठती है ( एना ) इससे ( परः ) पीछे से उठती है जो ( यूथे ) समूह के ( अन्तः ) बीच में ( कम्, स्विन् ) किसी को ( वदन् ) धावा ( यूते ) उत्पन्न करती है ( सा ) वह ( कद्गीची ) अप्रत्यक्ष गमन करनेवाली ( क्व, स्विन् ) किसी में ( नहि ) नहीं ( परा, अगात् ) पर को लौट जाती ॥ १७ ॥

भाषार्थ—यह पृथिवी सूर्य से नीचे-ऊपर और उत्तर-दक्षिण को जाती है इसकी गति विद्वानों के विना न देखी जाती इसके परले धातु भाग में सदा अन्वकार और उरले धातु भाग में प्रकाश वर्तमान है, बीच में सब पदार्थ वर्तमान हैं सो यह पृथिवी माता के तुल्य सबको रक्षा करती है ॥ १७ ॥

**अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।**

**कवीयमानः क इह प्र वौचदेवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥**

पदार्थ—जो विद्वान् ( अस्व ) इसके ( अव ) अन्तर्भाग से और ( परेण ) परभाग से वर्तमान ( पितरम् ) पालनेवाले सूर्य को ( अनुवेद ) विद्या पढ़ने के अनन्तर जानता है ( य ) जो ( पर ) पर और ( एना ) इस उक्त ( अवरेण ) नीचे के मार्ग से जानता है वह ( कवीयमानः ) अतीव विद्वान् है और ( कुतः ) कहाँ से यह ( वेदम् ) विषय गुण सम्पन्न ( मनः ) अन्त कारण ( प्रजातम् ) उत्पन्न हुआ ऐसा ( इह ) इस विद्या वा जगत् में ( कः ) कौन ( अवि, प्र, वौचत ) अधिकतर कहे ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बिजुली को लेकर सूर्यपर्यन्त अग्नि को पिता के समान पालनेवाला जानें जिसके परावर भाग में कार्यकारण स्वरूप हैं उसका उपदेश दिव्य अन्त कारणवाले होकर इस ससार में कहे ॥ १८ ॥

**ये अर्वाञ्चस्तां उ पराञ्च आहुये पराञ्चस्तां उ अर्वाञ्च आहुः ।**

**इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो बहन्ति ॥१९॥**

पदार्थ—हे ( सोम ) ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! ( ये ) जो ( अर्वाञ्चः ) नीचे जानेवाले पदार्थ हैं ( तां, उ ) उन्हीं को ( पराञ्चः ) परे को पहुँचे हुए ( आहुः ) कहते हैं । और ( ये ) जो ( पराञ्चः ) परे से व्यवहार में लाये जाते अर्थात् परभाग में पहुँचनेवाले हैं ( तां, उ ) उन्हीं लक्ष-वितर्क से ( अर्वाञ्चः ) नीचे जाने-वाले ( आहुः ) कहते हैं उनको जानो ( इन्द्र ) सूर्य ( च ) और वायु ( या ) जिन भुवनों को धारण करते हैं ( तानि ) उनको ( युक्ताः ) युक्त हुए अर्थात् उनमें सम्बन्ध किये हुए पदार्थ ( धुरा ) धारण करनेवाली धुरी में जुड़े हुए चोड़ों के ( न ) समान ( रजसः ) लोको को ( बहन्ति ) बहाते, चलाते हैं उनको हे पढ़ाने और उपदेश करनेवालो ! तुम विदित ( अक्षयुः ) करो, जानो ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! यहाँ जो नीचे, ऊपर, परे, उरे, मोटे, सूक्ष्म, झुटाई, बड़ाई के व्यवहार हैं वे सापेक्ष हैं, एक की अपेक्षा से यह इससे ऊँचा जो कहा जाता है वही दोनों कथनों को प्राप्त होता है, जो इससे परे है वही और से नीचे है, जो इससे मोटा है वह और से सूक्ष्म, जो-जो इससे छोटा है वह और से बड़ा, गुरु है, यह तुम जानो । यहाँ कोई वस्तु अपेक्षा रहित नहीं है और न निराधार ही है ॥ १९ ॥

अथ ईश्वर के विषय को अपने मन्त्रों में कहा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिंस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वयनरनन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो (सुपर्णा) सुन्दर पंखोंवाले (सयुजा) समान सम्बन्ध रखनेवाले (सखाया) मित्रों के समान वर्तमान (द्वा) दो पक्षे (समानम्) एक (वृक्षम्) जो काटा जाता उस वृक्ष का (परि, अस्वजाते) आश्रय करते हैं (तयोः) उनमें से (अन्य) एक (पिप्पलम्) उस वृक्ष के पक्षे हुए पक्ष को (स्वादु) स्वादुपन से (अस्ति) खाता है और (अन्य) दूसरा (अन्नवन्तम्) न खाता हुआ (अभि, चाकशीति) सब ओर से देखता है अर्थात् सुन्दर चलने-फिरने वा क्रियाजन्य काम को जाननेवाले व्याप्यव्यापकभाव है साथ ही सम्बन्ध रखते हुए मित्रों के समान वर्तमान जीव और ईश जीवात्मा समान कार्य-कारणरूप ब्रह्माण्ड देह का आश्रय करते हैं । उ। दोनो अनादि जीव, ब्रह्म में जो जीव है वह पाप-पुण्य से उत्पन्न सुख-दुःखारम्भक भोग को स्वादुपन से भोगता है और दूसरा ब्रह्मात्मा कर्मफल को न भोगता हुआ उस भोगते हुए जीव को सब ओर से देखता अर्थात् साक्षी है, यह तुम जानो ॥२०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है । जीव, परमात्मा और जगत् का कारण ये तीन पदार्थ अनादि और नित्य हैं । जीव और ईश परमात्मा वा कम से अल्प-अनन्त, चेतन-विज्ञानवान्, सदा बिलक्षण, व्याप्यव्यापकभाव से संयुक्त और मित्र के समान वर्तमान हैं जैसे ही जिस अर्थात् परमाणुरूप कारण से कार्यरूप जगत् होता है वह भी अनादि और नित्य है समस्त जीव पापपुण्यात्मक कार्यों को करके उनके फलों को भोगते हैं और ईश्वर एक सब ओर से व्याप्य होता हुआ न्याय से पाप-पुण्य के फल को देने से व्याप्याधीन के समान देखता है ॥२०॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदधाभिस्वरन्ति ।

इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२१॥

पदार्थ—(यत्र) जिस (विदधा) विज्ञानमय परमेश्वर में (सुपर्णाः) जोमन कर्मवाले जीव (अमृतस्य) मोक्ष के (भागम्) सेवने योग्य भक्ष को (अभिस्वरन्ति) निरन्तर (अभिस्वरन्ति) सम्मुख कहते अर्थात् प्रत्यक्ष कहते वा जिस परमेश्वर में (विदधस्य) समग्र (भुवनस्य) लोकलोकान्तर का (गोपाः) पालनेवाला (इतः) स्वामी, सूर्यमण्डल (मा, विवेश) प्रवेश करता अर्थात् सूर्यादि लोकलोकान्तर सब जगत् को प्राप्त होते हैं, जो इसको जानता है (सः) वह (धीरः) ध्यानवान् पुरुष (अत्र) इस परमेश्वर में (पाकम्) परिपक्व व्यवहार वाले (मा) भुक्तो उपदेश देने ॥२१॥

भाषार्थ—जिस परमात्मा में सवितृमण्डल को यदि लेकर लोक-लोकान्तर और द्वीप द्वीपान्तर सब जगत् ही जाते हैं तद्विषयक उपदेश से ही सावकजन मोक्ष पाते हैं, और किसी तरह से मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकते ॥२१॥

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि निर्व्वे ।

तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वे तन्नोक्षयः पितरं न वेद ॥२२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यस्मिन्) जिस (वृक्षे) अमृत (वृक्षे) वृक्ष पर (मध्वदः) मधु को खानेवाले (सुपर्णा) सुन्दर पक्षों के युक्त और आदि पक्षी (नि, निविशन्ते) स्थिर होते हैं (अधि, सुवते, च) और आहारभूत होकर अपने बालकों को उत्पन्न करते (तस्य, इत्) उसीके (पिप्पलम्) जन के समान निर्मल फल को (अधे) आगे (स्वादु) स्वादिष्ट (आहुः) कहते हैं और (अत्) वह (न) न (उत्, नत्) नष्ट होता है अर्थात् वृक्षरूप इस जगत् में मधुर कर्मफलों को खानेवाले उत्तम कर्मयुक्त जीव स्थिर होते और उसमें अन्तर्गतों को उत्पन्न करते हैं उसका जन के समान निर्मल कर्मफल संसार में होना इसको आगे उत्तम कहते हैं और नष्ट नहीं होता अर्थात् पीछे अणुम कर्मों के करने के संसाररूप वृक्ष का जो फल चाहिए सो नहीं मिलता (यः) जो पुरुष (पितरम्) पालनेवाले परमात्मा को (न, वेद) नहीं जानता वह इस संसार के उत्तम फल को नहीं पाता ॥२२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है । अनादि अनन्त काल से यह विश्व उत्पन्न होता और नष्ट होता है । जीव उत्पन्न होते और मरते भी जाते हैं, इस संसार में जीवों ने जैसा कर्म किया वैसा ही अवश्य ईश्वर के न्याय से भोग्य है, कर्म जीव का भी नित्यसम्बन्ध है जो परमात्मा और उसके गुण, कर्म, स्वभावों के अनुकूल आचरण को न जानकर मनमाने काम करते हैं वे निरन्तर पीड़ित होते हैं और जो उससे विपरीत हैं वे सदा आनन्द भोगते हैं ॥२२॥

यद्वायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतसत ।

यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (यत्) जो (गायत्रे) गायत्रीमन्त्रोवाच्य वृत्ति में (गायत्रम्) गानेवालों की रक्षा करनेवाला (अधि, आहितम्) स्थित है (त्रैष्टुभात्, वा) अथवा त्रिष्टुप् छन्दोवाच्य वृत्ति से (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् में प्रसिद्ध हुए अर्थ को (निरतसत) निरन्तर विस्तारते हैं (वा) वा (यत्) जो (जगति) संसार में (जगत्) प्राणि आदि जगत् (वदम्) जानने योग्य (आहितम्) स्थित है (तत्) उसको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (इत्) ही (अमृतत्वम्) मोक्षभाव को (आनशुः) प्राप्त होते हैं ॥२३॥

भाषार्थ—जो सृष्टि के पदार्थ और तत्त्व ईश्वरकृत रचना को जानकर परमात्मा का सब ओर ध्यान कर विद्या और धर्म की उन्नति करते हैं वे मोक्ष पाते हैं ॥२३॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।

वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण निमिते सप्त वाणीः ॥२४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो जगदीश्वर (गायत्रेण) गायत्री छन्द (अर्कम्) अर्क (अर्केण) ऋचाओं के समूह से (साम) साम (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द वा तीन वेदों की विद्याओं की स्तुतियों से (वाकम्) यजुर्वेद (द्विपदा) दो पद जिसमें विद्यमान वा (चतुष्पदा) चार पदवाले (अक्षरेण) नाक्षरहित (वाकेन) यजुर्वेद से (वाकम्) अथर्ववेद और (सप्त) गायत्री आदि सात छन्दयुक्त (वाणी) वेदवाणी को (प्रति, मिमीते) प्रतिमान करता है और जो उसके ज्ञान को (निमिते) मान करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥२४॥

भाषार्थ—जिस जगदीश्वर ने वेदस्य अक्षर, पद, वाक्य, छन्द, प्रध्याय आदि बनाये हैं उसको सब मनुष्य बन्धवाय लेवें ॥२४॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तमायद्रथन्तरे दूर्ध्वं पर्यपश्यत् ।

गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मक्ता म रिरिचे महित्वा ॥२५॥

पदार्थ—जो जगदीश्वर (जगता) तसार के साथ (सिन्धुम्) नदी आदि को (विधि) प्रकाश (रथन्तरे) और अन्तरिक्ष में (दूर्ध्वम्) सवितृलोक को (अस्तमायत्) रोकता व सबको (पर्यपश्यत्) सब ओर से देखता है वा जिन (गायत्रस्य) गायत्री छन्द से अच्छे प्रकार से साथ हुए ऋग्वेद की उतेजना से (तिस्र, समिध) अच्छे प्रकार प्रज्वलित तीन पदार्थों को अर्थात् मूत, भविष्यत् वर्तमान तीनों काल के सुखों को (आहु) कहते हैं (तत्) उनसे (मक्ता) बड़े (महित्वा) प्रशंसनीय भाव से (प्र, रिरिचे) भलग होता है अर्थात् भलग मिना जाता है वह सब को पूजने योग्य है ॥२५॥

भाषार्थ—जब ईश्वर ने जगत् बनाया तभी नदी और समुद्र आदि बनाये । जैसे सूर्य आकाश से धूलों को धारण करता है वैसे सूर्य आदि जगत् को ईश्वर धारण करता है । जो सब जीवों के समस्त पाप-पुण्यरूपी कर्मों को जानके फलों को देता है वह ईश्वर सब पदार्थों से बड़ा है ॥२५॥

अथ विद्वान् के विषय को अपने मन्त्रों में कहा है—

उप ह्वये सुदुर्या धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दौहदेनाम् ।

भेष्टुं सर्वं सविता माविषाऽभीद्वौ धर्मस्तदु धु म वोचम् ॥२६॥

पदार्थ—जैसे (सुहस्त) सुन्दर जिसके हाथ और (गोधुग्) गौ को दुहता हुआ मैं (एताम्) इस (सुदुर्याम्) अच्छे दुहाती अर्थात् कामों को पूरा करती हुई (धेनुम्) दूध देनेवाली गौरूप विद्या को (उप, ह्वये) स्वीकार कर (उत्) और (एताम्) इस विद्या को आप भी (बोहत्) दुहते वा जिस (अष्टम्) उत्तम (तवम्) ऐश्वर्य को (सविता) ऐश्वर्य का देनेवाला (न) हमारे लिए (साविषत्) उत्पन्न करे । वा जैसे (अभीद्वौ) सब ओर से प्रदीप्त अर्थात् अति तपता हुआ (अभिः) धाम वर्णा करता है (तदु) उसी सबको जैसे मैं (धु, म, वोचम्) अच्छे प्रकार कहूँ जैसे तुम भी इसको अच्छे प्रकार कहो ॥२६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है । अर्थात् विद्वान् जन पूरी विद्या है नही हुई वाणी को अच्छे प्रकार दें । जिसमें उत्तम ऐश्वर्य को शिष्य प्राप्त हों । जैसे सविता समस्त जगत् को प्रकाशित करता है वैसे उपदेशक लोग सब विद्यार्थी को प्रकाशित करें ॥२६॥

अथ गौ और पृथिवी के विषय को अपने मन्त्रों में कहा है—

हिक्कुष्वती वसुपत्नी वदनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।

दुहामभिम्यां पयो अज्येधं सा वर्धतां महते सौमगाय ॥२७॥

पदार्थ—जैसे (हिक्कुष्वती) हिकारती और (अनसा) मन से (वत्सम्) बच्चे को (इच्छन्ती) चाहती हुई (वत्सम्) यह (अज्येधं) न मारने योग्य गौ (अभि, जा, अगात्) सब ओर से आती वा जो (अभिम्याम्) सूर्य और वायु से (पयः) जल वा दूध (दुहाम्) दुहते हुए पदार्थों में वर्तमान पृथिवी है (सौ), वह (वसुपत्नी) आग्नि आदि वसुसंज्ञकों में (वसुपत्नी) वसुधों की पालनेवाली (महते) अत्यन्त (सौमगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए (वर्धताम्) बड़े, उन्नति को प्राप्त हो ॥२७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुन्दोपमाकार है । जैसे पृथिवी महान् ऐश्वर्य को बढ़ाती है वैसे गौ अत्यन्त दूध देती है इससे वे गौएँ कभी किसी को मारना न चाहिए ॥२७॥

गौरमीमेदतु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिक्कुष्यान्मातवा उ ।

सूक्वां धर्ममभि वांशाना मिमांति साधुं पयंते पयोभिः ॥२८॥

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! ( आकाशमा ) निरन्तर कामना करती हुई ( गीः ) जो ( भिन्नान् ) भिन्नमात्रे हुए ( वस्तुम् ) वस्तुओं को तथा ( पुत्रान् ) पुत्रों को ( मनु, हिङ्, अङ्गुलीत् ) लक्षकर हिकारती अर्थात् भूँड़ बाटती हुई हिकारती है और ( आत्मे ) मान करने ( उ ) ही के लिए उस वस्तुओं के दुःख को ( अमीम् ) गष्ट करती वैसे ( पयोभिः ) जलों के साथ वर्तमान पृथिवी ( धर्मम् ) आत्म को ( सुखाद्यम् ) रचते हुए धर्म को और ( आयुम् ) वाणी को प्रसिद्ध करती हुई ( पयोभिः ) अपने मुख से जाती है और सुख का ( अग्नि, निमाति ) सब ओर से मान करती अर्थात् तीव्र करती है ॥२८॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाक्कल्पोपमाकार है । जैसे गीधों के पीछे बछड़े और बछड़ों के पीछे घोड़े जाते वैसे पृथिवियों के पीछे पदार्थ और पदार्थों के पीछे पृथिवी जाती है ॥२८॥

किर भूमि के विषय में कहा है—

अयं स शिक्षे येन गौरभीष्टता मिमांति मायुं ध्वमनावधि श्रिता ।  
सा चित्तिमिनि हि चकार मयं विद्युज्ज्वन्ती प्रति वन्निमीहत् ॥२९॥

**पदार्थ—**( स ) सो ( अयम् ) यह बछड़े के समान मेघ भूमि को सब ( शिक्षते ) गजन का अत्यन्त शब्द करता है कौन कि ( येन ) जिससे ( ज्वन्ती ) ऊपर-नीचे और बीच में जाने को परकोटा उसमें ( अग्नि, विता ) चरी हुई ( अमीम् ) सब ओर पवन से आवृत ( गीः ) पृथिवी ( आयुम् ) परिमित मार्ग को ( प्रति, निमाति ) प्रति जाती है ( सा ) वह ( चित्तिमि ) परमाणुओं के समूहों से ( अयम् ) अरुणधर्मा मनुष्य को ( चकार ) करती है उस पृथिवी ( हि ) ही में ( ज्वन्ती ) वर्तमान ( विद्युत् ) बिजुली ( वन्निम् ) अपने रूप को ( नि, भीहत् ) निरन्तर तर्क-वितर्क से प्राप्त होती है ॥२९॥

**भाषार्थ—**जैसे पृथिवी से उत्पन्न हो, उठकर अन्तरिक्ष में बढ़, फैन मेघ पृथिवी में बूझादि को अच्छे सीधे उनको बढ़ाता है वैसे पृथिवी सबको बढ़ाती है और पृथिवी में जो बिजुली है वह रूप को प्रकाशित करती है । जैसे बिल्वजन कम से कितनी पदार्थ के टुकड़ा करने और विज्ञान से घर आदि बनाता है वैसे परमेश्वर ने यह सृष्टि बनाई है ॥२९॥

किर ईश्वर के विषय में कहा है—

अनच्छेये तुरगात्तु जीवमेज्ज्वरं मध्य आ पस्त्यानाम् ।  
जीवो भूतस्य चरति स्वभाभिरमर्त्यो मर्त्येना स्योनिः ॥३०॥

**पदार्थ—**जो ब्रह्म ( तुरगात् ) शीघ्र गमन को ( अन्तम् ) पुष्ट करता हुआ ( जीवम् ) जीव को ( एजत् ) कम्पाता और ( पस्त्यानाम् ) चरों के अर्थात् जीवों के शरीर के ( मध्यम् ) बीच ( अयम् ) निश्चल होता हुआ ( मयं ) सोता है जहाँ ( अमर्त्यः ) अनादिस्थ से मृत्युधर्मरहित ( जीवः ) जीव ( स्वभाभिः ) धन्नादि और ( मर्त्येन ) मरणधर्मा शरीर के साथ ( स्योनिः ) एक स्थानी होता हुआ ( भूतस्य ) मरण-स्वभाववाले जगत् के बीच ( आ, चरति ) आचरण करता है उस ब्रह्म में सब जगत् चलता है यह जानना चाहिए ॥३०॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में रूपकालकार है । जो चलते हुए पदार्थों में अचल, अनित्य पदार्थों में नित्य और व्याप्य पदार्थ में व्यापक परमेश्वर है उसकी स्थापित के बिना सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु भी नहीं है इससे सब जीवों को जो अन्तर्यामिरूप से स्थित हो रहा है वह नित्य उपासना करने योग्य है ॥३०॥

अपश्य गोपामनिपथमानमा च परां च पथिभिश्चरन्तम् ।  
स सध्रीचीः स विपुचीर्वसान आ वरीवर्त्ति भुवनेध्वन्तः ॥३१॥

**पदार्थ—**मैं ( गोपाम् ) सबकी रक्षा करने ( अनिपथमानम् ) मन आदि इन्द्रियों को न प्राप्त होने और ( पथिभिः ) मार्गों से ( आ, च ) आगे और ( परा, च ) पीछे ( चरन्तम् ) प्राप्त होनेवाले परमात्मा का विचरते हुए जीव को ( अपश्यम् ) देखता है ( सः ) वह जीवात्मा ( सध्रीची ) साथ प्राप्त होती हुई गतियों को ( सः ) वह जीव और ( विपुचीः ) नाना प्रकार की कर्मानुसार गतियों को ( वसानः ) हाँपता हुआ ( भुवनेषु ) लोकलोकान्तरो के ( अन्तम् ) बीच ( आ, वरीवर्त्ति ) निरन्तर अच्छे प्रकार वर्तमान है ॥३१॥

**भाषार्थ—**सबके देखनेवाले परमेश्वर के देखने को जीव समर्थ नहीं और परमेश्वर सबको यथायं भाव से देखता है । जैसे वस्त्रों आदि से रेंपा हुआ पदार्थ नहीं देखा जाता वैसे जीव भी सूक्ष्म होने से नहीं देखा जाता । ये जीव कर्मगति से सब लोकों में भ्रमते हैं इनके भीतर बाहर परमात्मा स्थित हुआ पापपुण्य के फल केरूप न्याय से सबको सर्वत्र जन्म देता है ॥३१॥

किर जीव विषयमात्र को कहा है—

य ई चकार न सो अस्य वेद य ई ददर्श हिङ्गिभु तस्मात् ।  
स मातुर्योना परिर्वीतो अन्तर्वैभुप्रजा निर्भेतिमा विविश ॥३२॥

**पदार्थ—**( यः ) जो जीव ( ईम् ) क्रियामात्र ( चकार ) करता है ( सः ) वह ( अस्य ) इस अपने रूप को ( न ) नहीं ( वेद ) जानता है ( यः ) जो ( ईम् ) समस्त क्रिया को ( ददर्श ) देखता और अपने रूप की जानता है ( सः ) वह ( तस्मात् ) इससे ( हिङ्गिभु ) भलग होता हुआ ( मातुः ) माता के ( योना ) गर्भाशय के ( अन्तः ) बीच ( परिर्वीतः ) सब ओर से रेंपा हुआ ( भुवनेषु ) बहुत बार जन्म लेनेवाला ( निर्भेतिम् ) भूमि को ( इत् ) ही ( यः ) शीघ्र ( आ, विवेश ) प्रवेश करता है ॥३२॥

**भाषार्थ—**जो जीव कर्ममात्र करते किन्तु उपासना और ज्ञान को नहीं प्राप्त होते हैं वे अपने स्वरूप को भी नहीं जानते । और जो कर्म, उपासना और ज्ञान में निपुण हैं वे अपने स्वरूप और परमात्मा के जानने को योग्य हैं । जीवों के अपने जन्मों का आदि और पीछे अन्त नहीं है । जब शरीर को छोड़ते हैं तब आकाशस्थ हो वर्म में प्रवेश कर और अन्य पाकर पृथिवी में घेष्टा क्रियामान् होते हैं ॥ ३२ ॥

किर प्रकारान्तर से उसी विषय को अपने मन्त्रों में कहा है—

द्यौर्म पिता जनिता नाभिरत्त बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।  
उत्तानयौध्व्यो योनिरन्तरमा पिता दुहितुर्ममाभात् ॥३३॥

**पदार्थ—**हे विद्वन् ! जहाँ ( पिता ) पितृस्थानी सूर्य ( दुहितुः ) कन्या रूप उवा प्रमातृवेला के ( गर्भम् ) किरणरूपी धीर्य को ( आ, अभात् ) स्थापित करता है वहाँ ( बन्धुः ) दो सेनाओं के समान स्थित ( उत्तानयो ) उपरिस्थ ऊँचे स्थापित किये हुए पृथिवी और सूर्य के ( अन्तः ) बीच मेरा ( योनिः ) घर है ( अयम् ) इस जन्म में ( मे ) मेरा ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( पिता ) पिता ( द्यौः ) प्रकाशमान सूर्य, बिजुली के समान तथा ( अयम् ) यहाँ ( मे ) मेरा ( नाभिः ) अम्बनरूप ( बन्धुः ) माई के समान प्राण और ( इयम् ) यह ( मही ) मही ( पृथिवी ) भूमि के समान ( माता ) मान देनेवाली माता वर्तमान है यह जानना चाहिए ॥ ३३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाक्कल्पोपमाकार है । भूमि और सूर्य सब के माता-पिता और बन्धु के समान वर्तमान हैं यही हमारा निवासस्थान है जैसे सूर्य अपने से उत्पन्न हुई उवा के बीच किरणरूपी धीर्य को संस्थापन कर दिनरूपी पुत्र को उत्पन्न करता है वैसे माता-पिता प्रकाशमान पुत्र को उत्पन्न करें ॥ ३३ ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।  
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥३४॥

**पदार्थ—**हे विद्वन् ! ( त्वा ) आप को ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( परम् ) पर ( अन्तम् ) अन्त को ( पृच्छामि ) पूछता है ( यत्र ) जहाँ ( भुवनस्य ) लोकसमूह का ( नाभिः ) बन्धन है उस को ( पृच्छामि ) पूछता है ( वृष्णः ) गीर्वाण वधनिवाले ( अश्वस्य ) घोड़ों के समान गीर्वाण के ( रेतः ) गीर्वाण को ( त्वा ) आप को ( पृच्छामि ) पूछता है और ( वाचः ) वाणी के ( परमम् ) परम ( व्योम ) व्यापक अवकाश अर्थात् आकाश को आप से ( पृच्छामि ) पूछता है ॥ ३४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं और उन के उत्तर अगले मन्त्र में वर्त्तमान हैं । ऐसे ही जिज्ञासुओं को विद्वान् जन नित्य पूछने चाहिए ॥ ३४ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।  
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३५॥

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! तुम ( पृथिव्या ) भूमि का ( परः ) पर ( अन्तम् ) भाग ( इयम् ) यह ( वेदि ) जिस में शब्दों को जानें वह आकाश और वायुरूप वेदि ( अयम् ) यह ( यज्ञः ) यज्ञ ( भुवनस्य ) भूगोल समूह का ( नाभिः ) आकर्षण से बन्धन ( अयम् ) यह ( सोमः ) नोमलतादि रस वा अन्नमा ( वृष्णः ) वर्षा करने और ( अश्वस्य ) शीघ्रगामी सूर्य के ( रेतः ) गीर्वाण के समान और ( अयम् ) यह ( ब्रह्मा ) चारों वेदों का प्रकाश करनेवाला विद्वान् वा परमात्मा ( वाचः ) वाणी का ( परमम् ) उत्तम ( व्योम ) अवकाश है उनको यथावत् जानो ॥ ३५ ॥

**भाषार्थ—**पिछले मन्त्र में कहे हुए प्रश्नों के यहाँ कम से उत्तर जानने चाहिए पृथिवी के चारों ओर आकाशयुक्त वायु एक-एक ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य और जल उत्पन्न करनेवाली ओषधियाँ तथा पृथिवी के बीच विद्या की अवधि समस्त वेदों का पढ़ना और परमात्मा का उत्तम ज्ञान है यह निश्चय करना चाहिए ॥ ३५ ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।  
ते चीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभवन्ति विश्वतः ॥३६॥

**पदार्थ—**जो ( सप्त ) सात ( अर्धगर्भा ) आधे गर्भरूप अर्थात् पञ्चीकरण को प्राप्त महत्तरव, अहंकार, पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश के सूक्ष्म अवयवरूप शरीरवारी ( भुवनस्य ) ससार के ( रेतः ) बीच को उत्पन्न कर ( विष्णो ) व्यापक परमात्मा की ( प्रदिशा ) आशा से अर्थात् उसकी आशा रूप वेदोक्त व्यवस्था से ( विधर्मणि ) अपने से बिछद धर्मवाले आकाश में ( तिष्ठन्ति ) स्थित होते हैं ( ते ) ( चीतिभिः ) कर्म और ( ते ) वे ( मनसा ) विचार के साथ ( परिभुवः ) सब ओर से विद्या में कुशल ( विपश्चितः ) विद्वान् जन ( विपश्चितः ) सब ओर से ( परि, अवन्ति ) तिरस्कृत करते अर्थात् उनके अर्थार्थ मान के जानने को विद्वान् जन भी कष्ट पारते हैं ॥ ३६ ॥

**भाषार्थ—**जो महत्तरव, अहंकार, पञ्चसूक्ष्मभूत सात पदार्थ हैं वे पञ्चीकरण को प्राप्त हुए सब स्थूल जगत् के कारण हैं, वेतन से बिछद धर्मवाले जडरूप अन्तरिक्ष में सब वसते हैं । जो अथावत् सृष्टिकर्म को जानते हैं वे विद्वान् जन सब ओर से सत्कार को प्राप्त होते हैं और जो इस को नहीं जानते वे सब ओर से निरस्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥



न वि जानामि यदि वेदमस्मि निष्पद्यः संनद्धो मनसा चरामि ।

यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अरन्तुवे मागमस्याः ॥३७॥

पदार्थ—( यदा ) जब ( प्रथमजा ) उपादान कारण प्रकृति से उत्पन्न हुए पूर्वोक्त महत्त्वादि ( जा ) मुक्त जीव को ( मा, अगम् ) प्राप्त हुए अर्थात् स्थूल शरीरावस्था हुई ( मात्, इत् ) उसके अनन्तर ही ( ऋतस्य ) सत्य और ( अस्या ) इन ( वाच ) वाणी के ( मागम् ) भाग को विद्या विषय को मैं ( अरन्तुवे ) प्राप्त होता हूँ । जबतक ( इवम् ) इस शरीर को प्राप्त नहीं ( अस्मि ) होता हूँ तब तक उस विषय को ( यविष्य ) जैसे का वैसा ( न ) नहीं ( वि जानामि ) विशेषता से जानता हूँ । किन्तु ( मनसा ) विचार से ( सनद्ध ) अच्छा बंधा हुआ ( निष्पद्यः ) अन्तर्हित अर्थात् भीतर उम विचार को स्थिर किये ( चरामि ) विचरता हूँ ॥३७॥

भाषार्थ—अल्पज्ञता और अल्पशक्तिमत्ता के कारण साधारण इन्द्रियों के बिना जीव सिद्ध करने योग्य वस्तु को नहीं ग्रहण कर सकता जब ओंशादि इन्द्रियों को प्राप्त होता है तब जानने को योग्य होता है जबतक विद्या से सत्य पदार्थ को नहीं जानता तब तक अभिमान करता हुआ पशु के समान विचरता है ॥ ३७ ॥

अपाङ् प्राहेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनः ।

ता शश्वन्ता विषूचीना विद्यन्तान्यन्यं चिक्वुर्न नि चिक्वुरन्यम् ॥३८॥

पदार्थ—जो ( स्वधया ) जल आदि पदार्थों के साथ वर्तमान ( अपाङ् ) उल्टा ( प्राङ् ) सीधा ( एति ) प्राप्त होता है और जो ( गृभीत ) ग्रहण किया हुआ ( अमर्त्यः ) मरणधर्मरहित जीव ( मर्त्येन ) मरणधर्मरहित शरीरादि के साथ ( सयोनः ) एक स्थानवाला हो रहा है ( ता ) वे दोनों ( शश्वन्ता ) सनातन ( विषूचीना ) सर्वत्र जाने और ( विद्यन्ता ) नाना प्रकार से प्राप्त होनेवाले वर्तमान हैं उन में से उस ( अन्यम् ) एक जीव और शरीर आदि को विद्वान् जन ( नि, चिक्वु ) निरन्तर जानते और प्रविद्वान् ( अन्यम् ) उस एक को ( न, नि, चिक्वु ) वैसा नहीं जानते ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—इस जगत् में दो पदार्थ वर्तमान हैं, एक जड़, दूसरा चेतन, उनमें जड़ और जो और अपने रूप को नहीं जानता और चेतन अपने को और दूसरे को जानता है दोनों अनुत्पन्न, अनादि और विनाशरहित वर्तमान हैं जब अर्थात् शरीरादि परमाणुओं के संयोग से स्थूलावस्था को प्राप्त हुआ चेतन जीव संयोग वा वियोग से अपने रूप को नहीं छोड़ता किन्तु स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ के संयोग से स्थूल वा सूक्ष्म-सा भान होता है परन्तु वह एकता स्थित जैसा है वैसा ही ठहरता है ॥ ३८ ॥

किर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ऋचो अक्षरं परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्तस्मै समासते ॥३९॥

पदार्थ—( यस्मिन् ) जिस ( ऋचः ) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित ( अक्षरे ) नाशरहित ( परमे ) उत्तम ( व्योमन् ) आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में ( विश्वे ) समस्त ( देवा ) पृथिवी, सूर्यलोक आदि देव ( अधि, निषेदुः ) आधेय-रूप से स्थित होते हैं । ( य ) जो ( तत् ) उस परब्रह्म परमेश्वर का ( न, वेद ) नहीं जानता वह ( ऋचा ) चार वेद से ( किम् ) क्या ( करिष्यति ) कर सकता है और ( ये ) जो ( तत् ) उस परब्रह्म को ( विदुः ) जानते हैं ( ते ) ( इमे, इत् ) वे ही वे ब्रह्म में ( समासते ) अच्छे प्रकार स्थिर होने हैं ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—जो सब वेदों का परमप्रमेय पदार्थरूप और वेदों से प्रतिपाद्य ब्रह्म अमर और जीव तथा कार्यकारणरूप जगत् है, इन सभी में से सबका आधार अर्थात् ठहरने का स्थान आकाशवत् परमात्मा व्यापक और जीव तथा कार्यकारणरूप जगत् व्याप्य है इसी से सब जीव आदि पदार्थ परमेश्वर में निवास करते हैं । और जो वेदों को पढ़के इस प्रमेय को नहीं जानते वे वेदों से कुछ भी फल नहीं पाते और जो वेदों को पढ़के जीव, कार्य-कारण और ब्रह्म को गुण, कर्म, स्वभाव से जानते हैं वे सब धर्म, धर्म, काम और मोक्ष के सिद्ध होते आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥

अब विदुषी स्त्री के विषय में कहा है—

सूयवसाङ्गवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।

अद्वि तृणमध्वे विश्वदानीं पिबं शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥२१॥

पदार्थ—हे ( अध्वे ) न हनने योग्य गी के समान वर्तमान विदुषी ! तू ( सूयवसात् ) सुन्दर सुखी को भोगनेवाली ( भगवती ) बहुत ऐश्वर्यवती ( भूया ) हो कि ( हि ) जिस कारण ( वयम् ) हम लोग ( भगवन्तः ) बहुत ऐश्वर्ययुक्त ( स्याम ) हों । जैसे गी ( तृणम् ) तृण को सा ( शुद्धम् ) शुद्ध ( उदकम् ) जल को पी और दूध देकर बछड़े आदि को सुखी करती है वैसे ( विश्वदानीम् ) समस्त जिस में दान उस क्रिया का ( आचरन्ती ) सत्य-आचरण करती हुई ( अथो ) इसके अनन्तर सुख को ( अद्वि ) भोग और विचार को ( पिब ) पी ॥ ४० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जबतक माताजन वेदवित् न हो जबतक उसके सन्तान भी विद्यावान् नहीं होते हैं । जो विदुषी हो स्वयंवर विवाह कर सन्तानों को उत्पन्न कर और उनको अच्छी शिक्षा देकर उन्हें विद्वान् करती हैं वे गोपी के समान समस्त जगत् को आनन्दित करती हैं ॥ ४० ॥

किर विदुषी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी स चतुष्पदी ।

अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥

पदार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जो ( एकपदी ) एक वेद का अभ्यास करनेवाली वा ( द्विपदी ) दो वेद जिसने अभ्यास किये वा ( चतुष्पदी ) चार वेदों की पढ़ाने वाली वा ( अष्टापदी ) चार वेद और चार उपवेदों की विद्या से युक्त वा ( नवपदी ) चार वेद चार उपवेद और व्याकरणादि शिक्षायुक्त ( बभूवुषी ) प्रतिशय करके विद्याओं में प्रसिद्ध होती और ( सहस्राक्षरा ) असंख्यात अक्षरोंवाली होती हुई ( परमे ) सब से उत्तम ( व्योमन् ) आकाश के समान व्याप्त निश्चल परमात्मा के निमित्त प्रयत्न करती है और ( गौरी ) गौरवपूर्ण विदुषी स्त्रियों को ( मिमाय ) शब्द कराती अर्थात् ( सलिलानि ) जल के समान निर्मल वचनों को ( तक्षती ) छाँटती अर्थात् अविद्यादि दोषों से अलग करती हुई ( सा ) वह सत्ता के लिए अत्यन्त सुख करनेवाली होती है ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो स्त्री समस्त साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़के पढ़ाती हैं वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं ॥ ४१ ॥

अब वाणी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तस्याः समुद्रा अधि वि सरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।

ततः सरत्यक्षरं तद्विभुषं जीवति ॥४२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( तस्या ) उस वाणी के ( समुद्रा, अधि, वि, सरन्ति ) शब्दरूपी अर्थय समुद्र अक्षरों की वर्षा करते हैं ( तेन ) उस काम से ( चतस्रः ) चारों ( प्रदिशः ) दिशा और चारो उपदिशा ( जीवन्ति ) जीती हैं और ( ततः ) उससे जो ( अक्षरम् ) न नष्ट होनेवाला अक्षरमात्र ( सरति ) वर्धता है ( ततः ) उससे ( विभुषम् ) समस्त जगत् ( उप, जीवति ) उपजीविका को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—समुद्र के समान आकाश है उसके बीच रत्नों के समान शब्द, शब्दों के प्रयोग करनेवाले रत्नों का ग्रहण करनेवाले हैं उन शब्दों के उपवेश सुनने से सब की जीविका और सब का आश्रय होता है ॥ ४२ ॥

अब ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शकमयं धूममारादपश्यं विषुवता पर एनावरेण ।

उक्षाखं पृथिनमपचन्त वीरास्तानि धर्मोणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं ( आरात् ) समीप से ( शकमयम् ) शक्तिमय समर्थ ( धूमम् ) ब्रह्मचर्य कर्मानुष्ठान के अग्नि के धूम को ( अपश्यम् ) देखता हूँ ( एना, अवरेण ) इस बीच इधर-उधर जाते हुए ( विषुवता ) व्याप्तिमान् धूम से ( पर ) पीछे ( वीराः ) विद्याओं में व्याप्त पूर्ण विद्वान् ( पृथिनम् ) आकाश और ( उक्षाखम् ) सींचनेवाले मेघ को ( अपचन्त ) पचाते अर्थात् ब्रह्मचर्य विषयक अग्निहोताग्नि तपते हैं ( तांनि ) व ( धर्मोणि ) धर्म ( प्रथमान्यासन् ) प्रथम ब्रह्मचर्य मजक ( आसन् ) हुए हैं ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जन अग्निहोतादि यज्ञों में मेघमण्डलस्य जल को छुड़ कर सब वस्तुओं को छुड़ करते हैं इससे ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से सब के शरीर, आत्मा और मन को शुद्ध करावें । सब मनुष्यमात्र समीपस्थ धूम और अग्नि वा और पदार्थ को प्रत्यक्षता से देखते हैं और अगम-दिखले भाव को जाननेवाला विद्वान् तो भूमि से लेके परमेश्वर पर्यन्त वस्तु समूह को साक्षात् कर सकता है ॥ ४३ ॥

किर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रयः केशिनं ऋतुधा वि चक्षते संवत्सरे वपत् एक एवाम् ।

विश्वमेको अमि चष्टे शचीमिध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥

पदार्थ—हे पढ़ने-पढ़ानेवाले लोगो के परीक्षको ! तुम जैसे ( केशिन ) प्रकाशवान् वा अपने गुण को समय पाकर जतानेवाले ( जय ) तीन अर्थात् सूर्य, बिजुली और वायु ( संवत्सरे ) संवत्सर अर्थात् वर्ष में ( ऋतुधा ) वसन्तादि ऋतु के प्रकार से ( ज्ञातोभिः ) जो कर्म उनसे ( वि, चक्षते ) दिखाते अर्थात् समय-समय के व्यवहार को प्रकाशित कराते हैं ( एवाम् ) इन तीनों में ( एकः ) एक बिजुलीरूप अग्नि ( वपते ) जीवों को उत्पन्न कराता ( एकः ) सूर्य ( विश्वम् ) समस्त जगत् को ( अमि, चष्टे ) प्रकाशित करता और ( एकस्य ) वायु की ( आभिः ) गति और ( रूपम् ) रूप ( न ) नहीं ( चदुने ) दीक्षता वैसे तुम यही प्रवर्तमान होओ ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! तुम वायु, सूर्य और बिजुली के समान अध्ययन-अध्यापन आदि कर्मों से विद्याओं को बढ़ाओ । जैसे अपने आत्मा का रूप मेघ से नहीं दीक्षता वैसे विद्वानों की गति नहीं जानी जाती, जैसे ऋतु संवत्सर को आरम्भ करते हुए समय को विभाग करते हैं वैसे कर्मारम्भ विद्या-अविद्या और धर्म-अधर्म को पृथक्-पृथक् करें ॥ ४४ ॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।  
गुहा त्रीणि निहिता नेक्षयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥

पदार्थ—( ये ) जो ( मनीषिणः ) मन को रोकनेवाले ( ब्राह्मणाः ) व्याकरण, वेद और ईश्वर के जाननेवाले विद्वान् जन ( वाक् ) वाणी के ( परिमिता ) परिमाणयुक्त जो ( चत्वारि ) चार, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार ( पदानि ) जानने की योग्य पद हैं ( तानि ) उन को ( विदुः ) जानते हैं उन में से ( त्रीणि ) तीन ( गुहा ) गुह्य में ( निहिता ) धरे हुए हैं ( न, नेक्षयन्ति ) चेष्टा नहीं करते । जो ( मनुष्याः ) साधारण मनुष्य हैं वे ( वाच ) वाणी के ( तुरीयम् ) चतुर्थ भाग अर्थात् निपातमात्र को ( वदन्ति ) कहते हैं ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—विद्वान् और अविद्वानों में इतना ही भेद है कि जो विद्वान् हैं वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चारों को जानते हैं उन में से तीन भाग में रहते हैं बाँचे सिद्ध शब्दसमूह को प्रसिद्ध व्यवहार में सब कहते हैं । और जो अविद्वान् हैं वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातों को नहीं जानते किन्तु निपातरूप सामान्य-ज्ञान रहित प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं ॥ ४५ ॥

किं विद्विष्यन्तर्गत ईश्वर विषय को अपने मन में कहा है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमांशुर्धौ दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं महिमा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥

पदार्थ—( मित्रः ) बुद्धिमान् जन ( इन्द्रम् ) परमेश्वरयुक्त ( मित्रम् ) मित्रवत् वर्तमान ( वरुणम् ) श्रेष्ठ ( अग्निम् ) सर्वव्याप्त विद्युतादि लक्षणयुक्त अग्नि को ( बहुधा ) बहुत प्रकारों से, बहुत नामों से ( आहुः ) कहते हैं ( अग्नी ) इसके अनन्तर ( सः ) वह ( दिव्यः ) प्रकाश में प्रसिद्ध प्रकाशमय ( सुपर्णः ) सुन्दर जिसके पालना आदि कर्म ( गरुत्मान् ) महान् आत्मावाला है इत्यादि बहुत प्रकारों, बहुत नामों से ( वदन्ति ) कहते हैं तथा वे अन्य विद्वान् ( एकम् ) एक ( सत् ) विद्यमान परब्रह्म परमेश्वर की ( अग्निम् ) सर्वव्याप्त परमात्मरूप ( वरुणम् ) सर्व नियन्ता और ( मातरिश्वानम् ) वायु लक्षण लक्षित भी ( आहुः ) कहते हैं ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—जैसे अग्न्यादि पदार्थों के इन्द्र आदि नाम हैं वैसे एक परमात्मा के अग्नि आदि सहस्रों नाम वर्तमान हैं । जितने परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव हैं उतने ही इस परमात्मा के नाम हैं यह जानना चाहिए ॥ ४६ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।

त आर्ववृत्रन्सदनादृतस्यादिद्यूतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( अप ) प्राण वा जलो को ( वसानाः ) ढाँपती हुई ( हरयः ) हरणशील ( सुपर्णाः ) सूर्य की किरणों ( कृष्णम् ) खींचने योग्य ( नियानम् ) नित्य प्राप्त भूगोल वा विमान आदि यान को वा ( दिवम् ) प्रकाशमय सूर्य के ( उत्पतन्ति ) ऊपर गिरती हैं और ( ते ) वे ( आर्ववृत्रम् ) सूर्य के सब और से वर्तमान हैं ( आदृतस्य ) सत्यकारण के ( सवनात् ) स्वान से प्राप्त ( व्युतेन ) जल से ( पृथिवी ) भूमि ( बि, उद्यते ) विक्षेपकर गोली की जाती है उसको ( अन्, इत् ) इसके अनन्तर ही यथावत् जानो ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे अच्छे लीसे हुए बोझें रथों को मोझ पहुँचाते हैं वैसे अग्नि आदि पदार्थ विमान, रथ को आकाश में पहुँचाते हैं जैसे सूर्य की किरणों भूमितल से जल को खींच और वर्षा समस्त वृक्ष आदि को भाँझ करती हैं वैसे विद्वान् जन सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं ॥ ४७ ॥

अब विद्विषय में शिल्प विषय को कहा है—

द्राक्ष प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नम्यानि क उ तच्चिकेत ।

तस्मिन्साकं त्रिश्रुता न शङ्कवोऽपि ताः पृष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस रथ में ( त्रिश्रुता ) तीन ली ( शङ्कः ) बाँधने वाली कीलों के ( न ) समान ( साकम् ) साथ ( अपि ताः ) लगाई हुई ( पृष्टिः ) साठ कीलों ( न ) जैसी कीलें जो कि ( चलाचलासः ) चल प्रचल अर्थात् चलती और न चलती और ( तस्मिन् ) उसमें ( एकम् ) एक ( चक्रम् ) पहिया जैसा गोम चक्कर ( द्राक्ष ) बारह ( प्रधयः ) पहियों की हाँलों अर्थात् हाल लगे हुए पहिये और ( त्रीणि ) तीन ( नम्यानि ) पहियों की बीच की नाभियों में उत्तमता से ठहरनेवाली घुरी स्थापित की हो ( तत् ) उसको ( कः ) कौन ( उ ) तर्क-वितर्क से ( चिकेत ) जाने ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । कोई ही विद्वान् जैसे शरीर-रचना को जानते हैं वैसे विमान आदि यानों को बनाना जानते हैं, जब जल, स्थल और आकाश में शीघ्र जाने के लिए रथों की बनाने की इच्छा होती है तब उनमें अनेक जल, अग्नि के चक्कर, अनेक अश्व, अनेक बारण और कीलें रचनी चाहिए ऐसा करने से चाही हुई सिद्ध होती है ॥ ४८ ॥

किं यदा विदुषी रथी के विषय को अपने मन में कहा है—

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूयेन विश्वा पुष्यसि वार्योणि ।

यो रत्नभा बहुविधः सुवत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९॥

पदार्थ—हे ( सरस्वति ) विदुषी स्त्रि ! ( त ) तेरा ( यः ) जो ( शशयः ) सोता-सा स्तन और ( यः ) जो ( मयोभू ) मुख की आवना करनेवाला ( स्तन ) स्तन के समान वर्तमान शुद्ध व्यवहार ( वेन ) जिससे तू ( विश्वा ) समस्त ( वार्योणि ) स्वीकार करने योग्य विद्या आदि वा वनो की ( पुष्यसि ) पुष्ट करती है ( य ) जो ( रत्नभा ) रमणीय वस्तुओं को धारण करने और ( बहुविद् ) वनों की प्राप्त होनेवाला और ( य ) जो ( सुवत्रः ) सुदम अर्थात् जिससे अच्छे-अच्छे दान हो ( तम् ) उस अपने स्तन को ( इह ) यहाँ गृहाश्रम में ( धातवे ) सन्तानों को पीने को ( कः ) कर ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे माता अपने स्तन के दूध से सन्तान की रक्षा करती है वैसे विदुषी रथी सब कुटुम्ब की रक्षा करती है, जैसे सुन्दर पुमान् पदार्थों के भोजन करने से शरीर बलवान् होता है वैसे माता की सुशिक्षा को पाकर आत्मा पुष्ट होता है ॥ ४९ ॥

किं विद्वानों के विषय को अपने मन में कहा है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥५०॥

पदार्थ—जो ( देवाः ) विद्वान् जन ( यज्ञेन ) अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के समूह से ( यज्ञम् ) धर्म, धर्म, काम और मोक्ष के व्यवहार को ( यजन्त ) मिलते, प्राप्त होते हैं और जो ब्रह्मचर्य आदि ( धर्माणि ) धर्म ( प्रथमान्यासन् ) प्रथम ( आसन् ) हैं ( तानि ) उनका सेवन करते और कराते हैं ( ते, ह ) वे ही ( यज्ञः ) यहाँ ( पूर्वं ) पहले अर्थात् जिन्होंने विद्या पढ़ ली ( साध्याः ) तथा औरों को विद्या-सिद्धि के लिए सेवन करने योग्य ( देवाः ) विद्वान् जन ( सन्ति ) हैं वहाँ ( महिमानः ) मत्कार को प्राप्त हुए ( नाकम् ) दुःखरहित सुख को ( सचन्त ) प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥

भाषार्थ—जो लोग प्रथमावस्था में ब्रह्मचर्य से उत्तम-उत्तम शिक्षा आदि सेवन करने योग्य कामों को प्रथम करते हैं वे प्राप्त अर्थात् विद्यादि गुण धर्मादि काव्यों को साक्षात् किये हुए जो विद्वान् उनके समान विद्वान् होकर विद्यामन्द को प्राप्त होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥

किं विद्वान् के विषय को अपने मन में कहा है—

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।

भूमिं पञ्चन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥५१॥

पदार्थ—जो ( उदकम् ) जल ( अहभिः ) बहुत किनो से ( उत्, ऐति ) ऊपर को जाता अर्थात् सूर्य के ताप से कण-कण हो और पवन के बल से उठकर अन्तरिक्ष में ठहरता ( च ) और ( अच ) नीचे को ( च ) भी जाता अर्थात् वर्षाकाल पा भूमि पर वर्षता है उसके ( एतत् ) यह पूर्वोक्त विद्वानों का ब्रह्मचर्य अग्निहोत्र आदि धर्मादि व्यवहार ( समानम् ) तुल्य है । इसी से ( पञ्चन्या ) पंच ( भूमिम् ) भूमि को ( जिन्वन्ति ) तृप्त करते और ( अग्नयः ) विजुली आदि अग्नि ( दिवम् ) अन्तरिक्ष को ( जिन्वन्ति ) तृप्त करते अर्थात् वर्षा से भूमि पर उत्पन्न जीव जीते और अग्नि से अन्तरिक्ष वायु मेघ आदि शुद्ध होते हैं ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठानों में किये हुए हवन आदि से पवन और वर्षा जल की शुद्धि होती है उससे शुद्ध जल वर्षने से भूमि पर जो उत्पन्न हुए जीव वे तृप्त होते हैं इससे विद्वानों का पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यादि कर्म जल के समान है जैसे ऊपर जाता और नीचे आता वैसे अग्निहोत्रादि से पदार्थ का ऊपर जाना और नीचे आना है ॥ ५१ ॥

किं सूर्य के दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अपने मन में कहा है—

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।

अभीपतो वृष्टिर्मिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीभि ॥५२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( अवसे ) रक्षा आदि के लिए ( दिव्यम् ) दिव्य गुण स्वभावयुक्त ( सुपर्णम् ) जिसमें सुन्दर गमनशील रश्मि विद्यमान ( वायसम् ) जो अत्यन्त जानेवाले ( बृहन्तम् ) सबसे बड़े ( अपां ) अन्तरिक्ष के ( गर्भम् ) बीच गर्भ के समान स्थित ( ओषधीनाम् ) सोमादि ओषधियों की ( वर्तन्तम् ) दिलातेवाले ( वृष्टिभिः ) वर्षा से ( अभीपतः ) दोनों और आगे-पीछे जल से युक्त जो मेघादि उससे ( तर्पयन्तम् ) तृप्ति करनेवाले ( सरस्वन्तम् ) बहुत जल जिसमें विद्यमान उस सूर्य के समान वर्तमान विद्वान् को ( जोहवीभिः ) निरन्तर ग्रहण करते हैं वैसे इसको तुम भी ग्रहण करो ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्यलोक भूगोलों के बीच स्थित हुमा सबको प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन सब लोकों के मध्य स्थिर होता हुमा सबको आत्माधो को प्रकाशित करता है, जैसे सूर्य वर्षा से सबको सुखी करता है वैसे ही विद्वान् विद्या, उत्तम शिक्षा और उपदेशवृष्टियों से सब जनो को आनन्दित करता है ॥ ५२ ॥

इस सूक्त में अग्नि, जल, सूर्य, विमान आदि पदार्थ तथा ईश्वर, विद्वान्

और रथी आदि के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले

सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक ली चौसठवाँ सूक्त और लेईसवाँ भाँ और बाईसवाँ अनुवाक पूरा हुआ ॥

कवेति पञ्चदशशब्दस्य पञ्चदशवटपुत्रस्य ज्ञातमस्य सूत्रस्य आगत्य श्रुतिः । इन्द्रो  
वेवता । १, ३-५, ११, १२ विराट् त्रिष्टुप्, २, ८, ९ त्रिष्टुप्,  
१३ निष्ठा त्रिष्टुप् छन्दः । अक्षतः स्वरः । ६, ७, १०, १४  
भुरिक् पङ्क्तिः, १५ पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

यद्यप्यहं श्रुत्वाले एक सौ पंसठव सूक्त का आरम्भ है उसमें  
आदि से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

कया शुभा सर्वयमः सनीकाः समान्या मरुतः स मिमिक्षुः ।

कया मती कुत एतास एतेऽर्थेन्ति शुष्मं दूर्ध्वो वसूया । १॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( सर्वयमः ) समान व्यवस्थावाले ( सनीकाः )  
समीपस्थ ( मरुतः ) पवनो के समान वर्तमान विद्वान् जन ( कया ) किस  
( समान्या ) मुख्य क्रिया के साथ ( शुभा ) शुभ गुण, कर्म से ( मिमिक्षुः ) अच्छे  
प्रकार सेचनादि कर्म करते हैं तथा ( एतास ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए ( वसूया )  
वपनेवाले ( एते ) ये ( वसूया ) अपने को पनो की इच्छा के साथ ( कया ) किस  
( मती ) मति से ( कुत ) कहाँ से ( शुष्मम् ) बल को ( अर्धन्ति ) प्राप्त  
होते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । ( प्रश्न ) जैसे पवन वर्षा  
कर सबको तृप्त करते हैं वैसे विद्वान् जन भी रागद्वेषरहित धर्मयुक्त किस क्रिया से  
पनो की उन्नति करावें और किस विज्ञान वा अच्छी क्रिया से सबका सत्कार करें ?  
इस विषय में उत्तर यही है कि प्राप्त सज्जनों की रीति और वेदोक्त क्रिया से उक्त  
कार्य करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अन्धरे मरुत आ ववर्चः ।

श्येनाइव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनमा रीरमाम ॥ २॥

पदार्थ—जो ( मरुतः ) पवनो के समान वेगयुक्त ( युवानः ) ब्रह्मचर्य और  
विद्या से युवावस्था को प्राप्त विद्वान् ( कस्य ) किसके ( ब्रह्माणि ) वृद्धि को प्राप्त  
होते जो भ्रम वा घन उनको ( जुजुषुः ) सेवते हैं और ( को ) कौन इस ( अन्धरे )  
न नष्ट करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार में ( आ, ववर्चः ) अच्छे प्रकार वर्तमान हैं हम  
लोग ( केन ) कौन ( महा ) बड़े ( मनमा ) मन से ( ध्रजताः ) जानेवाले  
( श्येनादि ) पक्षियों के समान किनको लेकर ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष में ( रीरमाम )  
सबको रमावे ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे प्रायः समारम्भ पदार्थों का  
सेवन करते हैं वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या के बोध से परमश्री को सेवें, जैसे अन्तरिक्ष  
में उड़ते हुए श्येनादि पक्षियों को देखते हैं वैसे ही भूगोल के साथ हम लोग आकाश  
में रमे और सबको माय इसकी विद्वान् ही जान सकत हैं ॥ २ ॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिः सजेको यासि सत्पते किं त इत्या ।

सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वेस्तस्रो हग्वि यत्तं अस्मे ॥ ३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर युक्त ( सत्पते ) सज्जनों के पालनेवाले !  
( माहिः ) महिमायुक्त ( एक ) इच्छते ( सन् ) होते हुए ( त्वम् ) आप सूर्य  
के समान ( कुत ) कहाँ से ( यासि ) जाते हैं ( ते ) आपके ( इत्या ) इस  
प्रकार में ( किम् ) क्या है ? हे ( हरिषः ) प्रशान्त गुणोवाले ! ( समराणः )  
अच्छे प्रकार प्राप्त हुए आप ( यत् ) जो ( ते ) आपके मन में ( अस्मे ) हम लोगों  
के लिए वर्तना है ( तत् ) उसको ( शुभानः ) उत्तम वचनों से ( न ) हम लोगों  
के प्रति ( बोधे ) कहो जिससे आप ( स पृच्छसे ) सम्यक् पूछते भी हैं अर्थात्  
हमारी व्यवस्था आप पूछते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य एकाकी सबको  
लौकिक आप प्रकाशमान होता है वा जैसे आप विद्वान् सबका भ्रमण करता हुआ  
सबको मर्यादा पालनेवाले करता है वैसे तू कहाँ जाता है कहाँ से आता है, क्या करता  
है यह पूछता हूँ, उत्तर कह । धर्मयुक्त मार्गों को जाता है, शुभकुल से आता है  
पड़ाना वा उपदेश करता है यह समाधान है ॥ ३ ॥

ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतामः शुष्मं द्यति प्रभृतो मे अद्रिः ।

आ शासते प्रति ह्यन्युक्थेमा हरीं वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( प्रभृतः ) शास्त्रविज्ञान से भरा हुआ ( शुष्मः )  
बलवान् ( अद्रिः ) मेघ के समान ( मे ) मेरा उपदेश सबको ( इत्यति ) प्राप्त  
होता वा जैसे ( सुतासः ) प्राप्त हुए ( मतयः ) मननशील मनुष्य ( मे ) मेरे  
( ब्रह्माणि ) पनो वा अस्मों को और ( शम् ) सुख को ( आशासते ) चाहते हैं  
वा ( इमा ) इन ( उचथाः ) कहने के योग्य पदार्थों की ( प्रति, ह्यन्युक्थेमा ) प्रीति  
से कामना करते हैं वा जैसे ( ता ) वे ( हरी ) धारण-आकर्षण गुण ( नः ) हम  
लोगों को ( अच्छः ) अच्छा ( वहतः ) प्राप्त होते हैं वैसे तुम सब होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो उदार हैं वे मेघ के  
समान सबके लिए समान सुखों का वषति हैं, सबके लिए विद्यादान की कामना करते

हैं, जैसे अपने को सुख की इच्छा करते हैं वैसे पौरो को सुख करने और दुःखों का  
विनाश करने को सब चाहें ॥ ४ ॥

अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षेत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।

महोभरेता उप युज्महे त्रिन्द्र स्वधामनु हि नो बभूव ॥ ५॥ २४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वरयुक्त पुरुष ! जिस कारण ( हि ) ही ( नः )  
हमारे ( स्वधामः ) अन्तः और जल का ( अनु, बभूव ) अनुभव करते हैं ( अतः )  
इससे ( वयम् ) हम लोग ( एतान् ) इन पदार्थों को ( युज्मानाः ) युक्त और  
( स्वक्षेत्रेभिः ) अपने राज्यो से ( तन्वः ) शरीरों को ( शुम्भमानाः ) शुभ गुण-  
युक्त करत हुए ( अन्तमेभिः ) समीपस्थ ( महोभिः ) अत्यन्त बड़े कामों से ( नु )  
शीघ्र ( उप, युज्महे ) उपयोग लेते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो शरीर से बल और धारोग्ययुक्त धार्मिक बलिष्ठ विद्वानों से  
सब कामों का समाधान करते हुए सबके सुख के लिए वर्तमान अत्यन्त राज्य के  
न्याय के लिए उपयोग करते हैं वे शीघ्र धर्म, धर्म, काम और मोक्ष की सिद्धि को  
प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

कस्या वो मरुतः स्वधासीदन्मामेकं समधत्ताहिहस्ये ।

अहं ह्यग्रस्तविषस्तुविष्मान्विष्वस्य शत्रोरनमं वधस्यैः ॥ ६॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) प्राण के समान वर्तमान विद्वानो ! ( यत् ) जिससे  
( माम् ) मुझ ( एकम् ) एक को ( अहिहस्ये ) मेघ के वर्षण होने में ( समधत्तः )  
अच्छे प्रकार धारण करो ( स्वा ) वह ( यः ) आपका ( स्वधा ) अन्तः और जल  
( वधः ) कहाँ ( आसीत् ) है वैसे ( विष्मान् ) बलवान् ( उग्रः ) तीव्र स्वभाव  
वाला ( अहम् ) मैं जो ( तन्विषः ) बलवान् ( विष्वस्य ) समग्र ( शत्रोः ) शत्रु  
के ( वधस्यैः ) वध से नष्टानेवाले शस्त्र उनके साथ ( अन्मन् ) नमता हूँ ( हि )  
उसी मुझको तुम सुख में धारण करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्याओं को धारणकर, सूर्य जैसे मघ को वैसे शत्रुबल  
को नियत करें वे सब विद्वान् के प्रति पूछें कि जो सबको धारण करनेवाली शक्ति है  
वह कहाँ है ? सर्वत्र रिपत है यह उत्तर है ॥ ६ ॥

भूरि चकर्थ युज्यैभिरस्मे समानेभिर्दृषम पौंस्येभिः ।

भूरीणि हि कृणवांमा शविष्ठेन्द्र कत्वा मरुतो यदृशाम ॥ ७॥

पदार्थ—हे ( वृषभः ) उपदेश की वर्षा करनेवाले ! जैसे आप ( समानेभिः )  
समान मुख्य ( युज्येभिः ) योग्य कर्मों वा ( पौंस्येभिः ) पुरुषार्थों से ( अस्मे )  
हमारे लिए ( भूरि ) बहुत सुख ( कृणवां ) करें । हे ( शविष्ठः ) बलवान् ( इन्द्र ) सब  
को सुख देनेवाले ! जैसे आप ( कृत्वा ) उरम बुद्धि से हम लोगों को विद्वान् करते  
हैं वैसे हम लोग आपकी सेवा करें । हे ( मरुतः ) विद्वान् मनुष्यो ! तुम ( यत् )  
जिस की कामना करो उसकी हम भी ( वशात्, हि ) कामना ही करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे इस ससार में विद्वान्  
जन पुरुषार्थ से सबको विद्या और उत्तम शिक्षा में युक्त करते हैं वैसे इनको सब  
सत्कारयुक्त करें । जो सब विद्याओं के पढ़ाने और सबके सुख को चाहनेवाले हो वे  
पढ़ाने और उपदेश करने में प्रधान हो ॥ ७ ॥

वधां वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।

अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपवचंकर वज्रबाहुः ॥ ८॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) प्राण के समान प्रिय विद्वानो ! ( वज्रबाहुः ) जिस  
के हाथ में वज्र है ( बभूवान् ) ऐसा होनेवाला ( अहम् ) मैं जैसे सूर्य ( वृत्रम् )  
मेघ को मार ( वधः ) जलो को ( सुगा ) सुन्दर जानवाले करता है वैसे ( स्वेन )  
अपने ( भामेन ) भाव से और ( इन्द्रियेण ) मन से ( तविषः ) बल से शत्रुओं  
को ( वधीम् ) मारता हूँ और ( मनवे ) विचारशील मनुष्य के लिए ( विश्वश्चन्द्राः )  
समस्त सुवर्णादि धन अनेक होते ( एताः ) उन लक्ष्मियों को ( वचंकर ) करता  
हूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सूर्य से प्रेरित वर्षा  
से समस्त जगत् जीवता है वैसे शत्रुओं से होते हुए विघ्नो को निवारने से सब  
प्राणी जीवते हैं ॥ ८ ॥

अनुत्तमा तं मयवचकिर्तु न त्वावां अस्ति देवता विद्वानः ।

न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि मंभुद्ध ॥ ९॥

पदार्थ—हे ( मयवचः ) परमवचनवान् विद्वान् ( ते ) आपका ( अनुत्तम् ) न  
प्रेरणा किया हुआ ( नकिः ) नहीं कोई विद्यमान है और ( त्वावान् ) तुम्हारे  
सदृश और ( वेवता ) दिव्य-गुणवाला ( विद्वानः ) विद्वान् ( न ) नहीं  
( अस्ति ) है । तथा ( जायमानः ) उत्पन्न होनेवाला ( न ) शीघ्र ( न ) नहीं  
( नशते ) नष्ट होता ( जातः ) उत्पन्न हुआ भी ( न ) नहीं नष्ट होता । हे  
( मंभुद्धः ) अत्यन्त विद्या से प्रतिष्ठा की प्राप्त आप ( यानि ) जो ( करिष्या )  
करने योग्य काम हैं उनको शीघ्र ( आ कृणुहि ) अच्छे प्रकार करिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जैसे अन्तर्यामी ईश्वर से अव्याप्त कुछ भी नहीं विद्यमान है न  
कोई उसके सदृश उत्पन्न होता, न उत्पन्न हुआ और न होगा, न वह नष्ट होता है



किन्तु ईश्वरभाव से अपने कर्तव्य कामों को करता है वैसे ही विद्वानों को होना और जानना चाहिए ॥ १॥

**एकस्य चिन्मे विद्मस्त्वोजो या तु दधृष्वान् कुणर्वे मनीषा ।**

**अहं ब्रह्मो मरुतो विद्वानो यानि च्यवमिन्द्र इदीक्ष एषाम् ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( मरुत ) पवनो के समान चलनेवाले सज्जनों ! जैसे ( एकस्य ) एक ( चिन् ) ही ( मे ) मेरे को ( विद्म ) व्यापक ( ओज ) बल ( अस्तु ) हो और ( या ) जिस को ( दधृष्वान् ) अच्छे प्रकार लड़नेवाला मैं होऊँ वैसे वह बल ( हि ) निश्चय से तुम्हारा है और उन का सहन तुम करो जैसे ( अहम् ) मैं ( मनीषा ) बुद्धि से ( न ) शीघ्र ( कुणर्वे ) बिद्या कर सकूँ और ( उषा ) तीव्र ( विद्वान् ) विद्वान् ( इन्द्र ) दुःख का छिन्न-भिन्न करनेवाला होता हुआ ( यानि ) जिन पदार्थों को ( च्यवम् ) प्राप्त होऊँ और ( एषाम्, इत् ) इन्हीं का ( ईश ) स्वामी होऊँ वैसे तुम वरतों ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे जगदीश्वर धनन्त पराक्रमी और व्यापक है वैसे विद्वान् जन समस्त शास्त्र और धर्मग्रन्थों में व्याप्त होवें और व्यापक होकर इन मनुष्यादि के सुखों का सम्पादन करें ॥ १० ॥

**अयन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मै नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।**

**इन्द्राय वृष्णे सुमंस्वाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वै तनुभिः ॥११॥**

पदार्थ—हे ( मरुत ) विद्वानो ! जैसे ( मे ) मेरे लिए ( यन् ) जो ( श्रुत्यम् ) सुनने योग्य ( ब्रह्म ) वेद और ( स्तोम ) स्तुतिसमूह है वह ( अत्र ) यहाँ ( या ) मुझे ( अयन्दन् ) आनन्दित करे वैसे तुम का भी आनन्दित करावे । हे ( नर ) अग्रगामी मुखिया जनो ! जैसे तुम ( सुमंस्वाय ) उत्तम यशानुष्ठान करनेवाले ( वृष्णे ) बलवान् ( इन्द्राय ) विद्या से प्रकाशित ( सख्ये ) सबके मित्र ( मह्यम् ) मेरे लिए ( सखायः ) सब के सुहृद् होते हुए ( तनुभिः ) शरीरों के साथ मेरे ( तन्वै ) शरीर के लिए मुख ( चक्र ) करो वैसे मैं भी इसको करूँ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । विद्वान् जन जैसे पदे और शब्दार्थ सम्बन्ध से जाने हुए वेद पढ़नेवाले के आत्मा को सुख देते हैं वैसे ही शरीरों को भी सुखी करेंगे ऐसा मानके वे अध्यापक शिष्य को पढ़ावें जैसे आप ब्रह्मचर्य से योगरहित, बलवान् होकर दीर्घजीवी हो वैसे शरीरों को भी करें ॥ ११ ॥

**एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेयः श्रव एषो दधानाः ।**

**संचक्ष्यामरुतश्चन्द्रवर्णा अरुन्त मे हृदयाथा च नूनम् ॥१२॥**

पदार्थ—हे ( मरुत ) प्राणों के समान पिय विद्वान् जनो ! जैसे ( इषः ) इच्छाओं को ( आ, वक्ष्यामः ) अच्छे प्रकार धारण किये हुए ( मा, इत् ) मेरे ही ( प्रति, रोचमाना ) प्रति प्रकाशमान होते हुए ( एते ) ये तुम ( अनेयः ) प्रशसनीय ( अयः ) सुनने के साधन शास्त्र को ( संचक्ष्य ) पढ़ा वा उसका उपदेशमान कर ( अरुन्त ) अन्धम्रा के समान उज्ज्वल कान्तिवाले हुए मुझे ( अरुन्त ) विद्या से ढाँपते हुए वैसे ( एव ) ही अब ( अ ) भी ( नूनम् ) निश्चय से ( मे, वक्ष्याम ) विद्याओं से आच्छादित करो । मेरी अविद्या को दूर करो और विद्या देना ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो स्त्री पुरुषों को विद्याओं में प्रकाशित और उन्हें प्रशसित गुण, कर्म, स्वभाववाले कर धर्मयुक्त व्यवहारों में लगाते हैं वे सब के सुमन्वित करनेवाले हो ॥ १२ ॥

**को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीरुच्छां सखायः ।**

**मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म क्रुतानाम् ॥१३॥**

पदार्थ—हे ( मरुतः ) प्राणवत्पिय विद्वानो ! ( अयः ) इस स्थान में ( वः ) तुम लोगों को ( कः ) कौन ( न ) शीघ्र ( मामहे ) सत्कारयुक्त करता है । हे ( सखायः ) मित्र विद्वानो ! तुम ( सखीन् ) अपने मित्रों को ( अच्छ ) अच्छे प्रकार ( प्र, यातन ) प्राप्त होना । हे ( चित्रा ) अद्भुत कर्म करनेवाले विद्वानो ! ( मन्मानि ) विद्वानों को ( अपिवातयन्तः ) शीघ्र पहुँचाते हुए तुम ( मे ) मेरे ( एषाम् ) इन ( क्रुतानाम् ) सम्य व्यवहारों के बीच ( नवेदा ) नवेद अर्थात् जिनमें दुःख नहीं है ऐसे ( भूत ) होओ ॥ १३ ॥

भाषार्थ—मनुष्य सब के मित्र ही और उन को बिद्या पहुँचाकर सब को धर्मयुक्त पुरुषार्थ में संयुक्त करे । जिससे ये सब सत्कारयुक्त हो और आप सत्य-असत्य जान शरीरों को उपदेय दें ॥ १३ ॥

**आ यद्वस्याहसे न कारुस्माञ्चके मान्यस्य मेधा ।**

**ओ पु र्वर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जग्ता वो अर्चत ॥१४॥**

पदार्थ—हे ( मरुतः ) विद्वानो ! ( यत् ) जिस कारण ( वृष्यात् ) सेवन करनेवाले से ( वृषते ) सेवन करनेवाले अर्थात् एक से अधिक दूसरे के लिए जैसे ( न ) वैसे हम लोगों के लिए प्राप्त हुई ( मान्यस्य ) मानने योग्य, योग्यता को प्राप्त सज्जन की ( कारु ) शिल्प कार्यों को सिद्ध करनेवाली ( मेधा ) बुद्धि ( अस्वान् ) हम लोगों को ( या, चके ) करती है अर्थात् शिल्पकार्यों में निपुण करती है इससे तुम ( विप्रम् ) मेधावी धीरबुद्धिवाले पुरुष के ( ओ, पु, वत् ) सम्मुख चलनेवाले होओ किम लिए ( जग्ता ) स्तुति करनेवाला ( इमा ) इन ( ब्रह्माणि ) वेदों को समग्र कर ( अर्चत ) अच्छे प्रकार ( व ) तुम लोगों को ( अर्चत ) सेवे ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे शिल्पजन शिल्पविद्या से सिद्ध की हुई वस्तुओं का सेवन करते हैं वैसे वेदाध्य और वेदज्ञान सब को सेवने चाहिए जिस कारण वेदविद्या के बिना शरीर सत्कार करने योग्य विद्वान् नहीं होता ॥ १४ ॥

**एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्थस्य मान्यस्य कारोः ।**

**एषा यासीष्ट तन्वै वयां विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥२६॥**

पदार्थ—हे ( मरुत ) उत्तम विद्वानो ! ( एषः ) यह ( वः ) तुम लोगों के लिए ( स्तोमः ) स्तुतियों का समूह और ( मान्यस्य ) स्तुति के योग्य वा उत्तम गुण, कर्म स्वभाववाले ( मान्यस्य ) मानने योग्य ( कारो ) कार करनेवाले पुरुषार्थों जन की ( इयम् ) यह ( गीः ) गायत्री है इससे तुम मे से प्रत्येक ( तन्वै ) वद्वाने के लिए ( इषा ) इच्छा के साथ ( या, यासीष्ट ) आशी प्राप्त होओ ( वयाम् ) और हम लोग ( इवम् ) अन्न ( वृजनम् ) बल ( जीरदानुम् ) और जीवन को ( विद्याम् ) प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो आप्त, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा, पुरुषार्थी विद्वान् पुरुषों की उत्तेजना से विद्या और शिक्षा का प्राप्त होकर धर्मयुक्त व्यवहार का आचरण करते हैं उनके जन्म की सफलता है यह जानना चाहिए ॥ १५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की विच्छेद सूक्त के अर्थ के साथ सञ्ज्ञति जाननी चाहिए ॥

यह एक सी वसुधैव कुटुम्बकम् और छद्मोक्तवां वर्ण समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में वसु, वद्वानों के अर्थों का प्रतिपादन होने से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की विच्छेद अध्याय में कहे अर्थों के साथ सञ्ज्ञति वर्तमान है वह जानना चाहिए ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्याणां परमविद्वानां श्रीमद्विद्वान्मन्तरस्वती-  
स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिब्राजकाचार्येण श्रीमद्वाङ्मन्तरस्वतीस्वामिना  
निर्मिते आर्यभाषासुसूचिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाध्याये  
तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥



विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

पराशर—हे (तनयस्य) सन्तान की (पुष्टिषु) पुष्टि करनेवाले कामों में प्रयत्न करते हुए (अथाः) तेजस्वी, तीव्र प्रतापयुक्त (तत्ततः) अत्यन्त बड़े हुए बाल से युक्त (विरचिन्तनः) पूर्ण विद्या, पूर्ण शिक्षा और पूर्ण पराक्रमवाले (भक्तः) पवनो के समान बलमान विद्वान्। तुम (आतभुजिभि) असंख्य सुख भोगने की जिनका शील (पुमि) पूर्ण, पालन और सुखयुक्त नगरों के साथ (यन्) जिसकी (अभिहृते) सब और से कुटिल (अघात्) पाप से (रक्षत) रक्षा करो बचाओ वा (यन्) जिस (जनम्) जन की (आवत) पालो वा जिसकी (संघात्)

आत्मवशसाकन बीज से ( वायव्य ) पालना करो ( तत् ) उसकी हृदयलोक भी सब ओर से रक्षा करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य युक्त आहार-विहार, उत्तम शिक्षा, बहुवर्षों और विद्यादि गुणों से अपने सन्तानों को पुष्टियुक्त, सत्य की प्रशंसा करनेवाले और पाप से अलग रहनेवाले करते और प्राण के समान प्रजा को धार्मिकता करते हैं वे अनन्त सुखसीता होते हैं ॥ ८ ॥

विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्त्वय्येन तविषाण्यार्हिता ।

अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽसौ बभूवा समया वि वाङ्मे ॥९॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) पवनो के समान बली सज्जनो ! ( वः ) तुम्हारे ( रथेषु ) रथगीय यानों में ( विश्वानि ) समस्त ( भद्रा ) कल्याण करनेवाले ( मनुष्यस्युष्येव ) सन्तानों में जैसे परस्पर सेना है वैसे ( तविषाणि ) बल (आहिता) सब ओर से घेरे हुए हैं ( वः ) तुम्हारे ( असेषु ) स्कन्धों में उक्त बल है तथा ( प्रपथेषु ) उत्तम सीधें मार्गों में ( खादयः ) खाने योग्य विशेष भक्ष्य-भोज्य पदार्थ हैं ( वः ) तुम्हारे ( बभूवा ) रथ का अन्नभाग, घुरी ( बभूवा ) पहियों के ( समया ) समीप ( वा, वि, बभूवे ) विविध प्रकार से प्रत्यक्ष वर्तमान हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो आप बलवान् कल्याण के आचरण करनेवाले सुमार्गगामी परिपूर्ण धन सेनादि सहित हैं वे प्रत्यक्ष शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥ ९ ॥

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वसःसु रुक्मा रभसासौ अञ्जयः ।

अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥१०॥

पदार्थ—जिनके ( नर्येषु ) मनुष्यों के लिए हितरूप पदार्थों में ( भूरीणि ) बहुत ( भद्रा ) सेवन करने योग्य वर्मयुक्त कर्म वा ( बाहुषु ) ब्रह्मण्ड मज्जदण्डों और ( रुक्मासु ) वस्त्रस्थलों में ( रुक्मा ) सुवर्ण और रत्नादि युक्त धनकाग ( असेषु ) स्कन्धों में ( एता ) विद्या की शिक्षा में प्राप्त ( रभसासः ) केन जिनमें विश्वमान ऐसे ( अञ्जय ) प्रसिद्ध प्रशंसायुक्त पदार्थ ( पविषु, अधि ) उत्तम शिक्षायुक्त वाणिज्यो में ( क्षुरा ) जर्मनिकूल शब्द वर्तमान हैं वे ( वयो ) पक्षेक ( पक्षान् ) पक्षों को ( न ) जैसे वैसे ( श्रियो ) लजिमियों को ( धिरे, अनु, धिरे ) विशेषता से अनुकूल धारण करते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो ब्रह्मचर्य से विद्याओं को प्राप्त हुए गृहभ्रम में आभूषणों को धारण किये पुत्रवार्थयुक्त, परोपकारी, वानप्रस्थाश्रम में वैराग्य को प्राप्त, पढ़ाने में रमे हुए और सन्यास आश्रम में प्राप्त हुआ यथार्थभाव जिनको और परोपकारी सर्वत्र विचारते, सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराते हुए समस्त मनुष्यों को बड़ाता है वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

महान्तो महा विभोः विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्याइव स्तुभिः ।

मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः समिरला इन्द्रं मरुतः परिन्दुभः ॥११॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन ( महा ) अपनी महिमा से ( महान्त ) बड़े ( विभोः ) समर्थ ( विभूतयो ) नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को देनेवाले ( दूरेदृशो ) दूरदर्शी ( इन्द्रो ) विजुली के विषय में ( समिरला ) अच्छे मिले हुए ( स्तुभिः ) आच्छादन करने, ससार पर छाया करनेहारे सारागणों के साथ वर्तमान ( परिन्दुभः ) सब ओर से धारण करनेहारे ( मरुतः ) पवनो के समान तथा ( विभो इव ) सूर्यस्थ किरणों के समान ( मन्द्राः ) कमनीय, मनोहर ( सुजिह्वा ) सत्य वाली बोलनेवाले ( स्वरितारः ) पढ़ाने और उपदेश करनेवाले होते हुए ( आसभिः ) मुखों से पढ़ाते और उपदेश करते हैं वे निर्मल विद्याशाली होते हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे पवन समस्त स्तुतिमान् पदार्थों को धारण करनेवाले विजुली के मधोम से प्रकाश और सर्वत्र व्याप्त हैं वैसे विद्वान् जन स्तुतिमान् द्रव्यों की विद्या और विद्याधिष्ठो के सयोग के विशेष ज्ञान को देनेवाले सकल विद्या और शुभ आचरणों में व्याप्त होते हुए मनुष्यों में उत्तम होते हैं ॥ ११ ॥

तद्वः सुजाता मरुतो मडित्वनं दीर्घं वो दातमदितेरिव द्रतम् ।

इन्द्रश्चन त्यजसा वि हुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥

पदार्थ—हे ( सुजाता ) सुन्दर प्रसिद्ध ( मरुतः ) पवनो के समान वर्तमान ! जो ( वः ) तुम्हारा ( मडितेरिव ) अन्तरिक्ष की जैसे वैसे ( मडित्वनम् ) महिमा ( दीर्घम् ) विस्तारयुक्त ( दातम् ) दान और ( वः ) तुम्हारा ( द्रतम् ) शील है ( तत् ) उसको तथा जो ( इन्द्रः ) विजुली ( वन ) जो ( त्यजसा ) त्याग से अर्पित एक पदार्थ छोड़ दूसरे पर गिरने से ( वि, हुणाति ) टूटी-भट्टी जाती ( तत् ) उस वृत्त का भी ( यस्मै ) जिस ( सुकृते ) सुन्दर वर्म करनेवाले ( जनाय ) सज्जन के लिए ( अराध्वम् ) देमो वह ससार का उपकार कर सके ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है । जिनकी प्राण के मुख्य महिमा, विस्तारयुक्त विद्या का दान, आकाशवत् शान्तियुक्त शील और विजुली के समान कुण्डलाचरण का त्याग है वे सबको सुख देने की योग्य हैं ॥ १२ ॥

तद्वो जापित्वं मरुतः परं धुने पुरु यच्छंसमदृतास आवंत ।

अया धिया मनवे भृष्टिषाभ्यां साकं नरो दंसनैरा चिकिचिरे ॥१३॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) मनुष्यवर्मरहित ( मरुतः ) प्राणों के समान अत्यन्त प्रिय विद्वान् जनो ! ( परं, धुने ) परसे वर्ष में वा परजन्म में ( यत् ) जो ( वः ) तुम लोगों का ( पुरु ) बहुत ( भामित्वम् ) सुख-दुःख का भोग वर्तमान है ( तत् ) उसको ( मरुतः ) प्रस्तावरूप ( आभतः ) रक्खो और ( अया ) इस ( धिया ) बुद्धि से ( मनवे ) मनुष्य के लिए ( भृष्टिम् ) प्राप्त होने योग्य वस्तु की ( धाम्य ) रक्षा कर ( नरः ) वर्मयुक्त व्यवहारों में मनुष्यों को पहुँचानेवाले मनुष्य ( साकम् ) तुम्हारे साथ ( वसनः ) शुभ-अशुभ, सुख-दुःख कलों की प्राप्ति करानेवाले कर्मों से ( या, चिकिचिरे ) सबको अच्छे प्रकार जानें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे वायु इस सृष्टि में और वर्तमान प्रलय में वर्तमान है वैसे नित्य जीव हैं तथा जैसे वायु बड़ वस्तु को भी नीचे-ऊपर पहुँचाते हैं वैसे जीव भी कर्मों के साथ पिछले, बीच के और आगे समय में समय और अपने कर्मों के अनुसार चक्कर खाते फिरते हैं ॥ १३ ॥

येन दीर्घं मरुतः शुशवांम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।

आ यत्ततनन्वजने जनांस एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमध्याम् ॥१४॥

पदार्थ—हे ( तुरासः ) शीघ्रता करनेवाले ( मरुतः ) पवन के समान विद्यायुक्त विद्वानो ! हम लोग ( ये ) जिस ( युष्माकेन ) आप लोगों के सम्मुख के ( परीणसा ) बहुत उपदेश से ( दीर्घम् ) दीर्घ, अत्यन्त लम्बे ब्रह्मचर्य को प्राप्त होके ( शुशवांम ) बुद्धि को प्राप्त हो जिससे ( जनांस ) विद्या से प्रसिद्ध मनुष्य ( यज्ञे ) बल के निमित्त ( यत् ) जिस क्रिया को ( या, ततनम् ) विस्तार ( तत् ) उस ( अवीष्टिम् ) सब प्रकार से बाढ़ी हुई क्रिया को ( एभिः ) इन ( यज्ञेभिः ) विद्वानों के सङ्गकल्पनों से मैं ( अयवांम् ) पाऊँ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जिनके सहाय से मनुष्य बहुत विद्या, धर्म और बलवाले हो उनकी नित्य बुद्धि करें विद्वान् जन जैसे धर्म का आचरण करें वैसे ही और भी जन करें ॥ १४ ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयक्कीर्मीन्द्रार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेप वृजनं वीरदानम् ॥१५॥३॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) विद्वानो ! ( वः ) तुम्हारा जो ( एष ) यह ( स्तोमः ) स्तुति और ( आम्हार्यस्य ) आनन्द करनेवाले जर्मिया ( आम्हार्यस्य ) सत्कार करने योग्य ( कारो ) धरन्त यत्न करते हुए जन की ( इयम् ) यह ( गी ) वाली और जिस क्रिया को ( तन्वे ) शरीर के लिए ( इषा ) इच्छा के साथ कोई ( या, यासीष्ट ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो उस क्रिया ( इयम् ) धन्य ( वृजनम् ) बल और ( वीरदानम् ) जीवन को ( वयम् ) हम लोग ( विद्याम् ) प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को विद्वानों की स्तुति कर, शास्त्रज्ञ धर्मत्यागों की वाली सुन, शरीर और आत्मा के बल को बड़ा दीर्घ जीवन प्राप्त करना चाहिए ॥ १५ ॥

इस सूक्त में मरुच्छन्दार्थ से विद्वानों के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक ती छियासठवाँ सूक्त और तीसरा वर्ण समाप्त हुआ ॥



सहस्रमित्यस्यैकादशशतस्य सप्तषष्ठ्युत्तरस्य अततमस्य सूक्तस्यागस्य ऋषिः ।

इन्द्रो मरुतश्च वेत्ता । १, ४, ५ धुरिक् पङ्क्तिः, ७, ८ स्वरान् पङ्क्तिः ;

१० निष्पत् पङ्क्तिः; ११ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वर । २, ६,

६, ८ निष्पत्तिपञ्चमः । अथ स्वर ॥

अथ एक ती सरसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके अर्थ मन्त्र में सज्जनों के यशों का वर्णन करते हैं—

सहस्रन्त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गृत्तमाः ।

सहस्रं रायो मादयध्वै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥१॥

पदार्थ—हे ( हरिः ) धारणाकर्षणादि युक्त ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवाले विद्वान् ! जो ( ते ) आपकी ( सहस्रम् ) सहस्रों ( ऊतवः ) रक्षनाएँ ( सहस्रम् ) सहस्रों ( इवः ) धन्य आदि पदार्थ ( सहस्रम् ) सहस्रों ( गृत्तमाः ) अत्यन्त उद्यम वा ( रावः ) धन हैं वे ( नः ) हमारे ही और ( सहस्रिणः ) सहस्रों पदार्थ जिनमें विद्यमान वे ( वाजाः ) घोष ( आवाजध्वै ) आनन्दित करने के लिए ( नः ) हम लोगों को ( उप, यन्तु ) निकट प्राप्त हों ॥ १ ॥



भाषार्थ—मनुष्यों को जो भाग्यशालियों को सर्वोत्तम सामग्री से और धनयोग्य क्रिया से असंख्य सुख होते हैं वे हमारे ही ऐसा मानकर निरन्तर प्रवृत्त करना चाहिए ॥ १ ॥

अथ पवन के वृष्टाण्ण से सज्जन के गुणों को अगले जन्मों में कहा है—

आ नोऽर्वाभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठैर्भवा बृहद्भिः सुमायाः ।

अथ यदैषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥२॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( सुमाया ) सुन्दर बुद्धिवाले ( बृहद्भिः ) जिन की अतीव विद्या प्रसिद्ध उन ( ज्येष्ठैः ) विद्या और धनवत्ता से बड़े हुओं के ( आ ) अथवा ( अर्वाभिः ) रक्षा प्रादि कर्मों के साथ ( मरुतः ) पवनो के समान सज्जन ( न ) हम लोगों को ( अश्वा ) अच्छे प्रकार ( आ, यान् ) प्राप्त हों ( अथ ) इस के अनन्तर ( एषां, चित् ) इन के भी ( समुद्रस्य ) सागर के ( पारे ) पार ( परमाः ) अत्यन्त उत्तम ( नियुतः ) पवन के समान बिजुली प्रादि धन ( अनयन्त ) अपने को धन की इच्छा करते हैं उनका हम लोग सरकार करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अतीव बड़ी लोकाधी से पवन के समान वेग से व्यवहारसिद्धि के लिए समुद्र के बार-बार आ-आकर धन की उन्नति करते हैं वे अत्युक्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।

गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विद्वध्यैव सं वाक् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप ( येषु ) जिन में ( घृताची ) जल की शीतलता से छोड़नेवाली रात्रि के समान वा ( सुधिता ) अच्छे प्रकार धारण की हुई ( उपरा ) ऊपरली दिशा के ( न ) समान वा ( ऋष्टिः ) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त करनेवाली ( हिरण्यनिर्णिगु ) जो सुवर्ण से पुष्टि होती और ( गुहा, चरन्ती ) गुप्त स्थलों में बिचरती हुई ( मनुष्यः ) मनुष्य की ( योषा ) स्त्री ( न ) उसके समान वा ( विद्वद्भ्यः ) संग्राम वा विद्वानों में हुई क्रिया प्रादि के समान ( सभावती ) सभा सम्बन्धिता ( वाक् ) वाणी है उस को ( सम्, मिम्यक्ष ) अच्छे प्रकार प्राप्त होनी ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य सत्य-प्रसन्न के निर्णय के लिए सब शुभ गुण, कर्म, स्वभाववाली विद्या सुशिक्षायुक्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को प्राप्त होता है वे बहुत ऐश्वर्यवान् होते हुए दिशाओं में सुन्दर कीर्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

परां शुभ्रा अयासौ यज्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।

न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृध मरुयाय देवाः ॥४॥

पदार्थ—जैसे ( शुभ्रा ) स्वच्छ ( अयास ) शीघ्रगामी ( मरुतः ) पवन ( यज्या ) मिला न मिला हुई बाल से ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को ( मिमिक्षुः ) नीचने और ( घोरा ) बिजुली के योग से भयकर होते हुए ( न, परा, अप, जुषन्त ) उनको पराबृत्त नहीं करते, उमट नहीं देते वैसे ( देवाः ) विद्वान् जन ( यज्याम् ) बृद्ध को ( मरुयाय ) मित्रता के लिए ( साधारण्येव ) साधारण क्रिया से जैसे वैसे ( जुषन्त ) सेवें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे वायु और बिजुली के योग से उत्पन्न हुई वर्षा अनेक शोधधियों को उत्पन्न कर सब प्राणियों को जीवन देकर दुःखों को दूर करती है वा जैसे उत्तम पतिव्रता स्त्री पति को आनन्दित करती है वैसे ही विद्वान् जन विद्या और उत्तम शिक्षा की वर्षा से और धर्म के सेवन से मनुष्यों को आल्लासित करें ॥ ४ ॥

जोषयदीमसुर्यां सचध्वै विधितस्तुका रोदसी नृमणाः ।

आ सूर्येव विधतो रथं गाक्षेवप्रतीका नभसो नेत्या ॥५॥४॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( असुर्या ) मेघों में प्रसिद्ध ( विधितस्तुका ) विविध प्रकार की जिस की स्तुति सम्बन्धी और ( नृमणाः ) जो अश्वगामी जनों में वितर रखती हुई ( ईम् ) जल के ( सचध्वै ) समीप के लिए ( सूर्येव ) सूर्य की दीप्ति के समान ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को ( जोषन्त ) सेवे अर्थात् उन के गुणों में रमे वा ( गाक्षेवप्रतीका ) प्रकाश की प्रतीति करानेवाली और ( नेत्या ) प्राप्त होने के योग्य होती हुई ( नभसः ) जल सम्बन्धी ( रथम् ) रमण करने योग्य रथ के ( न ) समान व्यवहार की और ( विधन्तः ) ताड़ना करनेवालों को ( आ, नात् ) प्राप्त होती वह स्त्री प्रवर है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जैसे अग्नि बिजुलीरूप से सब को सब प्रकार से व्याप्त होकर प्रकाशित करती है वैसे सब विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाकर स्त्री समस्त कुल को प्रशंसित करती है ॥ ५ ॥

आस्थापयन्त युवति युवानः शुभे निर्मिष्टां विद्वेषु पञ्चाम् ।

अर्को यदौ मरुतो हविष्मान् गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥६॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) विद्यायुक्त प्राण के समान प्रिय सज्जनों ! ( युवाका ) जीवनान्वया को प्राप्त आप ( शुभे ) शुभ, गुण, कर्म और स्वभाव ग्रहण करने के

लिए ( निर्मिष्टां ) निरन्तर पूर्ण विद्या और सुशिक्षायुक्त और ( विद्वेषु ) धर्मयुक्त व्यवहारों में ( पञ्चाम् ) जानेवाली ( युवतिम् ) युवती स्त्री को ( आ, आस्थापयन्त ) अच्छे प्रकार स्थापित करते और ( यत् ) जो ( वः ) तुम्हारे ( अर्कं ) सरकार करने योग्य धन है उस को अच्छे प्रकार स्थापित करते हो तथा जो ( हविष्मान् ) बहुत विद्यावान् ( सुतसोम ) जिसने ऐश्वर्य उत्पन्न किया और ( गायत् ) स्तुति करे वह ( गायम् ) प्रशसनीय उपदेश को ( दुवस्यन् ) सेवता हुआ निरन्तर आनन्द करे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—सब राजपुरुषादिकों को अत्यन्त योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को दीर्घ ब्रह्मचर्य में स्थापित कर विद्या और उत्तम शिक्षा उन को ग्रहण करा पूर्ण विद्यावाले, परम्परा प्रसन्न पुत्र-कन्याओं का स्वयंवर विवाह करावें जिससे एक तक जीवन रहे तब तक आनन्दित रहे ॥ ६ ॥

म तं विवक्षिं वक्ष्यो य एषा मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।

सचा यदी वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७॥

पदार्थ—( यः ) जो ( एषाम् ) इन ( महिमा ) पवनो के समान विद्वानों का ( वक्ष्यः ) कहने योग्य ( सत्यः ) सत्य ( महिमा ) बड़प्पन ( अस्ति ) है ( तम् ) उसकी और ( यत् ) जो ( अहंयुः ) ग्रहणकारवाला, अभिमान ( वृषमणाः ) जिसका धीर्य सीधने में मन बह ( ईम् ) सब ओर से ( सचा ) सम्बन्ध के साथ ( स्थिरा, चित् ) स्थिर ही ( सुभागा ) सुन्दर सेवन करने ( जनी ) अपत्यों की उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों को ( वहते ) प्राप्त होता उस को मैं भी ( प्र, विवक्षिं ) अच्छे प्रकार विशेषता से कहता हूँ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का यही बड़प्पन है जो दीर्घ ब्रह्मचर्य से कुमार और कुमारी शरीर और आत्मा के पूर्ण बल के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर चिरञ्जीवी, दृढ़ जिन के शरीर और मन ऐसे भाग्यशाली सन्तानों को उत्पन्न कर उनको प्रशंसित करता ॥ ७ ॥

पान्ति मित्रावरुणावध्याक्षयंत ईमर्यमो अमशस्तान् ।

उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ई मरुतो दातिवारः ॥८॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) विद्वाना ! आप लोग और ( मित्रावरुणा ) मित्र और श्वेष्ठ सज्जन वा अध्यापक और उपदेशक जन ( अच्युता ) निन्धा पापाचरण से ( पान्ति ) मनुष्यों की रक्षा करते हैं तथा ( अमशस्तान् ) न्याय करनेवाला राजा ( अमशस्तान् ) दुराचारी जनो को ( ईम् ) प्रत्यक्ष ( च्यते ) इकट्ठा करता है ( उत ) और वे ( अच्युता ) बिनाशरहित ( ध्रुवाणि ) ध्रुव, दृढ़ कामों को ( च्यवन्ते ) प्राप्त हात हैं और ( दातिवारः ) दान को लेनेवाला ( ईम् ) सब ओर से ( वावृध ) बढ़ता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के देने से अज्ञानियों को अधर्म से निवृत्त कर ध्रुव और शुभ गुण कर्मों का प्राप्त कराते हैं वे मुख से अलग नहीं होते ॥ ८ ॥

नदी नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आगतांचिच्छवसो अन्तमापुः ।

ते धृष्णुना शर्वसा शशुवांसोऽर्णो न द्वेपौ धृपता परि वृदुः ॥९॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) महा बलवान् विद्वानो ! जो ( वः ) तुम्हारे और ( अस्ते ) हमारे ( अन्ति ) समीप में ( शर्वसा ) बल की ( अन्त्यस्मे ) सीमा को ( नु ) शीघ्र ( नहि ) नहीं ( आपुः ) प्राप्त होते और जो ( आगताम् ) दूर से ( चित् ) भी ( धृष्णुना ) दृढ़ ( शर्वसा ) बल से ( शशुवांस ) बढ़ते हुए ( अर्णो ) जन के ( न ) समान ( वृषता ) प्रगल्भता से, ढिंढाई से ( द्वेपः ) बैर प्रादि दोष वा बर्मेविरोधी मनुष्यों को ( परि, वृदुः ) सब ओर से छोड़ने में स्थिर हो ( ते ) वे प्राप्त अर्थात् शास्त्रज्ञ धर्मात्मा हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—यदि हम लोग पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होवें तो सज्जन हमारा और तुम्हारा पराजय न कर सकें । जो दुष्ट और लोभादि दोषों की छाई के प्रति बली होकर दुःख के पार पहुँचें ॥ ९ ॥

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं शो वोचेमहि समर्थ्यं ।

वयं पुरा महि च नो अनु धून्तर्भक्रमुष्मा नरामनु व्धात् ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( वयम् ) हम लोग ( अद्य ) आज ( इन्द्रस्य ) परमविद्या और ऐश्वर्ययुक्त धार्मिक विद्वान् के ( प्रेष्ठाः ) अत्यन्त प्रिय हैं ( वयम् ) हम लोग ( वः ) कल के धालेवाले दिन ( समर्थ्यं ) संग्राम में ( वोचेमहि ) कहें ( न ) और ( पुरा ) प्रथम जो ( न ) हम लोगों का ( महि ) बड़प्पन है ( तम् ) उसको ( वयम् ) हम लोग ( अनु, धून् ) प्रतिदिन कहें और ( नराम् ) मनुष्यों के बीच ( नः ) हमारे लिए ( क्रमुष्मा ) मेघावी बुद्धिमान् और पुरुष ( अनु, व्धात् ) अनुकूल हों ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों से प्रीति, युद्ध में उत्साह और मनुष्यादिकों का प्रिय काम का पहले से धावरण करते हैं वे सब के प्यारे हैं ॥ १० ॥

एष वः स्तोमी मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेघं वृजर्न जोरदानुम् ॥११॥५॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) विद्वानो ! ( एष. ) यह ( व ) तुम्हारी ( स्तोम ) स्तुति और ( मान्यस्य ) मान्य के देनेवाले उत्तम ( मान्यस्य ) मान सत्कार करने योग्य ( कारो ) सबका सुख करनेवाले सज्जन की ( इयम् ) यह ( गी. ) वेदविद्या की उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी है इसकी जो ( इषा ) इच्छा के साथ ( आ, यासीष्ट ) प्राप्ति हो ( वयाम् ) हम लोग ( तन्वे ) शरीर के लिए उस ( इयम् ) इच्छा ( जोरदानुम् ) जीवन के निमित्त और ( वृजर्नम् ) बल को ( विद्याम् ) जानें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो सभसे प्रशंसा करने योग्य गुणों को प्राप्त होकर आप्त धर्मिणा सज्जनो का सत्कार कर शरीर और आत्मा के बल के लिए विद्या और पराक्रम सम्पादन करते हैं वे सुख से जीते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में वायु के वृष्टान्त से सज्जनों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिए ॥

यह एक ही सरसठवां सूक्त और पाँचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



यत्नायमेत्यस्य वसवस्यैवावष्टुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

मरुतो देवताः । १, ४ निबृजवर्गती छन्दः । निषाद स्वरः । २, ५

चिराट् त्रिष्टुप्, ३ स्वराट् त्रिष्टुप्, ६, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्;

८ त्रिष्टुप्; ९ निबृज त्रिष्टुप् छन्दः । बँधतः स्वरः ।

१० पङ्क्तिस्तच्छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब एक ही अरसठवां सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ में पवन के वृष्टान्त से सज्जनों के गुणों का वर्णन करते हैं—

यज्ञायज्ञा वः समना त्तुर्वर्णिधिर्यधियं वा देवया उ दधिध्वे ।

आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्मेहे ववृत्यामवसे सुवृत्रिभिः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ( देवया ) दिव्य गुणों को जो प्राप्त होने के आराधना ( व ) तुम्हारे ( धिर्यधियम् ) काम-काम की धारण करते वैसे ( उ ) ही तुम उनको ( दधिध्वे ) धारण करो । जैसे उन पवनो की ( यज्ञायज्ञा ) यज्ञ-यज्ञ में और ( समना ) समान व्यवहारों में ( तुर्वर्णि ) शीघ्र गति है वैसे ( वः ) तुम्हारी गति हो जैसे हम लोग ( रोदस्यो. ) आकाश और पृथिवी सम्बन्धी ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिए और ( मेहे ) मत्स्यन्त ( अवसे ) रक्षा के लिए ( वः ) तुम्हारे ( सुवृत्रिभिः ) सुन्दर त्यागों के माध्य ( अर्वाच ) नीचे आने-जानेवाले पवनो को ( आ, ववृत्याम् ) अच्छे बलाने के लिए चाहते हैं वैसे तुम बाहो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पवन नियम से अनेक विधि गतिमान् होकर विश्व का धारण करते हैं वैसे विद्वान् जन विद्या और उत्तम शिक्षा युक्त होकर विद्याधियों को धारण करे जिससे असंख्य ऐश्वर्य प्रप्त हो ॥१॥

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वर्गभिजायन्त भूतयः ।

सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षरः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( ये ) जो ( स्वजाः ) अपने ही कारण से उत्पन्न ( स्वतवस ) अपने बल से बलवान् ( भूतयः ) जाने वा दूसरों को कम्पानेवाले मनुष्य ( वव्रास ) शीघ्रगामियों के ( न ) समान वा ( अपाम् ) जलो की ( सहस्रियास ) हजारों ( ऊर्ध्व ) तरङ्गों के ( न ) समान ( आसा ) सुख में ( वन्द्यासः ) बन्दना और कामना के योग्य ( गाव ) गौए जैसे ( उक्षर ) जलों की ( न ) धीमे ( इषम् ) जान और ( स्वः ) सुख को ( अभिजायन्त ) प्रकट करते हैं उनको तुम जानो ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पवा के समान बलवान्, तरङ्गों के समान उत्साही, गौधो के समान उपकार करनेवाले, कारण के तुल्य सुखजनक, दुष्टों को कम्पाने, भय देनेवाले मनुष्य हो वे यहाँ वर्ण्य होते हैं ॥२॥

सोमासो न ये सुतास्तुप्तांशवो हन्सु पीतासो दुवसो नासते ।

पेषामसैषु रम्भिणीव गग्भे हस्तैषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥३॥

पदार्थ—मैं ( ये ) जो पवनो के समान विद्वान् ( सुतांशवः ) जिनसे सूर्य किरण आदि पदार्थ तृप्त होते और वे ( सुता ) कूट-नीट निकाले हुए ( सोमासः ) सोमादि भोज्य रस ( हन्सु ) हृदयों में ( पीतासः ) पीये हुए हों उनके ( न ) समान वा ( दुवसः ) सेवन करनेवालों के ( न ) समान ( आसते ) बैठते, स्थिर होते ( पेषाम् ) इनके ( अंसेषु ) मुखस्कन्धों में ( रम्भिणीव ) जैसे अत्येक काम का धारण करनेवाली स्त्री संलग्न हो वैसे ( आ, रासते ) संलग्न होता है । और जिन्होंने ( हस्तैषु ) हाथों में ( खादिः ) भोजन ( च ) और ( कृतिः ) किया ( च ) भी धारण की है उनके साथ सब किवायों को ( सप्त, हव ) अच्छे प्रकार धारण करता है ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सज्जन भोज्यधियों के समान पुष्ट शिक्षा और दुष्टाचार के विनाश करने, सेवकों के समान सुख देने और पतिव्रता स्त्री के समान प्रिय आचरण करनेवाले किवाकृण्ड हैं वे इस सूक्ति में सब विद्याओं के अच्छे धारण करने यथायोग्य कामों में बलाने को योग्य होते हैं ॥३॥

अव स्वपुंसा दिव आ पृथा यपुरमर्त्याः कशया खोदत त्मना ।

अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवृद्धानि चिन्मरुतो आजहृष्टयः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम ( त्मना ) आत्मा से ( कशया ) शिक्षा या गति से जैसे ( स्वपुंसा ) अपने से गमन करनेवाले ( अमर्त्याः ) मरणधर्मरहित ( अरेणव ) जिनमें देण्ड बालू नहीं विद्यमान ( तुविजाता ) बल के साथ प्रसिद्ध और ( आजहृष्टयः ) जिनकी प्रकाशमान गति के ( अस्तः ) पवन ( विष ) आकाश से ( आ, पृथा ) आते, प्राप्त होते हैं और ( वृद्धानि ) पुष्ट ( चित् ) भी पदार्थों को ( च्या ) क्या निष्काम ( अवः, अचुच्यवृ. ) प्राप्त होते हैं वैसे इनको ( खोदत ) प्रेरणा देघो ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पवन आप ही आते-आते हैं और अग्नि आदि पदार्थों को धारण कर दृढ़ता से प्रकाशित करते हैं वैसे विद्वान् जन आप ही पढ़ाने और उपदेशों में निवृत्त हो अर्थ्य कामों को छोड़ और छुड़वाके विद्या और उत्तम शिक्षा से सब जनो की प्रकाशित करते हैं ॥ ४ ॥

को वोऽन्तर्मेरुत ऋष्टिविद्युता रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।

घन्वेच्युत एषा न यामनि पुरुषैषा अह्न्यो नैतशः ॥५॥६॥

पदार्थ—हे ( पुरुषैषा ) बहुतों से प्रेरणा को प्राप्त ( ऋष्टिविद्युतः ) ऋष्टि—द्विधारा लङ्ग को बिजुली के समान तीव्र करनेवाले ( मरुत ) विद्वानो ! ( व ) तुम्हारे ( अस्त ) बीच में ( क ) कौन ( रेजति ) कम्पता है और ( जिह्वया ) वाणी से ( हन्वेव ) कनपटी जैसे कुलाई जावे वैसे ( त्मना ) अपने से कौन तुम्हारे बीच में कम्पता है ( इवाम् ) और इच्छाओं के सम्बन्ध में ( घन्वेच्युत ) अन्तरिक्ष में प्राप्त मेघों के ( न ) समान वा ( अह्न्य ) दिन में प्रसिद्ध हानवाक ( एतश ) थोड़े के ( न ) समान ( यामनि ) मार्ग में तुम लोगों को कौन संयुक्त करता है ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जब जिह्वासु जन विद्वानों के प्रति पूछें तब विद्वान् जन इनके लिए यथार्थ उत्तर दें ॥ ५ ॥

क्व स्विदस्य रजरो महस्परं क्वाक्षरं मरुतो यस्मिन्नायय ।

यन्त्यावयथ विधुरेव संहित व्यद्विगा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) विद्वानो ! ( अस्य ) इस ( रजस ) भूगोल का ( महः ) बड़ा ( परम् ) कारण ( क्व, स्विद ) निश्चय से कहाँ और ( क्व ) कहाँ ( क्वाक्षरम् ) कार्य्य वर्तमान है इसको हम लोग पूछने हैं ( यस्मिन् ) जिसमें तुम ( आयय ) आओ ( अत ) जिसको ( व्यावयथ ) बलाघो जिसमें ( विधुरेव ) दबाये पदार्थों के समान ( संहितम् ) येन किये हुए यह जगत् है जिससे ( व्यद्विगा ) मेघबन्ध के पवन ( त्वेषम् ) सूर्य के प्रकाश और ( अर्णवम् ) समुद्र को ( वि, पतथ ) नीचे प्राप्त होते हैं वही परब्रह्म सब जगत् का बड़ा कारण है यही उक्त प्रपनो का उत्तर है ॥६॥

भाषार्थ—जिसमें यह भूगोल आदि जगत् जाता, आता, कम्पता उसीको आकाश के समान कारण जानो जिसमें ये लोक उत्पन्न होते, भ्रमते और प्रलय हो जाते हैं वह परम उत्कृष्ट निमित्त कारण ब्रह्म है ॥६॥

सातिर्न वाऽम्वती स्वर्बती त्वेषा विपांका मस्तः पिपिब्वती ।

भद्रा वां रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुजयी असुर्येव जञ्जती ॥७॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) विद्वानो ! ( व. ) तुम्हारी जो ( पिपिब्वती ) बहुत अच्छी वाणी ( अम्वती ) शानवती ( स्वर्बती ) जिसमें सुख विद्यमान ( विपांका ) विविध प्रकार के गुणों से परिपक्व ( त्वेषा ) उत्तम दीप्ति ( सातिः ) लोको की विभक्ति अर्थात् विविध भाग के ( न ) समान है और ( व. ) तुम्हारी जो ( पृणत ) पालन करने वा विद्यादि गुणों से परिपूर्ण करनेवाले की ( दक्षिणा ) देने योग्य दक्षिणा के ( न ) समान ( पृथुजयी ) बहुत वेगवती ( असुर्येव ) प्राणी में होनेवाली बिजुली के समान वा ( जञ्जती ) युद्ध में प्रवृत्त अभियात्री हुई सेना के समान ( भद्रा ) कल्याण करनेवाली ( राति ) रात है उससे सबको बड़ाघो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो इन जीवों की पाप-पुण्य ने उत्पन्न हुई सुखदुःख फलवाली गति है उससे समस्त जीव विचरते हैं । जो पुरुषार्थी जन, सेना जन शत्रुओं को जैसे वैसे पापों को जीत, निवार धर्म का आचरण करते हैं वे सदैव सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

प्रति श्रेमन्ति सिन्धवः पविष्या यद्विद्या वाचमुदीरयन्ति ।

अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्या यदी धृतं मरुतः प्रणुवन्ति ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( यत् ) जब ( अस्तः ) पवन ( अभिवान् ) मेघों में हुई गर्जनाकल्प ( बाधन् ) बाणी को ( उदीरयन्ति ) प्रेरणा देते अर्थात् बहनों को गर्जते हैं तब ( सिन्धवः ) नदियाँ ( पवित्र्य ) वज्र मुख्य किरणों से अर्थात् बिजुली की लपट-भपटों से ( प्रति, धोमन्ति ) जोरित होती हैं और ( यद्वा ) जब पवन ( यत्नम् ) मेघों के जल ( प्रवृत्तयन्ति ) बर्षाते हैं तब ( बिजुतः ) बिजुलियाँ ( पवित्र्यान् ) भूमि पर ( अब, स्वयन्त ) मुसुकियाती-की जान पड़ती हैं जैसे तुम होओ ॥८॥

भाषार्थ—जो मनुष्य नदी के समान आर्द्रचित्त, बिजुली के समान तीव्र स्वभाववाले विद्या को पढ़कर पढ़ाते हैं वे सूर्य के समान सत्य और अक्षय को प्रकाश करनेवाले होते हैं ॥८॥

अमृतं पृथिनर्भते रक्षां त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।

ते संप्रसारसोऽजनयन्ताम्बमादिस्वधाभिधिरां पर्यपश्यन् ॥९॥

पदार्थ—( एवम् ) इन ( अयासान् ) गमनशील ( मरुताम् ) मनुष्यों का ( पृथिन ) धावित्य के समान प्रचण्ड प्रतापवान् ( त्वेषम् ) प्रदीप्त ( अनीकम् ) गण ( बहुते ) महान् ( रक्षां ) संघाम के लिए ( अमृतं ) उत्पन्न होता है ( अतः ) इसकी अनन्तर ( इत् ) ही ( ते ) वे ( इविराम् ) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के बीच ( स्वयम् ) अन्न को ( अजनयन्त ) उत्पन्न करते और ( संप्रसारस ) गमन करते हुए ( अन्वम् ) अविद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष विद्यमान नहीं उसको ( पर्य-पश्यन् ) सब ओर से देखते हैं ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वायव्योत्पत्तौपमासङ्कार है । जो विचक्षण राजपुरुष विजय के लिए प्रसन्नित सेना को स्वीकार कर अन्नादि ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं वे तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥९॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

व्या यासीष्ट तन्वे व्यां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) श्रेष्ठ विद्वानो ! जो ( एष ) यह ( वः ) तुम्हारा ( स्तोम ) प्रश्नोत्तरकर्म आलाप कथन ( मान्यस्य ) सबके लिए धानन्द देनेवाले उत्तम ( आनन्दस्य ) जानने योग्य ( कारोः ) क्रियाकुशल मज्जन की को ( इयम् ) यह ( गी ) सत्यप्रियावाणी और जो ( व्या ) इच्छा के साथ ( तन्वे ) जीर सुख के लिए ( व्या, यासीष्ट ) प्राप्त हो उससे ( व्याम् ) हम लोग ( इवम् ) अन्न ( वृजनम् ) शत्रुओं को दुःख देनेवाले बल और ( जीरदानुम् ) जीवों को व्या को ( विद्याम् ) प्राप्त होवे ॥१०॥

भाषार्थ—जो समस्त विद्या की स्तुति और प्रशंसा करने और आप्तवाक् अर्थात् धर्मात्मा विद्वानों की वाणियों में रहने तथा जीवों की दया से युक्त अज्जन पुरुष हैं वे सब के सुखों को उत्पन्न करनेवाले होते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में पवनो के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने के इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक ही अक्षरठवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अहरित्यस्याष्टर्षस्य एकोनसप्तत्युत्तरस्य शतसप्तस्य सूक्तस्यागस्य ऋषिः । इन्द्रो

देवता १, ३ धुरिक् पङ्क्ति, २ पङ्क्ति, ५, ६ स्वराद् पङ्क्तिवृत्त्यः ।

पञ्चमः स्वरः । ४ आह्वयः णिक् छन्दः । ऋचमः स्वरः ।

७, ८ विभुत् विद्वन्छन्दः । देवताः स्वरः ॥

अब एक सौ अक्षरसर्व सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

महश्चिन्मिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरुता ।

स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दुःख के विदारण करनेवाले ! अत्यन्त विद्यागुण-सम्पन्न ! ( यत ) जिस कारण ( स्वयम् ) आप ( एतान् ) इन विद्वानों को ( महः ) अत्यन्त ( चित् ) भी ( त्यजसः ) त्याग से ( वरुता ) स्वीकार करनेवाले ( असि ) हैं इस कारण ( महश्चित् ) बड़े भी हैं । हे ( मरुताम् ) विद्वान् सज्जनों के बीच ( वेध ) अत्यन्त बुद्धिमान् ! ( सः ) सो ( चिकित्वान् ) जानवान् आप जो ( सुम्ना ) सुख ( तव ) आप को ( प्रेष्ठा ) अत्यन्त प्रिय हैं उनको ( नः ) हमारे लिए ( वनुष्व, हि ) निश्चय से वेधो ॥१॥

भाषार्थ—जो विरक्त सन्यासियों के सङ्ग से बुद्धिमान् होते हैं उनको कभी अनिष्ट दुःख नहीं उत्पन्न होता ॥ १ ॥

अपुञ्जन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निषिधी मर्त्यत्वा ।

मरुतां पृत्सुतिर्हसमाना स्वर्मीळहस्य प्रधनस्य सातौ ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सुख के देनेहारे विद्वन् ! जो ( निषिधः ) अशर्ष को निषेध करनेहारे ( मर्त्यत्वा ) मनुष्यों में ( विदानासः ) विद्वान् होते हुए ( स्वर्मी-

ळहस्य ) सुखों के सींचनेहारे ( प्रथमस्य ) उत्तम जन के ( सातौ ) अष्टमे प्रकार भाग में ( विश्वकृष्टी ) सब मनुष्यों को ( अयुष्यम् ) युक्त करते हैं ( ते ) वे जो ( मरुताम् ) मनुष्यों की ( हासमाना ) आनन्दमयी ( पृत्सुतिः ) वीरसेना हैं, उसको प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो पहले ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़कर धर्मात्मा, शास्त्रज्ञ विद्वानों के संग से समस्त विद्या को पाकर धार्मिक होते हैं वे ससार को सुख देनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

अम्यक्सा त इन्द्र कृष्टिरस्मे सनेम्यम्बं मरुतां जुनन्ति ।

अग्निभिदि म्मांतसे शुशुष्वानापो न दीपं दधति प्रयांसि ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दुष्टों को विदारण करनेवाले ! जिससे ( मरुताः ) मनुष्य ( सनेमि ) प्राचीन और ( अम्यक् ) नेत्र से प्रत्यक्ष देखने में अशुद्ध उत्तम विषय को ( जुनन्ति ) प्राप्त होते हैं ( ता ) वह ( ते ) आपकी ( कृष्टिः ) प्राप्ति ( अस्मे ) हमारे लिए ( अम्यक् ) सीधी बाल को प्राप्त होती है अर्थात् सरलता से आप हम लोगों को प्राप्त होते हैं और ( शुशुष्वान् ) शुद्ध करनेवाले ( अग्निः ) अग्नि के समान ( चित् ) ही आप ( हि ) निश्चय के साथ ( स्वः ) जैसे आश्चर्यवत् ( आपः ) जल ( दीपम् ) दो प्रकार से जिसमें जल धारों-धारें उस बड़े भारी नद को प्राप्त हों ( न ) जैसे सब के अनावि कारण को ( अस्ते ) निरन्तर प्राप्त होते हैं इससे सब मनुष्य ( प्रयांसि ) सुन्दर मनोहर चाहने योग्य वस्तुओं को ( दधति ) बारण करते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जिस अनावि कारण को विद्वान् जानते उसको और जन नहीं जान सकते हैं ॥ ३ ॥

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।

स्तुतं यास्तं चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) बहुत पदार्थों के देनेवाले ! ( त्वम् ) आप ( तु ) तो ( नः ) हमारे लिए ( ओजिष्ठया ) अतीव बलवती ( दक्षिणयेव ) दक्षिणा के साथ दान जैसे दिया जाए जैसे ( रातिम् ) दान को तथा ( तम् ) उस ( रयिम् ) दुग्धादि घन को ( दा ) दीजिए कि जिससे ( ते ) आपकी और ( वायो ) पवन की ( च ) भी ( वाः ) जो ( स्तुतः ) स्तुति करनेवाली हैं वे ( मध्वः ) मधुर उत्तम ( स्तनम् ) दूध के अरे हुए स्तन के ( न ) समान ( चकनन्त ) चाहती और ( वाजैः ) अन्नादिकों के साथ ( पीपयन्त ) बछड़ों को पिलाती हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे बहुत पदार्थों को देनेवाला यजमान ऋतु-ऋतु में यज्ञादि करनेवाले पुरोहित के लिए बहुत जन देकर उसको सुशोभित करता है वा जैसे पुत्र माता का दूध पीके पुष्ट हो जाते हैं जैसे सभाध्यक्ष के परितोष से मृत्युजन पूर्ण बनी और उनके दिये भोजनादि पदार्थों से बलवान् होते हैं ॥ ४ ॥

स्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिद्वतायोः ।

ते पु णो मरुता मृळयन्तु ये स्मां पुरा गातुयन्तीव देवाः ॥५॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) देनेवाले ! ( ये ) जो ( कस्य, चित् ) किसी ( चिद्वतायोः ) अपने को सत्य की चाहना करनेवाले ( प्रणेतारः ) उत्तम साधक ( तोशतमाः ) और अतीव प्रसन्न चित्त होते हुए ( अस्तः ) पवनविद्या को जानने-वाले ( देवाः ) विद्वान् जन ( स्वे ) तुम्हारे रक्षक होते ( रायः ) अनी की प्राप्ति करा ( नः ) हम लोगों को ( पु, मृळयन्तु ) अष्टमे प्रकार सुखी करें वा ( पुरा ) पूर्व ( गातुयन्तीव ) अपने को पृथिवी चाहते हुए प्रयत्न करते हैं ( ते, स्वः ) वे ही रक्षा करनेवाले हों ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जो वायुविद्या के जाननेवाले परोपकार और विद्यादान देने में प्रसन्न चित्त, पृथिवी के समान सब प्राणियों को पुरुषार्थ में बारण करते हैं वे सर्वदा सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

प्रति म याहीन्द्र मीळहुपो नृन्महः पार्थिवे सद्ने यतस्व ।

अध यदैषां पृथुबुध्रास एतांस्तीर्थे नार्यः पौस्यानि तस्थुः ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) प्रयत्न करनेवाले ! आप ( यत् ) जो ( पृथुबुध्रासः ) विस्तारयुक्त अन्तरिक्षवाले जन ( एता ) ये स्त्रीजन और ( एवाम् ) इनके ( पौस्यानि ) बल ( तीर्थे ) जिससे समुद्र रूप जल समूहों की तरें उस नौका में ( अर्थाः ) वैश्य के ( न ) समान ( तस्थुः ) स्थिर होते हैं उन ( मीळहुवः ) सुखों से सींचनेवाले ( नृन् ) अग्रगामी मनुष्यों को ( प्रति ) ( अ, याहि ) प्राप्त होओ ( अध ) इसके अनन्तर ( महः ) बड़े ( पार्थिवे ) पृथिवी में विवित ( सबै ) घर में ( यतस्व ) यत्न करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष और जो स्त्री ब्रह्मचर्य से बलों को बढ़ाकर धान्य, धर्मत्मा, शास्त्रवक्ता सज्जनों की सेवा करते हैं वे पुरुष विद्वान् और वे स्त्रियाँ विदुषी होती हैं ॥ ६ ॥

अब अक्षत विषय में शूरवीर होन के गुणों की कथा है—

प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां मृष्व आयतामुपाब्दः ।

ये मर्त्ये पृतनायन्तामूर्ध्वैर्क्षानानं न पतयन्त सैः ॥७॥



**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( चोराणाम् ) मारनेवाली ( एतावान् ) इन पूर्वोक्त ( अथावा ) प्राप्त हुए वा ( धायताम्, वक्ष्याम् ) धाते हुए पवनवत् कीर्णकारी स्त्री-पुरुषों की जो ( उच्यते ) बाणी है उसको ( प्रति, मूच्ये ) बार-बार सुनाता है और ( ये ) जो ( वृत्तायाम् ) अपने की सेना की इच्छा करते हुए ( अर्थम् ) मनुष्यों को ( ऋणावान् ) ऋणयुक्त को जैसे ( न ) वैसे ( ऊर्ध्व ) रक्षादि ( सगः ) सगो से युक्त विषयों के साथ ( पतयन् ) स्वामी के समान मामें उनका सेवन करता है वैसे तुम भी आचरण करो ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमासङ्कार है। जो दुष्ट पुरुष और स्त्रियों के कठोर शब्दों को सुनकर नहीं सोच करते हैं वे धूर्वीर होते हैं ॥७॥

स्व मानेभ्य इन्द्र विभजन्त्या रदा मरुद्भिः शुरुषो गोअग्नाः ।

स्तवनिभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेपं वृजनं जीदातुम् ॥८॥

**पदार्थ—**हे ( देव ) विद्वन् ( इन्द्र ) सभापति ! जैसे हम लोग ( मानेभ्यः ) सत्कारों से ( स्तवसे ) स्तुति के लिए ( स्तवनिभिः ) समस्त विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करनेवाले ( मरुद्भिः ) पवनों की विद्या जाननेवाले ( देवैः ) विद्वानों से ( विभजन्त्या ) विभक्त को उत्पन्न करने और ( शुरुष ) निम्न हिंसक किरणों के धारण करनेवाले ( गो, अग्नाः ) जिनके सूर्य किरणों आगे विद्यमान उन जल और ( वृजन ) घन ( वृजन्तम् ) बल और ( जीदातुम् ) जीवनस्वरूप को ( विद्याम् ) जानें वैसे इन जल और अग्नादि को ( स्वम् ) आप ( रश् ) प्रत्यक्ष जानो अर्थात् उनका नाम, धामरूप सब प्रकार जानो ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्कार से विद्याओं को अध्ययन कर पदार्थविद्या के विज्ञान को प्राप्त हों ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् प्रादि के गुणों का वर्णन होने में इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ उनहत्तरवाँ सूक्त और नवौं वर्ग समाप्त हुआ ॥



न नूनमिति पञ्चमस्य सप्तस्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । स्वराडनुष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ विराडनुष्टुप्,

४ निबृहनुष्टुप्छन्द । गान्धार स्वर । भुरिक्

पञ्चित्तद्वयः । पञ्चम स्वर ॥

आप एकसौ सत्तरवाँ सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से प्रकारान्तर करके विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं -

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेदं यदङ्गुतम् ।

अन्यस्य चित्तमभि संखरेण्यमनार्थतं वि नश्यति ॥१॥

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! ( यत् ) जो ( अन्यस्य ) धोरो को ( संखरेण्यम् ) अच्छे प्रकार जानने योग्य ( चित्तम् ) धन्य करण की स्मरणायिका वृत्ति ( उत् ) और ( आधीतम् ) सब धार से धारण किया हुआ विषय ( न ) न ( अभि, वि, मयति ) नहीं बिनाश को प्राप्त होता न भाज होकर ( नूनम् ) निश्चित रहता ( अस्ति ) है और ( नो ) न ( श्व ) अगले दिन निश्चित रहता है ( तत् ) उस ( अङ्गुतम् ) आश्चर्यस्वरूप के समान वर्तमान को ( क ) कौन ( श्व ) जानता है ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**जो जीवरूप होकर उत्पन्न नहीं होता और न उत्पन्न होकर विनाश को प्राप्त होता है निश्च आश्चर्य गुण, कर्म, स्वभाववाला अनादि चेतन है उसका जाननेवाला भी आश्चर्यस्वरूप होता है ॥ १ ॥

किं न इन्द्र जियांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥२॥

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) सभापति विद्वन् ! जो हम ( मरुतः ) मनुष्य लोग ( तव ) आपके ( भ्रातरो ) भाई हैं उन ( न ) हम लोगों को ( किम् ) क्या ( जियांससि ) मारने की इच्छा करते हो ? ( तेभिः ) उन हम लोगों के साथ ( साधुया ) उत्तम काम से ( कल्पस्व ) समर्थ होओ और ( समरणे ) संग्राम में ( नः ) हम लोगों को ( ना, वधीः ) मत मारिए ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**जो कोई मनुष्यों को पीड़ा देना चाहें वे सदा पीड़ित होते हैं और जो मनुष्यों की रक्षा किया चाहते हैं वे समर्थ होते हैं अर्थात् सब काम उनके प्रबलता से बनते हैं। जो सबका उपकार करनेवाले हैं उनको कुछ भी काम प्रिय नहीं प्राप्त होता ॥ २ ॥

किञ्चो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।

विद्या हि ते वधा मनोऽस्मभ्यमिष दिंससि ॥३॥

**पदार्थ—**हे ( अगस्त्य ) विज्ञान में उत्तमता रखनेवाले ( भ्रातः ) भाई विद्वन् ! ( सखा ) मित्र ( सन् ) होते हुए आप ( नः ) हम लोगों को ( किम् ) क्या ( अति, मन्यसे ) प्रतिमान करते हो ? अर्थात् हमारे मान को छोड़कर वर्तते हो ? ( वधा ) जैसे ( ते ) तुम्हारा अपना ( मन ) धन्य करण ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( हि ) ही ( न ) न ( दिंससि ) देना चाहते हो अर्थात् हमारे लिए अपने धन्य करण को उत्साहित क्या नहीं किया चाहते हो ? वैसे ( इत् ) ही तुमको हम लोग ( विद्म ) जानें ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। जो जिनके मित्र हो, वे मन, वचन और कर्म से उनकी प्रसन्नता का काम करें और जितना विद्या ज्ञान अपने को हो उतना मित्र के समर्पण करें ॥ ३ ॥

अरं कृण्वन्तु वेदि समग्रिभिन्धतां पुरः ।

तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहे ॥४॥

**पदार्थ—**हे मित्र ! जैसे विद्वान् जम जहाँ ( पुर ) प्रथम ( वेदिम् ) जिससे प्राणी विषयों को जानता है उन प्रजा और ( अग्निम् ) अग्नि के समान वेदीप्यमान विज्ञान को ( समिन्धताम् ) प्रदीप्त करें वा ( अरम्, कृण्वन्तु ) सुशोभित करें ( तत्र ) वहाँ ( अमृतस्य ) विनाशरहित जीवमात्र ( ते ) आपके ( चेतनम् ) चेतन अर्थात् जिससे अच्छे प्रकार यह जीव जानना और ( यज्ञम् ) विषयों को प्राप्त होता उसका वैसे हम पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (तनवावहे) विस्तारें ॥४॥

**भाषार्थ—**जैसे ऋतु-ऋतु में यज्ञ करानेवाले और यजमान अग्नि में सुगन्धादि द्रव्य का हवन कर उससे वायु और जल को अच्छे प्रकार शोध कर जगत् का सुख से युक्त करते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक औरों के धन्य करणों में विद्या और उत्तम शिक्षा स्थापन कर सबके सुख का विस्तार करें ॥ ४ ॥

त्वमीशिषे वसुपते वधनां त्वं मित्राणां मित्रपते घेष्ठः ।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशानं ऋतुया इर्वीषि ॥५॥१०॥

**पदार्थ—**( वसुनाम् ) किया है चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य जिन्होंने और जो पृथिव्यादिकों के समान सहनशील हैं उन ( वसुपते ) हे धनों के स्वामी ! ( त्वम् ) तुम ( ईतिषे ) ऐश्वर्यवान् हो वा ऐश्वर्य बढ़ाते हो । हे ( मित्राणाम् ) मित्रों में ( मित्रपते ) मित्रों के पालनेवाले श्रेष्ठ मित्र ! ( त्वम् ) तुम ( घेष्ठ ) अतीव धारण करनेवाले होते हो । हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्य के देनेवाले ! ( त्वम् ) तुम ( मरुद्भिः ) पवनों के समान वर्तमान विद्वानों के साथ ( संवत्स्य ) सवाद करो । ( अथ ) इसके धनन्तर ( ऋतुया ) ऋतु-ऋतु के अनुकूल ( इर्वीषि ) जाने योग्य धन्यों को ( प्र, प्राशान ) अच्छे प्रकार ज्ञाओ ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**जो धनवान्, सबके मित्र बहुता के साथ सत्कार किये हुए धनों को ज्ञाते और विद्या से परिपूर्ण विद्वानों के साथ सवाद करते हैं वे समर्थ और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ सत्तरवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अतीत्यस्य पञ्चमस्यकप्तपुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । वयसो

देवताः । १, ५ निबृहन्निबृहन्, २ निबृहन्, ४, ६ विराट् निबृहन्

छन्द । वयस स्वर । ३ भुरिक् पञ्चित्तद्वयः ।

पञ्चमः स्वरः ।

अब एक सौ दसहत्तरवाँ सूक्त का आरम्भ है उसमें फिर विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं -

मतिं व एना नमसाहमेभि सूक्तेन भिक्षे सुमति तुराणां ।

रराणां मरुतो वेद्यामिनि हेज्जो धस वि मुचध्वमन्वा ॥१॥

**पदार्थ—**हे ( वयसः ) विद्वानो ! ( एनाम् ) मैं ( एना ) इस ( नमसा ) नमस्कार, सत्कार वा धन्य से ( व ) तुम्हारे ( प्रति, एभि ) प्रति आता है और ( सुमते ) सुन्दर कहे हुए विषय से ( तुराणां ) शीघ्रकारी जनों की ( मुचध्वम् ) उत्तम मति को ( निक्षे ) माँगता है । हे विद्वानो ! तुम ( रराणां ) रमण करते हुए मन से ( वेद्याभिः ) दूसरे को बताने योग्य क्रियाओं से ( हेज्ज ) अनादर को ( नि, वस ) धारण करो अर्थात् सत्कार-असत्कार के विषयों की विचार के हर्ष शोक न करो । और ( अथवा ) अतीव उत्तम वेदवान् अपने बड़ों को ( नि, मुचध्वम् ) छोड़ो ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है। जो शुद्ध धन्य करण के माला प्रकार के विद्वानों को प्राप्त होते हैं वे कहीं अनादर नहीं पाते ॥ १ ॥

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तथो मनसा धायि देवाः ।

उपेमा यां व मनसा जुषाणा पूर्य हि धा नमस इवृध्वांसः ॥२॥

पदार्थ—हे ( देवा ) कामना करना हुए ( मरुतः ) विद्वानो । जिससे ( वृष ) यह ( व. ) तुम्हारा ( नमस्त्वाम् ) मन्त्रात्मक ( हुवा ) हृदयस्थ विचार से ( तव्य ) विधान किया ( स्तोम ) मन्त्रागतक स्तुति विषय ( ममसा ) मन से ( चायि ) धारण किया जाए ( हि ) उमी को ( ममसा ) मनसे ( बुवासाः ) सेवसे हुए ( वृषम् ) तुम लोग ( वृष, धा, वात ) समीप धाओ भोग ( ममस ) मन्त्रादि ऐश्वर्य की ( इत् ) ही ( ईम् ) सब ओर से ( बुवासाः ) वृद्धि को प्राप्त या उसको बढ़ानेवाले ( वृष ) होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो धार्मिक विद्वानों के शील का स्वीकार करते हैं वे प्रशंसित होते हैं ॥ २ ॥

स्तुतासो न मरुतो मृक्यन्तु स्तुतो मधवा शम्भविष्ठः ।

ऊर्ध्वो नः सन्तु क्रोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) बलवान् विद्वानो । हम लोगों से ( स्तुतासः ) स्तुति किये हुए धाप ( न ) हमको ( मृक्यन्तु ) सुखी करो ( उत ) और ( स्तुत ) प्रशंसा को प्राप्त होता हुआ ( मधवा ) सत्कार करने योग्य पुरुष ( शम्भविष्ठः ) अतीव सुख की भावना करनेवाला हो । हे ( मरुतः ) शूरवीर जनो ! जैसे ( न ) हमारे ( विश्वा ) समस्त ( क्रोम्या ) प्रसन्ननीय ( जिगीषा ) जीतने और ( वनानि ) सेवने योग्य ( अहानि ) दिन ( ऊर्ध्वो ) उत्कृष्ट हैं वैसे तुम्हारे ( सन्तु ) हों ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जिनमें जैसे गुण, कर्म, स्वभाव हो उनकी वैसे प्रशंसा करें और प्रशंसा योग्य वे ही हों जो भीरो की सुखोन्मत्ति के लिए प्रयत्न करें और वे ही सेवने योग्य हो जो पापाचरण को छोड़ धार्मिक हों, वे प्रतिदिन विद्या और उत्तम शिक्षा की वृद्धि के धर्म उद्योगी हों ॥ ३ ॥

अस्माद्दहं तविषादीषमाण इन्द्राद्विया मरुतो रेजमानः ।

युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चंकुमा मृक्यता नः ॥४॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) प्राण के समान सभासदो । ( अस्मात् ) इस ( तविषात् ) अत्यन्त बलवान् से ( ईषमाण ) ऐश्वर्य करता और ( इन्द्रात् ) परमेश्वर्यवान् सभा सेनापति से ( भिया ) भय का साथ ( रेजमान ) कम्पता हुआ ( अहम् ) मैं यह निवेदन करता हूँ कि जो ( युष्मभ्यम् ) तुम्हारे लिए ( हव्या ) प्रहृष्ट करने योग्य ( निशितानि ) शस्त्र-प्रस्त्र तीव्र ( यासन् ) हैं ( तानि ) उनको हम लोग ( आरे ) समीप ( चंकुम ) करें और उनसे ( न ) हम लोगों को तुम जैसे ( मृक्यत ) सुखी करो वैसे हम भी तुम लोगों को सुखी करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जब किसी राजपुरुष से अन्यायपूर्वक पीड़ा को प्राप्त होता हुआ प्रजा जन सभा के बीच अपने दुःख का निवेदन करे तब उनके मन के काँटों को उपाह देवें अर्थात् उसके मन की शुद्ध भावना करा दें जिससे राजपुरुष न्याय में वर्तें और प्रजा जन भी प्रसन्न हो । जितने स्त्री पुरुष हो वे सब शस्त्र का अभ्यास करें ॥ ४ ॥

येन मानोसश्चितयन्त उसा व्युष्टिषु शर्वमा शश्वतीनाम् ।

स नो मरुद्भिर्विषम श्रवो धा उग्र उग्रमिः स्थविरः महोदाः ॥५॥

पदार्थ—( येन ) जिस ( शवसा ) बल से वर्तमान ( शश्वतीनाम् ) मनातन ( व्युष्टिषु ) नाना प्रकार की बस्तियों में ( उसाः ) मूल राज्य में परम्परा से निवास करते हुए ( मानास ) विचारवान् विद्वान् जन प्रजाजनों को ( चितयन्ते ) चेतन्य करते हैं । हे ( मरुत ) सुखों की वर्षा करनेवाले सभापति ! ( उग्रमिः ) तेजस्वी ( मरुद्भिः ) विद्वानों के साथ ( उग्र ) तीव्रस्वभाव ( स्थविर ) कृतज्ञ वृद्ध ( महोदा ) बल के देनेवाले होते हुए धाप ( अथ ) अन्न धानि पदार्थ को ( धा ) धारण कीजिए और ( स ) सो आप ( न ) हमारे राजा हूँजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जहाँ सभा में मूल जड़ के अर्थात् निष्कलङ्क कुल-परम्परा से उत्पन्न हुए और आरम्भवेत्ता धार्मिक सभासद् सत्य न्याय कर्म और विद्या तथा धनस्या से वृद्ध सभापति भी हो वहाँ अन्याय का प्रवेश नहीं होता है ॥ ५ ॥

त्वं पाहीन्द्र सहीयमो वृन्मवा मरुद्भिर्वयातहेष्ठाः ।

मुप्रकेतेभिः मामहिर्दधानो विद्यामेधं वृजनें जीरदोनुम् ॥६॥११॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सभापति ! ( त्वम् ) आप ( मुप्रकेतेभिः ) सुन्दर उत्तम ज्ञानवान् ( मरुद्भिः ) प्राण के समान रक्षा करनेवाले विद्वानों के साथ ( सहीयस ) अतीव बलयुक्त सहनेवाले ( वृन् ) मनुष्यों की ( पाहि ) रक्षा कीजिए और ( अययातहेष्ठा ) दूर हुआ घनादर, अपकीर्तिभाव जिससे ऐसे ( अथ ) हूँजिए जैसे ( इषम् ) विद्या योग से उत्पन्न हुए बोध ( वृजन्म् ) बल और ( जीरदोनुम् ) जीवारमा की ( वृजानः ) धारण करते हुए ( सासहिः ) अतीव महनशील होते हुए इसको हम लोग ( विद्याम् ) जानें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य क्रोधादि दोषरहित, विद्या, विज्ञान, धर्मयुक्त, कामवान् जन, सज्जनों के साथ जो दण्ड देने योग्य नहीं हैं उनकी रक्षा करते और दण्ड देने योग्य को दण्ड देते हैं वे राजकर्मचारी होने के योग्य हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक ही इकहत्तरवाँ सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

चित्र इत्यस्य इयुषस्यागस्य ऋषि । मरुतो देवताः । १ विराट् गायत्री, २, ३ गायत्री छन्दः । अक्षः स्वर ॥

अब तीन ऋचावाले एक ही बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है इसमें पवन के वृष्ट्याप्त के विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

चित्रो वौऽस्तु यामश्चित्र उती सुदानवः ।

मरुतो अहिमानवः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( उती ) रक्षा प्रादि के साथ वर्तमान ( अहिमानवः ) मेघ का प्रकाश करनेवाले ( सुदानवः ) सुन्दर दानशील और ( मरुतः ) प्राण के समान वर्तमान जनो ! जैसे पवनो का ( चित्र ) अद्भुत ( यामः ) गमन करना वह ( चित्रः ) चित्र-विचित्र स्वभाव है वैसे ( व ) तुम्हारा ( अस्तु ) हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे जीवक का अच्छे प्रकार देना, वर्षा करना प्रादि पवनो के अद्भुत कर्म हैं वैसे तुम्हारे जी हों ॥ १ ॥

आरे सा नः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरः ।

आरे अस्मा यमस्यथ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( सुदानवः ) प्रशंसित दान करनेवाले ( मरुतः ) वायुवत् बलवान् विद्वानो ! ( व. ) तुम्हारी जो ( ऋञ्जती ) पचाती-जलाती ( शरः ) दुष्टों को विनाशती हुई द्विधारा तलवार है ( सा ) वह हम से ( आरे ) दूर रहे और ( अस् ) जिस विशेष शस्त्र को ( अस्मा ) मेघ के समान तुम ( अस्त्यथ ) छोड़ते हो वह हमारे ( आरे ) समीप रहे ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य मेघ के समान सुख देनेवाले, दुष्टों को छोड़नेवाले श्रेष्ठों के समीप और दुष्टों से दूर बसते हैं वे सङ्ग करने योग्य हैं ॥ २ ॥

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृक सुदानवः ।

ऊर्ध्वानः कर्ष जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे ( सुदानव ) उत्तम दान देनेवाले ! तुम ( तृणस्कन्दस्य ) जा तृणों को प्राप्त अर्थात् तृणमात्र का लोभ करता वा दूसरों को उस लोभ पर पहुँचाता उसकी ( विश ) प्रजा को ( नु ) शीघ्र ( परि, वृकत ) सब ओर से छोड़ो और ( जीवसे ) जीवने के धर्म ( न ) हम लोगों को ( ऊर्ध्वान् ) उत्कृष्ट ( कर्ष ) करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे वायु समस्त प्रजा की रक्षा करता वैसे सभापति वर्तें । जैसे प्रजाजनों की पीड़ा नष्ट हो, मनुष्य उत्कृष्ट, अति उत्तम, बहुत जीवनेवाले उत्पन्न हों वैसे कायपरिष्क सभ को करना चाहिए ॥ ३ ॥

इस सूक्त में पवन के तुल्य विद्वानों के गुणों की प्रशंसा होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक ही बहत्तरवाँ सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

गायत्रियस्य अयोव्यासस्य त्रिसप्तत्युत्तरस्य द्वातसमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवताः । १, ५, ११ पङ्क्तिः, १, ६, १०, १२ गुरिष्

पङ्क्तिछन्दः । अक्षम स्वरः । २, ८ विराट् त्रिष्टुप्,

३ त्रिष्टुप्; ७, १३ निष्त्तु त्रिष्टुप् छन्दः । अक्षः स्वरः ।

४ जुहोती छन्दः । अक्षमः स्वरः ॥

अब तीरह ऋचावाले एक ही तेहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से चित्र विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं—

गायत्सामं नभन्यं यथा वेग्योस तद्वाधुधानं सर्ववत् ।

गावो धेनवो बर्हिष्यर्द्धधा आ यस्सद्धानं दिव्यं विवासान् ॥१॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( सर्ववत् ) सुख सम्बन्धी वा सुखात्पादक ( वधुवासान् ) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त ( नभन्यम् ) आकाश के बीच में साधु अर्थात् गगनमण्डल में व्याप्त ( साम ) साम गान को विद्वान् धाप ( अथ ) जैसे ( वे. ) स्वीकार करें वैसे ( गायत्सामं ) गावें और ( बर्हिषि ) अन्तरिक्ष में जो ( गायः ) किरणें उनके समान जो ( अयस्सा ) न हिंसा करने योग्य ( दिव्यः ) दूध देनेवाली गीर्

( विष्णुम् ) मनीषुर ( सङ्कल्पम् ) जिसमें स्थित होते हैं उस घर को ( धा, विष्णुताम् ) अन्धे प्रकार सेवन करें ( तत् ) उस सामान्य और उन गीर्षों को हम लोग ( अन्धम् ) सराहें उनका सत्कार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे किरण अन्तरिक्ष में बिखर कर सब का प्रकाश करती हैं वैसे हम लोगों को विद्या से सबके अन्तःकरण प्रकाशित करने चाहिए जैसे निराधार पक्षी आकाश में जाते-आते हैं वैसे विद्वानों और लोकलोकान्तरो की चाल है ॥ १ ॥

अब चलते हुए प्रकारण में स्त्री-पुरुष के घर के काम के बन्धान्त से दोनों को उपदेश करते हैं—

अर्चयुष्या वृषभिः स्वेदुह्यैर्मृगो नावनो अति यज्जुगुर्पात् ।

प्र मन्द्युर्भनां गूर्त्त होता भरते मयौ मिथुना यजत्रः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( वृषा ) सत्योपदेशरूपी शब्दों की वर्षा करने-वाला ( वृषभः ) शुभ गुराँ में व्याप्त ( मन्द्युः ) अपनी प्रशंसा चाहता हुआ ( होता ) दानशील ( यजत्रः ) सज्ज करनेवाला ( मयः ) मरणधर्मा मनुष्य ( स्वेदुह्यैः ) आप ही प्रकाशित किये देने-लेने के व्यवहारों और ( वृषभिः ) उपदेश करनेवालों के साथ ( वत् ) जो ( मृगः ) हिरण के ( न ) समान ( अति, जुगुर्पात् ) अतीव उत्तम करे, घात यत्न करे और ( भरते ) धारण करता ( मयाम् ) विचारशीलों का सज्ज ( अर्चयुः ) सराहें, प्रशंसित करे वा जैसे ( मिथुना ) स्त्री-पुरुष दो-दो मिलके सज्ज धर्म को करें वैसे तुम ( प्र, गूर्त्त ) उत्तम उत्तम करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे स्वयंवर किये हुए स्त्री-पुरुष परस्पर उद्योग कर हरिण के समान वेग से घर के कामों को सिद्ध कर, विद्वानों के सज्ज से सत्य का स्वीकार कर, धर्मस्य को छोड़कर परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार करते हैं वैसे समस्त मनुष्य सज्ज करनेवाले हो ॥ २ ॥

किर प्रकारान्तर से उपवेश विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

नक्षत्रोता परि सखं मिता यन्भरद्गर्भमा शग्दः पृथिव्याः ।

क्रन्ददधो नयमानो रुवद्गोन्तर्दूतो न रोदसी चग्दाक् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( होता ) ग्रहण करनेवाला ( मिता ) प्रमत्त युक्त ( नक्षत्रम् ) घरों का ( भस्मत् ) प्राप्त हावे वा ( शग्दः ) गरद ऋतु सम्बन्धी ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( गर्भम् ) गर्भ को ( धा, भरत् ) पूरा करता वा ( नयमानः ) पदार्थों को पहुँचाता हुआ ( रुवद् ) छोड़े के समान ( क्रन्दत् ) शब्द करता वा ( गी ) वृषभ के समान ( रुवत् ) शब्द करता वा ( चूत ) समाचार पहुँचानेवाले चूत के ( न ) समान वा ( बात् ) बाणी के समान ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी के ( अन्तः ) बीच ( चरत् ) बिखरता वैसे आप लोग ( परि, वत् ) पर्वटन करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे थोड़ा और गीर्ष परिमित मार्ग का जाती हैं वैसे अग्नि नियत किये हुए देशस्थान को जाता है जैसे वार्षिक जन अपने पदार्थ लेते हैं वैसे ऋतु अपने विद्वाँ को प्राप्त होते हैं वा वैसे आवापृथिवी एक साथ चलते-चलते हैं वैसे विवाह किये हुए स्त्री पुरुष बचें ॥ ३ ॥

ता कर्माधतरास्मै प्र व्यौत्नानि देवयन्तौ भरन्ते ।

जुजोषदिन्द्रो वस्मर्वा नासत्येव सुगम्यो रयेष्टाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( देवयन्तः ) अपने को विद्वानों की इच्छा करनेवाले सज्जन ( अस्मै ) जिन ( अन्तरा ) अतीव प्राप्त पदार्थों और ( व्यौत्नानि ) इस भागे कहने योग्य ऐश्वर्य चाहनेवाले समापति प्राप्ति के लिए स्तुतियों को ( प्र, भरन्ते ) उत्तमता से धारण करते हैं ( ता ) उनको ( वस्मर्वा ) शत्रुओं में जिस का पराक्रम बर्त रहा है वह ( सुगम्यः ) सुख साधन पदार्थों में उत्तम ( रयेष्टा ) रथ में बैठनेवाला ( इन्द्र ) ऐश्वर्य चाहता हुआ ( नासत्येव ) सूर्य और चन्द्रमा के समान ( जुजोषत् ) सेवे वैसे हम लोग ( कर्म ) करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जो सूर्य चन्द्रमा के समान सुख, सुख, कम, स्वभावों से प्रकाशित प्राप्त, शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं के तुल्य आचरण करते हैं वे क्या-क्या सुख नहीं पाते ॥ ४ ॥

अब भले-बुरे के विवेक करने पर जो विद्वानों का विषय उसका अगले मन्त्र में उपवेश किया है—

तमु ह्यिन्द्रो यो ह सत्त्वा यः शूरो मघवा यो रयेष्टाः ।

प्रतीचक्षिथोधीयान्वृषण्वान्वववृषश्चिमसो विहन्ता ॥५॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप ( वा ) जो ( सत्त्वा ) बलवान् ( यः, चित् ) और जो ( शूरः ) शूर ( मघवा ) परमपूजित वामयुक्त ( यः, चित् ) और जो ( रयेष्टाः ) रथ में स्थित होनेवाला ( योधीयात् ) अत्यन्त युद्धशील ( वृषण्वान् ) बलवान् ( प्रतीचः ) प्रति पदार्थ होनेवाले ( वृषण्वः ) कपयुक्त ( चिमसः ) अन्धकार वा ( विहन्ता ) विनाश करनेवाले सूर्य के समान हैं ( तम् उ, ह ) उसी ( इन्द्रम् ) परमेश्वरान्त् सेनापति की ( स्तुति ) प्रशंसा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि उसी की स्तुति करें जो प्रशंसित कर्म करें और उसी की निन्दा करें जो निन्द्य कर्मों का आचरण कर, वही स्तुति है जो सत्य कहना और वही निन्दा है जो किसी के विषय में झूठ बकना है ॥ ५ ॥

अब इस प्रकृत विद्वत्विषय में लोकलोकान्तर विज्ञान विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र यदिस्था मंहिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कस्यैः नास्यैः ।

स विष्य इन्द्रो वृज्जं न भूमा भर्त्ति स्वधावौ ओपशमिन्व द्याम् ॥६॥

पदार्थ—( वत् ) जो ( इन्द्र ) सूर्य ( वृषभम् ) बल के ( न ) समान ( वृज्जं ) बहुत पदार्थों की ( सन्, विष्ये ) अन्धे प्रकार स्वीकार करता और ( स्वधावौ ) अन्धवि पदार्थवाला वह सूर्यमण्डल ( ओपशमिन्व ) अत्यन्त एक में मिले हुए पदार्थ के समान ( द्याम् ) प्रकाश को ( प्र, भर्त्ति ) धारण करता ( कस्यै ) इसके लिए ( कस्यै ) अपनी-अपनी कक्षाओं में प्रसिद्ध हुए ( रोदसी ) झूलो और पृथिवीलोक ( न ) नहीं ( अस्त्यरं ) परिपूर्ण हात वह ( इन्द्रम् ) इस प्रकार ( मंहिना ) अपनी महिमा से ( नृभ्यः ) अन्नगामी मनुष्यों के लिए परिपूर्ण ( अस्त्यरं ) समर्थ है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे प्रकाश रहित पृथिवी आदि पदार्थ सब का आच्छादन करते हैं वैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब का आच्छादन करता है जैसे भूमिज पदार्थों की पृथिवी धारण करती है वैसे ही सूर्य भूगोलों को धारण करता है ॥ ६ ॥

अब विद्वत्विषय में राज्यप्राप्ति का साधन विषय अगले मन्त्र में कहा है—

समस्तु स्वा शूर सतामुराण मघधित्तमं परित्सयधैः ।

सजोषम इन्द्रं मदं क्षोणीः सूरि विद्ये अन्तमदन्ति बाजैः ॥७॥

पदार्थ—हे ( शूर ) दुष्टों की फिंसा करनेवाले सेनाधीश ! ( वे ) जो ( सजोषतः ) समान प्रति सेवनेवाले ( समस्तु ) सज्जमानों में ( परित्सयधैः ) सब और से प्रशंसित करने के लिए ( सताम् ) सत्युद्धारों में ( उराणम् ) अधिक बल करते हुए ( मघधित्तमम् ) आवश्यकता से उत्तम पथगामी ( इन्द्रम् ) सेनापति ( स्वा ) तुमको ( मघे ) हर्ष, आनन्द के लिए ( क्षोणीः ) भूमियों की ( सूरिम् ) विद्वान् के ( चित् ) समान ( बाजैः ) वेगादि गुणयुक्त और वा अश्वधारियों के साथ ( अन्तु, मघन्ति ) अनुमोद, आनन्द देते हैं उनको दू भी आनन्दित कर ॥७॥

भावार्थ—वे निर्द्वेष हैं जो अपने समान और प्राणियों को जानते हैं उन्हीं का राज्य बढ़ता है जो सत्युद्धारों का ही प्रतिदिन सज्ज करते हैं ॥ ७ ॥

किर विद्वानों के उपदेश से राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

एवा हि ते शं सधना समुद्र आपो यत् आसु मदन्ति देवीः ।

विन्वा ते अन् नोढ्या भूदगौः सूरिश्चिद्यदि धिवा वेचि जनान् ॥८॥

पदार्थ—हे ( समुद्र ) अन्तरिक्ष में ( आपः ) जलों के समान ( ते ) आपकी ( हि ) ही ( सधना ) ऐश्वर्य ( अम् ) सुख ( एव ) ही करते हैं वा ( ते ) आपकी ( देवी ) दिव्यगुणसम्पन्न विदुषी ( वत् ) जब ( आसु ) इन जलों में ( मघन्ति ) हविष होती हैं और आप ( वचि ) जो ( धिवा ) उत्तम बुद्धि से ( सूरिन् ) विद्वान् ( चित् ) मात्र ( जनान् ) जनों को ( वेचि ) चाहते हो सब ( ते ) आपकी ( विन्वा ) समस्त ( नोः ) विद्या सुविज्ञायुक्त वाणी ( अन्तु, नोढ्या ) अनुकूलता से सेवने योग्य ( भूत् ) होती है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सूर्य आकाश से शेष की उन्नति कर सबको सुखी करता है वैसे सज्जन पुरुष का बढ़ता हुआ ऐश्वर्य सबको आनन्दित करता है, जैसे पुरुष विद्वान् हैं वैसे स्त्री भी ही ॥ ८ ॥

अब निम्नपरत्वं से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

असामं यथा सुखाय पेन स्वमिष्ट्यौ नरां न शसैः ।

असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्टास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥९॥

पदार्थ—हे ( एन ) पुरुषार्थ से सुखों को प्राप्त होते हुए विद्वन् ! ( यथा ) जैसे ( स्वमिष्ट्यः ) सुन्दर अभिप्राय और ( सुखाय ) उत्तम मित्र जिसके वे हम लोग ( नरां ) अन्नगामी प्रशंसित पुरुषों की ( शसैः ) प्रशंसाओं के ( न ) समान उत्तम गुणों से आप को प्राप्त ( असाम ) होवें वा ( यथा ) जैसे ( वन्दनेष्टाः ) स्तुति में स्थिर होता हुआ ( तुरः ) शीघ्रकारी ( इन्द्र ) परमेश्वर्य युक्त मित्र ( कर्म ) कार्ययुक्त कर्म के ( न ) समान ( न ) हमारे ( उक्था ) प्रशंसायुक्त विद्वानों को ( नयमान ) प्राप्त करता वा करता हुआ ( असत् ) हो वंसा आचरण हम लोग करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो सब प्राणियों में मित्रभाव से वर्तमान हैं वे सबको अभिवादन करने योग्य हो जो सबको उत्तम बोध को प्राप्त करते हैं वे अतीव उत्तम विद्यावान् होते हैं ॥ ९ ॥



अथ राजविद्या पर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**विष्वर्षसो नरां न शंसैस्माकांसदिन्द्रो वज्रहस्तः ।**

**मित्रायुषो न पृषति सुशिष्टौ मध्यायुव उपं शिक्षन्ति यज्ञैः ॥१०॥१४॥**

पदार्थ—( वज्रहस्त ) शस्त्र और मन्त्रों की शिक्षा जिसके हाथ में है वह ( इन्द्र ) सभापति ( अस्माक ) हमारा ( अस्तु ) हो अर्थात् हमारा रक्षक हो ऐसी ( नरां ) धर्म की प्राप्ति करनेवाले पुरुषों की ( शंसैः ) प्रशंसायुक्त विवादों के ( न ) समान वादानुवादों से ( विष्वर्षसः ) परस्पर विरोधता से स्पष्टी, ईर्ष्या करते और ( मित्रायुषः ) अपने को मित्र चाहते हुए जनो के ( न ) समान ( मध्यायुव ) मध्यस्थ चाहते हुए विद्वान् जन ( सुशिष्टौ ) उत्तम शिक्षा के निमित्त ( यज्ञैः ) पढ़ना पढ़ाना, उपदेश करना और सग, मेल-मिलाप करना इत्यादि कर्मों से ( पृषतिम् ) पुरी नगरियों के पालनेवाले सभापति राजाको ( उप, शिक्षन्ति ) उपशिक्षा देने हैं अर्थात् उनके समीप जाकर उसे अच्छे-बुरे का भेद सिखाते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं। जैसे सत्याचरण में स्पष्टी करनेवाले सब के मित्र पक्षपात रहित सत्य का आचरण करते हुए जन सत्य का उपदेश करते हैं वैसे ही सभापति राजा प्रजाजनों के बने ॥ १० ॥

पूर्वोक्त विषय को विवक्षित करते हुए अगले मन्त्र में कहा है—

**यज्ञां हि यमेन्द्र कश्चिद्वधञ्जुहुराणश्चिन्मनमा पय्यिन ।**

**तीर्थं नाच्छा तातृषाणमोक्तो दीर्घो न मिध्रमा कृणोत्यध्वं ॥११॥**

पदार्थ—( कश्चित् ) कोई ( यज्ञ ) राजधर्म ( हि, वन ) निश्चय से ही ( इन्द्र ) सभापति को ( अश्मन् ) उन्नति देता था ( वनसा ) विचार के साथ ( जुहुराण ) दुष्टजनों में कुटिल किया अर्थात् कुटिलता से वर्त्ता ( चित् ) सो ( परित्यज् ) सब छोड़ से प्राप्त होना हुआ ( तीर्थ ) जलाशय के ( न ) समान स्थान में ( अश्मन् ) अश्मि ( तत्पराणम् ) निरन्तर प्यास को ( दीर्घ ) बड़ा ( ओक्तः ) स्थान जैसे मिले ( न ) वैसे ( अश्मन् ) सम्मार्गक रूप हुआ ( मिध्रम् ) शीघ्रता को ( आ, कृणोति ) अच्छे प्रकार करता है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—पूर्व मन्त्र में प्रति शीघ्रता से राजा चाहते हुए विद्वान् कुटिलान् जन शिक्षा करना रूप धादि यज्ञों से अपनी पुरी, नगरी के पालनेवाले राजा को समीप जाकर शिक्षा देते हैं यह जो विषय कहा था वही यज्ञ में शीघ्रता का उपदेश करते हुए ( यज्ञो हि० ) इस मन्त्र का उपदेश करते हैं, इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं—जो मुख के बढ़ाने की इच्छा करें तो सब धर्म का आचरण करें और जो परोपकार करने की इच्छा करें तो सत्य का उपदेश करें ॥ ११ ॥

अथ साधारण जनों में बलाह विषय में विद्वानों का उपदेश किया है—

**मो घू ण इन्द्रात्र प्रस्तु देवैरस्ति हि स्मा ने शुष्मिअवयाः ।**

**महश्चिद्यस्य मीळहृषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति करनेवाले विद्वान् ! आप ( अत्र ) यहाँ ( देवैः ) विद्वान् वीरों के साथ ( न ) हम लोगों के ( प्रस्तु ) सभामें में ( ही ) जिस कारण ( सु, अस्ति ) अच्छे प्रकार सहायकारी है ( स्म ) ही और हे ( शुष्मिन् ) अत्यन्त बलवान् ! ( अवयाः ) जो बिल्कुल कम को नहीं प्राप्त होता ऐसे होते हुए आप ( यव्या ) जिन ( मीळहृषः ) सींचनेवाले (हविष्मत्) बहुत विद्यावान् सम्बन्धी ( अह ) बड़े ( ते ) आप ( वस्तु ) विद्वान् की ( यव्या ) नदी के समान ( गी ) सत्य गुणों से युक्त वाली ( वन्दते ) स्तुति करती अर्थात् सब पदार्थों की प्रशंसा करती ( चित् ) सी वर्त्तमान हैं वे आप हम लोगों को ( मो ) मत मारिए ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो बल को प्राप्त हो वह सज्जनों में शत्रु के समान न बनें, सदा आप्त, शास्त्रज्ञ चर्मात्मा जनो के उपदेश को स्वीकार करे, इतर प्रथमार्थों के उपदेश को न स्वीकार करे ॥ १२ ॥

**पृथः स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।**

**आ नो वदत्याः सुविताय देव विद्यामेधं वृजन् जीरद्वानुम् ॥१३॥१५॥**

पदार्थ—हे ( देव ) मुख देनेवाले ( इन्द्र ) प्रशंसायुक्त ऐश्वर्यवान् ! जो ( एवः ) यह ( अस्मे ) हमारी ( स्तोम ) स्तुतिपूर्वक चाहना है वह ( तुभ्यम् ) तुम्हारे लिए हो। हे ( हरिवः ) प्रशंसित थोड़ोवाले ! आप ( एतेन ) इस न्याय से ( गातुम् ) भूमि और ( नः ) हम लोगों को ( विदः ) प्राप्त हुआ ( नः ) हमारे ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिए ( आ, वदत्याः ) आ वर्त्तमान हुआ जिससे हम लोग ( इवम् ) इच्छासिद्धि ( वृजन् ) सम्मार्ग और ( जीरद्वानुम् ) दीर्घ जीवन को ( विद्याम् ) प्राप्त होवें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—किसी भद्रजन को अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए तथा और से कही हुई अपनी प्रशंसा सुनकर न धानन्दित होना चाहिए अर्थात् न हँसना चाहिए जैसे अपने से अपनी उन्नति चाही जावे वैसे शत्रु की उन्नति सदैव चाहनी चाहिए ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के विषय का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक तीहत्तरवाँ सूक्त और पन्द्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ राजेभ्यस्व इत्यर्थस्य अनुसृत्यत्पुनरस्य शततमस्य सूक्तस्य अथस्य अविः ।

इन्द्रो देवता । १ निवृत्त पङ्क्तिः, २, ३, ६, ८, १० ध्रुव पङ्क्तिः;

४ स्वरान् पङ्क्तिः, ५, ७, ९ पङ्क्तिः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

अथ एक तीहत्तरवाँ सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से

राजकुल्य का वर्णन करते हैं—

**त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृपाणां सुर त्वमस्मान् ।**

**त्वं सत्पतिर्मधवां नस्तर्कस्त्वं मत्स्यो वसवानः सहोदाः ॥१॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वरयुक्त ! ( त्वम् ) आप ( मत्स्यति ) वेद वा सज्जनों को पालनेवाले ( मधवा ) परमप्रशंसित भनवान् ( नृ ) हम लोगों को ( त्वम् ) दुःखरूपी ममूद्र में पाग उतारनेवाले है ( त्वम् ) आप ( मत्स्य ) सज्जनों में उत्तम ( वसवान् ) धन प्राप्ति कराने और ( सहोदाः ) बल के देनेवाले है तथा ( त्वम् ) आप ( राजा ) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा हैं इससे हे ( असुर ) मेघ के समान ( त्वम् ) आप ( अस्मान् ) हम ( नृन् ) मनुष्यों को ( पाहि ) पालो ( ये, च ) और जो ( देव ) श्रेष्ठ गुणोंवाले चर्मात्मा विद्वान् हैं उनकी ( रक्षा ) रक्षा करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो राजा होना चाहे वह धार्मिक, सत्पुरुष, विद्वान् मन्त्री जनो को अच्छे प्रकार रखे उनसे प्रजाजनों की पालना करावे जो ही मत्पाचारी बलवान् सज्जनों का सङ्ग करनेवाला होता है वह राज्य को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को सूर्य के दृष्टान्त से कहते हैं—

**दनो विश इन्द्र मध्रवाचः मत्त यन्पुरः शर्म शारदीर्त् ।**

**ऋणोरपो अन्वद्याणां यूने वृत्र पुरुकुत्साय रन्ध्राः ॥२॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्युद्गति के समान वर्त्तमान ! ( वत् ) जो आप ( मत्त ) सात ( शारदी ) शरद ऋतु सम्बन्धी ( पुर ) शत्रुओं की नगरी और ( शर्म ) शत्रु घर को ( र्त् ) विदारनेवाले होते हैं ( मध्रवाच ) प्रति बड़ी हुई जिनकी बाणी उन ( विश ) प्रजाधो को ( वन ) शिक्षा देते राज्य के अनुकूल शासन देते हैं सो हे ( अन्वद्या ) प्रथमा को प्राप्त राजन् ! जैसे सूर्यमण्डल ( पुरुकुत्साय ) बहुत वज्ररूपी अपनी किरणों जिनमें वर्त्तमान उम ( यूने ) तरुण प्रबलतर वा मुख-मुख से मिलते न मिलते हुए ससार के लिए ( वृत्रम् ) मेघों को प्राप्त कराके ( अर्वा ) नदी सम्बन्धी ( अप ) जलो को वर्षाता वैसे आप ( ऋणो ) प्राप्ति होओ ( रन्ध्रा ) अच्छे प्रकार कार्यसिद्धि करनेवाले होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। राजा का चाहिए कि शत्रुओं के पुर, नगर शरद धादि ऋतुओं में मुख देनेवाले स्थान धादि वस्तु नष्ट कर शत्रुजन निवारणों चाहिए और सूर्य मेघजल से जैसे जगत् की रक्षा करता है वैसे राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए ॥ २ ॥

अथ राजजन सपत्नीक परिभ्रमण करें और कलाकौशल की सिद्धि के लिए।

अग्निविद्या की जाने इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**अजा वृते इन्द्र शूरपत्नीर्धा च येभिः पुरुहूत नूनम् ।**

**रसो अग्रिमशुषं त्वेयाणं सिहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥३॥**

पदार्थ—हे ( पुरुहूत ) बहुतों से सत्कार किये हुए ( इन्द्र ) शत्रुदल के नाशक ( वृत् ) राज्याधिकार में स्वीकार किये हुए राजन् ! आप ( येभिः ) जिनके साथ ( शूरपत्नी ) शूरो की पत्नी और ( धाञ्च ) प्रकाश को ( नूनम् ) निश्चिन् ( अज ) जानो उनके साथ ( सिह ) सिंह के ( न ) समान ( दमे ) घर में ( अपांसि ) कर्मों के ( वस्तो ) रोकने को ( त्वेयाणम् ) शीघ्र गमन कराने-वाले यान जिससे सिद्ध होते उस ( अग्रिमम् ) शोध रहित जिसमें अर्थात् लोहा, ताँबा, पीतल धादि धातु पिघला करें, गील हुआ करे उस ( अग्निम् ) अग्नि को ( रक्षा ) अवश्य रखो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे सिंह अपने भिटे में बल से सबको रोकता, ले जाता है वैसे राजा मित्र बल से अपने घर में लाभप्राप्ति के लिए प्रयत्न करे, जिस अच्छे प्रकार प्रयोग किये अग्नि से यान शीघ्र जाते हैं उस अग्नि से सिद्ध किये हुए यान पर स्थिर होकर स्त्री-पुरुष इधर-उधर से जावें-धायें ॥ ३ ॥

अथ राजधर्म में संग्राम विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**शेषम् त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य महा ।**

**सृजदर्णास्यव यद्यथा गास्तिष्ठदरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥४॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) सभापति ! ( प्रशस्तये ) तेरी उत्कर्षता के लिए ( सस्मिन् ) उस ( बीनी ) स्थान में वा सग्राम में ( ते ) तेरे ( पवीरवत्स्य ) वज्र की प्रगति के ( मज्जा ) महिमा से ( नु ) शीघ्र ( सोचन् ) शत्रुजन सोचें ( यत् ) जिस सग्राम में सूर्य जैसे ( अलीप्ति ) जलो को ( ज्व, लुजत् ) उत्पन्न करे अर्थात् मेघ से वर्षावे वैसे ( युष्वा ) युद्ध से ( गाः ) भूमियों और जो यानी को से जाते उन घोड़ों को ( तिष्ठन् ) प्रविष्टित होता और हे ( मूढ ) शत्रुजन को सहनेवाले ! ( वृक्षता ) दुष्ट बल से ( बाजान् ) शत्रुओं के वेगों का प्रविष्टित होता है ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो अपने स्वभावानुकूल शूरवीर हों वे अपने-अपने अधिकार में न्याय से वर्तकर शत्रुजनों को विशेषकर धर्म के अनुकूल अपनी महिमा का प्रकाश करावें ॥ ४ ॥

**वह कुत्समिन्द्र यस्मिंश्चाकन्त्युमन्युः कृजा वातस्याश्वा ।**

**म सूरश्चक्रं हृतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥५॥१६॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) सभापति ! आप ( यस्मिन् ) जिस सग्राम में ( वातस्य ) पवन की-सी शीघ्र और सरल गति ( स्पृधन् ) चाहते और ( कृजा ) सरल बाल चलनेवाले ( अश्वा ) घोड़ों को ( वाहते ) चाहते हैं उसमें ( कुत्सन् ) वज्र को ( बह् ) पहुँचाओ, वज्र चलाओ अर्थात् वज्र से शत्रुओं का सहार करो ( सूरः ) सूर्य के समान प्रतापवान् ( अक्षबाहुः ) शस्त्र-ग्रन्थों को भुजधर्मों में धारण किये हुए आप ( अक्षम् ) अपने राज्य को ( प्र, बृहताम् ) बड़ाओ और ( अभीके ) सग्राम में ( स्पृधः ) ईर्ष्या करने हुए शत्रुओं के ( अभि, यासिषत् ) सम्मुख जाने की वृक्षा करो ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्य प्रतापवान् है वैसे प्रतापवान् राजा अश्व और शस्त्रों के प्रहारों से सग्राम में शत्रुओं को जीतकर अपने राज्य को बड़ावे ॥ ५ ॥

**जघन्याँ इन्द्र मित्रेक्ष्वोदमंष्ट्रदो हरिषो अदाशून् ।**

**प्र ये पश्यन्त्यमणं सत्तायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( हरिषः ) बहुत घोड़ोवाले ( इन्द्र ) सूर्य के समान सभापति ! ( ओदमंष्ट्रदः ) सनुपदेशों की प्रेरणा से अच्छे प्रकार बड़े हुए आप ( अदाशून् ) दान व देने और ( मित्रेक्ष्वः ) मित्रों की हिंसा करनेवाले शत्रुओं को ( अक्षान् ) मारनेवाले हो इसमें ( ये ) जो ( आयो ) दूसरे को सुख पहुँचानेवाले सज्जन के ( अपत्यम् ) सन्तान को ( वहमाना ) पहुँचाने अर्थात् अन्यत्र ले जानेवाले धूर्तजन ( त्वया ) आपने ( शूर्ता ) छिन्न-भिन्न किये वे ( सत्ता ) उस सम्बन्ध से तुम ( अत्यमणम् ) -यायाधीश को ( प्र, पश्यन् ) देखते हो ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**जो मित्र के समान बातचीत करते हुए दुष्टप्रकृति, चतुर-शत्रुजन सज्जनों को उद्धेग कराते उनको राजा समूल जैसे वे नष्ट हो वैसे मारे और न्यायासन पर बैठकर अच्छे प्रकार देख विचार अन्याय को निवृत्त करे ॥ ६ ॥

**रपत्कविरिन्द्रार्कसातो सां दासायौपवर्हणी कः ।**

**करत्सिन्नो मयवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुर्यवाचं मृषि श्रैत् ॥७॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान सभापति ! जो ( कर्षिः ) सर्वशस्त्रों को जाननेवाला ( अर्कसातो ) अन्नो के अच्छे प्रकार विभाग में ( दासाय ) शूद्र वर्ग के लिए ( उपवर्हणीम् ) अच्छी वृद्धि देनेवाली ( क्षाम् ) भूमि को ( कः ) नियत करता वह सत्य स्पष्ट ( यत् ) कहे जो ( मयवा ) उत्तम वन का सम्बन्ध रखनेवाला ( तिल ) उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कि ( दानुचित्रा ) अद्भुत दान जिनमें होता उन क्रियाओं को ( करत् ) नियत करे वह ( दुर्योणे ) समरभूमि विषयक ( मृषि ) युद्ध में ( कुर्यवाचम् ) कुत्सित यवों की प्रशंसा करनेवाले सामान्य जन का ( नि, खत् ) आश्रय लेवे ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**शास्त्र जाननेवाले सभापति शूद्र वर्ग के लिए शास्त्र की शिक्षा के साथ उत्तमान्तादि की वृद्धि करनेवाली भूमि को सम्पादन करावें और सत्यशील तथा दान की विचित्रता सम्पादन करने के लिए उत्तम, मध्यम, निकृष्ट दानव्यवहारों को सिद्ध करे और सब काल में सन्नानादि भूमियों में शत्रुओं का संहार कर अपने राज्य को बड़ाता रहे ॥ ७ ॥

**सना ता त इन्द्र नम्या आगुः सहो नमोऽबिरणाय पूर्वीः ।**

**मिनस्पुरो न भिदो अद्वीनेनमो वधरदेवस्य पीयोः ॥८॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान प्रतापवान् राजन् ! आप ( अबिरणाय ) युद्ध की निवृत्ति के लिए ( नमः ) हिसक शत्रुजनों को ( सहः ) सहते हो । आप जैसे ( पूर्वीः ) प्राचीन ( पुरः ) शत्रुओं की नगरियों को ( भिन्त् ) छिन्न-भिन्न करते हुए ( न ) वैसे ( भिदः ) भिन्न भलग-भलग ( अद्वीने ) शत्रुवर्गों की दुष्ट नगरियों को ( नमः ) नमाले, डहाते हो उनसे ( अद्वीने, पीयोः ) राक्षसपन संचारते हुए शत्रुगण का ( वधः ) नाश होता है यह जो ( ते ) आपके ( सना ) प्रसिद्ध शूरपने के काम हैं ( ता ) उनको ( नम्याः ) नवीन प्रजाजन ( आगुः ) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालकार है । राजजन सन्नानादि भूमियों में ऐसे शूरता दिखलानेवाले कामों का आचरण करें जिनको देखके ही जिन्होंने पिछले शूरता के काम नहीं देखे वे नवीन दुष्ट प्रजाजन भयभीत हो ॥ ८ ॥

अब प्रकारान्तर से राजधर्म विषय की अपने मन्त्रों में कहा है—

**त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्क्षणोरपः सीरा न स्वन्तीः ।**

**प्र यत्समुद्रमतिं शूर पथि पारया तुर्वशं यदु स्वस्ति ॥९॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान वर्तमान ( धुनिः ) शत्रुओं को कम्पाते वाले ! ( त्वम् ) आप बिजुलीरूप सूर्यमण्डलस्थ अग्नि जैसे ( धुनिमतीः ) कम्पते हुए ( अपः ) जलों को वा बिजुलीरूप जठराग्नि जैसे ( अक्षन्ती ) चलती हुई ( सीरा ) नाडियों को ( न ) वैसे प्रजाजनों को ( शालीं ) प्राप्त हुईए । हे ( शूर ) शत्रुओं की हिंसा करनेवाले ! ( यत् ) जो आप ( समुद्रम् ) समुद्र को ( पथि, पथि ) प्रतिक्रमण करके, उत्तरके पार पहुँचते हो तो ( यदुम् ) यत्नशील और ( तुर्वशम् ) जो शीघ्र कार्यकर्ता अपने बस को प्राप्त हुआ उस जन को ( स्वस्ति ) कल्याण जैसे हो वैसे ( पारय ) समुद्रादि नद के एक तट से दूसरे तट को भटपट पहुँचवाए ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे शरीरस्थ बिजुलीरूप अग्नि नाडियों में ऊपर को पहुँचाती है और सूर्यमण्डल जल को जगत् में पहुँचाता है वैसे प्रजाओं में सुख को प्राप्त करावें और दुष्टों को कम्पावें ॥ ९ ॥

**त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अश्रुतमो नरां नृपाता ।**

**म नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेष वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) सुख देनेवाले ! ( त्वम् ) आप ( अस्माकम् ) हमारे बीच ( विश्वध ) सब प्रकार से ( नराम् ) मनुष्यों में ( नृपाता ) मनुष्यों की रक्षा करनेवाले अर्थात् प्रजाजनों की पालना करनेवाले और ( अश्रुतम् ) जिनके सम्बन्ध में खोजन नहीं ऐसे ( स्या ) हुईए तथा ( स ) सो आप ( न ) हमारे ( विश्वासां ) समस्त ( स्पृधाम् ) युद्ध की क्रियाओं के ( सहोदाः ) बल देनेवाले हुईए जिससे हम लोग ( जीरदानुम् ) जीव के रूप को ( वृजनम् ) धर्मयुक्त मार्ग को और ( इक्षम् ) शास्त्रविज्ञान को ( विद्याम् ) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

**भाषार्थ—**जो यम-नियमों से युक्त नियत इन्द्रियोवाले प्रजाजनों के रक्षक चोरीदि कर्मों को छोड़ें हुए अपने राज्य में निवाम करने हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

इस मन्त्र में राजजनों के कृष्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक ही बौहस्तरवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग पूरा हुआ ॥



मत्सोत्पत्त्य वृक्षस्य पञ्चतत्पत्तुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

इन्द्रा देवता । १ स्वराडनुष्टुप्, २ विराडनुष्टुप्, ५ अनुष्टुप् छन्दः ।

गांधार स्वरः । ३ निष्त् जिष्टुप्, ६ भुरिक् जिष्टुप् छन्दः ।

अक्षतः स्वरः । ४ उदिएक् छन्दः । ऋषभ स्वरः ॥

अब राजविषय को प्रकारान्तर से कहते हैं—

**मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिषो मत्सरो मदः ।**

**वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥११॥**

**पदार्थ—**हे ( हरिषः ) प्रशंसित घोड़ोवाले ! ( महः ) बड़े ( पात्रस्येव ) पात्र के बीच जैसे रक्सा हो वैसे ( ते ) आपका ( मत्सरः ) हर्ष करनेवाला ( वधः ) नीरोगता के साथ जिससे जन आनन्दित होते हैं वह ओषधियों का सार आपने ( अयसि ) पिया है उससे आप ( मत्सि ) आनन्दित होते हैं और वह ( वासी ) वेगवान् ( सहस्रसातम् ) अतीव सहस्र लोगों का विभाग करनेवाला ( वृष्णे ) सींचनेवाले बलवान् जो ( ते ) आप उनके लिए ( वृषा ) बल और ( इन्दुः ) ऐश्वर्य करनेवाला होता है ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे थोड़े दूध आदि पी घास खा बलवान् और वेगवान् होते हैं वैसे पथ्य ओषधियों के सेवन करनेवाले मनुष्य आनन्दित होते हैं ॥ ११ ॥

**आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।**

**सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाकर्मस्यः ॥१२॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) सभापति ! ( ते ) आपका जो ( मत्सरः ) सुख करनेवाला ( वरेण्यः ) स्वीकार करने योग्य ( वृषा ) वीर्यकारी ( सहावान् ) जिससे बहुत सहनशीलता विद्यमान ( सानसिः ) जो अच्छे प्रकार रोगों का विभाग

करनेवाला ( पुतलावाद् ) जिससे मनुष्यों की सेना को सहते हैं धीर ( अमर्त्य ) जो मनुष्य स्वभाव से विलक्षण ( अमः ) ओषधियों का रस है वह ( नः ) हम लोगों को ( आ, मनुः ) प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि प्राप्त धर्मात्माओं का ओषधि रस हमको प्राप्त हो ऐसी सदा चाहना करे ॥ २ ॥

अथ राजविषय में सेनापति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं हि शूरः सन्निता चोदयो मनुषो रथम् ।

सहाबान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोषिषा ॥३॥

पदार्थ—हे सेनापति ! ( हि ) जिस कारण ( शूरः ) शूरवीर, निडर ( सन्निता ) सेना को संविभाग करने अर्थात् पदमार्ग व्युह रचना से बाँटनेवाले ( त्वम् ) आप ( मनुष्य ) मनुष्यों धीर ( रथम् ) युद्ध के लिए प्रवृत्त किये हुए रथ को ( चोदय ) प्रेरणा दें अर्थात् युद्ध समय में भागे को बढ़ावें धीर ( सहाबान् ) बलवान् आप ( शोषिषा ) दीपते हुए अग्नि की लपट से जैसे ( पात्रम् ) काष्ठ आदि के पात्र को ( न ) जैसे ( अव्रतम् ) दुष्शील, दुराचारी ( दस्युम् ) हठ कर पराये धन को हुरनेवाले दुष्ट जन को ( मोष ) जलामो, इससे मान्यभागी होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो सेनापति युद्ध समय में रथ आदि धान धीर घोड़ों को डङ्ग से चलाने को जानते हैं वे प्राग जैसे काष्ठ को जैसे डाकुओं को भस्म कर सकते हैं ॥ ३ ॥

अथ राजधर्म विषय में सभापति के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

मुषाय सूर्य्यं कवे चक्रमीशान् ओजसा ।

वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याधैः ॥४॥

पदार्थ—हे ( कवे ) कम-कम से दृष्टि देने, समस्त विद्याओं के जाननेवाले सभापति ! ( इशान् ) ऐश्वर्यवान् समर्थ ! आप ( सूर्य्यम् ) सूर्यमण्डल के समान ( ओजसा ) बल से युक्त ( चक्रम् ) भूगोल के राज्य को ( मुषाय ) हरके ( शुष्णाय ) धीरों के हृदय को मुलानेवाले दुष्ट के लिए ( वातस्य ) पवन के ( अधैः ) बेगावि गुणों के समान अपने बलों से ( कुत्सम् ) वध को घुमाके ( वधम् ) वध को ( वह ) पहाड़ों अर्थात् उक्त दुष्ट का मारो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है । जो चक्रवर्ती राज्य करने की इच्छा करें वे डाकू और दुष्टाचारी मनुष्यों को तिराग के न्याय को प्रवृत्त करावें ॥ ४ ॥

शुष्मिन्तमो हि ते मदो धुम्निन्तम उत क्रतुः ।

ब्रह्मणा वरिचोविदां मंसीष्ठा अंशमातमः ॥५॥

पदार्थ—हे सब के ईश्वर सभापति ! ( हि ) जिस कारण ( ते ) आप का ( शुष्मिन्तम् ) अतीव बलवाला ( अमः ) अमर्त्य ( उत ) धीर ( धुम्निन्तमः ) अतीव यशयुक्त ( क्रतुः ) पराक्रमरूप कर्म है उससे ( ब्रह्मणा ) मेघ को छिन्न-भिन्न करनेवाले सूर्य के समान प्रकाशमान ( वरिचोविदां ) जिस से कि सेवा को प्राप्त होता उस पराक्रम से ( अवसतामः ) अतीव अवसादिकों का अन्धे विभाग करनेवाले आप दूसरे के विषय को ( मंसीष्ठा ) मानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है । जो सूर्य के समान तेजस्वी, बिजुली के समान पराक्रमी, यशस्वी, अत्यन्त बली जन विद्या, विनय और धर्म का सेवन करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

यथा पूर्व्वेभ्यो जरितुभ्य इन्द्र मयद्वापो न तृप्यते बभूथ ।

तामनु स्वा निर्विदं जोहवीमि विद्यामेवं वृजनं जीरदालुम् ॥६॥१८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्येश्वर्ययुक्त ! ( यथा ) जिस प्रकार नित्य विद्या से ( पूर्व्वेभ्यः ) प्रथम विद्या अध्ययन किये ( जरितुभ्य ) समस्त विद्या गुणों की स्तुति करनेवाले जनों के लिए ( मयद्वापः ) सुख के समान वा ( तृप्यते ) तृप्ता से पीड़ित जन के लिए ( आप ) जलों के ( न ) समान आप ( बभूथ ) हुआ ( तात् ) उस ( निर्विदम् ) नित्य विद्या के ( अम् ) अनुकूल ( स्वा ) आपकी मैं ( जोहवीमि ) निरन्तर स्तुति करता हूँ । धीर इसी से हम लोग ( इवम् ) इच्छासिद्धि ( वृजनम् ) बल धीर ( जीरदालुम् ) आत्मस्वरूप को ( विद्याम् ) प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो ब्रह्मचर्य के साथ शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं से विद्या और शिक्षा पाकर धीरों को देते हैं वे सुख से तृप्त होते हुए प्रशंसा को प्राप्त होते हैं और जो विरोध को छोड़ परस्पर उपदेश करते हैं वे विज्ञान बल धीर जीवात्मा-परमात्मा के स्वरूप को जानते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजव्यवहार के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलित जाननी चाहिए ॥

यह एक सौ पञ्चहत्तरवाँ सूक्त और अठारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

मस्तीत्यस्य बह्वस्य वसुसप्तसुतरस्य ज्ञाततमस्य स्वतस्यागस्त्य ऋषिः ।

इन्द्रो वेत्ता । १, ४ वसुष्टुप्; २ निषुवदुष्टुप्; ३ विराडनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ भुरिगुणिक् छन्दः । ऋचमः स्वरः ।

६ भूरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । वैवतः स्वरः ॥

अथ एक सौ चिह्नतरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजविषय में विद्यानुकूल पुस्तकालयों को कहते हैं—

मर्त्तिस नो वस्यदृष्ट्य इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।

ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रो ) चन्द्रमा के समान शीतल शान्तस्वरूपवाले म्याधाधीश ! जो ( वृषा ) बलवान् ( ऋघायमाणः ) वृद्धि को प्राप्त होते हुए आप ( नः ) हमारे ( वस्यदृष्ट्ये ) अत्यन्त वन की सङ्कति के लिए ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्य को प्राप्त होकर ( मर्त्तिस ) धानन्द को प्राप्त होते हो धीर ( शत्रुम् ) शत्रु को ( इन्वसि ) व्याप्त होते अर्थात् उनके किये हुए दुराचार को प्रथम ही जानते हो किन्तु ( मन्ति ) अपने समीप ( न ) नदी ( विन्दसि ) शत्रु पाते सो आप सेना को ( आ, विश ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो प्रजाजनों के चाहे हुए सुख के लिए दुष्टों की निवृत्ति करावे धीर सत्य आचरण को व्याप्त होते वे महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अथ प्रकृत विषय में विद्यारूप बीज के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तस्मिन्ना वंशया गिरो य एकरवर्षणीनाम् ।

अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चक्रेषद्वृषा ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( तस्मिन् ) उस में ( गिरः ) उपदेशरूप वाणियों को ( आ, वेद्यम् ) अच्छे प्रकार प्रविष्ट कराइए कि ( य ) जो ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों में ( एक ) एक अकेला सहाय्यरहित दीनजन है धीर ( यम् ) जिसका ( अनु ) पीछा सखिकर ( चक्रेषत् ) निरन्तर भूमि को जोतता हुआ ( वृषा ) कृषिकर्म में कुशल जन जैसे ( यवम् ) यव अन्न को ( न ) बोझो जैसे ( स्वधा ) अन्न ( उप्यते ) बोया जाता अर्थात् भोजन दिया जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे कृषीवल खेती करनेवाले उन खेतों में बीजों को बोकर अन्नो वा जनों को पाते हैं वैसे विद्वान् जन ज्ञान विद्या चाहने वाले शिष्य जनों के आत्मा में विद्या और उत्तम शिक्षा प्रवेश करा सुखी को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

यस्य विश्वानि इस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।

स्पाशयस्व यो अस्मधुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यस्य ) जिन आपके ( इस्तयो ) हाथों में ( पञ्च ) बाहुएँ, अत्रिय, वंश्य, शूद्र और निषाद इन जातियों के ( क्षितीनाम् ) मनुष्यों के ( विश्वानि ) समस्त ( वसु ) विद्याधन हैं सो आप ( य ) जो ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों को द्रोह करता है उसको ( स्पाशयस्व ) पीटा देओ धीर ( अशनि ) बिजुली ( विजृम्भे ) जो आकाश में उत्पन्न हुई धीर भूमि में गिरी हुई सहार करती है उसके समान ( अहि ) नष्ट करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालंकार है । जिसके अधिकार में समस्त विद्या है जो उत्पन्न हुए शत्रुओं को मारता है वह दिव्य ऐश्वर्य प्राप्ति करानेवाला होता है ॥ ३ ॥

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।

अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सुरिन्विदोहते ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप उस ( असुन्वन्तम् ) पदार्थों के सार खींचने आदि पुरुषार्थ से रहित ( दूणाशम् ) धीर दुःख से बिनाशने योग्य ( समम् ) समस्त आलसीगण का ( जहि ) मारो दण्ड देओ कि ( य ) जो ( सुरि ) विद्वान् के ( चित् ) समान ( विदोहते ) व्यवहारों की प्राप्ति करता है धीर ( ते ) तुम्हारे ( मयः ) मुक्त को ( न ) नहीं पहुँचाता तथा आप ( अस्य ) इसके ( वेदनम् ) धन को ( अस्मभ्यम् ) हमारे अर्थ ( दद्धि ) धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो आलसी जन हो उनको राजा ताड़ना दिलावे जैसे विद्वान् जन सब के लिये सुख देता है वैसे जितना अपना सामर्थ्य हो उनका सुख सब के लिए देवें ॥ ४ ॥

आवो यस्य द्विवर्षोऽर्कं सानुवगसत् ।

आजाविन्द्रस्येन्द्रो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रो ) अपनी प्रजाओं में चन्द्रमा के समान वर्तमान ! ( यस्य ) जिस ( द्विवर्षः ) विद्या पुरुषार्थ से बढ़ते हुए जन के ( अर्कम् ) अन्धे साराहे हुए अन्नादि पदार्थों में ( सानुवग् ) सामुक्यता ही ( अस् ) ही जिसकी



घ्राप ( अन्नः ) रक्षा करे वह ( इन्द्रश्च ) परमेश्वर्य सम्पन्नी ( आनी ) सन्नाम मे ( वायेभु ) वेणी मे वर्तमान ( वाजिनम् ) बलवान् घ्राप को ( अ, अन्नः ) अन्धे प्रकार रक्षायुक्त करे अर्थात् निरन्तर घ्रापकी रक्षा करे ॥५॥

आचार्य—जैसे सेनापति सब आकरों की रक्षा करे वैसे मे आकर भी उसकी निरन्तर रक्षा करे ॥ ५ ॥

अब प्रकृत विषय में योग के पुण्यार्थ का वर्णन किया जाता है—

यथा पुंश्चमो जरितुम्य इन्द्र मयइशापो न तृप्यते बभूव ।

तामस्तु त्वा निविदं जाह्वीमि विद्यामेष वृजनं जीरदामुम् ॥६॥१६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) योग के ऐश्वर्य का ज्ञान चाहते हुए जन ! ( यथा ) जैसे योग ज्ञानने की इच्छावाले ( पुंश्चम ) किया है योगाभ्यास जिन्होंने उन प्राचीन ( जरितुम्यः ) योग गुरु सिद्धियों के जाननेवाले विद्वानों से योग को आकर और सिद्ध कर सिद्ध होते अर्थात् योग सम्पन्न होते हैं वैसे होकर ( बभूव ) सुख के समान और ( तृप्यते ) पित्रासे के लिए ( घ्रापः ) जलो के ( न ) समान ( बभूव ) बुझिए और ( ताम् ) उस विद्या के ( अन् ) अनुवर्तमान ( निविदम् ) और निश्चित प्रतिज्ञा जिन्होंने किये उन ( त्वा ) घ्राप को ( जाह्वीमि ) निरन्तर कहता है ऐसे कर हम लोग ( इन्द्रम् ) इच्छा सिद्धि ( वृजनम् ) दुःखत्याग और ( जीरदामुम् ) जीव दया को ( विद्याम् ) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

आचार्य—जो जिज्ञासु जन योगासु पुरुषों से योगविद्या को प्राप्त होकर पुण्यार्थ से योग का अभ्यास कर सिद्ध होते हैं वे पूर्ण सुख को पाते और जो उत्तम योगियों का सेवन करते वे भी सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्या पुण्यार्थ और योग का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एक ही सितहस्तरवां सूक्त और अतीतवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



आ अर्धणिमा इयस्य पञ्चचर्चस्य सप्तसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, २ भिरुत् भिरुत्, ३ भिरुत्, ४ भिरुत् भिरुत् । पञ्चमः स्वरः ॥

अब एक ही सितहस्तर सूक्त का आरम्भ है उसमें राजा और विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

आ अर्धणिमा वृषभो जनानां राजां कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।

स्तुतः श्रवस्यवसोप मद्रिभ्युक्त्वा हरी वृषणा याह्वार्क ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( वृषभ ) शरीर बलवान् ( जनानाम् ) गुह्य गुणों से प्रसिद्ध हुए जनो में ( अर्धणिमाः ) मनुष्यों को विद्या से पूर्ण करनेवाला ( राजा ) प्रकाशमान और ( कृष्टीनाम् ) मनुष्यों में ( पुरुहूतः ) बहुते से सत्कार को प्राप्त हुआ ( स्तुतः ) प्रशंसित ( वसस्यम् ) अपने को धन की इच्छा करता हुआ ( मद्रिभ्यः ) जो काम को प्राप्त होता वह ( इन्द्र ) ऐश्वर्य का देनेवाला ( वृषणा ) अति बली ( हरी ) हरणशील बोंडों की ( वृषणा ) जोड़कर ( वृषार्कः ) नीचली भूमियों में जाता है वैसे ( अवसा ) रक्षा आदि के साथ घ्राप हम लोगों के ( उप, आ, याहि ) समीप आओ ॥ १ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे शुभ गुण, कर्म स्वभाववाले सभाध्यक्ष प्रजाजनों से वेष्टा करें वैसे प्रजाजनों को भी वेष्टा करनी चाहिए जैसे कोई विमान पर चढ़ और ऊपर को जाकर नीचे आता है वैसे विद्वान् जन अगले-पिछले विषय को जाननेवाले हो ॥१॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय का उपदेश किया है—

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मपुत्रो वृषरथासो अत्याः ।

तां आ तिष्ठ तेमिरा याह्वार्क हवांमहे त्वा सुत इन्द्र सोमं ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान वर्तमान राजन् ! ( ते ) आपके ( ये ) जो ( वृषभाः ) प्रबल जवान ( वृषभासः ) वृषभ ( ब्रह्मपुत्रः ) उत्तम मन्त्र का योग करनेवाले ( वृषरथासः ) शक्तिबन्धक और रमण साधन रथ ( अत्याः ) और निरन्तर यमनशील बोंडों हैं ( ताम् ) उनको ( आ, तिष्ठ ) यत्नवान् करी अर्थात् उन पर चढ़ो उन्हें कार्यकारी करो । हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान वर्तमान राजन् ! हम लोग ( सुते ) उत्पन्न हुए ( सोमे ) ओषधि आदिको के गुण के समान ऐश्वर्य के निमित्त ( त्वा ) घ्रापको ( वृषार्कः ) स्वीकार करते हैं घ्राप ( तेभि ) उनके साथ ( अर्वाङ्, याहि ) सम्मुख ( आ, याहि ) आओ ॥ २ ॥

आचार्य—जो राजजन समस्त साधनों से साध्य रथों, प्रबल बोंडों और वीरों को काम्यों में संयुक्त कराते हैं वे व्रतस्त मान आदि वधाओं से युक्त हुए राजजन ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ तिष्ठ रथं वृषर्वा वृषां से सुतः सोमः परिषिका मधूनि ।

युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ सितीनां हरिभ्यां याहि अवतोप मद्रिक् ॥३॥

पदार्थ—हे ( वृषभ ) दूसरों के सामर्थ्य रोकने से बलिष्ठ राजन् ! ( मद्रिक् ) हम लोगों को प्राप्त होते और ( वृषा ) रथ आदि से परिपूर्ण होते हुए घ्राप जो ( ते ) अपने लिए ( सोम ) सोमलता आदि का रस ( युवः ) उत्पन्न किया गया है उसमें ( मधूनि ) मीठे-मीठे पदार्थ ( परिषिका ) सब घोर से सींचे हुए हैं उस रस को पीकर ( सितीनाम् ) मनुष्यों के ( वृषभ्याम् ) प्रबल ( हरिभ्याम् ) हरणशील बोंडों से ( वृषभ्याम् ) दृढ़ ( रथम् ) रथ को ( युक्त्वा ) जोड़ युद्ध का ( आ, तिष्ठ ) यत्न करो वा युद्ध की प्रतिज्ञा पूर्ण करो और ( अवता ) नीचे मार्ग से ( उप, याहि ) समीप आओ ॥ ३ ॥

आचार्य—जो आहार-विहार से युक्त, सोमादि ओषधियों के रस का सेवन करनेवाले, दीर्घ ब्रह्मचर्य किये हुए शरीर और आत्मा के बल से युक्त राजजन बिजुली आदि पदार्थों के वेग से युक्त यानों को सिद्ध कर वृषभ से वृष्टों का निवारण कर न्याय से राज्य की रक्षा कराया करें वे ही सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

अब राजा और विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अयं यज्ञो देवया अयं मियेष इमा ब्रह्माण्यवमिन्द्र सोमः ।

स्तीर्णं बहिरा तु शक्रं प्र याहि पिबा निषद्य वि मुञ्चा हरी इह ॥४॥

पदार्थ—हे ( शक्र ) शक्तिमान् ( इन्द्र ) सभापति ! ( अयम् ) यह ( देव्याः ) जिससे दिव्य गुण का उत्तम विद्वानों को प्राप्त होना होता वह ( यज्ञः ) राजधर्म और शिल्प की सङ्गति से उत्पत्ति को प्राप्त हुआ यज्ञ वा ( अयम् ) यह ( मियेषः ) जिसकी पदार्थों के डालने से बृद्धि होती है वह ( अयम् ) यह ( सोमः ) बड़ी-बड़ी ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य ( तु ) और यह ( स्तीर्णम् ) डेपा हुआ ( बहिरा ) उत्तम भावन है ( निषद्य ) इस भासन पर बैठ ( इमा ) इन ( ब्रह्माण्य ) जनो को ( प्रायाहि ) उत्तमता से प्राप्त होओ । हम उक्त ओषधि को ( पिब ) पी ( इह ) यहाँ ( हरी ) बिजुली के धारण और आकर्षणक्षी बोंडों को स्वीकार कर और दुःख को ( विमुञ्च ) छोड़ ॥ ४ ॥

आचार्य—सब मनुष्यों को अवहार में ब्रह्मा यत्न कर जब राजा, ब्रह्मचारी तथा विद्या और अवस्था से बढ़ा हुआ सज्जन आये तब भासन आदि से उसका सत्कार कर पूजना चाहिए वह उनके प्रति यथोचित धर्म के अनुकूल विद्या की प्राप्ति करनेवाले वचन को कहे जिससे दुःख की हानि, सुख की वृद्धि और बिजुली आदि पदार्थों की भी सिद्धि हो ॥ ४ ॥

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्वार्कप ब्रह्माणि मान्यस्यं करोः ।

विद्याम वस्तोरवसा गुणान्तो विद्यामेष वृजनं जीरदामुम् ॥५॥२०॥

पदार्थ—( ओ, इन्द्र ) हे धन देनेवाले सभापति ! जैसे हम लोग ( मान्यस्यं ) सत्कार करने योग्य ( करोः ) कार करनेवाले के ( ब्रह्माणि ) जनो को ( वस्तीः ) प्रतिदिन ( उप, विद्याम् ) समीप से जानें वा जैसे ( अवसा ) रक्षा आदि के साथ ( गुणान्तः ) स्तुति करते हुए हम लोग ( इन्द्रम् ) प्राप्ति ( वृजनम् ) उत्तम गति और ( जीरदामुम् ) जीवात्मा को ( विद्याम् ) जानें वैसे घ्राप ( सुष्टुतः ) अन्धे प्रकार स्तुति को प्राप्त हुए ( अर्वाङ्, याहि ) सम्मुख आओ ॥ ५ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो धन को प्राप्त हों वे औरों का सत्कार करें, जो क्रियाकुशल शिल्पीजन ऐश्वर्य को प्राप्त हों वे सबकी सत्कार करने योग्य हो जैसे-वैसे विद्या आदि अन्धे गुण अधिक हो वैसे-वैसे अभिमान रहित हों ॥ ५ ॥

यहाँ राजा आदि विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक ही सितहस्तरवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथेति पञ्चचर्चस्याष्टसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, २ भिरुत् पङ्क्तिगच्छन् । पञ्चमः स्वरः ।  
३, ४ भिरुत् भिरुत्, ५ विराट् भिरुत् छन्दः ।  
चैवतः स्वरः ॥

अब एक ही अठहस्तरवां सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से सेनापति के गुणों का वर्णन करते हैं—

यद् स्या त इन्द्र अष्टिरस्ति यथा बभूव जरितुम्य ऊती ।

मा नः कार्यं मय्यन्तमा धग्विभ्यां ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेनापति ! ( यत् ) जो ( स्या ) यह ( ते ) घ्रापकी ( ऊतिः ) सुनने योग्य विद्या ( अस्ति ) है ( यथा ) जिससे घ्राप ( जरितुम्यः ) समस्त विद्या की स्तुति करनेवालों के लिए उपदेश करनेवाले ( बभूव ) होते हैं उस

(कृती) रक्षा आदि कर्म से युक्त विद्या से (न) हमारे (मह्यवत्तम्) सत्कार प्रशंसा करने योग्य (कामम्) काम को (मा, मा, वक्) मत जलाओ (ते) आपके (ह) ही (आयो) जीवन के जो (आयः) प्राण, बल हैं उन (विद्या) सबको (पर्वव्याम्) सब ओर से प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो सेनापति आदि राजपुरुष अपने प्रयोजन के लिए किसी के काम को न बिनाशें, सदैव पढ़ाने और पढ़नेवालों की रक्षा करें जिससे बहुत बलवान् प्रायुक्त जन हो ॥ १ ॥

न घा राजेन्द्र आ दमस्यो या नु स्वसारा कृण्वन्त योनीं ।

आपश्चिदस्मै सुतुका अवपन्नामन्न इन्द्रः सख्या वयंश्च ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्र) परमेश्वर्ययुक्त (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान राजा (न) हम लोगों को (न) न (या, वपत्) मारे न दण्ड देवे वैसे हम लोग (नु) भी उसको (घ) ही मत दुःख देवें जैसे (घा) जो (स्वसारा) दो बहिनो के समान दो स्त्री (योनीं) घर में बन्धु को न मारे वैसे उनके समान हम किसी को न मारें जैसे विद्वान् जन हिंसा नहीं करते हैं वैसे सब लोग न (कृण्वन्त) करें जैसे (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् (अस्मै) इस सज्जन के लिए (सख्या) मित्रपन के काम (वयं) जीवन (न) और (सुतुकाः) सुन्दर ग्रहण करनेवाली स्त्री (आय) जलो को (अवपन्) व्याप्त होती है (चित्) उनके समान (नः) हम लोगों को (गमत्) प्राप्त हो वैसे उनको हम भी प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा, दयालु, विद्वान् किसी को नहीं मारते वैसे सब आचरण करें ॥ २ ॥

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हव नाधमानस्य कारोः ।

प्रमर्त्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्पना भूत ॥३॥

पदार्थ—(यदि) जो (नृभिः) नायक वीरों के साथ (शूरः) शत्रुओं की हिंसा करनेवाला (जेता) विजयशील (नाधमानस्य) भागते हुए (कारोः) कार्यकारी पुरुष के (हवन्) ग्रहण करने योग्य विद्याबोध को (श्रोता) सुननेवाला (प्रमर्त्ता) उत्तम विद्याओं का धारण करनेवाला (दाशुषः) दानशील के (उपाके) समीप (गिरोः) वाणियों का (उद्यन्ता) उद्यम करनेवाला (इन्द्रः) सेनाधीश त् (हवन्) अपने से (पृत्सु) संग्रामों में (रथम्) रथ को (च) भी ग्रहण करके प्रवृत्त (भूत) होवे उसका दुःख विजय हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो विद्या की याचना करें उसको निरन्तर विद्या देवें, जो जितेन्द्रिय, सत्यवादी होने हैं उन्हीं को विद्या प्राप्त होती है, जो विद्या और शरीर बलों से शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं उनका कैसे पराजय हो ? ॥ ३ ॥

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रवादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत ।

समर्थ इयः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शसः ॥४॥

पदार्थ—(नृभिः) वीर पुरुषों के साथ (इन्द्रः) सेनापति (सुश्रवस्या) उत्तम मन्त्र की इच्छा से (पृक्षा) दूसरे को बता देने को बाधा हुआ मन्त्र उसको (प्रवादः) प्रतीव जानेवाला और (मित्रिणः) मित्र जिसके वर्तमान उसके (अभि, भूत) सम्मुख हो तथा (विवाचि) नाना प्रकार की विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वीर जन के निमित्त (सत्राकर) सत्य व्यवहार करने और (यजमानस्य) देनेवाले की (शसः) प्रशंसा करनेवाला (समर्थः) उत्तम वाणियों के निमित्त (इयः) मन्त्रों की (स्तवते) स्तुति प्रशंसा करता (एव) ही है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो उद्योगी और सत्यवादी जन सत्योपदेश करते हैं वे नायक अधिपति और भगवामी होते हैं ॥ ४ ॥

स्वया वयं मेघवन्निन्द्र शत्रून्मि व्याम महतो मन्यमानान् ।

त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेवं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम प्रकाशित मनयुक्त (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाले ! (स्वया) आपके साथ वर्तमान (वयम्) हम लोग (महतः) प्रबल (मन्यमानान्) अभिमानी (शत्रून्) शत्रुओं को जीतनेवाले (अभि, स्वाय) सब ओर से होवें (त्वम्) आप (न) हमारे (त्राता) रक्षक सहायक और (त्वम्, उ) आप ही तो (वृधे) बुद्धि के लिए (भू) हो जिससे हम लोग (इयम्) प्रत्येक काम की प्रेरणा (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीव स्वभाव को (विद्याम्) पावें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो युद्ध करनेवाले मृत्यों का सर्वथा सत्कार कर और उनको उत्साह दे युद्ध करते हुए भी निरन्तर रक्षा और मरे हुएों के पुनः कन्या और स्त्रियों की पालना करें वे सब सर्वत्र विजय करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सेनापति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के शर्ष की पिछले सूक्त के शर्ष के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकलौ अठहत्तरवीं सूक्त और इक्कीसवीं वयं समाप्त हुआ ॥



पूर्वोरिति बहुवचस्यैकोनाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य शेषामुद्राजस्त्यौ शब्दौ ।

इमप्यती वेवता १, ४ मिश्रदुपुः २, ३ मिश्रदुपुः ६ विरिदु मिश्रदुपुः

अन्धः । वेवत स्वरः । ५ मिश्रदुपुः हसी अन्धः । अन्धसः स्वरः ॥

अब एकलौ उनासी सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से

विद्वान् स्त्रीपुरुष के विषय को कहते हैं—

पूर्वोरिह शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।

मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यु नु पत्नीर्दृषणो जगम्युः ॥१॥

पदार्थ—जैसे (अहम्) मैं (पूर्वी) पहले हुई (शरदः) वर्षों तथा (दोषा) रात्रि (वस्तोः) दिन (जरयन्तीः) सब की अवस्था को जीर्ण करती हुई (जगम्युः) प्रभात बेलामें भर (शश्रमाणा) धम करती हुई हैं (अपि, उ) और तो जैसे (तनुनाम्) शरीरों की (जरिमा) प्रतीव अवस्था को नष्ट करनेवाला काल (श्रियम्) सधमी को (मिनाति) बिनाशता है वैसे (वृषलः) वीर्य सेचनेवाले (पत्नी) अपनी-अपनी स्त्रियों को (नु) भीघ (जगम्युः) प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे बाल्यावस्था को लेकर विदुषी स्त्रियों ने प्रतिदिन प्रभात समय से घर के कार्य और पति की सेवा आदि कर्म किये हैं, वैसे किया है ब्रह्मचर्य जिन्होंने, उन स्त्री पुरुषों को समस्त कार्यों का अनुष्ठान करना चाहिए ॥ १ ॥

ये चिद्धि पूर्वं ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्तानि ।

ते चिद्धिर्वासुनेष्टन्तमापुः समु नु पत्नीर्दृषभिर्जगम्युः ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (ऋतसाप) सत्यव्यवहार में व्यापक वा दूसरों का व्याप्त करानेवाले (पूर्वं) पूर्व विद्वान् (वेवेभिः) विद्वानों के (साकम्) साथ (चिद्धि) सत्यव्यवहारों को (अवबन्) कहते हुए (ते, चित्, हि) वे भी सुखी (आसन्) हुए और जो (नु) भीघ (पत्नी) स्त्रीजन (वृषभिः) वीर्यवान् पतियों के साथ (सम् जगम्यु) निरन्तर जावें (चित्) उनके समान (अवबन्) दोषों को दूर करें वे (उ, अस्तम्) अन्त को (नहि) नहीं (आपु) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । ब्रह्मचर्यस्य विद्याधियों को उन्हीं से विद्या और अच्छी शिक्षा लेनी चाहिए कि जो पहले विद्या पढ़े हुए सत्याचारी जितेन्द्रिय हो और उन ब्रह्मचारिणियों के साथ विवाह करें जो अपने तुल्य गुण, कर्म, स्वभाववासी विदुषी हो ॥ २ ॥

अब गृहाधम-व्यवहार में स्त्री-पुरुष के व्यवहार को अगले मन्त्रों में कहा है—

न मृषा भ्रान्तं यदवान्त देवा विश्वा इत्सृष्टौ अभ्यङ्गनाव ।

जयावेदत्र शतनीयमार्जि यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वान् जन (यत्) जिस कारण (अव) इस जगत में (मृषा) मिथ्या (भ्रान्तम्) खेद करते हुए की (न) नहीं (अवभन्ति) रक्षा करते हैं इससे हम (विश्वा, इत्) सभी (सृष्टौ) संग्रामों को (अभि, अवबन्तम्) सम्मुख होकर (यत्) जिस कारण गृहाधम को (सम्यञ्चा) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (मिथुना) स्त्रीपुरुष हम दोनों (अवभन्तम्) सब ओर से उसके व्यवहारों को प्राप्त होवें इससे (शतनीयम्) जो सैकड़ों से प्राप्त होने योग्य (आजिन्) सधाम को (यजावत्) जीतते ही हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जिस कारण आप विद्वान् जन मिथ्याचारी, मूढ़ विद्याधी जनों को नहीं पढ़ाते हैं इससे स्त्रीपुरुष मिथ्या आचार और व्यवभारिण दोषों को त्यागें और जैसे गृहाधम का उत्कर्ष हो वैसे स्त्रीपुरुष परस्पर धर्म के आचरण करनेवाले हों ॥ ३ ॥

नदस्य मा रुधतः काम आगञ्जित आजानो अमुतः कुतश्चित् ।

लोषामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४॥

पदार्थ—(इत्) इधर से वा (अमुतः) उधर से वा (कुतश्चित्) कहीं से (आजानः) सब ओर से प्रसिद्ध (रुधतः) वीर्य रोकने वा (नदस्य) अव्यक्त शब्द करनेवाले वृषण आदि का (कामः) काम (ना) मुक्त को (आजान्) प्राप्त होता अवशत् उनके सर्वत्र कामसे उत्पन्न होता है । और (अधीरा) वीरज है रहित वा (लोषामुद्रा) लोप होजाना लुक जाना ही प्रतीत का चिह्न है जिसका तो यह स्त्री (वृषणम्) वीर्यवान् (धीरम्) धीरजयुक्त (श्वसन्तम्) स्वाधे जैसे हुए अर्थात् शयनावि दशा में निमग्न पुरुष को (नीरिणाति) निरन्तर प्राप्त होती और (धयति) उससे गमन भी करती है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो विद्या, वीर्य आदि रहित स्त्रियों को विवाहते हैं वे सुख नहीं पाते हैं, जो पुरुष कामरहित कन्या को वा कामरहित पुरुष को कुमारी विवाह नहीं कुछ भी सुख नहीं होता, इससे परस्पर प्रीतिवाले गुणों में समान स्त्रीपुरुष विवाह करें वही ही मङ्गल समाचार है ॥ ४ ॥

अथ प्रकृत विषय मे महीवर्षियों के सारसग्रह को कहा है—

इमं नु सोममन्तितो हस्तु पीतमुपं अवे ।

यस्सीमार्गस्वकुमा तत्सु मृच्छु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥५॥

पदार्थ—मैं ( यत् ) जिस ( इमम् ) इस ( हस्तु ) हृदयों मे ( पीतम् ) पिये हुए ( सोमम् ) ओषधियों के रस को ( उप, कुम्भे ) उपदेनपूर्वक कहता हूँ उसको ( पुलुकाम् ) बहुत कामनावाला ( मर्त्य ) पुरुष ( हि ) ही ( सुम्भु ) सुख संयुक्त करे अर्थात् अपने सुख मे उसका संयोग करे । जिस ( मार्गः ) अपराध को हम लोग ( अच्छम् ) करें ( तत् ) उसको ( नु ) शीघ्र ( सीम् ) सब ओर से ( अन्तित ) समीप मे सभी जन छोड़ें अर्थात् क्षमा करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो महीवर्षियों के रस को पीते हैं वे रोगरहित, बलिष्ठ होते हैं, जो कुपय्याचरण करते हैं वे रोगों से पीड़यमान होते हैं ॥ ५ ॥

अथ सन्तानोत्पत्ति विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः यजामपन्यं बलमिच्छमानः ।

उभौ वर्णावपिक्त्रः पुपोष सन्या देवैवाशिषो जगाम ॥६॥२२॥२३॥

पदार्थ—जैसे ( खनित्रैः ) कुदास, फावड़ा, कस्सी आदि लोहने के साधनों से भूमि को ( खनमानः ) खोदता हुआ खेती करनेवाला धान्य आदि अनाज पाके सुखी होता है वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या से ( यजाम् ) राज्य ( अपन्यम् ) सन्तान और ( बलम् ) बल की ( इच्छमानः ) इच्छा करता हुआ ( अगस्त्यः ) निरपराधियों मे उत्तम ( अशिषि ) वेदाश्वमेजा ( उग्रः ) तेजस्वी विद्वान् ( पुपोष ) पुष्ट होता है ( देवेषु ) और विद्वानों मे वा कामो मे ( सन्याः ) अच्छे कर्मों मे उत्तम सत्य और ( आशिषः ) सिद्ध इच्छाओं को ( जगाम ) प्राप्त होता है वैसे ( उभौ ) दोनों ( वर्णा ) परस्पर एक दूसरे का स्वीकार करते हुए स्त्री-पुरुष होवें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जैसे कृषि करनेवाले अच्छे खेतों मे उत्तम बीजों को बोकर फलवान् होते हैं और जैसे वासिक विद्वान् जन मत्स्य कामों को प्राप्त होते हैं वैसे ब्रह्मचर्य मे युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी इच्छा से विवाह करने के अच्छे खेत मे उत्तम बीज के समान फलवान् होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त मे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों के गुणों का बगन होने मे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है वह जानना चाहिए ॥

यह एक तो उनासीवाँ सूक्त, बाईसवाँ मंत्र और तेईसवाँ अनुशाक समाप्त हुआ ॥

॥

युवोरित्यन्तीत्युत्तरस्य शततमस्य वशांस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि । अश्विनो

वेदते । १, ४, ७ निष्पत्तिः प्रिष्टुप्, १, ५, ६, ८ विराट्

प्रिष्टुप्; १० प्रिष्टुप् छन्दः । अक्षतः स्वरः । १, ६ श्रुतिः

पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ एक ही अस्की सूक्त का आरम्भ है उसमे आरम्भ से स्त्री-पुरुषों के गुणों का वर्णन करते हैं—

युवो रजांसि सुयमांसो अश्वा रथो यदां पर्यणीसि दीयत् ।

हिरण्यया वां पवयः प्रपायन्मध्वः पिबन्ता उपसः सचेथे ॥१॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! ( यत् ) जब ( युवोः ) तुम दोनों को ( सुयमांस ) समय चाल के नियम का पकड़ें हुए ( अश्वा ) योगवान् अग्नि आदि पदार्थ ( रजांसि ) लोक-लोकान्तरो को और ( वाम् ) तुम्हारा ( रथः ) रथ ( अर्णांसि ) जलस्थलों को ( परि, दीयत् ) सब ओर से जावें ( वाम् ) तुम दोनों के रथ के ( हिरण्यया ) बहुत सुवर्ण युक्त ( पवयः ) वाक, पहिये ( प्रपायम् ) भूमि को खेवते-भेदते हैं तथा ( मध्वः ) मधुर रस को ( पिबन्ता ) पीते हुए आप ( उपसः ) प्रभात समय का ( सचेथे ) सेवन करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो स्त्री-पुरुष लोक का विज्ञान रखते और पदार्थविद्या ससाधित रथ से जानेवाले अच्छे धातुधरा पहिये, दुग्धादि रस पीते हुए समय के अनुरोध से कार्य-सिद्धि करनेवाले हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त हो ॥ १ ॥

युवमत्यस्यावं नक्षथो यद्विपन्मनो नर्थ्यस्य प्रयज्योः ।

स्वसा यदां विश्वगूर्त्ती भराति वाजायेष्टे मधुपाविषे च ॥२॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! ( यत् ) जो ( युवम् ) तुम दोनों ( प्रयज्योः ) प्रयोग करने योग्य अर्थात् कार्य संचार में वर्तने योग्य ( नर्थ्यस्य ) अनुप्यो मे उत्तम ( विपन्मनः ) विशेष बलनेवाले ( अत्यस्य ) बाँड़े को ( अथ, नक्षथः ) प्राप्त होते हो ( यत् ) जिस ( विश्वगूर्त्ती ) समस्त उद्यम के करनेवालो ( वाम् ) तुम दोनों को ( स्वसा ) बहिन तुम्हारी ( भराति ) पाले, पोसे ( वाजाय च ) और विज्ञान होने के लिए ( ईद्वे ) तुम दोनों की स्तुति करती अर्थात् प्रशंसा करती है ( मधुपा ) मधुर, मीठे को पीते हुए तुम दोनों ( इषे ) अन्नादि पदार्थों के होने के लिए उत्तम बल करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो स्त्री, पुरुष अग्नि आदि पदार्थों को शीघ्रगामी करने की विद्या को जानें तो यथेष्ट स्थान को जा सकते हैं, जिसकी बहिन पण्डिता हो उसकी प्रशंसा क्यों न हो ? ॥ २ ॥

युवं पर्य उस्त्रियापामधसं पक्वमामायामव पूव्यङ्गोः ।

अन्तर्यदृनिनो वामृतपू हारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३॥

पदार्थ—हे ( अन्तर्यदृनिनो ) जल खानेवाले स्त्रीपुरुषो ! ( युवम् ) तुम दोनों ( शुचिः ) पवित्र ( हविष्मान् ) गुड सामग्री युक्त ( हारः ) क्रीड के निवारण करनेवाले सज्जन के ( न ) समान ( वाम् ) तुम दोनों की ( उस्त्रियापाम् ) गी में ( यत् ) जो ( पयः ) दुध वा ( अमायाम् ) जो युवावस्था को नहीं प्राप्त हुई उस गी मे ( पक्वम् ) अथवा से परिपक्व भाग ( गो ) गी का ( पूव्यम् ) पूर्वज लोगों ने प्रसिद्ध किया हुआ है वा ( वनिनः ) किरणवाले सूर्यमण्डल के ( अन्तः ) भीतर अर्थात् प्रकाश रूप ( यजते ) प्राप्त होता है उसको ( अवाचस्वम् ) अच्छे प्रकार धारण करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जैसे सूर्य-मण्डल रस को खींचता है और चन्द्रमा वर्षाता, पृथिवी की पुष्टि करता वैसे अध्यापक, उपदेश करनेवाले वर्तव्य रक्खें, जैसे क्रीडादि दोषरहित जन शान्ति आदि गुणों मे सुखी को प्राप्त होते हैं वैसे तुम भी होओ ॥ ३ ॥

युवं ह धर्मं मधुमन्तमन्त्रयेऽपो न सोदोऽवृणीतमेवे ।

तदां नगावक्षिना परवद्वी रथ्येव चक्रा प्रति यति मध्वः ॥४॥

पदार्थ—हे ( नरो ) गायक अथवा गाय ( अक्षिना ) बिजुली आदि की विद्या मे व्याप्त स्त्री-पुरुषो ! ( युवम् ) तुम दोनों ( एषे ) सब ओर से इच्छा करते हुए ( अन्त्रये ) और भूत, भविष्यत् वर्तमान तीनों काल मे जिसकी पुष्ट नही ऐसे सर्वदा सुखयुक्त रहनेवाले पुरुष के लिए ( मधुमन्तम् ) मधुरादि गुणयुक्त ( धर्मम् ) दिन और ( क्षोभः ) जल को ( अथः ) प्राणों के ( न ) समान ( अवृणीतम् ) स्वीकार करो जिस कारण ( वास ) तुम दोनों की ( पश्यद्विष्टः ) पशुकुल की सङ्गति ( रथ्येव ) रथों मे उत्तम ( चक्रा ) पहियों के समान ( मध्वः ) मधुर फलों को ( प्रति, यति ) प्रति प्राप्त होते हैं ( मत्, ह ) इस कारण प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । यदि स्त्रीपुरुष गृहाक्षम मे मधुरादि गुणों से युक्त पदार्थों और उत्तम पशुओं की रथ आदि यानों को प्राप्त होवें तो उनके सब दिन सुख से जावें ॥ ४ ॥

आ वां दानाय वद्वतीय दस्त्रा गोरोहेण तौग्रथो न जित्रिः ।

अपः क्षोणी संचते माहिना वां जूर्णो वामधुरंहेसो यजत्रा ॥५॥

पदार्थ—हे ( वज्रा ) दम्ब दूर करने और ( यजत्रा ) सर्वव्यवहार की सङ्गति करानेवाले स्त्री-पुरुषो ! ( जित्रिः ) जीर्णान्द्र ( तोषयः ) बलवानों मे बली जन के ( न ) मगान में ( गोरोहेण ) पृथिवी के बीज स्थापन से ( वास ) तुम दोनों को ( दानाय ) देने के लिए ( आकृताय ) अच्छे प्रकार वस्त्र जैसे ( माहिना ) बधी होने मे ( क्षोणी ) भूमि ( अथः ) जलों का ( संचते ) सम्बन्ध करती है वैसे ( जूर्ण ) रंगवान् मे ( वास ) तुम्हारा सम्बन्ध करे और ( अपः ) व्याप्त होने को शीलस्वभाववाला मैं ( अहसः ) दुष्टाचार से ( वाम् ) तुम दोनों को अलग रखूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । विद्वान् जन स्त्री-पुरुषों के लिए ऐसा उपदेश करें कि जैसे हम लोग तुम्हारे लिए विद्याएँ देवें, दुष्ट आचारों से अलग रक्खें वैसे तुमको भी आचरण करना चाहिए और पृथिवी के समान क्षमा तथा परांपरादि कर्म करने चाहिए ॥ ५ ॥

अथ सन्ताननिष्ठापरक गार्हस्थ्य कम अगले मन्त्रों में कहा है—

नि यद्यवेथ नियुतः सुदान् उप स्वधाभिः सृजयः पुरन्धिम् ।

प्रेषद्वेष्टातो न सूरिग महे दंदे सुव्रतो न वार्जम् ॥६॥

पदार्थ—( यत् ) जब हे ( सुदान् ) सुन्दर दासशील स्त्री-पुरुषो ! ( नियुतः ) पवन के वेगादि गुणों के समान निश्चित पदार्थों को ( नियुक्ते ) एक दूसरे से मिलाते हो तब ( स्वधाभिः ) अन्नादि पदार्थों से जिससे ( पुरन्धिम् ) प्राप्त होने योग्य विज्ञान को ( उप, सृजयः ) उत्पन्न करते हो वह ( सूरिः ) विद्वान् ( प्रेषत् ) प्रसन्न हो ( वातः ) पवन के ( न ) समान ( वेष्टः ) सब ओर से गमन करे और ( सुव्रतः ) सुन्दर व्रत अर्थात् नर्म के अनुकूल नियमों से युक्त सज्जन पुरुष के ( न ) समान ( महे ) महत्त्व अर्थात् बडप्पम के लिए ( वार्जम् ) विशेष ज्ञान को ( आदरे ) ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है । पितादिकों को चाहिए कि शिल्प-क्रिया की कुशलता को पुत्रादिकों में उत्पन्न करावें शिक्षा को प्राप्त हुए पुत्रादि समस्त पदार्थों को विवेकता से जाने और कलायन्त्रों से चलाये हुए पवन के समान जिसमें वेग उस यान से जहाँ-तहाँ बाहे हुए स्थान को जावें ॥ ६ ॥

वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।

अथां चिद्धि व्माभिनावनिन्या पाथो हि व्मां वृषणावन्तिदेवम् ॥७॥



पदार्थ—हे (अविद्या) निन्दा के न योग्य (बुद्धि) बलवान् (अविद्या) समस्त पदार्थ गुण स्वीकृतिपुत्रो ! तुम जैसे (हितवान्) जिस जिनके विद्यमान वह (विपक्षः) विशेषतः अग्रहण करनेवाला जन (बाम) तुम दोनों की प्रशंसा करता है जैसे हम लोग प्रशंसा करें । वा जैसे (चित्, हि) ही (अविद्या) स्तुति प्रशंसा करने और (सत्वा) सत्य अग्रहण करनेवाले (बुद्धि) हम लोग तुम दोनों की (विपक्षामहे) उत्तम स्तुति करते हैं जैसे (स्म, हि) ही (अविद्या) विद्वानों में विद्वान् जन की सेवा करें वा जैसे (हि, स्म) ही आश्चर्यकर (बाधः) अल (चित्) निश्चय से स्तुति करता है जैसे (अव) इसके अनन्तर विद्वानों का सत्कार करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे विद्वान् जन प्रशंसा करने योग्यों की प्रशंसा करते और निन्दा करने योग्यों की निन्दा करते हैं वैसे वर्तन रखें ॥ ७ ॥

युवां चिद्धि प्मांश्चिनावनु धुन्विर्द्रस्य प्रसवणस्य सातो ।

अगस्त्यो नरां वृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयस्सहस्रैः ॥८॥

पदार्थ—हे (अविद्या) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य गुणवाले स्त्रीपुरुषो ! जैसे (युवां, चित्) तुम ही (हि, स्म) जिस कारण (चिद्धि) विविध प्रकार से प्राप्त विद्यमान उम (प्रसवणस्य) उत्तमता से जानेवाले शरीर की (सातो) सभक्ति में (अनु, धुन्) प्रतिदिन अपने सन्तानों को उपदेश देते वैसे उसी कारण (अगस्त्य) मनुष्यों के बीच (वृषु) अच्छे मनुष्यों में (प्रशस्तः) उत्तम (अगस्त्यः) अपराध को दूर करनेवाला जन (सहस्रैः) हजारों प्रकार से (काराधुनीव) शब्दों को कपाते हुए वाचि धादि के समान सबको (चितयत्) उत्तम चिताये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं । जो स्त्री-पुरुष निरन्तर सूर्य और चन्द्रमा के समान अपने सन्तानों को विद्या और उत्तम उपदेशों से अकाशित करते हैं वे प्रशंसनीय होते हैं ॥ ८ ॥

प्र यद्वहे महिना रथस्य प्र स्यन्द्रा याथो मनुषो न होता ।

धत्तं सुरिभ्य उत वा स्वरथ्य नासत्या रयिषाचः स्याम ॥९॥

पदार्थ—हे (स्यन्द्रा) उत्तम चाल चलने और (नासत्या) सत्य स्वभाव-युक्त स्त्रीपुरुषो ! (धत्तं) जो तुम (होता) दान करनेवाले (अनुषः) मनुष्य के (न) समान (महिना) बरषण के साथ (रथस्य) रथान् करने योग्य विमानादि रथ को (प्रयत्ने) प्राप्त होते और (प्रयाच) एक देश से दूसरे देश पहुँचाते हो वे आप (सुरिभ्य) विद्वानों के लिए धन को (वत्तम्) धारण करो (उत, वा) अथवा (स्वरथ्य) सुन्दर घोड़ा जिसमें विराजमान उत्तम धनादि विभव को प्राप्त होओ जिससे हम लोग (रयिषाचः) धन के साथ सम्बन्ध करनेवाले (स्याम) हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिए जिन साधनों की इच्छा करें उन्हीं को छोड़ कर धान्य के लिए चाहे, जो सुपात्र पढ़ानेवालों का धनदान देते हैं वे भीमान् धनवान् होते हैं ॥ ९ ॥

तं वा रथं वयमथा हुवेम स्तामैरश्विना सुविताय नव्यम् ।

अरिष्टनेमिं परि ग्रामियानं विद्यामेवं वृजं जीग्दानुम् ॥१०॥२४॥

पदार्थ—हे (अविद्या) सर्वगुणव्यापी पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (अश्विना) आज (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (स्तामैः) प्रशंसाओं से (अरिष्टनेमिम्) दुःखनिवारक (नव्यम्) नवीन (ग्रामं) आकाश को (परि, ग्रामम्) सब ओर से जाते हुए (तम्) उम पूर्व मन्त्रोक्त (ग्रामं) तुम दोनों के (रथम्) रथ को (हुवेम) स्वीकार करें तथा (इयम्) प्राप्त हो सुख (वृजम्) गमन और (जीग्दानुम्) जीव को (विद्याम्) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को सर्वत्र नवीन-नवीन विद्या के कार्य सिद्ध करने चाहिए जिससे इस ससार में प्रशंसा हो और आकाशादिकी में जाने से इच्छासिद्धि पाई जावे ॥ १० ॥

इस मन्त्र में स्त्रीपुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक ही अरसीवा सूक्त और चौबीसवाँ मन्त्र समाप्त हुआ ॥



कवित्वस्य नवचंस्वीकाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सुवत्स्य अग्रस्य अक्षि । अविद्या

देवते । १, ३ विराट् त्रिष्टुप्, २, ४, ६—१ मिष्टुप् त्रिष्टुप्,

५ त्रिष्टुप् छन्दः । अक्षरः स्वरः ॥

अब एक ही इयासी सूक्त का आरम्भ है । इस सूक्त में अविद्यापद वाच्यों के वृत्तान्त से अध्यापक और उपदेशक के धर्मों का वर्तन करते हैं—

कद्रु प्रेष्टाविषां रयीणामध्वयेन्ता यदुभिनीयो अपाम् ।

अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुचिती अविताता जनानाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (इयाम्) धान्य और (रयीणाम्) अनादि पदार्थों के विषय में (प्रेष्टो) अत्यन्त प्रीतिवाले (जनानाम्) मनुष्यों की (अविताता) रक्षा और (वसुचिती) अनादि पदार्थों को धारण करनेवाले अध्यापक और उपदेशको ! तुम (कद्रु, व) सभी (अध्वयेन्ता) अपने को यज्ञ की इच्छा करते हुए (यत्) जो (अपाम्) अल वा प्राणों की (उत्, विनीयः) उन्नति को पहुँचाते अर्थात् अत्यन्त व्यवहार में लाते हैं सो (अवम्) यह (वाम्) तुम्हारा (यत्) दम्पत्य वा वाणीमय यज्ञ (अकृतिम्) प्रशंसा को (अकृत) करता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—अब विद्वान् जन मनुष्यों को विद्याओं की प्राप्ति कराते हैं तब वे सबके प्यारे ऐश्वर्यवान् होते हैं, जब पढ़ने और पढ़ाने से और सुगन्धादि पदार्थों के होम से जीवाङ्गा और जलो की शुद्धि कराते हैं तब प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

आ वामन्वांसः शुचयः पयस्पा वातरंहसो विष्पासो अत्याः

मनोजुवो वृषयो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अधिना वहन्तु ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (अध्यासः) शीघ्रगामी घोड़े (शुचयः) पवित्र (वयस्याः) जल के पीनेवाले (विष्पास) दिव्य (वातरहसः) पवन के समान वेग वा (मनोजुवः) मनोवद्वेगवाले (वृषयः) परमक्ति बन्धक (वीतपृष्ठाः) जिन्होंने से पृथिवी तान व्याप्त (स्वराजः) जो आप प्रकाशमान (अत्याः) निरन्तर जानेवाले (आ) अच्छे प्रकार हैं वे (एह) इस स्थान में (वाम्) तुम (अधिना) अध्यापक और उपदेशको को (आ, वसुत्सु) पहुँचावें ॥ २ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जन जिन विजुली धादि पदार्थों को गुण, कर्म, स्वभाव से जानें और उनका छोड़ने के लिए भी उपदेश देवें जबतक मनुष्य सृष्टि की पदार्थविद्या को नहीं जानते तबतक सम्पूर्ण सुख को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वांस्तुम्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।

वृष्णः स्याताता मनसो जवीयानहंपूर्वो यंजतो धिष्ण्या यः ॥३॥

पदार्थ—हे (स्याताता) स्थित होनेवाले (धिष्ण्या) वृष्टप्रगल्भ अध्यापक और उपदेशको ! (यः) जो (वाम्) तुम्हारा (अध्वनिः) पृथिवी के (न) समान (प्रवत्वां) जिसमें प्रशस्त वेगादि गुण विद्यमान (तुम्रवन्धुरः) जो मिले हुए बन्धनों से युक्त (अवन्धुरः) मन से भी (जवीयान्) अत्यन्त वेगवान् (अहंपूर्वः) यह मैं हूँ इस प्रकार आरम्भज्ञान से पूर्ण (यंजतो) मिला हुआ (रथः) रथ (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए होता है जिसमें (वृष्णः) बलवान् (आ, वयस्याः) बलवान् को योग्य अध्यापक पदार्थ अच्छे प्रकार जोड़े जाते हैं उसको मैं सिद्ध करूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों से जो ऐश्वर्य की उन्नति के लिए पृथिवी के तुल्य वा मन के वेग के तुल्य वेगवान् यान बनाये जाते हैं वे यहाँ स्थिर सुख देनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

इहेह जाता समवावशीतामरेपसां तन्वां नामभिः स्वैः ।

जिष्णुर्वीमन्यः सुमन्वस्य हरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४॥

पदार्थ—हे (अरेपसा) निष्पाप सर्वगुणव्यापी अध्यापक और उपदेशक जनो ! (इहेह) इस जगत् में (जाता) प्रसिद्ध हुए आप लोग अपने (तन्वा) शरीर से और (स्वैः) अपने (नामभिः) नामों के साथ (सन्, अवावशीताम्) निरन्तर कामना करनेवाले हूँजिए (वाम्) तुम में से (जिष्णुः) जीतने के स्वभाव वाला (अन्यः) दूसरा (सुमन्वस्य) सुख के (दिवः) प्रकाश से (हरिः) विद्वान् (अन्यः) और (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्यवान् (पुत्रः) पवित्र करता है उसको (ऊहे) तर्कता है—तर्क से कहता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस सृष्टि में भूगर्भादि विद्या को जानने जो जीतने-वाला अध्यापक बहुत ऐश्वर्यवाला सबका रक्षक पदार्थविद्या को तर्क से जाने वह प्रसिद्ध होता है ॥ ४ ॥

प्र वां निचेरुः कंकुहो वशां अनु पिशङ्करूपः सदनानि गम्याः ।

हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मध्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥५॥२५॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पवन और सूर्य के समान अध्यापक और उपदेशको ! जिन (वाम्) तुम्हारा जैसे (पिशङ्करूपः) पीला सुवर्ण धातु से मिला हुआ रूप है जिसका वह (कंकुहः) सब दिशाओं को (निचेरुः) विचरनेवाला (वशां), वशवर्ति जनो को (अनु) अनुकूल बतता है उनमें से प्रत्येक तुम (सदनानि) लोको को (प्र, गम्या) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ जैसे (अन्यस्य) और अर्थात् अपने से भिन्न पदार्थ की (हरी) धारण और आकर्षण के समान बल पराक्रम (वाजैः) वेगादिगुणों और (घोषैः) शब्दों से (अश्विना) अच्छे प्रकार मधे हुए (रजांसि) लोको को बढ़ाते हैं वैसे मनुष्य जनको (वि, पीपयन्त) विशेष कर परिपूर्ण करते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार हैं । हे मनुष्यो ! जैसे पवन सबको अपने वश में करता है तथा बाधु और सूर्यलोक सबको धारण करते हैं वैसे विद्या बन्धनों को धारण कर तुम भी सुखी होओ ॥ ५ ॥

प्र वां शरद्वान्वृषमो न निष्पाद् पुनरिषिश्चरति मध्वं इष्यन् ।

एवैन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मध्नीरूपां नद्यो न आरुः ॥६॥

वार्त्ता—हे अध्यापकोपदेशक जनो ! जैसे ( बाम् ) तुम्हारी ( अरुहान् ) अरुह जो ऊपर है जिसने विद्यमान वह ( ब्रह्म ) वर्षा करानेवाला जो सूर्यमण्डल उसके ( न ) समान ( निष्वाह ) निरन्तर संहनशील जन ( पूर्वीः ) अंगरे समग्र में प्राप्त हुई प्रजा ( हवः ) और जानने योग्य प्रजा जनो को ( अरति ) प्राप्त होता है वा ( सत्यः ) मधुर पदार्थों को ( हवन् ) वाहता हुआ ( हवः ) शक्ति करनेवाले पदार्थों से ( अमृतम् ) हमारे की पिल्ली वा जानने योग्य जगती प्रजाओं को प्राप्त होता है जैसे ( बार्त्ताः ) वेगों के साथ वर्तमान ( अमर्त्तः ) ऊपर को जानेवाली लपटे वा ( वेवन्ती ) इधर-उधर व्याप्त होनेवाली ( मयः ) नदियाँ ( नः ) हम लोगों को ( प्र, योचयन्त ) बुद्धि दिलाती हैं और ( आधुः ) प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालंकार है । जो आप्त अध्यापक और उपदेशकों से विद्यार्थी को प्राप्त होके श्रीरों को देते हैं वे ध्यान के मुख्य तेजस्वी, शुद्ध होकर सब ओर के वर्तमान हैं ॥ ११ ॥

असंजि वां स्पष्टिरा वेचसा गीर्वाण्डे अश्विना वेधा क्षरन्ती ।

उपस्तुतावतं नार्धमानं यामज्यामभ्युपुतं हवै मे ॥७॥

वार्त्ता—हे ( वेचसा ) प्राज्ञ उत्तम बुद्धिवाले ( अश्विना ) सत्योपदेशक अध्यापकोपदेशको ! ( बाम् ) बुम्हारी जो ( स्पष्टिरा ) स्पष्ट और विस्तार को प्राप्त ( वेधा ) तीन प्रकारों से ( क्षरन्ती ) प्राप्त होती हुई ( गीः ) वाणी ( गीर्वाण्डे ) शक्ति करनेवाले व्यवहार में ( असंजि ) रही गई उसको ( उन्मूल्यते ) अपने समीप दूसरे से प्रशंसा को प्राप्त होते हुए तुम दोनों ( अमृतम् ) प्राप्त होमी तुम दोनों को ( यामज्याम् ) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त सम्पादित करता हुआ अर्थात् तुम्हारे ऐश्वर्य को वर्णन करते हुए ( मे ) मेरे ( हवन् ) सुनने योग्य शब्दों को ( यामज् ) सत्य मार्ग ( यामज् ) और न जाने योग्य मार्ग में ( अमृतम् ) सुनिए ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को सुनते हैं वे कुमारों को छोड़ सुमार्ग को प्राप्त होते हैं, जो मन और कम से झूठ बोलने को नहीं चाहते वे माननीय होते हैं ॥ ७ ॥

किर अध्यापकोपदेशक विषय को अंगरे मन्त्रों में कहा है—

उत स्या वां रश्मतो वप्ससो गीर्वाण्डे हि विदसि पितृवते नृन ।

हृषा वां मेधो हृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥

वार्त्ता—हे ( वृषणा ) दुष्टों की सामर्थ्य बाधनेवाले अध्यापकोपदेशको ! ( बाम् ) तुम दोनों के ( वप्ससः ) प्रकाशित ( वप्सस ) रूप की जो ( गी ) वाणी है ( हृषा ) वह ( विदसि ) तीन वेदवेत्ता बुद्धि जिसमें हैं उस ( सचसि ) सभा में ( नृन् ) अग्रगन्ता मनुष्यों को ( विदसि ) सेवती है और ( बाम् ) तुम दोनों का जो ( वृषा ) सेचने में समर्थ ( मेधः ) मेघ के समान वाणी विषय ( दशस्यन् ) चाहे हुए फल को देता हुआ ( गोः ) पृथिवी के ( सेके ) सेचन में ( न ) जैसे जैसे अपने व्यवहार में ( मनुष्य ) मनुष्यों की ( पीपाय ) उन्नति कराता है उसको ( उत ) भी हम सेवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्य जब सत्य कहते हैं तब उनके मुख की आकृति मलिन नहीं होती और जब झूठ कहते हैं तब उनका मुख मलीन हो जाता है । जैसे पृथिवी पर ओषधियों को बढ़ानेवाला मेघ है वैसे जो सभासद् उपदेश करने योग्यों को सत्यभाषण से बढ़ाने हैं वे सब हितैषी होते हैं ॥ ८ ॥

युवां पृषेवाश्विना पुरन्धिरमिमुषां न जर्तते हविष्मान् ।

हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानां विद्यामपं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥२६॥

वार्त्ता—हे ( अश्विना ) सत्योपदेशक और रक्षा करनेवाले विद्वानो ! ( अग्निम् ) अग्नि और ( उवाचम् ) प्रभातवेला को ( यत् ) जो ( पुरन्धि ) जगत् को चारण करने और ( पृषेव ) पुष्टि करनेवाले सूर्य के समान ( हविष्मान् ) प्रशस्त दान जिसके विद्यमान वह जन ( युवाम् ) तुम दोनों की ( न ) जैसे ( जर्तते ) स्तुति करता है वैसे ( बाम् ) तुम दोनों की ( वरिवस्या ) सेवा में हुए कर्मों की ( गृणान् ) प्रशंसा करता हुआ वह मैं तुमको ( हुवे ) स्वीकार करता है ऐसे करते हुए हम लोग ( हवन् ) विज्ञान ( वृजनम् ) बल और ( जीरदानम् ) दीर्घजीवन को ( विद्याम् ) जानें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे सूर्य सबकी पुष्टि करनेवाला अग्नि और प्रभात समय को प्रकट करता है वैसे प्रशंसित दानशील पुरुष विद्वानों के गुणों को अच्छे प्रकार कहता है ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अश्वि के दृष्टान्त से अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति पिछले

सूक्त के साथ समझनी चाहिए ॥

यह एक ही इक्यासीवाँ सूक्त और अन्तीसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अभूदित्यर्थस्य इषतीत्युत्तरस्य सततस्य सुकलस्य अग्रस्य ऋषिः । अश्विनी

देवते । १, ५, ७ निष्पन्नगतीः । ३ जनतीः । ४ विराट् जगती कण्वः ।

निषादः स्वरः । २ स्वरान् विष्णुः । ३ वेतः स्वरः ।

६, ८ स्वरान् यक्षः । ९ पञ्चमः स्वरः ॥

अब एक ही इक्यासीवाँ सूक्त का आरम्भ है इसमें आरम्भ से विद्वानों के कार्य की कहते हैं—

अभूदिदं वयुनमो वु भूषता रयो हृषन्वान्मदंता मनीषिणः ।

धियंजिन्वा धिष्यां विषलावद्विषो नपाता सुकृते शुचिंमता ॥१॥

वार्त्ता—( ओ ) ओ ( मनीषिणः ) धीमानो ! जिससे ( हवन् ) यह ( वयुनम् ) उत्तम ज्ञान ( अमृतम् ) हुआ और ( वृषन्वा ) यानों की वेगशक्ति को बाधनेवाला ( रयः ) रथ हुआ उन ( सुकृते ) सुकर्मरूप शोभन मार्ग में ( धिष-जिन्वा ) बुद्धि की तुल्य रखते ( विषः ) विद्यादि प्रकाश के ( नपाता ) पवन से रहित ( धिष्या ) दृढ़ प्रगल्भ ( शुचिंमता ) पवित्र कर्म करने के स्वभाव से युक्त ( विषलावद्विषः ) प्रजाजनों की पालना करने और बसानेवाले अध्यापक और उप-देशकों को तुम ( वु, वृषत ) सुशोभित करो और उनके सङ्ग से ( मयः ) मानन्दित होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वे श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक नहीं हैं कि जिनके सङ्ग से प्रजा पालना, सुशीलता, ईश्वरधर्म और शिल्पव्यवहार की विद्या क-वें ॥ १ ॥

इन्द्रतमा हि धिष्यां परुत्तमा दक्षा दंसिष्ठा रथ्यां रथीतमा ।

पूर्णं रथं वहेये मध्व आचिंतं तेन दान्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

वार्त्ता—हे ( अश्विना ) अध्यापकोपदेशक जनो ! ( हि ) तुम्हीं ( इन्द्रतमा ) अतीव ऐश्वर्ययुक्त ( धिष्या ) प्रगल्भ ( मयत्तमा ) अत्यन्त विद्वानों को साथ लिये हुए ( दक्षा ) दुल के दूर करनेवाले ( दंसिष्ठा ) अतीव पराक्रमी ( रथ्या ) रथ चलाने में श्रेष्ठ और ( रथीतमा ) प्रशंसित पराक्रमयुक्त हो और ( मध्वः ) मधु से ( आचितम् ) भरे हुए ( पूर्णम् ) शस्त्र और अस्त्रों से परिपूर्ण जिस ( रथम् ) रथ को ( वहेये ) प्राप्त होते हो ( तेन ) और उससे ( दान्वांसम् ) विद्या देनेवाले जन के ( उप, याचः ) समीप जाते हो वे हम लोगों को निरर्थक करके योग्य हों ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विजुली, अग्नि, जल और वायु इनसे बलाये हुए रथ पर स्थित हो देवदेवान्तर को जाते हैं वे परिपूर्ण जन जीतनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

किमत्र दक्षा कणुधः किमांसाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।

अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विमाय कणुतं वचस्यवे ॥३॥

वार्त्ता—हे ( दक्षा ) दुल के नाश करनेवाले अध्यापकोपदेशको ! तुम ( यः ) जो ( कः, कित् ) कोई ऐसा है कि ( अहविः ) जिसके लेना वा भोजन करना नहीं विद्यमान है वह ( जनः ) मनुष्य ( महीयते ) अपने को श्यामबुद्धि से बहुत कुछ मानता है उस ( वचस्यवे ) अपने को वचन की इच्छा करते हुए ( विमाय ) मेधावी उत्तम वीरबुद्धि पुरुष के लिए ( ज्योति ) प्रकाश ( कणुतम् ) करो अर्थात् विद्यादि सद्गुणों का आविर्भाव करो और ( पणेर ) सत् और असत् पदार्थों का व्यवहार करनेवाले जन की ( कणुत् ) बुद्धि को ( अति, कमिष्यम् ) अतिक्रमण करो और ( कुरतम् ) नाश करो अर्थात् उसकी अच्छे काम में लगनेवाली बुद्धि का विवेचन करो और असत् काम में लगी हुई बुद्धि को विनाशो तथा ( किम् ) क्या ( कण ) इस व्यवहार में ( आंसाथे ) स्थिर होते और ( किम् ) क्या ( कणुधः ) करते हो ? ॥ ३ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक जैसे प्राप्त विद्वान् सबके सुख के लिए उत्तम यत्न करता है वैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें ॥ ३ ॥

अम्भयंतमभितो रायंतः शुनो हतं मृधो विदधुस्तान्यश्विना ।

वाचंवाचं जरित् रत्निनीं कृतमुमा शसं नास्त्यावतं मम ॥४॥

वार्त्ता—हे ( नास्त्या ) सत्य व्यवहार वर्त्तने और ( अश्विना ) विद्याबल से व्याप्त होनेवाले सज्जनों ! जो तुम ( रायन्तः ) आँकते हुए मनुष्यभङ्गी दुष्ट ( शुन ) कुत्तों को ( अभितः, अम्भयन्तम् ) सब ओर से विनाशो तथा ( मृध ) संशयो को ( हतम् ) विनाशो और ( तानि ) उन सब कामों को ( विदधुः ) जानते हो तथा ( जरित् ) स्तुति प्रशंसा करनेवाले अध्यापक और उपदेशक से ( रत्निनीम् ) रमणीय ( वाचवाचम् ) वाणी-वाणी को जानते हो और ( शंसम् ) स्तुति ( कृतम् ) करो वे ( उमा ) दोनों तुम ( मयः ) मेरी वाणी को ( प्रवृत्तम् ) तुल्य करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिनका दुष्टों के बाधने, मनुष्यों के भीतने और विद्वानों के उपदेश के स्वीकार करने में सामर्थ्य है वे ही हम लोगों के रक्षक होते हैं ॥ ४ ॥

अब प्रकरणगत विषय में नौका और विमानादि बनाने के विषय को अंगरे मन्त्र में कहा है—

सुधमेतं वक्रधुः सिन्धुषु प्लवमास्मन्वन्तं पक्षिणं तौघपाय कम् ।

येन देवता मनसा निरुहयुः सुपत्नी पंतयुः शोदसो महः ॥५॥२७॥

पदार्थ—हे उक्त गुणवाले अध्यापकोपदेशको । ( बुधम् ) तुम् ( विष्णुम् ) नदी वा समुद्री मे ( तोषयाम् ) बलवानो मे प्रसिद्ध हुए जन के लिए ( एतम् ) इस ( आत्मस्वम् ) प्राणियों से युक्त ( पक्षिणम् ) योग पक्ष जिसमे विद्यमान ऐसे ( कम् ) सुवकारी ( पक्षम् ) उम नौकादि यान का जिसमे पात्र अवार अर्थात् इस पार उम पार जाते है ( चक्रम् ) सिद्ध करा नि ( येन ) जिसमे ( देवता ) देवी में ( मनसा ) विज्ञान के साथ ( सुपन्नम् ) जिनका मूर्त गमन है वे प्राण ( निष्कम् ) निरन्तर उम नौकादि यान को बहाए और ( मह ) बहुत ( शोचस ) जल के ( पेतुम् ) पार जात्र ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो जन मन्त्री-चोरी ३, ची नावो का चक्र समुद्र के बीच जाना-खाना करने हैं वे प्राण सुधी होकर योगों का सुखी करते हैं ॥ ५ ॥

फिर नौकावि यान विषय को अगले मन्त्रो मे कहा है—

अवविद्धं तौग्रयमम्बन्तरेनाग्मभ्यं तमसि प्रविद्धम् ।

चतस्रो नावो जटलस्य जुष्टा उदम्बिभ्यामि ताः पांग्यन्ति ॥६॥

पदार्थ—जो ( प्रविष्टम् ) वायु और अग्नि से ( इष्टितः ) प्रेरणा दी हुई अर्थात् पवन और अग्नि के बन से बनी हुई एक-एक चीतरफी ( चतस्रः ) चार-चार ( नावः ) नावें ( जटलस्य ) उदर के समान समुद्र मे ( जुष्टा ) सेवन की हुई ( अनारम्भम् ) जिसका भावद्यमान आरम्भ उम ( तमसि ) अन्धकार मे ( प्रविद्धम् ) अच्छे प्रकार स्थित ( आसु ) जनों के ( अन्तः ) भीतर ( अवविद्धम् ) विशेष पीडा पाये हुए ( तोषयाम् ) बन का ग्रहण करनेवाला म प्रसिद्ध जन को ( उत्पारयन्ति ) उतारना मे पार पहुँचानी है व विद्वानो को बतानी चाहिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्य जब नौका म बैठ समुद्र के मार्ग से जाने की इच्छा करें सब बड़ी नाव के साथ छोटी-छोटी नावें जाइ समुद्र मे जाना-खाना करें ॥ ६ ॥

कः सिद्धुः सो निष्ठितो मध्ये अर्णयो य तौग्रया नाधितः पर्यपस्वजत् ।

पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदम्बिना ऊरुधुः श्रोमताय कम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( अविष्मन् ) जल और अग्नि के समान विमानादि यानो के रहने और पहुँचानेवाले विद्वानो । ( अर्णयः ) जल के ( मध्ये ) बीच मे ( कः ) जिसको ( नाधितः ) कष्ट को प्राप्त ( तोषयाम् ) बलवानो मे प्रसिद्ध हुआ पुरुष ( पर्यपस्वजत् ) लगता अर्थात् जिसमे घटकला है और ( मृगस्य ) शूद्र करने योग्य ( पतरोरिव ) जात हुए प्राणी के ( पर्णा ) पक्षो के समान ( श्रोमताय ) प्रशस्त कीर्तिपुक्त व्यवहार के लिए ( आरभे ) आरम्भ करने का ( कम् ) कौन यान को ( उरुधुः ) ऊपर के मार्ग से पहुँचाने हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं । हे नौका पर जानेवालो । समुद्र मे कोई बूझ है जिसमे बेधी हुई नौका स्थिर हो ? वहाँ नहीं बल और न आधार है बल्कि नौका ही आधार, बलही ही अम्बे है ऐसे ही जैसे पक्ष ऊपर को जा फिर नीचे आते हैं वैसे ही विमानादि यान हैं ॥ ७ ॥

फिर साधारण भाव से अध्यापक और उपदेशक के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तद्वा नरा नासत्यावनं व्याघ्रद्वानांस उच्यमवोचन ।

अस्मादय सदंसः सोम्यादा विद्यामेघ वृजनं जीरदानुम् ॥८॥२८॥

पदार्थ—हे ( नरा ) नायक, अध्यापको ( नासत्यो ) असत्य आचरण से रहित अध्यापकोपदेशको । ( यत् ) जो ( वाम् ) तुम दोनों का ( अनु, व्यात् ) चाहत हुए के अनुकूल हा ( तत् ) वह प्राण लोगों का हा अर्थात् परिपूर्ण हा और ( मानास ) विश्वासशील मउज्ज पुरुष ( यत् ) जिस ( उच्यम् ) कहने योग्य विषय को ( अवोचन् ) कहें उसको तुम दोनों ग्रहण करो जैसे ( अद्या ) आज ( तस्मात् ) इस ( सोम्यादा ) सोमगुण सम्पन्न ( सदंसः ) सभास्थान मे ( इवम् ) इच्छा सिद्धि ( वृजनम् ) बल ( जीरवानुम् ) जीवन के उपाय को हम लोग ( आ ) ( विद्याम् ) प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्य को यह अच्छे प्रकार उचित है कि अपने प्रयोजन को चाहे तथा प्रयोगकार भी चाह और विद्वान् जन जिस जिस का उपदेश करें उस-उम को प्रीति से सब लोग ग्रहण करें ॥ ८ ॥

हम मूल मे विद्वानों के कृत्य का उरण होने से इस सूक्त के अर्थ की विच्छेदने सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक सौ ब्यासीवाँ सूक्त और अट्ठाईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



तन्वितस्य षडक्षस्य त्र्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

अश्विनो देवते । १, ४, ६ त्रिष्टुप्, २, ३ निबृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।

वैवत स्वरः । ५ ध्रुविक पङ्क्तिछन्दः । षडक्ष स्वरः ॥

अब एक सौ तिरासौ सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ से विद्वान् की

शिरविद्या के गुणों का विषय कहा है -

तं युञ्ज्याथ मनसो यो जवीयान् त्रिवधुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।

येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पथो विनं पर्णः ॥१॥

पदार्थ—हे ( वृषणा ) बलवान् सर्वविद्यासम्पन्न शिरविद्या के अध्यापकोपदेशको । तुम् ( यः ) जो ( पर्णः ) पक्षो मे ( वि, न ) पक्षके समान ( मनसः ) मन से ( जवीयान् ) अत्यन्त वेगवाला ( त्रिवधुरः ) और तीन बन्धन जिसमे विद्यमान ( याः ) तथा जो ( त्रिचक्रः ) तीन चक्रवाला रथ है ( येन ) जिस ( त्रिधातुना ) तीन धातुधोवाने रथ से ( सुकृतः ) अर्थात् पुरुष के ( दुरोणम् ) धर की ( उपयाथः ) निकट जान हो ( तम् ) उसको ( वृषणायाम् ) जोड़ो, जोतो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो शीघ्र ले जाने और पक्षके के समान आकाश मे चलानेवाले साङ्गोपाङ्ग अच्छे बने हुए रथ को नहीं सिद्ध करते हैं वे कैसे ऐश्वर्य को पावें ? ॥ १ ॥

सुवृद्धो वसन्ते यन्मि क्षा यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानुं पृक्षे ।

वपुर्वपुष्या संचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोपसां सचेथे ॥२॥

पदार्थ—हे ( क्रतुमन्तः ) बहुत उत्तम बुद्धियुक्त रथो के चलाने और सिद्ध करनेवाले विद्वानो । तुम् ( सुवृद्धः ) सुन्दरता से स्वीकार करने ( रथः ) और रमण करने योग्य रथ ( क्षा ) पृथिवी का ( यन् ) जाता हुआ ( यन्मि ) सब और से ( वसन्ते ) वसन्तमान है ( यत् ) जिस मे ( पृक्षे ) दूसरो के सम्बन्ध मे तुम लोग ( तिष्ठथः ) स्थिर होत हो और जो ( वपुः ) रूप है अर्थात् चित्र-सा बन रहा है उस सब से ( वपुष्या ) सुन्दर रूप मे प्रसिद्ध हुए व्यवहारो का ( वपुः, संचताम् ) अनुकूलता से सम्बन्ध करो । और जैसे ( इयम् ) यह ( गी ) सुशिक्षित वाणी और कहनेवाला पुरुष ( वि, व ) गुरु की ( दुहित्रा ) कन्या के समान वसन्तमान ( ववसा ) प्रभातवेला से तुम दोनों को ( सचेथे ) संयुक्त हाते हैं वैसे कैसे न तुम भाग्यशाली होने हो ? ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्य जिस यान से जाने को चाहें वह सुन्दर पृथिव्यादिको मे शीघ्र चलने योग्य, प्रभातवेला के समान प्रकाशमान जैसे वैसे अच्छे विचार से बनावें ॥ २ ॥

आ तिष्ठतं सुवृत्तं यो रथो वामनुं व्रतानि वसन्ते हविष्मान् ।

येन नरा नासत्येपयथै वत्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३॥

पदार्थ—हे ( नरा ) अध्यापको नायक ( नासत्याः ) सत्य विद्या क्रियायुक्त पुरयो । ( यः ) जो ( हविष्मात् ) बहुत खाने योग्य पदार्थवाला ( रथः ) रथ ( वामः ) तुम दोनों के ( अनु, वसन्ते ) अनुकूल वसन्तमान है ( येन ) जिस से ( हविष्ये ) से जाने को ( व्रतानि ) शील, उत्तम नावो को बहा कर ( तनयाय ) सन्तान के लिए ( च ) और ( त्मने ) अपने लिए भी ( वत्ति ) मार्ग को ( यावः ) जाने हो ( सुवृत्तम् ) उन सर्वाङ्ग सुन्दर रथ को तुम दोनों ( आ, तिष्ठतम् ) अच्छे प्रकार स्थिर होओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्य अपने सन्तानो की सुखोन्नति के लिए अच्छा, दृढ़ लम्बे-चौड़े, साङ्गोपाङ्ग सामग्री से पूर्ण शीघ्र चलनेवाले, भक्ष्य, भोज्य लेवा, बोध्य अर्थात् चटपट खाने, उत्तमता से धीरज मे खाने, चाटने और चूसने योग्य पदार्थो से युक्त रथ से पृथिवी, समुद्र और आकाश मार्गों में प्रति उत्तमता से सावधानी के साथ जावें और आवें ॥ ३ ॥

मा वा वृकां मा वृकीरा दधर्षीन्मा परिं वरमुत मातिं धक्तम् ।

अयं वा मागो निहित इय गीर्दसाविमे वां निधयो मथूनाम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( वृको ) दुःखनाशक शिरविद्याध्यापक उपदेशको । ( वाम् ) तुम दोनों के ( इमे ) य ( मथूनाम् ) मथुरादि गुणयुक्त पदार्थो के ( निधयः ) राशि, समूह ( वाम् ) तुम दोनों का ( अयम् ) यह ( भागः ) लेवने योग्य अधिकार ( निहितः ) स्थापित और ( इयम् ) यह ( गी ) वाणी है तुम दोनों हम को ( मा, परि, वरतेम् ) मत छोड़ो ( उत ) और ( मा अति, वक्तम् ) मत विनाशो और जिस ( वाम् ) तुम दोनों का ( वृकः ) चीर, टग, गठकटा आदि दुष्ट जन ( मा ) मत ( वृकीः ) चीरी टगी, गठकटी आदि दुष्ट और ( मा, मा, दधर्षीत् ) मत विनाशो, मत नष्ट करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्य जब घर मे निवास करें वा यानो मे और बन मे प्रतिष्ठित होवे तब भोग करने के लिए पूर्ण भोग और उपभोग योग्य पदार्थो, शस्त्र वा अस्त्रो और वीरसेना को संस्थापन कर निवास करें वा जावें जिस से कोई विघ्न न हो ॥ ४ ॥

युवा गोतमः पुरुमीळो अत्रिर्दत्ता हवतेऽवसे हविष्मान् ।

दिशं न दिष्टामृजुयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥५॥

पदार्थ—हे ( वृकाः ) दुःख दारिद्र्य विनाशनेवाले ( नासत्याः ) सत्यप्रिय शिरविद्याध्यापकोपदेशक विद्वानो । ( वृकाम् ) तुम दोनों ( यः ) जो ( हविष्मात् ) प्रशस्त ग्रहण करने योग्य ( पुरुमीळः ) बहुत पदार्थो से सीका हुआ ( अत्रिः ) निरन्तर गमनशील ( योतमः ) मेधावी जन ( वरते ) रखा आदि



के लिए (हबते) उत्तम पदार्थों को ग्रहण करता है वैसे भीर जैसे (यस्ता) नियमकर्ता जन (हृबुयेव) सरल मार्ग से जैसे तैसे (विष्टस्) निर्दोष की (विष्टस्) पूर्वादि दिशा के (न) समान (मे) मेरे (हबस्) दान को (उप, आ, यातस्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होमो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे नौकादि यान से जानेवाले जन सरल मार्ग से बराई हुई दिशा को जाने हैं वैसे कीजनेवाले विद्यार्थी जन प्राप्त विद्वानों के समीप जावें ॥ ५ ॥

अज्ञांरम तमससारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेधं वृजनं जीर्दानुम् ॥६॥२२॥

पदार्थ—हे (अश्विनी) शिल्पविद्याव्यापी सज्जन ! जैसे (हह) यहाँ (हाम्) तुम दोनों का (स्तोम) स्तुति योग्य व्यवहार (अधायि) धारण किया गया वैसे तुम्हारे (प्रति) प्रति हम (अस्य) हम (तमस) अन्धकार के

(पारस्) पार को (अतारिष्व) तरें पहुँचें जैसे हम (हवस्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (ओरवानुम्) जीवन को (विद्याम्) प्राप्त होवें वैसे तुम दोनों (देवयाने) विद्वान् जिन मार्गों से जाने उन (पथिभिः) मार्गों से हम लोगो को (आ, यातस्) प्राप्त होमो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो प्रतीव शिल्पविद्यावेत्ता जन हो वे ही नौकादि यानों से सु समुद्र और अन्तारिक्ष मार्गों से पार-प्रवार लेजा-सा सकते हैं वे ही विद्वानों के मार्गों में अग्नि आदि पदार्थों से बने हुए विमान आदि यानों से जाने को योग्य हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों की शिल्पविद्या के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त में अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकलौ तिरासीवाँ सूक्त और उन्तीसवाँ अर्थ और अनुर्वाध्याय समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में जन्म, पवन, इन्द्र, अग्नि, अश्वि और विमानादि यानों के गुणों का वर्णन आदि होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्याणां परमविभुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां

शिष्येण परमहंसपरिब्राजकाचार्येण श्रीमद्विद्यानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते

धार्म्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये

द्वितीयाष्टकस्य अनुर्वाध्यायः समाप्तः ॥



## अथ द्वितीयाष्टके पञ्चमाऽऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

सा वामिति पञ्चमस्य अनुरातोऽनुसरस्य शततमस्य सुवतस्य अगस्य ऋचिः । अश्विनी देवते । १ पङ्क्ति, ४ भुक्ति पङ्क्ति, ५—६ त्रिभुक् पङ्क्तिद्वयम् ।

पञ्चम स्वरः । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । अक्षतः स्वरः ॥

अथ द्वितीयाष्टक के पञ्चम अध्याय के प्रथम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम, द्वितीय मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक विषय को कहा है—

ता वामस्य तावपरं हृषेमोच्छन्त्यामुपसि वह्निरुच्यैः ।

नासंत्या कुहं चित्सन्तावय्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥१॥

पदार्थ—हे (नपाता) जिनका पात विद्यमान नहीं वे (नासत्या) मिथ्या व्यवहार से भलग हुए सत्यप्रिय विद्वानो ! हम लोग (अथ) आज (उच्छन्त्याम्) नाना प्रकार का बास देनेवाली (उचसि) प्रभातवेला में (ता) उन (वाम्) तुम दोनों महाशयो को (हृषेम) स्वीकार करें (हौ) और उन आप को (अपरम्) पीछे भी स्वीकार करें तुम (कुहं चित्) किसी स्थान में (सन्तो) हुए हो और जैसे (वह्नि) पदार्थों को एक स्थान को पहुँचानेवाले अग्नि के समान (अय्यै) बनिया (सुदास्तराय) प्रतीव सुन्दरता से उत्तम देनेवाले के लिए (उच्यै) प्रशंसा करने के योग्य बचनों से (विष्व) व्यवहार के बीच वसमान हैं वैसे हम लोग वर्तें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे विद्वान् जन आकाश और पृथिवी से उपकार करते हैं वैसे हम लोग विद्वानों से उपकार को प्राप्त हुए वर्तें ॥ १ ॥

अस्मे ऊ पु वृषणा मादयेथामुस्पर्णीर्हीतमुर्ध्या मदन्ता ।

श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचैतारा च कर्णेः ॥२॥

पदार्थ—(वृषणा) बलवान् (निचैतारा) नित्य ज्ञानवान् और ज्ञान के देनेवाले (नरा) अश्वगामी विद्वानो ! तुम (पर्णीम्) प्रशंसित व्यवहार करनेवाले (अस्मे) हम लोगो को (पु, मादयेथाम्) सुन्दरता से आनन्दित करो (अमर्धा) और राजा के साथ (अवस्ता) आनन्दित होते हुए तुम लोग दुष्टों का (अत, हतस्) उधार करो अर्थात् उनको उस दुष्टता से बचाओ और (अलीनाम्) मनुष्यों को (अच्छोक्तिभिः) अच्छी उक्तियों अर्थात् सुन्दर बचनों से जो मैं (एष्टा) विवेक करनेवाला हूँ उस (च, मे) मेरी भी सुन्दर उक्ति को (कर्णे) कानों से (उ, श्रुतम्) उर्क-वितर्क के साथ सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे अध्यापक और उपदेश करनेवाले जन पढ़ाने और उपदेश सुनाने योग्य पुरुषों को वेदवचनों से अच्छे प्रकार ज्ञान देकर विद्वान् करते हैं वैसे उन के बचन की सुनने से सब काल में सब को आनन्दित करने योग्य हैं ॥ २ ॥

अथ शिष्य को सिखावट देने के उद्देश पर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

श्रिये पृषक्षिपुक्तैव देवा नामत्या बहंतु सूर्यायाः ।

वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जुर्णेव वरुणस्य भूरैः ॥३॥

पदार्थ—हे (पृषन्) पुष्टि करनेवाले ! तू (देवा) देनेवाले (नासत्या) मिथ्या व्यवहार के विरोधी अध्यापक-उपदेशक (सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति की (बहंतुम्) प्राप्ति करनेवाले व्यवहार को (इषुक्तेव) जैसे वाणी से सिद्ध किये हुए दो पदार्थ हो वैसे (श्रिये) लक्ष्मी के लिए प्रयत्न कर । और हे अध्यापक उपदेशको ! (अप्सु) अन्तरिक्ष प्रदेशों में (जाता) प्रसिद्ध हुई (ककुहा) विद्या (वरुणस्य) उत्तम सज्जन वा जन के (भूरै) बहुत उत्कर्ष से (युगा) वर्षों को (जुर्णेव) पुरातन व्यतीत हुई उनके समान (वाम्) तुम दोनों की (वच्यन्ते) प्रशंसा करती हैं अर्थात् दिशा दिशान्तरो में तुम्हारी प्रशंसा होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं। जैसी वायुकुल सेना अर्थात् वायु के समान प्रेरणा दी हुई सेना शत्रुओं को जोतती है वैसे जन के श्रेष्ठ उपाय को शीघ्र ही करे, कास के विशेष विभागों में जो दिन हैं उनमें कार्य जैसे बनते हैं वैसे रात्रि भागों में नहीं उत्पन्न होते हैं श्रेष्ठ गुणोंजनों की सब जगह प्रशंसा हांती है ॥ ३ ॥

अथ सज्जनता का आशय लिये हुए अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्यं कारोः ।

अनु यद्वां श्रवस्यां सुदानु सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥४॥

पदार्थ—हे (माध्वी) अच्छे देनेवाले ! जो (वाम्) तुम दोनों की (माध्वी) मधुरादि गुणयुक्त (राति) दान वर्त्तमान है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों के लिए (अस्तु) हो और तुम (मान्यस्यं) प्रशंसा के योग्य (कारोः) कार करनेवाले की (स्तोमम्) प्रशंसा को (हिनोतम्) प्राप्त होमो और (अवस्था) अपने को सुनने की इच्छा से (वत्) जिन (वाम्) तुम को (सुवीर्याय) उत्तम पराक्रम के लिए (चर्षणाय) साधारण मनुष्य (अनु, मदन्ति) अनुमोदन देते हैं तुम्हारी कामना करते हैं उनको हम भी अनुमोदन दें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो प्राप्त, श्रेष्ठ, सख्मी सज्जनो की नीति और विद्वानों की स्तुति मनोहर हो वह उत्तम पराक्रम के लिए समर्थ होती है ॥ ४ ॥

अथ अध्यापक और उपदेशकों की प्रशंसा का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

एष वां स्तोमो अभिनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृत्ति ।

यातं वसिस्तनयाय स्मने चागस्त्ये नास्त्या मदन्ता ॥५॥

पदार्थ—हे (अध्यापक) परमपूजित अध्यापकोपदेशको ! (एष) यह (वायु) तुम दोनों की (स्तोम) प्रशंसा (मानेभि) जो मानते हैं उन्होंने (सुवृत्ति) सुन्दर त्याग जैसे हो वैसे (अकारि) की है अर्थात् कुछ मुखवासी मिथ्या प्रशंसा नहीं की। और हे (नास्त्या) सत्य में निरन्तर स्थिर रहनेवाले (अविश्वी) अध्यापकोपदेशक लोगो ! (अगस्त्ये) अपराध रहित मार्ग में (मदन्ता) तुम कामना करते हुए तुम (तनयाय) उत्तम सन्तान और (स्मने, वा) अपने लिए (वसि) अच्छे मार्ग को (वस्तु) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—वही स्तुति होती है जिसको विद्वान् जन मानते हैं वैसे ही परोपकार होता है जैसा अपने सन्तान और अपने लिए चाहा जाता है और वही धर्ममार्ग हो कि जिसमें श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् जन चलते हैं ॥ ५ ॥

किर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अभिनावधायि ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विधामेवं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥१॥

पदार्थ—हे (अविश्वी) विशेष उपदेश देनेवाले ! (इह) इस जानने योग्य व्यवहार में जो (स्तोम) प्रशंसा (वायु) तुम दोनों के (प्रति) प्रति (अधायि) धारण की गई उससे (अस्य) इस (तमसः) अविद्यान्धकार के (वारम्) पार को (अतारिष्म) पहुँचें जैसे तुम (देवयानैः) ध्यात् विद्वान् जिन में जाते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (इवम्) इष्ट सुख (वृजनम्) सारीरिक और आत्मिक बल तथा (जीरवानुम्) जीवात्मा को (जा वस्तु) प्राप्त होओ वैसे इस को हम भी (विद्वान्) प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—वे ही विद्या के परमपार मनुष्यों को पहुँचा सकते हैं जो धर्ममार्ग से ही चलते हैं और यदार्थ के उपदेशक भी हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के लक्षणों को कहने से इस सूक्त के अर्थ की विछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह एकलौ बौरासावा सूक्त और प्रथम वर्ग समाप्त हुआ ॥



कलत्वेत्यस्यैकावसानस्य पञ्चाशीत्युत्तरस्य अतस्तमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

धावापृथिवी वेदते । १, ६-८, १०, ११ त्रिष्टुप्; २ बिराट्

त्रिष्टुप्, ३-५, ६ निष्पत्त त्रिष्टुप् छन्द । संवत् स्वरः ॥

अथ एक लौ पञ्चाशी सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से उत्पन्न होने योग्य और उत्पन्न करनेवाले के गुणों का वर्णन करते हैं—

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कथयः को वि वेद ।

विश्वं स्मना बिभृतो यद् नाम वि वसन्ते अहनी चक्रियेव ॥१॥

पदार्थ—हे (कथय) विद्वान् पुरुषो ! (अयो) धावापृथिवी में वा कार्य कारणों में (कतरा) कीन (पूर्वा) पूर्व (कतरा) कीन (अपरा) पीछे है ये धावापृथिवी वा ससार के कारण और कार्यरूप पदार्थ (कथा) कैसे (जाते) उत्पन्न हुए इस विषय की (क) कीन (वि, वेद) विविध प्रकार से जानता है (स्मना) ध्याप प्रत्येक (यत्) जो (ह) निश्चित (चक्रियेव) समस्त जगत् (नाम) प्रसिद्ध है उसको (बिभृत) धारण करते या घुट्ट करते हैं और वे (अहनी) दिन-रात्रि (चक्रियेव) वाक के समान घूमते वैसे (वि वसन्ते) विविध प्रकार से वर्तमान हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जो इस जगत् में धावापृथिवी और जो प्रथम कारण परकाय्यरूप पदार्थ हैं तथा जो धावापृथिवी सम्बन्ध से दिन रात्रि के समान वर्तमान हैं उन सबको तुम जानो ॥ १ ॥

भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।

नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे धावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥२॥

पदार्थ—हे (धावापृथिवी) धावापृथिवी के समान वर्तमान मातापितरों ! जैसे (अचरन्ती) इधर उधर अपनी कक्षा को छोड़ न जानेवाले (अपदी) पैरों से रहित (द्वे) दोनों धावापृथिवी (भूरिम्) बहुत (पद्वन्तम्) पगवाले (चरन्तम्) चलते हुए (गर्भम्) कार्यरूप जगत् को (पित्रोः) माता-पिता के (उपस्थे) गोद में नित्य (सूनुम्) पुत्र के (न) समान (दधाते) धारण करते हैं वैसे (अभ्वात्) मिथ्याधरण से उत्पन्न हुए दुःख से (न) हम लोगों की (रक्षतम्) रक्षा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे भूमि, सूर्य वृक्ष होते हुए स्वावर, अङ्गुल, चर, अचर, जगत् को बहुत प्रकार से पालने बढ़ाते हैं वैसे माता, पिता, आत्मि, धावापृथिवी, सन्तान और सिध्दों की अच्छे प्रकार रक्षा कर विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ावें ॥ २ ॥

अनेहो दात्रमदितेरनर्ब ह्रवे सर्वदधं नमस्वत् ।

तद्रोदसी जनयतं जरित्रे धावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥३॥

पदार्थ—मैं (अनेहो) पृथिवी वा सूर्य के (अनेहः) न विनाशने योग्य (अनर्बम्) जिसमें अश्व का सम्बन्ध नहीं ऐसे (स्वर्बत्) सुखयुक्त तथा (अनर्बम्) जिसका नाश नहीं (नमस्वत्) जिसमें प्रशंसित अन्न विद्यमान उस (दात्रम्) दानपात्रमात्र का (ह्रवे) स्वीकार करता है। हे (रोदसी) दिन रात्रि के समान वर्तमान माता-पिताओ ! (तत्) उस दानकर्म को (जरित्रे) स्तुति करते हुए मेरे लिए (अनर्बत्) उत्पन्न करो। हे (धावापृथिवी) धावापृथिवी के समान वर्तमान माता-पिताओ ! (न) हम लोगों की (अभ्वात्) अशर्म से (रक्षतम्) बचाओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो ये भूमि, सूर्य और प्रत्यक्ष पदार्थ दीक्षते हैं वे अविनाशी अनादिकरण से हुए हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ३ ॥

किर दृष्टान्त प्राप्त धावापृथिवी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ध्याम रोदसी देवपुत्रे ।

उमे देवानामुमयैभिरहां धावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अतप्यमाने) सन्तापरहित (अवसा) रक्षा आदि से (अवन्ती) रक्षा करती हुई (देवपुत्रे) देव जो परमात्मा उसके पुत्र के समान वर्तमान (उमे) दोनों (रोदसी) प्रकाशभूमि (अङ्गुलम्) चिन्तों के बीच (उमयेभिः) स्वावर और अङ्गुल के साथ (देवानाम्) दिव्य जलादि पदार्थों से रक्षा करते हैं वैसे हे (धावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्तमान माता-पिताओ ! तुम दोनों (अभ्वात्) अपराध से (नः) हमारी (रक्षतम्) रक्षा कीजिए जिससे हम लोग (अनु, ध्याम) पीछे सुखी होवें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे पृथिवी आदि पदार्थ समस्त स्वावर अङ्गुल की पालना करते हैं वैसे माता-पिता, धावापृथिवी और राजा आदि प्रजा की रक्षा करें ॥ ४ ॥

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।

अभिलिघ्नन्ती भुवनस्य नाभिं धावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥५॥

पदार्थ—(युवती) माता पिता की (उपस्थे) गोद में (संगच्छमाने) मिलती हुई (जामी) वो कन्याओं के समान वा (युवती) तरुण दो स्त्रियों के समान वा (समन्ते) पूर्ण सिद्धान्त जिनका उन दो (स्वसारा) बहिनो के समान (भुवनस्य) ममार के (नाभिम्) मध्यस्थ आकर्षण को (अभि, लिघ्नन्ती) गन्ध के समान स्वीकार करती हुई (धावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान माता-पिताओ ! तुम (न) हम लोगों की (अभ्वात्) अपराध से (रक्षतम्) रक्षा करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचर्य से विद्यासिद्धि किये हुए तरुण जिनको परस्पर पूर्ण प्रीति है वे कन्या-वर सुखी हो वैसे धावापृथिवी जगत् के हित के लिए वर्तमान हैं ॥ ५ ॥

उर्वी सधनी बृहती ऋतेन ह्रवे देवानामवसा जनित्री ।

दधाते ये अमृतं सुप्रतीके धावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६॥

पदार्थ—हे माता-पिताओ ! (ये) जो (उर्वी) बहुत विस्तारवाली (सधनी) सबकी निवासस्थान (बृहती) बड़ी (ऋतेन) जल से और (अवसा) रक्षा आदि के साथ (देवानाम्) विद्वानों की (अविश्वी) उत्पन्न करनेवाली (सुप्रतीके) सुन्दर प्रतीति का विषय (धावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी (अमृतम्) जल को (दधाते) धारण करती है और मैं उनकी (ह्रवे) प्रशंसा करता हूँ वैसे (अभ्वात्) अपराध से (न) हम लोगों की तुम (रक्षतम्) रक्षा करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जो माता-पिता सखीपदेश से सूर्य के समान विद्या प्रकाश से युक्त सबगुण सम्पन्न पृथिवी जैसे जल से वृक्षों को वैसे सारीरिक बल से बढ़ाते हैं वे सब की रक्षा करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

उर्वी पृथ्वी बह्वले दूरेअन्ते उप ब्रवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।

दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्तां धावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥७॥

पदार्थ—(दूरेअन्ते) दूर में और समीप में (बह्वले) बहुत वस्तुओं को ग्रहण करनेवाली (उर्वी) बहुत पदार्थयुक्त (पृथ्वी) और पृथिवी का (अस्मिन्) इस ससार के व्यवहार (अन्ते) जो कि सङ्ग करने योग्य उसमें (नमसा) धन्य के साथ मैं (उप, ब्रवे) उपदेश करता हूँ और (ये) जो (सुभगे) सुन्दर ऐश्वर्य की प्राप्ति करनेवाली (सुप्रतूर्तां) अतिशीघ्र गतियुक्त आकाश और पृथिवी (दधाते) समस्त पदार्थों को धारण करते हैं उन (धावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्तमान माता-पिताओ ! (न) हमको (अभ्वात्) अपराध से (रक्षतम्) बचाओ ॥ ७ ॥

माता—जैसे पृथिवी के समीप में बन्दलोक की भूमि है वैसे सूर्य लोकस्थ भूमि दूर में है ऐसे सब अवस्था प्रकाश और अन्धकारकर लोकद्वय वर्तमान है उन लोकों के जैसे उन्नति हो जाता यत्न सबको करना चाहिए ॥ ७ ॥

देवान्वा यच्चकुमा कच्चिद्वामः सत्तायं वा सद्मिजास्पति वा ।

इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो बभूवात् ॥८॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( कच्चिद् ) कुछ ( देवान् ) विद्वानों ( वा ) वा ( सत्तायम् ) मित्र ( वा ) वा ( सद्मिज् ) सदैव ( वा ) वा ( मात्तित् ) स्त्री की पालना करनेवाले के भी प्रति ( द्यावः ) अपराध ( चकुम् ) करें ( एषान् ) इन सब अपराधों का ( इयम् ) यह ( धीः ) कर्म वा तत्त्वज्ञान ( अवयानम् ) दूर करनेवाला ( भूयाः ) हो । हे ( द्यावा, पृथिवी ) आकाश और पृथिवी के समान वर्तमान माता-पिताओ ! ( नः ) हम लोगों को ( बभूवात् ) अपराध से ( रक्षतम् ) बचाओ ॥ ८ ॥

माता—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जो माता-पिता सन्तानों को भन्न जब के समान नहीं पाते वे अपने धर्म से गिरते हैं और जो माता-पिताओं की रक्षा नहीं करते वे सन्तान भी भवमीं होते हैं ॥ ८ ॥

धृमा शंसा नय्या मामेविष्टामुमे मामृती अयंसा सचेताम् ।

भूरि चिद्व्यः सुदास्तरायेवा मदन्त इष्येम देवाः ॥९॥

पदार्थ—( धृमा ) दोनों ( शंसा ) प्रशंसा को प्राप्त ( नय्या ) मनुष्यों के उत्तम आवापृथिवी के समान माता-पिता ( मात् ) मेरी ( अविष्टाम् ) रक्षा करें और ( मात् ) मुझे ( अमे ) दोनों ( अती ) रक्षाएँ ( अयंसा ) धीरों की रक्षा आदि के साथ ( सचेताम् ) प्राप्त होवें । हे ( देवाः ) विद्वानो ! ( अयः ) बगिया ( सुदास्तराय ) अतीव देनेवाले के लिए ( भूरि, चित् ) बहुत जैसे ऐसे जैसे ( मदन्तः ) सुखी होते हुए हम लोग ( इष्या ) इच्छा से ( इष्येम ) प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

माता—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य और चन्द्रमा सबका संयोग कर प्राणियों को सुखी करते हैं तथा जैसे बनाइय वैश्य बहुत भन्न आदि पदार्थ लेकर मिष्टारिषों को प्रसन्न करता है वैसे विद्वान् जन सबके प्रसन्न करने में प्रवृत्त होवें ॥ ९ ॥

जलते हुए विषय में जाहे हुए कहने योग्य विषय को जगले मन्त्र में कहा है—

अहं दिवे तद्वोचं पृथिव्या अभिभावाय प्रथमं सुमेधाः ।

पातामंश्वावदुरितादमीकं पिता माता चं रक्षतामवोमिः ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( सुमेधाः ) सुन्दर बुद्धिवाला मैं ( अभिभावाय ) जो सब धीर से सुनता वा सुनाता उसके लिए धीर ( पृथिवी ) पृथिवी के समान वर्तमान अमाशील स्त्री के लिए जो ( प्रथमम् ) प्रथम ( अहम् ) सत्य ( अवोचम् ) उपदेश कर्त्ता और कर्त्तुं ( तत् ) उसको ( विवे ) उत्तम दिव्यवाले के लिए भी उपदेश कर्त्ता, कर्त्तुं जैसे ( अमीके ) कामना किये हुए व्यवहार में वर्तमान ( अवोचाम् ) निन्दा योग्य ( दुरितात् ) दुष्ट आचरण से उक्त दोनों ( पाताम् ) रक्षा करें वैसे ( पिता ) पिता ( च ) और ( माता ) माता ( अवोमिः ) रक्षा आदि व्यवहारों के मेरी ( रक्षताम् ) रक्षा करें ॥ १० ॥

माता—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । उपदेश करनेवाले को उपदेश सुनने योग्यो के प्रति ऐसा कहना चाहिए कि जैसा प्रिय लोकहितकारी वचन मुझ से कहा जावे वैसे आप लोगों को भी कहना चाहिए जैसे माता-पिता अपने सन्तानों की सेवा करते हैं वैसे ये सन्तानों को भी सदा सेवने योग्य हैं ॥ १० ॥

जब जलते हुए विषय में सत्यवाक्य के उपदेश विषय को जगले मन्त्र में कहा है—

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितृमातर्यदिहोपमवे वाम् ।

भुतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजर्नं औरदानुम् ॥११॥

पदार्थ—हे ( द्यावापृथिवी ) आकाश और पृथिवी के समान वर्तमान ( मातः, पितः ) माता-पिताओ ! ( देवानाम् ) विद्वानों के ( अवमे ) रक्षादि व्यवहार में ( भुतम् ) उत्पन्न हुए ( यत् ) जिस व्यवहार से ( इह ) यहाँ ( वाम् ) तुम्हारे ( उपमवे ) समीप कहता हूँ ( तत् ) सो ( इवम् ) यह ( सत्यम् ) सत्य ( अस्तु ) हो जिससे हम तुम्हारी ( अवोमिः ) पालनाओं से ( इवम् ) इच्छा-सिद्धि ( वृजर्नम् ) बल और ( औरदानुम् ) जीवन की ( विद्याम् ) प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

माता—माता-पिता जब सन्तानों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं वे ही तुमको सेवन करने चाहिए और नहीं तथा सन्तान पिता-माता आदि अपने पालनेवालों से ऐसे कहें कि जो हमारे सत्य आचरण हैं वे ही तुमको आचरण करने चाहिए और उनसे विपरीत नहीं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से उत्पन्न होने योग्य और उत्पादक के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के

अर्थ के साथ संघति है यह जानना चाहिए ॥

यह एक ही पञ्चमीर्वा सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ।

आ न इत्येकादशार्चस्य बह्वीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

विश्वेदेवा देवताः । १, ८, ९ विष्णुः, २, ४, मित्रः विष्णुः;

११ भुरिष् विष्णुः अग्नः । अन्तः स्वरः । ३, ५, ७ भुरिष् पञ्च पितः,

१ बह्वित्, १० स्वरान् पञ्च पितृव्यः । पञ्चमः स्वरः ॥

जब स्वरान् आवाजों के एकलौ जगती सूक्त का आरम्भ है इसके आरम्भ से विद्वानों का विषय कहा है—

आ न इकाभिर्विदये सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।

अपि यथा युवानो मत्संथा नो विश्वं जगदमिपित्वे मनीषा ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे ( विश्वानरः ) सब प्राणियों को पहुँचानेवाला अर्थात् अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के परिणाम करनेवाला ( देवः ) देवीप्यमान अर्थात् ( सविता ) सूर्य के समान आप प्रकाशमान ईश्वर ( सुशस्ति ) सुन्दर प्रशंसाओं से ( अमिपित्वे ) सब धीर से पाने योग्य ( विश्वे ) विज्ञानमय व्यवहार में ( विद्वन् ) समस्त ( जगत् ) जगत् को प्राप्त है वैसे ( इकाभिः ) अन्नादि पदार्थ वाशियों के साथ ( नः ) हम लोगों को ( आ, एतु ) प्राप्त होवें हे ( युवानः ) यौवनावस्था को प्राप्त तरुणजनों ! ( यथा ) जैसे तुम ( मनीषा ) उत्तम बुद्धि से इस व्यवहार में ( मत्संथा ) धान्यवित्त होको वैसे ( नः ) हमको ( अमि ) भी धान्यवित्त कीजिए ॥ १ ॥

माता—इस मन्त्र में उपमा और वाचकमुत्तोपमालङ्कार हैं । जैसे परमात्मा पञ्चात को छोड़के सबका न्याय और सभी में समान प्रीति करता है वैसे विद्वानों को भी होना चाहिए जैसा युवावस्थावाले पुरुष अपने समान मन को ध्यारी युवती स्त्रियों के साथ विवाह कर सुखयुक्त होते हैं वैसे विद्वान् जन विद्याधियों को विद्वान् कर प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

आ नो विश्व आस्कां गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।

सुवन्थया नो विश्वे वृधासः करन्तुषाहां विधुरं न शवः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( मित्रः ) प्राण के समान वर्तमान ( अर्यमा ) ग्यावकारी ( वरुणः ) अति श्रेष्ठ ( सजोषाः ) समान प्रीति का सेवन रखनेवाला और ( आस्काः ) शत्रुबल को वादाभ्रान्त करने, पाद तले दबानेवाले ( विश्वे ) समस्त ( देवाः ) विद्वान् जन ( नः ) हम लोगों को ( आ, गमन्तु ) सब धीर से प्राप्त होवें कि ( यथा ) जैसे ( विश्वे ) समस्त वे विद्वान् ( नः ) हमारा ( वृधासः ) सुख बढ़ानेवाले ( सुवन् ) होवें और ( वृधाहा ) सुन्दर जिसका सहन, क्षमा, वात्सल्यन वह जन ( विधुरम् ) अपना पीडा सेते हुए पदार्थ के ( नः ) समान तीव्र ( शवः ) बल ( करन् ) करें ॥ २ ॥

माता—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस मार्ग से विद्वान् जन चलें उसी से सब लोग चल जसे प्राप्त शास्त्रज्ञ विद्वान् जन धीरों के सुख-दुःखों को अपने सुख जानते हैं वैसे ही सबको होना चाहिए ॥ २ ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिमिस्तुर्वणिः सजोषाः ।

असद्यया नो वरुणः सुकीर्तिरिषं पर्वदरिगुर्वः धुरिः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( सुर्वणिः ) सीध जाने धीर ( सजोषाः ) समान प्रीति रखनेवाले आप ( शस्तिमिः ) प्रशंसाओं से ( अतिथिम् ) अतिथि के समान वर्तमान विद्या से प्रकाशित ( प्रेष्ठम् ) अति प्रिय ( अतिथिम् ) अतिथिवत्तमान विद्वान् की ( गृणीषे ) प्रशंसा करते हो वा ( यथा ) जैसे ( अरिगुर्वः ) शत्रुओं में उद्यम करने धीर ( सुकीर्तिः ) पुण्य प्रशंसावाला ( वरुणः ) उत्तम विद्वान् ( नः ) हम लोगों की ( इषः ) अन्नादि पदार्थ ( च ) और इच्छाओं को ( पर्वत् ) सींचे वा ( धुरिः ) अतीव प्रवीण विद्वान् ( असत् ) हों वैसे ( नः ) तुम लोगों के प्रति वर्त ॥ ३ ॥

माता—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो गृहस्थजन प्रीति के साथ श्रेष्ठ, उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानों और अतिथि की सेवा करते तथा धर्मयुक्त व्यवहार में उद्योग-वान् होते वे यथार्थ विज्ञान को पाकर श्रीमान् होते हैं ॥ ३ ॥

जब विद्या को पाकर उद्योग करने के विषय को जगले मन्त्रों में कहा है—

उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्रासुदुर्ध्वं धेनुः ।

समाने अहन्विमिमानो अर्कं विधुरूपे पर्यसि सस्मिन्धेन ॥४॥

पदार्थ—( सजाने ) एकसे ( अहम् ) विल में ( अर्कम् ) सरकार करने योग्य धन्य को ( विमिमानः ) विशेषता से बनानेवाला मैं ( अहान्नासना ) दिन-रात्रि के समान वा ( धेनुः ) वाली जो ( सुदुर्ध्वं ) सुन्दर कामना पूर्ण करनेवाली उसके समान ( अहन्ना ) धन्य आदि पदार्थ से ( जिगीषा ) पीतने की इच्छा जैसे ही वैसे ( विधुरूपे ) नाना प्रकार के रूपवाले ( पर्यसि ) जल और ( सस्मिन् ) समान ( अहम् ) दूध के निमित्त ( नः ) तुम लोगों के ( उप, आ, इषे ) समीप सब धीर से प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

माता—इस मन्त्र में उपमा और वाचकमुत्तोपमालङ्कार हैं । जो रात्रि-दिन के समान वर्तमान विद्या, अविद्या को जानकर सब समय में उद्योग कर धेनु के समान प्राणियों का उपकार कर दुष्टों को पीतते वे दूध में भी के मुख्य संसार में सारयुक्त होते हैं ॥ ४ ॥



उत नोऽर्हिवृन्धो मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।

येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥५॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग ( येन ) जिससे ( मपात् ) जलो के ( नपातम् ) पतन को न प्राप्त पदार्थ को ( जुनाम् ) बाँधे वा ( मनोजुवः ) मन के मुख्य वेग जिन का वे विजुली आदि ( वृषणः ) वृष्टि करनेवाले ( यम् ) जिसको ( वहन्ति ) प्राप्त होते हैं वह ( वृष्यः ) अन्तरिक्षस्थ ( अहिः ) व्याप्तिशील मेघ ( पिप्युषीव ) बढ़ाती हुई, बढ़ि देती, उन्नति करती हुई स्त्री ( शिशुम् ) बालक को ( न ) जैसे वैसे ( नः ) हम लोगों को ( वेति ) व्याप्त होता ( उत ) और ( सिन्धुः ) नदी ( यवः ) सुख को ( कः ) करती है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मेघ न हो तो माता के मुख्य प्राणियों की पालना कौन करे ? जो सूर्य विजुली और पवन न हो तो इस मेघ को कौन धारण करे ? ॥ ५ ॥

अब मेघ और सूर्य के वृष्टान्त से उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत न ई त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मस्त्वरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।

आ वृत्रहेन्द्रर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न ह गम्याः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( इह ) यहाँ ( वृत्रहा ) मेघ का हननेवाला ( वृत्रहिप्राः ) मनुष्यों को सुखी से पूर्ण करनेवाला ( तुविष्टम् ) अतीव बली ( त्वष्टा ) प्रकाशमान ( इन्द्रः ) सूर्य ( ईम् ) जल को वर्षाता है वैसे तुम ( नराम् ) सब मनुष्यों के बीच ( नः ) हम लोगों को ( आ, गम्याः ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ( उत ) और ( स्मत् ) प्रसादायुक्त ( अभिपित्वे ) सब ओर से पाने योग्य व्यवहार में ( सजोषाः ) समान प्रीति रखनेवाले आप ( स्मरिभिः ) विद्वानों के साथ ( नः ) हम लोगों के प्रति ( अच्छः, आ, गन्तुः ) अच्छे प्रकार आइए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के समान विद्या का प्रकाश कराते हैं और अपने आत्मा के मुख्य सब को मान सुखी करते हैं वे बलवान् होते हैं ॥ ६ ॥

फिर और वृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत न ई मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तर्हणं रिहन्ति ।

तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुगभिष्टमं नरां नमन्त ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अश्वयोगाः ) अश्वयोग अर्थात् अश्वों का योग कराते हैं वे ( मतयः ) मनुष्य ( तर्हणम् ) तर्हण ( शिशुम् ) बछड़ों को ( न ) जैसे ( गावः ) गौएँ वैसे ( नः ) हम लोगों को ( ईम् ) सब ओर से ( रिहन्ति ) प्राप्त होते हैं जिस ( नराम् ) मनुष्यों के बीच ( सुगभिष्टम् ) अतिशय करके सुगन्धित सुन्दर कीर्तिमान को ( जनयः ) उत्पत्ति करनेवाले जन ( पत्नी ) अपनी पत्नियों को जैसे ( नः ) वैसे ( नमन्तः ) प्राप्त होवें वह ( ईम् ) सब ओर से ( गिरो ) बाणियों को प्राप्त होता है ( तम् ) उसको ( उत ) ही हम लोग वैश्व ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे घुड़बढ़ा भीषण एकस्थान से दूसरे स्थान का वा जैसे गौएँ बछड़ों को वा स्त्रीजन जन अपनी-अपनी पत्नियों को प्राप्त होते हैं वैसे विद्वान् जन विद्या और श्रेष्ठ विद्वानों की बाणियों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

अब पवन आदि के वृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत न ई मरुतां वृद्धसंनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।

पृषदश्वासोऽवनयो न रथां रिशादमो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥

पदार्थ—( मरुतः ) पवन ( ईम् ) जन को जैसे वैसे ( वृद्धसेनाः ) बड़ी हुई प्रौढ, तरुण, प्रचण्ड बल-वेगवाली जिनकी सेना वे ( नः ) हम लोगों को ( सदन्तु ) प्राप्त होवें ( उत ) और ( समनसः ) समान जिनका मन वे परोपकारी विद्वान् ( स्मत् ) ही ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को प्राप्त हो ( पृषदश्वासः ) पुष्ट त्रिन के घोड़ा के विद्वान् जन वा ( अवनयः ) भूमि ( रथाः ) रथशीय यानों के ( नः ) समान ( रिशादमः ) रिसहा शत्रुओं को नाश कराते और ( मित्रयुजः ) मित्रों के साथ मयोग रखते उन ( देवाः ) विद्वानों के ( नः ) समान होते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जिन की वीर सेना जो समान मति रखनेवाले बड़े-बड़े रथादि यान जिन के तीर पृथिवी के समान समाशील, मित्रप्रिय विद्वान् जन सबका प्रिय आचरण करते हैं वे प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जन्ते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।

अथ यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुपायन्त सेनाः ॥९॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( एषाम् ) इन विद्वानों के ( महिना ) महिमा से ( प्र, चिकित्रे ) उत्तमता से विशेष ज्ञानवान् विद्वान् के लिए ( प्रयुजः ) उत्तमता से योग करते उनको ( नु ) शीघ्र ( प्रयुजस्ते ) अच्छे प्रकार युक्त करते हैं ( अथ ) इसके अनन्तर ( यत् ) जो जन ( एषाम् ) इन अच्छे योग करनेवालों के ( सुदिने ) उत्तम समय में ( विश्वम् ) समस्त ( हरिणम् ) कम्पायमान जगत् को ( शरुः )

मारनेवाला वीरजन ( सेनाः ) सेनाओं को जैसे ( नः ) वैसे ( आ, प्रुपायन्तः ) सेवन करें ( ते ) वे ( सुवृक्तिः ) सुन्दर गमन जिस में हो उस उत्तम सुख वा मार्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजजन पूरी विद्यावाले अध्यापकों को विद्या-प्रचार के लिए प्रवृत्त करने हैं वे महिमा—बढ़ाई को प्राप्त होते हैं जो किये को जाननेवाले कुलीन शूरवीरों की सेनाओं को पुष्ट करते वे सदा विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

प्रो अश्विनावर्से कृणुध्वं प्र पृषणं स्वतवसो हि सन्ति ।

अद्वेषो विष्णुर्वातं क्रमुष्ठा अच्छा सुम्नायं ववृतीय देवान ॥१०॥

पदार्थ—हे राजा प्रजाजनो ! तुम जो ( हि ) ही ( स्वतवसः ) अपना बल रखनेवाले ( अद्वेषः ) निर्वैर विद्वान् जन ( सन्ति ) हैं उन को जो ( अश्विनी ) विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक मुख्य परीक्षक हैं वे विद्या की ( अवसे ) रक्षा, पढ़ाना, विचारना, उपदेश, करना इत्यादि के लिए ( प्र, कृणुध्वम् ) अच्छे प्रकार नियत करें और जैसे ( वातः ) पवन के समान ( विष्णुः ) गुण व्याप्तिशील ( क्रमुष्ठा ) मेघावी में ( सुम्नायः ) सुख के लिए ( देवान् ) विद्वानों को ( अद्वेषः, ववृतीयः ) अच्छा वर्तुण वैसे तुम ( पृषणम् ) पुष्टि करनेवाले को ( प्रो ) उत्तमता से नियत करा ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो रागद्वेषरहित विद्या-प्रचार के प्रिय पूरे शारीरिक, प्राणिक बलवाले धार्मिक विद्वान् हैं उन को सब लोग विद्याप्रचार के लिए सत्पावन करें जिस में सुख बढ़े ॥ १० ॥

इयं सा वीं अस्मे दीधितिर्निर्यजत्रा अपिप्राणी च सदर्नी च भूयाः ।

नि या देवेषु यतते वसयुर्विद्यामेप हजनें जारदानुम् ॥११॥५॥

पदार्थ—हे ( यजत्रा ) विद्वाना के पूजनेवालों ! ( वा ) जो ( वसयुः ) धनो को चाहनेवाली धर्मान् जिससे धनादि उत्तम पदार्थ सिद्ध होते हैं उस विद्या की उत्तम दीप्ति, कान्ति ( देवेषु ) विद्वानों में ( नि, यतते ) निरन्तर यत्न रहती है कार्यकारिणी होती है ( सा, इयम् ) सो यह ( वः ) तुम्हारी ( दीधितिः ) उक्त कान्ति ( अस्मे ) हमारे लिए ( अपिप्राणी ) निश्चित प्राण बल की देनेवाली ( च ) और ( सवती ) दुःख विनाशने से सुख देनेवाली ( च ) भी ( भूयाः ) हो जिससे हम लोग ( इयम् ) इच्छामिदि वा धन्यादि पदार्थ ( वृजनम् ) बल और ( जारदानुम् ) जीवन को ( विद्याम् ) प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—विद्या ही मनुष्यों को सुख देनेवाली है जिसने विद्या धन न पाय वह भीतर से सदा दरिद्र-सा वसमान रहता है ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह एकसी छयासीवां सूक्त और पाँचवां वग समाप्त हुआ ॥

५५

पितृमित्रयस्यैकावकाशस्य सत्ताशोत्पत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

प्रोषधयो देवताः । १ उज्जिष्, ६, ७ भुरिगुणिक छन्दः । ऋषभ स्वरः ।

२, ८ निवृद् गायत्री, ४ विराट गायत्री, ६, १० गायत्री च

छन्दः । उज्जिष् स्वरः । ३, ५ निवृद्धनुष्टुप्, ११ स्वराडनुष्टुप्

छन्दः । गायत्री स्वरः ॥

अब व्यासह ऋषिवाले एक सौ सत्तासी सूक्त का आरम्भ है

उस के आरम्भ में धन के गुणों को कहते हैं—

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।

यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयन् ॥१॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस का ( त्रितः ) मन, वचन, कर्म से ( त्रि, व्योजसा ) विविध प्रकार के पराक्रम से ( विपर्वम् ) विविध प्रकार के शत्रु और उपायों से पूर्ण ( वृत्रम् ) स्वीकार करने योग्य धन को ( अर्दयन् ) प्राप्त करे उस के लिए ( नु ) शीघ्र ( पितुम् ) शान्ति ( महः ) बहुत ( धर्माणम् ) धर्म करनेवाले और ( तविषीम् ) बल की मैं ( स्तोषम् ) प्रशंसा करूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो बहुत धन को ले, अच्छा मस्कार कर और उसके गुणों को जान और यथायोग्य व्यञ्जनादि पदार्थों के साथ मिलाके खाते हैं वे धर्म के धावरण करनेवाले होते हुए शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर पुरुषार्थ से लक्ष्मी की उन्नति कर सकते हैं ॥ १ ॥

स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे ।

अस्माकमविता भव ॥ २ ॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप के रस ( स्वादो ) स्वाधु ( पितो ), पीने योग्य जल तथा ( मधो ) मधुर ( पितो ) पालना करनेवाले ( त्वा ) उस धन को ( वयम् ) हम लोग ( ववृमहे ) स्वीकार करते हैं इससे आप उस धनपान के क्षण से ( अस्माकम् ) हमारी ( अविता ) रक्षा करनेवाले ( भवः ) हुआ ॥ २ ॥

**आचार्य—**समुष्णों को मधुरादि रस के योग से स्वादिष्ट भन्न और व्यञ्जन को वायुवैद्य की रीति से बनाकर सदा बहु भोजन करना चाहिए जो रोग को नष्ट करने से और आयु बढ़ाने से रक्षा करनेवाला हो ॥ २ ॥

**उप नः पितृषा चर शिवः शिवात्मकृतिभिः ।**

**मयोसुरद्विषेभ्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३॥**

**पदार्थ—**हे ( पितो ) भन्नव्यापि परमात्मन् ! ( मयोसु. ) मुख की भावना करानेवाले ( अद्विषेभ्यः ) निर्द्वेष ( सुशेव ) सुन्दर मुखयुक्त ( अद्वया. ) जिस में द्वन्द्व भाव नहीं ( सखा ) जो मित्र भाव ( शिवाभिः ) सुखकारिणी ( कृतिभिः ) रक्षा भादि क्रियाओं के साथ ( नः ) हम लोगों के लिए ( शिवः ) सुखकारी ( उप, चर, चर ) समीप अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥

**आचार्य—**अन्नादि पदार्थव्यापी परमेश्वर भारोम्य देनेवाली रक्षारूप क्रियाओं से सब जीवों को मित्रभाव से अच्छे प्रकार पालता हुआ सब का मित्र हुआ ही वर्त रहा है ॥ ३ ॥

**तव त्ये पितो रसा रजास्पनु विष्टिताः ।**

**द्विवि वाताश्च त्रिताः ॥ ४ ॥**

**पदार्थ—**हे ( पितो ) भन्नव्यापि परमात्मन् ( तव ) उस भन्न के बीच जो ( रसाः ) स्वादु जट्टा, मीठा, तीखा, चरपरा आदि छ प्रकार के रस ( द्विवि ) अन्तरिक में ( वाताश्च ) पवन के समान ( त्रिताः ) आश्रय को प्राप्त हो रहे हैं ( त्ये ) वे ( रजांसि ) लोकलोकान्तरों को ( स्पनु, विष्टिताः ) पीछे धक्का करते हैं ॥ ४ ॥

**आचार्य—**इस संसार में परमात्मा की व्यवस्था से लोकलोकान्तरों में भूमि जल और पवन के अनुकूल रसादि पदार्थ होते हैं किन्तु सब पदार्थ सब जगह प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

**तव त्ये पितो ददवस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।**

**प्र स्वादूपानो रसानां तुविषीषावेरते ॥५॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( पितो ) भन्नव्यापि पालक परमात्मन् ! ( ददवस्तव ) देते हुए ( तव ) आपका जो भन्न वा ( त्ये ) वे पूर्वोक्त रस हैं । हे ( स्वादिष्ठ ) अतीव स्वादुयुक्त ( पितो ) पालक भन्नव्यापक परमात्मन् ( तव ) आपके उस भन्न के सहित ( ते ) वे रस ( रसानाम् ) मधुरादि रसों के बीच ( स्वाधान् ) अतीव स्वादु ( तुविषीषाश्च ) जिनका प्रबल गला उन जीवों के समान ( वेरते ) प्रेरणा देते अर्थात् जीवों को प्रीति उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

**आचार्य—**सब पदार्थों में व्याप्त परमात्मा ही सबके लिए अन्नादि पदार्थों को अच्छे प्रकार देता है और उसके किये हुए ही पदार्थ अपने गुणों के अनुकूल कोई अतीव स्वादु और कोई अतीव स्वादुतर है यह सबको जानना चाहिए ॥ ५ ॥

**त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।**

**अकारि चारु केतुना तवाहिमवमावधीत् ॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( पितो ) भन्नव्यापि पालना करनेवाले ईश्वर ! ( तव ) जिस आपकी ( अकारि ) रक्षा भादि से सूर्य ( अहिम् ) मेघ को ( अवधीत् ) हन्ता है उन आपके ( केतुना ) विज्ञान से जो ( चारु ) श्रेष्ठतर ( अकारि ) किया जाता है वह ( महानाम् ) महात्मा पूज्य ( देवानाम् ) विद्वानों का ( मन ) मन ( हितम् ) हित में ( हितम् ) धरा है वा प्रसन्न है ॥ ६ ॥

**आचार्य—**यदि भन्न भोजन न किया जाए तो किसी का मन आनन्दित न हो क्योंकि मन भग्नमय है इस कारण जिसकी उत्पत्ति के लिए मेघ निमित्त है उस भन्न को सुन्दरता से बनाकर भोजन करना चाहिए ॥ ६ ॥

**यद्दो पितो अजगन्निवस्व पर्वतानाम् ।**

**अत्रा शिखो मघो पितोऽरं मक्षाय गम्याः ॥७॥**

**पदार्थ—**हे ( पितो ) भन्नव्यापि पालकेश्वर ! ( यत् ) जिस ( अज ) प्रत्यक्ष भन्न को विद्वान् जन ( अजगन् ) प्राप्त होते हैं उसमें ( निवस्व ) व्याप्तिमान् हुआ ॥ हे ( मघो ) मधुर ( पितो ) पालकालंकारा ईश्वर ! ( अत्र, चित् ) इन ( पर्वतानाम् ) पर्वतों के बीच जो कि भन्न के निमित्त कहे हैं ( नः ) हमारे ( मक्षाय ) भक्षण करने के लिए भन्न को ( मक्षाय ) परिपूर्ण ( गम्याः ) प्राप्त कराए ॥ ७ ॥

**आचार्य—**सब पदार्थों में व्याप्त परमेश्वर को भक्षण भादि समय में स्मरण करे जिस कारण जिस परमात्मा की कृपा से अन्नादि पदार्थ विविध प्रकार के पूर्वादि दिशा देश, और काल के अनुकूल वर्तमान हैं उस परमात्मा ही का संस्मरण कर सब पदार्थ ग्रहण करने चाहिए ॥ ७ ॥

**यद्व्यामोषधीनां परिशमारिशमहे । वातापे पोव इक्ष्व ॥८॥**

**पदार्थ—**हे ( वातापे ) पवन के समान सर्वपदार्थ व्यापक परमेश्वर ! हम लोग ( व्याम् ) वनों और ( व्योषधीनाम् ) सोमादि औषधियों के ( यत् ) जिस ( परिशम् ) सब और से प्राप्त होने वाले अंश को ( आरिशमहे ) अच्छे प्रकार

प्राप्त होते हैं उससे भाप ( पीबः ) उत्तम वृद्धि करनेवाले ( इत् ) ही ( भव ) हुआ ॥ ८ ॥

**आचार्य—**जल, भन्न और घृत के संस्कार से प्रशस्ति भन्न और व्यञ्जन इत्यादि, मिरच वा घृत दूध पदार्थों को उत्तम बनाकर उन पदार्थों के भोजन करने वाले जन युक्त आहार और विहार से पुष्ट हों ॥ ८ ॥

**यत्तं सोम गवांशिरा यवांशिरा मजामहे । वातापे पीव इक्ष्व ॥९॥**

**पदार्थ—**हे ( सोम ) यवादि औषधिरसव्यापि ईश्वर ! ( गवांशिराः ) गौ के रस से बनाये वा ( यवांशिराः ) यवादि औषधियों के संयोग से बनाये हुए ( ते ) उस भन्न के ( यत् ) जिस सेवनीय अंश को हम लोग ( मजामहे ) सेवते हैं उससे, हे ( वातापे ) पवन के समान सब पदार्थों में व्यापक परमेश्वर ! ( पीबः ) उत्तम वृद्धि करनेवाले ( इत् ) ही ( भव ) हुआ ॥ ९ ॥

**आचार्य—**जैसे मनुष्य अन्नादि पदार्थों में उन-उन की वाकप्रिया के अनुकूल सब संस्कारों को करते हैं वैसे रसों को भी रसोचित संस्कारों से सिद्ध करें ॥ ९ ॥

**करम्म ओषधे भव पीवो ह्य उदारथिः ।**

**वातापे पीव इक्ष्व ॥ १० ॥**

**पदार्थ—**हे ( ओषधे ) औषधिव्यापि परमेश्वर ! आप ( करम्मः ) करने वाले ( उदारथिः ) जाठराग्नि के प्रदीपक ( बुधकः ) रोगादिकों के वर्जन कराने और ( पीबः ) उत्तम वृद्धि करनेवाले ( भव ) हुआ । तथा हे ( वातापे ) पवन के समान सर्वव्यापक परमात्मन् आप ( पीबः ) उत्तम वृद्धि देनेवाले ( इत् ) ही ( भव ) हुआ ॥ १० ॥

**आचार्य—**जैसे समयी पुरुष सुभाचार से शरीर और आत्मा को बलयुक्त करता है वैसे समय से सब पदार्थों को सब वर्तों ॥ १० ॥

**तं स्वा वयं पितो वचोभिर्गवां न हव्या सुपूदिम ।**

**देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११॥७॥**

**पदार्थ—**हे ( पितो ) भन्नव्यापि पालकेश्वर ! ( तम् ) उन पूर्वोक्त ( त्वा ) आपका आश्रय लेकर ( वचोभिः ) स्तुति वाक्यों, प्रशंसाओं से ( गवाः ) दूध देती हुई गीर् ( व ) जैसे दूध, घी, दही आदि पदार्थों को दें वैसे उस भन्न से ( वयम् ) हम जैसे ( हव्या ) भोजन करने योग्य पदार्थों को ( सुपूदिम ) निकालें तथा हम ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिए ( सधमादम् ) साथ आनन्द देनेवाले ( त्वा ) आप का हम तथा ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( सधमादम् ) साथ आनन्द देनेवाले ( त्वा ) आपका विद्वान् जन आश्रय करें ॥ ११ ॥

**आचार्य—**इस मन्त्र में उपमा और वाचकसुप्तोपमालंकार है । जैसे गीर् तृण, घास आदि लाकर रस दूध देती हैं वैसे अन्नादि पदार्थों से श्रेष्ठतर भाग निकालना चाहिए । जो अपने सगिधों का अन्नादि पदार्थों से संस्कार करते और परस्पर एक दूसरे के आनन्द की इच्छा से परमात्मा का आश्रय लेते हैं वे प्रशंसित होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में भन्न के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति समझनी चाहिए—

यह एक ही सतासीवाँ सूक्त और सत्तवीं वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

समिद्ध इत्येकावशर्जस्याष्टाऽजीरुसुरस्य वातसस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

अग्निषो देवता । १, २, ५—७, १० निबृह्मगायत्री,

२, ४, ८, ९, ११ गायत्री छन्द । ऋजः स्वरः ॥

यस्य ध्यातुः ऋचावाले एक ही अष्टासी सूक्त का धारक है उसके प्रथम

मन्त्र में अग्नि के वृद्धान्त से रजोगुणों का

उपदेश करते हैं—

**समिद्धो अथ राजसि देवो देवैः सहस्रजित् ।**

**दूतो हव्या कविर्वैह ॥ १ ॥**

**पदार्थ—**हे ( सहस्रजित् ) सहस्रों शत्रुओं को जीतनेवाले राजन् ( समिद्धः ) जलती हुई प्रकाशयुक्त अग्नि के समान प्रकाशमान ( देवैः ) विजय चाहते हुए वीरों के साथ ( देवः ) विजय चाहनेवाले और ( दूतः ) शत्रुओं के चित्तों को सन्ताप देते हुए ( कविः ) प्रबल प्रज्ञायुक्त आप ( अथ ) आज ( राजसि ) अधिकतर औपयमान हो रहे हैं तो आप ( हव्या ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को ( वह ) प्राप्त कीजिए ॥ १ ॥

**आचार्य—**इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालंकार है । जो अग्नि के समान दुष्टों को सब और से कष्ट देता, सज्जनों के सङ्ग से शत्रुओं को जीतता, विद्वानों के सङ्ग से बुद्धिमान् होता हुआ प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होता वह राज्य करने को योग्य है ॥ १ ॥

यस्य अध्यापक के विषय को अपने अपने मन्त्रों में कहा है—

**तनूनपाहृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधंसहस्रिणीरिषः ॥२॥**

**पदार्थ**—जो ( सहस्रिणीः ) सहस्रों ( इव ) अग्नादि पदार्थों को ( वक्षत् ) बारण करता हुआ ( सन्नुनवात् ) अगिरी को न गिराने न नाश करनेहारा अर्थात् पालनेवाला ( यक्षः ) पदार्थों में संयुक्त करने योग्य अग्नि, ( अतम् ) यज्ञ, सत्य व्यवहार और अग्नादि पदार्थों को ( यक्षः ) मधुरता आदि के साथ ( यते ) प्राप्त होते हुए जन के लिए ( समज्यते ) अच्छे प्रकार प्रकट होता है उसका सब सिद्ध करें ॥ २ ॥

**आवाच**—जिस कर्म से अनुल जन-वान्य प्राप्त होते हैं उसका अनुष्ठान, आरम्भ मनुष्य निरन्तर करें ॥ २ ॥

**आजुह्वानो न ईदृशो देवां आ वक्षि यज्ञियान् ।**

**अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वस्तुएँ विद्वन् ! जिस कारण हम लोगो ने जिस प्रकार ( आजुह्वानः ) होम को प्राप्त ( ईदृशः ) इतने योग्य ( सहस्रसा ) सहस्रों पदार्थों का विभाग करनेवाला अग्नि हो वैसे धामन्वण बुलाय को प्राप्त स्तुति प्रणमा के योग्य सहस्रों पदार्थों को देनेवाले आप ( अक्षि ) हैं हम से ( नः ) हम लोगो के ( यज्ञियान् ) यज्ञ सिद्ध करानेवाले ( देवान् ) विद्वान् वा दिव्य गुणों को ( आ, वक्षि ) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं ॥ ३ ॥

**आवाच**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे गुण, कर्म स्वभाव से अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ अग्नि बहुत कार्यों को सिद्ध करता है वैसे सेवा किया हुआ आप्त विद्वान् समस्त शुभ गुणों और कार्य-सिद्धियों को प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

**प्राचीनैर्बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृण । यत्नादित्या विराजय ॥ ४ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( यत्र ) जिस सनातन कारण में ( द्यादित्या ) सूर्यादि लोक ( द्यौः ) पराक्रम वा प्रताप से ( सहस्रवीरम् ) सहस्रों जिसमें वीर उस ( प्राचीनम् ) पुरातन ( बर्हि ) अच्छे प्रकार बढ़े हुए विज्ञान को ( अस्तृणम् ) छिपते हैं वहाँ तुम लोग ( विराजय ) विशेषता से प्रकाशित होओ ॥ ४ ॥

**आवाच**—जिस सनातन कारण में सूर्यादि लोक लोकान्तर प्रकाशित होते हैं वहाँ तुम हम प्रकाशित होते हैं ॥ ४ ॥

**विगाट् मन्त्राद्विम्बीः मन्वीर्वह्नीश्च भूयसीश्च याः ।**

**दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! ( विगाट् ) जो विविध प्रकार के गुणों और कर्मों में प्रकाशमान वा ( सखाट् ) जो चक्रवर्ती के समान विद्याओं में सुन्दरता से प्रकाशमान सो आप ( याः ) जो ( विम्बीः ) व्याप्त होनेवाली ( मन्वीः ) समर्थ ( बह्वीः ) बहुत अनेक ( भूयसीः, च ) और अधिक से अधिक सूक्ष्म मात्रा ( दुर ) द्वारे अर्थात् सर्व कार्योंमुखों को और ( घृतानि, च ) जलों को ( मक्षरन् ) प्राप्त होती हैं उनको जानो ॥ ५ ॥

**आवाच**—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् की बहुत तत्त्वयुक्त सत्त्व रजस्तमों गुण वाली सूक्ष्ममात्रा नित्यस्वरूप में सदा वर्तमान है उनको लेकर पृथिवी पयन्त पदार्थों को जान सब कार्य सिद्ध करने चाहिए ॥ ५ ॥

**सुखमे हि सुपेशमार्थि श्रिया विराजतः । उषामावेह सीदताम् ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जैसे ( इह ) इस कार्यकारण विद्या में ( सुखमे ) सुन्दर रमणीय ( सुपेशसा ) प्रससित स्वरूप कार्यकारण ( श्रिया ) शोभा से ( अक्षि, विराजत ) दीप्यमान होते हैं। ( हि ) उन्हीं को जानकर ( उषासी ) रात्रि, दिन के समान आप लोग परोपकार में ( आ, सीदताम् ) अच्छे प्रकार स्थिर होओ ॥ ६ ॥

**आवाच**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो इस सृष्टि में विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर कार्यज्ञान पूर्वक कारणज्ञान को प्राप्त होते हैं वे सूर्य चन्द्रमा के समान परोपकार में रमते हैं ॥ ६ ॥

**प्रथमा हि सुवाचसा होताग देव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! ( हि ) जिस कारण ( होताग ) ग्रहणकर्ता ( देव्या ) दिव्य बोधों में कुशल ( प्रथमा ) प्रथम विद्या बल को बढ़ानेवाले ( सुवाचसा ) सुन्दर जिनका वचन ( कवी ) जो सकल विद्या के बैसा अध्यापकोपदेशक जन हैं वे ( न ) हमारे ( इमम् ) इस प्रत्यक्षता से वर्तमान ( यज्ञम् ) घनादि पदार्थों के मेल कराने वा व्यवहार का ( यक्षताम् ) सङ्ग करावें ॥ ७ ॥

**आवाच**—इस सप्तर में जो जिनका उपकार करते हैं वे उनको सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

**अथ स्त्रीपुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—**

**भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपम्रवे । ता नश्चोदयत श्रिवे ॥ ८ ॥**

**पदार्थ**—हे ( भारति ) समस्त विद्या के धारण करनेवाली वा ( इळे ) ने प्रशसावती वा ( सरस्वति ) हे विज्ञान और उत्तम गतिवाली । ( या ) जो ( वः ) तुम ( सर्वाः ) सबको समीप में ( उपम्रवे ) उपयोग करनेवाले वचन का उपदेशक ( ताः ) वे तुम ( न ) हम लोगो को ( श्रिवे ) लक्ष्मी प्राप्त होने के लिए ( बोधयत ) प्रेरणा देओ ॥ ८ ॥

**आवाच**—जो प्रससित सौन्दर्य उत्तम लक्षणों से युक्त देवी या श्रेष्ठतर वास्तवविज्ञान में रमनेवाली कन्या हो वे अपने परिग्रहण करनेवाले पतिवों को पाकर धर्म से घनादि पदार्थों की उन्नति करें ॥ ८ ॥

**अथ ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—**

**त्वष्टां रूपाणि हि प्रभुः पशुन्विश्वान्समानजे ।**

**तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जैसे ( त्वष्टा ) सब जगत् का निर्माण करनेवाला ( प्रभु ) समर्थ ईश्वर ( हि ) ही ( विश्वान् ) समस्त ( पशुन् ) गवादि पशुओं और ( रूपाणि ) समस्त विविध प्रकार के स्थूल वस्तुओं को ( समानजे ) अच्छे प्रकार प्रकट करता और ( तेषाम् ) उनकी ( स्फातिम् ) वृद्धि को प्रकट करता है वैसे आप ( नः ) हमारी वृद्धि को ( आ, यज ) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए ॥ ९ ॥

**आवाच**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे जगदीश्वर ने इन्द्रियों से परे जो अति सूक्ष्म कारण है उससे विश्व-विचित्र, सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, ओषधि और मनुष्य के शरीरगवयवादि वस्तु बनाई हैं वैसे इस सृष्टि के गुण, कर्म और स्वभाव क्रम से अनेक व्यवहार सिद्ध करनेवाली वस्तुएँ बनानी चाहिए ॥ ९ ॥

**अथ देनेवाले के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—**

**उप त्मन्या वनस्पते पार्थो देवेभ्यः सृज ।**

**अग्निहव्यानि सिध्वदत् ॥ १० ॥**

**पदार्थ**—हे ( वनस्पते ) वनों के पालनेवाले ! ( त्मन्या ) अपने बीच उत्तम क्रिया से जैसे ( अग्नि ) अग्नि ( देवेभ्यः ) विद्वान् वा दिव्य गुणों के लिए ( हव्यानि ) भोजन करने योग्य पदार्थों को ( सिध्वदत् ) स्वादिष्ट करता है वैसे आप विद्वान् वा दिव्य गुणों के लिए ( पार्थः ) अन्न को ( उप, सृज ) उनके लिए दओ ॥ १० ॥

**आवाच**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो वनादिकों की रक्षा से घास-फूस और ओषधियों को बढ़ाते हैं वे सबका उपकार करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

**पुरोगा अग्निदेवानां गायत्रेण समंज्यते ।**

**स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥ ६ ॥**

**पदार्थ**—जो परोपकारी जन हैं वे जैसे ( देवानाम् ) दिव्य गुण वा पृथिव्या-विकी के बीच ( पुरोगा ) अग्रगामी ( अग्नि ) अग्नि ( गायत्रेण ) गायत्री छन्द से कहे हुए बोध से ( स्वाहाकृतीषु ) स्वाहा शब्द से जिन व्यवहारों में क्रियाएँ होतीं उनमें ( समंज्यते ) प्रकट किया जाता और वह ( रोचते ) प्रदीप्त होता है वैसे अग्रगामी होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त हो ॥ ११ ॥

**आवाच**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। यदि मनुष्य अग्नि प्रधान दिव्य पदार्थों को व्यवहारसिद्धि के लिए संयुक्त करें तो वे ऐश्वर्ययुक्त माननीय होते हैं यह समझना चाहिए ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से राजा, अध्यापक, उपदेशक, स्त्रीपुरुष, ईश्वर और देनेवाले के गुणों का बर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह एक ही अष्टासीवा सूक्त और नवमा वगं समाप्त हुआ ॥

॥

अथ इत्यष्टास्य एकोनमवन्तुलरकततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

अग्निर्वेदता । १, ४, ८ निचत् विष्टुप् छन्दः । ध्रुवत

स्वर । २ धुरिकपङ्क्तिः, ३, ५, ६,

स्वराट्पङ्क्तिः, ७ पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ एक ही नवासी सूक्त का आरम्भ है उसके

प्रथम, द्वितीय मन्त्र में ईश्वर के गुणों का

उपदेश करते हैं—

**अग्ने नय सुपथा गये अस्मान्निश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।**

**युयोध्यः स्मज्जुहुराणमेनो भूर्यिष्टां ते नमर्जि विधेम ॥ १ ॥**

**पदार्थ**—हे ( देव ) मनोहर, आनन्द के देनेवाले ( अग्ने ) स्वप्रकाशस्वरूपेश्वर ( विद्वान् ) सकल शास्त्रवेत्ता ! आप ( अस्मान् ) हम मनुज अर्थात् भोजन चाहते हुए जनों को ( राये ) बनादि प्राप्त के लिए ( सुपथा ) धर्मयुक्त सरल मार्ग से ( विद्वान् ) समस्त ( वयुनानि ) उत्तम उत्तम जानों को ( नय ) प्राप्त कराइए ( जुहुराणम् ) जोटी बाल से उत्पन्न हुए ( एनम् ) पाप को ( अस्मत् ) हम से ( भूर्यिष्टां ) अलग करिए जिससे हम ( ते ) आपकी ( भूर्यिष्टां ) अधिकतर ( नमर्जि ) सत्कार के साथ स्तुति का ( विधेम ) विधान करें ॥ १ ॥



आचार्य—मनुष्यों को धर्म तथा विज्ञानप्राप्त की प्राप्ति और अर्थ की निवृत्ति के लिए परमेश्वर की अष्ट प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए और तथा सुमान से चलना चाहिए दुःखस्वी अर्थ मार्ग से अलग रहना चाहिए । जैसे विद्वान् लोग परमेश्वर में उत्तम अनुराग करते जैसे अन्य लोगों को भी करना चाहिए ॥ १ ॥

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरसि दुर्गाणि विश्वा ।  
पुरचं पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) परमेश्वर ! ( त्वम् ) आप ( स्वस्तिभिः ) सुखों से ( अस्मान् ) हम लोगों को ( विश्वा ) समस्त ( अति, दुर्गाणि ) अत्यन्त दुर्ग व्यवहारों के ( पारया ) पार कीजिए जैसे ( नव्यः ) नवीन विद्वान् और ( पु ) पुत्र ( बहुला ) बहुत पदार्थों को देनेवाली ( उर्वी ) विस्तृत ( पृथ्वी, न ) भूमि भी है जैसे ( नः ) हमारे ( तोकाय ) अत्यन्त छोटे और ( तनयाय ) कुछ बड़े बालक के लिए ( शं, योः ) सुख की प्राप्ति करानेवाले ( भवा ) हजिए ॥ २ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परमेश्वर पुण्यात्मा जनों को दुष्ट आचार से अलग रखता और पृथिवी के समान पालना करता है जैसे विद्वान् जन सुन्दर शिक्षा से उत्तम कर्म करनेवालों को दुष्ट आचरण से अलग कर सुन्दर व्यवहार से रक्षा करता है ॥ २ ॥

अब ईश्वर के वृष्ट्यान्त से विद्वानों के गुणों की अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने त्वमस्मद्योध्यमीषा अनमिषा अभ्यमन्त कुष्टीः ।  
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव सां विश्वेभिरमृतैर्मयजत्र ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सज्ज करते हुए ( देव ) कामना करनेवाले ( अग्ने ) ईश्वर के समान विद्वान् वैद्यजन ! ( त्वम् ) आप जो ( अनमिषाः ) ऐसे हैं कि यदि उनके साथ ऊपर न विद्यमान हो तो अनिष्टमान ऊपर से शरीर की रक्षा करने वाले हैं वे ( अमीषा ) रोग ( कुष्टी ) मनुष्यों को ( अभ्यमन्त ) सब ओर से दण्ड करते, कष्ट देते हैं उनको ( अस्मत् ) हम लोगों से ( योषि ) अलग कर ( पुनः ) फिर ( विश्वेभिः ) समस्त ( अमृतैः ) अमृतरूप ओषधियों से ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( सुविताय ) ऐश्वर्य प्राप्त होने के लिए ( जाम् ) भूमि के राज्य की प्राप्ति कीजिए ॥ ३ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर वेदद्वारा अविद्यारूपी रोग से मनुष्यों को अलग करता है जैसे अच्छे वैद्य मनुष्यों को रोगों से निवृत्त कर अमृतरूपी ओषधियों से बढ़ाकर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं ॥ ३ ॥

किर विद्वानों के विषय की अगले मन्त्र में कहा है—

पाहि नो अग्ने पायुमिजसैरुत प्रिये सदनं मा शुशुक्वान् ।  
मा तं मयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्वन् ! ( शुशुक्वान् ) विद्या और विनय से प्रकाश की प्राप्ति ( अजस्रं ) निरन्तर ( पायुभिः ) रक्षा के उपायों से ( प्रिये ) मनोहर ( सहस्व ) स्थान ( उत ) वा शरीर में वा बाहर ( नः ) हम लोगों को ( मा, पाहि ) अच्छे प्रकार पालिए जिससे हे ( यविष्ठ ) अत्यन्त धृवा-वस्थावाले ( सहस्व ) सहनशील विद्वन् ! ( ते ) आपकी ( जरितारम् ) स्तुति करनेवाले को ( मयम् ) भय ( मा ) मत्त ( विदन् ) प्राप्त होवे ( नूनम् ) निश्चय कर ( अजरम् ) और को भय ( मा ) मत्त प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

आचार्य—वे ही प्रजासनीय जन हैं जो निरन्तर प्राणियों की रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥

अब शिक्षा देनेवाले के विषय की अगले मन्त्र में कहा है—

मा नो अग्नेष्वं सृजो अघायाविष्यवै रिपवै दुच्छुनायै ।  
मा दत्स्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥५॥१०॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! आप ( नः ) हम लोगों को ( अघाय ) पापी जन के लिए ( अविष्यवै ) वा जो धर्म को नहीं व्याप्त उस ( रिपवै ) शत्रुजन अथवा ( दुच्छुनायै ) दुष्ट आस विषकी जन के लिए ( आक्षुजः ) मत्त मिलाए । हे ( सहसावन् ) बहुत बल वा बहुत सहनशीलतायुक्त विद्वन् ! ( दत्स्वते ) दांतोंवाले और ( दशते ) दाँतों से विदीर्ण करनेवाले के ( मा ) मत्त तथा ( अरते ) बिना दाँतों-वाले दुष्ट के लिए ( मा ) मत्त और ( रिपवै ) हिंसा करनेवाले के लिए ( न ) हम लोगों को ( मा, परा, दा ) मत्त दूर कीजिए अर्थात् मत्त अलग कर उनकी दीजिए ॥ ५ ॥

आचार्य—मनुष्यों को विद्वान्, राजा, अध्यापक और उपदेशकों के प्रति ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि हम लोगों को दुष्ट स्वभाव और दुष्ट सज्जवाले को मत्त पहुँचाओ किन्तु सदैव श्रेष्ठाचार, धर्ममार्ग और सत्सङ्गों में संयुक्त करो ॥ ५ ॥

वि घ त्वावीं ऋतजात यंसङ्गृह्णानो अग्ने तन्वे बर्हथम् ।  
विश्वान्निरीक्षोक्त वा निनिस्तोरिभ्रुतामसि हि देव विषपद ॥६॥

पदार्थ—हे ( ऋतजात ) सत्य आचार में प्रसिद्धि पाये हुए ( देव ) विजय चाहनेवाले ! ( अग्ने ) बिजुली के तुल्य चञ्चल तापयुक्त ( त्वावात् ) तुम्हारे सदृश ( गृह्णानः ) स्तुति करता हुआ विद्वान् ( तन्वे ) शरीर के लिए ( बर्हथम् ) स्वीकार करने के योग्य ( घ ) ही पदार्थ को ( वि, यंसत् ) देवे । जो ( विषपद ) व्याप्ति-मानों को प्राप्त होते आप ( विषवात् ) समस्त ( रिपवो ) हिंसा करना चाहते हुए ( उत, वा ) अथवा ( निनिस्तो ) निन्दा करना चाहते हुए से अलग देवे ( हि ) इसी से आप ( अभिभूताम् ) सब ओर से कुटिल आचरण करनेवालों को शिक्षा देनेवाले ( अति ) होते हैं ॥ ६ ॥

आचार्य—जो गुरु दोषों के जाननेवाले सत्याचरणवान् जन समस्त हिसक, निन्दक और कुटिल जनो से अलग रहते हैं वे समस्त कल्याण की प्राप्ति होते हैं ॥ ६ ॥

त्वं तां अग्न उभयान्वि विद्वान वेपि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।  
अभिपित्वे मन्वे शास्यो भूर्मृजेन्य उशिभिर्नाक्रः ॥७॥

पदार्थ—हे ( यजत्र ) सत्कार करने योग्य ( अग्ने ) दुष्टों को शिक्षा देने-वाले ( विद्वान् ) विद्वान् जन ! जो ( त्वम् ) आप ( तात् ) उन ( उभयान् ) दोनों प्रकार के कुटिल निन्दक वा हिंसक ( मनुष ) मनुष्यों को ( प्रपित्वे ) उत्तमता से प्राप्त समय में ( वि, वेपि ) प्राप्त होते वह आप ( अभिपित्वे ) सब ओर से प्राप्त व्यवहार में ( मन्वे ) विचारशील मनुष्य के लिए ( शास्य ) शिक्षा करने योग्य ( भू ) हजिए और ( उशिभिः ) कामना करते हुए जनो से ( मृजेन्य ) अत्यन्त शोभा करने योग्य आप ( नाक्र ) दुष्टों को उल्लङ्घन नहीं, छोड़ने नहीं अर्थात् उनकी दुष्टता को निवारण कर उन्हें शिक्षा देते हैं ॥ ७ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन जितना हो सके उतना हिसक, क्रूर और निन्दक जनो को अपने बल से सब ओर से मीजमाँज उनका बल नष्ट कर सत्य की कामना करनेवालों को हर्ष दिलाते हैं वे शिक्षा देनेवाले होकर सुख होते हैं ॥ ७ ॥

अवीं चाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य स्रुतः सहसाने अग्नौ ।  
वयं सहस्रमृपिभिः मनेम विधामेषं वृजनें जीरद्धानुम् ॥८॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( मानस्य ) विज्ञानवान् जन का ( स्रुत ) सन्तान है उस के प्रति ( अस्मिन् ) इस ( सहसाने ) सहन करने हुए ( अग्नी ) अग्नि के समान विद्वान् के निमित्त ( निवचनानि ) परीक्षा से निश्चित किये बच्चों को जैसे ( वयम् ) हम लोग ( अवीं चाम ) उपदेश करें वा ( ऋषिभिः ) वेदार्थ के जाननेवालों से ( सहस्रम् ) अत्यन्त सुख का ( मनेम ) सेवन करें वा ( वृजन् ) इच्छासिद्धि ( वृजन् ) बल और ( जीरद्धानुम् ) जीवन की ( विद्याम् ) प्राप्ति होवे वैसे तुम भी आचरण करो ॥ ८ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्राप्त, शान्त, उपदेश करनेवाले विद्वान् जन श्रोताजनों के लिए सत्य वस्तुओं का उपदेश दे सुखी करते हैं उन के साथ और विद्वान् होते हैं जैसे उपदेश दे दूसरे का श्रवण कर विद्यावृद्धि सब करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में परमेश्वर, विद्वान् और शिक्षा देनेवाले के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

वह एक ही नवासीवां सूक्त और ग्यारहवां अर्ध समाप्त हुआ ॥



अनर्वाणामित्यज्यं नवापुस्तस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

बृहस्पतिर्वेत्ता । १—३ त्रिष्टुप्, ४, ८ त्रिष्टुप् छन्दः ।

५—७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । वैवत स्वराः ॥

अब एक ही नव्ये सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वानों के गुण, कर्म, स्वभावों का वर्णन करते हैं—

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।  
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशुषन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् गृहस्थ ! ( देवाः ) देनेवाले ( मर्ताः ) मनुष्य ( वरय ) जिस ( नवमानस्य ) स्तुति करने योग्य ( सुरुच ) सुन्दर वर्मयुक्त काम में प्रीति रखनेवाले ( गाथान्यः ) धर्मोपदेशों की प्राप्ति करने अर्थात् धीरो के प्रति कहनेवाले सज्जन की प्रशंसा ( आशुषन्ति ) सब ओर से करते हैं उस ( अनर्वाणम् ) अनर्वा अर्थात् अश्व की सवारी न रखने किन्तु पैरो से देश-देश घूमनेवाले ( वृषभम् ) श्रेष्ठ ( मन्द्रजिह्वम् ) हर्ष करनेवाली जिह्वा जिस की उस ( बृहस्पतिम् ) अत्यन्त शास्त्रबोध की पालना करनेवाले ( नव्यम् ) नवीन विद्वानों की प्रतिष्ठा की प्राप्ति अतिथि की ( अर्क ) अन्न, रोटी, दास, भगत आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों से उस को ( वर्धय ) बढ़ाओ, उन्नति देओ, उसकी सेवा करो ॥ १ ॥

आचार्य—जो गृहस्थ प्रशंसा करनेवाले धार्मिक विद्वान् वा अतिथि, संन्यासी, अध्यागत आदि सज्जनों की प्रशंसा सुनें उन्हें दूर से भी बुलाकर अच्छी प्रीति, अन्न, पाण, वस्त्र और वनाधिक पदार्थों से सत्कार कर उनसे संग कर विद्या की उन्नति से शरीर, आत्मा के बल को बढ़ावा व्याय से सबको सुख के साथ संयोग करावे ॥ १ ॥

तमृत्विद्या उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।

बृहस्पतिः स ब्रह्मो वरांसि विद्वाभन्समृते मातृश्विः ॥२॥

पदार्थ—( य ) जो ( मातरिविद्या ) पवन के समान ( ब्रह्मे ) सत्य व्यवहार में ( ब्रह्म ) सबको कामना करने योग्य ( बृहस्पति ) अनन्त वेदवाणी का पालनेवाला ( विद्वा ) व्यापक परमात्मा से बनाया हुआ ( समभक्त ) अच्छे प्रकार हो और जो ( वरांसि ) उत्तम कर्मों का करनेवाला हो ( स, हि ) ( वही ) ( देवयताम् ) अपने को विद्वान् करत हुआ ने बीच ( असर्जि ) मिट्ट किया जाता है ( तम् ) उसका ( ऋत्विजा ) जो ऋतु समय के योग्य होती वे ( वाच ) विद्या, सुशिक्षायुक्त वाणी ( सर्ग ) समार के ( न ) समान ही ( उप, सचन्ते ) सम्बन्ध करती हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इम मन्त्र में उपमा और वाचबलुप्तोपमालकार है। जैसे जल नीचे मार्ग में जाकर गढ़े में ठहरता वैसे जिसको विद्या शिक्षा प्राप्त होती है वह अभिमान छोड़ के तन्त्र हो विद्याशय और उचित करनेवाला प्रसिद्ध हो जैसे सर्वत्र व्याप्त ईश्वर ने यथायोग्य विविध प्रकार का जगत् बनाया वैसे विद्वानों की सेवा करनेवाला समस्त काम करनेवाला हो ॥ २ ॥

उपस्तुति नमम उद्यतिश्च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहु ।

अस्य क्रत्वाह्नयो यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षस्तुविष्मान् ॥३॥

पदार्थ—( य ) जा ( नमस ) नम्रजन की ( उपस्तुतिम् ) प्राप्त हुई प्रशंसा ( उद्यतिम् ) उद्यम और ( श्लोकम् ) सत्य वाणी को तथा ( सवितेव ) सूर्य से जल जैसे भूगोलों को वैसे ( बाहु, च ) अपनी भुजाओं को भी ( प्रयसत् ) प्रेरणा देवे ( अस्य ) इस ( अरक्षस ) श्रेष्ठ पुरुष की ( कबा ) उत्तम बुद्धि के साथ जो ( ब्रह्म ) दिन में प्रसिद्ध ( अस्ति ) है वह ( मृग ) सिंह के ( न ) समान और ( भीम ) भयङ्कर ( तुविष्मान् ) बहुत जग के बलवान् और पुरुष विद्यमान हो ऐसा होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। हे मनुष्यो! जिसके सूर्यप्रकाश के तुल्य विद्या-कीर्ति, उद्यम, प्रज्ञा और बल हो वह सत्य वाणीवाला सबको सरकार करने योग्य है ॥ ३ ॥

अस्य श्लोको दिवीयंते पृथिव्यामन्यो न यमद्यक्षभृद्विचैताः ।

मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायां अभिघ्न ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! ( अस्य ) इस प्राप्त विद्वान् की ( श्लोक ) वाणी और ( पृथिव्याम् ) पृथिवी पर ( अत्य ) घाटा ( न ) जेमे ( विवि ) दिव्य व्यवहार में ( ईयते ) जाता है तथा जो ( यक्षभूत ) पृथ्वी विद्वानों को धारण करने वाला ( विचैता ) जिस की माना प्रकार की बुद्धि वह विद्वान् ( मृगाणाम् ) मृगों की ( हेतयः ) गतियों के ( न ) समान ( यसत् ) उत्तम ज्ञान देव ( च ) और जो ( हिमा ) ये ( बृहस्पते ) परम विद्वान् को वाणी ( अभि, घ्न ) सब और से वर्तमान दिनों में ( अहिमायां ) मेघ की माया के समान जिन की बुद्धि उन सज्जनों को ( यस्ति ) प्राप्त हानी उन सब का मनुष्य सेवन करे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो दिव्य विद्या और प्रज्ञाशील विद्वानों की सेवा करता है वह मेघ के डग डमालयुक्त दिनों के समान वर्तमान भविष्य-युक्त मनुष्यों को प्रकाश की सविला जैसे वैसे विद्या देकर पवित्र कर सकता है ॥ ४ ॥

ये त्वां देवोन्निक मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पञ्चाः ।

न दृढेऽनु दबासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियाकम् ॥५॥१२॥

पदार्थ—हे ( देव ) विद्वन्! ( ये ) जो ( मन्यमाना ) विज्ञानवान् ( पापा ) प्रथमचारी ( पञ्चा ) प्राप्त हुए जन ( उन्निकम् ) गौरी के साथ विचरते उन ( भद्रम् ) कल्याणरूपी ( रवा ) आप के ( उप, जीवन्ति ) समीप जीवित हैं वे आपकी शिक्षा पाने योग्य हैं। हे ( बृहस्पते ) बड़े विद्वानों की पालना करनेवाले जो आप ( ब्रह्मे ) दुष्ट—बुरा विचार करनेवाले को ( न, अनु, दबासि ) अनुक्रम से सुख नहीं देते ( वाचम् ) प्रशंसित ( पियाकम् ) पान की इच्छा करनेवाले का ( इत् ) ही ( चयसे ) प्राप्त होते वे आप सब को उपदेश देगो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन अपने निकटवर्ती भद्र, अभिमान, पापी जनो को उपदेश दे धार्मिक करते हैं वे कल्याण की प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

सुप्रेतुः सूर्यवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।

अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपाणुवन्तो अस्थुः ॥६॥

पदार्थ—( ये ) जो ( अनर्वाण ) धर्म से अन्यत्र अधर्म में अपनी चाल चलन नहीं रखते ( अपीवृता ) और समस्त पदार्थों के निश्चय में वर्तमान ( नः ) हम लोगो को ( अपीवृता ) भविष्यदि दौधों से न डरते हुए जन ( सुप्रेतुः ) जिसके सुन्दर धर्म विद्यमान उस ( सुप्रेतु ) उत्तम विद्यायुक्त विद्वान् का ( पन्था ) मार्ग ( न ) जैसे वैसे तथा ( दुर्नियन्तुः ) जो दुःख से नियम करनेवाला उसके ( परिप्रीत ) सब और से प्रसन्न ( मित्रः ) मित्र के ( न ) समान ( अभि, चक्षते ) अच्छे प्रकार उपदेश करते हैं वे हम लोगो के उपदेशक ( अस्थुः ) ठहराये जायें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो विद्वान् जन पूर्ण साधन और उपसाधनो से युक्त उत्तम मार्ग से भविष्य युक्तों को विद्या और धर्म के बाध प्राप्त करते और जिसने इन्द्रिय नहीं जीते उसको जितेन्द्रियता देनेवाले मित्र के समान शिष्यों को उत्तम शिक्षा देते हैं वे इस जगत् में अध्यापक और उपदेशक होने चाहिए ॥ ६ ॥

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।

स विद्वो उमयश्चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७॥

पदार्थ—बुद्धिमान् विद्यार्थीजन ( स्तुभः ) जलादि को रोकनेवाली ( अवनयः ) किनारे की भूमियों के ( न ) समान ( समुद्रम् ) सागर को ( स्रवतः ) जाती हुई ( रोधचक्राः ) अमर मेड़ा जिन के जल में पड़ते उन नदियों के ( न ) समान ( यम् ) जिस अध्यापक को ( सम्, यन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ( स ) वह ( तरः ) सर्व विषयों के पार होने ( गृध्र ) और सबके सुख को चाहनेवाला ( विद्वान् ) विद्वान् ( बृहस्पति ) अत्यन्त बड़ी हुई वाणी वा वेदवाणी का पालनेवाला जन उसको ( उमयश्च ) दोनों धर्मों व्यावहारिक और पारमाधिक विज्ञान का ( चष्टे ) उपदेश देता है तथा ( अन्तः ) भीतर ( च ) और बाहर के ( आपः ) जलो के समान अन्तःकरण की और बाहर की चेष्टाओं को सुख करता है वह सब का सुख करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है जैसे सबका आधार भूमि, सूर्य के चारों ओर जाती है वा जैसे नदी समुद्र को प्रवेश करती हैं वैसे सज्जन श्रेष्ठ विद्वानों और विद्या का प्राप्त हो धर्म में प्रवेश कर बाहरले और भीतर के व्यवहारों को सुख करें ॥ ७ ॥

एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान् बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।

स नः स्तुतो वीरवद्रात् गोमद्विधामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥

पदार्थ—विद्वानों से जो ( मह ) बड़ा ( तुविजात ) विद्यावृद्ध जन से प्रसिद्ध विद्यावाला ( तुविष्मान् ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त ( वृषभः ) विद्वानों में शिरोमणि ( देव ) श्रुति मनाहर ( स्तुत ) प्रशमायुक्त ( बृहस्पति ) वेदों का अध्यापन पढ़ाने और उपदेश करने से पालनवाला विद्वान् जन ( धायि ) धारण किया जाता है ( स, एष ) वही ( न ) हम लोगों के लिए ( वीरवत् ) बहुत जिसमें वीर विद्यमान वा ( गोमत् ) प्रशंसित वाणी विद्यमान उस विज्ञान को ( वातु ) धारण कर जिसमें हम लोग ( वृषम् ) विज्ञान ( वृजनम् ) बल और ( जीरदानुम् ) जीवन को ( विद्याम् ) प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिए कि सकल शास्त्रों के विचार के सार से विद्यार्थी जनो को शास्त्र सम्पन्न करें जिससे वे शारीरिक और आत्मिक बल और विज्ञान या प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

इम सूक्त म विद्वानों के गुण, कम और स्वभावों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तों के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह एक सौ नव्वेवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ।



कङ्कत इति षोडशस्य एकमवसुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः ।

अथोपविष्मार्थं देवता । १ उज्जिणक्, २ भुरिगुण्णिक, ३, ७,

स्वराडुण्णिक, १३ विराडुण्णिक छन्द । ऋषभः स्वर । ४, ६,

१४ विराडनुष्टुप्, ५, ८, १५ निष्पनुष्टुप्, ६ अनुष्टुप्

१०, ११ निष्पत् ब्राह्मणनुष्टुप्, १२ विराड् ब्राह्मणनुष्टुप्;

१६ भुरिगुण्णिक छन्द । गन्धार स्वर ॥

अब एक सौ एक्यान्वेष सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विषोपविष्म और विषवेद्यों के विषय को कहते हैं—

कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः ।

द्वाविति प्लुषी इति न्यःष्टा अलिप्सत ॥१॥

पदार्थ—जो मनुष्य ( कङ्कतः ) विषवाले प्राणी के ( न ) समान ( कङ्कताः ) अचल ( अथो ) और जो ( सतीनकङ्कत ) जल के समान चञ्चल हैं वे ( द्वाविति ) दोनों इस प्रकार के जैसे ( प्लुषी, इति ) जो जलानेवाले दुःखदायी दूसरे के सङ्ग लगे वैसे ( अष्टा ) जो नहीं दीखने विषधारी जीव वे ( नि, अलिप्सत ) निरन्तर चिपटते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे कोई चञ्चल जन अध्यापक और उपदेशक को पाकर चञ्चलता देता है वैसे म देखे हुए छोटे-छोटे विषधारी मत्स्य, डींग आदि क्षुद्र जीव बार-बार निवारण करने पर भी ऊपर गिरते हैं ॥ १ ॥

अष्टाहन्त्यायस्यथो हन्ति परायती ।

अथो अबधन्ती हन्त्यथो पिनाष्टि पिपसी ॥२॥

पदार्थ—( आयसी ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई धोषधि ( अबधन्ती ) अष्टाष्ट विषधारी जीवों को ( हन्ति ) मष्ट करती ( अथो ) इसके अनन्तर ( परायसी )

पीछे प्राप्त हुई ओषधि ( हृदि ) विषधारियों को दूर करती है ( अथो ) इसके अनन्तर ( अथान्तर ) अस्मत्तु क्व वेती हुई ओषधि ( हृदि ) विषधारियों को मष्ट करती ( अथो ) इसके अनन्तर ( पिचती ) पाई जाती हुई ओषधि ( विनष्टि ) विषधारियों को पीसती है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो प्राये न प्राये वा प्रायेवाले विषधारियों को अगली-पिछली ओषधियों के देने से निवृत्त कराते हैं वे विषधारियों के कियों से नहीं पीड़ित होते हैं ॥ २ ॥

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।

मौञ्जा अष्टा वैरियाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३॥

पदार्थ—जो ( शरासः ) शीस के तुल्य भीतर छिद्रवाले तुलों में ठहरनेवाले वा जो ( कुशरासः ) निन्दित उक्त तुलों में ठहरते वा ( दर्भासः ) कुशस्थ वा जो ( सैर्याः ) तालाबों के तटों में प्राय होनेवाले तुलों में ठहरते वा ( मौञ्जा ) मूँज में ठहरते ( उत ) और ( वैरियाः ) गाड़ में होनेवाले छोटे-छोटे ( अष्टा ) जो नहीं देखे गये जीव हैं वे ( सर्वे ) समस्त ( साकम् ) एक साथ ( न्यलिप्सत ) निरन्तर मिलते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो नाना प्रकार के तुलों में कही स्थानादि के लोभ से और कहीं उन तुलों की गन्ध लेने को भ्रम-भ्रम, छोटे-छोटे विषधारी छिपे हुए जीव रहते हैं वे अन्तर पाकर मनुष्यादि प्राणियों को पीड़ा देते हैं ॥ ३ ॥

नि गावो गोष्ठे असंदन्नि कुमासो अविक्षत ।

नि केतवो जनानां न्यःपृष्टा अलिप्सत ॥४॥

पदार्थ—जैसे ( गोष्ठे ) गोशाला वा गोहरे में ( गावः ) गौएँ ( गवसन् ) स्थित होती वा वन में ( कुमास ) भेड़िया, हरिण आदि जीव ( अविक्षतः ) निरन्तर प्रवेश करते वा ( जनानाम् ) मनुष्यों के ( केतवः ) ज्ञान, बुद्धि, स्मृति आदि ( नि ) प्रवेश कर जाती अर्थात् कार्यो में प्रवेश कर जाती जैसे ( अष्टा ) जो दृष्टिगोचर नहीं होते वे छिपे हुए विषधारी जीव वा विषधारी जन्तुओं के विष ( नि, अलिप्सत ) प्राणियों को मिल जाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे नाना प्रकार के जीव निज-निज सुख सभोग के स्थान को प्रवेश करने हैं वैसे विषधर जहाँ-तहाँ पाये हुए स्थान को प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥

एत उ स्ये प्रत्यदश्वन्प्रदोष तस्कं गृह ।

अष्टा विश्वेष्टाः मनिषुदा अभूतन ॥५॥१४॥

पदार्थ—( स्ये ) वे ( एते, उ ) ही पूर्वोक्त विषधर वा विष ( प्रदोषम् ) रात्रि के मारम्भ में ( तस्कं गृह ) जैसे चोर जैसे ( प्रत्यदश्वन् ) प्रतीति से दिखाई देते हैं । हे ( अष्टा ) दृष्टिपथ न जानेवाली वा ( विश्वेष्टाः ) सबके देखे हुए विषधारियों । तुम ( मनिषुदा ) प्रतीति ज्ञान से अर्थात् ठीक समय से युक्त ( अभूतन ) होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है । जैसे चोरो में डाकू देखे और न देखे होते हैं वैसे मनुष्य नाना प्रकार के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध विषधारियों वा विषों को जानें ॥ ५ ॥

यौवैः पिता पृथिवी माता सोमो आतादितिः स्वसा ।

अष्टा विश्वेष्टास्तिष्ठतेत्यता सु कम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( अष्टा ) दृष्टिगोचर न होनेवाले और ( विश्वेष्टाः ) सब के देखे हुए विषधारियों । जिनका ( यौवैः ) सूर्य के समान सन्ताप करनेवाला ( पिता ) तुम्हारा ( पिता ) पृथिवी पृथिवी के समान ( माता ) माता ( सोमः ) चन्द्रमा के समान ( आता ) आता और ( आतादितिः ) विद्वानों की अवीन माता के समान ( स्वसा ) बहन है वे तुम ( सु कम् ) उत्तम सुख जैसे हो ( तिष्ठत ) ठहरो और अपने स्थान को ( इत्यतः ) जाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जो विषधारी प्राणी हैं वे शान्त्यादि उपायों और ओषध्यादिकों से विषनिवारण करने चाहिएँ ॥ ६ ॥

ये अस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।

अष्टाः किं अनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( अष्टाः ) दृष्टिगोचर न हुए विषधारी जीवों । ( वः ) इस संसार में ( ये ) जो ( वः ) तुम्हारे बीच ( अस्या ) स्कन्धों में प्रसिद्ध होनेवाले ( ये ) जो अङ्ग्याः अङ्गों में प्रसिद्ध होनेवाले और ( सूचीका ) सूची के समान व्यवसा देनेवाले बीछी आदि विषधारी जीव तथा ( ये ) जो ( प्रकङ्कताः ) प्रति पीड़ा देनेवाले अस्त्वल हैं और जो ( किङ्कल ) कुछ विष प्रादि है ये ( सर्वे ) सब तुम ( साकम् ) एक साथ अर्थात् विष समेत ( नि, जस्यत ) हम लोगों को छोड़ दो वा छोड़ दो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उत्तम यत्न के साथ शरीर और आत्मा को दुःख देने वाले विष दूर करने चाहिएँ जिससे यहाँ निरन्तर पुत्रवार्थ बढ़े ॥ ७ ॥

उत्पुस्तस्तस्यै एति विश्वेष्टो अष्टाहा ।

अष्टान्सर्वे ज्ञानयन्सर्वे यातुधान्यः ॥८॥

पदार्थ—हे वैद्यजनों ! तुमको जैसे ( सर्वान् ) सब पदार्थ ( अष्टान् ) जो कि न देखे गये उनको ( अष्टान् ) अष्ट-अष्ट के साथ दिखाता हुआ ( अष्टाहा ) जो नहीं देखा गया अष्टाकार उसको विनाशनेवाले ( विश्वेष्टो ) संसार में देखा ( सर्वे ) सूर्यमण्डल ( पुस्तान् ) पूर्व दिशा में ( उदेति ) उदय को प्राप्त होता है वैसे ( सर्वे, वः, यातुधान्यः ) सभी दुराचारियों की धारण करने-वाली दुर्व्यथा निवारण करनी चाहिएँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे सूर्य अष्टाकार को निवारण करके प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे वैद्यजनों को विषहरण ओषधियों से विषों को निर्मूल करना, विनाशना चाहिएँ ॥ ८ ॥

उदपत्तसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जुर्वन् ।

आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अष्टाहा ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( सौ ) यह ( सूर्यः ) सूर्यमण्डल ( विश्वानि ) समस्त अष्टाकारवन्त दुःखों को ( पुरु ) बहुत ( जुर्वन् ) विनाश करता हुआ ( उद, अष्टान् ) उदय होता है और जैसे ( आदित्य ) आदित्य सूर्य ( पर्वतेभ्यः ) पर्वत व मेघों से उदय को प्राप्त होता है वैसे ( अष्टाहा ) गुप्त विषों को नष्ट करनेवाला ( विश्वदृष्टः ) सबसे देखा हुआ विष हरनेवाला वैद्य विष को निवृत्त करने का प्रयत्न करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे सविता अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्राप्त होता है वैसे विषहरणशील वैद्यजन विषसंयुक्त पवन आदि पदार्थों को हरते और प्राणियों को सुखी करते हैं ॥ ९ ॥

अथ सूर्य के दृष्टान्त से उक्त विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सूर्ये विषमा संजामि हस्ति सुरावतो गृहे ।

सो विश्व न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा

मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥१५॥

पदार्थ—मैं ( सुरावतः ) सुरा लीचनेवाले शूण्डिया कलार के ( गृहे ) घर में ( हस्तिम् ) चाम का सुरापान जैसे हो वैसे ( सूर्ये ) सूर्यमण्डल में ( विश्वम् ) विष का ( अ, संजामि ) आरोपण करता हूँ ( स, विश्व, न ) वह भी ( न, मराति ) नहीं मारा जाए और ( नो ) न ( वयम् ) हम लोग ( मराम ) मारे जावें ( अस्य ) इस विष का ( योजनम् ) योग ( आरे ) दूर होता है । हे विषधारी ! ( हरिष्ठा ) जो हरण में अर्थात् विषहरण में स्थिर है, विषहरण विद्या जानता है वह ( त्वा ) तुम्हें ( मधु ) मधुरता को प्राप्त ( चकार ) करता है यह ( मधुला ) इसकी मधुरता को ग्रहण करनेवाली विषहरण मधुविद्या है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो रोगनिवारक सूर्य के प्रकाश के सयोग से विषहरी वैद्यजन बड़ी-बड़ी ओषधियों से विष दूर करते हैं और मधुरता को सिद्ध करते हैं सो यह सूर्य का विम्बस करनेवाला काम नहीं होता और वे विष हरनेवाले भी दीर्घायु होते हैं ॥ १० ॥

अथ विषहरनेवाले वजी के निमित्त को से विष हरने के विषय को कहते हैं—

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।

सो विश्व न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा

मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥

पदार्थ—हे विष के भय से डरते हुए जन ! जो ( इयत्तिका ) इतने विशेष देश में हुई ( शकुन्तिका ) कपिञ्जली पक्षिणी है ( सका ) वह ( ते ) तेरे ( विश्वम् ) विष का ( जघास ) खा लेती है ( सो विश्व, न ) वह भी शीघ्र ( न ) नहीं ( मराति ) मरे और ( वयम् ) हम लोग ( नो ) न ( मराम ) मारे जाएँ और ( अस्य ) इस उक्त पक्षिणी के सयोग से विष का ( योजनम् ) योग ( आरे ) दूर होता है । हे विषधारी ! ( हरिष्ठाः ) विषहरण में स्थिर विष हरनेवाले वैद्य ! ( त्वा ) तुम्हें ( मधु ) मधुरता को ( चकार ) प्राप्त करता है इसकी ( मधुला ) मधुरता ग्रहण कराने और विष हरनेवाली विद्या है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य जो विष हरनेवाले पक्षी हैं उन्हें पालन कर उनसे विष हराया करें ॥ ११ ॥

अथ और जोधों से विष हरने के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

त्रि सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।

ताश्चि न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा

मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥

पदार्थ—जो ( त्रि, सप्तः, विष्पुलिङ्गकाः ) दक्कीस प्रकार की छोटी-छिड़ियाँ ( विषस्य ) विष के ( पुष्यम् ) पुष्ट होने योग्य पुष्प को ( अक्षन् ) खाती हैं ( ता, विश्व, न ) वे भी ( न ) न ( मरन्ति ) मरती हैं और ( वयम् ) हम लोग ( नो ) न ( मराम ) मरें ( हरिष्ठाः ) विष हरनेवाला वैद्यवर ( अस्य ) इस विष का ( योजनम् ) योग ( आरे ) दूर करता है वह है विषधारी । ( त्वा ) तुम्हें ( मधु ) मधुरता को ( चकार ) प्राप्त करता है यही इसकी ( मधुला ) विषहरण, मधु ग्रहण करनेवाली विद्या है ॥ १२ ॥



भाषार्थ—जैसे जोंक विष हरनेवाली हैं वैसे इक्कीस छोटी-छोटी पक्षिणी पंखोंवाली चिड़ियाँ विष खानेवाली हैं उनसे और ओषधियों से जो विष सम्बन्धी रोगों का नाश करते हैं वे विरजीवी होते हैं ॥ १२ ॥

किर विषहरण विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।

सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं

हरिष्ठा मधु स्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं (विषस्य) विष की (सर्वासाम्) सब (रोपुषीणाम्) विमोहन करनेवाली (नवानाम्) नव (नवतीनाम्) नव्ये अर्थात् निम्नानवे विषसम्बन्धी पीड़ा की तरङ्गों का (नाम) नाम (अग्रभम्) लेऊँ और (अस्य) इस विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर करता हूँ वैसे हे विष-हारिन् (हरिष्ठा) विष हरने में स्थिर बैठ ! (स्वा) तुम्हें (मधु) मधुरता को (चकार) प्राप्त करता है वही इसको (मधुला) मधुरता को ग्रहण करने वाली विषहरण विद्या है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालकार है। हे मनुष्यो ! हम लोग जो जहाँ निम्नानवे प्रकार का विष है उसके नाम, गुण, कर्म और स्वभावों को जान कर उस विष का प्रतिषेध करनेवाली ओषधियों को जान और उनका सेवन कर विषसम्बन्धी रोगों को दूर करें ॥ १३ ॥

किर विषहरण को मयूरिणियों के प्रसंग से कहते हैं—

त्रिः सप्त मयूर्यैः सप्त स्वसारो अग्रवः ।

तास्तै विषं वि जञ्जिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सप्त) सात (स्वसार) बहिनों के समान तथा (अग्रवः) आगे जानेवाली नदियों के समान (त्रि, सप्त) इक्कीस (मयूर्य) मोरिनी हैं (ता) वे (उदकम्) जल को (कुम्भिनीरिव) जल का जिनके अधिकार हैं वे घट से जानेवाली कहारियों के समान (ते) तेरे (विषम्) विष को (वि, जञ्जिरे) विशेषता से हरे ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। मनुष्यों को जो इक्कीस प्रकार की मयूर की व्यक्ति हैं वे न मारनी चाहिएँ किन्तु सदैव उनकी वृद्धि करने योग्य हैं। जो नदी

स्थिर जल वाली हो वे रोग के कारण होने से न सेवनी चाहिएँ जो जल चलता है सूर्यकिरण और वायु को धुता है वह रोग दूर करनेवाला उत्तम होता है ॥ १४ ॥

इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्व्यश्मना ।

ततो विषं प्र बाधते पराचीरन्तु संवतः ॥ १५ ॥

पदार्थ—जो (इयत्तकः) मैला-कुबैला निन्द्य (कुषुम्भक) छोटा-सा नकुल विषयुक्त है (स्तकम्) उस दुष्ट को (अश्मना) विष हरनेवाले पत्थर से मैं (भिनदि) भक्षण करता हूँ (तत) इस कारण (विषम्) उस दशा को छोड़ (संवत) विभागवाली (पराची) जो परे दूर प्राप्त होती उन दशाओं को (अन्तु) पीछा लखि (प्र, बाधते) प्रवृत्त होता है उन से भी निकल जाता है ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष विष हरनेवाले रत्नों से विष को निवृत्त करते हैं वे विष से उत्पन्न हुए रोगों को मार, बली होकर शत्रुभूत रोगों को जीतते हैं ॥ १५ ॥

कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्त्तमानकः ।

वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥ १६ ॥ १६ ॥

पदार्थ—(गिरेः) पर्वत से (प्रवर्त्तमानक) प्रवृत्त हुआ (कुषुम्भकः) छोटा नेउला (वृश्चिकस्थ) बीछी के (विषम्) विष को (अरसम्) तीरस जो (अब्रवीत्तम्) कहता अर्थात् वेष्टा से दूसरी को जताता है (तत्) इस कारण हे (वृश्चिक) पक्षी को छेदन करनेवाले प्राणी ! (ते) तेरे (अरसम्) अरस (विषम्) विष है ॥ १६ ॥

भाषार्थ—मनुष्य बीछी आदि छोटे-छोटे जीवों के विष हरनेवाले पर्वतीय निउले का सरसरा कर जिससे विष रोगों को निवारण करने में समर्थ होवे ॥ १६ ॥

इस सूक्त में विष हरनेवाली ओषधि, विष हरनेवाले जीव और विषहारी वैद्यों के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिए ॥

यह एक सौ एक्यान्तवा सूक्त और सोलहवाँ अंग चौबीसवाँ अनुवाक और प्रथम मण्डल समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्याणां परमविदुषां विरजानन्वसरस्वती-

स्वामीनां शिष्येण श्रीमद्भयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते

आर्यभाषासम्बन्धिते सुप्रमाणयुक्ते पुष्पावाविष्कृषिते

ऋग्वेदभाष्ये प्रथम मण्डल समाप्तम् ॥



# ऋग्वेद

## अथ द्वितीयं मण्डलम्

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

स्वल्पम् इत्यादिभ्यश्च षोडशर्षभ्यश्च अङ्गिरसः श्रीमहोन्नो आर्षो गोत्समव आचिः ।  
अग्निर्वैवता । १ यङ्कितः, २ भुरिक् पङ्क्तिः, १३ स्वरान् पङ्क्तिः।  
यङ्कितः स्वरः । २, १५ विराट् जगती, १६ निबृजजगती छन्दः ।  
निषाव स्वरः । ३, ५, ८, १० निबृजिच्छुप्; ४, ६,  
११, १२, १४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ७ विराट् त्रिष्टुप्  
छन्दः । चैवतः स्वरः ॥

अथ दूसरे मण्डल का और उसमें प्रथम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में  
अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् और विद्याविधो के कृत्य को कहते हैं—

त्वमग्ने धुमिस्त्वमांशुशुशुस्त्वमद्व्यस्त्वमश्मनस्परि ।

त्वं वनरश्चमो पञ्चोभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान ( नृपते ) मनुष्यों की पालना करने-  
वाले ! जो ( ( त्वम् ) आप ( धुमि ) विद्यादि प्रकाशों से विराजमान ( त्वम् )  
आप ( आशुशुशुशु ) श्रीप्रकारी ( त्वम् ) आप ( अद्व्यम् ) जलों से पालना  
करनेवाले मेघ के समान ( त्वम् ) आप ( अश्मनः, परि ) पाषाण के सब धोर से  
निकले रत्न के समान ( त्वम् ) आप ( वनेभ्यः ) जङ्गलों में चण्डमा के तुल्य  
( त्वम् ) आप ( श्रीवशीभ्यः ) श्रीवशियों से वैद्य के समान और ( त्वम् ) आप  
( नृणाम् ) मनुष्यों के बीच ( नृपते ) पवित्र, शुद्ध ( जायसे ) होते हैं सो हम  
लोग आप लोगों को सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । हे राजन् !  
जैसे बिजुली अपने प्रकाश से शीघ्र जानेवाली जल, पाषाण, वन और शोवधियों के  
पवित्र करने से सबकी पालना करनेवाली है वैसे विद्वान् जन समग्र सामग्री से  
पवित्र आचरणवाला होता हुआ विद्यादि के प्रकाश से सब की उन्नति करनेवाला  
होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्विष्यं तव नेष्ट्रं त्वमग्निर्दत्तायतः ।

तव प्रसास्त्रं त्वमञ्जरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान बलवान् वर्तमान विद्वन् । ( तव )  
विद्या, कर्म और मन्त्रता से प्रकाशमान जो आप उनका ( होत्रम् ) जिस से पदार्थ  
होमा जाता वह होता का काम ( तव ) आप का ( पोत्रम् ) पवित्र काम ( तव )  
आप का ( नेष्ट्रम् ) पहुँचाने का काम वह है ( अृत्विष्यम् ) कि जो अृत्विषो के  
योग्य है ( त्वम् ) आप ( अग्निम् ) अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले और ( ब्रह्मायतः )  
अपने को सत्य की इच्छा करनेवाले ( तव ) आप का ( प्रसास्त्रम् ) उत्तम शिक्षा  
करना काम है ( त्वम् ) आप ( अञ्जरीयसि ) अपने को अहिंसा कर्म की इच्छा  
करते ( त्वम् ) आप ( ब्रह्मा ) चारों वेदों के जाननेवाले ( च, अग्नि ) हैं और  
( नः ) हम लोगों के ( दमे ) जिस से जल इन्द्रियों का वसन करते हैं इस घर में  
( गृहपतिः ) घर के कार्यों की रक्षा करनेवाले ( च ) भी हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—जिस पुरुष का अग्निहोत्र के तुल्य उपकार, अृत्विषों के कर्म के  
समान पवित्र किया, प्राप्त विद्वानों के समान न्याय, अग्नि विद्या को जाननेवाले के  
समान उन्नत, व्यावाचीक के समान न्यायव्यवस्था, यज्ञ करनेवाले के समान अहिंसा,  
वेदप्रारम्भ के समान विद्या और गृहपति के समान ऐश्वर्य का संग्रह हो वही प्रसन्नता  
को प्राप्त होने योग्य होता है ॥ २ ॥

त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुक्मापो नमस्यः ।

त्वं ब्रह्मा रयिविद्वंक्षणस्पते त्वं विधर्षतः सचसे पुरेभ्यः ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सूर्य के समान वर्तमान । ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्  
( वृषभः ) दुष्टों के सावर्ध को विनाशनेवाले ( त्वम् ) आप ( सताम् ) सत्युक्तों  
के बीच ( नमस्यः ) सत्कार करने योग्य ( असि ) हैं ( विष्णुः ) जगदीश्वर के  
समान ( त्वम् ) आप सज्जनों को ( उक्मापः ) बहुतां से कीर्तन किये हुए हैं । हे  
( ब्रह्माणस्पते ) वेदविद्या का प्रचार करनेवाले ! जो ( त्वम् ) आप ( रयिविद्वं )  
पदार्थविद्या के जानने ( ब्रह्मा ) समस्त वेद के पढ़नेवाले हैं हे ( विधर्षतः ) जो नाना  
प्रकार के शुभगुणों को धारण करनेवाले ! ( त्वम् ) आप ( पुरेभ्यः ) पूर्ण विद्या  
के धारण करनेवाली स्त्री उस के साथ ( सचसे ) सम्बन्ध करते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त विद्वानों के समीप से विद्या, शिक्षा  
को प्राप्त हुआ ईश्वर के समान उपकार-दृष्टि से प्रशंसा और सत्कार को प्राप्त हुआ  
प्रतिदिन उत्तम बुद्धि से समस्त शुभ गुण, कर्म और स्वभावों को धारण करता है  
वह सम्पूर्ण विद्यावान् होता है ॥ ३ ॥

अथ चलते हुए विषय में राजशिष्य के कृत्य का वर्णन करते हैं—

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईदृष्यः ।

त्वमर्त्यमा सत्यतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विद्वे वैव भाजयुः ॥४॥

पदार्थ—हे ( देव ) प्रतीव मनोहर ( अग्ने ) सूर्य के समान समस्त अर्थों  
का प्रकाश करनेवाले ! जो ( त्वम् ) आप ( धृतव्रतः ) सत्य को धारण किये  
स्वीकार किये हुए ( वरुणः ) श्रेष्ठ के समान ( राजा ) शरीर, आत्मा और मन से  
प्रतापवान् ( भवसि ) होते हैं ( दस्म ) दुःख और दुष्टों के विनाश करनेवाले  
( ईदृष्यः ) प्रशंसा के योग्य ( मित्रः ) प्राण के मित्र होते हैं ( वरुणः ) जिस राज्य  
के ( सम्भुजम् ) उपभोग करने को ( त्वम् ) आप ( अर्धमा ) ग्वायकरी ( सत्यतिः )  
सज्जन और सवाचारी के पालनेवाले होते हैं ( अंशः ) प्रेरणा करनेवाले ( त्वम् )  
आप ( विद्वे ) सग्राम में ( भाजयुः ) अर्धों प्रत्यर्थियों की व्यवस्था से पृथक्-पृथक्  
करनेवाले होते हैं इससे हम लोगों के राजा हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जिससे सत्य को धारण कर असत्य का त्याग किया जाता और  
मित्र के समान सब के लिए सुख दिया जाता है वह सत्यसन्धि दुष्टाचार से भलग  
हुआ सत्य और असत्य का यथावद्विवेचन करनेवाला सब को मान करने योग्य  
होता है ॥ ४ ॥

त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव धावो मित्रमहः सजात्यम् ।

त्वमांशुहेमां रिरिषे स्वर्ण्यं त्वं नरां धधो असि पुरुषसुः ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् ( त्वष्टा ) अज्ञान  
का विनाश करनेवाले ! ( त्वम् ) आप ( विधते ) सेवा करते हुए मनुष्य के लिए  
( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम को देते हैं । हे ( मित्रमहः ) मित्रों का सत्कार करनेवाले  
( अंशः ) प्रशंसित वाणी से युक्त जन । ( तव ) आप का ( सजात्यम् ) समान जातियों  
से प्रसिद्ध हुमा प्रेम है ( आंशुहेमा ) श्रीप्रकारी जनों को बुद्धि देनेवाले ( त्वम् ) आप  
( स्वर्ण्यम् ) सुन्दर अमृत्यादि पदार्थों से प्रसिद्ध हुए बल को ( रिरिषे ) देते हैं सो  
( त्वम् ) आप ( पुरुषसुः ) बहुतां को निवास देनेवाले ( नराम् ) मनुष्यों के  
( धधोः ) बल के बढ़ानेवाले ( असि ) हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जिस पुरुष की सत्यवाणी और पराबं पराक्रम है वह राजजनों में प्रशंसानुक्त होता है ॥ ५ ॥

त्वमग्ने रुद्रो अमुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मास्तं पूत ईशिषे ।

त्वं वातैरुणैर्योसि शङ्खयस्त्वं पुषा विधतः पांसि तु त्मना ॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान दाह करनेवाले ! ( त्वम् ) आप ( रुद्रः ) दुष्टों को रूढ़ करनेवाले ( अमुरः ) मेघ के समान ( महः ) बड़े ( त्वम् ) आप ( मास्तम् ) मरुत् विषयक ( पूतः ) सम्बन्ध और ( शिषः ) प्रकाशमान पदार्थ के ( शर्धः ) बल के ( ईशिषे ) ईश्वर हैं उस के व्यवहार प्रकाश करने में समर्थ हैं ( त्वम् ) आप ( वातः ) पवनो से और ( रुणैः ) अग्नि आदि पदार्थों के माप ( पांसि ) प्राप्त होते हैं ( पुषा ) पुष्टि करने और ( शङ्खयः ) सुख प्राप्ति करानेवाले ( त्वम् ) आप ( त्मना ) अपने से ( विधतः ) सेवकों की ( नः ) शीघ्र ( पांसि ) पालना करते हैं इससे किस को सत्कार करने योग्य नहीं होते ? ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो जन बल की इच्छा करते, दुष्टाचारियों को अच्छे प्रकार ताड़ना देकर धर्माचारियों को सुखी करते और सदैव सब की उन्नति को चाहते हैं वे अमृत ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

त्वमग्ने द्रविणोदा अरुक्कुते त्वं देवः संविता रंघा असि ।

त्वं मग्नो वृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सूर्य के समान सुख देनेवाले ! ( त्वम् ) आप ( अरुक्कुते ) पूरे पुरुषार्थ करनेवाले के लिए ( द्रविणोदा ) धन देनेवाले ( त्वम् ) आप ( रंघा ) रत्नों को धारण और ( संविता ) ऐश्वर्य के प्रति प्रेरणा करनेवाले ( देवः ) मनोहर ( असि ) हैं। हे ( वृपते ) मनुष्यों की पालना करनेवाले और ( मग्नः ) ऐश्वर्यवान् ! ( त्वम् ) आप ( वस्वः ) धनो की ( ईशिषे ) ईश्वरता रखते हैं ( यः ) जो ( ते ) आप के ( वसे ) निज घर में ( अविधत् ) विधान करता है उस के ( त्वम् ) आप ( पायुः ) पालनेवाले हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो पुरुषार्थी मनुष्यों का सत्कार तथा भालस्य करनेवालों का तिरस्कार करनेवाले और सेवकों के लिए सुख देनेवाले ऐश्वर्यवान् हो वे इस समार में सब के राजा होने को योग्य होंगे ॥ ७ ॥

त्वमग्ने दम आ विस्पति विशस्त्वा राजानं सुविद्वमृञ्जते ।

त्व विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दक्ष प्रति ॥८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान प्रातापवान् ( विस्पतिम् ) प्रजा की पालना करनेवाले ! ( त्वाम् ) आप को ( विशः ) प्रजाजन ( वसे ) निज घर में ( दमः, मृञ्जते ) सब और से प्रसिद्ध करते हैं अर्थात् प्रजापति मानते हैं और ( सुविद्वम् ) सुन्दर देनेवाले ( त्वाम् ) आप को ( राजानम् ) अपना स्वामी प्रसिद्ध करते हैं। हे ( स्वनीकः ) सुन्दर सेना रखनेवाले ! ( त्वम् ) आप ( विश्वानि ) समस्त पदार्थों को ( पत्यसे ) पतिभाव को प्राप्त होते हैं और ( त्वम् ) आप ( सहस्राणि ) सहस्रों ( शता ) सैकड़ों और ( दक्षः ) दहाइयों के ( प्रति ) प्रति पतिभाव को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वही राजा होने योग्य है जिस को समस्त प्रजाजन स्वीकार करें। वही सेनापति होने को योग्य है जो दक्ष वा सौ वा सहस्र बीरों के साथ युद्ध कर सकता है ॥ ८ ॥

किं राजसिष्य विषय की इनके अर्थों में कहा है—

त्वमग्ने पितरामिष्टिर्भिरस्त्वा आत्राय शम्यां तनूचक्षम् ।

त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत्सर्वं सखा सुशेवः पास्याष्टवः ॥९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान राजन् ! ( यः ) जो ( त्वाम् ) आप ( पुत्रः ) बहुत पुत्रों से रक्षानेकरवाले ( भवसि ) होते हैं जो ( ते ) आप के सुख का ( अविधत् ) विधान करता है जो ( सुशेवः ) सुन्दर सुख देनेवाले ( सखा ) मित्र ( त्वम् ) आप ( आत्रायः ) सब और से वृष्टता करनेवाले जनों को ( पांसि ) पालते हैं उन ( त्वाम् ) आप ( तनूचक्षम् ) तनूचक्ष प्रजापति जिन के लिए शरीर प्रकाशित होते वा उन ( त्वाम् ) आप ( पितरम् ) पालनेवाला वा ( इष्टिभिः ) हवनो के समान सत्कारों से अग्नि के मुख्य वर्तमान को ( आत्रायः ) भाईपने के लिए ( शम्या ) कर्म के साथ ( नरः ) मनुष्य पालें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे होम आदि से अच्छा सेवन किया हुआ अग्नि रक्षा करनेवाला होता है वैसे आता मित्र, पुत्र जन अपने आता, मित्र और पितरों को सेवें ॥ ९ ॥

त्वमग्ने क्रधुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य धुमतो राय ईशिषे ।

त्वं वि भास्यन्तु दक्षि दावने त्वं विशिष्टुगसि यज्ञपातनिः ॥१०॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सर्वशास्त्र पारङ्गत प्रतापवान् राजन् ! ( त्वम् ) आप ( क्रधुः ) बुद्धिमान् हैं और ( वाके ) समीप में ( नमस्यः ) नमस्कार, सत्कार करने योग्य हैं ( त्वम् ) आप ( वाजस्यः ) विज्ञान निमित्तक ( धुमतः ) बहुत अन्नादि पदार्थ समूह जिसके सम्बन्ध में विद्यमान उस ( रायः ) धन के ( ईशिषे )

ईश्वर होते हैं ( त्वम् ) आप ( विशिषः ) विशेषता से सब पदार्थों का प्रकाश करते हैं और अग्नि के समान ( अमरुजः ) अमरुजलता से अज्ञानजन्म दुःख को दहन करते हैं ( वावने ) दानशील ( विशिषः ) उत्तम शिक्षा करनेवाले ( त्वम् ) आप ( यज्ञम् ) यज्ञ का ( आतनिः ) विस्तार करनेवाले ( अस्ति ) हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो अग्नि के समान प्रजाओं के पीड़ा देनेवालों को जलाते हैं, पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं, विद्या-विनय और उत्तम शीलानादि का प्रकाश करते हैं वे सब को माननीय होते हैं ॥ १० ॥

किं अध्यापक विषय की इनके अर्थों में कहा है—

त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्षसे गिरा ।

त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वंसुपते सरस्वती ॥११॥

पदार्थ—हे ( देवः ) प्रकाशमान ( अग्ने ) विद्या देनेवाले विद्वन् ! ( त्वम् ) आप ( दाशुषे ) दानशील शिष्य के लिए ( अदितिः ) अन्तरिक्ष प्रकाश के समान विद्यागुणों का प्रकाश करनेवाले हैं ( त्वम् ) आप ( होत्रा ) ग्रहण करने योग्य ( भारती ) विद्या धारण करनेवाली बालिका के समान होते हुए ( गिरा ) सुन्दर शिक्षा और विद्यायुक्त वाणी से ( वर्षसे ) वृद्धि को प्राप्त होते हैं ( त्वम् ) आप ( दक्षसे ) विद्या बल के देने के लिए ( शतहिमा ) सौ वर्ष जिस की प्रायुः वह ( इळा ) स्तुति के योग्य अध्यापिका के समान ( अस्ति ) हैं हे ( वंसुपते ) धन के पालनेवाले ( त्वम् ) आप ( वृत्रहा ) मेघहन्ता सूर्य के समान तथा ( सरस्वती ) प्रज्ञान विज्ञानयुक्त वाणी के समान हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। अच्छी विद्या का पढ़ानेवाला शास्त्र का पारगन्ता विद्वान् जन माता के समान पालना करता है और सब विषयों से उत्तम गुणों को देता है उस से शिष्यजन शीघ्र विद्याबलयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्त्वं स्याद् वर्या आ संटशि श्रियः ।

त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्वह्न्यो विश्वतस्पृधुः ॥१२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) बिजुली के समान बलीजन ! जो ( त्वम् ) आप ( रयिः ) द्रव्यरूप ( बृहन् ) बहुत सुखों के ग्रहण करनेवाले ( विश्वतः ) सब से ( स्पृधुः ) विस्तार को प्राप्त ( सुभृतः ) उत्तम कर्म जिन्होंने धारण किया ( प्रतरणः ) कठिणता से दुःखों को पार होते और ( बृहन् ) बढ़ते हुए ( अस्ति ) हैं जो ( त्वम् ) आप ( वाजः ) जानवान् हैं जिन ( तवः ) आपके ( स्वाह ) इच्छा करने और ( सृष्टिः ) अच्छे प्रकार देखने योग्य ( वर्यः ) वर्य में ( उत्तमम् ) उत्तम ( वयः ) मनोहर जीवन ( आ, श्रियः ) और सब और से लक्ष्मी वर्तमान है सो ( त्वम् ) आप अध्यापक हूँ ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विद्वान् जन गुण, कर्म, स्वभाव में बिजुली की जान और काम्यों में उस का अच्छे प्रकार प्रयोग कर जीमान् होते हैं और ब्रह्मचर्य से दीर्घायु होते हैं वैसे सब विद्यायुक्त मनुष्यों को होना चाहिए ॥ १२ ॥

त्वमग्ने आदित्यासं आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चकिरे कवे ।

त्वां रीतिषाचो अध्वरेषु सध्विरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥

पदार्थ—हे ( कवे ) समस्त साङ्गोपाङ्ग वेद के जाननेवाले ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् ! ( आदित्यासः ) बारह महीना जैसे सूर्य को वैसे विद्यार्थीजन जिन ( त्वाम् ) आपको ( आस्यम् ) मुख के समान अग्रगन्ता और ( शुचयः ) पवित्र शुद्धात्मा धन ( त्वाम् ) आपको ( जिह्वाम् ) वाणीरूप ( चकिरे ) कर रहे, मान रहे हैं तथा ( अध्वरेषु ) न गूँथ करने योग्य व्यवहारों में ( रीतिषाचः ) दान के सेवनेवाले जन ( त्वाम् ) आपको ( सध्विरे ) सम्यक् प्रकार से मिलते हैं ( त्वे ) तुम्हारे होते ( देवा ) विद्वान् जन ( आहुतम् ) सब और से ग्रहण किये हुए ( हविः ) स्रक्षण करने योग्य पदार्थों को ( अध्विरे ) आते सो आप हमारे अध्यापक हूँ ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे संवत्सर का आश्वय लेकर महीने, मुख का आश्वय लेकर शरीर की पुष्टि, जिह्वा के आश्वय से रस का विज्ञान यज्ञ को प्राप्त हो विद्वानों के सत्कार और उत्तम अन्न को पाकर रक्षि होती है वैसे आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वानों को प्राप्त होकर मनुष्य सुख गुण स्रक्षणयुक्त होते हैं ॥ १३ ॥

त्वे अग्ने विरवे अमृतासा अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।

त्वया मर्त्तसः स्वदन्त आसुति त्वं गर्भो वीरुधो जग्निषे शुचिः ॥१४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान प्रकाशमान ! आप ( त्वे ) तुम्हारे होते ( अद्रुहः ) द्रोह छोड़े हुए ( विरवे ) सब ( अमृतासः ) अपने-अपने रूप से अमम-मरणादिरहित जीवात्मा जिन के वे ( देवाः ) विद्वान् जन ( आहुतम् ) प्राप्त होने योग्य पदार्थों को ( आसा ) मुख से ( हविः ) जो कि विद्वानों के लीने योग्य हैं ( अध्विरे ) आते हैं तथा जिन ( त्वया ) आप की प्रेरणा से ( स्वदन्ते ) सुन्दरता से भोजन करते हुए ( मर्त्तसः ) शरीर के योग से जन्मभरण सहित मनुष्य ( आसुतिम् ) जन्मयोग अर्थात् विद्याजन्म का संयोग सेवते हैं जो ( त्वम् ) आप ( वीरुधम् ) लता वृक्षादिकों के बीच ( गर्भः ) गर्भरूप अग्नि जैसे वैसे होकर



( शक्तिः ) पवित्र होते हुए ( अग्निः ) प्रसिद्ध होते हैं उन आप का विद्या की प्राप्ति के लिए लोग आश्रय करते हैं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सब जीव विद्यमान अग्नि के होते पीने और भोजन करने को योग्य होते हैं वैसे आत्मज्ञान ब्रह्मात्मा पढ़ानेवालों के होते पवित्र रागद्वेषरहित सांसारिक और पारमार्थिक सुख को प्राप्त हुए मुक्ति के बीच आनन्द करते हुए अन्तर्मात्र संस्कार में पवित्र होते हैं ॥ १४ ॥

स्व तान्त्रस्तश्च प्रति चासि मज्जनायै सुजात प्र च देव रिच्यसे ।

पृथो यदत्र महिना वि ते ह्रुवदनु धावापृथिवी रोदसी उमे ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे ( सुजात ) सुन्दर प्रसिद्धिमान ( देव ) विद्या देनेवाले ( अग्ने ) विजुली के समान सबसे अलग विद्वान् । जो ( त्वम् ) आप ( मज्जना ) बल से वा पृथ्वी से ( तान् ) उन मनुष्यों को कि जो मोक्षसुख और सांसारिक सुख साधने वाले हैं ( प्रति, च ) प्रतिनिधि और ( सन्, च ) मिले हुए भी ( अग्नि ) हैं ( च ) और ( प्र, रिच्यसे ) अलग होते हो और ( उमे ) दोनों ( रोदसी ) सांसारिक सुख के कारण रोने के निमित्त जो ( धावापृथिवी ) धावापृथिवी के समान ( महिना ) अपने महिमा से ( यत् ) जो ( अत्र ) यहाँ ( पृथः ) विद्या सम्बन्ध को भी प्राप्त हो जिन ( ते ) आपकी विद्या ( वि, अन्, ध्रुवत् ) अनुकूल विशेषता से होती है सो आप हमारे अध्यापक और उपदेशक हुए ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जैसे अग्नि में अनेक गुरु हैं वैसे विद्वानों की सेवा करने और धर्म में प्रवर्तमान होने धर्म से निवृत्त जनों में इस संसार में बहुत शुभ गुण उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

ये स्तोत्रयो गोअग्रामक्षपेशसमग्रं रातिमुत्सृजन्ति सूर्यः ।

अस्माच्च तौश्च प्र हि नेषि वस्य आ वृहद्देम विदये सुवीराः ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् ! आप ( ये ) जो ( सूर्य ) विद्या ज्ञान चाहते हुए जन ( स्तोत्रयः ) समस्त विद्या के अध्यापक विद्वानों के लिए ( गोअग्राम् ) जिसमें इन्द्रिय अग्रगता हो ( अक्षपेशसम् ) उस की अग्रगामी प्राणी के समान रूपवाली ( रातिम् ) विद्यादान किया को ( उप, उत्सृजन्ति ) देते हैं ( तान्, च ) उनको और ( अस्मान्, च ) हम लोगों को भी ( वस्य ) अत्युत्तम निवासस्थान ( आ, प्र, नेषि, हि ) अच्छे प्रकार उत्तमता से प्राप्त करते हो इसी से ( सुवीराः ) उत्तम सूरतारि गुणों से युक्त हम लोग ( विषये ) विवाद सग्राम में ( वृहत् ) बहुत ( देम ) कहें ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् सर्वोत्तम विद्यादान देके हमको तथा औरों को विद्वान् करते हैं वैसे हमको भी चाहिए कि उनकी सदा प्रशंसा करें ॥ १६ ॥

इस सूक्त में अग्नि के वृष्टान्त से विद्वान् और विद्याधियों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

वह दूसरे मण्डल में प्रथम सूक्त और उन्नीसवीं वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

यत्नेनेति त्रयोवसन्तस्य द्वितीयस्य सुक्तस्य गृह्यस्य अग्निः । अग्निवचना ।

१, ७, ७, १२ विरः अगती; ४ अगती, ५, ६, १३

निष्कृष्टगती अन्वः । निवाहः स्वरः । ३, ८, १०,

११ भुरिष् त्रिष्टुप् अन्वः । संवतः स्वरः ॥

प्रथ द्वितीय सूक्त का आरम्भ है उसमें फिर अग्नि के वृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

यज्ञेन वर्धनं जातवेंदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।

समिधानं सुप्रयसं स्वर्ग्यं यज्ञं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनों ! तुम ( तना ) विस्तृत ( गिरा ) वाणी से ( वृजनेषु ) जिन माणों में जन जाते हैं उनमें ( धूर्षदम् ) विमानादिकों की सुरियों को लेजाने तथा ( होतारम् ) पदार्थों को ग्रहण करनेवाले ( समिधानम् ) प्रचण्ड दीप्तियुक्त ( सुप्रयसम् ) सुन्दर मनोहर ( वृजन् ) प्रकाशमान ( स्वर्ग्यम् ) सुख की प्राप्ति करनेवाले ( जातवेंदसम् ) उत्तम होता है वन जिससे उस ( अग्निम् ) अग्नि को ( हविषा ) दान से ( यजध्वम् ) प्राप्त होधी और उम ( यज्ञेन ) यज्ञ से ( वर्धत ) बढ़े ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य शिल्पिक्रिया से विजुली आदि के रूप को पान, विमान आदि के कार्य में अच्छे प्रकार युक्त करें वे ऐश्वर्य को प्राप्त हो ॥ १ ॥

अग्नि स्वा नक्षत्रस्यैव ब्रह्माग्निरेऽयं वत्सं न स्वसरेषु येनवः ।

दिव्यवेदरत्नमिदं पुना सयौ मासि पुरवार संयतः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य प्रदीप्त विद्वज्जन । ( स्वसरेषु ) मोक्षों में ( वत्सम् ) अच्छे की ( यज्ञवः ) गीर्ण ( न ) जैसे रक्षावासी हैं वैसे

( अग्निः ) रात्रि और ( उद्यतः ) दिन ( स्वा ) आपकी ( अग्नि, ब्रह्माग्निरे ) सब और से ब्रह्मावधान करते हैं अर्थात् अत्येक काम के निवृत्त समय में आप अपने सम्बन्धि व्यवहार को प्राप्त होते हो । हे ( पुरवार ) बहुतों की स्वीकार करने योग्य । आप ( विषयम् ) सूर्यप्रकाश के समान अपने प्रकाश से ( इत् ) ही ( अग्निः ) सर्व व्यवहारों की प्राप्ति करानेवाले ( वानुवाः ) मनुष्यसम्बन्धी ( पुना ) युगवर्षों की और ( यज्ञः ) निवासहेतु रात्रि समयों को ( संयतः ) समय किये हुए ( मा, मासि ) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे गीर्ण अपने बछड़ों को प्राप्त होती वैसे काल-विभाग परित्यक्ता विद्वान् जन को प्राप्त होते हैं । जिस कारण उसके सब कार्य नियमयुक्त काल से सिद्ध होते हैं । आलसी जनों के काम कभी भी नियत समय पर नहीं होते । परित्यक्ता विद्वान् जन रात्रि के समय को भी अपने कार्य का समय मानकर जैसा चाहते वैसे समय पर कार्य किया करते हैं और मनुष्य सम्बन्धी पूर्णाहुति को प्राप्त होते हैं किन्तु परित्यक्त से आयु की हानि को नहीं प्राप्त होते ॥ २ ॥

तं देवा बुध्ने रजसः सुदंसं दिवस्पृथिव्योरर्ति न्यैरिरे ।

रथमिव वेधं शुक्रशोचिषमग्नि मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो ( देवाः ) विद्वान् ( बुध्ने ) अन्तरिक्ष में वा ( रजसः ) लोभ के बीच में वा ( दिवस्पृथिव्यो ) सूर्य-पृथिवी के बीच ( अग्निम् ) प्राप्त ( सुदंसम् ) जिससे सुन्दर काम बनते हैं ( शुक्रशोचिषम् ) और शीघ्रता करनेवाला तेज जिसमें विद्यमान ( वेधम् ) जानने योग्य ( तम् ) उस ( अग्निम् ) अग्नि को ( क्षितिषु ) पृथिवियों में ( प्रशंस्यम् ) प्रशंसनीय ( मित्रम् ) मित्र के ( न ) समान वा ( रथमिव ) रथ के समान ( न्यैरिरे ) निरन्तर कम्पाते अर्थात् चलाते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त क्यों न हों ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! यदि अन्तरिक्ष में स्थित पदार्थों में वर्तमान अग्नि को जानकर रथ के समान कार्यों में चलावे तो वह मित्र के समान काम्यों को सिद्ध करे ॥ ३ ॥

तमुक्षमायं रजसि स्व आ दमं चन्द्रमिव सुरुचं ह्यार आ दधुः ।

पृथ्व्याः पतरं चितयन्तमक्षमिः पाथो न पायुं जनसी उमे अन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन ( जानसी ) सब पदार्थों को उत्पन्न करनेवाली धावापृथिवी अर्थात् सूर्य पृथिवी के सम्बन्ध से मानुषी सृष्टि के अन्नादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं ( उमे ) दोनों वा ( पाथ ) जल ( पायुम् ) उसके पीनेवाले को ( न ) जैसे वर्तमान तथा ( रजसि ) ऐश्वर्य के निमित्त ( उद्यमानम् ) सींचा हुआ ( स्वे ) अपने ( दमे ) कला धर में ( चन्द्रमिव ) सुवर्ण के समान ( आ, सुरुचम् ) अच्छे प्रकार प्रकाशमान ( पृथ्वाः ) वा अन्तरिक्ष के बीच ( ह्यार ) जिस व्यवहार में कुटिल गति को पदार्थ प्राप्त होते हैं उसमें ( पतरम् ) गमन को प्राप्त होता ( चितयन्तम् ) और पदार्थों को इकट्ठा कराता ( तम् ) उस अग्नि को ( अक्षमिः ) इन्द्रियों के साथ ( अन्वाहम् ) अनुकूलता से स्थापन करते हैं वे पदार्थवेत्ता होते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे जल प्यासे को वृत्त करता है वैसे कार्यों में सप्रयुक्त किया हुआ अग्नि ऐश्वर्य के साथ जनो को युक्त करता है ॥ ४ ॥

स होता विश्व परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋजते गिरा ।

हिरिभिप्रो वृधसानासु जभुरेद्यौर्न स्वमिश्चितयद्रोदसी अन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो ( हिरिभिप्रः ) ऐसा है कि जिसके मुख्यावयव पदार्थ को हरने और ( होता ) ग्रहण करनेवाले हैं ( तम् ) उस ( विश्वम् ) समस्त ( अध्वरम् ) न नष्ट करने योग्य शिल्पसाध्य व्यवहार को ( परि, ध्रुव ) विचारे और उसको ( उ ) तर्क-वितर्क के साथ ( हव्यैः ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों और ( गिरा ) वाणी से ( जभुः ) मनुष्य ( ऋजते ) प्रसिद्ध करते हैं । जो अग्नि ( वृधसानासु ) बड़ी हुई प्रजापति में ( रोदसी ) धावापृथिवी के ( अन्तु ) अनुकूल ( धी ) सूर्य ( स्तुभिः ) नक्षत्र अर्थात् तारागणों के साथ ( न ) जैसे-जैसे पदार्थों से ( चितयन्त ) चेतन करे वा ( जभुरत् ) निरन्तर पदार्थों को चारण करे ( स ) वह सबको कार्यों में अच्छे प्रकार युक्त कराने योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे सूर्य नक्षत्रों को प्रकाशित करता है वैसे यह अग्नि समस्त विश्व को प्रकाशित करता है जो पढ़ने और सुनने से अग्निविद्या का ग्रहण करते हैं वे सुभूषित होते हैं ॥ ५ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये संदस्वात्रयिस्मासु दीदिहि ।

आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( देव ) व्यवहारविद्याकुशल ( अग्ने ) विद्वान् ! जैसे ( सः ) वह ( समिधानः ) सम्यक् प्रकाशमान ( संदस्वान् ) अच्छे अग्नि ( नः ) हम लोगों के ( स्वस्तये ) सुख के लिए ( हव्यम् ) बहुत वनयुक्त व्यवहार को धारण करता है वैसे आप ( अस्मासु ) हम लोगों में ( रविम् ) धन को ( आ, वीतिहि ) प्रकाश कीजिए और ( नः ) हम लोगों को ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिए ( कृणुष्व )

संनद्ध कीजिए वा जैसे ( रोवन्ती ) आवापृथिवी ( इच्छा ) ग्रहण करने योग्य पदार्थ ( मनुष्य ) मनुष्यों की प्राप्ति कराती हुई ( वीर्य ) सुख प्राप्ति के लिए होती है वैसे प्राप्त कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे संसिद्ध किया हुआ अग्नि धन-प्राप्ति का निमित्त होता है वैसे अच्छे प्रकार प्राप्त हुए विद्वान् जन मनुष्यों की विद्या प्राप्ति के हेतु होते हैं ॥ ६ ॥

दा नो अग्रे बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं भृत्या अपां वृधि ।

प्राची आवापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्गं शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् ! आप ( नः ) हम लोगो के लिए ( बृहत् ) बहुत भोग करने के पदार्थों को ( दाः ) दीजिए ( वाचम् ) ज्ञान ( दुरः ) दूरों के ( नः ) समान ( अपां ) श्रवण से ( सहस्रिणः ) असंख्य सुखरूपी अज्ञयुक्त पदार्थों को ( दाः ) दीजिए और ( अपा, वृधि ) उनको प्रकट कीजिए तथा ( प्राची ) जो पहले से वर्तमान ( आवापृथिवी ) आवापृथिवी को ( ब्रह्मणा ) धन से युक्त ( कृधि ) कीजिए ( उच्यते ) दिव्यो को ( शुक्रमुषसो ) मीनप्रकारी ( स्वः ) सुख के ( नः ) समान ( वि, दिद्युतः ) विशेष प्रकाशित कीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जो अग्नि के तुल्य असंख्य सुखद्वारों के समान विद्यामार्ग और अथासमय कार्यो से दिवसों को सयुक्त करते हैं वे सूर्य और पृथिवी के समान अन्नादि के संयोग से सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

अथ विद्वानो के विषय के अन्तर्गत-राजविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स इधान उषसो राभ्या अनु स्वर्गं दीदैदरुषेण भानुना ।

होशामिरभिर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चास्त्रायवे ॥८॥

पदार्थ—जैसे ( इधान ) प्रकाशमान ( सः ) वह ( अग्नि ) अग्नि ( अरुषेण ) उत्तम रूपयुक्त ( भानुना ) प्रकाश से ( होशामि ) ग्रहण की हुई क्रियाओं से ( उषसः ) प्रतिदिन ( राभ्या ) रात्रियों में ( मनुष्य ) मनुष्यों को ( स्वः ) सुख के ( नः ) समान ( अनु, वीर्यम् ) अनुकूलता से प्रकाशित कराता वैसे ( आद्य ) सुन्दर ( अतिथिः ) सत्कार करने के योग्य जिस के ठहरने की अवधिमान तिथि वह ( स्वध्वरः ) न विनाशने योग्य ( राजा ) प्रकाशमान सम्पापि ( आद्यवे ) राजकार्य में चलने अर्थात् प्रवृत्त होने के लिए ( विशाम् ) प्रजाजनों के बीच बर्तें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जैसे अहोरात्रों का काटनेवाला सूर्य अपने तेज से सब के अनुकूल प्रकाशित होता है वैसे राजा सत्य और झूठ कार्य करनेवालों के विभाग से प्रजाजनों की पालना करे ॥ ८ ॥

एवा नो अग्रे अमृतैषु पूर्व्य धीप्पीपाय बृहद्विषु भानुना ।

दुहाना धेनुर्ध्वजनेषु कारवे स्मना सतिनं पुरुरूपमिषणि ॥९॥

पदार्थ—हे ( पूर्व्य ) पूर्वज विद्वानो ने विद्या पढ़ाकर किये ( अग्ने ) विद्वन् ! ( स्वना ) अपने में जो ( बृहद्विषु ) बहुत प्रकाश जिन में विद्यमान उन ( ध्वजनेषु ) बलयुक्त ( अमृतैषु ) विनाश और उत्पत्ति रहित जीवों में ( भानुना ) मनुष्य सम्बन्धी सुख और ( इषणि ) इच्छा के निमित्त ( अतिथिम् ) अपरिमित, असंख्य ( पुष्यम् ) जिसमें बहुत रूप विद्यमान उस व्यवहार को ( दुहाना ) बोहती, पूरा करती हुई ( धेनु ) बाणी ही है उन सबकी प्राप्ति कराते हुए ( एव ) ही ( नः ) हम लोगो के लिए और ( कारवे ) करनेवाले के लिए ( धी ) बुद्धि और कर्मों की ( पीपाय ) वृद्धि कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—विज्ञान चाहने वाले जनों की शिष्ट, महात्मा जनों से पाई हुई बुद्धि को प्राप्त होकर बहुत प्रकार के पदार्थविज्ञान से मनुष्य-जन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पक्षों को प्राप्त होना चाहिए ॥ ९ ॥

वयमग्रे अवैता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनां अति ।

अस्माकं युष्मन्मधि पञ्च कृष्टिश्वा स्वर्गं शुशुचीत दुष्टम् ॥१०॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् ! आप ( अवैता ) अश्ववादि युक्त सेना समूह ( वा ) अथवा ( ब्रह्मणा ) धन से ( युष्टरम् ) युद्ध के माध्यम उत्पन्न करने योग्य ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम और ( जनान् ) जनो को जतलाते हो वैसे ( वयम् ) हम लोग ( अति, चितयेमा ) अत्यन्त चिन्ता से स्मरण कराते हैं। हे मनुष्यो ! जैसे ( अस्माकम् ) हम लोगो के ( वा ) अथवा विद्वानों के ( स्वः ) सुख के ( नः ) समान ( युष्मन् ) यश को ( कृष्टिषु ) मनुष्यों में विद्वान् प्रकाशित करे वैसे इस को तुम लोग ( शुशुचीत ) शुद्ध करो जैसे हमारे ( पञ्च ) पाँच ( उच्यते ) उत्तम ( अति ) अधिकार ऊपर वर्तमान हैं वैसे तुम्हारे भी हो ॥ १० ॥

भाषार्थ—विद्वानों के सच्ची, ज्ञान चाहनेवाले पुरुषों को चाहिए कि आप्त शिष्ट जनों से जैसा विज्ञान प्राप्त हो वैसे ही धीरो को दें। जैसे हम लोगो के ब्रह्मण्यो, विद्या, बल, धीन, पुरुषार्थ बढ़ते हैं वैसे सब के बढ़ें ऐसी हम लोग इच्छा करें ॥ १० ॥

स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्सुजाता इषयन्त सूरयः ।

यमग्रे यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्यं तोके दीदिवांसं स्वे र्धम ॥११॥

पदार्थ—हे ( सहस्य ) बल के विषय में उत्तम ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् ! ( वाजिनः ) उत्तम विज्ञान पुरुष ! ( नित्यं ) नित्य ( तोके ) छोटे व्यवहार में धीर ( स्वे ) अपने ( र्धमे ) धर्म में ( दीदिवांसम् ) प्रकाशित करते हुए ( यम् ) जिस ( यज्ञम् ) विद्याप्राप्ति के व्यवहार को ( उपयन्ति ) प्राप्त होते हैं ( यस्मिन् ) जिससे ( सुजाताः ) उत्तम पुरुषार्थ से प्रसिद्ध ( सूरयः ) विद्वान् जन आनन्द को ( इषयन्त ) प्राप्त होवें ( सः ) वह ( प्रशंस्यः ) प्रशंसा करने योग्य यज्ञ ( नः ) हम लोगो को आप ( बोधि ) बतलाइए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के मार्ग से धीर सुशीलता से नित्य पदार्थों को प्राप्त हो वे धीरो को भी प्राप्त करावें ॥ ११ ॥

उभयासौ जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्रे सूर्यश्च शर्मणि ।

वस्वो रायः पुरुषन्दस्य भुयंसः प्रजावतः स्वपत्यस्य सग्धि नः ॥१२॥

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) विज्ञान को प्राप्त हुए ( अग्ने ) परम विद्वन् और उपदेशक जन ! जिस कारण आप ( नः ) हमारे ( स्वपत्यस्य ) सुन्दर सत्तानयुक्त ( प्रजावतः ) प्रजावान् ( भुयंसः ) बहुत ( वस्वः ) निवास का हेतु ( पुरुषन्दस्य ) बहुत सुवर्णादि धनयुक्त ( रायः ) धन के दान करने को ( सग्धि ) समर्थ हो इससे ( ते ) आप के ( शर्मणि ) धर्म में ( स्तोतारः ) प्रशंसक ( सूरयः ) धीर विद्वान् जन ( उभयासौ ) दोनों प्रकार के हम लोग उत्पत्ति को प्राप्त ( स्वासः ) होवें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो धर्म से अनादि पदार्थों का सम्बन्ध करते हैं उन का अतुल धन, उत्तम प्रजा और सुशील अवस्था होते हैं जो पाण्डित्य और प्रगल्भता को प्राप्त होकर अन्त्यापक और उपदेशक होते हैं वे दुःख को नहीं देखते हैं ॥ १२ ॥

ये स्तोतव्यो गोअग्रामभ्यपेशमग्रे गतिमुपसृजन्ति सूरयः ।

अस्माञ्च तारश्च महि नेषि वस्य आ बृहद्वेदम विदथे सुवीराः ॥१३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! आप ( ये ) जो ( सूरयः ) विद्वान् जन ( स्तोतव्यः ) सर्व विद्याओं की प्रशंसा करनेवाले विद्वानों की ( गोअग्राम् ) जिस में पृथिवी वा धेनु मुख्य है और ( अभ्यपेशस्य ) अश्ववादिकों के रज विद्यमान उस ( रातिम् ) दान को ( उप, सृजन्ति ) देने हैं ( तान् ) उनको ( च ) और अर्घ्यों को तथा उन के समान ( अस्माञ्च ) हम लोगो को ( च ) और हमारे सम्बन्धियों को ( हि ) ही आप ( प्रवेष्टि ) सब विषय प्राप्त करते हैं इससे ( विदथे ) विशेष कर जानने योग्य व्यवहार में ( सुवीर ) सुन्दर समस्त विद्याओं में व्याप्त हम लोग ( वस्य ) अतिशय कर सब में वसन और अपने में धीरो का निवास करानेवाले ( बृहत् ) सब से बड़े ब्रह्म को ( आ, बहेम ) अच्छे प्रकार कहे उसका उपदेश करें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो उत्तम विद्वान् जन पढ़ानेवाले विद्वानों के लिए अधिकतर विद्या को अच्छे प्रकार देकर उन को श्रीमान् करते हैं वे हमारे प्रणेत अर्थात् सर्व विषयों को प्राप्त करानेवाले हो ॥ १३ ॥

इस सूक्त में अग्नि के विषय से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिए ॥

यह दूसरे मन्त्र में दूसरा सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

समिद्ध इत्यकादशसंख्य तृतीयसूक्तस्य गुत्समश्च अति । अग्निर्वैता ।

१, २ विराट्त्रिष्टुप्, ३, ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४, ८, ११ निष्पृ

त्रिष्टुप्, ७, १० त्रिष्टुप् छन्दः । अक्षर स्वराः । ७ अगती

छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अथ अथारह ऋचावाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में अग्नि का वर्णन किया है—

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।

होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवा देवान्यजत्वभिरर्हन् ॥१॥

पदार्थ—जैसे ( सुमेधाः ) गोभता मेधा बुद्धि जिसकी वह ( वेद्यः ) दिव्य विद्वान् ( वेदान् ) विद्वानों को ( यजतु ) प्राप्त हो वैसे ( होता ) सर्व पदार्थों का ग्रहण करनेवाला ( पावकः ) पवित्र करनेवाला ( अर्हन् ) योग्यता को प्राप्त हुआ ( अग्निः ) अग्नि भी है जैसे ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( निहितः ) रक्खा हुआ ( समिद्धः ) अच्छे प्रकार प्रदीप्त ( प्रत्यङ् ) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त होनेवाला ( अग्निः ) अग्नि ( विश्वानि ) सब ( भुवनानि ) भूगोलों को ( अस्थात् ) निरन्तर स्थिर होता है वैसे ( प्रदिवः ) जिस की उत्तम विद्या प्रकाशित है वह विद्वान् हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। यदि इस संसार में अग्नि अग्नि को न रखे तो कोई प्राणी सुख को न प्राप्त हो सके, वैसे विद्वान् विद्वानों का सत्कार कर वैसे अन्य लोग भी विद्वानों का सत्कार करें ॥ १ ॥

अथ अग्नि के वृक्षान्त से विद्वानों के विषय तो अगले अन्तर्ग में कहा है—

**नराशंसः प्रति धामान्यजान्तिस्तो विवः प्रति महा स्वर्चिः ।**

**धृतमथा मनसा हव्यसुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य सयमक्तु देवान् ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे ( नराशंसः ) मनुष्यों को प्रशंसा करने योग्य ( धामानि ) स्थानों को ( धामान्यजान्तिस्तो ) प्रकट करता हुआ ( स्वर्चिः ) प्रशंसित दीप्तिवाला अग्नि ( महा ) अपने बह्मपन से ( विवः ) गार्हपत्य, गार्हपतीय, क्षत्रियास्थ से तीन ( विवः ) दीप्तियों की तथा ( हव्यम् ) भक्षण करने योग्य पदार्थ ( प्रभुत्वम् ) प्राप्त करने से प्रतिकूल करता हुआ ( मूर्धन्य ) यज्ञ के ( मूर्धन् ) उत्तम भाग में ( धृतमथा ) तेज से परिपूर्ण वा प्रचण्ड ( मनसा ) अपने गुणों का जो विशाल उससे ( वेवाद् ) दिव्य गुण वा विद्वानों की अच्छे प्रकार प्रकट है वैसे ( सयमक्तु ) प्रकट कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे अग्नि, बिजुली प्रसिद्ध और सूर्यवत् से सब व्यवहारों को पूर्ण करता है वैसे विद्वान् जन विद्या, धर्म और सुन्दर नीति आदि की प्राप्ति से समस्त प्राणा जो मनुष्यों की, उनको पूर्ण करें ॥२॥

**ईक्षितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यभि मानुषात्पूर्वो जय ।**

**स आ वह मक्तां शशो अर्च्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषद् यजध्वम् ॥३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) बिजुली के समान प्रचण्ड प्रतापवाले विद्वज्जन ! ( मानुषात् ) और मनुष्य से ( पूर्वः ) प्रथम ( नः ) हम लोगों का ( अर्हन् ) उत्कार करते हुए ( ईक्षितः ) स्तुति को प्राप्त ( मनसा ) विद्वान् से ( वेवाद् ) दिव्य गुणों के समान विद्वानों का ( यभि ) उत्कार करते हैं ( सः ) तो आप ( जयन्तम् ) पवनों के ( अर्च्युतम् ) न नष्ट होनेवाले ( इन्द्रम् ) बिजुलीरूप ( बर्हिषधम् ) बड़े-बड़े पदार्थों में स्थिर होनेवाले ( शशः ) बल को ( अयम् ) आज ( आ, वह ) प्राप्त कीजिए । हे ( नर ) अग्रगामी नायकजनों ! उसको आप लोग ( यजध्वम् ) प्राप्त कीजिए ॥ ३ ॥

भावार्थ जो विद्वानों का उत्कार कर विद्या को ग्रहण करती हुई पवनों में स्थिर होनेवाली बिजुली को ग्रहण कर सकते हैं वे प्रलयबली होकर सर्वत्र सरकार को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

**देव बर्हिषधैमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुमरं वेद्यस्याम् ।**

**धृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विन्धे देवा आदित्या यज्ञियांसः ॥४॥**

पदार्थ—हे ( देव ) अग्नि के समान प्रकाशमान ! आप ( राये ) धन के लिए ( स्तीर्णम् ) जो डंका हुआ ( सुवीरम् ) जिससे अच्छे-अच्छे वीर होते हैं इस ( बर्हिषधम् ) बड़े हुए ( सुवीरम् ) सुल के धारण करने योग्य ( बर्हिः ) जल को ( अस्याम् ) इस ( देवी ) देवी में ( धृतेन ) धी से ( अक्तम् ) युक्त करो । हे ( वसवः ) पृथिव्यादिको वा ( आदित्या ) महिनी के समान विद्वानों ! तुम जैसे ( यज्ञियांसः ) यज्ञ करने में समर्थ ( विन्धे ) समस्त ( देवा ) विष्णुसुश्रुत विद्वान् जन ( इन्द्रम् ) इस धन को प्राप्त होते हैं वैसे उसको ( सीदत ) प्राप्त होवो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । मनुष्यों को चाहिए कि अथर्व धन्तरितस्थ जल, सुगन्ध्यादि पदार्थ युक्त करें जिससे समस्त प्राणी आरोग्य हों ॥ ४ ॥

अथ स्त्री-पुरुषों के आचरण को कहते हैं—

**वि भ्यन्तासुर्विया ह्यमाना द्वारो देवीः सुमायशा नमीमिः ।**

**व्यचेस्वतीर्वि प्रथन्तामजुयां वर्णं पुनाना यज्ञसं सुवीरम् ॥५॥२२॥**

पदार्थ—हे पुरुषो ! आप ( नमीमिः ) अन्नादिको वा ( उज्जिवा ) पृथिवी के साथ वर्तमान ( द्वारः ) द्वारों के समान सोभाशयी हुई और ( ह्यमाना ) ग्रहण की हुई ( सुमायशाः ) जिनकी सुन्दर बाल ( अजुयाः ) अवरहित मनुष्यों में उत्तमता को प्राप्त ( सुवीरम् ) उत्तम वीरों से युक्त ( यज्ञसम् ) यज्ञ और ( वर्याम् ) अपने रूप को ( पुनानाः ) पवित्र करती हुई ( व्यचेस्वतीः ) समस्त गुणों में व्याप्ति रखनेवाली ( देवीः ) देवीप्रमाण अर्थात् अयकती-दमकती हुई स्त्रियों को ( वि, अयन्ताम् ) विशेषता से आशय करो और उनके साथ शास्त्र वा सुखों की ( वि, प्रथन्ताम् ) विशेषता से कहें-सुनो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे काशकों के बनाये बरों में सुन्दर सोभायुक्त बनाये हुए द्वार हों वैसे स्त्रियों अर्धपरायण पतिव्रता स्त्री कीर्तिमती और उत्तम सन्तानों की उत्पन्न करनेवाली होवो ॥ ५ ॥

**साध्वर्षांसि सनतां न उक्षिते उवासानक्ता वर्येव रञ्जिते ।**

**तन्नुन्तसं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुधे पर्यस्वती ॥६॥**

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! ( तन्नुन् ) दूत को ( यज्ञस्य ) जैसे वस्त्र अथवाले वाली नसी वा ( यज्ञिते ) सज्जनमान ( यज्ञस्य ) आराधने योग्य यज्ञकर्त के ( यज्ञम् ) विस्तृत ( पेशः ) रज को ( संवयन्ती ) उत्पन्न कराते और ( समीची )

अच्छे प्रकार अपनी-अपनी कक्षा में चलते हुए ( पर्यस्वती ) प्रशंसित जलयुक्त ( सुदुधे ) सुन्दरता से सब कामों की पूरा करनेहारि ( उक्षिते ) सींचे हुए ( उवा-सानक्ता ) रात्रि दिन के समान तुम दोनों ( नः ) हम लोगों के लिए ( सनतां ) नम्रभाव के साथ वर्तमान ( साधु ) उत्तम ( साध्वर्षांसि ) कर्मों को करावो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमाकार है । सन्तान और भृत्यजन अपने पासलेवाले स्त्री-पुरुषों के प्रति ऐसी प्रार्थना करें कि तुम हमसे धर्म-युक्त कार्य करावो ॥ ६ ॥

**दैव्या होतांरा प्रथमा बिदुष्टर ऋजु यज्ञतः समृचा वपुष्टरा ।**

**देवान्यजन्तावतुथा समञ्जतो नामां पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( दैव्या ) विद्वानों में कुशल ( होतांरा ) लेने-देनेवाले ( प्रथमा ) प्रख्यात ( बिदुष्टरा ) भतीव विद्वान् ( वपुष्टरा ) भतीव क्पलावप्ययुक्त ( ऋजु ) प्रशंसित ( ऋजुषा ) ऋतु-ऋतु में ( देवान् ) पृथिवी आदि लोकों के समान ( यज्ञतः ) सत्कार करते हुए स्त्रीपुरुष ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( नामा ) बीच ( ऋजु ) सरलता जैसे हो वैसे ( संवयन्ताः ) सब व्यवहारों की सञ्जति करें वा ( त्रिषु ) तीन ( सानुषु ) शिखरों के ( अधि ) ऊपर ( समञ्जतः ) अच्छे प्रकार काम करें वैसे तुम भी प्रयत्न करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे बह्मचर्य से पूर्ण विद्या और शिक्षा को प्राप्त सुन्दरता से युक्त स्वयंवर विवाह विधि से परिणयग्रहण किये हुए विद्वानों के सङ्गी, प्राप्त शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञा, विद्वान् अध्यापक स्त्री-पुरुष सत्कर्मों में वर्तते हैं वैसे सबको प्रयत्न करना चाहिए ॥ ७ ॥

**सरस्वती साधयन्ती धियम् इष्ठां देवी भारतो विश्वतृप्तिः ।**

**तिस्रो देवोः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरयं निषधं ॥८॥**

पदार्थ—जो ( साधयन्ती ) विद्या और उत्तम शिक्षा से औरों को विद्वान् कराती ( सरस्वती ) प्रशस्त विद्वान् करानेवाली वाणी-सदृश स्त्री ( देवी ) देवी-प्यमान ( इष्ठा ) स्तुति करने योग्य ( विश्वतृप्तिः ) समस्त ससार को क्षीप्रता करानेवाली ( भारतो ) और शुभ गुणों को धारण करनेवाली ( तिस्रः ) तीन ( देवी ) मनोहर देवी ( इन्द्रम् ) इस ( विश्वतृप्तिम् ) क्षिप्ररहित ( बर्हिः ) अन्त-रिक्ष को ( निषधः ) निरन्तर प्राप्त होके ( स्वधया ) अन्न से ( नः ) हमारी ( धियम् ) बुद्धि वा कर्म को ( आ, पान्तु ) अच्छे प्रकार पालें उनका ( शरणम् ) आश्रय हम लोगों को करना चाहिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—एक माता दूसरी पढ़ानेवाली और तीसरी उपदेश करनेवाली स्त्री कन्याओं को सदा समीप में सेवनी चाहिए जिससे बुद्धि और विद्या नियम बढ़े ॥ ८ ॥

अथ पुत्र विषय को अगले अन्तर्ग में कहा है—

**पिशङ्गकूपः सुमरों वयोधाः भृष्टी वीरो जायते देवकामः ।**

**मजां त्वष्टा वि व्यंतु नाभिर्मस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९॥**

पदार्थ—जैसे ( पिशङ्गकूपः ) सुवर्ण के रूप के समान जिसका रूप ( सुवर्ण ) भरण-पोषण करता हुआ ( वयोधाः ) धर्म स्थापन करनेवाला ( देवकामः ) और विद्वानों की कामना करता वह ( भृष्टी ) शीघ्र ( वीरः ) सकल विद्याओं को प्राप्त होनेवाला पुरुष ( जायते ) उत्पन्न होता है जैसे ( त्वष्टा ) विविध रूप रखनेवाला ईश्वर ( ऋते ) हम लोगों को ( मजाम् ) सन्तान ( वि, व्यन्तु ) देवे ( अथ ) इसके अनन्तर हम ( देवानाम् ) विद्वानों की ( नाभिम् ) नाभि को और ( पाथः ) रक्षा करनेहारि अन्न को ( अग्नि ) भी ( एतु ) प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो अच्छा उत्सुक किये, रोग हरने और बुद्धि देनेवाले उत्तम अन्न का भोजन कर सन्तानोत्पत्ति करते हैं उनके सन्तान विद्वानों के प्रिय, दीर्घ आयुवाले और सुशील होते हैं ॥ ९ ॥

**वनस्पतिरवसृजस्य स्यादग्निर्विः सृदयाति प्र धीमिः ।**

**त्रिधा समकं नयतु मजानन्देव्यो देव्यः शमितोपं हव्यम् ॥१०॥**

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे ( धीमि ) कर्मों के साथ वर्तमान ( वनस्पतिः ) वरगद आदि ( अवसृजन् ) फलादिकों का त्याग करता हुआ ( उप, स्वात् ) उप-स्थित होता है वा ( अग्निः ) अग्नि ( त्रिधा ) तीन प्रकार के ( समकम् ) समूह को प्राप्त हुए ( हविः ) होमने योग्य द्रव्य को ( सृदयाति ) प्राणियान के मुख के लिए कण-कण करके पहुँचाता है वैसे ( शमिता ) शांति करनेवाला ( देव्यः ) विद्वानों में प्राप्त हुए ( मजाम् ) उत्तम ज्ञान को प्राप्त होते हुए आप ( देव्यः ) दिव्य गुणों के लिए ( उप, हव्यम् ) समीप में ग्रहण करने योग्य पदार्थ को ( प्र, नयतु ) प्राप्त कीजिए ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे वनस्पति और अग्नि अपने कर्मों से समस्त प्राणियों का उपकार करते हैं वैसे विद्वान् जन अध्ययन-अध्यापन और उपदेश से सबका उपकार करें ॥ १० ॥

**धृतं मिमिक्षे धृतमस्य योनिर्धृते श्रितो धृतम्वस्य धाम ।**

**अनुध्वजमा वह मादपस्व स्वाहाकृतं वृषभ वसि हव्यम् ॥११॥२३॥**



पदार्थ—हे ( बृहन् ) अष्ट जन ! जो आप ( स्वाहाकृतम् ) उत्तम किया से उत्पन्न किये हुए ( बृहन् ) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को ( बलि ) प्राप्त करते ही सो आप ( बृहन् ) धन के अनुकूल व्यवहजन द्रव्य को ( धा, बहु ) सब प्रकार से प्राप्त कीजिए जैसे मैं ( वृत् ) भी को ( निमित्त ) सींचने की इच्छा करता हूँ वैसे आप सींचने की इच्छा करें। जैसे ( अस्मि ) इस धमि का ( वृत् ) प्रदीप्त होने का वृत् ( योनिः ) कारण है ( वृत् ) भी मे ( अस्मि ) सेवन किया जाता ( वृत् ) तेज ( उ ) ही ( अस्मि ) इस धमि का ( धाम ) आधार है वैसे उससे आप ( अस्मि ) धानन्दित हूँ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य यज्ञ में अग्नि जैसे वैसे उपकार करनेवाले, परोपकार का आश्रय किये हुए, धीरो को सुखी करते हैं वैसे आप भी उनसे उपकार को प्राप्त धीर आनन्दित होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् धीर स्त्रीपुरुषों के आचरण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में तीसरा सूक्त और तेईसवाँ अर्थ समाप्त हुआ ॥

ॐ

हुव इति नवमस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य सोमाहुतिर्भावेन ऋषिः ।

अग्निर्वेदता । १, २ स्वरान् पठन्ति, २, ३, ५-७ आर्षो

पठन्तिः । पञ्चम स्वरः । ४ आह्वयविष्णुः

सुव । अथम स्वरः । ६ निर्वृत्तिः ।

अथम स्वरः ॥

अथ नव ऋचावाले चतुर्थ सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृत्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।

मित्वं यो दिधिषायो भूदेव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( आदेवे ) सब धीर से विद्या प्रकाशयुक्त ( जने ) विद्वान् मनुष्य के निमित्त ( वः ) जो ( मित्र, इव ) मित्र के समान ( देव ) व्यवहार का हेतु ( दिधिषायः ) यथावत् पदार्थों का धारण करनेवाला ( जातवेदा ) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान अग्नि प्रसिद्ध ( सूत ) होता है उस को ( विद्वान् ) प्रजाजनों के बीच ( सुद्योत्मानम् ) सुन्दरता से निरन्तर प्रकाशमान ( सुप्रयसम् ) अग्नि प्रकार मनोहर ( सुवृत्तिम् ) सुन्दर स्थापन करनेवाले ( अतिथिम् ) अतिथि के समान वर्तमान ( अग्निम् ) अग्नि की ( वः ) तुम लोगों के लिए ( हुवे ) प्रशंसा करता हूँ वैसे हम लोगों के लिए तुम अग्नि की प्रशंसा करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा धीर वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य परस्पर विद्या देके जगत् के प्रकाश को धारण कर वा मित्रों के समान सुख देनेवाले विद्वानों को जानने योग्य बिजुलीरूप अग्नि की प्रशंसा करते हैं वे उसके गुणों को जाननेवाले होते हैं ॥ १ ॥

इम विधन्तो अपां सधस्ये द्वितादधुर्भृगवो विश्वायोः ।

एष विश्वान्यस्यस्तु भूमा देवानामग्रिरतिर्जीराश्वः ॥ २ ॥

पदार्थ—जो ( एष ) यह ( अग्रिः ) समर्थ ( जीराश्वः ) जिसके वेगवान् शीघ्रगामी गुण विद्यमान वह ( अग्नि ) अग्नि ( भूमा ) बहुताई से ( देवानाम् ) दिव्य-गुणवाले पृथिवी आदि लोक-लोकान्तर्गतों के ( विश्व ) प्रजागणों में ( अपाः ) प्राप्त अग्रहार को ( विश्वानि ) समस्त वस्तुओं को सब धीर से व्याप्त होता हुआ विद्यमान है जिसे ( इषम् ) इस अग्नि को ( विश्वः ) सेवते हुए ( भृगवः ) विद्वान् जन ( अपाः ) अन्तरिक्ष के जन वा प्राणों के ( सधस्ये ) समान स्थान में ( एष ) चले, स्थापन करते हैं उस के साथ यहाँ ( द्विता ) दोनों व्यवहारों का भाव अर्थात् शराग्निभाव और पञ्चकलाग्निभाव ( अग्रस्तु ) सब धीर से हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो अग्नि अपनी व्याप्ति से प्रजाजनों में प्रविष्ट है उससे समस्त वेगवान् यन्त्रकलाओं से प्रचलित किये हुए यान शीघ्र चलनेवाले बनाने चाहिये ॥ २ ॥

फिर अग्नि काव्यों से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्निं देवासो मानुषीषु विश्वे प्रियन्धुः क्षेप्यन्तो न मित्वम् ।

स दीदयदुक्षतीरुम्या आ दक्षायो यो दास्वते दम आ ॥ ३ ॥

पदार्थ—जिस ( अग्निम् ) अग्नि को ( मानुषीषु ) मनुष्यसम्बन्धी ( विश्वे ) प्रजाजनों में ( क्षेप्यन्तः ) निवास करते हुए ( देवासः ) विद्वान् जन ( प्रियम् ) प्रिय, मनोहर ( विश्वम् ) मित्र के ( न ) समान ( दक्षायुः ) अग्नि प्रकार स्थापन करें ( यः ) जो ( दक्षायः ) सब पदार्थों को छिन्न-भिन्न करनेवाला अग्नि ( इमे ) कलाश्वर मे ( दास्वते ) दानशील जन के लिए ( उक्षतीः ) मनोहर ( उम्याः ) रात्रियों को ( आ बीदयन् ) प्रज्वलित करता, प्रकाशित करता है ( सः ) वह सबको सप्रयुक्त करना चाहिए अर्थात् वह कलाश्वरों से युक्त करना चाहिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो अग्नि मित्र के समान सुख देता और सब प्रजाजनों में प्रदीप समान सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है वह विद्वानों को अपने कामों में अनुकूल उसका योग करना चाहिए ॥ ३ ॥

अस्य रथा स्वस्यैव पुष्टिः संहृष्टिरस्य दियानस्य दक्षोः ।

वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामस्यो न रथो बोधवीतिन् वारान् ॥ ४ ॥

पदार्थ—( यः ) जो ( रथः ) रथों में उत्तम प्रशस्ति ( अस्यः ) सुशिक्षित तुरङ्ग उसके ( न ) समान ( वारान् ) बालकों को जैसे वैसे स्वीकार करने योग्य लोगों को धीर ( जिह्वाम् ) अपनी जिह्वा को ( बोधवीतिन् ) निरन्तर कम्पाता है धीर ( बोधवीषु ) होमलतादि बोधधियों में ( वि, भरिभ्रत् ) विशेषकर निरन्तर गुणों को धारण करता हुआ विद्यमान है उस ( अस्य ) इसकी हुई ( स्वस्यैव ) अपनी पुष्टि के समान दूसरे की ( रथा ) प्रशसनीय ( पुष्टिः ) पुष्टि अर्थात् धातुबुद्धि धीर ( दियानस्य ) बुद्धि को प्राप्त होते हुए ( अस्य ) इस ( दक्षोः ) दाह करनेवाले अग्नि की ( संहृष्टिः ) अग्नि प्रकार दृष्टि करनी चाहिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। मनुष्यों को जैसे अपने बोधण के लिए अग्निविद्या प्राप्त की जाती है, वैसे धीरो के लिए भी करनी चाहिए। जो ईश्वरों से बहुताई धीर पदार्थों को जलाता है वह रथों में युक्त किया हुआ अग्नि शीघ्र गमन कराता है। जैसे बक्ता अपनी जिह्वा को कम्पाता है वैसे अग्नि भूगोशों को कम्पाता है ॥ ४ ॥

आ यन्मे अमर्षं वनदः पनन्तोश्मिभ्यो नार्मिमीत वर्णीम् ।

स चित्रेयं चिकित्ते रंसु मासा जुजुर्वो यो मुहुरा युवा भूत ॥ ५ ॥ ॥ ५ ॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( चित्रेयः ) अद्भुत ( भासा ) प्रकाश से ( मे ) मेरे ( वर्णीम् ) रूप का ( चिकित्ते ) विज्ञान कराता ( सः ) वह ( रंसु ) रमणीय पदार्थ को ( अमर्षम् ) जल के समान ( आ ) अग्नि प्रकार जलताता है ( यः ) जो ( जुजुर्वन् ) जीर्ण हुआ भी ( मुहुरा ) बार-बार ( युवा ) तरुण के समान ( आ, भूत् ) अग्नि प्रकार होता है जिसकी ( उश्मिभ्यः ) कामना करते हुए जनों को ( वनदः ) प्रशंसा करनेवाले विद्वान् ( पनन्तः ) प्रशमारूप स्तुति करते हैं वह ( न ) नहीं ( अर्मिमीत ) मान करता अर्थात् अपनी तीक्ष्णता के कारण सबको जलाता, सब मनुष्य उसका अग्नि प्रकार प्रशंसा करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो अग्नि के समस्त अविद्यमान को विद्यमान के समान करता और जैसे जीव वृद्धपन और मरण को प्राप्त होकर फिर उत्पन्न हुआ जवान होता है वैसे बार-बार बुद्धि धीर अय को प्राप्त होता है वह अग्नि व्यवहारों में युक्त करने योग्य है ॥ ५ ॥

आ यो वनां तातृषाणो न माति वायं पथा रथ्यैव स्वानीत् ।

कुष्णाध्वा तपूरणश्चिकेत धौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो ( वना ) वन धीर जलो के प्रति ( तातृषाणः ) निरन्तर प्यासे के ( न ) समान ( आ, माति ) अग्नि प्रकार प्रकाशित होता है धीर ( वना ) मार्ग से ( वा ) जल के ( न ) समान तथा ( रथ्यैव ) रथ आदि के लिए जो हित है उन मार्ग अर्थात् सबके समान ( स्वानीत् ) शब्दायमान होता है जो ( कुष्णाध्वा ) काले वर्णयुक्त ( तपुः ) सब धीर से तपानेवाला ( रणः ) रमणीय ( स्मयमानः ) कुछ मुसकाता-सा हुआ ( धौरिव ) सूर्य के प्रकाश के समान ( नभोभिः ) अग्निवि पदार्थों में ( चिकेत ) उद्बोध को प्राप्त हो अर्थात् प्रज्वलित हो वह विद्वानों ही को जानने योग्य है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे कोई अति तृषायुक्त कहनेवाला जन हँसता हुआ कहे कि जल मार्ग में जाता है वैसे वनस्थ अग्नि बहुत शब्दायमान होता है ॥ ६ ॥

फिर अग्निपरता से ही विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स यो व्यस्थादमि दसंदुर्वी पशुर्नति स्वयुरगोपाः ।

अग्निः शोचिष्मो अतसान्युष्णन्कुष्णव्यथिरस्वदयन् भूमं ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( भूमः ) बहुताई के साथ ( व्यस्थात् ) बिबिध प्रकार में स्थित होता है ( स्वयुः ) जो आप जाता अर्थात् बिना चैतन्य के समान गति देता है ( अगोपाः ) पालन करनेवाले गुराणों से रहित पदार्थों को अपने प्रताप से सन्ताप देनेवाला ( पशुः ) पशु के ( न ) समान ( एति ) जाता है ( उर्वीम् ) धीर भूमि को ( अग्नि, वनत् ) सब धीर से जलाता है ( सः ) वह ( शोचिष्मान् ) बहुत सपटोंवाला ( कुष्णव्यथिः ) पदार्थों के अर्थों को सींचने और उनको व्यथित करनेवाला ( अग्निः ) अग्नि ( अतसानि ) निरन्तर जानेवाले त्रसरेण आदि पदार्थों को ( उष्णन् ) जलाता धीर ( अस्ववयत् ) स्वादिष्ट करता हुआ ( न ) सा वर्तमान है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो पृथिवी आदि पदार्थों में व्यवस्था को प्राप्त, मूर्तिमान् पदार्थों का जलानेवाला, रक्षकरहित पशु के समान आप जानेवाला, प्रकाशमय अग्नि अपने तेज से बिखरे हुए त्रसरेण्यों को भी सब धीर से तपाता है वह अग्नि बलिष्ठ है यह जानना चाहिए ॥ ७ ॥

न ते पूर्वस्यावसो अग्नीतो वृतीयं विदये मन्म शंसि ।

अस्मे अग्ने संयदीरं वृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्वं रयिन्दाः ॥ ८ ॥

वचार्थ—हे ( ज्ञाने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वज्जन ! ( हे ) आपकी ( पूर्वस्थ ) पिछली ( अवस्था ) रक्षा सम्बन्ध के ( ज्योतिषी ) अध्ययन में ( स्तुति ) तीसरे ( विद्वत् ) संज्ञा के निमित्त आप ही ( अथ ) विज्ञान की ( ज्ञानि ) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हैं वे आप ( अथ ) हम लोगों के लिए ( संयोजक ) जिसमें संयमयुक्त वीरजन विद्यमान ( वृहत्तम् ) जो बड़ा हुआ है ( अनुमत्तम् ) उस प्रशंसित अन्न और ( स्वयम्भुवम् ) उत्तम अर्पणयुक्त ( वाजम् ) पदार्थ बोध और ( रश्मिम् ) जन को ( पु ) शीघ्र ( वा. ) दीजिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिस विद्या पढ़े हुए रक्षा करनेवाले के समीप से स्तुतीय सवन अर्थात् ब्रह्मचर्य के तीसरे भाग को शीघ्र पूर्ण किये पीछे अन्धावि विद्यार्थ प्राप्त होकर उत्तम जन, बल और प्रजावान् हम लोग ही उसकी आप बतसाइए ॥ ८ ॥

स्वया यथा गृहसमवाप्तौ भवे गुहा बन्वन्त उर्ध्वं अभि ध्युः ।

सुवीरांसो अभिमातिवाहुः स्मरिभ्यो गृजते तद्व्यो धाः ॥६॥२५॥

वचार्थ—हे ( ज्ञाने ) अग्नि के समान विद्वन् ! ( यथा ) जैसे ( स्वया ) आपके साथ वर्तमान ( गृहसमवाप्तौ ) और निम्नक बुद्धिमानों के आनन्द के समान आनन्द है वे ( गुहा ) बुद्धि में ( बन्वन्तः ) सब प्रकार के पदार्थों का विभाग करते हुए ( सुवीरांसः ) उत्तम वीरों के युक्त जन ( स्मरिभ्यः ) विद्वानों से विद्यार्थों की प्राप्ति होकर ( उपरान् ) वेधों को सर्व के समान ( अभिमातिवाहुः ) अभिमान करने और अनुजनों की सहनेवाले ( अभिभ्युः ) सब ओर से ही जैसे जो ( तत् ) उस ( यथा ) काम की ( वाः ) धारण करता है उसकी जो ( गृजते ) स्तुति करते हैं उनके साथ ( स्मन् ) ही हम लोग भी ऐसे ही ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है । हे मनुष्यो ! जैसे आप विद्वानों से विद्या और शिक्षा ग्रहण कर आनन्दित, विजयमान और वीरपुरुषों से युक्त प्रशसनीय जन होते हैं वैसे अग्निविद्या से युक्त पुरुष अन्धकार को जैसे सूर्य वैसे दुःख का विनाश करते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में चौथा सूक्त और पच्चीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

होतैत्यथर्षस्य पञ्चमस्य वृत्तस्य सोताहृतिर्गर्षस्य ऋषिः । अभिर्वेवता ।

१, ३, ५ निबुवन्तुः २, ४, ६ अनुवन्तुः, ८ विराडनुवन्तुः  
छन्दः । गान्धारः स्वरः । ७ सुरिगुणिक छन्दः ।

विवाहः स्वरः ॥

अथ आठ ऋचावाले पाँचवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में जीव के गुणों का वर्णन करते हैं—

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।

प्रयसञ्जेन्यं वसु श्केमं वाजिनो यमम् ॥१॥

वचार्थ—जैसे ( होता ) आधाता अर्थात् गुरादि वा अन्य पदार्थों का ग्रहणकर्ता ( चेतनः ) ज्ञानादि गुणयुक्त ( पिता ) और पालन करनेवाला जीव ( ऊतये ) रक्षा आदि के लिए ( पितृभ्य ) वा पालन करनेवालों के लिए ( श्केमम् ) जीतने योग्य ( यमम् ) नियमकर्ता को और ( वसु ) जन को ( वाजिनः ) उत्पन्न करे और विद्वान् जन ( प्रयसन् ) प्रकृष्टता से सज्ज करते हैं वैसे ( वाजिनः ) विज्ञानवान् हम लोग उक्त विजय की प्राप्ति कर ( श्केम ) सर्व ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे सन्निधानन्दस्वरूप परमेश्वर इस संसार में सबकी रक्षा के लिए अनेक प्रणियों को रचता है वैसे विद्वान् जन भी आचरण करें ॥ १ ॥

अथ ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आ यस्मिन्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्थं नेतरि ।

मनुष्यैर्यममष्टमं पोता विश्वं तद्विन्वति ॥२॥

वचार्थ—( यस्मिन् ) जिस ( यज्ञस्थ ) सज्ज करने के योग्य जगत् के ( नेतरि ) सायक सविता सूर्यमण्डल में ( यज्ञ ) सात ( रश्मयः ) किरणों ( आसताः ) विस्तृत हैं उसमें जो ( मनुष्यः ) मनुष्य के सुख ( वैश्वम् ) दिव्य रश्मियों में प्रसिद्ध ( अष्टमम् ) आठवाँ विस्तृत है वह ( पोता ) पुत्र करनेवाला ( विश्वम् ) समस्त जगत् को प्रकाशित करता है और ( तत् ) उस सूर्यमण्डल को भी ( ज्वलति ) व्याप्त होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो सप्तविध रश्मियोंवाला सूर्य परिभ्राष्ट के विस्तार की प्राप्ति और पवित्र करनेवाला है उसमें जो चेतन ब्रह्म व्याप्त वर्तमान है वह समस्त सूर्यादिक को व्यवस्था प्रकट करता है, जैसे मनुष्य विस्फुल्ल के अनेक वस्तुओं की बसाते हैं वैसे अगदीश्वर अखिल संसार का विधान करता है ॥ २ ॥

हृजन्ते वा यदीमनु बोधवृद्धानि वेरु तत् ।

परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवामवत् ॥३॥

वचार्थ—सूर्य ( यत् ) जो ( ईन् ) जल को ( हजन्ते ) धारण करता है ब्रह्मेता ( वा ) वा ( ब्रह्माणि ) बड़े-बड़े ब्रह्मविषयों का ( अनुबोधत् ) बार-बार उपदेश करता है ( तत् ) उस सबको जिस कारण ईश्वर ( वे, उ ) जानता ही है और ( विश्वानि ) समस्त ( काव्या ) उत्तम बुद्धिमानों के कर्मों को ( परि ) सब ओर से जानता ही है इस कारण जैसे ( नेमिः ) घुरी ( चक्रम् ) पहिये की चत्तनियाली होती वैसे इस संसार के व्यवहारों को चत्तनियाला विद्वान् ( अभवत् ) होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । सूर्य जल को धारण करता है वा विद्वान् जन ब्रह्मविषयों का कहते हैं उस सबको आपक परमेश्वर साङ्गोपाङ्ग जानता है ॥ ३ ॥

अथ विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशस्ता क्रतुनाजनि ।

विद्वाँ अंस्य ब्रवा भवा क्याह्वानु रोहते ॥४॥

वचार्थ—जो ( विद्वान् ) विद्वान् जन ( शुचिना ) पवित्र ( क्रतुना ) बुद्धि वा कर्म के ( साकम् ) साथ ( शुचिः ) शुद्ध ( प्रशस्ता ) उत्तम सासनकर्ता ( अजनि ) उत्पन्न होता है ( हि ) वही ( अंस्य ) इस ईश्वर प्रकाशित चारों वेदों के ( भूवा ) निश्चल अविनाशी ( ब्रवा ) सत्याचरणों को स्वीकार कर ( क्याह्वानु ) विस्तार की प्राप्ति साक्षात् के समान ( अनु, रोहते ) बुद्धि को प्राप्ति होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो पवित्र विद्वानों के साथ सज्ज कर उत्तम विद्या की उत्पन्न करके अजनों के उपदेशक हो वेदविहित कर्मों का आचरण कर आप कहते हैं वे शीरों की उन्नति करनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

अथ विद्वती स्त्री के विषय में कहते हैं—

ता अंस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।

कुवित्सुभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥५॥

वचार्थ—( ताः ) जो ( स्वसारः ) बहन, कन्याजन ( वितुभ्यः ) कर्म, उपासना और ज्ञान विद्यार्थों से ( कुवित्, वरम् ) स्वीकार करने योग्य वस्तुसमुदाय को ( आ, ययुः ) प्राप्ति होवे ( ताः ) वे ( अंस्य ) इस ( नेष्टुः ) नायक सर्व-विद्याधी ने अश्वयामी वेद के ( वर्णम् ) स्वीकार करने योग्य विषय और ( इष्टम् ) जल को ( आयुवः ) प्राप्ति हुई ( धेनवः ) गौशों के समान सबको सुखों से ( सचन्त ) सम्बन्ध करती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो बहन अपने प्रियवन्तु को और कन्या विद्याविषय को प्राप्ति होती है वे गौशों के समान उत्तम सुख को उत्पन्न करती हैं ॥ ५ ॥

यदी मातुरूप स्वसां वृतं मरन्त्यस्थित ।

तासामध्वर्युरागतौ यवौ वृष्टीव मोदते ॥६॥

वचार्थ—( यदि ) जो ( यत् ) जल को ( उप, वरन्ती ) समीप होकर भरनेवाली ( मातुः ) माता की ( स्वसा ) बहिन वा ( सासाम् ) उन पूर्वोक्त कन्याओं की अध्यापिका ( अस्थित ) स्थित होती है तो ऋत्विक् और ( अध्वर्युः ) यज्ञ का करनेवाला यज्ञ को ( आगतौ ) प्राप्ति होकर आनन्दित होते हैं वैसे ( यवः, वृष्टीव ) वृष्टि से प्रोषवि वैसे ( मोदते ) हर्ष को प्राप्ति होती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकसुतोपमालंकार है । यदि कन्याजन अध्यापिका विद्वती और माता को प्राप्ति होकर विद्वती होती है तो जल से प्रोष-धियों के समान सब ओर से बुद्धि को प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

अथ विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है -

स्वः स्वाय धायसे कुणुताश्विगृत्विजम् ।

स्तोमं यज्ञं चादरं बनेमा ररिमा वयम् ॥७॥

वचार्थ—जैसे ( स्वः ) आप ( स्वाय ) अपने ( धायसे ) धारण करनेवाले स्वभाव के लिए ( कुणुताम् ) किसी काम को करें वा ( ऋत्विक् ) ऋतुओं के अनु-कूल सब व्यवहारों की प्राप्ति कराता हुआ ( ऋत्विजम् ) दूसरे को अपने अनुकूल वा ( स्तोमम् ) स्तुति, प्रशंसा के योग्य व्यवहार ( यज्ञम्, च ) और यज्ञ को करे वैसे ( वयम् ) हम लोग ( ररिम् ) रने ( आत् ) और ( वरम् ) परिपूर्ण ( बनेम ) अन्धे प्रकार सब पदार्थों का सेवन करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे आप अपने हित के लिए प्रवृत्त हो वा विद्वान् जन विद्वानों और यज्ञ करनेवाले विविध प्रकार के क्रियामय को सिद्ध करते हैं वैसे हम लोग भी प्रवृत्त हों ॥ ७ ॥

यथा विद्वाँ अरङ्गरद्विवैभ्यो यजतेभ्यः ।

अयमर्थे स्वे अपि यं यज्ञञ्चक्रमा वयम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( यथा ) जैसे ( अथम् ) वह ( विद्वान् ) आप्तजन ( विद्यमानः ) समस्त ( यज्ञस्य ) विद्वानों की सेवा करनेवाली से पाई हुई विद्याओं से ( अथम् ) दूसरों को परिपूर्ण ( करतु ) करता है जैसे ( त्वे ) तेरे निमित्त ( यम् ) जिस ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( यथम् ) हम लोग परिपूर्ण ( ब्रह्म ) करें वैसे तू ( अग्नि ) भी कर ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे आप्त विद्वान् जन जगत् के लिए सत्योपदेश कर मनुष्यों को सत्य बोधवाले करते हैं वैसे सब आप्त विद्वानों को निरन्तर अनुष्ठान करना-कराना चाहिए ॥ ८ ॥

इस सूक्त में जीव, ईश्वर, विद्वान् और विदुषियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह दूसरे मन्त्र में पौषणी सूक्त और छन्धीसर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥



इमानित्यस्यावर्चस्य वचस्य सूक्तस्य सोमाहुतिर्भर्तव्यः ।

अग्निर्वचसा । १, २, ५, ८ गायत्री, २, ४, ६ त्रिष्टुप्गायत्री,

७ विराट् गायत्री छन्दः । अक्षरः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले छठे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों का वर्णन करते हैं—

इमां मे अग्ने समिधमिमांसुसर्दं वनेः । इमा उ पु भ्रुधी गिरः ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान अध्यापक विद्वन् ! जैसे अग्नि ( मे ) कीरे ( इमान् ) इस ( समिधम् ) ईधन को और ( इमान् ) इस ( उपसर्दम् ) वेदी को कि जिसमें स्थित होते हैं सेवन करता है वैसे आप ( वनेः ) सेवन करनेवाले विद्यार्थी की ( इमा, उ, गिरः ) वाणियों को ( सु, भ्रुधि ) सुन्दरता से सुनो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । हे विद्वन् ! जैसे अग्नि समिधाद्यो में बढता है वैसे हम लोगों की परीक्षा से और हमारे बच्चों को सुनकर बड़ाए ॥ १ ॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहा है—

अया तं अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सुहेनं सुजात ॥२॥

पदार्थ—हे ( सुजाता ) घोभन गुणों में प्रसिद्ध ! ( अश्वमिष्टे ) घोड़े के इच्छा करने और ( ऊजः ) बल को ( नपात् ) न पतन करानेवाले ( अग्ने ) अग्नि के समान प्रकाशमान ( ते ) आपके सम्बन्ध में जो ( अग्निः ) अग्नि है उस की ( अया ) इस समिधा से और ( सुहेनम् ) उत्तमता से कहे हुए सूक्त से हम लोग ( विधेम ) सेवन करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो विद्या और साधनों में अग्नि का युक्ति के साथ अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे अग्नि के पराक्रम से अपने कामों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

तं स्वा गीर्भिर्गिर्वेणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येयं सपर्येवः ॥३॥

पदार्थ—हे ( द्रविणोदः ) धन को देनेवाले विद्वान् जन ! अग्नि के समान वर्तमान ( द्रविणस्युम् ) अपने को धन की इच्छा करनेवाले ( विधेमसम् ) विद्या वाणी को सेवते हुए ( तम् ) उन ( स्वा ) आपको ( सपर्येवः ) अपने को सेवने की इच्छा करनेवाले जन ( गीर्भि ) सुन्दर शिक्षित वाणियों से सेवते हैं वैसे हम लोग ( सपर्येव ) सेवन करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जो गुण, कर्म, स्वभाव से अग्नि को विशेष जानकर कार्यसिद्धि के लिए उसका अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे श्रीमान् होते हैं ॥ ३ ॥

स बौधि सूरिर्मधवा वसुपते वसुंदावन । युयोध्यस्मद्देव्यांसि ॥४॥

पदार्थ—हे ( वसुपते ) वनों की पालना करने और ( वसुंदावन ) वनों को देनेवाले जो ( मधवा ) परमप्रसन्न बनभुक्त ( सूरि ) विद्वान् ! आप ( बौधि ) सब व्यवहारों को जानते हैं ( स ) सो आप ( अस्वत् ) हम लोगों के ( देव्यांसि ) देव भरे हुए कामों को ( युयोधि ) अलग कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो राग द्वेषरहित गुणग्राही जन होते हैं वे औरों को भी अपने सब्ध करके पाता हुए लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ४ ॥

स नो वृष्टिं दिवस्पृषि स नो वाजंमनर्वायम् ।

स नः सहस्रिणीरिषः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( सः ) वह अग्नि ( न ) हम लोगों के लिए ( दिवः ) सूर्य प्रकाश और मेघमण्डल से ( वृष्टिम् ) वर्षाओं को करता है वा ( सः ) वह अग्नि ( नः ) हम लोगों को ( अन्नस्यम् ) जोड़े जिसमें नहीं विद्यमान है उस ( वाजम् ) बैगवान् रथ को प्राप्त कराता है वा ( सः ) वह अग्नि ( नः ) हमारे लिए ( सहस्रिणीः ) असंख्यात प्रकार के ( इषः ) अन्नों को ( वरि ) सब ओर से उत्पन्न कराता है वैसे आप वर्तान् कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । मनुष्यों को वैसे यत्न करना चाहिए जिससे अग्नि की उत्तेजना से बहुत उपकार हो ॥ ५ ॥

ईक्षानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥६॥

पदार्थ—हे ( यविष्ठ ) अतीव युवावस्थावाले ( यजिष्ठ ) अत्यन्त प्रसन्न और सत्कार के योग्य ( दूत ) दूतों को सब ओर से कष्ट देने और ( होतः ) दामकर्म करनेवाले ! आप जैसे ( अवस्यवे ) अपने को रक्षा की इच्छा करनेवाले ( ईक्षानाया ) स्तुति करते हुए जन के लिए ( गिरा ) वाणी से सुख देते हैं वैसे आप ( नः ) हम लोगों को ( अवाहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे मनुष्यों का दूतकर्म अग्नि, पृथिवीतल के ऊपर पदार्थों को पहुँचा और जलो को वर्षाकर सबकी रक्षा का निमित्त होता है वैसे विद्वान् जन उत्तम वचन से सबका हित करनेवाला होता है ॥ ६ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अन्तर्ध्वं ईयसे विद्वान् जन्मोमयां कवे । दूतो जन्मैव मित्र्यः ॥७॥

पदार्थ—हे ( कवे ) क्रम-क्रम से बुद्धि को विषयों में प्रविष्ट करनेवाले सर्वज्ञ ( अन्ते ) विष्णु की समान आप ही प्रकाशमान जगदीश्वर वा ( विद्वान् ) सब विषयों को जाननेवाले विद्वान् जन ! आप ( हि ) ही ( मित्र्यः ) मित्रों में साधु ( दूतः ) सब से समाचार के देनेहारे ( जन्मैव ) जनो के लिए हितकारी जैसे ही वैसे ( अन्तः ) हृदयाकाश के बीच ( ईयसे ) प्राप्त होते हो ( उन्मया ) वर्तमान के साथ अगले-पिछले ( जन्म ) जन्म और कर्मों को जानते हो इससे हम लोगों के उपासना करने योग्य हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जैसे सत्य का उपदेश और सत्य का, आचरण करनेवाला पुरुष सबका मित्र, प्यारे काम को चाहनेवाला सबका मित्राचार्य, बर्माणा विद्वान् बाहर-भीतर विज्ञान देकर धर्म में नियत कराता है वैसे भीतर बाहर परमेश्वर सबके समस्त कामों को जानकर फल देता है ॥ ७ ॥

स विद्वां आ च पिप्रया यक्षि चिकित्स्व आनुगक ।

आ चास्मिन्सर्त्ति बर्हिषि ॥८॥

पदार्थ—हे ( चिकित्स्वः ) विज्ञानवान् ईश्वर ( स ) वह ( विद्वान् ) विद्वन् ! आप ( अस्मिन् ) इस ( बर्हिषि ) अन्तरिक्ष जगत् में ( आसर्त्ति ) आसन्न हो रहे हो, प्राप्त हो रहे हो सो आप ( आनुगक ) अनुकूल जैसे ही वैसे ( आ, पिप्रया ) अच्छे प्रसन्न करते ( च ) और ( यक्षि, च ) अच्छे प्रकार सब वस्तु देते हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! आप लोग जो इस जगत् में व्याप्त, प्रिय पदार्थ का देनेवाला और सर्वज्ञ अन्तर्ध्वी ईश्वर हैं उसी की उपासना करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में वहिष् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह छठा सूक्त और सत्ताईसर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अष्टमिति ब्रह्मस्य सप्ततमस्य सूक्तस्य सोमाहुतिर्भर्तव्यः । अग्निर्वचसा ।

१—३ त्रिष्टुप् गायत्री, ४ त्रिष्टुप् गायत्री; ५ विराट् त्रिष्टुप् गायत्री

मध्या, ६ विराट् गायत्री छन्दः । अक्षरः स्वरः ॥

अब छ ऋचावाले सातवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं—

अष्टं वविष्ठ भारताऽष्टं ध्यमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( वसो ) सुखों में वास कराने और ( भारत ) सब विद्या विषयों को धारण करनेवाले ( वविष्ठ ) अतीव युवावस्था युक्त ( अष्टं ) अष्टि के समान प्रकाशमान विद्वन् ! आप ( अष्टम् ) अत्यन्त कल्याण करनेवाली ( ध्यमन्तम् ) बहुत प्रकाशयुक्त ( पुरुस्पृहम् ) बहुतों को चाहने योग्य ( रयिम् ) लक्ष्मी को ( आ, भर ) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो उत्तम धन-लाभ के लिए बहुत यत्न करते हैं वे बनाह्य होते हैं ॥ १ ॥

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्यस्य च । पर्वि तस्या उत द्विषः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( नः ) हम ( देवस्य ) विद्वान् ( मर्यस्य, च ) और अविद्वान् का ( अरातिः ) शत्रु ( मा, ईशत ) अत समर्थ हो ( उत ) और हम लोगों को और ( तस्या ) उस ( द्विषः ) अप्रीतिवाले शत्रु के ( पर्वि ) पार पहुँचाए ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो द्वेष ओढ़ धार्मिक विद्वानों को तथा अविद्वानों के साथ प्रीति उत्पन्न कराते हैं वे किसी से शिरस्कार को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

विन्वा उत स्वपां वयं धारा उदन्त्याह । अति गहिमहि द्विषः ॥३॥



पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( स्वप्न ) प्राप्त विद्वान् जो आप उनके साथ वर्तमान हम लोग ( भारत, अहमदाबाद ) जल की बाराहों को जैसे जैसे ( विद्वान् ) समस्त ( विद्यः ) वैदिकियों को ( अग्नि, गार्हपत्यि ) भव्याह, बिलोह, जैसे आप ( जल ) भी इन को ग्राहो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे जल की बारा प्राप्त हुए स्थान को छोड़ हमारे स्थान को जाती है जैसे जलभाष को छोड़ विजभाष को सब मनुष्य प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

शुचिः पावकं चन्दोऽथै वृद्धि रौचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४॥

पदार्थ—हे ( पावक ) पवित्र करनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के समान प्रकाशमान ! ( घृतेभिः ) धी अग्नि पदार्थों से अग्नि के समान ( शुचिः ) पवित्र ( चन्दः ) स्तुति के योग्य ( त्वम् ) आप ( वृद्धि ) बहुत ( विरौचसे ) प्रकाशमान होते हैं सो सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे धी अग्नि पदार्थों से प्रज्वलित किया हुआ पवित्र करनेवाला अग्नि बहुत प्रकाशित होता है जैसे सत्कार पाया हुआ विद्वान् जन बहुत उपकार करता है ॥ ४ ॥

त्वं नी असि भारताऽथै वशामिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥

पदार्थ—हे ( भारत ) सब विषयों को धारण करनेवाले ( अग्ने ) विद्वन् ! जो ( वशामि ) मनोहर गीतों से वा ( उक्षभिः ) बँतों से वा ( अष्टापदीभिः ) जिन में आठ सप्तासत्य के निर्गुण करनेवाले चरण हैं उन वाणियों से ( आहुत ) बुलाये हुए आप ( न ) हम लोगों के लिए मुख दिये हुए ( असि ) हैं सो हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य आठ स्थानों में उपचारण की हुई वाणी से सत्य का उपदेश करता हुआ गवादि पशु की रक्षा से सब की पालना का विधान करता है वह सब को रखने के योग्य है ॥ ५ ॥

द्रव्यं सपिरामुतिः प्रत्नो हाता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अहुतः ॥६॥

पदार्थ—जिन विद्वानों से ( प्रत्नः ) पुरातन ( द्रव्यम् ) तथा जिस का काष्ठ, अन्न और ( सपिरामुतिः ) धी, दुग्धसार पान के लिए विद्यमान है और जो ( सहसस्पुत्र ) बलवान् वायु के समान है वह ( अहुतः ) धारवर्य गुण, कर्म स्वभावयुक्त ( हाता ) सब पदार्थों को देनेवाला ( वरेण्य ) स्वीकार करने योग्य अग्नि कार्य सिद्धि के लिए प्रयुक्त किया जाता है वे धारवर्यरूप बनाद्य होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । अग्नि का भोजन स्वामी काष्ठ और पीने के अर्थ सब औषधियों का रस विद्यमान है यह जानकर काष्ठ और औषधिसार अन्न आदि के संयोग से कलाचरी में अग्नि का प्रयोग करना चाहिए ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है वह जानना चाहिए ॥

यह दूसरे अण्डक में तप्तम सूक्त और अष्टाह्वितर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥



वाजयन्ति बहुवचसाऽहमस्य सूतस्य गृह्यमव ऋचिः । अग्निर्वेदता । १ गायत्री ; २ निचिन् विषीनिकामय्या गायत्री, ३, ४ निचुववायत्री, ५ विराट् गायत्री अन्वः । अन्वः स्वरः । ६ निचुवमुपु अन्वः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ७५ ऋचावाले आठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि विषय का वर्णन करते हैं—

वाजयन्ति नृयान्योगाँ अमेरुपं स्तुति । यशस्तमस्य मीळुहः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( वाजयन्ति ) पदार्थों को प्राप्त कराते हुए आप ( मीळुहः ) सींचनेवाले ( यशस्तमस्य ) अतीव यशस्वी वा बहुत जलयुक्त ( अमे ) अग्नि के समान प्रतापी जल के वा अग्नि के ( योमां ) योगों को और ( रवान् ) विमानादि रथों की ( नृ ) गीध ( उपस्तुहि ) प्रशंसा कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है । हे मिल्पी विद्वान् जन ! आप जैसे घोड़ों और बैल आदि से चलनेवाले रथों को चलाते हैं वैसे ही अग्नि गीध गति से जल के कलाचरी से प्रेरणा पाया अग्नि विमानादि यानों को गीध चलाता है वह सब के प्रति उपदेश करो ॥ १ ॥

अब विद्वान् के विषय को उसके मन्त्रों में कहा है—

यः सुनीथो ददाधुवैऽजुयो जरयंजरिम् । चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥

पदार्थ—( यः ) जो अग्नि के समान ( चारुप्रतीकः ) सुन्दर गुण, कर्म और स्वभावों से प्रतीक ( आहुतः ) वा बुलाया हुआ ( अजुयः ) जो न जीयें होते, न नष्ट होते हैं उन से प्रतिष्ठ ( सुनीथः ) सुन्दरता से सब की प्राप्ति करता है और ( जरिम् ) मनुजन का नाश करता हुआ ( ददाधुवै ) दानशील के लिए मुख देता है वह सम्मीयान् होता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे विष्णुकामो में प्रेरणा किया हुआ अग्नि उत्तम कामों को सिद्ध करता है वैसे सुन्दर शिक्षा पाने हुए बुद्धिमान् जन बहुत-सी उन्नति करते हैं ॥ २ ॥

य उं श्रिया दमेष्वा दोषोषसिं प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीर्यते ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप ( यः ) जो ( दमेष्वा ) घोरे में ( दोषा ) वा रात्रि और ( उषसि ) दिन में ( श्रिया ) शोभा से ( आ, प्रशस्यते ) अच्छे प्रकार प्रशंसा को प्राप्त किया जाता और ( यस्य ) जिसका ( व्रतम्, उ ) नील ( न ) न ( मीर्यते ) नष्ट होता है उस के समान हुआ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे अग्नि का शील और स्वरूप अग्नि अग्निनाशी वर्तमान है वैसे ईश्वर, जीव और आकाश आदि पदार्थों का शील और स्वरूप नित्य वर्तमान है ॥ ३ ॥

आ यः स्वर्णं मानुनां चित्रो विमास्यर्चिषा ।

अज्ञानो अजरैरभि ॥ ४ ॥

पदार्थ—( यः ) जो विजुलीरूप ( चित्रः ) चित्र-विचित्र अद्भुत अग्नि ( अजरै ) अविनाशी पदार्थों से ( अभि, अज्ञानः ) सब ओर से सब पदार्थों को प्रकट करता हुआ अग्नि ( विमास्य ) प्रशसनीय ( मानुना ) प्रकाश से ( स्वः ) आदित्य के ( न ) समान ( आ, विमासि ) अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—अग्नि वह सूक्ष्म परमाणुरूप पदार्थों में सर्वदा अपने रूप के साथ रहता है काष्ठ आदि पदार्थों में वृद्धि और स्थूलता आदि से कोई समय में बढ़ता और कभी कमती होता है ॥ ४ ॥

अग्निमनु स्वराज्यमग्निमुक्षयानि वावृषुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( उक्त्वानि ) कहने योग्य वचन ( अग्निम् ) सब पदार्थ जलानेवाले ( स्वराज्यम् ) अपने प्रकाश से युक्त ( अग्निम् ) विजुली रूप अग्नि को ( अनु, वावृषुः ) अनुकूलता से बढ़ाते हैं और जैसे उन से ( विश्वाः ) समस्त ( विश्वः ) धर्मों को ( अधि, दधे ) अधिक-अधिक में धारण करता है वैसे तुम को भी धारण करना चाहिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । विद्वानों की योग्यता है कि जिन उपदेशों से अग्न्यादि पदार्थविद्या राज्यलक्ष्मी बढ़े उनसे सब को उन्नती कर ॥ ५ ॥

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामुतिर्भिव्यम् ।

अरिर्व्यन्तः सचेमहमि ज्योम पृतन्यतः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अग्नेः ) अग्नि ( इन्द्रस्य ) सूर्य ( सोमस्य ) चन्द्रमा और ( देवानाम् ) विद्वान् और पृथिवी आदि लोकों की ( उतिभिः ) रक्षा आदि व्यवहारों के साथ वर्तमान ( अरिर्व्यन्तः ) न नष्ट होते और ( पृतन्यतः ) अपने को सेना की इच्छा करते हुए ( अहम् ) हम लोग ( सचेमहि ) सङ्ग करें और मिथपन के लिए ( अग्नि, ज्योम ) सब ओर से प्रतिष्ठ होवें वैसे तुम भी होओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे विद्वान् जन अग्न्यादि विद्या से रक्षित सब के मित्र प्रशंसित सेनावाले होकर मित्र होते हुए अर्थ और विद्या की उन्नति करें वैसे सब मनुष्य प्रयत्न करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह दूसरे अण्डक में अग्नीतर्वा वर्ग और आठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमुत्तरमहत्सपरिजातकाश्यानां परमविष्णुः श्रीमद्विराजाम्बरसरस्वती-

स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिजातकाश्यानेन श्रीमहात्मनसरस्वती-

स्वामिना निमित्ते कार्यमावाप्तुमिति सुप्रभाषयुक्त आश्रितवाच्ये

द्वितीयाण्डके पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥



## अथ द्वितीयाष्टके षष्ठाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितरुदितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

मिहोतेति बहुवचस्य नवमस्य सूक्तस्य गुप्तस्य ऋचि । अग्निर्वेत्ता ।

१, १ मिहोत्प, ४ विराट् मिहोत्प, ५, ६ मिहोत् मिहोत्प ऋचः ।

जैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः ऋचः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ द्वितीय अष्टक में छठे अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम सूक्त में

अग्निविषयक विद्वानों के कर्मों को कहते हैं—

नि होता होतुर्दने विद्वानस्त्वेषो दीदिवौ असदस्सुदधः ।

अदब्धव्रतप्रमर्षिर्वसिष्ठः सहस्रम्बरः शुचिर्विहो अग्निः ॥१॥

पदार्थ—विद्वानों को जो ( होतुर्दने ) प्रदीप्ता जनो के रश्मि वा वेदी में ( होता ) प्रहण करनेवाला ( विद्वान् ) विद्यमान ( त्वेषः ) दीप्तियुक्त (वीरिधान्) बार बार प्रकाशित होता हुआ ( जुवन् ) सुन्दर जिससे बल होता (अदब्धव्रतप्रमर्षिः) नहीं नष्ट हुए शील से जिसका ज्ञान होता ( वसिष्ठः ) जो भतीव निवास कराने-वाला ( शुचिर्विहो ) और जिससे जिज्ञा पवित्र होती वह ( सहस्रम्बरः ) सहस्रों जगत् का धारण और पोषण करनेवाला ( अग्निः ) विपुली आदि कार्य कारण स्वका अग्नि ( मि, असदत् ) निरन्तर स्थिर होता है उसका प्रयोग सदा अच्छे प्रकार करने योग्य है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य कार्यों में प्रदीप्त मित्य गुणकर्मस्वभावयुक्त पवित्र करने वाले सकल पदार्थों के धारणकर्ता अग्नि को यथावत् प्रयुक्त करते हैं वे भविष्यी सुख वाले होते हैं ॥ १ ॥

स्व दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ ह्वयम प्रणेता ।

अग्ने लोकस्य नस्तनं तनुनामप्रयुच्छन्दीर्घहोधि गोपाः ॥२॥

पदार्थ—हे ( जुवन् ) बलवान् ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्वन् । ( त्वम् ) आप ( नः ) हमारे ( दूत ) देशान्तर पहुँचानेवाले ( त्वम् ) आप ( उ ) ही ( परस्पाः ) सबसे पार और रक्षा करनेवाले ( त्वम् ) आप ( वस्यः ) निवास करने योग्य ( लोकस्य ) सन्तान को ( आ, प्रणेता ) सब और से अच्छे प्रकार समस्त गुणों में प्रवृत्त करानेवाले ( नः ) हम लोगों के ( तनुनाम् ) शरीरों के ( तने ) विस्तार में ( अग्रयुच्छन् ) न प्रमाद कराते हुए ( गोपाः ) शरीर की रक्षा करने वाले ( दीर्घहो ) सब विषयों को प्रकाश कराते ( होधि ) और जानते हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य, अग्नि प्रयोग से प्रेरणा दी हुई नौका समुद्र से पार जैसे पहुँचाती, वैसे दुःखरूपी समुद्र से पार करते हैं, सन्तानों की शिक्षा में और शरीरों की रक्षा करने में प्रवीण और प्रमाद को छोड़ वर्म के अनुष्ठान करनेवाले हैं वे यहाँ धाम्युदयिक सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

विधेम ते परमे जन्ममग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्ये ।

यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीषि जुहुरे समिद्धे ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हम लोग ( स्तोमैः ) स्तुतियों से ( ते ) आपके ( परमे ) उत्तम और ( अवरे ) अनुत्तम जन्म के निमित्त ( विधेम ) विचार ( यस्मात् ) जिस ( योने ) कारण से आप ( उदारिथ ) प्राप्त होवे हो उस ( सधस्ये ) साध के स्थान में हम लोग ( विधेम ) उत्तम व्यवहार का विधान करें । जैसे ( त्वे ) उस ( समिद्धे ) प्रदीप्त अग्नि में ( हवीषि ) होने अर्थात् देने योग्य पदार्थों को विद्वान् जन ( जुहुरे ) होमते वैसे मैं ( तम् ) उसका ( अवरे ) पदार्थों से सज्ज करूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो शुभ कर्मों को करते हैं वे श्रेष्ठ जन्म को प्राप्त होते हैं, जो अधर्म का आचरण करते हैं वे नीच जन्म को प्राप्त होते हैं । जैसे विद्वान् जन जलते हुए अग्नि में सुगन्ध्यादि द्रव्य का होम कर सत्कार का उपकार करते हैं वैसे वे सब से उपकार को वर्तमान जन्म में या जन्मान्तर में प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

अग्ने यजस्व हविषा यजीयाच्छृष्टी देष्मामभि गृणीहि राधः ।

त्वं हसिं रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् । जिस कारण ( त्वम् ) आप ( रयीणां ) घनादि पदार्थों के बीच ( रयिपति ) जनपति और ( त्वम् ) आप ( शुक्रस्य ) शुद्ध करनेवाले ( वचसः ) वचन के ( मनोता ) उत्तमता से जतलानेवाले ( हसिं ) हैं ( हि ) इसी से ( यजीयां ) अत्यन्त यज्ञकर्ता होते हुए ( हविषा ) होमने योग्य वस्तु से ( यजस्व ) यज्ञ कीजिए और ( देष्माम् ) देने योग्य ( राधः ) वन की ( अश्वी ) शीघ्र ( अग्नि, गृणीहि ) सब और से प्रशंसा करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो घनाद्वय वन से परोप-कार करें वे सब के प्यारे होते हैं ॥ ४ ॥

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।

कृचि धुमन्तं जरितारमग्ने कृचि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५॥

पदार्थ—हे ( वसव्यं ) परदुःख भञ्जन करनेवाले और ( अग्ने ) अग्नि के समान बढ़नेवाले विद्वन् ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन ( जायमानस्य ) सिद्ध हुए जिन ( ते ) आपका ( उभयम् ) दान और यज्ञ करना दोनों ( वसव्यम् ) वर्तों में प्रसिद्ध हुए काम ( न ) नहीं ( क्षीयते ) नष्ट होते सो आप ( जरितारम् ) विद्यादि गुण की प्रशंसा करनेवाले ( धुमन्तम् ) बहुत धूमनेवाले को ( कृचि ) उत्पन्न करो और ( स्वपत्यस्य ) जिससे उत्तम सन्तान होते उस ( रायः ) देने योग्य वन को ( पतिम् ) पालने, रक्षनेवाले को ( कृचि ) कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—उसी के कुल से वन नाश नहीं होता जो और सुपानों के लिए सत्कार का उपकार करने को देता है ॥ ५ ॥

सैनानीकेन सुविद्वत्रो अस्मे यष्टा देवा आयजिष्ठः स्वस्ति ।

अदब्धो गोपाः उत नः परस्पा अग्ने यमदुत रेवहिदीहि ॥६॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्वन् जैसे ( स ) वह देनेवाला ( अस्मे ) हमारे ( एना ) इस ( सैनानीकेन ) सेना समूह के साथ ( सुविद्वत्रो ) सुन्दर विद्वान् देने ( यष्टा ) और सब व्यवहारों की सङ्कति करनेवाला भञ्जा शान्ति वा दाता ( आ, यजिष्ठः ) सब और से भतीव यज्ञकर्ता ( अदब्धः ) न नष्ट हुआ ( गोपाः ) गोपाल ( न ) हमको परस्पाः ) दुःखों से पार करनेवाला ( धुमन् ) विज्ञान प्रकाशयुक्त ( उत ) और ( रेवत् ) बहुत वन सहित ( स्वस्ति ) सुख को देता है ( उत ) और ( रेवान् ) दिव्य गुण वा प्रपना विषय चाहनेवाले वीरों को सेवते हैं वैसे आप उक्त समस्त को ( रेवहि ) दीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उत्तम सेना से युक्त राजा दुष्टों को जीत विद्वानों का सत्कार कर और प्रजा को अच्छे प्रकार रक्षा कर सबका ऐश्वर्य बढ़ाता है वैसे सभी को होना चाहिए ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि के समान विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह नववाँ सूक्त और पहला वर्ग समाप्त हुआ ॥



जोह्व इति बहुवचस्य नवमस्य सूक्तस्य गुप्तस्य ऋचि । अग्निर्वेत्ता ।

१, २, ६ विराट् मिहोत्प, ३ मिहोत्प, ४ मिहोत् मिहोत्प ऋचः ।

जैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिः ऋचः । पञ्चमः स्वरः ।

अथ छ ऋचावाले नववें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

अग्नि विषय का उपदेश किया है ॥

जोह्वो अग्निः प्रथमः पितेवेक्ष्यदे मनुषा यत्समिद्धः ।

अथ वसानो अमृतो विचेता मर्त्येज्यः अवस्यः स वाजी ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत् ) जो ( मनुषा ) मनुष्य से ( पितेव ) पिता के समान ( प्रथमः ) पहला विस्तृत गुण, कर्मवाला ( वेक्ष्यदे ) पृथिवी तल पर ( जोह्व ) भतीव सज्ज करने अर्थात् कलाधरों में लगाने योग्य ( समिद्धः ) प्रज्वलित ( अथम् ) जोभा को ( वसानः ) डीपनेवाला ( अमृतः ) नाशरहित ( विचेता ) जिससे चैतन्यपन विगत है अर्थात् जो जड़ ( अमर्त्येज्यः ) शुद्ध करनेवाला ( अवस्यः ) अन्नादि पदार्थों में उत्तम और ( वाजी ) बहुत वेगादि गुणों से युक्त ( अग्निः ) अग्नि शिल्पकार्यों में अच्छे प्रकार प्रयुक्त किया जाता है ( सः ) वह सुख को भी समुक्त करना चाहिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अग्नि पृथिवी में प्रसिद्ध, शिल्प-कार्यों के प्रयोग में अच्छे प्रकार लगाया हुआ वन का देनेवाला स्वल्प से निरव, चेतना गुणरहित और अति वेगवान् है वह अच्छे प्रकार प्रयोग किया हुआ पिता के सुख शिल्पिजनों को पालता है ॥ १ ॥

अथ विद्वानों को अग्निविद्या-ग्रहण का उपदेश किया जाता है—

अथा अग्निविप्रमानुर्हवं मे विश्वाभिर्गानिरमृतो विचेताः ।

स्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुवाहं चक्रे विभृजः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जो ( विप्रमानुः ) विप्र-विप्र दीप्तिवाला ( अमृतः ) मृत्यु धर्मरहित ( विचेताः ) विविध प्रकार का गान जिससे होता है

( विष्णुः ) और जो माना प्रकार पदार्थों से चादमकरवेवासा ( अग्निः ) अग्नि है जिसके सम्पन्न के ( रश्मिः ) रश्मि की सवितुमन्त्रस्य ( रोहिता ) ललाटी प्रादि गुण के लिए ( उत ) और ( अग्निः ) मन्त्रस्थली में व्याप्त होने और ( उवाच ) सब विषयों की प्राप्ति करानेवाले, बारण और अन्तर्यामि गुण ( बहूतः ) एक देश से दूसरे देश को पहुँचाते हैं ( वा ) अग्नि ( अग्निः ) निश्चय से उसको ( अग्निः ) शिल्पीजन बनाता है उसकी विद्या के उपदेश को ( मे ) मेरी ( विद्याभिः ) समस्त ( गीर्वा ) प्राणियों से ( अग्निः ) सुनिष्ट ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिससे विजुली प्रादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं सदाका जीवन भी होता है उस अग्नि की विद्या को सब उपायों से ग्रहण करें ॥ २ ॥

उत्तानायामजनयन्सुवृत्तं सुवदग्निः पुरुषेशासु गर्भः ।

शिरिणायां चिद्वतुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अग्निः ) शक्ति और ( महोभिः ) बड़े-बड़े लोकों के साथ ( अग्निः ) सब और से न स्वीकार किया हुआ ( प्रचेताः ) जो सोते प्राणियों को प्रबोधित करता, अतु-अतु मे यज्ञ करनेवाले जन जिस ( सुवदग्निः ) बहुत कर्पणशील प्रबोधियों में ( सुवदग्निः ) सुन्दरता से उत्पन्न हुए अग्नि की ( अग्निः ) प्रकट करते जो ( उत्तानायाम् ) उत्ताने के समान सोती-सी और ( शिरिणायां ) नष्ट हुई पृथिवी में ( गर्भः ) गर्भ के समान स्थित ( अग्निः ) अग्नि विजुलीकृत ( सुवत् ) होता और ( वसति ) निवास करता है अग्नि की ( चित् ) निश्चय करके प्रकट करो अर्थात् कलाधरों में लगाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि विद्यमान और नष्ट हुई पृथिवी में गमरूप विद्यमान है उसी की विद्या को जानो ॥ ३ ॥

जिघर्ष्यग्निं हविषा घृतं प्रतिक्षिपन्तं सुवृत्तानि विश्वा ।

पृथुं तिरश्चा वयंसा वृहन्तं व्यचिष्टमक्षै रभसं दशानम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( विश्वा ) समग्र ( अग्निः ) जिन में प्राणी उत्पन्न होते हैं उन लोकों और ( प्रतिक्षिपन्तं ) पदार्थ पदार्थ के प्रति वसते हुए ( तिरश्चा ) तिरछे सब पदार्थों में वीक्षण से रहनेवाले ( अग्निः ) मनोहर जीवन के साथ ( पृथुः ) बड़े हुए ( वृहन्तं ) वा बड़ते हुए ( व्यचिष्टम् ) अतीव सब पदार्थों में व्याप्त और ( अग्निः ) पृथिव्यादिकों के साथ ( रभसम् ) बेगवान् ( वृत्तानम् ) देखा जाता वा अपने से अन्य पदार्थों को दिखानेवाले ( अग्निम् ) अग्नि को मैं ( हविषा ) होमने योग्य सुगन्धि प्रादि पदार्थ वा ( घृतम् ) घी से मैं ( चिष्टम् ) प्रदीप्त करता हूँ वैसे आप भी कीजिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य समस्त मूर्तिमान् पदार्थों में ठहरे हुए विजुलीकृत अग्नि को साधना से अग्नि प्रकार ग्रहण कर इस में सुगन्धि प्रादि पदार्थ का होम करते हैं वे अनन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

आ विभक्तः प्रत्यञ्चै जिघर्ष्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत् ।

मर्येश्वीः स्पृहयद्गर्भो अग्निर्नामिमुशं तन्वा जसुराणः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे मैं ( अग्निः ) उत्तम भाव से वा ( अग्निः ) विज्ञान से जिस ( अग्निः ) प्रत्येक पदार्थ की प्राप्ति होते हुए अग्नि को ( विभक्तः ) सब और से ( आ, जिघर्षि ) अग्नि प्रकार प्रदीप्त करता हूँ और ( अग्निः ) जिससे मरणधर्मा प्राणियों की शोभा और जो ( स्पृहयद्गर्भः ) काँक्षा-सी करता हुआ जिसका वरा ( तन्वा ) विस्तृत शरीर से ( अग्निः ) निरन्तर पदार्थों की धारण करता हुआ ( अग्निः ) अग्नि विद्यमान है ( तत् ) उसको ( न, अभिमुशै ) प्रागे नहीं सह सकता हूँ वैसे इसका ( अग्निः ) सेवन करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो पुष्टान्तःकरण जन सुन्दर शोभित करने और वृत्ति प्रादुर्भाव से होते हुए सब के धारण करनेवाले सब कपी के प्रकाशक और न सहने योग्य अग्नि की सिद्ध करते हैं वे श्रीमान् होते हैं ॥ ५ ॥

क्षेत्रा भागं सहस्रानो वरेण त्वादृतासो मनुवद्वेदम् ।

अननमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जौहवीमि ॥६॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( वरेण ) श्रेष्ठ व्यवहार से ( भागम् ) सेवने योग्य पदार्थ का ( सहस्रानः ) सहते हुए आप जैसे मैं ( वचस्या ) वचनों में और ( जुह्वा ) ग्रहण करने में उत्तम क्रिया से ( मधुपृचम् ) मधुरादि पदार्थ सम्बन्धी ( अग्निम् ) बहुत ( अग्निम् ) अग्नि को ( जौहवीमि ) निरन्तर स्वीकार करता हूँ वैसे तुम ग्रहण करो जैसे ( त्वादृतासः ) तुम जिन महारामों के दूत हो ( क्षेत्राः ) वे जोमने योग्य ( धनसाः ) वनादि पदार्थों का विभाग करनेवाले विद्वान् जन ( मनुवत् ) विद्वान् के समान इस की उपदेश करें वैसे इस की हम लोग भी ( वरेण ) करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे प्राप्त विद्वान् जन अग्निप्रादि पदार्थविद्या को जानकर औरों के हित के लिए उपदेश करते हैं वैसे हम लोग भी विद्या का उपदेश करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सञ्जति सम्बन्धी चाहिए ॥

यह पदार्थ सूक्त और दूसरा वर्ण समान्य हुआ ॥

५

शुचीत्येकैर्वाश्वैर्येवाश्वस्य सुवत्स्य पुत्समश्च अग्निः । इन्द्रो देवताः ।

१, ५, १०, १३, १६, २० वरुणः, २, ६ अरिक् पक्वितः;

३, ४, ६, ११, १२, १४, १८ निष्पत् पक्वितः,

७ विराट् पक्वितः। पक्वितः स्वरः १। ५, १६, १७

स्वराट् बृहती । अरिक् बृहती, १५ बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः १। २१ निष्पत् छन्दः ।

चैवत स्वरः ॥

अब इसकीस आवाजके ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में रावर्धन का वर्णन करते हैं—

शुची द्वमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वक्षेनाम् ।

इमा हि त्वामूर्जो वर्द्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न सन्तः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विजुली के समान प्रचण्ड प्रतापवाले राजन् ! जिन ( त्वा ) आप को ( वसूयवः ) प्रथम कक्षा के विद्वान् वा पृथिवी प्रादि के ( हि ) निश्चय के साथ ( इन्द्रः ) य ( अग्निः ) पराक्रम वा धर्मादि पदार्थ और ( वसूयवः ) अपने को धन की इच्छा करनेवाले ( अरिणः ) कर्मपत करते और वेष्टावान् करते हुए ( सिन्धवः ) समुद्रों के ( न ) समान ( वर्द्धयन्ति ) बढ़ाते हैं जिन ( ते ) आप के ( वक्षे ) दाग के लिए हम ( स्याम ) हों सो आप हम लोगों को ( मा, रिषण्य ) मत मारिए और ( इन्द्रः ) शास्त्रबोधजन्य शब्द ( अग्निः ) सुनिष्ट ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे समुद्र जल से सब को बढ़ाता है वैसे प्रधान पुरुषों को चाहिए कि अपने प्राप्त सब जनों को दान और मान से बढ़ावें ॥ १ ॥

सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्णिता अहिना शूर पूर्वाः ।

अमर्त्यं चिदासं मन्यमानमवाभिनदुष्यैवौदधानः ॥२॥

पदार्थ—हे ( शूर ) निर्भय ( इन्द्र ) सूर्य के समान वत्तमान ! जैसे सूर्य ( अहिना ) मेघ से ( परिष्णिता ) सब और से स्थित किये हुए वा ( पूर्वाः ) पहले सञ्चित हुए जलों को ( अवाभिनत् ) छिन्न-भिन्न करता है वैसे ( उष्यै ) उत्तम वर्णों से ( वक्ष्यमानः ) बड़े हुए आप ( याः ) जो ( महीः ) बड़ी-बड़ी वाणी हैं उन को ( सृज ) उत्पादन कीजिए उन से ( चित् ) ही ( अमर्त्यम् ) आरमा से मरण धर्म रहित ( अमर्त्यम् ) माननेवाले ( दासम् ) मेवक की ( अपिन्व ) नृप कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो सूर्य के समान उत्तम प्राणियों को वर्धित है और सेवकों को प्रसन्न करते हैं वे उत्तम प्रतिष्ठित होते हैं ॥ २ ॥

उष्येत्विशु शूर येष चाकन्तोमैष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।

नुम्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिंसते न शुभ्राः ॥३॥

पदार्थ—हे ( शूर ) अन्धकार को दूर करनेवाले सूर्य के समान शत्रुदल को नष्ट करनेवाले ( इन्द्र ) प्रकाशमान राजन् ! ( उष्ये ) जिन ( स्तोत्रेषु ) स्तुति विभागों वा ( रुद्रियेषु ) प्राणों की प्रतिपादना करनेवालों वा ( उष्ये ) कहने योग्य वाक्यों में आप ( नु ) शीघ्र ( चाकन् ) कामना करते हो ( वासु, च ) और जिन क्रियाओं में ( मन्दसानः ) प्रसन्न ( इत् ) ही हैं उन सभी में ( उष्ये, इत् ) आप ही के लिए जैसे ( एताः ) ये ( वायवे ) पवन के अर्थ ( शुभ्रा ) सुन्दर शोभायुक्त विजुली ( प्रसिंसते ) पसरती, फैलती हैं ( न ) वैसे सुशोभित हों ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे पवन के साथ विजुली फैलती है वैसे विद्या के साथ पुरुष मुखों के बीच विहार करता है ॥ ३ ॥

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्द्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाहोर्दधानाः ।

शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सभाः ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले सभापति ! ( वक्ष्यमानः ) बड़े हुए ( शुभ्रः ) शुद्ध ( रश्मिः ) आप ( अग्ने ) हमारी ( दासीः ) सेवा करनेवाली ( विशः ) प्रजा ( सूर्येण ) सूर्यमण्डल के साथ ( सभाः ) सहने योग्य वीरियों के समान सम्पन्न करो जिन ( ते ) आप का ( शुभ्रम् ) दीप्तिमान् ( शुष्मम् ) बल ( नु ) शीघ्र ( वर्द्धयन्तः ) बढ़ाते हुए अर्थात् उन्नत करते हुए ( बाहूः ) भुजाओं में ( शुभ्रम् ) स्वच्छ निर्मल ( अग्निम् ) शास्त्रसमूह की ( वक्ष्यामः ) धारण किये हुए भूत्य हैं उनके सब और से प्रजा की वृद्धि करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो निरन्तर राज्य के बढ़ाने को समर्थ और शास्त्र तथा अस्त्र चलाने में कुशल प्रधान पुरुषों को उन्नति देते हैं वे शीघ्र प्राधान्य को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

गुहां हितं गुह्यं गृह्यहमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।

उतो अपो यां संस्तम्बांसमहर्षिं शूर वीर्येण ॥५॥३॥

पदार्थ—हे ( शूर ) निर्भय राजन् ! जैसे ( अग्निः ) जलों में ( अपीवृतम् ) डबे हुए ( गृह्यम् ) गुप्त पदार्थों की ( अग्निः ) और जलों को ( उतो ) तथा



( धाम् ) प्रकाश को ( तत्सम्पत्तम् ) रोके हुए ( अहितम् ) मेघ को सूर्यमण्डल ( अहम् ) हनता है जैसे ( वीर्यम् ) पराक्रम से ( गुह्यम् ) गुप्त-गुप्त स्थान में ( हितम् ) घरे अर्थात् हित ( गुह्यम् ) गुप्त करने योग्य ( शिष्यम् ) निरन्तर बसते हुए ( साधिनम् ) मायावी शत्रुजन को मारो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे सूर्य अन्तरिक्षस्थ जलों में सोते हुए मेघ को हनने सब प्रजा को पुष्ट करता है वैसे राजा कपट के बीच वर्तमान अघर्षी शत्रुजन को छिन्न-भिन्न कर प्रजा को सुखी करे ॥ ५ ॥

स्तवा नु त इन्द्र पुण्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।

स्तवा वज्रं बाह्योऽशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) प्रशंसायुक्त राजन् ! हम लोग ( ते ) आप के ( पुण्या ) प्राचीन ( महानि ) प्रशंसीय बड़े बड़े कामों की ( नु ) शीघ्र ( स्तव ) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करें ( उत ) और ( नूतना ) नवीन ( कृतानि ) किये हुएों की ( स्तवाम ) प्रशंसा करें। तथा ( बाह्योः ) भुजाओं में ( अशन्तम् ) क्षत्र और अस्त्रों की ( उदात्तम् ) बाहना करते हुए आप की ( स्तव ) स्तुति प्रशंसा करें तथा ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( केतू ) किरणों के समान जो ( हरी ) चारणाकर्षण गुणयुक्त कर्मों की ( स्तव ) प्रशंसा करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। व्यतीत और वर्तमान प्राप्त धर्मिता सज्जनों ने जो धर्मयुक्त काम किये वा करते हैं उन्हीं का अनुष्ठान और जनो को भी करना चाहिए ॥ ६ ॥

हरी नु त इन्द्र वाज्रयन्ता धृतश्वतं स्वारमस्वार्थम् ।

वि संमना भूमिरप्रधिष्ठारस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान प्रतापी राजन् ! जिन ( ते ) आप के ( धृतश्वतम् ) जल से प्राप्त हुए ( स्वारम् ) उपताप वा शब्द को ( वाज्रयन्ता ) चलते हुए सूर्य के ( हरी ) हरगशील किरणों के समान विद्या और विनय को जो ( अस्वारमम् ) शब्दायमान करते अर्थात् व्यवहार में लाते उन के साथ ( चित् ) भूमि के समान आप ( नु ) शीघ्र ( वि, अप्रधिष्ठ ) प्रख्यात हुआ और ( अरस्त ) सुख में रमण कीजिए तथा ( सरिष्यन् ) गमन करनेवाले होते हुए ( पर्वतः ) मेघ के ( चित् ) समान ( समना ) समानों को जीतो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो राजपुरुष सूर्य के समान प्रजा-जनो के उपकार करने वा मेघ के समान आनन्द देने और उत्तम बलवाले हैं वे ही शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥ ७ ॥

नि पर्वतः साद्यम्युच्छन्तस्मात्तर्भावावज्ञानो अंकान ।

दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रैषिता धमनिं पप्रथसि ॥८॥

पदार्थ—जो ( सातभिः ) मान करनेवाली माता आदि से ( सावधान ) कामना किया जाता और ( अम्युच्छन् ) प्रमाद न करता हुआ ( पर्वतः ) मेघ के समान विद्वानों ने ( सद्यः, सावि ) अन्धे प्रकार सिद्ध किया उनके साथ जो दोनों को ( दूरे ) दूर करते हुए ( वाणीम् ) सुन्दर शिक्षायुक्त वाणी को ( पारे ) समुद्र की भूमियों के परिभाग में ( वर्धयन्तः ) बढ़ाते हुए औरों को विद्वान् ( अन्कान् ) करते हैं वे ( इन्द्रैषिताम् ) परमेश्वर की भेजी हुई वेदवाणी का ( नि, पप्रथम् ) निरन्तर विस्तार करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जिन सन्तानों को माता उत्तम शिक्षा और विद्या से प्रमादरहित कर बढ़ाती हैं वे सुखों को प्राप्त होकर नव और से बढ़ते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रो महां मिन्धुमाशयानं मायाविर्नि वृत्रयस्फुरभिः ।

अरेजेतां रोदेसी मियाने कनिक्कदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९॥

पदार्थ—हे महापति राजन् ! जैसे ( इन्द्र ) सूर्यलोक ( महाम् ) अत्यन्त बड़े ( सिन्धुम् ) अन्तरिक्ष समुद्र को ( आशयानम् ) प्राप्त ( वृत्रम् ) मेघ को ( मि, अस्फुरत् ) निरन्तर बढ़ाता है वा जैसे ( अस्य ) इस ( वृष्णः ) वर्धनेवाले मेघ की ( वृष्ट्यात् ) गिरी हुई बिजली के शब्द से ( मियाने ) डरपे हुए से ( रोदेसी ) आकाश और पृथिवी ( अरेजेताम् ) कम्प और ( कनिक्कदतः ) गम्भीर करते हैं वैसे आप ( मायाविमम् ) मायावी दुष्ट बुद्धि पुरुष को विदारो, दुष्टों को कम्पाओ और क्लामो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। हे राजपुरुष ! जैसे सूर्य अपनी किरणों से समुद्र के जल को मेघमण्डल को पहुँचा और उसे अर्थात् प्रजाजनों को सुखी करता है वैसे आप विद्या से अन्धे प्रकार उन्नति सयुक्त प्रजा कर उसे सुखी करें, जैसे बिजली के श्रवण से सब डरते हैं वैसे न्यायाचरण के उपदेश से दुष्टाचरण से सब डरें ॥ ९ ॥

अरीरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजुषीत ।

नि मायिनीं दानवस्य माया अपादयत्पिबान्स्तुतस्य ॥१०॥१॥

पदार्थ—जैसे ( अस्य, वृष्णः ) इस वर्ण निमित्तक सूर्यमण्डल के ( वृष्ट्याः ) किरणों का जो निरन्तर गिरना ( अरीरवीत् ) वह बार-बार शब्द करता है और ( अमानुषम् ) मनुष्य सम्बन्धरहित पदार्थ की ( मानुषः ) मनुष्य जैसे-जैसे ( वत् ) जिसको ( निजुषीत् ) छिन्न-भिन्न करे वैसे जो ( मायिनीः ) मायावी निमित्त बुद्धि-युक्त ( दानवस्य ) दुष्ट कर्म करनेवाले की ( मायाः ) अलपुष्ट बुद्धियों को ( पि, अपादयत् ) निरन्तर नष्ट करे और ( तुतस्य ) बड़ी-बड़ी ओषधियों के निकले हुए रस को ( पिबान् ) पीनेवाला हो वह विजय को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे अन्तरिक्ष में बिजुली के शब्द मेघ को बतलाते हैं वैसे राजजन दुष्टाचरणों से दुष्टजनों को सचेत करावें अर्थात् उनके अल कपटों को उजा दें ॥ १० ॥

अब बंध के विषय की अगले मन्त्र में कहा है—

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मदन्तु स्वा मन्दिनः सुतासः ।

पृथन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्या सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥

पदार्थ—हे ( शूर ) रोगों को नष्ट करनेवाले ( इन्द्र ) आयुर्वेद विद्यायुक्त बंध ! जो ( पिबन् ) प्रशंसा करने योग्य ( सुतासः ) ओषधियों के निकले हुए रस ( सोमम् ) सोमलगादि ओषधियों के सार को पीनेवाले ( स्वा ) आपकी ( पृथन्त ) सुखी करते हुए ( ते ) आपकी ( कुक्षी ) कोखों की ( वर्धयन्तु ) वृद्धि करें और आप को ( मदन्तु ) हर्षित करावें उनको आप ( इत् ) ही ( पिबापिब ) पिबो-पिबो ( इत्या ) इस हेतु से ( सुतः ) प्रसिद्ध ( पौरः ) पुर में उत्पन्न हुए आप ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य की ( माव ) रक्षा करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग यदि पुष्टि और वृद्धि देनेवाले रोगविनाशक ओषधियों के सार को सेवन करते हैं तो पुष्ट्यार्थी होकर ऐश्वर्य की बढ़ा सकते हैं ॥ ११ ॥

अब बंध विद्वान् के विषय की अगले मन्त्रों में कहा है—

त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।

अवस्यवो धीमहि प्रशस्ति सद्यस्तं रायो दावनें स्याम ।१२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) रोग विधीर्ण करनेवाले बंध विद्वज्जन ! ( त्वे ) आपके सरीप में हम लोग भी ( विप्राः ) मेधावी ( अभूम ) हो और ( सद्यः ) सत्य विज्ञानयुक्त बुद्धि किया से ( सपन्तः ) दुष्टों को अन्धे प्रकार कोमते हुए ( धियम् ) बुद्धि वा कर्म को ( वनेम ) अन्धे प्रकार सेवें तथा ( अवस्यवः ) अपने को रक्षा चाहते हुए हम लोग ( प्रशस्तिम् ) प्रशंसा को ( धीमहि ) चारण करें वा पुष्ट करें और ( ते ) आप जा ( राव ) विद्याधन के ( दावने ) देनेवाले हैं उनके लिए ( सद्यः ) शीघ्र प्रसिद्ध हों ॥ १२ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सत्य विज्ञानयुक्त बुद्धि से ओषधिविद्या को जान इन ओषधियों का सेवन कर पुष्ट्यार्थ बढ़ा, लक्ष्मी का सम्बन्ध करें ॥ १२ ॥

स्याम ते त इन्द्र ये त उती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।

शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयि रासि वीरवन्तम् ॥१३॥

पदार्थ—हे ( देव ) मनोहर ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के देनेवाले ! ( ये ) जो ( अवस्यवः ) अपनी रक्षा चाहते और ( ते ) आपकी ( उती ) रक्षा आवि किया से ( ऊर्जम् ) पराक्रम क ( वर्धयन्तः ) बढ़ाते हुए आपकी रक्षा करते ( ते ) वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं जिन ( ते ) आपके सम्बन्ध में हम लोग ( यम् ) जिस ( शुष्मिन्तम् ) अति बलवान् ( वीरवन्तम् ) वीरों के प्रसिद्ध करनेवाले ( रयिम् ) धन को ( चाकनाम् ) बाहे आप ( अस्मे ) हम लोगों के लिए इसको ( रासि ) देते हो उसको प्राप्त हो हम लोग सुखी ( स्याम ) हों ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य परस्पर की वृद्धि करते हैं वे सब और से बढ़ते हैं, किसी को अच्छी कामना नहीं छोड़नी चाहिए ॥ १३ ॥

रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शद्धे इन्द्र मार्कतं नः ।

सजोषसो ये च मन्दसानाः म बापयः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) बल देनेवाले ! ( ये ) जो ( नः ) हम लोगों की ( मन्दसाना ) कामना करते हुए ( सजोषसः ) समान प्रीतिवासे ( बापयः ) विज्ञान बलयुक्त जन ( अग्रणीतिम् ) आगे होनेवाली उत्तम नीति को ( म, पान्ति ) प्राप्त होते हैं उनके समान हम लोग प्राप्त हों वैसे जिससे आप ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( क्षयम् ) निवास ( रासि ) देते हैं ( मित्रम् ) मित्र ( रासि ) देते हो और ( माकतम् ) मनुष्यों को ( शद्धः ) बल ( च ) भी ( रासि ) देते हो इससे प्रशंसनीय हो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जो मित्र हो विद्या और विनय को प्राप्त होकर सत्य की कामना करते हैं वे सबको सुख दे सकते हैं ॥ १४ ॥

व्यन्त्वित्यु येवु मन्दसानस्तुपत्सोमं पाहि ब्रह्मदिन्द्र ।

अस्मान्तु पुत्स्वा तर्वावर्द्धयो यां बृहन्निरर्कैः ॥१५॥१॥

पदार्थ—हे ( तव्य ) अविद्या से तारनेवाले ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् विद्वन् ! जैसे सूर्यमण्डल ( बृहन्निः ) बड़ी-बड़ी ( अर्कैः ) किरणों से ( धाम् ) प्रकाश को ( पु, मा, अश्वर्यम् ) शीघ्र अन्धे प्रकार बढ़ाता है वैसे आप ( अस्मान् ) हम लोगों

की (सूर्य) संज्ञाओं में रक्षा कीविधि (वेध) जिनमें विद्वान् जन (सोमन्) ऐश्वर्य की (श्रेष्ठ) कामना करें उनके (अन्वयः) आत्मन् को प्राप्त (सुख) सुख और (प्रदत्त) दृढ़ होते हुए (इत्) ही आप ऐश्वर्य की (सुधाहि) अन्वये प्रकार रक्षा करें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमाकार है। मनुष्य जिन विद्वान् जनो में निवास करते और ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सुख होते हुए औरों को सुख करते हैं उनमें वे सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं ॥ १५ ॥

**बृहन्त इम् ये तं सखीकयेमिर्वा सुम्नमाविर्वासान् ।**

**स्तुवानासो बहिः पस्यावचोता इदिन्द्र वाजममन् ॥१६॥**

पद्यार्थ—हे (सख) दुःख से तारनेवाले (इन्द्र) अविद्या विनाशक ! (ते) आपके (उपस्थितः) सुन्दर उपदेशों से (बृहन्त) पूज्य प्रशस्तनीय (इत्) ही (सुम्नम्) सुख को (वा, विवासान्) सब ओर से वेचते हैं वे (पस्यावचोता) घर के मुख्य (बहिः) बड़े हुए को (स्तुवानास) दाँते हुए (वा) अथवा (चोता) आपके रक्षा किये हुए (इत्) ही (वाजम्) विज्ञान को (म्) शीघ्र (अमन्) प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

भाषार्थ—वे ही सुख को प्राप्त होते हैं जो धार्मिक विद्वान् सत्पुरुषों से सुन्दर शिक्षित और रक्षित हों ॥ १६ ॥

**उप्रेषिषु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि साममिन्द्र ।**

**प्रदोषुचक्षुमधुषु मीणानो याहि हरिण्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥**

पद्यार्थ—हे (शूर) दुष्टों की हिला करने और (इन्द्र) वैध विद्या जानने वाले ! आप (त्रिकद्रुकेषु) जिन व्यवहारों में तीन अर्थात् शरीर, आत्मा और मन की पीड़ा विद्यमान उनके निमित्त (सोमम्) महान् शोधधियों के समूह की (पाहि) रक्षा करो और (उप्रेषु) तेजस्वी प्रबल प्रयापवालों से (इत्) ही (अन्वयः) कामना और (प्रदोषुचक्षु) उत्तमता से कम्पन अर्थात् माना प्रकार की चेष्टा करते और (चक्षुषु) विबुधादिक प्रज्ञो मे (मीणानः) तृप्ति पाते हुए (हरिण्याम्) अन्वये निहित बोझों से (सुतस्य) निकले हुए शोधधियों के रस के (पीतिम्) पीने को (पाहि) प्राप्त होयों ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य प्रबल बुद्धिजनों के साथ अन्वये प्रकार कार्यों का प्रयोग करते हैं तो शत्रुओं को कम्पाते और बड़ी-बड़ी शोधधियों के रस को पीते हुए अन्वये सिखाये हुए बोझों से मुक्त रथ से जैसे जैसे शीघ्र सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

अथ सेनापति के गुणों को अगले मन्त्रों में कहा है—

**धिष्वा शयः शूर येन वृत्रमवाभिन्तानुमौर्गवाभम् ।**

**अपाङ्गुणोऽयोरितारय्यौ नि संवतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८॥**

पद्यार्थ—हे (शूर) दुःख विनाशक (इन्द्र) सूर्य के समान वर्तमान सेनापति ! आप (येन) जिससे (शय) बल को (धिष्वा) चारण करो उससे जैसे सूर्य (वानुम्) जल देनेवाले (वृत्रम्) मेघ को (अपाङ्गुणम्) उर्णा जिसकी नाभि में होती उसके पुत्र के समान अर्थात् जैसे वह किसी की देह का विदारण करे वैसे (अभिन्त) छिन्न-भिन्न करता है और (संवत) वाहिनी और से (व्योतिः) प्रकाश कर अन्धकार को (नि, अप, अङ्गुणोः) निरन्तर दूर करता है वैसे (अपाङ्गुण) उत्तम के लिए साधारण होयों जो (वसु) दूसरे के पदाथों को हरनेवाला है उसका विनाश करो ऐसे युद्ध के बीच विजय (सादि) साधना चाहिए ॥ १८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमाकार है। राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे सूर्य अन्धकार को जैसे अग्न्याय को निवृत्त कर सज्जनों के हृदयों में सुख की प्राप्ति करा निरन्तर बल बढ़ावे ॥ १८ ॥

**सनेम ये तं उतिमिस्तरन्तो विष्वाः स्पृष्ट आयेण दस्युन् ।**

**अस्मभ्यं तत्त्वाष्टं विश्वरूपमरन्ध्रयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥**

पद्यार्थ—हे सेनापते ! (ये) जो (ते) आपकी (उतिभिः) रक्षा याहि कामों की करनेवाली सेनाओं से (विष्वाः) समस्त (स्पृष्टः) स्पर्श करने वालों को (तरन्त) उत्सर्जन करते हुए हम लोग (त्रिताय) त्रिविध अर्थात् शारीरिक, वाचिक और मानसिक सुख जिसको प्राप्त उसके लिए (आम्येण) उत्तम विद्या और धर्म सामर्थ्य के माध्य (वसुन्) शत्रुओं को जीते जो (साख्यस्य) मित्रपन वा मित्रकर्म करने का (विश्वरूपम्) त्रिविध स्वरूप (त्वाष्टम्) प्रकाशमान का रक्षा हुआ है उसको (सनेम) अलग-अलग करें (तत्) इसकी आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए सिद्ध करो और शत्रुओं को (अरन्ध्रयः) नष्ट करो ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य किये हुए को जाननेवाले विद्वान् को सेनापति का अधिकार कर श्रेष्ठ पुरुषों के साथ कर्तव्य और सकलंजय कामों को अन्वये प्रकार नियन्त्रण कर प्रजासुख की सिद्धि करें वे सब सुखों को प्राप्त होयें ॥ १९ ॥

अथ सूर्य के बुध्दान्त से राजधर्म की कहते हैं—

**अस्म सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुद वाधुवानो अस्तः ।**

**अवर्धयतुष्यो न चर्क मित्रबलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥**

पद्यार्थ—हे विद्वान् ! (अस्म) इस (सुवानस्य) ऐश्वर्य और (मन्दिनः) सबको आश्रय उत्पन्न करनेवाले (मित्रस्य) तीन उत्तम, मध्यम और निकृष्ट उपायों से युक्त जन की (अवर्धय) अरब सेनाओं को (वधुवानः) बढ़ाते हुए (अस्तः) बुध्दधिया में प्रेरणा को प्राप्त (चर्कम्) सुखों के समूहों को (सूर्य) सूर्य (न) जैसे (अवर्धयत्) वर्धति हो सी आप जैसे (अङ्गिरस्वान्) पवन का सम्बन्ध जिसके विद्यमान वह (इन्द्र) बिजुली (बलम्) मेघ को (नि, मित्रम्) छिन्न-भिन्न करती है वैसे वर्धतों ॥ २० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमाकार है। जो राजजन जैसे सूर्य अस्तंभ्यात लोको और उनके बीच रहनेवाले पदाथों की व्यवस्था करता है वा पवन की प्रेरणा से हुई बिजुली मेघ को वर्धति है वैसे आचरण करते हैं वे सब कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

फिर उसी विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहोपदिन्द्र दक्षिणा मघानी ।**

**शिक्षा स्तोतृभ्यो मार्ति धम्मगो नो बृहद्देम विदथे सुवीराः ॥२१॥**

पद्यार्थ—हे (इन्द्र) विद्या देनेवाले ! जिन (ते) आपकी (दक्षिणा) बल करनेवाली (मघानी) परमपूजित जनयुक्त नीति (जरित्रे) विद्या की स्तुति करनेवाले के लिए (वरम्) श्रेष्ठ को (नूनम्) निश्चय से (प्रति, दुहोपत्) पूरा करती हुई (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिए (शिक्षा) शिक्षा देती है (या, प्रति, वरम्) नहीं अतीव किसी को दहती, नहीं कष्ट देती (सा) वह (नः) हमारे लिए (बृहद्देम) विस्तृत धन को प्राप्त कराती है उस नीति को प्राप्त होकर (सुवीराः) सुन्दर और जन हम लोग (धिवे) संग्राम में (वधेन) कर्हें अर्थात् औरों को उपदेश दें ॥ २१ ॥

भाषार्थ—जो सबको विद्या देने और सत्योपदेश करनेवाले के लिए बहुत श्रेष्ठ दक्षिणा देते हैं वे विद्वान् होकर शूरवीर होते हैं ॥ २१ ॥

इस सूक्त में राजधर्म, विद्वान् और सेनापति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ सज्जति है यह जानना चाहिए।

यह सूक्त मन्त्राल में ग्यारहवाँ सूक्त प्रथम अनुवाक और छठा वर्ण समाप्त हुआ।



जो जात इत्यस्य पञ्चदशार्थस्य द्वादशस्य सूक्तस्य गृह्यस्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—५, १२—१५ त्रिष्टुप्; ६—८, १०, ११ निष्पत्

त्रिष्टुप्, ९ मुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । जैवत. स्वर. ॥

अथ पञ्चह ऋचावासे बारहवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र से सूर्य के गुणों का वर्णन करते हैं—

**यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् कर्तुना पर्यभूषत्**

**यस्य शुष्माद्रोदसी अम्यसेतां नृम्यस्य मद्वा स जनास इन्द्रः ॥१॥**

पद्यार्थ—हे (जनास) विद्वज्जनों ! (यः) जो (प्रथमः) प्रथम वा विस्तारयुक्त (मनस्वान्) जिसमें विज्ञान वर्तमान (जातः) उत्पन्न हुआ (देवः) प्रकाशमान (कर्तुना) अपने प्रकाश कर्म से (देवान्) प्रकाशित करने योग्य दिव्य-गुणवाले पृथिवी प्रादि लोको को (पर्यभूषत्) सब ओर से विभूषित करता है जिसके बल से (नृम्यस्य) जन के (मद्वा) महत्त्व से (रोषती) आकाश और पृथिवी (अम्यसेताम्) अलग होते हैं (यः) वह (इन्द्रः) अपने प्रताप से सब पदाथों को छिन्न-भिन्न करनेवाला सूर्य है ऐसा जानना चाहिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—जिस ईश्वर ने सबका प्रकाश करने और सबका धारण करनेवाला अपने प्रकाश से युक्त आकर्षण शक्ति युक्त लोकों की व्यवस्था करनेवाला सूर्यलोक बनाया है वह ईश्वर सूर्य का भी सूर्य है यह जानना चाहिए ॥ १ ॥

**यः पृथिवीं व्यधमानामहं ह्यः पर्वतान्प्रकुपितां अरंम्यात् ।**

**यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो ग्रामस्तंभ्रास जनास इन्द्रः ॥२॥**

पद्यार्थ—हे (जनासः) विद्वानो ! (यः) जो (व्यधमानाम्) बलती हुई (पृथिवीम्) पृथिवी को (अहं ह्यः) धारण करता है (यः) जो (प्रकुपिताम्) अत्यन्त कोपयुक्त शत्रुओं के समान वर्तमान (पर्वतान्) मेघों को (अरंम्यात्) छिन्न-भिन्न करता (यः) जो (वरीयः) बहुत विस्तारवाले (अन्तरिक्षम्) पृथिव्यादि दो-दो लोकों के बीच आग का (विममे) विशेषता से मान करता है (यः) जो (ग्राम्) प्रकाश को (अस्तंभ्रात्) धारण करता है (यः) वह (इन्द्रः) सब पदाथों को अपने प्रताप से छिन्न-भिन्न करनेवाला सूर्य जानने योग्य है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो ईश्वर बिजुली वा सूर्य को न रखे तो चलते हुए बड़े-बड़े ध्रुवों को कौन धारण करे, कौन मेघ को वर्षाये और कौन अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से पूरित करे ॥ २ ॥

**यो हस्वादिमरिणास्सपद सिन्धुन्यो गा उदाजदपधा बलस्य ।**

**यो अम्यतोऽन्तरिक्षं अजानं संवृत्समस्तु स जनास इन्द्रः ॥३॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) विद्वानो ( यः ) जो ( अहिम् ) मेघ को ( हत्वा ) मार ( सप्त ) सात प्रकार के ( सिन्धुम् ) समुद्रों को वा नदियों को ( हरिवात् ) खलाता है ( यः ) जो ( वाः ) पृथिवियों को ( उद्वहत् ) ऊपर उठाने करता अर्थात् एक के ऊपर एक को नियम से चला रहा ( यः ) जो ( बलम् ) बल को ( अघवा ) कारण करनेवाला और जो ( अश्मन् ) पाषाणों वा मेघों के ( अग्नः ) बीच ( अग्निम् ) अग्नि को ( ज्ञानम् ) उत्पन्न करता तथा ( समस्तम् ) समग्रो में ( संयुक् ) सब पदार्थों को मिलाकर करता है ( सः ) वह ( इन्द्र ) इन्द्र नामक सूर्य-लोक है यह जानना चाहिए ॥ ३ ॥

**भाषार्थ**—हे मनुष्यों ! जो सूर्यलोक मेघ को बर्षाकर समुद्रों को भरता है सब भूगोलों को अपने प्रति खींचता है अपनी किरणों से मेघ और समीपस्थ पाषाणों के बीच ऊष्मा को उत्पन्न करता है वह अग्निरूप है यह जानना चाहिए ॥ ३ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्धमधरं गुहाकः ।**

**श्वघ्नीव यो जिगीवाहसमाददर्थ्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) मनुष्यों ! ( येन ) जिस ईश्वर ने ( इमा ) ये ( विश्वा ) समस्त ( च्यवना ) प्राप्त हुए लोक ( पुष्टानि ) बृद्ध ( कृतानि ) किये ( यः ) जो ( गुहा ) हृदयाकाश में ( वर्धम् ) रूप को ( अघरम् ) उस हृदय के नीचे ( दासम् ) देने योग्य ( अक ) करता है और ( यः ) जो ( श्वघ्नीव ) कुत्तों को दण्ड देनेवाली के समान ( जिगीवान् ) जयपील ( सक्षम् ) लक्ष को ( आहत् ) ग्रहण करता है ( सः ) वह ( इन्द्र ) परमेश्वर्यवान् ( अर्थ्य ) ईश्वर है यह जानना चाहिए ॥ ४ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमासकार है । जो ईश्वर कारण से विविध प्रकार के लोकों और पदार्थों को रचता है और जो सब कर्मों को लक्ष्य-सा रखता है वह सब को उपासना करने योग्य है ॥ ४ ॥

**यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।**

**सो अर्यः पुष्टाविजइवा विनाति श्रद्धस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥७॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) मनुष्यों ! विद्वान् ( यम् ) जिसको ( कुह, स ) वह कहा है ( इति ) ऐसा ( ईम् ) सबसे ( पृच्छन्ति ) पूछते हैं ( उत्त ) और कोई ( एनम् ) इसको ( घोरम् ) हननरूप हिसारूप अर्थात् भयङ्कर ( आहु ) कहते हैं अथवा कोई ( एष ) यह ( न, अस्ति ) नहीं है ( इति ) ऐसा कहते हैं ( सः ) वह ( अर्थ्यः ) ईश्वर ( विजइव ) अथ मे जैसे कोई सञ्चलित हो चेष्टा करे वैसे दोषों को ( आ, विनाति ) अच्छे प्रकार नष्ट करता है और ( अस्मै ) इस जीव के लिए ( पुष्टी ) पुष्टियों और ( धत्त ) सत्य को धारण करता ( सः ) वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् है इसको तुम ( धत्त ) धारण करो ॥ ५ ॥

**भाषार्थ**—जो आश्चर्य गुणकर्मस्वभावयुक्त परमेश्वर है उसको कोई वह कहा है, ऐसा कहते हैं कोई उसका भयकर, कोई शान्त और कोई यह नहीं है ऐसा बहुत प्रकार से कहने है वह सबका आधारभूत हुआ सत्य, धर्म और जीवन के उपायों का वेद के द्वारा उपदेश करता है वह सबको उपासना करने के योग्य है ॥ ५ ॥

**यो रधस्य चोदिता यः कुशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।**

**युक्तग्राणो योऽविता सुशिप्रः सुतसौमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) मनुष्यों ! ( यः ) जो ( रधस्य ) हिंसा करनेवाले का ( यः ) जो ( कुशस्य ) दुर्वल का ( यः ) जो ( नाधमानस्य ) समस्त ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाले का ( यः ) जो ( ब्रह्मणः ) वेद का ( युक्तग्राणः ) और जिसमें मेघ वा पशुयुक्त हैं उस पदार्थ का ( कीरेः ) तथा सकल विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करनेवाले का ( ओदिता ) प्रेरणा करनेवाला वा ( यः ) जो ( सुशिप्रः ) ऐसा है कि जिसमें सुन्दर सेवन होते और ( सुतसौमस्य ) जिसमें उत्पन्न किये सोमादि अच्छे पदार्थ उसको ( अविता ) रक्षा करनेवाला है ( सः ) वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् परमेश्वर है ॥ ६ ॥

**भाषार्थ**—हे मनुष्यों ! उसी परमेश्वर की उपासना तुम करो कि जो जगत की उत्पत्ति, निवृत्ति, प्रलयकर्ता तथा सकल विद्यायुक्त वेद का उत्तम ज्ञान करनेवाला है ॥ ६ ॥

अब बिजुलीरूप अग्नि के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथांसः ।**

**यः सूर्ये य उषसे जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) विद्वान् मनुष्यों ! तुम को ( प्रदिशि ) प्रति दिशा के समीप ( यस्य ) जिसके ( विश्वे ) समस्त ( अश्वासः ) व्याप्तिशील वेगादि गुण-युक्त ( यस्य ) जिसके समस्त ( गावः ) किरणें ( यस्य ) जिसके समस्त ( ग्रामाः ) मनुष्यों के निवास ( यस्य ) जिसके समस्त ( रथांसः ) बिहार करनेवाले रथ ( यः ) जो कारण बिजुलीरूप अग्नि ( सूर्यम् ) सूर्यमण्डल और ( यः ) जो ( उषसम् ) प्रभातकाल को ( अजानम् ) प्रकट करता वा ( यः ) जो ( अपाम् ) जलों की ( नेता ) प्राप्ति करानेवाला है ( सः ) वह ( इन्द्रः ) पदार्थों का छिन्न-भिन्न करनेवाला बिजुलीरूप अग्नि है यह जानना चाहिए ॥ ७ ॥

**भाषार्थ**—हे मनुष्यों ! यदि आप लोग वेगादि अनेक गुणयुक्त सूर्य, सूर्यमण्डल पदार्थों के आधाररूप बीजगामी विमान आदि यान और वर्षा निमित्त बिजुलीरूप अग्नि को जान लें तो कौन-कौन उत्तम कार्य सिद्ध न कर सकें ॥ ७ ॥

**यं क्रन्दसी संयती विह्वयते परेऽर्ध उभया अमित्राः ।**

**समानं चिद्रथमातस्थिवासा नानां हवते स जनास इन्द्रः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) विद्याप्रिय मनुष्यों ! तुमको ( अमित्राः ) रौने का शब्द कराने ( संयती ) और समय से जानवाले प्रकाश और पृथिवी ( यम् ) जिस सूर्यमण्डल को जैसे कोई पदार्थ ( विह्वयते ) स्पष्टी करे वैसे वा ( परे ) उत्तम ( अमित्रे ) न्यून ( उभयाः ) अर्थात् प्रकाश और अप्रकाशयुक्त दोनों कीटियों का सम्बन्ध करने की ( अमित्राः ) मनुजन जैसे ( समानम् ) समान ( रथम् ) रथ आदि यान को ( ह्वित ) वैसे ( आतस्थिवासा ) सब ओर से स्थिर ( नामा ) अनेक प्रकार से ( हवते ) ग्रहण करते हैं ( सः ) वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् है यह जानना चाहिए ॥ ८ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमासकार है । जैसे दो सेना सम्मुख खड़ी होकर युद्ध करती हैं वैसे प्रकाश और अप्रकाश वर्तमान हैं ॥ ८ ॥

अब ईश्वर और बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यस्माञ् ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।**

**यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥९॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) मनुष्यों ! ( जनासः ) विद्वान् जन ( यस्मात् ) जिससे ( ऋते ) विना ( न ) नहीं ( विजयन्ते ) विजय को प्राप्त होते हैं ( यम् ) जिसको ( युध्यमानाः ) युद्ध करते हुए ( अमित्रे ) रक्षा आदि के लिए ( हवन्ते ) ग्रहण करते हैं ( यः ) जो ( विश्वस्य ) सत्ता का ( प्रतिमानम् ) परिमाणसाधक ( यः ) जो ( अच्युतच्युत् ) स्थिर पदार्थों में चलायमान होता व उन स्थिर पदार्थों को चलावेवाला ( बभूव ) होता ( सः ) वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् परमेश्वर है यह जानना चाहिए ॥ ९ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में श्लेषालकार है । जो परमेश्वर की उपासना नहीं करते, बिजुली की विद्या को नहीं जानते वे विजयशील नहीं होते जो यह विश्व और जो सब पदार्थों का रूपगान है वह परमेश्वर और बिजुली का विज्ञान करनेवाला है ॥ ९ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**यः शश्वतो मघेनो दधानानमन्यमानाञ्छवो जयान ।**

**यः शर्द्धते नानुददाति श्रुच्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥८॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) विद्वान् मनुष्यों ! तुम लोगों को ( यः ) जो परमेश्वर ( शश्वत ) घनादिस्वरूप पदार्थों को धारण करता ( महि ) प्रत्यन्त ( एनः ) पाप को ( दधानान् ) धारण किये हुए ( अमन्यमानान् ) अज्ञानी, शठ, पापियों को ( शर्द्धा ) शासनकारी वज्र से ( जघान ) मारता ( यः ) जो ( शर्द्धते ) कुत्तित निन्दित पापयुक्त शब्द करने अर्थात् उच्चारण करनेवाले के लिए ( श्रुच्याम् ) शब्द निन्दा न ( अनुददाति ) अनुकूलता से देता है और ( यः ) जो ( दस्यो ) दूसरे के पदार्थों को हर्षनेवाले दुष्ट का ( हन्ता ) मारनेवाला है ( सः ) वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् परमेश्वर सेवने योग्य है ॥ १० ॥

**भाषार्थ**—जो परमेश्वर दुष्टाचारियों को न ताड़ना दे, धार्मिकों का सरकार न करे और डाकुओं को न मारे तो न्यायव्यवस्था नष्ट हो जाए ॥ १० ॥

**यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्या शरघन्वविन्दत् ।**

**ओजायमानं यो अहिं जयान दानुं क्षयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) बुद्धिमान् मनुष्यों ! तुमको ( यः ) जो ( पर्वतेषु ) बहलो में ( चत्वारिंश्याम् ) चालीसवीं ( शरघि ) शरद् ऋतु में ( क्षियन्तम् ) निवास करते हुए ( शम्बरम् ) मेघ को ( अम्बबिम्बत ) अनुकूलता से प्राप्त होता और ( यः ) जो ( दानुम् ) देनेवाले ( क्षयानम् ) तथा सोते हुए के समान वर्तमान ( अहिम् ) मेघ को ( जघान ) मारता है ( सः ) वह ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् सूर्य जानना चाहिए ॥ ११ ॥

**भाषार्थ**—जो चालीस वर्ष पर्वत वर्षा न हो तो कौन प्राण घर सके । जो सूर्य जल को खींच, न धारण करे और न वर्षावे तो कौन बल पाने को योग्य हो ॥ ११ ॥

**यः सप्तरश्मिर्दृष्टमस्तुविष्मानवासुजत्सत्तैवे सप्त सिन्धून् ।**

**यो रौहिणमस्फुग्दृज्जवाहुर्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे ( जनासः ) मनुष्यों ! तुमको ( यः ) जो ( सप्तरश्मिः ) सात प्रकार की किरणों से युक्त ( सप्तः ) मेघ की शक्ति को रोकनेवाला ( रुहिण्यम् ) बहुत बल से खींचने की शक्ति से युक्त सूर्यलोक ( सप्त, सिन्धुम् ) सात सिन्धुओं को ( सत्तैवे ) चलने अर्थात् बहने के लिए ( अम्बबिम्बत ) उत्पन्न करता अर्थात् जल आदि पदार्थों से परिपूर्ण करता है ( यः ) जो ( अम्बबिम्बतः ) भूमा के सूर्य



किंवा तपुःश्रद्धा ( जलम् ) प्रकाश को ( आद्योक्तम् ) चक्रे हुए ( दीप्तिम् ) चक्रे के बीचमें लेव को ( अक्षुण्णम् ) चक्रे के बीच में चलाता है ( सः ) वह ( इन्द्रः ) सूर्यलोक सबको बसाने के योग्य है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जिस में रत्नरत्न बरुंभुक्त सत् प्रकार के किरण विद्यमान हैं वही सूर्यलोक वर्षा द्वारा नदी और नदों को अच्छे प्रकार परिपूर्ण करता और फिर ऊपर की जल क्षीयके कारण करता फिर वर्षाता है ऐसे ही ईश्वर के आभास नियम से यह संसारभक्त वर्तमान है ॥ १२ ॥

फिर सूर्य-विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आवां चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्पांश्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।

यः सोमपा निक्षिती बज्रबाहुयो बज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

पदार्थ—हे ( जनासः ) मनुष्या ! तुम को ( अस्मै ) इस सूर्यमण्डल के लिए ( आवां ) आकाश और पृथिवी के समान बृहत् पदार्थ ( चिदः ) भी ( नमेते ) प्रति सामर्थ्ययुक्त श्रद्धायमान होते हैं ( अस्मै ) इस सूर्यमण्डल के ( शुष्पां ) बल से ( चिदः ) ही ( पर्वताः ) मेघ ( भयन्ते ) अक्षीय होते हैं ( यः ) जो ( सोमपाः ) रस को पाता ( निक्षिती ) निरन्तर अनेक पदार्थों से ढकटा किया गया ( बज्रबाहुः ) और ( यः ) जो बाहुओं के तुल्य किरण बलयुक्त तथा ( बज्रहस्तः ) जिस की हाथों के समान किरणें हैं वह ( इन्द्रः ) सूर्यलोक जानने योग्य है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस के आकर्षण से प्रकाश और जलित नमे हुए वर्तमान हैं, मेघ भन रहे हैं, हाथों के समान जो रस को ऊर्ध्व पहुँचाता है, उस का यथावत् अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ १३ ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पञ्चन्त यः शंसन्त यः शशमानमुती ।

यस्य ब्रह्म बर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

पदार्थ—हे ( जनासः ) विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को ( यः ) जो जगदीश्वर ( इन्द्रः ) रसा आदि किया से ( सुन्वन्तम् ) सबके सुख के लिए उत्तम-उत्तम पदार्थों के रस निकाले हुए को वा ( यः ) जो ( पञ्चन्तम् ) पक्का करते हुए को वा ( यः ) जो ( शंसन्तम् ) प्रशंसा करते हुए को वा ( यः ) जो ( शशमानम् ) अधर्म का उत्सर्जन करते हुए को ( अवति ) रखता है, पालता है ( यस्य ) जिसका ( ब्रह्म ) वेद ( बज्रम् ) बृद्धि ( यस्य ) जिस जगदीश्वर का ( सोमः ) पञ्चमा और ओषधियों का समूह ( यस्य ) जिसका ( इवम् ) यह ( राधः ) धन है ( सः ) वह ( इन्द्रः ) सर्ववर्धन जगदीश्वर निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने वेदोपदेश द्वारा मनुष्यों की उन्नति की वा जिससे परमात्मा जन पलते वा जिससे दुष्टाचरण करनेवाले ताड़ना पाते वा जिसका यह सब जगत् ऐश्वर्यरूप है उसका ध्यान अपने-अपने आत्माओं में निरन्तर करो ॥ १४ ॥

यः सुन्वते पचते बुध आ चिद्वाजं दर्दधि स किलासि सत्यः ।

वयं ते इन्द्र विश्वं प्रियासः सुवीरासां विदधमा वदेम ॥१५॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) परमेश्वर्य के देनेवाले ईश्वर ! ( यः ) जो ( बुधः ) बुद्धि धारण करने योग्य आप ( सुन्वते ) उत्तम-उत्तम पदार्थों का रस निकालते वा ( पचते ) पदार्थों को परिपक्व करते हुए के लिए ( वाजम् ) सबके वेग को ( आ, बर्धनम् ) सब ओर से निरन्तर विदियों करते हो ( सः, किलासि ) वही आप ( सत्यः ) सत्य अर्थात् तीन काल में प्रभाव-निरन्तर एकता रखनेवाले हैं उन ( ते ) आप के ( विश्वम् ) विज्ञानस्वरूप की ( प्रियासः ) प्रीति और कामना करते हुए ( सुवीरासः ) सुन्दर वीरोंवाले होते हुए हम लोग ( विश्वम् ) सब दिनों में ( चित् ) निश्चय से ( आ, बर्धनम् ) उपदेश करें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर मूल अक्षमियों से जाना नहीं जा सकता और वह सब जगत् का यथावत् रक्षनेवाला वा विनाश करनेवाला विज्ञानस्वरूप अविनाशी है उसकी प्रशंसा और उपासना करो ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य, ईश्वर और बिजुली के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की गिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह बारहवां सूक्त और नववां मंत्र समाप्त हुआ ॥

ॐ

अतुरिति ज्योतिषांश्च ज्योतिषांश्च सुस्तस्य गुरुसमं ज्ञातिः । इन्द्रो वेवता ।

१—३, १०—१२ अतुरिक् प्रिष्टुप्, ७, ८ निष्ठुतिष्ठुप्;

२, १३ निष्ठुप् ज्ञातिः । वेवताः स्वरः । ४ निष्ठुतिष्ठुप्;

५, ६ विराट् जगती ज्ञातिः । निष्ठाः स्वरः ॥

अथ तेरह अक्षरवाले सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपासना करते हैं—

अतुर्जनिमी तस्या अपस्पृशं मूक्ष जात आविशद्यासु वर्धते ।

तदाहना अमवस्तिपुषी पयोऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( अतुः ) अक्षरवाले मनुष्य ( जातः ) उत्पन्न हुआ ( तस्य ) उन ( आहनाः ) सब पदार्थों में अक्षर ( अपः ) जलों को ( अपः, अपस्पृशं ) सब प्रकार से प्रवेश करता है ( मूक्ष ) जिन में ( मूक्ष ) क्षीय ( परिपक्वते ) सब ओर से बढ़ता है उस की जो ( अमवस्तिपुषी ) उत्पन्न करनेवाली समय, वेला है ( तस्याः ) उसकी जो ( पयोः ) रस का ( पिपुषी ) पान करनेवाली अमवस्ति ( अमवस्तिपुषी ) होती है उसके ( अशोः ) घन से जो ( प्रथमम् ) प्रथम ( पीयूषम् ) पीने योग्य उत्पन्न होता है उस अक्षरवाली समस्त अम को तुम प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को अक्षरवाले मनुष्यों की उत्पन्न करनेवाली बिजुली जाननी चाहिए जिस बिजुली के प्रभाव से प्रभु के समान मेघ जल वर्षित हैं जिस से सब प्रजा बढ़ती है वह जाननी चाहिए ॥ १ ॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वस्पृश्यां प्र भरन्त भोजनम् ।

समानो अच्चा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकुणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२॥

पदार्थ—जो ( सध्री ) समान ठहरनेवाले ( पयोः ) रस को ( बिभ्रतीः ) धारण किये हुए जल ( अनुष्यदे ) धनुकुलता से किञ्चित्-किञ्चित् करने के लिए ( विश्वस्पृश्यां ) संसार की पालना के लिए ( ईम् ) जल ( परि, आ, वन्ति ) सब ओर से पर्याप्त से प्राप्त होते हैं ( भोजनम् ) पालना को ( प्र, भरन्त ) धारण करते जिन ( प्रवताम् ) जाते हुए जलों का ( समानः ) समान ( अच्चा ) मार्ग है ( यः ) जो ( ता ) उनका ( प्रवतम् ) उत्तम नियमवान् ( अकुणोः ) करते हैं ( सः ) वह आप ( उक्थ्यः ) प्रशंसा करने योग्य ( अस्ति ) हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो जल पवन के साथ चलता है जिससे सब का पालन होता है उसको सदा शोचो जिससे आप लोग प्रशंसित हों ॥ २ ॥

फिर ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अन्वेकौ वदति यहदाति तद्रपा भिनन्तदपा एकं इयते ।

विश्वा एकस्य भिनुदस्तिस्तिस्ते यस्ताकुणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! ( एकः ) एकाकी आप ( विश्वाः ) समस्त विश्वाओं के ( वत् ) जिन ( अनुवदति ) अनुवादों को करते हैं ( तत् ) वह साथ ( क्वा ) जाना प्रकार के रूपों को ( वित् ) विन्न-विन्न करते और ( तद्रपाः ) वही कर्म जिन का ऐसे होते हुए आप ( एकः ) एकाकी ( इयते ) प्राप्त होते ( वित् ) सब का सहन करते ( यः ) जो ( ता ) उन-उक्त कर्मों का ( प्रवतम् ) विस्तार जैसे हो वैसे ( अकुणोः ) करते हैं जिन ( भिनुदः ) प्रेरणा करनेवाले ( एकस्य ) एक आप का यह जगत् है ( सः ) वह आप ( उक्थ्यः ) कथनीय जनों में प्रसिद्ध ( अस्ति ) है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अद्वितीय जगदीश्वर हम लोगों के कल्याण के लिए सृष्टि की आदि में वेदों का उपदेश करता संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है जो अन्तर्धर्मी अपारकालिक सब अपवर्गों को सहता है उसी सर्वोत्तम प्रशंसा योग्य की आप लोग प्रशंसा करें ॥ ३ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रजाभ्यः पुष्टि विमजन्त आसते रयिमिष पृष्ठं भवन्तमायते ।

असिन्वन्दष्टैः पितुरंति भोजनं यस्ताकुणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४॥

पदार्थ—जो ( प्रजाभ्यः ) प्रजाजनों के लिए ( पुष्टिम् ) पुष्टि के योग्य पदार्थों को ( विमजन्तः ) विविध प्रकार से सेवन करते हुए जन ( आयते ) समीप प्राप्त हुए जिज्ञासु जन के लिए ( प्रवतम् ) उत्पन्नमान ( पृष्ठम् ) आधार की ( रयिमिष ) धन के समान ( असिन्वन् ) बाँधते और ( आसते ) स्थिर होते हैं उनके साथ ( यः ) जो ( वन्दष्टैः ) दन्तों से ( पितुः ) धन्न ( भोजनम् ) भोजन के योग्य पदार्थों को ( अस्ति ) भक्षण करते हैं ( सः ) वह आप ( उक्थ्यः ) कहने योग्य जनों में प्रसिद्ध ( अस्ति ) हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य दूसरे मनुष्यों की शिखा और धन की वृद्धि के लिए बहुपरिहर अर्थात् कटिबद्ध होते हैं वे सुखी होते हुए प्रशसनीय हैं ॥ ४ ॥

अधाकुणोः पृथिवीं संदधे विवे यो धीतीनीमहिहभारिजपथः ।

तं त्वा स्तोमैर्भिरुदमिर्ने वाजिनं देवं देवा अजनस्तसास्युक्थ्यः ॥५॥

पदार्थ—हे ( अहिहन् ) मेघहन्ता सूर्य के समान मनुष्यो को हननेवाले ! ( यः ) जो आप ( धीतीनीमम् ) पावन करती हुई नदियों के ( पथः ) मार्गों को ( अहिहन् ) धलन-धलन करते हैं ( अजः ) इस के धनस्तर ( विवे ) प्रकाश के लिए ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( सधृष्टैः ) अच्छे प्रकार बंधने को ( अकुणोः ) करते हैं अर्थात् मार्गों को मुक्त करते जिन ( त्वा ) आप को ( वाजिनम् ) वेगवान् और ( देवम् ) दिव्य गुण कर्म स्वभाववाले को ( देवाः ) श्रेष्ठमान विद्वज्जन ( अजनम् ) उत्पन्न करते हैं ( तम् ) उन आप को ( उदमिः ) जलों से ( सः ) जैसे जैसे ( स्तोमैर्भिरुदमिर्ने ) स्तुतियों से हम लोग प्रशंसित करते हैं ( सः ) वह आप ( उक्थ्यः ) कथनीय जनों में प्रसिद्ध ( अस्ति ) हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकमुत्प्रेषणका प्रयोग है। हे मनुष्यो ! जैसे सविता नदिनी के बाँधों को उत्पन्न करता सब भूतमान् जन्मों को प्रकाशित करता वैसे त्वाय माता को अपने प्रकार चला कर विद्या और शिक्षा का प्रकाश द्युत करो ॥ ५ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमाद्रादा शुष्कं मधुमदोहिथ ।

स वैवर्धि नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! ( य ) जो ( एक ) एक अन्नदाय अद्वितीय आप ( विश्वस्य ) सूर्य में अभिव्यक्त होते ( विश्वस्य ) समस्त जगत् के ( भोजनम् ) पालन ( य ) और पुत्रार्थ और वृद्धि की ( दयसे ) रक्षा करते ( ईशिषे ) और ईश्वरता को प्राप्त हैं वा ( शुष्कम् ) सूखे पदार्थ की ( आद्रादा ) गीले पदार्थ से ( मधुमत् ) मधुर गुणयुक्त ( दधोहिथ ) परिपूर्ण करते ( सः ) वह आप ( वैवर्धि ) निर्विकल्प पदार्थ को ( निवर्धिषे ) निरन्तर चारण करते हैं इस कारण ( सः ) वह आप ( उक्थ्यः ) प्रशंसनीयों में प्रसिद्ध ( अस्ति ) हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो पालना करता हुआ ईश्वर समस्त जगत् का निर्माण कर और उसी की रक्षा कर सिद्ध करनेवाले पदार्थों को देकर समस्त विश्व को सुखों से परिपूर्ण करता है वह एक ही उपासना के योग्य है ॥ ६ ॥

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्यवनीधारयः ।

यश्चासमा अज्जो दिक्षुतो दिव उरूर्वो अमितः सास्युक्थ्यः ॥७॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! ( य ) जो आप ( वर्धना ) धर्म से ( दाने ) देने में ( पुष्पिणीः ) फूलोंवाली ( य ) वा ( प्रस्वः ) फल उत्पन्न करनेवाली जटा-दिकों ( य ) वा ( व्यवनीः ) धूमियों को ( अधि, धारयः ) अधिकता से चारण ( यः ) जो ( अस्माः ) अस्मान् ( दिवः ) बिजलियों को वा ( विश्वः ) प्रकाशमय लोकों को ( अमितः ) सब ओर से ( वि, व्यवनीः ) विशेषता से उत्पन्न करते हैं ( यः ) और जो ( उरूर्वः ) बहुशक्तिमान् आप ( व्यवनीः ) अविनाशी पदार्थों को प्रकट करते हैं ( सः ) वह आप हम लोगों से ( उक्थ्यः ) प्रशंसनीयों में प्रसिद्ध ( अस्ति ) हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने बहुत पुष्प और फलयुक्त ओषधि, सबकी आहारभूत पृथिवी और बिजली आदि पदार्थ उत्पन्न किये हैं वही आप हम लोगों को उपास्य है ॥ ७ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यो नार्भरं सहवसुं निहन्तवे पृथाय च दासवैशाय चार्वहः ।

उर्जयन्त्या अपग्विष्टमास्यमुतैवाद्य पुंरुक्तसास्युक्थ्यः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( पुंरुक्तः ) बहुत वस्तुओं को करनेवाला सेनापति विद्वान् ( दासवैशाय ) जिसमें सेवक प्रवेश करते उसके लिए और ( पृथाय ) लेवन करने के लिए ( य ) भी ( सहवसुम् ) बनादि पदार्थों के साथ वर्तमान ( नार्भरम् ) मनुष्यों को मरवा देनेवाले पथन के सम्बन्ध अग्नि ( अर्वाहः ) प्राप्त होता है जिससे ( आस्यम् ) सुख ( अपग्विष्टम् ) परिवेष परसने के कर्म से रहित हुआ हो ( उत ) और ( उर्जयन्त्याः ) बलवती सामग्रियों में उत्तम जल ( यः ) भी विद्यमान है ( सः, एष ) वही सेनापति ( अद्य ) आज ( उक्थ्यः ) कथनीय पदार्थों में ( अस्ति ) है यह तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो राजजन भृत्यों और सेवकों को श्रेष्ठ भोजनादि देकर आनन्दित करते हैं वे स्तुति सेवनेवाले होकर बहुत भोगों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

शतं वा यस्य दशं साकमाद्य एकस्य अष्टौ यद् चोदमाविथ ।

अरजौ दस्युत्समनद्भीतये सुग्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( यस्य ) जिन आपके ( दशानां वा ) दशसौ एक सहस्र घोड़ा ( साकम् ) साथ में वर्तमान है वा ( यत्, ह ) जो ही ( अस्माः ) भोजन करने योग्य आप ( एकस्य ) जो सहाय रहित है उसके ( भूष्टौ ) जाने योग्य सुख के निमित्त ( अष्टौम् ) प्रेरणा को ( आविथ ) चाहते हो ( अरजौ ) बिना किसी रचना विशेष स्थान में ( भीतये ) मारने के लिए ( दस्युम् ) दुष्टाचारी मनुष्यों को ( समुत्तम् ) अच्छे प्रकार पूर्ण करते हो और ( सुग्राव्यः ) सुन्दरता से प्रकाश के साथ रखने योग्य ( अभवः ) होते हो इस कारण ( सः ) वह आप ( उक्थ्यः ) अनेकों के बीच प्रशंसनीय ( अस्ति ) हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जिस किसी से एक सहस्र बीर घोड़ा सत्कार करके रखे जाते हैं वह चोरादिकों को निवृत्त कर सकता है ॥ ९ ॥

किर प्रकारान्तर से विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कुजवे घनम् ।

पठस्वन्ना विष्टिरः पञ्च संदशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥१०॥

पदार्थ—मनुष्य ( अस्य ) इस ( कुजवे ) कर्म करनेवाले मनुष्य के लिए ( दधु, विष्टिरः ) वह जो विशेषता से अपने-अपने समय को पार होती है वे ऋतुएँ ( पञ्च ) और पाँच ( संदशः ) अपने-अपने विषय को देखनेवाले पृथिवी, वायु, तेज, वायु, आकाश ये दूत वा पाँच कर्मनिष्ठा ( विष्टिरः ) सब ( रोधना ) रक्षाकर्तों को ( अनुष्टुः ) अनुकूलता के बेटे हैं और ( घनम् ) घन को ( दत् ) हो ( परि, दधिरे ) सब ओर से चारण करते हैं ( अस्य ) इसके ( पौंस्यम् ) पुत्रार्थ को अनुकूलता से चारण करते अर्थात् जानते हैं वह ( परः ) उत्कृष्ट घन को ( अस्तम्भाः ) रोकता है और ( अभवः ) प्रसिद्ध होता है ( सः ) वह ( उक्थ्यः ) अनेकों में प्रशंसनीय ( अस्ति ) है ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य युक्त आहार-विहार करनेवाले जितेन्द्रिय होते हैं वे सब ऋतुओं में पाँचों इन्द्रियों से सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्य्यः यदेकैकं कर्तुना विन्दसे वसु ।

जातृष्टिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्त्युक्थ्यः ॥११॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्य की प्राप्ति करनेवाले ! जिस कारण आप ( उक्थ्यः ) प्रशंसा करने योग्य ( अस्ति ) हो, हे ( वीर ) प्रशंसित बलशुक्त ! जिन ( जातृष्टिरस्य ) कभी स्थिर पाये हुए ( सहस्वतः ) बलवान् ( तव ) आपका ( सुप्रवाचनम् ) सुन्दर, अति उत्कृष्ट पढ़ाना, अवण करना और ( वीर्य्यम् ) उत्तम पराक्रम है ( यत् ) जो आप ( एकैकम् ) एक ( कर्तुना ) कर्म व ज्ञान से ( वयः ) विश्वा और ( वसु ) वन को ( अविन्दसे ) प्राप्त होते हैं ( या ) जिन ( विश्वाः ) समस्त उक्त कामों को ( चकर्थ ) करते हैं ( सः ) वह आप उन कामों के लिए हम लोगों के राजा वा उपदेशक वा अध्यापक हुए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जिनके वेद के पारङ्गत अध्यापक विद्वान् प्रेम से उत्तम ज्ञानको देखे हैं वे कभी दुःखी वा निन्दित नहीं होते हैं ॥ ११ ॥

अरययः सरपसस्तरायं कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रतिम् ।

नीचा सन्तमुदनयः परावृजं मान्धं श्रोशं श्रवयन्तास्युक्थ्यः ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप ( सरपस ) जिससे पाप चलाये जाते हैं ( तरायः ) उसके उत्प्लवन और ( तुर्वीतये ) साधनों से व्याप्त होने के लिए ( यः ) और ( वय्याय ) सूत के विस्तार करने के लिए ( यः ) भी ( स्रतिम् ) नाना प्रकार की चाल को जताइए और ( परावृजम् ) सोट गये हैं त्याग करनेवाले जिससे उस मनुष्य को ( मान्धम् ) अत्यन्त अन्धे वा ( श्रोशम् ) बहिरे के समान ( श्रवयन् ) सुनाते हुए ( नीचा ) नीच व्यवहार से ( सन्तम् ) विद्यमान मनुष्य को उत्तम व्यवहार में ( अरययः ) रमाते हैं तथा सबकी ( उदनयः ) उत्पत्ति करते हो इस कारण ( सः ) वह आप ( उक्थ्यः ) प्रशंसनीय ( अस्ति ) हैं ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जैसे शिल्पवेत्ता विद्वान् जन धीरों को शिल्पविद्या के दान से उत्कृष्ट करते हुए अन्धों को देखते हुए के समान वा बहिरे को श्रवण करनेवाले के समान बहुश्रुत करते हैं वे इस ससार में पूज्य होते हैं ॥ १२ ॥

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु तै वसध्वम् ।

इन्द्र यश्चिन्नं अवस्या अनु चूचूहृद्वेस विदये सुवीराः ॥१३॥१२॥

पदार्थ—हे ( वसो ) सुखों में बसाने और ( इन्द्र ) ऐश्वर्य देनेवाले विद्वन् ! ( ते ) आपके ( वसध्वम् ) बनादि पदार्थों में हुए ( चिन्नम् ) भद्रभूत ( वृहत् ) बड़ा बड़ता हुआ ( चूचू ) बहुत ( राधः ) सुखसाधक घन है ( तत् ) वह ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( दानाय ) देने को ( समर्थयस्व ) समर्थ करो जिससे ( अवस्थाः ) सुनने के व्यवहारों में उत्तम ( सुवीराः ) सुन्दर शूरतायुक्त मनुष्य वा गुणों से युक्त हम लोग ( अनुचून् ) प्रत्येक पराक्रमान्दिक के प्रकाशों को ( चिन्ने ) सघाम में ( वृहत् ) बहुत ( वसेन ) कहें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—वे ही विद्वान् हैं जो धीरों को शरीर, आत्मबल के योग से समर्थ और बनाइय, शूरवीर पुत्रप्राप्ति करते हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में बिजुली, विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेरहवाँ सूक्त और बारहवाँ अर्ग समाप्त हुआ ॥



अध्वर्यव इति द्वावश्वस्य ऋतुर्दशसूक्तस्य गुत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ३, ४, ६, १०, १२ त्रिष्टुप्, २, ५, ८ त्रिष्टुप्, ९, ११, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३,

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) अपने को यज्ञ कर्म की बाह्या करनेवाले मनुष्यो ! तुम जो (यः) यह (कामी) कामना करने के स्वभाववाला (वीरः) वीर (युद्ध) बल बढ़ाने के लिए (अस्त्र) इस सोमरस के (वीरिणः) वीर को (विजि) बाह्या है (सत्, इत्) उसे (सत्त्व) पाने योग्य सोम (हि) को निश्चय से तुम (गृह्ये) ग्रहण करो (इन्द्राय) वीर परमेश्वर के लिए (अध्वर्यवः) उत्तम पदार्थ है (अस्त्रम्) पूर्व देनेवाले (अस्त्रः) अस्त्र को तथा (वीरम्) सोम रस को (विजि) वीर को वीर बल को (वा, भरत) पुष्ट करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सर्व रोग हरने, बुद्धि और बल के देनेवाले भोजन और पान पदार्थ उत्तम वस्तु पाने की कामना करते हैं वे बलिष्ठ वीर होते हैं ॥ १ ॥

अब विजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध्वर्यवो यो अपो वज्रिवांसं हृत्रं जघानाशान्येष हृत्सम् ।

तस्मा एतं भरत तदुवाच एव इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) अपने को घाँहसा की इच्छा करनेवालो ! (यः) जो सूर्य (वज्रिवांसम्) धारण करनेवाले (वज्रम्) मेघ को (जघान्) विजुली के समान (वज्रम्) वज्र को (जघान्) मारता है अर्थात् दाहकर्म के अस्त्र कर देता है और (अस्त्रः) वज्रों को बर्षा तथा जो (यः) यह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् जन (अस्त्रम्) सोममत्तादि रस के (वीरिणः) वीर को (अर्हति) योग्य होता है इस कारण (तदुवाच) उन-उन पदार्थों की कामना करनेवाले के लिए (एतम्) उक्त पदार्थ द्रव्य को धारण करो अर्थात् उनके गुणों को अपने मन से निश्चित करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमाकार है । जो सूर्य के समान विद्या और मेघ के समान सुख की उत्पत्ति करते हैं और सदा पथ्योपधि सेवी हुए ओषधियों का सेवन करते हैं वे परोपकार करने को भी योग्य होते हैं ॥ २ ॥

अब राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध्वर्यवो यो दमीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।

तस्मा एतमन्तरिक्षं न वातमिन्द्र सोमैरोणुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ सम्पादन करनेवाले जानो ! (यः) जो (दमीकम्) अयस्कृत प्राणी को (जघान्) मारता है कितना कि (यः) जो (गा.) गौओं को (उदाजत्) विविध प्रकार से फेंके अर्थात् उठाय-उठाय पटके मारे और (वज्रम्) बल को (अप, वः) प्रपकरण करे, रोंके (तस्मै) उसके लिए (हि) ही (एतम्) इस यज्ञ को (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष में (वातम्) वायु के (न) समान वा (इन्द्रम्) मेघों की धारणा करनेवाले सूर्य को (वलम्) वस्त्रों से (यः) बुद्ध के (न) समान (सोमै.) ओषधियों वा ऐश्वर्यों से (वा, ऊर्ध्वत) आच्छादित करो अर्थात् अपने यज्ञभूम से सूर्य को ढाँपो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो राजपुरुष भवानक गोहत्या करनेवालों को मारने हैं और उत्तमों की रक्षा करते हैं वे निर्भय होते हैं ॥ ३ ॥

अध्वर्यवो यो उरं जघान नव चरुवांसं नवति च बाहून् ।

यो अर्धुदमं नीचा बवाचे तमिन्द्र सोमस्थ भूमे हिनीत ॥४॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) सब के प्रियावरणों को करनेवाले विद्वानो ! तुम (यः) जो जन (उरम्) आच्छादन करनेवाले (चरुवांसम्) मारनेवाले के प्रति मारनेवाले को (जघान्) मारे और (नव, नवतिम्) न्यग्यान्त्रे (बाहून्) बाहुओं के समान सहाय करनेवालों को (च) भी मारे (यः) जो (अर्धुदम्) दम करो (नीचा) नीचों को (अप, बवाचे) बिलोता है (तम्) उस (इन्द्रम्) विजुली के समान सेनापति को (सोमस्थ) ऐश्वर्य के (भूमे) धारण करने में (हिनीत) भेरणा सेवी ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे सेनास्य मनुष्यो ! तुम जो जो कि अनेकों सहाययुक्त पुष्टता करने वाले दुराचारियों को मारने और राज्येश्वर्य का पुष्ट करनेवाला हो, वह सेनापति करना चाहिए ॥ ४ ॥

अध्वर्यवो यः स्वर्गं जघान यः शुष्णमशुषं यो ध्वंसम् ।

यः पित्रं नमुषि यो रुधिकां तस्मा इन्द्रायान्वसो जुहोत ॥५॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) अपने को यज्ञकर्म की इच्छा करने वा सब के प्रियावरण करनेवालो ! तुम (यः) जो जन सूर्य जैसे (स्वर्गम्) सुन्दर मेघ को जैसे मनु को (जघान्) मारता है वा (यः) जो (शुष्णम्) सूखे पदार्थ को (अशुषम्) गीला वा (यः) जो (ध्वंसम्) मनु को निर्भुज करता वा (यः) जो (नमुषिम्) अघमर्त्या (पित्रम्) प्रजापालक अर्थात् राजा को वा (यः) जो (रुधिकां) राज्य व्यवहारों के रोकनेवालों को निरन्तर गिराता है (तस्मै) उस (इन्द्राय) सूर्य के समान सेनापति के लिए (अन्वसः) अन्व (जुहोत) देवी ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमाकार है । जो मनुष्य जैसे सूर्य मेघ को धारण कर बर्षाता है वैसे जो कार की लेकर फिर देता है, बुद्धों की रोकना के व्यर्थों को पचासवय रोकता वह सेनापति होने योग्य है ॥ ५ ॥

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरीं विमेदार्यमेव पुरीः ।

यो वसिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपार्थपञ्चरता सोममस्यै ॥६॥१३॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) युद्धरूप यज्ञ की सिद्धि करनेवालो ! तुम लोगों में से (यः) जो (शम्बरस्य) सुख जिससे स्वीकार किया जाता उस मेघ के (सत्त्व) सौ (पुरीः) पुरी को जैसे बड़े को (अध्वर्यवः) पत्थर से जैसे (विमेद) छिन्न-भिन्न करता है (यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वसिनः) प्रदीप्त अपने सर्व बल से वेदीप्यमान राजा के (सत्त्व) सौ और (सहस्रम्) हजार (पुरीः) पहले हुई प्रजाओं को (अपार्थपत्) गीला करता है (अस्मै) इस सेनेश के लिए (सोमम्) ऐश्वर्य को (भरत) धारण करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य वा विजुली मेघ की असंख्य नगरियों को छिन्न-भिन्न करता है, पृथिवी पर अपरिमित बल बर्षाता है वैसे जो प्रजा के लिए ऐश्वर्य का धारण करता है उस का निरन्तर सत्कार करो ॥ ६ ॥

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।

कुत्सस्याधोरतिथिग्वस्य वीरान्नयद्व्यामरता सोममस्यै ॥७॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) युद्धयत्नरूप की सिद्धि करनेवाले जनो ! तुम (यः) जो सूर्य के समान (भूम्या) भूमि के (अवस्थे) ऊपर (शतम्) सैकड़ों वा (सहस्रम्) सहस्रों वीरों को (वा, अवपत्) बोला अर्थात् गिरा देता, बुद्धों को (अवपत्) मारता वा (अतिथिग्वस्य) अतिथियों की प्राप्त होनेवाले (आधोः) धीरे प्राप्त हुए (कुत्सस्य) बाण आदि फेंकनेवाले प्रजापति के (वीरान्) अनुबन्धों की उपात्त होते वीरों को (नि, अवपत्) निरन्तर बर्षाता है (अस्मै) इसके लिए (सोमम्) ऐश्वर्य को (भरत) पुष्ट करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमाकार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से छिन्न-भिन्न हुआ मेघ असंख्य बिन्दुओं को बर्षाता है वैसे जो शत्रुसेना पर शत्रुओं को वधवि वृजिजय की प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे अष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रं ।

गमस्तिपूतं भरत भतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) सब का हित चाहनेवाले (नरः) नायक मनुष्यो ! तुम (यः) जिस राज्य वा जन को (अष्टी) शीघ्र (वहन्तः) प्राप्त करते हुए (कामयाध्वे) उस की कामना करो (नशथा) वा क्षिपाधो (तत्) उस (गमस्तिपूतम्) किरणों वा बाहुओं से पवित्र किये हुए को (इन्द्रं) समापति के निमित्त (भरत) धारण करो । हे (अध्वर्यवः) सज्ज करनेवाले जनो ! तुम (यज्ञाय) जिस का प्रकल्पित अतिविषय है उस (इन्द्राय) समापति के लिए (सोमम्) ओषधियों के रस को वा ऐश्वर्य को (जुहोत) ग्रहण करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जिस प्रकार की विद्या अपने धर्म चाहो वैसे दूसरों के लिए भी चाहो जिस से सब बहुत ऐश्वर्यवाले हो ॥ ८ ॥

अब चिदाकीर्तन विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अध्वर्यवः कर्त्तृना अष्टिमस्यै वने निपूतं वन उक्तयध्वम् ।

जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥९॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) पुरुषाधी जनो ! तुम (अस्मै) इस समापति के लिए (वने) किरणों में (अष्टिम्) शीघ्र (निपूतम्) निरन्तर पवित्र और दुर्गन्ध वा प्रमादपन से रहित पदार्थ (कर्त्तृना) करो (वने) और किरणों में (उक्तयध्वम्) उक्तय देवी जो (हस्त्यम्) हस्तों में उत्तम हुए पदार्थ को (जुषाणः) प्रीति करता वा सेवन करता हुआ (मदिरम्) आनन्द देनेवाले (सोमम्) सोममत्तादि रस को (अभि, वावशे) प्रत्यक्ष चाहता (तस्मै) उस समापति के लिए और (यः) तुम लोगों को (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् जन के लिए उक्त पदार्थ को (जुहोत) देवी ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो वृक्षजन सूर्यकिरणों से निष्पन्न हुए ओषधि रस की क्रिया से उत्पन्न करके आप सेवते तथा औरों के लिए देते हैं वे शीघ्र अपने कार्य को कर सकते हैं ॥ ९ ॥

अध्वर्यवः पयसोध्वेषा गोः सोमैमिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।

वेदाहमस्य निपूतं म एतद्विस्मन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१०॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यवः) बड़ी-बड़ी ओषधियों के सिद्ध करनेवाले जनो ! तुम (यः) जैसे (गो) गौ के (यवसा) दूध से (अप) ऐन भरा होता है वैसे (वीमेभिः) जाई हुई सोमादि ओषधियों के साथ (इम्) जल को पीके (पृणत) तुप्त होओ जैसे (भोजम्) भोजन करनेवाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् को (अहम्) मैं (वेद) जानू (अहम्) इस की (निपूतम्) निश्चित पुष्टि को जानू वैसे तुम जानो जिस (मे) मेरे (एतत्) इस पूर्वोक्त पदार्थ के (विस्मन्तम्)



देनेवाले का ( वक्षसः ) सङ्ग करते हुए जनों को जैसे मैं जानूँ वैसे इस विषय को ( भूषा ) बार बार जो ( विवेक ) जाने उस को सुप्त करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । मनुष्य जैसे गीरे घात प्राणि को खाकर दूध उत्पन्न करती है वैसे महीषधियो का समूह कर खेप्ट प्रोषधियों को सिद्ध करें ॥ १० ॥

अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य सम्यस्य राजा ॥

तमूर्ध्वं न पूणता यवेनेन्द्रं सोममिस्तदपो वो अस्तु ॥११॥

पदार्थ—हे ( अध्वर्यव ) राजसन्धन्वी विद्वज्जनी ! ( यः ) जो ( दिव्यस्य ) प्रकाश में उत्पन्न हुए ( वस्व ) धन को वा ( यः ) जो ( पार्थिवस्य ) पृथिवी में विदित ( सम्यस्य ) सहनशीलता में उत्तम उस के बीच ( वा ) तुम्हारे लिए ( राजा ) राजा ( अस्तु ) हो ( तम् ) उस ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् को ( यवेन ) वन धन से जैसे ( ऊर्ध्वम् ) मटका को वा डिहरा को ( न ) वैसे ( सोमेभिः ) सोमादि प्रोषधियों से ( पूणत ) पूरो, परिपूर्ण करो ( तत् ) उस ( अध्वः ) कर्म को प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है जो विद्वान् जन धान्य धन से मटका वा डिहरा को जैसे वैसे विद्याधियों की बुद्धियों की विद्या और विद्या से सुप्त करते हैं वे राजा को सेवने योग्य हो ॥ ११ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अस्मभ्यं तदसौ दानाय राधः समर्थयस्व बहु तै वसव्यम् ।

इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु धन्वद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२॥१४॥

पदार्थ—हे ( वसो ) धन देनेवाले ( इन्द्र ) परमेश्वर्ययुक्त ! ( सुवीराः ) सुन्दर वीरोंवाले हम लोग जो ( तै ) तुम्हारा ( बहु ) बहुत ( चित्रम् ) अद्भुत ( वसव्यम् ) पृथिवी प्रादि वस्तुओं से सिद्ध हुए ( धन्वत् ) बहुत ( राधः ) समृद्धि करनेवाले धन को ( अश्रवः ) धनो के हित करनेवाली पृथिवी के बीच ( अनु ) धन्व प्रतिदिन ( यच्चित्रं ) विज्ञानकपी सप्राप्त यज्ञ में ( वदेम ) कहे उस को हमारे लिए देने को आग्रह ( समर्थयस्व ) समर्थ करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—सज्जनों का धन धीरों के सुख के लिए और दुष्टों का धन धीरों के दुःख के लिए होता है जो धन और ऐश्वर्यों की उन्नति के लिए सबदा प्रयत्न करते हैं वे पुष्कल वैभव पाते हैं ॥ १२ ॥

इस सूक्त में सोम, बिजुली, राजप्रजा और क्रियाशील के प्रयोजनों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह चौदहवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



प्रवेति दशार्धस्य पञ्चवक्त्रस्य सुक्तस्य गुत्समव आधि । इन्द्रो देवता । १ भूरिक्

पञ्चविता । ७ स्वरान् पञ्चविद्वन्मन्त्रः । पञ्चम स्वरः । २, ४—६, ८, १०

त्रिष्टुप् ; ३ त्रिष्टुप् ; ८ त्रिष्टुप् ; ८ त्रिष्टुप् । चैवतः स्वरः ॥

अब दश आर्धवाले पञ्चवक्त्र सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से

विद्वाद्, सूर्य और परमेश्वर के विषय को कहते हैं—

अ धा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।

त्रिकद्रुकेष्वपि सत्यस्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( इन्द्र ) सूर्य ( सुतस्य ) सम्पादन किये हुए ( अल्प ) सोमादि प्रोषध के रस को ( त्रिकद्रुकेषु ) तीन प्रकार की विशेष गतियों से युक्त कर्मों में ( अपिचत् ) पीता है और ( मदे ) हृत् के निमित्त ( अहिम् ) मेघ को ( जघान ) मारता है इस कर्म को अथवा ( अल्प ) इस ( महत् ) पूज्य वा व्यापक ( सत्यस्य ) नाशरहित जगदीश्वर के ( सत्या ) सत्य अविनाशी ( महानि ) प्रशसनीय ( करणानि ) साधन वा कर्मों को ( धा ) ही मैं ( नु ) शीघ्र ( प्रबोध्यम् ) प्रकर्वता से कहता हूँ वैसे तुम लोग भी कहो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य जैसे सूर्य किरणों से सब के रस को अपने प्रकाश से उन्नत करता वा शोधता है वैसे प्रोषधियों के रस को जो कि रोगनिवारण करने से आनन्द देनेवाला है उस को सेवते वा परमेश्वर के सत्यगुण, कर्म, स्वभाव और साधनों के अनुकूल कर्मों को करते हैं वे ही शीघ्र सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अवंशे धामस्तमायद् बृहन्तया रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।

स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अवंशे ) अवधिमान जिसका मान उस वंश के समान वर्तमान अन्तरिक्ष में ( धाम् ) प्रकाश को ( अस्तमायत् ) रोकता ( बृहन्तम् ) बढ़ते हुए बृहन्त को ( रोदसी ) सूर्यलोक, भूमिलोक और ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को ( अपृणत् ) प्राप्त होता ( पृथिवीम् ) पृथिवी को धारण करता ( सोमस्य ) उत्पन्न हुए जगत् के बीच ( मदे ) आनन्द के निमित्त ( ता ) उक्त कर्मों को

( पप्रथत् ) विस्तारता है इस सबको ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् परमेश्वर कर्म से ( चकार ) करता है ( स ) वह तुम लोगों को उपासना करने योग्य है ॥ २ ॥

भाषार्थ—कोई नास्तिकता की स्वीकार कर यदि ऐसे कहें कि जो ये लोक परमेश्वर के आकर्षण से स्थिर हैं इनका कोई और धारण करने वा रखनेवाला नहीं है उनके प्रति जन ऐसा समझान देवें कि यदि सूर्यादि लोकों के आकर्षण से ही सब लोक स्थिति पाते हैं तो सृष्टि के अन्त में अर्थात् जहाँ कि सृष्टि के आगे कुछ नहीं है वहाँ के लोकों के आकर्षण के बिना आकर्षण होना कैसे सम्भव है ? इससे सर्वव्यापक परमेश्वर की आकर्षण शक्ति से ही सूर्यादि लोक अपने रूप और अपनी क्रियाओं को धारण करते हैं । ईश्वर के इन उक्त कर्मों को देख अन्यवादी से ईश्वर की प्रशंसा सर्वदा करनी चाहिए ॥ २ ॥

सद्येव प्राप्नो वि मिमाय मोनेर्वज्रेण खान्यतृणमदीनाम् ।

दृथासृजत्पथिभिर्दीपयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् परमेश्वर ( सामैः ) परिमाणों से ( सद्येव ) धर के समान ( प्राप्नोः ) प्राप्ति लोको को ( मि, मिमाय ) निर्माण करता बनाता है ( मदीनाम् ) अल्पकालवस्तु कदियों के ( खानि ) खादों अर्थात् जलस्थानों को ( वज्रेण ) विज्ञान से ( सृजत् ) विस्तारता ( दीपयाथैः ) जिनमें दीप, कड़े-कड़े गमन, चालें उन ( पथिभिः ) मार्गों के साथ सब लोकों को ( दृथा ) दृष्टा ( सृजत् ) रचता ( सोमस्य ) उत्पन्न हुए जगत् के ( मदे ) हृत् निमित्त ( ता ) उन उक्त कर्मों को ( चकार ) करता है वह जगत् का निर्माण करने वाला दयालु ईश्वर जानना चाहिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर से पूर्व कल्प की रीति से और परमासुखों से लोक-लोकान्तरी का निर्माण किया जाता है जिसका अपना प्रयोजन केवल परोपकार को छोड़कर और कुछ भी नहीं है उस जगदीश्वर के उक्त काम अन्यवाद के योग्य हैं उनका तुम स्मरण करो ॥ ३ ॥

स प्रबोद्धन् परिगत्या दमीतेर्विश्वमधागायुधमिन्द्रे अग्नौ ।

सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्रः ) जगदीश्वर ( दमीते ) हिंसा से ( परि-वश्य ) सब ओर से प्राप्त होकर ( विश्वम् ) समस्त जगत् को ( प्रबोद्धन् ) उसको प्रकृष्टता से पहुँचानेवाले को ( आयुधम् ) शस्त्र के समान ( समिद्धं ) प्रदीप्त ( अग्नौ ) अग्नि में ( अघ्रात् ) भस्म करता है वा ( गोभिः ) गोधो ( अश्वे ) गुराङ्गी और ( रथेभिः ) भूमि में चलनेवाले रथादि यानों से ( सोमस्य ) उत्पन्न हुए जगत् के ( मदे ) हृत् के निमित्त ( ता ) ऐश्वर्य सम्बन्धी उक्त कर्मों को ( चकार ) करता है ( स ) वह प्रलय का करनेवाला ईश्वर सबको सब ओर से ध्यान करने योग्य है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे संप्राप्त अग्नि सूखें और गीले पदार्थ को भस्म करता है वैसे अश्वे प्रकार प्राप्त हुए प्रलय समय में जगदीश्वर सबका प्रलय करता है ॥ ४ ॥

स ईं महीं धुनिमेतोररम्णास्सो अस्नातृन्पाग्यस्वस्ति ।

त उत्सनाय गयिममि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्रः ) परमेश्वर्यवान् परमेश्वर ( सोमस्य ) उत्पन्न जगत् के बीच ( ईम् ) जल और ( धुनिम् ) चलती हुई ( महीम् ) पृथिवी को ( अरम्णात् ) हन्ता है ( सतुः ) वह ( अस्नातृन् ) अस्नातक अर्थात् जो यज्ञ स्नान नहीं किये उनके ( स्वस्ति ) गमन की ( एतो ) कल्याण जैसे हो वैसे ( अग्नि, अपारयत् ) सब ओर से पार पहुँचाता है जो ( ता ) उक्त कर्मों को ( मदे ) हृत् के निमित्त ( चकार ) करता है और जो विद्वान् उन उक्त ईश्वर के निमित्त ( उत्सनाय ) उत्तम सभाधिस्तान कर ( गयिम् ) धन को ( प्रतस्थुः ) प्रस्थित करते ( ते ) वे दुःख को छोड़ते वह सबको सेवने योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो जगदीश्वर जगत् का रचने वा पालना करने वा हरनेवाला और मुक्ति में शुद्धाचरण करनेवालों को दुःख से पार करनेवाला है जो इस शुद्ध ईश्वर में समाधि से न्हा के पवित्र होते हैं वे सब जगत् में सब जगह प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

अब सूर्य के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सोदक्षं सिन्धुमरिणान्महत्वा वज्रेणानं उपसः सं पिपेव ।

अजवसो जविनीभिर्विद्वन्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्रः ) सब पदार्थों को अपनी किरणों से क्षिन्न-भिन्न करनेवाला सूर्य ( महत्वा ) महत्त्व से ( वज्रेण ) अपने किरणकपी वज्र से ( अजवसम् ) ऊपर को प्राप्त होते हुए ( सिन्धुम् ) समुद्र को ( अविपेव ) गमन करता वा उच्छिन्न करता ( वज्रसः ) प्रभाम समय से लेकर ( अविपेव ) अश्वे प्रकार पीसता अर्थात् अपने आतत से समुद्र के जल को कण-कण कर सोखता ( अजवसः ) बेगवति भी ( जविनीभिः ) बेगवती क्रियाओं से पदार्थों को ( विष्णुः वज्रम् ) क्षिन्न-भिन्न करता हुआ ( सोमस्य ) ऐश्वर्ययुक्त संसार के ( मदे ) आनन्द

के निमित्त ( सा ) उन कामों को ( चकार ) करता है ( सः ) वह तुम लोगों को जानने योग्य है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य मनुष्य से अपने प्रकाश से जल को ऊपर पहुँचाता, रात्रि को बिनाशता, प्रति वेग और अपनी चालों से भवभूत कामों को करता है वैसे हम लोगों को भी आरम्भ करना चाहिए ॥ ६ ॥

अब सूर्य के दक्षिण से विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स विद्वान् अपगोहं कनीनामाविर्भवदतिष्ठत्पराधृक् ।

प्रति श्रोणः स्थाद्व्यङ्गं नगच्छ सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥७॥

पदार्थ—जो ( श्रोणः ) सुननेवाला विद्वान् जन ( इन्द्रः ) सर्व पदार्थ अलग-अलग करनेवाला सूर्य जैसे ( सोमस्य ) संसार के बीच ( कनीनाम् ) कान्तियों के ( अपगोहम् ) अपगृहण आच्छादन करने को ( पराधृक् ) कोलता ( आविर्भवम् ) प्रकट होता हुआ ( अवतिष्ठत् ) ऊपर को स्थिर होता भयाव् उत्पन्न होकर ऊपर को बढ़ता ( प्रतिष्ठात् ) और प्रतिष्ठा पाता ( व्यम्भत् ) पदार्थों को प्रकट करता ( व्यम्भत् ) उपदेश करता अर्थात् अपनी गति के बचावत् समय को बतलाता वैसे ( ज्यै ) हर्ष के निमित्त ( सा ) उन कामों को ( चकार ) करता है ( सः ) वह सबको सत्कार करने योग्य है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणालंकार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य अपने प्रकाशदान से अन्धकार को निवृत्त कर विभिन्न संसार दिखलाता है वैसे विद्वान् जन सत्यविद्या का उपदेश देने से अविद्या को निवृत्त कर विविध पदार्थविज्ञान को प्रकट करते हैं वे विश्व के धृषित करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मिनद्वलमङ्गिरोभिर्गुणानो वि पर्वतस्य दंष्ट्रान्वैरत् ।

रिणप्रोर्धासि कुत्रिमापयेवां सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( गुणानः ) प्रकटा करते हुए आप जैसे ( इन्द्रः ) सर्व पदार्थ छिन्न-भिन्न करता सूर्य ( अङ्गिरोभिः ) अङ्गों के समूह किरणों से ( पर्वतस्य ) मेघ के समान प्रजा के ( वलम् ) बल को ( वि, भिनत् ) विशेषता से छिन्न-भिन्न करता ( सोमस्य ) विश्व के ( दंष्ट्रानि ) बड़े हुए पदार्थों को ( ऐरत् ) प्राप्त होता वा ( एवाम् ) इन पदार्थों के ( कुत्रिमापि ) कुत्रिम ( शोभासि ) आभरणों को अर्थात् जिनसे यह उन्नति को नहीं प्राप्त होते उन पदार्थों को ( रिणम् ) मारता, नष्ट करता ( ता ) उक्त कामों को ( ज्यै ) हर्ष निमित्त ( चकार ) करता है वैसे प्रयत्न करिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणालंकार है। हे मनुष्यो ! जैसे वायु के सहाय से अग्नि भवभूत कर्मों को करता है वैसे वाचिक विद्वान् के सहाय से मनुष्य बड़े-बड़े उत्तम काम कर सकते हैं ॥ ८ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्वप्नेनास्युप्या जुमुर्नि धुनिच्च जघन्य दस्युं प्र दभीतिमावः ।

रम्मी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥९॥

पदार्थ—जो ( इन्द्रः ) सेनापति ( स्वप्नेन ) निद्रापन से वर्तमान ( जुमुर्नि ) मुकुलित अर्थात् खोरपन का मुख बनाये और ( धुनिम् ) कम्पते हुए ( दस्युम् ) बलात्कारी प्रति साहसकारी डाकू और का ( जघन्य ) सब ओर से शिर मुड़वा कर ( जघन्य ) मारे ( दभीतिम् ) हिसक प्राणी को ( प्रायः ) उत्कर्षता से रक्के ( रम्मी ) कार्यारम्भ करनेवाला ( चित् ) भी ( जघ ) इस राज्यव्यवहार में ( सोमस्य ) विश्व का ( हिरण्यम् ) सुवर्ण ( विविदे ) पावे ( सः ) वह ( ज्यै ) हर्ष के निमित्त ( सा ) उक्त कामों को ( चकार ) करे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो पुत्रवर्धी जन डाकू आदि मुष्टों का निवारण कर ओष्ठों की रक्षा के निमित्त इकट्ठे करें वे जगत् के बीच ऐश्वर्य को पाते हैं ॥ ९ ॥

अब वन देने के कर्म का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोमी ।

शिक्षां स्तोतृभ्यो माति धग्मज्ञो नो वृहद्वेम विदधे सुवीराः ॥१०॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दान करनेवाले जन ! ( ते ) तेरी ( मघोमी ) प्रशंसित अनुयुक्त ( दक्षिणा ) दक्षिणा और ( स्तोतृभ्यः ) वाचिक विद्वानों के लिए ( शिक्षा ) विद्या ग्रहण की शिक्षा करनेवाली शिक्षा ( अग्निः ) समस्त विद्याओं की प्रशंसा करनेवाले जन के लिए ( प्रतिवरम् ) श्रेष्ठ कार्य के प्रति श्रेष्ठ कार्य को ( वृहद्वेम् ) पूर्ण करे ( सा ) वह ( नः ) हमारा जो ( भसः ) ऐश्वर्य उसको ( मातिधग्मम् ) मत्त नष्ट करे जिससे ( सुवीराः ) सुन्दर वीरों से युक्त हम लोग ( विदधे ) यज्ञ में ( वृहत् ) बहुत ( दानम् ) निर्विघ्न ( वदेम ) कहें ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको उत्तम विद्वानों के लिए अमीष्ट दक्षिणा और विद्याविशेषों के लिए शिक्षा देनी चाहिए जिससे देने और लेनेवाले कलयुक्त हों ॥ १० ॥

इस सूक्त में विद्वान्, सूर्य, परमेस्वर और शिव कावर्ण्य का वर्णन होने से इस सूक्त के कर्म की पिछले सूक्त के कर्म के साथ सङ्गति समझनी चाहिए।

अब वनहर्ष सूक्त और ओषधसूक्त प्रातः समाप्त हुआ ॥

॥

प्र च इति नवर्चस्य बोधस्य सूक्तस्य सुस्तमय आविः । इन्द्रो वेधता ॥ १७ जगती

३ चिराद् जगती, ४—६, ८ चिच्छुजगती च छन्दः । निपातः स्वरः ।

२ धुरिक् चिच्छुप्, ६ चिच्छुप् छन्दः । संवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं—

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्ठुतिमन्नाविंवि समिधाने हविर्भरे ।

इन्द्रमसुर्यं जरयन्तमुभितं सनाद्युवांजमवसे हवामहे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग ( सताम् ) आप सज्जनों के ( ज्येष्ठतमाय ) अत्यन्त बड़े हुए ( अवसे ) रक्षा आदि के लिए ( हविः ) हविष्य पदार्थ को ( भरे ) भरें आरण करें वा पुष्ट करें उब ( समिधाने ) अच्छे प्रकार प्रदीप्त ( अन्नाविंवि ) अग्नि में जैसे जैसे ( सुष्ठुतिम् ) सुन्दर स्तुति को ( हवामहे ) स्वीकार करें और ( सनात् ) निरन्तर ( युवांजम् ) दूसरे का मेघ और ( उभितम् ) सेवन करनेवाले तथा ( असुर्यम् ) पुष्ट ( जरयन्तम् ) शीरों को ( जरावन्ता ) प्राप्त करानेवाले ( इन्द्रम् ) विष्णुप अग्नि को उत्तमता से स्वीकार करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अग्नि और विभाग आदि कर्मों का करनेवाला विजुली कप अग्नि युक्ति के साथ संयुक्त किया हुआ बहुत ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वैसे सत्पुरुषों की प्रशंसा सबकी श्रेष्ठता के लिए कल्पित की जाती है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यस्मादिन्द्राद्वृहतः किञ्चमेष्टे विश्वान्यस्मिन्संभृताधि वीर्य्या ।

जठरे सोमं तन्वीः सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यस्मात् ) जिस ( वृहतः ) बड़े ( इन्द्रात् ) विजु-दिन से ( जठरे ) जिना ( किञ्चन ) कुछ भी नहीं है ( अस्मिन् ) इसके ( जठरे ) उदर में ( विश्वानि ) समस्त वे पदार्थ ( वीर्या ) जो और मनुष्यों को केंद्रकेवाले विद्वानों में उपयोगी हैं ( संभृता ) अच्छे प्रकार बरे हुए हैं जो ( तन्वी, ईन् ) अपने शरीर में सब ओर से ( सोमम् ) शीर्षणि अन्न को ( सह ) और बल को तथा ( हस्ते ) हाथ में ( महः ) बड़े ( वज्रम् ) शस्त्र को ( शीर्षणि ) और शिर के बीच ( क्रतुम् ) उत्तम बुद्धि को ( अभि भरति ) अधिकता से धारण करता है वह विजुदिन सबको बचावत् अच्छे प्रकार काम में लाने योग्य है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जितना स्थूल वस्तु मात्र नसार में है उतना समस्त विजुली के बिना नहीं है उसको प्रयत्न से तुम लोग जानो ॥ २ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न क्षोणीर्यां परिभ्वं त इन्द्रियं न समुद्रः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।

न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विजुली के समान वर्तमान ! जिन ( ते ) आपको ( इन्द्रियम् ) धन ( क्षोणीर्याम् ) आकाश और पृथिवी से ( न ) नहीं ( परिभ्वे ) तिरस्कार को प्राप्त होता जिन ( ते ) आपका ( समुद्रः ) सागरों और ( पर्वतैः ) पर्वतों से ( रथः ) रथ ( न ) नहीं तिरस्कार को प्राप्त होता जिन ( ते ) आपके ( वज्रम् ) छिन्न-भिन्न करनेवाले शस्त्र को ( कश्चन ) कोई ( न, अमु, अमोति ) नहीं अनुकूलता से व्याप्त होता ( यत् ) जो ( आशुभिः ) शीघ्र गमन करानेवाले विजुली के साथ रथ से ( पुष ) बहुत ( योजना ) योजनाओं को ( पतसि ) जाते हैं सो आप सर्वथा विजयी होने के योग्य हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से युक्त शस्त्र-भस्त्र आदि पदार्थों को सिद्ध करते हैं वे तिरस्कर को नहीं पहुँचते और जो लोग आकाश, समुद्र तथा पहाड़ी भूमि में भी रथों को चलाते हैं वे सुख से मार्ग के पार होते हैं ॥ ३ ॥

विश्वे द्रस्ये यजताय धृष्णावे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सच्चते ।

वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के इच्छुक ( वृषा ) गन्तु की शक्ति बाँधनेवाले ( विदुष्टरः ) असीम विद्वन् ! आप जो ( हि ) ही ( विद्वे ) सर्वत्र ( वृषभेण ) बर्षा करानेवाले ( भानुना ) ताप युक्त सूर्य जैसे रस की वैसे ( वज्रम् ) इस ( वज्र-तम ) सङ्क्रम ( वृषभे ) बृहता ( वृषभाय ) ओष्ठता ( सच्चते ) और सम्बन्ध के लिए ( क्रतुम् ) प्रजा को ( भरन्ति ) धारण करते हैं, उनकी अनुसङ्गी होते हुए ( हविषा ) जैसे-जैसे योग्य वस्तु से ( वज्रम् ) यज्ञ करो और ( सोमम् ) ओषध्यादि पदार्थों के रस को ( पिब ) पीओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणालंकार है। जो प्रथम से अपनी बुद्धि को उन्नति लेकर विद्वानों का सत्कार करते हैं वे सब जगत् में सत्कार युक्त होते हैं ॥ ४ ॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

हव्याः कोषः पवते मध्यं ऊर्मिर्वृषभाय वृषभाय पातवे ।

हवणाध्वं वृषभासो जइयो हवर्षं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥५॥१७॥

साधारण—इस मन्त्र में वाचकलुपीयमासकार है। जिस अक्षरीश्वर ने प्रकाश के लिए सूर्य, ओषधों के लिए ओषधि, पीने के लिए जलरसों को, निवास के लिए



पुष्टि, कीर्तन करने के लिए शरीर बाध बनाये हैं वह पिता के सुख सबकी सत्कार करने योग्य है ॥४॥

स प्राचीनान्यर्था इन्द्रो जसाधराचीनमकुणोदपामयः ।

अध्यायसृष्टिर्वि विधाया समस्तमन्त्रान्मायया धामयस्वसः ॥५॥१६॥

पदार्थ—( सः ) वह परमेश्वर जैसे ( प्राचीनान् ) प्राचीन अर्थात् पहले के वर्तमान ( वर्तमान् ) पर्वतों के समान मेघों की ( ओजसा ) बल के साथ ( पुष्टम् ) वायु करता ( जसाधरा ) और जो नीचे की प्राप्ति होता उसको बनाकर ( जसाधरा ) अन्तरिक्ष के ( जसाधरा ) नीचे की ( अकुणोत् ) सिद्ध करता है ( विधाया ) विधान के द्वारा करने की समर्थ ( पुष्टिम् ) पुष्टि की ( जसाधरा ) वायु करता की ( जसाधरा ) प्रकाश से ( जसाधरा ) प्रकाश की ( अस्तमन्त्रात् ) रोकता वा ( अस्तमन्त्रात् ) विस्तारता है जैसे समस्त विधान की वायु करता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुष्टोपमाकार है । जैसे सूर्य अपने निकट के लोको को धारण करता जैसे परमेश्वर सूर्यादि समस्त जगत् को धारण करता है ॥ ५ ॥

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकुणोद्विस्वस्मादा अनुचो वेदसस्परि ।

येना पृथिव्यां नि क्रिषि शय्ये वज्रं इत्यर्हयवतुविजनिः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! ( पिता ) सबकी पालना करनेवाला ईश्वर ( विज-स्वम् ) सब ( अनुचः ) प्रसिद्ध ( वेदः ) धन वा विधान वा ( बाहुभ्याम् ) भुजाओं से ( यम् ) जिसको ( अरम् ) पूर्ण ( अकुणोत् ) करता है ( सः ) वह तू जैसे ( पुष्टिम् ) बहुत परमाणुओं का जो कि इकट्ठे होकर एक पदार्थ हो रहे हैं उनका अन्धे प्रकार विभाग करनेवाला सूर्य ( वेदः ) जिस ( वज्रं ) वज्र से ( पुष्टिम् ) पृथिवी पर ( जय्ये ) लोने के लिए अर्थात् धरने के लिए ( क्रिषिम् ) कृषि के समान ( इत्ये ) छिन्न-भिन्न कर अर्थात् जोड़ के कृषि जल को जैसे निकाले जैसे मेघ की ( वज्रं ) सब धोर से छिन्न-भिन्न करता और संसार की पालना करता है जैसे ( अरम् ) इस बालक आदि के लिए सुख ( सः ) अन्धे प्रकार सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुष्टोपमाकार है । जैसे सूर्य मेघ को छिन्न-भिन्न कर जल को उत्पन्न कर सबका सुख सिद्ध करता है जैसे अम्मापक व पिता समस्त सुन्दर विद्याओं से संतानों को सुभूषित कर निरन्तर सुखी करे ॥ ६ ॥

अब विदुषी के विषय की अगले मन्त्र में कहा है—

अमाजुरिष पित्रोः सवा सती सपानादा सद्सस्त्वामिये मगम् ।

कुधि प्रकैतमुप मास्या भर ददि भागं तन्वो येन मामहः ॥७॥

पदार्थ—हे कन्ये ! ( सती ) वर्तमान तू ( सवा ) सम्भव से ( अमाजुरिष ) जो घर में बुढ़ा होता उसके समान ( पित्रोः ) माता-पिता के ( सपानात् ) समान भाव से ( सवा ) जिसमें पहुँचते हैं उस स्थान से जिस ( सवा ) तुम्हें मैं ( इत्ये ) प्राप्त होऊँ वह तू ( अमेतम् ) उत्कर्ष विज्ञान की और ( भागम् ) ऐश्वर्य की ( कुधि ) सिद्ध कर तथा ( मासि ) प्रति महीने में ( उवाचर ) उत्तम प्राप्त हुए आभूषणों को पहिनाकर ( भागम् ) सेवन करने योग्य पदार्थ ( ददि ) नौगो ( वेन ) जिससे ( मासः ) सत्कार करने योग्य पुत्रादिकों को वा प्रशंसा करने योग्य पदार्थों को प्राप्त हो उस व्यवहार से ( तन्वः ) शरीर के भाग को मँगो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है । जो कन्या विद्या की पढ़कर बृहस्पति को प्राप्त हो वे सत्कार करने योग्यों को सत्कार कर और तिरस्कार करने योग्यों का तिरस्कार कर पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को बढ़ावे ॥ ७ ॥

अब विद्वान् के विषय की अगले मन्त्र में कहा है—

मार्ज त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्टमिन्द्रापांसि वाजान् ।

अविद्वीन्द्र चित्रया न ऊती कुधि वृषमिन्द्र वश्यसो नः ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वरयुक्त विद्वान् ! जिन ( ओजसः ) भोगनेवाले ( त्वाम् ) आप की ( वयम् ) हम लोग ( हुवेम ) स्वीकार करें सो आप हम लोगों की स्वीकार कीजिए । हे ( इन्द्र ) कुछ विद्वान् करनेवाले विद्वान् ! ( वृषः ) वानसीस ( त्वम् ) आप ( वयम् ) हम लोगों की ( वाजान् ) घोड़ों की ( अविद्वीन्द्र ) सुरक्षित करो । हे ( इन्द्र ) वयम् विनाशनेवाले विद्वान् ! आप ( वृषः ) विष-विषम अनेकविध ( ऊती ) रक्षा से मुक्त ( नः ) हम लोगों की ( कुधि ) करो । हे ( वृषः ) सीनेवाले ( इन्द्र ) सुख देनेवाले विद्वान् ! आप ( नः ) हम लोगों की ( वयम् ) परमन्त बनवान् करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे जिस विद्वान् की स्तुति करते हैं जैसे पढ़नेवाले पढ़नेवालों की प्रशंसा करें ऐसे एक दूसरे की रक्षा से ऐश्वर्य की उत्पत्ति करें ॥ ८ ॥

फिर विदुषी के गुणों की कहते हैं—

मृजं सा ते भति वरं अरिजे इहीयविन्द्र दक्षिणा मयोनी ।

विज्ञा स्तोत्रम्यो मासि वगमना नो बृहवेम विद्वे सुवीराः ॥९॥२०॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) देनेवाले राजन् ! ( ते ) आप के राज्य में जो ( दक्षिणा ) प्राप्त देनेवाली ( मयोनी ) बहुत धन से युक्त विदुषी ( अरिजे ) स्तुति करनेवाले के लिए ( अरिजे ) श्रेष्ठ काम की ( इहीयत् ) पूर्ण करे ( सा ) वह ( वृषः ) विषय से कल्याण करनेवाली हो । हे विदुषि ! तू कन्याओं की ( विज्ञा ) शिक्षा दे ( नः ) हम लोगों के लिए ( स्तोत्रम् ) स्तुति करनेवाले विद्वानों से ( मा, अति, वर ) मत किसी काम का विनाश कर जिससे ( सुवीराः ) सुन्दर विद्या में व्याप्त होनेवाले वीरों से युक्त हम लोग ( विद्वे ) विद्यादानरूपी धन में ( वृषः ) बहुत ( वयः ) ऐश्वर्य की ( वयम् ) कहूँ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जो कन्या विदुषी वा पण्डितानी स्त्रियाँ हों उनसे सब कन्याओं को सुन्दर शिक्षा दिलाओ जिससे काम विनाश न हो ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और विदुषियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की विस्तृत सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

वह सप्तहवीं सूक्त और बीसवीं अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥१॥

आत्तरिति नवमस्त्याव्यावकसुक्तस्य गुरुत्वम् अतिः । इन्द्रो देवता । १ वरुणः ;

४, ५ वरुणः वरुणः ; ६, ७ वरुणः वरुणः ; ८, ९ वरुणः वरुणः ; १० वरुणः वरुणः ;

वरुणः वरुणः ; ११, १२, १३ वरुणः वरुणः ; १४ वरुणः वरुणः ; १५ वरुणः वरुणः ;

अब अब कहावाले अक्षरार्थ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

वाग विषय की कहते हैं—

माता रघो नवो योजि सल्लिभतुर्गुणसिक्कः सप्तरश्मिः ।

दक्षारिद्रो मनुष्यः स्वर्चाः स इष्टिर्मितिमी रंक्षो भूत् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! शिल्पियों से जो ( दक्षारिद्र ) दश धारिद्रों वाला अर्थात् जिसमें दश अकारों के साधन हैं ( लक्ष्मिः ) और जिसमें सोते हैं ( मनुष्यः ) जो बार स्थानों में जोड़ा जाता ( सिक्कः ) तीन प्रकार के गमन वा गमन साधन जिसमें विद्यमान ( सप्तरश्मिः ) जिसकी सात प्रकार की किरणें ( रश्मिः ) ऐसा नवीन ( रश्मिः ) रश्मि और ( स्वर्चाः ) जिससे सुख उत्पन्न हो ऐसा और ( मनुष्यः ) विचारशील मनुष्य ( प्रातः ) प्रभात समय में ( योजि ) युक्त किया जाता ( सः ) वह ( इष्टिर्मितिमी ) सङ्गत हुई और प्राप्त हुई ( मितिभिः ) प्रमाणाँ से ( रंक्षो ) होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य ऐसे ध्यान से जाने-अने को चाहें वे निर्विघ्न गतिवाले हों ॥ १ ॥

फिर इसी विषय की अगले मन्त्रों में कहा है—

सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।

अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त सो अन्येभिः सञ्चते जेन्यो वृषा ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्य ( सः ) वह रश्मि धान, गमन-साधन ( अरम् ) इस स्वामी के लिए कि जो बनानेवाला है ( प्रथमम् ) पहले अर्थात् पृथिवी में गमन ( सः ) वह ( द्वितीयम् ) दूसरे जल में गमन ( उतो ) और ( तृतीयम् ) तीसरे अन्तरिक्ष में गमन की सम्बद्ध करता, मिलाता है तथा ( सः ) वह ( मनुष्यः ) मनुष्यों से उत्पन्न हुए सर्व पदार्थों का ( होता ) सुख देनेवाला ( सः ) वह ( अन्यः ) विजय करनेवाला और ( वृषा ) अत्यन्त बलयुक्त होता हुआ ( अन्यस्याः ) दूसरी गति का ( गर्भम् ) ग्रहण ( अरम् ) पूर्ण ( सञ्चते ) सम्बद्ध करता है ( ऊं ) उसीकी ( अन्येभिः ) और विद्वानों के साथ ( अन्ये ) और विद्वान् ( जनन्त ) उत्पन्न करें ॥२॥

भाषार्थ—विद्वान् जन और विदुषी कृप धर्म को रथों में अन्धे प्रकार युक्त करें तो वह समस्त यानों को सब गतियाँ चलाता और विजय का हेतु होता है ॥२॥

हरी तु कं रय इन्द्रस्य योजमाये सुक्तेन वचसा नवेन ।

मो वु त्वामन्नं बहवो हि विमा नि शिरमन्यजमानासो अन्ये ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जो ( इन्द्रस्य ) विदुषी कृप धर्म सम्बन्धी ( रये ) धान में ( हरी ) धारण, धारण और वेग धारि गुणोंवाले वायु और धर्म ( वु ) वीर्य ( कम् ) सुख को सिद्ध करते हैं वा जिन को मैं ( अन्नम् ) इस में ( सुक्तेन ) सुन्दर प्रतिपादन किये ( वचसा ) भाषण से ( नवेन ) नवीन प्रबन्ध से ( वचसा ) गमन करने की ( योजम् ) युक्त करता है इस रथ में ( बहवः ) बहुत ( विमा ) मेघावी जन ( त्वाम् ) आप की ( हि ) ही ( वु, नि, रीरम् ) अन्धे प्रकार रमा रहे हैं ( अन्ये ) और ( वचसानासः ) सम्बन्ध जाता भी अर्थात् उन मेघावियों से दूसरे विज्ञानवान् जन भी इस उक्त रथ में विपरीत वे ( जो ) नहीं रमाते हैं ॥३॥

भाषार्थ—जो विदुषी-रथ को सिद्ध नहीं करते हैं वे सर्वत्र न आप रम सकते हैं और न दूसरों को रमा सकते हैं ॥३॥

आ इन्द्रा इरिध्यामिन्द्र याज्ञा चतुर्मिरा वदमिह्यमानः ।

आहामिर्देशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमस्व मा मृधस्कः ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वरयुक्त ! ( इन्द्रायः ) बुलाये हुए आप ( इन्द्रायम् ) जो ( इरिध्याम् ) इन्द्रासील पदार्थों के साथ धान से ( आ, याहि ) आहूत ( चतुर्मिरा ) चार हरणशील पदार्थों से युक्त धान से आपकी ( वदमिः ) वद पदार्थों से युक्त धान से आपकी ( चतुर्मिरा ) आठ वा ( वचसिः ) वच पदार्थों से

युक्त यान से आधो जो (अधम्) यह (सुतः) उत्पन्न किया हुआ पदार्थों का पीने योग्य रस है उस (सोमवेद्यम्) पदार्थों के रस के पीने के लिए आधो। हे (सुमन्) सुन्दर यज्ञीवाले! आप सज्जनों के साथ (मूढः) धर्मीष्ट सज्जनों को (भी, कः) मत करो ॥४॥

आचार्य—जो अनेक अग्नि आदि पदार्थों से उत्पन्न किए हुये यज्ञों से बनाये हुए यानों में स्थित होकर जाने-आते हैं वे स्तुति के माध्य प्रकट होते हैं। जो धार्मिकों के साथ विरोध नहीं करते वे विजयी होते हैं ॥४॥

आ विशत्या त्रिशता याज्ञवाङ्का चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः।

आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा पट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) असह्य ऐश्वर्य देनेवाले! (युजानः) युक्त होते हुए आप (विशत्या) बीस (त्रिशता) तीस (हरिभिः) हरनेवाले पदार्थों से बनाये हुए यान से (याज्ञवाङ्कः) जो नीचे को जाता उस (सोमवेद्यम्) सोमादि प्रोषधियों में पीने योग्य रस को (आ, माहि) प्राप्त होओ, आधो (चत्वारिंशता) चालीस पदार्थों से युक्त रथ से (आ) आधो (पञ्चाशता) पचास हरणशील पदार्थों से युक्त (सुरथेभिः) सुन्दर रथों से (आ) आधो (पट्या) साठ वा (सप्तत्या) सत्तर हरणशील पदार्थों से युक्त सुन्दर रथों से आधो ॥५॥

आचार्य—जैसे बीस, तीस, चालीस, साठ, सत्तर बलवान् चड़े एक साथ जोड़ कर यान को भीम बनाते हैं उस से अधिक वेग से अग्नि आदि पदार्थ यान को ले जाते हैं ॥५॥

आशीत्या नवत्या याज्ञवाङ्का शतेन हरिभिरुजमानः।

अयं हि तं शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिको मदाय ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःख विदीर्ण करनेवाले! (ते) आप के (त्वाया) आप की कामना से जो (अधम्) यह (शुनहोत्रेषु) सुख देनेवाले कलाचरों में (परिषिकः) सब ओर से उत्तम पदार्थों से सीका हुआ है (हि) उरी को आप (याज्ञवाङ्कः) नीचे जाते हुए (आशीत्या) अस्सी (नवत्या) नव (हरिभिः) हरणशील पदार्थों से युक्त यान से (उजमानः) बनाये जाते हुए (आ) आधो (शतेन) सौ पदार्थों से युक्त रथ से (मदाय) आनन्द के लिए (आ, माहि) आधो ॥६॥

आचार्य—जो प्रोषधियों के सेवन और सुन्दर पथ से नीरोगता से आनन्दित होते हुए सौ प्रकार के यानों और यज्ञों को बनाते हैं वे नीचे-ऊपर जा सकते हैं ॥६॥

अथ पदार्थों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मम ब्रह्मेन्द्र याज्ञच्छा विश्वा हरी धुरि धिप्वा रथस्य।

पुरुषा हि विद्वयो बभूवास्मिच्छुर सवने मादयस्व ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) धन की इच्छा करनेवाले! आप (मम) मेरे (बभूव) धन को (याहि) प्राप्त होओ जो (रथस्य) यानसमूह के (धुरि) धारणा करनेवाले मग में अर्थात् (धुरि) में (हरी) धारण और आकर्षण लीचने का गुण जिन में है उन दोनों से यान रथादि को (विष्वा) धारण करो उस से (पुरुषा) बहुत (विद्वया) समस्त धनो को (बभूव, याहि) उत्तम गति से आधो। हे (इन्द्र) निर्भय (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य के निमित्त (विद्वयः) विविध प्रकार ग्रहण करने योग्य आप (बभूव) होओ हम लोगों को (हि) ही (मादयस्व) आनन्दित कीजिए ॥७॥

आचार्य—सब सज्जनों को सब के प्रति ऐसा करना चाहिए कि जो हमारे पदार्थ हैं वे आप के सुख के लिए हों जैसे तुम लोग हम लोगों को आनन्दित करो जैसे हम लोग तुम को आनन्दित करें ॥७॥

अथ ईश्वर और विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

न म इन्द्रेण सख्यं वि योषद्स्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत।

उप उपेष्टु वरुथे गभस्वौ प्रायेमाये जिगीवांसः स्याम ॥८॥

पदार्थ—जिस (अस्य) हम (दक्षिणा) दक्षिणा और सुन्दर शिक्षा का दान (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (उपेष्टु) प्रमत्ता योग्य (वरुथे) अतीव उत्तम (गभस्वौ) विज्ञान प्रकाश में (प्रायेमाये) और मनोहर-मनोहर परमेश्वर वा आप्त विद्वान् में (उप दुहीत) परिपूर्ण होती हो उस (इन्द्रेण) उक्त परमेश्वर वा आप्त विद्वान् से मेरी (सख्यम्) मित्रता जैसे (न, विद्योषत्) न विनष्ट हो जैसे हो, जिस से हम लोग (जिगीवांसः) विजयशील (स्याम) हों ॥८॥

आचार्य—जो सत्य प्रेम से जगदीश्वर वा आप्त विद्वानों को प्राप्त होने और सेवन करने की कामना करते हैं और उसके विरोध की इच्छा नहीं चाहते हैं वे विद्वान् होकर ज्येष्ठ होते हैं अर्थात् प्रति प्रशंसित होते हैं ॥८॥

अथ ईश्वर और उपवेशकों के गुणों को कहते हैं—

नूनं सा तं प्रति वरं जरिचे दुहीयद्विन्द्र दक्षिणा मघोमी।

शिक्षा स्तोम्यो मासि धग्मगो नो बृहद्देव विद्वे सुवाराः ॥९॥२२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) जगदीश्वर वा सत्योपवेशक! (ते) आप की (सा) वह धारणा (जरिचे) स्तुति प्रशंसा करनेवाले के लिए धीर (दक्षिणा) शिक्षा, सुशिक्षास्पी दक्षिणा (मघोमी) जो कि बहुत ऐश्वर्ययुक्त है वह (स्तोम्यः) अध्ययन के लिए (प्रति, दुहीयत्) प्रत्येक विषय को परिपूर्ण करती है आप हम लोगों को (नुमन्) निश्चय से (शिक्षा) शिक्षा देओ हम लोगों के लिए (अस्यः) ऐश्वर्य को (मासि, वक्) मत नष्ट करो जिस से (सुवाराः) श्रेष्ठ वीरोंवाले हम लोग (विद्वे) विद्याप्रचार में (बृहत्) बहुत कुछ (ब्रह्म) कहें ॥९॥

आचार्य—जो ईश्वर और आप्त विद्वानों की शिक्षा मनुष्यों की प्राप्त होती है वह शोकस्पी समुद्र से अलग करती है धीर बहुत ऐश्वर्य का भी अभिमान नहीं कराती है ॥९॥

यहाँ यान, पदार्थ, ईश्वर, विद्वान् वा उपवेशकों के बोध का वर्णन होने से हम सूक्त के अर्थ की पृष्ठभूमि सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अठारहवाँ सूक्त और बाईसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अवायीत्येकोनविंशतितमस्य नववर्षस्य सूक्तस्य गुल्ममव आविः। इन्द्रो देवता १,

२, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्, ९ त्रिष्टुप् छन्दः। अंशतः स्वरः। ३ वक् क्तित्;

४, ७ ध्रुक् पक् क्तित्, ५ निष्पत् पक् क्तित्छन्दः। पञ्चम स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय का वर्णन करते हैं—

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुधानस्य प्रयसः।

यस्मिन्नन्द्रः मदिवि वाष्टधान ओकों दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥

पदार्थ—हे (मनीषिणः) मनीषी! मन जीते हुए (ब्रह्मण्यन्तः) बहुत धन की कामना करनेवाले (नरः, च) और नायक अग्रगता मनुष्यों! (यस्मिन्) जिस (मदिवि) प्रकट प्रकाश में (वाष्टधान) बड़ा हुआ (इन्द्रः) सूर्य (ओकः) स्थान को (वधे) धारण करता है उस में (सुधानस्य) उत्पद्यमान (प्रयसः) मनोहर (अस्य) इस (अन्धसः) अन्ध को (मदाय) आनन्द के लिए तुम लोगों ने (अपायि) पान किया उस सब को हम लोग भी ग्रहण करें ॥१॥

आचार्य—विद्वान् जन जिस में बढ़े हुए विद्या की धारण करते हैं उस में हम लोग भी बैठें हम विज्ञान को स्वीकार करें ॥१॥

अब सूर्य-विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अस्य मन्दानो मध्वो ब्रह्मस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृत्तं वि दृश्वत्।

प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! (यत्) जिस से (मध्वः) पखेरुओं के (च) समान (स्वसराणि) दिनों को (नदीनाम्) प्रयांसि, च) और नदियों के मनोहर झीलों को (ब्रह्म) ब्रह्म प्रकार (ब्रह्मकमन्त) रमते हैं जो (ब्रह्मस्त) किरण रूपी हाथों वाला (अस्य) इस (मध्वः) विशेष कर जानने योग्य जगत् के बीच (मन्दानः) प्राप्त हुआ (इन्द्र) सूर्य (अर्णोवृत्तम्) जिस में जल विद्यमान है उस (अहिम्) मेघ को (वि दृश्वत्) विभिन्न करता है उसकी यथावत् जानो ॥२॥

आचार्य—जैसे पक्षी जाने-आते हैं वैसे रात्रि दिन वर्तमान है जैसे सूर्य इस जगत् का आनन्द देनेवाला है वैसे सज्जनों को बताना चाहिए ॥२॥

स माहिन् इन्द्रो अर्णो अपां प्रेरयदहिहाच्छा समुद्रम्।

अर्जनयत्पृथ्वीं विदवा अकतुनाहौ वयुनानि साधत् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! जैसे (सः) वह (माहिन्) बड़ा (अहिहा) मेघ का हननेवाला (इन्द्र) विजुली रूप अग्नि (अपाम्) अस्तरित के बीच (अर्णोः) जल को (अच्छा, प्रेरयत्) यथाक्रम से प्रेरणा देता है (समुद्रम्) समुद्र की ओर (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (अर्जनयत्) उत्पन्न करता (अकतुना) रात्रि के साथ (अकतुना) दिनों के सम्बन्ध करनेवाली (गाः) पृथिवियों को (विदवा) प्राप्त होता है और (वयुनानि) उत्तम यानों को (साधत्) सिद्ध करता वैसे तुम लोग भी धारण करो ॥३॥

आचार्य—जो मनुष्य विजुली के समान वेग और आकर्षणयुक्त मनुष्यों के हनने और विद्यावि शुभ गुणों का प्रचार करनेवाले हैं, अन्ध्याम और अन्धकार का विनाश करनेवाले सत्कार का सुख सिद्ध करते हैं वे सर्वत्र पूज्य होते हैं ॥ ३ ॥

अब वाता के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सो अंघरीनि मनवै पुरुषीन्द्रो दाशदाशुवे हन्ति वृषम्।

सद्यो यो वृष्यो अतसाय्यो भुवस्त्वयानेभ्यः सूर्यस्य साती ॥४॥

पदार्थ—( यः ) जो ( इन्द्रः ) सूर्य के समान देवता जल जैसे सूर्य ( यजमान ) मेघ को ( हविः ) हुता है वैसे यजुषी को मारता हुआ ( यजुषी ) दूसरे देवता ( यजमान ) विचारणीय मनुष्य के लिए ( यजमान ) जिन की प्रतीति नहीं है उन ( यजमान ) बहुत से यजुषी को ( इन्द्रः ) देव या ( सूर्यः ) सूर्य की ( जल ) साति में अर्थात् सूर्यमण्डलकृत विभाग में ( अस्त्रात्मः ) परीपकार में निरन्तर वर्तमान होता हुआ ( यजमानः ) स्पष्टी वा ईप्सा करनेवाले ( यजमान ) मनुष्यों के लिए ( यजमान ) शीघ्र आनन्द देनेवाला ( यजमान ) होता है ( यः ) वह सब स्वार्थों से सत्कार पाता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्पीपमासङ्कार है। जो अपरिमित जल को एकट्ठा करते और जगत् के उपकारी सुपात्रों के लिए देते हैं वे निरन्तर ईप्सा वा ईप्सा करने योग्य नहीं हैं ॥ ४ ॥

अब विष्णु की विषय की अगले मन्त्र में कहा है—

स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिण्क्मस्योय स्तवान् ।

आ यद्रयि गुहद्वयमस्यै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( देवः ) देदीप्यमान ( इन्द्रः ) विष्णु की ( सुन्वते ) पदार्थों का सार निकालनेवाले मनुष्य के लिए ( सुन्वते ) सवितृमण्डल को और ( यजमान ) साधारण मनुष्य के लिए ( स्तवान् ) स्तुतियों को ( यः, आ, रिण्क् ) नहीं छोड़ती और ( गुहद्वयम् ) उद्वेग हुए निम्न ( यजमान ) जल को ( अस्त्रे ) इस मनुष्य के लिए ( आ, भरत् ) आभूषित कराती और ( यजमान ) प्राप्त भाग को ( दशस्यन् ) नष्ट करती हुई ( दशस्यन् ) प्राप्त नहीं होती ( यः ) वह विष्णु की आप लोगों की उपयोग में लानी योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य किसी की उन्नति के नाश की नहीं इच्छा करते किन्तु सब के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे सूर्य के समान उपकार करनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

अब सूर्य-विषय की अगले मन्त्र में कहा है—

स रन्ध्रवत्सदिवः सारंथये शुष्णमशुषं कुप्यं कुत्साय ।

दिवोदासाय नवतिष्ठ नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥६॥

पदार्थ—जो मनुष्यों को ( इन्द्रः ) सूर्य ( कुत्साय ) निम्नित ( सारंथये ) अच्छे छींटे हुए या बलानेवाले के लिए ( अशुषम् ) गीले ( शुष्णम् ) बल ( कुप्यम् ) कुत्सित सङ्गम और ( सारंथये ) प्रकाश के सहित वर्तमान अर्थात् अस्त्रात्मक पदार्थों को ( रन्ध्रवत् ) अच्छे प्रकार छिन्न करता है ( दिवोदासाय ) प्रकाश देनेवाले के लिए ( नव, नवतिष्ठ, यः ) निम्नानवे ( अस्त्रात्मक ) मेघ के ( पुरः ) पुरो को ( व्यैरत् ) प्रेरित करता है ( स ) वह उपयोग में लाना योग्य है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य दुष्ट बल को और कुशिक्षा को निवारक बल और उत्तम शिक्षाओं से कुत्सकारों को निवारक सङ्घों बोधों की उत्पन्न करते हैं वे सर्वदा पूज्य होते हैं ॥ ६ ॥

अब विद्वान् के विषय की अगले मन्त्रों में कहा है—

एवा तं इन्द्रोऽथमहेम अवस्था न रमनां वाजयन्तः ।

अस्याम तत्साप्तेमाशुषाणा ननमो वधरद्वेवस्य पीयोः ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) विद्वन् ! ( ते ) आप के ( रमना ) आत्मा के ( वाजयन्तः ) ज्ञान कराते हुए हम लोग ( अवस्था ) अवस्था करने योग्य पदार्थ के ( न ) समान ( उच्चयम् ) और कहने योग्य प्रस्ताव ( एव ) ही को ( अहम् ) व्याप्त हों तथा ( अशुषाणाः ) शीघ्रता करते हुए हम लोग ( तत् ) उस ( वाजयन्तः ) सात प्रकार के विषय की ( अवस्था ) व्याप्त हों ( अवस्था ) अविद्वान् ( पीयोः ) पालना करनेवाले सूर्य को ( यः ) वह करनेवाले मन्त्र को व्याप्त हों और परमेश्वर को ( यजमानः ) नैवेद्यकर करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य कहने योग्य को कहें, पाने योग्य को पावें, नमने योग्य को नमैं, मारने योग्य को मारें और बाने योग्य को जानें वे ही व्याप्त होते हैं ॥ ७ ॥

एवा तं पुस्तमदाः शूर मन्माधस्यवो न वयुनानि तसः ।

अज्ञानन्त इन्द्र तं नवीयं ह्यमूर्तं सुसिद्धिं सुम्नमश्नुः ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) शूर ( इन्द्रः ) विद्वन् ! जो ( सुम्नमः ) अजीव आनन्दवाले ( अज्ञानन्तः ) जल की कामना करते हुए जल ( ते ) आप के ( जल ) मन्त्र को और ( अज्ञानन्तः ) अपने को रक्षा चाहते हुए के ( न ) समान ( अज्ञानन्तः ) उत्तम ज्ञानों को ( अज्ञानः ) विस्तार के ( ऐव ) ही ( ते ) जल के ( अज्ञानः ) जमीन ( इन्द्रः ) जल और ( अज्ञानः ) पराक्रम की सेवा ( सुसिद्धिः ) सुन्दर सुख को और ( सुम्नम् ) सुख की ( अज्ञानः ) प्राप्त हों ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों की उत्तम शिक्षा के विवर्तनवादी हैं वे अनेकविध सुख की प्राप्ति हैं ॥ ८ ॥

अब दक्षिणा के गुणों की कहते हैं—

चूर्णं सा ते प्रति वरं जरित्रे हुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षां स्तोत्रम्यो मातिं घग्मगो नो वृहद्वेदेम विदये सुवीराः ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) विद्वन् ! आप ( यः ) हमारे लिए ( भगः ) प्रभाव को ( सा, प्रति, वरः ) वर नष्ट करो और जो ( ते ) आपकी ( मघोनी ) ऐश्वर्यवती ( दक्षिणा ) दक्षिणा ( जरित्रे ) दान की स्तुति करनेवाले के ( वरम् ) उत्तम पदार्थ को ( हुहीयत् ) पूर्ण करे ( सा ) वह जैसे ( नः ) हम लोगों के लिए प्राप्त हो जैसे इसको ( स्तोत्रम्यः ) शिक्षा की कामना करनेवालों के लिए ( शिक्षा ) शिक्षाएँ जितसे ( सुवीराः ) उत्तम वीरोंवाले हम लोग ( वृहत् ) निरन्तर से ( विदये ) संघाम में ( वृहत् ) बहुत ( वदेम ) कहें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्पीपमासङ्कार है। जिसकी अग्रम दक्षिणा और शिक्षा है वह अच्छे और सर्वत्र सत्कार को पावे ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वान्, सूर्य, दाता के दक्षिणा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उन्मीलनी सूक्त और औचित्यार्थ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अपरिमित नववत्स्य विवर्तितमस्य सुवत्स्य गृहसमम् अविः । इन्द्रो देवता ।

१, ६, ८ विरिह विरिहः; ९ विरिहः अविः । वैद्यतः स्वरः ।

२ वृहती अविः । मध्यमः स्वरः । ३ पङ्क्तिः; ४, ५,

७ गुरिक् पङ्क्तिः अविः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अब आवांवाले बीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

इन्द्र नाम से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है—

वयन्ते वयं इन्द्र विद्धि वृणः म भ्रामहे वाजयुर्न रथम् ।

विपन्यवो दीर्घ्यतो मनीषा सुम्नमियंस्तस्त्वावतो वृन् ॥१॥

पदार्थ—हे ( वयः ) मनीहूर ( इन्द्रः ) विद्वन् ! जो ( विपन्यवः ) विशेष कर स्तुति के व्यवहारों को करनेवाले ( स्वावतः ) आपके सङ्घ ( वृन् ) मनुष्यों का ( दीर्घ्यतः ) सत्कार करते हुए ( दीर्घ्यतः ) देदीप्यमान ( वयम् ) हम लोग ( मनीषा ) बुद्धि से ( ते ) आपके ( रथम् ) विमानादि यान को ( वाजयुः ) बैग की कामना करनेवालों ( न ) जैसे वैसे ( सुम्नम् ) सुख को ( वृन्, म, भ्रामहे ) बैग की कामना करनेवालों ( न ) जैसे वैसे ( सुम्नम् ) सुख को ( वृन्, म, भ्रामहे ) अच्छे प्रकार पुष्ट करें । उन ( नः ) हम लोगों की आप ( विद्धि ) जानें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। जो सत्कार करने योग्यों का सत्कार करते और सत्य व्यवहार से वर्तित करते हैं वे समस्त सुख के कारण करने को योग्य होते हैं ॥ १ ॥

फिर इसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है—

त्वं न इन्द्र त्वामिच्छती त्रायतो अभिष्टिपासि जनान् ।

त्वमिना दाशुषो वदतेस्वाधीरमि यो नक्षति त्वा ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) परमेश्वरमुक्त विद्वन् ! ( यः ) जो ( वदता ) स्वीकार करनेवाला ( इच्छती ) इस हेतु से आरंभवाली हुई है बुद्धि जिस की वह जन ( स्वरः ) आपकी ( अभिः, नक्षति ) सम्मुख प्राप्त होता वह ( इन्द्रः ) समर्थ ( स्वाधीरः ) आपकी कामना करते हुए ( दाशुषः ) देनेवाले ( ज्ञानम् ) जनों की और ( नः ) हम लोग की पालने वाले ( वदते ) आप भी रक्षा करें और जिस कारण से ( त्वम् ) आप ( अभिष्टिपासि ) अभिष्टिपासा से पालनेवाले ( अति ) हैं इसी कारण ( स्वाधीरः ) आप की ( क्ली ) रक्षाओं के सहित हम लोग सुख को अच्छे प्रकार कारण करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—पिछले मन्त्र से 'सुम्नम्' और 'भ्रामहे' इन दोनों पदों की अनुवृत्ति है। जो विद्वानों को प्राप्त होकर प्राणियों के सुख की कामना करते हैं वे दाता होते हैं ॥ २ ॥

फिर विद्वान् और ईश्वर के विषय की अगले मन्त्रों में कहा है—

स नो युवेन्द्रो जोहवः सत्ता शिवा नरामस्तु पाता ।

यः शीतन्तं यः शीतमानमूर्तं पचन्तं च स्तुवन्तश्च प्रणेयं ॥३॥

पदार्थ—( यः ) जो ( ज्ञानी ) रक्षा से ( शीतमानम् ) प्रणता करते हुए को ( यः ) जो ( शीतमानम् ) आत्मा की उत्पन्न करनेवालों को ( पचन्तम् ) पक करते हुए को ( स्तुवन्तम् ) और स्तुति करते हुए को ( प्रणेयम् ) उत्तम पदार्थ को प्रार्थना करने और आप योग्य को प्राप्त होने ( सः ) वह ( यः ) सुखों से वृष्टि और बुद्धि से विमुक्त करनेवाला ( जोहवः ) निरन्तर दाता ( शिवाः ) मन्त्रक



कारी ( सभा ) सबका मित्र ( इन्द्रः ) और विद्या वा ऐश्वर्य का देनेवाला विद्वान्  
वा ईश्वर ( वः ) हम लोगों का और ( नराम् ) सब मनुष्यों का ( वः ) भी  
( वाता ) रक्षक ( अस्तु ) हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर और आप्त जन की रक्षा करनेवाले हैं वे सबके मित्र  
और मङ्गल करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

तस्यै स्तुतु इन्द्रन्तर्गुणीये यस्मिन्पुरा बाहुधुः काशदुरच ।

स वस्यः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो मृतनस्यायोः ॥४॥

पदार्थ—जो जन ( मृतनस्य ) मरीन ( आधोः ) पाने योग्य ( ब्रह्मण्यता )  
जन की इच्छावाले और ( वस्यः ) जन की ( कामम् ) कामना की ( इवान् )  
प्राप्त होता हुआ ( पीपरत् ) उसको पूरी करे वा ( यस्मिन् ) जिसमें ( पुरा ) पहले  
( बाहुधुः ) शिष्टजन बड़े और ( काशदुः ) दुष्टों को नष्ट करे ( तस्यै ) उस पर-  
मेश्वर वा विद्वान् की आप ( स्तुते ) प्रशंसा करते हो और ( तम्, वः ) उन्हीं की  
( गुणीये ) स्तुति करते हो ( सः ) वह हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिसके साथ सब बड़े और दुष्टों को काटते उसके साथ व्यवहार  
करें ॥ ४ ॥

अब सभ्य के गुणों की अगले जगहों में कहा है—

सो अक्षिरसामुचया जुजुष्वान् ब्रह्मा ततोदिन्द्रो गातुमिष्वान ।

मुष्यक्षयसः सूर्येण स्वानभस्य चिच्छिन्नयत्पूर्वार्णि ॥५॥२५॥

पदार्थ—जो ( अक्षिरसाम् ) प्राणियों के ( उचया ) कहने योग्य ( ब्रह्मा )  
जनों को ( जुजुष्वान् ) सेवन किये हुए ( सामुम् ) पृथिवी की ( इष्वान् ) सब और  
के देवता हुआ ( मुष्येण ) सूर्य के साथ ( उचयः ) प्रभात समयों को ( स्वानस्य )  
मेघ की ( स्वानम् ) स्तुतियों को ( चिच्छिन्नयत् ) नष्ट करता है ( चित् ) उसके  
समान ( पूर्वार्णि ) पूर्वोपायों से की हुई ( ततोत् ) स्तुतियों को बढ़ावे ( सः )  
वह ( इन्द्रः ) पुत्राधीन जन हमारा रक्षक हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है । जो सूर्य के समान बढ़ाने और छिन्न  
मिन्न करनेवाले होकर राज्य को बढ़ाते हैं वे उचित और अगले सज्जनों की सेवन  
की हुई जल्दी को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

स इ श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मत्तमः

अथ मियमशंसानस्य साह्याच्छिरौ भरद्वास्य स्वधावान् ॥६॥

पदार्थ—जो ( भुतः ) प्रख्यात ( देवः ) वेदीप्यमान ( दस्मत्तमः ) अतीव  
दुःखों को नष्ट करनेवाला ( साह्याम् ) सहनशील ( इन्द्रः ) सूर्य के समान विद्वान्  
( अशंसानस्य ) प्राप्त हुए ( वास्य ) सेवक के ( स्वधावान् ) समर्थ अन्नवाले के  
समान ( मनुषे ) मनुष्य के लिए ( नाम ) प्रसिद्ध ( ऊर्ध्वः ) उत्कृष्ट ( भुवत् ) हो  
और सूर्य जैसे मेघ के ( शिरः ) शिर को वैसे ( मियम् ) मनोहर विषय की ( अथ,  
भरत् ) पूरा करे ( स, इ ) वही हमारा रक्षक हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो सूर्य और मेघ के समान सबका सुख सिद्ध करनेवाले विद्वान् हैं  
उनकी प्रशंसा क्यों न हो ॥ ६ ॥

स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयदि ।

अजनयन्मनवे सामपश्च सभा शंसं यजमानस्य ततोत् ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! ( सः ) तो आप जैसे ( पुरन्दरः ) पुर का विदीर्ण  
करनेवाला ( वृत्रहा ) मेघहृता ( इन्द्रः ) सूर्य ( कृष्णयोनीः ) शीघ्रनेवाली जिन  
की योनी उन ( दासीः ) सुख देनेवाली बटाओं की ( यैरयत् ) विशेषता से प्रेरणा  
से ( मनवे ) मनुष्य के लिए ( साम् ) भूमि को ( अयः, यः ) और जलों को ( अज-  
नयत् ) उत्पन्न करे ( यजमानस्य ) देनेवाले के ( सभा ) सत्य में ( शंसम् ) स्तुति  
को ( ततोत् ) बढ़ावे जैसे वरुणा ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमाकार है । जो सूर्य के समान सुख  
वर्षाने वा व्याय के प्रकाश करने और सब प्रशंकों के प्रशंसा करनेवाले हैं वे यही क्यों  
न बड़ें ॥ ७ ॥

तस्मै तवस्यमनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।

प्रति यदस्य गजं बाहोर्धुहृत्वी दस्युन्पुर आयसीर्नि तारीत् ॥८॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( बाहोः ) मजाधों के ( यजम् ) शस्त्र और शस्त्र  
धारण ( दस्युन् ) और भयङ्कर चोरों की ( हृत्वी ) हृन्न कर ( आयसीः ) युवर्षा  
और लोहे के काम की ( पुर ) नगरियों की ( नि, तारीत् ) उत्सवता है वह और  
जिससे ( दस्य ) इस मेघ के ( अर्णसातौ ) जल की प्राप्ति के निमित्त ( तवस्यम् )  
जल में उत्पन्न हुआ पदार्थ ( अनुवाभि ) दिया जाए ( तस्मै ) उस प्रस्तुति प्रशंसा  
करने और ( इन्द्राय ) बहुत ऐश्वर्य के देनेवाले के लिए जो ( सभा ) सत्यता से  
( प्रति, मुः ) प्रतीति में धारण करें वे सब ( देवेभिः ) विद्वानों के साथ सुख पाते  
हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो परिचयों के सहित नगरियों को बना और भयङ्कर चोर आदि  
को निवारण कर विद्वानों के साथ राज्य की पासना करते हैं वे सत्य सुख की प्राप्ति  
होते हैं ॥ ८ ॥

अब देनेवालों के गुणों की अगले जगहों में कहते हैं—

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयहिन्द्र दक्षिणा मघोमी ।

शिक्षां स्तोतृभ्यो मातिं व्रमगो नो बृहदेम विदधे सुवीराः ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) देनेवाले ! ( ते ) आपकी ( सा ) वह ( मघोमी )  
बहुत बनादि पदार्थों से युक्त ( बहित्रा ) वेनी ( प्रतिवरम् ) अत्युत्तम सुख ( जरित्रे )  
प्रशंसा करनेवाले के लिए ( स्तोतृभ्यः ) और स्तुति करनेवालों के लिए ( मघम् )  
निश्चय कर ( दुहीयत् ) पूरा करे और ( वः ) हम लोगों की ( मातिम् ) मत्त  
नष्ट करे और आप हम लोगों की ( शिक्षां ) विद्या ग्रहण कराइए तथा जिससे ( मघः )  
ऐश्वर्य बढ़ता है उससे ( सुवीरा ) सकल विद्याध्यापी हम लोग ( विदधे ) पदार्थ-  
विज्ञान में ( बृहत् ) बहुत ( मघेन ) कहें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो निरन्तर देने और न देनेवाले सर्वदा सत्य की शिक्षा देते और  
किसी के हृदय को युवा नहीं सम्हालते हैं वे बड़े होते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, ईश्वर और सभापति आदि के गुणों का वर्णन होने से इस  
सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सञ्ज्ञति जाननी चाहिए ॥

यह बीसवाँ सूक्त और अन्वीतवाँ अर्थ समाप्त हुआ ॥



विश्वविहितं बहुवर्त्यकविशतितवत्स्य सुतस्य मृतमव ऋचिः । इन्द्रो देवताः ।

१, २ स्वरार्ध विष्टुः; ३, ६ विष्टुः अन्वः । वेदः स्वरः । ४ विष्टुः  
जगती; ५ विष्टुजगती अन्वः । निघावः स्वरः ॥

अब ५ ऋचावाले इन्द्रकीसर्व सुक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से  
विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते वृजिते उर्वराजिते ।

अश्वजिते गोजिते अग्निजिते मरेन्द्राय सोमं यजताय हर्येतम् ॥१॥

पदार्थ—हे प्रजाजन ! आप ( विश्वजिते ) जो विश्व की जीतता वा  
( सत्राजिते ) जो सत्य से उत्कृष्टता की प्राप्ति होता वा ( स्वर्जिते ) जो सुख से  
जीतता वा ( गोजिते ) जो मनुष्यों से जीतता वा ( अश्वजिते ) जो घोड़ों से जीतता  
वा ( मोजिते ) जो गौधों को जीतता वा ( उर्वराजिते ) जो सर्व फल, पुष्प,  
सस्यादि पदार्थों की प्राप्ति करानेवाली की जीतता वा ( अग्निजिते ) जो जन से  
जीतता ( अश्वजिते ) वा जलों में जीतता उसके लिए ( यजताय ) सत्संग करने-  
वाले ( इन्द्राय ) सभा और सेनापति के लिए ( हर्येतम् ) मनोहर ( सोमम् )  
ऐश्वर्य को ( जर ) धारण करी ॥१॥

पदार्थ—राजा प्रजाजनो को यह अच्छे प्रकार उचित है कि जो सर्वदा  
विजयशील, ऐश्वर्य की उन्नति करनेवाले जन न्याय से प्रजा में बतें उनका सत्कार  
सर्वदा सब करें ॥१॥

अमिषुर्वमिमङ्गाय वन्वतेऽवांवाहाय सहमानाय वेवसे ।

तुविग्रये बह्वे दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! तुम ( अमिषुर्वे ) शत्रुधों का तिरस्कार करने  
( अमिमङ्गाय ) दुष्टों का सब और से भर्त्सन करने ( अवांवाहाय ) शत्रुधों से न  
सहने ( सहमानाय ) शत्रुधों का सहनशील रखने ( वन्वते ) सत्य और अत्यन्त  
का विभाग करने ( तुविग्रये ) वृद्धि के निमित्तों का उपदेश देने ( बह्वे ) राज्य  
भार को बलाने और जो ( दुष्टरीतवे ) शत्रुधों से दुःख से रहनेवाला उसके लिए  
( सत्रासाहे ) और सत्य के सहनेवाले ( इन्द्राय ) सर्वशुभलक्षणयुक्त ( वेवसे )  
उत्तम ज्ञाता के लिए ( नमः ) नमस्कार ( वोचत ) कहो ॥२॥

भावार्थ—जो अन्याय से अलग दुष्टाचारियों को ठाड़ना देते हैं अष्टाचार  
की सन्धि से सत्पुरुषों का सत्कार करते हैं वे विवेकी हैं ॥२॥

सत्रासाहो जममसो जनसहक्यवर्नो युध्मो अनु जोषसुक्षितः ।

इतञ्चयः सहुरिर्विश्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( सत्रासाहः ) जो सत्य की सहायता ( जममसः )  
जनों के सेवने योग्य ( जनसहः ) जनों को सहने ( चकमः ) दुष्टों की विरोध  
( युध्मः ) दुष्टों से युद्ध करने ( इतञ्चयः ) और वर्तमान पदार्थों की इच्छा  
करनेवाला ( सहुरिः ) सहनशील ( विश्वारितः ) प्राप्त ( वीर्याम् ) प्रीति की  
( उक्षितः ) सेवता हुआ मैं ( विष्णु ) प्रजाजनों में ( कृतानि ) सिद्ध हुए  
( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् ( वीर्या ) पराक्रमयुक्त कर्मों की ( अ, वीर्याम् ) अच्छे  
प्रकार कहें वैसे तुम ( अनु ) पीछे कहो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुण्योपमाकार है। जो वन, वन और वनवि  
शुभ कर्मों का आचरण करनेवाले वन प्रजा में विद्या बढ़ाते हैं वे वनों के सेवक योग्य  
होते हैं ॥२॥

अनाहुतो ह्यमो दोषता वयो गम्भीर कुण्डो असंमृत्कायः ।

ब्रह्मोदः सर्वतो वीक्षितस्तुष्टिरिन्द्रः सुयज्ञ इषसः स्वर्जनत् ॥३॥

वार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (वक्षः) प्रजा से (स्वर्जनत्) जिसके  
समान वन का प्रकाश हो जैसे जो (अनाहुतः) नहीं प्रेरित (वक्षः) सर्वोत्तम  
(गम्भीरः) गम्भीर आश्रयवाला (कुण्डः) आता (असंमृत्कायः) जिसको  
अच्छे प्रकार कविताई न व्याप्त हुई न जिसके मन को रती (रज्ज्वोदः) जो  
वकाशदी पदार्थों को प्रेरणा देने और (इषसः) दुष्टों की हित करनेवाला  
(वीक्षितः) विविध गुणों से स्तुति किया गया (सुयज्ञः) विस्तृत फलपुष्ट (सुयज्ञः)  
सुन्दर-सुन्दर जिसके विद्वानों के सत्कार आदि पदार्थ (इन्द्रः) जो सूर्य के समान  
अच्छी शोभा वाला विद्वान् है जिसने (वोक्षतः) हितक का (वक्षः) नाश किया  
वह सबको सुख देने के योग्य है ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने से विविध गुण और कर्मों का आचरण, अष्टों  
का सत्कार और दुष्टों की हित करते हुए सर्वज्ञात्मवेत्ता बर्मात्मा है वे सूर्य के  
समान प्रकाश करनेवाले हैं ॥३॥

यज्ञं शातुमपुनो विविद्विरे धियो हिन्वाना वसिष्ठो मनीषिणः ।

अमिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रं हिन्वाना द्रविष्यान्वाशत ॥४॥

वार्थ—जो (शातुम्) पुषि की (अपुनः) प्राप्त हुए (अमिस्वरा)  
सब और की वाणियों और (निषदा) नित्य जो समा में स्थित होते उनसे (गा)  
पुषिवियों को (अवस्यव) अपनी रक्षात्मक माननेवाले (इन्द्र) विपुली आदि  
पदार्थ में (हिन्वानाः) बुद्धि को प्राप्त होते (वसिष्ठः) मनीषी (विषः) बुद्धियों  
को (हिन्वाना) बढ़ाते हुए (मनीषिणः) मनीषी जन (यज्ञेन) यज्ञ से विद्या  
और सुन्दर नील को (विविद्विरे) प्राप्त होते हैं वे (द्रविष्यानि) वन वा पश्यों  
को (आशत) प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थ—कोई भी जन सत्सङ्ग, योगाभ्यास, विद्या और उत्तम बुद्धि के  
बिना पूर्ण विद्या और वन पाने को योग्य नहीं होता ॥४॥

इन्द्रं श्रुत्वा विविशानि येहि चित्ति दक्षस्य सुमगत्वमस्मे ।

योषं रयीणामरिष्टि तनूनां स्वाधानं वाचः सुदिनत्वमहाम् ॥५॥

वार्थ—हे (इन्द्र) सभी के अधिपति के समान वर्तमान। (अस्मे) हम  
लोगों के लिए (इन्द्रस्य) वन की (चित्तिम्) उस प्रकृति को जिससे कि विद्या  
को एकट्ठा करते हैं और (सुमगत्वम्) अत्युत्तम ऐश्वर्य (योषम्) पुष्टि तथा  
(रयीणाम्) वन और (तनूनाम्) शरीरों की (अरिष्टिम्) रक्षा (वाचः)  
वाणी के बोध (स्वाधानम्) स्वादिष्ट भोग (अहाम्) दिनों के (सुदिनत्वम्)  
सुधिन वन और (येहि) वर्तमान (विविशानि) वनों को (वाचः) बारण  
कीजिए ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुण्योपमाकार है। विद्वानों को जैसे परमेश्वर  
के समस्त वस्तुओं को उत्पन्न कर सबके लिए हितरूप सिद्ध कराई हैं जैसे सबके  
कल्याण के लिए नित्य प्रयत्न करता चाहिए ॥५॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के  
अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

वह इन्कीसर्वा सूक्त और सत्ताईसर्वा अर्थ समाप्त हुआ ॥

५॥

निकटुकेविशस्य सप्तुर्दस्य द्वाविशतिसप्तस्य सुप्तस्य गुप्तस्य ऋषिः । इमी  
वेमता । १ अविशस्यः । अमनः । एवरः । २ निषुदतिसप्तवरीः

४ सुविशतिसप्तवरीः । अमनः । एवरः । ३ एवराद् अमनरी  
ऊनः । वेमताः । एवरः ॥

सब बार ऋषिवाले ऋषिर्त्तु सूक्त का आरम्भ है उसके अर्थ वन में  
सुख का विषय कहते हैं—

निकटुकेषु महिनो यवांशिरं तुविशुष्यस्तुपत्सोममपिबद्विषुना

सुतं यवांशिरं । स ई ममाह महि कर्म कर्त्तव्ये

महासुखं सैन सखेवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्द्रः ॥६॥

वार्थ—जो (तुविशुष्य) बहुत वनवाला (महिनः) बड़ा (सुतः)  
सुख करता हुआ (निकटुकेषु) जिसमें तीन आश्रान विद्यमान उनमें (अमनः)  
वनों के आश्रय करनेवाले की और (विशुष्य) व्यापक परमेश्वर का भाव है  
(सुतः) उत्पन्न-किये हुए (महिनः) इस को (महा) जैसे (अपिबद्विषुना) पीता  
और (अमनः) कावना करता है (सः) वह (ईम्) वन से (महि) वह

(कर्म) कर्म के (कर्त्तव्ये) करने को (अमनः) हविर्त्तु हो। तथा जो (सत्यः)  
नाशरहित (इन्द्रः) चन्द्रमा (देवः) सब और से प्रकाशमान (एवम्) इस  
(महासु) महात्माओं के (अमनः) बहुत (सत्यम्) अविनाशी (देवम्) प्रकाशः  
मान (इन्द्रम्) सर्व लोकों के आचाररूप धर्मलोक की (सत्यम्) संयुक्त करता वह  
पूज्य होता है ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है। जो मनुष्य जगदीश्वर से निमित्त  
किये लोकों में विद्या और उत्तम वन से प्रिय मनोहर भोग कर सकता है वह  
अविनाशी परमात्मा को जान वा बना सकता है ॥६॥

अब विपुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अथ त्विमीमां अम्योजसा किमि युधामवदा रोदसी अपृणदस्य  
मज्जना प्र बाधुषे । अर्धचान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैन सखेवो देवं  
सत्यमिन्द्रं सत्य इन्द्रः ॥७॥

वार्थ—जो (विपुलीम्) बहुत दीप्तिपुष्ट (मोजसा) वन से बड़ा  
(अम्योजसा) होता है (युधाम) संहार से (रोदसी) आवापुषि की (किमि)  
कूप के समान (अपृणदस्य) तुष्ट करता है (अथ) इसके अनन्तर इस जगदीश्वर  
के (मज्जना) वन से (प्र, बाधुषे) अच्छे प्रकार बढ़ता है (जठरे) अपने  
भीतर (अम्योजसा) और को (अम्योजसा) बारण करता और जो (ईम्) वन के  
साथ (प्रेमरिच्यत) भीतों से भजन है (एवम्) इस (सत्यम्) सत्य (देवम्)  
पुष्ट के देनेवाले (इन्द्रम्) विपुली रूप अग्नि को (अभि, वा सत्यम्) जो प्रत्यक्ष  
सम्बन्ध करता है (सः) वह (सत्या) सत्य (इन्द्रः) वन के समान आर्ष  
स्वभाववाला (देवः) प्रकाशमान परमेश्वर है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुण्योपमाकार है। हे मनुष्यो! जिसने वह  
सब लोकों का प्रकाश करने और कूप के समान सींचनेवाला बड़ा सूर्यलोक रचा  
और अपने में बारण किया जो सबसे अलग व्याप्त भी है वह नित्य परमेश्वर देव है  
उसका नित्य ध्यान करो ॥७॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

साकं जातः क्रतुना साकमाजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो

वीर्यैः सासहिर्दधो विचर्षणिः । दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु

सैन सखेवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्द्रः ॥८॥

वार्थ—हे मनुष्यो! जो (क्रतुना) कर्म वा प्रजा और (मोजसा) वन  
के (साकम्) साथ (जातः) प्रसिद्ध (वीर्यैः) पराक्रम वा विजानादि पदार्थों के  
(साकम्) साथ (वृद्धः) बड़ा (सासहिर्) अत्यन्त सहनेवाला (विचर्षणिः)  
विद्या के प्रकाश से युक्त विद्वान् (दाता) दानशील होता हुआ (वक्षः) समानों  
की (ववक्षिथ) प्राप्त करता है (काम्यम्) प्रिय (वसु) सुखों को दानेवाले  
(राधः) वन की (स्तुवते) प्रशंसा करता (सः) वह (सत्यः) अविनाशी  
(इन्द्रः) परमेश्वरयुक्त (देवः) सर्वत्र प्रकाशमान जीव (एवम्) इस (सत्यम्)  
सत्य (इन्द्रम्) परमेश्वरयुक्त (देवम्) वेदीप्यमान परमेश्वर की (साकम्) साथ  
(सखेव) सम्बन्ध करता अर्थात् अपनी धारमा से संयुक्त करता है ॥८॥

भावार्थ—जिसका ज्ञानादि गुणों और उत्प्रेरणादि कर्मों के साथ नित्य  
सम्बन्ध है, जो विद्या से ज्येष्ठ और अविद्या से कमिष्ठ है, सुख की कामना करता  
हुआ अनादि, अनृत्यन्, अमृत, अरुण जीवात्मा है उसको जो सुभाषुम कर्मफलों के  
साथ युक्त करता वह परमेश्वर अक्षित जगत् के बीच व्याप्त होता हुआ सबकी रक्षा  
करता; जीव के साथ ईश का ईश्वर के साथ जीव का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध  
देवकादि अलग सम्बन्ध है यह जानना चाहिए ॥ ८ ॥

अब जीव विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तथ त्यक्त्यै वृत्तोऽप्य इन्द्र प्रथमं पुर्वं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।

यदेवस्य शवसा प्रारिषा अमुं रिणक्षपः ।

सुबहिर्भयम्यादेवमोजसा भिदायुर्जी वृत्तक्रतुर्विदाविषम् ॥९॥

वार्थ—हे (वृत्तो) सब के लचानेवाले (इन्द्र) इन्द्रियादि ऐश्वर्ययुक्त वा  
उस का शक्ति । (वत्) जो वृ (वत्) वह (अम्योजसा) प्रथम (पुर्वम्)  
पूर्वाचार्यों ने किया (अवाच्यम्) उत्तमता से कहने योग्य (कृतम्) प्रसिद्ध  
(वक्ष्यम्) मनुष्यों ने सिद्ध पदार्थ उसको और (विदि) प्रकाशमान परमेश्वर से  
(अम्योजसा) प्राप्त को (देवस्य) सब के प्रकाश करनेवाले के (अम्योजसा) वन से  
(प्रारिषा) प्राप्त होता और (अमुम्) प्राप्त और (अम्योजसा) वनों को (रिणक्षपः)  
प्राप्त होता हुआ (मोजसा) वन से (अम्योजसा) जिसमें प्रकाश नहीं विद्यमान उस  
(विषम्) समस्त वस्तुमान को (अभि, विषम्) प्राप्त हो (अम्योजसा)  
अर्धव्य प्रजापुष्ट धार (अम्योजसा) पराक्रम और (इन्द्रम्) अमन को (विदात्)  
प्राप्त हो उन (सः) वाप को सुख (वृत्तः) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे जीवो! जिस जगदीश्वर से निम्न के तुम शरीर, इन्द्रियों और  
आश्यों को प्राप्त हुए उसको सर्व सामर्थ्य से दिन-रात ध्याओ ॥ ९ ॥

इस सूक्त में सूर्य, मित्र, ईश्वर और जीवों के गुण-कर्मों का वर्णन होवे है इस सूक्त के अर्थ की विषय सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥  
इह चाईसर्वा कृता और अद्वाईसर्वा वर्य और इतरा अनुवाक समाप्त हुना ॥



गणानामित्येकोनविंशत्युक्तस्य अथोविंशतिसप्तस्य सुक्तस्य मत्समव ऋचिः । १,

३, ६, ११, १७, १९ अष्टमस्तपति, २—४, ६—८, १०,

१२—१६, १८ अष्टमस्तपति वेवता । १, ४, ५, १०—१२ अगती;

२, ७—९, १३, १४ विराट् अगती, ३, ६, १६, १८

मित्राजगती ऋचः । मित्रावः स्वरः । १५, १७ भुरिक् त्रिष्टुप्;

१९ मित्रात् मिष्टुप् ऋचः । वेवताः स्वरः ॥

अथ उन्मील मन्त्रवाले तेईसवें सुक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में परमेश्वर का वर्णन करते हैं—

गणानान्त्वा गणपति हवामहे कवि कवीनामुप्रमथ्वस्तमम् ।

अथोरात्रं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः श्रुत्वकृतिभिः सीद सादनम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( ब्रह्मणम् ) बड़े-बड़े बनों में ( ब्रह्मणस्पते ) जन के स्वामी तुम लोग ( गणानाम् ) गणतीय मुख्य पदार्थों में ( गणपतिम् ) मुख्य पदार्थों के स्वामी ( कवीनाम् ) उत्तम कुटुम्बालों में ( कविम् ) सर्वज्ञ और ( उपमथ्वस्तमम् ) अपमथ्व जिह्व से दी जाती ऐसे अत्यन्त श्रवणकर्म ( अथोरात्रम् ) अथोष्ठ ध्वनि उत्पन्न प्रशंसित पदार्थों में प्रकाशमान ( आ ) आप परमेश्वर को ( आ, हवामहे ) आपके प्रकार स्वीकार करते हैं आप ( कृतिभिः ) रक्षाओं से ( श्रुत्वम् ) सुनते हुए ( नः ) हम लोगों के ( सादनम् ) उस स्थान को कि जिसमें स्मिर होते हैं (सीद) स्थिर हुआ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे हम लोग सब के अधिपति सर्वज्ञ सर्वदाज अन्तर्गामी परमेश्वर की उपासना करते हैं वैसे तुम भी उपासना करो ॥ १ ॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यक्षियं भागमानधुः ।

इन्द्राश्च सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥२॥

पदार्थ—हे ( असुर्य ) प्रवास रहितों में माधु ( बृहस्पते ) बड़ी चाणी के पति । जिस ( प्रचेतसः ) प्रकट जानवाले ( ते ) आप के ( यक्षियम् ) यज्ञसम्बन्धी ( भागम् ) भाग को ( सूर्यः ) सूर्य ( ज्योतिषा ) प्रकाश से ( उका इव ) किरणों के समान ( देवाः ) विद्वान् जन ( चित् ) निश्चय से ( आतसुः ) प्राप्त होते हैं जो आप ( महः ) महात्मा जन ( विश्वेषाम् ) समस्त लोक और ( ब्रह्मणाम् ) मनो के ( जनिता ) उत्पादन करनेवाले ( इत् ) ही ( असि ) हैं सो हम लोगों को सदा जीवन करने योग्य हैं ॥ २ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में उपमाकार है । हे मनुष्यों ! तुम जो प्राण का प्राण सूर्य के समान आप ही प्रकाशमान और महात्माओं में महात्मा परमेश्वर है उसी को छोड़ो ॥ २ ॥

अथ विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ विवाध्यां परिरापस्तर्मासि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।

बृहस्पते भीममभिब्रह्मर्षनं रक्षोहणं गोत्रमिदं स्वर्विदम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बड़ी की रक्षा करनेवाले विद्वान् । जैसे सूर्य ( परिरापः ) सब ओर से पाप भरे हुए कर्म ( तर्मासि, च ) और रात्रियों को ( विवाध्यां ) निकाल के प्रकट होता वैसे ( ज्योतिष्मन्तं ) सत्य कारण के बीच वर्तमान ( भीमम् ) भयङ्कर ( अभिब्रह्मर्षनम् ) मनुष्यजन और ( रक्षोहणम् ) दुष्टों के मारने ( गोत्रमिदम् ) और मेघ के छिन्न-भिन्न करनेवाले ( स्वर्विदम् ) जिस से उदक को प्राप्त होते ( ज्योतिष्मन्तम् ) जो बहुत प्रकाशमान ( रथम् ) रथतीय-स्वरूप उस को ( आ, तिष्ठसि ) अच्छे प्रकार स्थित होते हो सो आप सुख को प्राप्त होते हो ॥ ३ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणकार है । जो सूर्य के समान विद्याप्रकाश से अधिवान्धकार को निकाल कर कारण को लेकर कार्यजगत् को यथावत् जानते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥ ३ ॥

अथ विद्वान् और ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

सुवीतिभिर्नयसि त्रयसे जनं यस्तुभ्यं दाशाश्च तमहो अभवत् ।

अथद्विस्तपनो मनुमीरसि बृहस्पते महि तत्तं महिस्वनम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बड़ी की पालना करनेवाले ईश्वर वा विद्वान् । आप ( सुवीतिभिः ) उत्तम धर्मवाले व्याय मार्गों से जिस ( जनम् ) जन को ( नयसि ) पहुँचाते हो और ( दाशाश्च ) रक्षा करते हो ( नः ) जो ( तुभ्यम् ) तुम्हारे लिए आत्मा ( दाशाश्च ) देता है ( तम् ) उस को ( अहः ) पाप ( न, अथवत् ) नहीं प्राप्त होता जो तुम ( अथद्विस्तपः ) वेद और ईश्वर के विरोधियों पर ( तपनः ) ताप करनेवाले ( मनुमीरः ) शीघ्र का मान करनेवाले ( महि ) हैं ( ते ) आप के ( तत् ) उस ( महिस्वनम् ) बड़प्पन की हम लोग प्रशंसा करें ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य सत्यभाव से जगदीश्वर वा आप्त विद्वान् के सम्बन्ध से अपने आत्मा को बताते हैं उनको जगदीश्वर वा धार्मिक विद्वान् पापाचरण से निवृत्त कर शुभ गुण, कर्म, स्वभावों से युक्त कर पवित्र करता है । और जो वेद वा ईश्वर के विरोधी पापाचारी हैं उनको अभोगति को पहुँचाता है । यही हम दोनों की उपासना और सङ्ग से लाभ होता है ॥ ४ ॥

न तमहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तिष्ठन् इयाविनः ।

विश्वा इदंस्माध्वरसो वि बाधसे यं सुमोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥५॥

पदार्थ—हे ( ब्रह्मणस्पते ) बड़ों के पालना करनेवाले वा भक्तियों सब भूमि-पति राजन् ! जो ( सुमोपाः ) सुन्दर रक्षा करनेवाले आप ( वस् ) जिसकी ( रक्षसि ) रक्षा करते ( इदंस्मात् ) इससे ( निवृत्ताः ) सब ( ध्वरसः ) हिंसाओं को ( वि, बाधसे ) निवृत्त करते हो ( इत् ) उसी को ( कुतश्चन ) कहीं से भी ( अहः ) अपराध ( न ) न ( दुरितम् ) दुष्टाचार ( न ) न ( नारातयः ) मनुष्य ( न ) न ( इयाविनः ) दोनों पक्षों में बाधित जन ( तितिवः ) करें ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो परमेश्वर की आज्ञा वा आप्त विद्वानी के सङ्ग का वा अपनी आत्मा की पवित्रता का आचरण करते हैं वे सब पापाचरण से अलग हों और धार्मिक होकर निरन्तर सुख को व्याप्त होते हैं ॥ ५ ॥

त्वं नो गोपाः पथिकृद्विषणस्तव व्रताय मतिभिर्जरासहे ।

बृहस्पते यो नो अमि हरो बधे स्वा तं मर्चन् दुष्कुना इरस्वती ॥६॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बहुत सत्य का प्रचार करनेवाले । ( यः ) जो ( नः ) हम लोगों के ऊपर ( हारः ) शोक किया जाता वह ( दुष्कुना ) दुष्ट कुत्ते से जैसे बधे ( तत् ) उसको ( मर्चन् ) निरन्तर प्राप्त हो जो ( स्वा ) अपनी ( इरस्वती ) बहुतों की हारने का शील रखनेवाली सेना इस विषय को ( अमि हरे ) सब ओर से चारण करे उस सेना से जो ( नः ) हम लोगों के ( गोपाः ) रक्षा करने ( पथिकृत् ) सकल युक्त मार्ग का प्रचार करने वा ( विषणः ) विविध व्योपदेश करनेवाले ( त्वम् ) आप हैं उन ( तव ) आपके ( जरासहे ) शील के लिए ( मतिभिः ) मेधाओं के साथ हम लोग ( जरासहे ) स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

पदार्थ—जिनका मार्ग प्रकाश करने और उपदेश करनेवाला परमात्मा, विद्वान् होता है, जो सत्युपदेशों के सङ्ग के प्रति करनेवाले वर्तमान हैं उनको शीघ्र प्राप्ति दुर्गुण नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

उब वा यो नो मर्चयावनांगसोऽरातीवा मर्चः सानुको वृकः ।

बृहस्पते अप तं वर्चया पथः सुगं नो अस्य देववीतये कधि ॥७॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बड़े पाप विधोय करनेवाले । ( यः ) जो ( नः ) हम लोगों को ( अनायास ) अनपराधी ( पथः ) मार्ग से ( मर्चयात् ) जो सुमार्गवाय उसमें प्राप्त करें ( उत, वा ) अथवा जो ( अरातीव ) मनुष्यों का अधि प्रकाश सेवन करता ( सानुकोः ) और अनुयायी के साथ वर्तमान ( वृकः ) चोर ( मर्चः ) मनुष्य हो ( तत् ) उसको उस मार्ग से ( अप, वर्चय ) दूर करो ( नः ) हमारी ( अस्मै ) इस ( देववीतये ) दिव्य गुणों में व्याप्ति के लिए ( सुगम् ) सुगम मार्ग ( कधि ) करो ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! जो हम लोगों को सुमार्ग से सुख को प्राप्त करते उनको पहुँचाए और जो दुष्पथ को पहुँचाते हैं उनको अलग कीजिए तथा कृपा से शुद्ध सरल, बर्चयुक्त मार्ग को प्राप्त कीजिए ॥ ७ ॥

आतारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्चरभिवक्तारमस्मधुसु ।

बृहस्पते देवनिबो नि बह्य मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुज्ज्वन ॥८॥

पदार्थ—हे ( अवस्पतः ) रक्षा कर दुःख से पार करने और ( बृहस्पते ) बड़ों की रक्षा करनेवाले । हम लोग जिस ( तनूनाम् ) विस्तृत सुखसाधक शरीर-दिकों वा अथ पदार्थों के ( आतारम् ) रक्षा करने वा ( अस्मधुसु ) हम लोगों की कामना करने वा ( अविवक्तारम् ) सबके ऊपर उपदेश करनेवाले ( त्वा ) आप जगदीश्वर वा समापति को ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं सो आप ( देवनिबः ) जो विद्वान् वा दिव्य गुणों की मित्रा करते उनकी ( नि, बह्य ) निरन्तर छिन्न-भिन्न करो । जिससे ( दुरेवा ) दुष्टाचरण करनेवाले ( उत्तरम् ) उसके उपरान्त ( सुम्नम् ) सुख को ( आ, उत्तमम् ) मत नष्ट करावें ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो अपना उपदेश करने और रक्षा करनेवाला परमात्मा वा आप्त विद्वान् को मानते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं । जो विद्वान् ईश्वर और वेद की निन्दा, अधिपत्य का आनन्द नष्ट करनेवाले हो उनकी सब ओर से विवृत्त करावें ॥ ८ ॥

स्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या दधीमहि ।

या नो दूरे तज्जिता या अरातयोऽभि सन्ति अमृतया ता अमृतसः ॥९॥

पदार्थ—( ब्रह्मण ) ब्रह्माण्ड वा राज्य की ( पते ) पालना करनेवाले निष्ठा ( स्पार्हा ) अधिकारों के योग्य ( वसुधा ) जो सुन्दर बढ़ावा देते उन ( त्वा ) तुम्हारे साथ ( वयम् ) हम ( मनुष्याः ) मनुष्य ( वसु ) निष्ठा वा धन ( दधीमहि ) दें ( नः ) हमारे ( दूरे ) दूर वेदों में ( आः ) जो ( पतिभ्यः ) विवृत्ती और ( आ ) जो ( अमृतसः ) अधिपत्य कर्मजाती निष्ठा ( अमृतसः ) देने की प्रीति ( सन्ति ) हैं ( ताः ) उनकी ( अभि, अमृतसः ) सब ओर से विनाशिए ॥ ९ ॥



**आचार्य**—यदि विद्वानों के उपदेश को न ग्रहण करें तो समुच्च दानवीर्य न हो, और अनेकमें से अर्थात् कर्म नहीं करते अथवा पुण्य और इभीजन है वे विद्वानों के समान पुण्यार्थ युक्त करते चाहिये ॥ १॥

**स्वयां वपुर्मुत्तमं धामहे वधो बृहस्पते पमिणा सस्मिना युजा ।**

**मा नो दुःशंसो अभिदिपुरीषत प्र सुसंसा मतिमिवापिमीमहि ॥१॥**

**पदार्थ**—हे ( बृहस्पते ) विद्वन् ( पमिणा ) परिपूर्ण ( सस्मिना ) युद्ध पवित्र पदार्थ ( युजा ) युक्त ( स्वयां ) सुन्दर माय कर्त्तमान ( वपुर् ) हम लोग ( अस्मिन् ) श्रेष्ठ ( वधः ) जीवन को ( धामहे ) धारण करें जिससे ( अभिदिपु ) सब ओर से कष्ट की इच्छा करनेवाला ( पुसंसा ) जिसकी दुष्ट कथावात प्रसिद्ध वह ओर ( न ) हम लोगों का ( मा, ईशत ) ईश्वर न हो और ( मतिमि ) प्रकाशों के साथ वर्त्तमान ( सुसंसा ) जिसकी सुन्दर स्तुति ऐसे हम लोग ( प्र, मतिमिमीमहि ) उत्तमता से करें, सर्व विषयों के पार पशु ॥ १० ॥

**आचार्य**—जो पूर्ण विद्यावाले योगी शुद्धात्मा जनो का सङ्ग करते हैं वे दीर्घजीवी होते हैं जो विद्वानों के सहचारी होते हैं उनके लिए दुःख देने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ १० ॥

**अनामुदो वृषभो अग्निस्तद्वं निष्टुता शत्रु पतनासु सासहिः ।**

**असि सस्य वृक्षयाः ब्रह्मणस्पत आस्य चिदमिता वीक्षुर्विणः ॥११॥**

**पदार्थ**—हे ( ब्रह्मणस्पते ) वेद के पालनेवाले ! आप जिससे ( अनामुदः ) अनामुद अर्थात् जो पीछे देते हैं वे जिनके नहीं विद्यमान वह ( वृषभः ) श्रेष्ठ जन ( अनामुदः ) सशस्त्र को ( अग्निः ) आग्नेय ( पुतनासु ) शरीर की सेनाओं में ( शत्रुः ) काटने, दुःख देनेवाले शत्रु को ( निष्टुता ) निरन्तर सन्ताप देने ( सस्यः ) निरन्तर लड़ने ( वृक्षयाः ) और वृक्ष को प्राप्त होनेवाले ( वीक्षुः ) सज्जनों में साधु ( वीक्षुः ) जिसको वन से बहुत हर्ष विद्यमान ( उपस्य ) तीव्र को ( असि ) ही ( वमिता ) वमन करनेवाले ( असि ) है उससे प्रशसनीय होने हैं ॥ ११ ॥

**आचार्य**—जो देने योग्य पदार्थ को शीघ्र देते, जाने योग्य स्थान को जाते, पाने योग्य पदार्थ को पाते और दण्ड देने योग्य को दण्ड देते हैं वे सत्य ग्रहण कर सकते हैं ॥ ११ ॥

अब राज विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**अद्वेधेन मनसा यो रिष्यति शासामुशो मन्यमानो जिघांसति ।**

**बृहस्पते मा वपुर्हस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेकस्य अर्षितः ॥१२॥**

**पदार्थ**—हे ( बृहस्पते ) बड़े राज्य के पालनेवाले ! ( यः ) जो ( शासाम् ) शासन करनेवालों को ( वपुः ) भयभूर ( सपुसलः ) अभिमान ( अद्वेधेन ) अछुट ( मनसा ) मन से ( रिष्यति ) हिसा करने को अपने से चाहता है वा ( जिघांसति ) साधारण मारने की इच्छा करता है ( तस्य ) उसके ( मन्युं ) क्रोध को ( अर्षितः ) वज्रवत्ता से सहते हुए ( दुरेकस्य ) दुःख से प्राप्त होने योग्य का ( वधः ) नाश ( मा, वपुर्हस्य ) मत नष्ट हो ( नः ) हमारा ( कर्म ) कर्म ( नि ) मत निरन्तर नष्ट हो ॥ १२ ॥

**आचार्य**—जो राज्यशासन करते हैं वे निष्ठुति हिमकों को वश करे यदि वश में न आये तो इनको बलात्कार करें जिससे न्याय का प्रमाण न हो ॥ १२ ॥

**कर्वु हव्यो नर्मसोपसधो गन्ता वाजैवु सन्तिता धनंवनम् ।**

**विष्वा इद्व्यो अभिदिस्वोऽ वधो बृहस्पतिर्विवर्हा रथौ इव ॥१३॥**

**पदार्थ**—जो ( हव्यः ) ग्रहण करने और ( नर्मसा ) सत्कार से ( उपसधः ) प्राप्त होने योग्य तथा ( गन्ता ) गमन करने ( सन्तिता ) विभाग करने ( बृहस्पतिः ) और पुण्यों की रक्षा करनेवाला ( अर्ष्यः ) स्वाधी ( भरेषु ) पुण्ड्रियों और ( वाजैषु ) संधियों में ( वपुर्हस्यम् ) धन-धन को बढ़ावा वा ( रथानि ) रथों के समान ( विष्वाः ) समस्त ( इत् ) उन्हीं विषयों को कि ( अभिदिस्वः ) जिनमें वपु की इच्छा करनेवाले विद्यमान तथा ( वधः ) संधियों को ( वि, वधः ) नहीं बढ़ाता है वह राज्य करने को योग्य होता है ॥ १३ ॥

**आचार्य**—इस मन्त्र में उपमाकाधार है । जो युवा, कर्म और स्वभावों से विजय को प्राप्त होते हुए विमानादि बानों के मुख्य शीघ्र ऐश्वर्य को प्राप्त होकर समस्त सत्कर्मों से विभाग कर अनादि पदार्थों को लेते हैं वे न्यायाधीश होने के योग्य हैं ॥ १३ ॥

**वेजिष्ठया स्वामी रक्तस्तप मे त्वां निवे दधिरे इक्षीर्यम् ।**

**आविस्वर्ह्यं प्रदस्य उक्त्यः बृहस्पते वि परिप्रायं अर्ष्य ॥१४॥**

**पदार्थ**—हे ( बृहस्पते ) बड़ों की पालना करनेवाले ! ( वे ) जो ( इक्षीर्यम् ) देना है पराक्रम जिसका ऐसे ( त्वा ) तुम्हको ( निवे ) निष्ठा के लिए ( दधिरे ) धारण करते उसे ( रक्तः ) रक्तों को जो ( स्वामी ) स्वामिनी है उसे ( वेजिष्ठया ) अग्नीय वेजिष्ठिकी से आप ( वपु ) समस्त विषयों ( उक्त्यः ) जो ( वि ) वापका ( उक्त्यः ) करने योग्य प्रस्ताव ( उक्त्यः ) ही ( तत् ) उसको ( आविस्वर्ह्यं ) प्रदत्त कीजिए ( अर्ष्यः ) और सब ओर से वाप जिससे निष्ठावान् जनको ( वि, अर्ष्य ) निष्ठावा के भाषिए ॥ १४ ॥

**आचार्य**—मनुष्यों को चाहिए कि मित्रों को सर्वथा निवार और स्तुति करनेवालों को बड़ा सत्य-विद्याओं की प्रकाश करें ॥ १४ ॥

अब विद्वान् विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**बृहस्पते अति यदयो अर्ह्यमहिमाति कतुपज्जनेषु ।**

**येदीद्व्यं कतुपज्जनेषु कतुपज्जनेषु तदस्मासु इविष्यं वेदि चित्रम् ॥१५॥**

**पदार्थ**—हे ( बृहस्पते ) सत्यावरण में प्रकट ( बृहस्पते ) बड़ों के पालने-वाले विद्वन् ! ( यत् ) जो ( अर्ह्यः ) ईश्वर ( अर्ह्यः ) मनुष्यों में ( अर्ह्यः ) योग्य व्यवहार से ( यत् ) प्रकाशमान ( कतुपज्जनेषु ) प्रकाशित प्रकाशित वा ( अर्ह्यः ) बल से ( यत् ) जो ( अर्ह्यः ) प्रकाशकर्ता ( अति, हिमाति ) अतीव प्रकाशित होना है ( तत् ) उम ( चित्रम् ) अद्भुत ( इविष्यं ) धन को ( अस्मासु ) हम लोगों में ( वेदि ) स्थापन कीजिए ॥ १५ ॥

**आचार्य**—मनुष्यों को चाहिए कि जो-जो ईश्वर ने वेद द्वारा मन्त्र का प्रकाश किया वह-वह सब प्रकाश करे और जो-जो स्वार्थ चाहे वह-वह सबके लिए चाहे ॥ १५ ॥

**मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि बृहस्पते निरामिणी रिषोऽवेषु जापुषु ।**

**आ देवानामोहि वि वयो बृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥१६॥**

**पदार्थ**—हे ( बृहस्पते ) जोर आदि के निवारनेवाले ! ( ये ) जो ( अभि-बृहः ) सब ओर से द्रोह करनेवाले ( रिषः ) शत्रुजन ( पदे ) पाते योग्य स्थान में ( निरामिणी ) निरपराध करनेवाले ( अर्ह्यः ) अनादि पदार्थों के निमित्त ( जापुषु ) सब ओर से काक्षा करें उन ( स्तेनेभ्यः ) शत्रु से ( नः ) हमको भय ( मा ) न हो । जो ( वयः ) बजने योग्य जन ( देवानाम् ) विद्वानों के बीच ( आ, ओहि ) वितर्कयुक्त के लिए ( बृदि ) मन में ( साम्नः ) सन्नि से ( विविषु ) जाने उनको ( परः ) अत्यन्त श्रेष्ठ तू ( न ) न प्राप्त हो ॥ १६ ॥

**आचार्य**—जो जोर द्रोह से पराये पदार्थों की चाहना करते हैं वे कुछ भी धर्म नहीं जानते हैं ॥ १६ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**विर्वेभ्यो हि स्वा सुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजन्तसाम्नः साम्नः कविः ।**

**स कृण्विष्टया ब्रह्मणस्पतिर्द्वेहो हन्ता मृद कृतस्य वर्त्तरि ॥१७॥**

**पदार्थ**—हे विद्वन् ! जो ( साम्नः, साम्नः ) सामवेद-सामवेदमात्र के ब्रौह ( कवि ) सर्वज्ञ ( त्वष्टा ) पदार्थों का निर्माण करनेवाला ( विर्वेभ्यः ) सन्ती ( सुवनेभ्यः ) लोकों से जिन ( स्वा ) आपको ( पर्यजन्तः ) सब प्रकार प्रकट करता है ( तः ) वह ( ब्रह्मणस्पतिः ) ब्रह्माण्ड की पालना करनेवाला है उस ( मृदः ) महान् ( कृतस्य ) सत्य कारण के ( वर्त्तरि ) धारण करनेवाले जगदीश्वर में स्थित ( कृण्विष्टया ) कृण को इकट्ठा करने और ( कृतस्यः ) कृण को प्राप्त होनेवाले आप ( बृहः ) द्रोह करनेवाले के ( हन्ता ) नाशक कीजिए ॥ १७ ॥

**आचार्य**—हे जीव ! जो सर्वज्ञ, सृष्टिकर्ता, सकल सुवनो का एक स्वामी और सबका धारण करनेवाला जगदीश्वर है उसकी आज्ञा में स्थित ब्रह्मादिकों को दूर-से-दूर करे ॥ १७ ॥

**तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रसुदसुजो यद्विः ।**

**इन्द्रेण युजा तमसा परीष्टं बृहस्पते निरपामीक्ष्यो अर्ष्यम् ॥१८॥**

**पदार्थ**—हे ( अर्ष्यः ) प्राणप्रिय ( बृहस्पते ) बड़ों की पालना करनेवाले ! ( तव ) आपकी ( श्रिये ) लक्ष्मी के लिए ( पर्वतः ) मेघ ( गवां ) सूर्यमण्डल की किरणों के ( यत् ) जो ( गोत्रम् ) कुल को ( वि, व्यजिहीत ) विशेषता से प्राप्त होता वा ( उदसुजः ) किसी पदार्थ का त्याग करना तो आप ( इन्द्रेण ) सूर्य ( युजा ) युक्त ( तमसा ) अन्धकार से ( परीष्टम् ) सब प्रकार उपा दृष्टा अग्नि जैसे हो वैसे ( अपाम् ) जलो के बीच ( ओक्षः ) कोमलपन से प्रसिद्ध कीजिए तथा ( अर्ष्यम् ) समुद्र को ( विः ) निरन्तर प्रकट कीजिए ॥ १८ ॥

**आचार्य**—जिस ईश्वर ने सूर्यादिक जगत् का निर्माण कर परस्पर सम्बन्ध किया उसको प्राणप्रिय जानो ॥ १८ ॥

**ब्रह्मणस्पते स्वमस्य यन्ता सुत्रस्य बोधि तनयश्च जिनः ।**

**विरां तज्जं यद्वन्ति देवा बृहदेम विद्वं सुवीराः ॥ १९ ॥**

**पदार्थ**—हे ( ब्रह्मणस्पते ) ब्रह्माण्ड की पालना करनेवाले ! ( त्वम् ) आप ( अस्व, सुत्रस्य ) जो यह सुन्दरता से कहा जाता इसके ( यन्ता ) नियन्ता होते हुए ( तनयः ) सन्तान के समान ( बोधि ) जानो ( च ) और इस ( विद्वम् ) सबको ( विद्वं ) प्रसन्न करो । तथा ( देवाः ) विद्वान् जन ( यत् ) जिस ( अस्वम् ) कल्याण करनेवाले की ( अर्ह्यः ) रक्षा करते हैं ( तत् ) उस ( बृहत् ) बहुत ( विद्वं ) संधान में ( सुवीराः ) अच्छे वीरोंवाले हम लोग ( वीर्य ) कहें ॥ १९ ॥

**आचार्य**—ईश्वर ने जो वसितव्य कहा है उसकी अच्छे प्रकार रक्षा कर मनुष्यों को बहुत सुख पाना चाहिए । जैसे ईश्वर ममस्त जगत् की नियमपूर्वक रक्षा करता है वैसे विद्वानों को भी सबकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १९ ॥

इस सूक्त में ईश्वरादि के सुक्तों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिकले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह वेदिकी सुक्त और अतीसर्वा वर्ण तथा छंदा अन्वयाय सम्यक्त युवा ॥

## अथ द्वितीयाष्टके सप्तमाध्यायरम्मः ॥

विश्वानि देव सवितरुदितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

सेमायमिति अनुविशतितमस्य षोडशर्षस्य सूक्तस्य गृत्समद ऋषिः ॥१—११॥

१३—१६ ब्रह्मणस्पतिः, १२ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रवज्र देवते ॥ १, ७, ६,

११ निष्पृजगती, १३ भुरिक् जगती, ४, ६, ८ जगती, १० स्वराद्

जगती छन्दः । निषाव स्वरः । २, ३ त्रिष्टुप्, ४, ५ स्वराद्

त्रिष्टुप्, १२, १६ निष्पृ त्रिष्टुप्; १५ भुरिक्

त्रिष्टुप् छन्दः । बंजतः स्वरः ॥

अथ द्वितीयाष्टके के सातवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में

विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को कहा है—

सेमायंविद्वि प्रमृतिं य ईश्विषेऽथा विधेम नव्या महा गिरा ।

यथा नो मीद्वान् स्तवते सखा तव

बृहस्पते सोषधः सोत नो मतिम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) अध्यापक, वेदरूप वाणी के शिक्षक विद्वन् ! ( य ) जो आप ( अथा ) उम ( नव्या ) नवीन ( महा, गिरा ) महती उपदेश रूप वाणी में ( इमाम् ) हम ( प्रमृतिम् ) धारण वा पाठ्य रूप क्रिया के करने को ( ईश्विषे ) समर्थ हो ( स ) मा आप इस उक्त क्रिया को ( अविद्वि ) प्राप्ति हाजिये ( यथा ) जैसे ( तव ) आप का ( मीद्वान् ) विद्या का प्रवक्तक ( सखा ) मित्र ( न ) हमारी ( स्तवते ) प्रशंसा करना और जैसे ( स ) यह आप ( न ) हमारे लिए ( मतिम् ) बुद्धि को ( उत ) भी ( सोषधः ) मित्र करने वैसे आपका आपके मित्र को हम लोग ( विधेम ) प्राप्त हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—उम मन्त्र में उपमानद्वारा है । जो लोग विद्या की उन्नति करना चाहे वे प्रथम वेदादि शास्त्रों को स्वयं पढ़के दूसरों का प्रयत्न व माध पढ़ावे और पढ़-पढ़ाके पदार्थविज्ञान में आरुढ़ बुद्धि को प्राप्त हो ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यो नन्तान्यनमन्यो जसोतादर्दमन्युना शम्बराणि वि ।

प्राच्यावयद्रूपता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशदमृमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥

पदार्थ—( य ) जो ( ब्रह्मणस्पति ) बड़ी पक्षा का राजा राजमेना का अध्यक्ष ( नन्तान्य ) नमन योग्य हो ( वि, अनमत् ) निरन्तर नये जैसे सूर्य ( अच्युता ) नाशरहित ( शम्बराणि ) मेघ सम्बन्धी बादलों को ( व्यवर्ध ) विशेष कर बार-बार विदीर्ण करना ( उत ) और ( पर्वतम् ) पर्वत को ( प्राच्यावयत् ) गिराना है वह व्रमे ( ओजसा ) बल में तथा ( मन्युना ) क्राध शत्रु को गिरावे वा विदीर्ण करे ( च ) और ( वसुमन्तम् ) उत्तम धन को पट्टवानेहारे देश का ( चि, आ, अविशत् ) अष्टै प्रकार विशेष कर प्राप्त हावे ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो राजा और राजजन विद्वान् सत्त्वर्मी लोगों का मन्कार करते और दुष्ट कर्मवालों को दण्ड देते हैं वे सूर्य के तुल्य पृथिवी पर सुशोभित होते हैं ॥ २ ॥

तद्देवानां देवताय कर्त्तव्यमभ्रान्तकहाब्रदन्त वीक्रिता ।

उद्रा आजदमिन्दुब्रह्मणा बलमगृह्णतमो व्यचक्षयस्त्वं ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( देवानाम् ) प्रकाशमान लोको में ( देवताय ) अत्यन्त प्रकाशयुक्त सूर्य के लिए ( तत्, कर्त्तव्यम् ) वह कर्त्तव्य कर्म है जिस यह सूर्य ( मा ) किरणों को ( उत, आजत् ) उच्छ्वेतना से फेंकता ( ब्रह्मणा ) बड़े बल से ( बलम् ) आवरणकर्ता मेघ को ( अभिनत् ) विदीर्ण करना और जो ( तमः ) अन्धकार ( अगृहत् ) प्रकाश का आवरण करना उस को जो विदीर्ण करता और ( एव ) अन्तरिक्षस्थ सब पदार्थों को ( व्यचक्षयत् ) विशेष कर दर्शाता है और जिस के प्रताप में उक्त सब वस्तु ( वृष्टि हा ) दृष्ट ( वीक्रिता ) प्रशस्त ( अवयन्त ) कोमल होते तथा ( अभ्रान्तम् ) विमुक्त होते हैं वैसे आप बर्ताव कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुक्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के तुल्य विद्या-प्रकाश कर्मवाले अविद्यारूप अन्धकार के निवारक प्रमादी दुष्टों को क्षिपिल करते हुए श्रेष्ठ विद्वत्ता को ब्रह्मण करते हैं वे जगत् के उपकारक होते हैं ॥ ३ ॥

अरमांस्यमवत ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातुष्टत् ।

तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दक्षो बहु साकं सिसिचुस्तसमुद्रिणम् ॥४॥

पदार्थ—जो विद्वान् ( ब्रह्मण ) बड़ों का ( पतिः ) रक्षक सज्जन जैसे सूर्य ( ओजसा ) बल के साथ ( यम् ) जिस ( अवतम् ) नीचे को गिरनेहारे ( मधुधारम् ) मधु रसों के धारक ( अरमांस्यम् ) मेघ के मुख्य भाग को ( अभि, अतुष्टत् ) सब ओर से काटता है ( तमेव ) उसी को ( विश्वे ) सब ( स्वर्दक्षः ) मुख प्राप्ति के हेतु शिक्षक लोग ( साकम् ) माध मिलके ( उद्रिणम् ) जलमुक्त ( उत्सम् ) रूप के तुल्य ( बहु ) अधिकतर ( पपिरे ) पिप और ( सिसिचुः ) गीचें वैसे अनुष्ठान करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुक्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य मेघ और रूप के तुल्य सब का शुभ शिक्षा से तुल्य करते और सब को एक मत करते हैं वे मिलकर सब की उन्नति कर सकते हैं ॥ ४ ॥

सना ता का विद्वुष्वना मवीत्वा माद्रिः शरद्भिदुरो वरन्त वः ।

अयतन्ता चरतो अन्यदन्त्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के किरण ( माद्रिः ) महीनों और ( शरद्भिः ) शरद् आदि ऋतुओं के विभाग से ( वा ) जो ( सना ) सनातन ( का, चित् ) कोई ( मवीत्वा ) होनेवाले ( भुषना ) लोक हैं ( ता ) उन को और ( दुर ) दूरों को ( वरन्त ) विमुक्त करते, प्रकाशित करते हैं तथा जो ( ब्रह्मणः, पति ) विद्या और धन का पालक पुरुष ( च ) तुम को ( वयुना ) विज्ञानयुक्त ( चकार ) करता है वह तुम को सेवने योग्य है । जो ( अयतन्ता ) प्रयत्न रहित, आलसी पढ़ने-पढ़ानेवाले ( अन्यदन्त्यत्, इत् ) अन्य-अन्य, विरुद्ध ही ( चरतः ) करते हैं उन का सत्कार कभी न करना चाहिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुक्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य महीनों और ऋतुओं को विभक्त कर भूत ब्रह्मों का यथावत्स्वरूप दिशाता है वैसे जो विद्वान् पृथिवी से लेके ईश्वर पर्यन्त पदार्थों को यथावत् शिक्षा में दिखाने के लोक में पूजनीय हों और जो अविद्यायुक्त आलसी लोग कण्ट आदि में दूषित, दुष्ट उपदेश करते वा निकम्मे बंटे रहते हैं वे किसी को कभी सेवने योग्य नहीं हैं ॥ ५ ॥

अभिनसन्तो अभि ये तमानुर्निधि पणीनां परमं गुहा हितम् ।

ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यान्ता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुगविशम् ॥६॥

पदार्थ—( ये ) जो ( अभिनसन्त ) सब ओर से जानते हुए ( विद्वांसः ) विद्वान् लोग ( तम् ) उम ( गुहा, हितम् ) बुद्धि में स्थित ( परम् ) उत्तम ( परीणात् ) व्यवहारवान् प्रशंसनीय मनुष्यों के ( निधिम् ) विद्यारूप कोश को ( अन्त्यान्तम् ) सब ओर से प्राप्त होते हैं ( ते ) वे औरों के ( अनुता ) मिथ्या-भाषणादि कर्मा को ( प्रतिचक्ष्य ) प्रत्यक्ष लक्षण कर ( पुनः, उ ) फिर भी ( आविष्टम् ) जिसमें आवेश करते उस ज्ञान को ( आयन् ) प्राप्त होते ( तम् ) उसका ( उदीयः ) उदय करे अर्थात् उपदेश करे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो यथार्थ विज्ञान को पाकर अधर्माचरण से पृथक् रहकर अर्थों को पापाचरण में पृथक् कर फिर-फिर धर्म, विद्या, शरीर, आत्मा की पुष्टि में प्रवेश करते वे अत्यन्त आनन्द को पाकर औरों को आनन्दित करने को समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

ऋतावानः प्रतिचक्ष्यान्ता पुनरात् आ तस्युः कवयो महस्पथः ।

ते बाहुभ्यां धमितमग्निमग्निं नकिः को अस्त्यरंणो जुहुहि तम् ॥७॥

पदार्थ—जो ( ऋतावानः ) सत्य आचरणों का सेवन करनेहारे ( कवयः ) पण्डित लोग ( महः ) बड़े धर्मयुक्त ( पथः ) मार्गों पर ( आ, तस्युः ) अश्व प्रकार स्थित होते ( ते ) वे ( अतः ) इस कारण से ( पुनः ) बार-बार ( अनुता ) अधर्मयुक्त व्यवहारों को ( प्रतिचक्ष्य ) खण्डित कर इन को ( आ, अतः ) सब प्रकार छोड़ते हैं । जो ( अरणः ) विज्ञानी ( बाहुभ्याम् ) हाथों से ( अग्निम् ) पत्थर पर ( धमितम् ) प्रक्षलित किये ( अग्निम् ) अग्नि को त्याग करता ( नकिः ) नहीं ( अस्ति ) अर्थात् ग्रहण करता है ( सः, हि ) वही ( तम् ) उस बोध को ग्रहण होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो अविद्या और अधर्माचरण का लक्षण कर श्रेष्ठ मार्ग का सेवन करने हैं वे हाथों से धूपने से काष्ठविषय अग्नि को उत्पन्न कर कायों को सिद्ध करते और अभीष्ट को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

ऋतज्येन सिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्रतदंशोति धन्वना ।

तस्य साधीरिषो याभिरस्यति तृचससो दृश्ये कर्णोद्यतयः ॥८॥

**पदार्थ—**(यव) वहाँ (बहुराजः) धन का (पतिः) स्वामी (भूतपतिः) हीरक-हीरक प्रत्यङ्गवाचाले (विशेषः) सीधकारी (सम्भारः) धनुष से जिस को (य, कश्चि) अच्छे प्रकार बाहता (सत्) उस को (अस्तीति) प्राप्त होता (सत्य) उसके (साधनीः) श्रेष्ठ (इष्ट) बाण होवे (यतिः) जिन से धनुषों को (अस्तीति) हटावे, दूर करे उन से (युधये) देवने अर्थात् जानने के लिए (कार्ययोग्यः) काम आदि कारणवाले (नृपसत्) धनुष्यों का देने वाले योग्य विषय है उन का वहाँ प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**जैसे कीर पुरुष धनुष आदि अस्त्र और आग्नेयादि अस्त्र से धनुषों को पराजित करते हैं वैसे धर्ममा शीघ्रो को जीत लेता है ॥ ८ ॥

किर राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**स सैन्यः स विनयः पुरोहितः स सुन्दरः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।**

**चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादिस्तुभ्यस्तपति तप्यतुर्हथा ॥९॥**

**पदार्थ—**(सः) वह (सैन्यः) सम्यक् नीतिवाला (सः) वह (विनयः) विविध प्रकार की नम्रतावाला (सः) वह (पुरोहितः) आगे जिस को विद्वान् लोग धारण करते (स) वह (सुन्दरः) अच्छे प्रकार प्रशंसित (चाक्ष्म) स्पष्टवक्ता (सः) वही (बहुराजः) धन का (पतिः) स्वामी (युध) निष्प्रयोजन दूसरों को पीडा देनेवाले दुष्टों को (तप्यतुः) दुःख देनेवाला विद्वान् वीर पुरुष (मती) विज्ञान से (यना) धनो और (यत्) जिस कारण (वाक्) अन्नादि सामग्रीयुक्त पदार्थों का (आत्) निरन्तर (अस्तीति) धारण-पोषण करता है इस से (युधि) युद्ध में (सुभ्यः) सूर्य के तुल्य (इत्) ही (तपति) प्रतापयुक्त होता है ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है। जो विनय आदि से युक्त प्रशंसित गुरुकर्मस्वभाववाले, दुष्टों के निर्दोष और सत्यता के प्रवर्तक हैं वे धर्म-युक्त व्यवहार से राज्य की रक्षा करने को समर्थ होते हैं ॥ ९ ॥

किर राजा और प्रजा क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**विश्वं प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविद्वान्नि राध्या ।**

**इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभयं भुञ्जते विशः ॥१०॥**

**पदार्थ—**(येन) जिसके आश्रय से (उभये) विद्वान्-अविद्वान् दोनों (जनाः) प्रसिद्ध पुरुष (विशः) धना को (भुञ्जते) प्राप्त होने वह (प्रथमम्) प्रख्यात (विश्व) व्यापक (प्रभु) प्रथम उपासना किया हुआ मित्रिकारी हाना है उसके (मेहनावतोः) प्रशस्त वर्षाओं के निमित्तक (वाजिनः) प्राप्त होने वा (वेन्यस्य) चाहने (बृहस्पते) सबके रक्षक सूर्य के तुल्य प्रकाशयुक्त परमेश्वर के (सातानि) विभाग कर देने और (राध्या) मुखों का मित्र करने योग्य (सुविद्वान्नि) सुन्दर विद्वानों के (इमा) ये निमित्त सब लोगों को ग्रहण करने योग्य है ॥१०॥

**भाषार्थ—**राजाजन और प्रजाजनो को योग्य है कि सर्वव्यापक शक्तिमान् विस्तीर्ण सुख देनेवाले ब्रह्म की उपासना कर सब धनुष्यादि प्राणिगो के सुखसाधक धनुष्यों को मयह करके राजप्रजा के सुखों को सिद्ध करे ॥१०॥

किर धनुष्यों को क्या कर्त्तव्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामुं रणः शर्वसा ववक्षिथ ।**

**स देवो देवान प्रति पमथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्भ्रमणस्पतिः ॥११॥**

**पदार्थ—**(य) जो (विश्वथा) सब (अवरे) कार्यरूप (वृजने) अनित्य जगत् में (रणः) रमण करनेहारा (विभुः) व्यापक (परिभुः) सब और प्रसिद्ध होनेवाला (बहुराजः, पतिः) ब्रह्माण्ड का रक्षक है (स, देवः) वह दिव्यस्वरूप ईश्वर (शर्वसा) सब से (महामुं, उ) व्रितकरूप महान् समार को और (देवान्) विद्वानों वा वसु आदि को (प्रति, पमथे) प्रीति के साथ प्रख्यात करता और (पृथु) विस्तीर्ण (ता) उन (विश्वेदु) समस्त जङ्गम प्राणियों को विस्तृत करता (इत्, उ) उनी को धुम लोग (ववक्षिथ) प्राप्त होने की इच्छा करने ॥११॥

**भाषार्थ—**हे धनुष्यो ! जो परमात्मा अगले पिछले कार्य कारणरूप जगत् में परिपूर्ण होके सबका विस्तार करना, सबके लिए सब सुखों के साधनों को देता वही सबको उपासना करने और मानने योग्य है ॥११॥

अब राजाप्रजा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन म भिनन्ति व्रतं वाम् ।**

**अच्छेन्द्राग्रवणस्पती इविर्नोऽभं युजैव वाजिना जिगातम् ॥१२॥**

**पदार्थ—**हे (मघवाना) प्रशस्त धनवाले (इन्द्राग्रवणस्पती) राज्य और धन के रक्षक लोगो जो (युवोः) तुम्हारे (आवः) प्राणो (अपश्चन) अविनाशी धर्म को (विश्वम्) सब जगत् को (भिनन्ति) नष्ट-भ्रष्ट करते (वाम्) तुम्हारे नियम को तोड़ते हैं उनको नष्ट कर (वाजिना) दो बैगवाले घोड़े (युजैव) जैसे संयुक्त हों जैसे (वः) हमारे (हविः) भोजन के योग्य (अन्नम्) अन्न को (जिगातम्) प्राप्त होओ ॥१२॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सुशिक्षित युक्त किये घोड़े रथ को पटुता कर धनुष्यों को पराजित कराते वैसे राजपुरुषों को प्राप्त हुए राज-

प्रजाजन सत्वाचरण के विनोदियों की निवृत्त कर प्राण के अभयरूप धन को तुम लोग देओ ॥१२॥

किर राजपुरुष क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**उताविष्टा अनु शृण्वन्ति वक्ष्यः सभेया विमो भरते मती धना ।**

**वाक्छेदा अनु वक्षा शृणमाददिः स इ वाजी संमिथे ब्रह्मणस्पतिः १३**

**पदार्थ—**जो (आशिष्ठा) अति शीघ्रगामी (बहुराजः) पटुवानेवाले घोड़ों के तुल्य (वाक्छेदाः) दृष्टांत से दृढ़ वचनकारी हैं उनको (अनु, शृण्वन्ति) अनुक्रम से सुनते हैं उनके साथ (समिथे) सभाम में (सभेयः) सभा में कुशल (विमो) बुद्धिमान् जन (मती) बुद्धिबल से (वक्षा) कामना करने योग्य सुन्दर (यना) धनो को (ह, अनु, भरते) ही अनुकूल धारण करता (उत) और (स) वह (वाजी) प्रशस्तजानी (बहुराजः, पतिः) राज्य के धन का रक्षक (आवाम्) शृण अर्थात् कर रूप धन का (आवदिः) ग्रहण करनेवाला हो ॥१३॥

**भाषार्थ—**वर्द्धि यह घोड़े का गोरु नाम है। जैसे अग्नि पटुवानेवाले होते हैं वैसे ही घोड़े भी होते हैं। राजपुरुष जिन दुष्टाचारियों को सुनें उनको वश में करके सबका प्रिय मित्र किया करें ॥१३॥

किर अध्यापक लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।**

**यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शर्वसासरत्पृथक् ॥१४॥**

**पदार्थ—**(यः) जो (महि) बड़े (कर्म) काम को (करिष्यतः) करनेवाले (बहुराजः, पतिः) धन के स्वामी के समीप में (यथावशम्) वश के अनुकूल विचारपूर्वक (सत्यः) श्रेष्ठ, अधम त्यागार्थ ही (मन्युः) क्रोध (अभवत्) होवे (सः) वह जैसे (दिवे) प्रकाश के लिए सूर्य (गाः) किरणों को (उत्, आजत्) ऊपर-नीचे पटुचाता है वैसे धर्म के प्रकाश के लिए होता है। जो (महीव) जैसे श्रेष्ठ माननीय (रीतिः) उत्तम रीति-नीति (शर्वसा) सब के साथ (पृथक्) अलग-अलग (असरत्) प्राप्त होवे उसको (य) भी (वि, अभजत्) वह उक्त क्रोध का विभाग करने वा विशेष कर सेवे ॥१४॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पुरुषार्थी अध्यापक लोग अच्छी शिक्षा को पाकर सत्य में प्रीति और असत्य पर क्रोध का धारण करते वे बड़ी सुशीलता को प्राप्त होके यथेष्ट कार्य को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

किर धनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।**

**वीरेषु वीरौ उप पृथ्वि नस्त्वं यतीक्षानो ब्रह्मणा वैषि मे हवम् ॥१५॥**

**पदार्थ—**हे (बहुराजः) धन के (पते) रक्षक (रथ्यः) रथ क्रिया में प्रवीण (विश्वहा) सबका जानने वा प्राप्त होनेवाले (रथ्यः) आप (बहुराजः) वेद में (मे) मेरे (यत्) जिस (हवम्) आह्वान बुलान को (वैषि) प्राप्त होते हो उस आह्वान से (नः) हमको (सुयमस्य) सुन्दर समय हो जिससे उस और (वयस्वतः) जिसके होने में अच्छा जीवन व्यतीत हो उस (रायः) धन के रक्षक (वीरेषु) वीर सिपाहियों में हम (वीरान्) वीर लोगों से (उप, पृथ्वि) समीप सम्बन्ध कीजिए जिससे हम लोग अभीष्ट कार्य सिद्ध करनेवाले (स्याम) हो ॥१५॥

**भाषार्थ—**जो लोग सुन्दर समयवाले हो वे बहुत काम जीवें, जो ब्रह्मचर्य का पालन करें वे आत्मा और शरीर से अच्छे वीर होते हैं ॥१५॥

**ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सुक्तस्य बोधि तनयं च जिन्य ।**

**विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्देव विदथे सुवीराः ॥१६॥ व० ३॥**

**पदार्थ—**हे (बहुराजः, पते) धन के पालक विद्वन् ! (त्वं) तू (अस्य) इस (सुक्तस्य) सूक्त अर्थात् अच्छे प्रकार कहे वाक्य के अर्थ को (बोधि) जान (तनयम्) औरस पुत्र वा विद्यार्थी जन को (जिन्य) मुखी कर (य) और राज्य का (यन्ता) नियमकर्ता हा जिससे (देवा) विद्वान् लोग (यत्) जिस (विश्वम्) जगत् की (अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) उसको बृहत् बड़ा (भद्रम्) कल्याणयुक्त (विदथे) जानने योग्य सप्रामादि व्यवहार से (सुवीराः) सुन्दर वीरोंवाले हम लोग (वयम्) उपदेश करे ॥१६॥

**भाषार्थ—**सब धनुष्यों को उचित है कि सुन्दर नियम से वेद के अर्थों को जान पूर्ण युवावस्था में स्वयंवर विवाह कर धर्म से सन्तानों की उत्पत्ति और रक्षा कर यथावत् ब्रह्मचर्य के साथ सुन्दर शिक्षा दे और विद्वान् करके सुख बढ़ावें ॥१६॥

इस सूक्त में विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सञ्ज्ञति है यह जानो ॥

यह श्रीबीलका सूक्त और तीसरा वर्ण समाप्त हुआ ॥



इज्जान इति पञ्चमस्य पञ्चमविंशतितमस्य सूक्तस्य गुत्समव श्रुतिः । बहुराजस्पति-  
वक्षता । १, २ जगती; ३ निचुजगती; ४, ५ विराट् जगती

छन्दः । निषादः स्वरः ॥



अब पाँच ऋचावाले पक्षीसब सूक्त का आरम्भ है उसके आदि में बिबुली का बरान करते हैं—

इन्धानो अग्निं वनवद्नुष्यतः कृतब्रह्मा शुशुवद्वातहृदयं त ।

अतनेन जातमति स प्र संसृते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

पदार्थ—जो ( कृतब्रह्मा ) धर्म को उत्पन्न करनेवाला ( इन्धान ) तेजस्वी ( वातहृदयः ) होम के योग्य पदार्थों का दाता ( ब्रह्मा ) धन का ( पति ) रक्षक स्वामी ( अतनेन ) उत्पन्न हुए जगत् के माथ ( जातम् ) उत्पन्न पदार्थ को ( अति, संसृते ) अत्यन्त भीष्म प्राप्त होता ( ययम् ) जिस जिस को ( युजम् ) कार्य्यों में युक्त ( कृणुते ) करता ( स, इत् ) वही ( वनवत् ) वन को जैसे वेने ( वनव्यतः ) अलाने, नष्ट करते हुए ( अग्निम् ) विद्युदग्नि को ( प्र, शुशुवत् ) अच्छी प्रकार जानता है ॥१॥

भाषार्थ—इसमें उपमासङ्कार है। जैसे किरण वायु के साथ चलती हैं वैसे ही विद्युदग्नि सब पदार्थों के साथ चलता है उसको मनुष्य जहाँ-जहाँ प्रयुक्त करे वहाँ-वहाँ बड़े काम को मिट्ट करता है ॥१॥

कौन मनुष्य विद्या वृद्धि कर सकता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वीरेभिर्वीरान्वनवद्नुष्यतो गोभी रयि पयध्वोर्धति रमना ।

तोक्ञ्च तस्य तनयश्च वर्धते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥

पदार्थ—जो ( ब्रह्मण, पति ) अन्न का रक्षक विद्वान् जन ( वनव्यत ) याचक मनुष्य के ( वीरेभिः ) वीर पुरुषों के माथ ( वीरान् ) शरीरगतबलयुक्त को और ( गोभिः ) इन्द्रियों से ( वनवत् ) वन जङ्गल में जैसे वेने ( रयिम् ) गोभी को ( पयध्वम् ) प्रख्यात प्रसिद्ध करता है ( तनया ) अन्न-करण स पदार्थ विज्ञान को ( वर्धते ) जानता है ( तस्य ) उसका ( तोक्ञ्च ) छोटा बालक ( च ) और पेशव्य ( च ) तथा ( तनयम् ) पीर आदि ( वर्धते ) वृद्धि को प्राप्त होता वह ( ययम् ) जिस-जिसको ( युजम् ) शुभगुण युक्त ( कृणुते ) करता है वह-वह अपन रक्षण में प्रयत्न होता है ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। जैसे घर की याचना करता हुआ पुरुष मन को युक्त करना वैसे पुत्रादि के पालन में चित्त देना है। जिस पदार्थ के माथ जिसमें योग की योग्यता होती उसको उसके साथ प्रतिदिन युक्त करना है वह बहुत उत्तम मनुष्यों को प्राप्त लोक विद्या की वृद्धि कर सकता है ॥२॥

सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवां ऋचायतो वृषेव वर्धिरभि वप्योजसा ।

अपेरिं प्रसितिर्नाद वसीवे ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

पदार्थ—जो ( शिमीवान् ) प्रशस्त कमयुक्त ( ब्रह्मण, पति ) वेद का रक्षक विद्वान् पुरुष ( क्षोदः ) जल का ( सिन्धुः ) समुद्र जैसे अपने मन लय करता ( वर्धिरम् ) वा माधारण बेलों का ( अभिः ) सम्मुख हाके जैसे ( वृषेव ) अति बलवान् बेल मारता वैसे ( ओजसा ) वा में ( ऋचायत ) मन्त्र धर्म के नाशक शत्रुओं का नाश करना, तस्य को ( वृष्टिः ) चाहना और ( अपेरिं ) अग्नि से जैसे ( प्रसितिः ) बन्धन ( वसति ) वस्तु का अथ ( न, अह ) नहीं रहना अर्थात् स्वाधीनता हानी है वैसे ( ययम् ) जिस-जिसको ( युजम् ) शुभगुणयुक्त ( कृणुते ) करता है वह उस-उसका सुखा करता है ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। जो मनुष्य पुरुषार्थों, समुद्र के तुल्य मन्त्री, धनाध्य, वृषभ के तुल्य बलवान्, अग्नि के तुल्य शत्रुओं के जलाने वाले, सत्य कामना युक्त होते हैं वे समस्त शिल्प विद्या को मिट्ट कर सकते हैं ॥ ३ ॥

अब कौन विजयी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तस्मां अर्धन्ति दिव्या अंसवतः स सत्त्वमिः प्रथमो गोषु गच्छति ।

अनिभृष्टविनिर्हन्त्योजसा ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥

पदार्थ—जो ( प्रथम ) मुख्य ( अनिभृष्टविनिः ) जिसकी सेना निरन्तर भँट नहीं होती वह ( ब्रह्मणः, पति ) ब्राह्मणादि वर्गाध्यवस्था का रक्षक ( सत्त्वमिः ) पदार्थों के साथ ( गोषु ) पृथिवी में ( गच्छति ) जाता है ( ओजसा ) बल पराक्रम से शत्रुओं को ( हन्ति ) मारता ( सः ) वह ( ययम् ) जिस जिस को ( युजम् ) कार्य में नियुक्त ( कृणुते ) करता ( तस्मै ) उसके लिए ( दिव्याः ) शुद्ध ( अंसवतः ) जो किसी व्यसन में आमत्त नहीं ऐसे कल्याणकारी वीर पुरुष ( अर्धन्ति ) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—वे ही लोग विजयी होते हैं जो सब बलों और साधन उपसाधनों से तथा विद्या से युक्त होने हैं ॥ ४ ॥

अब कौन मनुष्य कार्यों को सिद्ध करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तस्मा इदिरिं धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा र्मं दधिरि पुच्छणि ।

देवानां सुप्ते सुमगः स एधते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

पदार्थ—जो ( अच्छिद्राः ) वेद विद्या का ( पति ) रक्षक, प्रचारक विद्वान् मनुष्य ( देवानाम् ) विद्वानों के ( सुप्ते ) सुख में ( सुमगः ) सुन्दर ऐश्वर्यवाला

प्रफुल्लित होना हुआ ( ययम् ) जिस-जिसको ( युजम् ) शुभ कर्मयुक्त ( कृणुते ) करता है ( सः ) ( एधते ) वह उन्नति को प्राप्त होता ( तस्मै, इत् ) उसी के लिए ( दिव्ये ) सब ( सिन्धवः ) समुद्रादि जलाशय ( अच्छिद्राः ) क्षेप-मेष रहित ( पुच्छणि ) बहुत ( र्मं ) सुखदायी निवास स्थानों को ( दधिरि ) धारण करते तथा ( धुनयन्त ) सर्वत्र चलते हैं अर्थात् यामावि द्वारा सर्वत्र निवास पाता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग में प्रीति रखने, पदार्थों का समोपभोग करनेवाले रसायन विद्या में उद्योगी हों वे सब पदार्थों से बहुत कार्य मिट्ट कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का बरान होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त में कह अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह पक्षीसब सूक्त और बीचा बर्ष समाप्त हुआ ॥



अत्रुरिति वनवद्नुष्य वृद्धिवातितमस्य सूक्तस्य गुत्समव ऋचिः । ब्रह्मणस्पति-  
व्यवसा ॥ १, ३ जगती, २, ४ निष्पञ्जगती छन्दः । निवाहः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले छन्दोसब सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में

विद्वानों को क्या कर्त्तव्य है इस विषय को कहते हैं—

ऋजुरिच्छिं वनवद्नुष्यतो देवयसिददेवयन्तमभ्यसत् ।

सुप्रावीर्द्धनवत्पृत्सु दुष्टं यज्वेदयज्योर्वि मज्जाति मोजनम् ॥१॥

पदार्थ—जो ( यज्वा ) मिलनसार जन ( अभ्यसः ) विरोधी के ( इत् ) ही ( भोजनम् ) भोग्य पदार्थ को ( वि, मज्जाति ) पृथक् करता है वह ( इत् ) ही ( सुप्रावीः ) सुन्दर रक्षक हुआ ( पृत्सु ) सप्रायों में ( वनवत् ) वन के तुल्य ( दुष्टम् ) दुष्ट में उल्लेखन करने योग्य शत्रुबल को छिन्न-भिन्न करता है जो ( देवयन् ) अपने को विद्वान् मानता हुआ ( अदेवयन्तम् ) मूर्ख का मा आचरण करने हुए को ( इत् ) ही ( अभि, असत् ) मन्मुख प्राप्ति हो वह ( वनवत् ) किरणों के तुल्य ( शस ) स्तुति करने योग्य ( वनव्यतः ) हिमा करनेवाले से ( इत् ) ही ( ऋजु ) सरल, कोमल स्वभाव होते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पण्डिताई को चाहते, मूर्खता को छोड़ने और शत्रुओं को जीतते हुए भाग्य पदार्थों का विशेष कर लेवन करते हैं वे दुष्टों को छाड़ देने हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।

हविष्कृणुष्व सुमगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृषीमहे ॥२॥

पदार्थ—हे ( वीर ) शुभगुणों में व्याप्त होनेवाले विद्यार्थी जन ! तू ( मनायन् ) अपने को मनन का आचरण करते हुए ( ब्रह्मण ) वेदादि शास्त्रों की ( पते ) पालना करनेवाला ( मनायन् ) अपने का मनन, विचार का आचरण करनेवाले जन विद्याओं को ( प्र, विहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो वर्म का ( वृत्रतूर्ये ) सङ्ग कर ( मनः ) मन को ( भद्रम् ) कल्याणकारी ( कृणुष्व ) कर ( सुमगः ) सुन्दर ऐश्वर्यवाला हुआ ( वृत्रतूर्ये ) शत्रुओं का जहाँ तब होना उस संग्राम में ( हविः ) दान का ( कृणुष्व ) कर ( यथा ) जैसे तू ( अससि ) हो जैसे हम लोग ( अकः ) रक्षा को ( आ, वृषीमहे ) अच्छे प्रकार स्वीकार करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। जो मनुष्य अपने मनों को अति कल्याणकारी मार्ग में प्रवृत्त कर सब कार्यों को मिट्ट करते हैं वे कृष्णकृत्य होते हैं ॥ २ ॥

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वार्ज भरते धना वृभिः ।

देवानां यः पितरमाविवांसति श्रद्धायमा हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्याज्जन ! जैसे ( सः ) वह ( जनेन ) साधारण मनुष्य के ( सा ) वह ( विशा ) प्रजा के ( सः ) वह ( जन्मना ) जन्म के और ( सः ) वह ( पुत्रैः ) सन्तानों के साथ ( वृत्रतूर्ये ) विज्ञान को तथा ( वृभिः ) अधिकारी मनुष्यों के माथ ( धना ) धनों को ( भरते ) धारण करता ( यः ) जो ( श्रद्धायमाः ) मन में श्रद्धा रखनेवाला ( हविषा ) उत्तम व्यवहार ग्रहण के साथ ( देवानाम् ) विद्वानों के सम्मुखी ( ब्रह्मणः ) वेदों के ( पतिम् ) याचक अर्थात् ( पितरम् ) पिता वा अध्यापक का ( आविवांसति ) अच्छे प्रकार सेवन करता ( इत् ) वही शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुआ सुखी होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य प्रीतिपूर्वक विद्वानों के अध्यापक और उपदेशक विद्वान् का सेवन करते हैं वे सर्वत्र सब पदार्थों से निष्पन्न हुए आनन्द को भोगते हैं ॥ ३ ॥

यो अस्मै हव्यैर्द्धनवद्विरविधत्तं तं माया जयति ब्रह्मणस्पतिः ।

उरुव्यतीमहंसो रक्षती रिचिः होमिन्देव्या उरुचक्षिरजुसः ॥४॥

पदार्थ—जो ( उरुचक्षिः ) बहुत कर्म करता ( उरुव्यतः ) आश्चर्यपूर्ण गुणकर्मस्वभाववाला ( ब्रह्मणः, पतिः ) धन-कोष का रक्षक ( अस्मै ) उस विद्वान्

के लिए (अर्थः) बहुत बड़ा विद्यापीठ (अर्थः) वेले योग्य वस्तुओं से (अर्थः) सुख कायस्थानक प्रदायक बनाता (अर्थः) उसको (अर्थः) प्राचीन विद्यापीठ (अर्थः) अर्थः प्रकार प्राप्त होता (अर्थः) पाप से (अर्थः) मन्त्रा (अर्थः) हिंसकों को मारके (अर्थः) इस विद्यापीठ को (अर्थः) पापा-मन्त्रों से (अर्थः) पृथक् रखता वह (अर्थः) सब ओर से सुख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे वृत्त आदि पुष्ट और सुपुष्पित वृत्तों के होम से वायु और वृष्टिजन शुद्ध होते वही से प्राचीन को पृथक् कर सबको सुखी करते हैं वैसे उप-देशक लोग अर्थ के निवेद्यपूर्वक धर्म के ग्रहण से आत्माओं को शुद्ध कर अविद्यादि दोषों को दूर करते हैं वे वृत्तवृत्त होते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संप्रति जाननी चाहिए ।

यह अर्थीसर्वां सूक्त और वाचकां वर्ग सत्पाक हुआ ॥

॥

इमा इति सप्तवर्षस्य सप्तविकसितस्य पुनस्तस्य कुर्मो मारुतमयो पुनस्तस्य वा ऋषिः १ आदित्यो देवता २, ३, ४, २३—२४ निवृत्तिवृत्तम्,

२, ४, ५, ६, १२, १७ विवृत्तम्, ११, १६ विराट् विवृत्तम् छन्दः ।

वैयस्य स्वरः १ ७ मुक्तिः पञ्चमः, २, १० स्वरः

पञ्चमः स्वरः १ पञ्चमः स्वरः ॥

अब सप्तवर्षस्य पुनस्तस्य का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजपुत्र के होते हैं इस विषय को कहते हैं—

इमा गिर आदित्येय्यो वृत्तश्चः सनाशजस्यो जुह्वा जुहोमि ।

शृणोतु मित्रो अर्यमा मर्गो नस्तुविजातो वरुणा दक्षो अंशः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं (आदित्येय्यः) गङ्गा के तुल्य (राजस्यः) राजपुत्रों के लिए जिन (इमा) इन प्रत्यक्ष (वृत्तश्चः) वृत्त को शुद्ध करनेवाली (गिरः) शुद्ध की हुई मत्स्यवाणियों का (जुह्वा) जिह्वा रूप साधन से (जुहोमि) होम करता अर्थात् निवेदन करता हूँ उन (न) हमारी वाणियों को यह (मित्रः) मित्रवृद्धि (अर्यः) सेवने योग्य (वृत्तश्चः) वृत्तान्त्रि गुणों से प्रसिद्ध (वरुणः) अष्ट (दक्षः) धनुष (अंशः) दुष्टों के सम्यक् विनाशक (अर्यमा) न्यायाधीश आप (सनात्) सदैव (शृणोतु) सुनिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमासङ्कार है । जो सूर्य के तुल्य तेजस्वी राजा लोग और उनके सभासद् प्रजापतियों की सुख-दुःख मुक्त निवेदन की वाणियों को सुनके न्याय करने के राज्य बढ़ाने को समर्थ होते हैं ॥ १ ॥

अब पढ़ाने-पढ़ने वालों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

इमं स्तोमं सक्तवो मे अथ मित्रो अर्यमा वरुणो जुपन्त ।

आदित्यासः शुचयो धारपुता जहजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥२॥

पदार्थ—(सक्तवः) समान बुद्धिवाले (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायाधीश और (वरुणः) सब से उत्तम (शुचयः) सूर्य के तुल्य पवित्रकारक (धारपुता) पवित्र वाणी से युक्त (जहजिना) वर्जनीय पाप से रहित (अनवद्या) प्रशंसा को प्राप्त (अरिष्टाः) अहिमनीय वा किसी को दुःख न देनेवाले (आदित्यासः) पूर्ण विद्यायुक्त (अथ) आज (मे) मेरे (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तुति को (जुपन्त) सेवने करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—सब विद्याप्रिय मनुष्यों को चाहिए कि पूर्ण विद्यावालों को अपने पढ़े की परीक्षा के अपनी विद्या को निविष्ट, निष्क्रम करें और परीक्षक लोग भी पक्षपात को छोड़के परीक्षा करें क्योंकि ऐसे किये बिना यथावत् विद्या नहीं हो सकती है ॥ २ ॥

त आदित्यासः उरवो गभीरा अदन्वासो विपन्तो भूर्यक्षाः ।

अन्तःपश्यन्ति वृक्षिनीत साधु सर्वे राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥३॥

पदार्थ—जो (गभीराः) गम्भीर स्वभावयुक्त (उरवः) तीव्रबुद्धिवाले (अदन्वासाः) अहिमनीय (भूर्यक्षाः) बहुत प्रकार से देखने, जाननेवाले (आदित्यासः) अदन्वासी अर्थ के अद्वयार्थ को लेके पूर्ण विद्यावाले विद्वान् हैं (ते) वे (परमा) उत्तम कर्मों का आचरण करते जो (वृक्षिनी) प्राप्त करते हुए (विपन्ताः) दम्भ की दृष्टि करनेवाले हैं उनको (चिन्तु) ही (अन्तः) अन्तःकरण में (चिन्तु) निवृत्ति के (वृक्षिनी) वेद लेते हैं अर्थात् उनसे मिलते नहीं और जो (राजभ्यः) राजपुत्रों के लिए (सर्वम्) सब (साधु) अष्ट काम करते हैं वे परीक्षा कर सकते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—परीक्षा करनेवाले जन अष्ट और पुष्ट पुत्रों की उत्तम प्रकार परीक्षा करते, उत्तम स्वभाववालों के सत्कार और कुत्सित अस्त्रिवालों के अपवाद को करके विद्या की उत्पत्ति निरन्तर करें ॥ ३ ॥

धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विरवस्य सुवनस्य गोपाः ।

दीर्घाधिप्यो रत्नमाणा असुर्यस्तुतवानवर्धमाना ऋषामि ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो (धारयन्तः) धारण करते हुए (विरवस्य) सब (सुवनस्य) निवास के आधार स्थावर और प्राणिमान जङ्गम जगत् के (गोपाः) रक्षक (दीर्घाधिप्यः) बड़ी बुद्धिवाले (असुर्यस्तुतः) सुखों के बन की (रत्नमाणाः) रत्ना करते हुए (वृक्षिनीतः) सत्य के सेवी (वृक्षिनीतः) दूसरों को देने योग्य विद्याओं को (वृक्षिनीतः) बढ़ाते हुए (आदित्यासः) पूर्ण विद्यावाले (देवाः) सूर्यादि के तुल्य तेजस्वी विद्वान् लोग बुद्धि से भीतर देखते हैं वे अच्चापक होने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में 'अन्तः, पश्यन्ति' इन दो पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है । यदि विद्वान् पढ़नेवाले विद्याधियों की विद्या न दें तो वे ऋषी हो जायें वही ऋषि चुकाना है जो स्वयं पढ़कर दूसरों को पढ़ाना चाहिए ॥ ४ ॥

विद्यामादित्या अवलो को अस्य यदर्थमन्मिज यथा विन्मयोऽसु ।

युष्माकं मित्रावरुणा यणीतौ परि श्रजेव दृष्टितानि वृक्ष्यात् ॥५॥६॥

पदार्थ—हे (आदित्याः) सूर्य के तुल्य विद्या के प्रकाशक लोगो तथा हे (अवलो) अष्ट मनुष्यों का सत्कार करनेवाले सज्जन ! (यत्) जो (अर्थ) अर्थ होने में (यः) आपको (अस्य) इस (अवलो) पालन के निमित्त (चिन्तु) जोड़ा गी (यणीतौ) सुखदायी वचन हो उसको मैं (अथ, विद्याम्) प्राप्त होऊँ वा जानूँ तथा हे (मित्रावरुणा) प्राणापान के तुल्य सुखदायी विद्वानो ! (युष्माकम्) तुम्हारी (यणीतौ) उत्तम नीति में (श्रजेव) पृथिवी के गङ्गे के तुल्य (दृष्टितानि) हुआ देनेवाले पापों को (परि, वृक्ष्यात्) परिहाराय कर्क ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे विद्वान् क्लेश सब प्राणियों के अर्थ का विनाश कर सुख पहुँचाने पापों को निवृत्त करते हैं वैसे निरन्तर करें ॥ ५ ॥

किर विद्वानो के सङ्ग में प्रीति रखनेवाले मनुष्य लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सुगो हि नो अर्थमन्मिज यथा अतुसरो वरुण साधुरस्ति ।

तेनादित्या अधि बोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥६॥

पदार्थ—हे (आदित्याः) विद्वान् लोगो ! हे (अवलो) अष्ट सत्कारयुक्त ! हे (मित्र) मित्र ! हे (वरुण) प्रतिष्ठित सज्जन पुरुष ! जो (यः) तुम लोगों का (अतुसरो) कष्टकाय रहित (सुगः) जिसमें निर्विघ्न चल सकें (साधुः) जिसमें धर्म को सिद्ध करते ऐसा (यथाः) मार्ग (अस्ति) है (तेन, हि) उसी मार्ग से चलने के लिए (यः) हमको (अधि, बोचता) अधिक कर उपदेश करो और जो यह (दुष्परिहन्तु) बड़ी कठिनाता से दूरे-दूरे ऐसे विद्याभ्यासादि के लिए बना हुआ (यम) घर है वह (यः) हमारे लिए (वरुणत) देओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि धर्मात्मा विद्वानों के स्वभाव को ग्रहण कर वेदोंक सत्य मार्ग में चलें जिससे मत्स्यशास्त्र के पढ़ने-पढ़ाने की बुद्धि होने वही कर्म मत्स्य सेवने योग्य है ॥ ६ ॥

अब न्यायाधीश का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

पिपर्थ नो अदिती राजपुत्राति देवास्यर्धमा सुगेभिः ।

बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥७॥

पदार्थ—जो (राजपुत्रा) जिसका पुत्र राजा हो ऐसी (अदितीः) माता के तुल्य सुख देनेवाली राजी और जो (अवलो) विद्वानों से प्रीति रखनेवाला राजा (सुगेभिः) सुगम मार्गों से (देवास्य, अति) वेद, इषों को अच्छे प्रकार सुझाके (यः) हमारा (पिपर्थ) पालन करे । (मित्रस्य) मित्र तथा (वरुणस्य) प्रशंसायुक्त पुरुष के (बृहत्) बड़े ऐश्वर्यवाले (शर्म) घर की रक्षा करे उस राजा-राजी के सङ्ग सम्बन्ध से हम लोग (अरिष्टाः) किसी से न मारदे बोझ (पुरुवीराः) करीर, आराम के वत से युक्त बहुत पुत्र, भुव्यादि जिनके हो ऐसे (यः, स्याम) आपके निकट हों ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे न्यायाधीश, राजा न्यायघर में बैठके पुरुषों को दण्ड देने वैसे न्यायाधीश राजी स्त्रियों का न्याय करे, उस न्यायघर में रायदेव और प्रीति-अप्रीति छोड़के केवल न्याय ही किया करे अन्य कुछ न करे ॥ ७ ॥

किर मनुष्य कितने पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तिष्ठो भूमीधारयन् श्रीक्षत यून्मीणि वृता विदधे अन्तरैषात् ।

कृतेनादित्या मदि वो महित्वं तदर्थमन् वरुण मित्र चार ॥८॥

पदार्थ—हे (अर्थमन्) न्याय करनेवाले (वरुण) शान्तप्रिय (मित्र) मित्रजन ! जैसे (अन्तरैषात्) सत्यस्वरूप परमेश्वर से धारण किये (आदित्याः) सूर्यलोक (मित्रः) तीन प्रकार की (यून्मीणि) सुमियों को (वृता) और (श्रीक्षत) तीन प्रकार के (श्रीक्षत) प्रकारों को (धारयन्) धारण करते हैं वैसे आप (मित्र) आपने योग्य व्यवहार में (अन्तः) आदित्य, आत्मा और अन्त से उत्पन्न हुए अर्थयुक्त (श्रीक्षत) तीन प्रकार के श्रुतों को धारण करो-कराओ । जो (वृतात्) इन सूर्य लोकों के (अन्तः) मध्य में (अदित्याः) महत्त्व (वारुण) सुन्दर स्वरूप वा (मित्र) बड़ा कर्म है (यत्) वह (यः) आप लोगों का होवे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमासङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे भूमि और सूर्यादि लोक ईश्वर के नियम से बंधे हुए सत्पात अपनी-अपनी क्रिया करते हैं

बैते मनुष्यों को भी जानना और बताना चाहिए। इस जगत् में उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की भूमि और अग्नि है तथा सूर्यलोक भूमिलोक से बड़े-बड़े हैं ॥ ८ ॥

**श्री रौचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारयताः ।**

**अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥९॥**

पदार्थ—जो (हिरण्यया) तेजस्वी (धारयताः) विद्या और उत्तम शिक्षा से जिनकी वाणी पवित्र हुई वे (शुचयः) शुद्ध, पवित्र (उरुशंसाः) बहुत प्रशंसावाले (अस्वप्नज) अविद्यारूप निद्रा से रहित विद्या के व्यवहार में जागते हुए (अनिमिषाः) आलस्य रहित और (अदब्धाः) न हिंसा करने योग्य अर्थात् रक्षणीय विद्वान् लोग (ऋजवे) सरल स्वभाव (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (श्री) तीन प्रकार के (दिव्या) शुद्ध, दिव्य (रौचना) रुचि योग्य ज्ञान का पदार्थ को (धारयन्त) धारण करते हैं वे जगत् के कल्याण करनेवाले हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य जीव, प्रकृति और परमेश्वर की तीन प्रकार की विद्या को धारण कर दूसरे को देने सबको अविद्यारूप निद्रा से उठाके विद्या में जगाते हैं वे मनुष्यों के मङ्गल करनेवाले होते हैं ॥ ९ ॥

अब मनुष्य कैसे दीर्घ आयुवाले हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**एवं विन्धेयां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।**

**शतं नौ रास्व शरदौ विचक्षेऽस्यामायूषि सुधितानि पूर्वा ॥१०॥७॥**

पदार्थ—हे (वरुण) अतिश्रेष्ठ (असुर) मरुपान में सर्वथा रहित विद्वान् पुरुष ! जो (स्व) आप (विचक्षेवाय) सब मनुष्यादि जगत् के (राजा) राजा (असि) हो (च) और (ये) जो (देवाः) विद्वान् सभामद् (च) और (ये) जो (मर्ता) साधारण मनुष्य हैं उनको हमारे (विचक्षे) विविध प्रकार के देखने को (शतम्) सौ (शरदौ) वर्ष (न) हमको (रास्व) दीजिए जिससे हम लोग (पूर्वा) पहली (सुधितानि) सुन्दर प्रकार धारण की हुई अवस्थाओं को (अव्याय) भागे, प्राप्त हों ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का मेवन करके अति विषयासक्ति का छाड़ देते हैं वे सौ वर्ष में न्यून आयु को नहीं भोगते। इस ब्रह्मचर्य सबन के बिना मनुष्य कदापि दीर्घ अवस्थावाले नहीं हो सकते ॥ १० ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।**

**पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरस्याम् ॥११॥**

पदार्थ—जो (आदित्याः) सूर्यलोक (न) नहीं (दक्षिणा) दक्षिण (न) न (सव्या) उत्तर (न) न (प्राचीनम्) पूर्व (उत) और (न) न (पश्चा) पश्चिम दिशा में भ्रमत है (चिक्ते) और जिनके आधार में (वसव) पृथिवी आदि वसु (चिक्ते) भी कमन है जिनका (पाक्या) बुद्धिमान् (धीर्या) और विद्वानो में श्रेष्ठजन (चिकिते) विशेषकर जानता है उनका आश्रयकर (युष्मानीत) तुम लोगों से प्राप्त हुआ मैं (अभयम्) भयरहित (ज्योति) प्रकाशरूप ज्ञान को (अव्याय) प्राप्त हों ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य सब दिशाओं में नहीं भ्रमते जिनके आधार से पृथिवी आदि लोक भ्रमते हैं उनके विज्ञानपूर्वक परमात्मा को जानके अभयरूप पद को प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

फिर कौन प्रशस्त हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यो राजभ्य ऋतुनिभ्यो ददाश यं वर्द्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।**

**स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुधावा विवथेषु प्रशस्तः ॥१२॥**

पदार्थ—(यः) जो राजा (राजभ्य) न्यायप्रकाशक सभामद् राजपुरुषों (च) और (ऋतुनिभ्यः) मरु न्याय करनेवाली राणियों के लिए उपदेश (ददाश) देता है (यम्) जिसको (नित्या) सनातन नीति तथा (पुष्टयः) शरीर, आत्मा के बल को (वर्द्धयन्ति) बढ़ाते हैं (स) वह (रेवाय) प्रशस्त ऐश्वर्यवाला (वसुधावा) धनो का दाता (प्रथमः) मुख्य कुलीन (प्रशस्तः) प्रशंसा को प्राप्त (विवथेषु) जानने योग्य संग्रामादि व्यवहारों में (रथेन) रथ में विजय को (याति) प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष और जो स्त्री पूर्ण विद्यावाले हों वे न्यायाधीश होकर पुरुष और स्त्रियों की उन्नति करें वे सब प्रशंसा के योग्य विजय करनेवाले जानने चाहिए ॥ १२ ॥

फिर कौन राजा हो इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**शुचिरपः सुयवसा अदब्ध उप शेति वृद्धवयाः सुवीरः ।**

**नकिष्टं धनन्त्यन्तितो न दुराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३॥**

पदार्थ—(यः) जो (शुचि) पवित्र (अदब्धः) हिंसा अर्थात् किसी से दुःख को न प्राप्त हुआ राजा (सुयवसा) जिनसे अच्छे जो आदि अन्न उत्पन्न हो उन (अपः) जलो के (उप, शेति) निकट घमसा है जो (वृद्धवयाः) बड़े

जीवनवाला (सुवीरः) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (आदित्यानाम्) पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्यावाले पुरुषों की (प्रणीतौ) उत्तम नीति में वर्तमान (भवति) होता है (तव) उसको (नकिः) नहीं कोई (अन्तितः) समीप से (न) न (दुराद्य) दूर से कोई (धनितः) मार सकते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो पवित्र आचरणवाला हिंसादि दोषों से रहित पूर्ण सामग्रीवाला दीर्घजीवी विद्वानो की रक्षा में मदा रहता उसका समीपस्थ और दूरस्थ शत्रु लोग पराजय कदापि नहीं कर सकते ॥ १३ ॥

**अदिते मित्र वरुणोत सूक्ष्म यदौ वयं चक्रुमा कञ्चिद्वागः ।**

**उर्वस्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नौ दीर्घा अभि नशन्तमिन्नाः ॥१४॥**

पदार्थ—हे (अदिते) अखण्डितस्वरूप और विज्ञानवाली न्यायकर्त्री रात्री तथा हे (इन्द्र) परमेश्वरयुक्त (मित्र) सबके सखा (उत) और (वरुण) सबसे उत्तम राजन् ! आप हमको (सूक्ष्म) सुखी करो (यत्) जो (वः) तुम्हारा (कञ्चित्) कुछ (उक्) बड़ा (वागः) अपराध (वयम्) हम (चक्रुम) करे उसको क्षमा करो जिससे (अभयम्) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाशयुक्त दिन को (अव्यायम्) प्राप्त होऊँ और (न) हमारी (दीर्घाः) बड़ी (तमिन्नाः) रात्रि (मा) न (अभि, नशत्) कटें अर्थात् रात्रि को सुखपूर्वक निर्भय मोवें ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जिस देश का नगर में विदुषी स्त्री स्त्रियों का न्याय करनेवाली और पुरुषों का न्याय करनेवाला विद्वान् पुरुष हो उस देश का नगर में दिन-रात्रि निर्भय होत और विशेष कर चोर आदि के भय से रहित सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत होती है ॥ १४ ॥

**उभे अस्मै पीपयतः समीची विवो वृष्टि सुभगो नाम पुष्यन् ।**

**उभा सयांवाजयन्त्याति पृस्तुभावपौ भवतः साधु अस्मै ॥१५॥**

पदार्थ—जैसे (समीची) जो दीप्ति को सम्यक् प्राप्त होती वह स्त्री और (सुभग) ऐश्वर्यवाला राजा (विवा) विव्य शुद्ध आकाश से (वृष्टिम्) यज्ञादि द्वारा वर्षा कराने (नाम) जल को (पुष्यन्) पुष्ट करने हुए जैसे (अस्मै) इस राज्य के लिए (उभे) दोनों राजा-राज्ञी (पीपयतः) उन्नति करते हैं (उभा) दोनों (सयौ) निवास करते हुए (अवौ) राज्य को समृद्ध करनेवाले (अस्मै) इस राज्य के लिए (साधु) शुभ चरित्र में स्थित (भवतः) होवें वे (पुस्तु) सप्राप्तों में विजय करनेवाले होवें उन दोनों का सङ्गी (मा, अवत्) विजय करता हुआ सुख को (याति) प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुपनापमालङ्कार है। जो स्त्री-पुरुष सूर्यदीप्ति जगत् को जैसे जैसे सब राज्य को पुष्ट करे और सुन्दर चरित्रवाला हो वे न्यायाधीश-पन को प्राप्त होत हैं ॥ १५ ॥

**या वी माया अभिद्रुहं यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।**

**अन्धीव तां अति येष रथेनारिष्टा उगवा शर्मन्त्याम् ॥१६॥**

पदार्थ—हे (यजत्रा) सत्सङ्ग करने के स्वभाववाले (आदित्या) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशमान विद्वानो ! (याः) जो (वः) आप लोगों की (विचृत्ताः) विस्तृत (अरिष्टा) किसी से खण्डित न होने योग्य (मायाः) बुद्धियाँ (अभिद्रुहं) सब ओर स द्रोह करनेवाले (रिपवे) शत्रु के लिए (पाशाः) फासी के तुल्य बाँधनेवाली होती हैं (ताम्) उन तुम लोगों के (अति) निकट प्राप्त होने का मैं (अन्धीव) घोड़ी के तुल्य (मा, येवम्) प्रयत्न करूँ और हम लोग (रथेन) रथ के साधन रथ में (उरौ) बड़े (शर्मन्) घन में सुखी (स्याम्) होवें ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पण्डित लोग द्रोह को छोड़के जिनके कोई शत्रु नहीं ऐसे हो वे दुष्टों को पाशों में बाँधें और उनकी रक्षा करके सब सुखी हों ॥ १६ ॥

**माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाज्ञ आ विदं शुनमापेः ।**

**मा रायो राजन्सुयमाववं स्थां बुद्धदेम विवथेषु सुवीराः ॥१७॥८॥**

पदार्थ—हे (वरुण) श्रेष्ठ सज्जन (राजन्) मरु के प्रकाश करनेवाले राजन् ! (अहम्) मैं (आपेः) प्राप्त होनेवाले (भूरिदाज्ञः) बहुत धन देनेवाले (प्रियस्य) कामना के योग्य (मघोनः) प्रशस्त धनवाले पुरुष की (शुनम्) बुद्धि को (मा, आ, विवम्) न प्राप्त होऊँ। किन्तु (सुयमात्) सुन्दर नियम कराने (राय) धन से (मा, अब, स्याम्) न अवस्थित होऊँ और उसकी प्राप्ति का यत्न अवश्य किया करूँ और अन्यथा स्वर्ग न करूँ ऐसा (विवथे) विज्ञान के व्यवहार में (सुवीरा) सुन्दर वीरवाले हुए हम लोग (बुद्ध) बड़ा शम्भीर (ववेम) उपदेश करें ॥ १७ ॥

भाषार्थ—धनाढ्य लोगों को चाहिए कि राजपुरुषों के साथ विरोध कदापि न करे और न अन्याययुक्त व्यवहार में न्याय से उपार्जन किये धन का कभी स्वर्ग करे, मदैव सत्यव्यापक परमात्मा की आज्ञा से वर्तें ॥ १७ ॥

यह सत्तासईवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



इदमिदंकारणंस्वाध्यायिनातिरम्य सुकृतस्य कुम्भी गार्तसंभो गृह्यमाणो वा ऋषिः ।

वसन्तो देवता । १, २, ४, ६ मिथुनं चिह्नम्; ३, ७, ११ मिथुनम्;

५ विराट् चिह्नम्; ८ भुरिक्चिह्नम्; ९ वैशाखः स्वराः ।

२, १० भुरिक् चिह्नम्; ११ पञ्चमः स्वराः ॥

अथ अष्टादशसं सुकृत का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में उपदेशक कैसा हो

इस विषय को कहते हैं—

इदं कवेराधित्यस्य स्वराजो विभानि सन्त्यभ्यस्तु महा ।

अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं मिसे वरुणस्य भुरेः ॥१॥

पदार्थ—यै ( यः ) जो ( मन्त्रः ) आनन्द देनेवाला ( देवः ) विद्वान् ( महा ) महत्त्व के साथ ( अस्तु ) होवे उस ( स्वराजः ) स्वयं शोभायमान ( वरुणस्य ) धर्म ( भुरेः ) बहुत विद्यावाले ( आधित्यस्य ) सूर्य के तुल्य वर्तमान उपकारी ( कवेः ) विद्वान् के सम्बन्ध से जो ( विभानि ) सब कर्तव्य ( सति ) है ( इवम् ) इस सब और ( सुकीर्तिम् ) सुन्दर कीर्ति को ( यजथाय ) सरकार के लिए ( अति, अभि, मिसे ) अत्यन्त सब ओर से माँगता है ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तोत्रमालाकार है । जैसे सूर्य की किरण बटपटावि पदार्थों को प्रकाशित करती हैं वैसे विद्वान् के उपदेश ओता लोगों के आत्माओं को प्रकाशित करते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तव अस्ते सुमगांसः स्याम स्वाध्यायौ वरुण तुष्टुवांसः ।

उपायन उवसां गोमतीनामग्रयो न जर्माणा अनु धन ॥२॥

पदार्थ—है ( वरुण ) श्रेष्ठ सज्जन विद्वान् पुरुष । ( तव ) आपके ( अस्ते ) सुशीलता रूप नियम में ( स्वाध्यायः ) सुन्दर विज्ञानवाले ( तुष्टुवांसः ) स्तुतिकर्ता ( गोमतीनाम् ) प्रशस्त गौओं वाली ( उवसां ) प्रातःकाल की बेलाओं के ( उपायन ) समीप प्राप्त होने में ( जर्माणा ) अनियों के ( न ) तुल्य तेजस्वी ( अनु धनः ) स्तुति करते हुए हम लोग ( अनु, धन ) अनुकूल विद्याप्रकाशों को प्राप्त होके ( सुमगांसः ) सुन्दर ऐश्वर्यवाले ( स्याम ) होवें ॥२॥

भाषार्थ—विद्यार्थी और उपदेश सुननेवाले मनुष्यों को चाहिए कि सदा विद्वानों का सङ्ग और सेवा करके प्रतिदिन विद्या का ग्रहण करें जैसे प्रातःकाल के समय में मन्त्र पदार्थ सुशोभित होते हैं वैसे वे भी होवें ॥२॥

फिर पुनः लोग कैसे हों इस विषय का अगले मन्त्र में कहा है—

तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मैश्वर्यस्य वरुण प्रणेताः ।

युयं नः पुत्रा अवितेरन्वा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥३॥

पदार्थ—है ( वरुण ) श्रेष्ठ ( प्रणेता ) मन्त्र के नायक मज्जन विद्वान् । जैसे मैं ( पुरुवीरस्य ) बहुत प्रवीण दूर ( शर्मैश्वर्यस्य ) बहुतों से प्रशंसा किये हुए ( तव ) आपके ( शर्मैश्वर्य ) घर में हम लोग सुखी हो । है ( अवितेरन्वा ) अहिंसनीय ( नः ) हमारे ( पुत्राः ) पुत्रों । ( युयम् ) तुम लोग ( युज्याय ) युक्त करने योग्य व्यवहार के लिए ( देवाः ) विद्वान् होकर ( अभि, क्षमध्वम् ) सब ओर से क्षमा करनेवाले होओ ॥३॥

भाषार्थ—हे पुत्रों ! जैसे हम लोग उत्तम विद्वान् के सम्बन्ध में नीतिविद्या का प्राप्ति होके आनन्दित हो वैसे तुम लोग भी क्षमाशील होके अध्यापकों के अनुकूल आचरण से सुशिक्षित विद्वान् होओ ॥३॥

यह अगत् कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अ साधावित्यो अस्तुबद्धिर्ता कृतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।

न आभ्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पन्तू रघुया परिउमन् ॥४॥

पदार्थ—है मनुष्यों । जिस कारण ( विधर्ता ) अनेक प्रकार के लोकों का कारण करनेवाला ( आधित्यः ) सूर्य ( सीम् ) सब ओर से ( अस्तु ) जल को ( अस्तुवत् ) उत्पन्न करता है इससे ( वरुणस्य ) मेघ के सम्बन्ध से ( सिन्धवः ) नदियाँ ( यन्ति ) चलती प्राप्त होती ( न, आभ्यन्ति ) स्विन नहीं होती ( न, मुचन्ति ) अपने चलनरूप कार्य को नहीं छोड़ती किन्तु ( एते ) ये नदी आदि जलाशय ( वयः ) पक्षियों के ( न ) तुल्य ( रघुया ) शीघ्रगामी ( परिउमन् ) सब ओर से वर्तमान भूमि पर ( अ, वयः ) अच्छे प्रकार गिरते चलते हैं वैसे तुम लोग भी सब ओर व्यवहार-सिद्धिर्वा चला-फिरना आदि व्यवहार करो ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र से वाचकस्तोत्रमालाकार है । वह सब जगत् वायु और जल के तुल्य जलाशय है । जैसे नदियाँ चलती, पृथिवी का जल ऊपर जाता, वही भी जलाशयान होता फिर भूमि पर गिरता; इस प्रकार जीवों की ससार में गति है ॥४॥

फिर विद्यार्थी लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वि सक्नुमथ रयानभिवाय अध्यायं ते वरुण स्वाध्यायस्य ।

मा सन्तुष्टे विर्यं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर क्रतोः ॥५॥१॥

पदार्थ—है ( वरुण ) श्रेष्ठ पुरुष । आप ( रयानभिवाय ) रस्सी के तुल्य ( जल, आध्यायः ) मुझसे अपराध को ( वि, अध्यायः ) विशेष कर नष्ट कीजिए जिससे ( ते ) आपके समीप हम लोग ( अध्यायः ) उन्नत हो । जैसे ( अध्यायः ) जल की ( जलम् ) नदी को नहीं नष्ट करते वैसे आपसे ( तन्तुः ) मूल ( मा ) न ( छेदि ) नष्ट किया जाए ( वयः ) प्राप्त होते हुए ( मे ) मेरी ( विर्यम् ) बुद्धि को नष्ट न कीजिए ( क्रतोः ) ऋतु समय से ( पुरा ) पहले ( अपसः ) कर्म से मत ( शारि ) नष्ट कीजिए और ( मात्रा ) माता के साथ विरोध ( मा ) मत कर ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तोत्रमालाकार है । जैसे रस्सी से बंधे हुए घोड़े नियम से चलते हैं वैसे ही माता-पिता और आचार्य के नियम में बंधे हुए बालक विद्यार्थी विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करें । कभी मादक द्रव्य के सेवन से बुद्धि को नष्ट न करें । विवाह करके सदैव ऋतुगामी हो और सन्तानों के प्रवाह को न तोड़ें ॥५॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अपो सु म्यस वरुण मियसं मस्तन्नाच्छावोऽनु मा शुभाय ।

वामेव वस्तादि मुमुग्ध्यहो नहि त्वहारे निमिषधनेसे ॥६॥

पदार्थ—है ( वरुण ) श्रेष्ठ जन । आप ( अपो ) मेरे सम्बन्ध से ( मियसम् ) मय को ( अपो, म्यस ) दूर कीजिए । है ( नहि ) बहुत सत्य को ग्रहण करनेवाले ( तन्नाच्छावः ) सत्य प्रकाशमान । आप ( मा ) मुझ पर ( अनु, शुभाय ) अनुग्रह करो ( वस्तात् ) बछड़े से गौ को जैसे वैसे मुझसे ( वंशः ) अपराध को ( सु, वि, मुमुग्ध्यहो ) सुन्दर प्रकार विशेष कर छुड़ाए ( त्वत् ) आपके सम्बन्ध से ( आरे ) निकट वा दूर ( निमिषः ) निरन्तर ( वन ) भी कोई ( नहि ) नहीं ( ईते ) समर्थ होता है ॥६॥

भाषार्थ—अध्यापक और उपदेशक पहले से सबके मय को निकाल विद्या का ग्रहण करावें, बुरे व्यसन छुड़ावें जिससे उनके दूर वा समीप में कोई धर्म से रोकने-वाला न हो ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

मा नो वैधैरुण ये तं इष्टावेनः कुण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।

मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि पू मृधः शिभथा जीवसे नः ॥७॥

पदार्थ—है ( असुर ) दुर्गुणों को दूर करनेवाले ( वरुण ) वायु के तुल्य वर्तमान पुरुष । ( ये ) जो लोग ( ते ) आप के ( इष्टौ ) सङ्गति करने रूप व्यवहार में ( एनः ) पाप ( इष्टान् ) करते हुए को ( भ्रीणन्ति ) धमकाते हैं वे ( नः ) हमारे ( वधैः ) मारने में ( मा ) न वरें ( ज्योतिषः ) प्रकाश से ( प्रवसथानि ) प्रवासों, दूर देशों को ( मा, गन्म ) न प्राप्त हों आप ( नः ) हमारे ( जीवसे ) जीवन के लिए ( मृधः ) सप्राप्तों को ( वि, शिभथाः ) विशेष कर माँगिए जिन से हम लोग निरन्तर सुख को ( सु ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य धर्मात्माओं को नहीं मारते, दुष्टों को ताड़ना देते, किसी के प्रवास को न रोकते और सबके सुख के लिए मनुष्यों को जीतते हैं वे अनुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

नयः पुरा तं वरुणो नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।

त्वे हि कं पर्वते न भितान्यप्रच्युतानि दूळम ब्रतानि ॥८॥

पदार्थ—है ( दूळम् ) दुःख से मारने योग्य ( तुविजात ) बहुतों में प्रसिद्ध ( वरुण ) प्रशंसित पुरुष । हम ( ते ) आप के ( पुरा ) पहले ( नूनम् ) निमित्त ( उत्त ) और ( अपरम् ) दूसरे ( नयः ) मत्कार के वचन को ( ब्रवाम ) कहे ( पर्वते ) मेघ में ( न ) जैसे वैसे ( त्वे ) आप में ( कम् ) सुख का ( भितानि ) आश्रय करते हुए ( अप्रच्युतानि ) नाशरहित ( हि ) ही ( उत्त ) और ( ब्रतानि ) सत्यभाषण आदि व्रतों को कहे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालाकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो इस जगत् में श्रेष्ठ विद्वान् हैं उनके प्रति सदैव प्रिय वचन कहे और अनुकूल आचरण करें और उनके गुण, कर्म, स्वभावों को अपने में ग्रहण करें ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

परं ऋणा सावीरध मस्तुतानि माहं राजकन्यकुतेन भोजम् ।

अव्युष्टा इक्षु भूयसीरुवास आ नो जीवान्वरुण तामु शाधि ॥९॥

पदार्थ—है ( वरुण ) सर्वोत्कृष्ट ( राजम् ) सर्वत्र प्रकाशमान जगदीश्वर । आप ( मस्तुतानि ) मेरे किये ( वरा ) उत्तम ( ऋता ) ऋणों को ( साधीः ) सिद्ध, चुकते कीजिए जिससे ( अहम् ) मैं ( अत्यकुतेन ) अन्य ने किये से ( मा, भोजम् ) न भोगूँ ( अन्ध ) और अन्तर आप जो ( भूयसीः ) बहुत ( उवासः ) विन ( अव्युष्टाः ) अज्ञादि में निवास को प्राप्त हैं ( तामु ) उन दिनों में ( इत् ) ही ( नः ) हम ( जीवाश्च ) जीवों को ( आ, शाधि ) अच्छे प्रकार शिक्षित कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जैसे ईश्वर जिलने जैसा कर्म किया है उसको वैसे फल देता है । वेद द्वारा सब को शिक्षा करता वैसे ही विद्वानों को अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ९ ॥

फिर राजपुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो मे राजपुरुषो वा सखा वा स्वप्ने भयं मीरवे महमाह ।

स्वेना वा की विप्लवति नो हकी वा त्वं तस्मादस्य वाक्स्मान् ॥१०॥

पदार्थ—हे ( बरह ) श्रेष्ठ ( राजन् ) राजपुरुष ! ( यः ) जो ( मे ) मेरा ( पुरुषः ) मैली ( सखा ) मित्र जागने ( वा ) अथवा ( स्वप्ने ) सोने में ( भयम् ) भय की प्राप्ति होता ( वा ) अथवा ( मीरवे ) डरपोक ( महम् ) मुझ की भय प्राप्ति होता है ऐसा ( आह ) कहे ( यः ) जो ( स्तेनः ) चोर ( वा ) अथवा डाकू ( नः ) हमको ( विप्लवति ) बमकाता मारना चाहता ( वा ) अथवा ( हकी ) मेडिया के तुल्य लुटेरा चोर हम को मारना चाहता ( तस्मात् ) उस से ( त्वम् ) आप ( अस्मात् ) हम लोगों की ( वाहि ) रक्षा कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो राजपुरुष प्रजा में निर्भय दुष्टों का निग्रह कर सब प्रजा की रक्षा करते हैं वे सब दुष्टों से रक्षित हो जाते हैं ॥ १० ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

माहं मघोनो वरुण भियस्य भूरिदात्र आ बिदं शूनमापेः ।

मा रायो राजन्सुयमादव स्यां बुद्धदेम विदधे सुवीराः ॥११॥

पदार्थ—हे ( बरह ) श्रेष्ठ ( राजन् ) राजपुरुष ! जैसे ( अहम् ) मैं अन्याय से ( भियस्य ) प्यारे ( मघोनः ) बहुत अच्छे बनवाले ( भूरिदात्रः ) बहुत पदार्थों के दाता मनुष्य के विरोध को ( आ, बिदम् ) प्राप्त होऊँ उससे ( शूनम् ) सुख को न प्राप्त होऊँ । प्राप्त धन से ( सुयमात् ) सुन्दर वस्त्र आदि व्यवहार के साधक ( रायः ) धन से विरोध में मैं ( मा, अत्र, स्याम् ) न अवस्थित होऊँ वैसे आप हो ऐसे करते हुए ( सुवीराः ) सुन्दर वीरोंवाले हम ( विदधे ) विज्ञान के निमित्त निरन्तर ( बुहम् ) बड़ा अच्छा ( ववेम ) कहे ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमानद्वारा है । मनुष्यों को चाहिए कि अन्याय से बिना आज्ञा परपदार्थ के ग्रहण की इच्छा कभी न करें किन्तु धर्मयुक्त व्यवहार से यथाशक्ति धन-संचय करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और राजा-प्रजा के गुणी का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अष्टाईसवाँ सूक्त और इसका वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

सूक्तप्रस्ता इति सप्तर्चस्वकोर्वाशासमस्य सूक्तस्य कर्मो गार्तसंभवो गृत्समघो वा ऋषिः ।

विश्वेदेवा देवताः । १, ४, ५ निष्पत्तिः ऋग्वेदः २, ६, ७, त्रिष्टुप्,

३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उनतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

वृत्तवता आदिरया इषिरा आरे मत्कर्त्त रहसुरिवागः ।

मृत्वतो वो वरुण मित्र देवा मद्रस्य विद्वान् अवसे हुवे वः ॥१॥

पदार्थ—हे ( आदिरया ) सूर्य के तुल्य विद्या के प्रकाशक ( इषिराः ) ज्ञानयुक्त ( वृत्तवता ) नियमों को धारण किये हुए ( देवाः ) विद्वान् लोगो ! तुम ( वत् ) मेरे ( आरे ) दूर या समीप में सत्य को प्रवृत्त ( कर्त्त ) करो ( रहसुरिवा ) एकान्त में जननेवाली व्यभिचारिणी के तुल्य ( आग ) अपराध को मत करो । ( विद्वान् ) विद्वान् मैं ( मृत्वतः ) सुनने हुए ( वः ) आपको ( अवसे ) रक्षा आदि के लिए ( हुवे ) बुलाता हूँ ( वः ) तुम लोगों के अपराध को मैं नष्ट करूँ । हे ( बरह ) सर्वोत्तम ( मित्र ) मित्र ! आप ( भद्रस्य ) कल्याण की रक्षा आदि के लिए प्रवृत्त हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमानद्वारा है । जो धर्माचरण करनेवाले अधर्म से पृथक् सबको रखने में प्रवर्तमान है वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

युयं देवाः प्रमतिर्युयमोजो युयं देवांमि सनुतयुयोत ।

अभिज्ञचारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मुक्यतापरं च ॥२॥

पदार्थ—हे ( देवाः ) विद्वान् ! ( युयम् ) तुम जा ( प्रमतिः ) उत्तम बुद्धि है उसको ( च ) और ( युयम् ) तुम ( ओजः ) पराक्रम को ( सनुतः ) निरन्तर ( युयोत ) ग्रहण करो । ( युयम् ) तुम ( अभिज्ञाति ) देवयुक्त कर्मों को निरन्तर पृथक् करो ( अद्या ) इस समय ( नः ) हमको ( अपरम्, च ) और जीव-समूह को ( मुक्यतः ) सुखी करो । ( अभिज्ञातारः ) सम्मुख योग करनेवाले तुम लोग हमारे अपराध को ( अभि, क्षमध्वम् ) सब प्रकार क्षमा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् सीमा द्वेष को छोड़के निरन्तर बुद्धि की उन्नति करते दूसरे के अपराधों को क्षमा करते और सबको सुखी करते हैं वे इस जगत् में सत्कार के योग्य होते हैं ॥ २ ॥

किम् नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।

युयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिर्मिन्द्राप्रस्तो दधात ॥३॥

पदार्थ—हे ( वसवः ) पृथिव्यादि के तुल्य विद्या को निवास देनेवाले विद्वान् ! हम लोग ( वः ) आपके ( किम्, न ) कित्त कायों की ( कृणवाम ) करें । ( आप्येन ) अन्य ( सनेन ) विभाग को प्राप्त ( आप्येन ) व्याप्य वस्तु के ( पितृ ) क्या करें । हे ( मित्रावरुणा ) प्राण अपान के तुल्य प्रियकारी अध्यापक और उपदेष्टा ( वः ) और ( अदिते ) विदुषि माता ( युयम् ) तुम ( नः ) हमारे लिए ( स्वस्तिम् ) कल्याण को तथा ( इन्द्राप्रस्तः ) विजुली और बायुको को ( दधात ) धारण करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो प्रथम कला के विद्वान् हो उनको राजा लोग पूर्ण कि आपकी क्या सेवा हम करें, क्या-क्या तुमको दें जिससे विद्या सुमिक्षा और धर्म की उन्नति करो ॥ ३ ॥

ह्ये देवा युयमिदापयः स्थ ते मुक्यता नार्थमानाय मध्वम्

मा वो रथो मध्यमवाकते भुन्मा सुध्मावस्साविषु अभिष्व ॥४॥

पदार्थ—( ह्ये ) हे ( देवाः ) विद्वान् ! जो ( युयम् ) तुम लोग ( इत् ) ही ( आपयः ) सकल शुभ गुणव्यापी ( स्थ ) होओ ( ते ) वे ( नार्थमानाय ) मांगते हुए ( मध्वम् ) मेरे लिए ( मुक्यतः ) सुखी करो जो ( वः ) तुम्हारा ( मध्यमवाकः ) पृथिवी के पदार्थों को इधर-उधर पहुँचानेवाला ( रथः ) विमान आदि यान ( वृते ) जलरूप समुद्रादि में बलाना है वह नष्ट ( वा, भूत् ) न हो । ऐसे ( मध्यम-वस्तु ) तुम्हारे सवृण ( आविषु ) विद्यादि गुणों से व्याप्त मनुजनों में विद्या प्राप्ति के अर्थ हम लोग ( अभिष्व ) परिश्रम करें । यह हमारा अथ नष्ट ( वा ) न होवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मैं मनुष्यों को योग्य है कि विद्याओं को प्राप्त होके सबको सुखी करें और जैसे बुद्ध, पुष्ट यान बनें वैसे प्रयत्न करें । सदा विद्वान् में प्रीति रखके विद्या की उन्नति किया करें ॥ ४ ॥

प्र व एको भिमय भूयागो यन्मा पितेव कितेव संशस ।

आरे पाशां आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव प्रमीष्ट ॥५॥

पदार्थ—हे ( देवाः ) विद्वान् ! ( वः ) तुम्हारा सङ्गी ( एकः ) एक असहाय में ( यत् ) जो ( कुरि ) बहुत ( आगः ) अपराध है उसको ( आरे ) दूर ( प्र, भिमय ) फेंकें और ( कितेव ) पिता के तुल्य ( कितवत् ) ऊँचा खेलनेवाले ( वा ) मुझको ( संशस ) शिक्षा कीजिए । जो ( पाशाः ) बन्धन और ( अघानि ) पाप हैं उनको ( आरे ) दूर ( विमिव ) पक्षी के तुल्य फेंकें । इन सबको ( पुत्रे ) पुत्र के निमित्त ( वा ) मुझको ( वा ) मत ( अघि, अनीष्ट ) अधिक कर ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मैं सबको प्रणसा करनी चाहिए कि हैं विद्वान् जनों ! तुम्हारे सङ्ग से हम लोग पापों को छोड़ धर्म का आचरण करनेवाले हों । आप लोग पिता के तुल्य हमको शिक्षा देना जिससे हम दुष्ट आचरण से दूर रहे ॥ ५ ॥

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।

आर्ध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य आर्ध्वं कर्त्ताद्वपदो यजत्राः ॥६॥

पदार्थ—हे ( अर्वाञ्चः ) आत्मज्ञान सम्बन्धी आदि विद्या को प्राप्त होने वाले ( यजत्रा ) अच्छी सङ्गति करनेवाले ( देवाः ) विद्या और अच्छी शिक्षा के रखक विद्वान् लोगो ! तुम ( अद्या ) आज दिन ( नः ) हम लोगों की ( आर्वाञ्चम् ) रक्षा करो । जो ( वः ) तुम्हारा ( हार्दि ) जिस कार्य में मैं सब लगता उसको हम लोग ( आ ) अच्छे प्रकार ग्रहण करें । हमारे लिए आप विद्या देनेवाले ( भवता ) होओ ( निजुरः ) निरन्तर हिसक ( कर्त्ता ) छेदक ( अर्वाञ्चः ) आपत्काल से ( आर्वाञ्चम् ) रक्षा करो । हे ( यजत्रा ) विद्वान् के पूजक लोगों ! ( वृकस्य ) मेडिय के तुल्य वर्तमान चोर के मसर्ग से रक्षा करो जिससे ( भयमानः ) भय की प्राप्ति मैं व्यर्थ आयु को न ( व्ययेयम् ) नष्ट करूँ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में उपमानद्वारा है । विद्वान् का यही कर्त्तव्य है कि जो अज्ञान, अविद्यादि दोषों से पृथक् रखके सब दुःख से पृथक् कर मनुष्यों को बड़ी अवस्थावाने धर्मात्मा करें ॥ ६ ॥

माहं मघोनो वरुण भियस्य भूरिदात्र आ बिदं शूनमापेः ।

मा रायो राजन्सुयमादव स्यां बुद्धदेम विदधे सुवीराः ॥७॥१॥

पदार्थ—हे ( बरह ) श्रेष्ठ विद्वान् ! जैसे ( अहम् ) मैं ( भियस्य ) कामना के योग्य ( भूरिदात्रः ) बहुत दान के दाता ( आप्ये ) प्राप्त होते हुए ( मघोनः ) प्रशंसित बनवाले पुरुष के ( शूनम् ) सुख की ( आ, बिदम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ जिससे सुख को ( मा ) न प्राप्त हो, हे ( राजन् ) राजन् सभापते ! जैसे मैं ( सुयमात् ) सुन्दर वस्त्र-नियम के साधक ( रायः ) धन से ( अत्र, स्याम् ) अवस्थित होऊँ जिससे वरिष्ठता को ( मा ) न प्राप्त होऊँ जिससे शिक्कार ( सुवीराः ) सुन्दर और वीर पुरुषोंवाले हम लोग ( विदधे ) बुद्धादि में ( बुहम् ) बहुत बड़ा पूर्वक ( ववेम ) कहे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—विद्वान् और सभापति आदि राजपुरुषों को योग्य है कि वे सब धर्म-सम्बन्धी कार्यों को करें जिससे बुद्ध और वरिष्ठता प्राप्ति न हो, और आपसे मैं शिक्कार के सुन्दर वीरोंवाली प्रजाओं को करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुराँ का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की विद्वाने सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह उत्तरीसवीं सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥५॥

अन्तरिक्षोऽप्यस्य विद्वानस्य सूक्तस्य सूक्तस्य अविः । १—५, ७, ८,

१० इन्द्रः; ६ इन्द्रासोमो, ६ बृहस्पतिः; ११ अस्तौ देवताः । १, ६

भुरिक् पठ्वितस्तस्यः । पठवमः स्वरः । २, ८ निबृत्तं विष्टुप्;

४—७, ६ विष्टुप्; १० विराट् विष्टुप्; ११ भुरिक्

विष्टुप्यस्यः । अस्तः स्वरः ॥

अथ तीसरे सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में वायु और सूर्य का विषय कहे हैं—

अथ देवाय कृषते संवित्र इन्द्रायाहिधे न रमन्त वाचः ।

अहरह्यास्त्यक्तुरपा क्रियास्या प्रथमः सर्ग आसास ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको ( अस्तस्य ) जल को उत्पन्न ( कृषते ) करते हुए ( संवित्रे ) समस्त रसों के उत्पादक ( अहिधे ) मेष को काटने सूक्ष्म कर गिरातेहारे ( इन्द्राय ) उत्तम गेयवर्ग के हेतु ( देवाय ) उत्तम गुणयुक्त सूर्य के लिए जा ( अहरह ) प्रतिदिन ( आप ) जल ( न, रमन्ते ) नहीं रमण करते अर्थात् सूर्य के आश्रय नहीं ठहरने ( आसास ) इन ( अपास्य ) जलों की ( प्रथमः ) पहली ( सर्ग ) उत्पत्ति ( अस्तः ) प्रकटकर्ता सूर्य के सम्बन्ध में ( क्रियास्य ) कितन ही अवकाश में ( आ, याति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होती है उसको तुम जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जैसे अन्तरिक्षस्थ वायु में जल ठहरता है वैसे सूर्य में नहीं ठहरता । सूर्यमण्डल से ही वर्षा द्वारा जल की प्रकटना होती है और यही सूर्य जल को ऊपर खींचता और वर्षाता है । जल की प्रथम सृष्टि अग्नि से ही होती है ऐसा जानना चाहिए ॥ १ ॥

फिर सूर्यमण्डल के रूप विषय को अपने मन्त्रों में कहा है—

यो वृत्राप सिनमभामरिप्यत्र तं जनित्री विदुष उवाच ।

पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥२॥

पदार्थ—( य. ) जो सूर्य ( अत्र ) इस जगत् में ( वृत्राय ) वास आदि के आवरणकर्ता मेष के लिए ( सिनम् ) बन्धन को ( अमरिप्यत्र ) धारण करता ( तम् ) उसको ( जनित्री ) माता ( विदुषे ) विद्यावान् सन्तान के लिए ( प्र, उवाच ) कहती उपदेश करती है इस सूर्य विषयक ( रदन्तीः ) भूमियों को प्राप्त होनी हुई ( धुनयः ) किरणों की चालें ( दिवेदिवे ) नित्यप्रति ( अर्थम् ) पदार्थ मात्र को ( यन्ति ) प्राप्त होती ( पथः ) मार्ग से ( अनु, जोषम् ) अनुकूल प्रीति का उत्पन्न करती हैं उनके कृत्य को विद्वान् पुत्र के लिए पिता भी उपदेश करे ॥२॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य मेष का बन्धनकर्ता है वैसे ही पृथिवी आदि लोकों का भी है । जैसे सूर्यमण्डल प्रतिदिन रमों को खींचकर नियत समय पर वर्षाता है वैसे इस सूर्य के किरण भी प्रत्येक द्रव्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

उध्वो अस्यादध्यन्तरिसेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।

मिह वसान उप हीमदुद्रोत्तिमायुधो अजयच्छत्रमिन्द्रः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( तिम्मायुधः ) तीक्ष्ण आयुधों के तुल्य किरणोवाला ( उध्वः ) ऊपर स्थित ( इन्द्रः ) मेष का हन्ता सूर्य ( हि ) ही ( अमरिप्ये ) आकाश में ( अध्यस्थात् ) अधिष्ठित है ( अथ ) इसके अनन्तर ( वृत्राय ) मेष के ( हि ) ही ( वधम् ) ताड़न को ( प्र, जभार ) प्रहार करता है । ( मिहम् ) वृष्टि का ( वसान ) आच्छादन करता हुआ ( ईम् ) मज और से ( उप, अनुद्रोत् ) समीप से द्रवित करना, पिघलाता है इस प्रकार अपने ( शत्रुम् ) वेरी मेष को ( अजयत् ) जीतता है उसका बोध करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—सूर्य अति दूरस्थ हो भूमि को धारण करता जल को खींचता है । जैसे यह मेष को छिन्न-भिन्नकर भूमि पर गिराता है वैसे ही राजपुरुषों को शत्रु गिराने चाहिए ॥ ३ ॥

अथ राजपुरुषों के कर्तव्यों को अपने मन्त्रों में कहा है—

बृहस्पते तपुषाभैव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।

यथा जघन्य धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥४॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बड़ों के रक्षक ( इन्द्रः ) दुष्टों को विधीय करने-हारे राजपुरुष ! ( यथा ) जैसे सूर्य ( वृकद्वरसः ) मेष के जघ्न भागों को ( असुरस्य ) विद्वान् के शत्रु के ( वीरस्य ) वीरों को ( अजयत् ) अच्छे भोजन करनेहारे वीर के तुल्य ( तपुषः ) अपने हाथ से वेधता है वैसे आप दुष्टों को ( विध्य ) ताड़ना देओ । ( यथा ) प्रगल्भता के साथ ( पुरा ) पहले ( एव ) ही ( अस्माकम् ) हमारे ( शत्रुम् ) शत्रु को ( जहि ) मार ( चिह् ) और दोषों को ( जघन्य ) नष्ट कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जो लोग बिजुली के तुल्य वेग से शत्रुओं को मारते हैं वे सूर्य के तुल्य राज्य में प्रकाशमान होते हैं ॥ ४ ॥

अथ सिय दिवो अरमानमुवा येन शत्रु मन्दसानो निजुर्वीः ।

लोकस्य सातो तनयस्य भूररस्माँ अर्द्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) परमेश्वर्य के देनेवाले सेनापति राजन् ! ( मन्दसानः ) प्रशमा को प्राप्त हुए आप ( येन ) जिस बल से ( शत्रुः ) बहुत प्रकार के (लोकस्य) छोटे सन्तान ( तनयस्य ) युवा पुत्र के ( सातो ) सम्यक् सेवन में ( अस्मान् ) हम को ( गोनाम् ) पृथिवी और गौओं की ( अर्द्धम् ) सम्पत्तिना समृद्धि को ( कृणुतात् ) कीजिए उस बल से जैसे सूर्य ( उष्णा ) ऊँचे स्थित बहुतों और ( विषः ) दिव्य आकाश से प्राप्त ( अरमानम् ) मेष का भूमि पर फेंकता है वैसे ( शत्रुम् ) शत्रु को ( अथ, सिय ) दूर पहुँचा और दुष्टों को ( निजुर्वीः ) निरन्तर मारिए, नष्ट कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे अपने सन्तानों के दुःख दूर कर, सम्यक् रक्षाकर बढ़ाते हैं वैसे ही प्रजा के कष्टकों को निवृत्त कर शिष्टों का सम्यक् पालन कर बढ़ावें ॥ ५ ॥

म हि कर्तुं बृहथो यं वनुयो रधस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।

इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतम् लोकम् ॥६॥

पदार्थ—ह ( इन्द्रासोमा ) सेनापति और गेयवर्धवान् महाशयो ! ( युवम् ) जो तुम दोनों ( रधस्य ) सम्यक् सिद्धि करते हुए ( यजमानस्य ) सुखदाता यजमान के ( हि ) ही ( चोदौ ) प्रेरक ( यम् ) जिसका ( प्र, बृहथ ) बड़ाओं और जिस ( कृणुम् ) बुद्धि को ( वनुथः ) माँगो, चाहो वे तुम दोनों सुखी ( स्थः ) होओ ( अस्मिन् ) हम ( भयस्थे ) भय में स्थित ( अस्मात् ) हमको ( अविष्टम् ) व्याप्त होओ ( उ ) और ( लोकम् ) देखने योग्य स्थान वा देश को ( कृणुतम् ) करो ॥६॥

भाषार्थ—राजपुरुष बहुत बल और धनाढ्य लोग यथेष्ट गेयवर्ध को पाकर किसी को भय न दें किन्तु सदैव दरिद्री और निर्बलों को सुख में स्थापन करें, निवास करावें ॥ ६ ॥

न मां तमभ श्रमोत तन्द्रा वौचाम मा सुनोतेति सोमम् ।

यो मे पृणाद्यो दवद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य. ) जो ( मे ) मुझे ( पृणात् ) तृप्त करे ( यः ) जो मुझको ( दवत् ) मुक्त देवे ( य. ) जो मुझको ( निबोधात् ) निश्चित बोध करावे ( य. ) जो ( गोभिः ) इन्द्रिया से ( सुन्वन्तम् ) यज्ञ करने हुए ( मा ) मुझको ( उप, आ, अवत् ) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होवे वह मुझको सेवने योग्य है जो ( मा ) मुझको ( न ) नहीं ( तमत् ) चाहता ( न ) नहीं ( अमत् ) श्रम कराना ( उत ) और ( न ) नहीं ( तन्द्रात् ) मोह करता । हम लाग जिसको ( इति ) ऐसा ( न ) नहीं ( बोधात् ) कहे उस ( सोमम् ) ओषधि रस को तुम लोग ( मा ) मत ( सुनोत ) खींचो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो राजपुरुष प्रजा में किसी को क्लेशित नहीं करते, विकृष्ट कर्म का अचरण नहीं करते, सबको सुखी करते, उपदेश में बाध कराने, वे सुख के देने से निव्य तृप्त करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

संस्वति त्वमस्माँ अविद्धि मरुत्वता धृषती जैवि शत्रून् ।

त्यं चिच्छधेन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति धृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( संस्वति ) विज्ञानयुक्त बिदुषी रानी ( मरुत्वती ) प्रशंसित-रूपवाली ( धृषती ) प्रगल्भ उत्साहिनी ! आप जैसे ( इन्द्रः ) सेनापति ( त्वम् ) उस ( शण्डिकाम् ) बलवान् ( तविषीयमाणम् ) सेना जैसे युद्ध करें वैसे आचरण करते हुए ( शण्डिकानाम् ) शत्रुओं की सेना के अवयव रूप योद्धाओं में वर्तमान ( धृषभम् ) अत्यन्त बली शत्रु को ( हन्ति ) मारता है ( चित् ) और वैसे ( अस्मात् ) हमको ( त्वम् ) आप ( अविद्धि ) व्याप्त वा प्राप्त हो और ( शत्रून् ) हमारे सुख को नष्ट करनेहारे शत्रुओं को ( जैवि ) जीतती हो इससे सबको सत्कार करने योग्य हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे राजा शत्रुओं को मारकर पुरुषों का सत्कार वा न्याय करना है वैसे ही रानी दुष्टा स्त्रियों का निवृत्त कर सब विषयों की मदा रक्षा करे अर्थात् जैसे पुरुष न्यायाधीश हो वैसे स्त्रियाँ भी हो ॥ ८ ॥

यो नः सनुस्य उत वा जियत्तुरभिरुयाय तं तिगितेन विध्य ।

बृहस्पत आयुधैर्जैषि शत्रुन्द्रहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥९॥

पदार्थ—हे ( राजन् ) प्रकाशमान राजन् ! आप ( यः ) जो ( नः ) हमारा ( सनुस्यः ) नन्नादि गुणयुक्त जनो में रहनेवाला ( उत, वा ) अथवा ( विधत्तुः ) मारने की इच्छा करनेवाला है । ( तम् ) उसको ( अभिरुयाय ) सब ओर से प्रकट कर ( तिगितेन ) प्राप्त हुए शस्त्र से ( विध्य ) ताड़ना दीजिए । हे ( बृहस्पते ) बड़े-बड़े विषय के रक्षक ! जिस कारण आप ( आयुधैः ) शस्त्र-अस्त्रों से ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( जैवि ) जीतते हो और ( रीषन्तम् ) मारते हुए को जीतते हो इस से उस को ( बृहे ) प्रोत्साहकों के लिए ( परि, धेहि ) सब ओर से धारण कीजिए ॥ ९ ॥



भाषार्थ—प्रजापुरुषों को चाहिए कि अपने दुःखों को राजपुरुषों से निवेदन कर निवृत्त करावें । जो प्रजा की रक्षा में प्रीति से वर्तमान हैं उन को सुख दिलावें और जो हिंसक हैं उनका निवेदन कर दण्ड दिलावें ॥ १ ॥

अस्माकमिः सत्त्वमिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्तव्यानि ।

न्योगंभुवभर्तुपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥१०॥

पदार्थ—हे ( शूर ) दुष्टों को मार्गद्वारे वीरजन । ( यानि ) जो ( वीर्या ) वीर पुरुषों के लिए हितकारी धन ( ते ) आप के ( ज्योक् ) निरन्तर ( कर्त्तव्यानि ) करने योग्य हैं उनको ( अस्माकमि ) हमारे सम्बन्धी ( सत्त्वमि ) शरीरधारी प्राणी ( शूरैः ) निर्भय पुरुषों के साथ आप ( कृधि ) कीजिए । जो ( अनुभूतितासः ) अनुकूल गन्धों से मस्कार किये हुए ( अभुवन् ) होवे उनकी रक्षा कर दुष्टों को ( हत्वी ) मारके ( तेषाम् ) उनके और ( न ) हमारे ( वसूनि ) उत्तम द्रव्यों को आप ( आ, भरा ) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—जब राजाओं में युद्ध प्रवृत्त हो, प्रजापति मनुष्य उनके प्रति ऐसे कहे कि तुम डरी नहीं, जिनने हमें लागा है वे सब तुम्हारे सहायक हैं । जो ऐसे आप हम आपस में एक दूसरे के सहायक न हो तो विजय कहाँ से होवे ? ॥ १० ॥

तं वः शर्द्धं मार्तं सुन्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।

यथा रधि सर्व्वोदं नशाभहा अपत्यसाचं भुत्यं दिवेदिवे ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( यथा ) जैसे ( सुन्नयु ) अपने को धन की इच्छा करनेवाला मैं ( नमसा ) सत्काररूप ( गिरा ) वाणी से ( वः ) तुम्हारे ( तम् ) उस ( मार्तम् ) वायुओं के सम्बन्धी ( शर्द्धम् ) बल को ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन ( दैव्यम् ) विद्वानों में प्रसिद्ध हुए ( जनम् ) जन के प्रति ( उप, ब्रुवे ) उपदेश कर्त्तुं जैसे तुम लोग हमारे बल को मज के प्रति कहा करो । जैसे हम लोग ( भुत्यम् ) सुनने में प्रकट ( अपत्यसाचम् ) उत्तम गन्तानयुक्त ( सर्व्वोदम् ) जिस से सब वीर पुरुष हो गये ( रधिम् ) धन को प्राप्त होके पूर्ण अवस्था को भोगके ( नशाभहे ) शरीर छोड़ें जैसे तुम लोग भी होओ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानद्वार है । जैसे राजपुरुष प्रजा के गुणों को अपने लोगों के प्रति कहें वैसे प्रजापुरुष राजपुरुषों के गुणों को अपने सहयोगियों से कहे । ऐसे परस्पर गुण ज्ञानपूर्वक प्रीति को प्राप्त होके नित्य आनन्दित होवें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में स्त्री-पुरुष और राज-प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह तीसरा सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अस्माकमिति सत्त्वमस्य एकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गुत्समव ऋविः । विवेदेवा देवताः ।

१, २, ४ जगती, ३ विराट् जगती, ५ निबृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।

६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । ७ पञ्चतित्तुप् छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब इकतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में

शिल्पविद्या का विषय कहते हैं—

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रेवसुभिः सचाभुवा ।

प्र यदयो न पतन्वस्मन्स्पर्शं श्रवस्यवो हवीवन्तो वनर्षदः ॥१॥

पदार्थ—हे ( सचाभुवा ) गुण सम्बन्ध के साथ हुए ( मित्रावरुणा ) राज-प्रजा पुरुषों ! जैसे तुम लोग ( आदित्यै ) महीनों के तुल्य वर्तमान पूर्ण विद्वान् ( रुद्रे ) प्राण के तुल्य बलवान् ( वसुभिः ) भूमि आदि के तुल्य गुणयुक्त जनो ने बनाए ( अस्माकम् ) हमारे ( रथम् ) रथ पर चढ़के ( प्र, अवसन् ) अच्छे प्रकार चलते गया ( यत् ) जो ( वस्मन् ) वसते हुए ( श्रवस्यवः ) अपने को अन्न चाहने वाले ( हवीवन्तः ) बहुत आनन्दयुक्त ( वनर्षदः ) वन में रहनेवाले ( वयः, न ) पक्षियों का तुल्य सब और में ( परि, पतन् ) उड़ें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमानद्वार है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों का अनुकरण करके विमानादि यान बनाके पक्षी के तुल्य अन्तर्गतादि मार्गों में सुख से गमनागमन किया करे ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अथ स्मा न उद्वता सजोषसी रथं देवासी अमि विष्णु वाजयुम् ।

यदाश्वः पद्याभिस्त्रितो रजः पृथिव्याः सानौ जंघनन्त पाणिभिः ॥२॥

पदार्थ—हे ( सजोषसः ) आपस में बराबर प्रीति के निब होनेवाले ( रजः ) लोको के ( त्रितः ) पात्र होते हुए ( देवासः ) विद्वान् लोगों ! तुम ( न ) हमारे ( वाजम् ) वेग से चलनेवाले ( रथम् ) विमानादि यान को ( विष्णु ) प्रजाओं में ( अमि, उल् अवत ) सब प्रकार जाहे ( अथ ) इस के अनन्तर जैसे ( यत् ) जो ( आश्वः ) शीघ्रगामी घोड़े चलते हैं वैसे ( पद्याभिः ) चलने योग्य गतियों से ( पृथिव्याः ) भूमि के ( सानौ ) ऊँचे प्रदेश में ( पाणिभिः ) हाथों से ( रथ ) ही ( वाजयुम् ) शीघ्र ताड़ना देओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य हाथों से यानों में यन्त्रों को स्थिर कर और ताड़ना देकर इन को चलावें तो वे घोड़ों के तुल्य पृथिवी के ऊपर-ऊपर जाने-आने की समर्थ होते हैं ॥ २ ॥

फिर राज-प्रजा विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उत स्य न इन्द्रो विश्वर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुकृतः ।

अनु नु स्थास्यहृकाभिरुतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥३॥

पदार्थ—( विश्वर्षणिः ) सब को दिखाने चितानेवाला ( सुकृतः ) उत्तम बुद्धियुक्त ( इन्द्र ) सूर्य के तुल्य तेजस्वी सभापति ( दिवः ) जैसे प्रकाश से सूर्य गोभिन हो वैसे ( अहृकाभिः ) चोर आदि दुष्टों से रहित ( ऊतिभिः ) रक्षा आदि से ( मारुतेन ) मनुष्य सम्बन्धी ( शर्धेन ) बल के साथ ( महे ) बड़े ( सनये ) मुख के सम्यक् विभाग के लिए और ( वाजसातये ) संघाम के सम्यक् सेवने के लिए ( न ) हमारे ( रथम् ) विमानादि यान का ( अनु, स्थासि ) अनुष्ठान करता है ( स्य, ) वह ( उत ) तो ( नु ) शीघ्र ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमानद्वार है । जैसे सूर्य अपने प्रताप से सब जगत् की पालना करता वैसे धार्मिक प्रजा और राजपुरुष अपने राज्य की रक्षा किया करें ॥ ३ ॥

उत स्य देवो भुवनस्य सक्षप्तिस्त्वष्टा प्राभिः सजोषां जुजुवथम् ।

इळा भगी बृहद्विबोत रोदसी पृषा पुरन्धिगश्मिनावधा पती ॥४॥

पदार्थ—जा ( पृषा ) पुष्टिकारक ( पुरन्धि ) पुरो का धारण करनेवाला ( सक्षप्ति ) मली ( सजोषा ) सुख-दुःख और प्रीति का बराबर रखनेवाला ( भवः ) ऐश्वर्यभागी ( देवः ) प्रकाशक ( पती ) पालन करनेवाले ( अश्विनी ) सूर्यचक्रमा के तुल्य ( उत ) और ( दिवा ) प्रकाश के साथ ( रोदसी ) सूर्य, भूमी ( भुवनस्य ) लोको के ( त्वष्टा ) छेदन करनेवाले सूर्य के तुल्य ( रथम् ) विमानादि यान को ( जुजुवत् ) पटुचावे ( अथ ) इस के अनन्तर ( उत ) और इसकी ( ग्माभिः ) बाणियों के साथ ( इळा ) उत्तम वाणी है ( स्य ) वह ( बृहत् ) बड़े मुख का प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमानद्वार है । जो बिजुली के तुल्य और सुशिक्षित वाणी के तुल्य वर्तते हैं वे अनेक शिल्पविद्या से माध्य यानों को बनाके ऐश्वर्यवाले होत हैं ॥ ४ ॥

फिर स्त्रीपुरुष के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उत त्ये देवी सुभगे मिथूदशोषासानहा जगतामपीजुवा ।

स्तुषे यदा पृथिवी नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥५॥

पदार्थ—ह ( पृथिवी ) पृथिवी के तुल्य वर्तमान सहनशील स्त्रि । ( त्रिवया ) तीना अवस्था भोगनवाली तू जैसे ( त्ये ) वे ( मिथूदशा ) आपस में एक दूसरे को देखनेवाले ( सुभगे ) मुन्दर ऐश्वर्य के निर्मित ( देवी ) प्रकाशमान ( अपीजुवा ) प्रेरक ( उपसानक्ता ) दिन-रात ( जगताम् ) ससारस्थ मनुष्यादि ( वः ) और ( स्थातु ) स्थावर वृक्षादि के पालक होने हैं ( उत ) और जैसे मैं ( नव्यसा ) नवीन ( वचः ) वचन से ( वयः ) अभीष्ट अवस्था को ( वत् ) जिन की ( स्तुषे ) स्तुति करना हूँ और ( उपस्तिरे ) निकट आच्छादित, रक्षित करता हूँ वैसे ही ( वास् ) उनकी स्तुति कर ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमानद्वार है । जैसे रात-दिन परस्पर मिले हुए वर्तते हैं वैसे ही स्त्री-पुरुष वर्तते हैं । जैसे पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के सब पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभावों का जानकर विद्वान् होते हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी हों ॥ ५ ॥

फिर हम मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

उत वः शंसमृशिशामि रमस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।

त्रित ऋभुसाः संचिता चनौ वधेऽपां नपादागृहेमा धिया शमि ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानों ! जैसे ( त्रितः ) ब्रह्मचर्य, अध्ययन और विचार इन तीन कर्मों से ( ऋभुसाः ) मेधावी ( संचिता ) ऐश्वर्य करनेवाला ( वधत् ) न गिरनेवाला वा पग आदि अवयवों से रहित ( आगृहेमा ) शीघ्र बढनेवाला ( उत ) और ( अजः ) कभी न उत्पन्न होनेवाला ( एकपात् ) एक प्रकार की प्राप्तिपुक्त ( अहिः ) व्याप्तिशील ( बुध्न्यः ) अन्तरिक्ष में व्याप्त मेघ के तुल्य वर्तमान मैं ( धिया ) बुद्धि वा कर्म से ( शमि ) कर्म से प्रवृत्त होऊँ ( अपात् ) प्राणों के ( चनः ) अन्न को ( वधे ) धारण करता हूँ वैसे ही पालि । तू प्रवृत्त हो जैसे हूँ ( उशिशामि ) कामना के योग्य ( वः ) तुम विद्वानों को ( शंसम् ) स्तुति की ( वमि ) चाहते हैं ( उत ) और तुम को धारण करे वैसे तुम लोग भी हमारे विषय में वर्तों ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकनुत्तोपमानद्वार हैं । जैसे हंसर अजन्मा कामना के योग्य सत्य गुणकर्मस्वभाव वाला सेवने योग्य है वैसे हम सब जीव लोग हैं इस से ब्रह्मचर्यादि शुभ कर्म से हमको सदा वर्तना चाहिए ॥ ६ ॥

पुत्रा यो वरमुपयता भवता कर्तव्यमयको नन्वसे सः ।

अवस्थो वाजं चकानाः सन्तिनं रथो अहं पीतिवस्याः ॥७॥

पदार्थ—जैसे ( वाजम् ) विमान को ( चकानाः ) चाहते हुए ( अवस्थः ) अपने को अन्न वा आसन सुनने की इच्छा करते हुए ( वचनः ) मन-मिलाप रखते हुए ( आशयः ) मनुष्य ( नन्वसे ) जति नवीन जन के लिए ( रथः ) रथ के चलानेवाले ( सन्तिनं ) बोड़े के ( न ) मुख्य विचारणीय विषय को ( सः अतमाः ) सम्यक् सूक्ष्म करते हैं अर्थात् अच्छे प्रकार समझते हैं वैसे ( न ) हम लोगों के ( पुत्रा ) इन ( उच्छता ) उत्तम प्रकार ग्रहण किये वचनों को मैं ( वसिम् ) चाहता हूँ । हे विद्वन् ! जैसे आप ( अहम् ) नियमपूर्वक ( पीतिव ) धर्म को ( अवस्थाः ) प्राप्त होओ वैसे मैं भी धर्म को प्राप्त होऊँ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकमुत्पापमालङ्कार हैं । मनुष्यों का चाहिए कि जिस-जिस पदार्थ की कामना विद्वान् लोग करें उस-उस की कामना कर वैसे विद्वान् लोग उपवेश करें वैसे उन को सुन निषेध कर स्वीकार और अनुष्ठान किया करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और विदुषी स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह इकतीसवाँ सूक्त और चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥



अवस्थेयस्याष्टर्षस्य द्वाविंशतमस्य सूक्तस्य नृत्समस्य ऋषिः । १ छायापृथिवी,

२, ३ इन्द्रस्वष्टा वा, ४, ५ राका; ६, ७ सिनीवाली, ८ लिङ्गोक्ता

देवताः । १ जगती; २ निचुजगती; ४, ५ विराट् जगती छन्दः ।

निवाहः स्वरः । २ निचुट्पञ्चमः । अंततः स्वरः ६ अनुट्पञ्चमः,

७ विराट्पञ्चमः, ८ निचुट्पञ्चमः छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब बलीसर्ब सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या

कर्मव्य है इस विषय को कहते हैं—

अस्य मे छायापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिचासतः ।

ययोरायुः प्रतरन्ते इदं पुर उपस्तुते वसुयुवी महो दंघे ॥१॥

पदार्थ—जो ( अवित्री ) रक्षा आदि के निमित्त ( उपस्तुते ) समीप में प्रशंसा को प्राप्त ( छायापृथिवी ) सूर्य और भूमि ( मे ) मेरे ( अस्य ) इस प्रत्यक्ष ( वचनः ) वचन के सम्बन्ध से ( वचसः ) उत्पन्न हुए ( ऋतायतः ) जन के समान आचरण करते ( सिचासतः ) वा अच्छे प्रकार विभाग होने के समान आचरण करते जिनसे ( प्रतरन्ते ) पुष्कल ( इदम् ) इस ( आयुः ) जीवन को ( वसुयुः ) धन की चाहना करता हुआ मैं ( पुर ) आगे ( दंघे ) धारण करता हूँ ( मे ) वे सब जगत् का सुख मित्र करने हैं ( वाः ) उनकी उत्तेजना से मैं ( महः ) बहुत सुख को धारण करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को भूमि और अग्नि का सेवन जो युक्ति के साथ किया जाता है ता पूर्ण आयु और धन की प्राप्ति हो सकती है ॥ १ ॥

अब विद्वानों की मित्रता की अगले मन्त्रों में कहा है—

मा नो गुह्य रिपं आयोरहन्दमन्मा न आभ्यो रीरघा दुच्छुनाभ्यः ।

मा नो वि योः सख्या विदि तस्य नः सुम्नायता मनसा तस्वैमहे ॥२॥

पदार्थ—जो ( न ) हमारे ( गुह्य ) गुप्त एकांत के ( सख्या ) मित्रपन के काम ( आयोः ) मनुष्य के सुख को ( अहम् ) किसी दिन में ( मा, वचनः ) मत नष्ट करे ( रिपं ) और पृथिवी ( मा ) मत नष्ट करे वा जैसे मैं किसी मनुष्य के सुख को न नष्ट करूँ वैसे हे मेनापति ! आप ( आभ्यः ) इन पृथिवी वा ( दुच्छुनाभ्यः ) दुःखकारिणी गन्धु की सेनाओं से ( नः ) हम लोगों को ( मा, रीरघः ) मत नष्ट करें ( मा ) मत ( नः ) हम लोगों को ( अमन्मा ) अन्तःकरण से ( वि, योः ) अलग करें वा ( सुम्नायता ) अपने को सुख की इच्छा करते हुए ( नः ) हम लोगों को ( विदि ) जानो ( तस्य ) उस सज्जन के सुख को ( मा ) मत नष्ट करें इस कारण हम लोग ( तत् ) उक्त कर्म और ( स्वा ) आपको ( ईमहे ) याचते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों का हम प्रकार सदा इच्छा करनी चाहिए कि किसी के सुख की हानि कभी न करनी चाहिए, मित्रता का बङ्ग न करना चाहिए, सब सज्जनों की सदा रक्षा करनी चाहिए, मित्रतर सज्जनों के लिए सुख माँगना चाहिए ॥ २ ॥

अहं कता मनसा भृष्टिमा बहं दुहानां वेनु पियुषीमसवतम् ।

यथाभिराशु वचसा च वाजिनं स्वां हिनीमि पुकृत विवहां ॥३॥

पदार्थ—हे ( पुकृत ) बहुते से सत्कार पाये हुए ! आप ( अहं कता ) अन्तर्गत किये हुए ( वचसा ) विमान से वा ( वाजिनः ) प्राप्त करने योग्य विमानों से ( वचसा, च ) और वचन से ( अतवचसा ) अप्राप्त ( पियुषीम् ) बड़ी हुई बढ़ाये वा बढ़ाये ( पुकृतम् ) और सुख को अच्छे प्रकार प्राप्त करनेवाली ( वेनुम् )

मी के समान वाणी को ( विवहा ) सब दिन ( भृष्टिम् ) शीघ्र ( वा, बहु ) प्राप्त होओ वा प्राप्त कराओ मैं ( वाजिनम् ) प्रशंसित विमानवाले ( स्वाम् ) आपको ( हिनीमि ) प्राप्त होता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो समाधायक अन्तःकरण से औरों के लिए उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को शीघ्र प्राप्त करता है उसको सब सत्कार करके बढ़ावे ॥ ३ ॥

अब स्त्रियों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहा है—

राकामहं सुहृवां सुष्टी हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु स्मना ।

सीध्यस्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं सतदायमुषध्वम् ॥४॥

पदार्थ—मैं ( स्मना ) आत्मा से ( राकाम् ) उस राज्ञि के जो पूर्ण प्रकाशित चन्द्रमा से युक्त है समान वर्तमान ( सुहृवाम् ) सुन्दर स्पर्धा करने योग्य जिस स्त्री की ( सुष्टी ) शोभनस्तुति के साथ ( हुवे ) स्पर्धा करता हूँ वह ( सुभगा ) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाली ( नः ) हम लोगों को ( शृणोतु ) सुन और ( जानातु ) जाने ( अस्मिद्यमानया ) न छेदन करने योग्य ( सूच्या ) सुई से ( अपः ) कर्म ( सीध्यतु ) मीने का कर्म ( सतदायम् ) अमर्य दायभाग वाले को सीधे ( उषध्वम् ) और प्रशंसा के योग्य अमर्य दायभागी ( वीरम् ) उत्तम सन्तान को ( ददातु ) देवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्पापमालङ्कार है । उम मनुष्य वा स्त्री का अहोभाग्य होता है जिस को अभीष्ट स्त्री वा पुरुष प्राप्त हो जैसे गुण, कर्म, स्वभाव वाला पुरुष हो वैसी पत्नी भी हो यदि दोनों विद्वान् स्त्री-पुरुष ऋतु-समय को न उत्सङ्ग कर अर्थात् ऋतु समय के अनुकूल प्रेम से मन्तानोत्पत्ति करें तो उनकी सन्तान प्रशंसित क्यों न हो । जैसे छिन्नभिन्न वस्त्र सुई से सिया जाता है वैसे जिनके मन में परस्पर प्रीति हो उनका कुल सब का मान्य होता है ॥ ४ ॥

यास्तं राके सुमतयः सुपेक्षसी याभिर्ददासि दाशुषे वसुनि ।

ताभिर्नो अय सुमना उपामहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥५॥

पदार्थ—हे ( राके ) राज्ञि के समान सुख देनेवाली ! जो ( ते ) आप की ( सुपेक्षसी ) सुन्दर रूपवाली दीप्ति और ( सुमतयः ) उत्तम बुद्धि हैं जिनसे आप ( दाशुषे ) देनेवाले पति के लिए ( वसुनि ) धनो को ( ददासि ) देती हो उन से ( न ) हम लोगों को ( अयः ) आज ( सुमना ) प्रसन्नचित्त हुई ( उपामहि ) ममीप आओ । हे ( सुभगे ) सोभाग्ययुक्त स्त्री ( रराणा ) उत्तम देनेवाली होती हुई हम लोगों के लिए ( सहस्रपोषम् ) असंख्य प्रकार से पुष्टि को देओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यदि सुलक्षणा विदुषी स्त्री अष्ट विद्वान् जन की पत्नी हो तो धन की और सुख की बहुत प्रकार प्राप्ति हो ॥ ५ ॥

सिनीवालि पृथुदुके वा देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिदृष्टि नः ॥६॥

पदार्थ—हे ( पृथुदुके ) मोटी-मोटी जङ्घाओंवाली ! ( सिनीवालि ) जो अति प्रेम से युक्त तू ( देवानाम् ) विद्वानों की ( स्वसा ) बहिन ( असि ) है तो तू मैंने जो ( आहुतम् ) सब ओर से होमा है उस ( हव्यम् ) देने योग्य ब्रह्म को ( जुषस्व ) प्रीति से सेवन कर । हे ( देवि ) कामना करती हुई स्त्रि ! तू हमारे लिए ( प्रजाम् ) प्रजा को ( दिदिदृष्टि ) दे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के कुल की कन्या विद्वानों की कन्यु बह्यधर्म से विद्या की प्राप्त हुई प्रकाशमान हो उसे पत्नी कर विधि से हमसे सन्तानों को जो उत्पन्न करे वह पुरुष और वह स्त्री दोनों सुखी हो ॥ ६ ॥

या सुबाहुः स्वर्गुरिः सुमा बहुध्वरी ।

तस्यै विरपत्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( या ) जो ( सुबाहुः ) सुन्दर बाहु और ( स्वर्गुरिः ) सुन्दर अग्नियोवाली तथा ( सुमा ) सुन्दर पुत्रात्पत्ति करने और ( बहुध्वरी ) बहुत सन्तानों की उत्पन्न करनेवाली स्त्री है ( तस्यै ) उस ( विरपत्यै ) प्रजाजनों की पालनेवाली ( सिनीवाल्यै ) प्रेम से सम्बद्ध हुई के लिए ( हविः ) देने योग्य वीर्य का ( जुहोतन ) छोड़ो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—पुरुषों को यह जानना चाहिए कि वे ही पत्नी उत्तम होती हैं जो सर्वाङ्ग सुन्दरी, बहुत प्रजा उत्पन्न करनेवाली, शुभ गुणकर्मस्वभावयुक्त हों, उनमें से एक-एक पुरुष को चाहिए कि एक-एक स्त्री के साथ विवाह करके प्रजा उत्पन्न करें ॥ ७ ॥

या गुह्यर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।

इन्द्राणीमहं उतयै वरुणानी स्वस्तये ॥८॥१८॥३॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! जैसे मैं ( वा ) जो ( गुह्यः ) गुह्य गुह्य बोले वा ( वा ) जो ( सिनीवाली ) प्रेमास्पद को प्राप्त हुई ( या ) जो ( राका ) पीर्या-वाली के समान वर्तमान अर्थात् जैसे चन्द्रमा की कान्ति से युक्त पीर्यावासी होती वैसी पूर्ण कान्तिमयी और ( वा ) जो ( सरस्वती ) विद्या तथा सुन्दर शिक्षासहित वाणी से युक्त वर्तमान है उस ( इन्द्राणीम् ) परमेश्वर्ययुक्त को ( उतये ) रक्षा आदि के लिए ( अहम् ) बुलाता हूँ उस ( वरुणानीम् ) अष्ट की स्त्री को ( स्वस्तये ) सुख के लिए बुलाता हूँ वैसे तुम भी अपनी-अपनी स्त्री को बुलाओ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—यदि कोई स्त्री गुच्छी और कोई उत्तम सर्व लक्षण सम्पन्न विदुषी हो उससे ऐश्वर्य और सुख निरन्तर बढ़ाने चाहिए ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् की मित्रता और स्त्री के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ के साथ पिछले सूक्तार्थ की सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह बलीसर्वा सूक्त, पन्द्रहवाँ वर्ग और तीसरा अनुवाक समाप्त हुआ ॥

५५

आ त इति पञ्चवर्षस्य त्रयस्त्रिंशत्सप्तस्य सुवत्सस्य गृत्समस्य ऋषि । शशी वेवता ।

१, ५, ६, १३—१५ निष्प्रतिष्ठुप्, ३, ६, १०, ११ चिराट्

त्रिष्ठुप्, ४, ८ त्रिष्ठुप् छन्द । वेवत स्वर । २, ७ परस्मिन्,

१२ भुरिच् परस्मिन्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले तैत्तिरीय सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में बंधक विषय को कहते हैं—

आ तं पितर्मरुतां सुम्नमेतु या नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।

अमि नो वीरो अवेति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१॥

पदार्थ—हे ( मरुताम् ) मनुष्यों के ( पित ) पिता के समान ( रुद्र ) दुष्टों को रक्षानेवाले । ( सूर्यस्य ) सूर्य के समान वर्तमान और ( सवृषः ) जो अच्छे प्रकार देते हैं उन ( ते ) आप के मकाश से ( नः ) हमारे लिए ( सुम्नम् ) सुख ( आ, एतु ) आवे, आप मुख से हमें ( युयोथा ) अलग न करें । जिससे ( अवेति ) छोड़े पर चढ़के ( नः ) हमारा ( वीर ) शुभ गुणों में व्याप्त जन ( अमि, क्षमेत ) सब ओर से सहन करे जिससे हम लोग ( प्रजाभिः ) सन्तानादि प्रजाजनो के साथ ( प्र, जायेमहि ) प्रसिद्ध हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्य परमेश्वर को परमपिता न्यायकारी मानकर सुख बढ़ाव, कभी ईश्वर को मानकर बिड़ब न हो, महनशील होकर वीरता मिट कर प्रजा के साथ सुखी हो ॥ १ ॥

फिर बंधक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स्वादत्तेमी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमां अशीय भेषजेभिः ।

व्यस्मद्वेषो वितर व्यंहो व्यमीवाश्वातयस्वा विवृचीः ॥२॥

पदार्थ—हे ( रुद्र ) सर्व रोगदोषों के निवारनेवाले बंधराज । आप हम लोगों को ( वि, वातयस्व ) विशेषकर जाँवे ( स्वादत्तेभिः ) आपसे दी हुई ( शन्तमेभिः ) अतीव सुख करनेवाली ( भेषजेभिः ) औषधों से ( विवृची ) गमय शरीर में व्याप्त ( अमीवाः ) रोगों को दूर करने और आप ( व्यस्मत् ) हमसे हमारे ( द्वेष ) वैरियों को वा ईर्ष्या आदि दोषों को और ( वितरम् ) विशेषतः ने उल्लङ्घन करने योग्य ( व्यंहो ) पाप भरे हुए कर्म वा कुपण्यादि कर्म को दूर कर जिससे मैं ( वातम् ) नो ( हिमा ) सत्वम् आनन्द को ( वि, अशीय ) विशेषकर प्राप्त होऊँ ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे बंध लोगो ! तुम अत्युत्तम औषधियों से सबके बड़े-बड़े रोगों को निवारण करके रोगदोषों को और उन्माद आदि दोषों को अलग कर जत वध आयु जिनकी ऐसे मनुष्यों को मिट करे ॥ २ ॥

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।

पर्वि नः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभाता रपमो युयोधि ॥३॥

पदार्थ—हे ( वज्रबाहो ) वज्र के तुल्य औषध बाहु में रखने और ( रुद्र ) रोगों के लोप करनेवाले । जिससे आप ( तवसां ) बलिष्ठों में ( तवस्तम ) अतीव बलवान् ( जातस्य ) प्रसिद्ध जगत् के बीच ( श्रेष्ठ ) अत्यन्त प्रशसायुक्त ( श्रिया ) शोभा वा लक्ष्मी के साथ वर्तमान ( अस्ति ) हो वा ( नः ) हम लोगों को ( पारमंहसः ) कुपण्य से उत्पन्न हुए ( रपसः ) कर्म से ( पारम् ) पार ( पर्वि ) पहुँचाने हो वा ( विश्वा ) समस्त पीडाओं को ( युयोधि ) अलग करते हो वा ( स्वस्ति ) सुख उत्पन्न करने हो इससे हम लोगों से सत्कार पान योग्य हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो आप रोगरहित शोभते हुए अतीव बलवान् हैं औरों को रोग-रहित करके निरन्तर सुखी करते हैं वे सबको सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

फिर बंधक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मा स्वां रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहती ।

उक्षो वीरां अर्पय भेषजेभिर्मिषत्रमं त्वां मिषजां शृणोमि ॥४॥

पदार्थ—हे ( वृषभ ) श्रेष्ठ ( रुद्र ) कुपण्यकारियों को रक्षानेवाले । हम लोग ( चुक्रुती ) दुष्ट स्तुति से ( स्वा ) आपके ( प्रति ) प्रणि ( मा ) मत ( चुक्रुधाम ) क्रोध करे । ( सहती ) समान स्पर्धा से ( त्वा ) मत क्रोध करे आपके साथ विरोध ( मा ) मत करें किन्तु ( नमोभिः ) सत्कार के साथ निरन्तर सत्कार करें । जिन ( स्वा ) आपको मैं ( मिषजां ) वैद्यों के बीच ( मिषवत्तमम् ) वैद्यों के शिरोमणि ( शृणोमि ) सुनना हैं सो आप ( भेषजेभिः ) रोग निवारनेवाली औषधियों से ( नः ) हम लोगों के लिए ( वीरां ) वीर, वीरोग पुत्रादिको को ( उत्, अर्पय ) उत्तमता से सौंपें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—किसी को वैद्य के साथ विरोध कभी न करना चाहिए, न इसके साथ ईर्ष्या करनी चाहिए किन्तु प्रति के साथ सर्वोत्तम वैद्य की सेवा करनी चाहिए जिससे रोगों से अलग होकर सुख निरन्तर बढ़े ॥ ४ ॥

फिर बंधक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

हवीमभिर्वते यो हविर्भिरव स्तोममी रुद्र दिवीय ।

कद्रुदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिमां रीरधन्मनायै ॥५॥

पदार्थ—( यः ) जो बंधजन ( हवीमभिः ) सुन्दर ओषधियों के देने से हम लोगों की ( हवते ) स्पर्धा करता है उस ( रुद्रम् ) बंध को मैं ( हविर्भिः ) प्रहारा करने योग्य ( स्तोमेभिः ) श्लाघाओं से ( अब, दिवीय ) न खण्डन करूँ अर्थात् न उसे बलेश देऊँ जिससे ( सुहवः ) सुन्दर दानशील ( कद्रुदरः ) कोमल उदरवाला ( बभ्रुः ) पालनकर्ता ( सुशिमां ) सुन्दर मुखयुक्त बंध ( नः ) हमारी ( अस्यै ) इस ( मनायै ) माननेवाली बुद्धि के लिए ( मा, रीरधन् ) मत हिंसा करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो बंधजन रोग निवारण से हमारी बुद्धि को बढ़ाते हैं उनके साथ हम लोग कभी विरोध न करें ॥ ५ ॥

उन्मां मयन्द वृषभो मरुत्वान्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।

घृणीव च्छायामग्ना अशीया विवासेय रुद्रस्य सुम्नम् ॥६॥

पदार्थ—जो ( वृषभ ) सुखों को वर्णनवाले ( मरुत्वान् ) मनुष्य आदि बहुत प्रजाजनो से युक्त ( अरपा ) अविद्यमान पाप—निष्पाप बंध ( च्छायामग्ना ) प्रदीप्त ( वयसा ) आयु से ( नाधमानम् ) याचना किया हुआ ( ना ) मुझको ( उत्, मयन्द ) उत्तमता से चाहते हो उनकी उत्तेजना से मैं ( वृषभम् ) सूर्य के समान ( छायां ) घर का ( विवासेयम् ) सेवन करूँ और ( रुद्रस्य ) बंध के सकाश में ( सुम्नम् ) सुख को ( आ, अशीय ) अच्छे प्रकार प्राप्त करूँ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बंध हमारे रोगों का निवारण कर मनुष्यों को दीर्घ आयुवाले करने हैं वे सूर्य के समान प्रकाशित कीर्तिवाले होते हैं ॥ ६ ॥

फिर बंधक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

कस्य तं रुद्र मृक्ष्याकुहस्तो यो अस्ति भेषजो जलावः ।

अपभर्ता रपसो देव्यस्यामी नु मां वृषभ चक्षमाथाः ॥७॥

पदार्थ—हे ( वृषभ ) श्रेष्ठ ( रुद्र ) दुःखनिवारक बंध । आप ( देव्यस्य ) जो देवों के साथ वर्तमान उसके बीच ( मा ) मुझे ( अमि, चक्षमाथाः ) सब ओर से सहन कीजिए ( यः ) जो ( ते ) आपको ( मृक्ष्याकुः ) सुख देनेवाला ( हुस्तः ) हर्षमुख ( भेषज ) बंधजन ( जलावः ) युक्तकर्ता और ( रपसः ) पापों का ( अपभर्ता ) दूरकर्ता ( अस्ति ) है ( स्य ) वह ( क्व ) कहाँ है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जब अध्यापक बंध शिष्यों को पढ़ावे तब अच्छे प्रकार पढ़ाकर फिर परीक्षा करे । जो यथार्थ प्रश्नोत्तर करनेवाला हो उसको बंधकी करने को आज्ञा देओ ॥ ७ ॥

प्र बभ्रवै वृषभाय श्वितोचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।

नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नामं ॥८॥

पदार्थ—हे बंध । जिस ( वृषभाय ) श्रेष्ठ ( बभ्रवै ) धारण करनेवाले ( मह ) बड़े ( श्वितोचे ) आवरण को प्राप्त होत हुए बंध के लिए ( महींम् ) बड़ी ( सुष्टुतिम् ) सुन्दर स्तुति की ( प्र, ईरयामि ) प्रेरणा देता हैं सो आप मुझे ( नमस्य ) नमिष् जिन ( रुद्रस्य ) अच्छे बंध का ( कल्मलीकिनम् ) बेदीप्यमान ( त्वेषम् ) प्रकाशमान ( नामं ) नाम है उसकी हम लोग ( नमोभिः ) सत्कारों से ( गृणीमसि ) प्रशंसा करने हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—विद्यार्थियों की याचना है कि जो विद्या ग्रहण करावे उसका सदा सत्कार करें । जिसकी बंधक शास्त्र में प्रसिद्धि है उसी से बंधविद्या का अध्ययन करना चाहिए ॥ ८ ॥

अब राजपुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुष उग्रो बभ्रुः शुक्रोभिः पिपिशे हिरण्यैः ।

ईक्षानादस्य सुवन्स्य भूरेन वा उ योषद्रादसुर्यम् ॥९॥

पदार्थ—हे पुरुष ( पुरुषम् ) बहुत रूपों से युक्त ( उग्रः ) क्रूरस्वभावी ( बभ्रुः ) उत्तम व्यवहारों को धारण करनेवाले आप ( स्थिरेभिः ) दृढ़ ( अङ्गैः ) अवयवों से ( शुक्रोभिः ) शुद्ध वीर्य ( हिरण्यैः ) और किरणों के समान तेजों से ( ईक्षानात् ) ईश ( राजात् ) पापियों को रक्षानेवाले जगदीश्वर से ( अस्य ) इस ( सुवन्स्य ) सर्वाधिकरण लोक के ( भूरे ) बहुरूपियों के ( नः ) जैसे जैसे मनुष्य ( पिपिशे ) पीसते हुए ( उ, वं ) वही आप ( असुर्यम् ) असुर के स्वस्व का ( योषत् ) वियोग कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो तीव्र और सृष्ट स्वभाववाले हैं वे जैसे जगदीश्वर के बसाये हुए भूमि आदि पदार्थ वृद्ध और सुन्दर हैं वैसे बलिष्ठ प्रशमनीय सेनाओं से दुष्टों का विजय कर असुरभाव का निवारण करें ॥ ९ ॥

अर्हन्निमर्षि सार्वकानि धन्वाह्निष्कं यजत विश्वरूपम् ।

अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्यं न वा ओजांयो रुद्र स्वदस्ति ॥१०॥१७॥



**पदार्थ—**हे (वृद्ध) बुढ़ों को दलानेवाले ! जो आप (अहम्) योग्य होते हुए (सम्पत्कामि) मन्त्र और अस्त्रों को (वृद्ध) तप्य मनुष्यों आदि को (विशेष) धारण करते हैं वा (अहम्) योग्य होते हुए (विशेषकम्) विषय-विषय रूपवाले (वस्तु) सज्जस करने योग्य (विशेष) सुवर्ण के आभूषण की धारण करते वा (अहम्) योग्य होते हुए (वस्तु) इस (अव्यय) महान् (विशेषकम्) समस्त जगत् की (वस्तु) रक्षा करते हैं इस कारण (स्वत्) आपसे अन्य (जीवीयः) बलवाला (न) नहीं है ॥ १० ॥

**भाषार्थ—**जो योग्यता को प्राप्त होकर आमुष, सेना, राज्य और धन को धारण करते तथा सब भर्मात्माओं पर दया करते हैं वे बलिष्ठ होते हैं ॥ १० ॥

**स्तुति भूतं सर्वसत् पुमानं भुगं न भीषन्पुष्टनुमुपम् ।**

**शुद्धा जग्निरे शूद्र स्तवानोऽन्य ते अस्मभिः कपन्तु सेनाः ॥११॥**

**पदार्थ—**हे (वृद्ध) अन्यायकारियों को दलानेवाले सेनापति ! आप (भुगम्) सिंह के (न) समान (भीमम्) भयङ्कर (अनुपम्) जो मुने हैं उस (गर्जन्मयम्) गर मे बैठकर (उपहस्यम्) और समीप में मारते हुए (उपम्) क्रूर (कुलाम्) पूर्ण बलवाने पुष्ट की (स्तुति) स्तुति कर और (जग्निरे) स्तुति करनेवाले के लिए (शूद्र) सुखी कर (स्तवानः) स्तुति करता हुआ (अन्यम्) और भर्मात्मा की प्रशंसा कर जिससे विद्वान् (अस्मत्) मेरी उत्तेजना से (ते) मेरी (सेनाः) सेना अर्थात् बल को (नि, कपन्तु) विस्तारें ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राज्य बढ़ाने की इच्छा करें वे सिंह के समान शत्रुओं से भयङ्कर और भेष्टा में आनन्द देनेवालों का राज कार्य और सेना में सत्कार कर और उनको आज्ञा दे न्याय से निरन्तर राज्य की चालना करें ॥ ११ ॥

अब विद्याध्ययन विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।**

**भूरदातारं सत्यति शृणीवे स्तुतस्त्वं मेवजा रास्यस्मे ॥१२॥**

**पदार्थ—**हे (वृद्ध) बुढ़ों को दलानेवाले विद्वान् ! (स्तुत) प्रशंसा को प्राप्त (त्वम्) आप (पितरम्) पिता को (कुमार) बड़ा बच्चा (चित्) जैसे बसे (वन्दमानम्) स्तुति को प्राप्त और (उपयन्तम्) समीप आते हुए (भूर) बहुत पदार्थ के (दातारम्) देने वा (सत्यतिम्) सज्जनों के पासनेवाले विद्वान् के प्रति (नानाम) नमस्कार करता वा (शृणीवे) उस की स्तुति करते हैं तथा (अस्मे) हम लोगों के लिए (मेवजा) ओषधों को (रासि) देता है इस से हम लोगों को मत्कार करने के योग्य हैं ॥ १२ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अच्छा पुत्र पिता का सत्कार करता वा नमता वा स्तुति करता है वैसे अच्छा विद्यार्थी पढ़ानेवाले को प्रसन्न करता है ॥ १२ ॥

अब फिर वैद्यक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**या वो मेवजा मरुतः शुचीनि या शतमा वृषणो या मयोधु ।**

**यानि मनुरहंणीता पिता नस्ता शङ्ख योरक्ष रुद्रस्य वज्रि ॥१३॥**

**पदार्थ—**हे (वृद्ध) बुढ़ों को दलानेवाले विद्वान् ! जैसे (मरुत) मनुष्यों को और (या) जिन (शुचीनि) शुद्ध वा (या) जिन (शतमा) अतीव सुख करने वा (या) जिन (मयोधु) सुख की भावना देने वा (वज्रि) जिन रोग निवारनेवालों (मेवजा) ओषधों को (व) तुम्हारे लिए (मनु) वैद्य विद्या जाननेवाला (पिता) पिता (अहंणीता) स्वीकार करता है वह तुम्हारे (शङ्ख) और हमारे लिए (वो) न्याय करने (वज्रस्य) और दलानेवाले रोग की निवृत्ति के लिए (या, व) और कल्याण की भावना के लिए होती बैसी मैं (वज्रि) कामना कहूँ ॥ १३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाक्यकृतोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए की पिता और पितामहों तथा अध्यापक वा अन्य विद्वानों से प्रति रोग के निवारण के अर्थ ओषधियों को जानकर अपने और दूसरों के रोगों को निवारण करके सब के लिए सुख की कांक्षा करें ॥ १३ ॥

**परि णो हेती रुद्रस्य वृद्धाः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।**

**अब सिद्धा यद्यवद्व्यस्तनुज मीहवस्तोकाय तनयाय शूद्र ॥१४॥**

**पदार्थ—**हे (जीवः) सुख से सींचनेवाले वैद्य ! जो (वृद्ध) बुढ़ों देनेवाले रोग को (हेति) वज्र से पीड़ा के समान वा (वृद्धा) वर्जने योग्य पीड़ा और (त्वेषस्य) प्रदीप्त अर्थात् प्रवण की (दुर्मति) दुष्ट मति (नः) हम लोगों को (परि) सब ओर से प्राप्त होवे । तथा जो (महवद्व्यस्तनुज) प्रशंसित जनवालों से (वृद्ध) प्रशंसनीय वाणी हम लोगों को सब ओर से प्राप्त हो और (सिद्धा) स्थिर पदार्थों को (गात्) प्राप्त हो उनको (सोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए सम्मान के लिए (तनयाय) जो कि कुमारावस्था को प्राप्त है उसके लिए विस्तारो । और उन से सब को (शूद्र) सुखी करो और रोगों को (अब, तनुज) दूर करो ॥ १४ ॥

**भाषार्थ—**मनुष्यों की उत्तम शिक्षा से दुष्ट मति को तथा वैद्यक रीति से सब रोगों को निवारण कर अपने कुल को सब सुखी करना चाहिए ॥ १४ ॥

**यथा बभ्रो वृषम वेकितान यथा देव न हृणीवे न हंसि ।**

**इवनभर्षी रुद्रे वीधि बृहद्वेदेम विदधे सुवीराः ॥१५॥१६॥**

**पदार्थ—**हे (वभ्रो) धारण वा पोषण करने वा (वृषम) रोग निवारण करने से बल के देने वा (वेकितान्) विज्ञान देने वा (देव) मनोहर (वृद्ध) और सर्व रोग निवारनेवाले । जिस कारण (इवनभर्षी) देने-लेने को सुननेवाले आप (इह) इसमें (यथा) जैसे (न) हम लोगों के सुखों को (न) नहीं (हृणीवे) हर्ते हैं सब के सुख को (वीधि) जानें इससे हम लोग (सुवीराः) सुन्दर पराक्रम को प्राप्त होते हुए ही वैसे (विदधे) ओषधियों के विज्ञान व्यवहार में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥ १५ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो वैद्यजन राज्य और न्याय के अधीन हो वे अन्याय से किसी का कुछ भी धन न हर्ते न किसी का मारें किन्तु सब अच्छे पथ और ओषधों के व्यवहार सेवन से बल और पराक्रम को बढ़ावें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में वैद्य, राजपुरुष और विद्या ग्रहण के व्यवहार वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह अठारहवाँ वर्ग और तेतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

॥

धारावरा इत्यस्य पञ्चवर्षास्य बहुस्त्रिंशत्तमस्य सुक्तस्य मूलमन्त्र इति । मरुतो देवताः । १, ३, ८, ९ निचुञ्जगती, २, १०—१३ विराड्वज्रती;

४—७, १४ जगती छन्दः । निचव स्वरः । १५ निचुत् जिष्टुः

छन्दः । वीजत स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले चौतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम द्वितीय मन्त्र में विद्वानों के विषय का वर्णन करते हैं—

**धारावरा मरुतो वृष्णोऽसौ यथा न मीमास्तविषीमिरचिनः ।**

**अग्रयो न शुशुचाना ऋजीविणो धृमि धर्मन्तो अप गा अवृषत ॥१॥**

**पदार्थ—**हे विद्वानो ! (धारावरा) धाराप्रवाह शिक्षित वाणियों के बीच स्थित जिन की वाणी (वृष्ण) वे मरणधर्मयुक्त (मीमा) बुढ़ों के प्रति भयङ्कर (यथा) सिद्धों के (न) समान (वृष्णोऽसौ) पराक्रम को धारण किये हुए (शुशुचाना) शुद्ध वा सींचनेवाले (अग्रयो) पावक अग्नियों के (न) समान (विषीमि) बलयुक्त सेनाओं से (अचिनः) सत्कार करनेवाले (अजीविणः) कोमल स्वभावी मनुष्य (धृमि) अनवस्था को (अप, अवृषत) दूर करते हुए आप (गाः) सुशिक्षित वाणियों को (अवृषत) स्वीकार करें ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य पावक के समान पवित्र जल के समान कोमल, सिंह के समान पराक्रम करनेवाले, वायु के समान बलिष्ठ होकर अन्याय को निवृत्त करें वे समस्त सुख को प्राप्त हो ॥ १ ॥

**यावो न स्तुभिश्चितयन्त स्वादिनो व्यःत्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।**

**रुद्रो यदो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषार्जनि पृथ्व्याः शूक्र उधनि ॥२॥**

**पदार्थ—**हे (रुक्मवक्षसः) दीप्ति और अभिप्रीतियुक्त हृदयवाले (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! (वः) तुम लोगों के लिए (वत्) जो (वृषा) सुख को सींचने और (रुद्रः) बुढ़ों को दलानेवाला मनुष्य (पृथ्व्याः) अन्तरिक्ष के बीच (शूक्र) सींच करनेवाली (अजनि) रात्रि में (अजनि) उत्पन्न करे वा (आजनि) प्रक्षण करनेवाले आप लोग (स्तुभिः) नक्षत्रों से (वृष्टा) प्रकाशों के (न) समान (चितयन्त) व्यवहारों को पवित्र करें और (अभिया) बदलों को (वृष्टयः) वर्षाओं के (न) समान (चिदुतयन्त) विशेषता से प्रकाशित करें, वह और आप माननीय हो ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो नक्षत्रों के साथ सूर्य के समान बदलों के साथ बिजुली के समान विद्या व्यावहाररूपी प्रकाश में रमते हैं वे सोने के लिए रात्रि के समान सब के सुख के लिए होते हैं ॥ २ ॥

अब राज विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**उसन्ते अश्वोऽस्योऽवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।**

**हिरण्यशिप्रा वक्षसो दधिध्वजः पृथं याथ पृथतीभिः समन्वयः ॥३॥**

**पदार्थ—**हे (वक्षस्यः) जोष में भरे (मरुतः) मनुष्यो ! जैसे (अश्वान्) घोड़ों को (अवाजिषु) निरन्तर चलनेवाले घोड़ों के समान वा (आजिषु) सन्ध्या में (वक्षस्य) जल से पूर्ण बड़े जलाशय के बीच (कर्णैः) नौकाओं के चलानेवालों के समान (आशुभिः) शीघ्र चलनेवाले घोड़ों के साथ (तुरयन्ते) शीघ्र चलाने हैं वा (हिरण्यशिप्राः) सुवर्ण के लवण मुखवाले (दधिध्वजः) बुढ़ों को कौपाते हुए (पृथतीभिः) पवन की गतियों के समान गतियों से युक्त धाराओं से (पृथम्) सींचने योग्य को (उक्षन्ते) सींचने हैं वैसे हम व्यवहार को तुम लोग प्राप्नो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शिक्षा करनेवाले जन बीड़ों को वा लेवट नाव को उत्तम रीति पर चलाने हैं वैसे राजजन अपनी सेना को पहुंचावें ॥ ३ ॥

**पृष्ठे ता विन्धा सुर्वना ववसिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।**

**पृष्ठदन्धासो अनवभ्रराधसः क्रजिप्यासो न वयुनेषु पृष्ठदः ॥४॥**

पदार्थ—( जीरदानवः ) साधारण जीव वा ( पृष्ठदन्धासः ) स्थूल अथ जिन्होंने सींचे वा ( अनवभ्रराधसः ) जिन का धन नीचे नहीं गिरा वा ( पृष्ठदः ) जो धुर पर स्थिर होनेवाले ( क्रजिप्यासः ) वा जो कोमलपत्र को बढ़ाते हैं ( न ) उन के समान ( मित्राय ) मित्र के लिए ( वा ) अथवा जिस कारण इस के लिए ( पृष्ठे ) जलादिको से सींचे हुए पृथ्वीमण्डल पर जो ( विन्धा ) समस्त ( सुर्वना ) लोकलोकान्तर ( सवम् ) वा स्थान ( आ, ववसिरे ) अच्छे प्रकार रोष को प्राप्त हों ( ता ) वे ( वयुनेषु ) उत्तम जानो में बढ़ते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो दुष्टों के लिए क्रोध करते वा श्रेष्ठों को आनन्द देते हैं वे बुद्धिमान होते हैं ॥ ४ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**इन्धन्वमिधेनुमी रश्मिधमिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजहृष्यः ।**

**आ ईसासी न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय महतः समन्यवः ॥५॥**

पदार्थ—हे ( आइवृद्धयः ) प्रकाश को प्राप्त हुए ( समन्यवः ) क्रोधों के साथ वर्तमान ( महतः ) मरणधर्मा । तुम लोग ( इन्धन्वमिधः ) प्रदीप्त करनेवाली ( मधोर्मिः ) वाणियों से वा ( रश्मिधमिः ) प्रकट शब्दरूपी धनो से ( अध्वभिः ) जो कि ध्वस्त मण्ड न हुए उन ( पथिभिः ) मार्गों से ( हस्तासः ) हमों के ( न ) समान ( मधोः ) मधुर सम्बन्धी ( मदाय ) हर्ष के लिए ( स्वसराणि ) दिनों को ( आ, गन्तन ) जाओ, प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे आकाश मार्ग से हंस अभीष्ट स्थानों को सुख से जाने हैं वैसे सुशिक्षित-वाणी से विद्यामार्गों को और धर्म पथों से सुखों को नित्य तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

**आ नो ब्रह्माणि महतः समन्यवो नरा न शंसः सर्वनानि गन्तन ।**

**अश्वामिष पिप्यत वेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥६॥**

पदार्थ—हे ( समन्यवः ) क्रोध में युक्त ( महतः ) मनुष्यों । तुम ( न ) हम लोगों के लिए ( ब्रह्माणि ) धनो को ( कर्ता ) मिट्ट करो ( अश्वामिष ) घोड़ों के समान ( ऊधनि ) रात्रि में ( वेनुम् ) वाणी को ( पिप्यत ) प्राप्त होओ ( नरा ) मनुष्यों की ( न ) जैसे ( शंस ) स्तुति वैसे ( सर्वनानि ) ऐश्वर्यों को ( आ, गन्तन ) प्राप्त होओ ( जरित्रे ) स्तुति करनेवाले के लिए ( वाजपेशसम् ) विज्ञान का जिस में रूप विद्यमान उम ( धियम् ) उत्तम बुद्धि को सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य मनुष्यस्वभाव में उत्पन्न हुई प्रशंसा को प्राप्त हाके विद्या, वाणी और उत्तम बुद्धि को बढ़ाकर सर्व मनुष्यों को सुखों से अलङ्कृत करें वे सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

**तं नो दात महतो वाजिनं रथं आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।**

**इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवें सनि मेधामरिष्ठं दुष्टं सहः ॥७॥**

पदार्थ—हे ( महतः ) प्राणवायु के समान प्रिय । ( नः ) हम लोगों के लिए ( तम् ) उम समस्त विद्या की स्तुति करनेवाले को ( दात ) देओ ( रथे ) रथ के निर्मित ( वाजिनम् ) सुशिक्षित घोड़े को देओ ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन ( चितयत् ) चिन्ताते हुए ( आपानम् ) व्यापक ( ब्रह्म ) धन वा अन्न को ( वृजनेषु ) बलों में ( स्तोतृभ्यः ) सकल विद्याओं के प्रयोजनवेत्ताओं के लिए ( इषम् ) इष्ट प्रयोजन को ( कारवें ) करनेवाले के लिए ( सनिम् ) अलग-अलग बड़ी हुई ( मेधाम् ) उत्तम बुद्धि का और ( अरिष्टम् ) अविनष्ट ( दुष्टम् ) दुःख से तैरने का योग्य ( सह ) बल को देओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का चाहिए कि मदैव सब के लिए सकल विद्या बतानेवाला, धर्म से मचित किया हुआ धन विद्वानों के देने के लिए अन्न, उत्तम प्रज्ञा और पूर्ण बल को याचे अर्थात् मांगे। विद्वान् जन निश्चय से याचकों के लिए उन उक्त पदार्थों का निरन्तर देवें ॥ ७ ॥

**यद्युज्जतं महतीं वक्मवससोऽन्वान रथेषु भग आ सुदानवः ।**

**वेतुर्न शिखे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिवम् ॥८॥**

पदार्थ—हे ( वक्मवससः ) सुवर्ण के समान वक्षस्थलवाले ( सुदानवः ) उत्तम पदार्थों के दानकर्ता ( महतः ) विद्वान् पुरुषों । ( अगे ) ऐश्वर्य के होते ( रथेषु ) यानों में ( यत् ) जिन ( अन्वान् ) जोड़े वा अग्न्यादि पदार्थों को ( युज्जते ) युक्त करत वा ( स्वसरेषु ) दिनों के बीच ( शिखे ) बालक वा जो ( रातहविषे ) देने योग्य दे चुका उन ( जनाय ) सत्पुरुष के लिए ( वेतुः ) दुःख देनेवाली गौ बछड़े को ( न ) जैसे वैसे ( महीम् ) अत्यन्त ( इवम् ) इच्छा को ( आ, पिन्वते ) अच्छे प्रकार सींचने हैं उन सब को सब लोग अच्छे प्रकार प्रयुक्त करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यों ! जैसे अच्छी शिक्षा की प्राप्ति विद्वान् जन जोड़े आदि पशुओं को और अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग कार्य-सिद्धि के लिए करते हैं वैसे अनुष्ठान करो, ऐसे करने से जैसे गौ अपने बछड़े को तुच्छ करती हैं वैसे ये प्रयोग करनेवालों को घनी करते हैं ॥ ८ ॥

फिर राजपुरुषों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यो नो महतो वृकताति मन्यो रिपुर्द्वे वंसवो रक्षता रिषः ।**

**वर्चयत तपुषा चक्रियामि तमव रुद्रा अशसो हस्तना वधः ॥९॥**

पदार्थ—हे ( वरुषः ) वसु सन्नावाले ( महतः ) विद्वान् मनुष्यों । ( यः ) जो ( वृकताति ) वृक्ष ही ( मर्त्यः ) मरणधर्मा ( रिपुः ) शीघ्र ( तपुषा ) सब और से ताप देनेवाले क्रोध आदि से ( न ) हम लोगों को ( वधे ) धारण करता है उसमें ( रिषः ) हिसको को अलग ( रक्षतः ) रक्षकों । हे ( रुद्राः ) दुष्टों को कलाने वाले मध्यम विद्वानों । तुम ( चक्रिया ) चक्र से ( अशसः ) अहिमक जो दूसरों का विनाश नहीं करता उस को ( अब, हस्तन ) न मारो जो हम लोगों की रक्षा करता है उस की मज और से रक्षा करो । जिसने और वा ( वधः ) वध किया है उस को कारागृह अर्थात् जेलखाना में ( अभि, वर्चयत ) मज और में वर्त्ताओ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को हिमको में प्रजाजनों को अलग रख मनुष्यों का निवारण कर वा बांधके धर्म से राज्य की शिक्षा करनी चाहिए ॥ ९ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**चित्रं तद्वो महतो यामं चेकिते पृथन्या यदूर्ध्वपथो बृहः ।**

**यदा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जरायं चुरतामदाम्याः ॥१०॥२०॥**

पदार्थ—हे ( नवमान्या ) न तट करने योग्य ( रुद्रियाः ) मध्यम विद्वानों के सम्बन्धी ( महतः ) मनुष्यों । ( यत् ) जिस ( नः ) तुम्हारा ( चित्रम् ) अद्भुत ( यामं ) योग्य कर्म वा ( यत् ) जिस ( पृथन्या ) अन्तरिक्ष में सिद्ध हुए ( रुद्रः ) जल वा दूध के अधिकरण को ( आपय ) मित्र भाव का प्राप्त हुए ( बृहः ) परिपूर्ण करते हैं ( वा ) अथवा ( य ) जो ( नवमानस्य ) स्तुति करने की ( निदे ) निन्दा करनेवाले के लिए ( त्रितम् ) हिमा करनेवाले को ( चुरताम् ) जीर्णों की ( जराय ) स्तुति करनेवाले के लिए ( अपि ) भी ( चेकिते ) जानना है ( तत् ) उसको तुम जेओ ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे विद्वाना । तुम निन्दा करने योग्य की निन्दा तथा स्तुति करने योग्य की प्रशंसा कर अद्भुत कर्मों को करो, जिससे पूरी आयु भोग, वृद्धावस्था पाकर मरण हो उम अनुष्ठान को करो ॥ १० ॥

**तान्वो महो महत एवयात्रो विष्णोरेषस्य प्रभृये हवामहे ।**

**हिरण्यवर्णान्कुकुहान्यतस्त्र्यो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥**

पदार्थ—हे ( महतः ) मनुष्यों । जैसे हम लोग ( नः ) तुम्हारे लिए ( तात् ) उन को ( एवस्य ) ऐश्वर्यवान् ( विष्णो ) व्यापक ईश्वर के ( प्रभृये ) अत्युत्तम पालन में ( महः ) महान् व्यवहार के ( एवयात्रो ) इस प्रकार विशेष ज्ञान को पाते हैं ( हिरण्यवर्णान् ) हिरण्य—सुवर्ण के समान वर्णवाले ( कुकुरात् ) बड़े ( वल्लभः ) नियम से यजपाओं के रखनेवाले को ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं और ( ब्रह्मण्यन्तः ) अपने को ईश्वर वा वेद की इच्छा करते हुए विद्वानों को ( शंस्यम् ) प्रशंसनीय ( राध ) धन की ( ईमहे ) याचना करते हैं वैसे तुम हमारे लिए प्रयत्न करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—उम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि परम्परा एक-दूसरे से प्रीति के साथ और दुष्टों में अघ्नीति के साथ वर्त्त कर व्यापक ईश्वर की अर्पित से प्रयत्न करें ॥ ११ ॥

**ते दशन्वाः प्रथमा यज्ञमृहिरे ते नो हिन्वन्तुषतो व्युष्टिसु ।**

**उषा न रात्रीरुषैरपौणुते महो व्योतिषा शुचता गोअर्थासा ॥१२॥**

पदार्थ—जा ( दशन्वाः ) दशो इन्द्रियों से सिद्धि को प्राप्त होते हैं वे ( प्रथमा ) बहुत विस्तारयुक्त बुद्धिवाले मुख्य विद्वान् जन ( यज्ञम् ) यज्ञ की ( ऊहिरे ) प्राप्त होते हैं ( ते ) वे ( उषसः ) प्रभात काल के ( व्युष्टिसु ) प्रतापी में ( नः ) हम लोगों को ( हिन्वन्तु ) बढ़ावें । जो ( अरुषः ) लाल वर्णों से ( महः ) बड़े ( गोअर्थासा ) जिसमें कि किरण और प्रकाश विद्यमान ( शुचता ) जो पवित्र वा पवित्रता है उम ( व्योतिषा ) प्रकाश से ( रात्रीः ) आराम की देने वाली रात्रियों को ( उषा ) प्रभात समय के ( न ) समान ( अथ, ऊहति ) न ठीकते अर्थात् प्रकट करते हैं ( ते ) वे हमारे शिक्षक हों ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो क्रियाकाण्ड में कुशल जितेन्द्रिय जन प्रभातकाल के समान अविद्यान्धकार की निवृत्ति करनेवाले मनुष्यों को विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ाते हैं वे सबको सत्कार करने योग्य हैं ॥ १२ ॥

**ते शोणीमिरुणेभिर्नाजिभि रुद्रा भूतस्य सदर्नेषु वाह्युः ।**

**निमेघमाना अत्येन पाजसा सुधुन्द्र वणी दधिरे सुपेक्षसम् ॥१३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! तुमको ( वायुः ) वायु ( अक्षीणिः ) पृथिवियों से ( अक्षिणिः ) प्रकट करवाहारी से ( अक्षीणिः ) कुछ ललाठी लिए प्रकाशों के समान ( अक्षीणिः ) जल के ( सन्धिः ) स्थानों से ( अक्षीणिः ) बहते हैं वा ( निम्नस्थानाः ) निम्नस्थानों से जल ( अक्षीणिः ) अक्ष के समान रूप से और ( वायुः ) जल से ( सुपेक्षितः ) सुन्दर रूपयुक्त ( सुपेक्षितः ) सुन्दरता से वर्तमान सुवर्ण के समान ( अक्षीणिः ) स्वरूप को ( अक्षीणिः ) धारण करते हैं ( ते ) वे जानने योग्य हैं ॥१३॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे पत्तों के साथ प्रकाशलेखी बहकर दल होता और समस्त विविध प्रकार का रूप प्रकट करती है वैसे तुमको अच्छा अपना रूप धारण कर वायुविद्या का प्रकाश करना चाहिए ॥ १३ ॥

**तां इषानो महि बह्व्यसूतय उप घेदेना नयसा गृणीमसि ।**

**श्रितो न यान् पञ्च होतृन्मिहय आववर्त्तवरां चक्रिमावसे ॥१४॥**

**पदार्थ—**हम लोग ( अक्षीणिः ) अभीष्ट सुख की ( कृतये ) रक्षा आदि के अर्थ ( इषानः ) प्राप्त होता हुआ कोई जन ( श्रितः ) जो शरीर, मन और आत्मा सम्बन्धी सुख को विस्तृत करता है उसके ( न ) समान ( मायुः ) जिन ( पञ्च ) पाँच ( अवस्थाः ) अवस्थाओं ( होतृन् ) पहन करनेवालों को और पाँच अवस्थाओं ( अक्षिणिः ) वाक के समान वर्तमानों को अभीष्ट सुख वा ( अक्षीणिः ) कामना के लिए ( आववर्त्तय ) सब ओर से वर्तता है ( तां ) उनको ( कृतये ) रक्षा आदि के लिए ( महि ) बड़े ( बह्व्यसूतय ) श्रेष्ठ घर को प्राप्त हो ( च, इत् ) ही निश्चय कर ( एवा ) इस ( नयसा ) नमस्कार से ( उप, गृणीमसि ) उपस्तुत करते हैं अर्थात् उनकी अति निकटस्थ ही स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कर्मोपासना और ज्ञानविद्या का ज्ञानलेखनी अमले-पिछले पत्तों को जालकर अपनी और दूसरों की रक्षा के लिए वर्तमान है वैसे हम लोग प्रवृत्त हो । जैसे उत्तम प्रासाद को प्राप्न होकर लोग सुखी हो वैसे हम भी होवे ॥ १४ ॥

**यया रवं पारयथात्यहो यया निदो सुश्रय वन्दितारम् ।**

**अर्वाची सा मन्दतो या व ऊतिरो धु वाश्रव सुमतिर्निगातु ॥१५॥**

**पदार्थ—**हे ( अक्षीणिः ) मरणधर्मा मनुष्या ! ( या ) जो ( कृतये ) रक्षा ( सुमतिः ) और सुन्दर बुद्धि ( ओ ) प्रेरणाओं से ( व, ) तुम लोगों की ( वाश्रव ) मनोहर के समान ( सुमतिः ) प्रशंसा करे वा ( यया ) जिससे ( रश्मिः ) अच्छे प्रकार की निद्रा को ( अतिपरबन्ध ) अतीव पार पट्टाओं और ( अहो ) अपराध को निवृत्त करो वा ( यया ) जिससे ( निवः ) निन्द्याओं को ( सुश्रय ) मोक्ष अर्थात् छोड़ो ( ता ) वह ( अर्वाची ) छोड़ो को प्राप्त होने वाली कोई क्रिया ( वन्दितारम् ) वन्दना करनेवाले को प्राप्त हो ॥१५॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य जिस क्रिया से अशर्म और निन्दा करनेवाले का त्याग और धर्म वा प्रशंसावाले का ग्रहण रक्षा बुद्धि की वृद्धि हा उस क्रिया को निरन्तर करें अर्थात् सदा निन्दा का त्याग और स्तुति का स्वीकार करें ॥१५॥

इस सूक्त में विद्वान् और पवन के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह अतीतसर्वा सुक्त और इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अपेक्षितस्य पञ्चमस्तस्य पञ्चमस्तस्य सुक्तस्य मृत्समस्तः अक्षिः । अपाज्जपाद्-

वेक्ता । १, ४, ६, ७, ८, १०, १२, १३, १४ विद्वत्सुक्तः

११ विराट् विद्वत्सुक्तः १४ विद्वत्सुक्तः । वेक्ताः स्वरः । २, ३, ८

धुरिक् पङ्क्तिः ; ५ स्वराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पञ्चमः अक्षरावाले पंक्तिसर्ग सुक्त का आरम्भ है उसके

प्रथम मन्त्र में अग्नि के विषय को कहते हैं—

**उर्वेमसुति वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरौ मे ।**

**अयां नपादाहुरेमा कुवित्सुपेक्षसस्करति जीर्षिचदि ॥१॥**

**पदार्थ—**जो ( वाजयुः ) अपने को विज्ञान और अन्नादिकों की इच्छा करने-वाला ( वाजयुः ) जल में हुई क्रिया का वा ( उप, ईत् ) समीप में जल को ( अक्षीणिः ) सिद्ध करता है और ( चनः ) चणकान्ति अन्न को ( दधीत ) धारण करे वा जो ( अक्षीणिः ) जलों के बीच न गिरनेवाला ( नाद्यः ) अक्षय्य सम्पत्ति करके को बोधय तथा ( वाजयुः ) अक्षय्य बहनेवाली ( कुवित्सु ) बहु प्रकार की क्रिया और ( मे ) मेरी ( सिद्धः ) वाणी का सम्बन्ध करनेवाला व्यवहार है ( सः, हि ) वही ( सुपेक्षः ) सुन्दर रूपवालों को ( करति ) करे और ( जीर्षिच ) उन्हें हर्ष ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**जो सूर्य जल की बीच और चणकान्ति नदियों को बहाता और अन्नों को उत्पन्न करता, जिसके ज्ञान से प्राणियों को स्वल्पवास करता है वह सक्की कुक्ति के साथ सेवन करने योग्य है ॥ १ ॥

अब ईश्वरस्तुति का विषय अगले मन्त्र में कहा है—

**इमं स्वस्मै इदं वा सुतं नमं बोधेन कुविदस्य वेदत ।**

**अयां नपादसुर्वस्य महा विशान्वयो धुवना जज्ञान ॥२॥**

**पदार्थ—**जो ( नपात् ) अविनाशी ( अक्षीणिः ) सर्वस्वामी ईश्वर ( नपात् ) अपने महत्त्व से ( विशान्वि ) समस्त ( धुवना ) लोकलोकान्तरी को ( जज्ञान ) उत्पन्न करता है वा जो ( अक्षीणिः ) जलों के बीच ( कुविद ) बहुत व्यवहार को ( वेदत् ) जाने वा ( अक्षीणिः ) इस ( अक्षीणिः ) मेघ के बीच उत्पन्न हुए व्यवहार का प्रबन्ध करता है उस ( इदं ) इदं के समीप स्थित ( अक्षीणिः ) इस ईश्वर के लिए ( इदम् ) इस ( सुतं ) सुन्दर सुख के सिद्ध करनेवाले व्यवहार वा ( नमः ) विचार को हम लोग ( कुविदस्य ) अच्छे प्रकार कहें ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने नमः जगत् बनाया उसी की स्तुति, प्रार्थना वा उपामना करो ॥ २ ॥

अब मेघ के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**समन्या मन्त्युप यन्त्यन्याः समानमुर्व नयः पूणन्ति ।**

**समू शुचि शुच्यो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्युरापः ॥३॥**

**पदार्थ—**जो ( अन्याः ) और ( नयः ) नदी ( सवान् ) तुल्य ( ऊर्ध्वम् ) दुःखों के नष्ट करनेवाले को ( संयन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होती वा ( अन्याः ) और ( उप, यन्ति ) उसको उस के समीप से प्राप्त होती हैं ( समू, च ) उसी ( अपां, नपातम् ) जलों के बीच नाशरहित ( दीदिवांसम् ) अतीव प्रकाशमान ( शुचिम् ) पवित्र अग्नि का ( शुच्यः ) पवित्र ( आपः ) जल ( परि, तस्युः ) सब ओर से प्राप्त हो स्थिर होते हैं वे जल सबको ( पूणन्ति ) तृप्त करते हैं ॥३॥

**भाषार्थ—**जैसे नदी आप समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर और शुद्ध जलवाली होती है वैसे जल मेघमण्डल का प्राप्त होकर दिव्य होते हैं वैसे स्त्री अभीष्ट पति और पति अभीष्ट स्त्री को पाकर स्थिरचित्त होते हैं ॥ ३ ॥

अब विवाह विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्ष्यमानाः परि यन्त्यापः ।**

**स शुक्रेभिः शिक्री रेवदस्मे दीदायानिधो घृतनिर्णिगप्सु ॥४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे ( अस्मेरा ) हम लोगों को प्रेरणा देनेवाली ( मर्ष्यमानाः ) निरन्तर शुद्ध ( युवतयो ) युवति ( शिक्रीभिः ) सेवनाओं से ( शुक्रेभिः ) शुद्ध जल वा वीर्यों के साथ ( अक्षीणिः ) नदियों समुद्र को जैसे वैसे ( तस्युः ) उन ( युवतयो ) युवा पुरुष को ( परिप्लवित ) सब ओर से प्राप्त होती वैसे ( सः ) वह, तू ( अनिधः ) प्रकाशमान ( अस्मे ) हम लोगों को ( रेवत् ) धीमान् के समान ( दीदाय ) प्रकाशित कर वा और ( अक्षीणिः ) जलों में ( घृत-निर्णिगप्सु ) जल को पुष्टि देनेवाले सूर्य के समान हम लोगों को श्रेष्ठ उपदेश से शुद्ध कर ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अच्छे प्रकार युवावस्था को प्राप्त युवति स्त्री बहुधर्म से की विद्या जिन्होंने ऐसे हृदय को प्रिय, पूर्ण विद्यावान् युवा पतियों को अच्छे प्रकार परीक्षा कर प्राप्त होती वैसे पुरुष भी इन की प्राप्त हो जैसे सूर्य जल को समीप कर वृष्टि से सब की सुखी करता है वैसे अच्छे प्रकार शुद्ध परस्पर प्रीतिमान विद्वान् विवाह किये हुए स्त्री पुरुष अपने सन्तानों को शुद्ध करने को योग्य है ॥ ४ ॥

**अस्मै तिस्रो अक्षय्याय नारीर्दिवाय देवीर्दिविपन्त्यमम् ।**

**कृता बोप हि मंससं अस्तु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥५॥२२॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो ( कृताश्च ) निष्पन्न हुई-सी ( तिस्रः ) तीन ( देवीः ) निरन्तर प्रकाशमान ( नारीः ) स्त्री हम लोगों के ( अक्षय्याय ) अक्षय्य अर्थात् नष्ट करने को नहीं योग्य ( देवाय ) काम के लिए ( अक्षय्यम् ) अन्न ( दिविपन्ति ) धारण करती है तथा जो ( अक्षय्यम् ) अन्तरिक्ष प्रदेशों में जल ( उप, प्रसवः ) अच्छे प्रकार पाम में बहते हैं उन ( पीयूषम् ) पहले सन्तानों को उत्पन्न करनेवालों का ( सः ) वह विद्वान् सन्तान ( हि ) ही ( पीयूषम् ) अमृत के समान दुग्ध को ( अक्षय्यम् ) पीता है ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । तीन प्रकार की निश्चय स्त्रियाँ होती हैं जो सन्तान पतियों वाली होकर विवाह हो तो सन्तानों की उत्पत्ति के लिए अपने समान पुरुषों से वीर्य लेकर धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करे, जो सन्तानों की विशेष इच्छा न तो बहुधर्म से स्थिर हो ॥ ५ ॥

किर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**अभस्याव जनिमास्य च स्वर्दुहो रिषः संपृचः पाहि सूरिन ।**

**आमासु पृषु परो अक्षय्यं नारातयो वि नञ्जानृतानि ॥६॥**

**पदार्थ—**जिससे ( अभ ) इस व्यवहार में ( अक्षय्यम् ) इस ( अभयस्य ) महान् वीर्य देनेवाले का ( जनिमा ) अन्न होता है उससे यहाँ ( स्वः ) सुख बहुत है जो ( पृषु ) परमोत्तम आप ( आमासु ) घर में हुई ( पृषु ) पुरियों में ( दुहः )



ईष्यं ( रश्मिः ) हिंस्र और ( संपृक्तः ) संयोग करनेवालों के ( सुवीर्य ) सम्बन्धी विद्वानों को ( अमृतस्य, च ) और सहने को न योग्य व्यवहारों को ( बाहि ) रक्षा करो और आपको ( अमृतस्यः ) शत्रुजन ( न ) नहीं पीड़ा देने तथा ( अमृतस्य ) मिथ्या कर्मों को ( न ) नहीं ( विनश्य ) विशेषता से प्राप्त होते हैं ॥६॥

भाषार्थ—जिस कुल के बीच बड़े महात्मा जन उत्पन्न होते हैं वहाँ सुख बढ़ता है और जहाँ शरीर और आत्मा के बलयुक्त मनुष्य हों वहाँ शत्रुजन पीड़ा नहीं कर सकते हैं और बलवान् पुरुष झूठ अथर्वयुक्त कामों का उत्साह नहीं करते हैं ॥ ६ ॥

स्व आ दमे सुदुघा यस्य चेनुः स्वधां पीपाय सुखममिति ।

सो अपां नपादूर्जयमस्य न्तर्वसुदेयय विधत्ते वि माति ॥७॥

पदार्थ—जिसके ( स्वे ) अपने ( दमे ) घर में ( सुदुघा ) सुन्दरता से पूर्ण करनेवाली ( चेनुः ) विद्या और शिक्षायुक्त बाणी प्रवृत्त है ( सः ) वह ( अपासु, नपासु ) प्राणी के बीच अविनाशी होता और ( अमृतस्य ) प्राणी के ( अमृतस्य ) भीतर ( ऊर्जयम् ) बल को प्राप्त होता हुआ ( स्वधाम् ) सुन्दर जल को ( पीपाय ) पीता और ( सुधु ) सुन्दर स्कारों से भावना दी जाती उस ( अमृतस्य ) भोजन करने योग्य अन्न को ( अमृतस्य ) खाता है तथा ( विधत्ते ) सेवा करते हुए ( नुवेयाय ) जिसे धन देना योग्य है उसके लिए ( अमृतस्य, विभाति ) प्रकाश को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अपने सम्बन्धियों में कामों की परिपूर्णाता के लिए सुन्दर शिक्षित बाली, सुन्दर गृहा हुआ जल और सुन्दर संस्कार किये हुए अन्नों की सेवा करते, सुन्दर शिक्षित सेवक के लिए यथायोग्य वस्तु देते और काम पर सब व्यवहारों को सेवते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

यो अस्वा शुचिना देव्येन क्रतावाजस उर्विया निभाति ।

यया इदं न्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीर्यं प्रजामिः ॥८॥

पदार्थ—( यः ) जो ( क्रतावा ) सत्य का अच्छे प्रकार सेवन करता हुआ ( अजसः ) निरन्तर ( देव्येन ) विद्वानों ने किये हुए ( शुचिना ) पवित्र व्यवहार से ( उर्विया ) बहुरूप ( विभाति ) प्रकाशित होता है वह ( अमृतस्य ) और ( भुवनानि ) लोक-लोकान्तों को ( यया ) शाखाओं को तथा ( प्रजामिः ) प्रजा के समान ( इत् ) ही ( अमृतस्य ) व्यापक जलरूपी पदार्थों में जा ( प्रजायन्ते ) उत्पन्न होते हैं उरुह और ( अमृतस्य ) इस समार के बीच जा ( वीर्यं च ) ओषधियाँ ( आ ) उत्पन्न होती हैं उन सबको जाने ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो पवित्र बुद्धि, दिव्य-कर्म करनेवाले निरन्तर सृष्टिकर्म को जानते हैं वे सदा आनन्दित होते हैं ॥ ८ ॥

अपां नपादा हस्यादुपस्य जिह्मानामुध्वो विद्युत वसानः ।

तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यज्ञीः ॥९॥

पदार्थ—जो ( जिह्मानाम् ) कुटिलों के ( ऊर्ध्व ) ऊपर स्थित ( विद्युतम् ) बिजुली को ( वसानः ) आच्छादित करता हुआ ( अपासु, नपासु ) जलो के बीच न गिरने का शीलवाला मेघ ( उपस्यम् ) समीपस्थ पदार्थों को प्राप्त होकर ( आ, अस्वात् ) स्थिर होता है ( तस्य, हि ) उसी की ( ज्येष्ठम् ) अतीव प्रशंसनीय ( महिमानम् ) महिमा को ( वहन्तीः ) प्रवाहरूप से प्राप्त करती हुई ( यज्ञी ) बड़ी ( हिरण्यवर्णाः ) हिरण्य अर्थात् सुवर्ण के समान वर्णवाली नदियाँ ( परि, यन्ति ) सब ओर से जाती हैं वैसे प्रजापति गजा में वसति करे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है । जैसे पवन की महिमा को नदियाँ प्राप्त होती हैं वैसे विद्वान् जन राजा के प्रति वत्ते ॥ ९ ॥

हिरण्यरूपः स हिरण्यमदगपा नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।

हिरण्ययात्परि योर्नेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यक्षमस्मै ॥१०॥२३॥

पदार्थ—जो ( हिरण्यवा ) वायु तेज देते हैं वे ( अमृतस्य ) इस प्राणी के लिए ( अमृतस्य ) अन्न को ( ददति ) देते हैं ( स ) वह ( हिरण्यरूपः ) तेज-स्वरूप ( हिरण्यसंयुक्तः ) तेज को दशाता ( स, इत्, उ ) वही ( हिरण्यवर्णः ) सुवर्ण के समान वर्णयुक्त ( अपासु, नपासु ) जलो के बीच न गिरनेवाला ( हिरण्य-यात् ) तेज स्वरूप ( योर्ने ) निज कारण से ( परि, निषद्या ) सब ओर से निरन्तर स्थिर हुआ अग्नि सबको पालन करता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो अग्नि पवन से उत्पन्न हुआ समस्त पदार्थों को दानेवाला सब पदार्थों के भीतर रहता हुआ सर्वविद्याओं का निमित्त है उसको जानकर प्रयोजन सिद्ध करना चाहिए ॥ १० ॥

तदस्यानीकमुत चाह नामाऽपीष्यं वर्धते नपुंरपासु ।

यमिन्धते युवतयः समिस्था हिरण्यवर्णं घृतमक्षमस्य ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अमृतस्य ) इस अग्नि का ( चाह ) सुन्दर ( अनी-कम् ) सैन्य के समान तेज ( उत ) और ( अपीष्यम् ) अपने गुणों से मिश्रित

( नाम ) आख्या अर्थात् कथन ( अपासु ) प्राणी के ( नपुंः ) पौत्र के समान व्यवहार से ( वर्धते ) बढ़ता है वा ( यम् ) जिसको ( युवतयः ) प्रबल वीर्यवर्ती स्त्री ( इत्या ) इस हेतु से ( समिन्धते ) अच्छे प्रकार प्रदीप्त करती हैं वा जो ( हिरण्यवर्णम् ) तेजोमय शोभन शुद्धस्वरूप ( घृतम् ) जल व घी और ( अमृतम् ) अच्छा शोधा हुआ खाने योग्य अन्न ( अमृतस्य ) इस अग्नि के सम्बन्ध में वर्तमान है उसको तुम जानो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे युवती युवा पुरुष को प्राप्त होकर पुत्र और पौत्रों से बढ़ती है वैसे जो अग्निविद्या को जानते हैं वे धन-वस्तुओं से बढ़ते हैं ॥ ११ ॥

अस्मै बहुनामवमाय सक्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।

सं सानु मार्जिम दिधिषामि बिल्मिर्देधाम्यभैः परि वन्द क्रुमिः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जैसे ( अस्मै ) इस ( अवमाय ) मूल का रक्षा करनेवाले ( बहुनाम् ) बहुत पदार्थों के बीच ( सक्ये ) मित्र के लिए ( नमसा ) अन्नादि पदार्थ ( हविर्भिः ) खाने व देने योग्य पदार्थ और ( यज्ञैः ) भिली हुई क्रियाओं से उत्तम व्यवहार को ( विधेम ) प्राप्त हो वा उसकी सेवा करें वा जैसे मैं जिसके ( सानु ) अच्छे प्रकार से देने योग्य पदार्थ को ( सं, मार्जिम ) अच्छा शुद्ध करूँ तथा ( दिधिषामि ) उपदेश करूँ वा ( बिल्मिः ) उत्तम दीप्ति को प्राप्त साधनों से युक्त ( अमृतम् ) अच्छा संस्कार किये हुए अन्नादि पदार्थों से ( हविर्भिः ) धारण करता हूँ ( क्रुमिः ) मन्त्रों से ( परिबन्धे ) सब ओर से स्तुति करता हूँ उसकी तुम लोग भी सेवा करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है । जैसे मनुष्य बहनों में से अपने मित्र को तृप्त करते हैं वा उनके लिए अन्नपानादि देते हैं । परस्पर हित का उपदेश करते हैं वैसे सब भी इतनी विद्याओं को प्राप्त होकर औरों के प्रति उपदेश करे तथा ऐश्वर्य को प्राप्त होके औरों के लिए दे ॥ १२ ॥

अब इस जगत् में कौन लोग सुख पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

स ई वृषाजनयत्तासु गर्भे स ई शिशुर्धवति तं रिहन्ति ।

सो अपां नपादनभिस्तातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३॥

पदार्थ—( स ) वह ( वृषा ) वर्षा करनेवाला अग्नि ( तासु ) उन जलो में ( ईम् ) ही ( गर्भम् ) गर्भ को ( अजनयत् ) उत्पन्न करता है और ( स ) वह ( शिशुः ) बालक ( ईम् ) ही ( धवति ) पीता है ( तम् ) उसका और ( रिहन्ति ) चाटने हैं ( स ) वह ( अपासु ) जलो के बीच ( अनभिस्तातवर्णः ) जिसका वर्ण सब ओर से क्षीण न हो ( नपात् ) सन्तान ( अन्यस्येव ) जैसे और के शरीर में प्रविष्ट होता वैसे ही ( इह ) इस समार में ( तन्वा ) शरीर के साथ ( विवेष ) व्याप्त होता है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष अपनी स्त्री में गर्भ धारण कर सन्तान को उत्पन्न वा पालन कर और स्वादिष्ट अन्न खा शरीर की प्रमत्ताकृति से चष्टा करते हैं वे इस समार में सुखों को प्राप्त होने हैं ॥ १३ ॥

अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मिर्बिष्वहा दीदिवांसम् ।

आपो नप्रे घृतमक्षं वहन्तोः स्वयमर्कः परि दीयन्ति यज्ञीः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( आप ) प्राण ( अमृतम् ) भोगने योग्य ( अमृत-स्मिन् ) न गिरनेवाले गुण, कम, स्वभावों के साथ ( अस्मिन् ) इस ( परमे ) सबों से अति उत्तम ( पदे ) प्राप्त होने योग्य व्यवहार से ( तस्थिवांसम् ) स्थित ( बिष्वहा ) सब दिग ( दीदिवांसम् ) देदीप्यमान ईश्वर को ( वहन्तीः ) प्राप्त करती हुई ( स्वयम् ) आप ( यज्ञी ) महान् भी ( परि, दीयन्ति ) नष्ट उनके द्वारा ( नप्रे ) पौत्र के लिए ( घृतम् ) जन और ( अमृतम् ) अन्न को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन मन्त्रिदानन्दरूप अपने में स्थित ईश्वर का ध्यान करते हैं वे परमपद ब्रह्म का प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं और उत्तम सुखप्राप्ति से शीघ्र क्षीण नहीं होते ॥ १४ ॥

अयाममग्रे सुक्षिति जनायायांममु मयवद्भ्यः सुहृन्मि ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदये सुवीराः ॥१५॥२४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! जिस ( अयांसम् ) जिससे भूजाएँ प्राप्त हुई ( सुक्षितिम् ) जो सुन्दर पृथिवीयुक्त ( सुक्षितिम् ) जिसकी कुष्ट कर्मों का त्याग करना वृत्ति ( उ ) और ( जनाय ) मनुष्यों के लिए वा ( अयांसम् ) जिससे भूजाएँ प्राप्त हुई ( अयवद्भ्यः ) परम धनवान् मनुष्यों के लिए ( यम् ) जिस ( अयम् ) कल्याणरूपी ( बिष्वम् ) जगत् की ( सुवीराः ) सुन्दर वीर अर्थात् प्राप्त हुआ शरीर बल जिनको वे ( देवाः ) विद्वान् जन ( अयस्मिन् ) रक्षा करते हैं ( तम् ) उसको ( बृहत् ) बहुत ( विदये ) यज्ञ में हम लोग ( वदेम ) कहें अर्थात् उसको उपदेश दें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो जन धर्म के अनुकूल आचरण करनेवालों की अच्छे प्रकार रक्षा और दुष्टों को दण्ड दे जगत् के कल्याण के लिए बड़े-बड़े उत्तम कर्मों को करें वे सबको सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, मेघ, अपश्य, विवाह और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह वेत्तिस्वर्ग सूक्त और औषीस्वर्ग वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

सुम्यमिति वदुष्यस्य वद्विषासमस्य सुक्तस्य सुक्तमव चविः । १ इन्द्रो मधुवन् ,  
३ मरुतो माधवन् ; ३ त्वष्टा माधवन् ; ४ अग्निः सुविषन् , ५ इन्द्रो मधवन् ;  
६ मित्रावरुणौ मधवन् देवता । १, ४ त्वष्टाद् विष्टुम् ;  
५, ६ भुरिक् विष्टुम् कृन्वः । संवतः स्वरः । २, ३ जगती  
कृन्वः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

सुम्यं हिन्वानो वंसिष्ठ गा अपोऽधुसन्त्सीमविभिरद्विभिरनरः ।

पिबन्द् स्वाहा प्रहुतं वषट्कुलं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) यज्ञपति जो ( हिन्वान् ) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ( सुम्यम् ) तुम्हारे लिए ( वंसिष्ठ ) बसे वा, हे ( नर ) नायक सर्वोत्तम जनो ! आप लोग ( अविभि ) रक्षा करनेवाले ( अविभि ) मेघों के साथ ( सीम् ) आदित्य के समान ( गाः ) वाणी और ( अप ) प्राणों को ( अधुसन् ) पूर्ण करो । हे ( इन्द्र ) यज्ञपते ! ( प्रथमः ) आविभूत आप ( स्वाहा ) उत्तम क्रिया के साथ ( प्रहुतम् ) अत्युत्तमता से गृहीत ( होत्रात् ) दान के कारण ( वषट्कुलम् ) क्रिया से सिद्ध किये हुए ( सोमम् ) उत्तम ओषधियों के रस को ( आ, पिब ) अच्छे प्रकार पियो ( यः ) जो आप सबके ( ईशिषे ) ईश्वर हो अर्थात् स्वामी अधिपति हो वह आप भी वैसे होओ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो यज्ञानुष्ठान से जल को शुद्ध कर उसमें उत्पन्न हुए ओषधियों के रस को पीकर धर्म के अनुष्ठान से अपने या औरों के लिए ऐश्वर्य बढ़ाते हैं वे सब ओर में बढ़ते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यज्ञैः संमिश्राः पृषतीभिर्हृष्टिमिर्यामन्धुभ्रासो अजिषु मिया उत ।

आसद्या बहिर्भैरतस्य द्रुनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥२॥

पदार्थ—हे ( भरतस्य ) धारण करनेवाले के ( सुनवः ) पुत्रों ( नर ) नायक मनुष्यों ! जैसे ( समिश्राः ) अच्छे प्रकार मिले हुए ( भ्रासः ) श्वेतवर्ण ( मियाः ) प्यारे जन ( यज्ञैः ) अच्छी क्रियाओं से युक्त ( हृष्टिभिः ) प्राप्ति करनेवाली ( पृषतीभिः ) पवन की गनियों से ( यामन् ) प्राप्त हुए समय में ( उत ) और ( अजिषु ) कामना करने हुआ मे ( बहि ) अन्तरिक्ष को ( आसद्या ) पहुँचकर ( पोत्रात् ) पवित्र व्यवहार से उत्पन्न हुए ( दिवः ) प्रकाश से ( सोमम् ) ओषधियों के रस को पीने हैं वैसे तुम ( आ, पिबत ) पिआ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे पवन अन्तरिक्ष में भ्रमते हुए सब प्राणियों को जिलाते हैं और प्राणस्वरूप से प्यार है तथा सबसे रस ऊपर की पहुँचा और वर्षा कर सबको आनन्दित करते हैं वैसे मनुष्यों को होना चाहिए ॥ २ ॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तं नि बहिषि सदतना रणिष्ठन ।

अथा मन्दस्व जुजुवाणो अन्धसस्त्वष्टदेवेमिर्जनिमिः सुमवृणः ॥३॥

पदार्थ—हे ( त्वष्टः ) छिन्न-भिन्न करनेवाले पुरुष ! ( जुजुवणः ) अच्छे माने हुए गण जिनके ( जुजुवाणः ) ऐसे निरन्तर सेवा करते हुए आप ( देवेभिः ) दिव्य गुणों और ( जनिभिः ) जन्मों के साथ ( अन्धसः ) अन्न के भोगों को कीजिए ( अथ ) इसके अन्तर ( मन्दस्व ) आनन्दित हुआ । हे ( सुहवाः ) अच्छे प्रकार

प्रशंसा को प्राप्त तुम लोग ( बहिषि ) अन्तरिक्ष में ( न ) हमारी ( अमेव ) घर को जैसे वैसे अन्तरिक्ष में ( नि, सबसम् ) निरन्तर जाओ, पहुँचो, हमें ( रणिष्ठन ) उपदेश देओ ( हि ) निश्चय से हम लोगों को ( आ, गन्तम् ) आओ, प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे अन्तरिक्ष में स्थिर पवन सबको प्राप्त होने और छोड़ने हैं वैसे विद्वान् धार्मिक जन धर्म को प्राप्त हो तथा दुष्ट जन अधर्म का त्याग करें, और सत्य का उपदेश दे ॥ ३ ॥

आ वंसि देवा इह विप्र यक्षि चाशन्हीतनि पदा योनिषु त्रिषु ।

प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाभीध्रात्तव भागस्य तृणुहि ॥४॥

पदार्थ—हे ( होत ) सुख देनेवाले ( उशम् ) कामना करने हुए ( विप्र ) मेधावी जन ! आप नियत अपने कर्म वा ( इह ) इस समार में ( देवा ) दिव्य गुणों को ( आ, वंसि ) अच्छे प्रकार कहते ( च ) और प्राप्त हुए कर्मों को ( वंसि ) प्राप्त होते तथा दूसरे प्राणियों को उनका उपदेश देते हैं इसी से ( त्रिषु ) कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनों ( योनिषु ) निमित्तों में ( विप्र ) निरन्तर स्थिर हो और ( प्रस्थितम् ) प्रकर्षता से स्थिर विषय को ( प्रति, वीहि ) प्राप्त होओ ( सोम्यम् ) शीतलगुण सम्पन्न ( मधु ) मीठे जल को ( पिब ) पीओ और ( तव ) तुम्हारे ( भागस्य ) सेवने योग्य व्यवहार के ( आभीध्रात् ) उस भाग से जिससे अग्नि का धारण करते हैं ( तृणुहि ) तृप्त हुआ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य कर्मोपासना और ज्ञानों में प्रयत्न कर सत्य की कामना करते हुए मनुष्यों को अध्यापन और उपदेश से विद्वान् करते हैं वे नित्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

एष स्य तं तन्वीं नृगवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोहितः ।

तुम्यं सुतो मयवन्तुम्यमाभुतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्यिव ॥५॥

पदार्थ—हे ( मयवन् ) अति उत्तम धनवाले ! जो ( ते ) आपके ( तन्वः ) शरीर के सम्बन्धी ( प्रदिवि ) अनीव प्रकाश में ( सह ) बल ( ओज ) पराक्रम तथा ( बाह्वो ) भुजाओं के बीच ( हित ) धारण ( सुत ) और उत्पन्न किया हुआ ( तुम्यम् ) आपके लिए और ( आभुतः ) अच्छे प्रकार पुष्ट किया पुत्र है ( स्व ) सो ( एष ) यह ( नृगवर्धनः ) धन का बढ़ानेवाला होना है ( त्वम् ) आप ( अस्य ) हमके सम्बन्धी ( बाह्वोऽस्मात् ) ब्राह्मण से ( तृपत् ) तृप्त होते हुए ( आ, पिब ) अच्छे प्रकार ओषधि रस को पियो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो तुम्हारे लिए शारीरिक और आत्मीय धन को बढ़ावें उससे धन और उनकी अच्छे पदार्थों से सेवा करो ॥ ५ ॥

जुषेयः यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पृथ्या अनु ।

अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिवतं सोम्यम्मधु ॥६॥२५॥

पदार्थ—हे ( राजाना ) राजजनों ! ( मे ) मेने ( हवस्य ) देने-लेने योग्य व्यवहार सम्बन्धी ( यज्ञम् ) विद्वानों के सत्कार आदि काम को ( जुषेयम् ) सेवो ( पृथ्या ) पूर्व विद्वानों ने मेवम की हुई ( निविदः ) जिन से निरन्तर विषयों को जानते हैं उन वाणियों को ( अच्छ, अनु, बोधतम् ) अच्छे प्रकार अनुकूलता से जानो । जैसे ( सत्त ) प्रतिष्ठित ( होता ) देनेवाला ( आभुतम् ) अत्युत्तमता से ढोपे हुए ( नम ) अन्न को ( एति ) प्राप्त होता है वैसे तुम दानों ( प्रशास्त्रात् ) उत्तम शिक्षा करने वाले से ( सोम्यम् ) शान्ति वा शीतलता के योग्य ( मधु ) मधुर गुणयुक्त रस को ( आ, पिबतम् ) अच्छे प्रकार पियो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे पद्वाने वा उपदेश करनेवाले आप लोगों के प्रति प्रीति से विद्यादान और मत्प्रोपदेश के साथ वत्तमान हैं वैसे आप भी वर्तें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह छत्तीसवें सूक्त पचीसवें वर्ग और सप्तमाध्याय समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्पञ्चमसपरिव्राजकाचार्याणां परब्रह्मणा और्विराजामन्तरस्वतीस्वामिनां

शिष्येण वरसहस्रपरिव्राजकाचार्येण श्रीहृदयामन्तरस्वतीस्वामिना विरचिते

आर्ष्यभाषासमन्विते सुप्रभातयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके

सप्तमोऽध्याय आश्रितः पञ्चमकोऽध्यायः परिपूर्णः । इति ॥



## अथाष्टमाध्यायारम्भः ॥

ओ३सु विश्वानि देव सवितुर्दितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

मन्त्रस्तेत्यस्य षड्वचस्य सप्तविंशतमस्य सूक्तस्य गृत्तमद ऋषिः १—४

द्रविणोदा, ५ अविजनी, ६ अग्निश्च देवता । १, ५ निष्पृच्छन्व ।

२ जगती, ३ विराट् जगती छन्द । निवाड स्वर । ४, ६

भुरिक् निष्पृच्छन्व । चंडत स्वर ॥

अब छ ऋचावाले सैतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं—

मन्द्स्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णा वष्ट्यासिचम् ।

तस्मां प्तं भरत तद्दशो ददिहोत्रास्सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः ॥१॥

पदार्थ—हे (द्रविणोद) धन देनेवाले ! आप (होत्रात्) लेने से (अन्धस) अन्न की (जोषम्) प्रीति का (अनु, मन्धस्व) अनुमान करे और जैसे (स) वह विद्वान् (पूर्णा) पूर्ण वृष्टि को (आसिचम्) अच्छे प्रकार सींचनेवाले की (वष्टि) कामना करता है, वैसे हे (अध्वर्यव) अपने को यज्ञ की इच्छा करनेवाले तुम (तस्मै) उसके लिए (एतम्) इस को (भरत) धारण करो । हे धन देनेवाले पुरुष ! (तद्दश) उस की इच्छावान् (दिह) दाता आप (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (होत्रात्) देनेवाले से (सोमम्) ओषधियों के रस को (पिब) पियो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों का परस्पर के लिए विद्या, धन और धान्य आदि पदार्थ देकर निरन्तर आनन्द करना चाहिए ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यसु पूर्वमह्वे तमिदं ह्वे सेदु हव्यो ददियो नाम पत्यते ।

अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रास्सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः ॥२॥

पदार्थ—हे (द्रविणोद) धन देनेवाले ! जैसे (य) जो (हवि) देने वाला (हव्य) ग्रहण करने योग्य मैं (यम्, उ) जिसको (पूर्वम्) प्रथम (अह्वे) होमना है (स) सो मैं (तम्) उस (हव्यम्) इसको (नाम) प्रमिद (इत्) ही (उ) नर्क-विनर्क के साथ (पत्यते) पति करन अर्थात् रक्षक की इच्छा करने वाले के लिए (ह्वे) ग्रहण करना है । और (अध्वर्युभिः) अपने को हिमा न चाहनेवाले जनों तथा (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ वत्तमान जैसे मैं (प्रस्थितम्) ओषधियां से निकाले हुए (सोम्यम्) रीम के माध्य (मधु) मधुर पुण्युक्त रस को पीता हूँ वैसे (पोत्रात्) पवित्र करनेवाले से (सोमम्) मन्त्रोषधियों के रस को तू (पिब) पी ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अविद्वान् पुरुष विद्वान के साथ मङ्गल कर अन्न-पान आदि परीक्षा करके उनको सेवते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २ ॥

मेघन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीक्यस्वा वनस्पते ।

आयूयां वृणो अभिगूयां त्वं नेष्टास्सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः ॥३॥

पदार्थ—हे (द्रविणोद) धन के देने और (वनस्पते) किरण समूह की रक्षा करनेवाले ! (वृणो) प्रारम्भ आप जैसे (वह्नयो) पदार्थ पट्टवानेवाले (ते) आपके (सोमम्) ओषध्यादि रस को (येभिरीयसे) मक्खिकन अपने को चाहे वा (येभि) जिनके साथ आप (ईयसे) प्राप्त होते हो वैसे उनके साथ (अरिषण्यम्) धन की न काक्षा करने हुए (वीक्यस्व) मृत्ति कीजिए (अभिगूयां) और सब ओर से उद्यम कर (आयूयां) और मल कर (नेष्टात्) प्राप्ति से (त्वम्) आप (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (सोमम्) ओषध्यादि के रस को (पिब) पियो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । किसी को बिना उद्यम के न रहना चाहिए और ऋतुओं के प्रति अनुकूल व्यवहार करके सुख बढ़ाना चाहिए ॥ ३ ॥

अपादोत्रादुत पोत्रादमसांत नेष्टादजुपत प्रयो हितम् ।

तुरीयं पात्रममृत्यं द्रविणोदाः पिबंतु द्रविणोदसः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे (द्रविणोद) धन देनेवाला (होत्रात्) हवन में (उत) और (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (अमृत्यं) मनोहर अन्नादि पदार्थ (हितम्) जो कि सुख करनेवाला है उसको (अपात्) पीये (अमृत्यं) हर्ष को प्राप्त हो (उत) और (नेष्टात्) पदार्थ प्राप्ति से (अजुपत) प्रसन्न हो वैसे (द्रविणोदस) जो धन को भोगता उस ऋत्विज का मनोहर अन्नादि पदार्थ जो सुख करनेवाला (तुरीयम्) चतुर्थ (अमृत्यम्) नाश से रहित (अमृत्यम्) अको-मल (पात्रम्) जो पीने योग्य है उसको (पिबंतु) पियो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो हवन और अपवित्र को पवित्र करनेवाली प्राप्ति से हित लाभ सकते हैं वे प्रीतिमान् होते हैं ॥ ४ ॥

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाह्यं रथं युञ्जामिह वां विमोचनम् ।

पृक्तं हवींषि मधुना हि कै गतमथा सोमं पिबत वाजिनीवसू ॥५॥

पदार्थ—हे (वाजिनीवसू) वेगवती क्रिया को बसानेवाले शिल्पी जनों ! तुम (अद्य) आज (यय्यम्) जो अच्छे प्रकार पहुँचता हुआ (अर्वाञ्चम्) नीचे-नीचे चलनेवाला (नृवाह्यम्) और मनुष्यों को पहुँचाता है उस (रथम्) रमणीय मनोहर यान को (युञ्जामि) जोड़ो और (इह) इस यान में (मधुना) मधुर गुण के साथ वर्तमान जो (हवींषि) देने-लेने योग्य वस्तु है उनको (पृक्तम्) मयुक्त करगो (हि) और निश्चय से (कम्) किस देश को (गतम्) प्राप्त होओ (सोमम्) तथा ओषध्यादि रस को (पिबतम्) पियो (अथ) इसके अनन्तर (वाम्) तुम दोनों का (विमोचनम्) विशेषता से छूटना हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो शिल्पविद्या के पढ़ानेवाले और पढ़नेवाले काष्ठारविकों से निर्माण किये यानों को अग्नि और जलादि से चला और देशान्तर में जाकर धन को अच्छे प्रकार उन्नत करते हैं वे निरन्तर सुख पाते हैं ॥ ५ ॥

जोष्यं समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म अन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।

विश्वेभिर्विश्वां ऋतुनां वसो मह उशन्देवां उषतः पांयया हविः ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! (वसो) निवास करनेवाले अग्नि के समान आप जिस कारण (समिधम्) प्रदीप्त करनेवाली क्रिया को (जोषि) सेवते (आहुतिम्) वेदी में डाली हुई वस्तु (जोषि) सेवते (ब्रह्म) अन्न और (विश्वाम्) सब पदार्थों का (जोषि) सेवन करते (ज्यम्) उत्पन्न करने योग्य पदार्थ वा (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा को (जोषि) सेवत इस कारण (विश्वेभिः) सब (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतुसमूह के साथ (मह) बड़े-बड़े (उषतः) कामना करनेवाले (देवान्) विद्वानों की (उशन्) कामना करते हुए उनको (हविः) देने योग्य वस्तु (पांयया) पियाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली अग्नि काष्ठ आदि पदार्थों का सेवन करके भी नहीं जलाता वैसे ही सबके साथ बसकर उनका नाश न करना चाहिए ऐसा होने पर कामसिद्धि होती है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गल जाननी चाहिए ॥

यह सैतीसवाँ सूक्त और प्रथम वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

उद्दिष्ट्यष्टविंशतमस्यैकादशवचस्य सूक्तस्य गृत्तमद ऋषिः सक्विता देवता ।

१, ५ निष्पृच्छन्व; २ त्रिष्टुप्, ३, ४, ६, १०, ११ विराट्

त्रिष्टुप्छन्व । चंडत स्वर । ७, ८ स्वराट् पङ्क्तिः,

९ भुरिक् पङ्क्तिरछन्व । पञ्चम स्वर ॥

अब अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर

के विषय को कहते हैं—

उदु व्य देवः सविता सवायं शश्वत्तं तदपा वहिरस्थात् ।

नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रन्नमथाभजद्दीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१॥

पदार्थ—जो (वह्निः) पहुँचनेवाला (तदपा) जिसका पहिचानना ही कम है (सविता) सकल जगत् का उत्पादनकर्ता (देव) वेदीप्यमान जगदीश्वर (सवायं) उत्पन्न करने के लिए (शश्वत्तम्) अनादिस्वरूप अनुत्पन्न कारण को (देवेभ्यः) क्रीडा करने हुए जीवों से (नूनम्) निश्चित (वहिरस्थात्) उपस्थित होता है (उ) और (एव) वह (हि) ही (रन्नम्) रमणीय जगत् का (वि, धाति) विधान करता है (अथ) इसके अनन्तर (स्वस्तौ) मूल के निमित्त (वीति-होत्रम्) ग्रहण की ईश्वर की व्याप्ति में अपनी व्याप्ति जिसमें ऐसे जगत् को (अभजत्) सेवता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों ! जो अनादि त्रिगुणात्मक प्रकृतिस्वरूप जगत् का कारण है उसीसे सब जगत् का उत्पन्न कर जो धारण कर रहा है उससे सब जीव निज-निज शरीर और कर्म को सेवते हैं जो इस जगत् को जगदीश्वर न उत्पादन करे तो कोई भी जीव शरीरादि न पा सके ॥ १ ॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विश्वस्य हि अष्टयं देव ऊर्ध्वः मवाहवां पृथुपाणिः सिसृषि ।

आपथिदस्य व्रत आ निर्मृगा मयं चिदातो रमते परिवसन् ॥२॥



**पदार्थः**—हे मनुष्यो ! जो ( अन्व ) यह ( परिष्कृत ) सब ओर से व्याप्त होता हुआ वा ( वातः ) पवन ( वस्त्व ) कीड़ा को करता है ( अन्व ) इसके ( वस्ते ) शीतस्वभाव के निमित्त ( निष्कृता ) निरन्तर बुद्धि के हेतु ( आप ) जल ( चित् ) भी ( आ ) अच्छे प्रकार रमण करते हैं जो ( विश्वस्य ) जगत् के बीच ( ऊर्ध्व ) ऊपर स्थित ( पृथुपाणि ) जिसके विस्तीर्ण हाथों के समान धारण वह ( देव ) दिव्य सुख देनेवाला ( सविता ) जगत् का उत्पन्न करनेवाला ( अण्डर्य ) शीघ्रता के लिए ( आहूता ) भुजाओं के ( चित् ) समान ( प्र, सिसृक्षि ) जाता है वह सब उक्त वृत्तान्त परमेश्वर के बीच में ( हि ) ही वर्तमान है ॥ २ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो परमेश्वर भूमि, जल, अग्नि और पवनो को न बनाता तो कुछ भी अपने आप उत्पन्न न हो सके ॥ २ ॥

**आशुभिर्विद्यान्वि मुञ्चाति नूनमरीरमदत्तमानं चिदैतौः ।**

**अप्रावृणां चिन्त्ययां अविष्यामहुं ब्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३॥**

**पदार्थः**—जो ( जोकी ) रात्रि ( अशुभि ) षोडश के समान जीवकारी पदार्थों से ( वायु ) जिन ( अयाद ) प्राप्त वस्तुओं को ( वि, मुञ्चाति ) छोड़े ( एतौ ) इनको ( अतमानम् ) निरन्तर प्राप्त ( चित् ) भी पदार्थ ( मूलम् ) निश्चय करके ( अरीरवत् ) रमण करता है ( अप्रावृणां ) और जो मेष को प्राप्त होते हैं उन पदार्थों की ( चित् ) भी ( अविष्याम् ) रक्षा को ( सवितु ) जगदीश्वर का जैसे ( अनुवृत्तम् ) अनुकूल वा नियम वैसे ( नि, आ, अगात् ) प्राप्त होना है यह उक्त समस्त काम ( चित् ) भी जगदीश्वर के नियम से होता है ॥ ३ ॥

**भाषार्थः**—यदि ईश्वर नियम से पृथिवी को न भ्रमावे तो सुख देनेवाली रात्रि न सिद्ध हो, पृथिवी में जितना देश सूर्य के निकट होता है उसमें दिन और दूसरे में रात्रि ये दोनों निरन्तर वर्तमान हैं ॥ ३ ॥

अब सूर्यलोक विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**पुनः समं व्यदितं वयन्तो मध्या कर्त्तव्यं धाकृत्वम धीरः ।**

**उत्संहायास्याद्वृष्टुं तूरदधरमतिः सविता देव आगात् ॥४॥**

**पदार्थः**—जो ( धीर ) धीर, बुद्धिमान् ( मध्या ) आकाश के बीच ( वयस्वी ) चलती हुई पृथिवी ( वित्तवत् ) जो पदार्थ अपने को व्याप्त उसको ( सम्, अव्यत् ) सम्यक् व्याप्त होती ( कर्त्तव्यं ) और करन योग्य जाने-आने के काम को तथा ( धाकृत्वम् ) शक्ति के अनुकूल जो कर्म है उसको ( नि, अघात् ) निरन्तर धारण करती है ( पुन ) फिर पूर्व देश को ( संहाय ) अच्छे प्रकार छोड़ उत्तर अर्थात् दूसरे देश को प्राप्त होती हुई ( उत्, अव्यत् ) स्थित होती उसको जानता है । जो ( अरमति ) बिना रमण विद्यमान है वह ( सविता ) सूर्यलोक ( देव ) प्रकाशमान होता हुआ ( अतुष्ट ) शत्रुओं को ( अव्यत् ) निरन्तर भग्न करता तथा निकट के पदार्थों को ( आ, अगात् ) प्राप्त होता उसको जो जानता है वह भूगोल और खगोल विद्या जाननेवाला होता है ॥ ४ ॥

**भाषार्थः**—हे मनुष्यो ! ये सब लोक अन्तरिक्ष में ठहरे हुए भ्रमणशील ईश्वर के नियम का पर्वचाए हुए हैं, उनमें सूर्य के निकट और भ्रमण से छ शत्रु होने हैं यह जानना चाहिए ॥ ४ ॥

**नानौकांसि दुर्यो विश्वायुषि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्रेः ।**

**उयेष्टं माता सृगर्वं मागमाधादन्वस्य केतमिषितं सविता ॥५॥ व० २॥**

**पदार्थः**—हे मनुष्यो ! जहाँ ( नावा ) अनेक प्रकार के ( दुर्य ) डारवान् ( ओकांसि ) घर हैं वा जहाँ ( सविता ) सूर्यलोक के साथ ( अग्ने ) बिजुली आदि रूप अग्नि से ( विश्वम् ) समस्त ( आयु ) जीवन को ( वि, तिष्ठते ) विशेषता से स्थिर करता है तथा ( प्रभव ) उत्पत्ति और ( शोक ) मरण भी होता है जहाँ ( माता ) जननी ( सृगर्व ) सन्तान के लिए ( उयेष्टम् ) प्रशंसनीय ( भागम् ) भाग को और ( आयु, अस्य ) अनुकूल इस सन्तान को ( इषितम् ) इष्ट, अभीष्ट चाहे हुए ( केतम् ) विज्ञान को ( आ, अघात् ) अच्छे प्रकार धारण करती उसमें वा इस जगत् में सहायत् वर्तव्य करना चाहिए ॥ ५ ॥

**भाषार्थः**—हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे जन्म हुए तो मरण भी होगा इसके बीच सब शत्रुओं में सुख देनेवाले घरों को बनाकर विश्वायुषि के लिए पाठशालाएँ बना अपने कन्या और पुत्रों को विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त कर पूर्ण आयु को भोगके यश का विस्तार करना चाहिए ॥ ५ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**समावर्षच्च विद्वतो जिगीषुर्विषेपां कामध्वरतामभाभूत् ।**

**शार्वा अपो विकृतं हित्यागादनुं ब्रतं सवितुर्देव्यस्य ॥६॥**

**पदार्थः**—जो ( विद्वतः ) विशेषज्ञ से स्थित बृद्ध ( विद्वेषात् ) समस्त ( धरताम् ) प्राण धारनेवालों के सुख की ( कामः ) कामना करने वा ( सव्यस्य ) शीघ्र चलने और ( जिगीषु ) जीतने का शील रखनेवाला ( अशुत् ) होता है वा जो ( अभा ) घर में ( समावर्षति ) अच्छे प्रकार वर्तमान है ( विकृतम् ) विकार को प्राप्त हुए ( अपः ) कर्म को ( हित्यौ ) छोड़के ( देव्यस्य ) विद्वानों से पाये हुए ( सवितु ) संसार को उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर के ( व्रतम् ) नियम को ( अनु, आ, अगात् ) अनुकूलता से प्राप्त होता वह सुख को भी प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

**भाषार्थः**—जो मनुष्य सब प्राणियों में सब सुख-दुःख के व्यवहार में समदर्शी परमेश्वर के उपदेश से विरोध न करनेवाले और पापाचरण को छोड़ निश्चिन धर्माचरण को करते हैं वे निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**त्वया हितमर्थमस्तु मार्गं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्युः ।**

**वनानि विभ्यो नकिंरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥**

**पदार्थः**—हे जगदीश्वर ! जो ( त्वया ) आपके नियम के साथ वर्तमान ( मृगयस्य ) मृग आदि वन्य प्राणी ( अस्तु ) जलो में ( हितम् ) स्थापित किये हुए वा ( अस्तुम् ) प्राणों में प्रसिद्ध हुए ( भागम् ) सेवन करने योग्य अश को ( अनु, आ, तस्यु ) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं तथा ( विभ्य ) पक्षियों के लिए ( धन्व ) अन्तरिक्ष और ( वनानि ) वनों को आपने बनाया ( तानि ) उन ( अस्तु ) इन आप ( सवितु ) सकलेश्वर्य्य को प्राप्त करनेवाले ( देवस्य ) मनोहर ईश्वर के ( व्रता ) गुणकर्म स्वभावों को कोई भी ( नकिं ) नहीं ( विमिनन्ति ) नष्ट करते हैं ॥ ७ ॥

**भाषार्थः**—यदि ईश्वर भूमि आदि स्थान तथा भोग्य, पेय, शूष्य, लेह्य, पदार्थों को न बनाये तो कोई भी शरीर और जीवन को धारण नहीं कर सकता । ईश्वर ने जिनके अर्थ जो नियम स्थापन किये हैं उनके उल्लङ्घन करने को कोई समर्थ नहीं होता ॥ ७ ॥

**याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जभुराणः ।**

**विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गास्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८॥**

**पदार्थः**—जो ( विश्व ) समस्त ( मार्ताण्ड ) सूर्यलोक में उत्पन्न और ( निमिषि ) निमेषादि कालव्यवहार में ( जभुराण ) निरन्तर धारण करता हुआ ( वरुण ) श्रेष्ठ जीव ( वज्रम् ) गोड़े को ( वत् ) जैसे पशु बैसे ( याद्राध्यम् ) जानेवालों से अच्छे प्रकार सिद्ध होने योग्य ( अप्यम् ) जलो में प्रसिद्ध ( अनिशितम् ) अतीक्ष्ण ( योनिम् ) कारणरूप अग्नि को ( आ, गात् ) प्राप्त होवे उस जीव के ( स्वप्न ) बहुत ठहरनेवाले ( जन्मानि ) जन्मों को ( सविता ) परमात्मा ( व्याक ) विविध प्रकार से करता है ॥ ८ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जितने इस जगत् में जीव हैं वे अपने कर्मत्रय फल को विद्यमान शरीर में और पीछे भी प्राप्त होते हैं जैसे पशु गोपाल में नियम से रक्खा हुआ प्राप्तव्य स्थान को प्राप्त होता है वैसे जगदीश्वर जीवों से अनुष्ठित कर्मों के अनुसार सुख-दुःख और निष्ठुष्ट मध्यम तथा उत्तम जन्मों को देता है ॥ ८ ॥

**न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्पमा न मिनन्ति रुद्रः ।**

**नार्गतयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९॥**

**पदार्थः**—हे मनुष्यो ! ( यस्य ) जिस जगदीश्वर के ( व्रतम् ) नियम को ( न ) न ( इन्द्र ) सूर्य और बिजुली ( न ) न ( वरुण ) जल ( न ) न ( मित्र ) वायु ( न ) न ( अर्पमा ) द्वितीय प्रकार का नियन्त्रा धारक वायु ( न ) न ( रुद्र ) जीव ( न ) न ( अराताय ) शत्रुजन ( मिनन्ति ) नष्ट करते हैं ( तम् ) उस ( इन्द्रम् ) इस ( स्वस्ति ) सुलक्षण ( सवितारम् ) समस्त जगत् के उत्पन्न करनेवाले ( देवम् ) दाता परमात्मा को ( नमोभिः ) मत्कर्मों से जैसे मैं ( हुवे ) स्तुति करूँ वैसे तुम भी प्रशंसा करो ॥ ९ ॥

**भाषार्थः**—इस संसार में कोई पदार्थ ईश्वर के तुल्य नहीं है तो अधिक कैसे हो और कोई भी इसके नियम को उल्लङ्घन नहीं कर सकता है इस कारण सब मनुष्यों को उसी ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

**भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धि नराशंसो प्रास्पतिर्नो अघ्याः ।**

**आये वामस्य सकृद्ये रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥**

**पदार्थः**—जो ( नराशंस ) मनुष्यों से प्रशंसित किया हुआ ( पति ) पालना करनेवाला ईश्वर ( न ) हम लोगों ( वना ) और वाणियों की ( अघ्या ) रक्षा करे और उस ( भगम् ) समस्त ऐश्वर्य की ( धियम् ) जो चिन्तन करने योग्य है वा ( पुरन्धिम् ) समस्त जगत् के धारण करनेवाले को ( वाजयन्त ) जानते वा उसका विज्ञान कराते हुए हम लोग ( रयीणां ) वनों के ( आये ) इस व्यवहार में जो सब ओर से प्राप्त होता और ( सकृद्ये ) सभाम में ( वामस्य ) प्रशंसनीय ( सवितु ) सकल जगत् के बानेवाले ( देवस्य ) भगवान् परमात्मा के ( प्रियाः ) प्रीति विषय निरन्तर ( स्याम ) हो ॥ १० ॥

**भाषार्थः**—हे मनुष्यो ! सबकी रक्षा और धारण करनेवाले प्रशंसित सबके स्वामी परमेश्वर की उपासना कर उसकी आज्ञा के आचरण से उनके प्यारे तुम होओ ॥ १० ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**अस्मभ्यं तद्विदो अजुषाः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।**

**शं यस्तोतृभ्य आपये सवात्पुरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११॥३॥**

**पदार्थ**—हे ( सवित्र ) परमात्मन् ( त्वया ) आपसे ( वत्सम् ) दिया हुआ ( विष् ) प्रकाशमान लोक ( अन्धृष ) जलो घोर ( पृथिव्या ) भूमि से ( यत् ) जो ( काम्यम् ) कामना करने योग्य ( राध ) धन ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( आ, यात् ) प्राप्त हो ( तत् ) वह ( उषसाय ) बहुता से प्रशमा किये हुए ( जरिषे ) प्रशसित ( आपये ) विद्या व्यापक के लिए और ( स्तोत्रम् ) स्तुति करनेवालों के लिए ( क्षम् ) कल्याणरूप ( भवति ) हो ॥ ११ ॥

**भाषार्थ**—परमेश्वर ने प्रकृति से महत्त्व, महत्त्व से महङ्कार, महङ्कार से पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतन्मात्राओं में एकादश इन्द्रियाँ और स्थूल पञ्चभूत और ओषधियाँ बनाई, जिनसे सब प्राणियों का सुख होता है ॥ ११ ॥

इस सूक्त में ईश्वर, सूर्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की गिछने सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह अष्टोत्तस्र सूक्त और तीसरा वर्ण समाप्त हुआ ॥

५॥

प्राचोवेत्यस्याऽष्टवस्यैकोनचत्वारिंशत्सप्तस्य सूक्तस्य गुत्समव ऋषिः ।

अश्विनो वेवते । १ निवृत्तिरुदुप्, २ विराट् त्रिदुप्, ४, ७,

८ त्रिदुप् छन्दः । अथ तत् स्वरः । २ भुक्ति पङ्क्ति ;

५, ६ स्वरट् पङ्क्तिरुदुप् । पञ्चम स्वर ॥

अथ उक्तालीसर्वं सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में वायु और

अग्नि के गुणों को कहते हैं—

**प्राचावेव तविदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।**

**ब्रह्माणेव विदथं उक्थशासां दूतेव हव्या जन्यां पुरुत्रा ॥१॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! जो वायु और अग्नि ( प्राचावेव ) दो में से के समान ( तत् ) उस ( अर्थम्, इत् ) द्रव्य को ही ( जरेथे ) नष्ट करने वा ( तविदर्थे ) शिल्प यज्ञ में ( गृध्रेव ) गृध्रा के समान ( निधिमन्तम् ) जिसमें बहुत निधि, धन-कोष विद्यमान उस ( वृक्षम् ) छेदन करने योग्य जल स्थल को ( अच्छ ) अच्छे प्रकार नष्ट करते ( ब्रह्माणेव ) और जैसे ममय वेदवेत्ता जन हो वंश वर्तमान ( उक्थशासा ) वा जिनकी शिक्षा कही हुई है उन ( दूतेव ) दूतों के समान वर्तमान ( हव्या ) तथा ग्रहण करने योग्य ( जन्या ) अनक पदार्थों की उत्पत्ति करनेवाले ( पुरुत्रा ) और बहुत पदार्थों में वर्तमान है उन वायु और अग्नि का अच्छे प्रकार प्रयोग तुम लोग करो ॥ १ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अग्नि आदि पदार्थ में वा पशियों तथा विद्वानों और दूत के समान कार्यमिद्वि करनेवाले हैं उन को जानने प्रयोजनों का मित्र करना चाहिए ॥ १ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**मातर्याणां रथ्येव वीराजैव यमा वरमा संवेथे ।**

**मेनेऽथ तन्वाः शुभमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥**

**पदार्थ**—जो सूर्य और पृथिवी ( जनेषु ) मनुष्यों में ( रथ्येव ) रथ के हित दो घोड़ा के तुल्य ( मातर्याणां ) जो प्राण जान जाते उनके गमान वा ( अजेव ) दा बकरी के गमान ( वीरा ) वीरता कमयुक्त वा ( यमा ) उपराम अर्थात् उड़ते-उड़ते निवृत्त हुए ( मेनेऽथ ) दो मैनाओं के समान वा ( तन्वाः ) शरीर में ( शुभमाने ) शोभते हुए ( दम्पतीव ) स्त्री-पुरुष के समान ( क्रतुविदा ) जिन में प्रज्ञा को प्राप्त होते हैं उनको जानक पढ़ाने और पढ़नेवाले ( वरम् ) उत्तम कर्म का ( आ, संवेथे ) सम्बन्ध करने हैं ॥ २ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों का जैसे सुशिक्षित घोड़े-वाले एक यान में स्थिर होके बकरी के गमान वीरता का प्रकाश कर पशियों वा स्त्री-पुरुषों के समान शोभा को प्राप्त होने और अच्छे कर्मों का उत्पन्न करते हैं वैसे सूर्य और भूमि सबका उपकार करनेवाले वर्तमान हैं यह जानना चाहिए ॥ २ ॥

**शृङ्गेव नः प्रथमां गन्तमर्वाकडुफाविं जभुराणां तरोमिः ।**

**चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुत्सार्वाश्वा यात रथ्येव शक्रा ॥३॥**

**पदार्थ**—हे ( उक्षा ) किरणों के समान वर्तमान ( रथ्येव ) रथ के लिए हितकारी वस्तु के तुल्य ( शक्रा ) शक्तिमान् ! तुम लोग ( न ) हम लोगों के ( अर्वाक् ) पीछे ( गन्तम् ) प्राप्त हुए को ( शृङ्गेव ) शृङ्गों के समान सम्बन्ध करने तथा हिमा करनेवाले ( शक्राविं ) जैसे बुर परस्पर सम्बन्ध करे हुए हैं वैसे ( जभुराणां ) निरन्तर धारण करनेवाले (प्रथमां) पहले सनातन वा ( तरोमिः ) जिनसे तरते हैं उन नौकाओं से जैसे ( चक्रवाकेव ) चक्र-चक्रवा ( प्रति ) प्रति ( वस्तोः ) दिन ( अर्वाश्वा ) पीछे जानेवाले होकर ( यातम् ) प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । यदि अग्नि वायु शिल्पाकार्यों में सयुक्त किये जायें तो बहुत कार्यों को मित्र करें ॥ ३ ॥

**नावेवं नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधावं पृथीव ।**

**श्वानेव नो अरिषथा तन्ना खगलेव विस्त्रः पातमस्मान् ॥४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! जो वायु और बिजुली ( युगेव ) रक्षा में अववा-दिकों के समान जोड़े हुए ( नावेव ) वा जैसे उत्तमता से नावें वैसे ( नः ) हम लोगों को ( पारयतम् ) पार पहुँचाते ( नभ्येव ) वा रथ के पशियों के बीच के अङ्ग के समान वा ( उपधावं ) रथ के बीच के भाग की धारण करनेवाली लकड़ी के समान वा ( पृथीव ) समस्त रथ की धारण करनेवाली दो लकड़ियों के समान ( न ) हम लोगों को पहुँचाते हैं वा ( श्वानेव ) चोरादिकों से रक्षा करनेवाले कुत्ता के समान ( न ) हमारे ( तन्नाम् ) शरीरों को ( अरिषथा ) न नष्ट करनेवाले हैं और ( खगलेव ) जो खोदने को गलाते हुए के समान ( विस्त्रः ) जीर्णविस्था से ( अस्मान् ) हम लोगों की ( पातम् ) रक्षा करते हैं उनका हम लोगों को आप उपदेश देओ ॥ ४ ॥

**पदार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । कोई भी सृष्टि के पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभावों को न जानके पूर्ण विद्यावाला नहीं होता है इससे सृष्टि की किराओं का अच्छे प्रकार प्रचार करना चाहिए ॥ ४ ॥

**वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षीव चक्षुषा यातमर्वाक् ।**

**हस्तावि तन्वेः शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥४॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! जो ( वातेव ) पवन के समान ( अजुषां ) अजीर्ण अर्थात् पुष्ट ( नद्येव ) नदी में उत्पन्न हुए जल के समान ( रीति ) मिले हुए शोध जानेवाले वा ( अक्षीव ) नेत्रों के समान ( चक्षुषा ) दिलाने की शक्ति युक्त ( अर्वाक् ) नीचे ( आ, यातम् ) सब ओर से प्राप्त होते हैं ( हस्तावि ) हाथों के समान ( तन्वेः ) शरीर के लिए ( शम्भविष्ठा ) अतीव सुख की भावना करानेवाले ( पादेव ) पैरों के समान ( न ) हम लोगों को ( वस्यो ) अति उत्तम धन ( अच्छ ) अच्छे प्रकार ( नयतम् ) प्राप्त करते हैं उन जल और अग्नि को हम लोगों को बतलाओ ॥ ५ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे शरीर के अङ्ग अपने-अपने काम में प्रवर्तमान शरीर की रक्षा करते हैं वैसे वायु आदि पदार्थ सबकी रक्षा करते हैं यह जानना चाहिए ॥ ५ ॥

**ओष्ठाविष मध्वास्ते वदन्ता स्तनाविष पिप्यतं जीवसे नः ।**

**नासेव नस्तन्वां रक्षितारा कर्णाविष सुभ्रतां भूतमस्मे ॥६॥**

**पदार्थ**—हे विद्वानो ! तुम जो ( आस्ते ) मध के लिए ( मधु ) मधुर रस का ( ओष्ठाविष ) ओष्ठा के समान ( वदन्ता ) कहते हुए ( जीवसे ) जीवने को ( स्तनाविष ) स्तनों के समान ( न ) हमारे लिए ( पिप्यतम् ) बढ़ाते अर्थात् जैसे स्तनों में उत्पन्न हुए दुग्ध में जीवन बढ़ता है वैसे बढ़ाते ( नासेव ) और नासिका के समान ( न ) हमारे ( तन्वां ) शरीर की ( रक्षितारा ) रक्षा करने-वाले वा ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( कर्णाविष ) कर्णों के समान ( सुभ्रतां ) जिनसे सुन्दर श्रवण होता है ऐसे ( भूतम् ) होते हैं उन वायु और अग्नि को विद्वान् कराए ॥ ६ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में वाचकानुपमालङ्कार है । जो अध्यापक जिज्ञा से रस के समान, स्तनों में दुग्ध के समान, नासिका में मध के तुल्य कान से शब्द के समान, समस्त विद्याओं का प्रत्यक्ष करने हैं वे जगत्पूज्य होत हैं ॥ ६ ॥

**हस्तेव शक्तिममि सैददी नः क्षामेव नः समजतं रजोमि ।**

**इमा गिरौ अश्विना युष्मयन्तीः क्षोत्रेणैव स्वधितिं स त्रिशीतम् ॥७॥**

**पदार्थ**—हे ( अश्विना ) वायु और अग्नि के समान वर्तमान पढ़ाने और परीक्षा करनेवालों ! जो अग्नि और वायु ( शक्तिम् ) तीक्ष्ण अप्रभागवानी शक्ति को ( हस्तेव ) हाथों के समान ( न ) हम लोगों का ( अमि, सैददी ) जिनसे अच्छे प्रकार देते वा ( क्षामेव ) पृथिवी के समान ( न ) हम लोगों को ( रजोमि ) एश्वर्यावालों का ( समजतम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं वा ( क्षोत्रेणैव ) तेजस्वी करनेवाले साधन से जैसे वंस ( इमा ) इन ( युष्मयन्ती ) जो तुमका कहती हैं उन ( गिरौ ) सुशिक्षित वारिणियों को ( स्वधितिम् ) वज्र के समान ( सम्, त्रिशीतम् ) तीक्ष्ण करे उनके गुण कम और स्वभावों को हम लोगों को बताओ ॥ ७ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जो हाथ की क्रिया को करनेवाले, पृथिवी के समान ऐश्वर्य देते, अच्छी शिक्षित वारिणों के समान पदार्थों को बताने, तीक्ष्ण वज्र के समान दारिद्र्य और दुःख का विनाश करनेवाले अन्याय पदार्थ हैं उनको आज हम लोगों को ग्रहण कराओ ॥ ७ ॥

किर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**एतानि वामभिनो वर्धनानि अक्ष स्तोमं गुत्समदासो भक्रन् ।**

**तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहदेव विदथे सुवीराः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे ( अश्विना ) सकल विद्या में व्याप्त होनेवाले ( नरा ) मनुष्यों में अग्रगन्ताओं के समान वर्तमान अध्यापक और परीक्षकों ! तुम ( वाम् ) तुम दोनों के जिन ( एतानि ) इन ( वर्धनानि ) वृद्धियों ( अक्ष ) धन और ( स्तोमम् ) प्रशंसा को ( गुत्समदास ) जिन्होंने आनन्द पाये हुए हैं वे जल ( अक्षम् ) करें । ( तानि ) उनको ( जुजुषाणां ) सेवते हुए हम लोगों के ( उप,

यज्ञम्) समीप प्राप्त होते जिससे ( सुवीराः ) उत्तम वीरोंवाले हम सब लोग ( विषये ) सधाम मे ( बृहत् ) बहुत विज्ञान को निरन्तर ( ब्रह्म ) पदार्थ का उपदेश करें ॥८॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों का अनुकरण करें तो वे महात्मा होवें ॥८॥

इस सूक्त में वायु और अग्नि आदि पदार्थों का विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उक्तालीसवाँ सूक्त और पाँचवाँ वर्ग पूरा हुआ ॥

॥९॥

सोमापूषणेति षड्विंशत्यक्षरान्तरास्तमस्य सूक्तस्य गृत्समव ऋषिः । साता  
पूषणावितिरिष्य वेजताः । १, २ त्रिविष्टपः, ३ विराट् त्रिविष्टपः, ४, ५  
निष्पत् निष्पत् छन्दः । वेजत स्वरः । ४ स्वरान् पङ्क्तिरुच्छन्दः ।  
पञ्चमः स्वरः ॥

अब चालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में पवन के गुणों का उपदेश कहते हैं—

सोमापूषणा जनना रथीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।

आतौ विश्वस्य भुवनस्य गोपी देवा अङ्गुष्मसुतस्य नाभिम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( देवा ) विद्वान् जन जिन ( रथीणान् ) धनो को ( जनना ) सुखपूर्वक उत्पन्न करनेवाले वा ( विष ) प्रकाश के ( जनना ) उत्पन्न करनेवाले ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( जनना ) उत्पन्न करनेवाले ( आतौ ) उत्पन्न हुए ( विश्वस्य ) समस्त ( भुवनस्य ) ससार की ( गोपी ) रक्षा करनेवाले ( सोमापूषणा ) प्राण और अपान ( अङ्गुष्मस्य ) नाशरहित पदार्थ के ( नाभिम् ) मध्य भाग को ( अङ्गुष्मस्य ) प्रकट करें उनको विशेषता से जानो ॥१॥

भाषार्थ—मनुष्य को प्रकाश पृथिवी और धनो के निमित्त होकर सबकी रक्षा करनेवाले परमात्मा का विज्ञान करानेवाले प्राण और अपान वर्तमान हैं यह जानना चाहिए ॥१॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

इमौ देवा जायमानौ क्षुपन्तेमौ तमांसि गृहतामजुष्टा ।

आभ्यामिन्द्रः पद्मामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! सब पदार्थ ( इमौ ) इन प्रत्यक्ष ( जायमानौ ) उत्पन्न होते हुए ( देवौ ) मनोहरो को ( क्षुपन्ते ) सेवते हैं जो ( इमौ ) यह दोनों ( अङ्गुष्ठा ) न सेवन किये हुए ( तमांसि ) रात्रियों को ( गृहताम् ) अच्छे प्रकार ढाँपते हैं ( आभ्याम् ) इन ( सोमापूषभ्याम् ) चन्द्र और ओषधि गणों के साथ ( इन्द्र ) बिजुली वा सूर्य ( आमासु ) अपक्व ( उज्जिमासु ) भूमियों के ( अस्त ) बीच ( पक्षम् ) पके पदार्थ को ( जनत् ) उत्पन्न कराता उनका अच्छे प्रकार उपयोग करो ॥२॥

भाषार्थ—जो अग्नि सबके भीतर स्थित प्रकाशकारक है वह जिन चन्द्रमा और ओषधियों के बिना अकिञ्चित् होता अर्थात् ससार का सुख करनेवाला नहीं होता उनको जान कार्यसिद्धि करनी चाहिए ॥२॥

अब अग्नि और वायु के गुणों को कहते हैं—

सोमापूषणा रजसो विमानं सत्सचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।

विपुष्टं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( वृषणा ) बलिष्ठ वायु और अग्नि के समान वर्तमान विद्वानो ! तुम ( सोमापूषणा ) अग्नि और वायु ( रजस ) लोकसमूह के ( विश्वमिन्वम् ) जिससे अविद्यमान समस्त पदार्थों को अलग करते हैं जो ( विपुष्टम् ) व्यापक गमन से ढँपा हुआ ( सत्सचक्रम् ) जिसमें सात चक्र ( पञ्चरश्मिम् ) तथा पाँच प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान रश्मि के तुल्य विद्यमान ( मनसा ) जो अन्तःकरणस्थ विचार से ( युज्यमानम् ) युक्त किया जाता उस ( विमानम् ) आकाश में गमन करानेवाले ( रथम् ) रमणीय यान को ( जिन्वथ ) चलाते हैं ( तम् ) उसको जानो ॥३॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अन्तरिक्ष में गमन करानेवाले सात कलायन्त्र धुमाने के जिसमें निमित्त ऐसे शीघ्र गमन करानेवाले रथ को बनाकर सुख पावें ॥३॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

दिव्यन्वः सदनं चक्रे चक्षा पृथिव्यामन्यो अध्वन्तरिक्षे ।

तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुषं रायस्योषं वि प्र्यतां नाभिम्समे ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! अग्नि का भाग ( अन्व ) और है और वह ( उच्छ्वा ) ऊपर जो स्थित ( दिवि ) आकाश उसमें ( सवनम् ) स्थान ( अधि, चक्रे ) किये हुए है तथा ( अन्वः ) और ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में और ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष में स्थान को ( अधि ) अधिकता से किये हुए हैं ( तौ )

वे दोनों ( अस्मन्मन्त्रम् ) हम लोगों के लिए ( पुरुवारम् ) बहुतो से स्वीकार करने योग्य ( पुरुषम् ) बहुतो ने शब्दित किये अर्थात् कहे सुने ( राय ) धनादि पदार्थों के ( पौषम् ) पुष्ट करनेवाले और ( अस्मे ) हमारे ( नाभिम् ) मध्य बन्धन के ( वि, चक्षताम् ) निकट ही उनको तुम जानो ॥४॥

भाषार्थ—अग्नि के तीन स्थान हैं एक ऊपर आकाश में, दूसरा पृथिवी में और तीसरा बीच में, उन तीनों में सूर्यरूप से अन्तरिक्ष में निकट स्थित प्रत्यक्ष पृथिवी में और गुप्त अन्तरिक्ष में वर्तमान है उस अग्नि को मनुष्य जानें ॥४॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

विश्वान्य्यो सुर्वना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।

सोमापूषणावचतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! जो ( अन्व ) भिन्न भाग ( विश्वानि ) समस्त ( सुर्वना ) लोको में प्रसिद्ध पदार्थों को ( जजान ) उत्पन्न करता जो ( अन्वः ) और ( अभिचक्षाणः ) प्रकट भाषा का विषय ( विश्वम् ) ससार को ( एति ) प्राप्त होता उन दोनों ( सोमापूषणौ ) शान्ति और पुष्टि गुणवाले वायु का उपदेश लेकर ( मे ) मेरी ( विश्वम् ) बुद्धि की तुम दोनों ( अवतम् ) रक्षा करो जिससे ( युवाभ्याम् ) तुम दोनों के साथ हम लोग ( विश्वाः ) समस्त ( पृतनाः ) मनुष्यों को ( जयेम ) उत्कर्ष दें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो वायु सब लोकों को चरता और जो शब्द प्रयोग वा श्रवण का निमित्त है उसके विज्ञान कराने से सब मनुष्यों की उन्नति करनी चाहिए ॥ ५ ॥

धियं पृषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयि सोमो रयिपतिर्दिधातु ।

अवेतु देव्यदितिरनवां वृद्धदेम विदथे सुवीराः ॥६॥ ४० ६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जिस प्रकार से ( पृषा ) प्राण मेरी ( धियम् ) बुद्धि वा कर्म को ( जिन्वतु ) प्राप्त हो वा सुखी करे ( विश्वमिन्वः ) तथा जो विश्व को व्याप्त होता वह ( रयिपतिः ) धन की रक्षा करनेवाला ( सोमः ) पदार्थों का समूह ( रयिम् ) लक्ष्मी को ( वचातु ) धारण करे ( अजर्वा ) तथा जिसके अविद्यमान छोड़े हैं वह ( देवी ) दिव्य गुणवाली ( अदितिः ) माता, बुद्धि वा कर्म की ( अवतु ) रक्षा करे जिससे ( सुवीराः ) शोभन वीरोंवाले हम लोग ( विषये ) सधाम मे ( बृहत् ) बहुत ( ब्रह्म ) कहे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सब पदार्थ धन बुद्धि आरोग्यता और आयु के बढ़ानेवाले हो वैसे विधान करो जिससे सब मनुष्य बहुत सुख को प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में प्राण, अपान, अग्नि, वायु और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह चालीसवाँ सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥१०॥

वायवित्येकविंशत्यक्षरान्तरास्तमस्य सूक्तस्य गृत्समव ऋषिः । १, २ वायुः ;

३ इन्द्रवामः ; ४—६ मित्रावरुणौ, ७—९ अश्विनौ ; १०—१२ इन्द्र ,

१३—१५ विश्वेदेवाः । १६—१८ सरस्वती, १९—२१ साक्षापृथिव्यौ

हविष्यनि वा वेजताः । १, ३, ४, ६, १०, ११, १३, १५,

१९—२१ गायत्री ; २, ५, ८, १२, १४ निष्पत्

गायत्री ; ७ त्रिपाद्गायत्री ; ८ विराट् गायत्री छन्दः ।

वङ्गः स्वरः । १६ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धार स्वरः ।

१७ उदितक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

१८ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब इक्कीस ऋचावाले इक्तालीसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम

द्वितीय मन्त्रों में अध्यापक के विषय को कहते हैं—

वायो ये ते सहस्रिणा रथास्तेभिरा गहि । नियुस्वान्त्सोमपीतये ॥१॥

पदार्थ—हे ( वायो ) पवन के समान वर्तमान विद्वन् ! ( ये ) जो ( ते ) आपके वायुवद् वेगवाले ( सहस्रिणः ) असंख्यात वेगादि गुणोंवाले ( रथासः ) रमणीय यान हैं ( तेभिः ) उनके साथ ( नियुस्वाद् ) नियमयुक्त होने हुए ( सोमपीतये ) उत्तम ओषधियों के रस पीने को ( आ, गहि ) आइए ॥ १ ॥

भाषार्थ—पवन के असंख्य जो वेग आदि कर्म हैं उनको जानके इधर-उधर मनुष्यों को जाना-आना चाहिए ॥ १ ॥

नियुस्वान् वायवा गन्धयं शुक्रा अयामि ते ।

गन्तांसि सुन्वतो गृहम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( वायो ) पवन के समान वर्तमान विद्वन् ! जिस कारण आप ( शुक्रः ) अज्ञानताओं को सुखानेवाले होते हुए ( सुन्वतः ) ओषधियों के रस निकालनेवाले के ( गृहम् ) घर ( गन्ता ) जानेवाले ( अंसि ) हैं हम कारण ( नियुस्वाद् ) आत्मा से नियमयुक्त जितेन्द्रिय होते हुए ( आ, गहि ) आओ जैसे



(अयम्) यह वायु नियमयुक्त सर्वत्र जानेवाला है वैसे मैं (ते) आपके घर को (अयम्) प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वायुकोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे पवन नियम से सर्वत्र जाते हैं वैसे नियमयुक्त कर्मों को कर सुखों को प्राप्त होना चाहिए ॥ २ ॥

अब अध्यापक और श्रद्धालुओं के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**शुकस्याद्य गवांश्चिह्नं इन्द्रवायुं नियुतवतः । आ यातं पिबतं नरा ॥३॥**

पदार्थ—हे (नरा) बिजुली और पवन के समान वर्तमान अग्रगन्ता मनुष्यो! तुम (अद्य) आज (शुकस्य) अज्ञानता खोलने और (गवांश्चिह्नः) किरणों को अर्थात् विद्याओं को व्याप्त होनेवाले (नियुतवतः) नियम युक्त के समीप (आ, यातम्) आओ और जल रस (पिबतम्) पीओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुली और पवन सर्वत्र अभिव्याप्त और सब जगत् की रक्षा करते हैं वैसे उत्तम काम कर और शुद्ध जल पीके आरोग्यपन और सबकी उन्नति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

**अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा । ममेदिह भुतं हवम् ॥४॥**

पदार्थ—हे (ऋतावृधा) सत्य से बड़े हुए (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्तमान अध्यापको! जो (अयम्) यह (वाम्) तुम दोनों से (सोम) ओषधियों का रस (सुतः) उत्पन्न हुआ उसको पीके (हवम्) ही (हवम्) यहाँ (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (भुतम्) चुनिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे वायु सबसे रस को ग्रहण कर वयति है वैसे ही सत्य विद्याओं को सुनकर सबके लिए सुख देना चाहिए ॥ ४ ॥

**राजानावनमिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥७॥**

पदार्थ—हे (अनभिद्रुहा) द्रोहकर्मरहित (राजानो) प्रकाशमान जनो! तुम (ध्रुवे) जो कि निश्चल (उत्तमे) श्रेष्ठ (सहस्रस्थूणे) जिसमें सहस्र सन्ध्या विद्यमान उस (सदसि) सभा में जो प्राणोदानवद्वैतमान अध्यापकोपदेशक (आसाते) बैठते हैं उनको जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! वे हा राजा और प्रधान पुरुष ब्रह्मवाद के योग्य होते हैं जो गुणयुक्त उत्तम सभा में बैठ के किसी का पक्षपात कभी न करें ॥ ५ ॥

अब सूर्य और चन्द्रमा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**ता सञ्जाता भूतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो (भूतासुती) शुद्ध तत्त्व जल को निकालनेवाले (सञ्जाता) अच्छे प्रकार प्रकाशमान चक्रवर्ति राजा के समान वर्तमान (आदित्या) अवशिष्ट (दानुन) दान के (पती) पालन करनेवाले सूर्य, चन्द्रमा सबका (सचेते) सम्बन्ध करते हैं (ता) उनको (अनवह्वरम्) मरलता जैसे हो वैसे सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो सूर्य चन्द्रमा सबका प्रकाश करने वा जल के देनेवाले सबके अनुमज्जी मीधे माग से जाते हैं वैसे शुद्ध मार्ग में जाओ ॥ ६ ॥

अब अग्नि और वायु के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**गोमदं पु नामस्यान्वावद्यातमन्विना । वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (नामस्या) असत्यरहित (वर्त्ता) वृष्टों के रुनानेवाले (अन्विना) व्यापनशील अध्यापकोपदेशक (अन्वावत्) धाँडे के तुल्य (उ) वा (गोमत्) बहुत गौरों जिसमें विद्यमान उस (नृपाय्यम्) मनुष्यों के माननेवाले (वर्त्ती) मार्ग को (पुष्यात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे तुम इनको प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य यदि वायु और अग्नि के यान से जहाँ तहाँ जावे तो परिमित सुख पावे ॥ ७ ॥

**न यत्परो नान्तर आदर्षेद्वृषण्वस् । दुःशंसो मर्यां रिपुः ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो! (परो) उत्कृष्ट (दुःशंस) जिसकी वृष्ट स्तुति विद्यमान वह (मर्यां) मरणधर्मा मनुष्य (रिपुः) शत्रु (वत्) जो (वृषण्वस्) वर्षानेवालो को बसाते हैं उनको (न, आदर्षेत्) न लचावे वा (अन्तरः) सामान्य वृष्ट स्तुतिवाला मरणधर्मा जिसको (न) न लचावे उनका कार्यो में नियुक्त करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस जगत् में वायु और अग्नि को कोई भी लबा नहीं सकता और न इनका कोई शत्रु के समान नाश करनेवाला है उस प्रकार से नहीं पराजित होने योग्य मनुष्यों को होना चाहिए ॥ ८ ॥

**ता न आ वीरुहमन्विना रयिं पिशङ्गसंघम् ।**

**धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो (धिष्ण्या) शब्दावमान हो वा स्तुति किये जावे वे (वरिवो) सर्वत्र होनेवाले अग्नि और वायु (न) हम लोगों के लिए (वरिवोविदम्) जिसमें सेवा को प्राप्त होते वा (पिशङ्गसंघम्) सुन्दर वनों को देखते हैं उस (रयिम्) धन को (आ, वीरुहम्) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं (ता) उनका उपदेश करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिन अग्नि और वायु से पुष्कल धन को प्राप्त होते हैं उनको मयावत् जाने ॥ ९ ॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इन्द्रो अङ्ग महद्भयमसी वदपं बुध्यवत् ।**

**स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१०॥८॥**

पदार्थ—हे (अङ्ग) विद्वान् पुरुष! जो (स्थिः) स्थिर अपनी परिधि में ठहरा हुआ (विचर्षणिः) देखनेवाला (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सूर्य (महत्) बहुत (वत्) होता हुआ (भयम्) जो भय उसको (अप, अभि, बुध्यवत्) अलग करता है (स., हि) वही सूर्यलोक जानने योग्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—यदि ब्रह्माण्ड में सूर्य न हो तो किसी का भय न निवृत्त हो, यदि सूर्यलोक अपनी परिधि में स्थिर और दिखानेवाला न हो तो मुख्य आकर्षण और देखना न बने ॥ १० ॥

फिर उसी विषय को तथा परमेश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादप्यं नशत् ।**

**मद्रं भवति नः पुरः ॥११॥**

पदार्थ—जो (इन्द्रः) परमेश्वर (न) और उसका बनाया सूर्य (नः) हमको (मृळयाति) मुली करे इससे (नः) हमारे (पुरः) अगले (पश्चात्) और पिछले (अयम्) पाप (न) न (मयात्) प्राप्त हो किन्तु (न) हमारे लिए यथावत् (मद्रम्) कल्याण (भवति) होवे ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर घटपटादिकों को जैसे सूर्य वैसे सबके आत्माओं को प्रकाशित करता है जो उसके भक्त हैं वे उससे भिन्न की उसके स्थान में नहीं उपासना करते हैं वे सर्वव्यापक परमेश्वर को जान और वह हमें निरन्तर देखता है ऐसा मानकर अधर्माचरण नहीं करते हैं किन्तु निरन्तर धर्म ही का अनुष्ठान करते हैं उनके आगामी पापाचरण की निवृत्ति और योग्य सिद्धि विज्ञान के होने से मुक्ति होवेगी ही, धीरो का नहीं यह निश्चय है ॥ ११ ॥

**इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अमयं करत् ।**

**जेता शत्रुन विचर्षणिः ॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो (विचर्षणिः) सबका देखनेवाला (इन्द्र) परमेश्वर (शत्रुन) शत्रुओं को (जेता) जीतनेवाले के समान (सर्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) दिशाओं से हमको (अमयम्) अभय (परि, करत्) सब ओर से करता है वही हम लोगों को निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वायुकोपमालङ्कार है। जैसे पक्षपात रहित वीर पुरुष दुष्टाचारों और शत्रुओं के लिए भय देनेवालों को निवारण प्रजाओं को सुखयुक्त करने हैं वैसे उपासना किया हुआ सर्वज्ञ ईश्वर सब ओर से दुष्टाचरण से निवृत्त कर दुष्टाचार में प्रवृत्त कर अभय मुक्तिपद को प्राप्त करके सब मुक्त जीवों को आनन्दित करता है इस कारण वही सबको उपासना करने योग्य है ॥ १२ ॥

फिर पढ़ाने और पढ़नेवालों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**विश्वे देवाम आ गंत भृणुता म इमं हवम् । पदं नहिर्नि पीदत ॥१३॥**

पदार्थ—हे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानो! तुम (आ, गत) प्राणों और (हवम्) इस (बहिः) उत्तमासन पर (निबीरत) बैठो (मे) और मेरे (हवम्) इस (हवम्) ग्रहण करन योग्य शब्दार्थ सम्बन्ध को (आ, भृणुत) अच्छे प्रकार सुनो ॥ १३ ॥

भावार्थ—विद्यार्थी जन पढ़ानेवालों से यह कह कि आप यहाँ आइए, सर्वोत्तम आसन पर बैठके हमने पढ़े जो शास्त्र उनमें परीक्षा कीजिए ॥ १३ ॥

**तीव्रो वो मधुमां अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् ॥१४॥**

पदार्थ—हे सब विद्वानो! जो (व) तुम्हारा (अयम्) यह (शुनहोत्रेषु) विद्वान् वृद्धों के दानों में (तीव्र) तीव्र (मधुमां) विज्ञान सम्बन्धी (मत्सरः) घालन्द है (एतम्) इस (काम्यम्) मनोहर रस को तुम (पिबत) पीओ ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो विज्ञानवृद्धों की सेवा करते हैं वे तीव्रबुद्धि हुए विद्वान् होते हैं ॥ १४ ॥

**इन्द्रोऽपेष्टा मरुद्वणा देवांसः पृषरातयः ।**

**विश्वे मयं भुता हवम् ॥१५॥९॥**

पदार्थ—हे (इन्द्रोऽपेष्टा) परम विद्यारूप ऐश्वर्य जिनके प्रधान है वे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानो! (पृषरातयः) जिनका पुष्टि के निमित्त दान है वे (मरुद्वणा) बहुत मनुष्य तुम लोग (मयं) मेरे (हवम्) ग्रहण करने योग्य विद्यार्थ सम्बन्ध को (भुत) सुनो ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो विद्यादि गुणों में प्रधान पुरुष का सत्कार करते विद्या के धीरे दूसरों से लेते हैं वे परीक्षक हाके धीरों को विद्वान् करते हैं ॥ १५ ॥

अब विदुषी विषय को अगले वर्णों में कहा है—  
अग्निं तमे नदीं तमे देवितमे सरस्वति ।

अयमस्ताव अग्निं प्रवृत्तिमयम् नस्तुति ॥१६॥

वार्थ—हे ( अग्निं तमे ) अतीव पढ़ानेवाली ( देवितमे ) अतीव पवित्रता ( नदीं तमे ) अतीव अग्रगण्य विद्या का उपदेश करने ( सरस्वति ) बहुविज्ञान रखने-वाली ( अयम् ) माता अध्यापिका को ( अयमस्ताव ) अग्रगण्यता के समान हम लोग ( तमे ) हैं उन ( अः ) हम लोगो को ( प्रवृत्तिम् ) प्रवृत्ति को प्राप्त ( तुम्हि ) करो ॥१६॥

आचार्य—जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्या अध्ययन करें और वे कुमारी बहुचारिणी विदुषियों की ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबों को विद्या और सुखिता से युक्त करें ॥१६॥

स्वे विद्यां सरस्वति भितायूषि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिदिह नः ॥१७॥

वार्थ—हे ( देवि ) प्रकाशमान ( सरस्वति ) परमविदुषी स्त्रि ! जैसे ( विद्या ) समस्त ( आयुषि ) आयुदा ( स्वे ) तुम्हें ( देव्याम् ) विदुषी में ( भिता ) आश्रित हैं तो तू ( शुनहोत्रेषु ) पाई है योग्य विद्या जिन्होंने उनके बीच ( मत्स्व ) आनन्द कर ( नः ) हमारे ( प्रजाम् ) सन्तानों को ( दिदिदिह ) उपदेश दे ॥१७॥

आचार्य—सब विद्वान् जन अपनी-अपनी विदुषी स्त्रियों के प्रति ऐसा उपदेश दें कि तुमको सबकी कन्याएँ पढ़ानी चाहिएँ और सबकी स्त्री अच्छे प्रकार सिखानी चाहिएँ ॥१७॥

अब स्त्रीपुरुष के विषय को अगले वर्णों में कहा है—

इमा अक्षं सरस्वति क्षुष्वं वाजिनीवति ।

या ते मन्यं गृत्समदा कृतावरि प्रिया देवेषु कुहति ॥१८॥

वार्थ—हे ( अक्षं ) सत्यावरणयुक्त ( वाजिनीवति ) वा बहुत ऐश्वर्य और अन्नादि पदार्थयुक्त ( सरस्वति ) बहुत विज्ञानवाली ! तू जैसे ( गृत्समदाः ) आनन्द जिन्होंने ग्रहण किया वे ( या ) जिन ( इमा ) इन ( ते ) तेरे ( प्रिया ) मनोहर विज्ञान वा ( मन्यं ) साधारण विज्ञानों को ( देवेषु ) विद्या की कामना करनेवालों में ( कुहति ) स्थापन करते हैं उन ( अक्षं ) विज्ञानों को तू ( क्षुष्वं ) सेवन कर ॥१८॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् पुरुष, कुमार ब्रह्मचारियों को अच्छी शिक्षा से पढ़ावे जैसे विदुषी स्त्रियाँ, कुमारी ब्रह्मचारिणी स्त्रियों को अच्छी शिक्षा से पढ़ावे ॥१८॥

प्रेतां यज्ञस्य शंभुवां युवामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

वार्थ—हे स्त्री-पुरुषों ! जो ( शंभुवा ) सुख की सम्भावना करानेवाले ( युवाम् ) दोनों स्त्री-पुरुष ( यज्ञस्य ) यज्ञ की विद्याओं को ( प्रेताम् ) प्राप्त होते ( च ) और ( हव्यवाहनम् ) हव्य द्रव्य को पहुँचानेवाले ( अग्निम् ) अग्नि को प्राप्त होते ( इत् ) उन्हीं को हम लोग ( आ, वृणीमहे ) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं ॥१९॥

आचार्य—सब मनुष्यों को पुत्रों के अध्यापक और पुत्री की अध्यापिकाओं को निरन्तर नियुक्त करना चाहिए जिससे स्त्री-पुरुषों में पूर्ण विद्याओं का प्रचार हो ॥१९॥

यावा नः पृथिवी इमं सिध्मय दिविस्पृशम् ।

यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥

वार्थ—हे स्त्री-पुरुषों ! आप ( यावापृथिवी ) सूर्य भूमि के समान ( अक्षं ) आज ( नः ) हमारे ( इमम् ) इस ( सिध्मम् ) शास्त्रबोध के प्रकाश के निमित्त ( दिविस्पृशम् ) विज्ञान प्रकाश में जिससे स्पर्श करते हैं उस ( यज्ञम् ) पढ़ने-पढ़ाने की सज्जति स्वरूप यज्ञ को ( देवेषु ) विद्वानों में ( यच्छताम् ) स्थापन करो ॥२०॥

आचार्य—अध्यापक और उपदेशकों से जैसे सूर्य और भूमि सबका सर्वथा उन्नति देते हैं वैसे स्त्री-पुरुषों से विद्या अच्छे प्रकार विस्तारनी चाहिए ॥२०॥

आ वासुपस्थमद्रुहा देवाः सिदन्तु यज्ञियाः ।

इहाय सोमपीतये ॥२१॥१०॥

वार्थ—हे अध्यापक और उपदेशकों ! ( इह ) इस संसार में ( अक्षं ) इस समय वा आज ( सोमपीतये ) जिससे विद्या और ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं उस क्रिया के लिए ( अद्रुहा ) प्रोहादि दोष रहित ( यज्ञियाः ) विद्या बुद्धिमय यज्ञ प्रचार के योग्य ( देवाः ) विद्वान्जन ( वासु ) तुम दोनों के ( उपस्थम् ) समीप रहनेवाले के ( आ, सीवन्तु ) समीप बैठें ॥२१॥

आचार्य—अध्यापक और उपदेशकों के समीप और निदोष विदुषी स्त्री हों जिससे दोनों स्त्री-पुरुषों में विद्या और उत्तम शिक्षा तुल्य हो ॥२१॥

इस सूक्त में अध्यापक और अध्ययनकर्ता, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, परमेश्वरों-पातना और स्त्री-पुरुष के क्रम वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सज्जति समझनी चाहिए ॥

यह इकतालीसवाँ सूक्त और बसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

कनिष्कवितिष्णुस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समम् अग्निं । कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता । १—३ त्रिष्टुप् छन्दः । वीराय स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले ब्यालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से उपदेशक के गुणों को कहते हैं—

कनिष्कदञ्जुनं प्रब्रुवाण इयं च वाचमरितेव नावम् ।

सुमङ्गलं च शकुने भवति मा त्वा का चिदभिमा विश्व्यां विदत् ॥१॥

वार्थ—हे ( शकुने ) पक्षी के तुल्य वर्तमान शक्तिमान् पुरुष ! ( कनिष्कम् ) निरन्तर ब्रह्मावमान उपदेशक ( अञ्जुनम् ) प्रसिद्ध विद्या को ( प्रब्रुवाणः ) प्रकृष्टता से कहता हुआ ( अरितेव ) पहुँचे हुए पदार्थों के समान ( नावम् ) वाणी ( च ) और ( नावम् ) नाव की ( इयं ) प्राप्ता होता वैसे ( सुमङ्गलः ) सुमङ्गल शब्दयुक्त ( अवाचि ) होते हो ( का, चित् ) कोई भी ( विश्व्याः ) इस सत्सार में हुई ( अभिमा ) सब ओर से जो कान्ति है वह ( त्वा ) तुम्हें ( मा ) मत ( चित् ) प्राप्त हो अर्थात् किसी दूसरे का तेज आपके आगे प्रबल न हो ॥१॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो उपदेशक जैसे बत्ती नाव को पहुँचाती है वैसे सब मनुष्यों को उपदेश के लिए प्राप्ता होता वा उपदेश करता हुआ पक्षी के समान भ्रमता है उस सुमङ्गलाचरण करनेवाले के लिए कोई कान्ति भङ्ग न हो इसलिए राजा को उपदेशकों की रक्षा करनी चाहिए ॥१॥

मा त्वां श्येन उद्वीन्मा सुपर्णो मा त्वां विददिधुमान् वीरो अस्ता ।

पित्र्यामनु प्रदिशं कनिष्कदत्सुमङ्गलं मद्रवाही बदेह ॥२॥

वार्थ—हे विद्वन् ! ( त्वा ) तुम्हें ( श्येनः ) श्येन पक्षी के समान कोई ( मा, उत्, वशीत् ) मत उच्चाटे ( मा ) मत ( सुपर्णः ) अच्छे पक्षुवाले अन्य पक्षी के समान उच्चाटे ( त्वा ) तुम्हें ( इधुमात् ) वाणों को रखने वा ( अस्ता ) फेंकनेवाला ( वीर ) वीर ( मा, चित् ) मत प्राप्ता हो ( इह ) यहाँ ( कनिष्कम् ) निरन्तर कहता हुआ ( अद्रवाही ) कल्याणरूप उपदेश करनेवाला ( सुमङ्गलः ) सुन्दर मङ्गल का उपदेशक होता हुआ ( पित्र्याम् ) पितृसम्बन्धी ( प्रविशन् ) दिशा और उपदिशाओं से युक्त देश को ( अमु, वव ) अनुकूलता से उपदेश कर ॥२॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे श्येन पक्षी आदि पक्षेय अन्य पक्षियों को मारते हैं वैसे कोई उपदेशक को पीडा मत दे जिससे वह सुख और कुशलता से सर्वत्र उपदेश कर सके ॥२॥

अव कन्द दक्षिणतो घृहाणां सुमङ्गलं मद्रवादी शकुन्ते ।

मा नः स्तेन ईशत माघर्षसो वृद्धदेम विदधे सुवीराः ॥३॥

वार्थ—हे ( शकुन्ते ) शक्तिमान् ! ( सुमङ्गलः ) सुन्दर मङ्गलयुक्त ( मद्रवादी ) कल्याण के कहनेवाले होते हुए आप ( घृहाणां ) उत्तम घरों के ( दक्षिणतः ) दाहिनी ओर से ( अव, कन्द ) शब्द करो अर्थात् उपदेश करो जिससे ( स्तेनः ) चोर ( नः ) हम लोगो को कष्ट देने को ( मा ) मत ( ईशत ) समर्थ हो ( अघर्षसः ) पाप की प्रवृत्ति करता वह डाकू हम लोगो को दुष्टता देने को ( मा ) मत समर्थ हो जिससे ( सुवीरा ) सुन्दर वीरोवाले हम लोग ( विदधे ) सन्ध्या में ( वृहत् ) बहुत कुछ ( वधेम ) करें ॥३॥

आचार्य—मुद्राचरणों के करनेवाले सत्यवादी महात्मा जहाँ उपदेश करते हैं वहाँ चोर आदि दुष्ट नष्ट होकर सबको बहुत सुख बढता है ॥३॥

इस सूक्त में उपदेशक के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सज्जति जाननी चाहिए ॥

यह ब्यालीसवाँ सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ण पूर्ण हुआ ॥

ॐ

प्रदक्षिणवितिष्णुस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य गृत्समम् अग्निं । कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता । १ अगती; ३ त्रिष्टुप्छन्दो छन्दः । निषाव स्वरः ।

२ सुरिगतिशब्दो छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले तेतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में

फिर उपदेशक के गुणों को कहते हैं—

प्रदक्षिणविति मृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।

उमे वाचो वदति सामगाहं नायत्र च त्रैदुम् चानु राजति ॥१॥

परार्थ—जैसे ( शकुने ) ऋतुओं में ( बबन्तः ) बोलते हुए ( शकुन्ताय. ) शक्तिमान् ( यय. ) पक्षी कहते हैं वैसे ( करावे ) काष्कधन ( उभे ) ऐहिक धीर पारमार्थिक सुख सिद्ध करनेवाली ( बाजी ) वाणियों का ( अभि, गृह्णन्ति ) सब ओर से उपदेश करते हैं जो ( प्रवक्षिण्ति ) प्रदक्षिणा को प्राप्त होनेवाला ( सामगाह्य ) सामगानेवाले के समान ( गायत्रम् ) गायत्री ( य ) और उष्णि-कादि ( वैष्टुभम् ) विष्टुभ को ( य ) और जगती आदि को भी ( बवति ) कहता है वह ऐहिक पारमार्थिक दोनों वाणियों को ( अनुराजति ) अनुकूलता से प्रकाशित करता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पक्षी ऋतु-ऋतु में नानाप्रकार के शब्दों का उच्चारण करते हैं वैसे शिल्पिजन डर को छोड़कर अनेक विद्या के प्रकाशक शब्दों को कहें ॥१॥

उद्गातेव शकुने सामं गायसि ब्रह्मपुत्रह्वं सर्वनेषु शंससि ।

बृधेव वाजी शिशुमतीरपीत्यां सर्वतो नः शकुने भद्रमा वंद

विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वंद ॥२॥

परार्थ—ह ( शकुने ) पक्षे के समान सामर्थ्यवाले । जो तुम ( उद्गातेव ) ऊर्ध्व स्वर से वेद को गाने हुए के समान ( साम ) सामवेद का ( गायसि ) गान करते हो ( ब्रह्मपुत्र ह्व ) चारों वेदों के ज्ञाता का जैसे कोई पुत्र हो वैसे ( सर्वनेषु ) यज्ञ सम्बन्ध में प्रातःकाल की क्रिया आदि में ( शंससि ) स्तुति करते तो तुम ( बृधेव ) महाबली बैल के समान ( वाजी ) बलवान् ( शिशुमती ) प्रशंसित बालकोवाली स्त्रियों को ( अपीत्य ) निश्चय से प्राप्त होकर ( न ) हम लोगों के लिए ( सर्वतः ) सब ओर से ( भद्रम् ) कल्याण का ( आवह ) उपदेश कर । हे ( शकुने ) कहने की शक्ति से युक्त पुरुष । तू सब ओर से विद्या का उपदेश कर ।

हे ( शकुने ) सब ओर से शक्तिमान् ! ( नः ) हम लोगों के लिए ( विश्वतः ) सब ओर से ( पुण्यम् ) पुण्य का ( आवह ) उपदेश कर ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे वैद्यवक्ता विद्वान्जन नियम से पाठ और वेदोक्त आचार को करते हैं वैसे उपदेश करनेवाले स्त्री-पुरुष सबकी उन्नति के लिए सर्वदा सत्योपदेश करें जिससे सबके सुख सब ओर से बढ़े ॥२॥

आवदस्त्वं शकुने भद्रमा वंद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिदि नः ।

यदुत्पतन्वदसि कर्करियेथा बृहद्देम विबधे सुवीराः ॥३॥१२॥

परार्थ—हे ( शकुने ) शक्तिमान् पक्षी के समान वर्तमान । तू ( आवह ) सब ओर से उपदेश करता हुआ ( भद्रम् ) कल्याण करने योग्य प्रस्ताव का ( आवह ) अच्छ प्रकार उपदेश कर ( तूष्णीम् ) मौन को आलम्बन कर ( आसीनः ) बैठे हुए योग का अभ्यास करता हुआ ( नः ) हम लोगों की ( सुमतिम् ) सुम बुद्धि ( चिकिदि ) समझ ( उत्पतन् ) ऊपर को उड़ते के समान जिस ( भद्रम् ) कल्याण करने योग्य काम को ( यथा ) जैसे ( कर्करि ) निरन्तर करनेवाला हो वैसे ( बवति ) कहते हो इसी से ( सुवीरा ) सुन्दर बीरोवाले हम लोग ( विबधे ) सग्राम में ( बृहत् ) बहुत कुछ ( बधेम ) कहें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्याओं को सुनकर मनन करते हुए पढ़ाते और सत्य को जानकर औरों को उपदेश करते हैं वे सबके कल्याण करनेवाले होते हैं ॥३॥

इस सूक्त में उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तैत्तलीसर्वा सूक्त, बारहवाँ वर्ग और चौथा अनुवाक और दूसरा मण्डल समाप्त हुआ ॥





## ॥ अथ तृतीय मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ तृतीयमण्डले सोमस्येति प्रयोविद्यास्यस्य प्रथमसूक्तस्य नाभिलो विद्याभिम-  
न्वि । अग्निर्वेत्ता; १, ३—४, ६, ११, १२, १५, १७, १८, २०  
निष्कृतिवृत्तः २, ९, ७, १३, १४ वृत्तः १०, २१ विराट् वृत्तः ।  
२२ उद्योतिष्मती वृत्तः स्य । चैवस, स्वरः । ८, १६, २३

स्वरान् पठन्ति स्यन् । पञ्चम स्वर ॥

अब तीसरे मण्डल का आरम्भ है, उस के प्रथम सूक्त के आरम्भ के प्रथम  
मन्त्र में विद्वानों की प्रशंसा कहते हैं—

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यमे वक्षिं चकर्थ विद्ये यजंघ्ये ।

देवां अगच्छा दीद्युक्जे अद्रिं शमाये अमे तन्वं जुषस्व ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् ! जो प्राप ( सोमस्य ) ऐश्वर्य की उत्तेजना  
से ( तवसम् ) अत्युत्तम ( मा ) भूत को ( वक्षिम् ) पदार्थ बहाने वाले अर्थात्  
एक देश से दूसरे देश को ले जानेवाले अग्नि को ( वक्षि ) कहते हैं ( विद्ये ) विद्वानों  
के सत्कार करनेवाले यज्ञ में ( देवाः ) विद्वान् वा दिव्य गुणों के ( यजंघ्ये ) मज्जित  
करने को ( अगच्छ ) अच्छे प्रकार ( चकर्थ ) किया करते हो उनके साथ मैं  
( दीद्युक् ) देदीप्यमान हुआ विद्वानों के सत्कार करनेवाले यज्ञ में विद्वान् वा दिव्य  
गुणों के मज्जित करने को ( यजंघ्ये ) युक्त होता हूँ जैसे अग्नि ( अग्निम् ) मेघ को  
बहाता है वैसे मैं विद्वानों के समीप में ( शमाये ) शांति के समान आचरण करता  
हूँ । हे ( अग्ने ) अग्निवद्वत्तमान ! शिष्य जैसे विद्वान् के शरीर का सेवन करता  
है वैसे प्राप ( तवसम् ) शरीर की ( जुषस्व ) प्रीति करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जो मनुष्य ऐश्वर्य के करने  
की इच्छा करें वे विद्वानों की सज्जति से शरीर को नीराग रख कर अपने को विद्वान्  
बना के अग्नि आदि की पदार्थविद्या से कार्यों को सिद्ध करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्राञ्च यक्षं चकुम् वद्वेतां गीः समिद्रिग्नं नमसा दुवस्यन् ।

दिवः शशासुविद्या कवीनां गृन्ताय चित्तवसे मातुमीधुः ॥२॥

पदार्थ—हम लोग ( नमसा ) सत्कार से जिस जिस ( प्राञ्चसु ) पहिले  
प्राप्त होनेवाले ( यक्षम् ) मज्जितों की मज्जितरूप यज्ञ को ( चकुम् ) करें उसमें  
( समिद्रि ) इन्धनावि पदार्थों से ( अग्निम् ) अग्नि का ( दुवस्यन् ) सेवन करते  
हुए के समान हम लोगों की ( गी ) अच्छी शिक्षा पाई हुई वाणी ( वक्षताम् )  
बड़े जो ( कवीनाम् ) मेधावियों के ( दिव ) प्रकाश से ( विद्यया ) विद्वानों को  
( तवसे ) विद्यावृद्ध ( गृन्ताय ) मेधावी के लिए ( शशासु ) मित्रावै और  
( मातुम् ) पृथिवी की ( ईधु ) चाहना करने उनको हम लोग सत्कार से ( चित )  
ही आनन्दित करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । मनुष्य अथवा विद्या से  
उत्तम शिक्षा पाई हुई वाणी को बड़ाकर महान् विद्वानों के समीप से अच्छे शिक्षित  
होकर पृथिवी के राज्य करने की चाहना करें ॥ २ ॥

मयो दधे मेधिरः पुतदसो दिवः सुबन्धुर्जनुषां पृथिव्याः ।

अविन्दुक्षु दर्शतमस्वः न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसृष्टाम् ॥३॥

पदार्थ—हे मज्जित ! जैसे ( देवाः ) विद्वान् जन ( अणु ) जल वा प्राणों के  
( अणु ) बीज ( वक्षताम् ) देखने योग्य ( अग्निम् ) विद्युत् रूप अग्नि को  
( अविन्दु ) कर्म के निमित्त ( अविन्दुम् ) प्राप्त होते हैं वैसे जो ( दिवः ) सूर्य  
और ( पृथिव्याः ) भूमि के बीच ( जनुषा ) अन्तर से ( स्वसृष्टाम् ) अग्नियों  
का ( सुबन्धुः ) सुन्दर भ्राता ( पुतदसः ) जिस का पवित्र बल वह ( मेधिरः )  
सज्जनों का सज्ज करनेवाला होता हुआ ( मय ) सुख को ( दधे ) धारण करता  
है वह ( अ ) ही उसी वा प्राणों में सब सुख को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे विद्वान् जन योग-  
विद्या से अपने आत्माओं में ज्ञान का प्रकाश बल औरों को दिखला कर ज्ञान से  
उन्हीं बहाते हैं वैसे मनुष्यों को जिस प्रकार पुत्रों को विद्या पढ़ाना चाहिए वैसे ही  
पुणियों भी विद्या सम्पन्न करनी चाहिये । जैसे भाई जन विद्याभ्यास करे वैसे अगिनी  
भी, देव ही आनन्दित मिल सकता है ॥ ३ ॥

अब स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अवर्धयन्सुभगं सप्त यज्ञीः श्वेतं जज्ञानमर्षं महित्वा ।

शिष्टं न जातमभ्याहारं देवासो अग्निं जनिषन्वपुष्यन् ॥४॥

पदार्थ—हे ( जनिषन् ) प्रसमित जन्म वा ( अपुष्यन् ) अपने को रूप की  
इच्छा करनेवाले विद्वन् ! जैसे ( अवर्ध ) विद्या व्याप्तिशील ( देवासः ) विद्वान् जन  
( श्वेतम् ) श्वेतवर्ण ( अवर्धन् ) अवर्धक ( अग्निम् ) अग्नि को ( सप्तयज्ञी )  
सात महान् स्त्री ( सुभगम् ) सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त ( जज्ञानम् ) जन्म दिलाने वाले का  
( महित्वा ) सत्कार ( जातम् ) उत्पन्न हुए ( शिष्टम् ) बालक के ( न ) समान  
( अवर्धयन् ) बढ़ावे वे निरन्तर सुख का ( अपुष्यन् ) प्राप्त होती हैं वैसे तुम भी  
प्रयत्न करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जैसे मात स्त्रियाँ एक पुत्र की  
वृद्धि करती हैं वैसे जो अग्निविद्या को जानकर ऐश्वर्य की उत्पत्ति करते हैं वे महिमा  
का प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर पुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुक्रेमिरक्षे रजं आततन्वानं कर्तुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।

शोचिर्वसानः पर्यायुग्मां श्रियो मिमीते वृत्तीरनुनाः ॥५॥१३॥

पदार्थ—जो मनुष्य ( शुक्रेभि ) वीर्यवान् ( अहमे ) अवयवों से ( रज )  
ऐश्वर्य को ( आततन्वानम् ) सब ओर से विस्तारित किये हुए ( पवित्रैः ) पवित्र  
( कविभिः ) विद्वानों से ( कर्तुम् ) विद्या वा कर्म को ( पुनानः ) पवित्र करता  
हुआ ( अपाव ) जलो के बीच ( आयु ) जीवन और प्रकाश ( वसान )  
आच्छादित होकर हुए ( वृत्ती ) बड़ी बड़ी जिनमें ( अनुना ) जिन में अनन्ता  
नहीं विद्यमान उन शोभाओं वा धनो का ( परिमिमीते ) सब ओर से सम्पन्न करता  
है वह विद्वान् धीमान् कैसे न हो ? ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जब तक तुम्हारे दृढ़ अङ्ग वाले शरीर, पवित्र  
वृद्धिया, धर्मात्मा प्राप्त विद्वानों का सज्ज, जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु नहीं होती तब  
तक अतुल लक्ष्मी और विद्या भी नहीं होती ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

अब स्त्रीपुरुषों के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वव्राजां सीमनदतीरद्वेषा दिवो यर्ह्यारवसाना अनघाः ।

सना अत्र युवतयः सयोनरीरेकं गर्भेन्दधिरं सप्त वाणीः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् ( सप्त, वाणी ) सात वाणियों की  
( सीम् ) सब ओर से ( वव्राजा ) प्राप्त होता वैसे ( अत्र ) यहाँ ( अनघाः )  
अविद्यमान अर्थात् अतीव सूक्ष्म जिनके दन्त ( अद्वेषा ) ग्रहितनीय अर्थात् सत्कार  
करने योग्य ( दिवः ) देदीप्यमान ( यज्ञी ) बहुत विद्या और गुण स्वभाव से  
युक्त ( अवसाना ) समीप में ठहरी हुई ( अनघा ) सब ओर से वस्त्र वह  
आभूषण आदि से ढकी हुई ( सना ) भोगने वाली ( सयोनरी ) समान जिन की  
योनि अर्थात् एक माना से उत्पन्न हुई सगी वे ( युवतयः ) प्राप्तयोग्य स्त्री  
( एकम् ) एक अर्थात् असहायक ( गर्भम् ) गर्भ को ( दधिरं ) धारण करतीं  
वे सुखी क्यों न हो ? ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो समान रूप वाली स्त्रियाँ अपने अपने समान पतियों को अपनी  
इच्छा से प्राप्त होकर परस्पर प्रीति के साथ सन्तानों को उत्पन्न कर और उन की  
रक्षा कर उन का उत्तम शिक्षा दिनाती हैं वे सुखयुक्त होती हैं । जैसे परा, परधन्वी,  
मध्यसा, वैखरी और कर्म्मोपासना ज्ञानप्रकाश करनेवाली तीनों मिल कर सातवाणी  
सब व्यवहारों को सिद्ध करती हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष धर्मार्थ काम और मोक्ष  
को सिद्ध कर सकते हैं ॥ ६ ॥

स्तीर्णा अस्म्य संहतो विष्वक्पा घृतस्य योनीं स्रवये मधूनाम् ।

अक्षुरत्र येनवः पिबन्माना मही दुस्सस्य मातरां समीची ॥७॥

पदार्थ—जैसे ( स्तीर्णा ) पुत्रगुणों से आच्छादित ( विष्वक्पा ) नाना  
स्वस्वयुक्त ( संहतः ) एक हो रही ( पिबन्माना ) सेवन करती हुई ( येनवः )  
गौरी ( अत्र ) यहाँ ( अक्षुः ) इस व्यवहार के बीच ( घृतस्य ) जल के ( योनीं )  
आश्रय के ( मधूनाम् ) अक्षु पदार्थों की ( अक्षुः ) प्राप्ति के निमित्त ( अक्षुः )

स्थिर होती हैं वैसे ( समीची ) अच्छे प्रकार प्राप्त होने ( मही ) सत्कार करने योग्य ( आतरा ) पिता माना ( इस्मस्य ) दुःख नष्ट करनेवाले बालक के पालने वाले होते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे नदी और समुद्र मिलकर गन्ती को उत्पन्न करने हैं वैसे स्त्री पुरुष सन्तानों को उत्पन्न करें ॥ ७ ॥

अब विद्याजन्म की प्रशंसा को अगले मन्त्रों में कहा है—

**बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्धानः शुक्रा रभमा वपूषि ।**

**धोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृषे काव्येन ॥८॥**

पदार्थ—हे ( सुनो ) सन्तान ! जैसे ( शुक्रा ) शरीर आत्मा और बल तथा ( रभसा ) गौरवहित ( वपूषि ) रूपवान् शरीरों को ( बभ्राण ) धारण करता हुआ जा ( मधुन ) मीठ ( घृतस्य ) जल की ( धारा ) धाराओं के समान वाणी ( धोतन्ति ) भरती हैं ( यत्र ) जिस व्यवहार में ( वृषा ) वनवान् जन ( काव्येन ) विद्वानों के निर्माण किये और पढ़े हुए कविनाई आदि कर्म के साथ ( वावृषे ) बढ़ता है वा ( सहस ) बल से ( व्यद्यौत् ) प्रकाशित होता है वैसे ही इन उक्त पदार्थों से ( बभ्राण ) पुष्ट होते हुए बढ़ा ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है । जैसे उत्तम शिक्षा पाये हुए सज्जनों की वाणी जल के समान कोमल और सरस होती है जैसे बह्वचारी बलवान् होता है वैसे सन्तानों को चाहिये कि विद्या सुशिक्षाओं का अच्छे प्रकार ग्रहण कर बलवान् और सुशील हों ॥ ८ ॥

**पितृश्विदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।**

**गुहा चरन्त सखिभिः शिवेर्मदिवो यल्लीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥**

पदार्थ—जैसे ( ऊष ) गन्ती ( विबभूव ) विशेषता से हाती है वा जैसे ( अस्य ) इस जल की ( धारा ) धाराओं के ( चित् ) समान प्रवाह ( गुहा ) बुद्धि में होते हैं वैसे जो ( पितु ) पिता की उन्नेजना से गर्भ में स्थिर होकर ( जनुषा ) जन्म से प्रकट होकर ( शिवेभि ) मङ्गलकारी ( सखिभि ) मित्र वगैरों के साथ ( विव ) विद्या की दीप्ति जा ( यल्ली ) बड़ी बड़ी उनके ( न ) समान ( गुहा ) कन्दरा में ( चरन्तस् ) बिखरते हुए जो ( विवेद ) जानता है ( धेना ) प्रीतिमान सन्तानों के समान ( व्यसृजत् ) विशेषता में उत्पन्न का वह सुख प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है । जैसे प्रसन्नता में स्थित वस्तु नहीं दीव पड़ती जैसे दीप से प्राप्त ज्ञानी धेने पिता के शरीर में वर्तमान जीव गर्भ में स्थिर हुआ नहीं दीवता और जब उसका जन्म होता है तब दीवता है इस प्रकार जो मङ्गलाचरणों में मित्रों के साथ विद्याओं का ग्रहण करता है वह आत्मा को जान बड़ा होता है ॥ ९ ॥

**पितृश्च गर्भे जनिनृश्च बभ्रे पूर्वीरेका अधयत्पीप्यानाः ।**

**पृष्ठे स्पृक्षी शुचये सबन्धु उभे अस्मै मनुष्ये नि पाहि ॥१०॥**

पदार्थ—जैसे ( अस्मै ) हम ( शुचये ) पवित्र ( वृष्णे ) वीर्य सेवनेवाले मनुष्य के अर्धे ( स्पृक्षी ) समान जिसका पति वह ॥ ( गर्भम् ) गर्भ का ( बभ्रे ) धारण करती वह ( एक ) एक गर्भ ( पितु ) पालन करनेवाले ( च ) और सुन्दर अन्नादि आर ( जनिनृ ) जन्म देनेवाले पिता की ( च ) और धार की उत्तेजना में जन्म पाकर ( पूर्वा ) पहिले उत्पन्न हुई ( पीप्याना ) बढ़ती हुई प्रजा ( अधयत् ) दुग्ध पीती है वैसे ( उभे ) दोनों स्त्री पुरुष ( सबन्धु ) एक समान वन्धुओं के समान प्रीति रखनेवाले ( मनुष्ये ) मनुष्य के लिए जा हित उसका निमित्त ( गर्भम् ) गर्भ की रक्षा करने है वैसे ॥ विद्वन् ॥ एक हाते आप ( नि, पाहि ) निरन्तर पालना करा ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानकार है । जब माता पिता गर्भ का धारण करने हैं और उसकी रक्षा कर दुग्धपान आदि सब बढ़ाने हैं वैसे स्त्री पुरुष प्रीति का बढ़ाकर गर्भ का धारण कर उस अच्छे प्रकार पाल मनुष्यों के हित के लिए अपने सन्तानों का विद्या ग्रहण करावे ॥ १० ॥

**उरौ महां अनिवाधे बंधर्धापो अग्नि यशसः स हि पूर्वीः ।**

**ऋतस्य योनावशयदमूना जामीनामग्निरपसि स्वसृणाम् ॥११॥**

पदार्थ—जैसे ( पूर्वी ) प्राचीन ( आप ) जल मेघ में बढता है वैसे ( यशस ) कीर्ति में ( महान् ) जो बड़ा है वह ( अनिवाधे ) बाधा रहित ( उरौ ) बहुत व्यवहार में ( अग्निम् ) अग्नि को प्राप्त कर ( हि, स, बधर्ध ) अच्छे प्रकार बढ़ता है जैसे ( अग्नि ) पावक ( ऋतस्य ) जल के ( योनी ) कारण से ( अशयत् ) सोता है वैसे ( जामीनाम् ) भागनवाली ( स्वसृणाम् ) बहिनियों के ( अपसि ) कर्म में स्थिर होकर ( दमूना ) दमनशील जन विद्या में बढ़ता है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो निर्विघ्न विद्यार्थी विद्या के ग्रहण करने में प्रयत्न करें तो दम और शमादि गुणयुक्त होते हुए सब सम्बन्धियों को विद्यायुक्त कर सकें ॥ ११ ॥

**अक्रो न बभ्रिः समिधे महीनां दिदक्षेयः सूनवे माक्रजीकः ।**

**छदुक्षिया जर्जिता यो जजानापा गर्भो नृत्तमो यहो अग्निः ॥१२॥**

पदार्थ—( य. ) जो सूर्य ( अपाम् ) जलो के बीच ( गर्भ. ) स्तुति करने के योग्य ( यह् ) महान् ( अग्नि. ) अग्निरूप ( उक्षिया. ) किरणों से संयुक्त जनो का ( बभ्रिः ) उत्पन्न करनेवाला होता है उसके ( विदुक्षेय. ) देखने को चाहता मैं उत्तम ( नृत्तम् ) अतीव नता सबका नायक ( उक्षजान् ) उत्तमता से प्रकट होता है वह ( सूनवे ) सन्तान के लिए ( महोनाम् ) पूजनीय सेनाओं के ( समिधे ) संध्या के बीच ( बभ्रि ) धारण करनेवाला ( अक्र. ) किसी प्रकार से आक्रमण करने को अयोग्य के ( न ) समान ( माक्रजीक ) विद्यादीप्तियों से सरल होता है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे सूर्य जलो के गर्भ को उत्पन्न कर तथा मेघ के माध अच्छे प्रकार युद्ध कर जल वर्षा कर सबको बढ़ाता है वैसे सन्तानों को शिक्षा देनेवाले सब जगह विजयी होते हैं ॥ १२ ॥

फिर विद्या की प्रशंसा को अगले मन्त्रों में कहा है—

**अपां गर्भे दर्शतमोपधीनां वनां जजान सुभगा विरूपम् ।**

**देवासंश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठ जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( देवास ) विद्वान् जन ( मनसा ) अन्तःकरण और अभ्यास से ( चित् ) भी जिस ( अपाम् ) प्राण वा ( ओषधीनाम् ) ओषधीयों के बीच ( दर्शतम् ) देखने योग्य ( विरूपम् ) जिसमें विविध रूप विद्यमान उस ( गर्भम् ) मध्यव्यापी अग्नि का ( स, जग्मुः ) अच्छे प्रकार जाने वा प्राप्त हों तथा जो ( हि ) ही ( सुभगा ) सुन्दर ऐश्वर्य के देनेवाले ( वना ) वन वा जगलो को ( जजान ) उत्पन्न करता है जिस ( जातम् ) प्रसिद्ध ( तवसम् ) बल करनेवाले ( पनिष्ठम् ) स्तुति करने योग्य अग्नि को ( दुवस्यन् ) सेवन करें उस विद्युरूप अग्नि को तुम लोग यथावत् जानो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो अग्नि, वायु, जल और पृथिवी में तथा शरीर आंशु आदि प्रत्यक्ष परोक्षभूत पदार्थों में व्याप्त उसको जान उसमें सब कार्यों को सिद्ध करें ॥ १३ ॥

**बृहन्त इन्द्रानवो माक्रजीकमग्निं मंचन्त विद्युतो न शुक्राः ।**

**गुहं वृद्धं मंदमि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतन्दुहानाः ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( बृहन्त ) महान् ( अमृतम् ) कारणरूप से नाशरहित जल का ( दुहाना ) पूर्ण करते हुए ( आनव ) किरण वा दीप्ति ( विद्युत ) बिजुलियों को ( न ) समान ( शुक्रा. ) शुद्ध ( तवसि ) सभा में ( वृद्धम् ) विद्या और अवस्था में जो अतीव प्रशंसित उसके समान आत्मा को ( गुहं ) बुद्धिमय जीव के समान ( माक्रजीकम् ) दीप्तियों में सरल ( अग्निम् ) अग्नि का ( सचन्त ) सम्बद्ध वा मेल करने हैं जो ( अपारे ) अगाध आवापृथिवी ( स्वे ) निज सम्बद्ध बरतनेवाले ( ऊर्वे ) लाक सङ्कर्षण करनेवाले अभिव्याप्त होकर ( अन्त ) बीच में विराजमान हैं ( इत् ) उन्हीं का जाना ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो अग्नि सर्वत्र स्थित सूर्य वा भोमरूप से प्रसिद्ध बिजुलीरूप में गुप्त मध्यादि पदार्थों का निर्मित है उसका जानकर अभीष्ट सिद्ध करना चाहिए ॥ १४ ॥

**ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळं सखित्वं सुमतिश्चिकामः ।**

**देवैरवो मिमीहि सं जग्निं रक्षा च नो इम्येभिरनीकैः ॥१५॥१५॥**

पदार्थ—( यजमान ) सब विद्या गुणा का मङ्गल करनेवाला मैं ( देवैः ) विद्वानों के साथ ( च ) और ( हविर्भि ) ग्रहण करने योग्य साधनों से जिन ( त्वा ) आप विद्वानों की ( सम्, ईळे ) मन्त्रक स्तुति करना हूँ वा ( चिकाम ) निश्चित कामनावा ना होता हुआ ( सखित्वम् ) मित्रपन वा ( सुमतिम् ) सुन्दर बुद्धि की ( ईळे ) प्रशंसा करता हूँ वह आप ( जग्निं ) स्तुति करनेवाले मेरे लिये ( अब ) रक्षा आदि का ( मिमीहि ) उत्पन्न करो ( इम्येभि ) दमन करने योग्य ( अनौकै ) सेनाजनों के साथ ( न ) हम लोगों की ( च ) भी ( रक्षा ) रक्षा करो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को प्रथम श्रेष्ठ अध्यापक बृद्धता चाहिये और फिर उससे समस्त विद्याओं का बृद्धता चाहिये तदनन्तर विचार पीछे मात्कारक शक्ति प्रत्यक्ष करना उसके परे उपयोग करना चाहिए ॥ १५ ॥

**उपक्षेत्तारस्तव सुप्रणीतेऽग्रे विश्वानि धन्या बधानाः ।**

**सुरेतमा श्रवंसा तुङ्जमाना अमि व्याम पृतनापूरुद्वान् ॥१६॥**

पदार्थ—हे ( सुप्रणीते ) अपने में सुन्दर उत्तमोत्तम नीति का प्रकाश करनेवाले ( अमि ) पूर्णविद्यायुक्त ( तव ) तुम्हारी उत्तेजना से विद्वान् होकर ( पृतनापूरु ) सेनाओं में पूर्ण आयु जिनकी विद्यमान उन ( अवेनाम् ) अधिवान् ( उपक्षेत्तार ) समीप प्राप्त हुए जनो को छिन्न भिन्न करनेवाले ( सुरेतमा ) सुन्दर समुक्त वीर्य और ( अवसा ) अवगम से ( विश्वानि ) समस्त ( धन्या ) धन के योग्य पदार्थों को ( बधाना ) धारण करते और ( तुङ्जमाना ) बल करते हुए हम लोग सुखी ( अभिव्याम ) सब ओर से हों ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अधिविद्वानों की उपेक्षा करके विद्वानों का सेवन करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

आ देवानामभवः केतुरमे मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।

प्रति मर्ता अवासयो बभूना अनु देवान्धिरो यांसि साधन ॥१७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) तीव्रबुद्धिजन ( केतु ) ज्ञानवान् ( मन्त्र ) ज्ञानन्द के देनेवाले आप ( विश्वानि ) समस्त ( काव्यानि ) कवियों से निर्माण किये हुए शास्त्रों को अध्ययन कर ( देवानाम् ) देवों के बीच ( विद्वान् ) ज्ञानवान् ( आ, अभव ) हो तथा ( बभूना ) जितेन्द्रिय ( रश्मि ) और प्रशंसित रखवाले ( साधन ) साधना करते हुए आप ( मर्ता ) मनुष्य जो ( देवान् ) विद्वान् उनके ( प्रति ) प्रति ( अवासयो ) निवास कराओ वा ( अनु, यांसि ) उक्त मनुष्यों के प्रति अनुकूलता से प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के बीच स्थिर हो सब शास्त्रों का अध्ययन कर औरों को अध्ययन कराता है वह सब सुखों को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा मसाव विद्वानि साधन ।

धृतमतीक उर्विया व्यथौदप्रिविद्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥

पदार्थ—जो ( अमृत ) आरमरूप में मृत्यु धर्मरहित ( विद्वान् ) विद्वान् ( दुरोणे ) घर में ( मर्त्यानाम् ) मनुष्यों के बीच ( धृतमतीक ) धृत जिसका प्रकाश करनेवाला ( अग्नि ) वह अग्नि ( उर्विया ) पृथिवी पर ( वि, जघौत् ) विशेषता से प्रकाशित होने हुए के समान ( विद्वानि ) समस्त ( विद्वानि ) विद्वानों वा ( काव्यानि ) विविध आक्रमण करती हुई बुद्धियोवाले विद्वानों के बनाव शास्त्रों का अध्ययन कर सबका हित ( साधन ) मित्र करते हुए मनुष्यों के बीच ( निवसाव ) स्थिर हो 'बह' हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥ १८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सूर्यरूप से सबको प्रकाशित करता है वैसे पूर्ण विद्यायुक्त सभापति राजा धर्म से प्रजाजनों की अच्छे प्रकार पालना कर विद्याओं का प्रकाश करता है वह सबको सत्कार करने योग्य कैसे न हो ? ॥ १८ ॥

आ नो गहि मुख्येभिः शिषेभिर्मदान्दीर्घमितिभिः सरण्यन् ।

अस्मे रयि बहूलं सन्तश्च सुवाचै भागं यशसं कृषी नः ॥१९॥

पदार्थ—ह विद्वन् । आप ( शिषेभिः ) मङ्गलमय ( मुख्येभिः ) मित्रों के किये हुए कर्मों के साथ ( न ) हम लोगों को ( आ, गहि ) प्राप्त हजिये ( महोभिः ) बड़ी बड़ी ( कृतिभिः ) रक्षाओं से ( अस्मे ) हम लोगों को ( सरण्यन् ) प्राप्त होते हुए ( महान् ) बड़े सज्जन आप ( सन्तश्च ) दुःख में अच्छे प्रकार तागनेवाले ( सुवाचम् ) सुन्दर वाणी के निमित्त ( यशसम् ) कीर्ति करनेवाले ( भगम् ) सेवन करने योग्य ( बहूलम् ) बहुत प्रकार के ( रयिम् ) पुष्कल धन को प्राप्त ( न ) हम लोगों को ( कृषी ) कीजिए ॥ १९ ॥

भाषार्थ—यदि मनुष्य सुन्दर मित्रों को प्राप्त हो तो उसको बड़ी लक्ष्मी कैसे न प्राप्त हो ॥ १९ ॥

एता सं अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्याय नूतनानि बोधम् ।

महान्ति धृष्या सर्वना कृतेमा जन्मजन्मन निहितो जातवेदाः ॥२०॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् ! ( ते ) आपके ( एता ) इन ( जनिम् ) जन्मों को जो कि ( सनानि ) कर्मों से संवेत वा ( नूतनानि ) नवीन ( महान्ति ) बड़े बड़े ( सर्वना ) ऐश्वर्यसाधक कर्मों ( जन्मजन्मन् ) जन्म जन्म में ( कृता ) किये हुए तथा ( इमा ) इन ऐश्वर्यसाधक कर्मों को ( पूर्याय ) पूर्णता से किये हुए ( धृष्यते ) बल के लिये ( प्र, बोधम् ) कह उनको ( निहित ) अच्छे प्रकार स्थित ( जातवेदाः ) जो उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान आप सुनो ॥ २० ॥

भाषार्थ— हे मनुष्यो ! जो कर्म जीवों को करने योग्य उनसे किये जाते और किये जायेंगे वे सब सुख दुःख मिश्रित फल भोगनेवाले होते हैं ॥ २० ॥

जन्मजन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिष्यते अजस्रः ।

तस्यै वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि मद्दे सौमनसे स्याम ॥२१॥

पदार्थ—हे जीव ! परमेश्वर ने ( जन्मजन्मन् ) जन्म जन्म में ( निहित ) कर्मों के अनुसार स्थापन किया ( जातवेदाः ) उत्पन्न हुए पदार्थों में न उत्पन्न हुए के समान वर्तमान ( विश्वामित्रेभिः ) समस्त ससार जिनका मित्र उन सज्जनों से ( अजस्र ) निरन्तर ( इष्यते ) प्रबोधित कराया जाता ( तस्य ) उस ( यज्ञियस्य ) यज्ञ के योग्य होते हुए प्राणी की ( सुमती ) प्रशंसित प्रज्ञा में और ( अग्ने ) कल्याण करनेवाले व्यवहार में तथा ( सौमनसे ) सुन्दर मन के भाव में ( अपि ) भी हम लोग ( स्याम ) होंगे ॥ २१ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को प्रसिद्ध जगत् में सुखदुःखादि न्यून अधिक फलों को देखकर पहिले जन्म में सञ्चित कर्म फल का अनुमान करना चाहिये जो परमेश्वर कर्म फल का देनेवाला न हो तो व्यवस्था भी प्राप्त न हो इसलिये सबको श्रेष्ठ बुद्धि उत्पन्न कर और आदि छोड़ सबके साथ सत्य भाव से वर्तना चाहिये ॥ २१ ॥

इमं यज्ञं सहसावन् त्वं वां देवत्रा धेहि सुकतो रराणः ।

म यंसि होतवृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२॥

पदार्थ—हे ( सहसावन् ) प्रयास बल और ( सुकतो ) श्रेष्ठप्रज्ञायुक्त ( अग्ने ) विद्वान् ( त्वम् ) आप ( न ) हमारे ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) रागद्वेषरहित न्याय दयामय यज्ञ का ( देवत्रा ) विद्वानों में ( धेहि ) स्थापन करे । वा हे ( होत ) ग्रहण करनेवाले विद्वान् ( रराण ) दाता होते हुए आप ( वृहती ) बड़ी-बड़ी ( इष ) अन्नादि सामग्रियों को ( न ) हम लोगों के लिये ( प्र, यंसि ) देत है वह ( महि ) बहुत ( द्रविणम् ) धन को ( आ, यजस्व ) दीजिये ॥ २२ ॥

भाषार्थ—ईश्वर ने विद्वान् को आज्ञा दी है कि जबतक जीवे तबतक तू विद्या यज्ञ को मनुष्यों में अच्छे प्रकार विस्तारे और पुष्कल अन्न और उससे धनो को सबके भरण देके सुखी होवे ॥ २२ ॥

इदमग्ने पुरुदसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यामः सनुस्तनयो विजावाग्ने सा तं सुमतिर्भूस्वस्मे ॥२३॥१६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् ( गो ) वाणी का ( शश्वत्तम् ) अन्नादि भूत शब्दार्थ सम्बन्ध ( हवमानाय ) ज्ञानन्द क लिये ( पुरुदसम् ) जिससे बहुत कर्म बनते हैं ( सनिम् ) अलग-अलग की हुई ( इदम् ) स्तुति करनेवाली वाणी को आप ( साध ) मित्र कीजिये । हे ( अग्ने ) विद्वान् ! जो ( ते ) नृमहारी ( सुमतिः ) उत्तम बुद्धि होती है ( सा ) वह ( अस्मे ) हम लोगों के लिये ( भूत ) हो जिससे ( न ) हमारे ( विजावा ) विशेष करके उत्पन्न हुआ हो ऐसा ( तनय ) विस्तीर्ण बुद्धिवाला ( सनु ) पुत्र ( स्यान् ) हो ॥ २३ ॥

भाषार्थ—विद्वानों की यही योग्यता है कि सब कुमार और कुमारियों को पण्डित पण्डिता बनावें जिसमें सब विद्या के फल को प्राप्त होकर सुमति हो ॥ २३ ॥

इस सूक्त में विद्वान् स्त्री पुरुष और विद्या जन्म की प्रशंसा करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ मङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह तीसरे मण्डल में प्रथम सूक्त और सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥



बंश्चानरायेति पञ्चदशसंख्य द्वितीयस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्वैश्वानरो वेत्ता । १, ३, १० जगती । २, ४, ६, ८, ९, ११ विराट् जगती ।

५, ७, १२—१५ निष्कजगती च छन्द । निषाद स्वर ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले दूसरे सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

वैश्वानराय धिषणांमृताध्वं धृतं न पुनमग्र्ये जनामसि ।

द्विता होतां मनुष्य वाचतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( ज्ञाताध्वे ) मन्त्र के बढ़ानेवाले ( वैश्वानराय ) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान ( अग्नये ) अग्नि के लिये ( पूजम् ) पवित्र ( धृतम् ) धृत के ( न ) समान ( धिषणां ) प्रगल्भ बुद्धि को ( जनामसि ) उत्पन्न करे ( वाचते ) मेधावी जन ( धिया ) प्रज्ञा वा कर्म से ( कुलिशः ) दण्ड ( रथम् ) रथ को ( न ) जैसे वैसे ( समृण्वति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होना ( द्विता ) दो के होन ( होतावम् ) होमकर्ता मनुष्य ( च ) और ( मनुष ) मनुष्यों को सम्यक् प्राप्त होना वैसे ही तुम भी आचरण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ऋत्विग् जन धृत आदि हवि को अच्छे प्रकार शोधकर अग्नि में हवन करने से अग्नि की बुद्धि करते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक जन शिष्या तथा श्रोताओं की बुद्धियों को बढ़ावें, जैसे कुल्हाड़ी आदि साधनों से काष्ठ छील कर यान बनाये जाते हैं वैसे उत्तम शिक्षा और ताडनाओं से शिष्य लोग विद्या में मग्न किये जावें, जैसे अध्यापक और शिष्यता प्रीति से वर्तमान है वैसे सबको वर्तमान करना चाहिए ॥ १ ॥

अब अग्नि के गुणों की अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स रौचयज्जनुषा रौचसी उमे स मात्रोरभवत् पुत्र ईदधः ।

हृष्यवाळग्रजरथनोहितो दृक्मो विशामतिथिविमावसुः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( स. ) वह ( अग्नि ) अग्नि ( जनुषा ) जन्म से अर्थात् उत्तेजना में ( उमे ) दोनों ( रौचसी ) सूर्य और भूमि को ( रौचयत् ) प्रकाशित करे और ( स. ) वह अग्नि ( मात्रो. ) इन मान करनेवाली सूर्यभूमियों में ( ईदध ) स्तुति करने योग्य ( पुत्र ) पुत्र के समान हो तथा जो ( अग्नि ) अग्नि ( हृष्यवाट् ) हृष्य पदार्थ को पहुँचानेवाला ( अजर. ) जीर्णविस्था रहित ( चनो-हितः ) अन्नादि पदार्थों का हितकारी ( वृळभ ) दुःख में प्राप्त होने योग्य ( विश्व-भुतः ) जो विविध प्रकार की कान्तियों का वसानेवाला ( विशामः ) प्रजाओं के समीप ( अतिथिः ) निरन्तर पहुँचनेवाला हो उसको यथावत् जानो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो ब्रह्मचर्य से विद्या और उत्तम शिक्षाओं को प्राप्त मनुष्य हो वह भूमि और आकाश के बीच विराजमान हो सूर्य के समान सबका हितकारी हो ॥ २ ॥



क्रत्वा बक्षस्प तरुषो विधर्मणि देवास्तो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।

रुचानं भानुना ज्योतिषा महामस्यं न वाजं सन्निष्यन्नपञ्चवे ॥३॥

पदार्थ—जैसे (देवासः) विद्या की कामना करनेवाला (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से (बक्षस्प) बल (तरुषः) जो कि दुःखा म अच्छे प्रकार तारनेवाला उसके (विधर्मणि) विविध कर्म से (चित्तिभिः) इन्धन आदि की चयन क्रियाओं से (भानुना) जो प्रकाश उमसे (रुचानम्) अत्यन्त दीप्तिमान् (ज्योतिषा) तेज से (महाम्) महान् (वाजम्) वेगवान् (अग्निम्) अग्नि को (अस्यम्) अश्व के (न) समान (जनयन्त) उत्पन्न करे वैसे इस अग्नि को (सन्निष्यन्) सेवन करना हुआ मैं औरों को (उप, ब्रूये) उपदेश करता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि क्रिया कौशलता के साथ अग्नि से उपकार लिया जाहे तो अत्यन्त कार्यसिद्धि करनेवाला हो ॥ ३ ॥

आ मन्द्रस्य मनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्यं वाजमुग्मियम् ।

राति भृगुणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं विष्येन शोचिषां ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (मन्द्रस्य) अच्छे प्रकार धानन्द देनेवाले के लाभ के लिए (अह्यम्) मज्जारहित (वाजम्) वेगवान् (अग्मियम्) ऋचाओं से जिसका प्रकोप होता अर्थात् जिसमें क्रिया होती उस (भृगुणाम्) भविष्य ज्ञानवालो के (रातिम्) देनेवाले (उशिजम्) मनोहर (विष्येन) शुद्ध और (शोचिषां) स्वरूप से (राजन्तम्) प्रकाशमान (कविक्रतुम्) कवियों के यज्ञ के समान उपकार जिसका उस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (अग्निम्) अग्नि को (सन्निष्यन्त) बाँटते हुए हम लोग (आ, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं वैसे तुम भी उसको स्वीकार करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो युक्ति से अग्नि सेवन करने तो क्या-क्या दिव्य सुख वा वस्तु न सिद्ध करे ॥ ४ ॥

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवममिह वृत्रवन्धिषः ।

यत्स्रवः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञाना माधविष्टमपसाम् ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (यत्स्रवः) जिन्होंने यज्ञ करने की सच्चा ग्रहण की और (वृत्रवन्धिषः) इस यज्ञ धर्म से अन्तरिक्ष छेदन किया वे (जना) ऋत्विज् मनुष्य (इह) वर्तमान समय में (सुम्नाय) मुख के लिए (सुरुचम्) सुन्दर प्रकाशित (विश्वदेव्यम्) समस्त दिव्य पदार्थों में उत्पन्न हुए (रुद्रम्) किन्हीं का कलाने वाले (यज्ञानाम्) यज्ञ कर्मों के (माधविष्टम्) हवन कर्म को जिससे सिद्ध करने वा अन्य (अपसाम्) कर्मों के बीच (वाजश्रवम्) वेग और अन्न को सिद्ध करते उस (अग्निम्) अग्नि का (पुर) प्रथम सब कर्मों से पहिले (वन्धिरे) धारण करने है वैसे हम लोगों को भी अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—उस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसा कान्यगृज् जन यज्ञों में अग्नि से वायु और वर्षा के जन ही शुद्धि आदि का काम करत है वैसे शिल्पि आदि जनो का भी पाचक अग्नि से कार्य सिद्ध करना चाहिए ॥ ५ ॥

पावकशोचे तव हि क्षयं परि दातयिषे वृक्तयर्हिषो नरः ।

वैद्वि दुर्व इच्छमानास आप्यमुपांमते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६॥

पदार्थ—हे (पावकशोचे) अग्नि के गमान कानिवाले (होत) दानशील (अग्ने) विद्वान् (तव) आपके (हि) ही (अयम्) घर का (यज्ञेषु) यज्ञों में (दुर्व) सेवन (इच्छमानास) चाहते हुए (वृक्तयर्हिषः) ऋत्विज्जन (नर) नायक सर्व शिरोमणि जनो के समान (आप्यम्) जो प्राण होने योग्य अग्नि की (उपांमते) उपासना करने है (तेभ्यः) उनके लिए (द्रविणम्) धन वा गन्ध (धेहि) धार्यो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र म वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् ! जो तुम्हारे निकट तुम्हारे सेवा करत हुए अग्नि विद्या की याचना करते हैं उनके प्रति इस विद्या का उपदेश कीजिए जिससे वे धनाढ्य होंगे ॥ ६ ॥

अब अग्नि विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ रोहमी अपृणवा स्वर्महज्जातं पदेनमपसो अधारग्नय ।

सो अध्वराय परि णीयते कविग्नस्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप जैसे (चनोहितः) अन्न के लिए हित करानेवाला (वाजसातये) अन्नार्थ पदार्थों के विभाग करने को (अस्य) जैसे व्याप्तिशील अर्थात् वालो में व्याप्ति रखनेवाला अश्व (न) वैसे (कविः) चञ्चल देखा जाय ऐसा अग्नि (रोहमी) आकाश और पृथिवी (आ, अपृणत्) अच्छे प्रकार पूर्ण करता है (वाजम्) जिस (महत्) बहुत (जातम्) उत्पन्न हुए (स्वः) सुख को (आ) आकाश और पृथिवी को (पदेनम्) अधारग्नय (अध्वराय) अध्वरारूप यज्ञ के लिए (अपृणत्) पूर्ण किया जाता है वैसे (एनम्) उक्त अग्नि को (अपसः) कर्म से (अपृणत्) धारण करे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विशुद्ध रूप अग्नि सूर्य की भाँती उनमें स्थित और अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है यदि वह यानों में प्रयुक्त किया जाये तो सबका हितकारी हो ॥ ७ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

नमस्यतं ह्यपवांति स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।

रथीर्कृतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निदेवानामभवत् पुरोहितः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (रथी) प्रशसित रथवान् (अवस्य) सत्य (बृहतः) बड़े कार्य का (विचर्षणिः) देखनेवाला (देवानाम्) विद्वानों का (पुरो-हितः) पहिले जिसका धारण करते (अग्निः) पवित्र करनेवाला (अभवत्) होता है और (ह्यपवांतिम्) होमने योग्य पदार्थों का देनेवाला (स्वध्वरम्) जिससे कि सुन्दर यज्ञ होता उस (दम्यम्) दानशील (जातवेदसम्) और उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान विद्वान् को (नमस्यत) नमस्कार करो और उसकी (दुवस्यत) सेवा करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बहुत विद्यावाला अहिमक जितेन्द्रिय विद्वानों के बीच विद्वान् हो वही तुम लोगों को नमस्कार करने और सेवने योग्य भी हो ॥ ८ ॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

तिस्रो यहस्य सभिधः परिज्मनोऽग्रेपुनश्चिजो अमृत्यवः ।

तासामेकामदधुर्मस्ये भुजं लोके द्वे उप जाभिमीयतुः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यहस्य) महान् (परिज्मनः) सर्वत्र व्याप्त (अग्नेः) अग्नि की जो (उशिजः) मनोहर (अमृत्यवः) मृत्यु धर्म रहित (तिस्रः) तीन प्रकार बिजुली भूमिगत और सूर्यरूप से स्थित ज्योति (सभिधः) सम्यक् प्रदीप्त लपटें हैं वे सबको (अपुनश्चिजो) पवित्र करती है (तासाम्) उनमें से (उ) ही (एकाम्) एक को (मृत्यं) मनुष्य लोक में (अवधुः) स्थापन करते हैं (द्वे) दो (भुजम्) पालनेवाली पृथ्वी तथा (लोके) देखने योग्य लोक के समूह को (उ) और (जाभिम्) जायमान वस्तु मात्र को (उचैयतुः) प्राप्त होनी है उनको अच्छे प्रकार जानो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य तीन प्रकार के अग्नि को जानके ऊपर नीचे स्थित जो प्रयोजन उनको सिद्ध करने का प्रवृत्त हो तो उनको कोई काम असाध्य न हो ॥ ९ ॥

विशा कविं विशपति मानुषीरिपिः सं सीमद्वृषन्स्वधितिं न तेजसे ।

म उद्रतो निवतो याति वेविषत्स गर्भेषु भुवनेषु बीधरत् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—जिस (विशाम्) प्रजाओं में (कविम्) प्रविष्ट बुद्धिवाले (विश-पतिम्) प्रजापालक विद्वान् का (मानुषी) मनुष्यों की (इषः) इच्छा (तेजसे) तेज के लिए (स्वधितिम्) वज्र के (न) समान (सीम्) सब आर से (अकृषत्) परिपूर्ण करती है (स) वह (उद्रतः) ऊपर से और (निवतः) नीचे के मार्गों को (सयाति) अच्छे प्रकार जाता है और (स) वह (एषु) इन (भुवनेषु) स्थिति करने के आधार रूप लोकान्तरों में (वेविषत्) निरन्तर व्याप्त होता है और (गर्भेषु) गर्भों को (बीधरत्) धारण करता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—जैसा गभ अदृश्य होता है वैसे अग्नि भी सब पदार्थों में वर्तमान है, जो मनुष्य हमको गांधन करे तो इस अग्नि में गुप्त धानों से भूमि और आकाश मार्गों का और नीचे ऊपरली गतियों को कर सबों और प्रजा भी पाल सके ॥ १० ॥

स जिन्वते जठरेषु प्रजङ्गिवान वृषा चित्रेषु नानन्दश्च मिहः ।

वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रवा वयमानो वि बाभुषे ॥११॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो (जठरेषु) उदरो के (प्रजङ्गिवान्) प्रबलता में उत्पन्न होता तथा (चित्रेषु) प्रदूत स्थानों में (वृषा) वीर्य करने वाला (पृथुपाजा) विस्तीर्ण बलवान् (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित (वैश्वानरः) सबका नायक (बाभुषे) दान करनेवाले के लिए (रत्ना) रमणीय हीरा आदि मणिरूप (वसु) धन का (वयमानः) देना हुआ (मिहः) सिंह के समान (न, नावत्) निरन्तर शब्द नहीं करता है (स) वह सबको (वि, जिन्वते) विनोषता से तृप्त करता है ऐसा जानें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को अग्नि के प्रदूत गुण कर्म स्वभावों को जानके असुल लक्ष्मियों को सिद्ध कर अच्छे मार्गों में देने वालों का देनी चाहिए । जो जाठराग्नि शान्त हो तो किसी के जीवन का सम्भव न हो प्राण न इसके बिना बस भी कोई पा सकता है ॥ ११ ॥

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्विस्फुष्टं मन्दमानः सुमन्मभिः ।

स पूर्ववज्जनयंजन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥

पदार्थ—जो (अन्वमानः) कल्याण को करता हुआ (जागृविः) जागता सा (वैश्वानरः) अग्नि (प्रत्नथा) पुरातनो के समान (विष्) दिव्य आकाश के समान (पृष्ठम्) पर भाग (नाकम्) स्वर्ग मुख भाग विशेष को (आधत्) बहता है जो (अन्वम्) गमन होनेवाले मार्ग में (पर्येति) सब और से जाता है (जन्तवे) वा प्राणी के लिए (समानम्) तुल्य (जनम्) जन को (पूर्ववत्) पूर्व के समान (जन्तम्) उत्पन्न करता है (स) वह (सुमन्मभिः) समस्त उसमें विचारवाले विद्वानों का विशेषता से जानने योग्य है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । यह अग्नि संपूर्ण नहीं है जो व्यतीत हुए कल्पों में जैसा हुआ वैसा ही धब वर्तमान है । भविष्यत्-

काल मे भी होगा यदि यह संज्ञका प्रकाशका के समान रवि के योग से कार्यकारी वर्तमान है तो वह यथावत् जाना और प्रयोग किया हुआ मन्त्र का अच्छे प्रकार सेवेवाला होता है ॥ १२ ॥

**अनुवाचानं यज्ञियं विप्रमुक्थम् । मा यं दधे मातरिश्वा विवि क्षयम् ।**

**सं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीर्घमग्निं सुविताय नम्यसे ॥१३॥**

पदार्थ—( यम् ) जिस ( अनुवाचानम् ) सत्यकारणमय ( यज्ञियम् ) यज्ञ-सम्पादक ( उक्थम् ) प्रशंसा करने योग्य ( विवि, क्षयम् ) दिव्य आकाश में निवास करते हुए ( चित्रयामम् ) चित्र विचित्र अद्भुत प्रहर जिसमें होते हैं वा चित्र विचित्र याम प्राप्ति जिसकी वा ( सुदीर्घम् ) सुन्दर दान जिससे होता है ( हरिकेशम् ) हरणशील रश्मियों वाले ( अग्निम् ) अग्नि को ( नम्यसे ) नवीन ( सुविताय ) अभिषेक के लिए ( मातरिश्वा ) अन्तरिक्ष में सोनेवाला वायु ( मा, दधे ) अच्छे प्रकार धारण करता है ( तम् ) उसे जो जानता है उस ( विप्रम् ) मेधावी पुरुष को हम लोग ( ईमहे ) याचते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—अग्नि के निमित्त कारण को धारण करनेवाला वायु वर्तमान है जिस अन्तरिक्ष में वायु है वही अग्नि भी है जिससे प्रलय होता है वा यज्ञ सिद्ध होते हैं उस अद्भुत गुण कर्म स्वभाववाले अग्नि को नवीनता और विद्या प्राप्ति के लिए जन बुद्धें ॥ १३ ॥

**शुचिं यामग्निचिरं स्वर्हसं केतुं दिवो रंजनस्थामुषुधम् ।**

**अग्निं मूर्धानं दिवो अग्रतिष्ठतु तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग विद्वानों की उत्तेजना से ( नमसा ) सत्कार से जिस ( शुचिम् ) पवित्र और पवित्र करनेवाले के ( न ) समान ( यामम् ) जिससे गमन करते हैं उस मार्ग में ( इचिरम् ) इच्छा करने योग्य ( स्वर्हसम् ) जिससे कि सुख दीवता है उस ( केतुम् ) रूपादि प्रापक ( विप्रः ) प्रकाश के बीच ( रंजनस्थाम् ) उजाले में स्थित होने ( उषुधम् ) प्रातः काल बोध दिलाने और ( विप्रः ) दिव्य आकाश के बीच ( मूर्धानम् ) जीघने से बांधने ( अग्रतिष्ठतुम् ) इधर-उधर से लोकान्तर के चारों ओर से भ्रमण रहित ( बृहत् ) महान् ( वाजिनम् ) बहुत वेग वाले ( अग्निम् ) अग्नि को ( ईमहे ) याचते हैं ( तम् ) उस अग्नि को हम लोगो से तुम भी च.हो वा मागो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को प्राप्त विद्वानों से अग्न्यादि विद्या प्राप्त करनी चाहिए, जो जिससे विद्या ग्रहण की इच्छा करे वह उसका निरन्तर सत्कार करे, सूर्य किसी लोक का परिक्रमण नहीं करता और सबसे बड़ा भी है ॥ १४ ॥

**मन्द्रं होतारं शुचिर्मद्र्याविनं दमूनममुकथ्यं विश्वचर्षणिम् ।**

**रथं न चित्रं वपुषाय वरुणं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥१६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस ( होतारम् ) ग्रहण करने और ( मन्त्रम् ) आनन्द देनेवाले ( दमूनम् ) दमनशील ( उक्थम् ) प्रशंसा करने योग्य ( शुचिम् ) पवित्र ( विश्वचर्षणिम् ) सबक देखने और ( मनुहितम् ) मनुष्यों के हित करने वाले विद्वान् को प्राप्त होकर ( वरुणम् ) दुष्ट रमणीय यान के ( न ) समान ( चित्रम् ) अद्भुत और ( वपुषाय ) जिम व्यवहार में रूप विद्यमान उस व्यवहार के लिए ( वरुणम् ) देखने योग्य ( सधम् ) अवस्थित और ( अमिद्राय ) जो दो में नहीं विद्यमान ऐसे भीधे चलनेवाले अग्नि को ( ईमहे ) याचते और उसमें ( रायः ) धनो को याचते है उस ( ईत् ) ही को तुम लोग भी याचो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो इन्द्रियो को दमन करनेवाले विद्वानों के निकट स्थित होकर अग्निविद्या को जानें तो मनुष्य किस-किस धन को न प्राप्त हो ॥ १५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह दूसरा सूक्त और उन्नीसवाँ वर्ण पूर्ण हुआ ॥



वेदान्तराशेत्वेकादशर्षंश्च तृतीयस्य सूक्तस्य विषयान्त्रिंश्वि । वेदान्तरो-  
ऽग्निर्वेदता । १, ५, निष्पृजगती । २—४, ६, ८, ९ जगती ।

७, १० विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ११ भुरिक्

पङ्क्तिस्तद्वन् । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ ग्यारह ऋचा वाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों का विषय वर्णन करते हैं—

**वेदान्तराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विषन्त चरुणेषु गातवे ।**

**अग्निहि देवां अद्भुतो हुक्स्वत्यथा धर्मीणि सनता न वृद्धवत् ॥१॥**

पदार्थ—जैसे ( अद्भुतः ) भरणधर्मरहित ( अग्निः ) अग्नि के समान विद्वान् ( हि ) ही ( देवाय ) दिव्य गुणों वाले पृथिव्यादिकों की ( हुक्स्वत्य ) सेवा करता ( अथ ) अमररूप इसके ( न ) नहीं ( वृद्धवत् ) वृद्धि काम करता वैसे ( विषः ) मेधावी जन ( वेदान्तराय ) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमात्र ( पृथुपाजसे ) महाबली

( गातवे ) और स्तुति करनेवाले के लिए ( सनता ) सनातन ( रत्ना ) रमणीय रत्नों ( अग्निहि ) और धर्मों को तथा ( चरुणेषु ) आभारों में रत्नरूपी रमणीय धर्मों को ( विषन्त ) सेवन करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि अपने सनातन गुणकर्म स्वभावों को सेवता है कभी दोषी नहीं होता वैसे विद्वान् जन जिज्ञासुओं के हित के लिए विद्या के अपने-अपने स्वभावों को भूषित करते हैं कभी अधर्माचरण से दूषित नहीं होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषतो मनुषः पुरोहितः ।**

**क्षयं बृहन्तं परि भूषति शुभिर्देविभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप जैसे ( होता ) ग्रहण करनेवाला ( निषतः ) निष्कल स्थित ( मनुषः ) मनुष्यों का ( पुरोहितः ) पहले हित करनेवाला ( धियावसुः ) जो प्रबल बुद्धियों और कर्मों को बास देता ( इषितः ) दूँडा हुआ ( दस्मः ) भूतमात्र पदार्थों का छिन्न-भिन्न करनेवाला और ( अन्तः ) बीच में ( दूतः ) दूत के समान वर्तमान ( अग्निः ) अग्नि ( शुभिः ) देवीप्यमान ( देवेभिः ) किरणों के साथ ( रोदसी ) प्रकाश और पृथिवी को ( ईयते ) प्राप्त होता और ( बृहन्तम् ) महान् ( क्षयम् ) निवास स्थान को ( परि, भूषति ) सब ओर से भूषित करता है वैसे तुमको सब मनुष्य सुभूषित करने चाहिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को वेद के अव-यवों को प्राप्त होकर उत्तम विद्याध्ययन अध्यापन और उपदेशादि कर्मों के साथ समस्त मनुष्य सुभूषित करने चाहिए और इससे सबका हित निश्चय करना चाहिए ॥ २ ॥

**केतुं यज्ञानां विदथस्य सार्धनं विप्रांसो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।**

**अपांसि यस्मिन्नाग्निं सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्सुम्नानि यजमान आ चके ॥३॥**

पदार्थ—( विप्रांसः ) विद्वान् मेधावी जन ( यस्मिन् ) जिस अग्नि में ( गिर ) वाणी और ( अपांसि ) कर्मों को ( चित्तिभिः ) काष्ठ आदि के इकट्ठे समूहों में ( अग्निम् ) अग्नि के समान ( अग्नि, सन्धुः ) अच्छे प्रकार धारण करें वा जिसमें ( यज्ञानाम् ) मिले हुए व्यवहारों का ( केतुम् ) उत्तमता से ज्ञान दिलाने और ( विदथस्य ) दूसरे के लिए विज्ञान के ( साधनम् ) मिश्र करनेवाले का ( महयन्त ) मत्कार करें वा ( सुम्नानि ) सुखों को अच्छे प्रकार धारण करें वा जिसमें ( यजमान ) विद्वानों की सेवा और सङ्गति का करनेवाला जन ( सुम्नानि ) सुखों की ( आ चके ) अच्छे प्रकार कामना करता है ( तस्मिन् ) उसमें सब मनुष्य सुखों का अच्छे प्रकार धारण करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । समस्त पदार्थविद्या के बीच अग्नि के तुल्य कोई और पदार्थ कार्यमात्रक नहीं है, इससे इस अग्नि का ही परिज्ञान उत्तम यत्न के साथ सब लोगों को करना चाहिए ॥ ३ ॥

**पिता यज्ञानामसुरो विपथितां विमानमग्निर्वयुनं च वायताम् ।**

**आ विवेश रोदसी भूरिर्वर्षसा पुरुषियो मन्दते धामभिः कविः ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर ( यज्ञानाम् ) प्राप्त हुए व्यवहारों का ( पिता ) पालनेवाला ( असुरः ) समस्त भूगोलादि पदार्थों का यथाक्रम अर्थान् यथा स्थान फेंकनेवाला ( विपथिताम् ) विद्वानों के लिये ( विमानम् ) विमान के ममान ( वायताम् ) ( वा ) और मेधावी जनो के ( वयुनम् ) उत्तम ज्ञान ( भूरि-वर्षसा ) बहुत पराक्रम के ( धामभिः ) स्थानों के साथ ( पुरुषियो ) बहुतों को तुष्ट करनेवाला ( कविः ) विशेष क्रम से जिमका दर्शन होता वह ( भव्यते ) प्रसन्न करता है और ( रोदसी ) प्रकाश और पृथिवी को ( आ, विवेश ) प्रविष्ट हुआ है वैसे ( अग्निः ) अग्नि भी तुम लोगों को जानन योग्य है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होकर सबकी व्यवस्था करता है वैसे अग्नि पृथिव्यादिकों को अभिव्याप्त होकर धाकपेच से सब पदार्थों की व्यवस्था करता है । जैसे अग्नि अच्छे प्रकार युक्त किये हुए विमान को आवागमन में लौट चलाता है वैसे विद्वानों की सेवापूर्वक योगाभ्यास के विज्ञान से सेवा किया हुआ जगदीश्वर विद्याकाश में मुक्त जनो को शीघ्र प्रवेश कर विहार करता है ॥ ४ ॥

अब अग्नि विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वेदान्तरयमुषदं स्वविदथ ।**

**विगाहन्तुर्णि तविषीभिर्गातुं भूणिन्देवास इह सुभियन्दधुः ॥५॥२०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( वेदतः ) विद्वान् जन ( इह ) इस ससार के बीच ( चन्द्ररथम् ) जिससे चन्द्रमा के समान रथ बनता है ( हरिव्रतम् ) वा जिसके घोड़े शीलरूप ( अणुसूतवम् ) वा प्राण और जलो में स्थिर होता ( स्वविदथम् ) वा जिससे जीव सुख को प्राप्त होता ( विगाहम् ) वा जिसके निमित्त से विविध प्रकार के पदार्थों की विलोडता वा ( तृणम् ) जो शीघ्र गमन करानेवाला ( तविषीभिः ) बलादि गुणों के साथ ( आतुतम् ) सयुक्त ( भूणिन् ) और पदार्थों का धारण करने वाला ( सुभियम् ) जिसने उत्तम भी लक्ष्मी उत्पन्न होती वा ( वेदान्तरम् )

ममस्त प्राप्त पदार्थों में व्याप्त ( अन्तर्भूत ) आनन्द करनेवाला निरन्तर प्रकाशमान ( अग्निम् ) अग्नि को ( बभूवुः ) धारण करें वैसे इसको तुम भी धारण करो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जब तक पदार्थ विद्या में अग्निविद्या न हो तब तक आभूषण रहित स्त्री के समान नहीं शोभती है ॥ ५ ॥

फिर अग्निविद्या के उपदेश को कहते हैं—

अग्निर्देवेभिर्मनुष्यैश्च जन्तुमिस्तन्वानो यज्ञं पुरुषेशंसं धिया ।

रथीन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो बभूना अभिशस्तिचातनः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( अभिशस्तिचातनः ) सब ओर से हिंसा की याचना करता ( बभूना ) और दमनशील ( साधदिष्टिभिः ) अच्छे प्रकार सिद्ध की हुई इच्छाओं के साथ ( जीरो ) वेगवान् ( रथीन् ) जिसके बहुत रथ विद्यमान ( जन्तुभिः ) मनुष्यों के साथ ( मनुष्यैश्च ) मनुष्यों को ( तन्वानः ) विस्तार अर्थात् उनकी वृद्धि देता हुआ और ( देवेभिः ) दिव्य गुणों के साथ ( अग्निम् ) अग्नि ( ईयते ) जाता है तथा ( धिया ) कम से ( पुरुषेशंसं ) बहुत रूपोंवाले ( पुरुषम् ) प्राप्त समार को सिद्ध करता है उसको जानो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जो अग्नि सामान्य रूप से सब पदार्थों को पुष्ट करता वा विशेष रूप से उनको नष्ट करना वा पृथिव्यादि के भीतर व्याप्त है अर्थात् उनके प्रत्येक परमाणु के साथ है वा जिससे बहुत व्यवहार भिन्न होते हैं वह अग्नि विवेचना से जानने योग्य है ॥ ६ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने जरस्य स्वपत्य आयुन्यूजा पितृस्व समिधो दिदीहि नः ।

वयांसि जिव्व बृहत्तच्च जागृव उशिदेवानामसि सुकतुर्विपाम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( जागृव ) जागते हुए के तुल्य ( अग्ने ) जाननेवाले महानाय ! आप ( स्वपत्ये ) अपने सन्तान के निर्मातृ ( आयुनि ) प्राप्त हुए पीछे ( ऊर्जा ) अन्न से ( पितृस्व ) सेवो, विद्वानों की ( जरस्य ) मृत्ति करो ( नः ) हम लोगों की ( वयांसि ) चाहना करो और ( वयांसि ) अच्छे-अच्छे अन्नो को ( सः, विदीहि ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ ( व ) और ( बृहत् ) बहुतों को ( जिव्व ) तृप्त कीजिए जिसमें आप ( विपाम् ) बुद्धिमान् ( उशिदाम् ) विद्वानों के बीच ( उशिदम् ) मनोहर ( सुकतुः ) सुन्दर बुद्धिमान् ( असि ) है उममें विद्वान् हुए हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अपने सन्तानों को योग्य आहार-विहार से अच्छे प्रकार पाल के उत्तम शिक्षा और विद्या के दान से विद्वान् करने है वे सदैव विद्वानों के मत्सङ्ग की कामना करनेवाले धर्म के चाहनेवाले होकर बुद्धिमान् होते हैं ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

विश्वसि यद्भूमतिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वायताम् ।

अध्वराणां चेतनं जातऽवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जुतिभिर्द्वे ॥८॥

पदार्थ—जो ( नर ) अपने आत्मा इन्द्रियाँ और शरीरों का धर्म की ओर पहुँचाने वाले जन ( वृषे ) वृद्धि के लिए ( जुतिभिः ) वेगादि गुणा से ( विश्वसिम् ) समस्त प्रजा के पालनेवाले ( यद्भूम ) वडे ( यन्तारम् ) नियन्ता अर्थात् सब कामों को यथानियम पहुँचाने वाले ( अतिथिम् ) अतिथि के समान मन्कार करने योग्य ( धीनाम् ) उत्तम कर्म और बुद्धिवा ( वायताम् ) बुद्धिमान् ( च ) और ( अध्वराणाम् ) अहिंसनीय व्यवहारों के बीच ( उशिजम् ) कामना की ओर ( जातवेदसम् ) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में अपनी व्याप्ति से विद्यमान अथवा उत्पन्न हुए समस्त पदार्थों का जाननेवाले ( चेतनम् ) अच्छे प्रकार जानस्वरूप परमात्मा की ( नमसा ) सत्कार से ( सदा ) सदैव ( प्र, शंसन्ति ) प्रशंसा करने हैं वे ब्रह्मवेत्ता होते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को, आप्त विद्वानों से मृत्ति किया हुआ महान् प्रजापालक जानस्वरूप परमेश्वर मृत्ति करने योग्य है, इसकी उपासना के बिना किसी को पूरा लाभ प्राप्त नहीं होता ॥ ८ ॥

विभावा देवः सुरणः परि श्रितीरग्निर्बभूव शर्वसा सुमद्रथः ।

तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृत्तिभिः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे आप ( विभावा ) विविध दीप्तिमान् ( देव ) मनोहर ( सुरणः ) सुन्दर रण जिससे होता वा ( सुमद्रथः ) जिससे प्रशंसित जानो का रथ के समान रथ होता ( अग्नि ) ऐसा अग्नि ( सुवृत्तिभिः ) सुन्दर वर्तकों से और ( शर्वसा ) बल से ( भिती ) पृथिवियों का ( परि, बभूव ) सब ओर से व्याप्त होता अर्थात् उनका तिरस्कार करता ( तस्य ) उसके ( व्रतानि ) शीला का ( भूरिपोषिणः ) बहुत प्रकार पोषण पुष्टि जिनके विद्यमान थे ( वयम् ) हम लोग ( इमे ) घर में ( उपाभूषेम ) अपने समीप अच्छे प्रकार भूषित करते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्वान् जन मनुष्य के बीच बहुत पुष्टि देने और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले तथा परोपकार से अनङ्कुल हो वे राज्य के ऐश्वर्य को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

वैश्वानरं तव धामान्या चके येभिः स्वविदमवी विश्वज्ञः ।

जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि स्मना ॥१०॥

पदार्थ—हे ( विश्वज्ञः ) अति चतुर ( वैश्वानरः ) प्रधान पुरुष ! ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान आप ( स्मना ) अपने से जिन ( विश्वा ) समस्त ( भुवनानि ) लोकों को ( आ, आपृणः ) अच्छे प्रकार पुष्ट करें जैसे अग्नि समस्त लोकों वा ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को अभिव्याप्त है वैसे आप ( परिभूरः ) सब ओर से होने वाले ( असि ) हैं वह आप मनुष्य ( तव ) आपके ( येभिः ) जिन ( धामानि ) जन्मस्थान नामों को ( आचके ) अच्छे प्रकार कामना करें ( ता ) उनको जानकर ( जात ) प्रसिद्ध होते हुए ( स्वविदः ) प्राप्त सुख ( अभवः ) हुआ ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य अग्नि के समान धर्म और विद्याओं के प्रकाश करनेवाले सबके बीच प्राणियों के सुख दुःख की व्यवस्था से अपने समान बुद्धि रखनेवाले हैं वे सुखी होते हैं ॥ १० ॥

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदग्निदेकः स्वपस्यया कविः ।

उभा पितरं मह्यं यज्यायताग्निर्धावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥१२॥

पदार्थ—जो ( एक ) एकाकी ( कविः ) सर्व शास्त्रों को जाननेवाला ( स्वपस्यया ) अपने को उत्तम की इच्छा से ( वैश्वानरस्य ) सर्वत्र प्रकाशमान अग्नि की ( दंसनाभ्यः ) सुख करनेवाली क्रियाओं से ( बृहत् ) महान् कार्य को ( अरिष्ठात् ) प्राप्त होवे वा ( अग्नि ) अग्नि ( भूरिरेतसा ) बहुत जल जिसमें विद्यमान उम अन्तरिक्ष के साथ वर्तमान ( धावापृथिवी ) सूर्य और पृथिवी को प्रकाशित करता हुआ ( अजायत ) प्रसिद्ध होता है वैसे ( उभा ) दोनों ( पितरा ) माता पिता को ( मह्यम् ) सत्कार करता हुआ वर्तमान है वह सुखी वैसे न होवे ? ॥ ११ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों के तुल्य कर्म और माता पिताओं का सत्कार करते वे पृथिवी और सूर्य के समान उत्तम गुण वाले होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के

अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह तीसरा सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

५६

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं गंसि वस्वः ।

१, ४, ७ स्वरान् पठस्तिष्ठन् । पञ्चम स्वर । २, ३, ५ क्रिटुप् ।

६, ८, १०, ११ निचृत्तिष्ठन् । ९ विराट् क्रिटुप् ।

छन्दः । धैवत स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले चौथे सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं—

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं गंसि वस्वः ।

आ देव देवान्यजयाय वशि सखा सखीन्सुमनां यक्ष्यन्ते ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वन् ! आप जैसे ( समित्समित् ) प्रतिममिध ( शुचाशुचा ) शुच शुच प्रत्येक हाम के साधन से अग्नि ( बोधि ) प्रसुद्ध होता जाना जाता है वैसे पदार्थों और उपदेश करने में ( अग्ने ) हम लोगों के लिए ( सुमतिम् ) उत्तम बुद्धि और ( वस्व ) धनो को ( गंसि ) देने हैं । हे ( देव ) विद्वन् ! ( सुमना ) सुन्दर मनवाले होते हुए आप आहुतियों को अग्नि के समान ( यजयाय ) समागम के लिए ( देवान् ) विद्वानों को ( आ वशि ) प्राप्त करने हो ( सुमना ) सुन्दर हृदयवाले ( सखा ) मित्र होते हुए आप ( सखीन् ) मित्र वर्गों को ( वशि ) सङ्ग करने हो । उक्त कारण से सत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे समिधो वा होमने योग्य घृतादि पदार्थों में अग्नि बहता है वैसे अध्यापन और उपदेश से मनुष्यों की बुद्धि बढ़ानी चाहिए और आप लोग सदैव मित्र हो कर सबको विद्वान् और श्रीमान् कीजिए ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यं देवासस्त्रिरहं आयजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।

सेमं यज्ञं मधुमन्तं कधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥

पदार्थ—( यम् ) जिस ( इमम् ) इस ( मधुमन्तम् ) बहुत होमने योग्य पदार्थ वा ( घृतयोनिम् ) दीप्तिकारक कारणवाले ( विधन्तम् ) सेवते हुए और ( यज्ञम् ) सङ्ग करने योग्य व्यवहार का ( वरुणः ) चन्द्रमा ( मित्रः ) वायु और ( अग्नि ) अग्नि ( अहम् ) एक दिन में ( दिवेदिवे ) वा प्रतिदिन ( मित्रो ) तीनों बार ( आयजन्ते ) अच्छे प्रकार मिलाते हैं और जिसको ( देवताः ) दिव्य विद्वान्



जल मिचारे ( सः ) वह पूर्वोक्त गुणों से युक्त ( सन्मन्वात् ) शरीर की रक्षा करने-  
वाले आप ( नः ) हमारे इस यज्ञ को सिद्ध ( हविः ) कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन अग्न्यादि पदार्थों की विद्याप्राप्ति के  
लिए जैसी क्रिया करे वैसे ही तुम भी करो ॥ २ ॥

अ दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रयमं यजध्वै ।

अच्छा नमोभिर्वृषमं वन्दध्वै स देवान्यभदिषितो यजीयान् ॥३॥

पदार्थ—( विश्ववारा ) संसार के बीच जिसका स्वाकार है वह जिसकी  
( दीधितिः ) दीप्ति ( इळ ) पृथिवियों की ( यजध्वै ) सज्जति करने के ( होतार-  
म् ) ग्रहण करनेवाले की तथा ( नमोभिः ) मन्त्रों से ( प्रयमम् ) पहले ( वृषमम् )  
प्रशंसित की ( वन्दध्वै ) वन्दना करने अर्थात् स्तुति करने को ( अ, जिगाति ) अच्छे  
प्रकार स्तुति करता है ( सः ) वह ( हविः ) इच्छा से प्रयुक्त किया हुआ ( यजीयान् )  
अतीव यज्ञ करनेहारा होता हुआ ( देवान् ) विद्वानों को ( अच्छ ) अच्छे प्रकार  
( वक्षत् ) सज्जत कर मिलावे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जिसकी प्रकाशमान दीप्ति बिजुली के समान विद्या देनेवाले की  
प्रशंसा करती है उसका सब विद्यार्थीजन सज्ज कर दिव्य गुणों को प्राप्त होकर अन-  
न्वय युक्त होवें ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्षुर्ध्वा शोर्ध्वो वि प्रस्थिता रजांसि ।

दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यंवा वि बहिः ॥४॥

पदार्थ—हे यज्ञ करने और यज्ञ सिद्ध करानेवालों ! ( वाष् ) तुम्हारे  
( अध्वरे ) न मष्ट करने योग्य व्यवहार में वह ( ऊर्ध्व ) ऊपर जाने ( गातुः )  
और स्तुति करनेवाला ( अकारिः ) किया जाता ( देवव्यंवा ) बहुत यज्ञ पृथिव्या-  
दिको को व्याप्त होने वा ( होता ) पदार्थों को ग्रहण करनेवाला ( नि, असावि )  
मिद्ध किया जाता है जिस यज्ञ से हम लोग ( ऊर्ध्व ) ऊपर जाने वाले ( प्रस्थिता )  
आन का आरम्भ किये हुए ( शोर्ध्वो ) नेजों को और ( रजांसि ) लाकों को तथा  
( विष ) किरणों को ( वा ) वा ( बहिः ) अन्तर्गन्ध को ( नाभा ) नाभि के  
बीच ( विस्तृणीमहि ) विस्तारते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो यज्ञकर्ता और यज्ञ करानेवाले विद्वान् हो और सुन्दर शुद्ध  
पदार्थों को अग्नि में छोड़ें तो क्या-क्या सुख प्राप्त न हो ? ॥ ४ ॥

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यजन्तेन ।

नृपेशसो विद्वेषु प्र जाता अभोमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वाः ॥५॥२२॥

पदार्थ—जो ( विश्वेषु ) यज्ञों में ( प्रजाता ) उत्पन्न हुए ( नृपेशसः )  
मनुष्यों के रूप के समान जिसका रूप वे पदार्थ ( मनसा ) विज्ञान से ( सप्तहोत्राणि )  
सात प्रकार के हवन सम्बन्धी कामों को ( वृणाना ) स्वीकार करते और ( विश्वम् )  
समस्त जगत् का ( इन्वन्तः ) व्याप्त होते हुए ( यजन्तेन ) जन के साथ ( इमम् )  
इम ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( अभि ) सब ओर न जिस से विश्व का ( प्रतिपत् )  
प्रतीति से प्राप्त होते हैं तथा ( पूर्वा ) पूर्व मिद्ध हुई आहुतिया ( विश्वरन्तः )  
विश्वेष्टता से प्राप्त होती वह यज्ञ सब विद्वानों को करने योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सुगन्ध्यादि युक्त पदार्थों के अग्नि में छोड़ने से वायु,  
वृष्टि, जल, ओषधि और अन्नो को अच्छे प्रकार शोध तो सब आरोग्यपन को  
प्राप्त हों ॥ ५ ॥

आ भन्दमाने उपसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।

यथा नो मित्रो वरुणो जुजौषदिन्द्रो मरुत्वा उत वा महोमिः ॥६॥

पदार्थ—( यथा ) जैसे ( भन्दमाने ) सुख करनेवाले ( उपाके ) समीप  
वर्तमान ( उत ) और ( तन्वा ) शरीर के ( विरूपे ) प्रकाश और अन्वकार से  
विरुद्ध स्वरूप ( उपासी ) रात्रि और दिन स्त्री पुरुष ( आ, स्मयेते ) अच्छे प्रकार  
भुसकियाते जैसे वैसे वर्तमान ( नः ) हम लोगों को सेवन करते हैं वैसे ( महोमिः )  
बड़े गुण कर्म स्वभावों के साथ ( मित्रः ) वायु ( वरुणः ) जल ( उत ) और  
( मरुत्वात् ) प्रशंसित रूपवाला ( इन्द्रः ) बिजुली आदि अग्नि ( वा ) अथवा हम  
लोगों को ( जुजौषत् ) निरन्तर सेवते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है । यदि ईश्वर रात्रि और दिन न  
बनावे तो किसी का व्यवहार क्यावत् सिद्ध न हो, जो भगवान् जल सूर्य और वायु  
को न रचे तो किसी का जीवन न हो ॥ ६ ॥

देव्या होतारा मयमा नृयजे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।

कृतं शंसन्त कृतमिच आहुरन्तु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥७॥

पदार्थ—जो ( प्रथमा ) विस्तार करनेवाले ( देव्या ) दिव्य गुणी ( होतारा )  
अनेक पदार्थों के ग्रहण कर्ता ( सप्तः ) सात प्रकार के होमने योग्य पदार्थों को अच्छे

प्रकार धारण करते हैं वा जो ( वृक्षम् ) जल का ( पृक्षासः ) सम्बन्ध करनेवाले  
( वृक्षम् ) सत्य की ( इत् ) ही ( वासन्तः ) स्तुति करते हुए ( दीध्याना )  
देदीप्यमान ( वृक्षम् ) उत्तम शील की रक्षा करनेवाले ( अनु, वृक्षम् ) अनुकूल  
शील को ( आहुः ) कहें ( ते ) वे ( स्वधया ) अन्न और जल से ( मदन्ति )  
हविष होते हैं उन सब को मैं ( नि, वृक्षम् ) न मष्ट करूँ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो यज्ञ की अहुतियों से शुद्ध पवन, जल और अन्नादिकों का सेवन  
करते हैं, वे सुशील होते हुए प्रशंसावाले हाकर आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।

सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बहिरेदं संवन्तु ॥८॥

पदार्थ—जो ( भारतीभिः ) सुन्दर शिक्षित वाणिज्यों के साथ ( सजोषाः )  
एकसी सेवा और प्रीतिवाली ( भारती ) विद्या और शिक्षा से धारण की हुई  
वाणी वा ( देवैः ) दिव्य गुण और ( अनुष्येभिः ) विचारशील पुरुषों के साथ समान  
सेवा और प्रीतिवाली ( इळा ) पृथिवी और ( अग्निः ) प्रकाशमान अग्नि वा  
( सारस्वतेभिः ) वाणी में उत्पन्न हुए भावों के साथ ( सरस्वती ) प्रशंसित विज्ञान-  
युक्त वाणी ( तिस्रः ) उक्त तीनो ( देवी ) देवीप्यमान ( अर्वाक् ) नीचे से ( इवम् )  
इस ( बहिः ) अन्तर्गन्ध को ( आ ) अच्छे प्रकार स्थिर होती है उन को सब मनुष्य  
( आ, सवन्तु ) आसादन करे उन का आश्रय लें अर्थात् उन में अच्छे प्रकार स्थित  
हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जिन मनुष्यों की विद्वानों की वाग्म्या के अनुकूल धारणा, प्रशंसा  
के अनुकूल स्तुति, वाणी के अनुकूल वृत्तिवाली वाणी वर्तमान है, वे अन्तरिक्षस्थ  
शुभ वाणी को प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त होने हैं ॥ ८ ॥

तर्कस्तुरीपमध पोषयित्तु देव त्वष्टा रंराणः स्यस्व ।

यतो वीरः कर्मण्यः सुदसो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९॥

पदार्थ—हे ( देवः ) दिव्य गुणों के देनेवाले ( त्वष्टः ) छिन्न भिन्न कर्ता  
( रंराणः ) रमण करने हुए आप ( नः ) हमारी जो ( तुरीपम् ) शीघ्र कर्ता यज्ञ  
( मधः ) इसके अनन्तर ( पोषयित्तु ) पुष्ट की करनेवाली यज्ञक्रिया ( तत् ) उन  
दोनों को ( वि, स्यस्व ) बीच में करो जिस से हम लोगों के कुल में ( सुवृक्षः )  
उत्तम बली ( युक्तग्रावा ) जिस में मेघयुक्त है ( कर्मण्यः ) जो कर्म से सिद्ध होता  
है ( देवकामः ) और दिव्य गुणों वा विद्वानों की कामना करता ऐसा ( वीरः ) शुभ  
गुणों में व्याप्त होनेवाला वीर पुरुष ( जायते ) उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन हमारे लिए दुःख से तारने और पुष्टि करनेवाले  
उपदेश को करें उन्हें शुभ गुण कर्म स्वभाव की कामना करनेवाले हम लोग सर्वदेव  
सेवें, जिससे हमारा कुल उत्कर्ष उन्नति को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वन्स्पतेऽव सृजोष देवानग्निर्हविः शमिता हृदयाति ।

सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥

पदार्थ—हे ( वन्स्पते ) किरणों के पालनेवाला ( यथा ) जैसे ( अग्निः )  
अग्नि ( हविः ) होमने योग्य पदार्थों को ( सृजयाति ) वर्णाता है वैसे ( देवान् )  
दिव्य गुणों को ( उप, सृज ) अपने समीप उत्पन्न कराओ दोषों को ( अवः ) न  
उत्पन्न करो । जो ( सत्यतरो ) अतीव सत्य ( होता ) गुणों का ग्रहण करनेवाला  
जैसे ( देवानाम् ) विद्वानों वा दिव्य पदार्थों के ( जनिमानि ) जन्मों को ( वेदः )  
जाने ( सः, इत् ) वही ( उ ) तक वितक के साथ ( शमिता ) शान्ति करनेवाला  
( यजाति ) यज्ञ करे ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमानाकार है । जैसे सूर्य की  
किरण दिव्य गुणों को उत्पन्न करनी और दोषों को दूर करती है, वैसे विद्वान् लोग  
जगत् में गुणों को उत्पन्न करके दोषों को दूर करे ॥ १० ॥

आ याह्वाने समिधानो अर्वादिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।

बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) वहिः के समान प्रकाशमान विद्वान् ! जैसे ( समिधानः )  
प्रदीप्य ( अर्वादि ) और नीचे जानेवाला ( इन्द्रेण ) पवन वा बिजुली और ( देवैः )  
दिव्य ( तुरेभिः ) शीघ्रगामी घोड़ों के साथ ( सरथम् ) रथ के सहित वर्तमान  
( बर्हिः ) जो अन्तरिक्ष ( नः ) उसके समान व्याप्त होता है वैसे आप ( आ,  
याहिः ) आओ वा जैसे ( सुपुत्रा ) पुत्रोवाली ( अदितिः ) माता सुविनी ( आस्ताम् )  
हो वैसे ( अमृता ) आत्मस्वरूप से नित्य ( देवा ) दिव्य विद्यावाले विद्वान् जन  
हम लोगों को ( स्वाहा ) उत्तम अन्न वा सुशिक्षित वाणी से ( मादयन्ताम् ) हविष  
करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है । हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली  
आदि पदार्थों से चलाये हुए रथ आवि यान भू समुद्र और अन्तरिक्ष में शीघ्र जाने  
हैं वैसे विद्वानों की शिक्षा से विद्याओं को प्राप्त हो कर शीघ्र गुरुकुल जाकर और  
ब्रह्मचारियों की प्राप्त हो कर सब को आनन्द करे ॥ ११ ॥

इस सूक्त में बलि, विद्वान् और वाणी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह चौथा सूक्त और तेईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



प्रत्यग्निरुपसर्ग्वेकितानोऽबोधि बिभ्रः पववीः कवीनाम् । अग्निर्वेवता ।

१ । २ । ११ भुरिक् पङ्क्ति । ३ पङ्क्ति । ६ स्वरान् पङ्क्तिवर्धन ।

पञ्चम स्वर । ४ विद्वत् । ५, ७, १० निष्पत्तिवर्धन ।

८, ९ विराट् विद्वत् । वेवत स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचावाले पाँचवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के सम्बन्ध से अग्नि के गुणों को कहते हैं—

प्रत्यग्निरुपसर्ग्वेकितानोऽबोधि बिभ्रः पववीः कवीनाम् ।

पृथुपाजा देवयज्ञिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वहिरावः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( अग्नि ) अग्नि ( उषस ) प्रभात समयों के ( प्रति, अबोधि ) प्रति जाना जाता है वैसे ( वेकितान ) ज्ञान देनेवाला अर्थात् समझानेवाला ( कवीनाम् ) विद्वानों को ( पववी ) पदवियों को प्राप्त होता ( पृथुपाजा ) महान् बलवाला ( बिभ्र ) बुद्धिमान् विद्वान् जन ( देवयज्ञि ) विद्वानों की कामना करते हुओं के साथ जाना जाता है जैसे ( समिद्ध ) प्रदीप्त ( बहिः ) और पदार्थों की गति करनेवाला अग्नि ( तमस ) अन्धकार से उभे हुए ( द्वारा ) द्वारा को ( अप, आव ) खोलता है वैसे विद्वान् हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि प्रातः काल में सब प्राणियों को जगाना और अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे विद्वान् जन अविद्या में मोते हुए मनुष्यों को जगाते हैं और इन के आत्माओं को अज्ञान के आवरण से अलग करते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

प्रेदग्निर्वीष्टे स्तोमैर्भिर्गामिः स्तोतृणां नमस्य उच्यैः ।

पूर्वीर्ऋतस्य संदशंश्चकानः सं दूनो अद्यौदुषमो विरोके ॥२॥

पदार्थ—जैसे ( दून ) परिताप देनेवाला ( अग्नि ) अग्नि इन्धनों से ( प्र, वच्ये ) अच्छे प्रकार बढ़ता है वैसे ( स्तोतृणां ) गमन विद्या प्रणमा करनेवाला के ( स्तोमैर्भिः ) उन व्यवहारों से जिनमें सब विद्याओं की स्तुति करते हैं ( गामि ) तथा सुशिक्षित वाणियों से ( उच्ये ) और सब विद्याओं का सम्बन्ध जिन में करने हैं उन व्यवहारों में ( नमस्य ) जो सत्कार करने योग्य है वह बढ़ता है वैसे अग्नि ( विरोके ) सब ओर से जिन में प्रीति है उग व्यवहार के वा प्रकाश के निमित्त ( उच्ये ) प्रभात समयों वा ( अद्यौत् ) प्रकाशित करता है वैसे ( संदश ) अच्छे प्रकार देखने को ( प्रेदग्नि ) मत्स्य सम्बन्धी ( पूर्वो ) पूर्ण बहुत विद्या की ( चकान ) कामना करता हुआ ( इत्, उ ) ही तर्क विलक के साथ विद्वान् ( सन् ) अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इन्धन और घृतादिकों से अग्नि प्रबुद्ध होकर प्रकाशित होता वैसे ऋतुचर्य और विद्याभ्यासादिकों में मनुष्यों का आत्मज्ञान बृद्ध होकर सनातन विद्या सब को देकर पूज्यतम होते हैं ॥ २ ॥

अधात्यग्निर्यानुर्षीषु विश्वपां गर्भो मित्र ऋतेन सार्धन ।

आ हर्त्यतो यजतः मान्वस्यावभृदु विभो हव्यो मतीनाम् ॥३॥

पदार्थ—जैसे विद्वानों ने ( अपाम् ) प्राणों का ( गर्भ ) गर्भ के समान होकर ( अग्नि ) अग्नि ( आनुषीषु ) मनुष्य सम्बन्धी इन ( विभु ) प्रजाओं में ( अधाति ) भाग्य किया जाता वैसे ( मतीनाम् ) विशेष बुद्धिमानों का ( मित्र ) मित्र जो ( ऋतेन ) मत्स्य से ( सार्धम् ) कार्यसिद्ध करता हुआ ( हर्त्यत ) समोहर ( यजत ) सङ्गम ( हव्य ) और ग्रहण करने योग्य ( विभ ) बुद्धिमान् जन धारण किया हुआ है वह ( उ ) ही ( सानु ) विभाग करने योग्य पदार्थ की ( आ, अस्वात् ) प्रतिज्ञा करता और प्रसिद्ध ( अमृत् ) होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम जैसे ईश्वर ने अग्नि मकल प्रजा का प्रकाश करनेवाला स्थापित किया वैसे विद्या और धर्म के प्रकाश करनेवाले विद्वानों का जानो ॥ ३ ॥

मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।

मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! ( यत् ) जो ( सिन्धूनाम् ) नदियों ( उत ) और ( पर्वतानाम् ) बड़ी जिलाओं के बीच ( समिद्ध ) प्रदीप्त ( अग्नि ) अग्नि के समान ( मित्र ) मित्र वा ( होता ) ग्रहण करनेवाले के तुल्य ( मित्र ) मित्र वा ( जातवेदा ) उत्पन्न हुए पदार्थों के जाननेवाले जगदीश्वर के समान ( वरुण )

खेष्ट वा ( अध्वर्यु ) अपने को अहिंसा धर्म की इच्छा करनेवाले के समान ( मित्र ) मित्र वा ( इषि ) इच्छा करनेवाले ( दमूना ) दमनशील के समान ( मित्र ) मित्र ( भवति ) होता है उसका सत्कार करिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य नदी, शैल और ओषधि आदिकों को किरणों के द्वारा पुष्ट करने वा उनको सुखानेवाला होता है वैसे मित्रजन धर्म में पुष्टिकारक और धर्म से निवर्त्तक होते हैं ॥ ४ ॥

पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यद्भरुणं सूर्यस्य ।

पाति नामां सप्तशीर्षाणामग्निः पाति देवानामुपमादमृष्यः ॥५॥२४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( अग्नि ) अग्नि ( वे ) बलती हुई ( रिप ) पृथिवी के ( अग्रम् ) ऊपरले ( प्रियम् ) प्रिय ( पदम् ) प्राप्त होने योग्य स्थान को ( पाति ) प्राप्त होता और ( यद्भु ) बड़ा बहुत होता हुआ ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( वरुणम् ) गमन को ( पाति ) प्राप्त होता वा ( नामा ) बीच में वर्तमान अस्त-रिक्त में ( सप्तशीर्षाणाम् ) मात प्रकार की शिररूप कि एों जिनमें विद्यमान उस सूर्यमण्डल को ( पाति ) प्राप्त होता वा ( ऋष्यः ) प्राप्ति करनेवाला होता हुआ ( देवानाम् ) दिव्य विद्वानों के ( उपमादम् ) उस व्यवहार को जो उपमा दिलाता है ( पाति ) प्राप्त होता है वैसे तुम होओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे बलि, चानवाले पृथिवी आदि लोकों की रक्षा और प्रकाश के निमित्त से उनकी रक्षा करनेवाला वर्तमान होता है, वैसे आप सब की रक्षा करनेवाले होओ ॥ ५ ॥

ऋभुरबंक ईडधं चारु नाम बिभ्वानि देवो बधुनानि विद्वान् ।

ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदानीं रक्षत्यग्रमुच्छ्रम । ६॥

पदार्थ—जो ( ऋभु ) बड़ा ( देव ) देनेवाला ( अग्रमुच्छ्रम ) प्रमाद न करता हुआ ( विद्वान् ) विद्वान् ( ईडधम् ) स्तुति के योग्य कर्म ( चारु ) सुन्दर ( नाम ) वाणी वा जल को और ( बिभ्वानि ) ममस्त ( बधुनानि ) उत्तम ज्ञानों को ( चर्मे ) करता है वह ( सत्, इत् ) उन्हीं को प्राप्त हुआ ( अग्नि ) अग्नि के समान ( वे ) पाये ( ससस्य ) और सोते हुए मनुष्य के ( पदम् ) पद और ( चर्म ) त्वचा की ( घृतवत् ) घी के तुल्य ( रक्षति ) रक्षा करता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्राणाग्नि शरीर की रक्षा करता है, मोते हुए को जगाना है, वैसे अध्यापक और उपदेशक उत्तम शिक्षा को पाये हुए वाणी के समस्त विज्ञानों की प्राप्ति कराकर मनुष्यों को जगाने हैं ॥ ६ ॥

आ योनिर्मग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुर्गणमुशन्तंमुशानः ।

दीधानः शुचिर्ऋष्वः पांवकः पुनः पुनर्मातरा नव्यमी कः ॥७॥

पदार्थ—जैसे ( पांवक ) पवित्र करनेवाला ( अग्नि ) अग्नि ( पुन पुन ) बारबार ( नव्यमी ) अतीव नवीन ( मातरा ) माता पिता को ( क ) प्रसिद्ध करता है वा ( घृतवन्तम् ) घी जिसमें विद्यमान उम ( योनिम् ) घर को ( आ, अस्वात् ) आस्था करता अर्थात् सब प्रकार उसमें स्थिर होता है वैसे ( दीधानः ) देदीप्यमान ( शुचि ) पवित्र ( ऋष्वः ) और प्राप्त होने योग्य जन ( पृथुर्गणम् ) जिसमें विशेष गान वा स्तुति विद्यमान है वा जो ( उत्तमस्य ) कामना किया जाता है उसका ( उशान ) कामना करता हुआ विद्या और पढ़ानेवाले को माता पिता के तुल्य मान अपने स्वभाव रूपी घर को अच्छा स्थित हा ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्युत्तुल्य अग्नि पृथिवी आदि पदार्थों में स्थिर और सब ओर से अभिव्याप्त होकर किसी से विरुद्ध नहीं होता, वैसे विद्वान् जन किसी से विरुद्ध आचरण न करें, जैसे अग्नि शुद्ध और दूसरों को शुद्ध करनेवाला है वैसे पवित्र होता हुआ औरों को पवित्र करे ॥ ७ ॥

सद्यो जात ओषधीर्भिवक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेनो ।

आपंश्व प्रवता शुर्म्यमाना उरुयद्गनिः पित्रोरुपस्यै ॥८॥

पदार्थ—( यदी ) जो ( प्रस्व ) उत्पन्न होती हैं वे ओषधि ( घृतेन ) जल में ( शुर्म्यमाना ) सुन्दर शोभित ( आपंश्व ) जलो के समान ( वर्धन्ति ) बढ़ती हैं तो उन ( ओषधीर्भिः ) ओषधियों के साथ ( प्रवता ) निचला मार्ग है जिसका अर्थात् टपकता हुआ जो घृत उससे जो ( सद्य ) शीघ्र ( जात ) प्रकट होता हुआ ( अग्नि ) अग्नि ( वच्ये ) रुठे के समान विरुद्ध होता है जो अग्नि ( पित्रो ) माता पिता स्थानीय आकाश और पृथिवी के ( उरुयद् ) उस भाग में जिस में स्थित होने हैं ( उरुयद् ) अपने को बहुत के समान आचरण करता है उसको जानो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—यदि अग्नि सूर्यरूप से भूमि से जल को खींचकर वर्षा न करावे तो कोई भी ओषधि न हो । जैसे कोई रुठा हुआ किसी को मारता है वैसे जलता हुआ अग्नि पाये हुए पदार्थों को जला देता है । और जैसे प्रसन्न होता हुआ मित्र मित्र की रक्षा करता है वैसे युक्ति से मेव न किया हुआ अग्नि पदार्थों की रक्षा करता है ॥ ८ ॥

वदुः सुतः समिधा यज्ञो अद्योद्विन्द्वो अग्निं नामां पृथिव्याः ।  
मित्रो अग्निरीदृषी मातरिश्वा दूतो वसद्यजथांय देवान् ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( ईदृष ) स्तुति करने योग्य ( अग्नि ) अग्नि ( समिधा ) समिधा से ( अद्योद्विन्द्वो ) सेवन के विषय में ( विधा ) प्रकाश और ( पृथिव्या ) भूमि के ( नामा ) बीच में ( उत, अद्योत् ) उदय होता है वा जो ( मातरिश्वा ) अन्तरिक्ष में सोनेवाला ( दूत ) दूत के समान हुआ ( वसद्यजथांय ) सज्जम करनेवाले के लिए ( वेद्यत् ) दिव्य गुणों को ( अधिवसत् ) अधिकता से प्राप्त करे ( उ ) वैसे ही ( सुत ) प्रशंसा को प्राप्त हुआ ( यज्ञ ) महान् ( ईदृष ) स्तुति करने योग्य ( मित्र ) मित्र हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस ब्रह्माण्ड में सूर्य-रूप से अग्नि सब को तपाता है वैसे महान् मित्र अपने मित्रों को आनन्दित करता और दिव्य गुणों की प्राप्ति कराता है ॥ ९ ॥

उदस्तम्बीत्समिधा नाकमृष्वोऽग्निर्भक्नुचमो रोचमानाम् ।  
यदी भृगुम्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यकाई ममीधे ॥१०॥

पदार्थ—यदि ( रोचमानाम् ) प्रकाशमानों में ( उत्तमः ) उत्तम ( भक्नु ) होता हुआ ( हव्य ) महान् ( अग्नि ) अग्नि ( भृगुम्य ) भुजते हुए पदार्थों से ( समिधा ) अच्छे प्रकार प्रकाश के साथ ( नाकम् ) मुख का ( उदस्तम्बीत् ) उत्थान करता है तो मैं ( गुहा ) पदार्थों के भीतर ( सन्तम् ) वर्तमान ( हव्यकाहम् ) और जा होम के पदार्थों को अन्तरिक्ष को पहुँचता उम अग्नि को ( परिममीधे ) सब ओर से प्रदीप्त करे ॥ १० ॥

भाषार्थ—जैसे अग्नि बिजुली सूर्यरूप से सब को धारण करना है वैसे उस को मैं धारण करता हूँ ॥ १० ॥

हव्यमग्ने पुरुदसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।  
स्यामः सुनुस्तनयो विजावान्मे सा तं सुमतिभूत्वस्मे ॥११॥२५॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! आप ( गो ) बाणी के ( शश्वत्तमम् ) अनादि व्यवहार को ( हवमानाय ) ग्रहण करनेवाले के लिए ( पुरुदसम् ) बहुत कर्मों की सिद्धि करने ( सनिम् ) और अच्छे प्रकार विभाग करनेवाले तथा ( इळाम् ) प्रशंसा करने योग्य किया को ( साध ) सिद्ध कीजिये। हे ( अग्ने ) विद्वन् ! जो ( ते ) तुम्हारी ( सुमति ) उत्तम बुद्धि ( सा ) वह ( अस्मे ) हम लोगों में ( भूतु ) हो जिससे ( न ) हम लोगों के बीच ( विजावा ) विशेषता से उत्पन्न होनेवाला ( सुनु ) बालक और ( तनय ) काम का देनेवाला कुमार ( स्यात् ) हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जनो को सर्व विद्या मन्थने के माययुक्त अपनी बाणी और मति का विधान कर ओरो की भी वैसी ही करनी चाहिए। जैसे ओरो से बुद्धि और उत्तम शिक्षा ग्रहण की जाय वैसे ओरो को भी देनी चाहिए, जिसमें सब के सन्तान विद्वान् होंगे ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम सूक्त और पञ्चीतर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

प्र कारव इत्येकारवर्त्तस्य षष्ठस्य सूक्तस्य विद्वानिन्द्रो अग्निर्वैवता ।  
१, ५ विराट् ऋट्पु । २, ७ ऋट्पु । ३, ४, ८ निष्प्रिक्तट्पु । १० भुरिक्  
ऋट्पु छन्दः । वेजस स्वर । ६, ११ भुरिक् पङ्क्ति । ६ स्वराट्  
पङ्क्तिछन्दः । पञ्चम स्वर ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले छठे सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के सम्बन्ध से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीची नयत देवयन्तः ।  
दक्षिणावाहवाजनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यशनयं धृताची ॥१॥

पदार्थ—( देवद्रीचीम् ) जिस से मनुष्य विद्वानों का सत्कार करता है उसकी तथा ( देवयन्त ) विद्वानों की कामना करनेवाले हे ( कारव ) शिल्प कामों के कर्त्ता विद्वानो ! तुम जो ( मनना ) मानने वा जानने योग्य ( वच्यमाना ) वा जो कही जानी वा ( दक्षिणावाह ) जो दक्षिण दिशा को प्राप्त होती हुई ( वाजनी ) जो प्राप्त होनेवाली वा ( प्राची ) जो पहले प्राप्त होती अपूर्व दिशा वा ( धृताची ) जो जल को प्राप्त होती हुई ( अशनय ) अग्नि के लिए ( हविः ) देने योग्य पदार्थ को ( भरन्ती ) धारण करती वा पुष्ट करती हुई ( एति ) प्राप्त होती है उन सब को ( प्र, वयस ) प्राप्त करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्वान् लोक रात्रि और रात्रि के व्यवहारों को जानते हैं वैसे ओरो को भी जानना चाहिए ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।  
विविचिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्यः सप्तजिह्वाः ॥२॥

पदार्थ—हे ( प्रयज्यो ) उत्तम यज्ञ करनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्वान् ! ( विच ) प्रकाश और ( पृथिव्या ) भूमि के ( महिना ) महत्त्व से ( सप्तजिह्वा ) काली आदि मात जिह्वा ज्वालावाले ( वह्य ) पदार्थ को दणान्तर में पहुँचानेवाले अग्नि तुम्हें ( वच्यन्ताम् ) कहने चाहिए और सो आप ( जायमान ) उत्पन्न होते हुए ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी का ( अपृणा ) परिपूर्ण कीजिए ( उत ) और ( आ, प्र, रिक्था ) दोषों को सब ओर से अच्छे प्रकार दूर कीजिए ( अध ) इसके अनन्तर ( ते ) आपको ( चित्, नु ) शीघ्र निश्चय करके सुख हो ॥२॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य पृथिवी और अग्नि की महिमा वर्त्तमान है वैसे जो अग्निविद्या और भूगर्भविद्या का जानता है वह निरन्तर सुखी हो ॥२॥

द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमांय ।  
यदी विशो मानुषीद्वयन्तीः प्रयस्वतीरीरुते शुक्रमर्वाः ॥३॥

पदार्थ—ह राजन् ! ( यवि ) जो ( प्रयस्वती ) बहुत प्रकार का जिनमें तत्पण तुष्टि विद्यमान व ( देवयन्ती ) विद्वाना की कामना करनेवाली ( मानुषी ) मनुष्य सम्बन्धी ( विशा ) प्रजा जिन ( त्वा ) आप ( शुक्रम् ) आपके पराक्रम और ( अर्वा ) विद्या के प्रकाश की ( ईरुते ) स्तुति करती है उन ( होतारम् ) दानशील आपको ( दमांय ) जितेन्द्रियत्व के लिए ( यज्ञियास ) यज्ञ की सिद्धि करनेवाले ( नि, सादयन्ते ) निरन्तर स्थापन करते हैं ( द्यौ ) प्रकाश ( च ) और ( पृथिवी ) पृथिवी भी प्राप्त होती है ॥३॥

भाषार्थ—जब राजा और राजपुरुष विद्या विनय और नीतियों से अपनी प्रजाओं को प्रमत्न करते और जितेन्द्रिय होकर वृष्ट व्यमनों में रूढ़ि होते हैं वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं। यहाँ द्यौ और विद्या की उन्नति को उत्तम कारण जाना ॥३॥

महान्तघस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्धावा माहिने हयमाणः ॥  
आस्क्रे सपत्नीं भजरे अमृकं सबर्दुधे उरुगायस्य धेनू ॥४॥

पदार्थ—जो ( महान् ) बड़े परिमाणवाला ( सघस्थे ) समानस्थान में ( ध्रुव ) निश्चल ( माहिने ) महत्त्व के लिए ( हयमाण ) कामना करता हुआ ( द्यावा ) आकाश और पृथिवी के ( अस् ) बीच में ( आ, निषत् ) निरन्तर स्थिर अग्नि ( आस्क्रे ) जिनका आक्रमण करना अर्थात् अनुक्रम में चलना स्वभाव ( अजरे ) जो जीर्ण अवस्था रहित ( अमृक ) विकार अवस्था से अशुद्ध ( सबर्दुधे ) एक से स्वीकार को अच्छे प्रकार पूरे करनेवाली ( उरुगायस्य ) बहनों से जा स्तुति को प्राप्त हुआ उसकी ( सपत्नी ) सपत्नी के समान वर्त्तमान वा ( धेनू ) दा गौओं के समान पालन करनेवाली है उनको व्याप्त होना है वह सबका जानने योग्य है ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो यह सूर्यलाव दीक्ष पड़ता है वह सबसे बड़ा और अपनी परिधि में निरन्तर घमता हुआ सब भूगोलों को प्रकाशित करता है जिससे कि दिन रात्रि होते हैं उनको जानो ॥४॥

व्रता तं अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ तंतन्ध ।  
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ वर्षणीनाम् ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे ( वृषभ ) वर्षा करनेवाले ( अग्ने ) विद्वान् जन ! जैसे सूर्य वा बिजुली ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को ( आ, तंतन्ध ) विस्तारना और ( दूत ) दूत होता है वैसे ( त्वम् ) आप ( अभव ) हुआ जिन ( महत ) महान् ( ते ) आपके ( महानि ) बड़े बड़े ( व्रता ) शील ( तव ) आपके ( क्रत्वा ) उत्तम बुद्धि वा कर्म से प्रसिद्ध होते हैं सो ( त्वम् ) आप ( वर्षणीनाम् ) मनुष्यों के दूत हुआ तथा ( जायमान ) प्रसिद्ध होते हुए आप ( नेता ) अग्रगन्ता सभी में श्रेष्ठ हुआ ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि के महान् गुण कर्म स्वभाव है वैसे गुणकर्मस्वभाव वाला जो मनुष्य हो वही राजदूत और मनुष्यों का नायक भी हो ॥५॥

ऋतस्य वा केशिनां योग्यामिधृतस्तुवा रोहिता घुरि धिष्व ।  
अथा वह देवान्देव विश्वान्स्वधरा कृणुहि जातवेदः ॥६॥

पदार्थ—हे ( जातवेद ) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता है वह हे ( देव ) दान देनेवाले विद्वान् ! आप ( घुरि ) घुरे पर ( ऋतस्य ) जल के ( योग्यानि ) योग्य पृथिवियों से ( केशिना ) जिनमें बहुतसी किरणों विद्यमान वा ( घृतस्तुवा ) जो जल को चुआने ( रोहिता ) उन रत्न गुण वाले अश्वों को घुरे में ( धिष्व ) घरो लगाओ ( वा ) वा ( स्वधरा ) जिनसे सुन्दर यज्ञ होता उनको ( कृणुहि ) अच्छे प्रकार सिद्ध करो ( अथ ) इसके अनन्तर ( विश्वान् ) समस्त ( देवान् ) दिव्य गुणों को ( आ, वह ) प्राप्त करो ॥६॥



भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ईश्वर ने सूर्य और बिजुली सबके चलानेवाले ब्रह्माण्ड में घरे स्थापन किये वैसे तुम लोग अश्वदिकों को धारण करो और हम काम से समस्त गुणों को स्वीकार करो ॥६॥

दिवश्चिदा तै रुचयन्त रोका उषो विभातोऽग्नौ मासि पूर्वीः ।

अपो यदग्र उशधन्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् ! ( दिव ) प्रकाश से लेकर ( चित् ) ही ( ते ) आपके ( रोका ) रुचि करनेवाले प्रकाश ( आ, रुचयन्त ) अन्धे प्रकार रुचते हैं जैसे सूर्य ( पूर्वी ) प्राचीन ( विभाती ) और विशेषता से प्रकाश होनी दुर्ध ( उष ) प्रभात केलाओं को प्रकाशित करता वा ( अप ) जलों को वर्षाता है ( यत् ) जो आप विद्या के ( अनुभासि ) अनुकूलता से प्रकाशित होने हो उन ( मन्द्रस्य ) आनन्द देनेवाले ( होतु ) दानशील ( तव ) आपके गुणों के जैसे ( वनेषु ) जङ्गलों में ( उशधन्व ) मनोहर पदार्थों को जिससे बलाता वह अग्नि वर्तमान है वैसे ( देवा ) विद्वान् जन ( पनयन्त ) प्रशमन करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाचकतुल्योपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान प्रकाश कराने, दुष्टों का जलाने और श्रेष्ठों की स्तुति प्रशंसा करनेवाले होते हैं वे बिजुली के समान कार्य के सिद्ध करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

उरा वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रौचने सन्ति देवाः ।

ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! जो ( ऊमा ) मनोहर ( वा ) वा ( ये ) जो ( सुहवास ) सुन्दर ग्रहण करनेवाली ( वा ) वा ( ये ) जो ( यजत्रा ) सङ्क्रम को प्राप्त ( रथ्य ) रथ के लिये स्तिरूप ( अश्वा ) और व्याप्ति रखनेवाली किरणों ( वा ) वा ( ये ) जो ( रौचने ) प्रकाश में ( देवा ) दिव्य किरणों ( सन्ति ) विद्यमान हैं वे ( उरा ) पुष्कल ( अन्तरिक्षे ) आकाश में ( दिव ) प्रकाश से ( आयेमिरे ) विद्यरती है उनको जा जानने है वे मयदा ( मदन्ति ) हपित होते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! तुम प्रमिद और अप्रमिद रूप अग्नि की जो कि किरण और गुण सबके प्रकाश करनेवाले रथादिका के लिए हिनरूप और आकाशशक्तियुक्त है, उनको जानकर मय प्राणियों को रक्षा करनेवाले होओ ॥ ८ ॥

ऐभिर्गने सरथं याश्वार्ह नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।

पत्नीवर्तस्त्रिशतं त्रीशच देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान ज्ञान से प्रकाशमय जो अग्नि की ( विभव ) व्यापक ( अश्वा ) किरणों ( नानारथम् ) जिनमें अनेक रथ विद्यमान उसे ( वा ) वा ( त्रीन् ) तीन ( त्रिशतम्, च ) और तीस ( पत्नीवत् ) प्रशस्त

पत्नियोंवाले ( देवान् ) पृथिवी आदि लोकों को ( अनुष्वधम् ) अन्न के अनुकूल पहुँचाती है ( ऐभि ) इनसे आप ( अश्वार्ह ) जो नीचे को प्राप्त होता वा ऊपर को पहुँचता है उस ( सरथम् ) रथों के सहित वर्तमान मार्ग को ( आ, वाहि ) आधा प्राप्त होओ और हम लोगों को ( आ, वह ) प्राप्त कीजिये तथा ( याश्वस्व ) हपित कीजिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जैसे अग्नि, तैसी पृथिवी आदि दिव्य गुणी पदार्थों को धारण करता और वहाँ व्यापक होकर अपने रूप कर देता है, वैसे विद्वान् जन विज्ञान से सबको जानकर तथा ओरो के प्रति उपदेश कर आनन्द देते हैं ॥ ९ ॥

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञयज्ञमभि हृधे गृणीतः ।

प्राचीं अध्वरेव तस्थतुः सुमेकं ऋतावर्गं ऋतजातस्य सत्ये ॥१०॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस अग्नि के सम्बन्ध में ( उर्वी ) बहुस्वरूपवाले ( अध्वरेव ) न नष्ट करनेयोग्य यज्ञों के समान ( प्राची ) प्राक्तन ( सुमेक ) अन्धे प्रकार प्रक्षेप किये हुए ( ऋतावरी ) जिनमें बहुत उदक जल विद्यमान ( ऋत-जातस्य ) सत्य कारण से उत्पन्न हुए ससार के बीच ( सत्ये ) विद्यमान पदार्थों में हित या कारण रूप से नित्य ( रोदसी ) जो आकाश और पृथिवी ( वृधे ) वृद्धि के लिये ( यज्ञयज्ञम् ) प्रति व्यवहार का ( अभिगृणीत ) सम्मुख कहते ( चित् ) ही ( तस्थतु ) स्थित होते हैं ( स ) वह ( होता ) ग्रहणकर्ता वा सर्व पदार्थों को धारणकर्ता अग्नि सबको जानने योग्य है ॥ १० ॥

भाषार्थ—यदि भूमि सूर्य उदय को न प्राप्त हो तो किसी व्यवहार के सिद्ध करने का कोई योग्य न हो और न किसी की वृद्धि हो ॥ १० ॥

इत्थामग्ने पुरुदंसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्याजः सुनुस्तनयो विजावान्ते सा तै सुमतिभृत्वस्मे ॥११॥२७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् ! आप ( हवमानाय ) स्पर्द्धा करते हुए के लिये ( गो ) पृथिवी के ( शश्वत्तम् ) अनीव अनादि स्वरूप को ( पुरुदंसम् ) जो कि बहुत कर्मा से युक्त है उस ( सनिम् ) विभागयुक्त को तथा ( इत्थम् ) प्रशस्त भूमि को ( साध ) सिद्ध करो जिसमें ( न ) हमारा ( विजावा ) विशेष गर्तवाला वा विशेष ज्ञानवाला वा विशेष प्रतिज्ञावाला ( सुनु ) उत्पन्न ( तनय ) पुत्र हो । हे ( अग्ने ) विद्वान् ! जो ( ते ) आपकी ( सुमति ) सुन्दर श्रेष्ठ मति है ( सा ) वह ( अस्मे ) हम लोगों में ( सुनु ) हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—यदि मनुष्य अग्नि और पृथिवी आदि के स्वरूप को जानकर अन्धे प्रकार कार्यों में प्रयुक्त करे तो उनमें पुत्र, पुत्र, धन, धान्य, विद्या और ऐश्वर्य समर्पित हो ॥ ११ ॥

इमं सूक्तं मे विद्वान् और अग्नि का वग्गन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व मुक्ताय के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

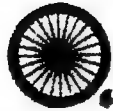
यह तृतीय मण्डल से छठवाँ सूक्त सत्ताईसवाँ वर्ग, द्वितीय अष्टक से आठवाँ अध्याय और द्वितीय अष्टक समाप्त हुआ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमबिभुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती-

स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमहयानन्दसरस्वती-

स्वामिना निर्मिते आर्यभाषासुश्रुषिते सुप्रमारायुक्ते ऋग्वेदभाष्ये

द्वितीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायो द्वितीयमष्टकं च समाप्तम् ॥



## अथ ऋग्वेदे तृतीयाष्टकारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितुर्दितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अर्चकारवर्षास्य सप्तमस्य सुप्तस्य विश्वानि च । अग्निर्द्वेता ।

१, ६, ८, १० विष्टुः । २—४; ७ निष्टुः । ११ निष्टुः ।

धेवत स्वर । ८ स्वरः पदः कित । ११ नुरिः

पदः कितः । ११ स्वरः ।

अथ तीसरे अष्टक का आरम्भ है, उसके प्रथम अध्याय के पहले सूक्त के प्रथम मन्त्र में विश्वत् अग्नि के गुणों का वर्णन किया है—

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरां विविशुः सप्त वाणीः ।

परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र संस्त्राते दीर्घमायुः प्रयसं ॥१॥

पदार्थ—( ये ) जो लोग ( शितिपृष्ठस्य ) जिसका पृष्ठना सूक्ष्म है ( वासे ) उस धारण करनेवाले विश्वत् अग्नि के सम्बन्धी ( परिक्षिता ) सब ओर से निवास करने हुए ( पितरा ) पालक ( मातरा ) जल और अग्नि को ( प्र, आरु ) प्राप्त होवें । जो जल अग्नि दोनों को ( सप्त, चरेते ) सम्यक् विचरते हैं तथा ( प्र, संस्त्राते ) विस्तारपूर्वक प्राप्त होते हैं वे ( दीर्घमायु, आयु ) बड़ी अवस्था को और ( प्रयसं ) अच्छे प्रकार यज्ञ करने के लिए ( सप्त, वाणी ) सात द्वारों में फँसी वाणियों को ( आ, विविशु ) प्रवेश करें सब प्रकार जानें ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो शरीर में विश्वत् रूप अग्नि फैला न हो तो वाणी कुछ भी न चले । उस विश्वत् अग्नि का जो ब्रह्मचर्यादि उत्तम कर्मों में यथावत् सेवन करते हैं वे बड़ी अवस्था को प्राप्त होने हैं ॥ १ ॥

मनुष्यों को कौसी वाणी का सेवन करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विचक्षसो धेनवो वृष्णो अथा देवीरा तस्यौ मधुमद्वहन्तीः ।

ऋतस्य रशो सदासि क्षेमयन्त पर्येका चरति वर्त्तन्ति गौः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जो ( ऋतस्य ) सत्य की ( सदासि ) सभा में ( विचक्षस ) प्रकाश को प्राप्त हो व्याप्त हुई ( वृष्ण ) बलिष्ठ पुरुष के ( अथा ) शीघ्रगामी घोड़ों के समान ( देवी ) दिव्यस्वरूप ( मधुमत् ) कोमल विज्ञानवाले उस सुख को ( बहन्ती ) प्राप्त कराती हुई ( धेनव ) वाणी ( क्षेमयन्तम् ) रक्षा करते हुए ( रशो ) आपका ( एका ) एक ( गौ ) अपनी कक्षा में चलनेवाली भूमि ( वर्त्तन्ति ) मार्ग को ( परि, चरति ) सब ओर से चलती हुई मी ( आ, तस्यौ ) स्थित होनी उन वाणियों को आप यथावत् जानो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अमहाय पृथिवी अपने कक्षा मार्ग में नित्य चलती है वैसे ही सत्य जनो की वाणी नियम से मिथ्या-भाषण को छोड़ सत्य मार्ग में चलती है । जो ऐसी वाणी का सेवन करते हैं उनकी कुछ भी हानि नहीं होती ॥ २ ॥

फिर राजा क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आ सीमराहस्तुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वा रयिविद्वयीणाम् ।

प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुषर्षतीकः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( चिकित्वा ) जानी ( रयिविद्वय ) द्रव्यवेत्ता ( रयीणाम् ) धनो के ( पतिः ) स्वामी ! आप जैसे ( पुरुषप्रतीकः ) धनको के पोषण के वा धारण के हेतु प्रतीतिकारी कर्मवाला ( नीलपृष्ठः ) जिसके पिछले भाग में नीलवर्ण है ऐसा ( सीम् ) सूर्यमण्डल ( अतसस्य ) व्याप्त बुद्धि ( धासेः ) पोषण करनेवाले राजा की जो ( अवासयत् ) वर्त्तमान ( सुयमा ) सुन्दर नियमवाली प्रजाओं को ( प्र, आ, अवासयत् ) अच्छे प्रकार बास कराता और ( अरोहत् ) अपने काम में आरुह होता है वैसे ( तम् ) उन सुन्दर नियमयुक्त प्रजाओं को अच्छे प्रकार बास कराए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य सब प्रजाओं को उठाके अच्छे प्रकार बास कराता है वैसे ही राजा सुशिक्षित रक्षा की हुई प्रजाओं को भूगोल के सब देशों में बसाके बनाइय करे ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

महिं स्वाधूमूर्जयन्तीरजुर्व्यं स्तंभुयमानं बहतीं बहन्त ।

व्यक्त्रैर्मिदितानः सधस्य एकामिव रोदसी आ विवेश ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस सूर्य के ( अजुर्व्यम् ) जीर्ण अवस्था से रहित ( महि ) बड़े ( स्वाधूमूर्जयन्तम् ) लोकों के आरफ ( स्वाधूमूर्ज ) तेज को ( अजुर्व्यम् ) बस बेती हुई वस्तुओं की यथास्थान ( बहन्तः ) पहुँचानेवाले किरण ( व्यक्त्रैः )

विविध प्रकार के अज्ञो से ( बहन्ति ) पहुँचाते हैं । जो ( विद्वत्तानः ) दीदीप्यमान हुआ अग्नि जैसे पति ( सधस्य ) एक स्थान में ( एकामिव ) एक अपनी स्त्री का सङ्ग करता है वैसे ( रोदसी ) आकाश भूमि को ( आ, विवेश ) आवेश करता है उस विश्वत् रूप अग्नि को कार्यमिदित के लिए संप्रयुक्त करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि सर्वत्र धर्मव्याप्त विश्वत् स्वरूप अग्नि के गुण कर्म स्वभावों को जानके कार्यमिदित करें ॥४॥

अब कौन महात्मा होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवंसुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।

दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इडा येषां गण्या माहिना गीः ॥५॥१॥

पदार्थ—( येषाम् ) जिनकी ( गण्या ) गणना करने योग्य ( इडा ) स्तुति और ( माहिना ) सत्कार करने योग्य ( गी ) वाणी है वे ( रोचमानाः ) रचिवाले हुए ( दिवोरुचः ) विज्ञानरूप प्रकाश में रचि करनेवाले ( सुरुचः ) सुन्दर प्रीति के उत्पादक विद्वान् लोग ( रणन्ति ) शब्द करते हैं तथा ( वृष्णः ) बलिष्ठ ( अरुषस्य ) बड़े के तुल्य वेगयुक्त ( ब्रध्नस्य ) महान् राजपुरुष की ( शासने ) शिक्षा में ( शेवं ) सुख ( उत ) और विज्ञान को ( जानन्ति ) जानते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की शिक्षा में स्थिर होते हैं वे प्रशसित विद्वान् होकर महात्मा होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।

उक्षा ह यत्र परि धानमक्रोरनु त्वं धामं जरितुर्वक्षं ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचारी लोग ( महद्भ्याम् ) पूज्य अध्यापक उपदेशको से ( मह ) बड़े ब्रह्मचर्य को ( उतो ) और ( पितृभ्याम् ) माता-पिता के साथ ( प्रविदा ) प्रकट ज्ञान से ( घोषम् ) विद्याशिक्षायाक्त वाणी और ( शूषम् ) बल को ( अनु, अनयन्त ) अनुकूल प्राप्त हो ( यत्र ) जहाँ ( उक्षा ) सेवन करनेवाला सूर्य ( अक्षतो ) रात्रि के ( परि, धानम् ) सब आर से धारण को ( जरितुः ) स्तुतिकर्त्ता के ( ह ) ही ( त्वम्, धाम ) अपने स्थान को अर्थात् प्राप्त अवस्था को ( अनु, बक्षं ) पहुँचाना है उसका सत्कार करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचारी लोग पिता आचार्य आदि महान् पुरुषों के सेवन से विद्या तेज को पाने हैं वैसे तुम लोग प्रातः काल ईश्वर की स्तुति आदि से धर्म से हुए सुख को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

अब उपदेशक लोग किसके सवृक्ष क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विमांः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।

प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥७॥

पदार्थ—जो ( प्राञ्च ) प्रकट विद्यायुक्त ( उक्षण ) सुख फैलानेवाले ( अजुर्याः ) शरीर आत्मा की जीर्ण अवस्था से रहित ( देवा ) विद्वान् लोग ( हि ) ही ( देवानाम् ) विद्वानों के ( व्रता ) सत्यभाषणादि उत्तम स्वभावों को ( अनु, गु ) अनुकूलता पूर्वक प्राप्त हो वे ( अध्वर्युभिः ) यज्ञ रचनेवाले ( पञ्चभिः ) होता, अध्वर्यु, उक्षाता, ब्रह्मा और सभ्य इन पाँच ऋत्विजों और पत्नी यज्ञमानों के साथ वर्त्तमान ( सप्त ) सात ( विमाः ) बुद्धिमान् लोग ( वे ) व्यापक परमेश्वर के ( प्रियम् ) प्रिय ( निहितम् ) स्थित ( पदम् ) प्राप्त करने योग्य स्वरूप की ( रक्षन्ते ) रक्षा करते हैं वे ही ( अहन्ति ) आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सात ऋत्विज लोग यज्ञ करके प्रजाओं को सुखी करते हैं वैसे ही उपदेशक विद्वान् लोग सुशील धार्मिक होके अध्यापन और उपदेश से सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं ॥ ७ ॥

फिर भी उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

देव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।

ऋतं शंसन्त ऋतमिच्छ आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥८॥

पदार्थ—जो ( सप्त ) सात ( पृक्षासः ) कोमल स्वभाववाले जन ( स्वधया ) धन से ( मधन्ति ) धानय करते हैं ( ऋतम् ) सत्य की ( सप्तम् ) स्तुति करते हैं ( ऋतम् ) सत्य ( व्रतम् ) आचरण को ( इत् ) ही ( ते ) वे ( व्रतपाः ) सत्या-

चरण क रक्षक ( वीर्याना ) विद्यादि मनुष्या से प्रकाशमान पुरुष ( अनु, आहु ) अनुकूल उपदेश करने है और ( वेद्या ) विद्वानो में कुशल ( प्रथमा ) प्रख्यात ( होतारा ) विद्या के देनेवाले दो विद्वान् अध्यापक उपदेशक भी अनुकूल उपदेश करने हैं उनको मैं ( नि ) निरन्तर ( अह्ने ) प्रमिद्व कर्त्तुं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जा विद्वान् लोग धर्मयुक्त व्यवहार से धन-धान्या का प्राप्त हो सत्य का उपदेश कर उसी का आचरण करके सब को शिक्षा करते हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**वृषायन्ते महे अस्याय पूर्वावृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।**

**वेव होतर्मन्दतंगश्चित्त्वान्महो देवान रोदसी एह वक्षि ॥९॥**

पदार्थ—ह ( वेव ) प्रकाशमान ( होत ) सबके लिए सुख दनहार विद्वान् ( मन्दतर ) अग्नि आनन्दकारक ( चित्त्वान् ) चिन्तानेहार । आप जैसे ( सुयामा ) सुन्दर प्रह्व आदि समयवाली ( रश्मयः ) किरणें ( महे ) बड़े ( अस्याय ) सब विद्याआ में व्यापनशील ( चित्राय ) आश्चर्य स्वभाववाले ( वृष्णे ) विद्या के प्रचारक विद्वान् क अथ ( पूर्वा ) पहल में वत्तमान प्रजाजनों का ( देवान्ते ) बल के समान उत्साहन करनी ( रोदसी ) सूर्य भूमि प्रकट करनी है वेम ( एह ) हम जगत् में ( महे ) महान् ( देवान् ) विद्वानों को ( आ, वक्षि ) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जैसे सूर्य की किरणें प्रकाश से वृष्टि द्वारा सब प्रजा का सुखी करती है वैसे ही विद्वान् लोग सब प्रजा-जनों को विद्वान् सुन्दर ज्ञानयुक्त करते हैं ॥ ९ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**पृथप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदधुः ।**

**उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दंशस्य ॥१०॥**

पदार्थ—ह ( अग्ने ) विद्वान् । ( द्रविण ) प्रशन्न द्रव्य जिसके विद्यमान ऐसे आप ( महिना ) महिमा में ( महे ) बड़े मोभाग्य के लिए ( पृथप्रयज ) शुभ गुण और कोमल भाव से यज्ञ करनेहार ( उषम ) प्रभान वेला के सूर्य वत्तमान ( सुवाच ) सुन्दर मत्स्य वाणी में युक्त ( सुकेतव ) सुन्दर बुद्धिवाले ( रेवन् ) द्रव्य के समान ( ऊषु ) बसे ( उतो ) और अन्वहार का निवारण करने है वेम ( पृथिव्या ) भूमि के मध्य में ( कृतम् ) किया हुआ ( एन ) पाप ( चित् ) शीघ्र आप ( सन्, दशस्य ) सम्यक् नष्ट करो ( चित् ) और सुन्दर कर्म की प्राप्त करा ॥ १० ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । हे विद्वान् ! तुम लोग पमान वेला के सूर्य मनुष्यों के आत्माआ का प्रकाशित कर चित्तान द और अधर्माचरण को नष्ट करने सब मनष्यों का मन्यवारी विद्वान् करो जिसमें पृथिवी पर पापाचरण न रहे ॥ १० ॥

**इदामग्ने पुरुदंसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।**

**स्यान्नः सुनुस्तनयो विजावाग्ने सा तै सुमतिर्भूत्वस्मे ।११॥२॥**

पदार्थ—ह ( अग्ने ) अपने शरीररत्मा के प्रकाश म युक्त विद्वान् । आप ( पुरुदंसम् ) बहुत कर्माशानी ( सनिम् ) सम्यक् सवन की हुई ( इदाम् ) प्रणमा के योग्य वाणी वा ( साध ) माधा ( गो ) पृथिवी क बीच ( हवमानाय ) ग्रहण करते हुए क अथ ( शश्वत्तम् ) गर्दैव वत्तमान विज्ञान का मित्र करा जिसमें ( न ) हमारा ( विजावा ) विशेषकर प्रमिद्व ( तनय ) ब्रिदा और मूल का प्रचार करने-हार ( सुनु ) गन्तान ( स्यान् ) हवि । ह ( अग्ने ) विद्वान् । ( ते ) आपको ( सा ) वह ( सुमति ) उत्तम बुद्धि ( अस्मे ) हमारे लिए ( सुनु ) हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का चाहिए कि गर्दैव विद्यायुक्त वाणी और बुद्धि को प्राप्त हो गन्ताना को उत्तम शिक्षा देके अनारि रूप सुख को प्राप्त होयें और सदैव सत्यवादी विद्वानों की बुद्धि सर्वत्र फैलावे ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि सूर्य और विद्वानों के गुणा का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सातवीं सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथैकादशसंख्याष्टसस्य सूक्तस्य विद्वामित्र ऋषि । विद्वेदेवा वेवता ।

१, ८—१० निचुत्त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ४ स्वराट्

त्रिष्टुप्छन्व । वेवत स्वर । ३, ७ स्वराडनुष्टुप्छन्व ।

गान्धार स्वर ॥

अब तीसरे मण्डल के आठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग किसकी कामना करें, इस विषय को कहा है—

**अह्नन्ति स्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना देव्येन ।**

**यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धन्वाद्यद्वा क्षयौ मातुरस्या उपस्थे ॥१॥**

पदार्थ—ह ( वनस्पते ) किरणों के रक्षक सूर्य के समान वर्तमान तेजस्वी विद्वान् । ( मधुना, देव्येन ) विद्वानों में हुए कामन स्वभाव के साथ वर्तमान ( देवयन्त ) कामना करते हुए विद्वान् ( यत् ) जिन ( स्वाम् ) आपको ( अह्नन्ते ) पढ़ने पढ़ाने और राज्य पालनादि व्यवहार में ( अह्नन्ति ) चाहते हैं । सो आप जिन के बीच ( ऊर्ध्व ) श्रेष्ठ गुणा में बड़े हुए ( तिष्ठा ) स्थित हुईए ( वा ) और ( इह ) इस भसार में ( द्रविणा ) घनों को ( धन्वात् ) धारण करो ( अस्या ) इस ( मातु ) मान देनेवाली भूमि के ( उपस्थे ) समीप गोद में ( यत् ) जो ( अयः ) निवासस्थान है उमका हम लोग ग्रहण कर ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जैसे सब प्राणी दिन को चाहते हैं वैसे ही उत्तम विद्वान् लोग का सब मनुष्य चाहें । सब मिलके प्रीति से उत्तम घर और ऐश्वर्य की सिद्धि कर ॥ १ ॥

अब कौन मनुष्य कल्याण को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**समिद्वस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्दानो अजरं सुवीरम् ।**

**आरे अस्मदमति बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभाग्य ॥२॥**

पदार्थ—ह ( रश्मिरक्षक सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् । आप ( पुरस्तात् ) पहले से ( समिद्वस्य ) प्रदीप्त तेजस्वी विद्वान् का ( श्रयमाणः ) सेवन करते और ( अजरम् ) अक्षय ( सुवीरम् ) जिसमें उत्तम वीर पुरुष हों ऐसे ( ब्रह्म ) बड़े जन को ( वन्दान ) सेवन करते हुए ( अस्मत् ) हमारे ( आरे ) समीप वा दूर में ( अमतिम् ) अधर्मयुक्त विरुद्ध बुद्धि को ( बाधमान ) नष्ट करते हुए ( महते ) बड़े ( सौभाग्य ) उत्तम ऐश्वर्य होने के लिए निरन्तर ( उत्, अयस्व ) अच्छे प्रकार सवन करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से ( वनस्पते ) इस पद की अनुवृत्ति भाली है । जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से कुबुद्धि का निवारण करने और अनारि ऐश्वर्य के साथ सुशिक्षा विद्या और धर्म का प्रचार करते हुए सबके कल्याण की इच्छा करें वे सदैव कल्याणभागी हों ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्धमेन पृथिव्या अधि ।**

**सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३॥**

पदार्थ—ह ( वनस्पते ) श्रेष्ठ गुणा के प्रचारक ( वनस्पते ) सेवने योग्य जन के रक्षक विद्वान् । आप ( पृथिव्या ) भूमि के ( अधि ) ऊपर वर्ध्म के तुल्य ( उत्, अयस्व ) ऊंच हुईए ( मीयमान ) सत्कार किय हुए ( सुमिती ) सुन्दर बुद्धि ग ( यज्ञवाहसे ) पढ़ने पढ़ाने आदि यज्ञ के प्राप्त करानेहारे विद्यार्थी के लिए ( वर्च ) पढ़ने रूप नेज को ( धा ) धारण कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जैसे बड़ आदि वनस्पति जट स्कन्ध डाली आदि से बढ़ते हैं वैसे ही पुरुषार्थ के साथ विद्याआ का प्रचार कर मनुष्यों को बढ़ाना चाहिए ॥ ३ ॥

फिर कैसा विद्वान् हो, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**युवा सुवामाः परिवोत आगात्म उ श्रेयान्भवति जायमानः ।**

**तं धीगंसः कवय उन्नयन्ति स्वाध्वोऽ मनसा देवयन्तः ॥४॥**

पदार्थ—जा आठवें वर्ष से लेकर ब्रह्मचर्य के साथ विद्या का ग्रहण किये ( युवा ) युवावस्था को प्राप्त ( सुवामा ) सुन्दर वस्त्र का धारण किये ( परिवोत ) और सब आर से विद्या में व्याप्त हुए ब्रह्मचर्य में घर का ( आ, अगात् ) घाबे ( स, उ ) वही विद्या में ( जायमान ) प्रमिद्व हुआ ( श्रेयान् ) अग्नि प्रशन्न ( भवति ) हाता है ( तम् ) उमको ( देवयन्त ) कामना करने हुए ( धीरास ) बुद्धिमान् ( स्वाध्वः ) सुन्दर विद्या या आधान करनेवाले ( कवय ) सर्वोत्तम विद्वान् लोग ( मनसा ) विज्ञान वा अन्त करण से ( उत्, नयन्ति ) उन्नत करने उत्तम मानते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—कोई भी मनुष्य विद्या की उत्तम शिक्षा और ब्रह्मचर्य में घन के बिना दीर्घायु और सभा के योग्य विद्वान् नहीं हो सकता और न वह मनुष्य कहीं सत्कार पाने योग्य होता है जिस मनुष्य की धार्मिक विद्वान् प्रणमा करते हैं वही विद्वान् है ॥ ४ ॥

**जातो जायते सुदिनत्वे अहो समय्य आ विदधे वर्द्धमानः ।**

**पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उद्वियसि वाचम् ॥५॥३॥**

पदार्थ—जो ( समय्य ) युद्ध में शूरवीर पुरुष के समान ( अह्नाम् ) दिनो के ( सुदिनत्वे ) सुन्दर दिनो के होने में ( विदधे ) विज्ञान सम्बन्धी व्यवहार में ( जातः ) प्रमिद्व ( वर्द्धमान ) बढ़ता हुआ ( जायते ) उन्नत होता है । जो ( मनीषा ) बुद्धि में ( अपस ) कमों को करता हुआ ( देवया ) विद्वानों का पूजन करनेवाला निय-तात्मा ( विप्र ) समस्त विद्याओं में युक्त बुद्धिमान् जन ( वाचम् ) शुद्ध वाणी को ( उत्, उद्वियसि ) प्राप्त होता है उसको ( धीराः ) बुद्धिमान् जन ( आ, पुनन्ति ) अच्छे प्रकार पवित्र करते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । उन्नी का सुदिन होता है जो विद्या और उत्तम शिक्षा का सग्रह कर विद्वान् होते हैं । जैसे शूरवीर पुरुष दुष्टों को जीतके धनादि ऐश्वर्य के साथ सब ओर से बढ़ते हैं वैसे ही विद्या से विद्वान् बढ़ते हैं ॥ ५ ॥



मनुष्यों को निष्का प्रहण वा स्वाम करना चाहिए, इस विषय की  
अगले मन्त्र में कहा है—

यान्वो नरो देवयन्तो निमिष्युर्नस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।

ते देवासः स्वर्बस्तस्यिवांसः प्रजावदस्मे दिधिवन्तु रत्नम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( नरः ) नायक लोगो ! ( याव, वः ) जिन तुमको ( देवयन्तः ) कामना करते हुए जन ( निमिष्युः ) निरन्तर मान करें ( ते ) वे ( स्वर्बः ) अपने विद्याबोधक शब्दों से युक्त ( तस्यिवांसः ) स्मिर बुद्धिवाले ( देवासः ) आप विद्वान् लोग ( अस्मे ) हमारे ( प्रजावन् ) प्रजावान् ( रत्नम् ) धन का ( दिधिवन्तु ) उपदेश करें । ( वा ) अथवा हे ( जनस्पते ) वनों के रक्षक पुरुष ! जैसे ( स्वधितिः ) वज्र भेष को ( ततक्ष ) काटता है वैसे आप बुद्धता को काटो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिनके सङ्ग से धन्य जन सम्य विद्वान् हो उन्हीं का सङ्ग तुम लोग भी करो । जिनके समागम से दुर्व्यसन बढ़ें उनको सब लोग त्याग दें ॥ ६ ॥

अब विद्या से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

ये वृषणासो अधि क्षमि निमितासो यतस्त्रुचः ।

ते नो व्यन्तु वाय्वन्देवजा सैवसाधसः ॥७॥

पदार्थ—( ये ) जो ( वृषणासः ) अविद्या से पृथक् हुए ( निमितासः ) सर्वैव सत्य-मध्य ज्ञानवाले ( यतस्त्रुचः ) जिन्होंने यज्ञ-साधन नियत किया और ( क्षमि, अधि ) पृथिवी पर वर्तमान हैं ( ते ) वे ( देवजा ) विद्वानो म ( सैवसाधसः ) खेतों को साधने वाले ( नः ) हमारे ( वाय्वन् ) स्वीकार के योग्य ज्ञान को ( व्यन्तु ) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे कुल्हाड़े से काटे हुए वृक्ष फिर नहीं जमते वैसे ही विद्या से नष्ट हुई अविद्या नहीं बढ़ती ॥ ७ ॥

फिर उसी अहिंसाधर्म की उन्नति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।

सजोषसो यज्ञपवन्तु देवा ऊर्ध्व कृषन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( आदित्याः ) बारह मास ( रुद्रा ) प्राण ( वसवः ) पृथिवी आदि ( पृथिवी ) विस्तारयुक्त ( द्यावाक्षामा ) सूर्य और भूमि तथा ( अन्तरिक्षम् ) आकाश ये सब ( सजोषसः ) सबके साथ समान प्रीति के सेवक ( सुनीथाः ) सुन्दर सङ्कति का प्राप्त ( यज्ञम् ) यज्ञ को बढ़ाने हैं वैसे ( सजोषसः ) समान प्रीति वाले ( देवाः ) कामना करते हुए विद्वान् यज्ञ की ( अहन्तु ) रक्षा करें ( अध्वरस्य ) रक्षा योग्य धर्म की ( केतुम् ) बुद्धि को ( ऊर्ध्वम् ) उत्तेजित ( कृषन्तु ) करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् ! जैसे महीने प्राण और पृथिवी आदि पदार्थ अविद्वान्ता के साथ वर्तमान रहते हैं, वैसे ही सबको सबके साथ प्रीति उत्पन्न कर विज्ञान बढाके अहिंसाधर्म की उन्नति करनी चाहिए ॥ ८ ॥

फिर कीन पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

हंसाव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वर्बो न आगुः ।

उक्षीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥९॥

पदार्थ—जो ( देवाः ) उत्तम गुण कर्म स्वभाववाले पण्डित लोग ( अक्षिणः ) पक्षि बधि ( यतानाः ) यत्न करते और ( शुक्राः ) जलों को ( वसानाः ) आच्छादन करते हुए ( स्वर्बः ) सुन्दर स्वरो का सेवन करनेहारे ( हंसावः ) हंसों के तुल्य वर्त्तनीय ( नः ) हमको ( उक्षीयमानाः ) उत्तम गुणों को प्राप्त करने हुए ( पुरस्तात् ) पहले से ( कविभिः ) बुद्धिमानों के साथ वर्त्तमान ( देवानाम् ) विद्वानों के ( पाथः ) मार्ग को ( अपि, यन्ति ) चलते हैं वे भी हमको ( आ, अगुः ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो हमारा के तुल्य मिलके प्रयत्न से सबकी उन्नति कर अपने आप उन्नति को प्राप्त हुए आप्त मत्स्यवादियों के मार्ग में चलके पराक्रम बढ़ाते हैं वे ही पूर्ण सुख को भोगते हैं ॥ ९ ॥

अब कीन विद्वान् जन सत्कार पाते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

शृङ्गाणिवेच्छक्रिणां मं ददधे च्चालवन्तः स्वर्वः पृथिव्याम् ।

वाघर्जिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०॥

पदार्थ—जो ( च्चालवन्तः ) बहुत भोगवाले ( स्वर्वः ) प्रशंसक लोग ( विहवे ) विशेषकर जहाँ पठन पाठनादि का शब्द करते उस स्थान में ( श्रोषमाणाः ) सुनते हुए ( वाघर्जिः ) श्लेष्मिणों के साथ वर्त्तमान ( पृथिव्याम् ) पृथिवी पर ( शृङ्गाणाम् ) शंसा आदि के ( शृङ्गाणाम् ) सींगों के तुल्य ( मं, ददधे ) सम्यक् सीख पढ़ते हैं वे ( इत् ) ही ( पृतनाज्येषु ) संधानों ( वा ) अथवा धन्य व्यवहारों में ( अस्माँ ) हमको ( अवन्तु ) रक्षित करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बहुश्रुत विद्वान् लोग अपने आत्मा के तुल्य सबकी रक्षा करते हैं वे कीर्ति से श्रेष्ठाङ्ग मस्तक में वर्त्तमान सब

पशुओं के सींगों के तुल्य उत्तम पद को प्राप्त होकर ससार में स्तुति किये हुए सब के सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

अब ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रंहेम ।

यं स्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनायं मदते सौवमाय ॥११॥४॥

पदार्थ—हे ( वनस्पते ) वनस्पति के समान वर्त्तमान परोपकारी सज्जन ! जैसे ( शतवल्शा ) सैकड़ों अकुर वाला बांस आदि वृक्ष विशेष बढ़ता है वैसे आप ( वि, रोह ) वृद्धि को प्राप्त हुआ और सुख को ( प्रणिनाय ) उत्तम प्रकार से प्राप्त कीजिए । जैसे ( सहस्रवल्शाः ) हजारों अकुरवाले वनस्पतियों के तुल्य माङ्गो-पाङ्ग वर्त्तमान दूर्वा आदि बढ़ते हैं वैसे ही ( वयम् ) हम लोग ( वि, रंहेम ) विशेष कर बढ़ें । जैसे ( अयम् ) यह ( तेजमानः ) तीक्ष्ण किया ( स्वधितिः ) वज्ररूप विद्युत् धनि ( मदते ) बढ़े ( सौवमाय ) सुन्दर धन होने के लिए ( वयम् ) जिस ( स्वायम् ) आपको बढ़ाना है वैसे हम लोग भी बढ़ावें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ब्रह्मचर्य विद्या सुशिक्षा धर्म और पुरुषार्थों से युक्त हुए कार्यमिष्टि के अर्थ प्रयत्न करते हैं वे बांस आदि वृक्षों के तुल्य सब धोग से बढ़ते हैं । जैसे सुन्दर तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं को जीतके अजातशत्रु होते हैं उनको जैसे विद्युत् भेष को वैन शत्रु दलों को जनाने को समर्थ होके महान् ऐश्वर्य को उत्पन्न करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् वेदपाठी और ब्रह्मचारी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह आठवाँ सूक्त और बीथा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अब नवमस्य नवमसूक्तस्य विद्यामित्र ऋषि । अग्निहोत्रा । १, ४ बृहती ।

२, ५—७ निषुद्बृहती छन्द । ३, ८ विराट् बृहती छन्द । मध्यम

स्वर । ९ स्वराट पङ्क्तिछन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब नव ऋचावाले नवमे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को अहिंसा धर्म का ग्रहण करना चाहिए इस विषय को कहा है—

सखायस्त्वा बह्वमहे देवं मत्तौ स ऊतये ।

अपां नपातं सुमर्गं सुदीदिति सुप्रतृप्तिमनेहसम् ॥१॥

पदार्थ—हे उपदेशक सज्जन ! ( मत्तौ ) मननशील ( सखायः ) मित्र हुए हम लोग ( ऊतये ) रक्षा आदि के लिए ( अपाम् ) प्राणों के बीच ( नपातम् ) आत्मभाव से नाशरहित ( अनेहसम् ) न मारनेहारे ( सुप्रतृप्तिम् ) सुन्दर शीघ्रनायुक्त ( सुदीदितिम् ) विद्या और विनय के प्रकाश से युक्त ( सुमर्गम् ) उत्तम ऐश्वर्य वाले ( देवम् ) विद्वान् ( त्वा ) आपका ( बह्वमहे ) स्वीकार करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्यादि सौभाग्य जानने के लिए मित्रभाव का आश्रय कर और आप्त मत्स्यवक्ता विद्वान् के शरण को प्राप्त हो के अहिंसाधर्म का मग्न करे ॥ १ ॥

विद्यार्थी किसको पाकर सुखी होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

कार्यमानो वना त्वं यन्मातृजंगमपः ।

न तत्तं अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यदरे सन्निहाभवः ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) वृष गुणों से प्रकाशमान सज्जन ( कार्यमान ) पढ़ाते वा उपदेश करते ( सत् ) हुए ( त्वम् ) आप ( यत् ) जिससे ( मातृ ) माताओं के तुल्य रक्षक वा प्रिय ( अपः ) प्राणों का ( अजगम् ) प्राप्त होवें । और ( यत् ) जिससे ( निवर्त्तनम् ) धन्यायाचरण से पृथक् होने का ( दरे ) दूर फेंकिए और मङ्गल के अर्थ ( इह ) यहाँ ( अभवः ) हुआ ( तत् ) इससे ( ते ) आपसे मैं ( वना ) मांगने योग्य पदार्थों को ( प्रमृषे ) सुयो म मयुक्त करूँ और मुझसे आप दूर न हुआ ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे प्यासा जन जल को पा के तृप्त होता वैसे ही आप्त अध्यापक और उपदेशक को विद्यार्थी जन प्राप्त होके सब ओर से सुखी होता है ॥ २ ॥

अब कीन मनुष्य जगत् में पूज्य होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अति तृष्टं ववक्षिथायैव सुमना असि ।

ममान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् जन ! जिस कारण आप ( तृष्टम् ) प्यासे का ( ववक्षिथ ) प्राप्त करना चाहते ( अथ ) अथवा ( सुमनाः ) प्रसन्नचित्त ( एव ) ही ( असि ) हैं तथा ( ववक्षिथ ) जिनकी ( सख्ये ) मित्रता का मित्र कर्म में आप ( भितः ) समुक्त ( असि ) हैं उनसे से ( अन्ये ) अन्य लोग ( प्रप्र, अति, यन्ति ) विशेषकर पर्यन्त प्राप्त होते तथा ( अन्ये ) अन्य लोग ( परि, आसते ) सब ओर से बैठते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो लोग मित्र भाव से प्यासे के लिए जल के तुल्य विद्या चाहने वाले के अर्थ विद्या लेकर प्रसन्नरूप करते हैं वे ही जगत् में पूज्य होते हैं ॥ ३ ॥

फिर पाखण्डी लोग कैसे दूर होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**ईयिवांसमति सिधः अश्वतीगति सश्वतः ।**

**अन्दीमविन्दमिचिरासो अद्रुहो अप्सु सिहमिव श्रितम् ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( अति, सिध. ) प्रतिमहन्शील ( शश्वतीः ) सनातन ( अति, सश्वतः ) अत्यन्त प्रापस में मिले हुए ( मिचिरासः ) निश्चय से प्राचीन ( अद्रुहः ) द्रोहरहित प्रजाजन ( ईयिवांसम् ) प्राप्त होते हुए ( अप्सु ) जलो में ( श्रितम् ) आश्रित ( सिहमिव ) सिंह के तुल्य ( ईम्, अनु, अविन्दम् ) सब ओर से अनुकूल प्राप्त हो उनको तुम लोग सुख भोगनेवाले जानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे सिंह को देवके हरिण आदि भाग जाते हैं वैसे ही सुशिक्षा-युक्त विद्वान् प्रजाजनो को देवकर पाखण्डी लोग नष्ट-अष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

फिर आत्मज्ञान विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**ससुवासमिव त्मनाग्निमिस्था तिरोहितम् ।**

**ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मयितं परि ॥५॥५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( मातरिश्वा ) वायु ( परावतः ) दूर देश से ( देवेभ्यः ) विद्वानो के लिए ( मयितम् ) मन्थन किये ( तिरोहितम् ) परिच्छिन्न ( अग्निम् ) अग्नि को ( ससुवासमिव ) प्राप्त होते हुए मनुष्य के समान ( परि, आ, मयत् ) सब ओर से सब प्रकार प्राप्त कराता है ( इत्था ) इस प्रकार उस ( एनम् ) अग्नि को ( त्मना ) आत्मा से तुम लोग विशेषकर जानो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमाएँ हैं । हे मनुष्यो ! जैसे प्रयत्न के साथ मन्थन आदि से उत्पन्न हुए अग्नि को वायु बढ़ाता और दूर पहुँचाता है तथा अग्नि प्राप्त हुए पदार्थों को जलाता है और दूरस्थ पदार्थों को नहीं जलाता । इसी प्रकार ब्रह्मचर्य, विद्या, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान और सत्पुरुषों के सङ्ग से साक्षात् किया आत्मा और परमात्मा सब दोषों को जला के सुन्दर प्रकाशित ज्ञान को प्रकट करता है ॥ ५ ॥

फिर उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**तन्वा मर्त्तो अगृह्यत देवेभ्यो हव्यवाहन ।**

**विश्वान्यद्यज्ञं अभिपासि मानुष तव कृत्वा यविष्ठय ॥६॥**

पदार्थ—ह ( मानुष ) मननशील ( हव्यवाहन ) ग्रहण करने योग्य शास्त्रीय युक्ति युक्त वचनों को प्राप्त करानेहारे ( यविष्ठय ) अत्यन्त ब्रह्मचर्य और विद्या के अभ्यास में युवावस्था को प्राप्त उपदेशक विद्वान् । ( यत् ) जो आप ( विश्वान् ) समस्त ( यज्ञान् ) विद्यादि के प्रागक व्यवहारों की ( अभि, पासि ) सब आर से रक्षा करने है उन ( तव ) आपकी ( कृत्वा ) बुद्धि से ( मर्त्ता ) मरण धमवाले मनुष्य ( देवेभ्यः ) विद्वानो के लिए ( तम् ) उन ( त्वा ) आपका ( अगृह्यत ) ग्रहण करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके उपदेश से बुद्धि का प्राप्ति होकर समग्र सुखों को आप लोग प्राप्त होवें उसका सब ओर से सत्कार करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य कैसे सब भय से रहित होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।**

**त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥७॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य नजस्वि । ( यत् ) जो मनुष्य ( अपिशर्वरे ) निश्चित अश्वकार रूप गाँव में भी ( समिद्धम् ) प्रज्वलित अग्नि के निकट जैसा ( पशवः ) गौ आदि पशु ग्रीन निवारणार्थ वैसे ( त्वाम् ) आपके निकट ( समासते ) बठने है उनको ( पाकाय ) परिपक्व दूध होने के लिए अग्नि के ( चित् ) तुल्य ( तत् ) उस ( भद्रम् ) कल्याणकारक बुद्धि से उत्पन्न ज्ञान को ( तव ) आपका ( दंसना ) दर्शन शास्त्र ( चिच्छदयति ) बढ़ाता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाएँ हैं । हे मनुष्यो ! जैसे वन में अग्नि के चारों ओर स्थित हुए पशु सिंह आदि से रक्षित होते हैं, वैसे ही विद्वानो के ज्ञान का आश्रय मनुष्यों की सब ओर के भय से रक्षा करता है ॥ ७ ॥

फिर ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**आ जुहोता स्वध्वं शीरं पाञ्चशोचिषम् ।**

**आशु दूतमजिर् प्रतनमीड्यं श्रेष्ठी देवं संपर्यत ॥८॥**

पदार्थ—हे विद्वाना ! तुम लोग जैसे ( स्वध्वम् ) हिमा न करने योग्य ( शीरम् ) विद्युत् रूप से सब जगह भरे हुए ( पाञ्चशोचिषम् ) शुद्ध प्रकाश वाले ( आशुम् ) शीघ्रगामी ( दूतम् ) दूत के तुल्य देशान्तर में समाचार पहुँचाने वाले ( अजिर्म् ) फेकनेहारे ( प्रसम् ) प्राचीन ( ईड्यम् ) खोजने योग्य विद्युत् रूप अग्नि का ( आ, जुहोत ) अच्छे प्रकार ग्रहण करो, वैसे ही स्वयं प्रकाशरूप सर्वत्र व्यापक ( देवम् ) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त सब आनन्द देनेवाले परमात्मा की ( श्रुष्टी ) शीघ्र ( संपर्यत ) सेवा करा ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाएँ हैं । हे मनुष्यो ! जो बिजुली के तुल्य व्यापक स्वयं प्रकाशरूप अविद्यादि दोषों का नाश करनेवाला सनातन धनादि काल से प्रशसा करने योग्य परमात्मा है उसी का नित्य ध्यान करो ॥ ८ ॥

फिर अग्नि क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**ग्रीणि शता ग्री सहस्राण्यग्निं त्रिशच्च देवा नवं वासपर्यन्म् ।**

**औक्षन् धृतैस्तृग्नं बहिरस्था आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥९॥६॥**

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जिस ( अग्निम् ) अग्नि को ( ग्रीणि ) तीन ( शता ) सैकड़े ( ग्री ) तीन ( सहस्राणि ) हजार तत्त्व ( च ) और ( त्रिशत् ) पृथिवी आदि तीन तथा तीन तैत्तिरीय ( च ) और ( नव ) नौ हिरण्यगर्भादि ( देवाः ) दिव्य गुणवाले पदार्थ ( अस्तपर्वत् ) सेवन करते ( धृतैः ) जलों से ( औक्षन् ) सींचते ( अस्ते ) हम अग्नि के लिए ( बहिः ) पदार्थ वृद्धि का ( अस्तपर्वत् ) विस्तार करते उस ( आत् ) विद्याप्राप्ति के पश्चात् ( होतारम् ) आदर करनेवाले कार्यसाधक ( इत् ) को ही तुम लोग ( नि, असादयन्त ) कार्यों में निरन्तर युक्त करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके आश्रय में तैत्तिरीय हजार तीनसौ बयानीस तत्त्व हैं, जो एक सबको विद्युत् रूप से व्याप्त है, उस अग्नि के आश्रय से आप लोग सब कार्य सिद्ध करो ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और मनुष्यादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह नवमां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

अथ नवमस्य ब्रह्मस्य सूक्तस्य विद्वानिन्द्रा अग्निर्हवता ,

१, ५, ८ विराडुष्णिक् । ३ उष्णिक् । ४, ६, ७, ९ निषडुष्णिक् छन्दः ।

अक्षरम् स्वरः । २ भुरिग् वायव्री छन्दः । निषाव स्वरः ॥

अब नौ ऋचावाले ब्रह्मों सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है इस विषय को कहते हैं—

**त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् ।**

**देवं मर्त्तोस इन्धते समध्वरे ॥१॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) स्वयं प्रकाशरूप जगदीश्वर ! ( मनीषिणः ) मननशील ( मर्त्तासि ) मनुष्य जिन ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यादि प्रजाओं के ( सत्ताजम् ) सम्यक् न्यायाधीश राजा ( देवम् ) सब सुख देनेवाले ( त्वाम् ) आप को ( अध्वरे ) रक्षणीय धर्मयुक्त व्यवहार में ( सम्, इन्धते ) सम्यक् प्रकाशित करने है उन्हीं आप की हम भी उपासना करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाएँ हैं । जैसे अग्नि सूर्यादि रूप में सब जगत् को प्रकाशित और उपकृतकर आनन्दितकरता है वैसे ही परमात्मा अन्तर्यामी रूप से जिज्ञासु योगी लोगों के आत्माओं को विशेष और सामान्य से सबके आत्माओं का प्रकाशित कर और जगत् के असंख्य पदार्थों से उपकृत कर इस लोक परमात्मा के सुख देन में सदैव सुखी करता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**त्वां यज्ञेष्टृत्विजमग्ने होतारमीडते ।**

**गोपा ऋतस्य दीविहि स्वे बर्मे ॥२॥**

पदार्थ—ह ( अग्ने ) अविद्यादि दोषों के नाशक जगदीश्वर ! जो ( ऋतस्य ) सत्य के ( गोपा ) रक्षक विद्वान् लोग ( यज्ञेष्टृ ) अच्छे व्यवहारों वा यज्ञों में ( ऋत्विजम् ) ऋत्विज के तुल्य सुखसाधक ( होतारम् ) सब के आरण करनेहारे ( त्वाम् ) आप की ( ईडते ) स्तुति करते हैं सो आप ( स्वे ) अपने ( बर्मे ) नियम-रूप व्यवहार में उन विद्वानों को ( दीविहि ) विज्ञान दान दीजिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाएँ हैं । जो लोग सत्यभाषणादि धर्म का अनुष्ठान कर और असत्य भाषणादि रूप अधर्म को छोड़ के आप का भजन करते हैं वे आप को प्राप्त होंगे सदा आनन्दित हुए हम ससार में बसते हैं ॥ २ ॥

अब मनुष्य कैसे सुखों को प्राप्त हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**स वा यस्ते बदाशति समिधा जातवैबसे ।**

**सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुण्यति ॥३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सबके प्रकाशक जन ! ( धः ) जो ( समिधा ) सम्यक् प्रकाशक इन्धन वा सुन्दर विज्ञान से ( जातवैबसे ) उत्पन्न हुए पदार्थों से विद्यमान वा बुद्धि को प्राप्त हुए ( ते ) आप के लिए आत्मा अपने स्वरूप को ( बदाशति ) देना प्राप्ति करता है ( सः, ध ) वही ( सुवीर्यम् ) सुन्दर विज्ञानादि धन वा पराक्रम को ( धत्ते ) आरण करता ( स ) वह ( पुण्यति ) सब ओर से पुष्ट होता और ( स ) वह दूसरों को पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे प्राणी अग्नि में घृतादि उत्तम इन्धन का होम कर वायु आदि की बुद्धि होने से सब आनन्द को प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्वान् लोग परमात्मा में अपने आत्मा का समर्पण कर समस्त सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

अत्र उपदेशक का कर्तव्य कहते हैं—

स केतुरध्वराणां भग्निर्देवमिरा गमत् ।

अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्यते ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे ( सः ) वह ( केतुः ) ध्वजा के तुल्य प्रज्ञापक ( अञ्जानः ) दिव्य गुणों को प्रकट करता हुआ प्रसिद्ध ( भग्निः ) अग्नि ( देवैभिः ) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के तुल्य विद्वानों और ( होतृभिः ) ग्रहण करने-हारे ( सप्त ) पाच प्राण, मन और बुद्धि के साथ ( अध्वराणां ) अहिंसारूप यज्ञों के सम्बन्धी ( हविष्यते ) प्रशस्त देने योग्य पदार्थोंवाले जन के लिए ( आ, अगमत् ) आवे प्राप्त होवे अर्थात् अग्निविद्यायुक्त होवे वैसे स प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् कर सम्यक् सेवन किया अग्नि दिव्य गुणों को देता है, वैसे ही सेवन किये आप्त विद्वान् जन अहिंसावि रूप धर्म को जला कर श्रोताओं के लिए दिव्य सुखों को देते हैं ॥ ४ ॥

अब अध्यापक और विद्वान् के कर्तव्य को कहते हैं—

य होत्रे पूर्य वचोऽन्नये भरता बुधत् ।

विपां ज्योतीषि विधत्ते न वेधसे ॥५॥७॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो ! ( होत्रे ) ग्रहण करनेवाले ( अन्नये ) अग्नि के ( न ) समान ( विपां ) उत्तम बुद्धिवालों के ( ज्योतीषि ) विद्यारूप तेजों को ( विधत्ते ) धारण करते हुए ( वेधसे ) बुद्धिमान् के लिए ( बुधत् ) महत् प्रयोजनवाले ( पूर्यम् ) प्राचीन विद्वानों से उपदेश किये हुए ( वच ) वचन को ( य, भरत ) उपदेश कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ करनेवाले यज्ञ के लिए वृत् आदि पदार्थों से उत्तम प्रकार पूर्वक पकाये हुए अन्नो से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे ही अध्यापक पुरुष अङ्ग और उपाङ्गों के सहित सम्पूर्ण विद्याओं के प्रचार स विद्यार्थी और श्रोतृजनों का तृप्त करें ॥ ५ ॥

अग्निर्बर्धन्तु नो गिरे यतो जायत उक्थ्यः ।

महे वाजाय त्रविणाय दर्शतः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो ! आप लोग जैसे रामिषो से ( अग्निम् ) अग्नि बढ़ता है वैसे ( न ) हम लोगों की ( गिरः ) उत्तम प्रकार से शिक्षित वाणियों को ( बर्धन्तु ) वृद्धि करें ( यत ) जिससे ( महे ) श्रेष्ठ ( वाजाय ) विज्ञान और ( त्रविणाय ) ऐश्वर्य के लिए ( दर्शतः ) देखते और ( उक्थ्यः ) प्रशंसा करने योग्य विद्वान् पुरुष ( जायते ) प्रकट होता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अध्यापक और उपदेशक पुरुषों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि पढ़ने और सुननेवाले जनो की उत्तम शिक्षा विद्या और सम्यक्ता बढ़े और वे धनवान् हों ॥ ६ ॥

फिर विद्वान् के कर्तव्य को कहते हैं—

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।

होता मन्द्रो वि राजस्यति सिधः ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य वर्तमान ( होता ) वेनेहारे ( मन्द्र ) प्रसन्न करने तथा ( यजिष्ठः ) प्रतिशय यज्ञ करनेवाले ! आप ( अध्वरे ) अहिंसारूप यज्ञ में ( देवयते ) दिव्य गुण कर्म स्वभावों की कामना करनेवाले के लिए ( देवां ) उत्तम गुणों को ( यज ) समुक्त कीजिए जिससे ( अति, सिधः ) विद्या आदि उत्तम व्यवहार के बिरोधी पुरुषों को उत्तम अधिकारों से पूषक् करके ( वि, राजसि ) अत्यन्त प्रकाशित होते हैं । इससे उत्तम सत्कार करने योग्य है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि उत्तम प्रकार से यन्त्रों में समुक्त किया हुआ शिल्पविद्या आदि व्यवहारों की सिद्धि करके दारिद्र्य का नाश करता है वैसे ही पूजित हुए विद्वान् पुरुष विद्या का प्रचार करके अविद्या आदि दुष्ट स्वभावों का नाश करते हैं ॥ ७ ॥

स नः पावक बीबिहि यमवस्मे सुवीर्य्यम् ।

मवां स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८॥

पदार्थ—हे ( पावक ) अग्नि के तुल्य पवित्रकारक विद्वान् पुरुष ! आप ( स्तोतृभ्यः ) विद्यार्थों के प्रचार करनेवाले ( अस्मे ) हम लोगों को ( सुवत् ) प्रशंसा करने योग्य सद्बिद्या के विज्ञान से युक्त ( सुवीर्य्यम् ) श्रेष्ठ धन दीजिए ( सः ) वह आप ( नः ) हम लोगों को ( बीबिहि ) प्रकाशित करो ( स्वस्तये ) शुभ प्राप्ति के लिए ( अन्तमः ) समीप में वर्तमान ( मवां ) हूजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—विद्वज्जन जो कि स्वयं पवित्र हैं उनको चाहिए कि श्रीरों को भी विद्या और उत्तम शिक्षा से पवित्र करें, जिससे सम्पूर्ण पुरुष मित्र होकर सुख करने के लिए समर्थ हों ॥ ८ ॥

तन्वा विमा विपन्वर्षी जाशुवांसः सभिष्यते ।

हव्यवाहमर्त्य सहोदृषम् ॥९॥१॥

पदार्थ—हे सत्य कहनेवाले विद्वान् पुरुष ! जो लोग ( जाशुवांसः ) अविद्या-रूप मित्रा से उठे विद्या में जाग्रते हुए धीर ( विपन्वर्षः ) विशेष प्रकार से प्रशंसा किये गये ( विमाः ) बुद्धिमान् जन ( तम् ) उन सम्पूर्ण विद्याओं के प्रकाश करने वाले वक्ता ( हव्यवाहम् ) देने के योग्य विज्ञान के दाता ( अमर्त्यम् ) मनुष्य के स्वभाव से रहित होने से देवता स्वभाववाले ( सहोदृषम् ) बल में बढने वा बल को बढ़ानेवाले ( त्वा ) आपको ( तम् इन्वते ) प्रकाशित करते हैं उनको आप सब धीर से शुभ गुणों के साथ प्रकाशित कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—विद्वान् लोग ही विद्वानों के परिश्रम को जान सकते हैं अन्य जन नहीं, इससे विद्वज्जन विद्वान् पुरुषों ही का सत्कार करें भूखों का नहीं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि, परमात्मा और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह वक्ता सूक्त और आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अब नवर्चस्वीकाराहसप्तसूक्तस्य विध्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, ५, ७,

८ निष्कृतायत्री । ३, ६ विराट् गायत्री । ४, ९ गायत्री छन्द । बद्धः स्वरः ॥

अब ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र से अग्न्यादि के वृष्टान्त

से विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को कहा है—

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥१॥

पदार्थ—जो मनुष्य ( अध्वरस्य ) जिसमें हिंसा न हो ऐसे कर्म का ( विचर्षणि ) प्रकाशकर्ता ( होता ) दानकारक ( पुरोहितः ) सब जीवों के हित करने-वाले ( अग्निः ) अग्नि के मनुष्य होता है ( स ) वह ( मानुषक् ) अनुकूलता से वर्तता हुआ ( यज्ञम् ) विधि यज्ञादि कर्म को ( वेद ) जानता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष ब्रह्मचर्य और विद्या आदि उत्तम गुणों के ग्रहण करने में तत्पर होते हैं वे ही अग्नि आदि पदार्थों को जान कर अर्थात् शिल्पविद्या में निपुण होकर ससार में प्रशंसा होने योग्य कर्म करनेवाले होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

स हव्यवाहमर्त्य उशिष्टतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समुद्यवती । २॥

पदार्थ—जो पुरुष ( अग्नि ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ( हव्यवाहः ) ग्रहण करने योग्य हवन सामग्री को प्राप्त ( अमर्त्य ) मरणरूप धर्म से रहित ( उशिष्टः ) कामना करता हुआ ( इतः ) अविद्या आदि में पृथक् दूर विद्या को प्राप्त करनेवाला ( चनोहितः ) घन्नादिको में वृद्धिरूप हित कर्म करने वाला विद्वान् पुरुष ( धिया ) सुकर्म से वा उत्तम बुद्धि से ( तम्, उद्यवति ) चलना वा श्रेष्ठ बुद्धियुक्त होकर उन कर्मों को जानता है ( सः ) वही पुरुष हम लोगों को शिक्षा कर सकता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि अपने व्यापार से दूत के सदृश कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वान् लोग राज्य के कार्य्यों आदिको को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

मनुष्यों को किनका सेवन करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्य्यः । अर्थ ह्यस्य तरणि ॥३॥

पदार्थ—जो विद्वान् पुरुष ( अग्निः ) अग्नि के मनुष्य तेजस्वी ( केतुः ) उपदेश द्वारा बुद्धि का प्रकाश करने तथा ( तरणि ) सद्बिद्या से दुःख का छुड़ानेवाला ( पूर्य्यः ) प्राचीन विद्वानों में चतुर ( धिया ) कर्म से वा बुद्धि से ( हि ) जिस कारण से ( अर्थ ) हम ( यज्ञस्य ) विद्वानों के सत्काररूप व्यवहार को ( अर्थम् ) प्रयोजन को ( चेतति ) उत्तम प्रकार जानता वा अन्यो को जानता है हमसे ( स ) वह सेवा करने योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो पुरुष विद्यारूप यज्ञ को उत्तम प्रकार से जानते हैं, उन्हीं पुरुषों की विद्या की उन्नति होने के लिए सेवा करो ॥ ३ ॥

अब सत्तानों की शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्निं सुनुं सनभृतं सहसो जातवेदसम् । वक्तिं देवा अङ्गुष्ठत ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! स्वयं ( देवाः ) विद्वान् हुए आप लोग ( सहसः ) प्रशंसा करने योग्य विद्या बलवाले के ( सुनुम् ) पुत्र के सदृश सेवा करने ( वक्तिम् ) अच्छे ही गुणों को धारण करने धीर ( सनभृतम् ) सनातन शास्त्रों को श्रवण करने वाले ( जातवेदसम् ) विद्या से युक्त जिज्ञासु को ( अग्निम् ) अग्नि के समान तेजस्वी ( अङ्गुष्ठत ) करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वान् लोगों को चाहिए कि अपने पुत्रों के सदृश धीर लोगों के पुत्रों को समक कर स्नेह से विद्यायुक्त धीर बहुत शास्त्रों को सुननेवाले अर्थात् जिन्होंने बहुत शास्त्र सुने हों ऐसे करके धामन्द सहित करें ॥ ४ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अदांर्यः पुरता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।

तूर्णी रयः सदा नवः ॥५॥९॥



**पदार्थ**—विद्वान् पुरुष ( तृणि ) शीघ्र चलनेवाला और ( नव ) नवीन ( रथः ) उत्तम सवारी और ( अग्नि ) अग्नि के सदृश प्रकाशित ( मानुषीणाम् ) मनुष्य सम्बन्धी ( विशाम् ) प्रजाओं की ( सदा ) सब काल में ( अवाप्त्यः ) परस्पर हिंसा का कारणकर्ता और ( पुरस्ता ) अग्रगामी होवे ॥ ५ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। विद्वान् लोग जैसे शीघ्र-गामी नवीन रथ में शीघ्र अपने वांछित स्थान को कोई एक मनुष्य पहुँचता है वैसे वेर को त्याग के सब लोगों को अपनी इच्छानुकूल मद्रिद्याओं की शीघ्र शिक्षा देकर उनका जन्म सफल करे ॥ ५ ॥

**साह्यान्विभ्यां अभियुजः क्रतुर्दवानामर्कः । अग्निस्तुविश्वस्तमः ॥६॥**

**पदार्थ**—ह मनुष्यो ! जो ( अमृतः ) जो कि भोगों से न मारा जा सके ( साह्यान् ) क्रोध रहित ( क्रतु ) बुद्धिमान् और ( अग्नि ) अग्नि के सदृश शुद्ध स्वभाववाला ( तुविश्वस्तमः ) अतिशय कर बहुत शास्त्रों को जिसने सुना हो ( वेदानाम् ) पण्डितों के बीच में ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( अभियुजः ) अपने अनुकूल व्यवहार करनेवाली प्रजाओं की सब प्रकार रक्षा करना है वह सब प्रजाजनों से सत्कार पाने योग्य है ॥ ६ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। जो किसी की नहीं मारता उसको मारने की कोई इच्छा नहीं करता, जो पुरुष बहुत शास्त्रों को पढ़ने और सुनने की इच्छा करता है वह अति बुद्धिमान् होता है, जो जैसी भावना से प्रजा में वर्तित रखता है उनके साथ प्रजा भी उसी भावना से वर्तित रखती है ॥ ६ ॥

**अभि प्रयांमि वाहसा वाभ्यां अश्रोति मर्यः । सयं पावकशोचिषः ॥७॥**

**पदार्थ**—जो ( वाहसान् ) देनेवाला ( मर्यः ) मनुष्य ( पावकशोचिषः ) अग्नि की दीप्ति के सदृश दीप्ति युक्त विद्वान् पुरुष के ( अयम् ) विद्या स्थान को ( अश्रोति ) प्राप्त होता वह ( वाहसा ) उत्तम पदवी को प्राप्त होने से ( प्रयांसि ) कामना अभिमाणा के योग्य अन्न आदि को ( अभि ) प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

**भाषार्थ**—जब मनुष्य विद्वान् की विद्या पदवी को प्राप्त होते हैं तब ही उनके मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥ ७ ॥

**परि विश्वानि सुधितान्नेरश्याम मर्मभिः । विप्रामो जातवेदसः ॥८॥**

**पदार्थ**—हे मनुष्यो ! जैसे ( जातवेदसः ) विद्वान् हुए ( विप्रसः ) बुद्धिमान् हम लोग ( मर्मभिः ) विज्ञान विभागों के महान् ( जने ) अग्नि के सदृश ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( सुधिता ) उत्तम प्रकार धारण किये शास्त्रों को ( परि ) सब ओर से ( अश्याम ) प्राप्त हो वैसे ही आप लोग भी प्राप्त हजिए ॥ ८ ॥

**भाषार्थ**—विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि जैसे बुद्धिमान् विद्वान् सृष्टि और आत्मा की विद्या ग्रहण के लिए प्रयत्न करते हैं वैसे ही विद्यावृद्धि के लिए प्रयत्न करें ॥ ८ ॥

**अग्ने विश्वानि वाय्यां वाजेषु सनिषामहे ।**

**स्वे देवास परिरि ॥९॥१०॥**

**पदार्थ**—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य विद्याओं से उत्तम प्रकार प्रकाशयुक्त विद्वान् पुरुष ! जिन ( स्वे ) आपके विषय में ( देवास ) विद्वान् लोग हम लोगों का ( आ, इरिरे ) प्रेरणा करने हैं फिर प्रेरित हुए हम लोग ( वाजेषु ) सधाम आदि व्यवहारों में ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( वाय्यां ) अश्वों प्रकार स्वीकार करने योग्य बनादि वस्तुओं को ( सनिषामहे ) यथाभाग प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

**भाषार्थ**—हे मनुष्यो ! जिस धर्मयुक्त पुरुषार्थ में विद्वान् लोग तुम लोगों को प्रेरणा करे ता जैसे हम लोग उनकी आज्ञानुकूल वर्तित्व करके विद्या और धन का प्राप्त होवें वैसे ही उन पुरुषों की आज्ञानुसार वर्तित्व करके आप लोग भी विद्या और धनयुक्त होइए ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् पुरुष के गुणों का वर्णन होने में इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गत है यह जानना चाहिए ॥

यह ग्यारहवाँ सूक्त और दशवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ नववर्षस्य द्वादशासूक्तस्य विद्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते ।

१, ३, ५, ८, ९ निबृद्गायत्री । २, ४, ६ गायत्री । ७ षडमध्या विराट् गायत्री च छन्दः । वङ्गः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक का विषय कहते हैं—

**इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गोभिर्नभो वरेण्यम् ।**

**अस्य पातं धियेचिता ॥१॥**

**पदार्थ**—हे विद्या पढ़ाने और उपदेश देनेवाले पुरुषो ! आप दोनों ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के सदृश ( अस्य ) इस संसार में वर्तमान होकर ( इचिता ) बोध देते हुए ( गोभिः ) उत्तम शिक्षाओं से पूरित वाणियों के सहित ( चिता ) श्रेष्ठ बुद्धि से ( नभः ) अन्तरिक्ष नामक अवकाश की ओर ( वरेण्यम् ) स्वीकार करने योग्य ( सुतम् ) विद्या से उपाजित धन से युक्त पुत्र या शिष्य की ( पातम् ) रक्षा कीजिए और ( आ, गतम् ) विद्या के प्रचार के लिए आइए ॥ १ ॥

**भाषार्थ**—हे अध्यापक और उपदेशक पुरुषो ! जैसे वायु और सूर्य सम्पूर्ण जगत् के रक्षाकारक हैं वैसे ही विद्या और उत्तम शिक्षा से सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हजिए ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।**

**अया पातमिमं सुतम् ॥२॥**

**पदार्थ**—हे ( इन्द्राग्नी ) धन और विद्यायुक्त पुरुषो ! जो ( चेतनः ) उत्तम रीति से जाननेवाला ( यज्ञः ) पूजा करने योग्य पुरुष आप दोनों के ( जिगाति ) शरण को प्राप्त होवे वे दोनों आप ( जरितुः ) स्तुतिकर्ता पुरुष के ( सचा ) सम्बन्धी हुए ( अया ) इस विद्या सुशिक्षा सहित वाणी से ( इयम् ) इस वर्तमान ( सुतम् ) उत्पन्न मसार को ( पातम् ) पालो ॥ २ ॥

**भाषार्थ**—हे अध्यापक और विद्योपदेशक लोगो ! जो पुरुष विद्या के उपदेश ग्रहण करने के लिए आप लोगों के शरण आवें, उनकी जैसे वायु सूर्य जगत् की रक्षा करते हैं वैसे निरन्तर पालना करो ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इन्द्रमग्निं कविच्छवां यज्ञस्य जुत्या वृणे । ता सोमस्वेह तृप्ताम् ॥३॥**

**पदार्थ**—मैं जिन ( जुत्या ) वेग के सहित वर्तमान ( कविच्छवा ) विद्वानों का सत्सङ्ग करनेवाले ( इन्द्रम् ) दुष्टों के दोषों के नाशकर्ता और ( अग्निम् ) अग्नि के सदृश दुष्टों के भस्मकारक जनों को ( वृणे ) स्वीकार करता हूँ ( ता ) वे ( इह ) इस संसार में ( सोमस्य ) ऐश्वर्य और ( यज्ञस्य ) धर्मसम्बन्धी व्यवहार के मध्य में ( तृप्ताम् ) सुख भोगों और सबको सुखी करें ॥ ३ ॥

**भाषार्थ**—मनुष्यों को चाहिए कि मूर्ख लोगों का सङ्ग त्याग के और विद्वानों का सङ्ग करके उत्तम आचरण करने से इस संसार में ऐश्वर्य का सङ्ग्रह करके सदा ही धानन्दयुक्त रहे ॥ ३ ॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**तोषा वृत्रहणां हुवे सजित्वानापंगजिता । इन्द्राग्नी वा नसातमा ॥४॥**

**पदार्थ**—हे सभासेना के अध्यक्षो ! मैं ( वृत्रहणा ) असुर स्वभाववाले दुष्ट का नाशकारक ( इन्द्राग्नी ) सूर्य बिजुली के सदृश वर्तमान ( तोषा ) बढ़ानेवाले वा विज्ञानशील ( सजित्वाना ) जीतनेवाले वीरों के साथ वर्तमान ( अपंगजिता ) शत्रुओं से नहीं हारने योग्य ( वाजसातमा ) विज्ञान वा धनका अभिशय विभाग करनेवाले आप लोगों की ( हुवे ) प्रशंसा करता हूँ ॥ ४ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। जो राजा लोग शत्रुओं के जीतने और शत्रुओं से नहीं हारनेवाले न्यायकर्ता पुरुषों का सम्मानपूर्वक स्वीकार करते हैं, उनका सबदा विजय होता है ॥ ४ ॥

**प्र वामर्षन्त्युचिथनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥५॥**

**पदार्थ**—हे ( इन्द्राग्नी ) बिजुली और सूर्यके सदृश प्रकाश सहित विद्यमान सभापति सेनापतियो ! ( नीथाविदः ) नम्रतायुक्त ( उचिथनः ) उत्तम गुणों की प्रशंसा करने तथा ( जरितारः ) ईश्वर की स्तुति करनेवाले ( वाम् ) तुम दोनों को ( प्र, अर्चन्ति ) विशेष सत्कार करने हैं उनमें मैं ( इषः ) अन्न आदि को ( आ, वृणे ) सब ओर से प्राप्त होऊँ ॥ ५ ॥

**भाषार्थ**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। जो पुरुष पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कम स्वभावों को जानते हैं, वे ही युद्ध और न्यायाचरण कर सकते हैं ॥ ५ ॥

**इन्द्राग्नी नवति पुरो दासपन्तीरधुनतम् । साकमेकैः कर्मणा ॥६॥**

**पदार्थ**—हे सभापति सेनापतियो ! जैसे ( इन्द्राग्नी ) वायु और अग्नि को ( साकम् ) एक साथ ( एकैः, कर्मणा ) एक कर्म से ( नवतिषु ) नब्बे सख्यायुक्त ( पुर ) पालन करनेवाली ( दासपन्ती ) शत्रुओं को युद्ध में हार फेंकनेवाले पुरुषों की स्त्रियों के मुख्य वस्तमान सूर्य की किरणों ( अधुनतम् ) कपाती हैं वैसे आप दोनों सेना आधिको से शत्रुओं को कम्पावे ॥ ६ ॥

**भाषार्थ**—सभाध्यक्षादि मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर एक सम्मति से युद्ध पुरुषों को उत्तम स्थानों में दूर कर और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके धर्मपूर्वक व्यवहार से राज्यप्रबन्ध करें ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इन्द्राग्नी अपमस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । क्रतुस्य पथ्यान् अन्तु ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली ( अक्षय्य ) सत्य ( अक्षयः ) कर्म के ( परि ) सब और से ( अक्षयः ) मार्ग में सुखकारक सङ्को के ( अक्षु ) अनुकूल जाते हुए इन वायु बिजुलियों की गति ( भीतयः ) अगुनियों के समान ( उभ ) समीप में ( प्र, धर्म ) प्राप्त होती है, वैसे ही आप लोग भी श्रेष्ठ मार्ग में नियमपूर्वक चलिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर की सृष्टि में सूर्य आदि पदार्थ नियम के माप अपने अपने मार्ग पर चलते हैं, वैसे ही मनुष्य लोग भी धर्मयुक्त मार्ग में चलें ॥ ७ ॥

फिर राजधर्म विषय की अगले मन्त्रों में कहा है—

**इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।**

**सुबोरपुण्यं हितम् ॥८॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) वायु बिजुली के सदा ऐश्वर्यमय से वर्तमान सेना और सेना के मुख्य अधिष्ठाता ( वां ) आप दोनों के ( सधस्थानि ) तुल्य स्थान में विद्यमान ( प्रयांसि ) कामना करने योग्य ( तविषाणि ) बल पराक्रम ( च ) और ( पुण्यः ) आप दोनों के ( अपुण्यम् ) कर्म करने के लिए भीमता ( हितम् ) सुखसाधक हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वायु और बिजुली के संयोग के समान परस्पर सेना और सेना के स्वामी प्रेमभाव से विरोध छोड़ के वर्तमान करें तो सम्पूर्ण मनोरथ मिट हो ॥ ८ ॥

**इन्द्राग्नी रोचना विवः परि वाजेषु भुवयः ।**

**तदा चेति प्र भीर्यम् ॥९॥१२॥१॥**

पदार्थ—हे सेना और सेना के स्वामी ! जैसे ( इन्द्राग्नी ) वायु बिजुली ( विवः ) प्रकाश के मध्य में ( रोचना ) प्रोत्तिकारक कर्मों को ( परि ) सब और से ( भुवयः ) शोभित करते हैं वैसे ( वाजेषु ) सगमों में विजय से सेना के पुरुष आप दोनों को शोभित करें और ( तत् ) वह कर्म ( वां ) आप दोनों के ( प्र ) उत्तम ( भीर्यम् ) पराक्रम को ( चेति ) सम्यक् जनाता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो राजा लोग राज्यवार्ध्य में सब प्रकार से निपुण सेना और सेना के स्वामियों को अधिकार देते हैं उनका सब काल में विजय ही होता है ॥ ९ ॥

इस सूक्त में इन्द्र अग्नि अध्यापक उपदेशक और सेना तथा सेना के स्वामी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पूर्ण सूक्त के धर्म के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह तीसरे मण्डल में बारहवां सूक्त पहला अनुवाक और बारहवां वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तमस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य ऋचो वेदवाचिः । अग्निर्होता ।

१ सुरिमुष्मिन् ऋचः । ऋचमः स्वरः । २, ३, ५—७ निषुवतुष्टुम् ।

४ विराडनुष्टुप् ऋचः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ सात ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को कहते हैं—

**प्र वो देवायग्नये वहिष्ठमर्चास्मै ।**

**गमदेवेमिरा स नो यजिहो वहिरा संवत् ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष ( देवेभिः ) उत्तम गुणों के साथ ( अस्मै ) इस ( देवाय ) श्रेष्ठ गुणयुक्त ( अग्नये ) अग्नि के सदा तेजघारी के लिए ( वः ) आप लोगों को ( आ ) सब प्रकार ( गमत् ) प्राप्त होवे उस ( वहिष्ठम् ) यज्ञ में बैठनेवाले का ( प्र, अर्च ) विशेष सत्कार करो ( सः ) वह ( यजिह्वः ) अतिशय यज्ञ करनेवाला ( नः ) हम लोगों को ( वहिः ) अन्तरिक्ष में ( आ, सवत् ) प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों का सत्कार करते हैं उनका आप लोग भी सत्कार करें। जैसे विद्वज्जन विद्वान् पुरुषों से विद्यायुक्त क्षुभ गुणों को ग्रहण करते हैं उन विद्वज्जनों की आप लोग भी सेवा करें और हम लोगों को उत्तम गुण प्राप्त हों ऐसी इच्छा करो ॥ १ ॥

**ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त उत्तयः ।**

**इविष्यन्तस्त्वमीक्ये तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! ( ऋतावा ) सत्य की प्रार्थना करनेवाले आप ( यस्य ) जिसके ( दक्षम् ) पराक्रम वा बलुराई और ( उत्तयः ) रक्षा करनेवाले गुण ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( सचन्त ) सम्बद्ध करते अर्थात् उनमें व्याप्त होते हैं ( तम् ) उसके ( इविष्यन्तः ) प्रशंसा करने योग्य दानयुक्त जन

सम्बन्धी होते हैं ( तम् ) उसकी ( अवसे ) रक्षा आदि के लिए ( सनिष्यन्तः ) सेवन करनेवाले लोग ( इति ) प्रशंसा करते हैं, उसी की प्रशंसा करो ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी कीर्ति आकाश और पृथिवी में व्याप्त, जिसके न्याय से प्रशस्त रक्षा आदि कर्म होने हैं उसी विद्वान् सभापति का रक्षा आदि के लिए तुम आश्रय करो ॥ २ ॥

**स यस्ता विप्र एवां स यज्ञानामथा हि वः ।**

**अग्नि तं वो दुवस्यत वाता यो वनिता मधम् ॥३॥**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! ( वः ) जो ( विप्रः ) बुद्धिमान् पुरुष ( एवम् ) इन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त ( यज्ञानाम् ) करने योग्य व्यवहारों को और ( वः ) आप लोगों का ( यज्ञानां ) कुमार्ग से निवारणकर्ता ( वाता ) दानशील ( वनिता ) मगिनेवाला होवे ( तम् ) उस ( अग्निम् ) अग्नि के सदा प्रकाशमान जन को और उससे प्राप्त हुए ( मधम् ) अत्यन्त पूजने योग्य जन को ( दुवस्यत ) सेवा ( सः ) वह ( हि ) जिससे कि अपने आप ही जितेन्द्रिय हमसे ( सः ) वह अपने आप ही बुद्धिमान् ( अथ ) इसके अनन्तर ( सः ) वह स्वयं दानशील यज्ञों के करने में उत्तम गुणों का मगिनेवाला होवे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष अपने आप धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सत्य का प्रचारक, श्रेष्ठ गुणों का देने और ग्रहण करने वाले, स्वभाव का, धर्म में प्रवर्तनकर्ता होवे, उसकी सम्पूर्ण उपायों में सेवा करो ॥ ३ ॥

**स नः शर्मोणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।**

**यतो नः प्रणवद्वसु द्वि वि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४॥**

पदार्थ—( वः ) वह पूर्व मन्त्र में कहा हुआ विद्वान् ( अग्निः ) अग्नि के सदा ( वीतये ) विज्ञान आदि जन की प्राप्ति के लिए ( नः ) हम लोगों को ( शर्मोणि ) अतिशय कल्याणकारक ( शर्मोणि ) उत्तम गुणों को ( क्षितिभ्यः ) पृथ्वी में विराजमान देशों से ( द्वि वि ) प्रकाश में ( अप्सु ) प्राणों जलों वा अन्तरिक्ष में ( वा ) चारों ओर से ( यच्छतु ) देवे ( यत ) जिससे ( नः ) हम लोगों को ( प्रणवत् ) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त जैसा ( वसु ) धन प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—गृहस्थ लोगों को चाहिए कि सर्वदा सुखोत्पादक गृहों को निर्मित करके और जल स्थल अन्तरिक्ष मार्ग से गमन के लिए उत्तम वाहन तथा अन्य यन्त्रादि साधनों को रक्षक सम्पूर्ण समृद्धिवा सञ्चालन करें, फिर उन से अपना विज्ञान बढ़ावें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**दीदिवांसमपूर्य वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।**

**ऋक्राणो अग्निर्मिन्धते होतारं विरपति विशाम् ॥५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष ( ऋक्राणः ) स्तुति करने योग्य गुणों के स्तुतिकर्ता ( धीतिभिः ) अगुनियों के सदा ( वस्वीभिः ) धन प्राप्त करानेवाली क्रियाओं से ( अस्वः ) इस ससार के मध्य में ( अग्निम् ) अग्नि के तुल्य वर्तमान ( दीदिवांसम् ) उत्तम गुणों के प्रकाश से युक्त ( अपूर्यम् ) अपूर्व श्रेष्ठ गुणों में निपुण ( होतारम् ) सुखदायक ( विशाम् ) प्रजाओं के बीच ( विरपतिम् ) विशिष्टों के पामनकर्ता जन को ( इन्धते ) प्रकाशित करता है, उसकी आप लोग सेवा करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोगों को इस ससार में श्रेष्ठ पुरुषों का आश्रय करना, दुष्टोंका सङ्ग त्यागना विद्या जन की वृद्धि करनी और विद्या विनय से युक्त राजाका सेवन करना योग्य है, ऐसा मनको ॥ ५ ॥

**उत नो ब्रह्मप्रविष उक्थेषु देवहृतमः ।**

**शं नः शोचा मरुद्बुधोऽग्रे सहस्रसातमः ॥६॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य कीर्ति में प्रकाशमान ! आप ( ब्रह्मन् ) धन और ( उक्थेषु ) प्रशसनीय पदार्थों के निमित्त ( नः ) हम को ( अविषः ) समुक्त कीजिए ( उत ) और ( देवहृतम् ) विद्वानों से अति प्रशंसा को प्राप्त ( सहस्रसातम् ) असंख्य उपदेश वा धनो को अत्यन्त देनेवाले आप ( मरुद्बुधः ) मनुष्यों से बढते हुए ( नः ) हमारे ( नाम् ) सुख का ( शोच ) विचार कीजिये वा सुख प्राप्त कीजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के शरण जा के प्रथम से ब्रह्मचर्य विद्या आदि का ग्रहण तबन्तर धन ऐश्वर्य की वृद्धि के उपाय की प्रार्थना करें और फिर धन को प्राप्त होके उत्तम विद्यावान् पुरुषों और श्रेष्ठ मार्ग में लक्ष्य ॥ ६ ॥

**न नो रास्व सहस्रवसोऽकवत्पुष्टिमहत्तु ।**

**धूमदग्ने सुवीर्यं वहिष्ठमनुपसितम् ॥७॥१३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर वा विद्वान् पुरुष ! आप ( नः ) हम लोगों के लिए ( सहस्रवत् ) असंख्यपरिमाणयुक्त ( लोकवत् ) प्रशंसा करने योग्य सन्तानों से पूरित ( पुष्टिमहत्तु ) अनेक प्रकार की पुष्टि के दाता ( सुवीर्यम् ) प्रचण्ड बलको

बढ़ानेवाले ( सुमत् ) ज्ञान के प्रकाश में युक्त ( वक्षिष्ठम् ) प्रतिमय वृद्धि से युक्त और ( अनुपमितम् ) खर्च करने से नहीं न्यून होनेवाले ( वसु ) विद्या सुवर्ण आदि धन को ( नु ) शीघ्र ( रास्व ) दीजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परम ऐश्वर्ययुक्त ईश्वर वा किसी विद्वान् पुरुष से प्रार्थना करके प्राप्ति के योग्य विद्या ऐश्वर्य्य उत्तम सन्तान श्रेष्ठ बल, पुत्रार्थ से बढ़ावे जिससे सब जनों की शीघ्र वृद्धि कर सकें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह तेरहवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तर्षेभ्य चतुर्विंशत्य सूक्तस्य ऋचभ्यो बंशमामिन् ऋचि । अग्निहोवता ।

१, ७ निचुत् ऋचदुप् । २, ५ ऋचदुप् । ३, ४ चिराद् ऋचदुप् छन्दः ।

गाथारः स्वरः । ६ षड्विंशत्यः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र से शिल्पविद्या विषय को कहते हैं—

आ होता मन्द्रो विदधान्यस्यासत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।

विद्युद्रथः महसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो भवेत् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( मन्द्रः ) अच्छे और प्रमत्त कराने ( सत्यः ) श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करने ( यज्वा ) मेल करने और ( होता ) सब विद्या का देनेवाला ( कवितमः ) अत्यन्त विद्वान् ( वेधाः ) बुद्धिमान् पुरुष है ( सः ) वह ( विद्युद्रथः ) विज्ञानों को ( आ, अस्यात् ) प्राप्त होकर उत्पन्न करे ( विद्युद्रथः ) बिजुली से रथ चलानेवाला ( महसः ) बलयुक्त वायु के ( पुत्रः ) मन्तान के सवृण ( शोचिष्केशः ) केशों के सवृण नेत्रों को धारणकर्ता ( अग्निः ) अग्नि के तुल्य तेजस्वी इस ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( पाजः ) बल का ( भवेत् ) आश्रय करे उससे विमानरचना और शिल्पविद्या में निपुण होइये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पदार्थविद्या में कुशल होकर हाथ की कारीगरी से यन्त्रकला सिद्ध करके बिजुली में चलाने योग्य वाहनो को रचे तो वे अत्यन्त सुख को प्राप्त हों ॥ १ ॥

अब पढ़ने पढ़ाने रूप विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अयामि ते नमर्जक्त जुषस्व ऋतावस्तुम्यं चेतते सदस्यः ।

विद्वो आ वंसि विद्वो नि परिस मध्य आ बर्हिस्तथै यजत्र ॥२॥

पदार्थ—हे ( अतावः ) सत्यप्रकाशकजील ! मैं ( ते ) आपके ( नमर्जक्तम् ) नमस्कारों के वचन को ( अयामि ) प्राप्त होता हूँ ( जुषस्व ) उमका आप आदर महिम्न ग्रहण कीजिये । हे ( सहस्रः ) अग्नि बलयुक्त वा सम्पूर्ण विद्या जाननेवाले जो ( विद्वान् ) विद्वान् आप ( विद्वो ) विद्वानों को ( आ, वंसि ) सब प्रकार उपदेश देते हो ऐस आप के साथ विद्वानों की प्राप्त होता है । हे ( यजत्रः ) पूजन करने योग्य ! जो आप ( अतावः ) रक्षा आदि के लिए ( बर्हिः ) अन्तरिक्ष के ( मध्ये ) मध्य में ( आ, नि ) अच्छे प्रकार निश्चित ( सत्विः ) विराजा उम ( चेतते ) बोध देनेवाले ( तुम्यम् ) आप के लिए नमस्काररूप वचन करता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्यार्थी लोग नमस्कार आदि सेवा से अध्यापकों का प्रसन्न करें वैसे अध्यापक लोग उत्तम शिक्षारूप विद्यादान से विद्यार्थियों को प्रसन्न सन्तुष्ट करें ॥ २ ॥

मनुष्यों को नियम का आश्रय करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

द्रवतान्त उपसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।

यत्सीमञ्जन्ति पर्व्य इविमिरा वन्धुर्वे तस्थतुर्दुरोणे ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सवृण प्रकाशयुक्त विद्वान् पुरुष ! ( ते ) आप के लिए जैसे ( वाजयन्ती ) बोध कराती हुई ( उपसा ) प्रातः काल सन्ध्याकाल दोनों बेला ( द्रवताम् ) प्रवाह से चले वा ( वातस्य ) वायु के ( पथ्याभिः ) मार्ग में उत्तम गमनो से ( दुरोणे ) गृह में ( अच्छः ) उत्तम प्रकार ( तस्थतुः ) वर्तमान हों ( वन्धुर्वे ) अन्धनों के सवृण कारीगर लोग ( इविमिराः ) ग्रहण करने योग्य माधवों में ( यत् ) जिस ( पर्व्यम् ) प्राचीन लोगों से रचे गये वाहन विशेष को ( सीम्, आ, अञ्जन्ति ) सब प्रकार प्रकट करने हैं उन दोनों साथ प्रातः बेला की आप यथायोग्य सेवा करें और उस वाहन को सिद्ध करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ईश्वर से नियम की सन्ध्या और प्रातः समय की बेला नियम से वर्तमान हैं और जैसे चतुर कारीगरों से बनाये गये कलायन्त्रों से युक्त वाहन नियम सहित जाते आते हैं वैसे ही अपने आप नियम पूर्वक वर्ताव करके नियत यानों को रथ के अपनी इच्छानुसार व्यवहार को उत्तम प्रकार सिद्ध करें ॥ ३ ॥

किर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विन्वे मरुतः सुम्यमर्षेन् ।

यच्छोचिषां सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि सितीः प्रथयन्सूर्यो नृन् ॥४॥

पदार्थ—हे ( सहस्रः ) अत्यन्त बलघारी ( अग्ने ) अग्नि के सवृण प्रताप-युक्त जन ! ( तुम्यम् ) आप के लिए जो ( वरुणः ) श्रेष्ठ ( मित्रः ) प्रेमी ( च ) और व्यवहारज्ञाता आदर करते हैं तो उन का आप भी आदर कर । हे ( सहस्रः ) बल के ( पुत्रः ) पुत्र के सवृण तेज से विद्यमान ! ( यत् ) जिस कारण ( शोचिषाः ) प्रकाश से ( सूर्यः ) सूर्य के तुल्य आप जिस ( सितीः ) मनुष्यों वा ( नृन् ) सूर्य पुरुषों का ( प्रथयन् ) प्रकट करते हुए ( अभि ) सम्मुख ( तिष्ठाः ) उपस्थित होइये जिससे आप को ( विन्वे ) सम्पूर्ण ( मरुतः ) मनुष्य ( सुम्यम् ) सुखपूर्वक ( अर्षेन् ) स्तवन करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से विद्या द्वारा उपकार ग्रहण करें तो वे परस्पर मित्रों के तुल्य सुख भोग करें ॥ ४ ॥

किर अध्यापक और अध्येता के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमभोपसथ ।

वजिष्ठेन मनसा यसि देवानसंघता मन्मना विप्रो अग्ने ॥५॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! ( हि ) जिससे ( विप्रः ) बुद्धिमान् आप ( वजिष्ठेन ) अत्यन्त सलग्न और ( नमभः ) नहीं विरक्त हुए ( मन्मना ) विज्ञान से युक्त ( मनसा ) चित्त से हम ( देवाम् ) विद्वानों का ( यसि ) सङ्ग कीजिये उसमें ( अद्य ) इस समय ( उत्तानहस्ताः ) हाथ उठाये हुए ( वयम् ) हम लोग आप को ( नमसा ) सत्कार से वा अन्न आदि से ( उप, सथ ) समीप प्राप्त हो के ( ते ) आप के ( कामम् ) मनोरथ को ( ररिम् ) देव ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जैसे अध्यापक लोग शिष्यों की विद्याविविधि की इच्छा को सन्तुष्ट करते हैं, वैसे ही विद्यार्थी जन भी अध्यापकों के मनोरथों को सफल करें और सब काल में सम्पूर्ण पुरुष विद्या आदि शुभ गुणों के देनेवाले हों ॥ ५ ॥

त्वद्भि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्युतयो वि वाजः ।

स्वं देहि सहस्रिण रयि नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥६॥

पदार्थ—हे ( सहस्रः ) बल के ( पुत्रः ) पवित्रकर्ता ( हि ) जिससे जो ( देवस्य ) जगदीश्वर की ( पूर्वीः ) अग्नि काल से उत्पन्न ( वज्रः ) विज्ञान और अन्नयुक्त ( अतथः ) रक्षा आदि किया हम लोगों को ( स्वत् ) आप से ( वि, वसि ) प्राप्त होती है । हे ( अग्ने ) अग्नि के सवृण तेजस्वी ! उससे ( स्वम् ) आप ( अद्रोघेण ) वैर रहित ( वचसा ) वचन से ( नः ) हम लोगों के लिए ( सत्यम् ) उत्तम व्यवहारों में व्यय होने योग्य ( सहस्रिणम् ) असंख्य वस्तुओं में प्रति ( रयिम् ) धन को ( वि, देहि ) दीजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—सकल शिष्य अध्यापक राजपुरुष और प्रजाजनों को चाहिए कि वैर आदि दोषों को त्याग परस्पर स्नेह उत्पन्न करके मेव कर असंख्य धन और विज्ञान परस्पर बढ़ावें ॥ ६ ॥

अब विद्वानों के तुल्य अन्य लोग आकण्ठ करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

तुम्यं दस कविक्रतो यानीमा देव मर्त्तसो अध्वरे अकर्म ।

त्वं विश्वस्य सुर्यस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥१४॥

पदार्थ—हे ( दसः ) अत्यन्त चतुर ( कविक्रतो ) परिणतो के तुल्य बुद्धिमान् ( देवः ) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावों के देनेवाले ( अमृतः ) अपने स्वरूप से नाशरहित ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! ( मर्त्तसः ) हम मनुष्य लोग ( अध्वरे ) अहिंसा आदि रूप धर्म में ( तुम्यम् ) आपके लिए ( बर्हिः ) जो ( दसः ) ये धर्मसम्बन्धी कर्म उनको ( इह ) इस समार में ( अकर्म ) करें ( तत् ) उस ( सर्वम् ) सम्पूर्ण कर्म को ( स्वम् ) आप ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण ( सुर्यस्य ) उत्तम रथ आदि धर्मों से युक्त विद्या-प्रकाशकारक व्यवहार के बीच ( बोधि ) जानिये और उत्तम प्रकार वाक में सिद्ध किये हुए अमृत का ( स्वम् ) स्वावपूर्वक भोग करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—सम्पूर्ण मनुष्यों को चाहिए कि जैसे विद्वान् लोग धर्म बोध कर दें वैसे वे भी करें और सम्पूर्ण अब एक सम्मति करके इस तसार में विद्या और सुख की उन्नति करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझनी चाहिये ॥

यह चौदहवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तर्षेभ्य ऋचभ्यस्तस्य सूक्तस्य उत्कीलः काथ्य ऋचिः । अग्निहोवता ।

१, ४ निचुत् । ५ चिराद् निचुत् । ६ निचुत् ऋचदुप् छन्दः । वेदाः स्वरः ।

२ षड्विंशः । ३, ७ षड्विंशः पञ्चमः स्वरः । पञ्चमः स्वरः ॥



अथ मनुष्येण यजमानेन सप्त वर्षा बाले यजमानेन सुत का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहा है—

**वि पाजसा पुषुना सोशुचानो बार्धस्व द्विषो रक्षसी अमीवाः ।**

**सुशर्वणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेर्हं सुहवस्य मणीतो ॥१॥**

**पदार्थ—**हे विद्वान् पुरुष ! ( सोशुचानः ) अति पवित्र हुए आप ( पुषुना ) विस्तारयुक्त ( पाजसा ) बल से जो ( अमीवाः ) रोग के सवृक्ष औरों को पीटा देते हुए ( रक्षसः ) निष्कण्ट स्वभाव वाले ( द्विषः ) बैरी लोग हैं उनको ( वि, बार्धस्व ) त्यागो । जिससे ( अहम् ) मैं ( सुहवस्य ) उत्तम प्रकार प्रशंसित ( सुशर्वणः ) उत्तम गुणों से युक्त ( बृहतः ) विद्या आदि शुभ गुणों से बृहदाय को प्राप्त ( अग्नेः ) अग्नि के सवृक्ष उत्तम गुणों के प्रकाशकर्ता आपकी ( मणीतो ) श्रेष्ठ नीतिपुक्त ( शर्मणि ) गृह में ( स्वाय ) स्थिर होऊँ ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**विद्वान् लोगों को चाहिए कि स्वयं दोषरहित हों औरों के दोष कुशा और गुण लेकर विद्या तथा उत्तम शिक्षा से युक्त करें जिससे कि सकल जन प्रसन्नतापूर्वक व्यायुक्त कर्म में बृहदाय से प्रसृत हों ॥ १ ॥

फिर अनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**स्वं नो अरुधा उपसो व्युष्टो स्व सूर उदिते बोधि गोपाः ।**

**अन्वेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्या सुजात ॥२॥**

**पदार्थ—**हे ( सुजात ) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष नेजस्वी ( गोपाः ) रक्षाकारक विद्वान् पुरुष ! ( स्वम् ) आप ( अरुधा ) इस ( उपसः ) प्रसन्नता समय के ( व्युष्टो ) अति प्रकाश होने पर ( नः ) हम लोगों का ( बोधि ) जगद्गुरु ( स्वम् ) आप ( सूर ) सूर्य के ( उदिते ) उदय को प्राप्त होने पर हमको जगाइये ( नित्यम् ) अतिकाल प्राणघारी ( तनयम् ) पुत्र को ( अन्वेव ) जैसे प्रारम्भ कर्म प्रकट करता है वैसे ( मे ) मेरे ( तन्या ) शरीर से ( स्तोमम् ) विद्या सम्बन्धिनी प्रशंसा को ( जुषस्व ) आदर कीजिए वा ग्रहण कीजिए ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे गर्भाशय में वर्तमान पुरुष गर्भों के स्वरूप को नहीं जानते हैं वेने ही निद्रावस्थापन्न और अविद्या में लिप्त पुरुष विज्ञान से रहित होते हैं और जैसे जन्म धारण होने के अनन्तर शरीर मांसत जीवात्मा प्रकट होता है वेने ही निद्रा को त्याग के प्रातः काल में जागरित पुरुषों के सवृक्ष अविद्या को त्याग के विद्या में कुशल जन प्रसन्ननीय होते हैं ॥ २ ॥

फिर अनुष्यो को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**स्वं नृचक्षा हृषमासु पूर्वीः कृष्णास्वन्ने अरुधो वि माहि ।**

**वसो नेवि च पवि चात्यहः कृधो नो राय उमिजो यविष्ठ ॥३॥**

**पदार्थ—**हे ( अरुधः ) प्रत्यन्त युवा ( नृचक्षः ) वीरतायुक्त ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष विद्या से प्रकाशमान ( स्वम् ) आप सूर्य के सवृक्ष ( अरुधः ) रक्षक और ( नृचक्षाः ) मनुष्यों के सत् प्रसन्न कर्म में विवेकी होकर ( कृष्णासु ) अविद्यान्धकार युक्त नीच प्रजाधो में ( अतु, पूर्वीः ) प्रथम ईश्वर से प्रकट की गई प्रजाधो को ( वि, माहि ) प्रकाशमान कीजिए । हे ( वसो ) उत्तम गुणधारी ! जिससे आप ( राये ) धन के लिए ( उमिजः ) कामनाविशिष्ट पुरुषों के योग्य ( नेवि ) प्राप्त कराते ( च ) मनोरथों को पूर्ण ( च ) और ( पवि ) दुःखों से रहित तथा ( अहः ) दूरे आचरण को ( अति ) दूर कीजिए इससे आप ( नः ) हम लोगों को श्रेष्ठ ( कृधि ) कीजिए ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**हे विद्वान् पुरुषों ! आप लोगों को चाहिए कि जैसे सूर्य अपने किरणों के द्वारा सब जनों का पालन करता है वैसे विद्या और उत्तम शिक्षा से सम्पूर्ण प्रजा को विद्या बल से युक्त तथा आप में निवृत्त करके पुण्य कर्मों में प्रीतिपूर्वक प्रवृत्त करावें ॥ ३ ॥

**अथाहो अग्ने हृषमो दिदीहि सरो विश्वाः सोमगा सज्जिगोवान् ।**

**यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४॥**

**पदार्थ—**हे ( सुप्रणीते ) उत्कृष्टव्यापकारी ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष तेजस्वी ( अथाहः ) दूसरे से नहीं पराजय के योग्य विद्वान् ( हृषमः ) बलवान् पुरुष ! आप ( विश्वाः ) सम्पूर्ण ( सोमगा ) उत्तम ऐश्वर्यवाली ( सरो ) नगरियों में ( दिदीहि ) अर्धमिश्रित कर्मों का प्रकाश कीजिए । हे ( जातवेदः ) सकलविद्यापूरित विद्वान् पुरुष ! ( प्रथमस्य ) प्रथमाश्रम ब्रह्मचर्यकर्म ( पायोः ) रक्षाकारक ( बृहतः ) श्रेष्ठ ( अथाहः ) अहिंसा कर्म के ( नेता ) उत्तम नीति से निर्वाहक हुए और ( सज्जिगोवान् ) उत्तम प्रकार जयशाली होइये ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**हे राजपुरुषों ! विद्या और क्लिय से सम्पूर्ण प्रजाओं को प्रसन्न तथा बहुवर्ष्य आदि आश्रमों के निर्वाह से उन में विद्या उत्तम शिक्षा श्रेष्ठता अति काम जीवन आदि ब्रह्म के ऐश्वर्यों का आधिक्य कीजिए ॥ ४ ॥

**अभिच्छा शर्मं हरितः पुकृमि देवां अक्का बीधानः सुमेधाः ।**

**रक्षो न सजिगमि धमि बाजमाने स्वं रोदसी नः सुमेधे ॥५॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष प्रतापी ! ( स्वम् ) आप जैसे अग्नि ( पुकृमि ) अक्के प्रकार फैलाये गये ( रोदसी ) अन्तरिक्ष पृथिवी को प्रकाशित करता है उसी प्रकार ( नः ) हम लोगों के ( बीधानः ) प्रकाशयुक्त वा प्रकाशक ( सुमेधाः ) श्रेष्ठ बुद्धिमान् और ( सजिगः ) सुशील ( रक्षः ) उत्तम रक्ष के ( नः ) सवृक्ष हम लोगों के लिए ( अभि ) सम्मुख (बाजम्) विज्ञान को ( धमि ) कहिये । हे ( हरितः ) सत्य गुणों की स्तुतिकर्ता विद्वान् पुरुष ! आप ( अभिच्छा ) अति पुष्ट ( पुकृमि ) बहुत ( शर्म ) युद्ध और ( देवाम् ) विद्वान् वा उत्तम गुणों से प्रसन्नतापूर्वक ( अक्का ) उत्तम प्रकार संयुक्त कीजिए ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सुशील बने हुए और युद्ध रक्ष से अभिवाञ्छित स्थानों को भीष्म पहुँचते हैं वैसे ही जो पुरुष आलस्य त्याग कर पुरुषार्थों में वे उत्तम स्थानों की कामना करते हुए विद्वानों के सङ्ग द्वारा श्रेष्ठ गुणों से संयुक्त होकर अन्य जनों के लिए भी उपदेश देते हैं वे पुरुष उत्तम प्रकार सुख भोगते हैं ॥ ५ ॥

**प्र पीपय वृषम जिन्व बाजानग्ने स्वं रोदसी नः सुदोधे ।**

**देवेभिर्देव सुवचा रचानो मा नो मर्त्तस्य दुर्मतिः परि छात् ॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( वृषम ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष नेजस्वी ! ( स्वम् ) आप जैसे ( सुदोधे ) कामनाओं के उत्तम प्रकार पूर्तिकारक ( रोदसी ) अन्तरिक्ष पृथिवी को सूर्य प्रकाशित और सुखयुक्त करता है वैसे ( बाजाम् ) विज्ञानयुक्त ( नः ) हम लोगों को ( पीपय ) सम्पत्तियुक्त कीजिये । हे ( देव ) उत्तम गुणप्रवाता ! आप ( देवेभिः ) विद्वानों के साथ ( सुवचा ) उत्तम तेज से प्रीतिसहित ( रचानः ) प्रीनियुक्त हुए ( नः ) हम लोगों को ( प्र, जिन्व ) आनन्दित कीजिए जिसमें कि हम लोगों के लिए ( मर्त्तस्य ) मनुष्य सम्बन्धिनी ( दुर्मतिः ) दुष्ट बुद्धि ( मा ) नहीं ( परि ) सब ओर से ( स्थात् ) स्थित हो ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**जिस देश में विद्वान् लोग प्रीति से सब लोगों को बहाने की इच्छा करते हैं और दुष्ट बुद्धि का नाश करते हैं, वहाँ सब लोग बुद्धि को प्राप्त विज्ञानरूप धन वाले होते हैं ॥ ६ ॥

**इक्षामग्ने पुहदंसं सनि गोः शम्भत्तमं हवमानाय साध ।**

**स्यावः सुनुस्तनयो विजावाग्ने सा तं सुपतिभूत्वस्मे ॥७॥१५॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष विद्याप्रकाशकारक विद्वान् ! आप ( हवमानाय ) प्रशंसाकर्ता के लिए ( शम्भत्तमम् ) अनादि से उत्पन्न ( पुहदंसम् ) अत्यन्त कर्म सहित कर्मयुक्त ( इक्षाम् ) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को ( गोः ) पृथिवी के मध्य में ( सनिम् ) न्याय से सत्य और अमत्य के विभागकारक ऐश्वर्य को ( साध ) सिद्ध करिये जिससे ( नः ) हम लोगों का ( सुनु ) सन्तान ( तनय ) वार्षिक पुत्र ( विजावा ) विजयशाली ( स्यात् ) हो । हे ( अग्ने ) विद्वान् ! जो ( तं ) आप की ( सुपतिः ) उत्तम बुद्धि है ( सा ) वह ( अग्ने ) हम लोगों के लिए ( सुनु ) होवे ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**विद्वानों को चाहिए कि जिज्ञासु जनों के लिए विद्या उत्तम शिक्षा वर्मानुष्ठान तथा ऐश्वर्यबुद्धि सिद्ध करें और जैसे कि सम्पूर्ण मनुष्यों के लड़के लड़कियाँ उत्तम कर्मयुक्त तथा सबके सन्तान विद्या बलयुक्त हों वैसे ऐसा प्रयत्न करें अर्थात् सब स्थान से ग्रहण करके सब को दें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वान् अध्यापक अध्येता और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह पन्त्रहवाँ सूक्त और पन्त्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ अद्वयस्य षोडशस्य सूक्तस्य उत्कीलः काव्य ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१, ५ सुरिगुह्युत्पन्नः । वाग्धारः स्वरः । २, ६ निष्पत् पञ्चमिहः ।

पञ्चमः स्वरः । ३ निष्पत्तुह्युत्पत्तिः । ४ सुरिगुह्युत्पत्तिः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ अः ऋचाबाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में

अग्नि के गुणों को कहते हैं—

**अयमग्निः सुवीर्यस्येक्षे महः सोमगस्य ।**

**राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे हजहयानाम् ॥१॥**

**पदार्थ—**जैसे ( सुहयानाम् ) मेघ के सवृक्ष वर्तमान के शत्रुओं के हनन-कारियों के मध्य में ( अयम् ) यह ( अग्निः ) अग्नि के सवृक्ष प्रकाशमान राजा ( महः ) श्रेष्ठ ( सुवीर्यस्य ) उत्तम बल का ( ईशे ) स्वामी तथा ( सोमगस्य ) श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाध और ( रायः ) धन का ( ईशे ) स्वामी है ( गोमत ) उत्तम वाणी तथा पृथिवी आदि युक्त पुरुष का स्वामी है ( स्वपत्यस्य ) उत्तम सन्तानयुक्त पुरुष का स्वामी है वैसे ही मैं इन पुत्रों के मध्य में दोष का ( ईशे ) स्वामी हूँ ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकश्रुतीमालङ्कार है । मनुष्य लोग जैसे उत्तम प्रकार होम तथा यज्ञ आदि से सिद्ध किये हुए अग्नि से उत्तम बल श्रेष्ठ ऐश्वर्य और उत्तम सन्तानों को प्राप्त हो के शत्रु लोगों का नाश करते वैसे ही मनुष्य लोगों

को चाहिए कि उत्तम पुरुषार्थ में उत्तम सेना अतुल ऐश्वर्य्य शरीर आत्मा बल से युक्त सन्तानों को प्राप्त होकर शत्रुओं के समान क्रोध आदि दोषों को त्यागें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इमं नेगे भरतः सश्रुता वृधं यस्मिन् गयः शेवधामः ।**

**अभि ये सन्ति पृतनासु दृढयो विश्वाहा शत्रुमादसुः ॥२॥**

पदार्थ—हे ( भरत ) वायु के सदृश बलयुक्त मनुष्यो ! ( गर ) विद्या और नश्रता के नायक आप लोग ( यस्मिन् ) जिस व्यवहार में ( शेवधाम ) सुखदृष्टिकारक ( राय ) धन ( सन्ति ) होते हैं उम ( इमम् ) इस ( वृधम् ) पुत्र आदि की वृद्धिकारक व्यवहार को ( विश्वाहा ) मज्जा ( सश्रुता ) प्राप्त करो ( ये ) जो ( पृतनासु ) मनुष्यों की सेनाओं में ( दृढयः ) कठिनाता से पराजित होने योग्य पुरुष हैं ऐसे और ( शत्रुम् ) शत्रु को ( आदसु ) सब आर से नाश करें उन पुरुषों को ( अभि ) सब प्रकार प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि जिस प्रकार धन राजस्थिति और प्रतिष्ठा बढ़े और जिस प्रकार सेनाओं में उत्तम वीर पुरुष हों वे मा सत्य व्यवहार सदा करें ॥ २ ॥

**स त्वं नो रायः शिशीहि मीढवो अग्ने सुवीर्य्यस्य ।**

**तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥३॥**

पदार्थ—हे ( मीढव ) सुखों के दाता ( तुविद्युम्न ) बहुत प्रकार के धन वा यश से युक्त ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजवान् ( स ) वह ( त्वम् ) आप ( न ) हम लोगों के लिए ( सुवीर्य्यस्य ) उत्तम वीरों में उत्पन्न ( वर्षिष्ठस्य ) अति वृद्ध और ( प्रजावत ) अत्यन्त प्रजायुक्त ( अनमीवस्य ) रोग रहित ( शुष्मिण ) अत्यन्त बल महित पुरुष के ( राय ) धनो को ( शिशीहि ) अति बढ़ाइय ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जा मनुष्य धन से सेना श्रेष्ठता प्रजा आराग्य और बल को बढ़ाते हैं वे लोग सर्वदा बहुत धन वाले हान हैं ॥ ३ ॥

**चक्रियो विश्वा भुवनाभि सांसद्विश्वक्रिंद्वेषवा दुवः ।**

**आ देवेषु यतंत आ सुवीर्य्य आ शंस उत नृणाम् ॥४॥**

पदार्थ—ह मनुष्यो ! ( य ) जो ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( भुवना ) लोकों को ( अभि, चक्रि ) अभिमुख कर्त्ता ( देवेषु ) उत्तम गुणों में ( सांसहि ) अति महनशील और ( दुव ) मेहन का ( आ, चक्रि ) अच्छे प्रकार करनेवाला और जो ( देवेषु ) स्तुतिवारको में ( आ, यतंत ) अच्छा यत्न करता है ( उत ) और भी ( नृणाम् ) वीर पुरुषों की ( आ, शंस ) स्तुति में ( सुवीर्य्य ) श्रेष्ठ बल में ( आ ) सब प्रकार प्रयत्न करता है उस की सदा ( सेवधम् ) सेवा करा ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिनमें सम्पूर्ण लोक तथा मनुष्य आदि प्राणी रहे और उन प्राणियों के जीवनार्थ अन्न आदि पदार्थ रहे और जो विद्वानों में ज्ञानने योग्य उस ही परमात्मा का निरन्तर स्तवन करना चाहिए ॥ ४ ॥

**मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः ।**

**मागोतायै महसस्पुत्र मा निदेऽप द्वाप्स्या कृधि ॥५॥**

पदार्थ—हे ( सहस ) बल के ( पुत्र ) पालक ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष ! आप ( न ) हम लोगों की ( अमतये ) विपरीत बुद्धि के लिए ( मा ) नहीं ( रीरध ) वश में करा तथा ( मावीरतायै ) कायरता के लिए ( मा ) नहीं वशीभूत करा ( मागोतायै ) इन्द्रिय-विकारता के लिए ( मा ) नहीं वशीभूत करा ( निदे ) निन्दक पुरुष के लिए ( द्वाप्स्या ) द्वेष भावों को ( मा ) नहीं ( अप ) अनग करने में ( आ, कृधि ) सब प्रकार कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—ज्ञान सुख की इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिए कि विद्वानों के समीप प्राप्त होकर बुद्धिवीरता जितेन्द्रियता विद्या उत्तम शिक्षा धर्म और ब्रह्मज्ञान की प्रार्थना करें तथा निन्दा आदि दाप और निन्दक पुरुषों का मङ्गल त्याग के सम्यक्ता ग्रहण करें ॥ ५ ॥

**शग्धि वार्जस्य सुमग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।**

**सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥६॥१६॥**

पदार्थ—हे ( तुविद्युम्न ) बहुत धन और कीर्ति में युक्त ( सुमग ) उत्तम ऐश्वर्य्यधारी ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! आप ( प्रजावत ) प्रशंसा करने योग्य प्रजायुक्त ( बृहत ) श्रेष्ठ ( वार्जस्य ) अन्न आदि वा विज्ञान के ( अध्वरे ) अहिमा आदि स्वरूप व्यवहार में ( शग्धि ) सामर्थ्यस्वरूप हो उस ( भूयसा ) बड़े ( मयोभुना ) सुखकारक ( यशस्वता ) अधिक यश महित ( राया ) धन से हम को ( संसृज ) सयुक्त कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के मङ्गल से यह प्रार्थना करें कि हे विद्वानो ! हम लोगों की विद्या विनय और धन सुखों में सयुक्त करो ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलति है, यह जानना चाहिए ॥

यह सोलहवां सूक्त और सोलहवां वर्ण समाप्त हुआ ॥

५६

अथ पञ्चमस्य सप्तवहस्य सूक्तस्य उत्कीलः कात्थ ऋषिः । अग्निर्वेदता ।

१, २, त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निष्पत् त्रिष्टुप् ऋधेः ।

अथ त्वर । ३ निष्पत् पङ्क्तिः ऋधेः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचा वाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में

अग्नि के गुणों को कहते हैं—

**समिध्यमानः पथमानु धर्मा समस्तुभिर्गज्यते विश्वारः ।**

**शोचिक्लेशो घृतनिणिक पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( समिध्यमान ) उत्तम प्रकार प्रकाशमान ( विश्व-वारः ) सकल जन का प्रिय ( शोचिक्लेश ) तेजस्व केशवान् ( घृतनिणिक ) तेजस्वी ( पावक ) पवित्रकर्त्ता ( सुयज्ञ ) सुन्दर यज्ञ जिससे हो वह अग्नि ( सम-स्तुभि ) उत्तम रात्रियों में ( यजथाय ) मङ्गल के लिए ( प्रथमा ) प्रमिद्ध ( धर्मा ) धर्मों को ( अज्यते ) उत्तम प्रकार प्रमिद्ध करता तथा ( देवान् ) उत्तम गुण का ( अनु ) प्रस्तार करना है उसको अच्छे प्रकार प्रेरणा करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो अग्नि गुणा से युक्त अग्नि आदि पदार्थ से कार्य्यों को सिद्ध करें तो सम्पूर्ण कार्य्य मनुष्य सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान ।**

**एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यश्च प्र तिरेममद्य ॥२॥**

पदार्थ—हे ( जातवेद ) उत्तम बुद्धियुक्त ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! ( यथा ) जैसे आप ( पृथिव्या ) भूमि वा अन्तरिक्ष के मध्य में ( होत्रम् ) हवन करने के धर्म्याम का ( अयज ) करे और ( यथा ) जैसे ( दिव ) प्रकाश के ( यथा, चिकित्वान् ) जाना पुरुष आप ( अनेन ) इस ( हविषा ) हवन सामग्री से ( एव ) ही ( देवान् ) विद्वानों वा उत्तम पदार्थों का ( यक्षि ) आदर करो ( अद्य ) इस समय ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) मन्त्रोपनिषद् करने का ( प्र, तिर ) विशेष सफल करा वैसे मैं भी ( मनुष्यत ) मनुष्य के तुल्य प्रमिद्ध करूँ ॥ २ ॥

भाषार्थ—य मन्त्र में उपमानद्वारा है जो मनुष्य इस सृष्टि में सम्पूर्ण प्राण आदिको से भी कार्य्य हाने योग्य व्यवहार का सिद्ध करत वे श्रेष्ठ विज्ञान का प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

**श्रीण्यायूषि तव जातवेदस्तिष्ठ आजानीरुषसस्ते अग्ने ।**

**तार्भिदेवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥३॥**

पदार्थ—हे ( जातवेद ) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थ के ज्ञाता ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी और विद्वान् मन्त्र समस्त के ज्ञाता पुरुष ! आप जैम ( ते ) आप का ज्ञान अग्नि ( यजमानाय ) किसी पदार्थ में अग्नि का सयाग करनेवाले के ( शम् ) कल्याणकारक जाना है वैसे ( तव ) आप के जा ( श्रीण्या ) तीन प्रकार के शरीर आत्मा मन के सुखकारक ( आयूषि ) जीवन और जैसे अग्नि के सदृश तेजस्वी ( तिष्ठ ) तीन ( आजानी ) सब आर से प्रमिद्ध ( उषस ) प्रकाशकारक समय वैसे हो ( यो ) सयोगकारक वा भेदक आप ( यक्षि ) सम्प्राप्त होने ( तार्भि ) उन वेलाओं से ( देवानाम् ) पदार्थों की वा विद्वानों की ( अव ) रक्षा आदि कीजिए और कल्याण करनेवाले भी ( अव ) हुआ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बहुत काल पयन्त ब्रह्मचर्य्य, नियत भोजन और विहार से आयु बढ़ान की इच्छा करें तो त्रिगुण मर्यादा मीनगी वर्ण तक जीवन हो सकता है ॥ ३ ॥

**अग्निं सुदीति सुदृशं गृणन्तां नमस्यामस्त्वेदम्यं जातवेदः ।**

**त्वां दूतमरति हव्यवाहं देवा अकूप्यममृतस्य नाभिम् ॥४॥**

पदार्थ—हे ( जातवेद ) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों में प्रमिद्ध विद्वान् ! जिन ( त्वा ) आप ( दूतम् ) दूत के समान मन्त्राधिकारी ( अरतिम् ) प्राप्त करके ( हव्यवाहम् ) हवन करने योग्य पदार्थों का प्राप्त हानेवाले अग्नि के सदृश ( अमृतस्य ) मोक्ष का ( नाभिम् ) नाभि के सदृश वर्णनकर्त्ता ( देवा ) विद्वान् लोग ( अकूप्यम् ) किया करने हैं उम ( सुदीतिम् ) उत्तम प्रकार रक्षाकारक ( सुदृशम् ) मन्त्रों के दृष्टने योग्य वा दर्शक और ( ईदम्यम् ) प्रशंसा करने योग्य ( अमृतम् ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् ( त्वाम् ) आपका ( गृणन्त ) स्तुति करने हुए हम लोग ( नमस्याम ) नमस्कार करने हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमानद्वारा है । जो पुरुष अग्नि के सदृश तेजस्वी विज्ञानवाता विद्वान् लोग धर्म अर्थ काम और मोक्ष के साधनों का उपदेश दे उनकी नित्य नमस्कार पूर्वक सेवा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

**यस्त्वद्भोता पूर्वा अग्ने यजीयान्द्रिता च सत्ता स्वधया च सम्भुः ।**

**तस्यानु धर्मं म यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीर्य्यो ॥१॥१७॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष जो ( त्वत् ) आपके समीप से ( दूता ) दानशील ( पूर्वं ) पूर्व विश्वान् ( यजीयान् ) प्रतिशय यज्ञकारक वा सम्मेलनकारी

( विद्या ) द्वित्व स्वर्ण्य ( व ) श्रीर ( ज्ञा ) स्थित ( स्वधया ) अन्न से ( व ) श्री ( अन्नः ) सुखकारक होवे ( सत्य ) उसके ( बर्ष ) धारण करने योग्य को ( अनु, प्र, यत् ) सम्प्राप्त होइये ( जय ) इसके धनन्तर हे ( चिकित्सा ) विज्ञान-शास्त्री ! आप ( वैद्यकी ) विद्वानों के समूह में ( नः ) हम लोगों के ( अन्तर ) अहिंसा आदि युग्युक्त व्यवहार का ( वा ) धारण करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लाभ आप लोगों की अपेक्षा प्राचीन तथा धन्य आदि सामग्रियों से अहिंसात्म्य व्यवहार को धारण किया करें इससे वे सर्वदा सुख भोगी हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिए ॥

यह सप्तहवीं सूक्त और सप्तहवीं वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चवर्षस्थाष्टादशस्य सूक्तस्य कतो वैश्वामित्र ऋचिः । अग्निर्वेदता,  
१, १, ५ त्रिष्टुप् ; २, ४ निष्ठातिष्ठद्वयः । वेदतः स्वरः ॥

अथ इस तृतीय मण्डल में अठारहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मन्त्र से विद्वानों को क्या करना योग्य है इस विषय को कहा है—

यदा नो अग्ने सुमना उपैती सख्ये सख्ये पितरं साधुः ।

पुरुद्रो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्देहतादरातीः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) आपण्य विद्वान् पुरुष ! आप ( उपैती ) प्राप्ति में ( पितरं ) जनको के सदृश ( सख्ये ) मित्र कर्म के लिए ( सख्ये ) मित्र के तुल्य ( नः ) हम लोगों के लिए ( सुमनाः ) उत्तम मनयुक्त ( भव ) होइये और ( साधुः ) उत्तम उपदेश से कल्याणकारी होकर ( जनांसां ) मनुष्यों के बीच में जो ( क्षितयः ) मनुष्य ( पुरुद्रोः ) बहुत लोगों से द्वेषकर्ता होवे उन ( प्रतीची ) प्रतिफल वर्तमान ( अराती ) शत्रुओं को ( प्रति, बहुतात् ) भ्रम करिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिए कि जो विद्वान् लाभ मनुष्य आदि प्राणियों में पिता और मित्र के तुल्य वर्तावकारी उनका मत्कार और जो द्वेषकारी उनका निरादर करके धर्मवृद्धि करें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को आगे मन्त्रों में कहा है—

तपो ध्वंमे अन्तरां अमित्रा तपा शंसमरुधः परस्य ।

तपो वसो चिकितानो अचिन्तान्वि तं तिष्ठन्तामजगं अयासः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( तपो ) तपस्वी ! ( अग्ने ) दुष्टजनों के अग्नि के सदृश दाह-कर्ता आप ( अन्तरां ) भेद को प्राप्त ( अमित्रां ) शत्रुओं को ( सुतपः ) सन्तान-युक्त तथा ( अरुधः ) अहिंसायुक्त ( परस्य ) श्रेष्ठजन की ( शंसम् ) प्रशंसा करो । हे ( तपो ) दुष्ट पुरुषों के दाहकारी ( जसा ) उत्तम गुणों में निवासी ( चिकितानः ) जानवान् वा बोधकारक आप ( अचिन्तान्वि ) दग्ध दशायुक्त पुरुषों को सचेत कीजिए और ये ( अयासः ) वृद्धावस्था रूप रोग से रहित ( अयासः ) विज्ञानयुक्त पुरुष ( ते ) आपके समीप ( वि, तिष्ठन्ताम् ) वर्तमान हों ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य शत्रुओं को वृथक् कर धार्मिक यथार्थवक्ता सत्यवादी पुरुषों का सत्कार करके सब जनों के लिए सुखवृद्धि करने हैं वे भी सुख पाने हैं ॥ २ ॥

ध्वमेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुष्टोमि इव्यन्तरसे बलाय ।

यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमान्धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रकाशित विद्यायुक्त ! जैसे ( इव्येन ) समिध से तथा ( घृतेन ) उत्तम प्रकार के मन्त्रों से सम्प्राप्त घृत से ( इच्छ-मानः ) इच्छाकारी मैं ( तपसे ) वेग तथा ( बलाय ) बल के लिए ( इव्यम् ) हवन सामग्री का ( जुष्टोमि ) होम करता हूँ ( ब्रह्मणा ) अतिशय धन के साथ ( वन्दमानः ) स्तुति से उपासनाकारक मैं ( अतसेयाय ) शत आदि सख्या से पूरित धन प्राप्ति के लिए ( इव्यम् ) विद्यमान इस ( देवीम् ) प्रकाशमान ( चिकित्सा ) धारणायोग्य बुद्धि को ( यावत् ) जितने परिमाण से ( ईशे ) इच्छाकारक हूँ उसी प्रकार आप हवन कीजिए उतनी इच्छा करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे इन्धन और घृत से अग्नि बढ़ती है वैसे ही ब्रह्मचर्य तथा वेद के अभ्यास से बल और विद्या बढ़ती है, जितना वेद से ब्रह्मचर्य रचना योग्य है उतना अभ्यास करना चाहिए ॥ ३ ॥

उच्छोचिषां सहसस्पुत्र स्तुतो बृहदयः शशमानेषु वेदि ।

रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्ध्वमा तं तन्वं भूदि कृत्स्नः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( भूरि, कृत्स्नः ) बहुत पुरुषों से रचित ( सहसस्पुत्र ) बल के उत्पादक ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी वैश्वामित्र विद्वान् ! ( स्तुताः ) प्रशंसायुक्त आप ( विश्वामित्रेषु ) तेज से ( ज्ञानमयीम् ) भोग अभ्यास उत्सवनों तथा ( विश्वामित्रेषु ) सम्पूर्ण जनों के मित्रों में ( रेवत् ) प्रशंसा करने योग्य धन से युक्त ( बृहत् ) अधिक ( कृत्स्नः ) कामना योग्य अवस्था और बहुत ( अम् ) सुख की दीजिए ( योः ) दुःख

के नाशक ( अम् ) उमा ) अति पवित्र वा पवित्रकारक आप ( ते ) अपने ( तन्वम् ) शरीर को ( उत, वेदि ) स्थिर कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—पुरुषा ! आप लोगों को चाहिए कि ब्रह्मचर्य द्वारा विद्या और पवित्रता बड़ा सब लोगों के साथ मित्रता करके सकल जनों को अधिक अवस्थायुक्त तथा बहुत विद्यावान् करो ॥ ४ ॥

कुधि रस्ते सुसमितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः ।

स्तोतुर्दुरोक्षे सुभगस्य रेवत्सुप्रा करस्नां दधिषे वपुषि ॥ ५ ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे ( सुसमितः ) उत्तम प्रकार दानविभागकारी ( अग्ने ) बिजुली के समान तीव्र धन वृद्धिकर्ता ! ( यत् ) जो आप ( समिद्धः ) प्रकाशमान अग्नि के सदृश प्रकाशमान होते ( सः, य ) सो ही ( वनामसम् ) सुवर्ण आदि रूप धनो में ( रत्नम् ) उत्तम धन को ( कुधि ) सयुक्त कीजिए ( सुभगस्य ) उत्तम ऐश्वर्य्य और ( स्तोतुः ) हवनकर्ता वा प्रशंसाकर्ता के ( इत् ) समान ( दुरोक्षे ) गृह में जो ( सुप्रा ) अभीष्ट स्थान की प्राप्तिकारक ( करस्नां ) कर्मों की वृद्धिकारक आप के बाहुओं और ( रेवत् ) उत्तम धनयुक्त ( वपुषि ) रूपवत् शरीरों को ( दधिषे ) धारण करते ही वह आप हम लोगों से आदर करने योग्य हों ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! आप लोगों को चाहिए कि मनुष्यों को उत्तम प्रकार शिक्षा तथा पुरुषार्थ से युक्त और विद्या धनयुक्त करके उत्तम सम्य विरञ्जीवी जन बनाइए ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अठारहवीं सूक्त और अठारहवीं वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चवर्षस्थाष्टादशस्य सूक्तस्य कुशिकपुत्रो गाभी ऋचिः । अग्निर्वेदता ।

१ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । वेदतः स्वरः । ३ स्वरान्

पञ्चितद्वयः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ इस तृतीय मण्डल में उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों का धर्मादि ऐश्वर्य्य कैसे बढ़े, इस विषय को कहा है—

अग्नि होतारं प्र वृक्षे मियेधे गुत्से कवि विश्वविद्ममूरम् ।

स नो यक्षदेवतांता यजीयात्राये वाजाय वनसे मघानि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! मैं जिम ( मियेधे ) घृतादि के प्रक्षेपण से होने योग्य वृक्ष में ( होतारम् ) हवनकर्ता वा दाता ( विश्वविद्मम् ) सकल शास्त्रों के वेत्ता ( अमूरम् ) मूढ़ता आदि वीथ रहित ( कविम् ) तीक्ष्ण बुद्धियुक्त वा बहुत शास्त्रों के अध्यापक ( गुत्सेम् ) शिक्षा देने में बहुत बुद्धिमान् और ( अग्निम् ) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष को ( प्र, वृक्षे ) स्वीकार करना है ( स ) वह ( यजीयात् ) अत्यन्त यशस्वी आप ( वाजाय ) जानवाना और ( वनसे ) प्रसन्नता से दिये पदार्थों के स्वीकारकर्ता पुरुष के लिए तथा ( राये ) धन प्राप्ति के लिए ( मघानि ) आदर करने योग्य धन और ( देवताता ) विद्वानों को ( न ) हम लोगों के लिए ( वक्षत् ) सयुक्त कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जिस अधिकार में जिम पुरुष की योग्यता हो उसी ही के लिए वह अधिकार दें । क्योंकि ऐसा करने पर धनधान्यरूप ऐश्वर्य्य की वृद्धि हो सकती है ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय को आगे मन्त्र में कहा है—

प्र ते अग्ने हविष्यतीमियम्यच्छा सुधुस्नां रातिनीं घृताचीम् ।

प्रदक्षिणिदेवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्जम्भेत् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजधारी विद्वान् पुरुष ! मैं ( ते ) आप की शिक्षा से जैसे ( उराणः ) विद्वानों को आदर से श्रेष्ठकर्ता काई ( प्रदक्षिणित् ) दक्षिण अर्थात् सम्मार्गगन्ता जन ( वसुभिः ) निवास के कारण ( रातिभिः ) सुखदान आदि के साथ ( हविष्यतीम् ) अतिशय हवनसामग्री युक्त ( सुधुस्नाम् ) श्रेष्ठ प्रकाश से युक्त ( रातिनीम् ) दिये हुए हवन के पदार्थों से युक्त ( देवतातिम् ) उत्तम स्वरूपविशिष्ट ( घृताचीम् ) जल को प्राप्ति होनेवाली रात्रि और ( पक्षम् ) क्षयनावस्था आदि में प्राप्त वित्त के व्यवहारों को ( सख्येत् ) प्राप्त करे वैसे इसको ( अज्ज ) उत्तम रीति से ( प्र, इवम् ) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि दिन में समय छोड़ सांसारिक व्यवहार की सिद्धि के लिए परिश्रम कर रात्रि के समय स्वस्थतापूर्वक पञ्चदश १५ बटिका पर्यन्त निद्रालु हों और दिन भर पुरुषार्थ से धन आदि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति हो कर सुप्राप्त पुरुष तथा सम्मार्ग में दान दें ॥ २ ॥

स तेजीयसा मनसा स्वोत्तं उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।

अग्ने रायो वृत्तमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयञ्च वस्वः ॥ ३ ॥



पदार्थ—हे ( अग्ने ) पूर्ण विद्या के प्रकाश से युक्त ! हम लोग जिस ( स्वपत्यस्य ) उत्तम सन्तान वा विद्याधियो के सहित ( वृत्तस्य ) अत्यन्त शूरवीरो से विशिष्ट ( शिखीः ) शिक्षक पुरुष ( ते ) आप की शिक्षा में ( सुवृत्तः ) उत्तम स्तुतिकर्ता श्रेष्ठ पुरुष ( तेजोयसा ) तेजस्वी पवित्र स्वल्पवान् ( वनसा ) अन्तःकरण से ( वस्यः ) सुखपूर्वक निवास का कारण बन तथा ( रायः ) ऐश्वर्य के ( प्रभूता ) बहुत्वभाव में ( सुवास ) वर्तमान होवें ( स ) वह ( स्वोत्तः ) आप की कामना करता हुआ ओ ऐसा पुरुष उस को ( च ) और हम लोगों को ( उत ) भी आप ( शिक्ष ) विद्योपदेश दीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष ब्रह्मचर्य और विद्या से धर्म सम्बन्धी कामों को करके निष्कपट अन्तःकरण तथा आत्मा से प्रयत्न करे उनको धनपति का अधिकार देना योग्य है ॥ ३ ॥

भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकां देवस्य यज्यवो जनांसः ।

स आ वह देवताति यविष्ठु अर्थो यद्य दिव्य यजासि ॥४॥

पदार्थ—हे ( यविष्ठु ) अतिशय युवावस्थासम्पन्न ( अग्ने ) बिजुली के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापी पुरुष ! जिस ( देवस्य ) उत्तम गुण कर्म स्वभाववान् जन के मङ्गल से ( यज्यवः ) आदर करने योग्य ( जनांस ) विद्या आदि गुणों से प्रकट जन ( हि ) जिस से ( त्वे ) आप में ( भूरीणि ) बहुत ( अनीका ) सेनाओं को ( दधिरे ) धारण करें ( यत्, अद्य ) जो इस समय ( दिव्यम् ) पवित्र ( शर्च ) बल को ( यजासि ) धारण करो और ( स ) वह आप ( देवतातिम् ) उत्तम स्वभाव को ( आ, वह ) सब प्रकार प्राप्त हाइये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग से बहुतसी उत्तम प्रकार शिक्षित सेनाओं को ग्रहण करें वे अति बल को प्राप्त होके उत्तम गुणों का आकर्षण करें ॥४॥

यस्त्वा होतारमनन्मियेधे निवाद्यन्तो यजथाय देवाः ।

स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि अर्वांसि वेदि नस्तनुषु ॥५॥१६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! ( निवाद्यन्तः ) अत्यन्त अधिकार में स्थित करने वा जनानेवाले ( देवा ) विद्वान् पुरुष ( नियेधे ) प्राप्त होने योग्य यज्ञ में ( यज्यथाय ) विद्या में बोध कराने के लिए ( यत् ) जिन ( होतारम् ) विद्यादाता ( त्वा ) आप की ( अनजन्तु ) कामना करें ( स ) वह ( त्वम् ) आप ( इह ) इस समार में ( न ) हम लोगों की ( अविता ) रक्षा आदि के कर्ता हुए हम लोगों को ( बोधि ) बोध कराइये और ( नः ) हम लोगों के ( तनुषु ) शरीरों में ( अर्वांसि ) प्रिय अन्तों के सदृश सम्पदाओं को ( अधि ) उत्तम प्रकार ( वेदि ) स्थित करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जिन अधिकारों में आप लोग नियुक्त किये जायें उन अधिकारों में उत्तम प्रकार वर्तमान होके सब जनो का श्रेष्ठ बनाइये और जिस शिक्षा से विद्या सम्पत्ता आरोग्यता और अवस्था बढ़े ऐसा उपाय निरन्तर करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह उन्नीसवीं सूक्त और उन्नीसवीं वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चमस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य गायत्री ऋषिः चित्रे देवा देवताः ।

१ चिराद् त्रिष्टुप्, २ निष्प्रिष्टुप्, ३ भुरिक् त्रिष्टुप्;

४, ५ त्रिष्टुप्छन्दः । देवताः स्वरः ॥

अथ तृतीय मण्डल के बीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में

विद्वान् जन कैसे वर्तें इस विषय को कहा है

अग्निमुषसंमन्विना दधिकां व्युष्टिषु हवते वहिस्त्वधेः ।

सुज्योतिषो नः भृगवन्तु देवाः मजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१॥

पदार्थ—हे अध्यापक उपदेशक जनो ! जैसे ( वहिः ) पदार्थों का धारणकर्ता ( व्युष्टिषु ) प्रकाशकारक क्रियाओं में ( अग्निम् ) अग्नि ( उषसम् ) प्रातःकाल ( अविना ) सूर्य चन्द्रमा और ( दधिकां ) समार के धारणकारकों के उल्लङ्घनकर्ता को ( हवते ) ग्रहण करता है वैसे ( अध्वरम् ) हिंसा भिन्न व्यवहार की ( वावशाना ) अत्यन्त कामना करने हुए ( सजोषसः ) समान प्रीति के निर्वाहक ( सुज्योतिषः ) शोभन उत्तम बुद्धि के प्रकाशों से युक्त ( देवाः ) विद्वान् आप लोग ( उषसः ) प्रणसा करने योग्य कर्मों में ( नः ) हम लोगों के प्रार्थनारूप वचन ( भृगवन्तु ) सुनिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सम्पूर्ण प्रकाशकारी सूर्य आदि पदार्थों के धारण द्वारा सब जीवों का उपकार करता वैसे विद्वान् पुरुष सम्पूर्णजनों के साथ वैर छोड़नाका अहिंसा धर्म के प्रचार के लिए एक सम्मति से सब संसार का उपकार करें ॥ १ ॥

अग्ने त्री ते वाजिना त्री वधस्था तिस्रस्तं जिह्वा ऋतजात् पूर्वीः ।

तिष्ठ उ ते तन्वी देवतास्ताभिर्नः पाहि गिरी अग्रयुच्छन् ॥२॥

पदार्थ—हे ( ऋतजात् ) सत्य आचरण करने में प्रसिद्ध ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रकाशस्वरूप विद्वान् पुरुष ! ( ते ) आप के ( त्री ) तीन ( वाजिना ) जान गमन और प्राप्तिकर ( त्री ) तीन ( वधस्था ) तुल्य स्थानवाले जन्मादि ( ते ) आप की ( तिस्रः ) तीन प्रकारवाली ( जिह्वा ) वाणिज्यी ( पूर्वीः ) प्राचीन ( उ ) और ( ते ) आप के ( तिस्रः ) तीन ( तन्वीः ) शरीर सम्बन्धी ( देवताः ) विद्वानों के साथ सवाद करने में उपकारक ( गिरः ) वचन हैं उन से ( अग्रयुच्छन् ) अहङ्कार त्यागी आप ( नः ) हम लोगों की ( पाहि ) रक्षा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ब्रह्मचर्य अध्ययन और विचार से तीन कर्म करके तीन जन्म स्थान और नामों में कृतकृत्य अर्थात् जन्म सफल करी पढ़ाने तथा उपदेश से सब की रक्षा करो और आप स्वयं प्रमाद रहित होकर अन्य लोगों को बसा ही करो ॥ २ ॥

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।

याश्च माया मायिनां विश्वमिन् त्वे पूर्वीः सैधुः पृष्ठबन्धो ॥३॥

पदार्थ—हे ( स्वधावः ) प्रशसनीय अमृतकृत्य अमृतयुक्त ( जातवेदः ) श्रेष्ठ विज्ञानयुक्त ( देव ) विद्वान् पुरुष ! ( अग्ने ) विद्या द्वारा प्रकाशकारक जो ( त्वे ) आप के ( भूरीणि ) बहुत ( अमृतस्य ) नाशरहित के ( नाम ) नाम हैं हे ( पृष्ठबन्धो ) मनुष्यों के कर्मानुसार फलदायक ! ( विश्वमिन् ) सम्पूर्ण जगत् में व्यापक ( याः ) जो ( पूर्वी ) प्राचीन प्रजाओं ( त्वे ) आप में ( सम्बधुः ) स्थित की गई हैं ( मायिनाम् ) निरुद्ध बुद्धियुक्त पुरुषों की ( माया ) बुद्धि नाम हो तो ( च ) भी अन्य पुरुष विज्ञानयुक्त होवें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सम्पूर्ण समार को ईश्वर में व्याप्य अर्थात् पूरित जानो और छुनी पुरुषों के छल का नाश तथा परमेश्वर के अर्थ सहित सम्पूर्ण नाम जान के अर्थ के अनुकूल भाव में अपने आचरणों को शुद्ध करो ॥ ३ ॥

किर अग्नि के बृष्टान्त से विद्वान् का कर्तव्य कहते हैं—

अग्निनंता भगव क्षितीनां देवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।

म वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्वद्विधाति दुरिता गृणन्तम् ॥४॥

पदार्थ—जा ( भगवः ) सूर्य के तुल्य ( देवीनाम् ) श्रेष्ठ गुणों में उत्पन्न ( क्षितीनाम् ) भूमियों का ( नेता ) अग्रणी ( ऋतुपा ) ऋतुओं के रक्षक ( ऋतावा ) सत्यकर्म निर्वाहक ( देवः ) सुखदायक ( वृत्रहा ) मेघों के नाशक सूर्य के मधुम ( समय ) अनादि मिष्ट ( विश्ववेदा ) संसार के ज्ञाता ( अग्निः ) अग्नि के सदृश तजस्वी ( गृणन्तम् ) स्तुतिकारक को ( विश्वा ) सम्पूर्ण पुरुषों के ( दुरिता ) दुष्ट आचरणों को ( अति ) उल्लङ्घन करके ( पर्वत् ) पार पहुँचावे ( स ) वह परमात्मा हम लोगों में सेवने योग्य है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सूर्य आदि रूप धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को नियमपूर्वक अपने स्थान में स्थित रखता और जैसे जगदीश्वर सर्वदा सम्पूर्ण जगत् की व्यवस्था करता है वैसे ही उपासित हुआ ईश्वर तथा सेवित हुआ विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण पापाचरणों से पृथक् करके दुःखरूप समुद्र के पार पहुँचाता है ॥ ४ ॥

किर विद्वान् मनुष्य के कर्तव्य को कहते हैं—

दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।

अरिना मित्रावरुणा भर्गं च वसुन् रुद्रां आदित्यां इह हुवे ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( इह ) इस समार में ( दधिक्राम् ) भूमि आदि धारण करनेवाले पदार्थों को उल्लङ्घन करके वर्तमान ( अग्निम् ) बिजुली रूप अग्नि ( देवीम् ) प्रकाशमान तथा कामना करने योग्य ( उषसम् ) प्रातःकाल ( च ) और ( बृहस्पतिम् ) बड़े बड़े पदार्थों का रक्षक वायु ( सवितारम् ) सूर्य और सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति करनेवाला ( देवम् ) कामनायोग्य दानशील ईश्वर ( च ) और ( अविना ) अध्यापक उपदेशकर्ता ( मित्रावरुणा ) प्राण ( च ) और उदान वायु ( अगम् ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य का देनेवाला व्यवहार ( वसन् ) भूमि आदि पदार्थ ( रुद्रां ) प्राण और ( आदित्याम् ) सवस्तरा के मामों की ( हुवे ) स्तुति करता है वा ग्रहण करता है वैसे ही तुम लोग इन की निरन्तर स्तुति वा ग्रहण करो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को चाहिए कि जैसे विद्वान् लोग हम सृष्टि के उपकारक पदार्थों से सम्पूर्ण काम्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही उन पदार्थों के गुणों को ज नकर सम्पूर्ण अनीष्ट कार्यों को सिद्ध करें और सर्व जनो से ईश्वर उपासना करने योग्य है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि आदि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बीसवीं सूक्त और बीसवीं वर्ग पूरा हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चमस्यैकाविंशतितमस्य सूक्तस्य गायत्री ऋषिः अग्निर्देवताः ।

१, ४ त्रिष्टुप्छन्दः । देवताः स्वरः । २, ३ अनुष्टुप् छन्दः ।

गायत्रारः स्वरः । ५ चिराद् बहुती छन्दः । मन्त्राः स्वरः ॥

अग्नि आदि अस्त्रादि इत्येतेषु सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**इयं नो यज्ञमहर्षेण वेदीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।**

**स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशानं प्रथमो निषधं ॥१॥**

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के जाता ! ( मेघतः ) चिकने ( घृतस्य ) घृत और ( स्तोकानाम् ) छोटे पदार्थों के ( होतः ) दाता ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ( प्रथमः ) पूर्व काल में वर्तमान आप ( निषधः ) स्थित होकर ( प्र, अशानं ) सुख को भोगो ( नः ) हम लोगों के ( इयम् ) इस ( यज्ञम् ) विद्वानों के सत्कार सत्सङ्ग शुभ गुणों और दानरूप कर्म कः ( जुषस्व ) सेवन कीजिए ( हव्या ) इन ( हव्या ) धर्म धर्म काम मोक्ष की सिद्धि के लिए योग्य साधनों को ( मनुष्येषु ) मानव रहित पदार्थों में ( वेदि ) स्थापन करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जैसे अन्न जल आदि का दाता पुरुष अग्न्य पुरुषों को प्रिय होता वैसे विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म सन्मन्वी ज्ञान प्राप्त करनेवाला जन इन कर्मों को जानने की इच्छायुक्त पुरुषों का प्रिय होता है ॥ १ ॥

अब अग्नीष्वेशक कितने मुख्य रक्षा करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्वेतन्ति मेदसः ।**

**स्वधर्मन्वेवधीतये अष्टु नो वेदि धार्यम् ॥२॥**

पदार्थ—हे ( पावक ) अग्नि के सवृक्ष पवित्रकर्ता ! जिन ( ते ) आप के ( घृतवन्तः ) उत्तम वा अधिक घृतवाले तथा जलयुक्त ( मेघतः ) चिकने ( स्तोकाः ) छोटे पदार्थ ( श्वेतन्ति ) सिञ्चन करते हैं वह आप ( वेदवन्तये ) विद्वानों की प्राप्ति के लिए ( अष्टुन् ) अति उत्तम ( धार्यम् ) स्वीकार करने योग्य धन ( स्वधर्मन् ) अपने वैदिक धर्म में ( नः ) हम लोगों के लिए ( वेदि ) दीजिये ॥२॥

भाषार्थ—जैसे अग्नि जल आदि पदार्थों को अपने कर्म से शुद्ध कर वर्षा आदि रूप से सम्पूर्ण पदार्थों को सींच कर सब जीवों की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और धर्म के उपदेशक लोग सम्पूर्ण मनुष्यों का पालन करते हैं ॥ २ ॥

किर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**तुम्यं स्तोका घृतचुतोऽग्ने विभाय सन्ध ।**

**ऋषिः भेष्टः समिध्यसे यज्ञभ्यं प्राविता भव ॥३॥**

पदार्थ—हे ( सन्ध ) सत्य और असत्य के विभाग करनेवालों में कुशल प्रवीण ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! जो ( घृतचुतः ) घृत से सींचे गये ( स्तोकाः ) स्तुतिकर्ता लोग ( विभाय ) बुद्धिमान् ( तुम्यम् ) तुम्हारे लिए प्राप्त होते हैं और ( भेष्टः ) उत्तम ( ऋषिः ) वेदमन्त्र और उन के धर्म के ज्ञाता आप ( समिध्यसे ) प्रताप वा प्रकाशयुक्त किये जाने ऐसे आप ( यज्ञस्य ) सङ्गति के योग्य व्यवहार के ( प्राविता ) अत्यन्त रक्षाकारक ( भव ) होइये ॥३॥

भाषार्थ—हे विद्वान् लोग ! जो लोग आपकी स्तुति करते हैं उन पुरुषों को आप लोग वेद के ज्ञानवाले कीजिए जिससे एक सम्मति से परस्पर रक्षा होवे ॥ ३ ॥

किर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**तुम्यं धोतन्त्याग्निगो शचीवः स्तोकास्तौ अग्ने मेदसो घृतस्य ।**

**कविशस्तो बृहता भानुनामा हव्या जुषस्व मेघिर ॥४॥**

पदार्थ—हे ( अग्निगो ) वेदमन्त्रों के ज्ञाता ( शचीवः ) प्रथमनीय बुद्धियुक्त ! ( मेघिर ) बुद्धिमान् पुरुष ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष प्रकाशकारक जो पुरुष ( स्तोकास्तौ ) उत्तम गुणों की स्तुतिकर्ता ( मेघतः ) चिकने ( घृतस्य ) घृत का ( जुषस्व ) तरे लिये ( श्वेतन्ति ) सेवन करते उनके साथ ( कविशस्तः ) विद्वानों से प्रशंसित हुआ ( बृहता ) बड़े ( भानुना ) तेज से सूर्य के सवृक्ष ( आ, अगाः ) प्राप्त ही और ( हव्या ) देने योग्य वस्तुओं का ( जुषस्व ) सेवन करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जल से सींच कर वृक्षों को बढ़ाव फल प्राप्त होते हैं वैसे ही सत्सङ्ग से सत्पुरुषों का सेवन करके विद्वान् आदि कर्त्ता को प्राप्त करें ॥ ४ ॥

**ओजिष्ठन्ते मध्यतो मेद उद्धृतं प्र तं वयं ददामहे ।**

**ओजन्ति ते वसो स्तोका अधि स्वधि प्रति तान्देवशो विहि ॥५॥२१॥**

पदार्थ—हे ( वसो ) निवास के कारण ! ( ते ) आपके ( अज्यतः ) मध्य से जो ( ओजिष्ठन्ते ) अति बलयुक्त ( मेघः ) प्रीति ( उद्धृतम् ) उत्तम प्रकार प्रारण की गयी उसको ( ते ) आपके लिये ( वयम् ) हम लोग ( प्र, ददामहे ) देते हैं जो ( स्तोकाः ) स्तुतिकारक ( ते ) आपके ( अधि ) ऊपर ( स्वधि ) धर्म में ( श्वेतन्ति ) सिञ्चन करते हैं ( तान् ) उन ( देवशः ) विद्वानों के ( प्रति ) समीप ( विहि ) प्राप्त होइए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष अन्न ही उत्तम वस्तु जिस पुरुष को देवे उस पुरुष को चाहिए कि उस देनेवाले पुरुष की बेटी ही वस्तु देवे और जो लोग विद्वानों के

सत्सङ्ग से ब्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होते हैं वे सम्पूर्ण जनों को कोमल स्वभावयुक्त कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और मनुष्यों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इक्कीसवां सूक्त और इक्कीसवां अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥

अब पञ्चमर्षस्य हाविशतितमस्य सूक्तस्य गाथी ऋषिः । पुरीष्या अग्नयो देवताः ।

१ विष्टुप् ऋषः । देवतः स्वरः । २, ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ४ निष्टुपङ्क्ति-  
इत्यन्तः । पञ्चमः स्वरः । ४ विराडनुष्टुप् ऋषः । ऋषयः स्वरः ॥

अब बारहवां सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुण वर्णन

विषय को कहते हैं—

**अयं सौ अग्निर्यस्मिन्स्तोममिन्द्रः सुतं दधे जठरं वावशानः ।**

**सहस्रिषं वाजमस्यं न सपि ससवान्सन्तस्त्यसे जातवेदः ॥१॥**

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) उत्तम विद्याधारी ! ( अस्मिन् ) जिसमें ( अयम् ) यह ( अग्निः ) बिजुली ( सहस्रिषम् ) अस्त्ररूप पराक्रमयुक्त ( वाजम् ) वेग और ( अयम् ) व्यापक शीघ्र चलनेवाले वायु के ( न ) मुख्य ( सपिम् ) अग्निनामक प्रथम को ( दधे ) धारण करता है उसमें ( वावशानः ) अत्यन्त कामना करनेवाला ( इन्द्रः ) जीवात्मा आप ( जठरे ) पेट की अग्नि में ( सुतम् ) उत्पन्न ( सोमम् ) पदार्थों के समूह के धारणकर्ता आप ( ससवादः ) विभागकारक ( सद् ) होकर ( स्तुत्यसे ) स्तुति करने योग्य हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्या में अग्नि को जलावे तो यह अग्नि हजारों घोड़ों के बल की धारणा करता है ॥ १ ॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**अग्ने यस्यै दिवि वर्यः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।**

**येनान्तरिक्षमुर्वाततन्ध त्वेषः स भानुर्यज्ञो नृचक्षाः ॥२॥**

पदार्थ—हे ( यजत्र ) प्रीति के पात्र ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष तेजस्वी ! ( ते ) आपके ( दिवि ) प्रकाश में ( यत् ) जो ( वर्यः ) तेज ( यत् ) जो ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( ओषधीषु ) जो ओषधियों में और जो तेज ( अयम् ) जलो में ( आ ) प्रच्छा वर्तमान है तथा ( येन ) जिस तेज से ( अन्तरिक्षम् ) पोलरूप ( उषः ) वसस्थल ( आतत्तम् ) सब और से विस्तारकर्ता ( सः ) वह आप ( त्वेषः ) प्रकाशमान ( भानुः ) दीप्तियुक्त ( अर्वाचः ) समुद्र के सवृक्ष ( नृचक्षाः ) मनुष्यों के देखनेवाले होइए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बिजुली नामक तेज सूर्य वायु भूमि और जल में तथा अन्य पदार्थों ओषधि आदि में वर्तमान उसको जन के सुख का विस्तार करो ॥ २ ॥

**अग्ने दिवो अर्यमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊषिषे धिष्ये ये ।**

**या रौचने परस्तात्सूर्यस्य याथावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! आप जैसे अग्नि ( दिवः ) सूर्य के प्रकाश से ( अर्यम् ) जन को ( अज्यः ) अज्ये प्रकार प्राप्त होता है वैसे ( अज्यः ) उत्तम प्रकार ( जिगासि ) स्तुति करो ( देवाः ) उत्तम गुणयुक्त मनुष्यों की ( ऊषिषे ) अज्ये प्रकार स्तुति करते हो ( याः ) जो ( सूर्यस्य ) सूर्यमण्डल के ( रौचने ) प्रकाश में ( परस्तात् ) ऊपर ( वा ) और ( वाः ) जो ( धिष्ये ) धर्म करने योग्य ( आपः ) जल ( अवास्तात् ) नीचे से ( उपतिष्ठन्ते ) प्राप्त होते हैं ( ये ) जो इन जलों के गुणों को जानत वे जलों से उपकार ले सकते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य अज्यकार का नाश कर दिन को उत्पन्न कर और जल की वृष्टि करके सम्पूर्ण संसार का सुखकारक होता है वैसे ही विद्वान् लोग अविद्या का नाश विद्या की उत्पत्ति और सुख की वृष्टि करके सब को भानन्दित करते हैं ॥ ३ ॥

**पुरीष्यासो अग्नयः प्रावशेभिः सजोषसः ।**

**जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽग्नीवा इषो महीः ॥४॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग ( पुरीष्यासः ) पालक पृथिवी आदि पदार्थों में व्यापकभाव से वर्तमान ( अग्नयः ) अग्नियों के सवृक्ष तेजयुक्त ( सजोषसः ) मुख्य प्रीति के मित्राहक ( अद्रुहः ) उपरहित ( अग्नीवाः ) रोग से रहित हुए ( अशोभिः ) गमन आदिकों से ( यज्ञम् ) मेलरूप यज्ञ ( इषः ) अग्नि और ( महीः ) अष्ट वागियों का ( जुषन्ताम् ) सेवन करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि आदि पदार्थ परस्पर मिल कर अनेक कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही मित्रभाव से वर्तमान रोग से रहित हुए विद्वान् लोग जनभाव ऐश्वर्य और विद्या को प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

इडांमन्ने पुष्टं सनि गोः शरवत्तमं हवमानाय साध ।

स्यावः सुनुस्तनयो विजावान्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाश करनेवाले विद्वान् । आप ( हवमानाय ) प्रशंसा करनेवाले के लिए ( इडाम् ) पृथिवी ( पुष्टसम् ) बहुत कर्मकर्ता ( सनिम् ) याचनाकारक ( गो ) वाणी ( शरवत्तमम् ) अनादि से वर्तमान चिह्न को हम लोगों के लिए ( साध ) सिद्ध करिये । हे ( अग्ने ) तेजस्वी पुरुष । जिससे ( न ) हम लोगों का ( तनय ) विद्याविस्तारकर्ता ( विजावा ) सत्य और धर्म का विभागकारक ( सुनुः ) पुत्र ( स्यात् ) हो तया ( सा ) वह ( ते ) आपकी ( सुमतिः ) उत्तम बुद्धि ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( व्रतु ) होवे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—विद्वान् पुरुष विद्या ग्रहण करने की इच्छा करनेवाले पुरुष के लिए विद्या को सिद्ध करे तया सब से गुणों का ग्रहण करे ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह ऋक्सूक्त और ऋक्सूक्त वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चमस्य ऋग्विजितितस्य सूक्तस्य देवशब्दा देववातस्य भारतावृषी ।

अग्निर्वेता, १ विराट् त्रिष्टुप्, २—५ निष्ठात्रिष्टुप् छन्दः ।

छन्दः स्वरः ॥

अथ पांच ऋचावाले तेईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से अग्नि के द्वारा शिल्पविद्या का उपदेश किया है—

निर्मथितः सुधित आ सधस्ये युवां कविरध्वरस्य प्रणेता ।

जूर्यत्स्वन्निरजरो बनेष्वत्रा दधे अमृतं जात्स्वेदाः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( सधस्ये ) तुल्य स्थान में ( निर्मथितः ) अत्यन्त मथा अर्थात् प्रदीप्त किया गया ( सुधित ) उत्तम प्रकार धारित ( युवा ) विभागकर्ता ( कवि ) उत्तम दर्शन सहित ( प्रणेता ) प्रेरणाकारक ( अजर ) नित्य ( जातवेदाः ) धनो की उत्पत्ति करनेवाला ( अग्नि ) अग्नि ( जूर्यत्सु ) वेद्युक्त ( बनेषु ) किम्बत्ता में ( अध्वरस्य ) अहिमा रूप शिल्पव्यवहार का ( आदधे ) धारण करता है ( अत्र ) इस शिल्पविद्या में ( अमृतम् ) जल को भी धारण करना वह अग्नि सम्पूर्ण उपायों में जानने योग्य है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! कलायन्त्र आदिको से युक्त वाहना में अत्यन्त मथित होकर चलाया गया अग्नि मकल जनो के लिए वाहनो का वेगपूर्वक चलाना है यह जानना चाहिए ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवशब्दा देववातः सुदसम् ।

अग्ने बि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यु ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रकाशयुक्त ! जैसे ( भारता ) धारणकर्ता और पालनकर्ता पुरुष ( सुदसम् ) अष्ट बल ( अग्निम् ) अग्नि का ( अमन्थिष्टाम् ) मन्थन करो वैसे ( देवशब्दा ) विद्वानो के बचन श्रोता ( देववातः ) अष्ट प्रेरणाकारक से प्रेरित ( अनु, द्युम् ) अनुकूल विवस ( रेवत् ) धन के तुल्य अग्नि का मन्थन करें जो ( न ) हम लोगों के लिए ( नेता ) सुमार्ग में अग्रणी ( भवतात् ) होवे वह आप ( बृहता ) बड़े ( राया ) धन से ( द्याम् ) अन्न आदिको के मध्य में ( अग्नि, बि, पश्य ) सब प्रकार कृपादृष्टि से देखिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे शिल्पविद्या के पढ़ने पढ़ानेवाले लोग पदार्थों के क्रयविक्रय से धनवान् होते हैं वैसे ही आप लोग भी होइये ॥ २ ॥

दश सिपः पूर्व्य सीमजीजनत्सुजातं मातृषु प्रियम् ।

अग्निं स्तुहि देववातं देवशब्दो यो जनानामसदृशी ॥३॥

पदार्थ—हे ( देवशब्दः ) विद्वानो के लिए उपकार-श्रोता ! आप जैसे ( दश ) दश सम्प्राप्तयुक्त ( सिपः ) फैलनेवाली अगुनिया ( मातृषु ) नदियों में ( प्रियम् ) कामना करने योग्य ( सुजातम् ) उत्तम प्रकार सिद्ध ( देववातम् ) विद्वानों में जाने हुओं का सम्बन्धी ( पूर्व्यम् ) प्राचीन जनो से उत्पन्न ( अग्निम् ) अग्नि को ( सीम् ) सब प्रकार ( अजीजनत् ) उत्पन्न करते हैं वैसे आप ( स्तुहि ) स्तुति करो और ( यः ) जो ( जनानाम् ) मनुष्यों के मध्य में ( वशी ) इन्द्रियजित् ( असत् ) होवे उसकी प्रशंसा करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे हाथों की अंगुलियों से बहुत कार्य सिद्ध होते हैं वैसे ही अग्नि आदिको से बहुत कार्यों को आप लोग सिद्ध करो ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

नि स्वा दधे वर आ पृथिव्या इवापास्पवे सुदिनत्वे अहाम् ।

हवदस्यां मातृषु आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! मैं वैसे ( स्वा ) आपको ( पृथिव्या ) भूमि वा अन्तरिक्ष ( वरे ) उत्तम व्यवहार और ( इ स्वा ) वाणी के ( पवे ) प्राप्त होने योग्य स्थान में ( अहाम् ) पिपसों के ( सुदिनत्वे ) उत्तम दिनों में ( हवदस्याम् ) प्रस्तरयुक्त ( आपयायाम् ) प्राणी में व्यापक ( सरस्वत्याम् ) विद्वान् वाली वाणी और ( मातृषु ) मननशील में ( रेवत् ) अष्ट बल के तुल्य ( नि, वषे ) धारण किया वैसे मननकर्ता आप मुझको ( आ, दिदीहि ) प्रकाशित करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर मित्रभाव से वर्तमान करके विद्या धर्म सञ्जनता और सुखों को बढ़ावें ॥ ४ ॥

इडांमन्ने पुष्टं सनि गोः शरवत्तमं हवमानाय साध ।

स्यावः सुनुस्तनयो विजावान्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाशकारी ! आप ( हवमानाय ) प्रशंसा करने के लिए ( इडाम् ) प्रशंसायुक्त वाणी को और ( गोः ) उत्तम वाणी के ( शरवत्तमम् ) अनादि विज्ञान तथा ( पुष्टसम् ) बहुत शुभ कर्मों के ( सनिम् ) विद्या आदि उत्तम गुणों के दान को ( साध ) सिद्ध करो जिससे ( नः ) हम लोगों का ( विजावा ) विशेष करके सम्पूर्ण जनो का सुखोत्पादक ( सुनुः ) पुत्र के सदृश शिष्य ( तनयः ) सुख का विस्तारकारक ( स्यात् ) होवे । हे ( अग्ने ) उत्तम प्रकार पगीका देने में निपुण विद्वान् ! जो ( ते ) आपको ( सुमतिः ) उत्तम बुद्धि ( व्रतु ) होवे ( सा ) वह ( अस्मे ) हम लोगों में होवे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का चाहिये कि परस्पर जनो के प्रति शुभ गुणों के ग्रहण और दान का उपदेश दे और अपने मन्तानो को विद्या, सुशिक्षा और विद्वानों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् मनुष्यों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेईसवाँ सूक्त और तेईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चमस्य ऋग्विजितितस्य सूक्तस्य विद्वामित्र ऋषिः । अग्निर्वेता ।

१ निष्ठात्रिष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः । २ निष्ठागायत्री, ३—५

गायत्री छन्दः । वज्र स्वरः ॥

अथ पांच ऋचावाले चौबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से राजधर्मविषय का उपदेश करते हैं—

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य ।

दुष्टरस्तग्नरातोर्बर्षी धा यज्ञवाहसे ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य दुष्टजनो के दाहकर्ता और पुरुष ! आप ( पृतनाः ) शत्रुओं की सेनाओं का ( सहस्व ) निरन्तर करने ( अभिमातीः ) अभिमानयुक्त विघ्नकारी दुष्टों को ( अपास्य ) दूर करा ( दुष्टरः ) कठिनता से उत्लङ्घन करने योग्य आप और ( अरातोः ) शत्रुओं को ( सरन् ) उत्लङ्घन करते हुए ( यज्ञवाहसे ) यज्ञ के प्राप्त करानेवाले के लिए ( बर्ष ) अन्न को ( धा ) धारण कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि अपनी प्रजा और सेनाओं को बलपूर्वक कर और दुष्ट शत्रुओं का राज्य से पृथक् करके प्रजा की वृद्धि के लिए धन और विद्या की निरन्तर उन्नति करें ॥ १ ॥

अब विद्वानों को कैसे दूसरों की उन्नति करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्ने इडा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः

जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य विद्या के प्रकाश से युक्त पुरुष ! ( अमर्त्यः ) आत्मरूप से मरणधर्मरहित ( वीतिहोत्रः ) उत्तम गुणों से पूरित विद्याओं के स्वीकारकारी आप जो ( इडा ) उत्तम प्रकार निश्चित स्तुति करने योग्य वाणी है और जिससे आप ( सू, इध्यसे ) उत्तम प्रकार प्रकाशित हो उसके साथ ( न ) हम लोगों के ( अध्वरम् ) अहिमा आदि व्यवहार से युक्त यज्ञ का ( सु, जुषस्व ) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—विद्वानो को चाहिये कि जिससे अपनी वृद्धि हो उसी से अन्य जनो की उन्नति करें ॥ २ ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्ने यमनेन जागृवे सहसः पूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो यम ॥३॥

पदार्थ—हे ( आगृवे ) राजधर्म के उत्तम प्रकार निर्वाहक ( सहसः ) बलवान् के ( यमो ) पुत्र दुष्टों के नाशकर्ता ( आहुतः ) चारों ओर से पुकारे गये ( अग्ने ) प्रत्यापयुक्त राजन् ! ( यमनेन ) यशस्वरूप धन के सहित विराजमान आप ( यम ) मेरे ( इवम् ) इस वर्तमान ( बर्हिः ) अत्यन्त अष्ट ( सवः ) बैठने योग्य आसन का ( आ, जुषस्व ) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥ ३ ॥



भाषार्थ—जो राजपुरुष मग्न कल्पयुक्त राजधर्म में कुशल व्यापारी हो वे अक्षयिष्ठ राज्य की पालना कर सकें ॥ ३ ॥

**अग्ने विवेभिरिदमिदं विवेभिरिदं गिरः । यज्ञेषु य उ चापयः ॥४॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष ! ( ये ) जो पुरुष ( यज्ञेषु ) सज्जति के योग्य व्यवहारों से ( चापयः ) सत्कार योग्य हो उनका ही ( विवेभिः ) अग्नियों के सद्गुण लक्षणयुक्त ( विवेभिः ) सम्पूर्ण ( विवेभिः ) अष्ट गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के साथ ( गिरः ) सत्कार करो ( उ ) और उन्हीं लोगों की ( गिरः ) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त वाणियों का प्रमाण मानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो राजपुरुष इस समार में उत्तम कार्यों के कर्ता हों उनका सब लोग सत्कार करें और जो युष्ट कर्म करते हों उनका अपमान करें ॥ ४ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**अग्ने दा दाशुषं रयं वीरवन्तं परिणसम् ।**

**विशीहि नः सुनुमतः ॥५॥२४॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण सज्जयुक्त विद्वान् पुरुष ! जैसे आप ( दाशुषं ) सबके सुखदाता जन के लिए ( परीक्षसम् ) बहुत प्रकार युक्त ( वीरवन्तम् ) बहुत वीरों से विनिष्ट ( रयम् ) धन का ( दा ) दीजिए और वैसे ही ( सुनुमतः ) पुनर्युक्त ( नः ) हम लोगों को ( विशीहि ) प्रबल कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो विद्या और धन के दाता विद्वान् हो उनके प्रति ऐसा कहना चाहिए कि आप लोग हम लोगों की सब प्रकार वृद्धि करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सज्जति जाननी चाहिए ॥

यह चौबीसवाँ सूक्त और चौबीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

अथ पञ्चमस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य विद्वानिन्द्रा ॥ १—४ अग्निर्वज्रता ।

१ इन्द्राग्नीदेवता । १ निचुबनुष्टम् । २ अनुष्टुप् छन्दः । ऋचः स्वरः ।

३—४ ध्रुक् त्रिष्टुप् छन्दः । ऋचः स्वरः ।

अब पाँच ऋचावाले पञ्चोत्तम सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र से सूर्यव्य अग्नि के वृष्टास्त से विद्वानों का कर्तव्य कहते हैं—

**अग्ने दिवः सुनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।**

**ऋधं देवा इह यजा चिकित्वः ॥१॥**

पदार्थ—हे ( चिकित्वः ) विज्ञानवान् ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष ! जैसे ( दिवः ) विजुली से ( सुनु ) सूर्य के समान तेजस्वी ( प्रचेताः ) उत्तम विज्ञानयुक्त वा विज्ञान-दाता ( पृथिव्या ) प्रतीतिरक्ष के ( तना ) विस्तारक ( उत ) और भी ( विश्ववेदाः ) धनदाता ( असि ) हो वह आप ( इह ) इस समार में ( देवाः ) विद्वान् वा उत्तम गुणों को ( ऋधम् ) स्वीकार करने में ( यज ) संयुक्त कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य सम्पूर्ण स्वरूप वाले इन्द्रों का प्रकाशक है वैसे विद्वान् और विद्वानों से प्रेमकारी पुरुष इस समार में सब जनों के आत्माओं के प्रकाशक होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**अग्निः संनोति वीर्याणि विद्वान्सनोति वार्जममृताय भुषन् ।**

**स नो देवा एह वंहा पुरुक्षो ॥२॥**

पदार्थ—हे ( पुरुक्षो ) प्रतिशम अन्न आदि से युक्त जो ( विद्वान् ) विद्यावान् पुरुष ! आप जैसे ( अग्निः ) अग्नि के सद्गुण ( वीर्याणि ) पराक्रमों का ( संनोति ) धारण करनेवाले वैसे ( सः ) वह ( वार्जमम् ) नाशरहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए ( नः ) हम ( देवान् ) विद्वानों को ( इह ) इस समार में ( भुषन् ) शोभित करते हुए ( वार्जम् ) विज्ञान को ( संनोति ) देता है उस प्रकाशित करने वाले पुरुष को हम लोगों के लिए ( आ, वह ) अच्छे प्रकार प्राप्त करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य आकारवाले पदार्थों को उत्तम प्रकार शोभित करता है वैसे ही विद्वान् लोग विद्या उत्तम शिक्षा और सत्यता से सम्पूर्ण मनुष्यों को शोभित करें ॥ २ ॥

**अग्निर्ज्ञातृपृथिवी विश्वजन्त्ये आ भाति देवी अश्वे अमूरः ।**

**सयन्वाग्निः पुरुषन्द्रो नमोभिः ॥३॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जन ! जैसे ( पुरुषन्द्रो ) बहुत भाग्यकारक ( नमोभिः ) विज्ञान के आविर्भाव से ( नमोभिः ) अन्न वा सत्कारों के साथ ( अमूरः ) निवास करनेवाला ( अग्निः ) सूर्य वा विद्युत्कल्प अग्नि ( विश्वजन्त्ये ) सबके उत्पादक ( देवी ) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त ( अमूरः ) कारकस्य से नाशरहित ( अमूरः ) प्रकाश और धूम को ( आ ) सब और से ( भाति ) प्रकाशित करता है

वैसे ( अमूरः ) मूकता आदि दोषों से रहित होकर सम्पूर्ण सज्जनों को अपनी विद्या और विनय से सब प्रकार प्रकाशित करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग पृथिवी के सद्गुण समाशील, सूर्य के सद्गुण सत्य अमृत के प्रकाशकर्ता, मूढ़ लोगों को उपदेशदाता और सब लोगों को धार्मिक करते हैं उन लोगों का ही सत्कार करना चाहिए ॥ ३ ॥

**अम इन्द्रश्च दाशुषो दुरोये सुतावन्तो यज्ञमिहोप यातम् ।**

**अयमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान् पुरुष ! जैसे ( अयमर्धन्ता ) सब को सुखात हुए ( देवा ) अष्ट गुणों से युक्त पुरुष ( इन्द्र ) अत्यन्त परमेश्वरकारक विजुली सम्बन्धी अग्नि ( च ) और पथन तथा ( सोमपेयाय ) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ( सुतावन्तः ) ऐश्वर्य से युक्त ( दाशुषः ) विद्यासम्बन्धी सुख के दाता ( दुरोये ) गृह में ( यतम् ) विद्वान् सत्कार आदि स्वरूप व्यवहार को ( इह ) इस समार में ( उप, यातम् ) प्राप्त हो और वैसे आप भी प्राप्त होइए और अध्यापक तथा उपदेशक भी प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जहाँ वायु और विजुली के तुल्य वर्तमान अविद्या के विनाश और विद्या के प्रकाशकर्ता धर्म के उपदेशकर्ता अध्यापक और उपदेशक हों वहाँ सम्पूर्ण सुख बढ़े ॥ ४ ॥

विद्वानों को परमात्मा के तुल्य जगत् को आनन्दित करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**अग्ने अयां समिध्यसे दुरोये नित्यः रनो सदसो जातवेदः ।**

**सधस्थानि मयमान ऊती ॥५॥२५॥**

पदार्थ—हे ( सहस्र ) बलवान् ( रनो ) पुत्र के तुल्य वर्तमान वा अविद्या के नाशकारक ( जातवेदः ) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण तेजस्वी ( नित्यः ) अपन स्वरूप में नाशरहित ( मयमानः ) पूजन अर्थात् आदर करने योग्य जो आप ( ऊती ) रक्षण आदि क्रिया में ( अयां ) प्राणों के मध्य में सूर्य के सद्गुण ( दुरोये ) रहन के स्थान गृह में ( सध, इध्यसे ) प्रकाशित होते उन आपको चाहिए कि सम्पूर्ण मनुष्यों के ( सधस्थानि ) तुल्य स्थानों और आत्माओं को विद्या धर्म विनय से प्रकाशित करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे नित्य शुद्ध शुद्ध सुख स्वभावयुक्त और सर्वज्ञ आनन्द आदि लक्षण विनिष्ट परमात्मा सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न और रक्षित कर आनन्दित करता है वैसे ही मलयवक्ता विद्वान् पुरुषों को चाहिए कि सम्पूर्ण इस समार को आनन्दयुक्त करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सज्जति जाननी चाहिए ॥

यह पञ्चोत्तम सूक्त और पञ्चोत्तम वर्ग समाप्त हुआ ॥

५६

अथ सप्तमस्य ऋचविंशतितमस्य सूक्तस्य । १, ६, ८, ९, विद्वानिन्द्रा ।

७ आत्मा ऋचि । १, ३ ब्रह्मवर्त । ४, ६ मरुतः, ७, ८ अग्नि-रात्मा वा । ९ विद्वानिन्द्रोपाध्यायो देवता । १—६ जगती

छन्दः । निषाद स्वरः । ७—९ त्रिष्टुप् छन्दः । ऋचः स्वरः ॥

अब ऋचावाले छवोत्तम सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि आदि से विद्वान् क्या सिद्ध करें इस विषय को कहते हैं—

**वैश्वानरं मनसाग्निं निचार्या हविष्यन्तो अनुषत्यं स्वविदम् ।**

**सुदानुदेवं रश्मिं वसूयवो गीर्भा रूषं कुशिकासो हवामहे ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( कुशिकासः ) उपदेशक जन ( हविष्यन्तः ) देने योग्य वस्तुओं से युक्त ( अनुषत्यः ) धन इकट्ठा करने में तत्पर हम लोग ( मनसा ) विज्ञान से ( निचार्या ) निश्चय कराकर ( स्वविदम् ) धन की प्राप्ति करानेवाले ( रूषम् ) शब्द करते हुए ( रश्मिम् ) सुन्दर वाहनों से युक्त ( अनुषत्यम् ) सत्य के अनुकूल ( सुदानुम् ) उत्तम पदार्थों के देनेवाले ( देवम् ) प्रकाशकारक ( वैश्वानरम् ) सम्पूर्ण मनुष्यों के प्रकाशकर्ता ( अग्निम् ) अग्नि को ( हवामहे ) ग्रहण करते हैं वैसे आप लोग भी इस अग्नि का ( गीर्भाः ) वाणियों से स्वीकार करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य अग्नि के गुण-कर्मस्वभावों का निश्चय करके कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही पृथिवी आदि पदार्थों के गुणकर्मस्वभावों के निश्चय और उपकार से कार्यों को सिद्ध करो ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं आतरिश्वाभिमुक्थ्यम् ।**

**सुहृत्स्वदि मनुषो देवतातये विप्रं ओतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( मनुषः ) मननकर्ता ( देवतातये ) उत्तम गुणों प्राप्ति के लिए ( रघुष्यदम् ) शीघ्रगामी ( विप्रम् ) बुद्धिमान् ( ओतारम् ) आत्मा आदि सुननेवाले को ( अतिथिम् ) अतिथि के तुल्य जिसकी ( अ

आदि के लिए ( आत्तरिखानम् ) वायु से श्वासकारी ( उष्णम् ) प्रकाश करने योग्य ( कुहस्पतिम् ) पृथिवी आदि पदार्थों के धारक ( वैश्वानरम् ) राजा आदि में विराजमान ( शुभम् ) प्रकाशमान ( अग्निम् ) बिजुली आदि स्वरूप अग्नि का ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ( तम् ) उसको आप लोग भी जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पूर्ण विद्वान् अतिथि जन श्रोता जनो को ज्ञानयुक्त करता है उसी प्रकार अग्नि शिल्पी जनो के लिए अत्यन्त मनों को उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

अग्निं न क्रन्दन्निभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्गुणेभ्युने ।

स नो अग्निः सुवीर्यं स्वर्णं दधातु रत्नममृतं पु जागृविः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( वैश्वानरः ) सम्पूर्ण मनुष्यों का प्रकाशकर्ता ( जागृविः ) जागरणशील ( अग्निः ) अग्नि ( निभिः ) उत्पन्न करनेवाली चोड़ियों के साथ ( क्रन्दन् ) शब्द करते हुए ( अम्ब ) बोड़े के ( न ) तुल्य ( कुशिकेभिः ) शब्द करनेवालों से ( गुणेभ्युने ) प्रत्येक वर्ण में ( सम्, इध्यते ) प्रदीप्त होता है ( स ) वह ( न ) हम लोगों के लिए ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल करनेवाले ( स्वर्णम् ) उत्तमघोड़ों में युक्त ( अमृतम् ) सुवर्ण आदि धनो में ( रत्नम् ) वन को ( दधातु ) धारण करता है उसका आप लोग भी उपयोग करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य लोग अग्नि को वाहन के चान्न आदि कार्यों में सप्रयुक्त करते हैं तो यह अग्नि किस किस धन आदि वस्तु की वृद्धि न करे अर्थात् सब वस्तुओं की वृद्धि कर सकता है ॥ ३ ॥

प्र येन्तु बाजास्तविषाभिरग्नयः शुभे समिस्ताः पृथतीरयुक्षत ।

बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वतां मदाभ्याः ॥४॥

पदार्थ—हे वीरो ! आप लोग ( तविषीभिः ) पराक्रम आदिका के साथ जैसे ( बाजा ) बगवाने ( अग्नयः ) अग्नि ( विश्ववेदसः ) सम्पूर्ण धनो में युक्त ( बृहदुक्षो ) अतिशय सेचनकारक ( मरुत ) वायु ( शुभे ) जल में ( पविस्ता ) अच्छे प्रकार मिली हुई या मृदङ्ग प्रयुक्त ( पृथती ) मचन में कारण ( प्र, यन्तु ) प्राप्त होवे और ( मदाभ्या ) नहीं मारने योग्य शस्त्र ( पर्वतां ) पर्वतों के मद्दग ऊँचे मेघों को ( प्र, वेपयन्ति ) कपाते हैं ये आप लोग भी परमेश्वर मित्र होकर शत्रुओं को कपाओ और वलयुक्त सेना का मञ्चन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जंगम जन में मिले हुए पृथिवी अग्नि वायु वर्त्तमान है वैसे ही जा लोग सना में मित्र होकर वर्त्तमान उनका निश्चय विजय होता है ॥ ४ ॥

फिर बायु आदि से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्निभिर्यो मरुतो विश्वकृष्ट्य आ स्वेवमुग्रमव ईमहे वयम् ।

ते स्वानिनां रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेपकतवः सुदानवः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जेने ( वयम् ) हम लोग जा ( विश्वकृष्ट्य ) सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पन्नकर्ता ( अग्निभिर्यो ) अग्नि में धनयुक्त ( स्वानिनां ) अतिशय शक्तो में विनिष्ट ( रुद्रिया ) अग्नि में उत्पन्न होनेवाले ( वर्षनिर्णिजः ) वृष्टि के पवित्र करने वा पुष्ट करनेवाले ( मरुत ) वायुदल ( सिंहा ) व्याघ्रों के ( न ) मद्दग शब्द करने जिनको ( हेपकतवः ) शब्दरूप युधि वा क्रियावाले ( सुदानवः ) उत्तम दानकारक हम लोग ( आ, ईमहे ) अच्छे प्रकार याचना करते हैं ( ते ) वे सब प्रकार मांगने योग्य हैं उनमें हम लोग ( उग्रम् ) कठिन ( स्वेवम् ) प्रकाश और अग्नि ( अब ) रक्षण आदि की याचना करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् लोगों के सङ्ग में बुद्धिमान् होकर वायु आदि की सम्बन्धिनी पदार्थविद्या की प्रार्थना करें और सिद्ध के समान पराक्रम को धारण करें ॥ ५ ॥

वार्तवार्त गण्यगणं सुशस्तिभिरग्नेभ्यं मरुतामोज ईमहे ।

पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( पृषदश्वास ) सेचनकर्ता और वेग आदि गुणयुक्त ( अनवभ्रराधस ) अविनाशी धनो के दाता ( गन्तार ) प्राप्त होनेवाले पवनो के तुल्य ( सुशस्तिभिः ) सुन्दर स्तुतियों के साथ वर्त्तमान ( धीरा ) ध्यानवाले विद्वान् पुरुष ( विदथेषु ) विज्ञान आदिको से ( यज्ञम् ) मेल करने और ( अग्ने ) अग्नि से उत्पन्न ( भावम् ) तेज को ( मरुताम् ) पवनो के समीप से ( ओज ) बल और अन्य पदार्थों के ( दातृशतम् ) वर्त्तमान वर्त्तमान ( गण्यगणम् ) समूह समूह की याचना करते हैं वैन ही हम लोग इस सबकी ( ईमहे ) याचना करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अग्नि वायु आदि पदार्थों से कार्यो के समूह को साधने हैं वे विद्वान् कहाने हैं ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को विद्युत् के तुल्य वर्त्तना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा धृतं मे अक्षुरमृतं न आसन् ।

अर्कस्त्रिधात् रजसो विभानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अग्नि ) अग्नि के सदृश ( जन्मना ) जन्म के ( जातवेदाः ) ज्ञानयुक्त मैं ( अस्मि ) वर्त्तमान हूँ ( मे ) मेरा ( अक्षुः ) मेरा इन्द्रिय ( अक्षुः ) प्रकाशमान ( मे ) मेरे ( आसन् ) मुख में ( अमृतम् ) अमृत-स्वरूप रस हो जैसे ( रजसः ) लोक समूह का ( विभानः ) अनेक प्रकार के मान-सहित ( त्रिधात् ) तीन भातुओं से युक्त ( अर्कः ) वज्र वा बिजुली ( अजस्रः ) निरन्तर चलनेवाला ( घर्मः ) प्रदीप्त सूर्य ( हविः ) हवन सामग्री है वैसे ही ( नाम ) प्रसिद्ध मैं ( अस्मि ) हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि बिजुली के सदृश कार्यसिद्धि का धारण रोग का नाशकारक भोजन करना और शत्रुओं का निवारण करें तो बिजुली का फल प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

अब शुद्ध मनुष्य कौन हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

त्रिभिः पवित्रैरुपुण्ड्रैर्हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।

वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिषु द्यावापृथिवी पश्येपरयत् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जा ( त्रिभिः ) शरीर वाणी और मन से ( पवित्रैः ) पवित्र करने में कारण तजो और ( हृदा ) हृदय से ( अर्कम् ) उत्तम प्रकार सत्कार किये जन्म को ( उपुण्ड्रैः ) पवित्र करे ( हि ) जिसमें ( ज्योतिः ) प्रकाश तथा ( मतिम् ) बुद्धि को ( अनु, प्रजानन् ) अनुकूल जानता हुआ ( स्वधाभिः ) अन्न आदिको से ( वर्षिष्ठम् ) अतिशय बुद्धियुक्त ( रत्नम् ) सुन्दर धन को ( अकृत ) करे वह ( आत्, इत् ) अनन्तर ही ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और अन्तरिक्ष को ( परि ) सब प्रकार ( अपश्यत् ) देखे ॥ ८ ॥

भावार्थ—वे ही शुद्ध मनुष्य हैं जो कि उत्तम बुद्धि का प्राप्त होकर अन्य मनुष्यों को विद्या और विनयो में मनुष्ट करके लक्ष्मी आदि की उत्पत्ति सिद्ध करे ॥ ८ ॥

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।

मेति मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिष्टं सत्यवाचम् ॥९॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( उत्सम् ) कूप के मद्दग ( अक्षीयमाणम् ) विद्या के विज्ञान में धाहरहित पूर्ण विद्यायुक्त ( शतधारम् ) सैकड़ा प्रकार की उत्तम शिक्षा सहित वाणीवाले ( पितरम् ) पिता के तुल्य वर्त्तमान ( वक्त्वानाम् ) कहने की दकट्टे किये गये वाक्यों के वक्ता ( मेतिम् ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और ( अबन्तम् ) स्तुतिकारक ( सत्यवाचम् ) सत्य वाणीयुक्त जिस ( विपश्चितम् ) विद्वान् पुरुष का ( पित्रोः ) पिता माता के ( उपस्थे ) समीप में ( रोदसी ) भूमि मूय्य ( पिपुतम् ) पालते हैं उस ही की सब लोग अपने आत्मा के तुल्य सेवा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पूर्ण विद्वान् अति सूक्ष्म बुद्धियुक्त पृथिवी के सदृश क्षमाशील मूय्य के सदृश अन्त करण स शुद्ध विद्वान् मनुष्यों में पिता के मद्दग वर्त्तव रखते उन्हीं की सब लोग अपने आत्मा के तुल्य सेवा करें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वान् अग्नि और वायु के गुणों का वर्णन होने में इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ मञ्जति जाननी चाहिए ॥

यह छन्दोसर्वा सूक्त और सत्ताईसर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अब पञ्चदशसर्गस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य विद्वान्मित्र ऋषिः । १ ऋतवोऽभिर्वा;

२, १५ अग्निवक्ता । १, ७—१०, १४, १५ निष्पृङ्गायत्री ।

२, ३, ६, ११, १२ पायत्री । ४, ५, १३ विराट् पायत्री

छन्दः । चञ्च स्वर ॥

अब पञ्चदशसर्गस्य सत्ताईसर्ग सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में,

विद्वानो को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

प्र वो वाजा अभिधवो हविर्मन्तो घृताभ्या ।

देवाज्जिगाति सुमन्युः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( व ) आप लोगों के ( अभिधव ) चारों ओर से प्रकाशमान ( हविर्मन्तः ) बहुत सी देने योग्य वस्तुओं से युक्त ( वाजाः ) विज्ञान आदि पदार्थ ( घृताभ्या ) जल को प्राप्त होनेवाली रात्रि के सहित वर्त्तमान हैं उनसे युक्त जो ( सुमन्युः ) अपने सुख का अमिलायी ( देवाः ) विद्वानों की ( प्र, जिगाति ) उत्तम प्रकार स्तुति करता है उन विद्वानों और स्तुतिकारक उस पुरुष को आप लोग प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे दिन में पदार्थ सूखते और रात्रि में गीले होते हैं उसी प्रकार जो अपने पदार्थ हैं वे औरों के हैं वे अपने हैं इस प्रकार सुख की दृष्टि से विद्वानों का सङ्ग करना चाहिए ॥ १ ॥

किर अग्नि से क्या सिद्ध होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**इमे अग्नि विपश्चिति मित्रा यज्ञस्य साधनम् ।**

**अग्नीधरं वितावानसु ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( विरः ) बागी से ( यज्ञस्य ) अहिमार्क यज्ञ की ( साधनम् ) सिद्ध करने ( अग्नीधरम् ) शीघ्र करने वा चलानेवाले ( वितावानम् ) पदार्थों के धारणकर्ता ( अग्निम् ) अग्नि के सदृश तेजस्वी ( विपश्चितम् ) पण्डित विद्वान् की ( इमे ) स्तुति करता हूँ वैसे आप लोग भी स्तुति करें ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे किसी पदार्थ के जोड़ने आदि व्यवहार की सिद्धि के लिए अग्नि मुख्योपकारी है वैसे ही धर्म अर्थ काम और विद्या की प्राप्ति के लिए विद्वान् जन मुख्य हैं ऐसा जानना चाहिए ॥२॥

विद्वानों का सङ्ग सब को करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**अग्ने शक्रेभ्य ते ययं ययं देवस्य वाजिनः ।**

**अग्नि द्वेषांसि तरेम ॥३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश पवित्र पुण्यार्थी पुरुष ! आप जैसे ( ययम् ) हम लोग ( वाजिनः ) विज्ञानयुक्त ( देवस्य ) विद्वान् ( ते ) आपके ( ययम् ) उत्तम नियम को प्राप्त होने के लिए ( शक्रेभ्यः ) समर्थ हो और ( द्वेषांसि ) द्वेषयुक्त कर्मों के ( अग्नि, तरेम ) पार पहुँचें ऐसा यत्न करो ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । मोक्ष आदि की जिज्ञासा-कारक पुरुषों को चाहिए कि विद्वान् पुरुषों की ऐसे प्रार्थना करें कि जिस प्रकार हम लोग उत्तम नियमों को प्राप्त होकर देव आदि दुष्ट व्यक्तियों के पार जायें ऐसी हम लोगों के ऊपर कृपा करिये ॥३॥

**समिप्यमानो अध्वरेभिः पावक ईदयः । शोचिष्येऽस्तमीमहे ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अध्वरे ) अहिमा रूप यज्ञ में ( समिप्यमानः ) उत्तम रीति से प्रकाशमान ( शोचिष्ये ) केशों के मृदु तेजों से युक्त ( पावकः ) पावित्र करनेवाला ( अग्निः ) बिजुली के मृदु ( ईदयः ) स्तुति करने योग्य होवे ( तम् ) उसकी हम लोग ( ईदये ) याचना करने हैं आप लोग भी इसका सेवन करिये ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे इस मन्त्र में अग्नि-रूप पदार्थ ही सम्पूर्ण पदार्थों से श्रेष्ठ है इसलिए इस अग्नि विपश्चिति विद्या की प्रार्थना करनी योग्य है, वैसे ही विद्वान् लोग सम्पूर्ण मनुष्यों में श्रेष्ठ और उनकी विद्याप्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए ॥४॥

विद्वान् लोग अग्नि के मुख्य कार्यसाधक होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है ॥

**पुण्यपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः ।**

**अग्निर्यज्ञस्य इव्यवाद् ॥५॥ २८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो ( पुण्यपाजाः ) विस्तार सहित वनयुक्त ( अमर्त्यः ) अपने स्वरूप में नाशरहित ( यज्ञस्य ) राज्यपालन आदि व्यवहार के ( इव्यवाद् ) प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को धारण करनेवाले ( घृतनिर्णिक् ) जल और ची के शोधनेवाले ( अग्निः ) अग्नि के सदृश ( स्वाहुतः ) अच्छे प्रकार आदर-पूर्वक पुकारे गये उस विद्वान् पुरुष की निरन्तर सेवा करो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे साधन और उप-साधनों से उपकार में लाया गया अग्नि कार्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सेवा से संतुष्टता को प्राप्त किये विद्वान् लोग विद्या आदि की सिद्धि को सम्पादन करते हैं ॥५॥

किर अनुष्ठान क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**तं सवाधो यतस्तुम्भ इत्या धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमृतये ॥६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( सवाधः ) दुष्ट व्यक्तियों के नाशकर्ता ( यतस्तुम्भः ) उद्योगयुक्त कर्मसाधनों के सहित ( यज्ञवन्तः ) प्रशंसा करने योग्य प्रयत्न करनेवाले जन ( धिया ) बुद्धि वा कर्म से ( अतये ) रक्षण आदि के लिए ( अग्निम् ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष को ( आ, चक्रुः ) आदर करते हैं वैसे ( तम् ) उस विद्वान् पुरुष की ( इत्या ) इसी प्रकार आप लोग भी सेवा करें ॥६॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे बुद्धि और कर्म से वस्तु पुरुष उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करते हैं वैसे ही धर्म आदि को जानने की इच्छायुक्त पुरुष, विद्वान् जन को प्रसन्न करके उत्तम गुणों को ग्रहण करें ॥६॥

किर विद्वानों क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**होता देवो अर्धस्यः पुरस्तादिति मायया । विद्वानि प्रयोदयन् ॥७॥**

पदार्थ—हे धर्म आदि की जानने की इच्छा करनेवाले पुरुषों ! जैसे ( अर्धस्यः ) मरणधर्म से रहित ( होता ) देवता ( देवः ) उत्तम गुण कर्म सम्पन्नपुत्र पुरुष ( पुरस्ताद् ) पहले से ( मायया ) उत्तम बुद्धि के साथ ( विद्वानि ) विद्वानों का ( प्रयोदयन् ) प्रचार करता हुआ आप लोगों को ( हति ) प्राप्त होता है वैसे उसको आप लोग भी प्राप्त होइये ॥७॥

भाषार्थ—हे विद्यार्थी जनो ! जो अध्यापक पुरुष आप लोगों के लिए कपट त्याग के विद्या आदि उत्तम गुणों को देकर उत्तम शिक्षा देवे उसकी आप लोग भी अपने आत्मा के मुख्य सेवा करो ॥७॥

किर विद्वानों से भिन्न जन क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र धीयते ।**

**विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८॥**

पदार्थ—हे धर्म आदि की जिज्ञासा करनेवाले पुरुषों ! जैसे ऋत्विजों से ( वाजेषु ) विज्ञान और क्रियास्वरूप ( अध्वरेषु ) भिन्नता आदि गुणयुक्त व्यवहारों वा यज्ञों में ( यज्ञस्य ) उत्तम व्यवहार का ( साधनः ) सिद्धिकर्ता ( वाजी ) वेग-युक्त अग्नि ( धीयते ) धारण किया जाता है वैसे ( विप्रः ) बुद्धिमान् ( प्र, धीयते ) प्राप्त किया जाता है ॥८॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्निहोत्र आदि क्रियास्वरूप यज्ञों में मुख्यभाव से अग्नि का आश्रय किया जाता है वैसे ही विद्या विनय और उत्तम शिक्षा के व्यवहारों में विद्वान् का आश्रय करना चाहिए ॥८॥

किर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**धिया चक्रं वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।**

**वक्षस्य पितरं तनां ॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( वरेण्यः ) आदर करने योग्य अति श्रेष्ठ पुरुष ( तनां ) विस्तारयुक्त ( धिया ) श्रेष्ठ बुद्धि वा शिक्षा से ( वक्षस्य ) चतुर विद्यार्थीपुरुष के ( पितरम् ) पिता के मृदु पालनकर्ता ( भूतानाम् ) प्राणियों के ( गर्भम् ) विद्या आदि उत्तम गुणों का स्थिति करने रूप गर्भ को ( आ, दधे ) सब प्रकार धारण कर और विद्या सम्बन्धी बुद्धि को ( वक्षः ) कर नो उमकी अपने आत्मा के मृदु सेवा करो ॥९॥

भाषार्थ—जैसा पति अपनी स्त्री में गर्भ को धारण करके श्रेष्ठ मन्त्रानों को उत्पन्न करता है वैसे ही विद्वान् लोग मनुष्यों की बुद्धि में विद्या सम्बन्धी गर्भ की स्थिति करके उत्तम व्यवहारों को उत्पन्न करें ॥९॥

**नि त्वां दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्रकृत ।**

**अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( सहस्रकृतः ) बलकारक ( अग्ने ) अग्नि के मृदु तेजयुक्त पुरुष ! जैसे मैं ( इळा ) उत्तम उपदेश वा उत्तम प्रकार सम्कारयुक्त अन्न आदि से ( वक्षस्य ) पराक्रम के ( वरेण्यम् ) स्वीकार करने योग्य ( सुदीतिम् ) उत्तम विज्ञान के प्रकाश से युक्त ( उशिजम् ) उत्तम गुणों के प्रचार की कामना करनेवाले ( त्वा ) आपको ( नि ) निश्चय से ( दधे ) धारण करूँ वैसे ही आप मुझको विद्या वा पात्र करो ॥१०॥

भाषार्थ—जैसे विद्यार्थी जन अध्यापक लोगों की इच्छा के अनुसार कर्मों को कर प्रसन्न रहते हैं वैसे ही अध्यापक लोग विद्यार्थियों की इच्छा के अनुकूल उत्तम गुणों को देकर प्रसन्न करें ॥१०॥

**अग्निं यन्तुरमन्तुरसूतस्य योनें वनुषः । विमा वज्रैः समिन्धते ॥११॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( वनुषः ) वाचना करनेवाले ( विमा ) बुद्धिमान् जन ( यज्ञस्य ) सत्य के ( योने ) योग में ( वज्रैः ) विज्ञान आदिकों से ( यन्तुरम् ) प्राप्तिकारक ( अन्तुरम् ) प्राण वा जलो की प्रेरणाकर्ता ( अग्निम् ) अग्नि के सदृश तेजस्वी को ( तम्, इन्धते ) उत्तम प्रकार प्रदीप्त करें वैसे ही सम्पूर्ण जनों से विद्या-प्रकाश करने योग्य हैं ॥११॥

भाषार्थ—जिस समय विद्वान् पुरुषों का सङ्ग होवे उस समय उत्तम विज्ञान ही की प्रसन्न उत्तरों से वाचना करनी चाहिए इससे अधिक लाभ और न सम्भन्ना चाहिए ॥११॥

**ऊर्जो नपातपध्वरे दीधिवानसुप धवि । अग्निमीळे कबिकतुम् ॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको ( धवि ) प्रकाश तथा ( अध्वरे ) मेल को प्राप्त समार में ( अग्निम् ) अग्नि के सदृश तेजयुक्त ( ऊर्जः ) बल से ( नपातम् ) विनाशरहित ( कबिकतुम् ) विद्वानों की बुद्धि वा कर्म को यज्ञ समझनेवाला ( दीधि-वन्तम् ) प्रकाशमान विद्वान् पुरुष के ( उप ) ममीप ( ईळे ) स्तुति करता हूँ वैसे इसकी आप लोग भी प्रशंसा करो ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे यज्ञ में अग्नि प्रकाशमान होकर शोभित होता है वैसे ही विद्या के प्रकाशकर्ता व्यवहार में विद्वान् जन प्रकाशित होते हैं ॥१२॥

**ईधेन्वी नमस्येस्तरस्तमांसि दशतः । समग्निरिन्धते दृषां ॥१३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तमांसि रात्रियों के ( तिरः ) तिरस्कार करनेवाले ( अग्निः ) अग्नि के सदृश प्रकाशमान ( दृषां ) दृष्टिकर्ता ( दशतः ) देखने ( ईधेन्वी ) स्तुति करने और ( नमस्ये ) सत्कार करने योग्य पुरुष ( तम् ) उत्तम प्रकार ( इन्धते ) प्रकाशित किया जाता है उसका आप निरन्तर आदर करो ॥१३॥



भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तुतोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्धकार को दूर कर प्रकाश उत्पन्न करता है वैसे ही यथार्थवक्ता विद्वान् लोग अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करते हैं ॥ १३ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**वृषो अग्निः समिध्यतेऽथो न देवाह्नः । तं हविर्धन्त ईळते ॥१४॥**

पदार्थ—जो ( वृषः ) वृष्टिकर्ता ( देववाहन ) उत्तम वेग आदि गुणों को प्राप्त करनेवाला ( अग्निः ) अग्नि ( अक्ष ) शीघ्र चलनेवाले घोड़े के ( न ) सद्गुण ( सम्, इच्छते ) प्रकाशित किया जाता है ( तम् ) उसकी ( हविर्धन्तः ) बहुत शीघ्र ग्रहण करने योग्य वस्तुओं से युक्त पुरुष ( ईळते ) स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे बल और वेग से युक्त घोड़े वाहन को शीघ्र ले चलते हैं वैसे ही अग्नि का भी समझना चाहिए और जैसे हम अग्नि के गुणों को विद्वान् लोग जानते हैं वैसे आप लोग भी जानिए ॥ १४ ॥

फिर पढ़ने पढ़ाने के विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**वृषं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीर्घतं वृहत् ॥१५॥**

पदार्थ—हे ( वृषः ) बलयुक्त ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण प्रकाशकर्ता जन ! जैसे आप ( वृहत् ) बड़े ( वीर्यम् ) प्रकाशकर्ता विज्ञान को प्रकाशित करने हैं वैसे ही ( वयम् ) हम लोग ( वृषणम् ) मुखवृष्टिकारक ( त्वा ) आप और अन्य जनो को ( वृषण ) बलयुक्त ( सम् ) उत्तम प्रकार ( इधीमहि ) प्रकाशित करें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे पढ़ाने और पढ़ने वाले पुरुषो ! आप लोगों को चाहिए कि विरोध को त्याग और प्रीति का उत्पन्न करके परस्पर की वृद्धि करो जिससे विद्या आदि उत्तम गुणों के प्रकाश में सम्पूर्ण मनुष्य बलयुक्त और न्यायकारी हों ॥ १५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सत्ताईसवाँ सूक्त और तीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ षड्वचसोऽष्टविंशतितमस्य सूक्तस्य विद्वान्मित्र ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१ गायत्री । २, ६ निचवृणायत्री छन्दः । षड्ज. स्वरः । ३ स्वराड-

गिणक् छन्दः । ऋषभ स्वरः । ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ।

५ निचवृजगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले अष्टाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि और विद्वानों का वर्णन करते हैं—

**अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातःमावे धियावसो । १ ॥**

पदार्थ—हे ( धियावसो ) उत्तम बुद्धि या उत्तम गुणों के प्रचारकर्ता ( जातवेद ) मकल उत्पन्न पदार्थों के जाता ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण अजस्वी पुरुष ! जैसे अग्नि ( प्रातःसावे ) प्रातःकाल के अग्निहोत्र आदि धर्म में ( न ) हमारे ( हविः ) भक्षण करने योग्य ( पुरोळाशम् ) मन्त्रों से सम्कारयुक्त अन्न विशेष का सेवन करते हैं वैसे हमका आप ( जुषस्व ) सेवन करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तुतोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि कर्मों में वेदी में स्थापित किया गया अग्नि घृण आदि का सेवन तथा उसको अन्नरिक्त में फेंकाके जनो को मुग देता है वैसे ही प्रत्यक्षधर्म में वे वर्तमान विद्यार्थी जन विद्या और विनय का ग्रहण कर समाज में उनका प्रचार करके मकल जनो को मुख दें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा मा परिष्कृतः । तं जुषस्व यमिष्ठम् ॥२॥**

पदार्थ—हे ( यमिष्ठम् ) अनिशय युवा पुरुषों में चतुर ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण तेजस्वी जन ! जो ( तुभ्यम् ) आपके लिए ( पुरोळा ) वेदविधि से सम्कारयुक्त ( पचत ) पाककर्ता हुआ ( वा ) अथवा ( परिष्कृत ) सब प्रकार शुद्ध किया गया है ( तम् ) उसकी ( घ ) ही ( जुषस्व ) सेवा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे भोजन में प्रीतिकर्ता पुरुष अपने लिए उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त अन्न आदि पदार्थों को मिद्ध और उनका भोजन करके आनन्दयुक्त होता है वैसे ही उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त हवन की सामग्री को प्राप्त होकर अग्नि सम्पूर्ण जनो को आनन्द देता है ॥ २ ॥

**अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअद्ध्यम् ।**

**महंसः सुनुरस्यध्वरे हितः ॥३॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण तेजस्वी पुरुष ! आप अग्नि के तुल्य ( तिरोअद्ध्यम् ) दिन के प्रथम भाग में उत्पन्न या उत्तम ( आहुतम् ) चारों ओर से दिये गये ( पुरोळाशम् ) अनेक प्रकारों के सम्कारों से युक्त अन्न को ( वीहि ) प्राप्त होइए जिसमें आप ( सहस्र ) बल वा बलवान् वायु के ( सुनुर ) पुत्र के तुल्य ( अध्वरे ) दयारूप व्यवहार में सबके हित ( हित ) निरकारी ( अस्ति ) वर्तमान है इस कारण से मत्कार करने योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तुतोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि वायु से उत्पन्न होकर स्वरूपवान् द्रव्य को भस्म करके विभाग करता है। वैसे ही विद्या से पवित्रात्मा

पुरुष अविद्या के व्यवहार को भस्म अर्थात् दूर करके सत्य और असत्य का विभाग करता है ॥ ३ ॥

अब तीन मनुष्य सुखी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**माध्यन्दिने सर्वने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।**

**अग्ने यद्दस्य तव मागधेयं न प्र मिनन्ति विद्वथेषु धीराः ॥४॥**

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) विज्ञान से युक्त ( कवे ) उत्तम बुद्धिमान् ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण तेजयुक्त ! आप ( इह ) इस सप्ताह में जो ( धीराः ) धीमी जन ( यद्दस्य ) श्रेष्ठ ( तव ) आपके ( विद्वथेषु ) विज्ञान वा सग्रामों में ( मागधेयम् ) भाग्य को ( न ) नहीं ( प्र, मिनन्ति ) प्राप्त करते हैं उस शिक्षा से सहित होकर ( माध्यन्दिने ) दिन के मध्य समय के ( सर्वने ) होम आदि कर्म में अग्नि के सद्गुण ( पुरोळाशम् ) उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त अन्न आदि का ( जुषस्व ) सेवन करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य प्रातःकाल तथा दिन के मध्यभाग समय के होमों को करके उत्तम प्रकार छौंके आदि से सस्कारयुक्त नित्य नियमित अन्न का भोजन करते हैं वे ही भाग्यशाली होकर बड़ सुख और निश्चित विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

**अग्ने तृतीये सर्वने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः दन्वाहुतम् ।**

**अथा देवेध्वर विपन्यथा धा रत्नवन्तममृतैषु आगृविम् ॥५॥**

पदार्थ—हे ( कानिष ) कामना करने योग्य ( सहस्र ) बलयुक्त के ( सुनो ) पुत्र ( अग्ने ) बिजुली के सद्गुण बलयुक्त ! आप ( हि ) जैसे ( विपन्यथा ) विशेष करके स्तुतियुक्त प्रशंसा सहित बुद्धि वा क्रिया से ( तृतीये ) तीसरे समय के ( सर्वने ) होम आदि कर्म में ( अथ ) और ( देवेषु ) विद्वान् वा उत्तम गुणों से ( अमृतैषु ) नाशरहित जगदीश्वर आदि पदार्थों में ( आगृविम् ) आगनेवाले ( रत्नवन्तम् ) बहुत रत्नों से विशिष्ट ( आहुतम् ) सब प्रकार स्वीकार किय गये ( अध्वरम् ) सहस्र आदि स्वरूप धर्मयुक्त व्यवहार और ( पुरोळाशम् ) रोग के दूर करनेवाले अन्न को ( धा ) धारण करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जा लोग परमेश्वर आदि पदार्थों का विज्ञान से अहिंसा आदि व्यवहार में वर्तमान नियमपूर्वक भोजन विहारयुक्त होकर ऐश्वर्य की वृद्धि करने की इच्छा करते हैं वे सब प्रकार सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

फिर विद्वान् लोग कैसे वर्तन करते, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**अग्ने वृधान आहुति पुरोळाशं जातवेदः ।**

**जुषस्व तिरोअद्ध्यम् ॥६॥१॥**

पदार्थ—हे ( जातवेद ) सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों में व्यापक ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण तेजस्वी ! जैसे ( वृधान ) बड़ा हुआ अग्नि ( आहुतिम् ) चारों ओर अग्नि में छोड़ गये ( तिरोअद्ध्यम् ) प्रातःकाल किये गये ( पुरोळाशम् ) उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त अन्न आदि का सेवन करने है वेग उस की आप ( जुषस्व ) सेवा करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जैसे बिजुली सब स्थानों में व्याप्त होकर सम्पूर्ण मृत्तिमान् पदार्थों का सेवन करती है वा प्रसिद्ध हृष्ट बढ़ती है वैसे ही विद्यार्थी में व्यापक विद्वान् जन धर्म की सेवा करते हुए वृद्धि का प्राप्त होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पृथक् सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अष्टाईसवाँ सूक्त और इकतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ कोनप्रशस्तस्य षोडशस्य सूक्तस्य विद्वान्मित्र ऋषिः । १ - ४,

६ १६ अग्निः । ५ ऋत्विजः अग्निर्वा देवता, १ निचवृणुष्टुप्;

४ विराडनुष्टुप्, १०, १२ भुरिगनुष्टुप् छन्दः; गान्धारः स्वरः ।

२ भुरिक् पङ्क्ति, १३ स्वराद् पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः

स्वरः । ३, ५, ६ त्रिष्टुप् । ७—९, १६ निचुत्

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ११, १४, १५

जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब तृतीय मण्डल में सोलह ऋचावाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्युत् अग्नि और वायु से विद्वान् लोग किस-किस

कार्य को सिद्ध करते हैं, इस विषय को कहा है—

**अस्तीदमधिमन्यनमस्ति भजनं कृतम् ।**

**एता विश्वत्नीमा मरानि मन्थाम पूर्वथा ॥१॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जो ( इवम् ) यह ( अधिमन्यनम् ) ऊपर के भाग में वर्तमान मथने का वस्तु ( अस्ति ) विद्यमान है और जो ( भजनम् ) प्रकट होना ( कृतम् ) किया ( अस्ति ) है उन दोनों से ( एताम् ) इस ( विश्वत्नीम् ) प्रजाजनों के पास करनेवाली का हम लोग ( पूर्वथा ) प्राचीन जनों के तुल्य ( अस्ति ) विद्युत् को ( मन्थाम ) मन्थन करें और ( आ, भर ) सब ओर से आप लोग ग्रहण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य ऊपर और नीचे के भाग में स्थित मन्त्रों की वस्तुओं के द्वारा विज्ञान से विजृम्भित अग्नि को उत्पन्न करे वे प्रजाओं के पालन करनेवाले सामर्थ्य को प्राप्त होते हैं। जैसे पूर्व काल के कारीगरों ने शिल्पकला से अग्नि आवि सम्बन्धित विद्या की सिद्धि की हो उसी प्रकार से सम्पूर्ण अग्नि इस अग्नि विद्या को ग्रहण करें ॥ १ ॥

किर उक्ती विषय का अगले मन्त्रों में कहा है—

अग्निर्विहितो जातवेदा यमैव सुचितो गमिषाणु ।

दिवेदिष ईदृशो आगुवद्भिर्हविष्यन्निर्मनुष्यैर्मिरिनिः ॥२॥

पदार्थ—अग्नि (हविष्यन्निः) बहुत साधनों के ग्रहण करने तथा (आगुवद्भिः) अविद्या आत्मस्य और निद्रा तन्मया विद्या और पुरुषार्थ आदि को प्राप्त होने और (अग्निर्विहितः) मनन करनेवाले पुरुषों ने (अग्निर्विहितः) ऊपर और नीचे के भाग में वर्तमान साधनों के मध्य में (मिरिनिः) स्थित (गमिषाणु) गर्भवती स्त्रियों में (गर्भहव) जैसे गर्भ रहता है वैसे वर्तमान (दिवेदिष) प्रतिदिन (ईदृशः) लोजने योग्य (जातवेदाः) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण पदार्थों में वर्तमान (अग्नि) अग्नि (सुचितः) उत्तम प्रकार धारण किया उन पुरुषों को भाग्यशाली जानना चाहिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य सृष्टि के क्रम से वर्तमान अग्नि आदि पदार्थों की प्रतिदिन परीक्षा कर करावे तो वे क्यो दारिद्र्य होवें ॥ २ ॥

उत्तानायामव भरा चिकित्वास्तद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।

अरुवस्तुपो कर्षवस्य पात्र इज्यास्त्वुशो वयुनेऽजनिष्ट ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष (चिकित्वा) बुद्धिमान् ! आप (उत्तानायाम्) लीधेयन से सोते हुए मनुष्य के तुल्य वर्तमान भूमि में जो (प्रवीता) बहुत व्याप्त विजृम्भी (वृषणम्) वृष्टिकर्ता सूर्य की (जजान) उत्पन्न करनी है उसको (अव, भर) धारण करो और जो (अरुवस्तुपः) अर्मस्थानों में क्लेशदायको से प्रसादायुक्त (अरुव) इस मन्त्र के (पात्र) बन् के (कर्षव) नाशकारक (इज्या) वाणी के (वुश) पुत्र के सदृश स्थित (वयुने) विज्ञान में (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है उसको (सद्यः) लीधे धारण करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पुत्र को माता के तुल्य अग्निविद्या को धारण करते हैं वे अपना बल बढ़ाकर विज्ञान को उत्पन्न करते हैं और जब नीचे के भाग में अग्नि ऊपर जल स्थित करके वायु से प्रज्वलित करने हैं तब अग्नि और जल द्वारा बहुत से कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३ ॥

इज्यास्त्वा पदे वयं नामा पृथिव्या अग्नि ।

जातवेदो नि धीमह्यग्ने इव्याय वोढ्वहे ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! जैसे (वयम्) हम लोग (इज्याया) पृथिवी के (अग्नि) ऊपर (पदे) प्राप्त होने पर (पृथिव्या) अन्तरिक्ष के (नामा) मध्य में (इव्याय) प्रशंसा करने योग्य (वोढ्वहे) वाहन के लिए (त्वा) उस (जातवेद) धर्मों के उत्पन्नकर्ता (अग्ने) अग्नि को (नि, धीमहि) उत्तम प्रकार धारण कर वैसे ही आप लोग भी धारण करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग इस अग्नि की पृथिवी के ऊपर और अन्तरिक्ष के मध्य में उत्तम प्रकार परीक्षा ले के वाहन आदि चलाने के लिए अग्नि को धारण करते हैं वे धनयुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

मन्यता नरः कविमह्यन्तं प्रचेतसममृतं सुमनीकम् ।

यज्ञस्य केतु प्रथमं पुरस्ताद्भिर्न नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥३२॥

पदार्थ—हे (नर) नायको ! आप लोग (कविम्) तेजस्वी स्वरूपयुक्त (अह्यन्तम्) अपने केवल रूप से रहित के सदृश आचरण करते हुए (प्रचेतसम्) अतिशय प्रकटकर्ता (अमृतम्) अपने स्वरूप से नाशरहित (सुमनीकम्) उत्तम प्रकार विश्वासकर्ता (अमृतम्) अग्नि का (मन्यता) मन्यन करो। हे (नरः) प्रधान पुरुषो ! (यज्ञस्य) अहिंसारूप यज्ञ के (केतुम्) पताका के सदृश जाननेवाले (प्रथमम्) प्रसिद्ध (सुशेवम्) सुन्दर इव्यपात्र के सदृश अग्नि को (पुरस्तात्) प्रथम से उत्पन्न करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य मधकर अग्नि को उत्पन्न करके कार्यों को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥ ५ ॥

यदो मन्यन्ति बाहुमिषि रीचतेऽश्वो न बाज्यश्चो वनेष्वा ।

चिधो न यामंश्चिन्निरनिहृतः परि वृणः चर्यन्स्वृणा दहन् ॥६॥

पदार्थ—जो मनुष्य (बाहुमिषि) बाहुओं से (यमि) वहि अग्नि को (अन्यन्ति) मन्त्रते हैं वो वह (अश्वः) किरणों में (अश्वः) अर्मस्थानों में वर्तमान (बाजी) वेगयुक्त (अश्वः) उत्तम घोड़े के (न) सदृश (चि आ, रोचते) विशेष भाव से प्रकाशित होता है (चिधो) सूर्य चर्या के मध्य में (अनिहृतः) निरन्तर प्राप्त (यामः) रात्रि में (चिधः) अदभुत के (न) तुल्य (वृणा) वास विशेषों की (वहन्) धरम करता हुआ (अन्यन्तः) पत्थर वा मेष का (चि) सब प्रकार (अन्यन्ति) खेदव करता है उसको इस प्रकार सब लोग प्रकट करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिसमें से बलयुक्त हुआ अग्नि काष्ठ आदि को जलता और ओढ़ के तुल्य वेगवान् होता हुआ अदभुत कार्यों को सिद्ध करता है, यह जानना चाहिए ॥ ६ ॥

जातो अग्नी रीचते चिकित्वास्तद्यः कविशस्तः सुदानुः ।

यं देवास ईदृशं विश्वविदं इव्यवाहयदधुरध्वरेषु ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (देवातः) विद्वान् लोग (अध्वरेषु) मेल करने रूप व्यवहारों में (यम्) जिस (इव्यम्) स्तुति करने योग्य (विश्वविदम्) सम्पूर्ण वस्तुओं के माता (इव्यवाहम्) हवन करने योग्य पदार्थों के धारणकर्ता अग्नि को (अध्वः) धारण करें वह (चिकित्वातः) उत्तम कार्यों का जताने (सुदानुः) उत्तम प्रकार देनेवाला और (कविशस्तः) उत्तम पुरुषों से प्रशंसित हुए (विश्वः) बुद्धिमान् के सदृश (जातः) प्रकटना को प्राप्त (बाजी) वेगयुक्त (अग्निः) अग्नि (रीचते) प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विजृम्भी सम्बन्धी विद्या को सिद्ध करें तो यह विद्या यथार्थवत्ता विद्वान् पुरुष के तुल्य सत्य और योग्य कार्यों को सिद्ध करें ॥ ७ ॥

सीदं होतः स्व उ लोके चिकित्वास्तद्यः यज्ञं सुकृतस्य योनीं ।

देवावादेवान् विषां यज्यास्यन्ते बृहद्यजमाने वयो धाः ॥८॥

पदार्थ—हे (होतः) मूल देनेवाले (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष ! आप (स्व) अपने (लोके) दर्शन में (सीद) वर्तमान हो (चिकित्वा) ज्ञान-युक्त होकर (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (योनी) कारण वा स्थान में (यजम्) धर्मसम्बन्धी व्यवहार को (साद्य) स्थित करो (देवावी) विद्वानों की रक्षाकर्ता (हविषा) दान में (देवान्) उत्तम गुण वा विद्वान् पुरुषों की (यजाति) यज्ञ करे वा स्वीकार करे (उ) यह तर्क है कि (यजमाने) योग्य धर्मसम्बन्धी व्यवहार के कर्ता पुरुष में (बृहत्) बड़े (वयः) जीवन वा धर्म आदि को (धा) धारण करे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जैसे अग्निहोत्र आदि वा शिल्प आदि मङ्गल के योग्य व्यवहार में संयुक्त किया गया अग्नि उत्तम गुणों को प्रकट करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष का चाहिए कि धर्मसम्बन्धी कर्मों से युक्त करके उत्तम सुखों को संसार में फैलावे ॥ ८ ॥

कुणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्येवन्त इतन वाजमच्छ ।

अयमग्निः पृतनापाद् सुवीरो येन देवास्तो असहन्त दस्युन ।६॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (असहन्त) उत्साह से पूरित (सखाय) मित्र हुए (वृषणम्) जल से अच्छे प्रकार सींचे गये (धूमम्) भाप को (कुणोत) करो (वाजम्) अन्न वेग और विज्ञान आदि को (अच्छ) उत्तम प्रकार (इतन) प्राप्त होओ तो (अयम्) यह (अग्नि) विजृम्भी के सदृश तेजस्वी (पृतनापाद्) सेनाओं के सहित वर्तमान (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरों से युक्त और (येन) जिस पुरुष के साथ (देवातः) विद्वान् वा धूर लोग (दस्युन्) अति दुष्ट कर्म करनेवाले जनों को (असहन्त) सहते हैं उसको प्राप्त होइये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् जनो ! काष्ठ अग्नि और जल के संयोग से उत्पन्न हुए धूम से अनेक कार्यों को परस्पर मित्रभाव के साथ सिद्ध करो जैसे धर्मपूर्वक वर्तन रखने वाले विद्यायुक्त धूर्वीर पुरुष दुष्टकर्मकारियों का नाश करके राजा होते हैं वैसे ही यह अग्नि उत्तम प्रकार मन्त्र आदि से युक्त किया गया दारिद्र्य आदि को नाश करके अनगिनती धन को उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥

अयं ते योनिर्कृतिवयो यतो जातो अरोचयाः ।

तं जानम्य आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥१०॥३३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! जो (ते) आपका (अयम्) यह अग्नि आदि पदार्थ विद्या के ज्ञान का आधार (कृतिवयः) समयों के योग्य (योनि) सुख का घर है (यत्) जहाँ से (जातः) प्रकट हुआ (अरोचयाः) प्रकाशित हो (तम्) उसको (जानम्) जानते हुए यहाँ (अ, सीद) स्थिर होइये और (अव) इसके अनन्तर (न) हम लोगों की (गिरः) विद्या और उत्तम शिष्यायुक्त वाणियों की (वर्धय) उन्नति कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जिस जिस कर्म से शरीर आत्मा और ऐश्वर्यों की वृद्धि हो, वह वह कर्म सब काल में करें ॥ १० ॥

तन्नृणादुच्यते गर्भे आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।

मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सगो अभवत्सरीमणि ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (तन्नृणात्) सर्वत्र व्यापक (उच्यते) कहा जाता है (आसुरः) प्रकटरूप से रहित वायु से उत्पन्न (गर्भः) मध्य में वर्तमान (नराशंसः) मनुष्यों से प्रशंसित (भवति) होता है (मातरिश्वा) वायु में स्वास लेनेवाला (विजायते) विशेषभावसे उत्पन्न होता है और (यत्) जो (वातस्य) वायु सम्बन्धी (मातरि) आकाश में (सर्पः) उत्पत्ति (अमिमीत) रही जाती है (सरीमणि) गगनरूप व्यवहार में (अभवत्) होवें वह अग्नि सम्पूर्ण जगत् से जानने योग्य है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य वायु और अग्नि से कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सुखों से संयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

**सुनिर्मथा निर्बन्धितः सुनिधा निहितः कविः ।**

**अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवपते यज ॥१२॥**

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सद्गुण तेजस्वी विद्वान् पुरुष । जैसे (सुनिर्मथा) सुन्दर मधने के वस्तु से (निर्बन्धितः) अत्यन्त मधा (सुनिधाः) उत्तम माधार वस्तु में (निहितः) धरा गया (कवि) और सर्वत्र दीप्त पड़नेवाला अग्नि बहुत से काव्यों को सिद्ध करता है वैसे ही (स्वध्वरा) उत्तम अहिंसा आदि कर्मों से युक्त (देवान्) उत्तम गुणों को (कृणु) धारण करो और इन (देवपते) उत्तम गुणों की कामना करते हुए पुरुष के लिए उन गुणों को (यज) दीजिए ॥१२॥

भाषार्थ—जैसे विद्या में गूँचे हुए कलायन्त्रों में रक्खा गया अग्नि अत्यन्त मधने और धिमने में वेग आदि गुणों को उत्पन्न कर बहुत से काव्यों को सिद्ध करता है वैसे ही उत्तम कर्मों का करके श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥

**अजीजनममृतं मर्त्योऽस्येमाणं तरणिं वीजुजम्भम् ।**

**दश स्वसारो अग्रवः समीचीः पुमोसं जातमभि सं रमन्ते ॥१३॥**

पदार्थ—जैसे (अमृत) आगे चलनेवाली (समीची) उत्तम प्रकार मिली हुई (दश) दश मरुता परिमित (स्वसार) बहिनो के समान वर्तमान अगुलिया (जातम्) प्रसिद्ध (पुमोसम्) पुरुषार्थ से युक्त मनुष्य को (अभि) सम्मुख (सम्) उत्तम प्रकार (रमन्ते) प्रवृत्त करती है वैसे (मर्त्यसि) मनुष्य (वीजुजम्भम्) मुख के सद्गुण उवाला से शोभित (तरणिम्) भोगों से घट्टन द्वारा इष्ट स्थान में पहुँचाने वाला (अज्जनामम्) नाश रहित (अमृतम्) नित्य अग्नि का (अजीजनम्) उत्पन्न करते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमानाङ्कार है । जैसे हाथों की अगुलिया परस्पर मिली हुई शरीरधारी मनुष्य को काव्यों में प्रवृत्त करती हैं वैसे ही विद्वान् पुरुष अग्नि को क्रिया में लगाने अर्थात् उसके द्वारा काव्यों सिद्ध करते हैं ॥१३॥

**प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशौचदूर्धनि ।**

**न नि मिषति सुगुणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सप्तहोता) मान प्राणों से ग्रहण करने योग्य अग्नि (सनकात्) अनादि परम्परा से मित्र कारण से उत्पन्न हुआ (मातु) वायु के (उपस्थे) समीप में (प्रारोचत) प्रकाशित होता है (यत्) जो (ऊर्धनि) रात्रि में (अशौचत्) प्रकाशित होता है और जो (सुरस्य) श्रेष्ठ युद्ध का साधन (दिवेदिवे) प्रतिदिन (न, नि) अत्यन्त (मिषति) नहीं मीचता है (यत्) जो (असुरस्य) रूप से रहित वायु के (जठरात्) मध्य में (अजायत) उत्पन्न होता है उसको अच्छे प्रकार जानो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो अग्नि अन्न आदि को शुष्क करनेवाला वायु रूप कारण से प्रसिद्ध प्रकृति नाशक कारण से उत्पन्न हुआ है उस को जानकर बहुत से व्यवहारों को सकल जन प्रसिद्ध करें ॥ १४ ॥

**अग्नित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा अग्रगो विश्वमिहिरः ।**

**धृन्वद्वृत्रं कुशिकास एरिर एकंको दमं अग्नि समीधिरे ॥१५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मरुतामिव) मनुष्यों के सद्गुण (अग्नित्रायुधः) शत्रुओं के ऊपर शस्त्र चलाने (प्रयाः) शीघ्र चलनेवाले (प्रथमजाः) प्रथम कारण से उत्पन्न (कुशिकास) उच्च पदवी को प्राप्त (एकंको) प्रत्येक घन (दमे) गृह में (अग्निम्) अग्नि को (सम्) (इधिर) प्रज्वलित करें और जो (वृत्रजः) परमात्मा के (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् को (विधुः) जानते हैं वे (इत्) ही (धृन्वत्) उत्तम यशयुक्त (वृत्र) बहुत घन को (आ, इरिर) प्राप्त होते हैं ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जैसे पवन सम्पूर्ण स्थानों में प्रवृत्तता से प्राप्त होने अग्नि आदि पदार्थों को प्रज्वलित करने और ससार में व्यापक होने वाले सम्पूर्ण जीवों के प्राणों की रक्षा करके आनन्द देते हैं वैसे ही अग्नि आदि पदार्थों की विद्यायुक्त पुरुष सम्पूर्ण जनो के लिए आनन्द देते हैं ॥ १५ ॥

अब किन पुरुषों को निश्चय ऐश्वर्य प्राप्त होता, इस विषयों को उनके मन्त्र में कहा है—

**यद्य स्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतृविकित्वोऽहणीमहीः ।**

**ध्रुवमयाध्रुव मुताशमिहाः प्रजानन्विहो उप याहि सोमम् ॥१६॥१७॥**

पदार्थ—हे (विकित्वः) विज्ञानयुक्त (होतृ) साधन या मुख्य कारण उपसाधन अर्थात् सहायि कारणों के ग्रहणकर्ता । (यत्) जो हम लोग (अह) हम समय (अस्मिन्) इस (प्रयति) प्रयत्न से मित्र और (यज्ञे) ऐकमत्य होने योग्य व्यवहार में जिन (स्वा) आपको (अहणीमहि) स्वीकार करे वह आप (इह) इस समार में (ध्रुवम्) दृढ़ स्थिर (अशमिहा) शान्ति करो (उत्) और भी (प्रजानन्) विज्ञानयुक्त हुए (ध्रुवम्) निश्चय धर्म को (अवा) मज्जत कीजिये (विहो) विद्वान् पुरुष आप (सोमम्) ऐश्वर्य को (उप, याहि) प्राप्त होइये ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो लोग इस ससार में प्रयत्न में सृष्टि के पदार्थों के विद्या-क्रम का जानते हैं वे निरन्तर उन पदार्थों से उपकार ग्रहण कर सकते हैं, उनके निश्चय में ऐश्वर्य होता है ॥१६॥

इस सूक्त में अग्नि वायु और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने में इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ मज्जति जाननी चाहिए ॥

यह उनतोसर्वा सूक्त द्वितीय अनुवाक और चौतीसवा वर्ग समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीपरमविद्वत्स विरजानम्बरस्वतोस्वाभिनां

शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमह्यानम्बरस्वतोस्वाभिना निमिते

आर्यभाषाविभूषिते सुप्रमाणयुक्त आग्नेयभाष्ये

तृतीयाष्टकस्य प्रथमाध्यायः समाप्तः ॥



**अथ तृतीयाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः ॥**

**विश्वान देव सवितुर्दितानि परां सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥**

अथ द्वाविंशत्तस्य त्रिंशत्तस्य सूक्तस्य त्रिंशत्तस्य आग्नेयः । इन्द्रो वेत्ता । १, २,

६—११, १४, १७, २० तिष्ठतिष्ठदुष्टम् । ५, ६, ८, १३, १६,

२१, २२ त्रिष्ठुप् । १२, १५ विराट् त्रिष्ठुप् छन्दः ।

वैजयन्तः स्वरः । ३, ४, ७, १६, १८ सुरिक् पङ्क्ति-

छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ तृतीयाष्टक के द्वितीय अध्याय और तीसरे मण्डल में बाईस आवा वाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहले मन्त्र से विद्वान् के कर्तव्य का उपदेश करते हैं—

**इच्छन्ति स्वा सोम्यामः सवायः सुन्वन्ति सोमं दर्पति मयांसि ।**

**तितिसन्ते अभिशंसि जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१॥**

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के दाता । जो (सोम्यामः) परस्पर स्नेह रम के बर्द्धक (सवायः) मित्रभाव से वर्तमान (स्वा) आपकी (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं वे (सोमम्) परम ऐश्वर्य को (सुन्वन्ति) सिद्ध करते (प्रयति) कामना करने योग्य वस्तुओं को (वसि) धारण करने और (जनाम्) मनुष्य लोगों की (अभिशंसि) चारों ओर से हिंसा को (आ) (तितिसन्ते) सहते हैं (हि) जिससे (स्वत्) आप से धन्य (कः) (चन) कोई भी पुरुष (प्रकेतः) उत्तम बुद्धिवाला नहीं है इससे इन मनुष्यों की सर्वदा रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो लोग परस्पर मित्रभाव से वर्तमान करते हुए प्रयत्न के साथ ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं वे मुख दुःख निम्बा आदि को सह और विद्वानों का सङ्ग करके आनन्द का बर्द्धक ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**न तं दूरे परमा चित्रजास्या तु प्र याहि हरिषो हरिष्याम् ।**

**स्थिराय वृष्णे सर्वना कृतेमा युक्ता प्रावाणः समिधानि यज्ञे ॥२॥**



**पदार्थः**—हे ( इन्द्रः ) जलन कोटों के बाह्यो से युक्त । आप ( इन्द्रियात् ) मोक्षों से ( अ ) ( आ, बाहिः ) बाह्ये ऐसा करने से ( वरणा ) उत्तम ( रक्षाति ) मोक्षों के स्वयं ( से ) आपके ( हरे ) दूर ( न ) नहीं होने जो ( समिधाने ) जलन करने योग्य प्रदीप्त किये जाते हुए ( अग्नी ) अग्नि में ( स्थिराय ) दृढ़ ( बुद्धे ) बलवान के लिए ( इतर ) किये गए ( इतर ) इन ( सत्ता ) ऐश्वर्य-युद्ध के साधक कर्मों को करो ( तु ) तो ( युक्ता ) उचित ( आधानः ) मेघ ( चित् ) नीं बहुत से होवें ॥ २ ॥

**भाषार्थः**—मनुष्य यदि क्षीय चलने वाले घोड़ी से वेलांतर जाने की इच्छा करें तो सब सजीव ही है । यदि नियम से अग्नि को प्रवर्धित कर उस में होम करें तो वर्षा होना सुगम ही जाती ॥ २ ॥

**इन्द्रः सुविमो मधवा तवसो महाप्रातस्तुविर्कर्मिर्कयावान् ।**

**यदुजो वा वाधितो मर्त्येषु कः स्या तं वृषम वीर्याणि ॥३॥**

**पदार्थः**—हे ( वृषभ ) बलिष्ठ ! ( मर्त्येषु ) मनुष्यों में ( वाधितः ) पीड़ित ( वृषः ) तेजस्वी स्वभाव से युक्त ( यत् ) जो दृढ़ दूर करनेवाले हैं उनको ( वाः ) धारण करो ( ते ) आपके ( स्या ) वे ( वीर्याणि ) वीर पुरुषों में हुए योग्य बल ( वयः ) किसमें हैं इस प्रकार ( सुविमः ) सुन्दर ठोड़ी धीर नासिकायुक्त ( मधवा ) अत्यन्त श्रेष्ठ धनसे युक्त ( तवसः ) बुद्धों से छुड़ाने वाला ( महाप्रातः ) सत्य आदि कर्तों में अद्भुत पुरुषों का मित्र ( सुविर्कर्मिः ) बहुत प्रकार के कर्मों के आरम्भ में उत्साही ( महाप्रातः ) शत्रुओं के नाशकर्ता बहुत से शूरवीरों के सहित वर्तमान ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त आप हों ॥ ३ ॥

**भाषार्थः**—जब मनुष्य के अनेक प्रकार की पीड़ाएँ प्रकट हो तब बहुत से उपायों को युक्त करे, इस प्रकार पुरुषार्थ से विघ्नो को दूर करके शोभा और वन निरन्तर बढ़ाने योग्य हैं ॥ ३ ॥

**त्वं हि प्या व्यावयवक्युतान्येको ह्यत्र चरसि जिघ्रमानः ।**

**तव पावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमित्तेव तस्युः ॥४॥**

**पदार्थः**—हे राजन् ! ( त्वत् ) आप ( एकः ) सहाय के बिना स्वयं बलवान् ( हि ) जिससे ( व्यावयविक ) प्रबल शत्रुओं की सेनाओं को ( व्यावयविक ) भय से गिराने हुए ( स्य ) ही वर्तमान हैं जैसे सूर्य के सम्बन्ध में ( व्यावयविक ) प्रकाश और भूमि ( पर्वतासः ) पर्वत के सदृश बड़े बड़े मेघ और ( व्रता ) मेघों के टुकड़े रूप बहल ( निमित्तेव ) जैसे निरन्तर प्रमाण किये हुए पदार्थ वैसे ( तस्युः ) स्थिर होते हैं वैसे ही ( अनु ) ( व्रताय ) सत्यभाषाण आदि कर्म वा उत्तम स्वभाव के लिए शत्रुओं का ( जिघ्रमानः ) नाशकर्ता होओ तो ( ते ) आपका निश्चय से विजय होवे ॥ ४ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य नियमपूर्वक वर्तमान होके निवारण करने योग्य पदार्थों का निवारण करके रक्षा करने योग्य पदार्थों की रक्षा करता है वैसे ही आप वर्जने योग्य शत्रुओं का वर्जन करके प्रजाओं की निरन्तर रक्षा कीजिए ॥ ४ ॥

**उतामये पुरुहूत अवीरिरेको दृढहृमदो वृत्रहा सन् ।**

**इमे चिदिन्द्र रोदसो अपारे यत्संस्पृग्णा मधवन्काशिरितै ॥५॥१॥**

**पदार्थः**—हे ( पुरुहूत ) बहुत जनो से प्रशंसित ( मधवत् ) बहुत धन से युक्त ( इन्द्र ) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान । आप ( एकः ) बिना सहाय स्वयं बलवान् ( सन् ) हुए ( अवीरिः ) भय से रहित व्यवहार में ( अवीरिः ) अनेक प्रकार के सुमने योग्य बचनों के सहित ( दृढहृत् ) निश्चय ( अवीरः ) बोलें ( उत् ) और भी जैसे ( वृत्रहा ) सूर्य ( चित् ) भी ( इमे ) इन ( अपारे ) अवधि रहित ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्राप्त होता है वैसे होकर ( यत् ) जो ( ते ) आपके ( काशिः ) न्याय विनय आदि उत्तम गुणोंका प्रकाश है उसको ( इत् ) ही ( संपृग्णाः ) ग्रहण करे ॥ ५ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा के पुरुषों को चाहिए कि अनेक प्रकार के उपायों से प्रजाओं में उपद्रवों से भय का नाश और सूर्य के तुल्य न्यायविद्या का प्रकाश करें ॥ ५ ॥

**प्र सृ त इन्द्र प्रवता हरिम्णा प्र ते वज्रः प्रमुषकेतु शत्रून् ।**

**अहि मंतीषी अनुचः पराचो विरव सत्यं कणुहि विष्टमस्तु ॥६॥**

**पदार्थः**—हे ( इन्द्र ) सूर्य के सदृश प्रकाशमान । ( हरिम्णात् ) उत्तम प्रकार शिवायुक्त घोड़ी से युक्त रथ में ( प्रवता ) उत्तम मार्ग से आप जैसे ( वज्रः ) किरणों के सदृश शस्त्रों का समूह और ( अनुचः ) दुष्ट कर्म करने वालों को ( प्रमुषत् ) अत्यन्त नाश करते हुए ( प्र, एतु ) प्राप्त हुआये इस प्रकार ( ते ) आपका विजय होता है आप ( मंतीषः ) पीछे वर्तमान ( अनुचः ) और कण्ट से अनुकूल प्रतीति ( पराचः ) दूर स्थल में विराजमान शत्रुओं की ( प्र, अहि ) हिंसा करो तथा ( विरवः ) सम्पूर्ण ( सत्यम् ) सत्य को ( कणुहि ) अच्छे प्रकार बड़ाओ जिससे वह ( विष्टम् ) व्याप्त ( अस्तु ) हो ॥ ६ ॥

**भाषार्थः**—जो मनुष्य दुष्ट आचारण करनेवाले मनुष्य आदि प्राणियों का निवारण करके सत्य का प्रचार करें वे सुख से आनन्द भोगते हैं ॥ ६ ॥

**यस्यै धातुरदका मर्त्यायामकं चिद्वजते नेहः सः ।**

**मद्रा त इन्द्र सुमरिधुतावी सहायाना पुरुहूत रातिः ॥७॥**

**पदार्थः**—( धातुः ) सुख के दाता आप ( यस्यै ) जिस ( मर्त्याय ) मनुष्य के लिए ( अदका ) विनाश में रहित ( नेहम् ) गृह गृह में उत्पन्न हुए धन की ( मद्रा ) सेवा करते हैं जिसके लिए ( धातुः ) उत्तम पदार्थों के धारण-कर्ता ( चिद्वजः ) भी आप सुख को ( अवधाः ) धारण करे उन ( ते ) धातुकी जो ( धातुकी ) सुख देनेवाली राति के सदृश ( मद्रा ) कल्याण करनेवाली ( सुमरिः ) उत्तम बुद्धि और ( सहायाना ) अनगिनती दान जिसमें दिये जाते हो ऐसी ( रातिः ) दान सम्बन्धिनी क्रिया है उसको ( सः ) वह स्वीकार करे ॥ ७ ॥

**भाषार्थः**—जो मनुष्य पिता और पितामह का धन आदि जो कि नहीं बड़ा हुआ उसकी रक्षा वा सेवा करें और परस्पर दोषों को त्याग के गुणों का ग्रहण कर वे कल्याण के भागी हों ॥ ७ ॥

**सहदानं पुरुहूत सियन्तमहस्तमिन्द्र स पिणवकुणावम् ।**

**अभि ह्यत्र वर्धमानं पियास्मपादमिन्द्र तवसा जयन्थ ॥८॥**

**पदार्थः**—हे ( पुरुहूत ) बहुत जनो से प्रशंसित अर्थात् यश को प्राप्त ( इन्द्र ) सूर्य के सदृश तेजस्वी । जैसे ( सहदानम् ) दान से युक्त ( सियन्तम् ) रहते हुए ( अहस्तम् ) अविश्राम ( कुणावम् ) शब्द करते और ( चर्चमानम् ) बढ़ते हुए ( पियावम् ) पिये गये ( अवावम् ) पावों से हीन ( वृषम् ) मेघों ( अभि ) सम्पूर्ण पीसता है वैसे शत्रुओं का आप ( सन्, पिणक् ) नाश करो और ( इन्द्र ) हे दुष्टों को विदीर्ण करनेवाले । आप ( तवसा ) बल से दुष्ट पुरुषों का ( जयन्थ ) नाश करें ॥ ८ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य मेघों के आकर्षण और बध्नि से सम्पूर्ण जगत् को पालना है वैसे ही दुष्टों के नाश करने और श्रेष्ठ पुरुषों के धारण करने से राजा को सम्पूर्ण प्रजाओं की पालना करनी चाहिए ॥ ८ ॥

**नि सामनामिधिरामिन्द्र भूमि महीमपारां सद्ने ससत्थ ।**

**अस्तम्नाद् धां ह्यभो अन्तरिक्षमर्षन्वापस्त्वयेह प्रभुताः ॥९॥**

**पदार्थः**—हे ( इन्द्र ) सूर्य के तुल्य प्रकाश से युक्त राजन् । आप जैसे ( वृषभ ) वृष्टिकर्ता सूर्य ( धाव् ) अन्तरिक्ष का ( अस्तम्नात् ) पुष्टता से धारण करता है वैसे ( सामनाम् ) उत्तम उपमाओं से युक्त ( इधिराम् ) बहुत पदार्थों की प्राप्ति करानेवाली ( जहीम् ) बड़े परिमाण से युक्त ( अपारम् ) जिसका पार नहीं ( भूमिम् ) जिसमें बहुत पदार्थ होते हैं उस भूमि को प्राप्त होकर ( इह ) इस ( सत्ने ) स्थान में ( नि, सत्त्व ) बैठो ( त्वया ) आपसे ( प्रभुताः ) प्रेरित हुए ( आपः ) जल ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को ( अर्षन्तु ) प्राप्त हों ॥ ९ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य नियमपूर्वक प्रकाश और भूमि को धारण करता है वैसे ही न्याय से राजा राज्य को धारण करे और सब काल में प्रजाओं में ही बल बढ़ाया करे ॥ ९ ॥

**अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।**

**सुगान्वयो अकुणोभिरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूत धमन्तीः ॥१०॥१॥**

**पदार्थः**—हे ( इन्द्र ) श्रेष्ठ ऐश्वर्य के दाता । ( अलातृणः ) सम्पूर्ण सत्कार के प्रलयकर्ता ( वलः ) बलयुक्त ( व्रजः ) चलनेवाले ( भयमानः ) भय को प्राप्त होते हुए आप ( सुगान् ) सुख से जिनमें मनुष्य आदि चर्ने ऐसे ( वयः ) मार्गों को ( वि, आर ) विशेष कर के प्राप्त होइये । जो ( पुरा ) प्रथम ( गो ) पृथिवी का ( हन्तोः ) नाश करने को ( अकुणोत् ) क्रिया करे वा जो ( पुरुहूतम् ) बहुतों से प्रशसायुक्त ( धमन्तीः ) शब्द करती हुई ( वाणीः ) उत्तम प्रकार शिवायुक्त ( गाः ) चलनेवाली वाणी ( प्र, आवाव् ) अनिश्चय रक्षा करती है उसको और उनको ( विरजे ) अत्यन्त चलने के लिए विशेष करके प्राप्त होइये ॥ १० ॥

**भाषार्थः**—मनुष्यों को चाहिए कि सदा ही धर्म के आचरण से उनके धर्म में प्रवृत्त हो और बुरे व्यक्तियों को त्याग के धर्मयुक्त मार्ग से चले ॥ १० ॥

**एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पमौ पृथिवीमुत द्याम् ।**

**उतान्तरिक्षादमि नः समीक इषी रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११॥**

**पदार्थः**—हे ( शूर ) दुष्टजनों के नाशकारक । जैसे ( एकः ) सहाय रहित अकिल्ली ( रथीः ) प्रशसनीय रथरूप वाहनके सहित ( इन्द्रः ) विजुली ( द्वे ) दो ( समीची ) नमानता को प्राप्त ( वसुमती ) बहुत धनो से युक्त ( पृथिवीम् ) अन्तरिक्ष वा भूमि को ( उत ) और भी ( द्याम् ) प्रकाश को ( आ ) ( पमौ ) पूर्ण करती ( समीक ) समीप में ( अन्तरिक्षात् ) मध्य में वर्तमान अवकाश से ( सयुजः ) तुल्यता के साथ परस्पर मिले हुए मित्र जन ( नः ) हम लोगों के लिए ( इषः ) इच्छाओं को ( उत ) और ( वाजान् ) धन आदि वस्तुओं को ( अभि ) सब ओर से पूर्ण करने से सम्पूर्ण जनो में सत्कार करने योग्य हैं ॥ ११ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो भूमि के सदृश प्रजाओं के धारण करने और विजुली के सदृश अति उत्तम ऐश्वर्य के देनेवाले प्रजाजन हो वे सम्पूर्ण राज्य की रक्षा कर सकें ॥ ११ ॥

**दिशः सूर्यो न भिनाति यदिष्टा विदेदिवे इयैश्वर्यताः ।**

**सं यदानकञ्चन आदिदधिमोचनं कणुते तत्त्वस्य ॥१२॥**

पदार्थ—जो (सूर्यः) सूर्य के (न) तुल्य (विशेष) प्रतिदिन (हृदयप्रसूताः) हरणशील किरणों वाले से उत्पन्न (प्रविष्टा) सूचना से दिखाई गई (विशः) दिशाओं को (निर्मासि) अलग अलग करना है (मात्) अनन्तर (यत्) जो (अर्थः) छोड़ो से (अप्यन) भागों का (सम्) (आनन्द) व्याप्त होता तथा (विनीचनम्) त्याग (हृदयते) करना है (तत्, इत्) वही (तु) तो (अस्म) इसका भूषण है ऐसा जानना चाहिए ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है। जो पुरुष अविद्या दुष्ट संस्कार और दुःखों को त्याग के जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है वैसे अन्धाय को दूर करके सम्पूर्ण दिशाओं में यश को फैलाते हैं यही इनका कर्तव्य कर्म है ॥ १२ ॥

दिदक्षन्त उषसो यामसक्तो विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।

विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुषि ॥१३॥

पदार्थ—(यत्) जो (विश्वे) सम्पूर्ण मनुष्य (विवस्वत्या) सूर्य मण्डल के निमित्त व्यवहारवाली (उषसः) प्रभात केलाओं का (अक्तो) रात्रि के (यामन्) मार्ग में (चित्रमने) देखने की इच्छा करते हैं (महिना) महिमा से (महि) बड़ी (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) सेना को (जानन्ति) जानते हैं (इन्द्रस्य) बिजुली के (पुरुषि) बहुत (सुकृता) उत्तम प्रकार किये गये (कर्म) कर्मों को देखने की इच्छा करते हैं उनका जा (आ, अगात्) प्राप्त हो वह सुखी होवे ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो परीक्षक लोग प्रातःकाल उठके प्रयत्न से व्यवहारों को निड करने हैं वे इस समार में ज्ञान विशेष से प्रतिष्ठा को प्राप्त और मन से युक्त होते हैं ॥ १३ ॥

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्व चंगति बिभ्रन्ती गौ ।

चिरधं स्वाद्य सम्भृतमुत्तिष्यायां यत्सीमिन्द्रो अर्द्धाङ्गो जनाय ॥१४॥

पदार्थ—(यत्) जो (गौ) चलनेवाली (वक्षणासु) बहती हुई नदियाँ में (आमा) कच्चे वा (पक्वम्) पके हुए को (चिभ्रन्ती) धारण करती हुई (चरति) चलती है जो इस समार में (महि) बड़ा (निहितम्) स्थित (ज्योति) तज वा (उज्ज्वलाया) पृथिवी में (विश्वम्) सम्पूर्ण (स्वाद्य) अनिस्वाद वाले (सम्भृतम्) उत्तम प्रकार, धारण वा पावण किये हुए पदार्थ को प्राप्त होती है वह (इन्द्र) बिजुली (भोजनाय) पालन वा भोजन के लिए सबको (सीम्) सब ओर में (अर्द्धात्) धारण करती है यह सब जना को जानना चाहिए ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जा बिजुली भूमि जल वायु और अन्तर्गन्ध तथा उनके विकारा और पदार्थों में व्यापक हो और सबका धारण कर पालन करती है उसकी दिशा को सब लोग धारण वा स्वीकार करें ॥ १४ ॥

इन्द्र इव यामकोशा अभूवन्पञ्चायं शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।

दुर्मायवो दुरेवा मर्त्योसो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वांसः ॥१५॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य के दाता ! जो (यामकोशा) मार्गों के रोबने वाले (अभूवन्) होने हैं उन (सखिभ्यः) मित्रा तथा (यत्नाय) सज्जन जगत् विशेष ज्ञान और (गृणते) स्तुति करनेवाले के अर्थ आप (शिक्ष) विद्या दान कीजिए जा (दुर्मायव) बुरे प्रकार फेंकने वा (दुरेवा) दुष्ट कर्म का पहुँचाने वाले (हन्त्वांसः) मारने के योग्य (निषङ्गिण) बहुत विशेष शस्त्रों वाले (रिपवः) शत्रु (मर्त्योसः) मनुष्य हो उनका नाश करके (इन्द्र) बहिए ॥ १५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सर्वदा सब प्रकार थोड़े पुरुषों की रक्षा विद्या और शिक्षा का दान और दुष्ट आचरणवालों का नाश करके सदैव बहें ॥ १५ ॥

सं घोषः शृण्वेऽवमैरिमित्रैर्जही न्येष्वर्शानि तपिष्ठाम् ।

हृद्वेमघस्ताद्वि रंजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्नन्धयस्व ॥१६॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुत शत्रु से युक्त ! मैं (अवमैर) नीच (अमित्रै) शत्रुओं जो (घोष) घोर वाणी उमको (सम्) बहुत (शृण्वे) सुनना है इससे उनको आप (जहि) मारिये और (एषु) इन शत्रुओं में (तपिष्ठाम्) अतिशय तपने हुए (अवमिम्) वज्र का फेंक के इनको (नि, वृष) उत्तम प्रकार बिनाश कीजिए और इनको (अवस्तात्) नीचे गिराके (ईम्) निरन्तर (वि) (रंज) रोगग्रस्त कीजिए और दुःख को (सहस्व) सहिये (रक्ष) दुष्ट स्वभाववाले प्राणी का (जहि) नाश कीजिए और पापी लोगों का (हन्धयस्व) ताड़िये ॥ १६ ॥

भाषार्थ—हे वीर पुरुषों ! जो वाणी शत्रुओं से उच्छ्वाश की जाय उसका सुन उनके सम्मुख जा और उनके ऊपर शस्त्रों का प्रहार करके उन्हें छिन्न भिन्न करो, हमसे ऐश्वर्य वाले होओ ॥ १६ ॥

उद्धृद रक्षः सहमूलमिन्द्र हृश्वा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।

आ कीवतः सल्लूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषि हेतिमस्य ॥१७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाशकर्ता ! आप (उत्) उत्तमता के साथ (हृद) सुख वृद्धि करो (सहमूलम्) जड़महिन (रक्ष) बुरे आचार का (वृष) तोड़ो (अस्य) इसके ऊपर (तपुषिम्) प्रतापयुक्त (हेतिम्) वज्र को फेंक के इसके (अस्यम्) मध्य में उत्पन्न हुए और (अप्यु) अप्रभाग के (प्रति)

प्रति (शृणीहि) नाश करो तथा (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्म परमात्मा का वैद के लिए वर्तमान (सल्लूकम्) अच्छी तरह लोभी (कीवतः) कितनी को (आ) (अकर्ण) सब प्रकार काटो ॥ १७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि कभी भी भाषिक पुरुषों के ऊपर शस्त्रों का प्रहार न करें और दुष्ट पुरुषों को शस्त्रों से मारे बिना न छोड़ें, ऐसा करने से सब प्रकार सुख की वृद्धि होवे ॥ १७ ॥

स्वस्तये वाजिमिश्र प्रणेताः सं यन्महोरि आसत्सि पूर्वीः ।

रायो वन्तारो बृहत् स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८॥

पदार्थ—हे (प्रणेता) सत्य और अमत्य के निश्चयकारक (इन्द्र) 'अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! (यत्) जो आप (वाजिमि) घोड़ों के सदृश वेगयुक्त अग्नि आदि पशुओं तथा और साधनों से (पूर्वीः) पूर्व जनों से प्राप्त (महीः) बड़ी (इषः) इच्छाओं से (सम्) (आसत्सि) सब प्रकार वर्तमान हैं (जो) (बृहत्) बड़े (वन्तार) विभाग करनेवाले (राय) धन हैं वे (अस्मे) हम लोगों के (स्वस्तये) सुख के लिए (अस्तु) होवें (प्रजावान्) बहुत प्रजाओं से युक्त (भगः) ऐश्वर्य और उनको प्राप्त होकर हम लोग सुखी (स्याम) होवें ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य लोग सुख के लिए बहुत से साधनों का एकत्र करने हैं ऐश्वर्य की प्राप्त होके आनन्द का प्राप्त होने हैं ॥ १८ ॥

आ नो मर भगमिन्द्र यमन्तं नि तै देवस्य धीमहि प्ररेके ।

उर्व इव पप्रये कामो अस्मे तमा पूर्ण वसुपते वसूनाम् ॥१९॥

पदार्थ—हे (वसूनाम्) जना के (वसुपते) धनपालक (इन्द्र) सुख के दाता ! जिन (देवस्य) देवोंवाले (तै) आपके (प्ररेके) उत्तम शक्तियुक्त व्यवहार में हम लोग (नि) (धीमहि) धारण करें वह आप (नः) हम लोगों के लिए (यमन्तम्) उत्तम प्रकाशयुक्त (भगम्) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को (आ) सब प्रकार (भर) धारण करा और जा (अस्मे) हम लोगों के लिए (काम) इच्छा (उर्वइव) इन्धन युक्त अग्नि के सदृश (पप्रये) वृद्धि को प्राप्त होवे (तम्) उमको (आ) (पूष) पूर्ण करो ॥ १९ ॥

भाषार्थ—वही मनुष्य यथार्थवक्ता है जिसका सर्वस्व दूसर पुरुषों के उपकार के लिए होता है, इस विषय में कोई शक्का नहीं है ॥ १९ ॥

इमं कामं मन्वया गोमिरस्वैश्चन्द्रवता राधमा पप्रथथ ।

स्वर्यवो मतिमिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आप (गोमि) गोओं (अश्वं) घोड़ों (व) और (चन्द्रवता) बहुत सुवर्ण आदि धन जिसमें हैं ऐसे (राधमा) धन से (पप्रथः) प्रमत्त करा (इमम्) प्रत्यक्ष भाव से वर्तमान इस (कामम्) अभिलाषा का पूर्ण करा जैसे (स्वर्यव) अपने मुख की कामना करनेवाले (वाहः) स्तुतियों के धारणकर्ता (कुशिकास) शब्द करने हुए (विप्रा) बुद्धिमान लोग (मतिभिः) विचारणीय मनुष्यों के साथ (स्तुभ्यम्) आपके तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए उक्त अभिलाषा को (अक्रन्) करें उनको आप (मन्वय) आनन्दित कीजिए ॥ २० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है। हे मनुष्यों ! जो लोग आप लोगों को अभिलाषा पूर्ण करने से आनन्द दें उनको आप लोग भी आनन्द दें ॥ २० ॥

आ नो गोत्रा ददेहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वार्जाः ।

दिवसा असि वृषम सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं मघवन्नोधि गोदाः ॥२१॥

पदार्थ—हे (वृषभ) बलवान् (मघवन्) बहुत थोड़े धन से युक्त ! जिस से आप (गोदाः) वाणी आदि के दाता (सत्यशुष्म) सत्य बल वाले (असि) हैं इससे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (गु) (गोषि) आनन्ददायक वृत्तिये ! हे (गोपते) भूमि के स्वामी ! जैसे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (समभ्यः) सबिभाग करने के योग्य (विषका) विज्ञानरूप प्रकाश आदि से पूरित (वार्जाः) विज्ञान और अन्न आदि के प्राप्त करने वाले व्यवहार (सम्) (यन्तु) प्राप्त होवें वैसे ही आप (न) हम लोगों के (गोत्रा) कुलों और (गाः) पृथिवियों को (आ) सब प्रकार (ददेहि) अत्यन्त वृद्धि कीजिए ॥ २१ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है। जो सत्य आचरण करने वाले विद्वान् लोग मनुष्यों के उपदेशकारक होवें तो उन जनों को कुछ भी सुख अप्राप्त और भ्रष्ट न होवे ॥ २१ ॥

शूनं ह्वेम मघयानमिन्द्रमस्मिन्धरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमुतये ममस्तु प्रन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! जिसको (अस्मिन्) इस संघाम में कि (भरे) जिस में धनो का धारण करने और (वाजसातौ) धन आदि प्रदाओं का विभाग करते हैं (शूनम्) जान में वृद्ध (मघयानम्) बहुत धन से युक्त (नृतमम्) अत्यन्त ही मनुष्यों में उत्तम (शृण्वन्तम्) सम्पूर्ण अर्थ अर्थात् सुदृढ़ और प्रसव्य अर्थात् सुहावे के न्याय करने के लिए वचनों के श्रोता (उग्रम्) तेजस्वभाव वाले पुरुष को (ममस्तु)

सधामों में ( बुद्धिम् ) बरने वाली भैरों के सधाम शान्ति की सेवाओं के ( प्रसन्नम् ) साधकता और ( जगन्नाथम् ) शक्तिमयो के ( सज्जितम् ) उत्तम प्रकार जीतने वा ( इन्द्रम् ) देनेवाले की हम लोग ( बुद्धिम् ) प्रशंसा करें उसका आप लोग जी ( ऊँचै ) रखा आदि के लिए आह्वान करें ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग शरीर और आत्मबल से बड़े असह्य धन के देने और मनुष्यों में उत्तम शान्ति के जीतनेवाले शक्तिमय पुत्र में सज्जितभाव और दुष्ट पुत्रों में तीव्रस्वभावयुक्त पालनकर्ता स्वामी की अपने ऊपर नियत करके निरन्तर सुख को प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्या के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्ण सुक्तार्थ के साथ सज्जति जाननी चाहिए ॥

यह तीसरी सूक्त और चौथा वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथ द्वाविंशत्युपस्थितकालिकविशेषसमस्य सूक्तस्य विवर्णनम्: कुक्षिको वा नृधि: ।

इन्द्रो देवता: १, १४, १५ विराट् पङ्क्ति: ३, ६ ध्रुविक पङ्क्ति-

वृद्धय: १ पञ्चमः स्वर: १, ५, ६, १५, १७—२० विष्णु-

विष्णु: ४, ७, ८, १०, १२, २१, २२ विष्णु:

११, १२ स्वरान् विष्णुं जम् । अथतः स्वर: ॥

अथ तृतीय मन्त्र में द्वाविंश उपस्थितकालिकविशेषसमस्य सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहले मन्त्र में अग्नि के गुणों का विषय कहा है—

आसद्भिर्दुहितुर्नृत्त्यं सद्भिर्द्वौ ऋतस्य दीर्घिति सपयन ।

पिता यत्र दुहितुः सेकपुञ्जन्तं शर्म्येन मनसा दधन्वे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! ( यत्र ) जिस व्यवहार में ( पिता ) उत्पन्नकर्ता ( बलि: ) वाहन करने अर्थात् व्यवहार में चलानेवाला ( दुहितुः ) कन्या के ( सेकम् ) सेवन की ( ऋज्वन् ) मित्र करता हुआ ( गतुः ) प्राप्त होने उस व्यवहार में ( विद्वान् ) जानने योग्य व्यवहार का ज्ञाता ( ऋतस्य ) सत्य के ( दीर्घितिम् ) वाणिकता की ( सपयन् ) सेवा करता हुआ ( दुहितुः ) दूर में हितकारिणी कन्या के ( नयन् ) नानी में उत्पन्न हुए को ( आसत् ) शिक्षा देने हमसे ( शर्म्येन ) सुख में वर्तमान ( मनसा ) अन्न करण में ( सत्, दधन्वे ) सम्यक् प्रमत्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पिता के समीप में कन्या उत्पन्न होती है वैसे ही सूर्य से प्रातः काल की बेला प्रकट होती है और जैसे पति अपनी स्त्री में गर्भ को धारण करता है वैसे कन्या के मृदु वनमान प्रातः काल की बेला में सूर्य किरणरूप बीज्य को धारण करता है उससे दिवमरूप पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

न जामये तान्वो रिच्यमरिक् चकार गर्भं सनिहनिधानम् ।

यदी मातरौ जनयन्त बहिन्यः कर्त्ता सुकृतीरन्य ऋन्धन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( जामये ) जामाता के लिए ( तान्व ) सूक्ष्म ( रिच्यम् ) धन को ( न, अरिक् ) नहीं देना जितने ( सनिह ) विभागकर्ता के ( निधानम् ) निरन्तर धारण करता है उस ( गर्भम् ) गर्भ को ( चकार ) किया ( अन्ध ) अन्ध जन ( बहिन्यः ) गहूँवानेवाले को जैसे वैसे ( बहि ) जो ( अन्ध ) अन्ध ( ऋन्धन् ) मित्र करता हुआ ( सुकृती ) उत्तम कर्मकारियों का ( कर्त्ता ) कर्त्ता पुरुष है उसकी ( मातर ) मातर की करनेवाली ( अन्धयन्त ) उत्पन्न करती है ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे माता सन्तानों को उत्पन्न कर उनकी वृद्धि करती है वैसे ही अग्नि को उत्पन्न करके उसकी वृद्धि करे और वैसे ही प्रत्येक स्त्री सन्तानों की वृद्धि करे ॥ २ ॥

अग्निर्जज्ञे जुह्वाः रेजमानो महस्पृष्टां अरुक्ष्य प्रयसै ।

महाम् बभौ महा जातमेधां मही मृदुदर्येषस्य यज्ञैः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे इन्धन और ( जुह्वा ) माधन और उपसाधनों से सुस्त क्रिया से ( अग्निः ) अग्नि ( जज्ञे ) उत्पन्न होता है वैसे ( रेजमान ) कम्पता हुआ ( जुह्वा ) बड़े उत्तम गुणों से युक्त ( गर्भम् ) स्तुति करने योग्य पदार्थ उत्पन्न होता है और ( अरुक्ष्य ) नहीं हिमा करनेवाले के ( मह ) श्रेष्ठ ( पुत्रम् ) सन्तानों के ( प्रयसै ) अत्यन्त यजन अर्थात् सज्जम करने को उत्पन्न होता है ( प्रयसै ) प्रयस होनेवाला ( मृदुदर्येषस्य ) जिसके हरणशील छोड़े उसके ( यज्ञैः ) योग्य कर्मों से ( मही ) श्रेष्ठ काफी उत्पन्न होती है ( एषाम् ) इन सबों के ( महि ) बड़े ( आ, जातम् ) बड़े प्रकार उत्पन्न कर्म को हम जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे समीपमक काष्ठ के मध्य से अग्नि प्रकट होकर बड़े-बड़े काष्ठों को मित्र करता है वैसे ही सुपात्र पुत्र सम्पूर्ण उत्तम कर्मों को करते हैं, इससे महापुरुष आदि संस्कारों के ही द्वारा सन्तानों को श्रेष्ठ बनाना चाहिए ॥ ३ ॥

फिर पूर्वोक्त अग्नि वीसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अग्नि वैरीरसवन्त स्पृशन् महि ज्योतिस्तमसो निरजानम् ।

सं जगदीः मत्सुदीयकासः पतिर्गर्भममवदेक इन्द्रः ॥४॥

पदार्थ—जो ( वैरीः ) जीतनेवाले ( अग्नि ) सम्पुल ( अस्वत्तम् ) अनुमार बनो है ( तमसः ) अन्धकार के ( महि ) बड़े ( ज्योतिः ) प्रकाशरूप ( स्पृशन् ) पदार्थों के साथ किरणों के सङ्घर्ष करनेवाले सूर्य को ( नि ) निरन्तर ( अजानम् ) जानें ( स्पृ ) उसको ( जगती ) जाननेवाली ( उवाच ) प्रातः काल की बेलाओं के मुख्य ( प्रति, उत्, आद्यम् ) उद्योग कर वा प्राप्त हो जो ( एक ) महाय रहित ( इन्द्र ) सूर्य ( गमाम् ) किरणों का ( पतिः ) स्वामी ( अमवत् ) होवे उसके अनुसार चलते है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे अन्धकार से ज्योति पृथक् होकर अन्धकार को दूर करती है वैसे ही अविद्या से पृथक् हुई विद्या अविद्या का नाश करती है और जैसे एक सूर्य सम्पूर्ण किरणों का एक साथ ही पालन करता है वैसे ही समभाव का आश्रय करके राजा प्रजाओं का पालन करे ॥ ४ ॥

अथ विद्वान् के सङ्ग से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

वीर्यो सतीरभि घीरा अतुन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विधाः ।

विश्वामहिन्दन्पृथ्यामृतस्यं प्रजानक्षिता नमसा विवेश ॥५॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( वीर्य ) उत्तम विचारयुक्त ( विद्या ) बुद्धि-मात्र लोग ( प्राचा ) प्राचीन ( मनसा ) अन्न करण से ( सप्त ) पाँच प्राण, बुद्धि और मन तथा ( सती ) वर्तमान प्रकृतियों को ( अभि, अहिन्वन् ) बढ़ाने है और मिथ्या का ( अतुन्दन् ) नाश करे तथा ( अतुन्दन् ) सत्य के ( वीर्यो ) प्रशसनीय बल में ( विश्वाम् ) सम्पूर्ण ( पृथ्याम् ) मर्यादा के योग्य किया को ( अहिन्वन् ) प्राप्त होते हैं वैसे आप ( ता ) उनको ( नमसा ) स्तुति में ( प्रजानम् ) जानते हुए ( इत् ) ही ( आ, विवेश ) शुभ कर्म में प्रवेश कीजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे युक्ति से सेवन किये हुए प्राण और अन्न करण दुःख के त्याग और सुख के लाभ के लिए समर्थ होते हैं वैसे ही विद्वानों के सङ्ग आदि कर्म दुःखों को निवृत्त कराके सुखों को उत्पन्न कराते हैं ॥ ५ ॥

कौन स्त्री सुख देनेवाली होती है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

विदद्यदी सरमा रणमद्रेर्महि पायः पूर्य सध्रश्चनवः ।

अग्रं नयस्सुपयसंगणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥६॥

पदार्थ—हे बुद्धिमती स्त्री ! ( यवि ) जो ( सुपवी ) उत्तम पादोवाली आप ( सरमा ) चलनेवाले पदार्थों के नापने वाली हुई ( अग्र ) मेघ के ( सध्रश्च ) एक साथ प्रकट ( पूर्यम् ) प्राचीन जनो से किये गये ( महि ) बड़े ( पाय ) अन्न वा जल को ( विदत् ) प्राप्त होवे ( रणम् ) रोगों से घिरे हुए को भौषध से रोगरहित ( क ) करती ( अक्षराराम् ) अक्षरों के ( अपम् ) श्रेष्ठ ( रवम् ) शब्द को ( अच्छ ) उत्तम प्रकार ( नयत् ) प्राप्त करती है ( प्रथमा ) पहली ( जानती ) जानती हुई ( गात् ) प्राप्त होवे तो सम्पूर्ण सुख का प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जा स्त्री बिजली के मृदु विद्युतों में व्याप्त सम्कार और उप-स्कार अर्थात् उद्योग आदि कर्मों में अनुर उत्तम गति में बोलने तथा नञ् स्वभाव रखनेवाली होय वह वृष्टि के मृदु सुख देनेवाली होती है ॥ ६ ॥

फिर कौन पुरुष सुख देनेवाला होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अगच्छदु विप्रतमः सखीयमदयत्सुकृते गर्भमद्रिः ।

मसान मयो युवमिर्मत्स्यकथाभवरक्षिराः सद्यो अर्चन् ॥७॥

पदार्थ—जा ( मय्यम् ) मनुष्य ( युवमि ) युवावस्थापन्न पुत्रों के सहित वर्तमान ( सखीयम् ) मित्र का चाहता वा ( मत्स्यम् ) आत्मसम्बन्धी यज्ञ करने की इच्छा करता हुआ ( अय ) उसके अनन्तर ( अद्रिः ) शरीरों में रस के सद्गुण वर्तमान ( सख ) गीघ्र ( अयम् ) सम्कार करता हुआ ( विप्रतम ) अत्यन्त बुद्धि-मान् पुरुष उस स्त्री के समीप ( अगच्छत् ) प्राप्त होय वह पुरुष ( अद्रि ) मेघ जैसे ( गर्भम् ) गर्भ का वैसे ( सुकृते ) उत्तम कर्म के करने में उद्यत ( अभवत् ) होवे तथा मत्स्यामत्य का ( मसान ) विभाग करता है ( उ ) और भी निकुण्ट कर्म का ( असूदयत् ) नाश करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो बहुधन्य स विद्या और उत्तम शिक्षा की पतन करके युवा पुरुष अपने मुख्य कन्या के साथ सुहृद्भाव और प्रीति को प्राप्त होके उसको सरकार करता हुआ विवाह वह पुरुष जैसे मेघ म ससार सुख को प्राप्त होता है वैसे सुख को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

फिर कौन सुखी होते है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

सतःसतः प्रतिमानं पुरोभूविस्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।

म यो दिवः पदवीर्गन्धुर्चम्सस्ता सस्वीगमुच्चमिरवधात् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो पुरुष ( पुरोभूः ) पहले से चिन्ता ( सत, सत ) विद्यमान विद्यमान के ( प्रतिमानम् ) परिमाण के साधक को वा ( विष्वा ) सम्पूर्ण ( जनिमा ) उत्पन्न हुए पदार्थों को ( वेद ) जानता और ( शुष्णम् ) शोककारक पुत्र को ( हन्ति ) नाश करता है वह ( पद्वी ) अपने को विद्या चाहनेवाला ( नः ) हम लोगों के ( विष ) प्रकाश की ( पद्वी ) प्रतिष्ठाओं को ( प्र ) प्राप्त करे ( सखीयम् ) मित्रों का ( अयम् ) सम्कार करता हुआ ( सखा ) मित्र होकर ( अवधात् ) समीहित आचरण से ( नि ) निरन्तर ( अनुवृत्त ) पृथक् करे वह अत्यन्त सुख को प्राप्त हो ॥ ८ ॥



भाषार्थ—वे ही मनुष्य सुखी होते हैं जो कार्यकारणरूप सृष्टि को जान और सम्पूर्ण जनों के मित्र हों सम्पूर्ण जनों को पाप के आचरण से मुक्त करके धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें, वे ही मन्त्र मित्र हैं ॥ ८ ॥

अब मोक्ष की इच्छा करनेवालों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

**नि गन्धता मनमा सेदुरकैः कृष्णानासौ अमृतत्वाय गातुम् ।**

**इदं चिन्म सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिवासकतेन ॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( कृष्णानास ) करते हुए जन ( गन्धता ) अपनी वाणी के सद्गुण ( मनसा ) अन्तःकरण से ( अर्क ) मत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ ( अमृतत्वाय ) मोक्ष के होने के लिए ( गातुम् ) प्रशमायुक्त भूमि को ( नि, सेदु ) प्राप्त होवे तथा ( इदम् ) इस ( चित् ) भी ( भूरि ) बहुत ( सदनम् ) प्राप्त होने योग्य स्थान को प्राप्त होवे ( येन ) जिस ( अस्तेन ) मन्त्र आचरण से ( मासान् ) चैत्र आदि महीनों के ( असिवासन् ) विभाग करने की इच्छा करे उससे ( एवम् ) इन पुरुषों का कल्याण ( सु ) शीघ्र होता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य लोग मोक्ष की इच्छा करें तो विद्वानों का सङ्ग धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करके शीघ्र ही अन्तःकरण और आत्मा की शुद्धि करें ॥ ९ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

**संपश्यमाना अपमदन्मि र्वं पर्यः प्रत्नस्य रेतसो दुष्पानाः ।**

**वि रोदसी यत्पदयोष एषां जाते निःष्ठापदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥६॥**

पदार्थ—जा लोग ( र्वन् ) अपन को ( संपश्यमाना ) उत्तम प्रकार दयते और ( प्रत्नस्य ) पापीन ( रेतस ) वीर्य के ( पर्य ) दुश्म को ( दुष्पाना ) पूरा करने हुए ( अभि ) सम्मुख ( अपमदन् ) आनन्द करने हैं ( एषाम् ) इन ( निष्ठाप ) उत्तम प्रकार स्थित विद्वानों की ( घोष ) वाणी मूर्ध्म जैसे ( रोदसी ) अन्तरिक्ष पृथिवी को बेम दृष्ट पुरुषों को ( वि, यत्पदम् ) लपानी है व पुरुष ( जाते ) उत्पन्न हुए इस सार में ( गोषु ) पृथिवी आदिका में ( वीरान् ) उत्तम गुणों से युक्त पुरुषों को ( अबधु ) धारण किया करे ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो उत्तम विचार करनेवाले धार्मिक विद्वान् पुरुष अपन अनादि काल मित्र सामर्थ्य को बढ़ावें, सब लोगों के लिए मन्त्र और असत्य का उपदेश कर दुष्टता को दूर कर और श्रेष्ठता का धारण करें वे ही शूरवीर होते हैं यह जानना चाहिए ॥ १० ॥

**स जातेभिर्द्विजैः सेदुं त्वयेरुदसिया अमृजदिन्द्रो अर्कैः ।**

**उरुच्यभै यत्तव्रजन्ती मधु स्वाधं दुदुहे जेन्या गोः ॥११॥**

पदार्थ—जा ( द्विज ) मेघ के नाशकर्ता सूर्य के सद्गुण ( इन्द्र ) अति श्रेष्ठ ऐश्वर्य का कारण ( उरुच्य ) वाणिजा को करणों के सद्गुण ( उरु, असृजत् ) उत्पन्न करता है ( अर्क ) आदर करने योग्य मनुष्यों ( ह्यै ) ग्रहण करने के योग्य पदार्थों और ( जातेभिः ) उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ पदार्थों को ( असृजत् ) उत्पन्न करता है ( स इत् ) वही मुख को प्राप्त होता है जो ( उरुच्य ) बहुतों का मत्कार करती ( यत्तव्रजन्ती ) घृत वा जल उत्तमता युक्त ( स्वाध ) स्वादिष्ट ( मधु ) मीठे गुण से युक्त पदार्थ का ( भरती ) धारण करती हुई ( जेन्या ) जीतने योग्य ( गो ) पृथिवी ( अस्मे ) उस ऐश्वर्य के लिए ( दुदुहे ) बुझी जाती है उसको वह पुरुष ( उ ) ही जाने ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इन मन्त्र में वाचकलुप्तप्राप्तकाह्य है। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सम्पूर्ण उत्पन्न हुए सृष्टि के पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष विज्ञान से सम्पूर्ण पदार्थों को जानकर उसका सर्वत्र प्रकाश करें ॥ ११ ॥

**पित्रं चिन्मचक्रः सदनं समस्मै महि स्थिषामनुकृतो वि टि रुयन् ।**

**विष्कभन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रमसं वि मिन्वन**

॥ १२ ॥

पदार्थ—जो ( सुकृत ) उत्तम धर्म सम्बन्धी काम करने और ( विष्कभन्त ) विशेष करके धारण करनेवाले महत्त्व अर्थात् बुद्धि आदि की ( जनित्री ) उत्पन्न करनेवाली प्रकृति के सद्गुण ( आसीना ) स्थिर ( स्कम्भनेन ) धारण करने से ( ऊर्ध्वम् ) ऊँचे ( रमसम् ) वेग को ( वि, मिन्मचक्र ) विशेष करके फेंकने और विद्या को ( वि, व्यत् ) प्रकाश करने वा ( हि ) जिस कारण ( चित् ) ही ( अस्मे ) हम ( पित्रं ) पालन करने वाले के लिए ( स्थिषाम् ) बहुत कान्तियों से युक्त ( महि ) बड़े ( सदनम् ) स्थान को ( सत्, चक्रम् ) सम्पन्न करें वे कृतकृत्य विद्वान् होंगे ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जैसे व्यापक प्रकृति के द्वारा महत्त्व आदि का रखर सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर रचना है वैसे ही विद्वान् जन पिता के सद्गुण वर्तमान होकर सम्पूर्ण जनों के लिए सुख धारण करने और पदार्थविद्या का प्रत्यक्ष अभ्यास करके शिक्षा देते हैं ॥ १२ ॥

**मही यदि धिषणां शिभये चात्सयोद्धं विम्बं रोदस्योः ।**

**गिगो यस्मिन्ननवधाः समीचीविद्या इन्द्राय तविषीरनुषाः ॥१३॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जनों ! आप लोगों से ( यवि ) जो ( मही ) अत्यन्त सत्कार करने योग्य ( विषया ) प्रसन्न अर्थात् मही हकनेवाली वाणी ( रोदस्योः ) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में ( सद्योयुद्धम् ) शीघ्र वृद्धिकारक ( विम्बम् ) व्यापक को ( चात् ) धारण करनी है तो इस विद्या का ( शिभये ) नाश करती है ( यस्मिन् ) जिसमें ( अनवधाः ) निन्दारहित ( समीची ) सत्य की धारण करने वाली ( तविषी ) बलयुक्त ( अनुषा ) अनुकूलता से धारण की गई ( विषया ) सम्पूर्ण ( गिर ) वाणिजा ( इन्द्राय ) परम ऐश्वर्य के लिए समर्प्य होंगे वह व्यवहार मदा सेवन करने योग्य है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग अनेक प्रकार की विद्याओं से युक्त वाणिज्यों को धारण करके व्यापक परमात्मा के जानने की इच्छा करें वे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होंगे ॥ १३ ॥

**महा तं मुख्यं वंश्मि अक्तीरा वृत्रघ्ने निधुतां यन्ति पूर्वाः ।**

**महि स्तोत्रमव आगन्म सुरेरस्माकं सु मधवन्वोधि गोषाः ॥१४॥**

पदार्थ—हे ( मधवन् ) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त पुरुष ! मैं ( ते ) आप के ( महि ) अति आदर करने योग्य ( सख्यम् ) मित्रभाव की ( आ, वंश्मि ) अच्छी कामना करता हूँ विद्वान् जन जिम ( वृत्रघ्ने ) मेघ के नाशकर्ता सूर्य के तुल्य वर्तमान आपके लिए ( पूर्वाः ) अनादि काल से मित्र ( निधुतां ) निधिवत् ( अक्तीराः ) सामर्थ्य को ( आ, यन्ति ) प्राप्त होते हैं उस ( अस्माकम् ) हम लोगों के मध्य में वर्तमान ( सुरे ) परमात्म विद्वान् आपके समीप से ( महि ) बड़े ( स्तोत्रम् ) स्तुति करने के योग्य ( अथ ) रक्षा आदि को हम लोग ( आ, अगन्म ) प्राप्त होंगे। आप हम लोगों की ( गोषा ) रक्षा करत हुए ( सु, बोधि ) जानिये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोगों का चाहिए कि विद्वान् जनों के साथ मित्रता कर सामर्थ्य पूरा कर और न्याय से सम्पूर्ण जनों की रक्षा करके सूर्य के प्रकाश के सदृश ससार में विद्या के बोध का प्रकाश करें ॥ १४ ॥

**महि क्षेत्रं पुरु अन्द्रं विविद्वानादिन्सखिभ्यश्चरथं मयैरन् ।**

**इन्द्रो नृभिर्जननीयानः साकं इर्यैमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( विविद्वान् ) ज्ञाना और ( वीरान् ) प्रकाशमान ( इन्द्र ) विजुली के सद्गुण मुख का वृद्धक और दुश्म का नाशक ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिए ( इत् ) ही ( महि ) बड़ा ( पुरु ) बहुत ( अग्निम् ) सुवर्ग ( क्षेत्रम् ) पदार्थों का आधार ( चरथम् ) गमन वा विज्ञान की ( सत्, ऐरन् ) प्रेरणा करे ( आत् ) उसमें अनन्तर ( नृभिः ) प्रधान जनों के ( साकम् ) साथ ( इर्यैम् ) सूर्य ( उषसम् ) प्रातःकाल ( गातुम् ) वाणी वा भूमि और ( अग्निम् ) अग्नि का ( अजन्तम् ) उत्पन्न करने उमका मदा सत्कार करा ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्या से युक्त विजुली सूर्य भूमि और अग्नि प्रातःकालीन समय में ऐश्वर्य को उत्पन्न कर मित्रों को सुख देने है वैसे ही विद्वान् लोग मनुष्य आदि प्राणियों को सुख देंगे ॥ १५ ॥

**अपदिचंदेष विम्बोः बभूनाः प्र सधोर्चासुजद्विषाचन्द्राः ।**

**मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्यभिर्हिन्वन्त्यस्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जा लोग ( कविभिः ) विद्वान् जनों के सहित ( पवित्रैः ) उत्तम व्यवहारों तथा ( सुभिः ) दिना और ( अस्तुभिः ) रात्रियों से ( मध्वः ) कोमल स्थभाववाला मनुष्यों को ( पुनाना ) पवित्र करते हुए जन ( धनुत्रीः ) धन और वाज्य आदिका से युक्त ( हिन्वन्ति ) बढ़ाने वा बढ़ते हैं जो ( चित् ) भी ( एव ) यह ( विम्ब ) व्यापक ( बभूना ) जितन्धिय मनुष्य ( समीची ) एक साथ मिले हुए ( विजद्विषा ) सम्पूर्ण सुवर्ग आदिको ल युक्त ( अथः ) जलो के सद्गुण व्याप्त विद्याओं का ( प्र, असृजत् ) उत्पन्न करता है उन और उसका सर्व जन मङ्गल करे ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग बहुत ऐश्वर्यों के जनक पदार्थों को कार्यसिद्धि के लिए उपयोग में लात तथा विद्वान् जना के साथ शुद्ध आचरणों की करके सुख और ऐश्वर्य दिन रात्रि बढ़ाते वे भाग्यशाली हैं ॥ १६ ॥

**अनु कृण्वे वसुधिता जिहाते उमे सूर्यस्य मंदना यजत्रे ।**

**पगि यत्तं महिमानं वृज्यै मखाय इन्द्र काम्या अजिप्याः ॥१७॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! ( यत् ) जो ( ते ) आपके ( काम्या ) कामना करने योग्य ( अजिप्याः ) सरल व्यवहारों के बड़े ( सखाय ) मित्र हुए ( अहिमालम् ) महिमा को ( अनु, कृण्वे ) लीकी गयी ( उमे ) दोनों ( यजत्रे ) परस्पर मिली हुई ( अजिप्याः ) अन्तरिक्ष और पृथिवी ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( मन्त्रा ) महत्त्व से ( वृज्यै ) रोकने की ( पगि, जिहाते ) प्राप्त होने से है उनको बढ़ाते हैं वे आपसे सत्कार पाने योग्य हैं ॥ १७ ॥



वर्तमान आप ( माध्यस्थिते ) मध्य दिन में होनेवाले ( सन्ने ) पेरण करने में सूर्य के सदृश सोमत्वतादि ओषधि का पान करो ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचस्पत्योपमानद्वारा है। हे राजन् ! जो आपके मन्त्री नाग सेना, विजय, धन, राज्य, उत्तम शिक्षा, विद्या और धर्म को बढ़ावें उनका आप निरन्तर मत्कार कर उनके साथ राज्य के सुख का सदा भोग करो ॥३॥

फिर कील लोग विद्वान् होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त इन्वस्य मधुमद्विप्र इन्द्रस्य गर्धां मरुतो य आसन् ।

येभिर्हृत्सर्वेचितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥४॥

पदार्थ—( ये ) जो ( मरुत ) पवनो के सदृश वेग और बल से युक्त पुरुष ( अस्य ) इस वर्तमान ( इन्द्रस्य ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के ( गर्ध ) बल को ( विविध ) फैलने है ( आसन् ) मुख में ( मधुमत् ) बहुत मधुर आदि गुणों से युक्त वस्तुओं से पूर्ण पदार्थ को ( इत् ) ही गन्त है जो ( येभि ) जिन्हो से ( इचित ) प्रेरित हुआ ( बुधस्य ) मेघ के सदृश शत्रु वा ( अन्वस्य ) मर्म से रहित ( मर्म ) प्रहार करने से नाश होनेवाले स्थान को ( मन्यमानस्य ) जानने-वाले को ( विवेद ) जाने ( ते ) वे पूर्व कह हुए और वह पुरुष ( तु ) निश्चय अपने वाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं ॥४॥

भाषार्थ—जो लोग धन आदि ऐश्वर्य से सबके मुख की वृद्धि और दुःखों का निवारण करके सब लोगों को प्रमन्न करते हैं उनका ही भाषिक विद्वान् मानना चाहिए ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मनुष्यदिन्द्र सर्वं जुषाणः पिबा सोमं शन्ते वीर्याय ।

स धा वृष्टस्व हर्षश्च यज्ञैः संरन्धुमिरपो अर्णो सिसर्षि ॥५॥

पदार्थ—( हृष्यन् ) हरणकर्ता है हर शत्रु और व्यापन भवभाववाले घोड़ों के समान अग्नि जादि पदार्थ जितान जाने वह है ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता । जिसमें आप ( सरन्धुभि ) अपने शरण प्राप्त होने की इच्छावन्त पुरुषों और ( यज्ञ ) विद्वानों का मत्कार शिल्पिक्रिया और विद्या आदि क दानरूप व्यवहारों से ( अर्णो ) जलो को ( अप ) अन्नरिक्त के प्रति ( सिसर्षि ) पहुँचाने है हमरा ( स ) वह आप ( सवनम् ) पशुवर्ग के ( जुषाण ) मन्त्रेणाल ( अचवत् ) निरन्तर अनादि मित्र ( वीर्याय ) बल के लिए ( सोमम् ) शरीर और आत्मा के बल तथा विज्ञान के बढ़ानेवाले महोषधि आदि के रस को ( पिब ) पीना और ( मनुष्यत् ) विचार करनेवाले विद्वान् पुरुष के तृप्त्य ऐश्वर्य का सन्नेवाले शरीर और आत्मा के बल और विज्ञान के बढ़ानेवाले महोषधि आदि के रस का पीजिये तथा ( आ, वृष्टस्व ) अच्छे प्रकार वर्तव्य कीजिए ॥५॥

भाषार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य विद्या उत्तम शिक्षायुक्त भोजन विहार सन्तुष्टों का सङ्ग और धर्म के सेवन करने से उत्तम आत्मा और परमात्मा के याग से उत्पन्न हुए बल को बढ़ाने हैं वे लोग सब प्रकार उत्तम होते हैं । जैसे सूर्य जल का अन्नरिक्त के प्रति वायु क साथ उपर ले जाता है वैसे ही विद्वान् लोग सम्पूर्ण जनों को प्रतिष्ठा के साथ उत्तम पर पहुँचाने हैं ॥५॥

फिर राजपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वमपो यदं पृथं जघन्वाँ अत्याँ इव मासृजः सर्ववाजौ ।

शयानमिन्द्र चन्ता वधेन वत्रिवांसं परि देवीरद्वेभम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के नाशक ! ( यत् ) जो ( त्वम् ) आपने जैसे ( अत्यानिव ) घोड़ों का सूर्य के समान ( अवेदम् ) विद्या प्रकाश से रहित प्राविदान् वा ( वृषम् ) दुष्ट को ( जघन्वाम् ) नाश किया वा सूर्य ( चरता ) प्राप्त ( वधेन ) नाश से ( शयानम् ) सोते हुए से वर्तमान ( वत्रिवांसम् ) ठपे हुए का ( वेवी ) उत्तम किरणों और ( अप ) जलो का ( ह ) निश्चय से उत्पन्न करता है उसी प्रकार मैं ( सर्वसं ) जानने योग्य ( आजौ ) युद्ध में ( परि ) चारों ओर से ( प्र, असृज ) उत्पन्न करने हो वे आप हम लोगों से मत्कार पान योग्य हैं ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचस्पत्योपमानद्वारा है। जो राजा आदि वीर पुरुष जैसे सूर्य मेघ को वैसे सग्राम में जलाय शस्त्र अश्वों से शत्रुओं को जीतते हैं वे ही प्रतापयुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

फिर कैसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यजाम इक्षममा वृद्धमिन्द्र वृहन्तमृष्वमजर युवानम् ।

यस्य प्रिये ममर्तुर्ब्रियस्य न रोदसी महिमानं ममातें ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग ( यस्य ) जिस ( यशियस्य ) पूजा अर्थात् प्रीति करने योग्य परमेश्वर के ( महिमानम् ) महत्त्व को ( रोदसी ) अन्नरिक्त और पृथिवी ( न ) नहीं ( मन्वाते ) नाप सकते और ( प्रिये ) प्रीति करनेवाले इस लोक और परलोक के सुखों में नहीं ( ममर्तु ) नापे है ( इत् ) उसी ( युवानम् ) सम्पूर्ण ससार के मयोग और विभाग के करनेवाले ( अजरम् ) बुढ़ापे से रहित ( अमृषम् ) अष्ट ( वृहन्तम् ) बड़े ( वृष्टम् ) धातु को भोगे हुए वा विद्या से श्रेष्ठ

( इन्द्रम् ) परम ऐश्वर्य करनेवाले परमेश्वर की ( इक्षम ) मत्कार से ( मन्वाते ) पूजा करते हैं उसकी तुम लोग भी पूजा करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जिस परमेश्वर की अपेक्षा कोई पदार्थ तुल्य वा अधिक नहीं हो सब में श्रेष्ठ व्यापक विनाशरहित और पूज्य है उसी परमात्मा की हम लोग निरन्तर उपासना करें ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुषि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।

दाधार यः पृथिवी द्यामुतेमां जजान रथ्यमुपसं सुदसाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( सुवसः ) सुन्दर धर्म सम्बन्धी कर्मों से युक्त परमेश्वर ( इक्षाम् ) इस ( पृथिवीम् ) भूमि और ( द्याम् ) प्रकाशस्वरूप आदि लोक को तथा ( रथ्यम् ) सूर्य लोक को ( उत ) और भी ( उचसत् ) विन को ( जजान ) उत्पन्न करता ( दाधार ) धारण करता वा पुष्ट करता है जिस ( इन्द्रस्य ) परमात्मा के ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( देवा ) पृथिवी आदि वा विद्वान् लोग ( व्रतानि ) सत्य विचारों को ( सुकृता ) उत्तम ( पुरुषि ) बहुत ( कर्म ) कामों को ( न ) नहीं ( मिनन्ति ) नाश करने हैं उसकी आप और हम लोग उपासना करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—परमेश्वर के पवित्र होने से सम्पूर्ण सामर्थ्ययुक्त सब के उत्पन्न वा धारणकर्ता परमेश्वर के स्वरूप परिमित सामर्थ्य वा कर्म को कोई भी नाश नहीं कर सकता है और जो लोग इस परमेश्वर की सत्य सावना से उपासना करते हैं वे भी पवित्र होकर सामर्थ्ययुक्त होते हैं ॥ ८ ॥

अद्रोघ सन्यं तव तन्मदित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।

न द्याव इन्द्र तवसंस्त ओजो नाहा न मासाः शग्दो वरन्त ॥९॥

पदार्थ—हे ( अद्रोघ ) द्रोह से रहित ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता जगदीश्वर ! ( यत् ) जो ( सद्य ) तत्काल ( जात ) प्रकट हुआ सूर्य ( सोमम् ) सब जगत् से रस को ( अपिब ) पीना खीचना है ( तत् ) वह जिन ( तव ) आपके ( सत्यम् ) सत्य ( महिम्नम् ) महिमा का ( न ) नहीं उत्पन्न करने कर सकता है ( ते ) आपके ( तवस ) बल के ( ओज ) प्रभाव को न ( द्याव ) प्रकाशस्वरूप लोक ( न ) न ( अहा ) दिन ( न ) न ( मासा ) चैत्र आदि महीने और न ( शग्दो ) वसन्त आदि ऋतु ( वरन्त ) वाण करने हैं ( भवन्त ह ) उन्हीं आपकी हम लोग निरन्तर सेवा करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर किसी स द्रोह नहीं करता है वैसे आप लोग भी हजिये जिस परमेश्वर की सृष्टि में सूर्य आदि बड़े बड़े पदार्थ विद्यमान हैं और जिनके स्वरूप वा प्रभाव के अन्न को कोई भी नहीं प्राप्त होता है वही हम लोगों का इष्टदेव है ॥ ९ ॥

जिस प्रकार जन्म की सफलता हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन ।

यद् द्यावापृथिवी आविवेशीरथामवः पूर्यः कारुधायाः ॥१०॥१०॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! ( त्वम् ) आप ( वरते ) उत्तम ( व्योमम् ) आकाशवत् व्यापक आत्मज्ञान में ( सद्य ) शीघ्र ( जात ) प्रकट वा प्रसिद्ध हुए ( मदाय ) दानत्त्व के लिए ( सोमम् ) बल और वृद्धि के बढ़ाने वाले रस का ( अपिब ) पीने हैं ( अथ ) इसके अनन्तर ( यत् ) जो ( पूर्यः ) पूर्ण लोगों में श्रेष्ठ ( कारुधाया ) शिल्पी जनों का धारणकर्ता ( अमवः ) हो वह आप ( ह ) निश्चय से ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और भूमि में ( आ ) सब ओर से ( आविवेशी ) बागम्वार प्रवेश कीजिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! ब्रह्मचर्य में शीघ्र विद्वान् और नियमित आहार विहार से रोगरहित होके परमात्मा की आराधना करने हुए सृष्टि और पदार्थविद्यार्थों में आप सब प्रवेश करें जिसमें जन्म की सफलता हो ॥ १० ॥

फिर राजपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अहमहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तृविजात तद्व्यान् ।

न तं महित्वमनु भूदथ दौर्घदन्यया स्फिरयाः क्षामवस्थाः ॥११॥

पदार्थ—हे ( तृविजात ) बहुत लोगों से प्रसिद्ध ( तद्व्याम् ) अत्यन्त बल-युक्त ! ( यत् ) जो आप जैसे ( द्यौः ) सूर्यप्रकाश ( ओजायमानम् ) बल को प्राप्त होते हुए ( परिशयानम् ) सब ओर से आकाश से सोते जैसे वर्तमान ( अहिम् ) मेघ को ( अहम् ) नाश करना है ( अर्णः ) जल को गिराता है और जैसे सूर्य का ( महित्वम् ) बढ़ापन ( अनु, भूत् ) हो वा जैसे यह मेघ ( अथ ) तदनन्तर ( अन्यथा ) दूरी ( रिफया ) मध्य के अवयवरूप से ( क्षाम् ) पृथिवी को ढाँपता है वैसे आप शत्रुओं का ( अवस्थाः ) घेर के वर्तमान हजिये जिससे ( ते ) वे आप का महिमा को ( न ) नहीं काटें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य अन्नरिक्त में वर्तमान बलवान् मेघ का नाश और भूमि में गिराकर उसके जल से प्राणियों का पोषण करता है वैसे ही आप भी मे वर्तमान शत्रु का नाश करके उसके ऐश्वर्य से राज्य का पालन करो ॥११॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यज्ञो हि त इन्द्र वधेनी भूदुत प्रियः सुततोमो मिवेधः ।

यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यहस्ते यज्ञमहिहन्त आवत् ॥१२॥



पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के प्राप्त करनेवाले ( हि ) जिसके कि ( ते ) आप का ( अहिम्नः ) वर्षा का निमित्त ( यत् ) पदार्थों का उपयोग करना रूप व्यवहार ( यत्नः ) उन्नतिकर्ता ( युक्तोः ) ऐश्वर्य की उत्पत्तिकर्ता ( किये ) युक्त का नाशकर्ता ( जत ) और भी ( अत्र ) प्रीति की उत्पत्ति करनेवाला ( भूत ) होता है जिन ( ते ) आपका ( यत् ) पदार्थों का मेल करना रूप व्यवहार ( यत्नः ) सत्य विशेष की ( अक्षयः ) रक्षा करे वह ( अक्षयः ) यहाँ में कतुर ( सत् ) हुए आप ( यत्नः ) सज्जत कर्म से ( यत्नः ) सज्जत व्यवहार की ( अक्षयः ) रक्षा करो ॥१२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जो उत्तम क्रियाओं को बढ़ावें तो आप लोग रक्षित हुए अन्य जनों की भी रक्षा करने के योग्य होंगे ॥ १२ ॥

अब कैसे मनुष्य सुख को प्राप्त हो सकते, इस विषय को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

यत्नेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वाग्निं सुजाय नव्यसे बह्व्याम् ।

यः स्तोमोमर्वावृधे पूर्वोभिर्यो सध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( यः ) जो ( पूर्वोभिः ) प्राचीनों से कुशल ( मध्यमेभिः ) बीच में हुए ( जत ) और भी ( नूतनेभिः ) नवीन ( स्तोमेभिः ) प्रशंसायुक्त कर्मों से ( अर्वाग्निं ) बढ़ता है ( यः ) जो ( नव्यसे ) नवीन ( सुजाय ) सुख के लिए ( यत्नेन ) युक्त व्यवहार ( अक्षयः ) रक्षा आदि से ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य का ( अक्षयः ) प्रशंसा करता है ( अर्वाग्निं ) पीछे ( एनम् ) इसकी रक्षा करता है उसके समीप ( आ ) ( बह्व्याम् ) प्राप्त होऊँ जैसे आप लोग भी इस कर्म को करें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालङ्कार है । जो मनुष्य व्यतीत हुए व्यवहार के योग्य मर्म को जानने मध्यम पुरुषों की रक्षा करने और नवीन प्रयत्न से बुद्धि को प्राप्त होता है वे लोग उस अनन्तर नवीन नवीन सुख को प्राप्त होने योग्य होते हैं न कि अन्य आलस्य युक्त और सुख पुरुष ॥ १३ ॥

विवेच यन्मा विषया जजान स्तवै पुरा पायाविन्द्रमङ्कः ।

अहंमो यत्र पीपद्यथा नो नावेव यान्तमुभयं हवन्ते ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत् ) जा ( विषया ) वाणी ( मा ) मुझको ( विवेच ) व्याप्त होनी और ( जजान ) उत्पन्न करती है उसकी मैं ( स्तवै ) प्रशंसा करूँ ( अहं ) दिन से ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य को ( पुरा ) प्रथम ( पायात् ) पार पढ़ावे वा ( यत् ) जिस व्यवहार में ( अहं ) आराध से मुझको ( पीपद्य ) पार लगावे वा ( यथा ) जिस प्रकार में ( नः ) हम लोगों के अर्थ ( यान्तम् ) जाने हुए को ( उभय ) दूर और समीप में वर्तमान लोग ( नावेव ) नौका के सदृश ( हवन्ते ) पुकारते हैं जैसे हम लोगों को सब लोग पुकारें ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि उस वाणी और बुद्धि को ग्रहण करे जो सब समय में दुष्ट आचरण से पृथक् रख के दुःख से नौका के सदृश पार उतारे ॥ १४ ॥

आपुर्जो अस्व कलशः स्वाहा सेवतेव कोर्ध सिसिचे पिबध्ये ।

समु प्रिया आवइन्द्रमदाय मदलिण्दिमि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥

पदार्थ—जो ( सोमास ) ऐश्वर्य से युक्त ( प्रिया ) कामना करने योग्य ( मवाय ) धान्य के लिए ( इन्द्रम् ) सूर्य को ( जनि ) सम्मुख ( आ ) चारों ओर से ( अक्षयम् ) घेरते हैं वे ( उ, अस्व ) उस ससार के मध्य में ( पिबध्ये ) पान करने के लिए ( सेवतेव ) पूरा करने वाले के तुल्य ( कोर्धम् ) भय का ( तम्, सिसिचे ) सींचते हैं ( स्वाहा ) सत्य क्रिया में ( आपुर्जो ) चारा चारों ओर से भरा हुआ ( कलश ) घड़ ( अलिण्दिम् ) दाहिनी ओर चलने वाला पूर्ण घड़े के तुल्य सुखकारक होता है ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो लोग धन आदि का प्राप्त होके भीगे के लिए सुपात्र और उत्तम व्यवहार करनेवाले को जान के देते हैं वे लोग सींचने वाला घड़े को जंग बेल सम्पूर्ण जनों का पूर्ण सुखयुक्त करते हैं ॥ १५ ॥

न स्वा गभीरः पुण्ड्रुत सिन्धुनाद्र्यः परि वन्तो वरन्त ।

इत्थो सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा इच्छं चिद्वजो गन्धर्बसु ॥१६॥

पदार्थ—हे ( पुण्ड्रुत ) बहुतों से प्रशंसा किये गये ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता राजन् ! जिन ( स्वा ) आपको ( गम्भीरः ) गम्भीर्य गुणों से युक्त ( सिन्धु ) समुद्र ( न ) नहीं ( परि ) सब ओर से ( वरन्त ) वारण करते हैं ( अक्षयः ) वेध वा पर्वत ( सन्तः ) वर्तमान होने हुए ( न ) नहीं सब ओर से वारण करते हैं ( यत् ) जो ( पुण्ड्रुत ) स्थिर ( चित् ) भी ( गम्भीरम् ) गौओं का ( अक्षयम् ) मित्रोपस्थान का ( आ, अक्षयः ) भङ्ग करते ही वह ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिए ( इषितः ) प्रेरित हुए आप ( इत्थो ) इस प्रकार किस जन से सत्कार नहीं करने योग्य होव ॥ १६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे समुद्र और पर्वत सूर्य को निवारण नहीं कर सकते वैसे ही बहुत मित्रों वाले जन जनों से निवारण करने के शक्य नहीं होते हैं ॥ १६ ॥

गुणं हुवेस अथवानिन्द्रमस्मिन्मरे वृत्तं वाजमाती ।

अथवन्तमुग्रमृतये समस्तु धन्तं वृत्राणि सज्जित धनानाम् ॥१७॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( कृतये ) रक्षा आदि के लिए ( समस्तु ) सन्तानों में ( धन्तम् ) नाश करनेवाले ( उग्रम् ) तेजस्वभावयुक्त ( धनानाम् ) द्रव्यों के ( सज्जितम् ) और उत्तम प्रकार शत्रुओं को जीतनेवाले ( वृत्राणि ) सुवर्ण आदि धनों को ( अथवन्तम् ) सुते हुए को ( अस्मिन् ) इस ( वाजमाती ) जन और अन्य आदि के विभाग करनेवाले ( अरे ) सन्तान में ( नूतनम् ) उत्तम गुणों से सर्वोत्तम ( अथवन्तम् ) परम धनवान् और ( इन्द्रम् ) दुष्ट जनों के नाशकर्ता को ( हुवेस ) पुकारें और उसके सङ्ग से ( शुभम् ) सुख को प्राप्त होवें वैसे इसकी स्तुति करके आप लोग भी इसको प्राप्त हों ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालङ्कार है । जो राजा आदि प्रधान पुरुष, राजविद्या में चतुर, योद्धा, न्यायाधीश पुरुषों, प्राह्विवाको ( वकीलो ) और मेवक पुरुषों का सत्कार करके ग्रहण करें तो उन राजाओं का सर्वत्र विजय यश कीर्ति और ऐश्वर्य होता है ॥ १७ ॥

इस मन्त्र में सोम मनुष्य ईश्वर और विजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इसमें पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सम्मति जाननी चाहिए ॥

यह वृत्तिसर्वा सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

५१

अथ त्रयोदशस्य त्रयोदशस्तमस्य सूक्तस्य विद्याविज्ञा विधिः । तद्यो देवताः ।

१ धुरिक पङ्क्ति, ५ स्वराट् पङ्क्ति, ७ पङ्क्तिः, पञ्चम स्वरः ।

२, १० विराट् त्रिष्टुप् । ३, ८, ११, १२ त्रिष्टुप् । ४, ६,

६ निवृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वरः १३ उष्णिक् छन्द ।

आचमः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचा वाले तृतीय सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मन्त्र में नदी के वृष्टान्त से स्त्री का वर्णन करते हैं—

प्र पर्वताग्रामुशतो उपस्थाद्वैजं विधिते हासमाने ।

गावेष शुभ्रे मातरां रिहाणे विपाद्दुतुद्री पर्यसा जवेते ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो पठाने और उपदेश देनेवाली ( मातरा ) मान्य देनेवालीयों सी कन्याओं की शिक्षा को ( उशतो ) कामना करनेवाली ( पर्वताग्राम् ) मेघों के ( उपस्थात् ) समीप में ( अवैजम् ) छोड़े और छोड़ी के सदृश ( विधिते ) विद्या और सुभ गुणयुक्त कर्मों में व्याप्त वा छोड़े और छोड़ी के सदृश ( हासमाने ) परस्पर प्रेम करती ( रिहाणे ) प्रीति से एक दूसरे को सूँवती हुई ( शुभ्रे ) उत्तम गुणों से युक्त ( गावेष ) गौ और बैल के सदृश ( पर्यसा ) जल से ( विपाद् ) कई प्रकार चलने वा डीपने वाली ( दुतुद्री ) शीघ्र दुःखदायक ( प्र, जवेते ) चलती है वैसे वर्तमान होंवें उन अध्यापिका और उपदेशिका को कन्या और स्त्रियों के पढ़ाने और उपदेश करने में नियुक्त करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकसुतोपमालङ्कार हैं । जैसे पर्वतों के मध्य में वर्तमान नदियाँ छोड़ी के सदृश दौड़ती और गौओं के सदृश शब्द करती हैं वैसे ही प्रमत्त और उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्या की उन्नति की कामना करने वाली स्त्रियाँ कन्याओं और स्त्रियों को निरन्तर शिक्षा देवें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्रैषिते प्रसवं भिक्षमाने अच्छां समुद्रं रथ्येव यायः ।

समाराणे ऊर्ध्विभिः पिबन्माने अन्या वामन्यामर्थ्येति शुभ्रे ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जा ( इन्द्रैषिते ) सूर्य में वृष्टि के द्वारा प्रेरित की गई ( पिबन्माने ) नीचजहानी ( ऊर्ध्विभिः ) तत्काल ( समुद्रम् ) बहनेवाले जलों में युक्त मेघ वा सागर का ( रथ्येव ) रथों में चलन योग्य घोड़ों वा नदियों के सदृश ( प्रसवम् ) उत्तम मध्यम भी ( भिक्षमाने ) याचना करनेवाली हुई ( समाराणे ) उत्तम प्रकार सब तरह दान देनेवाली ( शुभ्रे ) सोमायुक्त होकर पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियाँ ( अच्छा, याय ) अच्छे प्रकार जाने ( अन्या ) कोई एक स्त्री ( अम्याम् ) दूसरी स्त्री को ( अपि, एति ) प्रीति से मिलाती है वा हे पढ़ाने और उपदेश देने वालीयों ! ( याय ) तुम दोनों के सम्बन्ध से जो स्त्रिया पढ़ने वा सुनने को प्राप्त हो वे स्त्रिया तुमको विद्या सम्बन्धी व्यवहार में नियुक्त करनी तथा पढ़ानी चाहिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकसुतोपमालङ्कार हैं । जैसे जवान स्त्रियाँ जवान पतिव्रता का प्राण होके गर्भोत्पत्ति की वृद्धा करती हैं और नदियाँ समुद्र के प्रति जाती हैं और छोड़े मार्ग में रथ को ले चलते हैं वैसे ही पढ़ने और उपदेश देनेवालीयों को चाहिए कि विद्या और उत्तम शिक्षा के दान से सम्पूर्ण स्त्रियों को उत्तम गुणकर्म स्वभावयुक्त करें ॥ २ ॥

अच्छा सिन्धुं मातुसममयासं विपाशमुर्वी सुभगांमगन्म ।

अस्तमिष मातरां संरिहाणे समानं योनिमनु सभरेन्ती ॥३॥

पदार्थ—जैसे ( मातुसमम् ) अत्यन्त माता के सदृश पालन करने वाली

नदियां ( सिन्धुम् ) समुद्र के प्रति प्राप्त होती हैं वैसे ही हम ( विद्याम् ) बन्धन रहित ( उर्वीम् ) बड़ी ( सुभगाम् ) सौभाग्यमि युक्त पढ़ाने और उपदेश देनेवाली स्त्री की ( अन्ताम् ) प्राप्त हों और जैसे ( सरिहास् ) उत्तम प्रकार आस्वाद करने वाली स्त्रियां ( सन्ताम् ) तुल्य ( योनिम् ) गृह की ( अनु, सम्भारस्ती ) अनुकूलता से उत्तम प्रकार चलती और जानती हुई ( मातरा ) माता के सदृश वर्तमान ( अन्ताम् ) जैसे गी बछड़े को वैसे मुँहका पढ़ाने और शिक्षा देने के लिए प्राप्त हों उनको मैं ( अन्ताम्, अन्ताम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र को नदियां और बछड़ों को गोबे और स्त्री पुरुष एक गृह को प्राप्त होते हैं वैसे ही पढ़ाने और उपदेश देने वाली स्त्रियां हम लोगों को प्राप्त हो और हम लोग जो कन्या और सौभाग्य वाली स्त्रियां हो उनको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

**एता वयं पर्यसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं धरन्तीः ।**

**न वचंसे प्रसवः सर्गैतकः कियुविशो नयौ जोह्वीति ॥४॥**

पदार्थ—जो ( एता ) इस ( वयसा ) जल से ( पिन्वमाना ) सींचती हुई ( देवकृतम् ) विद्वानों से किये शास्त्र और ( योनिम् ) जन को ( अनु, धरन्ती ) अनुकूल प्राप्त होने वाली ( नय ) नदियां ( वचंसे ) स्वीकार करने को ( न ) नहीं निवृत्त होती हैं उनको ( वयम् ) हम लोग प्राप्त होंगे जो ( सर्वतत्त्व ) उत्पत्ति में प्रसन्न ( प्रसवः ) सन्तान ( कियु ) अपने को क्या इच्छा करने वाला ( विप्र ) बुद्धिमान् पुरुष ( जोह्वीति ) बारम्बार शब्द करता है वह हम लोगों को प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे जल सहित नदियां सब की उपकार करनेवाली होती और कभी जल से हीन नहीं होती हैं वैसे जो ब्रह्मचर्य से युक्त स्त्री और पुरुष का मन्त्रान् उत्पन्न हो और धर्मसम्बन्धी ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त होकर विद्वान् होता है वही सबका उपकार कर सकता है ॥ ४ ॥

**रमध्वं मे वचसे मोम्याय कृतावरीक्ष्य मुहूर्त्तमेवैः ।**

**प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनोपावस्थुरहे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्या ! आप लोग जैसे ( कृतावरी ) बहुत जलो से युक्त नदी ( सिन्धुम् ) समुद्र को ( उप ) प्राप्त और स्थिर होती हैं वैसे ही ( एव ) प्राप्त करानेवाले गुणों से ( मुहूर्त्तम् ) दो दो बड़ी ( मे ) मेरे ( मोम्याय ) चन्द्रमा के तुल्य शान्ति गुणयुक्त ( वचसे ) वचन के लिए ( रमध्वम् ) ग्रीडा करो वन ही ( कुशिकस्य ) विद्या के निचोड़ को प्राप्त हुए मज्जन के ( सूनु ) पुत्र के सदृश वर्तमान ( अक्षम् ) अपने को रक्षा चाहने वाला मैं जा ( बृहती , बड़ी ) मनोपा ( बुद्धि ) उनकी ( अक्षम् ) उत्तम प्रकार ( प्र, अहम् ) प्रशंसा करता हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नदियां समुद्र के सम्मुख जाती हैं वैसे ही मनुष्य लोग विद्या और धर्मसम्बन्धी व्यवहार को प्राप्त हो जिसमें मुखपूर्वक समय व्यतीत हों ॥ ५ ॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से मनुष्य के कर्तव्य को कहते हैं—

**इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्वाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।**

**देवीऽनयस्मविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम् उर्वीः ॥६॥**

पदार्थ—हे राजन् ! ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् ! आप जैसे ( सविता ) सूर्य ( देव ) उत्तम गुण कर्म और स्वभावयुक्त ( नवीनाम् ) नदियों के ( परिधिम् ) चारों ओर वर्तमान ( वज्रम् ) टांपने वाले मेघ को ( अप, अहम् ) नाश करता है उसके अवशेषों का ( अरदत् ) खावे और जल, भूमि को ( अमयत् ) प्राप्त करना वैसे ( वज्रवाह ) शस्त्रधारी हो ( अस्मान् ) हम लोगों की रक्षा करके सेवकों के सहित शत्रुओं का नाश करें जो ( सुपाणि ) उत्तम हाथों से और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त आप ( उर्वी ) बहुत मुख की दनवासी प्रजाओं की रक्षा करें ( तस्य ) उसके ( प्रसवे ) गणवय मे ( वयम् ) हम लोग आनन्द को ( याम् ) प्राप्त होंगे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य भूमि आदि पदार्थों को आकर्षण से यथास्थान ठहरा और वृष्टि करके गणवय को उत्पन्न करता है वैसे ही हम लोग उत्तम गुणों का आकर्षण और शत्रुओं को जीत करके राज्य की शोभा को प्राप्त करें ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विद्वज्भूत ।**

**वि वज्रेण परिषदो जघानायथापोऽयं नमिच्छमानाः ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य ( अहिम् ) मेघ को ( विजृम्भत् ) काटना है ( यत् ) जो ( इन्द्रस्य ) सूर्य का ( वीर्यम् ) अलक्ष्य ( कर्म ) कर्म है ( तत् ) वह ( शश्वधा ) निरन्तर हो ( प्रवाच्यम् ) कहने योग्य और जैसे ( वज्रेण ) किरण से विदीर्ण किये गये मेघ के ( आपः ) जल ( अयम् ) भूमि स्थान को ( आपत् ) प्राप्त हुए मेघ को ( विजृम्भत् ) नाश करता है वैसे ही ( इच्छमानाः ) इच्छा करते हुए जन ( परिषद ) जिनमें बैठें उन सभा को करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो धर्म-सम्बन्धी काम करके पुष्ट पुरुषों के निवारण के लिए अपना पराक्रम विस्वावे उसके उस काम की प्रशंसा सब काल में करनी चाहिए। जो लोग सभा में श्रेष्ठ हों वे न्याय से सब लोगों की उन्नति करने की इच्छा करें ॥ ७ ॥

**एतद्वचो जगिमापि मृष्टा आ वसे घोषानुचरा युगानि ।**

**उक्थेयु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषवा नमस्ते ॥८॥**

पदार्थ—हे ( जगित् ) प्रशंसा करनेवाले ! आप ( एतत् ) इस ( वचः ) वचन को ( मा ) नहीं ( अपि मृष्टाः ) सहो ( ते ) आपके ( यत् ) जो ( उत्तरा ) भागे के ( युगानि ) वर्ष ( घोषान् ) वाणी के प्रयोगों को प्राप्त हों वह ( उक्थेयु ) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों में ( नः ) हम लोगों को प्राप्त होंगे । हे ( कारो ) हे कर्ता पुरुष ! उनसे ( न ) हम लोगों की ( प्रति, आ, जुषस्व ) सेवा करो हम ( पुरुषवा ) पुरुषों का ( मा, नि, कः ) अपकार मत करो इससे ( ते ) आपके लिए ( नमः ) नमस्कार हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जितना भूतकाल गया उसमें व्यतीत हुए कर्मों के शेष करने योग्य कार्य को जान के वर्तमान और भविष्यत् काल में जिस प्रकार उन्नति होंके विघ्न निवृत्त हों वैसे ही करो ॥ ८ ॥

**ओ धु स्वसागः कारव शृणोत ययौ वी दगादनसा रथेन ।**

**नि पू नमध्वं मवता सुपारा अघोभक्षाः सिन्धवः सोत्याभिः ॥९॥**

पदार्थ—( ओ ) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( कारवे ) शिल्पीजन के लिए ( स्वसारः ) भगिनो के तुल्य वर्तमान प्रदुलियो ( ओत्याभिः ) वा झोनों में होनेवाली गतिधो से ( सिन्धवः ) नदियों के समान ( अघोभक्षाः ) नीबे को प्राप्त होती हुई इन्द्रियों से युक्त ( सुपारा ) सुन्दर पालन आदि कर्म करनेवाले ( धु, भवत ) उत्तम प्रकार से हजिए जो ( अन्ता ) शकट और ( रथेन ) रथ से ( दूरात् ) दूर ( न ) आप लोगों को ( ययौ ) प्राप्त होता है उसको ( धु, शृणोत ) उत्तम प्रकार सुनिये उसमें ( नि ) अत्यन्त ( नमध्वम् ) नम्र हजिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग दूसरे-दूसरे में प्रसन्न बहुत बातों को सुन हुए पुरुष, औरों से बनाये हुए शीघ्र चलनेवाले वाहनों को देख और वैसे ही बनावे जलाशयों के आर-पार जाते हुए नम्र हों उनको जैसे ओता नदियों को वैसे गणवय गुण प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

**आ तै कारो शृणुवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।**

**नि तै नसै पीप्यानेव योषा मय्यथैव कन्या शश्वचै तै ॥१०॥१३॥**

पदार्थ—हे ( कारो ) शिल्पविद्याओं में चतुर ! ( ते ) आपके ( वचांसि ) विद्या के प्राप्त करानेवाले वचनों को ( अन्ता ) शकट और ( रथेन ) रथ से ( दूरात् ) दूर से आपके हम लोग ( आ ) सब प्रकार ( शृणुवामा ) सुनें और जैसे आप हम लोगों को ( ययाथ ) प्राप्त हों वैसे हम लोग आपको प्राप्त होंगे जो आप ( पीप्यानेव ) विद्या से बुद्ध दो पुरुषों के सदृश ( नि, नसै ) नमस्कार करें ( ते ) आपके लिए हम लोग भी नम्र होंगे ( योषा ) स्त्री ( मय्यथैव ) जैसे पुरुष के लिए और ( कन्या ) कन्या ( शश्वचै ) ग्रीति से मिलने के लिए वैसे ( ते ) आपके लिए हम लोग अभिलाषा करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग दूर से आके विद्वानों के समीप में अनेक प्रकार की विद्याओं को प्राप्त करके नम्र होते हैं वे विद्याबुद्ध होकर जैसे पतिव्रता स्त्री पति और कन्या असीष्ट वर को वैसे विद्या का प्राप्त होने के आनन्दित होते हैं ॥ १० ॥

**यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्रामं श्वित इन्द्रजुतः ।**

**अर्धादहं प्रमवः सर्गैतक्त आ वी वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥**

पदार्थ—हे ( अङ्ग ) मित्र ! ( यत् ) जिस ( त्वा ) आपको ( भरताः ) सबको धारण वा पोषण करनेवाले ( सन्तरेयुः ) मत्तरे अर्थात् आपके स्वभाव से पार हो वह ( ग्रामः ) मनुष्यों के समूह के समान ( श्वितः ) प्रेरणा को प्राप्त ( इन्द्रजुत ) बिजुली के सदृश प्रताप और ( प्रमवः ) अत्यन्त ऐश्वर्य युक्त ( सर्गैतक्त ) जल के सकोच करनेवाले ( गव्यम् ) गी के तुल्य आचरण करते हुए आप ( अहम् ) ग्रहण करने में ( अर्धात् ) प्राप्त होंगे वा हे विद्वानो ! जैसे मैं ( यज्ञियानाम् ) यज्ञ के मित्र करनेवाले ( वः ) आप लोगों की ( सुमतिम् ) उत्तम बुद्धि को ( आ ) मम प्रकार ( वृणे ) स्वीकार करता हूँ वैसे आप लोग मेरी बुद्धि को स्वीकार करिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्वान् लोग विद्या के पार जा अर्थात् सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ के बुद्धिमान् हात हैं वैसे और लोग भी हों। ऐसा करने पर सम्पूर्ण जन दुःख के पार जा अर्थात् दुःख को उत्पन्न करने मुक्ति होंगे ॥ ११ ॥

**अताग्निर्भरता गव्यवः सममक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।**

**प्र पिन्वध्वमिषयतीः सुराधा आ वज्रणाः पुणध्वं वात शीघ्रम् ॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( गव्यवः ) अपनी उत्तम शिक्षायुक्त वाणी की इच्छा करने तथा ( भरताः ) धारण और पोषण करनेवाले नौका धारि से ( नदी-नाम् ) नदियों के सदृश वर्तमान पत्नी हुई स्त्रियों के आनन्दवाहों को ( अताग्निः ) तरे, जैसे ( सुराधाः ) उत्तम धनयुक्त ( विप्रः ) बुद्धिमान् पुरुष ( पुणध्वम् ) उत्तम बुद्धि को ( वत्, अमयत् ) अच्छे प्रकार सेवन करो और वैसे ( वज्रणाः ) बहनी हुई नदियां और बहती हैं वैसे ( इषयन्ती ) अन्न की सिद्ध करानेवाली स्त्रियों को ( प्र, पिन्वध्वम् ) सेवन करो, सबका ( आ, पुणध्वम् ) पालन करो और उत्तम गुणों को ( शीघ्रम् ) शीघ्र ( वत् ) प्राप्त होंगे ॥ १२ ॥





विभाग करनेवाले ( इषः ) मुख ( ज ) और ( देवी ) उत्तम ( अय ) प्राणी को ( इमां ) प्रत्यक्ष वर्तमान इस ( पृथिवीम् ) अन्तरिक्ष वा पृथिवी ( उत ) और इस ( आम् ) बिजुली को ( ससान ) ध्वन्य-अलग करे उस ( इन्द्रम् ) तेजस्वी पुरुष को ( वीर्यशतः ) उत्तम बुद्धि और संज्ञा से युक्त भाग ( अवन्ति ) आनन्दित करते हैं वह उनके ( अयु ) पीछे आनन्द को प्राप्त होंगे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण करने बल को बढ़ाने और प्रजा के सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष बिजुली और पृथिवी आदि के गुणों का विद्या से विभाजकता हो उसी परीक्षा करनेवाले जन को बुद्धिमान वीर लोग प्राप्त होके आनन्द करते हैं और वे भी ऐसे ही पुरुष से आनन्द का प्राप्त हो सकते हैं ॥ ८ ॥

**ससानात्वा उत सूर्य्य ससानेन्द्रः ससान पुरुमोजसं गाम् ।**

**हिरण्यमुत भोगी ससान हत्वी दस्युन्यार्यं वर्जमावत् ॥९॥**

पदार्थ—वह ( इन्द्रः ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त राजा वा मन्त्रियों का समूह ( अत्यान् ) उत्तम शिक्षा से घोड़े के ( ससान ) विभाग को और ( सूर्य्यम् ) सूर्य के सदृश प्रतापयुक्त वीर पुरुष को ( ससानम् ) अलग करे ( पुरुमोजसम् ) बहुतों का पालन वा बहुतों का नहीं भोजन देनेवाले पुरुष की ( गाम् ) बाणी वा भूमि का ( उत ) और ( हिरण्यम् ) सुवर्ण आदि पदार्थों का ( ससान ) विभाग करे ( उत ) और ( भोगम् ) उत्तम भोजन आदि के पदार्थों का ( ससान ) विभाग करे वह पुरुष ( दस्युम् ) साहस कर्म करनेवाले चार आदि का ( हत्वी ) नाश करके ( आर्य्यम् ) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त धार्मिक ( वर्जम् ) स्वीकार करने योग्य पुरुष की ( प्र, आवत् ) रक्षा करे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो लोग उत्तम प्रकार परीक्षा करके भले और बुरे घोड़े, वीर पुरुष, न्यायाधीश, लक्ष्मी और उत्तम भोग का विभाग कर सकें वे ही पुरुष दुष्ट पुरुषों का नाश कर श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा कर सकें ॥ ९ ॥

फिर राजादि जनों को क्या करना चाहिए, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीरसनोदन्तरिक्षम् ।**

**विभेदं वलं ननुदे विवाचोऽधामयदमितामिक्रतूनाम् ॥१०॥**

पदार्थ—वह ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य्य देनेवाला राजा ( अहानि ) दिनो दिन ( ओषधी ) सोम आदि ओषधियों को ( असनोत् ) देवे ( वनस्पतीन् ) पीपल आदि वनस्पतियों को ( असनोत् ) देवे ( अन्तरिक्षम् ) जल और ( वलम् ) बल का ( विभेद ) भेदन करे ( विवाच ) अनेक प्रकार की वाणियों की ( ननुदे ) प्रेरणा करे ( अयम् ) और भी ( अभिक्रतूनाम् ) सहसा शीघ्र कर्म करनेवाले शत्रुओं का ( वमिता ) दमन करनेवाला ( अभवत् ) होंगे ॥ १० ॥

भाषार्थ—राजा आदि श्रेष्ठ जनों को चाहिये कि प्रतिदिन ओषधियों के रसादि उत्पन्न कर उनके रस का पान विद्या सम्बन्धी बाणी का प्रचार और सब जन की बुद्धियों का अपनी बुद्धि से भी अधिकता के सहित दमन अर्थात् विषयों से निवृत्ति करें जिससे आरोग्य और विद्याओं के प्रभाव प्रतिदिन बढ़ें ॥ १० ॥

मनुष्यों को कैसे राजा का सेवन करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**शुनं हुवेम मघवानिन्द्रमस्मिन्मरे नृत्तं वाजसातो ।**

**शूचवन्तमुग्रमृतये समत्सु व्रन्तं वृत्राणि सञ्जितं घनानाम् ॥११॥१६॥**

पदार्थ—हैं मनुष्यों ! जिस ( शुनम् ) सुख देने वाले ( मघवानम् ) बहुत जन से युक्त ( अस्मिन् ) इस वर्तमान ( वाजसातो ) विज्ञान अविज्ञान सत्य और असत्य के विभाजकारक ( अरे ) सूर्य और विद्वान् के अज्ञान और ज्ञान के विषय के विरोध रूप मुद्द में ( नृत्तम् ) अत्यन्त सत्य और असत्य के निराण्य करने ( इन्द्रम् ) और दुष्ट जनों के नाश करनेवाले पुरुष की ( उत्तये ) रक्षा आदि के लिए ( शूचवन्तम् ) अर्थात् प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्द में मुहाले के अन्तर्गत सुनने के पीछे न्याय करने ( उपम् ) दुष्ट पुरुषों पर कठोर स्वभाव और श्रेष्ठ पुरुषों में शान्त स्वभाव रखने ( समत्सु ) सग्रामा में ( वृत्राणि ) मेघों के अवयवों से सदृश शत्रुओं के सेनाओं के ( घनत्वम् ) नाश करने और ( घनानाम् ) विज्ञान आदि पदार्थों के मध्य में ( सञ्जितम् ) उत्तम प्रकार धेष्टता को प्राप्त होनेवाले राजा की ( हुवेम ) प्रशंसा करे उगकी आप लोग भी प्रशंसा करेंगे ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग दुष्ट और श्रेष्ठ पुरुषों की परीक्षा करन, वादी और प्रतिवादी के घबराव को सुनके न्याय करने, पण्डित और सुख जत का आदर और निरादर करने, पक्षपात से अलग रहने और सम्पूर्ण जनों के सुख देने वाले पुरुष को राजा मानके आनन्द करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में सूर्य बिजुली वीर राज्य राजा की सेना और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौतीसवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अनेकबाह्यार्थस्य पञ्चत्रिंशत्सप्तस्य सूक्तस्य विज्जानित्र ऋषि । इन्द्रो देवता ।

१, ७, १०, ११ जितुप । २, ३, ६, ८ मिषुषिषुप । ९ विराट्

त्रिष्टुप् । धेवतः स्वरः । ४ धुरिक् पङक्तिः । ५ स्वरट्

पङक्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब व्यासह ऋषि बाले चौतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को कहते हैं—

**तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुती नो अचष्ट ।**

**पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् ! आप जिस ( रथे ) रथ में ( युज्यमाना ) जुड़े हुए ( हरी ) घोड़ों के सदृश जल और अग्नि वर्तमान हैं उस रथ में ( आ ) सब प्रकार ( तिष्ठ ) वर्तमान रहिये इससे ( वायुः ) पवन के ( न ) तुल्य ( नियुत ) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ मिले और दुष्ट पुरुषों से अभिमिले ( न ) हम लोगों को ( अचष्ट ) अच्छे प्रकार ( याहि ) प्राप्त रहिये और ( अभिसृष्टः ) सम्मुख प्रेरित होता हुआ जन ( ते ) आप के लिये ( अस्मे ) हमारे निकट से ( अन्धः ) उत्तम प्रकार संस्कार किये हुए अन्न को ( मदाय ) आनन्द के अर्थ ( ररिमा ) देवे उस का ( स्वाहा ) सत्य बाणी से ( पिबति ) पान कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से चलनेवाले रथ पर बड़े के अन्य अन्य देशों को वायु के सदृश जाते हैं वे बहुत भक्षण भोजन करने पीने और बूषने योग्य पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उपांजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धृष्या युनजिम् ।**

**द्रवधया सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यद्धमा वहात इन्द्रम् ॥२॥**

पदार्थ—हैं मनुष्यों ! ( यथा ) जैसे मैं जो ( इन्द्रम् ) इस प्रत्यक्ष ( यजम् ) शिल्पविद्या से होने योग्य ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् काम को सब प्रकार चलाते ( विश्वतः ) वा सब आग में ( इन्द्रम् ) पिघलने को प्राप्त होते हुए ( सम्भृतम् ) उत्तम प्रकार धारण किये गये पदार्थों को ( चित् ) भी ( उप ) समीप में ( आ, वहात ) वहात उन ( पुरुहूताय ) बहुतों से बनाये गये के लिये वर्तमान ( अजिरा ) वाहनो के फेकने ( सप्ती ) शीघ्र चलने ( हरी ) और यान को ले जानेवाले का ( रथस्य ) वाहन की ( धृष्या ) धुरियों में जिन का ( उप, आ, युनजिम् ) जोड़ता है उनको आप लोग भी जोड़िये ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो लोग वाहनो में बिजुली आदि पदार्थों को समुक्त करके चलाते हैं वे किम किस देश को न जा सकें ? और उनको कौनमा ऐश्वर्य्य है जो न प्राप्त होंगे ॥ २ ॥

**उपो नयस्व धृषणा तपुषोतेमं त्वं वृषम स्वधावः ।**

**असेतामथा वि मुचेह शोणा विवेऽदिवे सदक्षारदि धानाः ॥३॥**

पदार्थ—ह ( वृषम् ) बलवान् ! ( स्वधावः ) अत्यन्त अन्नयुक्त ( रथम् ) आप ( इह ) इस वाहन में जो ( तपुष्या ) तपते हुए पदार्थों को रखनेवाले ( धृषणा ) वन और ( शोणा ) लालरङ्ग युक्त ( अक्ष्वा ) शीघ्रगामी अग्नि आदि इन्द्रो का ( असेताम् ) भक्षण कर उनमें कन्याओं को ( वि, मुच ) छोड़ो ( ईम् ) जल को ( उपो ) उनके समीप में ( नयस्व ) पहुँचाओ ( उत ) और ( विवेऽदिवे ) नित्य ( तपुषी ) तुल्य परिणाम वाले ( धाना ) अग्नि से संस्कार किये अन्न विशेषों को ( अदि ) भक्षण करो उनमें बाभा का ( अब ) पेश करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो शिल्पी जन अग्नि जन आदि पदार्थों को उत्तम कलाओं से युक्त वाहनो में समुक्त करके चलाते हैं वे दारिद्र्य को छोड़ के धन और धान्य को प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥

**अक्षणा ते अय्युजा युनजिम् हरी सखाया मधमाद आशू ।**

**स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठेन प्रजानन विह्वं उप याहि सोमम् ॥४॥**

पदार्थ—ह ( इन्द्र ) शिल्पविद्यारूप ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष ! मैं ( ते ) आप के जिस वाहन में ( अक्षणा ) अन्न आदि के सहित विद्यमान ( अय्युजा ) धन के सहित करने और ( आशू ) शीघ्र ल चलनेवाले ( हरी ) जन और अग्नि को ( सखाया ) मित्रों के तुल्य ( मधमादे ) शरीर के स्थान में ( युनजिम् ) समुक्त करता हूँ उम ( सुखम् ) आकाशवाणियों के लिये हित करनेवाले ( स्थिरम् ) दृढ़ ( रथम् ) वाहन ( अधि, तिष्ठन् ) पर स्थिर हो तो ( विह्वम् ) इस विद्या को अङ्ग और उपाङ्गों के सहित जानने और ( प्रजानन् ) उत्तम प्रकार ज्ञान को प्राप्त होंगे आप ( सोमम् ) ऐश्वर्य्य को ( उप, याहि ) प्राप्त रहिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाचकानुत्तोपमानकार है । जो लोग अग्नि जन आदि पदार्थों में बनाये गये वाहन पर बैठ अच्छे प्रकार विद्या द्वारा उसको चलाते हुए देश-देशान्तरो में जा-आ और ऐश्वर्य्य को पा मित्रों का सत्कार करें वे ही विद्या धर्म की बुद्धि कर सकें ॥ ४ ॥

**मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अग्नये ।**

**अत्यायाहि शन्धतो वयन्तेऽर् सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥१७॥**

पदार्थ—हैं प्रतापयुक्त पुरुष ! जो ( अग्नये ) इस में और ( अजमानासः ) विद्या की मङ्गति जाननेवाले ( ते ) आप के ( वीतपृष्ठा ) चौकी पीछों से युक्त

(बुधश्च) बलिष्ठ (हरी) वाहनी के ले चलने वालों को (वा) नहीं (नि, रीरञ्जन्) रमावे उनको आप (अथावाहि) बड़े वेग से प्राप्त हुईये वा छोड़िये और (अथवतः) अनादि काल से सिद्ध विद्यायुक्त पुरुषों को प्राप्त हुईये जिस (ते) आप के (सुतेभिः) उत्पन्न (सोमे) ऐश्वर्य्य में (आरम्भ) पूरे काम को (वयम्) हम लोग (कृण्वाम) करें वह आप हमारे पूरे काम को करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को जाने बिना इस विद्या के जाननेवाले जनो का उत्साह नहीं बढ़ाते उनका उल्लङ्घन कर अनादि काल से सिद्ध विद्या के जाननेवाले विद्वानों के कारण आपके शिल्पविद्या से उत्पन्न कार्यों से पूर्ण मनोरथ वाले हम लोग होंगे इस प्रकार इच्छा करके नित्य प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

तवायं सोमस्त्वमेष्टव्यं शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।

अस्मिन् यज्ञे बहिष्या निषद्या दधिष्वेम जठर इन्दुमिन्द्र ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के इच्छा करनेवाले ! (तव) आप का जो (अयम्) यह (अर्वाङ्) अधोभाग में विद्यमान (सोम) ऐश्वर्य्य का संयोग उम (शश्वत्तमम्) अत्यन्त अनादि काल से सिद्ध ऐश्वर्य्य संयोग को (त्वम्) आप (आ, इहि) प्राप्त हुईये (अस्मिन्) इस (बहिषि) अग्नि उत्तम (यज्ञे) शिल्पविद्या से होने योग्य व्यवहार में (निषद्या) निरन्तर स्थिर होकर (सुमनाः) प्रसन्नचित्त हुए (इन्दुम्) इस की (पाहि) रक्षा करो और (अस्य) इस ज्ञान की उत्तेजना से प्राप्त (इन्दुम्) गीले पदार्थ को (जठरे) उदर में (आ) सब प्रकार (दधिष्वे) चाण कीजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस सब से उत्तम शिल्प विद्या से माध्य व्यवहार में बहुत होके अनादि काल से उत्पन्न और प्राचीन विद्वानों से प्राप्त ऐश्वर्य्य को सिद्ध कर इन ससार की रक्षा के लिये स्थिर करके योग्य आहार और विहार से आनन्द भोगो ॥ ६ ॥

हस्तीर्णं ते बहिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अर्चवे ते हरिभ्याम् ।

तदीकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वसे तुभ्यं राता हवीर्षि ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दण्डिता के नाश करनेवाले ! (ते) आप का (हस्तीर्णम्) डपा और (बहिः) बड़ा हुआ जल वा (सुतः) उत्पन्न किया गया (सोम) ऐश्वर्य्य का संयोग वा (कृताः) सिद्ध किये गये (धानाः) पके हुए अन्न विशेष वा (हरिभ्याम्) घोड़ों से संयुक्त वाहन पर बैठे हुए जो (ते) आपके जन्म और (तदीकसे) वाहनरूप स्थानवाले (पुरुशाकाय) अनेक प्रकार की शक्ति से (वृष्णे) वृष्टि करानेवाले (मरुत्वसे) कार्य्य करनेवाले बहुत मनुष्यों के सहित विराजमान (तुभ्यम्) आप के लिए (अस्य) भोजन करने को जो (हवीर्षि) भोजन करने के योग्य अन्न आदि (राता) वर्तमान उन को भोगो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—सम्पूर्ण जन उत्तम पदार्थों के भोजन करनेवाले हो और अस्याय से इकट्ठे किये हुए किसी भी पदार्थ का भोग न करे इस प्रकार वर्त्ताव करने पर धन, सामर्थ्य, विद्या और आयु बढ़ते हैं ॥ ७ ॥

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमायः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमकन ।

तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन् विद्वान् पथ्याऽअनु स्वाः ॥८॥

पदार्थ—हे (ऋष्व) विद्या से पूर्ण (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य की प्राप्ति करानेवाले जो (नरः) प्रधान पुरुष (तुभ्यम्) आप के लिए (पर्वता) मेघ और (आयः) जन के समान (गोभिः) गृध्री आदि पदार्थों के सहित (इमम्) इस वर्तमान (मधुमन्तम्) मधुर आदि बहुत रसों से युक्त पदार्थ को (सम्, अकम्) अच्छे प्रकार करें उन का (पाहि) पालन करो (सुमनाः) और ईर्ष्या रहित मन वाले आप (प्रजानम्, विद्वान्) जानते और विद्वान् होते हुए (तस्य) उस काम की (स्वाः, पथ्याः) मार्ग से निज चालियों को (अगत्य) प्राप्त होकर सब का (अनु) पालन करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वृष्टियों से सब का पालन होता है वैसे ही विमान आदि वाहन अनादिवाले जन संसार में सब के रक्षा करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामर्ध्वं भवन् गणस्ते ।

तेभिरेतं सजोषा वाचशानोदधेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के देनेवाले ! आप ऐश्वर्य्य में (वाच) जिन विद्वानों की (अवतः) प्राणी के सदृश प्रिय और अष्ट जान के (आ, अगवः) सेवन करो (ये) जो लोग (सोमे) ऐश्वर्य्य में (त्वाम्) आप की (अर्ध्वम्) भूमि करें जो (ते) आप का (गणः) समूह उस को प्राप्त होके आनन्दित (अगवन्) होंगे (तेभिः) उन लोगों के साथ हे (इन्द्र) दुःख के नाश करनेवाले ! (सजोषाः) सुख प्रीति के सेवनकर्ता (वाचशानः) अत्यन्त कामना करते हुए आप (अग्निः) अग्नि की (जिह्वया) ज्वाला के सदृश वर्तमान गुण से (एतम्) हम (सोमम्) सोम रस का (पिब) पान करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो प्राण के सदृश प्रिय और अष्ट विद्वान् जनों की मनुष्य लोग सेवा करें तो इन मनुष्यों की वे विद्वान् लोग सब प्रकार बुद्धि करें और वैसे अग्नि ज्वाला से सम्पूर्ण रसों का पान करता है वैसे

ही तीक्ष्ण मुखा के सहित वर्तमान पुरुष अन्न का भोजन करे और पान करने योग्य वस्तु का पान करे ॥ ९ ॥

इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।

अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्तादोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०॥

पदार्थ—हे (यजत्र) आदर करने योग्य (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) ऐश्वर्य्य वाले ! आप (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वया) ज्वाला के सदृश वर्तमान लपट से (वा) वा (स्वधया) अन्न से (चित्) भी (चित्सुत) सिद्ध हुए रस का (पिब) पान करिये (अध्वर्योः) आत्ममन्वन्धी यज्ञ की इच्छा करते हुए पुरुष के (वा) अथवा (प्रयतम्) प्रयत्न से सिद्ध (यज्ञम्) यज्ञ का (पाहि) पालन करो (होतुः) देनेवाले के (हस्तात्) हाथ और (हविषः) हवन की सामग्री से (वा) अथवा यज्ञ का (जुषस्व) सेवन करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिन मनुष्यों से उत्तम प्रकार सिद्ध किये हुए अन्न का भोजन और रस का पान कर रोग रहित हो और विद्वानों के साथ भेल करके यज्ञ का सेवन किया जाय वे सदा सुखी होंगे ॥ १० ॥

सुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्मरे वृतमं वाजसातो ।

सृष्टवन्तमुग्रमृतये समस्तु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (अस्य) रक्षा आदि के लिए (समस्तु) सगामों में (वृत्राणि) हम लोगों के बल को घेनेवाली शत्रु की सेनाओं को सूर्य के नयन शत्रुओं के (जन्तम्) नाशकारक (उग्रम्) तेजस्वी (भृष्टवन्तम्) मत्पुरुष के वचनों के सुनने (धनानाम्) विद्या और सुवर्ण आदिकों के (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतनेवाले (अस्मिन्) इस शिल्प व्यवहार (वाजसातो) अन्नों के विभाग और (भरे) युद्ध में (नृत्तवम्) पुरुषोत्तम (शुनम्) सुवकारक (मघवानम्) बहुत मनयुक्त (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्यवाले जन को (हुवेम) प्रशमा से पुकारें वैसे इस की आप लोग भी प्रशसा करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिन लोगों का निष्फल कर्म नहीं है उनको मघ की रक्षा के लिए आप लोग स्वीकार करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि, आदि पदार्थों और घोड़े के वृष्टान्त से उपदेश करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पंतीतर्वा सूक्त और अठारहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथैकादशस्य षड्विंशतमस्य सूक्तस्य १—६, ११ विद्याभिन्नः; १० घोर आङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ७, १०, ११ त्रिष्टुप्; २, ३, ६, ८ निष्ठादिष्टुप्;

६ चिराद् त्रिष्टुप्छन्दः । छन्दः स्वर । ४ भुरिक् पङ्क्तिः;

५ स्वरान् पङ्क्तिवृत्तम् । पञ्चम स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मन्त्र से मनुष्य किस प्रकार के आचरण से सुख को प्राप्त हों,

इस विषय को कहते हैं—

इमाम् धृ प्रभृति सातये धाः शश्वच्छश्वदृतिमिर्यादमानः ।

सुतेसुते वावृधे वर्धनभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (ध) जो विद्या की (याचना) याचना करते हुए आप (ऊर्तिभिः) रक्षण आदिकों से (सातये) सविभाग के लिए (इमाम्) इस (प्रभृतिम्) उत्तम भारगा और (शश्वच्छश्वत्) व्यापक व्यापक वस्तु को (धृ) उत्तम प्रकार (धा) धारण करें (वर्धनेभिः) वृद्धि के साधनों और (महद्भिः) बड़े (कर्मभिः) करनेवाले के अतीव चाहे हुए व्यवहारों से (सुतेसुते) उत्पन्न हुए पदार्थ में (वावृधे) बढ़ें (उ) वही (सुश्रुतः) उत्तम प्रकार श्रोता (भूत्) होंगे ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य कार्य्य के विज्ञान का आरम्भ करके पर पर अर्थात् बड़े से छोटे उसमें और छोटे उससे भी छोटे इत्यादि सूक्ष्म कारण पर्यन्त व्यापक परमाणु रूप पदार्थ को जानकर उपयोग करें कार्य्य में लावें वे इस ससार में अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होंगे और जो लोग विद्वान् जनो से केवल विद्या की ही याचना करते हैं वे बहुभूत होने हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्राय सोमाः प्रविषो विधाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।

प्रयम्यमानान्प्रति धृ सुभायेन्द्र पिब वृषधृतस्य वृष्णः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वृषपर्वा) समर्थ पालनीयाला (विहायाः) जनार्थों का नाशकारी (ऋभुः) बुद्धिमान् जन (येभिः) जिन लोगों से (प्रयम्यमानान्) अत्यन्त नियमयुक्तों को जानता है वैसे (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिए (सोमाः) उत्पन्न करनेवाले वा उत्पन्न किये गये पदार्थ (प्रविषः) प्रकाशित विद्यायुक्त

( विद्यानाः ) प्राप्त हुए हो इन को आप लोग जानिये हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष । आप इन लोगों को ( प्रति, बु, वृषाभ ) अच्छे प्रकार ग्रहण कीजिए और ( वृषाभूतस्य ) तेजनों से मथे हुए ( वृषाभ ) बढ़ानेवाले रम का ( पिब ) पान कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस सत्ता में जैसे भ्रष्ट यथार्थवक्ता पुरुष दुष्ट व्यवहार का त्याग और श्रेष्ठ आचरण का ग्रहण करके नियमित आहार विहार से रोगरहित और अधिक अवस्थावाले होते हैं वैसे ही आप लोग भी हूँ ॥ २ ॥

**विद्या वर्धस्व तव या सुतास इन्द्र सोमांसः प्रथमा उतेमे ।**

**यथापिबः पृथ्वी इन्द्र सोमा एवा पाहि पन्थी अद्या नवीयान् ॥३॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले ! ( यथा ) जैसे ( पन्थः ) स्तुति करने योग्य ( नवीयान् ) नवीन आप ( अद्या ) इस समय ( पृथ्वी ) पूर्व हुए जनों से उत्पन्न ( सोमासु ) श्रेष्ठ सोमलता रमक ऐश्वर्य्य आदि से युक्त पदार्थों का ( अपिब ) पान करते हैं वैसे ही उन का ( पाहि ) पालन करो । हे ( इन्द्र ) तेजस्वी जन ( तव ) आप के जो ( इमे ) ये ( प्रथमाः ) पहले ( सुतास ) उत्पन्न हुए ( सोमांसः ) ऐश्वर्य्य करनेवाले पदार्थ ( व ) ही हैं उनका पालन करो ( उते ) और उत्तम रसों का ( पिब ) पान करो उन से ( एव ) ही ( वर्धस्व ) वृद्धि को प्राप्त होजो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम प्रकार संस्कार युक्त रसों का पान करें उनकी वृद्धि होवे और जो वृद्धि को प्राप्त होकर धर्म का आचरण करें वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

**महाँ अयत्रो वृजने विरप्युः शर्वः पत्यते धृष्योजः ।**

**नाह विव्याच पृथिवी चनैन यस्सोमांसो हय्यश्ममन्वन ॥४॥**

पदार्थ—जो ( अयत्र ) जानी ( विरप्यो ) अनेक प्रकार के प्रसिद्ध उपदेशों से पूर्ण ( महान् ) श्रेष्ठ ( वृजने ) बल में ( उपयु ) कठिन दुः ( शर्वः ) बल और ( धृष्यु ) प्रचण्ड ( ओजः ) पराक्रम ( पत्यते ) प्राप्त होता है ( एवम् ) इस को कोई पुरुष ( जन ) कुछ ( न ) नहीं ( विव्याच ) छलता है ( अह ) हा ! इसको ( पृथिवी ) भूमि प्राप्त होवे ( यत् ) जिस ( हय्यश्मम् ) से चलनेवाले घोड़ों से युक्त जन को ( सोमांस ) ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष ( अमन्वन् ) पमन्द करें वह उन को निरन्तर प्रसन्न करे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यो में वही पुरुष श्रेष्ठ होता है जो शरीर आत्मा सेना भिन्न बल आरोग्य धर्म और विद्या की वृद्धि करता है वह छल आदि दोषों का त्याग करके सब का उपकार करता है ॥ ४ ॥

**महाँ उग्रो वाङ्मे वीर्योय समार्चके वृषभः काव्येन ।**

**इन्द्रो भगो वाजवा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५॥**

पदार्थ—जो ( वाजवा ) अन्न आदि का देनेवाला ( भग ) सेवा करने योग्य ( वृषभः ) बलयुक्त ( उग्र ) उत्तम भाग्योदय विणिष्ट ( महान् ) अनि आदर करने योग्य महात्म्य ( इन्द्र ) ऐश्वर्य्यवाला ( काव्येन ) वृद्धिमान् पुरुष के बनाये हुए शास्त्र से ( वीर्योय ) बल के लिए ( वाङ्मे ) बढ़ता और ( समार्चके ) संयुक्त करता है ( अस्य ) इस पुरुष की ( गावः ) गौयें और ( अस्य ) दम की ( दक्षिणा ) दान कर्म ( पूर्वीः ) पूर्ण रूप में सिद्ध ( प्र, जायन्ते ) होते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो विद्यावान् पुरुष श्रेष्ठ और श्रेष्ठ सुपात्र कुपात्रों की उत्तम प्रकार परीक्षा करके सत्कार और अपकार यथायोग्य करता है उसी पुरुष के सम्पूर्ण पशु और आनन्द उपकार युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायज्ञापः समुद्रं गृध्रैव जग्मुः ।**

**अतश्चिदिन्द्रः सदर्सा वरीयान्यदी सोमः पूजति दुग्धो अंशुः ॥६॥**

पदार्थ—( यथा ) जैसे ( सिन्धवः ) नदियाँ ( प्रसवम् ) मेष को वा ( आपः ) जल ( समुद्रम् ) अन्तरिक्ष को ( आयम् ) प्राप्त होते हैं वैसे ( यत् ) जा उत्तम गुणों को प्राप्त हों वा ( गृध्रैव ) रथों में जो उत्तम जाल उनके सवृण सब स्थानों में ( प्र, जग्मुः ) प्राप्त हुए उनके साथ ( चित् ) भी ( यत् ) जो ( इन्द्रः ) राजा ( वरीयान् ) श्रेष्ठ पुरुष होता हुआ ( सदर्सा ) समझो को प्राप्त होवे ( अतः ) इससे वह ( गृध्रः ) गुणों से पूर्ण ( अंशुः ) ओषधियों का सार भाग और ( सोमः ) ओषधियों का समूह ( ईम् ) जल को जैसे प्राप्त हो वैसे सम्पूर्ण प्राणियों को ( पूजति ) मुख देता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य वैर को त्याग के सम्पूर्ण प्राणियों के उपकार करने की इच्छा करें उनके प्रति जैसे नदियाँ समुद्र को और जल अन्तरिक्ष के सम्मुख को प्राप्त होते हैं वैसे सम्मुख जाते हैं, उनसे उत्तम शिक्षा को प्राप्त उत्तम प्रकार से सीखे गये ओषधियों के समूह के सवृण सम्पूर्ण प्राणियों के मुख देने को समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

अब राजा और प्रजा के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुपुतं भरन्तः ।**

**अंशुं दुहन्ति हस्तिनो मरिचैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥**

पदार्थ—जो ( समुद्रेण ) सागर के साथ ( सिन्धवः ) नदियाँ जैसे जैसे विद्वानों के साथ मेल करके ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य्य के लिए विद्या की ( यादमानाः ) याचना करने हुए ( सुपुतम् ) उत्तम प्रकार उत्पन्न ( अमृत्, सोमम् ) पदार्थों के समूह को ( भरन्तः ) धारण और पुष्ट करते हुए ( हस्तिनः ) उत्तम हाथों से युक्त पुरुष ( मध्वः ) मधुर गुण सम्बन्धी ( पवित्रैः ) उत्तम शुद्ध ( मरिचैः ) धारण और पोषण किये गए धनों के साथ ( धारया ) तीक्ष्ण धार से ( पुनन्ति ) पवित्र करते हैं वे काम को ( दुहन्ति ) पूर्ण करते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब ओर से जल आदि का ग्रहण कर नदियाँ वेग से समुद्र को प्राप्त हो रत्नवाली और शुद्ध जलयुक्त होती हैं वैसे ही ब्रह्मचर्य्य से विद्याधी को धारण करके तीक्ष्ण बुद्धि से पूर्ण ज्ञान वाले हो पवित्र हुए और परमेश्वर को प्राप्त होकर सिद्धियों से परिपूर्ण शुद्ध आनन्दी मनुष्य होते हैं ॥ ७ ॥

**इदाईव कृषयः सोमधानाः समी विव्याच सर्वना पुरुषि ।**

**अस्मा यदिन्द्रः प्रथमा व्याशं वृत्रं जयन्वा अहणीत सोमम् ॥८॥**

पदार्थ—जिस पुरुष के ( कृषयः ) दोनों ओर के उदर के अवयव ( सोमधानाः ) सोमरूप ओषधियों के बीजों से युक्त ( इदाईव ) गम्भीर जलाशयों के सवृण वर्तमान हैं ( यत् ) तथा जो ( पुरुषि ) बहुत ( सर्वना ) ओषधियों के उत्पन्न रसों से युक्त ( प्रथमा ) प्रसिद्ध ( अस्मा ) अन्न और ( ईम् ) जल को ( ससु, विव्याच ) छलता है वह ( इन्द्र ) सूर्य्य के समान महाप्रकाशमान ( कृषयः ) मेष के ( अमृत्वात् ) मास करनेवाले सूर्य्य के समान ( सोमम् ) ओषधियों के समूह का ( अमृणीत ) स्वीकार करता तथा स्वादयुक्त पदार्थों का ( चि, आश ) स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष गम्भीर अभिप्राय से युक्त सूर्य्य के सवृण प्रतापी ऐश्वर्य्य के धारण करनेवाले अपने और दूसरों के दावों को नाश करके ऐश्वर्य्य को स्वीकार करते हैं वे ही प्रसन्नात्मा होते हैं ॥ ८ ॥

**आ त् भरं मार्किरेतस्परि द्वादिषा हि त्वा वसुपति वसूनाम् ।**

**इन्द्र यत्ते माहिनं वृत्रमस्यस्मभ्यं तद्वर्यश्च प्र यन्धि ॥९॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य्य के देनेवाले ( यत् ) जो ( ते ) आपका ( माहिनम् ) अनि श्रेष्ठ ( वृत्रम् ) दान ( अस्ति ) है ( तत् ) उसे ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए आप ( प्र, यन्धि ) अच्छे प्रकार दीजिए और हे ( वर्यश्च ) वेगयुक्त घोड़वाले ! आप ( एतत् ) इसको ( मार्किः ) न ( परि, द्वात् ) सब ओर से रोकिए ( हि ) जिससे कि ( वसूनाम् ) धनों के ( वसुपतिम् ) स्वामी ( त्वा ) आपको हम लोग ( विष ) जानें इससे ( तु ) शीघ्र फिर आप इस नवको ( आ ) सब ओर से ( भर ) धारण करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जनों को चाहिए कि सम्पूर्ण जनों के प्रति ऐसा उपदेश दें कि आप लोग दोषों का त्याग गुणों को धारण और धन और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होके अन्य सुपात्र पुरुषों के लिए दें ॥ ९ ॥

**अस्मे प्र यन्धि मधवसृजीषिन्दि गयो विश्वारस्य भूरः ।**

**अस्मे शतं सरदो जीवसे धा अस्मे वीरञ्छश्चत इन्द्र शिभिन् ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( शिभिन् ) सुन्दर नासिका और ठोड़ीवाले ( इन्द्र ) सुख के दाता ! आप ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( शश्वतः ) निरन्तर वर्तमान ( वीरश्च ) पराक्रमी मनुष्यों को धारण करो हे ( मधवः ) बहुत सत्कारयुक्त धन से परिपूर्ण ( सृजीषिन् ) सरल स्वभाववाले ( इन्द्र ) सूर्य के सवृण प्रतापी ! आप ( अस्मे ) हम लोगों का ( विश्वारस्य ) सम्पूर्ण सुख स्वीकार किया जाता है जिससे उस ( भूरः ) अनेक प्रकार ( रासः ) धन के भाग को ( प्र, यन्धि ) दीजिए ( अस्मे ) हम लोगों को ( जीवसे ) जीवने के लिए ( शतम्, सरद ) सौ वर्षों को ( धाः ) धारण कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—वे ही उत्तम स्वभाववाले यथार्थवक्ता विद्वान् लोग हैं कि लक्ष्मी का विभाग करके अर्थात् अन्य जनों को बाँट के फिर आप भीजन करते हैं और मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य के उपदेश से सौ वर्ष की अवस्थावाले करके सम्पूर्ण कर्तों में उत्साही भररहित और पुरुषार्थी करते हैं ॥ १० ॥

**शुभं हुवेम मधवानिन्द्रमस्मिन्मरे वृत्तं वाजसातो ।**

**वृषवन्तमुग्रभूतये समस्तु व्रन्तं वृत्राणि सञ्चितं धनानाम् ॥११॥२०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( अस्मिन् ) इस ( वाजसातो ) अन्न आदि का विभाग जिसमें ऐसी ( भरे ) पालन में ( शुभम् ) सब प्राणियों के सुख-कारक ( मधवानम् ) बहुत विद्या और धनयुक्त ( नूतनम् ) प्रतिमथ पुरुषों के अग्रणी ( अस्त्ये ) रक्षा आदि के लिए ( मृष्यन्तम् ) सकल शास्त्र सुनने वाले ( उग्रम् ) तेजवारी ( समस्तु ) संप्राप्तों में ( वृत्राणि ) मेषों के अवयवों को जैसे सूर्य वैसे शत्रुओं को ( सञ्चितम् ) उत्तम प्रकार जीतनेवाले ( इन्द्रम् ) दुष्टजनों के नाशकर्ता राजा को ( हुवेम ) स्वीकार करें वैसे इसका आप लोग भी स्वीकार कर ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सम्पूर्ण विद्याविशिष्ट श्रम गुणी सब को सुख देने वाला प्रजाओं के पालन में तत्पर शत्रुओं के नाश करने में उत्तम धर्मी और पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष हो उसके लिए राज्य में अधिकार दे और उसकी आज्ञा में वर्तमान होकर सब लोग अस्थान सुख भीष करो ॥ ११ ॥



इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अतीतर्था सूक्त और बीसवीं अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥

अथैकादशस्य सप्तविंशत्यस्य सूक्तस्य विद्वानिन्द्रः । इन्द्रो देवता ।

१, ३, ७ निबृहत्यायनी । २, ४—६, ८—१० नायनी अन्तः ।

वृद्धः स्वरः । ११ निबृहत्पुष्टुप अन्तः । स्वरः स्वरः ॥

अथ प्यारह प्यारह बाले संतीतर्था सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के गुणों को कहते हैं—

**वार्जहस्याय शर्वसे पृतनावाधाय च । इन्द्र त्वा वर्जयामसि ॥१॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेना के अधीश ! जैसे हम लोग ( वार्जहस्याय ) मेघ के नाश करने के लिए जो बल उसके लिए सूर्य के समान ( पृतनावाधाय ) सञ्चालन के सहने वाले ( शर्वसे ) बल के लिए ( त्वा ) आपका ( वर्जयामसि ) आश्रय करते हैं वैसे आप ( च ) भी हम लोगों को इस बल के लिये बर्तों ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमालङ्कार है । युद्ध करने की विद्या के शिक्षकों को चाहिए कि सेनाओं के अध्यक्ष और नौकरों को उत्तम प्रकार शिक्षा दें जिससे निश्चय विजय होवे ॥ १ ॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**अर्वाचीनं सु ते अन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्रं कुण्वन्तु वायतः ॥२॥**

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) असंख्य बुद्धि युक्त ( इन्द्र ) वृष्ट पुरुषों के नाश करनेवाले ! जैसे ( वायतः ) बाणी से दोषों के नाश करनेवाले बुद्धिमान् लोग ( ते ) आप के ( अर्वाचीनम् ) इस समय उत्तम शिक्षा युक्त ( अनः ) जन्तु करण ( उत ) और ( चक्षुः ) नेत्र आदि इन्द्रिय को उत्तम गुणों से युक्त ( सु, कुण्वन्तु ) निन्द कर वैसे ही आप आचरण करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमालङ्कार है । राजा आदि जन सदा यथाव्यवस्था पुरुष की शिक्षा में वर्तमान होके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करें ॥ २ ॥

**नामानि ते शतक्रतो विश्वभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह ॥३॥**

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) बहुत बुद्धिमान् ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के कारण से राजन् ! जैसे हम लोग ( विश्वभिः ) सम्पूर्ण ( गीर्भिः ) विश्वा उत्तम शिक्षा और धर्म से युक्त वाणिज्य से जिन ( ते ) आप के ( नामानि ) सञ्चालन को अत्युत्तम होने की ( ईमहे ) याचना करते हैं वह आप हम लोगों के लिये ( अभिमातिषाह ) अभिमान युक्त शत्रु लोग सहने योग्य हैं जिनमें ऐसे सञ्चालन में सहायता दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—राजमान, विश्वा और वित्तों से प्रकाशमान, वह राजा, मनुष्यों की पालना करता वह नृप, और भूमि का पालन करता वह भूमिप इत्यादि सब राजा के नाम सार्वक हो और जब सबों के साथ सञ्चालन होवे तो सब प्रकार से रक्षा करनेवाला होवे । ऐसा होने से निश्चित विजय होता, नहीं तो नहीं होता है ॥ ३ ॥

अब प्रजा के गुणों की अगले मन्त्र में कहते हैं—

**पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे हम लोग ( पुरुष्टुतस्य ) बहुतों से प्रशंसा पाये हुए और ( चर्षणीधृतः ) मनुष्यों को धारण करनेवाले ( इन्द्रस्य ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजा का ( शतेन ) असंख्य ( धामभिः ) जन्म स्थान और नामों से ( महयामसि ) पूजन करें वैसे उस प्रशंसित का सत्कार आप लोग भी करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि राजा आदि ध्यायकारी जनो का सब प्रकार सत्कार करें और राजा आदि भी प्रजाजनो का सत्कार कर ऐसा करने पर राजा और प्रजा इन दोनों की मङ्गल की उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥

फिर राजविषय की अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**इन्द्रं वृषाय इन्तिषे पुरुष्टुतस्य भूवे । भवेत्तु वाजसातये ॥५॥२१॥**

पदार्थ—हे सेना में वर्तमान और पुरुषों ! जिस प्रकार सेना का अधीश मैं ( वृषाय ) न्याय के आवरण करनेवाले शत्रु के ( इन्तिषे ) नाश के लिए तथा ( भवेत्तु ) सञ्चालनी में ( वाजसातये ) वन आदि की बाँटने के लिए ( पुरुष्टुतस्य ) बहुतों से युक्तारे वा प्रशंसा किय गये ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के होनेवाले राजा को ( उव ) समीप में ( भूवे ) कहता हूँ वैसे आप लोग भी इसके समीप कहो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमालङ्कार है । जब सञ्चालन अत्युत्तम होवे तो अधीशों के प्रति धाम्यका पुष्टियों को चाहिये कि जिस प्रकार विजय हो वैसे आप-केन्द्र और धीर लोग अभिषेकता पुरुषों की आज्ञा से सब प्रकार वर्तमान होवे ऐसा करने से कैसे पराजय हो ? ॥ ५ ॥

**वार्जह्वा सासर्हिर्भेव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्रं वृषाय इन्तिषे ॥६॥**

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) अति सूक्ष्म बुद्धियुक्त ( इन्द्र ) वृष्ट पुरुषों के दल के नाश करनेवाले ! हम लोग जिन ( वृषाय ) आप को ( वृषाय ) मेघ के सदृश शत्रु के ( इन्तिषे ) नाश करने की ( ईमहे ) युद्ध के उपकारक वस्तुओं के साथ याचना करते हैं वह आप ( वार्जह्वा ) जिन में बहुत धन और विज्ञान आदि सामग्री उपेक्षित हैं ऐसे सञ्चालनों में ( सासर्हिः ) अत्यन्त सहने वाले ( भवे ) हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस कर्म में जिस का स्थापन सना करे वह पुरुष उस अधिकार की यथायोग्य उत्पत्ति करे और जिस अधिकार में जिस का नियोग होवे वहाँ जो आज्ञा उस का वह कदाचित् उत्पन्न न करे ॥ ६ ॥

**युष्मेष्टु पृतनाज्ये पृतसुष्टु भवंस्तु च । इन्द्र साध्वामिमातिषु ॥७॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) तेजस्वी पुरुष ! आप ( पृतसुष्टु ) सेनाओं में शीघ्रता से नाश करनेवाले जनो वा ( यवसु ) अन्न वा धन आदि पदार्थों ( युष्मेष्टु ) वा यशस्वी वा धन की प्राप्ति करानेवाले विषयों में वा ( पृतनाज्ये ) सेना सम्बन्धी सञ्चालन में ( साध्व ) सहन करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्यमान धन आदि पदार्थ की रक्षा व्याख्यान देनेवाले और युद्ध के अभिमानी अपने प्रिय धनान्दित और वृष्ट पुरुषों के होने पर शत्रुओं के साथ सञ्चालन करते हैं वे ही पुरुष निश्चित विजय का प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

**शुष्मिन्तमं न उतये शुष्मिने पाहि जागृविषु । इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥८॥**

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) बहुत बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त ( इन्द्र ) सब के रक्षक राजन् ! आप ( नः ) हम लोगों की ( अतये ) रक्षा आदि के लिए ( शुष्मिन्तमम् ) प्रशंसित वा बहुत प्रकार का बल जिसके उस धनीय ( शुष्मिन् ) यशस्वी लक्ष्मीवान् और ( जागृविषु ) जागनेवाले जन और ( सोमम् ) ऐश्वर्य्य की ( पाहि ) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—सब प्रजा और राजजनों को चाहिए कि सब के प्रभाव राजा और अन्य ग्रन्थियों के प्रति ऐसा कहें कि आप लोग हम लोगों के रक्षक पुरुषों की और ऐश्वर्य्य की रक्षा में निरालस और उद्यत हों ॥ ८ ॥

**इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनैश्च पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ हृषे ॥९॥**

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) अपार बुद्धियुक्त ( इन्द्र ) ऐश्वर्य्य को योग करने वाले ! ( पञ्चसु ) पांच राज्य, सेना, कोश, दूतत्व, प्राद्विवाक्य आदि पदवियों से युक्त अधिकारी और ( जनैश्च ) प्रत्यक्ष ग्रन्थियों में ( या ) जो ( ते ) आप के ( इन्द्रियाणि ) जीने के चिह्न हैं ( तानि ) उन ( ते ) आप के चिह्नों को मैं ( आ, हृषे ) उत्तम गुणों से आच्छादन करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—वही पुरुष राज्य करने के योग्य है जो मन्त्रियों के चरित्रों को नेत्र से रूप के सदृश प्रत्यक्ष करता है । जैसे शरीर के इन्द्रिय के गोलक प्रभात् काले तारे वाले नेत्र के सम्बन्ध से जीव के सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं वैसे राजा मन्त्री और सेना के योग से राजकार्यों को सिद्ध कर सकता है ॥ ९ ॥

**आगभिन्द्र भवो बृहदुष्मन् दधिष्व दुष्टरम् । उते शुष्मं तिरामसि ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त ! जिस ( बृहत् ) बड़े ( दुष्टरम् ) शत्रुओं से दुःख से उत्पन्न करने योग्य ( भवः ) धन वा अन्न ( शुष्मम् ) यश वा धन और ( शुष्मम् ) बल को विद्वान् लोग ( अगम् ) प्राप्त होते हैं वा जिस ( ते ) आप के पूर्वोक्त धन अन्न यश धन और बल को हम लोग ( उत ) उत्तम प्रकार ( तिरामसि ) तरे उत्पन्न करने अर्थात् उससे अधिक सम्पादन करें उस सब को आप ( दधिष्व ) धारण करो ॥ १० ॥

भावार्थ—उतना ही ऐश्वर्य्य राजा को धारण करना चाहिए कि जितना सेना और प्रजा के पालन के और मन्त्रियों की रक्षा के लिए पूरा होवे ऐसा करने में बड़ा यश बड़े ॥ १० ॥

अब राजा और प्रजा विषय को परस्पर सम्बन्ध से कहते हैं—

**अर्वावर्तो न आ गृह्यो शक्र परावर्तः ।**

**उ लोको यस्तं अद्रिष इन्द्रेह तत आ गहि ॥११॥२२॥**

पदार्थ—हे ( अद्रिषः ) बहुत मेघों से युक्त सूर्य के सदृश वर्तमान ( शक्र ) सामर्थ्यवान् ( इन्द्र ) ऐश्वर्य्य में सुख के दाता ! ( इह ) इस सत्सार में ( नः ) जो ( ते ) आप का ( लोको ) निवासस्थान है इस स्थान से ( नः ) हम लोगों को ( आ, गहि ) प्राप्त हूजिये ( अतो ) इसके धनान्तर ( परावर्तः ) दूर से भी हम लोगों को प्राप्त हूजिये ( ततः ) और इस से ( अगहि ) उत्तम प्रकार अन्य स्थान में जाइये ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य लोग प्रीति से राजा को बुलावे और वह राजा उन प्रजाजनों के समीप अपने देश को प्राप्त हो और उस देश से अन्य देश में भी जाय इस प्रकार राजा और प्रजा जन परस्पर स्नेह की वृद्धि के लिए कर्मों को निरन्तर करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कामों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अतीतर्था सूक्त और बीसवीं अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥

अथ दशार्चस्याष्टाविंशतमस्य सूक्तस्य प्रजापतिर्हवि । इन्द्रो देवता ।

१, ६, १० त्रिष्टुप् । २—४, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्द ।

धैर्यतः स्वरः । ७ भुरिक् पङ्क्तिवृद्धम् । पञ्चम स्वर ॥

अथ दश ऋचा बाले अङ्गुलीसर्वे सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

**अभि तह्येव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।**

**अभि प्रियाणि मर्मशतपराणि कवीरिच्छामि संह्यै सुमेधाः ॥१॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! जैसा मैं ( संवृषो ) उत्तम प्रकार दर्शन के लिए ( कवीन् ) धार्मिक विद्वानों की ( इच्छामि ) इच्छा करता हूँ वैसे ( सुमेधा ) उत्तम बुद्धि वाले ( जिहानः ) प्राप्त होने और ( पराणि ) परम उत्तम ( प्रियाणि ) कामना और आदर करने योग्य सुखों को ( अभि, मर्मशत ) अत्यन्त विचारते हुए ( सुधुर ) सुन्दर धुरा को धारण किये हुए ( अत्य ) निरन्तर चलने वाले ( वाजी ) वेगयुक्त घोड़े के ( न ) समान ( मनीषाम् ) बुद्धि को ( तह्येव ) काष्ठों के सूक्ष्मत्व अर्थात् छीलने से पतले करनेवाले बर्तन के मद्दश आप ( अभि ) सम्मुख ( दीधय ) प्रकाश करें ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकानुपमालङ्कार है । जैसे धुरियों से धारण करने वाले उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़े वाञ्छित कर्मों को सिद्ध करने हैं वैसे ही साधारण जन विद्वानों की उत्तम बुद्धि को ग्रहण कर के बर्तन के सदृश व्यसनों का छेदन करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**इनोत पृच्छ जानिमा कवीनां मनोवृत्तः सुकृतस्तस्य धाम् ।**

**इमा उ ते प्रण्योऽर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि गमन ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वान् वा साधारण मनुष्यों ! जो ( कवीनाम् ) बुद्धिमान लोगों के ( मनोवृत्त ) विज्ञान के धारण करने और ( सुकृत ) उत्तम कर्म करनेवाले पुरुष ( उ ) और ( इमा ) ये वर्तमान ( प्रण्यो ) उत्तम नीतियुक्त ( वर्धमाना ) बढ़ती हुई ( मनोवाता ) मन के मद्दश वेगवाली स्त्रियों ( धर्मणि ) धर्म व्यवहार में ( नु ) शीघ्र ( गमन् ) प्राप्त हो ( अध ) इस के अनन्तर जा ( धाम् ) बिजुली को प्राप्त हो और जो लोग ( ते ) तुम्हारे ( जानिमा ) जन्मों को प्राप्त हो उन स्त्रियों ( उत ) वा उन ( इमा ) समर्थ पुरुषों को आप ( पृच्छ ) पूछिये और आप लोग भी अविद्या को ( तस्य ) काटिये ॥२॥

भाषार्थ—जो पुरुष और स्त्रियाँ धर्म के अनुष्ठान पूर्वक बुद्धिमान लोगों के लक्षणों को धारण कर प्रश्नोत्तर और अन्तर्गण का छुड़ करके समर्थ होने हैं वे पुरुष और वेसी स्त्रियाँ सब प्रकार बुद्धि का प्राप्त होती हैं ॥२॥

अब भूमि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**नि धीमिदत्र गुहा दधाना उत सत्राय रोदसी समञ्जन ।**

**स मात्राभिर्ममिरे येसुर्वी अन्तर्मही समृते धार्यसे धुः ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो स्त्रियाँ ( अत्र ) इस ससार में ( गुहा ) गूढ़ विज्ञानों को ( दधाना ) धारण किये हुए ( सत्राय ) राज्य के लिए ( रोदसी ) भूमि और विद्या के प्रकाश को ( सीम् ) सब प्रकार ( सम्, अञ्जन् ) प्रकट कर ( उत ) और ( मात्राभि ) सूक्ष्म अवयवों से ( नि ) निरन्तर पदार्थों को ( ममिरे ) माप और ( उर्वी ) बड़ी ( मही ) पृथ्वी को ( समृते ) अच्छे प्रकार सत्य व्यवहार में ( धार्यसे ) धारण करने को अपने अन्तर्गण के ( अन्त ) मध्य में ( सम्, येसु ) संयुक्त करें वे ( इत् ) ही मुख को ( धु ) धारण कर ॥३॥

भाषार्थ—जो स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य से विद्या के विज्ञानों को प्राप्त होकर पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार का ग्रहण कर मर्के वे रानी के योग्य होती हैं ॥३॥

अब सूर्य के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभ्रषच्छिपो वमानश्चरति स्वर्गोचिः ।**

**महत्तद्भृज्यो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( विश्वरूप ) सम्पूर्ण रूप है जिसमें वा जो ( अत्रि ) धनो वा पदार्थों की शांभाओं का ( वसानः ) आपता वा ग्रहण करता हुआ और ( स्वरोचि ) अपना प्रकाश जिसमें विद्यमान वह सूर्य ( भृज्य ) वृष्टिकारक ( असुरस्य ) दोषों का दूर करने वा प्राणों में रमने वाले वायु सम्बन्धी ( अमृतानि ) अमृतस्वरूप ( नामा ) जलों को व्याप्त होकर ( आ, तस्थौ ) स्थित होता वा उस के समान जो ( महत् ) बड़ा है ( तत् ) उस को ( चरति ) प्राप्त होता है उस ( आतिष्ठन्तम् ) चारों ओर से स्थिर हुए को ( विश्वे ) सम्पूर्ण विद्वान् लोग ( परि ) सब प्रकार ( अभ्रषद् ) शोभित करें ॥४॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! वायुरूप आधार में वर्तमान सूर्य आदि लोक जल वृष्टि आदि के द्वारा सब लोकों को आनन्द देते हैं वैसे ही लक्ष्मी उत्पादन करने वाला पुरुष सब को शोभित करता है ॥४॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अक्षतं पूर्वं वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुल्भः सन्ति पूर्वीः ।**

**दिक्षौ नपाता विदथस्य धीभिः अन्नं राजाना प्रदिवौ दधाय ॥५॥२३**

पदार्थ—हे ( नपाता ) नाशरहित ( राजाना ) सूर्य और बिजुली के सदृश प्रकाशयुक्त राजा और न्यायाधीश ! आप दोनों जैसे ( पूर्वं ) पालन करनेवाला प्रथम ( वृषभः ) वृष्टिकर्ता ( ज्यायान् ) बड़ा वृद्ध ( इमाः ) हम ( पूर्वीः ) प्राचीन ( शुल्भ ) शीघ्र रुचिकारका को ( असत् ) उत्पन्न करता है और ( अक्षत ) इसके समीप से वृष्टि को वर्षाते हैं वैसे ही ( दिव ) अन्तरिक्ष से ( विदथस्य ) विज्ञान करने वाले के ( प्रविष ) विद्या और विनय के प्रकाशों को तथा ( धीभिः ) बुद्धि वा कर्मों से ( अन्नम् ) रक्षा करने योग्य राज्य को ( दधाय ) धारण करते हैं ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमालङ्कार है । जैसे कम से सूर्य जल के धारण और वृष्टि से हम मसार का हित करता है वैसे ही उत्तम गुण और न्यायो के सहित वर्तमान हुए राजा आदि लोग उत्तम प्रकार रक्षित राज्य का पालन करें ॥५॥

अब सभा के कार्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

**त्रीणि राजाना विदथे पुरुणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।**

**अपश्यमन्न मनसा जगन्वान्त्रते गन्धर्वो अपि वायुकेशान् ॥६॥**

पदार्थ—हे ( राजाना ) राजा और प्रजाजनों ! मैं इस ससार में वर्तमान जिन ( त्रैते ) सत्यभाषणादि व्यवहार में ( गन्धर्वान् ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा पृथिवी को धारण करने और ( वायुकेशान् ) वायु के सदृश प्रकाश वाले तथा अन्य भी शिष्ट अर्थात् उत्तम पुरुषों को ( मनसा ) विज्ञान से ( जगन्वान् ) प्राप्त हुआ ( अपश्यम् ) देखता हूँ उन लोगों से ( त्रीणि ) तीन ( सदांसि ) सभाएँ नियत कराके ( विदथे ) विज्ञान को प्राप्त करानेवाले व्यवहार में ( पुरुणि ) बहुत ( विश्वानि ) सम्पूर्ण व्यवहारों को ( परि ) सब प्रकार ( भूषथ ) शोभित करते हो इससे सम्पूर्ण कार्यों के सिद्ध करने वाले होते हो ॥६॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! लोग उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले यथार्थवक्ता विद्वान् पुरुषों की राजसभा विद्यासभा और धर्मसभा नियत कर और सम्पूर्ण राज्य-सम्बन्धी कर्मों को यथायोग्य सिद्ध कर सकल प्रजा को निरन्तर सुख दीजिये ॥६॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**तदिन्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।**

**अन्यदन्यदसुर्येवमाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७॥**

पदार्थ—जो मनुष्य ( अस्य ) इस ( वृषभस्य ) बलिष्ठ की ( धेनोः ) वाणी के ( नामभि ) नामों से ( नु ) शीघ्र जिस को ( आ, ममिरे ) सब ओर से नापने हैं ( तत् ) उस ( सक्म्यम् ) सयोग जिस पदार्थ में करता है उस में उत्पन्न ( गोः ) वाणी से ( अन्यदन्यत् ) पृथक् पृथक् वर्तमान ( असुर्यम् ) मेघपत को ( वसाना ) आपन हुए ( मायिन ) उत्तम बुद्धि वाले ( अस्मिन् ) इस राज्य में ( वृषम् ) रूप को ( नि, ममिरे ) उत्पन्न करने हैं वे ( इत् ) ही राज्य कर सकते हैं ॥७॥

भाषार्थ—जो मनुष्य इस राज्य का कोमल वक्ता से पालन करते हैं वे मेघ से जल के मद्दश अनेक प्रकार के पेशवर्षों को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**तदिन्वस्य सवितुर्नकिमं हिरण्यधीमति यामशिश्रेत् ।**

**आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वध्रे ॥८॥**

पदार्थ—जो ( अस्य ) इस ( सवितु ) सूर्य का प्रकटता से उत्पन्न हुए प्रकाश के मद्दश ( याम् ) जिस ( हिरण्यधीम् ) सुवर्ण आदि बहुत रत्नों से युक्त ( अमतिम् ) उत्तम जोभायुक्त लक्ष्मी को ( योषा ) स्त्री ( अपीव ) इकट्ठा की गई स्त्री ( जनिमानि ) जन्मों को ( वध्रे ) स्वीकार करनी और ( सुष्टुती ) उत्तम प्रशंसा से ( विश्वमिन्वे ) सर्वत्र व्यापक ( रोदसी ) प्रकाश और पृथिवी के सदृश राजा और प्रजा के व्यवहारों का ( नु ) निश्चय ( आ, अशिश्रेत् ) आश्रय करे ( तत् ) ( इत् ) ही ( मे ) मेरे ( नकि ) नहीं हुई ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे चन्द्र आदि लोक सूर्य के प्रकाश का आश्रय करके उत्तम शोभित देख पड़ते हैं और जैसे स्त्री स्नेहपात्र अपने प्रिय और उत्तम लक्षणों से युक्त पति को प्राप्त होकर सन्तानों को उत्पन्न करके आनन्द करती हैं वैसे ही पृथिवी के राज्य को प्राप्त होकर दुखों से रहित हुए राजजन निरन्तर आनन्द करें ॥८॥

अब परस्परभाव से राजप्रकाश विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**युवं प्रत्नस्य साधथो महो यदैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।**

**गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥**

पदार्थ—हे राजा और प्रजा जनो ! ( युवम् ) आप दोनों जैसे ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( मायिनः ) उत्तम बुद्धिवाले ( तस्थुषः ) स्थिर पुरुष के ( कृतानि ) उत्पन्न किये हुए ( विरूपा ) अनेक प्रकार के रूपों से युक्त पदार्थों को ( पश्यन्ति ) देखते हैं वैसे ( प्रत्नस्य ) प्राचीन ( गोपाजिह्वस्य ) रक्षा करने वाली जिह्वा वाले पुरुष का ( यत् ) जो ( महः ) बड़ी ( यैवी ) देवताओं की ( स्वस्तिः ) स्वस्वता अर्थात् शान्ति है उस को ( नः ) हम लोगों के लिए ( परि, साधथः ) सब प्रकार सिद्ध करते हैं वैसे सब के सुखकारक होजिये ॥९॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे बुद्धिमान् शिल्पीजन अनेक प्रकार की वस्तुओं को रज के सब को शोभित करते हैं वैसे ही राजा आदि जन प्रजा में स्वस्थता की स्मरण करके सब के कार्यों को सिद्ध करें ॥६॥

**शुनं हुवेम मध्वानमिन्द्रमस्मिन्मरे दृतमं वाजपातौ ।**

**शुण्वन्तमुग्रमृतये समस्तु धनन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१०॥२४॥३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (अस्मिन्) रक्षा आदि के लिए (अस्मिन्) इस (वाजपातौ) सत्य और असत्य के विभाग और (मरे) पालन करने योग्य राज्य में (शुनम्) राजप्रजाजनित अर्थात् राजा प्रजा से उत्पन्न हुए सुख (मध्वानम्) बहुत धन से युक्त वैश्य (मृष्यन्तम्) सुनते हुए (मृतम्) उत्तम नायक (उग्रम्) पाप के नाश के लिए प्रतापी (समस्तु) सयामो में (धनन्तम्) शत्रुओं के नाश करने (वृत्राणि) धनो को देने और (धनानाम्) धनो को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् राजा को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे इस को आप लोग भी ग्रहण करो ॥१०॥

**भाषार्थ—**जो राजा और प्रजाजन परस्पर प्रसन्न परस्पर के सुख और दुःख की बातों को सुनते हुए दुष्ट पुरुषों का ताड़न करते और सत्पुरुषों का सत्कार करते हुए परस्पर के उत्तम कर्मों की प्रशंसा करें वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सुखी होंगे ॥१०॥

इस सूक्त में विद्वान् शिल्पी सभा राजा प्रजा सूर्य और भूमि आदि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ३८ वां सूक्त, २४ वां वर्ग और ३ मण्डल में ३ अनुवाक समाप्त हुआ ॥



अथ मध्वन्त्येकोनवत्यारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विवक्षितम् अथि । इन्द्रो देवता ।

१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ - ७ मिष्टुप् त्रिष्टुप् छन्द । चैवत स्वरः ।

२, ८ भुरिक् षड्विंशत्यन्तः । पञ्चम स्वरः ॥

अथ नव ऋचा वाले तीसरे मण्डल में उमतालीसवें सूक्त का आरम्भ है,

उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

**इन्द्रं मतिर्हृद आ वाच्यमानाच्छा पतिं स्तोमस्तथा जिगाति ।**

**या जागृविर्विदधे शस्यमानेन्द्र यचे जायते विद्धि तस्य ॥१॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् पुरुष ! (या) जो (वाच्यमाना) कही गई (विदधे) विज्ञान में (जागृवि) जागने वाली और विज्ञान में (शस्यमाना) स्तुति से युक्त हुई (स्तोमस्तथा) स्तुतियों से विस्तारयुक्त (मतिः) बुद्धि (हृदः) हृदय से (इन्द्रम्) अत्यन्त सुख देने (पतिम्) और पालनेवाले स्वामी की (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ) सब ओर से (जिगाति) स्तुति करती है (यत्) जो बुद्धि (से) आप की (जायते) उत्पन्न होती है उस बुद्धि से (तस्य) उस पालनेवाले के उत्तम गुण कर्म और स्वभावों को (विद्धि) जानो ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**जिन के हृदय में यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है वे सब लोगों के गुण और दोषों को जान गुणों को ग्रहण दोषों का त्याग गुणों की प्रशंसा और दोषों की निन्दा करके उत्तम कर्मों को करें ऐसा होने से वे इस मन्त्र में प्रशंसायुक्त होंगे ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**दिवक्षिषा पुर्या जायमाना वि जागृविर्विदधे शस्यमाना ।**

**भद्रा वस्त्राण्यजुना वसाना सेयमस्मे मन्त्रा पिड्या धीः ॥२॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो (अस्मे) हम लोगों में (विष) विज्ञान के प्रकाश से (जायमाना) उत्पन्न हुई (पुर्या) प्राचीन विद्वानों में मित्र की गई (विदधे) विज्ञान के बढ़ानेवाले व्यवहार में (जागृविः) जागनेवालों (शस्यमाना) स्तुति की जाती और (भद्रा) धारण करने योग्य और कल्याणकारक (अजुना) सुन्दररूपयुक्त (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसाना) ओढ़ती हुई सुन्दर स्त्री के तुल्य (मन्त्रा) विभाग से प्रसिद्ध (विद्या) वा पितरों में प्रकट हुई (धीः) उत्तम बुद्धि (वि) विशेषता से उत्पन्न होती (सः, इन्द्रम्) सो यह आप लोगों में (विष, आ) भी सब ओर से उत्पन्न होंगे ॥२॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो कि अपने आत्मा के तुल्य सम्पूर्ण जनों में बुद्धि आदि पदार्थों को उत्पन्न करने को उद्यत होंगे ॥२॥

**यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतवा अस्थात् ।**

**वपुषि जाता मिथुना संचेते तमोहना तपुषो ब्रुव एता ॥३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! (यमसूः) सूर्य को उत्पन्न करनेवाली बिजुली (चिद) अथवा (अग्रं) इस संसार में (यमा) सहकारी (मिथुना) परस्पर मिले हुए (तमोहना) अन्धकार का नाश करनेवाले (तपुषः) जिस में सूर्य तपता

है उस दिन के बीच वा (बुध्ने) बधते अर्थात् इकट्ठे होते जल जिसमें उस अन्तरिक्ष में (एता) वर्तमान इन सूर्य और चन्द्रमा को (असुत) उत्पन्न करती है (जिह्वायाः) तथा जिह्वा के (अग्रम्) अग्रभाग को (हि) जिस कारण (पतत्) जाती वा प्राप्त होती है और (जाता) उत्पन्न हुए (वपुषि) रूपों को प्राप्त हो (आ, अस्थात्) स्थिर होती है जो अन्धकार के नाश करनेवाले परस्पर मिले हुए सूर्य और चन्द्रमा सूर्यमण्डल जिन में तपता है उस दिन के बीच और जल जिस में इकट्ठे हो उस अन्तरिक्ष में (संचेते) सम्बन्ध करते हैं उन को (विद्धि) जानिये ॥३॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! आप जैसे बिजुली सूर्य का और सूर्य चन्द्रादिक का प्रकाश और अन्धकार का नाश करता है वैसे ही परस्पर अनुकूल होकर उत्तम व्यवहार में तत्पर होना ॥३॥

**नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।**

**इन्द्र एषां दंष्टिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) सूर्य के सदृश वर्तमान (ये) वा जो (अस्माकम्) हम लोगों के (गोषु) पृथिवियों और (मर्त्येषु) मनुष्यों में (योधाः) योद्धा लोग और (पितरः) पालन करनेवाले हैं (एषाम्) इन लोगों का (दंष्टिता) बढ़ाने वाला (माहिनावान्) प्रशंसित पूजन है जिस के वह और (दंसनावान्) जो उत्तम कर्मों से युक्त हैं वह (गोत्राणि) वंशों को (उत्, ससृजे) उत्पन्न करता है उस की सेवा करो । जिस से (एषाम्) इन लोगों का (निन्दिता) गुणों में दोषों का आगेपक और दोषों में गुणों का आगेपक (नकिः) नहीं होवे ॥४॥

**भाषार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से निन्दित न हो और आप दूसरों की स्तुति करनेवाले हो और जैसे सूर्य सम्पूर्ण जगत् का पालन करता है वैसे रक्षा करनेवाले पितरों की सेवा करनी चाहिए ॥४॥

**सखां ह यत्र सखिभिर्नवैरभिश्वा सत्त्वभिर्गा अनुमन् ।**

**सत्यं तदिन्द्रो दशमिर्दशैवः सूर्यं विवेद तमसि क्षियत् ॥५॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस स्थान में (नवैरभिः) नवीन गणियों और (सखिभिः) मित्रों के साथ (अभिम्) सम्मुख जाह्नवी से युक्त (सखा) मित्र (सत्त्वभिः) पदार्थों के साथ (ह) निश्चय (गा) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा भूमियों के (आ, अनुमन्) अनुकूल प्राप्त होता हुआ जो (सत्त्वम्) श्रेष्ठ व्यवहारों में उत्तम अर्थात् मत्त्वापन जैसे हो वैसे (दशमैः) दश प्रकार की गणियों से युक्त (दशभिः) दश प्रकार के पवनो के साथ (इन्द्रः) बिजुली (तमसि) रात्रि में (क्षयत्) निवास करने अर्थात् अपना काम प्रकाश न करते हुए (सूर्यम्) सूर्य का (विवेद) प्राप्त होती है (तत्) उस को जो जानता है उस का अनुकरण सब लोग करो ॥५॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे मित्र के तुल्य वर्तमान वायु में बिजुली नामक अग्नि अन्धकार में सूर्य के परिणाम को प्राप्त हो और सब को प्रकाशित कर आनन्द देनी है वैसे ही धार्मिक मित्रों के सहित मित्र विद्वान् शुद्धान्न करणना तथा विद्या में प्रकट होकर सब के आत्माओं का प्रकाश करके आनन्द देता है ॥५॥

**इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्त्रियायां पद्विवेध शफत्रममे गोः ।**

**गुनां हितं गुणं गुळहमसु हस्ते दधे दक्षिणे वक्षिणावान् ॥६॥**

**पदार्थ—**जो (इन्द्रः) बिजुली के समान मनुष्य (उस्त्रियायाम्) भूमि में (पद्वत्) पैरों के और (शफत्रम्) सुगो के सदृश (मधु) मधुर आदि रस (सम्भृतम्) जो कि उत्तम धारण किया गया उसे (ममे) नमो स्वीकार करे (विवेध) जाने (गो) वाणी और (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित (अपु) प्राणों वा जनों में (गुह्यम्) गुप्त और (गुळहम्) ठपे हुए व्यवहार को (वक्षिणावान्) दक्षिणा को धारण किये हुए का समान (वक्षिणे) दहिने (हस्ते) हाथ में (दधे) धारण करे उन को सब लोग जानो ॥६॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे मनुष्य पैरों और पशु सुगो से गमन करके दूसरे स्थान को प्रत्यक्ष करते हैं, वैसे ही बाहर भीतर वर्तमान बिजुली को विद्वान् पुरुष हस्त प्राप्त दक्षिणा के सदृश जानकर और हृदय में वर्तमान अपने आत्मा और परमात्मा तथा बाह्य सूर्य आदि को जानता है, इस के सहाय से धर्म अर्थ काम और मोक्षा को सब सिद्ध करें ॥६॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**ज्योतिर्दृणीत तमसो विज्ञानचारे स्याम दुरितावन्नीके ।**

**इमा गिरः सोमपाः सोमहृद् जुषस्वैन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥**

**पदार्थ—**हे (सोमहृद्) विद्यारूप ऐश्वर्य में बृद्ध और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करनेवाले ! आप (पुरुतमस्य) अत्यन्त बहुत विद्या से युक्त (कारोः) शिल्पिजन की जो (इमा) उन (गिरः) वाणियों का (जुषस्व) सेवन करो और जैसे (विज्ञानम्) विशेष प्रकार से जानने हुए आप हम लोगों से (अरै) दूरस्थले और (अभीके) समीप स्थल में (दुरितात्) दुष्ट आचरण से दूर होकर श्रेष्ठ आचरण और (तमसः) अविद्या से दृष्ट होकर



विद्या और ( ज्योतिः ) प्रकाश के समान विद्या का ( कुणीत ) स्वीकार करें वैसे इन आपकी उन वाणियों का सेवन करके हम लोग विद्वान् होंगे ॥७॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग पाप के आचरण से पृथक् होकर धर्म के आचरण और अविद्या से पृथक् होकर विद्या का ग्रहण करके आत्मसम्बन्धी ज्ञान और शिल्प-क्रिया-कौशल का सेवन करते हैं वैसे ही आप लोग भी सेवन करनेवाले हूँ और सब हम लोग दूर और समीप में वर्तमान हुए भी मित्रता का त्याग नहीं करें ॥७॥

ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु व्यादारे स्याम दुरितस्य भूरः ।

भूरि चिदि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( सुपारासः ) सुन्दर विद्या का पार है जिनका और ( वसवः ) विद्याओं में स्वयं वसने का धन्य जनो को वसाते वह हम लोग ( यज्ञाय ) विद्वानो के सत्कार आदि अनुष्ठान के लिए ( रोदसी ) भूमि और प्रकाश के सदृश विद्या और नीति को ( आरे ) दूर वा समीप में ( दुरितस्य ) दुःख से प्राप्त हुए ( भूरः ) बहुत का ( भूरि ) बहुत ( चित् ) भी ( तुजतः ) बलवान् ( मर्त्यस्य ) मनुष्य का ( बर्हणावत् ) वृद्धिकारक विज्ञान वा धन जिसमें विद्यमान ऐसा ( ज्योतिः ) सूर्य के प्रकाश के सदृश विज्ञान का प्रकाश ( स्यात् ) होवे ऐसी कामना करते हुए ( अनु ) पीछे ( स्यात् ) होंगे वैसे ( हि ) ही आप हूँजिये ॥८॥

भाषार्थ—वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो लोग दूर और समीप में वर्तमान पुरुषों में कृपा का अनुसन्धान विद्या और उपदेश का प्रचार करके बड़े कठिन बोध की सर-सता को उत्पन्न करें, वे ही सब लोगों को सत्कार करने योग्य होंगे ॥८॥



## अथ तृतीयाष्टके तृतीयाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितुर्दितानि परा सुव । यिन्द्र तन्न आ सुव ॥१॥

अथ नवमस्य अष्टाविंशतमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१—४, ६—८ गायत्री । ५ निषुवगायत्री छन्दः । बह्वच स्वरः ॥

अथ तृतीयाष्टक के तृतीयाध्याय का आरम्भ तथा तृतीयमण्डल में नव ऋषि वाले बीसवीं सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा

प्रजा के विषय को कहते हैं—

इन्द्र त्वा वृषम वयं सुते सोमं हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले ! ( वयम् ) हम लोग ( नवः ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( अन्धसः ) अन्ध आदि के ( सुते ) उत्पन्न ( सोमे ) ऐश्वर्य वा ओषधियों के समूह में जिस ( वृषम् ) बलिष्ठ ( त्वा ) आप को ( हवामहे ) पुकारें ( सः ) वह आप हम लोगों की ( पाहि ) रक्षा कीजिये ॥१॥

भाषार्थ—जो प्रजाजन राजा का हृदय से सत्कार करके हम राजा के लिए ऐश्वर्य देंगे उनकी राजा अपने आत्मा के सदृश वा जैसे वैद्यजन ओषधियों से रोगी की रक्षा करता है वैसे रक्षा करे ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हव्यं पुरुषदुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( पुरुषदुत ) बहुतों से प्रशंसित ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले ! आप ( तातृपिम् ) अत्यन्त तृप्ति करने और ( क्रतुविदम् ) यज्ञ के सिद्ध करनेवाले और ( सुतम् ) उत्तम सत्कारों से उत्पन्न ( सोमम् ) ओषधियों के समूह की ( हव्यं ) कामना और ( पिब ) पान करो उन से ( आ, वृषस्व ) बल के सदृश बलिष्ठ होओ ॥२॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप बुद्धि के बढ़ाने वाले खाने तथा पीने योग्य वस्तु का भोजन और पान कर तृप्त होकर बल आरोग्य बुद्धि और नम्रता को बढ़ाइये ॥२॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देविभिः ।

तिर स्तवान विवपते ॥३॥

पदार्थ—हे ( विवपते ) प्रजा का पालन ( स्तवान ) सत्य की स्तुति और ( इन्द्र ) दुष्टों का नाश करनेवाले ! आप ( विश्वेभिः ) सम्पूर्ण ( देविभिः ) आसिक्त श्रेष्ठ विद्वानों के साथ ( नः ) हम लोगों के ( धितावानम् ) चारण किया

शुनं हुवेम पयवानभिन्द्रमस्मिन्मरे नृतमं वावसातो ।

शुष्वन्तमुग्रमुवयं समस्तु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं वनानाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस को हम लोग ( अतये ) व्यवहार-सिद्धि-प्रवेश के लिए ( अस्मिन् ) इस ( अरे ) पालन करने योग्य संसार में ( नृतमम् ) अत्यन्त नायक ( वयवानम् ) बहुत धन के दान करने और ( वावसातो ) पदार्थों की विभाम विद्या में ( शुष्वन्तम् ) सुमनेवाले व्याघ्राधीन दण्ड देनेवाले के सदृश ( उग्रम् ) तेजस्वीरूप और ( समस्तु ) सगामों में ( घ्नन्तम् ) विद्यावान् शूरवीर के सदृश ( वनानाम् ) लक्ष्मियों को ( सञ्जितम् ) शीघ्र जीतता है जिस से उस ( इन्द्रम् ) बिजुली रूप अग्नि को जान कर ( वृत्राणि ) घनों को और ( शुनम् ) सुवकारक विज्ञान को ( हुवेम ) स्वीकार करें वैसे इस को जानकर आप लोग प्राप्त हूँजिये ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमासङ्कार है । यथार्थवत्ता विद्वान् लोग भ्रमर बिजुली भूगोल जंगल और सृष्टिस्थ पदार्थों की विद्या के उपदेश से पदार्थ विद्याओं को प्राप्त करा के सब की निरन्तर वृद्धि करें ॥४॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन, निन्दित जनो का निवारण, मित्रता करना, भ्रमान का त्याग कर, विद्या की प्राप्ति की इच्छा करना

इत्यादि विषय वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त

के अर्थ के साथ सञ्जति है यह समझना चाहिए ॥

यह ऋग्वेद संहिता में तृतीय अष्टक में दूसरा अध्याय, छःवीसवां वर्ग और तृतीय मण्डल में अस्तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

है विभाग जिससे उस ( वयम् ) विद्या और विनय से मञ्जित पालन करने रूप कर्म को ( प्र, तिरः ) पार हो समाप्त करो अर्थात् उक्त कर्म से दुःख से पार पहुँचो ॥३॥

भाषार्थ—प्रजाजनो को चाहिए कि राजा को इस प्रकार का उपदेश दें कि आप हम लोगों के रक्षक हूँ और ऐसी आज्ञा दीजिये कि आप के सब श्रेष्ठ मध्यम, कनिष्ठ कर्मचारी लोग धर्मपूर्वक हम लोगों की निरन्तर रक्षा करें ॥३॥

इन्द्र सोमां सुता इमे तव म धन्ति सत्पते ।

सयं चन्द्रास इन्द्रवः ॥४॥

पदार्थ—हे ( सत्पते ) सत्पुरुषों के रक्षा करने और ( इन्द्र ) सम्पूर्ण ओषधियों की विद्या के जाननेवाले राजन् ! जो ( इमे ) ये ( चन्द्रासः ) आनन्दकारक ( इन्द्रवः ) शीले ( सुता ) उत्तम प्रकार में पाक आदि सत्कार से युक्त ( सोमाः ) ओषधि आदि पदार्थ ( तव ) आप के ( वयम् ) रहने के स्थान को ( प्र, धन्ति ) प्राप्त होत हैं उनका आप सेवन करो ॥४॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जिसका आप को राज्य का भाग लेना चाहिए उसका ही ग्रहण कर भोग कीजिये, न अधिक न न्यून ऐना करने से आपकी हानि कमी नहीं होगी ॥४॥

दधिष्वा जठरं सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव घृक्षास इन्द्रवः ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) पूर्ण अवस्था की कामना करनेवाले ! जो ( तव ) आपके ( घृक्षासः ) प्रकाश में रहने ( इन्द्रवः ) और स्नेह करनेवाले होंगे उन के समीप से ( वरेण्यम् ) भोग करने योग्य ( सुतम् ) उत्तम प्रकार बनाया ( सोमम् ) श्रेष्ठ ओषधियों से युक्त अन्न को ( जठरं ) उत्पन्न हो सुख जिसमें उन पेट में आप ( वलिष्ठ ) बरो ॥५॥

भाषार्थ—राजा आदि मनुष्यों को सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य से उन्हीं पदार्थों का खान और पान करना चाहिए कि जो बुद्धि अवस्था और बल को निरन्तर बढ़ावें ॥५॥

निर्वैशः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरन्यसे ।

इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( निर्वैशः ) वाणिज्य से याचना किये जाते ( इन्द्र ) तेजस्विन् ! जो ( त्वादातम्, इत् ) आप से ग्रहण किया हुआ ही ( यशः ) योग्यताका अन्न अन्न वा धन है उस से और ( मधोः ) मधुर आदि गुणों से युक्त वस्तु के ( धाराभिः ) प्रवाहों के साथ ( सुतम् ) उत्पन्न हुए ( सोमम् ) ओषधि आदि पदार्थों को पावे

हृद्यं हम् लोगों से जाने जाते हो वह आप (नः) हमारी (वाहि) रक्षा कीजिये ॥६॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जिसना पीले योग्य वस्तु अन्न और वन हम लोगों का आपने स्वीकार किया है उससे अपनी और हम लोगों की रक्षा कीजिये ॥६॥

**आमं घुम्बानि वमिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।**

**पीत्वी सोमस्य बाधुचे ॥७॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (वमिनः) मांगने वाले जन (अक्षिता) नाश से रहित (घुम्बानि) यशो के (अनि) सम्मुख (इन्द्र) ऐश्वर्य करनेवाले का (सचन्ते) सम्बन्ध करते हैं और जैसे मैं (सोमस्य) ओषधिरूप ऐश्वर्य के योग से (पीत्वी) पान करके (बाधुचे) वृद्धि करके वैसे आप करो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को चाहिए कि वर्त्मयुक्त अत्यन्त पुरुषार्थ से नहीं नाश होने बाध ऐश्वर्य को प्राप्त होकर नियमित भोजन और विहार से शरीर को उत्पन्न करके ससार में उत्तम कीर्ति का विस्तार करें ॥७॥

**अर्वावतो न आ गहि परावतं वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥**

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) वन को प्राप्त होनेवाले ! आप (अर्वावतः) प्रशंसा करने योग्य जोड़ो से युक्त (नः) हम लोगों को (परावतः) दूर देश से (व) और समीप से (आ) सब ओर से (गहि) प्राप्ति हुईए और (नः) हम लोगों की (इमाः) इन (गिरः) वाणियों का (जुषस्व) सेवन करो ॥८॥

भाषार्थ—हे राजन् ! दूर वा समीप में स्थित सेवा के अङ्ग सत्त्व आदि से युक्त और हम लोग जब आप को पुकारें उसी समय आप को आना चाहिए तथा हम लोगों के वचन सुनना और यथार्थ न्याय करना चाहिए ॥८॥

**यदन्तरा परावतं मर्वावतं च ह्यसौ । इन्द्रेह तत् आ गहि ॥९॥१॥**

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता ! आप (इह) इस राज्य में (यत्) जो (अन्तरा) व्यवधान अर्थात् मध्य में (परावतम्) दूर देश और (अर्वावतम्) समीप में वर्तमान को (व) और पुकारते हैं उन लोगों से (ह्यसौ) पुकारे जाते हो (तत्) इस से हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हुईए ॥९॥

भाषार्थ—राजा दूर देश में हो और प्रजा सेवा और मन्त्री जन अन्यत्र भी वर्तमान हों तथापि त्यों के द्वारा सब लोगों के साथ में समीप वर्तमान हो सके ॥९॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चालीसवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ नवमस्तोत्राधिकारप्रारम्भस्य सूक्तस्य विषयानिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो वेत्ता ।

१ अथमप्या गायत्री, २, ३, ४, ५ गायत्री, ४, ७, ८ निचुङ्

गायत्री । ९ विराट् गायत्री ऋषः । ऋषः स्वर ॥

अथ नव ऋचा बाले एकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के

प्रथम मन्त्र में अग्नि के विषय को कहते हैं—

**आ तू न इन्द्र मद्रथं घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याद्वद्रिषः ॥१॥**

पदार्थ—हे (हरिभ्यः) मेघों से युक्त सूर्य के तुल्य वर्तमान (इन्द्र) ऐश्वर्य के करनेवाले ! आप (सोमपीतये) सोमलतारूप शोधक का रस पीया जाय जिस करने में उस के लिए (मद्रथम्) मेरी पूजा अर्थात् उपासना करने वाला (घुवानः) पुकारा गया जन (हरिभ्याम्) जोड़ो से (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार (गहि) प्राप्ति हो और हम लोग (तु) आप्र आप का प्राप्त हावें ॥१॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि शुभ कार्य आदि के उत्सवों में परस्पर एक दूसरे का आह्वान करके अन्न और जल आदिकों से सत्कार करें ॥१॥

किर उसी विषय को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

**सखो होतां न ऋत्विग्यस्तितरे बहिरासुषक् । अयुञ्जन् मातरप्रथः ॥२॥**

पदार्थ—जो (सखः) बैठा हुआ (होता) ग्रहण करने वाला और (ऋत्विग्यः) जो ऋतु को योग्य होता वा (आसुषक्) अनुकूलता के साथ मिलता ये (नः) हम लोगों के लिए (बहिः) उत्तम आसन वा वस्तु को (अयुञ्जन्) मेघों के लघु (प्रातः) प्रातःकाल में (अयुञ्जन्) युक्त करते हैं और (स्तितरे) वर्षों से आकाशवाचन करते हैं वे क्रियारूप यज्ञ करने को योग्य हैं ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रभातकाल के नेत्र सूर्य के प्रकाश का आकाशवाचन करके छाया को उत्पन्न करते हैं वैसे ही क्रियाओं को आनन्दवाचन शेष पदार्थों से शरीरों को वायु के अनुकूलता से युक्त को उत्पन्न करते हैं ॥२॥

**इमा ब्रह्मा ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बहिः सीव ।**

**वीहि शूर पुरोक्षाशम् ॥३॥**

पदार्थ—हे (शूर) दुष्टों के नाश करनेवाले ! जो (इमाः) ये (ब्रह्म-वाह) वनों को प्राप्त करानेवाली क्रियाएँ (क्रियन्ते) की जाती हैं उन से (ब्रह्म) वन को (वीहि) प्राप्त (बहिः) अन्तरिक्ष में (आ, सीव) वर्तमान और (पुरो-क्षाशम्) उत्तम प्रकार सत्कारयुक्त अन्न को प्राप्त हो ॥३॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि निष्कल क्रियाओं को कभी न करें। जिस जिस क्रिया से धर्म, धर्म, काम और मोक्ष की सिद्धि हो उस उस को प्रयत्न से करो ॥३॥

**रारन्धि सवनेषु वा एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गर्बणः ॥४॥**

पदार्थ—हे (गर्बणः) वाणियों से जिस में याचना करें वह (वृत्रहन्) वनों से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले ! आप (स्तोमेषु) प्रशंसा करने और (उक्थेष्ु) कहने के योग्य (सवनेषु) ऐश्वर्यों में (नः) हम लोगों को (रारन्धि) रमाओ ॥४॥

भाषार्थ—दरिद्र लोगों को चाहिए कि वनयुक्त पुरुषों से सदा याचना करें जिससे कि वे दरिद्र लोग सुख को प्राप्त हों ॥४॥

**मतयः सोमपामुर्हं रिहन्ति शर्वसस्पतिम् ।**

**इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥३॥**

पदार्थ—जो (मतयः) उत्तम वृद्धि से युक्त मनुष्य लोग (सवसः) बल के (पतिम्) पालन करनेवाले (उक्थम्) बहुत ऐश्वर्य से पूर्ण (सोमपाम्) ऐश्वर्य के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष (मातरः) गौएँ (वत्सम्) बछड़े को (न) जैसे (रिहन्ति) चाटती जैसे मिलते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भाषार्थ—जैसे गौएँ प्रेमभाव का आश्रयण करके बछड़ों में प्रेम धारण करती हैं वैसे ही राजा आदि अध्यक्ष पुरुष सेनाओं की प्रजाओं के प्रेमभाव से रक्षा करें ॥५॥

**स मन्वस्वा ऋन्वसो रावसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (हि) जिस से आप (स्तोतारम्) विद्वान् पुरुष की (निदे) निन्दा करने के लिए (न) नहीं (करः) करें इससे (सः) वह आप (तन्वा) शरीर से (ऋन्वसः) अन्न आदि की (महे) बड़ी (रावसे) सिद्धि करने वाले धन के लिए (मन्वस्व) आनन्द करो ॥६॥

भाषार्थ—जो मनुष्य स्तुति करने योग्य पुरुषों की निन्दा नहीं करते वे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त हाकर शरीर और आत्मा से सदा ही सुखी होते हैं ॥६॥

**वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत स्वमस्मयुर्वसो ॥७॥**

पदार्थ—हे (वसो) निवास के कारण (इन्द्र) ऐश्वर्य से और (हविष्मन्तः) बहुत देने योग्य वस्तुओं से युक्त ! (त्वायवः) आप की कामना करते हुए (वयम्) हम लोग आप की (जरामहे) प्रशंसा करें (उत) और भी (त्वाम्) आप (अस्मयुः) हम लोगों की कामना करते हुए हम लोगों की प्रशंसा करो ॥७॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सब लोगों के गुणों की प्रशंसा और दोषों की निन्दा करें वे विवेकी अर्थात् विचारशील होके गुणों के ग्रहण करने और दोषों के त्याग करने को समर्थ होते हैं ॥७॥

**मारो अस्मदि मुमुक्षो हरिप्रियावाङ् याहि । इन्द्रं स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥**

पदार्थ—हे (हरिप्रिय) हरनेवालों को प्रमत्त करनेवाले ! (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त (स्वधावः) बहुत अन्नादि वस्तुओं से पूर्ण आप (अस्मत्) हम लोगों से (मारो) समीप वा दूर देश में (आ) मत (वि, मुमुक्षः) त्याग करिये (अर्वाङ्) नीचे के स्थान को जाते हुए (याहि) जाइये और (इह) इस ससार में (मत्स्व) आनन्द करिए ॥८॥

भाषार्थ—हे मित्र जनो ! आप लोग हम लोगों से दूर वा समीप स्थान में वर्तमान हुए हम लोगों का कल्याण करो और प्रीति का त्याग मत करो और हम लोग भी आप लोगों में ऐसा ही वर्तव्य करें, इस प्रकार परस्पर वर्तव्य करके इस ससार में सुखी हों ॥८॥

**अर्वाञ्च त्वा मुखे रथे वहतामन्द्र केशिना । घृतस्नं बहिरासदे ॥९॥४॥**

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त ! जो (वृत्तम्) घृत अर्थात् जल को पवित्र करनेवाले (केशिना) बहुत केनों से युक्त (अर्वाञ्चम्) नीचे जानेवाले (त्वा) आप को (मुखे) मुख करानेवाले (रथे) सुन्दर वाहन और (बहिः) अन्तरिक्ष में (आसदे) वर्तमान होने के लिए (वहताम्) पहुंचावें उनको आप जानिये ॥९॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! दो अग्निनों से चलाये हुए वाहनों पर स्थित होकर नीचे ऊपर और तिरछे दिशा में जाकर आइये ॥९॥

इस सूक्त में विद्वान् मनुष्यों के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिए ॥

यह इक्तालीसवाँ सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ उप नः सुतमित्यस्य नवर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्समस्य सूक्तस्य विद्वान्मित्र ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, ४—७ गायत्री, २, ३, ८, ९

निष्पद्गायत्रीछन्दः । षड्ज स्वरः ॥

अथ नव ऋष्यावाले ब्यालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्तै अस्मयुः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त ! आप ( हरिभ्याम् ) घोड़ों से युक्त रथ से ( यः ) जो ( ते ) आप का वाहन ( अस्मयुः ) अपन को हम लोगों की इच्छा करना हुआ सा वर्तमान है घोड़ों में युक्त उग रथ से ( नः ) हम लोगों के ( सुतम् ) उत्तम प्रकार सिद्ध ( गवाशिरम् ) सेवन करने योग्य (सोमम्) ओषधिगणों के सदृश ऐश्वर्य को ( उप, आ, गहि ) समीप में सब प्रकार प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥

भाषार्थ—वे लोग ही सब लोगों के मित्र हैं कि जो लोग अपने ऐश्वर्य में सब लोगों को बुला कर मत्कार करते हैं ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तमिन्द्र मवमा गहि बहिःष्ठां प्रावमिः सुतम् । कुविन्वस्य तृणवः ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले ! जो ( अस्म्य ) इस सामलता की ( तृणवः ) तृप्ति करनेवाले हैं उनमें ( कुविन् ) खेठ हाकर ( तम् ) उम पूर्वोक्त को ( प्रावमिः ) मेघों में ( सुतम् ) उत्पन्न ( मवम् ) आनन्दकारक ( बहिष्ठां ) अन्तरिक्ष में वर्तमान होनेवाले ओषधिगणों के सदृश वर्तमान ऐश्वर्य को ( तु ) शीघ्र ( आ, गहि ) सब प्रकार प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो सामलता आदि ओषधिया वृष्टियों से उत्पन्न होती रोगविनाशक होने से तृप्तिकारक होती और सूक्ष्म अवयवों के द्वारा अन्तरिक्ष को प्राप्त होके सब स्थानों में फैलती है उन का युक्ति से सेवन करके मदा आनन्द का भोग करना चाहिए ॥ २ ॥

अब विद्वानों के सत्कार विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रमिस्था गिरो ममाच्छां गुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( आवृते ) सब ओर से ढापे हुए स्थान विजय में ( सोमपीतये ) सामलता के रस के पान करने के लिये ( मम ) मेरी ( इविता ) प्रेरणा की गई ( गिरः ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों ( इतः ) हमने ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले को ( अच्छा, अगु ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ( इत्था ) इस प्रकार से आप लोगों की भी वाणिया इस को प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है । विद्वान् लोग अन्य जनों के प्रति इस प्रकार से उपदेश देवें कि हम लोग जिन को बुला कर मत्कार करें आप लोग भी उन्हीं का सत्कार करें ॥ ३ ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेमिः कुविदागमत् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वज्जन ! हम लोग ( स्तोमैः ) प्रशंसा के वचन जो ( उक्थेमिः ) कहने के योग्य उन से ( सोमस्य ) उत्तम प्रकार निकाले हुए बड़ी ओषधि के रस के ( पीतये ) पान करने के लिए जिस ( इन्द्रम् ) अत्यन्त विद्या और ऐश्वर्यवाले को ( इह ) इस समार में ( हवामहे ) पुकारे वह हम लोगों के समीप ( कुविन् ) बहुत बार ( आगमत् ) आवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो अविद्वान् लोग प्रीति में विद्वान् लोगों को बुलावें तो वे उनके समीप बहुत बार आवें ॥ ४ ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रनो । जठरं वाजिनोवसो ॥५॥

पदार्थ—हे ( वाजिनोवसो ) ऋषि को वयानवाले ( शतक्रनो ) बहुत कमों में कुशल ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के आका ! जो ( इमे ) मैं ( जठरे ) प्रसिद्ध हुए इस सत्कार में ( सोमा ) पदार्थ ( सुता ) उत्पन्न हुए हैं उनका ( दधिष्व ) धारण करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—तभी मनुष्य पूर्ण विद्या और ऐश्वर्यवाले होवे कि जब मृष्टि में वर्तमान पदार्थों की विद्या को जानें ॥ ५ ॥

विद्या हि त्वां धनक्षयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुममीमहे ॥६॥

पदार्थ—हे ( कवे ) विद्वान् पुरुष ! हम लोग ( वाजेषु ) मध्यामों में ( दधृषम् ) प्रचण्ड ( धनक्षयम् ) धनो के जीनेवाले ( त्वा ) आप को ( बिष ) जानें ( अध ) इस के अनन्तर ( हि ) जिससे ( ते ) आप के समीप से ( सुमम् ) मुख की ( ईमहे ) याचना करते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्य जिस को सुखों के प्रदानों में योग्य धूरवीर न्यायाधीश जाने उमी में सुखों की पूर्ति करनी चाहिए ॥ ६ ॥

हममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरञ्च नः पिब । आगत्या तृषमिः सुतम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के देनेवाले ! आप ( आगत्या ) आके ( नः ) हम लोगों के ( तृषमिः ) वृष्टिकर्ता मेघों से ( सुतम् ) उत्पन्न किये गये ( यवाशिरम् ) किरणों जिस को पीती हैं उस और ( यवाशिरम् ) यव अन्न का भोजन किया जाय जिसमें उस ( च ) और ( इमम् ) इस पदार्थ को ( पिब ) पान करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जिस को सूर्य का किरणों और पवनों पीती हैं उसी रस का आप लोग पान करके बलिष्ठ होइये ॥ ७ ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्थे सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते इदि ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्ययुक्त जन ! जो ( एषः ) यह ( ते ) आप के ( इदि ) हृदय में ( रारन्तु ) अत्यन्त में उस ( सोमम् ) रस को ( स्वे ) अपने ( ओक्थे ) गृह में ( पीतये ) पीने को ( तुभ्य ) आप के लिए ( इत् ) ही ( चोदामि ) प्रेरणा करता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—प्राणी लोग जो खाते और पीते हैं यह सब पदार्थ रुधिर आदि हो और हृदय में फैल कर मस्तिष्क के द्वारा सर्वत्र फैलता है ॥ ८ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वां सुतस्य पीतये प्रममिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) मुख के दाता ! ( कुशिकास ) विद्या और विनय आदिको से श्रेष्ठ हुए ( अवस्यवः ) आप लोगों के आत्माओं की रक्षा की इच्छा करनेवाले हम लोग ( सुतस्य ) उत्तम प्रकार सत्कारयुक्त रस के ( पीतये ) पान करने के लिए जिस ( प्रसन् ) प्राचीन काल से सिद्ध ( त्वाम् ) आप को ( हवामहे ) देवें वह आप हम लोगों को बुलाइये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—नवीन विद्वानों में प्राचीन विद्वान् श्रेष्ठ है, ऐसा निश्चय करना चाहिए ॥ ९ ॥

इस मन्त्र में इन्द्र विद्वान् और सोम के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ब्यालीसवाँ सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अष्टाष्टस्य त्रिचत्वारिंशत्समस्य सूक्तस्य विद्वान्मित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३

विराट् पङ्क्तिछन्दः । षड्ज स्वर । २, ४, ६ निष्पद् त्रिष्टुप् ;

५ भुरिक त्रिष्टुप्, ७, ८ त्रिष्टुप् छन्दः । षड्ज स्वर ॥

अब आठ ऋष्यावाले तेतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं—

आ यांश्चर्वाकुपं बन्धुरेष्ठास्तवेदन् प्रदिवंः सोमपेयम् ।

प्रिया मखाया वि मुचोपं बहिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१॥

पदार्थ—ह विद्वज्जन ! आप ( अर्वाङ् ) नीचे के स्थल में वर्तमान होकर जो ( त्व ) आप के ( बन्धुरेष्ठा ) बन्धुल में वर्तमान रथ है उस से ( प्रविचः ) उत्तम प्रकाशवाले ( सोमपेयम् ) पीने योग्य सोमलता के रस के ( उप, आ, गहि ) समीप आइये और जो ( प्रिया ) प्रसन्नता के करनेवाले ( मखाया ) मित्र अध्यापक और उपदेशक हैं उन के समीप हुआ है जो ( बहिः ) अन्तरिक्ष में ( त्वाम् ) आप के ( अनु ) पीछे ( इमे ) य है उन का ( चि, मुच ) त्याग कीजिये जिनको ( हव्यवाह ) हवन मामग्री धारण करनेवाले ( उप, हवन्ते ) ग्रहण करते हैं उन के साथ ( इत् ) ही बुद्ध का त्याग कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो लोग विद्या के प्रकाश को प्राप्त हो विमानादि वाहनों का निर्माण और उस में अग्नि आदि का प्रयोग करके अन्तरिक्ष में जाते हैं वे प्रिय आचरण करने वाले मित्रों को प्राप्त होकर दारिद्र्य का नाश करते हैं ॥ १ ॥

अब मित्रता के गुण के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ यांति पृवीरति चर्षणीरा अय्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।

इमा हि त्वां मतयः स्तोमंतथा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) बहुत ऐश्वर्यों के देनेवाले ! जो ( इमाः ) इन वर्तमान ( स्तोमंतथा ) विस्मययुक्त स्तुतियों में विशिष्ट और ( सख्यम् ) मित्रता का ( जुषाणाः ) सेवन करती हुई ( मतयः ) बुद्धिया ( त्वा ) आप को ( आ, हवन्ते ) ग्रहण करती हैं उनके साथ ( नः ) हम लोगों को ( आ ) सब प्रकार ( गहि ) प्राप्त हुआ है जिस प्रकार ( अय्यः ) स्वामी ( चर्षणी ) मनुष्य आदि प्रजाओं को प्राप्त होकर ( आशिषः ) आशीर्वादों को प्राप्त होता है वैसे उन ( चर्षणीः ) प्राचीन काल में उत्पन्न हुई आशिषों को ( हि ) ही ( हरिभ्याम् ) वायु और अग्नि से ( अति, आ ) सब ओर से अत्यन्त प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥



**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस बुद्धि से सब जीवों के साथ मित्रता हो उससे युक्त हुए सब के आशीर्वादों को प्राप्त होकर सुख की निरन्तर प्राप्ति होइये ॥ २ ॥

**आ नौ यज्ञं नमो ह्यर्षे सजीवा इन्द्र वेव हरिर्मियाहि त्वयम् ।**

**अहं हि त्वा मतिभिर्जोह्वीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३॥**

**पदार्थ—**हे ( वेव ) विद्वन् ! ( इन्द्र ) ऐश्वर्य से युक्त करनेवाले ( घृतप्रयाः ) घृत से प्रयत्न होनेवाला ( अहम् ) मैं ( मतिभिः ) बुद्धियों से ( मधूनाम् ) और मधुर आदि गुणों से युक्त पदार्थों के ( सधमादे ) तुल्य स्थान में ( हि ) जिससे कि ( त्वा ) आप की ( जोह्वीमि ) प्रशंसा करता वा बुलाता हूँ इस से ( सजीवाः ) तुल्य प्रीति के सेवने वाले आप ( हरिभिः ) घोड़ों के सदृश अग्नि आदिको से ( नः ) हम लोगों के ( नमो ह्यर्षम् ) अन्न आदि ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले ( यज्ञम् ) प्रयत्न से सिद्ध होने योग्य सङ्गत व्यवहार के प्रति ( त्वयम् ) शीघ्र ( आ ) सब प्रकार ( मियाहि ) प्राप्त हूँजिये ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**मनुष्यो को उन लोगों की ही प्रशंसा करनी चाहिए कि जो सब के सुखों की वृद्धि करें ॥ ३ ॥

**आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।**

**धानावदिन्द्रः सर्वान् जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४॥**

**पदार्थ—**हे विद्वन् पुरुष ! जैसे ( धानावत् ) पकाये हुए यवों से युक्त ( सखम् ) ऐश्वर्य का ( जुषाणः ) सेवन करता हुआ ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य का देने वाला ( सखा ) मित्र पुरुष ( सख्युः ) मित्र के अभिवादन आदि वा स्तुतियों को ( शृणवत् ) सुने और ( स्वङ्गा ) सुन्दर अङ्गों से विभिष्ट ( सखाया ) मित्रों के तुल्य वर्तमान तथा ( सुधुरा ) उत्तम धुरों से युक्त ( वृषणा ) वृष्टि करनेवाले बायू और बिजुली ( त्वाम् ) आप को ( एता ) प्राप्त हुए ( हरी ) से चलनेवाले घोड़ों के सदृश सब को ( आ, वहातः ) प्राप्त होते हैं वैसे आप सब लोगों के वचनों को सुनिये और प्रिय कार्यों को सिद्ध कीजिये ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे लोग ही मित्र होने योग्य हैं कि जो बड़े दुःख को प्राप्त होकर भी मित्रों का त्याग नहीं करते और जैसे दो वा बहुत थोड़े दृक्दृष्ट होकर घबेरे स्थानों में पहुँचाने हैं वैसे अपने आत्मा से मद्दश प्रिय जन इच्छा की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

**कुर्विन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मयवन्तृजीविन् ।**

**कुर्विन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुर्विन्मे वस्वो अमृतस्य शिषाः ॥५॥**

**पदार्थ—**हे विद्वज्जन ! जो आप ( जनस्य ) सब लोगों के ( कुर्वित् ) श्रेष्ठ ( गोपां ) धार्मिक पुरुषों के रक्षा करनेवाले ( आ ) मुझको ( करसे ) करें । हे ( मयवन् ) परम प्रणसनीय धनयुक्त ( ऋजीविन् ) कोमलपन को चाहने वाले ! जो आप जनसमूह का ( राजानम् ) राजा करें वह ( सुतस्य ) उत्पन्न किये हुए सोम के रस को ( पपिवांसम् ) पीने हुए ( कुर्वित् ) श्रेष्ठ ( ऋविन् ) सम्पूर्ण वेदों के अर्थ के जानने वाले होने की ( आ ) मुझ को ( शिषा ) शिक्षा दीजिये और आप ( कुर्वित् ) श्रेष्ठ ( अमृतस्य ) नाश न रहित ( मे ) मेरे ( वस्वः ) धन को करें उन आप की हम लोग सेवा करें ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों को विद्या विनय और उत्तम शिक्षादान में बड़े राजा करते और वेद के अर्थों को समझा के मोक्ष मित्र करते हैं उनको आप अपने आत्मा के सदृश प्रसन्न करें ॥ ५ ॥

**आ त्वा वृहन्तो हरयो युवाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।**

**प्र वे द्विता विव ऋजन्त्याताः सुसंयुष्टातो वृषमस्य मूराः ॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) अत्यन्त सेवा करने योग्य विद्वन् ! ( वे ) जो ( वृहन्तः ) बड़े ( युवाना ) समाधान देते हुए ( सधमादः ) समान स्थान वाले ( हरयः ) उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़ों के सदृश अग्नि आदि पदार्थ ( त्वा ) आप को ( आ ) सब प्रकार ( वृहन्तु ) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचावें और वे तथा ( द्विता ) दो दो पदार्थों का होना जैसे वैसे विद्वान् ( विवः ) विद्याओं से प्रकाशमानों को ( ऋजन्ति ) सिद्ध करते हैं ( सुसंयुष्टातः ) वा श्रेष्ठ रीति से उत्तम प्रकार युद्ध किये हुए ( आताः ) व्याप्त हुई विद्याओं के सदृश ( वृषमस्य ) बलवान् पदार्थ के वेग को ( प्र, वृहन्तु ) प्राप्त हों उनसे जो ( मूराः ) मूह हों उन पुरुषों को ( अर्वाक् ) पीछे के स्थल में आप पहुँचाइये ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग घोड़ों के सदृश अशीष्ट स्थान में मुँहों को पहुँचाते हैं वे सम्पूर्ण समृद्धि कर सकते हैं ॥ ६ ॥

**इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृषा आ यन्ते इयेन उशते जमारं ।**

**वस्य मदे अथावयसि म कुहीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्षी ॥७॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) विशेष ऐश्वर्य के देने वाले ! आप ( वृषधूतस्य ) वलिष्ट पदार्थों के कंसाने वाले ( वृषः ) वलिष्ट पदार्थ के रस का ( पिब ) पान

करों ( इयेनः ) वाज पक्षी के सदृश ( यम् ) जिन की ( उशते ) कामना करने वाले ( ते ) आप के लिए जिस को ( आ, जमारः ) धारण करना है ( वस्य ) जिस के ( मदे ) आनन्द म आप ( कुहीर्यः ) मनुष्यों को ( प्र, अथावयसि ) प्राप्त कराते हैं और ( वस्य ) जिस के ( मदे ) आनन्द के निमित्त ( गोत्रा ) पृथिवी ( अप, ववर्षी ) वर्तमान है उस की अपने तुल्य सेवा करो ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो इयेन पक्षी के सदृश शीघ्र चलने और सब के सुख की कामना करनेवाले पुरुष मनुष्यों को सुख देने हैं उन लोगों के समीप वर्तमान होकर विद्या सम्बन्धी व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

**कुनं हुवेम मयवान्मिन्द्रमस्मिन्मरे वृत्तमं वाजसातो ।**

**शृण्वन्तंमुग्रमृतयै समत्सु घनन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥८॥७॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे ( अस्मिन् ) इस ( वाजसातो ) ज्ञान और अज्ञान के विभाग और ( मरे ) विद्वान् और अविद्वान् के संग्राम में ( ऊतये ) विद्या आदि उत्तम गुणों में प्रवेश होने के लिए ( समत्सु ) धार्मिक और अधार्मिकों के विरोध-नामक युद्धों में ( घनन्तम् ) विरोध को नाश करने हुए ( धनानाम् ) ऐश्वर्यों के ( सञ्जितम् ) जीतने का स्वभाव रखनेवाले ( वृत्राणि ) धनों की ( शृण्वन्तम् ) उत्तम प्रकार परीक्षा करने हुए ( उग्रम् ) उत्तम स्वभावयुक्त ( मयवानम् ) सम्पूर्ण विद्याओं के उत्पन्न करने ( वृत्तम् ) अतिशय करके विद्या के प्राप्ति कराने और ( इन्द्रम् ) अविद्या आदि क्लेशों के नाश करनेवाले को प्राप्त होकर ( शृण्वन् ) महीषधियों के नेबन से उत्पन्न हुए सुख को ( हुवेम ) ग्रहण करे वैसे इस को प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त हूँजिये ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के ज्ञान को पहुँच कर अविद्या और दारिद्र्य का नाश तथा विद्या और लक्ष्मी को उत्पन्न कर निरन्तर आनन्द बढ़ावें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् मयि और मायपानादिकों के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलि जाननी चाहिए ॥

यह सैतालीसवाँ सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य अनुवचत्वारिंशत्सप्तस्य सूक्तस्य विधिवान्न ऋषिः । इन्द्रो वेवता ।

१, २ निषुङ्गहृती, ३, ४ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

४ स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचा वाले चत्वारिंशत् सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में सूर्य के विषय को कहते हैं—

**अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।**

**जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गृह्णातिष्ठ हरितं रथम् ॥१॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले ! ( हर्यतः ) कामना करने हुए ( ते ) आप के ( हरिभिः ) घोड़ों के सदृश माधनों से जो ( अयम् ) यह ( सोमः ) ऐश्वर्यों का समूह ( सुतः ) प्राप्त हुआ ( अस्तु ) हो उस का ( जुषाणः ) सेवन करता हुआ ( हरिभिः ) से चलने वाले घोड़ों से ( हरिभिः ) अग्नि आदिको से चलाये गये ( रथम् ) मनोहर यान पर ( आ, तिष्ठ ) स्थिर हूँजिये इस से ( नः ) हम लोगों को ( आ, गृहि ) प्राप्त हूँजिये ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही लोग दयालु हैं कि जो अन्य जनों के ऐश्वर्य की वृद्धि की इच्छा करें और ऐश्वर्य वालों को आने हुए वेह के प्रसन्न होवें ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**हर्यश्मधसमर्चयः सूर्यं हर्यश्मरोचयः ।**

**विद्वान्विचिक्त्वान्हर्यश्म वद्वेस इन्द्र विन्वा अभि धियः ॥२॥**

**पदार्थ—**हे ( हर्यम् ) कामना करनेवाले ! ( उवसम् ) प्रातःकाल को सूर्य के सदृश सत्पुरुषों का आप ( अर्चयः ) सत्कार करिये और हे ( हर्यम् ) अनेक पदार्थों को प्राप्त होने वा प्राप्त कराने वाले ! ( सूर्यम् ) सूर्य को बिजुली जैसे वैसे न्याय का ( अरोचयः ) प्रकाश करा और हे ( हर्यम् ) कामना करते हुए ! शीघ्र चलने वाले अथवा वा अग्नि आदि पदार्थों से युक्त ( इन्द्रः ) धन की इच्छा करने वाले जिस से ( चिक्त्वान् ) ज्ञानवान् ( विद्वान् ) विद्वान् होते हुए ( विन्वाः ) सम्पूर्ण ( अभि ) सम्पूर्ण वर्तमान ( विचः ) सुन्दर सम्पत्तियों का प्राप्ति होने की इच्छा करते हो इस से ( वद्वेसि ) वृद्धि को प्राप्त होते हो ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्रातःकाल के सदृश विद्याओं के प्रकाश में तत्पर और सूर्य के सदृश धर्मवर्णन की कामना करते हुए प्रयत्न से ऐश्वर्य की इच्छा करें वे सब प्रकार लक्ष्मीयुक्त होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

धामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिर्वसम् ।

अधारयदुरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे ( इन्द्र ) बिजुली वा सूर्य ( हरिधायसम् ) किरणों को धारण करने वा ( धाम् ) प्रकाश लोक और ( हरिर्वसम् ) जिसके रूप का प्रकाश करनेवाली किरणों विद्यमान उस ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( अधारयत् ) धारण करता है और जैसे ( हरि ) हरनेवाला वायु ( ययो ) जिन ( हरितो ) हरनेवाले गुणों के ( अन्तः ) मध्य में वर्तमान हुआ ( भूरि ) बहुत ( भोजनम् ) पालन वा भक्षण का ( चरत् ) आचरण करता है वैसे आप हजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सूर्य के सदृश निरमपूतक धर्मयुक्त कर्मों को मिट करके और वायु के सदृश निरन्तर प्रयत्न करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं ॥ ३ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ज्ज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।

हर्यश्चो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं वाहोर्हरिम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जो ( ज्ञान ) उत्पन्न होता हुआ ( हरित ) हरित आदि वर्णों से युक्त ( हर्यश्च ) कामना करने हुए शीघ्र चमनेवाले गुण हैं जिस बिजुली रूप के वह ( वृषा ) वृष्टिकारक ( हरितम् ) कामना करने योग्य ( रोचनम् ) और सब ओर से जिस में प्रीति करने है ऐसे ( विश्वम् ) सम्पूर्ण लोक को ( वाहो ) भुजाओं के ( हरितम् ) हरनेवाले ( वज्रम् ) शस्त्रों के सदृश किरणों के समूह को ( प्र, आ, धत्ते ) धारण करता और ( वा, भाति ) प्रकाशित होता है उसको जानकर उपयोग करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वान् लोग जैसे प्रसिद्ध सूर्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करके आप प्रकाशित होता है वैसे ही मरिचा के उपदेश से धर्म का प्रकाश करावे ॥ ४ ॥

इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरमीषूतम् ।

अपावृणोद्दरिभिरद्रिभिः सुतमुदगा हरिभिराजत ॥५॥८॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे ( इन्द्र ) सूर्य ( शुक्र ) शीघ्रता करनेवाले गुणों से ( अभीषूतम् ) सब ओर से युक्त ( अर्जुनम् ) रूप और ( वज्रम् ) किरणों के समूह की ( हर्यन्तम् ) कामना करने हुए ( हरिभि ) हरनेवाली किरणों और ( अद्रिभि ) मेघों से ( सुतम् ) मिट हुए पदार्थ को ( अप, अभीषूतम् ) दूर करता है वैसे ( हरिभि ) मनुष्यों के साथ राजा ( वा ) पृथिवियों के तुल्य और पदार्थों को ( जत्, आजत ) फेंकता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सूर्य के सदृश विद्या नक्षत्रा सेना और धन आदि का प्रकाश और अविद्या आदि की निवृत्ति कर जिसका उत्तम सहाय उस राजा के साथ मन्त्राह करके राज्य का पालन करते हैं वे पूर्ण मनोरथवाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सूर्य बिजुली वायु और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चत्वारिंशत् सूक्त और आठवाँ वर्ष समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य पञ्चमवर्षारंशतमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, २ निष्पद्वहती; ३, ५ बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः । ४ स्वराबनुष्टुप्

छन्दः । गान्धार स्वरः ।

अब पांच ऋचावाले पंचमवर्षारंशतमस्य सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

मा त्वा केचिन्नि यमुन्वि न पाशिनोऽति धन्वेव तौ इहि ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! आप ( मयूररोमभि ) मयूरो के रोमों के सदृश रोम हैं जिन के उन ( मन्द्र ) आनन्द को देनेवाले ( हरिभि ) प्रयत्नवान् मनुष्यों के सदृश घाड़ों वा किरणों से ( या, याहि ) आओ जिससे ( के चित् ) कोई लोग ( त्वा ) आपको ( पाशिन ) बन्धन के लिए प्रयत्न हुए ( चिद् ) पक्षी को ( न ) तुल्य ( मा ) नहीं ( नि ) अत्यन्त ( यमम् ) निग्रह क्लेश देव किन्तु ( यन्वेव ) शस्त्र विशेष धनुष के तुल्य ( ताम् ) उनको ( अति, इहि ) अनिक्रमण कर प्राप्त हजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुषों को चाहिए कि ऐसी सेना ऐसे रथ आदि कि जिनसे युद्धादि व्यवहारसिद्धि के लिए जाने को अति चतुराई के साथ मग्न करके विजय पावे और जिससे और जन उन को ग्रहण न करे ऐसा उपाय करे ॥ १ ॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ब्रह्मसादो बल्लुजः पूरां दुर्मो अपामजः ।

स्वाता रथस्य हर्योरिमिस्वर इन्द्रो इच्छा बिदाकुजः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( ब्रह्मसाद ) मेघों को भक्षण करनेवाला किरण वा वायु ( बल्लुज ) मेघ को नाश करने और ( अपाम् ) जलों को ( अजः ) प्रेरणा करने तथा ( आरुज ) चारों ओर से लोडनेवाला ( इन्द्रः ) सूर्य ( इच्छा ) पुष्ट भक्षण करता है वैसे हम लोग ( चित् ) भी ( पूराम् ) शत्रुओं के नगरों के मध्य में वर्तमान वीरों को ( बल्लुजः ) नाश करने और जैसे ( हर्योः ) दो बोहों के ( अमिस्वर ) चारों ओर शब्द करनेवाले में वर्तमान ( रथस्य ) रथ के मध्य में ( स्वाता ) वर्तमान होने वाला पुरुष और पुरुषों को जीनता है वैसे ही हम लोग भी जीते ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली सूर्य और पवन मेघों के अवयवों को काटने है वैसे ही धार्मिक राजा धार्मिक लोग शत्रुओं को काटे ॥ २ ॥

गम्भीरां उदधीं रिचं क्रतुं पुष्यसि गा इव ।

प्र सुगोपा यवसं घेनवो यथा इदं कृत्या इवाशत ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! जिस से आप ( गम्भीराम् ) अथाह ( उदधीं रिचं ) जल जिन में रहे उन समुद्रों के सदृश और ( गा इव ) पृथिवियों के सदृश ( कृतुम् ) बुद्धि को ( पुष्यसि ) पूर्ण करने हो ( सुगोपा ) उत्तम प्रकार रक्षा करनेवाले होकर ( यथा ) जैसे ( घेनवः ) गोरों ( यवसम् ) धान्य तुण आदि ( इवम् ) और जल के स्थान को ( कृत्या इव ) बाटिका आदि में जल चलाने के मार्गों के तुल्य जो ( प्र, आशत ) प्राप्त हो इससे और वैसे आप और ये लोग सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होने हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिन लोगों की समुद्र के सदृश भवज गम्भीर बुद्धि पृथिवी के सदृश क्षमा और पालन का सामर्थ्य, गौ के सदृश दान और नदी के सदृश बुद्धि है वे ही सम्पूर्ण सुखों से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

आ नस्तुजं रुयि भ्रांशं न प्रतिजानते ।

बुधं पुनं फलमृद्धीव धनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) धन के दाता ! आप ( अंशम् ) भाग के ( न ) तुल्य ( न ) हम लोगों के लिए ( प्रतिजानते ) प्रतिज्ञा से व्यवहार के मिट करनेवाले के लिए और ( तुजम् ) ग्रहण करने के योग्य ( रुयिम् ) धन को ( आ ) सब ओर से ( भर ) दीजिए ( बुधम् ) बुध को और ( वसुम् ) पाकयुक्त ( फलम् ) फल को ( अमृद्धीव ) अकृश धारण किये हुए के सदृश ( संपारणम् ) उत्तम प्रकार दुःख के पार जाता है जिस से ऐसे ( वसु ) धन को ( धनुहीन्द्र ) कपाइये अर्थात् भेजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वे ही धार्मिक पुरुष हैं जो अन्य लोगों के सुख के लिए लक्ष्मी धारण करके औरों के दुःख नाश करनेवाले होंगे ॥ ४ ॥

स्वयुरिन्द्र स्वराजसि स्मर्हिष्टिः स्वयंशस्तरः ।

स बाधुधान ओजसा पुरुषदुत मवा नः सुध्वस्तमः ॥५॥९॥

पदार्थ—हे ( पुरुषदुत ) बहुतों से प्रशंसित ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले ! जो आप ( स्वयम् ) धन को प्राप्त ( स्वराजसि ) स्वमन्त्र राज्यकर्ता ( स्मर्हिष्टिः ) कल्याण कर्म का उपदेश देनेवाले और ( स्वयंशस्तरः ) अपने पशु धन और प्रशंसा से गम्भीर ( अति ) हैं ( सः ) वह ( ओजसा ) पराक्रम से ( बाधुधान ) बुद्धि को प्राप्त ( सुध्वस्तमः ) श्रेष्ठ धन से युक्त बातचीत के अत्यन्त सुननेवाले ( नः ) हम लोगों के लिए ( अज ) होइये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—वही शक्तिशाली राजा होने के योग्य होता है कि जो अत्यन्त प्रशंसा-युक्त गुण कर्म और स्वभाववाला है और वही राजा सब का बुद्धिकारक होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सूर्य, विद्वान् और राजा के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पंचाशीसर्वा सूक्त और नववाँ वर्ष समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य षष्ठवर्षारंशतमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१ विराट् निष्ठुप्, २, ५ निष्पत् निष्ठुप्, ३, ४ निष्ठुप् छन्दः ।

देवताः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले षष्ठवर्षारंशतमस्य सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के साथ हो इस विषय को कहते हैं—

युध्मस्य ते वृषमस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थधिरस्य धृष्ये ।

अजूर्यतो वृजिणो वीर्याणीन्द्र भुतस्य महतो महानि ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता ! जिस ( युध्मस्य ) युद्ध करने और ( स्वराज ) अपने से प्रकाशित ( वृषमस्य ) बलवाले ( उग्रस्य ) तेजस्वी स्वभाव और ( यूनः ) यौवन अवस्था को प्राप्त पुरुष तथा ( स्थधिरस्य ) बुद्ध्यावस्था-युक्त पुरुष के और ( धृष्ये ) शत्रुओं को बर्सा देनेवाले ( अजूर्यतो ) शरीर की शिथिलता से रहित और ( वृजिणः ) बहुत प्रकार के शस्त्रों से युक्त ( महतो ) सेवा करने योग्य ( भुतस्य ) प्रसिद्ध ( ते ) आप के जो ( महानि ) श्रेष्ठ ( वीर्याणीन्द्र ) वीर पुरुषों के कर्म हैं उन से युक्त आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त युवा वा बुद्ध भी राजा हो, वैसे ही अपने प्रयत्न से अपने सामर्थ्य का बढ़ानेवाला होवे ॥ १ ॥





मगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पुत्र) स्पर्धा करत हुए संग्रामों में (तरसिः) शीघ्र चलनेवाले (अर्थात्) धौंसे के (न) तुल्य (सहाबा) सहनेवाला (रोक्सी) अन्तरिक्ष और भूमि के मधुश (बेहनावान्) सेवन बहुत विद्यमान है जिस के वह (काहे) करने योग्य व्यवहार में (व्यावृत्तिः) व्याप्त (हृष्यः) ग्रहण करने के योग्य (अथः) ऐश्वर्य के योग के (न) तुल्य (मत्तीनाम्) समन करने वाले मनुष्यों के (बयोधा) जीवन को धारण करनेवाला (सुहृः) उत्तम पुकारने की स्तुतियुक्त (आयः) सुन्दर (पितृवः) पिता के सदृश वर्तमान है उसी को आप मांग राजा करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है। जो जोड़े के सदृश वेग और बल-युक्त योद्धा सूर्य और भूमि के सदृश सब का सुख देने और ऐश्वर्य्य सदृश कार्य्य की सिद्धि करनेवाला पिता के सदृश सब का पालनकर्ता हावे वही राज्याभिषेक करने के योग्य होवे ॥ ३ ॥

धर्वा विवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथा न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।

अपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणैव वाजम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जना ! जो (विबः) प्रकाशस्वरूप (सूर्यस्य) सूर्य (रजसः) लोको के समूह का (जनिता) उत्पन्न करने (धर्वा) धारण करने वाला (पृष्ठः) पूछने योग्य (ऊर्ध्वः) उत्तम (रथः) सुन्दर वाहन के (न) तुल्य (वसुभिः) सम्पूर्ण लोको से (वायुः) पवन के सदृश बलवान् (अपाम्) रात्रि को (वस्ता) आच्छादन करने वाला और (धिषणैव) अन्तरिक्ष और भूमि के सदृश (वाजम्) घोड़े आदि (भागम्) अंश का (विभक्ता) विभाग करने और (नियुत्वान्) नियम करनेवाला है उसको परमात्मा के सदृश राजा मानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा परमेश्वर के सदृश प्रजाओं में वर्तमान है उसी की निरन्तर सेवा करो ॥ ४ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्मरे नृत्तमं वाजसातो ।

शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु धनन्तं वृत्राणि सज्जितं धनानाम् ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (इन्द्रम्) परमेश्वर के सदृश वर्तमान राजा को (धनानाम्) ऐश्वर्यों के (अस्तये) रक्षण जाति के लिए (अस्मिन्) इस (मरे) पालन करने योग्य सत्कार और (वाजसातो) अपने अपने अंश के दानस्वरूप व्यवहार में (नृत्तम्) अत्यन्त न्यायकारी (मघवानम्) बहुत ऐश्वर्य्य वाले (समत्सु) संग्रामों में शत्रुओं के (अन्तम्) नाशकर्ता (वृत्राणि) घना को (शृण्वन्तम्) यथावत् सुनते हुए (उग्रम्) दुष्टों के दुःख देने और (सज्जितम्) जीतनेवाले राजा को प्राप्त होकर (शुनम्) सुख का (हुवेम) स्वीकार करे उस का आप लोग भी स्वीकार करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—राजाओं को चाहिए कि प्रजाओं में पिता के और ईश्वर के तुल्य वर्तमान होकर सम्पूर्ण प्रजाओं का पालन करे ऐसा उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥

इस सूक्त में प्रजा और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनवासवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमसंस्कृतस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य विवामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, २, ४ निबृत्तं त्रिष्टुप्, ३, ५ त्रिष्टुप् छन्दः । ध्रुवतः स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचा वाले पचासवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय की कहते हैं—

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुत्रो वृषभो मरुत्वान् ।

ओरुव्यवाः पृथगामेभिरग्रेगस्य तविस्तन्वः काममृध्याः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जो (सोमः) ऐश्वर्यों का समूह (तुत्रः) विभक्त-कारियों का हिंसक (वृषभः) बलिष्ठ (मरुत्वान्) उत्तम पुरुषों से युक्त (ओरुव्यवाः) बहुत श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त (इन्द्रः) ऐश्वर्यों का कर्त्ता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यस्य) जिसका (सोमः) ऐश्वर्यों का समूह उम (अस्य) इराक (वृषिः) इन वर्तमान (अर्जुनः) यव आदि जन्तों से (आगत्य) प्राप्त होकर (हविः) ग्रहण करने योग्य वस्तु का (पिबतु) पान कीजिये और (तन्वः) शरीर के (कामम्) मनोरम को (आ, पृथगाम्) सब प्रकार पूर्ण करके सुख दीजिये और उसको आप (अ, ऋचवाः) मित्र कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सत्य न्याय से अपने अंश का भोग करके प्रजा के सुख बढ़ाने के लिए अन्याय और दुष्ट पुरुषों का नाश करता है वह पुरुष समृद्धि युक्त होता है ॥ १ ॥

अथ प्रीति के विषय की अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ सै सपत्यु जवसे धुनन्मि ययोरनु प्रदिवं अहिमार्वः ।

इह त्वां येयुरैरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुवृतस्य चारीः ॥२॥

पदार्थ—हे (सुशिप्र) सुन्दर मुखवाले ! आप (येयुः) जिनके (अनु, अहिमार्वः) उत्तम प्रजाओं को (अहिमार्वः) शीघ्र (आयः) रक्षा करें वे (इह) इस

सत्कार में (सपत्यु) सेवा करनेवाले (त्वं) आप के (जवसे) वेग के लिए (आ, धुनन्मि) संयुक्त करता है। और जो (हरयः) पुरुषार्थी मनुष्य (त्वा) आप को (येयुः) धारण करें उनके साथ (तु) शीघ्र (अस्य) इस (सुवृतस्य) उत्तम प्रकार सत्कारयुक्त (चारीः) अति श्रेष्ठ इस सोमलतारूप ओषधियों के अंश का (पिब) पान कीजिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में जो लोग जिनके सेवक उन स्वामियों को चाहिए कि उन सेवकों का पोषण करे और सब लोग परस्पर प्रीति से सुख की उत्पत्ति करें ॥ २ ॥

गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्र ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।

मन्वानः सोमं पपिवां ऋजीधित्समस्मभ्यं पुरुषा गा इष्यन् ॥३॥

पदार्थ—हे (ऋजीधित्समस्मभ्यं) नम्रस्वभाव और (गृणानाः) स्तुति करते हुए (गोभिः) किरणों से (धायसे) धारण करने को (ज्यैष्ठ्याय) बढ़ होने के लिए (मिमिक्षुम्) सेवन करने की इच्छा करनेवाले को (सुपारम्) सुख से पार जाने के योग्य (इन्द्रम्) विद्या और ऐश्वर्य्यवान् आपका (दधिरे) धारण करो और जिसने (सोमम्) सोमलता के रस को (पपिवान्) पिया (मन्वानः) आनन्द करते हुए (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (इष्यन्) प्रेरणा करिये (सोमम्) सोम ओषधि के रस को और (पुरुषा) अनेक प्रकारों से (गाः) पृथिवी आदि को धारण करता है उन का आप और वे आप का सत्कार करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य अपने किरणों से वृष्टि करके सबकी पुष्टि करता है वैसे ही विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश से विद्या और सत्य की वृष्टि करके सब मनुष्यों की पुष्टि करें ॥ ३ ॥

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवंता राधसा पप्रथश्च ।

स्वयंवां मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय बाहः कुशिकासौ अक्रन् ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (स्वयंवां) सुख को प्राप्त कराने (कुशिकासः) सम्पूर्ण शास्त्रों के मिष्ठान्त जानने और (बाहः) प्राप्त करानेवाले (विप्राः) पूर्ण विद्या से युक्त ब्राह्मण लोग (मतिभिः) मनुष्यों से (इन्द्राय) अत्यन्त धन से युक्त (तुभ्यम्) आपके लिए (इमम्) इस प्रत्यक्ष (कामम्) मनोरम को (अक्रन्) करें उन लोगों के हम मनोरम को (गोभिः) गौ आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि और (चन्द्रवंता) प्रसिद्ध बहुत सुवर्ण विद्यमान है जिसमें उस (राधसा) धन से आप (पप्रथश्च) प्रसिद्ध होइये (च) और इनकी (मन्दया) पहुँचाइये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुषों के साथ अनुकूलता से वर्तमान होकर परस्पर ऐश्वर्य्य से और पशु आदि धन आदिको से इच्छा को पूर्ण करें वे सदा सुखी हों ॥ ४ ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्मरे नृत्तमं वाजसातो ।

शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु धनन्तं वृत्राणि सज्जितं धनानाम् ॥५॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातो) विज्ञान के सेवन करने और (मरे) प्रेम से पालन करने योग्य व्यवहार में (अस्तये) ऐश्वर्य्य में प्रवेश होने के लिए (मघवानम्) श्रेष्ठ धनवाले और (नृत्तम्) अत्यन्त प्रीति के प्राप्त करानेवाले और (वृत्राणि) प्रेम के स्थानभूत वस्तुओं को (शृण्वन्तम्) सुननेवाले (समत्सु) विरोध के व्यवहारों में वर्तमान कारणों को (अन्तम्) नाश करते हुए (उग्रम्) द्वेष के विनाशकर्ता (धनानाम्) द्रव्यों को (सज्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने और (इन्द्रम्) विरोध के नाश करनेवाले को (शुनम्) परस्पर मेल से उत्पन्न सुख को जैसे वैम (हुवेम) ग्रहण करें उनका आप लोग भी सेवन करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्यलुप्तोपमानाकार है। वे ही धन्य मनुष्य कि जो विरोध का त्याग करके एक साथ ऐश्वर्य्य उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में परस्पर की प्रीति वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पचासवां सूक्त और बीहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ षाडशसंस्कृतस्य षाडशस्य सूक्तस्य विवामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

४, ७—६ त्रिष्टुप् ; ५, ६ निबृत्तं त्रिष्टुप् छन्दः । ध्रुवतः स्वरः ।

१—३ निबृत्तजगती छन्दः । निघातः स्वरः । १०, ११ यमस्य

गावती; १२ विराट् गायत्री छन्दः । वज्रतः स्वरः ॥

अथ बारह ऋचावाले षाडशसंस्कृत का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय की कहते हैं—

वर्षशीघ्रतं मघवानमुपध्यामिन्द्र गिरौ बृहतीरभ्यनवत ।

बाह्वानं पुंसहुतं सुवृत्तिभिरमर्त्यं जग्माथ दिवेदिवे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (बृहतीः) बड़े विषय अर्थात् तात्पर्य्य वाली (गिरः) विद्वानों की वाणियों को (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सुवृत्तिभिः) उत्तम सविभागों से

जिस ( सर्ववीर्यवान् ) मनुष्यो के धारण करनेवाले ( मधुबान् ) बड़े हुए धन मे युक्त ( उन्नयन् ) प्रशंसा करने योग्य ( बावधान् ) बड़े हुए ( पुत्रवत् ) बहुतों से सत्कार किये गये ( अमर्त्यम् ) मरणधर्म से रहित ( अरिमान् ) स्तुति करते हुए ( इन्द्रम् ) राजा की ( अमृतवत् ) प्रशंसा करे उसका आप लोग भी आश्रयण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे राजपुरुषो ! बहुत जनों से सत्कृत प्रजाओं के धारण करने मे समर्थ जिस राजा की विद्वान् लोग प्रशंसा करें उसी के आप लोग धारण जाओ ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सुतक्रतुमर्ष्यं शाकिनं नरं गिरौ म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।

बाजसनिं पुमिदं तूर्णिमपुत्रं धामसाचमभिषाचं स्वविदं ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( मे ) मेरी ( गिर ) वाणियों को ( अर्ष्यम् ) समुद्र के मधुश गम्भीर ( बाजसन् ) नाप रहित बुद्धि और ( शाकिन् ) शक्तियुक्त ( नरम् ) नायक ( बाजसनिम् ) अन्न और विज्ञान के विभागकर्ता ( पुमिबन् ) शत्रुओं के नगर के भेदन करने और ( तूर्णिम् ) ग्रीध्रता करनेवाले ( अपुत्रम् ) प्राणों के प्रेरणकर्ता ( धामसाचम् ) रक्षा करने हुए ( अभिषाचम् ) सम्मुख भाव और ( स्वविदम् ) सुख को प्राप्त ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले को ( विश्वतः ) सब प्रकार ( उप, यन्ति ) प्राप्त होते हैं उस ही के धारण जाओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे बाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य लोग सम्पूर्ण विद्याओं मे कुशल सामर्थ्ययुक्त सत्यधारणकर्ता बुद्धि पुरुषों के ताड़न करनेवाले राजा के समीप जावें तो उनको किसी से भी भय नहीं होता है ॥ २ ॥

आकरे वसोर्जिता पनस्यतेऽनेवसः स्तुय इन्द्रो बुवस्यति ।

विबस्वतः सदेन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनें स्तुहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( स्तुभ. ) कलों को प्राप्त होने ( अरिता ) स्तुति करनेवाला ( अनेवसः ) नहीं नाश करने योग्य ( वसो. ) धन के ( आकरे ) समूह में ( विबस्वतः ) सूर्य के ( सधने ) स्थान में ( इन्द्रः ) बिजुली के सवृण सबका स्वामी राजा ( पनस्यते ) व्यवहार करता है और विद्वान् के धर्म का ( बुवस्यति ) सेवन करता और ( सत्रासाहम् ) सत्य के सहनेवाले ( अभिमातिहन्म् ) अभिमानयुक्त शत्रु के नाश करनेवाले को ( आ, प्रीणाति ) प्रमन्न करता है उसकी ( हि ) निश्चय ( स्तुहि ) स्तुति करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे बाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर से बिजुली द्वारा उत्पन्न किया गया सूर्य एकत्र वर्तमान हुआ सर्वत्र विद्यमान सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है वैसे ही एक स्थान मे वर्तमान राजा मन्त्री दून पिपादे और सेनादि के प्रबन्ध से सम्पूर्ण राज्य को विद्या और विनय से प्रकाशित करके ऐश्वर्य के समूह से धर्म की उन्नति के लिए व्यवहार करे ॥ ३ ॥

अब प्रजा के प्रशंसा के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुधेरमि प्र वीरमर्चता सबाधः ।

सं सहेसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिब एक ईशे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनों ! आप लोग जो ( सबाध ) बाध के सहित वर्तमान ( पुरुमाय. ) बहुत कार्यों का कर्ता ( एक ) सहाय रहित सेनाधिपति पुरुष ( अस्य ) इस ( प्रदिबः ) उत्तम प्रकाश का ( ईशे ) स्वामी है ( सहेसे ) बल के लिए ( नमः ) अन्न वा सत्कार को ( सन्, जिहीते ) प्राप्त होना है ( वीरम् ) राजविद्या और बल से व्याप्त पुरुष का ( प्र, अर्चत ) सत्कार करिए । और हे राजन् ! जो ( गीर्भ ) वाणियों और ( उधे ) प्रशंसा के वचनों मे ( नृणाम् ) अग्रणी मनुष्यों के ( नृतमम् ) अत्यन्त नायक ( त्वा ) आपका सत्कार करे उनका ( उ ) ही आप सत्कार करिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिए कि उस ही की प्रशंसा करें कि जो प्रशंसा योग्य कर्मों का करे ॥ ४ ॥

पूर्वीरस्य निष्पिथो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी विमर्शि ।

इन्द्राय द्याव ओषधीस्तापो रयि रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥ ५ ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( जीरयः ) वृद्ध होनेवाले मनुष्य ( अस्य ) इस राजा के ( मर्त्येषु ) मनुष्यों मे ( पूर्वीः ) अनादि काल से सिद्ध ( निष्पिथः ) अत्यन्त सिद्ध करनेवालों की ( रक्षन्ति ) रक्षा करते हैं और ( पुरू ) बहुत ( वसूनि ) द्रव्यों को ( पृथिवी ) भूमि के सवृण जो पुरुष ( विमर्शि ) धारण करता है ( द्याव. ) सूर्य आदि के प्रकाश ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के लिए ( रयिम् ) लक्ष्मी और ( वनानि ) सम्मुख ही सुख जिनसे उनको ( वस ) भी ( आप ) प्राण वा जल जैसे ( ओषधीः ) सोमलता और औषधियों की रक्षा करते हैं वैसे राज्य का ( विमर्शि ) पोषण करता है वही राजा होने के योग्य हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे बाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्यो मे धन विज्ञान और औषधि धारण करते वे ही राजाओं के कर्मचारी होने के योग्य हैं ॥ ५ ॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिरं इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिबो ब्रुवस्य ।

बोध्याः पिरवसो नृतनस्य सखे वसो जरितुभ्यो वयो धाः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के धारणकर्ता ! जो ( गिरः ) वाणियों ( तुभ्यम् ) आपके लिए ( ब्रह्माणि ) धर्मों को और हे ( हरिबः ) उत्तम मोड़े आदि से युक्त ! जो वाणियों ( तुभ्यम् ) आपके लिए ( सत्रा ) सत्य को ( दधिरे ) धारण करे उनका आप ( ब्रुवस्य ) सेवन करो । हे ( सखे ) मित्र ! ( वयस्य ) नवीन ( अर्चतः ) रक्षणार्थ के ( आपिः ) व्याप्त हुए आप उनको ( बोधि ) जानिए हे ( वसो ) धन को प्राप्त ! आप ( जरितुभ्यः ) स्तुतिकर्ता विद्वानों के लिए ( वयः ) जीवन को ( धाः ) धारण कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ऐसी वाणी ग्रहण करें और सुनें कि जिससे धनसंग्रह होता है सत्य की रक्षा की जाती और जीवन बढ़ता है ॥ ६ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रं परस्व इह पाहि सोमं यथा शाय्याति अपिबः सुतस्य ।

तव प्रणीती तव शूर शर्मणा विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के धारण करनेवाले ! आप ( इह ) इस सत्कार मे ( सोमम् ) ऐश्वर्य करनेवाले की ( पाहि ) रक्षा कीजिए । और हे ( भरस्व. ) उत्तम धनो से युक्त ! ( यथा ) जिस प्रकार ( शाय्याति ) हिंसा करनेवालों को प्राप्त होनेवालों के इस व्यवहार मे ( सुतस्य ) उत्पन्न को आप ( अपिबः ) पान कीजिए । हे ( शूर ) बुद्धि के नाशकर्ता ! जो ( सुयज्ञाः ) श्रेष्ठ समुक्त क्रियाएँ जिनकी वे ( कवयः ) विद्वान् लोग ( तव ) आपकी ( प्रणीती ) उत्तम नीति से और ( तव ) आपके ( शर्मन् ) सुखकारक गृह मे ऐश्वर्यकर्ता को ( आ, विवासन्ति ) प्राप्त होते हैं उनकी आप रक्षा कीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे आप अपने राज्य ऐश्वर्य न्याय और धर्म की रक्षा करने हैं उसी प्रकार के आपके मन्त्री और नौकर आदि हों उनका सत्कार आपको सदा ही करना चाहिए ॥ ७ ॥

स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।

जातं यश्च परि देवा अभूषम्महे भराय पुरुहूत विभे ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त ! ( इह ) इस राज्य के व्यवहार मे ( सः ) वह ( वावशान. ) कामना करने हुए आप ( मरुद्भिरः ) पवनों से सूर्य के सवृण ( सखिभिः ) मित्रों के साथ ( न. ) हम लोगों के ( जातम् ) प्रकट और ( सुतम् ) उत्पन्न ( सोमम् ) ऐश्वर्य की ( पाहि ) रक्षा कीजिए और हे ( पुरुहूत ) बहुतों से प्रशंसित ! ( विभे ) सम्पूर्ण ( देवाः ) विद्वान् लोग ( यत् ) जिससे ( जहे ) वड़े ( भराय ) पोषण करने योग्य संग्राम के लिए ( त्वा ) आपको ( परि ) सब प्रकार ( अभूषम् ) शोभित करें तिससे आप हम लोगों को सब प्रकार शोभित करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे बाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य वायुरूप सहाय से सबकी रक्षा करता है वैसे ही यथार्थवक्ता मित्रों के साथ राजा सम्पूर्ण राज्य की रक्षा करे और जो मन्त्री और नौकर राज्य के हितकारी हों उनका सब काल में सत्कार करें ॥ ८ ॥

अपत्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दभिन्मनु दातिवाराः ।

तेभिः साकं पिबतु वृत्रवाहः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्ये ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो ( दातिवाराः ) छेदन करनेवाले ( मरुतः ) मनुष्य ( अपत्ये ) कर्म से प्रेरणा करने योग्य ( इन्द्रम् ) राजा को ( अमन्दम् ) आनन्द देवें ( तेभिः ) उनके ( साकम् ) साथ ( एव ) यह ( आपिः ) सब प्रकार पीनेवाला वा क्षुभ गुणों से व्याप्त ( वृत्रवाहः ) मेष को स्थिर करनेवाला ( दाशुषः ) दान करनेवाले के ( स्वे ) अपने ( सधस्ये ) तुल्य स्थान में ( सुतम् ) सिद्ध ( सोमम् ) ऐश्वर्य को ( अनु, पिबतु ) पीछे पान करे उसको आप राजा निरन्तर प्रसन्न करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सत्य धारण की प्रेरणा और बुद्धि धारणों का निषेध और सबको धार्मिक करके आनन्द देवें उनके साथ राजा आनन्द करे ॥ ९ ॥

इदं हन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वस्य गिर्वशः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे ( गिर्वशः ) शक्ति हुए ( राधानान् ) धनो के ( पते ) पासन करनेवाले ! आप ( ओजसा ) बल से ( अस्य ) इसके ( हन्व ) इस ( सुतम् ) सिद्ध किये गये सोमलतारूप रस का ( पिब ) पान कीजिये ( हि ) निश्चय से और पान करने की इच्छा से इस सोमलता का पान करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप निश्चय सब काल मे धन और ऐश्वर्य की रक्षा करके और जो प्राप्त राज्य उसकी रक्षा आज से बुद्धि करके सुखी होइये ॥ १० ॥

यस्ते अनु स्वधामसस्तुते नि यच्छ तन्वम् ।

स त्वा ममसु सोम्यम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( यः ) जो ( ते ) आपके ( तुते ) उत्पन्न सोमलता के रस में ( स्वधाम् ) धन्य ( अनु, ममसु ) पीछे होंवे ( सः ) वह ( त्वा ) आपकी ( ममसु ) आनन्द देवे और आप ( तन्वम् ) शरीर को ( निषण्ड ) सहाय कीजिए ( सोम्यम् ) सोमलता में उत्पन्न का पान आदि धारण कीजिए ॥ ११ ॥



आचार्य—हे राजन् ! जो आपके अनुकूल और धर्मात्मा होकर प्रजाओं को आनन्दित करे वह अपनी वात्सेय्य को ऐश्वर्य को प्राप्त होवे और आप इन्द्रियशक्ति होकर प्रजाओं को सिद्ध कीजिये ॥ ११ ॥

अ ते अभ्योतु कुशयोः मेन्द्र जज्ञेणा शिरः ।

अ वाह शूर राधसे ॥१२॥१६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजाओं में श्रेष्ठ ! जो ( ते ) आपके ( कुशयोः ) पेट के पास पाश के बांधों में ( जज्ञेणा ) धन के साथ रस को ( अ, अभ्योतु ) प्राप्त होवे और हे ( शूर ) वीर पुरुष ! ( ते ) आपके ( शिरः ) श्रेष्ठ शङ्ख मस्तक को ( वाह ) भुजाओं को ( राधसे ) धन के लिए प्राप्त होवे उसका आप पालन करिये ॥ १२ ॥

आचार्य—हे राजन् ! वही वस्तु आपके ज्ञान तथा पीना चाहिए कि जो पेट में प्राप्त हो तथा विद्वत् ही रीति को उत्पन्न करके बुद्धि का न नाश करे और जिससे निरन्तर आप में बुद्धि बढ़कर राज्य और ऐश्वर्य बढ़े ॥ १२ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के धर्म वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ सञ्जति जाननी चाहिए ॥

यह इन्द्रायनर्वा सूक्त और सोलहवाँ धर्म समाप्त हुआ ॥



अथाष्टमस्य द्विषणास्तमस्य सूक्तस्य विद्वानिन्द्रादि । इन्द्रो देवता ।

१, ३, ४ गायत्री, २ निचुत्तु निचुत्तुः । अक्षः स्वरः । ६ जगती छन्दः ।

निघातः स्वरः । ५, ७ निचुत्तु निचुत्तुः । अक्षः स्वरः । ६ जगती छन्दः ।

अब आठ ऋचा वाले ऋचनर्वा सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम

मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

धानावन्तं करम्मिणमपुपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्रं प्रातर्जुषस्व नः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के धारण करनेवाले ! आप जैसे ( प्रातः ) प्रातःकाल में ( धानावन्तम् ) बहुत भूजे हुए धन विद्यमान जिसके उस ( करम्मिणम् ) बहुत पुत्रवर्धन धर्मोत्पत्ति से युक्त किये गये दधि आदि पदार्थों से युक्त ( अपुपवन्तम् ) उत्तम पूजा विद्यमान जिसके उस ( उक्थिनम् ) बहुत कहने योग्य वेद के स्तोत्र विद्यमान जिसके उसका ( प्रातः ) प्रातःकाल भोजन करते हो वैसे ( नः ) हम लोगों का ( उक्थिनम् ) सेवन करा ॥ १ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकजुष्टोपमालङ्कार है । जैसे धर्मोत्पत्ति के वाचक करता है वैसे ही राजा जन राजधर्म जानने के लिए श्रेष्ठ पदार्थवत्ता विद्वानों से वाचना करे ॥ १ ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

पुरोक्षां पचस्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यों के भोगनेवाले ! आप ( पचस्यम् ) उत्तम प्रकार पाकयुक्त ( पुरोक्षांम् ) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न किये गये अन्न विशेष का ( जुषस्व ) सेवन करिये तब ( गुरस्व ) उद्यम करो जिससे ( तुभ्यम् ) आपके लिए ( हव्यानि ) हवन करने योग्य पदार्थों को ( सिस्रते ) प्राप्त हो ॥ २ ॥

आचार्य—हे राजन् ! आप रोगनाशक और बुद्धि के बढ़ानेवाले अन्नपान का भोग कर तथा रोग रहित होकर निरन्तर उद्यम को करो जिससे आपके सम्पूर्ण सुख प्राप्त होवे ॥ २ ॥

पुरोक्षां च नो पसो जेष्यासे गिरंश्च नः । वधूयुरिव योष्याम् ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप ( नः ) हम लोगों के ( पुरोक्षांम् ) प्रथम देने के योग्य का ( पसः ) भक्षण करो और हम लोगों के लिए भक्षण कराओ ( च ) और ( योष्याम् ) अपनी स्त्री को ( वधूयुरिव ) अपनी स्त्री विषयिणी इच्छा करने वाले के सदृश ( नः ) हम लोगों की ( योष्यासे ) सेवा करो ( च ) और हम लोग आपकी ( गिरः ) वाणियों का ( योष्येण ) सेवन करें ॥ ३ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा और प्रजाजन आपस के ऐश्वर्य की भयना ही समझें और जैसे स्त्री की कामना करनेवाला पुरुष प्रिया स्त्री को प्राप्त होकर आनन्दित होता है वैसे ही राजा धर्म करनेवाली प्रजाओं की प्राप्त कर निरन्तर प्रसन्न होवे ॥ ३ ॥

पुरोक्षां सनभुत प्रातःसावे जुषस्व न । इन्द्रं कर्तुं तै वृहन् ॥४॥

पदार्थ—हे ( सनभुत ) सत्य और असत्य के विचारकर्तव्यों के उत्तम कृत्य सुना जिसने ऐसे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त ( हि ) जिससे ( ते ) आपकी ( कर्तुः ) बुद्धि वा कर्म ( वृहन् ) बड़ा है जिससे आप ( प्रातःसावे ) जो प्रातःकाल में किया आप उसमें ( नः ) हम लोगों के ( पुरोक्षांम् ) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न विशेष का ( जुषस्व ) सेवन करो ॥ ४ ॥

आचार्य—मनुष्यों को चाहिए कि जिन पुरुषों में वैसी विद्या और नीतिता होवे वैसी ही उन पर उत्तम कृपा करें ॥ ४ ॥

माध्यन्दिनस्य सर्वनस्य धानाः पुरोक्षांमिन्द्रादि कृष्वेह चारम् ।

अ यत् स्तोता जरिता तृतीयं हव्यामां उप गोमिरीदं ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) प्रतापयुक्त ! आप ( माध्यन्दिनस्य ) मध्य दिन में होने वाले ( सर्वनस्य ) कर्म विशेष के मध्य में जो ( धानाः ) भूजे हुए अन्न और ( चारम् ) भक्षण करने योग्य सुन्दर ( पुरोक्षांम् ) अन्न विशेष का आप ( इन्द्र ) इस उत्तम कर्म में ( कृष्वेह ) सपह कीजिए और ( यत् ) जो ( हव्यामां ) जल को करनेवाला ( तृतीयः ) तीसरा है प्रयोजन जिसका वह ( जरिता ) आपका सेवाकारी और ( स्तोता ) प्रशंसा करनेवाला ( उप ) समीप में ( गोमिः ) वाणियों से ( अ, उप ) समीप में ( ईदं ) ऐश्वर्यवान् हो वह आपके सत्कार करने योग्य होवे ॥ ५ ॥

आचार्य—जो राजा के जन ऋत्विजों के सदृश राज्य की वृद्धि करें उन को राजा सत्कार से प्रसन्न करे ॥ ५ ॥

अब अध्यापक के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तृतीयं धानाः सर्वनं पुष्टदुत पुरोक्षांमिन्द्रादि मामहस्व नः ।

अभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्तु उप शिष्येन धीतिभिः ॥६॥

पदार्थ—हे ( पुष्टदुत ) बहुतो से प्रशंसित ( कवे ) विद्वान् पुरुष ! ( प्रयस्वन्तः ) प्रयत्न करते हुए हम लोग ( धीतिभिः ) अंगुलियों से दिखाये गये बधनाथों से ( तृतीयं ) तीन की पूति करनेवाले ( सनभुः ) सायकाल में करने योग्य कर्म में ( पुरोक्षांम् ) उत्तम संस्कारयुक्त अन्न विशेष और ( धानाः ) अन्न से भूजे गये अन्न विशेषों के तुल्य ( अभुमन्तम् ) श्रेष्ठ बुद्धिमानों से युक्त ( वाजवन्तम् ) शुष्क अन्न विशेष विद्यमान जिसके उस ( आहस्वम् ) पुकारे गये ( त्वा ) आप को ( उप, शिष्येन ) शिक्षा दें वह आप ( नः ) हम लोगों का ( मामहस्व ) अत्यन्त सत्कार करिये ॥ ६ ॥

आचार्य—जैसे विद्वान् यज्ञ करनेवाले यजमानों के लिए यज्ञ कृत्य की शिक्षा देते हैं वैसे ही सम्पूर्ण विद्याओं का हस्त आदि क्रियाओं से प्रत्यक्ष अर्थात् अभ्यास करके मन्त्र जनों के लिए अध्यापक लोग प्रत्यक्ष करावें ॥ ६ ॥

पुष्वन्ते ते चक्रमा करम्भं हरिषते हव्यंश्चाय धानाः ।

अपुपमदि संगो मरुद्भिः सोमं पिब हव्या शूर विद्वान् ॥७॥

पदार्थ—हे ( शूर ) दुष्ट पुरुष के नाशकर्ता ! जैसे ( हव्या ) धन से युक्त विद्वान् पुरुष ( पुष्वन्ते ) पुष्टि करनेवाले विद्यमान हैं जिसके उस ( हरिषते ) उत्तम बोधे आदि से युक्त के तथा ( हव्यंश्चाय ) हरमशील और शीघ्र चालवाले बोधे वा अग्नि आदि विद्यमान हैं जिसके उस ( ते ) आप के लिए ( करम्भम् ) दधि आदि से युक्त भोजन करने के पदार्थ विशेष और ( धानाः ) भूजे हुए अन्न तथा ( अपुपम् ) पूजा को देने उसको ( संगः ) समूह के सहित वर्तमान आप ( मरुद्भिः ) उत्तम मनुष्यों के पास ( अदि ) भक्षण कीजिए और ( सोमम् ) उत्तम घोषिक के रस को ( पिब ) पान कीजिए और वैसे ही हम लोग आप के लिए ( चक्रम् ) करें ॥ ७ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकजुष्टोपमालङ्कार है । जो विद्या और नज्जता से युक्त हैं वे श्रेष्ठ राजा के लिए उत्तम पदार्थों को देकर इस का निरन्तर सत्कार करें और वे राजा से भी सर्वदा सत्कार के योग्य हैं ॥ ७ ॥

अब यज्ञ के अन्न को इकट्ठे करने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्रति धाना भरत तृयंस्मै पुरोक्षां वारंत्तमाय नृणाम् ।

बिबेदिवे सहस्रीरिन्द्र तुभ्यं वदन्तु त्वा सामपेयाय धृष्णो ॥८॥१८॥

पदार्थ—हे ( धृष्णो ) वाणी में चतुर ( इन्द्र ) दुष्टों के समूह के नाश करनेवाले ! जो ( वदन्तः ) तुल्यस्वरूपवाली सेना ( बिबेदिवे ) प्रतिविन ( नृणाम् ) अग्रणी पुरुषों के मध्य में ( वारंत्तमाय ) अत्यन्त श्रेष्ठ और पुरुष ( सामपेयाय ) पान किया सोम के रस का जिसने उन आप के लिए ( वदन्तु ) वृद्धि को प्राप्त हों और जो विद्वान् लोग ( त्वा ) आपके लिए वृद्धि करें उन की आप वृद्धि करो और हे विद्वानो ! आप लोग ( वदन्तः ) इस के लिए ( धानाः ) भूजे हुए अन्न और ( पुरोक्षांम् ) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न विशेष और जो कि ( तृयम् ) तीसरा सुखकारक उस को ( व्रतिजस्त ) पूर्ण कीजिए ॥ ८ ॥

आचार्य—सम्पूर्ण राजजन और प्रजा के जन राज्य की वृद्धि के लिए सम्पूर्ण पदार्थों को इकट्ठे करें उनसे उत्तम प्रकार परीक्षित और सेनाओं को करके और दुष्ट पुरुषों का पराजय और श्रेष्ठ पुरुषों का विजय करके प्रतिदिन आनन्द करना चाहिए ॥ ८ ॥

इस सूक्त में राजा प्रजा और यज्ञान्तस्कारादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की पिछले सूक्त के धर्म के साथ सञ्जति है

यह जानना चाहिए ॥

यह वाचनर्वा सूक्त और अठारहवाँ धर्म समाप्त हुआ ॥



अथ अतुषितासुषुप्तस्य विषयवाक्यस्य सूक्तस्य विषयमिदं ऋषिः । १ इन्द्रापर्यवर्तौ;

२—१४, २१—२४ इन्द्र । १४, १६ वाक् । १७—२० रक्षाक्षानि

वेधताः । १, ४, ६, २१ निष्कृत् त्रिष्टुप् । २, ६, ७, १४,

१७, १८, २३, २४ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८, १४ स्वरान्

त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । १२, २२

अनुष्टुप् । २० भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । १०, १६

निष्कृजगती छन्दः । निवाहः स्वरः । १३ निष्कृजगतीछन्दः ।

पञ्च स्वरः । १८ निष्कृजगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ औषीस ऋचावाले तिरपनवे सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा की सेना के विषय को कहते हैं—

**इन्द्रापर्यवर्ता बृहता रथेन वामीरिप आ बंहतं सुवीराः ।**

**वीतं हव्यान्ध्वरेषु देवा वेदंथां गीभिरिहया मदेन्ता ॥१॥**

पदार्थ—हे सभा और सेना के ईश ! आप दोनों (इन्द्रापर्यवर्ता) बिजुली और मेघ के सदृश राज्य सेना के अधीन (बृहता) बड़े (रथेन) वाहन से (सुवीराः) सुन्दर वीर जिन से उन (वामा) श्रेष्ठ (इव) अन्न आदि को (आ, बहत्तम्) प्राप्त होइये और (अध्वरेषु) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञों में (हव्यानि) देने और ग्रहण करने योग्यो को (वीतम्) प्राप्त होइये और (इहया) सम्पूर्ण शास्त्रों को प्रकाश करनेवाली वाणी से (गीभिः) कामना करने हुए विद्वान् लोग (देवा) उत्तम मुख देनेवाले होकर (गीभिः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त वाणियो से (बर्धन्ताम्) बढ़ें ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे राजसेनाओं के जन ! जैसे मेघ सम्पूर्ण जलाशय और ओषधियों को रक्षा करता है वैसे ही सेना के पालन करनेवाले पुरुष बहुनसी सामग्रियों से सम्पूर्ण सेनाओं को भोग से परिपूर्ण करिये और सेना बिजुलियों के सदृश शत्रुओं का नाश करें और सब में सब युद्ध और राजविद्या में परिपूर्ण होकर सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त हो ॥ १ ॥

अथ राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुधुतस्य यक्षि ।**

**पितुर्न पुत्रः सिचमा रमे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२॥**

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुत धनयुक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य के करनेवाले ! आप (सुधुतस्य) उत्तम प्रकार मित्र (सोमस्य) बड़ी ओषधियों का समूह रूप ऐश्वर्य के समीप के (कम्) मुख को (सु, तिष्ठ) करिये । और हे (शचीव) उत्तम प्रजाओं से युक्त ! जैसे (ते) आपकी (स्वादिष्ठया) अत्यन्त मधुर आदि रस से युक्त (गिरा) वाणी में (सिचमानम्) निचन का (आ, रमे) आरम्भ करें (त्वा) आप को (पु) शीघ्र (पुत्र) पुत्र (पितु) पिता से (न) नहीं (आ, रमे) आरम्भ करते हैं वह आप हम लोगों को (यक्षि) प्राप्त होइये और हम लोगों से (मा) नहीं (परा, गा) दूर जाइये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे पुत्र पिता की सेवा करता है वैसे ही वृद्ध विद्वानों की सेवा करो । और कभी धर्म से पृथक् न होओ, अन्य जनों को मुखी करके मुखी होओ ॥ २ ॥

अथ प्रजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**शंसावाध्वर्यां प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।**

**एदं बर्धिरजमानस्य सीदाथां च भूदृक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥३॥**

पदार्थ—हे (अध्वर्यो) नहीं हिंसा करनेवाले ! आप (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिए जो (उक्थम्) कहने योग्य (शस्तम्) प्रशंसा किये गये और (जुष्टम्) तैवित (इवम्) इस (बर्हि) उत्तम स्थान को (अजमानस्य) प्राप्त हुए आपको (भूत्) प्रशंसित होवे उसके ऊपर (आ, सीव) विराजो । (अथ) अनन्तर (च) और धन्यो को प्राप्त होइये और मैं भी प्राप्त होऊँ ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिए जो (वाह) प्राप्त हुआ की (शस्ताव) प्रशंसा करें और सिद्धि (कृणवाव) करें उनकी आप (मे) मेरे लिए (प्रति, गृणीहि) स्तुति करिए ॥३॥

भाषार्थ—सब राजा और प्रजा के जनो को चाहिए कि जिन कर्मों में ऐश्वर्य की वृद्धि हो उन कर्मों का सेवन करें । और राजा की आज्ञा में वर्तमान होकर प्रशंसा को प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

अथ विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**आयेदस्तं मघवन्सेदु योनिस्तविष्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।**

**यदा क्वा च सुनवांम सोममग्निष्ट्वा दूतो भन्वाश्यच्छ ॥४॥**

पदार्थ—हे (मघवन्) ऐश्वर्य से युक्त ! जो (ते) आप की (जाया) स्त्री (अस्तम्) गृह को प्राप्त होवे (क्वा) वह (इत्) ही (उ) भी सन्तान का (योनिः) कारण होवे (तत्) उसको और (त्वा) आप को (च, इत्) ही

(युक्ताः) सयुक्त (हरयः) घोड़े (सोमम्) सोमलता के रस को (वहन्तु) धारण करें । और (क्वा) जब (क्वा) कब हम लोग सोमलता के रस की (सुनवांम) सञ्चित करें उस को आप (इत्) शत्रुओं के सन्तान देनेवाले (अग्निः) बिजुली के समान (अग्निष्ट्वा) प्राप्त होवें (त्वा) आप को ही (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे श्रेष्ठ दो घोड़े ले चलनेवाले वाहन से सुखपूर्वक रथ के स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त कराते हैं वैसे ही परस्पर में प्रसन्न और योग्य दो विद्वान् गृहाश्रम को शोभित करने को समर्थ हों ॥ ४ ॥

**परां याहि मघवन्मा च याहीन्द्र आतचभयत्रां ते अर्थम् ।**

**यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासमस्य ॥५॥१९॥**

पदार्थ—हे (मघवन्) धनयुक्त और (इन्द्र) सज्जनों के प्रति कोमल और दुष्टों के प्रति उग्रस्वभाव वाले ! आप यहाँ से (परा, याहि) दूर जाइये । हे (आतच) बन्धु जन ! आप उस से प्राप्त होइये (यत्र) जहाँ (बृहत्) बड़े (रथस्य) सुन्दर वाहन के (रासमस्य) बिजुली आदि के सम्बन्धी के सदृश (वाजिनः) वेगयुक्त के (निधानम्) स्थापन (च) और (विमोचनम्) पृथक् करना होवे । (यत्र) जहाँ (उभयत्र) गमन और आगमन में (ते) आप के (अर्थम्) प्रयोजन को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सर्वत्र भ्रमण, कार्यसिद्धि के लिए करे । और नहीं सदा भ्रमण ही करना किन्तु गृह में स्थित हो सम्पूर्ण बन्धुओं के साथ मेल करके फिर भी ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए एक देश से दूसरे देश में जावें और आवें ॥ ५ ॥

अथ राजा के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**अपाः सोममस्तमिन्द्र म याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे तै ।**

**यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६॥**

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त स्वामिन् ! (यत्र) जिस में (बृहत्) बड़े (रथस्य) विमान आदि वाहन के (वाजिनः) अग्नि आदि पदार्थ के (निधानम्) स्थापन और (विमोचनम्) अलग करने को (दक्षिणावत्) दक्षिणाओं के तुल्य करें और वहाँ स्थित होकर जो आप के (गृहे) गृह में (जाया) स्त्री वर्तमान है उस के साथ उस वाहन के ऊपर विराज कर (अस्तम्) गृह को (प्र, याहि) घाड़ये (सोमम्) सम्पूर्ण रोगों के नाश करनेवाले महीपथि के रस का (अपा) पान करिये और पीकर (सुरणम्) श्रेष्ठ संग्राम जिस से उसको प्राप्त होइये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—राजा आदि विमान आदि वाहनों का निर्माण कर और उस में कला यन्त्रों को रथ के तथा अग्नि आदि पदार्थों का स्थित तथा अलग करके अपनी मित्रियों के सहित गृह में आवें और देशान्तर का जावें, जो स्त्री शूरवीरा हो तो उन के साथ संग्राम के विजय के लिए जावें ॥ ६ ॥

**इमे भोजा अङ्गिरसा विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वराः ।**

**विश्वामित्राय ददंतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥७॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जो (इमे) ये (अङ्गिरस) प्राणों के सदृश बलयुक्त (भोजा) भोजन करने तथा प्रजा के पालन करनेवाले (विरूपा) अनेक प्रकार के रूप वा विकारयुक्त रूपवाले और (विष) प्रकाशस्वरूप (असुरस्य) शत्रुओं के केंकनेवाले के (पुत्रास्त) वायु के समान वलिष्ठ (वीरा) युद्धविद्या में परिपूर्ण (सहस्रसावे) सख्यारहित धन की उत्पत्ति जिस में उस संग्राम में (विश्वामित्राय) सम्पूर्ण सारा मित्र है जिस का उसके लिए (मघानि) अतिश्रेष्ठ धनो को (बलः) देते हुए जन (आयुः) जीवन का (प्र, तिरन्ते) उलङ्घन करने हैं वे ही लोग आप से सत्कार पूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप ऐसे वीरों के सहित प्रसन्न पुष्ट और युद्धविद्या से कुशल सेना की वृद्धि करके सर्वदा विजय को प्राप्त होइये ॥ ७ ॥

अथ विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृष्णानस्तन्वः परि स्वाम् ।**

**मिर्द्यदिवः परि मुहूर्त्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनुताप्रा ऋतावा ॥८॥**

पदार्थ—(यत्) जो (ऋतावा) सत्य से युक्त (मघवा) बहुत धन से युक्त (सूर्यः) सूर्य (विषः) प्रकाश को (मुहूर्त्तम्) दो घड़ी (स्वैः) अपने (मन्त्रैः) विचारों से (अनुताप्रा) नहीं ऋतुओं का पालन करनेवाला होकर (स्वाम्) अपने (तन्वम्) शरीर को (त्रिः) तीन बार (परि, आ) सब प्रकार (अगात्) प्राप्त होवे और (रूपं रूपम्) रूप रूप के प्रति (मायाः) बुद्धियों को (कृष्णान्) करने हुए (परि, बोभवीति) अत्यन्त होता है उसको अध्यापक और उपदेश देने वाला करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो परमेश्वर को लेके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के स्वरूप जानने और शीघ्र अन्य जनों के लिए विज्ञान देने और सूर्य के सदृश उत्तम शिक्षा सम्पत्ता और विनय के प्रकाश करनेवाले होवें वे विद्याधर्म और राजधर्म के मन्त्र बजाने में नियत करने के योग्य हैं ॥ ८ ॥

महौं कृपिदेवजा देवजुतोऽस्तन्नास्तिन्धुमर्षं नृचक्षाः ।

विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( यत् ) जो ( महान् ) वडपण रूप परिमाण से गब पदार्थों से बड़ा ( ऋषिः ) मन्त्रों के अर्थों का जाननेवाला ( देवजाः ) विद्वानों से उत्पन्न ( देवजुतः ) विद्वानों से प्रेरित ( नृचक्षाः ) मनुष्यों का देखनेवाला ( विश्वामित्रः ) सब का मित्र ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य का करनेवाला ( कुशिकेभिः ) कार्यों के सिद्धान्तों को जाननेवालों से जैसे सूर्य, पृथिवी ( सिन्धुषु ) नदी और ( अर्यावत् ) समुद्र को ( अस्तम्नात् ) धारण करता है वैसे राज्य को धारण करे तो लक्ष्मी को ( अवहत् ) प्राप्त होता है ( सुदासम् ) उत्तम दान को ( अप्रियायत ) प्रिय के सदृश करता है उसका सब लोग सत्कार करे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य सब लोको से बड़ा और सबका धारणकर्ता तथा प्रकाश करनेवाला है वैसे ही सबके जाननेवाले यथार्थवक्ता पुरुष है ऐसा जानना चाहिए ॥ ६ ॥

इसाइव कुण्ठ रलोकमद्रिमर्मदन्तो गीमिरध्वरे सुते सखा ।

देवेमिविप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्य मधु ॥१०॥

पदार्थ—हे ( कुशिकाः ) विद्याओं के सिद्धान्तों के जानने ( नृचक्षसः ) मनुष्यों को विद्यादृष्टि से परीक्षा करने और ( ऋषयः ) मन्त्रों के अर्थों को जानने वाले ( विप्राः ) बुद्धिमान ! आप लोग ( सुते ) उत्पन्न ( अघ्वरे ) नहीं हिंसा करने योग्य पड़न और पड़ाने रूप व्यवहार में ( अद्रिभिः ) मेघों से ( मर्मन्तः ) आनन्द को प्राप्त होते हुए ( देवेभिः ) विद्वानों के साथ ( रलोकम् ) उत्तम स्वरूप वाणी को ( कुण्ठ ) करा और सत्य के ( सखा ) समूह में वर्तमान ( सोम्यम् ) ऐश्वर्य्य म श्रेष्ठ ( मधु ) मधुर आदि गुणयुक्त द्रव्य का ( वि, पिबध्वम् ) पान कीजिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—अत्यन्त विद्वान् जन विद्वानों के प्रति जितेन्द्रियता धर्मात्मना सुशीलता और मम्यता को ग्रहण करावे कि जिससे वे भी श्रेष्ठ होकर ममर के कल्याण को करे ॥ १० ॥

उप प्रेत कुशिकारचेतयध्वमर्ष राये म सुखता सुदासः ।

राजा इत्रं जङ्घन्तप्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११॥

पदार्थ—हे ( कुशिकाः ) जा करने और उपदेश देने के कुश वे श्रेष्ठ विद्यमान हैं जिनमें वे कुशिक और जा ( सुदास ) उत्तम दान देनेवाला ( राजा ) प्रकाशमान ( प्राक् ) प्रथम ( अपाक् ) पश्चिम और ( उदक् ) उत्तर में ( जङ्घन्तः ) मेघ के सदृश शत्रु का ( जङ्घन्तः ) अत्यन्त नाश करे ( अर्ष ) इसके अनन्तर ( पृथिव्या ) पृथिवी के ( वरे ) उत्तम स्थान में ( आ, यजाते ) यज्ञ करे उस का ( राये ) लक्ष्मी के लिए ( प्र, मुञ्चतः ) त्याग करा और उस ( अवहत् ) घाटे के सदृश शीघ्र चलनेवाली बिजुली को ( चेतयध्वम् ) जनाओ और ( उप, प्र इतः ) प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जो वीर लोग शत्रुओं का नाश करें उनके लिए बहुत धन और प्रतिष्ठा को देंगे । जिससे सम्पूर्ण दिशाओं में विजय प्रकाशित होवे ॥ ११ ॥

य इमे रोदन्तो उमे अहमिन्द्रमनुद्वहम् ।

विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( यः ) जो ( इमे ) ये ( उमे ) दोनों ( रोदन्तो ) अन्तरिक्ष और पृथिवी ( ब्रह्म ) धन वा ब्रह्माण्ड ( इदम् ) इस वर्तमान ( भारतम् ) वाणी के जानने वा धारण करनेवाले उस ( जनम् ) प्रसिद्ध मनुष्य आदि प्राणि-स्वरूप की ( रक्षति ) रक्षा करता है जिस ( इन्द्रम् ) परमात्मा की हम ( अनुद्वहम् ) प्रशंसा करें उस ( विश्वामित्रस्य ) सब के मित्र की ही उपायना आप लोग करें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण ससार रक्ष कर रक्षित है उस की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना निरन्तर करो ॥ १२ ॥

अब प्रजा को विषय को अगले अन्त में कहते हैं—

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । करदिवः सुरार्धतः ॥१३॥

पदार्थ—हे ( विश्वामित्राः ) सब के मित्रों ! आप लोग जो ( नः ) हम लोगों को ( सुरार्धतः ) उत्तम धन से युक्त ( करत् ) करे उस ( इत् ) ही ( वज्रिणे ) अनुद्वेद के जाननेवाले ( इन्द्राय ) राजा के लिए ( ब्रह्म ) धन की ( अरासतः ) वृद्धि करें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जा राजा सम्पूर्ण प्रजाओं को सुखयुक्त करे उस ही को प्रजा अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त करे ॥ १३ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले अन्त में कहते हैं—

किं तं कुण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं हुह न तपन्ति धर्म ।

आ नो मर प्रमगन्दस्य वेदो नैवाशाखं मघवन रन्धया नः ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( ते ) आप के ( कीकटेषु ) अनाय देशों में बसने वालों में ( गावः ) गावों से ( नः ) नहीं ( आशिरम् ) दुग्ध आदि को ( हुह ) दुहते हैं ( धर्मम् ) धर्म को ( नः ) नहीं ( तपन्ति ) तपते हैं वे ( किम् ) क्या ( कुण्वन्ति ) करने वा करने और आप ( नः ) हम लोगों के लिए ( प्रमगन्धस्य ) जो कुलीन मुक्त को प्राप्त होता है उस के ( वेदः ) धन का ( आ ) सब प्रकार से ( मर ) धारण करिये और हे ( मघवन ) श्रेष्ठ धन से युक्त ! आप ( नः ) हम लोगों के ( नैवाशाखम् ) नीची शक्ति जिसमें उस की ( रन्धया ) निवृत्ति करे ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे स्तेच्छ जनों में गौओं की, नास्तिक पुरुषों में धर्म आदि गुणों की वृद्धि नहीं होती और वैसे ही विद्वानों में ईश्वर को नहीं माननेवाले प्रवृत्त न होवें इसमें चाहिए कि मनुष्यों में नास्तिकत्व को सर्वथा धारण करे ॥ १४ ॥

ससर्परीरमति बाधमाना बृहन्मिममाय जमदग्निदत्ता ।

आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेभ्यमृतमजुर्वयम् ॥१५॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( जमदग्निदत्ता ) नेत्र से प्रत्यक्ष हो गई ( ससर्परी ) अत्यन्त चलनेवाली वाणी ( अजुर्वयम् ) हानि में रहित ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( दुहिता ) कन्या के सदृश वर्तमान अन्धकार को नाश करने हुए प्रातःकाल के सदृश ( बृहत् ) बड़े ( अमतिम् ) रूप को ( मिमाय ) नापनी है और ( देवेभ्यः ) विद्वानों में हानि रहित ( अमृतम् ) अमृतस्वरूप ( अमृतम् ) मृगने का ( आ, ततान ) विस्तार करती है उस वाणी की सब प्रकार वृद्धि करो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तपमालङ्कार है । जा ब्रह्मचर्य धर्म का अनुष्ठान और पुरुषार्थों में श्रेष्ठ पुरुषों के समीप से विद्या और उत्तम शिखा को मनुष्य ग्रहण करे तो उनको कुछ भी सुख अप्राप्त न होवे ॥ १५ ॥

ससर्परीरमरसूर्यमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।

सा पक्ष्याः नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्रयो बभूवुः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( पलस्तिजमदग्रयः ) जाना है प्राजापत्य आदि अग्नियों को जिन्होंने वे और अवस्था और ज्ञान में वृद्ध पुरुष ( याम् ) जिस को ( बभूवुः ) देवों ( सा ) वह ( पक्ष्याः ) पक्षों में मानवी ( पाञ्चजन्यासु ) पांच दिना तथा प्राणों में उत्पन्न ( कृष्टिषु ) मनुष्य आदि प्राजाओं में ( नव्यम् ) नवीन ही ( आयुः ) अन्न वा जीवन को ( दधाना ) धारण करती हुई ( एभ्यः ) इन जानने की इच्छा करनेवालों के लिए ( अमृतम् ) अन्न को ( अधि ) उपरि भाग में ( सूर्यम् ) शीघ्र ( बभूवुः ) देवों ( ससर्परी ) मृग की बढ़ानेवाली ( अमरत् ) प्राप्त कराइये ॥ १६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो काय की मिद्धि और ऐश्वर्य की उत्पन्न करने और अवस्था की बढ़ानेवाली सत्य लक्षणों से स्पष्ट वाणी नवीन नवीन विज्ञान और जीवन धारण करती है उसका नित्य धारण करो ॥ १६ ॥

स्थिरो गावो भवतां वीरुक्षो मेवा वि बहि मा युगं वि शारि ।

इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतारिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७॥

पदार्थ—हे ( अरिष्टनेमे ) नहीं नाश होने वाले कर्मों को प्राप्त करनेवाले आप ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य्य वाले ( शरीतो ) दुष्ट स्वभाव से युक्त के नाश करने में समर्थ हुए ( पातल्ये ) गिरने वाले में ( बभूवुः ) दीजिये और ( वीरुक्षः ) प्रशंसा-युक्त ( अलः ) इन्द्रिय के छिद्र को ( ईषा ) नाश करनेवाला हुआ ( स्थिरी ) निश्चल ( गावो ) बैलों का ( मा ) नहीं ( वि, शारि ) नाश करे ( युगम् ) वर्ष को ( मा ) नहीं ( वि, बहि ) बन्ध्या हो जिमसे वि निश्चल बैल ( भवताम् ) होवे तब से आप ( नः ) हम लोगों से ( अभि, सचस्व ) सब प्रकार मिलो ॥ १७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि बड़े उपकार करनेवाले गौ आदि पशुओं का कभी नाश नहीं करे । और व्यर्थ समय न बिताव, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ सदा ही मेल की रक्षा करें ॥ १७ ॥

बलं वेहि तनयु नो बलमिन्द्रानुद्वह नः ।

बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलंवा असि ॥१८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले ! ( हि ) जिस से आप ( बलम् ) बल के देने वाले ( असि ) हैं इसमें ( नः ) हम लोगों के ( तनयुः ) शरीरों में ( बलम् ) बल को ( वेहि ) धारण करो और ( नः ) हम लोगों को ( अनुद्वहम् ) गौ आदिकों में ( बलम् ) बलको धारण करो हम लोगों के ( जीवसे ) जीवन और ( तोकाय ) छाटे बालक तथा ( तनयाय ) कोमार अवस्था को प्राप्त पुरुष के लिये ( बलम् ) पराक्रम को धारण करो ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हे आचार्य्य ! आप जिससे कि शरीर और आत्मा के बल से युक्त हो इससे हम लोगों में पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को धारण करो ॥ १८ ॥

अभि व्ययस्य त्वदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्वने शिशपायाम् ।

अक्ष वीर्यो वीर्यस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९॥

पदार्थ—हे ( अक्षः ) विद्याओं से व्याप्त ! आप हम लोगों में ( कविरस्य ) इस काण्ड के ( सारम् ) दृढ भाग के सदृश ( ओजः ) बल को ( वेहि ) धारण



कीजिये ( शिवापायम् ) इस काष्ठ का वृक्षविशेष (स्पष्टने) कुछ चलन में (अभि) सब प्रकार (व्यवस्थ) लवचं करो। और हे (वीर्यो) बलयुक्त और (वीर्यो) बहुतों में प्रशंसित पुरुष। (न) हम लोगों का (वीर्यो) प्रेरणा करो (अस्मात्) इस (याम्) प्रहर में (मा) नहीं (अब, जीहिय) त्यागिये ॥ १९ ॥

भाषार्थ—हे आचार्य! हम लोग म दूत बल का धारण करो श्रेष्ठ कर्मों में हम लोगों की प्रेरणा करो और कभी मन न्याय करो ॥ १९ ॥

अब राजा के पुरुष के विषय को कहते हैं—

अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च गीरिषत् ।

स्वस्या गृहेभ्य आवमा आ विमोचनात् ॥२०॥२२॥

पदार्थ—हे राजन्! जैसे (अयम्) यह (वनस्पति) वन का पालन करने वाला (अस्मान्) हम लोग का त्याग नहीं करता है वैसे हम लोग का (मा) मत (हा) त्याग करिये (च) और जैसे सूर्य हम लोगों की हिमा नहीं करता है वैसे ही आप (मा, च) नहीं (गीरिषत्) नाश कीजिये। और (आ अवसे) अच्छे निश्चय के लिए (आ, गृहेभ्य) सब प्रकार गृहों से (स्वस्ति) मुक्त हो (आ, विमोचनात्) त्याग तक मुक्त प्राप्त होवे ॥ २० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अन्न आदि वस्तु सब के रक्षक होवे वैसे राजा के पुरुष सब के पालनकर्ता हो और न्याय का त्याग करके अन्याय कभी न करें ॥ २० ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अथ याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छुर जिन्व ।

यो नो द्रष्टुधरः मस्पदीष्टु य द्विषस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त श्रेष्ठ से युक्त। (य) जो (अधर) नीच (न) हम लोग म द्रष्टुधर है (स) वह दुष्ट का (परीष्ट) प्राप्त होवे (यम्) जिस को (उ) और हम लोग (द्विषम्) द्वेष करें (तम्) उसका (उ) भी (प्राण) हृदयवायु (जहातु) त्याग करे। और हे (मघवन्) बहुत श्रेष्ठ धन से युक्त (शूर) दुष्टों का नाशकर्ता! आप (बहुलाभि) बहुत (श्रेष्ठाभि) उत्तम (उतिभि) रक्षा आदि से (न) हम लोगों का (यात्) प्राप्त होवे (अथ, जिन्व) प्रमत्त कीजिये ॥ २१ ॥

भाषार्थ—विद्वान् लोगों को दुष्ट कर्म करनेवाला पुरुष द्वेष करने योग्य और धर्मात्मा मत्कार करने योग्य है। जितने प्रजा की रक्षा करने और दुष्ट पुरुषों के निवारण करने में साधन अपेक्षित होंवे उनका ग्रहण करके श्रेष्ठ पुरुषों का पालन और दुष्टों का निवारण राजा आदि निरन्तर करें ॥ २१ ॥

अब राजा के विषय को आगे मन्त्रों में कहते हैं—

परशुं चिद्वि तपति शिम्बल चिद्वि वृश्चति ।

उवा चिदिन्द्र येवंती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त श्रेष्ठ से युक्त। जो आपकी सेना लोहार (परशुम्) परशुरूप शस्त्र का (चित्) जैसे वैन शत्रुओं का (वि, तपति) विशेष करके मन्ताप देती है (शिम्बलम्) शेर वृक्ष के पुष्प वा पत्र का (चित्) जैसे (वि, वृश्चति) विशेष करके काटना है (प्रयस्ता) प्रेरित हुई (येवंती) बहुता तथा प्राप्त हुआ (उवा) पाव करने का पात्र (चित्) जैसे (फेनम्) फेन को वैसे शत्रुओं का (अस्यति) फेकती है उसका आप से सदा मन्ताप करने योग्य है ॥ २२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा लोग श्रेष्ठ वीरों की सेना की रक्षा करते हैं वे ही विजय को प्राप्त होकर शोभित होते हैं ॥ २२ ॥

न सायकस्य चिकिते जनासो लोध नयन्ति पशु मन्यमानाः ।

नावाजिनं वाजिनां हासयन्ति न गर्दमं पुरो अश्वान्वयन्ति ॥२३॥

पदार्थ—हे राजन्! जो वे (जनास) वीरपुरुष (लोधम्) प्राप्त होने वाले को (न) नहीं (नयन्ति) प्राप्त होते हैं (पशु) पशु के मद्दुष्ट (मन्यमाना) जानने हुए (वाजिना) घोड़े से (अवाजिनम्) घोड़े जिमसे नहीं ऐसे सप्राप्त का (न) नहीं (हासयन्ति) हराते हैं और (अश्वान्) घोड़े से (पुर) प्रथम (गर्दमम्) लम्बे कान वाले गधों को (न) नहीं (नयन्ति) प्राप्त करते हैं उनको (सायकस्य) शस्त्र समूह के दान से युक्त करने को आप (चिकिते) जानिये ॥ २३ ॥

भाषार्थ—वे ही राजा के वीर श्रेष्ठ होवें कि जो युद्धविद्या का जानके सेनाओं के अङ्गों की यथावत् रक्षा स्थिर करने और युद्ध करने को जानते हैं ॥ २३ ॥

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुं मपित्वम् ।

हिन्वन्त्यश्वमरं न नित्यं ज्यावाज परि पयन्त्याजौ ॥२४॥२३॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त करनेवाले! आप की सेना के (भरतस्य) रक्षा करने और (चिकितुः) जाननेवाले के (न) तुल्य (इमे) ये मेरे (पुत्रा) उत्तम प्रकार के पुत्रों का मद्दुष्ट सेवक लोग (अपपित्वम्) नाश कीजिये। उत्तम प्रकार प्राप्त करने को (अवपम्)

घोड़े को (अरतम्) प्रेरणा किये हुए के (न) तुल्य (हिन्वन्ति) बढाते हैं और (आजौ) सधाम में (ज्यावाजम्) धनुष की तांत के शब्द को (नित्यम्) नित्य (परि) सब प्रकार (पयन्ति) प्राप्त करने हैं उनकी और उन की आप अपने आत्मा के मद्दुष्ट रक्षा करो ॥ २४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा आदि अपने नाश और वृद्धि का जानने हैं, सेना में वर्तमान माध्यम सेवकों को युद्ध कर्म में चतुर और अनुक्तों का पुत्र के सदृश पालन करने हैं, उन की सदा ही वृद्धि होती है, पराजय कहीं से होवे ॥ २४ ॥

इस सूक्त में बिजुली, मेघ, विद्वान्, राजा, प्रजा और सेना के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ को पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह त्रिपदा सूक्त और तेईसवाँ वर्ग तीसरे मण्डल में चौथा अनुवाक

समाप्त हुआ ।



अथ द्वाविंशत्युक्तस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य प्रजापतिर्ब्रह्माभिः वाच्यो वा ऋषयः । बिम्बदेवा देवताः । १ निबृत्त्यङ्गितः । ६ भुरिक् ऋषिः । १२ स्वरः । पञ्चमः स्वरः । २, ३, ६, ८, १०, ११, १३, १४ त्रिष्टुप् ।

४, ७, १५, १६, १८, २०, २१ निबृत्त्यङ्गितः ।

५ स्वरः त्रिष्टुप् । १७ भुरिक् त्रिष्टुप् । १९, २२ विराट्

त्रिष्टुप् छन्दः । भवतः स्वरः ॥

अब बाईस ऋचा वाले चौवनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

इमं महे विद्वध्याय शूषं शश्वत्कुत्स् ईक्ष्याय प्र जभ्रुः ।

शुणोतु नो बभ्येभिरनीकैः शुणोत्वमिद्विष्यैरजसः ॥१॥

पदार्थ—हे (कुत्स्) बहुत कार्य करने वाले! जिसके वह आप (महे) बड़े (ईक्ष्याय) स्तुति करने के योग्य (विद्वध्याय) सप्राप्त में उत्पन्न हुए के लिए (इमम्) इस (शश्वत्) निरन्तर (शूषम्) बल का (प्र, जभ्रुः) अच्छे प्रकार धारण करने हैं उन (न) हम लोगों का आप (बभ्येभि) सेन के योग्य (अनीकै) सेना में वर्तमान जनो के साथ (शुणोतु) सुनिये (अजसः) निरन्तर वर्तमान (अभि) विद्वान् आप (विष्ये) श्रेष्ठ कर्मों के साथ हम लोगों का (शुणोतु) श्रवण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो लोग युद्ध के लिए पूर्ण विद्या और बड़े बल को धारण करें उनका राजजन सुनकर निरन्तर मत्कार करें और उनके कृत्य की निरन्तर उन्नति करें जिससे कि प्रमत्त हुए वे विजय में राजा को सदा भागित कर ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

महिं महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।

ययोर्ह स्तोमे विद्वथेषु देवाः संपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥२॥

पदार्थ—जो युद्धविद्या को (प्रजानन्) जानता और विजय करना और राज्य की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (महे) बड़े (दिवे) प्रकाशमान के और (पृथिव्यै) भूमि के राज्य की प्राप्ति के लिए (चरति) चलता है उसको जो (मे) मेरी (महि) बड़ी (काम) अभिलाषा है उसको भागित करने की इच्छा करता हुआ विजय को प्राप्त होता है उसका (अर्च) मत्कार करा। और (ययो) जिन विद्या और राज्य के (स्तोमे) प्रशंसा करन योग्य विजय और (विद्वथेषु) सप्राप्तों में (संपर्यवः) सेवक (देवा) विद्वान् लोग (ह) निष्कस्य (आयो) जीव के (सचा) सम्बन्ध से (मादयन्ते) प्रमत्त करने हैं वे दोनों आप उन लोगों का आनन्द दीजिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो विद्या और राज्य की वृद्धि की कामना करन और अधिक अवस्था वाले युद्धविद्या में निपुण जन, राजा और मन्त्रियों का लक्ष्मी और विजय से मत्कार करे, उन जनो को राजा और मन्त्री भी सदा ही सुखित करें ॥ २ ॥

युवोर्भूतं रौदसो सत्यमस्तु महे पु णः सुविताय प्र भूतम् ।

इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै संपर्यामि मयसा यामि रत्नम् ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष राजन्! (युवो) आप दोनों स्वामी सेवक के (रौदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश (महे) बड़े (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (इदम्) यह (प्र, भूतम्) उत्पन्न (भूतम्) प्राप्त होने योग्य कारण (सत्यम्) व्यवहार रहित अर्थात् नहीं विपरीत होनेवाला (रत्नम्) सुवर्ण और हीरा आदि (न) हम लोगों का (पु, अस्तु) श्रेष्ठ हो और जैसे मैं (पृथिव्यै) भूमि और (दिवे) प्रकाशमान के लिये (मयः) अन्न आदि का (संपर्यामि) सेवन करता और (प्रयसा) प्रयत्न से विजय को (यामि) प्राप्त होता हूँ वैसे आप दोनों वर्तव्य कीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे भूमि और सूर्य सम्पूर्ण ससार का व्यवहार करके लक्ष्मी और अन्न से युक्त करता हैं वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि प्रयत्न से उत्तम कर्मों का सेवन करके अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होंवें ॥ ३ ॥

**उतो हि वां पूर्या आविबिद्र क्रतावरी रोदसी सत्यवाचः ।  
नरविद्रां समिधे शूरसातो बबन्दिरे पृथिवि वैर्विदानाः ॥४॥**

**पदार्थ—**हे (पृथिवि) भूमि के सदृश क्षमायुक्त राजा जो (सत्यवाच) यथार्थ वाणीवाले (वैर्विदाना) अत्यन्त जानने हुए आप को (बबन्दिरे) प्रणाम करे, और आप आपके स्वामी को (वाच) आप दोनों (शूरसातो) शूरवीर पुरुषों के विभाग और (समिधे) सग्राम में (नर) प्रव्रणी पुरुषों के (बिद्र) सदृश प्रणाम करो और (उतो) भी (क्रतावरी) सत्य को प्राप्त करानेवाली स्त्री (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश (पूर्या) प्राचीन जनो में चतुर पुरुष आप दोनों को (हि) और (आ, विविद्रे) सब प्रकार प्राप्त होते हैं वह स्त्री और आप उनका और उसका सत्कार करो ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही लोग राज्य करने के योग्य हैं कि जो सत्य मानने, सत्य आचरण करने, सत्य वाणी बोलने और इन्द्रियों के जीतनेवाले विद्वान् जन हों और वे ही रानी योग्य स्त्रिया हैं कि जो उक्त प्रकार के पति के सदृश हों ॥ ४ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**को अद्वा वैव क इह प्र वोचदेवां अच्छा पथ्याः का सर्वेति ।  
ददध एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५॥२४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो! (इह) इस विज्ञान में परमात्मा और धर्म को (अद्वा) साक्षात् (कः) कौन (वैव) जाने और (कः) कौन पुरुष (वैवाद्) विद्वानो को (अच्छा) उत्तम प्रकार (प्र, वोचत्) उपदेश देवे (का) कौन (पथ्या) उत्तम मार्ग से युक्त (वैवाद्) विद्वानो को (सत्, एति) प्राप्त होती है और (एषाम्) इन विद्वानो के (परेषु) सूक्ष्मो को (अवमा) नीचे भाग में वर्तमान (सदांसि) वस्तुएँ (गुह्येषु) गुप्त अर्थात् रक्षा करने योग्य (व्रतेषु) मत्स्य भाषण आदि नियमों में (या) जो ज्ञान और सत्यभाषण आदिका को (बबुधे) देखें वे पूर्वोक्त सम्पूर्ण को जानें ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**इस संसार में बिरला ही ऐसा मनुष्य होता है कि जो परमात्मा को जान और उसकी आज्ञा के अनुकूल आचरण स्वीकार करके मत्स्य का उपदेश देता है ऐसा कोई विद्वान् जो इस संसार में इस लोक और परलोक का जाना होवे ॥ ५ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**कविर्ब्रह्मा अमि धामबृह क्रतस्य योना विधृते यदन्ती ।  
नाना चक्रते सदनं यथा वेः संपानेन क्रतुना संविद्वाने ॥६॥**

**पदार्थ—**हे स्त्री और पुरुष! (यथा) जैसे (कवि) सम्पूर्ण नियमों के जानने (ब्रह्मा) मनुष्यों के देखनेवाले परमेश्वर (क्रतस्य) सत्य कारण के (योना) गृह में (विधृते) विशेष करके प्रकाशित में (नाना) अनेक प्रकार के (सबन्ध) स्थान को (चक्रते) करके है (ब्रह्मन्ती) आनन्द करनी हुई (वेः) पक्षी के (संपानेन) तुल्य (क्रतुना) धर्म से (संविद्वाने) की है प्रतिज्ञा जिन्होंने उन स्त्रियों के सदृश वर्तमान अन्तरिक्ष और पृथिवी को (सीम्) सब ओर (अभि, अचष्ट) प्रकाशित किया, उस की सब लोग उपासना करें ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो! जिस परमेश्वर ने अनेक प्रकार के प्रकाश और अप्रकाश से युक्त लोक रचे वही सब को जानने और सबको देखनेवाला परमात्मा निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥ ६ ॥

अब शिष्य के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**समान्या विधृते दूरे अन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरुक् ।  
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रवाते मिथुनानि नाम ॥७॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो! जो (युवती) यौवन अवस्था को प्राप्त हुई (स्वसारा) भगिनी (भवन्ती) वर्तमान (मिथुनामि) जोड़ों को (नाम) सञ्ज्ञा को (ब्रवाते) कहती है (समान्या) तुल्य स्वभाव वाली (विधृते) मिली और नहीं मिली हुई (दूरेअन्ते) दूर और समीप में (ध्रुवे) दृढ़ (पदे) प्राप्त होने योग्य (उत) भी (जागरुक्) प्रसिद्ध अन्तरिक्ष और पृथिवी (तस्थतुः) स्थित हैं उनको (उ) और जानने के (आत्) अन्तर ऐश्वर्य को प्राप्त होना चाहिए ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रेम से युक्त भगिनीजन मनोवाञ्छित वस्तुओं को कहती हैं और जोड़े वर्तमान हैं वैसे ही दूर और समीप में वर्तमान प्रकाश और अप्रकाश से युक्त लोक इस संसार में वर्तमान हैं ॥ ७ ॥

**विश्वेदेते जनिमा स विविद्रो महो देवान्ब्रह्मन्ती न व्यथेते ।**

**एजध्रुवं पश्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विपुषं नि जातस्य ॥८॥**

**पदार्थ—**हे विद्वानो! जो (एते) वे अन्तरिक्ष और पृथिवी (महः) बड़े अर्थात् श्रेष्ठ (देवान्) उत्तम पदार्थों को (विविद्रो) बारंबार करती हुई (विपुषः) सब (जनिमा) जन्मों को (सस्य, विविपुषः) धृक् करती हैं और (न) नहीं (व्यथेते) अपने परिधि अर्थात् मन्त्रों में इधर उधर नहीं हिंसते हैं और (अज)

जिसमें (इत्) ही (ध्रुवम्) अन्तरिक्ष (एजत्) चलता हुआ (एकम्) सहाय रहित अकेला (विपुषम्) नीचे को प्राप्त है (जातस्य) उत्पन्न (पतत्रि) गिरने वाला (चरत्) प्राप्त होता हुआ (विपुषम्) सम्पूर्ण संसार के (वि, पश्यते) स्वामी के सदृश वर्तमान उस को आप लोग जानें ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो! इन पृथिवी सूर्यरूप अधिकरण और अन्तरिक्ष में सम्पूर्ण पदार्थ वसने और उत्पन्न होते मरने और नाश का प्राप्त होते हैं ऐसा जानो ॥ ८ ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**सनां पुगणमध्येयारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तसः ।**

**देवासो यत्र पनितार एवैरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥९॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो! (यत्र) जिसमें (पनितारः) व्यवहार करने अर्थात् स्तुति करनेवाले (देवासः) विद्वान् लोग (एवै) प्राप्त करने वालों से (उरौ) बड़े (व्युते) आचरण अर्थात् दूसरे के ढाँपने से रहित इस प्रकार प्रसिद्ध (पथि) मार्ग में (अन्तः) मध्य में (तस्थुः) वर्तमान हैं (तत्) वह (पितु) पालन करने और (जनितुः) उत्पन्न करनेवाले (महः) श्रेष्ठ पूजा करने योग्य से (जामि) उत्पन्न हुआ (आरात्) दूर वा समीप से जाना जाय और वह (न) हम लोगों के दूर वा समीप से (सना) प्राचीन काल से सिद्ध और (पुराणम्) प्रथम नवीन को (अभि, एभि) स्मरण करना है उस के मध्य में आप लोग भी हैं ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो! जिसमें सम्पूर्ण शरीर स्थित है और जिसकी कही हुई मर्यादा में चलते हैं वह सब का पालक उत्पन्न करनेवाला सब पदार्थों में बड़ा अनादि से सिद्ध ब्रह्म उपासना करने योग्य है, जो उस का जाने तो समीप में वर्तमान और न जाने तो अत्यन्त दूर वर्तमान होता है ॥ ९ ॥

**इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यदुहराः शृण्वन्नभिजिह्वाः ।**

**मित्रः सञ्जाजो बरुणो युवान् आदित्यासः कवयः पप्रधानाः ॥१०॥२५॥**

**पदार्थ—**जिम (इमम्) इस परमेश्वर (स्तोमम्) प्रशंसा करने योग्य और (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में जानने योग्य प्रकाश और धारण करनेवाले का (मित्र) सब का मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ हम (प्र, ब्रवीमि) उपदेश देते हैं उस को (अदुहरा) सत्य है हृदय में जिन के व (सञ्जाजः) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (अभिजिह्वा) अग्नि के सदृश प्रकाशमान मत्स्य के उपदेश देने वाली जिह्वा है जिन की वे (युवान्) युवा अवस्था को प्राप्त (आदित्यासः) सूर्य के सदृश पूर्ण विद्या से प्रकाशित (कवयः) तीव्र बुद्धि से युक्त (पप्रधाना) प्रख्यात बुद्धिमान् लोग (अरावन्) सुनो ॥ १० ॥

**भाषार्थ—**जैसे चक्रवर्ती राजा अपनी आज्ञा में सम्पूर्ण न्याय का प्रकाशित करता है वैसे ही यथार्थवक्ता विद्वान् लोग अध्यापन और उपदेश से परमेश्वर और उसकी आज्ञा को प्रसिद्ध करन हैं, और जो लोग अद्वानामीम वर्ष पयन्त ब्रह्मचर्य करके पूर्णविद्या युक्त हैं वे ही हमके कहन सुनने निश्चय और अभ्यास करने और प्रत्यक्ष करने को समर्थ होने हैं ॥ १० ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**हिरण्यपाणिः मविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पन्यमानः ।**

**देवेषु च सवितः श्लोकपधेरादस्पन्धया सुव सर्वतातिम् ॥११॥**

**पदार्थ—**हे (सवितः) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता (सुजिह्वः) सुन्दर जिह्वा-युक्त (पन्यमान) पति के सदृश आचरण करने हुए। आप (विष) विजुली आदि के (विषये) विज्ञान और (देवेषु) पृथिवी आदिको में (हिरण्यपाणिः) हस्त के सदृश तेज से युक्त (सविता) सूर्य के सदृश (अस्पन्धयः) हम लोगों के लिए जिस (सर्वतातिम्) सम्पूर्ण ही (श्लोकम्) वाणी का (अधः) आश्रय करिये उस को (च) और (आत्) अन्तर (आ) सब ओर से (त्रि) तीन बार (आ, सुव) उत्पन्न करो ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य लोको का अधिकठाना है वैसे ही विद्वान् सब का अध्यापक होवे ॥ ११ ॥

अब शिष्य के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**सुकृत्सुपाणिः स्वर्वां क्रुणावां देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात ।**

**पृथग्वन्तं क्रमवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वर्यवस्तथ ॥१२॥**

**पदार्थ—**हे (पृथग्वन्तः) बहुत पुष्टिकर्ता विद्यमान हैं जिनके वे (अध्वर्यवः) बुद्धिमान्। आप लोग जैसे (सुकृत्) सुन्दर धर्मयुक्त कर्मकर्ता (सुपाणिः) सुन्दर हस्तयुक्त (स्वष्टावः) बहुत आरमजन हैं जिसके वह (ज्वाला) सत्य का प्रकाश करनेवाला (त्वष्टा) प्रकाशकर्ता (देवः) विद्वान् (नः) हम लोगों को (अध्वर्यवः) रक्षण आदि के लिए (तानि) उन अपेक्षित पदार्थों को (धातु) धारण करे और (अध्वर्यवः) हमों के सदृश (अध्वर्यम्) पालन करनेवाले व्यवहार को (अतथ) सूचक करता है वैसे ही हम लोगों के लिए (अध्वर्यवः) आरक्षण कीजिये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। जैसे धार्मिक विद्वान् लोग मेघों के सदृश मघ को आनन्द देते हैं वैसे ही मघ लोग विद्वानों को आनन्द देवें ॥ १२ ॥

**विद्युद्रथा मरुतं ऋष्टिमन्तां दिवो मयां कृतजांता अयासः**

**सरस्वती ऋणवन्धुजियांसो धाता रयि महवीरं नृगमः ॥१३॥**

पदार्थ—( सरस्वती ) विद्यायुक्त रथी जिग ( सहवीरम् ) वीर पुरुषों के महान् वर्तमान ( रयिम् ) धन वा ( विद्युद्रथा ) विजुली में युक्त है बाहन जिन के वे ( मरुत ) मरण समयान् ( ऋष्टिमन्त ) बहुत गनियों से युक्त ( विष ) कामना करने हुए के सम्पत्ती ( मय्यां ) मनुष्य ( ऋतजाता ) सत्य से प्रसिद्ध ( अयास ) मिथ्याओं को प्राप्त ( यजियांस ) शिल्प-व्यवहार के करनेवाले ( नृगमः ) शीघ्रकर्ता विद्वान् लोग ( भृणवन् ) मुना और ( धाता ) धारण करो वैसे इसको मुने और धारण कर ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जैसे पुरुष लोग विद्या का अभ्यास करें वैसे ही स्त्रियाँ भी करके लक्ष्मीयुक्त हों। दोनों स्त्री और पुरुष आलस्य का त्याग करके शिल्पविधयक सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करें ॥ १३ ॥

अब वक्ता के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**विष्णुं स्तोमांसः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि गमन ।**

**उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीनं पदंन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥**

पदार्थ—हे विद्वान् ( उरुक्रम ) बहुत पुरुषार्थ वाले ! आप जैसे ( स्तोमांसः ) स्तुति करनेवाले ( अर्का ) पूजा करने योग्य ( भगस्येव ) ऐश्वर्य के तुल्य ( कारिण ) करनेवाले विद्वान् लोग ( यामनि ) प्राप्त होन योग्य मार्ग में ( पुरुदस्मम् ) बहुत दुःख नाश हुए जिसमें उम ( विष्णुम् ) व्यापक को ( गमन् ) प्राप्त होने है और ( यस्य ) जिसकी ( युवतयो ) युवावस्था को प्राप्त ( ककुह ) बड़ी ( पूर्वी ) प्राचीन काल में वर्तमान ( जनित्री ) माताओं का ( न ) नहीं ( मर्दन्ति ) नाश करने हैं गे आप बनाव करा ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। जो लोग भगवान् की उपासना करनेवाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल तत्त्वमान ऐश्वर्ययुक्त हो कर नहीं नाश होत वानी बड़ी लक्ष्मियों को प्राप्त हो दुःख के पार जाकर बड़ सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उमे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।**

**पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णवेणः सङ्गृभ्यां न आ भंग भूरि पश्वः ॥१५॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जो ( वृत्रहा ) मेघ को नाश करनेवाले सूर्य के सदृश ( पुरन्दर ) शत्रुओं के नगर का नाश करनेवाला ( पत्यमान ) स्वामी के सदृश आचरण करता हुआ ( धृष्णसेन ) दृढ़ सना और ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त राजा आप ( विश्व ) सम्पूर्ण ( वीर्य ) पराक्रमा में ( महित्वा ) महिमा में ( उमे ) दानों ( रोदसी ) न्याय और भूमि के राज्य वा ( आ, पप्रौ ) व्याप्त करने है वह आप ( भूरि ) बहुत ( न ) हम लोगों और ( पश्वः ) पशुओं की ( सम्पत्त्य ) उत्तम प्रकार ग्रहण करके ( आ, भरे ) सब प्रकार पाषण काजिय ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जैसा भूमि और मूय सब पदार्थों का धारण और उत्तम प्रकार पोषण करने बढ़ाते हैं वैसे ही राजा धार्मिक अथवा सब उत्तम गुणों का धारण प्रजा का पाषण, सेना की वृद्धि और शत्रुओं का नाश करके प्रजा की वृद्धि करें ॥ १५ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**नासत्या मे पितरां बन्धुपृच्छां सजात्यमन्विनोश्चारु नाम ।**

**युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणा दात्रं रक्षथे अकवैरदंघा ॥१६॥**

पदार्थ—हे मभा और मना के स्वामी ! ( युवम् ) आप दोनों ( हि ) जिस से कि ( न ) हम लोगों के लिए ( रयिदौ ) लक्ष्मी दनवाले ( रयीणाम् ) धनो के ( दात्रम् ) दान की ( रक्षथे ) रक्षा करने है ( अकवै ) कुत्सित भिन्न अर्थात् उत्तम कर्मों में ( अदंघा ) नहीं हिमिन हुए ( रयः ) दान है और जिनकी ( अविनो ) मूय सन्ध्या के तुल्य ( चारु ) सुन्दर ( नाम ) मञ्जा है उन ( बन्धुपृच्छा ) बन्धुओं का कुण्ठादि पृच्छनेवाले ( नासत्या ) अमत्य के त्यागी ( मे ) मेरे ( पितरा ) पालन करने वाला के सदृश ( सजात्यम् ) समान जाति वाले सुन्दर नाम की रक्षा करो ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग माता और पिता के सदृश सब के लिये विद्या और धन देने वाले धर्मपूर्वक आचरण करते हुए अपने समान जाति वाले तथा अन्य जनो की रक्षा करने हैं वे सबके पूजा करने योग्य होते हैं ॥ १६ ॥

**महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्व देवा मवथ विश्व इन्द्रैः ।**

**सखं ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिर्मिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७॥**

पदार्थ—हे ( कवय ) विद्वानो ! ( व ) आप लोगों का ( यत् ) जो ( महत् ) बड़ा ( चारु ) सुन्दर ( नाम ) नाम है ( तत् ) वह और उससे युक्त

( विश्वे ) सम्पूर्ण ( देवा ) विद्वान् और ( ह ) निश्चय आप लोग ( भवथ ) होओ ( प्रियेभिः ) अपने सदृश प्रिय ( ऋभुभिः ) बुद्धिमानों के साथ ( इन्द्रैः ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वा राजा में ( सातये ) सत्य और अमत्य के विचार के लिए ( नः ) हम लोगों की ( इमाम् ) इन ( धियम् ) बुद्धि की ( तक्षत ) रक्षा करो और हे ( पुरुहूत ) बहुतों से प्रशंसित हुए राजन् ! आप इनके साथ ( सखा ) मित्र हुए हम बुद्धि का प्राप्त होओ ॥ १७ ॥

भाषार्थ—उन लोगों के ही नाम प्रशंसा करने योग्य और प्रसिद्ध होवें कि जो विद्वान् और अविद्वानों में मित्रता का प्राप्त होकर धर्म और अधर्म के विचार के लिए उत्तम बुद्धि सब के लिए देने हैं ॥ १७ ॥

**अर्यमा णो अदितिर्धृजियासोऽदंघानि वरुणस्य वृतानि ।**

**युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमां अस्तु गातुः ॥१८॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( अदिति ) माता के सदृश ( अर्यमा ) न्यायाधीश ( यजियास ) जिसमें हिंसा न हो ऐसे यज्ञ के करनेवाले आप लोगों ! ( नः ) हम लोगों के ( वरुणस्य ) ध्रोष्ठ के ( अदंघानि ) हिंसा भिन्न ( वृतानि ) सत्य बोलने आदि व्रतों को ( युयोत ) प्राप्त कराइये ( नः ) हम लोगों के ( गन्तोः ) प्राप्त होन योग्य व्यवहार से ( अनपत्यानि ) सही विद्यमान हैं सन्तान जिनमें उनको प्राप्त कराइये जिस से ( नः ) हम लोगों की ( गातु ) पृथिवी ( प्रजावान् ) सन्तानयुक्त और ( पशुमान् ) बहुत पशुयुक्त ( अस्तु ) हो ॥ १८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। हे विद्वानो ! आप लोग हम लोगों को न्यायाधीश और माता के सदृश अन्यायाचरण से धन्य करके और सत्य धर्मयुक्त कर्मों को प्राप्त करके सम्पूर्ण पृथिवी को बहुत प्रजा और अमल्य धनयुक्त करें ॥ १८ ॥

**देवानां दूतः पुरुष प्रसूतोऽनां गाभो बोचतु सर्वताता ।**

**शूलोतु नः पृथिवी दौस्तापः सूर्यो नक्षत्रैर्वन्तरिक्षम् ॥१९॥**

पदार्थ—हे ( पुरुष ) बहुतों को धारण करनेवाले ! ( देवानाम् ) विद्वानों के ( दूतः ) सत्य और अमत्य समाचार देने वाले ( प्रसूतः ) उत्पन्न आप ( सर्वताता ) सब को ही ( अनागान् ) अपराध में रहित ( नः ) हम लोगों को भूमि आदि की विद्याओं का ( बोचतु ) उपदेश दीजिये और ( नक्षत्रैः ) कारण रूप से नहीं नाश होन वालों के साथ ( उरु ) व्यापक ( अन्तरिक्षम् ) आकाश के सदृश नहीं हिलना ( सूर्यः ) सूर्य के समान विद्या का प्रकाश ( पृथिवी ) भूमि के सदृश क्षमा और ( दौ ) विजुली के सदृश विद्या ( उत ) और ( आपः ) जलो के सदृश शान्ति ( नः ) हम लोगों को प्राप्त हो और हम लोगों के बचनों को ( शूलोतु ) सुनो ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। जो धर्मसभा के अधिकृत लोगों के प्राधीन में वर्तमान उपदेश देने वाले सब का मन्त्र और असत्य का उपदेश देकर धर्मस्था करें और उनके प्रश्नों को सुनके समाधान करें और पृथिवी आदिको के समीप में क्षमा आदि गुणों को ग्रहण करके अन्धों का ग्रहण करा पाषण्ड का नाश और धर्म को प्राप्त करा के सब का श्रेष्ठ करें ॥ १९ ॥

**शुषवन्तु नो धृषणः पर्वतासो ध्रुवसेमास इक्ष्या मदन्तः ।**

**आदित्यैर्नो अदितिः भृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२०॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग ( इक्ष्या ) प्रशंसित वाणी के महान् वर्तमान ( नः ) हम लोगों कीलिमानों को ( भृणवन्तु ) मुना ( धृषणः ) वृष्टि करने वाले ( ध्रुवसेमास ) निश्चित रक्षा है जिन में व ( पर्वतासः ) मघ जैसे वैसे हम लोगों की ( मरुतः ) प्रसन्न हुए बुद्धि करो और ( आदित्यैः ) पूर्ण विद्वानों के साथ ( अदितिः ) माता ( नः ) हम लोगों का ( भृणोतु ) सुन ( मरुतः ) मनुष्य लोग ( नः ) हम लोगों के लिए ( भद्रम् ) कल्याण करनेवाले ( शर्म ) श्रेष्ठ गृह के सदृश सुख को ( यच्छन्तु ) देवें ॥ २० ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का चाहिए कि सब प्राणियों में प्रथम उत्तम शिक्षा तदनन्तर विद्या पुन सत्यज्ञ से कल्याणकारक आचरण उत्तम बातों का ध्वन और उपदेश करके सब के योग अर्थात् भोजन आच्छादन के निर्वाह और कल्याण को सिद्ध करें ॥ २० ॥

**सदां सुगः पितृमां अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः संपिपृक ।**

**भगों मे अग्ने मरुये न मृध्या उद्रायो अस्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१॥**

पदार्थ—हे ( देवा ) विद्वानो ! आप लोग ( मध्वा ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( ओषधीः ) सामलता आदि आर्षधियों को ( समुः ) ( पिपृकत ) उत्तम प्रकार प्राप्त हो जिससे हम लोगों का ( सुगः ) सुखपूर्वक चलते हैं जिसमें और ( पितृमान् ) बहुत अन्न आदि विद्यमान है जिसमें ऐमा ( पन्थाः ) मार्ग सदा सब काल में ( अस्तु ) हो और हे ( जने ) विद्वन् ! ( मे ) मेरे ( सव्ये ) मित्र के भाव अर्थात् मित्रपन वा धर्म में घाप ( नः ) नहीं ( मृध्याः ) नाश करो मेरा ( भगः ) ऐश्वर्य्य आप का हो और जैसे मैं ( पुरुक्षो ) बहुत अन्न वाले के ( सव्यम् ) गृह और ( राघः ) धनों को ( उत, अग्र्याम् ) प्राप्त होऊँ वैसे आप भी इन गृह धनादि वस्तुओं को प्राप्त होइये ॥ २१ ॥



**भावार्थ—**जो विद्वान् लोग वैद्य होकर सर्वदा शोषधियों से रोगों का निवारण करके सब को रोग रहित करें और सदैव मित्रता करके राजा को चाहिए कि कुछ डाकू रूप कण्टको से तथा सबसे रहित सरल मार्ग बनावे कि जिन मार्गों में आकर तथा आकर प्रजाएँ बहुत धनवाली हों ॥ २१ ॥

**स्वर्दस्व हृष्या समिधो दिदीक्षस्मद्रथक् सं मिमीहि भवोसि ।**

**विश्वो अग्रे पृत्सु ताञ्जेषि शत्रुनहा विश्वा सुमनां दाविही नः ॥२२॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान ! आप ( अस्मद्रथक् ) जो हम लोगों को ज्ञान, गमन, प्राप्ति और सत्कार देता है वह ( हृष्या ) भोजन करने योग्य ( भवोसि ) अन्न व श्रवणों का ( स्वर्दस्व ) भोग करे ( इष ) विज्ञानों का ( सम्, दिविहि ) प्रकाश करो । और अन्न वा श्रवणों को ( सम् मिमीहि ) तोलो और सुनो जिससे कि आप ( पृत्सु ) संग्रामों में ( ताञ् ) उनको ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( शत्रुन ) शत्रुओं को ( जेषि ) जीतते हो तिससे ( विश्वा ) सब ( अहा ) दिनों को ( सुमनाः ) प्रसन्नचित्त होते हुए ( दाविहि ) प्रकाशित होइये और ( न ) हम लोगों को प्रकाशित कीजिये ॥ २२ ॥

**भावार्थ—**राजा आदि पुरुषों को चाहिए कि बुद्धि के नाश करनेवाले अन्न आदि का त्याग करना कहके विज्ञान बढ़ाके लोक में धार्मिकों को सुन के सेनाओं की वृद्धि करके और शत्रुओं को जीतकर सब काल में आनन्द और शोक का त्याग करें और धर्म में प्रजाओं का पालन करके विषयों में आसक्ति का त्याग करके आनन्द करना चाहिए ॥ २२ ॥

इस सूक्त में राजा विद्वान् प्रजा अध्यापक शिष्य ईश्वर श्रोता वक्ता और शूरवीर के कर्म और गुण बगन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह जीवनका सूक्त और सत्ताईसवां बर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ द्वाविंशत्युक्तस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य प्रजापतिविश्वामित्रो वाच्यो वा वाचयः । विश्वेदेवाः । १ उवा । २-१० अग्नि । ११ अहोरात्री । १२-१४ रोवती ।

१५ रोहसी क्षुतिशी वा । १६ विश । १७—२२ इन्द्र पर्जन्यात्मा त्वष्टा

वाग्निश्च देवता । १, २, ६, ७, ९-१२, १६, २२ निचुत्तिष्ठदृप् ।

४, ८, १३, १६, २१ त्रिष्टुप् । १४, १५, १८ चिराद् त्रिष्टुप् ।

१७ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः ।

५, २० स्वराद् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

**उषसः पूर्वा अध यव्ययुधुर्महद्भि जङ्घे अक्षरं पदे गोः ।**

**व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१॥**

**पदार्थ—**( यत् ) जो ( उषस ) प्रातः काल से ( पूर्वा ) प्रथम हुए ( यव्य ) विशेष करके बसते हैं वह ( यव्य ) बड़ा ( अक्षरम् ) नहीं नाश होनेवाला ( महत् ) बड़ा तत्त्वनामक ( गो ) पृथिवी के ( पदे ) स्थान में ( धि, जङ्घे ) उत्पन्न हुआ जो ( एकम् ) द्वितीय और सहाय रहित ( देवानाम् ) पृथिवी आदिको में बड़े ( असुरत्वम् ) प्राणों में रमनेवाले को ( प्र, भूषन् ) शोभित करता हुआ ( अध ) उसके अनन्तर ( देवानाम् ) विद्वानों के ( व्रता ) नियम ( उप ) समीप में ( नु ) शीघ्र उत्पन्न हुए उसको आप लोग जानिये ॥ १ ॥

**भावार्थ—**जो बिजुली नामक वस्तु का प्रातः काल में गमन करते हैं उनके सदृश वर्तमान एक द्वितीय रहित ब्रह्म प्रकृति आदि पदार्थों में व्याप्त हुआ वह सबको धारण करता है वही सब के उपासना करने योग्य है ॥ १ ॥

**मो घृ णो अत्रं जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्रे पितरः पदज्ञाः ।**

**पुराण्योः सद्यमनोः केतुरन्तमहद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) विद्वान् जो ( पुराण्यो ) अनादि काल में निम्न बिजुली और आकाश रूप प्रकृतियों ( सद्यमनो ) मधके रहने के स्थाना और ( देवानाम् ) पृथिवी आदि वा जीवों के ( अन्त ) मध्य में ( केतु ) ज्ञानस्वरूप ( महत् ) बड़ा ( एकम् ) अपने सदृश द्वितीय पदार्थ रहित ब्रह्म ( असुरत्वम् ) प्राणों में ब्रीडा करता हुआ है ( अत्र ) इस ब्रह्म वा विज्ञान के व्यवहार में ( न ) हम लोगों को ( पदज्ञा ) प्राप्त होने योग्य के जाननेवाले ( पूर्वे ) प्रथम उत्पन्न हुए ( पितर ) विज्ञानवाले ( मो ) नहीं ( जुहुरन्त ) प्रमहन करें और ( देवा ) विद्वान् लोग इस विज्ञानरूप व्यवहार में हम लोगों को ( मा ) नहीं ( नु ) उत्तम प्रकार सहें इस प्रकार आप भी यह जानके आपको ये लोग न सहें ॥२॥

**भावार्थ—**वे ही इस ससार में विद्वान् जन पिता के सदृश हार्वे कि जो प्रकृति आदि पदार्थों में व्याप्त सर्वान्तर्ध्यामी ब्रह्म को उत्तम प्रकार जानके अन्यो को जानावें ॥ २ ॥

**वि मे पुरुत्रा पंतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीधे पृथ्याणि ।**

**समिद्धे अग्राहृतमिह्देम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३॥**

**पदार्थ—**जिससे ( मे ) मेरी ( पुरुत्रा ) बहुत ( कामा ) अभिलाषाएँ ( अग्रहृत ) स्वामी को स्पष्ट कहने की इच्छा करती है उन ( पृथ्याणि ) पूर्व जनों

से मिद्ध किये गये ( विभि ) कर्मों को मैं ( अग्रहृत ) उत्तम प्रकार ( वि ) विशेष करके ( दीधे ) प्रकाश करके ( समिद्धे ) प्रदीप्त ( अग्नी ) अग्नि में जैसे ( देवानाम् ) उत्तम पदार्थों के मध्य में ( महत् ) बड़े ( एकम् ) सहाय रहित ( असुरत्वम् ) प्राणों के आधार ( अहृतम् ) मत्स्य को ( बवेम ) कहे उसको ( इत् ) ही सब लोग कहे ॥ ३ ॥

**भावार्थ—**मनुष्य लोग आत्मन्य को त्याग के पूर्व पुरुषों द्वारा किये हुए कर्मों का सेवन करके देवों के देव सबके आधार सत्यस्वरूप और दीपक से घट आदि के सदृश भीतर व्याप्त परमात्मा को साक्षात् देखके अन्य जनों के प्रति उपदेश देवे ॥३॥

**समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शयं शयासु प्रयुतो वनानु ।**

**अन्या वन्सं भरन्ति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जिन ( पुरुत्रा ) प्राचीन काल से प्रसिद्ध ( शयासु ) शयन करें जिनमें बिजुली आदि पदार्थ उनमें ( प्रयुतः ) बिभृत हुआ फिर मिल गया ( विभृत ) विशेष करके धारण किया गया ( समानः ) एक ( राजा ) प्रकाशमान सूर्य ( शयं ) शयन करना है ( वना ) किरणों को सेवन करना है ( अन्या ) भिन्न त्रिगुण स्वरूप प्रकृति ( माता ) माता ( वत्सम् ) पुत्र को धारण करती है और सबको ( क्षेति ) बसाती है वह ( देवानाम् ) सूर्यादिक वा विद्वानों के मध्य में ( महत् ) सत्कार करने योग्य ( एकम् ) द्वितीय रहित ( असुरत्वम् ) दूर करता है दुष्टों को जो उनका होना उसको आप लोग ( अनु ) शीघ्र जानिये ॥ ४ ॥

**भावार्थ—**हे मनुष्यो ! जिस से प्रकाशित हुए सूर्य आदि प्रकाशित होते हैं जो अत्यन्त अर्थात् प्रकृति में सब को उत्पन्न करके तथा धारण कर के माता के सदृश रक्षा करना है और जो यथार्थवक्ता विद्वानों के सत्कार करने योग्य है उस ब्रह्म की आप लोग उपासना करो ॥ ४ ॥

**आसित्पूर्वास्वपरा अनुरत्सद्यो जातासु तरुणीवन्तः ।**

**अन्तर्वतोः सुवते अग्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५॥२८॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो ( पूर्वासु ) प्राचीन काल में विद्यमान और ( स्वपरा ) समान दिन में ( जातासु ) उत्पन्न और ( तरुणीषु ) युवावस्थावालिनों के सदृश वर्तमान प्रजाओं के ( अन्तः ) मध्य में ( आसित् ) जो चारों ओर सर्वत्र बसता है वह ( अनुरत्स ) उपदेश देनेवाला वर्तमान है और जिसके उत्पन्न करने से ( अपराः ) उत्पन्न की जाती ( अन्तर्वतो ) मध्य में कारण विद्यमान है जिनमें उन ( अग्रवीताः ) नहीं व्याप्त प्रार्थना गणना से नाप सकने योग्य प्रजा ( सुवते ) उत्पन्न होती हैं वही ( देवानाम् ) उत्तम गुण वाले सूर्य आदिकों के मध्य में ( महत् ) सबसे बड़ा ( असुरत्वम् ) सबसे फेंकने वाले और ( एकम् ) चेतनमात्र स्वरूप परमात्मा की आप लोग सेवा करो ॥ ५ ॥

**भावार्थ—**हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न, उत्पन्न हो गई और उत्पन्न होने वाली प्रजाओं में व्याप्त धारण करने वाला अन्तर्यामी वर्तमान है उस परमात्मा की सेवा करो ॥ ५ ॥

**शयुः परस्ताब्ध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः ।**

**मित्रस्य ता बरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो ( परस्तात् ) दूसरे देश में ( शयुः ) व्याप्त होकर शयन करनेवाला ( द्विमाता ) दो वायु और आकाश माता है जिस धर्म के वह ( अबन्धन ) जो बन्धन रहित वह ( वत्स ) पुत्र के सदृश वर्तमान ( एक ) सहाय रहित ( नु, चरति ) शीघ्र चलता है ( अब ) इसके अनन्तर जो ( देवानाम् ) विद्वानों का ( महत् ) बड़ा ( एकम् ) सहाय रहित नेत्र ( असुरत्वम् ) फेंकनापन ( ता ) वे ( व्रतानि ) मत्स्यभक्षण आदि कर्म ( मित्रस्य ) मित्र और ( बरुणस्य ) सब में उत्तम और सगार के प्रबन्ध करनेवाले परमात्मा के हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ६ ॥

**भावार्थ—**हे मनुष्यो ! जो कुछ डग सरार में सूर्य आदि वस्तु जो इस ससार में धनक प्रकार की रचना हैं और जो चित्ररूप स्वाद आदि वर्तमान हैं और सब अपने अपने मण्डल में घूमते हैं प्रलय से प्रथम नहीं नष्ट होते हैं वे ये परमात्मा के कम हैं यह जानना चाहिये ॥ ६ ॥

**द्विमाता होता विदधेधु मन्नाळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।**

**प्र रण्यानि रण्यवाचो मरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जिस करके निर्माण किया गया ( द्विमाता ) दो वायु और आकाश हैं माता जिस सूर्य के वह ( होता ) लेने और देने वाला ( बुध्नः ) अन्तरिक्ष निवास का स्थान विद्यमान है जिसका वह ( विदधेधु ) जानने योग्य पृथिवी आदिकों में ( मन्ना ) जो उत्तम प्रकार प्रकाशमान है ( अबन्धु ) सबके मध्य केन्द्र स्थान जो कि ऊपर वर्तमान उस को ( अनु, चरति ) प्राप्त होता है । बसता वा बसाता ( रण्यवाचि ) सुन्दर और लोको में उत्पन्न हुआ को ( प्र, क्षेति ) बसता वा बसाता और जो ( देवानाम् ) विद्वानों में ( महत् ) बड़े ( एकम् ) सहाय रहित ( असुरत्वम् ) प्राणों में रमनेवाले को ( रण्यवाचः ) रमणीय भाषाएँ ( चरन्ते ) धारण वा पोषण करती है उस ही ब्रह्म की आप लोग सेवा करो ॥७॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सूर्य आदि जगत् को निर्माण धारण और प्रकाश करके पालन करता है और जो सर्वत्र बसता हुआ सबको अपने में बसाता है जिस एक ही को यथार्थ बोलने वाले विद्वान् लोग सेवते हैं उस ही की सब लोग उपासना करो ॥ ७ ॥

**शूरस्येव धुध्यतो भन्तमस्य प्रतीचीनं ददशे विश्वमायत् ।**

**अन्तर्मतिश्चरति निषिधं गोर्महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( अन्तर्मस्य ) समीप में वर्तमान ( धुध्यत ) प्रहार करते हुए ( शूरस्येव ) शत्रुओं के मारनेवाले के सदृश जहा ( प्रतीचीनम् ) पीछे से हुए ( आयत् ) प्राप्त होते हुए ( निषिधम् ) सम्पूर्ण ससार ( अन्तः ) मध्य में ( बधुषो ) बंध पड़ता है और ( गोः ) बाणों का ( महत् ) बड़ा ( निषिधम् ) अत्यन्त शासन करनेवाला ( देवानाम् ) विद्वानों ने ( एकम् ) सहाय रहित ( असुरत्वम् ) प्राणों में रमनेवाला ( मतिः ) बुद्धिमान् ( चरति ) प्राप्त होता है उस ही का ब्रह्म आप लोग जानें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे युद्ध करते हुए समीप में वर्तमान और शत्रु के नाशक धीर पुरुष के समीप में कायर मनुष्य तिरस्कृत हुए पुरुष के सदृश देखा जाता है वैसे ही सम्पूर्ण शक्ति वाले अनन्त परमात्मा के समीप में सूर्य आदिक जगत् बुद्ध और तिरस्कृत है और जो जगदीश्वर विद्या के लज्जाने रूप चारों वेदों की बाणों के आभूषण हुआ का शासन करता है उस ही को इष्ट आप लोग मानो ॥ ८ ॥

**नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महार्चरति रोचनेन ।**

**बधूषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( आसु ) इन प्रजाओं में ( अन्तः ) भीतर ( नि, वेवेति ) अत्यन्त व्याप्त है ( पलितः ) खेत कंशों से युक्त ( दूत ) समाचार देने वाले के सदृश ( महत् ) व्याप्त हुआ ( रोचनेन ) अपने प्रकाश से ( चरति ) प्राप्त है ( बधूषि ) रूपों को ( बिभ्रत् ) धारण करता हुआ ( न ) हम लोगों को ( अभि ) सम्मुख ( बि, चष्टे ) विशेष करके उपदेश देता है वही ( देवानाम् ) विद्वान् हम लोगों का ( एकम् ) द्वितीय से रहित ( असुरत्वम् ) दोषों का फेंकना वाला ( महत् ) बड़ा पूज्य है आप लोग भी इसकी पूजा करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर योगियों को वायु के द्वारा बृद्ध दूत के सदृश दूर देश में वर्तमान समाचार वा पदार्थ को जानाता है, और अन्तर्यामी हुआ अपने प्रकाश में सबको प्रकाशित और जीवों के कर्मों का जानकर फलों को देता है अन्तःकरण में वर्तमान हुआ न्याय्य और अन्याय्य करने और न करने को बिनाता है, वही हम लोगों को अतिशय पूजा करने योग्य ब्रह्म वस्तु है, आप लोग भी ऐसा जानो ॥ ९ ॥

**बिष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।**

**अग्निष्ठा विश्वा भुवनानि वेद महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥१०॥ २९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अग्निः ) अग्नि रूप विजुली के सदृश स्वयं प्रकाशित ( बिष्णुः ) चर और अचर ससार में व्यापक परमात्मा ( गोपा ) सब की रक्षा करनेवाला परमेश्वर जिन ( परमम् ) उत्तम ( पाथः ) पृथिवी आदि अन्न और ( प्रिया ) कामना करने और सेवा करने योग्य ( अमृता ) नाश से रहित प्रकृति आदि और ( विश्वाभि ) जन्म स्थान और नाम को ( धामान् ) धारण और पुष्ट करना हुआ ( पाति ) रक्षा करना है ( ता ) उन ( बिष्वा ) सम्पूर्ण ( भुवनानि ) निवासस्थानों को ( वेद ) जानता है उस ( देवानाम् ) पृथिवी आदिकों के मध्य में ( महत् ) व्यापक हुए ( एकम् ) द्वितीय रहित ब्रह्म ( असुरत्वम् ) सबके फेंकनेवाले को आप लोग जानो ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो इस ससार का उत्पन्न, धारण, पालन और नाश करनेवाला है और सब जीवों के हित के लिए अनेक प्रकार के पदार्थों का निर्माण करता है उस ही की आप लोग सेवा करो ॥ १० ॥

**नानां चक्राते यस्याः बधूषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।**

**श्यावी च यदहंषी च स्वसारौ महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥११॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( देवानाम् ) पृथिवी आदिकों के समीप से ( महत् ) बड़ा ( एकम् ) द्वितीय रहित ( असुरत्वम् ) दोषों को फेंकने वाला है उस से व्यवस्थापित ( यत् ) जो ( श्यावी ) अन्धकाररूप ( यस्याः ) जो सम्पूर्ण प्राणियों को निद्रा से युक्त करती है वह रात्रि ( च ) और ( अहंषी ) प्रकाशरूप प्रातःकाल ( स्वसारौ ) भगिनी के सदृश वर्तमान हुए ( नाना ) अनेक प्रकार के ( बधूषि ) रूपों को ( चक्राते ) करते हैं ( तयोः ) उनका ( अन्धत् ) अन्ध प्रातःकाल रूप ( रोचते ) प्रकाशित होता है ( च ) और ( कृष्णम् ) काला वे काम ( अन्धत् ) दूसरा वर्ण रात्रिरूप जो आवरण करता है वह जिससे प्रसिद्ध उसको ब्रह्म जानो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो परमेश्वर पृथिवी और सूर्य के घुमने की व्यवस्था को न करे तो रात्रि और दिन कैसे होंगे और जिस जगदीश्वर ने पुरुषार्थ के लिए दिन और रात्रि बनाने के लिए रात्रि रची उस ईश्वर का हृदय में सब ध्यान करो ॥ ११ ॥

**माता च यत्र दृहिता च धेनु सर्वदुष्टे धापयते समाची ।**

**अतस्य ते सदसीके अन्तर्महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥१२॥**

पदार्थ—हे राजन् ! मैं ( ते ) आपकी ( सवसि ) ममा में जैसे ( यत्र ) जिस समय ( माता ) मान को देनेवाली माता के सदृश रात्रि ( च ) और ( दृहिता ) बन्धा के सदृश प्रातःकाल ( च ) और ( समाची ) उत्तम प्रकार प्राप्त होती हुई ( सर्वदुष्टे ) पालन करनेवाले दुष्ट आदि के सदृश रस की पूर्ति करने और ( धेनु ) धेनु के सदृश रस को देनेवाली ( अतस्य ) जल के सदृश सत्य के सम्बन्ध से ( धापयते ) पिलाती हैं वैसे ही सभा के ( अन्तः ) मध्य में वर्तमान हुआ ( अतस्य ) जल के सदृश सत्य का ( देवानाम् ) अष्ट विद्वानों में ( महत् ) बड़े ( एकम् ) द्वितीय रहित ( असुरत्वम् ) दोषों को दूर करनेवाले की ( ईदं ) स्तुति करता हूँ ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो सभ्य जन परमेश्वर से डर के उस की आज्ञा के अनुसार जैसे रात्रि और दिन सम्पूर्ण ससार के नियम पूर्वक पालनकर्ता होते हैं वैसे ही सभा में धर्म के विजय और अधर्म के पराजय से प्रजाओं को आनन्दित करें ॥ १२ ॥

**अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाप कया भुवा नि दधे धेनुरुधः ।**

**अतस्य सा परमापिन्वतेष्ठा महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥१३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( देवानाम् ) उत्तम पृथिवी आदिकों के मध्य में जो ( महत् ) बड़ा ( एकम् ) द्वितीय रहित ( असुरत्वम् ) दोषों को दूर करनेवाला वर्तमान है उससे युक्त ( धेनुः ) गौ के सदृश वर्तमान रात्रि और ( ऊधः ) प्रातःकाल ( अन्यस्या ) दोनों के मध्य में एक किसी के ( वत्सम् ) बछड़े के सदृश पालन करने योग्य को ( रिहती ) नाश करती हुई ( कया ) किस ( भुवा ) पृथिवी के माप ( मिमाप ) नापती है जो ( नि, दधे ) धारण करती है ( सा ) वह ( अतस्य ) सत्य के ( पयसा ) दुग्ध के सदृश जल के साथ ( इष्ठा ) पृथिवी ( अपिन्वत ) सींचनी वा सेवन करती है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा रात्रि और दिन से पृथिवी में वर्तमान पदार्थों को शयन और जागरण प्रयोजन जिन का उन प्रकाश और अन्धकार और कृष्टि से गौ के सदृश रक्षा करता है उस ही की पूजा करो ॥ १३ ॥

**पथा वस्ते पुरुषा बधूष्युर्वा तस्थौ ज्यवि रेहिहाया ।**

**अतस्य सद्य वि चरामि विद्वान्महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( विद्वान् ) विद्यायुक्त मैं जो ( अतस्य ) सत्य और ( देवानाम् ) विद्वानों में ( महत् ) बड़े ( एकम् ) द्वितीय रहित ( सद्यः ) स्थान और ( असुरत्वम् ) दोषों के दूर करनेवाले को ( वि चरामि ) प्राप्त होता हूँ उस से नियमित ( पथा ) अश्वों में हान वाली रात्रि सब को ( वस्ते ) आच्छादित करती घेरती है ( अन्यः, अज्यवि ) कार्य कारण और जीव नामक तीन वस्तुओं की रक्षा करनेवाले और ( बधूषि ) रूपों को ( रेहिहाया ) अत्यन्त चाटती हुई ( ऊर्वा ) उत्तम ( पुरुषा ) बहुत रूपयुक्त प्रातःकाल ( तस्थौ ) स्थित है उसको वे और आप लोग जानें ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे दिन अनेक रूपों का दिवाता है वैसे ही रात्रि सबको घेरती है, ये ही मर्य के कारण से उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवाले को जानकर सब के बनाने वाले परमेश्वर को सुखपूर्वक जानो ॥ १४ ॥

**पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत् ।**

**सत्रीचीना पथ्याः सा विपूची महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥१५॥ ३०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( देवानाम् ) विद्वानों का जो ( महत् ) बड़ा ( एकम् ) द्वितीय रहित ( असुरत्वम् ) दोषों का दूर करनेवाला है और जिससे ( दस्मे ) नाश होनेवाले ( पदे इव ) पैरों के सदृश ( निहिते ) धारण किये गये रात्रि और दिन वर्तमान है जो अन्य ( सत्रीचीना ) एक साथ सेवन करती हुई ( पथ्या ) अपनी कक्षा को त्याग के अन्यत्र नहीं जानेवाली ( सा ) वह ( विपूची ) व्याप्त पदार्थों का सेवन करती है ( तयोः ) उनके ( अन्तः ) मध्य में ( अन्धत् ) दूसरा ( गुह्यम् ) गुप्त ( अन्यत् ) अन्य ( आविः ) रक्षा करनेवाला है उस सब को जानो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य लोग दो पैरों से चलते हैं वैसे ही रात्रि और दिन चलते हैं और जैसे दिन पथ्य है वैसे रात्रि पथ्य नहीं होती है । इसी प्रकार मर्यादित्यमी ब्रह्म को त्याग करके अन्य उपासित हुआ पथ्य नहीं होता है ॥ १५ ॥

**आ धेनवो धुनयन्तामक्षिः सर्वदुष्टाः क्षया अभ्यदुधः ।**

**नव्यानघ्या युवतयो भवन्तीर्महदेवानामसुरत्वमेकम् ॥१६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों के ( सर्वदुष्टा ) सब मनोरथों की पूर्ण करनेवाली ( क्षया ) शयन करती सी हुई ( अभ्यदुधः ) नहीं किसी करके भी बहुत दुग्धी गई ( धेनवः ) बाणियाँ ( अक्षिः ) बांसाधों से भिन्न ( अन्यः, अन्यः ) नवीन नवीन ( भवन्ती ) होती हुई ( युवतयो ) यौवनावस्था को प्राप्त ब्रह्मादिपृथिवी

जैसे जैसे ( देवानाम् ) विद्वानो मे ( महत् ) बड़े ( एकम् ) द्वितीय रहित ( असुरत्वम् ) दोषों के दूर करनेवाले को ( आ, पुन्यन्ताम् ) अच्छे प्रकार कपाइये ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रथम अवस्था में वर्तमान विद्या पक्षी हुई बाधाभिन्न बहुवारिणी स्त्रियाँ अपने सवृण पतियों को प्राप्त होकर भ्रान्तित होती हैं वैसे ही सर्व विद्याओं से युक्त वाणिज्यो को प्राप्त होकर विद्वान् लोग सुखी होते हैं ॥ १६ ॥

यदन्यासु इषभो रोरबोति सो अन्यस्मिन्पुये नि दधाति रेतः ।

स हि क्षपावन्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( इषभः ) बलयुक्त सूर्य ( अन्धत् ) रात्रि और प्रातःकालो मे ( रोरबोति ) अत्यन्त शब्द करता है ( सः ) वह ( अन्यस्मिन् ) अन्य ( पुये ) समूह में चन्द्र आदिको मे ( रेतः ) पराक्रम का ( निदधाति ) स्थापन करता है ( हि ) जिससे कि ( सः ) वह ( क्षपावन् ) रात्रिवान् अर्थात् रात्रि जिसकी सम्बन्धनी होती और ( सः ) वह ( भगः ) ऐश्वर्यों का दाता सूर्य तथा ( सः ) वह ( राजा ) प्रकाशमान होता ( देवानाम् ) विद्वानो मे ( महत् ) बड़ा ( एकम् ) एक यह ( असुरत्वम् ) दोषों को दूर करनेवाला प्राप्त होने योग्य गुण होता है ॥ १७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य रात्रि के अन्त और दिन के आदि मे सर्व प्राणियों को निरन्तर जगाके शब्द करा और व्यवहार कराके लक्ष्मियों को प्राप्त कराता है और रात्रि मे चन्द्र आदिको मे किरणों को रक्त के प्रकाश कराता सो यह प्रकाशमान जगदीश्वर से उत्पन्न किया गया ऐसा जानना चाहिए ॥ १७ ॥

अब ईश्वर के गुणों का वर्णन अगले अर्थों में करते हैं—

वीरस्य नु स्वर्च्यं जनासः प्र नु वीचाम विदुरस्य देवाः ।

वीर्यं युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८॥

पदार्थ—हे ( जनासः ) विद्वानो मे प्रकट हुए मनुष्यो ! हम ( अस्य ) इस ( वीरस्य ) शौर्य्य आदि गुणों को प्राप्त हुए शूर का ( स्वर्च्यम् ) अति उत्तम अश्वविषयक अच्छे सज्जन का ( नु ) शीघ्र ( प्र, वीचाम ) उपदेश देवें जो ( युक्ता ) समुक्त हुए ( देवाः ) विद्वान् जन ( देवानाम् ) विद्वानो मे ( महत् ) बड़े ( एकम् ) एक ( असुरत्वम् ) दोषों के दूर करने को ( विदुः ) जानते और जो ( वीर्यं ) छ प्रकाश की समुक्त इन्द्रिया और ( पञ्चपञ्चा ) पांच पांच प्राण जिस विषय को ( आ, वहन्ति ) प्राप्त होते हैं उसको जानते हैं उनके प्रति हम लोग इस ब्रह्म का ( नु ) शीघ्र उपदेश देवें ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी प्राप्ति मे पांच प्राण निमित्त और जिसको सब योगी लोग समाधि से जानते हैं उसी की उपासना मृत्यो के वीरपन को उत्पन्न करनेवाली है ऐसा हम लोग उपदेश देवें ॥ १८ ॥

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुषोर्ब्रजः पुरुधा जजान ।

इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( त्वष्टा ) प्रकाश करनेवाला परमेश्वर ( देवः ) प्रकाशमान ( विश्वरूपः ) जिससे सम्पूर्ण रूप है ऐसे ( सविता ) प्रेरणा करनेवाले सूर्यमण्डल के सवृण ( ब्रजाः ) उत्पन्न हुए प्राणी अप्राणी को ( पुषोर् ) पुष्ट करता है और ( इमा ) इन ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( भुवनानि ) लोकों को ( च ) भी ( पुष्या ) बहुत प्रकार से ( जजान ) उत्पन्न करता है ( अस्य ) इस परमेश्वर का यही ( देवानाम् ) विद्वानो के बीच ( महत् ) बड़ा ( एकम् ) एक ( असुरत्वम् ) दोषों को दूर करनेवाला गुण है ऐसा जानना चाहिए ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य जगत् का पालन करता है वैसे ही जगदीश्वर सूर्य आदि अनेक प्रकार ससार को बनाकर रखा करता है। यही परमात्मा का बड़ा आश्चर्य्य कर्म है ऐसा जानना चाहिये ॥ १९ ॥

मही सपैरक्चन्वा समाधी उभे ते अस्य वसुना न्यूहे ।

गुण्ये वीरो विन्दमानो वसुनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर ( ते ) उन ( उभे ) दोनों ( मही ) बड़ी ( समीची ) उत्तम प्रकार प्राण अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( चन्वा ) सेना से जैसे जैसे ( तम्, ऐरत् ) प्रेरणा करता है वह दोनों ( अस्य ) इसके ( वसुना ) ब्रह्मों के साथ ( गृह्यते ) निश्चित स्वरूप को प्राप्त हुई हैं ( देवानाम् ) विद्वानों के उस ( महत् ) बड़े ( एकम् ) एक ( असुरत्वम् ) दोषों के दूर करनेवाले को और ( वसुनि ) धनो को ( विन्दमान ) प्राप्त होता हुआ ( वीर ) बल से युक्त मैं ब्रह्म का नित्य ( गृह्यते ) अवगण करूँ उसको आप लोग भी निरन्तर सुन के उन सबों को प्राप्त हजिये ॥ २० ॥

भाषार्थ—कोई भी पुरुष परमेश्वर की आज्ञापालन के बिना बड़े ऐश्वर्य्य को नहीं प्राप्त होता है और यथार्थवक्ता पुरुषों से सुने बिना परमात्मा का बोध किसी को भी नहीं प्राप्त होता है, तिससे सब लोगों को आह्वय कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके ऐश्वर्य्यवान् हों ॥ २० ॥

इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।

पुरः सदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( नः ) हम लोगों के ( इमां ) इस अन्तरिक्ष ( च ) और ( पृथिवीम् ) भूमि को समीप ( विश्वधायाः ) सम्पूर्ण को धारण करनेवाली पृथिवी उनके ( हितमित्रः ) मित्रों को धारण करनेवाले ( राजा ) विद्या और विनय से प्रकाशमान अधिपति मे ( नः ) सदृश ( उप, क्षेति ) वसता है और ( पुरःसदः ) आगे चलने और ( शर्मसदः ) गृह मे ठहरनेवाले ( वीराः ) आनन्दन से युक्त शूरों के ( नः ) तुल्य विजय केता है वही ( देवानाम् ) प्रकाशमान राजा लोगों मे ( महत् ) बड़ा ( एकम् ) सहायरहित ( असुरत्वम् ) शत्रुओं को दूर करनेवाला हम लोगों से उपासना करने योग्य है ॥ २१ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो धर्मात्मा राजा के सवृण समार मे निवास कराता और अनुबोध के जाननेवाले वीर के सदृश विजय विलाता है वही ब्रह्म हम लोगों को उपासना करने योग्य है ॥ २१ ॥

निषिध्वं गीस्त ओषधीरुतापो रयि त इन्द्र पृथिवी विमर्ति ।

सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२॥१॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य कु देनेवाले ईश्वर ! जैसे ( ते ) आप की सृष्टि में ( पृथिवी ) भूमि ( निषिध्वरी ) अत्यन्त यज्ञल करनेवाली ( ओषधीः ) सोमलता आदि ओषधियों को ( विमर्ति ) धारण वा पोषण करती है ( तम् ) और ( ते ) आप के ( आयः ) जल ( रयिम् ) लक्ष्मी को धारण करते हैं उसी ( देवानाम् ) सूर्य्य आदिकों मे ( महत् ) सबसे बड़े ( एकम् ) द्वितीय रहित ( असुरत्वम् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले को प्राप्त होकर ( ते ) आप के ( वामभाजः ) उत्तम कर्मों के सेवन करने वा श्रेष्ठ भोग भोगनेवाले ( सखायः ) मित्र हम लोग ( स्याम ) हों ॥ २२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जगदीश्वर ! जिन आपने हम लोगों के सुख के लिए सृष्टि में अनेक प्रकार की ओषधियाँ और जल रखे उन आप के हम लोग उपासना करनेवाले हों और आप को छोड़ के दूसरे की उपासना कभी न करें ॥ २२ ॥

इम सूक्त मे दिन, रात्रि, विद्वान्, आन्तरिक्ष, पृथिवी, राजधर्म और ईश्वर के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ मञ्जुति जाननी चाहिए ॥

यह आखिरी की संहिता के तीसरे अष्टक में तीसरा अध्याय इकतीसवाँ अर्ध और तीसरे मण्डल में पञ्चपनवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥



अथ तृतीयाष्टके चतुर्थाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितुर्दितानि परां सुव । यद्गर्भं तन्न आ सुव ॥१॥

आवाञ्छार्थस्य यद्गर्भं तन्न आ सुव । यद्गर्भं तन्न आ सुव ।

विश्वे देवा देवताः । १, ३, ५, निधुतिरिन्द्रः । २, ४ विराट् त्रिकुटम् ।

५, ७ त्रिकुटम् । देवताः स्वराः । २ धुरिष् महितवर्धनः ।

यजुषः स्वराः ॥

अब अष्टमवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम अर्थ में ईश्वर के गुणों को कहते हैं—

न ता मिमन्ति मायिनो न धीरां व्रता देवानां प्रथमा प्रजाणि ।

न रोदसी अद्भुतां वेद्याभिर्न पर्वता निनमं तस्थिवांसः ॥१॥



अब ऊर्ध्व और अधःस्थान विषयक शिल्पिजनों के कृत्य को कहते हैं—

**सुयुग्म्वहन्ति प्रति वामुतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।**

**जरेयामस्मद्भि पणैर्मेनीषां युवोर्वश्चक्रुमा यातमर्वाक् ॥२॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! ( सुयुग् ) उत्तम कृत्य के योगकर्ता-जन जिन ( ऊर्ध्वाः ) ऊपर को पहुँचाने वाली ( मेधाः ) बुद्धियो और ( ऋतेन ) सत्य से ( वाम् ) आप दोनों को ( वहन्ति ) प्राप्त होते हैं उनको हम लोगो के ( प्रति ) प्रति पहुँचाओ जो ( पितरेव ) माता और पिता के सदृश पालन करने वाली ( भवन्ति ) होती हैं आप दोनों ( जरेयाम् ) उनकी स्तुति करो । ( अस्मत् ) हमारे लिए ( वि, परो ) व्यवहार की ( मनीषाम् ) बुद्धि को ( आ ) सब प्रकार ( यातम् ) प्राप्त होओ ( अर्वाक् ) नीचे स्थानो में ( युवो ) आप दोनों की ( अश् ) रक्षा हम लोग ( चक्रुम ) करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे वायु और किरणें सूर्य आदि को पहुँचाती हैं वैसे ही उत्तम बुद्धि के सदृश वर्तमान स्त्रियाँ सुख का पहुँचाती हैं । और जो विद्वान् लोग मनुष्यों में पिता के सदृश वर्तमान हैं उनके प्रति सबको चाहिए कि पुत्र के सदृश वर्तन कर और सब व्यवहार को जानके यथावत् करें ॥ २ ॥

अब अग्नि आदि पदार्थ जालित वानविषयक शिल्पिकृत्य को कहते हैं—

**सुयुग्मिरश्वे सुहता रथेन दस्त्राविमं मृणुतं श्लोकमद्रैः ।**

**किमङ्ग वां प्रत्यवर्ति गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३॥**

पदार्थ—हे ( रथी ) दुखों को नाश करनेवाले ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्रमा के सदृश वर्तमान अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों ( सुयुग्मिः ) उत्तम प्रकार जोड़े गए ( अश्वे ) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त ( सुहता ) उत्तम ( रथेन ) विमान आदि वाहन में ( अद्रै ) मेघ के सदृश हम लोगो की ( इमम् ) इस ( श्लोकम् ) वाणी को ( मृणुतम् ) सुनो और ( अङ्ग ) हे पूर्वोक्त अध्यापक उपदेशको ! जो ( वाम् ) तुम दोनों को ( गमिष्ठा ) प्रत्यन्त चलनवाले ( पुराजा ) प्रथम उत्पन्न हुए ( विप्रास ) बुद्धिमान् विद्वान् लोग ( आहु ) कहते हैं वे आप दोनों ( प्रति, अश्विन् ) अवर्तमान अर्थात् चलन्य पदार्थ का ( किम् ) क्यो नहीं प्राप्त हो किन्तु प्राप्त ही होवें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग अग्नि आदि विद्या से चलाये वाहनो में व्यवहार करें वे किस किस ऐश्वर्य को न प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

**आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनांसो अश्विना हवन्ते ।**

**इमा हि वां गोक्ष्मजी का मधूनि प्र मित्रासो न ददुस्त्रो अग्रे ॥४॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक जन ! आप दोनों को ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( जनांस ) प्राणि मनुष्य ( हवन्ते ) ग्रहण करने हैं ( अग्रे ) और प्रथम ( हि ) कि जिससे ( इमा ) इन ( गोक्ष्मजीका ) गोघो के दुग्ध आदि से मिले हुए ( मधूनि ) सोमलारूप आपधिया के रसो का ( मित्रास ) मित्र जागो के ( न ) सदृश ( प्र, बहु ) देवे । उनको तथा ( उत्र ) गोघो को ( वाम् ) आप दोनों ( एवं ) शीघ्र पहुँचानेवाले बिजुली आदि से चलाये गये वाहनो से ( कत ) कब ( आ, गतम् ) प्राप्त हुए ( चित् ) भी ( आ ) सब प्रकार ( मन्येथाम् ) जानिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वाना की योग्यता है कि जो प्रीति से धार्मिक उत्तम मेवक विद्यार्थी वा श्रोताजन समीप आवे उनको उत्तम विज्ञान आदि देवें । जिससे सब मनुष्य सब क साथ मित्रा के सदृश वर्तन करें ॥ ४ ॥

**तिरः पुरु चिदश्विना रजास्याङ्गुषो वां मघवाना जनेषु ।**

**एह यातं पथिभंद्वयानैर्दस्त्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥३॥**

पदार्थ—हे ( रथी ) क्लेश के नाशकर्ता ( मघवाना ) प्रत्यन्त उत्तम धन-युक्त ( अश्विना ) शिल्पविद्या के जाननेवाले अध्यापक और उपदेशको ! जो ( वाम् ) आप दोनों ( देवयाने ) विद्वान् लोग जिनसे चलते उन ( पथिभि ) मार्गों से ( पुरु ) बहुत ( रजांसि ) लोको को ( तिरः ) निर्धे मार्ग से ( आ, यातम् ) प्राप्त होवें तो ( इह ) यहाँ ( वाम् ) तुम दोनों को ( जनेषु ) मनुष्यों में ( इमे ) ये ( मधूनाम् ) माधुर्य गुणो से युक्त पदार्थ सम्बन्धी ( निधय ) धनो के समूह प्राप्त होवें । और ( आङ्गुष ) विद्वान् ( चित् ) भी प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो लोग विद्वानो के मार्गों से पदार्थ विद्याओ का खोज करें वे सम्पूर्ण विद्याओ को प्राप्त हो तथा जन स्थल और अन्तरिक्षो में जा आ और लक्ष्मी-वान् हो वारिष्ठ्य का तिरस्कार करके धनवान् होते हुए धन्यजनों को भी ऐसे ही करें ॥ ५ ॥

जो जिल्पी विद्वानों के साथ और लोग परस्पर मित्रता कर, तो क्या पायें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नैरा द्रविष्यं जहाव्याम् ।**

**पुनः कुष्णानाः सख्या शिवानि मध्वा मधेम सह नू सभानाः ॥६॥**

पदार्थ—हे ( वरा ) नायक सभा और सेना के ईशो ! ( वाम् ) आप दोनों ( पुराणम् ) प्राचीन काल से सिद्ध ( ओकः ) सब ऋषियों में सुख देनेवाले स्थान के तुल्य ( शिवम् ) कल्याण करनेवाले ( सख्यम् ) मित्र के कर्म को प्राप्त हुईये । और ( जहाव्याम् ) त्याग करनेवाले की नीति में ( युवोः ) तुम दोनों को ( द्रविष्यम् ) घन प्राप्त हो ( पुनः ) फिर ( शिवानि ) सुख करने वाले ( सख्या ) मित्र के कर्मों को ( कुष्णानाः ) करते हुए ( सभानाः ) तुल्य और उत्तम गुण कर्म स्वभाववाले हम लोग ( मध्वा ) मधुरभाव के ( सह ) साथ ( नू ) शीघ्र ( मधेम ) आनन्द करें ॥६॥

भाषार्थ—जो विद्वान् और अविद्वान् लोग परस्पर मैत्री करें वे अनादिसिद्ध कल्याणकारक ब्रह्म ऐश्वर्य और विज्ञान को प्राप्त होकर धार्मिक होते हुए दुष्ट व्यसनों का त्याग करके सदा ही सुखी होवें ॥६॥

अब शिल्पविद्या उपदेशार्थ आज्ञा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अश्विना वायुना युवं सुवक्षा नियुङ्क्षि सजोषसा युवाना ।**

**नासंस्था तिरोअद्र्यं जुषाणा सोमं पिबतमसिधां सुदान् ॥७॥**

पदार्थ—हे ( युवाना ) यौवनावस्था को प्राप्त ( नासंस्था ) असत्य आचार से रहित ( सुवक्षा ) उत्तम प्रकार चतुर ( सजोषसा ) तुल्य प्रीति के देने वाले ( तिरोअद्र्यम् ) तिच्छे दिनों में उत्तम की ( जुषाणा ) सेवा करते हुए ( अश्विना ) गृहस्थ ( सुवान् ) उत्तम पदार्थ के देने ( अश्विना ) शिल्पविद्या के पढ़ाने और पढ़ने वाले स्वामी और सेवको ! ( युवम् ) आप दोनों ( वायुना ) पवन से ( नियुङ्क्षिः, ष ) नियत किये हुए भी वाहनो में स्थित हो और आकर ( सोमम् ) बड़ी ओषधि के रस का ( पिबतम् ) पान कीजिये ॥७॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! आप हिंसा आदि प्रथम व्यवहार को त्याग के वायु बिजुली आदि पदार्थ विद्याओ को जान अन्य जनो के लिए विद्या आदि दे अनेक पूर्ण ब्रह्मचर्य का सेवन करके अतिकाल जीओ ॥७॥

अब शिल्पविद्यासिद्ध वान से जाने आने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अश्विना परि वामिषः पुरुचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृधाः ।**

**रथो ह वामुतजा अद्रिजुतः परि यावांमृथिवी याति सद्यः ॥८॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सम्पूर्ण विद्याओ में व्याप्त रहते हुए यदि ( वाम् ) आप दोनों को ( ऋतजा ) सत्य से उत्पन्न ( अद्रिजुत ) मेघ में भीष्ट जानेवाला ( रथः ) वाहन ( यावांमृथिवी ) भूमि और प्रकाश को ( सद्यः ) शीघ्र ( परि, याति ) सब ओर पहुँचाता है तो उससे ( वाम् ) आप दोनों को ( ह ) निश्चय कर ( गीर्भिः ) वाणियों से जैसे ( अमृधाः ) अध्यापक और उपदेशक ( यतमानाः ) प्रयत्न करते प्राप्त हो वैसे ( पुरुचीः ) सुखो को पहुँचाने वाली ( इषः ) इच्छा-सिद्धियों को ( परि, इषु ) सब ओर प्राप्त होवें ॥८॥

भाषार्थ—जो लोग विमान आदि यानो का अग्नि आदि से रचते हैं वे अभीष्ट सुखो का प्राप्ति होकर जहा इच्छा हो शीघ्र जा सकने हैं ॥८॥

अब शिल्पविद्याफल को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अश्विना मधुषुत्समो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।**

**रथो ह वां भूरि वर्षः करिंक्रस्तुतावंतो निष्कृतमार्गमिष्टः ॥९॥४॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) सब के प्रधीन और सेना के प्रधीन ! जो ( ह ) निश्चय ( वाम् ) आप दोनों का ( रथः ) ( भूरि ) बड़े ( वर्षः ) रूप से युक्त ( सुतावंत ) उत्पन्न ऐश्वर्य कोश के ( निष्कृतम् ) सिद्ध हुए विषय को ( आगमिष्टः ) अतिशय करके प्राप्त होनेवाला ( करिंक्र ) निगररकारी है उससे जो ( मधुषुत्समः ) मीठे रसो को निचोड़ने वाला ( युवाकुः ) मिला और अनमिला ( सोम ) ऐश्वर्य का लाभ है ( तम् ) इस की ( दुरोणे ) गृह में ( यातम् ) रक्षा कीजिए और धन्य देश से अपने देश में ( आ, गतम् ) आइए ॥९॥

भाषार्थ—जो मनुष्य शिल्पविद्या से अनेक कलायन्त्रो का निर्माण करके वाहन आदि की रचते हैं वे अपने गृह कुल और देश में पूर्ण ऐश्वर्य कर सकते हैं ॥९॥

इस सूक्त में अश्वि शब्द से शिल्पीजनों का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अष्टावनवां सूक्त और चौथा अर्थ समाप्त हुआ ॥

५६

अथ नववर्ष्यकोनकधितसत्य सूक्तस्य विद्यामित्र ऋषिः । मित्रो देवता ।

१, २, ५ त्रिविष्टप । ३ निष्पुत्रिविष्टपः । देवतः स्वराः ।

४ भूरिष्यद्विष्टपः । पञ्चमः स्वराः । ६, ९ निष्पुत्रिविष्टपः ।

७, ८ नायकी ऋषिः । ऋषिः स्वराः ॥

अब जब मनुष्य को उन सबके सुख का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मित्रगुणों का उपदेश करते हैं—

**मित्रो जनान्यातयति ब्रह्मणो मित्रो बाधार पृथिवीमुत यासु ।**

**मित्रः कृष्टीरनिमिषामि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( ब्रह्मण ) उपदेश से प्रेरणा करता हुआ (मित्रः) सब का मित्रजन ( जनान् ) मनुष्यों को ( अनिमिषा ) दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से ( यातयति ) पुरुषार्थ कगता जो ( मित्रः ) सूर्य के समान परमात्मा मित्र ( पृथिवीम् ) भूमि ( उत ) और ( यासु ) सूर्यलोक को दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से ( बाधार ) धारण करता और जो ( मित्रः ) सब का मित्र ( कृष्टीः ) जीवने वा जीतने वाली मनुष्य रूप प्रजाओं को दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से ( अनिमिषा ) सब प्रकार उपदेश देता है उस ( मित्राय ) उक्त सर्व व्यवहार को चलानेवाले मित्र के लिए ( घृतवत् ) बहुत घृत आदि से युक्त ( हव्यम् ) हविष्याम्न ( जुहोत ) दीजिए ॥१॥

भाषार्थ—जो मनुष्य लोग सत्य का उपदेश करने सत्य विद्या देने मित्रता रखने सब को धारण करने वाले परमात्मा और सब के व्यवस्थापक राजा का सत्कार करते हैं वे ही सब के मित्र हैं ॥१॥

अब ईश्वर और आप्त विद्वान् के मित्रपन को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**प्र स मित्रं भर्त्सो अस्तु मयस्वान् यस्त आदित्य शिष्यति व्रतेन ।**

**न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमहो अरनोत्यन्तितो न दुरात ॥२॥**

पदार्थ—हे ( मित्र ) मित्र यथार्थवक्ता विद्वान् वा जगदीश्वर ! ( य ) जो ( भर्त्सोः ) मनुष्य ( प्रयत्नात् ) प्रयत्न वाला ( अस्तु ) हो और हे ( आदित्य ) अविनाशित्वरूप ! जो मनुष्य ( ते ) आप के ( व्रतेन ) कर्म से जैसे जैसे अन्य जनों को ( प्र, शिष्यति ) विद्या ग्रहण कराता वा आप ग्रहण करता है ( सः ) वह ( त्वोतः ) आप से रक्षित अन्य जनों से ( न ) न ( हन्यते ) मारा जाता ( न ) और न ( जीयते ) जीता जाता है ( एवम् ) हमको ( अन्तितः ) समीप से ( अहः ) पाप ( न ) नहीं ( अर्नोति ) प्राप्त होता और ( न ) न इस को ( दुरात् ) दूर से पाप प्राप्त होता है ॥२॥

भाषार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता और स्वामी के गुण कर्म और स्वभाव के मनुष्य अपने गुण कर्म और स्वभावों को कर के सत्य न्याय से सब को शिक्षा करते हैं वे पापरहित धर्मात्मा होकर यथार्थवक्ता और स्वामी से रक्षित हुए दुष्टों से नाश तथा पराजय को प्राप्त नहीं हो सकने और न वे दूर वा समीप से पक्षपात से पाप का सेवन करते हैं ॥२॥

**अनवीबास इक्ष्वा मदन्तो मितव्रजो वरिमिषा पृथिव्याः ।**

**आदित्यस्य व्रतमुपसियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचर्य से ( अनवीबासः ) शरीर और आत्मा के रोग से रहित ( इक्ष्वा ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा पृथिवी के राज्य से ( अवन्तः ) आनन्दित होने हुए ( मितव्रजः ) और नपी जङ्घाओं वाले ( पृथिव्याः ) भूमि और ( आदित्यस्य ) सूर्य के ( वरिमिषः ) बहुत शील और सत्य से युक्त ( व्रतम् ) धर्मा वा न्यायप्रकाश करनेवाले कर्म को ( आ, उपसियन्तः ) प्राप्त होते हुए ( वयम् ) हम लोग ( मित्रस्य ) सब के मित्र ईश्वर वा यथार्थवक्ता पुरुष की ( सुमती ) श्रेष्ठ भाषा वा बुद्धि में ( स्याम ) होंगे जैसे आप लोग भी होमो ॥३॥

भाषार्थ—जो लोग परमेश्वर और यथार्थवक्ता पुरुषों के साथ मित्रता कर और धर्मा आदि विद्या न्याय के प्रकाश आदि गुणों का स्वीकार करके धर्मयुक्त मार्ग में वर्तमान हैं वे ही परमेश्वर और यथार्थवक्ता पुरुषों के प्रिय होते हैं ॥३॥

**अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुसत्रो अंजनिष्ठ वेधाः ।**

**तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सीमनसे स्याम ॥४॥**

पदार्थ—सब को जो ( अयम् ) यह परमात्मा वा यथार्थवक्ता राजा ( मित्रः ) मित्र ( सुशेवः ) उत्तम सुख का दाता ( सुसत्रः ) वा जिसका राज्य देश उत्तम प्रकार सुखी ( राजा ) जो पृथिवी का पालनकर्त्ता ( वेधाः ) बुद्धिमान् ( नमस्यः ) और सत्कार करने योग्य है तथा जिसका राज्य देश सुखी ( अंजनिष्ठः ) होता है ( तस्य ) उस ( यज्ञियस्य ) सत्य व्यवहार के उत्पन्न करनेवाले की ( सुमती ) भाषा वा बुद्धि में तथा ( सीमनसे ) श्रेष्ठ मानस व्यवहार और ( भद्रे ) कल्याण करनेवाले व्यवहार में ( अयि ) भी ( वयम् ) हम लोग ( स्याम ) प्रसिद्ध हैं होंगे जैसे ही सब लोग हों ॥४॥

भाषार्थ—जैसे ईश्वर और यथार्थवक्ता पुरुष धर्म में वर्तमान हुए नमस्कार करने के योग्य होते हैं वैसे ही न्याय और विनय से राज्य के पालनकर्त्ता राजा लोग सत्कार करने योग्य होंगे और जैसे सज्जन लोग परमेश्वर और यथार्थवक्ताओं के कर्मों वर्तमान हैं वैसे ही हम लोगों की चाहिए कि बर्त्ता करें ॥४॥

अब मित्र के लिये प्रिय पदार्थ देने की अगले मन्त्र में कहते हैं—

**यहो आदित्यो नमोपसर्षो यातयज्जगो गृह्यते सुशेवः ।**

**तस्या घृतस्पर्णतमाय जुष्टमधौ मित्राय हविरा जुहोत ॥५॥५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( आदित्य ) सूर्य के सदृश अच्छे गुणों का प्रकाश करनेवाला ( महात् ) बड़े-बड़े गुणों से युक्त ( सुशेवः ) जिसका उत्तम सुख ( यातयज्जगो ) जो प्रेरणा करता हुआ जन ( नमसा ) सत्कार से ( उपसर्षः ) प्राप्त होने योग्य हो और जिस की सब लोग ( गृह्यते ) स्तुति करते हैं ( तस्य ) उस ( वयस्पर्णतमाय ) अत्यन्त प्रशंसायुक्त ( मित्राय ) प्राणों के सदृश वर्तमान पुरुष के लिए ( अधौ ) अग्नि में ( हविः ) हुवन करने तथा खाने योग्य पदार्थ के सदृश ( घृतम् ) इस ( जुष्टम् ) प्रिय पदार्थ को ( आ, जुहोत ) देमो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालङ्कार है । वे ही पूज्य सूर्य के सदृश विद्या और धर्म के प्रकाश करनेवाले यथार्थवक्ता विद्वान् लोग हैं कि जो उत्तम गुण और कर्मों में सबको प्रेरणा करें जैसे अतिवृद्ध अर्थात् ऋतु ऋतु में हुवन करनेवाले लोग अग्नि में अच्छे बनाये हुए हवि अर्थात् होम करने योग्य पदार्थ को होमके ससार को प्रसन्न करते हैं वैसे ही उत्तम गुणों से युक्त विद्यार्थी जनों में विद्या और धर्म की अच्छे प्रकार स्थापन करके सब मनुष्य आदि प्राणियों को सुखी करते हैं ॥५॥

अब प्रजामित्र राजा के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । शुम्भं चित्रश्रवस्तमम् ॥६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ( चर्षणीधृतः ) मनुष्यों के धारण करनेवाले ( मित्रस्य ) सब के मित्र ( देवस्य ) विद्वान् राजा का ( सानसि ) प्राचीन ( अब ) रक्षा आदि ( चित्रश्रवस्तमम् ) जिस के अत्यन्त होने से अद्भुत श्रवण वा ध्वन सिद्ध होते ( शुम्भम् ) और जो अश करनेवाला धन वा विज्ञान है वही प्रजाओं की रक्षा कर सकता है ॥६॥

भाषार्थ—जो लोग धनादि काल से मित्र विद्याधन का ग्रहण करके सम्पूर्ण प्रजाओं की रक्षा करते हैं वे इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अब मित्रपन से ईश्वर के पदार्थरक्षण और ईश्वरसेवन को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**अभि यो महिना विवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अमि अवीभिः पृथिवीम् ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( सप्रथाः ) विस्मययुक्त जगत् के साथ वर्तमान वा ( मित्र ) मित्र के सदृश वर्तमान जगदीश्वर अपनी ( महिना ) महिमा से ( विवम् ) प्रकाशमय सूर्य को रच के ( अभि ) सम्मुख ( बभूव ) होता वा ( अवीभिः ) धन आदि पदार्थों के साथ ( पृथिवीम् ) भूमि को रच के ( अभि ) सम्मुख होता है उसकी मित्य सेवा करो ॥७॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बड़े सामर्थ्य से सूर्य और पृथिवी आदि विस्तार सहित ससार को रच और अन्तर्यामिरूप से सब को जान और धारण करके नियम में साता वही उपासना करने के योग्य है ॥७॥

**मित्राय पञ्च येमिरे जना अमिष्टिष्वसे । स देवान्विश्वान्विमर्त्ति ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ये ( पञ्च ) पांच प्राण आदि के सदृश ( जना ) विद्वान् लोग जिस ( अमिष्टिष्वसे ) अर्पणित बलयुक्त ( मित्राय ) मित्र के सदृश सब को सुख देनेवाले परमात्मा के लिए ( येमिरे ) यथाधि साधन साधते हैं । ( स ) वह ( विश्वान् ) समस्त ( देवान् ) सूर्य आदिको का ( विश्वान् ) धारण तथा पोषण करता है ऐसा जाना ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालङ्कार है । जैसे रोके गये प्राणवायु इन्द्रियों को रोकते हैं वैसे ही योगीजन समाधि में परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥८॥

अब मित्रत्व से ईश्वरोंपासना विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्षवर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥९॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( मित्र ) ईश्वर ( वृक्षवर्हिषे ) छोटा है जब जिसने उस ( जनाय ) मनुष्य आदि के लिए ( देवेषु ) उत्तम ( आयुषु ) जीवनो में ( इष्टव्रता ) वाहे हुए काम जिनसे होते उनकी ( इषः ) इच्छाओं को ( अकः ) पूर्ण करता है उस को सब लोग सेवा करो ॥९॥

भाषार्थ—जो परमात्मा अन्याय से रहित भक्त मनुष्यों को सिद्ध इच्छा वाले करता है वही सब लोगों को ध्यान करने योग्य है ॥९॥

यह उन सबका सुख और छटा वर्ण समाप्त हुआ ॥



अब सप्तर्षस्य षष्ठितमस्य सूक्तस्य विषयमित्र ऋषिः । ऋभवो देवता ।

१३—जगती । ४, ५ निबृज्जगती । ६ विराज्जगती ।

७ भुरिजगती छन्दः । निधामः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले साठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजनिधय का उपदेश करते हैं—

**इहेह वो मनसा बन्धुता नर उञ्जिर्जो जमुराय दानि वेदसा ।**

**वाभिर्मायाभिः प्रतिज्ञतिवर्षसः सौधन्वना यज्ञिय भागमानश्च ॥१॥**

पदार्थ—हे ( नर ) नायक लोगो ! जो ( उञ्जिः ) कामना करते हुए ( मनसा ) चित्त से ( इहेह ) इस इस व्यवहार में ( नः ) आप लोगो का जो ( बन्धुता ) बन्धुपन उससे ( ताभिः ) उन मित्रपने से युक्त कामों को ( अभि, वयम् )

प्राप्त होते हैं और ( धामि ) जिन ( मायामि ) बुद्धियों से ( प्रतिबुद्धिपूर्वक ) प्रतीत हुआ वेगयुक्त रूप जिनका वे ( वेवसा ) धन से ( सौधन्वना ) उत्तम अन्तरिक्ष जिस का उसके पुत्र होने हुए ( यज्ञियम् ) यज्ञ के योग्य ( भागम् ) अश को ( भागश ) व्याप्त होने और भाग्यशाली होने हैं ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस ससार में सब के साथ भाईपन करके बुद्धि और धन से सुख बढ़ाते वे पूर्ण मनोरथ वाले होने हैं ॥१॥

फिर उसी राजशिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यामिः शचीभिश्चमसाँ अपिशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।

येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ऋभव ) बुद्धिमान् लोग ( यामि ) जिन ( शचीभिः ) बुद्धियों वा कर्मों से ( चमसाम् ) मेघों का ( अपिशत ) प्रवयवों वाले करने हैं ( यया ) जिस ( धिया ) बुद्धि के साथ ( चर्मणः ) चर्म की प्राप्ति से ( गाम् ) धेनु को ( गामरिणीत ) प्राप्त होते हैं ( येन ) जिस ( मनसा ) विज्ञान में ( हरी ) धारण और आकर्षण का ( निरतक्षत ) निरन्तर विस्तार करने हैं ( तेन ) उससे आप लोग ( देवत्वम् ) विद्वान्पने को ( सम, भागश ) उत्तम प्रकार व्याप्त होओ ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे बुद्धिमान् लोग यहाँ वर्त्ताव करे वैसे ही वर्त्ताव करके विद्वान् होओ ॥ २॥

अब सर्वाधीन परमात्मा की मित्रता का फल अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुमनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।

सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३॥

पदार्थ—जो ( ऋभव ) बुद्धिमान् लोग ( इन्द्रस्य ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा की ( सख्यम् ) मित्रता को ( सम, भागश ) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें तथा जिस ( मनो ) मनन करनेवाले का ( नपात ) नहीं गिरना होता उस के लिए ( अपस ) कर्मों का ( दधन्विरे ) धारण करने से वे ( सौधन्वनास ) उत्तम ज्ञान के युक्त करनेवाले ( शमीभिः ) कर्मों के साथ ( विष्ट्वी ) कर्मों का करके ( सुकृत्यया ) नर्म की क्रिया से ( सुकृत ) उत्तम कर्म करनेवाले होन हुए ( अमृतत्वम् ) मोक्षपदवी को ( आ, ईरिरे ) प्राप्त होन है ॥३॥

भावार्थ—जो लोग परमेश्वर में प्रीति और उसकी आज्ञा के भङ्ग होन से भय तथा धर्म का आचरण करते हैं वे ही मोक्षपदवी को प्राप्त होते हैं ॥३॥

इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचो अथो वशाना भवथा सह श्रिया ।

न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४॥

पदार्थ—हे ( सौधन्वना ) यथायुक्ता पुरुष के पुत्रा ! ( वाघत ) विद्वान् ( ऋभव ) बुद्धिमान् आप लोग ( सुते ) उत्पन्न हुए राज्य में ( सचा ) विज्ञान और ( इन्द्रेण ) अत्यन्त ऐश्वर्य में ( सरथम् ) रथ के साथ वर्तमान सेना को ( याथ ) प्राप्त हुआ ( अथो ) उनके अनन्तर ( वशानाम् ) कामना करने योग्यों की ( श्रिया ) लक्ष्मी के ( सह ) साथ ( भवथा ) हजिय जगमे ( व ) आप लोगों के ( सुकृतानि ) धर्मयुक्त कर्म ( वीर्याणि, च ) और पराक्रम ( प्रतिमै ) समान ( न ) नहीं होवे ॥४॥

भावार्थ—जो विद्वान् होकर धर्मयुक्त आचरण में प्रयत्न करने हैं वे लक्ष्मीवान् और अनुल धनो को प्राप्त होकर पराक्रमा का बढाव है ॥४॥

इन्द्रं ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गमस्त्योः ।

धिपेषितो भगवन्दाशुषो गृहे मीधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः । ५॥

पदार्थ—हे ( ऋभव ) प्रशमितधनयुक्त, ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले ! ( धिया ) बुद्धि से ( इक्षित ) प्रेरित आप ( वाजवद्भिः ) प्रशमनीय अन्न आदि ऐश्वर्यों से युक्त ( ऋभुभिः ) बुद्धिमानों के साथ ( समुक्षितम् ) उत्तम प्रकार मीचे ( सुतम् ) उत्पन्न किये गये ( सोमम् ) ऐश्वर्य को ( गमस्त्योः ) हाथा के बल से ( आ, वृषस्व ) सब प्रकार पुष्टि ( सौधन्वनेभिः ) बुद्धिमानों के पुत्रों और ( नृभिः ) विद्या आदि व्यवहारों में प्रशमना जनो के ( सह ) साथ ( दाशुष ) उन बाल के ( गृहे ) घर में ( मत्स्व ) आनन्दित हजिये ॥५॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि बुद्धिमान् जनो के सहित प्रजाप्रा की रक्षा और न्याय से ऐश्वर्य की वृद्धि करके तथा राज्य के कर देने वालों को आनन्दित कर के नायकों के साथ प्रजाप्रा को सदैव आनन्दित करें ॥५॥

इन्द्रं ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेद नोऽस्मिन्मर्वने शच्यां पुरुषदुत ।

इमानि तुभ्यं स्वमराणि येमिरे व्रता देवाना मनुष्यं धर्मभिः ॥६॥

पदार्थ—हे ( शच्या ) बुद्धि वा वाणी से ( पुरुषदुत ) बहुतों से प्रशमा किये गये ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजन् ! आप ( इह ) इस राज्य में ( ऋभुमान् ) बहुत बुद्धिमान् और ( वाजवान् ) बहुत अन्न आदि ऐश्वर्ययुक्त होते हुए ( नः ) हम लोगों के ( अस्मिन् ) इस ( सवने ) ऐश्वर्ययुक्त राज्य में ( मत्स्व ) आनन्दित

होओ जिन ( तुभ्यम् ) आप के लिए ( इमानि ) यह वर्त्तमान ( स्वमराणि ) दिन ( येमिरे ) नियत होते हैं वह आप ( देवानाम् ) विद्वानों के ( धर्मभिः ) धर्मों के सहित ( व्रता ) सुशील कर्मों को ग्रहण करके ( मनुष्यं ) मनुष्यों को ( च ) भी आनन्दित करो ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप सदा धर्मात्मा और बुद्धिमानों के सच्ची आदर मूलों के सङ्ग के त्यागी होकर एक क्षण भी व्यर्थ न व्यतीत करो और जैसे यथार्थवक्ता पुरुष पक्षपात का त्याग करके सब के साथ कपटरहित वर्त्ताव करते हैं वैसे ही वर्त्ताव करो ॥६॥

अब राजप्रसङ्ग से अमात्य और प्रजाकृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रं ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्भिः स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।

शतं केतैभिरिषिरेभिः रायवै सहस्रशीथो अध्वरस्य होमनि ॥७॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले मनुष्यों के स्वामिन् ! आप ( इह ) इस ससार में ( वाजिभिः ) वेग भादि गुणों से युक्त ( ऋभुभिः ) बुद्धिमानों के साथ ( वाजयन् ) प्राप्त कराते हुए ( जरितुरुप ) स्तुति करनेवाले विद्वान् की ( स्तोमम् ) स्तुति को ( उप, याहि ) प्राप्त हजिये । और ( आयवै ) मनुष्य के लिए ( इषिरेभिः ) इष्ट ( केतैभिः ) बुद्धियों से ( सहस्रशीथः ) प्रसस्य धामिकों से प्राप्त होते हुए ( अध्वरस्य ) न्यायव्यवहार के ( होमनि ) ग्रहण करने योग्य व्यवहार में ( शतम् ) असस्य ( यज्ञियम् ) राज्यव्यवहार के उत्पन्न करने बाने के समीप प्राप्त हजिये ॥७॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप इस राज्य में मनुष्यों के हित के लिये प्रसस्य उत्तम कर्मों को करके धामिक मन्त्रिजन और उपदेशकों के साथ यथार्थवक्ता पुरुषों से की हुई प्रशमा को प्राप्त होकर अगले जन्म में भी मोक्ष को प्राप्त हजिये ॥७॥

इस सूक्त में राजा मन्त्री और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह साठवाँ सूक्त और सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तत्वंशकाधिकषष्टितमस्य सूक्तस्य विवक्षामिन् ऋषिः । उवा वेवसा ।

१। ५। ७ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निष्त्विष्टुप् छन्दः ।

वैवस, स्वर । ३। ४ धुरिक् पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चम, स्वर ॥

अब सात ऋषि वाले एकसठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रातः काल की बेला की उपमा से स्त्री के गुणों को कहते हैं—

उषो वाजं वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।

पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरमि विश्ववारे ॥१॥

पदार्थ—हे ( वाजिनि ) विज्ञानवाली ( मघोनि ) अत्यन्त धन से युक्त ( देवि ) सुन्दर ( विश्ववारे ) सब प्रकार वर्त्तने योग्य स्त्रि ! तुम ( उष ) प्रातः बेला के सदृश वर्त्तमान ( वाजं ) विज्ञान के साथ ( प्रचेता ) उत्तमता से सत्य अर्थ की जानने वाली होती हुई ( गृणत ) सुभ, स्तुति करनेवाले की ( स्तोमम् ) प्रशमा का ( जुषस्व ) मन्त्रन करो जिस से कि ( पुराणी ) प्रथम नवीन ( पुरन्धिः ) बहुत उत्तम गुणों को धारण करनेवाली ( युवति ) पूर्ण बीबीम वप वाली हुई ( व्रतम् ) कर्म को ( अनु ) अनुकूलता से ( चरमि ) करनी हो इससे हृदयप्रिय हा ॥१॥

भावार्थ—ह स्त्रिया ! जैसे प्रातःबेला सम्पूर्ण प्राणियों को जगा के कार्य्यों में प्रवृत्त करती है वैसे ही पतिव्रता होकर पतिया के साथ अनुकूलता से वर्त्त प्रससित होओ ॥१॥

फिर उसी विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सुवृता ईरयन्ती ।

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये ॥२॥

पदार्थ—हे ( देवि ) उत्तम प्रकार शोभित ( उष ) प्रातः बेला के सदृश वर्त्तमान ( सुवृताः ) उत्तम प्रकार सत्य क्रियाओं की ( ईरयन्ती ) प्रेरणा करती हुई ( चन्द्ररथा ) चन्द्रमा के सदृश रथ जिसका ऐसी ( अमर्त्या ) सरण धर्म से रहित हुई ( वि भाहि ) शोभित होओ । और ( ये ) जो ( पृथुपाजसः ) बहुत बलयुक्त ( सुयमास ) उत्तम प्रकार नियम करनेवाले ( हिरण्यवर्णा ) तेजोमयी कान्ति को ( अश्वा ) व्याप्त किण्वों के सदृश ( त्वा ) आप को ( आ, वहन्तु ) प्राप्त हो उनकी सुखपूर्वक आप शोभित करिये ॥२॥

भावार्थ—जैसे चन्द्रमारूप रथवाली प्रातःकाल की बेला तेजःस्वरूप होकर सब को जगाती है वैसे ही उत्तम पण्डिता स्त्रिया अपने अपने पति को सेवा और वित्त से सुशील करती हैं ॥२॥

उषः प्रतीची सुवर्णानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्य शृतस्य केतुः ।

समानमर्थं चरणीयामाणा चक्रमिध नव्यस्या वदस्व ॥३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( सुवर्णानि ) उत्पन्न हुए लौकी को ( प्रतीची ) प्राप्त होने और ( अमृतस्य ) अमृतस्वरूप रस की ( केतुः ) जानने



वाली ( ऊर्ध्वा ) ऊपर का वर्तमान ( वर्तमान ) पहिये के सदृश चलने वाले ( लघुत्वम् ) तुल्य ( अर्थम् ) वस्तु को ( चरणीयमाना ) प्राप्त होती हुई ( लघुत्वम् ) अत्यन्त नमीन ( उचः ) प्रातःकाल की बेला वर्तमान और ( तिष्ठति ) स्थिर होती है वैसे ही आप ( आ, अस्त्व ) वर्तान करिये ॥३॥

भाषार्थ—हे उत्तम स्त्रियो ! जैसे प्रातःकाल सम्पूर्ण भुवनो के लक्ष्मों को प्रकाशित करते हैं वैसे ही उत्तम व्यक्तियों को प्रकाशित करो ॥३॥

अथ स्यूमेव चिन्वती मधोन्धुषा याति स्वर्सरस्य पत्नी ।

स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा अन्तादिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जो ( स्यूमेव ) दोरो सदृश व्याप्त ( चिन्वती ) बदोरती हुई ( मधोन्ती ) अत्यन्त घन से युक्त ( स्वर्सरस्य ) दिन की ( पत्नी ) स्त्री के सदृश वर्तमान ( स्व जनन्ती ) सूर्य या सुख को उत्पन्न करती हुई ( सुभगा ) सौभाग्य की करने वाली ( सुदंसा ) उत्तम कर्म जिस में विद्यमान ऐसी ( उचः ) प्रातःकाल की बेला ( आ, अन्तात् ) सब प्रकार समीप से ( दिवः ) प्रकाशमान सूर्य और ( आ ) सब प्रकार समीप ( पृथिव्या ) पृथिवी के योग से ( पप्रथे ) प्रख्यात होती है ( अथ, याति ) और प्राप्त होती है वैसे ही आप लोग भी वर्तान करो ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे स्त्रियो ! जैसे दिन का सम्बन्धी प्रातःकाल है वैसे ही छाया के सदृश अपने अपने पति के साथ अनुकूल होकर वर्तान करो और जैसे यह प्रकाश पृथिवी के योग से होता है वैसे पति और पत्नी के सम्बन्ध से सन्तान होते हैं ॥४॥

अच्छा वो देवीमुषसे विभार्ता प्र वो भरध्वं नमसा सुष्टिम् ।

ऊर्ध्वं मधुषा दिवि पाजो अभ्रेत्र रौचना रुचवे रणसंष्टक् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( रणसन्धुक् ) सुन्दर पदार्थों के विलाने ( रौचना ) रुचि करने और ( मधुषा ) मधुर पदार्थों को धारण करनेवाली ( दिवि ) प्रकाश में ( प्र ) आप लोगों को ( प्र, रुचवे ) अच्छी लगती है । और जिससे ( प्र ) आप लोगों के ( ऊर्ध्वम् ) उत्तम ( पाज ) वन का ( अभ्रेत् ) श्रयण करती है उस ( देवीम् ) प्रकाशमान और आप लोगों और ( विभार्ताम् ) अनेक पदार्थों का प्रकाशित करती हुई ( सुवृक्षिम् ) उत्तम प्रकार वर्तमान ( उच-सम् ) प्रभात बेला को ( नमसा ) वक्ष्य अर्थात् बिजुली के साथ आप लोग ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( प्र, भरध्वम् ) पुष्ट कीजिये ॥५॥

भाषार्थ—जैसे प्रातःकाल को सेवन करते हुए लोग उत्तम वन को प्राप्त होते हैं वैसे ही स्नेहपात्र पतिव्रता स्त्री को प्राप्त होकर पुरुष गरीर आत्मबल और आरोग्यपन को प्राप्त होते हैं जिससे दोनों के सदृश होने पर प्रेम बढे ॥५॥

अब प्रातःबेला ही के गुणों को कहते हैं—

ऋतावरी दिवो अकैरबोध्या रेवती रोदमी चित्रमस्थान ।

आपसीमेम उषसे विभार्ता वाममैवि द्विषिं भिषमाणः ॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् जन ! जा ( रेवती ) उत्तम धन करनेवाली ( ऋतावरी ) जिसमें सत्य विद्यमान ऐसी ( दिव ) प्रकाश से उत्पन्न हुई बेला ( अकैः ) सूर्यों से ( अबोधि ) जानी जाती ( रोवती ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( आ, अस्थान् ) अच्छे प्रकार स्थित करती है उस ( आपसीम् ) भाती और ( विभार्ताम् ) प्रकाशित करती हुई ( उषसम् ) प्रभात बेला को प्राप्त होकर ममाधि से जगदीश्वर की ( भिषमाण ) याचना करते हुए आप ( चित्रम् ) अद्भुत ( वामम् ) उत्तम प्रशंसा योग्य ( द्विषिम् ) धन को ( एवि ) प्राप्त होते हो ॥६॥

भाषार्थ—जो लोग रात्रि के बीच प्रहर में जाग के ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करके उत्तम गुणा और ऐश्वर्य्य को मांगते हैं वे पुरुषार्थ से अवश्य धन को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब बिजुली और शिल्पियों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋतस्य बुध उषसांमिष्यन्धुषा मही रोदसी आ विवेश ।

मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरा ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जा बिजुलीरूप अग्नि ( बुधे ) आन्तरिक्ष में ( उषसांम् ) प्रातःकाली और ( ऋतस्य ) सत्य के सम्बन्ध में ( इष्यन् ) अपनी प्ररणा की इच्छा करना हुआ सा ( बुध्वा ) वृष्टि का हेतु ( मही ) बड़ी ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( आ, विवेश ) प्रविष्ट होता है और ( मित्रस्य ) मित्र ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ पुरुष की ( मही ) बड़ी पूज्य ( माया ) बुद्धि ( चन्द्रेव ) सुवर्णों के सदृश ( पुरा ) बहुत रूपयुक्त ( भानुम् ) सूर्य का ( विवेशे ) धारण करता है इससे उस को जान के कार्यों को सिद्ध करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्वानों की वाणी और बुद्धि ऐश्वर्य्य को देनेवाली हो और विद्याओं में प्रवेश करके सुखों को देती है वैसे ही सर्वत्र प्रविष्ट हुई बिजुली जानी हुई कार्यों में प्रयुक्त होकर ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करती है ॥ ७ ॥

इस सूक्त में प्रातःकाल स्त्री बिजुली और शिल्पीजनों के गुण वर्णन करने से हमके धर्म की इससे पूर्व सूक्त के धर्म के साथ मङ्गलित जाननी चाहिये ॥

यह इकसठवां सूक्त और अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अब अठारहवां सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मित्र अध्यापक और उपदेशकों के विषय को कहते हैं—

इमा उ वां भूमयो मन्यमाना युवावन्ते न तुज्या अभूवन् ।  
कः स्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सविभ्यः ॥१॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! जो ( इमा ) आप दोनों के ( इमा ) ये वर्तमान ( मन्यमाना ) आदर किये गये ( भूमयः ) भूमने आदि ( युवावन्ते ) आपकी रक्षा करनेवाले के लिए ( तुज्या ) हिंसा करने के योग्य ( न ) नहीं ( अभूवन् ) होवें वैसे करिये और हे ( इन्द्रावरुणा ) बिजुली और वायु के सदृश वर्तमान ! ( येन ) जिस यश से ( वां ) आप दोनों के ( सविभ्यः ) मित्रों के लिए ( सिनम् ) घन आदि को ( स्म ) ही ( भरथ ) धारण करते हो ( स्यत् ) वह ( यशः ) यश ( उ ) ही ( कः ) कहा है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक लोग वायु और बिजुली के सदृश उपकार करनेवाले कीर्ति से युक्त और प्रिय आचरण करनेवाले होवें उन के लिए स्नेह से घन आदि देना और उन के साथ सदा ही मित्रता की रक्षा करनी चाहिए ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अयमु वां पुरुतमो रयीयच्छसमभवसे जोहवीति ।

सजोषाविन्द्रावरुणा मर्शद्दिवा पृथिव्या मृणुत हवै मे ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) बिजुली और जल के सदृश वर्तमान ! ( मर्शद्दिवा ) पवनो के सदृश सुननेवाले जनो से ( दिवा ) सूर्य और ( पृथिव्या ) भूमि के साथ वर्तमान होकर आप सुख देने हैं और जैसे ( अयम् ) यह राजा ( उ ) क्या ( पुरुतम् ) अनिश्चय करके बहुत ( रयीयन् ) अपने धन की इच्छा करता हुआ ( वां ) आप दोनों की ( अयसे ) रक्षा आदि के लिए ( शसवतम् ) अनादि काल से सिद्ध पदार्थ को ( जोहवीति ) बारबार देता है वैसे ( सजोषी ) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले आप दोनों ( मे ) मेरी ( हवम् ) स्तुति को ( मृणुतम् ) सुनिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे राजा अध्यापक और उपदेशक लोग सब के रक्षा बुद्धि और विद्या में प्रवेश होने के लिए शिक्षा करते हैं वैसे ही परस्पर की प्रशंसा में पृथिवी आदिको में ऐश्वर्य्यों की प्रयत्न से प्राप्त करके परस्पर में प्रीतिवाले सब मनुष्य होवो ॥ २ ॥

अब अगले मन्त्रों में अध्यापक के विषय को कहते हैं—

अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु व्यादस्मे रयिर्वरुतः सर्ववीरः ।

अस्मान्वरुन्नीः शरशोरवन्स्मान होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) पवन और बिजुली के सदृश वर्तमान ! जैसे ( अस्मे ) हम लोगों में ( तत् ) वह ( वसु ) धन ( व्यात् ) होवे और ( अस्मे ) हम लोगों में ( सर्ववीर ) सब वीर जिस से तेरी ( रयिः ) लक्ष्मी होवे और हे ( वरुन् ) मनुष्यो ! जस ( अस्मान् ) हम लोगों को ( वरुन्नीः ) अत्यन्त श्रेष्ठ विद्या ( होत्रा ) ग्रहण करने योग्य क्रिया और ( भारती ) सम्पूर्ण विद्याओं को पूर्ण करती हुई वाणी ( शरशो ) दुःख आदिको के नाश करनेवाले ( दक्षिणाभिः ) दोनों में ( अस्मान् ) हम लोगों की ( अयम् ) रक्षा करें वैसे ही प्रयत्न करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ह अध्यापक उपदेशक और राजा लोग ! जैसे हम लोग धनी लक्ष्मी-वान् और विद्वान् होवें वैसे ही हम लोगों की प्रेरणा करो ॥ ३ ॥

अब अगले मन्त्रों में मित्र के विषय को कहते हैं—

अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु व्यादस्मे रयिर्वरुतः सर्ववीरः ।

अस्मान्वरुन्नीः शरशोरवन्स्मान होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) पवन और बिजुली के सदृश वर्तमान ! जैसे ( अस्मे ) हम लोगों में ( तत् ) वह ( वसु ) धन ( व्यात् ) होवे और ( अस्मे ) हम लोगों में ( सर्ववीर ) सब वीर जिस से तेरी ( रयिः ) लक्ष्मी होवे और हे ( वरुन् ) मनुष्यो ! जस ( अस्मान् ) हम लोगों को ( वरुन्नीः ) अत्यन्त श्रेष्ठ विद्या ( होत्रा ) ग्रहण करने योग्य क्रिया और ( भारती ) सम्पूर्ण विद्याओं को पूर्ण करती हुई वाणी ( शरशो ) दुःख आदिको के नाश करनेवाले ( दक्षिणाभिः ) दोनों में ( अस्मान् ) हम लोगों की ( अयम् ) रक्षा करें वैसे ही प्रयत्न करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ह अध्यापक उपदेशक और राजा लोग ! जैसे हम लोग धनी लक्ष्मी-वान् और विद्वान् होवें वैसे ही हम लोगों की प्रेरणा करो ॥ ३ ॥

अब अगले मन्त्रों में मित्र के विषय को कहते हैं—

अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु व्यादस्मे रयिर्वरुतः सर्ववीरः ।

अस्मान्वरुन्नीः शरशोरवन्स्मान होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) पवन और बिजुली के सदृश वर्तमान ! जैसे ( अस्मे ) हम लोगों में ( तत् ) वह ( वसु ) धन ( व्यात् ) होवे और ( अस्मे ) हम लोगों में ( सर्ववीर ) सब वीर जिस से तेरी ( रयिः ) लक्ष्मी होवे और हे ( वरुन् ) मनुष्यो ! जस ( अस्मान् ) हम लोगों को ( वरुन्नीः ) अत्यन्त श्रेष्ठ विद्या ( होत्रा ) ग्रहण करने योग्य क्रिया और ( भारती ) सम्पूर्ण विद्याओं को पूर्ण करती हुई वाणी ( शरशो ) दुःख आदिको के नाश करनेवाले ( दक्षिणाभिः ) दोनों में ( अस्मान् ) हम लोगों की ( अयम् ) रक्षा करें वैसे ही प्रयत्न करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ह अध्यापक उपदेशक और राजा लोग ! जैसे हम लोग धनी लक्ष्मी-वान् और विद्वान् होवें वैसे ही हम लोगों की प्रेरणा करो ॥ ३ ॥

अब अगले मन्त्रों में मित्र के विषय को कहते हैं—

अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु व्यादस्मे रयिर्वरुतः सर्ववीरः ।

अस्मान्वरुन्नीः शरशोरवन्स्मान होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) पवन और बिजुली के सदृश वर्तमान ! जैसे ( अस्मे ) हम लोगों में ( तत् ) वह ( वसु ) धन ( व्यात् ) होवे और ( अस्मे ) हम लोगों में ( सर्ववीर ) सब वीर जिस से तेरी ( रयिः ) लक्ष्मी होवे और हे ( वरुन् ) मनुष्यो ! जस ( अस्मान् ) हम लोगों को ( वरुन्नीः ) अत्यन्त श्रेष्ठ विद्या ( होत्रा ) ग्रहण करने योग्य क्रिया और ( भारती ) सम्पूर्ण विद्याओं को पूर्ण करती हुई वाणी ( शरशो ) दुःख आदिको के नाश करनेवाले ( दक्षिणाभिः ) दोनों में ( अस्मान् ) हम लोगों की ( अयम् ) रक्षा करें वैसे ही प्रयत्न करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ह अध्यापक उपदेशक और राजा लोग ! जैसे हम लोग धनी लक्ष्मी-वान् और विद्वान् होवें वैसे ही हम लोगों की प्रेरणा करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य वेदार्थ के जाननेवाले अध्यापक और उपदेशकों का नमस्कार और सत्कार करते हैं वे पवित्र विद्वान् हुए बल को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

**बुधभं चर्चशीनां विश्वरूपमदाय्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( चर्चशीनाम् ) विद्याप्रकाश से युक्त मनुष्यों के मध्य में ( बुधभम् ) अत्यन्त उत्तम ( विश्वरूपम् ) कर्मों वा वस्तुओं को कथित करते हुए अर्थात् उनको यथार्थभाव से प्रकट करते हुए ( अवाय्यम् ) नहीं हिंसा करने और सत्कार करने योग्य ( वरेण्यम् ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( बृहस्पतिम् ) बड़ों के पालन करने वाले राजा का आप लोग आदर करो इससे पराक्रम की कामना करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जैसे राजा का सत्कार करके प्रजाजन ऐश्वर्यवान् होते हैं वैसे ही राजा लोग प्रजाओं का सत्कार करके कीर्तियुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब अगले मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

**इयं तं पृषन्नाष्ट्रे सुष्टुतिर्देवं नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७॥**

पदार्थ—हे ( पृषन् ) पुष्टि करनेवाले ( आष्ट्रे ) सब प्रकार प्रकाशित ( देव ) उत्तम गुणों से युक्त विद्वान् पुरुष वा राजन् ! ( ते ) आप की जो ( इयम् ) यह ( नव्यसी ) अत्यन्त नवीन ( सुष्टुतिः ) उत्तम प्रशंसा वर्तमान है वह ( तुभ्यम् ) आप के लिए ( अस्माभिः ) हम लोगों से ( शस्यते ) उच्चारण की जाती है ॥७॥

भाषार्थ—जो मनुष्य धर्मसम्बन्धी कर्मों के करने से यशस्वी हैं उनको सुन और देख के सब लोग प्रसन्न होओ ॥ ७ ॥

अब अगले मन्त्र में पठन विषय को कहते हैं—

**ता जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । बभूयुरिवा योषणाम् ॥८॥**

पदार्थ—हे देव विद्वन् वा राजन् ! आप ( ताम् ) उम ( वाजयन्तीम् ) सत्य और असत्य के जाननेवाली ( मम ) मेरी ( गिरम् ) सत्य भाषण और शास्त्र के विज्ञान से युक्त वाणी का जैसे ( योषणाम् ) निज स्त्री की ( बभूयुरिव ) अपनी स्त्री की रक्षा करनेवाला वैसे ( जुषस्व ) सेवन और ( धियम् ) बुद्धि की ( अवा ) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य लोग, जैसे स्त्री की कामना करनेवाले अपनी अपनी प्रेमपात्र पत्नी की रक्षा और सेवा करते हैं वैसे ही शास्त्र से युक्त वाणी का सेवन करके बुद्धि की निरन्तर सेवा करें ॥ ८ ॥

अब अगले मन्त्रों में परमात्मा के विषय को कहते हैं—

**यो विश्वामि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।**

**स नः पृषाविता भुवत् ॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो जगदीश्वर ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( भुवना ) जीव, लोक वा वस्तुओं को ( अभि ) सम्मुख ( विपश्यति ) अनेक प्रकार से देखता है ( सः, पश्यति ) मिले हुए देखता है ( स ) वह ( न ) हम लोगों का ( पृषा ) पुष्टिकर्ता ( अविता ) रक्षक ( भुवत् ) होवे ( च ) और जिससे हम लोग निरन्तर बुद्धि को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो सबका रचने देखने और कर्मों के फल देने वाला न्यायाधीश ईश्वर है वही हम लोगों की रक्षा करन और बृद्धि करनेवाला होवे ऐसी हम सब लोग अभिलाषा करें ॥ ९ ॥

**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।**

**धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१०॥१०॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! सब हम लोग ( य ) जो ( न ) हम लोगों की ( धिय ) बुद्धियों को ( प्रचोदयात् ) उत्तम गुण कर्म और स्वभावों में प्रेरित करे उस ( सवितुः ) सम्पूर्ण सत्ता के उत्पन्न करनेवाले और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त स्वामी और ( देवस्य ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के दाता प्रकाशमान सब के प्रकाश करने वाले सर्वत्र व्यापक अन्तर्यामी के ( तत् ) उम ( वरेण्यम् ) सबसे उत्तम प्राप्त होने योग्य ( भर्ग ) पापदुष्टों को के मूल को नष्ट करनेवाले प्रभाव को ( धीमहि ) धारण करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सबके साक्षी पिता के सदृश वर्तमान न्यायेन दयालु शुद्ध सनातन सब के आत्माओं के साक्षी परमात्मा की ही स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करते हैं उनको कृपा का समुद्र सबसे श्रेष्ठ परमेश्वर, दुष्ट आचरण से पृथक् करके श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करा और पवित्र तथा पुरुषार्थयुक्त करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराता है ॥ १० ॥

**देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥११॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( पुरन्ध्या ) जिस बुद्धि से बहुत बोधों को धारण करता उसमें ( वाजयन्तः ) जानाते हुए ( वयम् ) हम लोग ( सवितुः ) प्रेरणा करने वाले अन्तर्यामी ( देवस्य ) कामना करने योग्य ( भगस्य ) ऐश्वर्य देनेवाले के ( रातिम् ) दान की ( ईमहे ) याचना करते हैं वैसे आप लोग भी उस बुद्धि की याचना करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग जो बुद्धि को बढ़ा पुरुषार्थ से धर्म का अनुष्ठान कर और परमेश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्तव्य करके अपनी बुद्धि के लिये प्रार्थना करें तो ईश्वर उनको शीघ्र पवित्र और शुद्ध आचरणयुक्त कराता है ॥ ११ ॥

**देवं नरः सवितां विप्रां यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति विधेयिताः ॥१२॥**

पदार्थ—जो ( विप्रा ) बुद्धि वा कर्म से ( इक्षिता ) प्रेरणा किये गये ( नरः ) योग से इन्द्रिय और अन्तःकरण के प्राप्त करानेवाले ( विप्रा ) बुद्धिमान लोग ( सुवृक्तिभिः ) उत्तम प्रकार दोनों का काटना जिन में उन ( यज्ञैः ) शास्त्र

का अभ्यास सत्सङ्ग और योगाभ्यासों से ( सविताम् ) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करने और ( देवम् ) सुख देनेवाले को ( नमस्यन्ति ) नमस्कार करते हैं वे अभीष्ट सुखों से सम्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो इन्द्रियों को वश में करनेवाले विद्वान् लोग प्रेम और सत्स-भाषणादिस्वरूप धर्म से परमेश्वर की उपासना करते हैं वे सुख से युक्त होते हैं ॥ १२ ॥

**सोमो जिगाति गातुर्विद्वेवानामेति निष्कृतम् ।**

**ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३॥**

पदार्थ—जो ( गातुर्वित् ) प्रशंसा जाननेवाले ( सोमः ) ऐश्वर्य से युक्त ( देवानाम् ) विद्वानों और ( ऋतस्य ) सत्य के ( निष्कृतम् ) निरन्तर जाने गये ( आसदम् ) और जिसमें सब वर्तमान होते हैं उस ( योनिम् ) कारण की ( जिगाति ) स्तुति करता है वह अपेक्षित सुख को ( एति ) प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् इस अनेक प्रकार के स्वर्ण वाले संसार के कारण अव्यक्त को जानता है और इस संसार के रचनेवाले परमात्मा की प्रशंसा करता है वही ऐश्वर्य से युक्त होता है ॥ १३ ॥

अब इस अगले मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

**सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सोमः ) चन्द्रमा ( द्विपदे ) मनुष्य आदि ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के ( चतुष्पदे ) गौ आदि के ( च ) और ( पशवे ) अन्य पशु के लिए ( अनमीवा ) रोग निवर्तक ( इषः ) भग्न आदि जोषविसमूहों को ( करत् ) करे उसका सब काल में सत्कार करो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो बंध लोग सब दो पैर वाले अर्थात् मनुष्य आदि और चौराये गौ आदिको को रोगरहित करें वे सब लोगों को मान करने योग्य होवें ॥ १४ ॥

अब इस अगले मन्त्र में मित्रता के विषय को कहते हैं—

**अस्माकमायुर्वर्धयन्मित्रातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥१५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सोमः ) सुन्दर पथ्य और योग्य व्यवहार में प्रेरणा करता हुआ ( अभिमातीः ) शत्रुओं के सदृश रोगों को ( सहमानः ) सहन करता हुआ सा ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( आयुः ) जीवन को ( वर्धयन् ) बढ़ाता हुआ ( सधस्थम् ) साथ के स्थान को ( आ, असदत् ) स्थित हो वह हम लोगों का मित्र और हम लोग उसके मित्र होवें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो धार्मिक शूरवीर पुरुष शत्रुओं का नाश और मित्रों की रक्षा करके सब सज्जनों की जीवन और विजय से वृद्धि करते हैं उनके साथ सदैव मेरी की सब लोगों को रक्षा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

अब अगले मन्त्रों में अध्यापक और उपदेशक के विषय को कहते हैं—

**आ नो मित्रावरुणा धृतेर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥**

पदार्थ—जो ( सुक्रतू ) उत्तम बुद्धि वा श्रेष्ठ कर्म वाले ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु के सदृश अध्यापक और उपदेशक ( धृतेः ) जल आदिकों से ( गव्यूतिम् ) दो कोस ( रजांसि ) लोको को सिञ्चने वाले के सदृश ( मध्वा ) मधुरता से ( न ) हम लोगों के लिए ( आ, उक्षतम् ) मीचने वाले हैं उन दोनों को हम लोग प्राणों के सदृश प्रिय मानते हैं ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो पठान और उपदेश देने वाले से उपदेश की गई प्राण अर्थात् पवनसम्बन्धी विद्या को जानकर लोकलोकान्तर अर्थात् एक देश से दूसरे देश के व्यवहार से सम्पूर्ण देशों में जाना आना सिद्ध करते हैं वे जल के सदृश शुद्ध अन्तःकरण वाले जानने योग्य हैं ॥ १६ ॥

**उरुशंसा नमोदधा महा बर्हस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिब्रता ॥१७॥**

पदार्थ—हे ( शुचिब्रता ) उत्तम कर्म करनेवाले ( उरुशंसा ) बहुत स्तुतियों से युक्त ( नमोदधा ) भग्न आदि के बढ़ानेवाले अध्यापक और उपदेशक लोगों ! जिससे कि आप दोनों प्राण और उदान वायु के सदृश ( बर्हस्य ) बल के ( महा ) महत्त्व से ( द्राघिष्ठाभिः ) बहुत बड़ी और पुरुषार्थ से युक्त क्रियाओं से ( राजथः ) प्रकाशित होते हैं इस कारण सत्कार करने योग्य हैं ॥ १७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो पवित्रता से युक्त यशस्वी जन बल ऐश्वर्य और अन्न आदि की वृद्धि और बड़े श्रेष्ठ कर्मों से लोको में प्रकाशित होते हैं उनकी ही सेवा और मत्कार करो ॥ १७ ॥

**गृणाना जमदग्निना योमावृतस्य सीदतम् ।**

**पार्त सोममृतावृधा ॥१८॥११॥१२॥**

पदार्थ—( जमदग्निः ) सत्य के बढ़ानेवाले ( गृणाना ) स्तुति करते हुए अध्यापक और उपदेशक आप दोनों ( जमदग्निना ) नेत्र अर्थात् प्रत्यक्ष से ( जमदग्निः ) सत्य आचरण के ( योमा ) स्थान में निरन्तर ( सीदतम् ) बतों और ( सोमम् ) ऐश्वर्य की ( पातम् ) रक्षा करो ॥ १८ ॥

भाषार्थ—वे ही अध्यापक और उपदेशक होने के योग्य हैं कि जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से पृथिवी को लेकर परमेश्वरपर्यन्त प दार्थों का साक्षात्कार करके सत्यविद्या के आचरण की वृद्धि जिनको प्रिय, जो धर्मयुक्त मार्ग में जायें वे सत्कार करने के योग्य होवें ॥ १८ ॥

इस सूक्त में मित्र अध्यापक पढ़नेवाले ओता उपदेशक परमात्मा विद्वान् प्राज्ञ और उदान आदि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह तीसरे मण्डल में वासवर्षा सूक्त, पाँचवाँ अनुवाक तीसरे अष्टक में न्यारहवाँ अर्थ और तृतीय अष्टक समाप्त हुआ ॥

## ॥ अथ चतुर्थ मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितरुदितानि परां सुव । यजुर्द्र तन्न आ सुव ॥१॥

अथ चतुर्थमण्डले विश्वानुक्तस्य प्रथमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १, ५-२० अग्निः ।

२-४ अग्निर्वा वरुणस्य देवता । १ स्वराडितिसावरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

२ अतिजयती छन्दः । निवारः स्वरः । ३ अष्टिछन्दः । मध्यमः स्वरः ।

४, ६ भुरिक्पक्षितः । पञ्चमः स्वरः । ५, १८, २० स्वराड-

पक्षितछन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७, ८, १५, १७, १९ विराड्

छिन्दुप् । ८, १०, ११, १२, १६ निचुतिछिन्दुप् ।

१३, १४ छिन्दुछन्दः । धेनुतः स्वरः ॥

अथ चतुर्थ मण्डल में बीस ऋचा वाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है  
उसके प्रथम मन्त्र में वाणी विषय को कहते हैं—

त्वां जग्ने सदमित्समन्यवो देवासीं देवमरति न्येरि इति क्रत्वा न्येरिरे ।

अमर्त्यं यजत मस्यैषा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत  
प्रचेतसम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! जो ( समन्यवः ) कोष के सहित  
वर्तमान ( देवासः ) विद्वान् लोग ( हि ) जिस से कि ( अरतिम् ) पहुँचाने योग्य  
( देवम् ) उत्तम गुणों के और ( सवम् ) गृह के तुल्य स्थिति के देनेवाले ( त्वाम् )  
आपकी ( इत् ) ही ( न्येरिरे ) प्रेरणा करते हैं इससे ( इति ) इस प्रकार ( क्रत्वा )  
करके ( न्येरिरे ) मुझे भी निश्चयकर प्राप्त होवें और उस ( मस्यैषु ) मरणधर्म-  
वालों में ( अमर्त्यम् ) मरणधर्म से रहित परमात्मा की ( यजत ) पूजा करो और  
( आदेवम् ) सब प्रकार विद्या आदि के प्रकाश से युक्त ( आदेवम् ) सब प्रकार  
केदीप्यमान ( प्रचेतसम् ) उत्तम ज्ञान से युक्त ( जनत ) उत्पन्न करो, ऐसा करके  
( विश्वम् ) सब के ( आ, देवम् ) सब प्रकार प्रकाश और ( प्रचेतसम् ) उत्तमज्ञान-  
युक्त ( जनत ) उत्पन्न करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो अध्यापक और राजा जीहें टेढ़ी कर के विद्यार्थी अपनी और  
प्रजाजनों की प्रेरणा करते तो उत्तम श्रेष्ठ विद्वान् और धार्मिक होते हैं । जो मरण-  
धर्म वालों में मरणधर्मरहित अपने प्रकाशस्वरूप परमात्मा की उपासना कर के सब  
मनुष्यों को बुद्धिमान् विद्वान् करते हैं वे ही सब काल में सत्कार करने योग्य और  
सुखी होते हैं ॥ १ ॥

अब इस ऋग्वेद मन्त्र में वाणी के विषय को कहते हैं—

स भ्रातरं वरुणमग्न आ वृष्टस्व देवां

अच्छा सुमती यज्ञवन्सं ज्येष्ठं यज्ञवन्सम् ।

ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ( स ) वह आप ( भ्रातरम् ) प्रियवन्धु के  
सदृश ( वरुणम् ) श्रेष्ठजन को ( सुमती ) श्रेष्ठ बुद्धि से ( यज्ञवन्सम् ) विद्या-  
व्यवहार के विभाग करनेवाले ( ज्येष्ठम् ) विद्या से वृद्ध अध्यापक ( यज्ञवन्सम् )  
राज्यव्यवहार के विभाग करनेवाले ( राजानम् ) प्रकाशमान नरेश विद्याव्यवहार के  
विभाग करनेवाले ( चर्षणीधृतम् ) मनुष्यों के धारणकर्ता वा विद्वानों से धारण किये  
गए ( आदित्यम् ) सूर्य के सदृश वर्तमान ( ऋतावानम् ) सत्य के विभागकर्ता  
प्रकाशमान ( चर्षणीधृतम् ) सत्यासत्य की विवेचना करनेवालों के धारण करनेवाले  
अध्यापक वा उपदेशक ( देवासः ) और धार्मिक विद्वानों को ( अच्छा ) अच्छे प्रकार  
( आ, वृष्टस्व ) सब ओर से बतिये यथाज्ञान उनके अनुकूल वर्तमान कीजिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक वा राजन् आप श्रेष्ठ आत्मान वा मन्त्रियों को  
उत्तम मति और सत्य आचरण से संयुक्त करके संगत कर्मों का सेवन कराओ और  
सूर्य के सदृश विद्या ध्याम का प्रकाश निरन्तर करो ॥ २ ॥

सत्वे सत्वायमम्या वृष्टस्वाहुं न चक्रं रथ्येव रंक्षास्मभ्यं दस्म रंक्षा ।

अथ मृळीकं वरुणे सखा विदो मरुस्तु विश्वमानुषु ।

तौकाय तुजे शुशुचान् शं कृष्यस्मभ्यं दस्म शं कृषि ॥३॥

पदार्थ—हे ( सखे ) मित्र ( वरुणम् ) पहिले के और ( वरुणम् ) शीघ्र  
चलनेवाले घोड़े के ( न ) सद्यः ( सत्वायम् ) स्नेहीजन को ( अग्नि, आ, वृष्टस्व )

समीप धर्ताह्ये और हे ( वरुणम् ) दुःख के नाशकर्ता ( रंक्षा ) प्राप्त होने योग्य  
( रथ्येव ) वाहनों के निमित्त उत्तम स्थानों की जैसे जैसे ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों  
के लिए ( रंक्षा ) प्राप्त होने योग्यो के सब प्रकार समीप प्राप्त होइये और हे  
( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप ( सखा ) सत्य के सयोग से ( वरुणे )  
उपदेश देनेवाले के विषय में ( मृळीकम् ) सुखकर्ता को ( विदः ) प्राप्त होवें और हे  
( शुशुचान् ) पवित्र करनेवाले ( विश्वमानुषु ) सब में सूर्य के सदृश प्रकाश करने-  
वाले ( वरुणम् ) मनुष्यों में ( तुजे ) विद्या और बल की इच्छा करनेवाले ( तौकाय )  
पुत्रादि के लिए ( शम् ) सुख को ( कृषि ) करो और हे ( वरुणम् ) अविद्या के नाश  
करनेवाले आप ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( शम् ) सुख ( कृषि ) करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यों आप लोग सब लोगों के  
साथ मित्र होकर जैसे घोड़े रथ को ले चलते हैं वैसे मित्रों को उत्तम कर्मों में प्रवृत्त  
करो । और श्रेष्ठ मार्ग के सदृश हम लोगों को सरल मर्यादा में पहुँचाइये । जो लोग  
संसार में सूर्य के सदृश उत्तम गुणों से युक्त हुए सब के आत्माओं को प्रकाशित  
करके सुख को उत्पन्न करें वे हम लोगों से सत्कार करने योग्य हों ॥ ३ ॥

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्टाः ।

यजिष्ठो बह्मिन् शोशुचानो विश्वा देवांसि प्र मुमुक्ष्यस्मत् ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश विद्वान् पुरुष ( विद्वान् ) विद्यायुक्त  
( वरुणम् ) आप ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ ( देवस्य ) विद्या के प्रकाश करनेवाले के ( हेळः )  
आवरणरहित होते हैं जिससे उस के ( अव ) निवारण में ( यासिसीष्टाः ) प्रेरणा करो  
और ( यजिष्ठः ) अत्यन्त यज्ञ करने और ( बह्मिन् ) अत्यन्त पहुँचानेवाले ( नः )  
हम लोगों के प्रति ( शोशुचानः ) अत्यन्त प्रकाशमान हुए आप ( विश्वा ) सब  
( देवांसि ) देवयुक्त कर्मों को ( अस्मत् ) हम लोगों के समीप से ( प्र, मुमुक्ष्य )  
अलग कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—वे ही विद्वान् जन हैं कि जो श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष का आनादर नहीं  
करते हैं और वे ही अध्यापक और उपदेशक कल्याणकारी होते हैं जो हम लोगों के  
घोषों को दूर करके पवित्र करते हैं वे ही हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो ध्युष्टौ ।

अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥५॥१२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ( सः ) वह  
( वरुणम् ) आप ( अस्या ) इस ( उषसः ) प्रातःकाल के ( ध्युष्टौ ) विशेष वाह में  
( नेदिष्ठः ) अत्यन्त समीप स्थित ( इती ) रक्षण आदि कर्म से ( नः ) हम लोगों  
के ( अवमो ) रक्षा करनेवाले ( अव ) हजिये ( वरुणम् ) श्रेष्ठ अध्यापक वा  
उपदेशक को ( रराणो ) बेटे हुए ( नः ) हम लोगों को ( अव, यक्ष्व ) प्राप्त  
हजिये और ( सुहवः ) उत्तम प्रकार बुलानेवाले हुए ( न ) हम लोगों के लिए  
( मृळीकम् ) सुख करनेवाले कार्य का ( वीहि ) आप्त हजिये और हम लोगों को  
( एधि ) प्राप्त हजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—वही अध्यापक वा राजा श्रेष्ठ है कि जो उत्तम शिक्षा से हम  
लोगों की प्रातःकाल के सदृश रक्षा करे । दुष्ट आचरण से अलग करके श्रेष्ठ आचरण  
करावे ॥ ५ ॥

अस्य श्रेष्ठा सुभास्य संहदेवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।

शुचिं धृतं न तप्तमध्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव वेनोः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् ( मर्त्येषु ) मनुष्यों में ( अस्य ) इस सब के पालन  
करनेवाले ( सुभास्य ) प्रशंसित ऐश्वर्य्य और ( देवस्य ) दिव्य गुण कर्म और  
स्वभावयुक्त राजा के ( चित्रतमा ) अत्यन्त अद्भुत और ( श्रेष्ठा ) उत्तम कर्म  
( तप्तम् ) तपाये गये ( शुचिं ) पवित्र ( धृतम् ) धी के ( न ) समान वर्तमान है  
तथा ( अध्यायाः ) न नष्ट करने योग्य ( वेनोः ) वाणी के वा गी के तपाये गये  
पवित्र धी के सदृश ( देवस्य ) परमात्मा के ( स्पार्हा ) चाहने योग्य ( मंहनेव )  
अतीव पूजनीय सदृश कर्म वर्तमान हैं उन के ( संहृद् ) उत्तम प्रकार देखनेवाले  
होते हुए राज्य की वृद्धि करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में आशकलुप्तोपमालङ्कार है—जिन राजादिकों के  
अग्नि से तपाये गये स्वच्छ धृत के समान विद्वान् की उत्तम शिक्षित वाणी के मधुर  
वक्त्रों के समान वरुण और परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावों के समान गुण कर्म स्वभाव  
हैं वे अति आश्चर्य्यपूर्ण ऐश्वर्य्य राज्य और अद्भुत कीर्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥



अब अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पर्धा देवस्य जनिमान्यरनेः ।

अनन्ते अन्तः परिवीत आगाह्यचिः शुक्रो अस्यो रोह्वानः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( अग्ने ) अग्नि के सदृश जिस ( अस्य, देवस्य ) उत्तम गुण कर्म और स्वभाववाले इस राजा के जो ( सत्या ) उत्तम व्यवहारों में श्रेष्ठ ( स्पर्धा ) अभिकाक्षा करने के योग्य ( परम ) उत्तम ( जनिमानि ) जन्म ( सन्ति ) हैं और जो ( रोह्वानः ) अत्यन्त प्रकाशमान ( अस्यः ) सब का स्वामी ( शुक्रः ) शीघ्र करनेवाला ( शुचि ) पवित्र ( परिवीत ) जिस के सब ओर उत्तम गुण कर्म और स्वभाव व्याप्त वह ( अनन्ते ) परमात्मा वा आकाशविषयक ( अन्तः ) मध्य में ( ता ) उन को ( त्रिः ) तीनवार ( आ, अगात् ) प्राप्त होता है वही सबका अधीश होने योग्य है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—वही उत्तम कुल में उत्पन्न होता है कि जिन के उत्तम कर्म हों । और जैसे बिजुली अग्नि आदि सीमारहित अन्तरिक्ष में शोभित होता है वैसे ही जो अनन्त जगदीश्वर का ध्यान करके सब ज्ञानवाला शुद्धियुक्त होकर सम्पूर्ण उत्तम प्रशंसा करने योग्य कर्मों के करने को समर्थ होता है ॥ ७ ॥

स दृतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।

रोहिदंशो वपुष्यो विभावा सदा रयवः पितुमतीव संसत् ॥८॥

पदार्थ—( हिरण्यरथः ) तेजोमय सुन्दर स्वरूपयुक्त सूर्य के सदृश जिसका व्यवहार ( रंसुजिह्वः ) सुन्दर जिसकी वाणी ( रोहिदंशः ) जिसके रक्त आदि गुणों से विशिष्ट अग्नि आदिक छोटे शीघ्र चलनेवाले वह ( वपुष्यः ) रूपों में प्रसिद्ध ( विभावा ) ऐश्वर्यवान् ( रयवः ) सुन्दर स्वरूपयुक्त ( होता ) देने वा लेनेवाला होता हुआ राजा ( दृतः ) दृष्टों को सन्ताप देते हुए के सदृश ( विभावा ) सब ( सदा ) उत्तम कर्म वा स्थानों की ( अभि, वष्टि ) कामना करता है ( सः ) वह ( इत् ) ही ( ससत् ) चक्रवर्तियों की सभा ( पितुमतीव ) जोकि प्रशंसित बहुत धन आदि ऐश्वर्य से युक्त उसके सदृश ( सदा ) सब काल में उन्नतिशील होता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे दूतजन राजाओं के हित करने की इच्छा करते हैं वैसे ही जो राजाजन प्रजा का हित निरन्तर करते हैं वे राजा और सभासद् पुण्य के भजनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥

स चैतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मया रशनया नयन्ति ।

स सैत्यस्य दुर्ययो सु सार्धन्देवो मर्त्यस्य सधनित्वमाप ॥९॥

पदार्थ—जो ( सः ) वह ( यज्ञबन्धुः ) न्याय व्यवहार के भ्राता के सदृश वर्तमान राजा ( मनुषः ) मन्त्री और प्रजाजनो को ( चैतयत् ) जनावे ( तत् ) उसको जो सभासद् लोग ( मया ) बड़ी ( रशनया ) रस्ती से छाड़े के सदृश नीति से ( प्र, नयन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं ( सः ) वह ( अस्य ) इस राज्य के ( दुर्ययो ) न्याय के स्थानों में राजव्यवहार को ( सार्धम् ) साथसाथ हुआ ( भोति ) निवास करता है वह ( देवः ) देनेवाला ( मर्त्यस्य ) मनुष्यसम्बन्धी ( सधनित्वम् ) धनीपन के साथ वर्तमान राज्य को ( आपः ) प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यथार्थवादी अध्यापक और उपदेशक लोग उत्तम शिक्षा से विद्यार्थियों के लिए धर्मयुक्त मर्यादा को प्राप्त करते हैं वैसे ही राजनीति की शिक्षा से राज के लिए राजधर्म के मार्ग को प्राप्त करो । और जो मन्त्री और प्रजा के सहित राजा व्यसन रहित होकर प्रीति से राजधर्म को करता है वह ऐश्वर्ययुक्त जन और राज्य को प्राप्त होकर सुख से निवास करता है ॥ ९ ॥

स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानमच्छा रस्ते देवमक्तं यदस्य ।

धिया यद्विभ्वे अमृता अकुण्ठन्योष्पिता जनिता मृत्युमृसन ॥१०॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे ( सः ) वह ( अस्य ) इस सत्ता का ( पिता ) पालन करने और ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( धीः ) प्रकाशमान ( अग्निः ) अपने से प्रकाशरूप परमात्मा के सदृश राजा ( धिया ) बुद्धि से सबको ( प्रजानम् ) जानता हुआ ( न ) हम लोगों को ( यत् ) जो ( देवमक्तम् ) देवों से सेवित ( रत्नम् ) सुन्दर धन को ( अच्छा ) उत्तम प्रकार प्राप्त कराता है वैसे आप ( मृत्यु ) प्राप्त कराइये ( यत् ) जिन में ( तु ) फिर ( विभ्वे ) सब ( अमृताः ) जन्म और मृत्यु से रहित जीव ( सत्यम् ) सत्य का ( उच्छा ) सेवन करते हुए मोक्ष को ( अकुण्ठम् ) करते हैं वहाँ ही स्थित हो और सत्य का सेवन और धर्म से राज्य का पालन करके मोक्ष को प्राप्त होइये ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो जैसे सब जगत् का पालन और उत्पन्न करनेवाला परमात्मा दया से सब जीवों के सुख के लिए अनेक प्रकार के पदार्थों को रच और दे के अभिमान नहीं करता है वैसे ही आप लोग होइये । और ईश्वर के उत्तम गुण कर्म और स्वभावों के तुल्य अपने गुण कर्म और स्वभावों को करके राज्य आदि का पालन करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त होओ ॥ १० ॥

अब अगले मन्त्रों में अग्निवच से परमात्मा के विषय को कहते हैं—

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्रे रजसो अस्य योनी ।

अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( स ) बिजुलीरूप अग्नि ( प्रथम ) प्रथम सूर्य ( महः ) बड़े ( बुध्रे ) अन्तरिक्ष में ( अस्य ) इस ( रजसः ) लोको के समूह के ( योनी ) कारण में ( जायत ) उत्पन्न होता है और जैसे ( गुहमानः ) डपा हुआ ( अपात् ) पैरो और ( अशीर्षा ) शिर आदि ( आयोयुवानः ) सब प्रकार अत्यन्त मिलाने वा अलग करनेवाला ( वृषभस्य ) वृष्टि करनेवाले सूर्य के ( नीळे ) स्थान में ( अन्ता ) समीप में उत्पन्न होता है वैसे ही आप लोग भी ( पस्त्यासु ) धरी में उत्पन्न अर्थात् प्रकट होजिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो जैसे अन्तरहित आकाश में प्रकृति से महत्त्व अर्थात् बुद्धि आदि के क्रम से यह संसार उत्पन्न हुआ इस संसार में अवयवों से रहित मिलते हुए जीव परमात्मा के समीप में वर्तमान हो गृहो में उत्पन्न होते शरीर को धारण करने और त्यागते हैं उस सब के स्वामी का हृदय में ध्यान कर सुखी होजिए ॥ ११ ॥

प्र शर्थ आर्त प्रथमं विपन्यां श्रुतस्य यानां वृषभस्य नीळे ।

स्पर्धा युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष जैसे ( वृष्णे ) वृष्टि करनेवाले जीव के लिए ( सप्त ) पांच प्राण मन और बुद्धि ये सात ( प्रियासः ) सुन्दर और सेवन करने योग्य ( अजनयन्त ) उत्पन्न करते हैं वैसे ( वृषभस्य ) सत्यकारण के ( योना ) स्थान में ( वृषभस्य ) वृष्टि करनेवाले अग्नि के ( नीळे ) स्थान में ( स्पर्धाः ) अभिलाषा करने योग्य ( युवा ) युवावस्था को प्राप्त ( वपुष्यः ) रूपों में श्रेष्ठ और ( विभावा ) अनेक प्रकार की विद्याओं के प्रकाश युक्त हुए आप ( विपन्या ) अनेक प्रकार के व्यवहार में श्रेष्ठ प्रशंसा से ( प्रथमम् ) पहिले ( शर्थः ) बल को ( प्र, आर्त ) प्राप्त होजिए ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो जैसे प्राण और अन्तःकरण कार्य के साधक और प्रिय होते हैं वैसे ही पुरुषाथ से कार्य और कारण जानकर और परमेश्वर का ज्ञान करके प्रथम अवस्था में शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर मुक्तो को उत्पन्न करो ॥ १२ ॥

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि मर्त्यदुर्गतांशुषाणाः ।

अश्वम्रजाः सुदुर्गा वद्रे अन्तरदुस्सा आजन्तुषसो हुवानाः ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( अत्र ) इस संसार वा व्यवहार में ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( मनुष्या ) मनन करने और ( पितरः ) पालन करनेवाले ( वृत्तम् ) सत्य को ( आशुषाणाः ) सब प्रकार प्राप्त हुए वा ब्रह्मचर्य से शुष्क शरीरवाले ( अश्वम्रजाः ) मेघों में चलनेवाले ( सुदुर्गा ) उत्तम प्रकार कामनाओं के पूर्ण करने वाले ( उच्चसः ) प्रातःकाली को ( उच्चसः ) किरणों के सदृश ( हुवानाः ) पुकारने वाले हुए ( उच्च, आजन्तु ) प्राप्त होते हैं ( अन्तः ) मध्य में ( अभि ) सम्मुख ( प्र, सेतु ) जाने हैं उन को जो ( वद्रे ) ढांपता है वह भाग्यशाली होता है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों के पालन करनेवाले ब्रह्मचर्य को धारण करके जैसे सूर्य की किरणों में मेघों को वर्षाती है वैसे ही बुलाये हुए सत्य का प्रकाश करते हैं उनका जो सत्कार करता है वह भाग्यशाली होता है ॥ १३ ॥

ते मर्मजत ददुर्वांसो अद्रि तदेवामन्ये अभितो वि वीचन् ।

पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चक्रपन्त धीमिः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो हम लोगों के मनन करने और पालन करनेवाले ( अद्रिम् ) मेघ के ( ददुर्वांसः ) तोड़नेवाले किरणों के सदृश हम लोगों को ( अमर्जतः ) शुद्ध होकर शुद्ध करते हैं ( एवाश् ) इसके मध्य में ( अन्धे ) दूसरे लोग ( तत् ) इस कारण ( अभितः ) चारों ओर से सम्मुख ( वि, वीचन् ) उपदेश देते ( पश्वयन्त्रासः ) देखे हैं यन्त्र जिन्होंने ऐसे होते हुए ( कारम् ) शिल्पकृत्य का ( अभि, अर्चन् ) सत्कार करते ( धीमिः ) बुद्धियों वा कर्मों से ( ज्योतिः ) प्रकाश को ( विदन्तः ) जानने और सबों में ( चक्रपन्तः ) कृपायु होते हैं ( ते ) वे सब लोगों से सत्कार पाने योग्य होंगे ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वेद उपदेश अंग और उपायों के पार जाने और शिल्पविद्या के जाननेवाले विद्वान् लोग कृपा से सब को उत्तम प्रकार शिक्षा का उपदेश करके विद्यायुक्त करें वे सब लोगों से सत्कार करने योग्य होंगे ॥ १४ ॥

ते गव्यता मनसा हृधमुधं मा यैमानं परि पन्तमद्रिम् ।

हृहं नरो वचसा दैव्येन व्रज गोमन्तमुशिजो वि वद्रेः ॥१५॥१४॥

पदार्थ—जो ( नरः ) वीर पुरुष ( मनसः ) मन से ( गव्यता ) गीर्वा के समूह के सदृश आचरण करनेवाले ( दैव्येन ) सुन्दर ( वचसा ) वचन से ( माः )

किरणों को ( सूर्यः ) बढ़ाने वाले ( उज्ज्वलः ) सब ओर से मिले हुए ( वेद्यमानः ) विद्यमान अर्थात् नाशक ( सत्त्वः ) वर्तमान ( बुद्धिः ) सुख के बढ़ाने वाले को सूर्य ( सूर्यः ) बलवान्वाले ( गोबलः ) किरणों विद्यमान जिस में ऐसे की ( अग्निः ) मेघ के सदृश ( उज्ज्वलः ) कामना करते हुए ( परि, वि, वः ) प्रकट करते हैं ( ते ) वे कायना को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जैसे किरणों मेघ को ऊपर को प्राप्त करतीं और वर्षाती हैं वैसे ही विद्वान् जन विचार से दृढ़ ज्ञान को उत्पन्न करते हैं ॥ १५ ॥

ते मन्वत प्रथमं नाम जेनोसिः सप्त मातुः परमार्जि विन्दन् ।

तज्जानतीरन्ध्रवत्त वा आनिर्मुददणीर्मशसा गोः ॥ १६ ॥

पदार्थ—जो ( मातुः ) माता के सदृश ( जेनोः ) बापी के ( सप्तः ) सात अर्थात् सात माययादि छन्दों में विद्यमान ( परमार्जि ) उत्तम व्यवहारों को ( विन्दन् ) जानते हैं ( ते ) वे इस के ( प्रथमम् ) प्रसिद्ध ( नाम ) स्तुतिपात्रक राज्ञात्म की ( विः ) तीन बार ( मन्वतः ) मानते हैं और जो ( यजता ) कीर्ति के साथ वर्तमान ( आनिः ) प्रकट ( मुदत् ) होते वह ( तत् ) उस ( गोः ) बापी के विज्ञान को जाने और जो कीर्ति से प्रकट होवें वे ( अन्धः ) रक्तगुण से विशिष्ट ( जाली ) विज्ञानवाली ( वाः ) प्रकट होने वालियों की ( अग्निः ) सब प्रकार ( अन्धवत् ) स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जैसे कामधेनु दुग्ध आदि से इच्छा को पूर्ण करती है वैसे ही विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त बापी विद्वानों को प्रसन्न करती है । जो लोग धर्म का आचरण करते हैं वे यशस्वी होकर सर्वत्र प्रसिद्ध होते हैं ॥ १६ ॥

अथ सूर्य के दृष्टान्त से आत्मा के बल की रक्षा को कहते हैं—

नेष्टव्यो दुर्धित रोचत योरुद्देव्या वषसो भानुरर्तः ।

आ सूर्यो बृहत्तस्तिष्ठदजो ऋजु मर्त्येषु वृजिना च पश्यन् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुत्रज जैसे ( द्यौः ) आकाशस्थ ( भानुः ) प्रकाशमान ( सूर्यः ) सूर्य ( देव्याः ) उत्तम सुख की प्राप्त करानेवाली ( उज्ज्वलः ) प्रभात-वेला से ( दुर्धितः ) पूर्ण ( तमः ) अंधकार को ( उत्, मेघात् ) नाश करता और ( रोचत ) प्रकाशित होता ( तिष्ठत् ) और स्थिर रहना है वैसे ( बृहत् ) बड़े ( अज्वात् ) संसार में जिन का प्रक्षोभ हुआ उन पदार्थों को ( पश्यत् ) देखते हुए आप ( मर्त्येषु ) मनुष्यों में ( वृजिना ) बलों को ( च ) और ( ऋजु ) सरलभाव को ( आ, अर्तः ) प्राप्त कराओ ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य प्रातर्वेला से रात्रि का निवारण करके प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे ही अध्यापक और उपदेशक व्याप्त भी पदार्थों को देख के मज्जा में मनुष्यों में शरीर आत्मा के बल को बढ़ावें ॥ १७ ॥

अथ प्राणी के विषय को इस अगले मन्त्र में कहते हैं—

आदिस्पृधा बुभुधाना व्यख्यन्वादिदत्तं धारयन्त धुमंक्रमः ।

विश्वे विन्वासु दुर्यासु देवा मित्रं धिये वरुण सत्यमस्तु ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे ( वरुण ) वृष्ट पुण्यों के बाँचने वाले ( मित्रः ) मित्र जैसे ( बुभुधानाः ) विशेष कर के जानते हुए ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( देवाः ) विद्वान् जन ( विन्वासु ) सब ( दुर्यासु ) स्वामी में ( बुभुक्षन् ) बिजुली आदि पदार्थों से सेवित ( रत्नम् ) धन को ( धारयन्तः ) धारण करते हैं । और ( आत् ) अनन्तर ( इत् ) ही ( वरुणा ) पीछे से इसका ( वि, अख्यत् ) विशेष करके उपदेश दें ( आत् ) अनन्तर ( इत् ) ही वह ( सत्यम् ) सत्य ( धिये ) बुद्धि वा उत्तम कर्म के लिए ( वस्तु ) हो ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जो लोग ब्रह्मचर्य से विद्या, उत्तम शिक्षा, सत्य और धर्माचरणों को धारण करके अन्य जनों के प्रति उपदेश देते हैं वे बुद्धि को बढ़ा के सर्वत्र प्रसिद्ध हो के आनन्द से चरों में रहते हैं ॥ १८ ॥

अथ बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अच्छा बोधेय शुशुबानमग्नि होतारं विश्वमरसं यजिष्ठम् ।

शुच्युषो अमृष्य मवामन्वो न पूतं परिचिह्नमंशोः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जो ( मंशोः ) प्राण सूर्य के ( परिचिह्नम् ) सब ओर से मिले किये हुए ( पूतम् ) पवित्र वस्तु ( शुचिः ) और पवित्र कर्म को ( अमृष्यः ) अन्न के ( न ) तुल्य वा ( मवाम् ) गीओं के ( अमः ) प्रभात समय के सदृश ( न ) मही ( अमृष्यत् ) हिंसा करता है उस ( यजिष्ठम् ) अत्यन्त मिलाने ( विश्वमरसम् ) संसार के धारण करने और ( होतारम् ) देने और ( शुशुबानम् ) शुद्ध गुण कर्म और स्वभाव करानेवाले ( अमिष्यः ) बिजुली रूप अग्नि का आप लोगों के प्रति में ( अच्छः ) उत्तम प्रकार ( बोधेयः ) उपदेश है ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाकाकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे बिजुली संसार रूप हुई सब की रक्षा करती है और निष्कप होने पर नाश करती, वह किरणों का धोका नहीं करती और अन्न के सदृश पालन करनेवाली होकर सबको चलाती है ऐसा जानें ॥ १९ ॥

किर उक्त विषय को सूर्य के सम्बन्ध से भी कहते हैं—

विश्वेधामदिर्विद्यमानां विश्वेधामतिविमानुवाणासु ।

अग्निदेवानामभ आधुपानः सुसुकीको मन्वतु जातवेदाः ॥ २० ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप ( विश्वेधाम् ) सम्पूर्ण ( यजिमानाम् ) यज्ञों के अनुष्ठान करनेवालों के ( अग्निः ) अलग्निष्ठ अन्तरिक्ष के तुल्य ( विश्वेधाम् ) सम्पूर्ण ( आधुपानम् ) मनुष्यों में ( अतिविः ) धम्यागत के सदृश वर्तमान ( देवानाम् ) विद्वानों के ( अमिष्यः ) अग्नि के सदृश ( अमः ) रक्षण को ( आधुपानः ) सब प्रकार स्वीकार करते हुए ( जातवेदाः ) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान हुए ( सुसुकीकः ) उत्तम प्रकार सुख करनेवाले ( मन्वतु ) हजिये ॥ २० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तोत्रमाकार है । हे मनुष्यों जैसे यज्ञ के सुगन्धित घृम से सुदृढ़ हुआ अन्तरिक्ष पूर्णविद्यमान, यथार्थवत्ता उपदेश देनेवाला पुरुष और सूर्य सुख देने वाले होते हैं वैसे ही आप लोग सबों के लिए सुख देनेवाले हजिये ॥ २० ॥

इस सूक्त में विद्वानों से जानने योग्य अग्नि बापी सूर्य बिजुली आदिको के गुण बर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह प्रथम सूक्त और पञ्चहर्षा वर्ष समाप्त हुआ ॥

॥

अथ विश्वसूक्तस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य नामदेव ऋचिः । अग्निर्वेदता ।

१, १६ पङ्क्तिः । १२ मित् पङ्क्तिः । १४ स्वराद् पङ्क्तिः । पञ्चमः

स्वरः । २, ४—७, ८, १२, १३, १४, १७, १८, २० मित्पङ्क्तिः ।

१, १६ मित्पङ्क्तिः । ८, १०, १५ विराट्पङ्क्तिः

अथ । वेदतः स्वरः ॥

अथ कील ऋचा वाले दूसरे सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में

पदार्थ जानने वाले पुण्यों के कृत्य को कहते हैं—

यो मर्त्येष्वमृतं कृतावा देवो देवेभ्यरतिर्निधायि ।

होता यजिष्ठो महा शुचये हव्यैर्घर्मनुष ईर्यध्वै ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( यः ) जो ( अग्निः ) ईश्वर पावक अग्नि वा बिजुली के सदृश ( अमृतम् ) मरणधर्म वालों में ( अमृतः ) मृत्युधर्म से रहित ( कृतावा ) मर्त्यस्वरूप ( देवेभ्यः ) उत्तम पदार्थों वा विद्वानों में ( देवः ) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाला सुन्दर ( अरतिः ) सर्वस्थान में प्राप्त ( होता ) देनेवाला ( महा ) महत्त्व से ( यजिष्ठः ) पूजा करने योग्य ( हव्यै ) देनेके योग्यों के सहित ( मनुषः ) मनुष्यों को ( ईर्यध्वै ) प्रेरणा करने को ( शुचये ) पवित्र करने को विद्यमान वह हृदय में ( निधायि ) धारण किया जाता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो जगदीश्वर उत्पत्ति और नाश आदि गुणरहित होने से दिव्यस्वरूप शुद्ध और पवित्र है उसका प्रेरणा और पवित्रता में प्रजन करो ॥ १ ॥

इह त्वं हूँतो सहसो नो अद्य जातो जातौ वमर्यौ अन्तरंमे ।

कृत ईपसे युपुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वर्षणः शुक्रांश्च ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान ( ऋष्वः ) विज्ञान को प्राप्त ( नः ) हम लोगों के ( हूँतो ) पवित्रपुत्र ( त्वम् ) आप ( इह ) इस संसार में ( अद्य ) आज ( सहसः ) बल से ( जातः ) विद्या के जन्म में प्रकट हुए ( ऋजुमुष्कात् ) सरलता से चुरानेवाले ( वृषणः ) बलयुक्त जनो और ( शुक्राश्च ) बुद्धि करनेवालों का ( च ) भी ( युपुजानः ) समाधान करते हुए ( कृतः ) पुण्यों के सन्ताप देनेवाले के तुल्य ( जातान् ) विद्वान् और ( उभयान् ) पढ़ाने और पढ़ने वालों को ( अस्तः ) मध्य में ( ईषते ) प्राप्ति होने हो इससे कल्याण करनेवाले हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे मध्य में अग्नि सबका पालन और नाश करने वाला है वैसे ही इस संसार में विद्वान् पुत्र को पालन करनेवाला और भूल विनाश करनेवाला होता है । तिससे दीर्घ ब्रह्मचर्य से अपने सन्तानों को उत्तम करके कृत-कृत्यता अर्थात् जन्मसाफल्य जानो ॥ २ ॥

अथ अगले मन्त्रों में प्रजा के कृत्य का बर्णन करते हैं—

अस्यां वृषस्तु रोहिता घृतस्तु क्रतुस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।

अन्तरीयसे अरुवा युजानो शुक्रांश्च देवानिश् आ च मर्त्यानि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुत्रज जो आप ( वृषस्तु ) जल की ( वृषस्तु ) समृद्धि का विस्तार करती हुए ( रोहिता ) और अग्नि गुण के सहित ( घृतस्तु ) जल की कहाते हुए ( अरुवा ) रक्तगुण विशिष्ट ( अरुवा ) मन से भी ( जविष्ठा ) अत्यन्त वेग वाले ( अरुवा ) मार्ग की व्याप्त होते हुए वायु और अग्नि को ( युजानः )

संयुक्त करते हुए ( देवान् ) विद्वान् ( बुध्वान् ) आप लोगो ( व ) और ( सर्वादि ) साधारण मनुष्यों को ( व ) और ( विश्व ) प्रजाओं को ( जन्त ) मध्य में ( आ ) सब प्रकार ( ईयते ) प्राप्त होते ही उनको मैं ( मय्ये ) मानता हूँ ॥३॥

भाषार्थ—जो मनुष्य लोग वायु और अग्नि को जन्तों के साथ वाहन के यन्त्रों में संयुक्त करके चलाते हैं तो वेग और प्रहरण नामक जल और भाप के गुण, मन के सदुपवाहन आदिकों को चलाते हैं ॥ ३ ॥

अथर्वमयं वरुणं मित्रमेवापिन्द्राविष्णुं मरुतो अभिनोत ।

स्वरवो अग्ने सुरथः सुरावा पदं वह सुहविषे जनाय ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष ( सुरावा ) उत्तम धन से ( स्वरव ) उत्तम घोड़ों और ( सुरथ ) उत्तम वाहनों से युक्त आप ( सुहविषे ) उत्तम सामग्री वाले ( जनाय ) मनुष्य के लिए ( अथर्वमयम् ) न्याय के अधीन ( वरुणम् ) श्रेष्ठ गुण वाले ( एवाम् ) इन के ( मित्रम् ) मित्र ( इन्द्राविष्णु ) तथा बिजुली और सूत्रात्मा ( मरुत ) पवन ( जत ) और ( अविष्मन् ) सूर्य और चन्द्रमा की ( आ, वह ) प्राप्ति कराइये ( उ, इत् ) और सभी सुख दीजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! आप अग्नि और जलादि पदार्थों को उत्तम प्रकार जान के और कार्यों में संयुक्त कर प्रत्यक्ष करके अन्य जनों के लिए उपदेश दीजिये जिस से कि सब लोग धन धान्य और सुखों में युक्त हों ॥ ४ ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गौमो अग्नेऽविमो अग्नी यज्ञो नृवत्सखा सद्विदप्रमृष्यः ।

इजावो एषो अंसुर प्रजावान्दोषो रयिः पृथुवृधः सभावा ॥५॥ १६॥

पदार्थ—हे ( अंसुर ) दुष्ट पुरुषों के दूर करनेवाले ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष आप ( गौमान् ) बहुत गौओं और ( अविमान् ) बहुत भेड़ों से युक्त ( अविमो ) बहुत घोड़ों वाला ( यज्ञ ) प्राप्ति होने योग्य ( नृवत्सखा ) नायकों से युक्त मनुष्यों में मित्र ( इजावान् ) बहुत अन्नयुक्त ( प्रजावान् ) जिसमें बहुत प्रजा विद्यमान ऐसे ( पृथुवृधः ) विस्तार सहित प्रबन्ध वाला ( सभावान् ) उत्तम मन्त्रा विद्यमान जिन की ऐन ( अप्रमृष्यः ) दूगने से नहीं दधाने योग्य हैं तथा ( एषः ) वह ( रयि ) धन ( वीर्य ) बड़ा कृपा है वह आप ( इत् ) ही ( सवम् ) स्थान को प्राप्त कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को वही सभाध्यक्ष करना चाहिए कि जो गौओं भेड़ों और घोड़ों का पालक और दूगरो में नहीं भय करने और दुष्ट जनों के दूर करने वाला, अच्छे प्रबन्ध से युक्त तथा प्रजावाला हो ॥ ५ ॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय को कहते हैं—

यस्तं इधमं जभरस्सिष्विदानी मूर्धानं वा ततपते न्वाया ।

भुवस्तस्य स्वतवः यगुर्गन्ने विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्य ॥६॥

पदार्थ—ह ( ततपते ) लम्ब चौड़ द्विधरे हुए चराचर पदार्थों की पालना और ( अग्ने ) अग्नि पवित्र न्यायात ( य ) जा ( सिष्विदानी ) स्नेहयुक्त ( स्वतवान् ) अपने से बड़ा ( पाय ) रक्षा करने वाला ( न्वाया ) आपका प्राप्त होता ( ते ) आपकी ( भुव ) पृथिवी में ( इधम् ) तप हुए ( मूर्धानम् ) मस्तक को ( जभरत् ) पोषण करना है उस की आप ( उरुष्य ) रक्षा करो ( वा ) अथवा ( तस्य ) उसके मस्तक की ( सीम् ) सब प्रकार रक्षा करो ( अघायत ) अपने को आप की इच्छा करने हुए वा ( विश्वस्मात् ) सब प्रकार में मस्तक काटो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों के प्रताप शरीर और राज्य की रक्षा करके दुष्टों का सब प्रकार नाश करते हैं उनकी निरन्तर रक्षा करो ॥ ६ ॥

अष्टजल के कर्त्तव्य के विषय को कहते हैं—

यस्ते भगदन्त्रियते चिदर्थं निशिषन्मन्दमतिथिमुदीरत् ।

आ देवयुग्निधते दुरोणे तस्मिन्निधिर्धुवो अस्तु दास्वान् ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ! ( य ) जा ( दास्वान् ) देनेवाला ( ते ) आप के लिए ( अन्त्रियते ) भोजन करनेवालों के निश्चित समय में ( अन्मम् ) भोजन के पदार्थ को ( निशिषत् ) अत्यन्त विशेष करता हुआ ( मन्त्रम् ) आनन्द देनेवाले ( अतिथिम् ) सत्पापदेशक का ( उदीरत् ) अन्त्रे प्रकार प्रेरणा देता और ( देवयु ) विद्वानों की कामना करना हुआ ( इधमते ) ईश्वर को धारण करता है जिसमें उस ( दुरोणे ) गृह में अन्न का ( आ, भरात् ) धारण कर ( चित् ) भी ( तस्मिन् ) उस में ( ध्रुवः ) निश्चल ( रयि ) धन ( अस्तु ) हो उसको आप पोषण करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य जिन मनुष्यों का जैसा उपकार करें उन मनुष्यों का चाहिए कि उनका वैसा उपकार करें ॥ ७ ॥

यस्त्वा दोषा य उपासि प्रशंसतिर्य वा स्वा कृण्वन्ते हविष्मान् ।

अश्वो न स्वे वन आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दास्वासम् ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् पुरुष ( य ) जो ( स्वा ) आपकी ( दोषा ) राशि में और ( उपासि ) दिन में ( स्वा ) आपकी ( आ, प्रशंसत् ) सब प्रकार प्रशंसा करे ( वा ) अथवा ( यः ) जो ( हविष्मान् ) उत्तम दान की सामग्री से युक्त

( हेम्यावान् ) जिसके जल में प्रक्षेप हुई राशि विद्यमान ( अस्तु ) उस ( दास्वान् ) देनेवाले आपको ( स्वे ) अपने ( अश्वे ) घर में ( अश्वः ) अपराध से ( अश्वः ) घोड़ों के ( न ) सदृश ( पीपरो ) पाले उस ( प्रियम् ) प्रिय सुख ( अश्वः ) करले हुए के लिए आप सुख दीजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमान द्वारा है । हे मनुष्यो ! जो लोग दिन और रात्रि आप का उत्साह बढ़ावें उनकी आप लोग वास्तविक से घोड़ों की भाँति ही जन्म देवो ॥ ८ ॥

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दासहवस्त्वे कृण्वन्ते यत्सुक् ।

न स राया कशमानो वि यौषकेनमंहः परि वरुच्ययोः ॥९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष ( य ) जो ( यत्सुक् ) आप के लिए ( अमृताय ) मोक्ष के अर्थ ( दासहवस्त्वे ) देव ( स्वे ) वा आप में ( कृण्वन्ते ) सेवा को ( कृण्वन्ते ) करता है उसके लिए आप भी विज्ञान दीजिये ॥ जो पुरुष ( राया ) धन से ( कशमानः ) उच्छलता और ( यत्सुक् ) उच्छल है क्रिया के साधन जिसके ऐसा होता हुआ ( यत्सुक् ) इस को ( अश्वः ) दुख देनेवाले को ( न ) नहीं ( कि, योषत् ) त्याग करे ( स, ) वह ( अश्वयो ) पार्थिव की हिंसा को ( कश्च ) नहीं ( परि, वरत् ) सब ओर से स्वीकार करे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों में जैसे जो लोग प्रीति करते हैं वैसे ही उनमें आप लोग स्नेह करें ॥ ९ ॥

यस्य स्वमग्ने अश्वरं जुजोवो देवो मर्त्तस्य सुषितं राणः ।

प्रीतेदंसदोक्क सा यविष्ठासाम यत्सं विधतो वृषासः ॥१०॥ १७॥

पदार्थ—हे ( अविष्ठा ) अति क्लान्त ( अश्वरं ) अश्विक के सदृश वर्त्तमान विद्वान् पुरुष ( वृषासः ) जिसके ( अश्वरं ) हिसारहित व्यवहार का ( वृषासः ) अश्व ( जुजोवो ) अत्यन्त सेवन करते हैं ( अश्वः ) उत्तम सुख के देनेवाले हुए ( यत्सुक् ) जिस ( विष्ठासः ) विधान करनेवाले ( अश्वरं ) मनुष्य के ( यविष्ठासः ) उत्तम हित के ( वरत् ) अत्यन्त देनेवाले हो उनकी ( सा ) वह ( हविष् ) प्रहण करने योग्य क्रिया ( प्रीता ) प्रसन्न ( इत् ) हैं अर्थात् सफल ( उ, मेरे में ) अश्व ( वृषासः ) वृद्धि करनेवाले होते हुए हम लोग ( अश्वरं ) प्रसन्न हों और वह हम लोगों को वैसे ही सुख देवे ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो जिस के सुख के साथ उस पुरुष को चाहिए कि उस उपकार करनेवाले पुरुष को भी सुख देवे ॥ १० ॥

चित्तिमर्कितं चिनवद्दि विद्वान् पृष्ठेर्वता वृद्धिम् च मर्त्तान् ।

राये च नः स्वपत्याय देव हितं च रास्वादितिमुष्य ॥११॥

पदार्थ—हे ( देव ) विद्वन् पुरुष ( य ) जो ( चित् ) विगोप करने ( चित्तिम् ) विद्यायुक्त पुरुष ( पृष्ठेर्वता ) पीठों के सदृश ( वीता ) प्राप्त ( वृद्धिम् ) पराक्रमों को ( मर्त्तान् ) मनुष्यों को ( च ) भी ( नः ) हम दोनों के ( स्वपत्याय ) उत्तम सत्तान जिससे उस ( राये ) धन के लिए ( च ) और ( चित्तिम् ) किया सग्रह जिसमें उस क्रिया और ( अविष्ठासः ) जिसमें सग्रह नहीं किया उसका ( चित्तिम् ) सग्रह करने उनके लिए ( चित्तिम् ) खाण्डिक क्रिया का ( रास्व ) रक्षित्व ( च ) और ( अविष्ठासः ) अविष्ठात क्रिया का ( उरुष्य ) सेवन कीजिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमान द्वारा है—जैसे जेट आदि पौधों से भार को ले चमते हैं वैसे ही बलवान् पुरुष सब व्यवहार में भार को धारण करते हैं । और व्यवहार में जिसका खण्डन और जिमका स्रष्टन करने योग्य होवे वह उसका वैसा ही करना चाहिए ॥ ११ ॥

कवि शशासुः कवयोऽदन्धा निधारयन्तो वृक्षोऽस्वावोः ।

अतस्त्वं दृष्टो अत्र एतान् वृक्षिः पश्येरन्तुतं अर्थं कर्वेः ॥१२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रकाशमान विद्वान् पुरुष जैसे ( अश्वयोः ) अहिमनीय ( कवयोः ) बुद्धिमान् पण्डित लोग ( कविम् ) उत्तम बुद्धि वाले को ( वृक्षोः ) वृक्षों में ( निधारयन्तो ) धारण करते हुए ( शशासुः ) शासन करते हैं ( आयोः ) जीवन की वृद्धि का शासन करते हैं ( अतः ) हम कारण से ( त्वम् ) आप ( एषः ) प्राप्त ( वृक्षिः ) विज्ञान आदिकों से ( एतान् ) इन प्रत्यक्ष ( अश्वयोः ) आत्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाववाले ( वृक्षान् ) देनेवाले योग्य श्रेष्ठ बुद्धि वाले जनों को ( अर्थः ) स्वामी के समान ( पश्येः ) देखिये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमान द्वारा है । हे मनुष्यो ! जो अध्यापक और उपदेशक लोग बुद्धिमान् पुरुषों को पढ़ाते और उपदेश देते हैं उनका वैसा ही सत्कार करो जिससे कि मनुष्य लोग आश्चर्ययुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले हों ॥ १२ ॥

अब अगले मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं—

स्वमग्ने वायते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।

रत्नं मर कशमानाव धृष्वे पृथु अन्द्रमर्षसे यविष्ठायाः ॥१३॥

पदार्थ—हे ( वृष्ये ) पदार्थों के घिसने वाले ( यविष्ठ ) अत्यन्त सुख ( अग्ने ) अग्नि के सदृश पूर्यविद्या से प्रकाशमान ( सुप्रणीतिः ) उत्तम प्रकार समीचीन नीति जिनके विद्यमान ( पृथु ) जिनका पुरुषार्थ विस्तृत हो रहा है



( अर्चयिषा ) जो मनुष्यों की अर्पण होने वाले ( त्वम् ) आप ( कुतस्तोमाय ) उत्पन्न किया गया ऐश्वर्य या ओषधियों का रख जिससे उस ( शाश्वताय ) सब के दुःखों के उत्पन्न करनेवाले ( विषये ) अनेक प्रकार के व्यवहार को यथावत् करते हुए ( वाच्ये ) बुद्धिमान् के लिए ( अर्चये ) रक्षण आदि के अर्थ ( अर्चयन् ) प्रसन्न करनेवाले सुवर्ण और ( रत्नम् ) रमणीय मनोहर वन का ( अर ) चारण करो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् जो धार्मिक पुरोहीर विद्वान् लोग सब के वन के उत्पन्न करने, परस्पर पदार्थों के घिसने से बिजुली आदि की विद्या के प्रकाश करने और मनुष्यों की रक्षा करनेवाले मन्त्री आदि नीकर होवें उनके लिए ऐश्वर्य निरन्तर चारण करो ॥ १३ ॥

अब प्रजाजन के कृत्य को कहते हैं—

अथा ह यद्वयमग्ने त्वाया यदभिर्हस्तेभिश्चकुमा तनुभिः ।

रथ न क्रन्तो अपसा भुरिजीर्कृतं येमुः सुध्यं आशुचाणाः ॥१४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदा वर्तमान राजन् ( त्वाया ) आपको प्राप्त ( सुध्यं ) उत्तम बुद्धि वाले ( आशुचाणाः ) शीघ्र विभाग करनेवाले ( यद्वयम् ) हम लोग ( हस्तेभिः ) हाथों ( यदभिः ) पैरों और ( तनुभिः ) शरीरों से ( यत् ) जिस ( रथम् ) विमान आदि वाहन के ( न ) मदुश ( अकृण्वन् ) करें ( अथ ) इसके अनन्तर ( ह ) निश्चय जो ( अपसा ) कर्म से ( भुरिजीः ) चारण और पोषण करनेवालों के ( अकृण्वन् ) सत्य को ( येमुः ) प्राप्त होवें उस विमान आदि वाहन के सदा ( अकृण्वन् ) क्रम से चलनेवाले हूजिये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि आलस्य त्याग के शरीरादिको से पुनराय को सदा ही करके प्रजा और राज्य का धर्म से नियम करें जिससे सब लोग बनयुक्त होवें ॥ १४ ॥

अब अगले मन्त्रों में राजा के विषय को कहते हैं—

अथा मातुरुवसः सप्त विमा जायेमहि प्रथमा वेधसो वृन् ।

दिवस्पुत्रा अक्षिरसो भवेमाद्रि रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५॥१८॥

पदार्थ—ह मनुष्यों जैसे ( उवसः ) प्रभात वेला के दिन के समान सात प्रकार के किरणों होते हैं वैसे ही ( मातु ) माता के सदा वर्तमान विद्या से हम लोग ( प्रथमा ) प्रथम प्रसिद्ध ( विमाः ) बुद्धिमान् ( सप्त ) सात प्रकार के अर्थात् राजा, प्रधान, मन्त्री, सेना, सेना के अध्यक्ष, प्रजा और चारादि ( जायेमहि ) होवें और ( वेधस ) बुद्धिमान् ( वृन् ) नायक पुरुषों को प्राप्त हो और ( विष ) प्रकाश के ( पुत्राः ) विस्तारने वाले ( अक्षिरसः ) जैसे प्राणवायु ( अद्रिम् ) मैथ को वैसे सब को ( वृज्ज ) छिन्न भिन्न करें ( अथ ) इसके अनन्तर ( धनिनम् ) बहुत धनयुक्त प्रजा में विद्यमान को ( शुचन्तः ) विद्या और विनय से पवित्र करते हुए ( भवेम ) प्रसिद्ध होवें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग बुद्धिमान् मन्त्रियों का सत्कार करके रक्षा करते हैं वे सूर्य के सदा प्रकाशित यशवाले होते हैं और सभी काल में उद्योगियों की रक्षा और दुष्टों का निरन्तर ताड़न करे जिससे कि सब शुद्ध आचरण वाले होवें ॥ १५ ॥

अथा यथा नः पितरः परासः प्रजासो अग्न क्रुतमाशुवाणाः ।

शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा मिन्दन्तो अरुणीरप्य वन ॥१६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदा वर्तमान राजन् ( यथा ) जिस प्रकार से ( नः ) हम लोगों के ( परास ) होने वाले ( प्रजासः ) हुए ( पितरः ) उत्पन्न करने वाले पितृ लोग ( शुचिः ) पवित्र, शुद्ध करनेवाले ( अकृण्वन् ) सत्यन्याययुक्त व्यवहार को ( आशुवाणाः ) सब प्रकार बोटों और ( उक्थशासः ) प्रभसित शासनो वाले ( क्षामा ) पृथिवी को ( मिन्दन्तः ) विदारते हुए ( दीधितिम् ) नीति के प्रकाश को ( अयम् ) प्राप्त होते हैं ( अथ ) इसके अनन्तर ( अरुणीः ) प्राप्ता प्रजाओं को ( अयं वत् ) स्वीकार करें वैसे ( वत् ) ही आप हम लोगों में वर्तान करो ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा और राजपुत्र प्रजाओं में पिता के मनुष्य बनाव करके सत्य न्याय का प्रकाश कर और अविद्या को दूर करके प्रजाओं को शिक्षा देते हैं वे पवित्र गिने जाते हैं ॥ १६ ॥

सुकर्माणः सुखीं देवयन्तोऽप्यो न देवा जनिमा धमन्तः ।

शुचन्तो अग्निं वदुषन्त इन्द्रसुर्व गव्यं पविदन्तो अमन् ॥१७॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजाजन आप लोगों ( अथ ) सुखी को ( वदन्तः ) कथन करते हैं ( न ) सदा ( देवाः ) विद्वान् लोग ( जनिमा ) जन्म की ( देवयन्तः ) कामना करते हुए ( सुकर्माणि ) जिसके उत्तम कर्म ( सुखम् ) का अर्थ है वह ( सुखम् ) पवित्र आचरण को करते और कराते हुए ( जनिम् ) प्रसिद्ध अग्नि को ( वदन्तः ) कहते हैं ( पविदन्तः ) और सदा का आचरण करते हुए ( अमन् ) हिंसा करनेवाली ( इन्द्रम् ) बिजुली को ( गव्यम् ) गोमूत्र का ( अमन् ) प्राप्त होते हैं वैसे ही आप लोग आचरण करो ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को चाहिये कि धर्मयुक्त कर्मों को करके विद्या और सभा में प्रीति उत्पन्न करके पवित्रता की कामना करने हुए विद्या और जन्म से बढ़ने वाले बिजुली आदि की विद्या को बढ़ाते हुए चक्रवर्ती राज्य करके आनन्द का निरन्तर भोग करें ॥ १७ ॥

अब राजा के विषय को कहते हैं—

आ पुष्येव क्षमति पश्वो अरुपहेवानां यजनिमान्त्युग्र ।

यत्तां चिदुर्वशीरकुप्रन्धे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८॥

पदार्थ—हे ( उग्र ) तेजस्वी राजन् आप ( हेवानाम् ) विद्वान् ( यजनिमान् ) मनुष्यों के ( अग्नि ) समीप में ( यत् ) जिन ( जनिम् ) जन्मों को ( आ, अरुपत् ) सब ओर से प्रसिद्ध करते वा ( क्षमति ) बहुत अन्न जिसमें विद्यमान उसमें ( पुष्ये ) सेनाजनों के सदा प्रसिद्ध करते हैं ( अर्यः ) और जैसे स्वामी ( चित् ) वैसे ( उपरस्य ) देव और ( आयो ) जीवन प्राप्त करनेवाले ( पश्व ) पशु की ( चित् ) भी ( पुष्ये ) बुद्धि के लिए ( उर्वशीः ) बहुत अर्पण होनेवाली क्रियाओं की विद्वान् लोग ( अकुप्रन्धे ) कम्पना करते हैं ॥ १८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्यों के मध्य में राजा का जन्म वह बड़े पुष्य में उत्पन्न हुआ ऐसा जानना चाहिए। जो राजा विद्यमान न हो तो कोई भी स्थिरता को नहीं प्राप्त हो और जैसे मैथ के समीप से सब का जीवन और बुद्धि होती है वैसे ही राजा के समीप से सब प्रजा की बुद्धि और जीवन होता है ॥ १८ ॥

अकर्म ते स्वपसो अभूम् क्रुतमवसन्नपसो विभातीः ।

अमृन्मधि पुरुधा सुश्वन्द्रं देवस्य मर्मजतश्चाह चक्षुः ॥१९॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे ( विभातीः ) प्रकाश करती हुई ( उवसः ) प्रभात-वेलाओं को ( अमृन्म् ) और बहुत ( पुष्यम् ) सुन्दर सुवर्ण जिससे होता उसको ( मर्मजत ) अत्यन्त शोधित हुए ( देवस्य ) कामना करनेवाले के ( चाह ) सुन्दर ( चक्षुः ) नेत्र ( जनिम् ) और अग्नि को ( पुरुधा ) बहुत प्रकारों से ( अवसन्नम् ) वसते हैं वैसे ही ( अकृण्वन् ) सत्य की सेवा करते और ( स्वपसः ) उत्तम धर्म-सम्बन्धी कर्म करते हुए हम लोग अत्यन्त बुद्धता तथा कामना करते हुए के हित को ( अकर्म ) करें और ( ते ) आपके मित्र ( अभूम् ) होवें ॥ १९ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य से उत्पन्न प्रातः काल सब को शोभित करता है वैसे ही ब्रह्माचार्य से हुए विद्वान् हम लोग आप की आशानुकूल जैसे वतें वैसे ही आप हम लोगों का हित निरन्तर करो और सब हम लोग परस्पर मेल करके और अन्याय दूर करके धर्मसम्बन्धी कर्मों को प्रवृत्त करें ॥ १९ ॥

एता ते अग्न उचर्यानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।

उच्छ्रोचस्व कृणुहि वर्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥२०॥१९॥

पदार्थ—हे ( वेधः ) बुद्धिमान् ( अग्ने ) विद्वान् धार्मिक राजन् हम लोग ( कवये ) सब विद्या में युक्त ( ते ) आप के लिए जिन ( एता ) इन ( उचर्यानि ) उचित वचनों को ( अवोचाम ) कहे ( ता ) उन का आप ( जुषस्व ) सेवा और ( उत्, ओषस्व ) अत्यन्त विचारों ( कृणुहि ) करो हे ( पुरुवार ) बहुत अर्पण अर्थात् सत्यवादी पुरुषों का स्वीकार करनेवाले ( नः ) हम लोगों के लिए ( मह ) बड़े ( वर्यसः ) अतिशयित भिक्षे धरे हुए ( रायः ) धनो को ( प्र, यन्धि ) उत्तमता से देओ ॥ २० ॥

भाषार्थ—राजा को चाहिए कि यथार्थवक्ता ही पुरुषों के वचनों को सुन और उत्तम प्रकार विचार कर सेवन करे उन यथार्थवक्ता पुरुषों के लिए प्रिय वस्तुओं को देकर वे निरन्तर सन्तुष्ट करने योग्य हैं इस प्रकार राजा और यथार्थवक्ता पुरुषों की मया सब मिलकर सब कर्मों को सिद्ध करें ॥ २० ॥

इस सूक्त में राजा, प्रजा और यथार्थवक्ता पुरुष के कृत्यवर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ मञ्जित जाननी चाहिए ॥

मह द्वितीय सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अब ओडशब्दस्य तृतीयस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१, ५, ८, १०, १२, १५ निबृत्त्रिष्टुप् । २, १३, १४ विराट् त्रिष्टुप् ।

३, ७, ९ त्रिष्टुप् छन्दः । वेदतः स्वरः । ४ स्वरान् बहुतीक्ष्णः ।

मध्यमः स्वरः । ६, ११, १६ पङ्क्तिस्तुष्टुः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सोलह ऋचावाले तीसरे सूक्त का वर्णन है उसके प्रथम मन्त्र से सूर्यदेव अग्नि के वृष्टान्त से राजप्रजाजनों के कृत्य का वर्णन करते हैं—

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्यवजं रोदस्योः ।

अग्निं पुरा संनयितनोरधिरादिर्यरूपमवसे कृणुष्वम् ॥१॥

**पदार्थ—**हे पदार्थवर्तता विद्वानो जैसे हम लोग ( अ. ) आपके ( अक्षरस्य ) न नष्ट करने योग्य राज्य के ( अक्षरस्य ) धर्मरक्षाओं की रक्षा और दुष्टों के नाश करने के लिए ( होतारम् ) देने ( सत्यवजम् ) सत्य ही को प्राप्त होने और ( दृष्टम् ) दुष्टों के हलानेवाले ( अक्षितम् ) जिसमें चित्त नहीं स्थिर होता ऐसी ( सत्यवज्जीः ) विजुली के ( विरज्यम् ) तेजस्व के समान रूपवाले वा ( रोहस्योः ) अस्तरित और पृथिवी के मध्य में ( अग्निम् ) सूर्य के सदृश ( राजानम् ) प्रकाशमान न्याय ( वृषा ) प्रथम करें वैसे हम लोगों के बीच राजा आप लोग ( आ, इच्छाम् ) सब प्रकार करें ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् लोगो! राजा और प्रजाजनो के साथ एक सम्मति करके जैसे ईश्वर ने ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य को स्थित करके सब का प्रियमुख साधन किया वैसे ही हम लोगों के मध्य में उत्तम गुण कर्म और स्वभावयुक्त को राजा करके हम लोगों के हित को आप लोग सिद्ध करेंगे जिससे आप लोगों का भी प्रिय सिद्ध होवे ॥ १ ॥

**अयं योनिश्चक्रमा यं वयं ते जायेव पत्यं उशती सुवासाः ।**

**अर्वाचीनः परिवीतो नि पीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥२॥**

**पदार्थ—**हे राजन् ( वयम् ) हम लोग ( ते ) आपके ( यम् ) जिस गृह को ( चक्रम् ) बतावें सो ( अयम् ) यह ( योनिः ) गृह ( पत्ये ) स्वामी के लिए ( उशती ) कामना करती हुई ( सुवासा ) सुन्दर वस्त्रों से शोभित ( जायेव ) मन की प्यारी स्त्री के सदृश ( अर्वाचीनः ) इस वर्तमानकाल में हुआ ( परिवीतः ) सब प्रकार व्याप्त उत्तम गुण जिसमें ऐसा हो उससे आप ( नि, सीव ) निवास करो और हे ( स्वपाक ) उत्तम प्रकार परिपक्व जानवाले ( प्रतीचीः ) प्रतीति को प्राप्त होती हुई ( इमाः ) यह वर्तमान प्रजा ( उ ) और ( ते ) आप के भक्त हो ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजा को चाहिए कि ऐसा गृह बनावे कि जो पतिव्रता सुन्दरी मन की प्यारी स्त्री के सदृश सब अनुग्रहों में सुख देवे। और वहाँ स्थित हुआ ऐसे कर्म करे कि जिन कर्मों ने अपनी प्रजा अनुरक्त होवें ॥ २ ॥

**आशुखते अहपिताय मन्यं नृचक्षसे सुमुखोकाय वेधः ।**

**देवाय शस्तिममृताय शंस प्रावेव सोतां मधुबुधमोळे ॥३॥**

**पदार्थ—**हे ( वेधः ) बुद्धिमान् राजन् ( यम् ) जिसकी मैं ( ईळे ) स्तुति करता हूँ ( आशुखते ) सब प्रकार सुनते हुए ( अहपिताय ) मोहरहित ( नृचक्षसे ) सत्य और असत्य व्यवहारों को करते हुए जनों के साक्षात् देखने और ( सुमुखोकाय ) उत्तम प्रकार सुख देनेवाले, सुख और ( अमृताय ) जल के सदृश शान्तस्वरूप ( देवाय ) उत्तम गुणों से युक्त आपके लिए ( मन्यं ) विज्ञान का मैं उपदेश देता हूँ वैसे आप ( प्रावेव ) मेघ के सदृश ( मधुबुधम् ) मधुरताओं के उत्पन्न करनेवाले ( सोता ) अभिवेक करनेवाले हुए ( शस्तिम् ) प्रशंसा की ( शंस ) स्तुति कीजिए अर्थात् प्रबन्ध से कहिए ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**वह ही राजा उत्तम होता है कि जो मोह आदि दोषों से रहित होकर सब वचनों का सुनने, सत्य और असत्य को देखने और मेघ के सदृश प्रजा में अनेक प्रकार का भोग प्राप्त करानेवाला न्यायाधीश होवे ॥ ३ ॥

**स्व चिन्मः शम्या अग्ने अस्या क्रुतस्य बोध्यतचित्स्वाधीः ।**

**कदा त उक्था संभामाधानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान राजन् ( स्वम् ) आप ( न. ) हम लोगों की ( अस्या ) इस प्रजा के ( क्रुतस्य ) सत्य के ( शम्या ) कर्म के लिए ( स्वाधीः ) उत्तम प्रकार सब प्रकार विचार करने और ( चित्स्वाधीः ) सत्य का सग्रह करनेवाला ( कथा ) कब ( बोधि ) जानो और ( चित् ) भी ( ते ) आपके ( गृहे ) गृह में ( संभामाधानि ) मेघ के स्थानों में श्रेष्ठ और ( उक्था ) उचित भी ( ते ) तुम्हारे ( सख्या ) मित्रों के कर्मों वा अभिप्राय ( कथा ) कब ( भवन्ति ) होते हैं ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**हे राजन्! आप जब प्रजा के सत्य न्याय को करेंगे तब ही आप की आज्ञा के अनुकूल वृत्ति करके प्रजा एकसम्मति से होगी ॥ ४ ॥

अब उपदेशक विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**कथा इ सहर्षणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कथं आगः ।**

**कथा मित्राय भीहुवै पृथिव्यै ब्रह्मः कर्दर्यम्णे कङ्गाय ॥५॥२०॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान ( स्वम् ) आप ( इ ) ही ( कथा ) किस प्रकार ( सहर्षणाय ) श्रेष्ठ की ( गर्हसे ) निन्दा करते हो ( कथा ) किस प्रकार ( विवे ) प्रकाशमान के लिए निन्दा करते हो ( न. ) हम लोगों के ( अगः ) अपराध की ( कत् ) कब निन्दा करते हो ( भीहुवै ) सुख बढ़ानेवाले ( मित्राय ) मित्र के लिए ( कथा ) किस प्रकार निन्दा करते हो ( पृथिव्यै ) पृथिवी के सदृश वर्तमान स्त्री के लिए ( तत् ) उस वचन की ( कत् ) कब ( ब्रह्मः ) कहो ( कर्दर्यम्णे ) न्यायाधीश के लिए और ( अगाय ) ऐश्वर्य के लिए ( कत् ) कब कहो ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**हे विद्वानो! जो राजा श्रेष्ठ वा विद्वानो की निन्दा करे वह आप लोगों में रोकेने योग्य है और सब राजकर्मों की सिद्धि के लिए समस्त व्यवस्था करनी चाहिए और जब जब जो जो कर्म करना हो तब तब वह वह कर्म करना चाहिए। इस प्रकार राजा को उपदेश करना चाहिए। जब मित्रद्वेष का आचरण करे सभी उसको शिक्षा देनी चाहिए। ऐसा करने पर राजा और प्रजा दोनों की निरन्तर उन्नति होवे ॥ ५ ॥

**कद्विष्यांसु ब्रह्मसानो अग्ने कदाताय प्रतवसे ह्यमये ।**

**परिजमने वासंस्त्याय से ब्रह्मः कर्दर्यम्णे कङ्गाय नृप्रे ॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप ( विष्यासु ) बुद्धि में उत्पन्न कियाओं में ( ब्रह्मसानः ) बढ़नेवालों का विभाग करने हुए ( प्रतवसे ) श्रेष्ठ बल और ( वासंस्त्याय ) विज्ञान के लिए ( कत् ) कब ( ब्रह्मः ) कहो है ( अग्ने ) विद्वन् राजन् ( परिजमने ) सब और भूमि जिसके उस ( ब्रह्मसे ) कल्याण को प्राप्त होनेवाले ( वासंस्त्याय ) असत्य आचरण से रहित के लिए ( कत् ) कब कहो ( नृप्रे ) पृथिवी राज्य के लिए विद्यमान जिसमें उमरे ( नृप्रे ) शत्रुओं के नायकों के नाश करने और ( वाय ) दुष्ट पुरुषों को हलानेवाले के लिए ( कत् ) कब कहो ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**राजा यदि अर्थियों के प्रति अध्यापक उपदेशक और मन्त्रीजन ऐसा उपदेश दें कि आप लोग बुद्धि के कामों में बृद्ध बलिष्ठ उत्तम आचरणवाले सत्यवादी और दुष्ट पुरुषों के नाश करनेवाले कब होचोगे और उत्तम आचरण करने और दुष्ट आचरण के त्याग से विलम्ब न करो ॥ ६ ॥

अब विद्याधियों की परीक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**कथा महे पुष्टिम्भराय पुष्णे कङ्गाय सुमन्त्राय हविर्वे ।**

**कद्विष्याव उरुगायाय रेतो ब्रह्मः कर्दर्यम्णे शरवे बृहस्ये ॥७॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) विद्वन् पुरुष आप ( रेतः ) जल के सदृश शान्त अर्थात् कोमलचित्त होके ( महे ) बड़े ( पुष्टिम्भराय ) पुष्टि धारण कराने ( पुष्णे ) पीबन करनेवाले के लिए ( कथा ) किस प्रकार ( ब्रह्मः ) कहो ( सुमन्त्राय ) उत्तम प्रकार यज्ञसम्पादन करने और ( हविर्वे ) देने योग्य वस्तुओं को देनेवाले के लिए तथा ( वाय ) शत्रुओं में प्रबल के लिए ( कत् ) कब कहो ( उरुगायाय ) बहुत प्रशंसा करने योग्य ( विष्याव ) व्यापक परमेश्वर के लिए ( कत् ) कब कहो ( शरवे ) दुष्टों के नाश करनेवाली ( बृहस्ये ) बड़ी सेना के लिए ( कत् ) कब कहो ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**अध्यापक लोगों को विद्याधियों को पढ़ा के प्रत्येक अठ्ठाई प्रत्येक पक्ष प्रतिमास प्रतिवर्षाही और प्रतिवर्ष परीक्षा यथायोग्य करनी चाहिए जिससे कि राजकुमारोंदि सब भ्रमरहित ज्ञानविशिष्ट उत्तमस्वभावयुक्त शरीर और आत्मा के बल सहित अभिष्ठ सी वर्ष जीने और न्याय से राज्य के पालन करनेवाले होवें ॥ ७ ॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय को कहते हैं—

**कथा शर्षाय मरुतामृताय कथा सुरे बृहते पृच्छचमनः ।**

**प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदधिकित्वान् ॥८॥**

**पदार्थ—**हे ( जातवेदः ) प्रतिष्ठ उत्तम ज्ञानयुक्त ( सुरे ) सूर्य के सदृश वर्तमान सेना में ( पृच्छचमनः ) पूछे गये आप ( मरुताम् ) पवनो का जैसे वैसे ( मरुताय ) सत्य के और ( बृहते ) बढ़ते हुए ( शर्षाय ) बल के लिए ( कथा ) किस प्रकार से ( ब्रह्मः ) कहो ( तुराय ) सीधता करते हुए ( अदितये ) नहीं नाश होनेवाले अन्तरिक्ष के लिए ( कथा ) किस प्रकार से ( प्रति ) निश्चित कहो ( चिकित्वाय ) जानवान् होकर ( विषः ) प्रकाशों की ( साध ) सिद्ध करो ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग वायु के सदृश अपने बल को बढ़ाते, योषा लोगों के मित्र और परीक्षकों का मत्कार करते और प्रश्नोत्तर से सब को ज्ञान उनके द्वारा कार्य सिद्ध करते हैं वे सूर्य के सदृश ऐश्वर्य के प्रकाशक होते हैं ॥ ८ ॥

अब मनुष्य को कष्टप्रद्यों आदि से पुनर्प्राप्त लेखना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**क्रुतेन क्रुतं नियतमीळ आ गोरामा सच्चा मधुमस्यध्वमे ।**

**कृष्णा सती रुशता आसिनैषा जामर्षेण पचसा पीपाय ॥९॥**

**पदार्थ—**हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रकाशमान विद्वान् पुरुष जिस प्रकार से मैं ( गीः ) पृथिवी वा वाणी के ( क्रुतेन ) सत्य से ( नियतम् ) नियतयुक्त ( क्रुतम् ) सत्य की ( ईळे ) स्तुति वा बृद्ध करता हूँ वैसे आचरण करते हुए आप पृथिवी के मध्य में ( सच्चा ) प्रसन्न से ( मधुमस्य ) श्रेष्ठ मधुर आदि गुणों से युक्त ( जामा ) कच्चे और ( पचसा ) पक्के पदार्थों की ( आ, पीपाय ) अच्छे प्रकार बुद्धि करो और जैसे ( पचा ) यह ( कृष्णा ) गन्धकरी ( सती ) सज्जन पवित्रता पतिव्रता स्त्री ( रुशता ) उत्तम स्वरूप के ( जामर्षेण ) जीवन में निमित्त ( पचसा ) दुग्ध और ( आसिना ) अन्न से बढ़ती है वैसे आप बुद्धि को प्राप्त होचो ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य कष्टप्रद्यों से विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त होके और सर्वयुक्त व्यवहार से धर्म का अन्वेषण और इन्द्रियवृत्ति होने से नियम से भोजन करनेवाले होकर पुरुषार्थ करते हैं वे सती स्त्री और पुत्र के सदृश ज्ञानवित्त होकर सब प्रकार बुद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

अथ राजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋतेन हि ध्याः पुष्यमिन्द्रः पुमां अग्निः पयसा पुष्येन ।

अस्यन्दमानो अचरदुषोवा द्यां शुक्रं दुदुहे प्ररिन्ध्वः ॥१०॥२१॥

पदार्थ—हे राजन् ( हि ) जिस से कि आप ( ऋतेन ) सत्य व्यवहार से ( पुष्यः ) कलिष्ठ ( अन्तः ) उत्तम गुणों से युक्त (पयसा) रात्रि के साथ (अग्निः) अग्नि के समान (पुष्येन) पुष्ट भाग में होनेवाले दिन में (पुमां) पुरुषार्थी (अस्यन्दमानः) किञ्चित् भले हुए (दुषोवाः) सुन्दर अवस्था जीवन और बनादिकों के कारण करने (पुष्यः) सुखों की वृद्धि करनेवाले होते हुए (अचरत्) विचरते हैं (पुष्यः) अन्तरिक्ष (अन्तः) और रात्रि के सद्गुण (चित्) तो भी (शुक्रः) नीचों को (स्वः) ही (दुदुहे) पूरा करते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी के दक्षिण भाग में विजुली सूर्य रूप से जोड़ित होती है और दूसरे भाग में रात्रि के समान विजुली हुई चलती है वैसे ही मन्त्र और जागरण नियम से कर और पुरुषार्थ कर के बीच बड़ा के सी बर्ष की अवस्थायुक्त हुए सब की मानन्द दीजिए ॥ १० ॥

अथ राजा आदि कर्मियों के लिए उपदेश अगले मन्त्र में करते हैं—

ऋतेनाहि व्यसन्मिदन्तः समक्षिरसो नवन्त गोमिः ।

शूनं नरः परि पदमपासेवाविः स्वरसवज्जाते अघो ॥११॥

पदार्थ—हे ( नरः ) नायक होते हुए विद्वान् लोगो ! जैसे (गोमिः) किरणों के सद्गुण कणियों से (अक्षिरसः) पवन (ऋतेन) जल के सहित वर्तमान (अहिम्) मेघ के (सवः, मिदन्तः) अच्छे प्रकार टुकड़े करते हुए (वि, अन्तः) विभिन्न प्रकार से फैलते हैं (उपसवः) और प्रातःकाल को (परि, सवः) प्राप्त होते हैं वा (जाते) उत्पन्न हुए (अघो) अग्नि में (स्वः) सूर्य (आहिः) प्रकट (अवन्तः) होता है वैसे (शूनं) सुख की (नवन्तः) प्रशंसा करो ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो राजा आदि वीर अहि जैसे पवन से युक्त विजुलियां मेघ को इधर उधर बलाय और तोड़ पृथिवी पर गिर के सब को सुख देती हैं और दूसरी विजुली का विलोडन करके सूर्य को उत्पन्न करती हैं वैसे ही पुष्ट पुरुषों का नाश और न्याय का प्रकाश, बुद्धि का विलोडन और विद्या को उत्पन्न करके सूर्य के सद्गुण प्रकाशमान हुए अतुल सुख को प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

अथ सङ्गदोष, अशेष और रक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋतेन देवीरमुता अमृता अणोभिरापो मधुमन्त्रिमे ।

बाक्षी न सर्गेषु प्रस्तुमानः प्र सदमित्सर्वित्वे बध्न्युः ॥१२॥

पदार्थ—हे (अन्ते) विद्वान् पुरुष जैसे (ऋतेन) सत्य से (मधुमन्त्रिः) बहुत मधुर आदि गुणों से युक्त (अणोभिः) जलो के साथ (अमृताः) नहीं शुद्ध किये गये (देवी) उत्तम श्रेष्ठ (अमृता) कारणरूप से नाशरहित (आपो) प्राणरूप पवन (अमित्सर्वित्वे) जाने को (सर्वम्) प्राप्त वस्तु (प्र, बध्न्युः) कारण करने हैं वैसे (इत्) ही (सर्वम्) किये हुए कार्य्यों में (बाक्षी) बहुत अन्नवाले के (न) सद्गुण (प्रस्तुमानः) अत्यन्त कारण करते हुए आप प्रकट हुए ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो जैसे शुद्ध जल सुसकारी और प्रशुद्ध दुःख देनेवाले होते हैं वैसे ही उत्तम गुणों का सङ्ग धान्य-वायक और दोषों का सङ्ग दुःख देनेवाला होता है। और जैसे ऐश्वर्ययुक्त धार्मिकजन रूप से बुद्धिमान आदि का पालन करता वैसे हे ही सज्जन लोग सब की रक्षा करते हैं ॥ १२ ॥

अथ बुद्धिमानों के बुद्धिमत्ता विषय को कहते हैं—

मा कस्य मयं सदमिदधरो गा मा बेशस्य प्रमिनतो मापेः ।

मा आतुरधने अमृजोर्ध्वं देमां सवधुर्ध्वं रिपोर्ध्वमे ॥१३॥

पदार्थ—हे (अन्ते) अग्नि के सद्गुण प्रकाशमान आप (अमृजोः) कुटिल (कस्य) किसी (प्रमिनतो) अस्यन्ता हिता करनेवाले (बेशस्य) प्रवेश के (हरोः) कुटिलकार्यसम्पन्नी (सवधुः) वस्तु को (मा) मत (माः) प्राप्त होओ और कुटिल (आपेः) प्राप्त हुए के (अमृजोः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (मा) मत प्राप्त होओ कुटिल (आतुरधने) वस्तु के प्राप्त होने योग्य वस्तु को (मा) मत प्राप्त होओ कुटिल (रिपोः) वस्तु के (अमृजोः) आप की (मा) मत प्राप्त होओ जिससे हम लोग सुख का (इत्) ही (सुखेन) व्यवहार करें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—उन्हीं लोगों को बुद्धिमत्ता समझना चाहिए कि जो अन्याय से किसी का वस्तु दुष्टवैयस हिता करनेवाले का सत्य न्याय से प्राप्त हुए वन का अर्थ सब दुष्ट वस्तु का संग और शत्रु का विस्वास्त नहीं करके आत्मन का योग करें ॥ १३ ॥

अथ राजा विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

रक्षां गो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमत्त प्रीणानः ।

प्रति स्फुर बि रज वीरवर्हो जहि रसो महि विदाहृद्धानम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (सुमत्त) उत्तम न्याय व्यवहार के पालन करनेवाले (अग्ने) राजन् आप (नः) हम लोगों की (रक्षा) रक्षा करो और (महि) बड़े (वाक्धानम्) अस्यन्त बुद्धि को प्रसन्न हुए की (रारक्षाणः) रक्षा करते (प्रीणानः) प्रसन्न होते वा प्रसन्न करते हुए (प्रति, स्फुर) पुष्यार्थ करो और शत्रु को (वीर) वृद्ध (वि, रज) विवेकता से अच्छे प्रकार मन्न करो और (अहः) पाप का (महि) नाश करो (रक्षाः) पुष्ट शत्रु का मग करो और जिससे (तव) आप के (चित्) भी (रक्षणेभिः) अनेक प्रकार के उपायों से हम लोग सुखी हों ॥ १४ ॥

भाषार्थ—ये ही राजा लोग यश के भागी हैं कि जो पुष्ट पुरुषों की पुष्टता को दूर कर और श्रेष्ठ पुरुषों की श्रेष्ठता बढ़ा के राज्य का निरन्तर पिता के समान अवधि पिता अपने पुत्र की पालना करता वैसे पालन करें ॥ १४ ॥

पुमिधैव सुमनां अग्ने अर्कैरिमान्स्पर्श मन्मभिः शूर वाजान ।

उत प्रसाययक्रिरो जुषस्व सं ते शस्त्रिदेवता जरेत ॥१५॥

पदार्थ—हे (अक्रिरोः) प्राण के सद्गुण वर्तमान (शूर) वीर (अग्ने) विद्वान् राजन् ! आप (पुमिः) इन धार्मिक रक्षक और विद्यावान् (अर्कैः) सत्कार करने योग्य (मन्मभिः) विद्वानों के साथ (सुमना) उत्तम मन युक्त (मह) हुए और (इमां) इन (वाजान्) प्राप्त होने योग्य उत्तम गुण कर्म और स्वभाववालों को (स्पर्श) ग्रहण करिये (उत) और (प्रसायि) बड़े-बड़े वनों का (सम्, जुषस्व) अच्छे प्रकार सेवन करिये जिससे कि (ते) आपकी (देवता) विद्वानों से की गई (क्रिस्तः) प्रशंसा (जरेत) प्रशंसित हो अर्थात् अधिक विख्यात हो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप यथार्थवक्ता विद्वानों का संग निरन्तर करिये और उनके उपदेश से न्यायपूर्वक राज्य का पालन करके प्रशंसित हुए ॥ १५ ॥

अथ प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एता तन्मा विदुषे तुभ्यं वेधो नीधान्यग्ने निष्या वचांसि ।

निषचना कवये काव्यान्यर्शंसि मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥२२॥

पदार्थ—हे (वेधः) बुद्धिमान् (अग्ने) राजन् ! (विप्रः) मेधावी जन में (उक्थैः) प्रशंसा करने योग्य (मतिभिः) विद्वानों के साथ जो (काव्यानि) कवियों ने रचे शास्त्र उन की (अर्शंसि) प्रशंसा करता है और उन (विष्या) सम्पूर्ण (एता) इन (निष्या) निर्णय किये गये (निषचना) अत्यन्त अर्थों की कहनेवाले (वचांसि) वचनों को (विदुषे) विद्वान् (कवये) उत्तम बुद्धिवाले (तुभ्यम्) आप के लिए (नीधानि) प्राप्त किये गये प्रसन्न अर्थात् बहु आपकी प्राप्त हुए ऐसी प्रशंसा करें ॥ १६ ॥

भाषार्थ—वही निश्चित प्रशंसा जानने योग्य है कि जो धार्मिक विद्वानों से की जाय। अध्यापक और उपदेशक जनो को चाहिए कि पढ़ने और उपदेश देनेवालों को सदा ही सत्यवादी और विद्वान् करें ॥ १६ ॥

इस सूक्त में अग्नि, राज और प्रजादिकों के कृत्य और गुणों का वर्णन होने में इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसरा सूक्त और बाईसवां वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ वाचकलुप्तोपमालङ्कार सूक्तस्य नामदेव अवि । अग्नीरगोहा देवता ।

१, २, ४, ५, ६ सुरिक् पङ्क्तिः । ३ स्वरार्ध पङ्क्तिः । १२ निष्पत्तिपङ्क्तिः ।

पञ्चमः स्वरः । ३, १०, ११, १४ निष्पत्तिपङ्क्तिः । ६ विरार्ध पङ्क्तिः ।

७, १३ त्रिपङ्क्तिः । चैवतः स्वरः । १४ स्वरार्धपङ्क्तिः ।

मध्यमः स्वरः ॥

अथ पञ्चमः अथवाते जीये सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राज्य विषय में सेनापति के काम को कहते हैं—

कुपुष्व पाजः प्रसिति न पृथ्वी याहि राजेवामर्षो इमेन ।

तुष्ठीमसु प्रसिति द्रुपानोऽस्तासि विष्य रसस्तपिष्ठैः ॥१॥

पदार्थ—हे सेना के ईश ! आप (राजेव) राजा के सद्गुण (अमर्षो) असमान (इमेन) हाथी से (याहि) जाहये प्राप्त हुए (प्रसितिम्) वृद्ध वीर्य (तुष्ठीम्) धूमि के (न) सद्गुण (वाजः) बल (कुपुष्व) करिये जिस से (प्रसितिम्) अन्न और (तुष्ठीम्) प्यासी के प्रति (अनु, दूतानः) अनुकूल



कीप्रता करनेवाले और (अस्त) फेंकनेवाले (अस्ति) हो इससे (तपिष्ठः) अतिशय सन्ताप देनेवाले शस्त्र आदिको से (रक्षतः) दुष्टों को (विष्य) पीड़ा देओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजसम्बन्धी जनो ! आप लोग पृथ्वी सदा बल कर के राजा के सदा न्यायाधीश होकर पिपासित भूमि के पीछे पीछे हुए भेड़िये के सदा दुष्ट डाकू जो कि अनुधावन करते अर्थात् जो कि पथिकों के पीछे पीछे उनका नाश करो ॥ १ ॥

अब राजविषय में सामान्य से राजजनों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तव अमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।

तप्यन्मै शुद्धा पतज्जानसन्वितो वि सृज विश्वगुल्फाः ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदा ! वर्तमान जो (तव) आप के (आशुया) शीघ्र (अमास) भ्रमण (पतन्त्य) गिरने हैं उन को (धृषता) प्रगल्भ सेना के साथ (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र हुए (अनु, स्पृश) स्पर्श करो और (शुद्धा) होम के साधन से अग्नि (तप्यन्) तपाये गये पदार्थों को जैसे जैसे (पतज्जान्) अग्निकणों के सदा वर्तमान डाँडों को अनुकूलता से स्पर्श करो (असन्वितः) खण्डरहित हुए (गुल्फाः) बिजुलियों को (विश्वगुल्फाः) सर्व प्रकार (वि, सृज) छोड़िए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजजन फुरतीवाले होते हुए शीघ्रकार्यकारी हो वे अखण्डत-वीर्य अर्थात् पूर्णबल वाले होकर बिजुली के प्रयोगों और ब्रह्मास्त्र आदि अस्त्रों को मनुष्यों के ऊपर कर विजय को प्राप्त हो ॥ २ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्रति स्पृशो वि सृज तूर्णितमो मवा पायुर्विशो जस्या अदम्बः ।

यो नो दूरे अघर्षसो यो अन्त्यग्ने मार्किष्ठे व्यथिरा दधर्षात् ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् राजन् ! आप (तूर्णितमः) अत्यन्त शीघ्रकारी होते हुए (स्पृशः) अत्यन्त स्पर्श करने अर्थात् मुँह लगनेवालों का (वि, सृज) त्याग करो, और (अस्या) इस (विशः) प्रजा के (अघर्ष) नहीं मारने और (पायुः) पालन करनेवाले (प्रति, मवा) होओ (यः) जो (अघर्षसः) पाप की प्रशमा करनेवाला चोर (नः) हम लोगों के (दूरे) दूर देश में वा (यः) जो (अन्ति) समीप में वर्तमान हो वह (ते) आप को (व्यथि) पीडारूप (मार्किः) मत (आ, दधर्षात्) डीठ हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप उत्तम गुणों को ग्रहण करके और प्रजा का पालन करके जो दूर और समीप में वर्तमान डाकू आदि दुष्ट पुरुष उनका नाश करो जिससे सब को सुख हो ॥ ३ ॥

उदधे तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमिश्रां औषतासिग्महेते ।

यो नो अराति समिधान चक्रे नीचा त धंस्यतसं न शुष्कम् ॥४॥

पदार्थ—हे (समिधान) उत्तम प्रकार प्रकाशमान और (अग्ने) अग्नि के सदा वर्तमान आप ! (उद, तिष्ठ) उद्युक्त हजिये (आ, तनुष्व) अच्छे प्रकार विस्तृत हजिये (अमिश्रां) शत्रुओं के (प्रति) प्रति (नि, औषतात्) निरन्तर दाह लेंओ । हे (तिष्ठहेते) अत्यन्त तीव्र बुद्धिवाले ! (यः) जो (नः) हम लोगों के (अरातिम्) एक शत्रु और अनेक शत्रुओं को (नीचा) नीच (अधो) कर चुका अर्थात् सब से बड़ गया (तनु) उसकी (शुष्कम्) गीलेपन से रहित (असतम्) रूप के (न) सदा से आप (व्यथि) जलाते हो इस से वह आप राज्य के योग्य हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि आत्मस्य त्याग के पुरुषार्थ का विस्तार करके शत्रुओं को जलावे और अन्धरूप के सदा कागज में उसका बन्धन करें और नीचता को प्राप्त करें । जो लोग ऐसा करते हैं उनकी राजा गुरु के सदा सेवा करें ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याप्यस्मदाविष्कणुष्व दैव्यान्यग्ने ।

अव स्थिरा तनुहि यातुज्नां जामिमजामि प्रमृणीहि शत्रून् ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदा तेजस्विन् ! आप (अस्मत्) हम लोगों से (ऊर्ध्वः) उन्नत (अभि) उपरिभाष में अर्थात् ऊपर में रहनेवाले (अव) हजिये (स्थिरा) स्थिर सेना और (दैव्यानि) विद्वानों के किये कर्मों का (तनुहि) विस्तार करिये (यातुज्नाम्) वेग को प्राप्त हुए प्राणियों के (जामिम्) भोग और (जामिम्) अभोग को (आभिः) प्रकट (ऊर्ध्वम्) करिये (शत्रून्) शत्रुओं का (प्र, अव, मृणीहि) अच्छे प्रकार नाश करिये और (प्रति, विष्य) बार बार पीड़ा दीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने से उत्कृष्ट अर्थात् श्रेष्ठों की देख के प्रसन्न होते अनुकृष्ट अर्थात् दुःखियों की देख के शोक करते लोगयुक्तों की देख के आनन्दित होते और भोगरहितों की देख के अप्रसन्न होते वे ही राजजनों में स्थिर होते हैं ॥ ५ ॥

स ते जानाति सुमति यविष्ठु य ईवते प्रघर्षणे शातुनैरत् ।

विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो युष्मान्ययो वि दुरी अभि धीत् ॥६॥

पदार्थ—हे (यविष्ठु) अत्यन्त युवावस्थायुक्त (यः) जो (अभ्यः) स्वामी (ईवते) विद्या से व्याप्त (अभ्यस्ये) वेद जाननेवाले के लिये (शातुन्) प्रशंसित वाणी को (ऐरत्) प्राप्त करावे (अस्मै) इस के लिए (विश्वानि) सम्पूर्ण (सुदिनानि) सुख करनेवाले दिनों (रायो) बनो (युष्मानि) प्रकाशित वक्त्रों (दुरी) और यश के द्वारों को (अभि, धि, धीत्) प्रकाशित करें (सः) वह विद्वान् (ते) आप की (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को (जानाति) जानता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो लोग नित्य मङ्गल आचरण करनेवाले यशयुक्त अनुरक्त अर्थात् स्नेही शूरवीर और राजव्यवहार के जाननेवाले आप को धितार्थ उन को आप मित्र जानिये ॥ ६ ॥

सेदधे अस्तु सुमगः सुदानुर्व्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।

पिपीबति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्या से प्रकाशित सम्यजन ! (यः) जो (सुमगः) प्रशसनीय ऐश्वर्ययुक्त (सुदानुः) उत्तम दान देनेवाला हो (सः, इत्) वही आपका सभासद (अस्तु) हो (यः) जो (उक्थैः) प्रशंसाओं और (नित्येन) नही नाश होनेवाले (हविषा) हवन करने योग्य पदार्थ से (त्वा) आप को (पिपीबति) सुशोभित करने की इच्छा करता है (अस्मै) इसके लिए (स्वै) अपने (आयुषि) जीवन और (दुरोणे) गृह में (विश्वे) सम्पूर्ण (सुदिना) सुन्दर दिन हों (सा) वह (इष्टिः) यज्ञ करने की क्रिया दोनों लोकों में सुख देनेवाली (इत्) ही (अस्तु) होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो लोग नित्य प्रेम से न्याय और विनय के द्वारा राज्य की उन्नति करते और राजा और प्रजा के उपद्रव के बिना मङ्गल समय तथा ही प्राप्त कराते हैं वे राजगृह में अर्घ्य हो ॥ ७ ॥

अर्चामि ते सुमति घोष्यवांसं ते वावाता जस्तामियं गीः ।

स्वन्वास्था सुरथा मर्जयेमास्मे सत्राणि धारयेरनु धून् ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! मैं (ते) आप के (सुमतिम्) श्रेष्ठबुद्धिवाले सभासद का (अर्चामि) सत्कार करता हूँ जिन (त्वा) आपकी (वावाता) दोषों को नाश करने और विद्या को उत्पन्न करनेवाली (इयम्) यह (गीः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी (घोषि) शब्दयुक्त वचन जैसे ही जैसे (सन्, जस्ताम्) स्तुति करे उन आपको (स्वन्वा) उत्तम घोड़े (सुरथा) श्रेष्ठ रथ और हथ लोग (मर्जयेन्) बुद्ध करावे जैसे (ते) आप के धनों को (अनु, धून्) अनुदिन प्रतिदिन हम लोग धारण करे जैसे आप (अर्चामि) पीछे (अस्मे) हम लोगों के लिए (सत्राणि) राज्य में उत्पन्न हुए धनों को (धारये) धारण करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जब राजा सभास्थ जनों को पूछे कि इस अधिकार में कौन पुरुष रखने योग्य है तब सम्पूर्ण जन सामिक योग्य पुरुष के नियत करने में सम्मति दें और राजा को भी चाहिए कि योग्य ही पुरुषों को राजकर्म में नियत करे जिस से कि नित्य प्रशंसा बढ़े ॥ ८ ॥

इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्वोषावस्तर्दीविवांसमनु धून् ।

क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः मपेमाभि धूमना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! (इह) इस राजकर्म में आप (त्वम्) आत्मा में (भूरि) बहुत शुभ कर्म (उप, आ, चरेत्) करें (सुमनसः) श्रेष्ठमनयुक्त जन (तस्थिवांसः) स्थिर और (अनु, धून्) प्रतिदिन (क्रीळन्तः) धनुर्वेदविद्या की शिक्षा के लिए और युद्ध के लिए शस्त्रों का अभ्यास करते हुए हम लोग (जनानाम्) राजा और प्रजा के पुरुषों के मध्य में (दीविवांसम्) प्रकाशमान वा प्रकाश करते हुए और (धूमना) यश वा धन के सहित वर्तमान राजमान (त्वा) आपकी (दीवावस्तः) दिन गाँव प्रशंसा करें जो श्रेष्ठ कर्म करो तो (त्वा) आप की (अभि, मपेमा) निन्दा करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप दुर्व्यसनों का त्याग कर के धर्मसम्बन्धी कर्मों को करें तो हम लोग आप के भक्त निरन्तर होंगे जो अन्याय करो तो आप का शीघ्र त्याग करें ॥ ९ ॥

यस्त्वा स्वयं सुहिरव्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।

तस्य ज्ञाता भवसि तस्य सत्त्वा यस्त जातिथ्यमानुषाङ्गुणीवत् ॥१०॥२४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् ! (यः) जो (ते) आपकी (आनुषङ्गः) अनुकूलता से वर्तमान (जातिथ्यम्) अतिथि के सदा सत्कार की (सुहिरव्यः) निरन्तर सेवा करे (यः) जो (सुहिरव्यः) उत्तम सुवर्ण आदि वस्तुयुक्त और (स्वयं) सुन्दर घोड़े से युक्त पुरुष (वसुमता) बहुत धन से युक्त (रथेन) रमणीय वाहन से (त्वा) आप के (उपयाति) समीप प्राप्त होता है (तस्य)

पाकाय पुत्सो अयुतो विवेता वैश्वानरो वृतमो यद्गो अग्निः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( स्वभावान् ) बहुत जन्म आदि ऐश्वर्य से युक्त ( अमृतः ) मृत्यु से रहित ( विवेकाः ) अनेक प्रकार के अच्छे प्रकार ज्ञात होना वा ज्ञान कराने के प्रकार जिसके ऐसे ( वेदवाचकः ) सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान ( मूल्यः ) अत्यन्त नायक वा मनुष्यों में श्रेष्ठ ( बहूः ) बड़ा ( गुणः ) उपदेशवाला बुद्धिमान् ( अग्निः ) सूर्य के समान ( देवः ) केनेवाला पुरुष ( वाचाय ) परिपक्व व्यक्तियों वाले ( सत्याय, बहूयम् ) मुझ मनुष्य के लिए ( इमाम् ) इस ( रक्षितम् ) दान को ( वही ) देता है उसकी ( जा ) मत ( निश्चय ) निन्दा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! जो अग्नि आदि के गुणों से युक्त और सबके लिये सुख देनेवाला राजा उत्तम गुणवाला होने उसकी निन्दा और दुष्ट की प्रमांसा कभी मत करो ॥ २ ॥

अब मेधावी पुरुष को क्या करना चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहते हैं—

सामं द्विर्धा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषमस्तुर्विष्मान् ।

पदं न गौरपगूळं विविद्वानग्निर्महं प्रेदु बोधन्मनीषाम् ॥३॥

पदार्थ—जो ( द्विर्धा ) दो अर्थात् विद्या और वित्त से बृद्ध ( तिग्मभृष्टिः ) तीव्र परिपक्व जिसका ऐसा ( सहस्ररेता ) परिमाण रहित पराक्रमयुक्त ( वृषमः ) बैल के सदृश श्रेष्ठ ( तुर्विष्मान् ) बहुत बलयुक्त ( अग्निः ) अग्नि के सदृश तेजस्वी और ( विविद्वान् ) विवेक करके पण्डित ( गोः ) गौ के ( अपगूळम् ) गुप्त ( पदम् ) पैरों के चिह्न के ( न ) सदृश ( मह्यम् ) मुझ जानने की इच्छा करनेवाले के लिए ( मनीषाम् ) बुद्धि और ( महि ) बड़े ( साम ) सिद्धान्तित कर्म को ( प्र, बोधत् ) कहे ( इत्, उ ) फिर वही हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वही श्रेष्ठ विद्वान् है कि जो सब के लिए यथार्थज्ञान करावे। जैसे गौ के पैरों के चिह्न को लोग के गौ को प्राप्त होता है वैसे ही पदार्थविद्या प्राप्त करने योग्य है ॥ ३ ॥

अब सबको सुख करनेवाले राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र ताँ अग्निर्वैमसत्तिमजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।

प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धामं प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४॥

पदार्थ—( यः ) जो ( अग्निः ) अग्नि के सदृश ( तिग्मजम्भः ) तीक्ष्ण शरीर और शिथिल करनेवाली जम्भबाई वाला ( तपिष्ठेन ) अत्यन्त ताप अर्थात् दीप्तियुक्त ( शोचिषा ) तेज से ( सुराधा ) उत्तम धन वाले होते हुए ( ये ) जो लोग ( चेततम् ) चेतन्य करानेवाले ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ ( मित्रस्य ) मित्र के ( प्रिया ) सुन्दर और ( ध्रुवाणि ) निश्चल अर्थात् दुर्द्ध ( धाम ) जन्म स्थान नामों का ( प्र मिनन्ति ) नाश करते हैं ( ताव् ) उनको ( प्र, बभसत् ) तिरस्कार करे वही सब को सुख करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा है। जैसे प्रदीप्त अग्नि प्राप्त हुए गुप्त और गीले पदार्थ को जलाता है वैसे ही जो पुरुष अपने प्रयोजनसाधक स्वार्थी और अन्य पुरुष के मुख नाश करनेवालों को नाश करता है वह प्रशंसित होता है ॥ ४ ॥

अब राजविषय में बण्ड विचार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।

पापामः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमंजनता गम्भीरम् ॥५॥१॥

पदार्थ—जो ( अमृताः ) मिथ्या बोलने और ( असत्याः ) मिथ्या आचरण करनेवाले ( दुरेवाः ) दुष्टव्यसनो से युक्त ( पापामः ) अवर्माचरण करते ( सन्तः ) हुए दुष्ट ( अभ्रातरः ) जैसे बन्धुभिन्न जन ( न ) वैसे और जैसे ( योषणः ) स्त्रिया ( पतिरिपः ) पति की भूमि को ( न ) वैसे ( व्यन्तः ) प्राप्त हुई ( जनमः ) स्त्रिया ( इवम् ) हम ( गम्भीरम् ) गम्भीर ( पदम् ) स्थान को ( अमंजत ) उत्पन्न करती है वे सदा ही ताडन करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जो स्त्री आई के सदृश अनुकूल नहीं और जो अनुकूल हो तो शत्रु के सदृश विरोध करनेवाली हो और जो घोर पापीजन सब के पीडा देनेवाले हो उनका दूर से त्याग करो ॥ ५ ॥

अब अध्यापक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं मारं न मन्म ।

बृहद्वाय वृषता गभीरं यहं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥६॥

पदार्थ—हे ( पावक ) पवित्र करनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान आप ( कियते ) जोड़े सामर्थ्य से युक्त ( अमिनते ) नहीं हिला करनेवाले ( मे ) मेरे लिए ( वृषम् ) बड़े ( भारम् ) भार के ( न ) सदृश ( सप्त ) विज्ञान को तथा ( वृषता ) पीठ और ( प्रयसा ) प्रसन्नता के साथ ( इवम् ) इस ( बृहत् ) बढ़ानेवाले ( गम्भीरम् ) गम्भीर ( पृष्ठम् ) पृष्ठने योग्य ( यहम् ) बड़े ( सप्तधातु ) सुवर्ण आदि सातों धातु जिस में ऐसे जन को ( बधाय ) धारण कीजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अत्यन्त और विद्यावी जनानी विज्ञान के समीप से विज्ञान और जन के साधन की वाचना करते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥ ६ ॥

अब विद्यावृद्धता से उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तसिन्वेव संसना समानमभि क्रत्वा पुनरी धीतिरस्याः ।

ससस्य चर्ममधि चारु पृन्नेरत्रै रूप आर्कपितं जवाक ॥७॥

पदार्थ—हे कन्ये ! जिस ( ससस्य ) शयन करते हुए के ( चर्मम् ) चमड़े में ( चारु ) सुन्दर ( जवाक ) वेग करता हुआ वा आरुढ़ ( आर्कपितम् ) आरोपण किया गया वा जो ( पुनैः ) अन्तरिक्ष के ( अभि ) सब ओर है उसके ( अत्रे ) प्रागे ( अग्नि, वयः ) अविरोध करनेवाले की ( कत्वा ) उत्तम बुद्धि से ( पुनरी ) पिता के सम्बन्ध से पवित्र करती हुई ( धीतिः ) उत्तम गुणों के धारण करनेवाली ( ससना ) मुख्य हुई ( तम्, इत् ) उसी ( सनाम् ) समान पति को ( नु, यम् ) गीघ्र ही ( अस्याः ) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो कन्या अपने समान बर और ब्रह्मचारी अपने तुल्य कन्या के साथ विवाह करे तो अन्तरिक्ष के मध्य में ईश्वर से स्थापित सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्रों के मुख्य मोहित होते हैं ॥ ७ ॥

अब प्रकृत विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निशिबन्ति ।

यदुस्त्रियाणामप वारिवं प्रपति प्रियं रूपो अग्रं पदं वेः ॥८॥

पदार्थ—जो ( वे ) मेरे और ( अस्म्य ) इस जन के ( वचसः ) वचन के सम्बन्ध में ( गुहा ) बुद्धि में ( हितम् ) स्थित ( प्रवाच्यम् ) प्रकथता से कहने योग्य ( निशिक् ) अत्यन्त शुद्ध करनेवाले को ( किम् ) क्या ( उप, वदसि ) समीप में कहते हैं ( यत् ) जो ( उस्त्रियाणाम् ) गौघों के ( वारिवं ) जल के सदृश वा ( वेः ) पक्षी के ( अग्रम् ) ऊंचे ( पदम् ) स्थान के सदृश ( वचः ) पृथिवी के ( प्रियम् ) सुन्दर भाग को ( अप, वद् ) वेरता है कौन इन दोनों को ( पति ) पालन करता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! मेरी और इस जन को बुद्धि में वर्तमान चेतन क्या और कैसा है जो पशुघो के पालन करनेवाला जल के सदृश रक्षा करता और सबसे प्रिय देख पड़ता है। जो साकाश में पक्षी के पैर के सदृश गुप्त है उस को विज्ञान के लिये हम लोगों के प्रति आप लोग क्या कहते हो ॥ ८ ॥

अब समाधत्ता के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्त्रिया सचतं पृथ्वी गौः ।

ऋतस्यं पदे अधि दीधानं गुहां रघुष्यद्रघुयद्विषेद ॥९॥

पदार्थ—हे जिज्ञासुजनो ! ( यत् ) जो ( मह्यम् ) बड़ों की ( अनीकम् ) श्रेणा के सदृश ( महि ) बड़ा वा ( ऋतस्य ) सत्य के ( पदे ) स्थान में जो ( दीधानम् ) प्रकाशित होता हुआ विद्यमान है उस को ( गुहा ) बुद्धि में ( रघुष्यत् ) शीघ्र हिलते हुए के समान ( पृथ्वीम् ) पृथ्वीजनों से उत्पन्न किये गये के समान ( रघुष्यत् ) शीघ्र जानेवाली ( विषेद ) जानती है ( त्यत्, इवम्, उ ) उस ही ( उस्त्रिया ) दुग्ध आदि की देनेवाली ( गौः ) गौ के सदृश ( अधि ) अधिक आप लोग ( सचत ) प्राप्त हजिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे श्रोताजनो ! जो बुद्धि की प्रेरणा करने मन्द और तीव्र चलने-वाला सत्य परमेश्वर के मध्य में प्रकाशमान बलिष्ठ वाज पक्षी के सदृश पराक्रम वाले बछड़े को सुख देती हुई गौ के सदृश सुख देनेवाला वस्तु है वही आप लोगों का स्वरूप है ॥ ९ ॥

अर्धं धृतानः पित्रोः सचासामनुत गुहां चारु पृन्नेः ।

मातृपदे परमे अन्ति बहोर्वृष्याः शोचिषः प्रयंतस्य जिह्वा ॥१०॥१॥

पदार्थ—हे जिज्ञासुजनो ! ( अथ ) इस के अनन्तर जो ( पित्रोः ) माता और पिता की उत्तेजना से ( धृतान् ) प्रकाशमान ( सचा ) सत्य ( आसा ) मुक्त से ( परमे ) उत्तम ( मातृ ) माता के सदृश वर्तमान के ( पदे ) प्राप्त होने योग्य स्थान में ( अन्ति ) समीप ( सत् ) वर्तमान ( गोः ) गौ और ( वृष्यः ) बुद्धि करनेवाले के सदृश ( शोचिषः ) प्रकाशमान ( प्रयतस्य ) प्रयत्न करते हुए की ( जिह्वा ) वाणी के सदृश जो ( पुनैः ) अन्तरिक्ष के मध्य में ( चारु ) सुन्दर ( पृन्नेम् ) गुप्त है उस जीवस्वरूप को ( अमनुत ) जानिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—जैसे अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में वर्तमान सूर्य उत्तम प्रकार मोहित है और जैसे विद्वान् की वाणी विद्या का प्रकाश करनेवाली है और जैसे अन्तरिक्ष किसी से भी दूर नहीं है वैसे ही उत्तम अपना आत्मात्मक वस्तु और परमात्मा समीप में वर्तमान है ऐसा जानना चाहिये ॥ १० ॥

ऋतं वोचं नमसा पृच्छयमानस्तवासां आसवेदो यदीदम् ।

त्वमस्य संयसि यद्द विषं दिवि यद्द इतिषं अत्युचिषाम् ॥११॥

पदार्थ—हे ( आसवेद ) ज्ञान से निश्चित ( यदि ) यदि आप ( यद् ) जो ( ह ) निश्चयकर ( विषि ) प्रकाशमान परमात्मा वा सूर्य में ( विचिषम् ) सम्पूर्ण



( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय और ( यत् ) जो ( बुद्धिमान् ) बुद्धिमान् में ( यत् ) जो ( उ ) और वायु आदि में वर्तमान है और जिसमें ( त्वम् ) आप ( अस्मिन् ) रहते हो उस ( अस्मिन् ) इन ( त्वम् ) आपके ( अस्मिन् ) सब प्रकार प्रसन्न ( मन्त्रम् ) सत्कार से ( पुष्पधामनम् ) पूछा गया है जो ( इन्द्रम् ) इस ( अस्मिन् ) सत्य को आपके प्रति ( बोधे ) कहें वा उपदेश कर ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्म सब स्थान में व्याप्त है और जिसमें सम्पूर्ण पदार्थ बसते हैं उस सत्यस्वरूप का आप लोगों के प्रति में उपदेश करता हूँ उसी की उपासना करो ॥ ११ ॥

फिर प्रच्छन्न विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

किं नो अस्थ द्रविणं कद्द ररनं वि नो बोधो जातवेदधिकिस्त्वान् ।

गुहाध्वनः परमं यज्ञो अस्थ रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) विद्यायुक्त ( चिकित्सा ) विचारशील आप ( अस्थ ) इस सत्कार में ( न. ) हम लोगों का ( किम् ) क्या ( इन्द्रियम् ) यज्ञ और ( किम् ) क्या ( ररनम् ) धन है ऐसा ( न. ) हम लोगों को ( कत्, ह ) कभी ( वि, बोध. ) उपदेश कीजिये ( यत् ) जो ( गुहा ) बुद्धि के ( अध्वनः ) मार्ग के ( परमम् ) उत्तम प्राप्त होने योग्य को प्राप्त हुए ( न. ) हम लोगों को ( रेकु ) शङ्कायुक्त ( पदम् ) प्राप्त होने योग्य स्थान के ( न ) तुल्य ( न ) हम लोगों की ( निदाना ) निन्दा करते हुए ( अस्थ ) इस सत्कार के मध्य में हो उन को त्याग के ( अगन्म ) प्राप्त हुए वह क्या है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! हम लोगों में क्या यज्ञ क्या सुन्दर वस्तु और कौन लोग हम लोगों की निन्दा करनेवाले और क्या शङ्का करने योग्य वस्तु और क्या प्राप्त होने योग्य स्थान है इन के उत्तर कहो ॥ १२ ॥

का मर्यादा बयुना कद्द वामच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।

कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सुरो वर्णेन ततनमपासः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( न ) हम लोगों की ( का ) कौन ( मर्यादा ) प्रतिष्ठा और कौन ( बयुना ) कर्म हम लोग ( ररनम् ) शीघ्र करनेवालों के ( वाजम् ) विज्ञान और ( वामम् ) उत्तम वस्तु को ( कत्, ह ) कभी ( अजम् ) उत्तम प्रकार ( गमेम ) प्राप्त होवें और ( कदा ) कब ( सुर. ) सूर्य ( अमृतस्य ) नाशरहित काल की ( देवी ) प्रकाशमान ( पत्नी ) स्त्रियों के सदृश वर्तमान ( उपास ) प्राप्तकर्ताओं के ( न ) सदृश आप ( वर्णेन ) तेज से ( ततनम् ) विस्तृत करेंगे ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य लोग यथार्थवादी विद्वान् से मनुष्य के करने योग्य कर्मों और प्राप्त होने योग्य स्थान को पूछें कि आप सूर्य से प्रातःकाल के सदृश हम लोगों को कब विद्वान् करोगे ऐसा पूछें ॥ १३ ॥

अब सत्ताधाता के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अनिरेण बच्चसा फल्बेन प्रतीत्येन कृधुनाऽपासः ।

अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष ! जो ( अनिरेण ) नहीं रमने योग्य ( प्रतीत्येन ) प्रतीति में प्रसिद्ध हुए ( फल्बेन ) बड़े ( कृधुना ) छोटे ( बच्चसा ) बचन से ( अतपास. ) अतृप्त होने हुए ( आसता ) नहीं वर्तमान बल आदि से ( अनायुधास. ) बिना मन्त्र अस्त्र वाली के सदृश ( इह ) इस सत्कार वा इस जन्म में ( किम् ) क्या ( बचति ) कहते हैं ( अग्ने ) इसके अनन्तर ( ते ) आपके लिए कितने ( सचन्ताम् ) प्राप्त होवें इनका उत्तर कहिये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो श्रोता लोग उपदेश से उत्तर को प्राप्त हुए मनुष्य न होवें वे तब तक पूछें जब कि समाधान को प्राप्त होवें तब उस कर्म का आरम्भ करें ॥ १४ ॥

अस्य धिये समिधानस्य वृण्णो बसोरनीकं वम आ करोच ।

रुशद्भानः सुदशीकरूपः सितित्ति राया पुंवारो अद्यौत् ॥१५॥३॥

पदार्थ—जो ( ररात् ) सुन्दर रूप को ( वसतः ) प्राप्त ( वृण्णोकरूपः ) उत्तम प्रकार देखने योग्य स्वरूप से युक्त ( पुंवार. ) तब से स्वीकार करने योग्य स्वरूप से शोभित तथा ( राया ) धन से ( सितित्ति. ) पृथिवी के ( न ) समान ( अज्जीत् ) प्रकाशित होता है जिस ( समिधानस्य ) प्रकाशमान ( वृण्ण. ) बलिष्ठ बलीः ) बलमानेवाले रक्षा के ( वमे ) गृह में ( धिये ) बोधा वा लक्ष्मी के लिए ( अजीकम् ) सेना ( आ ) सब प्रकार ( वरीच ) सुन्दर है उस सेना के और ( अज्ज ) इस वर्तमान राजा के सम्पूर्ण समाधान और सुख होते हैं ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अच्छे रूपवान् पृथिवी के सदृश समा आदि गुण वाले और प्रतिष्ठित अक्षवर्ती राजाओं की लक्ष्मी से शोभित हुए उत्तम प्रकार शिक्षित बड़ी बलवती बड़ी सेना की बढ़ाते हैं उनका ही अक्षवर्ती राज्य समर्पित होता है औरों का नहीं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में बुद्धिमान् राजा अध्यापक उपदेशक प्रवक्तृ और सभावाचकता के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के

अर्थ के साथ सङ्गति अनन्तरी चाहिए ।

यह पाँचवाँ सूक्त और तीसरा वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथैकादशार्थस्य षष्ठस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१, २, ५, ८, ११ चिराद् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् छन्दः ।

वैवतः स्वरः । २, ४, ६ पुरिक् पङ्क्ति । ६ स्वरान्

पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चम स्वर ।

अब ग्यारह ऋषि वाले छठे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं—

ऊर्ध्व ऊ पु णी अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीथान ।

त्वं हि विश्वमप्यमि मन्म प्र वेधसंश्चिरसि मनीषाम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( होत ) दानकर्ता ( अग्ने ) अग्नि के सदृश विद्वान् ( हि ) जिससे ( त्वम् ) आप ( देवताता ) विद्वानों की पंक्ति में ( यजीथाम् ) प्रत्यस्त यजन करनेवाले ( न. ) हम लोगों के ( अध्वरस्य ) नहीं हिमा करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार के ( ऊर्ध्व. ) ऊपर अधिष्ठाताजन ( वेधसः ) बुद्धिमान् विद्वान् के सम्बन्ध में ( विश्वम् ) सम्पूर्ण जगत् और ( मन्म ) विज्ञान के ( अभि ) सम्मुख ( अंसि ) होते और ( मनीषाम्, चित् ) उत्तम बुद्धि ही के ( चिरसि ) पार होते हो ( उ, पु, प्र तिष्ठ ) सो ही स्थित रहिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग विद्वानों के समीप से विद्वानों को प्राप्त होकर गन्ध के रक्षा करने और बुद्धि देनेवाले हों उन्हें उन्हीं लोगों की प्रतिष्ठा करो ॥ १ ॥

अब विद्वानों के कर्त्तव्य को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अमूरो होता न्यसादि विश्वः प्रिर्मन्द्रो विद्वेषु प्रचेताः ।

ऊर्ध्व भानुं सवितेवाध्वमेतेव ध्रुमं स्तभायदुप धाम् ॥२॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो ( अमूरः ) सूर्यपन से रहित विद्वान् जन होता हुआ ( होता ) ग्रहण करनेवाला ( विश्वः ) प्रजापति और ( विश्वेषु ) सभामें ( अग्निः ) अग्नि के सदृश ( मन्त्र ) आनन्द देने वाला ( प्रचेता. ) बुद्धिमान् वा बुद्धिवाता ( धाम् ) प्रकाश और ( ऊर्ध्वम् ) ऊपर वर्तमान ( भानुम् ) किरण को ( सवितेव ) सूर्य के सदृश ( ध्रुमम् ) ध्रुव को ( मेतेव ) यथार्थ जानवाले के सदृश ( स्तभायत् ) रोकता है न्याय का ( अज्जेत् ) आश्रय करे वही राज्य कर्म में ( उप, नि, असादि ) स्थित होवे तो बहुत सुख को प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के सदृश प्रतापी अग्नि के सदृश वृष्टों के दाहक और न्याय और नञ्जता से प्रजापति में आश्रय के सदृश सभामें जीतने वाले राजा को सस्थापित करें तो कभी दुःख को न प्राप्त होवें ॥ २ ॥

यता सुजृणी रातिनी घृताची प्रदक्षिणि देवतातिमुरायः ।

उदु स्वर्नवजा नाक्रः परवो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( सुजृणि. ) उत्तम प्रकार शीघ्रता करनेवाली ( यता ) प्राप्त ( रातिनी ) बहुत देने वाले जिसके ऐसी ( प्रदक्षिणि ) वहिनी और प्राप्त होने वाली ( घृताची ) रात्रि ( देवतातिम् ) श्रेष्ठगुणों से युक्त वेला को ( उत्, अनक्ति ) शोभा करती है और जैसे उसको ( उराज. ) बहुतों को जिलाने वाला ( सुधित ) उत्तम वारण किये हुए ( सुमेक ) सुन्दर प्रकाशमान ( अक्रः ) नहीं किञ्चित् चलने वाला किन्तु वेग से जाने वाला ( नवजाः ) नवीनों में उत्पन्न सूर्य ( स्वर्नः ) उपदेश देनेवाले के ( न ) समान शोभा करता है वैसे विद्वान् बलवित करें ( उ ) और वह ( यथावः ) पशुओं की न हिंसा न करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । उपदेशक लोग रात्रि और दिन में सब के करने योग्य सेवा का उपदेश दें जिससे कि शयन जागरण आदि में युक्त ग्राह्य और विहारों को करके अपने हितों को मित्र करनेवाले हों ॥ ३ ॥

स्तीर्णं बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्लुचाणो अस्यात् ।

पर्य्यधिः पशुऽपा न होतां त्रिविष्टयेति मन्त्रि उराणः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( समिधाने ) प्रदीप्त ( बर्हिषि ) अन्तरिक्ष में वा ( स्तीर्णं ) आच्छादित ( अग्नी ) सूर्यरूप अग्नि में ( उराण. ) बहुत कार्य कपला हुआ ( ऊर्ध्वः ) उत्तम ( अग्नि. ) सूर्यगर्भि ( परि, अस्यात् ) सब ओर से स्थित हो वा ( त्रिविष्टि ) आकाश में ( प्र, विष्टः ) उत्तम प्रकाशों को ( पशुः ) प्राप्त होता है ( पशुपाः ) पशुओं की रक्षा करनेवाले के ( न ) सदृश ( लुचाणः ) यज्ञ कराने वाला है वैसे ही ( लुचाणः ) सेवा करते हुए ( अध्वर्युः ) अपने और अधिष्ठाता व्यवहार की इच्छा करनेवाले बलवित करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में आक्षेपसोपमालङ्कार है । जो लोग बर्हिषा आदि कर्मों को कर और विद्वान् होकर परोपकारी हो वे अन्तरिक्ष में सूर्य के सदृश उत्तम प्रकार प्रकाशित होवें ॥ ४ ॥

अब ईश्वरविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

परि स्मनां मितद्वरेति होतामिन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।

द्रवन्त्यस्य बाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राद ॥५॥४॥

पदार्थ—जैम (अस्य) इस सूर्य के (बाजिन) घोड़े के (न) तुल्य (शोका) प्रकाश (द्रवन्ति) दोड़ते हैं जो (अभ्राद) दीप्त होता है (यत्) जिससे (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवना) जीवों के उद्वहने के अधिकरण लाकलोकान्तर (भयन्ते) कपते हैं उस प्रकार वर्तमान जो पुर्य (ऋतावा) सत्य का विभाग करनेवाला (मधुवचा) मधुरवाणी युक्त (अग्नि) अग्नि के सदृश (होता) यज्ञ करने वाला (मन्त्र) आनन्ददाना वा आनन्दित (मितद्वरे) परिमाणपूर्वक चलने वाला (स्मना) ध्यान से (परि एति) प्राप्त होता है, यह सब सुख को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा का सब जगह प्रकाश और जिसमें सब उद्वहते हैं उसके विज्ञान के लिए सत्य का आचरण और योगाभ्यास सबको करना चाहिये ॥ ५ ॥

अब ईश्वरता लेकर राजपुरुषों को अगले मन्त्र में कहते हैं

भद्रा तै अग्ने स्वनीक संहयोरस्य सतो विषुणस्य चारुः

न यस्यै शोचिस्तममा वरन्त न ध्वस्मानस्तवी रेप आ धुः ॥६॥

पदार्थ—हे (स्वनीक) उत्तम सेनायुक्त ! (अग्ने) बिजुली के समान वर्तमान जो (तै) आप की (धोरस्य) दुष्ट (सत) श्रेष्ठ पुरुष की तथा (विषुणस्य) विषम की (चारु) सुन्दर (भद्रा) कल्याण करनेवाली (सवृक्) समान दृष्टि है (यत्) जो (तै) आपका (शोचि) प्रकाश (तमसा) रात्रि से (ध्वस्मान) नाश करनेवाले शत्रु (न) नहीं (वरन्त) निवारण करते हैं जो आपकी (तमि) विस्तीर्ण नीति उससे (रेप) अपराध (न) नहीं (आ, धु) सब प्रकार धारण करे वह आप हम लोगों के गजा हजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जिस राजा की पक्षपातरहित प्रवृत्ति और जिसकी विस्तीर्ण नीति अविच्छिन्न वर्तमान है उसके राज्य में कोई भी अपराध करने की इच्छा न करे ॥६॥

अब ईश्वर भाव में माता पिता के सैवाधर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न यस्य सातुर्जनिर्तोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।

अघा मित्रो न सुधितः पावकोऽग्निर्दिदाय मानुषीषु विष्णु ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस (सातु) सत्य और अमत्य के विभाग करनेवाले के (जनिर्तो) माता और पिता का प्रिय (न) नहीं (अवारि) स्वीकार किया जाता है और (चित्) जिसके (मातरापितरा) माता और पिता (इष्टौ) पूजा करने योग्य (न) नहीं स्वीकार किये जाते हैं वह दुःखी होता (अघा) इसके अनन्तर जिसके माता और पिता सत्कृत हों (सुधित) वह उत्तम प्रकार हितकारी (मित्र) मित्र के (न) और (अग्नि) अग्नि के सदृश (पावक) पवित्र (मानुषीषु) मनुष्यसम्बन्धिनी (विष्णु) प्रजाओं में (नु, वीरव्य) शीघ्र प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस पुत्र के विद्यमान रहने पर माता और पिता को दुःख होता और सत्कार नहीं होता है वह भाग्यहीन निरन्तर पीड़ित होता है और जिस पुत्र की उत्तम सेवा में माता पिता प्रसन्न होते हैं उसकी प्रजाओं में प्रशंसा और उसको सुख होता है ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

द्विर्य पञ्च जोजनन्संवसानाः स्वसारो अग्नि मानुषीषु विष्णु ।

उष्वधमथर्योऽन दन्तं शुक्रं स्वासं पशु न तिरमम् ॥८॥

पदार्थ—जो विद्वान् लोग (मानुषीषु) मनुष्यसम्बन्धिनी (विष्णु) प्रजाओं में (अग्निम्) अग्नि को (स्वसार) उत्तम प्रकार आच्छादन करनेवाले जैसे (पञ्च) पाँच (स्वसार) अगुलियों वा (अथर्य) नहीं हिमिल स्त्रियाँ (शुक्रम्) शुद्ध (दन्तम्) दाँत और (स्वासम्) सुन्दर भुज्य को (न) वैसे और जैसे (तिरमम्) नीच (पशुम्) कुठार को (न) वैसे (यम्) जिस (उष्वधम्) प्रातः काल में जागनेवाले को (द्वि) दो बार (जोजनम्) उत्पन्न करते हैं वे सम्पूर्ण कार्य को सिद्ध कर सकें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे अगुलियों से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं वैसे ही रात्रि के पिछले प्रहर में उठ के प्रजाओं के हित को सिद्ध करो। तीक्ष्ण कुठार के सदृश बुद्धि को काट के युवावस्थाविशिष्ट स्त्रियाँ शुद्ध भुज्य और दाँत को करती उनके सदृश प्रजाओं को शुद्ध कर और सुख लेकर द्विजों को विद्या के जन्म से युक्त करो ॥ ८ ॥

अब प्रजा के ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तव त्वे अग्ने हरितौ घृतस्मा रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।

अरुवासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमहन्त इस्माः ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् ! जो (तव) आपकी (रोहितासः) बड़ाने वाली (घृतस्माः) जिनसे घृत वा जल शुद्ध और (ऋज्वञ्चः) सीधा सत्कार करने तथा (स्वञ्चः) उत्तम प्रकार चलने वा प्राप्त होने हैं वह (हरितः) अगुली (वृषण) बलिष्ठ (ऋजुमुष्का) सरल मार्ग को चलनेवाले (इस्माः) दुःख के नाशकर्ता (अरुवासः) उत्तम प्रकार सिमित घोड़ों के सदृश (वेत्तासिम्) विद्वानों को (आ, अहन्त) बुलाने और जो इनमें कर्मों को करना जानते हैं वह अगुली और (स्वे) वे मनुष्य आपको सप्रयुक्त करने योग्य हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग घोड़ों के सदृश अपनी अगुलियों में कर्मों को करके ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं वे तुम्हें से रहित होते हैं ॥ ९ ॥

ये ह त्वे ते सहमाना अपामस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।

इयेनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मार्कतं न शर्थः ॥१०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्तमान ! (ये) जो लोग (ते) आपके (सहमाना) सुख दुःख आदि व्यवहारों के सहनेवाले (अवासः) विज्ञान को प्राप्त (स्वेषासः) प्रकाशमान (इयेनासः) और वाजपक्षी के सदृश शीघ्र चलनेवाले घोड़ों के (न) सदृश (दुवसनासः) ले चलने और (तुविष्वणसः) बलों के मांगने वाले (मार्कतम्) पवनसम्बन्धी (शर्थः) बल को (न) जैसे (अर्थयः) उत्तम क्रिया वैसे (अर्थम्) द्रव्य को (चरन्ति) प्राप्त होते हैं (स्वे) वे (ह) ही अन्य जन आपको सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो लोग क्षमा से युक्त धर्म सम्बन्धी कर्म के आचरण में प्रकाशमान उत्तम यशवाले घोड़े के सदृश कार्यकर्ता और बलवान् हो वे सत्कार करने योग्य होंगे ॥ १० ॥

अकारि ब्रह्मं समिधानं तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यु धाः ।

होतारमग्निं मनुषो नि वेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥५॥

पदार्थ—हे (समिधान) प्रकाशमान विद्वन् ! जो (नमस्यन्तः) नम्रता और (उशिजः) कामना करते हुए (मनुष) मनुष्य (आयो) जीवन की (शंसम्) प्रशंसा को और (होतारम्) देनेवाले को (अग्निम्) अग्नि के सदृश (नि, सेवु) प्राप्त होते हैं और जो (तुभ्यम्) आपके लिए (उक्थम्) स्तुति करने योग्य (ब्रह्म) बड़े धन की (शंसाति) प्रशंसा करे (यजते) तथा विशेषता ही से मिलते हुए के लिए जिनसे आपने ऐश्वर्य (अकारि) किया उनको (वि, उ, धा) धारण कीजिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् वा राजन् ! जो आपके लिए ऐश्वर्य की कामना करते हुए परमेश्वर और विद्वानों को नमस्कार करते हैं वे निरन्तर प्रशंसित होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इसके अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छठवाँ सूक्त और पाँचवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अर्चकावशर्षस्य सप्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋचिः । अग्निर्वचसा । १ भुरिक् विष्टुप् ।

७, १०, ११ विष्टुप् । ८, ९ निष्ठाविष्टुप् छन्दः । षडतः स्वरः । १२ स्वरानुष्टुप् छन्दः । ऋचमः स्वरः । ३ निष्ठाविष्टुप् । ४ अनुष्टुप् छन्दः । ५

विराजनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब एकावश ऋचा वाले सप्तम सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में सर्वगत

अग्निशब्दार्थवाच्य व्यापक परमेश्वर के विषय को कहते हैं—

अयमिह प्रथमो आयि धातुभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीदृधः ।

यमप्यवानो भृगवो विरुचुर्वनेषु चित्र विश्वं विशेविशे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (इह) इस ससार में (धातुभि) धारण करने वालों से जो (अयम्) यह (प्रथमः) पहिला (होता) देने और (यजिष्ठः) अत्यन्त मेल करनेवाला (अध्वरेषु) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञों में (ईदृधः) स्तुति करने योग्य (आयि) धारण किया गया जिसको (विशेविशे) प्रजा प्रजा के लिए (यम्) जिस (चित्रम्) अद्भुत (विश्वम्) व्यापक परमात्मा को (अप्यवानः) पुत्र और पौत्रादिकों से युक्त (भृगवः) परिपक्व विज्ञान वाले लोग (वनेषु) याचना करने योग्य जंगलों में (विरुचुः) विशेष करके प्रकाशित करते अर्थात् अपने चित्त में रमाते हैं उस परमात्मा का आप लोग ध्यान करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस ससार में परमेश्वर ही का आप लोगों को ध्यान करना योग्य है और जिसकी उपासना करके सासारिक और परमार्थिक सुख को प्राप्त होओगे वही ईश्वर इस ससार में पूजा करने योग्य जनना चाहिये ।

फिर अग्निपञ्चवाक्य ईश्वर विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्ने कदा त आनुषधुवदेवस्य चेतनम् ।

अधा हि त्वा जयचिरे मत्तसो विस्वीदृधम् ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्नि) परमात्मन् ! (वेदस्य) सुख देनेवाले और सर्वत्र प्रकाशमान (ते) आप के मनुष्य (कदा) किस काल मे (आनुषक्) अनुकूल (धुक्) हो (अथा) इसके अन्तर (अन्तः) मनुष्य लोग (हि) निश्चय मे (विष्) मनुष्यरूप प्रजापति मे (ईदम्) स्तुति करने योग्य (वेतनम्) अन्न विज्ञान आदि से युक्त (त्वा) आप को कब (अपुभिरे) ग्रहण करें ऐसी हम लोग इच्छा करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग आपकी निरन्तर प्रार्थना करे और आप की कृपा से ये सब मनुष्य आपके भक्त, आपकी आज्ञा के अनुकूल और आप के उपासक कब होंगे ? हे कृपालो अन्तर्यामिन् ! दया करके सबको अपने मे प्रीतिमान् शीघ्र करो ॥ २ ॥

कृतावानं विचैतसं पश्यन्ता धामिब स्तुभिः ।

विश्वधामध्वराणां हस्कृत्तारं दमेदमे ॥३॥

पदार्थ—जो मनुष्य लोग (विश्वधाम्) सम्पूर्ण (अध्वराणाम्) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञों के (स्तुभिः) मन्त्रों से (धामिब) सूर्य के सद्ग (दमेदमे) धर-धर मे (हस्कृत्तारम्) प्रकाश करनेवाले (विश्वेत्तसम्) जिस से विगतचित्त होता (अतस्तानम्) जिसमे सत्य विद्यमान उसको (पश्यन्तः) देखते हुए ग्रहण करे हुए है वे उत्तम प्रकार शोभित होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो लोग चेतनारहित कारण से युक्त प्रत्येक पृष्ठ के प्रकाश करनेवाले को जानते हैं वे सूर्य के प्रकाश में चन्द्र आदिकों के सद्ग ससार में प्रकाशित होते हैं ॥ ३ ॥

अब अग्निविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षशीरभि ।

आ जभ्रः केतुमायधो भृगवार्थ विशेविशे ॥४॥

पदार्थ—(य) जो विद्वान् (विवस्वत) सूर्य से (दूतम्) दूत के सद्ग (आशुम्) शीघ्र चलने और (विशेविशे) प्रजा के निमित्त (भृगवानाम्) परिपाक के करनेवाले को जैसे (आयध) ज्ञानवान् मनुष्य (विश्वः) सम्पूर्ण (चर्षणीः) प्रकाशों और (केतुम्) प्रज्ञान को (अभि, आ, जभ्रः) धारण करते हैं वैसे धारण करता है वह सम्पूर्ण ज्ञानन्दो से युक्त होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य आदि से बिजुली आदि पदार्थों को ग्रहण करते हैं वे पञ्चा के लिए सुख देनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

तमीं होतारवानुषक् चिकित्वांसं नि वेदिरे ।

रुषं पांवकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥५॥६॥

पदार्थ—जो लोग (तम्) उगको अग्नि के सद्ग (आनुषक्) अनुकूलता मे (होतारम्) ग्रहण करनेवाले (चिकित्वांसम्) विद्वान् (रुषम्) सुन्दर (सप्त) सात प्राण आदि (धामभिः) स्थानों से (पांवकशोचिषम्) अग्नि के नेत्र के सद्ग तेज से युक्त (यजिष्ठम्) अत्यन्त मेल करनेवाले को (ईम्) मय प्रकार से (नि, वेदिरे) प्राप्त होते हैं वे राज्य और ऐश्वर्य से युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो लोग बिजुलीरूप अग्नि को सब पदार्थों से निकालना जानते हैं वे अत्यन्त सुखी होन ॥ ५ ॥

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।

चित्र सन्तं गुहां हितं सुवेदं कूचिदधिनम् ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग (शश्वतीषु) अनादिकाल से वर्तमान (मातृषु) आकाश आदि पदार्थों मे और (वने) किरण म (सन्तम्) विद्यमान (गुहा) बुद्धि मे (हितम्) स्थित (सुवेदम्) उत्तम विज्ञान जिसका (कूचिदधिनम्) जो कहीं बहुत ग्रन्थों से युक्त (अधितम्) और नहीं सेवन किया गया (आ, वीतम्) व्याप्त (तम्) उस (चित्रम्) अद्भुत गुण कर्म स्वभाववाले बिजुली नामक अग्नि को जान के कार्यों को सिद्ध करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सर्व पदार्थों में अलग ही अलग वर्तमान अग्नि को तत्व से जानते हैं, वे सब काम साध सकते हैं ॥ ६ ॥

फिर अग्निविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ससस्य यद्विपुता सस्मिन्ध्वतस्य धामंघ्रण्यन्त वेवाः ।

महौ अभिर्नमसा रातह्वयो वैरध्वराय सदमिहतावा ॥७॥

पदार्थ—जो (वेवाः) विद्वान् लोग (नमसा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्तमान (रातह्वयः) जिससे ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिया (अतस्ता) जो जल का विभाग करनेवाला (अह्वयः) महान् (अग्निः) बिजुली रूप अग्नि (वेः) पक्षी के सद्ग (सवम्) प्राप्त होने योग्य स्थान को प्राप्त कराता है (यत्) जिस अग्नि में (सस्मिन्ध्व) सब (अध्वयः) अथर्व में और (अतस्य) सत्य के (अध्वयः) स्थान में (सतस्य) स्वप्नसम्बन्ध से (विपुता) विपुल धर्मात् विना स्वप्न वस्तुएं (वसवता) शब्द करती हैं उसको (अध्वराय) अहिंसनीय व्यवहार के लिए (इत्) जानते ही हैं वे सत्य के जाननेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे बुद्धिमान् पुरुषो ! जो अग्नि शरीर आदि में और निद्रा मे प्रसिद्ध होता है वह बड़ा होने से सर्वत्र व्यापक है ॥ ७ ॥

वैरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुमे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान् ।

दूत ईयसे प्रदिवं उराणो विदुष्टरो दिव आगेधनानि ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् (सञ्चिकित्वान्) उत्तम प्रकार कार्य करने की इच्छा करनेवाले (विद्वान्) विद्वान् पुरुष ! (विदुष्टर) अत्यन्त ज्ञाता हुए आप जो (वेः) व्याप्त (अध्वरस्य) न नष्ट करने योग्य व्यवहार के (दूत्यानि) संदेश पहुँचानेवाले के सद्ग कर्मों को और (अन्तः) मध्य मे (उमे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (दूतः) संदेश पहुँचानेवाला (प्रदिवं) प्राचीन (उराणः) बहुत कार्य करता हुआ जाता है उसको जानके (विदुः) प्रकाश के (आगेधनानि) सब प्रकार के ग्रहण करने को (ईयसे) प्राप्त होते हो इससे सुख को प्राप्त होने हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्या ! जो बिजुली रूप अग्नि सम्पूर्ण शिल्पजन का दूत के सद्ग प्रेरणा करनेवाला, अनादि काल से सिद्ध और सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त है, उसकी उत्पत्ति और निरोध से बहुत कार्यों को सिद्ध करके ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्वर्चिर्वपुषामिवेकम् ।

यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (दृशत) उत्तम रूप युक्त प्रीतिकारक (ते) आपका (यत्) जो (कृष्णम्) लीचनेवाला (पुरः) प्रथम (भा) प्रकाशमान (चरिष्व) चलनेवाला (वपुषाम्) रूपवाने शरीरों के (एकम्) सहायरहित (अर्चिः) तेज (इत्) ही है उसको हम लोग (एम) प्राप्त होवें और हे विद्वन् ! जैसे (अप्रवीता) नहीं जाती हुई स्त्री (गर्भम्) अन्त स्वरूप को (दधते) धारण करती है वैसे (ह) निश्चय मे (सद्यः) शीघ्र (चित्) भी (जातः) प्रकट (दूत) दूत के (इत्) सद्ग वर्तमान (उ) ही (भवसि) होते हो उससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—ह अध्यापक कृपालो ! आप बिजुली के तेज की बिद्या का हम लोगों के लिए बोध कराइये कि जिस तेज से दूत के सद्ग कार्यों को हम लोग करावें ॥ ९ ॥

मद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातों अनुवाति शोचिः ।

वृणाक्लिं तिम्यमन्तसेषु जिह्वां स्थिरा चिदक्षां बयते वि जम्भैः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! (अस्य) हम (सद्यः) शीघ्र (जातस्य) उत्पन्न हुए विद्युत् रूप अग्निप्राप के (यत्) जिस (वदृशानम्) देखने योग्य (ओज) वेगयुक्त बल के (वात) वायु (अनुवाति) पीछे चलता है जा इस साधारण अग्नि को (शोचि) प्रज्वलित लपट को (अन्तसेषु) वृक्ष आदिकों मे (तिम्यम्) तीव्र गति को और (जिह्वाम्) वाणी का (चिदक्षित) सेवन करता है और जो (वि, जम्भै) गमनों के आक्षेपों से (चित्) भी (स्थिरा) दृढ़ (अम्ना) भोजन करने योग्य पदार्थों को (दधते) देता है उस बिजुली रूप अग्नि का जान के कार्यों में प्रयुक्त करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—जा शिल्पजन पदार्थों से बिजुली को उत्पन्न करे तो वह बिजुली देखने योग्य पराश्रम और वेग का दिना अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का देती है ॥ १० ॥

फिर शिल्प विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तृषु यदक्षां तृषुणां वचसं तृषु दूतं कृणुते यहो अभिः ।

वातस्य मेलि संचते निजर्वेक्षाशु न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (यह्) वड़े (अर्वा) छोड़े के सद्ग (निजर्वेक्षु) निरन्तर शीघ्र चलती हुई (अभि) बिजुली (तृषुणा) शीघ्रता से युक्त (अम्) अन्न आदिक पदार्थों को (तृषु) शीघ्र (वचसं) प्राप्त कराती है (तृषुम्) शीघ्र कार्यकारी (दूतम्) समाचार पहुँचानेवाले जन के सद्ग अपने प्रताप को (कृणुते) करती है और (वातस्य) पवन के (मेलिम्) सङ्क्रम का (संचते) सम्बन्ध करती है जिसको विद्वान् जन (आशुम्) शीघ्र चलने वाले छोड़े के (न) सद्ग (वाजयते) चलाता है मैं (हिन्वे) चलाऊँ उसको आप लोग जानिए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बिजुली और वायु आदि के योग की विद्या को जानें तो वे दूत और छोड़े के सद्ग दूर वाहन और समाचार को पहुँचा सकें ॥ ११ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सातवां सूक्त और सातवां वर्ष समाप्त हुआ ॥



अवाप्यर्चस्याध्वजस्य सूतस्य धामध्वे चिः । अग्निर्वेजता । १, ४, ५, ६ निजुह्व नायत्री । २, ३, ७ नायत्री । ८ पुरिमायत्री कृष्णः । वज्रः स्वरः ॥



अब आठ ऋचावाले अगले सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं—

**इत्तं वो विष्णवेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठ्यञ्जसे गिरा ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( व ) तुम्हारे बीच जिस ( इत्तम् ) उत्तम दूत के सदृश वर्तमान ( अमर्त्यम् ) नाश से रहित ( विष्णवेदसम् ) सब में विद्यमान ( यजिष्ठ्यम् ) अत्यन्त मिलानेवाले ( हव्यवाहम् ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को पहुँचाने का प्राप्त करानेवाले को ( गिरा ) वाणी से हम लोग जानते हैं । हे विद्वन् ! जिस से आप काय्यों का ( ऋज्जसे ) सिद्ध करने हो उनको आप लोग जान के कार्य में लगाइये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यही बिजुलीरूप अग्नि दूत के सदृश कायों का सिद्ध करनेवाला है, ऐसा आप लोग जानो ॥ १ ॥

**स हि वेदा वसुधिति महां आरोधनं दिवः ।**

**स देवाँ एह वक्षति ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको ( विव ) प्रकाश के ( आरोधनम् ) रोकने और ( वसुधितिम् ) द्रव्यो के धारण करनेवाले को विद्वान् ( वेद ) जानता है ( स ) वह ( हि ) जिससे ( महान् ) बड़ा है और ( स ) वह ( इह ) इस ससार में ( देवान् ) श्रेष्ठ गुण और भोगों को ( आ, वक्षति ) प्राप्त कराता है ऐसा जानो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुलीरूप अग्नि श्रेष्ठ भोग और गुणों का दाता सूर्य का भी सूर्य और सबका धारण करनेवाला व्याप्त है उसको जानके काय्यों को सिद्ध करो ॥२॥

फिर अग्नि के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते वमं । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको यथार्थवक्ता ( वेद ) कामना करता हुआ विद्वान् जन ( वेद ) जानता है ( स ) वह ( देवान् ) पृथिवी आदि पदार्थों का विद्वानों के ( आनमम् ) सब प्रकार मत्कार करने को ( ऋतायते ) मर्त्य के सदृश आचरण और ( वमं ) ग्रह में ( चित् ) भी ( प्रियाणि ) सुन्दर ( वसु ) द्रव्यो को ( दाति ) देता है ऐसा जानो ॥३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! सम्पूर्ण पृथिवी आदि श्रेष्ठ पदार्थों के बीच जो अग्निदेव है उसमें इग सब ऐश्वर्य का देनेवाला बड़ा देव जानो ॥३॥

**स होता सेदु दृत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥४॥**

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! ( स ) वह अग्नि ( होता ) पदार्थों का भक्षण करनेवाला ( सः, उ ) वही ( अन्त ) मध्य में वर्तमान ( दृत्यम् ) दूतपने का दूत के कर्म को ( ईयते ) प्राप्त होता है वही ( विव ) प्रकाश का ( आरोधनम् ) सब प्रकार रोकने वाला है ऐसा जानो । जिसका ( चिकित्वाँ ) विशेष आनवान् ( विद्वाँ ) विद्वान् उनमें प्रकार प्रयोग करना है ( इत् ) उमीका जानके तुम भी प्रयोग करो ॥४॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य में वर्तमान और दूत के सदृश काय्यों को सिद्ध करता है और सूर्य आदि का प्रकाशित करता है वह अवश्य आप लोगों का जानने योग्य है ॥४॥

अब अग्नि विद्या के जाननेवाले विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्व्यदातिभिः । य ई पुष्यन्त इन्धते ॥५॥**

पदार्थ—( ये ) जो ( हव्यवातिभिः ) देव याग्य वस्तुओं के दानों से ( अग्नये ) अग्निविद्या की प्राप्ति के लिए ( ददाशु ) द्रव्य आदि पदार्थ दान है और ( ये ) जो लोग ( ईम् ) जन को ( पुष्यन्त ) पुष्ट करत हुए ( इन्धते ) प्रकाशित होने हैं ( ते ) वे सुखी हैं उनके साथ हम लोग सुखी ( स्याम ) होंगे ॥५॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या की प्राप्ति के लिए बहुत लक्ष्मण हैं वे सब से सब प्रकार सब सुखों से पुष्ट हुए आनन्दित होते हैं ॥५॥

**ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे ।**

**ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६॥**

पदार्थ—( ये ) जो विद्वान् लोग ( अग्ना ) बिजुलीरूप अग्नि से ( वुषः ) अभ्यास सेवन को ( वशिरे ) धारण करने और गुणों को ( वि, शृण्विरे ) सुनने हैं ( ते ) वे ( राया ) धन के साथ ( ते ) वे ( सुवीर्यै ) उत्तम पराक्रम और बल वाली के साथ ( ससवांस ) शयन करने से हुए आनन्दित होते हैं ॥६॥

भाषार्थ—मनुष्य जब तक अग्नि आदि पदार्थों की विद्या का श्रवण और सेवन नहीं करते हैं तब तक बनाउध और पूर्ण बलवाले हो नहीं सकते हैं और जैसे कुत्त से सोते हुए आनन्द को प्राप्त होत हैं उसी प्रकार अग्नि आदि विद्या की प्राप्ति हुए दारिद्र्य का नाश करके धन और बल से सदा ही सुखी हान है ॥६॥

अब विद्वानों के पुण्यार्थ का कल कहते हैं—

**अस्मे रायौ दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजांस ईरताम् ॥७॥**

पदार्थ—मनुष्य लोग ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन ( अस्मे ) हम लोगों में ( वुषः ) बहुतों से चाहने योग्य ( रायः ) श्रेष्ठ लक्ष्मियों ( सव, चरन्तु ) मिलने और ( वाजांसः ) अन्न आदि ऐश्वर्यों के योग ( अस्मे ) हम लोगों को ( ईरताम् ) प्राप्त हो ऐसी अभिलाषा करो ॥७॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदा ही पुण्यार्थ से धन, अन्न, राज्य, प्रतिष्ठा और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति होती है इस प्रकार निरन्तर इच्छा करनी चाहिए ॥७॥

**स विप्रश्वर्षणीनां शर्वसा मानुषाणाम् । अति शिप्रेषं विध्यति ॥८॥८॥**

पदार्थ—जो ( विप्र ) बुद्धिमान् पुरुष ( शर्वसा ) बलसे ( शर्वणीनाम् ) ऐश्वर्य से प्रकाशमान ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों के मध्य में ( शिप्रेषं ) प्रेरणा किये गयों के सदृश दुखी को ( अति ) अत्यन्त ( विध्यति ) ताड़ता है ( सः ) वही प्रशंसित होता है ॥८॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग अग्नि आदि विद्या के प्रयोगों से मनुष्यों के दारिद्र्य का नाश करके ऐश्वर्य के योग को उत्पन्न करते हैं वे ही सब लोगों को सत्कार करने योग्य और सब में आभ्युदानी होते हैं ॥८॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह अष्टम सूक्त और अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ॥



अष्टमोऽध्यायः नवमस्य सूक्तस्य चामवेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ३, ४ गायत्री ।

२, ६ विराड्गायत्री । ५ त्रिषु गायत्री । ७, ८ निषु गायत्री छन्दः ।

बडज स्वरः ।

अब आठ ऋचावाले नवमें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के सदृश होने से विद्वान् का सत्कार कहते हैं—

**अग्नं मृळु महौ असि य ईमा देव्यु जनम् ।**

**इयेथं वहिरासदम् ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रकाशमान ! ( य ) जो आप ( वहि ) उत्तम आनन को ( आसदम् ) बैठनेवाला ( देव्युम् ) अपने को विद्वानों की कामना करते हैं उस ( जनम् ) प्रसिद्ध विद्वान् का ( ईम् ) सब प्रकार ( आ इयेथं ) प्राप्त होते हो इस से ( महान् ) महत्त्व से युक्त ( असि ) हो इससे ( मृळु ) सुखी कीजिय ॥१॥

भाषार्थ—जो पुरुष विद्वानों के साथ से विद्या की कामना करता और विद्या को प्राप्त होकर मनुष्य आदिकों को सुख देता है वही आनन आदि से प्रतिष्ठा देने योग्य होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**स मानुषीषु दूळमो विष्णु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषा भुवत् ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( मानुषीषु ) मनुष्यसम्बन्धी ( विष्णु ) प्रजाओं में ( विश्वेषाम् ) सबकी ( प्रावीः ) उत्तम विद्या में व्याप्त ( अमर्त्य ) मर्त्य के स्वभाव से रहित ( दूतः ) सम्पूर्ण विद्याओं का प्राप्त कराने वाला ( भुवत् ) होता है ( स ) वह इस ससार में ( दूळम् ) दुर्लभ है ऐसा जानना चाहिए ॥२॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग सब लोगों के सुखसाधक विद्या के देनेवाले और मनुष्यों को धर्म के आचरण में प्रवेश करानेवाले स्वयं धार्मिक हार्थों से ससार में दुर्लभ है ॥२॥

**स मध परि खीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु ।**

**उत पोता नि पीदति ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( मधः ) आनन्द का दाता ( होता ) दानकर्ता और ( उत ) भी ( पोता ) पवित्र करनेवाला ( दिविष्टिषु ) पक्षेष्टि आदि उत्तम व्यवहारों के निमित्त ( मधः ) बँटत है जिसमें उस गृह में ( नि, पीदति ) बँटता है ( स ) वह विद्वान् विद्वानों को ( परि ) सब प्रकार ( पीयते ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जहाँ पवित्र आनन्दयुक्त और विद्या आदि के देनेवाले लोग हैं वहाँ सम्पूर्ण विनय होता है ॥३॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**उत मा अगिरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि पीदति ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( गृहपतिः ) गृह का स्वामी ( अगिः ) अग्नि के सदृश ( अगः ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणिज्यों को ( नि, पीदति ) आप्ला होता है ( उत ) और ( ब्रह्मा ) पार वेद का पढ़नेवाला होता हुआ ( अगिरध्वरे ) नहीं

हिता करने योग्य वस्तुयुक्त ( वने ) गृह में स्थित होता है ( उत्तो ) और कर्म करता और ( क्त ) भी सबको बोध कराता है वही सत्कार करने योग्य होता है ऐसा आगे ॥४॥

भाषार्थ—जो मनुष्य धर्म के सवृक्ष पवित्रविद्या वाले और चारों वेदों के ज्ञाता और भी उत्तम कर्मों के करनेवाले गृह के स्वामी होवे वे ही श्रेष्ठ अधिकारों में वर्तमान होवे ॥४॥

वेचि श्वरीयमुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिससे आप ( श्वरीयताम् ) अपने को अधिरूप यज्ञ करनेवाले ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों में उत्पन्न ( जनानाम् ) प्रसिद्ध पुरुषों को ( उपवक्ता ) उपदेश देनेवालों के भी उपदेशक हुए ( हि ) ही ( हव्या ) देने योग्य वस्तुओं को ( च ) भी ( वेचि ) प्राप्त होते हैं इससे उपदेश करने के योग्य हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो उपदेश देनेवाले लोक धर्मों के उपदेश देनेवालों को उत्पन्न करते और उत्तम प्रकार सिद्धि और उपदेश देने के लिए प्रवृत्त करने मनुष्यों को बोध कराते हैं वे ही सत्कार के कल्याण करनेवाले होते हैं ॥५॥

अथ राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वेचीदस्य दूरयः । यस्य कुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोढुहवे ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो आप ( यस्य ) जिस ( मर्तस्य ) मनुष्य के ( हव्यम् ) वृत्तसम्बन्धी कर्मों को ( वेचि ) प्राप्त होते हैं और जिसके ( वोढुहवे ) प्राप्त होने के लिए ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य ( अध्वरम् ) हिसारहित व्यवहार का ( उ ) ही ( कुजोषः ) सेवन करो ( इत् ) वही आप ( अस्य ) इसके वृत्त होने के योग्य है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजा लोगो ! जो पूर्ण विद्यायुक्त बहुत बोलनेवाले स्नेही और धार्मिक जन हैं और जो लोग राज्य के व्यवहार को धारण कर सकते हैं उन शूरवीर मित्रों को समानारप्रापक बना और राज्य के समाचारी को जान के विशेष प्रबन्ध करो ॥६॥

अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञभक्तिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( भक्तिरः ) प्राणके सवृक्ष प्रिय राजन् ! जिससे आप ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( अध्वरम् ) न्यायव्यवहार और ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( यज्ञम् ) विद्वानों के सत्कार आदि क्रियासम्य व्यवहार को ( जोषि ) सेवन करत हो इससे ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( हवम् ) शब्द अर्थ सम्बन्धरूप विषय को ( शृणुषि ) सुनिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जिससे कि आप हम लोगों की रक्षा करनेवाले प्रिय हैं इससे धर्म अर्थात् मुहूर्त और प्रत्यर्थात् भुद्दालय के वचनों को सुनके निरन्तर न्याय विधान करो ॥७॥

अथ प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

परि ते दूढभो रथोऽस्मां अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप ( येन ) जिससे ( दाशुषः ) विद्या आदि के दान करने वालों की ( परि ) सब प्रकार ( रक्षसि ) रक्षा करते हो वह ( ते ) आपका ( दूढभः ) दुःख से नाश करने योग्य ( रथः ) सुन्दर वाहन ( अश्नोतु ) हम लोगों को ( विश्वतः ) सब प्रकार ( अश्नोतु ) प्राप्त हो ॥८॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जिन साधनों और दूढ़ राजसेना के अङ्गों से प्रजा का सब प्रकार रक्षण होवे वे ही हम लोगों से भी प्राप्त करने योग्य हैं ॥८॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा, प्रजा और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के माध सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह नवम सूक्त और नवमा वर्ग समाप्त हुआ ॥

५१

अथाष्टवर्षस्य दशमस्य सुतस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्वैवता । १ गात्रमी ।

२, ३, ४, ७, भुरिणायमी छन्दः । वक्षः स्वरः । ५, ८, स्वरादुष्टित् छन्दः ।

६ विरादुष्टित्छन्दः । वक्षः स्वरः ॥

अथ आठ ऋचावाले दशमं सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्निऋचाय विषयक विद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्ने तमधारय न स्तोमैः कर्तुं न मद्रं हृदिस्पृशम् ।

ऋष्यामा त ओर्ध्वः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हम लोग ( ओर्ध्वः ) लज्जतायुक्त कर्मों और ( स्तोमैः ) प्रशंसाओं से ( ते ) आपके ( अग्ने ) आज ( मद्रम् ) छोड़े के ( न ) सवृक्ष और ( कर्तुम् ) बुद्धि के ( न ) सवृक्ष जिस ( हृदिस्पृशम् ) हृदय को प्रिय और ( मद्रम् ) कल्याण करने वालों की ( ऋष्याम् ) समृद्धि करें ( तम् ) उनकी आप हम लोगों के लिए समृद्धि करो ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमायुक्त है । मनुष्य जैसे छोड़े से मार्ग को शीघ्र जा सकते हैं वैसे श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त होकर मोक्षमार्ग को शीघ्र जाने के योग्य है ॥ १ ॥

अथ राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अथा अग्ने कर्तोऽस्य दक्षस्य साधोः । रथोर्ध्वतस्य दूहतो बभूव ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने, हि ) राजन् ! जिस कारण अग्नि के सवृक्ष प्रकाशमान आप हैं इससे ( रथीः ) बहुत बाहूनों से युक्त होते हुए ( भद्रस्य ) कल्याणकर्ता तथा ( दक्षस्य ) बल ( कर्तोः ) बुद्धि और ( साधोः ) उत्तम मार्ग में वर्तमान ( दूहतस्य ) सत्यन्याय और ( दूहतः ) बड़े व्यवहार के रक्षक ( बभूव ) हजिये ( अग्ने ) इसके अनन्तर हम लोगों के राजा हजिये ॥२॥

भाषार्थ—राजा को चाहिए कि सम्पूर्ण बल और विज्ञान से सज्जनो का रक्षण और दुष्ट पुरुषों का ताडन करके सत्य न्याय की उन्नति निरन्तर करें ॥२॥

अथ प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एभिर्नो अर्कैर्भावां नो अर्वाक् स्वर्ग्य ज्योतिः ।

अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सवृक्ष तेजस्विन् ! आप ( अर्कैः ) सत्कार और ( एभिः ) बुद्धि, बल और साधुओं के सहित ( नः ) हम लोगों के लिए रक्षक ( नभः ) हजिये और ( अर्वाक् ) अन्य व्यवहार में वर्तमान ( स्वः ) जैसे सूर्य के सवृक्ष सुसकारी ( न ) जैसे ( नः ) हम लोगों के ऊपर ( ज्योतिः ) प्रकाशक हजिये और ( सुमनाः ) कल्याणकारक मनयुक्त होने हुए ( विश्वेभिः ) सम्पूर्ण ( अनीकैः ) शत्रु और दुष्ट डाकुओं से ग्रहण करने को अशक्य सेनाओं से पालनकर्ता हजिये ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा लोग बल बुद्धि और सज्जनो से सग उत्तम रक्षा कर और बुद्धि कराके प्रजा का पालन करते हैं वे सूर्य के सवृक्ष प्रकाशित यशयुक्त सदा आनन्दित होते हैं ॥३॥

अथ अस्मत्प्रविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आभिष्टे अथ गोभिर्गृणन्तोऽग्ने वाचैम ।

प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) बिजुली के सवृक्ष वर्तमान राजन् ! हम लोग ( अथ ) आज गोध्र ( आभिः ) इन ( गोभिः ) बुद्धि आदि की बढ़ानेवाली वाणियों से ( ते ) आप के लिए ( शुष्मः ) स्तुति करते हुए कर बन ( वाचैम ) देवें जिन ( ते ) आप के लिए ( विश्वः ) बिजुली के ( न ) सवृक्ष ( शुष्माः ) बलपराक्रमयुक्त जन ( प्र, स्तनयन्ति ) शब्द करते हैं उन आपके लिए राज्य देवें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप बिजुली के तुल्य मन्त्रियों की रक्षा करके हम लोगों की पालना करें तो हम लोग आप की प्रजा हुए आज से लेकर आप की निरन्तर प्रशंसा करें और बहुत बनादि सम्पत्ति देवें ॥ ४ ॥

तव स्वादिष्टाग्ने संदक्षिरिदा चिदहं द्वा चिदक्तोः ।

अथै रुक्मो न रौचत उपाके ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सूर्य के सवृक्ष प्रकाशमान राजन् ! जो ( स्वादिष्टा ) अत्यन्त स्वादुयुक्त मधुर ( संदक्षिः ) अञ्जरी वृष्टि ( तव ) आप के ( उपाके ) समीप में ( अहम् ) दिन ( चित् ) और ( अक्तोः ) रात्रि के मध्य में ( रुक्मः ) प्रकाशमान सूर्य के ( न ) सवृक्ष ( अथै ) लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए ( रौचते ) प्रकाशित होती है ( द्वा ) वही आप को रक्षा करने योग्य है ( चित् ) और जो सम्पूर्ण गुणों से युक्त पुरुष राज्य की रक्षा कर सके और शत्रु को रोक सके ( द्वा ) वही आप को गुरु के सवृक्ष सेवा करने योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो दिन रात्रि के प्रबन्ध रखने अन्याय का विरोध करने और न्याय की प्रवृत्ति करनेवाला हूँ वा मन्त्री होवे वही पहिले सत्कार करके रक्षा करने योग्य है ॥ ५ ॥

किं प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

धृतं न पूतं तनुररेपाः शुचि हिरण्यम् ।

तर्षे रुक्मो न रौचत स्वधावः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( स्वधावः ) बहुत अन्न से युक्त राजन् ! जो ( अरेपाः ) पाप के धारण से रहित ( ते ) आपके राज्य में ( रुक्मः ) अत्यन्त दिपते हुए के ( न ) सवृक्ष ( रौचते ) शोभित होते हैं और जो ( शुचि ) पवित्र ( हिरण्यम् ) ज्योति के सवृक्ष सुवर्ण को प्राप्त कराते हैं ( तत् ) उसको प्राप्त होकर उनके साथ आपका ( तनूः ) देह ( पूतम् ) पवित्र ( धृतम् ) धृत वा जन के ( न ) सवृक्ष और चिरञ्जीव हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो सूर्य के सवृक्ष तेजस्वी, धनयुक्त, कुलीन, पवित्र, प्रशंसित, अपराधरहित, श्रेष्ठ शरीरयुक्त, विद्या और प्रवस्था में वृद्ध होवे वे आपके और आपके राज्य के रक्षक हों और आप इन लोगों की सम्मति से वर्तमान होकर अधिक अवस्था युक्त हजिये ॥ ६ ॥

किं राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—  
 कुतं चिद्धि मा सनेमि द्वेषोऽयं हनोषि मत्तौ ।  
 इत्या यजमानादतावः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) सत्य से युक्त ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान । जो आप ( हि ) ही ( चित् ) निश्चित ( द्वेष ) द्वेष करनेवाले ( मत्तौ ) मनुष्य से वा ( इत्या ) इस प्रकार ( यजमानात् ) धर्म में सज्ज किये हुए जन से ( सनेमि ) अनादि सिद्ध और ( कुतम् ) उत्पन्न किये गये को ( हनोषि ) विधेयता से प्राप्त होते हैं ( स्म ) वही राज्य करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो । आप लोग मात्र और मित्रों से उत्तम गुणों को ग्रहण करके सुखों को प्राप्त होइये ॥ ७ ॥

शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राभ्यं देवेषु युष्मे ।

सा नो नाभिः सधने सस्मिन्नुपन ॥ ८ ॥ १० ॥ अनु० १ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश पवित्र आचरण युक्त जो आप के ( नाभिः ) मध्य प्राङ्ग के सदृश ( शिवा ) मङ्गलकारिणी नीति ( सस्मिन् ) ममस्त ( ऊचत् ) अष्ट धनादयः से और ( सधने ) विराजें जिससे उस राज्य में वर्तमान है ( सा ) वह ( नः ) हम लोगों के ( देवेषु ) विद्वानों वा उत्तम गुणों में ( युष्मे ) आप लोगों को प्रवृत्त करे । जो लोग ( सख्या ) मित्र और ( भ्रात्रा ) बन्धु के सदृश वर्तमान पुरुष के साथ वर्तमानों के तुल्य ( नः ) हम लोगों की रक्षा करनेवाले ( सन्तु ) हो उनमें आप विश्वास करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो राजपुरुष परस्पर मित्रता करके प्रजाओं में पिता के सदृश वर्तमान हैं उन लोगों के साथ जो राजनीति का प्रचार करता है, वही सर्वदा राज्य भोगने के योग्य है ॥ ८ ॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा मन्त्री के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अनुषु मण्डल में दशवां सूक्त प्रथम अनुवाक तृतीय अष्टक के पाँचवें अध्याय में दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ षड्चतस्य द्वादशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।  
 १, २, ५, ६, निष्कृतिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ स्वराड्बृहती छन्दः ।  
 ऋषभः स्वरः । ४ भुरिष्पद्विस्तृप् छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अग्नि की सङ्गता से राजगुणों को कहते हैं—

भद्रं ते अग्ने सहभिजनीकमुपाक आ रंचते सुध्यस्य ।

चशदृशे ददृशे नत्त्या चिदरक्षितं दृश आ रूपे अक्षम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( सहसिन् ) बहुत बल मे युक्त ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान जिन ( ते ) आपके ( उपाके ) समीप में ( भद्रम् ) कल्याणकारक ( चशत् ) उत्तम स्वरूपयुक्त ( अनीकम् ) मना ( सूर्यस्य ) सूर्य के किरणों के सदृश ( आ, रोषते ) प्रकाशित होती है और ( नत्त्या ) रात्रि के सहित चन्द्रमा के सदृश ( दृशे ) दीखती ( चित् ) और सुख ( दृशे ) देखने के ( अरक्षितम् ) क्लेशपन से रहित ( अक्षम् ) भोजन करने योग्य पदार्थ ( दृशे ) देखने के योग्य ( रूपे ) रूप में ( आ ) प्रकाशित होता है उन आप का सर्वत्र विजय हो यह निश्चय है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्पत्तमाङ्गकार है । जो राजा उत्तम प्रकार शिक्षित सेना उत्तम गुणों और ऐश्वर्य के सहित प्रजाओं का पालन करता और दुष्टों को पीडा देता है वह चन्द्र और सूर्य के सदृश सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि वाङ्मये शृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्वतवानः ।

विश्वैर्मिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तस्यो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( तुविजात ) बहुतों में प्रसिद्ध ( अग्ने ) अग्नि के सदृश विद्या से प्रकाशित ( स्वतवानः ) स्तुति करनेवाले हुए आप ( वेपसा ) राज्य के पालन आदि कर्म से ( मनीषाम् ) मन की नियामक बुद्धि और ( खम् ) आकाश की ( शृणते ) स्तुति करनेवाले के लिए ( वि ) विशेष करके ( साहि ) कर्मों की समाप्ति करो । हे ( शुक्र ) शीघ्रता करनेवाले ( विश्वैर्मि ) सम्पूर्ण ( देवैः ) विद्वानों के साथ आप ( यत् ) जिसे ( वावनः ) उत्तम प्रकार अजो श्रेयो ( तत् ) उस ( सुमह ) बहुत बड़े और ( भूरि ) बहुत ( मन्म ) विज्ञान को ( नः ) हम लोगों के लिए ( रास्व ) दीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् । आप जितेन्द्रिय हो और बुद्धि को प्राप्त होकर कर्म से प्रारम्भ किये हुए कार्य को समाप्त करो और सम्पूर्ण विद्वानों के सहित पूर्ण विज्ञान और प्रजाओं के लिए सुख दीजिए ॥ २ ॥

स्वदेने काव्य त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।

त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्याधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् । आप ( वीरपेशाः ) वीर पुरुषों के रूप के सदृश रूपवाले हम लोग ( इत्याधिये ) इस प्रकार ( त्वत् ) आप के समीप से बुद्धि युक्त ( दाशुषे ) देनेवाले ( मर्त्याय ) मनुष्य के लिए ( काव्या ) कवि विद्वानों के निमित्त किये काव्य ( त्वत् ) आप के समीप से ( मनीषा ) यथावधान ( त्वत् ) आप के समीप से ( उक्था ) प्रशंसा करने ( राध्यानि ) और सिद्ध करने योग्य द्रव्य ( जायन्ते ) प्रसिद्ध होते हैं ( त्वत् ) आप के समीप से ( द्रविणम् ) धन ( एति ) प्राप्त होता है । इस से हम लोग आप की सेवा करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् । जो आप विद्वान् जितेन्द्रिय और व्यापकारी हों वे तो आप के अनुकरण से सम्पूर्ण मनुष्य सत्य आचरण में प्रवृत्त हो और ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सम्पूर्ण प्रजा का हित साध सकें ॥ ३ ॥

अब अग्निस्त्वन्मन्त्र से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

त्वद्वाजी वाजम्भरो विद्याया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्यः ।

स्वद्रियदेवजूतो मयोमुस्त्वदाशुर्जुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् । जो ( त्वत् ) आप के समीप से प्रेरणा किया गया ( विद्याया ) जिससे वह बड़ा और शीघ्र जाता है इससे ( वाजम्भरः ) प्राप्त हुए बहुत भार को धारण करनेवाला ( सत्यशुष्यः ) मत्यबलयुक्त ( अभिष्टिकृत् ) अपेक्षितकर्म का कर्ता ( वाजी ) वेगवान् और ( जायते ) होता है वा जो ( त्वत् ) आपके समीप से ( रयि ) धन ( देवजूत ) विद्वानों ने जाना और बताया हुआ ( मयोमु ) सुख की भावना करानेवाला वा जो ( त्वत् ) आपके समीप से ( अशुवात् ) शीघ्र प्राप्त कराने और ( अर्वा ) शीघ्र जानेवाला ( आशु ) शीघ्रगामी ( जायते ) होता है वह हम लोगों को भी उत्पन्न करने योग्य है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो । जो आप लोगों के पुरुषार्थ से विजुली प्राप्ति स्वरूप अग्निविद्या से प्रसिद्ध हों वे तो बहुत भारवाले वाहन का पहुँचानेवाला सुख का हेतु और धन उत्पन्न कराने वा शीघ्र ले चलनेवाला हों ॥ ४ ॥

फिर अग्नि विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।

द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीमिदमूनसं गृहपतिममृगम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( अमृत ) अपने आत्मस्वरूप से नाशरहित ( अग्ने ) अत्यन्त विद्वान् जो लोग ( धीमि ) कर्मों वा बुद्धियों से ( मन्द्रजिह्वम् ) आनन्द उत्पन्न करनेवाली वाणीयुक्त ( द्वेषोयुतम् ) द्वेष आदि कर्मवियुक्त ( अमृगम् ) इन्द्रियों को रोकनेवाले ( अमृतम् ) मूर्खता आदि दोष रहित विद्वान् ( प्रथमम् ) प्राथम्य ( देवम् ) सुन्दर ( गृहपतिम् ) गृह के स्वामी ( त्वाम् ) आपकी ( देवयन्तः ) कामना करते हुए ( मर्ता ) मनुष्य ( आ, विवासन्ति ) सेवा करते हैं उन की आप भी सेवा करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो लोग विद्वान् होकर गृहस्थों की बोध, सब के सन्तानों को ब्रह्मचर्य से उत्तम शिक्षा और विद्या ग्रहण करा के तथा अविद्या आदि दोषों को दूर कर के अमृत आदि उत्तम गुणों से युक्त करते हैं वे ही हम समाज में सुन्दर होते हैं ॥ ५ ॥

आरे अस्मदमतिमारे अहं आरे विश्वां दुर्मनि यमिपासि ।

दोषा शिवः महसः सुनो अग्ने यं देव आ चि-सर्वसे स्वस्ति ॥ ६ ॥ ११

पदार्थ—हे ( सहस्र ) बलवान् के ( सुनो ) सन्तान और ( अग्ने ) अत्यन्त विद्वान् ( यत् ) जिससे आप ( देव ) ईश्वर के सदृश ( अस्मत् ) हम लोगों से ( आरे ) दूर ( अमतिम् ) सुखजन को ( आरे ) दूर ( अहं ) पापकर्म को और ( आरे ) दूर ( विश्वाम् ) समग्र ( दुर्मतिम् ) दुष्टबुद्धि को निरन्तर अलग करा ( यम् ) जिसकी ( मिपासि ) अत्यन्त रक्षा करते हो उसको ( शिवः ) मङ्गलकारी हुए ( दोषा ) रात्रि और दिन में ( चित् ) भी ( स्वस्ति ) सुख को ( आ, सर्वसे ) सम्बन्ध कराने हो इससे हम लोगों से पूजा करने योग्य हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—यह हम लोग निश्चय करते हैं कि जो लोग हम लोगों को अघर्षी और दुष्टबुद्धिवाले पुरुष से दूर करते हैं वे ही दिन रात्रि हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि राजा विद्वान् पुरुष के गुण वर्णन करने इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ग्यारहवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ षड्चतस्य द्वादशस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्वेत्ता । १, ५ निष्कृतिष्टुप् । २ ऋष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ४ भुरिष्पद्विस्तृप् ।

६ पङ्क्तिवृत्तः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में फिर अग्निस्त्वन्मन्त्र होने से विद्वानों के विषय को कहते हैं—

यस्त्वामग्ने इनपते यत्सकृभिस्ते अर्वा कुशवस्तस्मिन्महं ।

स सु पुनैरुपस्तु प्रसप्ततव क्रत्वा जातवेदयिक्त्स्वान् ॥ १ ॥



पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) ज्ञान (यत्) उद्यत किये हैं हवन करने के पात्र विशेषरूप से जिसने ऐसा पुरुष (सस्मिन्) सब मे (अहम्) दिन मे (त्वात्) आप को (इत्यर्थे) ईश्वर से मिलावे और (ते) आप के लिए (अन्वत्) भाजन के पदार्थ को (हवन्) सिद्ध करे और हे (अस्त्येव) श्रेष्ठज्ञानयुक्त (यः) जो (तव) आप की (कृत्वा) बुद्धि वा कर्म से (चिकित्वा) सत्य अर्थ का जाननेवाला होता हुआ (अभि, प्रसज्य) प्रसज्ज को करे (सा) वह (सु, सुम्ने) उत्तम यशो वा धनो से (वि) तीन बार युक्त (अस्तु) हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जो लोग आप के लिए ईश्वरज्ञान, बड़े विद्वार की विद्या और उत्तमबुद्धि को सब काल में लेते हैं वे यश और धन से युक्त करने चाहिये ॥ १ ॥

किर अग्नि के साक्षर्य से राजपुत्रों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

हृन्मं यस्ते जभरच्छभमाणो महो अग्ने अनीकमा संपर्धन् ।

स इधानः प्रति दोषामुपासं पुष्यन्नयि संचते ब्रह्मविज्ञान ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) राजन् ! (यः) जो (सभमारः) अत्यन्त परिश्रम करता हुआ सेना का स्वामी (ते) आप की (महः) बड़ी (इप्सम्) प्रकाशयुक्त (अनीकम्) विजय को प्राप्त होती हुई सेना की (जा) सब प्रकार (सर्वम्) सेवा करता हुआ (अभरत्) यथावत् हरे पोषे पुष्ट हो अर्थात् मनु बल हरे और आप पुष्ट हो (सः) वह (इधानः) प्रकाशमान होता (प्रति, दोषाम्) प्रत्येक रात्रि और (उपासम्) प्रत्येक दिन (पुष्यम्) पुष्टि पाता (अविज्ञान्) और धर्म से द्रष्ट करनेवाले मनुष्यों का (हन्) नाश करता हुआ (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (संचते) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप के सेनाध्यक्ष और न्यायाधीश विद्या विनय और धर्म आदि से प्रकाशमान हुए अपनी प्रजाओं का पालन करते और पुष्ट मनुष्यों का नाश करने हुए विजय को प्राप्त होते हैं, उनके लिये आपको चाहिए कि बहुत प्रतिष्ठा और बहुत धन लेकर दिन रात्रि धर्म अर्थ काम मोक्ष की उन्नति करें ॥ २ ॥

अग्निरीशे बृहत्तः सन्निर्यस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।

दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ् मर्त्याय स्वधावान् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजाजनों ! जो (अग्निः) अग्नि के सवृष जन (अग्निर्यस्य) आश्रमयुक्त (बृहत्तः) बड़े (वाजस्य) वेग विज्ञान और (परमस्य) अत्यन्त श्रेष्ठ (रायः) धन प्राप्ति के मध्य में (इषे) ऐश्वर्य करता है तथा (यविष्ठ) अत्यन्त युवा अर्थात् शरीर और प्रात्मा के बल से और (स्वधावात्) बहुत धन प्राप्ति से युक्त (आनुषङ्) अनुकूल हुआ (विधते) विधान करते हुए (अस्वायि) मरण धर्मवाले मनुष्य के लिए (अग्निः) बिजुली के समान वर्तमान (रत्नम्) रमण करने योग्य धन को (वि, दधाति) विधान करता है वह सब लोगों से सत्कार करते योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य और बिजुली के सवृष राज्य और ऐश्वर्य की उन्नति करते हुए यश को विस्तारते हैं वे सब से सब प्रकार सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

यविद्धि ते पुरुषमा यविष्ठाचिन्तिमिधकुमा कविदामः ।

कुधी प्वस्मां अदितेरनागान व्येनांसि शिश्रथो विष्वगान् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त यौवनावस्था को प्राप्त (अग्ने) विद्या और विनय से प्रकाशित राजन् ! (यत्) जो हम लोग (अविष्ठाभिः) चेतनाभिन्नों से (ते) आप के (पुरुषमा) पुरुषों से (चित्) कुछ (आगः) अपराध को (अकुम) करें उन (अस्मात्) हम लोगों को (कत्, चित्) कमी (आनागात्) अपराध से रहित (कुषि) कीजिये जो जो हम लोगों से (एनांसि) पाप हों वे उन उन को भी (हि) मिश्रण से (विष्वक्) सब प्रकार (वि, शिश्रथः) शिशिल वा उन का वियोग करी और (अदितेः) पृथिवी के (सु) उत्तम राज्य को करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो कदाचित् भ्रान्त वा प्रमाद से हम लोग अपराध करें उन को भी दण्ड के बिना क्षमा न कीजिये और हम लोगों को उत्तम शिक्षा से धार्मिक कर के पृथिवी के राज्य के अधिकारी करिय ॥ ४ ॥

किर विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

महश्चिदश्न एनसो अभीक ऊर्वादेवानामुत मर्त्यानाम् ।

मा ते सखायः सद्भिर्दिवाम यच्छा तोकाथ तनयाय शं योः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (देवानाम्) विद्वानों के (उत) और (मर्त्यानाम्) भविष्यत्काल के (अभीक) समीप मे (अहम्) बड़े (चित्) नी (एनसः) अपराध के (ऊर्वात्) विस्तीर्णभाव से हम लोग विनाश करें अर्थात् उन कर्मों का नाश करें जो अपराध के मूल हैं और (ते) आपके (सखायाः) मित्र हुए आप के (सखम्) स्थान की (या) सत् (दिवाम्) नष्ट करें और आप (तोकाथ) भीम वस्त्रण हुए पाँच वर्ष की अवस्थावाले (तनयाय) पुत्र के लिए (यम्) सुख (योः) उत्तम कर्म से उत्पन्न हुआ (इत्) ही (यच्छा) कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग विद्वानों के समीप स्थित हों और शिक्षा को प्राप्त होकर पापस्वरूप कर्मों का त्याग कर धर्मों का भी त्याग करें करायें, सब के मित्र होकर कुमार और कुमारियों को उत्तम शिक्षा देकर और सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करा के सुखयुक्त करें, वैसा आप लोग भी आचरण करो ॥ ५ ॥

यथा इ त्यदसवो गौर्यं चित्पदि यिताममुञ्चता यजत्राः ।

एवो प्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ६ ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यथा) जैसे आप से (नः) हम लोगों के (प्रतरम्) जिस से संसार में पार होते वह (आयुः) जीवन (प्र, तारि) पार किया जाता है (व्यंहः) पाप पार किया जाता वैसा हम लोग आपके पार करानेवाले जीवन और अपराध को पार करें हे (यजत्राः) विद्वानों के सत्कार करनेवाले (व्यक्तः) निवास करते हुए जनो ! जैसे आप लोग (स्वत्) उरा पाप का (ह) निश्चय कर (अमुञ्चत) त्याग करें (पवि) प्राप्त होने योग्य विज्ञान में (चित्) भी (सिताम्) शब्दार्थविज्ञानसम्बन्धिनी (गौर्यम्) स्वच्छ वाणी का प्राप्त कीजिये वैसे (एवो) ही (अस्मत्) हम से आप को (सु, चि, मुञ्चत) अच्छे प्रकार विशेषता से दूर कीजिये उसी प्रकार हम लोग भी पाप का त्याग करके उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी को प्राप्त हों ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे धार्मिक यथार्थवक्ता विद्वान् लोग पाप के आचरण का त्याग कर के सत्य आचरण में धर्मों को अपने सवृष करने की इच्छा करते हैं वैसा ही आप लोग भी आचरण करो ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि राजा और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के धर्म की पूर्ण सूक्त के धर्म के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बारहवां सूक्त, बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

५१

अथ पञ्चमस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य वाचदेव ऋषिः । अग्निर्वैवता ।

१, २, ४, ५ बिराट् ऋषिद्वयः । ३ ऋषिद्वयद्वयः । वैवत स्वयः ॥  
अब पाँच ऋचावाले तेरहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य के साक्षर्य से राजपुत्रों को कहते हैं—

प्रत्यग्निरुषसामग्रमस्यद्विभातीनां सुमनां रत्नधेयम् ।

यातमन्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (विभातीनाम्) प्रकाश करते हुए (उषसात्) प्रातःकालों के (अग्रम्) ऊपर होना जैसे हो वैसे (अग्निः) अग्नि के सवृष यश को (प्रति, अस्वायि) प्रकट करता और (सुमनाः) प्रसन्नचित होता हुआ (अविष्ठा) वायु और बिजुली के जैसे (यातम्) प्राप्त हों वैसे (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (देवः) सुख का देनेवाला (सूर्यः) सूर्य जैसे (उत् एति) उदय होता वैसे (सुकृतः) उत्तम कृत्य करनेवाले धर्मात्मा के (रत्नधेयम्) रत्न जिस में धरे जाय उस (दुरोणम्) गृह को प्राप्त होता वह सुख को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वायु बिजुली और सूर्य के गुणयुक्त पुरुष प्रजाओं का पालन करते हैं वे उस सत्यन्याय से बहुत रत्नों के कोश को प्राप्त हैं ॥ १ ॥

अब सूर्यलोकाधिकों के निमित्तकारण को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऊर्ध्वं भानुं संविता देवो अभेदद्रुप्सं वविध्वद्रविषो न सत्वा ।

अनु व्रतं वरुणो यान्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (संविता) सूर्यमण्डल (देवः) प्रकाशमान (सत्वा) चलनेवाला (गविषः) गौधों को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए के (न) सवृष (अनु, व्रतम्) अनुकूल कर्म को और (वरुणः) जल और (मित्रः) वायु अनुकूल कर्म को (अग्निः) प्राप्त होते वा (यत्) जिस (सूर्यम्) सूर्यलोक को (विषि) अन्तरिक्ष में (आरोहयन्ति) चढ़ाते हैं वा सूर्यमण्डल (द्रुप्सम्) पृथिवीसम्बन्धी भूलोक को (वविध्वत्) अत्यन्त कपाता हुआ (अभेदम्) ऊपर वर्तमान (भानुम्) किरण का (अभेत्) आश्रय करता है यह सब जानो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । इस सृष्टि में परमात्मा ने जैसे सूर्य की उत्पत्ति से जल अग्नि और पवन रचे वैसे ही पृथिवी आदिकों के भी निमित्तकारण रचे, यह जानना चाहिए ॥ २ ॥

यं सीमकृण्वन्तमसे विपुषे' भ्रुवक्षे'मा अनवस्यन्तो अर्थम् ।

तं सूर्यं हरितः सुप्त यद्भीः स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यम्) जिस (अर्थम्) पदार्थरूप सूर्य को (अनवस्यन्तः) न सँवर्ते और किया करते हुए (भ्रुवक्षे'मा) निमित्त रक्षण करने वाले जन (तवसे) अन्वकार के अर्थ (विपुषे) वियोग करने के लिए (सीम्)

सब ओर से ( बह्मण्यम् ) निश्चित करते हैं ( तम् ) उस ( विषयस्य ) सम्पूर्ण ( जगतः ) ससार के ( स्वयम् ) बाधनेवाले ( सूर्यम् ) सूर्य को ( सप्त ) सात ( बह्मिः ) बड़ी ( हरितः ) दिशाओं को ( बह्मिन् ) प्राप्त कराते हैं वैसे ही उत्तम गुणों को प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे किरणें सूर्य को ग्रन्थकार के दूर करने के लिए धारण करते हैं वैसे ही सम्पूर्ण जगत् की अविद्या दूर करने के लिए और विद्या की रक्षा के लिए सब प्रकार सत्य के उपदेश करो ॥ ३ ॥

अब सूर्यवृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वहिष्ठेभिर्विहरन्त्यासि तन्तुमवव्ययमसितं देव वस्म ।

दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मैवावाधुस्त्वमो अस्त्वन्तः ॥४॥

पदार्थ—हे ( देव ) प्रकाशमान विद्वन् ! जिस से घ्राण ( बहिष्ठेभिः ) अत्यन्त प्राप्त करनेवालों से सूर्य ( तन्तुम् ) कारण को ( विहरम् ) प्राप्त होता हुआ और ( अस्तित् ) कृष्णवर्ण ग्रन्थकार को ( अवव्ययम् ) दूर करता हुआ चलता है वैसे ( वस्म ) निवासस्थान को ( अब, दासि ) प्राप्त होते हो और जैसे ( दविध्वतः ) कपते हुए ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( रश्मयः ) किरणें ( अम्बु ) अन्तरिक्ष के ( अन्तः ) मध्य में ( तम् ) ग्रन्थकार को ( चर्मैव ) जैसे चर्म शरीर को ढाँपता है वैसे ( अम्बुः ) ढाँपते हैं वैसे घ्राण हूँजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे उपदेशक ! जैसे सूर्य प्राप्त करने वाले किरणों के प्राकर्षणादिको से अपने प्रकाश का विस्तार करता हुआ चर्म से देह के सदृश ढाँपता हुआ अन्तरिक्ष के मध्य में विहार करता है वैसे ही अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करके इस ससार में बिचरिये ॥ ४ ॥

अब सूर्यवृष्टान्त प्रश्नोत्तर पूर्वक विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्कुत्तानोऽव पद्यते न ।

कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! यह ( अनायतः ) इधर उधर ( न ) जाता और समीप वर्तमान ( अनिबद्धः ) किसी के प्राकर्षण से नहीं बंधा ( न्यङ्कु ) जो नीचे को होता हुआ ( उत्तानः ) ऊपर स्थित ( कथा ) किस प्रकार से ( न ) नहीं ( अब, पद्यते ) नीचे आता और ( कथा ) किस ( स्वधया ) अन्न प्राद पदार्थों से युक्त पृथिवी के साथ ( याति ) चलता है जो ( दिवः ) प्रकाश का ( स्कम्भः ) लम्बे के सदृश धारण करनेवाला ( समृतः ) उत्तम प्रकार मरत्यस्वरूप ( नाकम् ) दुःखरहित व्यवहार की ( पाति ) रक्षा करता है उम को ( क ) कौन ( ददर्श ) देखता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! यह सूर्य अन्तरिक्ष के मध्य में स्थित हुआ क्यों नीचे नहीं गिरता है किमसे चलता है और कैसे प्रकाश का धारण करनेवाला और सुखकारक होता है ? इस प्रश्न का उत्तर—परमेश्वर ने स्थापित और धारण किया इस से नीचे नहीं गिरता है और अपने समीप वर्तमान भूगोलों के साथ अपनी कथा में चलता हुआ वर्तमान है और सम्पूर्ण समीप में वर्तमान पदार्थों के प्राकर्षण से धारणकर्ता और परमेश्वर की व्यवस्था से सुखकारक वर्तमान है यह जानना चाहिए ॥५॥

इस सूक्त में सूर्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तेरहवाँ सूक्त और तेरहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

५५

अथ पञ्चमस्य अतुर्दशस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । अग्निनिष्क्रोक्ता देवता वा ।

१ भुरिकपङ्क्तिः । २ स्वराट् पङ्क्तिवृक्षम् । पञ्चमः स्वरः ।

२, ४ निष्क्रिष्टदृष्टम् । ५ विराट्निष्क्रिष्टदृष्टम् । षष्ठः स्वरः ।

अब पाँच ऋषि वाले चौदहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में

अग्निसाक्ष्य से विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं—

प्रत्यभिरुषो जातवेदा अख्यदेवो रोचमाना महोभिः ।

आ नास्त्योरुगाया रथेनेम यज्ञस्य नो यातुमच्छ ॥१॥

पदार्थ—हे ( नास्त्या ) अमर्य आचरण से रहित ( उरुगाया ) बहुत प्रशंसावाले अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों ( महोभिः ) बड़ों के साथ ( रथेन ) वाहन से ( न ) हम लोगों के प्रकाश्य और प्रकाशकस्वरूप व्यवहार और ( यज्ञम् ) इस वर्तमान ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( जातवेदाः ) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान ( देवः ) प्रकाशमान ( अग्निः ) बिजुली के सदृश अग्नि ( रोचमानाः ) प्रकाशमान ( उरुगायाः ) विन के मुख अर्थात् प्रारम्भ के ( प्रति ) प्रति ( अख्यम् ) प्रकाशित होता है वैसे ( अख्यम् ) उत्तम प्रकार ( उप ) समीप ( आ, यातम् ) आओ प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जैसे सूर्य प्रातःकाल में शोभित होता है वैसे ही सत्य के उपदेश से रथ से मार्ग के सदृश विद्या के सुख को प्राप्त कराते हैं वे इस ससार में कल्याणकारक होते हैं ॥ १ ॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अभ्युज्योतिर्विर्मस्मै सुवनाय कुम्बम् ।

आप्रा धावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिर्विक्रानः ॥२॥

पदार्थ—जो ( देवः ) विद्वान् जैसे ( सविता ) सूर्य ( रश्मिभिः ) किरणों से ( विक्रानः ) अनाता हुआ ( सूर्यः ) प्रकाशमान ( विर्मस्मै ) सब ( सुवनाय ) संसार के लिये ( ज्योतिः ) प्रकाश को ( कुम्बम् ) करता हुआ ( धावापृथिवी ) प्रकाश भूमि ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को ( वि, आ, अप्राः ) व्याप्त होता है वैसे ( ऊर्ध्वम् ) उत्तम ( केतुम् ) बुद्धि का ( अभ्युज् ) आश्रय करे वही पूर्ण सुखवाला होवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़कर ब्रह्मार्थ और योगाभ्यास से ज्ञान को प्राप्त होकर किरणों से सूर्य के सदृश जनो के अन्तःकरणों को उपदेश से उज्ज्वल करते हैं वे ही सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ २ ॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आवहन्त्यरुणीज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिर्विक्राना ।

प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युवा ईयते सुधुवा रथेन ॥३॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त और उत्तम गुण वाली स्त्री ! तू जैसे ( सुधुवा ) उत्तम प्रकार जोड़ते हैं बोटों को जिस में उस ( रथेन ) वाहन के सदृश ( रश्मिभिः ) अपने किरणों से ( विक्राना ) प्राणियों को जनानी हुई और ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिए ( प्रबोधयन्ती ) जगाती हुई ( ज्योतिषा ) प्रकाश से ( चित्रा ) अद्भुतस्वरूप वाली ( अरुणीः ) किञ्चित् लाल प्राभायुक्त कान्तिधो को ( आवहन्ती ) सब प्रकार प्राप्त कराती हुई ( मही ) बड़ी ( देवी ) अत्यन्त प्रकाशमान ( उवा ) प्रातःकाल की बेला ( ईयते ) जाती और ( आ, अगात् ) आती है वैसे आप हूँजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जो सुन्दर प्रिया उत्तम लक्षणा से युक्त अद्भुत रूपवाली पतिव्रता स्त्री पुरुष को प्राप्त होवे वह प्रातःकाल के सदृश कुल का प्रकाश करती हुई और सन्तानों को उत्तम शिक्षा देती हुई सबको आनन्द देती है ॥ ३ ॥

अब स्त्री पुरुष के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ वां वहिष्ठारुह ते वहन्तु रथा अश्वास उपसो व्युष्टौ ।

इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथा ॥४॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों जो लोग ( वहिष्ठारुहः ) अत्यन्त धारण करनेवाले ( रथाः ) वाहन ( अश्वासः ) शीघ्र चलने वाले ( व्युष्टौ ) प्रातःकाल के ( व्युष्टौ ) विशिष्ट प्रताप में है ( ते ) वे आप दोनों को ( इह ) इस मसार में ( आ, बह्मन् ) अभीष्ट स्थान को पहुँचावें और जो ( इमे ) ये ( हि ) जिस कारण ( वाग् ) आप दोनों के ( सोमा ) ऐश्वर्य के सहित पदार्थ ( अस्मिन् ) हम ( यज्ञे ) मेल करने योग्य गृहाधर्म में ( मधुपेयाय ) मधुर गुणों से पीने योग्य के लिये होने हैं इस कारण उन का इस ससार में सेवन करके ( वृषणा ) पराक्रम वाले होने हुए आप दोनों ( मादयेथा ) आनन्दित होवें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! आप लोग यदि रात्रि के चौथे प्रहर में उठ और आवश्यक कृत्य करके वाहन वा पैरो से सूर्योदय से पहले शुद्ध वायु देश में भ्रमण करें तो आप लोगों को रोग कभी न प्राप्त होवे जिससे कि बलिष्ठ और अधिक अवस्था वाले हुए इस गृहाधर्म में बड़े आनन्द को भोगो ॥ ४ ॥

फिर विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्कुत्तानोऽव पद्यते न ।

कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

पदार्थ—जो विद्वान् ( अनायतः ) दूर नहीं अर्थात् समीप वर्तमान ( अनिबद्धः ) मनुवान् पुरुष के समान एकत्र न उठरने वाला ( अयम् ) यह ( न्यङ्कु ) निरर्थक आदर करता वा प्राप्त होता ( उत्तानः ) ऊपर की विस्तारित सा स्थित ( कथा ) किस प्रकार ( न ) नहीं ( अब, पद्यते ) नीची दशा को प्राप्त होता है और ( कथा ) किस ( स्वधया ) अपनी गति से ( याति ) चलता है ( समृतः ) उत्तम प्रकार सत्यस्वरूप ( दिवः ) मनोहर सुख के ( स्कम्भः ) घर का आधार लम्बा जैसे बीच में उठरे वैसे ( नाकम् ) सुख की ( पाति ) रक्षा करता है इस को ( क ) कौन ( ददर्श ) देखता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जीव यह नीचे की दशा को किस रीति से न प्राप्त होवे जो अविद्या भावि बन्धन का त्याग करे तो, किम कर्म से सुख को प्राप्त होता है जो कर्म का अनुष्ठान करे, कौन काममाओ से पूर्ण होता है जो परमात्मा की केवे ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि विद्वान् स्त्री और पुरुष के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौदहवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

५६





पदार्थ—हे ( शूर ) शत्रुओं के नाशक ! जो ( अस्मिन् ) इस ( सबसे ) कियाविशेषरूप यज्ञ में ( अथ ) आज ( अन्वयः ) आलम्ब्य करने को ( नः ) हम लोगों के ( उद्धारण ) सदाश कामना करता हुआ ( वेदा ) बुद्धिमान् जन ( उक्त्वत् ) कहने योग्य आसन्न और ( अस्मिन् ) विज्ञान को ( संसाति ) प्रशंसित करे ( अस्मिन् ) अविद्वानों में उत्पन्न अविद्वान् पुरुष के लिए ( विप्रियुक्ते ) जानने को हम लोगों के कियाविशेष यज्ञ में ( अन्ते ) मयीप में प्रशंसित करे उस ( अन्वयः ) मार्ग के जाने वाले को आप ( न ) न ( अथ ) विरोध में ( स्व ) शस्त्र को प्राप्त काव्यो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो बुद्धिमान् सब से विद्वानों की कामना करते हुए उपदेशक हो, उनकी निरन्तर रक्षा करो ॥ २ ॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कविर्न निर्यथ विद्वानि साधन्वा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।  
दिव इत्था जीजनत्सुस कारुणद्धा विष्णुक्रुव्युना गृणन्तः ॥३॥

पदार्थ—( गुणस्त ) स्तुति श्रोत्र उपदेश करते हुए विद्वान् जन ( अह्ना ) दिन से ( अथवा ) प्रशान्तों का ( अन्तः ) करते हैं और ( सप्त ) सात ( कारुण्य ) कारीगर जनों को ( विप्र ) भी करते हैं ( इत्था ) इस प्रकार से ( अत् ) जो ( अथवा ) बालिष्ठ ( सेकम् ) सिचन की ( विपिपान ) विशेष करके रक्षा और ( विद्वानि ) जानने के योग्यो को ( साधन् ) सिद्ध करता हुआ ( विष्णु ) प्रकाशों का ( अर्चात् ) सत्कार करे वह ( विष्णुम् ) निश्चित प्रकाशों को ( कवि ) विद्वान् के ( न ) सदाश ( जीजनत् ) उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो जन विद्या और पुस्तक को बढ़ाते हैं वे सात प्रकार के कारीगरों का करके सब काव्यों को सिद्ध करा काम-सिद्धि कर सकें ॥ ३ ॥

स्वर्गदेदि सुष्णीकमुकैर्महि ज्योतीं रुरुव्युद्वस्तोः ।  
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृम्यश्कार नृतमो अमिष्टौ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत् ) जो ( सुवृशीकम् ) उत्तम प्रकार देखने योग्य ( महि ) कथा ( ज्योतिः ) प्रकाशमय ( स्व ) सूर्य ( वेदि ) जाना जाता है ( यत् ) जो ( ह ) निश्चय ( वस्तो ) दिन को करणों ( रुरुव्यु ) प्रकाशित करते हैं और जिनसे सूर्य ( अन्धा ) अन्धकाररूप ( तमांसि ) रात्रियों को ( दुधिता ) दूर की हुई ( विचक्षे ) प्रकाशित करता है तिमसे जो ( नृतम ) अत्यन्त नायक ( अमिष्टौ ) चारों धार से सज्जत कर्म में ( अर्को ) विचारों से ( नृम्यः ) नायक मनुष्यों के लिये सुख को ( अकार ) करता है वही सब लोगों के सत्कार करने योग्य होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—नित्य नीति और वीरता से अच्छे प्रकार बढ़े हुए राज्यकर्म में राजा और प्रजाओं में सब ओर से सुख प्रतिदिन सूर्यप्रकाश के समान बढ़ता है ॥ ४ ॥

बव्य इन्द्रो अमितमृजीष्युः मे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।  
अतश्चिदस्य महिमा वि रंघ्रमि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो जगदीश्वर ( इन्द्र ) सूर्य के सदाश राजा ( अमि, बभूव ) हुआ जिससे ( चित् ) भी ( अस्थ ) इसका ( महिमा ) बहूपन ( वि, रंघ्रि ) विशेष करके शोभित होता है और जो ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( भुवना ) भूवनों को धारण करता है ( अत् ) इस से ( उभे ) दोनों ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( महित्वा ) महत्त्व से ( आ, पप्रौ ) व्याप्त करता है और ( अजीवी ) सरल हुआ ( अमितम् ) परिमाणरहित पदार्थ ( बभूव ) प्राप्त करता है वही सब से बड़ा सबकना चाहिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सब से जगदीश्वर का बड़ापन अधिक जानते हैं वे इस जगत् में प्रसिद्धा को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

विश्वानि श्रुको नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।  
अस्मानं चिधे विभिदुर्वचोमिर्ब्रजं गोमन्तमुशिजो वि ब्रुवुः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ये ) जो पवन ( अस्मानम् ) जैसे मेघ को ( चित् ) जैसे ( विभिदु ) विदीर्ण करते हैं ( गोमन्तम् ) बहुत गीओं से युक्त ( श्रुको ) गीधों के स्थान की ( उशिज ) कामना करते हुएों के समान न्याय को ( वि, ब्रुवु ) अस्वीकार करते हैं उन ( निकामैः ) नित्य कामना वाले ( सखिभिः ) मित्रों के साथ जो ( शक्र ) सामर्थ्य वाला ( विद्वान् ) विद्वान् ( विप्रियुक्ते ) संपूर्ण ( नर्याणि ) मनुष्यों में उत्तम ( अप ) कर्मों को ( बभूव ) वचनों से ( रिरेच ) पृथक् करता है वही पृथिवी के भोगने के योग्य है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सूर्य जैसे मेघ का जैसे दुष्टों के निवारण करनेवाले वा गोपाल लोग जैसे ब्रज अर्थात् गीधों के बाड़े से गीधों को जैसे अन्याय से पृथक् करनेवाले जिस पुरुष के मित्र हों वह मनुष्य राजा होने के योग्य है ॥ ६ ॥

अपो वृत्रं ब्रिवांसं पराहन्नावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।  
प्राणींसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्बन्धवसा शूर धृष्णो ॥७॥

पदार्थ—हे ( वृत्रो ) दुष्ट आत्मावाले ( शूर ) वीरपुरुष ! ( सचेताः ) चित्त के सहित वर्तमान ( ब्रिवांस ) बल से ( पतिः ) स्वामी ( भवन् ) होते हुए आप जैसे सूर्य ( वृत्रम् ) किरणरूपी वज्र को फटकार ( अपः ) जलों को प्रकट करते ( वृत्रम् ) मेघ को ( ब्रिवांसम् ) फल प्रकट ( परा, अहन् ) मारता और ( समुद्रियाणि ) समुद्र के योग्य ( अर्चांसि ) जलों की ( पृथिवी ) पृथिवी के समान ( व, आवत् ) रक्षा करता है वैसे ( ते ) आपकी जो प्रजा की रक्षा करके मनुष्यों का नाश करे उसको आप ( व, ऐनो ) प्रेरणा करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सूर्य के समान प्रजाओं का सुख देने हैं वे ही राजकर्म्म में प्रेरणा करने योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

अपो यदद्रिं पुरुहूत ददर्शविर्भुवत्सरमा पृथ्वी ते ।  
स नो नेता बाजमा दपि भूरि गोत्रा रुजभक्तिरोमिर्गृणानः ॥८॥

पदार्थ—हे ( पुरुहूत ) बहुतों में प्रशंसित ! जो ( ते ) आपकी ( सत्ता ) सरलनीति ( आभि ) प्रकट ( भुवत् ) होवे इससे आप मनुष्यों का ( बर्हः ) नाश करो ( यत् ) जो ( न ) हम लोगों का ( नेता ) नायक प्रकट होवे उसके साथ ( पृथ्वीम् ) पूर्व ( बाजम् ) वेग का ( आ, दपि ) नाश करते हो और जो आप ( अङ्गिरोभिः ) पवनो स सूर्य जैसे ( अप ) जलों को वैसे ( गुणानः ) स्तुति करते हुए ( गोत्रा ) मेघों के धवयों को और ( भूरिम् ) बहुत ( अद्रिम् ) मेघ को ( रुजम् ) छिन्न-भिन्न करते हुए वर्तमान हो ( स ) वह आपका मनापति होवे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो बुद्धनीति वाले मनुष्य प्रसिद्ध होवें उनकी रक्षा करके व्याय से प्रजाओं का पालन करो ॥ ८ ॥

अच्छा कविं नृमणो गा अमिष्टौ स्वर्वाता मधवन्नाधमानम् ।  
ऊतिमिस्तमिषणो धृमन्हृतो नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त्त ॥९॥

पदार्थ—हे ( नृमणः ) मनुष्यों में मन रखनेवाले ( मधवन् ) बहुत धन से युक्त ! ( स्वर्वाता ) मृत्यु के अन्त को प्राप्त आप ( ऊतिभिः ) रक्षण आवि से ( अमिष्टौ ) अभीष्ट की सिद्धि होने पर ( धृमन्हृतो ) धन और यश की प्राप्ति जिसमें उसमें ( गा ) वाणियों का ( नाधमानम् ) ईश्वरीय भाव को पहुँचाते हुए ( कविम् ) विद्वान् को ( अक्षम् ) उत्तम प्रकार प्रेरणा करे और जो ( मायावान् ) निकृष्ट बुद्धियुक्त ( अब्रह्मा ) वेद को नहीं जाननेवाला ( दस्युः ) दुष्ट स्वभावयुक्त पुरुष ( अर्त्त ) नाश हो ( तम् ) उपका आप ( नि, इवण ) निकालें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप स्पष्टी मूल और दुष्ट स्वभाववाले मनुष्यों का नाश करके और धार्मिक विद्वानों का सत्कार करके प्रशंसित हुए हम लोगों के राजा हूँ ॥ ९ ॥

अब राजविषयसम्बन्धिविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ दस्युघ्ना मनसा यावत्सुं धुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।  
स्वे योनौ नि षदत् सरूपा वि वां चिकित्सदृत्चिद्ध नारो ॥१०॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ! ( मनसा ) अन्त करण में ( दस्युघ्ना ) दुष्टस्वभाव वालों को मारती ( सरूपा ) गुणादका से तुरन्त रूपवती ( कृतचित् ) सत्य को इकट्ठा करनेवाली ( नारो ) मनुष्य की स्त्री ( धुवत् ) हा उसको आप ( आ ) सब प्रकार ( वाहि ) प्राप्त हूँ और जो ( ते ) आपके ( सख्ये ) मित्र के लिए ( कुत्सः ) निन्दित ( निकामः ) निकृष्ट कामनायुक्त होवे उसका आप ( अस्तम् ) प्रक्षिप्त अर्थात् दूर करे आपके ( स्वे ) अपने ( योनौ ) गृह में ( वि, चिकित्सत् ) विशेष चिकित्सा करता है वह दोनों ( ह ) निश्चय से ( वाम् ) आप दोनों के गृह में ( नि, सख्यम् ) रहे ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे पुरुष ! आप निन्दित स्त्री का त्याग करके समानरूपवाली और दोषों के नाश करनेवाली को प्राप्त हआ और दोनों मिलकर प्रीति में अपने गृह में रहो ॥ १० ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यासि कुत्सेन सरथमवस्थुस्तोदो वातस्य हय्योरीशानः ।  
श्रुजा बाजं न गव्यं युयुषन्कुर्विदहन्पार्याय भूवात् ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् ! जिस से आप ( अवस्थुः ) अपनी रक्षा की इच्छा करते हुए ( तोदः ) शत्रुओं के नाशकर्त्ता ( वातस्य ) पवन श्रोत्र ( हय्योः ) घोड़ों के ( ईशानः ) स्वामी होते हुए ( सरथम् ) रथ आदिकों के सहित सेना को ( वासि ) प्राप्त होने हो ( श्रुजा ) और सरल गमनों को ( गव्यम् ) ग्रहण करने योग्य ( बाजम् ) वेग के ( न ) सदाश ( युयुषन् ) मिलाने की इच्छा करते हुए ( कविः ) अष्ट बुद्धियुक्त ( कुत्सेन ) निकृष्ट कर्म के सहित वर्तमान का ( अस्तम् ) नाश करता है ( यत् ) जो ( पार्याय ) पार होने के लिए ( भूवात् ) शोभित करे उस को प्राप्त होते हो हम से राज्य करने का समर्थ हो सकते हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो लोग निन्दित कर्म और निन्दित जन के सङ्ग का त्याग करके सत्यन्याय से प्रजाओं का पालन करते हुए पुरुषार्थ करें वे सब प्रकार से शोभित हों ॥ ११ ॥

कुत्साय शृष्णामशुषं नि वहीः प्रपित्ये अहः कृयवं सुहसा ।  
सुयो दस्युन्मृण कुत्सेन प्र चरश्चक्रं वृहतादुमीके ॥१२॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( बह्वः ) दिन के ( प्रविष्टि ) उत्तम प्रकार प्राप्त होने पर ( सुताम् ) विभिन्न व्यवहार के लिए ( सुवचम् ) निष्कट धन जिसके उस ( सुवचम् ) रसहित ( अमृचम् ) दुःख को ( नि, बह्वः ) दूर करो और जैसे ( सुतः ) सुख ( अमृचम् ) वर के समुदाय वर्तमान ब्रह्माण्ड को ( सुताम् ) देने वर के रूप में ( सहस्र ) सहस्रों ( अमृचम् ) पुष्ट चोरों को ( तन्वः ) धीम ( प्र, वचम् ) नाम कीजिए ( अमीके ) समीप में ( प्र, ब्रह्मात् ) छेदन कीजिए ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप वर आदि शक्तों से पुष्ट चोरों का नाश करने सूर्य के समान प्रतापी हूँ ॥ १२ ॥

स्वं पिमुं सुगवं ब्रह्मवासं मुचिष्यते वैदधिनार्य रन्धीः ।

ब्रह्मवास्तु कृष्णानि वपः सुहस्तात्कं न पुरो जस्मिमा वि र्ददः ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप ( वपः ) विज्ञानवाले के पुत्र के लिए ( ब्रह्मवास्तु ) सलता आदि गुणों से बड़े हुए पुरुष के लिए ( पिमुं ) व्यापक ( ब्रह्मवासम् ) बल से पुष्ट ( सुगवं ) मृग को डबनेवाले का ( रन्धीः ) नाश करो और ( अमृचम् ) व्याप्त होनेवाले वायु को ( जस्मिमा ) अतिवृद्ध अवस्था के ( न ) सदा ( पुरः ) आगे ( ब्रह्मवास्तु ) पचास और ( सहस्र ) सहस्रों ( कृष्णा ) कृष्णवर्णवाले सैन्यजनों का ( नि, वपः ) विस्तार करो और पुष्ट पुरुषों का ( नि, बह्वः ) नाश करो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजा आदि राजपुरुषों का चाहिए कि सेना में हजारों वीरों को रखके और नम्रता से बड़ावस्था जैसे रूप और बलों को हरती है वैसे ही शत्रुओं के बल को धीरे-धीरे नष्ट कर बुद्ध नीति का प्रचार करो ॥ १३ ॥

अब राजविषय में सेनायोग्य पुरुषों के रखने और उनके कल को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्र उपाके तन्वं दधानो वि यत्ते वेत्यमृतस्य वपः ।

सुगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिहो न भीम आयुधानि विभ्रत् ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( वत् ) जो ( उपाके ) समीप में ( पुरः ) सूर्य के सदा ( तन्वम् ) तेजस्वि शरीर को ( ब्रह्म ) धारण करता हुआ ( ते ) सुहारा ( अमृतस्य ) नित्य वस्तु के ( वपः ) रूप और ( वृषः ) हरिण के ( न ) तुल्य वा वेगवान् ( हस्ती ) हाथी के तुल्य बलवान् वा ( सिंहः ) सिंह के ( न ) तुल्य (भीमः) भयङ्कर ( आयुधानि ) तलवार भुशुण्डी शतघ्न्यादि नामों से प्रसिद्ध आयुधों को ( विभ्रत् ) धारण और शत्रुओं की ( तविषीम् ) बलयुक्त सेना का ( उपाणः ) दाह करता हुआ ( वि, वेति ) जनाया जाता है उमका आप सदा मत्कार करके रखो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है हे राजन् ! जो लोग दीर्घ ब्रह्मचर्य से सूर्य के समान तेजस्वी रूपवान् और वेगवान् बलिष्ठ सिंह के सदा पराक्रमी अनुबद्ध के जाननेवाले जन हों उनकी सेना से शत्रुओं को जीतकर सब स्थानों में उत्तम कीर्ति से विदित हूँ ॥ १४ ॥

अब राजविषय में सेना और अमात्य आदिकों की योग्यता के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रं कामा वसुन्तो अमृन्तस्वर्मीरुहे न सर्वने चकानाः ।

ध्रुवस्य चः शशमानास उख्यैरोको न रणा सुदर्शिव पुष्टिः ॥ १५ ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे राजन् जो ( वसुन्तः ) अपने धन की इच्छा करते हुए ( कामाः ) कामना करनेवाले ( सर्वने ) प्रेरणा करने में ( चकानाः ) प्रकाशमान ( ध्रुवस्यः ) अपने को अन्न की इच्छा करते हुए ( शशमानासः ) शत्रुओं के बल का उत्सुकन करनेवाले ( उख्यैः ) प्रशंसित गुणों से ( ओकः ) गृह के ( न ) सदा ( स्वर्मीरुहे ) जैसे सुख से युक्त सग्राम में ( न ) वैसे जो ( सुदर्शिवः ) उत्तम प्रकार देखने के योग्य ही ( रणा ) सुन्दर ( पुष्टिः ) पुष्टि उसको ( अमृचम् ) प्राप्त होते हैं उसको प्राप्त होकर ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले को और उन पूर्वोक्त जनो को आप सेवा और राज्य के कर्मचारी करिए ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो धन की कामनावाले होवें वे शरीर और आत्मा के बल से बड़ा के युद्ध की विद्या और सामग्री पूर्ण करें ॥ १५ ॥

अब राजा और प्रजाजनों की एक सम्मति होने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तमिद्र इन्द्रं सुहवं दुवेम् यस्ता चकार नर्या पुरुणि ।

को मार्वते अरिरे नर्यं विन्मुक्षु वाजं भरति स्पर्हरायाः ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे प्रजाजनों ! ( वः ) जो ( स्पर्हरायाः ) इच्छा करने योग्य वस्तुयुक्त पुरुष ( नर्यः ) मेरे सदा ( अरिरे ) विद्या की स्तुति करनेवाले के लिए ( नर्यम् ) प्रहण करने योग्य ( वाजम् ) अन्न आदि ऐश्वर्य की ( नर्यः ) भीम ( अरिरे ) धारण करता है ( वः चित् ) और जो ( ता ) उन ( पुरुणि ) बहुत ( नर्यः ) अनुषंगों के लिए शितकारक सैन्य कार्यों को ( चकार ) करे ( तम् ) उस ( सुहवं ) उत्तम प्रकार प्रशंसित ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले को ( इन्द्रं ) ही ( वः ) आप लोगों के लिए ( पुष्टिः ) छेदन कर ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो राजा और प्रजाजन एक सम्मति कर के उत्तम गुण कर्म और स्वभाव से युक्त राजा का स्वीकार करें ही पूर्ण युद्ध प्राप्त हो ॥ १६ ॥

अब युद्ध की प्रवृत्ति में विजयता विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तिग्मा यदन्तरुनिः पताति कस्मिन्निष्कर मुहुके जनानाम् ।

धोरा यदर्थ्य समृतिर्भवात्यर्थ स्मा नस्तुन्वी बोधि गोपाः ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे ( धूरः ) वीर ! ( अर्थः ) प्रशंसित ( यत् ) जो ( धोरा ) भयङ्कर ( समृतिः ) युद्ध ( भवाति ) होने ( अर्थः ) इसके अनन्तर ( यत् ) जो ( तिग्मा ) तीव्र ( अस्मिन्निः ) बिजुली ( जनानाम् ) मनुष्यों के ( कस्मिन्निः ) किसी ( मुहुके ) मोह के प्राप्ति करानेवाले बारबार काने योग्य सग्राम के ( अन्तः ) बीच ( पताति ) गिरे उसमें ( स्मा ) ही ( गोपाः ) रक्षा करनेवाले हुए आप ( नः ) हम लोगों के ( तन्वः ) शरीरों को ( बोधि ) जालिए ॥ १७ ॥

भाषार्थ—हे धूरवीरों ! जब बहुत शक्तों के संघातयुक्त युद्ध प्रवृत्त होते तब अपने और अपने सम्बन्धियों के शरीरों की रक्षा करने और शत्रुओं के नाश करने से विजयी हूँ ॥ १७ ॥

अब वीरों को राधा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सर्वाङ्गो वाजसातौ ।

त्वामनु प्रमत्तिमा जगन्मोक्षंसां जरित्रे विश्वं स्याः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे ( विश्वः ) मसार के धारण करनेवाले राजन् ! आप ( वाजसातौ ) सग्राम में ( वामदेवस्य ) उत्तमरूप से युक्त विद्वान् और ( धीनाम् ) बुद्धियों के ( अविता ) रक्षा करनेवाले ( भुवः ) हूँजिये ( अमृचम् ) शरीरहित ( सर्वाङ्गः ) मित्र ( भुवः ) हूँजिये और ( उच्छांसः ) बहुत प्रशंसायुक्त होते हुए ( जरित्रे ) स्तुति करने योग्य के लिए सुखदायक ( स्याः ) हूँजिये जिससे ( त्वाम् ) आप के ( अनु ) परकार ( प्रमत्तिम् ) उत्तम युद्ध को ( जा, जगन्म ) प्राप्त होवे ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो सब का स्वामी और वीरपुरुष युद्ध में वतुर, उपदेश देनेवाले और बुद्धिमानों का रक्षक होवे, उसी को राजा करो ॥ १८ ॥

अब राजजन के लिए करने योग्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एभिर्वृभिर्निद्र स्वायुमिष्ट्वा मघर्भ्रिर्मघवन्विश्वं आजौ ।

घावो न घुम्नेरमि सन्तो जय्यः क्षपो भवेम शरद्वं पूर्वीः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे ( मघवः ) बहुत ऐश्वर्य से युक्त ( इन्द्र ) शत्रुओं के नाशकारक राजन् ! हम लोग ( एभिः ) इन पूर्वोक्त ( स्वायुभिः ) आपकी कामना करने हुए ( मघर्भ्रिः ) बहुत श्रेष्ठ धनो से युक्त ( निद्रः ) नायक मनुष्यों के साथ ( विश्वः ) सम्पूर्ण ( आजौ ) सग्राम में ( स्वायुः ) किरणों के ( न ) तुल्य और ( घुम्नेः ) यथारूप धन से युक्त सत्पुरुषों के साथ ( स्वा ) आपकी भाग्य का ( सन्तः ) वसति करते हुए ( अर्थः ) स्वामी के तुल्य ( पूर्वीः ) पुरानी ( क्षपः ) रात्रियों और ( शरद्वः ) शरद् ऋतुओं भर ( वः ) भी ( अभि, मघवः ) सब और से मानन्द करें ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो लोग धार्मिक शरीर और आत्मा के बल से युक्त सत्य की कामना करते हुए अपने राज्य में हुए धनयुक्त पुरुषों के साथ बड़ मेन कर और शत्रुओं को जीत के राज्य की प्रशंसा करते हैं वे सूर्य के सदा कीर्तियुक्त और धनी होकर सब काल में आनन्दित होते हैं ॥ १९ ॥

फिर मन्त्री आदि कर्मचारियों के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्ट्ये ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।

न चिद्यथा नः सख्या वियोपदमं उग्रोऽविता तनूपाः ॥ २० ॥

पदार्थ—( यथा ) जैसे राजा ( नः ) हमारे ( सख्या ) मित्र के साथ ( चिद्यथा ) धारण करे ( उग्र ) तेजस्वी ( तनूपाः ) शरीर का पालन करनेवाला हुआ ( नः ) हम लोगों का ( नु ) धीम ( अविता ) रक्षक ( असत् ) होने ( इत्, एव ) उसी ( वृषभाय ) वृष के सदा बलिष्ठ ( वृष्ट्ये ) धीरवान् ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले के लिए ( भृगवः ) प्रकाशमान ( रथम् ) वाहन को ( नः ) सदा ( ब्रह्म, चित् ) बड़े भी धन को हम लोग ( अकर्म ) सिद्ध करें ॥ २० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे शिल्पीजन विद्या के साथ पदार्थों के संयोग से विमान आदि की रचना करके धनवान् होकर मित्रों का सरकार करते हैं वैसे ही राजा से सत्कार किये गये हम लोग राजा से ऐश्वर्य की वृद्धि करके सब राजा आदिकों का सत्कार करें ॥ २० ॥

न ह्युत इन्द्र न गुणाव इपं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नर्यं विद्या स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥ २० ॥

पदार्थ—हे ( हरिः ) उत्तम धर्मों से युक्त ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् राजन् ! आप ( नृणां ) प्रशंसा करते हुए ( जरित्रे ) स्तुति करनेवाले के लिए ( नद्यः ) नदियों के ( नः ) सदा ( ब्रह्म ) अन्न आदि ऐश्वर्य की ( नु ) धीम ( पीपेः ) वृद्धि करावें और जिन सब लोगों से ( नु ) धीम ( स्तुतः ) आप प्रशंसित ( अकारि ) किये गये जन वर्गों से ( ते ) आप के लिये ( नद्यम् ) नदीन ( ब्रह्म ) सदा-सा-

रहित वन को ( सवसाः ) सेवकों की सहित वर्तमान हम लोग ( विवा ) दुष्टि का कर्म से ( दण्डः ) बाहनों के निमित्त मार्ग के सदृश सिद्ध कर चुकने वाले ( स्वयम् ) हैं ॥ २१ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो मनुष्य परीक्षा करनेवाला सब अपहृत प्रसन्न और नदी के सदृश प्रजाओं की सुप्तिकर्ता धृष्टसमान सुतपूर्वक दूसरे स्थान को पहुँचानेवाला होवे उसको सर्वाधीन करके नौकरों की सहित हम उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्तन करके सब लोग निरन्तर सुखी होवें ॥ २१ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा मन्त्री और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्वसूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सोनहवाँ सूक्त और बीसवाँ वचन समाप्त हुआ ॥

ॐ

अवेकाधिकविशतयुचस्य सप्तवशस्य सूतस्य बामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवताः । १

पङ्क्तिः । ७, ६ भुरिक् पङ्क्तिः । १४, १६ स्वराद्वक्त्रिः १५ याकुपी

पङ्क्तिः । २१ निष्पुह्वितवक्त्रम् । पञ्चमः स्वरः । २, १२, १३,

१७—१९ निष्पुह्वितवक्त्रम् । ३, ५, ६, ८, १०, ११ निष्पुह्वितवक्त्रम् ।

४, २० विराद्विष्टवक्त्रम् । षष्ठः स्वरः ॥

अब इसकी संज्ञावाले सप्तहृत् सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से इन्द्रपञ्चम्य राजपुत्रों का वर्णन करते हैं—

स्वं महां इन्द्रं तुभ्यं ह क्षा अमुं सत्रं मंहना मन्यत योः ।

स्वं वृष शर्वसा जघन्वान्सृजः सिन्धूरहिना जघ्रसानान् ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! जो ( त्वम् ) आप ( महात् ) बड़े ( क्षाः ) भूमियों और ( सत्रम् ) राज्य को ( मंहना ) जैसे ( योः ) सूर्य वैसे ( अमुं, मन्थत ) मानते हो ( ह ) उन्हीं ( तुभ्यम् ) आप के लिए हम लोग भी मानते और जैसे ( वृषम् ) मेघ के सदृश वर्तमान शत्रु को ( जघन्वान् ) नाश करनेवाला ( अहिना ) मेघ के सदृश बड़े हुए धन से ( सिन्धूम् ) नदियों को ( वृषः ) उत्पन्न करावे ( त्वम् ) आप ( शर्वसा ) बल से ( जघ्रसानान् ) शत्रुसेना के अधिपतियों के समान उत्तम जनो को उत्पन्न करावो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे राजसम्बन्धी जनो ! जैसे बड़ा सूर्य वृष्टि से नदियों को पूर्ण करता है वैसे धन और ऐश्वर्य से राज्य को शोभित करो । राजा की आज्ञा के अनुकूल वर्तन करके बड़े राज्य को सम्पादन करो ॥ १ ॥

तव त्विषो जनिमजेजत यो रेखवभूमिभियसा स्वस्य मन्योः ।

क्रपायन्त सुम्भः पर्वतास आर्द्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२॥

पदार्थ—हे ( जनिजम् ) जन्मवाले राजन् ! जित जगदीश्वर के ( त्विष ) प्रताप से ( भियसा ) भय से ( यो ) अन्तरिक्ष ( रेखत ) कम्पित होता और ( भूमिः ) पृथ्वी ( रेखत ) कम्पित होती वैसे ( तव ) आपके ( स्वस्य ) निज ( मन्योः ) कोष से शत्रु लोग काँपें और जैसे ( सुम्भः ) उत्तम प्रकार वृष्टि जिन से ही ऐसे ( पर्वतासः ) पर्वतों के सदृश ऊँचे मेघ ( क्रपायन्त ) बाधित होने ( आर्द्ध ) और नाश करते हैं ( आपः ) जन और ( जघ्रानि ) स्थल अर्थात् शुष्कभूमियाँ ( सरयन्त ) गमन कराती हैं वैसे ही आप की सेना और मन्त्रीजन होवें ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप परमेश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग कर के अनुष्यो मे पिता के सदृश वर्तन करो और जैसे जगदीश्वर के भय से सम्पूर्ण जगत् व्यवस्थित रहता है वैसे ही आप के वण्ड के भय से सब जगत् भोग के लिए कल्पित हो और सूर्य जैसे मेघ की बाधा करता और जलवृष्टि से जगत् को आनन्दित करता है वैसे ही शत्रुओं को बाधित करके सज्जनों को आनन्द दीजिये ॥ २ ॥

मिनद्रिरि शर्वसा वज्रमिष्णंकाविष्कुरयानः सहसान् ओजः ।

वधीद्वं वज्रं मन्दसानः सरपापो जवसा हतवृष्णीः ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य ( मिरिस् ) पर्वत के समान मेघ को ( मिनत् ) विदीर्ण कर और ( वज्रम् ) किरण से ( वृषम् ) मेघ का ( वधीत् ) नाश करता है उस नाश हुए मेघ से ( हतवृष्णीः ) नष्ट किया गया मेघ जिनका वह ( आपः ) जन ( जवसा ) वेग से ( सरम् ) जाते हैं वैसे ही ( मन्दसान ) आनन्द वा ( मन्दसान ) सहन करने ( ओजः ) और पराक्रम को ( काविष्कुरयानः ) प्रकट करते वा ( वज्रम् ) किरण के समान शस्त्र को ( वज्रम् ) प्राप्त होते हुए ( जवसा ) वेग से शत्रुओं की सेना का नाश करो और सेना से शत्रुओं का नाश करके शत्रुओं को बहावो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकसु०—जो लोग सूर्य के सदृश न्याय से प्रकाश बन से प्रसिद्ध वृष्टि के नाशकारक और श्रेष्ठ पुरुषों के लिये आनन्ददायक होते हैं वे ही प्रकट यशवाले होकर इस संसार में और परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में आनन्द आनन्द वाले होते हैं ॥ ३ ॥

अब राजसत्त्वानविचार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुवीरस्ते जनिता मन्यत योरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत ।

य इ जजान स्वर्गं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भुम् ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( त्वम्, इन्द्रस्य ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् आप का ( योः ) विजुली के सदृश ( सुवीरः ) श्रेष्ठवीर ( जनिता ) उत्पन्न करनेवाला ( जजान ) माना जाय और वह ( स्वपस्तमः ) अतीव उत्तम कर्मों से पूरित ( कर्ता ) कर्मकर्ता ( भूत ) हो वा ( यः ) जो ( इन्द्रम् ) महान् ( स्वपस्तमः ) अत्यन्त सुख के लिये श्रेष्ठ और ( अनपच्युतम् ) नाश में रहित ( सुवज्रम् ) उत्तम आहुतियों वाले पुत्र को ( जजान ) उत्पन्न कर चुका उसको ( सदसः ) सभासदों के ( न ) सदृश हम वीर प्राप्त ( भूम् ) होवें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में उपमावाचकसु०—हे राजन् ! जैसे श्रेष्ठ लोग अति उत्तम राजा को प्राप्त होकर और न्याय का प्रचार करके यशवाले होते हैं, इसी प्रकार यदि आप धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से पुनर्विद्वत्त्व की रीति से अपनी प्रिया में पुत्र उत्पन्न करें तो वह भी प्रसिद्ध यशवाला होवे ॥ ४ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

य एक इक्ष्वाक्ययति प्र भूमा राजा कुष्टीनां पुकृत इन्द्रः ।

सत्यममनु विश्वं मदन्ति राति देवस्य वृषती मयोनः ॥५॥२१॥

पदार्थ—( यः ) जो ( पुकृतः ) बहुत से बुलाया और प्रशंसा किया गया ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् ( कुष्टीनाम् ) श्रेष्ठ बुनेवाले आदि प्रजास्य मनुष्यों का ( राजा ) उत्तम गुणों से प्रकाशमान राजा ( एकः ) एक ( इन्द्रः ) ही मनुष्यों को ( प्र, प्याक्ययति ) कम्पाता है उसको ( मयोनः ) बहुत धन से युक्त श्रेष्ठ पुरुषों के समूह के मध्य में ( वृषतः ) सम्पूर्ण विद्या की स्तुति करते हुए ( देवस्य ) दिव्यगुणी विद्वानों के समूह में वर्तमान ( सत्यम् ) श्रेष्ठो ने साधु ( रातिम् ) वाता जन को ( विश्वे ) सम्पूर्ण विद्वान् सभासद् ( अनु, नवन्ति ) अनुमति देते हैं उस ( एनम् ) इसको राजा करके हम लोग सुखी ( भूम् ) होवें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—वही राजा हो सकता है जो एक ही बहुत शत्रुओं को जीत सकता है और वही विजयी होता है जो श्रेष्ठ पुरुषों के सङ्ग और उपदेश को प्राप्त होकर धर्मयुक्त न्याय निरन्तर करता है ॥ ५ ॥

फिर भूपतिविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सत्रा सोमां अभवन्स्य विश्वं सत्रा मदासो वृहतो मदिष्टाः ।

सत्राभवो वसुपतिर्वचना दत्रे विश्वा अभिधा इन्द्र कुष्टीः ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले ! जो आप ( वसुमान् ) धनाढ्य पुरुषों के बीच ( वसुपतिः ) धन के स्वामी ( सत्रा ) सत्य ( अभवः ) होवें ( दत्रे ) देने योग्य सुवर्ण आदि धन के होने पर ( विश्वाः ) सम्पूर्ण ( कुष्टीः ) मनुष्यादि प्रजाओं को ( अभिधाः ) धारण करो तो ( अत्र ) इन राज्य के मध्य में ( सत्रा ) सत्य ( विश्वे ) सब ( सोमाः ) शास्त्रिगुणसम्पन्न सम्पन्न ( सत्रा ) सत्य सब ( मदासः ) आनन्द और ( वृहतः ) बड़ ( मदिष्टाः ) अतीव आनन्द देनेवाले ( अभवन् ) होवें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो राजा जैसे अपने निमित्त प्रिय की इच्छा करे वैसे ही प्रजाओं के लिए सुख देवे उसी के उत्तम सभासद् और अत्यन्त ऐश्वर्य बड़े ॥ ६ ॥

अब राजा के प्रति प्रजापालन प्रकार को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वमथ प्रथमं आपमानोऽमे विश्वा अभिधा इन्द्र कुष्टीः ।

स्वं प्रमिं प्रवत आशयानमहि वज्रैण मघवन्वि वृषः ॥७॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) बहुत धन से युक्त ( इन्द्र ) दुष्ट पुरुषों के नाश करनेवाले राजन् ( अमे ) गृह में ( आशयानः ) उत्पन्न होनेवाले ( त्वम् ) आप ( विश्वाः ) सम्पूर्ण ( कुष्टीः ) मनुष्य आदि प्रजाओं को ( मघवन् ) पहिले ( अभिधाः ) धारण करो ( अत्र ) इसके अनन्तर ( त्वम् ) आप जैसे ( प्रवतः ) नीचले स्थलों के ( प्रति ) प्रति ( आशयानम् ) सब प्रकार लोते हुए के सदृश वर्तमान ( अहिम् ) मेघ को ( वज्रैण ) किरणों से सूर्य नाश करता है वैसे ही दुष्ट पुरुषों का आप ( वि, वृषः ) नाश करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसु०—हे मनुष्यो ! जो पुरुष प्रथम से ब्रह्मचर्य, विद्या, विनय और सुसीलता से सब में उत्तम होता है और जो राज्यपालन और युद्ध करने को जानता है उसी को राजा करके सुखी होवो ॥ ७ ॥

अब प्रजाजनों से राजा के स्वीकार करने को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सत्राहणं दाहृषि सुजमिन्द्रं महायपारं हृषभं सुवज्रम् ।

इन्ता यो वृत्रं तनितो वाजं दाता मयानि मयानि सुरावाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( वृषम् ) मेघ को जैसे सूर्य वैसे शत्रुओं का ( इन्ता ) नाश करनेवाला पुरुष ( वाजम् ) अग्ने आदि ऐश्वर्यों का ( तनितः ) विभाग करनेवाला ( दाता ) यो ( मयानि ) बहुत धन से युक्त ( सुरावाः ) धर्मयुक्त व्यवहार से धनसंयकता ( मयानि ) और धर्मों का ( दाता ) दाता हो उस ( महायपारम् ) मध्य से असत्य के नाश करनेवाले ( वाजम् ) निरन्तर प्रगल्भ ( महायम् ) महान् ( अवाहम् ) अपारविद्यावान् गन्धीर वाजवन्त ( वृषम् ) प्रेरणा देनेवाले ( वृषम् ) अलिप्त ( सुवज्रम् ) सुन्दर शस्त्र और अस्त्रों के प्रयोगकर्ता ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त राजा को स्वीकार करो ॥ ८ ॥



**भाषार्थ—**हे राजन् ! इस मन्त्र में वाचकशु०—जो वृद्धविद्यायुक्त सहायकी प्रणाल्य विनाशक उत्तम और अन्तर्गत का बहालपन और समर्थता प्राप्त हो, उसी की राख को लिए नियत करो ॥ ८ ॥

**अथ राजा को अन्तर्गत अर्थ मन्त्र कैसे रखने चाहिये इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**अयं वृत्तवाचयते समीचीनं ध्यातिषु मन्त्रां शुभं एकः ।**

**अयं वाच्यं मरति न समोत्पन्नं श्रियातः सत्ये स्याम ॥९॥**

**भाषार्थ—**हे राजन् ! ( मः ) जो ( मन्त्र ) यह राजा ( वृत्तः ) स्वीकार किया हुआ बोधरहितों की ( वाचयते ) विनाश करता है और जो ( मन्त्र ) बहुत प्रणाल्य विनाशक से युक्त ( एकः ) अकेला अर्थात् सहायरहित ( ध्यातिषु ) समामो में ( समीचीनः ) शिक्षाओं को प्राप्त होने वाली सेवाओं का ( मरति ) पोषण करता है ( मन्त्र ) और यह ( वाच्यं ) विनाश को पुष्ट करता है ( मन्त्र ) जिसको समर्थता युक्त ( समोत्पन्नं ) संपन्न करता है जिसको मैं ( मन्त्र ) सुनता हूँ ( मन्त्र ) इसके ( सत्ये ) मित्रकर्म में हम लोग ( श्रियातः ) श्रिय ( स्याम ) होंगे ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**हे राजन् ! जो सेवाओं की शिक्षा दिलाता है, विशेष करके युद्ध के समय में उचित बात कहने से बौद्धों का उत्साह बढ़ाता है और जो जन आपके सम्मुख दोषों को कहते हैं उनकी शिक्षा में स्थित होकर उन्हीं जनों में मित्रता कर के सम्पूर्ण कार्यों की सिद्ध करो ॥ ९ ॥

**अथ राजा को राज्य करने का प्रकार अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**अयं शृण्वे अथ मयंभत धनस्ययुत प्र कुण्ठे युधा गाः ।**

**यदा सत्यं कुण्ठे मन्त्रुमिन्द्रो विश्वं दृढं भयत एजंस्मात् ॥१०॥२२॥**

**भाषार्थ—**हे राजन् ! उत्तम प्रकार परीक्षा करके स्वीकार किया गया ( मन्त्र ) यह जन मन्त्रों का ( मन्त्र ) नाश करता और ( मन्त्र ) भी ( युधा ) युद्ध से ( मन्त्र ) मन्त्रों को पराजित करता हुआ ( गाः ) पृथिवी के राज्यों को ( मन्त्र ) कुण्ठे उत्तम प्रकार करता है ( मन्त्र ) और ( मन्त्र ) जिसको मैं राज्य करने को सुनता हूँ ( यदा ) जब ( मन्त्र ) यह ( सत्यं ) सत्य को ( कुण्ठे ) करता है तब ( विश्वं ) सब राज्य ( मन्त्र ) उत्तम प्रकार स्थित होता है जब यह ( मन्त्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य वाला राजा ( मन्त्र ) कोष को करता है ( मन्त्र ) इसके अनन्तर तब ( मन्त्र ) इस राजा से सम्पूर्ण उत्तम प्रकार स्थिर भी राज्य ( मन्त्र ) मयता हुआ ( मन्त्र ) करता है ॥ १० ॥

**भाषार्थ—**हे राजन् ! जिस उत्तम कीर्ति को आप सुनें और जो लोग राज्य पालन और युद्ध में चतुर हों उनका स्वीकार करके सत्याचार से बर्ताव कर शान्ति से सज्जनों का मन्त्र प्रकार पालन करके युद्धजनों को निरन्तर दण्ड दें तभी सब जन धर्म के मार्ग का त्याग करके इधर उधर न भ्रमिता हों ॥ १० ॥

**अथ राजा कैसे विजय और आनन्द को प्राप्त होता है इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**समिन्द्रो मा अजयसं हिरण्या समंश्रिया मन्त्रा यो ह पूर्वीः ।**

**मिन्नेमिन्नेतमो अस्य शक्ति राखो विमहा सम्प्ररश्च वस्यः ॥११॥**

**भाषार्थ—**हे मन्त्र्यो ! ( मः ) जो ( मन्त्र ) अष्टमयुक्त ( मन्त्र ) मन्त्रों का नाशकर्ता ( मन्त्र ) इन ( मन्त्र ) नायकों के साथ ( मन्त्र ) वसिष्ठ नायक हुआ ( गाः ) मन्त्रियों को ( मन्त्र ) उत्तम प्रकार ( मन्त्र ) जीते ( मन्त्र ) कोष आदि से युक्त ( हिरण्या ) सुवर्ण आदि धर्मों को ( मन्त्र ) उत्तम प्रकार जीते जो ( ह ) निम्न से ( पूर्वीः ) प्राचीन प्रजाओं को ( मन्त्र ) उत्तम प्रकार जीते जो ( मन्त्र ) इस सेवा की ( शक्तिः ) शक्तियों से ( मन्त्र ) जन का ( विमहा ) विनाश करने वाला ( मन्त्र ) जनों का ( मन्त्र ) और ( मन्त्र ) दृढ़ता करने वाला होने वाली राज्य करने को योग्य होने ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—**जो उत्तम सहाय और उत्तम जन सामर्थीयुक्त तथा मन्त्रों का जीतने और मन्त्रायोगों के लिये विभाग करके केनेवाला विद्वान् राजा होने वाली विजय की प्राप्ति होकर आनन्द करे ॥ ११ ॥

**अथ प्रजाजनों में किस की राज्य की योग्यता है इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**किंस्तिविन्दो अयं ति युधुः किंस्तिपुण्ड्रमिहो ज्ञानं ।**

**यो अयं पुण्ड्रं दृष्टुमिहो वसुतो न ज्ञाः स्तुनपकिरुमैः ॥१२॥**

**भाषार्थ—**हे ( मः ) जो ( मन्त्र ) कार्यकारण करने वाली से ( मन्त्र ) इसके ( मन्त्र ) जन को ( मन्त्र ) समर्थ करे हुए ( मन्त्र ) लोगों के साथ ( मन्त्र ) वेद की शान्ति ( मन्त्र ) मन्त्र के ( मन्त्र ) मुख्य विजय को ( मन्त्र ) प्राप्त होता है और ( मन्त्र ) जो कोई ( मन्त्र ) तेजस्वी ( मन्त्र ) वाता का ( मन्त्र ) विनाश और ( मन्त्र ) उत्पन्न करनेवाले ( मन्त्र ) विद्वान् का ( मन्त्र ) विनाश उपकार ( मन्त्र ) समर्थ करता है वही राजा ( मन्त्र ) होता है ॥ १२ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमा वाचकशु०—जो मन्त्र वाता और विद्वान् का विनाश उपकार है ऐसा जानकर प्रत्युपकार करते हैं वे वेद और वात से विजय

विजयों के समुदाय को प्राप्त होकर बारबार मन्त्रों को जीतकर प्रकट करा करते हैं ॥ १२ ॥

**अथ राजा को उत्तम और अनुत्तम का दण्ड और उत्तार करना चाहिए इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**धियन्तं स्वमधियन्तं कुजोतीयसि हे कुं मन्त्रा सुबोदय ।**

**विमुक्तुमिहो इव दौष्ट स्तोतारं मन्त्रा वसौ वात् ॥१३॥**

**भाषार्थ—**हे राजन् ! जैसे ( मन्त्र ) अत्यन्त मनुक्त पुरुष ( स्तोतारम् ) यज्ञ करनेवाले को ( मन्त्र ) जन में ( मन्त्र ) उत्तम करता है वैसे जो ( मन्त्र ) प्रकाश के समुदाय ( कुं ) और भी ( मन्त्र ) बहुत शत्रु और अत्यन्त दान के समुदाय ( विमुक्तुः ) मन्त्रों का नाश करता हुआ ( मन्त्र ) अष्टमय से युक्त पुरुष ( मन्त्र ) विनाश करते और ( मन्त्र ) नहीं विनाश करते हुए को ( कुजोति ) स्वीकार करता है ( स्तोतारम् ) उत्तम प्रकार से धिये हुए ( मन्त्र ) अपराध को ( दौष्ट ) प्राप्त होता है उसको ( मन्त्र ) आप शिक्षा दीजिये ॥ १३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकशु०—हे राजन् ! आप जो अपराध करे उस को दण्ड के बिना मत छोड़ो । और जैसे यज्ञमार्ग विद्वान् जन को दण्ड में स्वीकार करके जन के सुख देता है वैसे ही अष्टमय मन्त्रों का स्वीकार करके ऐश्वर्य के सब को आनन्द दीजिये ॥ १३ ॥

**अथ राजा को वेगवात् मन्त्रों को बना दण्ड संकोचन करना चाहिए इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**अयं चक्रमिषणत्स्यस्य न्वेतसं रीरमत्ससुमानम् ।**

**आ कृष्णं इ जहुराणो विषति त्वचो बुध्ने रजसो अस्त योनौ ॥१४॥**

**भाषार्थ—**हे राजन् ! आप जैसे ( मन्त्र ) यह ( मन्त्र ) सूर्य के मण्डल के समुदाय ( चक्रम् ) चक्र को ( मन्त्र ) प्राप्त होता है ( मन्त्र ) निरन्तर प्राप्त होते हुए ( मन्त्र ) बोधे को ( मन्त्र ) रमाता है ( मन्त्र ) जीवने वाला ( जहुराणो ) कुटिल गमन वाले के समुदाय ( इम् ) जन को ( आ, विषति ) गष्ट करता है ( त्वचः ) बाणी के सम्बन्ध में ( रजसः ) लोकसमूह और ( मन्त्र ) इस के ( बुध्ने ) अन्तरिक्ष और ( योनौ ) गृह में रमना है ऐसा जानकर इसका उत्कार करके युद्ध पुरुष को ताड़न दीजिये ॥ १४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकशु०—जो मनुष्य कलाकौशल से चक्रमन्त्रों का निर्माण करके वेगवात् बाहनों को प्राप्त होकर रमण करते हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त होकर और कुटिलता को त्याग कर सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

**अथ राजा को प्रजाजनों को अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**असिक्त्या यजमानो न होता ॥१५॥२३॥**

**भाषार्थ—**जो राजा ( यजमानः ) मेल करनेवाले के ( न ) समुदाय ( असिक्त्या ) राशि में भयरहित ( होता ) सुख का केनेवाला होने वाली निरन्तर आनन्द करे ॥ १५ ॥

**भाषार्थ—**जिस राजा के प्रजाजनों में प्राणियों का मदन किये हुएों में दण्ड जायता है वह अनय का केनेवाला पुरुष किसी से भी मय को नहीं प्राप्त होता है ।

**अथ प्रजाजनों को कैसे सुख और ऐश्वर्य हो इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषं वाजयन्तः ।**

**जनीयन्तो अनिदामश्चितोतिमा व्यावयामोऽवृते न कोशम् ॥१६॥**

**भाषार्थ—**हे मन्त्र्यो ! जैसे ( गव्यन्तः ) अपनी गीर्वाणी दृष्टा ( अश्वायन्तः ) अपने घोड़ों की दृष्टा ( वाजयन्तः ) विज्ञान वा मन्त्र की दृष्टा ( जनीयन्तः ) तथा स्त्री की दृष्टा करते हुए ( विप्राः ) बुद्धिमान् हम लोग ( सख्याय ) मित्र होने के वा विप्रकर्म के लिये ( वृषं ) सुख के वर्धन वाले पिता ( अश्विनाम् ) जन्म देने वाली माता ( अनिदामश्चितोतिमा ) वा जिसकी रक्षा कीज नहीं होती उस निश्चरशक पुरुष को और ( मन्त्र ) रूप में ( कोशम् ) मेघ के ( न ) समुदाय ( इन्द्रम् ) वा सूर्य के समुदाय प्रकाशमान राजा की ( आ, व्यावयामः ) प्राप्त करावें वैसे इस सब को आप लोग भी जोरों की प्राप्ति करावें ॥ १६ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमा वाचकशु०—जिनको सुख और ऐश्वर्य की दृष्टा हो वे मेघ के समुदाय जन वर्धन और निरन्तर रक्षा करनेवाले राजा की विनम्रता के लिये ग्रहण करें ॥ १६ ॥

**अथ ईश्वरोपासना विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—**

**व्रता जो बोधि दृष्टान आपिरमिह्यस्ता मन्त्रिता सुम्यानाम् ।**

**सखा पिता पितृवमः पिता कर्तुं लोकं सुते वयोवाः ॥१७॥**

**भाषार्थ—**हे विद्वान् ! जो ( नः ) हम लोगों का वा हम लोगों को ( व्रता ) रक्षा करने ( वयोवाः ) उत्तम प्रकार देखने ( आपि ) व्याप्त रहने ( मन्त्रिता ) सम्मुख अन्तर्धानों से उपदेश देने ( बोधि ) सुख देने और ( सखा ) मित्र ( पिता ) संसार का उत्पन्न करनेवाला ( लोकं ) मन्त्रों के सुख शान्ति

आदि गुणों से युक्त ( विदुषाम् ) उत्पन्न वा पालन करने वालों का ( पितृवः ) अत्यन्त पालन करनेवाला ( कर्ता ) कर्तापुत्र ( लोकम् ) लोक की ( उन्नते ) कामता करते हुए के लिए ( ईम् ) सब को ( न ) ही ( कर्मोवा ) जीवन वा सुन्दर वस्तु का धारण करनेवाला अगदीश्वर है, ऐसा उसको ( बोधि ) जानो ॥१७॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर मित्र के सत्य सबका सुखकर्ता, सत्य का उपदेश देनेवाला, उत्पन्न करने वालों का उत्पन्नकर्ता, पालन करने वालों का पालनकर्ता, सब कर्मों का देखने वाला, न्यायाधीश, अन्तर्ध्यामी अभिव्याप्त है उसी को जानकर उपासना करो ॥ १७ ॥

अब राज्यवर्द्धन प्रकार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**सखीयुतामन्त्रिता बोधि सखा गुणान इन्द्र स्तुवते ययौ धाः ।**

**ययं धा ते चक्रमा सबाध आभिः क्षमीभिर्मह्यन्त इन्द्र ॥१८॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले ( सखीयताम् ) मित्र के सद्गुण आचरण करते हुए पुरुषों के ( सखा ) मित्र ( अविता ) रक्षा करनेवाले ( गुणानः ) स्तुति करते हुए ( स्तुवते ) प्रशंसा करनेवाले के लिए ( ययः ) सुन्दर धन को ( धा ) धारण कीजिये । और हे ( इन्द्र ) सूर्य के सद्गुण विद्या और विनय से प्रकाशित जो ( ययम् ) हम लोग ( हि ) ही ( ते ) आपके लिये ( आभिः ) इन ( क्षमीभिः ) क्रियाओं से ( मह्यन्त ) बड़ के सद्गुण आचरण करते हुए ( ययः ) सुन्दर धन को ( चक्रमा ) करें उनको आप ( सबाध ) बिलोडन के सहित वर्तमान होते हुए ( धा बोधि ) अच्छे प्रकार जानिये ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! यदि राज्य बढवाने की आप इच्छा करें तो पक्षपात का त्याग करके सब के साथ मित्र के सद्गुण वर्तान करिये और श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करते और दुष्ट पुरुषों को दण्ड देते हुए अपने तेज की प्रसिद्धि करिये ॥ १८ ॥

फिर वैसे जनो को राजा राज्यकर्मों से रक्के इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**स्तुत इन्द्रो मधवा यद्व बुत्रा भूरीष्येको अप्रतोनि हन्ति ।**

**अस्य प्रियो जरिता यस्य धर्मजकिदुं वा वारयन्ते न मर्त्ताः ॥१९॥**

पदार्थ—हे राजन् ! ( यस्य ) जिन के ( धर्मज ) गृह में ( प्रिव ) मनोहर ( जरिता ) स्तुति करनेवाला ( स्तुत ) प्रशंसित ( मधवा ) बहुत ऐश्वर्य से युक्त ( इन्द्रः ) सूर्य के सद्गुण प्रतापी राजा जैसे सूर्य ( अप्रतोनि ) नहीं प्रतीत ( भूरीषि ) बहुत ( बुत्रा ) मेघों के अवयवों को ( एक ) सहायरहित अर्थात् भकेला भी ( हन्ति ) नाश करता है वैसे ही ( यत् ) जो असहाय ( अस्य ) इसकी सेना से ( ह ) निश्चय से विद्वान् बहुता का नाश करनेवाला वर्तान करे उसको ( देवाः ) विद्वान् लोग ( नकिः ) नहीं ( वारयन्ते ) रोकते हैं और ( न ) न ( मर्त्ताः ) अविद्वान् लोग ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा सत्य के उपदेशक अपने प्रिय कारक विद्वानों की राजकृत्य में रक्षा करे, उसका पराजय करने को कोई भी नहीं समर्थ होवे ॥ १९ ॥

अब असात्य आदि जनो से राजा की न्याय के बीच प्रवृत्ति कराने को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**एवा न इन्द्रो मधवा विरुष्ठी करस्सुत्या चर्षणीधृदन्वा ।**

**स्व राजा जुनुषां वेष्टस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे । २० ॥**

पदार्थ—हे राजन् ! ( यत् ) जो ( न ) हम लोगों के लिये ( राजा ) प्रकाशमान ( मधवा ) मनदाता ( विरुष्ठी ) बड़े ( चर्षणीधृत् ) मनुष्यों को धारण करनेवाले ( अमर्वा ) बोडों से रहित ( इन्द्र ) राजा ( स्वम् ) आप ( सत्या ) नहीं नाश होने वाले कायों को ( करत् ) मिड करे ( एवा ) वही आप ( अनुषाम् ) जन्म वाले ( अस्मे ) हम लोगों के ( माहिनम् ) बड़े ( श्रवः ) श्रवण वा श्रवण को ( अधि, वेहि ) अधिक धारण करें इसी प्रकार ( जरित्रे ) स्तुति करने वाले के लिये भी ॥ २० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अन्याय में प्रवर्तमान राजा को रोकने हैं वे सत्य के प्रचार करनेवाले होते हुए बड़े सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

अब असात्य आदिकों की भी कार्यप्रवृत्ति को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**नृ द्रुत इन्द्र नृ गुणान इषं जरित्रे नद्यो न पोषेः ।**

**अकारि ते हरिषो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रुध्यः सदासाः ॥२१॥२४॥**

पदार्थ—हे ( हरिष ) श्रेष्ठ मनुष्यों से युक्त ( इन्द्र ) राजन् ! जो ( नृबानः ) सत्य की स्तुति करते हुए आप हम लोगों से ( नृ ) सीध ( स्तुत ) प्रशंसित ( अकारि ) किये गये वह आप ( जरित्रे ) स्तुति करनेवाले के लिये ( नद्यो ) नदियों के ( न ) सद्गुण ( इषम् ) अन्न वा विज्ञान को ( पोषे ) बढाओ और हे राजन् ! आप से ( नव्यम् ) नवीन ( ब्रह्म ) बड़ा धन ( नृ ) मिश्रण से किया गया उन ( ते ) आप के हम लोग ( सदासा ) सेवकों के साथ वर्तमान ( रुध्यः ) बहुत बाहनों से युक्त ( धिया ) बुद्धि वा कर्म से अनुकूल ( स्याम ) होवें ॥ २१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अति उत्तम गुण कर्म स्वभाव और विद्या से युक्त और प्रजा के हित के लिये बन और जनों को बढाता है उसके अनुकूलन से कर्तव्य करके सेवा के अङ्गों को बड़ सम्पादन करना चाहिये ॥ २१ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, प्रजा और पुरुषों के गुण वर्तान होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तहर्षा सूक्त और चौबीसवां वर्ष समाप्त हुआ ॥

॥

अब त्रयोवर्षावस्थाकावस्था सूक्तस्य नामवेव आदिः । इन्द्राविली देवते ।

१, ८, १२ विष्टुम् । ५-७, १-११ निबृत्तिविष्टुम् । १ वीरत स्वरः ।

२ पङ्क्तिः । ३, ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ११ स्वरार्ध पङ्क्तिस्तद्वन्तः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में उत्तम ऐश्वर्यवात् मनुष्य के लिये अच्छे मार्ग का उपदेश करते हैं—

**अयं पन्था अनुविशः पुराणो यतो देवा उद्वायन्त विन्धे ।**

**जतश्चिदा जनिषीष्ट प्रष्टो मा मातरमसुया पत्तये कः ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! ( यतः ) जिस से ( विन्धे ) सब ( देवाः ) विद्वान् लोग ( उद्वायन्त ) उत्पन्न होते हैं वह ( अयम् ) यह ( अनुविशः ) अनुकूल प्राप्त ( पुराण ) पुरादि काल से सिद्ध ( पन्था ) मार्ग है जिससे वह संसार ( प्रष्टः ) बड़ा ( जनिषीष्ट ) उत्पन्न होवे ( अतः ) इस कारण से ( चित् ) भी आप ( अनुविशः ) उस उत्पत्ति से ( मातरम् ) माता को ( पत्तये ) प्राप्त होने को ( मा ) मत ( आ, क ) करे ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस मार्ग से यथार्थवत्ता पुरुष जावे उसी मार्ग से आप लोग भी बतों जो बड़ी बुद्धि भी हावे तो भी माता का अपमान किसी को न करना चाहिये ॥ १ ॥

फिर बुद्धात् से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**नाहमतो निरया दुर्गहेतुचिरथता पार्थाभिर्गमाणि ।**

**बहूनि मे अकृता कर्त्तव्यानि युध्यं स्वेन सं स्वेन पृच्छे ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( अहम् ) मैं ( दुर्गहा ) दुःख से प्राप्त होने योग्यों का नाश करनेवाला ( न ) न होऊ ( पार्थाभिः ) पार्थ से ( निः, गमानि ) जाऊ ( मे ) मेरे ( बहूनि ) बहुत ( अकृता ) न किये गये ( कर्त्तव्यानि ) कर्त्तव्य कर्म हैं ( तिरश्चता ) तिरछे बाके से ( स्वेन ) किससे ( युध्यं ) युद्ध करू ( स्वेन ) अथ से ( सन्, पृच्छे ) पूछू वैसे आप ( अतः ) इस कारण से ( एतत् ) इस पूर्वोक्त को ( नि ) अत्यन्त ( अयं ) प्राप्त होगी ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे मैं कर्म नहीं करता हूँ और करके न किये गये न रखता हूँ मेरे साथ जो युद्ध की इच्छा करे उसके साथ युद्ध में पूछने योग्य को पूछता हूँ वैसे इस सब का आचरण करो ॥ २ ॥

अब उत्तम ऐश्वर्यवात् राजा के लिये सेना के सरक्षण विषय को अगले

मन्त्र में कहते हैं—

**परायती मातरमन्वचष्ट न नातुं गान्यनु नृ गमानि ।**

**त्वष्टुर्गृहे अपि वरसोममिन्द्रः शतधन्यं चम्बोः सुतस्य ॥३॥**

पदार्थ—जैसे ( इन्द्र ) मनुष्यों का नाश करनेवाला सेना का ईश ( त्वष्टुः ) प्रकाश के ( गृहे ) स्थान में ( सुतस्य ) ऐश्वर्य से युक्त के ( मातरमन्वचष्ट ) प्रसन्न धन में साधु ( सोमम् ) घोषधियों के रस को ( चम्बोः ) सेनाओं के मध्य में ( अपि वत् ) पीता है ( परायतीम् ) और मरनेवाली ( मातरम् ) माता को ( न ) नहीं ( अनु, अचष्ट ) प्रसिद्ध करे वैसे मैं ( नृ ) सीध ( अनु, गमानि ) पीछे जाऊ और वैसे मैं ( न ) न ( अनु, गमानि ) पीछे जाऊ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सेना के अधीन राजगृह में सत्कार को प्राप्त होकर नियमित आहार और विहार से पूर्ण बल का उत्पन्न करके दोनों अपनी और शत्रुओं की सेना के मध्य में विवाद का नाश करे वा युद्ध करावे उनका सदा ही विजय और जैसे रोगग्रस्त माता की सन्तान सेवा करते हैं वैसे ही सेना का सेवन करने हैं वे न्याय के अनुयायी होते हैं ॥ ३ ॥

अब उत्तम ऐश्वर्यवात् पुरुष के लिये काल बुद्धात् से अच्छे मार्ग का उपदेश

अगले मन्त्र में करते हैं—

**किं स ऋषयकृणुवधं सवत्सं मासो जभारं शरद्वं पूर्वीः ।**

**नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्वातेष्ट ये जनिन्वाः ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ये ) जो ( जनिन्वाः ) उत्पन्न होनेवाले ( अस्तः ) बीच ( जातेषु ) उत्पन्न हुए पदार्थों में ( पूर्वीः ) पुरादि काल से सिद्ध ( शरद्वः ) शरद्व ऋतुओं को जानते हैं ( जतः ) और जो ( न्वस्य ) इसका ( प्रतिमानम् ) परिमाण साधन ( नही ) नहीं ( अस्ति ) है वा ( जातः ) जैव अर्थात् मांस ( जभार ) पोषण करे और ( यम् ) जिसे ( शतधन्यं ) सठ सवारहित ( त्वष्टुः ) सत्य ( कृणुवत् ) प्रसिद्ध करे ( सः ) वह ( य ) और ( किम् ) किस की ( नृ ) मिश्रण से प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

मार्गार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे काल मास आदि अवयवों को धारण करता है और आप अनन्त हुआ संसार में उत्पन्न हुआ मैं आपनेवाला है वैसे ही आप लोग भी करो ॥ ४ ॥

अब मातृ करनवाली माता से उत्पन्न ऐश्वर्यवान् पुत्र के पालनविधि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अवधमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्र माता वीर्यमा न्युष्टम् ।

अवोदस्यास्त्वयमस्तु वसान आ रौदसी अपृष्टाज्जायमानः ॥५॥२५॥

पदार्थ—जैसे ( मन्यमाना ) आदर की गई ( माता ) माता ( गुहा ) गुह्य में ( वीर्यमा ) पराक्रम से ( न्युष्टम् ) अत्यन्त प्राप्त ( इन्द्रम् ) राजा को ( अवधमिव ) निन्दनीय के सदृश ( अस्त्वयम् ) करती है वैसे ही ( जायमानः ) उत्पन्न होनेवाला सूर्य ( रौदसी ) अन्तरिक्ष और पृथ्वी का ( आ, अनुयात् ) पालन करता है और जैसे ( अस्त्वयम् ) रूप का ( वसानः ) आच्छादन करता हुआ जन ( स्वयम् ) आप ही ऊपर को प्राप्त होते वैसे जो ( उत्त, अस्त्वयम् ) उठता है वह ( अस्त्वयम् ) अनन्तर सब जगत् की रक्षा करता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जो माता सूर्य के समान जिन अपने सन्तानों को बोध कराती और पुष्ट आचरणों को दूर करके शिक्षा करती है जो वे सन्तान उत्तम होते हैं ॥ ५ ॥

अब मेघ के कृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एता अर्धन्यस्तलाभवन्तीर्कृतावरीरिव संक्रोशमानाः ।

एता वि पृच्छ किमिदं मनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं हजन्ति ॥६॥

पदार्थ—हे जिज्ञासुजन ! जो ( एताः ) ये नदिया ( कृतावरीरिव ) प्रातःकाली के सदृश ( संक्रोशमानाः ) उच्चस्वर को करती हुई ( अललाभवन्तीः ) अलल अर्हती हुई ( अर्धन्यस्त ) जाती हैं सो ( एताः ) ये ( किम् ) क्या ( इन्द्रम् ) यह ( मनन्ति ) शब्द करती हैं ऐसा ( वि, पृच्छः ) विशेष करके पृच्छिये और ये ( आपः ) जल ( कम् ) किस ( परिधिम् ) तैर और ( अद्रिम् ) मेघ को ( वजन्ति ) भ्रम्यते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! यह नदिया मेघों की पुत्रियाँ अर्थात् उन से उत्पन्न हुई तटों को तोड़ती और अर्धवत् शब्दों को करती हुई प्रातःकाली के सदृश जाती हैं ऐसे ही सेना शत्रुओं के सम्मुख प्राप्त होती हैं ॥ ६ ॥

फिर मेघ विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

किमु विदस्ये निविदो मनन्तेन्द्रस्यावयं दिधिचन्त आपः ।

ममैतान्पुत्रा महता वधेन वृत्रं जघन्वा अंसुजहि सिन्धून् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( वयम् ) तुम पुत्र के ( इन्द्रस्य ) सूर्यसम्बन्ध की ( निविदः ) अत्यन्त ज्ञान जिन से वे बाणी ( अस्वम् ) इस मेघ के लिये ( किम् ) क्या ( उ ) और ( सिन्धू ) क्यों ( मनन्ते ) शब्द करती हैं ( आपः ) जल ( अजघन्वा ) निन्द्य ( निविदन्ते ) शब्द करते हैं मेरा ( वृत्रम् ) सन्तान ( महता ) बड़े ( वधेन ) वध से ( एताम् ) इनको और ( वृत्रम् ) मेघ का ( अजघन्वा ) नाश किये हुए सूर्य ( सिन्धूम् ) नदियों को ( वि, अंसुजहि ) उत्पन्न करता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में अविति सूर्य और मेघ के अलङ्कार से सेना, सभा-ध्यक्ष और राजा के कृत्य का वर्णन है । जैसे अन्तरिक्ष के पुत्र के समान वर्तमान सूर्य मेघ का नाश करके नदियों को बहाता है वैसे ही विद्वान् का उत्तम प्रकार शिक्षित पुत्र सेना का अध्यक्ष शत्रुओं का नाश करके सेनाओं को ऐश्वर्य प्राप्त कराता है ॥ ७ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ममैव त्वां पुत्रिः परास ममैव त्वां कुषवा जगारं ।

ममाक्षिपदायः शिशवे मशुक्मर्मचिचिन्द्रः सहसोदतिष्ठ ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो ( पुत्रिः ) पूर्ण जीवीस कर्म वाली ( त्वा ) आप को ( मशुक् ) मधुसूत करती हुई ( कुष ) भी ( परास ) पराक्रमुक्त करती है, जो ( मशुक् ) प्रमादयुक्त करती हुई ( कुषवा ) निरुद्ध मेरणावालों ( त्वा ) आप को ( कुष ) भी ( जगार ) निमग्नता है उसके सङ्ग का त्याग करो और जो ( मशुक् ) मधुसूत करती हुई ( आपः ) जलों के सदृश वर्तमान माता से ( विद् ) जैसे ( शिशवे ) पुत्र के लिये ( मशुक्मर्मचिचिन्द्रः ) सुख देती है और जो ( मशुक् ) सुख देता हुआ ( विद् ) सा ( इन्द्रः ) सूर्य के सदृश ( सहसा ) बल से ( जन्, अक्षिपद् ) उठता है उस की सेवा करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो लोग प्रमत्त स्त्रियों में प्रयास को नहीं प्राप्त होते वे अली होते हैं और जो पुत्र के समान प्रजाओं का पालन करते हैं उत्तम होते हैं ॥ ८ ॥

ममैव त्वां पुत्रिः परास ममैव त्वां कुषवा जगारं ।

अथा निविद उत्तरी बहुवाञ्छितो वासस्य सं पिणग्वधेन ॥९॥

पदार्थ—हे ( ममैव ) बहुत वन से युक्त पुरुष ! जो ( ते ) आप के ( वासस्य ) केने योग्य के ( वधेन ) ताडन से ( शिरः ) शिर को ( सप्त, पिणग्वधेन ) अच्छे पीसता है ( वधेन ) लीच लिये गये हैं बल आदि जिस के ऐसा ( निविदः ) अत्यन्त शत्रुओं का नाश करनेवाला ( हन् ) सुख के आस पास के भागों को ( आपः ) दूर करने में ( जगार ) नाश करता है ( जगार ) इस के अनन्तर ( मशुक् ) प्रसन्न होता हुआ ( वन ) भी ( उत्तर ) आगे के समय में होनेवाला ( निविदः ) अत्यन्त बाणों से छेदा गया ( बहुवाञ्छितः ) होता है उस को आप दण्ड दीजिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो विरुद्ध कर्म से प्रजाओं में घेष्टा करता है उसे सदा बड़ बड़े को हस्तों से व्याधित कर सब प्रकार से बांधो ॥ ९ ॥

गृष्टिः संसूय स्थविरं तवागामनाध्वं वृषं त्वमिन्द्रम् ।

अरीर्हं त्वं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्वं इच्छमानम् ॥१०॥

पदार्थ—हे बहुवनयुक्त राजन् ! जैसे ( गृष्टिः ) एक बार प्रसूता हुई गी ( माता ) माता ( चरथाय ) चरने के लिए ( त्वं ) बछड़े के सदृश ( स्थविरम् ) स्थूल वा बृद्ध ( तवागामनाध्वं ) बल को प्राप्त ( अनाध्वम् ) प्रगल्भ ( वृषम् ) उत्तम कर्मों से प्रेरणा करने और ( वृषम् ) बल के सदृश बलिष्ठ ( अरीर्हम् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ( स्वयम् ) आप ( गातुम् ) वाणी ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्यवान् सुत की ( इच्छमानम् ) इच्छा करते हुए को ( संसूय ) उत्पन्न करती है वैसे मैं आपके लिए पृथ्वी के राज्य का ( तन्वं ) विस्तार करूँ ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् जैसे उत्तम प्रकार सम्कारयुक्त किये हुए अन्न भावि का समय पर नियमित भोजन किया गया शरीर को पुष्ट कर बल को बढ़ा शत्रुओं का विजयनिमित्त हो राज्य को बढ़ाता है वैसे ही आप म्याय से हम लोगों के सुख की वृद्धि करो ॥ १० ॥

अब सन्तानशिक्षा से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उत माता महिषमन्वेनदमी त्वां जहति पुत्र देवाः ।

अवाञ्छीद्वमिन्द्रो हनिष्यन्तस्त्वं विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११॥

पदार्थ—हे ( त्वम् ) मित्र ( विष्णो ) सम्पूर्ण विद्वानों में व्यापक ( पुत्र ) पुत्र से रक्षा करनेवाले ! आप ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् सूर्य के सदृश पालन-कर्ता ( वृषम् ) मेघ के समान शक्ति का ( हनिष्यद् ) नाश करनेवाले हुए ( वितरम् ) विविध प्रकार करने योग्य को ( वि, क्रमस्व ) पुरुषार्थी हूजिए ( अस्वम् ) इसके अनन्तर ( माता ) माता ( त्वा ) आपको ( महिषम् ) बड़ा ( अवेनम् ) मांगती है जो इस प्रकार ( उत ) भी जैसे पिता ( अवाञ्छीत् ) कहता है वैसे नहीं करें सो ( अजी ) यह ( देवाः ) विद्वान् लोग आपका ( अनु, जहति ) त्याग करते हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सन्तानों की योग्यता है कि जैसे विद्वान् माता पिता ब्रह्मचर्य भावि से विद्या का ग्रहण और शरीर के सुख के वर्धन का उपवेश करें वैसे ही करता चाहिए और जो उत्तम शीलयुक्त पुत्र होते हैं उन्हीं पर यथार्थवत्ता अध्यापक लोग कृपा करते और दुर्व्यमनियों का त्याग करते हैं ॥ ११ ॥

कस्तं मातरं विधवा मशुक्कच्युं कस्तं मां जिघांसन्तस्व ।

कस्तं देवो अथि मादीक आसीद्यत्प्राप्तिः पितरं पादशुभं ॥१२॥

पदार्थ—हे पुत्र ! ( ते ) आप की ( मातरम् ) माता को ( जिघांसम् ) पतिहीन ( कः ) कौन ( अशुक् ) करता है ( कः ) कौन ( चरन्तम् ) बिहार वा ( शयन ) शयन करते हुए ( त्वाम् ) आपको ( जिघांसत् ) मारने की इच्छा करता है ( कः ) कौन ( ते ) आपके ( देवः ) अष्ट गुणवाला ( मादीक ) सुख करने में ( अथि ) सर्वोपरि ( आसीत् ) विराजमान हुआ है ( पादशुभम् ) हे पैरों को ग्रहण करने योग्य ( शत ) जो आपके ( पितरम् ) उत्पन्न करनेवाले को ( प्र, अक्षिपद् ) नाश करता है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे सन्तानो ! जो पुरुष वा स्त्रियाँ आप लोगों के पितरों का नाश करके माताओं को बिचवा करें और आप लोगों का नाश करें उन का विश्वास आप लोग न करिये ॥ १२ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अवर्त्या शुनं आन्वाणि पेवे न देवेषु विविदे महितारम् ।

अपश्यं आयाममदीयमाना नद्या मे श्वेनो मध्वा जगार ॥१३॥२६॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो ( मे ) मेरी ( अवहीयमाना ) नहीं सत्कार की गई ( आयाम् ) स्त्री को ( जगार ) बाज पक्षी के सदृश जीव चलनेवाला सब ओर से ( आ, जगार ) हड़ता है ( अवा ) इसके अनन्तर ( शुनः ) कुत्ते की ( अवाञ्छी ) नहीं करने योग्य ( आन्वाणि ) और उठे हैं हाड़ जिन से उन स्थूल मादिकों के सदृश शरीर को ( पेवे ) पचाता है इस से ( अक्षिपद् ) सुख करने वाले आपका मैं ( अशुक् ) वर्णन करूँ । वह जैसे ( देवेषु ) विद्वानों में ( अनु )

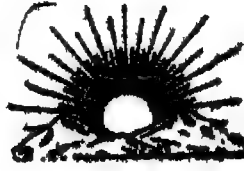


बहुत विमान को ( न ) नहीं ( विधिसे ) प्राप्त होता है वैसे उस को निरन्तर दण्ड दीजिए ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमानाकार है। हे राजन् ! जो पुष्प और शिखा अविचार करे उसे को तीव्र दण्ड देकर नाश करो ॥ १३ ॥

इस सूक्त में इन्द्र देव राजा और विद्वान् के कृत्य काव्य करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तृतीय अष्टक में वाचनी अन्वय अठारहवीं सूक्त और अष्टमीवर्षी अर्थ समाप्त हुआ ॥



## अथ तृतीयाष्टके षष्ठाऽध्यायः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशसर्वस्वीकीर्तिवर्तितमस्य सूक्तस्य वाचकमुत्तोपमानाकारः । इन्द्रो देवता । १ विराट्  
जिह्वुः । २, ३ निषुत् जिह्वुः । ३, ४, ५ निषुत् अन्वः । वंशतः

स्वरः । ४, ५ भुरिक् पठ्यतिः । ७, १० पठ्यतिः । ११ निषुत्पठ्यतिः ।

पठ्यतिः स्वरः ॥

अथ तृतीयाष्टक में छठे अध्याय का और अष्टमीवर्षी सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम अन्व में इन्द्रपञ्चमस्य राजपुरुषों का उपदेश करते हैं—

एवा त्वामिन्द्र वज्रिज्जन् विभे देवातः सुहवांस उमाः ।

महामुमे रोदसी दृष्टुष्वं निरेकमिहृणते वृत्रहस्ये ॥१॥

पदार्थ—हे ( वज्रिज्जन् ) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्र से युक्त ( इन्द्र ) शत्रुओं के विदीर्ण करनेवाले ! ( अथ ) इस समार में जो ( उमाः ) रजा आदि के करने वाले ( सुहवासः ) उत्तम प्रकार पुकारनेवाले ( विभे ) सब ( देवातः ) विद्वान् लोग ( महाम् ) बड़े ( दृष्टुष्वं ) मन्त्र से विस्तीर्ण ( वृत्रहस्ये ) अष्ट ( एकम् ) अद्वितीय ( त्वाम् ) आप को ( एवा ) ही ( वृत्रहस्ये ) मेघ के नाश के सदृश शत्रु का नाश जिस संवत्स में उसमें ( उमे ) दोनों ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी सूर्य के सदृश ( इत् ) ही ( निः, वृणते ) स्वीकार करते हैं उन्हीं की आप सेवा करिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग अतिश्रेष्ठ गुणवाले राजा का स्वीकार करें वे ही पूर्ण सुख वाले होते हैं ॥ १ ॥

अथ मेघवृष्टान्त से राजपुरुषों को अगले अन्व में कहते हैं—

अवांसुजन्त जिह्वयो न देवा भुवः सञ्जाकिन्द्र सत्ययीनिः ।

अहर्वाहि परिशयानमर्वाः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त ! आप ( भुव ) पृथिवी के मध्य में ( सञ्जाह् ) उत्तम प्रकार प्रकाशमान चक्रवर्ती ( सत्ययीनिः ) नहीं नाश होनेवाला कारण वा स्थान जिसका ऐसा सूर्य जैसे ( परिशयानम् ) अन्तरिक्ष में सब ओर से जलम करनेवाले ( अहिम् ) मेघ का ( अहम् ) नाश करता है ( अर्वाः ) जल ( वर्तनीः ) मापों को ( प्र, अरवः ) अर्थात् करोवता है वैसे ही शत्रुओं का नाश करके विराजमान हुआये जो ( विश्वधेनाः ) समस्त वाणिज्योंवाले ( विश्वः ) दुःख-जीवनों के ( न ) समान ( देवाः ) चन्द्र आदि दिव्य पदार्थों के सदृश विद्वान् जन आप को ( अथ, अवांसुजन्त ) उत्पन्न करते हैं उनका तुम संग करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानवाचकमुत्तोपमानाकार है। हे राजन् ! आप सत्य आचरण करनेवाले हुए यथावत् वक्ताओं के सहाय से चक्रवर्ती सार्वभौम हुए और जैसे सूर्य मेघ का नाश करके ससार को सुख देता है वैसे और शत्रुओं का नाश करके प्रजापतियों को आनन्द दीजिये ॥ २ ॥

अनुष्णुवन्तं वियतमबुध्यमध्यबुध्यमानं सुषुपाणिन्द्र ।

सप्त प्रति प्रवत् आशयानमहि वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त ! आप जैसे सूर्य ( वज्रेण ) वज्र से ( आशयानम् ) सब ओर से सीते हुए ( अहिम् ) मेघ का नाश करके ( सप्त ) सात ( प्रवत् ) लीके के मापों को प्राप्त करता है वैसे ही ( अपर्वन् ) एवं से रहित समय में ( अनुष्णुवन्तम् ) लोगों में नहीं तृप्त ( सुषुपाणिम् ) उत्तम प्राणयुक्त ( वियतम् ) नहीं क्षितिप्रिय ( अनुध्यम् ) बुद्धि से रहित ( अनुष्णमानम् ) उपदेश से भी नहीं जानते हुए अधार्मिक जन की दण्ड से ( प्रति, वि, रिणाः ) विविध विद्या करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमानाकार है। जैसे सूर्य किरणों से मेघ को काट के और पृथिवी पर गिरा के नाना प्रकार के मापों में बहाता है वैसे ही विद्या से अधिद्या का नाश करके दण्ड से अधार्मिक पुरुषों को कारयुक्त अवधि जेलखाने में छोड़ के बहुत शांतायुक्त नीति का सर्वत्र प्रचार करें ॥ ३ ॥

अथ मेघवृष्टान्त से राजसेनाविषय को अगले अन्व में कहते हैं—

अज्ञोदयच्छवसा क्षामं बुध्नं वार्यं वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।

दृष्टान्यौन्नादुशमानं ओजोऽवाभिन्त ककुभः पर्वतानाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( तविषीभिः ) बल से युक्त सेनापति के साथ ( इन्द्र ) पुष्ट पुरुषों का नाश करनेवाला ( क्षवसा ) बल से ( वातः ) वायु ( क्षामं ) सहजयुक्त ( बुध्नम् ) अन्तरिक्ष और ( वाः ) उदक को जैसे ( न ) वैसे ( वृष्टान्ति ) पुष्ट शत्रुसैन्य दलों को ( अज्ञोदयम् ) सञ्चालित करता है तथा ( ओज ) पराक्रम की ( उशमानः ) कामना करता हुआ ( औन्नात् ) मुकुता करता है ( पर्वतानाम् ) मेघों के शिखरों के सदृश ( ककुभः ) शिखरों और शत्रुओं की ( अथ, अभिन्तम् ) नोचता है उसी की अपना राजा करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है। जैसे वायु अग्नि से सूख किये हुए जल को अन्तरिक्ष में पहुँचा और वर्षाकर संसार को आनन्द देता है वैसे ही सामर्थी विद्या और सेना के सहित राजा दुष्टों को न्यून करके दण्ड और उपदेश से दुष्टों का नाश कर और सज्जनों को सिद्ध करके प्रजापतियों को निरन्तर सुख दीजिए ॥ ४ ॥

अथ सेनापति के पुण्यों को अगले अन्व में कहते हैं—

अभि प्र द्रुर्जन्मयो न गर्म रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।

अतर्पयो विसृत उज्ज ऊर्मीन्त्वं वृतां अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के नाश करनेवाले सेनापति ! जो ( अजयः ) मेघ ( अजयः ) शत्रुओं के ( न ) तुल्य ( पर्णम् ) गर्म को ( प्र, अभि, ययुः ) सब ओर से प्राप्त होते हैं ( रथा इव ) वाहनों के सदृश ( साकम् ) साथ ( अ, ययुः ) शीघ्र जाते हैं और जैसे उन ( विसृतः ) जो विविध करके फैलती ( ऊर्मीन् ) उन तरङ्गों के सहित ( सिन्धून् ) नदियों का सूर्य ( उज्ज ) नाश करे वा ( अरिणाः ) नाश करता है वैसे ( त्वम् ) आप ( वृताम् ) स्वीकार किये हुए लोगों की ( अतर्पयः ) तृप्त करो और आपके मृत्यु जाँचें और स्त्री गर्म को धारण करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमु०—जिस राजा की मेघ के सदृश ऊँची और वाहनों के सदृश साथ चलने वाली सेनायें चलती हैं उसका सूर्य के सदृश विजय होता है ॥ ५ ॥

फिर राजपुरुषों को अगले अन्व में कहते हैं—

त्वय्यहीमवनि विश्वधेनान्तुर्धितये बुध्याय सरन्तीम् ।

अरमयो नमसंजदर्थः सुतरणो अकुषोरिन्द्र सिन्धून् ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( त्वम् ) आप ( बुध्याय ) शत्रुओं के नाश करनेवाले के और ( बुध्याय ) प्राप्त होने योग्य सुख के लिए ( विश्वधेनम् ) सम्पूर्ण वाणी जिसके लिए उस ( अरमयो ) प्राप्त कराती हुई ( अरमयो ) रक्षा करने वाली ( अहीम् ) पृथिवी को प्राप्त होकर हम लोगों की ( नमसा ) अन्न आदि से ( अरमयो ) रमायी और जिनमें ( अरमः ) जल ( एकम् ) कामना है ( सिन्धून् ) मरों की ( सुतरणम् ) सुखपूर्वक तरना जिनका ऐसे ( अकुषोरिन्द्रः ) करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप की राज्य की प्राप्ति हो आप ही आनन्दित हो हम लोगों की नहीं आनन्द देंगे तो आपका आनन्द शीघ्र नष्ट हो और आप सब

सोनों के सुख के लिए नदी नव सदाश और समुद्र आदिकों के पार उतरने के लिए नीचा धादि बना के बनाकर निरंतर करिये ॥ ६ ॥

अब प्रजापति के निमित्त राज-उपदेश को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**प्रायुषी नमन्वी न वक्रा पक्षा अभिन्नयुत्सीर्षतज्ञाः ।**

**धन्वायजी अपुषाकृपाणां अपोमिन्द्रः स्वयोः दसुपत्नीः ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्रः ) राजा ( पक्षाः ) देवी ( पक्षाः ) निरन्तर करनेवाली सेनाओं को और ( नमन्वीः ) मनुष्यों के नाम करनेवाले और सुख देने ( अपुषः ) आगे चलनेवाली नदियों को ( व ) जैसे ( पक्षाः ) सत्य को माननेवाली ( वक्राः ) युवती स्त्रियों को ( प्र, अभिन्नयुत्सीर्षतज्ञाः ) अच्छे प्रकार देने वा सींचे ( पक्षाः ) और स्वल्पप्रदेशों को अर्थात् जहाँ जहाँ आग्नेयानों को ( अपुषाः ) तथा जिस चलावेवाले ( तुषाभाः ) आगे मनुष्यादि प्राणियों को ( अपुषाः ) सुख करे वा जो ( स्वयोः ) आच्छादन करनेवाली ( दसुपत्नीः ) कर्म करनेवाली को स्त्रियाँ हो उनके समान ( अपुषाः ) पूर्ण करे अर्थात् उनके समान परिपूर्ण सेना एवम् वही आप लोगों का राजा होवे ॥ ७ ॥

अर्थार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है—जिस राजा की नदी के सदृश और मनुष्यों के नाम करनेवाली प्रन्व और पान धादि से सुख और अपने विषय के आपने वाली पतिव्रता स्त्रियों के सदृश राजभक्त सेना होवे वही विजय प्राप्त होने योग्य है ॥ ७ ॥

फिर राज्यविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**पूर्वोत्पत्तः शरद्वं गृत्वा इज्जपन्वां असुज्जि सिन्धून् ।**

**परिष्ठिता अतृणद्वद्वानाः सीरा इन्द्रः सवितवे पृथिव्या ॥८॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे ( इन्द्रः ) सूर्य ( गृत्वाः ) पुरातन ( गृत्वाः ) चलती हुई हिंसा करनेवाली ( उत्पत्तः ) प्रभात सेना ( इज्जपन्वां ) मेघ की ( शरद्वं ) शरद ऋतुओं ( व ) और हेमन्तादि ऋतुओं को ( अज्जपन्वां ) नष्ट किये हुए ( सिन्धून् ) नद्यादिकों को ( व ) अनेक प्रकार ( असुज्जि ) उत्पन्न करता है ( परिष्ठिताः ) तथा सब ओर से स्थित ( अतृणद्वद्वानाः ) बरबदाती तटों का नाश करती हुई ( सीराः ) जो बहनेवाली नदियाँ उनको ( सवितवे ) चलने की ( पृथिव्या ) पृथिवी के साथ ( असुज्जि ) नाश करता है वैसे ही नीति और सेना को उत्पन्न करके विजय सिद्ध करो और युद्ध के लिए चलती हुई उत्तम प्रकार शिक्षित सेना में मनुष्यों का नाश करो ॥ ८ ॥

अर्थार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा प्रातःकाल के सदृश उत्तम नीति और नदी के समूह के सदृश सेना को निमित्त करता है वही पृथिवी के राज्य के योग्य है ॥ ८ ॥

**वज्रीभिः पुत्रमग्रवो अदानविश्वेशनादुरिव आ जमर्थ ।**

**वपुषो अक्षयदक्षिमावदानो निर्भुद्वस्छित्समरन्त पर्व ॥९॥**

पदार्थ—हे ( हरिः ) प्रजसित बौद्धी से युक्त राजन् ! जैसे ( निर्विश्वनात् ) अपने स्थान से ( वज्रीभिः ) उगली हुई पहाड़ियों से ( वपुषः ) नदियाँ तट धादि का प्रहरण करती हैं वैसे ही ( अक्षयः ) दान नहीं करनेवाले ( पुत्रम् ) पुत्र को ( आ, जमर्थ ) हरते हो और जैसे ( अक्षः ) अक्षकार करनेवाला ( अक्षिः ) मेघ को ( आक्षयः ) ग्रहण करता हुआ ( वि, अक्षयः ) विख्यात करता है और ( अक्षयिन् ) गमन वा काटने धर्मी मार्ग छिन्न मिन्न करनेवाला ( निः, वृत् ) निरन्तर होता ( पर्व ) और पालनेवाले को ( वपुः, अक्षयः ) अच्छे प्रकार रमाता है वैसे ही नहीं दान करनेवाला गति पाता है ॥ ९ ॥

अर्थार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! अपना पुत्र भी बुरे लक्षणों वाला हो तो नहीं अधिकार देने योग्य और वर्षाकालों से नदियाँ बढ़ती हैं वैसे ही प्रजाओं की वृद्धि करनी चाहिए ॥ ९ ॥

अब विद्या के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**प्र ते पूर्वोणि करणानि विप्राविहो आह विदुषे करीसि ।**

**यथायथा इच्छानि स्वगुत्तापसि राक्षसार्थविषयोः ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( विप्रः ) बुद्धिमान् ( राक्षसः ) राजन् ( विदुषे ) विद्वन् ! ( ते ) आपके लिये ( अथायथा ) जैसे जैसे ( पूर्वोणि ) अनादि काल से सिद्ध ( करणानि ) जिनसे करें वह काम्यसाधन ( करीसि ) और करते योग्य कर्म ( वृत्तानि ) बल-कारक ( स्वगुत्तापसि ) अपने से प्राप्त ( यथा ) मनुष्यों में हित करनेवाले ( अपसि ) कर्मों को ( विप्राविहो ) सब प्रकार से समस्त जानता हुआ ( प्र, आह ) अच्छे कहता है उनको आप ( विदुषे ) विशेष करके प्राप्त हुआ ॥ १० ॥

अर्थार्थ—हे विद्वन् राजन् ! आप विद्या केष्ट पुरुषों की शिक्षा में प्रवृत्त हुजिये और जो जो आपके लिए वे उपदेश दें वैसे ही करिये ॥ १० ॥

**न ह्येन्द्र न गृत्वात इक्षरित्रे नयो न पिपिः ।**

**अकारि ते हरिबो अक्ष नव्यन्त्रिया स्वाय रथ्याः सदासाः ॥११॥२॥**

पदार्थ—हे ( हरिः ) उत्तम पुरुषों के युक्त ! ( इन्द्रः ) प्रसन्न करने योग्य कर्म करनेवाले जिस विद्वान् से ( ते ) आपका ( नव्यन्त्रिया ) नवीन ( अक्षः ) बड़ा

धन ( अकारि ) किया जाता है उस ( हरिबो ) स्तुति करनेवाले के लिए ( स्तुतः ) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप ( नव्यन्त्रियाः ) नदियों के ( न ) सदृश ( नु ) कीर्ति ( नव्यः ) बुद्धि दिलाइये और ( गृत्वातः ) सत्य की प्रशंसा करते हुए ( इक्षरित्रे ) अन्न वा विज्ञान की ( नु ) कीर्ति दीजिये । इस प्रकार के हुए सम्बन्ध में ( रथ्याः ) रथण करने योग्य बहुत रथाधिकों से युक्त ( सदासाः ) सेवकों के सहित हम लोग ( जिवा ) बुद्धि वा कर्म से अनुकूल ( स्वाय ) होयें ॥ ११ ॥

अर्थार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है—हे राजन् ! जो प्रशंसित कर्म करें उनका आप निरन्तर सत्कार करिये और वे आपके अनुकूल हुए और तुम लोग सब धर्म, धर्म और काम के साधक हुजिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, मेघ, सेना, सेनापति, राजा, प्रजा और विद्वान् के गुण-वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह उन्नीसवाँ सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अर्थकारणार्थस्य विधातितमस्य सूक्तस्य वाचकः अवि । इन्द्रो वेत्ता । १, २, ३

निष्पत्तिरुत्पत्तिः । ४, ५ विराद्विष्पत्तिः । ६, १० विष्पत्तिः चन्द्रः । वेत्तः

स्वरः । २ परस्मिन् । ७, ८ स्वरार्थ परस्मिन् ।

११ निष्पत्तिरुत्पत्तिरुत्पत्तिः । परस्मिन् स्वरः ॥

अब ग्यारहवाँ सूक्त के अर्थों सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपञ्चाश्व राजगुणों को कहते हैं—

**आ न इन्द्रो दूरावा न आसादभिहिक्वदवसे यासदुग्रः ।**

**ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्जवाहुः सके समस्तु तुर्वणिः पृतन्यून ॥१॥**

पदार्थ—हे राजा और प्रजाजनों ! जो ( अभिहिक्वत् ) अपेक्षित सुख करने वाला ( अवाहुः ) गहन विशेष जिसकी बाहु में विद्यमान ( उग्रः ) जो तेजस्वी ( नृपतिः ) मनुष्यों का पालन करनेवाला ( तुर्वणिः ) शीघ्रकारी ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजा ( ओजिष्ठेभिः ) अत्यन्त बल आदि गुणों से युक्त मनुष्यों में उत्तम सेनाजनों के साथ ( नः ) हम लोगों की वा हम लोगों के अर्थ ( अवासे ) रक्षा आदि के लिए ( दूरात् ) दूर और ( आसात् ) समीप से वा ( आ ) सब प्रकार सेना ( यासत् ) प्राप्त होवे और ( सके ) सघामों में ( पृतन्यून ) अपनी सेना की इच्छा करनेवाले ( नः ) हम लोगों को ( सके ) साथ ( आ ) प्राप्त होवे वह हम लोगों से सदा ही रक्षा करने और सत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

अर्थार्थ—हे मनुष्यो ! सब प्रकार से रक्षा करनेवाले अने बलिष्ठ विद्या और बलयुक्त श्रेष्ठ सेनाजनों के सहित वर्तमान और सघाम में जीतनेवाले राजा का स्वीकार करके सब काल में आनन्द करो ॥ १ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**आ न इन्द्रो हरिभिर्यावच्छावांसीनोऽवसे राधसे च ।**

**सिद्धाति वज्री मघवा विश्वशीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अवासीनः ) इस काल में उत्पन्न ( मघवा ) ग्वाय से इकट्ठे किये हुए धन के होने से आदर करने योग्य ( वज्री ) शस्त्रों और अस्त्रों का जाननेवाला ( विश्वशीमं ) बड़ा ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजा ( हरिभिः ) श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ ( नः ) हम लोगों की वा हम लोगों के ( अवासे ) अन्न आदि के ( राधसे, च ) और धन के लिए ( अवाह ) उत्तम प्रकार ( आ, वासु ) प्राप्त हो ( इन्द्रम् ) इस ( यज्ञम् ) प्रजापालन रूप यज्ञ वा ( नः ) हम लोगों के ( वाजसातौ ) सघाम में ( अनु, सिद्धाति ) अनुष्ठान करे उसी को राजा मानो ॥ २ ॥

अर्थार्थ—जो राजा उत्तम सत्ता के जनो से प्रजा के सुख के लिए अन्न और धन बहुत करके सघाम में जीतनेवाला न्यायकारी होवे वही राजा होने को योग्य होवे ॥ २ ॥

अब अथाय के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**हमं यज्ञं स्वस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिप्यसि कर्तुमः ।**

**एवमिन्द्र वजिन्सन्तये धनोतान्त्वया ययमर्थ्य आजि जवेम ॥३॥**

पदार्थ—हे ( वजिन् ) गहन और अन्न के प्रयोग जानने और ( इन्द्रः ) बहुत धन के देनेवाले सेनापति जिससे कि ( अर्थः ) स्वामी ( स्वम् ) आप ( अवाहम् ) हम लोगों के ( इन्द्रम् ) इस वर्तमान ( यज्ञम् ) राजधर्म के निर्वहण यज्ञ की और ( पुरः ) नगरों को ( वज्रम् ) धारण करते हुए ( नः ) हम लोगों की ( वज्रम् ) बुद्धि का ( वजिन्सन्तये ) सेवन करने इससे ( त्वया ) आप के साथ ( ययम् ) हम लोग ( ययामाह ) जनों के ( सन्तये ) सम्यक् विभाग करने के लिए ( वजिन्सन्तये ) भेड़नी के सदृश ( वजिन्सन्तये ) सघाम को ( जवेम ) जीतें ॥ ३ ॥

अर्थार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है—जहाँ राजा मन्त्रियों और मन्त्री राजा को प्रसन्न करने और विभाग कर के और प्रहरण करके प्रीति से बलिष्ठ हुए ही ऐश्वर्य के लिए जैसी भेड़नी बकरी को मारे वैसे मनुष्यों का नाश करके विजय से युक्त होते हैं वही सम्पूर्ण सुख होते हैं ।

किर राजपुत्रों को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

**उद्यन्तु बु णः सुमना उपाके सोमस्य बु सुवृतस्य स्वभावः ।**

**हा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठयेन ॥४॥**

पदार्थ—हे ( उद्यन्तु ) कामना करते हुए ( स्वभावः ) अन्न आदि ऐश्वर्य से युक्त ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजन् । आप ( सुमना ) प्रसन्न चित्तवाले हुए ( णः ) हम लोगों के ( उपाके ) समीप में ( सुवृतस्य ) उत्तम प्रकार बिद्या और विनय से निष्पन्न अर्थात् प्रसिद्ध ( सोमस्य ) ऐश्वर्य युक्त ( प्रतिभृतस्य ) धारण किये गये के प्रति वर्तमान जन की ( बु ) निश्चय से ( सु, पा ) अच्छे प्रकार पूजा कीजिये और ( मध्वः ) माधुर्य आदि गुणों से युक्त पदार्थमयम्बन्धी ( समन्धसा ) अन्न आदि से ( पृष्ठयेन, उ ) और पीछे हुए सुख से ( मध्व, ममदः ) धच्छे प्रकार आनन्द कीजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो राजा प्रेम से भूयजनो के समूह की ऐश्वर्य और अन्न आदि से रक्षा करता है वह कामना की मिट्टि को प्राप्त होकर निरन्तर आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

**वि यो ररुष्य ऋषिभिर्नवे'मिर्वृक्षो न पृकः सृण्यो न जेता ।**

**मयो न योषामभि मन्यमानोऽच्छा विवक्षि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५॥ ३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( य ) जो ( नवेभि ) नवीन अध्ययनकर्ता ( ऋषिभि ) वेदार्थ के जाननेवालों से ( वि, ररुष्य ) स्तुति किये जाते हो । ( पृकः ) बल के ( न ) मदुश ( पृकः ) गके हुए फल आदि युक्त ( सृण्य ) बल को प्राप्त उत्तम प्रकार शिक्षित सेना के ( न ) मदुश ( जेता ) जीतने वाला ( मन्यः ) मनुष्य ( योषाम् ) स्त्री के ( न ) तुल्य प्रजा को ( अभि, मन्यमानः ) प्रत्यक्ष जानता हुआ वर्तमान है उस ( पुरुहूतम् ) बहुतों से स्तुति किये गये ( इन्द्रम् ) प्रशंसित गुणों के धारण करनेवाले को जैसे मैं ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( विवक्षि ) विशेष करके उपदेश करता हूँ वैसे इसको आप लोग भी उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जो यथार्थवक्ता जनो में प्रशंसा को प्राप्त वृक्ष के सदृश दृढ़ उत्साहरूप फलवान् अकेला सेना के सदृश जीतने वाला पतिव्रता स्त्री के सदृश प्रजा में प्रसन्न होवे उस प्रशंसित को राजा आप लोग मानो ॥ ५ ॥

**गिरिर्न यः स्वतर्वा मृष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।**

**आदर्चा वज्रं स्वविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यष्टम् ॥६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( गिरि ) मेघ के ( न ) मदुश ( स्वतर्वाम् ) अपने गुणों से दृढ़ ( वज्रं ) बड़ा ( सनात् ) सब काल में ( एव ) ही ( सहसे ) बल के लिए ( जात ) प्रसिद्ध ( उग्र ) तीव्रस्वभाव युक्त ( इन्द्र ) सूर्य के समान प्रतापी ( स्वविरम् ) स्थूल ( वज्रम् ) विजुलीरूप के ( न ) समान ( आदर्चा ) मय प्रकार से शत्रुओं का नाश करनेवाला ( भीम ) मयङ्कुर और ( कोशम् ) मेघ को ( उद्नेव ) जनो के मदुश ( वसुना ) धन से ( न्यष्टम् ) अत्यन्त प्राप्त करता है वही विजयी होने के योग्य होता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जो मेघ के सदृश बड़ा प्रजाओं का सुख करने और सनातनधर्म का सवन करनेवाला विजुली के सदृश भयङ्कर, नहीं नाश होने वाले वज्रान में युक्त शत्रुओं का नाश करनेवाला और बलवान् होवे वह सबका राजा होने को योग्य है ऐसा जानिये ॥ ६ ॥

**न यस्य वर्त्ता जनुषा न्वस्ति न राधेस आमरीता मधस्य ।**

**उद्वाधुषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥७॥**

पदार्थ—हे ( पुरुहूत ) बहुतों के पुकारने वाले ( उग्र ) प्रतापी राजन् ( मधस्य ) जिसका ( जनुषा ) जन्म में ( वर्त्ता ) निवारण करनेवाला कोई भी ( न ) नहीं ( अस्ति ) है जिसके ( मधस्य ) धन और ( राधेस ) धनरूप अन्न का ( आमरीता ) मय प्रकार नाश करनेवाला ( न ) नहीं विद्यमान है हे ( उद्वाधुषाण ) उत्तमता में अत्यन्त बल करनेवाले की ( तविषीव ) बलयुक्त सेना-बाल् जीतने वाला वह आप ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( राय ) धनो को ( नु ) निश्चय से ( दद्धि ) दीजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जिसका उत्तम कुल में जन्म और जिसका कुल प्रशंसित कर्म किये गये के समान और जिसका सग्राम में या विचार में रोकने वाला नहीं है वही सुख देने वाला राजा हम लोगों का होवे ऐसी हम लोग इच्छा करें ॥ ७ ॥

किर राजविषय को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

**ईक्षे रायः सयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्त्ताऽसि गोनाम् ।**

**शिक्षानरः समिधेषु प्रहावान्वस्वो राशिर्मभिनेताऽसि भूरिभ् । ॥८॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जिस कारण ( शिक्षानर ) विद्या के देने से नायक आप ( प्रहावाम् ) विजय को प्राप्त तथा ( समिधेषु ) सग्रामों में ( वस्व ) धन के ( भूरिभ् ) बहुत प्रकार के ( राशिभ् ) समूह को ( अभिनेता ) सम्मुख पट्टवाने वाले ( असि ) हो और ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के ( रायः ) धन ( वस्वस्य ) निवास ( उत ) और ( गोनाम् ) स्तुति करने वालों के सम्बन्धी ( वज्रम् ) शस्त्र अस्त्रों को ( अपवर्त्ता ) दूर करनेवाले ( असि ) हो उनको मैं राजा होने को ( ईक्षे ) देखता हूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वही राजा शिक्षाओं में यत्नस्वी होवे कि जो मनुष्यों को विद्या धन और उत्तम वास देकर सग्रामाविकों में निरन्तर सब की रक्षा करे ॥ ८ ॥

अब विद्वानों के उपदेशगुणों को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

**कया तच्छृण्वे शक्या ऋचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिद्व्यः ।**

**पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अहोऽथा दधाति द्विचिं जरित्रे ॥९॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे ( ऋचिष्ठः ) अत्यन्त बुद्धिमान् ( विचयिष्ठः ) अत्यन्त वियोग करनेवाला ( चिद्व्यः ) बड़ा विद्वान् ( अहः ) अपराध को पुष्क करके ( अथा ) अनंतर ( जरित्रे ) स्तुति करने और ( दाशुषे ) देनेवाले के लिए ( पुरु ) बहुत ( द्विचिम् ) धन को ( दधाति ) धारण करता है और जिन ( का ) किन्हीं ( चित् ) भी उत्तम कर्मों को ( यया ) जिस ( कया ) किसी ( शक्या ) बुद्धि वा क्रिया से ( मुहु ) बारबार ( कृणोति ) सिद्ध करता है ( तत् ) उन्हें उस से ( शृण्वे ) सुनो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों की योग्यता है कि जैसे यथार्थवक्ता जन पापों का त्याग, धर्म का आचरण और यथार्थ आनन्दस्वप्न ज्ञान का धारण करके जगत् के कल्याण के लिए बहुत ज्ञान को फैलाते हैं वैसे ही आप लोग आचरण करो ॥ ९ ॥

**मा नीं मधीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे वातवे भूरि यत्तै ।**

**नव्ये देण्ये क्षस्ते अस्मिन्त इक्ष्ये प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! आप ( न ) हम लोगों को ( मा ) मत ( मधीं ) गीला कीजिये हम लोगों के लिये ( तत् ) उस धन को ( आ, भर ) धारण कीजिये ( यत् ) जो ( ते ) आपके ( अस्मिन् ) इस ( नव्ये ) नवीन ( देण्ये ) देने और ( ते ) आपके ( क्षस्ते ) प्रशंसित ( उक्ष्ये ) कहने योग्य व्यवहार में ( भूरि ) बहुत द्रव्य है वह ( दाशुषे ) दानशील क लिये ( वातवे ) देने को ( प्र ) अत्यन्त धारण कीजिये और ( न ) हम सब लोगों के लिए ( बद्धि ) दीजिये और ( स्तुवन्तः ) स्तुति करते हुए ( वयम् ) हम लोग यह आपको ( प्र, ब्रवाम ) उपदेश करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आपके लिय करने योग्य कर्म जा जो कहे उस उस का आचरण करो और प्रजा मन्त्री और राज्य की उन्नति के लिये बहुत धन, विद्या और न्याय को फैलाओ ॥ १० ॥

किर उपदेश विषय को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

**न ह्युत इन्द्र न गृणान इषं जरित्रे नद्योऽ न पीवेः ।**

**अकारि ते हरिबो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥४॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सुख के देने वाले ! ( स्तुतः ) प्रशंसित हुए आप ( जरित्रे ) सत्य कहनेवाले के लिए ( नव्यम् ) नवीन ( ब्रह्म ) बड़े धन वा अन्न की ( नु ) शीघ्र ( नद्यः ) नदियों के ( न ) मदुश ( पीवेः ) पीने की ( गृणानः ) स्तुति करता हुआ नवीन ( इक्ष्यः ) विज्ञान की वृद्धि करो और बहुत सेना के अङ्गों से युक्त जिनके लिये ( ते ) आपके हम लोगों ने ( हरिबः ) से नवीन बड़ा धन वा अन्न ( अकारि ) किया उसके महाय से ( सदासाः ) समान दान देनेवाले सेवक हम लोग ( रथ्यः ) बहुत सुन्दर रथ आदिषो से युक्त ( नु ) निश्चय ( स्याम ) होवें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मन्त्री सेना और प्रजाजनो को श्रेष्ठ कर्म करते हुए राजा की स्तुति जैसी कर्तव्य है वैसी ही राजा को भी इन उत्तम कर्मों में प्रवर्तमान लोगों की प्रशंसा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा सम्राट् और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने के इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह बीसवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥१॥

अथैकादशसर्वस्वैकाधिकविंशतितमस्य सूक्तस्य वाचकवैद्वि । इन्द्रो वेवता ।

१, २, ७, १० भूरिक्यवृत्तिः । ३ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ निचुत्

पङ्क्तिपङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः । ४, ५ निचुत्पङ्क्तिः । ६, ८ विराट्

त्रिष्टुप् छन्दः । ९ त्रिष्टुप्छन्दः । वेवताः स्वरः ।

अब ग्वारह ऋचावाले इक्ष्वाकुसूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपववाण्य राजपुत्रों को कहते हैं—

**आ वास्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः संधमादस्तु शूरः ।**

**वाह्वानस्तविषीर्यस्य पूर्वाद्योर्न सजमभिभूति पुण्यात् ॥१॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! ( वस्य ) जिस राजा की ( वीः ) सूर्य के ( न ) सदृश ( पूर्वा ) प्राचीन ( तविषी ) बलयुक्त सेना हो और सूर्य के सदृश ( अभि-भूति ) शत्रुओं के तिरस्कार में निमित्त ( सजम् ) राज्य ( पुण्यात् ) पुष्ट होवे वह ( वाह्वाना ) बढने और ( शूरः ) शत्रुओं का नाश करनेवाला ( स्तुतः ) प्रशंसित



को प्राप्त ( इन्द्रः ) प्रजापति ( नः ) हम लोगों के ( अन्ते ) रक्षण भादि के लिए ( इह ) महा राजा और प्रजा के व्यवहार में ( उप, अ, आयु ) समीप प्राप्त हो और हम लोगों के ( सत्त्वमात् ) समीप स्थान से आनन्द करनेवाला ( अस्तु ) हो ॥ १॥

भावार्थ—जो राजा विजयी के सपुत्र बलिष्ठ सूर्य के सपुत्र उत्तम प्रकार प्रकाशित सेवा कर निष्कटक भयार्थ दुष्टजनादिरहित राज्य को पुष्ट करे वही इस सत्कार में सम्पूर्ण प्रतिष्ठा और सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके शरीर के स्वाय के समय मोक्ष को प्राप्त होवे ॥ १॥

अथ राजपुत्रों की अगले जन्मों में कहते हैं—

तस्येहिह स्तब्ध इच्छानि तुविद्युन्त्यस्तु विराधसो नृन ।

यस्य कर्तुर्विध्यो न सप्ताह साहान्तरुको अभ्यस्ति कुटीः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यस्य ) जिस ( तुविद्युन्त्यस्तु ) बहुत यत्नयुक्त ( तुविद्युन्त्यस्तु ) बहुत ऐश्वर्यवाले राजा के ( इह ) इस राज्य में ( विद्युन्त्यस्तु ) जानने योग्य ( सप्ताह ) सम्पूर्ण भूमि में प्रतिष्ठ और प्रकाशमान के ( न ) सपुत्र ( सप्ताह ) सहने वा ( सप्ताह ) दुर्गों से पार उतारनेवाला ( अस्तु ) बुद्धि और राज्य का पालनकर यज्ञ ( अग्नि, अस्ति ) सब ओर से है और ( इच्छानि ) बलों से सपुत्र कार्य है ( तस्य, इह ) उसी के ( नृन ) नायक भयार्थ मुख्य ( कुटीः ) मनुष्यों की ( स्तब्ध ) तुम लोग प्रशंसा करो ॥ २॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस की पूर्णबलवाली सेना और बड़ा यज्ञ प्रसन्न जन पूर्णविद्या उत्तम गुण कर्म स्वभाव और सहाय होवे वही चक्रवर्ती राजा होने के योग्य होता है ॥ २॥

आ यास्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मनु समुद्रादुत वा पुरीपात ।

स्वर्गाराधसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदर्नाहस्य ॥३॥

पदार्थ—जैसे सूर्य ( आ, दिवः ) प्रकाश से ( पृथिव्या ) भूमि से ( उत ) और ( समुद्रात् ) अन्तरिक्ष से ( वा ) वा ( पुरीपात ) जल से ( परावतो ) दूर से ( मरुत्वान् ) सत्य कारण के ( सत्त्वमात् ) स्थान से ( वा ) वा हम सतारी जनों की रक्षा भादि के लिए ( मनु ) कीर्ति प्राप्त होता है वैसे ही ( स्वर्गारात् ) सूर्य के सपुत्र नायक से ( नः ) हम लोगों के ( अन्ते ) रक्षण भादि के लिये ( मरुत्वान् ) वायुमात् पदार्थ के सपुत्र प्रशंसित पुरुषों से युक्त होता हुआ ( इन्द्रः ) सूर्य के समान राजा ( आ, आयु ) प्राप्त हो ॥ ३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे सूर्य अन्तरिक्ष प्रकाश भूमि जल और वायु को व्याप्त होकर सब की रक्षा करता है वैसे ही प्रतापी और उत्तमवहाययुक्त होकर और हम लोगों की उत्तम प्रकार रक्षा करके प्रकाशित हुईये ॥ ३॥

स्यूरस्य रायो वृद्धतो य ईशे तमु वृवाम विद्येध्विन्द्रम् ।

यो वायुना जयति गोमंतीषु म धृष्ण्या नयति वस्यो अष्ट ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( वृद्धतः ) बड़े ( स्यूरस्य ) स्थूल ( रायः ) जन का ( ईशे ) स्वामी होता है ( विद्येध्विन्द्रम् ) सत्त्वमात् में ( इन्द्रम् ) मनु के नाश करनेवाले को ( अष्टम् ) उत्तम प्रकार ( नयति ) प्राप्त करता है ( यः ) जो ( गोमंतीषु ) प्रशंसित वाणियों से युक्त सेनाओं में ( धृष्ण्या ) प्रशस्तता और ( वायुना ) पवन के साथ उत्तम प्रकार ( जयति ) विजयी होता है ( वस्यः ) अत्यन्त श्रेष्ठ जन को ( अ ) प्रीति के साथ चाहता है ( तम्, उ ) उसी की हम लोग ( स्तब्धम् ) प्रशंसा करें ॥ ४॥

भावार्थ—जो राजा बड़ी सेनाओं से सत्त्वमात् में विजय को प्राप्त हो तथा बहुत जनों और प्रतिष्ठा को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है उसी की स्तुति करनी चाहिए ॥ ४॥

उप यो नयो नमसि स्तभायभिर्यत्त वाच जनयन्यजंघ्यै ।

क्रुञ्जानः पुंस्वार उच्यैरेन्द्रं कुर्वीत सदर्नेषु होता ॥५॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यः ) जो ( यज्यम् ) मेल करने को ( वाचम् ) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी ( जनयन् ) प्रकट करता हुआ ( उच्यैः ) प्रशंसित कर्मों से ( क्रुञ्जानः ) अत्यन्त सिद्ध करता हुआ ( पुंस्वारः ) बहुतों से स्वीकार किया गया ( होता ) न्याय का देनेवाला ( सत्त्वमात् ) न्याय के स्थानों में ( नमसि ) अन्न वा सत्कार के निमित्त ( यज्यम् ) अन्न की ( उप, स्तभायम् ) स्तम्भित भयार्थ रोक्ता हुआ ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य को ( आ, कुर्वीत ) सिद्ध करे वह अन्न और सत्कार को ( उच्यैः ) प्राप्त होता है ॥ ५॥

भावार्थ—जो राजा विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त नीति को प्रकट करता सत्कार करने के योग्यों का सत्कार करता दुष्टों को दण्ड देता और प्रयत्न करता हुआ राज्य के पालन से ऐश्वर्य की उत्पत्ति करता है वही सर्वत्र सत्कृत होता है ॥ ५॥

अथ राजा के साथ प्रजापतियों के विषय को अगले जन्म में कहते हैं—

विषा यदि विषयन्तः सग्न्यान्सदन्तो अद्रिमौशिशस्य गोहे ।

आ दुरीपाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्सर्वरखोषु बहिः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यः ) जो ( नः ) हम लोगों के ( पास्त्यस्य ) गृह में उत्पन्न हुए के ( सत्त्वमात् ) आच्छादक भयार्थ ढांपने वाले व्यवहारों से ( बहिः ) पदार्थ पहुँचाने वाले अग्नि के सपुत्र ( मरुत्वात् ) बड़ा ( दुरीपा ) कांश से रहित ( होता ) देनेवाला हो ( यदि ) जो उस के ( अद्रिम् ) मेघ के सपुत्र ( अद्रिमौशिशस्य ) कामना करनेवाले के सत्त्वान के ( गोहे ) ढांपने योग्य गृह में ( विषयन्तः ) स्तुति करते और ( सग्न्याम् ) सम्पत्तियों को प्राप्त जनों को ( आ, सत्त्वम् ) निवास देने हुए ( विषा ) स्तुति भयार्थ प्रशंसा के साथ आप लोग ग्रहण करो तो आप लोगों को सब सुख प्राप्त होवे ॥ ६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जो राजा आदि मनुष्य प्रशंसित पुरुषों की प्रशंसा करें और प्राप्त हुए पुरुषों की रक्षा करें तो वे श्रेष्ठ हों ॥ ६॥

अथ राजविषयान्तर्गत राजपुत्रों के कर्म को अगले जन्म में कहते हैं—

सन्ना यदी भार्बरस्य इष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते मराय ।

गुहा यदीमौशिशस्य गोहे प्र यद्विये मायसे मवाय ॥७॥

पदार्थ—( यत् ) जो ( शुष्म ) बलवान् ( सन्ना ) सत्य से ( ईम् ) सब प्रकार ( भार्बरस्य ) प्रजा के पालन करनेवाले राजा ( इष्णः ) बलिष्ठ की ( स्तुवते ) प्रशंसा करने हुए ( मराय ) धारण करनेवाले के लिए ( सिषक्ति ) सीधता है और ( यत् ) जो ( गुहा ) बुद्धि में ( मौशिशस्य ) कामना करनेवालों में वस्तु के ( गोहे ) स्वीकार करने योग्य घर में सत्य का ( प्र ) सिक्खन करता है ( यत् ) जो ( अयसे ) गमन ( मवाय ) आनन्द और ( विये ) बुद्धि के लिए बुद्धि में प्रमान को ( ईम् ) सब प्रकार से ( प्र ) अत्यन्त सीधता है वही सम्पूर्ण लाभ को प्राप्त होता है ॥ ७॥

भावार्थ—जो कर्मचारी लोग धर्म से राज्य का शासन करते हुए राजा के राज्य में सत्य ग्याय से प्रजापतों का पालन करते हैं वे अतुल आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ७॥

फिर राजविषय को अगले जन्मों में कहते हैं—

वि यद्रीसि पर्वतस्य इष्ये पयोमिर्जिन्वे अपां जवांसि ।

विद्वगौरस्य गवयस्य गोहे पदी बाजाय सुभ्यो नहन्ति ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( यदी ) जो ( सुभ्यः ) उत्तम बुद्धिवाले जन ( बाजाय ) वेग के लिए ( गौरस्य ) गौर ( गवयस्य ) गोसदस्य के ( गोहे ) गृह में ( वि, नहन्ति ) स्वीकार करते हैं तो सुख को प्राप्त होते हैं और ( यत् ) जो मैं ( पर्वतस्य ) मेघ के ( पयोभिः ) जलों के सपुत्र पदार्थों और ( जवांसि ) स्वीकार करने योग्य धर्मयुक्त कर्मों का ( इष्ये ) स्वीकार करे और ( मवाय ) जलों के ( जवांसि ) वेगों के सपुत्र कर्मों को ( विद्वत् ) प्राप्त होता हुआ राज्य को ( जिन्वे ) शोभित करता है उनका और मेरा आप सत्कार करो ॥ ८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जैसे गवय के साधर्म्य को गौ धारण करती है वैसे ही धार्मिक पुरुषों के साधर्म्य को राजा लोग धारण करें और जैसे मेघ जलदान से सब को नृप करता है वैसे ही राजा अभयवान से सब को सुख देवे ॥ ८॥

मद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारां स्तुवते राध इन्द्र ।

का ते निषतिः किमु ना मंससि कि नोदुदु हर्षसे दातवा उं ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सब के लिए सुख देनेवाले ! जिन ( ते ) आपकों ( सुकृता ) श्रेष्ठ धर्मयुक्त कर्म किया जाता जिससे वे ( हस्ता ) हाथ ( उत ) और ( प्रयन्तारा ) देते हैं जिनसे वे ( मद्रा ) कल्याण कर्म करनेवाले ( पाणी ) हाथ ( स्तुवते ) सत्य बोलते हुए के लिए ( राधः ) धन देवे उन ( ते ) आपकों ( का ) कीर्ति ( निषतिः ) स्थित होते हैं जिससे ऐसी मर्यादा वा नीति है ( उ ) और आप ( किम् ) क्या ( नः ) हम लोगों को ( अन्ते ) प्रसन्न करते हो और ( दातवा ) देने को ( उ ) भी ( किम् ) क्यों ( न, उ ) नहीं ( उदुदु ) उत्तम प्रकार ( हर्षसे ) आनन्दित होते हो ॥ ९॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिसमें आप हम लोगों का आनन्द देते हो इससे आनन्दित निरन्तर होते हो और जिससे आप सुखों हस्त में धारण किये हुए दानसहित हस्तयुक्त हुए योग्यों का सत्कार करते हो इस से आप की कल्याण करनेवाली नीति है ॥ ९॥

एवा वस्य इन्द्रः सत्यः सप्ताहदन्ता वृत्रं वरिवः पुरवै कः ।

पुंस्वत् कत्वा नः शग्धि रायो अंशीय तेऽवसो द्वैर्यस्य ॥१०॥

पदार्थ—हे ( पुंस्वत् ) बहुतों से प्रशंसित ! जो ( सत्यः ) श्रेष्ठ पुरुषों में श्रेष्ठ ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य के देनेवाले आप सूर्य ( वृत्रम् ) मेघ को जैसे वैसे शत्रुओं को ( हन्ता, एवा ) नाश करनेवाले हों ( सप्ताहः ) सम्पूर्ण भूमि के राजा ( पुरवै ) धार्मिक मनुष्यों के लिए ( वस्यः ) धन का ( वरिवः ) सेवन ( कः ) करें और जो आप ( कत्वा ) श्रेष्ठ बुद्धि वा उत्तम कर्म से ( नः ) हम लोगों के लिए ( राधः ) जनों को ( शग्धि ) देवे उन्हीं ( ते ) आप के ( वृत्रस्य ) श्रेष्ठ सुख प्राप्त कराने वाले ( अवसः ) रक्षण की उत्तेजना से रहित में जनों का ( अंशीय ) मेघम वा योग कर्क ॥ १०॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के सदृश प्रकाशित व्यावयुक्त भय का देनेवाला और सब प्रकार से सबका रक्षक नायक होवे वही चक्रवर्ती होने के योग्य होता है ॥ १० ॥

न ह्युत इन्द्र न शृणान र्षं जरिभ नद्यो न पीयेः ।

अकारि ते हरिषो ब्रह्म नय्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥६॥

पदार्थ—हे ( हरिः ) विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करनेवाले ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त जिस ( धिया ) बुद्धि से ( ते ) आप के लिये ( नय्यम् ) नवीन ( ब्रह्म ) विद्यारूप धन ( अकारि ) किया गया और जिसके ( रथ्यः ) बहुत रथ आदि ऐश्वर्य से युक्त ( सदासाः ) सेवा करनेवालों के सहित वर्तमान हम लोग ( स्याम ) होवें इसके लिए ( इन्द्रम् ) धन की ( नु ) निश्चय ( शृणान् ) विद्या की स्तुति करता हुआ ( नु ) शीघ्र ( नद्यो ) प्रशंसा को प्राप्त इस ( जरिभे ) सम्पूर्णविद्याओं के अध्यापक के लिये ( नद्यो ) नदियों के ( न ) सदृश ( पीये ) बुद्धि करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो जिसके लिए विद्या को देवे उसकी सेवा उसको चाहिए कि पथायोग्य करे ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इसके अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ तज्ज्ञति जाननी चाहिए ॥

यह इन्कीसवीं सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथैकादशर्षस्य द्वाविंशत्यस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता १, २, ५, १० निधुत्विष्टुप् । ३, ४ विराट्निधुत् । ६, ७ त्रिष्टुप् छन्दः । अथैकादशर्षस्य । ८ ध्रुवि पङ्क्तिः । ९ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ निधुत् पङ्क्तिवद्वन्द्वः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ ग्यारह ऋषिवाले द्वादशवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं—

यस इन्द्रो जुजुषे यच्छ वष्टि तन्नो महान्करति शुभ्या चिन्त ।

ब्रह्म स्तोमं मयवा सोममुक्थ यो अश्यान् शर्वता बिभ्रदेति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( यत् ) जो ( इन्द्र ) अत्यन्त सुख का देनेवाला राजा ( न ) हम लोगों की ( जुजुषे ) सेवा करता है ( यत्, य ) और जो ( महान् ) बड़ा ऐश्वर्यवाला ( आ, वष्टि ) कामना करता है ( यः ) जो ( शुभ्या ) अत्यन्त बलवान् ( मयवा ) प्रति उत्तम धनयुक्त राजा सूर्य ( अश्यान् ) मेघ को जैसे जैसे ( शर्वता ) बल से ( वष्टि ) बहुत धन वा धन ( स्तोमम् ) प्रशंसा करने योग्य ( सोमम् ) ओषधि आदि पदार्थनमूत्र से ऐश्वर्य और ( उक्थ ) प्रशंसा करने योग्य वस्तुओं को ( चिन्त ) भी ( बिभ्रत् ) धारण करता हुआ राज्य को ( एति ) प्राप्त होता है ( तत् ) वह ( न ) हम लोगों को सुख ( करति ) करता है ऐसा जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे सूर्य मेघ को धारण करना और नाश करना है वैसे ही जो राजा श्रेष्ठों को धारण करता और दुष्टों को दण्ड देता है वही हम लोगों के पालन करने योग्य है ॥ १ ॥

दृष्टा वृषां च चतुरश्रमस्यप्रो बाहुभ्या नृत्तमः शचीरान ।

श्रिये परुषणीमुषमांग ऊर्णा यस्याः पर्वणि सरुपाय विन्द्ये ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( वृषा ) अत्यन्त बलवान् ( वृषणिम् ) बलिष्ठों के धारण करनेवाले ( चतुरश्रम् ) चतुरङ्ग सेना को प्राप्त जन को ( बाहुभ्याम् ) भुजाओं से ( अस्थम् ) सेकता हुआ ( उष ) तेजस्वी ( नृत्तमः ) अतिशय नायक ( शचीरान् ) बहुत प्रजावाला ( यस्याः ) जिस के ( पर्वणि ) पूग पालन ( श्रिये ) लक्ष्मी के लिए समर्थ होते हैं उस ( परुषणीम् ) विभागवती ( ऊर्णा ) ढांपनेवाली बुद्धि को ( उषमांगः ) जलाता हुआ ( सरुपाय ) मित्र होने के वा मित्र के कर्म के लिए ( विन्द्ये ) कामना करता है वही हम लोगों का राजा होने को योग्य होवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो बाहुबल से दुष्टों का छिस्कार करता हुआ मनुष्यों के उत्तम गुणों से उत्तम और मित्र के सदृश प्रजाओं को पालता है वही लक्ष्मीवान् प्रजावान् न्यायाधीश राजा होने के योग्य होता है ॥ २ ॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजैर्मिर्महङ्गिश्च शुच्यैः ।

दधानो वज्रं बाह्वोश्चान्तं धामधैरं रेजयत्प्र भूम ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( यः ) जो ( महङ्गि ) बड़े गुणों से विशिष्ट ( वाजैः ) वेगयुक्त सेनाजनों और ( शुच्यैः ) बलों के साथ ( महः ) बड़ा ( बाधमानः ) उत्पन्न होता हुआ ( देवः ) विद्वान् ( देवतमः ) अत्यन्त विद्वान् राजा ( बाह्वी ) भुजाओं के बीच ( वज्रम् ) शास्त्र और अस्त्र को ( दधानः ) धारण करता हुआ

( अग्नेव ) बल से सूर्य ( बाध्, सुभ, य ) प्रकाश और पृथिवी को जैसे ( य, रेजयत् ) कम्पाता है वैसे ( उक्थम् ) कामना करते हुए शत्रु को कम्पाता है उस हम लोगों के सुख की कामना करते हुए राजा का हम लोग स्वीकार करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो योग्य रथ से सूर्य प्रकाश और भूगोलों को कम्पाते हुए के सदृश प्रजाओं को प्रथमधारण से कम्पाता है वही पूर्ण विद्वान् राजा होता है ॥ ३ ॥

अथ पृथिवी के धारण प्रमत्तविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विष्वा रोषांसि प्रवतश्च पृथिवीर्कृष्वाज्जनिमज्जेजत हाः ।

आ मातरा भरति शुभ्या गोर्नृवत् परिज्मकोलुवन्त वाताः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( कृष्वात् ) बड़े प्रकृतिक्रम कारण से ( जनिमज्जेजत ) उत्पत्ति में प्रकट हुई ( पृथ्वीः ) प्राचीनकाल से सिद्ध क्रियाओं को ( जीः ) बिजुली और ( हाः ) पृथिवी ( आ, भरति ) अच्छे प्रकार धारण करती है ( जन्तः, य ) और नीचे के स्थल में वर्तमान ( विष्वा ) सम्पूर्ण प्रजाओं तथा ( रोषांसि ) रक्षाकर्तों को ( नृवत् ) मनुष्यों के सदृश ( आ ) अच्छे प्रकार धारण करती है और जो ( शुभ्या ) बलवान् अग्नि ( जीः ) पृथिवी के सम्बन्ध में ( मातरा ) माता और पिता-रूप राजा और प्रजाजन तथा अन्तरिक्ष और पृथिवी को मनुष्यों के सदृश ( रेजयत् ) कम्पाता है जहां ( परिज्मत् ) सब ओर से व्याप्त अन्तरिक्ष वा बिस्तृत भूमि में ( वाताः ) पवन ( कोलुवन्त ) अत्यन्त शब्द करते हैं उन को आप लोग जानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो प्रकृतिक्रम कारण से उत्पन्न हुआ बड़ा अग्नि सम्पूर्ण भूगोलों का आकर्षण करता है, माता और पिता के सदृश सब का पालन करता और अन्तरिक्ष में घुमाता है उस को जान के कार्य सिद्ध करो ॥ ४ ॥

अथ भूगोल के अन्तर्गुह्यता से राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्टित्सर्वनेषु प्रवाक्या ।

यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानर्हि वज्रैश्च शवसाविवेधीः ॥५॥७॥

पदार्थ—हे ( धृष्णो ) अत्यन्त डीठ ( शूर ) भयान्तर ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य का प्रयोग करनेवाले राजन् ! ( यत् ) जो ( विश्वेषु ) सम्पूर्ण ( सर्वनेषु ) ऐश्वर्य से युक्त लोकों में ( महतः ) आदर करने योग्य ( ते ) आपके ( महानि ) बड़े-बड़े ( प्रवाक्या ) उत्तमता से कहने योग्य कार्य हैं ( ता, इत् ) उन्हीं को ( तू ) तो ( दधृष्वान् ) धारण करते हुए ( धृषता ) अत्यन्त डिठाई और ( शवसा ) बल से ( वज्रैश्च ) किरण से ( अर्हि ) मेघ को सूर्य जैसे वैसे लट्ठ और अस्त्र से ( अविवेधीः ) प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे सूर्य किरणों से आकर्षण करके सम्पूर्ण भूगोलों को धारण करता है वैसे ही वही सप्तर्ष आदि सामर्थ्य का करके राजा द्वीप और द्वीपान्तरो में स्थित राज्यों की शासन देवे ॥ ५ ॥

अथ विद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता तू त सत्या तुविन्मण विद्वान् म धेनवः सिस्रते हृष्य ऊध्रः ।

अधा ह त्वद्वयमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥६॥

पदार्थ—हे ( तुविन्मण ) बहुत धनवाले और ( वृषवहाः ) वस्तुयुक्त पुरुष के मन के सदृश मन से युक्त राजन् ! जैसे ( सिन्धवः ) नदियाँ ( ऊध्रः ) वेग से ( चक्रमन्त ) चलती हैं वैसे ( त्वत् ) आप के मनीष से ( भियाना ) धन की प्राप्ति शत्रु लोग दूर भागते हैं ( अधा ) इस के अनन्तर जो ( ते ) आप के ( विद्वान् ) सम्पूर्ण ( सत्या ) श्रेष्ठ पुरुषों से साथ कर्म अर्थात् उत्तम आचरण और ( धेनवः ) वाणियाँ ( वृषन् ) ब्रह्मचर्य आदि से बलिष्ठ ( ऊध्रः ) विस्तीर्ण बलवालों को ( प्र, सिस्रते ) अच्छे प्रकार प्राप्त होनी है ( ता ) उन को ( तू ) फिर ( ह ) निश्चय से आप वेग से ( प्र ) अत्यन्त मिद्ध करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस राजा की सफल वाणी और धर्मयुक्त कर्म वर्तमान है उस से योधा स बखडों के सदृश प्रजा लुप्त होती है और उस से दुष्ट डरते हैं और यश बिस्तृत होता है ॥ ६ ॥

अथाह ते हरिस्ता उ देवीरवोमिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।

यत्पीमनु प्र मुचो बद्धाना दीर्घामनु प्रसिति स्यःदध्थै ॥७॥

पदार्थ—हे ( हरिः ) श्रेष्ठ पुरुषों से और ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ( अथ ) इस राज्य में ( अह ) ग्रहण करने में ( यत् ) जो ( ते ) आप की ( बद्धवानाः ) प्रबन्ध करनेवाली ( स्वसारः ) अक्षुण्णियों के समान वर्तमान बहिनपने का आचरण करती और पत्नी हुई स्त्रियाँ ( स्वदध्थै ) बहाने को ( दीर्घाम् ) लम्बीभूत ( प्रसितिम् ) वन्धावट की ( अनु, स्तवन्त ) अनुकूल स्तुति करती हैं ( ता, उ ) उन्हीं ( देवीः ) प्रकाशित पत्नी हुई स्त्रियों को ( अवीरिः ) रक्षण आदि व्यवहारों से ( पीध् ) सब प्रकार दुःखरूप बन्धन से आप ( अनु, प्र, मुच ) अच्छे प्रकार मुक्त हुए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे राजा आवि मनुष्यों ! जैसे आप लोग ब्रह्मचर्य से विद्याओं को पकड़कर राजनीति से राज्य का पालन करते हैं वैसे ही आप लोगों की स्त्रियाँ स्त्रियों का न्याय करें। ऐसा करने पर दुःख राजकर्म का प्रबन्ध होता है ऐसा जानना चाहिए ॥ ७ ॥

अथ राजनीति के अध्ययन से अध्यापकविषय को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

**विप्रीतिः संशुभ्रं न सिन्धुरा स्वा मयी शशमानस्य शक्तिः ।**

**अस्मद्वचनमुच्यमानस्य मन्त्रा अशुभं रश्मि तुष्णीमस्तं गोः ॥८॥**

पदार्थ—हे राजन् ( मन्त्रः ) आत्मोपदेष्ट करनेवाली ( सिन्धुः ) नदी जैसे ( न ) वैसे जिन आप को ( अशुः ) पदार्थ पहुँचनेवाला ( अ, विप्रीतिः ) पीड़ा देता है उन ( अशुभः ) अधर्म का उत्पत्ति करने ( अशुभः ) अत्यन्त शोकने और ( गोः ) स्तुति करनेवाले आपके ( आशुः ) शीघ्र करनेवाले पीड़े के ( न ) संयुक्त ( मन्त्रः ) रश्मिणी ( रश्मिः ) सूर्य के प्रकाश को जैसे जैसे जी ( अशुभः ) हम को प्राप्त होनेवाली ( अशुः ) सामर्थ्य हम लोगों का पालन करे । अशुभ और ( अशुः ) उत्तम कर्मों ( तुष्णीमस्तं ) बहुत बल और वराकमयुक्त ( स्वा ) आप को प्राप्त होने ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमात्कार है । हे प्रजापति ! जो लोग अपने राजा को पीड़ा दें वे आप लोगों से ताक करने योग्य हैं । और वैसे रश्मि तिरणों को लपट करती हैं वैसे ही आत्मिक राजा के बल को प्राप्त होकर शत्रु दूर होते हैं ॥८॥

**अस्मे वशिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्यानि सभा संहरे सहासि ।**

**अस्मभ्यं ह्युवा सुहृन्तानि रन्धि जहि वर्षवन्तु मर्त्यस्य ॥९॥**

पदार्थ—हे ( संहरे ) सहनशील राजन् ! जो आप के ( सभा ) सत्य ( वशिष्ठा ) अत्यन्त बृद्ध ( ज्येष्ठा ) प्रशंसा करने योग्य ( नृम्यानि ) वन ( सहासि ) और सहन वर्तमान हैं उनकी ( अस्मे ) हम लोगों में ( कृणुहि ) करो ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए दुःख देनेवाले ( वन्तुः ) सेवा करते हुए ( मर्त्यस्य ) मनुष्य के ( अशुः ) मारने के साधन की ( जहि ) दूर फेंको और ( सुहृन्तानि ) उत्तम प्रकार नाम करने योग्य ( ह्युवा ) मेघ बहनों के समान मनुजों की सेनाओं का ( रन्धि ) नाश कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे राजा यदि जनों ! आप लोग मिल के प्रजा को पाड़ा देनेवाले के बल का नाश करो और जो आप लोगों के उत्तम वस्तु उनकी हम लोगों में धारण कीजिए और जो हम लोगों के उत्तम रत्न उनको आप लोग बरें ॥ ९ ॥

अथ उपदेशक विषय को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

**अस्माकमिस्तु नृणुहि स्वमिन्द्रास्मभ्यं बिभ्राँ उप माहि वाजान ।**

**अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सु पंधवन् बोधि गोदाः ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( अस्माकम् ) बहुत बल से युक्त ( इन्द्र ) राजन् ( स्वम् ) आप ( अस्माकम् ) हम लोगों के बचनों को ( नृ, नृणुहि ) उत्तम प्रकार सुनो और ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( बिभ्राँ ) अद्भुत ( वाचा ) अन्त आदिक पदार्थों को ( उप, माहि ) उपमित कीजिए अर्थात् उत्तमता से माणिए और ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( पुरन्धीरः ) विज्ञानों को धारण करनेवाली बुद्धियों को ( इन्द्र ) ही ( इषणः ) प्रेरित करो और ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( गोदाः ) गी को देनेवाले होते हुए आप लोगों को ( नृ, बोधि ) उत्तम प्रकार जानिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो लोग हम लोगों के नीति के अनुकूल बचनों को सुनते और हम लोगों को विद्वान् करते हैं उन लोगों की सेवा हम लोगों को चाहिए कि निरन्तर करें ॥ १० ॥

**नृ हुत इन्द्र नृ गृणान इव जरित्रे नद्यो न शीपेः ।**

**अकारि ते हरिवो अश्व नव्यं चिमा स्याप रथ्यः सदासा ॥११॥८॥**

पदार्थ—हे ( हरिवः ) श्रेष्ठ विद्याविधियों और ( इन्द्र ) यज्ञ के ऐश्वर्य से युक्त ! जिस से आप ( स्तुत ) प्रशंसित हुए ( जरित्रे ) विद्वान् पुरुष के लिए ( इन्द्रम् ) अन्न को लेकर ( नद्यः ) नदियों के ( नृ ) सदा ( नृ ) शीघ्र ( शीपेः ) बुद्धि करावों जिस से आप लोगों से ( गृणान ) प्रशंसा करते हुए ( नृ ) निश्चय ( अकारि ) किये गये और ( ते ) आप के लिए ( नव्यम् ) नवीन नवीन ( अश्वः ) घन विद्या आप इस से ( रथ्यः ) रथयुक्त ( सदासाः ) घासों के सहित वर्तमान हम लोग ( चिमा ) बुद्धि से आप के निश्चय ( स्याप ) होवें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जिससे आप सब के लिए विद्या देते हो इससे आप के साथ मित्रता करके आप के लिए बहुत धन और अन्न लेकर निरन्तर सत्कार करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र पृथिवी कारण अथवा विद्वान् अध्यापक और उपदेशक के गुण वर्णन करते हैं इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह बार्हस्पत्य सूक्त और आठवीं अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥

अथैकवचनस्य त्रयीविचारस्य सुक्तस्य आरम्भः अधिः । १—७, २१ इन्द्रः ।

२—१० इन्द्र अश्वमेधा देवता । १—३, ७—८ विद्वन् । ४, १०

विद्वन्विद्वन् कर्माः । देवताः स्वयः । ४, १ सुविद्वन् विद्वान् । ११

विद्वान्विद्वान् कर्माः । देवताः स्वयः ॥

अथ व्यास आचार्यते तैत्तिरीय सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से प्रथमोत्तर विषय को कहते हैं—

**कथा यदायद्वत् कस्य होतुर्वहं जुषाषी अग्नि सोमयुधः ।**

**पिबन्तुशानो जुषमाक्षो मन्त्रो वषस ऋषः शुचते धनाय ॥१॥**

पदार्थ—हे विद्वान् ( कस्य ) किस ( होतुः ) व्यास आदि कर्म करनेवाले के ( महान् ) बड़े ( वषस ) सेव करने योग्य व्यवहार का ( जुषाषी ) सेवन करता हुआ ( कथा ) किस प्रकार से ( अग्नि, अश्वयुः ) बड़ता और जो ( ऋषः ) उत्तम ( सोमन् ) दुग्ध आदि रस को ( पिबन् ) पीता ऐश्वर्य की ( उषानः ) कामना करता और ( मन्त्रः ) मन्त्र की ( जुषमाक्षः ) सेवा करता हुआ ( वषस ) पदार्थ पहुँचाता है ( ऋषः ) तथा बड़ा हुआ ( वषाष ) धन के लिए ( शुचते ) पवित्र कराता वा विचार कराता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! किस से पढ़कर विद्यार्थी कैसे विद्या का सेवन करे और कौन विद्वान् होवे इस प्रश्न का ब्रह्मचर्य से वीर्य का निग्रह करके विद्या की कामना करता हुआ आचार्य के समीप जा और सेवा कर के नियत आहार विहार युक्त हुआ योगरहित होकर विद्या की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रयत्न करता है यह उत्तर है ॥ १ ॥

किर उसी विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

**को अस्य वीरः संधमादमाप समानंशं मुमतिमिः को अस्य ।**

**कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृषे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वान् ( को ) कौन ( वीरः ) विद्या से प्राप्त शरीर और आत्म-बलयुक्त ( अस्य ) इस अध्यापक वा राजा के ( सन्मानम् ) साथ आनन्द को ( आप ) प्राप्त होवे ( को ) कौन वीर ( अस्य ) इस के ( मुमतिमिः ) श्रेष्ठ विद्वानों के साथ ( चित्रम् ) अद्भुत विज्ञान को ( चिकिते ) जानता है ( कत् ) कब ( अस्य ) इस की विद्या को ( सन्, आनंश ) प्राप्त होना है और कौन वीर ( ऊती ) रक्षण आदि से ( शशमानस्य ) प्रशंसित ( यज्योः ) समग्र करने योग्य सत्य व्यवहार की ( वृषे ) बुद्धि के लिए ( कत् ) कब ( भुवत् ) होवें ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् वा राजन् ! कौन किसके साथ पढ़े, कौन किसके साथ व्यास करे वा युद्ध करे, कौन इनमें श्रेष्ठ, इस प्रश्न का जो प्रशंसित कर्मों के अनुष्ठान और बुद्धि करनेवाले होवे, यह उत्तर है ॥ २ ॥

**कथा संनोति ह्यमानमिन्द्रः कथा शुचवसवसामस्य वेद ।**

**का अस्य पूर्वोरूपमातयो ह कथैनमाहुः पपुंरि जरित्रे ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( इन्द्रः ) अध्यापक वा राजा ( ह्यमानम् ) स्पर्धा करने हुए को ( कथा ) किस प्रकार ( सुनोति ) सुनता है और ( भुवत् ) सुनता हुआ ( अस्य ) इसके ( अवसात् ) रक्षण आदिकों की स्पर्धा करते हुए को ( कथा ) किस प्रकार से ( वेद ) जाने ( अस्य ) इसकी ( पूर्वी ) प्राचीन ( उपमातयः ) उपमा ( ह ) ही ( काः ) कौन हैं अनन्तर ( एवम् ) इसको ( जरित्रे ) विद्वान् के लिए ( पपुंरि ) पालन करनेवाला ( कथा ) किस प्रकार ( आहुः ) कहते हैं ऐसा पूछना चाहिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो विद्यार्थी और राजा के जन यथार्थवत्ता पुरुषों के बचनों वा शास्त्रों की उत्तम प्रकार सुन मान और विश्रय करके पुनः कर्मों का आरम्भ करते हैं वे ही सम्पूर्ण ज्ञानने योग्य को जानते हैं ॥ ३ ॥

**कथा सवापः शशमानो अस्य नक्षदभि त्रिविं दीप्यानः ।**

**देवो सुवसवेंदा म ऋतानां नमो जयुर्वा अग्नि यजुर्जोषत ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( अस्य ) हमका ( सवापः ) वापसहित अर्थात् दुःख के सहित वर्तमान ( कथा ) किस प्रकार से ( नक्षत् ) नष्ट होता है ( त्रिविंशत् ) धन का ( अग्नि, दीप्यानः ) सब ओर से प्रकाश और ( शशमानः ) प्रशंसा करता हुआ ( वेदः ) विद्वान् किस प्रकार ( भुवत् ) होवे ( नक्षत् ) नहीं जानने वाला जन ( वे ) मेरे ( ऋतानाम् ) सत्य व्यवहारों के सम्बन्ध में ( नमः ) अन्न को ( जयुर्वा ) ब्रह्म किये हुए ( यत् ) जो जन वह किस प्रकार से ( अग्नि, यजुर्जोषत ) सेवन करता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक वा राजन् ! किस प्रकार से इस विद्या वा अभय को प्राप्त होवे और किस प्रकार से ये विद्वान् होवें इस प्रश्न का, जो सत्कार से श्रेष्ठ पुरुषों से विद्या को ग्रहण करके धर्म का सेवन करें, यह उत्तर है ॥ ४ ॥

अथ प्रथमोत्तर से त्रयीकरणविषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

**कथा कदस्या उपसो व्युहो देवो मर्त्यस्य सख्यं जुजोष ।**

**कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कायं सुयुजं ततसे ॥५॥६॥**

पदार्थ—हे विद्वज्जनो ( सख्यः ) सूर्य के अथवा विद्वान् ( अस्याः ) इस वर्तमान ( उपसः ) प्रसन्नता के ( व्युहो ) विशेष प्रकाश में ( सखिभ्यः ) मनुष्य के ( सख्यम् ) मित्रपने का मित्र के कर्म का ( कत् ) कब ( कथा ) किस प्रकार ( जुजोष ) सेवन करता है उन ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिये ( अस्य ) इसका ( सख्यम् ) मित्रपने वा मित्रकर्म ( कत् ) कब ( कथा ) किस प्रकार से होने के योग्य है ( ये ) जो ( अस्मिन् ) इस मित्रपने रूप कर्म में ( सुयुजम् ) उत्तम प्रकार मित्राने के योग्य ( कायम् ) इच्छा का ( ततसे ) विस्तार करने हैं ॥ ५ ॥



भाषार्थ—हे विद्वानो ! मनुष्यों को किस के साथ कब मित्रता और किस प्रकार मित्रता का निर्वाह करना चाहिये और मित्रों के साथ कैसे वर्तना चाहिए इस प्रश्न का वह उत्तर है कि जब उत्तम प्रकार परीक्षा करे तब उसके साथ मित्रता की, और जो इस जगत् में सब के साथ मित्राचार करने की कामना करते हैं उनके साथ सदा ही मित्रता की रक्षा करनी चाहिए ॥५॥

किं भी मंत्रीकरण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

किमाहमत्रं वक्ष्यं मन्त्रिभ्यः कदा नु तं भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।

भ्रिये सुहृदो वपुर्गस्य मर्गाः स्वर्णं चित्रसंमिश्रं वा गोः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् वा राजन् ! ( ते ) आप के ( सन्निभ्यः ) मित्रों के लिए ( भ्रात्रम् ) भ्रातृमन्त्रिण कर्म के मनुष्य वर्तमान ( सव्यम् ) मित्रपने वा मित्र के कर्म का ( कदा ) कब ( नु ) शीघ्र ( प्र, ब्रवाम ) उपदेश देवें ( आत् ) इस के अनन्तर ( किम् ) किस ( अवस्यम् ) सुपात्र का आप के मित्रों के लिए उपदेश देवें और जो ( सुहृदो ) उत्तम प्रकार देखने योग्य ( अस्थ ) इसकी ( भ्रिये ) सेवा का धन के लिए ( आ, गो. ) पृथिवी से लेकर ( सर्गा ) सृष्टिदात्री ( वपुः ) उत्तम रूप युक्त शरीर की ( इव ) इच्छा के लिए हैं उनका विमान ( चित्रसंमिश्रम् ) अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण ( स्व ) सुवस्त्र के ( न ) सदृश वर्तमान है ऐसा उपदेश देवें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों का चाहिए कि यथार्थवत्ता विद्वानों से मित्रता सदा ही करें जिससे वे उत्तम उपदेश से सबको सृष्टिविद्या के जाननेवाले धर्मात्मा करके बहुत ही उत्तम विज्ञान को देकर सुखी करें ॥ ६ ॥

अब शत्रुनिवारण के अनुकूल सेना की उन्नति के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

दुहं जिघांसन् ध्वजसंमन्त्रिन्द्रां तैत्तिरे तिरमा तुजसे अनीका ।

ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे भ्राता उपर्यो ब्रवाधे ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत्र ) जहाँ ( नः ) हम लोगों का जो ( उग्रः ) तीव्र प्रताप ( दूरे ) दूर स्थान में ( अनीका ) नहीं जानी गई शत्रुओं की सेनाओं को ( उग्रः ) प्रातःकाल से अन्धकार को जैसे सूर्य जैसे ( ब्रवाधे ) बिलोता है ( ऋणा ) प्राप्त सेना से ( चित् ) भी ( तुजसे ) बल के लिए अथवा शत्रुओं के नाश के लिए ( तिरमा ) तीव्र ( भ्राता ) प्राप्त ( अनीका ) शत्रुओं से प्राप्त नहीं होने योग्य सैन्यसमूहों को ( तैत्तिरे ) अत्यन्त तीव्र करता है ( उग्रम् ) द्रोह करने और ( ध्वजसम् ) हिला करनेवाले को ( चिद्यत्र ) नष्ट करने की इच्छा करता हुआ ( ऋणया ) ईश्वरसम्बन्धरहित मार्ग को ( ब्रवाधे ) बिलोता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाणकुलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो लोग उत्तम प्रकार शिक्षित, श्रेष्ठ, शत्रुओं को शीघ्र पराजय करनेवाली सेनाओं को सिद्ध करें जिन से दूर स्थान में भी वर्तमान शत्रु लोग डरें, दारिद्र्य और भय को दूरकर अपनी प्रजा को आनन्द लेकर दुष्टों का निरन्तर नाश करें उनका आप सदा ही मत्कार करो ॥ ७ ॥

अब सत्याचारणोत्तमताविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ऋतस्य हि शुरुषः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।

ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णो बुधानः शृचमान आयोः ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! जिस ( ऋतस्य ) सत्य आचार की ( पूर्वी ) प्राचीन ( शुरुषः ) शीघ्र रोकनेवाली अपनी सेना ( सन्ति ) हैं जिस ( ऋतस्य ) सत्य की ( धीतिः ) धारणा करने वाली बुद्धि ( वृजिनानि ) बलों को प्राप्त होकर शत्रुओं का ( हन्ति ) नाश करती है और जिसे ( ऋतस्य ) सत्य की ( श्लोकः ) वाणी ( बधिरा ) बधिर ( कर्णा ) कर्णों का ( ततर्द ) नाश करनी है और जो अन्य जनो को ( बुधानः ) जनता और ( शृचमान ) पवित्र होकर पवित्र करता हुआ ( आयोः ) जीवन के उपायो का उपदेश देता है उसका ( हि ) जिससे गुरु के सदृश सत्कार करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक वा राजन् ! जो जितेन्द्रिय दुष्ट आचार के रोकने और सत्य के प्रचार करनेवाले सत्यवाणीयुक्त और बधिर के सदृश वर्तमान अन्न पुरुषों को बोध देने हुए ब्रह्मचर्य आदि उपदेश से अधिक अवस्था वाले करते हुए क्लेश और शत्रुओं के नाश करनेवाले हों वे ही अपने आत्मा के सदृश आदर करने योग्य हों ॥ ८ ॥

ऋतस्य दृढदा वरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपुषि ।

ऋतेन दीर्घमिषणन्त एषं ऋतेन गावः ऋतमा विवेक्षुः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ऋतस्य ) सत्य धर्म के आचरण से ही ( वृद्धा ) दृढ़ ( वरुणानि ) जलों के सपुत्र शान्त आचार ( पुरूणि ) बहुत ( चन्द्रा ) आनन्द देनेवाले सुवर्ण आदि ( वपुषे ) सुन्दर रूपयुक्त शरीर के लिए ( वपुषि ) कर्णों को प्राप्त ( सन्ति ) हैं और ( ऋतेन ) सत्य आचरण से ( गावः ) उत्तम प्रकार स्पर्श होने योग्य अन्न आदिक ( दीर्घम् ) चिरकाल रहनेवाले आयु को ( वपुषम् ) प्राप्त होते हैं ( ऋतेन ) सत्य आचरण से ( गावः ) गोवें जैसे बल्लभों के स्थानों को जैसे उत्तम प्रकार शिक्षित वाणिज्य ( ऋतम् ) सत्य ब्रह्म को ( आ, विवेक्षुः ) प्राप्त होती है ऐसा जानो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे जल से प्राणधारण अन्न आदि की उत्पत्ति और सुन्दर और दीर्घ अवस्था होती है वैसे ही सत्य आचरण से सम्पूर्ण ऐश्वर्य विद्या और बहुत काल पर्यन्त जीवन होता है जिससे निरन्तर सत्य ही का आचरण करो ॥ ९ ॥

ऋतं यैमान ऋतमिदं नोत्पत्तस्य शुष्मस्तुतया उ मन्वुः ।

ऋताय पृथ्वी बह्वले गभीरे ऋताय धेनु परमे हुंदाते ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( ऋताय ) सत्य के लिए ( बह्वले ) बहुत पदार्थों से युक्त ( गभीरे ) गभीर आश्रय में ( पृथ्वी ) भूमि और अन्तरिक्ष तथा जैसे ( ऋताय ) सत्य और जल के लिए ( परमे ) अति उत्तम ( धेनु ) गौओं के सपुत्र वर्तमान ( हुंदाते ) प्रातःकाल वैसे ( ऋतम् ) सत्य को जो ( येमानः ) नियम करते हुए और वैसे ( ऋतम् ) सत्य की जो ( वनोति ) याचना करता है तथा ( ऋतस्य ) सत्य के जो ( शुष्म ) बल को ( तुतया ) शीघ्रता को प्राप्त ( उ ) और ( मन्वुः ) निजसम्बन्धिनी पृथिवी वा वाणी को चाहने वाला है वे ( इत् ) ही सर्वदा पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग मनुष्य के शरीर को प्राप्त होकर नियम से सत्य आचार सत्य याचना करके शीघ्र धार्मिक होते हैं वे भूमि और सूर्य सब की कामना की पूर्ति कर सकते हैं ॥ १० ॥

किं प्रशासापरत्वं से पूर्व विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न द्रुत इन्द्र न गृणान इव जरित्रे नद्योः न पीपेः ।

अकारि ते हरिषो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सबासाः ॥११॥

पदार्थ—हे ( हरिषः ) बहुत वनयुक्त ( इन्द्र ) सत्य ऐश्वर्य के देनेवाले जिस ( ते ) आपका ( नव्यम् ) नवीन ( ब्रह्म ) बड़ा विद्यापूर्ण वन जिसने ( अकारि ) किया उस ( जरित्रे ) विद्या की इच्छा करनेवाले के लिए ( द्रुतः ) सत्य आचरण से प्रशंसित ( नद्योः ) नदियों के ( न ) सदृश ( इवम् ) विज्ञानको लेकर ( न ) शीघ्र ( पीपेः ) पालन करे और सत्य का ( गृणानः ) प्रचार करता हुआ धर्म को प्राप्त कराके ( न ) निश्चय पालन करो और जैसे हम लोग ( धिया ) बुद्धि से और पुरुषार्थ से ( रथ्यः ) रथयुक्त और ( सबासाः ) दानों के सहित वर्तमान ( स्वायम् ) होवें वैसे आप हूजिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाणकुलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जैसे आप लोगों में धर्मयुक्त नीति का स्थापन करें उनकी सेवा करके मित्र होके सम्पूर्ण विज्ञानों को जानिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में प्रश्न उत्तर मंत्री शत्रुओं का निवारण, सेना की उन्नति और सत्य आचरण की उत्तमता का वर्णन करने से इसके धर्म की पूर्ण सूक्त के अर्थों के साथ मङ्गलित जाननी चाहिये ॥

यह तेईसवाँ सूक्त तथा ब्रह्म बर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ कावशास्यं चतुर्विंशतमस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ५, ७

मित्रद्वयः । ३, ६ मित्रविक्रमद्वयः । ४ विराट्मित्रद्वयः । ऋषिः । देवताः । स्वरः ।

२, = भुरिकृषद्वयः । ६ स्वरद्वयः पद्वयः । ११ मित्रद्वयः पद्वयः ।

पञ्चमः स्वरः । मित्रद्वयद्वयः । गान्धारः स्वरः ।

अब चारह ऋचावाले चौबीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में ब्रह्मचर्यवान् के पुत्र की प्रशंसा कहते हैं—

का सुष्टुति शर्वसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्त्तत् ।

बर्दिहि वीरो गृणते ववर्त्तन्ति म गोपतिर्निषिधं नो जनासः ॥१॥

पदार्थ—हे ( जनासः ) विद्वान् वीर पुरुषो ! जो ( वीरः ) विद्या और शौर्य आदि गुणों से व्याप्त जन ( गृणते ) प्रशंसित कर्मवान् के लिए ( ववर्त्तन्ति ) ब्रह्मों को ( बर्दिहि ) देने वाला वर्तमान है ( म ) वह ( हि ) जिससे ( निषिधम् ) अत्यन्त शासन करनेवालों के मङ्गलाचारों से युक्त ( नः ) हम लोगों का ( गोपतिः ) पृथिवीपति अर्थात् राजा हो ( का ) कौन ( सुष्टुतिः ) उत्तम प्रशंसा और ( ववर्त्तन्ति ) बहुत बलवान् के ( सूनुम् ) पुत्र को ( अर्वाचीनम् ) इस समय वाले युवावस्थायुक्त ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले का ( आ, ववर्त्तत् ) वर्त्तव्य करावे और कौन ( राधसे ) धन और ऐश्वर्यवान् के लिए धन के योग का वर्त्तव्य करावे ॥१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो पूर्ण ब्रह्मचर्य को किये हुए का पुत्र और वह स्वयं भी पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या से युक्त और प्रशंसित आचरण करने और सुख देनेवाला होवे वह ही आप का और हम लोगों का राजा हो ॥ १ ॥

अब पूर्वोक्त विषय के अन्तर्गत चतुर्विंशत्ययन के काल को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स ह्यहृत्यो ह्ययः म ईक्ष्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।

स यामया मघवा मर्याय ब्रह्मयते सुव्यये वरिषो धात् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( मघवा ) सङ्कत राज्ययुक्त ( सुव्यये ) ऐश्वर्य की प्राप्ति का अनुष्ठान करनेवाले और ( ब्रह्मयते ) अपने धर्म से जन की इच्छा

करनेवाले (अर्थः) मनुष्य के लिए (अर्थः) सेवन की (आ, वात्) चारण करे (सः) वह (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला (आत्मन्) सार्व मे (सः) वह (अथर्वः) न्याय से एकदुहे किय हुए सत्य धन से युक्त (सः) वह (अथर्वः) बड़े सभाम में (सुष्ठुः) सर्वत्र प्राप्त उत्तम कीर्तियुक्त (सः) वह (इन्द्रः) प्रशंसा करने योग्य और वह (इन्द्रः) पुकारने योग्य होवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य आत्मावस्था से लेकर उत्तम वेष्टावस्तु विद्वानो की सेवा करनेवाला उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त न्यायमार्ग का अनुयायी अनुबोध का ज्ञानमेवावा चतुर और युद्ध में अवरहित होवे उसी को राजा करो ॥ २ ॥

तमिषरो वि ह्यन्ते समीके रिरिक्तास्तन्वः कृष्वत् वासु ।

मिषी यथागमुभयासो अमरस्तोक्तस्य तन्वस्य सातो ॥३॥

पदार्थ—हे (रिरिक्तास्तः) ऐश्वर्य्य करता हुए (अरः) नायक लोगो (समीके) उत्तम प्रकार प्राप्त सभाम में (वत्) जिसकी विद्वान् लोग (वि) विशेष करके (ह्यन्ते) स्पर्धा करते हैं (तन्) उसको (इत्) ही (तन्वः) करीर का (आम्) रक्षक (कृष्वत्) करिये और हे (अरः) राज्य के नायको । (सोक्तस्य) गीष्ट उत्पन्न हुए और (तन्वस्य) कुमारवस्था को प्राप्त बालक के (सातो) उत्तम प्रकार विभाग में (अमरस्तः) दोनों ओर वर्तमान और पुत्र का (स्वागम्) स्वाग तथा (मिषः) परस्पर मनुष्यो की मष्ट करते हुए जन (अमरम्) प्राप्त हों उनका सेवन करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे सेना के जनो ! जो मृत्यों का रक्षक उत्साहयुक्त और शूरीर आवे उसका सत्कार करके और जो सभाम को छोड़के भागते हैं उनका नहीं सत्कार करके और अत्यन्त वृद्ध लेकर विजय को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

अब अथर्वस्यास से तथा अथर्व कर्म से प्रज्ञा और ऐश्वर्य्यवृद्धि विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

क्रतुयन्ति क्षितयो योग उग्राशुचाणासो मिषी अर्णसातो ।

सं यद्विशोऽवृष्टन्त युष्मा आदिक्सेम इन्द्रयन्ते अमीक्रि ॥४॥

पदार्थ—हे (उग्र) तीक्ष्णस्वभावयुक्त राजन् (यत्) जो (क्षितयः) मनुष्य (योगे) मिलने वा यम नियमाविको के अनुष्ठान में (आशुचाणासः) गीष्ट करनेवाले (मिषः) परस्पर प्रीतियुक्त हुए (अर्णसातो) प्राप्त विनाश में (अवृष्टन्ति) वृद्धि कर्मों का इच्छा करते हैं और (विशः) प्रज्ञा (इन्द्रयन्ते) स्वामी करती हैं (युष्माः) युद्ध करनेवाले (नेम) नायक अर्थात् अग्रणी लोग (अमीक्रि) समीप में (सम्, अवृष्टन्ति) विरोध से धन को प्राप्त हो और (आत्, इत्) उसी समय आपके मृत्य हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—योगान्यास के बिना वृद्धि नहीं बढ़ती है और वृद्धि के बिना धन और आत्मा की सिद्धि नहीं होती है और विद्या पुरुषार्थ और न्याय के बिना प्रज्ञा का पालन नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

अब योग्य आहार विहार विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आदिद्व नेम इन्द्रियं यजन्त आदिस्फकिः पुरोळाक्षं रिरिष्पात् ।

आदिस्मोमो वि पृथ्वादसुखीनादिजुजोष वृषभं यज्यै ॥५॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिन के (पुरोळाक्षम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त घन्न को (रिरिष्पात्) पाक (रिरिष्पात्) बढ़ावे वे (नेमे) अन्य जन (आत्) अनन्तर (इत्) ही (इन्द्रियम्) धन को (अज्यस्ते) प्राप्त होते हैं और जिसका (आत्) अनन्तर (इत्) ही (सोम) ऐश्वर्य्य (अनुष्ठीत्) जो प्राणो को प्राप्त होते हैं उनको (वि, पृथ्वात्) समुक्त हो वह (आत्) अनन्तर (इत्) ही (यज्यै) मिलने के लिए (वृषभम्) बलिष्ठ का (जुजोष) सेवन करता है (आत्) अनन्तर (इत्, ह) ही वे सब राज्य और बल को प्राप्त होने के योग्य हों ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो जन उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्नों का पाककर के दधिपूर्वक भोजन करते हैं वे बल को प्राप्त होके रोग रहित होने के योग्य हों और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होके धर्म और यथाव्यवस्था पुरुषो की सेवा करें ॥ ५ ॥

अब शत्रुओं को जीतने के लिए राज्यप्रबन्ध को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

कुजोत्सर्वे वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।

सग्रीबीनेन मन्त्रसावित्रेनन्तमिस्सर्वायं कण्ठे समस्तु ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अस्मि) इस (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (उशते) कामना करनेवाले (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाले राजा के लिए (इन्द्राय) इस प्रकार से (वरिवः) सेवन को (कुजोति) करता है (सग्रीबीनेन) आपक वा अनुष्ठानक अर्थात् समकाले वा आरम्भ करनेवाले के सहित (अमरा) अन्तःकरण से (अविमेषम्) कामनारहित होता हुआ ऐश्वर्य्य को (सुनोति) उत्पन्न करता और (समस्तु) सङ्ग्रामो में (सर्वायम्) भिन्न को (कण्ठे) करता है (तत्) उस को (इत्) ही राजा और प्रधान करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो मनुष्य अपने राज्य के भक्त धर्म का सेवन और ऐश्वर्य्य की कामना करने तथा अथर्व्य को छोड़नेवाले सङ्ग्राम में परस्पर अपने जनों में वैभी करते हुए विद्वान् जन हों वे ही आपको राजसासन में संस्थापन करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

य इन्द्राय सुमन्सोममंय पचात्प्रीकृत भुज्जाति चानाः ।

प्रति मनायोश्चथानि इत्येन तस्मिन्वद्वेषं शुष्ममिन्द्रः ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) राजा (अथ) आज (इन्द्राय) सुम देनेवाले प्रथम और ऐश्वर्य्ययुक्त के लिए (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (सुमन्त्) उत्पन्न करे (पन्तीः) पार्को की (पचात्) पकावे (उत्) और (चानाः) पर्वो को (भुज्जाति) युवे (मनायोः) प्रशंसा की कामना करनेवाले की (उच्यमानि) दधि करनेवालों की (इत्येन) कामना करता हुआ (तस्मिन्) उस में (वद्वेषम्) बल करनेवाले (शुष्मम्) बलयुक्त पुरुष को (प्रति, वद्वेषम्) धारण करे वह बहुत जीतनेवाली सेना को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो राजपुरुष राज्य के लिए ऐश्वर्य्य को बल और सेना के लिए भोजन यदि सामग्रियों को धारण करे वे प्रीतिकारक सुखो को प्राप्त हों ॥ ७ ॥

अब शत्रुओं के विजय से राज्यवधि पदार्थों के रक्षण विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यदा संमर्य्य व्यवेद्यावा दीर्घं यदाजिमम्यक्यंदर्य्यः ।

अचिक्कद्वेषं पस्त्यच्छा दुरोण वा निक्षितं सोमसुद्धिः ॥८॥

पदार्थ—(यदा) जिस काल में (अम्यः) स्वामी ईश्वर अर्थात् राजा (समम्यम्) सङ्ग्राम को (वि, अक्षि) चेतन कराता है (यत्) जो (अक्षि) शत्रुओं का नाश करनेवाला (दीर्घम्) लम्बे बहुत (आजिम्) फंकेते हैं शत्रु जिस में उस सङ्ग्राम की (अक्षि, अम्यम्) प्रसिद्धि करावे और (अक्षि) बलिष्ठ के प्रति (अक्षि) अत्यन्त चिन्ताता है तब (दुरोणो) गृह में (पन्ती) स्त्री के समुदा (सोमसुद्धिः) ऐश्वर्य्य वा भोवधियों के समूह को उत्पन्न करनेवालों के साथ (आ, निक्षितम्) अच्छे प्रकार निरन्तर तीक्ष्ण (अच्छा) अच्छा अत्यन्त मज्ज करता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । जैसे पतिव्रता स्त्री सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य की उत्तम प्रकार रक्षा और उन्नति करके पति आदि को आनन्द देती है वैसे ही विद्या और विनययुक्त राजा अपने प्रजाजनों की अच्छे प्रकार रक्षा और ऐश्वर्य्य की वृद्धि करके सब सज्जनों की रक्षा करता है ॥ ८ ॥

अब व्येष्ट कनिष्ठ के व्यवहार विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

भूर्यसा वस्नमचरत् कनीयोऽविक्कीतो अकानिषं पुनर्यन ।

स भूर्यसा कनीयो नारिरेचीदीना दक्षा वि दुहन्ति म वाणम् ॥९॥

पदार्थ—जो (अविक्कीतः) नहीं वेचा गया (सूर्यसा) बहुत प्रकार से (कनीयः) अत्यन्त अल्प (वस्नम्) हृदयस्तर अर्थात् हृदया में विद्याने का (अचरत्) आचरण करे (सः) वह (पुनः) फिर (यत्) जाता हुआ (वाणम्) बहुत भाव से (कनीयः) अत्यन्त न्यून कर्म को (न) नहीं (नारिरेचीत्) रीता करे और जो (दीनाः) क्षीण (दक्षा) चतुर जन (वाणम्) वाणी को (वि, म, दुहन्ति) अच्छे प्रकार प्रेरित करते हैं उन को मैं (अकानिषम्) प्रदीप्त कर और कामना कर ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अनेक प्रकार के व्यापार करनेवाले अविमानरहित बुद्धिमान हुए विद्या और शिक्षा से पूर्ण वाणी को करते हैं वे छोटी को पाल सकते हैं ॥ ९ ॥

क इमं वशमिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।

यदा वृत्राणि जह्यन्तदर्थेन मे पुनर्ददत् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (कः) कौन (वशमि) दश अङ्गुलियों और (धेनुभिः) दोहनेवाली गौओ के सदृश वाणियों ने (वस) मेरे (इमम्) इस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य को (क्रीणाति) खरीदता है (यदा) जब जो (वृत्राणि) धनों को (अजहन्त) अत्यन्त प्राप्त होता है (अथ) अनन्तर (एनम्) इसको (मे) मेरे लिए (पुनः) फिर (वदत्) देता है तभी ऐश्वर्य्य बढ़े ॥ १० ॥

भाषार्थ—कौन ऐश्वर्य्य को बड़ा मके इस प्रश्न का जो सब प्रकार पुरुषार्थ-युक्त उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी से युक्त है यह उत्तर है, क्योंकि जो धार्मिक ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवे वही औरो को देने को योग्य होवे ॥ १० ॥

न ह्य इन्द्र न गृणान ह्यं जरित्रे नयोः न पीपेः ।

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥१२॥

पदार्थ—हे (हरिवः) प्रशंसा करने योग्य भृत्यो से युक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य को इच्छा करनेवाले (न ह्य) शत्रु व्यवहार से प्रशंसित (गृणान) पुरुषार्थ की स्तुति करते हुए आप (अकारि) याचना करनेवाले वा जिम की याचना नहीं की गई उसके लिए (अथः) मदियों के (न) सदृश (इन्द्रम्) धन को (न) निश्चय (पीपेः) बढ़ाओ तिससे (ते) आपका हम लोगो से (धिया) व्यवहार को ज्ञानमेवाली बुद्धि वा उत्तम किये हुए कर्म से (नव्यम्) देश देशान्तर वा दीप दीपान्तर से नवीन (ब्रह्म) बहुत धन (अकारि) किया जाता है और आप के साथ (रथ्यः) बहुत रथ आदि से युक्त (सदासाः) भृत्यो के सहित हम लोग ऐश्वर्य्य वाले (न) गीष्ट (स्वयम्) हों ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग धन की इच्छा करो तो धर्मयुक्त पुरुषार्थ से योग्य किया को निरन्तर करो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में ब्रह्मचर्यवाले के पुत्र की प्रशंसा, अधर्म के त्याग से और उत्तम कर्म से बुद्धि और ऐश्वर्य की वृद्धि, नियमित आहार विहार, मनु का विजय और श्रेष्ठ कामिष्ठ का व्यवहार कहा गया, इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्णसूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति आननी चाहिए ॥

यह चौबीसवाँ सूक्त और बारहवाँ अर्थ समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथाऽप्यर्थात् पञ्चविंशतस्य सूक्तस्य आनन्देन श्रुतिः । इत्यो वेदता ।

१ मित्रत् पक्षितः । २, ८ स्वराट् पक्षितः ४, ९ पुरिष्-

पक्षितपक्षन्वः । पञ्चमः स्वरः । ३, ५, ७ मित्रलिङ्गद्वय

स्वरः । अर्धतः स्वरः ॥

अब आठ अष्टावाले पञ्चविंशत सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम अन्त में प्रत्येकविषय का आरम्भ किया जाता है—

को अद्य नद्यो देवकाम उवाचिन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।

को वा महेऽबसे पाथ्योय समिद्धे अग्रौ सुतसोम इहे ॥१॥

पार्थ—हे विद्वान् ( अद्य ) इस समय ( कः ) कौन ( देवकामः ) विद्वानों की कामना करनेवाला ( इन्द्रस्य ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त के ( सख्यम् ) मित्रत्व की ( उवाचि ) कामना करता हुआ ( नद्यो ) मनुष्यो मे श्रेष्ठ धर्म का ( जुजोष ) सेवन करता है ( कः, वा ) प्रथवा कौन ( नद्यो ) बड़े ( पाथ्योय ) दुःख के पार उतारने वाले ( अबसे ) रक्षण आदि के लिए ( समिद्धे ) प्रसिद्ध ( अग्रौ ) अग्नि मे ( सुतसोम ) सोमरस को उत्पन्न करनेवाला हुआ ऐश्वर्य को ( इहे ) प्राप्त होता है यह हम लोग पूजते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो विद्या और मित्रता की कामना करनेवाला सम्पूर्ण जगत् का प्रिय आचरण करता और सब का रक्षण करता हुआ अग्नि मे होम आदि से प्रजा का हित करे वही जगत् का हित चाहनेवाला है यह उत्तर है ॥ १ ॥

अब राजकर्तव्यविषय को अगले अन्त में कहते हैं—

को नानाम् बर्चसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्तं इन्द्राः ।

क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं बहि कवये क कुती ॥२॥

पार्थ—हे विद्वानो ( कः ) कौन ( बर्चसा ) बचनसे ( सोम्याय ) सोमरूप ऐश्वर्य की सिद्धि करनेवाले के लिए ( नानाम् ) नम्र होता है ( कः, वा ) अथवा कौन बचन से सोमरूप ऐश्वर्य की सिद्धि करनेवाले के लिए ( मनायुः ) विज्ञान की कामना करता हुआ ( भवति ) होता है ( कः ) कौन ( इन्द्राः ) किरणों के सङ्घ सब को गुणों से ( वस्ते ) चाहता है ( कः ) कौन ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्ययुक्त के ( युज्यम् ) जोड़ने योग्य ( सखित्वम् ) मित्रपने को ( कः ) प्रथवा कौन ( कवये ) बुद्धिमान के लिए ( कुती ) रक्षण आदि कर्म से ( भ्रात्रम् ) भ्रातृपने की ( बहि ) कामना करता है इन का उत्तर कहो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकसुतोपमालङ्कार है । जो मन, कर्म और बचन से नम्र होता है । जो किरणों के तुल्य प्रकाशस्वरूप व्यवहारयुक्त जो जगदीश्वर के साथ मित्रता तथा सब के साथ भ्रातृपन की रक्षा करता और जो विद्वानों के लिए हित करता है वही सम्पूर्ण इष्टफल को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

अब उत्तम मन्त्र और विद्वानों को कर्तव्यकार्यविषय का उपदेश अगले अन्त में दिया है—

को देवानामर्वा अद्या हृणीते क आदिस्थां आदिति ज्योतिरीष्टे ।

कस्याभिनविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविबेनम् ॥३॥

पार्थ—हे विद्वानो ( कः ) कौन ( अद्या ) आज ( देवानाम् ) विद्वानों के ( अद्या ) रक्षण आदि का ( हृणीते ) स्वीकार करता है ( कः ) कौन ( आदिस्थां ) मांसों के सङ्घ वर्तमान पूर्ण विद्वानों तथा ( अविष्टिम् ) पृथिवी और ( ज्योतिः ) प्रकाश की ( ईदृष्टे ) अधिक इच्छा करता है ( कस्या ) किस ( सुतस्य ) उत्पन्न अंशों, प्राप्त होने योग्य बड़ी औषध के रस के ( मनसा ) विज्ञान से ( अविबेनम् ) बुद्ध कामनाओं से रहित जैसे हो वैसे ( अविबेनौ ) अन्तरिक्ष पृथिवी ( इन्द्रः ) सूर्य और ( अग्निः ) बिजुली वा प्रसिद्धरूप अग्निरस को ( पिबन्ति ) पीते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के सङ्घ को करते हैं वे सूर्य आदि के सङ्घ सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करा सकते हैं । और जो नहीं कामना करने योग्य वस्तु की नहीं कामना करते हैं वे कामनाओं की मिद्धि से युक्त होते हैं यह उत्तर है ॥ ३ ॥

तस्मा अग्निमर्तः शम्मी यंसज्ज्योषपयत्सूर्यमुत्तरन्तम् ।

य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नय्योय नृतामाय नृणाम् ॥४॥

पार्थ—हे मनुष्यो ( यः ) जो ( अग्निः ) अग्नि के सङ्घ वर्तमान ( भारतः ) आचरण करनेवाले का यह आचरण करनेवाला ( शम्मी ) गृह के सङ्घ सुख को ( यंसत् ) प्राप्त होवे वह ( उज्जरन्तम् ) ऊपर को धूमते हुए ( सूर्यम् ) सूर्यमण्डल को ( ज्योष् ) निरन्तर ( पयसात् ) देवे ( तस्मै ) उस ( नृणाम् ) विद्या और

उत्तमशीलयुक्त मनुष्यों के ( नृतामाय ) अत्यन्त सुखिण ( नरे ) नायक ( यंसत् ) मनुष्यों में सुख ( इन्द्राय ) उत्तम ऐश्वर्यवान् के लिए ( इति ) ऐसी ( नृणाम् ) कहता है उस को हम लोग ( सुनवामे ) उत्पन्न करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकसुतोपमालङ्कार है । जो गृह मे निवास के अत्यन्त विद्या में निवास करे और ब्रह्मचर्य से अनोल आदि विद्या को प्राप्त होवे और मनुष्यों के लिए हित का उपदेश देवे वही उत्तम होता है वर्य पर्यन्त जीवता और सूर्य आदि को देवता हुआ सब सुख को देवे ॥ ४ ॥

न तं जिनन्ति बहवो न दद्या उर्वेत्मा अदितिः शमी यंसत् ।

मियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुमावीः प्रियो अंस्य सोमी ॥५॥१३

पार्थ—हे मनुष्यो जो ( इन्द्रे ) अत्यन्त ऐश्वर्य होने पर ( प्रियः ) अन्तों को प्रसन्न करने ( सुकृत् ) सत्य कर्म करने, जनों में ( प्रियः ) प्रीति करवे और प्रियो मे ( मनायुः ) मन के सङ्घ आचरण करनेवाला धर्मयुक्त कर्म से ( प्रियः ) आनन्द और शोक से रहित विद्याओं में ( सुमावीः ) अच्छे प्रकार उत्तम गुणों को प्राप्त विद्वानों में ( प्रियः ) सुन्दर और ( अंस्य ) इस जगत् के मध्य में ( सोमी ) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त है ( तम् ) उस को मनु लोग ( न ) नहीं ( जिनन्ति ) जीतते हैं ( बहवः ) अनेक ( दद्या ) नाश करनेवाले ( न ) नहीं नाश करते हैं ( अंस्य ) इस के लिए ( अदितिः ) माता ( उर्वे ) बहुत ( शमी ) सुख को ( यंसत् ) देता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो समूहहित परमेश्वर की उपासना करने और सब के प्रिय साधनेवाले जन होते हैं उन को कोई भी शत्रु जीत नहीं सकता है और जैसे माता वा श्रेष्ठ गृह को प्राप्त होकर मनुष्य सुख का आचरण करता है वैसे ही सब सुखों को प्राप्त होकर निरन्तर आनन्दित होता है ॥ ५ ॥

अब राजा अनास्थाधिकों के गुणों को अगले अन्त में कहते हैं—

सुप्राप्यः प्राशुषाळे वीरः सुर्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।

नासुज्वेरापिर्न सखा न जामिदुप्राप्योऽबदन्तैर्दवाचः ॥६॥

पार्थ—हे मनुष्यो जो ( सुप्राप्यः ) उत्तम प्रकार रक्षा करने योग्य ( प्राशुषाट् ) वेगयुक्त मनुष्यों को सहनेवाला ( वीरः ) यह ( वीरः ) बलिष्ठ ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य-युक्त जन ( सुर्वेः ) उत्तम प्रकार उत्पन्न अन्न के ( केवले ) केवल ( पक्तिम् ) पाक को ( कृणुते ) करता है और जो ( असुज्वे ) घालस्य भरे हुए अर्थात् नहीं उत्पन्न करनेवाले के सम्बन्ध मे ( जामिः ) सब की प्राप्त होनेवाले के ( न ) सङ्घ वा ( सखा ) मित्र के ( न ) सङ्घ ( जामिः ) बन्धु ( सुप्राप्यः ) दुःख मे रक्षा करने योग्य और ( अवाचः ) बुद्धि बचनवाले के ( अबदन्ता ) विरुद्ध काम का हुनन करने-वाला ( इत् ) ही विरोध को ( न ) नहीं करता है वही सब का सुखदाता होता है ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजपुरुष उत्तम प्रकार संस्कार-युक्त अन्न का भोग तथा मित्र और बन्धुओं के सङ्घ वृत्ति करके बुद्धिस्वभाववालों का नाश करते वे दाग्रिध और पराजय को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

न देवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।

आस्य वेदः त्रिदति हन्ति नद्यं वि सुष्वये पत्रये केवलोयुत् ॥७॥

पार्थ—जो ( सुतपाः ) उत्तम प्रकार धर्मसा और राग अर्थात् विषयों मे प्रीति और प्राप्तिसे मे देव से रहित ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्यवाला राजा ( देवता ) श्रेष्ठ बनवाले ( पणिना ) व्यवहारी वैश्य जन आदि और ( असुन्वता ) नहीं पुरुषार्थ करनेवाले जन के साथ ( सख्यम् ) मित्रपने को ( न ) नहीं करता और सब का सत्य त्याग का ( सम्, गृणीते ) अच्छे प्रकार उपदेश देता है और जो ( केवले ) सहायरहित हुआ ( सुष्वये ) उत्तम प्रकार उत्पन्न करनेवाले ( पत्रये ) पाककर्ता के लिए ( युत् ) होता है और जो ( नद्यम् ) निर्लज्ज का ( वि, हन्ति ) उत्तम प्रकार नाश करता है ( अंस्य ) इस राजा का ( वेदः ) द्रव्य कभी ( आ, लिखति ) दीनता अर्थात् नाश को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो राजा धन आदि के लोभ से धनियों के ऊपर प्रसन्न आर दरिद्रों के प्रति अप्रसन्न नहीं होता है और जो बुद्धों को उत्तम प्रकार दण्ड दे कर श्रेष्ठों की निरन्तर रक्षा करता है, नहीं इस का राज्य कभी वेद को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

अब पक्षपातरहित आचरण विषय को अगले अन्त में कहते हैं—

इन्द्रं परेऽधरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।

इन्द्रं क्षियन्त उत युज्यमाना इन्द्रं नरो बालयन्तो हवन्ते ॥८॥१४॥

पार्थ—हे मनुष्यो जो ( परे ) श्रेष्ठ ( अधरे ) निम्न और ( मध्यमासः ) पक्षपात से रहित जन ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले को ( यान्तः ) प्राप्त होते हुए ( इन्द्रम् ) सब सुख धारण करनेवाले का ( अवसितासः ) निश्चय किये हुए और ( इन्द्रम् ) बुद्ध के सारनेवाले को ( क्षियन्तः ) निवास करते हुए ( इन्द्रम् ) सब सुख देनेवाले को ( बालयन्तः ) जनते ( उत ) और ( युज्यमानाः ) बुद्ध करते हुए ( नरो ) नायक लोग ( इन्द्रम् ) बुद्धों के नाश करनेवाले की ( हवन्ते ) स्तुति वा ईर्ष्या करते हैं वे ही राज्यकर्म करने को योग्य होवें ॥ ८ ॥



पदार्थ—विश्व के राज्य में श्रेष्ठ मन्त्राध्यक्ष और निष्कण्ट जहाँ भी की ओर  
में बर्तमान ब्रह्मविद्या विद्वान् और अविद्वान् लोग अपने राज्य के प्रिय, मनुष्यों के  
मार्ग करनेवाले, अन्न और स्वामी के यत्न हैं वहाँ सदा राज्य बढ़ना है ऐसा जानना  
चाहिए ॥ २ ॥

इस सूक्त में प्रथम उत्तर राजा उत्तम मन्त्राध्यक्ष निष्कण्ट मनुष्यों के गुणों का  
वर्णन राजा के सन्तानों के पक्षपात रहितव्यक्त आचरण का उपदेश किया  
इस से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति  
जाननी चाहिए ॥

यह पञ्चीसवाँ सूक्त और बीसहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ सप्तमस्य ब्रह्मविद्यासितस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता १ पङ्क्तिः ।  
२ भुवि पङ्क्तिः । ३, ७ चरान् पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ।  
४ निष्कण्टिपङ्क्तिः । ५ चिराद् निष्कण्टिपङ्क्तिः । षष्ठः स्वरः ॥

अथ सात ऋचावाले सप्तमस्य सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में  
इन्द्र के गुणों का उपदेश करते हैं—

अहं मनुष्यं सूर्यं च कक्षीयं ऋषिरस्मि विभः ।  
अहं कुरुसमार्जुनेयं नृपं च कक्षीयं पश्यता मा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अहम् ) मैं सृष्टि की करनेवाला ईश्वर ( ननु )  
विचार करने और विद्वान् के मनुष्य सम्पूर्ण विद्याओं का जाननेवाला ( सूर्यः, च )  
और सूर्य के सदृश सबका प्रकाशक ( कक्षीयम् ) हैं और ( अहम् ) मैं ( कक्षीयम् )  
सम्पूर्ण सृष्टि की कक्षा अर्थात् परम्पराओं से युक्त ( ऋषिः ) मन्त्रों के अर्थ जानने-  
वाले के समूह ( विभः ) बुद्धिमान् के समूह सब पदार्थों की जाननेवाला ( अस्मि )  
हैं और ( अहम् ) मैं ( कक्षीयम् ) सरल विद्वान् ने उत्पन्न किये हुए ( कुरुसम् )  
ब्रह्म को ( नि ) अत्यन्त ( कक्षीयम् ) सिद्ध करता हूँ और ( अहम् ) मैं ( कक्षीयम् )  
सब के हित की कामना करता हूँ ( पश्यता मा ) सम्पूर्ण शास्त्र की जाननेवाला विद्वान्  
है उस ( मा ) मुझको तुम ( पश्यता मा ) देखो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर  
मन्त्रियों अर्थात् विचार करनेवालों में विचार करने और प्रकाश करनेवालों का  
प्रकाशक विद्वान् में विद्वान् अक्षयित न्याययुक्त सर्वज्ञ और सब का उपकारी है उस  
ही का विद्या वर्णन और योगाभ्यास से प्रत्यक्ष करो ॥ १ ॥

किर ईश्वर के गुणों को अपने मन्त्रों में कहते हैं—

अहं भूमिमद्वामाभ्यां वाहं वृष्टिं वाशुषे मर्याय ।  
अहं यो अंतयं वावशाना मयं देवासो अनु केसमायन ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अहम् ) सबका धारण करने और सब का उत्पन्न  
करनेवाला ईश्वर मैं ( अमर्याय ) अमर्युक्त गुण कर्म और स्वभाववाले के लिए  
( भूमिम् ) पृथिवी के राज्य को ( अमर्याय ) देता हूँ ( अहम् ) मैं ( वाशुषे ) देने  
वाले ( अमर्याय ) मनुष्य के लिए ( वृष्टिम् ) वर्षा को ( अमर्याय ) प्राप्त कराऊँ  
( अहम् ) मैं ( अमर्याय ) प्राणों का पवन को प्राप्त कराऊँ जिस ( अमर्याय ) मेरे ( वाव-  
शानाः ) कामना करते हुए ( देवासः ) विद्वान् लोग ( केसम् ) बुद्धि वा अन्तर्ज्ञान के  
लिए ( अनु, अमर्याय ) अनुकूल प्राप्त होते हैं उन मुझको तुम सेवो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो व्यापकारी स्वभाव वाले के लिए भूमि का राज्य  
देता सब के सुख के लिए वृष्टि करता और सब के जीवन के लिए वायु की प्रेरणा  
करता है और जिस के उपदेश के द्वारा विद्वान् होते हैं उसी की निरन्तर उपासना  
करो ॥ २ ॥

अहं पुरीं मन्दसानो अहं नव सार्क नवतीः शम्बरस्य ।  
अहं तमं देव्यं सर्वतांता दिवोवासमतिथिम् यदावम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( मन्दसानः ) आनन्दस्वरूप और आनन्द देनेवाला  
( अहम् ) मैं जगदीश्वर ( पुरः ) प्रथम ( शम्बरस्य ) मेघ के ( तमं ) अत्यन्त  
प्रसन्नता ( देव्यम् ) उत्तम वेगो समृद्धि प्रवृत्ति में उत्पन्न ( नव, नवतीः ) गिनाने  
पदार्थों को ( सार्क ) साथ ( वि, देव्यम् ) प्रेरणा करूँ ( सर्वतांता ) सब में ही  
निश्चय योग्य जगत् में ( यम् ) जिस ( दिवोवासम् ) विद्वान् स्वयम् प्रकाश के देनेवाले  
( अतिथिम् ) अतिथियों को प्राप्त हो वा प्राप्त करावे उसकी ( अमर्याय ) रक्षा  
करूँ उस मेरी उपासना करो और वह आनन्द युक्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर जगत् की उत्पत्ति के प्रथम, वेतन-  
स्वरूप से अत्यन्त यह सब जगत् को उत्पन्न करके सञ्ज्ञे साथ सब का सम्बन्ध  
करके सब का हित करता है ॥ ३ ॥

अथ पञ्चीसवाँ सूक्त और पञ्चहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अहं भूमिमद्वामाभ्यां वाहं वृष्टिं वाशुषे मर्याय ।  
अहं यो अंतयं वावशाना मयं देवासो अनु केसमायन ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( अहम् ) राज ( विः ) पक्षी ( अहम् ) राज-  
नामक ( विभः ) पक्षी विशेषों से ( अमर्याय ) अविद्यमान चक्राकारगति के साथ  
( अमर्याय ) शीघ्र गिर के वेग को ( अहम् ) धारण करता है वैसे ( अहम् )  
मनुष्य जब मनुष्यों की सेना के वेगानुसार को ( अहम् ) विशेषकर के धारण करता है  
( अहम् ) जो ( अमर्याय ) उत्तम पतनयुक्त ( अहम् ) मनुष्य के लिए ( अमर्याय )  
अन्न आदि से ( अमर्याय ) विद्वानों से सेवित ( अहम् ) ग्रहण करने योग्य वस्तु  
को ( अहम् ) अत्यन्त ( अहम् ) उत्तम प्रकार धारण करता है ( अहम् ) यह सब स्थानों  
में सुखकारी ( अहम् ) हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! इस सृष्टि और  
अन्तरिक्ष में जैसे पक्षी आकाश में जाकर छाते हैं वैसे ही सब लोक और लोकान्तर  
भ्रमते हैं जो सृष्टि को जानता है वही मनुष्यादिकों का सुखकारी होता है ॥ ४ ॥

अहं विरतो वेदविज्ञानः पथेरुणा मनीजवा असजि ।  
तुयं ययौ मनुना सोम्येनोत अवीं विविदे ज्योतो अत्र ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे राजजनों ! ( अहम् ) जो ( अहम् ) इस संसार में आप लोगों से  
( अहम् ) मन के सदृश वेगयुक्त सेनाओं को ( अहम् ) बनाता है तो ( अहम् )  
इस स्थान से जैसे ( अहम् ) हिंसा करनेवाला वेगयुक्त ( विः ) पक्षी ( वेदविज्ञानः )  
कम्पता हुआ ( उरुणा ) बहुत ( पथः ) मार्ग से ( तुयम् ) शीघ्र ( ययौ ) जाता  
है वैसे जो राजा ( मनुना ) मनुष्य ( सोम्येन ) सोम अर्थात् ओषधियों से उत्पन्न  
हुए उस से ( अहम् ) अन्न आदि को ( अहम् ) और सेना को ( अहम् ) तुष्ट करे  
वह विजय को ( विविदे ) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे राजजनों ! आप लोग जब  
तक वाजपक्षी के सदृश वेग युक्त सेना को नहीं करते हैं तबतक विजय से धन का लाभ  
नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

अहं ययौ मनुना सोम्येनोत अवीं विविदे ज्योतो अत्र ॥ ५ ॥  
सोमं मरुदाहृणा देवावाग्निं अमुष्माभुतरादावाय ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे ( अहम् ) सीधी पालवाला ( अहम् ) बड़े हुए  
वेग से युक्त ( मनुना ) पक्षी ( मरुदाहृणा ) दूर देश से गिर के अपने अपेक्षित पदार्थों  
को ( अहम् ) धारण करता है वैसे ही आप ( अहम् ) विज्ञान आदि पदार्थों  
( अहम् ) आनन्द करनेवाले ( अहम् ) प्रशंसा करने योग्य ( सोमम् ) ऐश्वर्य्य को  
( अहम् ) देते हुए ( देवावाग्निम् ) बहुत विद्वानों से युक्त ( अमुष्माभुतम् ) परोक्ष  
( उत्तरात् ) आनेवाले ( विभः ) विजुली के प्रकाश से विद्या को ( आवाय ) ग्रहण  
करके ( वाहृणाः ) बढ़ते हुए हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पक्षी पृथिवी  
से उड़ के अन्तरिक्ष के मार्ग से जाकर और आकर अपने प्रयोजन को निष्ठ करते हैं  
वैसे ही वेग देशान्तर में विमान आदि से जाकर अपने प्रयोजन को निष्ठ करो ॥ ६ ॥

किर प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

अहं ययौ मनुना सोम्येनोत अवीं विविदे ज्योतो अत्र ॥ ५ ॥  
अहं पुरं मरुदाहृणा देवावाग्निं अमुष्माभुतरादावाय ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो सेना का स्वामी ( अहम् ) वाज नामक पक्षी के सदृश ( अहम् )  
सहस्रसंख्यायुक्त ( सोमम् ) ऐश्वर्य्य वा ओषधि आदि पदार्थों ( अहम् ) और  
असंख्य ( अहम् ) उत्पन्न हुए पदार्थों को ( अहम् ) ग्रहण करके सेना और राज्य  
को ( अहम् ) धारण करे वह ( अहम् ) निर्मोह जन ( अहम् ) इन में ( पुरम् )  
पुर को धारण करनेवाला ( सोम्येन ) ऐश्वर्य्य मन्त्राधी ( अहम् ) आनन्द के निमित्त  
( पुरम् ) मूढ ( अहम् ) मनुष्यों का ( अहम् ) त्याग करता है वह इसमें  
( अहम् ) साथ ही विजय को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो शत्रु के बल से अधिक बल शत्रु की मायगी से सँकड़ो गुणी  
अधिक सामग्री उत्तम प्रकार निष्कायुक्त सेना और विद्वानों को अव्यक्त करके युद्ध करें  
वे निश्चय विजय को प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥

इस सूक्त में ईश्वर और राजसेना के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ  
की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पञ्चीसवाँ सूक्त और पञ्चहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ सप्तमस्य ब्रह्मविद्यासितस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।  
१, ४ निष्कण्टिपङ्क्तिः । २ चिराद् निष्कण्टिपङ्क्तिः । ३ निष्कण्टिपङ्क्तिः ।  
५ निष्कण्टिपङ्क्तिः । षष्ठः स्वरः ॥

अथ सात ऋचावाले सप्तमस्य सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में  
इन्द्र के गुणों का उपदेश करते हैं—

अहं भूमिमद्वामाभ्यां वाहं वृष्टिं वाशुषे मर्याय ।  
अहं यो अंतयं वावशाना मयं देवासो अनु केसमायन ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जैसे (अहम्) मैं विद्वान् (गर्भे) गर्भ में (सम्) वर्तमान (एवम्) इन (वेवानाम्) श्रेष्ठ पूर्णपरी धादि पदार्थ वा विद्वानों के (विद्या) सम्पूर्ण (अनिनानि) जन्मों को (अनु, अवेहम्) धनुष्मन् जानता हूँ जिस (वा) भुभुकी (आपसी.) सुवर्ण वाली वा लोहवाली (शस्त्रम्) सो (पुरुः) नगरी (अरक्षन्) रक्षा करती हूँ (अथ) इसके अनन्तर मां मे (इमेनः) बाज पक्षी के सदृश इस शरीर से (अवसा) वेग के साथ (तु) बीघ (नि) अत्यन्त (अवीयम्) निकलू ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि यदा मूर्ष्टिबद्धा बोध और जन्म मरण की शरीर सम्बन्धिनी विद्या जानें जिससे सदैव निर्भयता वर्त ॥ १ ॥

न या स मामप जोषं जभारा मीमाम त्वक्षसा वीर्येण ।

ईमां पुरन्धिरजहादरातीरुत वातां अतरकृषुवानः ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (शुश्रूषन्) बढने (पुरन्धि.) बहुत पदार्थों को धारण करने और (ईमां) प्रेरणा करनेवाला (त्वक्षसा) तीव्र (वीर्येण) बल से (वासान्) वायु के सदृश वेगयुक्त पदार्थों के समान (अरातीः) शत्रुओं का (अजहात्) त्याग करे (उत) और शत्रुओं के बल के (अतरत्) पार होवे (ता, वा) वही (साय्) मेरे (अप, जोषम्) विपरीत मेहन को (न) नहीं (जभार) धारण करे इस से मैं (ईम्) सब प्रकार मुखयुक्त (अभि, आस) सब और से हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य वायु के सदृश बलवान् होकर शत्रुओं को दबाते हैं वे दुःख को नाश और बुरे कर्म को त्याग के सुखी होते हैं ॥ २ ॥

अथ यच्छयेनो अस्वनीदध योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।

सुजघदंस्मा अथ ह क्षिपज्ज्या कुशानुरस्ता मनसा भुरग्यन् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों (यत्) जो (इमेन.) बाज पक्षी के सदृश वर्तमान (अथ, अस्वनीत्) शब्द करे उपदेश देवे (अथ) इसके अनन्तर (यत्) जो (यो.) प्रकाश के सम्बन्ध में (पुरन्धिम्) बहुत धारण करनेवाले राजा को (सुजत्) उत्पन्न करे (यत्, वा) अथवा जो शत्रुबल को कम्पावे (अस्मै, ह) इसी के लिए (ज्याम्) धनुष की नात की (अथ, क्षिपत्) प्रेरणा देता है (अतः) इस कारण (कुशान्) शत्रुओं को मारने वाला जैसे वेधे (मनसा) प्रन्त करण से (भुरग्यन्) पदार्थों का धारण वा पोषण करना हुआ (अस्ता) फँकनेवाला (वि) विशेष करके फँकता है (यदि) जो उसको अन्य जन (अहुः) पहुँचाने दें तो वह सब स्थान में विजयी होवे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जा मनुष्य मत्स्य के उपदेश करने शत्रुओं को जीतने और प्रजा के पालन करनेवाले राजा को प्राप्त हों वे सब प्रकार सुखी हों ॥ ३ ॥

ऋजिष्य ईमिन्द्रायतो न भुज्यं येनो जभार बृहतो अधि ष्योः ।

अन्तः पतन्त्यतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तदे ॥ ४ ॥

पदार्थ—जा (ऋजिष्य) मग्न माग चलनेवाला में श्रेष्ठ मनुष्य (इमेन) बाज पक्षी के सदृश (बृहत) बड़े (स्यो) प्रकाशमान पुरुषार्थ से (इन्द्रायत) ऐश्वर्य्य से युक्तों का (न) जैसे वैसे (भुज्यम्) भोग करनेवाले का (अधि, जभार) अधिक धारण करता है (अस्य) टमका (पर्णम्) पत्र (यामनि) मार्ग में और (प्रसितस्य) बड़े हुए (वे) पक्षी का जो (पतत्रि) गिरनेवाला पत्र (अन्तः) मध्य में (पतत्) गिरता है (तत्) उसको (जभार) धारण करना है वह (अथ) इसके अनन्तर (ईम्) सब प्रकार में आनन्द को प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे बाज पक्षी अपने पुरुषार्थ में बहुत भोग को प्राप्त होता है और तीव्र चलता है वैसे ही पुरुषार्थ करनेवाले जन बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अथ श्वेतं कलशं गोभिरक्ष मापित्यानं मधवां शुक्रमन्धः ।

अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्वै

शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्वै ॥ ५ ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जो (मधवा) बहुत श्रेष्ठ धनयुक्त (गोभिः) गीधों से (अक्षत्) सम्पन्न (मापित्यान्) बड़े हुए (इवेत्तम्) श्वेत वर्ण वाले (कलशम्) बड़े (शुक्रम्) जल और (अथ) अन्न को (पिबध्वै) पीने के लिये (मधवां) आनन्द के लिए (प्रति, यत्) धारण करता है (अथ) और जो (शूरः) मय से रहित (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला (मदाय) आनन्द के लिए (अध्वर्युभिः) अपने नहीं नाश होने की इच्छा करने वालों के साथ (मध्वः) मधुर धादि गुणों के (अक्षम्) प्रथम (प्रयत्नम्) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य आनन्द के लिए (पिबध्वै) पीने को (प्रति, यत्) धारण करता है वह नहीं नष्ट होनेवाले बल को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो नियमित आहार और विहार करने और नहीं हिंसा करनेवाले शूरवीर हों वे सदा विजय को प्राप्त हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में जीव के गुणों के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तार्दिसर्ग सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ यच्छयंस्माद्विवाहितमस्य सुतस्य कामदेव ऋषिः । इन्द्रासोमी देवते ।

१ निवृत्तिमदुष्टम् । २ विराद्विदुष्टम् । ४ विदुष्टमदुष्टम् । जयतः स्वरः ।

२ सुरिक पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिपङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ।

अथ पांच ऋषि वासे अर्द्धार्दिसर्ग सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से इन्द्रपदवाच्य सूर्य्यवृष्टान्त से राजप्रजापुत्रों को उपदेश करते हैं—

त्वा युजा तव सत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रतस्कः ।

अहमहिमरिणात्सप्त मिन्धनपांशुणोदपिहितेव खानि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (सोम) ऐश्वर्य्य से युक्त (तव) आपकी (सख्ये) मित्रता के लिए जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश राजा (अनवे) मनुष्य के लिए (सस्रतः) चलनेवालों को (क.) करना (अहिम्) मेघ का (अहम्) नाश करता (सप्त) सात (मिन्धन्) नदियों को (अरिणात्) प्रेरित करता और (आनि) इन्द्रियाँ (अपिहितेव) बिरी हुई सी (अप) जलों को (अप, अमुरीत्) बेरती हैं वैसे (तव) वह (त्वा) आपको (युजा) युक्त पुरुष के साथ कर्म करने योग्य हो सकता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे सूर्य्य सब के सुख के लिए वर्षा करके सबको आनन्द देता है वैसे ही विद्वानों की मित्रता सब को आनन्द देनेवाली है यह जानना चाहिए ॥ १ ॥

त्वा युजा नि सिवत्सूर्य्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्द्रो ।

अधि ष्युना बृहता वर्त्तमान महो द्रुहो अप विन्वायु धायि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्रो) ऐश्वर्य्यवान् (त्वा) आपको (युजा) युक्तजन से (द्रुहः) टूट कर देनेवाले का सम्बन्ध (अप, धायि) नहीं धारण किया जाता और (महः) बड़ी (वर्त्तमानम्) वर्त्तमान (विन्वायु) सम्पूर्ण अवस्था (अधि) अधिक धारण की जाती है (बृहता) बड़े (ष्युना) व्याप्त (सहसा) बल से (सद्यः) बीघ (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (इन्द्र) विजुली के सदृश (चक्रम्) चक्र की जो (नि, सिवत्) दीनता को प्राप्त होता है वह अपेक्षित सुखको प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् राजा से पालित विद्या धर्म और ब्रह्मचर्य्य धादि से युक्त अनिकाल पर्यन्त जीवने वाले हों वे मनुष्यों के जीतने वाले होते हैं ॥ २ ॥

अहिन्द्रो अर्द्धदमिन्द्रो पुरा बस्यून्मध्यन्दिनादर्भाके ।

दुर्ग दुरोणे क्त्वा न याता पुरू सहसा शर्वा नि बर्हीत् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्रो) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त प्रजाजन जो (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश राजा (अध्वर्युनात्) मध्य दिन में वर्त्तमान ताप में (बस्यून्) बड़े माहम करने वालों का (अहम्) नाश करता है (अग्निः) अग्नि के सदृश (अधीके) समीप में दुष्टों को (अबहत्) जलाता है और (पुरा) पहिले में (दुर्ग) राजगड् (दुरोणे) गृह में (क्त्वा) बुद्धि वा धर्म के (न) सदृश (पुरू) बहुत (शर्वा) सम्पूर्ण हिसनो और (सहसा) इकारों का (नि, बर्हीत्) नाश करे वह और आप इस प्रकार से सुख को (याताम्) प्राप्त होय ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मध्याह्न में सूर्य्य सब को तपाना है वैसे ही न्यायकारी राजा खोरादिकों का दुःख देता है और अग्नि के सदृश अस्मीभूत करके सम्पूर्ण हिंसा दूर करे ॥ ३ ॥

विश्वस्मास्मीमधमां इन्द्र बस्यून्विशो बासीरकुणारप्रशस्ताः ।

अबाधेयाममृणतं नि शत्रूनविन्देयामपिचिंति वधत्रैः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करनेवाले आप (सोम) सूर्य्य के सदृश (बासी) देन वाली (विश) प्रजापों का (अप्रशस्ता) श्रेष्ठ सुख से रहित करने हुए (अबधाम्) आप के आचरण करनेवाले (बस्यून्) दुष्टों को (विश्वस्मात्) सबसे पीडायुक्त (अह्मणोः) करें । हे राजा और प्रजापति ! मिलकर आप दोनों (वधत्रैः) वधो से (शत्रून्) शत्रुओं को (अबाधेयाम्) बाधा देणों और प्रजा को (अमृणतम्) सुख देणों (अपिचिंतिम्) भत्कार को (नि) अत्यन्त (अविन्देयाम्) प्राप्त होय ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजा धादि राजजनों ! जो साहस कर्म करने और जो दुष्ट उपदेश से प्रजा को दोषयुक्त करनेवाले तीव्र जन हों उन को निरन्तर बाधा देणों और श्रेष्ठा का सत्कार करो । ऐसा करने पर आप लोगों का बड़ा सत्कार होगा यह जानना चाहिए ॥ ४ ॥

किर राजप्रजा के पुराणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एवा सत्यं मधवामा युव तदिन्द्रश्च सोमोर्वमरुधं गोः ।

आर्द्धतमपिहितान्यरना रिरिचधुः आश्चिचतुदामा ॥ ५ ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (सोम) उत्तम गुणों से युक्त (मधवामा) बहुत भनों से युक्त राजा और प्रजापति (युवम्) आप दोनों जो (समम्) सत्य (गोः) धूमिली का (अर्द्धम्) दीपने वाला (अश्चिचम्) जोड़ों में उत्पन्न हुए को प्राप्त होकर (चतुर्दामा)

को ( आ, आचरन् ) निरन्तर नाश करो ( यत् ) उसको ( इन्द्र ) राजा ग्रहण करने के समुच्चयों का नाश करें और जिस ( अविहितानि ) चिरे हुए ( अन्ना ) भोग करने योग्य पदार्थों को ( रिरिकन् ) छोड़ो ( आः, च ) पृथिवियों को ( चित् ) भी छोड़ो उन को प्राप्त होकर दुष्ट सम्बन्धी ( सत्त्वाना ) दुःख के नाश करनेवाले हों इस प्रकार से ( एष ) ऐसे ही राजा भी हों ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो राजा मन्त्री सेना और प्रजाजन परस्पर में स्नेह करके राज्य विधा करें तो इन का कोई भी भय नहीं उपस्थित हो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजादि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अष्टाईसवां सूक्त और सत्रहवां वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ परम्परार्थकोर्वाश्रितसमस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । इन्द्रः देवता । १ विराट् निघटुः । ३ निघटुः । २, ४ निघटुः छन्दः । वेदतः स्वरः ।

५ स्वरान्तः पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अथ पांच ऋषा वाले उन्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से राजविषय को कहते हैं—

आ नः स्तुत उप वाजैर्मिकृती इन्द्रं याहि हरिर्मिर्मन्दसानः ।

तिरश्चिर्बयः सर्वना पुरुषपाङ्गुपेभिर्गुणानः सत्यराधाः ॥१॥

वार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ( स्तुतः ) प्रशंसित ( मन्दसानः ) आनन्द करते और ( आङ्गुपेभिः ) स्तुति करनेवालों से ( गुणानः ) स्तुति को प्राप्त होते हुए ( सत्यराधाः ) सत्य में धनयुक्त ( अय्यैः ) स्वामी आप ( पुरुषा ) बहुत ( सर्वना ) ऐश्वर्य्यों को प्राप्त ( तिरः ) तिरछे ( चित् ) भी होते हुए ( कृती ) रक्षण आदि के लिए ( वाजैभिः ) अन्न सेना आदि के और ( हरिभिः ) उत्तम वीर पुत्रों के साथ ( नः ) हम लोगों को ( उप, आ, याहि ) प्राप्त हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो यहां प्रशंसित गुण कर्म और स्वभावयुक्त आप-स्वाय का निवारण करनेवाला प्रजा के रक्षण में तत्पर श्रेष्ठ सहायकानी उत्तम सेना से युक्त न्यायकारी धर्म से इकट्ठे किये हुए धनवाना और अभिमान से रहित हों वे उमी को राजा मानो ॥ १ ॥

आ हि ष्मा याति नयैश्चिकित्वा न्यमानः सोऽमिषं यज्ञम् ।

स्वश्चो या अमीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सह वीरैः ॥२॥

वार्थ—हे मनुष्यों ( य ) जो ( अमीरु ) भगवन् ( मन्यमान ) सत्य का अभिमान रखनेवाला ( स्वश्चः ) श्रेष्ठ घोड़ा से युक्त ( चिकित्वा ) ज्ञानवान् ( न्यमानः ) स्तुति किया गया ( नयैः ) मनुष्यों में श्रेष्ठ ( हि ) जिससे ( सोऽमिषं ) सत्य आचरण करनेवालों के साथ ( यज्ञम् ) राजा और प्रजा के व्यवहार को ( उप, आ, याति, स्म ) समीप आता ही है वह ( सुष्वाणेभिः ) उत्तम प्रसार शब्द करने हुए ( वीरैः ) धृता आदि गुणों से युक्त पुत्रों के साथ ( सन्, भवति, ह ) आनन्द करता ही है ॥ २ ॥

भाषार्थ—जैसे चार वेदा का जाननेवाला वेद विद्वान्निपुण विद्वाना के साथ यज्ञ को प्राप्त होकर स्तुति किया जाता है वैसे ही श्रेष्ठ गणना में युक्त मन्त्री और मूर्खों के साथ राजा स्तुति किया जाता है ॥ २ ॥

आवयेदस्य कर्णो वाजयध्वं कुष्टामनु म दिशं मनुयध्वैः ।

वदाहृषाणो राक्षसे तुविष्मान्करं इन्द्रः सुतीर्याभयं च ॥३॥

वार्थ—हे सत्य के उपदेश करनेवाले आचार्य और उपदेशक आप ( अन्व ) इस के ( कर्णो ) कानों को ( वाजयध्वं ) जनाने के लिये ( कुष्टाम् ) श्रेष्ठ राजाजी से सेवन की गई नीति को ( अनु, आचरन् ) अनुकूल सुनाइये जिस से यह ( विष्मन् ) विष्मा को ( मन्वयध्वं ) प्रसन्न करने को ( वदाहृषाणः ) अतिबलिष्ठ ( तुविष्मान् ) प्रशंसित बलयुक्त ( इन्द्रः ) सत्य न्याय को धारण करनेवाला ( राक्षसे ) धन के लिए ( मः ) हमारे ( सुतीर्या ) सुन्दर, दुःखों को दूर करनेवाले आचार्य महामन्त्र और सत्य भाषण आदि विन में उनकी और ( अमयम्, च ) भय रहित को ( इत् ) ही ( मः, करत् ) करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जिस राजा के सत्य और न्याय के उपदेश करनेवाले धार्मिक विद्वान् हों वह राजा विष्मा और विनय आदि उत्तम गुणों के सहित होता हुआ सब को भय रहित करके निरन्तर प्रसन्न कर सके ॥ ३ ॥

अक्लृषो भक्ता नार्धमानसुतो इत्या विप्रं हर्षमानं गुणन्तम् ।

उप स्वनि दर्शनो धुप्याऽशुन्तसहस्राणि अतानि रजवाहुः ॥४॥

वार्थ—हे मनुष्यों ( मः ) जो ( भक्ता ) बलनेवाला ( अक्लृषो ) रक्षण आदि के लिये ( इत्या ) इस प्रकार से ( नार्धमानम् ) ऐश्वर्यवान् प्रशंसित ( अशुन्तम् ) ईर्ष्या करनेवाले ( धुप्याः ) स्तुति करते हुए ( विप्रम् ) बुद्धिमान् को ( स्वनि ) आत्मा में ( उप, दर्शनः ) धारण करता हुआ ( सहस्राणि ) सहस्रों और ( अतानि ) बीसों ( रजवाहुः ) तीव्र बलनेवाले वीरों को ( धुरि ) रथ के चारों ओर घेरता हुआ ( अक्लृषः ) उत्तम प्रकार बलनेवाला ( अक्लृषाहुः ) सत्य हर्षों में विप्र राजा हों वह हम लोगों को भय रहित करने योग्य हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो राजा श्रेष्ठ मनुष्यों को ग्रहण करे वही राज्य बढ़ाने को योग्य होवे ॥ ४ ॥

अथ प्रजापुत्रों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वोतांसो मघवसिन्द्र विप्रं वयं तं स्याम सूर्यो गुणन्तः ।

मेजानासो बृहदिवस्य राय आकार्यस्य दावनें पुरुषोः ॥५॥१८

वार्थ—हे ( मघवन् ) श्रेष्ठ धनयुक्त ( इन्द्र ) उत्तम गुणों के धारण करने वाले राजन् ( स्वोतांसः ) आप से रक्षा और बुद्धि को प्राप्त ( मेजानासः ) सेवन और ( मघवन् ) स्तुति करते हुए ( विप्रः ) बुद्धिमान् ( सूर्यः ) प्रकाशित विष्मा वाले ( वयम् ) हम लोग ( बृहदिवस्य ) प्रकाशमान ( आकार्यस्य ) सब प्रकार शरीर में उत्पन्न ( पुरुषोः ) बहुत अन्नादि से युक्त ( तं ) आप के ( रायः ) धन के और ( दावने ) देनेवाले के लिए स्थिर ( स्याम ) हों ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा करें तो हम लोग अति उत्पत्तियुक्त हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उन्तीसवां सूक्त और अठारहवां वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ अतुविशात्पुत्रस्य विशालसमस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । १-८, १२-२४

इन्द्रः । ९-११ । इन्द्र उवाच देवते । १, ३, ५, ६, ११, १२, १६,

१८, १९, २३ निघटुगायत्री । २, १०, ७, १३-१५, १७,

२१, २२, गायत्री । ४, ६ विराट् गायत्री । २० पिपीलिका-

मध्या गायत्री छन्दः । ऋषयः स्वरः । ८, २४

विराडनुष्टुप्छन्दः । ऋषयः स्वरः ॥

अथ बीबीस ऋषावाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से सूर्यपूजान्त से राजविषय को कहते हैं—

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायै अस्ति वृत्रहन ।

नकिरेवा यथा त्वम् ॥१॥

वार्थ—हे ( वृत्रहन् ) मेघ को नाश करनेवाले सूर्य के मधुसूतमान ( इन्द्र ) राजन् ( यथा ) जैसे ( त्वम् ) आप हो वैसे ही ( त्वत् ) आप से ( उत्तर ) पीछे ( नकिः ) नहीं ( अस्ति ) है ( न ) नहीं ( ज्यायान् ) बड़ा है और ( नकि, एष ) न उत्तम ही है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो सत्य श्रेष्ठ हों वे उसी को राजा करो ॥ १ ॥

सत्रा ते अतु कुष्टयो विश्वा चक्रं वावतुः ।

सत्रा महां असि श्रतः ॥ २ ॥

वार्थ—हे राजन् जो आप ( सत्रा ) सत्य आचरण के ( महात् ) बड़े ( अतु ) सम्पूर्ण मानव के श्रवण से यशयुक्त ( असि ) हो तो ( ते ) आप के सम्बन्ध में ( सत्रा ) सत्य आचरण से ( कुष्टयः ) मनुष्य ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( चक्रं ) चक्रों के सदृश प्रवर्तते जैसे गायी में पहिया वैसे ( अतु, वावतुः ) वर्तव्य करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप न्यायकारी हों तो सम्पूर्ण प्रजा आपके अनुकूल वर्तव्य करें ॥ २ ॥

विश्वं चनेवना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः ।

यदश नक्तमातिरः ॥ ३ ॥

वार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के विदीर्ण करनेवाले ( यत् ) जो ( विश्वे इत् ) सभी ( देवाः ) विद्वान् जन ( अना ) प्रतिज्ञास्वरूप ( अना ) दिनों, और ( नक्तम् ) रात्रि को ( त्वा ) आपका आश्रय लेकर शत्रुओं के साथ ( युयुधुः ) युद्ध करते हैं उनके ( चने ) भी साथ आप शत्रुओं का ( आ, अतिरः ) नाश करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—राजा को चाहिए कि शत्रुजन उत्तम शिक्षित और श्रेष्ठ रखें जिस से दिन रात्रि शत्रु लोग क्षिपे हुए रहे ॥ ३ ॥

यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युष्यते ।

सुषाव इन्द्र सूर्यस्य ॥ ४ ॥

वार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के सदृश वर्तमान न्यायकारिन् ( यत् ) जिस राज्य में ( सुषावः ) जोरी करनेवाले के सदृश आचरण करनेवाले ( बाधितेभ्यः ) पीड़ायुक्त जनों से ( कुत्साय ) सत्य और अर्थ से युक्तजन और ( युष्यते ) युद्ध करते हुए जन के लिए ( सूर्यस्य ) सूर्य के सदृश वर्तमान न्यायकारी ( यत् ) जन को वर्तव्य है वहां ( यत् ) भी सुख नहीं बढ़ता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो राजा प्रजा की पीड़ा को नहीं दूर करता और सूर्य के सदृश श्रेष्ठ गुणों में प्रकाशमान न हो और प्रजाओं से कर ग्रहण करे वह राजा नहीं होवे ॥ ४ ॥



यत्र देवोऽप्यायतो विश्वोऽभ्युध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनैरहम् ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) तेजस्वी राजन् ( एकः ) एक ( इत् ) ही ( त्वम् ) आप ( यत्र ) जहाँ ( विश्वान् ) सम्पूर्ण ( देवान् ) विद्वानों को ( आयायतः ) आधत्ते हुए ( अभ्युध्य ) अधर्म के सेवन करनेवालों का ( अहम् ) नाश करे वहा शत्रुओं से ( अभ्युध्यः ) नहीं युद्ध करने योग्य अर्थात् शत्रुजन आप से युद्ध न कर सके ऐसे होवे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जब जब दुष्टजन श्रेष्ठों को बाधा देवें तब तब आप सम्पूर्ण अधर्मियों को अत्यन्त दण्ड दीजिए ॥ ५ ॥

यत्रोत मर्त्योऽय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् ।

प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सुख के देनेवाले ! आप ( सूर्यम् ) सूर्य को वायु के सद्ग ( शचीभिः ) बुद्धियों वा कर्मों से ( एतशम् ) विद्या को प्राप्त छोड़े के सद्ग बलवान् की ( प्रावः ) रक्षा करें ( यत्र ) जिस राज्य में ( मर्त्योऽय ) मनुष्य के लिए ( कम् ) सुख ( अरिणाः ) देवें वहाँ ( उत ) भी दुष्टों को दुःख देवें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जहाँ राजा श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों को दण्ड देकर विद्या और विनय को बढ़ाता है वहाँ सम्पूर्ण प्रजा स्वस्थ होती है ॥ ६ ॥

किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मनुमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥७॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) श्रेष्ठ धनयुक्त ( वृत्रहन् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! ( मनुमत्तमः ) प्रशंसित क्रोधयुक्त आप सूर्य मेघ को जैसे वैसे ( दानुम् ) देनेवाले का ( आ, अतिरः ) नाश करते हैं ( अत्र, अह, आत् किम् उत ) अहम् ! इस विषय में तो क्या अनन्तर आप राजा भी ( अस्ति ) हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो राजा दुष्टों के ऊपर अति क्रोध करने और श्रेष्ठों में अत्यन्त शान्ति रखनेवाला होता है वही राज्य बड़ा सकता है ॥ ७ ॥

एतद् घेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।

स्त्रियं यदुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दोषों के नाश करनेवाले ! जैसे सूर्य ( उर्हणायुवम् ) दुःख से नाश करने योग्य की कामना करनेवाले ( विव ) प्रकाश की ( दुहितरम् ) कन्या के सद्ग वर्तमान प्रातर्वेला का नाश करता है वैसे ( एतद् ) इस कर्म और ( पौंस्यम् ) पुरुषों के लिए हित ( वीर्यम् ) पराक्रम को ( चकर्थ ) करते हो और आप ( य ) शत्रुओं ही का ( वधीः, इत् ) नाश करते ही हो ( यत् ) जो ( स्त्रियम् ) स्त्री ( उत ) और श्रुत्य को भी पालिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य रात्रि का नाश और दिन की उत्पत्ति करके प्राणिमों को सुख देता है वैसे ही दुष्ट आचरणों का नाश और श्रेष्ठों का पालन कर और विद्या को उत्पन्न करके सम्पूर्ण प्रजाओं को सुख देवे ॥ ८ ॥

दिविषिद् या दुहितरं महान मदीयमानाम् ।

उवासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) तेजस्वी राजन् ! जैसे ( महान् ) महानुभाव कोई ( विव, दुहितरम् ) कन्या के सद्ग वर्तमान सूर्य की ( मदीयमानाम् ) विस्तीर्ण ( उवासम् ) प्रातर्वेला के ( विव ) सद्ग ( सम्, पिणक् ) पीसता है वैसे ( य ) ही अविद्या और दुष्टों का निवारण करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजपुरुष और राजा अन्यायरूप अन्धकार को निवृत्त करके विद्या और न्यायरूप सूर्य को उत्पन्न करने से सूर्य के सद्ग प्रतापी होता है ॥ ९ ॥

अपोषा प्रनसः सरस्सम्भिष्टादं विम्पुषी ।

नि यत्सीं शिरनयद् वृषा ॥ १० ॥ २० ॥

पदार्थ—जो ( वृषा ) बलिष्ठ राजा जैसे ( विम्पुषी ) भय देनेवाली ( उवा ) प्रातर्वेला ( अनस ) गाड़ी के अग्रभाग के सद्ग आगे चलनेवाली ( सम्भिष्टात् ) चणित हुए ( अह ) ही अन्धकार में ( अप, सरत् ) घागे चलती है ( यत् ) जो ( सीम् ) सब प्रकार ( नि, शिरनयत् ) शिथिल करती है वैसे आचरण करे वह सूर्य के सद्ग तेजस्वी होवे ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे रथ का अग्रभाग आगे होना है वैसे ही सूर्य के आगे प्रातःकाल चलता है और जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करता है वैसे राजा अन्याय के आचार का नाश करे ॥ १० ॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इतदस्या अनः जये सुसंपिष्टं विपारया । ससारं सीं परावतः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( सीम् ) सूर्य ( अस्या ) इस प्रातःकाल का ( इतत् ) यह ( सुसंपिष्टम् ) उत्तम प्रकार एक स्थान में पीसा चूर्ण हो जिस में उस ( अतः ) गाड़ी के सद्ग ( विपारि ) बन्धनरहित मार्ग में ( परावतः )

दूर देश से ( आ, ससार ) सब प्रकार चलता है, जिसमें मैं ( अतः ) जयन करके वैसे इस को आप जानिए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ बाहुन शीघ्र दूर जाते हैं वैसे ही प्रातःकाल दूर जाता है ऐसा जानना चाहिए ॥ ११ ॥

अब मेघसन्धि नवीसंतरस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत सिन्धु विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि ।

परि छा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त ! आप ( मायया ) बुद्धि से ( अधि, क्षमि ) पृथिवी के बीच ( वितस्थानाम् ) विशेष करके स्थित नदी ( उत ) और ( विबाल्यम् ) बालपन से रहित अर्थात् छोटे नहीं, बड़े ( सिन्धुम् ) नद के ( परि ) सब ओर से ( स्थाः ) स्थित होते हैं ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! समुद्र नदी के पार होने के लिए बुद्धि से नीका आदि को रच के लक्ष्मीवान् होओ ॥ १२ ॥

अब राक्षससन्धि से मनुष्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत शुष्मस्य धृषुया प्र मृक्षो अमि वेदनम् ।

पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( यत् ) जिससे आप ( शुष्मस्य ) बलयुक्त सेना की ( धृषुया ) ठिठाई से ( अमि ) इस शत्रु के ( पुरः ) नगरो को ( प्र, मृक्षः ) अच्छे प्रकार सीधे अतएव शत्रुओं को ( संपिणक् ) चणित करो ( उत ) और भी ( अमि, वेदनम् ) विधान को प्राप्त कराओ ॥ १३ ॥

भाषार्थ—वही राजा सम्मत होवे कि जो सेना को बड़ा और अन्याय के आचरणों को दूर करके विन कहे को अच्छा जाननेवाला होवे ॥ १३ ॥

फिर सूर्यवृष्ट्या से राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहमिन्द्र शम्बरम् ॥१४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) तेजस्वी राजन् आप जैसे सूर्य ( बृहतः ) बड़े ( पर्वतात् ) पर्वत में ( अधि ) ऊपर ( शम्बरम् ) सुख प्राप्त होता है जिससे उस मेघ को ( अह, अहम् ) नाश करता और ( उत ) भी प्रजाओं को पालता है वैसे ही शत्रुओं का नाश करके ( कौलितरम् ) अत्यन्त कुनीन ( बालम् ) सेवक का पालन करो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य मेघ से जल को पृथिवी में गिरा के सब को जिलाता है वैसे ही पर्वत के ऊपर स्थित भी डाकुओं को नीचे गिरा के प्रजाओं का पालन करो ॥ १४ ॥

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शताऽवधीः ।

अधि पञ्च प्रषोरिव ॥ १५ ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप ( प्रषोरिव ) चक्र में स्थित ऐनी कीलों के सद्ग वर्तमान ससार में कण्टक दुष्टों को ( पञ्च ) पांच ( अता ) सी वा ( सहस्राणि ) सहस्रों दुष्टों का ( अधि, अवधीः ) नाश करो ( उत ) और ( वर्चिनः ) बहुत पड़े हुए ( दासस्य ) सेवक क जनों को पालिए ॥ १५ ॥

भाषार्थ—वह राजा जो राजमान राजपुरुषों से यदि दुष्टों का निवारण करके श्रेष्ठों का सत्कार करे तो सम्पूर्ण जगत् उसका सेवक होवे ॥ १५ ॥

उत त्वं पुत्रमग्रवः परावृत्त शतक्रतुः । उषधेभिन्द्र आभजत् ॥१६॥

पदार्थ—जो ( शतक्रतुः ) असंख्यबुद्धियों वा ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजा ( उषधेभ्यः ) प्रशंसा करने योग्य शास्त्रों में ( त्वम् ) उस ( परावृत्तम् ) नहीं नष्ट हुए पराक्रमवाले ( पुत्रम् ) पुत्र को ( अभजः ) अग्रगण्यियों के सद्ग ( आ, अभजत् ) सब प्रकार सेवन करता है ( उत ) और शिक्षा भी देवे वह सिद्धकाय्य होवे ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो राजा माता पुत्रों का जैसे वैसे प्रजाओं का पालन करे उसको प्रजाजन पिता के समान मानें ॥ १६ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उत त्या तुर्वशायद् अस्नातारा शचीपतिः ।

इन्द्रो विद्वो अपारयत् ॥ १७ ॥

पदार्थ—( शचीपतिः ) प्रजा वा वाणी का पति ( विद्वद् ) विद्वान् ( इन्द्रः ) और राजा जिन ( तुर्वशायद् ) शीघ्र बसा करके और यत्न करनेवाले मनुष्य ( उत ) और ( अस्नातारा ) स्नान आदि कर्मों से रहित मनुष्यों को ( अपारयत् ) दुःख से पार उतारे ( त्या ) वे दोनों सुखी होवें ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जिन मनुष्यों को यथार्थवेत्ता विद्वान् लोग शिक्षा देवें वे दुःख के पार जाकर सुखी होते हैं ॥ १७ ॥

उत त्या मय आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अयोविन्द सावधीः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! आप ( सारः ) बीच ( त्या ) उन दोनों ( सारयोः ) चलते हुओं के ( पारतः ) पार के वर्तमान ( अयोविन्दः ) पुरुषों

यस्ये आश्विन्यकारक रथो का ( अश्विनः ) तास करो ( उत ) और ( आश्विनः ) उत्तम गुण कर्म और स्वभाववाली का पालन करो ॥ १५ ॥

आश्विन—हे राजन् आप निरन्तर कुष्ठों का दाहन और श्रेष्ठों का उत्कार करो ॥ १६ ॥

अथ राज विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अनु इ जेहिता नयोऽन्ध भोयं च वृत्रहन् । न तस्य सुम्नमर्हते ॥१७॥**

पदार्थ—हे ( अनुहृत् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! जो ( अन्धः ) नाभक अर्थात् अन्धणी होते हुए आप ( अन्धन् ) मेरी के विज्ञान से विकल ( भोयं, च ) और अन्ध अर्थात् पशु ( इन्द्रः ) दोनों ( अहिम्ना ) खोदनेवालों का ( अनु ) पश्चात् पालन करे तो ( ते ) आप के ( तत् ) उस ( सुम्नम् ) सुख को ( अन्धः ) व्याप्त होने को कोई भी शत्रु ( न ) नहीं समर्थ होवे ॥ १७ ॥

आश्विन—जो राजा अनाथ अन्धादिकों का निरन्तर पालन करे उसका राज्य और सुख कभी नहीं नष्ट होवे ॥ १८ ॥

फिर सूर्यवृत्तान्त से राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**सुतमरन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥२०॥२१॥**

पदार्थ—जो ( इन्द्रः ) तेजस्वी सूर्य के सवृक्ष ( दिवोदासाय ) प्रकाश के सेवनेवाले और ( दाशुषे ) सेनेवाले के लिए ( अमरन्मयीनाम् ) मेघों के समूहों के सवृक्ष पावाणों से बने हुए ( पुराम् ) नगरों के ( दासम् ) सेकड़े को ( मि, व्यास्यत् ) काटे वही विजयी होने के योग्य होवे ॥ २० ॥

आश्विन—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आप बहुत बड़े हुए मेघों को जैसे सूर्य वैसे अनेक शत्रुओं के नगरो को जीन सकें तो राज्यलक्ष्मी और धन को प्राप्त होने के योग्य होवे ॥ २० ॥

**अस्वापयह्मीतये सहसा त्रिसतं हयैः ।**

**दासानामिन्द्रो नायया ॥ २१ ॥**

पदार्थ—जो ( इन्द्रः ) राजा ( नायया ) बुद्धि से ( दासानाम् ) सेवकों और शत्रुओं के ( हयैः ) हननमात्रों से ( ह्योतये ) हिसन करने के लिए ( सहसा ) अस्व ( त्रिसतम् ) वा तीस को ( अस्वापयत् ) सुलावे वही जीतनेवाला होवे ॥ २१ ॥

आश्विन—जो सेनापति आदि बुद्धि से शत्रुओं का नाश करे वे सदा ही सुखी होवे ॥ २१ ॥

**स घेदुतासि वृत्रहन्समान इन्द्र गोपतिः ।**

**यस्ता विधानि चिच्छुषे ॥ २२ ॥**

पदार्थ—हे ( वृत्रहृत् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य के कर्ता ( यः ) जो ( गोपतिः ) पृथिवी के स्वामी ( समानः ) सूर्य के सवृक्ष आप ( ता ) उन ( विधानि ) सब की ( चिच्छुषे ) बुद्धि करते ( च ) ही हो ( स, इन्द्रः ) वही बनवान् ( उत ) और सुखी ( अस्ति ) होने हो ॥ २२ ॥

आश्विन—जो राजा सूर्य के सवृक्ष न्याय के प्रकाश से रागद्वेषबाला होता हुआ सम्पूर्ण राज्य का पालनकर्ता है वही गणना करने योग्य होता है ॥ २२ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उत नूनं यदिभिर्यं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।**

**अथा नकिष्टवा मिन्त ॥ २३ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) सब के रक्षा करनेवाले आप ( अथः ) आज ( अतः ) जो ( वृत्रहृत् ) निश्चित ( इतिभिर्यम् ) इन्द्रिय को ( उत ) और ( पौंस्यम् ) पुरुषों में श्रेष्ठ कर्म की ( करिष्याः ) करे ( तत् ) उसकी कोई भी ( नकिः ) नहीं ( आ, मिन्त ) हिंसा करे ॥ २३ ॥

आश्विन—जो राजा वर्तमान समय में बल को बढ़ा सके वह शत्रुओं से अभित हुआ निश्चय विजय को प्राप्त होवे ॥ २३ ॥

अथ विद्वानों के उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**वासवार्थं स आदुरे देवो देवात्वर्यमा ।**

**वासं पुषा वासं यशो वासं देवः कर्कशती ॥ २४ ॥ २५ ॥**

पदार्थ—( आदुरे ) शत्रुओं के नाश करनेवाले राजन् ! ( कर्कशती ) जिसके काटीमरी की कामना करनेवाला विद्यमान वह ( देवः ) विषय का लेनेवाला ( ते ) आप के लिए ( वासः वासम् ) प्रसन्न करने योग्य प्रसन्न करने योग्य की ( वासम् ) वेले और जिसके काटीमरी की कामना करनेवाला विद्यमान वह ( अन्धः ) व्यापारियों ( वासम् ) प्राप्त होने योग्य प्रसन्न और जिसके काटीमरी की कामना करनेवाला विद्यमान वह ( पुषा ) बुद्धि करनेवाला ( वासम् ) सेवक करने योग्य जन की है और जिसके काटीमरी की कामना करनेवाला विद्यमान वह ( यशः ) ऐश्वर्य से युक्त ( देवः ) अनायास ( वासम् ) श्रेष्ठ विज्ञान को वेले जन सब की आप तथा सेवा करो ॥ २४ ॥

आश्विन—हे राजन् ! जो लोग सत्य उपदेश सत्य न्याय यथार्थ विद्या और विद्या की आप को जिसा वेले उन सब का अत्य निरन्तर उत्कार करो ॥ २४ ॥

इस सूक्त में सूर्य, मेघ, अनुष्य, विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जायती चाहिए ॥

यह तीसरा सूक्त और तेईसवाँ अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥

अथ पञ्चमसर्गस्वकाशिकनिर्गमसमस्त सूक्तस्य आख्येयः । इन्द्रो वेवता ।

१, ७-१०, १४ वायवी । २, ६, १२, १३, १५ निष्पुङ्गायनी ।

३ त्रिपाङ्गायनी । ४, ५ विराट् वायवी । ११ त्रिप्रीतिकामध्या-

वायवी सन्धः । अङ्कः स्वरः ॥

अथ पञ्चमः पञ्चा वाके इकतीसवाँ सूक्त का प्रारम्भ है, उसकी प्रथम मन्त्र से राजप्रजाधर्म विषय को कहते हैं—

**कया नभिन्न आ भुवमुदी सदाह्वः सत्वा । कया सचिच्छुषा वृता ॥१॥**

पदार्थ—हे राजन् ! ( सदाह्वः ) सर्वदा बुद्धि को प्राप्त होते हुए आप ( कः ) हम लोगों की ( कया ) किस ( कृती ) रक्षण आदि क्रिया के साथ और ( कया ) किस ( सचिच्छुषा ) अत्यन्त श्रेष्ठ वाणी बुद्धि वा कर्म जो ( वृता ) समुत्त उस से ( चिच्छुषः ) अद्भुत गुण कर्म और स्वभाव वाले ( सत्वा ) मित्र ( आ, वृता ) हजिये ॥ १ ॥

आश्विन—हे राजन् ! आपको चाहिए कि हम लोगों के साथ ऐसे कर्म करें कि जिनमें हम लोगों की प्रीति बढ़े ॥ १ ॥

**कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सन्धसः ।**

**इच्छा चिदास्ते वसु ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ! ( मदानाम् ) आनन्दों और ( मत्सन्धः ) अन्न आदि के सन्धन में ( मंहिष्ठः ) अत्यन्त बड़ा ( सत्यः ) श्रेष्ठो में श्रेष्ठ ( सत्वा ) आपको ( मत्सत् ) आनन्द देने और ( आस्ते ) सब प्रकार से रोग के लिए ( इच्छा ) दुःख ( वसु ) धनरूप ( चित् ) भी ( कः ) कौन होवे अर्थात् रोग के दूर करने को अत्यन्त सज्जन कौन हो ॥ २ ॥

आश्विन—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि धर्माचरण से यथायोग्य आहार और विहार करे तो उन में कभी दारिद्र्य और रोग नहीं आवे ॥ २ ॥

**अभी इ षः सखीनामविता जरितुषा । शतं मवास्युतिभिः ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप ( कृतिभिः ) रक्षणवादिकों से ( जरितुषाम् ) श्रेष्ठ विद्याओं के जाननेवाले ( सखीनाम् ) सब के मित्र ( षः ) हम लोगों के ( सत्तम् ) सेकड़े ( जवाति ) होते हो इस से ( अभि ) सम्मुख ( इ ) उत्तम प्रकार ( अविता ) रक्षक हजिये ॥ ३ ॥

आश्विन—जो मनुष्य अपने आत्मा से सवृक्ष सुख दुःख हानि और लाभ को ओरी के भी जानकर दूसरे के प्रिय के लिए वसति करें उन में अम्य जन भी मित्रता करें ॥ ३ ॥

**अमी न आ वृष्टस्व चक्रं न वृत्तमर्धतः । नियुजिर्धर्षणीनाम् ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे राजन् ! आप ( नः ) हम लोगों को ( वृष्टम् ) सब प्रकार से दुःख ( अचक्रम् ) चक्र के ( नः ) सवृक्ष श्रेष्ठ कर्मों में ( अभि, आ, वृष्टस्व ) सब ओर से अच्छे प्रकार वसति ( नियुजिर् ) और वायु के गमनों के सवृक्ष वेगों के साथ ( अर्धणीनाम् ) मनुष्यों के ( अर्धतः ) षोडश की वसति ॥ ४ ॥

आश्विन—हे राजन् ! आप सत्य न्याय में वसति करके हम लोगों का भी उसी के अनुसार वसति कराइये ॥ ४ ॥

फिर राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**प्रवता हि कर्तुनामा हा पदेव गच्छसि । अमंसि सूर्ये सत्वा ॥५॥२४॥**

पदार्थ—हे राजन् ! आप ( हि ) जिससे ( कर्तुनाम् ) बुद्धि वा कर्मों के ( प्रवता ) नीचे मार्ग से ( पदेव ) पैरों के सवृक्ष ( आ, गच्छसि ) जाने हो इस से ( हि ) निश्चय वैसे ही ( सत्वा ) सत्य के साथ मैं ( सूर्यः ) सूर्य में प्रकाश के सवृक्ष धर्म का ( अमंसि ) सेवन करता हूँ ॥ ५ ॥

आश्विन—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ विद्वान् लोग कुछ मार्ग से जाकर पूर्ण बुद्धि को प्राप्त होने हैं वैसे ही अन्य जन भी वसति कर के बुद्धि को प्राप्त हों ॥ ५ ॥

**सं यत् इन्द्र मन्थवः सं चक्राणि अधनिवरे ।**

**अथ स्वे अथ सूर्ये ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) जीव ! ( ते ) तेरे ( अतः ) जो ( मन्थवः ) जोष आदि व्यवहार ( चक्राणि ) चक्र के सवृक्ष वर्तमान कर्मों को ( सत्, अधनिवरे ) धारण करते हैं ( अथ ) अन्तर ( स्वे ) आप में धन को धारण करते ( अथ ) इससे अन्तर में ( सूर्यः ) सूर्य में प्रकाश के सवृक्ष प्रताप को ( सत् ) धारण करते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकशुभोपमासङ्कार है । हे मनुष्य ! जो तू दुष्ट आचरण करनेवाले पर क्रोध और श्रेष्ठ आचरण करनेवाले के प्रति हर्ष करे तो सूर्य के सदृश प्रतापी होवे ॥ ६ ॥

फिर प्रतिज्ञापालने वाले राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत स्मा हि स्वामाहुग्निमधवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( शचीपते ) वाणी और बुद्धि के पालन करनेवाले राजन् ! ( हि ) जिस से ( स्वाम् ) आपका ( मधवानम् ) अत्यन्त श्रेष्ठ बहुत धनवाले ( अविदीधयुम् ) जुआ आदि दुष्ट कर्मों से रहित ( दातारम् ) देनेवाला ( स्म ) ही विद्वान् लोग ( आहु ) कहते हैं ( उत ) और सेवा भी करें इससे ( इत् ) उन्हीं को हम लोग भी नेंवें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जो आप लोग धर्मयुक्त कर्मों का आचरण करे तो आप लोगो में ऐश्वर्य्य और दानकर्म कभी न नष्ट होवे ॥ ७ ॥

फिर न्यायपालन राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत स्मा मद्य इन्परि शशमानाय मुन्वते । पुरु चिन्मिहसे वसु ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस से कि आप ( शशमानाय ) प्रसन्न और ( मुन्वते ) पुनराय स ओषधियों के रस को उत्पन्न करते हुए के लिए ( चित् ) भी ( पुरु ) बहुत ( वसु ) धन को ( परि ) सब प्रकार ( महेसे ) बढ़वाने हो इससे आप ( सद्यः ) शीघ्र ( उत ) फिर ( स्म ) ही ( इत् ) निश्चित ऐश्वर्य्य का प्राप्त होते हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता पुरुषों का सत्कार करत है वे शीघ्र पुणवान् होकर ऐश्वर्य्य से युक्त होवे ॥ ८ ॥

नहि स्मा ते शर्तं चन राधो वरन्त आमुर्ः ।

न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( च्यौत्नानि ) बलों को ( करिष्यत ) करने हुए ( ते ) आप के ( शतम् ) असंख्य ( राधः ) धन को ( चन ) भी ( आमुर् ) सब प्रकार रोग करनेवाले ( नहि ) नहीं ( वरन्ते ) स्वीकार करत है ( न ) और न विजय को ( स्म ) ही प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जा आप यथायाय न्यायकारी होवें तो आपका धन और बल कभी न नष्ट होवे और सैकड़ों प्रकार बढ़े ॥ ९ ॥

अस्माँ अन्वन्तु ते शतमस्मान्सहस्रमृतयः ।

अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥१०॥२५॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( ते ) आप की ( सहस्रम् ) अनेक प्रकार की ( अन्वन्तु ) रक्षायें ( शतम् ) सख्यागद्वित ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( अभिष्टयः ) दृष्टावें ( अस्मात् ) हम लोगो की ( अन्वन्तु ) रक्षा और ( अस्मात् ) हम लोगो की वृद्धि करें ( अस्मान् ) तथा हम लोगो का आनन्द देवें ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! तभी आप मन्त्र राजा होवे जब अपने और पिता के सदृश हम लोगो का पालन और वृद्धि करके आनन्द देवें ॥ १० ॥

अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महे राये दिविन्मते ॥११॥

पदार्थ—हे तेजस्वी राजन् ! आप ( इहा ) इस समार वा राज्य में ( अस्मान् ) हम लोगो की ( स्वस्तये ) सुख के लिए ( महे ) बड़े ( दिविन्मते ) विद्या धर्म और न्याय से प्रकाशित ( सख्याय ) मित्रत्व के लिए और ( राये ) धन के लिए ( वृणीष्व ) स्वीकार करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे आप हम लोगो में मित्रता रखते हैं वैसे हम लोग भी आप में सदा ही मित्र हुए बर्ताव करें ॥ ११ ॥

अस्माँ अविद्वि विश्वेन्द्र राया परीणसा ।

अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् ! आप ( विश्वेन्द्रा ) सम्पूर्ण दिनों को ( परीणसा ) अनेक प्रकार के ( राया ) धन के साथ ( अस्मात् ) हम लोगो की ( अविद्वि ) प्रवेश कराइये और ( विश्वेन्द्राभिः ) सम्पूर्ण ( ऊतिभिः ) रक्षा आदि क्रियाओं से हम लोगो को प्रवेश कराइये अर्थात् युक्त करिये ॥१२॥१३॥

भाषार्थ—वही उत्तम राजा और राजपुरुष है कि जो सब प्रकार राजा से प्रजा को घनाढ्य करें ॥ १२ ॥

फिर प्रजावृद्धि प्रकार से राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि वृजौ अस्तेव गोमतः ।

नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परम ऐश्वर्य्य के देने वाले राजन् ! आप ( नवाभिः ) नवीन ( ऊतिभिः ) रक्षाधिकों से ( अस्मभ्यम् ) हम लोगो के लिए ( गोमतः ) जिनमें बहुत गीए विद्यमान और ( वृजौ ) बहुत गीए जाती ( ताव् ) उन गोडों को ( अस्तेव ) गृहों के समान बढ़ाइये और दुःखों को ( अपा, वृधि ) न्यून कीजिये, नष्ट कीजिये ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे गोपाल गोडों को बढ़ाके कुधादिकों से आढ्य होते हैं वैसे ही हम लोगो की वृद्धि करो और आढ्य होकर सर्व्व आनन्द कीजिये ॥

फिर राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अस्माकं धृष्ण्या रथौ धुमौ इन्द्रानपच्युतः ।

गम्पुरेभ्युरीयते ॥१४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! जो ( अस्माकम् ) हम लोगो को ( धृष्ण्या ) दृढ़ता से युक्त ( धुमौ ) बहुत कलामय आदि से प्रकाशित ( अपच्युतः ) घटने से रहित ( गम्पुः ) बहुत गीलो और ( अच्युतः ) बहुत घोडों के बल से युक्त ( रथः ) शीघ्र पहुँचानेवाला विमान आदि विशेष वाहन ( ईयते ) जाता है उन के साथ वज्रों को जीतिये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—राजा और प्रजाजन ऐसा मानें कि जो राजा के पदार्थ से हम लोगो के और जो हम लोगो के वे राजा के हैं ॥ १४ ॥

अस्माकमुत्तमं कृधि अथो देवेषु सूर्य्य ।

वर्षिष्ठं धामिबोपरि ॥१५॥२६॥

पदार्थ—हे ( सूर्य्य ) सूर्य्य के सदृश वर्तमान राजन् ! आप ( उपरि ) ऊपर वर्तमान ( धामिब ) प्रकाश के सदृश ( अस्माकम् ) हम लोगो के ( उत्तमम् ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( वर्षिष्ठम् ) अत्यन्त बड़े हुए ( अथः ) अन्न आदि वा अन्न को ( देवेषु ) विद्वानों में ( कृधि ) करिये ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे आकाश में सूर्य्य बड़ा है वैसे ही विद्या और विनय की उन्नति से ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करो ॥ १५ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के धर्म वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इकतीसवां सूक्त और छत्तीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ वज्रविशाल्वस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । १-२२ इन्द्रः ।

२३, २४ इन्द्राव्यो देवते । १, ८-१०, १४, १६, १८, २२, २३

गायत्री । २, ४, ७ विराहगायत्री । ३, ५, ६, १२, १३, १५,

१६-२१ निष्कङ्गायत्री । ११ पिपीलिकायत्री गायत्री छन्दः ।

१७ पावनिकङ्गायत्री । २४ त्वरावाजी गायत्री च छन्दः ।

वदन् स्वः ॥

अथ चौबीस ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में इन्द्रपञ्चाश्व राजप्रजापुर्णों को कहते हैं—

आ तू न इन्द्र वृत्रहस्माकमर्द्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१॥

पदार्थ—हे ( वृत्रहृ ) मेघ का नाश करनेवाले सूर्य के सदृश ( इन्द्र ) राजन् ! आप ( अस्माकम् ) हम लोगो की ( अर्द्धम् ) वृद्धि का ( आ, गहि ) प्राप्त करिये और ( महीभिः ) बड़ी ( ऊतिभिः ) ऊतियों अर्थात् रक्षादिकों के साथ ( महात् ) बड़े हुए ( नः ) हम लोगो का ( तु ) फिर ( आ ) प्राप्त होजी ॥१॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप हम लोगो की वृद्धि करें तो हम लोग आप की अति वृद्धि करें ॥ १ ॥

फिर बत्ती विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

भूमिभिर्द्व्यासि तृताजिरा चित्र चित्रिणीष्व । चित्रं कृणोष्युतये ॥२॥

पदार्थ—हे ( चित्र ) आश्चर्य्यवान् गुणकर्म स्वभावयुक्त ( तृताजिः ) शीघ्रकारी ( भूमि ) भूमते बाल आप ( अन्तरे ) रक्षा आदि के लिए ( चित्रिणीषु ) अद्भुत देनाओं में ( चित्रम् ) अद्भुत व्यवहार को ( आ, कृणोषि ) करते हो ( चित् ) और ( आ, च, अति ) अभीष्टकारी होते हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप सब जगद्भूमको शीघ्र न्याय करके सब की रक्षा करें तो आप की आश्चर्यजनक प्रजा अद्भुत ऐश्वर्य्य की उन्नति करे ॥ २ ॥

दुभ्रेमिरिष्यच्छरीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सस्विमिये त्वे सचा ॥३॥

पदार्थ—हे सेनापति राजन् ! जो आप ( दुभ्रेभिः ) थोड़े वा छोटे ( अस्तिभिः ) मित्रों से ( चित् ) भी ( ओजसा ) बल से ( शरीयांसम् ) धर्म के उत्पन्न करने और ( व्राधन्तम् ) बहिलिये के सदृश प्रजा के नाश करनेवाले का ( हंसि ) नाश करते हो और ( ये ) जो ( त्वे ) आप में ( सचा ) सत्य से वर्तमान हैं उनकी रक्षा करते हो तो विजय की कैसे न प्राप्त होते हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो धार्मिक थोड़े भी परस्पर मित्र होकर शत्रुओं के साथ युद्ध करें तो बहुत ही अभर्माचारियों को जीतें ॥ ३ ॥

वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वामि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुद्व ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! जो ( वयम् ) हम लोग ( त्वे ) आप में ( सचा ) सत्य आचरण से वर्तव्य करें और ( वयम् ) हम लोग ( त्वाम् ) आप को ( अभि, नोनुमः ) सब प्रकार निरन्तर समस्कार करते हैं उन ( अस्माकम् ) हम लोगो की हम लोगो की निरन्तर ( इत्, उत ) निश्चित ही ( वयम् ) रक्षा करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे हम लोग आप में सत्यभाव से वर्तव्य और अभि से आपका सत्कार करें वैसे ही आप हम लोगो की निरन्तर वृद्धि करें ॥ ४ ॥



स नहि चामिन्द्रिबोऽनवस्थाभिरुत्तिभिः । अनाष्टाभिरा गदि ॥१७॥

पदार्थ—हे ( अविष् ) मेरी को सम्बन्ध से युक्त सुख के सदृश वर्तमान राज्य ( सः ) वह आप ( चिन्ताभिः ) अशुभ ( अनवस्थाभिः ) प्रशंसा करते योग्य ( अनाष्टाभिः ) अनुभूति से दानों को नहीं योग्य ( कतिभिः ) रक्षादिकों के साथ ( नः ) हम लोगों को ( आ, गदि ) प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥

भाषार्थ—हे प्रजापति ! जैसे राजा आप लोगों की सब प्रकार रक्षा करे वैसे आप लोग भी राजा की सब प्रकार रक्षा करो ॥ १७ ॥

भुयामो धु स्वावतः सखाय इन्द्र गोमंतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥१८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( स्वावतः ) आप से रक्षित ( सखायाः ) मित्र हम लोग ( घृष्वये ) बिल्ले और ( वाजाय ) विमान वा अग्न के लिए ( गोमंतः ) गोवनों से युक्त ( युजः ) युक्त होनेवालों को प्राप्त होकर ( यु ) सुन्दर ( भुयामो ) होवें ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप पृथिवी आदि से युक्त हम लोगों को ऐश्वर्य के साथ युक्त करें तो हम लोग भी आप के साथ युक्त हो ॥ १८ ॥

त्वं द्वेक ईक्षिष इन्द्र वाजस्य गोमंतः । स नो यन्धि महोमिचम् ॥१९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त विद्वत् ! जो ( हि ) जिसके ( एकः ) सहायक ( त्वम् ) आप ( गोमंतः ) बहुत प्रकार की पृथिवी आदि के सहित ( वाजस्य ) विमान आदि से युक्त जनसमूह के ( ईक्षिषे ) स्वामी हो ( सः ) वह ( नः ) हम लोगों के लिये ( महोम् ) बड़े ( इक्षम् ) जन्म आदि को ( यन्धि ) दीजिए ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् पुरुषार्थ से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर अन्य जनों के लिए देता है वही सब का ईश्वर होता है ॥ १९ ॥

अब अध्यापक और उपदेशक के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

न त्वा वरन्ते अन्यथा यदित्संसि स्तुतो मधम् ।

स्तोतुम्य इन्द्र निर्बन्धः ॥२०॥

पदार्थ—हे ( निर्बन्ध ) बाणियों से सत्कार को प्राप्त ( इन्द्र ) राजन् ! ( यत् ) जो ( स्तुतः ) प्रशंसा किये गये आप ( स्तोतुम्य ) विद्वानों के लिए ( अन्यथा ) धन को ( यित्संसि ) देने की इच्छा करते हो उन ( त्वा ) आप को ( अन्यथा ) अन्य प्रकार से अनुष्ण ( न ) नहीं ( वरन्ते ) स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥

भाषार्थ—जो इस समार में देनेवाला होता है वही सब का प्रिय होता और कोई भी उसका विरोधी नहीं होता है ॥ २० ॥

अभि स्वा गोतमा गिरानूषत् प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥२१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( गोतमाः ) श्रेष्ठ बाणी से युक्त जन ( गिरा ) बाणी से ( त्वा ) आप की ( अभि, अनुषत् ) सब ओर से स्तुति करें ( वाजाय ) विमान और अग्न आदि के ( घृष्वये ) बिल्ले अर्थात् गुरु और ( दावने ) देनेवाले के लिए ( प्र ) उत्तम प्रकार स्तुति करें उनकी आप प्रशंसा करो ॥ २१ ॥

भाषार्थ—जिसकी प्रशंसा विद्वान् जन करते हैं वही प्रशंसित मानने के योग्य है ॥ २१ ॥

प्र ते वोचाम वीर्याया मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥२२॥

पदार्थ—हे राजन् ( मन्दसानः ) कामना करते हुए आप शत्रुओं की ( आः ) जो ( दासीः ) सेविकाओं के सदृश ( आ, अरुजः ) सब प्रकार रोगयुक्त ( पुरः ) नगरियों की ( अभीत्य ) सब ओर से प्राप्त होकर जीतते हो उन ( ते ) आप के ( वीर्या ) बल पराक्रम से युक्त कर्मों का हम लोग ( प्र, वोचाम ) उपदेश करें ॥ २२ ॥

भाषार्थ—जो राजा शत्रुओं का पराजय कर सके वही राज्य करने को योग्य हो ॥ २२ ॥

ता ते युगन्ति वेधसो यानि चकर्थ वीर्या । सुतेष्विन्द्र निर्बन्धः ॥२३॥

पदार्थ—हे ( निर्बन्ध ) बाणियों से स्तुति किये गये ( इन्द्र ) राजन् ! ( यानि ) जो ( वेधसः ) बुद्धिमान ( ते ) आप के ( वीर्या ) पुरुषों के लिए हितकारक बलों को ( युगन्ति ) कहते हैं और जिन को आप ( सुतेषु ) उत्तम पदार्थों में ( चकर्थ ) करते हो ( ता ) उन की हम लोग प्रशंसा करें ॥ २३ ॥

भाषार्थ—वे ही प्रशंसा करने योग्य कर्म होते हैं कि जिन की यथार्थवत्ता जन प्रशंसा करें ॥ २३ ॥

अवीरुचन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । पेषु वा वीरवचनः ॥२४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्वान् जो ( स्तोमवाहसः ) प्रशंसा को प्राप्त करानेवाले ( गोतमाः ) विद्वान् जन ( त्वे ) आप में ( वीरवचनः ) वीर पुरुष जिस में विजयान उस ( अरुजः ) वीरिता या जन की ( अवीरुचन्त ) बड़ाई ( पेषु ) इन में आप वीरयुक्त कीर्ति या जन को ( आ, वाः ) अक्षय प्रकार धारण कीजिए ॥ २४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो लोग उत्तम कर्म से आप की कीर्ति को बढ़ावें उन की कीर्ति आप भी बढ़ावें ॥ २४ ॥

यच्छिदि शरवतामसोन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥२५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जगदीश्वर ! ( वत् ) जो ( त्वम् ) आप ( शरवताम् ) अनादि काल से हुए प्रकृति आदि पदार्थों के मध्य में ( साधारणः ) सामान्य से व्याप्त ( अस्ति ) होते हो ( तम्, वित् ) उन्ही ( त्वा ) आप की ( हि ) निश्चय ( वयम् ) हम लोग ( हवामहे ) स्तुति करते वा आपका आज्ञा करते हैं ॥ २५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर अनादि काल से सिद्ध प्रकृति आदि पदार्थों का स्वामी उन का धारण करनेवाला, वह कार्य का निर्माणकर्ता और कार्य की व्यवस्था करनेवाला अन्तर्यामी है उसी की सेवा उपासना करो ॥ २५ ॥

अर्वाचीनो वंसो मवास्मे सु मत्स्वान्धसः ।

सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥२६॥

पदार्थ—हे ( वंसो ) वास करनेवाले ( इन्द्र ) राजन् ! ( अर्वाचीनः ) इस काल में वर्तमान ( सोमपाः ) ऐश्वर्य की रक्षा करनेवाले आप ( अस्मे ) हम लोगों में ( अन्धसः ) अन्ध आदि और ( सोमानाम् ) अन्य पदार्थों के रक्षक ( मध ) हुआ और ( सु, मत्स्व ) उत्तम प्रकार आनन्द कीजिए ॥ २६ ॥

भाषार्थ—जो राजा प्रजा के पदार्थों की यथायोग्य रक्षा करे वह आप के समय में सुख की वृद्धियुक्त होवे ॥ २६ ॥

अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥२७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( अस्माकम् ) हम ( मतीनाम् ) विचारशील मनुष्यों की ( स्तोम ) स्तुति जिन ( त्वा ) आप को ( आ, यच्छतु ) प्राप्त होवे वह आप ( अर्वाग् ) फिर ( हरी ) जग्नि जल वा घोड़ों को ( आ, वर्तय ) अच्छे प्रकार वर्तवावे ॥ २७ ॥

भाषार्थ—जिब विद्या और विनय से युक्त राजा को सब प्रकार प्रशंसा प्राप्त होवे वही प्रजा को नियमयुक्त कर सके ॥ २७ ॥

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥२८॥

पदार्थ—हे बंधाराज ! जो ( नः ) हम लोगों के लिए ( वत् ) भोग है उन को ( पुरोळाशम्, च ) और उत्तम प्रकार सत्कारयुक्त अन्नविशेष की ( जोषयासे ) सेवा कराओ और ( योषणाम् ) स्त्री को ( वधूयुरिव ) वधू अर्थात् अपने को वधू की चाहना करनेवाले के सदृश ( नः ) हम लोगों को ( गिर ) बाणियों की ( च ) भी सेवा कराओ ॥ २८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो राजा स्त्री की कामना करते हुए पति के सदृश प्रजा की बाणियों को सुन के व्याय करता और ऐश्वर्य को धारण करता है वह राज्य में पूज्य होता है ॥ २८ ॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य स्वार्थः ॥२९॥

पदार्थ—हे बन्धाद्य पुरुष ! ( व्यतीनाम् ) गमन करनेवाले ( युक्तानाम् ) उत्तम प्रकार सावधान चित्त हुए जनो का ( सहस्रम् ) एक सहस्र और ( सोमस्य ) आनन्द आदि ऐश्वर्य की ( स्वार्थः, शतम् ) सौ भारी अर्थात् सौ मन तुल्य हुए अन्न आदि पदार्थ हैं उनकी ( इन्द्रम् ) कुटो को नाश करनेवाले राजा को प्राप्त होकर ( ईमहे ) बाचना करते हैं ॥ २९ ॥

भाषार्थ—जो बन्धाद्य जनो को प्राप्त होकर अमङ्गल पदार्थों की बाचना करते हैं वे जोड़ा जाने हैं और जो बाचना नहीं करने हैं वे बहुत पाते हैं ॥ २९ ॥

सहस्रा ते शता वयं गवामा व्यावयामसि । अस्मन्ना राध एतु ते ॥३०॥

पदार्थ—हे जन के ईश ! ( ते ) आप का ( राध ) जन ( अस्मन्ना ) हम लोगों में ( एतु ) प्राप्त हो और ( ते ) आप की ( गवाम् ) गौ के ( सहस्रा ) हजारों और ( शता ) सैकड़ों समूह को ( व्यावयामसि ) हम लोग ( आ, व्यावयामसि ) प्राप्त कराते हैं ॥ ३० ॥

भाषार्थ—हे बन्धाद्य ! आप के समीप से हम लोग गौ आदि पदार्थों को प्राप्त होकर औरों के लिए देने हैं और हम लोगों का जन आप को प्राप्त हो ॥ ३० ॥

वश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि हवहन् ॥३१॥

पदार्थ—हे ( कलशम् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! जिस में आप ( भूरिदा ) बहुता के देनेवाले ( असि ) हो इस से ( ते ) आप के ( हिरण्यानाम् ) सुवर्ण के बने हुए ( कलशानाम् ) बटों के ( वश ) वशसंख्यायुक्त समूह को हम लोग ( अधीमहि ) प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बहुत देनेवाला होता है उसके मित्र बहुत होते हैं ॥ ३१ ॥

भूरिदा भूरि वेदि नो मा दध्नं भूर्या भर । भूरि वेदिन्द्र दित्ससि ॥३२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) देनेवाले ! जो आप ( नः ) हम लोगों के लिए ( भूरि ) बहुत ( दित्ससि ) देने की इच्छा करते हो वह ( भूरिदाः ) बहुत देनेवाले आप हम लोगों के लिए ( भूरि ) बहुत ( वेदि ) दीजिए और ( भूरि ) बहुत को ( आ, भर ) सब प्रकार धारण कीजिए ( दध्नम् ) धीके को ( य ) ही ( मा ) मत दीजिए और धीके को ( इत् ) ही न धारण कीजिए ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—जो बहुत देनेवाला है वही प्रशंसा को प्राप्त होता है और जो थोड़ा देनेवाला वह नहीं इस प्रकार प्रशंसित होता है ॥ २० ॥

**मरिचा अस्ति भूतः पुंश्चा शूरा वृत्रहन् । आ नो भद्रस्व राधसि ॥२१॥**

पदार्थ—हे ( शूर ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ( वृत्रहन् ) धन को प्राप्त राजन् ! आप ( हि ) जिससे ( मरिचाः ) बहुत देनेवाले ( अस्ति ) हो इससे ( पुंश्चा ) बहुतों से प्रतिष्ठित और ( भूतः ) सब जगह प्रसिद्ध यमवाले हो जिस से आप ( न ) हम लोगों को ( राधसि ) अच्छे प्रकार साधने हैं इससे हम लोगों को ( आ, भद्रस्व ) अच्छे प्रकार सेवो ॥ २१ ॥

भाषार्थ—जो हम समार में बहुत देनेवाला होता है वही सम्पूर्ण विद्याओं से कीर्तियुक्त होता है ॥ २१ ॥

**प्र ते बभ्रु विश्वक्षय शंसांमि गोवधो नपात् ।**

**माभ्यां गा अनु शिश्रयः ॥२२॥**

पदार्थ—हे ( गोवध ) गौ मारनेवाले ( विश्वक्षय ) उत्तम जाता जो ( बभ्रु ) सम्पूर्ण विद्याओं का धारण करनेवाले अध्यापक और उपदेशक की मैं ( प्र, शंसांमि ) प्रशंसा करता हूँ वे ( ते ) आप के शिक्षक होवें ( माभ्याम् ) इन के साथ आप ( नपात् ) नहीं मारनेवाले होने हुए ( गा ) पशुव्यादिकों को ( मा, अनु, शिश्रय ) मत मारिधिल करने हैं ॥ २२ ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु ! ज्ञान को चाहनेवाले तू अध्यापक और उपदेशक को पाकर पुनर्वाच से विद्या और उपदेश का शीघ्र ग्रहण कर, आनन्द मत कर ॥ २२ ॥



## अथ तृतीयाष्टके सप्तमोऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितरुत्तानि परा सुव । यद्गर्भं तज्ज आ सुव ॥१॥

अथैकादशार्थस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । ऋग्वेदो वेदताः ।

१ भुरिक् मिष्टुप् । २, ४, ६, ११ मिष्टुप् । ३, ६, १० निबृत्तिमिष्टुप्

छन्दः । वेदतः स्वरः । ७, ८ भुरिक् पङ्क्तिः । ९ स्वरद्वय पङ्क्तिः छन्दः ।

पञ्चम, स्वर ।

अथ व्याख्येय ऋचावाले तैत्तिरीय सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं—

**प्र क्रभुभ्यो वृत्तमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वेतरि पेनुमीळे ।**

**ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि थां सद्यो अपसो बभ्रुः ॥१॥**

पदार्थ—( ये ) जो ( वातजूताः ) वायु से उड़ाये गये त्रसरेणु आदि पदार्थ ( एवैः ) प्राप्त वेग आदि गुणों और ( तरणिभिः ) उत्तम प्रकार नैर्नने आदि क्रियाओं से ( सद्यः ) शीघ्र ( थां ) आकाश और ( अपसः ) कर्मों के प्रति ( परिबभ्रुः ) परिभूत तिरस्कृत अर्थात् कान्तर को प्राप्त होते हैं उन से ( उपस्तिरे ) विस्तार के अर्थ और ( ऋभुभ्यः ) बुद्धिमानों के लिए ( वृत्तमिव ) जैसे वृत्त वृत्तपन की इच्छा करे वैसे ( श्वेतरिम् ) अत्यन्त सुख ( पेनुम् ) धारण करनेवाली ( वाचम ) वाणी को ( प्र, इष्ये ) प्राप्त करता हूँ उस वाणी से पदार्थ विज्ञान की ( ईळे ) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष जैसे त्रसरेणु वायु से किया को निरन्तर करते हैं वैसे ही विद्वानों से विद्या को प्राप्त होकर पुरुषार्थ सदा करते हैं वे सब विद्याओं से युक्त मुन्दर वाणी को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अथ माता पिता आदि के शिक्षा विषय की अगले मन्त्र में कहते हैं—

**यदारमक्रन्तुमवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।**

**आदिहेवानामुप सरूपमायन्धीरासः पुष्टिर्मवहन्मनाथै ॥२॥**

पदार्थ—( ऋभुभ्यः ) बुद्धिमान् जन ( यदा ) जब ( पितृभ्याम् ) विद्वान् माता और पिता से ( परिविष्टी ) सब प्रकार विद्या को व्याप्त होता जिस से उस क्रिया और ( वेषणा ) व्याप्त पदार्थ से तथा ( दंसनाभिः ) उत्तम कर्मों से ( वेषा-नाम् ) विद्वानों के ( सारूपम् ) मियपन को ( अरम् ) पूरा ( अकम् ) करते हैं ( आत्, इत् ) तभी वे ( धीरासः ) योग से युक्त ध्यान वाले ( मनाथै ) मानने योग्य विद्या के लिये बुद्धि को ( उप, आयन् ) प्राप्त होते हैं और ( पुष्टिम् ) सम्पूर्ण अव-धियों की पुष्टि को ( अवहन् ) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

**कनीनकेव विद्वेषे नवै हुयदे अर्मके । बभ्रु वाभ्यधु शोभेते ॥२३॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप जो ( बभ्रु ) अध्यापक और उपदेशक ( वाभ्यधु ) प्रहरो में ( कनीनकेव ) सुन्दर के तुल्य ( नवै ) नवीन ( विद्वेषे ) विषेय वृद्ध ( हुयदे ) शीघ्र प्राप्त होने योग्य पदार्थों का ब्रह्म आदि द्रव्यों के स्वान और ( अर्मके ) छोटे बालक के निमित्त ( शोभेते ) शोभित होते हैं उन के सद्यः संसार के उपकार करने वाले होने के योग्य हैं ॥ २३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जो विद्वान् अधिक वा स्थूल विज्ञान में वा काम में सुशोभित हों वे जगत् के बीच कल्याण करनेवाले हों ॥ २३ ॥

**अरं म उस्वयाम्णेऽरमनुस्वयाम्णे । बभ्रु यामैवस्त्रिषा ॥२४॥३०६३॥**

पदार्थ—जो ( अस्त्रिषा ) नहीं हिता करने ( बभ्रु ) और सत्य की धारण करनेवाले ( वाभ्यधु ) प्रहरो में ( उस्वयाम्णे ) किरणों के समान जो यान से जाता उस ( मे ) मेरे लिए ( अरम् ) समर्थ और ( अनुस्वयाम्णे ) शीत देन को जाने वाले मेरे लिए ( अरम् ) समर्थ होते हैं वे मुझ से सेवन योग्य हैं ॥ २४ ॥

भाषार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक शीतोष्ण देन निवासी मुझ को पढ़ा और उपदेश दे सकते हैं वे सदैव मुझ से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ २४ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा प्रजा अध्यापक और उपदेशक के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ऋग्वेद संहिता के तीसरे अष्टक में छठा अध्याय तीसरा अर्थ तथा चतुर्थ मन्त्रक में बत्तीसवाँ सूक्त और तीसरा अनुवाक पूरा हुआ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बाल्यावस्था में पाँचवें वर्ष से माता की शिक्षा और आठवें वर्ष से लेकर पिता की शिक्षा को और अठ्ठावीस वर्ष पर्यन्त आचार्य्य की शिक्षा को ग्रहण करते हैं वे ही विद्वान् बुद्धिमान् धार्मिक बहुत काल पर्यन्त जीवते और संसार के कल्याण करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

फिर माता पिता से शिक्षा विषय की अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**पुनर्ये चक्रः पितरा युवाना सना यूषेव जरणा शयाना ।**

**ते वाजो विभ्रौ ऋधुरिम्ब्रवन्तो मधुंभ्रसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥**

पदार्थ—( ये ) जो जन ( जरणा ) बुढ़ापे को प्राप्त ( शयाना ) सोते हुए ( सना ) उत्तम प्रकार सेवा करनेवाले ( पितरा ) माता पिता को ( युवाना ) जबान ( यूषेव ) लम्ब के सद्यः पुष्ट ( पुनः ) फिर ( चक्रः ) करें ( ते ) वे ( मधुंभ्रसः ) सुन्दर स्वरूप और ( इन्द्रवन्तः ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त होकर ( न ) हम लोगों के ( यज्ञम् ) पढ़ने पढ़ाने आदि कर्मों की ( अन्धुः ) रक्षा करें उस कर्म के संग से ( विभ्रौ ) व्यापक जाने गये जगदीश्वर से ( वाजः ) ज्ञानवान् और ( ऋधुः ) विद्वान् मैं होऊँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो पितृजन अपने सम्मानों को अतिकाल पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से उत्तम स्वभाव और विद्यायुक्त करते हैं वे उन सम्मानों की सेवा से फिर भी वृद्ध हुए युवा-वस्था वालों के सद्यः होते हैं ॥ ३ ॥

**यस्संवस्समवो गामरेक्षन्त्यस्सवस्समवो वा अपिषन् ।**

**यस्संवत्सममरन्मासौ अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाहुः ॥४॥**

पदार्थ—( यत् ) जो ( ऋभुभ्यः ) बुद्धिमान् पितृजन ( संवत्सम् ) आकाश के सद्यः सन्तानों की शिक्षा देते हैं ( गाम् ) वाणी की ( अरन्त्यम् ) रक्षा करते हैं और ( यत् ) जो ( ऋभुभ्यः ) बुद्धिमान् पितृ आचार्य्यजन ( संवत्सम् ) एक हुए और प्रेम से वाले गये सन्तान के सद्यः ( माः ) माताओं को ( अपिषन् ) अवधियों के महित करते हैं अर्थात् धरण पोषण से उनके अङ्गों को पुष्ट करते और ( यत् ) जो मातृजन ( भातः ) प्रकाशमान ( अस्ताः ) इस विद्या के ( संवत्सम् ) एकीभाव को प्राप्त प्रेम से प्राप्त सन्तान का ( अमरम् ) धारण वा पोषण करते हैं वे बुद्धिमान् पितृजन और मातृजन ( ताभिः ) उन मातृ पितृ आचार्य्य की सेवा और विद्या की प्राप्तियों और ( अकीर्णः ) श्रेष्ठ कर्मों से ( अमृतत्वम् ) मोक्षभाव वा उत्तम आनन्द को ( आहुः ) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

**आचार्य—**जो विद्वान् मनुष्य अपने सन्तानों को बहुमन्य और विद्या से विद्यावान और उत्तम गुण और कर्मों के आचरणयुक्त करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अब मनुष्य सुखों की अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**उपेष्ट आह चमसा दा करेति कनीयान्त्रीन्कुण्वामेत्याह ।**

**कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वौ वः ॥५॥१॥**

**पदार्थ—**हे ( ऋभवः ) बुद्धिमान् ! जिस ( वः ) आप के ( चमः ) बचन की ( त्वष्टा ) शिक्षा देनेवाला ( पनयत् ) प्रशंसा करें ( तत् ) वह बचन ( दा ) जो ( चमसा ) चमसों को ( कर ) करे ( इति ) इस प्रकार से ( उपेष्टः ) प्रथम उत्पन्न हुआ ( आह ) कहता है ( कनीयान् ) पीछे उत्पन्न हुआ छोटा ( त्रीन् ) तीन को ( कुण्वात् ) करें ( इति ) इस प्रकार से ( आह ) कहता है और ( कनिष्ठः ) कनिष्ठ अर्थात् छोटा ( चतुरः ) चार को ( कर ) करे ( इति ) इस प्रकार से ( आह ) कहता है ॥ ५ ॥

**आचार्य—**बहुजन विद्वान् होकर परस्पर वार्तालाप करें कि जैसे बड़ा आकाश करे वैसे छोटा और जैसे छोटा करे वैसे ही उपेष्ट आचरण करे । जैसे इस मन्त्र में ( कनीयान् ) यह कर्त्तृपद एकवचनान्त और ( कुण्वात् ) यह बहुवचनान्त किया नहीं सगत होते हैं ऐसे जनाना चाहिए अर्थात् अह कर्त्ता की योग्यता में वय कर्त्ता के पक्ष से योजना कर सम्भवा चाहिए अथवा जैसे हम लोग परस्पर वार्तालाप करें वैसे ही आप लोगों को भी परस्पर वार्तालाप करना चाहिए और जिस प्रकार सत्य और प्रशंसित वचन होवे उसी प्रकार सब को बोलना चाहिए ॥ ५ ॥

**सत्यमूर्चुर्नर एवा हि चक्रानु स्वधामभवो जगमुरेताम् ।**

**विज्ञाजमानोऽधमसां भवेवावेनस्वष्टा चतुरो ददृशान् ॥६॥**

**पदार्थ—**जैसे ( ऋभवः ) बुद्धिमान् जन ( एताम् ) इस ( स्वधाम् ) अन्न को ( जगमुः ) प्राप्त होते हैं और यथार्थ वस्तुओं के आचरण को ( अनु, चक्रः ) करें वैसे ( एवा ) ही ( नरः ) मनुष्य ( सत्यम् ) यथार्थ ( ऊचुः ) कहे और जो ( हि ) जिससे ( त्वष्टा ) जाननेवाला ( चतुरः ) चार को ( बहुवचनान्त ) देखने वाला होवे वह ( विज्ञाजमानात् ) प्रकाशित हुए ( अधमसां ) मेवों को ( अहेव ) विनों के सदृश चार पदार्थों की ( अवेनत् ) कामना करता है ॥ ६ ॥

**आचार्य—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि इस सत्ता में यथार्थवस्तुओं का अनुकरण करके जैसे कम से वर्तव कर दिन वर्षाश्रुत को प्राप्त होते हैं वैसे ही कम से कर्म, उपामना और ज्ञान सत्यमापण आदि को बढ़ाके अर्थ अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध कराते हैं यह जानें ॥ ६ ॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**द्वादश द्यूयदगोऽस्यातिथ्ये रणन्तुभवः ससन्तः ।**

**सुक्षेत्राकुण्ठजनयन्त सिन्धुन्धन्वातिष्ठोषधीनिम्नमारपः ॥७॥**

**पदार्थ—**( अत् ) जो ( ससन्तः ) सोते हुए उठकर ( ऋभवः ) बुद्धिमान् जन जिस प्रकार से ( आपः ) जलो और ( सिन्धुः ) नदी वा समुद्रों ( कुण्ठ ) तथा अन्तरिक्ष और ( ओषधीः ) ओषधियों से ( निम्नम् ) नीचे ( आ, अतिष्ठत् ) स्थित होते हैं वैसे ( द्यूयदगोऽस्य ) अगुप्त से ( अतिथ्ये ) अतिथ्य में अतिथिसम्बन्धी सत्कार में ( द्वादश ) बारह ( द्यूः ) दिन ( रणन्तु ) उपदेश देवें तथा ( सुक्षेत्रा ) सुन्दर स्थानों को ( अकुण्ठन् ) करते और सुखों को ( अजयन्त ) प्राप्त होते हैं वे मङ्गल देनेवाले हैं ॥ ७ ॥

**आचार्य—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् जन जैसे सोते हुआ को बेला के जगाते हैं वैसे ही अविद्वानों को उत्तम शिक्षा दे विद्वान् करके आनन्द देवें ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य सुखों की अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**रथं ये चक्रः सुवृत्तं नरेष्ठां ये धेनुं विरवजुवं विश्वरूपात् ।**

**त आ तक्षन्तृमवो रयि नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥**

**पदार्थ—**( ये ) जो ( ऋभवः ) बुद्धिमान् जन ( सुवृत्तम् ) उत्तम रजित और अगों वा उपायों के सहित ( नरेष्ठां ) मनुष्य जिसमें स्थित होते हैं उस ( रथम् ) विमान आदि वाहन को ( चक्रः ) करते हैं और ( ये ) जो ( विश्वरूपात् ) सम्पूर्ण आस्व-ज्ञान वाली और ( विरवजुम् ) सम्पूर्ण वेगों से युक्त ( धेनुम् ) गायी को प्राप्त होते हैं ( ते ) वे ( स्ववसः ) सुन्दर रक्षण आदि कर्म से और ( स्वपसः ) उत्तम प्रकार कर्मयुक्त ( सुहस्ताः ) सुन्दर कर्मसाधक हाथों वाले ( नः ) हम लोगों के लिए ( रयिम् ) धन को ( आ, तक्षन्तु ) रचें ॥ ८ ॥

**आचार्य—**जो मनुष्य पहिले विद्या को और फिर हस्तकिया को ग्रहण करके उत्तम आचरण करते होते हुए आत्मसम्बन्धी और बाह्य से विशेष ज्ञान को उत्तम प्रकार आच के शिल्पविद्यासम्बन्धी कार्यों को करते हैं वे बुद्धिमान् होते हुए ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

**अथो वैश्वामनुकम्य देवा अवि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।**

**वाचो वैश्वाममवस्तुर्कर्मैर्हस्य ऋमुसा वचनस्य विमर्शः ॥९॥**

**पदार्थ—**जो ( क्रत्वा ) बुद्धि और ( मनसा ) विज्ञान से ( दीध्यानाः ) प्रकाशमान ( देवाः ) विद्वान् जन ( हि ) जिस कारण ( एवात् ) इन पदार्थों को कार्यासिद्धि के लिए ( अथः ) विमान आदि के बनाने में साधक कर्म का ( अवि, अनुकम्य ) सब प्रकार सेवन करते हैं और ( सुकर्म ) उत्तम कर्म करनेवाला ( वैश्वामान् ) विद्वानों ( इन्द्रस्य ) विजुली आदि और ( वचनस्य ) जल आदि की ( विमर्श ) व्याप्ति से ( वाचः ) अन्न आदि, विद्वानों के मध्य में ( ऋमुसाः ) बड़ा ( अजयत् ) होता है वे और वह श्रीमान् होते हैं ॥ ९ ॥

**आचार्य—**जो मनुष्य इस सत्ता में सृष्टिस्थ पदार्थों की उत्तम परीक्षा से संयोग और विभाग के द्वारा श्रेष्ठ पदार्थ और कार्यों को सिद्ध करते हैं वे विद्वानों में श्रेष्ठ और अत्यन्त धनी होते हैं ॥ ९ ॥

फिर विद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रः सुयुजा ये अर्था ।**

**ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे घत्त ऋभवः समयन्तो न मित्रम् ॥१०॥**

**पदार्थ—**हे ( ऋभवः ) बुद्धिमान् ! ( ये ) जो ( मेधया ) बुद्धि ( उक्था ) और प्रसंसाओं से ( मदन्तः ) आनन्द करते हुए ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के लिए ( हरी ) घोड़ों के सदृश अग्नि और जल का ( अथवा ) शीघ्र चलने वाले और ( सुयुजा ) उत्तम प्रकार जुड़े हुए ( चक्रः ) करते हैं और ( ये ) जो इस विद्या को जानें ( ते ) वे आप लोग ( मित्रम् ) मित्र की ( श्रेष्ठयन्तः ) रक्षा करते हुए के ( न ) सदृश ( अस्मे ) हम लोगों के मित्र ( राय, स्पोषम् ) धन आदि की पुष्टि को ( द्रविणानि ) तथा द्रव्यो वा यशो को ( अथ ) आचरण करो ॥ १० ॥

**आचार्य—**हे विद्वानो ! आप लोग सृष्टि के क्रम से पदार्थविज्ञानों को प्राप्त होकर अन्य जनो का बोध कराके अपने सदृश करके भनाठय करो ॥ १० ॥

**इदाहं पीतिमुत वो मदं धुनं क्रुते आन्तस्यं सख्याय देवाः ।**

**ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीयं अस्मिन्सर्वने दधात ॥११॥२॥**

**पदार्थ—**हे ( ऋभवः ) बुद्धिमान् ! जो ( देवाः ) विद्वान् जन ( वः ) आप लोगों में से ( अहम् ) दिन के मध्य में ( पीतिम् ) पान को ( उत ) और आप लोगों के ( मन्त्रम् ) आनन्द को ( धुः ) आचरण करें ( ते ) वे ( इवा ) इस समय ( आन्तस्यं ) तप से नष्ट हुआ है पाप जिसका उसकी सेवा के ( ऋते ) बिना ( सख्याय ) मित्रपने के लिए ( न ) नहीं समर्थ होते हैं वे ( अस्मिन् ) इस ( तृतीयं ) अन्त्य ( सर्वने ) श्रेष्ठ कर्म के निमित्त ( अस्मे ) हम लोगों में ( वसून् ) धनों को ( नूनम् ) निश्चययुक्त ( दधात ) आचरण करो ॥ ११ ॥

**आचार्य—**जो जन वर्तमान समय में यथार्थ पुरुषार्थ को करते हैं वे धनपति होते हैं और जो विद्वानों के सङ्ग को नहीं करते हैं वे धन से रहित हुए दारिद्र्य को भजते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् माता पिता और मनुष्यों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ।

यह तेतीसवां सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथैकादशस्य ऋतुविज्ञानस्य सूक्तस्य आनन्देय ऋषिः । ऋभवो देवताः ।

१ चिराद् चिदुत् । २ धुरिक् चिदुत् । ४—६ निचत् चिदुत् ।

१० चिदुत् छन् । धैवत् स्वर । ३, ११ स्वरान् पङ्क्तिः ।

५ धुरिक् पङ्क्तिश्छान् । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ ग्यारह ऋचावाले चौतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहले मन्त्र में वैशाखी बुद्धिमान् के गुराओं को कहते हैं—

**ऋतुर्विश्वा वाज इन्द्रो नो अखळेमं यज्ञं रतन्धेयोप यात ।**

**इदा हि वो विषया देव्यहामधात्पीति सं मदा अगमता वः ॥१॥**

**पदार्थ—**जैसे ( यवाः ) आनन्द ( वः ) आप लोगों के ( सत्, अगमत् ) सम्बन्ध प्राप्त होवें जैसे ( हि ) निमित्त ( देवी ) श्रेष्ठ गुण वाली ( विषया ) बुद्धि ( अहम् ) दिनों के बीच ( पीतिम् ) पान को ( अगतात् ) आचरण करती है और हे विद्वान् जनो ! आप ( रतन्धेया ) धनों को आचरण करनेवाली क्रिया के लिए ( यज्ञम् ) इस ( यज्ञम् ) विद्या और बुद्धि के बढ़ानेवाले यज्ञ को ( उप, यात् ) प्राप्त होवें जैसे ( इवा ) इस समय ( वाजः ) विज्ञानवान् और ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य से युक्त ( ऋतुः ) बुद्धिमान् पुरुष ( विष्वा ) ईश्वर की सहायता से ( नः ) हम लोगों को और ( वः ) तुम लोगों को ( अखलम् ) उत्तम प्रकार प्राप्त हो ॥ १ ॥

**आचार्य—**हे मनुष्यो ! जैसे आप लोगों को आनन्द प्राप्त होवे वैसे ही कर्म और बुद्धि की वृद्धि को करो और व्यापक ईश्वर की उपासना भी करो ॥ १ ॥

**विद्वानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।**

**सं वो मदा अगमसं सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥**

**पदार्थ—**हे ( वाजरत्नाः ) विज्ञान आदि रत्नों से युक्त ( ऋभवः ) बुद्धिमानो ! आप लोग ( जन्मनः ) जन्म से ( विद्वानाः ) ज्ञानवान् और विद्या ग्रहण के





इस सूक्त में वैशाखी के पुण्य वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की विज्ञाने सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह अतीतका सुक्त और और वर्ण सन्नाप्त हुआ ।

ॐ

अथ अमर्त्यस्य यन्मन्त्रिणसामन्त्र्यं सुतस्य वासदेव ऋषिः । अमर्त्यो देवताः ।

१. २. ४. ६. ७. ८. विष्णु विष्णुः । ३. भिक्षुः । ५. वैश्वः ।

स्वरः । ९. सुरिः । १०. स्वराः । ११. स्वराः । १२. स्वराः ।

यन्मन्त्रः स्वरः ॥

अथ यन् अमर्त्यो देवतासु सुतस्य वासदेव ऋषिः । इस सूक्त में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

इहोपं वास अमर्त्यो नपातः सौधन्वना अमर्त्यो मायं भूत ।

अस्मिन् हि वः सर्वे रत्नधेयं यन्मन्त्रिणमनुं वो मदासः ॥१॥

पदार्थ—हे ( अमर्त्यः ) प्रशास करने योग्य बलशुक्त ( नपातः ) पतनरहित अमर्त्य हाति से रहित ( सौधन्वना ) सुन्दर अनुय भन्तरिक्ष में स्थित जिन के उन के सम्बन्धी ( अमर्त्यः ) बुद्धिमानो । आप लोग ( इह ) यहाँ ( उप, वात ) समीप में प्राप्त हुजिये ( वः ) आप लोगों के ( अस्मिन् ) इस ( सर्वे ) क्रियामय व्यवहार में ( हि ) जिस कारण ( वः ) आप लोगों के ( नपातः ) आनन्द ( रत्नधेयम् ) धन धरने के पात्ररूप ( इहम् ) परम ऐश्वर्ययुक्त जन के ( अनु, मन्त्रिणम् ) पीछे जावे इस कारण इस को प्राप्त हो कर कही ( वा ) मत ( उप, सूत ) अपमान से युक्त हुजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो लोग उत्साह ने ऐश्वर्य की वृद्धि करने की इच्छा करते हैं वे सब जगह सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सर्वत्र सत्कारयुक्त और जो आलस्ययुक्त होते हैं वे वरिष्ठपन से अभिभूत अर्थात् सदा तिरस्कृत होते हैं ॥ १ ॥

आगंभूम्यामिह रत्नधेयममर्त्योमस्य सुपुत्रस्य पीतिः ।

सुकृत्या यत्स्वपस्यया वै एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो । आप ( सुकृत्या ) सुन्दर क्रिया से ( स्वपस्यया ) वा सुन्दर कर्मों को अपनी इच्छा से ( यत् ) जिस ( एकम् ) एक ( चमसम् ) मेष के सदा गर्जना करनेवाले रथ को ( चतुर्धा ) नीचे ऊपर तिरछी और मध्यम गतिवाला ( विचक्र ) करते हैं जिससे ( सुपुत्रस्य ) उत्तम प्रकार उत्पन्न किये गये ( सौधन्वना ) ऐश्वर्य का ( पीतिः ) पान ( अमर्त्यः ) होवे और ( इह ) इस सत्कार में ( अमर्त्यम् ) बुद्धिमानों के ( रत्नधेयम् ) रत्न धरने के पात्ररूप जन को ( वा, अमर्त्यम् ) सब प्रकार प्राप्त होवे ( वः ) उसी के गमन आदि कार्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य उत्तम हस्तक्रिया और उत्तम कर्म से सर्वत्र पहुँचानेवाले वाहन आदि को रखते हैं वे जाने और पीने योग्य पदार्थ और असंख्य धनों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

अयं कुणोत चमसं चतुर्धा सत्वे वि शिसेत्यवधीत ।

अयं वाजा अमृतस्य पन्थां गन्तुं देवानामुभयः सुहस्ताः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( सत्वे ) मित्र । जैसे पदार्थवत्ता विद्वान् जन सत्यविद्या की शिक्षा देते हैं वैसे आप ( अयं ) शिक्षा देओ और हे ( वाजाः ) विज्ञानयुक्त ( सुहस्ताः ) अच्छे हाथों वाले ( अमृतस्य ) बुद्धिमान् जनो । जैसे मित्र वैसे आप लोग ( चमसम् ) यन्त्र सिद्ध करनेवाले पात्र के सदा कार्य को ( चतुर्धा ) चार प्रकार ( वि ) विशेषता से ( अमृतस्य ) करो और आत्मों का ( वि ) विशेष करके ( अमर्त्यम् ) उपदेश देओ ( अयं ) इस के अनन्तर ( इति ) इस प्रकारसे ( देवानाम् ) विद्वानों के ( गन्तुम् ) समूह को और ( अमृतस्य ) नाशरहित मोक्ष के ( पन्थां ) मार्ग को ( सत्वे ) प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है । हे मनुष्यो । परमेश्वर आप लोगों के प्रति चार प्रकार के पुरुषार्थ को सिद्ध करो ऐसा कहता है कि जो परस्पर मित्र होकर कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करो तो धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि आप लोगों की विना संशय प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

किंयः स्विचमस एव आस यं कार्येन चतुरीं विचक्र ।

अथो सुकृत्यं सर्वं मदाय पात कामो मधुनः सौम्यस्य ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अमर्त्यः ) बुद्धिमानो । ( एव ) यह ( चमसः ) यन्त्रपात्र जिस से कि आवश्यक करता है ( स्विच ) सो क्या ( किंयः ) किसी को फोड़ता ( वाच ) हुआ है ( यम् ) जिसकी ( काम्येन ) कर्मों के बसाये गये कार्य के ( चतुरीं ) चार साथ साथ आप लोग ( विचक्र ) विज्ञान करते हैं और ( मदाय ) आनन्द के लिए ( चमसम् ) आन से प्रयत्न ( सौम्यस्य ) ऐश्वर्य में श्रेष्ठ पदार्थ के ( चमसम् ) कार्य की सिद्धि करनेवाले को ( सुकृत्यम् ) उत्पन्न करो । ( अयं ) इस के अनन्तर ( इह ) यहाँ ( वाच ) कहा करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—कार्यों के साधन कैसे और कैसे के बने हुए होते हैं यह पूछा जाता है । जो जो विद्या और युक्ति से बनाया गया हो वह वह साधन कार्य की सिद्धि करनेवाला होता है यह उत्तर है ॥ ४ ॥

अमर्त्योऽपि पितरा युवाना अमर्त्योऽपि चमसं देवपानम् ।

अमर्त्योऽपि चतुर्धावत्तेन्द्रबाहावमो वाचरत्नाः ॥ ५ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( वाचरत्नाः ) अन्न आदि पदार्थ और सुवर्ण आदि पदार्थों से युक्त ( अमर्त्यः ) बुद्धिमानो । आप लोग ( अमर्त्यः ) उत्तम बुद्धि से ( युवाना ) युवावस्था को प्राप्त ( पितरा ) विज्ञान वाले अध्यापक और उपदेशक को ( अमर्त्यः ) करिए ( अमर्त्यः ) कर्म से ( देवपानम् ) देव विद्वान् जन जिस से पान करते हैं उस ( चमसम् ) पान करने के साधन को ( अमर्त्यः ) करिये ( अमर्त्यः ) वाणी से ( चतुर्धा ) शीघ्र पहुँचाने और ( इन्द्रबाहो ) ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले ( हरौ ) वायु और विष्णु की ( अमर्त्यः ) उत्पन्न करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो । आप लोग इस प्रकार बल करो जैसे कि मनुष्यों के सन्तान युवावस्था जब तक सब तक प्राप्त पूर्ण विज्ञान वाले होकर पूर्ण युवावस्था में परस्पर प्रीति और अनुमति से स्वयम्बर विवाह करके सदा आनन्दित होवें ॥ ५ ॥

यो वः सुनोत्यमिषित्वे अर्द्धा तीक्ष्णं वाचासः सर्वं मदाय ।

तस्मै रयिमुमवः सर्वे वीरमा संस्तुत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( वृषणः ) बलशुक्त ( वाचासः ) विज्ञानवाले ( अमर्त्यः ) बुद्धिमानो । मन्दसानाः कामना करते हुए आप लोग ( यः ) जो ( वः ) आप लोगों के लिए ( अर्द्धम् ) दिनों के मध्य में ( अमिषित्वे ) धर्मोपेक्षा की प्राप्ति होने पर ( मदाय ) निष्प आनन्द के लिए ( तीक्ष्णम् ) तेजःस्वरूप ( चमसम् ) ऐश्वर्य की ( सुनोति ) उत्पन्न करता है ( तस्मै ) उसके लिए ( सर्वे वीरम् ) सम्पूर्ण वीर जिससे ही उस ( रयिम् ) धन को ( आ, तक्षत ) मित्र करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो । जो आप लोगों की सेवा को तथा आज्ञा के अनुसार कार्य करते हैं उनको विद्वान् और उत्तम प्रकार शिक्षित करके सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये ॥ ६ ॥

प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माघ्यन्दिनं सर्वं केवलं ते ।

समुद्रमिः पिबस्व रत्नधेयमिः सखीयं इन्द्र चक्रे सुकृत्या ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( हर्यश्वः ) उत्तम प्रकार चलने योग्य घोड़ों से युक्त ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के केनेवाले राजन् । आप ( सुकृत्या ) उत्तम धर्मयुक्त कर्म से ( वाचम् ) जिन ( सखीयम् ) मित्रों को ( चक्रे ) करते हो और उन ( रत्नधेयम् ) धनों को धारण करने वाले ( समुद्रमिः ) बुद्धिमानों के साथ ( प्रातः ) प्रातः काल में ( सुतम् ) उत्पन्न दूध वा जल ( माघ्यन्दिनम् ) तथा मध्य दिन में उत्पन्न भोजन आदि और ( केवलम् ) केवल ( चमसम् ) सम्पूर्ण संस्कारों के रतों से युक्त पीने योग्य पदार्थ का ( अमिषः ) पान करो ( सन्, पिबस्व ) अच्छे प्रकार आप पान करिये इस प्रकार ( ते ) आप का निश्चय कल्याण होवे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के मित्र सबके सुख चाहनेवाले प्रातःकाल मध्यकाल और सायंकाल में करने योग्य कर्मों को करके उत्तम कर्म करनेवाले हों वे सबके मित्र हुए भाग्यशाली हों ॥ ७ ॥

ये देवासो अमर्त्यता सुकृत्या रयेना ह्वेदधि दिवि निषेद ।

ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अमर्त्यतामृतासः ॥ ८ ॥

पदार्थ—( ये ) जो ( देवासः ) विद्वान् ( सुकृत्या ) श्रेष्ठ कर्म से ( अमर्त्यः ) होते और ( रयेना इव ) बाज के सदा पुरुषार्थी ( विवि ) भन्तरिक्ष में ( अमि ) ऊपर ( निषेद ) स्थित होते हैं ( ते ) वे ( इत् ) ही ( शवसः ) बलवान् हुए ( नपातः ) धर्म से नहीं गिरनेवाले ( सौधन्वनाः ) जिनका सुन्दर भन्तरिक्ष अर्थात् जिन्होंने यज्ञादि कर्म से भन्तरिक्ष को स्वच्छ किया उनके पुत्र ( रत्नम् ) सुन्दर धन की ( धात ) धारण करते हैं और ( अमर्त्यताः ) मोक्ष सुख को प्राप्त ( अमर्त्यः ) होते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है । जो बाज के सदा विमान से भन्तरिक्ष में जाते हैं, धर्म के आचरण से विद्वान् होकर धन्य जनों को भी वैसे करते वे ऐश्वर्य को प्राप्त हो तथा उसका भोग करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

यत्तृतीयं सर्वं रत्नधेयमकुण्ठं स्वपस्या सुहस्ताः ।

सर्वमवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेमिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( सुहस्ताः ) सुन्दर धर्मसम्बन्धी कर्म करनेवाले हाथों से युक्त ( अमर्त्यः ) बुद्धिमानो । ( यत् ) जो ( वः ) आप लोगों के लिए ( एतत् ) यह ( परिषिक्तम् ) सब प्रकार श्रेष्ठ पदार्थों से युक्त किया हुआ ( तत् ) उसको ( अमिभिः ) आनन्दों ( इन्द्रियेभिः ) चक्षुषादि इन्द्रियों और ( स्वपस्या ) उत्तम

धर्मसम्बन्धी कर्म की इच्छा से ( सन् पिबन्धन् ) पान करो और ( रत्नवेद्यम् ) जिसमें रत्न धरे जाते हैं उस ( तृतीयम् ) तीसरे अर्थात् अष्टांशसर्वे वर्ष पर्यन्त सेवित ब्रह्मचर्य्य और ( सचनम् ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों के प्राप्त करनेवाले कर्म को ( अष्टाष्टम् ) करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम प्रथम अर्थात् युवावस्था में विद्या का अभ्यास, द्वितीय अर्थात् मध्यम अवस्था में गृहाश्रम और तृतीय में न्याय आदि कर्मों का अनुष्ठान करके पूर्ण ऐश्वर्य्य का प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की विच्छिन्न सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलित जाननी चाहिए ॥

यह पंतीसवाँ सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ नवचंस्य षट्त्रिंशत्सस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । ऋभवी वेवता ।

१, ६, ८ स्वराद् विष्टम् छन्दः । ६ निचुत्त्रिष्टम् छन्दः । चैवत स्वरः ।

२-५ विराद् जगती । ७ जगती छन्दः । निचाव स्वरः ॥

अथ नव ऋचा वाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसमें शिल्पविद्या के विषय को कहते हैं—

अनभो जातो अनभोशुक्लभ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।

महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं धाम्भवः पृथिवी यच्च पुष्यं ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( ऋभवः ) बुद्धिमानो ! ( वः ) आप लोगों के लिए ( अनभः ) बोझों से रहित ( अनभोशुः ) जिसने किसी का दिया नहीं लिया वह ( उक्थ्य ) प्रशंसा करने योग्य ( त्रिचक्रः ) तीन पहियों से युक्त ( रथः ) वाहनविशेष ( जातः ) उत्पन्न हुआ ( यत् ) जो ( महत् ) बड़े ( रजः ) लाक सस्र के ( परि ) गब और ( वर्तते ) वर्तमान है ( तत् ) वह ( देव्यस्य ) विद्वानों में उत्पन्न कर्म का ( प्रवाचनम् ) उपदेश सब और वर्तमान है उससे ( धाम् ) प्रकाश ( पृथिवीम्, च ) और अन्तरिक्ष वा भूमि को आप लोग ( पुष्यं ) पुष्ट करो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अनेक प्रकार के अनेक कलावक्रों तथा पशु घोड़ा के वाहन से रहित अग्नि और जल से चलाये गये विमान आदि वाहनों को बना पृथिवी, जलो और अन्तरिक्ष में जा आकर और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर पूर्ण सुख वाले होओ ॥ १ ॥

रथं ये चक्रः सुवृत्तं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।

तौ ऊन्वस्य सर्वस्य पीतये आ वौ वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥ २ ॥

पदार्थ—ह ( वाजाः ) हस्तक्रिया को प्राप्त हुए ( ऋभवः ) बुद्धिमानों ( ये ) जो ( न ) आप लोगों को ( अस्य ) इस ( सर्वस्य ) शिल्पविद्या में उत्पन्न हुए काय की ( पीतये ) तृप्ति के लिए ( सुचेतसः ) उत्तम विज्ञान वाले ( मनसः ) विज्ञान से ( ध्यया ) ध्यान से ( अविह्वरन्तम् ) नहीं टेढ़े चलनेवाले ( सुवृत्तम् ) उत्तम प्रकार अङ्ग और उपाङ्गों के सहित ( रथम् ) विमान आदि वाहन को ( परि-चक्रः ) गब और से बनाते हैं और जिनको हम लोग ( आ, वेदयामसि ) जानते हैं ( तान् ) उन को ( तु ) निश्चय करके ( उ ) ही आप लोग शीघ्र ग्रहण कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—हे बुद्धिमानो ! जो वाहनों के बनाने और चलाने में चतुर शिल्पीजन हों उनका ग्रहण और सत्कार करके शिल्पविद्या की उत्तान करो ॥ २ ॥

तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेभ्यो बिभ्वो अभवन्महिम्नम् ।

जिद्वी यत्सन्तां पितरां सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ३ ॥

पदार्थ—ह ( वाजाः ) अन्न आदिका से युक्त ( ऋभवः ) बुद्धिमानो ! ( बिभ्वः ) मकल विद्याओं में व्याप्त ( यत् ) जो ( वः ) आप लोगों के प्रति ( देवेभ्यः ) विद्वानों में ( महिम्नम् ) प्रतिष्ठा को ( सुप्रवाचनम् ) उत्तम प्रकार पढ़ाना और उपदेश करना ( अभवत् ) होवे ( तत् ) उसको प्राप्त होकर ( जिद्वी ) जीवते हुए ( सन्ता ) विद्यमान और ( सनाजुरा ) मदा बुढ़ावस्था को प्राप्त ( पितरा ) माता पिता ( चरथाय ) चलने विज्ञान वा भोजन के लिए ( पुनः ) फिर ( युवाना ) युवावस्था को प्राप्त हुए ( तक्षथ ) करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—ह बुद्धिमान् जनो ! जो आप लोग विद्वानों में स्थित होकर उनसे अध्ययन और उपदेश करें तो ज्ञानवृद्ध होने से युवावस्था को प्राप्त हुए भी वृद्ध होकर सत्कृत होंगे ॥ ३ ॥

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गार्भरिणीत धीतिभिः ।

अथा देवेभ्यमृतस्वमानस श्रेष्ठो वाजा ऋभवस्तद् वक्ष्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—ह ( वाजाः ) ऐश्वर्य्य से युक्त ( ऋभवः ) बुद्धिमान् जनो ! ( तत् ) वह ( वः ) आप लोगों का ( उक्थ्यम् ) प्रशंसा करने योग्य कर्म कि जिस से आप लोग ( अश्रेष्ठो ) शीघ्र ( धीतिभिः ) अङ्गुलियों के सदृश विवेचन गनियों से ( चर्मणः )

रक्षा को ( गोम् ) भूमि को ( अरिणीत ) प्राप्त हुईए ( अथ ) इसके अनन्तर इस से ( देवेभ्यः ) विद्वानों में ( अमृतत्वम् ) मोक्षमुख को ( आनस ) प्राप्त हुईए और जैसे ( एकम् ) सहायरहित अर्थात् अकेले ( चमसम् ) मेघों के सदृश विभक्त ( चतुर्वयम् ) चार हम लोग ( वि, नि, चक्र ) करें वैसे आप लोग भी करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकानुपमासङ्कार है । जो प्रशंसित कर्मों को करते हैं वे व्यावहारिक और पारमायिक सुख को प्राप्त होकर पण्डितवरो में प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

ऋभुतो रयिः प्रथमभ्रवस्तमो वाजभ्रतासो यमजीजनकरः ।

विभ्वतष्टो विद्वेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवधा स विचर्षणिः ॥ ५ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( देवासः ) विद्वानो ! जो ( वाजभ्रतासः ) विज्ञान के सुनने वाले ( नरः ) नायकजन ( यम् ) जिसको ( अजीजनम् ) उत्पन्न करते हैं ( सः ) वह ( विभ्वतष्टः ) व्यापक पदार्थों में नहीं पण्डित अर्थात् उनको नहीं जाननेवाला ( विवेषु ) जानने योग्य व्यवहारों में ( प्रवाच्य ) कहने के योग्य होवे इससे ( ऋभुतः ) बुद्धिमानों के समीप से ( प्रथमभ्रवस्तमः ) अत्यन्त प्रथम भ्रवण वा अस जिस में वह ( रयिः ) धन प्राप्त होवे और ( यम् ) जिस की आप लोग ( अचक्ष ) रक्षा करते हो ( विचर्षणिः ) सम्पूर्ण देखने योग्य पदार्थों को देखनेवाला मनुष्य होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् उत्तम हैं कि जो विद्यार्थियों का विद्वान् करते हैं उन्हीं को पढ़ाना और उपदेश देना चाहिए जो पदार्थविद्या से रहित हों, वे ही सुखी होते हैं जो विद्या और धन को प्राप्त होकर धर्मात्मा हों ॥ ५ ॥

स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।

स गयस्पोषं स सुवीर्य्यं दधेयं वाजो विभ्वौ ऋभवो यमाविष्टुः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ऋभवः ) बुद्धिमान् जग ( विभ्वः ) व्यापक पदार्थ से ( यम् ) जिसको ( आविष्टुः ) विद्यायुक्त करे और ( यम् ) जिसका ( वाजः ) विज्ञानवान् धारण करता है ( सः ) वह ( वचस्यया ) अत्यन्त प्रशंसा के साथ ( अर्वा ) उत्तम गुणों को प्राप्त करानेवाला ( वाजो ) विज्ञानयुक्त ( सः ) वह ( ऋविः ) वेदार्थ को जाननेवाला ( सः ) वह ( पृतनासु ) शत्रुओं की सेनाओं में ( दुष्टरः ) दुःख से उल्लङ्घन करने योग्य ( शूरः ) वीर पुरुष ( अस्ता ) शत्रुओं का फेंकने-वाला हुना है ( सः ) वह ( रायः ) धन की ( पोषम् ) पुष्टि और ( सः ) वह ( सुवीर्य्यम् ) उत्तम बल और पराक्रम को ( दधे ) धारण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ जो मनुष्य विद्वानों के संग से गुणों के ग्रहण करने की इच्छा करते हैं वे प्रशंसित, शत्रुओं से नहीं जीतने योग्य, धनाढ्य और पराक्रमी होते हैं ॥ ६ ॥

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।

धीरांमो हि द्वा कवयो त्रिपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि । ७ ॥

पदार्थ—हे ( वाजाः ) उत्तम स्वभावयुक्त और वेगवाले ( ऋभवः ) बुद्धिमान् आप लोग जगसे ( वः ) आप लोगों के ( अक्षम् ) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य और ( वक्षन् ) देखने योग्य ( पेशः ) सुन्दररूप और सुवर्ण तथा ( स्तोमः ) प्रशंसा ( अधि ) ऊपर ( धायि ) धारण की जाती है और जो ( हि ) जिससे ( धीरांसः ) योगी विचारवाले ( कवयः ) बहुत सारथी को देख अर्थात् विचारे हुए उपदेशक ( त्रिपश्चितः ) सत्य और मिथ्या को पृथक् करनेवाले विद्वान् जन उपदेशक हों जिस को और जिन ( वः ) आप लोगों को ( एना ) इस ( ब्रह्मणा ) वेद से ( आ, वेदयामसि ) जानते हैं ( तम् ) उस और ( तान् ) उनकी ( जुजुष्टन ) सेवा करो अर्थात् उस में और अपने में प्रीति करो इस के संग में विद्वान् ( वः ) होंगे ॥ ७ ॥

भावार्थ जो विद्यार्थी जन श्रेष्ठ अध्यापक और विद्वान् यथार्थवक्ता जनो की सेवा करके शिक्षा ग्रहण करें वे विद्वान् और लक्ष्मीवान् होंगे ॥ ७ ॥

यूयमस्मभ्यं विषणाभ्यस्परि विद्वांसो विभ्वा नय्योणि भोजना ।

द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिभ्रवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( विद्वांसः ) विद्वानो ! ( ऋभवः ) बुद्धिमानो ! ( यूयम् ) आप लोग ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( विषणाभ्यम् ) बुद्धियों से ( विभ्वा ) सम्पूर्ण ( नय्योणि ) मनुष्यों में श्रेष्ठ वा मनुष्यों के लिए हितकारक ( भोजना ) पालन वा भान ( शुष्मम् ) प्रकाशवाले ( वृषशुष्मम् ) बलियों के बल और ( उत्तमम् ) श्रेष्ठ ( वाजम् ) विज्ञान और ( रयिम् ) धन का तथा ( नः ) हम लोगों के लिए ( वयः ) जीवन का ( आ, तक्षता ) विस्तार कीजिये उससे सुख को ( परि, आ ) सब प्रकार से बढ़ाइये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने से मनुष्यों की बुद्धि बढ़ाते हैं वे सबके हितैषी जानने चाहिए ॥ ८ ॥

इह प्रजामिह रयि रराणा इह अबो वीरवत्सता नः ।

येन वयं चितयेमास्त्यन्यान्तं वाजं चित्रभ्रवो ददा नः ॥ ९ ॥ ८ ॥



पदार्थ—हे (ऋषयः) बुद्धिमानो ! आप लोग (इह) इस संसार में (नः) हम लोगों के लिए (प्रणामः) उत्तम सन्तान वा राज्य को (इह) इस संसार में (रयिम्) बन को और (इह) इस संसार में (वीर्यम्) प्रशंसा करने योग्य वीरों के करनेवाले (अवः) अन्न वा अवण को (राज्यम्) देते हुए (सकतः) प्राप्त कराओ (वेद्यः) जिस से (अवयम्) हम लोग (अव्याप्तः) वीरों के प्रति (अति, केतयेम) उत्तम रीति से विज्ञान को कहे (तन्) उस (विद्यम्) अद्भुत (वाच्यम्) विज्ञान को (नः) हम लोगों के लिए (वक्षः) दीजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जब मनुष्य विद्वानो को प्राप्त होवे तब विज्ञान सत्यवचन बन उत्तम प्रजा और शूरवीरयुक्त सेना की याचना करें उनसे पदार्थ विद्या को प्राप्त होकर अन्व्यों को निरन्तर बोध करावे ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विपश्चित् के गुण कृत्य वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सत्सीलता सूक्त और आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथर्ववेदस्य सप्तविंशतमस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । ऋषको देवताः । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ८ त्रिष्टुप् त्रिष्टुप् । ४, ५, ७ अनुष्टुप् । ६, ७ अनुष्टुप् ।

४ पङ्क्तिवक्ष्यः । पञ्चमः स्वरः । ५, ७ अनुष्टुप् ।

६ त्रिष्टुप् त्रिष्टुप् । ऋषयः स्वरः ॥

अथ आठ ऋषा वाले सत्सीलता सूक्त का आरम्भ है, इस में आप्त के विषय को कहते हैं—

उप नो बाजा अध्वर्युभुक्ता देवा यात पथिर्मिदं यानैः ।

यथा यज्ञं मनुषो विधासु दधिध्वे रयवाः सुदिनेष्वक्षांस् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (ऋषयः) बड़े (बाजा) विज्ञानवाले (देवाः) विद्वानो ! आप लोग (यथा) जैसे (रयवाः) सुन्दर (मनुषः) विचार करनेवाले (अध्वर्युः) दिनों के मध्य में (सुदिनेषु) सुख से वर्तमान दिनों में और (आसु) इन प्रत्यक्ष वर्तमान (विष्णु) प्रजाओं में (यज्ञम्) वेद प्राप्ति बोधरहित व्यवहार को धारण करते हैं वैसे ही आप लोग इसको (दधिध्वे) धारण कीजिये वैसे (पथिभिः) मार्गों (वेद्ययानैः) विद्वान् लोग जिसमें जाएँ उन से (नः) हम लोगों के (अध्वर्युः) अहिंसाय यज्ञ को (उप, यात) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जन धार्मिक विद्वानो के मार्ग अपनाई मर्यादा से चलते हैं वे प्रजा के हित करने में समर्थ होते हैं ॥ १ ॥

ते वां हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अथ घृतनिर्णिजो गुः ।

प्र वः सुतासौ हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षां हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (ते) वे (हृदे) हृदय वा (मनसे) अन्तःकरण के लिए (अथ) आज (वः) आप लोगों के (वृत्तनिर्णिजः) वृत्त वा जल से छुड़ किये गये (जुष्टासः) विद्वानो से सेवित (यज्ञाः) सत्य व्यवहार प्राप्त (सन्तु) होवें (सुतासः) उत्पन्न हुए (वः) आप लोगों को (गुः) प्राप्त हों और (प्र, हरयन्त) कामना करें तथा (क्रत्वे) बुद्धि और (दक्षां) चतुरता के लिए (पूर्णाः) पूर्ण (पीताः) पालन किये गये (हर्षयन्त) प्रसन्न होवें ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ऐसा पुरुषार्थ करो जिससे पवित्रता बुद्धि और चातुर्य बढ़े और जो मोक्ष-मध्य के आहार का त्याग करके उत्तम पदार्थ का भोग करते वे निरन्तर विज्ञान को बढ़ाते हैं ॥ २ ॥

ऽयुदायं देवहितं यथा वः स्तोमो बाजा ऋभुक्षणा दधे वः ।

जुह्वे मनुष्वदुपरासु विष्णु युष्मे सत्वा बृहद्विषु सोमम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (बाजाः) अन्न तथा विज्ञानवाले (ऋभुक्षणाः) श्रेष्ठजनों ! (यथा) जैसे (वः) आप लोगों की वा आप लोगों के लिए (स्तोमः) प्रशंसा मुझको सुख देनी है वैसे आप लोगों के लिए आनन्द को मैं (दधे) देता हूँ और जैसे मैं (मनुष्यम्) विद्वान् के सवृक्ष (वः) आप लोगों को (उपरासु) श्रेष्ठ (विष्णु) मनुष्य प्राप्ति प्रजाओं में (सत्वा) सत्य से (बृहद्विषु) महान् विषय पदार्थों में (अव्याप्तम्) मन, वेद और वचन इन तीनों से जिस की देते हैं उस (वेदहितम्) विद्वानों के लिए हितकारक (सोमम्) ऐश्वर्य को (जुह्वे) स्पर्धा करता हूँ और (युष्मे) आप लोगों के लिए सुख देता हूँ वैसे मुझको आप लोग भी सुखों और सुख को ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन आप लोगों के लिए सुख देते हैं और आप लोगों के हित की इच्छा करते हैं वैसे ही आप लोग भी उनके लिए आचरण करो ॥ ३ ॥

पीवीअथाः शुचिर्वा हि भूतायः शिवा वाजिनः सुनिष्काः ।

इन्द्रस्य सुनो खवसो नपातोऽहं वरुणस्य ग्रियं मदाय ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पीवीअथाः) मोठे मोठे (शुचिर्वा) पवित्र वाहनों और (अथाः शिवाः) मोह के सवृक्ष दुष्टों और नास्तिकों वाले मोहों से युक्त (सुनिष्काः)

सुन्दर सुवर्ण के आभूषणों वाले (वाजिनः) वेगयुक्त आप लोग (हि) जिस से जीतनेवाले (सुनो) कीजिये । और हे (नपातोः) नीचे गिरना अर्थात् नीचे वक्ष को प्राप्त होना जिसके नहीं उस (वरुणसः) बलवान् (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले राजा के (सुनो) पुत्र आप (अथाः) आनन्द के लिए (अग्रियम्) प्रथम हुए सुख और पुरुषार्थ को करो और जैसे हम लोगों से (वः) आप लोगों का सुख (अनु, वेति) जाना जाता है वैसे आप लोगों को हम लोगों की सुखवृद्धि का प्रयत्न करना चाहिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजपुरुषो ! आप लोग विस्तीर्ण बल से युक्त और सेना के अग्रियों के सहित विराजमान और ऐश्वर्य से शोभित हुए राज्य के आनन्द की वृद्धि के लिए पुरुषार्थ करो जिससे मनुष्य आप लोगों का तिरस्कार करने की समर्थ न हो सके ॥ ४ ॥

ऋभुभुक्षणा रयि वाजिन्तं युजम् ।

इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातम्यभिन्नम् ॥ ५ ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (ऋभुभुक्षणा) बड़े विद्वान् ! आप लोग (वाजिन्तं) सग्राम में (ऋभुम्) बुद्धिमान् (वाजिन्तम्) प्रशंसित अतीव बहुत थोड़े से युक्त (युजम्) समाधान करने को योग्य (इन्द्रस्वन्तम्) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त स्वामी के सहित (सदासातमम्) सदा प्रतिशय करके विभाग करने योग्य (अभिन्नम्) बहुत उत्तम थोड़े आदि से युक्त (रयिम्) बन को हम लोग (हवामहे) ग्रहण करते हैं वैसे ही इसको आप लोग मुलावे, ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । आप लोग स्पर्धा से परस्पर बल बढ़ाके सग्राम में मनुष्यों को जीतो ॥ ५ ॥

सेहभ्वो यमवथ युयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।

स धीमिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (ऋषयः) बुद्धिमान् जनो ! (युयम्) आप लोग (यम्) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य की (अवथ) रक्षा करते हो और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य-युक्त राजा (स) भी रक्षा करता है (सः, इत्) वही (धीमिः) बुद्धि को से युक्त (सः) वह (सनिता) मर्त्य और असत्य का विभाग करनेवाला और (सः) वह (अर्वता) थोड़ा आदि से (मेधसाता) शुद्ध सग्राम में विजयी (अस्तु) होवे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजसेनाजनों ! जो आप लोगों के अभ्यक्ष राजा और बुद्धिमान् रक्षक होवें तो आप लोगों का सर्वत्र विजय और सुख निरन्तर बढ़े ॥ ६ ॥

वि नो बाजा ऋभुक्षणाः पथधितमं यष्टवे ।

अस्मभ्यं सुरयः स्तुता विरवा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (बाजाः) प्रशंसित (ऋभुक्षणाः) बड़े (स्तुता) स्तुति किये गये (सुरयः) विद्वानो ! आप लोग (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (यष्टवे) मिलने को (पथः) मार्ग (वि, वितन) जनाइये जिस से (तरीषणि) दुःख के पार उतरने के सामर्थ्य को प्राप्त होकर (वः) हम लोगों की (विषयाः) सम्पूर्ण (आशाः) इच्छाएँ पूर्ण होवें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बाल्यावस्था से लेकर विद्वानो की शिक्षा का ग्रहण करें उनकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण होवें ॥ ७ ॥

त नो बाजा ऋभुक्षणा इन्द्र नासत्या रयिम् ।

समर्थं चर्षशिष्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥ ८ ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (बाजाः) देनेवाले ! (ऋभुक्षणा) बड़े आप लोग जैसे (नासत्या) असत्याचार से ग्रहित सभा और न्याय के ईश वैसे (न) हम (चर्षशिष्यः) मनुष्यों के अर्थ (मघत्तये) श्रेष्ठ बन की प्राप्ति के लिए (तम्) उस (अवथम्) बड़े (रयिम्) बन को (पुरु) बहुत (सम्) उत्तम प्रकार (आ) ग्रहण करिये । और हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! आप इन लोगों की (सस्त) प्रशंसा कीजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि राजा और राजपुरुषों से बन की उन्नति सदा करें जिस से बहुत प्रकार का सुख होवे ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानो के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सत्सीलता सूक्त और दसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ अथर्ववेदस्य सप्तविंशतमस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । १ आवापुविष्यी देवताः ।

२—१० वज्रिका देवताः । १, ४ विराट् पङ्क्तिः । ६ भुरिष् पङ्क्तिवक्ष्यः ।

पञ्चमः स्वरः । २, ३ त्रिष्टुप् । ५, ८—१० त्रिष्टुप् त्रिष्टुप् ।

७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । ८ वज्रिका देवताः ।

अथ वरा आवावाले अक्षरसिद्धे सुक्त का आरम्भ है, इस में बीता राजा हो,  
इस विषय को कहते हैं—

उतो हि वां वात्रा सन्ति पूर्वा या पुरुष्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।  
क्षेत्रासां दक्षयुर्वेगासां धनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप और सेनापति ( जसदस्युः ) करते हैं दस्यु जिस से ऐसे होते हुए जो ( हि ) जिस कारण ( वाम् ) आप दोनों के सत्य ( सन्ति ) हैं उन ( पुरुष्य ) बहुतों से ( या ) जो ( पूर्वा ) प्रथम वर्तमान ( वात्रा ) दाना जन आप दोनों ( नितोशे ) अत्यन्त वध करने में ( क्षेत्रासाम् ) क्षेत्रों को विभाग करने और ( उर्वरासाम् ) बहुत श्रेष्ठ पदार्थों से युक्त भूमि सेवने वाले को ( दक्षयुः ) देते हो ( उतो ) और ( दस्युभ्यः ) माहम करनेवाले चोरों के लिए ( उग्रम् ) कठिन ( अभिभूतिम् ) पराजय को और उम के साथ चोरो के लिए ( जसम् ) जिस से नाश करता है उस का प्रहार करके कठिन पराजय को देते हो इससे अत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे राजा और सेना के अध्यक्ष ! आप दोनों उत्तम प्रकार शिक्षित भृत्यों को रख दुष्टों को नाश करके और विजय को प्राप्त होकर न्याय से राज्य का पालन करो ॥ १ ॥

उत वाजिनं पुरनिषिध्वानं दधिक्रामं ददधुबिषकुष्टिम् ।  
अजिप्यं श्येनं प्रक्षितप्सुमाशुं चकृत्यमर्यां नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मन्त्रा और सेना के ईश ! आप दोनों जिस के लिए ( अज्यः ) स्वामी ( शूरम् ) वीर ( नृपतिम् ) मनुष्यों के पालन करनेवाले राजा के ( न ) सद्गुण ( वाजिनम् ) बहुत वरगुण ( पुरनिषिध्वानम् ) बहुत शत्रुओं के हनन वाले ( दधिक्रामं ) धारण करनेवाली अधिपता के सहित चलमान ( बिषकुष्टिम् ) सब मनुष्य जीतने जिस में उस ( उत ) और बहुत वरवाले ( उ ) और ( अजिप्यम् ) सरलो के पालन करनेवालों में श्रेष्ठ ( प्रक्षितप्सुम् ) जो श्रेष्ठ पदार्थों को भक्षण करने वाले ( श्येनम् ) शीघ्रगामी बाज के सद्गुण ( चकृत्यम् ) निरन्तर करने योग्य ( आशुम् ) पूर्ण मार्ग का व्याप्त होनेवाले का ( दधुः ) जेवें वह विजय के लिए ममर्थ होवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजजन क्षिप्यविद्या से उत्पन्न शस्त्र, अस्त्र और उत्तम प्रकार शिक्षित चार अङ्गों से युक्त सेना को सिद्ध करें तो कही भी पराजय न होवे ॥ २ ॥

यं सीमन्तु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पुरुर्मदति हर्वमाणः ।  
पद्मिर्गृह्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( यम् ) जिस को ( सीम् ) सब ओर से जल ( प्रवतेव ) नीचे स्थल से जैसे जैसे ( द्रवन्तम् ) जाते हुए को ( अनु ) पीछे ( विश्वः ) सब ( हर्वमाणः ) हविष होता हुआ ( पूरः ) मनुष्यमात्र ( मवति ) आनन्दित होता है वह ( मेधयुम् ) हिंसा की कामना करते और ( शूरम् ) वीर वरुण के ( न ) सद्गुण ( ध्रजन्तम् ) चलते हुए ( वातमिव ) वायु के सद्गुण ( रथतुरम् ) रथ के द्वारा शीघ्र चलनेवाले ( पद्मिः ) पैरों से ( गृह्यन्तम् ) अभिक्रिया करते हुए शत्रु के मारने को समर्थ होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस राजा के राज्य में नीचा स्थान जल के सद्गुण और सब प्रकार स गुणों का पात्र एक होता है उस के समीप योग्य पुरुष रहते हैं ॥ ३ ॥

यः स्मारुधानो गध्यां समरसु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।  
आविर्जीको विदथा निचिष्यतिरो अरति पर्याप आशोः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( यः ) जो ( सनुतरः ) सनातन विद्या कृत् ( समरसु ) सन्ध्या में ( गध्या ) मिले हुए ( आरुधानः ) सब ओर स शत्रुओं को रोकता हुआ ( आविर्जीकः ) प्रसिद्ध सरल अर्थात् कपटरहित स्वभाववाला ( गोषु ) पृथिवियों में ( गच्छन् ) चलता और ( निचिष्यत् ) देखता हुआ शत्रुओं का ( तिरः ) तिरस्कार और ( अरतिम् ) दुःख का निवारण करके ( परि, चरति ) भूमता है ( आपः ) जलों के सद्गुण ( आयोः ) अवस्था के ( विदथा ) विज्ञानों को प्राप्त होता है ( स्म ) उसी को आप अधिकारी करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो जन अपने राज्य में शान्ति करने, शत्रुओं के राज्य में भय देने और बलयुक्त अधिक व्यवस्था वाले प्रसिद्ध कीर्तियुक्त होवें उन्हीं को शत्रुओं के जीतने के लिए नियुक्त करो ॥ ४ ॥

उत स्पैन वस्त्रमथि न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो मरेशु ।  
नीचार्यमानं जसुरि न श्येनं श्रवश्चाच्छां पशुमच्च यूथम् ॥ ५ ॥ ११ ॥

पदार्थ—( क्षितयः ) मनुष्य ( मरेशु ) सन्ध्या में जिस ( एमम् ) इस राजा को ( वस्त्रमथिम् ) वस्त्रों को मथने वाले ( तायुम् ) वीर को ( न ) जैसे जैसे ( अनु, क्रोशन्ति ) पीछे कोशते रोते हैं ( जसुरिम् ) प्रयत्न करते हुए ( श्येनम् ) पक्षिविशेष अर्थात् बाज के ( न ) सद्गुण ( नीचा ) नीच कर्मों को ( अवमानम् )

प्राप्त होने वाले को और ( पशुम् ) पशुओं से युक्त ( अयः ) धन का अवकाश को ( न ) भी ( अवज्ञः ) उत्तम प्रकार ( वृषम्, न ) तथा समूह के पीछे कोशते रोते हैं ( उत, स्म ) वही तो शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा प्रजापालन के बिना कर मेता है, जिस राजा की प्रजा को दुष्ट जन दुःख देते हैं, और जो राजा आप नीच कर्म करनेवाला, बाज पक्षी के सद्गुण हिसक, पशु के सद्गुण मूल और जिस राजा की सेना चोर के सद्गुण वर्तमान है उसका शीघ्र विनाश होता है यह निश्चय है ॥ ५ ॥

उन स्मांस्तु प्रथमः सरिष्यन्ति वेवेति ओणिभी रथानाम् ।  
सर्जं कृष्णानो जस्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददधान ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( आशु ) इन सेनाओं में ( रथानाम् ) वाहनों की ( ओणिभिः ) पक्षियों से ( सरिष्यन् ) माला के सद्गुण सेना को ( कृष्णानः ) करता और ( प्रथमः ) प्रथम ( सरिष्यन् ) चलनेवाला होता हुआ ( नि, वेवेति ) जाता है ( उत ) और ( शुभ्वा ) उत्तम प्रकार शोभित ( जस्यः ) उत्पन्न होनेवाले के ( न ) सद्गुण और ( किरणम् ) ज्योति को ( ददधानम् ) देनेवाले वायु के सद्गुण ( रेणुम् ) धूलि को ( रेरिहत् ) निरन्तर उड़ाता है ( स्म ) वही राजा सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कारानुपमालङ्कार है । जो न्याय से प्रजाओं का पालन करता हुआ सेनाओं में अप्रमामी अनुवेद का जाननेवाला विजयी चतुर विद्वान् नाभिक और उत्तम सहाययुक्त राजा हावे वही यशस्वी होकर महाराज होवे ॥ ६ ॥

उत स्य वाजी सहुरिर्कृतावा शुभ्रमाणस्तन्वा समये ।  
तुरं यतीषु तुरयमजिप्योऽधि भ्रवोः किरते रेणुसृजन ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( स्य ) वह ( वाजी ) विज्ञानयुक्त ( सहुरिः ) सहनेवाला ( कृतावा ) सत्य आचरण से युक्त ( यतीषु ) नियत सेनाओं में ( तुरम् ) शीघ्र करनेवाले ( तुरयम् ) शीघ्र चलाता हुआ ( उत ) भी ( अजिप्यः ) सरल गति वालों में श्रेष्ठ ( तन्वा ) शरीर से ( शुभ्रमाणः ) सेवन करता और ( अजिप्यम् ) प्रसिद्ध करता हुआ ( समये ) सद्ग्राम में ( भ्रवोः ) भीमों की ( रेणुम् ) धूलि को ( अधि, किरते ) उड़ाता है वह राजा विजयी और सत्कार करने योग्य होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—वही राज्य करने योग्य होवे जो विद्वान् सबको सहनेवाला सत्य का श्रेणी उत्तम सेना और सरलस्वभावयुक्त होवे ॥ ७ ॥

उत स्मास्य तन्यतोर्वि द्योर्हृषायतो अभियुजो भयन्ते ।  
यदा सहस्रमभि धीमयोधीर्हवन्तुः स्मा भवति भीम अज्जन ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( स्म ) ही ( भीमः ) भयकर ( अज्जनम् ) विजय को प्रसिद्ध करता हुआ ( भवति ) जाता है जो ( यदा ) जब ( सहस्रम् ) सद्ग्राम-रहित ( सीम् ) सब प्रकार ( अभि, अयोधीत् ) युद्ध करता है ( अस्य, स्म ) इसी ( हवन्तुः ) दुःख से वर्तमान ( अद्यायत ) हिंसा करते हुए ( उत ) और ( अभि-युजः ) अभियोग करने हुए के समीप से ( द्योः ) प्रकाशमान ( तन्यतोर्वि ) बिजुली के सद्गुण सब लोग ( भयन्ते ) भय करते हैं तभी राजा का प्रताप प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा बिजुली के सद्गुण दुष्टों का नाश करके धार्मिकों का सत्कार करता है वह एक भी सत्काररहित वीरों के साथ युद्ध करने योग्य होता है और जब यह राजा न्याय से प्रकट दण्ड देनेवाला होवे तब सब दुष्ट जन डर के छिप जाते हैं ॥ ८ ॥

उत स्मास्य पनयन्ति जनां जूति कृष्टिरो अभिभूतिमाशोः ।  
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परां दधिक्रा अतरत्सहस्रैः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( जनाः ) राजा और प्रजाजन ( अस्य ) इस ( कृष्टिरोः ) मनुष्यों को दूतचार अर्थात् गुप्त दूत आदि से पालना करनेवाले ( आशोः ) सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त राजा के सद्ग्राम म ( अभिभूतिम् ) तिरस्कार और ( जूतिम् ) न्याय के वेग का ( उत ) तर्क गिनक के साथ ( पनयन्ति ) व्यवहार करते या प्रशंसा करते हैं ( उत ) और भी ( एमम् ) इसका ( समिथे ) सद्ग्राम में ( वियन्तः ) विशेष करके प्राप्त होते हुए ( आहुः ) कहते हैं और जो ( दधिक्राः ) धारण करने वालों के साथ चलनेवाला ( सहस्रम् ) अमङ्गलों के साथ ( परा, अतरत् ) उत्कृष्ट चलता है ( स्म ) वही जीत सके ॥ ९ ॥

भाषार्थ—उसी राजा की विद्वान् जन प्रशंसा करते हैं जो प्रजा के पालन में तत्पर हुआ सबके व्यवहारों को मिट करता है ॥ ९ ॥

आ दधिक्राः शवंसा पञ्च कृष्टीः सूर्यैश्च ज्योतिषापस्ततान ।  
सहस्रमाः संतसा वाज्यवां पुणक्त मध्वा समिमा वचांसि ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थ—जा राजा ( शवंसा ) बल से ( सूर्यैश्च ) सूर्य के सद्गुण ( दधिक्राः ) धारण करनेवालों से प्राप्त होने वाला ( पञ्च ) पांच ( कृष्टी ) मनुष्यों की ( ज्योतिषा ) प्रकाश से सूर्य जैसे ( अपः ) जलों की जैसे ( आ, ततान ) विस्तृत

करता है (सहस्रताः) हजारों का विभाग करनेवाला (अतस्ताः) और सैकड़ों का विभागकर्ता वर्तमान (अर्वा) शीघ्र मार्गों को जानेवाला (वाजी) वेगवान् (अध्वान्) सहस्र के साथ (इमा) इन (अर्वाणि) वर्णों का (सम्, पुरुषम्) सम्बन्ध करे वही राज्य करने के योग्य होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सूर्य के प्रकाश के सदृश न्याय से पाँच प्रकार की प्रजाओं का पालन करता है वह असंख्य आनन्द की प्राप्ति होता है ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजा के वर्ण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह अज्ञातलीसर्वा सूक्त और चारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चवर्षस्योन्नतवारिषासमस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । दधिका देवताः ।

१, २, ५ मिष्टुत् मिष्टुप् छन्दः । वेदतः स्वरः । २, ४ स्वरत्

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ अनुष्टुप् छन्दः ।

अथम स्वरः ॥

अथ छः ऋचा वाले उन्नतलीसर्व सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से कैसा राजा हो इस विषय को कहते हैं—

आशु दधिकां तमु नु इवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।

उच्छन्तीर्मासुषसः सुदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन ॥१॥

पदार्थ—हम लोग (विश्वः) प्रकाश और (पृथिव्या) भूमि के मध्य में (तम्) उस (आशुम्) शीघ्र चलनेवाले (दधिकाम्) धारण करने योग्य को धारण करनेवाले की (नु) तर्क वितर्क के साथ (स्तवाय) प्रशंसा करें (उत) और शत्रुओं को (उ) भी (चर्किराम) निरन्तर फेंकें और जो (वाम्) मुझको (पर्षन्) सीधे उनकी (उच्छन्ती) सेवा करती हुई (उच्छतः) प्रभात वेला (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुखों वा दुष्टाचरणों को (अति, सुवयम्) अत्यन्त दूर करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राजा हम लोगों के दुखों को दूर करके जैसे प्रातःकाल अन्धकार को वैसे अन्धाय और दुष्टों का निषेध करता है उसी की हम लोग प्रशंसा करें ॥ १ ॥

महर्षिर्कर्मवैतः क्रतुमा दधिकाष्णः पुरुवारस्य वृणः ।

यं पृथ्व्यो दीदिवांसं नामि ददधुर्मिवावर्णा ततुरिम् ॥२॥

पदार्थ—हे (मित्रावरणा) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्तमान सभा और सेना के ईश आप दो जन (पृथ्व्यः) बहुतां से (यम्) जिस (ततुरिम्) शीघ्रता करते हुए (दीदिवांसम्) प्रकाशमान (अग्निम्) अग्नि के (न) सदृश विनय को (वदधुः) वेले हैं उस (पुरुवारस्य) बहुत श्रेष्ठजनों से स्वीकार किये गये और (दधिकाष्णः) विद्या की धारणा करनेवालों की कामना करने और (वृण) सुखों के वर्णनवाले के जो (क्रतुमा) बुद्धि के पूर्ण करनेवाले उन (महः) बड़े (अवर्त) षोडश के सदृशों की और कार्य की मैं (चर्किराम) निरन्तर करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा बुद्धिवाले और बुद्धि के देनेवालों को सदा धारण करता है वह सूर्य के सदृश प्रतापी होता हुआ शीघ्र अपने कार्य को सिद्ध कर सकता है ॥ २ ॥

अथ प्रजापत्य को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यो अश्वस्य दधिकाष्णो अकारीत्समिद्धे अमा उषसो व्युष्टौ ।

अनामसं तमदितिः कुणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! (यम्) जा विद्वान् (दधिकाष्णः) धारण करनेवालों को क्रमण करनेवाले (अश्वस्य) बड़े और विद्या में अर्थात् पदार्थविद्या के गुणों में व्याप्त (उषसः) प्रातःकाल की (व्युष्टौ) अनेक प्रकार की सेवा में और (समिद्धे) बहुत प्रदीप्त (अमो) बिजुली रूप अग्नि य (अनामसम्) अपराधरहित को (अकारीत्) करता है (तम्) उसको (अविति) माता व पिता निरपराध (कुणोतु) करे (सः) सो भी (मित्रेण) मित्र (वरुणेन) श्रेष्ठ के साथ (सजोषाः) मुख्य प्रीति सेवनेवाला हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों! जो अग्नि से जल आदि पदार्थों के संयोग करने को जाने और जो सज्जनों के साथ मित्रता कर और प्रातःकाल उठके श्रेष्ठ कर्मों को करता है वही सदैव प्रसन्न होता है यह जानो ॥ ३ ॥

दधिकाष्ण इव ऊजो महो यदममहि मरुतां नाम मद्रम् ।

स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं इवावह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिए (मद्रम्) जिस (महः) बड़ी (दधिकाष्णः) धारण करनेवालों के हिलानेवाले (इव) अन्न आदि की (ऊजः) पराक्रम की (अवताम्) और मनुष्यों के (वज्रम्) कल्याण करनेवाली (मन्त्र) संज्ञा की (अवन्महि) जान और (वज्रबाहुम्) जल के सदृश

शान्ति आदि गुणों से युक्त (मित्रम्) प्राणों के सदृश सब के प्रिय (अग्निम्) बिजुली के सदृश सम्पूर्ण गुणों के प्रकाश करनेवाले (वज्रबाहुम्) अस्त्र और अस्त्रों को सेवनेवाले बाहुयुक्त (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् की (इवावहे) प्रशंसा करें वा ब्रह्म करें उस सभा और ऐश्वर्यवान् को आप लोग जान के अर्थों के प्रति प्रशंसा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अन्न आदि सत्कार और भोजन के समय की रीतियों को जान और स्वयं धारण कर के अर्थों को उपदेश देने और राजा के साथ विरोध नहीं करके प्रजा के साथ मित्र के सदृश धारण करते हैं वे ही प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

अथ राजप्रजापत्य को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्रमिवेदुमये वि ह्यन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।

दधिकासु सुदर्नं मर्त्याय ददधुर्मिवावर्णा नो अरवंम् ॥५॥

पदार्थ—हे (मित्रावरणा) प्राण और उदान वायु के सदृश राजा के प्रधान और मंत्री जो (उदीराणा) उत्तमता को प्राप्त (यज्ञम्) न्याय व्यवहार को (उपप्रयन्तः) प्राप्त होते हुए (उमये) राजा और प्रजाजन (मर्त्याय) अन्ध मनुष्य और (न) हम लोगों के लिए (दधिकाम्) न्याय धारण करनेवालों की कामना करनेवाले (सुदर्नम्) जलादि बहने (अरवंम्) और शीघ्र सुख करनेवाले बोध की (वि) विशेष करके (ह्यन्ते) प्रशंसा करें और उन उत्तम पदार्थों को (ददधुः) तुम दोनों वे आप (इन्द्रमिव) बिजुली के सदृश (इत्, उ) ही कृत होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा और प्रजाजन पक्षपात से रहित न्याययुक्त वर्ण का आचरण करते हैं वे शत्रुरहित हुए सबके प्रिय होते हैं ॥ ५ ॥

दधिकाष्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरमि नो मुखां करत्प्र ण आयूषि तारिषत् ॥६॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! जो (न) हम लोगों के (मुखां) मुख के सहचरित भवण आदि इन्द्रियों के प्रति (सुरमि) सुगन्ध आदि गुणों से युक्त द्रव्य को (करत्) करे और (न) हम लोगों की (आयूषि) भयस्थाओं को (प्र, तारिषत्) बढ़ावे उस (दधिकाष्णः) वर्णों को धारण करने वा चलनेवाले (अश्वस्य) सम्पूर्ण उत्तम गुणों में व्याप्त (वाजिनः) विज्ञानवाले (जिष्णोः) जयशील राजा की जिस प्रकार मैं आज्ञा को (अकारिषम्) कर्क वैसे ही आप लोग भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यों! जो राजा सुगन्ध आदि से युक्त घृत आदि के होम से वायु वृष्टि जलादि को पवित्र कर सब के रोगों का निवारण करके अवस्थाओं को बढ़ाता है और प्रयत्न से सब प्रजाओं का पुत्र के सदृश पालन करता है वह हम लोगों को पिता के सदृश सत्कार करने योग्य है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सगति है यह जानना चाहिए ॥

यह उन्नतलीसर्वा सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चवर्षस्य सत्वारिषासमस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । १—४ दधिकाष्ण ।

५ सूर्यस्य देवता । १ मिष्टुत् मिष्टुप् । २ जिष्टुप् । ३ स्वरत् मिष्टुप् ।

४ भुरिर्जिष्टुप् छन्दः । वेदतः स्वरः । ५ मिष्टुत् जगती छन्दः ।

विधाव स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचावाले जालीसर्व सूक्त का आरम्भ है, इसमें राजा और प्रजा के कृत्य को कहते हैं—

दधिकाष्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सुदयन्तु ।

अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतैराक्रिरसस्य जिष्णोः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यों! जैसे (विश्वः) सम्पूर्ण (उषसः) प्रातर्वेला (दधिकाष्णः) वायु आदि के कारण को चलानेवाले की अवस्था को और (माम्) मुझ को (सुवयम्) वर्षा बढ़ावे (इत्, उ) वैसे ही हम लोग संपूर्ण प्रजाओं को (चर्किराम) कार्य-संलग्न करावें और जैसे संपूर्ण (उषसः) प्रातःकाल (अपाम्) जलो (अग्नेः) बिजुली (सूर्यस्य) सूर्य (बृहस्पतेः) बड़ों के पालन करनेवाले (आक्रिरसस्य) प्राणों में उत्पन्न (जिष्णोः) और जयशील राजा के दोषों को प्रकट करें वैसे (इत्) ही हम लोग सब प्रजाओं को उत्तम कर्मों में (नु) शीघ्र संलग्न करावें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् वा राजपुरुषो! आप लोग जैसे प्रातर्वेला सब को संलग्न करती है वैसे न्याय से सम्पूर्ण प्रजाओं को संलग्न करो और जैसे प्रातःकाल का निमित्त सूर्य और सूर्य का निमित्त बिजुली, बिजुली का निमित्त वायु, वायु का कारण प्रकृति और प्रकृति का अविच्छेदात् परमेश्वर है वैसे ही प्रजापालननिमित्त भूर्य, भूत्यनिमित्त अध्वज, अध्वजों का निमित्त प्रधान और प्रधान का निमित्त राजा होवे ॥ १ ॥



भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे अध्यापक और उपदेशक जनों ! आप सब के लिए ऐसी बुद्धि देओ कि जिससे सब पूर्ण मनोरथवाले होंगे ॥ ५ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तोके हिते सनय उर्बरासु सूरौ दृष्टीके वृषणश्च पीर्यै ।

इन्द्रां नो अत्र वरुणा स्यातामर्वाभिर्दस्मा परितस्स्यायाम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रा ) ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् ! ( वरुणा ) श्रेष्ठ मन्त्री आप दोनों ( अत्र ) इस प्रजा में ( परितस्स्यायाम् ) सब ओर से घोंडा जिस में उस राज्य में ( च ) और ( उर्बरासु ) भूमियों में ( सूर ) सूर्य के मदुश ( हिते ) हित के सिद्ध करनेवाले ( तोके ) शीघ्र उत्पन्न हुए पुत्र ( सनये ) कुमार ( वृष्टीके ) और देखने योग्य ( पीर्यै ) पुरुषार्थ के निमित्त ( नः ) हम लोगों को ( वृषणः ) वरप्राप्त करें तथा ( अर्वाभिः ) रक्षा आदि से ( दस्मा ) दुश्मन के नाश करनेवाले ( स्याताम् ) होंगे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुष जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य वैसे प्रजाओं में पिता के मदुश वर्त्ताव कर और ओरों का निवारण करके न्याय से प्रजाओं का पालन करें ॥ ६ ॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुवामिद्वयसे पुत्र्याय परि प्रभृता गविषः स्वापो ।

वृणोमहे मरुताय प्रियाय शुरा मंहिष्ठा पितरैव शम्भु ॥७॥

पदार्थ—हे राजा और मन्त्रीजनों ! ( सुवाम् ) तुम दोनों ( हि ) ही को ( पुत्र्याय ) पूर्व राजाओं ने किये ( अथसे ) रक्षण आदि के लिए ( इत् ) ही ( प्रभृता ) समर्थ ( स्वामी ) शयन करते हुए ( शुरा ) भयर्हृत और शत्रुओं के नाश करनेवाले ( मंहिष्ठा ) अत्यन्त मत्कार करने योग्य ( पितरैव ) जैसे पिता और माता जैसे ( मरुताम् ) सुख को करनेवाले ( प्रियाय ) सुन्दर ( शम्भु ) मित्रपन के लिए ( गविषः ) गौओं की इच्छा करनेवाले का हम लोग ( परि, वृणीमहे ) स्वीकार करने हैं इससे आप दोनों हम लोगों के पालन करनेवाले निरन्तर होंगे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे प्रजाजनों ! आप लोग उन्हीं राजा आदिकों को स्वीकार करो कि जो पिता के सदृश सब लोगों के पालन करने को समर्थ होंगे ॥ ७ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजि न जंसुर्धुव्यूः सुदान ।

ध्रिये न गाव उप सोममश्चुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( मे ) मेरी ( गिरः ) उत्तम प्रकार सिद्धित वाणिज्या और ( मनीषा ) बुद्धियाँ ( ध्रिये ) धन के लिए ( गावः ) पृथिवी वा गौओं के ( न ) सदृश ( सोमम् ) ऐश्वर्य ( इन्द्रम् ) अत्यन्त सुख करनेवाले ( वरुणम् ) श्रेष्ठ जन के ( उप, अश्चु ) समीप प्राप्त होंगे वैसे ही जो ( वाम् ) आप दोनों की ( ध्रियः ) बुद्धियाँ वा कर्म ( अथसे ) रक्षण आदि के लिए ( वाजयन्ती ) जनाती हुई ( आशिम् ) सग्राम के ( न ) सदृश ( सुदान् ) उत्तम प्रकार के दाता जनों को और ( ध्रियः ) आप दोनों की कामना करते हुए प्रजाजनों को ( जन्तुः ) प्राप्त होंगे ( ता ) उन का आप दोनों निरन्तर पालन करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्यावाली माता अपने मन्तानों को उत्तम प्रकार शिक्षा दे पालन कर और विद्या से युक्त कर के सुखी करती है वैसे ही राजा प्रजा के प्रति वर्त्ताव करे ॥ ८ ॥

अब राजा और प्रजा के कर्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मक्षुप द्विजमिच्छमानाः ।

उपैमस्युर्जोष्टारं वरुणं रक्षीरिव अर्वांसो भिक्षमाणाः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो ( इमाः ) ये प्रत्यक्ष कुमारी ब्रह्मचारिणियाँ ( मे ) मेरी ( मनीषा ) बुद्धियों के सदृश ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य ( द्विजम् ) धन वा यश और ( वरुणम् ) श्रेष्ठ स्वभाव की ( इच्छमानाः ) इच्छा करती हुई पढ़ाने-वाणियों को ( अग्मक्षु ) प्राप्त होंगे और ( जोष्टार इव ) सेवा करते हुए पुरुषों के समान ( वरुणः ) धन के ( उप, अश्चुः ) समीप स्थित होती ( इम् ) और प्रत्यक्ष ( अर्वांसः ) मन्त्र की ( रक्षीरिव ) छोटी ब्रह्मचारिणियों के सदृश ( भिक्षमाणाः ) याचना करती हुई पढ़ानेवाली स्त्रियों के ( उप ) समीप स्थित हुई वे ही कन्या अत्यन्त श्रेष्ठ होती हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे कन्याजन ब्रह्मचर्य से ग्रहण की गई विद्या और उत्तम शिक्षा से यमयुक्त और विद्यावाली होकर अपने अनुकूल पतियों को प्राप्त होकर सदा आनन्दित होती हैं वैसे ही प्रजाओं के साथ आप और आप के साथ प्रजाजन निरन्तर आनन्द करें ॥ ९ ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अश्वस्य त्सना रथस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।

सा चक्राणा उत्तिभिर्नद्यसीभिरस्मन्ना रायौ निधुतः सचन्ताम् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( ता ) वे ( चक्राणा ) करते हुए दी जन ( नद्यसीभिः ) नदीन ( उत्तिभिः ) रक्षा आदि कर्मों से ( अस्मन्ना ) हम लोगों में

वर्त्तमान ( रायः ) धन के सम्बन्ध को प्राप्त होंगे और ( निधुतः ) निश्चय युक्त पदार्थ ( सचन्ताम् ) सम्बद्ध होंगे वैसे हम लोग ( त्सना ) आत्मा से अपने ( अश्वस्य ) शीघ्र चलनेवालों में उत्पन्न हुए ( रथस्य ) रथण करने योग्य वाहनों में श्रेष्ठ ( पुष्टेः, नित्यस्य ) पुष्टि के सम्बन्ध में नित्य वर्त्तमान ( रायः ) धन के ( पतयः ) स्वामी ( स्याम ) होंगे ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे युक्त अर्थात् कार्य में लगे हुए पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वैसे हम लोग सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होंगे ऐसी इच्छा करें ॥ १० ॥

फिर राजप्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ नो बृहन्ता बृहतीभिर्हृती इन्द्र यात वरुण वाजसतो ।

वद्वादधवः पृतनासु मकीळान्तस्य वां स्याम सनितारं आजेः ॥११॥१६

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दृष्टी के दान करनेवाले राजन् और ( वरुण ) सेना के ईश ! ( बृहन्ता ) श्रेष्ठ गुणों से बड़े आप दोनों ( बृहतीभिः ) बड़ी ( जती ) रक्षा आदिकों से ( वाजसतो ) मदुशाम में ( न ) हम लोगों को ( आ ) सब ओर से ( यातम् ) प्राप्त हुआ ( वत् ) जो ( विद्या ) विद्या और विनय से प्रकाशमान तेजस्वी ( तस्य ) उस ( आजे ) मदुशाम के ( सनितार ) विभाग करनेवाले हम ( पृतनासु ) सेनाओं से ( मकीळान् ) उत्तम कीड़ा अर्थात् विभागों का प्राप्त होकर ( वाम् ) आप दोनों से विहार का प्राप्त हुए ( स्याम ) होंगे उन हम लोगों का आप दोनों सत्कार करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे हम लोग आप के प्रति प्रीति में वर्त्ताव करें वैसे ही आप को भी चाहिए कि हम लोगों में वर्त्ताव करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अध्यापक, उपदेशक, राजा, प्रजा और मन्त्री के कृत्य का बर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त से अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इकतालीसवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अब वसार्थस्य द्विजत्वारिस्तमस्य सुवतस्य । प्रसवस्य पौत्रकुस्य चवि ।

१—६ आत्मा । ७—१० इन्द्रावरुणौ देवते । १—६, ६ निचत्तिवदुप ।

७ विराद् निचदुप । ८ भुरिक् निचदुप । १० निचदुप कन् ।

वैवतः स्वर । ५ निचत्पक्षितवक्ष्य । पञ्चमः स्वरः ॥

अब वस ऋचा वाले बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजविषय को कहते हैं—

ममं द्विता राष्ट्रं सधियस्य विश्वायोर्विन्धे अमृता यथा नः ।

क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजाभि कृष्टरूपमस्य वज्रेः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानों ! ( यथा ) जैसे ( जम् ) मुझ ( विश्वायो ) पूर्ण अवस्थावाले ( सधियः ) धर्मिय के ( द्विता ) दा का होना तथा ( विन्धे ) सम्पूर्ण ( अमृताः ) नाश से रहित जन ( नः ) हम लोगों के ( राष्ट्रम् ) राज्य ( कृतुम् ) और बुद्धि को ( सचन्ते ) सम्बन्धयुक्त करते हैं और ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ ( कृष्टेः ) सीधते हुए ( उपमस्य ) उपमायुक्त ( वज्रे ) स्वीकार करनेवाले मुझ जन की बुद्धि को ( देवाः ) प्रकाशमान जन भेजते हैं वैसे ही इन में मैं ( राजाभि ) शोभित होता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! इस समार में स्वामी और स्व अर्थात् धनमा ये दो ही पदार्थ वर्त्तमान हैं और जिस देश में दीर्घकालपर्यन्त जीवने और न्याययुक्त स्वभाव वाले धार्मिक मन्त्री जन सब प्रकार के गुणग्रहणकर्ता श्रेष्ठ उपमा से युक्त वर्त्तमान हैं वहाँ ही रहता हुआ मज्जन मुख का अत्यन्त भोग करता है ॥ १ ॥

अब ईश्वरविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुख्योणि प्रथमा धारयन्त ।

क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजाभि कृष्टरूपमस्य वज्रेः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे जो ( वरुण ) सम्पूर्ण उत्तम प्रबन्धों का कर्ता ( राजा ) प्रकाशमान ( अहम् ) मैं जगदीश्वर ( वरुणस्य ) उत्तम सम्बन्ध में और ( वज्रे ) स्वीकार करने योग्य ( कृष्टेः ) मनुष्य के सम्बन्ध में तथा ( उपमस्य ) उपमायुक्त जगत् के बीच में ( राजाभि ) प्रकाशित होता हूँ उस ( मह्यम् ) मेरे लिए ( देवाः ) विद्वान् जन तृप्त होते हैं तथा जो ( प्रथमा ) आदि से वर्त्तमान ( असुख्योणि ) मेधाधिकों के विद्वत् ( तानि ) उनको ( धारयन्त ) धारण करते हैं और ( कृतुम् ) बुद्धि को ( सचन्ते ) प्राप्त होता है वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सर्वत्र व्याप्त, बुद्धि और धन के देनेवाले जगत् के स्वामी मुझ परमात्मा को भजते हैं वे सब सुखों को भजते हैं ॥ २ ॥

अहमिन्द्रो वरुणस्ते मंहिस्वोर्वी गभारे रजसी सुमेकं ।

त्वष्टेव विश्वा सुवर्नानि विद्वान्समैरयं रोदसी धारयञ्च ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( अहम् ) अत्यन्त गेहवर्धयवान् ( बरुणः ) सब से उत्तम ( अहम् ) अतीव व्याप्त मैं ( विद्वान् ) सकलविद्यावेत्ता ( स्वष्टम् ) उत्तम शिल्पी के सदृश ( गभीरे ) विस्तारयुक्त ( सुमेके ) सुन्दर मुख से रच और उत्तम प्रकार फैलाये गये ( रजसी ) सूर्य और पृथिवी को ( महिम्ना ) पूजित कर ( ते ) उन ( उर्ध्व ) बहुत पदाधी को धारण करनेवाले ( राक्षसी ) सूर्य और पृथिवी लोको को रच के यही ( विश्वा ) सब ( भुवमानि ) लोको को ( सम् ) एक होने में ( ऐरवम् ) प्रेरणा करूँ ( वारयम्, च ) और धारण करूँ वा धारण कराऊँ यह जानो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे चतुर पण्डित पूर्ण विद्यावान् शिल्पी जन उत्तम वस्तुओं को रचते हैं वैसे ही मुख से विभिन्न उत्तम जगत् रचा गया धारण किया जाता है और जैसे मैंने रचा वैसे अन्य जीव का सामर्थ्य रचन की नहीं है किन्तु मेरे किये हुए कार्य से कुछ ग्रहण कर के अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार रचते हैं यह जानना चाहिए ॥ ३ ॥

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं मदनं कृतस्य ।

ऋतेन पुत्रो अदितेर्कृतावोत त्रिधातुं प्रथयद्वि भूमं ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( अहम् ) मैं परमात्मा ही ( ऋतस्य ) सत्य प्रकृतिनामक के ( सवने ) मदन में प्रयात् गव के उदहन के लिए जा समाए उस में ( दिवम् ) विजुती का ( उक्षमाणा ) सेवा करने लग ( अप ) जलो वा अन्तरिक्ष की ( अपिन्वम् ) सेवा करना है और ( ऋतेन ) सत्य कारण से ( अदिते ) क्षणरहित अन्तरिक्ष का ( ऋतावा ) सत्य से युक्त ( पुत्र ) पुत्र के सदृश वस्तुमान ( उत ) निष्पन्न मैं ( भूम ) अथवा प्रकार के ( त्रिधातु ) तीन अर्थात् मत्स्वगुण रजोगुण और तमोगुण धारण करनेवाले त्रिम में उस सम्पूर्ण जगत् की ( वि, प्रथयत् ) विविध प्रकार कर उसको मैं ( धारयम् ) धारण करूँ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! मेरे निम्न से पनार का धारण करने वाला अन्य कोई भी नहीं है और जैसा तीन अर्थात् मत्स्वगुणमय कारण है वैसे ही इस कार्य को देगा ॥ ४ ॥

मां नरः स्वधा राजयन्तो मां वृताः समर्णे हवन्ते ।

कुणोम्यानि मघवाःमिन्द्र इयमि रेणुमभिभृत्योजाः ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( स्वधा ) सुन्दर घोड़े या अग्नि आदि जिन के विद्यमान और ( माम् ) मुभका ( राजयन्त ) जानते वा जाना हुआ ( वृताः ) स्वीकार जिन्होंने किया वे ( नर ) नायक जन ( समरणे ) समग्र में ( माम् ) मेरी ( हवन्ते ) स्वर्द्धा अर्थात् स्वीकार करने हैं वहाँ ( मघवाः ) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त ( इन्द्रः ) तेजस्वी ( अभिमृत्योजा ) दुष्टों का अभिभव करनेवाले बल से युक्त ( अहम् ) मैं ( आजिम् ) समग्र को ( कुणोमि ) करता हूँ ( रेणुम् ) पुन को ( इयमि ) प्राप्त होता है वैसे तुम लोग भी मेरा स्वीकार करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो जन सब वस्तुओं में प्राप्त होने वाले सब के अन्तर्गमि और सवशक्तिमान् मुभ, परमात्मा की समग्र में प्रार्थना करने हैं उन्हीं का मैं विजय करना हूँ और जो धर्म में युद्ध करने हैं उन्हीं का मैं महायक होता हूँ ॥ ५ ॥

अहं ता विश्वा चक्रं नकिंमा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।

यन्मा सोमामो ममदन्यदुक्तोभे भयेते रजसी अपारे ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जा ( अहम् ) मैं ( ता ) उन ( विश्वा ) सब कामों को ( चक्रम् ) निरन्तर करता हूँ तथा जीव ( यत् ) जिस ( दैव्यम् ) विद्वानो में प्रिय ( मा ) मुभ को और ( अप्रतीतम् ) नहीं जाने गये ( सह ) बल को ( वरते ) स्वीकार करता है ( यत् ) जिस ( मा ) मेरी सेवा करत ( सोमाम् ) एष्वय्यवाले ( मघवन् ) प्रगल्भ होने हैं और मुभसे ( उक्ता ) प्रशंसा करने योग्य ( उभे ) दोनों ( अपारे ) पाररहित अपरिमित ( रजसी ) सूर्यलाक और भूमिलाक ( भयेते ) कपत है उस में मर मर्दन कोई भी ( नकिं ) नहीं है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जा पदार्थ प्रत्यक्ष और जो नहीं प्रत्यक्ष है वे सब मुभ से ही बनाये गये। मेरे में अन्तर्गत वा है मुभका प्राप्त होकर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं और मेरे ही भय में सब लोगों के सहचारी जीव उदहन हैं ॥ ६ ॥

अब ईश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

विदुष्टे विश्वा भुवमानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणा येषः ।

त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान त्वं वृतां अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७॥

पदार्थ—हे ( वेष ) अन्तर्विद्यायुक्त ( इन्द्र ) अतीव गेहवर्ध के दाता जगदीश्वर ! जो ( त्वम् ) आप ( वरुणाय ) श्रेष्ठ जन के लिये वेदा वा ( प्रब्रवीषि ) उपदेश देने हो ( तस्य ) उन ( ते ) आपका ( ता ) उन ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( भुवमानि ) लोको, राज्य को विद्वान् जन ( विदुः ) जानते हैं और जो ( त्वम् ) आप ( वृत्राणि ) धनो को ( शृण्विषे ) सुनते हो ( सिन्धून् ) समुद्र वा नदियों को और ( वृताम् ) स्वीकार किये हुएों को ( अरिणा ) प्राप्त होया वह आप दुष्ट अधर्मियों के ( जघन्वान ) नाशकारी हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर ! जिस से आपने हम पर कृपा करके हम लोगों के कल्याण के लिये वेदों का उपदेश किया जिससे हम लोगों के दीप नाश किये गये और वर्षों के द्वारा पालन किया जाता है उस ही का हम लोग उपासना करने हैं ॥ ७ ॥

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्तस्म ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।

त आर्यजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रनुरमर्द्धदेवम् ॥८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से ( अत्र ) जो इस ससार में ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( सप्त ) छ ऋतु और मातृवा वायु ( ऋषयः ) प्राप्त हुए ( पितरः ) पालन करनेवाले ( आसन् ) हैं ( ते ) वे ( दौर्गहे ) अत्यन्त गहन ( बध्यमाने ) नाड़ना दिये जाते हुए मैं ( वृत्रनुरम् ) जो मेष वा धन की शीघ्रता कराता है उस ( अर्द्धदेवम् ) देव के आधे वा आधे जगत् के देव को ( इन्द्रम् ) सूर्य के ( न ) मर्दन तथा ( अस्याः ) इस सृष्टि के मध्य में ( त्रसदस्युम् ) दुष्ट डाकू जिससे डरते हैं उसका ( आ, अर्यजन्त ) सब प्रकार मिलते हैं ( ते ) वे हमारे सुख के करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सब के रक्षण के लिये ऋतु प्रादि पदार्थ रच उमकी उपासना करके दुःख में जीवन योग्य दुःख का जीयो ॥ ८ ॥

पुरुकुत्सानी द्वि वामदाभ्रद्व्येभिर्गिन्द्रावरुणा नमोभिः ।

अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददधुर्द्वेवम् ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) वायु और विजुती के सदृश वस्तुमान जो ( पुरुकुत्सानी ) बहुत निन्दित कर्मों से विषिष्ट ( हृष्येभिः ) ग्रहण करने योग्य ( नमोभिः ) अन्नादिकों में आप दोनों का मुख ( अवाशत् ) दती है ( अथा ) इस के अनन्तर ( अस्याः ) इस प्रिया के ( वृत्रहणम् ) मेष वा नाश करने और ( अर्द्धदेवम् ) आध जगत् का प्रकाश करनेवाले सूर्य के सदृश ( त्रसदस्युम् ) जिससे दुष्ट डाकू जन डरते हैं उस ( राजानम् ) राजा वा ( वाम् ) आप दोनों ( ददधुः ) दोनोपे उस का और उगवा ( हि ) जिससे हम लोग जानें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी कृपा से सम्पूर्ण पृथिवी धार्य से युक्त हुई और सूर्य प्रकाश तथा उमकी निरन्तर उपासना करा ॥ ९ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गया वयं संवारां मदम हव्येन देवा यवसेन गावः ।

ता धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—( हव्येन ) देने और ग्रहण करने योग्य वस्तु से ( देवाः ) विद्वान् जन ( यवसेन ) भूमा आदि से जैसे ( गावः ) गौएँ वैसे ( राया ) धन से ( वयम् ) हम लोग ( संवारां ) उत्तम प्रकार शयन करत हुए से ( मदम ) आनन्द करें। और हे ( इन्द्रावरुणा ) अध्यापक और उपदेशका ( युवम् ) आप दोनों ( विश्वाहा ) सब दिन ( अनपस्फुरन्तीम् ) दृढ़ निश्चल बुद्धि की उत्पन्न करती और ( ताम्, धेनुम् ) सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करती हुई उस वाणी को ( न ) हम लोगों के सिम् ( धत्तम् ) धारण कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! हम लोगों में वैसी सम्पूर्ण शास्त्रों में कहे पदार्थ-विषयक वाणी को स्थित करो जिस से हम लोग सदा ही आनन्दित हों ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजा ईश्वर, ईश्वरोपासना और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए।

यह बयालीसवाँ सूक्त और अठारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तर्षस्य त्रिचत्वारिंशत्सप्तस्य सूक्तस्य पुनर्मोळाजमीळी लोहोत्री देवते ।

१ त्रिष्टुप् । २, ३, ५—७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । ध्रुवत स्वरः ।

४ स्वराट पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले तैत्तलोसवे सूक्त का आरम्भ है इस में अध्यापकोपदेशक विषय में प्रश्नोत्तर विषय को कहते हैं—

क उ अवन्कतमो यज्ञियानां वन्दारुं देवः कतमो जुषाते ।

पस्येमा देवीममृतेषु प्रेष्टां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( क ) कौन ( उ ) और ( कतमः ) कौनसा ( देवः ) विद्वान् ( यज्ञियानाम् ) यज्ञ की सिद्धि करनेवालों की ( वन्दारुं ) वन्दना करनेवाले स्वभाव को ( अवत् ) सुनता है और ( कतमः ) कौनसा ( जुषाते ) सेवन करता है ( कस्य ) किस के ( हृदि ) हृदय के निमित्त ( इमाम् ) इस ( प्रेष्टां ) अत्यन्त प्रिय ( सुष्टुतिम् ) उत्तम प्रशंसायुक्त ( सुहव्याम् ) उत्तम प्रकार ग्रहण करने योग्य और ( अमृतेषु ) मरणरहितों में ( देवीम् ) प्रकाशमान और विद्यायुक्त स्त्री की ( श्रेषाम् ) सेवा करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! कौन इस ससार में यज्ञ, कौन यज्ञ के करनेवाले, कौन विद्वान्, कौन विद्यायुक्त स्त्री तथा कौन सेवने और सुनने योग्य है यह पूछा है उत्तर आगे है ॥ १ ॥



को मृच्छाति कतम आगमिष्ठो देवानाम् कतमः शम्भविष्ठः ।

रथं कमाहुर्द्वयवशमाशुं यं सूर्यस्य दुहिताहणीत ॥२॥

पदार्थ—( क ) कौन ( देवानाम् ) विद्वानो के बीच वा पृथिव्यादिको में ( मृच्छाति ) सुख देता है ( कतम ) कौनसा ( आगमिष्ठः ) अत्यन्त आनेवाला ( उ ) और ( कतमः ) कौनसा ( शम्भविष्ठः ) अत्यन्त कल्याण करनेवाला विद्वान् ( कम् ) किस ( द्रव्यवशम् ) शीघ्र चलनेवाले घोड़ों से युक्त ( आशुम् ) शीघ्रगामी ( रथम् ) रमण करने योग्य वाहन को ( आहुः ) कहते हैं ( यम् ) जिस को ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( दुहिता ) कन्या के सदृश कान्ति ( अशुणीत ) स्वीकार करती है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग किस सुखकारक निरन्तर आनेवाले उत्तम प्रकार कल्याणकारक पदार्थ तथा अग्नि और जल के द्वारा चलनेवाले वाहन को उत्तम प्रकार जानें इस प्रकार दो मन्त्रों में कहे हुए प्रश्नों के ये उत्तर हैं । जा जैसे प्रातर्बला उपा सूर्य को वैसे अध्यापक में मुनता, वायु के सदृश विद्या का सेवन करता है और पतिव्रता स्त्री के सदृश विद्यायुक्त स्त्री प्रशमा के योग्य पति का स्वीकार करती है, जो परोपकारी है वह सुख करनेवाला, बिजुली अतीव आनेवाली, परमेश्वर अत्यन्त कल्याण करनेवाला, विद्वानो के मध्य में विद्वान्, जल अग्नि कलाकोशल से चलाया गया विमान आदि यान प्रशसा के योग्य होता है, ऐसा जाना ॥ २ ॥

मत्तु हि प्या गच्छथ ईवतो धनिन्द्रो न शक्ति परितक्स्यायाम् ।

दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३॥

पदार्थ—हे अध्यापकोपदेशको ! ( दिव्या ) शुद्ध व्यवहार में उत्पन्न ( सुपर्णा ) उत्तम पालनो से युक्त ( दिवः ) विद्या के प्रकाश से ( आजाता ) सब प्रकार उत्पन्न हुए ( शचिष्ठा ) अत्यन्त बुद्धिमानी ! आप ( इन्द्रः ) बिजुली ( ईवतः ) बहुत गति वाले ( मत्तु ) प्रकाशों को जैसे ( न ) वैसे ( परितक्स्यायाम् ) सब प्रकार हँसनेवालों से युक्त सृष्टि में ( शक्तिम् ) सामर्थ्य को ( गच्छथ ) प्राप्त होत ( हि ) ही हो और ( कया ) स्वा ) किसी से ( शचीनाम् ) बुद्धियों वा वाणिज्यों के अत्यन्त जाननेवाले ( मत्तु ) शीघ्र ( भवथः ) होने हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इन मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बिजुली के सदृश सामर्थ्य को बढ़ात है वे बुद्धिमान् होकर अतुल लक्ष्मी को समार में प्राप्त होने हैं ॥ ३ ॥

का वां भुदुपमातिः कया न आश्विना गमथो ह्यमाना ।

को वां महश्चिष्यजसो भमीकं उरुप्यतं माध्वी दस्ता न ऊतो ॥४॥

पदार्थ—हे ( ह्यमाना ) आह्वान किये अर्थात् बुलावा दिये हुए प्रशमा को प्राप्त ( माध्वी ) मधुरता आदि गुणों में युक्त ( दस्ता ) दुल के नाम करनेवाले ( अश्विना ) विद्या व्याप्त अध्यापक और उपदेशक जनो ( वाम् ) आप दोनों का ( का ) कौन ( उपमातिः ) उपमान ( भूत ) होता है । और आप दोनों ( कया ) किस रीति से ( नः ) हम लोगों को ( आ, गमथः ) प्राप्त होते हो और ( कः ) कौन ( वाम् ) आप दोनों के ( अभीके ) समीप में ( महः ) बड़ा ( चित् ) भी ( त्यजसः ) त्याग करने योग्य व्यवहार है और समीप में किस ( ऊतो ) रक्षण आदि क्रिया से ( नः ) हम लोगों की ( उरुप्यतम् ) सेवा करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! तभी आप दोनों की श्रेष्ठ उपमा होती है कि जब हम लोगों को विद्यावान् करो और दुष्ट दोषों का दूर पहुँचाओ ॥ ४ ॥

उरु वां रथः परि नक्षति यामा यत्समुद्रादभि बर्त्तते वाम् ।

मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यरसां वां पृष्ठो मुरजन्त पकाः ॥५॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो ( वाम् ) आप दोनों का ( रथः ) वाहन ( वाम् ) आकाश को ( उरु ) बहुत ( परि ) सब ओर से ( नक्षति ) व्याप्त होता है ( यत् ) जो ( वाम् ) आप दोनों को ( समुद्रात् ) अन्तरिक्ष वा जलाशय से ( अभि ) सम्मुख ( आ, बर्त्तते ) वर्त्तमान हाता है तथा ( वाम् ) आप दोनों और ( माध्वी ) मधुर नीति ( मध्वा ) मधुर गुण में ( मधु ) मधुर कर्म को ( सीम् ) सब ओर से ( मुरजन्तः ) प्राप्त होती है और ( यम् ) जो ( पृष्ठः ) सम्बन्धी जन ( पृष्ठा ) पूर्ण ज्ञान में युक्त वा जिन का स्वरूप परिपक्व अर्थात् पूर्ण अवस्था वाले ( वाम् ) आप दोनों को ( प्रुषायन् ) प्राप्त होने हैं उन को विद्वान् आप दोनों करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जा आप लोगों को विद्वान् करे उन की निरन्तर सेवा करो ॥ ५ ॥

सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्पृष्ठा वयोऽरुवासः परि गमन ।

तद्गु म् वाजिरं चैति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥६॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो ( सिन्धुः ) नदी वा समुद्र ( रसया ) रस आदि से ( उ ) तो ( वाम् ) आप दोनों को ( सिञ्चत् ) सींचता है तथा ( वयः ) व्याप्त होनेवाले ( पृष्ठा ) प्रदीप्त ( अरुवात् ) रक्त गुण से विशिष्ट पदार्थ ( अश्वान् ) शीघ्र चलनेवाले अम्यादिकों को ( परि, गमन् ) सब ओर से प्राप्त होने हैं ( तत् ) उन को और ( वाम् ) आप दोनों को वा ( वाजिरम् )

प्राप्त होने योग्य और फेंकनेवाले को ( सु चेति ) उत्तम प्रकार जानता है वा ( येन ) जिससे ( यानम् ) वाहन को प्राप्त होकर ( सूर्यायाः ) सूर्य की कान्तिरूप प्रातःकाल के ( पती ) पालन करनेवाले ( भवथः ) होते हो उन को ( ह ) निश्चय जानो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप जैसे उत्तम रस-युक्त जल से वृक्षा और क्षेत्रादि को उत्तम प्रकार सिञ्चन कर और बड़ा के इन स फलों को प्राप्त होत है वैसे ही सब मनुष्यों को पढ़ा उपदेश दे और बुद्धि से बड़ा कर मुखरूपी फलयुक्त होओ ॥ ६ ॥

इहेह यदा समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजस्ता ।

उरुप्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्विक् ॥७॥१६॥

पदार्थ—हे ( वाजस्ता ) वाधरूपरत्न धन ! जिन के वे ( नासत्या ) असत्य आचरण से रहित ( सेमना ) तुल्य मनवाले और ( यत् ) जो ( सुमति ) उत्तम बुद्धि ( वाम् ) आप दोनों का ( पपृक्षे ) सम्बन्धित होती है ( सा, इयम् ) मा यह ( इहेह ) इस सत्ता में ( अस्मे ) हम लोगों की उत्तम प्रकार सेवा करे ( युवम् ) आप दोनों ( ह ) ही ( जरितारम् ) स्तुति करनेवाले की ( उरुप्यतम् ) सेवा करें उन ( युवद्विक् ) आप दोनों को प्राप्त होती ( श्रितः ) और आश्रित हुए ( कामः ) इच्छा सेवे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप लोग हम समार में जो बुद्धि आप लोगों को प्राप्त हावे उस को सब के लिए देओ और जैसी अपने हित के लिए इच्छा करने हो वैसी सब के लिए करो ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशक पढ़न और उपदेश सुननेवाले के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलि जाननी चाहिए ॥

यह तैत्तलीसर्वा सूक्त और उन्नीसर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तमस्य ऋतुश्चत्वारिंशत्सप्तमस्य सूक्तस्य पुरुषीठाजनीठी सीहोत्रावृषी ।

अश्विनी देवते । १, २, ६, ७ । निष्पत्तिरुद्गु । २ निष्पत्ति ।

५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धेवत स्वरः । ४ मुरिक पङ्क्तिरुद्गु ।

पञ्चम स्वरः ॥

अथ सात ऋचावाले अश्वीसर्वा सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र से अध्यापक और उपदेशकविषय में शिल्पविद्याविषय को कहते हैं—

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुजयमश्विना सङ्गीत गोः ।

यः सूर्या वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसुयुम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक जनो ! ( वयम् ) हम लोग ( अद्या ) आज ( वाम् ) तुम दोनों के ( पृथुजयम् ) विस्तीर्ण और बहुत गतिवाले ( तम् ) उग ( रथम् ) रमण करने योग्य वाहन को ( हुवेम ) ग्रहण करें और ( गो ) पृथिवी के ( सङ्गीतम् ) सङ्ग का ग्रहण करें ( यः ) जो ( बन्धुरायुः ) थोड़ी अवस्थावाला ( सूर्याम् ) सूर्यमन्त्रिणी कान्ति अर्थात् तेज की ( वहति ) प्राप्ति करता है जिस ( पुरुतम् ) बहुतों को रत्नानि करने ( गिर्वाहसम् ) वाणी से प्राप्त करने वा प्राप्त होने ( वसुयुम् ) और अपने को द्रव्य की इच्छा करनेवाले का ग्रहण करे वही सुखी होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जिस अग्नि और जल से शिल्पविद्या ही साधन जिस का ऐसा रथ आदि उत्पन्न किया जाता है वही अपनी आत्मा के तुल्य सबको प्रसन्न करता है ॥ १ ॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शर्चामिः ।

युवोर्बपुर्गभि पृष्ठः सञ्चन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथं वाम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( दिवः ) द्रष्टव्य अत्यन्त सुख के ( नपाता ) पतन से रहित ( देवता ) दिव्यगुणसम्पन्न ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक जनो ( युवम् ) आप दोनों ( शर्चामिः ) बुद्धियों से ( ताम् ) उग ( श्रियम् ) लक्ष्मी का ( वनथः ) सेवन करो ( यत् ) जिसको ( वाम् ) आप दोनों के ( रथे ) वाहन में ( युवोः ) आप दोनों के ( पृष्ठः ) सम्बन्ध और ( वपुः ) शरीर का ( अभि ) सम्मुख ( सञ्चन्ते ) सम्बन्धयुक्त करती ( ककुहासः ) सम्पूर्ण दिशा ( वहन्ति ) प्राप्त होती है ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन बुद्धि को प्राप्त होकर अन्य जनो के लिये देन हैं वे सम्पूर्ण दिशाओं में पुजने अर्थात् सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ २ ॥

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वाकैः ।

ऋतस्य वा वनुषे पूर्याय नमो येमानो अश्विना धेवर्त्तत् ॥३॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक जनो ! ( अद्या ) आज ( वाम् ) आप दोनों को ( कः ) कौन ( रातहव्य ) देने योग्य को दिये हुए ( ऊतये ) रक्षण आदि के लिये ( वा ) वा आज ( सुतपेयाय ) उत्पन्न जो पीने योग्य रस उस के लिये ( करते ) करता अर्थात् प्रयत्नयुक्त करना ( वा ) ( वा ) ( अर्कः ) सत्कारो से सत्कार करता ( वा ) वा ( ऋतस्य ) सत्य के सम्बन्ध में ( पूर्याय )

प्राचीन जनों में चतुर के लिये ( नम ) अन्न को दान और अनुकूल हुआ ( आ, बवर्त्तत् ) वसति करता है उसका ( भेषान ) जो निगम करने हुए मन्त्रों करने है उनका आप दोनों स्तुति करें। और हे विद्वन् जिस कारण आप इन दोनों से विद्या को ( वसुधे ) माँगे हो इससे इन दोनों का निरन्तर स्तुति करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनों ! जो आप दोनों का स्तुति करें उनको उत्तम प्रकार शिक्षित और सम्यक् अर्थात् सभा के योग्य करा और जितनी विद्या का ग्रहण कराओ उनका निरन्तर मन्त्रों भी करो ॥ ३ ॥

हिरण्ययेन पुरुषं रथेनेमं यज्ञं नामन्योपं यातम् ।

पिबाथ इन्मधुनः गोम्यस्य दधथो रत्नं विधत्ते जनाय ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( पुरुष ) यज्ञ की भावना करान और ( नासत्या ) सत्य आचरण वान अध्यापक और उपदेशक जनों ! आप दोनों ( हिरण्ययेन ) ज्यानिमय और सुवर्ण आदि से शोभित ( रथेन ) वाहन में ( इन्म ) हम ( यत् ) पदान और पढ़ने रूप यज्ञ को ( उप, यातम् ) प्राप्त होमा और ( मधुन ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( गोम्यस्य ) सोमलनारूप घ्राणधिया में उत्पन्न पदार्थ के रस का ( पिबाथ ) पान करा और ( विधत्ते ) पुण्यार्थ का करने हुए ( जनाय ) मनुष्य के लिये ( रत्नम् ) सुन्दर धन को ( दधथ ) तुम धारण करने हो वे ( इत् ) ही सुखी कैसे न होमा ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो शिल्पविद्या के प्रचार करनेवाले हो वे ही ससार के सुख करनेवाले होंगे ॥ ४ ॥

अब राजा और अमात्य विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ नो यातं दिवो अश्वा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।

मा वापन्ये नि यमन्वेवन्तः सं यद्दे नाभिः पृथ्या वाम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( पृथ्या ) पानीनी से किये हुए में चतुर राजा और मन्त्री जनों ! ( वाम् ) आप दोनों के ( सुवृता ) सुन्दर पड़ने से युक्त ( हिरण्ययेन ) सुवर्ण आदि से शोभित ( रथेन ) विमान आदि वाहन से ( पृथिव्या ) भूमि की ( दिव ) कामना करते हुए ( न ) हम लोगों को ( अश्वा ) उत्तम प्रकार ( आ, यातम् ) प्राप्त होमा जिससे ( अन्ये ) अन्य जन ( वेवन्त ) कामना करते हुए ( वाम् ) आप दोनों से ( मा ) नहीं ( नि, यमन् ) निग्रह करे और ( यत् ) जिस को मैं ( नाभि ) नाभि के सदृश वर्त्तमान, आप दोनों को ( सप्त, दधे ) अच्छे प्रकार देता हूँ उस का ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। सब प्रजा और राजाजन राजा और राजा के पुरुषों के सङ्ग की सदा ही इच्छा करे और सदैव सुख और दुःख को भोगें ॥ ५ ॥

न नो रयिं पुरुवीरं वृहन्तं वस्त्रा मिमाथामुभयैष्वस्मे ।

नरो यद्दामभिना स्तोममार्वस्मधस्तुतिमाजमीळ्हासो अगमन ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( वस्त्रा ) दुःख के नाश करनेवाले ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्रमा के सदृश श्रेष्ठ गुणों से युक्त ( यत् ) जो ( आजमीळ्हास ) बकरी को विद्या से सिद्धान्त करनेवालों के पुत्र ( नर ) नायकजन ( वाम् ) आप दोनों को और ( सधस्तुतिम् ) माय कीर्ति को ( अगमन् ) प्राप्त होते और ( स्तोमम् ) प्रशमा को ( आभन् ) हम प्राप्त होत हैं उन ( न ) हम सब लोगों के लिये आप दोनों ( पुरुवीरम् ) बहुत वीर हो जिससे उस ( वृहन्तम् ) बड़े ( रयिम् ) धन को ( मिमाथाम् ) धारण करो जिससे ( उभयेषु ) दोनों राजा और प्रजा जनों ( अस्मे ) हम लोगों में लक्ष्मी ( नु ) शीघ्र बड़े ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजन् और मुख्य मन्त्रीजनों ! आप दोनों सूर्य और चन्द्रमा के सदृश हम लोगों में वर्त्तव्य कीजिये और बहुत लक्ष्मी को स्थापित कीजिये जिससे हम लोग धन में युक्त होंगे ॥ ६ ॥

अब सज्जनगुण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इहेह यदा ममना पृथ्वे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।

उरुपयतं जगितारं युव ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥ २० ॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशक जनों ( इहेह ) इस समार में ( वाम् ) आप दोनों की ( यत् ) जो ( समना ) शान्ति आदि गुणों से युक्त ( वाजरत्ना ) विज्ञानरूप धन की प्राप्ति सिद्ध करनेवाली ( सुमति ) श्रेष्ठ कृति है ( सा ) ( इयम् ) सो यह ( अस्मे ) हम लोगों को ( पृथ्वे ) सम्बन्धयुक्त करे जो यह और ( युवद्रिक् ) आप दोनों को प्राप्त करानेवाला ( काम ) मनोरथ ( जगितारम् ) सम्पूर्ण विद्याओं के स्तुति करनेवाले को ( श्रित ) आश्रित है ( ह ) उमी का ( युवम् ) आप ( उरुपयतम् ) सेवन करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये सदा इस समार में यथार्थवक्ता पुरुषों की बुद्धि की इच्छा करें और मत्स्य की कामना करें जिन से सम्पूर्ण इच्छा पूर्ण होवे ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अध्यापक, उपदेशक, राजा, धर्मात्मा और सज्जन के गुणों का वर्णन होने में हम सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के माय सङ्गति जाननी चाहिये।

यह बबलीसर्वा सुवत और बीसर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

अब सप्तर्षय पञ्चवर्षारिंशत्सप्तस्य स्वप्नस्य वामदेव ऋषिः । अश्विनी देवते ।

१, ३, ४ जगती । ५ मिथुजगती । ६ विराट् जगती छन्द । निवारः

स्वर । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब सात ऋचावाले पंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है,

हमसे सूर्यविषय को कहते हैं—

एष स्य भानुर्निर्यति युज्यते रथः परिउमा द्विवो अस्य सान्वि ।

पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो हतिस्तुरीयो मधुनो विरंशते ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( एष, स्य ) सो वह ( परिउमा ) सब ओर से भूमि में चलता वा त्यागता ( भानु ) सूर्य ( उत ) ऊपर का ( इयति ) प्राप्त होता है ( अस्य ) इसके ( सान्वि ) आकाशप्रदेश में ( रथ ) वाहन ( युज्यते ) ओड़ा जाता है ( अस्मिन् ) इसमें ( त्रय ) वायु, जल और बिजुली ( पृक्षास ) सम्बन्ध को प्राप्त ( मिथुना ) दा-दो मिले हुए प्रकाशित होते हैं इस ( मधुन ) मधुर गुण से युक्त के बीच ( तुरीय ) चौथा ( हति ) मेघ ( विव ) प्रशसायुक्त अस्तारिक्त के बीच ( अधि ) ऊपर ( वि, रंशते ) विशेष करके शोभित होता है उन सबको जानिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रकाशमान सूर्य ब्रह्माण्ड के मध्य में विराजित है और इसके चारों ओर बहुत भूगोल सम्बन्धयुक्त है तथा पृथिवी और चन्द्रलोक एक साथ घूमते हैं और जिनके प्रभाव से वृष्टियाँ होती हैं इस सम्पूर्ण को जानो ॥ १ ॥

उदो पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अक्षास उवसो व्युष्टिषु ।

अपोर्ण्वन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ग्यं शुक्र तन्वन्त आ रजः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनों जैसे ( मधुमन्त ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( पृक्षास ) उत्तम प्रकार सींचे गये ( उवस ) प्रभात बेला की ( तम ) रात्रि को ( अपोर्ण्वन्त ) निवारण करते अर्थात् हटाते हुए ( व्युष्टिषु ) अनेक प्रकार की सेवाओं में ( रथा ) वाहनों और ( अक्षास ) घोड़ों के सदृश ( आ, परीवृतम् ) सब प्रकार से घिरे हुए को ( स्वर्ग्य ) सूर्य के ( न ) सदृश ( शुक्रम् ) शुद्ध ( आ, रज ) लोक लोकान्तर को ( तन्वन्त ) विस्तृत करते हुए सूर्यकिरण ( वाक् ) आप दोनों को ( उत, ईरते ) कपते, चञ्चल होते, ऊपर से प्राप्त होते हैं उनको आप लोग विशेष करके जानो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। हे मनुष्यो ! ये सब लोक सूर्य के सब ओर घूमते हैं और जैसे सूर्य की किरणों भूगोल के आधे भाग में स्थित अन्धकार को निवारण करके प्रकाश उत्पन्न करते हैं वैसे ही विद्वान् जन विद्या के दान से अविद्या को निवारण करके विद्या को उत्पन्न करें ॥ २ ॥

मध्वः पिबते मधुपेभिर्गसभिर्दत्तं प्रियं मधुने युज्याथां रथम् ।

आ वर्त्तन्ति मधुना जिन्वथस्पथो हतिं वहेथे मधुमन्तमभिना ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) मना के ईश और याज्ञा जनों आप दोनों ( मधुपेभिः ) मधुर रसों के पीनेवाले वीर पुरुषों के माय ( आसभिः ) मुखों में ( मध्व ) मधुर आदि गुणों से युक्त पदार्थ के ( प्रियम् ) मनोहर रस को ( पिबतम् ) पिबो ( उत ) और ( मधुने ) जाने गये मार्ग के लिये ( रथम् ) विमान आदि वाहन को ( युज्याथाम् ) युक्त करो तथा ( मधुना ) मधुरता गुण युक्त पदार्थ से ( वर्त्तन्ति ) जिसमें वर्त्तमान होत उस मार्ग को ( आ, जिन्वथ ) सब प्रकार प्राप्त होते हो और अन्य ( पथः ) मार्गों को प्राप्त होते हो और जैसे ( मधुमन्तम् ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( हतिम् ) जल के चमगात्र के सदृश वर्त्तमान मेघ को सूर्य और वायु ( वहेथे ) धारण करते हैं वैसे इस व्यवहार को धारण करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे सेना के ईश और याज्ञाजनों ! तुम सेनास्थ वीरों के माय ऐसे भोजन करो और वाहनों को रथों जिनसे बल की वृद्धि और लक्ष्मी की प्राप्ति हो जैसे वायु और बिजुली वर्षा करके सबको सुखी करते हैं वैसे प्रजा को सुखी करो ॥ ३ ॥

इमासो ये वां मधुमन्तो अस्मिधो हिरण्यपर्षा उहुवं उवर्धुधः ।

उदप्रतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सर्वनानि गच्छथः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजा और सेना के ईश जन ( वाम् ) आप दोनों के ( ये ) जो ( मधुमन्त ) मधुर गमन से युक्त ( अस्मिध ) नहीं मारे गये ( हिरण्यपर्षा ) तेज-मय वा सुवर्ण आदि से बने हुए पल जिन के ( उवर्धुधः ) जो प्रातः काल में बोध से युक्त ( उहुवः ) भारों के लें चलने ( उदप्रतः ) जल के चलाने ( मन्दिनः ) आनन्द के देने और ( मन्दिनिस्पृश ) आनन्द के स्पर्श करानेवाले ( मक्षः ) मधुर पदार्थों के सम्बन्ध में ( मक्षः ) मक्षियों के राजा के ( न ) सदृश ( इमासः ) तथा हम के सदृश शीघ्र चलनेवाले घोड़े हैं उन से ( सर्वनानि ) ऐश्वर्यों को आप दोनों ( गच्छथः ) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजपुरुषों ! आप लोग वाहनो की कलों में अग्नि-जलादि के सप्रयोग से शीघ्र जा आकर ऐश्वर्यों की इच्छा करें तो क्या रत्न को न प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

स्वध्वरासो मधुमन्तो अन्नं उक्ता जर्जस्ते प्रति वस्तोऽग्निना ।

यश्चिह्नस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुधां मधुमन्तमग्निभिः ॥५॥

पदार्थ—हे ( अग्निना ) राजा और मन्त्री जनों जैसे ( प्रति, वस्तो ) प्रति-दिन की ( स्वध्वरासः ) उत्तम प्रकार क्रियायोगों की सिद्धियाँ जिन में वे ( मधुमन्तः ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( अन्नः ) अग्नि ( उक्ता ) किरणों की ( जर्जस्ते ) स्तुति करते अर्थात् उन्हें प्रशंसित करते हैं और ( यत् ) जो ( निवस्तहस्तः ) बुद्ध हाथों युक्त ( तरणि ) कुशलों में पार करनेवाला ( विचक्षणः ) अत्यन्त बुद्धिमान् ( अग्निभिः ) मेघों से ( मधुमन्तम् ) मधुर आदि गुणयुक्त ( सोमम् ) ओषधियों के समूह को ( सुधां ) उत्पन्न करता है उन और उस को आप दोनों सिद्ध करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! आप लोग शिल्पी विद्वानों के सङ्ग से अग्नि आदि और सोमलता आदि पदार्थों को जल के और अन्धे प्रकार प्रयोग करके अभीष्ट कार्यों की सिद्ध करो ॥ ५ ॥

आकेनिपासो अहमिर्दिविध्वतः स्वर्गं शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।

सुरधिद्वान्पुषुवान् ईयते विश्वोऽनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६॥

पदार्थ—हे क्रियाओं में कुशल वाहनों के बनाने और चलानेवाले, आप दोनों जैसे ( अहमि ) दिनों से ( दिविध्वतः ) पदार्थों का नाश करती हुई ( आकेनिपासः ) समीप में अत्यन्त पालन करनेवाली किरणों ( शुक्रम् ) जल और ( रजः ) लोक को ( आ, तन्वन्तः ) विस्तारयुक्त करते हुए ( स्वः ) सूर्य के ( न ) सद्यः प्रकाशित होते हैं वा जैसे काई ( सूरः ) सूर्य ( चित् ) श्री ( अन्वायः ) शीघ्र चलनेवाले किरणों को ( पुषुवानः ) युक्त करता ( ईयते ) प्राप्त होता है वैसे आप दोनों ( स्वधया ) अन्न आदि से ( विध्वन्तः ) सम्पूर्ण पदार्थों को जल के ( पथः ) मार्गों को ( अनु, - चेतथ ) अनुकूल जनाते हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यों ! जो आप लोग किरणों और सूर्य के सद्यः वाहनों में अग्नि से जल को विस्तारी तो जल स्थल और आकाशमार्गों को सुख से जाओ ॥ ६ ॥

प्र वामवोचमन्विना धियन्वा रथः स्वर्गो अजरो यो अस्ति ।

येन सद्यः परि रजोसि यायो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७॥२१॥४

पदार्थ—हे ( अग्निना ) अध्यापक और उपदेशक जनों ! ( यः ) जो ( स्वधः ) उत्तमोत्तम घोड़ों से युक्त ( अजरो ) वृद्धावस्थारहित ( रथः ) सुन्दर वाहन ( अस्ति ) है उस की विद्या को ( धियन्वाः ) बुद्धि अर्थात् शिल्पविद्या रूप कर्म को धारण करने वाला मैं ( वाम् ) आप दोनों को ( प्र, अचोचम् ) उत्तम उपदेश करूँ ( येन ) जिससे आप दोनों ( हविष्मन्तम् ) बहुत सामग्री से युक्त ( तरणिम् ) तारनेवाले ( भोजम् ) खान योग्य पदार्थ और ( रजोसि ) लोक वा ऐश्वर्यों को ( सद्यः ) शीघ्र ( अच्छ ) उत्तम प्रकार ( परि, यायः ) सब ओर से प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! विद्वान् हम लोग आप लोगों को जिन शिल्पविद्याओं का ग्रहण करावें उन विद्याओं से आप लोग विमान आदि वाहनों को रच शीघ्र गमन और आगमन को करके बहुत भोगों को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

इमं सूक्तं मे सूर्य और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह वेतालीसवाँ सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग और चौथा अनुशाक समाप्त हुआ ॥

॥५॥

अथ सप्तर्षय षट्षत्वारिंशत्सप्तस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रवायू देवते ।

१ विराट् गायत्री । २, ३, ५—७ गायत्री । ४ निषुवगायत्री छन्दः ।

अक्षरः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छियालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से बिजुली की विद्या के विषय को कहते हैं—

अग्रं पिशा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा अभि ॥१॥

पदार्थ—हे ( वायो ) वायु के सद्यः बलयुक्त ( हि ) जिससे ( स्वम् ) आप ( दिविष्टिषु ) श्रेष्ठ क्रियाओं में ( पूर्वपाः ) पूर्व वर्तमान जनों का पालन करनेवाले ( अभि ) हो इस से ( मधूनाम् ) मधुर रसों के बीच में ( अग्रम् ) उत्तम ( सुतम् ) उत्पन्न किये गये रस का ( पिशा ) पान कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जिस से आप सनातन विद्याओं की रक्षा करके सब के लिए देने हो इस से आप इन क्रियाओं में मुखिया होते हैं ॥ १ ॥

शतेनां नो अभिष्टिभिर्निषुवा इन्द्रसारथिः ।

वायो सुतस्य तृप्तसम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) वायुवर्तमान विद्वानयुक्त अध्यापक और उपदेशक ! ( अभिष्टिभिः ) अभीष्ट क्रियाओं से जैसे ( इन्द्रसारथिः ) बिजुलीरूप सारथि जिसका वह ( निषुवायु ) बलवान् भर्मा वायु ( शतेनां ) प्रसङ्ग से ( नः ) हम लोगों को सुप्त करता है वैसे ( सुतस्य ) उत्पन्न किये गये के सम्बन्ध में आप दोनों ( तृप्तसम् ) सुप्त होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे वायु के साथ बिजुली, बिजुली के साथ वायु अनेक क्रियाओं को उत्पन्न करते हैं वैसे पृथिवी और जलादिकों से आप अनेक कार्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

आ वां सहस्रं उरय इन्द्रवायु अमि मयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रवायु ) सूर्य और पवन ! जो ( हरयः ) हरनेवाले मनुष्य ( वायु ) आप दोनों को ( सोमपीतये ) सोमलता के पान करने के लिए ( सहस्रम् ) असंख्य ( प्रयः ) मनाहर भाव जैसे हों वैसे ( आ, वहन्तु ) प्राप्त करें, उन को आप दोनों ( अमि ) सब धार से बोध दीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो विद्वान् जन आप लोगों को पढ़ा और उत्तम प्रकार शिक्षा देकर विद्वान् करने हैं उनकी निरन्तर सेवा करो ॥ ३ ॥

रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायु स्वध्वरम् ।

आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रवायु ) वायु और बिजुली के सद्यः शीघ्रकारी शिल्पविद्या के अध्यापक और उपदेशक जनों ! आप दोनों ( स्वध्वरम् ) नहीं नष्ट हुई उत्तम क्रिया जिसमें और ( हिरण्यवन्धुरम् ) सुवर्ण हैं बन्धन जिस में उस ( दिविस्पृशम् ) आकाश में चलनेवाले ( रथम् ) सुन्दर वाहन को ( हि ) ही ( आ, स्थायः ) आ स्थित होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनों आप लोग प्रीति से सुवर्ण आदि से जड़े हुए वाहनों की विद्या का मनुष्यों के लिए निरन्तर उपदेश देओ कि जिन वाहनों से वे लोग अन्तरिक्ष आदिकों में जा सकें ॥ ४ ॥

रथेन पृथुपाजसा दान्वासमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रवायु ) वायु और बिजुलीरूप अग्नि के सद्यः प्रतापी राजा और सेना के ईश जनों आप दोनों ( पृथुपाजसा ) विस्तीर्ण बल युक्त ( रथेन ) रमणीय वाहन से ( इह ) इस संसार में ( आ, गतम् ) आओ और ( दान्वासम् ) दाता जन के ( उप, गच्छतम् ) समीप प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जैसे वायु और बिजुली बड़े प्रताप से युक्त वर्तमान हैं वैसे ही राजा और मन्त्रीजन होवें ॥ ५ ॥

अब सूर्ययुक्त वायु विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं द्राक्षुषो गृहे ॥६॥

पदार्थ—हे ( सजोषसा ) सुख प्रीति की कामना करनेवाले ( इन्द्रवायू ) सूर्य और वायु के सद्यः अध्यापक और उपदेशक ! जो ( अयम् ) यह ( द्राक्षुषः ) दाता जन के ( गृहे ) गृह में ( सुतः ) उत्पन्न किया गया ( तम् ) उसको ( देवेभिः ) विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों के साथ जैसे ( पिबतम् ) पान करो वैसे ही सूर्य और वायु सब से रस पीते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य और पवन सब के उपकार का निरन्तर करते हैं वैसे ही विद्वानों को करना चाहिए ॥ ६ ॥

इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायु विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥७॥२२

पदार्थ—हे ( इन्द्रवायु ) वायु और बिजुली के सद्यः वर्तमान राजा और मन्त्री जनों ! जैसे ( इह ) इस में ( वाम् ) आप दोनों का ( प्रयाणम् ) गमन ( अस्तु ) हो और जेमे ( इह ) इस में ( वाम् ) आप दोनों का ( सोमपीतये ) सोमपान के लिए ( विमोचनम् ) त्याग हो वैसे ही वायु और बिजुली वर्तमान हैं ऐसा जानो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो नित्य इधर-उधर कार्यसिद्धि के लिए जावें और आवें, उसी को राजा मानो ॥ ७ ॥

इस सूक्त में बिजुली और वायु के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह छियालीसवाँ सूक्त और बाईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥५॥

अथ षतुर्हस्य सप्तषत्वारिंशत्सप्तस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १ वायुः ।

२-४ इन्द्रवायू देवते । १, ३ अनुष्टुप् । ४ निषुवगायत्री छन्दः ।

गायारः स्वरः । २ भुरिगुणिक् छन्दः । ऋचमः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले सत्तालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से वायुवायुय से विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।

आ याहि सोमपीतये स्पाहो देव नियुस्वता ॥१॥

पदार्थ—हे ( देव ) विद्वन् ! ( वायो ) वायु के सद्यः वर्तमान ( स्पाहो ) इष्टा करने योग्य ( शुक्रः ) शुद्ध स्वभाव वाला मैं ( दिविष्टिषु ) प्रकाश के बीच जो स्थित क्रिया उनमें ( नियुस्वता ) समर्थ राजा के साथ ( सोमपीतये ) उत्तम रस के पान के लिये ( ते ) आपके ( मध्वः ) मधुर रस के ( अग्रम् ) अग्रभाग को जैसे ( अयामि ) प्राप्त होता हूँ वैसे आप ( आ, याहि ) प्राप्त होओ ॥ १ ॥



भाषार्थ—जो वायु के सदृश सर्वत्र विहार करके विद्या का ग्रहण करते हैं वे सर्वत्र ईप्सा करने योग्य होते हैं ॥१॥

इन्द्रश्च वायवेवां सोमनां पीतिमर्हथः ।

युवां हि यन्तीन्द्रो निम्नमापो न सध्यक् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) बल से युक्त आप ( च ) और ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् ( युवाम् ) आप दोनों ( आप ) जैसे जल ( निम्नम् ) नीचे के स्थल के ( न ) वैसे जिस प्रकार ( इन्द्रश्च ) मिलन वाले और सत्कार करने योग्य जन और ( सध्यक् ) एक साथ सत्कार करनेवाला य मन्त्र ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं ( हि ) उसी प्रकार आप दोनों ( युवाम् ) इन ( सोमानाम् ) घोषधियो से उत्पन्न हुए रसों के ( पीतिम् ) पान के ( अर्हथ ) योग्य है ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे यज्ञ जलो को प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्वान् विद्याव्यवहार के योग्य होते हैं ॥२॥

अब राजा और अमात्य के पुरुषों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वायविन्द्रश्च शुष्मिणां सरथं शवसस्पती ।

नियुबन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( शुष्मिणां ) बलयुक्त और ( शवस ) बल के ( पती ) पालन करनेवाले ( नियुबन्ता ) स्वामी और समर्थ ( वायो ) बड़े बल से युक्त ( इन्द्रः, च ) और राजा ( न ) हम लोगों के ( ऊतये ) रक्षण आदि के और ( सोमपीतये ) ऐश्वर्य के पालन के लिये ( सरथम् ) समान वाहन को ( आ, यातम् ) प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो राजा क मन्त्री जन वन के बसानेवाले सामर्थ्य युक्त और न्यायकारी हों वे आप लोगों के पालन करनेवाले हों ॥३॥

या वां सन्ति पुरुषूहो नियुतो दाशुचं नरा ।

अस्मे ता यज्ञवाइसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे ( यज्ञवाइसा ) यज्ञ को प्राप्त करनेवाले ( नरा ) नायक ( इन्द्र-वायू ) धनी और विद्वान् तथा राजा और मन्त्री जनो ( वासू ) आप दोनों की ( वा ) जो ( नियुत ) निश्चित ( पुरुषूहो ) बहुतों से ईप्सा करने योग्य क्रिया ( दाशुचं ) दाता जन के लिये ( सन्ति ) हैं ( ताः ) उन क्रियाओं को ( अस्मे ) हम लोगों के लिये ( नि, यच्छतम् ) प्रतिशय करके दीजिये ॥४॥

भाषार्थ—हे राजा और मन्त्री जनो ! आप लोगों को चाहिये कि हम प्रजा जनो की इच्छा पूर्ण करें जिससे हम लोग आप लोगों का पूरा काम करें ॥४॥

इस सूक्त में विद्वान् राजा और अमात्य के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ समति है यह जानना चाहिये ॥

यह संतालीसवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्यष्टादशतारिषसमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । वायुर्देवता ।

१ निष्वनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३-५ मुरिगनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धार स्वरः ।

अब राजा प्रजा के साथ कैसे वर्तें इस विषय को प्रथम मन्त्र से कहते हैं—

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) विद्वान् ( विप ) बुद्धिमान् आप ( अर्य ) वैश्यजन ( रायः ) धनो के ( न ) जैसे वैसे ( अवीता ) नाश में रहित क्रियाओं को ( होत्रा ) ग्रहण करते हुए ( विहि ) व्याप्त हजिये और ( सुतस्य ) उत्पन्न किय रम की ( पीतये ) रक्षा के लिये ( चन्द्रेण ) सुवर्णमय ( रथेन ) वाहन से ( आ, याहि ) प्राप्त हजिये ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे बुद्धिमान् वैश्यजन प्रीति से धन की रक्षा करता है वैसे ही आप और आपके भृत्यजन अच्छी प्रीति से प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करो ॥१॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नियुवाणो अशस्तीनियुत्वा इन्द्रसारथिः ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) वायु के सदृश गुणों से विशिष्ट राजन् आप ( नियुवाण् ) नियम युक्त गमनवाले वायु के और ( इन्द्रसारथि ) बिजुली, सूर्य वा अग्नि का नियम से चलानेवाले के सदृश ( चन्द्रेण ) आनन्द देनवाले सुवर्ण आदि से जड़े हुए ( रथेन ) वाहन से ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए रम के ( पीतये ) पान करने के लिये ( आ, याहि ) आइये और जैसे ( नियुवाण ) निष्पन्न गये युवाजन जिससे वा

निरन्तर युवाजन ( अशस्ती ) अहिंसाओं का आचरण करने अर्थात् हिंसाओं को नहीं करते हैं वैसे कीजिये ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु से अग्नि बढ़ती और शीघ्र चलती है वैसे ही न्याय से पालन की गई प्रजा से राजा बृद्धि को प्राप्त होता है और जो हिंसा नहीं करते हैं वे शत्रुओं से रहित हुए सब के प्रिय होते हैं ॥२॥

अनु कृष्णे वसुधितो येमाते विश्वेशसा ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) राजन् ! जैसे ( विश्वेशसा ) सम्पूर्ण उत्तमरूप से ( कृष्णे ) खीची गई ( वसुधितो ) सम्पूर्ण लोको की स्थिति जिनमें वे अन्तरिक्ष और पृथिवी ( अनु, येमाते ) नियम से चलती हैं वैसे ही ( सुतस्य ) उत्पन्न किये गये पदार्थ की ( पीतये ) रक्षा के लिये ( चन्द्रेण ) रत्नों से जड़े हुए ( रथेन ) वाहन के द्वारा आप ( आ, याहि ) प्राप्त हजिये ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे भूमि और सूर्य बहुत फल देनेवाले वर्तमान और नियम से चलत हैं वैसे बहुत फलों के देनेवाले होकर विद्या और विनय के नियम से निरन्तर आइये ॥३॥

वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) बलवान् ( मनोयुजः ) मन से ब्रह्म का योग करनेवाले ( युक्तासः ) जिन्होंने योगाभ्यास किया वे ( नव ) नौ बार गुनी गई ( नवतिः ) नव्य सख्या से युक्त नाडियों से सदृश ( त्वा ) आप राजा को ( वहन्तु ) प्राप्त हों वा प्राप्त करावे आप इनके ( सुतस्य ) प्राप्त राज्य के ( पीतये ) रक्षण आदि के लिये ( चन्द्रेण ) सुवर्ण आदि से बने हुए ( रथेन ) वाहन से ( आ, याहि ) आइये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो श्रेष्ठ यथार्थवक्ता जन आपके सहायक हों नो आप जिस जिस पदार्थ की इच्छा करें वह सब निम्न होवे ॥४॥

वायो शतं हरीणां युवस्य पोष्याणाम् ।

उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥ ५ ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे ( वायो ) राजन् ! आप ( पोष्याणाम् ) पोषण करने योग्य ( हरीणाम् ) मनुष्यों के ( शतम् ) समूहव्य को ( युवस्य ) कर्मों के बीच प्रेरणा देओ ( उत, वा ) अथवा ( सहस्रिणः ) असंख्य पुरुष और धन से युक्त ( ते ) आप के ( पाजसा ) बल से ( रथ ) वाहन ( आ, यातु ) मन्त्र और से प्राप्त हो ॥५॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो राज्य करने की इच्छा करो तो उत्तम महायो का ग्रहण करो ॥५॥

इस सूक्त में राजगुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ समति जाननी चाहिये ॥

यह अठतालीसवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्यकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते ।

१ निष्वद्वायत्री । २-६ गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

अब छ ऋचावाले जनवासर्व सूक्त का आरम्भ है, इसमें राजा और प्रजा की कैसे वृद्धि हो इस विषय को कहते हैं—

इदं वामास्यं हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मर्दश्च शस्यते ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राबृहस्पती ) बिजुली और सूर्य के सदृश मन्त्री और राजा ( वाम् ) आप दोनों के मुख में ( वामास्यं ) मुख में ( हवम् ) यह ( प्रियम् ) सुन्दर ( उक्थम् ) प्रशंसा करने योग्य ( मर्दः ) आनन्द ( च ) और ( हविः ) खाने योग्य वस्तु ( शस्यते ) स्तुति किया जाता है ॥१॥

भाषार्थ—जा राजा आदि मनुष्य उत्तम प्रकार सस्कारयुक्त धन को खाते हैं तो प्रकाशयुक्त अधिक अवस्था वाले और बलवान् होते हैं ॥१॥

अर्यं वां परि' विध्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुमदाय पीतये ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राबृहस्पती ) राजा और उपदेशक विद्वान्जनो ( वाम् ) आप दोनों के मुख में ( वामास्यं ) आनन्द के लिये ( पीतये ) पान करने को ( चारुः ) अति उत्तम ( सोम ) बड़ी आषधि का रस ( अयम् ) यह ( परि ) मन्त्र प्रकार से ( विध्यते ) मीठा जाता है इसमें आप समर्थ हों ॥२॥

भाषार्थ—जैसे उत्तमान्न सेवन किया जाता वैसे ही उत्तम रस भी सेवन किया जावे ॥२॥

आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( सोमपा ) सोमलता के रस को पीनेवाले ( इन्द्राबृहस्पती ) राजा और अध्यापक ! आप दोनों ( नः ) हम लोगों के ( गृहम् ) घर को ( सोम-पीतये ) सामलता के उत्तम रस पीने के लिये (आ, वृक्षतम् ) छाओ ( इन्द्र. ) और ऐश्वर्य्य वाला जन ( च ) भी आवे ॥३॥

भाषार्थ—हे राजा मन्त्री और घनी जनो ! जैसे हम लोग आप लोगों को निमन्त्रण देकर अन्न आदि से सत्कार करें वैसे ही आप हम लोगों का सत्कार करो ॥ ३ ॥

अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं चंसं शतविनम् । अथावन्तं सहस्रिणम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राबृहस्पती ) बिजुली और सूर्य के सदृश राजा और प्रधान जना आप दोनों ( अस्मे ) हम लोगों के लिये ( शतविनम् ) असङ्ख्यात गौओं और ( अथावन्तम् ) उत्तम घोड़ों आदि से युक्त ( सहस्रिणम् ) अक्षय्य पदार्थ अस्मि मे विद्यमान उम ( रयिम् ) धन को ( वत्सम् ) धारण करो ॥४॥

भाषार्थ—तभी राजा और प्रधानाधिकारी की प्रशंसा होवे कि जब सब प्रजा को धन और विद्या से युक्त करे ॥४॥

इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राबृहस्पती ) अध्यापक और उपदेशकजना ! जैसे ( वयम् ) हम लोग ( पीतये ) वाणिज्य से ( अस्य ) इस ( सोमस्य ) ओषधियों से उत्पन्न हुए रस के ( पीतये ) पान के लिये आप दोनों का ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं वैसे ( सुते ) रस के उत्पन्न होने पर हम लोगों का स्वीकार करा ॥५॥

भाषार्थ—राजा और प्रजाजनों को चाहिय कि परस्पर क सत्कार में बड़े ऐश्वर्य्य का भाग करें ॥५॥

सोमविन्द्राबृहस्पती पिबन्तं दाशुषो गृहे ।

मादयेथा तर्हीकमा ॥ ६ ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे ( तर्हीकसा ) उम स्थान वाल ( इन्द्राबृहस्पती ) राजा और मन्त्री जना आप दोनों ( दाशुष ) दाताजन के ( गृहे ) स्थान में ( सोमम् ) अर्थात् उत्तम रस का ( पिबन्तम् ) पान करो और हम लोगों का निरन्तर ( मादयेथाम् ) आनन्द देओ ॥६॥

भाषार्थ—राजा आदि जन जैसे स्वयं विद्यायुक्त, धार्मिक, न्यायकारी और आनन्दित होवें वैसे प्रजाजनों का भी करें ॥६॥

इस सूक्त में राजा और प्रजादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह उनचासवां सूक्त और पञ्चोत्तरां वयं समाप्त हुआ ॥



अवेकावशर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । १-६ बृहस्पति ।

१०, ११ इन्द्राबृहस्पती वेदते । १-३, ६, ७, ९ निष्कृतिगुट्प ।

४, ५, ११ निराट् प्रिगुट्प । ८, १० प्रिगुट्प छन्द । वचनः स्वरः ॥

अब न्यायह ऋचा वाले पञ्चासवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को कहते हैं—

यस्तस्तम्भ सहसा वि उमो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।

तं प्रस्ताम् ऋषयो दीध्यामाः पुरो विप्रां दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( त्रिषधस्थ ) तीन तुल्य स्थानों वा कर्म उपासना ज्ञान में स्थित होनवाला ( बृहस्पति. ) महान् वा बड़े पदार्थों का पालन वाला सूर्य्य ( सहसा ) बल से ( उमः ) पृथिवी के ( अन्तान् ) समीपों को ( वि, तस्तम्भ ) धारण करे वैसे कर्मोपासना और ज्ञान में स्थित होने और बड़े पदार्थों का पालन वाला ( यः ) जो विद्वान् ( रवेण ) उपदेश से जना को धारण करे ( तम् ) उस ( मन्द्रजिह्वम् ) आनन्द देने और कल्याण करनेवाली जिह्वा से युक्त विद्वान् को इनके ( पुर. ) बड़े नगरों को ( दीध्यामा ) उत्तम गुणों से प्रकाशित करने हुए ( प्रस्तासः ) प्राचीन और प्रथम जिन्होंने विद्या पढ़ी ऐसे ( ऋषयः ) मन्त्रों के अर्थ जाननेवाले ( विप्राः ) बुद्धिमान् जन ( दधिरे ) धारण करें ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे सूर्य्य अपनी आकर्षणशक्ति में भूगोलों को धारण करता और भूगोलों में वर्तमान पदार्थों को धारण करता है वैसे ही विद्वान् लोग सब मनुष्यों का धारण करके उन के अन्तःकरणों को प्रकाशित करें ॥१॥

अब कौन प्रशंसा के योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्ते ।

पृथन्तं सुप्रमदम्भमूर्ध्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बड़ी वाणी के पालन करनेवाले ( ये ) जो ( मदन्तः ) आनन्द देते हुए ( धुनेतयः ) वर्मात्मा जनो के कम्पानेवालों को कम्पानेवाले

( सुप्रकेतम् ) उत्तम तीक्ष्ण बुद्धिवाले ( पृथन्तम् ) विद्यादि उत्तम गुणों को सीखते हुए ( सुप्रम् ) उत्तम गुणों को प्राप्त ( मदम्भम् ) नहीं हिंसित ( उर्ध्वम् ) हिंसा करनेवाले जन का ( ततस्ते ) नाश करने हैं और ( न ) हम लोगों को ( अभि ) चारों ओर से नाश करते हैं उनका निवारण करके आप उनका निवारण करो । हे ( बृहस्पते ) बड़ी वस्तुओं के पालन करनेवाले जिनके रोकने से ( अस्य ) हम विद्याव्यवहार के ( योनिम् ) कारण की आप ( रक्षतात् ) रक्षा कर ॥२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो लोग डाकू और चोरादिकों का निवारण कर धार्मिक विद्वानों को सुख देकर प्रज्ज और उपाज्जों के सहित विद्या के व्यवहार को बढ़ावें उनका आप लोग सत्कार करें ॥ २ ॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ तं ऋतस्पृशो नि वेदुः ।

तुभ्यं स्वाता अवता अदिदुग्धा मध्वः इचोतन्त्यमितो विरप्शाम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बड़े राज्य के पालन करनेवाले ( ते ) आपकी ( या ) जो ( परमा ) उत्तम नीति है उससे ( ऋतस्पृशः ) मत्स्य का स्पर्श करनेवाले आपके ( अदिदुग्धा ) मेघ से पूर्ण ( स्वाता ) स्वादे गये ( मध्वः ) मधुर आदि गुणवाले जल से युक्त ( अवता ) कूप ( तुभ्यम् ) आपके लिये ( अभित. ) सब प्रकार से ( इचोतन्ति ) सीखते हैं और ( विरप्शाम् ) महान् समार का ( आ, निवेदुः ) सब ओर से स्थित करें ( अतः ) इससे उनका हम लोग ( परावत् ) गुणयुक्त सत्कार करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ह मनुष्यों ! आप लोग बृद्ध विद्वान् राजा लोगों के समीप से अनादि काल से मित्र नीति का ग्रहण करके मेघों के सदृश प्रजाओं को सुख से सीखें ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन ।

सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( परमे ) उत्तम ( व्योमन् ) व्यापक में ( मह ) बड़े ( ज्योतिषः ) प्रकाश से ( प्रथमम् ) पहिले ( जायमाना ) उत्पन्न हुआ ( सप्तास्य ) सात किरणरूप मुखों से युक्त ( तुविजातः ) बहुतो में प्रमिष्ट ( सप्तरश्मिः ) सात प्रकार के किरणों से युक्त ( बृहस्पतिः ) बड़ा सूर्य्य ( रवेण ) शब्द से अर्थात् गतिशब्द में ( तमांसि ) रात्रियों को ( वि, अयम्भत् ) दूर करता है वैसे बड़ा विद्वान् उपदेश से अविद्या का निवारण करके विद्या को प्रकट करे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे सूर्य्य में मान प्रकार के रूपवाले तत्त्व मिले हुए वर्तमान हैं जिन किरणों के द्वारा सब से रसों को ग्रहण करता है वैसे पाँच ज्ञानेन्द्रिय मन और आत्मा से सब विद्याओं को ग्रहण करके पढ़ाने और उपदेश करने से सबके प्रज्ञान को दूर करके विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करो ॥ ४ ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स सुष्टुभा स ऋकता गणोनं वलं ररौज फलिग रवेण ।

बृहस्पतिरुस्त्रिया हव्यसूदः कनिक्कदावसतीरुदाजत् ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे ( स ) वह ( हव्यसूदः ) हवन करने योग्य पदार्थों को क्षरण कराने अर्थात् अपन प्रताप से अगुरुकूप करानेवाला ( कनिक्कत् ) अत्यन्त शब्द करता हुआ ( बृहस्पतिः ) बड़ा और सबका पालन करनेवाला सूर्य्य ( सुष्टुभा ) सुन्दर प्रशंसित ( गणोनं ) किरणसमूह से ( फलिगम् ) मेघ को ( ररौज ) भङ्ग करे और ( स ) वह विद्वान् ( ऋकता ) बहुत प्रशंसायुक्त उपदेश देने योग्य विद्याधियों के समूह से ( रवेण ) शब्द से ( वलम् ) कुटिल जाल को भग करे और ( उस्त्रिया ) पृथिवी के बीच वर्तमान ( वावसती ) अत्यन्त कामना करती हुई प्रजाओं को ( उत्, आजत् ) प्राप्त होता है वैसे आप वर्त्ताय बना ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य्य वृष्टि के द्वारा सब प्रजाओं की रक्षा करता और बिजुली के शब्द से सबका जनाता है वैसे ही सब विद्वान् जन विद्या के द्वारा सबके आत्माओं को प्रकाशित करे ॥ ५ ॥

एवा पित्रे विधद्वेवाय वृष्यो यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।

बृहस्पते सुप्रजा वीग्वन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बड़ों के पालन करनेवाले जैसे हम लोग ( वयं ) मिले हुए कर्मों से ( विधद्वेवाय ) सत्कार के प्रकाशक ( वृष्यो ) वृष्टि करने और ( पित्रे ) पालन करनेवाले के लिये ( नमसा ) सत्कार या अन्न आदि से ( हविर्भिः ) ग्रहण करने योग्य उपदेश वा द्रव्यों से ( विधेम ) करें अर्थात् क्रिया-विधान करें तथा ( वयम् ) हम ( सुप्रजा. ) विद्या और विनयवाली श्रेष्ठ प्रजाया से युक्त ( वीरवन्तः ) वीर पुत्रोंवाले लोग ( रयीणाम् ) जनो के ( पतयः ) स्वामी ( स्याम ) होवें ( एवा ) वैसे ही आप हजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे सूर्य्य मेघ के धनद्वार से सबका पालन करनेवाला है वैसे ही हम लोग वर्त्ताय करके अर्थात् उत्तम पुरुष और राज्य के स्वामी होवें ॥ ६ ॥

स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभिवीर्येण ।

बृहस्पति यः सुमृतं विमर्ति वल्गुयति वन्दते पूर्वमार्जम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( सुभूतम् ) उत्तम प्रकार धारण किये गये ( बृहस्पतिम् ) बड़ों में बड़े ( पूर्वभाजम् ) प्राचीनों से सेवा करने योग्य का ( विभक्ति ) धारण करता, ( बलवृत्ति ) सत्कार करता और ( बन्धते ) कामना करता है जो ( शृङ्गेण ) बल ( वीर्येण ) और पराक्रम से ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( प्रतिजन्यानि ) प्रत्यक्ष से उत्पन्न होने योग्यों के ( अभि ) सम्मुख ( तस्मै ) स्थित होता है ( सः, इत् ) वही जगदीश्वर ( राजा ) सबका प्रकाश करनेवाला सब लोगों के सेवा करने योग्य है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर सम्पूर्ण जगत् को अभिषिष्ट होकर और धारके सूर्य को भी धारता है और सम्पूर्ण वेदों का उपदेश देकर प्रशंसित वर्तमान है और जिसकी सेवा योगिराज करते हैं उसी की नित्य उपासना करो ॥ ७ ॥

स इक्षति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इच्छा पिन्वते विश्ववानीम् ।

तस्मै विशाः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्वं एति ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो जन परमेश्वर का भजन करता है ( सः, इत् ) वही ( सुधित ) उत्तम प्रकार तृप्त हुआ ( स्वे ) अपने ( ओकसि ) निवासस्थान में ( अति ) निवास करता है तथा ( विश्ववानीम् ) सब काल में ( तस्मै ) उसके लिये ( इच्छा ) प्रणमित वाणी वा भूमि ( पिन्वते ) सेवन करती है ( यस्मिन्, राजनि ) जिस प्रकाशमान परमात्मा में ( ब्रह्मा ) चार वेद का जाननेवाला ( पूर्वं ) अनादि में हुआ प्रथम ( एति ) प्राप्त होता है ( तस्मै ) उस राजा के लिये ( विशा ) प्रजा ( स्वयम्, एवा ) आप ही ( नमन्ते ) नम्र होती है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्य सबका त्याग करके एक परमेश्वर ही की आप लोग सेवा करें तो आप लोग में लक्ष्मी, राज्यप्रतिष्ठा और यश सदा ही निवास करें ॥ ८ ॥

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यानुत या सजंन्या ।

अवस्यवे यो वरिवः कुणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यः ) जो ( अप्रतीतः ) शत्रुओं से नहीं पराजित किया गया ( राजा ) राजा ( अवस्यवे ) रक्षा की इच्छा करते हुए ( ब्रह्मणे ) परमात्मा के लिये ( वरिवः ) सेवन को ( कुणोति ) करता है ( तम् ) उसकी ( देवाः ) विद्वान् जन ( अवन्ति ) रक्षा करते हैं और ( या ) जो ( सजंन्या ) मुख्य उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ वर्तमान ( उत ) भी ( प्रतिजन्यानि ) मनुष्य मनुष्य के प्रति वर्तमान ( वनानि ) वन हैं उनको सहज स्वभाव से ( तम्, जयति ) अच्छे प्रकार जीतता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा परमात्मा ही की उपासना करता और यथार्थवक्ता विद्वानों की सेवा करता है, वही नहीं नाश होनेवाले राज्य और धन का प्राप्ति होकर सदा ही विजयी होता है ॥ ९ ॥

अब राजा कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रं सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यश्ने मन्दसाना हृषणम् ।

आ वां विशन्तिवन्दवः स्वाधुवोऽस्मे रथि सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) पूर्णविद्वत् ! ( इन्द्रः, सोमः ) और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला ( मन्दसाना ) प्रशंसित और आनन्दयुक्त ( बृहस्पत् ) बलिष्ठ वीर पुरुषों को निवास करानेवाले आप दोनों ( अस्मिन् ) इस ( यश्ने ) राज्यपालननामक व्यवहार में ( सोमम् ) उत्तम ओषधियों के रस का ( पिबतम् ) पान करो और जैसे ( स्वाधुवः ) आप होनेवाले ( इन्द्रवः ) ऐश्वर्य्य ( वास् ) आप दोनों को ( आ, विशन्तु ) प्राप्त हो जैसे ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( सर्ववीरम् ) मन्त्र वीर हों जिससे उस ( रथिम् ) वन को आप दोनों ( नि, यच्छतम् ) उत्तम प्रकार दीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजा और राजोपदेशको ! तुम कभी मदकारक वस्तु का सेवन न करो और राज्यपालन तथा सत्योपदेश से ही प्रजाओं का पालन कर सदैव आनन्दित होओ और हम लोगों के लिए मन्त्र ऐश्वर्य्य अच्छे प्रकार देओ ॥ १० ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

बृहस्पत इन्द्रं वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्य्यो वनुषामरांतीः ॥ ११ ॥ २७ ॥ ७

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त ( इन्द्रः ) और अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाले राजन् ! जो ( वास् ) आप दोनों की ( सुमतिः ) श्रेष्ठ बुद्धि ( वृत्तु ) हा ( सा ) वह ( वनुषाम् ) सविभाग करनेवाले ( नः ) हमारे ( सचा ) सत्य के साथ हो और उससे हम लोगों की ( वर्धतम् ) वृद्धि करो, आप दोनों जो ( पुरन्धीः ) बहुत विद्याओं को धारण करनेवाली ( धियोः ) बुद्धियों का ( अविष्टम् ) प्राप्त होइए जिससे ( जिगृतम् ) उपदेश दीजिए वे ( अस्मे ) हम लोगों को प्राप्त होवें और जैसे ( अर्य्यः ) स्वामी वैसे आप दोनों हम लोगों के ( मरांतीः ) शत्रुओं को ( वनुषाम् ) युद्ध कराइये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सर्वदा विद्वानों से विद्याप्राप्तिविषयक याचना करें जिससे उत्तम बुद्धियाँ हों और शत्रुजन दूर से भागें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

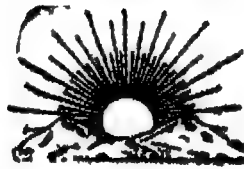
इति भीमत्परमहत्परिब्राजकाचार्य्य श्रीमाध्व विरजामन्त्र सरस्वती स्वामीजी के

शिष्य दयानन्दसरस्वती स्वामिविरचित आर्य्यभाषासुशोभित

ऋग्वेदभाष्य में तृतीय अष्टक के सप्तम अध्याय में

सत्ताईसवाँ वर्ग तथा सातवाँ अध्याय और वसुधैवकुल में

पाँचवाँ अनुबाक और षासत्तवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥





## अथ तृतीयाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितरुत्तानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अर्धकावचास्यैकाधिकपञ्चासस्तमस्य स्रुतस्य वामदेव ऋषि । उवा देवता ।  
१, ४, ८, त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७, ९, ११ निष्टुप् त्रिष्टुप्  
छन्दः । जीवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः, १० भुरिक्पङ्क्तिः छन्दः ।  
पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले इकावचन के सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में  
प्रातःकाल का वर्णन जिस में ऐसे विषय को कहते हैं—

इदम् त्यत्पुस्तमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।  
नूनं दिवो दुहितरी बिभाती गान्तुं कृणवन्नमो जनाय ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( त्यत् ) सो ( इदम् ) यह ( पुस्तमम् ) अतिशय  
करके अनेक प्रकार का ( ज्योतिः ) तेज अथवा प्रकाश ( वयुनावत् ) प्रज्ञान के  
सदृश ( तमस ) रात्रि से ( पुरस्तात् ) प्रथम ( अस्थात् ) वर्तमान है उस ( विषः )  
प्रकाश के सम्बन्ध से ( बिभाती ) प्रकाश करती हुई ( दुहितर ) कन्याओं के सदृश  
वर्तमान ( उवस ) प्रभातवेलाएँ ( जनाय ) मनुष्य आदि के लिये ( गान्तुम् ) भूमि  
का ( उ ) तो ( नूनम् ) निश्चय प्रकाशित ( कृणवन् ) करती हैं यह जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग पुरोधस से सूर्य के प्रकाश के सदृश विज्ञान  
को प्राप्त होकर अन्धकार की निवृत्ति के सदृश अविद्या का निवारण करके आनन्दित  
होओ ॥ १ ॥

अब स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अष्टुर्ध्वं चित्रा उवसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।  
व्यूं व्रजस्य तमसो द्वारीच्छन्तीरव्रजच्छुचयः पावकाः ॥२॥

पदार्थ—हे ब्रह्मचारी जनो ! जो ( उ ) ही ( अध्वरेषु ) गृहाश्रम के व्यव-  
हार के अनुष्ठानों में ( चित्रा ) पवित्र ( पावका ) पवित्र कर्म करने वाली ( स्वरवः )  
प्रताप से युक्त ( पुरस्तात् ) पूर्व से ( मिता इव ) विद्या से सम्पूर्ण पदार्थों को जानती सी  
हुई ( उवस ) प्रभात वेलाओं के सदृश कन्याएँ ( व्रजस्य ) प्राप्त ( तमस ) अन्धकार  
के ( द्वारा ) द्वारों को ( चि, उच्छन्ती ) विवास कराती हुई सी ( चित्राः )  
विभिन्न गुण कर्म स्वभावयुक्त ब्रह्मचारिणी ( अष्टुः ) स्थित होनी हैं ( उ ) उन्हीं  
को विवाह के लिये ( अध्वरेषु ) स्वीकार करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे ब्रह्मचारी जनो ! जो  
ब्रह्मचारिणी मेघ के सदृश गम्भीर शब्दयुक्त घोड़ा बोलनेवाली पवित्र और विद्यायुक्त  
हाथें वही प्रथम उत्तम प्रकार परीक्षा करके विवाहने योग्य हैं ॥ २ ॥

उच्छन्तीरद्य चित्तयन्त भोजान्नाभोदेयायोवसो मघोनीः ।  
अचित्रे अन्तः पण्यः समन्त्वबुध्यमानास्तमसो बिमंध्ये ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो ( तमस ) रात्रि के ( अचित्रे ) नहीं आश्चर्य  
जिसमें ऐसे ( बिमंध्ये ) विशेष अन्धकार में ( उवसः ) प्रतापवेलाओं के सदृश  
( मघोनीः ) सत्कार किया धन का जिन्होंने उनकी स्त्रियाँ ( उच्छन्ती ) और  
उत्तम प्रकार धान देती हुई ( अन्तः ) मध्य में ( अबुध्यमानाः ) बोधरहित ( पण्यः )  
प्रशंसा करने योग्य स्त्रियाँ ( समन्तु ) सुख से सर्व और ( राभोदेयाय ) धन देने  
योग्य व्यवहार के लिये ( भोजान् ) पालन करनेवाले पतियों को ( अद्य ) आज  
( चित्तयन्त ) जानाती हैं वे अष्ट प्रकार ग्रहण करनी चाहियें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे पुरुषो ! जो कन्या  
अपने सदृश विदुषी और शुभगुण कर्म स्वभाव वाली होवे वे ही स्त्री होने के लिये  
स्वीकार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

कुविस्त देवीः सनयो मघो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।  
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! ( स. ) वह ( यामः ) चलनेवाले ( नव ) नवीन  
विद्या अवस्था युक्त आप ( बभूयात् ) निरन्तर हूँजिये उसी प्रकार ( रेवती. )  
बहुत धन और शोभा से युक्त ( सप्तः ) विभाग करनेवाली ( देवीः ) प्रकाशमान  
( उवसः ) प्रभात वेलाओं के सदृश कन्या ( न. ) आप लोगों को ( रेवत् ) बहुत  
प्रशंसित धनवान् जैसे ही वैसे ( ऊव ) निरन्तर वसानी हैं ( वा ) अथवा ( येना )  
जिस कारण ( अद्य ) आज दिन ( नवग्वे ) नौ गौओं से युक्त ( दशग्वे ) और दश  
गौओं से युक्त ( अङ्गिरे ) प्राणों के सदृश प्रिय पति के निमित्त ( कप्तास्ये ) सात

प्राण मुख में जिसके उमर वर्तमान हैं इससे उनकी गृहाश्रम के लिये सेवा  
करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो अधिक विद्या, बल, तुल्यस्वरूप, नवीन युवावस्थायुक्त और  
सुशील विद्वान् अपने सदृश स्त्री का स्वीकार करे वह सुखी होवे और जो स्त्री पति  
की कामना करती हुई धन और विद्या की उन्नति करे वह सब मनुष्यों को सुखी  
करने के योग्य होवे ॥ ४ ॥

युयं हि देवीर्ऋतयुग्मिभरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।  
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपावतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( युयम् ) आप लोग जैसे ( ऋतयाथ ) भ्रमण के लिये  
( ससन्तम् ) शयन करत हुए ( जीवम् ) प्राणधारी को ( प्रबोधयन्तीः ) जगाती  
हुई ( उवसः ) प्रातर्वेला ( द्विपात् ) दो पाद वाले मनुष्य आदि और ( चतुष्पात् )  
चार पैर वाली गौ आदि के सदृश ( सद्यः ) शीघ्र ( भुवनानि ) लोक लोकान्तरो को  
प्राप्त होती हैं वैसे ( हि ) ही ( ऋतयुग्मिभर ) सत्य से युक्त ( अश्वैः ) बड़े बलिष्ठ और  
पुरुषाधियों के साथ ( देवी ) दिव्य गुण कर्म स्वभाव युक्त स्त्रियों को ( परिप्रयाथ )  
सब ओर से प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जन उत्तम गुणों से  
युक्त विदुषी सुन्दर अपने सदृश स्त्रियों को प्राप्त होते हैं वे सदा ही प्रातःकाल के  
सदृश प्रकाशमान और सब के बोधक होते हैं ॥ ५ ॥

क्वं स्विदासां कतमा पुंराणो यया विधानां विदधुर्ऋणाम् ।  
शुभं यच्छुभ्रा उवसश्चरन्ति न ज्ञायन्ते सद्दीरिजुषाः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( क्व ) जो ( शुभ्रा ) चमकीली ( सद्दीरि ) तुल्य  
( ऋणाम् ) नहीं जोरों अर्थात् नवीन ( उवसः ) प्रातर्वेलाय ( शुभम् ) कल्याण  
को ( चरन्ति ) प्राप्त होती हैं ( आसां ) इनके मध्य में ( कतमा ) कौनसी ( पुंराणी )  
पुरानी ( क्व ) किमम् ( विधाना ) करना ( यया ) जिसमें ( ऋणाम् ) बुद्धिमानों  
का ( स्विदा ) क्या ( विदधुः ) विधान करें ऐसा ( न ) नहीं ( वि, ज्ञायते ) जाना  
जाना है इस प्रकार की स्त्रियों को श्रेष्ठ जानें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जैसे सम्पूर्ण प्रातर्वेला तुल्य होती हैं वैसे ही पतियों के साथ सदृश  
स्त्रियाँ प्रशंसा करने योग्य होती हैं वह सदा ही युवावस्था में युवा पुरुषों को प्राप्त  
होकर आनन्दित हो, नहीं जाना जाता है कि कौन नवीन कौन प्राचीन प्रातर्वेला  
होती है वैसे ब्रह्मचर्य से युक्त कन्या होती है ॥ ६ ॥

ता या ता भद्रा उवसः पुंरासुरमिष्टिद्युम्ना ऋतजातमत्याः ।  
यास्वीजानः शशमान उवथैः स्तुवच्छंसन्द्रविशं सद्य आष ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ईजान ) गमन करनेवाला जन ( शशमान )  
प्रशंसा को प्राप्त होता ( उवथैः ) कहने योग्य बच्चों से ( स्तुवन् ) स्तुति करना  
और ( शसन् ) प्रशंसा करना हुआ ( यासु ) जिन में ( द्रविणम् ) धन वा यश को  
( सद्यः ) शीघ्र ( आप ) प्राप्त होता है ( ता ) वे ( उवसः ) प्रभात वेला ( भद्रा )  
कल्याण करनेवाली जैसी ( पुंरा ) पहिले ( आसु ) हुई वैसी फिर वर्तमान है उनके  
समान जो ( अभिष्टिद्युम्ना ) प्रशंसित यशरूप धन से युक्त ( ऋतजातमत्या ) सत्य  
से उत्पन्न हुए व्यवहारों में श्रेष्ठ ब्रह्मचारिणी हैं ( ता, या ) उन्हीं का आप लोग  
गृहाश्रम के लिये प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के साथ प्रातर्वेला  
सदा वर्तमान है वैसे ही स्वयंवर जिन्होंने किया ऐसे स्त्री पुरुष यशस्वी और सत्य  
आचरण वाले होवें ॥ ७ ॥

ता जा चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।  
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गुवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( पुरस्तात् ) पुरस्तात् कृत ब्रह्मचर्य परीक्षा अर्थात्  
प्रथम ब्रह्मचर्य की परीक्षा जिनकी की ऐसी ( समानतः ) सदृश पतियों से ( समना )  
तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाली ( ऋतस्य ) सत्य की ( देवी ) जाननेवाली  
पण्डिता ( पप्रथाना ) विन्तीर्ण विद्या और मौन्दर्य आदि गुणयुक्त कन्या ( सवसः )  
श्रेष्ठ पुरुषों को ( बुधाना ) ज्ञान से जगानी ( उवसः ) प्रातर्वेलाओं के ( समना )  
समान और ( गवां ) गौओं के ( सर्गाः ) उत्पन्न हुए बुन्दों के ( न ) समान  
( आ, चरन्ति ) आचरण करती और ( जरन्ते ) स्तुति करती हैं ( ता ) उनको  
विवाहो ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो शिक्षा को ग्रहण किये हुए रूप और कान्ति आदि उत्तम गुणों से युक्त विदुषी ब्रह्मचारीणी कन्या हाव उन्नी को वधायोग्य विवाहा ॥८॥

अब स्त्रियों के लिये उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता इन्वे॑ व सम॑ना सम॑नोरमीतवर्णा॑ उपम॑धरन्ति ।

गू॒हन्ती॑रभ्व॒मसितुं॑ रु॒शद्भिः॑ शु॒क्रास्त॑नूभिः शु॒चयो॑ रु॒चानाः॑ ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जो ( अमीतवर्णा ) विद्यमान वर्ण वाली ( समना ) तुर्य ( समानी ) तुर्यविचारणीय ( रुशद्भिः ) नाश करनेवाले गुणों से ( अश्वम् ) बड़े ( अमितम् ) निकृष्ट वर्ण वाले अन्धकार को ( गूहन्ती ) ढापनी हुई ( तनूभिः ) विम्बुन शरीरों से ( शुक्रा ) कान्तिमयी और ( शुचाय ) पवित्र ( रुचाना ) प्रीति करनेवाली ( उचस ) प्रभात बलाघो के सदृश ( चरन्ति ) चलती है ( ता ) वे ( इत् ) ही ( नु ) शीघ्र ( एव ) ही जैसे मुख देती है वैसे सब को सुखी करो ॥९॥

भाषार्थ—जो स्त्रियाँ प्रातर्वेला के सदृश मुख को नाश करनेवाली और मुख को उत्पन्न करनेवाली हा वे ही आनन्द देने वाली हों ॥९॥

अब अगले मन्त्र से स्वयंवर विवाह कहा है—

र॒यिं दि॒वो दु॒हितरो॑ वि॒भ्रातीः॑ प्र॒जाव॑न्तं यच्छ॒तास्मासु॑ दे॒वीः ।

स्यो॒नादा॑ वः प्र॒तिबु॑ध्यमानाः सु॒वीर्य॑स्य प॒तयः॑ स्याम । १०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( विष ) सूर्य की ( विभ्राती ) प्रकाश करती हुई ( दुहितर ) कन्याओं के सदृश वर्तमान किरणों प्रकाश का देती है । हे ( देवी ) विदुषीयो वस ( अस्मासु ) हम लोग में ( स्योनात् ) मुख से ( प्रजावन्तम् ) बहुत प्रजायुक्त ( रयिम् ) धन का ( आ, यच्छत ) ग्रहण करा ( व ) तुम को ( प्रतिबुध्यमाना ) प्रतिबोध करात हुए हम लोग ( सुवीर्यस्य ) उत्तम पराक्रम युक्त सेना के ( पतय ) स्वामी ( स्याम ) होंगे ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो कन्या प्रभात वेला के सदृश उत्तम प्रहार शोभित मुख का उत्पन्न करती है उनके साथ स्वयंवर विवाह में ही मनुष्य श्रीमान् होते हैं ॥१०॥

अब पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तद्यो॑ दि॒वो दु॒हितरो॑ वि॒भ्रातीरु॑प॒ ब्रुव॑ उ॒पसो॑ य॒ज्ञकेतुः॑ ।

व॒यं स्या॑म य॒ज्ञसो॑ जनेषु॒ तद् द्यौश्च॑ ध॒त्तां पृ॒थिवी॑ च॒ देवी॑ ॥११॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( विभ्राती ) प्रकाश करती हुई ( विष ) प्रकाश की ( दुहितर ) कन्याओं के सदृश वर्तमान ( उचस ) प्रातर्वेला के सदृश स्त्रियाँ ( व ) आप लोग का जो विषय कह ( तत् ) उसको ( यज्ञकेतु ) यज्ञ का जनानेवाला मैं आप लोग का ( उप, ब्रुवे ) उपदेश देता हूँ जैसे ( तत् ) गका ( देवी ) प्रकाश ( द्यौ ) बिजली ( व ) और ( पृथिवी, व ) भी ( धत्ताम् ) धारण करे वैसे ( वयम् ) हम लोग ( जनेषु ) विद्वानों में ( यज्ञस ) गणेश्वी ( स्याम ) होंगे ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो परम्पर जनों का उपदेश देकर गत्य का ग्रहण कराने हैं वे सूर्य के सदृश प्रकाश करने और भूमि के सदृश प्रजा का धारण करनेवाले होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में प्रातःकाल स्त्री और पुरुष के गुण कम वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की गिछने सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह इक्ष्वाकनवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तचंस्य त्रिपञ्चाशत्समस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । उषा देवता ।

१-६ निषुज्जगती । ५, ७ गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

अब सात ऋचावाले बायनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में

उषा की सुख्यता से स्त्री के गुणों का वर्णन करते हैं—

प्र॒ति प्या॑ सु॒नरी॑ जनीं॒ व्युच्छ॑न्ती परि॒ स्वसुः॑ ।

दि॒वो अ॒र्दशि॑ दु॒हिता ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( विष ) सुन्दर ( स्वसु ) भगिनो की ( जनी ) उत्पन्न करनेवाली ( सुनरी ) उत्तम पहुँचाती और ( परि, व्युच्छन्ती ) सब आर से निवास देती हुई ( दुहिता ) कन्या के सदृश वर्तमान प्रातर्वेला ( प्रति, अर्दशि ) एक के प्रति एक देखी जाती है ( स्या ) वह जागे हुए मनुष्य से दयन योग्य है ॥१॥

भाषार्थ—वही स्त्री श्रेष्ठ, जो प्रातर्वेला के सदृश वर्तमान है ॥१॥

अथैव चित्रारूपा माता गवांमृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( चित्रा ) अद्भुत गुण कम और स्वभावयुक्त ( अरूपा ) ईषत् लाल वर्ण ( आतावरी ) बहुत मत्स्य का प्रकाश करनेवाली ( उषा ) प्रातर्वेला ( अश्विनो ) घोड़ी के सदृश वर्तमान ( अश्विनो ) सूर्य और चन्द्रमा की ( सखा ) मित्र ( अभूत् ) हुई वह ( गवाम् ) किरणों की ( माता ) माता के सदृश पालन करनेवाली जाननी चाहिये ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो माता और मित्र के सदृश वर्तमान प्रातर्वेला है वह युक्ति से सब पुरुषों से सेवन करने योग्य है ॥२॥

उ॒त सखा॑स्यश्विनो॒रुत॑ मा॒ता गवा॑मसि । उ॒तोपो॑ व॒र्ष ई॒शिषे ॥३॥

पदार्थ—हे ( उष ) प्रातर्वेला के सदृश वर्तमान सुन्दर स्त्री ! तू अपने पति की ( सखा ) मखी के सदृश वर्तमान ( असि ) है ( उत ) और ( अश्विनो ) सूर्य और चन्द्रमा के सदृश अस्यापक और उपदेश की मखी ( असि ) है ( उत ) और ( गवाम् ) किरण वा गोओं की ( माता ) माता ( उत ) और ( वत्स ) धन की ( ईशिषे ) दृष्टा करती है ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वही स्त्री सुख देनेवाली जो मित्र के सदृश आज्ञा मानन और सेवा करनेवाली है वही प्रातर्वेला के सदृश कुल की प्रकाशिका हानी है ॥३॥

फिर स्त्रीगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

या॒वय॑द् द्वे॒षसं॑ त्वा चि॒कित्स्वित्स्मृ॑ताव॒रि । प्र॒ति स्तोमै॑रभू॒त्सम॑हि ॥४॥

पदार्थ—हे ( चिकित्सित ) जनाने और ( स्मृतावरि ) मत्स्यवाणी का प्रकाश करनेवाली स्त्री हम लोग ( स्तोम ) प्रशंसाओं से ( यावयद्द्वेषसम् ) द्वेष करनेवाले का पृथक् करनेवाली ( त्वा ) तुमको ( प्रति, अभूत्समहि ) जाने ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो कभी द्वेष और द्वेष करनेवाले के सङ्ग का नहीं करती और मत्स्यवाणी और प्रशमायुक्त है वही स्त्री श्रेष्ठ है ॥४॥

अब स्त्रियों की उत्तम व्यवहारों से प्रशंसा कहते हैं—

प्र॒ति भ॒द्रा अ॒दृक्ष॑त॒ गवां॑ सर्गा॒ न र॒श्मयः॑ । ओ॒पा अ॒ग्रा उ॒रु ज॒यः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( उरु ) बड़ा ( अय ) अत्यन्त तज स्वरूप मण्डल को ( रश्मय ) किरणों के ( न ) सदृश ( भद्रा ) कल्याण करनेवाली ( गवाम् ) पृथिवियों की ( सर्गा ) मूर्ष्टिया, रचना ( प्रति, अदृक्षत ) प्रति समय देखी जाती है जैसे ( उषा ) प्रभातवेला उन को ( आ, अग्रा ) व्याप्त होती है वैसे स्त्री हो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो स्त्रियाँ किरणों के समान उत्तम व्यवहारों का प्रकाश करती हैं वे निरन्तर कल्याण के लिये कुल की उत्पत्ति करने वाली हानी है ॥५॥

अब उषा के तुर्य स्त्रियों के कसव्य कामों को कहते हैं—

आ॒प॒प्रुषी॑ वि॒भाव॑रि॒ व्याव॑ज्योति॒षा तमः॑ । उ॒षो अ॒नु स्व॑धाम॒व ॥६॥

पदार्थ—हे ( उष ) प्रभात वेला के सदृश उत्तम प्रकाश और ( विभावरी ) प्रशमित बिम्ब प्रकाश से युक्त उत्तम गुणवाली स्त्री ( आपप्रुषी ) सब आर से सर्व विद्याओं का व्यापक ( व्यावज्योतिषा ) प्रकाश में ( तम ) अन्धकार के सदृश दापो की ( वि, आव ) विगतर्क्षा अर्थात् रखने के बिन्दु निकाल और ( अनु, स्वधाम् ) अनुकूल अन्न आदि की ( अय ) रक्षा कर ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभात वेला अपने प्रकाश से अन्धकार का निवारण करती है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्रियाँ अपने उत्तम स्वभाव से दापो का निवारण करके उत्तम प्रकार सम्पाद्युक्त अन्न आदि से सबकी उत्तम प्रकार रक्षा करे ॥६॥

आ॒ द्यां त॑नोषि॒ रश्मि॑भिर्गान्तरिक्षमु॒रु प्रिय॑म् ।

उ॒पः शु॒क्रेण॑ शोचि॒षा ॥७॥३॥

पदार्थ—हे ( उष ) प्रभात वेला के सदृश वर्तमान स्त्री ! जैसे प्रभातवेला ( रश्मिभिः ) किरणों से ( द्याम् ) प्रकाश और ( उरु ) बहुत ( आ, अन्तरिक्षम् ) सब आर से अन्तरिक्ष को प्रकाशित करती है वैसे ही तू ( शुक्रेण ) शुद्ध ( शोचिषा ) प्रकाश में ( प्रियम् ) सुन्दर पति का ( आ, तनोषि ) विगतर्क करती अर्थात् पति की कीर्ति बढ़ानी है इसमें संसार करने योग्य है ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वही स्त्री बहुत सुख को प्राप्त हानी है जो विद्या विनय और उत्तम स्वभावार्थिका में अपने पति को नित्य प्रगल्भ करती है ॥७॥

इस सूक्त में प्रभात वेला के सदृश स्त्रियों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बायनवां सूक्त और तृतीय वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तचंस्य त्रिपञ्चाशत्समस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । सविता देवता ।

१, ३, ६, ७ निषुज्जगती । २ विराड्जगती । ४ स्वराड्जगती ।

५ जगती छन्द । निषाव स्वर ॥

अब सात ऋचा वाले त्रैपतवें सूक्त का आरम्भ है, इस में

सविता परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं—

तदे॒वस्य॑ स॒वितु॑र्वार्यं॒ मह॑द्गु॒णीम॑हे अ॒सुर॑स्य॒ प्रचे॑त्तसः ।

छ॒दि॒र्येन॑ दा॒शुषे॑ यच्छा॒ति त्म॑ना त॒न्नो म॒हो॑ उ॒द॒यान्दु॑र्बो अ॒क्तु॑ वि॒ः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस ( सचित् ) ब्रह्म आदि की उत्पत्ति करनेवाले ( देवस्य ) निरन्तर प्रकाशमान ( प्रवेत्तस्य ) जनानेवाले ( असुरस्य ) मेघ के ( अहम् ) बड़े ( बाह्यम् ) स्वीकार करने योग्य पदार्थों वा जलों में उत्पन्न ( जलः ) गृह का ( अणीमहे ) स्वीकार करते हैं ( तत् ) उसका आप लोग स्वीकार करो ( येन ) जिस कारण से विद्वान् जन ( त्वना ) आत्मा से ( बाह्यम् ) दाता जन के लिये स्वीकार करते योग्यो वा जलों में उत्पन्न हुए बड़े गृह को ( यच्छति ) देता है ( तत् ) उसको ( महात् ) बड़ा ( देवः ) प्रकाशमान होता हुआ ( अस्तुभि ) रात्रियों से ( नः ) हम लोगों के लिये ( उत्, अद्याम् ) उत्कृष्टता से देवे ॥१॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन मेघ और सूर्य के सम्बन्ध की विद्या को जानते हैं वे दिन और रात्रियों में बड़े कार्य को सिद्ध कर के धामन्दित होते हैं ॥१॥

द्विषो भर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्वापि प्रति मुञ्चते कविः ।

विष्वक्पुनः प्रथयत्पुनर्बुधोर्जनत्सविता सुम्नसुधर्म्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो यह ( विष ) प्रकाश और ( भुवनस्य ) अनेक भूगोलों से धनङ्कृत धर्मात् शोभित संसार का ( भर्ता ) धारण करनेवाला ( प्रजापतिः ) प्रजा का पालनकर्ता ( कविः ) तेजयुक्त दर्शनवाला ( पिशङ्गम् ) विविध रूपवाले ( द्वापिम् ) कवच को ( प्रति, मुञ्चते ) त्याग करना है और ( विष्वक्पुनः ) अनेक प्रकार से पदार्थों का प्रकाश करनेवाला ( प्रथयत् ) विस्तार करता और ( अपुनः ) सब प्रकार से पूर्ण करता हुआ ( सविता ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त करनेवाला वा समर्थ ऐश्वर्यों के देने का निमित्त ( उच ) बहुत ( उन्म्यम् ) प्रशंसा करने योग्य ( सुम्नः ) सुख को ( अजीवन्त् ) उत्पन्न करता है वह आप लोगों को यथावत् जानने योग्य है ॥२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने प्रजा के धारण प्रकाश और पालन के लिये सूर्य बनाया उसी परमेश्वर की उपासना करके बहुत सुख को प्राप्त होइये ॥ २ ॥

आप्रा रजोसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्ममे ।

प्र बाहू अस्त्रावसविता सर्वाभनि निवेशयन्सुबन्नुक्तु मिर्जगत् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सविता ) सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न करनेवाला ( देवः ) प्रकाशमान विद्वान् ( सर्वाभनि ) बड़े ऐश्वर्यों में ( अस्तुभि ) रात्रियों के साथ ( जगत् ) सम्पूर्ण संसार को ( निवेशयन् ) प्रवेश कराता और ( सुबन् ) उत्पन्न करता हुआ ( बाहू ) भुजाओं को ( अस्त्राव् ) उत्पन्न करता वह विद्वान् ( स्वाय ) अपनी ( धर्मम् ) धर्म की उन्नति के लिए ( श्लोकम् ) शलाका प्रशंसा करने योग्य बाणी को ( प्र, कृणुते ) उत्पन्न करता, परमात्मा और ( दिव्यानि ) शुद्ध ( पार्थिवा ) पृथिवी में विदित ( रजोसि ) लोको को ( आप्रा, अस्त्रा ) व्याप्त होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सम्पूर्ण जगत् में अभिव्याप्त हो और उस जगत् को रक्ष के धर्म और वेदवाणी का प्रचार करके संसार को व्यवस्थापित अर्थात् जैसा चाहिए वैसा नियत करता उसी को सबका स्वामी जानके निरन्तर उपासना करो ॥ ३ ॥

अदाम्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सवितामि रक्षते ।

प्राज्ञाग्बाहू भुवनस्य प्रजाम्यो धृतव्रतो मुहो अजमस्य राजति ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अदाम्यः ) नहीं नष्ट होने योग्य अर्थात् नहीं मन से छोड़ने योग्य ( सविता ) सूर्य ( भुवनानि ) जलों को धारण करनेवाला ( देवः ) सुन्दर ( मुहः ) बड़े ( अजमस्य ) अन्तरिक्ष में छोड़े हुए ( भुवनस्य ) लोक ( प्रजाम्यः ) प्रजाओं के लिए ( व्रतानि ) सत्यभाषण आदि व्रतों को और ( भुवनानि ) लोकोत्पन्न ममस्त वस्तुओं को ( प्राज्ञाकशत् ) प्रकाश करता ( बाहू ) बल और वीर्य की ( प्र, अस्त्राव् ) उत्पन्न करता सब की ( अभि ) प्रत्यक्ष ( रक्षते ) रक्षा करता और ( राजति ) प्रकाश करता है वही सब लोगों को उपासना करने योग्य है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने प्रजाओं में सम्पूर्ण हिन सिद्ध किया और जो भीतर बाहर अभिव्याप्त हाके सब के लिये कर्मों का फल देता है वही निरन्तर ध्यान करने योग्य है ॥ ४ ॥

त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना श्री रजोसि परिभूक्षोणि रोचना ।

तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिष्ठ इन्वति त्रिभिर्ब्रतैश्चि नो रक्षति स्मना ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( परिभू ) सब स्थानों में वर्तमान और सब के ऊपर विराजमान ( सविता ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर ( महि- त्वना ) महिमा और ( स्मना ) आत्मा से ( अन्तरिक्षम् ) भीतर नहीं लाग होने वाले आकाश को ( त्रि ) तीनवार ( इन्वति ) व्याप्त होता ( श्री ) तीन प्रकार के ( रजोसि ) उत्तम मध्यम निम्न लोकों को व्याप्त होता ( त्रिभिः ) तम प्रकार के ( रोचना ) विजुनी भौतिक और सूर्यरूप ज्योतिषों को व्याप्त होता ( तिस्रः ) तीन प्रकार के ( दिवः ) प्रकाशों और ( तिस्रः ) तीन प्रकार की ( पृथिवी ) भूमियों को व्याप्त होता और ( त्रिभिः ) तीन ( ब्रतैः ) नियमों से ( नः ) हम लोगों की ( अभि ) सब ओर से ( रक्षति ) रक्षा करता है वही सर्वदा सेवा करने योग्य है ॥५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर तीन प्रकार के सम्पूर्ण त्रिगुण अर्थात् सत्तागुण रजोगुण तमोगुणस्वरूप जगत् को रच के उत्तम नियमों से पालन करता है उसी की उपासना करो ॥ ५ ॥

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्यात्तुमयस्य यो वशी ।

स नो देवः सविता शर्म यच्छत्यस्मे श्रयाय त्रिवर्क्यमंहसः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( नः ) हम लोगों के लिये ( बृहत्सुम्नः ) अत्यन्त सुख का ( प्रसवीता ) उत्पन्न करनेवाला और ( जगतः ) जङ्गम अर्थात् चेतनता युक्त मनुष्य आदि और ( स्यात् ) स्थिर स्थावर अर्थात् नहीं चलने फिरनेवाले वक्ष आदि जगत् के ( निवेशनः ) निवेश अर्थात् स्थिति का करनेवाला ( उभयस्य ) दो प्रकार के जगत् के ( वशी ) बश करने को समर्थ ( देवः ) दाता जगदीश्वर हम लोगों के लिए विद्या को ( यच्छतु ) देवे ( सः ) वह ( सविता ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त ( अस्मे ) हम लोगों के ( श्रयाय ) निवास के लिये ( बृहत् ) दुःख से अलग हुए ( त्रिवर्क्यम् ) तीन गृह जिसमें उस ( शर्म ) उत्तम प्रकार सुख देनेवाले स्थान को देवे वही हम लोगों का उपासना करने योग्य देव हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सब जगत् का नियामक और सब जीवों के निवास के लिये अनेक प्रकार के स्थान का रचनेवाला है उस को छोड़ के अन्य किसी की भी उपासना न करो ॥ ६ ॥

आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।

स नः क्षुपाभिरहमिध जिन्वतु प्रजावन्तं रयिस्मे समिन्वतु ॥७॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( सविता ) सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न करनेवाला ( देवः ) निरन्तर प्रकाशमान जगदीश्वर ( ऋतुभिः ) बसन्त आदि ऋतुओं से ( नः ) हम लोगों के ( क्षयम् ) निवाम की ( वर्धतु ) वृद्धि करे और हम लोगों को ( आ ) सब प्रकार से ( अगम् ) प्राप्त हो ( सुप्रजाम् ) उत्तम प्रजा और ( इधम् ) अन्न आदि को ( दधातु ) धारण करे ( सः ) वह ( क्षुपाभिः ) रात्रियों और ( अहभिः ) दिनों के साथ ( च ) भी ( नः ) हम लोगों को ( जिन्वतु ) प्रसन्न और आनन्दित करे और ( अस्मे ) हम लोगों के लिये ( प्रजावन्तम् ) बहुत प्रजाओं से युक्त ( रयिम् ) धन को ( सन्, इधम् ) अच्छे प्रकार देवे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा सब दिन सब रात्रियों में सब जगत् की सब प्रकार से रक्षा करता है, सब पदार्थों को रच के हम लोगों के लिये देकर हम लोगों को निरन्तर आनन्दित करता है वह हम लोगों को सदा उपासना करने योग्य है ॥७॥

इस सूक्त में सविता अर्थात् सकल जगत् के उत्पन्न करनेवाले परमात्मा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तिरपनवां सूक्त और चौथा वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथ बृहत्स्य ऋतुःपञ्चाशत्तन्मस्य सूक्तस्य नामदेव ऋषिः । सविता देवता ।

१ भुरिक् ऋष्टुप् । २ निचुत्तिष्टुप् । ३—४ स्वराट् ऋष्टुप् ।

६ ऋष्टुष छन्दः । धैवत स्वरः ॥

अथ ऋक्छावाले चौपमर्षे सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में सविता परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं—

अभूद् देवः सविता बन्धो नु न इदानीमहं उपवाच्यो नृमिः ।

त्रि यो रत्ना मर्जति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( इदानीम् ) इस समय ( अहम् ) दिन के मध्य में जैसे ( नृमिः ) नायक अर्थात् मुखिया मनुष्यों से ( उपवाच्यः ) उपदेश योग्य और ( नः ) हम लोगों के ( बन्धः ) प्रशंसा करने योग्य ( सविता ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को और ( देवः ) सम्पूर्ण सुखों को देनेवाला ( अभूत् ) होता है जा ( नः ) हम ( मानवेभ्यः ) विचारशीलों के लिये ( रत्ना ) रत्न करने योग्य धनों को ( यथा ) जैसे ( त्रि, मर्जति ) बाँटता और ( अत्र ) इस मन्त्र में ( श्रेष्ठम् ) अत्यन्त उत्तम ( द्रविणम् ) धन वा यश का ( नु ) अधिक ( दधत् ) धारण करने वैसे ही हम लोगों को मत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है । नष्ट उनका भाग्य जा सम्पूर्ण ऐश्वर्य और धन के देनेवाले बन्धना करने योग्य तथा स्तुति उपासना और उपदेश करने योग्य परमात्मा को छोड़ के अन्य की उपासना करते हैं ॥ १ ॥

किर ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतस्वं सुवसि भागसुत्तमम् ।

आदिद्वामानं सवितृर्धृष्युषेऽनूचीना जीविता मानवेभ्यः ॥२॥

पदार्थ—हे ( सवितः ) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर ( हि ) जिससे आप ( यज्ञियेभ्यः ) सत्यभाषण आदि यज्ञानुष्ठान करनेवाले ( देवेभ्यः ) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभावयुक्त जीवों के लिये ( प्रथमम् ) पहिले ( भागम् ) भजने योग्य ( उत्तमम् ) श्रेष्ठ ( अमृतम् ) मोक्ष सुख की ( सुवसि ) प्रेरणा करते हो ( आत् ) इसके अनन्तर ( द्वामानम् ) दाता जन को ( त्रि, ऋक्षे ) अपनी व्याप्ति से ढाँपते हो ( अनुचीना ) अनुचर ( जीविता ) जीवनों को ( इत् ) ही ( मानवेभ्यः ) मनुष्यों के लिये देने हो हमसे हम लोगों को उपासना करने योग्य हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा सत्य धाचरण में प्रेरणा करता और मुक्तिसुख को देकर सब को धामन्दित करता है उसी की सदा उपासना करो ॥ २ ॥



अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अर्चिंती यच्चक्रमा दैव्ये जने दीनेर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।  
देवेषु च सवितुर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३॥

पदार्थ—हे (सवित) सम्पूर्ण जगत के उत्पन्न करनेवाले (अर्चिंती) अग्निवा से (प्रभूती) बृहत्त्व से (दीने) क्षीण अर्थात् दुबल (दक्षैः) अतुल्य से और (पूरुषत्वता) उत्तम पुरुषत्वात् से (दैव्ये) विद्वानां मन्त्र (जने) विद्वान् म (देवेषु) विद्वानो (च) और (मानुषेषु) अविद्वानो म (च) भी (यत्) जो कर्म (चक्रमा) हम लागू करे (अत्र) इसमें (न) हम (अनागस) अन-पराधियों को (स्वम्) आप (सुवतात्) प्रशंसा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विद्वानां ! आप लोग, जो हम लोग अविद्या में आप लागू का अपराध करे वह क्षमा करने योग्य है और हम लोगों को अध्यापन और उपदेश में निरपराधी करो ॥ ३ ॥

अब विद्वानों के करने योग्य काम को कहते हैं—

न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्व भुवनं धारयिष्यति ।

यस्पृथिव्या वरिष्ठा स्वङ्गुरिर्वर्मेन्द्रिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥

पदार्थ—हे (वरिष्ठम्) बृहत् गुणा से युक्त (वर्मेन्द्रिवः) धारण करनेवाले विद्वन् (यथा) जैसे (सवितु) सम्पूर्ण ससार के उत्पन्न करनेवाले (दैव्यस्य) श्रेष्ठ पदार्थों में साक्षात् किये गये क मध्यम (यत्) जो (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) ससार को जिसमें प्राणी होते हैं (धारयिष्यति) धारण करवेगा (पृथिव्या) और भूमि के सम्बन्ध में (स्वङ्गुरि) श्रेष्ठ अमृतियों में युक्त इन्द्रवाजा हुआ (अस्य) इस (विश्व) सृष्टि का (यत्) जो (सत्यम्) सत्य (तत्) उसका (सुवति) प्रेरणा करता है (तत्) उसका प्राप्त होकर जैसे म (न) नहीं (प्रमिये) मरण को प्राप्त होऊँ वैसे ही आप (आ) धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वानां ! जो ब्रह्म सब जगत का धारण करता और सूर्य और वायु से धारण करता है, वेद के द्वारा सब सत्य का प्रकाश करता है, उमी की हम लोग उपामना करें ॥ ४ ॥

इन्द्रज्येष्ठान्वृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः अयौ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।

यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सुवायं ते ॥५॥

पदार्थ—हे (सवित) जगदीश्वर आप (यथायथा) जैसे जैसे (वृहद्भ्यः) बड़े (एभ्यः) उन (पर्वतेभ्यः) पर्वतों के (पस्त्यावतः) प्रशान्त गृहों से युक्त (इन्द्रज्येष्ठान्) बिजुनी वा सूर्य बड़े जिनमें उन (अयौ) निवास का (सुवसि) प्रेरणा करते हैं वैसे वैसे (पतयन्तः) पतित के सदृश आचरण करत हुए (एव) ही सब (वि, वियेमिरे) विषय करत दत्त है और (ते) आप के (यथायथा) ऐश्वर्य के लिये (एव) ही (तस्थुः) स्थित रहते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—ह भगवन् ! आप सब जीवों के निवासार्थ व्यवहार के लिये भूमि आदि लाते हैं उसी से आप के नियन्त्रणवादों का सम्पन्न करने तथा आपने ऐश्वर्य में निवास कर ॥ ५ ॥

अब पदार्थोद्देश से ईश्वर की सेवा को कहते हैं—

ये ते विरहन्तसवितः सुवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।

इन्द्रो धावापृथिवी सिन्धुरग्निरादित्येनो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥५॥

पदार्थ—हे (सवित) परमेश्वर (ते) आपके (ये) जो (सवास) उत्पन्न पदार्थ (अहन्) दिन में (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सौभगम्) आरु ऐश्वर्य के होने का (वि) तीनवार (आसुवन्ति) उत्पन्न करता है तथा (अदित्) जलो और (आदित्ये) और महीना के साथ (इन्द्र) सूर्य (धावापृथिवी) प्रकाश भूमि और (सिन्धु) समुद्र भी उत्पन्न करता है वह (अदिति) खण्डरहित परमात्मा आप (न) हम लोगों के लिये (शर्म) सुख को (यंसत्) दीजिए ॥६॥

भावार्थ—ह मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की सृष्टि में हम लोग ऐश्वर्यवाले होने हैं और हम लोगों के रक्षा करनेवाले सम्पूर्ण पदार्थ हैं उमी का हम लोग निरन्तर भजन करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सविता, ईश्वर, विद्वान् और पदार्थों के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलित जाननी चाहिए ॥

वह जीवनार्थ सूक्त और पाँचवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ दशरथस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य दशमोऽध्यायः । विवेकेषा देवता ।

१ प्रियदुप् । २, निष्प्रियदुप् छन्दः । वेदतः स्वरः । ३, ५ भुरिक् पङ्क्तिः । ६, ७ स्वरान् पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ८, ९ विराट् गायत्री । १० गायत्री छन्दः । छन्दः स्वरः ॥

अब दश अध्यायवाले पञ्चपञ्चाशत्तम सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों का वर्णन करते हैं—

को वस्त्राता वसवः को वरुता धावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।

सहीयसो वरुण मित्र मतीत्को वीध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१॥

पदार्थ—हे (वरुण) उत्तम विद्वान् ! अध्यापक (मित्र) सम्पूर्ण मित्रों के उपदेश (सहीयस) अत्यन्त महनवाले बलिष्ठ (नः) हम लोगों के और (वः) आप लोगों के (वध्वरे) सत्य व्यवहार में (क) कौन (मतीत्) मनुष्य से (वरिव) सवन का (धाति) धारण करता है (धावाभूमि) प्रकाश और पृथिवी के सदृश आप दोनों हम लोगों की (त्रासीथां) रक्षा करो । हे (वसवः) रहनेवाले (देवा) विद्वानां ! (वः) आप लोगों का (क) कौन (त्राता) रक्षक है । हे (अदिते) नदी नाश करनेवाले जगदीश्वर ! आप का (क) कौन (वरुता) स्वीकार करनेवाला है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर की आज्ञा का पालन करता है वह परमेश्वर से स्वीकार किया जाता है । हे मनुष्यो ! जो हमारा और आप लोग का रक्षक है वही हम लोगों से सदा करन योग्य है और जो अहिंसा से सब मनुष्यों को विशाल में धारण करने है वह और वे सदा स्तुकार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

प्र ये धामानि पुन्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।

विधातारो वि ते ध्रुवर्जसा श्रुतधीतयो रुचन्त दुस्माः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (पुन्याणि) प्राचीन जनों से प्रत्यक्ष किये गये (धामानि) जन्म नाम स्थानों का (प्र, अर्चान्) उत्तम स्तुकार करे और (यत्) जो (अमूराः) नही मृत्यु (विधातारः) विभाग करनेवाले जन प्राचीन जनों से प्रत्यक्ष किये गये जन्म नाम स्थानों का (वि, उच्छान्) विवास करावे और जो (अजसा) नही हिंसा करने और (श्रुतधीतयो) सत्य के धारण करनेवाले (विधातार) निर्माणकर्ता (दुस्मा) दुष्टों के विनाशक जन (रुचन्त) उत्तम प्रकार शांति होते हैं (ते) वे निरन्तर (वि, वधु) विधान करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो यथावत्का सब के सुख की इच्छा करनेवाले विद्वान् जन हो वे ही सब के सब सुखों के करन योग्य होंगे ॥ २ ॥

अब विद्वानों के विषय में गृहस्थ के कर्म को कहते हैं—

प्र पस्त्यामदिति सिन्धुमकैः स्वस्तिमांके सूर्याय देवीम् ।

उमे यथा नो अहनी निपात उपासान्तां कर्तुमदन्वे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे (उमे) दोनों (अहनी) रात्रि और दिन (उपासान्तां) रात्रि और दिन का (अदन्वे) नही हिनित (कर्तुम्) करे वैसे (नः) हम लोगों का अर्थात् अपना (निपात) अतिशय पालन करनेवाला मैं (अहं) मन्त्रों से (अदितिम्) खण्डरहित (पस्त्याम्) गृह और (सिन्धुम्) नदी की (स्वस्तिम्) मुख की और (सूर्याय) मित्रपते के लिये (देवीम्) सुन्दर विद्यायुक्त स्त्री की (प्र, ईदं) विशेष इच्छा करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—एक मन्त्र में उपमानद्वार है । जैसे रात्रि और दिन मिले हुए वस्तुत्व कर के सम्पूर्ण व्यवहार में कारण होते हैं वैसे हम दोनों विशेष करके हित चाहते हुए मित्र के सदृश वस्तुमान स्त्री और पुण्य उत्तम गृह और बृहत् सत्य की सदा उन्नति कर ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्भिषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

व्ययमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।

इन्द्राविष्णू नृवद् पु स्तवाना क्षम्मं नो यन्तममवदकथम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (व्ययमा) न्यायकर्ता और (वरुण) श्रेष्ठ पुण्य (पन्थाम्) धर्मसम्बन्धी मार्ग को (वि, चेति) विषय कर जानता है (गातुम्) पृथिवी का (अग्नि) अग्नि जैसे वैसे वस्तुमान (इव) अन्न आदि का (पति) स्वामी (सुवितम्) उत्तम प्रकार उत्पन्न किये गये का विशेष कर जानता है । और हे अध्यापकापदेशक ! आप दोनों (इन्द्राविष्णू) बिजुनी और वायु के सदृश (स्तवाना) सत्य की प्रशंसा करनेवाला (नृवद्) प्रधान पुण्य के सदृश (उ) और (नः) हम लोगों के (अमवत्) प्रणस्तरूप से युक्त (क्षम्मं) सुख और (वरुणम्) गृह का (सु, यन्तम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होना ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिन स्वायकारी विद्वान् लोग धर्मसम्बन्धी मार्ग का त्याग करके धर्मसम्बन्धी मार्ग में चलते हैं वैसे आप लोग भी चलें ॥ ४ ॥

आ पर्वतस्य मरुतामवासि देवस्य त्रातुरग्नि मगंस्य ।

पात् पतिर्जन्यादहंसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं (पर्वतस्य) मेघ के (देवस्य) उत्तम सुख प्राप्त करनेवाले के (मगंस्य) ऐश्वर्य के (त्रातु) रक्षा करनेवाले और (मरुताम्) मनुष्यों के (अवासि) अनेक प्रकार रक्षणों का मैं (आ, अग्नि) स्वीकार करता हूँ वैसे (पति) स्वामी आप (नः) हम लोगों की (अमवत्) उत्पन्न होनेवाले (मरुत) अपराध में (पात्) रक्षा करो और (नः) हम लोगों को (उत्) तो (मित्र) मित्र (मित्रियात्) मित्र से (उरुष्येत्) सेवन करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य के जानने और उसके आचरण करने की इच्छा करें व सत्य जान को प्राप्त होकर सत्य के आचरण करनेवाले हों ॥ ५ ॥

न रौदसी अहिना बुध्यन्ते स्तुवीत देवी अप्येमिरिष्टैः ।

समुद्रं न सुञ्चरणे सन्निप्यन्ते धर्मस्वरसो नद्योऽर्पन् ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( अर्धस्वरसः ) यज्ञ मे अपने रसवाले आप जैसे ( इष्टे ) मिलने और प्राप्त होने योग्य ( अर्धेभिः ) जल मे उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ ( समिधम् ) विभाग करती हुई ( नद्यः ) नदियाँ ( सङ्घरस्य ) सुन्दर गमन में ( समुद्रम् ) अन्तरिक्ष के ( न ) तुल्य ( अप, वत् ) डीपती हैं वैसे ( बुध्मेन ) अन्तरिक्ष मे हुए ( अहिमा ) मेघ के सहित ( देवी ) प्रकाशमान ( रोहसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी की ( नृ ) शीघ्र ( स्तुती ) प्रशंसा करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे मेघों के जलो से पूर्ण नदियाँ आबरणों को काट कर अन्तरिक्ष मे जलो का प्राप्त होती हैं वैसे ही आप लोग विद्या की दीप्ति को प्राप्त होकर सब विद्याओं की प्रशंसा करो ॥ ६ ॥

हे वैर्नो दुव्यदित्तिर्नि पातु देवज्ञाता त्रायतापप्रयुच्छन् ।  
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्त्वये ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे हम लोग ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ पुरुष ( मित्रस्य ) मित्र और ( अग्ने ) अग्नि के ( साधु ) शिखर और ( धासिम् ) अन्न के ( प्रमियम् ) नाश करने को ( नहि ) नहीं ( अहामसि ) योग्य होते हैं वैसे ( वैर्नः ) विद्वानों वा पृथिवी आदिको के साथ ( देवी ) प्रकाशमान विद्यायुक्त माता ( अविस्ति ) अलक्षित-ज्ञानवाली ( नः ) हम लोगों की ( नि, पातु ) रक्षा करे और ( अप्रयुच्छन् ) नहीं प्रमाद करता हुआ ( ज्ञाता ) रक्षा करनेवाला ( देव ) विद्वान् पिता हम लोगों का ( त्रायताम् ) पालन करे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि किसी मज्जन वा किसी पदार्थ का नाश और नशा करनेवाले द्रव्य का सेवन सदा ही न करे और सदा विद्वानों और माना पिता की शिक्षा को ग्रहण करे ॥ ७ ॥

अग्निर्गो वसुव्यस्याग्निर्मुहः सौमगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( अग्नि ) अग्नि के सदृश पुरुषार्थी ( वसुव्यस्य ) धनो मे श्रेष्ठ का और जैसा ( अग्निः ) अग्नि ( सह ) बड़े ( सौमगस्य ) उत्तम ऐश्वर्य के होने की ( ईसे ) एकछटा करता है ( तानि ) उनको ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिये ( रासते ) दता है वैसे आप करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे विद्या से उपजित अर्थात् वश मे किया गया अग्नि, काव्यों को सिद्ध कर के बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त करता है वैसे ही सेवा क्रिय गये आप लोग विद्या और उपदेश आदि काव्यों को सिद्ध कर के सब को ऐश्वर्ययुक्त करो ॥ ८ ॥

उषो मघोन्या बहु स्रुते वार्या पुरु । अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९॥

पदार्थ—हे ( उष ) प्रातः काल के सदृश वर्तमान ( स्रुते ) सत्यवाणीयुक्त ( मघोनि ) प्रशंसित धन की करनेवाली ( वाजिनीवति ) उत्तम विद्या से युक्त पत्नी ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिये ( पुरु ) बहुत ( वार्या ) वर्तमान मे लाने योग्य वस्तुओं को ( आ, बहु ) सब प्रकार से प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला सब जीवों की प्रिय कामवाली है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री सब का प्रिय होती है ॥ ९ ॥

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्युमा ।

इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥ १० ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( सविता ) सूर्य ( भग ) सेवन करने योग्य पदार्थ समुदाय ( वरुण ) उदानवायु ( मित्र ) प्राणवायु ( अर्यमा ) न्यायकारी ( तत् ) उस ( राधसा ) धन मे ( नः ) हम लोगों को ( आ ) सब प्रकार ( गमत् ) प्राप्त होता और ( इन्द्र ) बिजुली ( न ) हम लोगों को ( सु ) उत्तम प्रकार प्राप्त होती है वैसे आप हूजिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे ग्रह्यापक और उपदेशक जनों ! जैसे नियम स सूर्य वायु प्राण आदि और बिजुली प्राप्त हैं वैसे ही आप हम लोगों को निरन्तर प्राप्त हूजिये ॥ १० ॥

इस सूक्त मे विद्वानों के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चमर्चा सूक्त और सप्तम चर्चा समाप्त हुआ ॥

ॐ

अब सप्तमर्चस्य वदपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य धामदेव ऋषिः । छावापृथिवी देवते ।

१, २ त्रिष्टुप् । ४ त्रिराट् त्रिष्टुप् छन्दः । वेदः । ३ कुण्ड

पङ्क्तिस्तद्वच्छन्दः । मन्त्रान् स्वरः । ५ त्रिष्टुप्गायत्री । ६ त्रिराट्

गायत्री । ७ गायत्री छन्दः । वद्वज् स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छप्पनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से छावापृथिवी अर्थात् प्रकाश और भूमि के गुणों को कहते हैं—

मूही छावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयन्निरुक्तैः ।

यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वद्बभ्रुषा पप्रधानेभिरेवैः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत् ) जो ( विमिन्वद् ) विशेष करके फँकता हुआ ( वभ्रु ) प्रशंसित शब्दवान् जैसे ही वैसे ( इ ) ही ( उवा ) सूर्य के समान विद्वान् ( इह ) यहाँ ( सीम् ) सब ओर से ( शुचयन्निः ) पवित्र करने हुए ( अर्क ) सेवा करने योग्य और ( पप्रधानेभिः ) अत्यन्त विस्तारयुक्त ( एवै ) सुख को प्राप्त करनेवाले गुणों के साथ वर्तमान ( वरिष्ठे ) अतीव श्रेष्ठ ( बृहती ) बड़ते हुए ( मही ) बड़े ( ज्येष्ठे ) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य ( रुचा ) रुचिकार ( छावापृथिवी ) सूर्य और भूमि ( भवताम् ) होते हैं उनको यथावत् विशेष करके जानता है वही सबका कल्याण करनेवाला होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पृथिवी से लेके सूर्यपर्यन्त पदार्थों को जानते हैं वे धनवान् होकर सबको सुखी करें ॥ १ ॥

देवी देवेभिर्यजते यज्ञत्रैर्मिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।

अज्ञातवरी अद्रहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयन्निरुक्तैः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( अक ) सत्कार करने योग्य ( शुचयन्निः ) पवित्रता को कहते हुए ( यज्ञत्रै ) मिलने योग्य ( देवेभिः ) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों से जो ( देवी ) प्रकाशमान ( अमिनती ) नहीं हिसा करनेवाले ( अज्ञातवरी ) बहुत सत्य से युक्त ( अद्रहा ) नहीं ड्रोह करने योग्य ( देवपुत्रे ) विद्वान् जन पुत्र जिनके वे ( यज्ञस्य ) ससार के व्यवहार के ( नेत्री ) चलानेवाले ( उक्षमाणे ) सब प्राणियों को सुखों से सींचते हुए ( यजते ) मिलने योग्य सूर्य और भूमि ( तस्थतुः ) स्थित होते हैं उनको जान के जो व्यवहारों मे सयुक्त करता है वही भाग्यशाली होता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पृथिवी से लेके प्रकृति अर्थात् प्रधानपर्यन्त पदार्थों को उनके गुण कर्म स्वभाव से यथावत् जानके कार्य की सिद्धि के लिये सम्प्रयोग करते हैं वे सदा ही भाग्यशाली होते हैं ॥ २ ॥

स इत्स्वपा भवनेष्वासु य इमे छावापृथिवी ज्ञानं ।

उर्वी गभीरे रजसो सुमेकं अवशे धीरुः शक्या समैरत् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोगों को ( यः ) जो ( स्वपाः ) श्रेष्ठ कर्मों से युक्त ( धीर ) धीर जगदीश्वर ( भवनेषु ) लोको मे ( आस ) विद्यमान है ( इमे ) इन ( उर्वी ) बहुत पदार्थों से युक्त ( गभीरे ) गाम्भीर्य आदि गुण सहित ( रजसो ) रजोबुन्दों मे बनाय गये ( सुमेकं ) एक हुए अर्थात् परस्पर सम्बन्ध युक्त ( अवशे ) वश अर्थात् उत्पत्तिक्रम से आगे को रहित और अन्तरिक्ष मे स्थित ( छावापृथिवी ) सूर्य और भूमि को ( ज्ञानं ) उत्पन्न किया ( शक्या ) बुद्धि से ( समैरत् ) कम्पाता अर्थात् क्रम से अनुकूल चलाता है ( स, इत् ) वही सदा उपासना करने योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने असंख्य भूमि आदि लोक आकाश मे रचे और व्यवस्था से वे चलाये हैं वह सदा ही उपासना करने योग्य है ॥ ३ ॥

न गेदसी बृहन्निर्नो वरुणैः पत्नीवद्विद्विष्यन्ती सुजोषाः ।

उरुची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( सजोषा ) तुल्य प्रीति का सेवन करनेवाला विद्वान् ( धिया ) बुद्धि वा कर्म मे जा ( इष्यन्ती ) सुख को प्राप्त कराती हुई ( उरुची ) बहुलो का आदर करनेवाली ( विश्वे ) अन्तरिक्ष मे प्रविष्ट ( यजते ) मिलने योग्य और ( बृहन्निः ) जो बड़े ( पत्नीवद्विः ) बहुत स्त्रिया मे युक्त ( वरुणैः ) उत्तम गृह उनके साथ वर्तमान ( रोहसी ) सूर्य और पृथिवी ( न ) हम लोगों की ( नि ) प्रत्यन्त ( पातम् ) रक्षा करती है उनको जानता है वैसे इनको जानके हम लोग ( रथ्यः ) बहुत रथ आदि से युक्त ( सदासाः ) सेवकों के सहित ( नृ ) शीघ्र ( स्याम ) होंगे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य बहुत और बड़े पदार्थों से युक्त बिजुली और भूमि को विशेष करके जानते हैं वे शीघ्र लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ४ ॥

अब शिल्प विद्या की शिक्षा को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्र वां महि धर्वा अम्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रवृत्तये ॥५॥

पदार्थ—हे शिल्प विद्या मे प्रवीणो ! जिससे हम लोग ( प्रवृत्तये ) प्रशंसित ( शुची ) पवित्र ( महि ) महागुण युक्त ( धर्वा ) प्रकाशमान को ( अग्नि, उष, प्र, भरामहे ) सब ओर से अच्छे प्रकार धारण करते हैं इससे ( वाम् ) आप दोनों अध्यापक और किया करनेवालों की ( उपस्तुतिम् ) उपमायुक्त प्रशंसा करते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जिनके समीप से शिल्प आदि विद्या ग्रहण की जाती है उन का आदर मनुष्य सदा करें ॥ ५ ॥

पुनाने तन्वां मिथः स्वेन दक्षेण राजयः । उवाथे सनादतम् ॥६॥

पदार्थ—जो शिल्पविद्या के पढ़ाने और पढ़नेवाले ( स्वेन ) अपने ( दक्षेण ) बलयुक्त ( तन्वा ) शरीर से ( पुनाने ) पवित्र करनेवाली सूर्य और पृथिवी को जान के ( मिथः ) परस्पर ( राजयः ) शोभित होते हैं और ( सनात् ) सनातन से ( उवाथे ) सत्य का ( उवाथे ) ऊहापोह करते हैं वे सत्कार के योग्य होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो शिल्प विद्या में निपुण होते हैं उनका मत्कार यथायोग्य राजा आदि को करना चाहिये ॥ ६ ॥

फिर शिल्पविद्या विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**इही मित्रस्य साधयस्तरन्ती पिप्रती श्रुतम् ।**

**परि यज्ञं नि वेदधुः ॥७॥८॥**

पदार्थ—हे विद्वानो जो ( तरन्ती ) दुःख से पार उतारती और ( पिप्रती ) सम्पूर्ण आनन्द को पूर्ण करती हुई ( मही ) बड़ी सूर्य और पृथिवी ( श्रुतम् ) सत्य-कारणरूप ( यज्ञम् ) सग करने अर्थात् आरम्भ करने योग्य यज्ञ को ( परि ) सब प्रकार से ( नि, वेदधुः ) मित्र करती और ( मित्रस्य ) सबके मित्र के कार्यों को ( साधय ) सिद्ध करती उन सूर्य और भूमि को यथावत् जान के उनका सयोग करो अर्थात् काम में लाओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए सबके आधारभूत सब कार्य सिद्ध करनेवाली सूर्य और पृथिवी को जानके अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करे ॥ ७ ॥

इस सूक्त में सूर्य और पृथिवी के गुण और शिल्पविद्या शिक्षा वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥ ७ ॥

यह छप्पनवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथाष्टर्चस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः ॥ १-३ क्षेत्रपतिः ।

४ शुभ । ५, ८ शुनासीरी । ६, ७ सीता देवता । १, ४, ६, ७ अनुष्टुप् छन्द । गान्धारः स्वर । २, ३, ८ त्रिष्टुप् छन्द । वैवत स्वर ।

५ पुर उष्णिक् छन्द । ऋचम स्वर ।

अब आठ ऋचावाले सप्तावर्ग सूक्त का आरम्भ है,

इसमें कृषिकर्म को कहते हैं—

**क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।**

**गामर्थं पोषयित्वा स नो मृळतीदृशे ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ( क्षेत्रस्य ) अन्न की उत्पत्ति के आधारस्थान अर्थात् क्षेत्रके (पतिना) स्वामी से (वयम्) हम लोग (हितेनेव) हित की सिद्धि करने वाली सेना के सदृश ( गाम् ) पृथिवी ( अश्वम् ) घोड़ा ( पोषयितु ) और पुष्टि करनेवाले इव्य को ( जयामसि ) जीतते हैं ( सः ) वह क्षेत्र का स्वामी ( ईदृशे ) ऐसे में ( नः ) हम लोगो को ( आ, मृळति ) मुख देवें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे उत्तम प्रकार शिखित और अनुरक्त सेना से वीरजन विजय को प्राप्त होते हैं वैसे ही कृषि अर्थात् क्षेत्रीकर्म में चतुर जन ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

**क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूमि घेनुरिव पर्यो अस्मासु धुक्ष्व ।**

**मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥२॥**

पदार्थ—हे ( क्षेत्रस्य ) अन्न के उत्पन्न होने की आधारभूमि के ( पते ) स्वामी ! जैसे ( श्रुतस्य ) सत्य के ( पतय ) स्वामी ( घृतमिव ) घृत के सदृश ( मधुश्चुतम् ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( सुपूतम् ) उत्तम प्रकार पवित्र विज्ञान को प्राप्त होकर ( नः ) हम लोगो को ( मृळयन्तु ) मुख दीजिए तथा ( घेनुरिव ) गौ के सदृश ( मधुमन्तम् ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( अस्मिन् ) जलधारा और ( पयः ) दुग्ध का ( अस्मासु ) हम लोगो में ( धुक्ष्व ) पूरा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बुद्धिमान् लेनी करने-वाले जन सुन्दर शुद्ध अन्नो को उत्पन्न करके सबको आनन्द देत हैं वैसे ही लेनी करने वाले जनो की उत्तम प्रकार रक्षा करके सदा उत्साह युक्त करें ॥ २ ॥

**मधुमतीरोषधीर्घाव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।**

**क्षेत्रस्य पतिर्मधुमात्रो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( नः ) हम लोगो के लिये ( ओषधी ) यव आदि ओषधिया ( घाव ) सूर्य आदि प्रकाश और ( आपः ) जल ( मधुमती ) मधुर आदि गुणों से युक्त हो ( अन्तरिक्षम् ) आकाश ( मधुमत् ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( भवतु ) हो ( क्षेत्रस्य ) अन्न के उत्पन्न होने की भूमि का ( पति ) स्वामी ( नः ) हम लोगो के लिये ( मधुमात्रम् ) मधुर गुणवाना ( अस्तु ) हो और ( अस्त्वरिष्यन्तः ) अन्वों के साथ नहीं हिंसा करनेवाले हम लोग ( एवम् ) इसको ( अनु, चरेम ) अनुकूल वर्तें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मह मनुष्यों को चाहिये कि वे जैसे अपने लिये उत्तम पदार्थ चाहत हैं वैसे ही अन्न जनो के लिये इच्छा करें ॥ ३ ॥

**शुन वाहाः शुन नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।**

**शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्टामुदिक्य ॥४॥**

पदार्थ—हे लेनी करनेवाले जन ! जैसे ( वाहाः ) बैल आदि पशु ( शुनम् ) सुख को प्राप्त हो ( नरः ) मुखिया कुषीवल ( शुनम् ) सुख को करे ( लाङ्गलम् ) हलका अवयव ( शुनम् ) सुख जैसे ही वैसे ( कृषतु ) पृथ्वी में प्रविष्ट हो और ( वरत्राः ) बैल को रस्मी ( शुनम् ) सुखपूर्वक ( बध्यन्ताम् ) बाँधी जाय वैसे ( अष्टाम् ) लेनी के साधन के अवयव को ( शुनम् ) सुखपूर्वक ( उत, इक्ष्वम् ) ऊपर चलाओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—लेनी करनेवाले जन उत्तम हल आदि सामग्री वृषभ और बीजों को इकट्ठे करके लेनी को उत्तम प्रकार जोतकर उनमें उत्तम अन्नो को उत्पन्न करे ॥ ४ ॥

**शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यहि वि चक्रयुः पर्यः ।**

**तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५॥**

पदार्थ—हे ( शुनासीरी ) क्षेत्र के स्वामी और भृत्य आप दोनों ( वत् ) जिस ( इक्ष्वम् ) इस कृषिविद्या को प्रकाश करनेवाली ( वाचम् ) वाणी और ( पर्यः ) जल को ( विवि ) कृषिविद्या के प्रकाश में ( चक्रयुः ) करने हैं उनकी ( जुषेथाम् ) सेवा करो ( तेन ) इससे ( इक्ष्वम् ) इस भूमि को ( उप, सिञ्चतम् ) सींचो ॥५॥

भाषार्थ—लेनी करनेवाले जन प्रथम लेनी के करने की विद्या को ग्रहण करके पश्चात् यथायोग्य लेनी कर धन और धान्य से युक्त सदा हो ॥ ५ ॥

**अर्वाची सुमने भव सीते बन्धामहे त्वा ।**

**यथा नः सुमगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६॥**

पदार्थ—हे ( सुमने ) उत्तम प्रकार ऐश्वर्य की बढ़ानेवाली ! ( त्वा ) जैसे ( अर्वाची ) नीचे को चलनेवाली ( भव ) हल आदि के सींचनेवाले अवयव लोहे से बनाई गई सीता है वैसे आप ( भव ) हजिये और जैसे भूमि ( सुमगा ) सीमाय से युक्त है वैसे तू ( नः ) हम लोगो की ( अससि ) है और ( यथा ) जैसे भूमि ( सुफला ) उत्तम फलों से युक्त है वैसे तू ( नः ) हम लोगो की ( अससि ) है इससे हम लोग ( त्वा ) तेरी ( बन्धामहे ) कामना करते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम प्रकार सम्पादित क्षेत्र की भरती उत्तम अन्नो को उत्पन्न करती है वैसे ही ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त हुआ जन उत्तम सन्तानो को उत्पन्न करता है और जैसे भूमि का राज्य ऐश्वर्यकारक है वैसे ही परम्पर प्रसन्न स्त्री और पुरुष बड़े ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ ६ ॥

**इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाऽनु यच्छतु ।**

**सा नः पर्यस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां सवाम् ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे लेनी करनेवाले जनो ! जो ( पर्यस्वती ) बहुत जन से युक्त ( नः ) हम लोगो के लिये ( अनु, यच्छतु ) अनुग्रह करे ( सा ) वह आप लोगो को भी प्राप्त हो और जिस ( सीताम् ) भूमि जुतानेवाले वस्तु को ( इन्द्रः ) भूमि का दारण करानेवाला ( नि, गृह्णातु ) ग्रहण करे ( ताम् ) उस ( दुहाम् ) प्रपूरण करनेवाली ( उत्तरामुत्तराम् ) फिर फिर बनाई गई ( सवाम् ) शुद्ध सीता अर्थात् भूमि जुतानेवाले वस्तु को ( पूषा ) पुष्टि करनेवाला देव उसका आप लोग भी सयोग करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—सब कृषिकर्म करनेवाले जन विद्वान् क्षेत्र जानने वाला का अनुकरण करके कृषि की वृद्धि को उत्पन्न करे ॥ ७ ॥

**शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।**

**शुनं पर्जन्यो मधुना पर्योभिः शुनासीरा शुनमस्मासु घत्तम् ॥८॥९॥**

पदार्थ—जैसे ( फाला ) लोहे से बनाई गई भूमि के खोदने के लिये वस्तुएँ ( वाहैः ) बैल आदिकों के द्वारा ( नः ) हम लोगो के लिये ( भूमिम् ) भूमि को ( शुनम् ) सुखपूर्वक ( वि, कृषन्तु ) वादें ( कीनाशाः ) कृषिकर्म करनेवाले ( शुनम् ) सुख को ( अभि, यन्तु ) प्राप्त हो ( पर्जन्यः ) मेघ ( मधुना ) मधुर आदि गुण म और ( पर्योभिः ) जनो में ( शुनम् ) सुख को वर्षावे वैसे ( शुनासीरा ) अर्थात् मुख्य देनेवाले स्वामी और भृत्य कृषिकर्म करनेवाले तुम दोनों ( अस्मासु ) हम लोगो में ( शुनम् ) सुख को ( यत्तम् ) दारण करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—कृषिकर्म करनेवाले मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम फाल आदि वस्तुओं को के हल आदि से भूमि को उत्तम करके अर्थात् गोंड के उत्तम सुख को प्राप्त हो वैसे ही अन्न आदि के लिये सुख देखें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में कृषिकर्म के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तावर्ग सूक्त और नवम वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथाष्टर्चस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वामदेव ऋषिः । अग्निः सूर्यो वाऽप्यो वा गावो वा घृतं वा देवता । १ निर्वृत्तिष्टुप् । २, ८ १० त्रिष्टुप् छन्दः । वैवत स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिद्वन्द्वः । पञ्चमः स्वरः । ४ अनुष्टुप् ६, ७ निर्वृत्तिष्टुप् छन्दः । ११ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ निर्वृत्तिष्टुप् छन्दः । ऋचमः स्वरः ॥



अब प्यारह ऋचावाले अष्टावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से उसका विषय को कहते हैं—

**समुद्रादूर्ध्वमधुमां उदारदुपांशुना सममृतत्वमानन्द ।**

**घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अशुना ) सूर्य से ( समुद्रात् ) अन्तरिक्ष में ( मधुमात् ) मधुरगुणयुक्त ( ऊर्मि ) जल का समूह ( उप, उत्, आरत् ) उत्तमता से प्राप्त होता और ( अमृतत्वम् ) अमृतपन को ( मधु, आनन्द ) व्याप्त होता है ( घृत् ) जो ( घृतस्य ) जल की ( गुह्यम् ) गुप्त ( नाम ) सजा ( अस्ति ) है वह ( अमृतस्य ) अमृतात्मक कारण की ( नाभि ) नाभि के सदृश और ( देवानाम् ) विद्वानों वा श्रेष्ठ गुणों की ( जिह्वा ) जिह्वा के सदृश है उसकी विद्या को आप लोग जानो ॥१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! भूमि के समीप से सूर्य के प्रताप से वायु के द्वारा जितना जल आकाश में जाता है वही ईश्वर की सृष्टि के क्रम से मधुर आदि गुणों से युक्त होकर और वह वर्ष के अमृतस्वरूप होता है यह जानो ॥१॥

**वयं नाम न ब्रह्मा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।**

**उप ब्रह्मा शृण्वच्छस्यमानं चतुः शृङ्गाऽवमीदु गौर एतत् ॥ २ ॥**

पदार्थ—( चतुःशृङ्गः ) चारबेदशृङ्गो अर्थात् शिखरों के सदृश जिसका ऐसा ( ब्रह्मा ) चार वेद का जाननेवाला जिस ( शस्यमानम् ) प्रशंसा करने योग्य को ( उप, शृणुवत् ) समीप से सुने और ( गौर ) उसमें प्रकार शिखित वाणी में रमन वाला जा ( अवमीत् ) उपवर्ण देव मा ( एतत् ) इस ( घृतस्य ) जल की ( नाम ) सजा को ( वयम् ) हम लोग ( न, ब्रह्मा ) उपदेश देवों और ( अस्मिन् ) इस ( यज्ञे ) वर्षा आदि जलव्यवहार में ( नमोभिः ) अन्न आदि पदार्थों में उसको ( धारयाम ) धारण करगें ॥२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! चार वेद का जाननेवाला यथावक्त जन जैसा उपदेश कर और जिस विद्वान्त का निश्चय कर वैसे ही विद्वान्त का हम लोग भी उपदेश और निश्चय कर ॥२॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के विज्ञान को कहते हैं—

**चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।**

**त्रिधा बद्धो हृषमो रौरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( महः ) बड़ा मेवा और आदर करने योग्य ( देवः ) स्वप्रकाशस्वरूप और सब को सुख देनेवाला ( मर्त्यान् ) मरणधर्मवाले मनुष्य आदिकों को ( आ ) सब प्रकार से ( विवेश ) व्याप्त होता है ( बृधम् ) और जा सुखा का वर्णनवाला ( त्रिधा ) तीन शृङ्गा, पुरुषार्थ और योगाभ्यास से ( बद्ध ) बंधा हुआ ( रौरवीति ) निरन्तर उपदेश देता है ( अस्य ) इस धर्म से युक्त नित्य और नैमित्तिक परमात्मा के बोध के ( द्वे ) दो, उन्नति और मोक्षरूप ( शीर्षे ) शिरस्थानापन्न ( त्रयः ) तीन अर्थात् कर्म, उपासना और ज्ञानरूप ( पादाः ) चलन योग्य पैर ( चत्वारि ) और चार वेद ( शृङ्गा ) शृङ्गों के सदृश आप लोगों को जानने योग्य हैं और ( अस्य ) इन धर्म व्यवहार के ( सप्त ) पांच ज्ञानेन्द्रिय वा पांच कर्मेन्द्रिय प्रत्यकरण और आत्मा य सान ( हस्तासः ) हाथों के सदृश वर्तमान हैं और उक्त तीन प्रकार से बंधा हुआ व्यवहार भी जानने योग्य है ॥३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! हम परमेश्वर से व्याप्त ससार में यज्ञ के चार वेद और नाम आख्यात उपसर्ग और निपात विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय और धर्म, धर्म, काम और मोक्ष आदि शृङ्ग है तीन सवन अर्थात् त्रैकालिक यज्ञ तीन काल कर्म उपासना ज्ञान मन वाणी शरीर इत्यादि पाद है दो व्यवहार और परमार्थ, नित्य काव्यं शब्द-स्वरूप उदगयन और प्रायणीय अध्यापक और उपदेशक इत्यादि शिर हैं गायत्री आदि, सात छन्द सात विभक्तियाँ सान प्राण पाच कर्मेन्द्रिय शरीर और आत्मा इत्यादि हस्त हैं । तीन मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प और हृदय, कण्ठ शिर में ध्वज, मनन निदिध्या-सर्गों में ब्रह्मचर्य, श्रेष्ठ कर्म, उत्तम विचारों के बीच मिला यह व्यवहार महान् सत्क-र्त्तव्य और मनुष्यों के बीच प्रविष्ट है यह सब जानें ॥३॥

अब सूर्यवृत्तान्त से विद्वद्भिषय को कहते हैं—

**त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।**

**इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान देवादेकं स्वधया निष्टतक्षः ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( देवासः ) विद्वान् जन ( पणिभिः ) प्रशंसित व्यवहार करने वालों के साथ ( गवि ) वाणी से ( गुह्यमानम् ) गुप्त कणया जाता ( त्रिधा ) तीन प्रकारों से ( हितम् ) श्रियत और ( घृतम् ) घृत के सदृश भानन्द देनेवाले विज्ञान को ( अन्तः, अविन्दम् ) अनुकूल प्राप्त होते और ( स्वधया ) अपनी धारण की हुई बुद्धि से ( निः, तत्तत् ) निरन्तर विस्तार करते हैं । और जैसे ( इन्द्रः ) बिजुली ( देवासः ) सुन्दर परमात्मा के समीप से ( एकम् ) अव्यक्त अर्थात् प्रकृति को और ( सूर्यः ) सूर्य ( एकम् ) एक को ( जजान ) उत्पन्न करता है वैसे आप लोग भी ( एकम् ) निरन्तर सुख अर्थात् मोक्ष को सिद्ध करो ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ व्यवहारों के साथ वर्तमान विद्वान् जन उत्तम प्रकार शिखित वाणी और बुद्धि को

तथा बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त हो परमेश्वर को जान और उसकी आज्ञा पालन करके सुख का विस्तार करते हैं वैसे ही सब लोग अच्छा आचरण करें ॥४॥

अब मेघविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।**

**घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययी वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥१०**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैन ( आसाम् ) इन धाराओं के ( मध्य ) मध्य में ( हिरण्ययः ) नेत्र स्वरूप वा सुवर्णस्वरूप ( वेतसः ) सुन्दर में जो ( घृतस्य ) जल की ( एताः ) ये ( शतव्रजा ) अपरिमित गति वाली ( धाराः ) धारायें ( हृद्यात् ) हृदय के प्रिय ( समुद्रात् ) अन्तरिक्ष में ( अर्षन्ति ) प्राप्त होती हैं उनको ( नावचक्षे ) कहने को ( अभि, चाकशीमि ) प्रकाश करता है और ( रिपुणा ) शत्रु के साथ ( न ) नहीं बसता है वैसे आप लोग जानो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे आकाश से गिरी हुई वर्षा सब जगत् का पालन करती है वैसे ही आप लोगों में निकली हुई विज्ञान की वाणियाँ सब जगत् की रक्षा करती हैं ॥५॥

फिर उषकविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**सम्यक्स्त्वन्ति सन्ति न घेना अन्तर्हवा मनसा पृथमानाः ।**

**एते अर्षन्त्युर्मयो घृतस्य मृगाइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥**

पदार्थ—जिन विद्वानों के ( अन्तः, हवा ) अन्तर्विजमान आत्मा और ( मनसा ) शुद्ध अन्तःकरण से ( पृथमानाः ) पवित्रता करती हुई ( घेना ) विद्या-युक्त वाणिया ( सन्ति ) नदियों के ( न ) सदृश ( सम्यक् ) उत्तम प्रकार ( जवन्ति ) चलती हैं जो ( एते ) ये विद्वान् ( घृतस्य ) जल की ( ऊर्मयः ) नहरियों और ( क्षिपणोः ) प्ररणा देनेवाले म ( मृगाइव ) हरिणों के सदृश ( ईष-माणाः ) चलने हुए सब कीर्ति को ( अर्षन्ति ) प्राप्त होत हैं ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सत्य कहने हैं वे ही पवित्रात्मा हो के जल के सदृश शान्त हाने हुए मृगों के सदृश शीघ्र ही अपेक्षित सुख का प्राप्त होने हैं ॥ ६ ॥

अब जलवृष्टान्त से बाणीविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**सिन्धोरिव प्राध्वने शृषनासो वातप्रमियः पतयन्ति यज्ञाः ।**

**घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( पिन्वमानः ) प्रमन्न करता हुआ मैं जैसे ( शृषनासः ) शीघ्रगामिनी ( यज्ञाः ) बड़ी ( वातप्रमियः ) वायु को माननेवाली और ( प्राध्वने ) उत्तम प्रकार में चलन योग्य मार्ग के लिये ( सिन्धोरिव ) नदियों के अर्थात् नदियों की तरङ्गों के समान ( पतयन्ति ) पतन के सदृश आचरण करती हैं तथा ( अरुषः ) नाल रूप वाजे ( वाजी ) घोड़ों के ( न ) सदृश ( घृतस्य ) जल की ( धाराः ) धारा ( ऊर्मिभिः ) तरङ्गों में ( काष्ठाः ) दिशाओं के समान तटों की ( भिन्दन् ) विदीर्ण करती हैं वैसे उपदेशों की वृष्टि करके अविद्याओं का नाश करता है ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिन विद्वानों के नदियों के प्रवाह मनुष्य उत्तम उपदेश प्रचलित होत और घोड़ा के समान तुल्यों के पार करत हैं वे ही बड़े श्रेष्ठ पुरुष हैं ॥७॥

फिर विद्वद्भिषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**अभि पवन्त समनेव योषाः कत्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।**

**घृतस्य धाराः समिधो नमन्त ता जुषाणो हयति जातवेदाः ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( घृतस्य ) घृत की ( धाराः ) धारा और ( समिधः ) काष्ठ ( अग्निम् ) अग्नि को ( नमन्तः ) प्राप्त होने हैं जैसे ( कत्याण्यः ) कत्याण करनेवाली ( स्मयमानासः ) कुछ हसती हुई प्रमाणयुक्त हमनेवाली ( योषाः ) स्त्रिया ( समनेव ) तुल्य मनवाली पतिव्रता स्त्री का सदृश अभीष्ट पतियों को ( अभि, प्रवन्तः ) सम्मुख प्राप्त हो और जैसे ( ताः ) वे मुख को प्राप्त होनी हैं वैसे विद्या और धर्म का ( जुषाणः ) सेवन करता हुआ ( जातवेदाः ) विज्ञान में युक्त विद्वान् सबके प्रिय की ( हयति ) कामना करता है ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि और इन्धन के संयोग से प्रकाश होता है वैसे उत्तम अध्यापक और पढ़नेवाले के सम्बन्ध से विद्या का प्रकाश होता है । और जैसे स्वयंवर जिन्होंने किया ऐसे स्त्री पुरुष परस्पर के सुख की कामना करते हैं वैसे उत्पन्न हुई विद्या जिन का ऐसे योगी जन सब का सुख उत्पन्न करत हैं ॥८॥

**कन्याऽव बहुतेतवा उ अज्ज्यज्ञाना अभि चाकशीमि ।**

**यत्र सोमः सूर्यते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९॥**

पदार्थ—जो ( बहुतेतः ) धारण करनेवाले को ( एतवः ) प्राप्त होने की ( कन्याऽव ) जैसे कुमारी वैसे ( अज्ज्य ) व्यक्त उत्तम लक्षण को ( अज्ज्यानाः ) प्रकट करती हुई ( घृतस्य ) प्रकाशसम्बन्धीनी ( धाराः ) वाणिया ( उ ) और

( यज्ञ ) जहां ( सोमः ) ऐश्वर्य्य का ओषधियों का समूह और ( यज्ञ ) जहां ( यज्ञ ) करने योग्य व्यवहार ( वृषते ) उत्पन्न होता है ( तत् ) उस कर्म को ( अभि, पवन्ते ) पवित्र कराती हैं उनको मैं ( अभि, वाक्सीमि ) प्रकाशित करता हूँ ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे स्वयंवर करनेवाली कन्या अपने सद्गति पति को प्राप्त होने की दिन रात्रि परीक्षा करती है और ऐसे ही पुरुष परीक्षा करना है वैसे अध्यापक और उपदेशक परीक्षक हों और जिस कर्म से ऐश्वर्य्य और किया की शुद्धि होवे वही वचन कहने योग्य है ॥६॥

अभ्यर्चत सुष्टुति गव्यमाजिमस्मासु मद्रा द्रविणानि घञ ।

इमं यज्ञं नयत देवता नो धृतस्य धारां मधुमन्तवन्ते ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग ( अस्मासु ) हम लोगों में ( आजिम् ) प्रसिद्ध ( गव्यम् ) वाणी के लिये हितकारक व्यवहार को और ( मद्रा ) सेवने योग्य प्रपन्नित सुख देनेवाले ( द्रविणानि ) धना वा यशो को ( घञ ) धारण करो ( देवता ) विद्वान् जन आप लोग ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( न ) हम लोगों के लिये ( नयत ) प्राप्त कराओ और जैसे ( धृतस्य ) प्रकाशित बोध के ( धारा ) प्रकाश करनेवाली वाणियाँ ( मधुमन् ) श्रेष्ठ विज्ञान से युक्त कर्म को ( पवन्ते ) शुद्ध करती हैं वैसे हम लोगों को पवित्र करके ( सुष्टुतिम् ) उत्तम प्रशंसा का ( अभि, अर्चत ) प्राप्त हूँ ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानङ्कार है । उन्हीं विद्वानों की प्रशंसा होती है जो सब मनुष्यों में उपदेश द्वारा उत्तम गुणों का धारण करने हैं ॥१०॥

किर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

धामन्ते विश्वं भुवनमधि भितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।

अपामनीके समिधे य आभृतस्तमस्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥११

पदार्थ—हे भगवान् ! जिस ( ते ) आपके ( धामन् ) आधाररूप ( अन्तः ) मध्य ( समुद्रे ) अन्तरिक्ष और ( हृदि, अन्तः ) हृदय के मध्य में ( आयुषि ) जीवन के निमित्त प्राण में ( अपाम् ) प्राणों की ( अनोके ) सेना में और ( समिधे ) संग्राम में ( विश्वम् ) सम्पूर्ण ( भुवनम् ) जगत् ( अधि ) ऊपर ( भितम् ) स्थित है तथा ( यः ) जो ( ते ) आपका विद्वानों से ( आभृतः ) सब प्रकार धारण किया गया ( तम् ) उस ( मधुमन्तम् ) माधुर्य्यगुण से युक्त ( ऊर्मिम् ) रक्षा आदि व्यवहार और आनन्द को हम लोग ( अस्याम ) प्राप्त हों उम आपकी उपासना को निरन्तर करे ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर जगत् को अभिव्याप्त होकर सबको धारण कर और उत्तम प्रकार रक्षा करके अन्तर्यामिरूप से सर्वत्र व्याप्त है और जिसकी कृपा से विज्ञान, बहुत कालपर्यन्त जीवन और विजय प्राप्त होता है उसी की निरन्तर सेवा करो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में जल मेघ सूर्य्य वाणी विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से

इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है

यह जानना चाहिए ॥

यह श्रीमान् परमहंसपरिब्राजकाचार्य्य परमविद्वान् श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामीजी

के शिष्य श्रीमान् दयानन्दसरस्वती स्वामीजी के बनाये हुए, आर्य्यभाषा से

सुशोभित, ऋग्वेदभाष्य के चतुर्थ मण्डल में पञ्चम अनुवाक,

अट्ठावनवीं सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



## ॥ अथ पञ्चमं मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दु रितानि पर्ग सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ द्वादशार्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य बुधगविष्टिरावाभेयावृषी । अग्निर्देवता ।  
१, २, ४, ६, ११, १२ । निघृतिरष्टप २, ७, १० । त्रिपटुषु छन्द ।  
वेवतः स्वर । ४, ८ श्वराट् पङ्क्ति । ६ पङ्क्तिपङ्क्तिः ।  
पञ्चम स्वर ॥

अथ बारह ऋचा वाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है इस में उपदेश देने योग्य  
और उपदेश देने वाले के गुणों को करते हैं—

अबोधयुमिः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुपासम् ।

यद्वा इव प्र व्यासृजिहानाः प्र भानवः सिंसते नाकमच्छ ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (समिधा) इन्धन और घृत आदि में (अग्नि) अग्नि (अबोधि) जाना जाता अर्थात् प्रज्वलित किया जाता है (भानव) कातियों (जनानाम्) मनुष्यों की (आयतोम्) आनी हुई (धेनुमिवा) दुग्ध देने वाली गौ के तुल्य (उपासम्) प्रावेतला के (प्रति) प्रति (प्र, सिंसते) प्राप्त होती और (व्यासम्) शाखा को (प्र, उज्जिहानाः) अच्छे प्रकार त्यागन हुए (यद्वा इव) बड़े वृक्षों के सदृश (नाकम्) दुख से रहित अन्तरिक्ष को (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त होती है वैसे आप हजिय ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है—जो अग्न्यादि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर काव्यों में अच्छे प्रकार युक्त करते हैं वे दुःख-रहित हुए वृक्षों के समान बढ़ते हैं ॥ १ ॥

अबोधि होता यजथाय देवानूध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरंस्थात् ।

समिद्धस्य रुधददशि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! जो (सुमना) शुद्ध मनवाला (होता) हवन कर्त्ता पुरुष (यजथाय) यज्ञ करने के लिये (ऊध्व) ऊपर को चलने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश (देवान्) विद्वानों वा श्रेष्ठगुणों को (अबोधि) जानता और (प्रातः) प्रातः-काल में (अस्थात्) स्थित होता है वह (समिद्धस्य) प्रदीप्त अग्नि के (रुधत्) रूप के समान (अवशि) देखा जाता है और जो (महान्) बड़ा (देव) प्रकाशमान सूर्य (पाज) बल को प्राप्त होकर (तमस) अन्धकार से (निः) (अबोधि) अत्यन्त छुटाया जाता है उसकी आप लोग सेवा करो ।

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य उत्तम आचरण में अग्नि के सदृश ऊपर का जाने वाले होते हैं वे अविद्या से निवृत्त होकर यशस्वी होते हैं ॥ २ ॥

यदीं गुणस्य रक्षनामजीगुः शुचिरुक्ते शुचिभिर्गोमिरुभिः ।

आदक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूध्वो अधयज्जुहभिः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (शुचिभिः) पवित्र (गोभिः) किरणों से (अग्निः) अग्नि के सदृश (गुणस्य) समूह की (रक्षनाम्) रक्षणी को (अजीगु) अत्यन्त निगलता अर्थात् ग्रहण करता (आत्) और (शुचिः) पवित्र होता हुआ (ऊध्वः) ऊपर को उठा (अकृते) प्रसिद्ध होता है वह (अक्षिणा) अक्षिण दिशा में (युज्यते) युक्त किया जाता है जो विद्यायुक्त स्त्री (वाजयन्ती) प्राप्त कराती हुई (उत्तानाम्) ऊपर जाने वाली सामग्री को निरन्तर ग्रहण करती है वह (ईम्) प्राप्त हुए (जुहभिः) पान करने के साधनों से पीने योग्य पदार्थ को (अधयत्) पान करती है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो समुदाय के सन्तोष को उत्पन्न करते हैं वे किरणों से सूर्य जैसे वैसे सर्वत्र यश से प्रकाशित होते हैं ॥ ३ ॥

अभिमच्छा देवयतां मनांसि चक्षुषीव द्यौं सं चरन्ति ।

यदीं सुवाते उपसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अहाम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अहाम्) दिनों के (अग्रे) अग्रभाग में (विरूपे) विरुद्धस्वरूप (उपसा) रात्रि और दिन (ईम्) प्राप्त हुई क्रिया को (सुवाते) उत्पन्न कराते हैं और उन में (श्वेत) श्वेतवर्ण (वाजी) जानने वाला अर्थात् काव्यों की सूचना दिलाने वाला दिवस (जायते) उत्पन्न होता है जैसे (अग्निम्) अग्नि की (देवयताम्) कामना करने हुए जनो के बीच (सूर्य) सूर्य में (चक्षुषीव) नेत्रों के सदृश परमात्मा में (मनांसि) अन्तःकरण (अहाम्) उत्तम प्रकार (सम्, चरन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । हे मनुष्यो ! जैसे दिन जैसे विद्वान् जन और जैसे रात्रि जैसे अविद्वान् हैं ॥ ४ ॥

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अहानि हितो हितेध्वरूपो वनेषु ।

दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽभिर्होता नि पसाद्वा यजीयान् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (अहाम्) दिनों के (अग्रे) अग्रभाग में (हितेषु) सुख के कारणों में (हित) हित करनेवाला (वनेषु) वना में (अश्व) मर्म-स्थलों में न व्यापी (दमेदमे) गृह गृह में (सप्त) सप्त किरणों और (रत्ना) धनो का (वधान) धारण करेगा हुआ (जेन्य) जीतने वाला (अग्नि) अग्नि के सदृश (होता) मङ्गल क्रियाओं का कर्त्ता (जनिष्ट) उत्पन्न होता है और श्रेष्ठ कर्मों में (नि, ससाव) प्रवृत्त होय (हि) वही (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञ करने वाला होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है जैसे दिन के आरम्भ में प्रभातसमय सब का हितकारी होता है वैसे ही श्रेष्ठ कर्म का करनेवाला यजमान सब का हितवी होता है ॥ ५ ॥

अभिर्होता न्यसीदधर्जीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।

युवा क्विः पुरुनिःषु श्रुतावा धर्त्ता कृष्टीनामुत मध्य इदः ॥६॥ १२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (मध्य) मध्य में (इदः) प्रदीप्त (अग्निः) बिजुली सदृश (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता (युवा) बलवान् (क्विः) उत्तम बुद्धि वाला विद्वान् (पुरुनिःषु) अनेक प्रकार की श्रद्धा वा बहुत स्थानों वाला (श्रुतावा) सत्य का विभाग (धर्त्ता) और धारण करने वाला (होता) यज्ञ-कर्त्ता (सुरभा) सुगन्धित (मातुः) माता के (उपस्थे) समीप में (लोके) लोक में (नि, असीदत्) निरन्तर स्थित होवे (उ) वही (कृष्टीनाम्) मनुष्यों का (उत) और पशु आदिकों का रक्षक होवे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो अग्नि माता रूप वायु में विराजता हुआ बिजुलीरूप से सबको सुख देता है वैसे ही धार्मिक विद्वान् सब को आनन्द दिलाने के योग्य हैं ॥ ६ ॥

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमोऽत नमोभिः ।

आयस्ततान रोदसी श्रुतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (य) जो अग्नि (नमोभिः) अन्न आदिकों से (श्रुतेन) सत्य में (घृतेन) और जल में (वाजिनम्) गर्त वाले पदार्थों को (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, ततान) विस्तृत करता अर्थात् अन्तःस्थ और पृथिवी पर पहुँचाता है उसकी विद्या से जो (नित्यम्) नित्य (मृजन्ति) शुद्ध करते और (त्यम्) उस (अग्निम्) अग्नि के सदृश (होतारम्) यज्ञ करने वाले (साधुम्) श्रेष्ठ (विप्रम्) बुद्धिमान की (अध्वरेषु) नहीं हिंसा करने योग्य व्यवहारों से (णु) शीघ्र (प्र, ईदते) अच्छे प्रकार स्तुति करते हैं, वे सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे विद्वान् जन अग्नि को काव्यों में सप्रयुक्त अर्थात् काम में लाकर धन और धान्य से युक्त होते हैं वैसे ही इसकी विद्या को काव्यों में मयुक्त करके प्रत्यक्ष विद्यायुक्त होते हैं ॥ ७ ॥

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।

सहस्रमृजो षष्ठमस्तदोजा विश्वो अग्रे सहसा प्रास्यन्यान् ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्तमान (दमूना) इन्द्रियों को बश में रखने वाले (कविप्रशस्त) विद्वानों से प्रशंसा करने योग्य अथवा विद्वानों में प्रशंसा को प्राप्त (शिवः) मङ्गलस्वरूप वा मङ्गल करनेवाले (अतिथिः) जिनकी आने की कोई तिथि नियत विद्यमान न हो (सहस्रमृज्) जो हजारों शृङ्गों के तुल्य नेत्रों में युक्त (बुधम्) बलिष्ठ और वृष्टि करनेवाले (तदोजा) जिनका वही पराक्रम (मार्जाल्यः) जो अत्यन्त शुद्ध करने वाले अग्नि के सदृश आप (स्वे) अपने में (प्र, मृज्यते) शुद्ध किये जाते हैं वह (सहसा) बल से (विश्वान्) सम्पूर्ण (नः) हम लोगों की तथा (अग्नान्) अग्नियों की रक्षा करते हुए (अति) विद्यमान हो उनकी हम लोग सेवा करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वे ही अतिथि होवे जो इन्द्रियों के दमन करने और मङ्गल-करण करनेवाले धर्मिष्ठ विद्वान् जिनेन्द्रिय और सब के प्रिय साधन में प्रीति करने वाले होवें और जैसे अग्नि सब का शुद्ध करने वाला है वैसे ही सम्पूर्ण जगत् के पवित्र करनेवाले अतिथि जन हैं ॥ ८ ॥



प्र सद्यो अग्ने अत्येध्यानादिर्यस्मै चारुतमो वभूथ ।

इलेन्यो वपुष्यो बिभावा भियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९॥

पदार्थ—इ ( अग्ने ) विद्वन् ( यस्मै ) जिनके लिये आप ( आवि ) प्रकट ( वभूथ ) हात हो वह ( इलेन्य ) प्रशमा करने योग्य धर्मयुक्त कर्म करनेवाला ( वपुष्य ) सुन्दर रूप से प्रसिद्ध ( बिभावा ) विशेष करके कान्तियुक्त ( चारुतम ) अत्यन्त सुशील और सुन्दर और ( मानुषीणाम् ) मनुष्यादिभ्यः ( विशाम ) प्रजाओं की ( भियो ) कामना वा सेवा करने योग्य ( अतिथि ) सर्वत्र घूमने वाला ( प्र ) समर्थ होता है जिस कारण आप ( अस्यान् ) प्रथम उपदेश दिये हुआ को ( सद्य ) तुल्य दिन में ( अति, एषि ) उन्नतजन करके प्राप्त होते हैं वह आप हम लोगों से सत्कार करने योग्य हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य नित्य भ्रमण करते और प्राप्त हुए अनो को उपदेश कर और नहीं प्राप्त हुआ को उपदेश के लिये प्राप्त होते तथा मय के द्वितीय बड़े विद्वान् और यथार्थवादी के ही प्रतिथि होने के योग्य है ॥ ९ ॥

तुभ्य भरन्ति क्षितयो यविष्ठ वलिमग्ने अन्ति त ओत दृगान् ।

आ मन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्दि बृहत् अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०॥

पदार्थ—हे ( यविष्ठ ) अतिशय युवा ( अग्ने ) विजुली के मृदु विद्या में व्याप्त जिस में आप ( अन्ति ) समीप में ( उत् ) और ( दृगान् ) दूर में आकर सब को मत्स्य का उपदेश करते हो उस से ( क्षितय ) गृहस्थ मनुष्य ( तुभ्यम् ) आप के लिए ( वलिम् ) खान और पीन योग्यादि पदार्थों के समूह को ( आ, भरन्ति ) धारण करने हैं और इ ( अग्ने ) पवित्र कार्य करनेवाले आप ( मन्दिष्ठस्य ) अत्यन्त श्रेष्ठ आशरण करनेवाले की ( सुमतिम् ) श्रेष्ठ बुद्धि का ( आ, चिकिद्दि ) विशेष करके जानिये और यह ( ते ) आप का ( महि ) सत्कार करने योग्य ( बृहत् ) बड़ा ( भद्रम् ) सेवन करने योग्य सुख का देनेवाला ( शर्म ) शृं वा सुख हो ॥ १० ॥

भाषार्थ—जिसमें अतिथि जन सब मनुष्यों के सत्य उपदेश में परम उपाकार को करते हैं उस में वे अन्न पान स्थान दिग्गन्त और धन आदि से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

आद्य रथ मानुमो मानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।

विद्वान्पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११॥

पदार्थ—हे ( मानुम ) कान्तिकाले ( अग्ने ) विद्वन् आप ( इह ) यहाँ ( अद्य ) इस समय ( यजतेभिः ) प्राप्त हुए धाई धादिको से मयुक्त ( समन्तम् ) सब प्रकार बुद्ध अवयवों वाले ( मानुमन्तम् ) कान्तियुक्त ( रथम् ) गन्दर वाहन पर ( आ ) अच्छे प्रकार ( तिष्ठ ) विराजित इससे ( विद्वान् ) विद्यायुक्त आप ( पथीनाम् ) मार्गों के ( उह ) व्यापक ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष को और ( हविरद्याय ) जाने योग्य अन्न आदि के लिए ( देवान् ) विद्वान् अतिथियों को जिसमें ( आ, वक्षि ) अच्छे प्रकार पहुँचाने हैं हमसे हम लोगों से सत्कार करने योग्य हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—गृहस्थों को चाहिए कि दूर स्थित भी उत्तम अतिथियों को उत्तम वाहना पर उठाकर उपदेश के लिए लाय और अन्न आदि से उनका सत्कार कर ॥ ११ ॥

अवीचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारुं वृषभाय वृष्णे ।

गविष्ठो नमसा स्तोममग्नौ दिवीय रुक्ममुह्यच्चमश्नेत् ॥१२॥

पदार्थ—ह राजा आदि मनुष्या अतिथि हम लोग जो ( गविष्ठर ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी में स्थित ( नमसा ) सत्कार या अन्न आदि से ( दिवीय ) जैसे मृत्यु में वस ( अग्ने ) अग्नि में ( रुक्मम् ) प्रीतिवारक और प्रकाशयुक्त ( उरुह्यच्चम् ) बृहत् व्यापक और ( स्तोमम् ) प्रशमा करने योग्य का ( अश्नेत् ) आश्रय पर उन ( वृष्णे ) सत्य उपदेश की वृष्टि करनेवाले ( वृषभाय ) बलिष्ठ ( मेध्याय ) पवित्र ( कवये ) विद्वान् जन के लिये ( वन्दारुं ) प्रशमा करने योग्य और धर्ममर्यादी ( वचः ) वचन का ( अवीचाम ) उपदेश कर ॥ १२ ॥

भाषार्थ—उन पुरुषों को ही विद्वान् अतिथि जन विशेष उपदेश देवे कि जो पवित्रात्मा विद्या में प्रीति करने और उत्तम श्रद्धाओं के जानने की इच्छा करनेवाले हैं और जो इन बातों से विपरीत अर्थात् रहित हैं उन को अधिकांश की योग्यता अर्थात् विशेष उपदेश के समान का सामर्थ्य साधारण उपदेश के द्वारा प्राप्त कर के अधिकांश करे ॥ १२ ॥

उम सूक्त में उपदेश सुनने और उपदेश के सुननेवाले का गुण बरान करने में इस सूक्त के अथ की पूर्व सूक्त के अथ के साथ मङ्गल जाननी चाहिये ।

यह प्रथम सूक्त और तेरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ द्वादशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य १, ३—८। १०—१२ कुमार आत्रेयो वृषो वा आर उभो वा । २, ६ वृषो आर ऋषि । अग्निर्वेवता । १, ३, ७, ८ विष्टुप् ।

४, ५, ६, १० निष्पत्तिष्टुप् । ११ विराट्त्रिष्टुप् छन्द । छन्दः स्वर ।

२ स्वरान् पङ्क्ति । ६ भुरिक् पङ्क्तिः छन्द । पञ्चम स्वर ।

१२ निष्पत्ति अगती छन्द । निषाद स्वर । ॥

अब बारह ऋचा वाले द्वितीय सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से युवावस्था में विवाह करने के विषय को कहते हैं—

कुमार माता युवतिः समुब्धं गुहां बिभर्ति न ददाति पित्रे ।

अनीकमस्य न मिनज्जनांसः पुरः परयन्ति निहितमरुतौ ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( युवति ) पूर्ण अवस्था अर्थात् विवाह करने योग्य अवस्थावाली होकर जिस स्त्री ने विवाह किया ऐसी ( माता ) माता ( समुब्धम् ) तुल्यता से दण्ड हुए ( कुमारम् ) कुमार को ( गुहां ) गर्भाशय में ( बिभर्ति ) धारण करनी और ( पित्रे ) उस पुत्र के पिता के लिये ( न ) नहीं ( ददाति ) देनी है ( अस्य ) इस पिता के ( अनीकम् ) समुदायजन को अर्थात् ( न ) जो नहीं ( मिनत् ) नाश करनेवाला होता हुआ ( अरुतौ ) रमणसमय से अन्यममय में ( निहितम् ) स्थित उस को ( जनांसः ) विद्वान् जन ( पुरः ) पहिले ( परयन्ति ) देखते हैं वे से ही आप लोग आचरण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो कुमार और कुमारी ब्रह्मचर्य में विद्या पढ़के और सन्तान के उत्पन्न करने की रीति को जान के पूर्ण अवस्था अर्थात् विवाह करने के योग्य अवस्था होने पर स्वयंवर नामक विवाह को करके सन्तान की उत्पत्ति करते हैं तो वे सदा आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेयीं बिभर्षि महिषी जजान ।

पूर्वाहि गर्भैः शरदौ ववर्धापर्यं जातं यदभूत माता ॥२॥

पदार्थ—ह ( युवते ) ब्रह्मचर्य से पड़ी विद्या जिस में ऐसी पूर्ण अवस्थावाली ( पेयी ) पण्याकार अर्थात् दिव्यो के आकार करि गर्भाशय में बीर्य को स्थित करने वाली ( महिषी ) महाम् रूप, बल और उत्तम स्वभाव आदि के योग में आदर करने योग्य ( रवम् ) तू ( कम् ) किम् ( एतम् ) किया है ब्रह्मचर्य जिसने ऐसे इस ( कुमारम् ) बालक का ( बिभर्षि ) पालन करती है और ( माता ) माता ( यत् ) जिसको ( असूत ) उत्पन्न करती तथा ( जातम् ) उत्पन्न हुए को मैं ( अपश्यम् ) देखता हूँ वह ( गर्भ ) गर्भाशय में प्राप्त ( पूर्वा ) प्राचीन ( शरदः ) शरदः ऋतुओं तक निरन्तर ( हि ) जिसमें ( यवर्ध ) बढ़ता है उससे ( अजान ) उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे कन्याओ ! तुम बाल्यावस्था में सोलह वर्ष के प्रथम और पच्चीस वर्ष के प्रथम कुमारजनों ! विवाह को न करो जो इस प्रकार में ब्रह्मचर्य के करने के अनन्तर विवाह का करे उन के सन्तान उत्तमरूप और गुणा में युक्त बहुत कानपर्यन्त जीवनवाले और शिष्ट जनो में उत्तम प्रकार मान पानेवाले होते हैं ॥ २ ॥

हिरण्यदन्तं शुचिर्वर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।

ददानो अस्मा अमृतं विपुक्वत्किं मार्मविन्द्राः कुण्वन्ननुवधाः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो मैं किया ब्रह्मचर्य जिन्होंने ऐसे स्त्री पुरुषों में से ( क्षेत्रात् ) सत्कार की हुई भार्या स्त्री से उत्पन्न हुए ( हिरण्यदन्तम् ) सुवर्ण वा तम्र के तुल्य दातवाले ( शुचिर्वर्णम् ) पवित्रस्वरूपयुक्त वा अतिमुन्दर और ( आयुधा ) शस्त्र और अस्त्र का ( मिमानम् ) धारण करनेवाले का ( आरात् ) समीप से ( अपश्यम् ) देख और ( अस्मै ) हमके लिए ( विपुक्वत् ) विशेष करके सम्बद्ध ( अमृतम् ) माक्षसुख का ( वदान ) दान हुआ मैं हूँ उस ( मार्म ) मुक्त को ( अनिन्द्रा ) गणवय से रहित ( अनुक्था ) अप्रिधान जन ( किम् ) क्या ( कुण्वन् ) करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ह मनुष्यो ! पूर्ण शास्त्र नियत ब्रह्मचर्य शिक्षा विद्या युवावस्था और परम्पर प्रीति के तिन सन्तानों का विवाह न कर इस प्रकार करते हुए सब जन अति उत्तम सन्तानों का प्राप्त होकर अति ही आनन्द का प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार प्रसिद्ध होते हैं उन के समीप दारिद्र्य प्रत्यता वा दाग्री और अविद्वान् जन कुछ भी विद्वान् नहीं कर सकते हैं ॥ ३ ॥

क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्त सुमद् युयं न पुरु शोभमानम् ।

न ता अंगुभ्रजनिष्ठ हि वः पलिंक्नीरियुवतयो भवन्ति ॥४॥

पदार्थ—ह मनुष्यो ! जो मैं जिस ( क्षेत्रात् ) सत्कार की हुई स्त्री से उत्पन्न ( चरन्तम् ) व्यवहार करने हुए ( सुमत् ) आपही ( पुरु ) बहुत ( शोभमानम् ) शोभायुक्त ( न ) समान वा ( युयम् ) मनाममूह के ( न ) समान बलिष्ठ को ( सनुत ) सन्तान से ( अपश्यम् ) देखता हूँ ( सः ) वह सुखी ( अजनिष्ठ ) होता है और जो ब्रह्मचारिणी कन्याये उत्तम नियमों वाली हुई युवावस्था के प्रथम पत्नियों को ( अंगुभ्रज ) ग्रहण करती है ( ताः ) वे ( हि ) ही ( युवतयः ) युवति हुई पुत्र पौत्रों के अतिमुख से युक्त ( इत् ) और ( पलिक्नी ) श्वेत केशवाली अर्थात् वृद्धावस्थायुक्त ( भवन्ति ) होती है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपसालङ्कार है । हे मनुष्यो ! यदि आप लोग अपने सन्तानों को अतिकालपर्यन्त ब्रह्मचर्य करावे तो वे बलिष्ठ बुद्धियुक्त और चिरञ्जीवी हुए आप लोगों के निय अतीव सुख देवें ॥ ४ ॥

के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।

य ई जगृपुरव ते सृजन्स्वाजाति पक्ष उप नश्चिक्स्वान् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ( के ) कौन ( गोपा ) गोधों के पालन करनेवाले ( गोभि ) गोओं के ( न ) सद्ग ( मे ) मेरे ( मर्यकम् ) अल्प मनुष्य को

( वि, यवन्त ) दूर करें और ( येषाम् ) जिनका वह ( वित ) निश्चित ( अरण्य ) निम्नमेवात्मा ( आस ) होता है और ( ये ) जो ( पशवः ) पशुओं को ( जग्मु ) ग्रहण करें ( ते ) वे ( आ, अजाति ) अक्षे प्रकार सन्तानों की उत्पत्ति जिग कुल में उसको ( जप, सृजन्तु ) उत्पन्न कर और जो ( ईम् ) विद्या ग्रहण करें वे दुःख को ( अथ ) दूर करें और ( विकित्वात् ) बुद्धिमान उत्पन्न करता है वह ( न. ) हम लोगों का हितैषी है यह समझाओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानद्वारा है । मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के प्रति यह पूर्ण कौन हम लोगों के छोटे ज्ञानवाले सन्तानों को उत्तम बुद्धिवाले कर सकें वे विद्वान् यह उत्तर दें कि जो यथार्थवादी हो वे ही उक्त काम को कर सकें अन्य जन नहीं ॥ ५ ॥

अथ विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वसां राजानं वसति जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।

ब्रह्माणश्चैव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥१५॥

भाषार्थ—जो ( वसात् ) बसने हुए प्राणियों और ( जनानाम् ) सृजन पुरुषों के ( राजानम् ) न्याय करनेवाले को और ( वसतिम् ) निवास को प्रकट करें ( तम् ) उसकी विद्वान् जन ( अथ, सृजन्तु ) न निकाल दें और जो ( निन्दितारः ) गुणों में दोषों और दोषों में गुणों का स्थापन करनेवाले ( निन्द्यासः ) अधर्म के आचरण से निन्दा करने योग्य और ( अरातयः ) प्रत्याय से ग्रहण करनेवाले शत्रुजन ( मर्त्येषु ) मरणधर्मा मनुष्यों में ( ब्रह्माणि ) बड़े जनो को ( नि, दधुः ) स्थापन करें वे ( अथ ) तीन प्रकार के दुःख से रहित के भी दूर स्थित ( भवन्तु ) ही ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो निकृष्ट कर्म करने और हमारे के द्रव्य के हरने वाले द्वेषकर्ता हो उनको दण्ड देकर निजान दण्ड में बाधा और जो स्तुति करनेवाले धर्मिष्ठ हों उनको समीप में निवास देकर सदा सत्कार करो ॥ ६ ॥

शूनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राधूपावमुञ्चा अशमिष्ट हि षः ।

एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होताश्रकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! आप ( सहस्रात् ) असंख्य ( धूपात् ) मिले या न मिले हुए बन्धन से ( निदितम् ) निन्दित ( शून-शेषम् ) सुख का प्राप्त कराने और इन्द्रियाराम अर्थात् इन्द्रियों में रमण करनेवाले को ( चित् ) भी ( अनुञ्चन् ) त्याग करो ( हि ) जिसमें ( ष ) वह ( अशमिष्ट ) शान्त होता ( एव ) ही है । हे ( होत ) हवन करनेवाले ( चिकित्वा ) बुद्धिमान् ( इह ) यहाँ युक्तधर्म सम्बन्धी व्यवहार में ( निषद्य ) प्रवृत्त होकर ( अस्मत् ) हम लोगों से ( पाशान् ) ससाररूप बन्धनों को ( तू ) फिर ( वि, मुमुग्धि ) काटिए ॥७॥

भाषार्थ—विद्वानों का यही आवश्यक कर्म है जो सब मनुष्यों को अविद्या और अधर्मचरण से अलग कर विद्वान् धार्मिक बना उनका दुःखबन्धन छुड़ाना निरन्तर करना चाहिए ॥ ७ ॥

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।

इन्द्रो विद्वां अनु हि त्वा चक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) तीन दोषों के नाश करनेवाले ( हृणीयमानः ) क्रोध करत हुए आप ( हि ) ही ( नत् ) मेरे समीप से ( अप, ऐये. ) जाइये और जो ( हि ) निश्चय ( इन्द्रः ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त ( विद्वाश्च ) विद्वान् ( त्वा ) आपको ( अनु, चक्षन् ) अनुकूल कहें और जो ( मे ) मेरे लिए ( देवानाम् ) विद्वानों के बीच ( व्रतपाः ) सत्य की रक्षा करनेवाला हुआ सत्य को ( प्र, उवाच ) कहें ( तेन ) इससे ( अनुशिष्टः ) शिक्षा को प्राप्त ( अहम् ) मैं सत्यबोध को ( आ, अगाम् ) प्राप्त होऊ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य दुष्ट कर्म स्वभाववाले हो वे दूर रहने योग्य हैं और जो धर्मिष्ठ सत्य का उपदेश करें उनके सङ्ग से शिष्ट अर्थात् श्रेष्ठ होके सुख को प्राप्त हों ॥ ८ ॥

वि ज्योतिषा ब्रह्मा मास्यधिराविर्विश्वानि कणुते महित्वा ।

प्रादेवीर्मायाः संहते दुरेबाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिसं ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ( अग्निः ) सूर्य आदि रूप से अग्नि ( ब्रह्मा ) बड़े ( ज्योतिषा ) प्रकाश से ( महित्वा ) बड़प्पन से ( विश्वानि ) सम्पूर्ण वस्तुओं को ( आवि. ) प्रकट ( कृत्यते ) करता है ( वि ) विशेष करके ( माति ) प्रकाशित होता है और ( प्र ) अत्यन्त ( संहते ) गहन करता है ( शृङ्गे ) शृङ्ग के निमित्त ( रक्षसे ) दुष्टों के विनाश के लिए ( विमिश्रं ) वा अन्य विनाश के लिए ( शिशीते ) प्रतापयुक्त होता है वैसे ( दुरेबाः ) दुष्ट प्राप्त करानेवाले कर्मवासी ( अवेधी. ) अशुद्ध ( मायाः ) छल आदि से युक्त बुद्धियों को सब प्रकार से बाण कीजिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमानद्वारा है । जैसे सूर्य अन्धकार का वारण कर और प्रकाश को उत्पन्न करके भय का निवारण करता है वैसे ही विद्वान् जन और अज्ञान का निवारण करके विद्यारूप सूर्य को उत्पन्न करके सबके धात्माओं को प्रकाशित करें ॥ ९ ॥

अथ अनुर्वेद के वृष्टास्त से अविद्या निवारण को कहते हैं—

उत स्वानासौ दिवि पन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।

मन् चिदस्य प्र रजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( अग्ने ) अग्नि से ( तिग्मायुधा ) तीक्ष्ण आयुध युक्त ( स्वानासः ) उपदेश करनेवाले ( दिवि ) विद्या के प्रकाश में धत्तमान ( रक्षसे ) दुष्टों के विनाश करने के लिए ( हन्तवः ) हनने वा समर्थ ( सन्तु ) हजिए और ( उत ) भी ( मन् ) आनन्द के लिए प्रवृत्त हजिये ( चित्, उ ) और भी ( अस्य ) इसके ( भामा ) क्रोधों के ( न ) तुल्य ( परिबाधः ) सब आर में बाधनों को ( अदेवी ) प्रमादग्रहित क्रियायें ( प्र, रजन्ति ) सब प्रकार भग करनी और ( वरन्ते ) स्वीकार करती हैं उनका निवारण करा ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग जैसे अनुर्वेद को पढ़े हुए मन्त्र और अस्रों के प्रक्षेप अर्थात् चलानेरूप युद्ध में चतुर जन अग्नि सम्बन्धी अस्त्रादिकों से शत्रुओं का निवारण करके विजय को प्रकाशित करते हैं वैसे ही अत्यन्त विद्या के पढ़ाने और उपदेश करने में अविद्याकृत प्रमादों का निवारण करके विद्याकृत श्रेष्ठ गुणों का प्रकाश करो ॥ १० ॥

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपां अतसम् ।

यदीदग्ने प्रति त्वं देव ह्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११॥

पदार्थ—हे ( तुविजात ) बहुत विद्वानो में प्रसिद्ध ( अग्ने ) विद्वान् जैसे मैं ( ते ) आपका ( स्वपाः ) उत्तम कर्म करनेवाला ( धीरः ) अमा आदि गुणों से युक्त और ध्यान करनेवाला ( विप्रः ) बुद्धिमान जन के ( न ) सवृण ( एतम् ) इस श्रेष्ठ गुणों के प्रकाशक ( रथम् ) सुन्दर वाहन को ( अतसम् ) बनाता हूँ वैसे ( त्वम् ) आप आचरण कीजिए और हे ( देव ) सम्पूर्ण विद्या के देनेवाले ( अग्नि ) जो आप वाहन को रचिये तो ( इत् ) ही ( स्तोमम् ) प्रणमित व्यवहार जिगमें ऐसे सुख को प्राप्त हजिए और जैसे हम लोग ( एना ) हमसे ( ह्याः ) कामना करने योग्य अर्थात् सुन्दर ( स्वर्वती ) अक्षुब्ध सुखों से युक्त ( अप ) प्राणों से युक्त ( प्रति, जयेम ) प्रति जीते वैसे आप इनको जीतिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानद्वारा है । हे मनुष्यों ! जैसे विद्वान् जन धर्मयुक्त कामनाओं को करके विजयी होते हैं वैसे ही आप लोग भी आचरण करो ॥ ११ ॥

तुविशीर्षो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः ।

इतीममग्निममृता अवोच ब्रह्मन्ते मनवे शर्म यंसद्विष्मन्ते मनवे शर्म यंसत ॥१२॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ( तुविशीर्ष ) बहुत बल वा सुन्दरी ग्रीवायुक्त ( वावृधानः ) अत्यन्त बलवान् हुआ ( वृषभ ) शरीर बलवान् ( अग्ने ) स्वामी ( अशत्रुः ) शत्रुओं से रहित ( वेदः ) धन का ( सन्, अजाति ) अक्षे प्रकार प्राप्त होवे और ( ब्रह्मन्ते ) ज्ञान की बुद्धि से युक्त ( मनवे ) मनुष्य के लिए ( शर्मन् ) सुख वा गृह को ( यस्त ) देवे और ( ब्रह्मन्ते ) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त ( मनवे ) विचारशील पुरुष के लिए ( शर्मन् ) सुख को ( यस्त ) देवे ( इति ) इस प्रकार से ( इमम् ) इस ( अग्निम् ) बिजुली को ( अमृताः ) आत्मज्ञान जिनको प्राप्त वे ( अवोचन् ) कहें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—सब विद्वान् जन ही सब विद्याधियों के लिए उत्तम शिक्षा देकर शत्रुता को छुड़ा के सब प्रकार के सुख को प्राप्त हों ॥ १२ ॥

इस सूक्त में युवावस्था में विवाह और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह द्वितीय सूक्त और पञ्चहर्षा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ ऋक्सर्षस्य तृतीयस्य सूक्तस्य वसुधुत आश्रेयः । अग्निर्वेदता ।

१ निचुत्पत्तिः । ११ भुरिक्पत्तिः । पञ्चमः स्वर । २, ३, ५,

६, १२ निचुत्पत्तिः, ४, १०, त्रिष्टुप् । ६ स्वरान् त्रिष्टुप् ।

७, ८, त्रिष्टुप् । ६ स्वरान् त्रिष्टुप् । ६ स्वरान् त्रिष्टुप् ।

अथ बारह ऋचा वाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से राजा के कर्तव्य को कहते हैं—

त्वमग्ने वरुणो जायसे यन्मं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।

त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वभिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१॥

पदार्थ—हे ( सहस्रः ) बल के ( पुत्रः ) पालन करनेवाले ( अग्ने ) विद्या का अभ्यास किये हुए विद्वान् ( यत् ) जिसके ( त्वम् ) आप ( मित्रः ) सखा और ( यत् ) जिससे ( समिद्धः ) प्रकाशयुक्त ( भवसि ) होते हो और जो ( त्वम् ) आप ( वरुणः ) दुष्टों के बन्ध करनेवाले श्रेष्ठ ( जायसे ) होते हो और जो ( त्वम् ) आप ( इन्द्रः ) ऐश्वर्य के दाता ( दाशुषे ) देने योग्य ( मर्त्याय ) मनुष्य के लिए बल देते हो उन ( त्वे ) आप में ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( देवा ) विद्वान् जन प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

भावाथ—हे राजन् ! जिसके आप मित्र वा जिससे आप विरुद्ध और उदासीन होते हैं वह आपके साथ सदैव मित्रता रखे और आप भी उस के साथ रहें ॥ १ ॥

तवमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन गुह्यं विमर्षि ।

अजन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यदम्पती समनसा कृणोषि ॥२॥

पदार्थ—हे ( स्वधावन ) अच्छे अन्न से युक्त राजन् ! ( यत् ) जिससे ( त्वम् ) आप ( कनीनाम् ) कामना करनेवालों के ( अम्पती ) व्याघ्रादीश ( भवसि ) हाते हो और ( गुह्यम् ) गुप्त ( नाम ) नाम का ( विमर्षि ) धारण करने हा और ( यत् ) जो ( दम्पती ) विवाहित स्त्री पुरुषों को ( समनसा ) तुल्य मन और दृढ़ प्रीतियुक्त ( कृणोषि ) करने हा उन आपको सम्पूर्ण विद्वान् जन ( गोभिः ) वाणी आदि पदार्थों से ( सुधितम् ) गुन्दर प्रसन्न ( मित्रम् ) मित्र के ( न ) सद्गुण ( अजन्ति ) प्रकट करते हैं ॥ २ ॥

भावाथ—उम मन्त्र में उपमानद्वारा है । वही राजा श्रेष्ठ है जो प्रजाओं का पयाप त्याग करता है और जने मित्र मित्र को प्रसन्न करता है वैसे ही राजा प्रजाओं को प्रसन्न कर ॥ २ ॥

त्वं श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ।

पद यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पामि गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( रुद्र ) दृष्टा के कलानेता ! जा ( मरुत ) मनुष्य ( तव ) आप की ( श्रिये ) लक्ष्मी के लिये ( मर्जयन्त ) शुद्ध करे ( ते ) आपका ( यत् ) जा ( चारु ) सुन्दर ( चित्रम् ) अदभुत ( पवम् ) प्राण हान योग्य ( जनिम ) जन्म उसको पुनः बार और ( यत् ) जा आप ( विष्णो ) व्यापक स्वप्न का ( उपमम् ) उपमायुक्त और ( गोनाम् ) इन्द्रियों वा किरणों का ( गुह्यम् ) गुप्त ( नाम ) नाम ( निधायि ) धारण करे ( तेन ) इसी हनु से उनका आप ( पामि ) पालन करने हा हमसे गन्तार करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावाथ—हे राजन् ! उसीसे आपके जन्म का साफल्य होवे जिससे आप ईश्वर के सन्तान प्रशान का त्याग करके प्रजाओं का पालन करो ॥ ३ ॥

अब प्रजाकृत्य का अगले मन्त्र में कहते हैं—

तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरु दधाना अमृतं सपन्त ।

होताममि मनुषा नि वैदृशस्यन्त उशिजः शंसमायो ॥४॥

पदार्थ—हे ( देव ) दानशील राजन् ! ( तव ) आपकी ( श्रिया ) लक्ष्मी वा शोभा से ( सुदृश ) उत्तम प्रकार देखने और ( पुरु ) बहुत ( अमृतम् ) मृत्युरहित अर्थात् अविनाशी पदवी को ( दधाना ) धारण करते और ( उशिजः ) कामना करने हुए ( आयो ) जीवन के ( शंसम् ) कष्टान और ( होतामम ) ग्रहण करने वाले ( अमृतम् ) अमृत को ( दृशस्यन्त ) प्रसन्न हुए ( देवा ) विद्वान् ( मनुष ) मनुष्य ( सपन्त ) आश्रयित रह अर्थात् चित्ता चित्ता उसका उपदेश करते हैं वे मृत्युरहित पदवी को ( नि, वेदु ) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावाथ—हे मनुष्य ! आप यथाभवता विद्वानों के सङ्ग में विद्याओं का ग्रहण कर लक्ष्मीवान् हो और उम समार में सुख भोगकर जन्त अर्थात् मरण समय में मुक्ति का प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

फिर राजधर्म का अगले मन्त्र में कहते हैं—

न स्वदाता पूर्वा अग्ने यजीयान् काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।

विशश्च यस्या अतिथिर्भवामि म यज्ञेन वनवद्देव मर्त्तान् ॥५॥

पदार्थ—हे ( स्वधाव ) बहुत धन और धान्य से युक्त ( देव ) मनुष्य के देने वाले ( अग्ने ) विद्वान् वा राजन् आप ( यज्ञेन ) प्रजापालनरूप व्यवहार से ( मर्त्तान् ) मनुष्यों का ( वनवत् ) सेवन करने हा ( न ) न ( त्वम् ) आपके समीप में ( पूर्व ) प्राचीन ( होना ) दाता ( यजीयान् ) अत्यन्त यज्ञ करनेवाला ( अस्ति ) है और ( न ) न ( काव्यैः ) कवियों के बनाये हुआ म ( परो ) श्रेष्ठ है ( यस्या ) जिस ( विश ) प्रजा के ( च ) भी ( अतिथि ) आदर करने योग्य जो आप ( भवामि ) होते हैं ( स ) वह आप उम प्रजा के सन्तान करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावाथ—जो राजा धर्मयुक्त व्यवहार में प्रजाओं का पालन करे वही राज्य करने के योग्य होता है ॥ ५ ॥

फिर प्रजाविषय का अगले मन्त्र में कहते हैं—

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।

वयं ममयं विदयेष्वहो वयं गया मद्रमस्पृत्र मर्त्तान् ॥६॥१६॥

पदार्थ—हे ( सहसस्पृत्र ) बल की पालना करनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण तेजस्वी राजन् ( त्वोता ) आप से रक्षा किये गये ( वसूयव ) अपने धन की इच्छा करनेवाले ( हविषा ) दान से ( बुध्यमाना ) बोध को प्राप्त होते हुए ( वयम् ) हम लोग आप से रक्षा की ( वनुयाम ) याचना करे और ( वयम् ) हम लोग ( अह्नाम् ) दिनों के ( विदयेषु ) विशेष ज्ञानसम्बन्धी व्यवहारों में ( ममयं ) सग्राम के लिए प्रवृत्त होवें और ( वयम् ) हम लोग ( गया ) धन से ( मर्त्तान् ) मनुष्यों को याचे अर्थात् मनुष्यों से मागे ॥ ६ ॥

भावाथ—हे मनुष्यो ! विद्वानों से श्रेष्ठ गुणों की आप लोग प्रार्थना करें तो स्वयं प्रजायें धनवती होवें ॥ ६ ॥

फिर चोरी आदि अपराधनिवारण प्रजापालन राजधर्म को कहते हैं—

यो न आगो अम्येनो भरात्यधीदधमघशंसै दधात ।

जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्षयति ह्येन ॥७॥

पदार्थ—हे ( चिकित्व ) विज्ञानवान् ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण प्रतापी पृथिवी के पालन वाले ( य ) जो ( न ) हम लोगों के ( आग ) अपराध और ( एम ) पाप का ( अभि, भराति ) सम्पूर्ण धारण करता है उम ( अधशंसै ) चोरीरूप कर्म में जो ( अधम् ) पाप ( इत् ) ही को ( अभि, दधात ) अधिस्थापन कर और ( य ) जो ( ह्येन ) पाप और अपराध से ( न ) हम लोगों को ( मर्षयति ) बाधना है और ( एताम् ) इस ( अभिशस्तिम् ) सब अपराध से हिसा को करना है उसका आप ( जही ) त्याग कीजिये ॥ ७ ॥

भावाथ—हे राजन् ! जो प्रजा को दोष देने वाले हों उनको सदा ही दण्ड दीजिये और जो श्रेष्ठ आचरण करनेवाले हों उनको माना अर्थात् सत्कार करो ॥ ७ ॥

फिर राजधर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं

त्वासस्या व्युपि देव पूर्व दूतं कृष्णा अयजन्त हव्यैः ।

संस्थे यदग्न ईयसे रयीणा देवो मर्त्तवसुभिर्धियमानः ॥८॥

पदार्थ—हे ( देव ) श्रेष्ठ गुणों से युक्त ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण वर्तमान ( देव ) विद्वान् हाते हम आप ( यत् ) जिससे ( अस्या ) इस प्रजा के मध्य में ( संस्थे ) उत्तम प्रकार स्थित होते हैं जिसमें उगम ( रयीणाम ) धनो के बीच ( वसुभिः ) धन आदि पदार्थों से युक्त ( मर्त्त ) मरण समवाये मनुष्यों से ( इध्यमान ) प्रकाशित किये गये ( ईयसे ) प्राप्त होने वा जान हो और पालन का ( व्युपि ) सेवन करने की उत ( त्वाम ) आपकी ( हव्यैः ) प्रणमा करने योग्य पदार्थों से ( दूतम् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ( कृष्णा ) कृष्ण हुए ( पूर्व ) पालन करनेवाले विद्वान् जन ( अयजन्त ) भिन्ने ॥ ८ ॥

भावाथ—हे राजन् ! जो आप विद्या और वित्त में व्यापक प्रजाओं का निरन्तर पालन कर तो आप की यश, धन, राज्य की उत्पत्ति और उत्तम पुरुष प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

फिर सन्तानशिक्षाविषयक प्रजाधर्म का अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान पुत्रो यस्तं सहसः सून ऊहे ।

कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्नं कदा ऋतचिधातयासे ॥९॥

पदार्थ—हे ( सहस ) ब्रह्मचर्ययुक्त से युक्त पुत्र के ( पुत्रो ) पुत्र ( चिकित्व ) बुद्धियुक्त ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण तेजस्विन् ( ते ) तरे लिए मैं ( ऊहे ) विशेष तक करता हूँ ( य ) जा तू ( विद्वान् ) विद्वान् ( पुत्र ) पुत्र से रक्षा करनेवाला है या ( पितरम् ) पिता अर्थात् अपने पालनवाले की ( अव, स्पृधि ) अभिकक्षा कर और दुःख को ( बोधि ) दूर कर तथा ( ऋतचित् ) सत्य का संचय करने वाले तुम ( न ) हम लोगों का ( कदा ) कब ( अभि, चक्षसे ) उपदेश दोग और ( कदा ) कब अच्छे कामों में ( धातयासे ) प्रेरणा करागे ।

भावाथ—जा कन्या और बालका का माता पिता ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त करव और पूण यशस्वता में विवाह करावे ता के अत्यन्त सुख का प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भूरि नाम वन्दमानो दधानि पिता वमो यदि यज्जोषयासे ।

कुर्विदेवस्य सहसा चकानः सन्ममयिवैनते बाहृधानः ॥१०॥

पदार्थ—हे ( वमो ) निवारण करनेवाले जो अपराध की ( वन्दयाम ) स्तुति करना हुआ ( देवस्य ) विद्वान् के ( सहसा ) बल से ( सन्मम ) सुख की ( चकान ) कामना करता और ( अग्नि ) अग्नि के सद्गुण ( बाहृधान ) निरन्तर बढ़ता हुआ ( पिता ) उत्पन्न करने वाला ( यदि ) यदि ( भूरि ) बहुत ( कुर्वित् ) बड़े जिस ( नाम ) नाम की ( दधानि ) धारण करता और ( वनते ) सेवन करता है ( तत् ) उसका तो आप ( जोषयासे ) सेवन करें ॥ १० ॥

भावाथ—हे सन्तान ! जो आपके माता पिता दूसरे विद्यारूप जन्म नामक द्विज मेमा नाम विधान करते हैं उनका सेवन निरन्तर तुम लोग करो ॥ १० ॥

अब चोरी आदि दोषनिवारण सन्तानशिक्षाकरण प्रजाधर्मविषय को कहते हैं—

त्वमङ्ग जगितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पवि ।

स्तेना अहश्चित्रपत्रो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन ॥११॥

पदार्थ—हे ( यविष्ठ ) अतिशय करके युवा ( अङ्ग ) मित्र ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण वर्तमान जिस से ( त्वम् ) आप ( जगितारम् ) विद्या और गुण की स्तुति करनेवाले पिता की ( अति, पवि ) अत्यन्त पालना करते हो ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( दुरिता ) दुःख के प्राप्त करानेवाले कर्म वा फलों का त्याग करते हो और जो ( अज्ञातकेता ) नहीं जानी बुद्धि जिन्होंने वे पूर्व ( वृजिनाः ) पापाचरणयुक्त वर्जने योग्य ( स्तेना ) चोर ( रिपवः ) शत्रु ( अभूवन् ) होते हैं और



जिन को ( जनासः ) विद्वान् जन ( अभुवन् ) देखने हैं उनका आप परिस्वाग करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे उत्तम सन्तानो! आप लोग दृष्ट आचरणों का त्याग, माता पितादि का सत्कार और खोरी कर्म आदि का निवारण करके पुण्य वाले हजिये ॥ ११ ॥

फिर प्रजावर्धविषय को कहते हैं—

इमे यामासस्त्वद्रिगभुवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।

नाहायमपिरमिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥१२॥१७॥

पदार्थ—हे श्रेष्ठ सन्तान! जो ( अयम् ) यह ( अग्निः ) अग्नि के सद्गुण वर्तमान ( तः ) हम लोगों को ( अभिवास्तये ) सब प्रकार से हिंसा करने के लिये ( न ) नहीं ( अह ) निषधय ( परा, दात् ) दूर पहुँचावे और ( वावृधानः ) निरन्तर बढ़ता हुआ ( न ) नहीं ( रीषते ) हिंसा करता और ( त्वविक्र ) आपके प्रति यत्न कराता ( वसवे ) धन के लिये ( अवाचि ) कहा गया ( वा ) वा ( तत् ) वह ( आत् ) अपराध ( इत् ) ही कहा गया उसको ( इमे ) ये ( यामास ) यम और नियमों से युक्त जन पढ़ाने और उपदेश से पवित्र करे और वे धार्मन्दि ( अभुवन् ) होते हैं ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जा विद्वान् जन किसी की भी बिना अपराध के नहीं दोष देते हैं उनका समीप से दूर मत निकालना ॥ १२ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा को खोरी और अन्य अपराध आदि के निवारण आदि के कथन से इस सूक्त के अर्थ की पूरव सूक्त के अर्थ के साथ सद्गति जाननी चाहिए ॥

यह सोसरा सूक्त और सत्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अवेकादशर्षम्य चतुर्थस्य सूक्तस्य अनुभूत आश्रेय ऋषि । अग्निर्वैवता ।

१, १०, ११ भुरिक् पङ्क्ति । ४, ७ स्वरान् पङ्क्तिः छन्दः ।

पङ्क्तम स्वरः । २, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, ८ मिक्त्रिष्टुप् ।

५ त्रिष्टुप् छन्दः । षष्ठ स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले चतुर्थ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से राजविषय को कहते हैं—

स्वामग्ने वसुपति वसुनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।

त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि व्याम पृन्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) बिजुली के सद्गुण विद्या से व्याप्त ( राजन् ) उत्तम गुणा से प्रकाशमान राजन् ( अध्वरेषु ) नहीं हिंसा करने योग्य प्रजापालन और न्यायव्यवहारों में ( वसुनाम् ) धनो के ( वसुपतिस् ) धनस्वामी ( त्वाम् ) आपको मे ( अभि, प्र, मन्दे ) सब ओर से धानन्द देऊँ वा धानन्द देता है और ( त्वया ) अधिष्ठाता रूप आपके साथ ( वाजम् ) गड़ग्राह को ( वाजयन्त ) करते वा कराते हुए हम लोग ( मर्त्यानाम् ) मरण भयवाले शत्रुओं की ( पृन्सुती ) सेनाओं को ( अभि, जयेम ) सब ओर से जीते, इससे धन और यश से युक्त ( व्याम ) होवें ॥ १ ॥

भाषार्थ—जिनके अधिष्ठाता मुख्या धार्मिक और विद्वान् होवें उनका सदा ही विजय, राज्य की वृद्धि और अतुल लक्ष्मी होती है ॥ १ ॥

हव्यवाक्मिरजः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीका अस्मे ।

सुगार्हपत्याः समिपों दिदीक्षस्मद्यः वसं मिमीहि श्रवोंसि ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे ( हव्यवाक् ) द्रव्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचावे वा ( सुदृशीक ) उत्तम प्रकार देखने योग्य वा दिखानवाला ( अग्निः ) शुद्धस्वरूप अग्नि जैसे ( विभुः ) व्यापक परमेश्वर के सद्गुण सबका पालन करता और प्रकाशित होता है वैसे ( विभावा ) अनेक प्रकार के प्रकाश वा ज्ञान से युक्त ( अजरः ) वृद्धावस्थाग्रहित ( न ) हम लोगों के ( पिता ) पालन करनेवाले होते हुए ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( सुगार्हपत्या ) सुन्दर अग्नि आदि पदार्थ समुदायवाले ( हव्य ) अन्नो को ( समु, मिमीहि ) अच्छे प्रकार दीजिए और ( अस्मद्यः ) हम लोगों का आदर करने जनाने वा जाननेवाले होते हुए ( श्रवोंसि ) पढ़ाने आदि कर्मों का ( समु, मिमीहि ) विधान करिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे बिजुली और भूमि में प्रसिद्ध हुए रूप से अग्नि सबका उपकार करता है और जैसे परमेश्वर अमर्याद पदार्थों के उत्पन्न करने से पितरों के सद्गुण सबका पालन करता है वैसे ही आप हजिये ॥ २ ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

विशां कवि विश्वपति मानुषीणां शुचिं पावकं वृत्तपृष्ठमग्निम् ।

नि होतां विश्वविदं बधिध्वे स देवेषु वनते वाय्वीणि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ( वृत्तपृष्ठम् ) जल और भूत आधार में जिसके उस ( पावकम् ) पवित्र करनेवाले ( अग्निम् ) अग्नि और ( विश्वविषयम् )

ससार को जाननेवाले के सद्गुण ( मानुषीणां ) मनुष्यसम्बन्धित ( विश्वम् ) प्रजाओं के ( विश्वपतिम् ) प्रजापालक ( शुचिम् ) पवित्र और ( होतां ) देनेवाले ( कविम् ) मेधावी जिस राजा को आप लोग ( मि, बधिध्वे ) अच्छे स्वीकार करें ( स ) वह ( देवेषु ) विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों में ( वाय्वीणि ) स्वीकार करने योग्यों का ( वनते ) सेवन करता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि के सद्गुण प्रतापी जगदीश्वर के सद्गुण न्यायकारी विद्वान् और उत्तम लक्षणी वाला राजा होता है वही चक्रवर्ती राजा होने योग्य है ॥ ३ ॥

जुषस्वान् इक्ष्वा सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।

जुषस्व नः समिध जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वसि । ४॥

पदार्थ—हे ( जातवेद ) ज्ञान की उत्पत्ति में विनिष्ट ( अग्ने ) दुष्टों के नाश करनेवाले ( इक्ष्वा ) प्रयत्न करते हुए ( सजोषा ) तुल्य प्रीति सेवनेवाले आप ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( रश्मिभिः ) किरणों के सद्गुण ( इक्ष्वा ) प्रशमित वाणी से ( न ) हम लोगों के ( समिधम् ) बाण्ट के तुल्य शत्रु की ( जुषस्व ) सेवा करो और ( हविरद्याय ) ज्ञान योग्य पदार्थ के लिये ( देवात् ) विद्वानों को ( आ, वसि ) प्राप्त कराते अर्थात् पहुँचाने हो उनकी ( च ) और ( जुषस्व ) सेवा करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के प्रकाश से सब जीवों के करने योग्य कर्म सिद्ध होते हैं वैसे ही यथार्थवक्ता गुरुओं में राजा के सर्व न्याययुक्त प्रजापानन आदि कर्म होते हैं ॥ ४ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

जुष्टो दमृना अतिथिर्दुगेण इमं नो यज्ञमुप पाहि विद्वान् ।

विश्वं अग्ने अभियुजो विहस्यां शत्रूयतामा भग भोजनानि ॥५॥१८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) बिजुली के सद्गुण श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न राजन् ( जुष्टः ) सेवित वा प्रसन्न किये गये ( दमृना ) शम, दम आदि से युक्त ( अतिथिः ) अकस्मात् आये ( दुगेण ) यह मैं प्राप्त हुए से ( विद्वान् ) विद्वान् आप ( न ) हम लोगों के ( इमम् ) हम प्रत्यक्ष ( यज्ञम् ) अन्न आदि उत्तम पदार्थों के दान को ( उप, पाहि ) प्राप्त हजिये और ( शत्रूयताम् ) शत्रुओं के सद्गुण आचरण करने हुआ की ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( अभियुजः ) सम्मुख प्राप्त हुई शत्रुसेनाओं का ( विहस्यां ) अनेक प्रकार के वधों से नाश करके ( भोजनानि ) प्रजापालन वा खाने योग्य अन्नो का ( आ, भ्र ) धारण कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो राजा दुष्टों का नाश करके न्याय से प्रजाओं का पालन करता है वह बहुत ही प्रजा का प्रिय होता है ॥ ५ ॥

वधेन दस्युं प्र हि चानयस्व वयः कृष्णानस्तन्वे स्वायै ।

पिपिं यत्सहमस्पुत्र देवान्सो अग्ने पाहि वृत्तम वाजै अस्मान् ॥६॥

पदार्थ—हे ( सहस पुत्र ) बन्वान् के पुत्र ( नृत्तम् ) अतिशय मुख्य ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण प्रतापी राजन् ( यत् ) जो आप ( स्वायै ) अपने ( तन्वे ) शरीर के लिये ( वयः ) जीवन का ( कृष्णान् ) करते हुए ( वधेन ) वध से ( दस्युम् ) साहसकर्मकारी खोर का ( प्र, चानयस्व ) अत्यन्त नाश करो वा नाश कराओ । तथा प्रजाओं को ( हि ) ही ( पिपिं ) प्रसन्न करते हो ( स ) वह आप ( वाजै ) सद्गुणों में ( अस्मान् ) हम लोगों ( देवान् ) विद्वानों की ( पाहि ) रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप सदा चार डाकुओं का नाश कर धार्मिकों का पालन करें और शत्रुओं को जीते ॥ ६ ॥

अब राजप्रजा विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वयं ते भग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।

अस्मे रयि विश्ववारं ममिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥७॥

पदार्थ—हे ( पावक ) पवित्र ( भद्रशोचे ) कल्याण के प्रकाश करनेवाले ( अग्ने ) बिजुली के सद्गुण वर्तमान विद्वान् राजा जैसे ( वयम् ) हम लोग जिन ( ते ) आपके ( उक्थैः ) प्रशमित वचनों से ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( द्रविणानि ) यशों की ( विश्वम् ) मिद्ध करें वैसे ( अस्मे ) हम लोगों के लिये इनको ( समु, धेहि ) अत्यन्त धारण कीजिये और जैसे ( वयम् ) हम लोग ( हव्यैः ) देन और लेने योग्यों से आपकी ( विश्ववारम् ) विवरपर्यन्त अर्थात् अग्नि उत्तम पदार्थपर्यन्त पदार्थों से युक्त ( रयिम् ) लक्ष्मी को प्राप्त करावें वैसे आप ( अस्मे ) हम लोगों के लिये इसको ( हव्यैः ) व्याप्त कीजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रजा और मन्त्रीजन राजलक्ष्मी को बढ़ावें वैसे ही राजा इन लोगों के लिये धन बढ़ावे । इस प्रकार न्याय से पिता और पुत्र के सद्गुण वर्तव्य करके यशस्वी होवें ॥ ७ ॥

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिपथस्थ हव्यम् ।

वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्षणा नस्त्रिवरुथेन पाहि ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ( वृत्तपृष्ठम् ) जल और भूत आधार में जिसके उस ( पावकम् ) पवित्र करनेवाले ( अग्निम् ) अग्नि और ( विश्वविषयम् )

पदार्थ—हे ( सहस्र, सन्तो ) बलवान् और अतिकालपर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण किये हुए जन के पुत्र और ( त्रिविधस्य ) तीन अर्थात् प्रजा, भूय और अपने कुटुम्ब के जनों के साथ पक्षपात छोड़ कर रहनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी वर्तमान राजन् आप ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( हव्यम् ) देने योग्य सुख और ( अध्वरम् ) पालनरूप व्यवहार का ( ध्रुवस्व ) मेवन करो और ( त्रिविध्येन ) वर्षा, शीत और ग्रीष्मकाल में श्रेष्ठ ( शम्भवा ) गृह के साथ ( न ) हम लोगों का निरन्तर ( पाहि ) पालन करो जिससे ( वयम् ) हम लोग ( वेवेभु ) विद्वानों में ( सुकृत ) धर्मगम्भीर कर्म करनेवाले ( स्याम ) होंगे ॥८॥

भाषार्थ—मव जन राजा के प्रति यह कह कि हे राजन् ! आप हम लोग का पालन यथावत् करिये आप से रक्षित हम लोग निरन्तर धर्माचरणयुक्त होकर आपकी उन्नति को जैसे करें ॥८॥

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धु न नावा दुर्गितातिं पथि ।

अग्ने अत्रिविधमसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥९॥

पदार्थ—ह ( अत्रिविध ) निरन्तर चलने वालों में युक्त ( जातवेदः ) विद्याओं में सम्पन्न ( अग्ने ) धर्मिष्ठ राजन् जिससे आप ( नावा ) नौका से ( सिन्धुम् ) नदी वा समुद्र को ( न ) जैसे वैसे ( न ) हम लोगों के ( विश्वानि ) ममस्त ( दुर्गहा ) दुःख से पार जाने को योग्य और ( दुरिता ) दुःख से प्राप्त होने योग्यों के भी ( अति, पथि ) पार जान हा और ( नमसा ) सत्कार वा अन्न आदि से ( गृणान ) स्तुति करने हुए ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( तनूनाम् ) शरीरों के ( अविता ) रक्षक होत हुए ( बोधि ) जानने हा उनमें निरन्तर सेवा करने योग्य हा ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा अध्यापक और उपदेशक जन सब लोगों का दुःख से पार पहुँचाने में अनुम सुख को प्राप्त होने है ॥९॥

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्यो जोहवीमि ।

जातवेदो यज्ञो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमस्याम् ॥१०॥

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) विज्ञान से युक्त ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान राजन् ( य ) जो ( मन्यमान ) जानता हुआ ( अमर्त्यं ) मनुष्य में ( हवा ) अन्नः कर्ण और ( कीरिणा ) स्तुति करनेवाले से ( अमर्त्यम् ) मरणधर्म से रहित ( स्वा ) आपकी ( जोहवीमि ) अत्यन्त स्पर्धा करू और जैसे ( प्रजाभि ) पालन करने योग्य प्रजाओं के साथ ( अमृतत्वम् ) मोक्षभाव को ( अस्याम् ) प्राप्त हाऊ वैसे ( अस्मासु ) हम लोग में ( यज्ञ ) कीर्ति को ( धेहि ) धरिय, स्थापना कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—जैसे प्रजाएँ राजा के हित का मित्र करती हैं वैसे ही राजा प्रजा के सुख की इच्छा करे हम प्रकार परस्पर प्रीति से अनुम सुख का प्राप्त होंगे ॥१०॥

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्रं कृणवः स्योनम् ।

अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयि नशते स्वस्ति ॥११॥१६॥

पदार्थ—ह ( जातवेदः ) बुद्धि से युक्त ( अग्ने ) विद्वान् ( त्वम् ) आप ( यस्मै ) जिस ( सुकृते ) धर्मात्मा के लिये ( स्योनम् ) सुख का कारण ( लोकम् ) देवने योग्य ( कृणवः ) करने ही ( स, उ ) वही ( अश्विनम् ) अच्छे घोड़े आदि पदार्थों ( पुत्रिणम् ) अच्छे पुत्रों ( वीरवन्तम् ) बहुत वीरों तथा ( गोमन्तम् ) बहुत गौ आदिकों के सहित ( स्वस्ति ) सुखस्वरूप ( रयिम् ) धन का ( नशते ) प्राप्त होता है ॥११॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप विद्या और विनय में प्रजापति को पुत्र आदि ऐश्वर्यों से युक्त करें तो ये प्रजाएँ आपका अति सत्कार करें ॥११॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौथा सूक्त और उन्नीसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अर्पकादशसंख्य पञ्चमस्य सूक्तस्य वसुधुत आश्रेय ऋषि । आग्र देवता ।

१, ५, ६, ७, ८, १० गायत्री । ३, ८ निषुङ्गायत्री । ११ विराड्गायत्री ।

४ पिपीलिकामध्या गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः । २ आद्युधिराक् छन्दः । ऋषभ स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले पञ्चम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से विद्वान् के विषय को कहते हैं—

सुमिद्वाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग ( जातवेदसे ) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान ( सुमिद्वाय ) उत्तम प्रकार प्रदीप्त और ( शोचिषे ) पवित्र करनेवाले ( अग्नये ) अग्नि के लिये ( तीव्रम् ) उत्तम प्रकार शुद्ध अर्थात् साफ किये ( घृतम् ) घृत का ( जुहोतन ) होम करो ॥१॥

भाषार्थ—जो अध्यापक जन पवित्र अन्न करण वालों में विद्या का सत्कार डालने हैं वे सूर्य के सदृश प्रताप से युक्त होने हैं ॥१॥

नराशंसः सुपृदतीमं यज्ञमदाम्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अदाम्यः ) निष्कपट ( मधुहस्त्यः ) मधुर हस्त वाला में श्रेष्ठ ( नराशंसः ) मनुष्यों से प्रशंसा किया गया ( कविः ) बुद्धिमान् जन ( हि ) जिस कारण ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) विद्या के प्रचारनामक व्यवहार को ( सुपृदति ) अमृत के सदृश टपकाना है इस कारण वह पूर्ण सुखयुक्त होता है ॥२॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे गौ सबके सुख के लिये दुग्ध देती है वैसे सब के सुख के लिये सत्यविद्या के उपदेशों को निरन्तर वर्षादिये ॥२॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इक्षितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखं रथेमिहृतये ॥३॥

पदार्थ—ह ( अग्ने ) आरम्भप्रकाशस्वरूप ( इक्षित ) प्रशंसा किये गये आप ( इह ) इस ससार में ( सुखं ) सुखकारक ( रथेभिः ) वाहनों में ( उतये ) रक्षण आदि के लिये ( चित्रम् ) अद्भुत ( प्रियम् ) मनोहर ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को ( आ, वह ) सब प्रकार से प्राप्त कीजिये ॥३॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो के प्रजा के रक्षण के लिये सर्वत्र भ्रमण कीजिये ॥३॥

वर्णोऽन्ता वि प्रथस्वाभ्यर्का अनुषत । मवां नः शुभ्र सातये ॥४॥

पदार्थ—हे ( शुभ्र ) शुद्ध आचरण करनेवाले राजन् ! आप ( सातये ) दायविभाग के लिए ( वि, प्रथस्व ) प्रसिद्ध कीजिये और हम लोगों के लिए सुखकारी ( अन्ता ) हर्जिये । ह ( उर्योऽन्ता ) रक्षकों के सहित मर्दन करने और ( अर्का ) मन्त्र और अर्थ के जाननेवाले आप लोगों ( न ) हम लोगों को सम्पूर्ण विद्याओं से सम्पन्न ( अभि, अनुषत ) कीजिये ॥४॥

भाषार्थ—राजा और राजपुरुष विभाग करके अपने अपने अश अर्थात् हिस्से को ग्रहण करें और प्रजाओं के लिए दें ॥४॥

अब गृहाधनविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्रं यज्ञं पृणीतन ॥५॥२०॥

पदार्थ—ह मनुष्यो ! तुम ( सुप्रायणा ) उत्तम प्रकार गृहों में प्रवेश हो जिन से ऐसी ( देवी ) श्रेष्ठ और शुद्ध ( द्वार ) द्वारों के सदृश सुख की कारणभूत उत्तम स्त्रियों का ( वि, श्रयध्वम् ) विशेष करके मवन करो और ( नः ) हम लोगों के ( ऊतये ) रक्षण आदि के लिए ( यज्ञम् ) गृहाधनव्यवहार का ( प्रप्र, पृणीतन ) पुष्ट करो ॥५॥

भाषार्थ—यदि नृत्य गुण कम स्वभाववाले स्त्री पुरुष विवाह करके गृहाधन का आरम्भ करें तो पूर्ण सुख पावें ॥५॥

सुप्रतीके वयोधृधा यही क्रुतस्य मातरा । दोषामुपार्ममीमहे ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( सुप्रतीके ) उत्तम विश्राम करने ( वयो-धृधा ) सुन्दर जीवन को बढ़ाने और ( यही ) बड़े ( क्रुतस्य ) सत्य के ( मातरा ) आदर देनेवाले ( दोषाम् ) रात्रि और ( उषासम् ) दिन की ( ईमहे ) याचना करते हैं वैसे इनकी आप लोग भी याचना करो ॥६॥

भाषार्थ—जैसे रात्रि और दिन एक साथ ही वर्तमान हैं वैसे ही जिन्होंने विवाह किया उस स्त्री पुरुष वर्त्ताव करे ॥६॥

वातस्य परमंकीर्तिता दैव्या होतांरा मनुषः । इमं नो यज्ञमार्गतम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( ईर्तिता ) प्रशंसित ( दैव्या ) श्रेष्ठ गुणों में उत्पन्न ( होतांरा ) दाना जना आप दोनों ( वातस्य ) वायु के ( पत्नम् ) गिरते हैं जिससे उस मार्ग में ( न ) हम लोगों के ( इमम् ) हम ( यज्ञम् ) मिलने योग्य व्यवहार को ( मनुषः ) और मनुष्यों को ( आ, यत्नम् ) प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों धर्मसम्बन्धी कर्म के आचरण से प्रशंसित होकर इस गृहाधनव्यवहार को सिद्ध करो ॥ ७ ॥

इन्द्रा सरस्वती मही तिस्रो बेवीमैयोभुवः । बहिः सादन्वस्त्रिधः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अस्त्रिधः ) नही नाश करनेवाली ( इन्द्रा ) प्रशंसित विद्या ( सरस्वती ) वाणी ( मही ) भूमि ( मयोभुवः ) सुख को कराने वाली ( तिस्रः ) तीन ( बेवी ) श्रेष्ठ गुणवती ( बहिः ) उत्तम गृहाधन को ( सोवन्तु ) प्राप्त हा वैसे ही आप लोग भी प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री और पुरुषो ! आप लोग विद्या उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और भूमि के राज्य को सुख के लिए प्राप्त हूजिए ॥ ८ ॥

अब राजप्रजा विषय को कहते हैं—

शिवस्त्वहरिहा गंहि विभुः पोष उत स्नमा । यज्ञेयं न उद्व ॥९॥

पदार्थ—हे ( त्वष्टः ) मव दुःखों के नाश करनेवाले राजन् ! ( इह ) इस स्थल में कि ( पोषे ) जिसमें पुष्ट हो ( विभुः ) व्यापक परमेश्वर के सदृश

( शिवः ) मङ्गलकारी होते हुए ( स्मत्वा ) आत्मा से ( धनोपपन्नो ) मेल करने मेल करने योग्य व्यवहार में ( आ, गहि ) प्राप्त होओ ( जत ) और ( न ) हम लोगों की ( उत्तु, अथ ) उत्तम प्रकार रखा करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इम मन्त्र में वाचकमुत्तोपमाङ्कार है। हे मनुष्यो! आप लोग परमेश्वर के समुक्त वस्तु करके सबके कल्याण को करो ॥ ६ ॥

अब विद्याग्रहण विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१०॥

पदार्थ—हे ( वनस्पते ) वन के पालन करनेवाले आप ( यत्र ) जिससे ( देवानाम् ) विद्वानों के ( गुह्या ) गुप्त ( नामानि ) नाम ( वेत्थ ) जानते हैं ( तत्र ) वहाँ ( हव्यानि ) देने और लेने योग्य वस्तुओं को ( गामय ) पहुँचाइये ॥१०॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के हृदयों में स्थित और विद्या के प्रभाव से उत्पन्न हुए नामों को जानते हैं वे बहुत सुख मनुष्यों को प्राप्त कराते हैं ॥ १० ॥

स्वाहाजनये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः ।

स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥ ११ ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! आप लोगों को चाहिए कि ( वरुणाय ) श्रेष्ठ के और ( अग्नये ) विजुली आदि की विद्या के लिए ( स्वाहा ) सत्य वाणी ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य और ( मरुद्भ्यः ) मनुष्यों के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया नया ( देवेभ्यः ) विद्वानों के लिये ( हविः ) देने योग्य वस्तु और ( स्वाहा ) श्रेष्ठ कर्मों का प्रयोग करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्य विद्या और श्रेष्ठ कर्मों में अग्नि की विद्या का ग्रहण कर विद्वानों का स्कार करके मनुष्यों के हित का निरन्तर करे ॥ ११ ॥

इम सूक्त में विद्वान्, राजा, गृहाश्रम राजप्रजाविषय और विद्याग्रहण का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पाँचवाँ सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ वशाध्वस्य वष्टस्य सूक्तस्य वस्तुभूत आग्नेय ऋषिः । अग्निर्वक्ता ।  
१, ८, ९ निष्पत् पङ्क्तिः । २, ५ पङ्क्तिः । ७ विराट् पङ्क्तिः ।  
वक्त्रवः स्वरः । ३, ४ स्वरद्वयहृती । ६, १० ध्रुवद्वयहृती छन्दः ।  
मध्यमः स्वरः ॥

अब इस ऋचा वाले छंदे सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निविषय को कहते हैं—

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमवन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इव स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( य. ) जो ( वसु ) सब स्थानों में रहनेवालों ( यम् ) जिस ( अस्तम् ) फेंक अर्थात् काम में लाये गये ( अग्निम् ) अग्नि को और ( धेनव ) गौर्ण जिस ( अस्तम् ) प्रणम किये गये का तथा ( अर्बन्त ) जान हुए और ( आशव ) शीघ्र चलनेवाले पदार्थ और ( नित्यास ) नहीं नाश होनेवाले ( वाजिन ) वेग से युक्त पदार्थ जिस ( अस्तम् ) प्रेरणा किय गये को ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं ( तम् ) उसको मैं ( मन्ये ) मानता हूँ उसकी विद्या में आप ( स्तोतृभ्य ) स्तुति करनेवालों के लिये ( इवम् ) अन्न को ( आ, भर ) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! यदि आप विजुली आदि रूपवान् और सब कही अभिव्याप्त अग्नि का युक्ति में चलावें तो यह स्वयं वेगवान् होकर औरों को भी शीघ्र चलाता है ॥ १ ॥

सो अग्नियो वसुर्गुणे सं यमायन्ति धेनवः ।

समवन्तो रघुद्रवः सं संजातासः सूरय इव स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( य. ) जो ( वसु ) धनरूप ( यम् ) जिसको ( धेनव ) वाणिज्य ( सम्, आयन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं जिसको ( रघुद्रव ) बौद्धा दौड़नेवाले ( अर्बन्त. ) वेगवान् पदार्थ ( सम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं और जिसको ( सुजातासः ) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध ( सूरय ) विद्वान् जन ( सम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं और जिसकी मैं ( गुणे ) प्रशंसा करता हूँ ( स. ) वह ( अग्नि. ) अग्नि है उसके प्रयोग से ( स्तोतृभ्यः ) अध्यापकों के लिये ( इवम् ) अन्न को ( आ, भर ) सब प्रकार धारण कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! आप लोग अग्नि आदि पदार्थ के विज्ञान से चतुर होकर अध्यापकों के लिये ऐश्वर्य की प्राप्ति कराइए ॥ २ ॥

फिर अग्निविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्निं वाजिनं विश्वे ददाति विश्वचर्चणिः ।

अग्नी राये स्वाधुषं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन्! जो ( विश्वचर्चणि ) संसार का प्रकाश करनेवाला ( अग्निः ) अग्नि ( हि ) जिससे ( विश्वे ) प्रजा के लिये ( वाजिनम् ) बहुत वेग वाले को ( ददाति ) देता है और जो ( अग्नि ) अग्नि ( राये ) धन के लिये ( स्वाधुषम् ) स्वयं उत्पन्न होनेवाले को ( याति ) प्राप्त होता है उस विद्या से ( स. ) वह आप ( प्रीत ) कामना किये गये ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करनेवालों के लिए ( वार्यम् ) स्वीकार करने योग्य ( इवम् ) अन्न आदि का ( आ, भर ) धारण कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! अग्नि ही उत्तम प्रकार साधित किया गया सुख देने वाला होता है जिससे आप नाग ऐश्वर्य की वृद्धि करो ॥ ३ ॥

अब अग्निविद्या के जाननेवाले विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ ते अग्न इधीमहि धुमन्तं देवाजरम् ।

यद् स्या ते पनीपसी समिधीदयति दधीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

पदार्थ—हे ( देव ) सुख के देनेवाले ( अग्ने ) विद्वन्! आप ( धुमन्तम् ) प्रकाशित ( अजरम् ) जरावस्था से रहित अग्नि को प्रज्वलित करने हो और ( यत् ) जो ( ते ) आपकी ( पनीपसी ) पनीब प्रशंसा करने योग्य ( समिध् ) समिध है ( स्या ) वह ( ते ) आपके ( दधि ) प्रकाश में ( दधीषति ) प्रज्वलित की जाती है और जिसमें ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करनेवालों के लिए ( इवम् ) अन्न आदि को ( ह ) निष्पन्न से हम लोग ( आ, इधीमहि ) प्रकाशित करें उससे स्तुति करनेवालों के लिए अन्न आदि को आप ( आ, भर ) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! जिस अग्नि आदि की विद्या का आप जानते हैं और जिस विद्या से आपकी प्रशंसा होती है उसका हम लोगों को बाध दीजिए ॥ ४ ॥

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।

सुदचन्द्र दस्म विषपते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत् इव स्तोतृभ्य आ भर ॥५॥

पदार्थ—हे ( शोचिष, पते ) प्रकाश के स्वामिन्! ( सुदचन्द्र ) अच्छे सुवर्ण से युक्त ( दस्म ) दुःख के नाश करनेवाले ( विषपते ) प्रजाओं के पालक ( अग्ने ) विद्वान् राजन् ( शुक्रस्य ) शुद्ध ( ते ) आपकी ( ऋचा ) प्रशंसा से ( हविः ) देने योग्य पदार्थ ( आ ) सब प्रकार से ( हूयते ) दिया जाता है और हे ( हव्यवाट् ) देने योग्य वस्तु के देनेवाले ( तुभ्यम् ) आपके लिए सुख दिया जाता है वह आप ( स्तोतृभ्य ) स्तुति करनेवालों के लिए ( इवम् ) अन्न को ( आ, भर ) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् नाग अग्नि आदिको से काय्यों को सिद्ध करते हैं उनके काम सिद्ध होते हैं ॥ ५ ॥

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।

ते हिन्विरे त इन्विरे त इष्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( अग्नय ) अग्नि ( अग्निषु ) अग्नि आदि पदार्थों में वर्तमान हैं ( त्ये ) वे ( वार्यम् ) स्वीकार करने योग्य ( विश्वम् ) सब जगत् को ( प्रो, पुष्यन्ति ) पुष्ट करने हैं ( ते ) वे स्वीकार करने योग्य पदार्थों की ( हिन्विरे ) वृद्धि कराते हैं ( ते ) वे ( इन्विरे ) प्राप्त होते हैं और ( ते ) वे काय्यों के सिद्ध करनेवाले हैं उनकी जान के जो ( अनुषगिषम् ) अनुकूलता में ( इष्यन्ति ) अन्न आदि की इच्छा करने हैं उनकी विद्या से ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करनेवालों के लिये आप ( इवम् ) विज्ञान को ( आ, भर ) धारण कीजिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो पृथिवी आदि में अग्नि आदि पदार्थ हैं उनको जानके फिर ईश्वर को जाना ॥ ६ ॥

फिर अग्निविद्या के उपदेश को कहते हैं—

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि ब्राधन्त वाजिनः ।

ये पत्वंभिः शफानां व्रजा भुगन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन्! ( ये ) जो ( गोनाम् ) गौओं के ( शफानाम् ) लुगों के ( पत्वंभिः ) गमनों से ( व्रजा ) वगों को ( भुगन्त ) धारण करते हैं और जो ( महि ) बड़े ( अर्चयः ) नेत्र ( वाजिन ) वेग वाले ( ब्राधन्त ) बढ़ने हैं ( त्ये ) वे ( तव ) आपके कार्य सिद्ध करनेवाले हैं उनके विज्ञान से ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करनेवालों के लिए ( इवम् ) अन्न को ( आ, भर ) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे घोड़े और गौर्ण पैरों से दौड़ती हैं वैसे ही अग्नि के तज शीघ्र चलते हैं और जो अग्न्यादिको के प्रयोग करने की जानते हैं उनकी सब प्रकार वृद्धि होती है ॥ ७ ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नवां नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुसितीरिषः ।

ते स्याम य आदृष्टुस्त्वाद्वातो दमेदस इव स्तोतृभ्य आ भर ॥८॥



पदार्थ—हे ( अग्ने ) राजन् ( ये ) जो ( स्वादूतास ) स्वादूतास अर्थात् आप दूत जिनके ऐसे हम लोग आपका ( आनुष् ) सत्कार करते हैं उन ( न. ) हम ( स्तोतृभ्य ) धार्मिक विद्वानों के लिए आप ( सुक्षिती ) सुन्दर पृथिवी वा मनुष्य विद्यमान जिनमें ऐसे ( आ ) नवीन ( इष ) अन्न आदि को ( आ, भर ) धारण कीजिए जिनसे ( ते ) वे हम लोग उत्साहित ( स्थाम ) होंगे और आप ( स्तोतृभ्य ) सुपात्र अर्थात् सज्जन विद्वानों के लिये ( इषेभ्य ) घर-घर में ( इषम् ) उत्तम इच्छा को ( आ भर ) धारण कीजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वही राजा प्रामाण्य होता है जो उत्तम भृत्य और अतुल ऐश्वर्य को सबके मुख के लिए धारण करता है और दूत और चारों अर्थात् गुण सदेश देनेवालों से सब राज्य वा सब समाचार जानके यथायोग्य प्रबन्ध करता है ॥ ८ ॥

उमे सुश्चन्द्र मपिषो दर्वी श्रीर्णाष आमनि ।

उतो न उत्पुप्या उपयेषु शवमस्पत ॥ १० ॥

पदार्थ—हे ( सुश्चन्द्र ) उत्तम मुरग आदि ऐश्वर्य से युक्त ( शवस ) रते सेना के स्वामी जो आप ( उमे ) दोनों ( दर्वी ) पाक करने के माधनो अर्थात् चर्मको का उकटने करके ( आसनि ) मुख में अर्थात् अग्निमुख में ( मपिष ) धून आदि का ( श्रीर्णाष ) पाक करते हैं ( उतो ) और उमग ( न ) हम लोगों का ( उद्, पुप्या ) उत्तमता से आभिन ( आ भर ) वह आप ( उपयेषु ) प्रशमित धम्ममम्बन्धी कर्माँ में ( स्तोतृभ्य ) पाला और पटनवाला के लिये ( इषम् ) अन्न का ( आ, भर ) धारण कर ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जा राजा सेना के भाजन के उत्तम प्रबन्ध को ( आरोग्य ) के लिये बंधों को रखता है वही प्रशमित होकर राज्य बढ़ाता है ॥ ९ ॥

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्मियज्ञेमिगानुषक् ।

वधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्चर्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १० ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे सेना के स्वामिन् ! जो ( गोभि ) वाणियों और ( यजेभि. ) सगन कर्मों से ( आश्चर्यम् ) छोड़ो के सद्गुण वेग आदि गुणों से युक्त ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रमवाले ( अग्निम् ) अग्नि का ( आनुषक् ) अनुकूलता से ( अजुर्यम् ) प्रेरणा दें और नियमयुक्त करें ( एष ) उन्हीं में ( अस्मे ) हम लोगों के निमित्त आप उत्तम पराक्रमयुक्त व्यवहार को ( इषम् ) धारण करते हैं ( उत ) और भी ( त्यत् ) उस ( इषम् ) इष्ट व्यवहार को ( स्तोतृभ्य ) स्तुति करनेवालों के लिए ( आ, भर ) अच्छे प्रकार धारण कीजिए ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो अग्नि आदि की विद्या को जानके अनेक विमान आदि वाहनो को बनाने हैं उनके लिये अन्न आदि देकर निरन्तर सत्कार कीजिए ॥ १० ॥

हम सूक्त में अग्नि विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठा सूक्त और तेईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ वराहस्य सप्तमस्य सूक्तस्येव आग्नेय ऋषि । अग्निर्देवता । १ विराडनुष्टुप् ।

२ अनुष्टुप् । ३ भुविगुणुष्टुप् । ४, ५, ८, ९ निचडनुष्टुप् छन्द । गान्धार

स्वर । ६, ७ स्वराडुगुणुष्टुप् । ऋषभ स्वर । १० निचडवृहती

छन्द । मध्यम, स्वर ॥

अब वराह ऋचावाले सातवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मित्रता को कहते हैं—

मखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।

वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नष्ट्रे सहस्वते ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( सखाय ) मित्र हुए आप लोग जो ( क्षितीनाम् ) मनुष्यों के बीच ( व. ) आप लोगों के लिये ( वर्षिष्ठाय ) अत्यन्त बृष्टि करनेवाले के लिये और ( ऊर्ज ) पराक्रम युक्त के ( नष्ट्रे ) नाती के सद्गुण वर्त्तमान ( सहस्वते ) बलयुक्त ( अग्नये ) अग्नि के लिये ( सम्यञ्चम् ) श्रेष्ठ ( स्तोमम् ) प्रशंसा और ( इषम् ) अन्न आदि को ( व ) भी ( सम् ) अच्छे प्रकार धारण करते हैं उनका सदा सत्कार करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—ह मनुष्यो ! इस ससार में आप लोग मित्रभाव से वर्त्तान करके मनुष्य आदि प्रजा के हित के लिये अग्नि आदि की विद्या को प्राप्त होके अन्य जनों के लिये शिक्षा दीजिए ॥ १ ॥

कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रणा नरो नृषदने ।

अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( नर ) नायक अर्थात् कार्यो में अग्रगामी मुख्यजनों ! जो ( जन्तव ) जीव ( यस्य ) जिसकी ( समृतौ ) अच्छे प्रकार यथावत् बोध से युक्त बुद्धि में ( रणा ) रमण करते और ( नृषदने ) मनुष्यों के स्थान में ( चित् ) भी ( अर्हन्त ) सत्कार करते हुए ( यम् ) जिसको ( इष्यते ) प्रकाशित कराने

और ( सञ्जयन्ति ) उत्तम प्रकार उत्पन्न करते हैं वे ( चित् ) भी ( कुत्रा ) किसी में अनादर को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो जीव सब मनुष्यों के हित में वर्त्तमान हुए यथाशक्ति परोपकार करते हैं वे योग्य हैं ॥ २ ॥

अब विद्वान् के विषय को कहते हैं—

मं यदिषो वनामहे मं हव्या मातृषाणाम् ।

उत दुम्नस्य शर्वस क्रतस्य रश्मिमा ददे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( मातृषाणाम् ) मनुष्यों के बीच ( दुम्नस्य ) धन वा यश तथा ( शर्वस्य ) सत्य का ( शर्वसा ) सना से ( यत् ) जैसे ( हव्या ) देने और लेने योग्य ( इष ) अन्न आदि सामग्रियों का हम लोग ( सम्, वनामहे ) अच्छे प्रकार गवत व ( उत ) वा ( रश्मिम् ) प्रकाश का मैं ( सम्, आ, ददे ) ग्रहण करता हूँ मैं आप लोग भी करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन पक्षपात को छोड़ के यथायोग्य व्यवहार कर मनुष्यों के आत्माओं में विद्याप्रकाश को धारण करें तो सब योग्य होने हैं ॥ ३ ॥

म स्मां कृणोति केतुमा नक्रं चिदर आ सते ।

पावकं यद्वनस्पतीन् प्र स्मां मिनात्यजरः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यत् ) जो ( अजरः ) नाश से रहित ( पावक ) पवित्र करनेवाला ( वनस्पताम् ) वना के पालनवाला का ( स्मा ) ही ( आ, कृणोति ) अनुकरण करता ( नक्रम् ) रात्रि में ( चित् ) भी ( वरे ) दूर देश में ( सते ) सत्पुरुष के लिये ( केतुम् ) बुद्धि देना और दूर स्थान में वर्त्तमान हुआ ( स्मा ) ही दुष्ट और दागों का ( प्र, आ, मिनाति ) अच्छे प्रकार नाश करता है ( म. ) वह सर्वत्र सत्कृत होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् दूर भी वर्त्तमान हुए रात्रि दिन अग्नि वा वनस्पतियों के सद्गुण परोपकारी होते हैं वे ही ससार के भूषण अलङ्कार होते हैं ॥ ४ ॥

अथ स्म यस्य वेषणे स्वेदं पाथषु जुहति ।

अमीमह स्वर्जन्यं भूमां पृष्ठवं रुद्रः ॥ ५ ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यस्य ) जिसके ( वेषणे ) व्याप्त व्यवहार के निमित्त ( पथिषु ) मार्गों में वीर ( स्वेदम् ) जल को ( स्म ) ही ( अथ, जुहति ) बहाते और ( भूमा ) पृथिवी के ( अह ) निश्चित ( स्वर्जन्यम् ) अपने से जीतने योग्य स्थान को ( पृष्ठे ) पृष्ठ के सद्गुण ( अमि, रुद्रः ) अभिवर्द्धन करने अर्थात् उस पर बढ़ने हैं उसका त्वाज ( ईम् ) वैसे ही आप लोग भी करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य मार्गों में व्याप्त व्यवहारों को जान कर कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

यं मन्यैः पुरुस्पृहं विदद्विषस्य धायसे ।

म स्वादनं पितृनामस्तताति चिदायवे ॥ ६ ॥

पदार्थ—( मन्यैः ) मनुष्य ( आयसे ) मनुष्य के लिये और ( विदद्विषस्य ) ससार के ( धायसे ) धारण के लिये ( यम् ) जिस ( पुरुस्पृहम् ) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य ( पितृनाम् ) अन्तों के ( स्वादनम् ) स्वाद और ( अस्ततातिम् ) ग्रहण वा ( चित् ) भी ( प्र, चित् ) प्राप्त हावे उसका परोपकार के लिए धारण कर ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्य को जिस जिस उत्तम वस्तु और ज्ञान की प्राप्ति हावे उस उसका मंत्र के सुख के लिये धारण करें ॥ ६ ॥

अब राजविषय को कहते हैं—

म हि व्या धन्वाक्षितं दाता न दास्या पशुः ।

हिरिभ्रुः शुचिबभ्रुर्गनिभृष्टविधिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो ( हिरिभ्रुः ) सुवर्ण के तुल्य ढाडी और ( शुचिबभ्रुः ) पवित्र धातों से युक्त ( गनिभृष्टविधिः ) नहीं जली सेना जिसकी ऐसा ( बभ्रुः ) मेधावी ( दाता ) दाता ( पशुः ) पशु ( न ) जैसे ( व्या ) अन्तरिक्ष जो ( आक्षितम् ) सब ओर से अविनाशी उसको वैसे दुष्टों को ( आ, वाति ) ग्रहण करता है ( सः, हि, व्या ) यही निश्चित मुखपूर्वक बढ़ता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाक्यसुप्तोपमालङ्कार है । जैसे नहीं देनेवाला जान्य को कटवा कर भूसे को अलग करके अन्न का ग्रहण करता है और जैसे पशु भूरो से जान्य आदि को लीकता है वैसे ही राजा माहस करनेवाले के दुष्ट मनुष्यों का निरन्तर ताडन करे ॥ ७ ॥

अब राजशिक्षा देने विषय को कहते हैं—

शुचिः स्म यसमा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।

सुधुरं माता क्राणा यदानो मशम् ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**(यत्) जो (अग्नि) पवित्र (कारण) करती हुई (आत्मा) माता (अग्नि) जिसके लिये (स्वर्गलोका) वर के धारण करनेवाले के सद्गुण और (अग्नि) अविद्यमान तीन बाले के सद्गुण (सुख) उत्तम प्रकार उत्पन्न करनेवाली (अग्नि) उत्पन्न करती और (प्र, रीत्ये) मिलती है (स्व) वही (भगम्) ऐश्वर्य्य को (आत्म) प्राप्त होती है ॥८॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमात्मक है। जो माता पिता ब्रह्मचर्य्य किये हुए विधिपूर्वक सन्तानों को उत्पन्न करें तो सुख और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होंगे ॥८॥

अब अग्निशब्दार्थ विद्वद्भिषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**आ यस्ते सर्पिरामुतेऽग्ने शमस्ति धार्यसे ।**

**ऐषु धुम्नमुत धव आ चित्तं मर्त्येषु धाः॥९॥**

**पदार्थ—**हे (अग्ने) विद्वन् (य) जो (धार्यसे) धारण करनेवाले के लिये (ते) आपका (सर्पिरामुते) धृत्तों से सब प्रकार उत्पन्न किये गये मे (धम्) सुख (अस्ति) है उसको ग्रहण करता (ऐषु) इन (मर्त्येषु) मनुष्यों में (धुम्नम्) यश वा धन को (आ, धा.) धारण करता (धव) अन्न को (आ) धारण करता (उत) और (चित्तम्) सन्तान को (आ) धारण करता है उनके लिए आप ऐश्वर्य्य दीजिये ॥९॥

**भाषार्थ—**जो कोई किसी के लिये विद्या धन और विज्ञान को धारण करता है तो उसके लिये उपकार किया भी पुरुष प्रत्युपकार के लिये वैसे ही सत्कार को करे ॥ ९ ॥

अब अग्निशब्दार्थ राजविषय को कहते हैं—

**इति चिन्मन्युमधिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।**

**आदर्शने अपृणतोऽग्निः सासह्राहस्पृनिषः सासह्राहृन् ॥१०॥२५॥**

**पदार्थ—**हे (अग्ने) विद्वन् ! (अधिज) धारण करनेवालों में उत्पन्न आप (मन्युम्) क्रोध को (सासह्राहृन्) निरन्तर सहे (अग्निः) निरन्तर पुरुषार्थ आप (अपृणत) नहीं पालन करते हुए (वस्पृन्) दुष्ट साहस करनेवाले बोरों को (सासह्राहृन्) निरन्तर सहे और (आत्) सब ओर में (इष) इच्छाओं और (पशुं) नीति से युक्त मनुष्यों को निरन्तर सहे (इति) इस प्रकार वर्तमान (चित्) भी (स्वादातम्) आप से देने योग्य (पशुम्) पशु को मैं (आ, ददे) ग्रहण करता हूँ ॥१०॥

**भाषार्थ—**जो राज-जन क्रोधादि और दुष्ट न्यसनों का निवारण करके बोर हाकुओं को जीत कर श्रेष्ठ पुरुषों से किये गये अपमान को सहे वे अखण्डित राज्य प्राप्त होते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में मित्रत्व विद्वान् राजा और अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलित जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम सूक्त और पञ्चमोत्तम वर्य समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ सप्तमस्तोत्रस्य सूक्तस्येव आग्नेय ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१, ५ स्वराहृष्टिपु । २ भुरिक्त्रिपुष्टिपु । ३ चैत. स्वरः ।

१, ४, ७ निष्पृजगती । ६ विराहृजगती ।

निषावः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले आठव सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निशब्दार्थ गृहभूमि के विषय को कहते हैं—

**स्वामंश्च ऋतायवः समीधरे प्रत्नं प्रत्नासं ऊतये सहस्रकृत ।**

**पुरुषं च यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥**

**पदार्थ—**हे (सहस्रकृत) बल किये (अग्ने) और ब्रह्मचर्य्य किये हुए गृहभूमि (प्रत्नासः) प्राचीन विद्वान् जन (ऋतायवः) सत्य की इच्छा करने वाले (ऊतये) रक्षण आदि के लिये जिस (प्रत्नम्) प्राचीन (पुरुषं च यजतम्) बहुत सुवर्ण प्रादि से युक्त (यजतम्) आदर करने योग्य (विश्वधायसम्) सब व्यवहार और धन के धारण तथा (दमूनसम्) इन्द्रिय और अन्तःकरण के दमन करनेवाले (वरेण्यम्) अतीव स्वीकार करने योग्य और श्रेष्ठ (गृहपतिम्) गृहस्थ व्यवहार के पालन करनेवाले (स्वाम्) आपको (सम्, ईधरे) उत्तम प्रकार प्रकाशित करावे वह आप इनका सम्कार करो ॥१॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! जो आप लोगों की विद्या और दान आदिकों से वृद्धि करते हैं उनका आप लोग निरन्तर सत्कार करो ॥१॥

**स्वामंश्च अतिथिं पृथ्वीं विशः शोचिर्बेश गृहपतिं नि पैदरे ।**

**वृहन्तं पुरुषं धनस्पृतं सुशर्मांश्च स्वधंसं जरद्विषम् ॥२॥**

**पदार्थ—**हे (अग्ने) गृहस्थ जो (विशः) प्रजाएँ (अतिथिम्) सदा उपवेश देने के लिए धूमते हुए के सद्गुण वर्तमान (पृथ्वीम्) प्राचीनों से किये गये विद्वान् और (शोचिर्बेशम्) केशों के सद्गुण न्यायव्यवहार के प्रकाशों से युक्त

(वृहन्तम्) बड़ी वृद्धिवाले (पुरुषम्) बहुत रूपों से युक्त सुन्दर आकृतिमान् (धनस्पृतम्) धनकी इच्छा से युक्त (सुशर्मांश्च) प्रशंसित गृह वाले (स्वधंसम्) श्रेष्ठ रक्षण आदि जिनके (जरद्विषम्) वा निवृत्त हुआ शत्रुरूपी विष जिनका ऐसे (गृहपतिम्) गृहव्यवहार के पालन करनेवाले (स्वाम्) आपको (नि, पैदरे) स्थित करती हैं उनका आप निरन्तर सत्कार करें ॥२॥

**भाषार्थ—**गृहस्थ जन सदा ही प्रजा का पालन, अतिथि की सेवा, उत्तम गृह तथा विद्या का प्रचार, वृद्धि की वृद्धि, सब प्रकार से रक्षा तथा राग और द्वेष का त्याग निरन्तर करें ॥२॥

**स्वामंश्च मानुषीरीक्यते विशो होत्राविदं विविचि रत्नधातमम् ।**

**गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं धृतभिर्यम् ॥३॥**

**पदार्थ—**हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य्य से युक्त (अग्ने) अग्नि के सद्गुण वर्तमान (मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धिनी (विशः) प्रजाएँ जिस (होत्राविदम्) हवनो के गुणों को जाननेवाले (विविचिम्) विवेक विभाग करने (रत्नधातमम्) रत्नों के अतीव धारण करने (विश्वदर्शतम्) ससार के प्रकाश करने और (तुविष्वणसम्) बहुतों की सेवा करनेवाले (सुयजम्) उत्तम प्रकार यज्ञ करते जिससे उस (धृतभिर्यम्) धृत का ध्याय करते वा धृत में शोभते हुए (गुहा) अन्तःकरण में (सन्तम्) अभिव्याप्त होकर स्थित (स्वम्) आपको (ईक्यते) गुणों से प्रकाशित करती हैं उनको हम लोग भी जानें ॥३॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! आप लोग जिस बिजुली रूप अग्नि से जीवन और चेतनता होती है तद्वत् राजा को ज्ञान के मुख बढ़ाओ ॥३॥

अब अग्निशब्दार्थ विद्वद्भिषय को कहते हैं—

**स्वामंश्च धर्षसि विश्वधा वयं गोभिर्गृणन्तो नमसोपं सेविम ।**

**स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्त्यस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४॥**

**पदार्थ—**हे (अग्ने) विद्वन् ! आप जैसे हम लोग (गोभिः) वाणिज्यों से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (विश्वधा) ससार के धारण करने वा (धर्षसिम्) अन्य को धारण करनेवाले (स्वाम्) आपके (नमसा) सत्कार से (उप, सेविम) समीप प्राप्त होवे और हे (अङ्गिर) अङ्गों में रमते हुए (सः) वह (देवः) दाता (समिधानम्) प्रकाशमान आप (मर्त्यस्य) मनुष्य के (सुदीतिभिः) उत्तम दानों से (यशसा) जल, धन वा धन से (नः) हम लोगों का (जुषस्व) सेवन करें वैसे (वयम्) हम लोग आपके समीप स्थित हों ॥४॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमात्मक है। सब प्रकार से यह सबका स्वभाव है जो जिस भाव से जिस को प्राप्त होवे और सेवन करे वैसा ही भाव और सेवन उसका होता है ॥४॥

**त्वमग्ने पुरुषो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथां पुरुषदुत ।**

**पुरुष्यका सहमा वि राजमि त्विषिः सा तं तित्विषायस्य ना धृषे ॥५॥**

**पदार्थ—**हे (पुरुषदुत) बहुतों से प्रशंसित (अग्ने) राजन् ! जिससे आप (वि, राजसि) विशेष प्रकाशमान है (सा) वह (तित्विषायस्य) अग्निज्वाला के समान विद्या से प्रकाशमान (ते) आपकी (त्विषिः) दीप्ति है और वह (आधृषे) सब प्रकार से धृष्ट के लिये (न) जैसे वैसे (विशेविशे) प्रजा प्रजा के लिये (पुरुषि) बहुत (अन्ता) अन्तों को धारण करती है तथा जिससे (स्वम्) आप प्रजा प्रजा के लिये (पुरुषम्) बहुत रूपवाले आप (प्रत्नथां) प्राचीन के सद्गुण (सहसा) बल से (वयम्) जीवन को (दधासि) धारण करते हो उसको विशेषता से जानिये ॥५॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमात्मक है। हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे अग्नि सब जगत् को धारण करता है वैसे सब मनुष्यों को विद्या के प्रकाश में धारण करो ॥५॥

**स्वामंश्च समिधानं यविष्ठय देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।**

**उरज्यंसं धृतयोनिसाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधरे चोदयन्मति ॥६॥**

**पदार्थ—**हे (यविष्ठय) अत्यन्त युवाजनो में श्रेष्ठ (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (देवाः) विद्वान् जन (हव्यवाहनम्) ग्रहण करने योग्य वाहनों को शीघ्र प्राप्त करनेवाले (उरज्यसम्) बहुत वेगयुक्त (धृतयोनिसाहुतम्) जल वा प्रदीप्त अथवा कागज है गृह जिनका (आहुतम्) जो सब ओर से शब्दयुक्त (त्वेषम्) प्रदीप्त तथा (चोदयन्मति) वृद्धि को प्रेरणा करने और (चक्षुः) पदार्थों को दिखानेवाले (समिधानम्) प्रकाशमान अग्नि को (दधरे) धारण करने और (दूतम्) सब ओर से व्यवहारसाधक (चक्रिरे) करने हैं वैसे (स्वाम्) आपका हम लोग धारण करें ॥६॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमात्मक है। मनुष्य विद्वानों के सङ्ग के विना अग्नियों के गुण और अग्नि आदि सयोग के गुणों को जानने योग्य नहीं होते हैं ॥६॥

फिर बिह्विषय को कहते हैं—

स्वामिं प्रविष्टं आहुतं धृतैः सुम्नायवः सुषमिधा सभाभिरे ।

स वाहुधानं भीषधीमिरुक्षितोऽभि जयांसि पार्थिवा वितिष्ठसे ॥७॥

२६।८।३।

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! जैसे ( सुम्नायवः ) अपने सुख की इच्छा करनेवाले जन ( धृतैः ) प्रकाशित करनेवाले साधनों और ( सुषमिधा ) उत्तम प्रकार प्रकाश करनेवाले इन्धन के साथ ( प्रविष्टः ) अत्यन्त प्रकार से ( आहुतम् ) ग्रहण किये गये जिनको ( सम्, ईभिरे ) उत्तम प्रकार प्रकाशित करते हैं ( स ) वह ( वाहुधानम् ) निरन्तर बहनेवाले ( उक्षित ) उत्तम प्रकार सींचे गये आप ( ओषधीभिः ) सोमलता और यवादिका से ( पार्थिवा ) पृथिवी में विदित ( अभि ) सब ओर से ( जयांसि ) वेगयुक्त कर्मों को ( बि, वितिष्ठसे ) विशेष करके स्थित करने हो जैसे ( स्वम् ) आप को निरन्तर हम लोग सुख देवे ॥७॥



## अथ चतुर्थाष्टकारम् ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां हव । यद्गर्तं तन्न आ हव ॥१॥

अथ सप्तमस्य नवमस्य सूक्तस्य गम आश्रेय ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१ स्वराहुभिणक् । ३, ४ भुरिगुणिकक्षन् । ऋषभ स्वरः ।

२ निचुवुवुवुवु । ६ विराडनुवुवुवु । गान्धार स्वरः ।

५ स्वराहुवुवुवु । मध्यम स्वरः ।

७ पङ्क्तिरुध्व । पञ्चम स्वरः ॥

अथ चतुर्थ अष्टक में सात ऋचावाले नवम सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निवि पदार्थों के गुणों को कहते हैं—

स्वामिं प्रविष्टं देवं मत्तांस ईळते ।

मन्ये स्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान जैम ( हविष्मन्त ) अच्छे दान आदि से युक्त ( मत्तांस ) मनुष्य ( जातवेदसम् ) उत्पन्न हुए पदार्थों का जानने वाले ( वक्ष्यम् ) प्रकाशमान अग्नि की प्रशंसा करते हैं जैसे ( स्वाम् ) विद्वान् आपकी ( ईळते ) स्तुति करते हैं मैं जिन ( स्वा ) आप को ( मन्ये ) मानता हूँ ( स ) वह आप ( हव्या ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को ( अनुषक् ) अनुकूलता से ( वक्षि ) कारण करते हो ॥ १ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकानु०—जो अग्नि आदि के गुणों को बूझने है वे ही विद्या के अनुकूल व्यवहारी को उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

अथ विद्वानों के गुणों की कहते हैं—

अग्निर्होता दासवतः इयस्य वृत्तबर्हिषः ।

सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजांसः श्रवस्यवः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जैसे ( होता ) दाता ( अग्नि ) अग्नि के सदृश पुरुष ( दासवतः ) देने वाले के स्वभाव से युक्त ( वृत्तबर्हिषः ) जल से रहित ( अयस्य ) स्थान के मध्य में बसता है जैसे ( यम् ) जिसको ( श्रवस्यवः ) अपने मन की इच्छा करनेवाले ( वाजांसः ) वेग से युक्त ( यज्ञासः ) मिलने योग्य जन ( सम्, चरन्ति ) उत्तम प्रकार संचार करते हैं वह ( सम् ) उत्तम प्रकार जाननेवाला होता है ॥ २ ॥

पदार्थ—मनुष्य बड़े अवकाशवाले गृहों को रच के पुत्रवर्ध से पदार्थ विद्या को प्राप्त हो ॥ २ ॥

फिर अग्निविषय को कहते हैं—

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्ठारणी ।

धर्तारं मानुषीणां विश्वामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकानु० उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन सब पदार्थों से बिजुली की विद्या को उत्पन्न करते हैं वैसे विद्वान् जन सबसे गुणों को ग्रहण करते हैं ॥३॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य महाविद्वान् श्रीमद्विरजानन्ध सरस्वती

स्वामीजी के शिष्य श्री इयानन्ध सरस्वती स्वामिचिरञ्जित

आम्यभावाविबुधित ऋग्वेदभाष्य में तृतीयाष्टक

में अष्टम अध्याय और छब्बीसवां वर्ग,

तीसरा अष्टक तथा पञ्चम मण्डल

में अष्टम सूक्त समाप्त हुआ ॥

पदार्थ—( यथा ) जैसे माता और पिता ( नवम् ) नवीन ( शिशुम् ) बालक को ( जनिष्ठ ) उत्पन्न करने हैं वैसे ( स्म ) ही ( यम् ) जिसको ( अरणी ) काष्ठ-विशेषों के सदृश ( मानुषीणाम् ) मनुष्य आदि ( विश्वाम् ) प्रजाओं के ( धर्तारम् ) धारण करनेवाले ( उत ) भी ( स्वध्वरम् ) उत्तम प्रकार अहिंसारूप धर्म को प्राप्त ( धर्मिन् ) अग्नि को विद्वान् जन उत्पन्न करें ॥ ३ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में उपमाल०—जैसे माता पिता श्रेष्ठ मन्तान को उत्पन्न करके सुख को प्राप्त होत हैं वैसे विद्वान् जन बिजुलीरूप अग्नि को उत्पन्न करके ऐश्वर्य को प्राप्त होत हैं ॥ ३ ॥

फिर विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

उत स्म दुर्गभीयसे पुत्रो न ह्यार्याणाम् ।

पुरु यो दग्धासि वनाग्नें पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन् ! ( ह्यार्याणाम् ) कुटिलों के ( पुत्र ) पुत्र के ( न ) सदृश ( पुरु ) बहुत का ( दुर्गभीयसे ) दुःख से ग्रहण करने ( स्म ) ही हा ( य ) जा अग्नि ( वना ) वनों को ( दग्धा ) जलानेवाले के सदृश ( उत ) भी ( यवसे ) खाने योग्य घास के लिए ( पशु ) पशु के ( न ) सदृश है उससे पदार्थों का जाननेवाला ( अस्ति ) हा ॥ ४ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पदार्थविद्या के ग्रहण के लिए पुत्र और गो के सदृश वर्तमान हैं वही अग्नि आदि की विद्या को जान सकता है ॥ ४ ॥

अध स्म यस्यार्चयः सम्यवसंयन्ति धूमिनः ।

यदीमहं त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमनि शिशीते ध्मातरी यथा ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यस्य ) जिस अग्नि के ( अर्चयः ) तेज ( धूमिनः ) बहुत धूम से युक्त ( सधन्ति ) उत्तम प्रकार प्राप्त होते हैं ( अध ) इसके अनन्तर ( यत् ) जो ( ईम् ) सब ओर में ( अहम् ) निश्चय ग्रहण करने में ( त्रितः ) अच्छे प्रकार से जानवाला हुआ ( त्रिभिः ) अन्तरिक्ष में ( ध्मातेव ) शब्द करनेवाले के सदृश ( यय, धमति ) शब्द करता है और ( यथा ) जैसे ( ध्मातरी ) चलनेवाले में ( सम्यक् ) सतम प्रकार ( शिशीते ) सूक्ष्म करता है उससे जैसे ( स्म ) ही कार्यों को सिद्ध करो ॥ ५ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में उपमाल०—हे मनुष्यो ! सब पदार्थविद्याओं से पहले अग्निविद्या जाननी चाहिए ॥ ५ ॥



फिर मित्रभाव से उक्त विषय को कहते हैं—

तवाहमन ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।

द्वेषोयुतो न दुर्गिता तुर्याम मस्यानाम् । ६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ( अहम् ) मैं ( मित्रस्य ) मित्र ( तव ) आप की ( ऊतिभिः ) रक्षा आदिकों से और ( प्रशस्तिभिः ) प्रशंसाओं से ( च ) भी प्रशंसित होऊँ वैसे आप हजिये और सब हम लोग मिल कर ( द्वेषोयुतः ) द्वेषयुक्तों के ( न ) सद्गुण ( मस्यानाम् ) मनुष्यों के ( दुर्गिता ) दुःख से प्राप्त हुए दोषों की ( तुर्याम ) हिता करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाला—हे मनुष्यो ! जैसे मित्र मित्र की प्रशंसा करता है और शत्रुजन हिन का नाश करते हैं वैसे ही मित्रता करके मनुष्यों के दुःखों का हम नाश करें ॥ ६ ॥

त्वं नो अग्ने अमी नरो रयिं सहस्र आ भर ।

स सौपयस्स पौषयद्भवद्वाजस्य सातय उर्ध्वं पृथु नो बृधे ॥७॥१॥

पदार्थ—हे ( सहस्रः ) बहुत सहन आदि गुणों से युक्त ( अग्ने ) विद्वन् ! जो आप ( नः ) हम लोगों के ( नरः ) नायक अर्थात् कार्यों में अग्रगण्य और ( रयिम् ) धन को ( अमी ) सम्पुष्ट ( आ भर ) सब प्रकार धारण करें ( तम् ) उनका हमलोग सत्कार करें ( सः ) वह आप हम लोगों की ( सौपयस् ) प्रेरणा कर और ( पौषयस् ) पोषण पालन करें ( सः ) वह ( वाजस्य ) अन्न आदि के (सातये) सविभाग के लिए ( युक्त्वा ) होवें ( उत ) और ( पृथु ) सङ्ग्रामों में ( नः ) हम लोगों की ( बृधे ) वृद्धि के लिए ( एधि ) हजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—सुकर्मों के जानने की इच्छा करने वालों को चाहिए कि विद्वानों के प्रति यह प्रार्थना करें कि आप लोग हम लोगों को श्रेष्ठ गुणों में प्रेरित करो और ब्रह्मचर्य आदि से पुष्ट करो और सत्य और असत्य के विभाग करनेवाले और युद्धविद्या में धनुर् जन हम लोगों की निरन्तर रक्षा करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह नवमा सूक्त और पहला वनं समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तमस्य वसमस्य सूक्तस्य गय आश्रय ऋषिः । अग्निर्वेत्ता । १, ६ निष्-  
धनुर्दृष्टम् । ५ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धार स्वरः । २, ३ भुरिगुणिक् छन्दः ।

ऋचम स्वरः । ४ स्वराङ्गुली छन्दः । मध्यमः स्वरः । ७ निक्षुप्छ-  
न्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अथ सात ऋचा वाले वसवं सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निशब्दार्थ विद्वद्विषय को कहते हैं—

अग्र ओजिष्ठया भर युष्मत्स्मभ्यमग्निगो ।

प्र नो राया परीणसा रस्ति वाजाय पन्थाम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्निगो ) धारण करनेवालों को प्राप्त होनेवाले ( अग्ने ) विद्वन् आप ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( ओजिष्ठम् ) अत्यन्त पक्कम युक्त ( युष्मत् ) यश वा धन को ( आ, भर ) चारों ओर से धारण कीजिये और ( नः ) हम लोगों की ( परीणसा ) बहुत ( राया ) धन से ( वाजाय ) विज्ञान के लिए ( पन्थाम् ) मार्ग को ( प्र ) प्राप्त होकर ( रस्ति ) रमते हो इसमें सत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अन्य जनो के श्रेष्ठ उपदेश से पुण्यकीर्ति को बढ़ाने के वनं सम्बन्धी यशवाले होते हैं ॥ १ ॥

त्वं नो अग्ने अद्भुत कृत्वा दसस्य मंहना ।

स्वे असुर्यर्माहं हत्क्राणा मित्रो न यन्निर्यः ॥२॥

पदार्थ—हे ( अद्भुत ) आश्चर्ययुक्त उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले ( अग्ने ) अध्यापक और उपदेशक ( त्वम् ) आप ( कृत्वा ) बुद्धि से ( दसस्य ) धनुर् विद्या और बल से युक्त पुरुष के ( मंहना ) महत्व से जैसे ( स्वे ) आप ने ( असुर्यर्म् ) असुरसम्बन्धी कर्म ( क्राणा ) करता हुआ ( मित्रः ) मित्र ( यन्निर्यः ) यश करने योग्य के ( नः ) सद्गुण ( आ, अहम् ) बड़ता है वैसे ( नः ) हम लोगों को बढ़ाइये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाला—वही उत्तम विद्वान् होता है जो सबके सत्कार के लिए विद्या का उपदेश देता है ॥ २ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं नो अग्ने एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।

ये स्तोमैभिः प्र सूरयो नरो मघाम्यानुधुः ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ( ये ) जो ( नरः ) नायक ( सूरयः ) विद्वान् जन ( स्तोमैभिः ) वेद में वर्तमान स्तुति के प्रकरणों से ( मघामि ) धनो को ( प्र, आनम् ) प्राप्त होवें उनके साथ ( त्वम् ) आप ( नः ) हम लोगों और ( एषाम् ) इन के ( यधम् ) सन्तान तथा गृह वा धन ( च ) और ( पुष्टिम् ) पुष्टि की ( वर्धय ) वृद्धि कीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिए कि यथार्थवक्ताओं के सहित सब मनुष्यों के सुख और बल को बढ़ावें ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं—

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यरवराधसः ।

शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिधेषां बृहत्सु कीर्त्तयिष्यन्ति त्वनां ॥४॥

भाषार्थ—हे ( चन्द्र ) धान्य देने वाले ( अग्ने ) विद्वन् ! ( ते ) आपकी ( अरवराधसः ) बिजुली आदि पदार्थों की मिद्धि करनेवाली ( गिरः ) धर्मसम्बन्धी वाणियों को ( ये ) जो ( शुष्मेभिः ) बलों के साथ ( शुष्मिणः ) बली ( दिवः ) कामना करते हुए ( चित् ) भी ( नरः ) मुख्य नायकजन ( शुम्भन्ति ) विराजते हैं और ( येषाम् ) जिनकी इन वाणियों को ( बृहत्, सुकीर्तिः ) बड़ी उत्तम प्रशंसायुक्त आप ( त्वना ) आत्मा से ( ओचति ) जानते हैं वे मित्र हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् मनुष्य गुण कर्म और स्वभाव वाले मित्र होकर अग्नि आदि पदार्थों की विद्याओं को परस्पर जनाते हैं वे सिद्ध मनोरथ वाले होने हैं ॥ ४ ॥

अब शिल्पविद्याविषयक विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

तव स्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।

परिष्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वानयुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( तव ) आपके सङ्ग से जो ( अर्चयः ) विद्या और विनय से प्रकाशित ( भ्राजन्तः ) परस्पर एक दूसरे को प्रकाशित करते हुए ( धृष्णुया ) न्यायपूर्वक बोलने में डीठ विद्वान् जन ( परिष्मानः ) सब ओर से सुमि के राज्य से युक्त ( विद्युतः ) बिजुलियों के ( नः ) सद्गुण ( वाजयुः ) अपने वेग की इच्छा करनेवाले के सद्गुण और ( स्वानः ) शब्द करते हुए ( रथः ) विमान आदि वाहनसमूह के ( नः ) मनुष्य शिल्पविद्या को ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं ( त्वे ) वे शीघ्र धनवान् होने हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमाला—जो जन यथार्थ शिल्पविद्या को जानते हैं वे सर्वत्र व्याप्त बिजुली के समान विमान आदि वाहनो के सद्गुण शीघ्रगामी हो और सब प्रकार में धन को प्राप्त होकर बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

न नो अग्ने उतये सवार्धसश्च रातये ।

अस्माकांसश्च सूरयो विश्वा आशस्तरीषणि ॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् राजन् जो ( सवार्धसः ) बाध के सहित वर्तमान ( च ) और ( अस्माकांसः ) हम लोगों के सम्बन्धी ( सूरयः ) विद्वान् जन ( नः ) हम लोगों की ( उतये ) रक्षा आदि के लिये और ( रातये ) दान के लिये ( च ) भी ( विश्वाः ) सम्पूर्ण ( आशा ) दिशाओं को ( तरीषणि ) तरण में हम लोगों को ( नः ) शीघ्र पहुँचावें वे परोपकारी होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—वे ही धनुर् विद्वान् हैं जो विमान आदि वाहनो को रच के भूगोल में चारों ओर घुमाते हैं वे प्रशंसित दान वाले होते हैं ॥ ६ ॥

अब विद्याविषय को कहते हैं—

त्वं नो अग्ने अद्भिरः स्तुतः स्तवान् आ भर ।

होतविश्वासहं रयिं स्तोतम्यः स्तवसे च न उर्ध्वं पृथु नो बृधे ॥७॥

पदार्थ—हे ( होतः ) दाता और ( अद्भिरः ) प्राण के सद्गुण प्रिय ( अग्ने ) विद्वन् ( स्तुतः ) प्रशंसित ( स्तवान् ) प्रशंसा करते हुए ( त्वम् ) आप ( नः ) हम लोगों के लिये ( विश्वासहम् ) आपको के अच्छे प्रकार सहनेवाले ( रयिम् ) धन को ( आ, भर ) धारण कीजिये तथा ( स्तोतम्यः ) स्तुति करनेवालों और ( स्तवसे ) स्तुति करनेवाले के लिये ( च ) भी ( नः ) हम लोगों को धारण कीजिये ( उत ) और ( पृथु ) सङ्ग्रामों में ( नः ) हम लोगों को ( बृधे ) वृद्धि के लिये ( एधि ) प्राप्त कीजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—विद्यार्थियों को चाहिये कि विद्वानों की इस प्रकार की प्रार्थना करें कि हे भगवानो यथावि विद्यारूप ऐश्वर्ययुक्त महाशयो ! आप लोग हम लोगों को ब्रह्मचर्य करा और उत्तम शिक्षा तथा विद्या देंगे और सङ्ग्रामों की जीत कर हम लोगों की निरन्तर वृद्धि करिये ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्निशब्दार्थ विद्वान् और विद्यार्थी के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह वसवा सूक्त और दूसरा वनं समाप्त हुआ ॥



अथ यज्ञस्यैकादशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आश्रये ऋषि ।

अग्निर्वैवता । १, ३, ५ निचूजगती । २ जगती ।

४, ६ विराजगती छन्द । निवाव स्वर ॥

अब छः ऋचावाले ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों का उपदेश करते हैं—

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर्गः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा धूमद्वि माति मग्नेभ्यः शुचिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तू ( जनस्य ) मनुष्य की ( गोपा ) रक्षा करने और ( जागृविः ) जागनेवाला ( सुदक्ष ) अच्छे प्रकार बन जिसमें ( घृतप्रतीक ) और घृत वा जन प्रतीतिकार जिसका रसा ( शुचिः ) पवित्र ( अग्नि ) अग्नि ( बृहता ) बड़े ( दिविस्पृशा ) प्रकाश में स्पर्श करनेवाले में ( नव्यसे ) अत्यन्त नवीन ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिये ( अजनिष्ट ) उत्पन्न होता तथा ( भर्तेभ्यः ) धारण और पोषण करनेवाले मनुष्यों के लिये ( धूमत् ) प्रकाश के मद्द ( वि ) विशेष करके ( माति ) प्रकाशित होना है उसको यथावत् जानिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—विद्वानों का चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थों के गुण अवश्य जाने ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्ये समीधरे ।

इन्द्रेण देवैः सरथं स बहिषि सीदन्नि होता यजयाय सुक्रतुः ॥२॥

पदार्थ—हे ( नर ) श्रेष्ठ कार्यों में अग्रणी विद्वान् लोगो जैसे आप लोग ( त्रिषधस्ये ) तीन पदार्थों के सहित स्थान में ( यजयाय ) मितन के लिये ( यज्ञस्य ) उत्तम ज्ञान की ( केतुम् ) बुद्धि का तथा ( प्रथमम् ) प्रथम वर्त्तमान ( पुरोहितम् ) प्रथम इगको धारण करे ऐसे ( अग्निम् ) अग्नि के समान प्रकाशमान को ( सप्त, ईधरे ) उत्तम प्रकार प्रकाशित करें वैसे ( स ) वह ( सुक्रतुः ) उत्तम बुद्धि का उत्तम काम्यवाले ( होता ) दाना प्राण ( इन्द्रेण ) बिजुली और ( देवैः ) पृथिवी आदिकों के साथ ( बहिषि ) अन्तर्गत्त में ( सरथम् ) वाहनो के समूह के सहित ( नि, सीदत् ) स्थित हूँजिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन विद्या, धर्म और पुरुषार्थ में रव्य वर्त्तवि करके अन्यो का उसके अनुसार वर्त्तवि कराते हैं वे ही सबको बांध दिलावेवाले होते हैं ॥ २ ॥

असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।

घृतेन स्वावर्धयन्नम आहुत धूमस्ते केतुरभवदिवि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—हे ( आहुत ) सत्कार से निमन्त्रित ( अग्ने ) अग्नि के मद्द वत्तमान विद्यार्थी जो विद्वान् जन ( विवस्वतः ) सूर्य में ( घृतेन ) विद्या के प्रकाश से ( स्वा ) आपकी ( अवर्धयन् ) वृद्धि करे और जिन ( ते ) आपकी अग्नि के ( धूम ) धूम के मद्द ( विवि ) प्रकाशमान मगोह्वर और सत्कार करने योग्य परमेश्वर में ( केतु ) जाननेवाले के मद्द बुद्धि ( श्रितः ) सेवन की ( अभवत् ) होती है तथा ( मात्रोः ) माता के मद्द आदः वर्त्तनवाले विद्या और आचार्यों की शिक्षा को प्राप्त होकर ( असंमृष्टः ) अशुद्ध प्राण अच्छे प्रकार ( मन्द्रः ) प्रगमित और आनन्दित ( शुचिः ) पवित्र ( जायसे ) होत है और ( कविः ) विद्वान् ( उत्, अतिष्ठः ) उठता है उनका हम लोग गन्कार करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो बालक वा कन्या विद्वानों वा पदों हुई स्थियों में ब्रह्मनय-पूर्वक विद्या को प्राप्त होकर पवित्र होत वे हमारा जो शोभित करनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

किन् अग्न्यादिकों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्निर्नी यज्ञमुप वेतु माधुयानि नरो वि भग्ने गृहेगृह ।

अग्निर्दतो अभवद्वयवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अग्निः ) अग्नि ( न ) हम लोगो के ( यज्ञम् ) मिलने योग्य व्यवहार का ( उप, वेतु ) व्याप्य है और जैसे ( माधुयानि ) श्रेष्ठ ( नर ) अग्रणी मनुष्य ( गृहेगृहे ) गृहगृह में ( अग्निम् ) अग्नि के मद्द ( वि, वरन्ते ) धारण करते हैं और जैसे ( वयवाहनः ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों का एक देश में दूसरे देशों में पहुँचानवाला ( अग्निः ) अग्नि ( वृण ) दूत के मद्द कार्यो का मिद-कर्त्ता ( अभवत् ) होता है और जैसे ( अग्निम् ) अग्नि का ( वृणाना ) स्वीकार करते हुए जन ( कविक्रतुम् ) बुद्धिमान् की बुद्धि का ( वृणते ) स्वीकार करने हैं वैसे ही आप लोग आचरण करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जो अग्नि के सद्गुण तेजस्वी, सज्जनो के सद्गुण उपकार करने और प्रत्येक जन के लिए मङ्गल देने वाले हैं वे सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

किन् विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तुभ्येवमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।

त्वां गिरः सिन्धुभिवावनीर्माहीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण पवित्र अन्त करनेवाले विद्यार्थी ( तुभ्यः ) आपके लिए ( इयम् ) यह ( मधुमत्तमम् ) अतिशय मधुर आदि गुण से युक्त ( वचः ) वचन और ( तुभ्यम् ) आप के लिए ( इयम् ) यह ( मनीषा ) बुद्धि ( हृदे ) हृदय के लिए ( शम् ) सुखकारक ( अस्तु ) हो और जो ( सिन्धुभिः ) समुद्र को जैसे वैसे ( अवनी ) रक्षा करनेवाली ( मही ) श्रेष्ठ भूमियों के सद्गुण आदर करने योग्य ( गिरः ) वाणियाँ ( शवसा ) बल वा सवा से ( त्वाम् ) आपका ( आ पृणन्ति ) अच्छे प्रकार पालन करती वा विद्याओं को पूर्ण करती ( वर्धयन्ति, च ) और वृद्धि करती हैं उन का आप ग्रहण कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानद्वार है । हे विद्यार्थीजनों ! जैसे नदियाँ समुद्र को शोभित करती हैं वैसे ही विद्या और नम्रता से युक्त वाणियाँ आप लोगों को शोभित करे जिन के प्रताप से आप लोगो के मुखों में सत्य और सब का हितकारक वचन सर्वदा ही निकले ॥ ५ ॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहां हितमन्वविन्दञ्छिभ्रियाणं वनेवनं ।

स जायसे मध्यमानः महो महन्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥६॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्या की इच्छा करनेवाले जैसे ( अङ्गिरसः ) प्राणों के सद्गुण विद्याओं में व्याप्त जन ( वनेवने ) जंगल जंगल में अग्नि के सद्गुण जीव जीव में ( शिभ्रियाणम् ) व्याप्त ( गुहा ) बुद्धि में ( हितम् ) स्थित परमात्मा को ( अनु, अविन्दन् ) प्राप्त होने हैं और जिन ( त्वाम् ) आप को प्राप्त कराने हैं वैसे ( स ) वह आप ( मध्यमानः ) मधे गये विद्वान् ( जायसे ) होत है और जिससे ( सहसः ) विद्या और शरीर के बल से युक्त के ( पुत्रम् ) पुत्र और ( सह ) बल ( महत् ) बड़े को प्राप्त ( त्वाम् ) आप को ( अङ्गिरः ) प्राण के सद्गुण प्रिय विद्वान् जन ( आहुः ) कहें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । हे मनुष्यो ! जैसे यागी जन समय अर्थात् इन्द्रियों को अन्य विषयों से राकने से परमात्मा को प्राप्त होकर नित्य आनन्दित होते हैं वैसे इस का प्राप्त होकर आप लोग आनन्दित हूँजिये ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमस पूव सूक्त के अर्थ के माय सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह ग्यारहवाँ सूक्त और तृतीय वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ यज्ञस्यैकादशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आश्रये ऋषि । अग्निर्वैवता ।

१, २ स्वराट्पङ्क्तिवृत्तः । पञ्चम स्वर । ३, ४, ५ त्रिष्टुप्

६ निचुत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब छः ऋचावाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि विषय को कहते हैं—

प्राग्ये बृहते यज्ञियाय क्रतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।

घृतं न यज्ञ आस्येऽसुपृत गिरं भो वृषभाय प्रतीचीम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( आस्ये ) मुख में और ( यज्ञे ) मिलने योग्य व्यवहार में ( सुपृतम् ) उत्तम प्रकार पवित्र ( घृतम् ) घृत के ( न ) सद्गुण पदार्थ का तथा ( बृहते ) बड़े ( यज्ञियाय ) यज्ञ के योग्य और ( क्रतस्य ) जल के ( वृष्णे ) वर्षण और ( असुराय ) प्राणों में वर्त्तनवाले ( वृषभाय ) वारिष्ठ ( अन्त्ये ) अग्नि के लिए ( मन्म ) ज्ञान के उत्पन्न करनेवाले कारण का ( प्रतीचीम् ) पिछली क्रिया और ( गिरम् ) वाणी का ( प्र, भर ) अच्छे प्रकार धारण करता है वैसे इस के लिए उग वा आप लोग भी धारण करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । मनुष्यों से जैसे अग्निविद्या के ज्ञान के लिए प्रयत्न किया जाता है उनका चाहिए कि वैसे ही पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या के ज्ञान के लिए प्रयत्न करें ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

क्रतं चिकित्व क्रतुभिर्वचिकिद्धयतस्य धारा अनु तन्धि पूर्वाः ।

नाहं यातु महसा न ह्येनं क्रतुं संताम्यरूपस्य वृष्णाः । २ ॥

पदार्थ—हे ( क्रतम् ) सत्य कारण को ( चिकित्व ) जानने योग्य आप ( क्रतम् ) सत्य ब्रह्म को ( इत् ) निश्चय में ( चिकित्ति ) जानिये और ( क्रतस्य ) सत्य के जाननेवाली ( पूर्वा ) प्राचीन ( धारा ) वाणियों को जानिये और अविद्या का ( अनु, तन्धि ) नाश कार्य ( अहम् ) मैं ( सहसा ) बल से ( यातुम् ) जाने की ( न ) नहीं इच्छा करता है और ( वृष्णाः ) कार्यो कारणस्वरूप बल से ( अह-वस्य ) नहीं हिंसा करनेवाले ( वृष्ण ) बलिष्ठ के ( क्रतम् ) जल के ( न ) सद्गुण पदार्थ का ( स्यामि ) गम्भीर शब्द में आशयता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन अमत्य का खडन करके सत्य को धारण करते हैं और अविद्या का त्याग करके विद्या को धारण करते हैं वैसे ही आप लोग भी करें ॥ २ ॥

फिर अग्निपर्ववाक्य विद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

कयां नो अग्नं ऋतयन्नुतेन भुवो नवेदा उच्चथस्य नध्वः ।

वेदां मे देव ऋतुषा ऋतुनां नाहं पतिं सन्तितुरस्य रायः ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! आप ( कया ) किम विद्या वा युक्ति से ( नः ) हम लोगो को जनावें ( ऋतेन ) सत्य से ( ऋतयन् ) सत्य का आचरण करता हुआ ( भुवः ) पृथिवी का ( नवेदा ) नहीं प्राप्त होनेवाला ( उच्चथस्य ) उचित का सम्बन्धी ( नध्वः ) नदीनी में खेष्ट ( ऋतुषा ) ऋतुषो का पालन करनेवाला पृथ्वी-सम्बन्धी ( देवः ) विद्वान् ( अहम् ) मैं ( ऋतुनाम् ) वसन्त आदि ऋतुषो और ( अस्य ) इस ( समितु ) विभाग करनेवाले ( रायः ) धन के ( पतिम् ) स्वामी का ( न ) नहीं नाश कगता हूँ वैसे आप ( मे ) मुझ को ( वेदा ) जानिये और मुझ को नष्ट मत करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! सत्य के आचरण से ही पृथ्वी का राज्य प्राप्त होता है और पृथ्वी के राज्य और लक्ष्मी से सब को सुख होता है ॥ ३ ॥

फिर विद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

के तं अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सन्निवन्त द्युमन्तः ।

के धासिमन्ते अन्तस्य पान्ति क आसतो वचमः सन्ति गोपाः ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) राजन् ( ते ) आप के ( रिपवे ) शत्रु के लिए ( के ) कौन ( बन्धनास ) बन्धक और ( के ) कौन आप का राज्य के ( पायवः ) पालन करनेवाले ( के ) कौन ( द्युमन्त ) कामना करनेवाले वा प्रकाशयुक्त ( सन्निवन्त ) विभाग करने हैं और हे ( अग्ने ) विद्या और विनय के प्रकाशक कौन ( धासिम् ) अन्न की ( पान्ति ) रक्षा करते हैं ( के ) कौन ( अन्तस्य ) अन्तर्गत व्यवहार के ( आसतः ) निन्धा ( बन्धस ) बन्धन से ( गोपा ) रक्षा करनेवाले ( सन्ति ) हैं ॥४॥

भाषार्थ—हे विद्वन् राजन् ! आप को चाहिए कि इस प्रकार का कर्म करें जिस से शत्रुओं का नाश प्रजा का पालन होवे यह इस का उत्तर है ॥ ४ ॥

मत्वायस्ते विपुशा अग्न एते शिवांसः सन्तो अशिवा अभूवन् ।

अध्वैत स्वयमेते वचोभिरुज्यते इजिनानि ब्रवन्तः ॥५॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! जो ( एते ) ये ( ते ) आपके ( विपुशा ) विद्या को व्याप्त ( सत्तायः ) मित्र हुए ( शिवांसः ) मङ्गल अर्थात् अच्छे आचरण करते ( सन्तः ) हुए ( अशिवाः ) अमङ्गल आचरण करनेवाले ( अभूवन् ) होवें उनका आप के नौकर और आप ( अध्वैत ) नाश करो और हे राजा के नौकरो जो ( एते ) ये ( स्वयम् ) अपने ही ( वचोभिः ) वचनों से ( इजिनानि ) धनो और बलों का ( ब्रवन्तः ) उपदेश देने हुए ( उज्यते ) सरल होत हैं उनका निरन्तर पालन करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यो की यह योग्यता है कि जो मित्रजन शत्रु होवें वे निरादर करने योग्य हैं और जो शत्रु मित्र होवें वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीष्टं कृतं स पांस्यरुषस्य वृष्णः ।

तस्य क्षयः पृथुरा साधुरैतु प्रसर्त्तानस्य नहुषस्य शेषः ॥६॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) राजन् ( अरुषस्य ) नहीं हिंसा करने और ( वृष्ण ) सुख के वर्धनवाले ( तस्य ) उन ( ते ) आप का ( स ) जो ( पृथु ) विस्तार युक्त ( प्रसर्त्तानस्य ) अत्यन्त धम को प्राप्त हुए ( नहुषस्य ) मनुष्य के ( शेषः ) बाकी रहे के सदृश ( साधु ) श्रेष्ठ ( क्षयः ) निवास ( नमसा ) अन्न आदि से ( यज्ञम् ) यज्ञ का ( ईष्टं ) पेशवर्त्ययुक्त करता है ( स ) वह ( ऋतम् ) सत्यन्याय की ( पान्ति ) रक्षा करता है वह हम लोगो का ( आ, एतु ) सब प्रकार प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों की सेवा और धम की रक्षा करता है उस के रक्षण को आप लोग करके शेष सुख को प्राप्त हजिये ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बारहवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ वज्रस्य त्रयोवशास्य सूक्तस्य सुतम्भर आश्रय ऋषिः ।

अग्निदेवता । १, ४, ५, निचूद्गायत्री । २, ६ गायत्री ।

३ विराड्गायत्री छन्दः । वज्र स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्निपर्ववाक्य विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधामहि । अग्ने अर्चन्त उत्तये ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् हम लोग ( उत्तये ) रक्षण आदि के लिए ( त्वा ) आपका ( अर्चन्तः ) सत्कार करते हुए ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं और आपका ( अर्चन्तः ) सत्कार करते हुए ( समिधामहि ) प्रकाश करे और आपका ( अर्चन्तः ) सत्कार करते हुए विद्वान् होवें ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! हम लोग आप लोगो के सत्कार से उत्तम शिक्षा और विद्या को प्राप्त होकर आनन्दित होवें ॥ १ ॥

अब अग्निगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिधमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( द्रविणस्यवः ) अपने धन की इच्छा करनेवाले हम लोग ( अद्य ) आज ( दिविस्पृशः ) परमात्मा में सुख को स्पर्श करनेवाले ( देवस्य ) प्रकाशमान ( अग्नेः ) अग्नि के ( सिधम् ) साधक ( स्तोमम् ) गुण, कर्म और स्वभाव की प्रशंसा को ( मनामहे ) मानते हैं वैसे इसको आप लोग भी जानो ॥२॥

भाषार्थ—जिन्की धन की इच्छा होवे वे अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान को ग्रहण करें ॥ २ ॥

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । म यक्षद्वैव्यं जनम् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( य ) जो ( होता ) दाता ( अग्नि ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् ( नः ) हम लोगो की ( गिर ) वाणियों का ( जुषत ) सेवन करता है और जैसे ( साः ) वह ( मानुषेषु ) मनुष्यों से ( द्वैव्यम् ) श्रेष्ठ गुणों से उत्पन्न ( जनम् ) विद्वान् जन को ( आ, यक्षत् ) प्राप्त हो वा सत्कार करे वैसे आप करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तापमालङ्कार है । जो अग्नि न हो तो कोई भी जीव जिह्वा न चला सके ॥ ३ ॥

फिर विद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । स्वयां यज्ञं वि तन्वते ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! जिससे विद्वान् जन ( स्वयां ) आपके साथ ( यज्ञम् ) यज्ञ का ( वि, तन्वते ) विस्तार करते हैं उनके साथ ( होता ) दाता वा ग्रहण करनेवाले ( वरेण्यः ) अतिश्रेष्ठ और ( सप्रथाः ) प्रसिद्ध यशवाले ( जुष्टः ) सेवन किये गये ( त्वम् ) आप ( असि ) हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग यथार्थवक्ता विद्वानों के संग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करनेवाले यज्ञ का विस्तार करें ॥ ४ ॥

स्वामग्ने वाजसातमं विप्रां वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) महाविद्वन् ! ( विप्राः ) बुद्धिमान् जन जिन ( वाजसा-तम् ) विज्ञान और वेगो के विभाग करनेवाले ( सुष्टुतम् ) उत्तम यशवाले और ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रमयुक्त ( त्वाम् ) आपकी ( वर्धन्ति ) वृद्धि करते हैं ( सः ) वह आप ( नः ) हम लोगो के लिए उत्तम पराक्रम को ( रास्व ) दीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगो की यथार्थ वक्ता विद्वान् जन सब प्रकार से वृद्धि करें तो आप लोगो का अतुल प्रताप बढ़े ॥ ५ ॥

अग्ने नेमिराद्व देवास्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चिग्रमुक्षसे । ६॥५॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ( त्वम् ) आप जैसे ( नेमिः ) रथाङ्ग ( अरानिच ) चक्रों के अगो को बँस ( देवान् ) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों को ( परिभूः ) सब प्रकार से हूवनेवाले ( असि ) हो और ( चिग्रम् ) विचित्र ( राध ) धन को ( आ, उज्यमे ) सिद्ध करते हो हमसे सत्कार करने योग्य हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अरादिको ने चक्र उत्तम प्रकार शोभित होता है वैसे ही विद्वानों और उत्तम गुणों से मनुष्य शोभित होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त से अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ को हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह तेरहवां सूक्त और पाँचवां वर्ग समाप्त हुआ



अथ वज्रस्य त्रयोवशास्य सूक्तस्य सुतम्भर आश्रय ऋषिः । अग्निदेवता ।

१, ४, ५, ६ निचूद्गायत्री । २ विराड्गायत्री । ३ गायत्री

छन्दः । वज्र स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले बीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निगुणों को कहते हैं—

अग्निं स्तोमैम बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेभुं नो दधत् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो ( समिधान ) उत्तम प्रकार स्वयं प्रकाशमान अग्नि ( देवेभुं ) विद्वानों वा श्रेष्ठ गुणोंवाले पदार्थों से ( नः ) हम लोगो के लिये ( हव्या ) देने और ग्रहण करने योग्य वस्तुओं का ( दधत् ) धारण करता है उस ( अमर्त्यम् ) मरणधर्म से रहित ( अमर्त्यम् ) अग्नि को ( स्तोमेन ) गुणों की प्रशंसा से ( बोधय ) प्रकाशित कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! प्रयत्न से अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त होओ ॥ १ ॥

समध्वरेष्वीळते देवं मर्त्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषं जनं ॥२॥



पदार्थ—जो ( वस्त्रा ) मनुष्य ( अन्धरेषु ) नहीं नाश करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहारो मे ( मानुषे ) विचारणीय ( जने ) जन में ( तम् ) उस ( अमर्त्यम् ) स्वरूप से नित्य ( यजिष्ठम् ) धर्माश्रय मेल करनेवाले ( देवम् ) श्रेष्ठ गुणवाले अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशित परमात्मा की ( ईळसे ) स्तुति करते हैं वे ही बहुत सुख का भोग करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थ के सदृश पदार्थविद्या का ग्रहण करने हैं वे सब प्रकार सुखी होते हैं ॥ २ ॥

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय बोद्ध्वे ॥३॥

पदार्थ—( शश्वन्त ) घनादि से वर्तमान जीव जैसे यज्ञ करनेवाला और यजमान ( घृतश्चुता ) जो घृत वा जल चुआती उस ( स्रुचा ) यज्ञ सिद्ध कराने-वाली स्रुच उससे ( हव्याय ) देने और लेने के योग्य के लिए ( बोद्ध्वे ) धारण करने को ( अग्निम् ) अग्नि की ( ईळते ) प्रशंसा करते हैं वैसे ( हि ) ही योगाभ्यास से ( तम् ) उस परमात्मा ( देवम् ) देव अर्थात् निरन्तर प्रकाशमान की स्तुति करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु० है । जैसे शिल्पीजन अग्नि आदि तत्त्वों की विद्या को प्राप्त होकर और अनेक कार्यों को सिद्ध करके प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं वैसे मनुष्य परमात्मा को यथावत् ज्ञान के अपनी इच्छाओं को सिद्ध करें ॥ ३ ॥

किं अग्निविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्निर्जातो अरोक्षत घ्नन्दस्युञ्ज्योतिषा तमः ।

अविन्दद्वा अपः स्वः ॥४॥

पदार्थ—हं मनुष्यो राजा जैसे ( जात ) प्रकट हुआ ( अग्नि ) अग्नि ( ज्योतिषा ) प्रकाश से ( तम् ) अन्धकाररूप रात्रि का ( घ्नन् ) नाश करता हुआ ( अरोक्षत ) प्रकाशित होता और ( वा ) किरणा ( अप ) अन्तर्गता और ( स्व ) सूर्य को ( अविन्दत् ) प्राप्त होता है वैसे प्राप्त हुए विद्या विनय जिन का वर ( हव्यम् ) दुष्ट चारों का नाश करते हुए और न्याय में अन्याय का निवारण करके विजय और यश को प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि अन्धकार का निवारण करके प्रकाशित होता है वैसे राजा दुष्ट चारों का निवारण करके विशेष शोभित होवे ॥ ४ ॥

अग्निमीलेन्यं कवि घृतपृष्ठ मपय्यत । वेतु मे शृण्वद्वधम् ॥५॥

पदार्थ—हं मनुष्यो जैसे विद्वान् ( मे ) भेरे ( हव्यम् ) देने लेने योग्य व्यवहार को ( वेतु ) व्याप्त हो और ( शृण्वत् ) सुन वैसे ( ईळसे ) प्रशंसा करन योग्य ( कविम् ) प्रतापयुक्त दशनवाले ( घृतपृष्ठम् ) प्रकाश घृत वा जलपृष्ठ में जिसके उस ( अग्निम् ) अग्नि का ( सपय्यत ) सेवन करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या का अभ्यास करें ता वे निरन्तर सुख को खेंवें ॥ ५ ॥

अग्निं घृतेन वाबुधुः स्तोमेभिर्विष्वर्षणिम् ।

स्वाधीर्मिर्वचस्युमिः ॥६॥ अनु० १ ॥

पदार्थ—जो ( स्तोमेभि ) प्रशंसित कर्मों और ( घृतेन ) घृत से ( विष्वर्षणिम् ) संसार के प्रकाश करने वाले ( अग्निम् ) अग्नि की ( वाबुधु ) वृद्धि करावे उन ( विष्वर्षणि ) अपने वचन की इच्छा करने वाले ( स्वाधीभि ) उत्तम प्रकार ध्यान से युक्त जनों के साथ सब मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या का ग्रहण करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जैसे ईधन आदि से अग्नि बढ़ता है वैसे ही सत्यज्ञ से विज्ञान बढ़ता है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह चतुर्विंश सूक्त और पञ्चम मन्त्र में प्रथम अनुवाक और छठा वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चमस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य ध्वन्यं अङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्वेदता । १, ५ स्वरादपहन्तिछन्दः ।

पञ्चम स्वर । २, ४ त्रिष्टुप् । ३ विराद्वि-  
ष्टुप्छन्दः । ध्रुवत स्वरः ।

अथ पाँच ऋचावाले पञ्चह्रं सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् और अग्निगुरुविषय को कहते हैं—

म वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पृथ्याय ।

घृतप्रसक्तो अमुरः सुशेवो रायो धर्मा धरुणो वस्वो अग्निः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे मुझ से ( वृत्तव्रतः ) जल में प्रसक्त होने ( अमुरः ) और प्राणी में सुख देने वाला तथा ( सुशेवः ) सुन्दर सुख जिस से ऐसे ( रायो ) धन का ( धर्मा ) धारण करने और ( धरुणः ) पृथिवी आदि का ( धरुणः ) धारण करने वाला ( अग्निः ) अग्नि धारण किया जाता है उसके बोध के लिए ( कवये ) विद्वान् और ( वेद्याय ) जानने योग्य के लिए और ( यशसे ) प्रशंसित ( पृथ्याय ) प्राचीनों में प्राप्त विद्या वाले ( वेधसे ) बुद्धिमान के लिये ( गिरम् ) वाणी को ( प्र, भरे ) धारण करता हूँ वैसे आप लोग भी इस को इसलिये धारण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जो अग्नि आदि पदार्थों की विद्या प्रसाधारण अर्थात् विलक्षण है उसको उत्तम लक्षणवाले बुद्धिमान विद्याधियों के लिए ग्रहण कराइये ॥ १ ॥

अथ विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त मज्ञस्यं शाके परमे व्योमन् ।

दिद्वो धर्मन्धरुणे सेदुषो वृज्जार्तरजातां अग्नि ये ननक्षुः ॥२॥

पदार्थ—( ये ) जो ( ऋतेन ) सत्य वा परमात्मा से ( ऋतम् ) सत्य कारणादिक ( धरुणम् ) सब के धारण करने वाले को ( यज्ञस्य ) सम्पूर्ण व्यवहार के ( शाके ) सामर्थ्य के निमित्त ( परमे ) उत्तम ( व्योमन् ) व्यापक ( दिवः ) सूर्य आदि से ( धर्मन् ) धर्म ( धरुणे ) और धारण करने वाले में ( जाते ) उत्पन्न हुए पदार्थों से ( अजाताम् ) न उत्पन्न हुए ( सेदुषः ) ज्ञानवान् ( नृन् ) मनुष्यों को ( अग्नि, ननक्षुः ) प्राप्त होते हैं वे सत्य विद्या को ( धारयन्त ) धारण करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—वे ही मनुष्य विद्वान् हैं जो पूर्व और आगे वर्तमान विद्वानों को मिलकर परमेश्वर, प्रकृति और जीव के कार्य की विद्या को जानते हैं ॥ २ ॥

अंहोयुर्वस्तन्वस्तन्वते वि वयो महदुष्टं पृथ्याय ।

स संवतो नर्षजातस्तुत्यात्सिहं न क्रद्धमभितः परि ष्टुः ॥३॥

पदार्थ—हं मनुष्यो जिसके सम्बन्ध में ( अंहोयुव ) जो अपराध को दूर करते वे ( तन्वः ) शरीर के मध्य में ( तन्वते ) विस्तार को प्राप्त होते और ( महत् ) बड़े ( दुष्टम् ) दुःख से पार होने योग्य ( वि ) जीवन को ( वि ) विशेष करके विस्तृत करते और मुक्त के ( परि ) सब और ( ष्टुः ) स्थित होते हैं ( स ) वह उनका सङ्गी ( संवत् ) उत्तम प्रकार सेवन किया गया ( नर्षजात ) नवीन अभ्यास से उत्पन्न हुई विद्या जिसकी ऐसा पुरुष ( पृथ्याय ) पूर्वज के लिये ( ऋद्धम् ) क्रोधयुक्त ( सिहम् ) सिंह के ( न ) सदृश अन्य को ( अभितः ) सब प्रकार से ( तुत्यात् ) नाश करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य पाप को दूर करके धर्म का आचरण करते हैं वे शरीर और आत्मा के सुख और जीवन की वृद्धि कराते हैं । और जैसे क्रुद्ध सिंह प्राप्त हुए प्राणियों का नाश करता है वैसे प्राप्त हुए दुर्गुणों का सब जन नाश करे ॥ ३ ॥

मातेव यज्जरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।

वयोंवयो जरसे यदधानः परि स्मना विषुरूपो जिगासि ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यत् ) जिन कारण ( पप्रथान ) प्रसिद्ध विद्यायुक्त आप ( मातेव ) माता के सदृश ( धायसे ) धारण करने और ( चक्षसे ) कहाने को ( च ) भी ( जनञ्जनम् ) मनुष्य मनुष्य का ( भरसे ) पाषण करने हो और ( स्मना ) आत्मा से ( यत् ) जिन कारण ( यज्जान ) धारण करते हुए ( वयोवयः ) सुन्दर जीवन जीवन की ( जरसे ) स्तुति करने हो और ( विषुरूपः ) विद्या जिन को प्राप्त हम हुए सम्पूर्ण पदार्थों की ( परि ) सब प्रकार से ( जिगासि ) प्रशंसा करने हो हम से विद्वान् जान हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन माता के सदृश विद्याधियों की रक्षा करते, सब की उन्नति करने की इच्छा कर्त और ब्रह्मचर्य तथा अक्स्था के बढ़ने में कारणरूप कार्यों का उपदेश करते हैं वे संसार के आदर करने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

वाजो नु ते शर्वमस्पात्वन्तमुरुं दोषं धरुणं देव रायः ।

पदं न तापुर्गुहा दधानो महो गये चित्तयस्त्रिमस्यः ॥५॥७॥

पदार्थ—हे ( देव ) विद्वन् ( ते ) आप का ( वाज ) वेग ( शर्वतः ) सब के ( उरम् ) वहुन ( अन्तम् ) अन्त की ( दोषम् ) तथा उत्तम पुरा करनेवाले और ( राय ) धन के ( धरुणम् ) धारण करनेवाले की ( नु ) शीघ्र ( तापु ) रक्षा करें और ( तापु ) चोर ( यवम् ) पैरो के बिह्व को ( न ) जैसे वैसे ( मह ) बड़े ( राय ) धन के लिये ( गुहा ) बुद्धि में सत्य को ( यज्जान ) धारण करते और ( अग्निम् ) पालन करनेवाले को ( चित्तयम् ) जनाते हुए आप सब को ( जस्यः ) प्रसन्न कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हं मनुष्यो ! जैसे चोर, चोर के पाद के बिह्व को हूँठ के ग्रहण करता है वैसे ही आत्माओं के सत्य को धारण कर और काममा की पूर्ति करके सब को प्रसन्न करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह पञ्चहर्षा सूक्त और सप्तम वर्ण समाप्त हुआ ।



अथ यजुर्वेदस्य षोडशस्य सूक्तस्य पुराणाय ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१, २, ३ विराट्मण्डुप् छन्दः । वेत्तः स्वरः । ४ भुरिगुणिकछन्दः ।

ऋषभः स्वरः । ५ बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से विद्वान् के विषय की कहते हैं—

बृहदयो हि मानवेऽर्चो देवायानये ।

यं मित्रं न प्रशस्तिर्मिर्त्तसो दधिरे पुरः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( मर्त्तसः ) मनुष्य ( प्रशस्तिभिः ) प्रशंसाओं से ( यम् ) जिसकी ( मित्रम् ) मित्र के ( न ) ममान ( पुरः ) प्रथम से ( दधिरे ) धारण करते हैं उसको ( मानवे ) प्रकाश के लिये और ( देवाय ) श्रेष्ठ गुण वाले ( अन्तये ) विद्वान् आदि के लिये ( बृहत् ) बड़ा ( यः ) प्रदीप्त करनेवाला तेज जैसे हो वैसे ( हि ) ही ( अर्चा ) पूजिये, आदर करिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मित्र मित्र को धारण करके सुख की वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त होकर विद्वान् जन आनन्द से वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१॥

स हि धुमिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।

वि ह्यपमग्निर्नुषभगो न वारंमृषति ॥२॥

पदार्थ—जो ( जनानाम् ) मनुष्यों की ( बाह्वो ) भुजाओं के ( दक्षस्य ) बल का ( होता ) देने वाला ( अग्नि ) अग्नि ( भग ) सूर्य के ( न ) सदृश ( अनुषम् ) अनुकूलता से ( वारम् ) स्वीकार करने और ( ह्यम् ) देनेयोग्य पदार्थ को ( वि, मृषति ) विशेष निन्द करता है ( सः, हि ) वही ( धुमिः ) धर्मयुक्त कामों से बलवान् होता है ॥२॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन अपने आत्मा के सदृश सब मनुष्यों को जान और विद्या को प्राप्त करा के उन्नति करने की इच्छा करते हैं वे ही भाग्यशाली वर्तमान हैं ॥२॥

अब सप्तमविजयविषय को कहते हैं—

अस्य स्तोमं मघोनः सख्ये बृद्धसौचिषः ।

विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समये शुभममादधुः ॥३॥

पदार्थ—जो मनुष्य ( अस्य ) इस ( बृद्धसौचिष ) बृद्ध अर्थात् बड़ी हुई कान्ति जिसकी ऐसे ( मघोनः ) बहुत धन से युक्त पुरुष की ( स्तोमं ) प्रशंसा में और ( सख्ये ) मित्रपन वा मित्र के कार्य के लिये ( यस्मिन् ) जिस ( तुविष्वणि ) बलमेव तथा ( सन्, अयं ) अच्छे प्रकार स्वामी वा वैश्य में ( शुभम् ) धन की ( आदधुः ) सब प्रकार धारण करें वे ( विश्वा ) सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होंगे ॥३॥

भावार्थ—जो मित्र हो कर शरीर और आत्मा के बल को धारण करके प्रयत्न करत हैं वे मङ्गलामाधिकों में विजय को प्राप्त होकर प्रशंसित लक्ष्मीवान् होते हैं ॥३॥

अब राज्य और ऐश्वर्यवृद्धि की कहते हैं—

अथा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य भर्ता ।

तमिद्यहं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) राजन् ( एषाम् ) इन वीरों और ( सुवीर्यस्य ) उत्तम पराक्रम वाले के ( भर्ता ) ब्रह्मपन से जो ( तम् ) उसको ( इत् ) ही ( यद्वत् ) बड़े सूर्य ( अथा ) इसके अन्तर ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी के ( न ) सदृश ( श्रवः ) अन्न जैसे हो वैसे ( परि ) सब ओर से ( बभूवतुः ) होते हैं वे ( हि ) ही विजय को प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बड़ी उत्तम प्रकार शिथिल सेना को प्राप्त होने हैं उनके ही राज्य का ऐश्वर्य बढ़ता है ॥४॥

न न एहि वार्यमग्ने गुणान् आ भर ।

ये ययं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो बृधे ॥५॥८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( ये ) जो ( सूरयः ) विद्वान् ( ये, न ) और जो ( ययम् ) हम लोग ( स्वस्ति ) सुखको ( धामहे ) धारण करते हैं उनसे ( सन्ना ) सम्बद्ध आप ( वार्यम् ) स्वीकार करने योग्य की ( न ) शीघ्र और ( गुणानः ) विद्वानों के गुणों की स्तुति करते हुए ( नः ) हम लोगों को ( आ, इहि ) सब प्रकार से प्राप्त हजिये ( जत ) और सुख की ( आ, भर ) सब प्रकार पृष्टि कीजिये तथा ( पृत्सु ) संश्रमों में ( नः ) हम लोगों की ( बृधे ) वृद्धि के लिये ( इधि ) प्राप्त हजिये ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्यों के लिये निरन्तर सुख देते हैं उनके साथ मनुष्य सदा उन्नति करें ॥५॥

इस सूक्त में विद्वान् का विषय सप्तमविजय और राज्यऐश्वर्य के वर्धन का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सोलहवाँ सूक्त और अठारहवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ यजुर्वेदस्य सप्तवशास्य सूक्तस्य पुराणाय ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१ भुरिगुणिक छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ अनुष्टुप् । ३ निबृहनुष्टुप् ।

४ विराट्मण्डुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ भुरिगृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्न्यादि विद्याविषय को कहते हैं—

आ यज्ञेदेव मर्त्ये इत्था तव्यां समृतये ।

अग्निं कृते स्वध्वरे पुरीधीतावसे ॥१॥

पदार्थ—हे ( देव ) विद्वन् ! जैसे ( देव ) मननशील ( मर्त्ये ) मनुष्य ( कृते ) किये हुए ( स्वध्वरे ) शोभन ग्रहसामय यज्ञ में ( यज्ञः ) विद्वानों के सत्कारादिक व्यवहारों से ( जवसे ) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों में प्रवेश होने के लिये ( तव्यां ) अत्यन्त बृद्ध बड़े तेजयुक्त ( अग्निम् ) अग्नि की ( ईक्षीत ) प्रशंसा करता है ( इत्था ) इस कारण से ( कृतये ) रक्षा आदि के लिए ( आ ) प्रयोग अर्थात् विशेष उद्योग करो ॥१॥

भावार्थ—जो विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करनेवाले मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त हो कर श्रेष्ठ कर्म को करते हैं वे सब प्रकार से रक्षित होते हैं ॥१॥

अब चिद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अस्य हि स्वयंशस्तरः आसा विधर्मन्मन्यसे ।

तं नाकं चित्रसौचिषं मद्रं परो मनीषया ॥२॥

पदार्थ—हे ( विधर्मन् ) विशेष धर्म के अनुगामी जो ( हि ) निश्चय ( अस्य ) इसके सम्बन्ध में ( स्वयंशस्तरः ) अत्यन्त अपना यज्ञ जिसका ऐसा पुरुष ( आसा ) मुख वा भासन से वर्तमान है और ( परः ) श्रेष्ठ हुए ( मनीषया ) बुद्धि से ( तम् ) उस ( मद्रम् ) आनन्द देनेवाले और ( चित्रसौचिषम् ) प्रवृत्त-प्रकाशयुक्त ( नाकम् ) बुद्धि से रहित को आप ( मन्यसे ) जानते हो उसका मैं आदर करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप मया ही धर्मयुक्त यज्ञ को बढ़ानेवाले कर्म को करें जिससे अत्यन्त सुखको प्राप्त होंगे ॥२॥

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।

विबो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( यः ) जो ( असी ) यह ( अस्य ) इसकी ( अर्चिषा ) निश्चय से ( अर्चिषा ) विद्या की दीप्ति और ( गिरा ) बाणी से ( आयुक्त ) युक्त होता ( उ ) और ( यस्य ) जिसके ( रेतसा ) पराक्रम में ( विबो ) जैसे मनोहर प्रयाजन के ( न ) वैम ( अर्चयः ) उत्तम सत्कार ( बृहत् ) बड़े ( शोचन्ति ) शोभित होते हैं वह आप दुलो की ( तुजा ) हिमा करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों के सूर्य के प्रकाश के सदृश विद्या यज्ञ और कीर्ति विलास का प्राप्त होते हैं वे ही बड़े विज्ञान का उत्पन्न करते हैं ॥३॥

अब अग्निवृद्धास्त से विद्याविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।

अथा विश्वासु हव्योऽग्निर्विधु म शंस्यते ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् जिसकी ( विश्वासु ) सम्पूर्ण ( विधु ) प्रजाओं में ( हव्यः ) ग्रहण करने योग्य ( अग्नि ) अग्नि ( म, शंस्यते ) प्रशंसा को प्राप्त होता है ( अथा ) इसके अन्तर ( अस्य ) इसकी ( क्रत्वा ) वृद्धि तथा ( विचेतसः ) जनाने और ( दस्मस्य ) दुःख के नाश करनेवाले की वृद्धि से ( रथे ) सुन्दर वाहन में ( वसु ) हव्य ( आ ) प्रशंसित होता है ॥४॥

भावार्थ—जैसे प्रजा में अग्नि विराजता है वैसे ही विद्या और विनय से युक्त वृद्धिमान् पुरुष शोभित होते हैं ॥४॥

अब चिद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न न इहि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।

ऊर्जे नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तयं उतैधि पृत्सु नो बृधे ॥५॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( सूर्य ) विद्वान् जन ( आत्मा ) उपवेशन अर्थात् स्थिति से ( नः ) हम लोगों को और ( वार्यम् ) श्रेष्ठ पदार्थों में उत्पन्न बिजुलीरूप अग्नि को ( सञ्चल्य ) सम्बद्ध करने है वैसे ( नपात् ) नहीं गिरनेवाले आप ( नः ) हम लोगों के ( अस्मिन् ) अपेक्षित सुख के लिये ( ऊर्जः ) पराक्रमी को ( पाहि ) रक्षा कीजिये और ( वृन्तु ) सप्तामी में हम लोगों की ( वृद्धे ) वृद्धि के लिए ( हि ) जिससे ( शान्ति ) समर्थ हूजिये और ( स्वस्तये ) सुख के लिये ( नृ ) शीघ्र ( इत् ) ही ( उत ) निश्चय से ( एषि ) प्राप्त हूजिये ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुष्ठोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों के अनुकरण को करे तो उत्तम गुणों की प्राप्ति, बल की वृद्धि और सुखपूर्वक विजय को करते हैं ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्रहवां सूक्त और नववां वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्तोत्रावस्थस्य सूक्तस्य द्वितीयावस्थाया आश्रये ऋषिः । अग्निर्वेत्ता ।

१, ४ विराबनुष्टुप् । २ निचबनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

३ भुरिगुणिक छन्दः । ऋचम स्वरः । ५ भुरिगुणिक छन्दः ।

मध्यम स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचा वाले अठारहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के सर्वश्रुति अतिथि के विषय को कहते हैं—

प्रातरग्निः पुरुमियो विशः स्तवेतातिथिः ।

विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अग्निः ) अग्नि के सर्वश्रुति पवित्र ( पुरुमियो ) बहुतों से कामना किया वा सेवन किया गया ( मर्तेषु ) नाश होनेवाले कार्यों में ( अमर्त्य ) स्वभाव से मरणधर्मरहित ( हव्या ) रमता है ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( हव्या ) देने योग्य की ( स्तवेत ) प्रशंसा करे और जो ( प्रातः ) प्रातः काल के आरम्भ से ( विश्वः ) प्रजाओं को उपदेश देवे वह ( अतिथिः ) धातुर करने योग्य यथायवक्ता विद्वान् सत्कार करने योग्य होता है ॥१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो आत्मा का जानने वाला, सत्य का उपदेशक, विद्वानों का प्रिय, परमात्मा के सर्वश्रुति सब के हित को चाहने वाला नित्य श्रीष्टा करता है वह ही सत्कार करने योग्य है ॥१॥

किर अतिथिविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

द्वितीयं सुहवासे स्वस्य दसस्य मंहना ।

इन्दु स र्बत्त आनुषक् स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( अमर्त्य ) अपने स्वरूप से नित्य जो ( स्तोता ) सत्य विद्या की प्रशंसा करनेवाला ( आनुषक् ) अनुकूलता से ( इन्दुम् ) ऐश्वर्य को ( चित् ) ही ( ते ) तेरे लिए ( र्बत्ते ) धारण करता है ( सः ) वह ( द्वितीय ) दो जन्मों से विद्या को प्राप्त ( सुहवासे ) शुद्ध विज्ञान को प्राप्त करनेवाले ( स्वस्य ) और अपने ( दसस्य ) बल के ( मंहना ) बङ्गपन के साथ वर्तमान अतिथि के लिये सुख देवे ॥२॥

भाषार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता अतिथियों का सत्कार करते हैं वे सत्य विज्ञान को प्राप्त हो कर सर्वदा आनन्दित होते हैं ॥२॥

तं वी दीर्घायुशोचिर्वा गिरा हुवे मघोनाम् ।

अरिष्टो येषां रथो व्यशदावजीयते ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( येषाम् ) जिन अतिथियों और ( मघोनाम् ) बहुत धन से युक्त ( व ) आप लोगों का ( अरिष्ट ) नहीं हिसा करने योग्य ( रथ ) बाहन ( वि, ईयते ) विशेषता से चल्ता है उनका मैं ( हुवे ) आह्वान करता हूँ और हे ( अशदावन् ) व्याप्ति करनेवाले विज्ञान आदि गुणों के दाता गृहस्थ आप के कल्याण के लिये ( तम् ) उस ( दीर्घायुशोचिर्वा ) दीर्घ आयु अधिक अवस्था पवित्र करनेवाली जिसकी ऐसी अतिथि विद्वान् वा मैं ( गिरा ) वाणी से आह्वान करता हूँ ॥३॥

भाषार्थ जो अहिमादि धर्म से युक्त मनुष्य अतिकालपर्यन्त जीवनेवाले धार्मिक अतिथियों की सेवा करते हैं वे भी दीर्घायु और उन्मोवान् आकर आनन्दित होते हैं ॥३॥

चित्रा वा येष्टु दीर्घतिरासन्नुषथा पान्ति ये ।

स्तीर्णं बहिः स्वर्गरे अवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( येषु ) जिन अतिथियों में ( चित्रा ) विभिन्न ( दीर्घतिः ) प्रकाशमान विद्या है और ( आसन् ) आसन वा सुख में ( उषथा ) प्रशंसा करने योग्य कर्म हैं और ( ये, वा ) यथवा जो ( स्तीर्णम् ) आच्छादित अर्थात् भ्रष्टकरण में व्याप्त ( बहिः ) अन्तरिक्ष के सर्वश्रुति विज्ञान की ( स्वर्गरे ) सुख से युक्त मनुष्य में ( पान्ति ) रक्षा करने हैं और ( अवांसि ) अन्नादिकों को ( परि ) सब ओर से ( दधिरे ) धारण करें वे ही श्रेष्ठ अतिथि होते हैं ॥४॥

भाषार्थ—जो विद्या के उत्तम गुणों से पूर्ण, सब के हित चाहने वाले, पुरुषार्थी अर्थात् उत्साही और पक्षपात से रहित अतिथिजन उपदेश से सब की रक्षा करते हैं वे ससार के कल्याण करनेवाले होते हैं ॥४॥

ये मे पञ्चाशतं ददुरभ्यानां सधस्तुति ।

धुमर्दने महि श्रवो बृहत्कंधि मघोनां नृवर्द्धय नृणां ॥ ५ ॥ १० ॥

पदार्थ—( ये ) जो अतिथि जन ( मे ) मेरे लिए ( अश्वानाम् ) वेग से युक्त अग्नि आदि पदार्थों के ( सधस्तुति ) साथ प्रशंसित ( धुमत् ) यथार्थ ज्ञान के प्रकाश से युक्त ( पञ्चाशतम् ) पञ्चाशतसंख्यायुक्त विज्ञान को ( ददुः ) देनेवाले हो उनके साथ है ( अन्ते ) विद्वन् आप एक साथ प्रशंसित और यथार्थ ज्ञान के प्रकाश से युक्त ( महि ) बड़े ( बृहत् ) बहुत ( मघः ) अन्न वा श्रवण को ( कंधि ) करिये और हे ( अमृत ) मरणधर्म से रहित उन ( मघोनाम् ) बहुत धनवान् ( नृणाम् ) मनुष्यों के ( नृवत् ) मनुष्यों के तुल्य उन्नति का विज्ञान करो ॥५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अतिथिजन पदार्थविद्या को दें उनका सत्कार यथायव करो ॥५॥

इस सूक्त में अग्निवत् अतिथि के गुणवर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अठारहवां सूक्त और द्वादशवां वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्तोत्रावस्थस्य सूक्तस्य त्रितयावस्थाया आश्रये ऋषिः । अग्निर्वेत्ता । १,

गायत्री । २ निचबुगायत्री छन्दः । ऋच स्वरः । ३ अनुष्टुप्

छन्दः । गान्धार स्वरः । ४ भुरिगुणिक छन्दः ।

ऋचम स्वरः । ५ निचबुगुणिकछन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचा वाले उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है इसमें विद्वानों को सिद्ध करने योग्य उपदेश विषय को कहते हैं—

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते म वत्रेर्षत्रिचिकेत ।

उपस्थे मातुर्षि चष्टे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( वत्रेः ) स्वीकार करनेवाले की जो ( अभ्यवस्थाः ) विरुद्ध वस्तु को प्राप्त होते हैं जिनमें ऐसी वर्तमान दशायाँ ( प्र, जायन्ते ) उत्पन्न होती हैं उनका ( वत्रि ) स्वीकार करने वाला ( अभि ) सम्मुख ( प्र, चिकेत ) विशेष करके जाने और ( मातु ) माता के ( उपस्थे ) समीप में ( वि चष्टे ) प्रसिद्ध होता है इनको आप भी जानिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—ऐसा नहीं कोई भी प्राणी है कि जिस की उत्तम मध्यम और अधम दशायाँ न हों और जो माता पिता और आचार्य से शिक्षित है वही अपनी दशाओं को सुधार सकता है ॥ १ ॥

बुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्यं पान्ति ।

आ दृढां पुरं विविशुः ॥ २ ॥

पदार्थ—जो ( अनिमिषम् ) दिन रात्रि ( चितयन्तः ) बोध कराते हुए ( वि ) विरुद्ध ( बुहुरे ) कुटिलता करने और ( नृम्यम् ) धन की ( पान्ति ) रक्षा करते हैं वे ( दृढां ) दृढ़ ( पुरम् ) नगर को ( आ, विविशुः ) सब प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मरन स्वभाव वाले और सत्य के बोधक प्रतिक्षण पुरुषार्थ करते हैं वे राज्य और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ श्वैत्रयस्य जन्तवो धुमर्द्धन्त कृष्टयः ।

निष्कप्रीवो बृहदुक्थ एना मघ्ना न बाजयुः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जिस ( श्वैत्रयस्य ) अन्तरिक्ष में स्थित दिशाओं में उत्पन्न जन्त के मध्य में ( जन्तवः ) जीव और ( कृष्टयः ) मनुष्य ( श्वेन्त ) बुद्धि को प्राप्त होते हैं ( एना ) इस ( मघ्ना ) मधुर जल से ( बाजयुः ) अन्न की कामना करने हुए के ( न ) सर्वश्रुति ( बृहदुक्थः ) अत्यन्त प्रशंसित ( निष्कप्रीवः ) एक निष्क का जिसमें चार सुवर्ण प्रमाण से युक्त आभूषण जिसकी जीवा में ऐसा पुरुष ( बाजयुः ) प्रकाश से युक्त सुख को ( ना ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥



पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम संसार में जितने पदार्थ हैं वे सब जल ही से होते हैं अर्थात् सब का बीज जल ही है ऐसा जान कर सब सुखी को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

मित्रं दुग्धं न काम्यमजामि आभ्योः सखा ।

धर्मो न वाजजठरोऽदंष्ट्रः शशतो दमः ॥४॥

पदार्थ—( वाजजठरः ) क्षुधा का वेग उदर में जिससे हो ( अदंष्ट्रः ) जो सही हिमा करने योग्य ( शशतो ) निरन्तर व्याप्त ( दमः ) और जिस से नाश करता है उस ( धर्मः ) प्रताप के ( न ) सदा वा ( सखा ) प्रिय ( दुग्धम् ) दुग्ध के ( न ) सदा ( सखा ) सम्बन्ध से ( आभ्यो ) खान योग्य भ्रम को देने वाले प्रकाश और पृथिवी के ( काम्यम् ) कामना करने योग्य पदार्थ को ( अजामि ) प्राप्त होता है इस से मेरे साथ घाव लोग भी इस को करो ॥ ४ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो सूर्य के प्रकाश के सदा विद्या से व्याप्त दुग्ध के सदा प्रिय बचने वाले और धर्म की कामना करने हुए जन हैं वे पृथ्वी के सदा सबके रक्षक होते हैं ॥ ४ ॥

क्रीळणो रश्म आ शुभः सं मस्मना वायुना वेविद्वानः ।

ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥११॥

पदार्थ—हे ( रश्मे ) किरणों के सदा वर्तमान विद्वन् जैसे बिजुलीरूप अग्नि ( अस्मना ) भस्म और ( वायुना ) पवन में ( वेविद्वानः ) जनाता अर्थात् अपने को प्रकट करता हुआ ( ताः ) उन ( अस्य ) इसकी ( वक्ष्यः ) वृष्टना से उत्पन्न हुआ के ( न ) सदा ( तिग्माः ) तीव्र ( सुसंशिताः ) उत्तम प्रकार प्रशसित ( वक्ष्यः ) ले चलने वाली और ( वक्षणेस्थाः ) बाह्य में स्थिर गेमी लपटों को धारण करता ( सन्धृषजः ) हुआ मुख की ( सन्धृषः ) सभाबना करता है वैसे ( क्रीळणः ) क्रीडा करने हुए आप ( न ) हम लोगों के सुखकारी ( आ, शुभः ) हूजिये ॥ ५ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! जैसे सूर्य की किरणों सर्वत्र फैली हुई सब को सुख देती हैं वैसे ही सब स्थानों में भ्रमण तथा उपदेश करते हुए आप सब को आनन्द दीजिये ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के सिद्ध करने योग्य उपदेश विषय का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ को इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उल्लिखित सूक्त और व्याख्या वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ चतुष्टयस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य प्रथमस्य अध्यायः । अग्निर्वेदता । १, २ विराडनुष्टुप् ।

५ निबृधनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ।

४ पङ्क्तिद्वयः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्निपर्ववाक्य विद्वान् के गुणों का वर्णन करते हैं—

यमग्ने वाजसातम् त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।

त नो गीभिः श्रवाव्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( वाजसातम् ) अतिशय विज्ञान आदि पदार्थों के विभाजक ( अग्ने ) विद्वन् ( त्वम् ) आप ( गीभिः ) उत्तम प्रकार उपदेशरूप हुई वाणियों से ( यम् ) जिस ( देवत्रा ) विद्वानो में ( श्रवाव्यम् ) सुनने योग्य ( युजम् ) योग करने वाले ( रयिम् ) धन का अपने लिए ( मन्यसे ) स्वीकार करते हो ( तम् ) उस का ( चित् ) भी ( न ) हम लोगों को ( पनया ) व्यवहार से प्राप्त कराइये ॥ १ ॥

आचार्य—यही धर्मयुक्त व्यवहार है कि जैसी इच्छा अपने लिए होती है वसी ही दूसरे के लिए करे और जैसे प्राणी अपने लिए दुःख की नहीं इच्छा करते हैं और सुख की प्रार्थना करते हैं वैसे ही अग्न्य के लिए भी उनकी वर्त्ताव करना चाहिये ॥ १ ॥

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य श्वंसः ।

अप द्वेषो अप हुरोऽन्धव्रतस्य सखिरे ॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ( मे ) जो ( वृद्धा ) विद्या और अवस्था से बृद्ध जन ( ते ) आप के ( उग्रस्य ) उत्तम ( श्वंसः ) बल के सम्बन्ध में ( सखिरे ) सम्मिल करने वाले हैं और ( द्वेषः ) द्वेष करनेवाले ( अप ) दूर जाते हैं ( अन्धव्रतस्य ) धर्म से विरुद्ध आचरण वाले के सम्बन्ध में ( हुरोः ) कुटिल आचरण वाले ( अप ) बलगत जाते हैं वे दुःख की ( न ) नहीं ( ईरयन्ति ) प्रेरणा करते हैं ॥ २ ॥

आचार्य—वे ही वृद्ध हैं जो सत्य बोलते और सब का उपकार करते अपने सदा सुख देते और सभी धर्म से विरुद्ध आचरण नहीं करते हैं ॥ २ ॥

होतारं स्वा वृषीमहेऽग्ने दक्षय्यं सार्धनम् ।

यज्ञेषु पुर्व्यं मित्रा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् जैसे ( प्रयस्वन्तः ) प्रयत्न करते हुए लोग ( मित्रा ) वाणी से ( यज्ञेषु ) यज्ञों में ( वृषीमहे ) बल के ( पुर्व्यम् ) प्राचीन यथार्थवक्ता पुरुषों से किये गये ( साधनम् ) साधन को ( हवामहे ) देने और ( होतारम् ) दाता अग्नि का ( वृषीमहे ) स्वीकार करते हैं वैसे ( स्वा ) आपका स्वीकार करे ॥ ३ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे मनुष्य परोपकारी का प्रति में बहुत आदर करते हैं वैसे ही विद्वान् जनो में सब उत्तम कर्म किये जाते हैं ॥ ३ ॥

फिर विद्वत्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इत्या यथा त उतये सहसावन्दिर्देवे ।

राय ऋताय सुकतो गोभिः व्याम सधमादो वीरः स्वाम सधमादः ॥

४॥१२॥

पदार्थ—हे ( सहसावन् ) बल म तुल्य ( सुकतो ) उत्तम बुद्धि में युक्त ( यथा ) जैसे ( ते ) आपके ( उतये ) रक्षण आदि के लिये ( विवेचने ) प्रतिदिन ( इत्या ) धर्मयुक्त व्यवहार से प्राप्त ( राये ) धन के लिये हम लोग ( गोभिः ) वाणियों से ( सधमादः ) साथ स्थानवाले ( व्याम ) होवें तथा ( वीरः ) शूरवीरों के साथ ( सधमादः ) साथ स्थानवाले ( व्याम ) होवें ( इत्या ) इस कारण से आप हूजिये ॥ ४ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो साहस से पुरुषार्थ करते हुए वीर जनो की सेना को ग्रहण करके ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं वे ही सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह बीसवाँ सूक्त और व्याख्या वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ चतुष्टयस्य काविकावशतितमस्य सूक्तस्य सप्तमाध्यायः । अग्निर्वेदता । १ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः ।

स्वरः । २ धुरिगुणिकः । ३ स्वरानुष्टुप् ।

छन्दः । अथमः स्वरः । ४ निबृधनुष्टुप् ।

छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले इक्कीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से अग्नि विषय को कहते हैं—

मनुष्यश्वा नि धीमहि मनुष्वत्सामधीमहि ।

अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१॥

पदार्थ—हे ( अङ्गिर ) प्राणों के सदा प्रिय ( अग्ने ) विद्वन् जैसे हम लोग कार्य की सिद्धि के लिये अग्नि को ( मनुष्वत् ) मनुष्य की जैसे वैसे ( नि, धीमहि ) निरन्तर धारणवाले होवें और ( देवयते ) श्रेष्ठ गुणों की कामना करते हुए के लिए ( देवान् ) श्रेष्ठ विद्यायुक्त विद्वानों को ( मनुष्वत् ) मनुष्यों के समान ( सव, इधीमहि ) प्रकाशित करें वैसे ( स्वा ) आपको उत्तम कर्म में स्थिति करें और आप ( मनुष्वत् ) मनुष्य के तुल्य ( यज ) भित्तिये अर्थात् कार्यों को प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य विचारशील होकर श्रेष्ठ गुणों की कामना करते हैं वे अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को जानें ॥ १ ॥

त्वं हि मातुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।

सुर्वस्वा यन्त्यानुषक्सुजात सपिरासुते ॥२॥

पदार्थ—हे ( सुजात ) उत्तम प्रकार उत्पन्न ( अग्ने ) अग्नि के सदा प्रताप से वर्त्तमान जैसे अग्नि ( सपिरासुते ) घृत से सब घोर से प्रकाशित हुए से प्रकाशित किया जाता है वैसे ( हि ) ही ( त्वम् ) आप ( मातुषे, जने ) प्रसिद्ध मनुष्य में ( सुप्रीतः ) उत्तम प्रकार प्रसन्न हुए ( इध्यसे ) प्रकाशित होते हो और जैसे ( स्वा ) आप को ( सुष ) यज्ञ के साधन पात्र ( आनुषक् ) अनुकूलता से ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं वैसे ही आप सब के प्रति अनुकूल हूजिये ॥ २ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे अग्नि इन्धन घ्राण घृत आदिको का प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही विद्या और उत्तम गुणों को प्राप्त होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

अब शिल्पविद्याविज्ञान विद्वान् के विषय को कहते हैं—

त्वां विश्वं सजोषतो देवामां दूतमकत ।

सपय्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीजते ॥३॥

पदार्थ—हे ( कवे ) विद्वन् ! जेमे ( विद्वे ) सम्पूर्ण ( सजोषस ) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले ( देवास. ) विद्वान् जन ( देवम् ) श्रेष्ठ गुणवाले ( इतम् ) पूत के सदृश वर्तमान अग्नि का ( अक्ष ) करने है और ( सपय्यन्त ) सेवा करने हुए जन ( यज्ञेषु ) सत्सङ्गी मे श्रेष्ठ गुणवान् विद्वान् की ( ईच्छते ) स्मृति करते हैं वैसे ( त्वाम् ) आपकी हम लोग सेवा करे और ( त्वा ) आपका सत्कार करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जन अग्नि से दूतकर्म अर्थात् नोकर के सदृश काम कराते हैं वे सब स्थानो मे प्रशमिन ऐश्वर्य्य वाले होते हैं ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं—

**देवं वाँ देवयज्यपाग्निमीळीत मर्यैः ।**

**समिद्धः शुक्र दीदिद्यतस्य योनिमासदः मसस्य योनिमासदः ॥४॥१३**

पदार्थ—हे विद्वानो ( व ) आप लोगो के ( देवयज्यया ) विद्वानो के मेल मे ( मर्यै ) मनुष्य ( देवम् ) प्रकाशित ( अग्निम् ) अग्नि की ( ईळीत ) प्रशंसा करे । हे ( शुक्र ) सामर्थ्यवाले ( समिद्ध ) उत्तम गुणो से प्रकाशित आप ( दीदिह्यि ) प्रकाश कराओ और ( द्यतस्य ) सत्य परमाणु आदि के ( योनिम् ) कारण को ( आ, असद ) सब प्रकार जानिये और ( मसस्य ) कार्य के ( योनिम् ) कारण को ( आ, असद ) सब प्रकार जानिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानो के मङ्गल से कार्य और कारणस्वरूप सृष्टि अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुण का साम्यावस्थारूप प्रधान को जान के कार्य को सिद्ध करते हैं वे सृष्टि के क्रम को जान के दुःख को कभी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानो के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलित जाननी चाहिये ॥

यह इसकीसर्वा सूक्त और त्रयोदशवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ अनुक्तस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य विवक्षासामात्रेय ऋषिः । अग्निर्ब्रह्मा । १ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः । २, ३ स्वराडुष्टुप् छन्दः । ऋचभ स्वरः । ४ बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले तैत्तिरीय सूक्त का आरम्भ है इसमे अग्निविषय को कहते हैं—

**प्र विश्वसामश्रिवदर्वो पावकशोचिवे ।**

**यो अंधरेष्वीड्यो होता मन्दतमा विशि ॥१॥**

पदार्थ—१ ( विश्वसामन् ) सम्पूर्ण मामोना । ( य ) जो ( अंधरेषु ) यज्ञो मे ( ईड्य ) पणमा करने योग्य ( होता ) जाना ( विशि ) प्रजा मे ( मन्द-तमा ) अनिष्टाय आनन्द युक्त १५वे उम ( पावकशोचिवे ) अग्नि के पलाश के सदृश प्रकाशवान् पुरुष के लिए ( अश्रिवत ) व्यापक विद्यावान् के सदृश ( प्र, अर्चा ) सत्कार कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का चाहिए कि प्रभिर जनों का ही मन्कार कर अन्य जनों का नहीं ॥ १ ॥

**न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।**

**प्र यज्ञ एत्वानुषगया देवव्यचस्तमः ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वाना जा ( देवव्यचस्तम ) पृथिव्यादिको का धारण करने और प्रति तोड़नेवाला ( यज्ञ ) मिलने योग्य ( आनुषक् ) अनुकूलता से ( अद्या ) आज हम लोगो को ( एषु ) प्राप्त हो उम ( ऋत्विजम् ) ऋतुआ मे यज्ञ करनेवाले के सदृश ( जातवेदसम् ) उत्पन्न हुआ मे विद्यमान ( देवम् ) श्रेष्ठ गुण, कर्म और स्वभाववान् ( अग्निम् ) अग्नि का ( प्र, नि, दधाता ) उत्तमता से निरन्तर धारण करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ करनेवाले यज्ञ को पूर्ण करते हैं वैसे ही अग्नि शिल्पविद्या के कृत्य की सिद्धि को पूर्ण करता है ॥२॥

**चिकित्स्विन्मनसन्त्वा देवं मर्तास उत्तये ।**

**वैरेष्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ( वैरेष्यस्य ) स्वीकार करने और ( अवस ) कामना करने योग्य ( ते ) आप के मङ्गल से ( इयानास ) प्राप्त होते हुए ( मर्तास ) मनुष्य हम लोग ( अतये ) रक्षा आदि के लिए ( चिकित्स्विन्मनसम् ) विज्ञानयुक्त पुरुषो के मन के सदृश मन मे युक्त ( देवम् ) विद्वान् ( त्वा ) आप को अग्नि के सदृश ( अमन्महि ) विशेष करके जानें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का चाहिए कि मदा ही विद्वानो के संग से पदार्थविद्या का खोज करें ॥ ३ ॥

**अग्ने चिकित्स्वस्य न ददं वचः सहस्य ।**

**त त्वा सुशिम दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गोभिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४॥१४**

पदार्थ—हे ( सहस्य ) बल मे श्रेष्ठ ( सुशिम ) सुन्दर ठुड्डी और नामिका वाले ( दम्पते ) स्त्री और पुरुष ( अग्ने ) विद्वन् आप जैसे ( अत्रयः ) तीन प्रकार के दुःखो से रहित जन ( स्तोमैः ) प्रशंसित व्यवहारो से ( वर्धन्ति ) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और जैसे ( अत्रयः ) काम, क्रोध, और लोभ इन तीन दोषो से रहित जन ( गोभिः ) वाणियो से ( शुम्भन्ति ) पवित्र करते हैं वैसे ( नः ) हम लोगो के ( इवम् ) इस ( वच ) वचन को और ( अस्य ) इस के वचन को ( चिकित्स्वि ) जानिये ( तम् ) उन ( त्वा ) आपका हम लोग सत्कार करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे पुरुषार्थी मनुष्य सब की वृद्धि करते हैं और उपदेशक जन सब जनों को पवित्र करते हैं वैसे ही सब मनुष्य आचरण करें ॥ ४ ॥

इस सूक्त मे अग्नि के गुण वर्णन करने इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गलित जाननी चाहिए ॥

यह बाईसवाँ सूक्त और चौदहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ अनुक्तस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य छन्दो विवक्षार्थः । अग्निर्ब्रह्मा । १, २ निचुत्पद्विस्तृप् छन्दः । ३ विराडनुष्टुप् छन्दः । धंवात स्वरः । ४ निचुत्पद्विस्तृप् छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले तैत्तिरीय सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मंत्र से अग्निपदवाच्य और के गुणों का उपदेश करते हैं—

**अग्ने सहन्तमा भर धुम्नस्य प्रासहा गयिम् ।**

**विस्वा यश्र्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत ॥१॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) वीरपुरुष ( य. ) जो ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( प्रासहा ) अत्यन्त शत्रुघ्नो के बलों को मर्दनेवाली ( यश्र्षणी ) पराक्रम मे प्रकाशमान मनुष्यो की सेनाओं को ( वाजेषु ) सशस्त्रो मे ( सासहत ) अत्यन्त सहे और ( आसा ) मुख से ( अभि ) सब प्रकार से उपदेश देवे उम शत्रुओं के बल का ( सहन्तम् ) सहते हुए ( धुम्नस्य ) धन वा यश के मगन्ध मे ( गयिम् ) धन का आप ( आ, भर ) सब प्रकार धारण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जिस की विजय की इच्छा होवे वह शूरवीरो की सेना उत्तम प्रकार शिक्षा की गई रखे और वीररम के उपदेश मे उत्साह दियाकर शत्रुओं के साथ लडावे ॥१॥

**तरग्ने पृतनापहं गयि महस्व आ भर ।**

**न्य हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः । २॥**

पदार्थ—१ ( सहस्व ) बहुत बल मे श्रुन्त ( अग्ने ) राजन् जा ( हि ) निश्चय से ( सत्य ) आटा मे श्रेष्ठ ( अद्भुत ) आश्चर्य्ययुक्त गुण, कर्म और स्वभाववाला जन ( गोमत ) बहुत धन और पृथिव्यादिका स युक्त ( वाजस्य ) सुध और धन आदि का ( दाता ) देनेवाला हावे ( तम् ) उस ( पृतनावहम् ) सेना सहनवाले को और ( गयिम् ) धन का ( त्वम् ) आप ( आ, भर ) सब और मे धारण कीजिए ॥२॥

भाषार्थ—जा राजा मत्यवादी विद्वाना और विचित्रविद्यायुक्त वृद्ध और उदार अर्थात् उत्तम आशययुक्त शूरवीरो का धारण पापण कर यही विजय और लक्ष्मी को प्राप्त हावे ॥ २ ॥

फिर वीरगुणों को अगले मन्त्रो मे कहते हैं—

**विश्वे हि त्वां सजोषसो जनांसो वृक्तवर्हिषः ।**

**होतारं सघंसु मियं व्यन्ति वाय्वो पुर ॥३॥**

पदार्थ—हे राजन् जो ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( सजोषस ) तुल्य प्रीति के सेवने वाले ( जनांस ) प्रसिद्ध उत्तम आचरणो से युक्त ( वृक्तवर्हिषः ) अग्निहोत्र करने वाले और यज्ञ करनेवाले के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं मे कुशल जन ( हि ) ही ( सघंसु ) राजगृहो अर्थात् राजदरवाजो मे ( होतारम् ) दाता और ( मियं ) सुन्दर ( त्वा ) आप का आश्रय करते हैं वे ( पुर ) बहुत ( वाय्वो ) स्वीकार करने योग्य जन आदिको को ( व्यन्ति ) प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो राज्य की उन्नति मे प्रीति करनेवाले और धर्मिष्ठ भूत्य आप को प्राप्त होवें उन सबका सत्कार करके निरन्तर रक्षा करो ॥ ३ ॥

**स हि त्वां विश्वचर्षणिरभिमाति सहां दधे ।**

**अग्नं एषु सयेष्वा रेवमः शुक्र दीदिहि धुमत्पावक दीदिहि । ४॥१५**

पदार्थ—हे ( शुक्र ) सामर्थ्ययुक्त ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान जो ( विश्वचर्षणि ) सम्पूर्ण विद्याओं का प्रकाश ( एषु ) इन ( अयेषु ) निवासस्थानों

में ( अभिजाति ) अभिमान जिमसे हो उस ( सह ) बल को ( हवे ) धारण करता ( सः, हि ) वही ( स्वा ) निश्चय से जीतनेवाला होता है हमसे आप ( न ) हम लोगों के लिए ( रेवत् ) प्रशस्त धन से युक्त पदार्थ को ( वीरिहि ) दीजिए और ह ( पावक ) पवित्र, पवित्राचरण से हम लोगों के लिए ( धुमत् ) प्रकाशयुक्त का ( आ, वीरिहि ) प्रकाश कीजिय ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को धारण करने के सब के लिये सुख ले सकते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में अग्नि के वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमने पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिय ॥

यह तेईसवाँ सूक्त और पन्द्रहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

अथ वसुधैव कुटुम्बकम् वसुधैव कुटुम्बकम् वसुधैव कुटुम्बकम् वसुधैव कुटुम्बकम् गोपायना लोपायना वा ऋचयः । अग्निर्वेवता । १, २ पूर्वार्द्धस्य

साम्नी बृहस्पतरादस्य भुरिष्वहृती । ३ । ४ पूर्वार्द्धस्यो-

तरादस्य भुरिष्वहृती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ चार ऋचावाले ओबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्निपदवाच्य राजविषय को कहते हैं—

अग्ने त्वं नो अन्तम उत आता शिवो भवा वरूध्यः ।

वसुरग्निर्धुश्रवा अच्छा नसि धुमचमं रयि दाः ॥१॥२॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) राजन् ( त्वम् ) आप ( न ) हम लोगों के हम लोगों को वा हम लोगों के लिये ( अन्तमः ) समीप में वत्तमान ( शिव ) मङ्गलकारी ( वरूध्य ) उत्तम गृहो में उत्पन्न ( वसु ) बसाने वाले ( धुश्रवा ) धन और धान्य से युक्त ( अग्नि ) अग्नि के सदृश मङ्गलकारी ( उत ) और ( आता ) रक्षक ( भवा ) हजिये और जिस ( धुमचमम् ) अत्यन्त प्रकाशयुक्त ( रयिम् ) धन को आप ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( नसि ) व्याप्त हजिये और उसको हम लोगों के लिये ( दाः ) दीजिये ॥ १ ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे परमात्मा सब में अभिव्याप्त सबका रक्षक और सबके लिये मङ्गलदाता, सब पदार्थों का दाता और सुविकारी है वैसे ही राजा को होना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अब अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स नो बाधि भुधी हवमुख्या णो अघायतः संमस्मात् ।

त त्वा शोचिष्ठ दीविषः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३॥४॥१६॥

पदार्थ—हे ( शोचिष्ठ ) अत्यन्त शुद्ध करने और ( दीविष ) सत्य के जनाने वाले अग्नि के सदृश तेजस्विजन ( स ) वह आप ( नः ) हम लोगों को ( बाधि ) बाध दीजिए और ( नः ) हम लोगों के ( हवम् ) पढ़े हुए विषय को ( भुधी ) सुनिये ( समस्मात् ) सब ( अघायत ) आत्मा से पाप के आचरण करते हुए स हम लोगों की ( उच्यता ) रक्षा कीजिये ( तम् ) उन ( त्वा ) आप को ( सखिभ्यः ) मित्रों से ( सुम्नाय ) सुख के लिए हम लोग ( नूनम् ) निश्चित ( ईमहे ) याचना करते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सब प्रजा और राजजनों को चाहिए कि राजा के प्रति यह कहें कि आप सब अपराधों से स्वयं पृथक् होके और हम लोगों की रक्षा करके बिना का प्रचार और धार्मिक मित्रों के लिए सुख की वृद्धि करके दुष्टों को निरन्तर दण्ड दीजिए ॥ ३ ॥ ४ ॥

इस सूक्त में अग्निपदवाच्य ईश्वर अर्थात् राजा और विद्वान् के गुण वर्णन करत से इस सूक्त के अर्थ की हमने पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिय ॥

यह बीसवाँ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

५६

अथ नवर्षस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य असूयव आर्चया

ऋचयः । अग्निर्वेवता । १ । ८ निबुधनुष्टुप् । २ । ५

। ६ । २ अनुष्टुप् । ६ । ७ विराडनुष्टुप् छन्दः ।

वेवतः स्वरः । ४ भुरिगुण्णिक छन्दः ।

ऋचमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले पञ्चवीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं—

अच्छो नो अग्निमर्षसे देवं गांसि स नो वसुः ।

रासत्पुत्र ऋषुणासुतावां पर्वति द्विषः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जिस ( देवम् ) प्रकाशमान ( अग्निम् ) अग्नि की ( व ) आप लोगों के ( अर्षसे ) रक्षण आदि के लिए ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( गांसि ) प्रशंसा करते हो ( सः ) वह ( वसुः ) द्रव्यदाता ( ऋषुणासु ) वेद-मन्त्रार्थ जाननेवालों के ( ऋतावा ) सत्य का विभाग करनेवाला ( पुत्र ) सन्तान-रूप ( द्विषः ) शत्रुघो के ( पर्वति ) पार जाता है अर्थात् उनको जीतता है वैसे ही ( नः ) हम लोगों के लिए ( रासत् ) देता है अर्थात् विजय दिलाता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जैसे विद्वानों का श्रेष्ठ पुत्र विद्वान् होकर तथा लोभ आदि दोषों का त्याग करके पितृ आदिकों को सुख देता है वैसे ही अग्नि उत्तम प्रकार सिद्धि किया गया सबको सुख देता है ॥ १ ॥

अब अग्निवृष्ट्यात् से राजविषय को कहते हैं—

स हि सत्यो यं पूर्वं चिद्देवासश्चिद्यमीधरे ।

होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विमावसुम् ॥२॥

पदार्थ—( पूर्वं ) प्राचीन ( देवास ) विद्वान् जन ( यम् ) जिस ( होतारम् ) देने वाले ( मन्द्रजिह्वम् ) प्रशमनीय जिह्वा से युक्त ( सुदीतिभिः ) उत्तम प्रकारों के सहित वर्त्तमान को ( चित ) और ( विभावसुम् ) प्रकाशित धन में युक्त अग्नि के सदृश वर्त्तमान ( यम् ) जिस राजा का ( चित् ) निश्चय से ( इत् ) ही ( ईधरे ) प्रकाशित करने है ( सः, हि ) वही ( सत्य ) सज्जनों में श्रेष्ठ पुरुष राज्य करने को योग्य है ॥ २ ॥

भाषार्थ—जिस राजा का यथार्थवक्ता जम मत्कार कर वही निरन्तर राज्य की रक्षा और वृद्धि करने को योग्य है ॥ २ ॥

अब अग्निसावृष्य से विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।

अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृत्रिभिर्वरेण्य ॥३॥

पदार्थ—हे ( वरेण्य ) स्वीकार करने योग्य ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ( स ) वह आप ( धीती ) धारणावाली ( वरिष्ठया ) अत्यन्त स्वीकार करने योग्य ( श्रेष्ठया ) अग्नि उत्तम ( सुमत्या ) सुन्दर बुद्धि में ( नः ) हम लोगों के लिए ( रायः ) धनो को ( वीरिहि ) दीजिये ( सुवृत्रिभिः ) उत्तम वर्जनवाली क्रियाओं से ( च ) भी ( नः ) हम लोगों की निरन्तर वृद्धि कीजिय ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो उत्तम बुद्धि की इच्छा करते वा उत्तम बुद्धि को अन्य जनों के लिए देते हैं वे ही सब लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मत्तेषांविशान ।

अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निर्धीमिः संपर्यत ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अग्नि ) अग्नि के सदृश वर्त्तमान तेजस्वी विद्वान् ( देवेषु ) विद्वानों वा पृथिवी आदिकों में और जो ( अग्नि ) बिजुलीरूप अग्नि ( सत्तम् ) मरणधर्म वाले मनुष्य आदिकों में और जो ( हव्यवाहनः ) हवन करने योग्य पदार्थों को धारण करनेवाला ( अग्नि ) सूर्यादिरूप अग्नि ( नः ) हम लोगों में ( आविशान् ) प्रविष्ट हुआ ( राजति ) प्रकाशित होता है उस ( अग्निम् ) अग्नि को ( धीमिः ) बुद्धियों में आप लोग ( संपर्यत ) सेवा अर्थात् कार्य में लाओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जो अनेक प्रकार का अग्नि आप लोगों से जाना जाय अर्थात् अनेक प्रकार के अग्नि का आप लोगों को परिज्ञान हो तो क्या-क्या सुख न पाया जाय ॥ ४ ॥

अग्निस्तुविश्वस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।

अतृते श्रावयर्त्पति पुत्र दंदाति दाशुषे ॥५॥१७॥

पदार्थ—जो ( अग्नि ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् ( ब्राह्मणे ) दान-शील जन के लिए ( तुविश्वस्तमम् ) अत्यन्त बहुत अन्न और भक्षण से युक्त और ( तुविब्रह्माणम् ) चार वेद के जाननेवाले बहुत विद्वानों के युक्त ( उत्तमम् ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( अतृते ) नहीं हिसित और ( श्रावयर्त्पतिम् ) सुनाते हुए पालन करनेवाले से युक्त ( पुत्रम् ) सन्तान को ( दंदाति ) दत्ता है वही अत्यन्त आदर करने योग्य होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! उन लोगों का ही आप लोग मत्कार करो जो सबको विद्वान् और धार्मिक करते हैं ॥ ५ ॥

अग्निर्देदाति सत्पति सासाह यो युधा नृभिः ।

अग्निरस्यं रघुप्यदं जेतां गमंराजितम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! वह ( अग्निः ) परमेश्वर वा विद्वान् ( सत्पतिम् ) श्रेष्ठों के पालन करनेवाले को ( दंदाति ) देता है ( यः ) जो ( अग्निः ) अग्नि ( युधा ) युद्ध करती हुई सेना और ( नृभिः ) नायक अर्थात् धराणी मनुष्यों से ( रघुप्यदम् ) लघुगमनवान् ( जेताम् ) जीतने और ( गमंराजितम् ) नहीं हारनेवाले राजा की ( अत्यन्त ) मार्ग को व्याप्त होने छोड़े को जैसे वैसे ( सासाह ) सहता है ॥ ६ ॥



भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर धर्मिष्ठ जनो के लिए धर्मात्मा राजा को देता है और जैसे उत्तम सेना विद्वान् शूरवीर और धर्मात्मा सेनाध्यक्ष को प्राप्त होकर शत्रुओं को जीतती है वैसे ही वह सब लोगों को आदर करने योग्य है ॥ ६ ॥

अब अग्निपदवाच्य राजदण्डात् से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहद्वर्चं विभावसो ।

महिषीव त्वद्रपिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७॥

पदार्थ—हे ( विभावसो ) स्वयं प्रकाशित ( यत् ) जिस ( वाहिष्ठम् ) अतिशय प्राप्त करनेवाले का ( अग्नये ) राजा के लिए ( बृहत् ) बड़ा ( अर्चं ) सत्कार करो ( तत् ) उम की ( महिषीव ) बड़ी अर्थात् पटरानी के सदा सेवा करो और जो ( त्वत् ) आप से ( रपि ) धन और ( त्वत् ) आप से ( वाजा ) अन्न आदि ( उद्, ईरते ) उत्तमता से उत्पन्न होते हैं उन को हम लोग प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पतिव्रता नारी अपने पति का निरन्तर सत्कार करती और उससे उत्पन्न हुए अत्यन्त सुख को प्राप्त होती है वैसे ही मनुष्य विद्वानो का आदर करके उनसे उत्पन्न हुई अर्थात् उनके सम्बन्ध से प्रकट हुई बुद्धि को प्राप्त होकर निरन्तर सुखी हो ॥ ७ ॥

अब मेघदण्डात् से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तवं यमन्तो अर्च्यो ग्रावेद्योऽप्यते बृहत् ।

उतो तै तन्पुत्र्यैथा स्वानो अर्त्तं रमनां दिवः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( तव ) आप के ( यमन्त ) बहुत प्रकाशवाली ( अर्च्यः ) किरणें हैं उन से जा ( ग्रावेद्य ) मेघ के सदृश ( बृहत् ) बहुत सत्य ( अप्यते ) कहा जाता ( उतो ) और ( तै ) आप का ( यथा ) जैसे ( तन्पुत्र्यै ) बिजुली वैसे ( स्वान ) शब्द वर्तमान है इस कारण ( स्वाना ) आत्मा में ( दिवः ) प्रकाशयुक्त पदार्थों का तुम सब लोग ( अर्त्तं ) प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मघ के सदृश गम्भीर शब्द से गूढ़ अर्थों के उपदेश देने और बिजुली के सदृश पुरुषार्थ करने हैं वे सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होत हैं ॥ ८ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एषां अग्निं वसुयवः सहसानं ववन्दिम ।

स नो विरवा अति द्विषः पर्वभावेव सुकृतुः ॥९॥१८॥

पदार्थ—ह विद्वन् ( वसुयव ) अपने धन की इच्छा करते हुए हम लोग ( अग्निम् ) बिजुली के सदृश नजम्बी विद्वान् और ( सहसानम् ) सब को सहने वाले आप की ( ववन्दिम ) प्रशंसा करें ( स, एषा ) वही ( सुकृतुः ) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्मों में युक्त आप ( नावेव ) जैसे नौका में समुद्र के वैसे ( न ) हम लोगों की ( विरवा ) सम्पूर्ण ( द्विषः ) द्वेषयुक्त क्रियाओं के ( अति, पर्वत् ) पार करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसा बड़ी नौका में समुद्र आदि के पार सुखपूर्वक जान है वैसे ही विद्वाना के सग से सब दोषों में साधारणण में दूर को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानो के गुणों का बखान होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पञ्चीमवा सूक्त और अठारहवां वग समाप्त हुआ ॥



अथ नवमं चर्चय विद्वद्विषयः सूक्तस्य वसुयव आश्रया ऋचयः ।

अग्निर्वेत्ता । १, ६ गायत्री । २, ३, ४, ५, ६, ८

निचूङ्गायत्री । ७ विराङ्गायत्री छन्दः ।

वज्र स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले छन्दोसब सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम

मन्त्र में अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रयां देव जिह्या ।

आ देवान वसि यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—हे ( पावक ) पवित्र और शुद्ध करने तथा ( देव ) विद्या के देने वाले ( अग्ने ) विद्वन् जिससे आप ( रोचिषा ) प्रति प्रीति से युक्त ( मन्द्रया ) विज्ञान और धान्य देनेवाली ( जिह्या ) वाणी से हम समार में ( देवान् ) विद्वानो और श्रेष्ठ गुणों वा पदार्थों को ( आ, वसि ) सब ओर से प्राप्त होते वा प्राप्त कराते हो तथा ( यक्षि ) सत्कार करते और मिलने ( च ) भी हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो प्रीति से सत्य उपदेशों को कर और विद्वान् तथा श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होकर अन्यो को प्राप्त कराते हैं वे ही आदर करने योग्य होते हैं ॥ १ ॥

अब अग्निगुणों को कहते हैं—

तं त्वां घृतस्नवीमहे चित्रमानो स्वर्धाम् । देवां आ वीतये वह ॥२॥

पदार्थ—हे ( घृतस्नो ) घृत को शुद्ध करनेवाले ( चित्रमानो ) शद्भुतप्रकाश युक्त विद्वान् जैसे घृत को स्वच्छ करनेवाला और शद्भुतप्रकाश से युक्त अग्नि ( वीतये ) प्राप्ति के लिए ( स्वर्धाम् ) जा सूर्य से देखे गये उन ( त्वा ) आपको धारण करता है ( तव् ) उसको हम लोग ( ईमहे ) याचने हैं वैसे आप ( देवान् ) दिव्य गुण वा विद्वानो का ( आ, वह ) सब ओर से प्राप्त कीजिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो बहुत उत्तम गुणयुक्त अग्नि को मनुष्य विशेष कर के जानें तो बहुत सुख को प्राप्त हो ॥ २ ॥

फिर अग्नि के साव्य से विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

वीतिहोत्रं त्वा कवे यमन्तं समिधोमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३॥

पदार्थ—हे ( कवे ) विद्वन् ( अग्ने ) अग्नि के सवृष वर्तमान ! हम लोग ( अध्वरे ) ग्रहिरूप यज्ञ में ( वीतिहोत्रम् ) व्याप्ति का ग्रहण जिससे उस ( यमन्तम् ) प्रकाशवाले अग्नि के सवृष जिन ( बृहन्तम् ) महान् ( त्वा ) आप जो ( सव्, इधीमहि ) उत्तम प्रकार प्रकाशित करें वह आप हम लोगों को शुद्ध विद्या से प्रकाशित करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि शिल्पविद्या की निधि के लिए अग्नि का सम्प्रयोग करें ॥ ३ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्ने विश्वेमिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतार त्वा वृणीमहे ॥४॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! जिन ( होतारम् ) देनेवाले ( त्वा ) आप का हम लोग ( वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं वह आप ( हव्यदातये ) देने योग्य दान के लिए ( विश्वेमिः ) सम्पूर्ण ( देवेभिः ) विद्वानों के साथ ( आ, गहि ) प्राप्त कीजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों का सत्कार कर उन्हें बुलावें और विद्वान् जन भी विद्वानों के साथ प्राप्त होकर निरन्तर सत्य का उपदेश करें ॥ ४ ॥

यजमानाय सुन्वत आग्ने सुशीर्यं वह । देवैरा सत्सि बहिषि ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् आप ( देवे ) विद्वानों के साथ ( बहिषि ) प्रति उत्तम ( सत्सि ) सभा में ( सुन्वते ) यज्ञ करते हुए ( यजमानाय ) दाता जन के लिए ( सुशीर्यम् ) उत्तम पराक्रम का ( आ, वह ) प्राप्त कीजिये और यज्ञ को ( आ ) अच्छे प्रकार करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—ह मनुष्या ! पालन करनेवाले जन के लिए आप लोग सुख सदा ही दीजिये और सबकी सभा से सब व्यवहारों का निश्चय कीजिये ॥ ५ ॥

फिर अग्निताव्य से विद्वद्विषय को कहते हैं—

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्म्योणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश दुष्टों के जलानेवाले जैसे ( समिधानः ) निरन्तर प्रकाशित हुआ अग्नि ( देवानाम् ) विद्वानों के ( दूत ) समाचार को दूर व्यवहरता वा दूर पहुँचाता और ल आता है वैसे ( सहस्रजिद् ) धर्मव्यो के जीतने वाले ( उक्थ्यः ) प्रशंसा करने योग्य विद्वानों का निरन्तर प्रकाश करने, समाचार का दूर व्यवहरन वा दूर पहुँचाने और लाने वास होता हुए जिससे ( धर्म्योणि ) धर्ममग्नन्वी कर्मों का ( पुष्यसि ) पुष्ट करने हो इससे सरकार करने योग्य हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य विद्या से अग्नि के गुणों का ज्ञान का कार्य की निधि के लिए अग्नि का सम्प्रयोग करने हैं वह अग्नि मनुष्य का तुल्य कार्य की सिद्ध करता है ॥ ६ ॥

अब अग्निधारणविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोग ( यविष्यम् ) अतिशयित युवा जनो में प्रसिद्ध हुए ( ऋत्विजम् ) यज्ञसाधक और ( देवम् ) दिव्यधाम् के सदृश ( जातवेदसम् ) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान ( होत्रवाहम् ) हवन की हुई वस्तुओं को धारण करने वाले ( अग्निम् ) अग्नि को ( नि, दधाता ) निरन्तर धारण करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जैसे शिल्पविद्या के जाननेवाले जन अपने कार्य को सिद्ध करते हैं वैसे ही अग्नि आदि भी कार्य की सिद्ध करते हैं ॥ ७ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

य यज्ञ एत्वानुषगुद्या देवयन्चस्तमः । स्तृणीत बहिरासदे ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो ( देवयन्चस्तमः ) उत्तम पदार्थों में अतिशय करके व्याप्त ( यज्ञः ) सत्य और सगत व्यवहार ( अद्या ) आज ( आसदे ) सब प्रकार से ठहरने वा जाने के अर्थ ( बहिः ) अन्तरिक्ष को ( अनुषगु ) अनुकूलता से ( स्तृ ) प्राप्त हो उस की आप लोग ( य, स्तृणीत ) अच्छे प्रकार आच्छादित करो अर्थात् सुरक्षित रखो ॥ ८ ॥

भाषार्थ— जो मनुष्य ओष्ठो की सङ्कति कर के शिल्पविद्या की उत्पत्ति करते हैं वे सब के हितैषी होते हैं ॥ ८ ॥

एवं मस्तौ अधिना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।

देवासः सर्वेषां विशा ॥९॥२०॥

पदार्थ—( मस्तः ) मनुष्य ( मित्रः ) मित्र ( वरुणः ) सब से उत्तम ( अधिना ) अध्यापक और उपदेशक तथा ( देवासः ) विद्वान् जन ( सर्वेषां ) सम्पूर्ण ( विशा ) प्रजा से ( इवम् ) इस भासन पर ( आ, सीदन्तु ) विराजें ॥९॥

भाषार्थ— राजा और ओष्ठ जन न्यायमय पर विराज के अन्याय और पक्षपात का त्याग और न्याय कर के प्रजाओं के प्रिय हों ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्कति जाननी चाहिये ॥

यह ऋषीसत्वां सूक्त और बीसवां अंग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्याष्टविंशतितमस्य सूक्तस्य व्यकरणं बुधस्यसप्तमस्युप  
वीर्यस्य अश्वमेधस्य भारतीविर्वा ऋचः । १, ५ अग्निः ।

६ इन्द्राग्नी देवते । १, ३ निबृत्तिवद्वृत् । २ विराट्

विद्वत् छन्दः । अक्षतः स्वरः । ४ निबृत्तिवद्वृत् छन्दः ।

गाथायार स्वरः । ५, ६ पुरिगुणिक

छन्दः । ऋचमः स्वरः ॥

अथ छः ऋचा वाले सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्नितावुच्य से विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

अमस्वन्ता सत्पतिर्मांसे मे गावा चेतिष्ठो असुरो योनः ।

त्रैवृणो अग्ने दशभिः सहस्रैर्विभानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१॥

पदार्थ— हे ( अमस्वन्ता ) सब से प्रकाशमान ( अग्ने ) अग्नि के सदृश ( सत्पतिः ) ओष्ठ जनो के पालने वाले ( दशभिः ) दश ( सहस्रैः ) सहस्रों के साथ ( अमस्वन्ता ) उत्तम शकट आदि वाहनो से युक्त ( गावा ) गौ अर्थात् वाणी के साथ ( चेतिष्ठः ) अत्यन्तता से बोध देने वाले ( असुर ) प्राणो में मृत हुए ( त्रैवृण ) जो तीन में वर्धते वही ( त्र्यरुण ) तीनगुणो से युक्त हुए आप ( मे ) मेरे ( योनः ) अत्यन्त धनयुक्त पुरुषो को ( चिकेत ) जानें उनका मैं ( जामहे ) सत्कार करूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ— जो पुरुष शकट आदि वाहनो के चलाने में चतुर और अनेक सहस्रों पुरुषो के साथ मेल करते हैं वे धन धान्य और पशुओं से युक्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यो मे शता च विशति च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।

वैद्वानर सुधुतो वाध्वानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२॥

पदार्थ— हे ( वैद्वानर ) सब से प्रकाशमान ( अग्ने ) विद्वान् ( य ) जो ( सुधुतः ) उत्तम प्रकार प्रशसा किया गया ( वाध्वानः ) अत्यन्त बढ़ता अर्थात् बुद्धि को प्राप्त होता हुआ ( मे ) मेरे ( गोनाम् ) गौओ के ( शता ) सैकड़ों ( च ) और ( विशतिम् ) बीसों मध्या वाले समूह को ( च ) और ( युक्ता ) युक्त ( सुधुरा ) उत्तम धुरा जिनमें उन ( हरी ) ले चलनेवाले घोड़ों को ( च ) भी ( ददाति ) देता है उस ( त्र्यरुणाय ) तीन गुणो वाले पुरुष के लिये आप ( शर्म ) गृह वा मुख को ( यच्छ ) दीजिये ॥२॥

भाषार्थ— हे मनुष्यो ! जो गौ घोड़ा और हास्त आदि पशुओं का पालन करनेवाले हों उनके लिए यथायोग्य मांसक दीजिये ॥२॥

एवा ते अग्ने सुमति चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।

यो मे गिरस्तुविज्ञातस्य पूर्व्युक्ते नामि त्र्यरुणो गृणाति ॥३॥

पदार्थ— हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन् ! ( यः ) जो ( ते ) आपकी ( सुमतिम् ) सुन्दर बुद्धि को और ( तुविज्ञातस्य ) बहुतो से प्रकट हुए ( मे ) मेरी ( गिरः ) वाणियों की ( चकानः ) कामना करता तथा ( नविष्ठाय ) अतिशय नवीन जन के लिये ( त्रसदस्युः ) नव के पूर्ण करनेवाले की कामना करता हुआ ( त्रसदस्युः ) त्रसदस्यु अर्थात् जिससे चोर डरते ऐसा ( युक्तेषु ) किया योगा-न्यास जिससे ऐसे मन से ( त्र्यरुणः ) तीन मन शरीर और धात्मा के सुखो को प्राप्त होता हुआ जन ( पूर्व्यः ) अनादि काल से सिद्ध वाणियों को ( अग्नि, सुमति ) सब ओर से कहता है ( एवा ) उसीका आप और हम निरन्तर सत्कार करें ॥३॥

भाषार्थ— हे विद्वन् ! आप और मैं जो हमारे समीप से गुणो के ग्रहण करने की इच्छा करता है उसकी हम दोनों विद्याग्रहण करावें ॥३॥

अथ उपदेशविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यो म इति प्रबोध्यन्ममेवाय सूर्ये ।

ददद्वा सनि यते ददन्मेवामृतापते ॥४॥

पदार्थ—( यः ) जो ( अश्वमेधाय ) शीघ्र पवित्र ( सूर्ये ) विद्वान् ( मे ) मेरे लिये ( ऋचा ) ऋग्वेदादि से ( सनिम् ) सेवन करने योग्य तथा सत्य और असत्य की विभाग करनेवाली वाणी को ( ददद् ) देवे और ( ऋतापते ) सत्य की कामना करते हुए ( यते ) यत्न करनेवाले मेरे लिए ( मेवाम् ) बुद्धि को ( ददद् ) देवें उसका सत्कार आप करो ( इति ) इस प्रकार से मेरे प्रति जो ( प्रबोध्यति ) उपदेश देता है उसका उपकार मैं मानता हूँ ॥४॥

भाषार्थ— उपदेशक जन जब अन्य जनो के प्रति उपदेश देवें तब इस प्रकार वेद और शास्त्रो में कहे धीर यथार्थवक्ताओं से आचरण किये गये इस विषय का हम आप लोगो के लिये उपदेश देवें इस प्रकार प्रत्युपदेश कहें ॥४॥

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युधराः ।

अश्वमेधस्य दानाः सोमाश्च व्याशिरः ॥५॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस ( अश्वमेधस्य ) चक्रवर्तिराज्यपालन की विद्या की ( शतम् ) असङ्ख्य ( परुषाः ) कठोर ( उधराः ) मधुर उपदेशो से सीखती और ( सोमाश्च ) सोमसत्तादिको के सदृश ( व्याशिरः ) देती हुई ( व्याशिरः ) जीव अग्नि और पशुओं से भोगी गई ( मा ) मुख को ( उद्धर्षयन्ति ) उत्साहित करती हैं वे वाणियां मुख से सहने योग्य हैं ॥५॥

भाषार्थ— जो विद्या की इच्छा करें वे सबकी मर्म्म भेदनेवाली वाणियों को सहे और चन्द्रमा के सदृश भान्त होके विद्या और विनय को ग्रहण करें ॥५॥

अथ उपदेशविषय में राज्योपदेशविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

इन्द्राग्नी शतदाह्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।

क्षत्रं धारयतं बृहद्विषि सूर्यमिवाजरम् ॥६॥२१॥

पदार्थ— हे ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के सदृश अध्यापक और उप-देशक जनो ( शतदाह्य ) असङ्ख्य पदार्थों को देनेवाले ( अश्वमेधे ) राज्यपालन व्यवहार और ( विषि ) प्रकाशयुक्त अन्तरिक्ष में ( सूर्यमिव ) सूर्य के सदृश ( सुवीर्यम् ) उत्तम पराक्रम तथा बलयुक्त और ( अजरम् ) नाश से रहित ( बृहत् ) बड़े ( क्षत्रम् ) क्षत्रियों के कुल वा राज्यदेश को ( धारयतम् ) धारण करो अर्थात् यथायाव्य उपदेश दीजिये ॥६॥

भाषार्थ— हे राजा आदि जनो ! प्रयत्न से आप लोग यथार्थवक्ता बहुत अध्यापक और उपदेशको को अपन और दूसरे के राज्य में प्रचार कराइये जिससे आप लोगो का राज्य नाशरहित होवे ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि विद्वान् और राजा के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमने पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्कति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईसवां सूक्त और इक्कीसवां अंग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्याष्टविंशतितमस्य सूक्तस्य विषयवाराग्नी ऋचि ।

अग्निदेवता । १ त्रिवृत् । २, ४, ५, ६ विराट्

विद्वत् । ३ निबृत्तिवद्वृत् छन्दः । अक्षतः स्वरः ॥

अथ छः ऋचा वाले अट्ठाईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों को कहते हैं—

मभिंदो अग्निदिवि शोचिरश्नेप्रकुक्षमसुविया वि मांति ।

एति प्राचीं विश्ववारा नमोभिर्देवा ईक्षाना हविषां घृताची ॥ १ ॥

पदार्थ— हे मनुष्यो जो ( सविद्ध ) प्रज्वलित किया गया ( अग्निः ) अग्नि ( विषि ) प्रकाश में ( शोचिः ) बिजुलीरूप प्रकाश का ( अश्वेत् ) आश्रय करता है और ( उचिषा ) अनेक रूपवाले प्रकाश में ( उचिषत् ) प्रभातकाल के ( प्रत्यहः ) प्रति जलनेवाला ( वि, भाति ) विशेष करके शोभित होता है और ( विश्ववारा ) समार को प्रकट करनेवाली ( देवासु ) ओष्ठ गुणो को ( ईक्षाना ) प्रशंसित करती हुई ( घृताची ) रात्रि और ( प्राची ) पूर्व दिशा ( हविषा ) दान और ( नमोभिः ) अन्नादि पदार्थों के साथ ( एति ) प्राप्त होती है उस अग्नि को और उस विश्ववारा को आप लोग विशेष करके जानो ॥१॥

भाषार्थ— हे मनुष्यो ! जो यह सूर्य देख पड़ता है वह अनेक तत्वो के द्वारा ईश्वर से बनाया गया और बिजुली के आश्रित है और जिसके प्रभाव से पूर्व धादि दिशाएँ विभक्त की जाती हैं और रात्रियां होती हैं उन अग्निरूप सूर्य को जान के संपूर्ण कृत्य सिद्ध करो ॥१॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृष्वन्तं सचसे स्वस्तये ।

विरथं स चसे इविषां यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च घत् इत्पुरः । २॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् जिमसे ( समिध्यमान ) उत्तम प्रकार निरन्तर प्रकाशमान आप ( अमृतस्य ) कारण वा जल के मध्य में ( राजसि ) प्रकाशित होने हो और ( स्वस्तये ) सुख के लिये ( हवि ) खाने योग्य वस्तु को ( कृष्वन्तम् ) करते हुए का ( सचसे ) सम्बन्ध करत हो और आप ( विष्वम् ) सम्पूर्ण ( इविषाम् ) घन या यज्ञ का ( चसे ) धारण करत हो तथा ( यम् ) जिनको ( अतिथ्यम् ) अतिथि सत्कार ( इन्वसि ) व्याप्त होता है और ( इत् ) पहिले ( च ) भी आप ( नि, चसे ) निरन्तर धारण करत हो इससे ( स, इत् ) वही आप सरकार करने योग्य हो ॥२॥

भाषार्थ—हे विद्वन् जनो ! आप लोग विद्या और विनय से प्रकाशमान अतिथियों की दशा को धारण किये हुए सब स्थानों में भ्रमण करके सम्पूर्ण जनों के लिये मत्स्य का उपदेश देने हुए यज्ञ को निरन्तर पमाग्ये ॥२॥

अग्ने शर्थे महते सौमगाय तव धूमनान्युत्तमानि सन्तु ।

सं जात्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि निष्ठा महोसि ॥३॥

पदार्थ—हे ( शर्थे ) प्रणमित वन में युक्त ( अग्ने ) विद्वन् ( तव ) आप के ( महते ) बड़े ( सौमगाय ) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए ( उत्तमानि ) श्रेष्ठ ( धूमनानि ) यज्ञ वा धन ( सन्तु ) हो और तुम ( सुयमम् ) सुन्दर मत्स्य आचरणों का ग्रहण जिम में ऐसे ( जात्यम् ) स्त्री के पतिपन को ( आ, कृणुष्व ) अन्ते प्रकार करिये और ( शत्रूयताम् ) शत्रु के मृदु आचरण करत हो को ( महोसि ) बड़ी सेनाया क ( सन्, अभि, निष्ठ ) सम्मुख स्थित रहिये ॥३॥

भाषार्थ—हे धर्मिष्ठ ! हम लोग आपके लिए बड़े ऐश्वर्य की इच्छा करें और आप दोनों स्त्री और पुरुष जनान्दय धर्मात्मा बनवान् और पुरुषाधी हाकर सम्पूर्ण दुष्टों की मना का जीनिय ॥३॥

अब विद्वद्विषय में राज्य प्रकार को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।

वृषभो धूमनवो असि समध्वरेष्विष्यसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) राजन् जो तुम ( वृषभ ) बलिष्ठ वा उत्तम और ( धूमनवा ) यज्ञस्वी ( असि ) हो और ( अम्बरेषु ) राज्य के पालन आदि व्यवहारों में ( सन्, इष्यसे ) प्रकाशित किये जाते हो उन ( समिद्धस्य ) प्रकाशमान और ( प्रमहस ) प्रकृष्ट बड़े ( तव ) आपके ( श्रियम् ) धन की मैं ( वन्दे ) प्रशंसा वा मत्कार करता हूँ ॥४॥

भाषार्थ—जो राजा अग्नि आदि के गुणों से युक्त हुआ अच्छे न्याय को यथावत् करता है वह यज्ञों में अग्नि के सदृश सर्वत्र प्रकट यज्ञवाला होता है ॥४॥

किर अग्निवृष्टान्त से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समिद्धो अग आहुत देवाभ्यसि स्वध्वर ।

त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( स्वध्वर ) उत्तम प्रकार अहिमा से युक्त ( आहुत ) मत्कृत ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान जिम प्रकार से ( समिद्ध ) प्रज्वलित किया गया ( हि ) जिम कारण ( हव्यवाद् ) पृथिव्यादिकों की प्राप्ति करनेवाला अग्नि है वैसे ( त्वम् ) आप ( देवा ) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों का ( अहि ) सत्कार करते हो और पालन करनेवाले ( असि ) हो इससे श्रेष्ठ हो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमानकार है । जैसे सूर्य्य आदि रूप से अग्नि सब की रक्षा करता है वैसे ही राजा होता है ॥५॥

किर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ जुहोता दुवस्यतामि प्रयत्यध्वरे ।

वृणीध्वं हव्यवाहानम् ॥ ६ ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे विद्वानों आप लोग ( प्रयति ) प्रयत्न से साध्य ( अध्वरे ) शिल्पादि व्यवहार में ( हव्यवाहनम् ) उत्तम पदार्थों का प्राप्त करानेवाले ( अग्निम् ) अग्नि का ( दुवस्यताम् ) परिवरण करो अर्थात् युक्ति से उसको कार्य में लगाओ और ( वृणीध्वम् ) स्वीकार करा तथा अन्य जनों के लिये ( आ, जुहोत ) आदान करो अर्थात् ग्रहण करो ॥६॥

भाषार्थ—निष्ठाधिजन जैसे विद्वान् जन शिल्पविद्या का स्वीकार करते हैं वैसे ही स्वयं भी स्वीकार करें ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इसमें पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवा सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अब पञ्चवर्षार्थस्वीकोर्नाशितस्य सूक्तस्य १—१५ गौरिबीति वाक्त्वपञ्चविः ।

१-८ । १-१५ इन्द्र उग्रना वा १ इन्द्रो देवता । १ भुरिक् पङ्क्तिः ।

८ स्वराहपङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः । २, ४, ७ त्रिष्टुप् ।

१, ५, ६, ९, १०, ११ निचुत्त्रिष्टुप् । १२, १३, १४, १५

बिराट्त्रिष्टुप् छन्दः । षष्ठः स्वरः ॥

अब पञ्चह्वा ऋचा वाले उन्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपञ्चम्य राजगुणों को कहते हैं—

त्र्ययमा मनुषो देवाता श्री रोचना दिव्या धायन्त ।

अर्चन्ति त्वा मरुतः पुतदसास्त्वमेवामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त करनेवाले राजन् जो ( मनुष ) मनुष्य ( देवताता ) विद्वानों से करन योग्य व्यवहार में ( दिव्या ) श्रेष्ठ ( श्री ) तीन ( रोचना ) प्रकाशकों को ( धारयन्त ) धारण करते हैं ( अयमा ) व्यवस्थापक अर्थात् किमी कार्य को गीति से मयुक्त करनेवाला ( श्री ) तीन सुखों का धारण करना है और जा ( पुतदसा ) पवित्र बनवाले ( मरुत ) मनुष्य ( त्वा ) आपका ( अर्चन्ति ) मत्कार करने हैं ( एवाम् ) इनके ( त्वम् ) आप ( ऋषि ) मन्त्र और अर्थों के जानन वाले ( धीर ) धीर ( अति ) हो ॥१॥

भाषार्थ—जा तीन कर्म, उपामना और ज्ञान का धारण करके पवित्र होते हैं व ही बनवान् हाकर सत्कृत होते हैं ॥१॥

अनु यदो मरुतो मन्दमानमार्चन्ति पविवासं सुतस्य ।

आदत्त वज्रमभि यदो हव्यो यद्वीरसुजन्मर्त्तवा उ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे राजन् ( यत् ) जा ( मरुत ) मनुष्य ( मन्दमानम् ) स्तुति किये गये ( सुतस्य ) प्राप्त राज्य की ( पविवासम् ) रक्षा करनेवाले ( यत् ) जिन ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त आपका ( आर्चन् ) मत्कार करें उनका वह आप ( अनु, आ, अबत् ) अनुकूलता से ग्रहण करते हैं और जैसे सूर्य ( वज्रम् ) वज्रस्य किरण का ( अभि ) सम्मुख ताडन करके ( अहिम् ) मेघ का ( हव् ) नाश करता है तथा ( सत्तवं ) जाने के लिए ( यदो ) बड़ी नदियों को और ( अप ) जलों को ( असृजत् ) उत्पन्न करता है वैसे ( ईम् ) सब और स ( उ ) तर्क वितर्क पूर्वक तुम त्याग करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य राजा का मत्कार करते हैं उनका राजा भी मत्कार करे और जैसे सूर्य मेघ का नाश कर और जल का प्रवाह करने सब जगत् की रक्षा करता है वैसे राजा दुष्टों का नाश करके श्रेष्ठों की रक्षा करे ॥ २ ॥

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।

तदि हव्यं मनुषे ना अविन्ददहन्ति पविवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥

पदार्थ—जिम प्रकार ( इन्द्र ) सूर्य्य रम को पीता है वैसे हे राजन् ( इन्द्रः ) प्रकाशमान आप ( मे ) मेरे ( अस्य ) और इसके भी ( तत् हि ) उमी ( सुषुतस्य ) अच्छे प्रकार श्रेष्ठ बनाये ( सोमस्य ) ऐश्वर्य्य कारक पदार्थ के ( हव्यम् ) खाने योग्य भाग का ( पेया ) पीजिये जिससे ( मनुषे ) मनुष्य मात्र के लिए आप ( ना ) गो वा उत्तम वाणिज्यों को ( अविन्दत् ) प्राप्त हों और जैसे ( पविवा ) भूमिपञ्चलादि को पान करनेवाला सूर्य ( अहिम् ) मेघ का ( हव् ) नाश करता है वैसे आप ( अस्य ) इस राज्य के पालन को करिये ( उत ) इसी प्रकार है ( ब्रह्माण ) जाग वेदों के जाननेवाले ( मरुतः ) मनुष्यों ! तुम लोग भी आचरण करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सब वेदों को पढ़कर नहीं खाने और नहीं पीने योग्य वस्तु का वर्जन करने ग्यायाधीश के सदृश न्याय और सूर्य्य के सदृश मत्स्य और मत्स्य का प्रकाश करने हे वे महाशय हात हैं ॥ ३ ॥

किर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आद्रोदसी वितरं विक्रमयत्संविद्यानधिम्रियसे मृगं कः ।

जिर्गतिमिन्द्रो अपजगुराणः प्रति स्वसन्तमवं दानवं हन् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे ( इन्द्र ) सूर्य्य ( रोवती ) मन्तरिक्ष पृथिवी को ( वितरम् ) विशेष उलाघना जैसे हो वैसे ( वि, स्वभावत् ) विशेष करके आकषित करता है ( आत् ) और ( संविद्यान् ) उत्तम प्रकार व्याप्त होता हुआ ( धिम्रियसे ) मय के लिए ( जित् ) भी ( मृगम् ) हरिण को ( कः ) करता तथा ( जिर्गतिम् ) प्रशंसा वा निगलने को ( अपजगुराणः ) आच्छादन से भलग करता हुआ ( दानवम् ) दुष्टप्रकृति मनुष्य को ( अब, हव् ) हनन करे वैसे ( प्रति, स्वसन्तम् ) श्वास लेने हुए प्राणी का निरन्तर प्रतिपालन करो ॥ ४ ॥



भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। जो राजा सूर्य के समूह राज्य का धारण करते हैं वे जैसे मिह मृग को व्याकुल करता है वैसे दुष्टों को व्याकुल करते हैं वंसा ही वृत्ति करके यश को प्रकट करें ॥ ४ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अथ क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।

यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सुतोक्ष्णरा एतश्चे कः ॥५॥ २३॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) बहुत धन से युक्त ( यत् ) जो ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( पतन्तीः ) चलती हुई ( पुरः ) पालने वाली वा भागे से ( सती ) विद्यमान ( उपरा ) समीप में रहती हुई ( हरितः ) हरिद्वर्ण किरणों को ( एतश्चे ) जोड़े पर जोड़े के चढ़ने वाले के समूह ( कः ) करता है उसकी विद्या से ( सुतोक्ष्णम् ) आप के लिए जो ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( देवा ) विद्वान् जन ( सोमपेयम् ) सोम ओषधि के पान करने योग्य रस को ( अनु, अबन् ) अनुकूल देते हैं वे ( अथ ) इस के अनन्तर ( कृत्वा ) बुद्धि से विशेष ज्ञानी होते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! सूर्यमण्डल में अनेक तत्वों के विद्यमान होने से अनेक रूप देख पड़ते हैं यह जानना चाहिये ॥ ५ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नव यदस्य नवति च भोगान्त्सुक्तं वज्रैर्न मघवा विबुधत् ।

अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सुधस्ये त्रैष्टुमेन वचसा वाधतु धाम् ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् ( मघवा ) बहुत धन से युक्त आप जैसे सूर्य ( वज्रैर्न ) वज्र के ( साकम् ) साथ ( अस्य ) इस सूर्य और जगत् के मध्य में ( यत् ) जिन ( नव ) नव और ( नवतिम् ) नव्ये ( भोगात् ) भागों को उत्पन्न करता और प्रत्यक्षकार आदि का ( विबुधत् ) नाश करता है तथा जैसे ( वस्तः ) मनुष्य ( सुधस्ये ) समान स्थान में ( त्रैष्टुमेन ) तीन प्रकार स्तुति किये गये ( वचसा ) वचन से ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले का ( अर्चन्ति ) सत्कार करते हैं और ( धाम् ) कामना की ( च ) भी ( वाधतु ) बाधा करने हैं वैसे ही दुःख और दारिद्र्य का नाश करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। हे राजन् ! आप काम की आभिलाष का त्याग करके और व्याय से सबका सत्कार करके समस्त भोगों को प्रजाओं के लिए धारण कीजिये ॥ ६ ॥

फिर सूर्यदृष्टान्त से राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सखा सख्ये अपचक्ष्यमभिरस्य क्रत्वा महिषा त्री श्रुतानि ।

श्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम् ॥७॥

पदार्थ—जैसे ( अग्नि ) अग्नि और ( इन्द्र ) सूर्य ( त्वम् ) ओज ( अस्य ) इस जगत् के मध्य में ( श्री ) तीन भुवनों को प्रकाशित करता हुआ ( सरांसि ) नड गो का ( विबत् ) पान करता है और ( वृत्रहत्याय ) मेघ के नाश करने के लिए ( सुतम् ) वर्षाये गये ( सोमम् ) ऐश्वर्य का ( अपचक्षुः ) पचाता है वैसे ( सखा ) मित्र ( क्रत्वा ) बुद्धि वा कर्म से ( सख्ये ) मित्र के लिए ( साकम् ) सहित ( मनुष ) मनुष्य के ( महिषा ) बड़े पशुओं के ( श्री ) तीन ( श्रुतानि ) सैकड़ों की रक्षा करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है। जैसे सूर्य ऊपर नीचे और मध्य भाग में वर्तमान स्थूल पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे उत्तम मध्यम और अधम अवधारों को राजा प्रकट कर और सबके साथ मित्र के समूह वृत्ति करे ॥ ७ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

श्री यच्छ्रुता महिषाणामथो मात्सी सरांसि मघवा सोम्यापाः ।

क्रां न विश्वे अश्वन्त देवा भरुमिन्द्राय यदहिं जघान ॥८॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( यत् ) जो आप ( अथ ) सही मारने योग्य होते हुए ( महिषाणाम् ) बड़े पदार्थों के ( श्री ) तीन ( श्रुता ) सैकड़ों को ( मात्सी ) रचिये और हे ( सोम्या ) बन्धुमा के गुणों से सम्पन्न ( मघवा ) बहुत धनवान् होने हुए ( श्री ) तीन ( सरांसि ) मेघमण्डल भूमि और आस्तारिण में स्थित पदार्थों को सूर्य के समूह प्रजाओं का ( अपाः ) पालन कीजिए और सूर्य ( यत् ) जैसे ( अहिम् ) मेघ का ( जघान ) नाश करता है और जैसे ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( देवा ) विद्वान्-जन ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के लिए ( क्रां ) कर्त्ता के ( न ) समूह ( भरम् ) पालन को ( अश्वन्त ) कहते हैं वैसे ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न कीजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानद्वारा है—जैसे पुरुषार्थी जन को सब स्वीकार करते हैं वैसे ही सूर्य ईश्वरीय नियमों से नियत जलरम का ग्रहण करता है जैसे जन बड़े पदार्थों की उत्तमता से सैकड़ों काम सिद्ध करते हैं वैसे ही राजा प्रजाजनों से बड़े राजकार्य को सिद्ध करे ॥ ८ ॥

उद्यन्ता यत्सहस्यैरयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरथैः ।

कन्वानो अजं सुरथं यथाह कृत्स्नेन दुर्वैरवर्नोर्दं क्षुण्णम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् ! आप और ( उद्यन्ता ) कामना करता हुआ जन तुम दोनों ( सहस्यैः ) बनों में उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ ( जूजुवानेभिः ) वेग-वाले ( अश्वैः ) घोड़ों वा अग्नि आदिको से चलाये गये वाहन पर स्थित हो के ( यत् ) जिस ( गृहम् ) गृह को ( अप्यातम् ) प्राप्त कीजिये और ( अजं ) इस जगत् में ( ह ) निश्चय से ( कन्वान ) याचना करते हुए आप ( कृत्स्नेन ) वज्र के समूह दुःकर्म से ( वैरैः ) विद्वानों से ( क्षुण्णम् ) बन की ( अवर्नो ) रक्षा करिये और हे मनुष्यो ! आप लोग इन दोनों के साथ ( सुरथम् ) रथ के साथ वर्तमान जैसे हो वैसे निश्चय से ( यथाह ) प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो राजा आदि मनुष्य उत्तम प्रकार श्रेष्ठ होवें वे विमान आदि वाहनो को बना सकें और दुष्ट जनो के मारने को समर्थ होवें ।

प्रान्यञ्चक्रमहृः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्विषो यातवेऽकः ।

अनासो दस्यूरमृणो वधेन नि दुर्योण आङ्गणक्षुभ्रवाचः ॥१०॥ २४॥

पदार्थ—हे राजन् आप ( सूर्यस्य ) सूर्य के समूह ( कन्वत् ) अन्य ( चक्रम ) चक्र की ( प्र, अबह ) उत्तम वृद्धि करिये और ( कुत्साय ) वज्र के लिए ( अन्यत् ) अन्य ( वरिष्ठ ) सेवन को ( यातवे ) प्राप्त होने को ( अक ) करिये तथा ( अनास ) सुखरहित ( दस्युम् ) दुष्ट चोरो का ( वधेन ) वध से ( अमृण ) नाश करिये और ( दुर्योण ) गृह के प्राप्त होने में ( क्षुभ्रवाचः ) कुत्सित वाणिज्यो वाले जनो को ( नि, आङ्गणक्षु ) निरन्तर बजिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य अपने चक्र का आकर्षण से वर्त्ति करता है वैसे ही विमान आदि वाहनो में राज्य का अनुवर्त्तन करो और चोर तथा दुष्ट वाणिज्यो का नाश करके राज्य में नहीं चोरी करने वाले और श्रेष्ठ वचनो वाले जनो का सम्पादन कीजिये ॥ १० ॥

स्तोमांसस्तवा गौरिबीतेरवर्ध्वरन्धयो वैदधिनाय पित्रम् ।

आ त्वामृजिष्वा सुख्याय चक्रे पचन् पत्नीरपिबः सोममस्य ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( गौरिबीते ) वाणी को विशेष प्राप्त अर्थात् जानने वाले आपके मग में ( स्तोमास ) प्रणामित ( अवर्ध्वम् ) वृद्धि को प्राप्त हो उन के साथ ( वैदधिनाय ) सग्राम करनेवाले से बनाये गये के लिए शत्रुओं का ( अरन्ध्वम् ) नाश करो और जो ( अजिष्वा ) मरल कुत्त समूह ही मनुष्य ( पित्रम् ) आपका ( त्वा ) आप को ( सुख्याय ) मित्रपने के लिए ( आ, चक्रे ) अच्छे प्रकार कर चुका उसके साथ ( अस्व ) इस जगत् के मध्य में ( पत्नी ) पत्नी का ( पचन् ) पाक करने हुए आप ( सोमम् ) ऐश्वर्य वा ओषधि के रस का ( अपिबः ) पान करिये और जो ( त्वाम् ) आप की रक्षा करें उन सब का आप सत्कार करिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है—हे राजन् ! जो उत्तम गुणों से आप की वृद्धि करने और आप का मित्र जानते हैं उन का मित्र करके आप ऐश्वर्य की वृद्धि करो ॥ ११ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नर्वगासः सुतसोमास इन्द्रं दशगवांसो अभ्यर्चन्त्यकैः ।

गव्यंश्चिद्वर्धमपिधान्वन्तं तं चिक्षरः शशमाना अपं वन् ॥ १२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( सुतसोमास ) मपादन की ऐश्वर्य और ओषधिया जिन्होंने ( नर्वगास ) जो नवीन गति वाले ( दशगवास ) जिन्होंने दश इन्द्रियों को जीता गये ( शशमाना ) अविद्याओं का उत्पन्न करने हुए ( नर ) नायक जन जिस ( गव्यम् ) गो सम्बन्धी ( चित् ) निश्चित ( अवैम् ) प्रविष्टा के नाश करने वाले ( अपिधान्वन्तम् ) आच्छादन से युक्त गुण ( इन्द्रम् ) विद्या और ऐश्वर्यवान् का ( अर्कः ) मन्त्र वा विचारों से ( अभि ) सब प्रकार ( अर्चन्ति ) सत्कार करते और उनकी प्रविष्टा का ( अप, वन् ) अङ्गीकार करते हैं ( तम् ) उसको ( चित् ) भी आप शिक्षा दीजिये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो नवीन विद्या का ग्रहण करना चाहते और ऐश्वर्य की इच्छा करने और इन्द्रियों के जीतने वाले विद्वान् जन प्रज्ञानी जनो को बोध देकर विद्वान् करते हैं वे ही सत्कार करने योग्य होने हैं ॥ १२ ॥

कृषो नु ते परि चराणि विद्वान् वीर्या मघवन्त्या चकथं ।

या चो नु नम्यां कृणवः क्षुविष्टु प्रेदु ता तं विदथेषु ब्रवाम ॥१३॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) श्रेष्ठ धन से युक्त ( या ) जो ( ते ) आपकी ( परि ) सब ओर से ( चराणि ) चलने वाली और प्राप्त होने योग्य ( वीर्या ) पराक्रमयुक्त सेनाओं को ( कथे ) किसी प्रकार ( नु ) निश्चय से ( चकथं ) करते हो तथा ( विद्वान् ) विद्वान् आप ( या ) जिन को ( श्री ) और ( नम्या ) नवीनो में उत्पन्नो की ( नु ) निश्चय से ( कृणवः ) सिद्ध करते हो । हे ( क्षुविष्टु ) धनिशय करके बलिष्ठ ( ते ) आप के जिन को ( विदथेषु ) सग्रामों में हम लोग ( प्र, ब्रवाम ) उपदेश करें ( ता ) उन को ( इत् ) निश्चय से ( उ ) भी आप ग्रहण करो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सदा ही नवीन नवीन विद्या और नवीन २ कार्य को सिद्ध कर के ऐश्वर्य का प्राप्त होवें इसी प्रकार अन्वों के प्रति उपदेश करें ॥ १३ ॥

एता विश्वां चक्षुषीं इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।

या चिन्तु बजिन्कृण्वीं दधृष्वाम तं वृत्तां तविष्ण्या अस्ति तस्याः॥१४॥

पदार्थ—हे ( बजिन् ) उत्तम शस्त्र और अस्त्रों से और ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् ( अपरीत ) नहीं वजित आप ( जनुषा ) दूसरे जन्म से और ( वीर्येण ) पराक्रम से ( चित् ) भी ( एता ) इन ( विष्ण्या ) सब को ( चक्षुषां ) किये हुए हो और ( या ) जिन ( भूरि ) बहुत बलों को ( कृण्वीं ) करिये । हे राजन् ( ते ) आप की निश्चय ( तस्या ) उम ( तविष्ण्या ) बनयुक्त सेना का ( दधृष्वाम् ) घुट अर्थात् हथियार किया हुआ ( तु ) शीघ्र ( वृत्तां ) स्वीकार करने वाला कोई भी ( न ) नहीं ( अस्ति ) है ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो राजा जन है वे ब्रह्मचर्य से विद्याओं को प्राप्त होकर चवलीस वर्ष की अवस्था में युक्त हुए समावर्त्तन करके अर्थात् गृहस्थाश्रम का विधिपूर्वक ग्रहण कर स्वयम्भर विवाह कर और सेना की वाढ़ करके प्रजा की सब प्रकार से रक्षा करें ॥ १४ ॥

अब विद्विषय में पुरुषार्थरक्षणविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या तं भविषु नव्या अकर्मम् ।

वस्सेव भद्रा सुकृता वसुय रथं न धीरः स्वपां अतक्षम् ।।५॥२५॥

पदार्थ—हे ( भविषु ) अतिशय करके बल से और ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त जिन ( ते ) आपक ( नव्या ) नवीन धना को हम लोग ( अकर्मम् ) करे और ( या ) जिन ( क्रियमाणा ) वर्तमान पुरुषार्थ से सिद्ध हुए ( भद्रा ) धन वा धना का आप ( जुषस्व ) सेवन करो उन ( भद्रा ) कल्याणकारक ( सुकृता ) धर्म से उत्पन्न किये हुए को ( वस्सेव ) जैसे वस्त्र प्राप्त होत वैसे तथा ( स्वपां ) सत्य भाषण आदि करने वाला ( धीरः ) ध्यानवान् योगी और ( वसुय ) धन को धन की दृष्टि करने वाला ( रथम् ) उत्तम वाहन का ( न ) जैसे धर्म कल्याणकारक और धर्म से उत्पन्न किये गये को मैं ( अतक्षम् ) प्राप्त होऊँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्य ! वश और धन की आशा में आप लोग आत्मन्य से पुरुषार्थ का न त्याग करो किन्तु नित्य पुरुषार्थ की वृद्धि से ऐश्वर्य की वृद्धि करके वस्त्र और रथ में जैसे वस्त्र सुख का भाग करके नवीन वश प्रकट करो ॥ १५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वानों के गुणों वा वर्गों होने में हम

सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ

सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह उनकीसर्वा सूक्त और पञ्चीसवाँ अर्थ समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवचनस्य त्रिंशत्सप्तस्य सूक्तस्य बभ्ररात्रेय ऋषिः । इन्द्र ऋतावयस्य वेवता । १।२।३।४।५।६।७ निष्कृतिः । १० विराट् निष्कृतिः ।

७।११।१२ निष्कृतिः । वेवता. स्वर । ६।१३ पङ्क्तिः ।

१४ स्वराट्पङ्क्तिः । १५ ध्रुविक पङ्क्तिः ।

पञ्चम स्वर ॥

अब पञ्चह ऋचा वाले तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से

इन्द्र के विषय को कहते हैं—

ववः स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुस्वर्गधीर्यमानं हरिभ्याम् ।

यो गया वजी सुतसोममिच्छन्तवोको गन्तां पुरुहुत जती ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( व. ) कौन ( वीरः ) शूर ( इन्द्रम् ) बिजुली को ( अपश्यत् ) देखता है ( ववः ) किस में ( हरिभ्याम् ) वेग और आकर्षण से ( सुस्वर्गम् ) सुख के अर्थ ( ईयमानम् ) चलते हुए रथ को देखता है ( य ) जो ( वजी ) शस्त्र और अस्त्रों में युक्त ( गन्ता ) जाने वाला ( पुरुहुत ) बहुतों से स्तुति किया गया ( सुतसोमम् ) इकट्ठा किया ऐश्वर्य जिस में ( तत् ) उम (ओक) गृह की ( इच्छन् ) इच्छा करता हुआ ( जती ) रक्षण आदि के लिये ( राधा ) धन से बिजुली को देखता है ( स्य. ) वह सुख के लिए रथ को प्राप्त हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! कौन बिजुली आदि की विद्या के प्राप्त होने को अधिकारी है इस प्रकार पूछता है जो विद्वानों के सङ्ग में यथार्थवक्ता जनो की रीति से विद्या और हस्तक्रिया को ग्रहण करके नित्य प्रयत्न करें यह उत्तर है ॥ १ ॥

अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरं निधातुरन्वायमिच्छन् ।

अपृच्छमन्या उत ते मं आहुरिन्द्रं नरो बुधधाना अशेम ॥२॥

पदार्थ—शिल्पविद्या की ( इच्छन् ) इच्छा करता हुआ मैं जिन ( अन्याम् ) अन्य विद्वानों को ( अपृच्छम् ) पूछ ( ते ) वे ( बुधधाना ) सबोधयुक्त ( नरः ) नायक जन विद्वान् ( मे ) मेरे लिये ( इन्द्रम् ) बिजुली को ( आहू ) कहें उस को ( अस्य ) इस शिल्पविद्या के ( विधातु ) धारण करने वाले के ( सस्वर ) मूल ( उग्रम् ) उग्रगुण, कर्म और स्वभाव वाले ( पदम् ) प्राप्त होने योग्य विज्ञान को ( अनु, आयम् ) अनुकूल प्राप्त होऊँ और अन्यों के प्रति ( अब, अक्वक्षम् ) विशेष कहूँ इस प्रकार ( उत ) भी मित्र के सद्य वर्तमान हम लोग अङ्ग और उपाङ्गों के सहित शिल्पविद्याओं को ( अशेम ) प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भाषार्थ—जब शिल्प आदि विद्या के जानने की इच्छा करने वाले जन विद्वानों के प्रति पूछे तब उनके प्रति यथार्थ उत्तर दें इस प्रकार परस्पर मित्र हुए बिजुली आदि की विद्या की उन्नति करें ॥ २ ॥

प्र नु वयं सुते या तं कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।

वेदविद्वान्छणवच्च विद्वान्वहेतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्वन् ! ( या ) जिन ( ते ) आप के ( सुते ) उत्पन्न हुए समार म ( कृतानि ) किये हुए कार्यों वा ( न ) हम लोगों के ( यानि ) जिन कार्यों को ( जुजोष ) आप सेवते हो उनका ( वयम् ) हम लोग ( तु ) शीघ्र ( प्र, ब्रवाम ) उद्देश दें और जब ( अयम् ) यह ( मघवा ) बहुत बल वाला और ( सर्वसेन ) सम्पूर्ण सेनाओं से युक्त ( विद्वान् ) विद्वान् जन विद्या को ( बहते ) प्राप्त होना न प्राप्त कराता है तब यह ( अविद्वान् ) विद्या रहित जन ( शुण्वत् ) श्रवण करे और ( वेवत् ) विशेष करके जाने ( न ) भी ॥ ३ ॥

भाषार्थ—दो उपाय विद्या की प्राप्ति के लिए जानने चाहिये उनमें प्रथम उपाय यह कि विद्या का अध्यापक यथार्थवक्ता होवे तथा सुनने और पढ़ने वाला पवित्र कपटरहित और पुरुषार्थी होवे । दूसरा उपाय यह है कि श्रेष्ठ विद्वानों का कर्म देखकर आप भी वंसा ही कर्म करें ऐसा करने पर सबको विद्या का लाभ होवे ॥ ३ ॥

अब वीरों के कर्म को कहते हैं—

स्थिर मनश्चक्रे जात इन्द्र वेपीदेको युधये भूयसश्चित् ।

अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवांभूर्बभ्रुव्याणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) योगजन्य ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले जन जिस प्रकार ( एक ) एक सूर्य ( युधये ) युद्ध के लिए ( शवसा ) बल से ( अश्मानम् ) मेघ का और ( भूयसः ) बहुत ( चित् ) भी मेघों को तथा ( गवांभूर् ) चलनेवाले ( उल्लि-याणाम् ) किरणों के ( ऊर्ध्वम् ) नाश करनेवाले को ( चक्षुषे ) करता और दोनों ( चित् ) निश्चित ( वि, विद्युतः ) प्रकाश करने हैं वैसे आप विजय को ( विद्यु ) जनाइये एक ( जातः ) प्रकट हुए आप जिस से ( मनः ) अन्तःकरण को ( स्थिरम् ) निश्चलन करते हो ( इत् ) इसी से राज्य को ( वेवि ) प्राप्त होते हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य और मेघ परस्पर युद्ध करते हैं वैसे राजा मनु के साथ सन्ध्या करे और जैसे सूर्य किरणों से सब कार्य को सिद्ध करता है वैसे राजा सेना और मन्त्रीजन से सम्पूर्ण राजकृत्य सिद्ध करें ॥ ४ ॥

परो यत्वं पंगम आजर्निष्ठाः परावति भृत्यं नाम बिभ्रन् ।

अतश्चिदिन्द्रावमयन्त देवा विश्वा अपो अजयहासपत्नीः ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( यत् ) जो ( त्वम् ) आप ( परः ) उत्तम ( परम् ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( भृत्यम् ) श्रवण से उत्पन्न ( नाम ) मजा को ( बिभ्रन् ) धारण करते हुए ( आजर्निष्ठा ) सब प्रकार से प्रकट होने हो वह जैसे ( परावति ) दूर देश में स्थित सूर्य ( विष्वा ) सम्पूर्ण ( हासपत्नीः ) जन का देनेवाला मेघ जिन का पालन-कर्ता ऐसे ( अप ) जलो को ( अजयत् ) जीतता है और जैसे ( देवाः ) विद्वान् जन ( इन्द्रात् ) बिजुली से ( अवयन्त ) नहीं डरते हैं वैसे वर्तमान होने पर ( अतः ) इस से ( चित् ) भी सुख की वृद्धि करिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे दूर स्थित भी सूर्य अपन प्रकाश से प्रसिद्ध होता है वैसे ही दूरवर्तमान भी यथार्थवक्ता जन प्रकाशित यशवाले होते हैं ॥ ५ ॥

अब विद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।

अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सखदिन्द्रः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे ( इन्द्र ) बिजुली ( मायाभिः ) बुद्धियों से ( आश-यानम् ) चारों ओर शयन करते हुए ( मायिनाम् ) निकट बुद्धिवाले और ( मोहानम् ) त्याग करत हुए ( अहिम् ) मेघ को ( सखत् ) प्राप्त होता है और लाइस करके ( अप ) जलो को भूमि में गिराता है और जैसे ( एते ) ये ( तुभ्य ) आप के लिए ( सुशेवाः ) उत्तम मुखवाले ( मरुतः ) कृत्विक् मनुष्य ( अर्कम् ) सत्कार करने योग्य का ( अर्चन्ति ) सत्कार करते हैं और ( अन्ध ) अन्ध को ( सुखमिति ) उपास करते हैं वैसे ( इत् ) ही आप के लिए सम्पूर्ण विद्वान् जन सुख ( प्र ) दें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—वे ही विद्वान् जन जगत् के सुख करनेवाले होते हैं जो सूर्य और मेघ के समान जगत् के सुख करनेवाले हैं तथा अपन समान दूसरों के सुख करनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥

अब वीरविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि पू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहनावा मघवन्तसञ्चकानः ।

अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्त्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

पदार्थ—हे (अथर्व) अथर्व से युक्त राजन् । आप (अनुवा) जगत् से (अथर्व) आप को (अथर्व) प्राप्त होते हुए जैसे सूर्य (गवा) किरण से मेघ को (अथर्व) नाश करता है वैसे (अथर्व) सप्राप्ति को जीतिये और (अथर्व) उत्तम प्रकार कामना करते हुए जैसे (अथर्व) इस व्यवहार में सूर्य (अथर्व) अपने स्वयं को नहीं त्यागनेवाले (अथर्व) सेवक के सदा वर्तमान मेघ के (अथर्व) उत्तम अङ्ग का (अथर्व) विशेष करके नाश करता है वैसे आप (अथर्व) विचार भील धार्मिक मनुष्य के लिए (अथर्व) जिस (अथर्व) भूमि वा बाणी की (अथर्व) इच्छा करते हुए हो उस के लिए मनु के मिर को (अथर्व) उत्तम प्रकार (अथर्व) नाश करिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे राजजनों ! जो सूर्य मेघ को जीत कर जगत् को सुख देता है वैसे वृष्ट मनुष्यों को जीत कर प्रजापति को सुख दीजिये ॥ ७ ॥

युञ्जं हि मामकुंया आदिदिन्द्र भिरौ दासस्य नमुचैर्वायम् ।

अदमानं चित्स्वर्धः वर्तमानं प्र चक्रिर्वै रोदसी मन्स्यः ॥८॥

पदार्थ—हे (अथर्व) राजन् ! जैसे सूर्य (अथर्व) प्रवाहक से नहीं नाश होने और (अथर्व) जल देनेवाले मेघ के (अथर्व) मिर के सदा वर्तमान कठिन प्रकृति का (अथर्व) सम्पन्न करता हुआ (अथर्व) भी (अथर्व) सन्ध्या में श्रेष्ठ (अथर्व) वर्तमान (अथर्व) व्याप्त होते हुए मेघ को पृथिवी के साथ युक्त करता और (अथर्व) जैसे चक्र वैसे (अथर्व) पवन से (अथर्व) (अथर्व) पृथिवी को घुमाता है वैसे (अथर्व) अमर (अथर्व) ही (अथर्व) मुक्त को (अथर्व) ही (अथर्व) युक्त (अथर्व) प्र, अङ्गः) अथर्व प्रकार करिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे राजजनों ! आप लोग जैसे सूर्य मेघ को बर्बाद जगत् के सुख को और पवन से भूगोलों को घुमा के दिन रात्रि करता है वैसे ही विद्या और विनय की राज्य में वृद्धि कर अपने अपने कर्म में सब को चलाके सुख और विजय को उत्पन्न करो ॥ ८ ॥

स्त्रिया हि दास आयुधानि चके किं मां करमबला अस्य सेनाः ।

अन्तर्हस्यदुमे अस्य येने अथोप प्रेषये दस्युमिन्द्रः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (अथर्व) सेवक के सदा मेघ (अथर्व) स्त्रियों को (अथर्व) तलवार धारि शस्त्रों के सदा (अथर्व) करता है (अथर्व) इस की (अथर्व) बल से रहित (अथर्व) सेना है (अथर्व) सूर्य के सदा राजा (अथर्व) ही (अथर्व) मुक्त को (अथर्व) क्या (अथर्व) करे और जो (अथर्व) अन्तःकरण में (अथर्व) प्रकट करता है और जिस (अथर्व) इस मेघ की (अथर्व) दोनों धर्मात् अन्त और तीव्र (अथर्व) बाणी वर्तमान है (अथर्व) अन्तर जिसको सूर्य (अथर्व) सप्राप्ति के लिए (अथर्व) प्र, ऐत्) समीप प्राप्त होता है उस के सदा वर्तमान (अथर्व) निश्चित (अथर्व) वृष्ट डाकू को वश में करे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे ही जन दास हैं कि जिनकी स्त्रियां शत्रु के सदा विजय को देनेवाली वर्तमान होवें और जैसे सूर्य और मेघ का सम्प्राम है वैसे ही वृष्टजनों के साथ राजा का सम्प्राम हो ॥ ९ ॥

अथ विद्वानों के उपदेशविषय को अगले मंत्र में कहते हैं—

समग्र गावोऽमिसोऽनवन्तेहेह वस्तेष्विमुता यदासन् ।

सं ता इन्द्रो अष्टजदस्य शाकैर्यदी सोमासः सुषुता अमन्दम् ॥१०॥२७

पदार्थ—हे मनुष्यों (अथर्व) जो (अथर्व) इस जगत् में (अथर्व) किरणों (अथर्व) बछड़ों से (अथर्व) विमुक्त (अथर्व) चारों ओर से (अथर्व) होती हैं (अथर्व) उनकी आप लोग (अथर्व) स्तुति प्रशंसा करें और जिस को (अथर्व) इस मेघ के (अथर्व) सामर्थ्य से (अथर्व) इस ससार में (अथर्व) सूर्य (अथर्व) अथर्व प्रकार (अथर्व) उत्पन्न करता है वा (अथर्व) सब ओर से (अथर्व) उत्तम प्रकार उत्पन्न (अथर्व) पदार्थ वा ऐश्वर्यवाले जीव (अथर्व) जो (अथर्व) आनन्दित होते हैं उनको सूर्य (अथर्व) एक साथ उत्पन्न करता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—जैसे बछड़ों से विमुक्त गौएँ नहीं शोभित होती हैं वैसे ही सन्तानों के सदा वर्तमान सन्तान प्रययों से रहित मेघ नहीं शोभित होता है ॥ १० ॥

अथ वीरराजविषय को अगले मंत्र में कहते हैं—

यदी सोमा अष्टजदस्य रवीद्वयः सादनेषु ।

पुरन्दरः पपिषो इन्द्रो अस्य पुर्वर्वापददादुस्त्रियाणां ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (अथर्व) सूर्य (अथर्व) इस मेघ के (अथर्व) स्थानों में (अथर्व) पीवने और (अथर्व) पुरन्दरः) पुरों को नाश करनेवाला (अथर्व) किरणों और (अथर्व) गौओं के (अथर्व) फिर तेज को (अथर्व) देता है (अथर्व) वृष्टि करनेवाला हुआ (अथर्व) अन्तर जिसको सूर्य (अथर्व) जिमसे (अथर्व) विद्या को धारण किये हमने से पवित्र किये गये (अथर्व) सोम प्रीति के सदा वर्तमान पदार्थ (अथर्व) सब ओर से उत्पन्न होते हैं जिससे प्राणी (अथर्व) आनन्दित होते हैं वैसे आप प्रजापति में वर्तमान कीजिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा सूर्य मेघ के स्वभाव के सदा स्वभाववाला हुआ धर्मशास्त्र में कहे हुए अष्ट मासपरिमाण परि-

मित प्रजापति से कर लेता है और चार मास यथेष्ट पदार्थों को देता है इस प्रकार सब प्रजापति को प्रसन्न करता है वही सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ११ ॥

अथ अग्निवृष्टान्त से राजविषय को अगले मंत्रों में कहते हैं—

मद्रिदं रुशमा अग्ने अक्रन्वावा चत्वारि ददतः सहस्रा ।

ऋणञ्चयस्य प्रयता मयानि प्रत्यग्रमीषम् नृत्तमस्य नृणाम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदा तेजस्वी राजन् ! जिस (अथर्व) अथर्व जिस से ऋण बढ़ोता है उस के और (अथर्व) किरणों के (अथर्व) चार (अथर्व) हजार को (अथर्व) देते हुए सूर्य के (अथर्व) इस (अथर्व) कल्याण को (अथर्व) हिंसा करनेवालों के फँकनेवाले (अथर्व) करते हैं उस के सदा वर्तमान उस (अथर्व) मनुष्यों के (अथर्व) नृत्तमस्य) नृत्तम अथर्व अथर्व पनयुक्त श्रेष्ठ आप के (अथर्व) धनो को हम लोग (अथर्व) प्रयत्न से (अथर्व) (अथर्व) प्रतीति से ग्रहण करें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे सूर्य सहस्रों किरणों को देकर सम्पूर्ण जगत् को आनन्दित करता है वैसे ही राजा प्रसन्न उत्तम गुणों को देकर प्रजापति को निरन्तर प्रसन्न करे ॥ १२ ॥

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रं रुशमासो अग्ने ।

तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽङ्गोर्ध्व्युष्टौ परितकम्यायाः ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदा वर्तमान राजन् ! जो (अथर्व) किरणों के (अथर्व) सहस्रों समूहों से (अथर्व) हिंसकों के नाश करनेवाले (अथर्व) तीव्र स्वभावयुक्त जो (अथर्व) विद्या आदि गुणों से उत्पन्न हुए (अथर्व) सब प्रकार हस्तों हैं जिन कर्मों से उनमें हुई (अथर्व) राजा की (अथर्व) प्रभात वेला में (अथर्व) अत्यन्त सुन्दर रूपवाले (अथर्व) मुक्त को (अथर्व) गृह के सदा (अथर्व) उत्पन्न करते हैं और (अथर्व) सूर्य के सदा तेजस्वी राजा को (अथर्व) आनन्दित करें उनको आप जान के यथावत् सेवा करो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो बिजुली और सूर्यरूप अग्नि युक्तिपूर्वक आप लोगों से सेवन किया जाय तो दिन और रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत होवें ॥ १३ ॥

औरुता रात्री परितकम्या यां ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।

अस्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुवत्वार्यसनसहस्रा ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों (अथर्व) जो (अथर्व) हिंसा करनेवाले मन्त्रियों के (अथर्व) ऋण को इकट्ठा करता है जिससे उस (अथर्व) राजा में (अथर्व) छोटा (अथर्व) चलाया गया (अथर्व) धारण वा पोषण करनेवाले और (अथर्व) मार्ग को व्याप्त होनेवाले (अथर्व) वेगयुक्त के (अथर्व) सदा (अथर्व) चार (अथर्व) सहस्रों का (अथर्व) विभाग करता है (अथर्व) वह (अथर्व) आनन्द देनेवाली (अथर्व) रानी सम्पूर्णों को (अथर्व) निवास देती है यह जानो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानों ! आप लोग रात्रि और दिन के कृत्यों को जानकर और स्वयं उत्तम प्रकार परीक्षा करके राजा धार्मिकों के लिए उन कृत्यों का उपदेश दीजिए जिससे ये सब सुखी हो और जैसे शीघ्र चलनेवाला घोड़ा दौड़ता है वैसे ही दिन और रात्रि व्यतीत होता है यह जानना चाहिए ॥ १४ ॥

चतुःसहस्रं गव्यस्य पशुः प्रत्यग्रमीषम् रुशमेष्वग्ने ।

धर्मश्चित्तसः प्रज्ञे य आसीदयस्मयस्तम्बादाम विप्राः ॥१५॥२८॥

पदार्थ—(अग्ने) अग्नि के सदा वर्तमान राजन् ! (अथर्व) जो (अथर्व) सुवर्ण के सदा तेजस्वरूप (अथर्व) तापयुक्त (अथर्व) प्रताप (अथर्व) अथर्व प्रकार त्याग करते हैं जिसमें उसमें और (अथर्व) हिंसकमन्त्रियों में (अथर्व) वर्तमान है (अथर्व) उस (अथर्व) चार हजार संख्यायुक्त को (अथर्व) किरणों के विकार और (अथर्व) पशु के सम्बन्ध में जैसे हम लोग (अथर्व) ग्रहण करें वैसे आप ग्रहण करो और हे (अथर्व) विप्राः) बुद्धिमानजनों आप लोगों के लिए उस (अथर्व) ही को हम लोग (अथर्व) सब प्रकार से देवें उसको हमलोगों के लिए आप लोग (अथर्व) भी दीजिये ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य गीत और उच्च का सेवन युक्ति से करने को जानते हैं और इसकी विद्या को परस्पर देते हैं वे सर्वदा रोगरहित होते हैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में राजा, वीर, धर्म और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के धर्म की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसरी सूक्त और अष्टाईसवीं वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ अथर्वशास्त्रस्यैकाधिकप्रशस्तस्य सूक्तस्य अवस्युरात्रेय ऋषिः ।

१-८ । १०-१३ इन्द्रः । १४ इन्द्रः कुस्तो वा । १५ इन्द्रः उमाना वा । १६ इन्द्रः

कुस्तो वा । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ । ८७ । ८८ । ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ । ९७ । ९८ । ९९ । १०० ।

३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ । ८७ । ८८ । ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ । ९७ । ९८ । ९९ । १०० ।

वैश्वः स्वरः । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ । ८७ । ८८ । ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ । ९७ । ९८ । ९९ । १०० ।

पञ्चमः स्वरः ॥



अब तेरह ऋचावाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से इन्द्रगुणों को कहते हैं—

**इन्द्रो रथाय प्रवर्तं कृणोति यमध्यस्थान्मघवां वाजयन्तम् ।**

**युयेव पथो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषांसन् ॥१॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो जैसे (अरिष्ट) नहीं मारा गया (प्रथम) प्रथम (सिषांसन्) इच्छा करना हुआ (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ धनरूप कारणयुक्त (इन्द्र) सूर्य के सदृश मेला का ईश (गोपा) गौश्री का पालन करनेवाला (पथ) पशुओं के (युयेव) समूहों के सदृश लोकों की (वि) विशेषकरके (उनोति) प्रेरणा करता और (वाजयन्तम्) भूगोलों के चलाते हुए को (याति) जाता है और (यम्) जिस लोक का (अध्यस्थात्) अधिष्ठित होना उससे (रथाय) वाहन के लिये (प्रवर्तम्) नीचे स्थान को (कृणोति) करता है वैसे आप आचरण करिये ॥१॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जो राजा रथ आदि के चलने के लिए मार्गों को सुधील बनाके उन मार्गों से रथ आदि वाहनों पर चढ़के तथा जाय और आय के पशुओं का पालन करनेवाला पशुओं को जैसे वैसे शत्रुओं को लोक के प्रजाओं का निरन्तर पालन करता है वही सब प्रकार वृद्धि का प्राप्त होता है ॥ १ ॥

**आ म द्रव हरिवो मा वि वैनः पिशङ्गराते अमि नः सचस्व ।**

**नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्यमेनारिचिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२॥**

**पदार्थ—**हे (हरिव) श्रेष्ठ घोड़ा से युक्त (पिशङ्गराते) सुवर्ण आदि के और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् । आप (मा, वि, वैन) कामना मत करें अर्थात् कामी न हो और (अमेनात्) नहीं विद्यमान है प्रक्षेप करनेवाली स्त्रिया जिनकी उनको (चित्) उन्ही (जनिवत) जन्मवाले (चकर्थ) करें और (म) हम लोगों का (अभि, सचस्व) सब ओर से सम्बन्ध करे और वस्तु के विजय के लिए (प्र, मा, द्रव) अच्छे प्रकार दाँव जितने (त्वत्) आप से (वस्य) अत्यन्त बसनेवाला (अन्यत्) दूसरा (नहि) नहीं (अस्ति) है वह आप हम लोगों का सुख से सम्बन्ध कीजिए ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**जो प्रतिकालपर्यन्त जीवने, बल बढ़ाने, राज्य करने और वृद्धि करने के लिए यत्न करता है वही कृतकृत्य होता है ॥ २ ॥

**उद्यन्महः सहम आजनिष्ठ देदिष्ट इन्द्र इन्द्रयाणि विश्वा ।**

**प्राचोदयत्सुदुघां वज्रं अन्तर्वि ज्योतिषा संववृश्चमोऽवः ॥३॥**

**पदार्थ—**हे राजन् जैसे (इन्द्र) योगरूप ऐश्वर्य से युक्त सूर्य (सहस) बल से (यत्) जिस (मह) बल को (उत्, आ, आजनिष्ठ) उत्पन्न करना (विश्व) सम्पूर्ण (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रिया वा धनो का (देदिष्टे) उपदेश देना और (प्र, अचोदयत्) प्रेरणा करना और (सुदुघा) उत्तम प्रकार कामनाओं का पूर्ण करनेवाली क्रियाओं का (वज्र) स्वीकार करना है वैसे (अन्तर्वि) मध्य में (ज्योतिषा) प्रकाश से (संववृश्चमोऽवः) घेरनेवाली (वज्र) राति की (वि) विशेष करके (अव) रक्षा करा ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**जो राजा बल से बल और धन से धन को उत्पन्न करके न्याय के प्रकाश से अन्यायरूप अन्धकार का निवारण कर पूर्ण मनोरथा से युक्त प्रजाओं का कर्त्तके विद्या आदि उत्तम गुणों के ग्रहण के लिए प्रेरणा करता है वही अत्यन्त ऐश्वर्य वाला मदा होता है ॥ ३ ॥

**अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।**

**ब्रह्माण इन्द्रं मडयन्तो अर्कैर्धर्षयन्महये हन्तवा उ ॥४॥**

**पदार्थ—**हे (पुरुहूत) बहनों से स्तुति किये गये राजन् । जो (अनव) मनुष्य (ते) आपके (अश्वाय) शीघ्र गमन के लिए (रथम्) वाहन को (तक्षन्) रचे और (त्वष्टा) सब प्रकार से विद्या से प्रदीप्तजन (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (वज्रम्) शस्त्र और समूह का गिरगता है और (महयन्त) प्रणसा करने हुए (ब्रह्माण) आगे वेदों के जाननेवाले विद्वान् (अर्कै) सत्कार के अत्यन्त मित्र करनेवाले विचारों वचनों वा कर्मों से आप (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त राजा की (अर्धयन्) वृद्धि करने है और (महये) मेघ के लिए (हन्तवे) नाश करने का वृद्धि करने है उनका (उ) तर्कपूर्वक आप निरन्तर सत्कार करिए ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**राजाओं की योग्यता है कि जो अन्तःकरण से राज्य की उत्पत्ति करने की इच्छा करें वे मदा ही सत्कार करने योग्य है ॥ ४ ॥

**वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।**

**अनश्वाभो ये पवयोऽरथा इन्द्रैषिता अभ्यवर्त्तन्त वस्यून ॥५॥२०॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) दुष्टदलों के नाश करनेवाले राजन् (यत्) जिन (वृष्णे) वृष्टि करनेवाले (ते) आपके लिए (अर्कम्) सत्कार करने योग्य का प्रजाजन (अर्चानि) सत्कार करे वह जैसे (वृषण) वर्षा के निमित्त (ग्रावाण) मेघ और (सजोषा) समान प्रीति का सेवन करनेवाला और (अदितिः) अन्तरिक्ष वर्तमान है वैसे हीजिए । और (ये) जो (अरथा) वाहनों से (अनश्वाभ) घोड़ों से रहित (इन्द्रैषिता) स्वामी से प्रेरणा किये गये (पवय) चक्र (वस्यून)

दुष्ट चोगे के (अभि) सम्मुख (अवर्त्तन्त) वर्तमान हैं उन का आप निरन्तर सत्कार कीजिए ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**जो राजा जन मेघ के सदृश सुख वरणि और आकाश के सदृश नहीं हिलनेवाले अग्नि आदि के वाहनों को रथ के इधर उधर भ्रमण करके दुष्ट चोरों का नाश करके प्रजाओं को प्रसन्न करें वे भाग्यशाली होते हैं ॥ ५ ॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**प्र ते पूर्वाणि करणानि बोचं प्र नृत्ना मघवन्पा चकर्थ ।**

**शशीवो यदिभरा रोदसी उमे जयन्मपो मनवे दानुचिन्नाः ॥६॥**

**पदार्थ—**हे (शशीव) बहुत प्रकार सामर्थ्य से युक्त (मघवन्) श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाने राजन् वृद्धिमान् जन (यत्) जैसे (या) जिन (पूर्वाणि) प्राचीन (करणानि) साधनों और जिन (नृत्ना) नवीनों को (प्र) सिद्ध करते हैं उन साधनों का मैं (ते) आपके लिए वैसे (प्र, बोचम्) उपदेश करूँ और जो (यिभरा) विशेष करके पोषण करने और (दानुचिन्नाः) अद्भुत दानवाले विद्वान् जन (मनवे) मनुष्य के लिए (उमे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को जनान हैं उनका साथ आप मनुष्य के लिए (अप) सूर्य जैसे जलो को वैसे शत्रुओं के प्राणों को (जयन्) जीवते हुए उनके सुख के लिए सत्कार को (चकर्थ) करते हैं ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**हे राजा आदि जनो । जो विद्वान् जन आप लोगों लिए अनादि-काल से सिद्ध राजनीति और विजय के उपायों की शिक्षा करें उनको अपने आत्मा के सदृश आप लोग सत्कार करें ॥ ६ ॥

**तद्विभु ते करणं दस्म विप्राहि यद् धनसोऽजो अभ्रामिमीथाः ।**

**शुष्णस्य चित्परि माया अगृम्णाः प्रपित्वं यक्षप दस्यूरसेधः ॥७॥**

**पदार्थ—**हे (दस्म) उपेक्षा करनेवाले (विप्र) वृद्धिमान् आप सूर्य (अहिम्) जंग मेघ को वैसे दाया का नाश करते हैं (अभ्र) वा इस जगत् में (ओज, यत्) जल के सदृश जो बल का गिरगता है (तत्) वह (करणम्) साधन जैसे हो वैसे शत्रु के बल का (धनम्) नाश करने हुए हम जगत् में तुम (शुष्णस्य) बल की वृद्धि का (अभिमीथा) निर्माण करो (चित्) और (माया) वृद्धियों का (परि, अगृम्णा) मग्न और मग्रहण करा और (प्रपित्वम्) प्राप्ति को (यत्) प्राप्त होता हुए (दस्यूर) दुष्टों का (अप, असेध) निवारण करें उन (ते) आपके लिए (तु) तर्क निर्वर्तक के साथ (इत्) ही सुख प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। हे विद्वन् । जैसे ईश्वर ने मूय और मेघ का सम्बन्ध रचा वैसे ही अन्य भी बहल सम्बन्ध रचे यह जानना चाहिए ॥ ७ ॥

**त्वमपो यदवे तुर्वशायांमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।**

**उग्रमयातमवहो ह कुत्सं मं ह यद्वामुशनामेत देवाः ॥८॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्यदाता (पार) पार लगानेवाले होते हुए (त्वम्) आप (तुर्वशाय) शीघ्र वश करने में समर्थ (वहो) मनुष्य के लिए (सुदुघा) उत्तम प्रकार पूर्ण करने योग्य (अप) जलो के सदृश कर्मों को (अमय) रमावे और (उग्रम्) बड़े कष्ट से जिसको जीत सकें उम (अयातम्) न साथ हुए (कुत्सम्) कुत्सित को (ह) निश्चय (सम्, अम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे तथा (यत्) जिसमें (उशना) कामना करने हुए (देवा) विद्वान् जन (अरन्त) रमे उमम (ह) निश्चय (वाम्) आप दोनों अर्थात् आप को और पूर्वोक्त मनुष्य को रमावे ॥ ८ ॥

**भाषार्थ—**ऐश्वर्यवाला मनुष्य अन्य जनो के लिए धन और धान्य आदिक देवे और जहाँ विद्वान् रमे वहाँ ही सम्पूर्ण जन कीड़ा करें ॥ ८ ॥

अब यन्त्रकलाविषय शिल्पकर्मों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामन्या अपि कर्णं वहन्तु ।**

**निः पीमद्भयो धर्मथो निः पयस्थान्मघोनों हवो वर्यस्तर्मासि ॥९॥**

**पदार्थ—**हे अध्यापका और उपदेशको । जैसे (इन्द्राकुत्सा) बिजुली और बिजुली का आघात (रथेन) वाहन से (वहमाना) प्राप्त कराते हुए वर्तमान हैं वा विद्वान्जन (कर्ण) करने है जिसमें उममे (वाम्) आप दोनों को (आ, वहन्तु) पहुँचावें वैसे (अपि) निरन्तर चलनेवाले जोड़े (अपि) भी सबको प्राप्त कराने का समर्थ होत है और जो बिजुली और अग्नि (अप्यम्) जलों से (निः, धर्मथ) शब्द करने है तो वे दोनों (पयस्थात्) तुल्य स्थान में (सीम्) सब प्रकार प्राप्त कराते और जो (हव) हृदया के सदृश प्रिय (मघोन) धनादयपुरुषों का (निः) अत्यन्त (वर्य) स्वीकार करते हैं तो सुख में (तर्मासि) अन्धकारों को हटाने को समर्थ होया ॥ ९ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। हे मनुष्यो । जो अग्नि और जल का संयोग कर शब्द कर और आप से यन्त्रकलाओं की तडित करके वाहनादिकों को चलावें तो आप अपने को और मित्रों को धन से युक्त करके दुष्टों के पार जावें और अन्धों को भी पार करें ॥ ९ ॥

वातस्य युक्तान्सुयुजश्चिद्वान्कविश्चिद्वेषो अजगमवस्युः ।

विश्वे ते अत्र मरुतः सर्वाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०॥३०॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्वन् जो ( ते ) आपके ( अत्र ) इस शिल्पविद्या के जाननेवाले कार्य में ( सखाय ) मित्र ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( मरुत ) ऋतु ऋतु में यज्ञ करनेवाले विद्वान् जन ( ब्रह्माणि ) धनों का अन्तो की ओर ( तविषीम् ) सेना की ( अवर्धन् ) वृद्धि करते हैं और ( वातस्य ) वायु के वेग से ( युक्तान् ) युक्त हुए ( सुयुजः ) उत्तम प्रकार पदार्थों के मेल करनेवाले ( चित् ) निश्चित ( अश्वान् ) शीघ्रगामी अर्थात् तीव्र वेगयुक्त अग्नि प्रादि पदार्थों को ( अजगम् ) खलावे उनको ( एषः ) यह वर्तमान ( अवस्युः ) अपने को रक्षण की इच्छा रखनेवाले ( कवि - चित् ) निश्चित बुद्धिमान् आप निरन्तर सत्कार करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे ऐश्वर्य की इच्छा रखनेवाले पुरुष ! जो जन अग्नि प्रादि पदार्थों की विद्या से विविध आश्चर्यजनक वाहन आदि कार्यों की सिद्धि कर सकत हैं उनके साथ मित्रता करके और उनसे विद्या को प्राप्त हो अभीष्ट कार्यों की सिद्धि करने हुए आप अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होंगे ॥ १० ॥

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।

मरुत्क्रमेतश्चः सं रिणाति पुरो दधत्सनिप्यति क्रतुं नः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो ( सूर ) सूर्य के ( चित् ) सदृश ( परितक्म्यायां ) सर्व ओर से हर्ष होने हैं जिस रात्रि में उस में ( पूर्वम् ) प्रथम ( रथम् ) सुन्दर वाहन को ( उपरम् ) मेघ के सदृश ( करत् ) करे और ( जूजुवांसम् ) अत्यन्त वेग से युक्त ( चक्रम् ) कलाघों को खलानेवाले चक्र को ( एतश्च ) जैसे थोड़ा थोड़े वाले को वैसे सब प्रकार ( भरत् ) धारण करे ( पुर ) पहिले चक्र को ( सम्, रिणाति ) प्राप्त होता वाहन का ( दधत् ) धारण करता और ( न ) हम लोगों की ( क्रतुम् ) बुद्धि वा कर्मों का ( सनिप्यति ) मेहनत करे उसका आप सब प्रकार सत्कार करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य कलाकौशल में वाहनो के यन्त्रों को रथ के जल और अग्नि के अत्यन्त याग में चक्रों को उत्तम प्रकार चलाय कार्यों को सिद्ध करें तो जैसे सूर्य और पवन मेघ को वैसे बहुत भारयुक्त वाहन को अन्तरिक्ष जल और स्थल में पहुँचाने को समर्थ होंगे ॥ ११ ॥

आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सर्वाय सुतसोममिच्छन् ।

वदन्प्राव वदिं श्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्रन्ति ॥१२॥

पदार्थ—हे ( जना ) प्रसिद्ध विद्वान्जनों जो ( अयम् ) यह ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवाला ( अभिचक्षे ) सब ओर से प्रसिद्ध होने को ( सुतसोमम् ) सपन्न की पदार्थविद्या जितने ऐसे ( सखायम् ) मित्रकी ( इच्छन् ) इच्छा करता और ( गावा ) गजना में युक्त मेघ के सदृश ( वदन् ) उपदेश देता हुआ जन ( वदिम् ) अग्नि के स्थान को ( अब, आ, जगाम ) प्राप्त होवे ( यस्य ) जिसके ( जीरम् ) वेग को ( अध्वर्यव ) विद्यारूप यज्ञ के सम्पादक अर्थात् उक्त यज्ञ को प्रसिद्ध करनेवाले जन ( वश्रन्ति ) प्राप्त होते हैं और जो दो शिल्पविद्या को ( श्रियाते ) धारण करें उन दोनों का सदा ही आप लोग सत्कार करें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो जन विद्या की प्राप्ति तथा विद्या देने के लिए सम्पूर्ण जनो के साथ मित्रता करके मिले वे सम्पूर्ण विद्या प्राप्त होने को समर्थ होंगे ॥ १२ ॥

ये चाकनन्त चाकनन्त न ते मर्ता अमृत मो ते अह आरं ।

बावन्धि यज्युत तेषु धेद्योजो जनेषु येषु ते स्वाम ॥१३॥३१॥

पदार्थ—हे ( अमृत ) आत्मस्वरूप स मरणधर्मरहित विद्वान् ( ये ) जो विद्या विनय और सत्य आचरणों की ( चाकनन्त ) कामना करते हैं तथा अन्यो के लिए भी ( चाकनन्त ) कामना करने हैं ( ते ) वे ( मर्ता ) मनुष्य सत्य की ( नृ ) शीघ्र कामना करते हैं और ( ते ) वे ( अह ) अपराध को ( मो ) नहीं ( आ, अरद् ) सब प्रकार स प्राप्त हो और वे ( उत ) ही ( यज्युन् ) सत्यभाषण आदि यज्ञ के अनुष्ठान करनेवाले जनो को ( बावन्धि ) बन्धनयुक्त करने हैं तथा ( येषु ) जिन ( जनेषु ) सत्य आचरण करनेवाले मनुष्यों में हम लोग ( ते ) आप का मित्र ( स्वाम ) होंगे ( तेषु ) उन हम लोगों में आप ( भोज ) पराक्रम को ( वेहि ) धारण कीजिए ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो जन विद्या सत्य आचरण तथा परोपकार की और अधर्म प्राकरण के त्याग की कामना करके सब के उपकार की इच्छा करें वे वाग्यवादयुक्त होंगे और हम लोग भी ऐसे होंगे ऐसी इच्छा करें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और शिल्पविद्या के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जासमी चाहिए ॥

यह इकतीसवाँ सूक्त और इकतीसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ द्वादशशतस्य द्वाविंशतस्य सूक्तस्य गालुरात्रेय ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१, ७, ८, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, १०, १२ मिष्टुप् । ५, ६, ९, १३ पृथुलम् ।

शेषतः स्वरः । ५, ८ स्वरद्वयः । ६ भुरिक् पङ्क्तिः ।

पञ्चमः स्वरः

अब बारह ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम-द्वितीय मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजपुरुषों को कहते हैं—

अर्द्धस्तसमसृजो वि स्वानि त्वमर्गवावर्धधानां अरम्णाः ।

महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यदः सृजो वि धारा अव दानवं इन् ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के नाश करनेवाले राजन् ! जिस प्रकार सूर्य ( उत्सम् ) कूप के समान ( महान्तम् ) बड़े ( पर्वतम् ) पर्वताकार मेघ को नाश करके ( अवर्धधानान् ) अत्यन्त बड़े हुएों को ( अवर्ध ) नाश करता है और ( अर्गवान् ) नदियों वा समुद्रों का ( सृज ) त्याग करता है वैसे ( त्वम् ) आप ( स्वानि ) इन्द्रियों का ( वि ) विशेषकर त्याग कीजिये और हम लोगों को ( वि, अरम्णा ) विशेष रमण कराइये और ( यत् ) जो सूर्य ( धारा ) जल के प्रवाहों के सदृश वाणिया का और ( दानवम् ) दुष्ट जन का ( अब, हुम् ) नाश करता है ( व ) आप लोगों के लिए ( वि ) विशेष ( वि, असृज ) विशेष कर त्यागना अर्थात् जलादि का त्याग करता है उसका सत्कार प्रशंसा उत्तम क्रिया कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । राजा जैसे सूर्य गिराये हुए मेघ से नदी और समुद्र आदिको को पूर्ण करता और तटों को तोड़ता है वैसे ही अन्याय को गिरा और न्याय से प्रजा का पालन कर के दुष्टों का नाश करे ॥ १ ॥

त्वमुत्सां क्रतुर्भिर्ब्रह्मानां अरह उधः पर्वतस्य वज्रिन् ।

अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वां इन्द्र तविषीमवर्धथाः ॥२॥

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) अच्छे वज्रवाले और ( उग्र ) तेजस्वी ( इन्द्र ) सूर्य के सदृश वर्तमान राजन् ( त्वम् ) आप जैसे होती करनेवाले जन ( क्रतुभि ) वमन्त प्रादि ऋतुओं में ( ब्रह्मानान् ) अत्यन्त बड़े हुएों को ( उत्सान् ) कूपों के सदृश ( अरह ) खलाता है और जैसे सूर्य ( पर्वतरथ ) मेघ के ( उध ) जलाधार धनसमूह का ( चित् ) और ( प्रयुतम् ) बहुत प्रकार ( शयानम् ) शयन करने हुए के सदृश आचरण करने हुए ( अहिम् ) मेघ का ( जघन्वान् ) नाश करता है वैसे आप ( तविषीम् ) बल्युक्त मेना का ( अवर्धथा ) धारण करिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे होती करनेवाले जन कूपों से जल को क्षेत्रों के प्रति प्राप्त कर अन्न उत्पन्न करने सब ऋतुओं में सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं वैसे ही आप प्रजाओं की उत्पत्ति कीजिये ॥ २ ॥

अब इन्द्रपदवाच्य धनुर्वेदवित् राजपुरुषों को कहते हैं—

त्यस्य चिन्महतो निर्गमस्य वर्धर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।

य एक ददप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तदयान ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( य ) जो ( एक ) एक ( अप्रति ) नहीं है विप्रवास जिन के वह ( मन्यमान ) आदर किय गये आप ( तविषीभि ) सेना प्रादि बलों से जैसे ( इन्द्र ) सेना का स्वामी ( त्यस्य ) उम ( महत् ) बड़े ( मृगस्य ) शीघ्र खलनेवाले मेघ का ( वर्ध ) नाश करते हैं जिन में तदनुकूल ( जघान ) नाश करता है वैसे हम लोगों को ( चित् ) भी प्रकट कीजिए ( आत् ) अनन्तर ( अस्मात् ) इससे जैसे ( अन्य ) भिन्न और जन ( नि ) अत्यन्त ( अजनिष्ट ) उत्पन्न करता है वैसे ( इत् ) ही आप ( तदयान् ) बलों में उत्पन्न हम लोगों का ही उत्पन्न कीजिये अर्थात् प्रकट कीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे सूर्य मेघ को जीतकर अपने प्रताप को प्रकट कर के सब प्राणियों का पालन करता है वैसे ही धनुर्वेद की विद्या को जाननेवाला एक भी अनेकों को जीतकर प्रजाप्रा का पालन करे ॥ ३ ॥

फिर राजविवय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्यं चिंदशां स्वधया मर्दन्तं मिहो नपातं सुवृथं तमोगाम् ।

वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुक्लम् ॥४॥

पदार्थ—हे सेना के ईश वीरपुरुष आप ( एषाम् ) इन वीरों के मध्य में ( स्वधया ) अन्न आदि से ( मर्दन्तम् ) प्रसन्न होता हुआ जो जीव ( त्यम् ) उस के ( चित् ) समान जैसे ( वृषप्रभर्मा ) वर्धनेवाले मेघ को धारण करनेवाला सूर्य ( मिह ) वृष्टि के ( नपातम् ) नहीं गिरनेवाले ( सुवृथम् ) सुन्दर बड़ते हुए ( तमो-गाम् ) अन्धकार को प्राप्त अर्थात् सघन घन मेघ को ( जघान ) नाश करें वैसे ( वज्री ) उत्तम शस्त्र और अस्त्रों से युक्त होते हुए ( वज्रेण ) तीव्र शस्त्र से ( दानवस्य ) दुष्टजन के ( शुक्लम् ) सुमानेवाले बलवान् ( भामम् ) कोष को ( नि ) निरन्तर नाश करिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । हे राजन् ! जैसे सूर्य प्रति विस्तारयुक्त मेघ का नाश कर भूमि में गिरा के जगत् की रक्षा करता है वैसे ही प्रतिप्रबल भी शत्रुओं का नाश कर नीचे गिरा के न्याय से प्रजाओं का पालन कीजिये ॥ ४ ॥

अथ शिल्पविद्या के जाननेवाले विद्वान् के गुणों को कहते हैं—

त्वं चिदस्य क्रतुर्भिर्निषत्समर्मणो विददिदस्य मर्म ।

यदी सुस्रज प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५॥

पदार्थ—हे ( सुस्रज ) श्रेष्ठ क्षत्रियकुल वा धन से युक्त राजन् । आप ( अस्य ) इस ( अमर्षण ) मर्म की बातों से रहित शत्रु की ( क्रतुभिः ) बुद्धि वा कर्मों से ( निषत्सम् ) स्थित ( त्यम् ) उसको ( चित् ) तथा ( अस्य ) इस मेघ के ओर ( वावस्थ ) आनन्द के ( प्रभृता ) अत्यन्त धारण करने वा पोषण करने में ( यत् ) जिस ( मर्म ) गुण अवयव को ( इत् ) ही ( चित् ) प्राप्त होवे उसको ( ईम् ) सब प्रकार प्राप्त हुए ( युयुत्सन्तम् ) युद्ध करने की इच्छा करने हुए का ( तमसि ) रात्रि में ( हर्म्ये ) प्रामाद के ऊपर आप ( धा ) धारण कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो पदार्थों के गुण स्वरूपों को जान के बुद्धि से शिल्पविद्या की बुद्धि करते हैं वे उत्तम राज्य और ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥ ५ ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वं चिदित्था कल्पयं शयानमसूर्यं तमसि वावृणानम् ।

तं चिन्मन्दानां वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जो ( इन्द्र ) सेना का ईश ( उच्चैः ) उच्चता के साथ ( अपगूर्या ) उद्यम कर ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए पदार्थ का ( मन्दान ) आनन्द करना हुआ ( वृषभ ) श्रेष्ठ पुरुष ( तम् ) उसको ( चित् ) भी ( कल्पयम् ) कल्पने को तथा ( असूर्य ) जिस में सूर्य्य विश्वमान नहीं उस ( तमसि ) रात्रि में ( शयानम् ) शयन करते और ( वावृणानम् ) निरन्तर बुद्धि को प्राप्त होने हुए को ( चित् ) वा मेघ को ( जघान ) नाश करना है ( इत्था ) इस प्रकार से ( त्यम् ) उस शत्रु का भी नाश करे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करता है अन्धकार का निवारण करके, वैसे ही राजा का चाहिए कि दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों का पालन करे ॥ ६ ॥

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधयमिष्टं सहो अग्रतीतम् ।

यदी वज्रस्य प्रभृता ददाभु विश्वस्य जन्तोर्वधम चकार ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( यत् ) जो ( इन्द्र ) राजा ( महते ) बड़े ( दानवाय ) दात करनेवाले के लिए ( वध ) वध को ( उत, यमिष्ट ) उत्तम नियम करे और ( यत् ) जिस ( अग्रतीतम् ) अग्रभिजनों से नहीं प्राप्त हुए ( सह ) बलको ( ईम् ) सब और से ( वज्रस्य ) शस्त्रप्रहारके ( प्रभृता ) उत्तम प्रकार धारण करने में ( ददाभु ) नाश करता और ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण ( जन्तो ) जीवमात्र के मध्य में ( अवधम् ) नीचा ( चकार ) करण अर्थात् जो सब पर शयना आक्रमण करता है उस को जान के उत्तम प्रकार प्रयोग करो अर्थात् उससे प्रयोजन सिद्ध करो ॥७॥

भाषार्थ—हे राजा प्रादि जनो ! आप लोग सूर्य्य के सदृश वर्त्तव्य कर के राज्य की प्रथम दशा का निवारण करे ॥ ७ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्यं चिदर्णे मधुपं शयानमसिन्वं वज्रं वददुग्रः ।

अपादमत्रं महता वधेन दुर्ग्योण आशुण्डमृधवाचम् ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे ( उग्र ) तजस्वी सूर्य्य ( महता ) बड़े ( वधेन ) वध से ( दुर्ग्योण ) गृह में ( त्यम् ) उस ( चित् ) निश्चित ( अर्णम् ) जल का ( मधुपम् ) मधुर पदार्थों की रक्षा करनेवाले का ( शयानम् ) और सोत हुए के सदृश वर्त्तमान ( असिन्वं ) नहीं बद्ध ( वज्रम् ) स्वीकार करने योग्य ( अपादम् ) पादों से रहित और ( अत्रम् ) सर्वत्र व्याप्त होनेवाले ( मृधवाचम् ) हिसित बाणी से युक्त मेघ का ( महि ) अनीव ( आवत् ) ग्रहण करें वा ( नि ) अत्यन्त ( आशुण्डम् ) स्वीकार करता है वैसे आप वर्त्तव्य कीजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तुपोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे बिजुली मेघ को भूमि में गिराती है वैसे आप दुष्टों को नीच दशा को प्राप्त करिये ॥ ८ ॥

को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको चना भरते अग्रतीतः ।

इमे चिदस्य जयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो मियसा जिहाते ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ( क ) कीन ( अस्य ) इसके ( शुष्मम् ) बलको और ( तविषीम् ) सेना को धारण करे और ( इमे ) ये ( देवी ) प्रकाशमान दो अग्नि ( इन्द्रस्य ) बिजुली के ( ओजसः ) बल के ( मियसा ) धारण से ( नु ) शीघ्र ( जिहाते ) चलते हैं इन दोनों के मध्य में ( एक ) एक ( जना ) धनी को ( भरते ) धारण करता है और दूसरा ( अप्रतीत ) नहीं प्रत्यक्ष हुआ ( अस्य, चित् ) भी

( जयस ) वेगवान् का धारण करनेवाला वर्त्तमान है वे ये दोनों सबको ( भरते ) स्वीकार को प्राप्त होवें क्योंकि ये सब पदार्थ उन दोनों से धारण किये गये हैं ॥९॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो दो प्रकार का अग्नि—एक तो प्रसिद्ध सूर्य्य पृथ्वी में प्रसिद्धरूप और दूसरा गुप्त बिजुलीरूप ये ही दोनों सब अग्न को धारण करके चलते हैं ॥ ९ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहोत इन्द्राय गातुरुशुतीव येमे ।

सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधावने क्षितयो नमन्त ॥१०॥

पदार्थ—हे ( युवते ) युवावस्था को प्राप्त हुई ( स्वधितिः ) वज्र के सदृश ( देवी ) विदुषी तुम ( अस्मै ) हम ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य्य के लिए यह दो स्त्रियों ( गातुः ) भूमि और ( उशतीव ) कामना करती हुई स्त्री के समान ( यत् ) जैसे ( ओजः ) वीर्य्य को उत्तम प्रकार ग्रहण करके ( सम्, नि, येमे ) अच्छे प्रकार नियम में रखती और ( आभि ) इन क्रियाओं से ( स्वाधावने ) धन को धारण करनेवाले के लिए ( विश्वम् ) समस्त व्यवहार का ( अनु, जिहीते ) अनुकूल चलताती हैं तथा जैसे ( क्षितयः ) मनुष्य ( नमन्त ) नम्र होने हैं वैसे आप होइये ॥ १० ॥

भाषार्थ—जैसे ब्रह्मचर्य्य को धारण की हुई ब्रह्मचारिणी कन्या पूर्ण बीबीन वर्ष की अवस्था में युक्त हुई पति की कामना करती हुई, गुण, कर्म और स्वभाव के सदृश और प्रिय स्वामी का ग्रहण करती है वैसे ही बिजुली आदि रूप अग्नि सम्पूर्ण ससार का धारण करना है और जैसे गुणवान् जनो को मनुष्य नमते हैं वैसे ही उत्तम लक्षणों से युक्त स्त्रीपुरुषों का सम्पूर्ण जन नमते हैं ॥ १० ॥

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।

तं मे जगृभ आशसो नविष्टं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! किया है अद्वितीय वध ब्रह्मचर्य्य जिसने ऐसे ( एकम् ) द्वितीय सहाय से रहित ( सत्पतिम् ) श्रेष्ठ क पालन करनेवाले ( पाञ्चजन्यम् ) प्राण आदि पाब पवन बनवान् जिसके उमक पुत्र और ( जनेषु ) मनुष्यों में ( जातम् ) प्रसिद्ध और ( यशसम् ) यशस्वी ( त्वा ) आपको ( शृणोमि ) सुनती हैं ( तम् ) उन ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त ( नविष्टम् ) अत्यन्त नवीन ( मे ) मेरे स्वामी की ( हवमानास ) ग्रहण करने की इच्छा करते और ( आशस ) मनोरथ की इच्छा करते हुए जन ( दोषा ) रात्रियों और ( वस्तो ) दिन का ( नु ) शीघ्र ( जगृभ ) ग्रहण करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—ब्रह्मचर्य्य को वेदोक्त ममानुसार धारण किये हुई कन्या प्रसिद्ध जिस का यश ऐस श्रेष्ठ पुरुष उत्तम स्वभाववाले और उत्तम गुण और रूप से युक्त प्रीति करनेवाले स्वामी के अर्थात् पतिके ग्रहण करने की इच्छा करे वैसे ही ब्रह्मचारी भी अपने सदृश ही जो ब्रह्मचारिणी स्त्री उस का ग्रहण करे ॥ ११ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एवा हि त्वामृतुथा यातर्यन्तं मधा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।

किन्तै ब्रह्मणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर्य्य युक्त विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त पति की कामना करती हुई मैं ( हि ) निश्चय से ( विप्रेभ्यः ) बुद्धिमान् जनो के लिए ( मधा ) धनो को ( ददतम् ) देन और ( शृणुया ) श्रुत श्रुत के मध्य में ( यातव्यम् ) यन्त्रा के लिए प्रयत्न करते हुए ( त्वाम् ) आप को ( एवा ) ही ( शृणोमि ) सुनाती हैं और ( ते ) आपके ( ये ) जो ( ब्रह्मणः ) चार वेद के जाननेवाले ( सखायः ) मित्र वे ( त्वाया ) आप में ( किम् ) क्या ( गृहते ) ग्रहण करते और किस ( कामम् ) मनोरथ को ( निदधुः ) धारण करने हैं ॥ १२ ॥

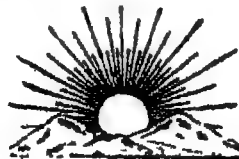
भाषार्थ—स्त्री श्रुत २ के मध्य में जाने की कामनावाला है वीर्य्य जिस का ऐसे ऊर्ध्वरेत अर्थात् वीर्य्य का वृषा न छोड़नेवाले ब्रह्मचर्य्य को धारण किये हुए उत्तम स्वभाववाले और विद्यायुक्त उत्तम यशवाले जन को पतिपने के लिए स्वीकार करे उस के साथ पथावत् वर्त्तव्य करके पूर्ण मनोरथ करनेवाली और सौभाग्यसे युक्त होवे ॥१२॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वान् के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

इस अध्याय में अग्नि विद्वान् और इन्द्रादिको के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कह हुए अर्थों की पहिले अध्यायो में कहे हुए अर्थों के साथ सगति है ऐसा जानना चाहिए ॥

यह वर्त्तमान सूक्त और तैत्तिरीयार्णवार्णव, चौथे अष्टक में प्रथम अध्याय और पञ्चम मण्डल में द्वितीय अनुवाक समाप्त हुआ ॥

ॐ





## अथ द्वितीयाध्यायारम्भः ॥

श्रीः विश्वानि देव सवितुर्वितानि परा सुव । यद्गर्भं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ ब्रह्मर्षेय्य अयस्त्रिंशत्सप्तमस्य सूक्तस्य सप्तमः प्राजापत्य ऋषिः । इन्द्रो वेत्ता ।  
१, ७, पङ्क्तिः । ३ निबृत्त्यङ्कितः । ४, १० ध्रुवपङ्क्तिः । ५, ६ स्वरान्  
पङ्क्तिपङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः । ८ त्रिपङ्क्तिः । ९ निबृत्त्यङ्कितः । वेत्ता स्वरः ।

अब दूसरे अध्याय का प्रारम्भ है । तथा वरा ऋषि वाले तीसरे सूक्त का  
प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से इन्द्र के गुण को कहते हैं—

महिं महे तवसे दीध्ये नृनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।

यो अस्मै सुमतिं वार्जसातो स्तुतो जने समर्थैरिषिभिर्युक्ते ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( य ) जो ( अतव्यान् ) प्रयत्न करना हुआ ( स्तुत )  
स्तुति किया गया ( अने ) मनुष्यों के समूह में ( समर्थ ) सयाम की इच्छा करता  
हुआ ( वार्जसातो ) सयाम में ( सुमतिम् ) उत्तम बुद्धि को ( महे ) बड़े ( तवसे )  
बल के लिये ( विभक्त ) जाने ( अस्मै ) इस ( तवसे ) बली ( इन्द्राय ) अत्यन्त  
ऐश्वर्य से युक्त के लिये ( इत्था ) इस प्रकार ( महि ) बड़े ( नृन् ) मनुष्यों का  
मैं ( दीध्ये ) प्रकाश करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य जिस मनुष्य के लिए  
सुखविषयक उपकार करे वह उसके लिये प्रत्युपकार निरन्तर करे ॥ १ ॥

स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्केर्हरीणां वृषन्योऽश्वमेधः ।

या इत्था मधवन्तु ओषं वक्षो अभि मार्यः संक्षि जनान् ॥२॥

पदार्थ—हे ( वृषन् ) सुख की वृष्टि करने हुए ( अश्वमेधः ) अत्युत्तम वन से  
युक्त और ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले ( स ) वह ( धियसान ) ध्यान करता  
हुआ ( अर्कः ) स्वामी राजा ( त्वम् ) आप ( अर्कः ) विचारो के ( न ) हम  
लोगों के वा हम लोगों को ( हरीणां ) मनुष्यों के सम्बन्ध में ( योषम् ) एकत्र  
करने का ( अश्व ) सेवन कीजिये और ( या ) जो उत्तम नीतिवा है उनकी  
( ओषम् ) प्रीति को ( वन्तु ) अनुकूल प्राप्त कीजिये ( इत्था ) इस प्रकार से  
( वक्षो ) मनुष्यों को ( अभि, प्र, संक्षि ) अच्छे प्रकार सम्बन्धित करते हो ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वही उत्तम विद्वान् है जो  
मनुष्यों को बुद्धि तथा योगाभ्यास आदि से बढ़ावे और सब काल में नीति के अनुसार  
कर्म कर के प्रजाओं को प्रसन्न करे ॥ २ ॥

न ते त इन्द्राभ्यः स्मरन्वायुक्तासो अभ्रह्मता यदसन् ।

तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मि देव यमसे स्वर्गः ॥३॥

पदार्थ—हे ( वज्रहस्ता ) शस्त्र और अस्त्रों को बाहुओं में धारण करनेवाले  
( अश्वमेधः ) महापुरुष ( देव ) दानशील ( इन्द्र ) राजन् जो ( ते ) आपकी  
( अभ्रह्मता ) निर्धनता ( अयुक्तासः ) और योग से रहित पुरुष ( न ) नहीं ( अधि )  
सम्मुख ( अस्तम् ) होते हैं ( यत् ) जब ( ते ) वे ( अस्तम् ) हम लोगों से दूर बसते  
हैं तब ( स्वर्गः ) उत्तम चीजों से युक्त आप ( रथम् ) किरण के सदृश ( तम् )  
उस ( रथम् ) सुन्दर वाहन को ( या, यमसे ) विस्तृत करते हो इस से हम क  
( अधि ) ऊपर ( तिष्ठ ) स्थित कीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे ऐश्वर्य से युक्त । जो अयोग्य व्यवहार वाले होवें वे हम  
लोगों के और आप के दूर बसें और आप वाहनों के चलाने की विद्या को विशेष कर  
के जानें तो युद्ध में भी सामर्थ्य को प्राप्त होवें ॥३॥

किर इन्द्र के पुष्पों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

पुष यत्त इन्द्र सन्त्युक्ता गवै चक्योर्वरासु पुष्यन् ।

तत्तु सूर्याय चिदोक्तं स्व इषा समस्तु दासस्य नाम चित् ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त ( पुष ) बलिष्ठ होते हुए  
आप ( ते ) आपके ( अस्तम् ) जो ( पुष ) बहुत ( उक्ता ) प्रशंसित कर्म ( गवै )  
गौ आदि पशुओं के हित के लिये ( चित् ) हैं उनको ( चक्योर्वरासु ) भूमियों में और  
( सन्त्युक्ता ) सङ्ग्रामों में ( पुष्यन् ) युद्ध करते हुए ( चक्य ) करें और शत्रुओं  
को ( तत्तु ) सूक्ष्म अर्थात् निर्बल करते हो और ( सूर्याय ) सूर्य के सदृश वर्तमान  
के लिये ( चित् ) नी ( चित् ) अपने ( ओक्तं ) गृह में ( दासस्य ) दास के  
( चित् ) निश्चित ( नाम ) नाम को प्रकट कीजिये ॥४॥

भाषार्थ—हे राजन् । जितनी उत्तम सामग्रियाँ होवें उनको सेना में युद्ध  
के लिए स्थापित कीजिये और जो गृह के लिये वस्तु होवें उनको गृह में स्थापित  
कीजिये ॥४॥

वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्षी जज्ञाना याताश्च रथाः ।

आस्माञ्जगम्यावहिगुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभुयेषु चारु ॥५॥१॥

पदार्थ—हे ( जहिगुष्म ) मेघ को सुखानेवाले सूर्य के सदृश वर्तमान  
( इन्द्र ) राजन् ( ये ) जो ( ते ) आपके ( शर्षः ) बल और ( जज्ञाना ) उत्पन्न  
तथा ( याता ) प्राप्त हुए ( नरः ) नायक ( रथा, च ) और वाहन आदि हैं  
( ते ) वे ( आस्मात् ) हम लोगों को प्राप्त होवें और जो ( भग ) ऐश्वर्य के  
योग के ( न ) सदृश ( प्रभुयेषु ) अत्यन्त धारण करने योग्यो में ( हव्यः ) ग्रहण  
करने योग्य ( चारु ) सुन्दर ( सत्वा ) स्थिर होनेवाले आप हम लोगों को  
( आ, जगम्यात् ) यथावत् प्राप्त होवें उन आपको ( वयम् ) हम लोग ( च ) भी  
प्राप्त होवें ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् । जब हम लोग आपके  
और आप हम लोगों के मित्र होवें तभी हम लोगों का ऐश्वर्य बड़े और जैसे ऐश्वर्य  
सबका प्रिय है वैसे ही धर्म प्रिय सदा रक्षा करने योग्य है ॥५॥

पृथ्नेयमिन्द्र त्वे शोचो नृम्णानि च नृत्मानो अमर्त्तः ।

स न एनी वसवानो रयि वाः प्रार्थ्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्वन् जो ( नृत्मान ) नृत्य करता हुआ ( अमर्त्तः )  
आत्मभाव से मरणचर्म्मरहित मन ( त्वे ) आप में ( पृथ्नेयम् ) पूछनेयोग्य  
( शोचः ) पराक्रम ( नृम्णानि, च ) और मनुष्यों से रमनेयोग्य धनो को धारण  
करें ( स ) वह ( एनीम् ) प्राप्त होने योग्य को ( वसवान् ) वसाता हुआ  
( रयिम् ) धन को ( वाः ) दीजिये ( हि ) जिससे ( तुविमघस्य ) बहुत धन के  
( अर्घ्य ) स्वामी होते हुए ( दानम् ) दान की ( प्र, स्तुषे ) प्रशंसा करते हो ( स )  
वह आप ( न ) हम लोगों के लिये सुख दीजिये ॥६॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो । आप लोग विद्वानों के प्रति पूछने योग्य प्रश्नों को  
कर, धन को बढ़ाव और ऐश्वर्य की वृद्धि करके उत्तम मार्ग में दान लेकर प्रशंसित  
विद्या और आचरण युक्त होवें ॥६॥

एवा न इन्द्रोतिमिरव पाहि शृणुतः शूर काक्वन् ।

उत त्वं ददतो वार्जमातो पिमोहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् । आप ( अतिभिः ) अन्वेषण आदि रक्षा  
आदिको मे ( एवा ) ही ( शृणुतः ) उपदेशक ( काक्वन् ) मिली ( न ) हम  
लोगों की ( अब ) रक्षा कीजिये और हे ( शूर ) भय से रहित ( वार्जमातो )  
सङ्ग्राम में ( त्वम् ) त्वत्त्वा को आच्छादन करनेवाले कवच को ( ददतो ) देने  
हुए ( सुषुतस्य ) उत्तम प्रकार सस्कार किये गये ( मध्वः ) मधुर और ( चारोः )  
उत्तम जन के ऐश्वर्य का ( पाहि ) पालन कीजिये और ( उत ) भी ( पिमोहि )  
प्राप्त कीजिये ॥७॥

भाषार्थ—हे राजन् । आप शूरवीर विद्वान् शिल्पीजनों की रक्षा कर प्रजाओं  
का निरन्तर पालन करके सङ्ग्राम में शत्रुओं को जीत कर प्राप्त कीजिये ॥७॥

अब विद्वद्भिष्य को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उत त्वे मा पौरकुत्स्यस्य सूरैस्सदस्यो हिरणिनो ररायाः ।

बहन्तु मा दश रयेतासो अस्य नैरिजितस्य क्रतुमिर्नु संधे ॥८॥

पदार्थ—( पौरकुत्स्यस्य ) बहुत वज्र आदि मत्स्य और अस्त्रों को जानने  
वाले के सन्तान ( सदस्यो ) जिससे डाकू चोर आदि डरते हैं ऐसे ( हिरणिन )  
सुवर्ण धन आदि से युक्त ( अस्य ) इस ( नैरिजितस्य ) पर्वत में रहनेवाले ( सूरैः )  
बुद्धिमान् जन की ( क्रतुभिः ) बुद्धि और कर्मों के साथ ( ररायाः ) रमते वा हते  
हुए ( मा ) युक्त को ( बहन्तु ) प्राप्त हों ( उत ) और भी ( त्वे ) वे ( दश )  
वश संख्या परिमित ( स्येतासः ) श्वेत बरों वाले घोड़े के सदृश ( मा ) युक्त को  
प्राप्त हों उनका मैं ( नु ) प्रीति ( संधे ) सम्बन्ध करता हूँ ॥८॥

भाषार्थ—जो मत्स्य धारण करनेवाले और मत्पुरुष जिनके मित्र ऐसे जन  
बुद्धि को बढ़ाते हुए सुष्ठों का निवारण करते हैं उनके साथ मैं मेल करता हूँ ॥८॥

उत त्मे मां मास्ताभ्यस्य शोणाः क्रत्वाभ्यासो विदथस्य रातो ।  
सहस्रा मे व्यबतानो ददान आनुकमर्यो वपुषे नार्चत ॥६॥

पदार्थ—जो ( मास्ताभ्यास ) बुद्धि वा कर्म ही है वन जिनका वे ( शोणा ) रक्त गुण से विशिष्टजन और ( मास्ताभ्यास ) पवनो के सदृश बोझों के सम्बन्धी ( विदथस्य ) प्राप्त होने योग्य ( मे ) मेरे वा मेरे लिये ( रातो ) दान मे ( सहस्रा ) हजारों को ( व्यबतान ) प्राप्त होता हुआ जन ( उत ) भी सुख देने की समर्थ हो ( त्मे ) वे और जो ( ददान ) देता हुआ ( वपुषे ) सुन्दर शरीर के लिये ( मा ) मुझको ( आनुकम ) अनुकूलतापूर्वक ( आर्चत ) आदरयुक्त करे वह ( अर्य ) स्वामी भी सब प्रकार से तिरस्कृत नहीं होता है ॥६॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो हम लोगों के अभीष्ट की सिद्धि करते हैं उनके अभीष्ट की हम लोग भी सिद्धि करें इस प्रकार स्वामी और सेवक भी वत्सवि करें ॥६॥

उत त्मे मां ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।

महा रायः संवरणस्य ऋषैर्ब्रजं न गावः प्रयता अपि गमन ॥१०॥२॥

पदार्थ—जो ( ध्वन्यस्य ) ध्वनियों मे कुशल और ( संवरणस्य ) स्वीकार किये हुए ( राय ) धन के ( महा ) महत्त्व से ( उत ) और ( लक्ष्मण्यस्य ) श्रेष्ठ लक्षणों से उत्पन्न ( ऋषे ) मन्त्रों के अर्थ जाननेवाले के सम्बन्ध मे ( प्रयता ) प्रयत्न करते हुए जन है ( त्मे ) वे ( गावः ) गौवं ( वज्रम् ) गोष्ठ का ( न ) जैसे ( अपि ) निश्चित ( गमन ) जाती है वैसे महत्त्व से ( मा ) मुझ को भी प्राप्त होते हैं और जो ( यताना ) यत्न करती हुई ( सुरुचः ) उत्तम प्रीति वाली मुझ को ( जुष्टा ) प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त हैं उनकी सब प्राप्त होवें ॥१०॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमासङ्कार है। जो मनुष्य प्रयत्न से नहीं प्राप्त हुए की प्राप्ति प्राप्त हुए की रक्षा करते हैं वे जैसे बछड़ों को गौवें वैसे धन को प्राप्त होता है ॥१०॥

इस सूक्त मे इन्द्र और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गत जाननी चाहिए ॥

यह तैत्तिरीय सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ नववर्षस्य चतुर्विंशत्यस्य सूक्तस्य संवरणप्राजापत्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, ६ त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः । २, ४, ५ निष्कजगती ।

३, ७ जगती । ८ विराजगतीछन्दः ।

निषाव स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले चौतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे इन्द्रगुणयुक्त स्त्री पुत्र का वर्णन करते हैं—

अजातशत्रुमजरा स्वर्वस्यनु स्वधामिता वस्मयीयते ।

सुनोतन पचत अस्मवाहसे पुरुष्टताय प्रतरं दधातन ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( स्वर्वती ) सुखवाली ( अमिता ) अतुल उत्तम गुणों से युक्त ( स्वधा ) धन को धारण करनेवाली ( अजरा ) बुद्धावस्था से रहित युवती स्त्री जिस ( अजातशत्रुम् ) शत्रुओं से रहित ( वस्म ) दुष्टों के नाश करने वाले जनको ( अनु, ईयते ) अनुकूलता से प्राप्त होती है उस ( पुरुष्टताय ) बहुता से प्रशंसा किये गये ( अस्मवाहसे ) धन प्राप्त करानेवाले के लिये ( प्रतरम् ) अच्छे प्रकार पार होन है दुख के जिससे उसको ( सुनोतन ) उत्पन्न करो और उत्तम अन्न का ( पचत ) पाक करो और धन आदि का ( अजातन ) धारण करो ॥१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो वररहित अत्यन्त उत्तम गुणों से युक्त और सब का हिनकारी पुरुष अथवा इस प्रकार की स्त्री हो उन दोनों का निरन्तर सत्कार करना योग्य है ॥१॥

अब बिद्विषय मे पाक के गुणों को कहते हैं—

आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मधवा मध्वो अन्धसः ।

यदी मृगाय हन्तवे महाबधः सहस्रमृष्टिमृशनां वधं यमत् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( य ) जो ( उज्जवा ) कामना करता हुआ ( मधवा ) बहुत धन से युक्त जन ( सोमेन ) सोमलता से उत्पन्न रस से ( जठरम् ) उदर की अग्नि को ( आ, अपिप्रत ) अच्छे प्रकार पूर्ण करे और ( मध्व ) मधुर आदि गुणों से युक्त ( अन्धस ) अन्न आदि का भोग करके ( अमन्वत ) आनन्द करे और ( यत् ) जो ( महाबध ) अत्यन्त नाश करनेवाला ( मृगाय ) हरिण को ( हन्तवे ) मारने के लिए ( सहस्रमृष्टिम् ) हजारों वहन जिससे उस ( वधम् ) वध को ( ईम् ) सब प्रकार से ( यमत् ) देवे वह सब सुख को प्राप्त होता है ॥२॥

भाषार्थ—जो मनुष्य वैद्यकशास्त्र की रीति से सोमलता आदि ओषधियों के रस के साथ सत्कारयुक्त किये गये अन्नो का भोग करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर बिद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यो अस्मै घ्नंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति शुभां अह ।

अपाप शक्रस्तनुष्टिमृहति तनुशुभं मधवा यः कवासुखः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( य ) जो ( अस्मै ) इसके लिए ( अस्मै ) दिन मे ( उत ) भी ( वा ) अथवा ( ऊधनि ) प्रभातमय मे ( सोमम् ) जलका ( सुनोति ) पान करता और ( अह ) विशेष करके ग्रहण करने मे ( शुभाम् ) बहुत विद्या प्रकाशवाला ( भवति ) होता तथा ( य ) जो ( शक्रः ) शक्तिमान् ( तनुष्टिम् ) विस्तार की ( ऊहति ) तर्कना करता और ( यः ) जो ( कवासुखः ) विद्वान् जन मित्र जिसके ऐसा ( मधवा ) प्रशंसित धनयुक्त पुरुष ( तनुशुभम् ) शुद्ध शरीर वाले की तर्कना करता है वह निरन्तर दुख को ( अपाप ) दूर करने की तर्कना करता है ॥३॥

भाषार्थ—जो मनुष्य दिन और रात्रि पुरुषार्थ करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातर यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।

वेतोदस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥४॥

पदार्थ ( शक्र ) मामध्यवान् जन ( यस्य ) जिसके ( पितरम् ) पिता का ( यस्य ) जिसकी ( मातरम् ) माता का और ( यस्य ) जिसके ( भ्रातरम् ) भ्राता का ( न ) नहीं ( अवधीत् ) नाश करे ( अतः ) इससे इसका ( न ) नहीं ( ईषते ) नाश करता और ( अस्य ) इसके ( यतङ्करो ) प्रयत्न करनेवाले के ( न ) सदृश ( प्रयता ) अत्यन्त दिय हुआ वी ( वेति ) कामना करता है ( उ ) और ( वस्व ) धनका ( आकरः ) समूह ( किल्बिषात् ) पाप मे पृथक् ( इत् ) ही ( ईषते ) प्राप्त होता है ॥४॥

भाषार्थ—जो पिता माता और भ्राता आदि पालन करें उनके पुत्र आदि को चाहिए कि निरन्तर सत्कार करें और जो पापावरण का त्याग करके धर्म का आचरण करत है वे सब कान मे सुखी होते हैं ॥४॥

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्टागभं नासुन्वता सचते पुष्यता जन ।

जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देव्युं भजति गोमति व्रजे ॥५॥३॥

पदार्थ—जो ( असुन्वता ) नहीं पुरुषार्थ करनेवाले से ( पञ्चभिः ) पाँच इन्द्रियों और ( दशभिः ) दश प्राणों से ( आरम्भम् ) आरम्भ करने की ( न ) नहीं ( वष्टि ) कामना करता वह ( पुष्यता ) पुष्टि को करनेवाले से ( न ) नहीं ( सचते ) सम्बन्धित होता ( जिनाति, जन ) और अपमान का प्राप्त होता है ( वा ) वा ( असुया ) इससे ( हन्ति ) नाश करता है ( वा ) वा जो ( धुनि ) वपनेवाला ( गोमति ) बहुत गौवें विद्यमान जिसमे उस ( व्रज ) गौवों के ठहरने के स्थान में ( देव्युम् ) विद्वानों की कामना करनेवाले का ( आ ) सब प्रकार से ( अजति ) आदर करता और वह सब ( इत् ) ही सुख का भोग करता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो आलस्ययुक्त जन पुरुषार्थ को नहीं करते हैं वे अभीष्टसिद्धि को नहीं प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

अब इन्द्र के सादृश्य से राजगुणों को कहते हैं—

चित्स्वत्तंगः मधुतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विपुणः सुन्वतो वृधः ।

इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्य्यः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( वृधः ) बढानेवाला ( इन्द्र ) बिजुली के सदृश राजा ( चित्स्वत्तंगः ) सम्पूर्ण जगत् का ( दमिता ) दमन करने और ( विभीषणः ) भय देनेवाला है वैसे ( चित्स्वत्तंगः ) विशेष करके दुख का नाश करनेवाला ( सन्वतो ) सश्रम मे ( चक्रमासजः ) कानरूप चक्र के महीमा से उत्पन्न हुआ जन ( विपुणः ) विद्या मे व्याप्त और ( सुन्वतः ) यज्ञ करने और ( असुन्वतः ) नहीं यज्ञ करनेवाले का दमन करनेवाला होता हुआ ( आर्य्यः ) ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य वर्ग आर्य्य राजा ( यथावशम् ) यथाशक्ति ( दासम् ) सेवक शूद्र को ( नयति ) प्राप्त करता है ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आर्य्य तथा उत्तम गुण, कर्म और स्वभाववालों का शूद्र सेवक होता है वैसे ही उत्तम गुण और कर्म से युक्त राजा की प्रजा सेवन करनेवाली होती है ॥६॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषं मजति सुनरं वसु ।

दुर्गे चन धियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्षुधत् ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् जो ( पणोः ) स्मृति किये गये के ( भोजनम् ) पालन वा धन आदि को ( भजति ) प्राप्त होता और ( मुषे ) खोर के लिए दण्ड को और

( बाधुषे ) दानशील के लिए दान ( धन ) भी ( सत् ) उत्तम प्रकार ( वि, भवति ) बाँटता है तथा ( यः ) जो ( अस्मि ) हम जनजन की ( त्विषीम् ) सेना को ( अचक्रवर्त्तु ) अत्यन्त कृति करता है वह ( ईषु ) सब प्रकार से ( विष्वः ) सम्पूर्ण ( जनः ) मनुष्य ( इमे ) दुःख से प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा उत्तम कोट में ( पुष्ट ) बहुत ( सुखम् ) उत्तम मनुष्य जिसमें उस ( बभूवु ) धन का ( आ ) सेवन करता है और राजा से ( भियते ) धारण किया जाता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो राजा चोर डाकू आदि जनों के लिए कठिन दण्ड और श्रेष्ठ जनों के लिये प्रतिष्ठा देता है उसका राज्य धन आदि से युक्त वृद्धि को प्राप्त होना और उसका इस ससार में यश और परलोक में सुख होता है ॥ ७ ॥

फिर पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सं यज्जनो सुधनो विश्वशर्षसाववेदिन्द्रो मधवा गोषु शुभ्रिषु ।

युजं हान्यमकुत प्रवेयन्मुदी गव्यं सृजते सशर्मिधुनिः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( धुनिः ) कपनेवाला ( मधवा ) अत्यन्त श्रेष्ठ बहुत धन से युक्त ( इन्द्र ) राजा और ( यत् ) जो ( सुधनो ) धन से उत्पन्न हुए श्रेष्ठ धन से तथा ( विश्वशर्षसाववेदिन्द्रो ) संपूर्ण बल से युक्त ( जनो ) दो जनों को ( सत्, अवेत् ) श्रेष्ठ प्रकार प्राप्त हो और ( शुभ्रिषु ) उत्तम गुणवाले ( गोषु ) गेनु और पृथिवी आदिकों में ( हि ) जिससे ( युजम् ) युक्त ( अण्यम् ) अन्य को ( अकृत ) करता है और ( प्रवेयन् ) चलती हुई ( गव्यम् ) गीबों के लिए हितकारक ( ईषु ) जन को ( सशर्मिधुनिः ) पदार्थों से ( उत्, सृजते ) उत्पन्न करता है वह सुख करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिए कि अपने राज्य में उत्तम धनी विद्वान् तथा अध्यापक और उपदेशकों की उत्तम प्रकार रक्षा करके उनसे व्यवहार धन और विद्या की उन्नति करे ॥ ८ ॥

सहस्रसामाग्निवेशि गृणीषे शश्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।

तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवस्वेषमस्तु ॥९॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी राजन् ( अर्य ) स्वामी आप ( सहस्रसाम् ) अमङ्गल्य पदार्थों के विभाग करने ( आग्निवेशिषु ) अग्नि को प्रवेश कराने और ( शश्रिषु ) दुःख के नाश करनेवाले ( उपमाम् ) दृष्टान्त और ( केतुम् ) बुद्धि की ( गृणीषे ) स्तुति करते हो ( तस्मै ) उन आपके लिए ( आप ) जलों के सदृश प्रजाएँ ( संयतः ) इन्द्रियों के निग्रह से युक्त हुई ( पीपयन्त ) क्षुब्ध करती हैं ( तस्मिन् ) उन आप राजा में ( अवस्वत् ) गृह के तुल्य ( त्वेषम् ) प्रकाश से युक्त ( क्षत्रम् ) धन वा राज्य ( अस्तु ) होवे ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकनुत्तोपमालङ्कार है । जो राजा होने की इच्छा करे ता सर्वशास्त्रों में प्रविष्ट हुई स्वच्छ और उत्तम गुणों में युक्त बुद्धि को प्राप्त होकर जैसे पितृजन पुत्रों का पालन करते वैसे प्रजाओं का पालन करे ऐसा करने पर श्रेष्ठ राज्य बढ़े ॥ ९ ॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् और प्रजा के गुण वर्णन करने से हम सूक्त के अर्थ को इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ

संज्ञति जाननी चाहिए ॥

यह चौतीसवाँ सूक्त और चौथा वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अवाध्वर्चस्व पञ्चविंशसामस्य सूक्तस्य प्रभुवसुराजिरतो ऋषिः । इन्द्रो

वेवता, १ निष्कवसुष्टु, ३ धुरिगुष्टु, ७ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः

स्वरः, २ धुरिगुष्टिक् ४, ५, ६ स्वरद्विष्टिक् छन्दः । ऋषभः

स्वरः, ८ धुरिगुहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब आठ ऋषिवाले पैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से इन्द्रपञ्चविंश राजगुणों का वर्णन करते हैं—

यस्तेसाधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।

अस्मभ्यं चर्षणीसह सस्ति वाजेषु दुष्टरम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के सदृश न्याय से प्रकाशित राजन् ! ( यः ) जो ( ते ) आपकी ( अवसे ) रक्षा आदि के लिए ( साधिष्ठः ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( क्रतुः ) बुद्धि है ( तम् ) उस ( चर्षणीसहम् ) मनुष्यों को सहनेवाले ( सस्तिम् ) बहुवचन्य-वत् और विद्या के ग्रहण से पवित्र ( वाजेषु ) और सन्ध्याओं में ( दुष्टरम् ) दुःख से उल्लंघन करने योग्य को ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( आ, भर ) सब प्रकार धारण करिये ॥ १ ॥

भावार्थ—वही राजा उत्तम होवे जो दीर्घ बहुवचन्य से यथार्थवक्ता जनों से विद्या और विनय को ग्रहण कर के न्याय से राज्य की शिक्षा देवे ॥ १ ॥

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।

यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तस्तु न आ भर ॥२॥

पदार्थ—हे ( शूर ) वीर ( इन्द्र ) राजन् ! ( यत् ) जो ( ते ) आपकी ( चतस्रः ) चार साम दाम दण्ड और भेद नामक वृत्ति और ( यत् ) जो ( तिस्रः ) तीन उत्तम प्रकार शिक्षित सभा सेना और प्रजा और ( पञ्च ) पृथिवी अप् तेज वायु आकाश पाँच तत्त्व ( सन्ति ) हैं ( वा ) वा ( यत् ) जो ( क्षितीनाम् ) मनुष्यों का ( अवः ) रक्षण आदि है ( तत् ) उसको ( न ) हम लोगों के लिए ( तु ) उत्तमता से ( आ, भर ) सब प्रकार धारण करो वा पुष्ट करो ॥ २ ॥

भावार्थ—वही राज्य बढ़ाने को समर्थ होवे कि जो राज्य के अग सब पूर्ण उत्तम प्रकार ग्रहण करे ॥ २ ॥

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हमहे ।

वृषजुतिहि जज्ञिष आभुभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् ( हि ) जिससे ( वृषजुतिः ) वृष के वेग के सदृश वेग से युक्त ( तुर्वणिः ) शोधकारी और श्रेष्ठ गुणों से युक्त मन्त्रियों की याचना करनेवाले आप ( आभुभिः ) जो विद्या और विनय में सब ओर से प्रकट होते हैं उनके साथ ( जज्ञिषे ) प्रकट होते हो उन ( वृषन्तमस्य ) अत्यन्त बलिष्ठ ( ते ) आपके ( वरेण्यम् ) अतीव उत्तम ( अवः ) रक्षणआदि कर्म का हम लोग ( आ, हमहे ) उत्तम प्रकार से स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जिससे आप उत्तम गुण, कर्म और स्वभाववाले हो और पितृजन जैसे सन्तानों को वैसे हम लोगों का पालन करते हो इससे आपको राजा हम लोग मानते हैं ॥ ३ ॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वृषा वसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।

स्वक्षत्रं ते वृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) बलवान् पुरुष ( हि ) जिससे आप ( वृषा ) बलिष्ठ वा सुख के वषनिवाले ( वसि ) हैं और ( राधसे ) धनरूप ऐश्वर्य के लिये ( जज्ञिषे ) प्रकट होत हो जिन ( ते ) आपका ( वृष्णि ) सुख वषनिवाले ( शवः ) बल और ( स्वक्षत्रम् ) अपना राज्य वा अपना धर्मियकुल जिन ( ते ) आपका ( वृषत् ) प्रगल्भ अर्थात् बृष्ट ( मनः ) चित्त जिन आपका ( सत्राहम् ) सत्य धर्म के आचरण का प्रकट करनेवाला दिन और ( पौंस्यम् ) पुरुषों के लिए हितकारक बल है उन आपको हम लोग राजा मानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्रजाओं को चाहिये कि जो बलवान् पूर्ण विद्या विनय और बल से युक्त, शूरता आदि गुणों से धृष्ट, सदा न्याय और धर्मचरणयुक्त हो उसी को राजा माने ॥ ४ ॥

त्वं तमिन्द्र पर्येममिप्रयन्तमद्रिवः ।

सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५॥२॥

पदार्थ—( शवस ) बल अर्थात् सेना के ( पते ) पालक सेना के स्वामिन् ( शतक्रतो ) अमल बुद्धिवाले ( अद्रिवः ) मेघयुक्त सूर्य के सदृश राजमान ( इन्द्र ) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले प्रजाजन ( सर्वरथा ) संपूर्ण वाहनों से युक्त ( त्वम् ) आप ( तम् ) उस ( अमिप्रयन्तम् ) शत्रु के सदृश आचरण करते हुए ( अत्यम् ) मनुष्यशरीरधारी को विजय करने के लिए ( नि ) अत्यन्त ( याहि ) प्राप्त होजिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो धन्याय से आपका शत्रु होवे उसके शासन के लिए बल के सहित आप नित्य प्राप्त होजिए ॥ ५ ॥

त्वामिद्व्रहन्तम जनांसो वृषर्हिषः ।

उग्रं पूर्वीषु पृथ्वी इवन्ते वाजसातये ॥६॥

पदार्थ—हे ( वृषहन्तम् ) अतिशय करके धन को प्राप्त होनेवाले राजन् ( वृषहन्तिः ) विदीर्ण किया है हवन किये हुए पदार्थों से अन्तरिक्ष को जिन्होंने ऐसे ऋत्विक् ( जनांस ) प्रसिद्ध पुण्यात्माजन ( वाजसातये ) सन्ध्या वा अन्न आदि के विभाग के लिए ( उग्रम् ) कुटो में कठिन स्वभाववाले और ( पूर्वीषु ) प्राचीन प्रजाओं में ( वृष्यम् ) पूर्व राजाओं से किया गया मत्कार जिनका ऐसे ( त्वाम् ) आपकी ( वृषते ) स्तुति करने वा ग्रहण करते हैं वह आप उनकी सर्वदा ( इत् ) ही उत्तम प्रकार रक्षा कीजिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रतिष्ठित क्षत्रियों के कुल में उत्पन्न हुआ विद्या और विनय आदि से युक्त और प्रजा के पालन में तत्पर इच्छा जिसकी ऐसा होवे उसको राजा मानो ॥ ६ ॥

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरीयावानमाजिषु ।

सयावानं धनं धने वाजयन्तमवार्यम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् आप ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( दुष्टरम् ) शत्रुओं से दुःख से गार होने योग्य ( पुरीयावानम् ) नगरको चलते हुए ( आजिषु ) सन्ध्याओं में ( अनेधने ) धन धन में ( सयावानम् ) सेना आदि के साथ चलते हुए ( वाजयन्तम् ) किया अन्वेषण जिसका ऐसे ( रथम् ) मुन्दर वाहन की ( अवः ) रक्षा करो ॥ ७ ॥



आचार्य—हे राजन्! जो आप हम लोगों के मगर और राज्य की यथावत् रक्षा करने को समर्थ होंगे तो हम लोगों के राजा होंगे ॥ ७ ॥

अब राज द्वारा विद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।

वयं शविष्ठ वायं दिवि अवां दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८॥६॥

पदार्थ—हे ( शविष्ठ ) अत्यन्त बल से युक्त ( इन्द्र ) राजन् आप ( पुरन्ध्या ) बहुत विद्या को धारण करनेवाली बुद्धि से ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( रथम् ) बहुत प्रकार के वाहन को ( आ, इहि ) प्राप्त हुआ और ( वाः ) हम लोगों का निरन्तर ( अवा ) पालन कीजिए जिससे ( वयम् ) हम लोग ( दिवि ) मनोहर राज्य में ( वायंम् ) स्वीकार करने योग्य ( अवा ) ध्वज वा अन्न को ( दधीमहि ) धारण करें और ( दिवि ) प्रमत्ता करने योग्य राज्य में ( स्तोमम् ) सम्पूर्ण शास्त्र के पढ़ने और पढ़ाने को ( मनामहे ) जानें ॥ ८ ॥

आचार्य—वही प्रजा का प्रिय होता है जो राजा न्याय से प्रजाओं का उत्तम प्रकार पालन करके विद्या और उत्तम शिक्षा की प्रजाओं में प्रवृत्ति करे ॥ ८ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा प्रजा और विद्वान् के गुण वर्णन करने से  
इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ  
संज्ञति जाननी चाहिए

यह संतीतर्वा सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

५१

अब बहुवचस्य सप्तविंशतमस्य सूक्तस्य प्रथमसुराङ्गिरस अग्निः ।

इन्द्रो देवता । १, ४, ५ निचृत्तिवद्वन् । २, ६ त्रिष्टुप्

छन्दः । षंभत स्वर । ३ जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अब छ अच्चा वाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से  
इन्द्र पदवाच्य राजविषय को कहते हैं—

स आ ममदिन्द्रो यो वयं नानां चिकेतद्वातुं दामनो रयीणाम् ।

धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यः ) जो ( इन्द्रः ) दाता ( वयं ) इन्द्रों के ( वातुम् ) देने को ( चिकेतु ) जानता और ( रयीणाम् ) वनों की ( दामन ) देनवालों को जानता है ( स ) वह ( तृषाण ) पिपासा से व्याकुल के सद्गुण और ( धन्वचरः ) अन्तरिक्ष में चलनेवाले को ( न ) सद्गुण ( वसतः ) सत्य और असत्य के विभाग करने वालों को प्राप्त होने वाला और ( चकमानः ) कामना करता हुआ हम लोगों को ( आ ) सब प्रकार से ( वयम् ) प्राप्त होवे और ( अंशुम् ) प्राणों के देने वाले ( दुग्धम् ) दुग्ध का ( पिबतु ) पान करें ॥ १ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जो धन देने, विचार करने, सत्य की कामना करने और मर्यादा की चाहनेवाला होवे उसी को राजा मानें ॥ १ ॥

आ ते हन् हरिवः शूर शिमे वृत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।

अनु त्वा राजवर्षतो न हिन्वन् गीर्ममिवेम पुकूत विश्वे ॥२॥

पदार्थ—हे ( हरिवः ) अच्छे मनुष्य से युक्त ( शूर ) शत्रुओं के नाश करने वाले ( पुकूत ) बहुतों से सत्कार किये गये ( राजवृ ) राजन् जिन ( ते ) आप को ( शिमे ) उत्तम प्रकार शोभित ( हन् ) मुल और नासिका ( गीर्म ) सत्य से उज्ज्वल बाणियों से ( हिन्वन् ) चलवाता हुआ ( अर्बतः ) घोड़ों के ( न ) सद्गुण और ( पर्वतस्य ) पर्वत के ( पृष्ठे ) ऊपर ( सोम ) सोमलता के ( न ) सद्गुण व्यवहार ( आ, वृत् ) प्रकट होता है उन ( त्वा ) आप को ( विश्वे ) सब हम लोग ( अनु, वरेम ) आनन्दित करें तथा आप हम लोगों को आनन्दित करिये ॥ २ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो राजा सत्सङ्ग करता है वह पर्वत में सोमलता के सद्गुण सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

चक्रं न वृत्तं पुकूत वेपते मनो मिया मे अमतेरिद्विषः ।

रथादधि त्वा जरिता सदादृष्ट कुबिषु स्तोषन्मयवन् पुकूतसुः ॥३॥

पदार्थ—हे ( अग्नि ) मेघ और सूर्य के सद्गुण वर्तमान ( पुकूत ) बहुतों से सत्कार पाये हुए ( मयवन् ) बहुत वनों से युक्त ( सदावृष ) सदा वृद्धि करने वाले राजन् ! जिस कारण ( अमतेः, मे ) मुझ निबुद्धि का ( इत् ) ही ( मनः ) चित्त ( रथात् ) वाहन से ( वृत्तम् ) वर्त हुआ ( चक्रम् ) चक्र के ( न ) सद्गुण ( मिया ) भय से ( वेपते ) कपता है उस कारण का आप निवारण कीजिए और जो ( कुबिषु ) महान् ( पुकूतसु ) असस्य धन से युक्त ( जरिता ) स्तुति करने वाला ( त्वा ) आप की ( कु ) निश्चय ( अग्नि, स्तोवन् ) स्तुति करे उसका आप सत्कार करें ॥ ३ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो राजा धीर और साहस करने वाले जनो का प्रयत्न से न निवारण करे और श्रेष्ठ जनो का सत्कार करे तो भय के उद्भव से प्रजायें व्याकुल होंगे ॥ ३ ॥

अब विद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

एव आवेव जरिता तं इन्द्रेयं वाचं बृहदाशुषाणः ।

प्र सव्येन मधवन्त्यसि रायः दाक्षणिद्विषो वा वि वैनः ॥४॥

पदार्थ—हे ( हरिवः ) उत्तम मन्त्रियों से और ( मयवन् ) वन से युक्त ( इन्द्र ) शत्रुओं के नाश करनेवाले राजन् ! जो ( ते ) आप का ( एवः ) वह ( जरिता ) सम्पूर्ण विद्याओं की प्रशंसा करनेवाला ( आवेव ) मेघ के सद्गुण ( वाचम् ) उत्तम मिसायुक्त वाणी को ( इन्द्रेयं ) प्राप्त होता है वह ( बृहत् ) बड़े को ( आशु-वाणः ) व्याप्त होता हुआ ( सव्येन ) दायम और से ( प्र, दक्षिणम् ) उत्तम प्रकार वहिने भाग से चलने वाला ( राय ) वन के ( प्र, वसि ) उत्तम प्रकार प्राप्त होने वा नियम करनेवाले हो वह आप ( वि ) विशेष करके ( वैनः ) कामना करनेवाले ( वा ) न हुआ ॥ ४ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालकार है । हे मनुष्यो ! जो बड़े विद्वान् जन वाणी को ग्रहण कर वा ग्रहण कराय के इन्द्रियों के निग्रह करनेवाले होते हैं वे निष्फल मनोरथवाले नहीं होते हैं किन्तु सत्य काम और असत्य के द्वेषी निरन्तर वर्तमान हैं ॥ ४ ॥

वृषा त्वा वृषां वर्धतु यौहृषा वृषम्यां वइसे हरिभ्याम् ।

स नो वृषा वृषरयः सुशिप्र वृषकतो वृषां वजिन्मरं वाः ॥५॥

पदार्थ—हे ( सुशिप्र ) उत्तम कमल के समान मुलवाले ( वृषकतो ) बल-वानों की बुद्धि और कर्मों के सद्गुण बुद्धि और कर्म जिनके वह ( वृषिम् ) शस्त्र और अस्त्र के ज्ञान से युक्त राजन् ! जो ( वृषा ) सुल वधनिवाला ( वृषम्याम् ) बलिष्ठ ( त्वा ) आप को ( वर्धतु ) बढ़ावे और जो ( वृषा ) वृषके समान बलवान् आप ( व्री ) सत्य कामना वाले के सद्गुण ( वृषम्याम् ) बल से युक्त ( हरिभ्याम् ) हरणशील हस्तों से ( वइसे ) प्राप्त होते वा प्राप्त कराते हो ( सः ) वह ( वृषा ) दुष्टों की शक्ति रोकनेवाला और आप ( वृषरयः ) बलिष्ठ बल रय में जिनके ऐसे ( वृषा ) विद्या के वधनिवाले ( न ) हम लोगों को ( अरे ) सशम में ( वाः ) हरिये, धारण कीजिये ॥ ५ ॥

आचार्य—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् तुम लोगोंको सर्वदा बढ़ाते हैं उनको आप सशम में विजय के लिए प्रेरणा कीजिए ॥ ५ ॥

अब शिल्पिकार्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यो रोहिती वाजिनो वाजिनीवान्निमिः शतैः सचमानावदिष्ट ।

यूने सम्यस्मै क्षितयौ नमन्तां अतरथाय मरुतो दुबोया ॥६॥७॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) मनुष्यो ( यः ) जो ( वाजिनीवा ) वेग की क्रियाका जाननेवाला ( निमिः ) तीन ( शतैः ) सैकड़ों से ( अस्मै ) इस ( यूने ) युवा पुत्र के लिए ( सचमानौ ) मिले हुए ( दुबोया ) जो परिचरण को प्राप्त होते हैं उन ( वाजिनौ ) बड़े वेगवाले ( रोहिती ) विजुली और प्रसिद्ध अग्नि का ( अग्निम् ) उपदेश देवें उस ( अतरथाय ) सुने गये वाहन जिसके उसके लिए ( क्षितयः ) मनुष्य ( सप्त, नमन्ताम् ) अच्छे प्रकार नम्र होंगे ॥ ६ ॥

आचार्य—जो विमान आदि वाहन के कार्यों में अग्नि आदि पदार्थों का संग्रहण करते हैं वे जितने तीनसौ घोड़ों से वाहन शीघ्र पहुँचाते हैं उतना बल उस कला में होता है और जो इस प्रकार शिल्पविद्या के कृत्यों में प्रसिद्ध होते हैं उनका सत्कार सब करने है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् और शिल्पी के कृत्य वर्णन करने से इस  
सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ  
संज्ञति जाननी चाहिए ॥

यह छत्तीसवां सूक्त और सप्तम वर्ग समाप्त हुआ ॥

५२

अब पञ्चवचस्य सप्तविंशतमस्य सूक्तस्य अग्निः । इन्द्रो देवता ।

१ निचृत्तिवद्वन् । पञ्चम स्वरः । २ विराट् त्रिष्टुप् ।

३, ४, ५ निचृत्तिवद्वन् । षंभतः स्वरः ॥

अब पाँच अच्चावाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम  
मन्त्र में इन्द्रविषय को कहते हैं—

सं भानुना यवते सूर्यस्याजुह्वानो धृतपृष्ठः स्वच्छाः ।

तस्मा अमृधा उपसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यः ) जो ( आजुह्वानः ) आह्वान किया गया ( धृत-पृष्ठः ) जन जिस के गीठ पर ऐसा ( स्वच्छाः ) उत्तम प्रकार चलनेवाला अग्नि ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( भानुना ) किरण से ( सप्त ) उत्तम प्रकार ( यवते )

प्रयत्न करता और जो (अग्नि) नहीं हिंसा करने वाली (उत्तमः) प्रभा-  
वलाओ का (वि, उच्छ्राय) बसावे और जो इस विद्या को जानता है (तस्मै)  
उस (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त जन के लिए जो (आह) उपदेश देता है (इति)  
इस प्रकार हम लोग उसको (सुनचाम) उत्पन्न करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुली सूर्य के प्रकाश के साथ वर्तमान है उसको  
आदि लेकर विद्या का जो उपदेश देवे वह हम लोगों की उन्नति करनेवाला होता है  
यह हम लोग जानें ॥ १ ॥

अब शिल्पी विद्वान् के विषय को कहते हैं—

समिद्धाग्निर्धनवस्तीर्णवर्हिर्गुणैर्वा सुतसोमो जराते ।

ग्रावाणो यस्यैषिर्बदन्त्ययदध्वर्युर्द्विषाव सिन्धुम् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जो (स्तीर्णवर्हिः) स्तीर्णवर्हि अर्थात् आच्छादित  
क्रिया अन्तरिक्ष जिसने ऐसा और (सुतसोमः) युक्त मेष जिससे (सुतसोमः) तथा  
प्रकट हुआ चन्द्रमा जिसमें (समिद्धाग्निः) वह प्रदीप्त हुआ अग्नि संपूर्ण पदार्थों का  
(बलवत्) सम्भोग करता है (यस्य) जिसके (द्विषाव) गमन को (ग्रावाणः)  
मेष (बदन्ति) शब्दसे सूचित करते हैं जिसको (अध्वर्युः) शिल्पीविद्या की कामना  
करता हुआ जन (द्विषाव) अग्नि में छोड़ने योग्य सामग्रियों में (सिन्धुम्) समुद्र को  
(अव, अयत्) प्राप्त होता और (जराते) स्तुति करता है उस अग्नि का कार्यों  
में सप्रयोग करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जो अग्नि पदार्थों में व्याप्त और बहुत उत्तम गुण  
श्रीर क्रियावान् है उसको जानकर कार्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

अब युवावस्थाविवाह विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वधूर्यं पतिमिच्छन्त्येति य ई वहते महिषीमिषिराम् ।

आस्यं श्रवस्याद्रय आ च घोषान्पुरु सहसा परिवर्तयाते ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (इयम्) यह (पतिम्) पति की (इच्छन्ती)  
इच्छा करती हुई (वधूः) स्त्री प्रिय स्वामी को (एति) प्राप्त होती है और  
(य) जो स्त्री को प्राप्त होनेवाला प्रिय (इषिराम्) प्राप्त होती हुई (महिषीम्) बहुत  
श्रेष्ठ गुणवाली स्त्री को प्राप्त होता है और जैसे वे दोनों सम्पूर्ण गृहकृत्य को  
(वहते) चलावें जैसे (ईम्) जल वा सम्पूर्ण पदार्थों को अग्नि से चलाया गया  
(रयः) आह्वन चलाता है वह (अस्य) इसके (अ, श्रवस्यात्) आत्मा के श्रवण  
को इच्छा करने वाले से (घोषान्, च) और शब्द द्वारा (पुरु) बहुते और  
(सहसा) हजारों के (परि) सब ओर (आ वर्तयाते) अच्छे प्रकार वर्तमान  
है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जैसे किया ब्रह्मचर्य  
जिन्होंने ऐसे स्त्री और पुरुष परस्पर पति और स्त्रीभाव की इच्छा करते हैं तथा पर-  
स्पर प्रसन्न प्रिय हाकर सयुक्त हुए गृहाश्रम को व्यवहार को उत्तम रीतिसे पूर्ण करते  
हैं वैसे ही जल और अग्नि सप्रयुक्त किये गये सम्पूर्ण व्यवहार को सिद्ध करते हैं और  
बहुत कोसों में भी सुहृन्मात्र में बाह्य आदि को शीघ्र पहुँचाते हैं यह सबको जानना  
चाहिए ॥ ३ ॥

अब शीघ्र धानचालनविषय को कहते हैं—

न स राजा व्यथते यस्मिन्निद्रस्तीव्र सोमं पिबन्ति गोसखायम् ।

आ संत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस राजा में (इन्द्रः) बिजुली (गोसखायम्) भूगोल  
है मित्र जिसका उस (तीव्रः) तीव्र (सोमम्) जग का (पिबन्ति) पान करती  
(सत्वनैः) और रथ आदि द्रव्यों से (आ, अजति) आनी और (वृत्रम्) मेष का  
(हन्ति) नाश करती है (सः) वह (राजा) राजा (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्य  
जिससे उस (नाम) प्रसिद्धि को (पुष्यन्) पुष्ट करता हुआ (क्षितीः) मनुष्यो  
को (क्षेति) बसाता है वा ऐश्वर्य करता और (न) न (व्यथते) भय वा पीड़ा  
को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जिस राजा के वश में भूमि, जल, अग्नि और पवन हैं, उस राजा  
को किसी शत्रु आदि से भय कभी नहीं होता और वह राजा यशस्वी और प्रसिद्ध  
इस जगत् में होता है ॥ ४ ॥

अब विद्युद्विद्याविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पुष्यास्त्रेमे अभि योमे मवात्युमे वृता संयती सं जयाति ।

प्रियः सूर्ये प्रियो अग्रा संवाति य इन्द्राय सुतसोमो दवांशत् ॥५॥८

पदार्थ—(यः) जो (सूर्यः) सूर्य में (प्रियः) कामना करनेवाला  
(अग्रा) अग्नि में (प्रियः) कामना करता हुआ (अवति) प्रसिद्ध होने तथा  
(क्षेमे) रक्षण में और (योमे) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के रक्षण में (अभि)  
सम्पन्न (पुष्यात्) पुष्टि करे तथा (वृता) आच्छादन करने में (उमे) दोनों  
(संयती) मिली हुईयों को जानकर (अवति) प्रसिद्ध होने और (सुतसोमः)  
एकत्र किया ऐश्वर्य जिसने ऐसा जन (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए  
(दवांशत्) देवे वह जन शत्रुओं को (सम्, जयाति) अच्छे प्रकार  
जीते ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि विद्या की कामना करते हुए योग क्षेम  
के साधन में शत्रु, दाता और न्याय में प्रीति करनेवाले हों वे ही दुष्टों को जीतने  
को समर्थ हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, शिल्पी, विद्वान् और युवावस्था में विवाह करने का वर्णन, शीघ्र  
बाह्य का चलाना और बिजुली की विद्या का वर्णन किया, इससे हम  
सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति

जाननी चाहिए ॥

यह संतीसवाँ सूक्त और आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अब पञ्चवर्षस्याष्टाविंशतस्य सूक्तस्य अत्रिंशः ॥ इन्द्रो देवता । १ अनुष्टुप् ।  
२, ३, ४, निषुवनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले अष्टोत्तस्रं सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में  
इन्द्र के गुणों को कहते हैं—

उरोर्ह इन्द्र राधसो विम्बी रातिः शतक्रतो ।

अर्धा नो विश्ववर्षणे घृम्ना सुक्षत्र मंहय ॥१॥

पदार्थ—हे (विश्ववर्षणे) सम्पूर्ण देवने योग्य पदार्थों के देनेवाले  
(शतक्रतो) अनन्त वृद्धि से युक्त और (सुक्षत्र) सुन्दर क्षत्र वा द्रव्यवाले (इन्द्र)  
अत्यन्त ऐश्वर्य में युक्त जिन (ते) आप के (उरोः) बहुत (राधसः) धन का  
(विम्बी) व्याप्त होनेवाला (रातिः) दान है (अर्धा) इसके अनन्तर न्याय से  
प्रजाओं का पालन करने हो वह आप (नः) हम लोगों को (घृम्ना) यश वा  
धन से (मंहय) बड़े करिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो पूर्ण विद्या से युक्त असंख्य धन देने और संपूर्ण व्यवहारों को  
जाननेवाले अत्यन्त ऐश्वर्य में युक्त उत्तम स्वभाव और नम्रता से युक्त हों वह राजा  
प्रजाओं के पालन करने का समर्थ हों ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यदीमिन्द्र श्रवायमिषं शविष्ठ दधिषे ।

पमथे दीर्घधुचमं हिरण्यवर्णं दूष्टरम् ॥२॥

पदार्थ—हे (शविष्ठ) अतिबलयुक्त और (हिरण्यवर्णं) सुवर्ण को स्वी-  
कार करनेवाले (इन्द्र) दुग्ध के नाश करनेवाले (यत्) जो (श्रवायम्)  
सुनने योग्य और (दूष्टरम्) दुग्ध से तरने योग्य (इषम्) अन्न आदि को  
(पमथे) प्रकट करता है उस (ईम्) प्राप्त होने योग्य और दुग्ध से तरने योग्य  
(दीर्घधुचमम्) अतिवान् में अधिकतर सुननेवाले को आप (दधिषे) धारण  
करते हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो पूर्णविद्या से युक्त धन धान्य पशु और प्रजाओं का  
बढ़ाने और ब्रह्मचर्य में बड़ा पराक्रमवाला है उसीको राजकर्मचारी कीजिए ॥ २ ॥

अब राजप्रजाधर्मविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहनां केतसापः ।

उमा देवावभिष्टये दिवश्च रमश्च राजयः ॥३॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेषों में सदृश पर्वत है जिसके राज्य में ऐसे राजन् !  
जैसे (उमा) दोनों सूर्य और चन्द्रमा (देवौ) उत्तम गुण कर्म और स्वभाववाले  
(दिवः) अन्तरिक्ष (च) और (रम्) पृथिवी के (च) भी मध्य में प्रकाशित  
हैं वैसे (ये) जो (शुष्मासः) अधिक बलयुक्त (केतसापः) वृद्धि से  
सम्बन्ध रखनेवाले जन (ते) वे (अभिष्टये) इष्टसिद्धि के लिए (मेहनां)  
वर्णन से प्रजाओं में हैं वह प्रजा और आप निरन्तर (राजयः) प्रकाशित  
होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य और चन्द्रमा सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं वैसे  
ही प्रजा और राजा मिलके सम्पूर्ण राजधर्म को प्रकाशित करें ॥ ३ ॥

उतो नो अस्य कस्य चिद्वत्स्य तव वृत्रहन् ।

अस्मभ्यं नृमणमा अंरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) जैसे सूर्य मेष का नाश करता है उसके सदृश वर्त-  
मान (तव) आपका और (नः) हम लोगों के (उतो) भी (अस्य) इसके  
(कस्य) किसके (चित्) भी (वत्स्य) बल सम्बन्धी (नृमणस्यसे) अपने  
धन की इच्छा करते हो वह आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (नृमणम्)  
मनुष्य रमते हैं जिसमें उस धन का (आ, भर) धारण कीजिए और (अस्मभ्यम्)  
हम लोगों के लिए अभय दीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—वही श्रेष्ठ मनुष्यो में मुख्य हो जो राज्य के रक्षण में तत्पर हाकर  
वर्तता करे ॥ ४ ॥

न तं अभिभिष्टिभिस्तव शर्वेऽन्तक्रतो ।

इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५॥१॥

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) अत्यन्त बुद्धिमान् ( इन्द्र ) राजन् ( ते ) आप की ( अभिः ) इन वर्तमान ( अभिष्टिभिः ) १२ पदार्थों की दृष्ट्या आप से ( तव ) आपके ( शर्मन् ) गृह में हम लोग ( सुगोपा ) उत्तम प्रकार रक्षा करनेवाले ( स्याम ) होंगे और हे ( शूर ) भय से रहित राजन् आपके राज्य वा मन्त्राम में हम लोग ( सुगोपा ) यथावत् प्रजा के पालन करनेवाले ( नू ) निष्पन्न ( स्याम ) होंगे ॥ ५ ॥

भावार्थ—१ राजन् । हम लोग सत्य प्रतिज्ञा और प्रीति से आपके गृहशरीर राज्य और सेना के भेदा की रक्षा करे। उत्पत्त्या होंगे ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की इसमें पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अन्तर्लीन सूक्त और नववां वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ पञ्चवचस्वैकोनवत्वारिंशत्समस्य सूक्तस्याऽत्रिंश्विं । इन्द्रो देवता ।

१ विराडनुष्टुप् । २, ३, निचुवमुष्टुप् छन्द । गान्धार स्वर । ४ स्वराडुष्टिक् छन्द । ऋचभ स्वर । ५ बृहती छन्द । मध्यम स्वर ॥

अथ पाँच ऋचा वाले उनचालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं—

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वावांतमद्रिवः ।

राधस्तस्मै बिद्वस् उभयाहस्त्या भर ॥१॥

पदार्थ—हे ( अद्रिव ) सूर्य के मद्गुण विद्या के प्रकाश करने वाले ( बिद्वत्तो ) धन का प्राप्त हुए ( चित्र ) अद्भुत गुण कर्म और स्वभाववाले ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य में युक्त ( यत् ) जो ( त्वावातम् ) आप में शुद्ध किया ( राध ) द्रव्य ( मेहना ) वृष्टि के मद्गुण ( अस्ति ) है ( तन्, उभयाहस्ति ) उस उभयाहस्ति अर्थात् दो प्रकार के हाथ प्रवृत्त होने हैं जिसमें ऐसे को ( न ) हम लोगों के लिए ( आ, भर ) सब प्रकार धारण कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—वही राजा धन से युक्त वा कुशली होंगे जो वृष्टि के सद्गुण अन्यो के मनोरथों को वषावे ॥ १ ॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्ष तदा भर ।

विद्याम तस्य ते वयमकृपारस्य दावने ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य में युक्त आप ( यत् ) जिस ( वरेण्यम् ) स्वीकार करने योग्य ( द्युक्षम् ) धर्म और विद्या के प्रकाश में युक्त को ( मन्यसे ) मानने हो ( तत् ) उसका हम लोगों के लिए ( आ, भर ) धारण कीजिए जिससे ( अकृपारस्य ) श्रेष्ठ है पार जिनका ( तस्य ) उन ( ते ) आपके ( दावने ) दाता के लिए ( वयम् ) हम लोग प्रयत्न को ( विद्याम् ) जानें ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप जिस २ उत्तम विषय को जानते हैं उसका हम लोगों के प्रति उपदेश कीजिए जिससे हम लोग आपके राजकार्य को पूरारूप से करने को समर्थ होंगे ॥ २ ॥

यत्ते दिस्तु प्रार्थ्य मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।

तेन दृक्छा चिबद्रिव आ वार्जं दर्षि सातये ॥३॥

पदार्थ—हे ( अद्रिव ) उत्तम प्रकार शाश्वत पर्वत से युक्तविद्वन् ! ( ते ) आप के ( यत् ) जो ( दिस्तु ) देने की इच्छा करनेवाला ( प्रार्थ्यम् ) अत्यन्त साधने योग्य ( श्रुतम् ) श्रवण और ( बृहत् ) बड़ा ( मनः ) चित्त ( अस्ति ) है ( तेन ) इससे ( चित् ) भी आप ( दृक्छा ) दृढ़ वस्तुओं की रक्षा करने और ( सातये ) धर्म और अधर्म के विभाग के लिए ( वार्जम् ) मन्त्राम का ( आ, दर्षि ) भङ्ग करने हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस से मनुष्य ब्रह्मचर्य विद्या योगाभ्यास और सत्यभाग्य आदि के आचरण से सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त मन को सिद्ध कर धर्म से सम्पूर्णजनों के हित के लिए दुष्टों को दण्ड देता है इससे वह अति उत्तम है ॥ ३ ॥

अब राजप्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मंहिष्ठ वो मघोना राजानं वर्षणीनाम् ।

इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुषे गिरः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! जिस ( व ) आप लोगों और ( मघोनाम् ) बहुत ॥ प्रवर्ण्य में युक्त ( वर्षणीनाम् ) मनुष्यों के ( मंहिष्ठम् ) अत्यन्त बड़े और ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले ( राजानम् ) राजा को ( प्रशस्तये ) प्रशंसा के लिए ( पूर्वीभिः ) प्राचीन प्रजाओं के साथ ( गिरः ) वाणियों को ( जुषे, जुषुषे ) मन्त्रों में सत वा प्रमन्नता से स्वीकृत करते होंगे और वह सर्वत्र सुखी होत है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्या ! जो राजा और जो प्रजाजन परस्पर अनुकूलता अर्थात् प्रीतिपत्र वत्ताव सत्य वे भेदा आनन्दित होत हैं ॥ ४ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मा इत्काव्य वच उक्थमिन्द्राय शस्यम् ।

तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरौ वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्य के लिए ( काव्यम् ) कवियों विद्वानों से कामना करने योग्य ( उक्थम् ) प्रशंसित ( शस्यम् ) स्तुति करने योग्य ( वचः ) वचनका प्रयोग करना है ( अस्मै ) इसके लिए ( इत् ) और ( तस्मै ) उस ( ब्रह्मवाहसे ) धनो को प्राप्त होनेवाले जन के लिए ( अत्रयः ) नहीं हैं तीन प्रकार के दुर्लभ जिनमें वे ( गिर ) वाणियों ( वर्धन्ति ) बढ़नी है ( उ ) और ( अत्रयः ) नहीं हैं तीन प्रकार के गुणों के दोष जिनमें वे ( गिरः ) वाणियों ( शुम्भन्ति ) उत्तम आचरण करती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्या ! जो विद्वान् जन वाणियों को विद्याभ्यास से शुद्ध करने हैं वे कवित्व और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा प्रजा और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इसमें पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह उनचालीसवाँ सूक्त और नववां वर्ग समाप्त हुआ ।

॥

अथ नवचस्वैकोनवत्वारिंशत्समस्य सूक्तस्याऽत्रिंश्विं । १—४ इन्द्र । ५ सूर्यः ।

६—८ अत्रिर्वेदता । १ निचुवमुष्टुप् । २, ३ उष्टिक् । ६ स्वराडुष्टिक् छन्द । ऋचभ स्वर । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ निचुवमुष्टुप् छन्द । बंवात स्वर । ७ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब नव ऋचा वाले चालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं—

आ यावद्विभिः सुत सोम सोमपते पिब ।

वृषभिन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( सोमपते ) ऐश्वर्य के स्वामिन् ( वृषम् ) बैल के मधुश आचरण करते हुए ( वृत्रहन्तम् ) अत्यन्त धन का प्राप्त होने और ( इन्द्र ) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले जन ( वृषभिः ) बलिष्ठों के साथ आप ( अद्रिभिः ) मेघों से ( सुतम् ) उत्पन्न हुए ( सोमम् ) सामन्ता आदि ओषधियों के रस को ( पिब ) पान करिए और मन्त्राम का ( आ, याहि ) प्राप्त कीजिए ॥ १ ॥

भावार्थ—जा ऐश्वर्य की इच्छा करे वे अवश्य बैल और बुद्धि की वृद्धि करें ॥ १ ॥

अब मेघ विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा मोमो ध्यं सुतः ।

वृषभिन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम् ॥ २ ॥

पदार्थ—( वृषम् ) बैल की इच्छा करने हुए ( वृत्रहन्तम् ) प्रतिशय करके शत्रुओं के और ( इन्द्र ) दुष्टों के नाश करनेवाले जन जो ( ध्यम् ) यह ( वृषा ) आनन्द का उत्पन्न करने और ( वृषा ) वृष्टि करनेवाला ( ग्रावा ) मेघ और ( मद ) आनन्द तथा ( वृषा ) सुख का वर्धनेवाला ( सोमः ) ओषधियों का समूह ( सुतः ) उत्पन्न किया गया है उन ( वृषभिः ) मेघादिकों से काम्यों को सिद्ध कीजिए ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मघ आदि पदार्थ हैं उनसे मनुष्य बहुत कार्यों को सिद्ध कर सकत है ॥ २ ॥

फिर इन्द्रपदवाक्य राजा के गुणों को कहते हैं—

वृषा त्वा वृषां हुवे वज्रिञ्चिभ्राभिरूतिभिः ।

वृषभिन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( वृषम् ) सुख करनेवाले ( वज्रिञ्चि ) बहुत शस्त्र और अस्त्रों से युक्त ( वृत्रहन्तम् ) अत्यन्त दुष्टों के नाश करनेवाले ( इन्द्र ) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले ( वृषा ) वृष्टि करनेवाला ( चिञ्चिभिः ) अद्भुत ( ऊतिभिः ) रक्षादि क्रियाओं और ( वृषभिः ) दुष्टों के सामर्थ्य को बाधने वालों के साथ वर्तमान ( वृषहन् ) बलिष्ठ ( त्वा ) आप का ( हुवे ) बुलाता है ॥ ३ ॥



**भाषार्थ—**मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य के सद्यः वर्तमान और सब प्रकार गुणों से सम्पन्न, बलिष्ठ, न्ययकारी राजा को स्वीकार करे जिस से सब प्रकार संरक्षा होवे ॥ ६ ॥

**ऋजीषी बञ्जी वृषमस्तुरावाद् शुष्मी राजा वृत्रहा सोमरावा ।  
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासद्वाह माध्यन्दिने सर्वने मत्तदिन्द्रः ॥४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यों जो ( ऋजीषि ) सगरना आदि से युक्त ( बञ्जी ) शस्त्र और भस्त्रा का धारण करनेवाला ( वृषभ, ) बलिष्ठ ( शुष्मी ) बलिष्ठ मत्त से युक्त ( तुरावाद् ) हिमा करनेवाले शत्रुओं को मरने ( सोमरावा ) श्रेष्ठ ओषधियों के रस का पीने ( बृत्रहा ) दुष्ट शत्रुओं के नाश करने और ( वृत्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का करनेवाला ( राजा ) विद्या और विनय से प्रकाशमान ( हरिभ्याम् ) घाँड़ों से वाहन को ( युक्त्वा ) युक्त करके ( अवाह ) पीछे ( उप, यासत् ) समीप प्राप्त होवे और ( माध्यन्दिने ) मध्याह्न में ( सर्वने ) भोजन के समय ( मत्तत् ) आनन्दित होवे उसी को बलिष्ठता करो ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**वही राजा प्रशंसित होवे जो राज्य के शत्रुओं और विद्याओं को ग्रहण करके प्रजापालन के लिये प्रयत्न कर ॥४॥

अब सूर्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**यथा सूर्य स्वर्मानुस्तपसाविध्यदासुरः ।**

**अक्षेत्रविद्ययां मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥५॥११॥**

**पदार्थ—**हे ( सूर्य ) सूर्य के सद्यः वर्तमान ( यथा ) जैसे ( अक्षेत्रविद्य ) क्षेत्र अर्थात् रेखागणित को नहीं जानने वाला ( मुग्ध ) मूर्ख कुछ भी नहीं कर सकता है वैसे ( यत् ) जो ( स्वर्मानु ) सूर्य से प्रकाशित होने वाला बिजुलीरूप ( आसुर, ) जिस का प्रकट रूप नहीं वह ( तमसा ) रात्रि के अन्धकार में ( अविध्यत् ) युक्त होता है जिस सूर्य से ( भुवनानि ) लोक ( अदीधयुः ) देखे जाते हैं उस के जानने वाले ( एषा ) आप का हम लोग आश्रयण करें ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमानद्वार है । हे मनुष्यों ! जैसे बिजुली गुप्त हुई अन्धकार में नहीं प्रकाशित होती है वैसे ही विद्यारहित मूर्खजन का आत्मा नहीं प्रकाशित होता है और जैसे सूर्य के प्रकाश से सम्पूर्ण लोक प्रकाशित होते हैं वैसे ही विद्वान् का आत्मा सम्पूर्ण सत्य और अमत्य व्यवहारों को प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

फिर सूर्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**स्वर्मानोरथ यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तमाना अवाहन ।**

**गृह्ण सूर्य तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्दद्विः ॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) विद्वान् ( यत् ) जो ( स्वर्मानो ) सूर्य के प्रकाशक के सम्बन्ध में ( दिव ) प्रकाशमान ( वर्त्तमाना ) स्थित ( माया ) बुद्धियाँ ( अपव्रतेन ) ग्रन्थया वर्त्तमान ( तमसा ) अन्धकार से और ( तुरीयेण ) चौथे ( ब्रह्मणा ) धन से ( गृह्णत् ) गुप्त बिजुली नामक ( सूर्यम् ) सूर्य के उत्पन्न करनेवाले को ( अवः ) नीचे ( अवाहन ) प्राप्त करती हैं ( अवः ) इसके अनन्तर ( अत्रि, ) निरन्तर चलनेवाला ( अविन्दत् ) प्राप्त होता है उनको आप जानिये ॥६॥

**भाषार्थ—**जैसे गुप्त बिजुली के प्रकाश बड़े कार्य को सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वानों की बुद्धियाँ सम्पूर्ण विज्ञान कार्यों को सिद्ध करती हैं ॥६॥

अब उक्त विषय में राजविषय को कहते हैं—

**मा मामिम तव सन्तमत्र इरस्या द्रुधो मियमा नि गारीत् ।**

**त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥७॥**

**पदार्थ—**हे ( अत्रे ) तीन प्रकार के दुःखों से रहित ( इरस्या ) धन की इच्छा से तथा ( मियमा ) भय से ( द्रुध ) द्राह को प्राप्त ( इमम् ) इसको और ( तव ) आपके आश्रित ( सन्तम् ) हुए ( माम् ) मुझको ( मा ) नहीं ( नि, गारीत् ) निगलिये और जो ( त्वम् ) आप ( मित्रः ) मित्र ( सत्यराधा, ) सत्य आचरण से वा सत्यधन जिनका ऐसे ( असि ) हो वह आप ( राजा ) सब के अधिष्ठाता और ( वरुणः ) श्रेष्ठ सेना का ईश ( च ) भी ( तौ ) वे दोनों ( इह ) इस ससार में ( मा ) मेरी ( अवतम् ) रक्षा करो ॥७॥

**भाषार्थ—**हे धर्मिष्ठ राजा और सेना के स्वामी ! अन्याय से किसी के पदार्थ को भी न ग्रहण करें भय और न्याय के अच्छे प्रकार चलाने में राजधर्म से पृथक् न होंगे और सदा ही सत्य धर्म में प्रिय हुए मित्र के सद्यः प्रजाओं का पालन करो ॥७॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**ब्राह्मणो ब्रह्मा युयुजानः सपर्य्यन कीरिणां देवाभ्यसोपशिक्षन् ।**

**अत्रिः सूर्यस्य दिवि बहुराधात्स्वर्मानोरप माया अघुक्षत् ॥८॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यों जो ( ब्रह्म ) चारों वेदों का जाननेवाला ( कीरिणा ) सम्पूर्ण विद्याओं की स्तुति करनेवाले से ( युयुजानः ) मिलता हुआ ( नमसा )

सन्कार वा अन्न आदि में ( वेदान् ) विद्वानों की ( सपर्यन् ) सेवा करना और विद्यार्थियों को ( उपशिक्षत् ) समीप प्राप्त विद्या को ग्रहण कराता हुआ ( अत्रि ) सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापक ( स्वर्मानो ) सूर्य की कान्ति के सद्यः कान्ति जिस की उसके ( प्राक् ) मेघ में ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( दिवि ) प्रकाश में ( बह्म् ) मेघ का ( आ, अघात् ) स्थापन करे वह ( माया ) बुद्धियों को प्राप्त होवे और अविद्याओं को ( अघ, अघुक्षत् ) अपशब्दित करे ॥८॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यों ! जो विद्वानों की सेवा करनेवाला, योगी, विद्या के प्रचार में प्रिय, विद्वान् होंगे वह जैसे बिजुली सूर्य और मेघ के सम्बन्ध में मृष्टि की पानना और दुःख का निवारण होता है वैसे ही अध्यापक और ग्रन्थिता के सम्बन्ध से विद्या की रक्षा और अविद्या का निवारण करता है ॥८॥

अब सूर्य और अन्धकार के वृष्टान्त से विद्वान् और अविद्वान् के विषय को कहते हैं—

**यं वै सूर्य स्वर्मानुस्तमसाविध्यदासुरः ।**

**अत्रयस्तमन्विन्दन्नुद्यन्य अशक्नुवन् ॥९॥१२॥**

**पदार्थ—**हे विद्वाना ! ( स्वर्मानु ) सूर्य से प्रकाशित ( आसुर ) मेघ ही ( तमसा ) अन्धकार से ( यम् ) जिस ( सूर्यम् ) सूर्य को ( अविध्यत् ) ताड़ित करता है ( तम् ) उसको ( वै ) निश्चय करके ( अत्रय ) विद्या में दक्ष जन ( अनु, अविध्यत् ) अनुज्ञा प्राप्त होवे ( नहि ) नहीं ( अन्ये ) अन्य इसके जानने को ( अशक्नुवन् ) गमय होवे ॥९॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यों ! जैसे मेघ सूर्य को ढाँप के अन्धकार को उत्पन्न करता है वैसे ही अविद्या आत्मा का आवरण करके भ्रान्त को उत्पन्न करती है और जैसे सूर्य मेघ का नाश और अन्धकार का निवारण करके प्रकाश को प्रकट करता है वैसे ही प्राप्त हुई विद्या अविद्या का नाश करके विज्ञान के प्रकाश को उत्पन्न करती है इस विवेचन को विद्वान् जन जानते हैं अन्य नहीं ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र मेघ सूर्य विद्वान् अविद्वान् के गुण वर्णन करने में इस सूक्त

के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के माध

संगति जाननी चाहिये ॥

यह चालीसवाँ सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ विशात्पृथक्स्वैकवत्त्वारिंशसमस्य सूक्तस्याष्टविंशति । विश्वेदेवा देवताः ।

१,२,६,१५,१८, त्रिष्टुप् । ४,१३ विराद्विष्टुप्छन्दः । वंशत स्वरः ।

३,१४,१६ पङ्क्तिः । ५,६,१०,११,१२ पुरिक्पङ्क्तिः ।

७,८ पङ्क्तिछन्दः । २० पाङ्गुणी पङ्क्तिछन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

१६ जगती । १७ निबृज्जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अब बीस ऋचावाले एकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम

मन्त्र से विश्वदेवों के गुणों को कहते हैं—

**को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वां महः पार्थिवस्य वा दे ।**

**ऋतस्य वा सर्वसि त्रासीयां नो यज्ञायते वां पशुषां न वाजानं ॥१॥**

**पदार्थ—**हे ( मित्रावरुणौ ) प्राण और उदान वायु के सद्यः वर्तमान पक्षों और पड़ानेवाले जनों ( वाम् ) आप दोनों और ( दिव ) प्रकाशों को ( न ) कौन ( ऋतावत् ) सत्य का आचरण करता हुआ ( वा ) वा ( पार्थिवस्य ) पृथिवी में विदितजन के ( मह ) तज को कौन ( नु ) शीघ्र जान ( वा ) वा ( दे ) प्रकाशमान विद्वान्जनों ( ऋतस्य ) सत्य की ( सर्वसि ) सभा में ( त्रासीयाम् ) रक्षा करो ( वा ) वा ( यज्ञायते ) यज्ञ की कामना करने हुए के लिए ( न ) हम लोगों की रक्षा करिये ( वा ) वा ( पशुषां ) पशुओं और ( वाजान् ) अन्लों के ( न ) सद्यः सब लोगों के लिए भोगों को प्राप्त कराए ॥१॥

**भाषार्थ—**हे विद्वानों ! जो आप लोग पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या को जानते हैं तो हम लोगों को उपदेश देवे और सभा में बैठ के सत्य न्याय को करे ॥ १ ॥

**ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्रं क्रुधुक्षा मरुतो जुषन्त ।**

**नमोमिवा ये दधन्ते सुश्रुतिं स्तोमं रुद्राय मोळ्हुव सजोषाः । २॥**

**पदार्थ—**( ये ) जो ( वरुणः ) मनुष्य ( नमोभि, ) सत्कार और भन्नादिकों से ( मोळ्हुव ) सुख का सेवन करते हुए ( रुद्राय ) दुष्ट आचरणों के करनेवाले जनों के रुलानेवाले के लिए ( सजोषाः ) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले हुए ( सुश्रुतिम् ) उत्तम प्रकार वर्जन होता है जिससे उस ( स्तोमम् ) प्रशंसा का ( वरुणः ) धारण करते ( वा ) वा ( जुषन्त ) सेवन करते हैं ( ते ) वे ( मित्र, ) मित्र ( वरुणः ) श्रेष्ठ आचरण करनेवाला ( अर्यमा ) न्याय का ईश और ( इन्द्रः ) परमेश्वर्य्यवान् ( क्रुधुक्षा, ) बड़ा विद्वान् ( नः ) हम लोगों के लिए ( आयुः ) जीवन का सेवन करें ॥२॥

**भाषार्थ—**उन्हीं विद्वानों को उत्तम सम्भना चाहिए जो अपने सद्यः सब प्राणियों में वर्त्ताव करें ॥२॥

आ वां वेष्टाभिना हुवध्वे वातस्य पत्मवर्धस्य पुष्टौ ।

वत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धासीव यज्यवे भरध्वम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( वेष्टा ) अन्यन्त नियम के निर्वाहक ( अविना ) अध्यापक और उपदेशक जनों । जैसा ( वास् ) आप दोनों ( रथस्य ) रथ में उत्पन्न हुए ( वातस्य ) पवन के ( पत्मन् ) माग म और ( पुष्टौ ) पोषण करने में ( वत, वा ) अथवा ( असुराय ) मेघ के लिए ( दिव, ) कामना करते हुए क ( अन्धासीव ) अन्न आदिको के सदृश ( यज्यवे ) यज्ञारम्भ वा यज्ञमान के लिए कारण होते हो वैसे ( हुवध्वे ) धृष्ट करने के लिए ( मन्म ) विज्ञान का ( प्र, आ भरध्वम् ) प्रारम्भ करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पढ़ने और पढ़ानेवाला विद्या के प्रचार के लिये प्रयत्न करता है वैसे ही सब मनुष्यों को चार्ष्टि कि निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ३ ॥

प्र सक्ष्णो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।

पूषा भगः प्रभुये विश्वभोजा आर्जि न जग्मुराश्वत्तमाः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( दिव्यः ) शुद्ध व्यनहारयुक्त ( कण्वहोता ) बुद्धिमान्, तथा देने और ग्रहण करनेवाले के सदृश जो ( सक्ष्ण ) सहने वाला ( त्रित, ) तीन पृथिवी जल और अन्तरिक्ष में बहता ( दिव ) श्रेष्ठ कामनाओं की इच्छा करता और ( सजोषा ) साथ ही सेवन ( वात ) वायु और ( अग्नि ) अग्नि ( प्रभुये ) शुद्ध करनेवाले व्यवहार में ( पूषा ) पुष्टि करने वा ( भग ) ऐश्वर्य का देने वा ( विश्वभोजा ) ससार का पालन करनेवाला और ( आश्वत्तमा ) शीघ्र चलनेवाले घोड़े जिनके विद्यमान वे ( आर्जिम् ) सश्रम को ( जग्मु ) जैसे प्राप्त होत हैं ( न ) वैसे ( प्र ) प्रयत्न किया जाना है वही बहुत भाग की प्राप्ति कराता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों ! आप लोग अग्नि आदि पदार्थों में दारिद्र्य का नाश करके धनवान् हूँ ॥ ४ ॥

प्र वो रपि युक्ताश्वं भरध्वं राय एषज्वसे दधीत धीः ।

सुशेव एवैर्गैश्चिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुगणाम् ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे ( सक्ष्ण ) मनुष्यों ! आप लोग ( धी, ) बुद्धियों को ( दधीत ) धारण करें और ( व ) आप लोगों के लिए अर्थात् आप अपने लिए ( युक्ताश्वम् ) युक्त घोड़े जिससे उस ( रपिम् ) धन को ( प्र, भरध्वम् ) अत्यन्त धारण करें । तथा ( अश्वसे ) रक्षण आदि के लिये ( एषे ) प्राप्त होने का ( सुशेव ) सुन्दर मुख से युक्त जन ( एवं ) गमनो से ( औश्चिजस्य ) कामना करनेवाले मन्तान का और ( राय ) धनो का ( होता ) देनेवाला होता है और ( य ) जा ( व ) आप लोगों के ( तुगणाम् ) नाश करनेवालों के नाश करनेवाले ( एवा ) और कामना करनेवाले हैं उनका आप लोग सत्कार करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों ! आप लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या से धनवान् होकर मत्स्यना से सब अनायास का पालन करा और दुष्टों का ताड़त करो ॥ ५ ॥

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुष्वं प्र देवं बिभ्रे पनितारमकैः ।

इष्टुष्यव क्रुतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( अत्र ) इस ससार में ( इष्टुष्यव ) वाणों के द्वारा युद्ध करने वा ( क्रुतसापः ) सत्य सम्बन्ध रखनेवाले विद्वान् जन ( व, ) आप लोगों के लिए ( रथयुजम् ) वाहन से युक्त ( वायुम् ) वेगवान् वायु को ( धु ) धारण करें वा आप लोगों और ( न, ) हम लोगों के लिए ( पत्नी ) स्त्रियों के सदृश वर्तमानों की और ( धिये ) बुद्धि के लिये ( वस्वी ) बहुत पदार्थों में युक्त ( पुरन्धी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( आ ) सब प्रकार धारण करें उनके संग से वेगयुक्त वाहन से युक्त को ( प्र, कृणुष्वम् ) अच्छे प्रकार सिद्ध करें ( अकै, ) प्रशमनीय पदार्थों से ( पनितारम् ) स्तुति करने और धर्म से व्यवहार करनेवाले ( बिभ्रेम् ) बुद्धिमान् ( वस्वी ) विद्वान् को ( प्र ) अच्छे प्रकार प्रकट करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे पतिव्रता पत्नी पति आदि को सुख देती है वैसे ही वायु के समान वेगयुक्त रथ को और धार्मिक विद्वानों को धारण कर सब को सुखयुक्त करो ॥ ६ ॥

उप व एषे वन्द्येभिः शुचैः प्र यही दिवश्चितयद्भिरकैः ।

उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( विव ) विद्याके प्रकाशों को ( चितयद्भिः ) जनाने हुए ( अकै, ) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ और ( वन्द्येभिः ) स्तुति करने योग्य ( शुचै, ) बलों के साथ ( यही ) बड़ी ( विदुषीव ) पूर्णविद्यायुक्त स्त्री के तुल्य जो ( उषासानक्ता ) रात्रि और दिन ( व ) आप लोगों के ( उप, एषे ) समीप प्राप्त होने को ( मर्त्याय ) मनुष्य के सुख के लिए ( विश्वम् ) सम्पूर्ण ( यज्ञम् ) विद्या के प्रचार आदि को ( हा ) निश्चय ( प्र, आ, वहतः ) सब प्रकार धारण करते हैं उनकी सेवन की विद्या को आप लोग जानें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे बड़ी विद्यायुक्त स्त्री सब जगह विद्यायुक्त स्त्रियों और विद्वानों में सत्कारयुक्त हो और सम्पूर्ण उत्तम गुणों का धारण करके विद्यायुक्त पति आदि की वृद्धि करती है वैसे ही रात्रि और दिन सब व्यवहारों को धारण करके सब जगत् की वृद्धि करते हैं ॥ ७ ॥

अभि वो अर्चं पोष्यावतो नृनास्तोष्यति स्वष्टारं ग्राणः ।

धन्वां सजोषा धिषणा नमोभिर्धनस्पर्तीरोषधी राय एषे ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे ( धन्वां ) धन को प्राप्त हुई ( सजोषाः ) तुल्य प्रीति की सेवनेवाली ( धिषणा ) बुद्धि ( नमोभिः ) सत्कारों वा अन्न आदिको से ( नृनास्तोष्यति ) प्रशय्य आदि और ( ओषधी ) जब सोमलतादिको को तथा ( रायः ) धनो को ( एषे ) प्राप्त होने के लिए समर्थ होती है वैसे ( धास्तो ) निवास के स्थान के ( पतिम् ) पालनेवाले ( स्वष्टारम् ) तेजस्वीजन को ( रराणः ) दाता में ( पोष्यावत ) बहुत पोषण करने योग्य पदार्थ जिन के विद्यमान उन ( व ) आप ( नृन् ) मनुष्यों का ( अभि, अर्चं ) प्रत्यक्ष मरकार करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे तीव्र बुद्धि और विद्या से युक्त मनुष्य वैदिक विद्या को जान कर मनुष्य आदिको का पालन करते हैं वैसे ही सब के हित की इच्छा करनेवाले मनुष्यों का सदा ही सत्कार करिये ॥ ८ ॥

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवा ये वसवो न वीराः ।

पनित आसधो यजतः सदा नो वर्धोन्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( ये ) जो ( स्वैतव ) उत्तम गमनवाले ( वसव ) पृथिवी आदि ( वीरा ) बुद्धि और शरीर के बल से युक्त जनों के ( न ) सदृश ( तने ) विस्तीर्ण ( तुजे ) दान में ( न ) हम लोगों के लिए ( पर्वता ) जल के देनेवाले मेघ और दाता जनों के सदृश ( सन्तु ) हाँवें और जो ( अभिष्टौ ) दृष्ट की सिद्धि में ( पनित ) प्रशंसित ( आसध ) यथार्थवक्ता जनों में उत्पन्न ( यजत ) मिलने वा मत्कार करने योग्य जन ( न ) हम लोगों की ( सदा ) सदा ( वर्धोन्न ) वृद्धि करें और जो ( नर्यो ) मनुष्यों में श्रेष्ठ ( न ) हम लोगों को ( शंसम् ) प्रशंसा को प्राप्त कराएँ उन सब का हम लोग सत्कार कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो जन वीर जनों के सदृश शत्रुओं के निवारण करने, मेघ के सदृश देनेवाले और वायु के सदृश वेगयुक्त विद्वान् हम लोगों की निरन्तर वृद्धि करें उनकी हम लोग भी वृद्धि करें ॥ ९ ॥

वृष्णो अस्तापि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपा सुवृक्षित ।

गृणीते अग्निरेतरो न शुचैः शोचिष्केशो नि र्गणाति वना ॥१०॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप ( वृष्ण ) मुख की वर्णित करनेवालों की ( अस्तापि ) प्रशंसा करते हो ( त्रित ) तीनों में वृद्धि करनेवालों ( अपाम् ) मनुष्यों के सदृश प्राणियों में ( नपातम् ) नहीं पतन जिसका उस ( भूम्यस्य ) पृथ्वी में हुए ( गर्भम् ) गर्भ की ( सुवृक्षित ) उत्तम गमन के सहित ( गृणीते ) स्तुति करना है इस प्रकार जो ( अग्नि ) पवित्र करनेवाले अग्नि के ( एतरो ) प्राप्त होनी हुई के और ( शोचिष्केश ) प्रकाशित विज्ञानवालों के ( न ) सदृश ( शुचैः ) बलों से ( वना ) किरणों का ( नि, र्गणाति ) जाता वा प्राप्त होता है वही मरपूर्ण सृष्टि में उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—वही पुरुष बहुत धन और धातु को प्राप्त होता है कि जो सृष्टि-क्रम की विद्या को जान कर कार्य की सिद्धि के लिए यत्न करता है ॥ १० ॥

कया महे रुद्रियाय ववाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।

आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनों मनुष्य ( आप ) जल ( ओषधीः ) सोमलता आदि ओषधीयां ( वृक्षकेशा ) वृक्ष हैं केशों के समान जिन के वे पवन ( गिरयोः ) मेघ ( उत ) और ( द्यौ ) सूर्य ( वना ) किरणों के सदृश ( न ) हम लोगों की ( अवन्तु ) रक्षा करें उन के सहाय से हम लोग ( महे ) बड़े ( चिकितुषे ) जानने योग्य और ( रुद्रियाव ) रुद्रानेवालों से प्राप्त हुए के लिए ( कया ) किस प्रकार से ( ववाम ) उपदेश दें और ( राये ) धन और ( भगाय ) ऐश्वर्य के लिए ( कत् ) कब उपदेश दें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्य अपने और अन्यो के रक्षण के लिए विद्वानों का भिक्ष के प्रश्न और उत्तर से सत्य विद्याओं को प्राप्त हो और अन्यो के लिए उपदेश देकर ऐश्वर्य की वृद्धि कब करें इस प्रकार नित्य उत्साह करें ॥ ११ ॥

शृणोतु न ऊर्जा पतिर्गिरः स नमस्तरीयाँ इषिरः परिजमा ।

शुण्वन्वापः पुरो न शुभ्राः परि सुचो बभूवाणस्याद्रेः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( स ) वह ( नभ ) जल ( तरीयाव ) तीरने और ( इषिर ) प्राप्त होने योग्य ( परिजमा ) सर्वत्र प्राप्त होनेवाला ( ऊर्जाव ) बल से युक्त सेनाओं वा अन्नादिको का ( पति ) स्वामी पालन करनेवाला ( नः ) हम

लोगों की ( गिरः ) उत्तम शिक्षा से युक्त वाणियों को ( भुषोः ) सुने तथा ( भुषाः ) श्रेष्ठ वर्णवाले ( पुरः ) नगरों के ( नः ) मनुष्य ( आपः ) और जलो के सदृश विद्याओं से व्याप्त विद्वान् जन ( नः ) हम लोगों की वाणियों को सुनो ( बभूवन्स्य ) उत्तम प्रकार बड़े ( अष्टेः ) मेघ के ( जम्बुः ) चलनेवालों के सदृश हम लोगों की वाणियों को विद्वान्जन ( परिः, भुषन्सु ) सुने ॥ १२ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालकार है । वे ही जन विद्वान् होने योग्य हैं जो विद्वानों से पढ़ी हुई विद्या की परीक्षा को प्रसन्नता से देते हैं और वे ही अध्यापक विद्याधियों को विद्वान् कर सकते हैं जो प्रीति से उत्तम प्रकार पढ़ा के विरोधियों के सदृश परीक्षा लेते हैं । जो इस प्रकार दोनों प्रयत्न करते हैं वे नदी की उन्नति के समान अच्छे प्रकार बढ़ते हैं ॥ १२ ॥

**विदा चिन्म संहान्तो ये व एवा ब्रवांम दस्मा वार्य दधानाः ।**

**वयश्चन सुभ्वः आब यन्ति सुमा मर्त्तमनुयत वधस्मैः ॥१३॥**

**पदार्थ—**हे ( दस्माः ) दुःख की उपेक्षा करनेवाले ( महात्मा ) बड़े श्रेष्ठ जनो ( ये ) जो ( वार्यम् ) स्वीकार करने योग्य सुख और ( वयः ) जीवन को ( ब्रवांम ) भी ( ब्रवाताः ) धारण करते हुए ( सुभ्वः ) श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त होनेवाले हम लोग जो ( वः ) आप लोगों को ( ब्रवांम ) कहे उसको ( एवाः ) ही ( चित् ) निश्चय ( नु ) शीघ्र आप लोग ( विदा ) जानिये जो ( वधस्मै ) ताड़न से स्नापन करते अर्थात् पवित्र होते हैं उनके साथ ( सुमा ) उत्तम प्रकार चलने से ( अनुयतम् ) अनुकूलता से प्रयत्न करते हुए ( मर्त्तम् ) मनुष्य को ( आ, अब, यन्ति ) उत्तम प्रकार प्राप्त होते हैं उनकी आप लोग शिक्षा करो ॥ १३ ॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन शुभ कर्म को करे और उपदेश दें वैसे ही आप लोग आचरण करो और जो मनुष्यों को क्लेश देते हैं उनको दण्ड दीजिये ॥ १३ ॥

**आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापवाच्छा सुमन्त्राय वोचम् ।**

**वर्धन्तां यावो गिरश्चन्द्राग्रा उवा वर्धन्तामभिधाता अर्णोः ॥१४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! मैं जिन ( दैव्यानि ) श्रेष्ठ गुणों में हुए ( पार्थिवानि ) पृथिवी में विदित ( जन्म ) जन्मों और ( अपः ) कर्मों को ( जः ) भी ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( आ, वोचम् ) सब धोर से उपदेश करू जिस ( उवा ) जल से ( अर्णोः ) समुद्रों के सदृश हम लोगों की ( अग्नाग्राः ) सुवर्णों वा आनन्द प्रग्रे अर्थात् परिणाम दशा में जिनके उन ( अभिधाताः ) चारों ओर से बटी हुई ( यावः ) सत्यकामनाओं का और ( गिरः ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों की ( वर्धन्ताम् ) वृद्धि कीजिय जिससे ( सुमन्त्राय ) शोभन यज्ञोवाले के लिए प्राणियों की ( वर्धन्ताम् ) वृद्धि हो ॥ १४ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालकार है । हे मनुष्यो ! आप लोग धर्मयुक्त कर्मों और श्रेष्ठ गुणों का ग्रहण करके अपनी कामनाओं और वांछों को शोभित करो जैसे जल से नदियां और समुद्र बढ़ते हैं वैसे ही धर्मयुक्त पुरुषार्थ से मनुष्य बढ़ते हैं ॥ १४ ॥

**पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरुत्री वा शक्रा या पायुमिश्र ।**

**सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिर्मिर्जुहस्तः ऋजुवनिः ॥१५॥१५॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ( सूरिभिः ) विद्वानों और ( पायुभिः ) रक्षकों से ( जः ) और ( या ) जो ( मे ) मेरे ( पदेपदे ) प्राप्त होने प्राप्त होने, जानने जानने वा जाने जाने योग्य पदार्थों में ( वरुत्री ) श्रेष्ठ सुख की देने ( जरिमा ) और स्तुति कराने वाली ( वा ) वा ( शक्रा ) सामर्थ्य में कारण ( माता ) माता ( रसा ) रस आदि गुणों ने युक्त ( मही ) बड़ी वाणी वा भूमि ( ऋजुहस्ताः ) ऋजु अर्थात् सरल हस्त जिस के वा जिससे वह ( ऋजुवनिः ) ऋजु अर्थात् नहीं जो कुटिल उन पदार्थों के विभक्त करनेवाली ( नः ) हम लोगों को ( सिषक्तु ) सम्बन्धित करे वह ( स्मत् ) ही ( नि ) निरन्तर ( धायि ) स्थित की जाती है ॥ १५ ॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे माता सन्तानों की रक्षा करती है वैसे ही विद्वानों के संग से प्राप्त और उत्तम प्रकार शिक्षित विद्या विद्वानों की सब प्रकार रक्षा करती है ॥ १५ ॥

**कथा दाक्षेन नमसा सुदानूनेवया मरुतो अञ्छोक्तौ प्रभवसो मरुतो**

**अञ्छोक्तौ । मा नोऽर्ह्युच्यो रिषे वादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६॥**

**पदार्थ—**हे विद्वानो ! ( प्रभवसः ) उत्तम श्रवण वा अन्न जिनका वे ( मरुतः ) मनुष्य हम लोग ( एवया ) गमन क्रिया से ( अञ्छोक्तौ ) सत्य कथन में ( नमसा ) सत्कार वा अन्न आदि से ( सुदानून् ) उत्तम दानों को ( कथा ) कौसे ( दाक्षेन ) देवों जैसे ( मरुतः ) पवन ( अञ्छोक्तौ ) उत्तम बचन में प्रवृत्त करते हैं वैसे ( नः ) हम लोगों को इस विषय में प्रवृत्त करिये । जैसे ( बुध्वाः ) धन्तरिक्ष में हुआ ( अहिः ) मेघ ( अस्माकम् ) हम लोगों का ( उपमातिवनिः ) उपमा का विभाग करनेवाला ( सुत् ) हो और ( रिषे ) धन्न के लिए हम लोगों को ( मा ) नहीं ( वात् ) धारण करे वैसे आप लोग भी हम लोगों को हिसा में न प्रवृत्त कीजिये ॥ १६ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वानों के प्रति प्रश्न करके कि हम लोग क्या देवों और किससे क्या ग्रहण करें ऐसा निश्चय

करके व्यवहार करो और जैसे मेघ स्वयं छिन्नभिन्न होके धन्यों की रक्षा करता है वैसे ही विद्वान् जन स्वयं दूसरे से अपकार किये हुए से छिन्नभिन्न होकर भी धन्यों का सदा उपकार करते हैं ॥ १६ ॥

किर विद्वद्भिषम को अपने मर्मों में कहते हैं—

**इति चिन्म प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनन्ते मर्त्यो व आ देवासो वनन्ते मर्त्यो वः । अत्रा शिवा तन्वो चासिमस्या जरां चिन्मे निर्रतिर्जिप्रसीत**

**पदार्थ—**हे ( देवासः ) विद्वान् जनो जो ( मर्त्यः ) मनुष्य ( वः ) आप लोगों को ( पशुमत्यै ) बहुत पशु विद्यमान जिस में उस ( प्रजायै ) प्रजा के लिए ( चासिम् ) जन्म की ( वनन्ते ) सेवा करता है और जो ( चित् ) निश्चय से ( इति ) इस प्रकार से ( जस्याः ) इस प्रजा के ( तन्वः ) शरीर की ( शिवाम् ) मंगलस्वरूप ( जराम् ) वृद्धावस्था को ( आ, वनन्ते ) अच्छे प्रकार सेवा करता है और जो ( मर्त्यः ) मनुष्य ( चित् ) निश्चय से ( मे ) मेरे शरीर की मंगलस्वरूप वृद्धावस्था का सेवन करता है और ( निर्रतिः ) भूमि के समुद्र ( अत्रा ) इस प्रजा में ( वः ) आप लोगों के जन्म को ( अजसीत ) खाता है इस प्रकार हे ( देवासः ) विद्वान् आप लोग हम लोगों के लिए इस को ( नु ) शीघ्र सिद्ध कीजिये ॥ १७ ॥

**भाषार्थ—**हे विद्वान् जनो ! आप लोग ऐसा प्रयत्न करो जिससे मनुष्यों की अवस्था बड़े जब तक मनुष्य वृद्ध नहीं होते तक वे परीक्षक भी नहीं होते हैं ॥ १७ ॥

**ता वो देवाः सुमतिमूर्ज्यन्तीमिषमस्याम वसवः शसा गोः ।**

**सा नः सुवानुर्ज्यन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥**

**पदार्थ—**हे ( देवाः ) धार्मिक विद्वान् जनो ! जो ( सुवानुः ) उत्तम दान से युक्त ( मूर्ज्यन्ती ) सुख देती ( द्रवन्ती ) जानती वा चलती हुई ( देवी ) विद्यायुक्त स्त्री ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिए ( वः ) आप लोगों को प्राप्त होती है ( ताम् ) उस को ( ऊर्ज्यन्तीम् ) तथा पराक्रम आदि के दान से वृद्धि कराती हुई ( सुमतिम् ) श्रेष्ठ बुद्धि को और ( इषम् ) धन्न को हम लोग ( अमस्याम् ) भागें । हे ( वसवः ) उत्तम गुणों में निवास किये हुए जनो ! जो ( गोः ) पृथिवी के मध्य में ( शसा ) प्रशंसा के साथ वर्तमान है ( सा ) वह ( नः ) हम लोगों को प्राप्त हो । और हे विद्यायुक्त स्त्री आप इन जनो के ( प्रति ) प्रति ( गम्याः ) प्राप्त कीजिये ॥ १८ ॥

**भाषार्थ—**मनुष्य सदा उत्तम प्रकार धृत आदि के सत्कार से युक्त बुद्धि और दान के बढ़ानेवाले अन्न का मदा भोग करें जिससे बुद्धि यश और धन बढ़े ॥ १८ ॥

**अभि न इळां यूथस्य माता स्मन्दीमिर्बशी वा गृणातु ।**

**उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाम्यूर्वाणा प्रभृथस्यायोः ॥१९॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो ( इळा ) प्रशंसा करने योग्य वाणी वा भूमि ( यूथस्य ) समूह की ( माता ) आदर करनेवाली माता के सदृश ( नः ) हम लोगों की ( अभि- ) ( गृणातु ) मन्त्र और से स्तुति करे ( वा ) वा ( आयोः ) जीवन की ( उर्वशी ) बहुत वश में होने हैं जिससे ऐसी वाणी ( नदीभिः ) श्रेष्ठों के सदृश नादियों से ( स्मत् ) ही स्तुति करे ( वा ) वा ( बृहद्दिवा ) बड़ा प्रकाश जिसका ऐसी ( गृणाना ) स्तुति करनेवाली ( उर्वशी ) और बहुतों को वश में करनेवाली बुद्धि ( अम्यूर्वाणा ) समुच्चता से धर्मों को ढांपती हुई ( प्रभृथस्य ) प्रकर्षता में धारण किये गये जीवन की स्तुति करे ॥ १९ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । हे मनुष्यो ! आप लोग जो सत्य भाषण से युक्त वाणी को धारण करें तो आप लोगों की अवस्था बढ़े ॥ १९ ॥

**सिषक्तु न ऊर्ज्यस्य पुष्टेः ॥२०॥१६॥**

**पदार्थ—**जो विद्वान् होवे वह ( नः ) हम लोगों को ( ऊर्ज्यस्य ) बहुत बल से प्राप्त ( पुष्टे ) पुष्टि के योग का ( सिषक्तु ) सेवन करे ॥ २० ॥

**भाषार्थ—**जो जगत् का उपकार करने वाला होता है वही सम्पूर्ण विद्याओं के सम्बन्ध करने को योग्य होता है ॥ २० ॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकतालीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथाष्टावशस्य द्विज्वारिसप्तमस्य सूक्तस्याऽभिष्टुतिः । विश्वेदेवा देवताः ।

१, ४, ६, ११, १२, १५, १७, १८ निष्टुतिः । २ विराट्निष्टुप् । ३,

५, ७, ८, ९, १३, १४ त्रिष्टुप्छन्दः । देवताः स्वरः । १७ वाजुवी

पङ्क्तिःछन्दः । १० भुरिक्पङ्क्तिःछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अठारह ऋचावाले क्वालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से

विश्वेदेवों के गुणों को कहते हैं—

**प्र शन्तना वचसं दीधिति गीमित्रं मगमदिति नूनमस्याः ।**

**पृथङ्गोनिः पञ्चहीता शुणोस्त्वर्त्तुर्पन्या असुरो मयोमुः ॥२१॥**



**पदार्थ—**हे विद्वान् जो ( वरुणम् ) उदान वायु को ( वीक्षितो ) प्रकाशित करती हुई ( क्षन्तव्या ) अत्यन्त सुख करने वाली ( पृथ्वीनि ) वृष्टि है कारण जिसका ऐसी तथा ( पृथ्वीहोता ) पाँच प्राण ग्रहण करने वाले जिसके तेसी ( नी ) वाणी वर्तमान है उसको ( मित्रम् ) प्राण ( भगम् ) ऐश्वर्य और ( अक्षितम् ) आकाश वा भूमि को ( सूनम् ) निश्चय करके ( प्र, अद्याः ) प्राप्त होवे और जो ( अतुल्यपन्थाः ) नहीं हिमित है मार्ग जिसका ऐसा ( मयोधु ) सुखकारक ( असुर ) प्रकाश का आवरण करने वाला मेघ है उसमें स्थित जो वाणी उसको आप ( शृणोतु ) सुनिये ॥ १ ॥

**भावार्थ—**मघ चर और अचर पदार्थों से आकाश के मयोग में वाणीवत् मान है उसको विद्वान् ही जान और कार्यों में व्यवहार में ला सकते हैं ॥ १ ॥

**प्रति मे स्तोममदितिर्जगम्यात्सूनु न माता हृद्यं मुश्वम् ।**

**अन्नं प्रियं वेवहितं यदस्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोधु ॥२॥**

**पदार्थ—**ह मनुष्यो ! ( अक्षित ) पूर्ण सुख की देने वाली ( माता ) माता ( हृद्यम् ) हृदय के प्रिय ( सूनुम् ) सन्तान के ( न ) मद्दश जो ( मे ) मेरी ( स्तोमम् ) स्तुति का ( प्रति, जगम्यात् ) अत्यन्त ग्रहण करे और ( यत् ) जिस ( मुश्वम् ) उत्तम प्रकार सुख देने वाले ( प्रियम् ) सुन्दर और प्रीतिकारक तथा ( वेवहितम् ) देव अर्थात् विद्वानों के लिए हितकारक ( अन्नम् ) मत्, चित् और आनन्दस्वरूप चेतन ( अस्ति ) है और ( यत् ) जो ( मित्रे ) प्राणवायु और ( वरुणे ) उदान वायु में ( मयोधु ) सुखकारक है उसको ( अहम् ) मैं इष्ट मानता हूँ वैसे आप लोग भी मानिये ॥ २ ॥

**भावार्थ—**हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर प्रेमभाव में स्तुति किया गया और जो उसकी आज्ञा का सेवन किया हो तो वह जैसे कृपा करनेवाली माता शीघ्र उत्पन्न हुए बालक पर वैसे धार्मिक उपासक जन पर दया करता है, जो जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त हुआ भी प्राणादिकों में पाया जाता है उस सब काम में सुख देने वाल परमात्मा की हम योग उपासना करें ॥ २ ॥

**उदीरय कवितमं कवीनामुनचैनममि मध्वा घृतेन ।**

**स नो वदन्ति प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे खेत बाने वाले जन ( मध्वा ) मधुर ( घृतेन ) जल से क्षेत्र आदि सींचकर अन्नादिकों को प्राप्त होत है वैसे ही ( एनम् ) हम ( कवीनाम् ) बुद्धिमानों के मध्य में ( कवितमम् ) अत्यन्त बुद्धिमान् को ( उत्, ईरय ) उत्तमता से प्रेरणा देओ तथा ( अभि, उनत् ) अम्युदय के अर्थ विद्या और उत्तम शिक्षा से सीखो और हे विद्वन् जिस कवियों के मध्य में श्रेष्ठ कवि की प्रेरणा करा ( सः ) वह ( सविता ) विद्या और ऐश्वर्य का करनेवाला ( देवः ) विद्वान् ( न ) हम लोगों के लिए ( प्रयता ) प्रयत्न में मिला होने योग्य ( चन्द्राणि ) आनन्द के देने वाले सुवर्ण आदि ( हितानि ) हितकारक ( वदन्ति ) द्रव्यों को ( सुवाति ) देवे ॥ ३ ॥

**भावार्थ—**हे विद्वान् अध्यापक पुरुषो ! आप लोग जो निश्चय करके सब से उत्तम, सम्पूर्ण विद्याओं में युक्त, श्रेष्ठ विद्वान् होके उसका, गृहाश्रम न कर ऐसा उपदेश दीजिये जिससे ममर में वर्तमान मनुष्यों का बड़ा सुख बड़े क्योंकि जो निश्चय करके पूर्ण विद्यायुक्त होकर गृहाश्रम को छोड़ें वह बहुत व्यापारवान् होने से वीर्य आदि के नाश ज्ञान से थोड़ी अवस्थायुक्त होकर निरन्तर मनुष्यों के हित करने को नहीं समर्थ होते ॥ ३ ॥

**समिन्द्र यो मनसा नेषिः गोभिः सं सूरिमिहंरिवः सं स्वस्ति ।**

**सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुप्रत्या यज्ञियानाम् ॥४॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य में युक्त जिसमें आप ( यत् ) जो ( गोभिः ) इन्द्रियों वा वाणियों के साथ ( सम्, स्वस्ति ) उत्तम सुख ( अस्ति ) है वह ( न ) हम लोगों का ( मनसा ) विज्ञान के साथ ( सम्, नेषि ) अच्छे प्रकार प्राप्त करने है और हे ( हरिवः ) श्रेष्ठ मनुष्यो से युक्त जो ( सूरिभिः ) विद्वानों के साथ सुख है वह हम लोगों को ( सम् ) एक साथ प्राप्त करने है और जो ( ब्रह्मणा ) वेद धन वा अन्न के साथ ( देवहितम् ) विद्वानों का हितकारक सुख है वह हम लोगों को ( सम् ) एक साथ प्राप्त करने है और जो ( यज्ञियानाम् ) यज्ञ करने वाले ( देवानाम् ) विद्वानों की ( सुप्रत्या ) श्रेष्ठबुद्धि के साथ विद्वानों का हितकारक सुख है वह हम लोगों के लिए ( सम् ) एक साथ प्राप्त करने है हमसे सत्कार करने योग्य हो ॥ ४ ॥

**भावार्थ—**हे मनुष्यो ! आप लोग सत्य वाणी, विद्वानों का सङ्ग, वेद-विद्या और श्रेष्ठ बुद्धि के सहित उत्तम प्रकार शोभित हुए अभीष्ट सुख को प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

**देवो मगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।**

**ऋभुक्षा बाज उत वा पुरन्धिर्बन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५॥१७॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे ( देवः ) दाता ( भगः ) ऐश्वर्य से सम्पन्न ( सविता ) प्रेरणा करने वाला ( रायः ) धनो का ( अंशः ) विभाग तथा ( ऋभुक्ष्य ) मेघ और ( धनानाम् ) धनो का ( संजितः ) उत्तम प्रकार जीतने वाला ( इन्द्रः ) सूर्य ( ऋभुक्षाः ) बड़ा ( बाज ) जानवान् ( उत ) भी ( वा )

वा ( पुरन्धिः ) बहुत बुद्धिमान् और ( तुरासः ) शीघ्र कार्य करने वाले तथा ( अमृतासः ) अपने रूप से नहीं नाश होने वाले ( नः ) हम लोगों की ( अबन्धुः ) रक्षा करें वैसे य आप लोगों की भी रक्षा करें ॥ ५ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकानुपमानकाङ्क्षा है । जो मनुष्य अपने सद्गुण अन्यो के भी सुख दुःख हानि लाभ प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा को मानने है वे ही प्रणमा के योग्य होते हैं ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजुर्व्येतः प्र ब्रवामा कृतानि ।**

**न ते पूर्व मघवन्परासो न वीर्यं नूतनः कथनार्प ॥६॥**

**पदार्थ—**ह ( मघवन् ) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त और अत्यन्त विद्यावाले विद्वान् वा अनिबन्धवान् राजन् ( मरुत्वतः ) प्रशंसित विद्वानों में युक्त ( अप्रतीतस्य ) प्रतीति के अविषय ( अजुर्व्येतः ) जिसको जीर्ण अवस्था नहीं प्राप्त हुई ऐसे ( जिष्णोः ) जीतने वाले ( तः ) आपके जिन ( कृतानि ) कृत्यों का हम लोग ( प्र, ब्रवामा ) उपदेश दवे उन को ( न ) न ( पूर्व ) प्राचीनजन ( न ) न ( अप-रासः ) पीछे से हुए जन व्याप्त होते हैं और ( नूतनः ) नवीन ( कः, क्वनः ) कोई भी, आप के ( वीर्यम् ) पराक्रम को ( न ) नहीं ( आपः ) व्याप्त होता है ॥ ६ ॥

**भावार्थ—**विद्वानों को चाहिए कि उन्हीं प्रशंसित कर्म वाचों के कृत्यों को अन्य जनों के लिए उपदेश देवे जिन क कर्म अप्रतिष्ठित अर्थात् नष्ट नहीं होते हैं ॥ ६ ॥

फिर विद्वानों के उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।**

**यः संसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुक्वसुगमजोह्वानम् ॥७॥**

**पदार्थ—**हे विद्या और ऐश्वर्य में युक्त ( यः ) जो ( पुक्वसु ) बहुत धनों से युक्त ( शम्भविष्ठः ) अत्यन्त सुखकारक जन ( शसते ) प्रणमा करने वाले और ( स्तुवते ) स्तुति करनेवाले के लिये ( प्रथमम् ) पहिले ( रत्नधेयम् ) रत्न धरने योग्य जिससे उस ( जोह्वानम् ) पुकारे गये वा पुकारने वाले के लिए ( बृहस्पतिम् ) बड़ों के पालन करने और ( धनानाम् ) धनो के ( सनितारम् ) उत्तम प्रकार विभाग करने वाले का ( आगमत् ) प्राप्त हो उसकी आप ( उपस्तुहि ) समीप में स्तुति करो ॥ ७ ॥

**भावार्थ—**वे ही जन प्रणमा करने योग्य होते हैं जो सब पदार्थ बाँट अर्थात् विभाग करके खाते हैं ॥ ७ ॥

**तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवागः ।**

**ये अरवदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुमगास्तेषु रायः ॥८॥**

**पदार्थ—**हे ( बृहस्पते ) बृहत् अर्थात् विद्या आदि उत्तम पदार्थों की रक्षा करने वाले ( ये ) जो ( तव ) आपकी ( अतिभिः ) रक्षा आदिकों के साथ ( अरिष्टा ) नहीं हिमा किये गये ( सचमानाः ) सम्बन्ध करत हुए ( मघवानः ) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त ( सुवागः ) उत्तम वीरजन ( अरवदा ) अग्नि आदि वा घोड़ों को देने वाले ( उत ) भी ( वा ) वा ( ये ) जो ( गोदा ) सुशिक्षित वाणी वा गौआ के देने वाले ( वस्त्रदा ) वस्त्रों के देने वाले और ( सुमगाः ) सुन्दर गश्वय वा धन से युक्त ( सन्ति ) हैं ( तेषु ) उनमें ( रायः ) धन होते हैं ॥ ८ ॥

**भावार्थ—**जो धार्मिक राजा से रक्षा किये गये और प्रशंसित धना से युक्त दानाजन है वे ही यज्ञस्वी होकर पनाइय होत हैं ॥ ८ ॥

**विसर्माणं कणुहि वित्तमेवा ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थं ।**

**अपव्रतान्प्रमवे वावृथानान्ब्रह्मद्विषः मृर्याद्यावयस्व ॥९॥**

**पदार्थ—**हे विद्वन् ( ये ) जो ( अपृणन्तः ) नहीं पूरा वा नहीं पालन करते हुए ( भुञ्जते ) भागत हैं और ( नः ) हमारे ( उक्थं ) उत्तम वाक्यों से ( प्रसवे ) उत्पन्न हुए जगत् में ( वावृथानाम् ) अत्यन्त बढ़ने हुए ( अपव्रतान् ) ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि व्रताचारग्रहित ( ब्रह्मद्विषः ) वेद वा परमात्मा से द्वेष करने वालों को राक्षत है ( एषाम् ) इन लोगों के ( विसर्माणम् ) उत्पन्न करने वाले ( वित्तम् ) धन वा भाग को ( कणुहि ) करो और ( मृर्यात् ) सूर्य से उनको ( यावयस्व ) प्रमथित करा ॥ ९ ॥

**भावार्थ—**हे मनुष्यो ! जो लोग शुद्ध आचरणों से रहितों को शुद्ध आचरणों के सहित और अविद्वानों का विद्वान् करके नास्तिकों का गोक के अधर्म के आचरण से पृथक् होने निरन्तर सुखी करत वे निरन्तर धाँवर करने योग्य होते हैं ॥ ९ ॥

फिर विद्या विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**य ओहते रससो देवपीतावचक्रेभिस्तं भक्तो नि यात ।**

**यो वः शमी शशमानस्य निन्दां सुच्छथान कामान् करते सिबिदानः**

॥१०॥१८॥

पदार्थ—हे ( नरतः ) मनुष्यो ( यः ) जो ( देवकीतो ) देव प्रथान् विद्वानो से व्याप्त किया मे ( रक्षसः ) दुष्ट आचरणयुक्त मनुष्यो को ( ओहते ) प्राप्त करना है ( यः ) जो ( यः ) आप लोग और ( शशमानस्य ) प्रशसा किये गये के ( शमीवः ) कर्म की ( निष्ठात् ) निन्दा करे और ( सिद्धिदान ) मनन हुआ ( बुद्धिमान् ) दुष्टों मे हुए ( कामान् ) मनाग्रयो का ( करते ) करे ( तम् ) उसको ( अक्षरंभि ) चक्रों से रहितों के द्वारा दण्ड से ( मि, घाल ) निरन्तर प्राप्त हुआ ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो ! जो बुरी शिक्षा से मनुष्यो को दूषित करने और निन्दा तथा विषयो की आमक्ति मे प्रवृत्ति कराने है उनको निरन्तर दण्ड दीजिए ॥ १० ॥

अब वर विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तमुं स्तुहि यः स्वियुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति मेघजस्य ।

यद्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११॥

पदार्थ—हे राजन् अथवा विद्वन् ( यः ) जो ( स्वियुः ) सुन्दर बाणों से युक्त ( सुधन्वा ) उत्तम धनुषवाला मनुष्यो को जीतता है और ( यः ) जो ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण जगत् के मध्य मे ( मेघजस्य ) ओषधि की प्रवृत्ति का ( क्षयति ) निवाम करता है वा निवास कराता है ( तम् ) उसकी ( महे ) बड़े ( सौमनसाय ) श्रेष्ठ मन के भाव के लिए ( स्तुहि ) स्तुति कीजिए और श्रेष्ठ कर्मों को ( यद्वा ) निम्नाइये वा प्राप्त हुआ इस ( उ ) ही ( देवस्य ) श्रेष्ठ गुणों से युक्त ( रुद्रम् ) और दुष्टों को नानावाले ( असुरम् ) मेघ को बड़े श्रेष्ठ मन के भाव के लिए ( नमोभिः ) अन्नादिको से ( दुवस्य ) सेवन कीजिए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो शस्त्र और अस्त्रों के चलाने के लिए युद्ध विद्या मे चतुर वैद्यविद्या मे निपुण और दुष्टों के दण्ड देनेवाले जन हों उनकी स्तुति कर अच्छे कर्मों मे नियुक्त कर और अच्छे प्रकार सेवन कर समस्त राज्यकृत्यों को पूर्ण करो ॥ ११ ॥

अब विद्वत्कर्त्तव्यशिक्षाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विश्वतष्टाः ।

मरुस्वती बृहद्विषोत राका दशस्यन्तीर्विष्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ये ) जो ( अपसः ) उत्तम कर्म करने ( दमूनसः ) देने ( सुहस्ताः ) और उत्तम कर्मों मे हाथ लगानेवाले ( वृष्णः ) पराक्रम से युक्त और ( विश्वतष्टाः ) व्यापक ईश्वर से रचे गये जन ( नद्यः ) नदियों के सद्गुण ( उत ) और ( बृहद्विषा ) बड़ा विद्याका प्रकाश जिसमे ऐसी ( राका ) सुख को देनेवाली ( सरस्वती ) विज्ञान युक्त बाणी के सद्गुण ( दशस्यन्तीः ) अभीष्ट मनोरथ को देती हुई और ( शुभ्राः ) सुन्दर स्वरूप तथा उत्तम आचरण करनेवाली ( पत्नी ) विवाहित स्त्रियों का ( विष्यन्तु ) सेवन करें व अत्यन्त सुख को प्राप्त हों ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । कन्या और वर जब ब्रह्मचर्य मे विद्यार्थ, पूर्ण युवावस्था और परस्पर की परीक्षा होवे वह स्वयंवर विवाह से पति और पत्नी होकर सौभाग्यवान् होते हैं ॥ १२ ॥

प्र सु महे सुशरणाय मेघां गिरं भरे नव्यंसीं जायमानाम् ।

य आह्ना दुहितुर्वज्रणासु रूपा मिनानो अकुणोदिदं नः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यः ) जो मनुष्य ( वज्रणासु ) बहती हुई नदियों के निमित्त ( दुहितुः ) कन्या के ( रूपा ) सुन्दर रूपों ( आह्नाः ) और जो मन्त्र और से लाडिल होती उनका ( मिनानः ) मान करना हुआ ( नः ) हम लोगों को ( इवम् ) इस वर्त्तमान सुख मे पाये हुए ( अकुणोत् ) करे उनके माथ मे ( महे ) बड़े ( सुशरणाय ) उत्तम आश्रय के लिए ( नव्यसीम् ) अत्यन्त नवीन ( जायमानाम् ) प्रसिद्ध ( मेघात् ) उन्नम बुद्धि और ( गिरम् ) वाणी को ( प्र, सु, भरे ) उत्तम प्रकार धारण करता है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! समानरूपवाली कन्या को देखके ही उसका सद्गुण पति कराने के समान बुद्धि और शिक्षित वाणी को बढ़ाके गृहाश्रम से उत्पन्न हुए सुख को सब मनुष्यो के लिए आप लोग प्राप्त कराओ ॥ १३ ॥

प्रसुदुतिः स्तनयन्तं स्वन्तमिळस्पतिं जरितनूनमस्याः ।

यो अंविर्मा उदनिर्मा इयति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥

पदार्थ—हे ( जरितः ) स्तुति करनेवाले आप ( यः ) जो ( अंविर्मात् ) मेघों से युक्त और ( उक्षमाणः ) बहुत जलवाला ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवीको ( उक्षमाणः ) सींचता हुआ ( विद्युता ) बिजली के साथ मेघ ( इयति ) प्राप्त होता है और जो ( सुदुतिः ) उत्तम प्रशसायुक्त है उस ( स्तनयन्तम् ) गर्जना करते हुए को ( नूनम् ) निश्चय से ( प्र, अथवा ) प्राप्त होओ और आप ( स्वन्तम् ) मन्त्र करते हुए ( इळः ) पृथिवी के ( पतिम् ) पालन करनेवाले को ( प्र ) उत्तम प्रकार जनाइये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो मेघ भूमि मे वर्त्तमान जीवों का पालन करनेवाला बिजुली के साथ धुँडि करता और शब्द करता हुआ भूमि को प्राप्त होता है उसको जान के अन्यो को जनाइये ॥ १४ ॥

अब श्रविषयक विद्वत्कर्त्तव्य शिक्षाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एव स्तोमो मार्ततं सधो अच्छा रुद्रस्य सून्युबन्धुर्दश्याः ।

कामो गये हवते मा स्वस्वपुं स्तुहि पृषदम्वा अयासः ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो ( कामः ) इच्छा ( मा ) मुझका ( राये ) धन के लिए ( स्वस्ति ) सुख को ( हवते ) ग्रहण करती है उसकी ( उप, स्तुहि ) समीप मे स्तुति प्रशसा कीजिए और जो ( अयासः ) चलने हुए ( पृषदम्वा ) सींचनेवाले तथा शीघ्र चलनेवाले पदार्थों का प्राप्त होते हैं उन ( युबन्धुन ) अपने मिले और नहीं मिले हुए पदार्थों की इच्छा करते हुआ को आप ( उत्, अथवा ) अत्यन्त प्राप्त हुआ और जो ( एष ) यह ( स्तोमः ) प्रशसा का विषय ( मार्तस्य ) मनुष्यो के इस ( शब्द ) बल को ग्रहण करता है उस ( रुद्रस्य ) प्राण आदि है रूप जिसका ऐसे वायु के ( सून्यु ) उत्पत्ति के गुणों को ( अच्छा ) उत्तम प्रकार प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग बलि और मेघविद्या को जानकर पूर्ण मनोरथवाले हुआ ॥ १५ ॥

फिर विद्वत्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्रेष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीरोषधी राये अस्याः ।

वेवोदेवः सुहवो भृतु मर्ष मा नो माता पृथिवी दुर्मती चात ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( वेवोदेवः ) विद्वान् विद्वान् ( सुहवः ) उत्तम प्रकारग्रहण करनेवाले और दाता आप और जो ( एष ) यह ( स्तोमः ) प्रशसा करने योग्य मेघ वा बलि ( राये ) धन के लिए ( पृथिवीम् ) भूमि ( अन्तरिक्षम् ) आकाश और ( ओषधी ) यव आदि ओषधियों तथा ( वनस्पतीम् ) वट और श्रवस्थ आदि वन-स्पतियों को प्राप्त होता है उसको आप ( प्र, अथवा ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ वह ( मर्षम् ) मेरे लिए सुखकारक ( भृतु ) होवे जिससे यह ( पृथिवी ) पृथिवी ( माता ) माता के सद्गुण पालन करनेवाली ( न ) हम लोगों को ( दुर्मती ) दुष्ट-बुद्धि मे ( मा ) नहीं ( चात् ) धारण करे ॥ १६ ॥

भाषार्थ—सब स्त्री और पुरुष विद्वान् होकर बिजुली और मेघ आदि की विद्या को ग्रहण करे जिससे यह विद्या आप लोगों की माता के सद्गुण पालना करे और जैसे माता उत्तम शिक्षा से अपने मन्तानों को उत्तम करती है वैसे ही मेघबुद्धि-विद्या मे युक्त भूमि उत्तम अन्न आदिको को उत्पन्न करती है ॥ १६ ॥

उरो देवा अनिवाधे स्याम ॥१७॥

पदार्थ—हे ( देवा ) विद्वान् जनों जैसे हम लोग ( अनिवाधे ) विघ्नरहित होने पर ( उरो ) बहुत मुख करनेवाले कार्य मे विद्वान् ( स्याम ) हों वैसे आप लोग कार्य ॥ १७ ॥

भाषार्थ—अध्यापक विद्वान् जनों को चाहिए कि सम्पूर्ण विद्या के प्रतिबन्धकों का निवारण करके सपूर्ण जनों को विद्वान् करें ॥ १७ ॥

समन्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रसीती गमेम ।

आ नो गयि बहमतो वीराना विश्वान्यमृता सौभागानि ॥१८॥१९॥

पदार्थ—हे ( मयोभुवा ) मुख के करनेवाली ( सुप्रसीती ) उत्तम प्रकार वर्त्तीगई नीति जिनसे ऐस अध्यापक और उपदेशक जनों ! जो आप दोनों ( नः ) हम लोगों के लिए ( गयिम् ) लक्ष्मी को ( आ, बहमतम् ) प्राप्त कराइये ( उत ) भी ( वीरान् ) श्रेष्ठ शूरता आदि गुणों से युक्त शूरवीर जनों को ( आ ) प्राप्त कराइये और भी ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( अमृता ) नित्य ( सौभागानि ) सुन्दर ऐश्वर्यों के भावरूप को ( आ ) प्राप्त कराइये उन ( अश्विनो ) अध्यापक और उपदेशकों के ( नूतनेन ) नवीन ( अवसा ) रक्षण से हम लोग सम्पूर्ण नित्य सुन्दर ऐश्वर्यों के भावरूपों को ( सम्, गमेम ) उत्तम प्रकार प्राप्त हों ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वानों मे रक्षित और बोध को प्राप्त हुए आप लोग लक्ष्मी और उत्तम मनुष्यो के सहाय मे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥

इस सूक्त मे विषयदेव रुद्र और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह बयालीसवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ सप्तवशर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्याऽत्रिंशद्विः । विद्वेदेवा वेवताः ।

१, ३, ६, ८, ९, १७ निचूत्रिण्डुप् । २, ४, ५, १०, ११, १२, १५

त्रिण्डुप् । ७, १३ विराट्त्रिण्डुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १४ भुरिक्पङ्क्तिः

१६ याकुबो पङ्क्तिरुच्छन् । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सप्तहज्ज्यावाले तैत्तलीसवें सूक्त में विद्वान् के विषय को कहते हैं—

आ घेनवः पर्यसा तूर्यथा अमर्षन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।

महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जौहवीति ॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( जरिता ) सम्पूर्ण विद्याओं की स्तुति करनेवाला ( विप्रः ) बुद्धिमान् जन ( महः ) बड़े ( राये ) धन के लिए ( सप्त ) मातृप्रकार

की (बृहतीः) बड़ी वाणियों का (ओहोतीति) बार-बार उपदेश करता है और उससे प्रेरणा किये गये (मध्वः) मधुर आदि गुणों के साथ और (पयसा) दुग्धदान के साथ (अमर्त्यन्तीः) नहीं हिंसा करती हुई और (तृण्यर्वाः) शीघ्र चलनेवाले अर्ध जिनमे ऐसी (अमर्त्युषः) सुख की भावना करनेवाली (बेनवः) गौओं के सदृश वाणियाँ (नः) हम लोगों को (उप, आ, यन्तु) समीप में उत्तम प्रकार प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता विद्वानों के सङ्ग से सम्पूर्ण शास्त्रों के विषय से युक्त वाणियों को ग्रहण करके उनकी कृपा से अन्यो के लिये उपदेश देवें वे भी श्रेष्ठ होते हैं ॥ १ ॥

आ सुष्टुती नमसा वर्त्त्यध्वै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।

पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों से (वाजाय) विज्ञान के लिए (सुष्टुती) श्रेष्ठ प्रशंसा से (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (अमृध्रे) नहीं हिंसा किये गये मे (सुहस्ता) सुन्दर हस्त जिनके वे (यशसौ) यश और धन से युक्त (द्यावा) अन्तरिक्ष और (पृथिवी) पृथिवी (मधुवचा) मधुर वचन जिसका ऐसा वा ऐसी (पिता) पिता और (माता) माता के सदृश (भरेभरे) सप्राम सप्राम मे (न) हम लोगों को (अविष्टाश्च) प्राप्त होवें वे (आ, वर्त्त्यध्वै) उत्तम प्रकार वर्त्तान करने को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों को उत्तम प्रकार शिक्षा देकर और वृद्धि करके विजयकारी करने हैं वैसे ही प्राप्त हुई सूर्य और पृथिवी की विद्या सर्वत्र विजय को प्राप्त करती है ॥ २ ॥

अध्वर्यवश्चक्रुवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।

होतैव नः प्रथमः पाहस्य देव मध्वो रग्निमा ते मदाय ॥३॥

पदार्थ—हे (देव) विद्वान् (प्रथम) पहिले आप (होतैव) दाताजन के सदृश (अस्य) इस (मध्वः) मधुर के मध्य मे (न) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करिए जिससे हम लोग (ते) आप के (मदाय) आनन्द के लिए (रग्निमा) क्रीडा करें । हे (चक्रुवांसः) कार्य्य करने हुए और (अध्वर्यवः) अपनी अहिंसा की दृष्ट्या करने हुए आप लोग (वायवे) वायुविद्या के लिए (मधूनि) विज्ञानों और (चारु) सुन्दर (शुक्रम्) जल को (प्र, भरत) उत्तम प्रकार चारण कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे हवन करनेवाला होम में सब के हित को सिद्ध करता है वैसे ही सबके हित के लिए वायु और जनवी विद्या को विस्तारिये जिससे सब हम लोग आनन्दित हुए वर्त्तव्य करें ॥ ३ ॥

दश क्षिपों युज्जते बाहू अद्रि सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।

मध्वो रसं सुगमंस्तिगिरिष्ठा चर्निश्चदद्दुहरे शुक्रमशुः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (सुगमस्ति) सुन्दर किरणों जिसकी वह सूर्य और (अशुः) किरण (चर्निश्चदद्दुहरे) प्रसन्न करता है और (मध्वः) मधुर आदि गुणों से युक्त (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के सम्बन्धी (गिरिष्ठाम्) मेघ में वर्त्तमान (अद्रिम्) मेघ को (रसम्) रस को और (शुक्रम्) जल को (दुहते) दुहता है वैसे जो (बाहू) दशसंख्यावाली (क्षिपः) प्रेरणा करते हैं जिनसे वे अद्भुतगुणियाँ और (या) जो (शमितारा) शान्ति स यज्ञ कर्म के करनेवाले और (सुहस्ता) अच्छे हाथ वाले (बाहू) भुजाओं को (युज्जते) युक्त करने हैं उन से धर्मसम्बन्धी कार्य्यों को करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य आदि प्राणी अद्भुतगुणियों से पदार्थों को ग्रहण करते और त्यागते हैं वैसे ही सूर्य किरणों से भूमि के नीचे से जल को ग्रहण करके फेकता अर्थात् वृष्टि करता है ऐसा जानो ॥ ४ ॥

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।

हरी रथे सुधुरा योने अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि ह्यमानः ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त विद्वान् ! जिनसे (ते) आप के (बृहते) बड़े (जुजुषाणाय) प्रीति से सेवन किये गये (क्रत्वे) प्रज्ञान तथा (दक्षाय) चातुर्य्य बल और (मदाय) आनन्द के लिए (सोम) बड़ी ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य्य (असावि) उत्पन्न किया जाय और उनके (योने) संयोग होने पर (अर्वाक्) नीचे चलनेवाले (सुधुरा) सुन्दर धुरा जिनकी ऐसे (हरी) हरण-शील घोड़ों को (रथे) बाह्य में जोच वे (ह्यमानः) स्पर्द्धा किये गये आप (प्रिया) सेवन करने योग्य सुन्दर वस्तुओं वा सुखों को (कृणुहि) सिद्ध करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिससे बुद्धि, बल, आनन्द और पुरुषार्थ बढ़ें और अग्नि और घोड़े आदि के चलान की विद्या प्राप्त होवे वह कर्म सदा करना चाहिए ॥ ५ ॥

आ नो महीमरमति सजोषा र्नां देवी नमसा रातहव्याम् ।

मधोर्मदाय बृहतीमृत्तज्ञामाने वह पृथिविर्देवयानैः ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् (आ, सजोषाः) सब और से तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले आप (ममसा) सत्कार वा अन्न आदि से (पृथिविः, देवयानैः) यथार्थवक्ता विद्वान् चलते हैं जिनमे उन मार्गों से (मधोः) मधुर आदि गुण युक्त से (मदाय) आनन्द के लिए (न) हम लोगों को (अरमतिम्) विषयो में नहीं रमण करनी हुई (रातहव्याम्) देने योग्य दान जिससे (न्नाम्) प्राप्त होते हैं ज्ञान का जिसमे तथा (मृत्तज्ञाम्) सत्य को जानता है जिससे उस (बृहतीम्) बड़े पदार्थों के विषय से युक्त (देवीम्) देदीप्यमान मनोहर (महीम्) बड़ी वाणी को हम लोगों के लिए (आ, वह) प्राप्त कराइये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—वे ही विद्वान् होते हैं जो सब प्रकार से सब काल में विद्या की याचना करत हैं और वे ही विद्वान् हैं जो धर्मयुक्त मार्ग में विरुद्ध कुछ भी आचरण नहीं करते हैं ॥ ६ ॥

अञ्जन्ति यं मधयन्तो न विप्रां अपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।

पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृत्यमसादि ॥७॥

पदार्थ—हे विद्याधिन ! (यम्) जिस (अपावन्तम्) विद्या के बीज के विस्तार को करने हुए के (न) सदृश आप को (अग्निना) अग्नि के सदृश ब्रह्म-चर्य्य से (तपन्त) सनाप दुःख को सहन और विद्या के बीज का विस्तार करने हुए के (न) सदृश (प्रययन्त) प्रसिद्ध करने हुए (विप्रा) बुद्धिमान जनों के (न) सदृश अग्नि के समान ब्रह्मचर्य्य में सनाप दुःख को सहते हुए (अञ्जन्ति) कामना करने वा प्रकट करने हैं और जो (पितु) पिता के (पुत्र) पुत्र के सदृश (उपसि) समीप में (प्रेष्ठ) अत्यन्त प्रिय (घर्म) यज्ञ वा तप (अग्निम्) अग्नि को (मृत्यम्) सत्य के सदृश आचरण करने हुए (आ, असादि) उत्तम प्रकार स्थित होवे उन का और उमको आप निरन्तर सेवन करके विद्याको ग्रहण करिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे अध्यापक विद्वानो ! तुम लोग जो जितेन्द्रिय उत्तम स्वभावयुक्त शीत उष्ण सुख दुःख आनन्द शोक निन्दा स्तुति आदि द्रव्य को सहनेवाले अभिमान और मोह से रहित सत्य आचरणकर्ता और परीप-कारप्रिय ब्रह्मचारी विद्यार्थी होवे उनको पुरुषार्थ से विद्वान् करिये ॥ ७ ॥

अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दतो न गन्तव्यिनां दुष्यै ।

मयोभुवां सरथा यातमर्वाग्गन्त निधि धुरमाणिनं नाभिम् ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (बृहती) बड़े ब्रह्म आदिबस्तु को प्रकाश करनेवाली और (शन्तमा) अत्यन्त कल्याणकारीणी (मही) बड़ी (गीः) गाते हैं पदार्थों का जिससे ऐसी वाणी और (मयोभुवा) सुख को उत्पन्न करनेवाले (सरथा) वाहन आदिकों के साथ वर्त्तमान (अग्निना) अध्यापक और उपदेश जनों को (दुष्यै) घृणान को जैसे (दूतः) धार्मिक विद्वान् चतुर राजा का दूत (न) वैसे (गन्तु) प्राप्त हजिए तथा जिसमे अध्यापक और उपदेशक जन (नाभिम्) मध्य (धुरम्) वाहन के आधार काष्ठ को (आणि) कीले के (न) सदृश और (अर्वाक्) सत्य धर्म व पीछे (गन्तम्) चलन हुए (निधिम्) द्रव्य पात्र को (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ, यातम्) प्राप्त हजिए उस को आप लोग प्राप्त होवो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वे ही मनुष्य हैं जिनको जैसे राजा का दूत वैसे मगपूण शास्त्रा म प्रवीण वाणी प्राप्त होवे और वे ही भाग्यशाली हैं जिन को धर्मयुक्त पुरुषार्थ म अतुल ऐश्वर्य्य प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

प्र तव्यसो नमर्वाक् तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदक्षि ।

या रार्धमा चोदितारा मतीना या वाजस्य द्रविणोदा उत रमन् ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनों ! जैसे (अहम्) मैं (तुरस्य) शीघ्र कार्य्य करनेवाले (तव्यस) बलयुक्त (उत) और (पूष्णा) पुष्टिकारक (वायोः) वायु के (नमर्वाक्) सत्कार वा अन्न आदि के वचन का (अदक्षि) उपदेश करता है और (उत) भी (तव्य) आत्मा मे (या) जो (राजसा) धन से (अतीनाम्) मनुष्यों के (प्र, चोदितारा) प्रत्यन्त प्रेरणा करनेवाले और (या) जो (वाजस्य) विज्ञान वा अन्न के (द्रविणोदा) बल से देनेवाले वर्त्तमान हैं उनको उपदेश देता है वैसे आप लोग भी उपदेश दीजिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन विद्या के उपदेश और दान से मनुष्यों को उत्तम प्रकार शिक्षित करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो ॥ ९ ॥

आ नामर्मिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेर्मर्जातवेदो हुवानः ।

यज्ञं गिरिं जरितुः सुष्टुतिं च विश्वं गन्त मरुतो विश्वं अती ॥१०॥२१॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) बुद्धि से युक्त (हुवानः) दान करते हुए आप (नामभिः) सजाओ और (रूपेभिः) रूपों से (विश्वान्) सम्पूर्ण (वक्षः) मनुष्यों को (आ) सब प्रकार (वक्षि) प्राप्त हजिये (जरितुः) स्तुति करने वाले की (सुष्टुतिम्) स्तुति करनेवाले की उत्तम प्रशंसा को (गिरः) वाणियों की



( यक्षम्, य ) और सज्जति करने को ( विद्वे ) सम्पूर्ण ( गन्त ) प्राप्त होवे तथा ( विद्वे ) समस्त ( मन्तः ) मनुष्यों को ( ऊती ) रक्षण आदि क्रिया में ( आ ) प्राप्त होवे ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! आप सम्पूर्ण नाम और रूप आदिको से सम्पूर्ण पदार्थों को सम्पूर्ण मनुष्यों के लिए साक्षात् कराओ जिसमें सब मनुष्य प्रशान्त हो कर सबके लिए प्रशंसित विद्याओं को संपादित करें ॥ १० ॥

आ नो दिवो बृहत्तः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।

हव देवी जुजुवाणा वृताची शरमां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी जनो जैसे यह ( यजता ) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य ( सरस्वती ) विज्ञानयुक्त वाणी ( विव ) कामना करते हुए ( बृहत् ) महदाशय-युक्त ( नः ) हम लोगों को ( पर्वतात् ) मेघ से जल के सदृश ( आ, गन्तु ) सब प्रकार प्राप्त होवे ( वृताची ) धृत को प्राप्त होने वाली ( जुजुवाणा ) उत्तम प्रकार से सेवन की गई ( देवी ) श्रेष्ठ गुण और शास्त्र के बोधसे युक्त ( उशती ) कामना करती हुई विद्यायुक्त स्त्री ( नः ) हम लोगों के ( यज्ञम् ) विद्याव्यवहारका ( हवम् ) कहने सुनने योग्य व्यवहार को वा ( शरमां ) सुखमयी ( वाचम् ) वाणी को और हम लोगों को ( आ, शृणोतु ) श्रद्धा प्रकार सुन वैसे ही आप लोगों को भी प्राप्त हुई यह आप लोगों के कृत्य को सुन ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उन्हीं को श्रेष्ठ वाणी प्राप्त होनी है जो सत्य की कामना करनेवाले महाशय परोपकारप्रिय धर्मिष्ठ और विद्यार्थियों के परीक्षक होवे ॥ ११ ॥

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदाने सादयध्वम् ।

सादयानि बम आ दादिवामं हिरण्यवर्णमरुवं मपेम ॥१२॥

पदार्थ—हे बुद्धिमान् जनो आप लोग ( नीलपृष्ठम् ) नील गुण में युक्त पृष्ठ जिस का उम ( बृहन्तम् ) बड़े ( बृहस्पतिम् ) बड़ा के स्वामी ( वेधसम् ) बुद्धिमान् का ( सदाने ) सभा के स्थान में ( आ, सादयध्वम् ) उत्तम प्रकार स्थित कीजिए । और हम लोग ( सादयानिम् ) धर्म सम्बन्धी कारण में स्थित हान और ( दादिवामम् ) निरन्तर प्रकाशमान देनेवाले ( हिरण्यवर्णम् ) तेजस्वी ( अरुवं ) मर्म विद्या में स्थित होते हुए को ( बम ) गृह में प्रार्थना सभास्थान में ( आ, मपेम ) श्रद्धा प्रकार शपथों से नियत करावे ॥ १२ ॥

भाषार्थ—वे ही मनुष्य राज्य करने और बढ़ाने को समर्थ होंगे जो धर्मिष्ठ और किये हुए उपकारों को जानने वाले कुलीन विद्वानों को सभा में स्थित करें तथा स्थापनसमय में शपथों से आप लोग अन्याय को कभी मत करो ऐसा प्रलम्बन करावे ॥ १२ ॥

आ धर्णं सेरुहद्विंशो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्ह्वानः ।

या वसान ओषधोरमुषिधातुमृजो वृषभो वयोधाः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे ( वरांसि ) धारण करने वाला ( बृहद्विं ) बड़े प्रकाश का ( रराणः ) दान करता हुआ ( विश्वेभि ) सम्पूर्ण ( ओमभि ) रक्षण आदि के करने वालों के साथ ( ह्वानः ) ग्रहण करता और ( या ) वाणिज्य को ( वसानः ) आच्छादित करता हुआ ( ओषधोः ) सोमलता आदि का ( अमुषः ) नहीं नाश करनेवाला ( विधातुमृजः ) तीन घातु अर्थात् शुक्ल रक्त कृष्ण गुण शङ्खों के सदृश जिस के और ( वयोधाः ) सुन्दर आयु को धारण करनेवाला ( वृषभः ) वृष्टिकारक सूर्य ससार का उपकारी है वैसे ही आप ससार के उपकार के लिए ( आ, गन्तु ) उत्तम प्रकार प्राप्त हूँजिये ॥ १३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् तीन गुणों से युक्त प्रकृति के जानने, वाणी के जानने, नहीं हिमा करने, शोषणों से लोगों के निवारने और ब्रह्मचर्य आदि के बोध में अवस्था के बढ़ानेवाले होते हैं वे ही ससार के पूज्य होते हैं ॥ १३ ॥

मातुष्ये परमे शुक्र आयोर्विपन्यवा गस्विरासो अग्नयः ।

सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( शुक्र ) शुद्ध ( परमे ) उत्तम ( मातुः ) माता के सदृश वर्तमान भूमि के ( परे ) प्राप्त होने योग्य स्थान में ( आयोः ) जीवन के ( विपन्यवः ) विशेषतया स्तुति करने और ( रास्विरासः ) दानों की प्रीति करने वाले ( रातहव्याः ) दिये हुआ के देने योग्य ( नमसा ) सत्कार वा अन्न आदि से ( वासे ) बसने में ( आयवः ) मनुष्य ( शिशुम् ) शासन करने योग्य बालक को ( मृजन्ति ) शुद्ध करने हैं ( न ) जैसे वैसे ( सुशेव्यम् ) उत्तम सुखों में हुए व्यवहार को ( अग्नयः ) प्राप्त होते हैं वे उत्तम प्रकार सुखों से युक्त होते हैं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता शीघ्र उत्पन्न हुए बालक को उत्तम प्रकार शुद्ध करके उत्तम स्थान में रक्षा करती है वैसे ही जो योग्यात्म्या में चित्त को शुद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य के सहित सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

बृहद्व्यो बृहते तुम्यमग्ने धियाजुरी मिथुनासः सचन्त ।

विद्योदेवः सुहवीं सुतु मधं मा नो माता पृथिवी दुर्मतां धातु ॥१५॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! जो ( धियाजुरः ) बुद्धि वा कर्म से प्राप्त हुई बृहदावस्था जिन को ऐसे ( मिथुनासः ) स्त्रियों के सहित वर्तमान जन ( बृहते ) बृहत् ( तुम्यम् ) आपके लिए ( बृहत् ) बड़े ( ध्य ) जीवन को ( सचन्त ) उत्तम प्रकार प्राप्त होने हैं और ( सुहवः ) उत्तम प्रकार प्रशंसा करने योग्य ( वेद्योदेवः ) विद्वान् विद्वान् ( मधम् ) मेरे लिए सुखकारी ( सुतु ) हा और ( पृथिवी ) भूमि के सदृश ( माता ) माता ( न ) हम लोगों को ( दुर्मतां ) दुष्ट दुर्मा ( धातु ) नहीं ( धातु ) धारण करो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अवस्था और विद्या में बृहत् आप लोगों को विद्याओं से सम्बन्धित करते हैं और माना के सदृश कृपा से रक्षा करत हैं वे आप लोगों के पूज्य हो ॥ १५ ॥

उरौ देवा अनिवाधे स्याम ॥१६॥

पदार्थ—हे ( देवाः ) विद्वान् जनो ! आप लोग जैसे हम लोग ( उरौ ) बहु ( अनिवाधे ) व्यवहार में ( स्याम ) हों वैसे करिये ॥ १६ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिये कि सब मनुष्य जैसे विद्वन् रहित हों वैसे बसा करें ॥ १६ ॥

समन्विनोर्बसा नूतनेन मयोभवा सुप्रणीती गमेम ।

आ नो रयि वंहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौमगानि ॥१७॥२२॥

पदार्थ—हे अध्यापकोपदेशका ! जो ( मयोभवा ) सुख के उत्पन्न करने वाले ( सुप्रणीती ) धर्मसम्बन्धी नीति से युक्त आप ( नः ) हम लोगों को ( रयिम् ) धन ( उत ) और ( वीरान् ) प्रति उत्तम पुत्र पौत्र आदिको को ( आ, बृहत्म् ) अच्छे प्रकार प्राप्त करावे और जिन ( अश्विनोः ) अध्यापक और उपदेशकों के ( नूतनेन ) नवीन ( अमृता ) रक्षण आदि से हम लोग ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( अमृता ) नाश न रहित ( सौमगानि ) सुन्दर एण्डों के भावों का हम लोग ( सम्, आ, गमेम ) उत्तम प्रकार प्राप्त होवे वे दोनों हम लोगों से सदा ( आ ) उत्तम प्रकार सेवन करने योग्य हैं ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक जन सब मनुष्यों को नवीन और प्राचीन विद्या से युक्त कर एण्डों को प्राप्त कराते हैं वे सदा ही प्रशंसित होते हैं ॥ १७ ॥

इस सूक्त में संपूर्ण विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सज्जति जाननी चाहिये ॥

यह तेतालीसवाँ सूक्त और बाईसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

अथ पञ्चवशर्षस्य अनुपपत्तिरित्यस्य सूक्तस्य अवतार काव्यप अग्रे च

अथ यो वृष्टितिज्ञाः । विश्वेदेवा । देवता । १, १३ विराट्जगती । २, ३, ४, ५, ६ निष्पृज्जगती । ७, ८, १२ जगती छन्दः । निषाद स्वरः ।

७ धुरिक्त्रिष्टुप् । १०, ११ स्वराट्त्रिष्टुप् । १४ विराट्

त्रिष्टुप् । १५ त्रिष्टुप्छन्दः । छेत्तः स्वरः ॥

अब पञ्च वृष्टिवाले चत्वारिंशत्सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में सूर्य कृपा से राजगुणों को कहते हैं—

तं प्रन्नथां पूर्वथा विश्वयेमथा ज्येष्ठतांति बर्हिषदं स्वर्विदम् ।

प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु बर्षसे ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप ( गिरा ) वाणी से ( प्रन्नथा ) पुराने के सदृश ( पूर्वथा ) पूर्व के सदृश ( विश्वथा ) सम्पूर्ण ससार के सदृश ( इमथा ) इस के सदृश ( ज्येष्ठतांतिम् ) जेठे ही को ( बर्हिषदम् ) उत्तम आसन वा अन्तर्गम में स्थिति होने वाले ( स्वर्विदम् ) सुख को जानने जिससे उस ( प्रतीचीनम् ) हम लोगों के सम्मुख सम्मुख प्राप्त होने हुए ( वृजनम् ) बल को तथा ( आशुम् ) शीघ्रकारी सप्राप्त को ( अवन्तम् ) जीतते हुए को ( दोहसे ) पूर्ण करने हा ( तम् ) उन आप को और ( यासु ) जिन में ( अनु, बर्षसे ) बुद्धि का प्राप्त होने हो उन सनाओं और उन प्रजाओं की हम लोग निरन्तर बुद्धि करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो प्राचीन रीति से प्राचीन उत्तम राजाओं के तुल्य पिता के सदृश राज्य का उत्तम प्रकार पालन करके पूर्ण बलयुक्त मेरा को कर शीघ्र विजय को प्राप्त हुई प्रजाओं का सुख के अनुकूल वृत्ति हैं उन्हीं को उत्तम अधिकार में नियुक्त करिये जिससे राजा और प्रजा का निरन्तर सुख बढ़े ॥ १ ॥

अथि सुहृशीरुपस्य याः स्वविरोचमानः ककुभासचोदते ।

सुगोपा असि न दमांय सुकृतो परो मायामिर्कृत आस नाम ते ॥२॥

पदार्थ—हे ( सुहृतो ) उत्तम कर्म और बुद्धि से युक्ति विद्वान् आप जैसे ( विरोचमानः ) प्रकाशमान ( स्वः ) सूर्य ( ककुभासम् ) दिशाओं और ( उपरस्थ ) मेघ का प्रकाशमान ( आस ) वर्तमान है वैसे ( अथि ) धन वा शोभाके लिए ( याः ) जिन ( सुहृतोः ) सुन्दर वर्णों वालीयों को प्रेरणा करनेवाले और ( परः ) उत्तम से उत्तम ( सुगोपाः ) उत्तम प्रकार रक्षा करनेवाले ( असि ) हो और ( अचोदते ) नहीं प्रेरणा करने और ( बभास ) हिसा करने वाले जन के लिए ( मायानिः )

बुद्धियों के साथ ( न ) नहीं वर्तमान हो जिन ( ते ) आप के ( ऋते ) मत्स्य मे ( नाम ) नाम वर्तमान है उसकी वे प्रजायें सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होती है ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है। जैसे सूर्य दिशाओं का प्रकाशक हुआ सब प्रजाओं को सुख देने के लिए वृष्टि करने वाला होता है वैसे ही सब प्रजाओं को न्याय से प्रकाशित करके विद्या और सुख का बढ़ाने वाला राजा होता है ॥ २ ॥

अब मेघविषय से राजगुणों को कहते हैं—

अस्यै हविः संचते मरुच धातु चारिण्यगातुः स होता सहोभरिः ।

प्रसत्ताणो अनु बहिर्दृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो निस्त्रुदां हितः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! जो ( अरिष्टगातुः ) ऐसा है कि जिस की नहीं हिमित बापी वह ( सहोभरिः ) बलको धारण करने वाला ( होता ) दाताजन ( प्रसत्ताण ) प्रकर्षता से अत्यन्त चलता हुआ ( वृषा ) बलिष्ठ ( युवा ) जीवन अवस्था का प्राप्त ( अजर ) वृद्ध अवस्था से रहित ( बहिर्दृषा ) योगीका नाश करनेवाला ( हित ) हितकारी ( बहिः ) अन्तरिक्ष को ( अनु ) पश्चात् ( सत् ) वर्तमान को ( न ) और ( धातु ) धारण करने वाले ( न ) और ( अस्थम् ) व्याप्त होने वाले में उत्पन्न ( हविः ) हवन करने योग्य द्रव्य को ( संचते ) सम्बन्धित करता है ( स ) वह ( शिशुः ) बालक माना को जैसे वेगे मसार के ( मध्ये ) बीच में पुण्य से युक्त होता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे हवन करने वाला सुगन्धि आदि में युक्त, अग्नि में हवन किये हुए द्रव्य में वायु वृष्टि और जल की शुद्धि के द्वारा समार सुख का उपकार करता है वैसे न्याय और कीर्ति की वामना में युक्त दी हुई विद्या से राज्यवर्धन का सुखी करिये ॥ ३ ॥

अब सूर्यसंयोग से मेघवृष्टान्त से राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र व एते सुयुजो यामिच्छिष्ये नीचीं सुख्यै यम्यं कृतावृधः ।

सुयन्तुभिः सर्वशासैरमीशुभिः क्रिबिर्नामानि प्रवणे मुपायति ॥४॥

पदार्थ—जैसे ( क्रिबिः ) प्रजा का पालन करनेवाला सूर्य ( अमीशुभिः ) किण्वा से ( प्रवणे ) नीचे स्थल में ( नामानि ) जला का ( प्र, मुपायति ) अत्यन्त चराता है वैसे ही है मनुष्यो ! जो ( सुयुजः ) जो अच्छे धर्म से युक्त होते व ( एते ) राजा आदि जन ( न ) आप लोगों के ( इच्छये ) इष्ट सुख के लिए ( यामन् ) मार्ग में और ( अमुष्यं ) परोक्ष सुख के लिए ( सुयन्तुभिः ) उत्तम नि यन्ता जिन में उन ( सर्वशासैः ) सम्पूर्ण राज्य के शासन करने वालों से ( यम्यं ) न्यायकारी के लिए हितकारक ( कृतावृधः ) मत्स्य का बढ़ाने वाली ( नीची ) नीची हुई प्रजाओं का सम्पन्न करे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य सबके सुख के लिए जन को नीचता है वैसे ही राजा न्याय माग से सम्पूर्ण प्रजाओं को चलाता हुआ उत्तम विज्ञान में युक्त भृत्यों के सहित सब मनुष्यों के हित को सम्पादन करता है ॥ ४ ॥

अब बिद्धविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सञ्जर्गणस्तर्हिभिः सुतेगृमं वयाकिर्नं चित्तगर्मासु सुस्वरुः ।

धारवाकेष्टुगाथ शोभसं वधैस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे ( ऋतुगाथ ) मरलव्यवहार के स्तुति करनेवाले आप ( तर्हिभिः ) वृक्षों से ( सञ्जर्गणस्तर्हिभिः ) उत्तम प्रकार पालन और धारण करते हुए ( धारवाकेषु ) शास्त्रवाणी के उपदेश करनेवालों में और ( चित्तगर्मासु ) चेतनत्वरूप गर्भ जिनमें उनके निमित्त ( सुतेगृमं ) उत्पन्न जगत में ग्रहण किये गये ( वयाकिर्नं ) व्यापी का प्रजाभा में ( सुस्वरुः ) उत्तम प्रकार उपदेश करनेवाले हुए ( अध्वरे ) अहिमायुक्त व्यवहार में ( शोभसे ) शोभा को प्राप्त हुआ और ( जीवो ) जीवित हुए ( पत्नी ) स्त्रियों को जैसे वैसे प्रजाओं के ( अभिः ) मनुष्य ( वर्धयन् ) वृद्धि को प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जा मनुष्य स्थावर जङ्गमरूप प्रजाओं से उपकार ग्रहण कर मर्क के सदा ही आनन्दित होवे ॥ ५ ॥

याहोव दह, तादगुच्यते सं छायाया दधिरे पिध्वाप्सः ।

पद्मीमस्मभ्यं मुखामुरु त्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं महः ॥६॥

पदार्थ—जो ( पद्मः ) वेगवाले ( सिध्वा ) मङ्गलस्वरूप ( छायाया ) छाया में ( अप्सु ) जला या प्राणी में ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( उरु धाम् ) बहुतों के विभाग करनेवाले को ( महीम् ) बड़ी बाणी और ( उरु ) बहुत ( बृहत् ) बड़े ( सुवीरम् ) सुन्दर और वीर पुरुष जिसमें उस ( अमपच्युतम् ) नाश से रहित ( सह ) बल को ( सम्, आ, दधिरे ) उत्तम प्रकार धारण करते हैं और जिन लोगों से ( यावृक् ) जैसा ( वृशे ) देखा जाता है ( तावृक् ) वैसा ( एव ) ही ( उच्यते ) कहा जाता है वे हम लोगों से निरन्तर सत्कार करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो अन्य जनों में विद्या के जन और जन के संचयको स्थापित करते हैं और जिनमें जैसा आत्मा में वर्तमान है वैसा मन में और जैसा मन में वैसा बाणी से कहा जाता है वे ही यथार्थवक्ता जानने योग्य हैं ॥ ६ ॥

वेत्यग्रजनिन्वा अति स्पृधः समर्थता मनमा सूर्यैः कविः ।

प्रंस रक्षन्त परि विशतो गयमस्माकं शर्म बनवत्स्वावसुः । ७॥

पदार्थ—जा ( स्वावसुः ) अपने में वसता वा अपने को जो बसाता है वह ( सूर्य ) सूर्य के सदृश ( कविः ) उत्तम बुद्धिमान् ( अयः ) अग्रगन्ता ( अग्निवाग् ) विद्या में जन्मवान् विद्यायुक्त पुरुष ( समर्थता ) सप्राम की इच्छा करने हुए ( मनसा ) चित्त से ( स्पृधः ) स्पृष्टा करते हैं जिनमें उन सप्रामों को ( अति, वेति ) अत्यन्त व्याप्त होता है वह ( वः ) निश्चय से जैसे सूर्य ( प्र सत् ) दिन को वैसे ( अस्माकम् ) हम लोगों का ( विशन्त ) मन्त्र से ( रक्षन्तम् ) रक्षा करते हुए ( गयम् ) श्रेष्ठ अपत्य वा धन और ( शर्म ) गृह का ( परि ) सब प्रकार से ( बनवत् ) सविभाव करे वह हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्या और विनय को प्राप्त हुए तो उग्र और धार्मिकों में ज्ञात और सदा ही दुष्टों के माथ मुद्र करने से प्रजाओं की रक्षा करना हुआ सुख में वाम करावे वह सूर्य सदृश प्रकाशित यशवाला हो ॥ ७ ॥

न्यायांसमस्य यतुनस्य कृतुनं अविस्वरं चरति यासु नाम ते ।

यादृश्मिन्वायि तमपस्यया विदुध उ स्वयं बहते सो अरं करत् ॥८॥

पदार्थ—( यः ) जा ( अस्थः ) इस ( यतुनस्य ) यत्न करनेवाले विद्वान् के ( केतना ) प्रज्ञान से ( न्यायांसम् ) श्रेष्ठ ( अविस्वरम् ) ऋषियों के उपदेश को ( चरति ) प्राप्त होता है और जिन ( ते ) आपका ( यासु ) जिन प्रजाओं में ( नाम ) नाम है और ( यादृश्मिन् ) जैसे व्यवहार में जो अन्य जनों से ( वायि ) धारण किया जाता है ( तम् ) उसका ( अपस्यया ) अपन कर्म की इच्छा से ( विदुधः ) प्राप्त होता और ( उ ) भी ( स्वयम् ) स्वयम् ( बहते ) प्राप्त होता है ( स ) वह हम लोगों का ( अरम् ) समर्थ ( करत् ) करे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता जन के समीप से प्राप्त हुए बोध से स्वयं उत्तम होकर अन्यो को उत्तम प्रकार भूषित करे वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

समुद्रमांसामर्ष तस्थे अग्रिमा न रिण्यति सर्वनं यस्मिन्नापता ।

अत्रा न हार्दि कवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूत बन्धनी ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यस्मिन् ) जिस में ( अग्रिमा ) अतिश्रेष्ठ ( सबन्धम् ) ऐश्वर्य का ( न ) नहीं ( रिण्यति ) नाश करता है और ( आसाम् ) इन प्रजाओं के बीच ( समुद्रम् ) अन्तरिक्ष को ( अब, तस्थे ) स्थित होता है और ( यत्रा ) जहाँ ( आयता ) बहुत धनों की वृद्धि होती है और ( पूतबन्धनी ) पवित्र गुणों को ग्रहण करनेवाली ( मतिः ) बुद्धि ( विद्यते ) विद्यमान है ( न ) नहीं ( अत्रा ) इस में ( कवणस्य ) शब्द करनेवाले का ( हार्दि ) हृदयसम्बन्धी कार्य ( रेजते ) चलता है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो प्रजाओं के मध्य में अन्तरिक्ष के सदृश सुखरूपी अवकाश देनेवाले और नहीं हिमा करनेवाले बुद्धिमान् उपदेशक विद्यमान हैं वे ही सुखयुक्त होते हैं ॥ ९ ॥

स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सत्रैः ।

अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषां चिद्वर्धम् ॥१०॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! ( चित्तिभिः ) एकट्टे करनेरूप क्रियाओं से जिस ( एवावदस्य ) एवावद अर्थात् प्राप्त गुणों का कहन है जिससे वा ( यजतस्य ) मिलन है जिसमें वा जो ( अवत्सारस्य ) रक्षकों को प्राप्त होने और ( मनसस्य ) माना जाता और उस ( सत्रे ) तुल्य स्थानवाले ( क्षत्रस्य ) राजकुल वा राज्य के सम्बन्ध की ( स्पृणवाम ) इच्छा करे तथा ( विदुषा ) विद्वान् से ( चित् ) भी ( अर्धम् ) धर्म में उत्पन्न की तथा ( रण्वभिः ) रमणीयों में ( शविष्ठम् ) प्रत्यन्त बलिष्ठ ( वाजम् ) विज्ञानवान् की हम इच्छा करे ( स, हि ) वही हम लोगों की इच्छा करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य दिनरात्रि राज्य की उन्नति करने की इच्छा करते हैं वे महाराज होते हैं ॥ १० ॥

इयेन आसामदितिः कक्ष्यो मदी विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।

समन्यमन्यमर्थयन्त्येतेवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥११॥

पदार्थ—जो मनुष्य ( इयेन ) प्रणसनीय गमनवाले घोड़े के सदृश ( आसाम् ) इन प्रजाओं की ( अविनि ) नहीं नाश होनेवाली प्रकृति और ( कक्ष्यः ) श्रेणियों में उत्पन्न ( यव ) आनन्द ( विश्ववारस्य ) सम्पूर्ण स्वीकार करने योग्य ( यजतस्य ) मिलन हुए ( मायिनः ) निकट बुद्धिमान् के ( अन्यमन्यम् ) अन्य अन्य को ( अर्थयन्ति ) अर्थ करते अर्थात् याचते हैं और ( एतवे ) प्राप्त होने को ( अन्ति ) मभीप म ( परिपामम् ) सब धोर से पान और ( विषाणम् ) प्रवेश किये हुए को ( सम्, विदुः ) उत्तम प्रकार जानने हैं वे सुखी होते हैं ॥ ११ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो विद्वान् जन दुष्ट बुद्धि वालों को श्रेष्ठ बुद्धियुक्त करते हैं और श्रेष्ठपक्षी के सदृश दुष्टों का नाश करते हैं वे जन कल्याणकारक हैं ॥ ११ ॥

**सदृशो यजतो वि द्विषो वचोऽहवृत्तः श्रुतविचर्यो वः सचा ।**

**उमा स वरा प्रत्येति भाति च यदी गुणं मज्जते सुप्रयावभिः ॥१२॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ( यत् ) जो ( श्रुतवित् ) श्रुत को जाननेवाला ( सच्यं ) जो सदा जाता वा तैरने के योग्य ( सचा ) सम्बन्धी ( वाहुवृत्तः ) बाहुओं से दुष्टों का नाश करनेवाला ( वज्रतः ) सत्कर्ता ( सदापुष्टः ) सदा तृप्ति करनेवाला ( सुप्रयावभिः ) उत्तम प्रकार चलनेवालों से ( द्विषः ) भय के द्वेष करनेवालों का ( वि, वचोत् ) विशेष करके नाश करता है ( च ) और जो ( वः ) आप लोगों को ( प्रति, एति ) प्राप्त होता वा विशेष करके जानता है, सत्य ( भाति ) प्रकाशित होता वा सत्य को प्रकाशित करता और ( गणम् ) समूह का ( भजते ) सेवन करता है ( सः ) वह ( उमा ) दोनों ( वरा ) श्रेष्ठ सुनने और सुनानेवालों का ( ईम् ) ही सत्कार कर सकता है ॥ १२ ॥

**भाषार्थ—**जो बहुत शास्त्रों को सुननेवाले ग्वाय का आचरण करनेवाले जल दुष्टों का नाश करते हुए श्रेष्ठों का पालन करते हैं वे सदा प्रसन्न होते हैं ॥ १२ ॥

**किं विद्वान् यथा करे इत विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—**

**सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विद्यासामूहः स विद्यामुदञ्चनः ।**

**मरुदेनू रसवन्धिभ्रिये पयोऽनुब्रवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो जो विद्वान् ( यजमानस्य ) सत्कार करनेवाले का ( सुतम्भरः ) उत्पन्न जगत् को धारण करनेवाला ( विद्यासामूहः ) सम्पूर्ण ( विद्याम् ) प्रज्ञान और कर्मों का ( उदञ्चनः ) उत्कृष्टता को प्राप्त कराने और ( ऊच ) ऊपर को पहुँचाने और ( सत्पतिः ) सत्पुरुषों का पालन करनेवाला ( रसवत् ) बहुत रस से युक्त ( पयः ) दूध को जैसे ( भेभुः ) गौ बेंने विद्या को ( भरत् ) धारण करता और धर्म का ( विधिभ्ये ) आध्ययन करता और ( न ) न ( स्वपन् ) शयन करता हुआ अन्यो के प्रति ( अनु, अनुब्रवाणः ) पढ़कर पीछे उपदेश देता हुआ सत्य का ( अधि, एति ) स्मरण करना है ( स ) वही सत्कार करने योग्य है ॥ १३ ॥

**भाषार्थ—**वही उत्तम पुरुष है जो कृतज्ञ और यथार्थवक्ता जनो की सेवा में प्रिय, सम्पूर्ण मनुष्यों के लिए बुद्धि देने और गौ के सदृश सत्य उपदेश का बपनिवाला और अविद्या आदि वलेशों से पृथक् वर्तमान है वही जब से भेल करने योग्य है ॥ १३ ॥

**यो जगार तमृचः कामयन्ते यो जगार तमु सामानि यन्ति ।**

**यो जगार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सुख्ये न्योकाः ॥१४॥**

**पदार्थ—**( यः ) जो ( जगार ) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला है ( तम् ) उसको ( जगः ) जगत् के सदृश जन ( कामयन्ते ) कामना करते हैं और ( यः ) जो ( जगार ) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला है ( तम् ) उसको ( उ ) भी ( सामानि ) सामवेद के विभाग ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं और ( यः ) जो ( जगार ) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला ( तम् ) उसको ( अयम् ) यह ( सोमः ) सोमलता आदि ओषधियों का समूह वा ऐश्वर्य के सदृश ( न्योकाः ) निश्चित स्थान वाला ( सुख्ये ) मित्रत्व में ( तव ) आपका ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हैं इस प्रकार ( आह ) कहता है ॥ १४ ॥

**भाषार्थ—**जो वेदविद्या को प्राप्त होने की इच्छा करते हैं उन को ही वेद विद्या प्राप्त होती और जो मनुष्य आदिकों के साथ मित्रता करना है वह बहुत सुख को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

**जो सत्य की कामना करते हैं वे सत्य को प्राप्त होते हैं—**

**अभिर्जागार तमृचः कामयन्तेऽभिर्जागार तमु सामानि यन्ति ।**

**अभिर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सुख्ये न्योकाः ॥१५॥१५॥३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो जो ( अभिः ) अग्नि के सदृश ( जागार ) जागृत होता है ( तम् ) उसको ( जगः ) प्रशंसित बुद्धि वाले विद्यार्थी जन ( कामयन्ते ) कामना करते हैं और ( अभिः ) जो अग्नि के सदृश वर्तमान ( जागार ) जागृत होता है ( तम् ) उसको ( उ ) भी ( सामानि ) सामवेद में कहे हुए विज्ञान ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं ( अभिः ) अग्नि के सदृश वर्तमान ( जागार ) जागृत होता है ( तम् ) उस को ( अयम् ) यह ( न्योकाः ) निश्चित स्थान युक्त ( सोमः ) विद्या और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला ( तव ) आप की ( सुख्ये ) मित्रता में ( अहम् ) मैं ( अस्मि ) हैं ऐसा ( आह ) कहता है ॥ १५ ॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्य आत्मस्य से रहित पुरुषार्थों धार्मिक होते और अतिरेक्य विद्यार्थी होते हैं उन्हीं को विद्या और उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य मेघ और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संपत्ति जाननी चाहिये ॥

यह ब्रह्मालीसर्वा सूक्त तीसरा अनुवाक और पञ्चीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



**अथैकादशार्थस्य पञ्चमोऽध्यायः सप्तमस्य सदापुण आश्रयः**

**अधि. । विषयेषां देवता । १, २ पङ्क्तिः । ५ । ६**

**११ भुरिक्पङ्क्तिः । ८ । १० स्वराद् पङ्क्तिः-**

**६५५ । पञ्चमः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप् ।**

**४ । ६ । ७ निष्कृतिष्टुप् अथः ।**

**वैवतः स्वरः ॥**

**अथ ग्यारह अध्यायों के पेंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में आदित्यविषय को कहते हैं—**

**विदा दिवो विष्यन्त्रिंशक्यैरायत्या उपसो अचिर्नो गुः ।**

**अपोहत व्रजिनीरुत्स्वर्गादि दुरो मानुषीर्देव आबः ॥ १॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे ( स्व, देवः ) श्रेष्ठ गुणों से विशिष्ट सूर्य वा मेघ ( मानुषो ) मनुष्य सम्बन्धी ( दुरः ) दूरों को ( वि, गात् ) विशेषतया प्राप्त होता है और ( आबः ) ढाँपता है और ( अत्रिम् ) मघ को और ( व्रजिनी ) वर्जन क्रियाओं को ( उत्, अपः, अमृत ) अत्यन्त दूर करते हैं वैसे ही ( विष्यन् ) कामना करते हुए ( विदाः ) विद्वान् जन ( अचिर्नो ) सत्कार करनेवाले ( उपसो ) वेदविद्या से उत्पन्न हुए उपदेशों से ( आयत्याः ) पीछे से हुए ( उच्यन्ते ) प्रभात कालों के सदृश ( विष्यन् ) व्याप्त होने और ( गुः ) चलते हैं उनकी निरन्तर सेवा करो ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो प्रभातकाल और सूर्य के सदृश मनुष्यरूप प्रजाओं में विद्या और धर्म के प्रकाश करने वाले हों वे ही अध्यापक और उपदेशक होंगे ॥ १ ॥

**वि सूर्यो अमर्ति न श्रियं सादोर्वाद्गवां माता जानुती गात् ।**

**धन्वर्णसो नद्यः सादोर्णाः स्थूणैव सुमिता दंहत द्यौः ॥२॥**

**पदार्थ—**जो ( द्यौः ) कामना करता हुआ ( सुमिता ) उत्तम प्रकार किया प्रमाण जिन का ( स्थूणैव ) स्तम्भ के समान विद्या आदि सदृशों को ( गृह्णत ) बढ़ाता वा धारण करता तथा ( सादोर्वाद् ) भक्षण करने योग्य अन्न और जल जिन में और ( धन्वर्णसः ) स्थल में जल जिन का ऐसी ( नद्यः ) शब्द करनेवाली नदियों के सदृश वा ( जानुती ) जानती हुई ( माता ) माता के सदृश शिष्यों और उपदेश करने योग्यों को ( गात् ) प्राप्त होता है और ( सूर्य ) सूर्य ( अमर्तिम् ) रूप के ( न ) सदृश ( श्रियम् ) लक्ष्मी का ( वि, सात् ) विशेष करके विभाग करता है ( गवां ) किरणों के ( ऊर्वात् ) बहुत रूप से ऐश्वर्य को ( आ ) प्रच्छेद प्रकार प्राप्त होता है वही सब को सुखी करने को योग्य होवे ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के सदृश विद्या, माता के सदृश कृपा, नदी के सदृश उपकार और स्तम्भ के सदृश धारण करते हैं वे ही श्रीमान् और मदा सुखी होते हैं ॥ २ ॥

**अथ विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—**

**अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जुनुषे पूर्यार्य ।**

**वि पर्वतो जिहीतु साधत घौराविवासन्तो दसयन्त भूमं ॥३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो ( महीनाम् ) भूमियों और ( पर्वतस्य ) मेघ के ( पूर्यार्य ) पूर्वी में उत्पन्न ( जुनुषे ) जन्म के लिए तथा ( अस्मै ) इस ( उक्थाय ) प्रशंसित के लिए ( गर्भ ) कारणभूत ( पर्वत ) पक्षी के समान पर्वतान् मेघ वा ( घौः ) कामना करते हुए के सदृश ( वि, जिहीत ) विशेष चलता है और जिस को ( आविवासन्तः ) सब ओर घूमते हुए ( साधत ) सिद्ध करें जिससे दुःख का और ( दसयन्त ) दोषों का नाश करें उसके तुल्य हम लोग ( भूम ) होंगे ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्यार्थियों में विद्या के गर्भों को धारण करते हैं वे मेघ के सदृश सबके सुखकारक होते हैं ॥ ३ ॥

**सूक्तेभिर्वा वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वर्गनी अबसे द्रुवधै ।**

**उक्थेभिर्हि प्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जैसे ( आविवासन्तः ) सत्य का सब प्रकार से सेवन करते हुए ( सुयज्ञाः ) सुन्दर विद्या और धर्म के प्रचार करनेवाली क्रिया जिन की ऐसे ( कवयः ) बुद्धिमान् विद्वान् ( मरुतः ) मनुष्य ( सूक्तेभिः ) जो उत्तम प्रकार कहे जाय उन ( देवजुष्टैः ) विद्वानों से सेवित और ( उक्थेभिः ) प्रशंसा करने वाले ( वचोभिः ) उत्तम प्रकार शिक्षित वचनों से ( हि ) निश्चय से ( इन्द्रा ) विजुली ( जप्नी ) और अग्नि को तथा ( वः ) आप लोगों को ( अबसे ) रक्षण आदि के लिए ( द्रुवधै ) ग्रहण करने को ( तु ) भीष्ट ( यजन्ति ) मिलते हैं वैसे ( स्मा ) ही आप लोग भी इसी प्रकार मिलो ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**जो विद्वान् जन सब के लिए सुख, विद्या और विज्ञान का सेवन करते हुए अग्नि आदि की विद्या को सब के लिए देते हैं वे ही उत्तम होते हैं ॥ ४ ॥



एतो न्वयं सुष्यो भवाम प्र दुच्छुनां मिनवामा वरीयः ।

आरे, देवसि सनुतर्धामायाम् प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( अद्य ) आज ( एतो ) ये हम लोग ( तु ) शीघ्र ( सुष्य ) अच्छी बुद्धि वाले ( भवाम ) हो और जा ( दुच्छुना ) दुष्ट कुत्तो के सवृण भक्षमान उन का ( प्र, मिनवामा ) अत्यन्त नाश कर योग ( देवसि ) देवयुक्त कर्मों को ( आरे ) समीप वा दूर म ( अघाम ) प्राप्त करावे ( प्राञ्च ) प्राचीन काल में वर्तमान अधिक अवस्था वान हम लोग ( सनुत ) सदा ( वरीय ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( यजमानम् ) मिलने वाले का ( अच्छ ) उत्तम प्रकार ( दघाम ) धारण कर वैसे आप चाग भी धारण करा ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जो मनुष्य विज्ञान का बड़ा दुष्टो का निवारण करने और दूष्य आदि दापो से रहित हुए मनान्त मध्य को धारण करते हैं वे अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यो को उत्तम बुद्धि कैसे प्राप्त होनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या मातां श्रुणुत व्रजं गोः ।

यया मनु विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वड्कुरापा पुरीषम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यया ) जिसमें ( मनु ) मनुष्य ( विशिशिप्रम् ) सुन्दर ठुड़ी और नाविका जिसकी उम्र का ( जिगाय ) जीता है ( यया ) जिसमें ( वड्कु ) धन की इच्छा करने वा ( वणिक ) व्यापारी वंश ( पुरीषम् ) पूर्ण करने वान जा को ( आपा ) प्राप्त होता है उम्र ( धियम् ) बुद्धि का ( सखाय ) मित्र होने हुए हम लोग ( कृणवामा ) करे और जैम ( या ) जो ( माता ) माता के सदृश ( गा ) किरण से ( व्रजम् ) मेघ का करता है और बुद्ध को ( अप ) दूर करता है नैम हम को आप लाग ( श्रुणुत ) मित्र करिये और बुद्धि को ( आ ) सब प्रकार ( इता ) प्राप्त होजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । मनुष्यो को याग्य है कि परम्पर में मन्त्र हाजर बुद्धि को बड़ा औरों के लिए विशेष ज्ञान अच्छे प्रकार वैसे जैसे वीर्य धन को प्राप्त होकर बढ़ता है वैसे उत्तम बुद्धि को पाकर बढ़ें ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अन्नोदत्र हस्तयतो अद्विराचन्येन दश मासो नवग्वाः ।

श्रुतं यतो सुरमा गा अविन्दुद्विश्चानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७॥

पदार्थ ( येन ) जिसमें ( अत्र ) इस सप्ताह में ( नवग्वा ) नवीन गमन जाने ( दश ) दश ( मास ) चंद्र आदि महीने वर्तमान है और ( हस्तयत ) हाथ निरुद्ध किये अर्थात् वशीभूत किये जिसके वह ( अद्वि ) मेघ के सदृश ( आचन् ) सत्कार करता हुआ ( अन्नोत् ) प्रेरणा कर और जो ( सुरमा ) तृप्त्य गमनेवाली ( श्रुतम् ) मन्त्र का ( यतो ) यत्न करती हुई ( गा ) इन्द्रियों का ( अविन्दुत् ) प्राप्त होनी है और जा ( अद्विरा ) अन्ना का स्वरूप पाण के सदृश ( विद्वानि ) सम्पूर्ण ( न्याया ) मध्य कार्यों का ( चकार ) करता है वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जो मनुष्य सर्वदा सत्य आचरण में युक्त हो कर मन्त्र के उपकार को मित्र करने हैं वे इस सप्ताह में धर्मत्मा गिने जाते हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यो को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद्गोभिरङ्गिरसो नव त ।

उत्सं आसां परमे सधस्थं श्रुतस्य पथा सुरमा विदुग्वाः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( विश्वे ) सम्पूर्ण प्राणी ( माहिनाया ) महत्त्व में युक्त ( अस्या ) प्रातर्वेला के ( व्युषि ) विशिष्ट निराग म ( गोभिर ) किरणों के साथ ( अङ्गिरस ) पवन ( सम्, नवन्त ) अच्छे प्रकार श्रुति करने हैं ( यत् ) जिससे ( आसाम् ) इन प्रातर्वेलाओं के ( परमे ) प्रकृष्ट ( सधस्थे ) साध के स्थान में ( श्रुतस्य ) मन्त्र वा जल के ( पथा ) मार्ग में ( उत्सं ) कूप के सदृश ( सुरमा ) प्राप्त हुआ का आदर करनेवाली ( गा ) किरणों का ( विदुत् ) जाननी है उन उनको आप लोग विशेष कर जानिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । जैसे प्रभातवेला में प्राणी प्रसन्न होत हैं वैसे ही मन्त्रेह रहित होकर मनुष्य मानविकी होते हैं ॥ ८ ॥

फिर सूर्य के समान मनुष्य क्या करें उसका उपदेश करते हैं—

आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्पोत्रिया दीर्घयाथे ।

रघुः इयेनः पतयदन्धो अच्छा युवा कवीर्दीयद् गोषु गच्छन् ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( सप्ताश्वः ) मान प्रकार की शीघ्र चलने वाली किरणों जिस की ऐमा ( सूर्य ) सूर्य ( यत् ) जिस ( क्षेत्रम् ) निवास के स्थान को ( अस्थ ) इस जगत् सम्बन्धिनी ( उषिया ) पृथिवी के ( दीर्घयाथे ) चले जिस में ऐसे बड़े मार्ग में ( रघु ) लघु ( इयेन ) अन्तरिक्षस्थ बाज पक्षी के सदृश अन्तरिक्ष

में जाता है वैसे आप सेना के मध्य में ( आ ) सब प्रकार से ( यातु ) प्राप्त हुआ और जैम ( गोषु ) पृथिविया में ( गच्छन् ) चलता हुआ ( दीर्घयाथे ) प्रकाश करता है वैसे ( युवा ) मिले और नहीं मिले हुए का करनेवाले यौवनावस्था युक्त ( कविः ) बुद्धिमान् विद्वान् ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( अन्धः ) अन्ध आदि का ( पतयत् ) स्वामी ने सदन आचरण करता है यह जानो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वार है । हे मनुष्यो ! जिस सूर्य में मान नर है और जो जपन चाग का जोड़ के इधर उधर नहीं जाना है और बहुत भूगाना के मध्य में एक ही प्रकाशित है वैसे ही हम पुरुष ही हैं ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमणोऽयुक्तं यद्वरितो वीतपृष्ठाः ।

उदना न नावमनयन्त धीरा आशृष्वतीरापो अवागंतिष्ठन् ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत् ) जो ( सूर्य ) सूर्य ( शुक्रम् ) वीर्य का ( अरुहत् ) आरोहण करना और ( अण ) उदक का ( अयुक्त ) योग करता है और ( वीतपृष्ठा ) व्याप्त है राक लोकान्तरी के पृष्ठ जिन से वे ( हरितः ) जल आदि का जगनवाल ( धीरा ) ज्ञातवान् बुद्धिमान् जन ( उदना ) जल से ( नावम् ) नौका को ( न ) जैसे वैसे ( अनयन्त ) प्राप्त होते अर्थात् व्यवहार को पहुँचते हैं ( अवाक् ) गीत ( आशृष्वता ) जो चा-आर में सुन पड़ते हैं वह ( आपः ) प्राण ( अतिष्ठन् ) स्थित होत हैं उग सबको आप लाग जाने ॥ १० ॥

भाषार्थ—आ मनुष्य सूर्य और जन आदि की विद्याओं का ज्ञान के नौका आदि का चलाव वे लक्ष्मीवान् जानते हैं ॥ १० ॥

जो मनुष्य उत्तम बुद्धि को याचना करते हैं वे विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्पा ययातरन्दरा मासो नवग्वाः ।

अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥११॥२७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यया ) जिसमें ( नवग्वाः ) नवीन गमनवाले ( दश ) दश ( मास ) महीन ( अतरन् ) पार होत है ( अया ) दग ( धिया ) बुद्धि से हम लोग ( देवगोपा ) विद्वान् के रक्षक ( स्याम ) होवे और ( अया ) इस ( धिया ) बुद्धि से ( अह ) पाप वा पाप से उत्पन्न दुःख का ( अति, तुतुर्यामि ) अत्यन्त विनाश करे ( वः ) आप की ( स्वर्षाम् ) मुख का विभाग करता है जिससे उस ( धियम् ) बुद्धि को ( अप्सु ) प्राणों में मैं ( दधिषे ) धारण करूँ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो बुद्धिमान्, धनवान् और बल में युक्त होकर सब की रक्षा करते हैं वे दुःखों के पार होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में मध्य और विद्वान् के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पेंतासीमयी सूक्त और सत्ताईसवाँ वर्ग सम्पन्न हुआ ॥



अष्टाष्टकम् पदचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिशत आश्रय

श्रुति । १, ६ विश्वेदेवा । ७, ८ देवपत्न्यो देवता ।

१ भुविजगती । ३, ४, ६ निचुजगती । ४, ७ जगतीधन्व ।

निषाद स्वर । २, ८ निचुपङ्क्तिधन्व ।

पञ्चम स्वर ॥

अब आठ श्रुतिवाले द्वितीयोत्तम सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में शिल्पाविद्या का विद्वान् रथो को रचकर सुख में मार्ग को

जाता है इस विषय को कहते हैं—

हयो न विद्वान् अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।

नास्यां वडिम विमुचं नाश्रुतं पुनर्विद्वान् पथः पुरणुत श्रुजु नेषति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( विद्वान् ) विद्यायुक्त में ( स्वयम् ) आप ( अयुजि ) नहीं मयुक्त ( धुरि ) मार्ग में ( हय ) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त घोड़े के ( न ) सदृश ( ताम्, प्रतरणीम् ) पार होत है जिसमें उग ( अवस्युवम् ) अपनी रक्षा की इच्छा करनी हुई का ( वहामि ) प्राप्त होता वा प्राप्त करनी हैं और ( अस्याः ) इसके सम्बन्ध में ( विमुचम् ) त्यागत है जिसमें उसकी ( न ) नहीं ( वडिम ) कामना करता है और ( न ) नहीं ( आवुतम् ) तपे हुए की कामना करता है ( पुनः ) फिर ( पुरणुता ) प्रथम जानवाना ( विद्वान् ) विद्यायुक्त जन ( श्रुजु ) सरलता जैसे हा वैसे ( पथः ) मार्गों का ( नेषति ) प्राप्त करावे ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानद्वार है । जैसे विद्वानों से उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़े कार्यों को सिद्ध करने हैं वैसे ही प्राप्त हुई विद्या और शिक्षा जिन को ऐसे मनुष्य कार्य की निधि का प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

मनुष्यों को विद्यावाचि विद्या अवश्य स्वीकार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्षः प्र यन्त मारुतो विष्णो ।

उमा नासत्या रुद्रो अथ ग्नाः पूषा भगुः सरस्वती जुषन्त ॥२॥

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (अग्ने) विद्वान् (ब्रह्म) श्रेष्ठ (मित्र) मित्र (आसन्न) मनुष्यों में विदित और (देवा) विद्वानो आप (शर्भ) बल को (प्र, यत्न) प्राप्त होते हैं (उत्त) और हे (विष्णो) व्यापनशील (उत्त) दो (मासत्या) असत्य आवरण से रहित जन (ध्रुवः) दृष्टो को भयकर (भग) ऐश्वर्यवान् (पूषा) पुष्टिकारक वायु (अथ) इसके अनन्तर (सरस्वती) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी भी (ग्नाः) वाणियों का (पुष्पन्त) सेवन करें ॥२॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिए कि विद्या शरीर बल और योग की वृद्धि करके अग्नि आदि विद्या का स्वीकार करें ॥२॥

इस सृष्टि में मनुष्यों की क्या क्या जानना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**इन्द्राग्नी मित्रावरुणादिति स्वः पृथिवीं धाम्नुस्तुः पर्वता अपः ।**

**द्वे विष्णुं पृषणुं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमृतये ॥३॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो जैसे मैं (इन्द्र) रक्षा आदि व्यवहार की सिद्धि के लिए (इन्द्राग्नी) सूर्य और बिजुली (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु तथा (अवितिम्) अन्तरिक्ष को (स्वः) सूर्य और (पृथिवीम्) भूमि को (धाम्) प्रकाश को (मृत) पर्वतो वा मनुष्यों को (पर्वताम्) मेघो वा पर्वतो को (अप) जलो को (विष्णुम्) व्यापक धन वा जय को (पृषणम्) पुष्टिकारक व्यान वायु और (ब्रह्मण) ब्रह्माण्ड के (स्पतिम्) पालन करनेवाले सूनात्मा को (भगम्) ऐश्वर्य और (शंसम्) प्रशंसा करने योग्य (सवितारम्) ससार के उत्पन्न करनेवाले परमात्मा को (द्वे) ग्रहण करता हूँ वैसे आप लोग (नु) शीघ्र इनको ग्रहण कीजिए ॥३॥

**भाषार्थ—**मनुष्यों का विद्युद्विद्या अवश्य स्वीकार करनी चाहिए ॥३॥

अब हम मनुष्यों को ईश्वरादिकों का सेवन करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**उत नो विष्णुस्तु वातो अस्मिन्नो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।**

**उत श्रमव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विम्बानु मंसते ॥४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो (नः) हम लोगों को (विष्णु) व्यापक ईश्वर (उत) और (वात) वायु (उत) और (अस्मिन्न) नहीं हिमा करने और (द्रविणोदा) बल का देनेवाला (उत) और (सोम) ऐश्वर्यवान् (उत) और (श्रमवः) बुद्धिमान् जन (उत्) और (राये) धन के लिये (नः) हम लोगों को (उत) और (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जन (उत) और (त्वष्टा) सूक्ष्म करनेवाला (विष्वा) समर्थ से (अनु, मंसते) अनुमान करे उनसे विद्वान् (मयः) सुख को (करत्) सिद्ध करे ॥४॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्य ईश्वर आदि पदार्थों की सेवा करते हैं वे जाननेयोग्य पदार्थों के जाननवाले होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उत त्वन्नो मारुतं शर्ध आ गमदिविभ्युयं यजतं बहिरासवे ।**

**बहस्पतिः शर्म पृषोत नो यमद्वरुथं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥५॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो (विबिसयम्) जिसका प्रकाश में निवास (यजतम्) जो मिलता हुआ (त्वत्) वह (मारुतम्) मनुष्यसम्बन्धी (बहिः) उत्तम आसन और (शर्धः) बल (नः) हम लोगों को (आ, गमत्) प्राप्त होवे और (उत) भी (बहस्पतिः) बड़ो का पालन करने और (पूषा) पुष्टि करनेवाला (वरुण) उदानवायु के सदृश उत्तम (मित्रः) प्राणवायु के सदृश प्रिय (उत) भी (अर्यमा) न्यायकारी और (आसवे) प्रवेश होने को (वरुणम्) गृहो में श्रेष्ठ (शर्म) गृह को प्रवेश होने को (नः) हम लोगों को (यमत्) देना है ॥५॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्य वायु के गुणों को विशेषकर जानें वे सब प्रकार से धन को प्राप्त होव ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उत त्वे नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्यः स्वामणे भवन् ।**

**मघो विमुक्ता श्वसावसा गमदुरुष्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जो (पर्वतासः) मेघो के सदृश (सुशस्तयः) उत्तम प्रशंसायुक्त (नद्यः) नदियों के सदृश (सुदीतयः) प्रशंसित प्रकाशवाले (नः) हम लोगों को वा हमारे (स्वामणे) पालन व्यवहार के लिए (भवन्) हो (उत) और (उरुष्यचा) बहुतो में व्याप्त (अवितिः) खण्डन से रहित (भग) आदर करने योग्य ऐश्वर्य का योग (विमुक्ता) विभाग कर देनेवाला (श्वसा) बल और (अवसा) रक्षण आदि से (आ, गमत्) सब प्रकार प्राप्त होवे और (मे) मेरे (हवम्) शब्द को (श्रोतु) सुने (त्वे) वे और वह सत्कार करने योग्य होवें ॥६॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मेघ के सदृश ससार के पालन करनेवाले प्रशंसित न्याय का विधान कर सम्पूर्ण प्रजा की विनति सुन के न्याय करें वे विनययुक्त होते हैं ॥६॥

राजा के समान राजपत्नी न्याय करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**देवानां पत्नीरिस्तोरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।**

**याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवोः सुहवाः शर्म यच्छताः ॥७॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो (य) जो (देवानाम्) विद्वानो वा राजाओं के न्याय की (उच्यते) कामना करती हुई (पत्नीः) स्त्रियां (नः) हम लोगों की वा हमारे सम्बन्धी पदार्थों की (अवन्तु) रक्षा करें और (स्तुजये) बल और (वाजसातये) सग्राम के लिए (प्र, अवन्तु) अच्छे प्रकार रक्षा करें और (याः) जो (पार्थिवासः) पृथिवी में विदित (अपाम्) जलो के (व्रते) स्वभाव में (अपि) भी (देवो) प्रकाशमान (सुहवा) उत्तम आह्वान शाली (न) हम लोगों को (शर्म) सुखकारक गृह दें और (ताः) उनको (न) हम लोगों के लिए आप लोग (यच्छत) दीजिये ॥७॥

**भाषार्थ—**जैसे राजा लोग पुरुषों का न्याय कर वैसे ही स्त्रियों के न्याय को रानियां करे ॥७॥

राजा के समान रानी स्त्रियों का न्याय करें इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यभिनी राट् ।**

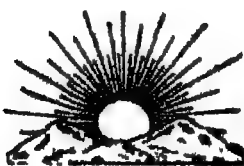
**आ रोदसी वरुणानी मृणोत व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥८॥२८॥२॥**

**पदार्थ—**(य) जो (राट्) प्रकाशमान (इन्द्राणी) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त पुरुष की स्त्री और (अग्नायी) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष की स्त्री (अश्विनी) शीघ्र चलनेवाले की स्त्री और (देवपत्नी) विद्वानो की स्त्रियों न्याय करने के लिए स्त्रियों को (ग्नाः) वाणियों को (व्यन्तु) व्याप्त हो और (रोदसी) अन्तरिक्ष तथा पृथिवी के सदृश (वरुणानी) श्रेष्ठ जन की स्त्री (जनीनाम्) उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों की वाणियों का (आ, मृणोतु) सब प्रकार से युने और (उत) भी (देवो) विद्यायुक्त स्त्रियां (ऋतुः) ऋतु के सदृश क्रम से उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों का जो न्याय उनकी (व्यन्तु) कामना करे ॥८॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे राजाओं के समीप पुरुष मन्त्री हाते हैं वैसे रानियों के समीप स्त्रियां मन्त्री हावें ॥८॥

अब भी मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य महाविद्याय विरजानन्द सरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमहायानन्द सरस्वती स्वामी जी ने रचे हुए, उत्तम प्रमाणयुक्त ऋग्वेद भाष्य के पाठ्य मण्डन में छियालीसवां सूक्त और चतुर्थ अष्टक में

द्वितीय अध्याय और अष्टाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



## अथ तृतीयाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ सप्तर्षस्य सप्तवत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिरिच आश्रेय ऋषि ।  
विश्वेदेवा देवताः । १, २, ३, ७ त्रिष्टुप् । ४ भुरिक्त्रिष्टुप् ।  
६ बिराद्त्रिष्टुप् छन्दः । चैवतः स्वर ।  
५ भुरिक्पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वर ॥

अब सात ऋचावाले सप्ताशीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री पुरुषों के गुणों को कहते हैं—

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।

आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदनं जोहुवाना ॥१॥

पदार्थ—जो ( विव ) प्रकाश से प्रातःकाल के मध्याह्न ( ब्रुवाणा ) उपदेश देती ( प्रयुञ्जती ) उत्तम कर्म में अच्छे प्रकार योग करती ( दुहितुः ) कन्या का ( बोधयन्ती ) बोध देती और ( मही ) धातु करने योग्य ( आविवासन्ती ) सब प्रकार में सेवती हुई ( सवने ) गृह में ( जोहुवाना ) अत्यन्त प्रशंसा को प्राप्त ( युवतिः ) युवा अवस्था में विद्याओं को पढ़कर विवाह जिसने किया वह ( माता ) धातु करनेवाली माता ( मनीषा ) बुद्धि से ( पितृभ्य ) पालन करनेवालों से शिक्षा को प्राप्त गृहाश्रम को ( आ ) सब प्रकार में ( एति ) जाती वा प्राप्त होती है वह मङ्गलकारिणी होनी है ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकुलुप्तोपमालङ्कार है । जो माता पाँचवें वर्ष के प्रारम्भ होने तक मन्तानों को बोधदेकर पाँचवें वर्ष में पिता को मौपती है और पिता भी तीन वर्ष पर्यन्त शिक्षा देकर आचार्य को पुत्रा को और आचार्य की स्त्री को कन्याओं को ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण के लिए सौपता है और वे आचार्यादि भी नियत समयपर्यन्त ब्रह्मचर्य को समाप्त करा के और विद्याओं को प्राप्त करा के तथा व्यवहार की शिक्षा देकर गृहाश्रम में प्रविष्ट कराने हैं वे आचार्य और आचार्या कुल के भूपक और शोभाकारक होते हैं ॥१॥

अब मनुष्यों को कार्य कारण से विस्तृत अनन्त पदार्थों को जान कर कार्यसिद्धि करनी चाहिए—

अजिरास्तदप ईयमाना आतस्थिर्वासो अमृतस्य नामिम् ।

अनन्तास उरवी विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥२॥

पदार्थ—जो ( अजिरास ) वेग से युक्त ( ईयमाना ) प्राप्त होते हुए ( तदप ) उनके प्राणों को ( अमृतस्य ) नाश में रहित कारण के ( नामिम् ) मध्य में ( आतस्थिर्वास ) सब ओर में स्थित ( अनन्तास ) नहीं विद्यमान अन्त जिनका वे ( उरव ) बहुत ( विश्वतः ) सब ओर ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और भूमि ( सीम् ) सूर्य के प्रकाश के मध्याह्न ( परि ) चाने और ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं उनका ( पन्थाः ) मार्ग जानना चाहिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकुलुप्तोपमालङ्कार है । जो अकाश आदि अनन्त पदार्थ हैं उनमें वर्तमान असंख्य परमाणु और कारण के मध्य में कारण से उत्पन्न हुए सूर्य और प्रकाश के मध्याह्न विस्तीर्ण हैं ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उक्षा समुद्रो अरुवः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।

मघ्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्ती ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! जो ( समुद्र ) सागर ( अरुव ) मुख को प्राप्त कराने वाला ( सुपर्ण ) सुन्दर पालन जिस का ऐसा और ( विव ) प्रकाश के ( मघ्ये ) मध्य में ( निहित ) स्थापित किया गया ( पृश्नि ) अन्तरिक्ष और ( अश्मा ) मेघ ( उक्षा ) मीचनेवाला ( पूर्वस्य ) पूर्ण आकाश आदि और ( पितु ) पालन करने वाले के ( योनिम् ) कारण को ( आ, विवेश ) सब प्रकार प्रविष्ट होता है और ( रजस ) लोक में उत्पन्न हुए का ( वि, चक्रमे ) विशेष कर के क्रमण करता और ( अन्तो ) समीप में ( पाति ) रक्षा करता है वह सब का जानने योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग कार्य और कारण को जानकर उन के संयोग से उत्पन्न हुए वस्तुओं को कार्यों में उपयुक्त करके अपने अभीष्ट की सिद्धि करें ॥ ३ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि पृथिवी आदि तत्त्व जगत् के पालक हैं ऐसा जानें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

चत्वार ई बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।

त्रिचार्तवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सुद्यो अन्तान् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( अस्य ) इस ससार के मध्य में ( चरसे ) चलने की ( क्षेमयन्त ) रक्षा करते हुए ( परमा ) प्रकृष्ट ( बिभ्रतव ) तीन सत्त्व रज और तमागुण धारण करनेवाले जिन के वे और ( चत्वार ) चार पृथिवी आदि ( ईम् ) सब ओर में ( गर्भम् ) समस्त जगत् उत्पत्ति के स्थान को ( बिभ्रति ) धारण करते हैं तथा ( दश ) दश दिशाओं को ( धापयन्ते ) धारण करते हैं और ( सद्य ) शीघ्र ( दिव ) प्रकाश के मध्य में ( अन्तान् ) समीपवर्ती देशों के ( गावः ) किरणों ( परि, चरन्ति ) चाने और चलने हैं ऐसा जानिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस ससार के धारण करनेवाले पृथिवी, जल, तेज और पवन हैं और वे कारण से उत्पन्न हो के उपयुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इदं वपुर्निवचनं जनास्त्वरन्ति यन्नृद्यस्तस्थुरापः ।

इे यदी विभतो मातुरन्ये इहेह जाते यस्याः सर्वन्धू ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जन्म ( इहेह ) इसी ससार में ( इ ) दो ( यस्या ) रात्रि और दिन ( सर्वन्धू ) तुल्य बन्धु जिनका उनके सदृश वर्तमान और ( मातु ) माता स ( अन्ये ) अन्य ( जाते ) उत्पन्न हुए ( ईम् ) जल का ( बिभ्रत ) धारण करते हैं और ( यत् ) जो ससार का उपकार करने हैं और ( यत् ) यो ( जनास ) विद्वान् जन जैसे ( नद्य ) नदियाँ ( आपः ) जलों का वैसे ( इवम् ) इस ( निवचनम् ) निश्चित वचन जिसका उम ( वपुः ) शरीर को ( चरन्ति ) प्राप्त होने और ( तस्थुः ) स्थित होते हैं वैसे इनको विशेष कर जानिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकुलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे रात्रि दिन क्रम से व्यवहार करत है वैसे क्रम से आहार विहार करके शरीर की रक्षा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि युवा अवस्था ही में स्वयंवर विवाह कर इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो बयन्ति ।

उपश्रुष्टे वृषणो मोदमाना दिवस्पृथा वृध्वो यन्त्यच्छ ॥६॥

पदार्थ—जो ( विव ) कामना और ( मोदमाना ) धानन्द करती हुई ( वृध्वः ) युवावस्थायुक्त स्त्रियाँ ( वस्त्रा ) गृहाश्रम के मार्ग से वर्तमान ( उपश्रुष्टे ) सम्बन्ध में ( वृषण ) युवा पुरुषों को ( अच्छ ) उत्तम प्रकार ( यन्ति ) प्राप्त होती हैं वे ( मातर ) माता ( अस्मे ) इस व्यवहार से मित्र ( पुत्राय ) पुत्र के लिए ( विव ) बुद्धियों और ( अपांसि ) कर्मों को ( वि, तन्वते ) विस्तार करती हैं और ( वस्त्रा ) वस्त्रों को ( बयन्ति ) बनाती हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्याओं को पढ़कर युवावस्था में वर्तमान गृहाश्रम की कामना करत हुए परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करके धर्म से सन्तानों को उत्पन्न कर और उत्तम प्रकार शिक्षा देकर शरीर और आत्मा के बल का विस्तार करत हैं और जैसे वस्त्रों से शरीर का वैसे गृहाश्रम के व्यवहार का आच्छादन करके आनन्द करत हैं ॥ ६ ॥

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने अं योरस्मभ्यमिदमस्तु शुस्तम् ।

अशीमहि गाधमत प्रतिष्ठा नमो दिवे बृहते सार्दनाय ॥७॥१॥

पदार्थ—हे ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्तमान माता पिता तथा अध्यापक और उपदेशक जन आप दोनों के सङ्ग से ( तत् ) उस ( शम् ) सुख को हम लोग ( अशीमहि ) प्राप्त होवें और ( अग्ने ) हे अग्ने ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिए ( तत् ) वह ( अस्तु ) हो ( यो ) दुःख से पृथग्भूत ( इवम् ) यह ( शस्तम् ) प्रशंसा करने योग्य ( अस्तु ) हो और ( गाधम् ) गम्भीर ( जत ) भी ( प्रतिष्ठाम् ) धातु को प्राप्त होकर ( बृहते ) बड़े ( सार्दनाय ) स्थितिमान् के लिए और ( विवे ) कामना करते हुए के लिए ( नमः ) सत्कार हो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य यथार्थवक्ता विद्वानो और अध्यापको का सत्कार करते हैं वे ही सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में स्त्री पुरुषादि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सप्ताशीसवाँ सूक्त और पहिला वर्ग समाप्त हुआ ॥

५५

अथ पञ्चर्षस्याष्टवत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिभानुराशेय ऋषि । विश्वेदेवा देवता । १, ३ स्वरद् त्रिष्टुप् छन्दः ।  
चैवतः स्वरः । २, ४, ५ मिचुञ्जगती छन्दः ।  
निघावः स्वर ॥



अब पांच ऋचावाले अड़तालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र में फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**कद् म्रियाय धम्ने मनामहे स्वर्धाय स्वर्धसे महे वयम् ।  
आमेन्यस्य रजसो यदुभ्र औ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥१॥**

पदार्थ—( कद् ) जो ( आमेन्यस्य ) चारों ओर से ज्ञान के विषय ( रजसः ) लोक के मध्य में और ( धम्ने ) मेघ में ( अपः ) जलो का ( आ, वृणाना ) उत्तम प्रकार स्वीकार करती हुई और ( मायिनी ) बुद्धि जिस में विद्यमान बहु नीति ( वितनोति ) विस्तारयुक्त करती है उस को ( उ ) भी ( वयम् ) हम लोग ( महे ) बड़े ( म्रियाय ) सुन्दर ( धाम्ने ) जन्म, स्थान और नाम स्वरूप के लिए ( स्वर्धाय ) अपने राज्य का अधिक कुल के लिए और ( स्वर्धसे ) अपना यश जिससे उस के लिए ( कद् ) कब ( मनामहे ) जानें ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि निरन्तर इस प्रकार से इच्छा करे जिस से राज्य, यश और धर्म बड़े बड़े ही स्वीकार करके अनुष्ठान करें ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**ता अन्त वयुन वीरवक्ष्णं समान्या वतया विश्वमा रजः ।  
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥२॥**

पदार्थ—( वेवयु ) विद्वानों की कामना करता हुआ ( जनः ) जन ( वीर-वक्ष्णम् ) वीरों के पहुँचाने को ( वयुम् ) कर्म वा प्रज्ञान को तथा ( समान्या ) मुख्य ( वतया ) आवरणवाली क्रिया से ( विश्वम् ) सम्पूर्ण ( रजः ) लोक लोका-न्तर और जिन ( अपाची ) नीचे चलनेवाले ( अपरा ) अन्य ( अपः ) जलो को ( अप, ईजते ) चलाता है वा ( पूर्वाभि ) प्राचीन जलो से ( प्र, तिरते ) पार होता है ( ताः ) उन जलो को आप लोग ( आ ) सब ओर से ( अन्त ) निरन्तर प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! आप लोग विद्वानों के सग की कामना करते हुए सम्पूर्ण विश्वाओं को ग्रहण कीजिये ॥ २ ॥

फिर स्त्री पुरुष कैसा वर्तव्य करें इस विषय को कहते हैं—

**आ प्रारभिरहृन्येभिरक्तुमिर्वरिष्ठं वज्रम् जिघ्रसि मायिनि ।  
श्रुतं वा यस्य प्रथरन्त्वे दमे संवर्त्यन्तो वि च वर्त्यमहा ॥३॥**

पदार्थ—हे ( मायिनि ) प्रशंसित बुद्धि से युक्त ! जिससे आप ( प्राभिः ) मेघों ( अहृन्येभिः ) दिनों और ( अस्तुभिः ) रात्रियों से ( वरिष्ठम् ) प्रति श्रेष्ठ ( वज्रम् ) शस्त्रविशेष को ( आ, जिघ्रसि ) प्रदीप्त करती हो ( श्रुतम्, वा ) अथवा झेकड़ों का दल ( यस्य ) जिसके ( स्वे ) अपने ( वमे ) गृह में ( प्रथरन् ) चलता और ( अहा ) दिनों को ( आ, वर्त्यम् ) अच्छे प्रकार व्यतीत करता हुआ व्यवहार को प्रकाशित करना है ( च ) और जिस की ( संवर्त्यन्तः ) उत्तम प्रकार वर्तमान किरणें ( वि ) विशेष केलती है उस को तु विशेष करके जान ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो स्त्री और पुरुष भयरहित हो तो सूर्य और बिजुली के सदृश दिन रात्रि पुरुषार्थ को करके ऐश्वर्य से प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

राजा कैसे राज्य को करे इस विषय को कहते हैं—

**तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्षसः ।  
सच्चा यदि पितुमन्तमिब क्षयं रत्नं दधाति मरुतये विभे ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( अस्य ) इस के ( भुजे ) पालन के लिए ( आख्यम् ) कहने योग्य ( अनीकम् ) सेनादल के ( प्रति ) प्रति ( परशोरिव ) परशु के संबन्ध को जैसे जैसे ( ताम् ) उस ( रीतिम् ) रीति को ( दधाति ) धारण करता है ( अस्य ) इस ( वर्षसः ) रूप के ( सच्चा ) सम्बन्धी ( पितुमन्तमिब ) अन्नवान् के सदृश ( विबि ) यदि ( मरुतये ) पालन धारण करनेवाली वाणी आह्वान के लिए जिस की उस ( विभे ) प्रजा के लिए ( रत्नम् ) रमणीय ( क्षयम् ) निवासस्थान को धारण करता है तो वही राज्य करने के योग्य होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—प्रजा की पालना के गूढ़नीति से राजा व्यवहारों का अनुष्ठान करे और सब की पालना यथार्थभाव से करे ॥ ४ ॥

प्रशंसित सेना जिसकी ऐसा ही राजा जीतनेवाला होने को योग्य है—

**स जिह्वया चतुरनीकं श्रज्जते चारु वसानो वरुणो यतस्त्रिम् ।  
न तस्य विद्य पुरुषत्वता वयं यतो मर्गः सविता दाति वार्यम् ॥५॥२॥**

पदार्थ—जो ( वरुणः ) अष्ट ( चारु ) सुन्दर वस्त्र को ( वसान ) धारण करता हुआ ( चतुरनीकः ) चार प्रकार की मेनारों जिसकी वह ( जिह्वया ) वाणी से ( अस्त्रिम् ) शत्रु का ( यतम् ) यत्न करता हुआ ( पुरुषत्वता ) बहुत पुरुषार्थ के साथ ( वयः ) ऐश्वर्य से युक्त ( सविता ) सत्य से प्रेरणा करनेवाला ( वार्यम् ) स्वीकार करने योग्य उपदेश को ( दाति ) देता है ( सः ) वह ( श्रज्जते ) उत्तम प्रकार सिद्ध करता है ( वयः ) जिससे ( वयम् ) हम लोग ( तस्य ) उसके पुरुषार्थ के अन्त को ( न ) नहीं ( विद्य ) जानें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जिसकी उत्तम सेना है वही राजा प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गत जाननी चाहिए ॥

यह अड़तालीसवां सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अब पञ्चवर्षस्यकोमपञ्चासतमस्य सूक्तस्य प्रतिप्रभ आश्रेय ऋषिः । विवेकेषा वेदताः । १, २, ४ धुरिक्त्रिष्टुप् । ३ निबृत्तिष्टुप् छन्दः । वंजतः स्वरः ।

५ स्वरानुपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले उनचासवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को चाहिए कि परोपकार ही करें इस विषय को कहते हैं—

**देवं वो अथ सवितारुमेधे मर्गं च रत्नं विमर्जन्तमायोः ।**

**आ वा नरा पुरुषजा वयुत्यां दिवेदिवे विदधिन सखीयन् ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों ! मैं ( अथ ) आज ( वः ) आप लोगों के लिये ( आयाः ) जीवन का ( विमर्जन्तम् ) विभाग करते हुए ( देवम् ) विद्वान् ( सखीयन् ) ऐश्वर्यवान् ( रत्नम् ) रमणीय धन ( वयम् ) और ऐश्वर्य को ( च ) भी ( आ, ईधे ) अच्छे प्रकार चाहता है और हे ( पुरुषजा ) बहुतों का पालन करते हुए ( नरा ) म्रगणी ( अविद्या ) राजा और प्रजाजनों ( सखीयन् ) मित्र के सदृश आचरण करता हुआ मैं ( वित् ) निष्पत्ति ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन ( वाम् ) आप दोनों को ( आ, वयुत्याम् ) अच्छे प्रकार वर्तऊ ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य मित्र होकर दूसरे के लिये सुख की इच्छा करें वे सदा ही आदर करने योग्य हों ॥ १ ॥

मेघ का कारण क्या है इस विषय को कहते हैं—

**प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्सूक्तं देवं सवितारं दुवस्य ।**

**उप ब्रुवोत नमसा विज्ञानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विमर्जन्तमायोः ॥२॥**

पदार्थ—हे जन ( विद्वान् ) विद्वान् आप ( सूक्तः ) अच्छे अर्थों को कहनेवाले वेद के विभागों से ( असुरस्य ) मेघ की ( प्रयाणम् ) यात्रा का और ( देवम् ) प्रकाशित होते हुए ( सखीयन् ) मेघ को उत्पन्न करनेवाले का ( प्रति ) प्रत्यक्ष में ( दुवस्य ) सेवन करो और ( नमसा ) धन आदि के दानरूप सत्कार से ( ज्येष्ठम् ) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य ( रत्नम् ) धन को ( च ) भी ( विज्ञानम् ) विशेष करके जानता हुआ ( आयो ) जीवन के ( विमर्जन्तम् ) विभाग करते हुए को ( वय, वृवीत ) कहें ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! सूर्य ही मेघ आदिकों का उत्पन्न करनेवाला है उस की विद्या का उपदेश दीजिए ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अदुत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उखः ।**

**इन्द्रो विष्णर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दुस्माः ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों विद्वान् ( अदुत्रया, वार्याणि ) गान और स्वीकार करने योग्य अन्नादिकों को ( दयते ) देना है और ( पूषा ) पुष्टिकर्ता ( भगः ) सेवन करने योग्य तथा ( अविती ) माना ( उखः ) किरणों का ( वस्ते ) आच्छादन करती है और ( इन्द्र ) सूर्य ( विष्णु ) व्यापक बिजुली ( वरुणः ) उदान ( मित्रः ) प्राण ( अग्निः ) प्रसिद्ध अग्नि ( दुस्माः ) और दुख के नाश करनेवाले ( भद्रा ) कल्याणकारक ( अहानि ) दिनों को ( जनयन्त ) उत्पन्न करते हैं उनको व्यर्थ मत व्यतीत करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे माता अनुग्रह से अन्न पान आदि के दान से सन्तानों का पालन करती है वैसे ही सूर्य आदि पदार्थ दिन और रात्रि से सब की रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या वर्तव्य करके क्या प्राप्त करना चाहिए इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**तवो अनुर्वा सविता वरुणं तत्सिन्धव इपयन्तो अनु ग्मन् ।**

**उप यदोषे अश्वरस्य होता रायः स्याम् पतयो वाजर्त्ताः ॥४॥**

पदार्थ—( अश्वरस्य ) अहिंसारूप यज्ञ का ( होता ) ग्रहण करनेवाला मैं सबके प्रति ( वत् ) जिसका ( उप योषे ) उपदेश करू ( तत् ) उसके और ( न ) हम लोगों के ( वरुणम् ) गृह ( अनुर्वा ) छोड़े जिसके नहीं वह और ( सविता ) सूर्य तथा ( तत् ) उसको ( इपयन्तः ) प्राप्त होने वा प्राप्त कराते हुए ( सिन्धवः ) नदियाँ वा समुद्र ( अनु, ग्मन् ) पीछे चलने हैं, जिससे ( वाज-रत्नाः ) विज्ञान धन है जिसे के ऐसे हम लोग ( राय ) धन के ( पतयः ) स्वामी ( स्याम ) होंगे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो तुम सूर्य आदि के सदृश निरन्तर पुरुषार्थी होओ तो लक्ष्मीवान् होओ ॥ ४ ॥

मनुष्यों को क्या करके क्या प्राप्त करना चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहते हैं—

**प्र ये वसुम्य ईवदा नमो दुष्ये मित्रे वरुणो सूक्तवाचः ।**

**अवेत्वम्वै कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥५॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ये ) जो ( मित्रे ) मित्र ( वरुणो ) उत्तम अतिथि के  
निमित्त ( ईवत् ) गतिमान् तथा रक्षणवान् पदार्थ को ( प्र, आ, दु ) उत्तम प्रकार  
देवें वा ( ये ) जो तुम लोग ( वसुम्य ) धनो के लिए ( तम ) धन को ( कृणुता )  
सिद्ध करो उनसे युक्त ( सूक्तवाच ) उत्तम प्रशंसित वाणीवाले हम लोग ( दिव ,  
पृथिव्योः ) प्रकाश सूर्य और भूमि के मध्य में जिसमें ( वरीय , अम्बम् ) अत्युत्तम  
तथा अत्यन्त धनदि ( अव, एतु ) प्राप्त हो उसकी ( अवसा ) रक्षा से ( मदेम )  
आनन्दित हो ॥५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! पुरुषार्थ से लक्ष्मी को और उससे अन्न आदि को  
इकट्ठा कर बड़ सुख को प्राप्त होकर सबका रक्षण करो ॥५॥

इस सूक्त में सूर्य और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की  
पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनवासवां सूक्त और तीसरा वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवर्षस्य पञ्चाशत्सप्तस्य सूक्तस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विष्वेदेवा देवता ।  
स्वराडुष्णिक् । २ निषडुष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभ  
स्वर । ४, ५ निषडुगुष्टुछन्दः । श्वेत स्वर ॥

अथ पंच ऋषावाले पञ्चासवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों  
को चाहिए कि विद्वानों के साथ मित्रता से विद्या और धन को प्राप्त होकर  
यश बढ़ावे इस विषय को कहते हैं—

**विश्वो देवस्य ने तुर्मर्षो ब्रुणोत सख्यम् ।**

**विश्वो राय इषुष्यति द्युम्नं ब्रुणीत पुष्यसे ॥१॥**

पदार्थ—( विश्वः ) सम्पूर्ण ( मर्षः ) मनुष्य ( नेतु ) प्रगणी ( देवस्य )  
विद्वान् की ( सख्यम् ) मित्रता को ( ब्रुणीत ) स्वीकार करें और ( विश्व ) सम्पूर्ण  
'राय' धन के लिये ( इषुष्यति ) वाणी को धारण करता है और जिससे प्राप  
( पुष्यसे ) पुष्ट होते हैं उस ( द्युम्नम् ) यश को आप ( ब्रुणीत ) स्वीकार  
करिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—मय मनुष्यो को चाहिय कि विद्या धन और शरीरपुष्टि की प्राप्ति  
के लिये विद्वानों की शिक्षा, शरीर और आत्मा से पर्याप्त निरन्तर करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को  
अगले मन्त्र में कहते हैं—

**ते वै देव नेतुर्ये चेमाँ अनृशसे**

**ते राया ते द्याः पृचे सचेमहि सचुध्यैः ॥२॥**

पदार्थ—हे ( नेत ) प्रगणी ( देव ) विद्वान् ( ये ) जो ( ते ) आपके  
( अनृशसे ) अनुशासन के लिए ( इमान् ) इनको सम्बन्धित करते हैं ( ते, ते ) वे वे  
सत्कार करने योग्य हो ( च ) और जो ( राया ) धन से सब की रक्षा करते हैं  
( ते ) वे प्रीति में युक्त होते हैं और जो ( हि ) निश्चित ( आपृचे ) सब आर से  
सम्बन्ध के लिये ( सचुध्यै ) पूर्ण सम्बन्धों में उत्पन्न हुआ के साथ वर्तमान है उन  
के साथ हम लोग ( सचेमहि ) मिलें ॥२॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! आप इन वर्तमान और समीप में स्थित जनो को  
शिक्षा दीजिए और विद्वानों के साथ मिल कर विद्याओं को प्राप्त कीजिए ॥२॥

मनुष्यों को किस का सत्कार करना और क्या प्राप्त करना चाहिए इस  
विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अतो नु आ ननतिथीनतः पत्नी दशस्यत ।**

**आरे विश्वं पथेष्टा द्विषो युयोत यूयुविः ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( अत ) इस कारण से ( न ) हम मांगो और ( नृम् )  
अधर्म से अलग कर धर्म के मार्ग को चलानेवाले ( अतिथीम् ) जिन के आगमन  
की तिथि नियत नहीं उनका ( अत ) हमके अनन्तर ( पत्नी ) स्त्रियों को ( आ )  
सब प्रकार से ( दशस्यत ) प्रबल करिये और ( विश्वम् ) सम्पूर्ण जन को तथा  
( पथेष्टाम् ) जो धर्मयुक्त पथ में स्थित हो उसको ( आरे ) समीप में प्रबल करिये  
और ( यूयुवि ) विभाग करनेवाला ( द्विष ) द्वेष्टा जनो को दूर में ( युयोतु )  
विशेष करके विभक्त करे ॥३॥

भाषार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि धार्मिक अतिथियों का उत्तम प्रकार सेवा  
कर और मिल के विवेक को प्राप्त होकर द्रव्य आदि दीपों को दूर करे ॥३॥

जो अग्नि के सवृषा व्यवहार को धारण करनेवाले हों वे धीरे धीरे होते हैं

इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**यत्र वहिरभिहितो दुद्रवद्रोण्यः पशुः ।**

**नमणा वीरपुस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत्र ) जिसमें ( द्रोण्यः ) शीघ्र चलने वाली में उत्पन्न  
( पशु ) जो देखा जाता है उसके सवृषा ( अभिहितः ) कहा गया वा धारण  
किया गया ( वृद्धि ) प्राप्त करनेवाला अग्नि ( दुद्रवत् ) अत्यन्त क्षमता है वहाँ  
( अर्णा ) प्राप्त करनेवाली ( धीरेव ) ध्यानवती के सवृषा ( नमणा ) मनुष्यों में  
जिसका मन ( वीरपुस्त्य ) जिसके गृह में वीर बह पुत्र ( सनिता ) विभाग करनेवाले  
हों ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषमालङ्कार है । जो अग्नि के सवृषा तेजस्वी  
और वेग से युक्त हों वे सत्य और असत्य के विभाग करनेवाले हों ॥४॥

मनुष्यों को क्या माँगना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।**

**शं राये शं स्वस्त्य इपुः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥४॥**

पदार्थ—हे ( नेत ) प्राप्ति करनेवाले ( देव ) विद्वान् ( ते ) आपका  
( एष ) यह ( रथस्पति ) वाहन का स्वामी ( शम् ) सुखरूप ( रयि ) धन  
और ( शम् ) सुख ( राये ) धन के लिए वा ( स्वस्त्ये ) सुख के लिए ( शम् )  
कल्याण ( इपुः स्तुत ) अन्न आदि की स्तुति करनेवाला और जो ( देवस्तुतः )  
विद्वानों से प्रशंसित है उनका हम लोग ( मनामहे ) याचना करते हैं और हम लोग  
( मनामहे ) जानते हैं ॥५॥

भाषार्थ—जो विद्वानों में प्रशंसित और कल्याणकारक पदार्थ हों उनको हम  
लोग ग्रहण करें ॥५॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की  
इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह पञ्चासवां सूक्त और चतुर्थ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवर्षस्य पञ्चाशत्सप्तस्य सूक्तस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विष्वेदेवा  
देवता । १ गायत्री । २, ३, ४ निषडुगायत्री छन्दः । ऋषभ स्वर ।

५, ८, ९, १० निषडुष्णिक् । ६ उष्णिक् । ७ विण्डुष्णिक्  
छन्दः । ऋषभ स्वर । ११ निषट्तिष्ठत् । १२ त्रिष्ठुप्  
छन्दः । श्वेत स्वर । १३ पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चम  
स्वर । १४, १५ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धार स्वर ॥

अथ पञ्चह ऋषावाले इक्यासवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान्  
जन विद्वानों के साथ क्या करें यह उपदेश किया जाता है—

**अग्ने सतस्य पीतये विश्वैरुमेभिरा गहि ।**

**देवेभिर्हव्यदातये ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् आप ( विश्वैः ) सम्पूर्ण ( उमेभिः ) रक्षा माधि  
करनेवाले ( देवेभिः ) विद्वानों के साथ ( सतस्य ) निकाले हुए ओषधिरस के  
( पीतये ) पान करने के लिए और ( हव्यदातये ) देने योग्य वस्तु के देने के लिए  
( आ, गहि ) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन अत्यन्त विद्वान् के साथ सम्पूर्ण जनो को उत्तम  
प्रकार बोध देवें वा सब आनन्दित हों ॥ १ ॥

कैसे मनुष्य को होना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**ऋतधीतय आ गत सत्यधर्म्मणो अश्वरम् ।**

**अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे ( ऋतधीतय ) सत्य के धारण करनेवाले ( सत्यधर्म्मणः )  
सत्य धर्म जिनका ऐम विद्वानों प्राप लोग ( अश्वरम् ) अहिंसारूप व्यवहार को  
( आ, गत ) प्राप्त कीजिए और ( अग्ने ) अग्नि की ( जिह्वया ) जिह्वा से रस को  
( पिबत ) पीजिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सत्यधर्म के धारण से अत्यन्त सुख को  
प्राप्त कीजिये ॥ २ ॥

विद्वानों के साथ विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं—

**विप्रेभिविप्र सन्त्य प्रातुर्यावभिरा गहि ।**

**देवेभिः सोमपीतये ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे ( सन्त्य ) वर्तमान में श्रेष्ठ ( विप्र ) बुद्धिमान् आप ( प्रातः  
यावधि ) प्रातः काल में जानेवाले ( देवेभिः ) विद्वानों के और ( विप्रेभिः ) बुद्धि-  
मानों के साथ ( सोमपीतये ) सोमलता नामक ओषधि के रस के पानके लिए ( आ,  
गहि ) प्राप्त कीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जब विद्वानों के साथ विद्वानों का सङ्ग होता है तब देवर्षों का  
प्रातुर्वाव होता है ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**अयं सोमश्चमू सुतोऽर्मत्रे परि पिष्यते ।**

**प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अयम् ) यह ( बायवे ) बलवान् ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये ( सुतः ) उत्पन्न किया गया ( त्रिवः ) सुन्दर ( सोमः ) ऐश्वर्य का योग ( अमन्त्रः ) पाप मे ( परि ) सब ओर से ( सिध्यते ) मीचा जाता है वह ( अमू ) दो प्रकार की मनाओं को सब प्रकार से वृद्धि करता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो वैद्यजन औषधियों के सारभागों को निकालकर रोगग्रहित मनुष्यों को करें ता सब ऐश्वर्यों से युक्त होते हैं ॥ ४ ॥

मनुष्यों को क्या भोजन करना और क्या पीना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

बायुवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये ।

पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( बायो ) अत्यन्त बल से युक्त आप ( हव्यदातये ) दान योग्य वस्तु के देने के लिए और ( वीतये ) विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए ( अभि, प्रयः ) सब ओर से सुन्दर जल का ( जुषाणः ) सेवन करते हुए ( आ, याहि ) प्राप्त हजिये और ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए ( अन्धसः ) अन्न के रस का ( पिबा ) पान करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! आप रोग और प्रमाद के नाश करने और वृद्धि के बढ़ानेवाले अन्न को खाइए और रस को पीजिए ॥ ५ ॥

अब राजा और अमात्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रश्च बायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।

तान् जुषेथामरे पसावभि प्रयः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( बायो ) मुख्यपुरुष ( इन्द्रः च ) और राजा आप दोनों ( एवम् ) इन वर्तमान ( सुतानाम् ) पालना से छूटे अर्थात् भिन्न हुए पदार्थों के ( पीतिम् ) पान के ( अर्हथः ) योग्य होत हैं ( तान् ) उनका और ( अरेपसी ) दयानु हुए ( प्रयः ) सुन्दर अन्न का ( अभि, जुषेथाम् ) सेवन करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जहां राजा और मन्त्री धार्मिक ढावें वहां सम्पूर्ण याग्यता ढावे ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

सुता इन्द्राय बायवे सोमासो दध्याशिरः ।

निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! नदिया ( निम्नम् ) अर्थात् नीचे स्थल को ( न ) जैसे जैसे ( दध्याशिरः ) धारण करने और स्थाने योग्य ( सुता ) उत्पन्न हुए ( सोमासः ) ऐश्वर्य से युक्त पदार्थ ( बायवे ) वायु के सदृश बलयुक्त ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् के लिए ( प्रयः ) अत्यन्त प्रिय को ( अभि ) सब ओर से ( यन्ति ) प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे नदिया समुद्र को प्राप्त होती है वैसे ही बड़ी औषधियों के सेवन करनेवाले सुख का प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

अब अग्नि के समान विद्वान् कंसा है इस विषय को कहते हैं—

सज्जुर्विश्वेभिर्देवेभिरिविभ्यामपसा सज्जुः ।

आ याज्ञग्ने अत्रिबत्सुते रण ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्निके सदृश नेजस्वी विद्वान् जैसे अग्नि ( विश्वेभिः ) सम्पूर्ण ( देवेभिः ) पृथिवी आदिको ने ( सज्जुः ) सयुक्त तथा ( अश्विभ्याम् ) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों तथा ( उषसा ) प्रातः काल में ( सज्जुः ) सयुक्त ( सुते ) उत्पन्न जगत् में ( अत्रिबत् ) व्यापक के सदृश है वैसे ( आ, याहि ) प्राप्त हजिये और ( रणः ) उपदेश करिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुपामालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बिजुली सब पदार्थों में व्याप्त है उसको विशेष करके जानिए ॥ ८ ॥

सज्जुर्मित्रावरुणाभ्यां सज्जुः सोमेन विष्णुना ।

आ याज्ञग्ने अत्रिबत्सुते रण ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् आप ( मित्रावरुणाभ्याम् ) प्राण और उदान पवनो से ( सज्जुः ) सयुक्त ( सोमेन ) ऐश्वर्य का चन्द्र से और ( विष्णुना ) व्यापक आकाश से ( सज्जुः ) सयुक्त और ( सुते ) उत्पन्न हुए जगत् में ( अत्रिबत् ) व्यापक के सदृश है उसके जानने के लिए ( आ, याहि ) प्राप्त हजिये और हम लोगों के लिए सत्य का ( रणः ) उपदेश कीजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्राण और अपान आदि में स्थित बिजुली की विद्या को जाने तो बहुत सुख को प्राप्त होंगे ॥ ९ ॥

फिर वह कंसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सज्जुरादित्यैर्वसुभिः सज्जरिन्ध्रेण वायुना ।

आ याज्ञग्ने अत्रिबत्सुते रण ॥ १० ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्वान् जो ( आदित्यैः ) महीनों और ( वसुभिः ) पृथिवी आदिकों के साथ ( सज्जुः ) सयुक्त और ( वायुना ) बलवान् ( इन्द्राय ) जीव के साथ ( सज्जुः ) सयुक्त ( सुते ) उत्पन्न हुए जगत् में ( अत्रिबत् ) व्यापक के सदृश वर्तमान है उसके जानने के लिए ( आ, याहि ) प्राप्त हजिये और ( रणः ) उपदेश करिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो मन सम्बन्धी बिजुलीरूप अग्नि आकाश में स्थित हुआ वर्तमान है उसको जानकर कार्यों में उपयोग करिये ॥ १० ॥

फिर विद्वद्भिषय को कहते हैं—

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।

स्वस्ति पृषा अमुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक जन ( अनर्वणः ) अश्वरहित का ( स्वस्ति ) सुख ( मिमीताम् ) रत्न और ( भगः ) ऐश्वर्य को करनेवाला वायु ( नः ) हम लोगों के लिए ( स्वस्ति ) सुख ( देवी ) प्रकाशित ( अदितिः ) अग्रगण्यविद्या ( नः ) हम लोगों के लिए ( स्वस्ति ) सुख ( सुचेतुना ) उत्तम विज्ञान से ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और भूमि हम लोगों के लिए ( स्वस्ति ) सुख और ( पृषा ) पुष्टि करनेवाला दुग्धादि पदार्थ और ( अमुरः ) मेष हम लोगों के लिए सुख को ( दधातु ) धारण करें वैसे आप लोगों के लिए भी वे सुख को धारण करें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पदार्थविद्या से जिन पदार्थों का उपयुक्त करे अर्थात् काम में लावे वे उनमें उपकार ग्रहण करने का समर्थ होंगे ॥ ११ ॥

फिर मनुष्य कंसे विद्यावृद्धि करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहे सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।

बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( स्वस्तये ) सुख के लिए ( वायुम् ) वायुविद्या और ( सोमम् ) ऐश्वर्य का ( उप, ब्रवामहे ) उपदेश देते वैसे सुनकर आप लोग अन्यो के प्रति उपदेश दीजिए और ( यः ) जो ( भुवनस्य ) लोक का ( पति ) स्वामी है वह ( स्वस्तये ) उपदेश दूर होत के लिए ( सर्वगणम् ) सम्पूर्ण समूह जिसमें उस ( बृहस्पतिम् ) बड़ी वरदायिनी का स्वामी का और ( नः ) हम लोगों के लिए ( स्वस्ति ) सुखको धारण करें और जैसे ( आदित्यासः ) प्रज्जालीम वर्षपरिमित अक्षय्य में किया विद्याभ्यास अजिहोते तथा जो मास के सदृश सम्पूर्ण विद्याभ्यास में व्याप्त वे हम लोगों के अर्थ ( स्वस्तये ) अत्यन्त सुखके लिए ( भवन्तु ) होंगे वैसे आप लोगों के लिए भी हों ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुपामालङ्कार है । मनुष्य परस्पर पदार्थविद्या को सुन और अभ्यास करके विद्वान् हों ॥ १२ ॥

फिर विद्वान् जन क्या कर इस विषय को कहते हैं—

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।

देवा अवंत्वभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अद्या ) ग्राज ( विश्वे, देवा ) संपूर्ण विद्वान् जन ( स्वस्तये ) सुख के लिए ( नः ) हम लोगों की ( अवंतु ) रक्षा करें और ( स्वस्तये ) सुख के लिए ( वैश्वानरः ) समस्त मनुष्या में पराजयमान ( वसुः ) सर्वत्र वर्तनेवाला ( अग्निः ) अग्नि रक्षा करें और ( रुद्रः ) युद्धिमान् ( देवाः ) विद्वान्जन ( स्वस्तये ) विद्यासुख के लिए रक्षा करें और ( रुद्रः ) दुष्टों को दण्ड देनेवाला ( स्वस्ति ) सुख की भावना करके ( नः ) हम लोगों की ( अहतः ) अपराध से ( पातु ) रक्षा करें ॥ १३ ॥

भाषार्थ—विद्वानों की याग्यता है कि उपदेश और अभ्यास में सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करके वृद्धि करावें ॥ १३ ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।

स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे ( अदिते ) लण्डितविद्या से रहित ( रेवति ) बहुत धन से युक्त आप ( पथ्ये ) मार्गयुक्त कर्म में जैसे ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान ( नः ) हम लोगों के लिए ( स्वस्ति ) सुख ( इन्द्रः, च ) और वायु ( स्वस्ति ) सुख को ( अग्निः, च ) और बिजुली ( स्वस्ति ) सुख ( नः ) हम लोगों के लिए करती है वैसे ( स्वस्ति ) सुख ( कृधि ) करिये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो सब जीवों के लिए सुख देता है वही विद्वान् प्रशंसित होता है ॥ १४ ॥

मनुष्यों को विद्वानों के सग से जो धर्ममार्ग उससे चलना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।

पुनर्ददतार्जुना जानता सङ्गमेमहि ॥ १५ ॥ १७ ॥

पदार्थ—हम लोग ( सूर्याचन्द्रमसाविव ) सूर्य और चन्द्रमा के सदृश ( स्वस्ति ) सुख ( पन्थाम् ) मार्गों के ( अनु, चरेम ) अनुगामी हों और ( पुनः )



फिर ( ब्रह्मा ) दान करने ( अघ्नता ) और नहीं नाश करनेवाले ( जानता ) विद्वान् के साथ ( सम्, ममेवहि ) मिलें ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य और चन्द्रमा नियम से दिनराति चलते हैं वैसे न्याय के मार्ग को प्राप्त हुआये । और मज्जनो के साथ समागम करिय ॥ १५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह इष्यावनवा सूक्त और सप्तम वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथ सप्तदशस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य इष्यावनवा आश्रये ऋषिः ।

महतो वेवताः । १, ४, ५, १५ विराडनुष्टुप् । २, ७, १०

निष्बनुष्टुप् । ६ पङ्क्तिवृत्त्यः । पञ्चम स्वरः । ३, ६, ११

विराड्पिङ्गवः छन्दः । ऋषभ स्वरः । ८, १२, १३

अनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः । १४ बृहती । १६

निष्बृहती । १७ बृहती छन्दः ।

मध्यम स्वरः ॥

अथ सप्तह ऋचावाले ऋचनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्य सत्कार करने योग्यो का सत्कार करें इस विषय को कहते हैं—

प्र इष्यावश्च धृष्ण्याचा मरुद्भिर्ऋकभिः ।

ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( इष्यावश्च ) कानीगिखा वाले घाडो से युक्त ( ये ) जो ( यज्ञिया ) सत्कार करनेवाले ( अद्रोघम् ) द्रोह से रहित ( अनुष्वधम्, श्रव ) ध्वन और श्रवण के अनुकूल वर्तमान ( मदन्ति ) आनन्दित होते हैं उनकी ( ऋकभिः ) सत्कार करनेवाले ( मरुद्भिः ) मनुष्यो के साथ ( धृष्ण्या ) दृढता से ( प्र, अर्चा ) सत्कार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जा मनुष्य सत्कार करने योग्यो का सत्कार करते हैं वे सब मरुद्भिः होते हैं ॥ १ ॥

ते हि स्थिरस्य शर्वसः सखायः सन्ति धृष्ण्या ।

ते याम्बा धृषद्विन्स्त्वना पान्ति शर्वनः ॥ २ ॥

पदार्थ—जा ( स्थिरस्य ) स्थिर ( शर्वस ) बल के ( धृष्ण्या ) दृढत्वादियुगो से युक्त ( सखाय ) मित्र ( सन्ति ) हैं ( ते ) वे ( हि ) ही ( त्वना ) आत्मा से ( याम्बा ) मार्ग में ( धृषद्विन् ) बहुत दृढम् आदि गुणो से युक्त ( आ, पान्ति ) अच्छे प्रकार पालन करते हैं और जो मार्ग में प्रवृत्त है ( ते ) वे ( शर्वन ) निरन्तर पथिको की रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वानो का ही मित्रपन और रक्षण स्थिर होता है, अन्य किसी का नहीं ॥ २ ॥

ते रुन्द्रासो नोक्षणोऽति रुन्दन्ति शर्वरोः ।

मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो ( मह ) बड़े ( दिवि ) प्रकाश और ( मरुताम् ) मनुष्यो के समीप में ( क्षमा ) क्षमा ( अर्थात्, च ) और हमके अन्तर ( रुन्द्रास ) कुछ खेडा करने हुओं के ( न ) मनुष्य ( उक्ष्ण ) मचन करने वा ( शर्वरो ) रात्रियो को ( अति, रुन्दन्ति ) अत्यन्त प्रान्न होते हैं उनकी हम लोग ( मन्महे ) विशेष प्रकार से जानते हैं ( ते ) वे सब मनुष्यो को जानने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है—जो मनुष्य दिन राति पुरुषार्थ करने हैं वे दुःख का उल्लेखन करते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या कर इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मरुसु वो दधोमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्ण्या ।

विश्वे ये मानुषा यगा पान्ति मर्त्यं रिषः । ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ये ) जो ( विश्वे ) सब आप लोग ( धृष्ण्या ) दृढ ( मानुषा ) मनुष्यो के सम्बन्धी ( यगा ) वर्षो का ( स्तोमम् ) प्रशसा करने योग्य ( यज्ञम् ) पुरुषार्थ को ( मर्त्यम्, च ) और मनुष्य को ( रिष ) हिंसक से ( पान्ति ) रखते अर्थात् बचाते हैं उन ( च ) आप लोगो को हम लोग ( मरुसु ) मनुष्यो में ( दधीमहि ) धारण करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो देव और मनुष्यसम्बन्धी युगो और वर्षो को जानते हैं वे वणित विद्या के जाननेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असांमिशवसः ।

प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ( ये ) जो ( यज्ञियेभ्यः ) यज्ञ करनेवालो के लिय ( यज्ञम् ) सत्कारनामक कर्म का ( अर्हन्त ) योग्यता को प्राप्त होने हुए ( सुदानव ) उत्तम दान देनेवाले ( असांमिशवसः ) अश्विष्ठन बलयुक्त ( नर ) जन ( दिव ) कामना करते

हुए ( मरुद्भ्यः ) मनुष्यो के लिय सत्कारनामक कर्म को सिद्ध करते हैं उनका आप ( प्र, अर्चा ) सत्कार करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य जितने बल बढ़ाने की इच्छा करें उतना ही बढ़ सकता है ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ रुक्मैरा यथा नरं ऋष्या ऋष्टीरसृक्षत ।

अन्वेनां अहं विद्यतो मरुतो जज्ञतीरिव भानुरर्चं त्मना दिवः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे ( ऋष्या ) बड़े ( नरः ) अप्रणी जन ( युष्मा ) युद्ध में ( ऋष्टी ) प्राप्त हुए मनामा के जन ( आ, अनु, असृक्षत ) सब प्रकार अनुकूल उत्पन्न करें और ( एनाम् ) इनका ( अहं ) ग्रहण करने में ( जज्ञतीरिव ) शब्द करने वा शीघ्र चलने वालियो के मनुष्य ( विद्यतः ) विजुली और ( मरुतः ) पवन की ( दिव ) कामना करते हुए जन और ( भानु ) दीप्ति ( त्मना ) आत्मा में जानने योग्य है उनका आप ( रुक्मै ) रोचमान प्रदीप्तो से ( आ ) सब प्रकार ( अर्चं ) प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन मनुष्यो के लिय गिजुली आदि विद्याओ को प्राप्त करावे ॥ ६ ॥

ये वावधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।

वृजने वा नदीनां सधस्थे वा मुहो दिवः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ये ) जो ( उरौ ) बहुत रूपवाले ( अन्तरिक्षे ) आकाश में ( पार्थिवा ) पृथिवी में जान गये पदार्थ ( वावधन्त ) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होने हैं ( ये, वा ) अथवा जो ( नदीनाम् ) नदियो के ( सधस्थे ) समान स्थान में ( वृजने, वा ) वा वृजने हैं जिसमें उमम ( आ ) सब प्रकार अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होने हैं और ( मुह ) महान् ( दिव ) कामना करनेवाले वृद्धि को प्राप्त होने हैं उनको आप लोग विशेषकर जानिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो पृथिवी आदिको की विद्या को जानते हैं वे सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।

उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् आप ( मारुतम् ) मनुष्यो के सम्बन्ध, हम ( शर्धः ) बल और ( सत्यशवसम् ) सत्य बल जिसका उस ( ऋभ्वसम् ) बुद्धिमान् को ग्रहण करने वाले को ( उत, शस ) अच्छे प्रकार स्तुति करो ( उत ) और ( स्म ) निश्चित ( ते ) वे ( स्पन्द्रा ) धीरतायुक्त गमनवाले ( नर ) नायक आप लोग ( शुभे ) उत्तम काय में ( त्मना ) आत्मा में परमात्मा को ( प्र, युजत ) प्रयुक्त करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि उत्तम बल और परमात्मा की निरन्तर प्रशसा करें ॥ ८ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत स्म ते परंण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।

उत पृथ्या रथानामद्रिं भिन्दुन्त्योजसा ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जा ( परंण्याम् ) पालन करनेवाली में ( शुन्ध्यवः ) शोधन करनेवाली ( रथानाम् ) वाहनों के ( पृथ्या ) रथों के चक्रों पहियो की कीली के मनुष्य ( ओजसा ) बल में ( अद्रिम् ) मेघ को ( भिन्दन्ति ) तोड़ती हैं ( उत ) और वर्षाती हैं वे ( ते ) तुम्हारे लिये हैं ( उत ) और ( स्म ) निश्चित ( ऊर्णा ) रक्षित हुए यहाँ सत्कार किय गये आप लोग ( वसत ) बसिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे मघ वपन हुए पृथिवी का विदीन करत हैं वैसे ही श्रेष्ठ पुरुषो का सग अद्युद्धि का नाश करता है ॥ ९ ॥

मनुष्यो को समस्त विद्या धर्ममार्ग दू देने चाहिये इस विषय को कहते हैं—

आपथयो विपथयोन्तस्पथा अनुपथाः ।

एतेभिर्मशं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( आपथयो ) सब ओर से अभिमुख मार्ग जिन का वे और ( विपथयो ) अनेक प्रकार क वा विरुद्ध मार्ग जिनके वे और ( अन्तस्पथा ) भीतर मार्ग जिनके वे और ( अनुपथा ) अनुकूल मार्ग जिनका वे ( एतेभिः ) इन मार्गों वा मार्गों में स्थित हुआ और ( नामभिः ) मन्त्राओ से ( मष्टाम् ) मेरे लिय ( यज्ञम् ) विद्वानो के सत्कार आदि कर्म का ( विष्टार ) विस्तार ( ओहते ) प्राप्त होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग मष्टपूर्ण विद्याओ और उनसे उत्पन्न हुए क्रिया कौशल मार्गों का यथावत् प्रत्यक्ष करके और अन्यो को भी उत्तम प्रकार जनाओ सिखलाओ ॥ १० ॥

मनुष्य क्रम से विद्यादि व्यवहार को प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अथा नरो न्योहतेऽधा नियुतं ओहते ।

अथा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (अथा) हम के अनन्तर जो (नरा) विद्याओं में अग्रणी जन्म विद्याओं के कार्यों को (नि) निश्चय करके (ओहते) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता है और (अथा) इसके अनन्तर (नियुत) निश्चित वायु आदि गमन वाला (ओहते) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता है (अथा) इसके अनन्तर (पारा-यता) दूरदेश में होनेवाले (दशर्षा) देखने के योग्य (चित्रा) अद्भुत (रूपानि) रूपों के (इति) इस प्रकार से प्रत्यक्ष करना है वह कृतकृत्य होता है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि पहले ब्रह्मचर्य में विद्याओं को पढ़ कर उसके अनन्तर कार्यों के रखने में प्रवीणता को प्रत्यक्ष करके फिर अनुमान में दूर में स्थित अदृश्य पदार्थों के विज्ञान को करके आश्चर्ययुक्त कार्य करें ॥ ११ ॥

फिर मनुष्य कैसे बनें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**छन्दःस्तुमः कुम्भयव उत्समा कीरिणो नृतः ।**

**ते मे केचिन्नायव ऊमा आसन्दशि त्विषे ॥ १२ ॥**

पदार्थ—जो (के) कोई (चित्) भी (छन्दःस्तुमः) छन्दों में स्तुति करनेवाले (उत्सम्) रूप के सद्गुण (कुम्भयव) अपने को आर्द्रपन की इच्छा करते हुए (ऊमा) सबके रक्षण आदि करनेवाले (वृशि) दशक में (मे) मेरे (स्त्विषे) शरीर और आत्मा के प्रकाश और बल के लिए (आसन्) होवें (ते) वे (नृतु) नाचनेवाले के सद्गुण (आ) सब और से (कीरिणः) विशेष व्याकुल करनेवाले (नायव) चौर जन (न) न होवें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्यजनों के विक्षेप और चोरी करके जैसे पिपासा से व्याकुल के लिए जन्म वैसे शान्ति के देनेवाले होकर सब के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वे ही श्रेष्ठ यथार्थवक्ता होते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्यों को किसका संग करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**ये श्रुष्व आश्रित्विधुतः क्वयः सन्ति वेधसः ।**

**तमृषे मारुतं गुणं नमस्या रुमया गिरा ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे (श्रुष्वे) वेदार्थ के जाननेवाले (ये) जो (आश्रित्विधुतः) आश्रित्विधुत् अर्थात् बिजली में विज्ञान जिनका वे (क्वयः) सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुण (श्रुष्व) बड़े महाशय (वेधसः) बुद्धिमान् जन (सन्ति) हैं उनका (गिरा) उत्तम प्रकार शिक्षित मत्स्य कोमल वाणी से (नमस्या) सत्कार करिये और इससे (तम्) उस (मारुतम्) विद्वान् मनुष्यों के (गुणम्) समूह को (रुमया) क्रीडा से आनन्दित करिये ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो महाशय यथार्थवक्ता जनो की सेवा और सत्कार कर उत्तम शिक्षा को प्राप्त हाकर सत्य और असत्य के विवेक के लिए उपदेश करके सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं वे सब लागो से सत्कार पाने योग्य होते हैं ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**अच्छं श्रुषे मारुतं गुणं दाना मित्रं न योषणां ।**

**दिवो वा धृणव ओजसा स्तुता धीमिरिष्यत ॥ १४ ॥**

पदार्थ—हे (श्रुष्वे) विद्वन् आप (योषणा) स्त्री और (मित्रम्) मित्र के (न) सद्गुण (मारुतम्) मनुष्य सम्बन्धी (गुणम्) समूह का (अच्छं) उत्तम प्रकार प्राप्त हुआ (वा) वा जैसे (दिवः) कामना करने हुए (धृणव) धृष्ट-प्रगल्भ बृद्ध निश्चयवाले (स्तुता) प्रशंसित जन (धीमि) बुद्धियों और (ओजसा) बल आदि से (दाना) दानों को देकर मनुष्य सम्बन्धी समूह को (इष्यत) प्राप्त होते हैं वैसे सब प्राप्त हो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है संपूर्ण अध्यापक और पढ़नेवाले मित्र के सद्गुण परस्पर वक्तव्य कर के वायु आदि पदार्थों की विद्या का अच्छे प्रकार ग्रहण करें ॥ १४ ॥

फिर मनुष्य विद्वानों के संग से विद्याओं को प्राप्त हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**नू मन्वान एषां देवां अच्छा न वक्षणां ।**

**दाना सचेत मुरिमिर्यामश्रुतेमिरुजिभिः ॥ १५ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (मन्वानः) मननशील पुरुष (यामश्रुतेभिः) याम प्रहर सुने गये जिनमें उन (अजिभिः) विद्या और श्रेष्ठ गुणों के प्रकट करनेवाले (मुरिभिः) विद्वानों के साथ (एषाम्) इन मनुष्यों के मध्य में (वक्षणां) श्रेष्ठ विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों को (अच्छा) उत्तम प्रकार प्राप्त होता और (वक्षणां) प्रवाह से (दाना) दानों को करता है वह (नू) निश्चय दारिद्र्य और अज्ञान को (न) नहीं प्राप्त होता है उसको आप लोग (सचेत) सम्बन्धित करिये ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के संग को पिय मानने और विद्या के दान में रुचि करनेवाले होवें वे ही शीघ्र विद्या को प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥

**अ ये में बन्धुषे गां बोधन्त सूरयः पृथिं बोधन्त मातरम् ।**

**अथा पितरमिषिर्णं रुद्रं बोधन्त शिर्षसः ॥ १६ ॥**

पदार्थ—(ये) जो (सूरयः) विद्वान् जन (मे) मेरी (बन्धुषे) बन्धुधर्मों की इच्छा के लिए (गाम्) वाणी को (बोधन्त) उत्तम प्रकार उच्चा-

रण करते हैं और (पृथिव्यम्) अन्तर्गृहीत और (मातरम्) माता का (बोधन्त) उपदेश करते हैं (अथा) इसके अनन्तर (शिष्यवत्) सामर्थ्यवाले (इषिणम्) बहुत प्रकार का बल जिसका उस (पितरम्) पालन करनेवाले पिता और (रुद्रम्) दृष्टो के भय देनेवाले का (बोधन्त) उपदेश करने हैं वे मुझ में सत्कार करने योग्य हैं ॥ १६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार जानना चाहिए कि जो हम लोगों के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा को देवे वे हम लोगों से सदा आदर करने योग्य हों ॥ १६ ॥

**सुप्त में सुप्त शक्तिन एकमेका शता ददुः ।**

**यमुनायामधि भुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ ॥ १० ॥**

पदार्थ—ह मनुष्यो जिन (राध) धन को (यमुनायाम्) यम और नियमों से अन्वित क्रिया के बीच में (अधि, भुतम्) सुना और जो (गव्यम्) गोधों के हित को (उत्, मृजे) उत्तमता से शुद्ध करता है और जो (अश्व्यम्) घोड़ों में श्रेष्ठ (राध) द्रव्य का (नि) निरन्तर (मृजे) स्वच्छ करता है वह (मे) मेरे (सप्त) सप्त प्रकार के मनुष्यों के भेद और (शक्तिन) सामर्थ्यवाले (सप्त) सात (एकमेका) एक एक (शता) सैकड़ों को जो (ददुः) देवे उसको और उन को आप लोग प्राप्त हुआ और विशेष करके जानिये ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस सगार में मूढ, मूढतर, मूढतम, विद्वान्, विद्वत्तर, विद्वत्तम और अनूचान ये सात प्रकार के मनुष्य होने हैं ॥ १७ ॥

इस सूक्त में वायु और विश्वेदेव के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की उसमें पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बाबनर्वा सूक्त और दशर्षा वर्ग समाप्त हुआ ॥

५६

अथ वोढसर्षस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आश्रयः ऋषिः । मरुतो देवताः । १ भुरिगायत्री । २, १२ गायत्रीछन्दः । षड्ज स्वरः । २ निचुत्तुहृती । ६ स्वरानुहृतीछन्दः । १४ बृहतीछन्दः । मध्यम स्वरः । ३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः । ४, ५ उद्भिगक् १० १५ बिराडुद्भिगक् । ११ निचुत्तुद्भिगक्छन्दः । ऋषभ स्वरः । ६ पङ्क्तिः । ७, १३ निचुत्तुपङ्क्तिः । १६ पङ्क्तिःछन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब सोलह ऋचावाले त्रिपञ्च सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्य क्या जानें इस विषय को कहते हैं—

**को वेद जानमेषां को वा पुग सुम्नेष्वांस मरुताम् ।**

**यद्युज्जे किंलास्यः ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो वा विद्वानो (अत्) जो (युज्यन्ते) युक्त होता है वह (एषाम्) इन (मरुताम्) मनुष्यों वा पवनों के (जानम्) प्रादुर्भाव को (किं लास्य) निश्चित सुख जिसका वह (क) कौन (वेद) जानता है (क, वा) यावदा कौन (सुम्नेषु) सुखों में (पुग) प्रथम (आंस) स्थित है ॥ १ ॥

भाषार्थ—मनुष्य और वायु आदि पदार्थों के लक्षण और लक्ष्यों को विद्वान् जन ही जानने का समर्थ हो सकते हैं अन्य नहीं ॥ १ ॥

फिर मनुष्य कैसे पूछ के क्या जानें इस विषय को कहते हैं—

**ऐतावर्धेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।**

**कस्यै ससुः सुदासे अन्वापय इक्षाभिर्वृष्टयः मह ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे विद्वानो (स्थेषु) विमान आदि वाहनों में (ऐताव्) इन (तस्थुषः) स्थावर वाष्प आदि पदार्थों को (कः) कौन (आशुश्राव) अच्छे प्रकार सुनाता है और (कथा) कैसे मनुष्य (ययुः) प्राप्त होता है और (कस्यै) किसके लिए (ससुः) प्राप्त होता है (इक्षाभिः) अन्न आदिकों से (वृष्टयः) वृष्टियाँ और (आपयः) प्राप्त होनेवाले पदार्थ (सह) एक साथ (सुदासे) सुन्दर दाढ़ जिसके उस में (असु) अनुकूल प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—कोई ही मनुष्य सम्पूर्ण शिल्पविद्या के व्यवहार करने को समर्थ होता है जो व्याप्त और बहुत उत्तम गुणवाले बिजुली आदि पदार्थों को यथावत् जानता है ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**ते म आहुर्प आययुरुप्युभिर्विभिर्मदे ।**

**नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्ति पृथुहि ॥ ३ ॥**

पदार्थ—(ये) जो (अरेपस) दोषों के लेप से रहित (मर्या) मरण धर्मवाले (नरः) नायक मनुष्य (युभिः) कामना करते हुए (विभिः) पक्षियों के सद्गुण (मदे) आनन्द के लिए (मे) मेरे सत्य को (आहु) कहे और (आययुः) जानें वा प्राप्त होवें (ते) वे (इमान्) इन मनोरथों को (पश्यन्ति) देखते हुए के समान कहे (इति) इस प्रकार आप मेरी (उप, स्तुहि) समीप में स्तुति करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन दिनरात्रि परिश्रम से विद्या को प्राप्त होकर अन्तों को उपदेश दें उनको यथार्थवक्ता जानना चाहिए ॥ ३ ॥

मनुष्य पुरुषार्थ से किस किस को प्राप्त होय इस विषय को कहते हैं—

ये अञ्जिषु मे वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।

आया रथेषु धन्वसु ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ये ) जो ( वाशीषु ) वाणिज्य म ( स्वभानव ) अपने प्रकाश जिनके वे ( अञ्जिषु ) प्रकट करवाते हैं म ( रुक्म ) मारा के मर्णयो मे और ( रुक्मेषु ) सुवर्ण आदिवा म वा ( ये ) जा ( खादिषु ) भक्षण आदिको म ( रथेषु ) वाहनो म और ( धन्वसु ) स्थला मे ( आया ) मनु वा सुनात ह वे प्रसिद्ध होत है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जा मनुष्य पुण्यार्थी हावे वे सब प्रकार से गत्कार को प्राप्त हुए लक्ष्मीवान् होने है ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

युष्माकं स्मा रथौ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।

वृष्टी घावो यतीरिव ॥५॥११॥

पदार्थ—हे ( जीरदानव ) जीवन हुए ( मरुत ) मनुष्यो म ( युष्माकम् ) आप लोगो के ( मुदे ) आनन्द के लिए ( रथौ ) विमान आदि यानो का ( दधे ) धारण करता है और ( वृष्टी ) वर्षाया तथा ( घाव ) प्रकाशो का ( यतीरिव ) प्रयत्न से सिद्ध होने वाली क्रियाओ के समान ( स्मा ) हो ( अनु ) पीछे आनन्द के लिए धारण करता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं अन्धकार से विद्या के प्रकाशो को यज्ञ म वृष्टि का धारण करता है वैसे आप लोग भी इनका धारण कीजिए ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

आ यं नरः सुदानवो ददाधुषं दिवः कोशमचुच्यवुः ।

वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( सुदानव ) उत्तमविद्या आदि श्रेष्ठ गुणो के दान म युक्त ( दिवः ) कामना करते हुए ( नर ) नायक मनुष्य ( ददाधुषं ) देनेवाले के लिए ( यम् ) जिस ( कोशम् ) मेष को ( आ ) चारो ओर से ( अचुच्यवुः ) वर्षाये और ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथ्वी को ( पर्जन्यम् ) मेष को ( निः सृजन्ति ) विशेषतया छोड़त ह उनके ( अनु ) अनुकूल ( धन्वना ) अन्तरिक्ष म ( वृष्टयः ) वर्षाये ( यन्ति ) प्राप्त होती है वैसे आप लोग भी आनन्दग्न कर ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र मे वाचकलुप्तमानमानकृद्धार है । वे हो मनुष्य उत्तम दाना है जो यज्ञ, जङ्गलो की रक्षा और जलाशयो के निर्माण म बड़ा वर्षाया का करत है ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

तत्तदानीः मिन्धवः क्षोदसा रजः प्र मस्रुधनवो यथा ।

स्यका अश्वा वाध्वनो विमोचने वि यदूसन्त एन्यः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यथा ) जिस प्रकार म ( धनव ) दुग्ध दनवाणी गौए बंसो ( क्षोदसा ) जग म ( तत्तदानी ) भूमि का तोड़नेवाली ( मिन्धव ) नाश्या ( रज ) तार को ( प्र, स्रक्षु ) प्रक्षालित करती ह । और ( अश्वाध्व ) जैसे चाड़े घोड़न ह वैसे ( यत ) जा ( स्यन्ता ) शीघ्र जानवानो ( एन्य ) नशिया ( विमोचने ) विमोचन मे ( अश्वाध्व ) मार्गो की ( वि, वसन्ते ) विनासी है उन म सम्पूर्ण उपकार ग्रहण करत चाहिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमागृह्य है । जैसे दुग्ध देनेवाली गौए दुग्ध की वृष्टि करती है वैसे ही नदी तडाग समुद्र आदि और अन्य जलाशयो पृथिवी म वृष्टि करत है ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यो को क्या प्राप्त करना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

आ यांत मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादृत । मार्व स्यात परावतः ॥८॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) मनुष्यो आप लोग ( अन्तरिक्षात् ) अन्तरिक्ष ( उत ) और ( अमात् ) ग्रह म ( दिव ) कामनाया का ( आ ) सब प्रकार से ( यात ) प्राप्त कीजिए और ( परावत ) दूर देश मे ( मा ) नही ( अब, आ, स्यात् ) अच्छे प्रकार म स्थित कीजिए ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वे ही मनुष्य कामना की सिद्धि को प्राप्त होने है जो विराध का त्याग करके विद्वान् होने है ॥ ८ ॥

फिर विद्वानो को क्या उपदेश देना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

मा वो रसानितभा कुभा क्रमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत ।

मा वः परि घात्सग्युः पुगीपिण्यस्मे इस्सुम्नमस्तु वः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( अनितभा ) दीर्घ को न प्राप्त ( कुभा ) कुम्पित प्रकाश-युक्त ( क्रमु ) क्रमण करनेवाली ( रसा ) पृथिवी ( मा ) मत ( वः ) आप लोगो का ( नि ) अत्यन्त ( रीरमत ) रमण करावे और ( सिन्धु ) नदी वा समुद्र ( मा )

नही ( वः ) आप लोगो की निरन्तर रमण करावे तथा ( सरयुः ) चलनेवाला और ( पुगीपिणी ) पुगी की इच्छा करनेवाली ( मा ) मत ( वः ) आप लोगो को ( परि, स्यात् ) परिस्थित करावे अर्थात् मन आलसी बनावे जिससे ( अस्मे ) हम लोगो के लिए और ( वः ) आप लोगो के लिए ( सुम्नम् ) सुख ( इत् ) ही ( अस्तु ) ही ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि हम प्रकार का पुरुषार्थ करें कि जिस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ मुख देनेवाले होवें ॥ ९ ॥

फिर विद्वान् जन को मनुष्यो के अर्थ क्या इच्छा करनी चाहिए

इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

तं वः शर्थ रथाना त्वेषं गृणं मारुतं नव्यसीनाम् ।

अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ( रथानाम् ) वाहनो और ( नव्यसीनाम् ) नवी-नाया के बीच ( मारुतम् ) मनुष्यो के सम्बन्धी ( गराम् ) समूह का और ( त्वेषम् ) मनुष्यो के प्रकाश का उपदेश करता है और जिसको ( वृष्टयः ) वर्षाये ( अनु, प्र-यन्ति ) प्राप्त होती है ( तम् ) उस ( शर्थम् ) गन्त को ( वः ) आप लोगो के लिए प्राप्त करता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—जा विद्वानो की नवीन-नवीन नीति का प्राप्त होत है वे बल को प्राप्त होत है ॥ १० ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

शर्थशर्थ व एषां व्रातव्रातं गृणगृणं सुशस्तिभिः ।

अनु क्रामेम धीतिभिः ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जग हम लोग ( धीतिभिः ) जग अङ्गुनियों से कर्मों को वेग ( सुशस्तिभिः ) शक्ती प्रशमाजा म ( वः ) आप लोगो के और ( एषाम् ) इनके ( शर्थशर्थम् ) गन्त वन् और ( व्रातव्रातम् ) चलमान वतमान ( गृणगृणम् ) समूह समूह को ( अनु, क्रामेम ) उत्तम धन करे वैसे आप लोगो को भी करना चाहिए ॥ ११ ॥

भाषार्थ—उम मन्त्र मे वाचकलुप्तमानमानकृद्धार है । जो मनुष्य पूरा बल को करें तो बहुत बलिष्ठता का भी उत्क्रमण कर ॥ ११ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

कस्मा अद्य सुजाताय गतइव्याय प्र ययुः ।

एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥

पदार्थ—जो ( मरुत ) मनुष्य ( अद्य ) आज ( एना ) उम ( यामेन ) विरक्त हुए से ( कस्मे ) किस ( सुजाताय ) उत्तम विद्याओ म प्रसिद्ध ( गतइव्याय ) दिया दातव्य जिनके उनके लिए ( प्र, ययुः ) प्राप्त होता है वे विद्या के दनवाले हाकर प्रशंसित होत है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—विद्या आदि उत्तम गुणा के दान के बिना विद्वाना की प्रशमा नहीं होती है ॥ १२ ॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं—

येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।

अस्मभ्यं तद्वचनं यद् ईमहे गधो विश्वायु मौभगम् ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( यन ) जिस कर्म म ( तोकाय ) तुम्हें उत्पन्न हुए मन्त्रान के और ( तनयाय ) कुमार के लिए ( अक्षितम् ) नाश म रहित ( धान्यम् ) लण्डु आदि का और ( बीजम् ) वान के याग को ( वहध्वे ) प्राप्त कीजिये और ( यत ) जिस ( विश्वायु ) सम्पूर्ण आयु के करने और ( मौभगम् ) मौभाग्य को बढ़ानेवाले नाश म रहित ( गध ) घन की ( वः ) आप लोगो के लिए ( ईमहे ) याचना करत है ( तत् ) उम का ( अस्मभ्यम् ) हम लोगो के लिए ( वस्तन ) धारण करिय ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य मन्त्राना की रक्षा के लिए धान्य आदि वस्तु की उत्तम प्रकार रक्षा करत है वे नाशरहित सुख का प्राप्त होत है ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यो को कसा बर्ताव करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हिस्वाऽवधमरातीः ।

वृष्टी शं योगपं उस्ति भैपजं स्याम मरुतः सह ॥१४॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( निदः ) निन्दा करनेवाले मिथ्यावादियों का ( अति, इयाम् ) उत्तमवृत्त करें अर्थात् त्याग करें और ( स्वस्तिभिः ) सुख आदिको से ( तिरः ) निरक्षीन कर्म और ( अवधम ) निन्दित कर्म ( मरातीः ) और शत्रुओ का ( हिस्वा ) त्याग और ( शम् ) सुख ( वृष्टी ) वर्षा करके ( आप ) जनो को और ( यो ) मिश्रित ( उस्ति ) गो आदि से युक्त ( भैपजम् ) जोषाई को सुख आदिका के ( सह ) साथ प्राप्त ( स्याम ) होवें वैसे आप लोगो को होना चाहिए ॥ १४ ॥



**भाषार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि निन्दक, निन्दा और पापी पाप को छोड़ शत्रुओं को जीतकर आर्षादि प्रादि के सेवन से शरीर को रोगरहित कर विद्या और योगाभ्यास से आत्मा की उन्नति कर के निरन्तर सुख प्राप्त करें ॥ १४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**सुदेवः संमहासति सुवीर्यो नरो मरुतः स मर्त्यः ।**

**यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥**

**पदार्थ—**हे (सुदेव) सत्कार से सहित (स) वह (सुदेव) सुन्दर विद्वान् (सुवीर्य) सुन्दर वीर (मर्त्य) मनुष्य (मर्त्य) है (यम्) जिसको हे (मरुत) मनुष्यो (नरः) अग्रणीजनों (ते) मैं आप लोग (त्रायध्वे) रक्षा करो हम लोग उम के साथ (स्याम) होंगे ॥ १५ ॥

**भाषार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि प्रति उन्नत होकर निर्वल प्राणियों की सदा ही रक्षा करें ॥ १५ ॥

**स्तुहि भोजान्स्तुतुवतो अस्य यामनि रणनावो न यवसे ।**

**यतः पूर्वं इव सर्वाननु ह्यय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥ १७ ॥**

**पदार्थ—**हे विद्वन् (रणन्) उपदेश देते हुए आप (स्तुवत) प्रशंसा करने वाले (भोजान्) पालकों की (स्तुहि) स्तुति कीजिये और (अस्य) इस रक्षण के (यामनि) मार्ग में (यतः) जिससे (पूर्वानिव) जैसे पूर्व वैसे वर्तमान (सखीन्) मित्रों का (गिरा) वाणी से (अनु, ह्यय) निमन्त्रण करो और मित्रों का (यवसे) युव प्रादि में (गिरा) गीतों के (न) मद्दुष्ट निमन्त्रण करो और (कामिनः) श्रेष्ठ मनोरथ जिनका उन की (गृणीहि) स्तुति करो ॥ १६ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ह विद्वन् । जो प्रशंसा करने योग्य और सब के मित्र और मत्स्य की कामना करनेवाले हों उनका सदा ही सत्कार करो ॥ १६ ॥

इस सूक्त में प्रश्न उत्तर और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ समझ जाननी चाहिए ॥

यह तिरपनवा सूक्त और तेरहवाँ अर्थ समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चदशस्य बभ्रुः पञ्चाशत्सप्तस्य सूक्तस्य द्वाविंशत्येव ।

मरुतो वेधताः । १, ३, ७, १२ जगती । २ विराट् जगती ।

६ भुरिक् जगती । ११, १५ त्रिचञ्जगती छन्दः ।

निषाद स्वरः । ४, ८, १० भुरिक् त्रिष्टुप् ।

५, ९, १३, १४ त्रिष्टुप् छन्दः ।

गान्धार, स्वर ॥

अथ पञ्चदश ऋचावाले चौवनवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में

विद्वानो को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**अ शर्षाय मारुताय स्वभानव इमा वाचपनजा पर्वतच्युतं ।**

**धर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने धूमनश्रवसे महि नृणमर्चत ॥ १ ॥**

**पदार्थ—**हे (दिव) कामना करने हुए विद्वानो आप लोग (स्वभानवे) अपनी कान्ति विद्यमान जिसके उम (मारुताय) मनुष्यों के सम्बन्धी (शर्षाय) बल के लिए (इमाम्) इस वर्तमान (वाचम्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी का (पानज) उच्चारण कीजिये अर्थात् उपदेश दीजिये और (पर्वतच्युतं) मेघ से गिरे वा जो मेघ को वर्षा (धर्मस्तुभे) यज्ञ की स्तुति करता और (पृष्ठयज्वने) पृष्ठ में यज्ञ करता (धूमनश्रवसे) वा यज्ञ सुना गया जिसका उमके लिए (महि) बड़े (नृणाम्) मनुष्य अभ्यास करने है जिस का उसका (आ अर्चत) सत्कार करो ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**हे विद्वानो । आप लोग मदा ही ज्ञानरहित पुरुषों को विद्या के दान से ज्ञानवान् करो सत्य और धर्मस्य का विचार करके सत्य का ग्रहण कराय के धर्मस्य का त्याग कराइए और सब के सुख के लिए ऐश्वर्य को इकट्ठा करो ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**म वीं मरुतस्तविषा उबन्यवीं वयोध्वो अभ्ययुजः परिजयः ।**

**सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिजयः ॥ २ ॥**

**पदार्थ—**हे (मरुत) मनुष्यो । जा (तविषा) बलवान् (उबन्यवः) अपने को जल की इच्छा करने (वयोध्व) प्रवस्था से बढ़ने वा प्रवस्था को बढ़ाने (अभ्ययुजः) शीघ्रगामी पदार्थों को युक्त करने (परिजयः) और सब और जानेवाले जन (विद्युता) बिजुली के साथ (व) आप लोगो को (सम्-दधति) उत्तम प्रकार धारण करते और (वाशति) वाणी के सदृश आचरण करते हैं और (त्रितः) तीन से (परिजयः) सब और जाने वाले (आपः)

जल (अवना) रक्षण आदि का (प्र, स्वरन्ति) अच्छे प्रकार उच्चारण करते हैं उनका आप लोग सत्कार करो ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्य बिजुली आदि की विद्या को जानते हैं वे सम्पूर्ण सुख को सब के लिए धारण करते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्य कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**विद्युन्महसो नरो भस्मदिद्यवो वातस्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।**

**अब्दया चिन्मुहुरा हादुनीवृतः स्तनयदमा रमसा उदोजमः ॥ ३ ॥**

**पदार्थ—**हे (नर) नायकजनों जो (विद्युन्महस) बिजुली की विद्या से बड़े श्रेष्ठ (भस्मदिद्यवः) विद्या के प्रकाश करनेवाले (वातस्विष) वायु विद्या से कातिया जिनकी ऐसे और (पर्वतच्युतः) मेघों को वर्षा वा (अब्दया) जलों को देनेवाले और (स्तनयवमा) शब्द करने गृह जिनके वे (रमसा) वेग से युक्त (उदोजमः) उत्कृष्ट पराक्रम जिन का वे (मुहुः) बार बार (आ) सब प्रकार से (हादुनीवृतः) शब्द करने वाली बिजुली में युक्त (चित्) भी (मरुत) मनुष्य हैं उन में मिलिये ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**जो बिजुली मेघ, वायु और शब्द आदि की विद्या को जानने वाले हैं वे सब प्रकार से लक्ष्मीवान् हों ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**व्यक्तं द्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रज्जोसि धृतयः ।**

**वि यवजा अजय नाव ई यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४ ॥**

**पदार्थ—**हे (मरुत) मनुष्यो (यत्) जो (शिक्वस) सामर्थ्य से युक्त (धृतयः) कान्ति वाले (द्रा) पवन (अवतून्) प्रमिदों का प्रकट करने हैं और (व्यहानि) दिनों का (वि) विशेष करके परिणाम करने अर्थात् गिनाने है (व्यन्तरिक्षम्) व्यन्तरिक्ष के प्रति (रज्जोसि) लोको का (वि) विधान करने और (वि) विशेष करके चाना है तथा (ईम्) जल को जैसे (नाव) बड़ी नौकायें वैसे सम्पूर्ण लोकों को चाना है उन (अवतून्) निरन्तर चलनेवालों को (वि, अजय) प्राप्त हुआ और (यथा) जैसे (दुर्गाणि) दुर्ग से प्राप्त होने योग्यों को (न) नहीं (अह) ग्रहण करने में (वि, रिष्यथ) नाश कर वैसे विचारिये ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**मनुष्यों को चाहिए कि वायुविद्या को प्रवश्य जानें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**तद्दीर्घ्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।**

**एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्चटा यन्नययातना गिरिम् ॥ ५ ॥ १४ ॥**

**पदार्थ—**हे (मरुत) वायु के मद्दुष्ट वर्तमान मनुष्यो ! (सूर्यः) सूर्य (योजनम्) युक्त करने हैं जिस स उम श्राकषण नामक के (न) मद्दुष्ट और (महित्वनम्) बड़प्पन को जैसे वैसे (दीर्घम्) विशाल (व) आपके (तत्) उस (वीर्यम्) पराक्रम का (ततान) विस्तृत करना है और (अगृभीतशोचिषः) नहीं ग्रहण किया वेज जिन्होंने वे (यामे) प्रहर में (एता) ये गमन (न) जैसे (अनश्चटा) नहीं छोड़े जिस में उम गमन और (गिरिम्) मेघ का देने है और (यत्) जिसको आप लोग (नि, अयातना) प्राप्त हुआ उस सब को हम लोग ग्रहण करें ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**जो लोग सूर्य और मेघों के गुणों को जानकर सामर्थ्य और धन को इकट्ठा करते हैं वे परावकारी हों ॥ ५ ॥

मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अभ्राजि शर्षो मरुतो यदर्थस्य मोषथा वृत्तं कपनेव वेधसः ।**

**अथ स्या नो अरमति सजोषसश्चक्षुर्वि यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६ ॥**

**पदार्थ—**हे (मरुत) मनुष्यो ! आप लोगो से (यत्) जो (शर्षः) बल (अभ्राजि) प्रकाशित किया जाना और (अरमसम्) जल को जो तुम लोग (मोषथ) चुराइय लो आप लोगो को जैसे (वृत्तम्) वट आदि वृक्ष को (कपनेव) पवनो के गमन वैसे हम लोग दण्ड दें (अथ) इसका अनन्तर है (वेधसः) बुद्धि-मात्र जनों (सजोषसः) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले आप लोग (चक्षुर्वि) नेत्र को जैसे वैसे (न) हम लोगो के (अरमतिम्) रमणरहित (यन्तम्) प्राप्त होने वाले (सुगम्) सुख अर्थात् उत्तमता से जनते हैं जिसमें उसको (स्व) ही (अन्वेषण) अनुकूल प्राप्त कीजिये ॥ ६ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सब के शरीर और आत्मा के बल को प्रकाशित करते हैं वे धन्य हैं और जो श्रेष्ठ विद्या और गुणों का चुराने उनको धिक्कार धिक्कार ॥ ६ ॥

अब ईश्वर कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**न स जीयते मरुतो न इन्त्यते न स्रघति न व्यथते न रिष्यति ।**

**नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं गजानं वा सुषुदथ ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे ( मरुत ) मनुष्यो ( स ) वह ( न ) न ( जीयते ) जीता जाता ( न ) न ( हन्यते ) नाश किया जाता ( न ) न ( क्षेयति ) नाश होता ( न ) न ( व्ययते ) पीड़ित होता और ( न ) न ( रिष्यति ) हिंसा करना है ( अस्य ) इस का ( न ) न ( राय ) धन और ( न ) न ( ऊतय ) रक्षण आदि व्यवहार ( उप, वस्यन्ति ) नाश होते हैं ( यम् ) जिम ( ऋषिम् ) वेदार्थ के जाननेवाले ( वा ) अथवा ( राजानम् ) राजा को ( वा ) भी आप लोग ( सुबुध ) रखिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो वृद्धावस्था या मरणावस्था ग्रहित सत् चित् और आनन्दस्वरूप नित्य गुण कर्म और स्वभाववाला जगदीश्वर है उसकी सब आप लोग उपामना करो ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नियुत्स्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।

पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वर्ग्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यथा ) जैसा ( नियुत्स्वन्तः ) निश्चयवान् ( ग्रामजित ) ग्राम को जीतनेवाले ( अर्यमण ) न्यायाधीशों के ( न ) सदृश ( कबन्धिन ) बहुत जलो से युक्त ( इनास ) समर्थ ( नर ) नायक ( मरुत ) मनुष्य ( यत् ) जिमको ( उत्सम् ) कूप के समान ( पिन्वन्ति ) तृप्त करने या ( अस्वर्गम् ) शब्द करत हैं और ( अन्धसा ) अन्ध के साथ ( मध्वः ) मधुर गुणयुक्त होत हुए ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( वि, उन्वन्ति ) विशेष गीनी करत हैं वे आभ्यशाली होत हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो जल के सदृश शान्ति करनेवाले और मामर्थ्य को बढ़ाते हुए विजय को प्राप्त हाते हैं वे लक्ष्मी को प्राप्त होत हैं ॥ ८ ॥

मनुष्यो को कैसे उपकार लेना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्रवत्स्वतीयं पृथिवीं मरुदभ्यः प्रवत्स्वतीं और्ध्ववति प्रयदभ्यः ।

प्रवत्स्वतीः पृथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्स्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इयम् ) यह ( प्रवत्स्वती ) नीचे के म्यान से युक्त ( पृथिवी ) भूमि और ( प्रवत्स्वती ) फैलने वाला ( द्यौ ) प्रकाश और ( प्रयदभ्यः ) प्रयत्न करने हुआ से ( मरुदभ्यः ) मनुष्य आदिकों के लिए हितकारक ( भवति ) होता है जिस में ( प्रवत्स्वन्तः ) गमनशील ( जीरदानवः ) जीवन को देने वाले ( पर्वता ) मेघ ( अन्तरिक्ष्याः ) अन्तरिक्ष में उन्नत ( प्रवत्स्वती ) नीचे चलने वाली ( पृथ्या ) मार्ग के लिए हितकारक वृष्टियों को करने हैं वे यथावत् जानने योग्य हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मनुष्यो का चाहिए कि पृथिवी के समीप से जितना हो सकता है उतना उपकार ग्रहण करें ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यो को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यन्मरुतः समरसः स्वर्गः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।

न वोऽश्वः अथयन्ताह सिंस्रतः मद्यो अस्याध्वनः पारमंस्तुथ ॥१०॥

पदार्थ—ह ( सभरस ) मृत्यु पावन और पोषण करने वाले ( स्वर्ग ) मुख को प्राप्त करण और ( विष ) कामना करने हुए ( नर ) मृत्यु धर्म में पहुँचाने वाले ( मरुत ) जनो आप लोग ( उदिते ) उदय को प्राप्त हुए ( सूर्य ) सूर्य म ( यत् ) जिमको प्राप्त होकर ( मद्यः ) आनन्दित होओ उस से ( व ) आप लोगो के ( सिंस्रतः ) चलने वाले ( अश्वः ) घोड़े ( न ) नहीं ( अथयन्तः ) अह ( हिंसा करने रुकते हैं उन से ( अस्य ) इस ( अध्वनः ) मार्ग के ( पारम् ) पार को ( सद्यः ) शीघ्र ( अश्वयुषः ) प्राप्त हजिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सूर्योदय से पहिले उठ के जब तक सोवें नहीं तब तक प्रयत्न करत है दुःख और दारिद्र्य के अन्त को प्राप्त होकर सुखी और लक्ष्मीवान् होत है ॥ १० ॥

फिर मनुष्य कौन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अंसेषु व क्रष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।

अग्निभ्राजमो विद्युतो गर्भस्त्योः शिप्राः शोर्षसु वितता हिरण्ययोः ॥११॥

पदार्थ—ह ( मरुत ) मनुष्यो जब ( व ) आप लोगो के वायु के सदृश वर्त्तमान वीरजनों जो आप लोगो के ( असेषु ) कन्धों में ( ऋष्टयः ) शस्त्र और अस्त्र ( पत्सु ) पैरो में ( खादयः ) भोक्ताजन ( वक्षसु ) वक्षस्थलों में ( रुक्मा ) सुवर्ण अलङ्कार ( रथे ) सुन्दर वाहन में ( शुभः ) शोभित पदार्थ ( गर्भस्त्यो ) हाथों के मध्य में ( अग्निभ्राजसः ) अग्नि के सदृश प्रकाशमान ( विद्युतः ) बिजुलियाँ ( शोर्षसु ) शिरो में ( वितता ) विस्मृत ( हिरण्ययोः ) सुवर्ण जिन में बहुत ऐसी ( शिप्राः ) पगडियाँ होवें तब हस्तगत विजय होना है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो राजपुरुष अहर्निश राजकार्यों में प्रवीण दुर्व्यसनो से विरक्त और सज्जोपाङ्ग राजसामग्रीवाले हो वे सर्वव्य प्रतिष्ठा को प्राप्त हाते हैं ॥ ११ ॥

तं नार्कमयो अगृभीतशोचिषं रुशत् पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।

समच्यन्त वृजनातिस्विषन्त यस्त्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) वायु के सदृश वेगयुक्त वर्त्तमान जनो आप लोग ( अर्य ) स्वामी ईश्वर के सदृश ( ऋतायवः ) अपने सत्य की इच्छा करते हुए ( यत् ) जिम ( विततम् ) विस्तृत ( घोषम् ) बागी का ( स्वरन्ति ) उच्चारण करते हैं ( तम्, अगृभीतशोचिषम् ) उस अगृभीतशोचिषम् अथात् नहीं ग्रहण की स्वच्छता जिस में ऐसे ( रुशत् ) अच्छे स्वरूप वाले ( पिप्पलम् ) फलभोग रूप ( नार्कम् ) दुःखरहित आनन्द को ( सम, अक्षयम् ) उत्तम प्रकार प्राप्त हजिये दुःख को ( वि ) विशेष करके ( धूनुथ ) कम्पाइय और ( वृजना ) चलने हैं जिन से उन को ( अतिस्विषन्तः ) प्रकाशित कीजिये तथा प्रकाशित हजिये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में याचकानुलोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ईश्वर के सदृश न्यायकारी सम्पूर्ण जगत् के उपकार करने वाले और उपदेशक हैं वे ससार के भूषक हैं ॥ १२ ॥

फिर मनुष्यों को क्या इच्छा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

युष्मादत्तस्य मरुतो विवेतमो रायः स्याम रथ्योऽवयस्वतः ।

न यो युच्छति तिव्योऽयथा दिवोऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३॥

पदार्थ—हे ( विवेतसः ) अनेक प्रकार का सज्जन जिनका वे ( रथ्यः ) बहुत रथ आदि से युक्त ( मरुतः ) प्राणों के सदृश प्रियजनों हम लोग ( युष्मादत्तस्य ) आप लोगो से दिये गये ( अवयस्वतः ) प्रशंसित जीवन जिस का उस ( रायः ) धन के स्वामी ( स्याम ) होवें और ( य ) जो ( अस्मे ) हम लोगो के लिए वा हम लोगो में ( न ) नहीं ( युच्छति ) प्रमाद करता और ( यथा ) जैसे ( विष ) प्रकाश के मध्य में ( तिव्यः ) सूर्य वा पुण्य नक्षत्र है वैसे प्रकाशित हावे और हे ( मरुत ) जनो आप लोग ( सहस्रिणम् ) असंख्य वस्तु हैं विद्यमान जिमके उस को ( रारन्तः ) रमण करते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि सदा धनाव्ययन का खोज करे और प्रमाद न करे ॥ १३ ॥

राजादिकों से कौन कौन रक्षा पाने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यूयं रयि मरुतः स्पाहवीरं युयमृषिमवथ सामंविप्रम् ।

युयमर्वन्तं भगताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥

—पदार्थ—हे ( मरुत ) पुरुषार्थी मनुष्यो ! ( यूयम् ) आप लोग ( स्पाहवीरम् ) अभिकाक्षित वीर जिम में उस ( रयिम् ) लक्ष्मी की ( अवथ ) रक्षा कीजिये और ( यूयम् ) आप लोग ( सामंविप्रम् ) मामो में बुद्धिमान् ( ऋषिम् ) वेदार्थ के जाननेवाले की रक्षा कीजिये और ( यूयम् ) आप लोग ( भगताय ) धारण और पोषण के लिए ( अर्वन्तम् ) प्राप्त हाते हुए ( वाजम् ) वेग अन्न और विज्ञान आदि को ( धत्थ ) धारण करो और ( यूयम् ) आप लोग ( श्रुष्टिमन्तम् ) अच्छा क्षिप्रकरण जिस में उस ( राजानम् ) न्याय और विनय से प्रकाशमान को धारण कीजिये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि उत्तम सहाय से लक्ष्मी विद्वान् सेना और राजा को धारण करें ॥ १४ ॥

तद्वो यामि द्रविणं मद्युतयो येना स्वर्णं ततनाम नृगमि ।

उदं मु मे मरुतो हर्यता वचां यस्य तरंम तरंसा शतं हिमाः ॥१५॥१६॥

पदार्थ—हे ( सद्युतयः ) शीघ्र रक्षण आदि वाले ( मरुत ) मनुष्यो ( वः ) आप लोगो के समीप में जिम ( द्रविणम् ) धन वा यश को ( यामि ) प्राप्त होता है ( तत् ) उसको आप लोग दीजिये ( येना ) जिस में ( स्वः ) मुख के ( न ) सदृश ( नृन् ) मनुष्यों को ( अभि, ततनाम ) सब प्रकार विस्तृत करें और आप लोग ( इदम् ) इस ( मे ) मेरे ( वचः ) वचन की ( मु, हर्यता ) अच्छे प्रकार कामना करिये और ( यस्य ) जिसके ( तरंसा ) बल से हम जाग ( शतम् ) सौ ( हिमाः ) वर्ष ( तरंम ) पार हावें उसमें आप लोग भी पार हजिये ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग यश धन मुख मत्स्य वचन और बल को बढ़ाय दुःखों के पार हजिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य बिजुली और मुख के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ

संगति जाननी चाहिये ॥

यह जीवनवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ दशमस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य इयावाश्च आश्रये ऋषिः मरुतो

वेत्ता । १,५ जगती । २,४,७,८ त्रिष्टुप् । ९ बिराज्जगती

छन्दः । निवाहः स्वरः । ३ स्वरान्द्विष्टुप् ।

६,१० त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब इस आवाकाले पक्षपक्षे सुख का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य कैसे बर्तें इस विषय को कहते हैं—

**प्रयज्यवो मरुतो आजंष्टयो बृहदयो दधिरे रुक्मवत्ससः ।**

**ईयन्ते अन्धैः सुयमैभिराशुभिः शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥१॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ! जिन ( अन्धैः ) शीघ्र करने वा ( आशुभिः ) शीघ्र जाने वाले ( सुयमैभिः ) सुन्दर यम इन्द्रियनिग्रह आदि जिन के उन जनो से ( शुभम् ) धर्म युक्त व्यवहार को ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) सुन्दर वाहन आदि ( ईयन्ते ) प्राप्त किये जाते हैं और ( प्रयज्यवः ) उत्तम मिलने वाले मनुष्य ( आजंष्टयो ) शोभित होते विज्ञान जिन के वे ( रुक्मवत्ससः ) सुवर्ण आदि से युक्त आभूषण जिन के वे ( दधिरे ) प्राणों के सदृश वर्तमान ( बृहत् ) बड़े ( य ) सुन्दर जीवन को ( दधिरे ) धारण करें और जो ( अनु ) पश्चात् ( अबृत्सत ) वर्तमान होते हैं उन के साथ आप लोग भी इस प्रकार प्रयत्न कीजिए ॥१॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो आप लोग ब्रह्मचर्य आदि से प्रति काल पर्यन्त जीवन वाले योगी पुरुषार्थी होइए ॥ १ ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**स्वयं दधिध्वे तविषीं यथां विद बृहन्महान्त उविषा वि राजथ ।**

**उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजंसा शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥२॥**

**पदार्थ—**हे राजजनों ( यथा ) जैसे ( महान्त ) गम्भीर आशय वाले आप लोग ( तविषीम् ) बल युक्त सेना का ( स्वयम् ) अपने से ( दधिध्वे ) धारण कीजिये और ( बृहत् ) बड़े को ( वि ) जानिये ( उविषा ) बहुत से ( वि ) विशेष कर के ( राजथ ) शोभित हूजिये और जैसे ( शुभम् ) कल्याण को ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) वाहन ( अनु, अबृत्सत ) अनुकूल वर्तमान हैं ( उत ) और ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को ( वि ) विशेष कर के ( दधिरे ) व्याप्त होते हैं वैसे आप लोग ( व्योजंसा ) बल से ( वि ) विशेष कर के ( राजथ ) शोभित हूजिये ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! ब्रह्मचर्य से शरीर और आत्माके बल को धारण कर के और क्रियाकुशलता को जान के जैसे ईश्वर अन्तरिक्ष में सम्पूर्ण पदार्थों को उत्पन्न करता है वैसे ही आप लोग अनेक व्यवहारों को सिद्ध कीजिए ॥ २ ॥

**साकं जाताः सुम्भः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वाङ्मूर्धनरः ।**

**चिरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥३॥**

**पदार्थ—**हे ( मर ) मर्य को पहचाने वाले मनुष्यो ( सूर्यस्येव ) सूर्य के जैसे ( साकम् ) एक साथ ( जाता ) उत्पन्न और ( सुम्भ ) आभित ( साकम् ) साथ में ( उक्षिता ) सीधे हुए ( चिरोकिण ) अनेक प्रकार की रुचि वर्तमान जिन में वे ( रश्मयः ) किरण ( प्रतरम् ) अत्यन्त दुःख से पार करनेवाले व्यवहार को ( वा ) सब प्रकार ( वाङ्मूर्धनरः ) बड़ावे वैसे ( चित् ) भी मित्र होत हुए ( श्रिये ) शोभा वा धन के लिये प्रवृत्त हूजिये और जैसे ( शुभम् ) कल्याण को ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) सुन्दर वाहन आदि ( अनु, अबृत्सत ) पीछे वर्तमान हैं वैसे सब के उपकार के पीछे बतिये ॥३॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग सूर्य की किरणों के सदृश एक साथ ही पुरुषार्थ के लिये उद्यत हूजिए और जैसे कल्याण करने वालों के रथों के पीछे भूत्यजन वर्तमान होते हैं वैसे ही धर्म के पीछे वर्तमान हूजिये ॥ ३ ॥

**अभूषेयं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्य सूर्यस्येव चक्षणम् ।**

**उतो अस्माँ अभूतत्वे दधतन् शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥४॥**

**पदार्थ—**हे ( मरुत ) प्राण के सदृश प्रिय आचरण करनेवालों जिन ( व ) आप लोगों का ( सूर्यस्येव ) सूर्य के सदृश ( अभूषेयम् ) शोभा करने और ( दिदृक्षेण्यम् ) देखने के योग्य ( चक्षणम् ) प्रकाश ( महित्वनम् ) और बड़प्पन है जिससे ( उतो ) निश्चित ( अस्माँ ) हम लोगों को ( अभूतत्वे ) नाशरहित पदार्थों के भाव अर्थात् नित्यपन के वर्तमान होने पर ( दधतन् ) धारण कीजिये और जिन ( शुभम् ) धर्म युक्त मार्ग को ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) वाहन ( अनु, अबृत्सत ) अनुकूल वर्तमान हैं उनका हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥४॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के सदृश न्याय के प्रकाशक अन्यायकारी अन्धकार के रोकने वाले धर्म मार्ग के अनुगामी हों उन को सदा ही आप लोग प्रशंसा करो ॥४॥

**उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरोषिणः ।**

**न वो दत्ता उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥५॥१७॥**

**पदार्थ—**हे ( पुरोषिणः ) बहुत प्रकार का पोषण विद्यमान जिन में वे ( मरुतः ) मनुष्यो ( यूयम् ) आप लोग हम लोगों की श्रेष्ठकर्मों में ( दत्त, ईरयथा )

प्रेरणा कीजिये और जैसे पवन ( समुद्रतः ) अन्तरिक्ष से ( वृष्टिम् ) वर्षा करते हैं वैसे आप लोग ( वर्षयथा ) वर्षादिये जिससे ( धेनवः ) नाश होनेवाले और ( धेनवः ) वाणिज्य ( व ) आप लोगों को ( न ) नहीं ( उप, दस्यन्ति ) उपहास करने जैसे ( शुभम् ) कल्याण को ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) वाहन ( अनु, अबृत्सत ) अनुकूल वर्तने हैं वैसे धर्ममार्ग का अनुकूल वृत्ति कीजिये ॥ ५ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जैसे पवन अन्तरिक्ष से वृष्टि करके सम्पूर्ण प्राणियों को तृप्त करके दुःख का नाश करते हैं वैसे ही सत्यविद्या के उपदेश की वृष्टि से अविद्यारूप अन्धकार से हुए दुःख का निवारण कीजिये ॥५॥

**यदक्षान्धुर्षु पृषतीरयुग्धं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्धम् ।**

**विश्व इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥६॥**

**पदार्थ—**हे ( मरुतः ) वायु के सदृश वेग और बल से युक्त जनो जैसे ( शुभम् ) कल्याण को ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) वाहन ( अनु, अबृत्सत ) अनुकूल वर्तमान हैं वैसे ( शुभम् ) विमान आदि यानों के अवयव कोष्ठों में ( मत् ) जिन ( हिरण्ययान् ) ज्योतिर्मय ( प्रति, अत्कां ) स्पष्ट ( पृषतीः ) वायु और जन के गमनो और ( अमुग्धम् ) अग्नि आदिको को आप लोग ( व्यस्यथ ) समुक्त कीजिये और ( अमुग्धम् ) त्यागिये उनसे ( विश्वम् ) सम्पूर्ण ( स्पृध ) स्पर्धों नेप ( इत् ) ही ( वि ) विशेष करके ( व्यस्यथ ) चलाइये ॥६॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्य अग्नि वायु और जल आदिको को वाहनो में उत्तम प्रकार युक्त करते हैं वे विजय के लिये समर्थ होकर धर्ममन्मन्वी मार्ग के अनुगामी होने हैं ॥६॥

**न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।**

**उत द्वापाृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥७॥**

**पदार्थ—**हे ( मरुत ) मनुष्यो आप लोग ( द्वापाृथिवी ) प्रकाश और भूमि को ( गच्छथ, इत् ) प्राप्त ही हूजिये ( तत् ) उनको ( उ ) और भी ( परि, याथना ) सब ओर से प्राप्त हूजिये ( उत ) और ( यत्र ) जहाँ ( अचिध्वम् ) प्राप्त हूजिये और जैसे ( शुभम् ) कल्याण का ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) वाहन ( अनु, अबृत्सत ) पश्चात् वर्तमान हैं वहा वर्तमान हूजिये और जैसे सूर्य के सम्बन्ध को ( न ) न ( पर्वता ) मेघ ( न ) न ( नद्यः ) नदियाँ ( वरन्त ) वारण करती हैं वैसे ( व ) आप लोगों को कोई भी रोक नहीं सकते हैं ॥७॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्य पृथिवी आदि की विद्या से तथा सृष्टि के क्रम से कार्य्यों का सिद्ध करें उनको दारिद्र्य कभी प्राप्त नहीं होवे ॥७॥

**यत्पूर्य मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च रस्यते ।**

**विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥८॥**

**पदार्थ—**हे ( वसवः ) वास करनेवाले ( नवेदसः ) नहीं विद्यमान धन जिन के वे ( मरुत ) मनुष्यो ( यत् ) जो ( पूर्यम् ) प्राचीन विद्वानो से निष्पन्न किया हुआ ( यत् ) जो ( नूतनम् ) नवीन ( यत् च ) जो ( उद्यते ) कहा जाता है ( यत्, च ) और जो ( रस्यते ) स्तुति किया जाता है ( तस्य ) उस ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण ससार की वैसे रक्षा करनेवाले ( भवथा ) हूजिये जैसे ( शुभम् ) कल्याण को ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) वाहन ( अनु, अबृत्सत ) वर्तमान होते हैं ॥८॥

**भाषार्थ—**जो शिक्षा और विद्या के दण्ड से ससार की रक्षा करते हैं वे ही प्रशंसित होकर कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥८॥

**मूरत नो मरुतो मा बधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।**

**अधिं स्तोत्रस्य सूर्यस्य गातन् शुभं यातामनु रथां अबृत्सत ॥९॥**

**पदार्थ—**हे ( मरुत ) विद्वानो आप लोग ( न ) हम लोगों को ( मूरत ) सुखी करिये किन्तु ( मा ) मत ( बधिष्टन ) नष्ट करिये और ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिये ( बहुलम् ) बहुत ( शर्म ) सुख वा गृह ( वि, यन्तन ) विशेष करके दीजिये और ( अधि, स्तोत्रस्य ) अधिक प्रशंसित ( सूर्यस्य ) मित्रपने के ( शुभम् ) सुख की ( गातन् ) प्रशंसा करिये और जो ( याताम् ) प्राप्त होते हुओ के ( रथां ) वाहन ( अबृत्सत ) वर्तमान हैं उनके ( अनु ) अनुगामी हूजिये ॥९॥

**भाषार्थ—**मनुष्यो को चाहिये कि विद्वानो से प्रार्थना करके श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करें और सब जगह मित्रता करके सबके लिये सुख प्राप्त कराया जावे ॥९॥

**युयमुस्मन्नयत् वस्यो अच्छा निरुदतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।**

**जुषध्वं नो हुष्यदति यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥१८॥**

**पदार्थ—**हे ( गृणाना ) स्तुति करते हुए ( मरुत ) विद्वान् मनुष्यो ( युयम् ) आप लोग ( वस्य ) प्रति धन से युक्त ( अस्मात् ) हम लोगों की रक्षा कीजिये और ( निरुदतिभ्यः ) मारते हैं जिनसे उन अस्त्रों से पृथक् ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( निःपत ) निरन्तर पहुँचाइये और ( नः ) हम लोगों की ( जुषध्वम् ) सेवा करिये । और हे ( यजत्रा ) मिलनेवाले हम लोगों के लिये ( हुष्यवातिम् ) देने



योग्य दान को प्राप्त कराइये जिससे ( बध्म् ) हम लोग ( रथीयान् ) धनो के ( पतयः ) पालन करनेवाले ( स्वायम् ) हों ॥१०॥

भाषार्थ—जिज्ञासुजन विद्वानों की प्रार्थना इस प्रकार करें कि आप लोग हम लोगों को दुष्ट आचरण से अलग करने के धर्मयुक्त माग को प्राप्त कराइये ॥१०॥

इस सूक्त में मरुत् नाम से विद्वान् आदि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिय ॥

यह पञ्चपनवा सूक्त और अष्टारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ मरुत्तस्य षट्पञ्चाशत्सप्तमस्य सूक्तस्य इत्यावाह्य आश्रेय ऋषिः ।

मरुतो देवता । १, २, ५ निषुह्वहती । ४ विराट्पृथ्वी ।

८, ९ बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः । ३ विराट्पृथ्वी ।

६, ७ निषुह्वहती छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

विद्वानों के उपदेश से मनुष्य और वायु के गुणों को जानकर फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अग्ने शर्धन्तमा गुणं पिष्टं रुक्मेभिर्ज्जिभिः ।

विशो अथ मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् जैसे मैं ( रुक्मेभिः ) प्रकाशमान सुवर्ण आदि वा ( अज्जिभिः ) सुन्दर पदार्थों से ( मरुताम् ) मनुष्यों के ( पिष्टम् ) धव्यवीभूत ( शर्धन्तम् ) बलवान् ( गरम् ) समूह को ( मा ) सब ओर में ह्वये पुकारता हूँ और ( अथ ) आज ( दिवः ) प्रकाशमान ( रोचनात् ) प्रीति के विषय में ( चित् ) भी ( विशः ) मनुष्यों को ( अथि ) ऊपर के भाव में ( अथ ) अत्यन्त पुकारता हूँ वैसे आप भी आचरण करिय ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालकार है । जो मनुष्य वायु और मनुष्यों के गुणों को जानने हैं वे मत्कार करनेवाले हार हैं ॥१॥

यथा चिन्मन्यसे हदा तदिन्मे जगमुराशसः ।

ये ते नेदिष्टु हवनान्यागमुन्तान्वर्ध भीमसन्तशः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्य ( ये ) जो ( ते ) आपके लिये ( नेदिष्टम् ) अत्यन्त सामीप्य को ( आशसः ) कहनेवाले ( जगमु ) प्राप्त होकर ( तान् ) उनकी आप ( बर्ध ) वृद्ध करिय और ( यथा, चित् ) जिस प्रकार मैं आप ( हवा ) हृदय में ( मे ) मेरे लिये ( तत् ) उसका ( मन्यसे ) मानने हूँ उस प्रकार मैं ( हवनानि ) देनेने योग्य बन्तु ( आगमन् ) प्राप्त होवे और ( भीमसन्तशः ) भयङ्कर दर्शन जिन का वे ( इत् ) ही प्राप्त होते हैं ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । मनुष्य लोग परस्पर के उपकार में सुखी हैं ॥ २ ॥

मीळहुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्तेत्यस्मदा ।

अस्मो न वो मरुतः शिमीवाँ अमाँ दुप्रो गौरिव भीमयुः ॥३॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) मनुष्यों जैसे मैं ( व ) आप लागा का ( पृथिवी ) भूमि ( मीळहुष्मतीव ) वायु का देनेवाला सुन्दर ग्यामी जिसका उगक समान ( अस्मत् ) हम लागा में ( पराहता ) दूर का प्राप्त ( मदन्तो ) प्रगन्त होती हुई वर्तमान है उसका ( शिमीवान् ) अच्छे कर्मावाला ( अस्मो ) पशुविशेष के ( न ) समान ( आ, एति ) प्राप्त होता है तथा ( गौरिव ) सुख के सदृश ( भीमयुः ) भयङ्कर युद्ध करनेवाले का प्राप्त होना है वैसे आप लोग भी आचरण करा ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो प्रयत्न करते हुए कर्मों का करते हैं वे मरुत सुखी होते हैं ॥३॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।

अश्मानं चित्स्वर्य्यं पर्वतं गिरिं प्र ज्यावयन्ति यामभिः ॥४॥

पदार्थ—( ये ) जो मनुष्य ( ओजसा ) पञ्चम में ( नि, रिणन्ति ) प्राप्त होते हैं ( चित् ) और जो ( यामभिः ) प्रहरो में ( स्वर्य्यम् ) शब्दों में श्रेष्ठ ( पर्व-तम् ) पर्वत के सदृश ऊँचे ( गिरिम् ) शब्द करानेवाले ( अश्मानम् ) मेष को ( दुर्धुर ) दूरगत है घुरा जिनकी उनके ( न ) समान ( प्र, ज्यावयन्ति ) गिराते हैं और ( वृथा ) व्यर्थ निज अर्थ के बिना ( गावः ) गौओं के सदृश होते हैं वे सब में मत्कार करने योग्य होते हैं ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । हे मनुष्यों ! जैसे सूर्य की किरणों मेष का नीचे गिराती हैं वैसे विद्वान् लोग दोषों को दूर करते हैं ॥ ४ ॥

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।

मरुतां पुस्तममपृष्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५॥ १९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे मैं ( गवाम् ) गौओं के ( सर्गमिव ) जल के सदृश ( पुस्तमम् ) अत्यन्त बहुत ( अपृष्यम् ) अपूर्य में हुए को ( ह्वये ) पुकारता हूँ वैसे ( एवम् ) इन ( समुक्षितानाम् ) उत्तम प्रकार से सींचनेवाले ( मरुताम् ) मनुष्यों की ( स्तोमैः ) प्रशमाओं से ( नूनम् ) निश्चय से ( उत्तिष्ठ ) ऊपर पहुँचिये ॥५॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि सृष्टि के क्रम को जानकर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त हो ॥ ५ ॥

अब अग्निविद्या के उपदेश को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

युङ्ग्वं हार्षी रथे युङ्ग्वं रथेषु रोहितः ।

युङ्ग्वं हरी अजिग धुरि बोळ्हवे बहिष्ठा धुरि बोळ्हवे ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् कारीगरों आप लोग ( रथे ) वाहन में ( अरक्षी ) रक्त-गुणा ग विशिष्ट घोड़ों के सदृश ज्वालाओं को ( युङ्ग्वम् ) युक्त कीजिय ( रथेषु ) रथों में ( रोहित ) लाल गुणवाले पदार्थों को ( युङ्ग्वम् ) युक्त कीजिय और ( धुरि ) अथवा मैं ( बोळ्हवे ) प्राप्त करने के लिए ( अजिग ) जानेवाले ( हरी ) धारण और आकषण वा तथा ( धुरि ) अथवा मैं ( बोळ्हवे ) स्थानान्तर में प्राप्त होने के लिए ( बहिष्ठा ) अत्यन्त पहुँचानेवाले ( हि ) निश्चय अग्नि और पवन को ( युङ्ग्वम् ) युक्त कीजिय ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अग्नि आदि पदार्थों को वाहन आदि के चलाने के लिए निरन्तर युक्त करे ॥ ६ ॥

उत स्य वाज्यरूपस्तुविष्वणिहिह स्म धायि दशतः ।

मा वो यामेषु मरुतश्चिरं कर्तुं तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) मनुष्यों जो ( वाज्यो ) वेगवान् ( इह ) इस में ( अरक्षः ) ममस्थल के ( तुविष्वणि ) बल का सेवी ( दशतः ) दशने योग्य ( धायि ) धारण किया जाता है ( स्य ) वह ( यामेषु ) यम आदि से युक्त उत्तम व्यवहारों वा प्रहरो में ( व ) आप लागा को ( चिरम् ) बहुत कालपर्यन्त ( मा ) मत ( स्म ) ही ( कर्तुं ) करे अर्थात् न निषेध करे ( तम्, उत ) उम्मी को ( रथेषु ) रथों में ( प्र, चोदत ) प्रेरित करे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो अग्निविद्या का धारण करते हैं उनका सब समय में सत्कार करे ॥ ७ ॥

फिर वायुगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

रथु नु मरुतं वयं भवस्युमा हुवामहे ।

आ यस्मिन्तस्थौ सुरगानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥

पदार्थ—( यस्मिन् ) जिस में ( सुरगानि ) सुन्दर रमण करने योग्य पदार्थ हैं और वीर ( आ ) सब प्रकार में ( तस्थौ ) स्थिर है तथा जिस में ( मरुत्सु ) पवनो में सुन्दर पदार्थों को ( बिभ्रती ) धारण करते हुए ( सचा ) सम्बन्ध रखने वाले ( रोदसी ) पृथिवी और सूर्य वर्तमान हैं उस ( मरुत्सु ) मनुष्य और वायु सम्बन्धी ( भवस्युम् ) अपनी ध्वनि की दृष्टि करनेवाले की और ( रथम् ) विमान आदि वाहन को ( नु ) शीघ्र ( वयम् ) हम लोग ( आ, हुवामहे ) स्पष्ट करें ॥८॥

भाषार्थ—जैसे पवन भूमि जाति का धारण करते हैं वैसे ही विद्वान् जन सब मनुष्यों का धारण करे ॥ ८ ॥

फिर विद्वानों के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तं वः शर्धं रथेषुमं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।

यस्मिन्तुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळहुषी ॥९॥ २०॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्या ( यस्मिन् ) जिस कुल में ( तुजाता ) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध ( सुभगा ) सांभाय स युक्त ( सचा ) सबद ( मीळहुषी ) सेचन करनेवाली ( मरुत्सु ) मनुष्या में ( महीयते ) मत्कार की जाती और जिसको सेचन करनेवाली प्राप्त होती है ( तम् ) उस ( पनस्युम् ) अपनी स्तुति की इच्छा करते हुए को ( आ, हुवे ) बुलाता हूँ उस को ( व ) आप लोगों के ( रथेषुमम् ) रथ के द्वारा कहने हुए ( त्वेषम् ) प्रकाशमान ( शर्धम् ) बलयुक्त को पुकारता हूँ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जिस कुल में किया ब्रह्मचर्य्य जिन्होंने ऐसे स्त्री और पुरुष वर्तमान हैं उन्हीं कुल का भाग्यशाली जानना चाहिये ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वान् तथा वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इसमें पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिय ॥

यह पञ्चपनवा सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ षट्पञ्चाशत्सप्तमस्य सूक्तस्य इत्यावाह्य आश्रेय ऋषिः ।

मरुतो देवता । १, ४, ५ अगती । २, ६ विराट् अगती ।

३ निषुह्वहती छन्दः । निषाद स्वरः । ७ विराट् निषुह्व ।

८ निषुह्वहती छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले सप्तावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में  
वहगुणों को कहते हैं—

आ रुद्रास् इन्द्रवतः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गतन ।  
हयं वीं अस्मत्प्रति हृर्यते मतिस्तृष्णजे न दिवद उत्सा दुन्यवे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( हिरण्यरथा ) सुवर्ण रथों में जिन के अथवा नज के मनुष्य रथ जिनके वे ( सजोषस ) समान प्रीति सेवन और ( इन्द्रवन्त ) बहुत ऐश्वर्य रखने और ( रुद्रास् ) दुष्टों को कलानेवाले ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिए ( आ ) सब और ( गतन ) प्राप्त होवें और जो ( इयम् ) यह ( अस्मत् ) हम लोगों के समीप में ( मति ) बुद्धि है वह ( न ) आप लोगों की ( प्रति, हयते ) कामना करती है और ( तृष्णजे ) तृष्णायुक्त ( उदम्यवे ) जल की इच्छा करनेवाले के लिए ( उत्सा ) रूप ( न ) जैसे वैसे जो ( दिव ) कामनाओं की कामना करने हैं वे हम लोगों से निरन्तर सम्पन्न करने योग्य हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जैसे पिपासा से व्याकुल के लिए जल शान्तिकारक होता है वैसे विद्वान् जन जानने की इच्छा करनेवालों के लिए शान्ति के देनेवाले होते हैं ॥ १ ॥

अब पद्यों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधवान् इधुमन्तो निषङ्गिणः ।  
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृथिमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुर्मम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( पृथिमातर ) अन्तरिक्ष माता के सदृश जिसका ऐसा ( मरुत ) उत्तम प्रकार शिक्षित जन आप लोग ( वाशीमन्त ) उत्तम वाणी जिनकी वा जा ( ऋष्टि-मन्त ) ज्ञानवाले ( मनीषिण ) वा मन की इच्छा करनेवाले ( सुधवान् ) सुन्दर धनुष जिनका ( इधुमन्त ) वा बाणों वाले और ( निषङ्गिण ) अस्त्रे तर्कार आदि पदार्थ जिन के वा जो ( स्वश्वा ) उत्तम घोड़ों से युक्त ( स्वायुधा ) सुन्दर आयुधों वाले वा ( सुरथा ) सुन्दर रथ जिनके ऐसे ( स्थ ) होओ और ( शुर्मम् ) कल्याण-कारक व्यवहार वा सन्नाम को ( याथन ) प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों की आहिम कि विद्या आदि अष्ट गुणों को ग्रहण करके सदा ही विजय से युक्त हो ॥ २ ॥

धुन्य थां पर्वतादाशुषे वसु नि वो वनां गिहते यमनो मिया ।  
कोपयथ पृथिवीं पृथिमातरः शुभे यदुग्राः पृपतीर्युग्धम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( उग्रा ) नक्षत्रियों ( पृथिमातर ) जिन को माता के सदृश अन्तरिक्ष उन पर्वतों के सदृश वग से युक्त ( यत् ) जो आप लोग ( धान् ) बिजुली और ( पर्वतात् ) मेघों को ( धुन्य ) कँपारये ( वाश्वे ) दानाजन के लिए ( वसु ) द्रव्य को आपन कीजिये जो ( व ) आप लोगों को ( वना ) जङ्गल ( गिहते ) प्राप्त होते हैं उनको ( यायन ) जाननेवाले आप लोग ( भिया ) भय से ( नि, कोपयथ ) निरन्तर कपाड़ये और जैसे पवन ( पृथिवीम् ) पृथिवी को युक्त होने हैं वैसे ( शुभे ) जल के लिये ( पृथिवी ) सेवन करनेवाली जल की धाराओं का ( अयुग्धम् ) युक्त कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकतुल्योपमानकार है। जैसे पवन, पृथिवी, मेघ और वन आदिकों को कपान है और जैसे शत्रुजन शत्रुओं को कुद करते हैं वैसे ही विद्वान् जन पदार्थों को मथकर बिजुली आदि का कपाने हैं और आयुधों से युक्त करने हैं ॥ ३ ॥

वातस्विषो मरुतो वर्षनिणिजो यमाहव सुसदशः सुपेशसः ।  
पिषङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपम् प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो ( यमाहव ) न्यायाधीशों के सदृश ( वातस्विष ) वायु की कान्ति के समान कान्ति जिन की ऐसे ( वर्षनिणिज ) वर्ष का निर्णय करनेवाले ( सुसदश ) उत्तम प्रकार तुल्य गुण कर्म और स्वभाव युक्त ( सुपेशस ) उत्तम तुल्यरूप वा भुवण जिनका वे ( पिषङ्गाश्वा ) मन्त्र और से पीले वर्ण के घोड़ों वाले ( अरेपम् ) अपराध से रहित ( अरुणाश्वा ) रक्त वर्ण के घोड़ों वाले ( प्रत्वक्षस ) अत्यन्त सूक्ष्म करनेवाले ( महिना ) महिमा में ( द्यौरिव ) सूर्य के सदृश ( उरव ) बहुत ( मरुत ) मनुष्य होवें उनका गत्कार करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। जो मनुष्य सूर्य के सदृश आत्मा से प्रकाशित और न्यायाधीशों के सदृश व्यवहार करनेवाले विमान आदि वाहन से युक्त हैं उनका निरन्तर सत्कार करो ॥ ४ ॥

पुरुषप्ता अजिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दशो अनवग्रोधसः ।  
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नम मेजिरे ॥५॥२१

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( पुरुषप्ता ) बहुत मोह वाले ( अजिमन्त ) अस्त्री कामना विद्यमान जिन की ऐसे वा ( सुदानव ) उत्तम दानों के करने और ( त्वेषसन्दश ) प्रकाशित रूप को देखनेवाले ( अनवग्रोधसः ) नहीं बिद्यमान धन का नाश जिन के ऐसे और ( जनुषा ) जन्म से ( सुजातासः ) उत्तम प्रकार धर्मयुक्त व्यवहार से प्रसिद्ध ( रुक्मवक्षस ) सुवर्ण आदि सजुके हुए आभूषण वक्षस्वनों में जिन के वे ( दिव ) कामना करनेवाले ( अर्काः ) सत्कार करने योग्य जन ( अमृतम् ) नाम से रहित ( नाम ) नाम का ( मेजिरे ) सेवन करें उन का सब प्रकार सत्कार करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो जन उत्तम गुण कर्म और स्वभाव को सब प्रकार ग्रहण करते हैं वे सब प्रकार से सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यविषय में यान बसाने के फल को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ऋषयो वो मरुतो असंयोगधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।  
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनृषु पिपिशे ॥६॥

पदार्थ—हे ( ऋषयः ) ज्ञानवान् ( मरुत ) मनुष्यो ( व ) आप लोगों के ( असंयो ) भुजारूप दण्डों के मूलों में जा ( सह ) सहन और ( ओज ) पराक्रम तथा ( बाह्वो ) बाहुसम्बन्धी ( व ) आप लोगों का ( बलम् ) बल ( हितम् ) स्थित ( शीर्षसु ) मन्त्रों ( अधि ) पर ( नृम्णा ) और मनुष्य रथन है जिन में ऐसे ( आयुधा ) शस्त्र और अस्त्र ( रथेषु ) सन्नामार्थ वाहनो में वा ( व ) आप लोगों के ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( श्री ) धन वा शोभा ( अधि, पिपिशे ) अधिक आश्रय की जाती और ( व ) आप लोगों के ( तनृषु ) शरीर में धन वा शोभा अधिक आश्रयण की जाती उन का आप लोग सप्रहण कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर और आत्मा में बलिष्ठ और आयुधों की विद्या में निपुण होकर उत्तम वाहन आदि सामग्रियों से युक्त हुए पुरुषार्थ करने हैं वे धनवान् होते हैं ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।  
प्रशस्ति नः कृणुत रद्विदासो मक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७॥

पदार्थ—हे ( रद्विदास ) साधन करने वालों में हुए ( मरुत ) मनुष्यो आप लोग ( न ) हम लोगों के लिये ( गोमत् ) बहुत गौएँ विद्यमान जिन में वा ( अश्व-वत् ) बहुत घोड़ों से युक्त ( रथवत् ) वा प्रशस्ति वाहनो के सहित ( चन्द्रवत् ) वा सुवर्ण आदि से युक्त वा आनन्द आदि के देनेवाले ( सुवीरम् ) उत्तम वीर निमित्तक ( राध ) धन को ( ददा ) दीजिये और ( दैव्यस्य ) विद्वानों से किये गये ( अवस ) रक्षण आदि वे सम्बन्ध में ( न ) हम लोगों की ( प्रशस्तिम् ) प्रशंसा को ( कृणुत ) करिये जिसमें ( व ) आप लोगों के समीप में एक एक में मुख का ( मक्षीय ) सेवन कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य सत्पुरुषों का सङ्ग करें तब इस लोक में सम्पूर्ण ऐश्वर्य और परलोक में धर्म के अनुष्ठान करने की याचना करे ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यविषय विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

हयं नरो मरुतो मरुता नस्तुर्वीष्वासो अमृता ऋतज्ञाः ।  
सत्यश्रुतः कवयो दुवानो बृहद्विरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥२२॥

पदार्थ—( हयं ) हे ( नर ) नायक ( मरुत ) भरणशील जनो ( तुर्वीष्-वास ) बहुत धन में युक्त ( अमृता ) अपन स्वरूप से मृत्युरहित ( ऋतज्ञा ) यथार्थ को जानने वाले ( सत्यश्रुत ) सत्य का सुने हुए वा सत्य को सुनने वाले ( दुवान ) युवावस्था का प्राप्ति ( बृहद्विरय ) बहुत प्रशंसावाले ( बृहत्, उक्षमाणा ) बहुत सेवन किये और ( कवयो ) विद्वान् हात हुए आप लोग ( न ) हम लोगों को ( मृच्छता ) सुखी करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यथार्थ वक्ता विद्वानों का सेवन करने हैं वे सत्य विद्या को प्राप्त होकर सदा ही प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्त में रुद्र और वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तावनवें सूक्त और बाईसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथाष्टवस्याष्टपञ्चाशत्समस्य सूक्तस्य इयावाहव आग्नेय ऋचि ।

अरुतो देवताः । १, २, ४, ६, ८ निचुत्रिष्टुप् ।

२, ५ त्रिष्टुप् छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७ भुरिक्

पङ्क्तिद्वन्द्वः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले अष्टावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में वायुगुणों को कहते हैं—

तं नूनं तविषीमन्तमेपा स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।

य आश्वश्वा अमवद्रहन्त उनेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥

पदार्थ—( अमृतस्य ) नाश से रहित कारण ( स्वराज ) जो कि आप प्रकाशवान् उस के सबन्ध में ( आश्वश्वाः ) शीघ्र चलनेवाले अग्नि आदि अश्व जिन के वे ( ये ) जो ( अमवत् ) गृहों को जैसे प्राप्त हो वैसे ( वहन्ते ) प्राप्त होते हैं ( उत ) और ( मव्यसीनाम् ) अत्यन्त नवीन प्रजाओं के ( मारुतम् ) पवन सम्बन्धी ( गणम् ) समूह की ( स्तुषे ) स्तुति करने के लिये ( ईशिरे ) ऐश्वर्य का प्राप्त होते हैं ( श्वश्वा ) इन वीरों के ( उ ) तर्क के साथ ( तविषीमन्तम् ) अस्त्री सेना जिस की ( तम् ) उसी को ( व्रजम् ) निषेध प्राप्त होते हैं वे विजयी होते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो कार्य और कारण स्वरूप ममार के गुण वर्म और स्वभावो का जानते हैं वे गृह के सदृश सब का सुखी कर सकते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वेषं गणं तवमं ग्वादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।

मयोभुवो ये अमिता महिस्वा वन्दस्व विम तुविगाधमो नून । २ ॥

पदार्थ—हे ( विप्र ) बुद्धिमन् ! आप ( स्वेषम् ) प्रकाशित ( तवसम् ) बन-वान् ( स्वादिहस्तम् ) ग्वादिहस्त मं जिस व ( धुनिव्रतम् ) कपन के सदृश स्वभाव जिसका वा ( मायिनम् ) उत्तम बुद्धि जिस की उम ( दातिवारम् ) दान के स्वीकार करनेवाले वीरों के ( गणम् ) गणन करने योग्य की ( वन्दस्व ) वन्दना करिय और ( ये ) जो ( महिस्वा ) महत्त्व का प्राप्त हो कर ( अमिता ) अनुज दृढ गुणवाले ( मयोभुव ) सुख का कारण बाल हो उन ( तुविगाधस ) यत्न धन वाले ( नून ) मनुष्यों की वन्दना कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का चाहे बिना यद्यपि धार्मिक विद्वानों का ही मतानुसार करें जिस में मय बड़े ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ नो यन्तववाहामो अद्य वृष्टि ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।

अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषः कवयो युवानः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( कवय ) बुद्धिमान् ( युवान ) युवावस्था का प्राप्त हुए ( मरुत ) मनुष्यों ( ये ) जो ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( उववाहास ) जन का जो धारण करने हैं उनके सदृश ( मरुत ) पवन ( वृष्टिम् ) वृष्टि की ( जुनन्ति ) प्रेरणा करते हैं वे ( अद्य ) इस समय ( व ) आप लोगों का ( आ, यन्तु ) प्राप्त हो और ( य ) जो ( अयम् ) यह ( समिद्ध ) प्रदाता ( अग्नि ) अग्नि है ( एतम् ) इस का आप लोग ( जुषस्वम् ) सेवन करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो वृष्टि करनेवाले वायु और अग्नि आदि का विशेष करने जानते हैं वे इनकी वृष्टि करने के लिए प्रेरणा करने का समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

फिर मरु के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यूय राजानमियं जनाप विभ्रतष्ट जनयथा यजत्राः ।

युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजृता युष्मत्सदश्चो मरुतः सुवीरः । ४ ॥

पदार्थ—हे ( यजत्रा ) मिलनेवाले ( मरुत ) उत्तम प्रकार शिक्षित मनुष्यों जो ( युष्मत् ) आप लोगों के समीप ( मुष्टिहा ) मुँह से भागनेवाला ( बाहुजृता ) बाहुओं से बनेवाले वा ( युष्मत् ) आप लोगों के समीप ( सदश्च ) अच्छे पांडे जिसके एता ( सुवीर ) सुन्दर वीरान् ( एति ) प्राप्त होता है उसको ( जनाप ) मनुष्य के लिये ( इयम् ) प्रेरणा करनेवाले ( विभ्रतष्टम् ) बुद्धिमानों के मध्य में वीरों की बात ( राजानम् ) गाय और विनय से प्रकाशमान राजा का ( यूयम् ) आप ( जनयथा ) प्रकट कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्य सम्पूर्ण उपायों में प्रयुक्त गुण कम और स्वभाववाला राजा और राजा प्रकार के लोग ही उत्पन्न कर ॥ ४ ॥

अब विद्वानों के उपदेशगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग वेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते षकवा महोभिः ।

पृश्नेः पुत्रा उपमामो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः मं भिमिक्षु ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वाना जो ( मरुत ) पवन ( अगद्व ) चक्रों के अवयवों के सदृश ( अक्षरमा ) जो मन्त्रावली जिसके व ( अहेव ) दिवा के सदृश ( अक्षरमा ) नहीं गणना करता है ( पृश्ने ) जननीय के ( पुत्रा ) पुत्र ( महोभिः, इत् ) बालों की साथ ( प्रप्र, जायन्ते ) अत्यन्त उत्पन्न होत और ( सम, भिमिक्षु ) अच्छे प्रकार मिलनेवाले हैं ( उपमाम ) प्रपन्न के तुल्य ( रभिष्ठा ) अत्यन्त आरम्भ करनेवाले आप लोग ( स्वया ) अपनी ( मत्या ) बुद्धि से अत्यन्त उत्पन्न होया ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमान द्वारा है । जैसे बाहन के चक्रों के अक्ष और दिन क्रम से वृत्तमान हैं और जैसे पवन जो, आकर वर्षा है वैसे ही मनुष्यों का चाहिये कि क्रम से वर्त्तव करने बुद्धि से गुण की वृद्धि सब के मुख के लिये करें ॥ ५ ॥

यत् प्रायासिष्ट पृषतीभिर्गर्वीकूपविभिर्मरुतो रथेभिः ।

सादन्त आपो रिणते वनान्यवोसिथो वृषमः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) विद्वान् मनुष्यों आप लोग ( पृषतीभिः ) वेग आदिकों और ( अक्षे ) शीघ्र चलनेवाले ( रथेभिः ) विमान आदि वाहनो में ( यत् ) जो ( वीरुपविभिः ) दृढ़ चक्रों से ( जोवन्ते ) वृद्धि करते हैं और जैसे ( आप ) जल ( वनानि ) किरणों का ( रिणते ) प्राप्त होते हैं वैसे ही ( उज्जिय ) किरणों में उत्पन्न ( वृषभः ) वर्षावाला मेष ( द्यौः ) कामना करना हुआ

किरणा का ( अब, क्रन्दतु ) आह्वान करे और इष्ट को ( प्र, अवातिष्ठ ) अत्यन्त प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तापमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जो आप लोग वायु के सदृश शीघ्र गमन और जल के सदृश वृष्टि करनेरूप कार्य को करें तो सम्पूर्ण गुणों का प्राप्त हो ॥ ६ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

प्रथिष्ट यामनृथिवी चिदेपां भर्त्तव गर्भे स्वमिच्छते धुः ।

वातान्धवान्धुपां युयुजे वर्ष स्वेदं चक्रिरे रुद्रियामः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्या जन्म ( एयाम् ) इनके मध्य में ( पृथिवी ) भूमि ( यामन् ) प्रहर म ( गर्भम् ) गर्भ का ( भर्त्तव ) स्वामी के सदृश ( प्रथिष्ट ) प्रकट करती हैं वैसे आप लोग ( स्वम् ) सुग और ( शब् ) गमन का ( इत् ) ही ( धुरि ) वाहन के मध्य में ( धु ) धारण करने और ( अश्वान् ) शीघ्र चलनेवाले ( वातान् ) पवनो का ( आयुयुजे ) सब आर म युक्त करते और ( चित् ) भी ( रुद्रियास ) दृष्टो के मानवानो में चतुर हुए ( स्वेदम् ) पत्तीन के सदृश ( हि ) निश्चय ( वषम् ) वृष्टि का ( चक्रिरे ) करते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानलङ्कार है । जो मनुष्य पृथिवी के सदृश क्षमाशील और विस्तीर्ण विद्यावान् वाहनो में पवनरूप घोड़ों को संयुक्त करके और वृष्टि के कारणों का निमर्गण करके कार्यों का निद्व करना है वे सम्पूर्ण सुख कर सकते हैं ॥ ७ ॥

हये नरो मरुतो मृलतां नस्तुवीमघामो अमृता क्रतवाः ।

सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्रिग्यो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥ २३ ॥

पदार्थ—( हये ) हे ( नर ) नायक ( मरुत ) जना ( तुवीमघाम ) बहने धनवान् ( अमृता ) मोक्ष का प्राप्त हुए ( सत्यश्रुतः ) सत्य को यथार्थ सुनने और ( क्रतवा ) परमात्मा का प्रकृति को जाननेवाले ( युवानः ) प्राप्त हुई अपने शरीर की जीवन अवस्था जिनका ( बृहद्रिग्य ) जिनके बड़े मेषों के सदृश उपकार करनेवाले गुण वे ( बृहत् ) महत् ब्रह्म का ( उक्षमाणा ) सेवन करते हुए ( कवय ) पूर्णविद्यावाले आप लोग ( न ) हम लोगों का ( मृलता ) सुखी करिय ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सम्पूर्ण सत्य विद्याओं को प्राप्त होकर यथार्थवक्ता, परमात्मा और उनकी प्राज्ञा का सेवन करने हुए महाशय पूर्ण शरीर और आत्मा के बल से युक्त अर्थात् और उपदेश से हम लोगों की वृद्धि करते हैं वे ही सबदा हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् तथा वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमें पूरा सूक्त के अर्थ का साथ मूर्त्ति, जाननी चाहिए ॥

यत् अटठानवा सूक्त तथा लेईसवा वर्ग समान्य हुआ ॥

॥

अथाष्टवर्षकानवष्टितमस्य सूक्तस्य इयावाश्च आत्रेय ऋषि । मरुतो दक्षता । १, ४ विराड्जगती । २, ३, ६ निचुजजगता । छन्द । ५ अगती छन्द । निषाद स्वर । ७ स्वराट्त्रिष्टुप् । ८ निचुत्त्रिष्टुप्छन्द । धवत स्वर ॥

अब आठ ऋचा वाँटे उनसठव सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वद्विषयों को कहते हैं—

प्र वः सत्यक्रन्तमुविताय दावनेऽर्चो दिवे प्र पृथिव्या क्रतुर्मरं ।

उक्षन्ते अश्वान्तरुपन्त आ रजोऽनु स्वं भानु श्रथयन्ते अर्शवैः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वाना जो ( मुविताय ) एतत्पर्यं से युक्त और ( दावने ) दनयाग के लिये ( दिवे ) कामना करने हुए के लिये ( पृथिव्य ) अन्नरिषि वा भूमि के लिये तथा ( व ) आप लोगों के लिये ( अरे ) धारण करने हैं जिसमें उम व्यवहार में ( क्रतम् ) सत्य का ( प्र, अक्रन् ) अच्छे प्रकार करने हैं और ( अश्वान् ) वेग से युक्त अग्नि आदि का ( उक्षन्ते ) गवन है तथा ( तरुपन्ते ) शीघ्र प्लवित होने हैं तथा ( रज ) लोक के ( अनु ) पश्चान् ( स्वाय् ) अपना ( भानुम् ) कान्ति का ( अर्शवै ) समुद्रों वा नदियों में ( प्र, आ, श्रथयन्ते ) सब प्रकार शिक्षित करते हैं उनका आप लोग सत्कार करिये और है राजन् ( स्पष्ट ) स्पर्श करनेवाले आप उनका निरन्तर ( अर्चा ) सत्कार कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो मनुष्य शिल्पविद्या से विमानादि को रच के अन्नरिषादि मार्गों में जा आकर सबके मुख के लिए ऐश्वर्य का आश्रयण करते हैं वे संसार के विभूषक होते हैं ॥ १ ॥

अब वायुगुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अमांदिषां भियसा भूमिरेजति नोर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्वती ।

दूरेदशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विबथे येतिरे नरः ॥ २ ॥



**पदार्थ—**हे (नर) नायकमनुष्यो ! जो (भूमि) पृथिवी (पूर्ण) पूर्ण (नौ) बड़ी नौका के (न) सदृश (भियसे) भय से (व्यधि) पीड़ित हो बानी (यती) जाती हुई स्त्री के तुल्य (एजति) काँपती है और (एषाम्) इन वायु और अग्नि आदि के (अमात्) गृह से (क्षरति) बर्षाती है उसको (ये) जो (एमभि) प्राप्ति करानेवाले गुणों से इसके (अन्त) मध्य में (दूरेवृक्ष) जो दूर देखे जाते वा देखनेवाले (महे) बड़े के लिये (चितयन्ते) उत्तमता में सममान हैं और (विद्ये) मग्न वा विज्ञानयुक्त व्यवहार से (येतिरे) प्रयत्न करने हैं वे ही सबको सुखी करने के योग्य होते हैं ॥२॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमानद्वार है। जैसे शूरवीर जनो के समीप से डरनेवाले जन भागते हैं वैसे ही वायु और सूर्य से भूमि काँपती और चलती है और जैसे पदार्थों से पूर्ण नौका अग्नि आदि के योग से समुद्र के पार का शीघ्र जानी है वैसे विद्या के पार मनुष्य जावे और जैसे शीघ्र मग्न में प्रयत्न करने हैं वैसे ही अन्य मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये ॥२॥

**गवांमिब श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्ष रजसो विसर्जने ।**

**अस्याइव सुम्बश्चरवः स्थन मर्याइव श्रियसे चेतया नरः । ३॥**

**पदार्थ—**हे (सुम्ब) उत्तम प्रकार होनेवाले (चारव) सुन्दर स्वभाव युक्त वा जानेवाले (नर) नायक मनुष्यो (शृङ्गम्) ऊपर के (उत्तमम्) उत्तम भाग का (सूर्य) सूर्य के (न) सदृश (गवांमिब) किरणों के सदृश (भियसे) सेवने को (रजस) लोक के (विसर्जने) त्याग में (चक्षु) प्रकाश करनेवाले के सदृश आप लोग (स्थन) हजिय और (अस्याइव) घोड़े के सदृश (मर्याइव) वा विद्वानों के सदृश आश्रयण करने को आप लोग (चेतया) उत्तम प्रकार जानिय वा जनाइये ॥३॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमानद्वार है। जो मनुष्य किरणों, सूर्य, घोड़े और मनुष्यों के सदृश प्रकाश, दान, वेग और विवेक को सेवने हैं वे ही उत्तम सुम्ब को प्राप्त होने हैं ॥३॥

**को धौ महान्ति महतामुदैनवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौस्यां ।**

**यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४॥**

**पदार्थ—**हे (मरुत) विचार करनेवाले जना (महताम्) बड़े (ब) आप लोगो के वा आप लोगो को (महान्ति) बड़े विज्ञान आदिको को (क) कौन (उत, अदनवत्) उत्तमता से प्राप्त होता है (क) कौन (काव्या) बुद्धिमानों के कामों को उत्तमता से प्राप्त होता है (क) कौन (ह) निश्चय से (पौस्या) पुरुषों के इन बलों को प्राप्त होता है जिसमें (यूयम्) आप लोग (भूमिम्) पृथिवी को (किरणम्) दीप्ति के (न) समान (रेजथ) कपावें और (यत्) जिसको (ह) निश्चय (सुविताम्) ऐश्वर्य और (दावने) देनेवाले के लिये (प्र, भरध्वे) धारण कीजिये उसका सब लाभ प्राप्त होवे ॥४॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर है। कौन यथार्थवत्ता जनो के समीप से बड़े विज्ञानों को प्राप्त होता है और कौन आप्तजनो के कर्मों को और कौन बड़ों के बलों का प्राप्त होता है, इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि पवित्र अन्न वरणायुक्त और धर्म के मुनन की एच्छा करनेवाले धर्मिष्ठ पुरुषार्थी और ब्रह्मचारी हैं ॥४॥

**अश्वाइवेदरुषामः मर्वन्धवः शुराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।**

**मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षः म भिनन्ति वृष्टिभिः ॥५॥**

**पदार्थ—**हे विद्वान् जना (सर्वन्धव) सुल्लभबन्धु जिनके ऐसे (नर) नायक आप लोग (अश्वास) रक्त आदि गुणों से विशिष्ट (अश्वाइव, इत्) घोड़ों के सदृश ही शीघ्र चलिये (उत) और (प्रयुध) अत्यन्त युद्ध करनेवाले (शुरा-इव) शूरवीरों के सदृश (प्र, युयुधु) अत्यन्त युद्ध करिय तथा (सुवृध) उत्तम प्रकार बढनेवाले (मर्याइव) मनुष्यों के सदृश (वावृधु) बढिये और पवन (सूर्यस्य) सूर्य देव के (चक्षु) देखना जिसमें उसका (वृष्टिभि) वर्षाओं से जैसे वैसे शत्रुओं की सेनाओं का (प्र, भिनन्ति) अलगना नाश करने हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमानद्वार है। जो घोड़ों के सदृश चलिये, शूरवीरों के सदृश अग्रगण्य, मनुष्यों के सदृश विचारशील और सूर्य के सदृश अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक हैं वे सब के कल्याण के लिये होत हैं ॥५॥

**ते अज्येष्ठा अकनिष्ठा उज्जिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।**

**सुजातासो अनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अरुचा जिगातन ॥६॥**

**पदार्थ—**हे विद्वानो ! जो (अज्येष्ठा) नहीं विद्यमान ज्येष्ठ जिनके वा (अकनिष्ठा) नहीं विद्यमान छोटा जिनके वा (उज्जिद) पृथिवी को फोड़कर उगनेवाले तथा (अमध्यमास) नहीं विद्यमान मध्यम जिनके वे (अनुषा) जन्मसे (सुजातास) उत्तम व्यवहारों से प्राप्त वा (पृश्निमातर) अन्तरिक्ष भाता जिनका वे और (विष्य) कामना करते हुए (मर्या) मनुष्य (महसा) बड़े बल आदि से (वि, वावृधु) विवेक बढने हैं (ते) वे (न) हम लोगो की (अरुचा) उत्तम प्रकार (आ, जिगातन) सब ओर में प्रशंसा करते हैं ॥६॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्यों में यथायोग्य उत्तम शिक्षा हो तो कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम जन विचारशील होकर यथायोग्य जगत् की उन्नति कर सकें ॥६॥

फिर शिक्षाविषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**वयो न ये श्रेणीः पत्नुरोजसान्तादिबो बृहतः सानुनस्परि ।**

**अचाम एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नमनर्चुच्यवुः ॥७॥**

**पदार्थ—**(ये) जो (ओजसा) पराक्रम से (वय) पत्निया के (न) सदृश (श्रेणी) पट्टकियों को (पत्नुर) प्राप्त होने और (बृहत्) बड़े (सानुन) शिखर के समान (अन्तात्) समीप में वर्तमान (दिब) व्यवहार करनेवालों को (परि) सब ओर से प्राप्त होत है (एषाम्) इनके जा (उभये) दो प्रकार के (अश्वास) शीघ्र जाननेवाले पदार्थ हैं उनको (यथा) जिस प्रकार से (विदुः) जानते हैं और (पर्वतस्य) मेघ के (नमनर्चु) समूह को (प्र, अचुच्यवु) प्रयत्न वर्णों के समार के आधार होते हैं ॥७॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमानद्वार है। जैसे पक्षी पत्तिबद्ध हुए शीघ्र जाते हैं वैसे ही उत्तमप्रकार शिक्षायुक्त नौकर और चाहे आदि वाहन तीनों मार्गों में शीघ्र जाते हैं ॥७॥

**मिमातु द्यौर्दित्तिर्वीतये नः स दानुचित्रा उपभो यतन्ताम् ।**

**आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥७॥८॥**

**पदार्थ—**हे (ऋषे) विद्या के देनेवाले जैसे (अविति) माना वा (द्यौ) प्रकाश के सदृश (वीतये) विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए (न) हम लोगो का (मिमातु) आदर करें वैसे आप आदर करिये जैसे (दानुचित्रा) अद्भुत दान जिनमें गीरी (उचस) प्राणवैलाये व्यवहारों को मित्र कगती है वा जैसे (एते) ये (रुद्रस्य) अन्यायकारियों को खानेवाले (दिव्यम्) कामना में श्रेष्ठ (कोशम्) धन के स्थान का (आ, अचुच्यवु) प्राप्त होवे वैसे (गृणाना) स्तुति करने हुए (मरुत) मनुष्य (सम्) उत्तम प्रकार (यतन्ताम्) प्रयत्न करें ॥८॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकपुण्योपमानद्वार है। जो जन बिजुनी, पान-काल और ऋषि के सदृश धन के कोश का उद्वेग करने हैं वे प्रतिष्ठित होने हैं ॥८॥

इस सूक्त में पवन और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्ताथ के माथ मगनि जाननी चाहिये ॥

यह उनसठवा सूक्त और चौबीसवां वं समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथाष्टमस्य षष्ठिनमस्य सूक्तस्य इयावाइव आश्रेय ऋषि । मरुतो

वारितश्च देवताः । १, २, ४, ५ निचुत्त्रिष्टुप् । २ भुरिक्

त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्द । चैवत स्वर ।

७, ८ जगती छन्द । निषाद स्वर ॥

अब मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को प्रथम मन्त्र में कहते हैं—

**ईडे अग्नि स्वधसं नमोभिर्हि प्रसक्तो वि चयत्कृतं नः ।**

**रथैरिव प्र भरं वाजयद्भिः प्रक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ १ ॥**

**पदार्थ—**जैसे (प्रसक्त) प्रमत्त (इह) इस समार में मैं (नमोभि) सत्कारों से हूँ वैसे सत्कारों में (स्वधसम्) उत्तम रक्षण जिस से उस (अग्निम्) बिजुली की (ईडे) अधिक इच्छा करना और (कृतम्) किये काम को (वि, चयत्) विवेक करता हूँ और जो (मरुताम्) मनुष्यों के समूह (वाजयद्भिः) वेगवाले (रथैरिव) वाहनो के सदृश पदार्थों से (न) हम लोगो को पहुँचाते हैं उनको मैं (प्र, भरं) धारण करता हूँ और (प्रक्षिणिन्) पदार्थों को प्राप्त करने वाला मैं मनुष्यों की (स्तोमम्) प्रशंसा का (ऋध्याम्) बढ़ाऊँ ॥ १ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमानद्वार है। विद्वान् जन को चाहिए कि विद्वानों के सग से अग्नि आदि की विद्या का प्रकट करा के प्रमत्तता संपादित करें ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।**

**वनां चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतरिचत् ॥२॥**

**पदार्थ—**(ये) जो (रुद्रा) प्राण आदि और (मरुत) मनुष्य (श्रुतासु) विद्याओं में (पृषतीषु) सेवन करने वालियों में (सुखेषु) सुखों में और (रथेषु) विमानादि वाहनो में (आ, तस्थु) स्थित होवे (चित्) और (वना) किरण (उषा) तीव्र स्वभाव वाली के सदृश (नि, जिहते) निरन्तर जाते हैं और (व) आप लोगो के (भिया) भय में (पृथिवी) भूमि (चित्) भी (रेजते) कम्पित होती है (पर्वत) मेघ के (चित्) समान पदार्थ कम्पित होता है उनका हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमानद्वार है। हे मनुष्यों ! उत्तम विद्याओं और उत्तम वाहनो पर स्थित होकर शीघ्र जाने के लिए समर्थ हजिये ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पर्वतश्चिन्महिं बुद्धो विभाय विविचिन्स्तानु रेजत स्वने वः ।

यत्कीर्त्तय मरुत ऋष्टिमन्त आर्षेव सध्य आ धवध्वे ॥३॥

पदार्थ—हे ( ऋष्टिमन्त ) अच्छे विज्ञानवाले ( मरुत ) मनुष्यों ( यत् ) जहाँ तुम ( कीर्त्तय ) कीर्त्ता करने हो ( आपद्भव ) जनों के सदृश ( सध्यम्भव ) तक साथ समन करने हुए ( धवध्वे ) कपाओ और ( वः ) आप लोगों के ( स्वने ) शब्द में ( पर्वतः ) मेघ के ( चिन्महिं ) मदण ( सहि ) बड़ा ( बुद्ध ) बुद्ध ( विभाय ) बरता है ( विचः ) प्रकाश में ( चित ) भी जैसे वैश्व ( सानु ) शिखर के तुल्य ( रेजत ) कम्पित होता है वहाँ अन्वेष्टन करने ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानकार है। जो मनुष्य विद्या के व्यवहार की निम्ति के लिए शीघ्र करने तथा मित हार कार्य की निम्ति करते हैं वे सब प्रकार से आनन्दित होने ह ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वग वेद्वेतासो हिरण्यगम स्वधामिस्तन्वः पिपिधे ।

श्रिये श्रेयांस्त्वमो र्येषु सप्ता महामि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥

पदार्थ—जा ( श्रेयांस्त्वमो ) अत्यन्त कल्याण की उच्छ्रा करने हुए ( तनूषु ) बलवान् गतिवान् ( र्वेतासः ) पशुओं में हुए मनुष्य ( वराहव ) श्रेष्ठों के तुल्य ( इत् ) ही ( हिरण्ये ) सुवर्ण तज आदिका में और ( स्वधामि ) अन्न आदिकों से ( तन्वः ) शरीरों की ( पिपिधे ) स्थान ग्रहण करने के और ( श्रिये ) लक्ष्मी के लिए ( र्येषु ) बाह्यो और ( तनूषु ) शरीरों में ( सप्ता ) सप्त ( महामि ) बड़े काम ( अभि, चक्रिरे ) करने हैं वे अन्नप्राप्ति होने ह ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य के शरीरों में आनन्द करने लक्ष्मी की उच्छ्रा करने हैं वे वाग्द्विष का नाश करते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य को कैसे होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अज्येष्ठामो अकनिष्ठां एते म भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।

युवा पिता स्वपां रुद्र एषा सुदुया पृश्निः सुदिनां मरुद्भ्यः ॥५॥

पदार्थ—ह मनुष्य ! जैसे ( स्वपा ) श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करनेवाला ( युवा ) युवायुव्यायुक्त और ( रुद्र ) अन्धा का हननवाला ( पिता ) पालक जन और ( एषाम् ) उन की ( सुदुया ) उत्तम प्रकार मनुष्य की पूजा करनेवाली ( सुदिनां ) सुन्दर दिन जिसमें वह ( पृश्निः ) अग्नि के सदृश बुद्ध ( मरुद्भ्यः ) मनुष्यों के लिए विद्याय दान देती है वैश्व ( अज्येष्ठामो ) ज्येष्ठ मरुद्भ्यः ( अकनिष्ठां ) कनिष्ठमन से रहित ( एते ) य ( भ्रातरो ) वन्धु जन ( सौभगाय ) भक्त पेशवर्ध होने के लिए ( सन्, वावृधुः ) बड़ा ह ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पूर्ण युवायुव्या में विद्याया से समाप्त कर और सुशीलता को स्वीकार कर ब्रह्म ही उत्तम रूप उत्तम स्वभावयुक्त स्थिता हो विवाहद्वारा स्वीकार कर के प्रवेश करने में ऐश्वर्य को प्राप्त होकर आनन्दित होत है ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यदाधमे सुभगायो दिविष्ट ।

अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने निनाद्विषो ययजाम ॥६॥

पदार्थ—ह ( सुभगाम ) उत्तम ऐश्वर्यवान् और ( रुद्रा ) मध्यमविद्वान् ( मरुत ) मनुष्यों आप लोग ( यत् ) जिस ( उत्तमे ) उत्तम व्यवहार में ( मध्यमे ) मध्यम व्यवहार में ( वा ) वा ( अन्वमे ) निकृष्ट व्यवहार में ( यत् ) जहाँ ( वा ) अथवा अन्तर्गत निकृष्ट व्यवहार में ( दिविष्ट ) शुद्ध व्यवहार में ( रथ ) हूँतिय वहाँ ( अत ) इस कारण से ( न ) हम लोगों का उत्तम व्यवहार में स्थापित होजिय ( उत, वा ) और अथवा है ( अन्वे ) अग्नि के सदृश प्रकाशित आत्मावाले ( अस्य ) इस के ( विनात् ) धन में और ( हविष ) भोग करने योग्य स ( यत् ) जिसको ( नु ) निश्चय हम लोग ( ययाम ) प्रेरणा करे वहाँ आप भी प्रेरणा करिय ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जा मनुष्य उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ व्यवहारों में यथायोग्य वर्तवि करके उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है उनका सब लोग सन्कार करें ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्निश्च यन्मरुतो विश्वेदसो दिवो वहं च उचरादधि ष्णुभिः ।

ते मन्दसाना धुमयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( यत् ) जा ( अग्नि ) अग्नि के सदृश ( विश्वेदसः ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त ( विष ) कामना करने हुए ( रिशादसः ) हितकी के नाश करनेवाले ( मन्दसाना ) आनन्द करते हुए ( धुमयो ) दुष्टों के कम्पानेवाले ( मरुतः ) विचारशील मनुष्य आप लोग ( सुन्वते ) यज्ञ करने और ( यजमानाय ) पदार्थों के भोग करनेवाले जन के लिए ( वामम् ) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार की ( वत्त ) धारण करो और ( उचरात् ) पीछे से ( अधि ) ऊपर के होने में ( सुभिः ) इच्छा वालों से प्रशंसा करने योग्य को ( वहं ) प्राप्त हूँतिय ( ते, च ) वे भी आप लोग सदा सब का उपकार करिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमानकार है। वे ही महात्मा हैं जो सब के लिए मत्स्य का धारण करने हैं ॥ ७ ॥

अब विद्वानों की सेवा करना अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्ने मरुद्भिः शुभयन्त्रिर्ऋभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।

पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्विभानां प्रदिवा केतुनां सजुः ॥८॥२५॥

पदार्थ—ह ( अग्ने ) विद्वान् ( गणश्रिभिः ) समुदाय की लक्ष्मियों से ( मन्दसानो ) आनन्द करना हुआ ( प्रदिवा ) अत्यन्त प्रकाशवाली ( केतुना ) बुद्धि के साथ ( सजुः ) तुल्य प्रीति को करनेवाले ( वैद्वानर ) सब में मुख्य आप ( शुभयन्त्रिः ) उत्तम आचरण करनेवाले ( ऋषिभिः ) सत्कार करने योग्य ( पावकेभिः ) गविष ( विश्वमिन्वेभिः ) सम्पूर्ण समार के व्यवहार को प्राप्त कराने हुए ( आयुभिः ) जीवनों से ( मरुद्भिः ) मनुष्यों के साथ ( सोमम् ) बड़ी ओषधियों के रस का ( पिब ) पान करिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों की योग्यता है कि मदा यथार्थवत्ता, विद्वानों के साथ मिल कर विद्या, अवस्था और बुद्धि को बढ़ाकर ओषध के सदृश आहार और विहार को करके उत्तम आचरण सर्वदा करे ॥ ८ ॥

इस सूक्त में वायु, अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के

अर्थ की हमने पूर्ण सूक्तार्थ के साथ वर्णन जाननी चाहिए ॥

यह साठवां सूक्त और पञ्चवीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥८॥

अथैकोनविंशत्युच्यते कर्वाटितमस्य सूक्तस्य श्यावाऽव आत्रेय ऋषिः ।

१-४-११-१६ मरुत । ५-८ शशीयनी तर्गतमहिदी । ९ पुरुमीऽहो वेदवदिवः

१० तर्गतो वेदवदिवः । १७-१८ र्वशीनिर्वाह्यो देवता । १, २, ३, ४, ६

७, ८, १०, ११ १२, १३ १४, १५, १६, १७, १८, १९ गायत्री

छन्दः । वज्र स्वरः । ५ अनुष्टुप् छन्दः । गायत्री स्वरः । ६ सतोबृहती

छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अब उन्नीस ऋषिवाले एकसठ सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मात्र से प्रश्नोत्तरो से मरुदविको के गुणों को कहते हैं—

केष्टा नरुः श्रेष्ठतमा य एकैक आयय ।

परमस्याः परावतः ॥ १ ॥

पदार्थ—ह ( श्रेष्ठतमा ) अत्यन्त कल्याण करनेवाले ( नर ) नायक जनो ( परमस्याः ) अत्यन्त श्रेष्ठ के पात्र जानेवाले ( के ) कीर्त्ता ( श्या ) ठहरे ( ये ) जा ( परावतः ) दूर से आकर उपदेश करने हैं और निरन्तर मध्य में ( एकैक ) एक-एक आप दूर दूर से एक को ( आयय ) पाया होव ॥ १ ॥

भाषार्थ—जान अत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्य होने हैं जो सर्वदा अत्यन्त श्रेष्ठ कर्मों को करे ॥ १ ॥

कर्वोऽश्वाः कर्वोभीरावः कथं शंक कथा यय ।

पृष्ठं मर्षो नमोयमः ॥ २ ॥

पदार्थ—ह मनुष्यों ( कर्व ) आप लोगों के ( कर्व ) कथा ( अश्वाः ) गाँध चत्तनगाय गाँध और ( कर्व ) कथा ( अभीरावः ) अगुनिय है उन को आप लोग ( कथम् ) किस प्रकार ( शंक ) और पशुवनवाले हूँतिय और ( कथा ) किस प्रकार में ( यय ) शब्द और जम ( मर्षो ) नामिकाओं के ( पृष्ठं ) पीछे के भाग में ( सब ) उन्नत करने योग्य यन्त्र को ( यय ) नियन्ता है वैश्व आप लोग हूँतिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपमानकार है। जब कोई विद्वाना को पूछे तब वे उत्तर दे और पक्षपात को छोड़कर न्यायाधीशों के सदृश होवें तब सम्पूर्ण बोध का प्राप्ति होवें ॥ २ ॥

जघने चोद एषा वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृते न जनयः ॥३॥

पदार्थ—ह ( नर ) नायक जनो ( पुत्रकृते ) पुत्र करने में ( जनयः ) माना गया ( न ) जैसे वैश्व ( एषाम् ) इन के ( जघने ) कट के नीचे के भाग के धव-यवों को जो ( चोद ) प्रेरणा करनेवाला है और जो ( सक्थानि ) पुत्रों को ( वि-यमुः ) नियम में रखें उनका आप लोग सत्कार करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानकार है। जैसे उत्पन्न करनेवाले माता पिता सुन्दर नियम से मत्तानोत्पत्ति कर के इन को उत्तम प्रकार नियम युक्त करके उत्तम प्रकार शिक्षित करे जैसे सब करें ॥ ३ ॥

अब विद्वानों के उपदेश विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

परां वीगस एतन् मर्यामो मर्दजाजयः । अग्नितापो यथासंथ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्या ! आप लोग ( यथा ) जैसे ( अग्नितापः ) अग्नि से तपाने वाले ( वीरासः ) विद्या और बल से व्याप्त ( मर्यामः ) मनुष्य ( मर्द )

दूर के लिए ( एतन् ) प्राप्त हो और ( भद्राजानयः ) कल्याण के जानने वाले ( अक्षयः ) होवें वैसे वे सत्कार करने योग्य होवें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बन्धन के साधन और पाप के आचरण का त्याग कर और त्याग कर के और मुक्ति के साधन को ग्रहण कर और ग्रहण करके सब को आनन्दित करने हैं उनको आनन्दित करें ॥ ४ ॥

**सनत्सादयं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।**

**इयावावस्तुताय या दोर्वीरायोवर्हत् ॥५॥२६॥**

पदार्थ—( या ) जो ( इयावावस्तुताय ) घोड़ों से प्रशसित ( वीराय ) और जन के लिये ( दो ) भुजा का बल ( उप, बभूवृत् ) अत्यन्त समीप में देती है ( ता ) यह विद्यायुक्त स्त्री ( समत् ) सनातन ( अक्षयम् ) घोड़ों में श्रेष्ठ ( गव्यम् ) गौओं में श्रेष्ठ ( उत ) और ( शतावयम् ) सौ अवयव जिस में उस ( ययम् ) देखते हुए को बढ़ा सकती है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—वही स्त्री प्रशसित होती है जो अपने पति को काम में आसक्त करके बल का नाश नहीं करती है और गृह स्थित घोड़े आदि का पालन करके बढ़ाती है ॥ ५ ॥

फिर स्त्री के पुरुषार्थ उपदेश को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।**

**अदेवमादराधसः ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे पुरुषो ! जो ( स्त्री ) स्त्री ( अदेवमात् ) विद्वानों की रक्षा करता है जिससे उससे विरुद्ध ( अराधसः ) धन विरुद्ध पदार्थ से पृथक् हो कर ( पुसः ) पुरुष की ( वस्यसी ) अत्यन्त धनवाली ( उत ) और ( शशीयसी ) अत्यन्त दुःख को दूर करनेवाली ( भवति ) होती और ( त्वा ) आप को सुखी करती है उस का आप सुलभ्युक्त करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—वही स्त्री पति से आदर करने योग्य होती है जो अन्यायाचरण और नहीं आदर करने योग्य के आदर करने से रहित हुई पति को सुखी करती है वही पति से निरन्तर आदर करने योग्य होती है ॥ ६ ॥

**वि या जानाति जसुरिं वि तथ्यन्तं वि कामिनम् ।**

**देवत्रा कुण्ठने मनः ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( जसुरिम् ) प्रयत्न करते हुए को ( वि ) विजय करके ( जानाति ) जानती है ( तथ्यन्तम् ) पिपापा से व्याकुल हुए के तुल्य का ( वि ) विशेष करके जानती है और ( कामिनम् ) कामातुर पुरुष को ( वि ) विशेष करके जानती है वह ( देवत्रा ) विद्वानों में ( जन ) चित्त ( कुण्ठने ) करती है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो स्त्री पुण्यार्थी, धार्मिक, लाभी और कामातुर पति का जान-कार दोषों के निवारण और गुणों के ग्रहण करने के लिए प्रेरणा करती है वही पति आदि की कल्याण करने वाली होती है ॥ ७ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उत घा नेपो अस्तुतः पुमाँ इति द्रुवेपाणः स वैरदेय इत्समः ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अस्तुतः ) नहीं प्रशंसा किया गया ( उत ) और ( नेमः ) आधे का अधिकारी ( घा ) ही ( वैरदेयः ) वैर देने योग्य जिस से उस में ( पुमान् ) पुरुष और जो ( पणि ) प्रशंसित वर्तमान है ( सः, इत् ) वही ( समा ) तुल्य है ( इति ) इस प्रकार में मैं ( द्रुवे ) कहता हूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो आलस्ययुक्त जन श्रेष्ठ कर्मों में नहीं प्रवृत्त होता है और दूसरा विद्वान् पुरुष सत्य और असत्य को जानकर सत्य का आचरण नहीं करता है वे दोनों तुल्य अधर्मात्मा हैं यह जानना चाहिये ॥ ८ ॥

फिर स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उत मेऽपद्यतिर्ममनुषी प्रति इयावाय वर्तनिम् ।**

**वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुविप्राय दीर्घयज्ञसे ॥ ९ ॥**

पदार्थ—जो ( प्रति, इयावाय ) धूमिल वर्ण से युक्त अश्व और ( पुरुमीळ्हाय ) बहुत वीर्य के सीबने वाले ( दीर्घयज्ञसे ) बड़े यज्ञस्त्री ( विप्राय ) बुद्धिमान् ( मे ) मेरे लिए ( ममनुषी ) प्रशंसा करने योग्य और आनन्द करनेवाली ( वर्तनिम् ) मार्ग को ( वि, रोहिता ) जानेवाली ( यमतिः ) यौवनावस्था को प्राप्त स्त्री ( अपद्यत् ) स्पष्ट उपदेश देती है ( उत ) और मैं स्पष्ट उपदेश कर के हम दोनों जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त स्त्री और पुरुष ( येमतुः ) नियम करते हैं वैसे वर्तान करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो स्त्री पुरुष परस्पर तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाले हो तो श्रेष्ठ मार्ग, अत्यन्त कीर्ति और आनन्द को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

**यो मे वेनुनां श्रुतं वैददधिर्यथा ददत् ।**

**तदन्तर्हव मंजना ॥ १० ॥ २७ ॥**

पदार्थ—( य ) जो ( वैददधिर्य ) घोड़ों के शाता वा पुत्र ( मे ) मेरी ( वेनुनाम् ) गौओं के ( शतम् ) सैकड़ों को ( ददत् ) देता है ( यथा ) जैसे ( मंजना ) बड़ी नौका से ( तरन्तश्च ) तरते हुओं के समान दुःख के पार पहुँचाता है वही स्वामी होने के योग्य होता है ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सैकड़ों वा हजारों का देने वाला होता है और दुःख देनेवाली गौओं की रक्षा करता है वह नौका से नदी वा समुन्द्र को तरता है वैसे ही बुद्धिमान् स्त्री और पुरुष दुःखरूपी सागर को धर्म के आचरण से तरते हैं ॥ १० ॥

**य इं बहन्त आशुमिः पिबन्तो मदिरं मधु ।**

**अत्र भवसि दुधरे ॥ ११ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ये ) जो ( आशुमिः ) शीघ्रकारी गुणों से ( मदिरम् ) आनन्दकारक ( इम् ) जल को ( बहन्ते ) प्राप्त होते हैं और ( मधु ) माधुर्य आदि गुणों से युक्त को ( पिबन्तः ) पीते हुए ( अत्र ) यहाँ ( भवसि ) अन्न आदिको को ( दुधरे ) धारण करते हैं वे ही लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो शीघ्र सुखकारक और बुद्धिबर्धक वस्तुओं का सेवन करते हैं वे यहाँ लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ ११ ॥

फिर उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**येपे श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्व ।**

**दिवि रुक्महोपा ॥ १२ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( येष्वाम् ) जिन विद्वानों का ( श्रिया ) शान्ता वा लक्ष्मी से धर्मयुक्त व्यवहार ( विधि ) कामना में ( रुक्महो ) प्रीतिकारक सुवर्ण आदि पदार्थ जैसे जैसे ( विभ्राजन्ते ) शोभित होते हैं और जो ( रथेष्व ) विमान आदि वाहनों में ( आ अधि ) विराजित होवें वे ( उपरि ) ऊपर ( रोदसी ) अन्तर्लक्ष और पृथिवी के सृष्ट प्रकाशित होते हैं ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो धर्मयुक्त पुरुषार्थ से धन आदि को ढकड़ते करन हैं वे सूर्य के किरणों के सृष्ट प्रकाशित यशवाले होते हैं ॥ १२ ॥

फिर स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**युवा स मारुतो गणस्त्वेवरथो अनेधः । शुभ्यावाप्रतिष्कृतः ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अनेधः ) नहीं निन्दा करने योग्य ( स्वेवरथः ) प्रकाशवान् वाहन जिधका वह ( शुभ्यावा ) जल को प्राप्त होने वाला ( अप्रतिष्कृतः ) नहीं कामना दूढ़ ( युवा ) यौवनावस्था को प्राप्त ( मारुतः ) पशुओं के समूह के सृष्ट मनुष्यों का ( गण ) समूह है ( सः ) वह बहुत कार्यों को मित्र कर गवता है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सम्पूर्ण स्त्री पुरुषों का यौवनावस्थायुक्त और विद्वान् करन है व प्रशंसा करने योग्य, कल्याणकारी और दूढ़ होते हैं ॥ १३ ॥

फिर उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**को वैद नूनमेपां यत्रा मदन्ति धृतयः ।**

**श्रुतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥**

पदार्थ—हे विद्वानों ( यत्र ) जहाँ ( श्रुतजाता ) सत्य में उत्पन्न होने वाले ( अरेपसः ) अपराध में रहित ( धृतयः ) पाप को कम्पाने वाले ( मदन्ति ) प्रमत्त होन हैं वहाँ ( एषाम् ) इन वायु आदि के स्वरूप को ( नूनम् ) निश्चित ( क ) कौन ( वैद ) जानना है ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! अपराध, अनपराध तथा सत्य और असत्य को कौन जानना है यह हम पूछते हैं जो प्रमाद में रहित और परमेश्वर के भक्त होन हैं ॥ १४ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**ययं मते विपन्यवः प्रणेतार इत्या धिया ।**

**श्रोतारो यामहृतिषु ॥ १५ ॥ २८ ॥**

पदार्थ—हे ( विपन्यवः ) बुद्धिमानों ( ययम् ) आप लोग ( प्रणेतारः ) प्रेरणा करने और ( श्रोतारः ) सुननेवाले जन ( धिया ) बुद्धि वा कर्म से ( यामहृतिषु ) उपरम प्रशंसित निवृत्ति और आह्वानरूप कर्मों में ( इत्या ) इस प्रकार से ( मते ) मनुष्यों को प्रेरणा करो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहारों में मनुष्यों को प्रेरणा करके बुद्धिमान् करने हैं वे धन्य होते हैं ॥ १५ ॥

**ते नो वदन्ति काम्या पुरुषचन्द्रा रिशादसः ।**

**आ यज्ञियासो बह्वचन ॥ १६ ॥**

पदार्थ—जो ( यज्ञियासः ) यज्ञ के करने ( रिशादसः ) और हिंसकों के मारनेवाले ( नः ) हम लोगों के ( पुरुषचन्द्रा ) बहुत सुवर्ण और ( काम्या ) सुन्दर ( बह्वचि ) स्त्री को ( आ, बह्वचन ) प्राप्त होते हैं ( ते ) वे विद्वान् हम लोगों के कल्याणकारी होते हैं ॥ १६ ॥



भाषार्थ—हे मनुष्यो ! वे ही संसार में परोपकार के लिए वर्तमान हैं जो न्याय से द्रव्य का सवह करते हैं ॥ १६ ॥

एतं मे स्तोममूर्ध्न्यं दाम्प्याय परां वह ।

गिरौ देवि रुथोरिव ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे ( देवि ) प्रकाशमान विद्यायुक्त स्त्री ( ऊर्ध्व ) रात्रि के सदृश वर्तमान आप ( मे ) मेरी ( एतम् ) इस ( स्तोमम् ) प्रशंसा को सुनिये और ( दाम्प्याय ) विदारण करने वालों में हुए के लिए वर्तमान को ( परा, वह ) दूर कीजिये तथा ( रुथोरिव ) प्रशंसित रथ वाला जैसे वैसे ( गिर ) बागियों का धारण कीजिये ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे प्राणियों के सुख के लिए रात्रि है वैसे ही पति आदिकों के सुख के लिए श्रेष्ठ स्त्री होती है ॥ १७ ॥

उत मे बोधतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।

न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप ( मे ) मेरे लिये ( रथवीतौ ) वाहनों के गमन में ( उत ) और ( सुतसोमे ) उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्य आदि में सत्य का उपदेश देने योग्य हैं ( इति ) इस प्रकार ( बोधतात् ) उपदेश देवें जिसमें ( मे ) मेरी ( काम ) कामना ( न ) नहीं ( अप, वेति ) नष्ट होती है ॥ १८ ॥

भाषार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् जनों के प्रति यह प्रार्थना करें कि आप लोग हम लोगों को ऐसे उपदेश करो जिससे हम लोगों की इच्छाएँ सिद्ध हों ॥ १८ ॥

एष ध्वेति रथवीतिर्मधवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपभितः ॥ १९ ॥ २० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( पर्वतेषु ) मेघों में ( अपभित ) आश्रित सूर्य ( गोमती ) किरणें विद्यमान जिनमें ऐसे गमनों को ( अनु ) अनुकूल वर्त्तना है वैसे ( एष ) यह ( रथवीति ) रथ में मार्ग का व्याप्त होने वाला ( मधवा ) अत्यन्त धनवान् जन ( ध्वेति ) निवास करना है ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य मेघ का कारण होकर पृथक्स्वरूप है वैसे ही विद्वान् सर्वत्र वाम करना हुआ भी मोहराहत होता है ॥ १९ ॥

इस सूक्त में प्रश्न, उत्तर और वायु आदि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हम से पूर्व सूक्तार्थ के साथ समझ जाननी चाहिये ॥

यह इकसठवाँ सूक्त और उनतीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ नवमस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य अनुलिखितानि श्रुतिः । मित्रावरुणौ वेदते । १, २ त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६ निष्त्विष्टुप् । ७, ८, ९ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । ध्रुवत स्वरः ॥

अथ नव ऋचावाले बासठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सूर्यगुणों को कहते हैं—

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वा सूर्यस्य यत्र विमुच्यन्त्यश्नान् ।

दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठ वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनों ( यत्र ) जहाँ विद्वान् जन ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( दश ) दश ( शता ) सैकड़ों ( अश्नान् ) किरणों को ( विमुच्यन्ति ) छोड़ते और ( सह ) साथ ( तस्थु ) स्थित होने हैं ( वाम् ) तुम दोनों के ( ऋतेन ) सत्य कारण से ( ध्रुवम् ) निश्चल ( ऋतम् ) सत्यस्वरूप ( अपिहितम् ) आच्छादित है ( तत् ) उम ( एकम् ) अद्वितीय ( देवानाम् ) विद्वानों के और ( वपुषाम् ) रूपवाले शरीरों के ( श्रेष्ठम् ) श्रेष्ठभाव को मैं ( अपश्यम् ) देखना है उसका आप लोग भी देखिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जा यह सूर्यलोक है यह परमेश्वर में अनेक तत्त्वों द्वारा रचा गया है इस कारण अनेक गुणों में युक्त है उम को तुम लोग यथावत् जानो ॥ १ ॥

अथ मित्रावरुण के गुणों को कहते हैं—

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीमां तस्थुषीरहभिर्दुदुहे ।

विश्वः पितृव्यः स्वर्गस्य घेना अनु वामेकः पविरा ववर्त्त ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु के सदृश अध्यापक और उपदेशक जनों ( वाम् ) आप दोनों के जिम ( महित्वम् ) महत्त्व की ( ईमां ) निरन्तर चलनेवाली रक्षा करता है ( तत् ) उसकी आप दोनों ( पितृव्यः ) तुष्ट कीजिए और जैसे ( अहभिः ) दिनों से किरण ( तस्थुषी ) स्थिर वेलाओं को ( सु ) उत्तम प्रकार ( दुदुहे ) पूर्ण करते हैं और ( स्वर्गस्य ) दिन के मध्य में ( वाम् ) आप दोनों ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( घेना ) वागियों को तुष्ट कीजिए वैसे ( एकः ) सहायरहित केवल एक ( पवि ) पवित्र व्यवहार ( अनु ) अनुकूल ( आ ) ( ववर्त्त ) वर्त्तमान हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनों ! आप दोनों मनुष्यों को रात्रि-दिन प्राण उदान और बिजुली की विद्याओं को ग्रहण कराइये जिससे सम्पूर्ण प्रजायें आनन्दित हों ॥ २ ॥

अधोगतं पृथिवीमुत छां मित्रंराराजाना वरुणा महोभिः ।

वर्धयन्तमोषधीः पितृव्यं गा अब वृष्टिं सृजन्तं जीरदान् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( जीरवान् ) जीवन के देनेवाले ( वरुणा ) श्रेष्ठ ( मित्रराराजाना ) प्राण और बिजुली जैसे वायु और बिजुली ( पृथिवीम् ) भूमि को ( उत ) और ( वाम् ) सूर्य को धारण करते हैं वैसे ( अधोगतम् ) धारण कीजिये और जैसे य दोनों ( महोभिः ) बड़े गुणों से ( ओषधीः ) यव आदि ओषधियों को ( वर्धयन्तम् ) बढ़ावें ( गा ) पृथिवियों को तुष्ट करते हैं वैसे आप दोनों ( पितृव्यम् ) तुष्ट कीजिए और जैसे वे दोनों ( वृष्टिम् ) वृष्टि को उत्पन्न करते हैं वैसे ( अब, सृजन्तम् ) उत्पन्न कीजिए ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा और मन्त्रीजनों ! आप दोनों प्राण और सूर्य के सदृश वर्त्तव्य कर पृथिवी के राज्य का पालन कर वंश और ओषधियों की वृद्धि कर और वृष्टि की उन्नति करके सुख के लिए वर्त्तव्य कीजिए ॥ ३ ॥

आ वामश्वासः सुयुजो बहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।

धृतस्य निक्षिगन्तु वसैते वामुप सिन्धवः प्रविषि क्षरन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे वाहन के बनाने और चलानेवाले जनों जो जैसे ( वाम् ) आप दोनों के ( सुयुज ) उत्तम प्रकार मिलनेवाले ( यतरश्मयः ) ग्रहण की गई किरणों वा रश्मियाँ जिनकी ऐसे ( अवशास ) अग्नि आदि पदार्थ वा बोझ ( धृतस्य ) जल के ( अर्वाक् ) नीचे से ( आ, बहन्तु ) पहुँचावे और यानों को ( उप, वन्तु ) चलावें और ( निक्षिक् ) निर्याप करनेवाला सारथि ( अनु, वसैते ) प्रवृत्त होता है और ( प्रविषि ) प्रकाशस्वरूप अग्नि में ( सिन्धवः ) नादया ( वाम् ) आप दोनों को ( उप, क्षरन्ति ) जल वर्षाती हैं वैसे प्रपल कीजिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य वाहनों में यन्त्रकलाओं को रथके नीचे अग्नि और ऊपर जल स्थापित करके और फिर उस अग्नि को प्रदीप्त करके मार्ग में चलावे तो बहुत लक्ष्मियाँ इनको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

अनु अताममति वर्धदुर्वी बहिरिव यजुषा रक्षमाणा ।

नमस्वन्ता धृतक्षाधि गर्षे मित्रासाये वरुणोऽस्वन्तः ॥ ५ ॥ ३० ॥

पदार्थ—हे ( मित्र ) प्राण के सदृश ( वरुण ) श्रेष्ठ ( धृतक्षाधि ) धारण किया बल जिन्होंने वे ( बहिरिव ) जल के सदृश ( यजुषा ) सत्संग वा क्रिया से ( उर्वीम् ) पृथिवी की ( रक्षमाणा ) रक्षा करते हुए ( नमस्वन्ता ) बहुत धन-वाले ( इत्याहु ) वागियों में और ( अन्तः ) मध्य ( गर्षे ) गृह में आप दोनों ( आसाये ) वर्त्तमान हैं और वह ( अनु, धृताम् ) पीछे अवगम किये गये ( अमतिम् ) रूप को ( अधि ) ऊपर को ( वर्धत् ) बढ़ावे उनकी हम लोग परिचर्या करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे प्राण और उदान आदि पवन सब जगत् की रक्षा करते हैं वैसे आप लोग रक्षा करें ॥ ५ ॥

अकंविहस्ता सुकृते परम्पा यं त्रामाये वरुणोऽस्वन्तः ।

राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं विभृथः सह द्वौ ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( वरुणा ) अग्नि श्रेष्ठ सभा और सेना के स्वामी राजा और मंत्रीजनों वायु और सूर्य के सदृश ( अकंविहस्ता ) नहीं हिंसा करनेवाले हस्त जिन के वा दानशाल हस्त जिनके वे ( परम्पा ) दूसरों की रक्षा करनेवाले ( राजाना ) प्रकाशमान और ( क्षत्रम् ) राज्य वा धन को ( आहृणीयमाना ) क्रोध से रहित भाव-ग करत हुए ( द्वौ ) दोनों आप ( इत्याहु ) पृथिवियों के ( अन्तः ) मध्य में ( सुकृते ) धनयुक्त काम में वर्त्तमान ( सह ) साथ ( यम् ) जिसको ( आसाये ) भय देवें उम ( सहस्रस्थूणम् ) सहस्र वा अगम्य धूनीवाले जगत् राज्य वा वाहन को ( विभृथः ) धारण करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा और मन्त्रीजनों ! आप स्वयं धर्मात्मा होकर महत्स शास्त्रा जिसकी ऐसे राज्य के रक्षण के लिए वृष्टों को दण्ड देकर और श्रेष्ठों का गत्कार करके यशस्वी हों ॥ ६ ॥

किर प्रसङ्ग से बिछ बिछा बिचल को अगले मन्त्र में कहते हैं—

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यः क्षाजनीव ।

अद्रे क्षेत्रे निर्मिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥ ७ ॥

पदार्थ—इस संसार में जो ( हिरण्यनिर्णिग ) पृथिवी के सुवर्ण और अग्नि के तेज को अत्यन्त निश्चय करने और ( अधः ) जानेवाला ( अस्य ) इस राज्य और जगत् के मध्य में ( दिवि ) प्रकाश में ( अद्रे ) कल्याणकारक ( तिल्विले ) स्नेह के स्थान में ( क्षेत्रे ) निवास करते हैं जिस पुण्य कर्म में उस में ( वि, भ्राजते ) विशेष प्रकाशित हुना है और ( अक्ष्वाजनीव ) बिजुली के सदृश ( निर्मिता ) अत्यन्त मापी अथात् जाँची गई ( वा ) अथवा ( स्थूणा ) लोहे के सदृश धुँकीनीति

विशेष प्रकाशित होती है उस और उसको (अधिगम्यस्य) अधिक सुन्दर गृह में हुए (मध्य) मधुरादि पदार्थ के मध्य में हम लोग (सन्नेभ) विभाग करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य श्रेष्ठ व्यवहार में विराजमान, बिजुली आदि की विद्या को ग्रहण करते हुए गृह के कृत्य में यथावत् न्याय को करने है विभाग कर और विभाग देकर कृत्यकृत्य होने है वे नीतिवाले लोग हैं ॥ ७ ॥

फिर मित्रावरुण के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।

आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमलश्चक्षाये अदितिं वितिं च ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मित्र) (वरुण) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्तमान राजा और मन्त्री जनों आप दोनों जैसे (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) उदय में और (उषसः) प्रातः काल के (व्युष्टौ) विशेष दाह वा निवास में (हिरण्यरूपम्) (अयःस्थूणम्) सुवर्ण के स्तम्भ के सदृश तेजःस्वरूप को (आ, रोहथ) आरोहण करते हैं (अतः) इस कारण से (गर्तम्) गृह को अधिष्ठित हो के (अदितिम्) नहीं नष्ट होनेवाले कारण (वितिम्, च) और नाश होनेवाले कार्य का (चक्षाये) उपदेश करते हैं उन दोनों को हम लोग मिलें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार निवृत्त होता और प्रकाश प्रवृत्त होता है वैसे ही कार्य और कारणरूप विद्या के जाननेवाले राजा और मन्त्रीजनों मित्र के सदृश वर्तवि करके दुःख न्याय का प्रचार करावें ॥ ८ ॥

यद्गृहिष्ठं नातिविधे सुदान् अक्षिष्ठं शम्भुं सुवनस्य गोपा ।

तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिंघासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (सुदान्) उत्तम दान करनेवाले (भुवनस्य) सम्पूर्ण ससार के (गोपा) रक्षक (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के सदृश वर्तमान राजा और मन्त्री जनों आप दोनों जैसे (न, अतिविधे) अतिवेचन करने के प्रयोग्य (यत्) जिस (अक्षिष्ठम्) अत्यन्त बृद्ध (अक्षिष्ठम्) छिद्ररहित (शम्भुं) गृह को प्राप्त हुईए (तेन) इससे (न.) हम लोगों को (अविष्टम्) व्याप्त हुईए जिससे हम लोग (सिंघासन्तः) विभाग करते हुए (जिगीवांसः) शत्रुओं के घनों को जीतने की इच्छा करनेवाले (स्याम) होंवें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जन अति उत्तम गृहों को रचकर और वहाँ विचार करके विजय, विद्या और क्रिया को प्राप्त होने हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्त में सूर्य, प्राण, उदान और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह श्रीमत्परमहंसपरिप्राजकाचार्य श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमद्विद्यानन्दसरस्वतीस्वामिबिरचित उत्तम प्रमाण युक्त ऋग्वेदभाष्य में चतुर्थाष्टक में तीसरा अध्याय इकतीसवाँ वर्ग और पञ्चम मण्डल में बासठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥



## अथ चतुर्थाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । यद्गृद्धं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

अथ सप्तर्षस्य त्रिविष्टपस्य सुक्तस्यार्चनानां आश्रये ऋषि । मित्रावरुणौ देवते ।

१, २, ४, ७ निष्कृजगती । ३, ५, ६ जगतीछन्दः । निषादः स्वर ।

अब चतुर्थाध्याय का आरम्भ है और पञ्चम मण्डल में सात ऋचावाले त्रैसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मित्रावरुण विद्वद्विषय को कहते हैं

ऋतस्य गोपावधिं तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणां परमे व्योमनि ।

यममित्रावरुणावधो यं तस्मै बर्हिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (ऋतस्य) ऋत अर्थात् सत्य की (गोपी) रक्षा करनेवाले और (सत्यधर्माणां) सत्य है धर्म जिनका हम (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्तमान राजा और भ्रमात्य जनों (युवम्) आप दोनों (परमे) अति उत्तम (व्योमनि) आकाश के सदृश प्रकाशित व्यापक परमात्मा में स्थित होकर (रथम्) वाहन पर (अधि, तिष्ठथ) वर्तमान हुईए और (अत्र) इस राज्य में (यम्) जिसकी (अवधः) रक्षा करते हैं (तस्मै) उसके लिए (बर्हिः) अन्तरिक्ष से (वृष्टिः) वर्षा (मधुमत्) मधुर आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त (पिन्वते) सिञ्चन करती है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जहाँ धार्मिक विद्वान् पुत्र की जैसे वैसे प्रजा की पालना करनेवाले राजा आदि होने हैं वहाँ उचित काल में वृष्टि और उचितकाल में मृत्यु होता है ॥ १ ॥

फिर मित्रावरुणाचार्य राजा अमात्य विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदधे स्वर्शान् ।

वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) वायु और सूर्य के सदृश वर्तमान (स्वर्शान्) सुख को दिखाने और (सम्राजौ) उत्तम प्रकार शोभित होनेवाले राजा और मन्त्री जनों आप जैसे (तन्यवः) बिजुलियाँ (यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (वि, चरन्ति) विचारती और (वृष्टिम्) वृष्टि को उत्पन्न करती हैं वैसे (अमृतम्) इस (भुवनस्य) ससार के मध्य (विषये) संश्राम में (राज्यः) प्रकाशित होते हैं हम लोग (वायु) आप दोनों से (राधः) भण और (अमृतत्वम्) जल होने की (ईमहे) याचना करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु और बिजुली वर्षा करके सब मनुष्यों को धा और धान्य से युक्त करत है वैसे धार्मिक राजा और मन्त्री प्रजाओं को ऐश्वर्ययुक्त करें ॥ २ ॥

सम्राजां उग्रा वृषभा दिवस्पतीं पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।

चित्रेभिरग्रेरुप तिष्ठथो रथं धां वर्षयथो अमुरस्य मायया ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे राजा और मन्त्रिजनों जैसे (वृषभा) बलिष्ठ वृष्टि के कारण (पृथिव्या) भूमि के और (विष) प्रकाश के (पती) पालन करनेवाले (विष-वर्णौ) प्रकाशक (मित्रावरुणा) वायु और सूर्य (चित्रेभि) अद्भुत (अर्ध) मेघों के साथ (उग्र, तिष्ठथ) समीप में स्थित होने हैं और (अमुरस्य) मेघ के (मायया) आच्छादन आदि से वा वृद्धि से (रथम्) शब्द को और (धाम्) प्रकाश को करते हैं वैसे (उग्रा) तेजस्वी (सम्राजौ) उत्तम प्रकार शोभित होनेवाले आप दोनों प्रजाओं के समीप स्थित होते हैं और कामनाओं से प्रजाओं को (वर्षयथ) वृष्टियुक्त करने हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे प्रजाजनों ! जो राजा और मन्त्री आदि जन न्याय और विनय से प्रकाशमान, दुष्टों में तेजस्वी और कठोर दंड के देनेवाले, सूर्य और वायु के सदृश मनोरथों की वृष्टि करनेवाले हैं वे यशस्वी और प्रजाओं के प्रिय होते हैं ॥ ३ ॥

माया वां मित्रावरुणा दिवि भिता सूर्यो व्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।

तमग्रेषु वृष्ट्या गृहथो दिवि पर्जन्य इप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के सदृश वर्तमान राजा और मन्त्री जनों (वायु) आप दोनों की (विषि) बिजुली में (भिता) आश्रित (माया) वृद्धि (सूर्यः) सूर्य के सदृश जिस (व्योतिः) प्रकाशरूप (चित्रम्) अद्भुत (आयुधम्) युद्ध करते हैं जिससे उस शस्त्र को (चरति) प्राप्त होती है (तम्) उसको (अग्रेषु) मेघ से और (वृष्ट्या) वृष्टि से (गृहयः) चरते हो, हे (पर्जन्य) मेघ के समान वर्तमान जन (विषि) सूर्य के प्रकाश में (अधुमन्तः) बहुत मधुर कर्म विद्यमान जिनके वे (इप्सा) विमोह के करनेवाले (ईरते) चलते वा कंपते हैं वैसे आप जानिए ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो राजा और मन्त्रीजन सूर्य और चन्द्रमा के सदृश तीव्र और शान्तस्वभाव वाले बुद्धिमान दृष्टि के सदृश प्रजाओं का पालन करते हैं वे सब काल में सुख की वृद्धि करते हैं ॥ ४ ॥

अब मित्रावरुणवाच्य शिल्प विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्ठिषु ।

रजांसि चित्रा बि चरन्ति तन्यवो दिवः संम्राजा पर्यसा न उक्षतम् ॥५॥

पदार्थ—हे ( विव. ) कामना करनेवालों के प्रति ( संम्राजा ) उत्तम प्रकार शोभित होनेवाले ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु के सदृश यज्ञ और शिल्प के करनेवाली जो ( मरुत. ) कारीगर मनुष्य ( शूरो ) भयरहित वीरजनों को मारने वाले के ( न ) सदृश ( शुभे ) कल्याण के लिए ( सुखम् ) सुखकारक ( रथम् ) विमान आदि वाहन को ( युञ्जते ) युक्त करते हैं और ( गविष्ठिषु ) किरणों की सङ्गतियों में ( चित्रा ) अद्भुत ( रजांसि ) लोक और ( तन्यवः ) विजुलियाँ ( बि ) विशेष करके ( चरन्ति ) चलती हैं उनके साथ ( पर्यसा ) जल में ( न ) हम लोगों को प्राप दोनों ( उक्षतम् ) सींचिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जो शूरवीर जनो के सदृश सुखकारक रथ पर चढ़कर यथेष्ट स्थान में घूमते हैं वे प्रसीष्ट पदार्थ को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मित्रावरुणवाच्य विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वाचं सु मित्रावरुणाविगवर्ता पर्जयश्चित्रा वंदति त्विषीमतीम् ।

अत्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( मित्रावरुणा ) पढ़ाने और पढ़नेवाले जनो आप दोनों जैसे ( पर्जन्य ) मेघ ( वसति ) शब्द करता है वैसे ( इरावतीम् ) जल विद्यमान जिसमें उम ( त्विषीमतीम् ) प्रच्छदी विद्याओं के प्रकाश से युक्त ( चित्रा ) प्रज्जुग ( वाचम् ) वाणी को कहो जैसे ( अत्रा ) मेघ प्रकाश में हैं वैसे ही ( मरुतः ) मनुष्य ( सु, मायया ) उत्तमबुद्धि से ( सु ) उत्तम प्रकार ( वसत ) बसें और हे मित्रावरुण ( अरुणम् ) प्राप्त होने योग्य ( अरेपसम् ) अपराधरहित ( वाम् ) कामना की प्राप लोग ( वर्षयतम् ) वृष्टि करिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्या से युक्त वाणी को प्राप्त होकर मेघ के सदृश मनाओं की वृष्टि करने हैं वे बुद्धि से विद्वान् करके अपराधरहित करते हैं ॥ ६ ॥

धर्मेणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेये असुरस्य मायया ।

ऋतेन विरवं भुवनं बि राजथः सूर्यमा धन्तो दिवि चित्रं रथम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( विपश्चिता ) विद्वान् ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्तमानों जिसमें आप दोनों ( असुरस्य ) मेघ के ( मायया ) धाडम्बर से और ( धर्मेणा ) धर्म से ( व्रता ) सत्य भाषण आदि व्रतों की ( रक्षेये ) रक्षा करते हैं तथा ( ऋतेन ) यथार्थ से ( विरवं ) प्रविष्ट होत हैं ( भुवनम् ) वा होने हैं जिसमें उस सम्पूर्ण जगत् को ( हि, राजथः ) विशेष करके प्रकाशित करने हैं और ( बिबि ) प्रकाश में ( सूर्यम् ) सूर्य के सदृश ( चित्रम् ) अद्भुत में हुए ( रथम् ) वाहन को ( आ, धन्तो ) धारण करने ह इसमें मत्कार करने के योग्य होने हैं ॥७॥

भाषार्थ—जो मनुष्य धर्म सम्बन्धी सत्य भाषण आदि व्रत वा कर्मों का करते हैं वे सूर्य के सदृश सत्य में प्रकाशित होत हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में मित्रावरुण और विद्वानों का गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के प्रर्थ की इगसे पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह त्रेसठवाँ सूक्त और पहिला धर्म समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तधंस्य चतु षष्टितमस्य सूक्तस्य अचनाना ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते ।

१, २ विराडनुष्टुप् । ६ निष्पदानुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वर । ३, ५ भुरिगुणिक । ४ उष्णिक् छन्दः । ऋषभ स्वर । ७ निष्पदङ्गित-छन्दः । पञ्चम स्वर ।

अब सात ऋचावाले चौसठवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में मित्रावरुणपदवाच्य विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

वरुणं वो रिशादममृचा मित्रं हवामहे ।

परि व्रजेव बाह्योर्जगन्वासा स्वर्णरम् ॥१॥

पदार्थ—जैसे ( जगन्वासा ) जाते हुए प्राण और उदान वायु के सदृश वर्तमान जन ( स्वर्णरम् ) सुख को प्राप्त करनेवाले को ( बाह्यो ) भुजाओं की ( व्रजेव ) चलत हैं जिससे उम गति से जैसे वैसे ( व. ) प्राण लोगों को स्वीकार करते हैं वैसे हम लोग ( रिशादमम् ) शत्रुओं के रोकनेवाले ( वरुणम् ) उत्तम विद्वान् और ( मित्रम् ) मित्र का ( ऋचा ) स्तुति में ( परि ) सब ओर से ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे विद्वान्-जन प्रीति से आप लोगों को ग्रहण करते हैं वैसे इनका आप लोग भी स्वीकार करिये ॥ १ ॥

सा बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।

शेवं हि जार्यं वां विश्वासु आसु जोगुवे ॥२॥

पदार्थ—हे प्राण और उदान वायु के सदृश वर्तमानों ( सा ) वे दोनों आप ( बाहवा ) बाह्य और ( सुचेतुना ) उत्तम विज्ञान से ( अस्मे ) इस ( अर्चते ) सत्कार करनेवाले जन के लिए ( शेवम् ) सुख को ( हि ) ही ( प्र, यन्तम् ) प्रयत्न करने हुए ( वासु ) आप दोनों का ( जार्यम् ) जरा वृद्धावस्था में उत्पन्न विषय का मैं ( विश्वासु ) सम्पूर्ण ( आसु ) भूमियों में ( जोगुवे ) उपदेश करता हूँ वैसे उस की आप लोग प्रशंसा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सब पृथिवी पर विद्या और बाहुबल से उत्तम पुरुषों के लिए सुख देते हैं उनके लिये हम लोग भी सुख देंगे ॥ २ ॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यजनमस्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।

अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सखिरे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( अस्य ) इस ( प्रियस्य ) सुन्दर ( अहिंसानस्य ) हिंसा से रहित ( मित्रस्य ) मित्र के ( शर्मणि ) गृह में ( यत् ) जिस ( गतिम् ) गमन को विद्वान् जन ( सखिरे ) प्राप्त होने हैं उस गमन को मैं ( यत् ) निश्चित ( अयाम् ) प्राप्त होऊँ और ( पथा ) मार्ग में ( यायाम् ) जाऊँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—गमन मनुष्य विद्वानों का अनुकरण कर और धर्ममार्ग से चल कर उत्तम गति को प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

फिर मित्रावरुणपदवाच्य विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।

यद् अये मघोर्नां स्तोतृणां च स्पर्धसं ॥४॥

पदार्थ—हे ( मित्रावरुणा ) अध्यापक और उपदेशक जनो ( युवाभ्याम् ) आप दोनों से ( ऋचा ) स्तुति से ( स्पर्धसे ) स्पर्धा के लिये ( यत् ) जिस ( मघो-नाम् ) बहुत धनवालों के ( स्तोतृणाम्, च ) और विद्वानों के ( अये ) गृह में ( उपमम् ) उपमा को जैसे मैं ( धेयाम् ) धारण करूँ वैसे उसको ( ह ) निश्चय आप धारण करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों की उपमा को ग्रहण करें ॥ ४ ॥

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।

स्वे अये मघोर्नां सखीनां च वृधसं ॥५॥

पदार्थ—हे ( मित्र ) मित्र आप और ( वरुणः ) श्रेष्ठ जन आप दोनों ( सुदीतिभिः ) अच्छे प्रकाशों में ( मघोर्नाम् ) प्रशंसित धन जिनके ऐसे ( सखी-नाम् ) मित्रों और ( न ) हम लोगों की ( वृधसे ) वृद्धि के लिये ( स्वे ) अपने ( अये ) निवासस्थान में ( आ ) सब ओर वसिये ( सधस्थ, च ) और तुल्यस्थान में ( आ ) सब ओर से वसिये तथा हम लोग भी आप दोनों के निवासस्थान ( च ) और तुल्यस्थान में बसें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—वे ही मित्र श्रेष्ठ हैं जो परस्पर की उन्नति के लिये सुखदुःख और सङ्ग में प्रयत्न करने हैं ॥ ५ ॥

फिर विरोध छोड़ धनप्राप्ति विषय को कहते हैं—

युव नो येषु वरुण सत्रं बृहन्च बिभृथः ।

सुह णो बाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६॥

पदार्थ—हे ( वरुण ) उत्तमो ( च ) और हे मित्र ( युवम् ) आप दोनों ( येषु ) जिन में ( न ) हम लोगों के लिये ( बृहत् ) बड़े और ( उष ) बहुत ( अयम् ) धन का ( बिभृथः ) धारण करते हैं और ( नः ) हम लोगों की ( बाज-सातये ) सङ्ग्राम के लिए ( राये ) धन के और ( स्वस्तये ) सुख के लिये ( कृतम् ) किया उन में वैसे ही हूँजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिए कि विरोध का त्याग कर और उत्तम प्रकार मिलने से उद्यम करके विजय और धन आदि को प्राप्त करें ॥ ६ ॥

उच्छन्त्यां मे यजता देवसन्ने रुद्राद्वि ।

सुतं सोमं न हस्तिमिरा पद्मिषीवतं नरा बिभ्रतावर्धनानसम् ॥७॥२

पदार्थ—हे प्राण और उदान वायु के सदृश वर्तमान ( यजता ) मिलनेवाले ( नरा ) नायक राजा और मन्त्रीजन आप दोनों ( उच्छन्त्याम् ) विवास-कारी हुईं मे तथा ( रुद्राद्वि ) प्रकाशमान किरणों से युक्त ( देवसन्ने ) विद्वानों के धन का



राज्य में ( सुतम् ) उत्पन्न किये गये ( सोमम् ) ऐश्वर्य को ( हस्तिभिः ) हाथियों से ( न ) जैसे वेले ( पशूभिः ) पैरों से ( बाधतम् ) प्राप्त होओ और ( अर्धनाम-सम् ) श्रेष्ठ नासिका जिसकी उसकी ( शिखरी ) धारण करते हुए ( मे ) मेरे उत्पन्न किये गये ऐश्वर्य को ( आ ) अच्छे प्रकार प्राप्त हुईये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे पुरुषार्थी राजजनों ! प्रजाओं का न्याय में पालन करके विद्वानों के धन को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

इस सूक्त में प्राण और उदान के सदृश वर्तमान तथा विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौतहवां सूक्त तथा द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ षड्वचस्य षड्वचसिष्ठतमस्य सूक्तस्य रातहव्यभाज्ये ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, ४ अनुष्टुप् । २ निबृबनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ स्वरानुष्टुप् । ४ भुरिगुणिकछन्दः । ऋचमः स्वरः । ६ विराट्-पङ्क्तिछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ छः ऋचावाले षेठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम सूक्त में मित्रावरुण पदवाच्य पढ़ने पढ़ानेवाले वा उपदेश योग्य वा उपदेश देनेवाले के विषय में कहते हैं—

यश्चिकेत स सुकृतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।

वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥१॥

पदार्थ—( य. ) जो ( सुकृतुः ) उत्तम प्रकार बुद्धिमान् और ( वरुणः ) श्रेष्ठ है ( सः ) वह ( चिकेत ) जाने और जो ( देवत्रा ) विद्वानों में विद्वान् है ( सः ) वह ( नः ) हम लोगों को ( ब्रवीतु ) कहे ( वा ) वा ( यस्य ) जिसका ( दर्शतः ) देखने के योग्य ( मित्रः ) मित्र है वह हम लोगों की ( गिरः ) वागियों को ( वनते ) पालन करता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो हम लोगों के मध्य में अधिक विद्वान् होवे वही उपदेश करे और जो अधिक ज्ञानवान् होवे वह सत्य और असत्य को अलग करे ॥ १ ॥

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घभृत्तमा ।

ता सत्पती ऋताशुधं कृतावाना जनेजने ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जो ( दीर्घभृत्तमा ) दीर्घकालपर्यन्त अत्यन्त शासन को सुननेवाले ( श्रेष्ठवर्चसा ) श्रेष्ठ अध्ययन जिनका ऐसे ( राजाना ) प्रकाशमान जन वर्तमान हैं ( ता ) वे दोनों और जो ( जनेजने ) मनुष्य मनुष्य में ( सत्पती ) श्रेष्ठों के पालन करने और ( ऋताशुधं ) सत्य को बढ़ानेवाले ( कृता-वाना ) तथा सत्य विद्यमान जिन में ( ता, हि ) उन्हीं दोनों का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य बहुभुत, पूर्ण विद्यावाने, सत्य धर्म में निष्ठा करने वाले और जो विद्या की प्रवृत्ति में प्रीति करनेवाले हो वे ही उपदेशक और अध्यापक हों ॥ २ ॥

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रवे सचा ।

स्वर्वासः सु चेतुना आजौ अभि प्र दावने ॥३॥

पदार्थ—हे प्राण और उदान के समान वर्तमानों ( स्वर्वासः ) अच्छे ढाँड़े जिन के वे ( सु, चेतुना ) उत्तम ज्ञानवान् के साथ ( बाधने ) देनेवाले के लिए ( आजौ ) सभाओं के ( अभि, प्र ) सम्मुख अच्छे प्रकार कहे उन को मैं ( उप, ब्रवे ) समीप में कहूँ । हे अध्यापक और उपदेशक जनो जिन ( पूर्वा ) प्रथम विद्या पढ़े हुए ( वास् ) आप दोनों को ( इषाम् ) प्राप्त होता हुआ ( अवसे ) रक्षा आदि के लिए वर्तमान हैं ( ता ) उन ( सचा ) मिले हुआ के मैं समीप में कहता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जैसे उपदेशक जन उपदेश देवें वैसे ही जिनको उपदेश दिया जाय वे धीरों को भी उपदेश करें ॥ ३ ॥

मित्रो अहोरिचिवाहु सयाय गातुं वनते ।

मित्रस्य हि मत्तुर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो ( मित्रः ) मित्र ( अहोः ) दुष्ट आचरण से ( चित् ) भी विमुक्त करके ( आत् ) अन्तर ( उच ) बहुत ( सयाय ) निवास के लिए ( गातुम् ) पृथिवी को ( वनते ) सेवन करता है वह ( हि ) निश्चय से ( मत्तुर्वतः ) शीघ्र करनेवाले ( विधतः ) परिचरण करते हुए ( मित्रस्य ) मित्र की जो ( सुमतिः ) श्रेष्ठ बुद्धि ( अस्ति ) है उसको ग्रहण करे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—वे ही मित्र हैं जो निष्कपटता से और शुद्धभाव से परस्पर के अन्यों के साथ वर्तमान हैं ॥ ४ ॥

वय मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।

अनेहसस्त्वोतपः सत्रा वरुणशेषसः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जैसे ( अनेहसः ) नहीं हिसक होत हुए ( स्त्वोतपः ) आप से गलित और ( वरुणशेषसः ) उत्तम जन शेष जिनके वे ( वयम् ) हम लोग ( सत्रा ) गत्य से युक्त ( मित्रस्य ) मित्र के ( सप्रथस्तमे ) प्रतिविम्बार युक्त ( अवसि ) रक्षण आदि कर्म में ( स्याम ) प्रवृत्त होवे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सदा कृतज्ञता करें और कृतघ्नता का दूरसे त्याग करें ॥ ५ ॥

युवं मित्रेभं जनं यतयः सं च नयथः ।

मा मयो नः परि रूयतं मो अस्माकमृषीणां गोपीये न उरूयतम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( मित्रा ) प्राण और उदान के समान वर्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो ( युवम् ) आप दोनों ( इमम् ) इस ( जनम् ) उपदेश देनेयोग्य जन को ( यतयः ) प्रेरणा करते और ( सम् नयथ, च ) प्राप्त कराते हैं तथा ( मयो नः ) बहुत जनो से युक्त ( नः ) हम लोगों का मत ( परि, रूयतम् ) निरादर कीजिये और ( अरूयतम् ) वेदार्थ के जाननेवाले ( अस्माकम् ) हम लोगों का ( गोपीये ) गोप्यो के पीने योग्य दुग्ध आदि में ( जो ) नहीं निरादर करिये और शुभ कर्ममें हम लोगों को ( उरूयतम् ) प्रेरणा करिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग सब लोगों को प्रयत्न से युक्त करके सुख को प्राप्त कराइये और हे विद्यार्थी जनो वा श्रोतृजनो ! आप लोग हम अध्यापक और उपदेशकों का अपमान मत करो इस प्रकार वर्तव्य कर सत्य धर्म का सेवन हम लोग करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में मित्रावरुण पदवाच्य अध्यापक और अध्ययन करने तथा उपदेश करने और उपदेश देने योग्यों के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह षेठवां सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥

अथ षड्वचस्य षड्वचसिष्ठतमस्य सूक्तस्य रातहव्यभाज्ये ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, ५, ६ विराट् अनुष्टुप् । २ निबृबनुष्टुप् । ३, ४ स्वरानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ छः ऋचावाले छियासठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्य क्या करें इस विषय में कहते हैं—

आ चिकितान सुकृतु देवो मर्त्त रिशादसा ।

वरुणाय कृतपेशसे दधीत मयसे महे ॥१॥

पदार्थ—हे ( चिकितान, मर्त्त ) ज्ञान और मरण धर्मयुक्त आप ( कृतपेशसे ) मर्त्यस्वरूप और ( प्रपते ) प्रयत्न करने हुए ( महे ) बड़े ( वरुणाय ) उत्तम व्यवहार युक्त के लिए ( रिशादसा ) दुष्टों के मारनेवाले ( सुकृतु ) उत्तम बुद्धिमान् ( देवो ) दो विद्वानों का ( आ ) सब प्रकार से ( ब्रवीत ) धारण करिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—वही विद्वान् होता है जो विद्वानों का सङ्ग करके बुद्धि को बढ़ाता है ॥ १ ॥

ता हि क्षत्रमविहृतं सम्यगसुर्य्यमाशाते ।

अथ व्रतेव मानुषं स्वर्णं धायि दर्शतम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! ( ता ) वे ( हि ) ही ( अविहृतम् ) नहीं कुटिल ( असु-व्यम् ) विद्वानों के लिए हितकारक ( सम्यक् ) उत्तम प्रकार चलनेवाले ( क्षत्रम् ) धन वा राज्य को ( आशाते ) व्याप्त होते हैं ( अथ ) इसके अन्तर जिन्होंने हित ( मानुषम् ) मनुष्य सम्बन्धी ( व्रतम् ) देखने योग्य ( व्रतेव ) कर्मों के सदृश और ( स्वः ) सुख के ( न ) सदृश ( धायि ) धारण किया ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सब मनुष्य धर्मपथ से सुख और कर्म को धारण करें ॥ २ ॥

ता वामेये रथानामुर्वी गच्छन्तिमेवाम् ।

रातहव्यस्य सुष्टिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ॥३॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशकजन आप दोनों ( एवाम् ) इन ( रथानाम् ) विमान आदि वाहनो का ( रातहव्यस्य ) दिया है देने योग्य पदार्थ जिसने उसको ( सुष्टिम् ) उत्तम प्रशंसा को और ( गच्छन्तिम् ) मार्ग को ( एव ) प्राप्त होने को प्रवृत्त होते हैं और जैसे विद्वान् जन ( स्तोमै ) प्रशंसाओं से इन को ( उर्वीम् ) पृथिवी को धारण करता है वैसे ( ता ) उन ( दधृक् ) प्रगल्भता को प्राप्त ( वाम् ) आप दोनों को और उस विद्वान् को हम लोग ( वामामहे ) अच्छे प्रकार जानते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो जगत् के कल्याण के लिए सृष्टिकर्म से पदार्थविद्या को प्रकाशित करते हैं वे भव्य होते हैं ॥ ३ ॥

अथा हि काव्या युवं दक्षस्य पुमिरञ्जता ।

नि केतुना जनानां चिकेथे पृतदक्षसा ॥४॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जना ( पूतदक्षसा ) पवित्र बल जिन का ऐसे ( युवम् ) आप दोनों ( केतुना ) बुद्धि से दक्षभूत आश्चर्य रूप ( काव्या ) कवियों के कम्मों को ( चिकेथे ) जानते हैं ( अथा ) हम के अनन्तर ( हि ) जिन से ( जनानाम् ) मनुष्यों के ( दक्षस्य ) बल सत्रन्धी ( पुमिः ) नगरी से ( नि ) निरन्तर कर के जानते हैं उन का हम लोग मदा मत्कार करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को यह योग्य है कि मध्य पूर्ण विद्वान् होके अज्ञानों को अध्यापन और उपदेश से उपकृत कर ॥ ४ ॥

स्त्री भी विद्वानो के समान होकर उत्तमाचरण करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तद्वनं पृथिवि बृहच्छूत्र एष ऋषीणाम् ।

जपसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५॥

पदार्थ—हे ( पृथिवि ) पृथिवी के मनुष्य वर्तमान विद्या से युक्त स्त्री जैसे मेघ वा यागी जन ( यामभिः ) प्रहरा वा प्रहर म उत्पन्न कम्मों में ( पृथु ) विस्तीर्ण जल को ( भरम् ) पूरा ( अति, भरन्ति ) वर्णन है और जैम ( जपसाना ) जान हुए वा विशेष कर के जाना हुए वर्तमान है वैसे ( ऋषीणाम् ) मन्त्राध जानन वालों के ( तत् ) उन ( बृहत् ) बड़े ( श्रुतम् ) मन्त्र को वा जल को ( अब ) और अन्न वा श्रवण को ( एषे ) प्राप्त ज्ञान का प्रवृत्त होओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वानकमुत्पन्नोपमानद्वार है । जो स्त्रिया विद्यायुक्त होकर सत्य, धर्म और उत्तम स्वभाव का स्वीकार करने मध्य क मनुष्य सुखा की वृद्धि करती है तो वे बड़े सुख का प्राप्त होती हैं ॥ ५ ॥

मनुष्यों को न्याय से राज्य की रक्षा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यद्वामीयक्षसा मित्रं वयं च सूरयः ।

व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतैमहि स्वराज्ये ॥६॥४॥

पदार्थ—हे ( ईयक्षसा ) प्राप्त होने वा जानने योग्य दर्शन वा कथन जिन का वे ( मित्रा ) मित्र ( वाम् ) आप दोनों के ( यत् ) जिन ( व्यचिष्टे ) अलग अलग व्याप्त और ( बहुपाय्ये ) बहुता से रक्षा करने योग्य राज्य ( स्वराज्ये, च ) और अपने राज्य में ( सूरयः ) विद्वान् जन ( वयम् ) हम लोग ( आ ) सब प्रकार में ( यतैमहि ) यत्न करें उस में यत्न करें ॥६॥

भाषार्थ—मनुष्यों की चाहिये कि मन्त्रन कर के अपने और हमारे के राज्य की न्याय से रक्षा कर के धर्म की उन्नति करें ॥६॥

इस सूक्त में मित्र और श्रेष्ठ विद्वान् के और विद्या युक्त स्त्री के गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छियासठवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवक्षस्य सप्तवर्षाठनमस्य सूक्तस्य यज आश्रयं ऋषिः ।

मित्रावरुणौ वेदते । १, २, ४ निचूदनुष्टुप् । ३, ५

विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले सरसठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किसके तुल्य क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।

वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमांशाथे ॥१॥

पदार्थ—हे ( देवा ) श्रेष्ठ स्वभाव वान ( आदित्या ) अविनाशी ( मित्र ) मित्र ( वरुण ) श्रेष्ठ आप दोनों ( बृहत् ) बड़े ( निष्कृतम् ) उत्पन्न हुए को ( जयतम् ) उत्तम प्रकार मिले है ( अयमस्य ) न्यायकारी ( इत्या ) इस प्रकार से आप भी मिलिये और हे मित्र श्रेष्ठ जनों ! तुम जैसे ( बृहत् ) सत्य ( बळित्थम् ) अत्यन्त बड़े हुए ( क्षत्रम् ) राज्य वा धन को ( आशाथे ) प्राप्त होते हो वैसे इस को न्यायकारी भी प्राप्त हो ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन इस सत्ता में धर्म-युक्त कम्मों को करें वैसे राज्य का राजा आदि पालन करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को किसके तुल्य क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यद्योनिं हिरण्यं वरुण मित्रं सदधः ।

वर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥२॥

पदार्थ—हे ( रिशादसा ) दुष्टों को दण्ड देने वाले ( मित्र ) मित्र ( वरुण ) श्रेष्ठ ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के ( वर्तारा ) धारण करनेवाले तुम ( यत् ) जिस ( सुम्नम् ) सुख को ( यन्तम् ) प्राप्त होव हुए और ( हिरण्यम् ) तेजःस्वरूप ( योनिम् ) कारण को ( आ ) सब प्रकार से ( सदधः ) प्राप्त होते हो उसको हम लोग भी प्राप्त करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्पन्नोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन तेजःस्वरूप विजुलीरूप सूर्य आदि कारण को जान के उपकार करते हैं वैसे ही इसकी करके मनुष्य सुख को प्राप्त हो ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

व्रता पदेवं सश्वरे पान्ति मर्त्यै रिषः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जो ( विश्वे ) सब ( विश्ववेदस ) सम्पूर्ण विद्या और ऐश्वर्य पाये हुए ( वरुण ) श्रेष्ठ ( मित्र ) और सब का मित्र ( अर्यमा ) और न्यायकारीजन ( पदेवं ) चलते हैं जिनसे उन वर्णों के सदृश ( व्रता ) सत्याचरणरूप कम्मों को ( सश्वरे ) प्राप्त होते वा जाते हैं और ( रिषः ) मारनेवाले से वा हिंसा से ( मर्त्यम् ) मनुष्य की ( पान्ति ) रक्षा करते हैं वे ( हि ) ही आप लोगों से भारर उरने योग्य हैं ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे प्राणी पैरों से अभीष्ट—एक स्थान से दूसरे स्थान को जाके अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं वैसे ही सत्यभाषण आदि कम्मों को धर्ममार्ग के लिये प्राप्त होकर अभीष्ट आनन्द को सिद्ध करा ॥३॥

फिर विद्वान् कैसे होकर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ते हि मस्या ऋतस्पृश ऋतावांशो जनंजने ।

सुनीयास सुदानवोऽहोरिचदुरुचक्रयः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( हि ) जिनसे ( जनेजने ) मनुष्य मनुष्य में जो ( मस्या ) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ ( ऋतस्पृश ) यथाथ को स्वीकार करनेवाले ( ऋतावान् ) मन्त्र मन वा कर्म विद्यमान जिनमें वे ( सुदानवः ) सुन्दर श्रेष्ठ विद्या आदि का दान जिनका और ( सुनीयास ) उत्तम नीति के देने और ( उरुचक्रयः ) बहुत करनेवाले बड़े पुण्याधी हुए ( अहो ) अपराध से ( चित् ) भी पृथक् हुए होव ( ते ) वे सबदा सब प्रकार से सत्कार करने योग्य हो ॥४॥

भाषार्थ—जो स्वयं धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले हुए दुष्ट आचरण से पृथक् वर्त्तव करके अन्य मनुष्यों को तादृश अर्थात् अपने समान करते हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥४॥

मनुष्य विद्वानो से किस प्रकार विद्याग्रहण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।

तस्मै वामेषते मतिरिन्द्रिय एषते मतिः ॥५॥५॥

पदार्थ—हे ( मित्र ) मित्र ( वाम् ) आप दोनों के ( तनूनाम् ) शरीरों को ( क ) कौन ( आ, ईषते ) सब प्रकार से प्राप्त होता है आप ( वा ) वा ( वरुण ) उत्तम स्वभावयुक्त कौन ( तु ) शीघ्र ( अस्तुतः ) नहीं प्रशंसित है और जो ( वाम् ) आप दोनों की ( मति ) बुद्धि हम लोगों को ( आ, ईषते ) सब प्रकार प्राप्त होती है और ( अत्रिभ्यः ) व्याप्त विद्या जिनमें उनके लिए ( मतिः ) मननशील अन्तःकरण की वृत्ति ( तु ) उत्तम प्रकार प्राप्त होती है ( तत् ) उसका हम लोग स्वीकार करें ॥५॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अध्यापक और उपदेशको को प्राप्त होकर उनके उपदेश और विद्या का ग्रहण करके उनसे बुद्धि और उत्तम किया का स्वीकार करते हैं वे प्रसिद्ध स्तुतिवाले होते हैं ॥५॥

उस सूक्त में मित्रावरुण और विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सरसठवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवक्षस्याष्टवर्षाठनमस्य सूक्तस्य यज आश्रयं ऋषिः ।

मित्रावरुणौ वेदते । १, २ पायत्री । ३, ४ निचूदगायत्री ।

५ विराड् गायत्री छन्दः । वज्रः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को परस्पर क्या करना चाहिये इस विषय को प्रथम मन्त्र में कहते हैं—

प्र वो मित्रार्य गायत वरुणाय विपा गिरा ।

महिषत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ( यः ) तुम लोगों के जो ( विद्या ) अनेक प्रकार से रक्षा करनेवाले ( बहिरांग ) बड़े अंग जिन के ये ( बृहत् ) बड़े ( अतः ) सत्य से युक्त को ग्रहण करें उन दोनों से ( मित्राण्य ) मित्र के और ( वरुणाण्य ) उत्तम आचरण वाले के लिए तुम ( गिरा ) वाणी से ( प्र, गायत ) प्रशंसा करो ॥१॥

**भाषार्थ—**जो अध्यापक और उपदेशक जन सब मनुष्यों को विद्यादि में परिचित करते हैं वे मनुष्यों में सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

मनुष्यों को यहाँ कैसे होना चाहिये इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**सञ्जाया या घृतयोनी मित्रचोभा वर्णश्च ।**

**देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो ( या ) जो ( घृतयोनी ) घृतयोनी अर्थात् जल कारण जिनका ये ( देवेषु ) विद्वानों में ( प्रशस्ता ) श्रेष्ठ ( सञ्जाया ) उत्तम प्रकार शोभित होनेवाले ( देवा ) दो विद्वान् अर्थात् ( मित्रः ) मित्र ( च ) और ( वरुण ) स्वीकार करने योग्य ( च ) भी ( उभा ) दोनों प्रवृत्त होते हैं उन दोनों का आप लोग बहुत आदर करिये ॥२॥

**भाषार्थ—**जो विद्वानों में विद्वान् राजपुत्र्य चक्रवर्तिराज्य को सिद्ध कर सकते हैं वे ही यगस्वी होते हैं ॥२॥

फिर राज्य कैसे उत्पत्ति को प्राप्त करना चाहिये इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**ता नः शक्रं पार्थिवस्य महो गयो दिव्यस्य ।**

**महिं वां सत्रं देवेषु ॥ ३ ॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो जो ( न ) हम लोगों के सम्बन्ध में ( पार्थिवस्य ) पृथिवी में विदित ( मह ) बड़े ( रायः ) धन के और ( दिव्यस्य ) शुद्ध व्यवहार में हुए का ( शक्रम् ) समर्थ, जिन ( वां ) आप दोनों का ( देवेषु ) सत्य विद्या को प्राप्त हुआ में ( महि ) बड़ा ( सत्रम् ) राज्य वा धन वर्तमान है ( ता ) उन आप दोनों का हम लोग सत्कार करें ॥३॥

**भाषार्थ—**हे राजपुरुषो आप लोग जो अपन राज्य की विद्वानों से रक्षा करें तो वह पृथिवी में विदित हुआ समर्थ होवे ॥३॥

विद्वानों के सद्गुण इतरजनों को वर्साव करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**ऋतमृतेन सपन्नेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवो वर्धते ॥४॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो जैसे ( ऋतेन ) सत्य स ( अतः ) सत्य का ( सपन्ता ) आक्रोश करत हुए ( इषिरम् ) प्राप्त होने योग्य ( वक्षम् ) धन को ( आशाते ) व्याप्त होते हैं और ( अद्रुहा ) डेव से रहित ( देवो ) दो विद्वान् जब ( वर्धते ) बृद्धि को प्राप्त होते हैं वैसे आप लोग भी प्रयत्न करो ॥४॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सद्गुण क्रिया कर के सदा ही बृद्धि करें ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या ज्ञान कर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**वष्टिद्यावा रीत्यापेवस्पती बानुमत्याः । बहुन्तं गर्त्तमाशाते ॥५॥६॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो जो ( वष्टिद्यावा ) वृष्टि और अन्तरिक्ष के कारण ( रीत्यावा ) रीति और जल जिनके सम्बन्ध में वह ( इषः ) धन आदि के ( पती ) पालक वायु और विद्युदग्नि ( बानुमत्या ) बहुत दान विद्यमान जिसमें उस पृथिवी के मध्य में ( बहुन्तम् ) बड़े ( गर्त्तम् ) गृह को ( आशाते ) व्याप्त होते हैं उन दोनों को आप लोग ज्ञानके उपकार करो ॥५॥

**भाषार्थ—**जो मनुष्य वृष्टि आदि में कारण सूर्य वायु और बिजुली आदि को जानें तो उस कार्य को कर सकें ॥५॥

इस सूक्त में मित्र श्रेष्ठ और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सञ्ज्ञति जाननी चाहिये ॥

यह अरसठवां सूक्त और छठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

श्री रोचनेति अनुष्टुप् चतुर्विंशत्यक्षः सप्ततितमस्य सूक्तस्य उत्पत्तिराश्रयः

ऋषिः । मित्रावरुणौ देवता । १, २ मित्रावरुणद्वयः । ३, ४

विराट्मित्रद्वयः । गायत्री स्वरः ॥

अब बार ऋचा वाले उग्रहस्तरण सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इस

सप्तर में मनुष्यों को क्या ज्ञान कर क्या करना चाहिये इस विषय की कहते हैं—

**श्री रोचना वर्णश्च त्रींशु घन्त्रीणि मित्र धारयथो रक्षांसि ।**

**बावधानावमति क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्मथ ॥ १ ॥**

**पदार्थ—**हे ( मित्र ) प्राणवायु के और ( वरुण ) उदानवायु के सद्गुण वर्तमान जैसे प्राण और उदानवायु वा ( श्री ) तीन अर्थात् भूमि बिजुली और सूर्य रूप अग्नि जो ( रोचना ) प्रकाश होने योग्य उनको और ( त्रींशु ) तीन ( घन् ) प्रकाशों ( उत्त ) और ( क्षत्रिय ) प्रकाशित होने योग्य ( रक्षांसि ) लोको को ( बावधानां ) बढाने हुए ( क्षत्रियस्य ) राजपुत्र राजा के ( अवमतिम् ) रूप को और ( अनुव्रतम् ) नहीं जीर्ण हुए ( अनुव्रतम् ) कर्म वा स्वभाव को ( रक्ष-माणां ) रक्षा करने हुए धारण करने हैं वैसे इन दोनों को आप दोनों ( धारयथ ) धारण करते हैं ॥१॥

**भाषार्थ—**इस सप्तर में तीन प्रकार का प्रकाश है एक सूर्य का दूसरा बिजुली का तीसरा पृथिवी में वर्तमान अग्नि का, उन तीनों को जो क्षत्रिय आदि जानें वे असंयराज्य करने को समर्थ हों ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**इरावतीवरुण क्षेत्रां वां मधुमदां सिन्धुवो मित्र दुहे ।**

**त्र्यस्तस्थुर्धृषभासंस्तिसृणां धिषणां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥**

**पदार्थ—**हे ( वरुण ) उत्तम कर्म के करनेवाले ( मित्र ) मित्र ( वां ) आप दोनों को जो ( इरावती ) बहुत अन्न आदि सामग्रीया ( धेनवः ) और वाणिजा गौको के सद्गुण ( मधुमत् ) मधुमान् जैसे हो वैसे ( दुहे ) अच्छे प्रकार पूरित करती हैं और जो ( सिन्धुवः ) नदियां वे ( वां ) आप दोनों को उत्तम प्रकार पूरित करती हैं ( तिसृणाम् ) तीन प्रकार के ( धिषणाम् ) कर्म उपा-यना और ज्ञान के जाननेवालों के ( त्र्य ) तीन ( द्युमन्तः ) उत्तम कामनाओं से युक्त ( धृषभास ) वर्णितवाले ( रेतोधा ) और जो वीर्य को धारण करता है वह ( वि ) विशेष करके ( तस्थुः ) स्थित होते हैं उनको आप दोनों सम्युक्त करिये ॥ २ ॥

**भाषार्थ—**हे सब के मित्र जनो आप लोग गौ के सद्गुण सुख के देने वाले नदी के सद्गुण मल के दूर करने बुद्धि के देने और कामनाओं की सिद्धि के देने वाले हूजिये ॥ २ ॥

मनुष्यों को निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**प्रातर्द्वीमदिति जोहवीमि मध्यन्दिनं वदिता सूर्यस्य ।**

**राये मित्रावरुणा सर्वतातेत्ये तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥**

**पदार्थ—**हे ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु के सद्गुण माना और पिता जैसे मैं ( सखताता ) सब के सुख देनेवाले यज्ञ म ( राये ) धन आदि के लिये ( तोकाय ) छोट ( तनयाय ) कुमार के अर्थ ( प्रातः ) प्रातःकाल ( देवीम् ) श्रेष्ठ बुद्धि को ( अविमिम् ) अविच्छिन्न बोध से युक्त को और ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( मध्यन्दिने ) मध्याह्न ( उदिता ) उदित में ( यो ) सम्युक्त ( शम् ) सुख को ( जोहवीमि ) अत्यन्त ग्रहण करता हूँ और मैं ( ईत्ये ) प्रशंसा करता हूँ वैसे आप दोनों आचरण कीजिये ॥ ३ ॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य कुटुम्ब के पालन के लिए श्रेष्ठ पुरुषों की शिक्षा और बुद्धि के लिए सर्वदा प्रयत्न करने हैं वे विद्वानों के कुल को करते हैं ॥ ३ ॥

मनुष्यों को क्या क्या जानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**या घर्गा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।**

**न वां देवा अमृता आ भिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥४॥७॥**

**पदार्थ—**हे ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु के समान वर्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो जो ( अमृता ) प्राप्त हुआ जीवनमुक्तिसुख जिन को वे ( देवा ) विद्वान् जन ( वां ) आप दोनों के ( ध्रुवाणि ) निश्चित ( व्रतानि ) कर्मों का ( न ) नहीं ( आ ) सब प्रकार से ( भिनन्ति ) नाश करते हैं और ( या ) जो ( रोचनस्य ) प्रकाश वाले ( रजसः ) लोक के ( आदित्या ) सूर्य के ( दिव्या ) प्रकाशमानों के ( उत्त ) और ( पार्थिवस्य ) पृथिवी में विदित लोक के ( वरुणा ) धारण करने वाले वर्तमान हैं उनको जानिये ॥ ४ ॥

**भाषार्थ—**हे मनुष्यो जो वायु बिजुली और सूर्य सम्पूर्ण लोक के धारण करने वाले हैं वे परमेश्वर से धारण किये गये हैं ऐसा जानकर सम्पूर्ण ईश्वर ने ही धारण किया ऐसा जानना चाहिये ॥ ४ ॥

इस सूक्त में प्राण उदान और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सञ्ज्ञति जाननी चाहिये ॥

यह उग्रहस्तरण सूक्त और सप्तम वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

युक्त्वोति अनुष्टुप् चतुर्विंशत्यक्षः सप्ततितमस्य सूक्तस्य उत्पत्तिराश्रयः

ऋषिः । मित्रावरुणौ देवता । १—४ गायत्री छन्दः ।

वद्वज. स्वरः ॥



अब चार ऋचावाले सत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**पुरुषां चिद्व्यस्यवो नूनं वां वरुण । मित्रं वंसिं वां सुमतिम् ॥१॥**

पदार्थ—हे ( मित्र ) मित्र ( वरुण ) श्रेष्ठ ( हि ) जिनसे ( वाम् ) आप दोनों का जो ( पुरुषा ) अत्यन्त बहुत ( नूनम् ) निश्चित ( अबः ) रक्षण आदि ( अस्ति ) है और जिस को ( चित् ) निश्चित आप ( वसि ) सेवन करते हैं और जो ( वाम् ) आप दोनों की ( सुमतिम् ) उत्तम बुद्धि को ग्रहण करना है उन आप दोनों और उमरकः हम लोग सेवा करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्या ! जो रक्षक राजपुरुष प्रजाओं की अत्यन्त रक्षा करते हैं वे ही प्रजापुरुषों से सेवा करने योग्य हैं ॥ १ ॥

**ता वां मम्यगद्गुह्योर्धमश्राम धार्यसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥२॥**

पदार्थ—ह ( अद्गुह्यो ) द्वेष से रहित ( रुद्रा ) रोदन से शब्द करने वाले ( वयम् ) हम लोग ( वाम् ) आप दोनों के ( धार्यसे ) धारण करने को ( इवम् ) अन्न वा विज्ञान का ( मम्यग् ) उत्तम प्रकार ( अश्राम ) प्राप्त होवें ( ते ) वे हम लोग ( ता ) उन दोनों का सेवन करते हुए सब के धारण करने को ( स्याम ) होवें ॥ २ ॥

भाषार्थ—वे ही अध्यापक और उपदेशक कृतक्रिय हों जो क्रोध और लोभ आदि वापों से रहित होवें और जो उन में पड़ते हैं विद्या के धारण में प्रयत्न करते हुए होवें ॥ २ ॥

फिर मनुष्य कंसे बर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।**

**तुर्याम् दस्युन्तनुभिः ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे ( रुद्रा ) दुष्टों के रक्षक वाले सभा और गना के स्वामी आप दोनों ( सुत्रात्रा ) उत्तम प्रकार पालन करनेवाले के साथ ( पायुभिः ) रक्षकों वा रक्षका भ ( न ) हम लोगों का ( पातम् ) पालन कार्य और ( उत ) भी ( त्रायेथाम् ) रक्षा कीजिये जिससे हम लोग ( तनुभिः ) शरीरों से ( दस्युन् ) दुष्ट चारों का ( तुर्याम् ) नाश करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सभा और गना के स्वामी निरन्तर प्रजाओं की रक्षा करें उन का रक्षण प्रजा करें ॥ ३ ॥

उत्तमों को किसी पुरुष से भी दान कभी न ग्रहण करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**मा कस्यादुनक्रतु यक्ष भुजेमा तनुभिः ।**

**मा शेषमा मा तनमा ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे ( अद्भुतक्रतु ) अद्भुत बुद्धि वा कर्मवालो ! हम लोग ( तनुभिः ) शरीरों से ( कस्य ) किसी के ( यक्षम् ) दान का ( मा ) नहीं ( भुजेमा ) सेवन करें और ( शेषमा ) अन्यो के साथ वत्तमान हुए ( मा ) नहीं पालन करें और ( तनमा ) पीत्र आदि के सहित ( मा ) नहीं पालन करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जन ऐसा उपदेश करें जिसमें कि किसी से दान कोई भी नहीं ग्रहण करें वैसे ही माता और पिता से पुत्र पीत्र आदि भी दान की रचना करें ॥ ४ ॥

हम सूक्त में प्राण उद्दान और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तरवाँ सूक्त और अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ॥



आ नो गन्तमिति व्युत्स्यकसप्ततितमस्य सूक्तस्य बाहुवृत्तआत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १, २, ३ गायत्री छन्दः । बङ्ग स्वराः ॥

अब तीन ऋचावाले एकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर अध्यापक और उपदेशक क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्रं बर्हण । उपेमं चारुमध्वरम् ॥१॥**

पदार्थ—हे ( रिशादसा ) दुष्टों के मारन वाले ( वरुण ) श्रेष्ठ और ( मित्र ) मित्र ( बर्हण ) बहानेवाले आप दोनों ( इमम् ) हम ( नः ) हम लोगों के ( चारुम् ) सुन्दर ( अध्वरम् ) यज्ञ के ( उप ) समीप ( आ ) सब प्रकार से ( गन्तम् ) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन व्यवहार नामक यज्ञ को करें तो हम लोगों की उन्नति के लिए समर्थ हो ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्रं राजयः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥**

पदार्थ—हे ( प्रचेतसा ) उत्तम ज्ञानवाले ( ईशाना ) समर्थ ( वरुण ) वर के देन और ( मित्र ) सब के सुख करनेवालो ( विश्वस्य ) संसार के मध्य में आप दोनों ( राजयः ) प्रकाशित होते हैं और ( धियः ) बुद्धियों की ( हि ) ही ( पिप्यतम् ) बढ़ाइये ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अन्तरिक्ष में सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं वैसे मनुष्यों की बुद्धियों को बढ़ाइये ॥ २ ॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**उप नः सुतमा गतं वरुण मित्रं दाशुषः । अस्य सोमस्य पीतये ॥३॥**

पदार्थ—ह ( मित्र ) मित्र ( वरुण ) श्रेष्ठ आप दोनों ( अस्य ) इस ( दाशुषः ) देने वाले के ( सोमस्य ) बड़ी ओषधियों के रस को ( पीतये ) पीने के लिए ( नः ) हम लोगों के ( सुतम् ) उत्पन्न किये हुए पदार्थ के ( उप ) समीप में ( आगतम् ) आइये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—मनुष्य धार्मिक विद्वानों को बुला कर सदा उनका सत्कार करें । इस सूक्त में मित्र श्रेष्ठ और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकहत्तरवाँ सूक्त और नववाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



आमित्र इति व्युत्स्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य बाहुवृत्त

आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ । ३

उद्दिष्ट छन्दः । ऋचभः स्वराः ॥

अब तीन ऋचावाले बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों के प्रति कैसे बर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**आ मित्रे वः शे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।**

**नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो जैसे ( वयम् ) हम लोग ( गीर्भिः ) वाणियों से ( अत्रिवत् ) नहीं विद्यमान तीन प्रकार का दुःख जिस को उग के तुल्य ( मित्रे ) मित्र और ( वरुणे ) उत्तम पुरुष के निमित्त ( आ-जुहुमः ) अच्छे प्रकार होम करने हैं और आप ( सोमपीतये ) सोम रस के पान करने के लिए ( बर्हिषि ) उत्तम गृह व आसन में ( नि, सदतम् ) बैठिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मित्र के सदृश वस्तु करके संपूर्ण जगत् का सत्कार करते हैं उन के अनुसार सब की वत्तना चाहिये ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे बर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**व्रोनें स्यो ध्रुक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।**

**नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे ( ध्रुवक्षेमा ) निश्चित रक्षण और ( यातयज्जना ) यत्न करण हुए जनो वाले मनुष्यो ! जो तुम ( धर्मणा ) धर्म के और ( व्रोनें ) धर्म-युक्त कर्म के साथ वत्तमान ( स्यो ) हावे ( सोमपीतये ) सोम पीने के लिए ( बर्हिषि ) उत्तम व्यवहार में ( नि, सदतम् ) उपस्थित हूजिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य निश्चित धर्म व्रत और गीत को धारण करते हैं वे दृढ़ सुल से युक्त होते हैं ॥ २ ॥

मनुष्यों को यहाँ कैसे बर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**मित्रश्च नो वरुणश्च जवेतां यज्ञमिष्टये ।**

**नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो जैसे ( मित्रः ) मित्र ( च ) और ( वरुणः ) स्वीकार करने योग्य जन ( च ) भी ( इष्टये ) इष्ट सुख के लिए और ( सोम-पीतये ) सामरस के पान के लिए ( नः ) हम लोगों के ( यज्ञम् ) यज्ञ का ( जवे-ताम् ) सेवन करिये और ( बर्हिषि ) उत्तम व्यवहार में प्रवृत्त होने हैं वैसे आप दोनों ( नि, सदताम् ) स्थिर हूजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मित्र के सदृश वस्तु करके वाञ्छित सुख के सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे गगना करने योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

इस सूक्त में मित्र और श्रेष्ठ विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह ऋग्वेद में बहत्तरवाँ सूक्त पञ्चम अनुशाक और चतुर्थ अध्याय में बरावाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



यवस्य रूप इति वृक्षस्य मितस्तितमस्य सुवस्य वीर आनेय  
श्रुतिः । अविबनी देवते । १, २, ४, ५, ७ निबुवुवुवुवु ।  
३, ६, ८, ९ अनुवुवुवुवु । १० विरावुवुवुवु ।  
शास्त्रारः स्वरः ॥

अब वृक्षरूप वाले तिहतरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम द्वितीय  
अन्ध में फिर स्त्री पुरुष जैसे वस्तु इस विषय को कहते हैं—

यद्यस्य परावति यद्वर्तव्यमिना ।

यदा पुरुषुषुजा यदुन्तरिषु आ गतम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ( यत् ) जो ( अविबनी ) वायु विजुली ( परावति )  
दूर देश में और ( यत् ) जो ( अविबति ) निकट देश में ( यत् ) जो ( पुरुषुजा )  
बहुतो के पास करनेवाले ( वा ) वा ( यत् ) जो ( अन्तरिषु ) आकाश में  
( पुरु ) बहुत ( स्त्रः ) स्थित होते हैं उन के विज्ञान के लिए ( अद्य ) आज  
( आ, गतम् ) आइये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो वृक्षार्थ से विद्या को पढ़कर परस्पर प्रीति से पुहारम्भ करें  
वे स्त्री पुरुष शिल्प विद्या को भी सिद्ध कर सकें ॥ १ ॥

इह त्या पुरुषुषुजा पुरु दंसांसि विभ्रता ।

वरस्या याम्यधिगू हवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मित्र ! जिन ( पुरुषुषुजा ) अत्यन्त बहुत व्यापक ( पुरु ) बहुत  
( दंसांसि ) कर्मों को ( विभ्रता ) धारण करते हुए ( वरस्या ) अत्यन्त श्रेष्ठ और  
( तुविष्टमा ) अत्यन्त बलिष्ठ ( अधिगू ) अधिक चलनेवालों को ( इह ) इस सत्तार  
में ( भुजे ) भोग के लिये ( हवे ) स्वीकार करता है जिन दोनों से इष्टसिद्धि को  
( यामि ) प्राप्त होता है ( त्या ) उन दोनों को तू भी सप्रयुक्त कर ॥ २ ॥

भाषार्थ—जहां स्त्री और पुरुष तुल्य गुण कर्म स्वभाव और सुखवान् हैं  
वहां सम्पूर्ण पदार्थविद्या होती है ॥ २ ॥

मनुष्य को इसके आगे क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ईर्मन्पदपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।

पर्यन्या नाहुषा युगा महना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे स्त्री और पुरुष ! वायु और सूर्य के मनुष्य जो ( रथस्य ) वाहन  
के ( चक्रम् ) चानता है जिस से उस पहिये के सदृश ( वपुषे ) स्वरूप के लिए  
( ईर्मन् ) अन्य ( ईर्मा ) प्राप्त होने वा जानने योग्य ( वपु ) स्वरूप को मनुष्यों के  
सम्बन्धी ( युगा ) वर्ष वा वर्षों के समूहों को ( परि ) मन्त्र और से प्राप्त करो  
और ( महना ) महत्त्व से ( रजांसि ) लोको का ( दीयथ ) नाश करने हो ये  
कालविद्या जानने योग्य हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो जैसे रथ के पहिये घूमते हैं वैसे दिनरात्रि काल सम्बन्धी  
वक्र घूमता है जिससे क्षण आदि तथा कल्प और महाकल्प आदि सम्बन्धी गणित  
विद्या सिद्ध होती है ऐसा जानो ॥ ३ ॥

किर मनुष्य क्या विशेष जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तदु वु वामेना कृतं विद्या यद्वा मन हवे ।

नाना ज्ञातावरेपसा समस्मे वधुमेयथुः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! ( यत् ) जो आप दोनों ने  
( कृतम् ) सिद्ध किया ( तत् ) उन ( एता ) इन ( विद्या ) संपूर्णों की मैं ( अनु-  
स्तम्भे ) स्तुति करता हूँ और जो ( अवरेपसा ) अपराधरहित ( नाना ) अनेक प्रकार  
( ज्ञाता ) प्रकट ( वाम् ) आप दोनों प्राप्त होते हैं वह ( अस्मे ) हम लोगों के  
( वधुम् ) वधु को ( सम्, आ, ईयथु ) प्राप्त हजिये ( उ ) और उसको मैं ( वाम् )  
आप दोनों की ( वु ) उत्तम प्रकार प्रेरणा करूँ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं वायु और विजुली की विद्या को जानूँ वैसे ही  
आप लोग भी जानिये ॥ ४ ॥

किर स्त्री कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यद्वा सूर्या रथं तिष्ठप्रधुष्यद् सदा ।

परिवामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत् ) जो ( घृणा ) प्रकाशित ( अथवा ) लाल चमकते हुए  
गुणोवाली ( सूर्या ) सूर्यसम्बन्धी प्राप्तबलाके सदृश स्त्री ( वाम् ) तुम्हारे ( रथ-  
प्रधुष्यद् ) थोड़े चलनेवाले ( रथम् ) बिसान आदि वाहन पर ( आ ) सब प्रकार से  
( तिष्ठत् ) स्थित होती है जिसको ( वाम् ) आप दोनों के ( वयः ) पत्नी ( परि-  
वाम् ) सब और से स्वीकार करते हैं वह ( आतपः ) बारो और से उष्ण करने  
वाले धर्म के सदृश ( वरन्त ) सब काल में उपकार करनेवाली होती है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातः काल सब प्रकार  
से प्रिय और सुखकारक है वैसे परस्पर प्रीतियुक्त स्त्री पुरुष प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥

किर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

युवोरविबिकेतति नरा सुम्नेन वेतसा ।

वृमे यद्वावरेपसं नास्त्यास्ना अरण्यति ॥ ६ ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे ( नास्त्या ) असत्य से रहित ( नरा ) धर्म मार्ग में से चलने  
वाले दो नायक जनो ( यत् ) जो ( अविः ) आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक  
आदि तीन प्रकार के दुःख से रहित जन ( सुम्नेन ) मुख और ( वेतसा ) चित्त से  
( युवोः ) आप दोनों अध्यापक और उपदेशकों के ( वर्यम् ) यज्ञ को ( विकेतति )  
आमता और ( आस्ना ) मुख से ( वाम् ) आप दोनों के ( अवरेपसम् ) अपराध  
रहित यज्ञ को ( अरण्यति ) धारण करता है उस को आप जानिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष विद्वानों के संग से अध्ययन और अध्यापन रूप यज्ञ का  
विस्तार करते हैं वे संसार के उपकारक हैं ॥ ६ ॥

उग्रो वा ककुहो युयिः शष्वे यामेव संतुनिः ।

यद्वा दंसांभिरविनात्रिर्नरावर्तति ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( नरा ) नायक ( अविबनी ) अध्यापक और उपदेशक जनो  
( यत् ) जो ( ययि ) चलनेवाला ( ककुह ) बड़ा ( उग्र ) तेजस्वी ( संतुनिः )  
उत्तम प्रकार विस्तारकर्ता मैं ( यामेव ) प्रहरों में ( वाम् ) आप दोनों को  
( शृष्वे ) सुनूँ और जो ( वाम् ) आप दोनों के ( हसोभिः ) कर्मों से ( अविः )  
न तीनबार ( आवर्तयति ) अत्यन्त वर्तमान हैं उन हम दोनों को आप दोनों बोध  
कराइये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सूर्य और चन्द्रमा के सदृश नियम से बर्ताव करके  
काम्यों को सिद्ध करते हैं वे सर्वदा उत्तम होते हैं ॥ ७ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मध्वं उ वु मधुयुवा द्वा सिर्वक्ति पिप्युषी ।

यत्समुद्राति पथैः पक्वाः पृथ्वी भरन्त वाम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( मधुयुवा ) सोम आदि रस को मिलाते और ( द्वा ) दुष्टों के  
हलानेवाले जनो ( यत् ) जो ( पिप्युषी ) पान कराती हुई ( मध्वं ) सोमलता के  
रस को ( उ ) तर्क वितर्क से ( सुसिर्वक्ति ) अच्छे प्रकार सीखती है उससे आप  
दोनों ( समुद्रा ) उत्तम प्रकार द्रवित होनेवालों को ( अति, पथैः ) सीखते हैं जिससे  
( पक्वाः ) पके ( पक्वाः ) सबन्ध हुए फल ( वाम् ) आप दोनों ( भरन्त ) पोषण  
करते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य और वायु वृष्टि से सब को सीखते और  
पके हुए फलों को उत्पन्न करते हैं वैसे आप लोग भी धारण करो ॥ ८ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुत्यमिद्वा उ अविना युवामाहुर्मयोधुवा ।

ता यामन्यामहृतामा यामसा मृतचक्रमा ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( मयोधुवा ) सुखकारक ( अविना ) अन्तरिक्ष और पृथिवी के  
सदृश अध्यापक और उपदेशक जनो जो ( युवाम् ) आप दोनों ( यामहृतामा ) प्रहरों  
को बुलानेवाले अत्यन्त ( यामम् ) प्रहर म ( आ, मृतचक्रमा ) सब और से अनीव  
सुखकारकों को ( आहु ) कहते हैं ( ता ) ये दोनों ( यामम् ) प्रहर में ( ये )  
निश्चय ( सत्यम् ) यथाय व्यवहार वा जल को ( उ ) तर्क के साथ ( इत् ) भी  
प्रचरित कीजिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जैसे भूमि और मेघ सब प्राणियों के सुखकारक हैं वैसे ही  
अध्यापक और उपदेशक जन अत्यन्त सुखकारक हो ॥ ९ ॥

किर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमा ब्रह्माणि वर्धनाविभ्यां सन्तु शंतमा ।

या तक्षाम रथौ इवाबोचाम वहवमः ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( अविबन्ध्याम् ) अन्तरिक्ष और पृथिवी से ( या ) जो  
( इमा ) य ( वर्धना ) वृद्धि को प्राप्त होते जिनसे उन ( शास्त्रा ) अत्यन्त सुख  
कारक ( ब्रह्माणि ) धनो या अन्ना का ( रथानि ) रथों के समान ( तक्षाम )  
आण्डादन करें वा स्वीकार करें वे आप लोगों के लिए सुखकारक ( सन्तु ) हो उन  
से ( वृहत् ) बड़े ( वमः ) सत्कार का हम ( अबोचाम ) उपदेश करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप जैसे वस्त्र आदि से  
वाहनो को उड़ाकर शृंगारयुक्त करते हैं वैसे ही धन और धान्यो को उत्तम प्रकार  
प्रहण करके उत्तम प्रकार सत्कारयुक्त करें और शुद्ध अन्न के भोग से बड़े विज्ञान को  
प्राप्त होकर अन्य जनो को भी इसका उपदेश करें ॥ १० ॥

इस सूक्त में अन्तरिक्ष पृथिवी और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त  
के अर्थ की इससे पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सति जाननी चाहिये ॥

यह तिहतरवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

सूक्त इति वसवस्य वतु सप्ततितमस्य सुवस्य आनेय श्रुतिः । अविबनी देवते ।

१, २, १० विराडनुवुवु । ३ अनुवुवु । ४, ५, ६, ८ निबुवुवुवुवु । ७ अनुवुवुवु ।

शास्त्रारः स्वरः । ७ विराडनुवुवु । ८ निबुवुवुवुवु । ९ अनुवुवुवु । १० अनुवुवुवु ।

अब मनुष्यों को क्या अनुष्ठान करना चाहिए इस विषय को प्रथम मन्त्र में कहते हैं—

**कूर्धो देवावशिनाया दिवो मनावसु ।**

**तच्छ्रवथो हृषयवसु अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( मनावसु ) मन का बसानेवाले ( हृषयवसु ) उत्तमों को बसाने वाले ( अत्रिना ) विद्या से व्याप्त ( देवी ) विद्वानों जो ( कूर्धः ) पृथिवी में स्थित होनेवाला ( अत्रिः ) विद्या प्राप्त जन ( अत्रिः ) इस समय ( दिवः ) प्रकाश के सम्बन्ध में ( वासु ) आप दोनों का ( आविवासति ) सब प्रकार से सेवन करता है ( तत् ) उसको आप दोनों ( अत्रिः ) सुनते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानों ! जो आप लोगों का सेवन करते हैं वे बहुभूत विचार-शील विद्वान् जन सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मों का सेवन करते हैं और वे दुःख से रहित होने हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को विद्वानों के प्रति कैसे पूछना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**कुह त्या कुह नु अता दिवि देवा नासत्या ।**

**कस्मिन्ना यतथो जने को वी नदीनां सत्वा ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ( त्या ) वे ( नासत्या ) सत्य-स्वरूप ( कुह ) कहाँ वर्तमान हैं और ( कुह ) कहाँ ( भूता ) सुने हुए ( देवा ) श्रेष्ठ गुणवाले होते हैं और तुम ( कस्मिन् ) किम ( जने ) जन में ( आ, यतवः ) सब और से यत्न करते हो उन आप दोनों की ( नदीनाम् ) नदियों के ( सत्वा ) सम्बन्ध से ( कः ) कौन ( पुः ) शीघ्र है जो ( दिवि ) श्रेष्ठ व्यवहार वा प्रकाश में प्रयत्न करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—जिज्ञासु जनो को चाहिए कि विद्वानों के समीप जाकर बिजुली भाँटि की विद्याओं को पूछें ॥ २ ॥

अब मनुष्यों को क्या पूछना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।**

**कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुरमसीदये ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों ( कम् ) किम को ( याथ ) प्राप्त होते हैं और ( कम् ) किस का ( गच्छथः ) जाते हैं ( कम् ) किम ( रथम् ) रमा करने योग्य वाहन को ( ब्रह्माणि ) उत्तम प्रकार ( युञ्जाथे ) युक्त होते हैं और ( कस्य ) किसके ( ह ) निश्चय से ( ब्रह्माणि ) घन और धान्यो को ( रण्यथा ) रमाते हैं ( वयम् ) हम लोग ( इदमेव ) इच्छा के लिए ( वाम् ) आप दोनों की ( उदमति ) कामना करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! विद्वान् जन जिसको प्राप्त होवें और युक्त होते तथा इच्छा करते हैं उसी की आप लोग इच्छा करें ॥ ३ ॥

**पौरं चिद्वचद्वर्तु पौरं पौराय जिन्वथः ।**

**यदीं गृमीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे ( पौर ) पुर में हुए आप ( हि ) ही ( उद्वर्तुम् ) जल में युक्त ( पौरम् ) मनुष्य के सन्तान को ( चित् ) निश्चय से प्राप्त हजिये और ( पौराय ) पुर में हुए मनुष्य के लिए अध्यापक और आप ( जिन्वथः ) प्राप्त होते हो ( गृमी-ततातये ) ग्रहण किया श्रेष्ठ कर्मों का विस्तार जिस ने उस के लिए ( द्रुह ) शत्रु के ( पदे ) प्राप्त होने योग्य स्थान में ( सिंहमिव ) सिंह के सदृश ( यत् ) जिस को ( ईम् ) सब और से प्राप्त होने हो उम का आप सन्तुष्ट कीजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे एक नगर के बामी जन परस्पर सुख की उन्नति करते हैं वैसे ही अन्य देशवासी भी करें ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**प्र क्यवांनाज्जुजुरुषो वत्रिमत्कं न मुञ्चथः ।**

**युवा यदीं कथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ( जुजुरुष ) वृद्धावस्था को प्राप्त जन ( क्यवानात् ) नमन से ( अत्कम् ) व्याप्त ( वत्रिम् ) रूप और व्यवहार का ( प्र, मुञ्चथः ) त्याग करते हो और ( वधि ) जो ( युवा ) युवावस्था को प्राप्त पुरुष के ( न ) समान कार्य को ( कथः ) करते हो ( पुन ) फिर ( वध्वः ) स्त्री के ( कामम् ) मनोरथ को युवावस्था को प्राप्त हुआ मैं ( वध्वे ) मित्र करता हूँ वैसे आप दोनों ( आ ) सब और से करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वृद्धावस्थाओं में रूप का त्याग कर के वृद्धावस्था को प्राप्त होने हैं वैसे ही दोषों के जानने वाले गुणों का त्याग कर के दोषों का ग्रहण करते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्धशि श्रिये ।**

**न अतं न आ गतमवोमिर्वाजिनीवसु ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे ( वामिनीवसु ) बहुत धन्यादि क्रिया को बसाने वाले अध्यापक और उपदेशक जनो ( वसु ) इस ससार में जो ( वाम् ) आप दोनों को ( स्तोता ) प्रशंसा करनेवाला ( अस्ति ) है उस को ( हि ) जिस से हम लोग प्राप्त ( स्मसि ) होवें और ( वाम् ) आप दोनों के ( सन्धशि ) सादृश्य में ( श्रिये ) धन के लिए ( नु ) शीघ्र ( अतम् ) सुनिये और ( अवोमि ) रक्षणार्थिकों से मुक्त को प्राप्त हजिये ( मे ) मेरे कथन को सुनने को ( आ, गतम् ) घाइये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के गुणों की स्तुति करते हैं वे गुणों से मुक्त हो और विद्वानों की समता को प्राप्त होकर श्रीमान् होते हैं ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**को वामय पुंरूणामा वन्ने मर्त्यानाम् ।**

**को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञवीजिनीवसु ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे ( विप्रवाहसा ) विद्वानों से प्राप्त होने योग्य ( वामिनीवसु ) धन धान्य प्राप्त करानेवाला ( पुंरूणाम् ) बहुत ( मर्त्यानाम् ) मनुष्यों के मध्य में ( कः ) कौन ( विप्र ) बुद्धिमान् ( अत्रि ) आज ( वाम् ) आप दोनों का ( आ, वन्ने ) अच्छे प्रकार आदर करता ( कः ) कौन ( मर्त्यः ) यज्ञों से विद्या को और ( कः ) कौन बुद्धि का आदर करता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो विद्या की याचना करते हैं वे विद्वान् के समीप प्राप्त होकर प्रश्न और उत्तरों में आनन्द कर के लाभ को प्राप्त होवें अन्यो को भी प्राप्त करा सकें ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**आ वां रथो रथानां येष्टो यास्वश्विना ।**

**पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गुपो मर्येन्वा ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो ( वाम् ) तुम्हारा ( रथानाम् ) वाहनो के मध्य में ( येष्ट ) अतिशय चलने वाला ( रथः ) वाहन ( यावु ) चलें ( अस्मयु ) हम लोगो को प्राप्त होनेवाली ( चित् ) भी ( मर्येन्वा ) मनुष्यों में ( आङ्गुपो ) अङ्गुली में हुई प्रशंसा ( पुरू ) बहुतो को ( आ ) सब प्रकार से प्राप्त हो और तुम्हो का ( तिर ) तिग्मस्कार करके सुख प्राप्त होता है उसको आप दोनों प्राप्त ( आ ) हजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जैसे अध्यापक और उपदेशक शिष्यीजन उत्तम वाहनो को रचने हैं वैसे सुख के साधनों को आप लोग उत्पन्न कीजिये ॥ ८ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले

मन्त्र में कहते हैं—

**शम पु वां मयूयास्माकमस्तु चकृतिः ।**

**अर्वाचोना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥**

पदार्थ—हे ( मयूया ) माधुर्य गुण से युक्त ( विचेतसा ) अनेक प्रकार के विज्ञानवाले ( अर्वाचोना ) सन्मुख चलने हुए दो जनो ( वाम् ) आप दोनों की जो ( चकृति ) मर्यन्त क्रिया है वह ( अस्माकम् ) हम लोगो की ( अस्तु ) हो जिस में आप दोनों ( उ ) ही ( विभि ) पक्षियों के साथ ( श्येनेव ) बाज पक्षी के सदृश ( शम् ) मुख वा कल्याण को ( पु, दीयतम् ) उत्तम प्रकार देवें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वे ही विद्वान् हैं जो अपने ऐश्वर्य को अन्य जनो के मुख के लिये नियुक्त करते हैं जैसे पक्षियों के साथ श्येन पक्षी शीघ्र चलता है वैसे इनके साथ विद्यार्थी जन पूर्ण रीति से चलें ॥ ९ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले

मन्त्र में कहते हैं—

**अश्विना यद् कर्हि चिच्छ्रुभ्यातमिमं हवम् ।**

**वस्वीरु पु वां भुजः पृथ्वन्ति सु वां पृथः ॥ १० ॥ १४ ॥**

पदार्थ—हे ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक जनो ( यत् ) जो ( कर्हि, चित् ) कभी हम लोगो की ( इमम् ) इस वर्तमान ( हवम् ) प्रशंसा को ( श्रुभ्यातम् ) प्राप्त होओ और जो ( पृथ ) कामना और ( वस्वीः ) वन-सबन्धिनी ( भुजः ) भाग की क्रियाओं को ( वाम् ) आप दोनों के सम्बन्ध में ( पु ) उत्तम प्रकार ( पृथ्वन्ति ) सम्बन्धित करते हैं उनकी ( ह ) निश्चय से ( उ ) और ( वाम् ) आप दोनों की हम लोग ( पु ) उत्तम प्रकार कामना करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन विद्यार्थियों की परीक्षा करते हैं उनको विद्या-धीजन विद्वान् होकर प्रसन्न करने हैं ॥ १० ॥

इस सूक्त में अध्यापक, उपदेशक और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥



यह चौहत्तरवाँ सूक्त और चौहत्तरवाँ वर्ष समाप्त हुआ ॥

ॐ

अब मन्त्रमध्य पञ्चमस्तुतिसमस्तस्य सूक्तस्य अन्तस्पुराणेय ऋषिः ।

अविबनी वेवते । १, ३ पङ्क्तिः । २, ४, ६, ७, ८

निधुत्वङ्कितः । ५ स्वराट्पङ्क्तिः । ६ विराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले पञ्चहत्तरवाँ सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र

में विद्वानो को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मतिं वियसं रथं हृष्यं वसुवाहनम् ।

स्तोता वामरिवनावृषिः स्तोत्रेन प्रति भूषति माध्वी मम भृतं हवम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( माध्वी ) मधुर आदि गुणों को प्राप्त करनेवाले ( अविबनी ) अध्यापक परीक्षक जनो जो ( स्तोता ) स्तुति करने और ( ऋषिः ) मन्त्र और धर्म का जाननेवाला ( स्तोत्रेण ) स्तवन से ( वाम् ) आप दोनों के ( वियसम् ) अत्यन्त प्रिय ( हृष्यम् ) सुख के वषणि और ( वसुवाहनम् ) द्रव्यों के पहुँचाने वाले ( रथम् ) रथते हैं जिससे उस विमान आदि वाहन को ( प्रति, भूषति ) शोभित करता है उसके और ( मम ) मेरे ( हवम् ) बुलाने को ( प्रति, भूतम् ) सुनिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो अध्यापन और उपदेश करते हैं वे योग्य समय में परीक्षा भी करें ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को किस विषय की इच्छा करनी चाहिये इस विषय

को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अत्यायातमश्विना तिरौ बिन्वा अहं सना ।

वसा हिरण्यवर्त्तनी सुधुम्ना सिधुवाहसा माध्वी मम भृतं हवम् ॥२॥

पदार्थ—हे ( वसा ) दुःख के दूर करने और ( हिरण्यवर्त्तनी ) ज्योतिः वा सुवर्ण को वर्तने वाली ( सुधुम्ना ) उत्तम सुख के युक्त तथा ( सिधुवाहसा ) नदियों को पान करनेवाला ( माध्वी ) मधुर गति से युक्त और ( अविबनी ) शिल्प कार्य के जाननेवाला । जैसे ( अहम् ) मैं ( सना ) मदा ( बिन्वाः ) सम्पूर्ण विद्याओं को ग्रहण करता हूँ वे मेरे आप दोनों ( अत्यायातम् ) देशों का अति-क्रमण करके आइये और ( मम ) मेरा ( तिर ) तिरस्कारपूर्वक ( हवम् ) पठित ( भूतम् ) सुनिये ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानद्वारा है । हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों से विद्याओं को आप लोग पढ़ी और वे जब जब परीक्षा करें तब तब तिरस्कार के साथ वर्त्तमान को धारण करें जिससे सबको अच्छे प्रकार विद्या प्राप्त होवे ॥२॥

फिर मनुष्यों को कंते वर्त्तना चाहिये इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छत युवम् ।

वसा हिरण्यवर्त्तनी जुषाणा वाजिनीवसु माध्वी मम भृतं हवम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( वाजिनीवसु ) अन्न प्रादि से युक्त सामग्री को बसाने और ( हिरण्यवर्त्तनी ) सुवर्ण वा ज्योति को वर्तनेवाले ( रत्नानि ) रमणीय धनों को ( जुषाणा ) सेवा और ( बिभ्रता ) धारण करते हुए ( वसा ) दुष्टों को भय देनेवाले ( अविबनी ) विद्या से युक्त ( माध्वी ) मधुरस्वभाव वाली ( युवम् ) आप दोनों ( न. ) हम लोगों को ( आ ) सब प्रकार से ( गच्छतम् ) प्राप्त होइये और ( मम ) मेरे ( हवम् ) आह्वान को ( भूतम् ) सुनिये ॥३॥

भाषार्थ—वे ही भाग्यशाली होंगे जो यथार्थवक्ता विद्वानों के समीप जाकर वा उनको बुलाकर प्रयत्न से विद्या का अभ्यास कर के परीक्षा देते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र

में कहते हैं—

सुधुमीं वां वृषण्वसु रथे वाणीक्याहिता ।

उत वां ककुद्दो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम भृतं हवम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( वृषण्वसु ) बलिष्ठों को बसानेवाले ( माध्वी ) मधुर स्वभाव वाले विद्यायुक्त जनो जो ( सुधुमीः ) उत्तम स्तुति करनेवाला ( वाम् ) आप दोनों के ( रथे ) रथ में रमता है जिससे ( वाणीकी ) वाणी ( वाहिता ) स्थापित की गई ( उत ) और जो ( वाम् ) आप दोनों का ( ककुद्दो ) बड़ा ( मृगः ) शूद्र करने वाला और ( वापुषः ) शरीर में हुआ ( वृक्षः ) अन्न को ( कृणोति ) करता है उसके और ( मम ) मेरे ( हवम् ) आह्वान को ( भूतम् ) सुनिये ॥४॥

भाषार्थ—यही बड़ा होता है जो विद्वानों के समीप से विद्या और सुशीलता को ग्रहण करता है ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

बोधिन्मनसा रथ्यैरिवा हवनवृता ।

बिसिन्धुवानवश्विना नि यावो अद्वयाविनं माध्वी मम भृतं हवम् ॥५॥

पदार्थ—हे ( रथ्यै ) रथों में खेळ ( इरिवा ) खेलनेवाले ( हवनवृता ) आह्वान सुना गया जिनका और ( बोधिन्मनसा ) बोधित मन जिनका ऐसे ( माध्वी ) मधुर स्वभाववाले ( अविबनी ) विद्या के अध्यापक और उपदेशक आप दोनों ( अद्वयाविनम् ) इन्द्रभाव से रहित ( बिभि. ) पक्षियों के साथ ( वयानम् ) पृथते हुए को ( नि ) अत्यन्त ( याव. ) प्राप्त होने हैं और ( मम ) मेरे ( हवम् ) आह्वान को भी ( भूतम् ) सुनिये ॥५॥

भाषार्थ—जो मनुष्य शूद्र अन्तःकरणवाले, प्राप्त हुई शिल्पविद्या जिन को ऐसे और कपटरहित होकर विद्याधियों के बरीक्षक हैं वे जगत् के मङ्गलकारक होते हैं ॥५॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या से कार्य सिद्ध करने चाहिये इस

विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ वां नरा मनोयुजोऽन्धासः प्रुषितप्सवः ।

वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेमिरश्विना माध्वी मम भृतं हवम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( माध्वी ) मधुर स्वभावयुक्त ( नरा ) नायक ( अविबनी ) शिल्पविद्या के जाननेवाले । आप दोनों ( सुम्नेमि ) सुखों के ( सह ) साथ ( पीतये ) पान के लिए जो ( वाम् ) आप दोनों के ( मनोयुजः ) मन के मद्दश युक्त होनेवाले अत्यन्त वेगवान् ( प्रुषितप्सवः ) अलापाई बन आदि जिन्होंने ऐसे ( वयः ) व्याप्तिशील ( अवसास. ) वेग प्रादि गुण हैं वे वाहनो को ( आ ) सब प्रकार से ( वहन्तु ) पहुँचावें उनके लिए ( मम ) मेरे ( हवम् ) आह्वान को ( भूतम् ) सुनिये ॥६॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पदार्थविद्या से शिल्पसिद्ध कार्यों को सिद्ध करें तो अधिक धनी होंगे ॥६॥

फिर मनुष्यों को कंसा वर्त्तव करना चाहिये इस विषय

को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।

तिरश्चिदयपा परि वसित्यातमदाभ्या माध्वी मम भृतं हवम् ॥७॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) नहीं विद्यमान असत्य व्यवहार जिनके ऐसे ( अवाभ्या ) नहीं हिंसा करने योग्य ( माध्वी ) मधुर स्वभाववाले ( अविबनी ) विद्या में व्याप्त आप दोनों ( इह ) इस समार में ( आ, गच्छतम् ) आइये तथा ( अयपा ) वेद्य वा स्वामी की स्त्री से ( वेनतम् ) कामना करने ( तिर. ) तिरस्कार को ( चित् ) भी ( मा ) मत करो ( वसित. ) मार्ग को ( परि, वातम् ) सब ओर से प्राप्त होओ और ( मम ) मेरे ( हवम् ) आह्वान को ( वि ) विशेष करके ( भूतम् ) सुनो ॥७॥

भाषार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों गृहस्थमार्ग में वर्त्तव करके धर्म से सन्तान और ऐश्वर्य की इच्छा करो तथा अध्यापन और परीक्षा सदा ही करो ॥७॥

फिर स्त्रीपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मिन्यज्ञे अंबाभ्या जरितारं शुभस्पती ।

अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम भृतं हवम् ॥८॥

पदार्थ—हे ( अंबाभ्या ) नहीं हिंसा करने योग्य ( माध्वी ) मधुर स्वभाव वाले ( शुभ, पती ) कल्याणकारक व्यवहार के पालन करनेवाले ( अविबनी ) ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुई विद्या जिनको ऐसे स्त्रीपुरुषों ( युवम् ) आप दोनों ( अस्मिन् ) इस गृहाश्रम नामक ( यज्ञे ) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य यज्ञ में ( जरितारम् ) स्तुति करने और ( अवस्युम् ) अपने कल्याण की इच्छा वा कामना करनेवाले ( गृणन्तम् ) स्तुति करने हुए जन को ( उप, भूषथ ) शोभित करते हो ( मम ) मेरे ( हवम् ) आह्वान को भी ( भूतम् ) सुनिये ॥८॥

भाषार्थ—जो स्त्रीपुरुष गृहाश्रम में वर्त्तमान उत्तम आचरण वाले स्तुतियों से स्तुति करमवाले गृह के कृत्यों को शोभित करते हैं तथा अध्यापन और परीक्षा से विद्या की उन्नति करते हैं वे ही इस जगत् में प्रशंसित होते हैं ॥८॥

फिर स्त्री पुरुष कंसा वर्त्तव करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अभुदुवा वृशत्पशुराग्निरंधाव्यस्विचः ।

अयोजि वां वृषण्वसु रथो दस्त्रावमत्यो माध्वी मम भृतं हवम् ॥९॥१६

पदार्थ—हे ( वृषण्वसु ) बलिष्ठ दो देहों को बसाने और ( वयो ) दुःख के नाश करनेवाले ( माध्वी ) मधुरस्वभाववाले स्त्री पुरुषों जिन ( वाम् ) आप दोनों को ( वृशत्पशु. ) पाला पशु जिसने वह ( वृशत्पशु. ) ऋतु ऋतु में यज्ञ करनेवाला ( अग्निः ) अग्नि ( आ, अवायि ) स्थापन किया जाता है और ( उषा. ) प्रातः-काल के सपूषा ( अवसु. ) होवे और ( अवस्य. ) नहीं विद्यमान मनुष्य जिसमें ऐसा ( रथः ) वाहन ( अयोजि ) युक्त किया जाता है आप दोनों ( मम ) मेरे ( हवम् ) आह्वान को ( भूतम् ) सुनिये और हे स्त्री के पति जो पत्नी प्रातःकाल के मद्दश होवे उसकी निरन्तर प्रशन्न करो ॥९॥

भाषार्थ—सदा स्त्री पुरुष ऋतुगामी हों, सदा शरीर के पारोक्ष्य और पुष्टि को करें तथा विद्या की उन्नति करके ध्यान की उन्नति करें ॥९॥

इस सूक्त में अश्विपदव्याप्त विद्वान् स्त्रीपुरुष के गुण वर्णन करने से  
इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति  
जाननी चाहिए ॥

यह पञ्चहस्तरवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमर्चस्य बहुसप्ततितमस्य सूक्तस्य अत्रिष्टविं । अश्विनी देवते ।

१, २ स्वरादपङ्क्तिपञ्चम् । पञ्चमः स्वरः ।

३, ४, ५ निष्पत्तिपञ्चम् । षष्ठः स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचावाले छहस्तरवां सूक्त का प्रारम्भ है उस में प्रथम मन्त्र  
से फिर स्त्रीपुरुष कंसे वर्तते इस विषय को कहते हैं—

आ मास्यप्रिक्विसामनीकमुद्रिप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।

अर्वाञ्चानुं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

पदार्थ—हे ( रथ्या ) वाहनो में प्रवीण ( अर्वाञ्चानु ) नीचे चलनेवाले  
( अश्विना ) स्त्रीपुरुषो जो ( विप्राणां ) बुद्धिमानों की ( देवया ) विद्वानों को  
प्राप्त होनेवाली ( वाचः ) वाणियाँ ( अस्थुः ) हैं और जो ( उवसां ) प्रभात  
बेलाओं की ( अनीकम् ) सेनारूप ( अग्निः ) सूर्यरूप से परिणत हुआ अग्नि  
( उत ) ऊपर को ( भाति ) प्रकाशित होता है उन में ( इह ) इस सप्ताह में  
( पीपिवांसम् ) उत्तम प्रकार बढ़ते हुए ( घर्मम् ) गृहाश्रम के कृत्यनामक यज्ञ को  
( नूनम् ) निश्चित ( अच्छ ) अच्छे प्रकार ( आ ) सब प्रकार से ( यातम् )  
प्राप्त होओ ॥१॥

भाषार्थ—हे बुद्धिमान् जनो ! जैसे बिजुली आदि अग्नि बहुत कार्यों को  
सिद्ध करता है वैसे ही स्त्रीपुरुष मिलकर गृहकृत्यों को सिद्ध करें ॥१॥

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।

दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यर्वाचं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥

पदार्थ—हे ( गमिष्ठा ) अतिशय चलनेवाले ( शम्भविष्ठा ) अतिशय  
सुखकारक और ( नूनम् ) निश्चित ( उपस्तुता ) प्राप्त हुई प्रशसा से कीर्ति को  
पाये हुए ( अश्विना ) स्त्री पुरुषो आप ( इह ) इस सप्ताह में ( संस्कृतम् ) किया  
संस्कार जिसका उसको ( न ) नहीं ( प्र, विमीत ) उत्पन्न करते हैं और  
( अभिपित्वे ) सब ओर से प्राप्त होने पर ( अवसा ) रक्षण आदिसे ( अर्वाचम् )  
अमार्ग के ( प्रति ) प्रतिकूल उत्पन्न करते हैं और ( दाशुषे ) दान करनेवाले के  
लिए ( विष्ठा ) दिवस से ( अन्ति ) समीप में ( आगमिष्ठा ) चारों ओर अतिशय  
चलनेवाले होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो गृहस्थ जन—किया है संस्कार जिनका ऐसे पदार्थों का दूषा  
नहीं नाश करते हैं वे लक्ष्मीवान् होते हैं ॥ २ ॥

उता यातं सकृगवे प्रातरहो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।

दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) व्याप्तसुख स्त्रीपुरुषो तुम ( अह् ) दिवस के  
( मध्यन्दिने ) मध्याह्न भाग में और ( प्रातः ) प्रभात समय में ( सूर्यस्य ) सूर्य-  
मण्डल के ( उदिता ) उदय होने में और दिन के ( सकृगवे ) साय समय में जिसमें  
गौर सगत होती अर्थात् चर के आती ( विवा ) दिन ( नक्तम् ) रात्रि ( शन्तमेन )  
अत्यन्त सुख से ( अवसा ) रक्षा आदि के माय ( आ, यातम् ) आओ ( उत )  
और तुम दोनों की जो ( पीति ) पिबावट ( आ, ततान ) विस्तृत होती है उसको  
( इवानीम् ) अब ( न ) नहीं नाश करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—किया विवाह जिन्होंने वे स्त्रीपुरुष प्रातः, मध्याह्न, साय समयों  
में दिन रात्रि का कल्याण करनेवाले कर्मों को सुखों से प्राप्त हो कभी आलस्य मन  
करें ॥ ३ ॥

फिर गृहस्थों को कंसा वर्त्तव्य करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इदं हि वा प्रदिवि स्थानमोक् इमे गृहा अश्विनेद् दुरोणम् ।

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादादृभ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥

पदार्थ—हे ( विव ) प्रकाश से ( बृहत ) बड़े ( पर्वताम् ) पर्व और  
( अदृभ्य ) जलों से ( इषम् ) अन्न और ( उर्जम् ) पराक्रम को ( आ ) सब  
प्रकार से ( बृहता ) प्राप्त करनेवाले ( अश्विना ) स्त्रीपुरुषो ( नः ) हम लोगों  
को वा हम लोगों के ( इषम् ) इस ( दुरोणम् ) गृह को ( आ ) सब प्रकार से  
( यातम् ) प्राप्त होओ ( हि ) जिससे ( इषम् ) यह ( वाम् ) आप दोनों के  
( प्रविषि ) उत्तम प्रकार से ( स्थानम् ) स्थित होते हैं जिनमें उस ( ओक् ) गृह  
को ( इमे ) ये ( गृहाः ) ग्रहण करनेवाले गृहस्थजन प्राप्त होते हैं उनको सब प्रकार  
से प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो गृहस्थ जन गृहाश्रम से कर्मों को पूर्ण रीति से करते हैं वे सब  
सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि पुस्त्रार्थ और विद्वानों के संग से ऐश्वर्य को प्राप्त करें  
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवां सुप्रणीती गमेस ।

आ नो रथि बृहत्तमोत वीराना विश्वान्यमृता सौमगानि ॥५॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( अश्विनो ) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सद्ग  
राजा और उपदेशक के ( नूतनेन ) नवीन ( अवसा ) अन्न आदि और ( मयो-  
भुवा ) सुखकारक से और ( सुप्रणीती ) उत्तम नीति से ( नः ) हम लोगों के लिए  
( रथिम् ) धन को ( आ ) सब प्रकार ( बृहत्तम् ) प्राप्त कराते हुए को ( वीरान् )  
वीरों को ( उत ) और ( विश्वानि ) संपूर्ण ( अमृता ) स्वादु जलो और ( सौम-  
गानि ) उत्तम वनादि ऐश्वर्यों के आवरूपों को ( आ ) सब प्रकार प्राप्त कराते हुए  
को हम लोग ( सस्य, आ, गमेस ) उत्तम प्रकार से प्राप्त होवें वैसे आप लोग भी  
प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग यथार्थवक्ताओं के  
उपदेश से राजा की न्यायव्यवस्था के साथ वर्त्ताव करके न्याय से उत्तमपुरुषों को  
और सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं वे अभीष्ट पदार्थों की सिद्धि को प्राप्त होते  
हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, अश्वि, राजा और उपदेशक के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के  
अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छहस्तरवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमर्चस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य अत्रिष्टविं । अश्विनी

देवते । १, २, ३, ४, ५ त्रिष्टुप्पञ्चम् । षष्ठः स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचावाले सप्तस्तरवां सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों  
को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादरक्षः पिवातः ।

प्रातर्हि यज्ञमश्विना बधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम जैसे ( पुरा ) पहिले ( प्रातर्यावाणा ) जो सूर्य  
और उषा प्रातर्वेला में चलते हैं उन ( प्रथमा ) प्रथम और विस्तीर्णस्वरूप वाचों को  
और ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशकजनों को ( यजध्वम् ) मिलाओ और  
( अरक्षः ) नहीं देनेवाले की ( गृध्रात् ) भ्रमिकांक्षा से रस को ( पिवातः ) पीते  
और ( प्रातः, हि ) प्रातः काल ही ( यज्ञम् ) राज्यपालन को ( बधाते ) धारण करते  
हैं उनकी ( पूर्वभाजः ) पूर्वजनों के आदर करनेवाले ( कवयः ) बुद्धिमान् जन ( प्र,  
शंसन्ति ) प्रशंसा करते हैं वैसे उनको आप लोग जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो राजा  
और उपदेशक जन दिन में शयनरहित और जिनकी विद्वान् जन स्तुति करते हैं उनके  
सत्सङ्ग में आप लोग कांक्षासिद्धि करो ॥ १ ॥

प्रातर्यजध्वमश्विनां हिनोत न मायमस्ति देवया अजुष्टम् ।

उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वं पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोग ( प्रातः ) प्रभातकाल में ( अश्विना ) सूर्य  
और उषा का ( यजध्वम् ) उत्तम प्रकार प्राप्त हजिये और ( हिनोत ) वृद्धि  
कीजिये जहाँ ( न ) नहीं ( सायम् ) सन्ध्याकाल ( अस्ति ) है वहाँ जो ( देवयाः )  
श्रेष्ठ गुण और विद्वानों को प्राप्त होनेवाले हैं उनका ( अजुष्टम् ) सेवक करिये और  
जो ( अन्य ) अन्य ( अस्मत् ) हम लोगों से ( यजते ) मिलता है ( च ) और  
जा ( वि, आवः ) विशेष रक्षा करता है वह ( उत ) भी ( पूर्वः पूर्वः ) पहिला  
पहिला ( यजमान ) यज्ञ करनेवाला ( वनीयान् ) अनिणय विभाग करनेवाला होना  
है उसका भी संस्कार करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि प्रतिदिन रात्रि के कोये श्रेय ग्रहण में  
उत्तम जैसे नियम से अन्तरिक्ष और पृथिवी वर्त्तमान हैं वैसे वर्त्ताव करके सब की  
रक्षा करें ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

हिरण्यस्वह्मस्युऽवर्णो वृत्तस्तुः पृक्षां वदन्ना रथो वर्त्तते वाम् ।

मनोजवा आश्वना वार्तरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥

पदार्थ—हे ( अश्विना ) शिल्पविद्या के जानने वाले ( वाम् ) आप दोनों  
का ( हिरण्यस्वह्म ) तेज और सुवर्ण के सद्ग स्वत्वा पर का वर्ण और ( मनुष्यः )  
देखने योग्य वर्ण जिसका वह ( वृत्तस्तुः ) जल को सुख करनेवाला ( पृक्षा ) अन्न  
आदि को ( बहन् ) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता हुआ ( रथः ) विमान आदि वाहन  
को ( आ, वर्त्तते ) सब प्रकार वर्त्तमान है और जिनको ( मनोजवाः ) मनुष्य  
वेगवाले ( वार्तरंहा ) वायु के सद्ग वेगयुक्त अग्नि आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं और  
( येन ) जिस रथ से ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( दुरितानि ) दुःख से प्राप्त होने योग्य  
स्थानान्तरोको ( अतिशय ) अत्यन्त प्राप्त होते हैं उसको आप दोनों रक्षिए ॥३॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विमानादिकों को अग्नि और जलादिकों से बनावें तो वे विमान प्रादि मन और वायु के सदृश शीघ्र जाकर लौट आवें ॥ ३ ॥

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विषे च निष्ठं पिबो ररते विभागे ।

स लोकस्य पीपरच्छमीभिरनुर्वभासः सद्मिषु तुयात् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( य ) जो ( नासत्याभ्याम् ) नही विद्यमान असत्य जिनके उनसे ( समीप ) कर्मों के द्वारा ( भूयिष्ठम् ) अतीव बहुत ( च निष्ठम् ) अतिशय अन्न को ( विषे ) व्याप्त होता है और ( पिब ) अन्न के ( विभागे ) विभाग में ( ररते ) देता है ( स ) वह ( अनुर्वभासः ) नही ऊपर कान्तियाँ जिसकी ( अस्य ) इसके ( लोकम् ) सन्तान का ( पीपरत् ) पालन करें वह ( इत् ) ही ( सबम् ) प्राप्त दुःख का ( तुयात् ) नाश करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो अग्नि और जल से बहुत कायों को सिद्ध करते हैं वे जगत् का रक्षण करके सम्पूर्ण दुःख के नाश करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

किर मनुष्य को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

समधिनीरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीतो गमेम ।

आ नी रयि बहतमोत वीराना विशान्यमृता सौमगानि ॥ ५ ॥ १ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग ( अधिनो ) अग्नि और जल के समीप से ( नूतनेन ) नवीन ( मयोभुवा ) सुख के साधक ( अवसा ) रक्षण आदि और ( सुप्रणीतो ) श्रेष्ठ नीति से ( न ) हम अपने लिए ( रयिम् ) धन को ( आ, बहतम् ) प्राप्त कराते हुए को और हमारे लिये ( वीरान् ) शूरता प्रादि गुणों से युक्त पुरुषों को ( उत ) और ( विशानि ) सम्पूर्ण ( अमृता ) जलो के सदृश सुखकारक ( सौमगानि ) सुन्दर ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हुए को ( सन्, आ, गमेम ) मिलें उन को आप लोग भी ( आ ) उत्तम प्रकार मिलिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यथार्थवक्ता जन सब के साथ बर्ताव करें वैसे इन सब लोगों को बर्ताव करना चाहिये ॥ ५ ॥

इम सूक्त में अग्नि, जल, विद्वान् और राजा के कृत्य वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सतहस्तरकी सूक्त और अठारहवीं बर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ नवर्षस्याष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य सप्तवधिरात्रेय ऋचि । अधिनो वेधते । १, २, ३ उष्णिक् छन्दः । ऋचभ स्वरः । ४ निचुत्त्रिष्टुप् छन्दः । वेधतः स्वरः । ५, ६ अनुष्टुप् ७, ८, ९ निचुवनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

अथ नव ऋचावाले अठहस्तरवें सूक्त का आरम्भ किया है उसके प्रथम मन्त्र से

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अधिनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वैनतम् ।

हंसावि पततमा सुतां उप ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( नासत्या ) सत्य व्यवहार से युक्त तथा ( अधिनो ) वायु और जल के सदृश उपदेश देने वा ग्रहण करने वाले आप दोनों ( इह ) इस सत्तार में ( हंसावि ) दो हंसों के सदृश ( आ, गच्छतम् ) आइये और ( सुताम् ) उत्पन्न हुए पदार्थों के ( उप ) समीप ( मा ) सब प्रकार ( पततम् ) प्राप्त हूजिये तथा ( मा, वि, वैनतम् ) विरुद्ध कामना मन कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विमान से हंस के सदृश अन्तरिक्ष में जा आकर विरुद्ध आचरण का त्याग करके सत्य की कामना करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अधिना हरिणावि गौराविबानु यवसम् ।

हंसावि पततमा सुतां उप ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( अधिना ) यजमान और यज्ञ करानेवाले आप दोनों ( हंसावि ) दो हंसों से सदृश ( सुताम् ) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य आदिकों के ( उप ) समीप ( मा, पततम् ) आइये तथा ( यवसम् ) सोमलता के ( अनु ) पश्चात् ( हरिणावि ) जैसे हरिण दौड़ते हैं वैसे और ( गौरावि ) जैसे दो मृग दौड़ते हैं वैसे आइये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य जल और बिजुली को सिद्ध करते हैं वे हरिण के सदृश शीघ्र जाने के योग्य हैं ॥ २ ॥

अधिना वाजिनीवसु जुषेथा यज्ञमिष्टयं ।

हंसावि पततमा सुतां उप ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( वाजिनीवसु ) विज्ञानविद्या को बसाने वाले ( अधिना ) अध्यापक और उपदेशक जनो आप लोग ( जुषे ) इष्ट सुख की प्राप्ति के

लिए ( यज्ञम् ) विज्ञान की सङ्कलित यज्ञ का ( आ ) सब प्रकार से ( जुषे-याम् ) सेवन करिये तथा ( हंसावि ) दो हंसों के समान ( सुताम् ) पुत्र के सदृश वर्तमान शिक्षा करने योग्य शिष्यों के ( उप ) समीप ( पततम् ) प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । उपदेशक जन सम्पूर्ण शिक्षा करने योग्य मनुष्यों को पुत्र के सदृश मानकर और सब जगह भ्रमण कर के सत्य उपदेश से कृतकृत्य करें ॥ ३ ॥

किर स्त्रीपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अत्रिर्यदामबरो हन्तृवीसमजो हवी आधमानेव योषां ।

श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमधिना शन्तमेन ॥ ४ ॥ १ ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( अधिना ) सूर्य और चन्द्रमा के सदृश वर्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो ( यत् ) जो ( अत्रिः ) त्रिविध दुःखरहित ( वाम् ) आप दोनों को ( अबरोहन् ) प्राप्त होता हुआ ( योषा ) स्त्री ( आधमानेव ) जो याचना करती उस के समान ( ज्वीसम् ) सरल को ( अजोहवीत् ) अत्यन्त आह्वान करता है उस के साथ ( श्येनस्य ) बाज पक्षी के ( नूतनेन ) नवीन ( शन्तमेन ) अतिशय सुखकारक ( जवसा ) वेग के ( चित् ) सदृश मन से ( आ, अगच्छतम् ) आइये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वानों के अनुकरण से सरल स्वभाव की स्त्रीकार करके प्रयत्न करते हैं वे सर्वदा सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूर्यस्त्याह्व ।

श्रुतं मे अधिना हवं सप्तर्षि च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( अधिना ) विद्या से व्याप्त अध्यापक और परीक्षकजनो ( मे ) मेरे ( हवम् ) शब्द को ( अतम् ) ध्वन को और ( सप्तर्षिम् ) नष्ट हुए सात इन्द्रिय जिस के उम का ( व ) और ( मुञ्चतम् ) त्याग करो और ( वनस्पते ) हे वनस्पति ( सूर्यस्त्याह्व ) गर्भवती स्त्री के सदृश ( योनिः ) कारण आप ( वि ) विशेष करके ( जिहीष्व ) त्याग करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । आप लोग यथार्थवक्ता अध्यापक और उपदेशकों की दृष्टि करिये और जैसे गर्भवती स्त्री बालक का त्याग करती है वैसे ही अन्तःकरण से अधिना को दूर करिये ॥ ५ ॥

इस के अनन्तर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तर्षधये ।

मायाभिरग्निना युवं वृक्षं सं च वि चावथः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( अधिना ) अध्यापक और उपदेशकजनो ( युवम् ) आप दोनों ( मायाभिः ) बुद्धियों से ( भीताय ) भय को प्राप्त ( नाधमानाय ) उपत-प्यमान और ( सप्तर्षधये ) पंच ज्ञानेन्द्रियों मन और बुद्धि प सात नष्ट हुई जिसकी अर्थात् इनकी प्रबलता से रहित उसके लिए और ( ऋषये ) वेदार्थ के जाननेवाले के लिये ( च ) भी ( सन्, अचन् ) उत्तम प्रकार आइये ( वृक्षम्, च ) और जो काटा जाता उस वृक्ष को ( वि ) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—विद्वानों की योग्यता है कि बुद्धि के देन से अधिनादि भय के कारण डरे हुआ को भय रहित करके तथा सत्तार में मोह और अधर्म के योग से विमुक्त करके सुखी करें ॥ ६ ॥

कैसा गर्भ और जन्म इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यथा वातः पुष्करिणीं समिद्ध्यति सर्वतः ।

एवा ते गर्भे एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यथा ) जिस प्रकार से ( वात ) पवन ( पुष्करिणीम् ) छोटे तालाबों को ( सर्वतः ) सब ओर से ( समिद्ध्यति ) उत्तम प्रकार हिलाता है वैसे ( एवा ) ही ( ते ) आपका ( गर्भः ) जो धारण किया जाता वह गर्भ ( एजतु ) कपित होवे और ( दशमास्यः ) दश महीनों में हुआ ( निरैतु ) निकले ऐसा जानो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो स्त्रीपुरुष ऋषयर्च्य से विद्या को पढ़के विवाह करें तो दशवें मास में प्रसव हो ऐसा जानना चाहिये ॥ ७ ॥

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।

एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( दशमास्य ) दश महीनों में उत्पन्न हुए ( यथा ) जिस प्रकार से ( वातः ) वायु और ( यथा ) जिस प्रकार से ( वनम् ) जंगल ( यथा ) जिस प्रकार से ( समुद्र ) समुद्र ( एजति ) कम्पित होता वा चलता है वैसे ( एवा ) ही ( त्वम् ) आप ( जरायुणा ) केश के ढीपनेवाले के ( सह ) सहित ( जन्, इति ) आइये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वही गर्भ और उस में स्थित बालक उत्तम होता है जो दशवें महीने में होता है ॥ ८ ॥



दश मासाञ्जशयानः कुमारो अथि मातरि ।

निश्चि जीवो असतो जीवो जीवन्त्या अथि ॥६॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( जीव ) प्राण जादि का धारण करने वाला ( जीव ) ऊपर ( मातरि ) माना में ( दश ) दश ( मासान् ) महीनों तक ( शयन ) शयन करता हुआ ( अशत ) धाव से रहित ( कुमार ) बालक ( निरितु ) निकले वह ( जीव ) जीव ( जीवन्त्या ) जीवनी हुई के ( अथि ) ऊपर जीवनी है ॥ ६ ॥

भावार्थ—वे ही मन्तान उत्पन्न होते हैं कि जो दश महीने पूरा हो जबतक तबतक गर्भ में स्थित होकर प्रकट होत है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अधिवपदवाच्य स्त्रीगुण के गुणों का वर्णन होने में इस सूक्त के अर्थ की उनमें पिछले सूक्त के अर्थ का साथ गङ्गानि जाननी चाहिये ॥

यह अठहत्तरवाँ सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ दशस्यकोनाऽशीतितमस्य सूक्तस्य सत्यधवा आश्रेयः ऋषि । उषा

वेदता । १ स्वराड्वाही गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । २, ३, ७

मुग्गिबृहती । १० स्वराड्वाह बृहतीछन्द । मध्यम स्वर । ४, ५,

क पङ्क्ति । ६, ८ निचरपङ्क्तिछन्द । पञ्चम स्वर ॥

अथ दश ऋषिवाले उनामीने सूक्त का प्रारम्भ है इसमें स्त्री केसी हो इस विषय की कहते हैं—

महे नो अथ बंधयोपो राये दिविःसती ।

यथा चिन्ना मवीधयः सत्य भवमि वाद्ये सुजाते अश्वसृते ॥१॥

पदार्थ—हे ( उष ) श्रेष्ठ गुणों का पाता का क मृदु वत्समान ( वाद्ये ) डोरे के सदृश के पाते वाद्य सन्तिरूप ( सुजाते ) उत्तम गीति में उत्पन्न ( अश्व-सृते ) बड़ी प्रिय वाणी जिसकी ऐसी है मंत्र । ( यथा ) जैसे ( दिविःसती ) जैसे प्रकाश से युक्त प्रातर्वेला ( महे ) बड़े ( राये ) धन के लिए प्ररोध देनी है वैसे ( अथ ) आज ( न ) हम लोगों का ( बंधय ) जगाइये और ( चित् ) भी ( सत्यभवसि ) मन्त्रों के श्रवण मन्त्र वा अन्य में ( न ) हम लोगों को ( अवी-धय ) जगाइये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावद्भावात् है । जैसे प्रातर्वेला दिन का उत्पन्न करके सब को जगाती है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री अपने मन्तानों को अविद्या के मृदु वत्समान निद्रा से उठाकर चिन्ता को जगाती है ॥ १ ॥

या सुनीधे शौचद्रे व्यौच्छां दुहितर्दिवः ।

सा व्युच्छु सहीयमि सत्यभवसि वाद्ये सुजाते अश्वसृते ॥२॥

पदार्थ—हे ( अश्वसृते ) बड़े अन्न से युक्त ( सुजाते ) उत्तम मस्कारों से उत्पन्न ( वाद्ये ) जनान वाद्य ( सहीयमि ) अतिशय सहनेवाली ( दिव ) सूर्य की ( दुहित ) पुत्री के समान वर्त्तमान स्त्री ( या ) जो तू ( शौचद्रे ) पवित्र रथ में ( सुनीधे ) श्रेष्ठ न्याय में ( सत्यभवसि ) मन्त्र का श्रवण जिसमें उत्तम ( वि, औच्छ ) विशेष बसाती है ( सा ) वह तू हम लोगों का मुख में ( वि, उच्छ ) विशेष बसावे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमावद्भावात् है । जैसे प्रातर्वेला सब को मुख में बसाती है वैसे ही श्रेष्ठ स्त्री आनन्दयुक्त गृहस्थ में सब को बसाती है ॥ २ ॥

सा नो अद्यामरदुस्युच्छा दुहितर्दिवः ।

यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यभवसि वाद्ये सुजाते अश्वसृते ॥३॥

पदार्थ—हे ( सत्यभवसि ) मन्त्र व्यवहार में प्राप्त अन्न आदि ऐश्वर्य वाणी ( सुजाते ) श्रेष्ठ विद्या से प्रकट हुई ( वाद्ये ) प्राप्त होने योग्य ( अश्व-सृते ) बड़े ज्ञान से युक्त ( सहीयसि ) अधिपत्य सज्जनों और ( दिव ) काममाकर्त हुए की ( दुहित ) कन्या के मृदु विदुषी स्त्री ( या ) जो तू ( आभरदुसु ) सब प्रकार से धनो का धारण करनेवाली हुई ( न ) हम लोगों को ( वि ) विशेष करके ( औच्छ ) निवास करानेवाली है ( सा ) वह आप ( अद्य ) आज उत्तम मुख में ( वि ) विशेष करके ( उच्छ ) निवास कराओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो स्त्रियाँ प्रातर्वेला के मृदु श्रेष्ठ गुणवाली हो तो सब को आनन्द में बसाने के योग्य होती हैं ॥ ३ ॥

अभि ये त्वा विमावरि स्तोमैर्गुणन्ति वदयः ।

मयैर्महानि सुभिया दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसृते ॥४॥

पदार्थ—हे ( मघोनि ) बहुत धन से युक्त ( सुजाते ) उत्तम विद्या से प्रकट हुई ( अश्वसृते ) बड़े ज्ञान से युक्त और ( विमावरि ) प्रकाशवती प्रातर्वेला के मृदु वत्समान विद्यायुक्त स्त्री ( ये ) जो विद्वान् जन ( सुभिय ) सुन्दर लक्ष्मी जिन की ऐसे ( दामन्वन्तः ) बहुत दानक्रिया से युक्त ( सुरातयः ) सुन्दर

वान की इच्छा जिनकी वे ( बह्वयः ) पहुँचाने वाले धर्मियों के समान वर्त्तमान विद्वान् जन ( मघे ) धनो से और ( स्तोमैः ) स्तोत्रों से ( त्वा ) आपकी ( अभि ) सम्मुख ( गृह्णन्ति ) स्तुति करने हैं वे आप से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमावद्भावात् है । जैसे अग्नि प्रातर्वेलाओं को कर्ता है वैसे ही शिक्षक जन विद्या की प्राप्ति करने वाले हैं ॥ ४ ॥

यच्चिद्धि ते गवा इमे छदयन्ति मघत्त ।

परि चिद्वयं दधुर्दतो राधो अहयं सुजाते अश्वसृते ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे ( अश्वसृते ) बड़े ज्ञान से युक्त ( सुजाते ) उत्तम विद्या से प्रकट हुई विदुषी स्त्री । ( यत् ) जो ( इमे ) ये ( छदयन्ति ) कामना करते हुए ( ते ) आप के ( गवा ) समूह ( मघत्तये ) धनदान के लिए ( अहवत् ) लज्जा आदि दोष से रहित को ( चित् ) और ( राध ) धन को ( ददत ) देनेवालों को ( चित् ) निश्चय ( छदयन्ति ) प्रदान करने हैं वे निश्चय ( हि ) ही सुखी को ( परि, दधु ) धारण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमावद्भावात् है । जैसे प्रातःकाल के किरणमय अन्न तेज सब को ढांपने हैं वैसे ही शुभगुण वाली स्त्रियाँ अपने शुभगुणों से सब को आच्छादित करती हैं ॥ ५ ॥

गेषु धा वोरवद्यश उषो मघोनि सुमिधु ।

ये नो राधास्यहया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसृते ॥६॥

पदार्थ—हे ( अश्वसृते ) बड़े ज्ञानवाली ( सुजाते ) उत्तम विद्या से प्रकट हुई ( मघोनि ) प्रशंसित धन से युक्त और ( उष ) प्रातःकाल के मृदु वत्समान उत्तम स्त्री तू ( एषु ) उन स्त्री पुरुषों और ( सुमिधु ) विद्वानों में ( वोर-वत् ) जीवन्त विद्यमान जिस में लम्ब ( यश ) यश को ( जा ) सब प्रकार से ( धा ) धारण कर और ( ये ) जो ( मघवान ) बहुत धनो से युक्त जन ( नः ) हम लोगों का ( अहया ) विना भज्जा में कहे गये ( राधासि ) अन्नो को ( अरासत ) दवे उनका तू सत्कार कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमावद्भावात् है । वही प्रशंसित स्त्री है जो पिता और पति के कुल में श्रेष्ठ आचरण से पिता और पति के कुल को प्रकाशित करे ॥ ६ ॥

तेभ्यो दुम्नं वृहद्यश उषो मघोन्या वह ।

ये नो राधास्यहया गव्या मजन्त सूर्यः सुजाते अश्वसृते ॥७॥

पदार्थ—हे ( अश्वसृते ) बड़े ज्ञान से युक्त और ( सुजाते ) उत्तम विद्या से प्रकट हुई ( मघोनि ) बहुत धनवाली ( उष ) प्रातःकाल के मृदु वत्समान विदुषी स्त्री । ( ये ) जो ( न ) हम लोगों में ( सूर्य ) विद्वान् जन ( अहया ) घोड़ों के लिए और ( गव्या ) गौओं के लिए हितकारक ( राधासि ) धनो का ( मजन्त ) मधन करने हैं ( तेभ्य ) उन विद्वानों के लिए ( वृहत् ) बड़े ( दुम्नम् ) धन और ( यश ) यश को ( जा, वह ) सब प्रकार प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन सब के मुख के लिये पदार्थों की वृद्धि करते हैं वे प्रातःकाल के मृदु प्रकाशित यशवाले होकर सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

उत नो गोमतीरिष भा वृद्धा दुहितर्दिवः ।

साक दूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिर्गन्धिभिः सुजाते अश्वसृते ८

पदार्थ—हे ( सुजाते ) उत्तम विद्या से प्रकट हुई ( अश्वसृते ) बड़े ज्ञान से युक्त और ( दिव ) प्रकाशमान की ( दुहित ) कन्या के मृदु वत्समान स्त्री ( दूर्य-स्य ) सूर्य के ( रश्मिभिः ) किरणों के ( साकम् ) साथ ( उत ) और ( शुक्रैः ) शुद्ध ( शोचद्भिः ) पवित्र करनेवाले ( गन्धिभिः ) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभावों के साथ ( नः ) हम लोगों को ( गोमती ) गौओं विद्यमान जिसमें उन ( दिव ) अन्न आर्वाणों का ( जा, वह ) सब प्रकार से प्राप्त कराइये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमावद्भावात् है । जैसे सूर्य की किरणों से उत्पन्न उषा उपकार करनेवाली होती है वैसे ही शुभगुण कर्म और स्वभावों के सहित स्त्री आनन्द की उपकार करनेवाली होती है ॥ ८ ॥

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुया अपः ।

नेषां स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरौ अचिवा सुजाते अश्वसृते ॥९॥

पदार्थ—हे ( सुजाते ) उत्तम विद्या से प्रकट हुई ( अश्वसृते ) बड़े ज्ञान से युक्त ( दिव ) प्रकाश की ( दुहित ) कन्या के मृदु वत्समान उत्तम अश्वचक्रवाली स्त्री तू ( अप ) कम को ( चिरम् ) बहुत काल पर्यन्त ( मा ) नहीं ( तनुयाः ) विस्तार कर ( यथा ) जैसे ( रिपुम् ) शत्रु को ( तपाति ) सतापित करती है वैसे ( स्तेनम् ) चोर को सतापित कर और ( त्वा ) तुझको कोई भी ( न ) नहीं सता-पयुक्त करे और जैसे ( अचिवा ) तेज में ( सूर ) सूर्य सबको तपाना है वैसे ( इत् ) ही तू दुष्टजनों को सतापित करके हम लोगों को ( वि, उच्छा ) अच्छे प्रकार बसा ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमावद्भावात् है । जो स्त्री और पुरुष मन्त्र, आलसी और चोर नहीं होते हैं वे सूर्य के मृदु प्रकाशित होते हैं ॥ ९ ॥

एतावदेतद्वत्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।

या स्तोत्रभ्यो विभावयुच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वत्थे ॥१०॥

पदार्थ—हे ( अश्वत्थ ) बड़े नाम से युक्त ( सुजाते ) उत्तम विद्या से प्रकट हुई ( विभावयि ) प्रकाशमान और ( उचः ) प्रातर्वेला के सद्गुण वर्तमान स्त्री ( त्वम् ) तू ( एतावत् ) इतने को ( वा ) वा ( भूय ) अधिक को ( वा ) भी ( दातुम् ) देने को ( अर्हसि ) योग्य है और ( या ) जो तू ( स्तोत्रभ्यः ) स्तुति करनेवालों के लिये ( उच्छन्ती ) निवास करती हुई वर्तमान है वह तू अपने स्वरूप से ( इत् ) ही ( न ) नहीं ( प्रमीयसे ) मरती है ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे स्त्रीजनो! जैसे उपवेला जोड़ी भी बड़े आनन्दो को देती है वैसे तुम होओ ॥ १० ॥

इस सूक्त में प्रातः और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ को इसमें पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उमासीवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ षड्वर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य सत्यधवा आग्नेय ऋषिः । उवा वेवता ।

१ निचृत्विष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

३, ४, ५ भुरिक् पङ्क्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ षा ऋचावाले अस्तीर्षे सूक्त का आरम्भ है इसमें स्त्रियों के गुणों को कहते हैं—

धृतधामानं बृहतीयुतेन ऋतादरिपरुणसु विमासीम् ।

देवीमुषसं स्वरावर्हन्तीं प्र ते विमासी मतिभिर्जरन्ते ॥१॥

भाषार्थ—हे स्त्रि ! जैसे ( विप्रास ) बुद्धिमान् जन ( मतिभिः ) बुद्धियों से और ( ऋतेन ) जल के सद्गुण मत्स्यसे ( धृतधामानम् ) प्रहरों को प्रकाश करती और ( बृहतीम् ) बहती हुई ( ऋतादरिम् ) बहुत सत्य आनन्द में युक्त ( अरुणम्बुम् ) लाल रूपवाली ( विमासीम् ) प्रकाश करती हुई ( देवीम् ) प्रकाशमान और ( नः ) सूर्य के सद्गुण विद्या के प्रकाश का ( आ, बृहतीम् ) धारण करती हुई ( उचसम् ) उपवेला की ( प्रति ) उत्तम प्रकार ( जरन्ते ) स्तुति करते हैं उनकी तू प्रशंसा कर ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बुद्धिमान् पनि उप काल आदि पदार्थों की विद्या का जानकर क्षणभर भी काल व्यर्थ नहीं व्यतीत करने है वैसे ही स्त्रियाँ भी व्यर्थ समय न व्यतीत करे ॥ १ ॥

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगन्पथः कुर्वती यारपयै ।

बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छस्त्रे अहाम् ॥२॥

पदार्थ—हे उत्तम स्वभाववाली स्त्रियो ! जैसे ( एषा ) यह ( बृहद्रथा ) बड़े रथ जिसके ऐसी ( बृहती ) बड़ी ( विश्वमिन्वा ) सगुण जगत् को प्रक्षेप करती धरणा करती और ( जनम् ) मनुष्य को और ( दर्शता ) देखने योग्य भूमियों को ( बोधयन्ती ) जनाती हुई ( सुगन् ) सुखपूर्वक जिनमें चले उन ( पथः ) मार्गों का ( कुर्वती ) प्रकाशित करती हुई ( उवा ) प्रातर्वेला ( अग्ने ) दिन से आगे ( याति ) चलती है और ( अहाम् ) दिनों के ( अग्ने ) पहिले से ( ज्योतिः ) प्रकाश को ( यच्छति ) देती है वैसे तुम होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्रियाँ प्रभातवेला के सद्गुण अपने पनि आदि को सूर्योदय से पहिले जगाती, गृह और बाहर के मार्गों को साफ करती, आते हुए पतियों के हाथ जोड़ के आगे बढ़ी होती और सब काल में विज्ञान को देती हैं वे ही देश और कुल को शोभन करनेवाली हैं ॥ २ ॥

एषा गोभिररुणेभिर्गुजानास्त्रैघन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।

पथो रदन्ती सुचिताय देवी पुरुषदुता विश्ववारा वि माति ॥३॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त स्त्रि ! जैसे ( एषा ) यह प्रातर्वेला ( अरुणेभिः ) चारों ओर रक्त वर्णवाले ( गोभिः ) किरणों के साथ ( गुजाना ) युक्त और ( रयिम् ) धन को ( अरुणस्त्रो ) मिट्ट करती हुई ( अप्रायु ) नहीं नष्ट होनेवाले को ( चक्रे ) करती है और ( पथः ) मार्गों को ( रदन्ती ) छोड़ती हुई ( पुरुषदुता ) बहुतों से प्रशंसा की गई ( विश्ववारा ) सम्पूर्ण मनुष्यों से स्वीकार करने योग्य ( देवी ) प्रकाशित होती हुई ( सुचिताय ) ऐश्वर्य के लिये ( वि, माति ) विशेष करके प्रकाशित होती है वैसे आप होओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पतिव्रता, विद्यायुक्त और चतुर स्त्री गृह को प्रकाशित करनेवाली होती है वैसे ही प्रातर्वेला ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करनेवाली है ॥ ३ ॥

एषा ज्येनी भवति द्विर्हा आविष्कृशाना तन्वं पुरस्तात् ।

ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त स्त्रि ! जैसे ( एषा ) यह प्रातर्वेला ( पुरस्तात् ) प्रथम ( तन्वम् ) शरीर को ( आविष्कृशाना ) और सपूर्ण रूपवाले इन्द्रियों की प्रकटता

करती हुई ( द्विर्हा ) दिन और रात्रि से बढ़ानेवाली ( ज्येनी ) विशेष हरिणी के सद्गुण वेगयुक्त ( भवति ) होती है और ( ऋतस्य ) मत्स्य के ( पन्थाम् ) मार्ग की ( अनु, एति ) अनुगामीनी होती है और ( साधु ) उत्तम विज्ञान को ( प्रजानतीव ) विशेष करके जाननी हुई मी ( दिशः ) दिशाओं का ( न ) नहीं ( मिनाति ) नाश करती है वैसे तू वर्णाव कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सती स्त्री गृहाश्रम के मार्ग को प्रकाशित करके सम्पूर्ण सुखों को प्रकट करती है वैसे ही प्रातर्वेला वर्तमान है ॥ ४ ॥

एषा शुभ्रा न तन्वां विदानोर्ध्वे स्नाती दृश्ये नो अस्थात् ।

अप देवो बाधमाना तमास्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागां ॥५॥

पदार्थ—हे श्रेष्ठ लक्षणवाली स्त्रि ! जैसे ( एषा ) यह ( उवा ) प्रातर्वेला ( शुभ्रा ) श्वेतवर्णवाली बिजुली के ( न ) सद्गुण ( तन्वम् ) शरीरों को ( विदाना ) जनाती हुई ( ऊर्ध्वे ) ऊपर से स्थित ( स्नाती ) धुध और ( नः ) हम लोगों के ( दृश्ये ) दर्शन के लिये ( अस्थात् ) स्थित होती है और ( द्वेषः ) द्वेष करनेवाले जनों और ( तमांसि ) रात्रियों को ( अप, बाधमाना ) निवारण करती हुई ( दिवः ) सूर्य की ( दुहिता ) कन्या के सद्गुण वर्तमान ( ज्योतिषा ) प्रकाश से ( आ, अगात् ) प्राप्त होती है वैसे तू हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कुलीन स्त्री जलादिको और दृग्द्रव्यों के निग्रहों से बाहर और भीतर में धुध, गृहस्थान्धकार को निवृत्त करती हुई सब के शरीर की रक्षा करती है और गृह के कृत्यों में चतुर है वैसे ही प्रातर्वेला होती है ॥ ५ ॥

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नृन्वाधैव भद्रा नि रिणीतेऽपसः ।

व्यूष्वती वायुषे वायौणि पुनज्योतिर्युवतिः पूर्वधाकः ॥६॥२३॥

पदार्थ—हे शुभ लक्षणवाली स्त्रि ! जैसे ( एषा ) यह प्रातर्वेला ( दिवः ) सूर्य की ( दुहिता ) कन्या के सद्गुण ( नृन् ) अधणी श्रेष्ठ पुरुषों को ( योष्वे ) स्त्री के सद्गुण ( भद्रा ) कल्याण करनेवाली ( प्रतीची ) पश्चिम दिशा का प्रातः ( अपसः ) सुन्दर रूप का ( नि, रिणीते ) अत्यन्त प्राप्त होती है और ( वायुषे ) देनेवाले के लिए ( वायौणि ) स्वीकार करने योग्य धन आदि का ( व्यूष्वती ) विशेष करके आच्छादित करती हुई ( पूर्वधा ) पहिली के सद्गुण ( पुन ) फिर ( ज्योतिः ) ज्योति रूप को ( युवति ) प्राण यौवनावस्था वाली के सद्गुण ( अक ) करती है वैसे तुम होओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्रियाँ शुभ आचरणवाली और युवावस्था को प्राप्त हुई अपने सद्गुण पतियों को प्राप्त होकर सम्पूर्ण गृहकृत्यों को व्यवस्थापित करती हैं प्रातर्वेला के सद्गुण अत्यन्त शोभित होती हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में प्रातर्वेला और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ को इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अस्तीर्षा सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ षड्वर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य इयावाव आग्नेय ऋषिः । सविता वेवता ।

१, ५ जगती । २ विराट् जगती । ४ निचृत्विजगती छन्दः । निषाद स्वरः ।

३ स्वरट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥

अथ षा ऋचावाले इयासीर्षे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मंत्र से योगीजन क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।

वि होत्राः दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( होत्रा ) लेने वा देनेवाले ( विप्रा ) बुद्धिमान् योगीजन ( विप्रस्य ) विशेष करके व्याप्त होनेवाले ( बृहतः ) बड़े ( विपश्चितः ) अनन्त विद्यावान् ( सवितुः ) सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करनेवाले ( देवस्य ) सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक परमात्मा के मध्य में ( मनः ) मननस्वरूप मन को ( युञ्जते ) युक्त करते ( उत ) और ( धियो ) बुद्धियों को ( युञ्जते ) युक्त करते हैं और जो ( वयुनावित् ) प्रजानों को जाननेवाला ( एकः ) सहायरहित अकेला ( इत् ) ही सम्पूर्ण जगत् को ( वि, दधे ) रचना और जिमकी ( मही ) बड़ी आदर करने योग्य ( परिष्टुतिः ) सब ओर व्याप्त स्तुति है वैसे उसमें आप लोग भी चित्त को धारण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—अनेक विद्यावान् हित, बुद्धि आदि पदार्थों के अधिष्ठान, जगदीश्वर के बीच जो मन और बुद्धि को निरन्तर स्थापन करते हैं वे समस्त ऐहिक और पारलौकिक सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रामावीन्द्रं द्विपदे चतुष्पदे ।

वि भार्कमरुत्यस्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषतो वि रंजति ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( कविः ) सर्व पदार्थों का जानने वाला सर्वज्ञ ( वरेण्यः ) स्वीकार करने योग्य और ( सविता ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का देने वाला ईश्वर

( द्विषे ) मनुष्य आदि और ( चतुष्पदे ) गौ आदि के लिए ( भद्रम् ) कल्याण को ( प्र, अस्तावीत् ) उत्पन्न करता और ( बिभवा ) सम्पूर्ण ( रुपाणि ) सूर्य आदिको का ( प्रति, मुञ्चते ) त्याग करता है तथा ( नाकम् ) नदी विद्यमान दुःख जिस से उस का ( बि, अक्षयत् ) प्रकाश करता है वह जैसे ( उषसः ) प्रातःकाल के ( अनु-प्रयाणम् ) पीछे गमन को सूर्य ( बि, राजति ) विशेष कर के शोभित करता है वैसे सूर्य आदि को प्रकाशित करता है उग की तुम सब उपासना करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने विविध और अनेक प्रकार के जगत् को सम्पूर्ण प्राणियों के सुख के लिए रचा उमी जगदीश्वर की आप लोग उपासना करो ॥ २ ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यस्य प्रयाणमन्वय इद्युर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।

यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महिस्विना । ३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ( यस्य ) जिस जगदीश्वर ( देवस्य ) सब के प्रकाशक के ( प्रयाणम् ) अच्युती तरह चलत है जिससे उम मार्ग और ( महिमानम् ) महिमा को ( अनु ) पश्चात् ( अन्वे, इत् ) और ही वसु आदि ( देवा ) प्रकाश करने वाले सूर्य आदि ( ययु ) चलते अर्थात् प्राप्त होते हैं और ( य ) जो ( एतश ) सब व्यव ( सविता ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का करने और ( देव ) सम्पूर्ण सुखों का देने वाला ( महिस्विना ) महिमा में ( ओजसा ) पराक्रम से और बल से ( पार्थिवानि ) अन्तरिक्ष में विहित कार्यों और ( रजांसि ) नौकों का ( विममे ) विशेष करके रचना है ( स ) वही सब से ध्यान करने योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य आदिकों के धारण करने वालों का धारण करनेवाला और देनेवालों का देनेवाला, बड़े का बड़ा और प्रकृतिरूप कारण से सम्पूर्ण जगत् का रचना है और जिसके पीछे अर्थात् आश्रय से सब जीवन और स्थित है वही सम्पूर्ण जगत् का रचने वाला ईश्वर ध्यान करने योग्य है ॥ ३ ॥

उत यामि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः १ मुच्यमि ।

उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥ ४ ॥

पदार्थ—उ ( सवित ) सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न करनेवाले ( देव ) विद्वान् जो आप ( उत ) निश्चय से ( त्रीणि ) सूर्य चन्द्रमा और बिजुली नामक ( रोचना ) प्रकाशकों का ( यामि ) प्राप्त होत ( उत ) और ( सूर्यस्य ) सूर्य की ( रश्मिभिः ) किरणों से ( सत् मुच्यमि ) उत्तम प्रकार कहने हा ( उत ) और ( उभयतः ) दोनों ओर से ( रात्रीम् ) ग्रन्थकार को ( परि, ईयसे ) दूर करने हो ( उत ) और ( धर्मभिः ) धर्माचरणों से ( मित्र ) मित्र ( भवसि ) होते हो वह आप हम लोगों से मत्कार करने योग्य हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सबका स्वामी, ईश्वर, तीन—बिजुली, सूर्य और चन्द्रमारूप बड़े दीपों को रचके मन्त्र व्याप्त और सब का मित्र हुआ और सूर्य आदि को अभिव्याप्त हो और धारण करके प्रकाशित करता है वही सब प्रकार पूज्य है अर्थात् उपासना कर्त योग्य है ॥ ४ ॥

फिर ईश्वरविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पृषा भवसि देव यामभिः ।

उतेदं विश्वं भुवनं वि रंजमि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे । ५॥

पदार्थ—उ ( सवितः ) सत्यव्यवहार में प्रेरणा करने और ( देव ) सम्पूर्ण सुखों के देनेवाले ( ते ) आपका जा ( श्यावाश्व ) सूर्यलोक ( यामभिः ) प्रहरो से ( स्तोमम् ) प्रशमा को ( ग्रन्थों ) व्याप्त होता है उनके दृष्टान्त से ( उत ) भी ( इदम् ) इस ( विश्वम् ) समस्त ( भुवनम् ) भुवन को ( त्वम् ) आप ( बि, राजति ) प्रकाशित करते हा ( उत ) और ( पृषा ) पुष्टि करनेवाले ( भवसि ) होते हा ( उत ) और ( एक ) द्वितीयरहित ( इत् ) ही ( प्रसवस्य ) उत्पन्न हुए जगत् के ( ईशिषे ) ऐश्वर्य का विधान करने हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस के महत्त्व के जनाने के लिये सूर्य आदि लोक दृष्टान्त है उसी सम्पूर्ण परमेश्वर्य के देनेवाले का तुम ध्यान करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सत्यव्यवहार में प्रेरणा करनेवाले ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इष्यासीर्वा सूक्त और बीबीसर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ नवर्चस्य दुष्यतीतितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । सविता

देवता । १ निचुवनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ।

२, ४, ६ निचुड गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ८ विराड्गायत्री

छन्दः । धृजः स्वरः ॥

अथ नव ऋचावाले श्यासीर्वा सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों

को किसकी उपासना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धियो नमः ।

धियो नमः सर्वर्षाभ्यः । १॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( भर्गम् ) हम लोग ( भगवन् ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त ( सवितुः ) अन्तर्यामी ( देवस्य ) सम्पूर्ण के प्रकाशक जगदीश्वर का जो ( धियो नमः ) अतिशय उत्तम और ( भोजनम् ) पालन वा भोजन करने योग्य ( सर्वर्षाभ्यम् ) सब को अत्यन्त धारण करनेवाले ( तुरम् ) अविद्या आदि दोषों के नाश करनेवाले सामर्थ्य का ( वृणीमहे ) स्वीकार करने और ( वीमहि ) धारण करते हैं ( तत् ) उसका तुम लोग स्वीकार करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सब से उत्तम जगदीश्वर की उपासना करके अन्य की उपासना का त्याग करते हैं वे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त होते हैं ॥ १ ॥

अस्य हि स्वयंशस्तरं सवितुः कचन प्रियम् ।

न भिनन्ति स्वराज्यम् ॥ २ ॥

पदार्थ—जा ( हि ) निश्चय से ( अस्य ) इस परमात्मा ( सवितुः ) जगदीश्वर का ( स्वयंशस्तरम् ) अपना अपना यश जिसका वह अनिश्चित ( प्रियम् ) अत्यन्त प्रिय ( स्वराज्यम् ) अपने राज्य को ( कत्, कचन ) कभी ( न ) नहीं ( भिनन्ति ) नष्ट करते हैं वे धार्मिक होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो परमात्मा के बीच अज्ञान का नाश करते हैं वे यशस्वी हो कर राज्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो ( सविता ) उत्पन्न करनेवाला ( भग ) ऐश्वर्यवान् परमात्मा ( दाशुषे ) दाताजन के लिये ( रत्नानि ) धनों का ( सुवाति ) उत्पन्न करना है ( तम् ) उनको ( भागम् ) ऐश्वर्य सम्बन्धी ( चित्रम् ) अद्भुत को ( ईमहे ) प्राप्त हावें वा जाने और ( स, हि ) वही उदार दाता है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सम्पूर्ण रत्नों के देनेवाले परमात्मा की सेवा करते हैं वे अद्भुत ऐश्वर्य को प्राप्त होत हैं ॥ ३ ॥

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्मावीः सोमगम् । रां दुःष्वप्यै सुव ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( सविताः ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के देनेवाले स्वामिन् ( देव ) शोभित आप कृपा से ( न ) हम लोगों के लिये वा हम लोगों के ( अद्या ) आज ( प्रजावत् ) बहुत प्रजायें विद्यमान जिसके उम ( सोमगम् ) सुन्दर ऐश्वर्य के भाग को ( तावी ) उत्पन्न कीजिये और ( दुःष्वप्यै ) स्वप्ने में उत्पन्न दुःख को ( परा, सुव ) दूर कीजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जा परमेश्वर की पार्थी। करके धर्मयुक्त पुण्यार्थ करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य वाले हावें ५, ७ और दारिद्र्य से रहित हान हैं ॥ ४ ॥

मनुष्य किस लिए ईश्वर की प्रार्थना करें इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

विश्वान देव सवितुर्दुरितानि परां सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ५ ॥ २५

पदार्थ—हे ( सवित ) सम्पूर्ण समार के उत्पन्न करनेवाले ( देव ) और सम्पूर्ण समार को प्रकाशित करनेवाले जगदीश्वर ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( दुरितानि ) दुष्ट आचरणों को आप ( परा, सुव ) दूर कीजिये और ( यत् ) जो ( भद्रम् ) कल्याणकारक है ( तन् ) उसको ( न ) हम लोगों के लिए ( आ, सुव ) सब प्रकार से प्राप्त कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर ! आप कृपासे जितना हम लोगों में दुष्ट आचरण है उनको अलग करके धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभावों को स्थापित कीजिये ॥ ५ ॥

इस जगत् में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को

अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सुवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( अनागत ) अपराध से रहित हम लोग ( अदितये ) माता आदि के लिये ( देवस्य ) सर्व सुख देनेवाले ( सवितुः ) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के ( सुवे ) जगत् रूप ऐश्वर्य में ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( वामानि ) सम्भोग करने योग्य धर्मों को ( वीमहि ) धारण करें वैसे आप लोग भी धारण करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन इस ईश्वर से रचे हुए समार में सृष्टिक्रम में विद्या के द्वारा कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही अन्य जनो को भी चाहिये कि सिद्ध करें ॥ ६ ॥

आ विश्वदेव सत्पति सक्तेरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग ( अद्या ) आज ( सक्ते ) उत्तम प्रकार कहे गये सत्य वचनों वा वेदों के वचनों से ( विश्वदेवम् ) समार के प्रकाश करने और ( सत्पतिम् ) प्रकृति आदि पदार्थ और सत्पुरुषों के पालन करनेवाले ( सत्यसवं ) नहीं नाश होनेवाला सामर्थ्ययोग जिसका उग ( सवितारम् ) सम्पूर्ण पदार्थों के बनानेवाले परमात्मा का ( आ, वृणीमहे ) स्वीकार करते हैं वैसे आप लोग भी स्वीकार कीजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर किसी अन्य का आश्रय नहीं करें ॥ ७ ॥



किं मनुष्यं कंसा वसति करं इति विषय को  
अगले मन्त्र में कहते हैं—

य इमे उमे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥८॥

पदार्थ—( यः ) जो ( अप्रयुच्छन् ) प्रमाद को नहीं करता हुआ मनुष्य जैसे ( स्वाधी ) उत्तम प्रकार स्थापन किया जाता है जिससे वह ( देवः ) प्रकाशमान ( सविता ) श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरणा करनेवाला सत्य में वर्तमान है वैसे ( इमे ) इन ( उमे ) दोनों ( अहनी ) रात्रि और दिनों का सत्य से ( पुरः ) आगे ( एति ) प्राप्त होता है वही भाग्यशाली होता है ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे परमेश्वर अपने नियमों की यथायोग्य रक्षा करता है वैसे ही मनुष्य भी श्रेष्ठ नियमों की यथावत् रक्षा करे ॥८॥

मनुष्यों से कौन परम गुरु माना जाता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकैर्न ।

प्र च सुवाति सविता ॥९॥२६॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( य ) जो ( श्लोकैर्न ) बारी से ( इमा ) इन ( विश्वा ) सम्पूर्ण प्रजानों और ( जातानि ) उत्पन्न हुआ को ( आश्रावयति ) सब प्रकार से सुनाता है वह ( च ) और ( सविता ) प्रेरणा करनेवाला हम लोगों को ( प्र, सुवाति ) प्रेरणा करे ॥९॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो जगदीश्वर वेद के द्वारा मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण विद्याओं का उपदेश करता है वही, परमगुरु मानने योग्य है ॥९॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होन से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह व्यासीदां सूक्त और छन्दोसवा वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ वसिष्ठस्य ऋषीतिमस्य सूक्तस्य अत्रिष्ट्वि । पृथिवी देवता । १ निबृत्तिष्ठदुप् ।

२ स्वरार्ह त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्त्रिष्टुप् । ४ निबृत्तजगती छन्दः । निषाद. स्वर ।

५, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । श्वेतः स्वर ।

८, १० भुरिक् पञ्चस्तवछन्दः । पञ्चम. स्वर ।

९ निबृत्तमृष्टुप् छन्दः । गान्धार. स्वर. ॥

अथ दश ऋचावाले तिरासीवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मेघ कंसा है इस विषय को कहते हैं—

अच्छां वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।

व निक्कद्वृषभो जीरदान् रेतां दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो ( वृषभ ) गृहेवाले बैलके सदृश ( जीरवानुः ) जीवानेवाला ( कनिष्ठवत् ) शब्द करता हुआ ( नमसा ) अन्न आदि के साथ ( आ, विवास ) सब ओर से वसता और ( ओषधीषु ) ओषधियों में ( रेतः ) जलरूप ( गर्भम् ) गर्भ को ( दधाति ) धारण करता है उस ( पर्जन्यम् ) मेघ को ( आभि ) इन वर्तमान ( गीर्भ ) वारिणियों से ( अज्झा ) उत्तम प्रकार ( वद ) कहिये और ( तवसम् ) बल की ( स्तुहि ) प्रशंसा करिये ॥१॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से मेघविद्या का यथावत् विज्ञान करें ॥१॥

किं मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि बुक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं विमाय भुवनं महावधात् ।

उतानां गा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जैसे बड़ई ( बुक्षान् ) काटने योग्य वृक्षों को ( वि, हन्ति ) विशेष कर के काटता है ( उत ) और न्यायकारी राजा जिन से ( विष्वम् ) सम्पूर्ण संसार ( विमाय ) भय करता है उन ( रक्षसः ) दुष्ट आचरणवालों का ( हन्ति ) नाश करता है और ( यत् ) जो ( पर्जन्यम् ) मेघ ( स्तनयन् ) शब्द करता हुआ ( महावधात् ) बड़ हुनन से ( भुवनम् ) जल को वर्षाता है और जैसे ( अनायाः ) नहीं अपराध जिनमें वह ( वृष्ण्यावतः ) वर्षने योग्य मेघ जिन में उनका ( ईषते ) नाश करता है ( उत ) और ( दुष्कृतः ) दुष्ट कर्मों के करनेवालों का ( हन्ति ) नाश करता है वैसे ही मनुष्य वसति करे ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य पालन करने शौचों का पालन करते हैं और नाश करने योग्यों का नाश करते हैं वे राजसत्ता से युक्त होते हैं ॥२॥

किं मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

रथीव कश्यायश्वो अभिक्षिपन्नाभिर्दुतान्कणुते वर्ष्नीः । अह ।

वृरात्सिहस्य स्तनया उदीरते यत्पर्जन्यः कणुते वर्ष्नीः नमः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( यत् ) जो ( पर्जन्यम् ) मेघ ( कश्याय ) मारने के लिये रस्सी अर्थात् कोड़े से ( अश्वान् ) घोड़ों को ( अभिक्षिपन् ) सम्मुख लाता हुआ ( रथीव ) बहुत रथवाले के सदृश ( वर्ष्नीम् ) वर्षाओं में श्रेष्ठ ( वृताम् ) दूतों को ( आभिः, कणुते ) प्रकट करना है ( अह ) परतन्त्र करने में वे ( वृरात् ) दूर से ( सिहस्य ) सिंह के सदृश ( उत, उदीरते ) कम्पाते वा चलते हैं और पर्जन्य ( वर्ष्नीम् ) वर्षाओं में हुए ( नमः ) अन्तरिक्ष को ( कणुते ) करता अर्थात् प्रकट करता है उसको आप ( स्तनया ) पुकारिये ॥३॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सारथि घोड़ों को यथेष्ट स्थान में लेजाने को समर्थ होता है वैसे ही मेघ जलों को इधर उधर लेजाता है ॥३॥

किं मनुष्यों को क्या जानना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीजिह्वे पिन्वते स्वः ।

इरा विश्वस्यै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवी रेतसावति ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( यत् ) जो ( पर्जन्यम् ) पालनों को उत्पन्न करनेवाला मेघ ( रेतसा ) जल से ( पृथिवीम् ) भूमि की ( अवति ) रक्षा करता है जिससे ( विश्वस्यै ) संपूर्ण ( भुवनाय ) भुवन के लिए ( इरा ) अन्न आदिक ( जायते ) उत्पन्न होता है और बहल ( स्वः ) घनरिक्त का ( पिन्वते ) सेवन करते हैं और जिमसे ( ओषधीः ) ओषधियों को ( उत, जिह्वे ) उत्तमता से प्राप्त होते हैं जिससे ( विद्युत ) बिजुलियाँ ( पतयन्ति ) पतन होती हैं जहाँ ( वाता ) पवन ( प्र ) अत्यन्त ( वान्ति ) चलते हैं उस मेघ को यथावत् तुम विशेष जानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोगों को चाहिए कि जिन मेघ से सबका पालन होता है उसकी वृद्धि वृक्षों के लगाने, वनों की रक्षा करने और होम करने से मिद्ध करें जिससे सब का पालन मुख स होवे ॥ ४ ॥

किं वह मेघ कंसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यस्य व्रते पृथिवी ननमीति यस्य व्रते शफवज्जुहोति ।

यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥२७॥

पदार्थ—हे ( पर्जन्यम् ) मेघ के सदृश वर्तमान विद्वन् ( यस्य ) जिस मेघ के ( व्रते ) कर्म में ( पृथिवी ) भूमि ( ननमीति ) अत्यन्त नम्र होती और ( यस्य ) जिस मेघ के ( व्रते ) कर्म में ( शफवत् ) खुर के तुल्य ( जुहोतीति ) निरन्तर धारण करती है और ( यस्य ) जिस मेघ के ( व्रते ) कर्म में ( विश्वरूपा ) अनेक प्रकार की ( ओषधीः ) सामन्तता आदि ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं उस मेघकी विद्या से युक्त ( सः ) वह आप ( नः ) हम लोगों के लिए ( महि ) बड़े ( शर्म ) गृहकों ( यच्छ ) दीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वृष्टियाँ न होवें तो किसी का भी जीवन न हावे ॥ ५ ॥

किं वह मेघ कंसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

दिवो नो हृष्टि मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।

अवांतेन स्तनयित्नुनेद्यपो निषिञ्चसुरः पिता नः । ६॥

पदार्थ—हे ( मरुतः ) वायुवद्वर्तमान मनुष्यों आप लोग ( नः ) हम लोगों के लिए ( विषः ) मूर्ध्नि मे ( वृष्टिम् ) वृष्टि को ( ररीध्वम् ) दीजिए तथा ( वृष्णः ) वर्षनेवाले ( अश्वस्य ) बड़े मेघ के ( धाराः ) प्रवाहों को ( प्र, पिन्वत ) सींचिए और जो ( अवांतेन ) नीचे वर्तमान और ( एतेन ) इस ( स्तनयित्नुना ) बिजुलीरूप से ( अपः ) जलों का ( निषिञ्चन् ) अत्यन्त सेवन करता हुआ ( असुरः ) मेघ ( नः ) हम लोगों के ( पिता ) उत्पन्न करनेवाले पिता के सदृश पालन करनेवाला ( आ, इति ) प्राप्त होता है उसको आप लोग विशेषकरके जानिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानों ! जिन कर्मों से वृष्टि अधिक होवे उन कर्मों का सेवन कीजिए ॥ ६ ॥

किं वह मेघ क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अभि कन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।

इति सु कर्ष विषितं न्यङ्घ्रं समा भवन्तुहृतो निपादाः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ! जो मेघ ( गर्भम् ) गर्भ को ( आ, धाः ) चारों ओर से धारण करता और ( उदन्वता ) बहुत जल के सहित ( रथेन ) सुन्दर स्वरूप से ( अभि ) सम्मुख ( न्यङ्घ्रं ) शब्द करता और ( स्तनय ) गर्जता है ( वृत्तिम् ) फाड़ने वाले के सदृश जल से पूर्ण को ( सु, कर्ष ) विशेष करके खींचता और दुःखों का ( परि ) सब प्रकार से ( बीजा ) नाश करता और ( विषितम् ) बड़े ( न्यङ्घ्रम् ) निश्चिन सेवा करते हुए को विशेष करके लिखता अर्थात् चेष्टा में लाता है तथा जिससे हम लोगों के ( उदन्वतः ) ऊर्ध्वस्थान में वर्तमान ( निपादाः ) निश्चित वा नीचे है अश्र जिनके ऐसे ( सवाः ) वर्ष ( भवन्तु ) होवें उसको जानिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो निश्चय जल से संसार को पुष्ट करता है और दुःख का नाश करता तथा फलों को उत्पन्न करता है वह मेघ विश्वभर है ऐसा जानना चाहिए ॥७॥

अब मेघमित्रित कौन हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**महान्तं काशमुदवा नि चिञ्च स्पन्दन्तां कुल्या विविताः पुरस्तात् ।  
घृतेन द्यावापृथिवी ध्युन्धि सुप्रपायां भवत्वध्याभ्यः ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो सूर्य ( महास्तम् ) बड़े परिमाणवाले ( काशम् ) जमादिकों के कोष के समान जल से परिपूर्ण मेघ को ( उत् ) ( अवा ) ऊपर प्राप्त होता है और जिससे पृथिवी को ( नि, सिञ्च ) निरन्तर सींचता है और ( पुरस्तात् ) प्रथम ( विविताः ) व्याप्त ( कुल्या ) रचे गये जल के निकलने के मार्ग ( स्पन्दन्ताम् ) बहें और जो ( घृतेन ) जल से ( द्यावापृथिवी ) पृथिवी और अन्तरिक्ष को ( ध्युन्धि ) अच्छे प्रकार गीला करता है वह ( अध्याभ्यः ) गौमी के लिए ( सुप्रपायाम् ) उत्तम प्रकार प्रकृतिता से पीते हैं जिसमें ऐसा जलाशय ( भवतु ) हो यह जानो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुनी, सूर्य और वायु मेघ के कारण हैं उनको यथायोग्य प्रयुक्त कीजिए जिससे वृष्टि द्वारा गो आदि पशुओं का यथावत् पालन होवे ॥ ८ ॥

**यस्पर्जन्य कनिक्वत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।**

**प्रतीदं विन्धं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत् ) जो ( पर्जन्य ) मेघ ( कनिक्वत् ) अत्यन्त शब्द करता तथा ( स्तनयन् ) गर्जन करता हुआ ( दुष्कृत ) दुःख से करनेवाले को ( हंसि ) नाश करता है ( यत् ) जो ( किम् ) कुछ ( च ) भी ( इवम् ) यह वर्त्तमान ( पृथिव्याम् ) पृथिवी ( अधि ) पर ( विश्वम् ) सम्पूर्ण जगत वर्त्तमान है वह सब जिस मेघ से ( प्रति, मोदते ) आनन्दित होना है वह बड़ा उपकारी है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—मेघ से ही सम्पूर्ण प्राणी आनन्दित होते हैं इससे यह मेघ को बना-नारूप कर्म परमेश्वर का धन्यवाद के योग्य है यह सब लोग जानो ॥ ९ ॥

फिर अनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अवर्षीर्ष्वमुद घृ गृभायाकृन्वान्यत्येत्वा उ ।**

**अजीजन ओषधीर्मोजनाय कमुत प्रजाम्यांऽविदो मनोषाम् ॥१०॥२८**

पदार्थ—हे विद्वन् वंद्य ! जैसे सूर्य ( वर्षम् ) वृष्टि को ( अवर्षी ) वर्षाता है वैसे आप ( उत्, गृभाय ) उत्कृष्टता में ग्रहण कीजिए तथा ( कृन्वानि ) जल आदि से रहित देशों को ( अत्येत्वा ) प्राप्त होने के लिए ( घृ ) उत्तम प्रकार ( अकृ ) करिये ( उ ) और ( ओषधी ) सोमलता आदि औषधियों को ( भोजनाय ) भोजन के लिए ( अजीजन ) उत्पन्न कीजिए ( उत ) और भी ( प्रजाम्य ) प्रजाओं के लिए ( कम् ) किम् को ( अविद ) जानने हा ( उ ) क्या ( मनोषाम् ) बुद्धि को ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जगदीश्वर वर्षाओं से प्रजा के हित को सिद्ध करता है वैसे ही धार्मिक राजा प्रजाओं के लिए सुख और धन्यापक बुद्धि को उत्पन्न करे ॥ १० ॥

इस सूक्त में मेघ और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तिरासीवां सूक्त और अट्ठाईसवां वर्ण समाप्त हुआ ॥



अब अष्टमस्कन्ध चतुर्वांशतितमस्य सूक्तस्याऽन्तिमं वि । पृथिवी देवता ।  
१, २ विराट्निष्ठम् । ३ विराट्निष्ठम् । गान्धारः स्वर ॥

अब तीन ऋचा वाले चौदासीवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**बलिन्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।**

**प्र या भूमिं प्रवत्वति महा जिनोषिं महिनि ॥१॥**

पदार्थ—हे ( प्रवत्वति ) अत्यन्त नीच स्थान से युक्त ( महिनि ) आदर करने योग्य ( पृथिवि ) भूमि के सदृश वर्त्तमान ( या ) जो तुम ( पर्वतानाम् ) पर्वतों के ( महा ) महत्त्व से ( भूमिम् ) भूमि को धारण करती ( इत्या ) इस प्रकार से ( बद् ) सत्य को जिस कारण ( बिभर्षि ) धारण करती हो तथा ( खिद्रम् ) दीनता को ( प्र, जिनोषि ) विशेष करके नष्ट करती हो इससे सरकार करने योग्य हो ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे भूमि पर पर्वत स्थिर होकर वर्त्तमान हैं वैसे जिन के हृदय में धर्म आदि श्रेष्ठ व्यवहार हैं वे आदर करने योग्य होते हैं ॥ १ ॥

फिर स्त्री जैसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ह्योमनस्युक्तभिः ।**

**प्र या वार्ज न हेर्षन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥२॥**

पदार्थ—हे ( अर्जुनि ) उषा के समान वर्त्तमान ( विचारिणि ) विचार-करनेवाली स्त्री ( या ) जो तू ( वार्जम् ) वेग के ( न ) समान ( हेर्षन्तम् ) शब्द

करते हुए ( पेरुम् ) पूर्ण करनेवाले को ( प्र, अस्त्विति ) फेंकती है उस ( स्त्वा ) तेरी ( स्तोमासः ) स्तुति करनेवाले जन ( अर्जुनिः ) राजिनियों से ( प्रति, स्तोमसि ) सब प्रकार स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन स्तुति करने योग्य जनो की स्तुति करते हैं वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री प्रशंसा करने योग्य की प्रशंसा करती है ॥ २ ॥

**दृष्ट्वा विद्या वनस्पतीन्स्मया दर्शय्योजसा ।**

**यत्तं अभ्रस्यं विद्युतौ दिवो वर्षन्ति हृष्टयः ॥३॥२९॥**

पदार्थ—ह स्त्रि । ( या ) जो ( दृष्ट्वा ) दृष्ट तुम ( स्मया ) पृथिवी से ( वनस्पतीन् ) वृक्षादिकों को ( दर्शयि ) पर्यन्त धारण करती हो और ( यत् ) जो ( वित् ) निश्चित ( ते ) आपके ( अभ्रस्य ) वन की ( विद्युः ) अन्तरिक्ष में हुई ( विद्युतः ) बिजुनी और ( हृष्टयः ) वर्षाओं ( वर्षन्ति ) वर्षती हैं उनको तुम ( ओजसा ) बल से धारण करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो स्त्री पृथिवी के सदृश अमा से युक्त और पुत्र पोत्रादि से युक्त होती है वह वृष्टि के सदृश सुखों का वर्षानेवाली होती है ॥ ३ ॥

इस सूक्त में मेघ विद्वान् और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह चौदासीवां सूक्त और उन्तीसवां वर्ण समाप्त हुआ ॥



अष्टाष्टस्कन्धस्य पञ्चांशतितमस्य सूक्तस्य अन्तिमं वि । वरुणो देवता ।

१, २ विराट्निष्ठम् । ३, ४, ६, ८ निष्ठादिष्ठम् । छन्दः ।

वैवतः स्वर । ५ स्वरान् पङ्क्तिवृत्तः । पञ्चमः

स्वर । ७ बाह्यपुष्टिः । छन्दः । ऋचः स्वर ॥

अब आठ ऋचावाले पचासीवें सूक्त का आरम्भ है उसमें मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**प्र सञ्जानं वृद्धर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।**

**वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सृज्ययि ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्य ( य ) जो रचनेवाले के सदृश वृष्टि का ( वि, अधान ) नाम करता और ( सृज्ययि ) रचनेवाले के लिए ( उपस्तिरे ) बिछीने पर ( चर्म ) चमड़े और ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( शमितेव ) जैसे यजमान व्यवहार प्राप्त होता है वैसे आप ( वरुणाय ) श्रेष्ठ ( श्रुताय ) विशेष करके मित्र यशवाले तथा ( सञ्जाने ) उत्तम प्रकार शोभित के लिये ( वृहत् ) बड़े ( गभीरम् ) ग्राह्यहित ( प्रियम् ) जो प्रगल्भ करता उम ( ब्रह्म ) धन वा अन्न का ( प्र, अर्चा ) सत्कार करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य यजमान के सदृश राजा को सुखी करते हैं वे बड़े ऐश्वर्य का प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर परमेश्वर ने क्या किया इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**वनेषु व्यन्तरिचं ततान वाजमर्वेत्सु पर्य उस्त्रियासु ।**

**हन्तु क्रतु वरुणो अस्वर्षि दिवि सूर्यमवधात्सोममद्री ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो जगदीश्वर ( वनेषु ) किरणों वा जगलो में ( अन्तरिक्षम् ) जन का ( अर्वेत्सु ) घावों में ( वाजम् ) वेग को और ( उस्त्रियासु ) पृथिवियों में ( पर्य ) जन वा रस को ( हन्तु ) हृदयों में ( क्रतुम् ) विशेष ज्ञान को ( अप्सु ) आकाश प्रदेशों में ( अग्निम् ) अग्नि को ( दिवि ) प्रकाश में ( सूर्यम् ) सूर्य का ( अद्री ) मेघ में ( सोमम् ) रस का ( अवधात् ) धारण करता है वह ( वरुण ) श्रेष्ठ परमात्मा संपूर्ण जगत् को ( वि, ततान् ) विस्तृत करता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जिस जगदीश्वर ने सम्पूर्ण जगत् को विस्तृत किया उसी का निरन्तर ध्यान करो ॥ २ ॥

फिर ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**नीचीनवारं वरुणः कर्वन्धं प्र संसर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।**

**तेन विश्वस्य भुवनस्य गजा यवं न वृष्टिर्व्युनक्ति भूमं ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( वरुण ) श्रेष्ठ परमेश्वर ( नीचीनवारम् ) नीचे के स्थानों में वृष्टि करनेवाले ( कर्वन्धम् ) मेघ को और ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी तथा ( अन्तरिक्षम् ) जल को ( प्र, संसर्ज ) उत्तमता से उत्पन्न करता है और ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण ( भुवनस्य ) ब्रह्माण्ड का ( राजा ) प्रकाशक परमात्मा ( वृष्टि ) वृष्टि ( यवम् ) यव आदि धान्य को ( न ) जैसे वैसे ( वि, व्युनक्ति ) विशेष करके गीला करता है ( तेन ) उससे हम लोग सुखी ( भूम ) होवें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग जगत् के रचनेवाले जगदीश्वर की उपासना करके और राजा होकर जैसे धान्य प्रादि का मेघ वैसे प्रजाओं का पालन कीजिये ॥ ३ ॥

अथ राजाजन कंसा वत्तवि करें इस विषय की अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत्तमि भूमिं पृथिवीमुत यां यवा दुग्धं वरुणो वष्टपादित् ।  
समन्त्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः अभयन्त वीराः ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ( यवा ) जब ( वरुण ) वायुके सदृश राजा ( अभयन् ) मेघ से ( पृथिवीम् ) विस्तीर्ण ( भूमिम् ) भूमि को और ( उत्त ) भी ( आत् ) प्रकाश को ( सम, उत्तमि ) गीला करता है ( आत् ) उसके अनन्तर ( इत् ) ही वायु के सदृश राजा ( दुग्धम् ) दुग्ध की ( वष्टि ) कामना करता है और है ( तविषीयन्तः ) सेना की कामना करते हुए ( वीरा ) शूरवीरो आप लोग ( वरुणः ) मेघों के सदृश यहाँ ( वसत ) वास करिये और ( अभयन्त ) अर्थात् शत्रुओं का नाश करिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—वे ही राजा लोग अष्ट हैं जो प्रजा के हित की कामना करते हैं और जैसे मेघ सब के सुखों की वृष्टि करते हैं वैसे ही राजा लोग प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करें ॥ ४ ॥

अथ विद्वान् और ईश्वर क्या करते हैं इस विषय की अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमाम् स्वासुरस्य भृतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।  
माननेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥३०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं ( इमाम् ) इस ( भृतस्य ) सुने गये ( आसुरस्य ) मेघ में उत्पन्न हुए और ( वरुणस्य ) अष्ट की ( महीं ) आदर करने योग्य वाली का और ( मायाम् ) बुद्धि का आप लोगों के लिए ( सु, प्र, वोचम् ) उत्तम प्रकार उपदेश करूँ ( उ ) और ( य ) जा ( तस्थिवाँ ) ठहरनेवाला ( मानेव ) मत्कार से जैसे वैसे ( अन्तरिक्षे ) आकाश में ( सूर्येण ) सूर्य के साथ ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( वि, ममे ) विस्तारना है उसको ईश्वर जानो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—दस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । हे मनुष्यो ! जो मेघ की विद्या का जाननेवाले की वाणी और बुद्धि की प्रशंसा करता है और जो परमेश्वर सम्पूर्ण जगत् को रचता है उन दोनों का सदा मत्कार करो ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय की अगले मन्त्र में कहते हैं—

इमाम् नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दं वर्ष ।  
एकं यदुद्रा न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरबनयः समुद्रम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इमाम् ) इस ( कवितमस्य ) प्रतिशय कविजन ( देवस्य ) विद्वान् की ( मायाम् ) बुद्धि की ( उ ) और ( महीं ) वाणी को कोई भी ( नु ) शीघ्र ( नकि ) नहीं ( जा, दं वर्ष ) दबाता है और ( यत् ) जो ( उदना ) जल से ( न ) जैसे वैसे ( एनी ) हिरण्यो के मवृण दोटती और ( आसिञ्चन्ति ) चारों ओर खींचती हुई ( अबनयः ) उन्ना करनेवाली नदियाँ ( एकम् ) एक ( समुद्रम् ) समुद्र को ( पृणन्ति ) पूर्ण करती है उनको आप लोग पचावत् जानिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—दो मनुष्य बड़े विद्वानों के तृतीय के बड़ी बुद्धि और वाणी का प्राप्त होकर अर्थों के लिए प्राप्ति कराने हैं वे ही ससार में धन्य होते हैं ॥ ६ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि प्रभाव से किसी के भी प्रभाव को करके शीघ्र निवृत्त करावें—

अर्यस्य वरुण मिद्वयं वा सखायं वा सवमिद्व्यासं वा ।  
वेशं वा नित्यं वरुणारं वा यत्सीमांश्चक्रमा शिभ्यस्तत् ॥७॥

पदार्थ—हे ( वरुण ) अष्ट विद्वान् ( अर्यस्यम् ) न्यायाधीशों ने हुए और ( मिद्वयम् ) मित्रों में हुए ( वा ) अथवा ( सखायम् ) मित्र और ( सवम् ) स्थित होते हैं जिसमें उस गृह ( इत् ) ही ( वा ) वा ( आतरम् ) आना ( वा ) अथवा ( वेशम् ) प्रविष्ट होनेवाले को ( वा ) अथवा है ( वरुण ) अष्ट विद्वान् ( नित्यम् ) नित्य ( अर्यस्यम् ) जनको ( वा ) वा ( सीम् ) सब ओर से ( यत् ) जिस ( आन ) अवरुण की हम लोग ( चक्रमा ) करें ( तत् ) उन सबका आप ( शिभ्यः ) प्रयत्न करिये वा नाश करिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान्जनों ! प्रमाण वा प्रमाद से अष्ट पुत्रों में हमलोग जो प्रमाद करें उस सम्पूर्ण को आप निवृत्ति कीजिये ॥ ७ ॥

कौन से मनुष्य सत्कार और अनेक सत्कार करने चाहते हैं इस विषय की अगले मन्त्र में कहते हैं—

किंवासी यद्रिपुर्न वीचि यद्वा या सत्यमुत यम् विद्वम् ।  
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेष देवावा ते स्पाम वरुणं त्रिवातः ॥८॥३१॥

पदार्थ—हे ( वरुण ) अष्ट ( वेष ) विद्वान् ( यत् ) जो ( किंवातः ) जुआ करनेवाले ( वीचि ) जुमाकर्म करने में ( न ) नहीं ( रिपुः ) आरोपित करते हैं ( वा ) अथवा ( यत् ) जिस ( सत्यम् ) अष्टों में अष्ट की ( उत्त ) तक वितर्क से ( न ) न ( विद्वम् ) जानें और ( यत् ) जिते ( वा ) ही नहीं जानें ( ता ) उन ( सर्वा ) सम्पूर्णों को ( शिथिरेष ) जैसे शिथिल वैसे आप ( वि, स्प ) प्रयत्न करिये जिससे ( अवा ) इसके अनन्तर हम लोग ( ते ) आप के ( त्रिवातः ) प्रयत्न प्यारे ( स्वाय ) होवें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो खली मनुष्य जुआ धादि कर्म करें वे ताड़ना करने योग्य और जो सत्य आचरण करें वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्त में राजा, ईश्वर, मेघ और विद्वान् के गुण कर्म वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

अथ पचासीवां सुक्त और एकतीसवां वर्ण समाप्त हुआ ॥

५

अथ बृहत्स्य वज्रतोतितमस्य सुक्तस्य अविष्ट विः । इन्द्राग्नी देवते । १,

४, ५ स्वरादुष्मिन् कृन्तः । अथभः स्वरः । २, ३ विराडनुष्टुप्

कृन्तः । ६ विराट्पुष्पांनुष्टुप् कृन्तः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ अथ अथावाले धियासीवें सुक्त का आरम्भ है इसमें विद्वान् जन क्या करते हैं इस विषय की कहते हैं—

इन्द्राग्नी यमवथ उमा वाजेषु मर्त्यम् ।

दृष्ट्वा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव जितः ॥१॥

भाषार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के सदृश अध्यापक और उप-देशको तुम ( उमा ) दोनों ( वाजेषु ) सशामो में ( यम् ) जिस ( मर्त्यम् ) मनुष्य की ( अथ ) रक्षा करत हो ( स. ) यह ( चित् ) भी ( जित. ) तीन अर्थात् अध्यापन उपदेशन और रक्षण से ( वाणीरिव ) जैसे वाणियों का वैसे ( दृष्ट्वा ) स्थिर ( द्युम्ना ) धनो वा यशो का ( प्र, भेदति ) अत्यन्त भेद करता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जहाँ धार्मिक, विद्वान्, शूरवीर, बलिष्ठ और शिक्षक हैं वहाँ पर कोई भी नहीं दुःख को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु अवाप्या ।

या पञ्च वर्षणोरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के समान वर्तमान सेनापति और अध्यक्ष ( या ) जो सेना के शिक्षक और लड़ानेवाले ( पृतनासु ) सेनाओं में ( दुष्टरा ) दुःख से उदाहृत करने योग्य ( या ) जो ( वाजेषु ) अन्नादिको वा सशामो में ( अवाप्या ) प्रशंसा करने योग्य ( या ) जो ( पञ्च ) पाँच ( वर्षणीः ) प्राणों वा मनुष्यों को ( अभि ) सम्मुख रक्षा करते हैं ( ता ) उन दोनों को हम लोग ( हवामहे ) स्वीकार करें वा प्रशंसा करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—राजा और सेनापति को चाहिए कि उत्तम प्रकार परीक्षा करके सेना में अध्यक्ष भूत्यो को रखें जिसे सर्वदा विजय होवे ॥ २ ॥

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोंः ।

प्रति द्रुणा गर्मस्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे सूर्य ( वृत्रघ्ने ) मेघ के नाश करनेवाले के लिए ( गवाम् ) किरणों का ( आ, ईवते ) सब प्रकार नाश करता है और जो दोनों ( द्रुणा ) चलनेवाले वर्तमान हैं ( तयोः इत् ) उन्हीं सेनापति और सेनाध्यक्ष और ( मघोनों ) बहुत धन से युक्त ( गर्मस्थो ) भुजाओं के ( अमवत् ) गृह के मवृष ( शक ) बनयुक्त ( तिग्मा ) नीच ( विद्युत् ) बिजुली है वैसे उसको आप लोग ( प्रति ) प्रहण करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य मेघ का नाश करके प्रजाओं का पालन करता है वैसे ही आप लोग दुष्टों का नाश करके प्रजाओं की निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।

पतीं तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वैणस्तमा ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( च्वात्ताम् ) वाहनों और ( तुरस्य ) शीघ्र मुख-कारक ( राधस ) धन के ( पती ) पालन करनेवाले ( गिर्वैणस्तमाः ) अतिशय उत्तम प्रकार शक्तिशाली वाणी का खनन करने हुए ( विद्वांसा ) विद्या से युक्त ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली ( च्वात्ताम् ) और आप दोनों को ( एषे ) प्राप्त होने के लिए हम लोग ( हवामहे ) प्राप्त होने की इच्छा करें ( ता ) उन दोनों को आप लोग भी प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों का चाहिए कि वायु और बिजुली के सदृश अष्ट गुणों से व्याप्त विद्वानों के सङ्ग से विद्या और शिक्षा का प्राप्त होकर प्रजाओं में मित्र के सदृश वत्ताव करें ॥ ४ ॥

ता वृधन्तावतु यन्मर्त्याय देवावदमा ।

अहन्ता चित्पुरो दुधेऽशैव देवावर्धते ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जो ( अशैव ) भाग के सदृश सत्कार करने योग्य ( मर्त्याय ) मनुष्य के लिए ( अन्, धूम् ) प्रतिदिन ( वृधन्ती ) बढ़ने वा बढ़ाते हुए ( अवा ) नहीं हिता करनेवाले ( अहन्ता ) आदर करने योग्य ( देवा ) देने वालों को मैं ( पुरः ) आगे ( वधे ) धारण करता हूँ और जो ( देवा ) प्रकाशमान दोनों ( चित् ) भी ( अर्धते ) विज्ञान के लिए वर्तमान हैं ( ता ) उन दोनों का आप लोग सत्कार करो ॥ ५ ॥



भाषार्थ—जो मनुष्य विनयानि मनुष्यों के हित के लिए प्रयत्न करते हैं वे ही सब से आदर करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

एवेन्द्राग्निम्यामहावि हव्यं शुष्यं घृतं न पृतमद्रिभिः ।

ता सूरिषु भवो बृहद्रथि गृणत्सु दिवृतमिषं गृणत्सु दिष्टतम् ॥६॥३२

पदार्थ—हे मनुष्यो जिन ( इन्द्राग्निम्याम् ) सूर्य और अग्नि से ( अहा ) दिनों को और ( अद्रिभिः ) मेघों से ( घृतम् ) घृत जैसे ( न ) वैसे ( पृतम् ) पवित्र ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य ( शुष्यम् ) बल से उत्पन्न ( अथ ) अन्न होता है तथा ( गृणत्सु ) प्रशंसा करते हुए ( सूरिषु ) विद्वानों से ( बृहत् ) बड़े ( रथिषु ) धन को जो दोनों ( विवृतम् ) धारण करें तथा ( गृणत्सु ) स्तुति करते हुए विद्वानों से ( इषम् ) विज्ञान को ( बि, विवृतम् ) विशेष धारण करें ( ता ) वे दोनों ( एव ) ही यथावत् जानने के योग्य हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विद्वानों में आप लोग निवास करें तो बिजुली और मेघ आदि की विद्या का जानें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में इन्द्र अग्नि और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह विद्यासीमा सूक्त और बर्षासीमा अर्थ समाप्त हुआ ॥

५१

अथ नवचक्षस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य एवयामरुवाच्ये ऋषि । नवतो वेदता । १ अतिजगती । २, ८ स्वराजगती । ३, ६, ७ भुरिजगती । ४ निचुरजगती । ५, ९ विराजगती छन्द ।

निचाव-स्वर ॥

अथ नव ऋषावाले सप्ताशीत सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को कैसे क्या प्राप्त होता है इस विषय को कहते हैं—

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरु ।

प्र शर्षाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे मन्दादये धुनिव्रताय शवसे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( मरुत्वते ) प्रशमित मनुष्य जिस में उस ( महे ) बड़े ( विष्णवे ) व्यापक बिजुलीरूप अग्नि के लिये ( गिरिजा ) मेघ में उत्पन्न हुए प्राप्त होते हैं वैसे ( व ) आप लोगों का ( मतय ) मनुष्य वा बुद्धि या ( प्र, यन्तु ) प्राप्त होवे और जैसे ( एवयामरु ) प्राप्त करानेवालों को प्राप्त होने वालों का मनुष्य ( शर्षाय ) बल के और ( प्रयज्यवे ) अत्यन्त यजन करते हैं जिस से उन ( सुखादये ) उत्तम प्रकार खाने वाले ( तवसे ) बलिष्ठ के लिए तथा ( मन्दादये ) कल्याण और सुख की सङ्गति के लिए ( धुनिव्रताय ) और कपित धत जिम का उस ( शवसे ) बल के लिए ( प्र ) समर्थ होता है वैसे आप लोग भी इस के लिये समर्थ हजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—जैसे बिजुलीरूप अग्नि को मेघोत्पन्न गर्जनादि प्रभाव प्राप्त होते हैं क्योंकि वे गर्जनादि प्रभाव अग्नि और वायु से मिश्र होने योग्य हैं, वैसे बुद्धिमान् पुरुषों को अन्य पुरुष प्राप्त होते हैं । और गुण प्राप्त करनेवाला पुरुष गुणी पुरुष बूढ़ता है और अति उत्तम बल को भी प्राप्त होता है ॥ १ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र ये जाता महिना ये च तु स्वयं प्र विद्वानां ब्रुवन् एवयामरु ।

क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधुषे शवो दाना महा तद्वेपामधृष्टासो नाद्रयः ॥२॥

पदार्थ—हे ( मरुत ) मनुष्यो ( ये ) जो ( महिना ) महत्त्व से ( जाता ) उत्पन्न हुए तथा ( ये ) जो ( विद्वानां ) विज्ञान से ( प्र, ब्रुवन् ) उपदेश देते हैं ( च ) और जो ( स्वयम् ) अपने से ( तु ) गोप्य ( प्र ) विशेष करके उपदेश देते हैं और ( एवयामरु ) विज्ञान वाला मनुष्य मैं ( क्रत्वा ) बुद्धि वा कर्म से उन ( व ) आप लोगों के ( तत् ) उन ( शव ) बल को ( दाना ) देने से वा ( महा ) महत्त्व से ( न ) नहीं ( आधुषे ) दवाने का समर्थ होता है तथा ( अद्रय ) मेघों के ( न ) समान ( अधृष्टास ) नहीं धर्षण किये गये जो ( एवाम् ) इनका बल है उसको नहीं दवाने को समर्थ होता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य सब के उपकार को करके प्राणवत् प्रिय होते हैं वे ही जगत् के उपकार करने वाले होते हैं ॥ २ ॥

प्र ये दिवो बृहतः श्रुषिरे गिरा सुशुक्वानः सुम्ब एवयामरु ।

न येषामिरी सधस्य ईष्ट आं अन्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ये ) जो ( सुशुक्वान ) उत्तम प्रकार शुद्ध ( सुम्ब ) और सुन्दर धर्मयुक्त व्यवहार में होने वाले ( गिरा ) कामना करते हुओं वा बिजुली आदिको जो जैसे ( स्वविद्युत ) अपन स्वरूप से व्याप्त और ( धुनीनाम् ) कम्पन क्रिया से युक्त भूमि आदिकों के ( स्पन्द्रास ) पिघले हुए वा पिघलाते हुए ( अन्नय ) अन्नियों ( न ) वैसे ( गिरा ) वाणी से ( बृहत् ) बड़े ( प्र, श्रुषिरे ) सुनते हैं और ( येषाम् ) जिनका ( एवयामरु ) विज्ञानवाला मनुष्य ( इरी ) प्रेरणा करनेवाला ( सधस्य ) समान स्थान में ( न ) जैसे वैसे ( प्र, ईष्टे ) स्वामी होता है उनको आप लोग ( आ ) अच्छे प्रकार जानिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विद्या की कामना करने वाले जन बड़ी विद्याओं को प्राप्त होकर बिजुली आदि पदार्थों को स्वाधीन करते हैं वे ही सिद्ध इच्छा वाले होते हैं ॥ ३ ॥

अथ ईश्वर की उपासनाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स चक्रमे महतो निरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरु ।

यदायुक्तं त्मना स्वादधि णुमिर्विष्वर्धसो विमहसो जिगाति शोढधो नृभिः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( एवयामरु ) विज्ञानवाला मनुष्य ( उरुक्रम ) जा बहुत क्रम वाला ( समानस्मात् ) तुल्य ( महत् ) बड़े ( सधस ) गृह से ( नि ) निरन्तर ( चक्रमे ) क्रमण करता है उसको जो ( त्मना ) आत्मा से ( यदा ) जब ( अयुक्त ) युक्त होता है ( नृभिः ) तथा पवित्र गुणों और ( नृभिः ) नायकों के साथ वर्तमान ( स्वात् ) अपने से ( विष्वर्धस ) विशेष करके स्पर्धा करनेवाले ( विमहस ) विशेष करके बड़े गुणों से विशिष्ट और ( शोढधः ) मुख के बढ़ाने वालों को ( अधि, जिगाति ) प्राप्त होता है ( स ) वह परमेश्वर उपासना करने योग्य और योगीजन सेवन करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वान् पुरुष के द्वारा परमेश्वर के योग का अभ्यास करते हैं वे मुख के धारण करने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

फिर विद्वान् राजाजन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वनो न वोऽपवात्रेजयदृषा त्वेपो ययिस्तविष एवयामरु ।

येना सहन्त क्रुञ्जत स्वर्गेचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुषासं इग्मिणः ॥५॥३३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! वह ( व ) आप लोगों के मध्य में ( एवम् ) शब्द के ( न ) समान ( अपवात्र ) गृहवाला ( दृषा ) बलिष्ठ और ( त्वेप ) प्रकाश-वान् ( तविष ) बल से ( ययि ) प्राप्त होने वाला ( एवयामरु ) बुद्धिमान् मनुष्य व्यवहारों को ( रेजयत् ) कपित करगा है ( येना ) जिस पुरुष से ( सहन्त ) सहन करने वाले ( स्वर्गेचिष ) अपने से प्रकाश जिनका ऐग और ( स्थारश्मान ) स्थिर किरणों के सदृश व्यवहार जिनके तथा ( हिरण्यया ) तेज-स्वरूप ( स्वायुषास ) अपने आयुधों वाले और ( इग्मिण ) बहुत प्रकार की इच्छा वाले जन आप लोग अपने प्रयोजनों को ( क्रुञ्जत ) सिद्ध करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो प्रकाशित धर्मयुक्त व्यवहारवाले तथा शम दम आदि से युक्त, तेजस्वी बलवाले और बुद्धिबिद्या में कुशल होवें वे ही विजयी होने हैं ॥ ५ ॥

अब विद्वानों को कितना निवारण करके कितना सत्कार करना चाहिये

इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अपारो वो महिमा बृहदशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरु । स्यातारो हि प्रसिती सन्दिशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥६॥

पदार्थ—ह ( बृहदशवस ) बड़े हुए बल वालों ( स्यातार ) स्थित होने वाले ( अग्नय ) अग्नियों ( न ) जैसे वैसे ( व ) आप लोगों का जो ( अपारः ) अपार ( महिमा ) बढपन और ( एवयामरु ) बुद्धिमान् मनुष्य ( त्वेषम् ) प्रकाशित ( शव ) बल की ( अवत् ) रक्षा करें ( हि ) जिससे कि ( प्रसिती ) प्रकट बन्धन के रहने पर ( निदः ) निन्दा करनेवाले ( शुशुक्वांस ) शोक से युक्त होवें ( ते ) वे आप लोग ( सुशुक्वांस ) तुल्य दर्शन में ( स्थन ) स्थित हजिये और ( न ) हम लोगों का ( उरुष्यता ) सेवन करिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो निन्दक अर्थात् मिथ्यावादी हों उनको सदा बन्धन में प्रविष्ट करिये और जो महाशय, परोपकारी स्तुति करने और मत्स्य बोलनेवाले हों उनका सदा सत्कार करिये ॥ ६ ॥

ते रुद्रासः सुमत्वा अग्नयो यथा त्विद्यम्ना अवन्त्वेवयामरु । दीर्घं पृषु पंपये मवम पार्थिवं येषामजमेष्वा महः शर्धस्यद्वर्तुनसा ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! ( ते ) वे ( सुमत्वाः ) सुन्दर न्यायाचरण और यज्ञ के करनेवाले ( रुद्रासः ) मध्यम विद्वान् जन ( यथा ) जैसे ( अग्नयः ) अग्नियों के सदृश वर्तमान ( त्विद्यम्ना ) बहुत धन और यज्ञ से युक्त हुए हम लोगों की ( अवम् ) रक्षा करें जिन ( अजुर्तनसा ) अदभुत बड़े पाप वालों के ( अजमेष्वा ) सधामों में ( शर्धसि ) बलों और ( महः ) बड़े ( दीर्घम् ) लम्बे ( पृषु ) विस्तृत वा प्रसिद्ध ( पार्थिवम् ) पृथिवी में विदित ( सध ) उठरते हैं जिसमें उस स्थान को ( एवयामरु ) बुद्धिमान् पुरुष ( आ, प्रपये ) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध करता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य अग्नि के सदृश पाप के नाश करने, सत्य के प्रकाश करने और दुष्टों के हलाने वाले, अंधों के पालक हैं वे ही अधिक कीर्ति वाले होते हैं ॥ ७ ॥

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन्न श्रोता हवँ जरितुरेवयामस्तु । विष्णोर्मिहः  
समन्वयो युयोतन स्मद्ध्योः न दंसमाप द्वेषांसि सनुतः ॥८॥

पदार्थ—हे ( समन्वय ) समान क्रोध वाले ( मरुतः ) मनुष्यो आप लोग ( एवयामस्तु ) बुद्धिमान् मनुष्य के सदृश ( नः ) हम लोगों को ( अद्वेषः ) द्वेष से रहित करिये । और ( गातुम् ) पृथिवी को ( आ, इतन ) प्राप्त हजिये तथा हम लोगों के ( हवम् ) श्रेष्ठ व्यवहार को ( श्रोता ) सुनिये ( जरितुः ) स्तुति करने योग्य ( विष्णोः ) व्यापक के ( मत् ) महत्त्व को ( स्मत् ) ही ( युयोतन ) संयुक्त कीजिये और ( रभ्य ) वाहनों के चलाने में कुशल को ( न ) सदृश ( सन्तः ) सनातन ( दंसना ) कर्मों को और ( अप ) दूरीकरण के निमित्त ( द्वेषांसि ) द्वेषयुक्त कर्मों को संयुक्त कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो विद्वान् और उपदेशक जन मनुष्यों को द्वेष आदि दोषों से रहित करते हैं वे व्यापक ईश्वर के पद को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

मन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवँमस्त एवयामस्तु । ज्येष्ठासो  
न पर्वतासो व्योमनि युयं तस्य मचेतसः स्यात् दुर्धर्षो निदः ॥९॥

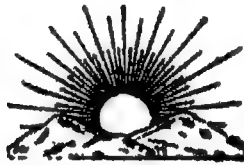
पदार्थ—हे ( यज्ञिया ) यज्ञ करने योग्य ( वयम् ) आप लोग ( एवया-  
मस्तु ) बुद्धिमान् मनुष्य के सदृश ( नः ) हम लोगों को या हम लोगों के ( यज्ञम् )

सत्य को प्रकट करनेवाले व्यवहार को ( मन्ता ) प्राप्त हजिये और ( सुशमि ) श्रेष्ठ कर्म और ( हवम् ) पठन की परीक्षा नामक कर्म को ( श्रोता ) सुनिये तथा ( अरभ्य ) मही रक्षा करने योग्य का निवारण करिये और ( व्योमनि ) आकाश के सदृश व्यापक परमेश्वर में ( पर्वतास्त ) मेघ ( न ) जैसे वैसे ( ज्येष्ठासः ) विद्या और अवस्था से वृद्ध और प्रशसायुक्त वाणी वाले हजिये और जो आकाश के सदृश व्यापक ईश्वर हैं ( तस्य ) उस के ( मचेतसः ) जनाने वाले ( स्यात् ) हजिये और जो ( दुर्धर्षः ) दुःख से धारण करनेवाले ( निदः ) निन्दक जन हैं उन के निवारण करने योग्य हजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । हे विद्वान् जनो ! आप लोग विद्या के प्रचार नामक व्यवहार के प्रचार से धर्म सम्बन्धी कार्यों को करके अन्यो से भी कराओ और निन्दा आदि दोषों से मनुष्यों को पृथक् करके परमेश्वर की ओर प्रवृत्त करो और स्वयं भी ऐसे होओ ॥ ९ ॥

इस सूक्त में वायु, विद्वान् और परमेश्वर की उपासना का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमत्परमहंस परमहंसकाचार्य महाविद्वान् विरजामन् सरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमद्वाचस्पत्य सरस्वती स्वामी जी से रचे हुए, उत्तम प्रमाणयुक्त आग्नेय भाष्य में सत्तासीबी सूक्त चौतीसवीं वर्ग तथा पञ्चम अध्याय में छठा अनुवाक और पञ्चम मण्डल भी समाप्त हुआ ॥



## ॥ अथ षष्ठं मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पर्णं सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ त्रयोवर्णस्य प्रथमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य आशि ।  
अग्निर्वेजता । १, ७, १३ भुरिक्पड्वित् । २ स्वरद्वयवित् ।  
५ पक्षिपक्ष्ण्व । पञ्चम स्वर । ३, ४, ६, ११, १२  
निचत्पिषट्प । ८, १० त्रिषट्प । ९ चिराद् त्रिषट्प  
छन्व । षष्ठ स्वर ॥

अब छठे मण्डल में तेरह ऋचावाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन अग्नि के सद्गुण क्या क्या करें इस विषय को कहते हैं—

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो ब्रह्म होता ।  
त्वं मी' वृषन्नृणोर्दुहरी'नु सहो विश्वस्मै सहसे सहर्ध्व ॥१॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण तेजस्वी ( ब्रह्म ) दुःख के नाश करने वाले विद्वान् जन जैसे ( प्रथम ) आदिम ( मनोता ) मन के समान जानेवाले और ( होता ) दान करनेवाले हुए ( त्वम् ) आप ( हि ) निश्चय से ( अस्या ) इस ( धियो ) बुद्धि की वृद्धि करने हुए सुव्युक्त ( अभव ) होत हो । और हे ( वृषन् ) वीर्य के सींचनेवाले ( त्वम् ) आप ( सीम् ) सब धार स ( विश्वस्मै ) सम्पूर्ण प्राणियों के लिये ( सह ) सहनशील ( सहसे ) बल के लिये ( सहर्ध्व ) सहने को ( दुहरीनु ) दुग्ध से उन्नयन करने योग्य ( अङ्गो ) करने हो वैसे बिजुलीरूप अग्नि करता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन मूर्ख लोगों से किये हुए अपराधों को सहकर सम्पूर्ण जनो के सुख के लिए प्रयत्न करते हैं वही सब के हितकारी होते हैं ॥ १ ॥

मनुष्य किस रीति से विद्या को प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अधा होता न्यसीदो यजीयानिऋस्पद इष्यन्नीड्य सन् ।  
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु रमन् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् जिस प्रकार से ( होता ) ग्रहण करने और ( यजीयान् ) अत्यन्त यज्ञ करनेवाला पुरुष ( इष्यन् ) प्राप्त कराता और ( नीड्य ) स्तुति करने योग्य ( सन् ) होता हुआ अग्नि ( इच्छ ) पृथिवी वा वाणी के ( पदे ) स्थान में वर्तमान है वैसे होकर आप ( नि, असीद ) निरन्तर स्थिर दृष्टि और जैसे ( वेव-यन्त ) कामना करने और ( चितयन्त ) जनाते हुए ( नर ) मनुष्य ( प्रथमम् ) आदिम अग्नि को ( अनु, रमन् ) पश्चात् चरन हैं वैसे ( अधा ) अनन्तर ( सन् ) बड़े ( राये ) धन के लिए ( तम् ) उस ( त्वा ) आपको य सब पश्चात् प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों की कामना करके अग्नि आदि की विद्या का ग्रहण करने की इच्छा करते हैं वे विज्ञान-युक्त होते हैं ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन क्या जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वृतेव यन्तं बहुभिर्वमर्चयेस्त्वे रयि जागृवामो अनु रमन् ।  
रशन्तमग्निं दर्शतं वृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( जागृवांस ) विद्या से जागृत विद्वान् जन जिसको ( बहुभि ) बहुत ( वसव्यै ) पृथिवी आदिको से हुए पदार्थों के माय ( वृतेव ) वर्तमान होते हैं जिसमें उग्र मार्ग से ( यन्तम् ) जाते ( रशन्तम् ) हिमा करने ( रशन्तम् ) देखने बाने वा देखने योग्य ( वृहन्तम् ) बड़े ( वपावन्तम् ) बहुत कार्यों के मस्कार जमाने के अधिकरण विद्यमान जिसमें उस ( विश्वहा ) सब दिनों वा सब दिनों को ( वीवि-वांसम् ) प्रकाशमान वा प्रकाश करते हुए ( अग्निम् ) अग्नि के सद्गुण विद्यादिरूप के ( अनु, रमन् ) पीछे चरन हैं और जो ( त्वे ) आप में ( रयिम् ) धन को धारण करें उसको आप पश्चात् जानिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो निरन्तर सर्वत्र चलते हुए सब के प्रकाशक और सम्पूर्ण पदार्थों में व्यापक और पदार्थों के जलानवाले बिजुली आदि स्वरूप अग्नि को जानकर कार्यों में उपयुक्त करते हैं वे अत्यन्त लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः अवस्यव अव आपन्नमृक्म् ।  
नामानि चिदधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्धौ ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जना ( व्यन्त ) व्याप्त हैं विद्या और क्रियाएँ जिन में ऐसे और ( अवस्यव ) अपने अन्न की इच्छा करनेवाले आप लोग ( नमसा ) अन्न आदि वा वज्रवच्छेदकत्वगुण से ( देवस्य ) सब में प्रकाशमान अग्नि के ( पदम् ) प्राप्त होने योग्य ( अमृक्त्तम् ) शुद्धि से रहित ( अव ) पृथिवी के अन्न आदि को ( आपन्नम् ) प्राप्त होते हैं तथा इस सब में प्रकाशक के ( यज्ञियानि ) यज्ञ की सिद्धि के लिए योग्य ( नामानि ) जलों वा सज्ञाओं का ( चित् ) निश्चय से ( चिदधिरे ) धारण करे और ( ते ) वे ( भद्रायाम् ) कल्याणकारक ( सन्धौ ) उत्तम वर्णन में ( रणयन्त ) रमे वा रमण करावें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान कर बायों को मिट्ट कर रहे हैं वे अनुल आनन्द को प्राप्त कर मुख के विषय में रमत हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या प्रयोग करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वा वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्या त्वां राय उभयासो जनानाम् ।  
त्वं त्राता तरणे चैन्यो भूः पिता माता मदमिन्मानुषाणाम् ॥५॥३५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( जनानाम् ) मनुष्यों को ( उभयासः ) दोनों प्रकार के अर्थात् विद्वान् और अविद्वान् जन और ( क्षितयः ) निवासवाले मनुष्य ( पृथिव्याम् ) भूमि में ( राय ) धनो की और ( त्वाम् ) आपकी ( वर्धन्ति ) वृद्धि करते हैं और ( त्वाम् ) उन आप को उत्तम प्रकार प्रयुक्त करते हैं वह आप ( तरणे ) वृद्धि से उद्धार के निमित्त ( त्राता ) रक्षा करनेवाले ( चैन्य ) चयन समूहों में हुए ( पिता ) पिता के सद्गुण पालनकर्ता और ( माता ) माता के सद्गुण आदर करनेवाले ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों के पालक ( भू ) होओ और ( मदम् ) स्थिर हाते हैं जिस में उस गृह को व्याप्त हुए उन आप को ( इत् ) ही सब लोग विशेष करके जाने ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो पृथिवी आदिको में वर्तमान बिजुलीरूप अग्नि का उत्तम प्रकार प्रयोग करते हैं वे सब के मुख देनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को किसकी सेवा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सपयंययः स प्रियो विश्वं प्रिहोता मन्द्रो नि पसादा यजीयान् ।  
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञाधो नमसा सदेम ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् जो ( विश्व ) प्रजाओं में ( सपयंययः ) सेवा करने योग्य और ( प्रियो ) कामना करने योग्य अर्थात् सुन्दर ( होता ) ग्रहण करने और ( मन्द्रः ) आनन्द देनेवाला ( यजीयान् ) अतिशय यज्ञकर्ता ( अग्निः ) अग्नि ( नि ) अत्यन्त ( ससादा ) स्थित होना है जिन आप में ( स ) वह प्रयोग किया जाता है ( तम् ) उस ( दमे ) गृह में ( दीदिवांसम् ) प्रकाशमान ( त्वा ) आप को ( ज्ञाधो ) ज्ञाधों को बाधने हुए ( वयम् ) हम लोग ( नमसा ) सत्कार वा अन्न आदि से ( उप, आ, सदेम ) समीप होवें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो अग्नि आदि की विद्या को जानते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे होकर क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तं त्वा वयं सुधपो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।  
त्वं विशो अनयो दीधानो दिवो अग्ने वृहता रीचनेन ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण वर्तमान विद्वन् जैसे ( सुधपो ) उत्तम बुद्धियुक्त ( सुम्नायव ) अपने मुख की इच्छा करनेवाले ( देवयन्तः ) कामना करते हुए ( वयम् ) हम लोग ( तम् ) उस ( नव्यम् ) नवीन पदार्थों में हुए अग्नि को ( ईमहे ) व्याप्त होवें वैसे ( त्वा ) आपको प्राप्त होवें और हे ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण विद्या से प्रकाशित जैसे सूर्य ( वृहता ) बड़े ( रीचनेन ) प्रकाश से ( वीधानः ) प्रकाशित होता हुआ ( विश ) कामना करने के योग्य पदार्थों को ( विशः ) प्रजाओं को ( अनय ) पहुँचाता है वैसे ( त्वम् ) आप इनको प्राप्त कराइये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् जनो के सद्गुण अग्नि का अनुकरण करते हैं वे कृतकार्य होते हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य किस को प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

विशां कवि विशपति शश्वतोनां नितोशनं वृषमं चर्षणीनाम् ।  
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजन्तं रयीणाम् ॥८॥



पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग ( साधवतीनाम् ) अनादिभूत (विश्वाम्) प्रजापति के मध्य में ( कविष्व ) तेजयुक्त वर्णान् जिसका ऐसे ( विश्वपतिम् ) प्रजा के पालनेवाले ( मितोशनम् ) पदार्थों के नाश करनेवाले ( ब्रह्मम् ) बलिष्ठ और ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यो और ( रघीराम् ) धनो और ( प्रेतोषणम् ) अच्छे प्रकार से प्राप्त हुआ को प्राप्त होनेवाले ( इष्यमानम् ) प्राप्त कराते हुए और ( वज्रम् ) प्राप्त होने योग्य ( राजन्तम् ) प्रकाशित होते हुए ( पावकम् ) पवित्र करनेवाले ( अग्निम् ) अग्नि को उत्तम प्रकार कायों में युक्त करें वैसे आप लोग भी सप्रयुक्त करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अग्नि का शरीर के सदृश सेवन करते हैं वे प्रजा के स्वामी होते हैं ॥ ८ ॥

फिर वह अग्नि कंसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सो अग्र ईजे अशमे च मर्तो यस्त आनन्दं समिधा हव्यदातिम् ।

य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते स्वोतः ॥९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के मध्य वर्तमान विद्वन् ( ते ) आपका ( य ) जो ( मर्त ) मनुष्य ( समिधा ) समिधा से ( हव्यदातिम् ) हवन करने योग्य वस्तुओं के देनेवाले को ( आनन्दं ) व्याप्त होता है उसको जाननेवाला ( सः ) वह मैं उस को ( ईजे ) उत्तम प्रकार प्राप्त होता और ( अशमे ) प्रशंसा करता है ( च ) और ( य ) जो ( आहुतिम् ) आहुति को अर्थात् जो चारों ओर से हमी जाती उस सामग्री की ( परि ) सब प्रकार से ( वेदा ) जानता है ( स ) वह ( स्वोतः ) आप से रक्षित हुआ ( नमोभिः ) अन्न आदिको वा सत्कारों से ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( वामा ) प्रशंसा करने योग्य कर्मों की ( इत् ) ही ( दधते ) धारण करता है ॥९॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रशंसित कार्यों का करनेवाला अग्नि है उस को विशेष कर जानिये ॥ ९ ॥

जो पदार्थविद्या प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं वे भाग्यशाली होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरमे ममिधोत हव्यैः ।

वेदी सूतो सहसो गीभिरुथैरा ते भद्रायां सुमतौ यनेम ॥१०॥

पदार्थ—हे ( सहस ) बनवान् के ( सूतो ) पुत्र ( अग्ने ) विद्वज्जन जैसे ( समिधा ) ईधन आदि के सदृश विद्या और ( नमोभिः ) अन्न आदिको से सपूर्ण स्त्रियों को जो धारण करते हैं और जो आहुति को देख कर जानता है और जो ( वेदी ) जानने हैं सुखों को जिस में वह होती है उस का ( गीभिः ) वाणियों और ( उथैः ) कीर्तन करने योग्य वचनों से और ( हव्यैः ) भोजन करने योग्य पदार्थों से ( अस्मे ) इस ( महे ) बड़े ( ते ) आप के लिये ( महि ) बहुत ( आ ) सब प्रकार से ( विधेम ) सत्कार करें उन वाणियों के माहित आप लोग ( उ ) भी ( उत ) और हम भी ( ते ) आप की ( भद्रायां ) कल्याणकारिणी ( सुमतौ ) उत्तम बुद्धि में ( यनेम ) प्रयत्न करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग इस प्राणियों के समुदाय के लिये सामग्री से यत्न करें ॥ १० ॥

फिर मनुष्य किस को प्राप्त होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यस्ततन्ध रोदसी वि मामा श्रवोमिश्र अवस्यस्तत्रः ।

बृहज्जिवाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्विरमे वितरं वि भाहि ॥११॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वान् ( य ) जो अग्नि ( भासा ) प्रकाश से और ( श्रवोभिः ) श्रवण आदि व अन्न आदि से ( च ) भी ( अवस्यः ) मुनन के योग्य

और ( तत्र ) दुःख से पार करनेवाला ( बृहज्जि ) बड़े और ( स्थविरेभिः ) स्थूल अर्थात् भारी ( भाजैः ) सद्यो के सहित वर्तमान ( रेवद्विभ ) बहुत धनो से युक्त जनो के साथ ( रोदसी ) द्वावापृथिवी को ( वि, आ, ततन्ध ) विशेष कर सब प्रकार विस्तार करता है तथा ( अस्मे ) हम लोगों के लिए उस ( वितरम् ) वितर अर्थात् विविध प्रकार में तरते हैं जिसमें उसका ( वि, भाहि ) उत्तम प्रकार प्रकाशित कीजिये ॥११॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन उत्तम विद्या से अग्नि के प्रभाव को जानें तो विस्मय को प्राप्त होकर चकित होवें ॥११॥

फिर विद्वज्जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नृवदसो सद्मिदेष्टस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।

पूर्वीरिषो बृहतीरारेअथा अस्मे भद्रा सौभ्रवमानि सन्तु ॥१२॥

पदार्थ—हे ( वसो ) वसनेवाले विद्वज्जन ! आप ( अस्मे ) हम लोगों में ( तोकाय ) कन्या और ( तनयाय ) पुत्र के लिये ( पश्वः ) पशु गो आदि को तथा ( सवम् ) वर्तमान होते हैं जिसमें उग गृह और ( बृहतीः ) बड़ी ( पूर्वी ) प्राचीन ( आरेअथा ) दूर पाप जिनके उन ( इषः ) अन्न आदि सामग्रियों का ( भूरि ) बहुत ( षेहि ) धारण करिये जिसमें ( अस्मे ) हम लोगों के लिये ( इत् ) ही ( नृवत् ) मनुष्यों के सदृश ( भद्रा ) कल्याणकारक ( सौभ्रवसानि ) उत्तम प्रकार सत्कार से युक्त अन्न में हुए पदार्थ ( सन्तु ) हों ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वे ही विद्वान् हैं जो मातापिताओं के समान सामाजिक जनो के लिए हितकारक वस्तुओं को दते हैं ॥१२॥

अब ईश्वर के मुख्य प्रजापालन विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पुरुष्यमे पुरुधा त्वाया वसुनि राजन्वसुतां ते अश्याम् ।

पुरुणि हि त्वे पुंरवार सन्त्यग्ने वसुं विधते राजनि स्वे ॥१३॥१६॥४

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ( राजन् ) विद्या और विनय से प्रकाशमान ( ते ) आपके समीप जो ( वसुता ) द्रव्यों का होना उसमें वर्तमान ( पुरुणि ) बहुत और ( पुरुधा ) बहुत प्रकारों से धारण किये हुए ( वसुनि ) द्रव्यों को ( त्वाया ) आपके साथ में ( अश्याम् ) प्राप्त होऊ और हे ( पुरुवार ) बहुतों में स्वीकार करने योग्य ( अग्ने ) विद्या और विनय से प्रकाशमान ( हि ) निश्चय से ( स्वे ) आप में ( पुरुणि ) बहुत द्रव्य ( सन्ति ) है ( राजनि ) राजा ( स्वे ) आपके होने पर ( वसु ) द्रव्य का ( विधते ) विधान करनेवाले के लिये कल्याण होता है वह आप हमारे राजा हजिय ॥१३॥

भाषार्थ—वे ही राजा उत्तम हैं जो परमेश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग कर के पुत्र के सदृश प्रजाओं का पालन करते हैं और वे ही प्रजाजन श्रेष्ठ होते हैं जो राजा और ईश्वर के भक्त हैं ॥१३॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

इस अध्याय में मित्रावरुण, अश्वि, सूर्य, वायु और अग्नि आदि के गुण वर्णन करने से इस अध्याय में कहे हुए अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह धीमान् परमहंसपरिव्रजकाचार्यश्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामीजी के शिष्य

श्रीमद् दयानन्दसरस्वती स्वामि विरचित आर्यभाषाविभूषित

ऋग्वेदभाष्य में अतुल्य अष्टक में अतुल्य अध्याय, छत्तीसवां वर्ग

और छठे मण्डल में प्रथम सूक्त भी समाप्त हुआ ॥



अथ पठचमोऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितुर्दितानि परां सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्वेदता ।

१, २ भुरिपुण्ड्रिक् । ३ स्वरारुणिक् । ७ निबृहणिक् ।

८ उज्जिक् छन्दः । ऋचमः स्वरः । १, ४ अनुष्टुप् । ५, ६, १०

निबृहणिक् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ११ भुरिगतिजगती

छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ पठचमाध्याय का आरम्भ है, और छठे मण्डल में ग्यारह ऋचावाले दूसरे सूक्त का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि कंसा होता है इस विषय को कहते हैं—

स्वं हि क्षैतबुधशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।

स्वं विचर्षणे अशो वसो पुष्टिं न पुण्यसि ॥१॥

पदार्थ—हे ( विचरवरे ) प्रकाश करनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान ( हि ) जिस कारण ( त्वम् ) आप ( अतवत् ) पृथिवी में हुए के समान ( यश ) बन अन्न वा कीर्ति को ( मित्र ) मित्र ( न ) जैसे वैसे ( पश्यसे ) पति के सदृश आचरण करते हो और हे ( बसो ) बसानेवाले ( त्वम् ) आप ( पुष्टिम् ) धातु के साम्य से बल आदि के योग को ( न ) जैसे वैसे ( अथ ) अन्न वा श्रवण का ( पुष्यसि ) पालन करते हो इसमें सुखी होते हो ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी में उत्पन्न हुए शुष्क वस्तु रस में रहित होते हैं वैसे विद्यारहित और धर्मरहित जन दयारहित और कोमलतारहित होते हैं ॥२॥

विद्वानों को इस संसार में कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वां हि ध्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीमिरीळते ।

त्वां वाजी यात्यवदो रजस्तुर्विधचर्षणिः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जा ( चर्षणय ) मनुष्य ( यज्ञेभिः ) अध्ययन अध्यापन आदिको और ( गीमि ) वाणियो से ( त्वाम् ) आपकी ( हि ) निश्चित ( ईळते ) स्तुति करते ( रमा ) ही है ( रजस्तु ) लोको का बढानेवाला ( विधचर्षणिः ) सम्पूर्ण विचारशील मनुष्य जिसके घर ( अवद ) चोर आदिको के मग से रहित ( वाजी ) वेग युक्त हुआ ( त्वाम् ) आपको ( याति ) प्राप्त होता है ॥२॥

भाषार्थ—जो मनुष्य जिम विद्वान् का सेवन करते हैं वह उनके लिए विद्या देवे ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सजोपस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिधते ।

यदस्य मातुषो जनः सुमनायुर्द्वे अघ्वरे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( सजोष ) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले ( विधः ) सत्य की कामना करते हुए ( नर ) नायक जन ( यज्ञस्य ) न्यायव्यवहार की ( केतुम् ) बुद्धि को और ( स्वा ) आपको ( इधते ) प्रकाशित करते हैं और ( यत् ) जिससे ( ह ) निश्चय कर ( स्य ) वह ( मानुष ) विचारशील और ( सुमनायु ) सुख की कामना करनेवाले ( जन ) प्रसिद्ध मनुष्य आप ( अघ्वरे ) अहिंसारूप में वर्तमान होते हो उसकी में ( जुह्वे ) स्पर्धा करना है ॥३॥

भाषार्थ—उमी का मङ्ग मनुष्यों को करना चाहिए जिसकी धार्मिक विद्वान् जन प्रशंसा करें ॥३॥

ऋषयस्ते सुदानवे धिया मर्तः शुशर्मते ।

ऊतो व बृहतो दिवो द्विवो अंहो न तरति ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( य ) जा ( मर्त ) मनुष्य ( धिया ) बुद्धि से ( सुदानवे ) उत्तम दान करनेवाले ( ते ) आप के लिए ( ऋषत् ) उत्तम प्रकार ऋद्धि करे तथा ( शशर्मते ) शान्त हो ( स ) वह ( ऊतो ) रक्षण आदि कर्म से ( बृहत ) बड़े ( विध ) कामना करने हुआ का ( द्विवो ) शत्रु का ( अह ) अपराध ( न ) जैसे वैसे ( तरति ) पार होता है ॥४॥

भाषार्थ—जो मनुष्य धर्मात्मा जनो के लिए सुख देने वाले होवें वे जैसे धार्मिक जन आप का नाश करते हैं वेग ही शत्रुओं का उन्मूलन करते हैं ॥४॥

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।

व्यावन्तं स पुष्यत क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थ—ह ( अग्ने ) विद्वन् जन ( य ) जा ( मर्त्य ) मनुष्य ( समिधा ) अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले वस्तु से ( ते ) आपके लिए ( निशितिम् ) तीक्ष्ण अतितीव्र ( आहुतिम् ) आहुति का ( नशत् ) व्याप्त होना है ( स ) वह ( व्यावन्तम् ) बहुत पदार्थों से युक्त ( क्षयम् ) और गृह ( शतायुषम् ) ती यन् पर्यन्त जीवनेवाले को प्राप्त होकर ( पुष्यति ) पुष्ट होता है ॥५॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की सेवा से उत्तम गुण कर्म और स्वभाववालों को प्राप्त होते हैं वे सुख की बुद्धि और अतिकाल पर्यन्त जीवन से युक्त और अच्छे गृहों वाले होकर शरीर और आत्मा में पुष्ट होते हैं ॥५॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वेवस्ते धूम ऋणवति दिवि षष्ठ्युक् आउतः ।

सरो न हि धुता त्वं कपा पावकु रोचसे ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( ते ) उसका ( सूर ) सूर्य ( न ) जैसे वैसे ( त्वेवः ) प्रदीप्त ( धूमः ) धूम ( शुक्ल ) शुद्धि का करनेवाला ( आततः ) व्याप्त ( सत् ) होता हुआ ( दिवि ) प्रकाश से ( ऋणवति ) चलता है वैसे ( हि ) ही ( त्वम् ) आप ( धुता ) प्रकाश और ( कपा ) कपा से ( पावक ) अग्नि के सदृश वर्तमान हुए ( रोचसे ) प्रकाशित होते हो ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् जनों ! जिस अग्नि के धूम से वायु आदि पदार्थ शुद्ध होते हैं और जो सूर्य आदि का कारण है उमी की विद्या को प्राप्त हो कर उत्तम गुणों में आप लोग प्रकाशित हूँजिये ॥६॥

फिर मनुष्यों को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अथा हि विश्वीक्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।

रूषः पुरीव जूर्यः सुनुर्न त्रययाय्यः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( हि ) जिस कारण से आप ( विश्व ) प्रजाओं में ( ईव्य ) स्तुति करने के योग्य और ( न ) हम लोगों के ( प्रियः ) कामना करने योग्य ( पुरीव ) रमणीय पुरी के समान ( रूषः ) रमण करता हुआ ( जूर्यः ) जीर्ण ( त्रययाय्यः ) रक्षक को प्राप्त होनेवाला ( सुनुः ) सन्तान ( न ) जैसे वैसे ( अतिथिः ) नहीं नियत निधि जिसकी ऐने ( असि ) हो जिससे ( अथा ) इसके अनन्तर मत्कार करने योग्य हो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अतिथिजन प्रजाजनों से सत्कार करने योग्य होते और जैसे यहाँ माना और पिना में सन्तान पालन करने योग्य होने हैं वैसे ही धार्मिक विद्वान् जन मत्कार करने योग्य होते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेजने वाजी न कृत्यः ।

परिजमेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः । ८ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश वर्तमान प्रतापी जन आप ( हि ) जिस कारण ( क्रत्वा ) बुद्धि वा कर्म से ( वाजी ) वेग से युक्त ( न ) जैसे वैसे ( कृत्यः ) करने योग्य कर्म का ( परिजमेव ) सब आर जाने वाला वह वायु ( स्वधा ) अन्न ( गय ) गृह और ( अत्यः ) मार्ग को व्याप्त होनवाला ( न ) जैसे वैसे ( ह्वार्यः ) कुटिल मार्ग में जाने योग्य ( शिशुः ) बालक ( द्रोणे ) जान योग्य मार्ग में ( अज्यसे ) प्राप्त किये जाते हो इस कारण से कृतकृत्य हो ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन सम्पूर्ण भज जनो के लिए बुद्धि देकर श्रेष्ठ मार्ग में प्राप्त कराते हैं और माता पिता बालक का जैसे वैसे शिक्षा करन ह व अन्न आदि स मत्कार करन योग्य हाते हैं ॥८॥

फिर मनुष्यों को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुन यवसे ।

धामा ह यत्ते अजर वना वृथन्ति शिकसः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( अजर ) जराग्र गेग से रहित ( अग्ने ) विद्वन् ! ( यत् ) जिन ( शिकसः ) प्रवाणमान ( ते ) आपके गुण ( वना ) जङ्गलों को जैसे किरण वैसे दोषों का ( वृथन्ति ) काटन है और ( त्या, वित् ) उन्ही ( अच्युता ) नाश में रहित ( धामा ) स्थानों को ( यवसे ) भूमे आदि के लिए ( पशु ) गौ आदि पशु ( न ) जैसे वैसे ( त्वम् ) आप ( ह ) निश्चय प्राप्त होते हो ॥९॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन अध्यापकों को गौओं को जैसे बरूड़े प्राप्त होकर दुग्ध के सदृश विद्या को ग्रहण करने हैं और जो विद्वान् जन अग्नि के सदृश दोषों का नाश करने हैं वे समार के कल्याण करनेवाले होते हैं ॥९॥

फिर मनुष्यों को कैसे बर्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वेषि ऋध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाश्व ।

समृधो विषपते कृणु जूषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥

पदार्थ—ह ( अङ्गिर ) भक्तों के मध्य में रसरूप ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी ( विषपते ) प्रजा के रक्षामिन् विद्वन् जो ( हि ) जिस कारण से ( होता ) दाता आप ( अध्वरीयताम् ) अपन अध्वर की इच्छा करते हुए ( विशाश्व ) प्रजाजनों के ( वसे ) गृह में ( वेषि ) व्याप्त होन हो वह आप ( समृधः ) उत्तम प्रकार से ऋद्धिवाले ( कृणु ) करिय और ( हव्यम् ) ग्रहण करने योग्य का ( जूषस्व ) सेवन करिये ॥१०॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि यज्ञ करने वालों और प्रजाओं के काय्यों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वान् जन सब के प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं ॥१०॥

अब विद्वानों के विषय को कहते हैं—

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।

वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नृन्द्रिषो अहांसि दुरिता तरेसु ता तरेम तवार्चसा तरेम ॥ ११ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( विप्रमहः ) मित्र आदर करने योग्य जिस के ऐसे ( वेव ) खान करनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण वर्तमान जब धाप ( नः ) हम लोगों के ( वेवात् ) विद्वान् धाता जनों को ( शोच्योः ) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में ( शुभतिम् ) श्रेष्ठ बुद्धि का ( अण्डा ) उत्तम प्रकार ( बोधः ) उपदेश करें जिस कारण से ( स्वस्तिम् ) सुख का शान्ति तथा ( शुभितिम् ) उत्तम पृथिवी का उत्तम निवास की ( विप्रः ) कामना करते हुए और ( नृन् ) नायक जनो को ( वीहि ) व्याप्त हजिये और ( द्विषः ) द्वेष करनेवालों का त्याग करो तथा ( कुरिता ) दुःख के प्राप्त करानेवाले ( अहोसि ) पापी के हम लोग ( तरेम ) पार होवें ( ता ) उनको ( तरेम ) फिर भी पार हों और ( तव ) आपके ( अवसा ) रक्षण आदि से ( तरेम ) पार होवें ॥११॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों को मिला कर और बल को प्राप्त हो कर शत्रुओं को जीत कर दुःखरूप सागर से पार हो ॥११॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह द्वितीय सूक्त और द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥



अष्टावक्रस्य तृतीयस्य सूक्तस्य आरम्भाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्वक्त्रा ।

१,१,४ त्रिवृत् ॥ २,५,६,७ त्रिवृत्त्रिवृत् ॥ धैवत स्वर ।

भुरिक्पङ्क्तिः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है, इस में फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अग्ने म शेषहतपा ऋतेजा उर उयोतिर्निशते देवयुष्टे ।

यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा वेव पासि त्यजसा मत्तमंहः ॥१॥

पदार्थ—हे ( वेव ) सुख के देनेवाले ( अग्ने ) विजुनी के सद्गुण तेजस्वी विद्वान् जैसे ( ऋतपाः ) सत्य का पालन करने और ( ऋतेजाः ) सत्य में प्रकट होनेवाला सूर्य्य ( उर ) बड़े ( उयोति ) प्रकाश की ( निशते ) प्राप्त होता है वैसे ( वेवम् ) विद्वानों की कामना करता हुआ ( ते ) आपके ( मित्रेण ) मित्र के सहित ( वरुण ) श्रेष्ठ ( सजोषा ) तुल्य प्रीति का सेवन करनेवाला वर्तमान है और ( मत् ) जिस ( मत्त ) अपराधी ( मत्तम् ) मनुष्य की ( त्वम् ) आप ( त्यजसा ) त्याग से ( पासि ) रक्षा करते हो ( सः ) वह पुण्यात्मा हाना हुआ ( अवेत् ) निवास करता है ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर से रचा गया सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वानों के सङ्ग से हुए विद्वान् सब के आत्माओं को प्रकाशित करते हैं और जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश करके दिन को प्रकट करता है वैसे ही विद्या को प्राप्त हुआ धार्मिक विद्वान् अविद्या का नाश करके विद्या का प्रकट करता है ॥१॥

इजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्बृहद्वागयानये ददाश ।

एवा चन तं यशसामजुहिर्नाहो मर्षं नक्षते न प्रहंसिः ॥२॥

पदार्थ—ओ विद्वान् ( यज्ञेभि ) विद्वानों को मेवा और सत्य भाषण आदिको के साथ ( इजे ) उत्तम प्रकार मिलता है और ( शमीभि ) शुभकर्मों से ( शशमे ) शान्त होता है ( बृहद्वागय ) उत्तम प्रकार बढानेवाला सत्य स्वीकार करने योग्य व्यवहार जिसका उस ( अयानये ) अग्नि के सद्गुण वर्तमान मुपाय के लिए ( ददाश ) देता है ( तम् ) उसको ( एव ) ही ( चन ) निश्चय से ( मर्षम् ) मनुष्य का और ( यशसाम् ) धनो वा धनो का ( अजुष्टिः ) असेवन ( न ) जैसे वैसे ( मर्षम् ) अपराध ( न ) नहीं ( नक्षते ) प्राप्त होता है और ( प्रहंसिः ) अत्यन्त मोह प्राप्त होता है ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सत्यभाषण आदि धर्म के अनुष्ठान करनेवाले, योगी, अभय देनेवाले हैं वे पाप और मोह का त्याग करके विज्ञान को प्राप्त होकर सुखी होते हैं ॥२॥

फिर विद्वानों की बुद्धि कंसा होती है इस विषय को कहते हैं—

सूरो न यस्य दशतिरेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।

हेषस्वतः शुद्धो नायमक्तोः कुषा चिद्रूपो वसतिर्वनेजाः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् ( यस्य ) जिन ( हेषस्वतः ) प्रसिद्ध शब्द विद्यमान जिसके उन ( शुचतः ) शोक से व्याकुल ( ते ) आपका ( वत् ) जो ( वृषतिः ) दर्शन और ( अरिपाः ) पाप से रहित और ( भीमा ) भयकारक ( धीः ) बुद्धि ( पूर ) सूर्य्य के ( न ) जैसे वैसे ( आ, एति ) प्राप्त होती है उसका ( अयम् ) यह ( शुद्धः ) अन्धकार को नाश करनेवाले तेज का धारण करनेवाला सूर्य्य ( अक्तोः ) रात्रि का दूर करनेवाला ( न ) जैसे वैसे ( कुषा, चिद्रूप ) कहीं भी ( रणः ) सुन्दर ( वनेजाः ) किरणों के समुदाय में उत्पन्न होने और ( वसतिः ) निवास करनेवाला वर्तमान है उसकी हम लोग सेवा करें ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस विद्वान् की सूर्य्य की उद्योति का बिजुली के सद्गुण बुद्धि है वही सम्पूर्ण जितना योग्य उतने विज्ञान को प्राप्त होता है ॥३॥

फिर विद्वानों को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तिशमं चिबेम महि वपों अस्य असद्वदो न वमसान आसा ।

विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दाह धक्षत् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस ( अस्य ) इस विद्वान् के ( तिशम् ) तीव्र ( महि ) बड़े ( वपः ) रूप का ( वमसानः ) नियम करता और ( विजेहमानः ) शब्द करता हुआ ( अक्षः ) शीघ्र चलनेवाला बोझा ( न ) जैसे वैसे ( आसा ) मुख से ( भक्षत् ) प्रकाशित करता है । और ( परशुः ) कुठार ( न ) जैसे वैसे ( जिह्वाम् ) वाणी को ( द्रविः ) द्रवी होकर उच्चारण की क्रिया ( न ) जैसे वैसे ( द्रावयति ) गीला करता है और ( दाह ) काष्ठ को ( धक्षत् ) जलावे उसको ( क्षित् ) निश्चय से हम लोग ( एम ) प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! जैसे उत्तम प्रकार से शिक्षित घोड़ा मनुष्य को मार्ग में पहुँचता है वैसे अर्ममार्ग को हम लोगों को पहुँचाइये और जैसे बड़ई परशु से काष्ठ को काटता है वैसे हम लोगों के दोषों को काटिए और जैसे तालु में उत्पन्न आदिरस जिह्वा को प्राप्त होता है वैसे विद्या के रस को प्राप्त कराइये तथा जैसे अग्नि काष्ठों को जलाता है वैसे ही हमारे दुर्गुणों को जलाइये ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य कैसा बर्ताव करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स इदस्तैव प्रति धादसिप्रज्जिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।

चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्रोर्वेन दुषदा रघुपत्मजंहाः ॥५॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( य ) जो ( चित्रध्रजति ) विचित्रगमनवाला ( अरतिः ) नहीं रमण करना हुआ ( अस्तो ) रात्रि से और ( वे ) पक्षी से ( न ) जैसे वैसे ( दुषदा ) द्रवीभूत आदि पदार्थों में स्थित होने और ( रघुपत्मजंहा ) लघु-पतन का त्याग करनेवाला ही प्रकट होता है ( स ) वह अग्नि ( अस्तोव ) फूटनेवाले के सद्गुण ( अतिप्रज्जि ) बन्धन को नहीं प्राप्त होता हुआ ( अयसः ) सुवर्ण के ( न ) जैसे ( तेजः ) तेज को वैसे ( धाराम् ) वाणी को ( प्रति, धात् ) धारण करता है वह ( इत् ) ही तेज को ( शिशीत ) तीव्रण करता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य अग्नि का बाँध और तीव्रण करके युद्ध आदि कार्यों में प्रयुक्त करते हैं तो पक्षि के सद्गुण आकाश में जाने को समर्थ होवें ॥ ५ ॥

स ई रेभो न प्रति वस्त उस्त्राः शोचिषा रारपीति मित्रमंहाः ।

नक्रं य ईमरुषो यो दिवा नूनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नृन् ॥६॥

पदार्थ—( यः ) जो ( अरुषः ) रक्त गुण के सहित वर्तमान ( नक्तम् ) रात्रि को ( ईम् ) सब ओर से ( य ) जो ( अमर्त्यः ) अपने रूप से मृत्युरहित ( विषाः ) कामना से ( नृन् ) नायक मनुष्यों को ( यः ) जो ( अरुषः ) मर्मस्थानों में वर्तमान हुआ ( विषा ) कामना वा प्रीति के साथ ( नृन् ) नायक जनो के साथ मिलता है ( सः ) वह ( ईम् ) जल और ( रेभः ) आदर करने योग्य विद्वान् वा विद्वानों का सत्कार करनेवाला ( न ) जैसे वैसे ( शोचिषा ) ( वीप्सि ) के सहित वर्तमान ( उस्त्राः ) किरणों को ( प्रति, वस्ते ) आच्छादित करना है और ( मित्रमंहाः ) मित्रों का आदर करनेवाला ( रारपीति ) अत्यन्त शब्द करता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य जल का आकर्षण कर और उस जल को वर्षाव के प्राणियों के लिए सुख देता है वैसे विद्वान् पुरुष गुणों का आकर्षण कर और गुणों को देकर सब जिज्ञासु जनो को सुख देता है ॥६॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

दिषो न यस्य विधतो नवीनोदृषां रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।

धृणा न यो ध्रजसा पत्मना यक्षा रोदसी वसुना वं सुपत्नी ॥७॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस वंछ के ( विषः ) प्रकाश का ( न ) जैसे वैसे ( विधतः ) विधान करते हुए का ( वृषा ) वलिष्ठ ( रुक्ष ) तेजस्वी जन ( नवीनोत् ) अत्यन्त स्तुति युक्त होता है तथा ( ओषधीषु ) ओषधियों के निमित्त ( नूनोत् ) अत्यन्त स्तुति करता है और ( यः ) जो ( धृणा ) दीप्ति ( वं ) जैसे वैसे ( ध्रजसा ) गमन और ( वसुना ) उद्गमन से ( वसुना ) और धन से ( सुपत्नी ) सुन्दर स्वाधी वाली ( रोदसी ) अमर्त्यरक्ष और पृथिवी को ( यम् ) प्राप्त होनेवाला वह ( यम् ) इन्द्रियों के निग्रह करनेवाले की ( आ ) सब ओर से अत्यन्त स्तुति करता है वह अग्नि सब से जानने के योग्य है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जो अग्नि पृथिवी आदिको में पूर्ण हुआ जिसने आदि से प्रकाशित होवे वह मनुष्यों के अनेक प्रकार के कार्यों को करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

अब कैसा मनुष्य राजा होने के योग्य है इसविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

धायोमिर्वा यो युज्येभिरर्केविद्युष्व विविचोन्वेमिः शुष्मैः ।

शर्षो वा यो मरुतां ततश्च ऋधुर्न स्वेवो भक्षानो अयौत् ॥८॥४॥



पदार्थ—हे ( विद्वन् ) ( य. ) जो ( बायोभि ) धारण करनेवालो वा गुणो से और ( युष्मेभिः ) युक्त करने योग्य ( स्वेभिः ) अपने ( शुष्मे. ) बसों और गुणो से ( वा ) वा ( विद्युत् ) विजुली ( न ) जैसे वैसे अपने ( अर्क ) सत्कारो के योग्य कारणो से ( बावध्यात् ) प्रकाशित होता है ( य. ) जो ( वा ) वा ( भवताम् ) मनुष्यो के ( शर्चः ) बल को ( ऋधु ) बुद्धिमान जन ( न ) जैसे वैसे ( तत्तत् ) तीक्ष्ण करता है तथा ( स्वेष्ट. ) प्रकाशयुक्त और ( रभसान् ) वेगयुक्त जैसे ( अधीत् ) प्रकाशित होता है वही राजा सस्थापित करने योग्य है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विजुली के सदृश प्रतापी, बलवान्, पदार्थों के संयोग और वियोग की विद्या में चतुर, बुद्धिमान्, विद्वान् जर्मोत्सा इन्द्रियो को जीतनेवाला और प्रजापालनप्रिय अत्रिय होवे वही राजा होने के योग्य होवे ॥ ८ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसरा सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अष्टाष्टस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्वेदता ।

१ त्रिष्टुप् छन्दः । षष्ठत स्वरः । २, ५, ६, ७ मुरिक्यङ्कितछन्दः ।

३, ४, निष्पत्यङ्कितः । ८ पङ्क्तिछन्दः । पञ्चम स्वरः ।

अब आठ ऋचावाले चौथे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यो को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यथा होतमनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजामि ।

एवा नो अथ समना समानानुशङ्गन् उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

पदार्थ—हे ( सहस ) बलवान् के ( सूनो ) सम्मान और ( होत ) दान करनेवाले ( उशन् ) कामना करने हुए ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्वन् ( यथा ) जैसे ( मनुष ) मनुष्य आप ( यज्ञेभिः ) मिले हुए साधनो और उपसाधनो से ( देवताता ) श्रेष्ठ यज्ञ में ( यजामि ) यजन करें वैसे आप ( अथ ) इस समय ( समानान् ) मदुशी और ( उशन् ) कामना करते हुए ( न ) हम ( देवान् ) विद्वानो को ( समना ) समान में ( एवा ) ही ( यक्षि ) उत्तम प्रकार मिलिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् यज्ञ के करनेवाले जन अग और उपागो के सहित साधनो से यज्ञ को शोभित करने है वैसे ही सूर्यीय बनवान् योद्धा और विद्वान् जनो से राजा समान को जीतें ॥ १ ॥

फिर जगदीश्वर कौसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

म नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दार वेद्यश्नो धाव ।

विश्वायुयो अमृतो मर्त्येष्वर्ध्वद्रातिथिर्जातवेदाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( य ) जो ( वस्तो ) दिन और ( चक्षणिः ) प्रकाशक सूर्य और ( अग्निः ) अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशयुक्त ( न ) जैसे वैसे ( न ) हम लोगो के बीच ( विभावा ) अत्यन्त प्रकाशवाला और ( वेद्य ) जानने योग्य ( विश्वायु ) पूर्णवस्थावाला ( मर्त्येषु ) मरणधर्मयुक्त मनुष्यो में ( अमृतः ) नाश-रहित और ( उच्यते ) प्राप्त काल में जाना जाता है एसा और ( अतिथिः ) जिसके प्राप्त होने की कोई निधि विद्यमान नहीं उसके समान वर्तमान और ( जातवेदा ) उत्पन्न हुआ म विद्यमान वा उत्पन्न हुए पदार्थों को जाननेवाला ( वन्दार ) प्रशंसा करने योग्य ( धाव ) अन्न आदि को ( खात् ) धारण करता है ( स ) वह परमेश्वर हम लोगो का मगल करनेवाला ( भूत् ) हा ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सूर्य के सदृश अन्न से प्रकाशित, जाननेयोग्य, अजर, अमर, अतिथि के सदृश सत्कार करने योग्य और मन्त्र व्याप्त है उसकी सब उपामना करें ॥ २ ॥

द्यावो न यस्य पनयन्त्यर्ध्व मासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।

वि य इनोत्यजरः पावकाश्नस्य चिच्छिन्नश्चतुर्व्याणि ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( द्याव. ) कामना करते हुए विद्वान् जन ( न ) जैसे वैसे जन ( यस्य ) जिस परमेश्वर की ( अम्बम् ) बड़ी महिमा की ( पनयन्ति ) स्तुति करते हैं और ( सूर्य ) सूर्य ( न ) जैसे वैसे ( शुक्र ) शुद्ध पवित्र वा बलिष्ठ जन ( मासांसि ) तेजो को ( वस्ते ) आच्छादित करना है और ( य. ) जो ( अजरः ) जरादोष से रहित ( पावक ) पवित्र और सबको पवित्र करनेवाला ( चि, इनीति ) विशेष व्याप्त होता है और ( अन्नस्य ) व्यापक के मध्य में ( चतुर्व्याणि ) पहिले निमित्त वस्तुओ का ( चित् ) भी ( क्षिप्तवत् ) प्रलय करता है वही जगदीश्वर जानने योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर प्रकाशको का प्रकाशक नित्यो का नित्य और चेतनो का चेतन है उगी का भजन करा ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वया हि सूनो बर्धमद्वा चक्रे अग्निर्नुषाज्मात्रम् ।

स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजं जेरध्वके सैव्यन्तः ॥४॥

पदार्थ—हे ( सूनो ) सपूर्ण जगत् के रखनेवाले ( वया ) कहने और ( अपा-सद्वा ) भोग्य पदार्थों में प्राप्त रहनेवाले ( अग्निः ) पवित्र ( जनुषा ) जन्म से ( अम्बम् ) प्राप्त होने और ( अन्नम् ) खाने योग्य पदार्थों को प्राप्त हुए ( अस्ति ) हो और शुद्ध ( चक्रे ) करते हो ( स ) वह ( हि ) निश्चय से ( स्वम् ) आप ( नः ) हम लोगो के लिए ( ऊर्जसने ) पराक्रम के प्रक्षेपण में ( राजं ) जैसे प्रकाशमान राजा वैसे ( ऊर्जम् ) पराक्रम को ( धा ) धारण करिये ( अर्ध्वके ) चोर से रहित के ( अन्तः ) मध्य में ( जं ) जीतिए और ( जेभिः ) निवास करिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन हैं वे ईश्वर के सदृश पक्षपात से रहित और धर्ममार्ग में निवास करते हुए परमेश्वर का भजन करें ॥ ४ ॥

नितिक्रि यो वारणमक्षमत्ति वायुने राष्ट्रवस्यैत्यन्न ।

तुयाम यस्त आदिशामरातीरस्यो न हुतः पर्वतः परिहृत् ॥५॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( य ) जो विद्वान् ( नितिक्रि ) अत्यन्त तीक्ष्ण किये ( वारणम् ) स्वीकार करने और ( अन्नम् ) खाने योग्य पदार्थों को ( अस्ति ) भक्षण करता और ( वायु ) पवन ( न ) जैसे वैसे ( अक्षन् ) प्रसिद्ध पदार्थों को ( अति, एति ) व्याप्त होता है और ( य. ) जो ( पतत ) पतनशील ( ते ) आपका ( हृतः ) कुटिलता को प्राप्त हुआ ( अत्य ) मार्ग को व्याप्त हुए छोड़े के ( न ) समान ( परिहृत् ) सब ओर से कुटिल गमन करनेवाला है और जिसके हम लोग ( आदि-शाम् ) सब प्रकार में दिये हुओ के ( अराती ) शत्रुओ का ( तुयाम ) नाश करें और ( राष्ट्री ) ईश्वर जैसे वैसे न्याय में वर्तव्य करें उनका हम लोग सेवन करें ॥५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो शुद्ध खान और पीने योग्य पदार्थ का सेवन करता है वायु के सदृश बलिष्ठ और ईश्वर के सदृश पक्षपात से रहित होकर न्याय की अपेक्षा से विपरीत दशा को प्राप्त हुओ का मारनेवाला हो उगी को राजा मानो ॥५॥

आ सूर्यो न भानुमङ्गिरैर्मे ततन्थ रोदसी विभासा ।

चित्रो नयत्परि तमास्यक्तः शोचिषा पम्भौशिजो न दीयन् ॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान आप ( भानुमङ्गिर ) बहुत प्रकाशवाले ( अर्क ) वज्र के सदृश छेदक किण्वो से ( सूर्य ) सूर्य के ( न ) जैसे वैसे ( भासा ) प्रकाश से ( चि, तन्थ ) अत्यन्त विस्तार युक्त करने हो और जैसे ( चित्र ) अनेक प्रकार के वर्णों से अद्भुत सूर्य ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्रकाशित करता और ( शोचिषा ) प्रकाश में ( अस्तः ) प्रसिद्ध हुओ ( तमासि ) अन्धकारो को ( परि ) सब ओर से ( नयत् ) दूर करना है वैसे ( पम्भन् ) चलते हैं जन जिसमें उस मार्ग में ( दीयन् ) चलते हुए ( औशिज ) कामना करते हुए के पुत्र के ( न ) समान सत्य मार्ग में चलते हुए आप धर्म कर्म का ( आ ) सब प्रकार से विस्तार करें ॥६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से ममीप में वर्तमान पदार्थों को प्रकाशित करके रात्रि का निवारण करता है वैसे ही उत्तम गुणो को प्रकाशित करके अज्ञानान्धकार का निवारण करिये ॥ ६ ॥

अम्बावि देनेवाले प्रशंसनीय होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वा हि मन्द्रतममर्कशोर्कैर्वैदमहे महि नः श्रोव्यग्ने ।

इन्द्रं न त्वा शवमा देवता वायु पृणन्ति राधसा वृत्तमाः ॥७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान जो आप ( न ) हम लोगो के ( महि ) बड़ वचन को ( श्रोवि ) सुनते हैं उन ( अर्कशोर्क ) अन्न आदिको के शोभना में ( मन्द्रतमम् ) अत्यन्त आनन्द देनेवाले ( त्वाम् ) आपका हम लोग ( वदमहे ) स्वीकार करते हैं और हे ( नूतमा ) अत्यन्त अग्रणी जनो आप लोग ( हि ) जिग कारण से जैसे ( देवता ) जगदीश्वर सम्पूर्ण जगत् को प्रसन्न करता है वैसे ( शवसा ) वन और ( राधसा ) वन में ( वायुम् ) प्राण आदि को ( पृणन्ति ) सुखी करने हैं उन ( त्वा ) आपका ( इन्द्रम् ) विजुली का ( न ) जैसे वैसे हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अन्नादिको से अत्यन्त आनन्द देनेवाले मनुष्यो में उत्तम मनुष्य सम्पूर्ण ससार को उत्तम बुद्धियुक्त करते हैं वे सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

अब विद्वानों के गुणों को कहते हैं—

न नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेपि रायः पथिभिः पर्व्यहः ।

ता सुरिभ्यो गृणते रासि सुन्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् जो आप ( अवृकेभिः ) चोरो से भिन्न जनो के साथ ( न ) हम लोगो को ( स्वस्ति ) सुख ( वेपि ) व्याप्त करते हो तथा ( पथिभिः ) उत्तम मार्गों से ( रायः ) धनो का ( नृ ) शीघ्र ( पथि ) पालन करने हो और ( सुरिभ्यः ) विद्वानो के लिए और ( गृणते ) स्तुति करते हुए के लिए ( सुन्नम् ) सुख को ( रासि ) देते हो तथा ( अहः ) अपराध को दूर करते हो उन आपके साथ ( ता ) उक्त पदार्थों को प्राप्त होकर ( शतहिमा ) सौ वर्ष पर्यन्त ( सुवीराः ) श्रेष्ठ वीर हम लोग ( अवेम ) आनन्द करें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! चोरो और चोर के सग और अन्याय से पाप के आचरण का त्याग करके और सुख को प्राप्त होकर सौ वर्ष युक्त होओ ॥ ८ ॥

इस सूक्त में अग्नि, ईश्वर और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौथा सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

५६

अथ सप्तमस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य भारद्वाजी बाह्व्यस्य ऋषिः ।

अग्निर्वेदता १, ४, त्रिष्टुप् १, २, ५, ६, ७ निष्प्रतिष्ठद्वुप् ।

छन्दः । धेनुतः स्वरः । भुरिक्पङ्क्तिवृद्धम् ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले पञ्चम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या ग्रहण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

कुवे वः सुतुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिमिर्वविष्ठम् ।

य इन्वेति द्रविणानि प्रचेता विश्वाराणि पुश्वारो अधक् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( वः ) जो ( प्रचेता ) उत्तम बुद्धियुक्त ( पुश्वारः ) बहुतो से स्वीकार किया गया ( अधक् ) नही द्रोह करनेवाला जन ( विश्वाराणि ) संपूर्ण जनों से स्वीकार करने योग्य ( द्रविणानि ) द्रव्यों को ( इन्वेति ) व्याप्त होता है उस ( मतिमिर्वविष्ठम् ) मनुष्यों का बुद्धियों के सहित वर्तमान ( सहसः ) बल के ( सुतुम् ) सन्तान ( युवानम् ) युवावस्था को प्राप्त ( अद्रोघवाचम् ) द्रोहरहित वाणी जिस की ऐसे ( यविष्ठम् ) धर्माशय युवावस्था का प्राप्त हुए को ( वः ) आप लोगों के लिए मैं ( कुवे ) ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिए कि जो पक्षपान से रहित वाद-युक्त, द्रोह न रहित और बुद्धिमानों के संग का सेवन करनेवाले धीरे बहुत विद्वानों से आदर किये गये धीरे ब्रह्मचर्य से पूर्ण युवावस्थावाले विद्वान् हो उन्हीं का उपदेश ग्रहण करें ॥ १ ॥

मनुष्यों को किसके होने पर क्या प्राप्त होना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

त्वे बह्वनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियांसः ।

साधेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२॥

पदार्थ—हे ( पुर्वणीक ) अनेक सेनाओं से युक्त ( होतः ) दान करनेवाले राजन् ( यस्मिन् ) जिन ( पावके ) अग्नि के सदृश पवित्र ( त्वे ) आप के रक्षक रहन पर ( यज्ञियांसः ) यज्ञ के अनुष्ठान करने के योग्य प्रजाजन ( दोषा ) रात्रि में और ( वस्तोः ) दिन में ( आनेव ) जैसे पृथिवी वैसे ( विश्वा ) संपूर्ण ( भुवनानि ) लोकों में प्रकट और पञ्चभूत अधिकरण जिनके उन प्राणियों की और ( वसूनि ) धनो की ( आ, ईरिरे ) प्रेरणा करते और ( सौभगानि ) श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के भावों को ( सत्, दधिरे ) सम्यक् धारण करते हैं उनका हम लोग सत्कार करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—राजा के रक्षक रहने पर ही प्रजाजन पतिदिन वृद्धि को प्राप्त होते और ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सुखयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

स्वं विश्व प्रदिबः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वायीणाम् ।

अत इनोषि विधते चिकित्सो व्यानुषगजातवेदो वसूनि ॥३॥

पदार्थ—हे ( चिकित्सः ) शूद्र बहुत बुद्धि से युक्त और ( जातवेदः ) उत्पन्न हुआ विज्ञान जिनको ऐसे हे राजन् ! जिस कारण ( त्वम् ) आप ( आनुषक् ) संग करनेवाले होते हुए ( वसूनि ) धनो की ( विधते ) सत्कार करनेवाले के लिए ( वि, इनोषि ) प्रेरणा करते हो और ( आसु ) इन ( विश्व ) प्रजाओं में ( कत्वा ) बुद्धि से ( वायीणाम् ) स्वीकार करने योग्यो के ( रथीः ) बहुत रथोंवाले ( अश्वः ) होते हो ( अतः ) इस कारण से ( प्रदिबः ) उत्तम प्रकाश के मध्य में ( सीव ) स्थित होइये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—वही राजा होने के योग्य होवे जो राजविद्या को अच्छे प्रकार जाने ॥ ३ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यो नः सनुत्यां अमिदासदग्ने यो अन्तरा मित्रमहो वनुष्यात् ।

तमजरमिष्टिर्षमिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥४॥

पदार्थ—हे ( तपिष्ठः ) अत्यन्त तप करनेवाले और ( मित्रमहः ) बड़े मित्रों से युक्त ( अग्ने ) विद्वन् ( यः ) जो ( सनुत्याः ) निश्चित अन्तर्हित अर्थात् मध्य के सिद्धांतों में प्रकट हुआ अथवा श्रेष्ठ ( नः ) हम लोगों का ( अमिदासत् ) चारों ओर से नाम करता है और ( यः ) जो ( अन्तरः ) भिन्न हम लोगों से ( वनुष्यात् ) याचना करे ( तम् ) उसको ( अजरमिष्टिः ) पुद्गावस्था से रहित ( ऋषिः ) बलिष्ठ युवा ( तव ) आप के ( स्वैः ) अपने जनों के साथ ( तथा ) तपयुक्त करो वा तप-स्वी होओ और ( तपसा ) ब्रह्मचर्य और प्राणायामादि कर्म से ( तपस्वान् ) बहुत तपयुक्त हूजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों से याचना करे उस सुपात्र के लिए यथाशक्ति दान करिये । और जो पीड़ा देवे उसको पीड़ित करो और तपस्वी होकर वर्म का ही आचरण करी ॥ ४ ॥

यस्तं यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सुनो सहसो ददाशत् ।

स मर्येण्यमृत प्रचेता राया धुम्नेन श्रवसा वि भाति ॥५॥

पदार्थ—हे ( सहसः ) बलवान् के ( सुनो ) पुत्र और ( अमृत ) मरण-धर्म से रहित ( यः ) जो ( यज्ञेन ) विद्वानों के सत्कार नामक यज्ञ और ( समिधा ) सत्य के प्रकाशक वा ईश्वर से तथा ( यः ) जो ( अर्केभिः ) आदर करनेयोग्य और ( उक्थैः ) कहने के योग्य पदार्थों से ( ते ) आप के लिए ( ददाशत् ) देता है ( सः ) वह ( मर्येण्यम् ) मनुष्यों में ( प्रचेताः ) उत्तम ज्ञानवान् ( राया ) धन ( धुम्नेन ) यश और ( श्रवसा ) अन्न वा श्रवण से ( वि, भाति ) प्रकाशित होता है इस प्रकार विवेक करके जानो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो प्रशसित कर्म और गुणों के सहित जन इस संसार में प्रयत्न करते हैं वे विद्या, यश और धन से युक्त होकर संसार में प्रसिद्ध होते हैं ॥ ५ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

स तत्कुंषीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।

यच्छस्यसे धुमिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व अरितुयोषि मन्म ॥६॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रतापयुक्त ( यत् ) जो आप ( धुमि ) प्रकाशमान दिनों से ( अक्तः ) रात्रि जैसे वैसे ( तस्यसे ) स्तुति किये जाते हैं वह आप ( वचोभिः ) वचनों में ( अरितुः ) स्तुति करनेवाले का ( वीषि ) वाणी जिसमें ऐसा ( मन्म ) विज्ञान है ( तत् ) उसका ( जुषस्व ) सेवन करो ( सः ) वह ( सहस्वान् ) सहन करनेवाले आप ( सहसा ) बल से ( स्पृध ) स्वर्धा करते हैं जिन में उन सप्राप्तियों की ( बाधस्व ) बाधा करने हो तथा ( तूयम् ) शीघ्र ( हवितः ) प्रेरित हुए ( तत् ) उसको ( कृषि ) करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् और ईश्वर से प्रेरित हुए शीघ्र आलस्य का त्याग कर के दिन रात्रि धर्म, अर्थ और मोक्ष की मिट्टि के लिए प्रयत्न करते हैं वे योग्य होकर दुःखों को बाधित करते हैं ॥ ६ ॥

मनुष्य को किसके संग क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अक्षयाम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयि रयिवः सुवीरम् ।

अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम धुम्नमजरजरं ते ॥७॥७॥

पदार्थ—हे ( अजरः ) वृद्धावरणरहित ( रयिवः ) बहुत धन और ( अग्ने ) विद्या से युक्त राजन् ( तव ) आप के ( ऊती ) रक्षण आदि कर्म से हम लोग ( तव ) उस ( कामम् ) मनोरथ को ( अक्षयाम ) प्राप्त होवें और ( सुवीरम् ) उत्तम वीरों की प्राप्ति करनेवाले ( रयिवः ) धन को ( अक्षयाम ) प्राप्त होवें तथा ( वाजयन्तः ) जानाते हुए हम लोग ( वाजम् ) अन्न आदि को ( अभि ) समुत्त ( अक्षयाम ) प्राप्त होवें और ( ते ) आपके ( अजरम् ) जीर्ण होने से रहित ( धुम्नम् ) यश वा धन को ( अक्षयाम ) प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि हम लोग यथार्थ वक्ता जन के उपदेश से इच्छा की सिद्धि, बहुत धन, वीर पुरुषों और नही नष्ट होनेवाले यश को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह पाँचवाँ सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

५७

अथ सप्तमस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य भारद्वाजी बाह्व्यस्य ऋषिः ।

अग्निर्वेदता १, २, ३, ४, ५ निष्प्रतिष्ठद्वुप् ।

६, ७ त्रिष्टुप्छन्दः । धेनुतः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छठे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्यों को सन्तान किस प्रकार उत्पन्न करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

प्र नय्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव हृच्छमानः ।

वृश्चद्वनं कृष्णयामं कृशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यज्ञेन ) समतिरूप यज्ञ से ( गातुम् ) पृथिवी और ( अवः ) रक्षण की ( हृच्छमानः ) इच्छा करता हुआ ( नय्यसा ) अत्यन्त नवीन व्यवहार से ( सहसः ) बलवान् के ( सूनुम् ) सन्तान को और ( कृष्णयामम् ) धाकड़िन किया मार्ग जिसने ऐसे ( कृशन्तम् ) हिंसा करने हुए ( वृश्चद्वनम् ) काटता है वह जन जिसमें उसके समान ( वीती ) व्याप्ति से ( होतारम् ) देनेवाले ( दिव्यम् ) शूद्र व्यवहारों में प्रकट हुए को ( अच्छः ) अच्छे प्रकार ( प्र, जिगाति ) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाचकलुप्पोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप लोग ब्रह्मचर्य से बलिष्ठ होकर सन्तानों को उत्पन्न करो जिससे रोगरहित, बाल्युक्त और उत्तम स्वभावयुक्त सन्तान होकर आप लोगों को निरन्तर सुखयुक्त करें ॥ १ ॥

किर बहु अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स रिबतानस्तन्यत् रोचनस्या अजरैर्मिनान्दक्षिर्विष्टः ।

यः पात्रकः पुस्तमः पुरुषि पृथन्यग्निर्नुयाति भवेत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( य. ) जो ( पविष्ठः ) अत्यन्त युवावस्था से युक्त जैसे वैसे अत्यन्त बली ( पात्रकः ) पवित्र और पवित्र करनेवाला ( पुस्तमः ) अतीव बहुल ( रिबतान्. ) शुभवरण ( अजरैर्भिः ) जीर्णपन भावि रोगरहित ( मिनान्. ) निरन्तर गर्जनाओं से ( तन्यत्. ) बिजुलीरूप ( रोचनस्या ) दीपन में स्थिर ( अग्निः ) अग्नि ( भवेत् ) बहन करता हुआ ( पुरुषि ) बहुत ( पृथनि ) विस्तीर्णों के ( अनुयाति ) पश्चात् जाता है ( स. ) वह आप लोगों का उत्तम प्रकार प्रयोग करने योग्य है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जो आप अग और उपांग के सहित बिजुली की विद्या को जानें तो बहुत सुख को प्राप्त होंगे ॥ २ ॥

वि ते विष्ववातजृतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।

तुविप्रसासो विष्या नवन्वा वना वनन्ति पृषता रुजन्तः ॥३॥

पदार्थ—हे ( शुचे ) पवित्र विद्वन् ( ते ) आप के जो ( विष्वक् ) सब का आदर करनेवाला और ( वातजृतास ) वायु के सदृश वेगयुक्त ( भामासः ) क्रोध ( शुचयः ) पवित्र ( वि, चरन्ति ) विशेष करके चलते हैं ( तुविप्रसास ) बहुलो के साथ मिले हुए ( विष्या ) अन्तरिक्ष में हुए ( नवन्वा ) नवीन गमनवाले ( पृषता ) प्रगल्भता से ( रुजन्तः ) मनुष्यों को भग्न करते हुए ( वना ) आदर करने योग्य पदार्थों का ( वनन्ति ) उत्तम प्रकार सेवन करते हैं वे पवित्र होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुली के सदृश पवित्र, दुष्टों में क्रोध करनेवाले खेड़ों के साथ मेल करने और नवीन-नवीन विद्या को प्राप्त होनेवाले हों वे सब स्थानों में विचरते हुए अन्यो को जनार्थ ॥ ३ ॥

ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः सा वपन्ति विषितासो अग्नाः ।

अध भ्रमस्त उर्विया वि माति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥४॥

पदार्थ—हे ( शुचिष्मः ) प्रकाशयुक्त विद्वन् ( ये ) जो ( ते ) आप के ( शुक्रासः ) पराक्रमयुक्त ( शुचयः ) पवित्र ( विषितासः ) व्याप्त ( अग्नाः ) भीष्ट चलनेवाले ( सा ) भूमि को ( वपन्ति ) बोते हैं ( अध ) इसके अनन्तर ( ते ) आप का ( यातयमानः ) दण्ड देता हुआ ( अधि ) भ्रमण ( उर्विया ) बहुत प्रकार के प्रकाश से ( पृश्नेः ) अन्तरिक्ष के मध्य में ( अधि ) ऊपर के ( सानु ) विभाग में ( वि, माति ) विशेष शोभित होता है उन सब को आप उत्तम प्रकार शिक्षा दीजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अपने समीप में पवित्र और यथावद्वक्ता पुरुषों की सेवा रक्षा करे अथवा आप भी उनका संग करें ॥ ४ ॥

किर मनुष्यों को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोष्ठ्युभो नाशनिः सृजाना ।

शूरस्येव प्रसितिः सातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्मो दयते वनानि ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! ( गोष्ठ्युभः ) बाणियों में युद्ध करनेवाले ( वृष्णः ) बलिष्ठों को ( जिह्वा ) वाणी ( न ) नहीं ( पापतीति ) अत्यन्त बारबार प्राप्त होती है ( अध ) इसके अनन्तर ( नाशनिः ) बिजुली जैसे वैसे ( सृजाना ) उत्पन्न किया गया ( शूरस्येव ) शूरवीर के सदृश ( अग्ने ) अग्नि के समान प्रकाशमान ( दुर्वर्तुः ) दुःख के साथ वर्तमान से युक्त का ( प्रसितिः ) प्रकृष्ट बन्धन ( जाति ) और नाम ( भीमः ) भयकर हुआ ( वनानि ) वनों को ( प्र, दयते ) नष्ट करता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य धर्म से परित न होकर धार्मिकों में शान्त और दुष्टों में अग्नि के सदृश भयकर होते हैं वे ही बलवान् गिने जाते हैं ॥ ५ ॥

मनुष्यों को किस के सबूत क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

आ मानुना पार्थिवानि जयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्ध ।

स वांभस्वाप मया सहीमिः स्पृधो बनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् जैसे आप ( मानुना ) किरण से ( तोदस्य ) प्रेरणा के ( धृषता ) ठीठ से ( महः ) बड़े ( पार्थिवानि ) पृथिवी में विवित कार्य वा पृथिवी भावि से कृत ( जयांसि ) जानने योग्यो का ( आ ) चारों ओर से ( ततन्ध ) विस्तार करते हैं वैसे ( स. ) वह आप ( सहीमिः ) बलों से ( मया ) भयों की ( अप, वाचस्व ) अतीव बाधा करो और ( बनुषः ) सेवन करने योग्यो का ( अनु-ष्यत् ) सेवन कराते हुए ( स्पृधः ) सप्रामो का ( नि, जूर्व ) नाश करिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो प्रेम से मित्र होकर जैसे सूर्य अन्धकार को वैसे भयों को दूर कर के मयामो को जीतते हैं वे प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ६ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रं स चित्रतमं व्योधासु ।

चन्द्र रयि पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्रं चन्द्राभिर्गुणते युवस्व ॥७॥८॥

पदार्थ—हे ( चित्र ) अद्भुत गुण कर्म और स्वभाववाले ( चित्रस्य ) अद्भुत राज्य वा धन से युक्त ( चन्द्र ) आह्लादकारक जैसे ( सः ) वह विद्वान् ( चन्द्राभिः ) आनन्द और धन करनेवाली प्रजाओं से ( अस्मे ) हम लोगों के लिए ( चित्र-सु ) आश्चर्यभूत ( चन्द्रसु ) आनन्द देनेवाले सुवर्ण आदि को ( चितयन्तसु ) जानते हुए तथा ( चित्रतमम् ) अत्यन्त आश्चर्ययुक्त रूप और ( व्योधासु ) जीवन के धारण करने और ( बृहन्तम् ) बड़े ( पुरुवीरसु ) बहुत वीरों के देनेवाले ( रयि ) धन की ( गुणते ) स्तुति करता है उस को आप ( युवस्व ) उत्तम प्रकार युक्त करिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जा मनुष्य अद्भुत गुण कर्म और स्वभावों का स्वीकार कर के तथा अन्य जनों को ग्रहण कराय के घनाढ्य कराने हैं वे अद्भुत स्तुतिवाले होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि तथा विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के धर्म की इससे पूर्व सूक्त के धर्म के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छठा सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तमस्य सप्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य आदि । ब्रह्मवर्षो देवता ।

१ त्रिष्टुप् । २, निष्त्रिष्टुप् । ७ स्वराद् त्रिष्टुप् छन्दः । वृषतः स्वरः ।

२ निष्प्रत्यङ्गितः । ४ स्वराद् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वरः । ६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ सात ऋचावाले सातवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को कैसा अग्नि जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मूर्धानं दिवो अरति पृथिव्या वैश्वानरमुत आ जातमग्निम् ।

कवि सन्नाजमतिथि जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( देवा ) विद्वान् जन ( दिवः ) प्रकाश वा सूर्य के ( मूर्धानम् ) सर्वोपरि विराजमान ( पृथिव्याः ) पृथिवी की ( अरतिम् ) प्राप्ति को ( अग्ने ) सत्य में ( जातम् ) प्रसिद्ध ( कविम् ) स्वच्छबुद्धियुक्त वा विद्वान् ( सन्ना-जम् ) भूगोल के राजा ( जनानाम् ) मनुष्यों के ( अतिथिम् ) आदर करने योग्य ( पात्रम् ) पालन करनेवाले ( वैश्वानरम् ) सम्पूर्ण मनुष्यों में भ्रमणी ( अग्निम् ) अग्नि के सदृश वर्तमान को ( आ, जनयन्त ) प्रकट करते हैं वे सुखी ( आ, आसम् ) अच्छे प्रकार हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के सदृश व्यापकारी हो कर तथा अग्नि के सदृश विद्या और विनय से प्रकाशित हुए चक्रवर्त्तित्व का प्राप्त होते हैं वे सब को सुख देने को योग्य होते हैं ॥ १ ॥

नामिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावयभि स नवन्त ।

वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( देवा ) विद्वान् जन जिस ( यज्ञानाम् ) सत्य क्रियामय यज्ञों के ( नामिम् ) बीच के भाग का और ( महान् ) महान् ( रयीणाम् ) धनों के ( सवन्तम् ) स्थान और ( आहावम् ) चारों ओर से स्पर्श करने योग्य ( वैश्वान-रम् ) सर्वत्र प्रकाशमान ( रथ्यम् ) रथ को बहाने के योग्य ( अध्वराणाम् ) नहीं नष्ट करने योग्यो के ( यज्ञस्य ) प्राप्त होने योग्य व्यवहार के ( केतुम् ) जाननेवाले को ( सन्, जनयन्त ) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं और ( नवन्त ) स्तुति करते हैं उनकी आप लोग ( अग्नि ) सम्मुख प्रशंसा करिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य व्याप्त और मयपूर्ण कार्यों की सिद्धि के करनेवाले अग्नि को अच्छे प्रकार जान कर वाहनो को प्रकट करते हैं वे कार्यसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

किर बहु राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

त्वद्भिर्गो जायते वाज्यग्ने त्वद्गिरासो अभिमातिवाहः ।

वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वनानि राजन्स्पृहयाट्याणि ॥३॥

पदार्थ—हे ( वैश्वानर ) संपूर्ण जनों में भ्रमणी ( अग्ने ) अग्नि के सदृश प्रतापी विद्वान् ( राजन् ) राजन् जिस कारण से ( त्वत् ) आपके समीप से ( विष्टः ) बुद्धिमान् ( वाजी ) वेगयुक्त ( वाजसे ) होता है और ( त्वत् ) आपके समीप से ( अभिमातिवाहः ) अभिमानयुक्त मनुष्यों के सहनेवाले ( गिरासः ) शूरवीर जन प्रकट होते हैं इससे ( त्वम् ) आप ( अस्मासु ) हम लोगों में ( स्पृहाट्याणि ) इच्छा के विषय होने योग्य ( वनानि ) वनों को ( धेहि ) धारण करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—वही राजा होने को योग्य है जिस के संग से पुष्ट जन भी खेष्ट, कायर भी शूरवीर और क्षुण्ण भी दाता होते हैं ॥ ३ ॥



अथ द्वितीय जन्म के विषय को कहते हैं—

त्वां विद्वे अमृतं जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।

तव क्रतुमिरयुतस्वमायमैश्वर्यं यत्पित्रोरदीदः ॥५॥

पदार्थ—हे ( वैश्वानर ) संपूर्ण जनो को धर्म के कायों में ले चलनेवाले ( अमृत ) मरण धर्म से रहित यथार्थवक्ता विद्वन् जन जिन ( त्वाम् ) आप को ( शिशुम् ) बालक को ( न ) जैसे वैसे ( जायमानम् ) उत्पन्न हुए की ( विद्वे ) सम्पूर्ण ( देवाः ) विद्वान् जन ( अभि ) सब ओर से ( सम् ) उत्तम प्रकार ( नवन्ते ) स्तुति करते हैं और जिन ( तव ) आप के ( क्रतुभिः ) बुद्धि के कर्मों से मनुष्य लोग ( अमृतस्वम् ) मोक्षपन को ( आयम् ) प्राप्त होते हैं और ( यत् ) जो आप ( पित्रोः ) माता और पिता के सद्गुण विद्या और आचार्य के ( अदीदः ) प्रकाशक हो वह आप धन्य हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य माता और पिता से जन्म को प्राप्त होकर आठवें वर्ष से प्रारम्भ कर के आचार्य से विद्या के ग्रहण से द्वितीय जन्म को प्राप्त होते हैं वे स्तुति करने योग्य हुए धर्म, धर्म, काम और मोक्ष को सिद्ध करने को समर्थ होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य को क्या प्राप्त करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

वैश्वानरं तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।

यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽर्विन्धः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( वैश्वानर ) सम्पूर्ण ससार में विद्या और धर्म के प्रकाश से प्रगल्भी ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण प्रकाशस्वरूप ( यत् ) जो आप ( पित्रोः ) माता पिता के सद्गुण विद्या और आचार्य के ( उपस्थे ) समीप में ( जायमानः ) प्रकट हुआ ( अह्नाम् ) दिना के मध्य में ( वयुनेषु ) पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विज्ञानों में ( केतुम् ) बुद्धि का ( अर्विन्धः ) प्राप्त होते हो उन ( तव ) आप के ( तानि ) उक्त ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण सत्यभाषण आदि ( व्रतानि ) बड़े ( व्रतानि ) कर्मों को कोई भी ( नकि ) नहीं ( आ, दधर्ष ) निरस्कार करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—आ मनुष्य दूसरे विद्यारूप जन्म को प्राप्त होवें तो उनके सफल कर्म होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुनां ।

तस्येदु विश्वा भुवनानि मूर्धनि वपाईव रुहुः सप्त विस्तुहः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन ( वैश्वानरस्य ) सम्पूर्ण नरो में विद्या और विनय से प्रकाशमान के ( चक्षसा ) प्रज्ञान से ( विमितानि ) विशेष कर के परिमित ( सानूनि ) प्रान्त स्थानों को ( विष ) प्रकाशमान ( अमृतस्य ) नाश से रहित की ( केतुना ) बुद्धि से ( विद्वे ) सम्पूर्ण ( भुवनानि ) लोक ( सप्त ) सात प्रकार के ( विस्तुहः ) विशेष करके सरकते जाते और ( मूर्धनि ) शिर पर अर्थात् ऊपर ( वपाईव ) पक्षियों के सद्गुण ( अवि ) अधिकतर ( रुहुः ) प्रकट होते हैं ( तस्य ) उसका ( इत् ) ही ( उ ) तक विलंब से सग करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन परमेश्वर से स्नेह गये, पक्षियों के सद्गुण अन्तरिक्ष में चलत हुए लोको और उनकी गति को बुद्धि से विशेष करके जान वह विद्वानो के मस्तक के सद्गुण प्रज्ञा करने योग्य होता है ॥ ६ ॥

फिर जगदीश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि यो रज्जांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रीचना कविः ।

परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदग्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता । ७ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ( य ) जो जगदीश्वर ( वैश्वानर ) सम्पूर्ण मनुष्यों का हित करनेवाला ( सुक्रतुः ) उत्तम कर्म जिस के वह ( कवि ) उत्तम बुद्धि वाला ईश्वर ( विष ) प्रकाशमान सूर्य के ( रीचना ) प्रकाशरूप ( रज्जांसि ) लोको को ( वि ) विशेष कर के ( अमिमीत ) निमित्त करता तथा ( य ) जो ( विद्वे ) सम्पूर्ण ( भुवनानि ) भुवनो को ( परि ) सब ओर से ( पप्रथे ) विस्तारयुक्त करता है वह ( अमृतस्य ) मोक्ष का ( गोपा ) पालन करनेवाला ( अदग्धः ) अहिंसनीय और ( रक्षिता ) रक्षा करनेवाला ( वि ) विशेष कर के निर्माण करता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सम्पूर्ण लोक निमित्त किये हैं तथा जो सब का रक्षक है उस की सब उपासना करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में १७ के हित करनेवाले, विद्वान्, और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सातवां सूक्त और मध्याह्नक समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ सप्तसर्वाष्टमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । वैश्वानरो देवता ।

१, ४ जगदी । ६ विराड्जगती । छन्दः । निशादः स्वरः । २, ३, ५,

पुरिक् विष्टुप् । ७ जिष्टुप् छन्दः । शेषतः स्वरः ॥

अथ सात ऋचावाले आठवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में अथ मनुष्यों को क्या जान कर क्या उपदेश करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

पृथस्य वृष्णो अरुवस्य नू सङ्गः प्र तु वोचं विवशा जातवेंदमः ।

वैश्वानराय मतिर्नध्यसी शुचिः सोमैव पवते चारुर्गनये ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ( पृथस्य ) सर्वत्र सम्बन्ध अर्थात् समुक्त ( अरु-पथ्य ) नहीं हिंसा करने और ( वृष्ण ) सेचन करने वाले ( जातवेंदमः ) उत्पन्न हुआ से विद्यमान के ( सङ्गः ) बल का ( नू ) शीघ्र ( प्र, वोचम् ) उपदेश देऊँ और ( विवशा ) विज्ञानों का ( वृ ) शीघ्र उपदेश देऊँ और जिसकी ( सोमैव ) सोमलता जैसे वैसे ( नध्यसी ) अत्यन्त नवीन ( शुचि ) पवित्र ( चारुः ) सुन्दर ( मतिः ) बुद्धि ( पवते ) पवित्र होती है उस ( वैश्वानराय ) सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक ( अम्ये ) विद्वान् जन के लिए बुद्धि को धारण कर ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिन मनुष्यों की सोमलतारूप बोधविषय के सद्गुण पवित्र करनेवाली बुद्धि, अतुल बल और अग्निविद्या होती है वे ही ध्यानन्वित होने हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतया अरक्षत ।

व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकपस्पृशत् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो आप लोगों को जो ( व्रतया ) कर्मों की रक्षा करने वाला ( अग्निः ) अग्नि ( चरने ) श्रेष्ठ और ( व्योमनि ) आकाश के सद्गुण व्यापक परमेश्वर में ( जायमानः ) उत्पन्न होता हुआ ( व्रतानि ) सत्य भाषण आदि कर्मों की ( अरक्षत ) रक्षा करता तथा ( अन्तरिक्षम् ) जल की ( वि ) विशेष कर के ( अमिमीत ) रक्षा करता और ( सुक्रतुः ) अच्छे कर्मोंवाला ( वैश्वानर ) सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान होता हुआ ( महिना ) महत्त्व से ( नाकम् ) दुख रहित का ( अस्पृशत् ) स्पर्श करता है ( स ) वह जानने योग्य है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने आप में सूर्य आदि लोकों के निर्माण से सब का उपकार किया उस के सत्य कर्मों का अनुष्ठान कर के उपासना करो अर्थात् उसी का भजन करो ॥ २ ॥

फिर सूर्य कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

व्यस्तम्नाद्रोदसी मित्रा अद्भुतोऽन्तर्वाविदकुणोज्ज्योतिषा तमः ।

वि चर्मणीव धिपणे अवर्त्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्यम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( अवभुतः ) आश्चर्यजनक गुण कर्म और स्वभाववाला ( मित्रः ) सब के मित्र क वर्तमान वर्तमान ( वैश्वानर ) सम्पूर्ण मनुष्यों में निराजमान सूर्य ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( वि, व्यस्तम्नात् ) धारण करता तथा ( व्योतिषा ) प्रकाश में ( तमः ) रात्रि का ( अकुणोत् ) करना ( अन्तर्वात् ) अन्त अर्थात् ब्रह्माण्ड के भीतर अत्यन्त चलता ( चर्मणीव ) जैसे जर्म में राम धारण किये गये वैसे ( विश्वे ) सब के धारण करने वालियों को ( वि, अवर्त्तयत् ) विशेष करके बर्ताता ( वृष्यम् ) बधों में उत्पन्न वा श्रेष्ठ ( विश्वम् ) सम्पूर्ण जगत् को ( अधत्त ) धारण करता है उस का तुम लोग प्रयोग करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तुतोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों जो जगदीश्वर से बनाया गया यह सूर्य जैसे चर्म रोशों को वैसे आकर्षण से लोक का धारण करता है तथा नियम में चलाना और चलता है वही जगत् क उपकार के लिए समर्थ होता है ॥ ३ ॥

फिर वह वायु कैसा है और क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अपामुपस्थे महिषा अंगृष्णत मित्रो राजानमुप तस्थुर्ऋमियम् ।

आ द्रुतो अग्निममरद्विस्वतो वैश्वानरं मातृगिवा परावतः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो ( द्रुतः ) सतापित करनेवाला ( मातरिषा ) अन्तरिक्ष में शयन करनेवाला वायु ( परावतः ) दूर स्थित ( विस्वतः ) सूर्य के ( वैश्वानरम् ) सर्वत्र प्रकाशमान ( अग्निम् ) अग्नि को ( अधत्त ) धारण करता और जिस ( ऋमियम् ) ऋचाओं द्वारा प्रमाण किया जाता उस ( राजानम् ) जैसे राजा को वैसे सूर्य को ( मित्रः ) प्रजापति ( उप ) समीप में ( आ ) चारों ओर में ( तस्थुः ) प्राप्त होती है वैसे सूर्य उपस्थित होता है और जिस ( अपाम् ) प्राणी वा जलो के ( उपस्थे ) समीप में वर्तमान का ( महिषा ) बड़े जन ( अंगृ-ष्णत ) ग्रहण करते हैं उस वायु को आप लोग जानिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जैसे वायु दूर वर्तमान भी सूर्य के तेज को धारण करता है वैसे उत्तम राजा दूर स्थित भी प्रजाओं का पोषण करें ॥ ४ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

युगेयुगे विद्वध्वं युण्वभ्योऽग्ने रयि यज्ञसं वेहि नध्यसीम् ।

पथ्येऽ राजकृप्यसमजर नीचा नि वृष वनिनं न तेजसा ॥५॥

पदार्थ—हे ( अजर ) नृदावस्वरूप दोष से रहित ( राजन् ) प्रकाशमान ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण वर्तमान आप ( तेजसा ) तेज से ( वनिनम् ) किरण विद्यमान जिसमें उसकी ( न ) जैसे वैसे वा शूरवीर जन ( पथ्ये ) पथ से जैसे ( नीचा ) नीच को जैसे ( अजस्रसम् ) चोर को ( नि ) अत्यन्त ( वृष ) काटो और ( युण्वभ्यः ) स्तुति करने वालों के लिए ( युगेयुगे ) वर्ष वर्ष वा वर्ष

समुदाय वर्षसमुदाय मे ( विद्यमानम् ) सधाम और विज्ञानादिको मे ( रविम् ) बन ( यज्ञसम् ) कीर्ति का अन्न को और ( मधुसूयम् ) प्रतिपद्य नवीन विद्या का किशो को ( वेदि ) धारण करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य किरणों से समुक्त मेघ का नाश करता है और जैसे यज्ञ विदारण करने योग्य पदार्थ को विदारण करता है वैसे राजा और आदि दुष्टजनों का छेदन भेदन करके धार्मिक जनों के लिए धन प्रादि ऐश्वर्य का धारण करे ॥ ५ ॥

**अस्माकमने मयवंस्तु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।**

**अयं जयेम शनिर्न सहस्रिणं वैश्वानर वाजमने तवोतिमिः ॥६॥**

पदार्थ—ह ( वैश्वानर ) ससार के अधी ( अग्ने ) अग्नि के सदृश विद्वन् राजन् ( ययम् ) हम लोग ( तव ) आपकी ( कृतिभि ) रक्षा आदि के माय ( शक्तिम् ) मैत्रो प्रकार से योद्धाओं से और ( सहस्रिणम् ) सहस्रो योद्धाओं से समुक्त ( वाजम् ) सधाम का ( अग्ने ) अग्ने। तथा ह ( अग्ने ) तेजस्विन् जैन ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( अघस्तु ) बहुत धनो मे युक्त प्रजा जनो मे ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल ( अजरम् ) नाशरहित ( क्षत्रम् ) राज्य वा धन ( अनामि ) नम्र होवे वैया ( धारय ) धारण करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो राजा और येना के अध्यक्ष धार्मिक विद्वान् व्यापकारी और जितेन्द्रिय हो तो उनका मन्त्र विजय होता है ॥ ६ ॥

किर राजा आदि जनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**अव्येभिस्तव गोपामिष्टिष्मकां पाहि त्रिषधस्थ सूरिन ।**

**रक्षाचनो ददुषा शर्धो आने वैश्वानर म च तारीः स्वानः ॥७॥१०**

पदार्थ—हे ( त्रिषधस्थ ) तीन तुरर स्थानों मे वनमान ( इष्टे ) मल करने योग्य ( वैश्वानर ) विद्या और विनय मे प्रकाशमान ( अग्ने ) अग्नि के समान वनमान ( स्वानः ) प्रशसा करने हुए आप ( अव्येभि ) अतिगक जनो से ( गोपामि ) रक्षाओं के द्वारा ( न ) हम लोगों ( सूरिन् ) विद्वानों का ( पाहि ) पालन करिये और ( अस्माकम् ) हम लोगों के सम्बन्धियों की ( च ) भी ( रक्षा ) रक्षा करिये तथा आपका और ( ददुषाम् ) देने वालों का ( च ) और हमारा ( शर्धो ) बन बढ़े और हम लोगों के माय आप शत्रुओं का ( प्र, तारी ) उत्लघन करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य ऊपर नीचे और मध्यस्थ लोकों को प्रकाशित करना वैसे ही प्रजाजनो की आप सब प्रकार से रक्षा कीजिय और जैसे इस राज्य मे विद्वान् बढ़े वैसे कार्य करिये ॥ ७ ॥

इस सूक्त मे विद्या और विनय से प्रकाशमान, विद्वान्, सूर्य और राजा आदि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ मङ्गल जाननी चाहिये ॥

यह आठवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तमस्य मधुसूय सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । वैश्वानरो देवता ।  
१ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निष्कृतिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप्छन्दः । षष्ठः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७ भुरिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले नवम सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा प्रजा परस्पर कैसे वर्तनी करें इस विषय को कहते हैं—

**अहं कृष्णमहर्जुनं च वि वर्तते रजसी वेद्याभिः ।**

**वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्योतिर्वाग्निस्तर्मासि ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( अह ) दिन ( कृष्णम् ) रात्रि ( च ) और ( अह ) व्याप्तिशील ( अर्जुनम् ) मरलगमन आदि गुणों को ( च ) भी ( रजसी ) रात्रिदिन ( वेद्याभि ) जानने योग्यों के साथ ( वि, वर्तते ) विविध प्रकार वर्तते हैं और ( राजा ) राजा के ( न ) समान ( जायमान ) उत्पन्न हुआ ( वैश्वानर ) संपूर्ण करने योग्य कामों मे प्रकाशमान ( अग्निः ) अग्नि ( ज्योतिषा ) प्रकाश मे ( तर्मासि ) रात्रियों का ( अह, अतिरत् ) उत्लघन करता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे रात्रिदिन समुक्त हैं वैसे ही राजा और प्रजा अनुकूल हो और जैसे सूर्य प्रकाश से अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे ही राजा विद्या और विनय के प्रकाश से अविद्यारूप अन्धकार को निवृत्त करे ॥ १ ॥

अब अथर्व किस का होता है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽस्तमानाः ।**

**कस्य म्विपुत्र इह वक्तव्यं परो दवात्यधरेण पित्रा ॥२॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ( यम् ) जिसको ( समरे ) सधाम मे ( अस्तमाना ) घूमते हुए जन ( न ) जैसे जैसे ( वयन्ति ) व्याप्त होते हैं यह ( इह ) यहां ( कस्य ) किसका ( म्विपु ) भी ( पुत्रः ) पवित्र और सुख देनेवाला है ( परः ) अन्य ( अधरेण ) द्वितीय ( पित्रा ) पालक वा आचार्य के साथ ( वक्तव्यं ) कहने के योग्यों को ( ववाति ) कहें और जिसको घूमते हुए जन सधाम मे ( न )

नहीं व्याप्त होते हैं उस ( तन्तुम् ) विस्तार को ( ओतुम् ) रचने को ( अहम् ) मैं ( न ) नहीं ( वि ) विशेष करके ( जानामि ) जानता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थ—विद्वानों का यह सिद्धान्त है कि जो को से उत्पन्न होता है जिस के दो माता और दो पिता हैं वह किस का पुत्र है यह हम लोग नहीं जानते हैं ऐसा प्रश्न है। इसमें सिद्धान्त यह है कि जैसे उत्पन्न करनेवाले माता पिता का पुत्र है वैसे ही आचार्य और विद्या का भी वह द्विज पुत्र है ऐसा सब लोग जानो ॥ २ ॥

**स इत्तन्तुं स वि जानाम्योतुं स वक्तव्यं यतुथा वदाति ।**

**य ई चिकंतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्वेन पश्यन् ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यः ) जो ( अमृतस्य ) नित्य पदार्थ का ( गोपाः ) रक्षक ( अन्वेन ) अन्य से ( पश्यन् ) देखता हुआ ( अवः ) नीचे ( परः ) ऊपर स्थित दूसरा ( चरन् ) चलता हुआ ( ईम् ) जल के समान शुक्र को ( चिके-तत् ) जानता है ( सः, इत् ) वही ( तन्तुम् ) कारण को ( सः ) वह ( ओतुम् ) रक्षक को ( वि, जानामि ) विशेष करके जानता है ( सः ) वह ( चरन् ) जैसे काल काल मे वैसे ( वक्तव्यं ) कथन करने योग्यों को ( ववाति ) कहें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो ब्रह्मचर्य के द्वारा यथार्थवक्ताओं से विद्या और शिक्षा को प्राप्त होते हैं वे ही इस जगत् के पूर्ण कारण को जानने को समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

अब इस वेद मे दो जीवात्मा और परमात्मा वर्तमान हैं इस विषय को कहते हैं—

**अयं होता मयमः पश्यतेममिवं ज्योतिर्मृत मर्त्येषु ।**

**अयं स उक्षे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वाः वर्षमानः ॥४॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो ( ध्रुवः ) निश्चय दृढ़ ( निषत्तः ) स्थित ( प्रथमः ) पहिला ( होता ) देन वा ग्रहण करनेवाला ( अयम् ) यह और ( अर्त्येषु ) मरणधर्मयुक्त शरीरों मे ( इहम् ) इस प्रत्यक्ष ( अमृतम् ) नाश से रहित ( ज्योतिः ) सूर्य के सदृश अपने मे प्रकाशित बतन परमात्मा है उस ( इहम् ) इस का ( पश्यतः ) देखिये और जो ( अयम् ) यह ( अमर्त्यः ) मरणधर्म से रहित ( तन्वाः ) शरीरों से ( वर्षमानः ) बहता हुआ ( आ ) चारी और से ( जम् ) प्रकट होता है ( सः ) वह जीव है ऐसा देखो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस शरीर मे दो जैन नित्य हुए जीवात्मा और परमात्मा वर्तमान हैं उन दोनों मे एक अल्प, अल्प और अल्पदृश्य जीव है वह शरीर को धारण कर के प्रकट होता, वृद्धि को प्राप्त होता और परिणाम को प्राप्त होता तथा हीन दशः को प्राप्त होता, पाप और पुण्य के फल का भोग करता है। द्वितीय परमेश्वर ध्रुव निश्चल, सर्वज्ञ, कर्मफल के सम्बन्ध से रहित है ऐसा तुम लोग निश्चय करो ॥ ४ ॥

इस शरीर मे क्या क्या जानने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठ पतयस्स्वन्तः ।**

**विश्वे देवाः समनमः सर्वेता एकं क्रतुममि वि यन्ति साधु ॥५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( दृशये ) दर्शन के लिए ( ध्रुवम् ) निश्चल ( निहितम् ) स्थित ( कम् ) सुखरूप ( ज्योतिः ) अपने से प्रकाशित और सब का प्रकाशक ब्रह्म है उस के आधार मे जो ( जविष्ठम् ) अतिवैद्युक्त ( पतयन्तु ) पति के सदृश आचरण करते हुए मे ( अस्तः ) मध्य मे वर्तमान ( मनः ) अन्तःकरण का व्यापार है उस के आश्रय से ( समनसः ) सहकारि साधन मन जिन का और ( सर्वेता ) सूर्य वृद्धि जिन की वे ( विश्वे ) सम्पूर्ण ( देवाः ) अपने अपने विषयों का प्रकाशित करने वाली श्रोत्र आदि इन्द्रिया ( एकम् ) महायरहित ( क्रतुम् ) जीव के प्रज्ञान को ( साधु ) उत्तम प्रकार ( अमि ) सम्मुख ( वि ) विशेष करके ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं यह आप लोग जानो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस शरीर मे मस्तिष्कदानन्दस्वरूप अपने से प्रकाशित ब्रह्म, द्वितीय, तृतीय मन, चौथी इन्द्रिया, पांचवें प्राण, छठा शरीर वर्तमान है ऐसा होने पर सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध होते हैं जिन के मध्य से सब का आचार ईश्वर, देह अन्तःकरण प्राण और इन्द्रियों का धारण करनेवाला और जीवादिको का अधिष्ठान शरीर है यह जानो ॥ ५ ॥

अब मनुष्य के शरीर में क्या क्या जानने योग्य है इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**वि मे कर्णी पतयतो वि चक्षुर्विदं ज्योतिर्हृदयं आहितं पत् ।**

**वि मे मनश्चरति दूरभाषीः किं स्विहृदस्यामि किमु न मनश्चि ॥६॥**

पदार्थ—हे विद्वानो जनो ( वत् ) जो ( मे ) मेरे ( कर्णा ) श्रोत्र ( वि ) विशेष करके ( पतयतः ) स्वामी के समान आचरण करते हुए और जो मेरा ( चक्षुः ) देखने की चेष्टा करता है जिससे वह चक्षु ( वि ) विशेष करके ( चरति ) चलता है और जो ( मे ) मेरे ( हृदये ) हृदय मे ( इहम् ) यह ( आहितम् ) स्थित ( ज्योतिः ) प्रकाशक ( वि ) विशेष करके चलता है और जो मेरा ( दूर-भाषी ) दूरस्थ पदार्थों का सब प्रकार से चिन्तक ( मनः ) अन्तःकरण ( वि ) विशेष करके चलता है जिससे उस को मैं ( किम् ) क्या ( स्विहृद ) भी ( चक्षु-मि ) कहूँगा और ( किम् ) क्या ( उ ) और ( नु ) शीघ्र ( मनश्चि ) विचार करूँगा यह विचारता है उस सब को आप लोग जानाइये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो मैं और जो मेरे साधन हैं, उस सब व्यवहार को मेरे लिए जानाइये ॥ ६ ॥

मनुष्यों को किससे डर कर पापावरण का आचरण न करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**विद्वे देवा अममस्यग्निमानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।**

**वैश्वानरोऽवतृतये नोऽमस्योऽवतृतये नः ॥७॥११॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) प्रकाशक परमात्मन् ( तमसि ) अन्धकार मे ( तस्थिवांसम् ) स्थित ( त्वाम् ) परमात्मा के सदृश विजुली मे युक्त को वा प्राण के सदृश परमात्मा को जैसे पृथिवी आदि वैसे ( विद्वे ) सम्पूर्ण ( देवा ) विद्वान् जन ( मिथ्याना ) भय को प्राप्त हुए ( अममस्यम् ) नम्र होते हैं वह ( वैश्वानरः ) सम्पूर्ण समार के प्रकाशक ( अमस्यं ) मृत्यु धर्म से रहित आप ( अमस्ये ) रक्षा आदि के लिए ( नः ) हम लोगों की ( अवतृ ) रक्षा कीजिये और ( अमस्ये ) रक्षा आदि के लिए ( नः ) हम लोगों की ( अवतृ ) रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे प्राण और विजुली को प्राप्त होकर सम्पूर्ण पृथिवी आदिको की स्थिति है और जैसे अग्नि मे सम्पूर्ण प्राणी डरते हैं वैसे ही सर्वप्रभवापी और सब के अन्तर्गामी परमात्मा को मान के पाप के आचरण से विद्वान् जन डरते हैं इस निमित्त से सब जन हम से डरे ॥ ७ ॥

इस सूक्त मे दिनरात्रि, अपत्य, जीव, परमात्मादिको की स्थिति का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह मन्त्र सूक्त और ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ सप्तर्षस्य वशमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्वैवता ।

१ त्रिवट्पृष्ठा । ४ आर्षो पङ्क्तिः पञ्चमः । पञ्चमः स्वरः । २, ३, ६

निष्कृतिः त्रिवट्पृष्ठा । ५ विराट् त्रिवट्पृष्ठा । वैवताः स्वरः । ७ प्राजापत्या बहुमी छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्षि प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।**

**पुर उक्थेभिः स हि नो विमावां स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोग ( वः ) आप लोगों के ( प्रयति ) प्रयत्न से साध्य ( अध्वरे ) ग्रहसनीय ( यज्ञे ) सङ्कलितस्वरूप यज्ञ मे ( उक्थेभिः ) कहने के योग्यो से ( पुरः ) प्रथम ( मन्त्रम् ) आनन्द देनेवाले वा प्रशसनीय ( दिव्यम् ) शुद्ध ( सुवृक्षिम् ) उत्तम प्रकार चलते हैं जिससे उस ( अग्निम् ) विद्युदादिस्वरूप अग्नि को ( दधिध्वम् ) धारण करिये और जो ( हि ) निषेध करके ( विमावा ) विशेष करके प्रकाशक ( जातवेदा ) प्रकट हुआ को जाननेवाला ( नः ) हम लोगों को ( पुरः ) प्रथम ( स्वध्वरा ) उत्तम प्रकार ग्रहणा आदि धर्मों से युक्त ( करति ) करे ( सः ) वही हम लोगों से मत्कार करने योग्य है ॥१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे यज्ञ करनेवाले यज्ञ मे अग्नि को प्रथम उत्तम प्रकार स्थापित करके उस अग्नि मे ब्राह्मति देकर ससार का उपकार करते हैं वैसे ही आत्मा के धाम परमात्मा को सस्थापित करके वही मन आदि का हवन करके और प्रत्यक्ष करके उसके उपदेश से जगत् का उपकार करो ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को

अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**तमु द्युमः पुर्वशीक होतरग्नौ आग्निर्मनुष इधानः ।**

**स्तीमं यमस्म ममतेव शुषं वृत न शुचिं मतयः पवन्ते ॥२॥**

पदार्थ—हे ( पुर्वशीक ) बहुतो को सविभाग करने और ( द्युमः ) प्रकाशवान् ( होतः ) धारण करनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के सदृश विद्वान् ( मनुषः ) मनुष्यों को ( इधानः ) प्रकाशित करते हुए आप और ( मतयः ) मननशील अन्य मनुष्य ( ममतेव ) ममता के सगान ( अग्निभिः ) अग्नियो से ( अस्मी ) इसके लिए ( शुचिं ) पवित्र ( वृतम् ) वृत वा ( शुषम् ) बल के ( नः ) समान ( यम् ) जिसको ( पवन्ते ) पवित्र करते हैं ( तम्, उ ) उसी अग्नि की ( स्तीमम् ) प्रशसा को सुनिये ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य जिससे पदार्थों को मिट्ट करके हैं वह अग्नि सब को कार्यसाधक जानने योग्य है ॥२॥

**पीपाय सः अर्वासा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।**

**वित्रामिस्तमूतिमिच्छिन्नशोचिर्जस्थ साता गोमंतो दधाति ॥३॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ( वः ) जो ( गोमंतः ) अतिशय स्तुति करनेवाला और ( वित्राशोचिः ) अनेक प्रकार का प्रकाश जिसका ऐसा ( विप्रः ) बुद्धिमान् ( उक्थैः ) प्रशंसित कर्मों और ( वित्राभिः ) अव्युत्त ( अतिशय ) रक्षादिको से ( अर्वासा ) मनुष्य आदिकों से ( अग्नये ) अग्नि के लिए ( अर्वासा ) अग्न्यादि से ( पीपाय ) मृदात और ( ददाश ) देता है ( सः ) वह ( अजस्रः ) चलते हैं सचन जल जिसमे उस मेघ के ( साता ) सगाम से ( दधाति ) धारण करता है ( तम् ) उसको आप लोग जानिये ॥३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस अग्नि में अव्युत्त गुण कर्म स्थापित हैं उसको अनेक प्रकार जान कर उपयोग करो अर्थात् काम मे लाओ ॥३॥

**आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदशा भासा कुष्णाध्वा ।**

**अथ बहु चित्तम ऊर्ध्वायास्तिरः शोचिषां ददशे पावकः ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( वः ) जो ( जायमानः ) प्रकट हुआ ( कुष्णाध्वा ) कवित किया अर्थात् जैसे हल से जोते वैसे पट्टियो से मत्तोग माग जिसन वह ( दूरेदशा ) जिसमे दूर देखते हैं उस ( भासा ) प्रकाश से ( उर्वी ) अन्तर्गम्य और पृथिवी को ( आ ) आगे आर से ( पप्रौ ) व्याप्त होता है आर ( अथ ) इसके अनन्तर ( ऊर्ध्वायाः ) रात्रि का ( बहु ) बहुत ( चित्त ) भी ( तम् ) अन्धकार ( शोचिषा ) प्रकाश से ( तिरः ) तिरस्कार करता है और ( पावकः ) पवित्रकर्ता हुआ ( ददशे ) देखा जाता है उसको आप लोग जानिये ॥४॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अवश्य विजुलीरूप अग्नि को जानें ॥४॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**न नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्नौ रयि मघवद्वयध्व धेहि ।**

**ये रावसा अर्वासा आत्यन्यान्सुवीर्यैर्मिच्छाभि सन्ति जनान् ॥५॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) यथार्थवत्ता विद्वन् आप ( पुरुवाजाभिः ) बहुत ज्ञान और पुष्पाय से युक्त ( ऊर्तो ) रक्षा आदि त्रियाशों मे ( नः ) हम लोगों और ( मघवद्वयध्वः ) धन स युक्त जनो के लिए ( नः ) भी ( चित्रम् ) ध्वज ( रयिम् ) धन को ( नः ) शीघ्र ( धेहि ) धारण कीजिये ( ये ) जो ( सुवीर्यैभिः ) श्रेष्ठ बल वा पराक्रम जिनके उन और ( रावसा ) धन और ( अर्वासा ) अन्न आदि से ( नः ) भी ( अत्यान् ) अल्प ( जनान् ) मनुष्यों का धारण करते हुए ( अभि ) सम्मुख ( सन्ति ) हैं वे ( अति ) अत्यन्त प्रतिष्ठा को ( नः ) भी प्राप्त होते हैं ॥५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों के लिए विद्या और लक्ष्मी को धारण करते हैं उनकी आप लोग अत्यन्त प्रतिष्ठा करो ॥५॥

**इमं यज्ञं चनों धो अग्न उशन्यं तं आसानो जुहुते हविष्मान् ।**

**मरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्षिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥६॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) पुनर्धार्थी विद्वन् आप ( यम् ) जिस ( यज्ञम् ) परोपकारनामक यज्ञ की ( उशन्यः ) कामना करते हुए ( जनः ) अन्न आदि को ( वा ) धारण करें और ( आसानः ) बैठे हुए ( हविष्मान् ) बहुत देने और भोग करने योग्य पदार्थ जिनमे वह आप ( जुहुते ) हवन करते हैं ( इमम् ) इसको ( गध्यस्य ) अभिकाशा करने योग्य ( वाजस्य ) विज्ञान आदि के ( सातौ ) मगाम मे ( अवी ) रक्षा कीजिये और ( मरद्वाजेषु ) अन्न आदि को धारण करनेवालों मे ( सुवृक्षिम् ) उत्तम प्रकार चलते हैं जिसमे उस मार्ग को ( दधिषे ) धारण कीजिये उन ( ते ) आपका सम्पूर्ण सुख सुगम हो जाय ॥६॥

भाषार्थ—जो परोपकार करते हैं उनको ही अभीष्ट स्वार्थसिद्धि होती है ॥६॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**वि द्वेषासीनुहि वर्धयेकां पदं सतहिमाः सुवीराः ॥७॥१२॥**

पदार्थ—हे अग्नि के समान परोपकारसाधक विद्वन् ! आप ( द्वेषासि ) द्वेष से युक्त कर्मों का त्याग करिये कराइयें और ( इकाम् ) वाणी वा अन्न को ( वि ) विशेष करके ( इनुहि ) व्याप्त होओ और हम लोगों को ( वर्धये ) वृद्धि कीजिये जिससे हम लोग ( सतहिमाः ) सौ वर्ष पर्यन्त ( सुवीराः ) अच्छे वीर पुरुषों से युक्त होकर ( महेम ) मानन्द करें ॥७॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिये कि वह कर्म करें और करावें जिसमे मनुष्यों के दोषों को निवृत्ति और बुद्धि, बल तथा अवरया की वृद्धि होवे ॥७॥

इस सूक्त मे अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह वंशवाँ सूक्त और बारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ बहुवर्षकापशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्वैवता ।

१, ३, ५ निष्कृतिः त्रिवट्पृष्ठा । ४, ६ विराट् त्रिवट्पृष्ठा छन्दः ।

वैवताः स्वरः । २ निष्कृत्यङ्कितः पञ्चमः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छ. ऋचा वाले ग्यारहवाँ सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र से

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**यजंस्व होतरिचितो यजीयानग्ने बाधो मरुता न प्रयुक्तिः ।**

**आ नो मित्रावरुणा नासंत्वा यावां होत्राय पृथिवी बह्वस्याः ॥१॥**

पदार्थ—हे ( होतः ) वाता और ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वज्जन ( यजीयात् ) अतिशय यज्ञ करनेवाले ( इचितः ) प्रेरणा किये गये जैसे ( नासंत्वा ) असत्य आचरण से रहित ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान वायु के समान अध्यापक और उपदेशक जन ( होत्रावः ) ग्रहण करने और देनेवाले के लिये ( यावा ) अन्तरिक्ष और ( पृथिवी ) पृथिवी भिलाते हैं वैसे ( नः ) हम लोगों को ( प्रयुक्तिः ) प्रयोग कराइये और ( अस्याम् ) वायु के सदृश मनुष्यों की ( बाधः ) रक्षावट ( नः ) जैसे जैसे वर्तमान दिन को निवृत्त कर ( यजंस्व ) उत्तम प्रकार निगाइये ॥१॥





वैसे ( यक्षः ) विद्वानों की सेवा प्राप्ति ( सुखः ) बल आदिको के साथ ( अग्निः ) अग्नि के समान ( आतमेवाः ) प्रकट हुआ को जाननेवाला ( स्वयं ) प्रशसा करने योग्य ( वसिः ) गृह में और ( एतरी ) प्राप्त होने योग्य मे ( न ) जैसे वैसे ( आ ) प्राप्त होता है ( सः ) वह राजा हम लोगों से सेवन करने योग्य है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे प्रशसा करने योग्य गृह में सुख से निवास होता है वैसे ही पिता के सपुत्र पालन करनेवाले राजा के होने पर प्रजा सुखपूर्वक निवास करती है और जैसे बुद्धि से जितेन्द्रिय होकर और पृथिवी के राज्य को प्राप्त होकर अनाथों की रक्षा करता है वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सत्य उपदेश से सब जगत् की रक्षा करें ॥ ४ ॥

अथ कौसी बिजुली है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अथ स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तद्धनुयाति पथ्वीम् ।

सुधो यः स्पन्दो विषितो धवीयानृणो न ताधुरति धन्वा राट् ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ( यः ) जो ( स्पन्दः ) बहानेवाला ( विषितः ) व्याप्त ( धवीयाम् ) अतिशय कपाने और ( वृथा ) व्यर्थ ( धन्वा ) प्राप्त कराने वाला ( ताम् ) और ( न ) जैसे वैसे वर्तमान अग्नि ( यत् ) जिन ( भास ) प्रकाशों को ( तत्तत् ) सूक्ष्म करता है ( पथ्वीम् ) पृथिवी के ( सध ) शीघ्र ( अनुयाति ) पीछे चलता है ( अथ ) इस के अनन्तर ( स्म ) ही ( अस्म ) हम राजा के गुणों की विद्वान् जन ( पनयन्ति ) स्तुति करते हैं उस को जान कर और उसकी विद्या को प्राप्त होकर ( राट् ) राजा ( अति, धन्वा ) धनुर्वेद का अत्यन्त जाननेवाला होता है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । हे विद्वान् जनो ! जो आप लोग बिजुली की विद्या को जानकर यन्त्रों से ध्वित कर हम को उत्पन्न करके इस बिजुली के साथ मनुष्य आदिको को युक्त करें तो यह अति कम्पानेवाली और वेगवती होवे और स्वच्छ काष्ठ के स्वच्छ पट्टे के अन्तर्गत मनुष्यों को अलग करावें तो यह बिजुली शीघ्र धूमि में प्राप्ति होती है तो यह सर्वत्र व्याप्त और प्रशसा करने योग्य गुणवाली है जिन से राजा लोग धनुषों को सहज से जीतकर धनवान् होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य कैसे होवें इस विषय को कहते हैं—

स त्वं नो अर्वाविदाया विश्वेभिरग्ने अग्निमिरिधानः ।

वेपि रायो वि यासि दुच्छुना मर्देम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥ १४॥

पदार्थ—हे ( अर्वा ) घोड़े के सवृण जीघ्र चलते हुए ( अग्ने ) अग्नि के सवृण प्रतापी जिन कारण से ( त्वम् ) आप ( विश्वेभिः ) सम्पूर्ण ( अग्निभिः ) बिजुली आदिको से ( इधान ) निरन्तर प्रकाशमान ( न ) हम लोगों की ( निधान ) निन्दा करते हुए प्रजाजन के ( रायः ) धनो को ( वेपि ) व्याप्त होते ही और ( दुच्छुना ) दुष्ट श्वा के सवृण वर्तमान सेनाधियों को ( वि, यासि ) विशेष प्राप्त होते हो ( स ) वह आप और हम लोग ( शतहिमाः ) सौ हिम वर्ष जिन के वे ( सुवीराः ) सुन्दर कीर जन ( मर्देम ) हर्षित होवें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सम्पूर्ण अग्नि आदि पदार्थों से कायों को सिद्ध कर के जो न्याय की धाजा से विद्वत् प्रजाजन हैं उन को ताडन करके शान्ति सम्पादित करें क्योंकि इस प्रकार न्याय के आचरण से सम्पूर्ण जैन सौ वर्षयुक्त होने हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बारहवा सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ वृक्षस्य प्रमोदस्य सुवत्स्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्वेदता ।

१ पङ्क्तिः । २ स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चम स्वरः । ३, ४ विराट्पङ्क्तिः ।

५, ६ निर्वृत्तिपङ्क्तिः । अक्षरः स्वरः ॥

फिर राजा से क्या प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्वद्विधा सुभग सौमेगान्यग्ने वि रयति धनिनो न वयाः ।

अग्नी इयिर्वाजो वृष्टुर्न्ये दिवो वष्टिरीक्षो रीतिरुपा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( सुभग ) सुन्दर ऐश्वर्यवाले ( अग्ने ) अग्नि के सवृण विद्वज्जन वा राजन् ( धनिनः ) धन सम्बन्धी ( वयाः ) पत्नी ( न ) जैसे वैसे जन ( त्वत् ) आप से ( विधा ) सम्पूर्ण ( सौमेगानि ) ऐश्वर्यों के भावों को ( वि, रयति ) विशेष कर प्राप्त होते हैं ( वृष्टुर्न्ये ) मेघ का हवन जिस में उस के सवृण वर्तमान सधाम में ( विक्षः ) अन्तरिक्ष से ( अपाम् ) जलों की ( वृष्टिः ) वृष्टि के सवृण ( रीति ) स्निग्ध जानने वा प्रकाश करानेवाला ( ईक्षः ) स्तुति करने योग्य ( रयिः ) धन और ( वा ) अन्न ( वृष्टी ) शीघ्र प्राप्त होते हैं इस से आप सरकार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जैसे सूर्य अन्तरिक्ष से वृष्टि कर के सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करता है वैसे ही राजा न्याय से युक्त पुरुषार्थ से ऐश्वर्यों को बढ़ा कर प्रजाधियों को निरन्तर तृप्त करे ॥ १ ॥

फिर विद्वानों को इस संसार में कैसा वर्तान करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

स्वं मर्गो न जा हि रत्नमिषे परिज्मेव अयसि दुस्मर्षाः

अथ विप्रो न वृद्ध आतमेवासि वृथा वामस्य देव भूरिः ॥२॥

पदार्थ—हे ( देव ) देनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् जिस कारण से ( त्वम् ) आप ( मित्रः ) मित्र ( न ) जैसे वैसे ( वृद्धः ) बड़े ( वामस्य ) श्रेष्ठ ( भूरिः ) बहुत ( आतमे ) सत्य वा जल के ( अत्ता ) छेदक ( अति ) हैं इस कारण से ( वामस्य ) उपस्थित अर्थात् निवास कराई वा निवास की कान्ति जिन्होंने तथा ( परिज्मेव ) जो सब ओर से चलनेवाले वायु के सवृण ( भगः ) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य जिनका ऐसे हुए ( न ) हम लोगों को ( हि ) त्रिस्त कारण से ( रत्नम् ) धन को ( इषे ) प्राप्त होने को ( वा ) सब ओर से ( अयसि ) निवास करने वा निवास कराते हो इस कारण आदर करने योग्य हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जो विद्वान् जन प्राणों के सवृण धन और ऐश्वर्य की शोभा को धारण करते हैं वे मित्र के सवृण वर्तान कर के सब को सुखी करें ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन कैसा वर्तान करें इस विषय को कहते हैं—

स सत्पतिः श्वेता हन्ति वधमग्ने विप्रो वि पुणेर्मति वाजम् ।

यं त्वं प्रवेत आतजात राया सजोवा नसूपां हिनोषि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( आतजात ) सत्य में प्रकट होनेवाले ( प्रवेतः ) अच्छे ज्ञान से युक्त ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप ( विप्रः ) बुद्धिमान् जन ( त्वम् ) आप जैसे ( सत्पति ) जल का पालक सूर्य ( श्वेता ) जल में ( वृक्षम् ) मेघ का ( हन्ति ) नाश करता है और ( वरो ) व्यवहारकर्ता के ( वाजम् ) धन वा विज्ञान को ( वि, अति ) विशेष कर धारण करता है वैसे ( यम् ) जिस को ( सजोवाः ) तुल्य प्रीति के सेवन करनेवाले आप ( राया ) धन से ( अपाम् ) जलों के ( नसूपां ) नहीं गिरने वाले के साथ ( हिनोषि ) वृद्धि करते हो ( स ) तो यह सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । जो बुद्धिमान् जन सूर्य के सवृण विद्या को प्रकाशित करके अविद्या का नाश करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

यस्ते सनो सहसो गीर्मिलुष्यैर्यैर्मर्तो निश्चिर्ति वेधानट् ।

विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते भान्यः पत्यते वसुध्वैः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( सहसः ) बलिष्ठ के ( सनो ) पुत्र ( देव ) दीप्तिमान् ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् ( ते ) आपका ( यः ) जो ( वर्तः ) मनुष्य ( गीर्मि ) वाणियों और ( उक्थः ) कहने और जानने योग्य वेद के वचनों से और ( वेधा ) सुख को प्राप्त करानेवाली वेदी से ( निश्चिर्तिम् ) निरन्तर तीक्ष्णता के साथ ( आनट् ) व्याप्त होता है ( वसुध्वैः ) धनो में प्रकट हुए पदार्थों से तथा ( यक्षः ) विद्वानों के मत्कारादिकों से ( विश्वम् ) समग्र पदार्थों को ( भान्यम् ) धान्य को ( वा ) वा ( अरम् ) पूर्ण ( प्रति, धत्ते ) धारण करता और ( पत्यते ) स्वामी के सवृण आचरण करता है ( स ) वह आप से मेल करने योग्य है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्या ! पूर्ण ब्रह्मचर्य में शरीर और आत्मा के बल को पूर्ण करके सन्तानों की उत्पत्ति करो ॥ ४ ॥

ता नृभ्य आ सौभ्रवसा सुवीर्ये सनो सहसः पुष्यसे वाः ।

कणोषि यच्छवसा भूरि पथो वयो वृकायारये जसुरये ॥५॥

पदार्थ—हे ( सहसः ) बल के सम्बन्ध में ( सनो ) बलवान् सन्तान ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान आप ( यत् ) जिस ( श्वेता ) बल से ( वृष्यसे ) पुष्टि के लिये ( नृभ्य ) नायक जनो से ( सुवीरा ) सुन्दर और जिनके लिए ( ता ) उन ( सौभ्रवसा ) विद्वान् ने मित्र किये गये कर्मों को ( आ, वा ) धारण करते ( पथः ) पथ के ( भूरि ) बड़े ( वयः ) जीवन को ( वृकायः ) कर्त हो और ( जसुरये ) हिंसा करनेवाले ( वृकाय ) वृक के सवृण वर्तमान ( अरये ) शत्रु के लिये दण्ड देने हो इस कारण से आप न्यायकारी हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो राजा दुष्ट चोरादिकों का निवारण करके प्रजाधियों को पुष्ट करता है वह सब का हितैषी होता है ॥ ५ ॥

वृथा सनो सहसो नो विहाया अथै तोकं तनयं वाजिनो दाः ।

विश्वामिर्गामिभिरुपि पूतिमंभ्यां मर्देम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥ १५॥

पदार्थ—हे ( सहसः ) बलिष्ठ के ( सनो ) सन्तान ( अग्ने ) अग्नि के सवृण विद्वन् ( विहाया ) बड़े ( वृक्षम् ) सत्य हित के उपदेशों आप ( नः ) हम को ( विश्वामि ) सम्पूर्ण ( गीर्मि ) वाणियों से ( वाजिनः ) धन आदि युक्त के ( तोकम् ) वृद्धि करने और ( तनयम् ) सुख के बढ़ानेवाले के अपत्य को ( वा ) दीजिये जिससे मैं ( पूतिम् ) पूर्णता को ( अयसाम् ) प्राप्त होऊँ और जिससे हम लोग ( शतहिमाः ) सौ वर्ष की प्रवस्था युक्त ( सुवीराः ) उत्तम वीरोंवाले ( अग्नि, अग्ने ) सब ओर से आनन्द करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप अध्यापन और उपदेश से सम्पूर्ण गृहस्थों के पुत्र और पुत्रियों को उत्तम प्रकार शिक्षित करके विद्या से सुखयुक्त करो जिससे दीर्घ अवस्थावाले होकर वे सन्तान भी ऐसा ही आचरण करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और राजा के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेरहवा सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ ऋषयस्तु चतुर्विंशत्यं सप्तत्यं अथर्ववेदो बार्हस्पत्यो ऋषिः ।

अग्निर्वैवता । १, ३ भुरिगुणिकं छन्दः । ऋचमः स्वरः ।

२ मिच्छतिष्ठदुष्टं छन्दः । वेवत स्वरः । ४ अनुष्टुप् ।

५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ।

६ भुरिगतिजगती छन्दः । निवाहः स्वरः ॥

अथ छः ऋचावाले ऋषयस्तु सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

अथ मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**अग्ना यो मर्त्यो दुषो धियं जूषो धीतिभिः ।**

**मसन्नु ष प्र पृथ्वी इषं वुरीतावसे । १ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जनों ( अ० ) जो ( मर्त्य ) मनुष्य ( धीतिभिः ) अगुली आदि अवयवों ने ( अग्ना ) अग्नि में ( दुष ) सेवन और ( जूषम् ) बुद्धि वा कर्म का ( जूषोष ) सेवन करता है और ( अथसे ) रक्षण आदि के लिए ( पृथ्वी ) पूर्वजनों से प्रकाशित किया गया ( प्र, भसत् ) प्रकाशित होवे और ( इषम् ) अन्न वा विज्ञान को ( पु ) शीघ्र ( वुरीत ) स्वीकार करे ( स० ) वह मायशाली होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य आत्मस्य आदि दोषों का त्याग कर मर्म से पुरुषार्थ करते हैं वे सम्पूर्ण इष्ट सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अथ मनुष्य क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**अग्निदि प्रचेता अग्निर्वैवस्तम ऋषिः ।**

**अग्निं होतारमोदते यज्ञेष मनुषो विशः ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ( होतारम् ) सब को गारण करने वा देनेवाले ( अग्निम् ) परमात्मा को ( प्रचेता ) जाननेवाला ( अग्नि ) बिजुली जैसे वैसे ( वैवस्तम ) प्रतीव विद्वान् ( अग्नि ) पवित्र ( ऋषि ) मन्त्र और अर्थों को जाननेवाला और ( मनुषः ) विचार करनेवाले ( विश ) मनुष्य ( यज्ञेष ) सन्ध्यो-पासन आदि श्रेष्ठ कर्मों में ( ईक्षते ) स्तुति करत हैं उस ( इत् ) ही की ( हि ) निश्चित आप लोग प्रशंसा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप सब लोगों का परमेश्वर ही स्तुति करने, मानने, हृदय में धारण करने और उपामना करने योग्य है ऐसा निश्चय करो ॥ २ ॥

**नाना श्रेष्ठैर्वसुं स्पर्थन्ते रायो अर्यः ।**

**तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अत्रतम् ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे ( अर्ये ) विद्वान् जो ( हि ) निश्चय ( नाना ) अनेक ( अयतम् ) धर्मयुक्त कर्म से रहित ( दस्युम् ) दुष्टजन की ( तूर्वन्तः ) हिंसा करते और ( व्रतैः ) कर्मों से ( सीक्षन्तः ) सहन की इच्छा करते हुए ( आयवः ) मनुष्य ( अथसे ) रक्षण आदि के लिए ( स्पर्थन्ते ) दूसरे की बड़ाई को नहीं सहते हैं उनके ( रायः ) धन का ( अर्यः ) स्वामी सत्कार करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो दुष्टों के निवारण में प्रयत्न करते हैं वे मनुष्य बनवान् होते हैं ॥ ३ ॥

फिर उत्तम मनुष्य क्या करता है इस विषय को कहते हैं—

**अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।**

**यस्य त्रसन्ति श्वंसः सञ्जक्षि शत्रवो भिया ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यस्य ) जिसके ( श्वंसः ) बल से ( सञ्जक्षि ) सम्मुख ( भिया ) भय से ( शत्रवः ) शत्रुजन ( त्रसन्ति ) व्याकुल होते हैं वह ( अग्नि ) बड़ा बलिष्ठ वीर पुरुष ( अप्साम् ) श्रेष्ठ कर्मों के विभाग करने और ( अमृतीषहम् ) दूसरे के पदार्थों के प्राप्त करानेवाले शत्रुओं को सहनकर्ता ( सत्पतिम् ) श्रेष्ठों के पालक ( वीरम् ) वीर पुरुष को ( ददाति ) देता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और विद्वान् होकर शरीर और आत्मा के सामर्थ्य का नहीं दूर करते हैं उन से शत्रुजन डरके भागते हैं अथवा वश को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अग्निं विषनां निदो दुषो मर्त्यमुरुष्यति ।**

**सहावा यस्याहुतो रयिर्वाज्जेष्ववृतः ॥ ५ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( अवृतः ) नहीं स्वीकार किया गया ( सहावा ) सहनेवाला ( वेवः ) निरन्तर प्रकाशमान ( अग्नि ) अग्नि के समूह पवित्रों से बड़ा हुआ अग्नि ( मर्त्यम् ) मनुष्य को ( उरुष्यति ) सेवता है उसको ( हि ) जिससे ( विद्वन्मा ) ज्ञान से विशेष करके जानें और ( यस्य ) जिसके ( वाजेषु ) मन्त्रों में ( अवृतः ) नहीं आच्छादित किया गया ( रयि ) धन होता है उससे ( निवः ) निन्दा करनेवालों का निवारण कीजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—सब पदार्थों को उत्पन्न करती हुई बिजुली को मनुष्य जान जिस विज्ञान से आग्नेयादि नामक अन्न सिद्ध होते हैं उसका सब काल में शोच करो ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों को प्रतिदिन क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमर्ति रोदस्योः ।**

**वीहि स्वस्ति सुधितिं दिवो नृन्दिषो अहांसि दुरिता तरेम ता तरेम**

**तवावसा तरेम ॥ ६ ॥ १६ ॥**

पदार्थ—हे ( मित्रमह ) मित्रों से आदर करने योग्य ( देव ) सुख के देनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के सद्गुण विद्या के प्रकाश से युक्त विद्वान् आप ( न ) हम लोगों ( देवान् ) विद्वानों को तथा ( रोदस्यो ) अग्नि और पृथिवी सम्बन्धनी ( सुमर्तिम् ) उत्तम बुद्धि को ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( वोचः ) कहिये ( सुधितिम् ) उत्तम भूमि जिस में उस ( स्वस्तिम् ) सुख को ( वीहि ) प्राप्त कीजिये और ( दिवः ) कामना करते हुए ( नृन् ) मनुष्यों से पदार्थविद्या को कहिये जिस से ( तव ) आप के ( अवसा ) रक्षण आदि से ( दिवः ) दुःख से युक्त जनो ( अहांसि ) पापों और ( दुरिता ) दुष्ट आचरणों दुःखसनों का ( तरेम ) उत्पन्न करने तथा ( ता ) उन निन्दादिकों का ( तरेम ) उत्पन्न करने और कुमंग से हुए दोषों का ( तरेम ) उत्पन्न करने ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् जनों ! जितनी विद्या को आप लोग प्राप्त होओ उसनी का धन्य जनो के लिए यथावत् उद्देश करो और सत्य उपदेश से मनुष्यों के दुष्ट व्यसनो को दूर करो और अधर्म के आचरण से पृथक् बर्ताव करो और सत्यग तथा पुरुषाय से दुःख हाकर दुःखों से पार होकर सुख को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह ऋषयस्तु सूक्त और सोलहवां वनं समाप्त हुआ ॥

॥

अथकोजविश्वयुक्तस्य पञ्चवशस्य सूक्तस्य अथर्ववेदो बार्हस्पत्यो ऋषिः ।

अग्निर्वैवता १, २, ५ मिच्छजगती । ३ मिच्छवतिजगती । ७ जगती ८ विराजगती

छन्दः । निवाह स्वरः । ४, १४ भुरिक् मिच्छुप् । ६, १०, ११, १६ मिच्छुप् ।

१३ विराट् मिच्छुप् । १६ मिच्छुप् । ६ मिच्छवतिजगती छन्दः । वेवत

स्वरः । १२ पञ्चवतिजगती । पञ्चम स्वरः । १५ बाह्वी वृत्ती

छन्दः । मध्यम स्वरः । १७ विराडनुष्टुप् १८ स्वराड-

नुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

अथ उन्नीस ऋचावाले पञ्चवश सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अथ मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**इमम् पु दो अतिथिष्वर्षुषं विश्वासां विरां पतिमृक्षसे गिरा ।**

**वेतोदिवो जनुषा कश्चिदा शुचिर्ज्योषिचदति गर्भो यदच्युतम् ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जिम कारण से आप ( इमम् ) इस ( विद्वत्सासम् ) सम्पूर्ण ( विश्वम् ) मनुष्य आदि प्रजाओं के ( पतिम् ) पालक ( अतिथिम् ) अतिथि के समान वर्तमान ( उच्युषम् ) प्रातःकाल में जगनेवाले को ( अच्युतम् ) सिद्ध करते हैं ( गर्भः ) अस्तम्य के समान जो ( ज ) तर्पतासहित ( विवः ) पदार्थबोध की ( जनुषा ) उत्पत्ति से ( पु, वेति ) अच्छे प्रकार व्याप्त होता ( इत् ) ही है तथा ( कत् ) कभी ( चित् ) भी ( यत् ) जो ( शुचि ) पवित्र ( अच्युतम् ) नाश से रहित वस्तु को ( ज्योषः ) निरन्तर ( अति ) भोगता है और ( व ) आप लोगों की ( गिरा ) वाणी से ( चित् ) निश्चित ( आ ) आज्ञा करता है वह विद्वान् होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अतिथि सत्कार करने योग्य है वैसे ही पदार्थ-विद्या का जानने वाला सत्कार करने योग्य है, जो सब के अन्त स्थ निम्न बिजुली की ज्योति का जानते हैं वे अभीप्सित सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**मित्रं न यं सुधितं भृगवो दुर्बुनस्पतावीर्यमूर्ध्वशोचिषम् ।**

**स त्वं सुप्रीतो धीतहंष्ये अमृत प्रशस्तिर्मिहयसे दिवेदिवे । २ ॥**

पदार्थ—हे ( अमृतम् ) महाशय ( यम् ) जिस ( मिषम् ) मित्र को ( न ) जैसे वैसे ( सुधितम् ) उत्तम प्रकार स्थित को ( वनस्पतौ ) किरणों के पालक सूर्य में ( ईहयम् ) उत्तम गुणों से प्रशंसा करने योग्य ( अर्धशोचिषम् ) ऊपर को ज्वाला जिसकी उस को ( भृगवः ) विद्वान् मनुष्य ( भृगु ) कारण करते हैं ( सः ) वह ( त्वम् ) आप ( प्रशस्तिभिः ) प्रशंसा करने योग्य धर्मयुक्त क्रियाओं से ( विवे-धिषे ) प्रतिदिन ( सुप्रीतः ) उत्तम प्रकार प्रसन्न हुए ( धीतहंष्ये ) व्याप्त हुआ ग्रहण करने योग्य वस्तु जिससे उस में ( अहंष्ये ) सत्कार किये जाते हो इससे सेवन करने योग्य हो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे मित्र कार्यों को सिद्ध करता है वैसे ही अग्नि उत्तम प्रकार प्रयोग किया गया कार्यों को सिद्ध करता है ॥ २ ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

**स त्वं दक्षस्या वको वृषो भूर्य्यः परस्यान्तरस्य तर्कः । शयः क्षलो सहसो मर्त्येवा हृदिष्येच्छ धीतहंष्याय सप्रबो भरद्वाजाय सुप्रबः ॥ ३ ॥**



पदार्थ—हे (सहस्र.) बलवान् के (सुभो) सत्तान् जो (स्वम्) आप (वक्ष्य) बल के (अव्ययः) नहीं चोर (बुधः) बहनेवाले (परस्य) अत्यन्त (अन्तरस्य) भिन्न (तद्वत्) तारने वाले (रायः) धन के (अर्थः) स्वामी (कल्पेयु) मनुष्यों में (सप्रथ) मुख्य प्रसिद्धि वाले (बोतहव्याय) प्राप्त हुआ प्राप्त होने योग्य जिस को उस (अरुहाकाय) धारण किया जिसने उस के लिए दाता (अ) होओ (सः) वह (सप्रथ) विस्तृत विज्ञान के सहित आप (अवि) गृह को (आ, यच्छ) आदान कीजिये अर्थात् लीजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सब प्रकार से बल की वृद्धि करें तो लक्ष्मीयुक्त कैसे न हों ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

धृतानं वो अतिथिं स्वर्णरमर्गिं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।

विप्रं न युक्ष्वचसं सुवृत्तिमिहं च बाहमरतिं देवमृक्षसे ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो आप (व.) आप लोगों के (अतिथिम्) अतिथि के समान (धुमानम्) सत्पार्थ के प्रकाशक (स्वर्णरम्) सुख को प्राप्त कराने और (मनुष) मनुष्य के (होतारम्) ग्रहण करनेवाले (स्वध्वरम्) उत्तम प्रकार यज्ञ जिससे उस (अग्निम्) अग्नि को (सुवृत्तिम्) अच्छे प्रकार चलते हैं जिन क्रियाओं से उन के सहित जैसे वैसे (युक्ष्वचसम्) शोकक वचन के प्रकाशक (हृदयवाहम्) धारण करने योग्य का वहन करने और (अरतिम्) प्राप्त करानेवाले (देवम्) प्रकाशमान (विप्रम्) बुद्धिमान् को (न) जैसे वैसे (अवृक्षसे) सिद्ध करते ही उसका हम लोग सम्कार करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बुद्धिमान् जन यथायोग्य कर्मों को करने को समर्थ होता है वैसे ही युक्ति से अच्छे प्रकार प्रयोग किया अग्नि सम्पूर्ण व्यापार सिद्ध करने को समर्थ होता है ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या प्रकाशित करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

पावकया यश्चित्तयन्त्या कपा क्षामन् रुच्य उपसो न भानुना ।

तूर्वम यामन्नेतश्च नृ रण आ यो घणे न तृष्णाणो अजरः ॥५॥१७

पदार्थ—हे मनुष्यो (य) जो (भानुना) किण्व से (उपस) प्रभात-वेला (न) जैसे वैसे (पावकया) अग्नि की क्रिया से और (चित्तयन्त्या) जनाती हुई (कपा) कृपा से (क्षामन्) पृथिवी में (रुच्ये) प्रकाशित किया जाता है (घणे) प्रदीप्ता में (न) जैसे वैसे (रणे) सधाम में (तत्तृष्णाः) पिपासा से व्याकुल (अजर) जरा से रहित (य) जो (यामन्) चलते हैं जिस में उस मार्ग में (एतश्च) थोड़े का चलाने वाला (तूर्वम्) हिंसन करता हुआ (न) जैसे वैसे (नृ) शीघ्र (आ) प्रकाशित होता है वह सेवा करने योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानलङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के किरण प्रातः काल को प्रकाशित करते हैं वैसे ही विद्वान् जन सब के अन्तःकरणों को प्रकाशित करें ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्निमग्निं वः सुमिधां दुवस्यत प्रियं प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।

उप वो गीमिरमृतं विवासत देवा देवेषु वनते हि वायं देवेषु वनते हि नो दुवः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (गृणीषणि) स्तुति करने योग्य व्यवहार में समिधा इन्धनो से (व) आप लोगों के (अग्निमग्निम्) अग्नि अग्नि का और (व) आप लोगों के (प्रियमग्निम्) कामना करने योग्य कामना करने योग्य (अतिथिम्) अतिथि का (उप, वनते) समीप में सेवन करता (हि) ही है और जो (देवेषु) श्रेष्ठ गुणयुक्तों में (देव) प्रकाशमान (गीमि) वाणियों से (व) आप लोगों को (वायम्) स्वीकार करने योग्य व्यवहार (अमृतम्) कारणरूप से नाशरहित का सेवन करता है और जो (हि) निश्चित (देवेषु) पितृरूप विद्वानों में (देव) दाता जन (न) हम लोगों के लिए (दुवः) सेवन को (वनते) स्वीकार करता है उसका (दुवस्यत) सेवन करो उसका (विवासत) सेवन करो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे विद्वान् का वैसे अग्नि का भी सेवन करायें जिससे प्रभीष्ट कार्य सिद्ध होवें ॥ ६ ॥

समिद्धमग्निं सुमिधां गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अच्वरे ध्रुवम् ।

विप्रं होतारं पुक्वार्महृद् कविं सुमैरीमहे जातवेदसम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (समिधा) इन्धन के समान पदार्थ से (समिद्धम्) प्रकाशित हुए (अग्निम्) अग्नि को जैसे वैसे वर्तमान को (अच्वरे) अहिंसारूप यज्ञ में (ध्रुवम्) नियन्त्रण (शुचिम्) पवित्र और (पावकम्) पवित्र करनेवाले (होतारम्) दाता (पुक्वार्महृद्) बहुत विद्वानों से सत्कार किये गये (अमृतम्) श्रेष्ठ से रहित (जातवेदसम्) प्रकट हुई विद्या जिसकी ऐसे (विप्रम्) विद्या और विनय से बुद्धिमान् को (गिरा) वाणी से (पुरः) आगे (गृणे) स्तुति करता है (कविम्) पूर्ण विद्या से युक्त को जैसे वैसे (सुमैः) सुखों से हम लोग (ईमहे) याचना करें वैसे आप लोग भी याचना करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सत्य के प्रकाशक विद्वानों से विद्या की याचना करो तथा इस विद्या की प्राप्ति होकर अन्तों की वेधो ॥ ७ ॥

मनुष्यों से कितनी उपासना करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यबाहं दधिरे पायुमीक्ष्यम् ।

देवासंश्च मर्त्यासंश्च जायुषि बिभ्रं बिभ्रति नमसा निवेदिरे ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशमान भगवन् (युगेयुगे) वर्ष वर्ष वा सत्ययुग आदि में जिस (हव्यबाहम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों की धारण करनेवाले (ईक्ष्यम्) स्तुति करने योग्य (पायुम्) पालन करनेवाले (बिभ्र-सिम्) मनुष्य आदि प्रजाओं के पालक (जायुषिम्) सदा जागनेवाले (अमृतम्) नाश से रहित (दूतम्) दुष्टों के दूर करनेवाले (बिभ्रम्) व्यापक परमात्मा (त्वाम्) आपको (देवासं.) विद्वान् (व) और योगी (मर्त्यासं) मरण धर्मवाले (व) भी (ममसा) सत्कार से (दधिरे) धारण करें (नि, निवेदिरे) स्थित होते हैं उसको हम लोग धारण करें तथा उसमें स्थित होवें ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग प्रतिदिन सर्वव्यापी, न्यायेष्ट, दयालु, सब धन्यवादों के योग्य, परमात्मा ही की उपासना करो ॥ ८ ॥

फिर वह उपासित ईश्वर क्या करता है इस विषय को कहते हैं—

विभूषणम् उमयां अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।

यचं धीतिं सुमतिमागृणीमहेऽर्धं स्मा नस्त्रिवरुथः शिवो भव ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) संपूर्ण दुष्टों का जलाने अर्थात् दूर करनेवाले परमेश्वर जो आप (रजसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (देवानाम्) विद्वानों के (दूत) दोषों के दूर करने अथवा धर्म अर्थ और मोक्ष को प्राप्त करानेवाले होते हुए (व्रता) कर्मों को (विभूषणम्) शोभित करते और (उभयान्) विद्वान् और अविद्वान् मनुष्यों को (अनु) पीछे शोभित करने हुए अन्तरिक्ष और पृथिवी को (सम्, ईयसे) व्याप्त होते हैं और (यत्) जिस (ते) आपकी (धीतिम्) धारणा वा बुद्धि को (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को हम लोग (आगृणीमहे) स्वीकार करें वह (अर्ध) इसके अन्तर (त्रिवरुथः) तीन उत्तम मध्यम निम्न गृहों के सदृश निवासस्थानवाले आप (न) हम लोगों के लिए (शिव) कल्याणकारी (स्म) ही (भव) हुआ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य जगत् के रचनेवाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्तित करत हैं तथा उसके गुण कर्म और स्वभावों के सदृश अपने गुण कर्म और स्वभावों का करते हैं उनको वह जैसे दूत वैसे सब विद्या के समाचार को जनाता हुआ सहज से मुक्ति के पद को प्राप्त करता है इससे सब काल में ही इसकी उपासना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

फिर उसका ज्ञान और उपासना आवश्यक है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तं सुप्रतीकं सुदृष्टं स्वच्छमविद्वान्सो बिदुष्टं सपेम ।

स यश्चक्षिषां बयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निमृतं बोधत् ॥१०॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अविद्वान्सो) विद्या से रहित जन (तम्) उस (सुप्र-तीकम्) सुन्दर कस किये जिसने तथा (सुदृष्टम्) योगाभ्यास में देखने योग्य वा उत्तम प्रकार दिखाने और (स्वच्छम्) अच्छे प्रकार जानने वा प्राप्त करानेवाले (बिदुष्टम्) अत्यन्त विद्वान् ईश्वर को नहीं विशेष कर्म के जानते और न उपासना करते हैं उनको हम लोग (सपेम) शाप देते हैं और जो (विद्वान्) प्रकट विद्याओं से युक्त (अग्निः) अग्नि के समान स्वयं प्रकाशित हुआ (विद्वान्) सम्पूर्ण (बयुनानि) प्रज्ञानों और (अमृतम्) नाशरहित कारण जीवों में (हव्यम्) वेले योग्य विज्ञान को (प्र, बोधत्) अत्यन्त कहना है (न) वह हम लोगों को (यक्षत्) प्राप्त करावे ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो परमात्मा को नहीं जानते और उसकी आज्ञा के अनुकूल आचरण नहीं करत हैं उनको शिक् है धिक् है और जो उनकी उपासना करते हैं वे धन्य हैं। और जो हम लोगों के लिए वेद द्वारा सम्पूर्ण विज्ञानों का उपदेश देना है उसी की हम सब लोग उपासना करें ॥ १० ॥

तममे पास्पृत तं पिपिषिं यस्त आनट् कुवये शूर भीतिम् ।

यज्ञस्य वा निश्चिंतिं वोदितिं वा तमितृणक्षि श्वसोत शया ॥११॥

पदार्थ—हे (शूर) भयरहित बुद्ध दोषों के विनाश करने और (अग्ने) अविद्यारूप अन्धकार के नाश करनेवाले (व) जो (ते) आपकी आज्ञा को (आनट्) व्याप्त होता है उस (कुवये) विद्वान् के लिए (भीतिम्) धारणा को खेत हो (तम्) उसकी (पाति) रक्षा करते हो (यत्) और (तम्) उसकी (पिपिषिं) पालना करते वा श्रेष्ठ गुणों से पूरित करते हो (वा) वा (यज्ञस्य) यज्ञ की (निश्चिंतिम्) अत्यन्त तीक्ष्णता का वा (उचितम्) उदय का (वा) वा (पूजति) सम्बन्ध करते हो (तम्) उसका (वा) वा (आवसा) बल से (यत्) और (राया) धन से भी सम्बन्ध करते हो वह (इत्) ही आप उपासना करने योग्य है ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो सत्यवान् से जगदीश्वर की उपासना करते हैं उनकी ईश्वर सब प्रकार से रक्षा कर धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभावों में प्रेरणा कर तथा शरीर और आत्मा का बल अच्छे प्रकार लेकर मोक्ष को प्राप्त कराता है ॥ ११ ॥

किर ईश्वर किस निमित्त उपासना करने योग्य है इस विषय को  
अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स्वसंज्ञे बनुष्यतो नि पाहि त्वम् नः सहसावबध्यात् ।

सं त्वा वस्मद्बदुम्येत पाथः स रधिः स्पृहयास्यः सहस्री ॥१२॥

पदार्थ—(सहसावध्यात्) अत्यन्त बलयुक्त (अग्ने) श्रेष्ठ गुणों के देनेवाले (त्वम्) आप (बनुष्यतो) याचना करते हुए (नः) हम लोगों की (अवबध्यात्) निन्द्य आचरण से (स्वम्) आप (नि, पाहि) नित्य रक्षा करिये और जो (स्पृहयास्यः) स्पृहा कराने योग्य (सहस्री) सम्पूर्ण सुख जिसमें वह (रधिः) धन और जो (वस्मद्बदुम्येत) नाशवाला (पाथः) अन्न आदि हम लोगों को (सम्, अग्नि, एतु) उत्तम प्रकार प्राप्त हो उससे युक्त हम लोग (उ) भी (त्वा) आपको (सम्) अच्छे प्रकार उपासना करें ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो धर्म से याचना किया गया जगदीश्वर अधर्म के आचरण से अलग करके धर्म को प्राप्त कराता है और जो आन्तर्य सुख को भी देता है उसी का रक्षक, सब ऐश्वर्य देनेवाला तथा इष्ट देव जानो ॥१२॥

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेदु अनिमा जातवेदाः ।

देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामतावा ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वानो (य) जो (गृहपतिः) गृह का पालक जैसे वेसे ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध करने (होता) धारण करने तथा (जातवेदाः) प्रकट हुए पदार्थों को जाननेवाला और सब का (राजा) न्याय करने तथा (अतावा) मत्स्य और असत्य का विभाग करने (यजिष्ठः) अनिष्टाय यज्ञ करने वा पदार्थों का भेल करानेवाला (अग्नि) सबका प्रकाशक (देवानाम्) विष्य पदार्थों वा विद्वानों के मध्य में (उत) और (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के (विश्व) सम्पूर्ण (अनिमा) जन्मों को (वेद) जानता है (स) वह हम लोगों का (प्रयजताम्) अलगन्त प्राप्त करने (स) यह हम लोगों का राजा होवे ऐसा हम लोग निश्चय करने हैं वेमें आप लोग भी जानो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण जगत् और जीवों के कर्मों को जानकर कर्मों का दत्ता है वही मत्स्य राजा है ऐसा जानना चाहिए ॥ १३ ॥

किर बहु जगदीश्वर कंसा है इस विषय को कहते हैं—

अग्न यदुद्य विशो अम्बरस्य होतुः पावकशोचे वेष्टं हि यज्वा ।

श्रुता यजसि महिना वि यज्जुष्या वह यविष्ठ या तं अद्य ॥१४॥

पदार्थ—४ (पावकशोचे) पवित्र प्रकाश और (होतुः) दान करने तथा (यविष्ठः) अनिष्टाय मित्राने वा विभाग कराने और (अग्ने) सम्पूर्ण प्रजा की पीडाओं का दूर करनेवाला (यत्) जा (यज्वा) प्रथम करनेवाला (त्वम्) आप (हि) निश्चय म (अद्य) इस समय (विश्वः) मनुष्य आदि प्रजा के (वे) आकाशगन्ता पक्षी के समान (अम्बरस्य) अद्वितीयमय (अता) मत्स्य सुख के प्राप्त करनेवाला यज्ञ में (यजसि) यज्ञ करने हुआ (यत्) जा आप (महिना) महत्त्व में (वि) विशेष करके (यु) हावें और (या) जा वस्तु (तं) आप के वत्तमान म (अद्य) इस समय है उन (यज्जुष्या) दन याग्यों को हम लोगों का निमित्त (वह) प्राप्त करिये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण मनुष्य का पवित्र करनेवाला है और जो व्यापक अहिमा आदि धर्म के अनुष्ठान के लिए शाखा दत्ता है वह ही महत्त्व उपासना करने योग्य है ॥ १४ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अग्निं प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजस्यै ।

अवा नो मधवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवा-  
वसा तरेम ॥ १५ ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (मधवन्) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (अग्ने) अतिनेत्रवी जो आप (सुधितानि) उत्तम प्रकार सुत्ति करनेवाले (प्रयांसि) कामना करनेवाले योग्य अन्न आदि वस्तुओं को (हि) निश्चित (नि, दधीत) अच्छे प्रकार धारण करें और आप विज्ञानों को (अग्नि, ख्यः) सम्मुख कहत हो और आप (यजस्यै) भेल करने को (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को धारण करिये तथा (वाजसाता) सप्ताम में (य) हम लोगों की (अवा) रक्षा करिये जिन (त्वा) आपका आश्रय करके हम लोग (ता) उन (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरिता) दुख के प्राप्त करानेवाले पापी का (तरेम) उल्लंघन करें (तव) आपके (अवसा) रक्षण आदि से (तरेम) दुःखसागर के पार जावें और निरन्तर (तरेम) सम्पूर्ण दोषों का त्याग करें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्न और पानादिक जीवन के हितकारक पदार्थों को धारण करता, अन्तर्यामी होने से सत्य का उपदेश करता उसके आश्रय से ही सम्पूर्ण दुःखों के पार प्राप्त होओ ॥ १५ ॥

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरुर्णोवन्तं प्रथमः सीदु योनिम् ।

कलायिने घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥१६॥

पदार्थ—हे (स्वनीक) सुन्दर सेनावाले (अग्ने) विद्वान् राजन् (प्रथमः) प्रसिद्ध आप (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवैः) विद्वानों वा वीर पुरुषों के साथ (अरुण-  
वन्तम्) बहुत ऊर्जा के वस्त्रों से युक्त (योनिम्) गृह में (सीदु) वर्तमान हो (सवित्रे) संसार को उत्पन्न करने धोर (यजमानाय) पदार्थों को मिलानेकर्म विद्या को जाननेवाले के लिए (कलायिन्) गृह आदि सामग्री से धोर (घृतवन्तम्) बहुत घृत आदि पदार्थों से युक्त (यज्ञम्) सगति स्वरूप व्यवहार को (साधु) उत्तम प्रकार (नय) प्राप्त कराइये ॥ १६ ॥

भाषार्थ—हे विद्यायुक्त राजजनों ! आप लोग विद्वानों के सहाय से न्याय के गृहों में टहल के न्याय करिये और सब मनुष्यों को न्यायमार्ग पर बसाइये जिससे सब श्रेष्ठ मार्ग में स्थित होकर परोपकारी होवें ॥ १६ ॥

किर विद्वानों को किससे निकालें इस विषय को कहते हैं—

इममु त्पमेयवृद्धिर्न मन्वन्ति वेवसः ।

यमहक्यन्तमानयुजमूर्तं द्यावपाम्यः ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वेवसः) बुद्धिमान् विद्वान् जन (द्यावपाम्यः) रात्रियों में हुई क्रियाओं से (यम्) जिस (यमहक्यन्तम्) प्रसिद्ध चिह्न प्राप्त होते जिनमें (इमम्) इस (उ) और (ह्यम्) जो नहीं प्रत्यक्ष हुआ उस (अग्निम्) विद्वलीकृत अग्नि का (यजमूर्तम्) ज... अथर्ववेद में मन्थन कहा है वैसे (अमूर्तम्) मूढ़ से जिन का (मन्वन्ति) मन्थन करते और कार्य की सिद्धि को (आ, मन्थयन्) अच्छे प्रकार प्राप्त करने हैं उसका आप लोग भी मन्थन करके कार्य को सिद्ध करिये ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन भूमि, अन्तरिक्ष, वायु, आकाश और सूर्य आदि से मन्थन करके विद्वली का निकालत हैं वे अनेक कार्यों को सिद्ध करने को समर्थ होते हैं ॥ १७ ॥

मनुष्यों को सृष्टि से कौन कौन उपकार दर्शन करना चाहिए इस  
विषय को कहते हैं—

अग्निं द्यौर्वीतये सूर्यताता स्वस्तये ।

आ देवान् वक्ष्यमूर्तां अतावृषो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप (देववीतये) श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिए और (स्वस्तये) सुख की प्राप्ति के लिए (सूर्यताता) सम्पूर्ण सुख के करनेवाले शिष्य-  
कारीगरीय यज्ञ में (अमूर्ताम्) नाशार्हित (अतावृषः) सत्य व्यवहार के बढाने वाले (देवान्) श्रेष्ठ गुणों वा भोगों को (आ, वक्षि) प्राप्त कराइये और (देवेषु) विद्वानों में (यज्ञम्) सुख के देनेवाला यज्ञ का (पिस्पृशः) स्पर्श कराइये इसमें सुखों का (अग्निं) प्रकट कीजिए ॥ १८ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिए कि सृष्टि में वर्तमान पदार्थों से विद्या के द्वारा श्रेष्ठ भागों का प्राप्त होकर अपने लिए अनेक प्रकार के सुख को उत्पन्न करें ॥ १८ ॥

किर गृहस्थों को कंसा प्रयत्न करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

ययम् त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म सुमिधा बहन्तम् ।

अस्वृरि नो गार्हपत्यानि सन्तु त्विमेन नुस्तेजसा सं शिशाधि ॥१९॥

पदार्थ—४ (गृहपते) गृहस्था के पालन करनेवाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्तमान (ययम्) हम लोग (जनानाम्) मनुष्यों के मध्य में (त्वा) आपका आश्रय करके (सुमिधा) प्रदीपक साधन म अग्नि को (बहन्तम्) बड़ा (अकर्म) करें (उ) और (म) हम लोगों का (अस्वृरि) धननेवाला वाहन और (गार्ह-  
पत्यानि) गृहस्थों में मनुष्य कर्म जिस प्रकार म मित्र (सन्तु) हो उस प्रकार से (त्विमेन) नीत्र (तेजसा) तेज म आप (म) हम लोगों को (मम्, शिशाधि) उत्तम प्रकार शिक्षा दीजिये ॥ १९ ॥

भाषार्थ—हे गृहस्थजनों ! आप लोग भ्रान्त्य का त्याग करके सृष्टिकर्म से विद्या की उत्पत्ति करके अन्य विद्याधियों का विद्या ग्रहण कराइये जिस से सब सुख बढ़े ॥ १९ ॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, ईश्वर और गृहस्थ के कार्यों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पञ्चहोतृ सूक्त और जोसर्वा वर्गों और छठे मण्डल का पहला अनुवाक समाप्त हुआ ॥



अष्टाष्ट जत्वारिचतुस्रस्य षोडशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्नि-  
वेवसा । १, ६, ७ आर्षो जल्लिक् ऋषः । ऋषयः स्वरः । २, ३, ४, ५, ६, ८, ११, १३, १४, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २८, ३२, ४० निधु-  
श्वायजी । १०, १६, २०, २२, २३, २६, ३१, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४१ गायत्री । २६, ३० बिराद्वानाश्वीऋषः । ऋषयः स्वरः । १२, १६, ३३, ४२, ४४ साम्नीविष्टुम् । ४३, ४५ निधुतिविष्टुम् । पञ्चमः स्वरः । २७ आर्षोपंति । ४६ दुरिक्वद्विष्टुम् । पञ्चमः स्वरः । ४७, ४८ निधुनुष्टुम् ऋषः । गान्धारीः स्वरः ॥

अथ अष्टासीह ऋचावाले सोलहवें सूत्र का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर ! जिस कारण से ( त्वम् ) आप ( यज्ञा-  
नाम् ) प्राप्त होने योग्य व्यवहारों के ( होता ) देनेवाले और ( विश्वेषाम् ) सब के  
( हितः ) हितकारी हो इससे ( देवेभिः ) विद्वानों के साथ (मानुषे ) मनुष्यसम्बन्धी  
( जने ) मनुष्य में प्रेरणा करनेवाले होओ ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर सब का हितकारी और सम्पूर्ण सुखों  
का देनेवाला तथा विद्वानों के संग से जानने योग्य है वैसे आप लोग भी अनुष्ठान  
करो ॥ १ ॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा मूहः । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे विद्वन् अग्नि के सद्गुण तेजस्वी ( सः ) वह आप ( अध्वरे ) सब  
प्रकार अनुष्ठान करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार में ( मन्द्राभिः ) आनन्द करनेवाली  
( जिह्वाभिः ) विद्या और विनय से युक्त वाणियों से ( य ) हम लोगों को ( यजा )  
प्राप्त कराइये और ( यक्षि ) बड़े अथवा सत्कार करने योग्यों को और ( देवान् )  
श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों को ( आ, वक्षि ) प्राप्त कराइये और सबको ( यक्षि, च )  
भी प्राप्त कराइये ॥ २ ॥

भाषार्थ—विद्वान् जन विद्या की प्राप्ति के लिये सब को सदा उपदेश देवें  
जिससे श्रेष्ठ गुणोंवाले मनुष्य हों ॥ २ ॥

कौन उपदेश करने योग्य हों इस विषय को कहते हैं—

**वेत्था हि वेधो अध्वनः पृथश्च देवाज्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुकृतो ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे ( सुकृतो ) उत्तम ज्ञान वा उत्तमकर्मयुक्त ( वेधः ) विज्ञान के  
देनेवाले ( वेधः ) मेधावी ( अग्ने ) प्रकाशात्मा ( हि ) जिस से आप ( यज्ञेषु )  
विद्या और धर्म के प्रचार नामक व्यवहारों में ( अध्वनः ) स्वतन्त्रतायुक्त वेग से  
( अध्वनः ) मार्गों को और ( पृथः ) मार्गों को ( च ) भी ( वेत्था ) जानने हो  
इससे हम लोगों को जनाइये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इन सत्कार में जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मार्गों को  
जानें वे ही अन्यो को भी उपदेश देवें कि इतर अज्ञ जन ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**त्वामोळे अथ द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् ।**

**ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे मैं ( यज्ञेषु ) समागमरूप यज्ञों में ( यज्ञियम् )  
यज्ञ करने योग्य ( त्वाम् ) आप विद्वान् की ( ईजे ) प्रशंसा करता हूँ ( अथ )  
इसके अनन्तर ( द्विता ) दो पदाने और पढ़नेवाले वा उपदेश करने वा उपदेश पाने  
योग्यों का ( भरत ) धारण और पोषण करनेवाला मैं ( वाजिभिः ) विज्ञानादिकों  
से ( शुनम् ) सुख की ( ईजे ) संगति करता हूँ वैसे आप संगति कीजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—विद्वानों को चाहिये कि परस्पर विद्या की उन्नति करके अन्यो को  
ग्रहण करावें ॥ ४ ॥

मनुष्य किसका सत्कार करें इस विषय को कहते हैं—

**एवमिमा वाय्यां पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भुरद्वाजाय दाशुषे ॥ ५ ॥ २१**

पदार्थ—हे विद्वन् जिस कारण से ( त्वम् ) आप ( दिवोदासाय ) कामना  
करने योग्य पदार्थ के देने और ( सुन्वते ) सामान्यरूप ओषधि आदि की सिद्धि करने  
वाले और ( भुरद्वाजाय ) धारण किया विज्ञान जिसने उसके और ( दाशुषे ) विज्ञान  
के देनेवाले के लिये ( इमा ) इन ( पुरु ) बहुत ( वाय्यां ) स्वीकार करने योग्यों का  
देते ही इससे प्रशंसा करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सत्य के उपदेशकों और विद्या के प्रचारकों  
का सदा ही सत्कार करें अन्य जनो का नहीं ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**त्वं दुसो अमर्त्य आ बहा दैव्यं जनम् ।**

**भृष्वन् विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ( अमर्त्यः ) माधुर्य मनुष्यों के स्वभाव से विरुद्ध  
( दुसः ) सम्पूर्ण पदार्थविद्याओं के समाचार के जाननेवाले ( त्वम् ) आप ( विप्रस्य )  
बुद्धिमत् की ( सुष्टुतिम् ) सुन्दर प्रशंसा को ( भृष्वन् ) सुनते हुए ( दैव्यम् )  
विद्वानों से सिद्ध किये गये विद्वान् ( जनम् ) जन को ( आ, बहा ) सब प्रकार से  
प्राप्त कराइये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे परीक्षा करनेवालो ! आप लोग पक्षपात का त्याग करके विद्या-  
धियों की यथावत् परीक्षा करके विद्यायुक्त कीजिये ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**त्वमग्ने स्वाप्यो मर्त्तसो देवधीतये । यज्ञेषु देवर्माळते ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्या और विनय से प्रकाशात्मा विद्वन् जैसे ( स्वाप्यः )  
उत्तम प्रकार वाणी और से ध्यान करनेवाले ( मर्त्तसः ) मनुष्य ( देवधीतये ) विद्या  
आदि श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये ( यज्ञेषु ) पढ़ाने पढ़ने और उपदेश नामक  
व्यवहारों में ( त्वाम् ) पूर्ण विद्यायुक्त यथावत् सत्कार आप ( देवम् ) विज्ञान के देनेवाले  
की ( ईळते ) स्तुति करने है उम प्रकार से हम लोग प्रशंसा करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्यार्थियों को चाहिये कि  
विद्या की प्राप्ति के लिये विद्वानों का सत्कार करें और जैसे सृष्टि के पदार्थों में अग्नि  
प्रशंसित है वैसे ही मनुष्यों में धार्मिक विद्वान् हैं यह जानना चाहिये ॥ ७ ॥

फिर अध्यापक और पढ़नेवाले परस्पर कैसा बर्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

**तव प्र यक्षि सन्दशमुत क्रतुं सुवानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जो ( सुवानवः ) श्रेष्ठ दान के दाता ( विश्वे ) सब  
( कामिनः ) कामना करनेवाले जन ( तव ) विद्वान् आपके ( सन्वक्षाम् ) अन्वेष दर्शन  
( उत ) और ( क्रतुम् ) बुद्धि वा कर्म का ( जुषन्त ) सेवन करते हैं उनका आप  
उमके दान से ( प्र, यक्षि ) सेन कराइये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे विद्या की कामना करनेवाले आप लोगों की  
कामना करते हैं वैसे ही आप लोग विद्यार्थियों की कामना करो ॥ ८ ॥

फिर राजा प्रजाओं से कैसे बर्ताव करे इस विषय को कहते हैं—

**त्वं होता मनुहितो वहिगसा बिदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् राजन् ( वहिगः ) प्राप्त करनेवाले अग्नि जैसे  
वैसे ( होता ) दाता ( मनुहितः ) मनुष्यों के हितकारी ( बिदुष्टरः ) अत्यन्त  
विज्ञानवाले ( त्वम् ) आप ( आसा ) मुख से ( विशः ) कामना करनी हुई ( विशः )  
प्रजाओं को ( यक्षि ) सुखयुक्त करिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजाजनों ! जैसे राजा  
आप लोगों की कामना करता और मुख देने की इच्छा करता है वैसे आप लोग भी  
उस राजा की कामना करें उमके लिये निरन्तर सुख दीजिये ॥ ९ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।**

**नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ॥ २२ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् जिस कारण से आप ( गृणानः ) स्तुति करने  
हुए ( होता ) दाता ( बर्हिषि ) उत्तम मन्त्रों में ( वीतये ) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों  
की व्याप्ति के लिए और ( हव्यदातये ) देने योग्य के दान के लिये ( नि, सत्सि )  
उत्तम प्रकार जानते हो इससे हम लोगों की उत्तम दीप्ति को ( आ याहि ) सब  
प्रकार प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भाषार्थ—जहां विद्वान् जन विद्या की वृद्धि करने की इच्छा करने हैं वहाँ  
सब सुखी होते हैं ॥ १० ॥

फिर मनुष्य परस्पर क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**तं त्वां समिद्धिरङ्गिरो घृतेन बर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय ॥ ११ ॥**

पदार्थ—हे ( यविष्ठयः ) अत्यन्त युवा जनो में साधु ( अङ्गिरः ) विजुनी क  
ममान वर्त्तमान जैसे यज्ञ करनेवाले जन ( समिद्धिः ) उत्तम प्रकार प्रकाशक समि-  
द्धरूप काष्ठों और ( घृतेन ) घृत से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे ज्ञान के कारण  
उपदेश से ( तम् ) उन ( त्वा ) आपकी हम लोग ( बर्धयामसि ) वृद्धि करते हैं और  
आप ( बृहत् ) बहुत ( शोचा ) विचारिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा आदि जन जैसे  
घृत से अग्नि की वैसे शिक्षा और सत्कार में घृत जनो की वृद्धि करने हैं वे सदा  
विजय की प्राप्ति होते हैं ॥ ११ ॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसा बर्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**स नः पृथु अवाय्यमच्छां देव विवासमि । बृहदग्ने सुधीर्यम् ॥ १२ ॥**

पदार्थ—हे ( देवः ) विद्या के देनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के समान कार्य के  
साधक जैसे अग्नि वैसे जिस कारण से आप ( नः ) हम लोगों के लिए ( पृथु )  
विस्तारयुक्त ( अवाय्यम् ) सुनने योग्य ( बृहत् ) बड़े ( सुधीर्यम् ) श्रेष्ठ बलयुक्त  
( अच्छा ) अच्छे प्रकार ( विवासमि ) सेवा करते हो इससे ( सः ) वह आप सत्कार  
करने योग्य हो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जिसका उपकार करते  
हैं वे उसके सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्य किस किससे बिजुनी का ग्रहण करें इस विषय को कहते हैं—

**त्वमग्ने पुष्करादध्यर्था निरमन्थत । मूध्नो विश्वस्य बाधतः ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् जैसे ( बाधतः ) बुद्धि  
मान् जन ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण जगत् के ( मूध्नः ) ऊपर वर्त्तमान के ( पुष्करात् )  
अन्तरिक्ष से ( अथि ) ऊपर अग्नि को ( निः, अमन्थत ) मथते हैं वैसे ( अथर्था )  
अहितक में ( त्वाम् ) आपको प्रकाशित करता हूँ ॥ १३ ॥



भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जैसे पदार्थविद्या के जाननेवाले सूर्य आदि क समीप से बिजुली को ग्रहण करके काम्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही आप लोग भी सिद्ध करो ॥ १३ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईषे अथर्वणः । वृत्रहर्ष्यं पुरन्दरम् ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् ( तम्, उ ) उन्ही ( वृत्रहर्ष्यम् ) मेघों के नाश करनेवाले ( पुरन्दरम् ) मेघों के पुरो को नाश करनेवाले सूर्य को जैसे वैसे ( त्वा ) आप को ( अथर्वण ) नहीं हिंसा करनेवाले का ( पुत्र ) पुत्र ( दध्यङ् ) धारण करनेवाले विद्वानों को प्राप्त होने और ( ऋषि ) मन्त्र और अर्थ का जाननेवाला ( ईषे ) प्रदीप्त करता है वैसे आप मुझको करिये ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जैसे ईश्वर ने प्रकाशस्वरूप और जगत् का उपकारक सूर्य रखा है वैसे विद्या से प्रकाशित जनो को विद्वान् करो ॥ १४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।

धनक्षयं रणैरणे ॥ १५ ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( पाथ्य ) मार्गों में हुए ( वृषा ) वधनिवाले सूर्य के समान वीर्य का सींचनेवाला ( दस्युहन्तमम् ) डाकूओं को घातशय मारनेवाले ( रणैरणे ) प्रत्येक मघाम में ( धनक्षयम् ) धन को जीतें ( तम् ) उन ( त्वा ) आप को ( तम् ईषे ) प्राप्त कराता है वैसे आप मुझको ( उ ) भी प्राप्त कराइये ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग बिजुली की विद्या को प्राप्त होकर युद्ध करो तो आप लोगों का बहुत धन और ऐश्वर्य का देनेवाला मैं बिजुली आदि से विजय कराऊँ ॥ १५ ॥

एषा पु ब्रवाणि तेऽग्नं इत्येतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुमिः ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् जन ( एभिः ) इन ( इन्दुमि ) सोमलताओं वा चन्द्रकिरणों से आप ( वर्धासि ) वृद्धि को प्राप्त होने हो उन में ( आ, इहि ) प्राप्त हजिय ( इत्या ) इस प्रकार से ( इतरा ) पीछे की ( ते ) आप की ( गिर ) वाणियों को ( सु, ब्रवाणि ) उत्तम प्रकार उपदेश करू और आप ( उ ) तक वितर्क में सुने ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य हम लोग विद्याओं को पढ़कर मन्त्रों उपदेश दें-इस प्रकार इच्छा करने हैं वे हम लोगों को प्राप्त होंगे ॥ १६ ॥

मनुष्यों को कहाँ मन स्थित करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

यत्र कं च ते मनो दधे दधस् उत्तरम् । यत्रा सदैः कृणवसे ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( यत्र ) जहाँ ( ते ) आपका ( मन ) विचारात्मक चित्त है और ( उत्तरम् ) पार होते हैं जिस से उम ( बलम् ) बल को ( च ) भी आप ( दधसे ) धारण करते हो ( तत्र ) वहाँ ( सदैः ) स्थित होत हैं जिस में उस जो ( कृणवसे ) करते हो तथा ( कृण ) कहाँ निवास करत हो इनका उत्तर कहिये ॥ १७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जहाँ जगदीश्वर वा योगाभ्यास में आप लोगों का अन्तःकरण पवित्र होकर कार्य की सिद्धि को करता है वहाँ ही आप लोग भी प्रवृत्ति करिये ॥ १७ ॥

मनुष्यों की किस प्रकार इच्छा सिद्ध होती है इस विषय को कहते हैं—

नहि ते पुत्तमक्षिपद्भवंमानां दसो । अथा दुर्वो वनवसे ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे ( जसो ) बसानेवाले ( ते ) आप के ( नेमानाम् ) अन्नो के ( पुत्तम् ) पूर्ण करनेवाले को कोई भी ( नहि ) नहीं ( अक्षिपत् ) फेंकता है और नहीं ( भुवत् ) होवे इससे ( अथा ) इसके अनन्तर ( दुर्व ) सेवा का ( वनवसे ) स्वीकार करिये ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सत्य धारण को करते हैं उनकी कामना की पूर्ति कभी भी नहीं नष्ट की जाती है ॥ १८ ॥

अब अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचैतनः । दिवोदासस्य सन्वतिः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो ( विवोदासस्य ) प्रकाश के देने वाले का ( भारतः ) धारण करने वा पोषण करने और ( वृत्रहा ) मेघ को नाश करने वाला ( पुरुचैतनः ) बहुत चेतन जिस में वह ( सन्वतिः ) श्रेष्ठ स्वामी ( अग्नि ) अग्नि के सदृश तेजस्वी सूर्य ( आ, अगामि ) प्राप्त किया जाता है उसका हम लोग सेवन करें ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जैसे इस देह में साधन और उपसाधनों के सहित जीव बहुत कर्मों को करता है वैसे ही विद्वान् सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करता है ॥ १९ ॥

स हि विरवाति पार्थिवा रयि दार्शनमदित्वना ।

बन्वन्वातो अरवृतः ॥ २० ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( अस्तुतः ) नहीं हिसित ( अवातः ) पवन से वजित ( महित्वना ) महत्त्व से ( बन्वन् ) सेवन करता हुआ अग्नि ( विरवाति ) सम्पूर्ण ( पार्थिवा ) पृथिवी में विदित वस्तुओं और ( रयिम् ) धन को ( अक्षि-वास्तु ) अत्यन्त देता है ( स., हि ) वही सब लोगों से जानने योग्य है ॥ २० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि बहुत सुख को देता है उसका क्यो नहीं सेवन किया जावे ॥ २० ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

स प्रत्नवप्रवीयसाग्ने धुम्नेन संयता । वृहत्तन्ध भानुना ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वन् जैसे सूर्य ( भानुना ) किरण से ( प्रत्नवत् ) प्राचीन के सदृश ( वृहत् ) बड़े को ( तन्ध ) विस्तृत करता है वैसे ( स ) वह आप ( नवीयसा ) अत्यन्त नवीन ( संयता ) उत्तम प्रकार देते हैं जिससे उम ( धुम्नेन ) धन वा यश से हम लोगों को विस्तृत करो ॥ २१ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के सदृश यशस्वी होते हैं वे नवीन नवीन प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

मनुष्यों को कैसा वर्तान करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।

अर्चं गायं च वेधमे ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे ( सखाय ) मित्रो जो ( व ) आप लोगों की ( स्तोमम् ) स्तुति और ( यज्ञम् ) सत्य व्यवहार को ( च ) भी उत्पन्न करता है उसका आप लोग सत्कार करो और हे विद्वन् जो आप में जैसे मित्र वैसे वर्तता है उस ( वेधसे ) बुद्धिमान् ( अग्नये ) अग्नि के समान वर्तमान के लिए आप ( धृष्णुया ) दृढ़ता के साथ ( प्र, अर्च ) अच्छे प्रकार सत्कार करिये ( गाय, च ) और प्रमत्ता करिय ॥ २२ ॥

भाषार्थ—सूर्य ही यज्ञफलो की प्राप्ति का साधक है वैसे यथार्थ कहने और करनेवाले, धर्मात्मा जन परोपकार में कुशल होते हैं ऐसा जानकर सत्कार में वर्तान करें ॥ २२ ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को कहते हैं—

स हि यो भानुषा युगा सीदद्वोता कविक्रतुः ।

दृतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥

पदार्थ—( य ) जो ( हव्यवाहन ) हवन किये गये द्रव्यों को प्राप्त कराने पहुचानेवाला योग ( दृत ) दूतवत् वर्तमान ( च ) भी अग्नि ( भानुषा ) मनुष्य-सम्बन्धी ( युगा ) वर्ष वा वर्षसमुदायो का ( सीदत् ) प्राप्त होता है ( स., हि ) वही ( होता ) दाना ( कविक्रतु ) बड़ा विद्वान् जैसे वैसे कार्य का साधक होता है ॥ २३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अग्नि धार्मिक और विद्वानों के कार्यों का करनेवाला होता है उसका विद्वान् जन कार्यों की सिद्धि के नियम सम्प्रयुक्त करे ॥ २३ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

ता राजाना शुचिंश्रतादित्यान् मारुतं गणम् ।

वसो यक्षीह रोदसी ॥ २४ ॥

पदार्थ—ह ( वसो ) श्रेष्ठ गुणों के बसाने वाले आप ( इह ) इस संसार में ( ता ) उन दोनों मित्र के सदृश वर्तमान ( शुचिंश्रता ) पवित्र कर्मवाले ( राजाना ) प्रकाशमान हुए तथा ( आदित्यान् ) बारह महीनों और ( वास्तवम् ) मनुष्य सम्बन्धी इन ( गणम् ) समूह को ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी को ( यक्षि ) उत्तम प्रकार प्राप्त कराइये ॥ २४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पढ़ाने और पढ़ने वाले आदिकों की सेवा करके पदार्थ विद्या का ग्रहण करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २४ ॥

उत्तम जन का व्यवहार वा संग निकल नहीं होता इस विषय को कहते हैं—

वसवो ते अग्ने सन्दष्टिरियते मर्त्याय । उजो नपादुमृतस्य ॥ २५ ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान ( ते ) आप की ( वसवी ) पृथिवी आदि वसु सम्बन्धीनी ( सन्दष्टिः ) उत्तम प्रकार देखने जिससे वह दृष्टि ( इवयते ) अन्न वा विज्ञान की कामना करते हुए ( मर्त्याय ) मनुष्य के लिये ( अमृतस्य ) नाशरहित और ( ऊजः ) बल आदि से युक्त की ( नपात् ) नहीं गिरने वाली होती है ॥ २५ ॥

भाषार्थ—जिस विद्वान् का विद्यादर्शन—विद्या पढ़ना निकल नहीं होता और जिसमें पढ़कर विद्यार्थी जन विद्वान् होता है उसका सदा सत्कार करो ॥ २५ ॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

क्रत्वा दा अस्तु भेष्टोऽथ स्वां बन्वन् सुरेकणाः ।

मये आनाश सुवृत्तिम् ॥ २६ ॥

पदार्थ—( अर्थः ) धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव से प्रतिपाद्य युक्त ( सुखसाः ) सुन्दर धन वाला ( वसः ) मनुष्य ( अथ ) राज ( कर्त्ता ) बुद्धि का कर्म से ( सुवृत्तितम् ) उत्तम प्रकार जाते हैं बुद्धि जिस के द्वारा उसका ( आनाश ) ध्याप्त हो और ( त्वा ) आप का ( वसन् ) सेवन करता हुआ सुखी ( अस्तु ) हो और आप विद्या के ( वा ) देनेवाले होओ ॥ २६ ॥

भाषार्थ—वे ही उत्तम जन गणनीय हैं जो विज्ञान को देने हैं ॥ २६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ते ते अग्ने त्वोता इष्यन्तो विश्वमायुः ।

तरन्तो अयों अरातीर्वन्तो अयों अरातीः ॥२७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान जो ( ते ) आप का ( अर्थः ) स्वामी आता देवे उस को आप करिये और जो ( त्वोता ) आप से रक्षित ( इष्यन्तः ) धन की कामना करने और ( विश्वम् ) सम्पूर्ण ( आयुः ) जीवन के ( तरन्तः ) पार होते हुए ( अरातीः ) नहीं विद्यमान दान जिनमें उन कृपण विरोधियों का ( वसन्तः ) विभाग करते हुए तथा ( अरातीः ) जिन में दान नहीं उन शत्रुओं को विशेष करके जीतते हैं वे ( ते ) आप के सम्बन्धी होवें आप इन के ( अर्थः ) स्वामी होओ ॥

भाषार्थ—जो ब्रह्मचर्य आदि से रोगों को दूर करके चिरजीवी होवें वे धार्मिक सम्पूर्ण कार्यों में अध्यक्ष हों ॥ २७ ॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विष्वं न्यत्रिणम् ।

अग्निर्नो वनते रयिम् ॥२८॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे ( अग्नि ) अग्नि ( तिग्मेन ) तीव्र ( शोचिषा ) प्रकाश से प्राप्त हुए वस्तु को जलाता है वैसे जो ( विश्वम् ) सम्पूर्ण ( अत्रिणम् ) शत्रु के प्रति ( नि, यासत् ) प्रयत्न करे और वैसे जो ( अग्निः ) अग्नि के सदृश ( न. ) हम लोगों के लिए ( रयिम् ) द्रव्य का ( वनते ) सेवन करता है उसको अध्यक्ष करिये ॥ २८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकानुपपत्तौमालङ्कार है । राजा को चाहिए कि अधिकारियों के नियत करने में प्रजा की सम्मति भी ग्रहण करे ऐसा होने पर कभी भी उपद्रव नहीं होता है ॥ २८ ॥

सुवीरं रयिमा मरु जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२९॥

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) उत्पन्न हुआ प्रज्ञानवत् जिनके उन ( विचर्षणे ) तेजस्वी तथा ( सुक्रतो ) उत्तम बुद्धि और कर्म से युक्त राजन् आप ( सुवीरम् ) सुन्दर और जिस से होते हैं उस ( रयिम् ) धन को ( आ, मरु ) सब ओर से आरण करिये और ( रक्षांसि ) दुष्टाचारियों को ( जहि ) नष्ट करिये ॥ २९ ॥

भाषार्थ—राजा को चाहिए कि सदा ही धन धावि से धार्मिक विद्वान् और क्षत्रिय कुल में हुए वीरों की उत्तम प्रकार रक्षा करे और दुष्टों का मदा तिरस्कार करे ॥ २९ ॥

फिर राजा और विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं—

स्वं नः पाशंहसो जातवेदो अघायतः । रक्षां नो ब्रह्मणस्कवे ॥३०॥ २६

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) विद्या से युक्त ( ब्रह्मणः ) वेद के ( कवे ) कहने वाले ( त्वम् ) आप ( न ) हम लोगों की ( अहसः ) अधर्माचरण से ( पाहि ) रक्षा कीजिये और ( नः ) हम लोगों की ( अघायतः ) अपने पाप करते हुए से ( रक्षा ) रक्षा कीजिये ॥

भाषार्थ—हे राजन् वा विद्वन् । आप दोनों हम लोगों को अधर्माचरण और अधर्म का आचरण करने हुए से अलग करके सुख की बढ़ाइये ॥ ३० ॥

फिर न्यायाधीश क्या करे इस विषय को कहते हैं—

यो नो अग्ने दूरेव आ मर्तो ब्रूयात् दाशति ।

तस्माच्च पाशंहसः ॥ ३१ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) न्यायाधीश ( यः ) जो ( मर्तः ) मनुष्य ( नः ) हम लोगों को ( ब्रूयात् ) मारने के लिये ( दूरेवः ) दूष्ट आचरण को ( दाशति ) वेता है ( तस्मात् ) उस ( अहसः ) अधर्माचरण से ( नः ) हम लोगों की ( पाहि ) रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—हे न्यायाधीश ! जो करने के बिना अपराध को स्थापित करते हैं उन के लिए आप तीव्र दण्ड को दीजिये ॥ ३१ ॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वं तं देव जिह्या परि वाधस्व दुष्कृतम् ।

मर्तो यो नो जिघांसति ॥ ३२ ॥

पदार्थ—हे ( देव ) विद्यायुक्त न्यायाधीश ( त्वम् ) आप ( यः ) जो ( मर्तः ) मनुष्य ( नः ) हम लोगों की ( जिघांसति ) मारने की इच्छा करता है ( त्वम् ) उस ( दुष्कृतम् ) दुष्ट कर्म करनेवाले को ( जिह्या ) बाणी से ( परि ) सब ओर से ( वाधस्व ) पीड़ित करिये ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—हे राजन् वा विद्वन् ! जो न्यायधर्म का त्याग कर के पक्षपात से अधर्म करता है उसका शीघ्र निरन्तर दण्ड दीजिये ॥ ३२ ॥

भरद्वाजाय सप्रथः गर्भं यच्छ सहस्रम् । अग्ने वरेण्यं वसु ॥३३॥

पदार्थ—हे ( सहस्रम् ) शान्त जनो में हुए ( अग्ने ) दाता जन आप ( भरद्वाजाय ) विज्ञान और अन्न को धारण किये हुए जन के लिये ( सप्रथः ) पण्डित के सहित वर्तमान ( गर्भं ) गृह को और ( वरेण्यम् ) स्वीकार करने योग्य ( वसु ) द्रव्य को ( यच्छ ) दीजिये ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—हे श्रेष्ठ गृहस्थ ! आप सदा ही सुपात्र धार्मिकजन के लिए दान दीजिये ॥ ३३ ॥

अग्निर्वाणि जड्धनद् ब्रविणस्युर्विपन्यया ।

समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ३४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् उद्योगवाले जैसे ( शुक्रः ) शीघ्रकारिणी ( समिद्धः ) प्रदीप्त ( अग्निः ) बिजुली ( वाणि ) धनो को ( जड्धनत् ) अत्यन्त प्राप्त होती है वैसे ( ब्रविणस्यः ) अग्ने धन की इच्छा करनेवाले ( आहुतः ) सब प्रकार सत्कार को प्राप्त आप ( विपन्यया ) विशिष्ट उद्यम से धनो का प्राप्न होओ ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—जो निरन्तर उद्यम करते वे दागिद्वय का नाश करते हैं ॥ ३४ ॥

फिर ईश्वर कंसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गर्भं मातुः पितुर्पिता विद्वितानो अक्षरं ।

सीदन्नतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥ २७ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जो ( अक्षरं ) नहीं नाश होनवाले अपने रूप, कारण वा जीव में ( जटस्य ) मृत्यु के ( योनिम् ) गृह को ( आ ) सब ओर में ( सीदन् ) प्राप्त होता हुआ ( मातुः ) माता का जैसे वैसे भूमि का और ( पितुः ) पिता का जैसे वैसे सूर्य का ( पिता ) पालक और ( गर्भं ) गर्भ में ( विद्वितानः ) विशेष करके प्रकाशमान है उसको सम्पूर्ण सत्कार का जनक जानो ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न करनेवालों का उत्पादक, प्रकाशको का प्रकाशक है उसकी सब लोग उपासना करें ॥ ३५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले

मन्त्र में कहते हैं—

अक्षं प्रजावदा मरु जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यदीदर्यद्वि ॥३६॥

पदार्थ—हे ( जातवेदः ) धन से युक्त ( विचर्षणे ) बुद्धिमान् ( अग्ने ) अग्नि के समान गृहस्थ ( यत् ) जो ज्योति ( विधि ) प्रकाश में ( यदीदर्यत् ) प्रकाशित करती है उससे ( प्रजावत् ) प्रजा में विद्यमान जिसमें उस ( ब्रह्म ) धन वा धन को ( आ, मरु ) सब प्रकार से आरण वा पोषण करिये ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि में, जो सूर्य में और जो बिजुली में तेज है उसके विज्ञान से धन और धान्य की उन्नति करिये ॥ ३६ ॥

मनुष्य कंसी वाणी को प्रयुक्त करे इस विषय को कहते हैं—

उप त्वा रण्वसन्धश्च प्रयस्वन्तः सहस्रकृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥

पदार्थ—हे ( सहस्रकृत ) सहस्रा कार्यकर्त्ता ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् ( प्रयस्वन्तः ) प्रयत्न करते हुए हम लोग जिन ( गिरः ) वाणियों को ( ससृज्महे ) अत्यन्त प्रकट करें उनसे ( रण्वसन्धश्च ) रमणीय के तुल्य ( त्वा ) आपको ( उप ) समीप में अत्यन्त प्रकट करें ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने प्रयोजन की प्रिय वाणी हृदय को प्रिय होती है वैसे अन्य जनो के प्रयोजन को भी समझें ॥ ३७ ॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

उप ह्यमिब घृणेरगन्म शुर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसन्धश्च ॥३८॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( ते ) आपके ( घृणे ) प्रदीप्त सूर्य से ( ह्यमिब ) छाया को जैसे वैसे ( शुर्म ) गृह को ( हिरण्यसन्धश्च ) तेज के सदृश समान दर्शन जिनका ऐसे ( वयम् ) हम लोग ( उप ) समीप ( अगन्म ) प्राप्त होवें ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वन् ! हम लोग सब ऋतुओं में हुए सूर्य को जैसे वैसे प्रकाशमान आपके गृह को प्राप्त होकर छाया के सदृश सेवन करें ॥ ३८ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले

मन्त्रों में कहते हैं—

य उग्रैव शर्यहा तिम्रमृद्गु न वंसगः । अग्ने पुरो क्रोजिष ॥३९॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के सदृश तेजस्वी ( यः ) जो आप ( वसन्तः ) सेवन करने योग्य आग्रह को प्राप्त होने और ( शर्यहा ) मारने योग्य को मारने वाले ( तिम्रमृद्गुः ) तीव्र श्रुतों के सदृश किरणों वाले सूर्य के ( न ) समान मनुष्यों के ( पुरः ) मार्गे ( उग्रैव ) तेजस्वी जन जैसे वैसे ( क्रोजिष ) भग्न करते हैं उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा आदि अधिकारी जन सूर्य जैसे तेजस्वी हों वे मनुष्यों के जीतने को समर्थ हों ॥३६॥

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न विभ्रति ।

विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ४० ॥ २८ ॥

पदार्थ—जो ( यम् ) जिसको ( हस्ते ) हाथ में ( खादिनम् ) भक्षण करने वाले के ( न ) समान और ( जातम् ) उत्पन्न हुए ( शिशुम् ) बालक के ( न ) समान ( विशाम् ) मनुष्यादि प्रजाओं के ( स्वध्वरम् ) सुन्दर यज्ञ जिससे हो उस ( अग्निम् ) प्रकाशमान अग्नि को ( आ, विभ्रति ) सब ओर से धारण करत है वे उससे कृतकृत्य होते हैं ॥४०॥

पदार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यों! जो हाथ में आवले को जैसे जैसे गोदी में लडके को जैसे जैसे अग्निविद्या को जानते हैं वे प्रजा के स्वामी होते हैं ॥४०॥

किं मनुष्यों को क्या प्राप्त करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

प्र देवं देववीतये भरता वसुविचमम् । आ स्वे योनौ नि पीदतु ॥४१॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो आप लोग ( देववीतये ) श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये ( वसुविचमम् ) अविशय धन को जानने और ( देवम् ) देनवाले को ( स्वे ) अपने ( योनौ ) गृह में ( प्र, आ, भरता ) उत्तमता से अच्छे प्रकार धारण करिये वा हरिये जिससे मनुष्य सुख में ( नि, पीदतु ) निरन्तर स्थिर हों ॥४१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों! आप श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों को जानिये ॥४१॥

विद्वानो को चाहिए कि श्रेष्ठ गृहस्थों का सत्कार करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ( जातवेदसि ) प्राप्त हुई विद्या जिसमें उसम ( आ, जातम् ) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध ( प्रियम् ) प्रिय ( अतिथिम् ) अतिथि के समान वर्तमान को ( स्योने ) सुख में ( गृहपतिम् ) गृह के स्वामी को ( आ, शिशीत ) अच्छे प्रकार तीक्ष्ण करिये ॥४२॥

भाषार्थ—जा व्याप्त बिजुली को प्रज्वलित करान है वे सब स्थानों में विजय आदि को प्राप्त हान है ॥४२॥

अग्नें युक्त्वा हि ये तवाञ्वासो देव साधवः ।

अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ४३ ॥

पदार्थ—हे ( देव ) श्रेष्ठ गुण के देन और ( अग्ने ) शिल्प प्रिया की कुशलता को जाननेवाले विद्वान् ( ये ) जा ( साधवः ) श्रेष्ठ गमन वाले ( तव ) आपके ( अञ्वास ) वेग आदि गुण ( मन्यवे ) क्राध के निय ( अरम् ) समर्थ को ( वहन्ति ) प्राप्त होने है उनको ( हि ) ही आप वाहना में ( युक्त्वा ) समुक्त करिये ॥४३॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन अग्नि आदि का योजन गाहनों में करत है वे पूर्ण मनोरथ वाले होत हैं ॥४३॥

मनुष्यों को किसका सत्कार करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अच्छा नो युष्मा बहामि प्रयांसि वीतये । आ देवान्सोमपीतये ॥४४॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप ( न ) हम लोगों को ( अच्छा ) उत्तम प्रकार ( सोमपीतये ) सामलतारूप ओषधि के रस के पान के लिए ( आ, यांसि ) सब ओर से प्राप्त हुआ और ( प्रयांसि ) अत्यन्त प्रिय वस्तुओं को ( अभि ) चारों ओर से ( आ ) सब प्रकार ( वह ) प्राप्त होओ और ( वीतये ) ज्ञान के लिए ( देवान् ) विद्वानों को सब ओर से प्राप्त होओ ॥४४॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार के लिये विद्वानों का आन्धान करें ॥४४॥

किं मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

उदग्ने भारत द्यमदजसेण दविद्युत् । शोचा वि भासजर ॥४५॥ २९॥

पदार्थ—हे ( भारत ) धारण करनेवाले ( अजर ) जरा दोष से रहित ( अग्ने ) विद्वन् आप ( अजसेण ) निरन्तर ( द्युत् ) प्रकाश वाले को ( दवि )

द्युत् ) प्रकाशित करने हो उसके लिये आप ( द्युत्, शोचा ) अत्यन्त प्रकाशित हूजिये और ( वि, भासि ) विशेष कर के प्रकाशित करिये ॥४५॥

भाषार्थ—जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य निरन्तर प्रकाशित होता है वैसे ही विद्वान् जन सत्य व्यवहार में प्रकाशित हो ॥४५॥

मनुष्यों को किस की उपासना करनी चाहिए इस विषय को अगले

मन्त्रों में कहते हैं—

वीती यो देवं मत्तो दुवस्येदग्निमीलीताध्वरे हविष्मान् ।

होतारं सत्ययज्ञं रोदस्योरुचानहंस्ती नमसाऽऽविवासेत् ॥४६॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ( य ) जो ( हविष्मान् ) बहुत दान करनेवाला ( उचानहस्त ) ऊपर स्थित हस्त जिसके ऐसा ( मत्तः ) मनुष्य ( वीती ) कामना से ( अध्वरे ) अधिमा आदि लक्षणयुक्त योग में जिस ( होतारम् ) दान करनेवाले ( सत्ययज्ञम् ) सत्य प्राप्त करानेवाले ( देवम् ) मनोहर ( अग्निम् ) अग्नि के समस्त स्वयं प्रकाशित परमात्मा का ( दुवस्येत् ) सेवन करे और ( रोदस्यो ) अन्तर्दिश और पृथिवी के ( नमसा ) सत्कार में ( आ, विवासेत् ) अच्छे प्रकार सेवन करे उस परमात्मा की आप लोग ( ईलीत ) प्रशंसा करो ॥४६॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों! जिस जगदीश्वर की योगी जन उपासना करते हैं उसकी आप लोग भी उपासना करो ॥४६॥

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भ्रामसि ।

ते ते भवन्तु ऋषभां ऋषभामो वशा उत ॥४७॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) जगदीश्वर! जिन ( ते ) आपके ( हविः ) अन्तःकरण और ( तष्टम् ) अत्यन्त शुद्ध किय गये स्वरूप को हम लोग ( ऋचा ) प्रशमारूप ऋग्वेद आदि से और ( हृदा ) हृदय में ( आ, भ्रामसि ) अच्छे प्रकार पापण करते हैं उन ( ते ) आपकी कृपा में हमारे और ( ते ) आपके सम्बन्धी ( उक्षण ) सेवन करनेवाले ( ऋषभांस ) उत्तम ( उत ) भी ( वशा ) कामना करते हुए ( भवन्तु ) हों ॥४७॥

भाषार्थ—जो मन्यभाव से और धन्य कर्ण से जगदीश्वर की आज्ञा का सेवन करत है वे सब प्रकार में उत्कृष्ट जात हैं ॥४७॥

अब ईश्वरविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अग्निं देवांसो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।

येना वसुन्याभृता तृच्छा रभोसि वाजिना ॥४८॥ ३०॥ ५॥

पदार्थ—हे मनुष्या जैसे ( देवास ) विद्वान् जन ( वृत्रहन्तमम् ) मेघ के अत्यन्त नाश करनेवाले और ( अग्रियम् ) भाग प्रकट हुए ( अग्निम् ) अग्नि का ( इन्धते ) प्रकाशित करने हैं और ( येना ) जिन ( वाजिना ) वेग वा विज्ञान में ( आभृता ) चारों ओर से धारण किय गये ( वसुनि ) धनों को प्रकाशित करत है और ( रभोसि ) दुष्ट जनो को ( तृच्छा ) हसित करते हैं वैसे ही दोषों का नाश करके परमात्मा का प्रकाशित करने है इस प्रकार आप लोग भी करा ॥४८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यज्ञ करनेवाले जन यज्ञ में वेदी पर अग्नि का प्रज्वलित कर के हवन की सामग्री छोड़ के संसार का उपचार करत है वैसे ही योग में युक्त सन्यासी जन परमात्मा का सबक हृदय में अच्छे प्रकार प्रकाशित कर के दावों का नाश करते हैं ॥४८॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

इस अध्याय में अग्नि, विष्वेदेव, सूर्य, इन्द्र, वैश्वानर, वायु, यज्ञ, राजधर्म, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की हमसे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत् विरजामन्त्र सरस्वती स्वामीजी के शिष्य परम विद्वान् श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी से रचे गये ऋग्वेदभाष्य

में चतुर्थ अष्टक में पंचम अध्याय, तीसरी सर्ग और छठे

मण्डल में सोलहवां सूक्त भी समाप्त हुआ ॥

॥





## अथ षष्ठाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितरुदितानि परां सुव । यद्भद्रं तन्न मा सुव ॥१॥

अथ यजुर्वेदस्य सप्तमोऽध्यायः प्रथमः । इन्द्रो देवता ।

१, २, ३, ४, ११, विष्टुप् । ५, ६, ७, विराट्विष्टुप् । ८, ९, १०, १२, १४, विष्टुप् । १३ स्वरः । १३ स्वरः । १३ स्वरः ।

पञ्चमः स्वरः । १५ आर्षुः । १५ आर्षुः । १५ आर्षुः ।

अथ यजुर्वेदस्य सप्तमोऽध्यायः प्रथमः । इन्द्रो देवता ।  
सुक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम-द्वितीय मन्त्र में फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द उर्वं गव्यं महिं गृणान इन्द्र ।

वि यो धृंणो बधिषो वज्रस्त विष्वा वृत्रमभिधिया शवोभिः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के ( विष्णो ) अत्यन्त दृढ़ ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले ( यः ) जो ( शवोभिः ) बलों से ( वृत्रम् ) मेघों को सूर्य जैसे बँसे ( विष्वा ) सम्पूर्ण ( अभिधिया ) मनुष्यों को आप ( वि ) विशेष करके ( बधिषः ) नाश करिय और हे ( उग्र ) तेजस्विन् ( महि ) बड़े ( गव्यम् ) गोश्रो के घृत की ( गृणान् ) स्तुति करते हुए ( यम् ) जिस ( वज्रम् ) हिमा करने योग्य की ( अभि, तर्द ) हिमा करिये उसके सम्बन्ध में वह आप ( सोमम् ) महीवधि के रस को ( पिब ) पीजिये ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, विद्या और सत्कर्म से दुष्टों को दूर करके श्रेष्ठों का स्वीकार करते हैं वे मनुष्यों का नाश करते हैं ॥१॥

स ई पाहि य ऋजीवी तरुभो यः शिप्रवान वृषभो यो मतोनाम् ।

यो गौत्रमिदं जृष्टो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्रां अभि तृन्धि वाजान् ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दुष्टों के विदीर्ण करनेवाले ( यः ) जो ( ऋजीवी ) सरलस्वभाव ( तरुभः ) सम्पूर्ण दुःख से उत्तीर्ण हुए आप हैं ( स ) वह आप ( ईम् ) प्राप्त वस्तु का ( पाहि ) पालन करिये और ( यः ) जो ( शिप्रवान् ) सुन्दर ठुहड़ी और नासिका वाले ( वृषभः ) बलिष्ठ और ( यः ) जो ( मतोनाम् ) मनुष्यों के मध्य में बलिष्ठ ( यः ) जो ( जृष्टम् ) वज्र का धारण करने वाले ( गौत्रमि ) गोत्र के नाश करनेवाले हैं ( यः ) जो ( हरिष्ठाः ) अतिशय हरनेवाले हैं ( सः ) वह आप ( चित्रान् ) प्रदुभुत ( वाजान् ) हिसको का ( अभि, तृन्धि ) सब और से नाश करिये ॥२॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो प्रजा के रक्षक, दुष्टों से हिसक जन हों उनका आप सत्कार करिये ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

एवा पाहि प्रन्था मन्दतु तवा भुधि ब्रह्म वाधुस्वोत गीभिः ।

आभिः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दुष्टों के नाश करनेवाले ( प्रन्था ) प्राचीन जन जैसे बँसे आप ( ब्रह्म ) वेद की ( पाहि ) रक्षा कीजिये और जो वेद ( तवा ) आपकी ( मन्दतु ) प्रशंसा करे उसको आप ( भुधि ) सुनिये उससे ( वाधुस्वोत ) बधिये और ( उत ) भी ( गीभिः ) वाणियों से ( सूर्यम् ) परमेश्वर का ( आभिः ) प्राकट्य ( कृणुहि ) करिये तथा ( इधः ) धन का ( पीपिहि ) पान करिये और ( शत्रून् ) मनुष्यों का ( अभि, तृन्धि ) सब प्रकार से नाश करिये और वीर्यों का ( जहि ) त्याग करिये और ( गा ) पृथिवियों को ( एवा ) ही प्राप्त कीजिये ॥३॥

भाषार्थ—जो शत्रु से परमेश्वर की उपासना करके विद्याधियों की परीक्षा करते हैं वे अणु के प्रिय होते हैं ॥३॥

फिर राजा और प्रजा जन परस्पर कौसा वर्तन करें इस

विषयको अगले मन्त्रों में कहते हैं—

से स्वा मदां बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त यमन्तम् ।

महामर्तनं तवसं विभूति मस्सरासो जह्वन्त वसाहम् ॥४॥

पदार्थ—हे ( स्वधाव ) बहुत अन्न से युक्त और ( इन्द्र ) ऐश्वर्ययुक्त जो ( इमे ) मे ( पीताः ) पान किये गये ( मदाः ) आनन्द और ( यमन्तम् ) आनन्द करते हुए जन ( यमन्तम् ) बहुत मनोरमों से युक्त ( बृहन् ) बड़े ( मर्तनम् ) मूलता से रहित ( तवसम् ) बलिष्ठ ( विभूतिम् ) बड़े ऐश्वर्य से

युक्त ( वसाहम् ) अत्यन्त सहनेवाले को ( बृहन् ) बहुत ( उक्षयन्त ) मेघन करते हैं और ( जह्वन्त ) अत्यन्त प्रसन्न हो ( ते ) वे ( स्वा ) आप का सत्कार करें ॥४॥

भाषार्थ—जिन सज्जनों का राजा सत्कार करें वे राजाओं को भी प्रसन्न करें ॥४॥

येभिः सूर्यमुपसं मन्दसानोऽवांसयोऽप इक्षानि दद्रेत् ।

महामर्ति परि गा इन्द्र सन्तं नुस्था अच्युतं सदमः परिस्थात् ॥५॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् ( मन्दसानः ) कामना करते हुए आप ( येभिः ) जिन से ( सूर्यम् ) सूर्य और ( उक्षयन्त ) प्रातर्वेला को जैसे बँसे ( गाः ) पृथिवियों को ( परि, अवांसयः ) सब प्रकार बसाइये तथा ( इक्षानि ) दृढ़ पदार्थों को ( अप, ब्रह्मन् ) पुष्ट करिये उनसे ( महाम् ) बड़े ( अक्षिम् ) मेघ के समान ( सन्तम् ) वर्तमान ( अच्युतम् ) नाश से रहित को ( स्वात् ) अपने से ( सदमः ) नभा से ( परि ) चारों ओर ( नुस्थाः ) प्रेरित करिये ॥५॥

भाषार्थ—वही राजा श्रेष्ठ होता है जो दुष्टों को विदीर्ण कर के श्रेष्ठों की सभा से सम्पूर्ण प्रजाओं का शासन करता है ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तव क्रत्वा तव तद्वसनाभिरामासु पक्वं अच्य नि दीधः ।

और्णोदुरं उस्त्रियाभ्यो वि दृहोदुर्वाङ्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( तव ) आप की ( क्रत्वा ) बुद्धि से और ( तव ) आप के ( वसनाभिः ) कर्मों से हम लोग ( आभामु ) नहीं पाकदशा को प्राप्त हुओं मे ( तत् ) उस ( पक्वम् ) उत्तम प्रकार सत्कारयुक्त विज्ञान को प्राप्त होवें और आप इस को ( अच्य ) बुद्धि वा प्रजा से ( नि, दीधः ) धारण करात हो और जो ( उस्त्रियाभ्यः ) किरणों से ( दुरः ) गृहद्वारों को ( और्णो ) आच्छादित करे तथा ( उर्वात् ) हिसन से ( गा ) भूमियों की ( उत्त, असृजः ) अच्छे प्रकार रचे और ( अङ्गिरस्वान् ) बहुत प्रकार के प्राण विद्यमान जिसमें वह ( बृहो ) दृढ़ों को ( वि ) विशेष करके रचे उस का हम लोग सत्कार करें ॥६॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त होकर सब का सत्कार करते हैं वे राज्य को प्राप्त हो कर सूर्य के सदृश प्रकाशित होते हैं ॥६॥

पथाथ कां महि दंसो व्युर्वीमुप घामृषो बृहदिन्द्र स्तभायः ।

अघारयो रोदसी देवपुत्रे प्रन्ते मतरां यद्वा क्रतस्य ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के सदृश ऐश्वर्य करनेवाले जैसे सूर्य ( महि ) बड़े ( वसः ) कर्मों को ( उर्वीम् ) विस्तृत ( घाम् ) भूमि को और ( घाम् ) प्रकाश को ( वि, उप, पथाथ ) विशेष कर समीप में पूरित करता है और ( अघारः ) बड़ा महात्मा जन ( बृहत् ) बड़े को ( स्तभायः ) स्तम्भन करना है वैसे आप पूरित कीजिये और जैसे यह सूर्य ( अघारः ) सत्य कारण के समीप से प्रकट हुए ( देवपुत्रे ) विद्वानों के पुत्र के समान वर्तमान ( प्रन्ते ) प्राचीन ( मातराः ) माता के सदृश आदर करनेवाले ( यद्वा ) बड़े ( रोदसी ) भूमि और सूर्य लोक को धारण करता है वैसे आप ( अघारः ) धारण करते हो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य भ्रमणों को धारण करके पिता के सदृश संपूर्ण प्रजाओं का पालन करता है वैसे ही आप लोग यहाँ वर्तन करो ॥७॥

फिर मनुष्यों को कौन उपासना करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

अथ तवा विधे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।

अद्वेवो यदभ्योहिष्ठ देवान्स्वर्वाता वृणत इन्द्रमत्र ॥८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले स्वामिन् जगदीश्वर जो ( विधे ) सम्पूर्ण ( देवाः ) विद्वान् जन ( भराय ) पालन के लिए ( तवा ) आप ( एकम् ) जिन के समान दूसरा नहीं जन ( तवसम् ) बल प्रादि के बढ़ानेवाले को ( पुरः ) आगे ( दधिरे ) धारण करते हैं उनको आप विज्ञान से धारण करने हो और ( यत् ) जो विद्वान् जन और जो ( स्वर्वाताः ) सुखों का विभाग करनेवाला ( अद्वेवः ) प्रकाश से रहित ( देवान् ) विद्वानों के ( अभि ) सम्मुख ( ओहिष्ठ ) विशेष करके तर्कित करता और संज्ञान को नहीं प्राप्त होता है और जो ( अत्र ) इस संसार में ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त का ( वृणते ) स्वीकार करते हैं वे ( अत्र ) इस के धनन्तर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥८॥

भाषार्थ—जो मनुष्य परमात्मा ही की उपासना करते हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं और जो बिद्या से हीन होकर विद्वानों के साथ कुतर्क करता है वह कुछ भी पढ़ा नहीं पाता है ॥ ८ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अथ द्यौश्चिरे अथ सा तु वज्राद् द्वितानमद्भ्यसा स्वस्य मन्योः ।

अङि यद्विन्दो अभ्योहसानं नि चिद्विवायुः शयये ज्ञानं ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत् ) जो ( इन्द्र ) सूर्य ( ओहसानम् ) तक से जानने योग्य ( अहिम् ) मेघ का ( अभि ) सब ओर से ( ज्ञानम् ) नाश करता है वैसे जो ( चित् ) कोई ( विद्वान् ) सम्पूर्ण अवस्था से मुक्त ( नि ) निरन्तर ( शयये ) शयन करता है ( अथ ) इसके अनन्तर जो ( द्यौः ) कामना करती हुई ( चित् ) भी ( वज्रात् ) बिजुली के प्रहार से ( भियसा ) भय से ( द्विता ) दो प्रकार ( अमलम् ) नमती है वैसे हे विद्वान् ( स्वस्य ) अपने ( मन्योः ) कोष से ( सा ) वह ( नु ) निश्चय से ( ते ) आपका दुःख ( अथ ) दूर करे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग सूर्य और मेघ के सदृश वस्तु करके परस्पर पालन करो ॥ ९ ॥

अब राजपुत्र कैसा बर्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

अथ स्वष्टां ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टं वदतच्छताश्रिम् ।

निकाममरमणसं येन नवन्तमहि सं पिणगृजीविन् ॥१०॥२॥

पदार्थ—हे ( ऋजीविन् ) मरल स्वभाववाले ( उग्र ) तेजस्विन् ( ते ) आप के हस्त में ( मह ) बड़े ( सहस्रभृष्टम् ) हजारों का ध्वन करने और ( तातश्रिम् ) सैकड़ों का आश्रय करनेवाले और ( भिक्वायम् ) नित्य कामना किये जाने ( अरमण-सम् ) जिस में नहीं रमते हैं शत्रु उस ( वज्रम् ) शस्त्रविशेष को धारण करता है ( अथ ) इस के अनन्तर ( येन ) जिससे ( स्वष्टा ) छेदन करनेवाले आप ( नवन्तम् ) स्तुति करते हुए नम्र के सदृश को ( अहिम् ) मेघ को जैसे सूर्य वैसे ( सम्, पिणगृ ) अच्छे प्रकार पीसते हैं तथा ( वज्रम् ) वर्णाव करने हैं उन आपको हम लोग भी धारण करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालकार है । हे वीरपुरुषो ! जैसे धनु-बंद के जाननेवाले वीरपुरुष शस्त्रों को धारण करें वैसे आप लोग भी धारण करो ॥ १० ॥

वर्धान्यं चिन्मं महतः सजोषाः पचच्छतं महिषा इन्द्र तुभ्यम् ।

पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि चावन्वृत्रहर्णं मदिरमं शुभस्मै ॥११॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान वर्तमान राजन् ( सजोषा ) तुल्य प्रीति के सेवनेवाले ( चिन्मं ) सम्पूर्ण ( अक्षतम् ) मनुष्य ( यम् ) जिन आप की ( वज्रम् ) वृद्धि करें और जो ( पूषा ) पुष्टि करनेवाला ( चावन् ) दोड़ता हुआ ( विष्णुः ) व्यापक बिजुलीरूप ( स्त्रीणि ) तीन ( सरांसि ) चलते हैं जिन में उन अन्नरिक्त आदिकों को व्याप्त होता है वैसे दोड़ते हुए ( अस्मै ) इस के लिए ( मदिरम् ) आनन्द करनेवाले ( अश्वम् ) विभक्त ( वृत्रहर्णम् ) मेघ को जैसे सूर्य वैसे शत्रुओं को मारता है और जो ( तुभ्यम् ) आप के लिए ( शतम् ) सौ ( महिषान् ) बड़े पदार्थों को देता है और जो परोपकार के लिए ( पचत् ) पाक करे उसको आप लोग जानिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जैसे प्रजाजन राजा और राज्य को बढ़ावें वैसे राजा इनकी निरन्तर वृद्धि करे ॥ ११ ॥

अब राजा आदि क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आ ओदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।

तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्राद्वयो नीचैरपसः समुद्रम् ॥१२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान वर्तमान राजन् जैसे सूर्य ( नदीनाम् ) नदियों के ( महि ) बड़े ( वृतम् ) स्वीकार किये गये ( परिष्ठितम् ) सब ओर से वर्तमान ( ओव ) जल को और ( अपाम् ) जलो की ( ऊर्मिम् ) तरंग को ( असृज ) उत्पन्न करता है ( तासाम् ) उन के ( प्रवत ) नीचे स्थान से ( अन् ) पश्चात् ( पन्थाम् ) मार्ग को ( अपसः ) कर्म की ( नीचोः ) नीचली भूमियों को और ( समुद्रम् ) अन्तरिक्ष वा बड़े समुद्र को ( प्र, आ, आर्षयः ) प्राप्त कराता है वैसे आप सेना और प्रजा को सुख प्राप्त कराके शत्रुओं को नीची दशा को प्राप्त कराइये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालकार है । जो राजा आदि जन सूर्य के सदृश वर्तमान हैं वे प्रजापालन और शत्रु के निवारण करने को समर्थ होते हैं ॥ १२ ॥

फिर राजा और प्रजाजन कैसा बर्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

एवा ता विश्वा चक्रुवांसमिन्द्रं महामुग्रमंजुर्यं सहोदाम् ।

सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे वदत्यात ॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् जो ( ता ) उन ( विश्वा ) सम्पूर्णों को और ( चक्रुवांसम् ) करते हुए ( महाम् ) बड़े ( उग्रम् ) तेजस्वी ( अजुर्यम् ) नहीं जीर्ण हुए ( सहोदाम् ) बल के देनेवाले ( स्वायुधम् ) उत्तम शस्त्र के चलाने में अतुर ( सुवज्रम् ) प्रशस्त

वज्ररूप धारण के चलाने में समर्थ ( सुवीरम् ) उत्तम वीरों से युक्त ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्यवाले शत्रु के नाशक ( एवा ) आप की ( एव ) ही ( अवसे ) रक्षण आदि के लिये और न्याय करने के लिये ( आ, वदत्यात् ) सब ओर से बर्ताव करे वह ( नव्यम् ) नवीनो में हुए ( ब्रह्म ) बड़े धन वा धन को बढ़ाने को समर्थ होते ॥ १३ ॥

भाषार्थ—पिता के सदृश प्रजाओं के पालक, धनुर्वेद राजनीति और युद्ध-विद्या में कुशल राजा की सब लोच वृद्धि करे और इन लोगों की यह राजा निरन्तर वृद्धि करे ॥ १३ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

स नो वाजाय अवस इषे च राये धेहि धमत इन्द्र विमान् ।

भरद्वाजे नृवतं इन्द्र सूरिन्दिवि च स्मेधि पायै न इन्द्र ॥१४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले ( सः ) वह राजा आप ( धमत ) विज्ञान के प्रकाश से युक्त ( न ) हम लोगों ( विमान् ) बुद्धिमान् विद्वानों को ( वाजाय ) वेग वा विज्ञान के लिये ( अवसे ) ध्वन के लिये ( इषे ) अन्न के लिये और ( राये ) धन के लिये ( च ) भी ( धेहि ) धारण करिये और हे ( इन्द्र ) दुःख और दारिद्र्य के विनाशक आप ( नृवतम् ) अच्छे मनुष्यों से युक्त हम ( सूरिन् ) विद्वानों को ( भरद्वाजे ) राज्य के पुष्ट करने वा पालन करनेवाले व्यवहार में और ( दिवि ) सुन्दर न्याय के प्रकाश में ( च ) भी धारण करिये और हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य के बढ़ानेवाले आप ( पायै ) पात्र करने योग्य में भी ( न ) हम लोगों के बढ़ानेवाले ( स्म ) ही ( एधि ) होओ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—राजाओं को योग्य है कि सम्पूर्ण अधिकारों में सम्पूर्ण विद्याओं में अतुर, धार्मिक, कुलीन और राजभक्तों को संस्थापित कर के सब प्रकार से राज्य की उन्नति करें ॥ १४ ॥

अथा बाजं वेवहितं सनेम मदम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥३॥

पदार्थ—हे राजन् ( अथा ) इस नीति में ( शतहिमाः ) भी वर्ष पर्यन्त जीवनेवाले ( सुवीराः ) उत्तम वीर जनों से युक्त हुए हम लोग ( वेवहितम् ) विद्वानों के लिये हितकारी ( वाजम् ) विज्ञान का ( सनेम ) विभाग करें और ( मदम ) आनन्द करें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—राजा का चाहिये कि विद्वानों का सग ओष विनय से राज्यपालन के लिये उत्तम वीर जनों को अधिकृत करें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, राजा, मन्त्री और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह सत्रहवां सूक्त और तीसरा वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ पञ्चवक्त्रस्यष्टावक्षस्य सुक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋचिः । इन्द्रो

देवता । १, ४, ८, १४ निचुत्तिष्ठत्पु । २, ८, ११, १३ विष्टुपु ।

७, १० विराटविष्टुपु । १२ भुरिकविष्टुपु । वेवत स्वर ।

३, १५ भुरिकपति । ५ स्वराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः

स्वर । ६ ब्राह्मण्युक्ताः । ऋचम स्वरः ॥

अब पन्च ऋचावाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

तमुं पृहो यो अभिभूत्योजा वन्वसवातः पुरुहूत इन्द्रः ।

अपां ह्रमग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् ( यः ) जो ( अभिभूत्योजा ) अभिभव अर्थात् शत्रुओं के पराजय करने के लिये पराक्रम से युक्त ( अवातः ) नहीं हिसित ( पुरुहूतः ) बहुतों से प्रशंसित ( वन्वत् ) विभक्त करता हुआ ( इन्द्रः ) दुःख को विदीर्ण करनेवाला है ( तम् ) उस ( अपां ह्रमम् ) नहीं सहने योग्य ( उग्रम् ) तीव्र स्वभाववाले और ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों में ( वृषभम् ) प्रतिश्रेष्ठ और ( सहमानम् ) शत्रुओं के वेग को सहनेवाले की ( आभि ) इन ( गीर्भिः ) वाणियों से ( स्तुहि ) स्तुति करिये ( उ ) और उसमें ( वर्ध ) वृद्धि को प्राप्त हजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप सदा स्तुति करने योग्य की स्तुति करिये, निन्दा करने योग्य की निन्दा करिये, तथा सत्कार करने योग्य का सत्कार करिये और दण्ड देने योग्य को दण्ड दीजिये ॥ १ ॥

स युध्मः सत्वां स्वजकुत्समदां तुविम्रसो मदनुमां ऋजीवी ।

वृहद्रेणुरूपवनो मातृषीणामेकः कुष्टीनाममवत्सहावा ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् जो ( युध्मः ) युद्ध करनेवाला ( सत्वा ) बलवान् ( सहावा ) अच्छे प्रकार स्वादु भोजन करनेवाला ( तुविम्रसः ) बहुत स्नेहयुक्त ( नवभुसाद् ) बहुत शब्द विद्यमान जिस में ऐसा और ( ऋजीवी ) सरल चलने वाला ( वृहद्रेणुः ) बड़ी धलि जिस में वह ( च्यवनः ) जानेवाला ( मातृषीणाम् ) मनुष्य सम्बन्धनी सेनाओं और ( कुष्टीनाम् ) मनुष्यों के मध्य में ( एकः ) सहायक ( सहावा ) सहनशील ( स्वजकुत् ) मंथन करनेवाला वीर ( अवत्स ) होवे ( सः ) वही आप से राज्य की रक्षा के निमित्त नियुक्त करने योग्य है ॥ २ ॥

भाषार्थ—राजा को चाहिए कि राजकर्मचारी को उत्तम प्रकार परीक्षा करके राज्य-व्यवहार में नियुक्त करे जिससे प्रजा के सुख की वृद्धि हो ॥ २ ॥

किं राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

सं हि नृ स्यदंमयो वर्युरेकः कुहीरवनोराय्यौय ।

अस्ति स्विन्नु वीर्यैः तर्च इन्द्र न स्विदस्ति तद्वदुथा वि वीचः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् जो ( ते ) आप का ( वीर्यम् ) वन ( अस्ति ) है ( स्विन्नु ) क्या ? ( नृ ) शीघ्र जो ( न ) नहीं ( अस्ति ) है और ( स्विन्नु ) भी ( वदुथा ) बहुत जैसे जैसे जो ( वि, वीचः ) कहते हो ( तत् ) उस का ( त्वम् ) आप ( अवनोः ) सेवन करिये ( तत् ) वह मेरा हो और ( वदुथा ) दुष्ट चोरों को ( एकः ) सहाय्यरहित हुए आप ( अवनोः ) दान करिये वह आप ( इ ) निश्चय ( कुहीरः ) मनुष्यों को ( वीर्यैः ) हिंस के लिये ( नृ ) शीघ्र उत्तम प्रकार सेवन करिये ( त्वम् ) उस को हम लोग भी ऐसे करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—राजाओं का यह मुख्य कर्म है कि सम्पूर्ण दुष्ट चोरों का निवारण करके प्रजाओं का पालन करें ॥ ३ ॥

किं वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सदिदि ते तुविजातस्य मन्वे सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।

उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽग्रस्य १धतुरो वभूव ॥४॥

पदार्थ—हे ( सहिष्ठ ) अतिशय सहनेवाले ( तुविजातस्य ) बहुतो मे प्रसिद्ध जिन ( ते ) आप का जो ( हि ) निश्चित ( सह ) बल है उस को ( तत् ) नित्य होनेवाला पदार्थ मैं ( मन्वे ) मानता हूँ तथा ( तुरतः ) शीघ्र करनेवाले ( तुरस्य ) शीघ्र धारण करनेवाले ( उग्रस्य ) तीव्र और ( अग्रस्य ) नहीं हिंसा करनेवाले के ( तवसः ) बल से ( उग्रम् ) तीव्र ( तवीयः ) अतिशय बल को मैं मानता हूँ वह आप ( उग्रतुरः ) हिंसकों के हिंसक ( इत् ) ही ( वभूव ) होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि जिसमें जैसे गुण कर्म और स्वभाव होवें वैसे ही मानें ॥ ४ ॥

किं मनुष्यों को परस्पर कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

तर्चः प्रश्नं सख्यमस्तु युष्मे इथा वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।

हमच्युतच्युदस्मेऽप्यन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥४॥

पदार्थ—हे न्यायकारी राजा आदि जनों आप लोगों के साथ ( नः ) हम लोगों की जैसे ( तत् ) वह ( प्रत्यम् ) प्राचीन ( सख्यम् ) मित्रता ( अस्तु ) हो ( इथा ) हमसे जैसे जैसे ( युष्मे ) आप लोगों के ( वदद्भिः ) कहते हुआ के साथ हम लोगों की मित्रता हो और जैसे ( अङ्गिरोभिः ) पवनो के साथ ( अच्युतच्युत् ) नहीं बञ्चल अर्थात् स्थिर को बञ्चल करनेवाला सूर्य ( वलम् ) मेघ का ( हत् ) नाश करता है वैसे हे ( वस्म ) दुःख के नाश करनेवाले ( इथ्यन्तम् ) प्राप्त हुए वा जाने हुए को आप ( अङ्गोः ) सिद्ध करिये और जैसे ( अस्तु ) हम जंगल के ( दुरः ) द्वारी को सूर्य प्रकाशित करता है वैसे आप ( विश्वाः ) सम्पूर्ण ( पुरः ) नगरियों को ( वि ) विशेषकर सिद्ध करिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। मनुष्यों को चाहिये कि यथाशक्ति उत्तमों के साथ मित्रता ही करें, वह कभी लब्ध न होवे ऐसा प्रयत्न करें और जैसे सूर्य सब को प्रकाशित करता है वैसे राजा न्याय से सम्पूर्ण राज्य को प्रकाशित करे ॥ ५ ॥

किं राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

स हि धीमिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकुन्महति इवतुर्व्ये ।

स लोकसाता तनये स वीर्यं वितन्तसाय्यो अभवत्समस्तु ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे ( सः ) वह ( वीर्यम् ) ज्ञान वा बुद्धियों से ( हव्यः ) ग्रहण करने योग्य ( अहति ) बड़े ( कुन्महति ) समाम में ( ईशानकुन्महति ) ईश्वरता करनेवालों को पुरुषार्थ करनेवाला ( अस्ति ) है और ( सः ) वह ( लोकसाता ) सन्तापी के विभाग होने से ( तनये ) पुत्र के लिये ( उग्रः ) तेजस्वी और ( सः ) वह ( हि ) ही ( वितन्तसाय्यः ) अत्यन्त विस्तार करने योग्य ( वीर्यं ) अस्त्र है बाहुओं में जिसके ऐसा ( सवस्तु ) संग्रामों में ( अभवत् ) होता है वैसे आप करिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। राजा को चाहिये कि सब कर्मचारियों को योग्य सिद्ध करे जिससे सर्वदा विजय होवे ॥ ६ ॥

स मज्जना जनिम मातृवापाममर्त्येन नाम्नाति प्र सत्ते ।

स धुम्नेन स शर्वसोत राया स वीर्येण तृतमः सर्वोकाः ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे वह सेवक ( मज्जना ) बल से ( सः ) वह ( धुम्नेन ) धन वा यश से ( सः ) वह ( शर्वसा ) विशेष बल से ( सः ) वह ( राया ) यश से और ( उग्रः ) भी ( सः ) वह ( वीर्येण ) पराक्रम से ( मातृवापामम् ) मनुष्यों के ( अमर्त्येन ) मरणधर्म से रहित कारण से और ( नाम्ना ) सत्ता से ( जनिम ) जन्म कर्पात् प्रकट होने की ( अति, प्र, सर्व ) अत्यन्त प्राप्त होता है वह ( शर्वसा ) एक स्थानवाला ( तृतमः ) मनुष्यों के मध्य में अतिशय उत्तम होवे वैसे आप करिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजा को चाहिये कि जैसे प्रजा और राजा के जन प्रसिद्धि, बल, धन, यश और पराक्रम को प्राप्त होवें वैसे प्रयत्न करे ॥ ७ ॥

किं मनुष्य कैसा बर्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

स यो न सुहे न मिथू जनो भूत्सुपन्तुनामा जुसुरिं पुनि च ।

हृणक् पित्रं शम्बरं शुष्कमिन्द्रः पुरां व्यौत्नाय शयथाय न चित् ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे ( इन्द्रः ) सूर्य ( पुनुरिम् ) भोजन करने ( मित्रम् ) व्याप्त होने ( पुनिम् ) शब्द करने ( शुष्कम् ) सुखाने और ( शम्बरम् ) सुख को स्वीकार करनेवाले मेघ को ( पुराम् ) पूर्ण धनों के ( व्यौत्नाय ) गमन और ( शयथाय ) शयन के लिये ( नृ ) शीघ्र ( हृणक् ) काटता है वैसे ( नृ ) और ( यः ) जो ( भूत्सुपन्तुनामा ) उत्तम प्रकार जानने योग्य नाम जिस का वह ( जनः ) मनुष्य ( न ) नहीं ( सुहे ) मोह को प्राप्त होता और ( न ) न ( मिथू ) परस्पर ( भूत् ) होता है ( सः ) वह ( चित् ) भी सत्कार करने योग्य है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है। जैसे सूर्य मेघ का निर्माण करके और वर्षाव के बड़ नहीं होता है वैसे ही मनुष्य धर्मयुक्त कार्यों को करके सज्जनों के साथ बर्ताव करके मोहित नहीं होते किन्तु सुखी होते हैं ॥ ८ ॥

किं राजजन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

उवायता त्वक्षता पन्थसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।

विष्ट वज्रं हस्त आ दक्षिणामाभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९॥

पदार्थ—हे ( पुरुदत्र ) बहुत दान करनेवाले ( इन्द्र ) राजन् आप ( उवायता ) ऊर्ध्व गमन और ( पन्थसा ) शुद्ध व्यवहार तथा ( त्वक्षता ) सूक्ष्मीकरण से ( वृत्रहत्याय ) सन्नाम के लिये ( रथम् ) रथ पर ( आ ) सब प्रकार से ( तिष्ठ ) स्थित हो और ( दक्षिणामा ) दहिने ( हस्ते ) हाथ में ( वज्रम् ) शस्त्र और अस्त्र को ( विष्ट ) धारण करिये ( मायाः ) बुद्धियों को ( च ) और प्राप्त होकर ( अभि, प्र, मन्द ) सब प्रकार से प्रशंसा करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो उत्कृष्टता में सम्पूर्ण विषयों को जाननेवाली बुद्धियों को प्राप्त होकर शस्त्र और अस्त्रों को धारण करके युद्ध के लिये जाते हैं वे विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

किं राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि बक्ष्यसनिर्न भीमा ।

गम्भीरयं क्रुष्वया यो करोजाध्वानयदुरिता दम्भयन् ॥१०॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दुष्टता के नाशक राजन् ( यः ) जो ( अग्निः ) अग्नि जैसे ( शुष्कम् ) सूखे ( वनम् ) वन को ( न ) वैसे ( रक्षः ) दुष्ट जन को ( बक्षि ) जलाते हो और जिन आपका ( हेति ) वज्र ( अग्निः ) बिजुली ( न ) जैसे वैसे ( भीमा ) जिससे जन भय करते वह सेना है उस ( क्रुष्वया ) बड़ी ( गम्भीरया ) अथाह बलयुक्त सेना से आप शत्रुओं को ( करोज ) रोगयुक्त करते हो उसको ( अध्वानयत् ) कपाते हो और ( दुरिता ) दुष्ट आचरणों को ( च ) भी ( दम्भयन् ) नष्ट करते हो उससे जिस कारण दुष्टजन को ( नि ) अत्यन्त जलाते हो इससे धरणाजित हो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है। हे राजा आदि जनों ! जैसे अग्नि ज्वाला से सूखे और गीले भी वन को जलाता है वैसे उत्तम प्रकार शिक्षित तथा बड़ी सेना से शत्रुओं को भय करिये और शत्रुओं को जलाइये ॥ १० ॥

आ सहस्रं पयिमिरिन्द्र राया तुविधुम्न तुविवाजैमिरिर्वा ।

याहि स्रनो सहसो यस्य न चिद्वदेव ईसे पुरुहूत योतोः ॥११॥

पदार्थ—हे ( तुविधुम्न ) बहुत प्रशंसा से युक्त ( पुरुहूत ) बहुतो से आह्वान किये गये ( सहस्रः ) बलवान् के ( स्रनो ) पुत्र ( इन्द्र ) दुष्टता के नाशक राजन् आप ( चिद्विम्न ) मार्गों ( राया ) धन और ( तुविवाजैभिः ) बहुत वेग वा बहुत संग्रामों के साथ ( अर्वाक् ) पीछे से ( सहस्रम् ) धनेको को ( आ ) सब ओर से ( याहि ) प्राप्त हजिये और ( यस्य ) जिस ( योतोः ) मिश्रित और अमिश्रित करने वाले का ( चित् ) भी ( अवेव ) विद्वान् से भिन्न जन ( ईसे ) इच्छा करता है उसको ( नृ ) शीघ्र प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप विद्या और विनय के मार्ग से प्रजाओं का पिता के सदृश पालन करके यशस्वी होकर सत्य और धर्म का यथावत् निर्याय करिये ॥ ११ ॥

किं कौन जन्मवाला होता है इस विषय को कहते हैं—

प्र तुविधुम्नस्य स्थविरस्य चूर्णैर्दिवो ररथो महिमा पृथिव्याः ।

वास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुषास्य सख्योः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस ( तुविधुम्नस्य ) बहुत प्रशंसारूप धन से युक्त ( स्थविरस्य ) विद्या और धर्मस्था से बृद्ध ( चूर्णैः ) दुष्टों के चिसनेवाले ( दिवः ) सुन्दर ( पुरुषास्य ) बहुत श्रेष्ठ कर्मों में बुद्धि जिसकी उस ( सख्योः ) सहनशील



का ( महिमा ) महत्त्व ( पृथिव्याः ) भूमि से ( प्र, वरुणो ) भलग फलता है ( अस्य ) इसका ( न ) न ( शत्रुः ) वैरी ( न ) ( प्रतिमानम् ) मान वा सादृश्य और ( न ) न ( प्रतिष्ठितः ) प्रतिष्ठित ( अस्ति ) है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो विद्यामे वृद्ध, अमिन्न प्रणमा और महिमावाले, सत्यकी कामना करने हुए, बहुत बुद्धिमान् और शय दम आदि गुणों से युक्त हों उनका कोई भी शत्रु न बगबर और न उनसे अधिक प्रतिष्ठित होता है ॥ १२ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्र तत्तं अद्या करं कृतं भुक्तुसं यदायुमतिथिस्वमंस्यै ।

युक्तु सहस्रा नि शिंशा अभि क्षामसूर्वायां धृता निनेय ॥१३॥

पदार्थ—हे राजन् ! ( यत् ) जिस ( कुत्सम् ) वज्र के समान दृढ़ ( अति-विश्वम् ) अतिथियो को प्राप्त होनेवाले ( आयुम् ) जीवन को ( अस्मै ) इसके लिये आप ( उत्, निनेय ) उन्नति प्राप्त करिय जिस ( धृता ) दृढ़त्व से ( त्वं-वाणाम् ) शीघ्रगामी बाहुन जिसका उस ( क्षाम् ) पृथिवी को ( युक्तु ) बहुत ( सहस्रा ) हजारों की ( अभि ) चारों ओर से ( नि, शिंशा. ) शिंशा दीजिये ( तत् ) वह ( ते ) आप का ( अद्या ) आज ( करणम् ) साधन ( कृतम् ) किया गया ( प्र, भूत् ) होवे ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जहाँ राजा आदि जन अधिक अवस्था वाले, अतिथि जनो के सेवक, पक्षपात का त्याग कर के प्रजा के पालक हैं वहाँ सम्पूर्ण कार्य मिट होते हैं ॥ १३ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अनु स्वाहिहने अथ देव देवा मदन्विष्वे कवितमं कवीनाम् ।

करो यत्र वरिवो बाधिताय द्विजे जनाय तन्वे गृणानः ॥१४॥

पदार्थ—हे ( देव ) विद्वन् ( यत्र ) जहाँ ( बाधिताय ) विलोडित हुए ( द्विजे ) कामना करने हुए ( जनाय ) जन के और ( तन्वे ) शरीर के लिये ( वरिव ) सेवन की ( गृणान ) स्तुति करता हुआ जन ( करो ) कार्यों को करनेवाला है वहाँ ( अहिहने ) मेघ को नष्ट करनेवाले सूर्य के लिये जैसे जैसे जिम ( कवीनाम् ) विद्वानों के मध्य मे ( कवितमम् ) अत्यन्त विद्वान् ( स्वा ) आपको ( द्विजे ) सब ( देवा ) विद्वान् जन ( अनु, मदम् ) आनन्दित करते हैं उन आपका आश्रयण करके ( अथ ) इसके अनन्तर निरन्तर हम लोग सुखी होंगे ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य उत्तम, यथा-व्यवस्था, विद्वानों का उत्तम प्रकार सेवन कर विद्याओं को प्राप्त होकर अन्यो को जानते हैं वे प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अनु धावापृथिवी तत् ओजोऽमर्त्या जिहत् इन्द्र देवाः ।

कृत्वा कृतो अकृतं यत्ते अस्त्युक्तं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५॥६॥

पदार्थ—हे ( कृतो ) करनेवाले ( इन्द्र ) राजन् ( ते ) आप के समीप से जो ( अमर्त्या ) साधारण मनुष्यों के स्वभाव से विलक्षण स्वभाव वाले ( देवा ) विद्वान् जन ( यत् ) जो ( अकृतम् ) नहीं किया गया कर्म और ( नवीय ) अतिशय नवीन वचन ( उक्तम् ) कहने योग्य ( अस्ति ) है ( तत् ) उस ( ते ) आपके वचन को ( जिहत् ) प्राप्त होन और ( धावापृथिवी ) भूमि और सूर्य को ( अनु ) पश्चात् प्राप्त होन है उनको आप ( यज्ञैः ) सेन करनेरूप व्यवहारों से ( जनयस्व ) प्रकट कीजिये और ( ओज ) पराक्रम को ( कृत्वा ) करिये ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग भूमि और बिजुली आदि की विद्या से नवीन-नवीन कार्य सिद्ध करिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त मे इन्द्र, विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने मे इस सूक्त के अथ की डमस पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अठारहवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ त्रयोवर्षस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बाह्वृषस्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, २, १३ भुरिक्पटुः । ६ पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः

स्वरः । २, ४, ६, ७ निचुत्त्रिष्टुप् । ५, १०, ११, १२ विराद्विष्टुप्

छन्दः । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । अन्तः स्वरः ॥

अब तेरह ऋषिवाले उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

अब सूर्य कंसा है इस विषय को कहते हैं—

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विर्हो अभिनः सहोमिः ।

अस्मद्रथवाहधे वीर्यायोरुः पृथुः सुक्रतः कर्तुमिभूत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( महान् ) बड़ा ( इन्द्रः ) सूर्य ( चर्षणिप्राः ) मनुष्यों मे बिजुलीरूप से व्याप्त होने ( उत ) और ( द्विर्हो ) अन्तरिक्ष और वायु से बढ़ने और ( अभिनः ) नहीं हिसा करनेवाला ( अस्मद्रथक् ) हम लोगों के सम्मुख हुआ

( उत ) बहुत ( पृथुः ) विस्तीर्ण ( सुक्रतः ) उत्तम प्रकार उत्पन्न किया गया ( सुत् ) हो तथा ( सहोमि ) बलों और ( कर्तुभिः ) कर्म करनेवालों के साथ ( वीर्याय ) पराक्रम के लिये ( नृवत् ) मनुष्य जैसे जैसे ( आ, वायुधे ) सब ओर से बढ़ता है उसको जान कर दृष्टसिद्धि करिये ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे मित्र मित्र के साथ कार्य की सिद्धि के निमित्त प्रयत्न करता है वैसे ही ईश्वर मे निमित्त बिजुली वा सूर्य सम्पूर्ण कर्मकारियों का सहयोगी होता है ॥१॥

मनुष्यों को किस प्रकार मे उन्नति करनी चाहिये इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रमेव धिषणां सातये धाद्वहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।

अपाङ्हेन शर्वसा शुशुवांसं मयश्चिद्यो वाहधे असांमि ॥२॥

पदार्थ—( य ) जो ( धिषणा ) बुद्धि वा कर्म से ( सातये ) सविभाग के लिये ( वृहन्तम् ) पृथिवी के समीप से अतिविस्तीर्ण ( ऋष्वम् ) जानेवाले ( अजरम् ) बूढ़ावस्था से रहित ( युवानम् ) युवाजन को जैसे वैसे ( अपाङ्हेन ) शत्रुओं से नहीं सहने योग्य ( शर्वसा ) बल से ( शुशुवांसम् ) व्याप्तिमान् ( इन्द्रम् ) सूर्य के समान अत्यन्त ऐश्वर्य वाले को ( धात् ) धारण करता है वह ( एव ) ही ( सद्यः ) शीघ्र ( असांमि ) अत्यन्त ( चित् ) निश्चित ( वायुधे ) बुद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥

भाषार्थ—जैसे बड़े मित्र को प्राप्त होकर मनुष्य बुद्धि को प्राप्त होते हैं वैसे ही बिजुली की विद्या को प्राप्त होकर अतुल बुद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर वह राजा कंसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पृथु करस्नां बहुला गर्भस्ती अस्मद्रथक्सं मिमीहि श्रवांसि ।

यूयेव पशुः पशुपा दमूना अस्मां इन्द्राम्या बहृत्स्वाजौ ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले और न्याय के ईश ! जो आपके ( पृथु ) विस्तीर्ण ( करस्ना ) जो करनेवालों को शुद्ध करनेवाले ( बहुला ) जिनमे बहुतों को ग्रहण करने वे ( गर्भस्ती ) दोनों हाथ वर्तमान है उन दोनों से ( पशुपा ) पशुओं के रखनेवाले ( पशु ) पशु के ( यूयेव ) समूह जैसे वैसे ( अस्म-द्रथक् ) हम लोगों की सेवा करनेवाले होते हुए ( श्रवांसि ) अन्नो वा अवणो का ( सम्, मिमीहि ) उत्तम प्रकार ग्रहण करिये और ( दमूना ) इन्द्रियों का निग्रह करनेवाले हुए ( अस्मां ) सङ्ग्राम मे ( अस्मान् ) हम लोगों के ( अभि ) चारों ओर से ( आ, बहृत्स्वा ) अच्छे प्रकार वर्तव करिये ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । वे ही लक्ष्मीवान् होते हैं जो आलस्य का त्याग करके मदा सत्कर्म के लिये प्रयत्न करते हैं और जैसे पशुओं के पालनेवाले पशुओं का पालन करके समृद्ध अर्थात् धनवान् होते हैं वैसे ही पुरुषार्थी जन वारिद्वय का विनाश करके धन के स्वामी होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तं व इन्द्रं चितिनमस्य शाकैरिह नूनं वाज्यमन्तो हुवेम ।

यथा चित्पुर्वं जरितार आसुरनैद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यथा ) जैसे ( इह ) इस ससार मे ( पुर्वं ) प्राचीन ( अनेद्या. ) नहीं निन्दा करने योग्य ( अनवद्या. ) प्रणमनीय ( अरिष्टाः ) नहीं हिसित ( जरितार ) स्तुति करनेवाले ( आसु ) होते हैं वैसे ( चित् ) भी ( अस्य ) इसके ( शाकैः ) सामर्थ्यविशेषों से ( तम् ) उस ( चितिनम् ) आनन्द और ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले को तथा ( न ) तुम लोगों को ( नूनम् ) निश्चित ( वाज्यमन्त ) जानते हुए हम लोग ( हुवेम ) ग्रहण करें ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे प्रशंसा करने योग्य यथाव्यवस्था पुरुष धर्मयुक्त कर्मों मे वर्तव करके कृतकृत्य होते हैं वैसे ही वर्तव करके सब मनुष्य कृतकार्य होंगे ॥४॥

फिर मनुष्यों को कंसा होना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

धृतव्रतो धनवाः सोमं वृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।

सं जग्मिरे पथ्या रायौ अस्मिन्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५॥७॥

पदार्थ—हे विद्वानों जिसको ( अस्मिन् ) इस व्यवहार मे ( यादमानाः ) चारों ओर से जाती हुई ( सिन्धव ) नदिया ( समुद्रे ) समुद्र मे ( न ) जैसे वैसे ( पथ्या ) मार्ग मे श्रेष्ठ ( रायः ) धन ( सम्, जग्मिरे ) प्राप्त होने हैं ( सः, हि ) वही ( धृतव्रत ) धारण किये कर्म जिसने वह ( सोमं वृद्धः ) ऐश्वर्य वा ओषधि से बढ़ा हुआ ( धनवा. ) धनका देनेवाला ( पुरुक्षुः ) बहुत अन्न से युक्त ( वासस्य ) प्रशंसा करने योग्य ( वसुन ) धन का स्वामी होता है ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जैसे नदियाँ बेग से समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे ही धार्मिक तथा उद्योगी पुरुष की लक्ष्मी सेवा करती है ॥ ५ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

शर्विष्ठं न आ भरं शूर शव ओजिष्ठमोजौ अभिभूत उग्रम् ।

विश्वो द्युम्ना वृण्वया मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो माह्वध्वै ॥६॥

**पदार्थ—**हे (हरिः) प्रशंसनीय मनुष्यों वाले (शूर) भयरहित (अभि-  
भूते) दुष्टों के अभिभव करनेवाले आप (नः) हम लोगों को धीर (अभिष्टम्)  
अतिशय बलिष्ठ (उग्रम्) तीव्र (ओष.) प्राणधारण को और (ओषिष्ठम्)  
अत्यन्त पराक्रमयुक्त (ओष.) बल को (आ, भर) सब प्रकार से धारण करो  
और इससे (अनुवाणम्) मनुष्य जाति में वर्तमानों के सम्बन्ध में (विद्या)  
सम्पूर्ण (बुद्ध्या) उत्तम जनों के लिये हितकारक (धुम्ना) प्रकाशित यशों वा  
धनो को (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (आवधम्) आनन्द देने को (वाः)  
दीजिये ॥६॥

**भाषार्थ—**हे राजन् ! आप राज्य के पालने योग्य गुणों को धारण कर के  
स्वयं से राज्य का पालन करिये ॥६॥

**यस्ते मदः पृतनाषाकम्भं इन्द्र तं न आ भर शुशुवांसम् ।**

**येन लोकस्य तनयस्य सातौ वंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥७॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) राजन् (ते) आपका (यः) जो (अम्भः)  
महीं हिसा करने और (पृतनाषाकम्भं) सेनाओं को सहनेवाला (मदः) आनन्द  
है (येन) जिससे (जिगीवांसः) जीतनेवाले (त्वोताः) आप से रक्षित हम  
लोग (लोकस्य) सन्तान (तनयस्य) सुकुमार के (सातौ) सविभाग में रक्षा  
और विद्यादान को (वंसीमहि) जामें और आप (तम्) उस (शुशुवांसम्)  
श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त को (नः) हम लोगों के लिये (आ, भर) सब प्रकार से  
धारण करिये ॥७॥

**भाषार्थ—**हे प्रजाजनों ! आप लोग राजा के प्रति यह कहो कि हम लोगों के  
सन्तान जिस प्रकार उत्तम शिक्षित हो वैसे नियमों को करिये जिससे विजय और  
आनन्द बढ़े ॥७॥

**आ नो भर वृषं शुभमिन्द्र धनस्पृतं शुशुवांसं सुदधम् ।**

**येन वंसाम् पृतनासु शत्रून्तवोतिमिस्तु जामीरजामीन ॥८॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) दुष्टों के बलनाशक आप (नः) हम लोगों के  
लिये (वृषम्) शत्रुओं के सामर्थ्य को रोकनेवाली (शुभम्) सेना और  
(धनस्पृतम्) धन को पूरण करने जिससे उस (शुशुवांसम्) शुभगुणव्यापिनी  
(सुदधम्) उत्तम बल की बतुराई को (आ) सब ओर से (भर)  
धारण करिये (येन) जिससे हम लोग (तव) आपके (कृतिभिः) रक्षण  
आदिकों से (जामीन) सम्बन्धी बन्धु आदिकों का (उत) और (जामीन)  
असम्बन्धी दुष्ट (शत्रून्) शत्रुओं का (पृतनासु) मनुष्यों की सेनाओं में (वंसाम्)  
विभाग करें ॥८॥

**भाषार्थ—**राजाओं को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न करे जिससे मित्र और शत्रु  
पृथक् पृथक् प्रतीत हों और वंसी ही सेना रखनी चाहिये जिससे शत्रु नष्ट  
हों ॥८॥

फिर सम्पूर्ण जनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**आ ते शुभो वृषम एतु पञ्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।**

**आ विभतो अभि समैत्वंवाकिन्द्र धुम्नं स्वर्बदेष्टस्मे ॥९॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के करनेवाले जैसे (अस्मे) हम लोगों  
के लिये (वृषात्) पीछे से (स्वर्बत्) बहुत प्रकार मुख विद्यमान जिसमें  
उस (धुम्नम्) प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (एतु) प्राप्त हूजिये और (उत्त-  
रात्) बाईं ओर से बहुत प्रकार मुख जिसमें उस प्रकाशस्वरूप यश वा धन को  
(आ) सब ओर से प्राप्त हूजिये और (अधरात्) नीचे से बहुविध मुखवाले  
प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (आ) सब ओर से प्राप्त हूजिये तथा (विभतः)  
सब ओर से प्रकाशस्वरूप यश वा धन के (आ) सब प्रकार से (अभि, एतु)  
सम्मुख हूजिये और (अर्बुद) नीचे से बहुत मुखवाले सम्पूर्ण प्रकाशस्वरूप यश वा  
धन को (सम्) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (पुरस्तात्) आगे से  
बहुत प्रकार मुख जिसमें उस प्रकाशस्वरूप यश वा धन को अच्छे प्रकार प्राप्त  
हूजिये वैसे (ते) आपका (शुभम्) उत्तम बलयुक्त (वृषम्) बलिष्ठ  
(आ) सब ओर से प्राप्त होवे और आप हम लोगों के लिये इसको (बेहि)  
धारण करिये ॥९॥

**भाषार्थ—**हे राजा और प्रजाजनों ! जैसे सब दिशाओं से सम्पूर्ण जनों को  
सुख और यश प्राप्त हों वैसे यत्न का अनुष्ठान करिये ॥९॥

**सुवचं इन्द्र नृत्तमामिहूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।**

**ईक्षे हि बर्षं वमयस्य राजन्वा रत्नं महि स्थरं बृहन्म ॥१०॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले (राजन्) विद्या और  
विनय से प्रकाशमान जैसे हम लोग (ते) आपके (नृत्तमभिः) अति उत्तम  
मनुष्य विद्यमान जिसमें उन (कृती) रक्षण आदिकों से (सुवचं) मनुष्यों के मुख  
(वाक्) प्रशंसा करने योग्य कर्म का (वंसीमहि) विभाग करें और (श्रो-  
मतेभिः) सुनाने योग्य वचनों से (उभयस्य) दोनों राजा और प्रजा में वर्तमान  
(वमयः) धन का मैं (ईक्षे) दर्शन करता हूँ वैसे आप (बृहन्म) बड़े (महि)  
आश्चर्य करने योग्य (स्थरम्) स्थिर (रत्नम्) सुन्दर वन को (हि) ही (वाः)  
धारण करिये ॥१०॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। राजजनों तथा प्रजाजनों और राजा  
को चाहिये कि प्रयत्नों से प्रशंसित विद्या और बहुत धन की निरन्तर वृद्धि  
करें ॥१०॥

**महत्वंतं वृषं बाधुधानमर्कवारिं विध्यं शासमिन्द्रम् ।**

**विद्यासाहमवसे नृत्तनायोयं सहोदामिह तं हुवेम ॥११॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यो हम लोग (इह) इस राज्यकर्म में जिसका (नृत्तनाय)  
नदीन (अवसे) रक्षण आदि के लिये (महत्वंतम्) श्रेष्ठ मनुष्य विद्यमान जिसके  
उम (वृषम्) अतिश्रेष्ठ पूर्णबल वाले (बाधुधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त  
होते हुए (मर्कवारिम्) नहीं विद्यमान हैं शब्द करते हुए शत्रु जिसके उम (विध्यम्)  
सुन्दर (शासम्) पक्षपात का त्याग करके शासन करने वाले (विद्यासाहम्) सम्पूर्ण  
कष्ट को सहनेवाले (उग्रम्) तेजस्वी (सहोदाम्) बल देनेवाले (इन्द्रम्) शरीर  
आत्मा और राज शोभा से अत्यन्त मोहित का (हुवेम) हम स्वीकार करें (तम्)  
उसका आप लोग भी आह्वान कर स्वीकार कीजिये ॥११॥

**भाषार्थ—**राजजनों और प्रजाजनों को चाहिये कि सब के रक्षण के लिये सब  
से उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा का स्वीकार करें और वह राजा सबकी  
सम्मति से सत्य न्याय का निरन्तर आचरण करें ॥११॥

**जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेरयो नृभ्यो रन्धया येष्वास्मि ।**

**अथा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ इवामहे तनये गोष्वास्तु ॥१२॥**

**पदार्थ—**हे (वज्रिन्) अश्वे शस्त्र और अस्त्र के धारण करनेवाले राजन्  
आप (एभ्यः) इन (नृभ्यः) उत्तम प्रकार शिक्षित अग्रणी मनुष्यों के लिये उस  
(महि) महान् (मन्यमानम्) अभिमान करनेवाले (जनम्) मनुष्य का  
(रन्धया) नाश करिये और (अथा) इसके अनन्तर (येषु) जिनके निमित्त  
(शूरसातौ) शूरवीर विभक्त होते हैं जिस सग्राम में उसमें (अस्मि) हैं उसकी  
रक्षा कीजिये (हि) जिससे (पृथिव्याम्) विस्तीर्ण भूमि में (गोषु) पृथिवियों  
वा धनो में और (अनु) जलो वा प्राणा में (तनये) सन्तान के लिये जिन  
(त्वा) आपको (इवामहे) स्वीकार करते हैं वह आप (चित्) भी हम लोगों  
का सत्कार कीजिये ॥१२॥

**भाषार्थ—**हे राजसम्बन्धी जनों ! जो मिथ्या अभिमान करनेवाला जन श्रेष्ठ  
पुरुषों को पीटा देवे उसको दण्ड दीजिये और युद्धविद्या से सम्पूर्ण जनों का रक्षण  
करिये जिससे भूमि में आप लोगों की प्रशंसा प्रसिद्ध होवे ॥१२॥

**वयं तं एभिः पुंरुहूत मरुयैः शत्रोः अत्रोरुत्तर इस्स्याम ।**

**धन्तो वृत्राणुमयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥१३॥८॥**

**पदार्थ—**हे (पुरुहूत) बहुतो से प्रशमित (शूर) वीर राजन् (वयम्)  
हम लोग (ते) आपके (एभिः) इन वर्तमान पहिले कहे गये और उत्तरो से  
प्रतिपादित (मरुयैः) मित्र के कर्मों से (शत्रोः) शत्रु शत्रु की सेनाओं का  
(धन्तो) नाश करते हुए (उत्तरे) विजय के अनन्तर समय में (स्याम) प्रकट  
हों और (उग्रयानि) राजा और प्रजा में वर्तमान (वृत्राणि) धनो को प्राप्त  
होकर आपकी (बृहता) बड़ी (राया) राज्यलक्ष्मी से तथा (त्वोता) आप से  
पानना किये हुए (इत्) ही (मदेम) आनन्द को प्राप्त हों ॥१३॥

**भाषार्थ—**जो राजा और राजप्रजाजन मित्र के सदृश हों तो सम्पूर्ण शत्रुओं  
को जीत कर बड़ी राज्यलक्ष्मी में प्रकाशित हों ॥१३॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजाजनों के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के  
अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह उन्नीसवाँ सूक्त और आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ त्रयोदशार्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवताः १ आर्ष्यमुष्टुप छन्दः । गान्धार स्वरः । २, ३, ७, १२

पङ्क्तिः । ४, ६ धुरिष्पङ्क्तिः । १३ स्वराद्वपङ्क्तिः १०

निधृत्यङ्कितछन्दः । पञ्चम स्वरः । ४, ८, ९, ११

निधृत्त्रिष्टुप् छन्दः । जैवत स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

अब मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस विषय

को कहते हैं—

**द्यौर्न य इन्द्रामि भुमार्यस्तस्थौ रयिः सर्वसा पृत्स्तु जनान् ।**

**तं नः सहस्रमरमुर्षरासां बद्धिं धना सहसो वृत्रतुरम् ॥१॥**

**पदार्थ—**हे (सहस्रः) बल से (सुनो) श्रेष्ठ पुत्र (इन्द्र) अत्यन्त श्रेष्ठ  
धन से युक्त (य) जो (द्यौः) बिजुली वा सूर्य के (न) समान प्रकाशित  
(रयिः) धन है इस का (अर्यः) स्वामी (शब्दात्) बल से (पृत्स्तु) सङ्ग्रामों  
में (जनान्) मनुष्यों के प्रति (अभि) सम्मुख (तस्थौ) वर्तमान होवे (तम्)  
उस (सहस्रमरम्) अर्धस्य को धारण करनेवाले (वृत्रतुरम्) जैसे मेघों को वैसे

शत्रुओं का नाश करता है जिससे उस तथा ( उर्वराशाला ) बहुत श्रेष्ठ भूमियां मे श्रेष्ठ विजय को ( नः ) हम लोगों के लिये ( बद्धि ) दीजिये जिसमे हम लोग लक्ष्मी-वान् ( सुख ) होवें ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । जो मनुष्य बिजुली के मद्दश पराक्रमी और सूर्य के मद्दश प्रभारयुक्त हुए सन्ध्यामी मे साहसिक होवें वे विजयवान् होवें ॥१॥

**दिवो न तुभ्यमभिन्द्र सत्रासुर्वे देवेभिर्वापि विश्वम् ।**

**अहि यद्वृत्रमपो वविव्रांसं हन्तृजीविन विष्णुना सन्धानः ॥२॥**

पदार्थ—हे ( ऋजीविन् ) सत्त्व धर्म मे युक्त ( इन्द्र ) राजन् जमे सूर्य ( विष्णुना ) व्यापक जगदीश्वर वा बिजुली से ( सन्धान ) मिलने वाला ( यत् ) जिसको ( अप ) जलो के ( वविव्रांसम् ) विभाग करते हुए ( वृत्रम् ) प्राच्छादन करनेवाले ( अहिम् ) मेघ को ( हन् ) नाश करता है वैसे ( देवेभिः ) विद्वानो से ( तुभ्यम् ) आप के लिये ( सत्रा ) सत्य से ( विव ) कामना करने हुए ( नः ) जैसे वैसे ( विव्रम् ) सम्पूर्ण ( असुरम् ) मूर्ख पारी जनों का ऐश्वर्य ( अन्, वाधि ) पीछे धारण किया जाता है ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जं मे सूर्य आठ महीने मे जल के रसा का आकर्षण के द्वारा हरण करके चातुर्मास्य मे वर्षाता है वैसे ही राजा आठ महीने करों को ग्रहण कर अभय की वृष्टि करके प्रजा का पालन करे ॥ २ ॥

**तूर्वजो जीवान् तव सस्तवीयान् कृतवन्तस्तेन्द्रो वृद्धमहाः ।**

**राजामवन् मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यस्पुगं दर्त्तुमावत् ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यत् ) जो शत्रुओं का ( तूर्वन् ) नाश करता हुआ ( ओजीवान् ) प्रतिशय पराक्रमयुक्त जन ( तवसः ) बग वा ( तवीयान् ) अत्यन्त प्रशंसित ( कृतवन्तः ) किया घन वा अन्न जिसमे वह ( वृद्धमहा ) बड़े गहायक जिसके ऐसा ( इन्द्र ) ऐश्वर्य का बढ़ानेवाला ( राजा ) प्रकाशमान राजा ( अभ-वत् ) होवे और ( सोम्यस्य ) रस आदिको मे हुए ( मधुन ) मधुर आदि गुणों से युक्त के और ( विश्वासात् ) सम्पूर्ण ( पुराम् ) नगरियों के ( वत्सुम् ) नाश करनेवाले की ( आवत् ) रक्षा करे उमी को राजा करिये ॥३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो पराक्रमी, बली जनों मे बली विद्वानो मे विद्वान्, वृद्ध जना मे वृद्ध और जीतने हुए भृत्या का सत्कार करनेवाला होवे उमी को राज्य मे अभिषिक्त करके सुखी हजिये ॥३॥

**शतैरपद्रव्यैर्य इन्द्रात्र दशोणये क्वयेर्कसातो ।**

**वधेः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पितो नारिरेचीर्त्कि चन प्र ॥४॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अन्न देनेवाले राजन् आप जो ( पराय ) व्यवहारों के जाननवाले ( जने ) मौ सन्ध्या से परिमिन वा अमन्य ( वधे ) वधा मे ( अत्र ) इस राजव्यवहार मे ( अपद्रव्यम् ) नहीं द्राविन होने है और ( अर्कसातो ) अन्न आदि के विभाग मे ( दशोणये ) दश न्यून जिसमे उस ( क्वये ) विद्वान् के लिये ( अशुषस्य ) शापण मे गन्त ( शुष्णरः ) वनिष्ठ की ( माया ) बुद्धियों का ( पितृ ) अन्न आदि ( किम्, चन ) कुछ भी ( न ) नहीं ( प्र, नारिरेचीन् ) अच्छे प्रकार अन्न करना है उनका सत्कार करिये अर्थात् प्रशमा करिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो धनमान का त्याग करके उन्माग मे चरन है उनका राजा नित्य दण्ड दवे और ज्ञा दश इन्द्रियों मे अन्न का त्याग करके धर्म का आचरण करने है उनका निरन्तर सत्कार करे ॥४॥

**महो द्रहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतन् पादि शुष्णः ।**

**उरु व सुर्यं स रथये कुरिन्द्रः कृत्साय सूर्यस्य सातो ॥५॥१॥**

पदार्थ—हे राजन् आप से ( वज्रस्य ) शस्त्र और अम्रविशेष के ( पतने ) गिरन मे जो ( द्रहः ) द्रोह करने वालों को ( अप, पादि ) दूर करे जिसमे ( महः ) अत्यन्त ( विव्राणः ) सम्पूर्ण जीवन ( धायि ) धारण किया जाय और ( यत् ) जो ( इन्द्र ) शत्रुओं का नाशक सेना का स्वामी ( सारथ्ये ) वाहन चलाने वाले के लिए ( सरथम् ) वाहन के गहिन वसमान का ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( सातो ) उत्तम प्रकार विभाग मे ( कृत्साय ) वज्र के प्रहार के लिये ( उरु ) बहुत ( क ) करे ( स ) वह ( शुष्णः ) बनिष्ठ का सम्बन्धी सत्कार करने योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—राजा को चाहिये कि द्रोह आदि दोषों का त्याग करके ब्रह्मचर्य आदि मे सम्पूर्ण जनों को अधिक भवस्था बाले करके रथ आदि सेना के अगा को सूर्य के तुल्य प्रकाशित करके सत्य और अमन्य के विभाग मे प्रजाओं का पालन करे ॥ ५ ॥

फिर राजा को किस का निवेध करना चाहिए इस विषय को अगले

मन्त्र में कहते हैं—

**अ स्पेनो न मंदिरसंशुभस्यै शिरो दासस्य नमुर्चेमधायन् ।**

**आत्मजमी सप्यं सुसन्तं पुणयाया समिषा स स्वस्ति ॥ ६ ॥**

पदार्थ—जो राजा ( मंदिरम् ) मादक द्रव्य और ( अंसम् ) वैद्यकविद्या की रीति मे विभाग किये गये का सेवन करते हुए और ( मनुष्यः ) नहीं त्याग करनेवाले ( दासस्य ) सेवक के ( शिरः ) मस्तक को ( इधेनः ) बाज पक्षी ( नः ) जैसे वैसे ( प्र, मधायन् ) अत्यन्त मधम करता हुआ ( अस्मै ) इसके लिए कठिन शिष्य को ( नवीम् ) नम्र ( सप्यम् ) कर्म के अन्त करनेवाले को ( ससन्तम् ) सोते हुए को करके ( प्र, आबत् ) रक्षा करे और ( दाया ) धन से ( स्वस्ति ) सुख को ( सप्यं, पुण्यम् ) उत्तम प्रकार पूर्ण करता है तथा ( इधेनः ) अन्न आदि से मुख को ( सप्यं ) अच्छे प्रकार पूर्ण करता है वह सम्प्राप्त होने के योग्य होवे ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है । राजाओं का यह उचित कर्म है कि जो मादक द्रव्य का सेवन करे उन को अत्यन्त दण्ड देके, यथायोग्य सत्कार से अप्रमादियों का सत्कार करें वे साम्राज्य करने को योग्य होवें ॥ ६ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**वि पिशोरहिमायस्य इन्द्राः पुरो वज्रिच्छवसा न दर्दः ।**

**सुदामन्तरेकणो अप्रमृष्यमजिघने दात्रं दाशुषं दाः ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) शस्त्र और अस्त्रों को धारण करनेवाले ( सुदामन् ) उत्तम प्रकार मे दाना राजन् आप ( अहिमायस्य ) मेघ का डीप लेना जैसे वैसे कपटता जिसकी उम ( पिशोः ) व्यापक की ( इन्द्राः ) दृढ़ ( पुरः ) नगरियों को ( शवसा ) बल से ( न ) नहीं ( वि, वदं ) विषय नष्ट कीजिए और जो ( अप्रमृष्यम् ) नहीं मर्हने योग्य ( वात्रम् ) दान को ( वज्रिच्छने ) सरलता आदि गुणों के बढ़ानेवाले ( दाशुषे ) दान देने योग्य पुरुष के लिए ( दाः ) दीजिये ( तत् ) उम ( रेकण ) धनदान को हम लोगों के लिये भी दीजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—राजा को चाहिए कि छल आदि का त्याग कर और अपने नगरों का दृढ़ करके कभी छेदन न करें और सुपात्र के लिए दान दें और कुपात्र का निरन्तर करे ॥ ७ ॥

**स वैतसुं दशमायं दशोणिं ततुजिमिन्द्रः स्वभिर्हिंसुमनः ।**

**आ तुग्रं श्रवदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुपं सृजा इययै ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे राजन् ! जा ( स्वाभिर्हिंसुमनः ) उत्तम प्रकार अभीष्ट सुखवाले ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त राजा ( सः ) वह आप ( द्योतनाय ) प्रकाश के लिये ( वैतसुम् ) व्यापनशील ( दशमायम् ) दश अगुनियों के मुख्य प्रमाण जिस का उम ( दशोणिम् ) दश प्रकार से परित्याग जिसका और ( ततुजिम् ) बल से युक्त ( तुग्रम् ) ग्रहण करने वाले ( इयम् ) हाथों को ( इययै ) प्राप्त होने के लिये ( मातु ) माता से ( न ) जंम वैसे ( सीम् ) मंत्र आदि से ( श्रवत् ) निरन्तर ( आ, उप, सृजा ) समीप प्रकट कीजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वही राजा धनवान् होवे कि जा दश इन्द्रियों से उत्तम कर्म और विज्ञान का बड़ा मे अभीष्ट सुख की निरन्तर उन्नति करे और माता के सदृश प्रजाओं का पालन करे ॥ ८ ॥

**स इं स्पृधो वनते अप्रतीतो भिभ्रदजं वृत्रहणं गमस्तौ ।**

**तिष्ठदरी अध्यस्तेव गते वचोयुजा बहव इन्द्रमृषाम् ॥९॥**

पदार्थ—( स ) वह प्रताप से युक्त राजा ( वृत्रहणम् ) जिसमे मेघ का नाश करता है उम ( वज्रम् ) वज्र का ( गमस्तौ ) किरण से सूर्य जैसे वैसे ( बिभ्रन् ) धारण करता हुआ ( अप्रतीतः ) शत्रुओं से नहीं जाना गया ( स्पृधः ) स्पर्धा करी है जिन मे उनका और ( इम् ) जल का ( वनते ) सेवन करना है और ( हरी ) चाड़े जैसे धारण और आकर्षण का वैसे वा ( अस्तेव ) प्रेरणा करने वाला मार्ग्य जैसे वैसे ( गते ) गृह मे ( अधि, तिष्ठत् ) स्थित होता है वैसे आप जो ( वचोयुजा ) वचन से युक्त करने वे दासों ( ऋषवम् ) बड़े ( इन्द्रम् ) बिजुली के मद्दश राजा को ( बहवः ) पट्टेचाते हैं उन को वाहनो मे युक्त करिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—राजा सदा ही अपने विचार को छिपावे जब कार्य सिद्ध होवे तभी लाग प्रकट जानें और शत्रुओं को धारण कर सेनाओं को उत्तम प्रकार सिका देकर बड़े ऐश्वर्य का प्राप्न होवे ॥ ९ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**सनेम तेज्वसा नव्य इन्द्र प्र पूर्वः स्तवन्त एना यज्ञैः ।**

**सप्त यत्पुः शर्म शारदीदं दन्दासीः पुरुकुत्साय शिष्यन् ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य और सुख के देनेवाले ( ते ) आप के ( अवसा ) रक्षण आदि से हम लोग ( सप्त ) सप्त ( पुरः ) नगरियों का ( सनेम ) विभाग करे और जैसे ( पूर्वः ) मनुष्य ( एना ) इय ( अवसा ) रक्षण आदि से और ( यज्ञैः ) श्रेष्ठ व्यवहाररूप यज्ञों से ( स्तवन्त ) स्तुति जो ( शर्म ) गृह और ( शारदीः ) शरत्काल मे हुई ( दासीः ) केविकाओं को प्राप्त होके ( पुरुकुत्साय ) बहुत शत्रुवाले के लिए ( शिष्यम् ) शिक्षा देता हुआ दुःखों को ( प्र, वत् ) मर्द करता है और शत्रुओं को ( हवः ) मारता है वह सत्त्व से सत्कार करने योग्य है ॥ १० ॥



भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे राजा विनय से वर्तमान है वैसे ही सब वर्तमान होंगे और पुनर्वाच से सुन्दर पुरों का निर्माण करके उन सब मनुष्यों से सुख देने वाली में निवास करने हुए दुःखों को दूर करें ॥ १० ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

स्वं वच इन्द्र पुरुषो भूर्वास्वन्ननुशने काव्याय ।

परा नववास्त्वमनुदेयं सुदे पित्रे ददाम स्वं नपातम् ॥११॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त ( पुरुषः ) प्राचीनो से किये गये विद्वान् ( स्वम् ) आप ( वचः ) बुद्धि करनेवालों की ( वरिष्ठस्यम् ) सेवा करते हुए ( वचः ) कामना करते हुए ( काव्याय ) विद्वानो से उत्तम प्रकार, अधिकतम के लिए दाता ( भूः ) हजिये ( स्वम् ) अपने ( नपातम् ) पत्न से रहित ( भगवन् ) पश्चात् देने योग्य ( नववास्त्वम् ) नवीन निवास को ( नृपे ) बड़े ( वचः ) पालन करनेवाले के लिए ( वचः ) दीजिये और नहीं ( पत्न ) पीछे लीजिये अर्थात् न लौटाइये ॥ ११ ॥

अध्याय—जो राजा सब का यथायोग्य सरकार करता है वह पिता के तुल्य होता है ॥ ११ ॥

स्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्षणोरुपः सीरा न स्रवन्तीः ।

य यत्समृद्धमतिं शूर पवि पारया तुषशं यदु स्वस्ति ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सब के पालन करने वाले ( धुनि ) मनुष्यों के कम्पानेवाले ( स्वम् ) आप ( धुनिमतीः ) शब्द करती हुई प्रजायें ( सीरा ) माधियों तथा ( अपः ) जल और ( स्रवन्ती ) नदियाँ ( समृद्धम् ) समुद्र वा अन्नरिक्त को ( न ) जैसे वैसे ( स्वस्ति ) सुख का ( शूरयोः ) प्रसिद्ध कीजिये और हे ( शूर ) वीर ( पत् ) जो आप ( तुषसम् ) गीध वश को प्राप्त होनेवाले ( यदुम् ) यत्नशील मनुष्य का ( य, अति, पवि ) प्रसिद्ध अत्यन्त पालन करते हों वह आप हम लोगों को ( पारया ) सुख से पार कीजिये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे राजन् आप यगन और सुख के देनेवाले शब्दों से युक्त और आनन्दित प्रजाओं को करें और जैसे नदियाँ समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे प्रजायें आप का प्राप्त होकर निश्चल होंगे ऐसा करिये ॥ १२ ॥

तव ह त्वदिन्द्र विद्वन्माजौ सुस्तो धुनीचुधरी या ह सिष्वप् ।

दीदयदितुष्यं सोममिः सन्वन्धुमीतिरिधमसुतिः पक्ष्यः कैः ॥१३॥१०

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सुख के धारण करनेवाले ( तव ) आपके ( या ) जो ( धुनीचुधरी ) शब्द और भोग ( माजौ ) संग्राम में ( विद्वन् ) सम्पूर्ण का पालन करते हैं और जो ( सन्तः ) शयन करता हुआ ( ह ) निश्चय से ( सिष्वप् ) सोता हुआ ( दीदयत् ) प्रकाश करता है और जो ( वधीतिः ) हिसा करने और ( इधमसुतिः ) काष्ठ का धारण करने वाला ( पक्ष्यः ) पक्षक ( अर्कः ) अन्नी से और ( सोममिः ) ऐश्वर्य और शोषण आविर्भाव से ( सुम्बम् ) उत्पन्न करता हुआ ( तुम्बम् ) आपके लिये ( इत् ) ही सुख को देवे ( त्वत् ) उसको ( ह ) निश्चय से और उन सबों का सदा सत्कार करिये ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप बहुत बोलनेवाले, भोक्ता, वीर जनो का सत्कार करके सेनाओं को प्रबल करिये ॥ १३ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह ओसर्वा सूक्त और बर्वा बर्वा समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ द्वावर्षस्यैकविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।

इन्द्रो वेत्ता । १, २, ३, १०, १२ चिराद् विष्णुः । ४, ५, ६,

११ विष्णुः । ७, ८ मित्रविष्णुः । पञ्चमः स्वः ।

९ स्वराद् बृहतीः । मध्यमः स्वः ।

अथ भारद्वाजोक्तस्यैकविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।

फिर उस राजा का किस अर्थ आशय करें इस विषय को कहते हैं—

इमा उ त्वा पुस्तमस्य कुरोर्हव्यं वीर हव्या इवन्ते ।

विद्यो रवेष्टामुजं नवीपो रुमिर्भिर्ब्रिरीयते नक्षत्रमा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( वीर ) भय से रहित जो ( पुस्तमस्य ) अतिशय बहुत गुणों से विभिन्न ( कापीः ) कारीगर के ( हव्यम् ) देने योग्य की ( हवन्ते ) प्रहण करते हैं और जो ( इमाः ) ये वर्तमान प्रजायें ( हव्याः ) देने योग्य ( विद्यः ) बुद्धियों की और जो ( रवेष्टाम् ) रथ में स्थित होने वाले ( नवीपः ) यतिशय नवीन ( अजयम् ) बड़ावस्था से रहित शरीर की ( रविः ) धन और ( नक्षत्रम् ) नक्षत्रों में हुआ ( विद्युतिः ) ऐश्वर्य ( ईश्वरः ) प्राप्त होता है उनसे युक्त ( त्वम् ) अर्थात् ( उ ) तर्क विचार से हम लोग सरकार करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो पुष्प प्रशंसा करने योग्य बुद्धि का स्वीकार करके उससे बड़ावस्था और रथ से रहित अत्यन्त लक्ष्मी और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है उस विद्वान्जनप्रिय राजा का सत्कार करना चाहिये ॥ १ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तव स्तुष इन्द्र यो विद्वानो गिर्विहसं गीर्मियंश्चन्द्रम् ।

यस्य दिवमतिं मुहा पृथिव्याः पुष्पायस्य रिरिषे महित्वम् ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् ( य ) जो ( विद्वान् ) जानता हुआ ( गीर्मिः ) वाणियों से ( गिर्विहसम् ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी के प्राप्त करने वाले ( यमश्चन्द्रम् ) यज्ञ में आदर करने योग्य विद्वान् और ( विषम् ) कामना करते हुए ( इन्द्रम् ) परमेश्वर्यप्रद जन को प्राप्त होकर ( पृथिव्या ) पृथिवी और ( अस्थ ) जिन ( पुष्पायस्य ) बहुत कपट से युक्त वृष्ट जन की ( मुहा ) महिमा से ( महित्वम् ) महिमा को ( अति, रिरिषे ) बढ़ाता है और जिसकी आप ( उ ) तर्क विचार से ( स्तुषे ) प्रशंसा करते हों ( तम् ) उस जन का हम लोग स्वीकार करें ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अत्यन्त ऐश्वर्य के बढ़ानेवाले सूर्य के सदृश प्रकाशमान राजा को मृत्यु का उपदेश करें वे महिमा को प्राप्त होकर दुःख से अतिरिक्त होते हैं ॥ २ ॥

स इवमोऽयुनं तत्तुवःसूर्येण वयुनवचकार ।

कदा ते मर्त्ता अमृतस्य चाभेयंश्चन्तो न मिनन्ति रुद्रावः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर जो आप ( सूर्येण ) सूर्य से ( तम् ) राजा जैसे वैसे ज्ञानप्रकाश से ( अवयुनम् ) अज्ञानान्धकार को नष्ट ( चकार ) करते हैं और ( वयुनवत् ) बुद्धि के सदृश और बुद्धि का ( तत्तुवत् ) विस्तार करते हुए हैं ( स, इत् ) वही सेवा करने योग्य हैं। हे ( स्वभाव ) बहुत अन्न से युक्त ( मर्त्ताः ) मनुष्य ( अमृतस्य ) मरणरहित जगदीश्वर के ( ते ) आप के सम्बन्ध में ( चाव ) धारण करते जिससे उसको मिलाने की इच्छा करते हुए ( कदा ) कब ( न ) नहीं ( मिनन्ति ) नष्ट करते हैं अर्थात् दोष के कारण को दूर करते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अहिंसा धर्म का स्वीकार कर और विज्ञान वृद्धय के परमेश्वर की प्राप्ति की चिकीर्षा करते हैं वे विस्तीर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को विद्वानो के प्रति क्या-क्या पूछना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यस्ता चकार स इह स्वदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।

कस्ते यज्ञो मर्त्तमे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दुःखविदारक विद्वन् ( य ) जो ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य का करनेवाला ( कुह स्वित् ) कही ( ता ) उन को ( चकार ) करता है और ( कासु ) कितन ( विक्षु ) प्रजाओं में ( स ) वह ( कम् ) सुख को और ( जनम् ) मनुष्य को ( आ, चरति ) आचरण करता अर्थात् प्राप्त होता है और ( ते ) आपके ( वराय ) श्रेष्ठ ( मनसे ) विचारशील चित्त के लिये ( क ) कौन ( यज्ञः ) मेल करणार्थ यज्ञ ( शम् ) सुख को करता है और ( कः ) कौन ( अर्कः ) आदर करने योग्य और ( कतमः ) कौनसा ( स ) वह ( होता ) दाता होता है इन के उत्तरों को कहिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! उन बुद्धि की वृद्धियों को कौन कर सके, उपकार के लिये बुद्धियों में कौन बनाता है, कौन आदर करने योग्य और कौन दाता होता है इन प्रश्नों के समाधानों को कहिये ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नासं आसुः पुंरुक्तसखायः ।

ये मांयमासं उत नृत्नासं उतावमस्यं पुंरुहूत बोधि ॥५॥११॥

पदार्थ—हे ( पुंरुहूत ) बहुतों से प्रशंसा किये गये ( पुंरुहूत ) बहुतों को करने वाले प्रतापयुक्त राजन् ( ये ) जो ( हि ) निश्चित ( राजाः ) पूर्व प्रकट हुए ( प्रत्नासः ) प्राचीन ( अव्यवासाः ) मध्य अवस्था से हुए और ( उत ) भी ( नृत्नासः ) नवीन ( ते ) आपके ( सखायः ) मित्र ( आसुः ) हैं उनको ( इदा ) इस समय तथा ( वेविषतः ) व्याप्त हुए और ( उत ) भी ( अव्यवस्य ) आधुनिक के सम्बन्धियों को आप ( बोधि ) चेतन करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों के साथ मैत्री का आचरण करते हैं वे वृद्ध, वृद्धतर तथा मध्यम और भी तुल्य अवस्थावाले होंगे उन में मित्रता की निश्चय रक्षा करिये ऐसा होने पर निश्चित राज्य की वृद्धि होती है, यह ही पूर्वमन्त्र में कहे हुए प्रश्नों का उत्तर है ॥ ५ ॥

तं पञ्चनोऽवरासुः पराणि प्रत्ना स इन्द्र भुःपासु येसुः ।

अर्थासि वीर अजवाहो पावुष विष तावतां महान्तम् ॥६॥

पदार्थ—हे ( वीर ) शूरता भावि गुणों से युक्त ( इन्द्र ) विद्वन् जो ( अवरासः ) आधुनिक विद्वान् अर्थात् ब्रह्म को जानने की इच्छा करनेवाले जन ( तम् ) उन

(महान्तम्) महाशय (स्वा) आपको (पुच्छन्तम्) पूछते हुए हैं (ते) वे (पराणि) उत्तरकाल में वर्तमान और (प्रस्ता) पूर्वकाल में स्थित (अनुस्था) वेद में प्रतिपादित विषयो को (अनु, येयु) अनुकूल नियम में लाते हैं उनका हम लोग (अर्चामिति) सत्कार करते हैं और हे (ब्रह्मबाहू) धन और धान्य को प्राप्त करानेवाले विद्वान् हम लोग (यात्) जितनी को (विद्म) जानें (तात्) उतनी (एव) ही को आप लोग जानिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों को मित्रतापूर्वक मेल कर तथा पूर्व और पर विज्ञानों को प्राप्त होकर अत्यन्त सुख को प्राप्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

अभि त्वा पाजो रक्षमो वि तस्थे मरि जज्ञानमुमि तत्सु तिष्ठ ।

तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्टो अप ता नुदस्व ॥७॥

पदार्थ—हे (धृष्टो) दृढ़ राजन् (तव) आपका जो (मरि) बड़ा (जज्ञानम्) सुखजनक (पाज्) बल (रक्षसः) दुष्ट मनुष्यों के (अभि, वि, तस्थे) मनुष्य विशेषकर स्थित होना है (तत्) वह (स्वा) आपको प्राप्त होवे और आप उसके (अभि, मु, तिष्ठ) मनुष्य स्थित हजिय उस (प्रत्नेन) प्राचीन (युज्येन) युक्त करने के योग्य (सख्या) मित्र और (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रों के समूह से आप (ता) उन शत्रु सेनाओं को (अप, नुदस्व) दूर करिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे राजजन ! जो राजपुरुष दुष्टों के लिये दण्ड देते और श्रेष्ठों का पालन करते हैं उनका आप सत्कार करिये ॥ ७ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

स तु भुचीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर क रुधायः ।

स्व क्षापिः प्रदिभि पितृणा शश्वद्भूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (वीर) दुष्टों के नाश करने और (कावधाय) शिल्पी विद्वानों के धारण करनेवाले (इन्द्र) न्याय के स्वामी विद्वान् (स्वम्) आप (नूतनस्य) नवीन की (एष्टौ) सब प्रकार से यशस्विता म (सुहव) उत्तम प्रकार ज्ञान और विज्ञानवाले (शश्वत्) निरन्तर (बभूथ) हजिय (स) वह आप (सु) ता (हि) निश्चय मे (पितृणाम्) पिता की अधीन पालन की (प्रदिभि) प्रकृष्ट कामना म (आपि) व्याप्त होनेवाले हुए (ब्रह्मण्यतो) धन प्राप्ति की इच्छा करने हुआ का सत्कार करिये और उनके वचनों का (श्रुति) सुनिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वही उत्तम विद्वान् है जो ज्ञानवृद्धि जनो से विद्यामन्त्रधी वचनों को सुन के उत्तम शिल्पिजनों की रक्षा करके मदा अपेक्षित पदार्थ की प्राप्ति में सुखी होता है ॥ ८ ॥

प्रोतये वरुण मित्रमिन्द्रं मरुतः कृशांसे नो अथ ।

प्रे पृषणं विष्णुमग्निं पुंन्धि सवितारमोषधीः पर्वताश्च ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् आप (अथ) इस समय (न) हम लोगों को (ऊतय) रक्षा आदि के लिये (वरुणम्) उदान और (मित्रम्) प्राण वायु (इन्द्रम्) बिजुली को (मरुत) पर्वतों को (प्र, कृष्व) अच्छे प्रकार करिय और (अवसे) ज्ञान आदि के लिये (पृषणम्) पुष्टि करनेवाले ममान वायु (विष्णुम्) व्यापक ध्यान और जनक्य वायु को वा हिरण्यगर्भ परमात्मा को और (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि (पुरन्धिम्) सब को धारण करनेवाले सूत्रात्मा (सवितारम्) सूर्यमण्डल (ओषधी) सोमनामा प्रादि आर्षाधियों और (पर्वताश्च) पर्वतों का (प्र) अच्छे प्रकार करिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् जना ! हम लोगों के लिए जैसे पृथिवी आदि पदार्थ सुखकारक होवें वैसे करिय ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिए इस विषय को

कहते हैं—

इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अर्च्यन्त्यर्चकैः ।

भुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावो अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यो) यज्ञ से मेल करने का योग्य (पुरुशाक) बहुत सामर्थ्य से युक्त परमेश्वर जो (इमे) ये (जरितार) विद्या के लाभ की स्तुति करनेवाले जन (अर्च) सत्कारों में (त्वा) आपका (अभि, अर्चामिति) सब धार से सत्कार करत हैं । हे (अमृत) नाशरहित जिन (त्वत्) आप से (त्वावात्) आपके मदृश (अन्य) अन्य दूराग (न) नहीं (अस्ति) है वह (हुवान) प्रशंसा करत हुए आप उन (हुवत्) स्तुति करते हुआ को और (हवम्) उच्चारित शब्द को (आ) सब प्रकार (श्रुति) सुनिये (उ) और उन का स्वीकार करिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करत हैं वैसे आप लोग भी उपासना करो और उसके सदृश वा उमंग अधिक कोई भी नहीं है ऐसा जानो ॥ १० ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

तु म आ वाचमुप याहि विद्वान् शिर्वैमिः सनो सप्तो यजत्रैः ।

ये अग्निजिह्वा श्वत्साप आसुर्ये मर्तु चक्रुर्परं दसाय ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (सप्तः) बलवान् के (सनो) सन्तान (विद्वान्) विद्यायुक्त जन आप (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (उप, आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त

हजिय और (ये) जो (अग्निजिह्वा) अग्नि के समान तीव्र प्रज्वलित जिह्वा जिन की (श्वत्सापः) सत्य से युक्त होनेवाले (आसुः) होते हैं उन (शिर्वैमिः) सम्पूर्ण (यजत्रैः) मिलने योग्यों के साथ (नु) शीघ्र मेरे उपदेश को प्राप्त हजिय और (ये) जो (उपरम्) मेघ को जैसे जैसे (वसाय) शत्रुओं के नाश होने के लिये (मनुष्य) विचारशील मनुष्य को (चक्रुः) करते हैं उनका सदा सत्कार करिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाकार है । मनुष्य सदा ही सत्यवादी विद्वानों को उत्तम प्रकार मिलें और प्रतिज्ञा से सत्य का आचरण करें ॥ ११ ॥

स नो बोधि पुरस्ता सुगेवत दुर्गेषु पथिकृद्दिनः ।

ये अश्रमास उरवो बहिष्ठास्तेमिर्न इन्द्रामि वक्षि वाजम् ॥ १२ ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख और ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले (स) वह आप (पुरस्ता) अग्रगामी (सुगेव) सुगम व्यवहारों में (उत) और (दुर्गेषु) दुःख से प्राप्त होने योग्यों में (पथिकृत्) मार्ग को करनेवाले (विद्वान्) जानते हुए (न) हम लोगों को (बोधि) जानें और (ये) जो (अश्रमासः) अकावट से रहित (उरव) बहुत (बहिष्ठा) प्रतिशय पहुँचानेवाले हैं (तेभिः) उनके साथ (न) हम लोगों के वा हम लोगों के लिये (वाजम्) विज्ञान को (अभि, वक्षि) प्राप्त कराइये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—वही विद्वान् जो सबका मङ्गलकारी, स्वयं धर्ममार्ग को प्राप्त होकर औरों को धर्ममार्ग में चलनेवाले करे, जो मदा सत्संग करता है वही सब से उत्तम होकर विज्ञान देने को योग्य होता है ॥ १२ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, ईश्वर और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की हमने पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गत जाननी चाहिए ॥

यह इक्कीसवा सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अर्चकावशर्चस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य आचि । इन्द्रो

वेवता । १, ७ भुरिक्पद्वि । ३ स्वराट् पद्वि । १० पद्वितद्वन्द्वः ।

पञ्चम स्वर । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् ।

६, ११ निष्ठात् त्रिष्टुप् । चंडत. स्वर. ॥

अब ग्यारह आचावाले बार्हस्पत्य सूक्त का आरम्भ है उसके अथम मन्त्र में मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिए इस विषय को

कहते हैं—

य एक इद्व्यर्धणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।

यः पत्यते वृषभो वृष्यावान्तसत्यः सत्वां पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (य) जा (वृषणीनाम्) मनुष्यों के मध्य में (एक) एकना (इत्) ही (हव्य) स्तुति करने और ग्रहण करने योग्य है (तम्) उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य का करनेवाले का (आभि) इन (गीर्भि) वाणियों से मैं (अभि, अर्च) सब प्रकार से सत्कार करता हूँ और (य) जा (वृषभ) श्रेष्ठ (वृष्यावात्) बल आदि बहुत प्रियगुणा से युक्त (सत्य) तीनों कालों में अबाध्य (सत्वा) सर्वत्र स्थित (पुरुमायः) बहुतों का रचनेवाला (सहस्वान्) अत्यन्त बल से युक्त हुआ (पत्यते) स्वामी के मदृश आचरण करना है उसका सत्कार करता हूँ उस परमेश्वर का आप लोग सत्कार करिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अद्वितीय, सब से उत्तम, सच्चिदानन्दस्वरूप न्यायकारी और सबका स्वामी है उसका त्याग करके अन्यकी उपासना कभी न करो ॥ १ ॥

तमु नः पूर्व पितरो नवग्वाः सप्त विप्रसो अभि वाजयन्तः ।

नसद्दामं ततुर्गि पवतेष्टामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिस (नवग्वाभ्यम्) प्राप्त दोषों के नाश करने और (ततुर्गि) दुःख से पाग करनेवाले (पवतेष्टावाम्) मेघ में वर्तमान बिजुली के समान शुद्धस्वरूप और (अद्रोघवाचम्) द्रोहरहित वाणीवाले (शविष्ठम्) अत्यन्त बल से युक्त परमात्मा का (न) हम लोगों के (पूर्व) पहिले (मन्त्राः) नवीन गमन वाले (विप्रसः) बुद्धिमान् और (सप्त) सात सख्या से युक्त अर्थात् पांच प्राण और मन बुद्धि इनके सदृश वर्तमान (पितर) पितृजन (अभि) सम्मुख (वाजयन्तः) बुद्धि को देन हुए उपदेश देने हैं (तम्) उसकी (उ) आप लोग उपासना करो और (मतिभिः) मननशील मनुष्यों से यही सेवा करने योग्य है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिसकी योगीजन योग से उपासना करते हैं उसी का योगाम्नाय से ध्यान करो ॥ २ ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुंरुवीरस्य नृवतः पुत्रोः ।

यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्बान्तमा भर हरिवो मादयध्वै ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (हरिवः) अच्छे मनुष्यों के सहित वर्तमान विद्वान् (यः) जो (अस्कृधोयुः) व्यापक (अजरः) जरा आदि रोग से रहित (स्वर्बावाम्) बहुत सुख विद्यमान जियमें वह वर्तमान है (तम्) उसको (मादयध्वै) आनन्दित करने के लिये (आ, भर) सब प्रकार से धारण करिये और (तम्) उस को (अस्य) इस (पुरुवीरस्य) बहुत वीरों को प्राप्त करानेवाले (नृवतः) अच्छे मनुष्य विद्यमान

जिसमें उस ( पुष्पः ) बहुत ध्यान से युक्त ( रायः ) धन के ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले की हम लोग ( ईश्वरः ) याचना करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये परमात्मा से ही याचना करें ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं—

तस्यो वि वीचो यदि ते पुरा चिन्मरितारं आननुः सुम्नमिन्द्र ।

कस्तं भागः किं वयं दुध सिद्धः पुरं हव पुरुषसोऽमरुध्नः ॥४॥

पदार्थ—हे ( दुधः ) दुध से धारण करने योग्य और ( पुष्पः ) बहुतों से सत्कार किये गये ( पुष्पः ) बहुत धन से युक्त ( इन्द्रः ) विद्या और उपदेश के करनेवाले ( यदि ) जो आप ( नः ) हम लोगों के लिए ( तत् ) उसको ( वि, वीचः ) विशेष कहिए जिसको ( चित् ) निश्चित ( ते ) आपके ( पुरा ) पहले भी ( अरितारः ) विद्या और गुणों की स्तुति करनेवाले ( सुम्नम् ) सुख का ( आननुः ) भोग करते हैं ( ते ) आपका ( कः ) कौन ( अमरुध्नः ) दुष्ट कर्मकारियों का नाश करनेवाला ( भागः ) अंश ( सिद्धः ) दीन और ( किम् ) कौन ( वयः ) जीवन है इसको आप कहिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आपको वह विज्ञान हम लोगों के लिए देने योग्य है जिससे विद्वान् जन आनन्द करते हैं ॥ ४ ॥

फिर स्त्री कैसे पति का ग्रहण करे इस विषय को कहते हैं—

तं पृच्छन्ती वज्रं हस्तं रथेष्ठाभिन्द्रं वेपां वक्त्रे यस्य न गीः ।

तुविप्राभं तुविकूर्मि रमोदां गातुमिषे नक्षते तुव्रपच्छ ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यस्य ) जिसके ( इषे ) जन्म आदि के लिए ( गी ) वाणी ( तुविप्राभम् ) बहुतों की ग्रहण करने ( तुविकूर्मिम् ) बहुत काम करने और ( रमोदाम् ) वेग से युक्त बल के देनेवाले ( तुव्रम् ) ग्लानि से युक्त जन को और ( गातुम् ) भूमि का ( अच्छः ) अच्छे प्रकार ( नक्षते ) प्राप्त होती है ( तम् ) उस ( वज्रहस्तम् ) शस्त्र और अश्वों से युक्त हाथोवाले ( रथेष्ठाम् ) रथ में स्थित होते हुए ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् पुरुष को ( पृच्छन्ती ) पूछती हुई ( वेपी ) बुद्धि वाली और ( वक्त्रे ) वक्त्र शक्तिवाली स्त्री ( नू ) निश्चय हीवे उसका हम लोग भी आश्रयण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—कन्या को चाहिए कि सब बातों को पूछ कर हृदयप्रिय पति का स्वीकार करे ॥ ५ ॥

फिर स्त्री और पुरुष परस्पर कैसे वसति करें इस विषय को कहते हैं—

अया इ त्यं मायया वाह्वानं मनोजुवां स्वतवः पर्वतेन ।

अच्युता चिद्विदिता स्वोऽजो रजो वि दृह्णा वृषता विरिप्तिन् ॥६॥

पदार्थ—हे ( स्वतवः ) अपना अन्त जिसके ऐसे ( विरिप्तिन् ) महागुणों से युक्त ( स्वोऽजः ) उत्तम पराक्रमयुक्त प्रतापी आप ( अया ) इस ( मायया ) बुद्धि से जैसे जैसे स्त्री से रमण करिये वह स्त्री ( वाह्वानम् ) बड़े हुए ( त्यम् ) उस पति को प्राप्त होकर ( मनोजुवा ) मन के सद्गुण वगैरह ( पर्वतेन ) मेघ से बिजुली जैसे जैसे रमण करे और ये दोनों ( वृषता ) वीरपन से ( वज्रः ) रोगों का नाश करके ( नू ) निश्चय से युक्त ( अच्युता ) अविनाशी से ( चिद्विदिता ) स्तुतिरूप ( वि ) विशेष करके ( दृह्णा ) वृद्ध ( चित् ) भी कर्मों को करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों प्रेम से मिल के पृथग्भावों के कृत्य में श्रुति से, रोग निवृत्ति तथा प्रीति से मेल करके सन्तानों को उत्पन्न करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को किसका नियम ध्यान करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

तं वीं विद्या नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परित्सयध्वै ।

स नो वक्षन्निमानः सुखसेन्द्रो विरवान्यति दुर्गहाणि ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( अविमानः ) परिमाण से रहित ( सुखहा ) उत्तम प्रकार चलानेवाला ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जगदीश्वर ( नव्यस्या ) अति-नवीन ( विद्या ) बुद्धि वा कर्म से ( वः ) आप लोगों और ( नः ) हम लोगों के लिए ( विद्वानि ) सम्पूर्ण ( दुर्गहाणि ) दुःख से प्राप्त होने योग्यों को नाश करनेवाले धर्मयुक्त कर्मों को ( परित्सयध्वै ) चारों ओर से सुसोमा करने के लिए ( अतिवक्षत् ) अत्यन्त प्राप्त करावे ( तम् ) उस ( शविष्ठम् ) अत्यन्त बलवान् ( प्रत्नम् ) पुरातन को ( प्रत्नवत् ) प्राचीन के सदृशमान कर हम लोग सेवा करें और ( सः ) वह भी हम लोगों का गुरु हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा हम सब लोगों के सम्पूर्ण दुःखों को बुद्धिमान से दूर करके अन्तर्धारण से सकोचित करता है उसे परमात्मा का आत्मा से निरन्तर ध्यान करो ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् जनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

आ जनाय द्रुह्ये पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।

तथा द्रुह्यन्तः शोचि तां प्रहृष्टिं शोचय क्षामपश्य ॥८॥

पदार्थ—हे ( द्रुह्यः ) बलिष्ठ विद्वान् आप ( शोचिषा ) प्रकाश से ( दिव्यतः ) सब ओर से ( दिव्यानि ) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाववाले वस्तुओं ( अन्तरिक्षा ) अन्तरिक्ष के सहचारी ( पार्थिवानि ) पृथिवी में हुए पदार्थों को ( आ, दीपयः ) सब प्रकार से प्रकाशित कीजिए और ( द्रुह्यन्तः ) ईश्वर वा वेद से द्रव्य करनेवाले और ( द्रुह्यन्तः ) द्रव्य करनेवाले ( क्षामय ) अन्त के लिए सब प्रकार से ( तथा ) सन्ताप करिये और जो सज्जनों को सन्तापयुक्त करते हैं ( तां ) उनको ( शोचय ) शोक कराइये तथा ( क्षामय ) पृथिवी को ( अप, च ) और जलो को प्रकाशित करिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनों ! आप लोग पृथिवी आदि पदार्थों को जानकर अग्नियों को जनाइये और दुष्टजनों को उपदेश से पवित्र करिये ॥ ८ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

सुवो जनस्य दिव्यस्य राज्ञा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दक् ।

चिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुयं दयसे वि मायाः ॥९॥

पदार्थ—हे ( अजुयं ) जीर्ण अवस्था में रहित ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले ( राजा ) प्रकाशमान आप ( भुवः ) पृथिवी और ( पार्थिवस्य ) पृथिवी में हुए ( जगतः ) समार और ( दिव्यस्य ) सुदृढकामना करने योग्य सुन्दर ( जगत्स्य ) मनुष्यों के ( त्वेषसन्दक् ) न्याय प्रकाश को देनेवाले होते हुए ( दक्षिणे ) दाहिने ( हस्ते ) हाथ में ( वज्रम् ) शस्त्र और अस्त्र को ( चिष्व ) धारण करिये और ( चिषवाः ) सम्पूर्ण ( मायाः ) बुद्धि को ( वि, दयसे ) विशेष करके दीजिए ॥ ९ ॥

भावार्थ—वही राजा उत्तम है कि जो न्यायशील, धार्मिक, जितेन्द्रिय होकर सम्पूर्ण जगत् का पिता के समान पालन करके सम्पूर्ण विद्याओं को अच्छे प्रकार देता है ॥ ९ ॥

आ संयतमिन्द्र गः स्वस्ति शत्रुतूयैष बृहतीममृध्नाम् ।

यया दासान्यार्याणि वज्रा करो वज्रिन्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥

पदार्थ—हे ( वज्रिन् ) शस्त्र और अस्त्र के धारण करनेवाले ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य करनेवाले आप ( यया ) जिससे ( दासानि ) शूद्र के कुलों को ( अर्याणि ) द्विज कुल और ( सुतुका ) उत्तम प्रकार बढ़नेवाले ( नाहुषाणि ) मनुष्य सम्बन्धी ( वज्रा ) धनो को ( आ ) सब प्रकार ( करोः ) करती है उस ( अमृध्नाम् ) नहीं हिंसा करनेवाली ( बृहतीम् ) बड़ी सेना को ( शत्रुतूयैष ) शत्रुओं के नाश के लिए करिये और उससे ( नः ) हम लोगों के लिए ( संयतम् ) किया है सयम जिस के निमित्त उस ( स्वस्तिम् ) सुख की करिये ॥ १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप सत्यविद्या के दान और उपदेश से शूद्र के कुल में उत्पन्न हुआ को भी द्विज करिये और सब प्रकार से ऐश्वर्य को प्राप्त करायें तथा शत्रुओं का निवारण करके सुख की वृद्धि कीजिए ॥ १० ॥

स नो निपुङ्गिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।

न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तुयमा मद्रथ द्रिक् ॥११॥१४॥

पदार्थ—हे ( प्रयज्यो ) अत्यन्त यज्ञ करनेवाले ( पुरुहूतः ) बहुतों से आदर किये गये ( वेधः ) बुद्धियुक्त ( सः ) वह आप ( देवः ) विद्वान् के ( नः ) समान ( विश्ववाराभिः ) सबसे स्वीकार करने योग्य गमनों में और ( आभिः ) इन ( निपुङ्गिः ) निश्चित गमनवाले घोड़ों में जैसे जैसे ( नः ) हम लोगों को ( आ, गहि ) प्राप्त हुईए और ( या ) जिन रीतियों को ( अदेवः ) विद्वान् जन से भिन्न ( नः ) नहीं ( आ, वरते ) अच्छे प्रकार स्वीकार करता है ( मद्रथद्रिक् ) मेरे सन्मुख हुए आप ( तूयम् ) शीघ्र ( आ, गहि ) प्राप्त हुईए ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो रीति विद्वानों की है उसको अविविधान् जन नहीं स्वीकार करते हैं इससे विद्वानों और अविविधानों का पृथक् स्थान है यह जानना चाहिये ॥११॥ इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, ईश्वर, राजा और प्रजाके धर्मका वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बाईसवां सूक्त और चौदहवां वं समान्त हुआ ॥

ॐ

अथ दशार्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।

इन्द्रो वेदताः १, ३, ८, ९ निष्वसुष्टुपः ५, ६, १० निष्वसुष्टुपः ।

७ चिरादनुष्टुपछन्दः । जैबतः स्वरः १, २, ४ स्वरद्वयद्वित्वछन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ दस ऋषि बार्हस्पत्यस्य सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र विषय को कहते हैं—

सुत इत्वं निमिष्ठ इन्द्र सोमे स्तोमे व्रक्षणि शुस्यमान उक्थे ।

यदा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां विभ्रद्वर्षं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्रः ) शत्रुओं के नाशक जो ( त्वम् ) आप ( स्तोमे ) प्रणसा के निमित्त ( व्रक्षणि ) वन में ( निमिष्ठः ) अत्यन्त मीने हुए ( सोमे ) ऐश्वर्यके ( युते ) उत्पन्न होने पर ( अत्यन्तः ) प्रणसा करने योग्य और ( उक्थे ) सुनने



वा कहने योग्य से ( युक्ताभ्याम् ) जुड़े हुए ( हरिभ्याम् ) हरणशील मनुष्यों से ( बाह्योः ) भुजाओं में ( बज्जम् ) बज्ज को ( बिभत् ) धारण करते हुए ( बाणि ) जाते हो और ( यत् ) जो ( वा ) वा है ( मयवत् ) बहुत धनो से युक्त ( इन्द्र ) परमेश्वर्यप्रद आप प्राप्त होते हैं वह आप ( इत् ) ही सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

भाषार्थ—जो राजा नहीं प्रभाव करते, पिता के सद्गुण प्रजाओं का धारण करते और मनुष्यों का धारण करते हुए तथा दुष्टों का निवारण करते हुए हैं उनका राज्य स्थिर होता है ॥ १ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

यद्वा दिवि पायें सुष्विमिन्द्र वृत्रहृत्तेऽर्वांसि शूरसातौ ।

यद्वाहृत्तेऽर्वांसि विम्युषो अविम्यदरन्ध्रयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) दुष्ट जनों के नाश करनेवाले ( यत् ) जो आप ( पायें ) पार से हुए ( विवि ) कामना करने योग्य के निमित्त ( वृत्रहृत्ते ) मेघ के हनन ( वा ) वा ( शूरसातौ ) शूर जनों से विभाग करने योग्य सभाम में ( सुष्विम्यु ) उत्तम प्रकार उत्पन्न करनेवाले की ( अविम्यद ) रक्षा करते हो और ( यत् ) जो ( वा ) वा आप ( वक्षस्य ) बली ( विम्युष ) भय करनेवाले का ( अविम्यद ) भय करते हैं वह आप हे ( इन्द्र ) प्रतापी जन ( शर्धतः ) बलयुक्त से ( दस्यून् ) हठ से हमारे पदार्थ ग्रहण करनेवालों का ( अरन्ध्रयः ) नाश करिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—वही राजा होने को योग्य होवे कि जो युद्ध में अपनी सेना की रक्षा करे और शत्रु तथा चोरो का नाश करे ॥ २ ॥

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनोरुद्रो अरितारमृती ।

कर्त्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जो ( ऊती ) रक्षण आदि क्रिया में ( प्रणेनो ) अत्यन्त व्याय करने और ( पाता ) रक्षा करनेवाला ( उष ) तेजस्वी ( इन्द्र ) ऐश्वर्यकारी राजा ( सुतम् ) उत्पन्न किये गये ( सोमम् ) सोमलता आदि औषधियों के रस को और ( अरितारम् ) स्तुति करनेवाले को करता है वह हम लोगों का राजा हो और जो ( उ ) तर्क वितर्क से ( वीराय ) पराक्रमयुक्त ( सुष्वये ) उत्तम प्रकार अच्छे पदार्थों के उत्पन्न करनेवाले ( स्तुवते ) स्तुति करते हुए ( कीरये ) स्तुति करनेवाले के लिए ( दाता ) दाता और ( कर्त्ता ) कार्य करनेवाला ( लोकम् ) लोक को ( वसु ) धन और ( चित् ) भी करता है वह हम लोगों का भद्रणी ( अस्तु ) हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! उसी को राजा मानो जो सम्पूर्ण मांसों का जानने वाला, पुरुषार्थी, धार्मिक और इन्द्रियों को बश में रखनेवाला होवे ॥ ३ ॥

गन्तेयान्ति सर्वना हरिभ्यां वृत्रिर्वज्रं पृषिः सोमं दुर्दिगाः ।

कर्त्ता वीरं नयं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( स्तोमवाहाः ) समूहों को धारण करनेवाले मनुष्यों जो ( हरिभ्याम् ) अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों के साथ ( इयान्ति ) इनने ( सर्वना ) ऐश्वर्यकारक कर्मों को ( गन्ता ) प्राप्त होनेवाला ( वज्रम् ) अस्त्र विशेष को ( वृत्रिः ) पुष्ट करने वा धारण करने तथा ( सोमम् ) सोमलता के रस का ( पृषिः ) पान करने और ( नाः ) गौश्री को ( वृत्रिः ) देनेवाला ( गृणतः ) स्तुति करते हुआ को और ( हवम् ) प्रशंसा करने योग्य को ( श्रोता ) सुननेवाला ( सर्ववीरम् ) सम्पूर्ण वीर जिससे उस ( नयम् ) मनुष्यों में श्रेष्ठ ( वीरम् ) वीर जन को ( कर्त्ता ) करनेवाला होवे उसको राजा मानो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जो सम्पूर्ण राजकर्मों में निपुण हो उसको राजा करके न्याय से राज्य का पालन करो ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अस्मै वयं यद्वाचान् तद्विष्म इन्द्राय यो नः प्रदिषो अपस्कः ।

सुते सोमं स्तुमसि शंसदुष्येन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥ ५ ॥ १५ ।

पदार्थ—हे मनुष्यों ( वः ) जो ( प्रविषः ) अस्थितपन से कामना करते हुआ ( नः ) हम लोगों और ( अपः ) कर्म को ( कः ) करता है और ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त जन के लिए ( उषवा ) प्रशंसा करने योग्य कर्मों का ( वासत् ) कहे और ( यथा ) जैसे ( ब्रह्म ) धन ( वर्धनम् ) बढ़ता है जिससे वह ( वसत् ) होवे और ( अस्मै ) पूर्व मन्त्र में कहे हुए ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के लिए ( वयम् ) हम लोग ( यत् ) जिसको ( विविष्म ) व्याप्त होते हैं ( तत् ) उसका जो ( वाचान् ) उत्तम प्रकार सेवन करता है वैसे उसकी ( सुते ) उत्पन्न किये गये ( सोम ) ऐश्वर्य में हम लोग ( स्तुमसि ) स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है । जो धन के सद्गुण सबके बढ़ानेवाले हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य का प्राप्त होकर प्रयत्न करते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

ब्रह्माणि हि चक्रे वर्धनानि तावत् इन्द्रमृतिमिबिबिष्मः ।

सुते सोमं सुतपाः श्रन्तमानि शन्द्रया क्रियास्म वक्ष्यानि युद्धैः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) प्रतापयुक्त ! जिनने ( वर्धनानि ) वृद्धि करनेवाले ( ब्रह्माणि ) धनो को आप ( वक्ष्ये ) करते हो ( तावत् ) उतने ( ते ) आपके

लिए ( ब्रह्माणि ) उत्तम मनुष्यों के साथ हम लोग ( विविष्मः ) व्याप्त होवें तथा ( सुतपाः ) पदार्थों की रक्षा करनेवाला तथा ( हि ) निश्चय कर हम लोग ( सुते ) उत्पन्न हुए ( सोमे ) ऐश्वर्य में ( यज्ञैः ) धनप्रापक व्यवहारों से निश्चय कर ( वास्तवानि ) अत्यन्त सुखकारक ( शन्द्रया ) रमण करने योग्यो को ( वक्ष्यानि ) प्राप्त करानेवाले ( क्रियास्म ) करें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि उत्तम आचरण को देख के वैसा ही आचरण करें और सब मिल के ऐश्वर्य को प्राप्त होकर न्याय से प्रजा की रक्षा करें ॥ ६ ॥

स नो बोधि पुरोडाशं राणः पिबा तु सोमं गोमन्त्रीकमिन्द्र ।

एवं बहिर्यजमानस्य सीदोरं कृषि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के धारण करनेवाले ( सः ) वह आप ( पुरोडाशम् ) उत्तम प्रकार सम्कारयुक्त अन्न को ( राणः ) देते हुए ( गोमन्त्रीकम् ) इन्द्रिय सरल जिससे उम ( सोमम् ) बड़ी औषधियों के रस को ( पिबा ) पीजिए और ( नः ) हम लोगों को ( बोधि ) जानिये और ( यजमानस्य ) यजमान के ( इयम् ) दस ( बहिः ) उत्तम भ्रामन पर ( आ, सीद ) सब प्रकार से विराजिये तथा ( उरम् ) बहुत ( लोकम् ) देखने योग्य को ( उ ) और ( त्वायतः ) आपकी कामना करते हुआ को ( तु ) ता ( कृषि ) करिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो लोग राग के हरनेवाले भोजनों और जलपानादि को देते हैं और परोपकार करते हैं वे यहाँ प्रशंसा करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

स मन्दस्वा धनु जोषधुग्र म त्वा यज्ञास इमे अशुबन्तु ।

प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( उष ) तेजस्विन् ( इन्द्र ) विद्या और क्रिया में कुशल जिस बुद्धि से ( इमे ) ये ( यज्ञासः ) सम्पूर्ण धर्मयुक्त व्यवहार ( स्वा ) आपको ( अशुबन्तु ) प्राप्त हो और जो ( इमे ) ये ( हवासः ) दान, भ्रान्त और भयन नामक प्रयत्न देना लेना खाना ( पुरुहूतम् ) बहुतो से प्रशंसित ( स्वा ) आपको ( प्र ) प्राप्त हो सो ( इयम् ) यह ( धी ) बुद्धि ( अस्मे ) हम लोगों को वा हम लोगों में ( अबसे ) रक्षा के लिए हो आप उसको ( आ, यम्याः ) अच्छे प्रकार विस्तारिये तथा हम लोगों में ( प्र ) अच्छे प्रकार दीजिए उनके साथ ( हि ) जिससे ( जोषम् ) प्रीति को ( अनु ) अनुकूल ( सः ) वह आप ( मन्दस्वा ) आनन्द करिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों ! जिन कर्मों और जिस बुद्धि में विज्ञान और आनन्द बढ़त है उनकी आप लोग बुद्धि करिये ॥ ८ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमैमिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।

कुचितस्मा असति नो मराय न सुष्विमिन्द्रोऽर्वांसि मृधाति ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( सखायः ) मित्र जनों ( यथा ) जैसे ( सोमैमिः ) ऐश्वर्य की प्रेरणा आदि क्रियाओं से ( सुतेषु ) उत्पन्न हुआ में ( नः ) आप लोग और ( नः ) हम लोगों के ( मराय ) पालन के लिए ( अबसे ) रक्षा आदि के लिए जो ( इन्द्रः ) राजा ( न ) नहीं ( मृधाति ) हिंसा करे ( तम् ) उस ( भोजम् ) पालन करनेवाले ( सुष्विम्यु ) उत्पन्न करने वा ऐश्वर्य करनेवाले ( इन्द्रम् ) शत्रु के विनाश करनेवाले राजा को आप लोग ( सखः, प्रणता ) उत्तम प्रकार सुखी करिये ( तस्व ) उसके लिए ( इन् ) जल से ( कुचित् ) बड़ा ( असति ) होवे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य राग और द्वेष का त्याग करके परस्पर रक्षण करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमं मरदाजेषु क्षयदिन्मुषोनः ।

असद्यथा जरित्र उत सूरिन्द्रो रापो विश्वारस्य दाता ॥ १० ॥ १६ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( यथा ) जैसे ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् जन ( सुते ) उत्पन्न हुए हम ससार में ( सोमे ) ऐश्वर्य में ( इत् ) निश्चय ( मरदाजेषु ) विज्ञान को धारण किये हुए में ( अस्तावि ) स्तुत किया जाता है और जैसे ( सूरिः ) विद्वान् और ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्य में युक्त जन ( जरित्रे ) स्तुति करनेवाले जन के लिए ( विश्वारस्य ) सम्पूर्ण स्वीकार जिसमें उस ( रापः ) धन का ( दाता ) देनेवाला ( उत ) निश्चय से ( क्षयत् ) निवास करे और ( इत् ) निश्चय कर ( सद्योजः ) धन में युक्त जनों की रक्षा करता हुआ हो वह ( एव ) ही उन प्रकार का सुखी ( अस्तत् ) होवे ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमानाकार है । जो मनुष्य हम ससार में धर्मयुक्त कर्म करते हैं वे सर्वदा स्तुति किये जाते हैं, जैसा देना प्रियकारक होता है वैसा लेना नहीं प्रियकारक होता है ॥ १० ॥

हम सूक्त में इन्द्र, विद्वान् राजा और प्रजा के गुणवर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ समझ जाननी चाहिए ॥

यह अथर्ववेदमध्य में छठे मण्डल में दूसरा अनुवाक तैत्तिरीयो ब्रह्म सूक्त और सोलहवां अर्थ समाप्त हुआ ॥

पद्माक्ष—हे (आत्मनिष्ठ) बहुत बल से मुक्त और (सुतपात्रम्) उत्पन्न  
पद्माक्षों के पवित्र करनेवाले आप (गम्भीरेण) गम्भीर और (ज्वला) बहुत  
ही (जः) हृय लोगों को (हृद्यः) अन्न आदि (धनिष) दीर्घों (ज) और  
(ऊर्ज्ज्) रक्षण आदि जिन्यासि (ऊर्ध्वः) ऊपर बसेवाल (अखिलम्) तही हिवा  
करते हुए (अमृतैः) दधि के (अमृत्यु) प्रभावकाल में और (परितन्मयायाम्)

रात्रि मे ( बाजाय् ) विज्ञान आदिकों को ( सु, प्र ) अति उत्तम प्रकार ( स्वा ) स्थित हूजिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जो यम और नियमों से युक्त हुए कार्य की सिद्धि के लिये दिनरात्रि प्रयत्न करें वे उत्तम होते हैं ॥ ९ ॥

सर्वस्व न्यायमर्षसे अमीक हुतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।

अमा चैनमर्षये पाहि रिषो मर्देम श्रुतहिमाः सवीराः ॥१०॥१८॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् वा विद्वान् आप ( अर्षसे ) रक्षण आदि के लिये ( अमीके ) समीप मे ( न्यायम् ) न्याय को ( सर्वस्व ) प्राप्त हूजिये ( इत. ) यहाँ से ( वा ) वा ( रिष ) हिंसा करनेवाले से ( पाह् ) रक्षा कीजिये और ( एनम् ) इसकी ( अमा ) गृहमे और ( अरष्ये ) यम मे ( पाहि ) रक्षा कीजिये ( रिष, च ) और दुष्ट आचरण से भी, जिससे ( सुवीराः ) सुन्दर वीर जिनके ऐसे हम लोग ( श्रुतहिमाः ) सौ वर्ष पर्यन्त ( अर्षे ) आनन्द करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन्म है वे दूर वा समीप मे वर्तमान हुए न्यायाचरण और योगाभ्यास से बुद्धि को बढ़ाये हुए वस्ती और जङ्गलों मे पुरुषार्थ से प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ १० ॥

इस सूक्त मे राजा, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह चौबीसवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ नवचंस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, ५ पङ्क्तिः । ३ भुरिक् पङ्क्तिद्वयम् । पञ्चमः स्वरः ।

२, ७, ८, ९ निष्कृतिरष्टपु । ४, ६ त्रिष्टुप्छन्दः । चैवत स्वरः ॥

अथ नव ऋचा वाले पञ्चवीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे

अथ राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

या तं ऊतिरवमा या परमा या मन्थमेन्द्रं शुष्मिन्वस्ति ।

तामिरु बु वृत्रहत्येऽवीर्न एमिश्च वाजैर्महान्नं उग्र ॥१॥

पदार्थ—हे ( शुष्मिन् ) प्रशंसित बल मे युक्त ( उग्र ) तेजस्विन् ( इन्द्र ) न्यायाधीश राजन् ( ते ) आपकी ( या ) जो ( अवमा ) निकृष्ट खराब और ( या ) जो ( मन्थमा ) मध्यम और ( या ) जो ( परमा ) उत्तम ( ऊति ) रक्षा ( अस्ति ) है ( तामिः ) उनसे ( वृत्रहत्ये ) मेघ के नाश के समान नाश जिसमे उस सग्राम मे ( न. ) हम लोगों की ( सु ) उत्तम प्रकार ( अवी ) रक्षा कीजिये ( ऊ ) और ( एमि ) इन ( वाजै ) वेग आदि उत्तम गुणों से ( च ) भी ( महान् ) बड़े हुए ( न ) हम लोगों की रक्षा कीजिये ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आप प्रजाओं की सब प्रकार से रक्षा करें तो प्रजा भी आपकी सब प्रकार से रक्षा करेंगी ॥ १ ॥

फिर सेना का स्वामी क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आभिः स्पृष्टो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्थुमिन्द्र ।

आभिविंशो अभियुजो बिषूचीगर्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेना के स्वामी आप ( आभि ) इन रक्षायों वा सेनाओं से ( बिषती. ) शत्रुओं की सेनाओं का नाश करते हुए ( स्पृष्ट ) मग्राओं की ( अरिषण्यम् ) नहीं हिंसा करते ( अभिषस्य ) शत्रु की सेनाओं को ( मन्थुम् ) कोष करके ( व्यथया ) पीड़ा दीजिये और ( आभि ) इन रक्षा और सेनाओं से ( आर्याय ) उत्तम जन के लिये ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( अभियुज ) अभियुक्त होने ( बिषूची ) व्याप्त होनेवाली ( दासी ) सेविकाओं को और ( विश ) प्रजाओं को ( अव, तारी ) दुःख से पार करिये ॥२॥

भाषार्थ—वे ही सेना के स्वामी सत्कार करने योग्य है जो अपनी सेना को उत्तम प्रकार शिक्षा से तथा उत्तम प्रकार रक्षा कर और सत्कार करके युद्ध विद्या से चतुर करके शत्रुओं और अन्यायकारी शत्रुओं को निवारण करके अच्छी प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ २ ॥

इन्द्रं जामयं उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुजं ।

स्वमेपां बिथुरा शर्वासि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेना के स्वामी ( त्वम् ) आप ( वे ) जो ( अर्वाचीनास ) इस काल मे हुए ( जामय ) पतिव्रता स्त्रियों के सद्गुण और ( उत ) भी ( अजामय ) मौतिया जैसे वैसे शत्रु जन ( वनुष ) सविभाग करनेवालों को ( युयुजं ) युक्त होते अर्थात् मिलने है ( एषाम् ) इन शत्रुओं की ( बिथुरा ) पीड़ा देनेवाली ( शर्वासि ) सेनाओं को ( त्वम् ) आप ( जहि ) नष्ट कीजिये और अपनी सेनाओं को ( वृष्ण्यानि ) वलिष्ठ ( कृणुही ) करिये और शत्रुओं का ( पराचः ) पराङ्मुख कीजिये अर्थात् हटाइये ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही मन्त्री उत्तम हैं जो धार्मिक प्रजाओं की पुत्र के सद्गुण रक्षा करते हैं और दुष्टों को दण्ड देते हैं और अपनी सेनाओं को बढ़ाके शत्रुओं की सेना को पराजित करते हैं ॥३॥

फिर राजा और मन्त्रीजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

शूरो वा शूरं वनहे शरीरैस्तनुरुषा तर्षि यत्कृष्वैते ।

तोके वा गोष तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु प्रवैते ॥४॥

पदार्थ—हे राजजनों जैसे ( शूरः ) शूरवीर पुरुष ( तनुरुषा ) शरीरों में हुई प्रीति से और ( शरीरै. ) शरीरों से ( तर्षि ) दुःख से पार करनेवाले सङ्-ग्राम मे ( शूरम् ) शूरवीर जन का ( वनते ) आदर करता है ( वा ) वा दोनों ( यत् ) जिसको ( कृष्वैते ) करें और ( कम्बसी ) कोशते हुए ( यत् ) जो ( तोके ) शीघ्र उत्पन्न हुए ( तनये ) सुकुमार बालक के होने पर ( उर्वरासु ) पृथिवी आदि के कारणों मे ( गोष ) बाणियों मे ( वा ) अथवा ( अप्सु ) जलो मे ( वि, प्रवैते ) कहें वैसे आप लोग भी हूजिये ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे सङ्-ग्राम मे शूरजन शूरवीरों का विभाग करके युद्ध करते हैं वैसे ही राजा और अमात्य श्रेष्ठ और अधमों का विभाग करके अधिकारों मे युक्त करके आज्ञा देवे और जैसे बेटी की विद्या से बेटीहारों को जनावें वैसे ही अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्या ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्य मे प्रवृत्त करावे ॥४॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नहि त्वा शूरो न तुरो न घृष्णुर्न त्वा युषो मन्थमानो युषोष ।

इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्युर्म्यसि तानि ॥५॥१९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेना के स्वामिन् ! जैसे ( त्वा ) आपको ( मन्थमानः ) मानना हुआ ( शूर ) शूरवीर जन ( त्वा ) आपसे ( नहि ) नहीं ( युषोष ) युद्ध करता और ( न ) न ( तुरः ) हिंसा वा शीघ्र करनेवाला ( न ) न ( घृष्णु ) डीठ ( न ) और न ( युषो ) प्रतियोधा ( त्वा ) आपसे ( अमि ) सब प्रकार से युद्ध करता है, किन्तु आपके ( प्रति ) प्रति कोई भी ( नकिः ) नहीं ( अस्ति ) है और ( एषाम् ) इनकी जो ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( जातानि ) प्रसिद्ध सेना हैं जिस कारण ( तानि ) उनको आप जीत कर जीतते हुए ( अस्ति ) हैं इससे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भाषार्थ—राजा और राजपुरुषों को चाहिय कि विशेष करके सेनाजनों से ऐसा पराक्रम और विज्ञान बढ़ावें जिससे कोई भी युद्ध करने की इच्छा न करे ॥ ५ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स पत्यत उभयोर्नुम्णमयोर्यदौ वेघसः समिधे हवन्ते ।

वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् जो आप ( उभयो ) दोनों अर्थात् प्रजा और सेना के मध्य मे ( पत्यते ) स्वामी के सद्गुण आचरण करने ही ( स. ) वह आप ( यदि ) यदि ( नृम्णाम् ) मनुष्य मरते हैं जिसमे उस धन को ( अयो. ) मिलावें वा अलग करें और ( वृत्रे ) धन ( वा ) वा ( मह ) बड़े ( नृवति ) प्रशंसायुक्त नर विद्यमान जिसमे उम ( अये ) गृह मे ( व्यचस्वन्ता ) व्याप्त होनेवाले ( वितन्तसैते ) अत्यन्त युद्ध करें तो दोनों अर्थात् प्रजा और सेना के मध्य में एक विजय का प्राप्ति होवे और ( यदि, वा ) अथवा जो ( वेघसः ) बुद्धिमान के ( समिधे ) सङ्ग्राम मे ( हवन्ते ) स्पर्द्धा करते हैं वे अवश्य विजय को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भाषार्थ—जो राजा पक्षपात का त्याग करके शत्रु और मित्र का मध्य न्याय करता है और सब अधिकारों मे धार्मिक, बुद्धिमान् जनो को रखता है और सब प्रकार से सेना मे कुलीन, दृढ़, राजभक्तों को नियुक्त करता है वही सर्वदा विजयी होता है ॥ ६ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अथ रमा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्रं त्रातोत मवा वरुता ।

अस्माकांसो ये नृत्तमासो अर्य इन्द्रं सुरयो दधिरे पुरो नः ॥७॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) प्रत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् ( ये ) जो ( ते ) आपके ( अस्माकासः ) हमारे ( नृत्तमासः ) धृतिशय मुखिया और ( सुरयः ) विद्वान् जन ( चर्षणयः ) सम्पूर्ण व्यवहारों मे चतुर मनुष्य ( नः ) हम लोगों के ( पुरः ) नगरो को ( दधिरे ) धारण करें और उनके ( अर्यः ) स्वामी होते हुए ( अव ) अनन्तर ( त्राता ) रक्षा करनेवाले ( मवा ) हूजिये और हे ( इन्द्र ) दुष्टों के नाश करनेवाले ( यत् ) जिससे आप ( एषाम् ) अथमीलों को कम्पानेवाले करिये और ( उत ) भी ( वरुता ) श्रेष्ठ ( स्म ) ही हूजिये ॥७॥

भाषार्थ—हे राजन् ! विश्वासयुक्त, कुलीन, मुख्य राज्य मे हुए जनों को इस राज्य और सेना के मध्य मे रक्षा के निमित्त नियुक्त करिये और उनकी रक्षा निरन्तर करिये ॥७॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अनु ते दायि मह इन्द्रियार्थ सुत्रा ते विश्वमनु इन्द्रहस्ये ।

अनु अत्रमनु सहो यजत्रेन्द्रं दुर्बेभिरनु ते नृषो ॥८॥



**पदार्थ—**हे (वज्र) अत्यन्त श्रेष्ठ (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करनेवाले राजन् आपको चाहिये कि (अनु) मनुष्यों से सहन योग्य सङ्ग्राम में (वेवेभिः) विद्वानों के साथ (अहं) बृहत् को (अनु, बाधि) देवों और (ते) आपके (इन्द्र-बाध) धन के लिये (ते) आपके (सत्ता) सत्य से (विष्वम्) सम्पूर्ण जगत् को (अनु) पश्चात् देवों और (अनु) मेघ के नाश करने के समान सङ्ग्राम में (अनु) राज्य वा धन को (अनु) पश्चात् देवों और (अहं) बल को (अनु) पश्चात् देवों और (ते) आपके मनुष्यों से सहन योग्य सङ्ग्राम में सुख को (अनु) पश्चात् देवों ॥८॥

**भाषार्थ—**हे अग्निष्वाक्य में उत्पन्न हुए जन ! आप उत्तम कर्मों को करिये और उनके साथ अनुकूल हुए उनका धन आदि से निरन्तर सत्कार करिये और सदा ही सत्य के उपदेशक विद्वानों के सङ्ग से सम्पूर्ण राजविद्या को जानकर निरन्तर प्रचार करिये ॥८॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**शुभा नः स्पृशः समजा सुमस्त्विन्द्र रारन्धि मिथुतीरदेवीः ।**

**विद्याम् वस्तोरवसा गृणन्तो मुरद्वाजा उत त इन्द्र ननुम् ॥९॥२०॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) सम्पूर्ण सुखों के देनेवाले आप (स्पृशः) ईर्ष्या करते हुए (नः) हम लोगों को (समस्तु) सग्रामों में (एव) ही (सम्, अजा) विजय करके जनाइये और (अवेवी) श्रेष्ठ गुणों से नहीं विभिष्ट (मिथुती) नाश करती हुई शत्रुओं की सेनाओं को सग्रामों में (रारन्धि) नष्ट करिये और हे (इन्द्र) शत्रुओं के बल को दूर करनेवाले (ते) आपकी (अवसा) रक्षा आदि से (वस्तोः) दिन के मध्य में (ननुम्) निश्चय से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (उत) भी (भरद्वाजाः) शुद्ध विज्ञान को धारण किये हुए हम लोग विजय को (विद्याम्) जानें ॥९॥

**भाषार्थ—**जो राजा अच्छे योद्धा वीरों को प्रथम ही उत्तम प्रकार शिक्षा देकर युद्धों में प्रेरणा करता है उस सब प्रकार से रक्षा करनेवाले राजा का सब सूरवीर जन आश्रय करते हैं ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र, सूरवीर, सेनापति और राजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चीसवाँ सूक्त और बीसवाँ अर्थ समाप्त हुआ ॥

५५

**अथाष्टस्य वद्विंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो**

**देवता । १ पङ्क्ति । २, ४ भुरिक्पङ्क्ति । ३ विचतुष्पङ्क्ति ।**

**५ स्वराष्टपङ्क्तिवत्पङ्क्तः । पञ्चम स्वरा । ६ विराट्पङ्क्ति ।**

**७ त्रिष्टुप् । ८ विचित्रिष्टुप्पङ्क्तः । षष्ठः स्वराः ॥**

अब आठ ऋचा वाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्तन करें इस विषय को कहते हैं—

**अवी न इन्द्र ह्यमसि त्वा महो वाजस्य सातौ वाङ्मयाः ।**

**सं यद्विशोऽरन्त शूरसाता वयं नोऽवः पायं अहन्दाः ॥१॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) राजन् (वाङ्मयाः) बल को करते हुए (विशः) मनुष्य आदि प्रजा हम लोग (महः) बड़े (वाजस्य) वेग आदि गुणों से युक्त के (सातौ) शूरों का विभाग जिसमें उस सङ्ग्राम में (यत्) जिससे (त्वा) आपको (ह्यमसि) जगत् तिससे आप (नः) हम लोगों के लिये वचनों को (अवी) सुनिये और जो (शूरसाता) शूरों का विभाग जिसमें उस सङ्ग्राम में (नः) हम लोगों को (सत्त, अवस्य) प्राप्त होते हैं उस (पायं) पालन करने योग्य (अहम्) दिन में (उग्रम्) तेजस्वी को (अवः) रक्षण (वाः) दीजिये ॥१॥

**भाषार्थ—**राजाओं को वह अति योग्य है कि प्रजा कहे उसको ध्यान से सुनें जिससे राजा और प्रजाजनो का विरोध न होवे और प्रतिदिन सुख बढे ॥१॥

**त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।**

**त्वां वजेध्विन्द्र सत्यं तद्वत्त्वं त्वां वधे मुहिंश गोषु युष्यन् ॥२॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करनेवाले जैसे (वाजिनेयः) जान-बूती का सन्तान और (वाजी) वेगयुक्त जानी जन (गध्यस्य) सबसे प्राप्त होने योग्य (वाजस्य) विज्ञान के (सातौ) उत्तम प्रकार विभाग में (त्वाम्) आपको (हवते) सुनावे वैसे (वज्रम्) धनो में (सत्यं) श्रेष्ठों के पालन करनेवाले (त्वाम्) आपको मैं (महः) बड़ा (वधे) कहता हूँ और (गोषु) प्राप्त होने योग्य भूमियों में (युष्यन्) युद्ध करता हुआ (मुहिंश) मुष्टि से मारनेवाला मारता हुआ वधों में (त्वाम्) आपको मैं (सत्यम्) पाल करनेवाला कहता हूँ ॥२॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! जहाँ जहाँ प्रजाजन आपको प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वहाँ वहाँ आप उपस्थित हूँ ॥२॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**त्वं कवि चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुर्वं वक् ।**

**त्वं शिरं अमर्मणः पराहन्तिविद्याय शंस्यं करिष्यन् ॥३॥**

**पदार्थ—**हे तेजस्विराजन् (त्वम्) आप (अर्कसातौ) मन्त्र आदि के विभाग में (कविम्) विद्वान् की (ओदयः) प्रेरणा करिये और (त्वम्) आप (कुत्साय) वज्र के लिये और (दाशुर्वं) दान करनेवाले के लिये (शुष्णम्) धन को (वक्) काटते हो और (त्वम्) आप (अमर्मणः) नहीं विद्यमान मर्म जिसमें उसके (शिरः) शिर को (परा, अहम्) दूर करिये और (अतिविद्याय) अतिथियों को प्राप्त होनेवाले के लिये (शंस्यम्) प्रशंसा करनेयोग्य कर्म को (करिष्यम्) करने हुए वर्तमान हो इसमें आप सत्कार करने योग्य हो ॥३॥

**भाषार्थ—**राजा विद्या और विनय आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त जनो को राजकार्यों में युक्त करे और उन्नति को करता हुआ विद्या आदि का वाता होकर प्रशंसा को प्राप्त होवे ॥३॥

**त्वं रथं प्र मरो योधमृष्यावो युध्यन्तं वृषं दशधुम् ।**

**त्वं तुयं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र ततोः ॥४॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) सेना के स्वामिन् (त्वम्) आप (रथम्) सुन्दर वाहन को (प्र, मरः) धारण करिये तथा (योधम्) बलिष्ठ (दशधुम्) दस अगुलियों से प्रकाश देनेवाले और (योधम्) युद्ध करनेवाले से (युध्यन्तम्) युद्ध करते हुए (मृष्यावो) बड़े की (आवः) रक्षा करिये और (त्वम्) आप (वेतसवे) व्याप्त ऐश्वर्य वाले में (सचा) सम्बन्ध से (तुजिम्) तेजस्वी को (अहम्) दूर करिये और (त्वम्) आप (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए (तुजिम्) बलिष्ठ को (ततोः) बढ़ाइये ॥४॥

**भाषार्थ—**जो राजा रथ और युद्धकुशल वीरों को बढ़ाता है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहसा शूर दधि ।**

**अव गिरेदासं शम्बरं हन्मावो दिवोदासं चित्रामिहृती ॥५॥२१॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) सुख के देनेवाले राजन् जिससे (त्वम्) आप (चित्रामिहृती) शत्रुओं की (हृती) रक्षाओं से (तत्) उस (उक्थम्) प्रशमनीय वचन को (बर्हणा) बढ़ने से (कः) करें और हे (शूर) शत्रुओं के नाश करनेवाले (अव) सैकड़ों और (सहसा) हजारों का (प्र, दधि) नाश करते हो और (गिरे) मेघ के (दासम्) सेवक और (शम्बरम्) कल्याण करनेवाले का (अव, हृत्) नाश करते हो और सूर्य जैसे वैसे नाश करते हो वह आप (चित्रोदासम्) प्रकाश के समान उत्पन्न दानशील अर्थात् दान देनेवाले की (प्र, आवः) रक्षा करो ॥५॥

**भाषार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! आप सर्वदा प्रजा की वृद्धि, दुष्टों का नाश और विद्वानों की सेवा करो जिससे असम्पन्न सुख होवे ॥५॥

**त्वं अद्दामिर्मन्दसानः सोमैर्बभोतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप ।**

**त्वं रजि पिठीनसे दशस्यन्धिं सहसा शक्या सचाहन् ॥६॥**

**पदार्थ—**हे (इन्द्र) राजन् (त्वम्) आप (अद्दामि) सत्य की धारणाओं से और (सोमैः) ऐश्वर्यों से (मन्दसानः) धानन्द करते हुए (बभोतये) दुःख के नाश के लिये (चुमुरिम्) भोजन करनेवाले को (सिष्वप) सुलाइये और (त्वम्) आप (शक्या) बुद्धि वा कर्म से (सचा) माध (पिठीनसे) पिठी के सबूत नासिका जिसकी उसके लिये (रजिम्) पङ्क्ति (षष्टिम्) साठ (सहसा) हजार (दशस्यन्धिं) देता हुआ जैसे सूर्य मेघ का (अहम्) नाश करता है वैसे शत्रुओं का हनन कीजिये ॥६॥

**भाषार्थ—**हे राजन् ! सदा ही पूर्ण प्रीति और न्याय से प्रजापालन करो और हजारों धार्मिक विद्वानों को अधिकारों में स्थापित करके यश बढ़ाओ ॥६॥

**अहं वन तस्मूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।**

**त्वया यस्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवक्त्रेण नहुंवा बबिष्ट ॥७॥**

**पदार्थ—**हे (बबिष्ट) बलिष्ठ और (सधवीर) तुल्य स्थान में वर्तमान वीर जन (इन्द्र) सुख के देनेवाले (वीराः) वीर (नहुंवा) मनुष्य विद्वान् (यत्) जिसकी (स्तवन्ते) प्रशंसा करते हैं (तत्) उसको (त्रिवक्त्रेण) तीन प्रकार के जीत उष्ण और वर्षा में सुखकारक गृह जिनके उन (त्वया) आपके और (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (अहम्) मैं (आमश्याम्) प्राप्त होऊँ और (वन) भी (तव) आपका जो (ज्यायः) प्रशंसा करने योग्य (सुम्नम्) सुख और (ओजः) पराक्रम है उसको प्राप्त होऊँ ॥७॥

**भाषार्थ—**जो विद्वानों के संग से पुरुषार्थी होकर प्रशंसा करने योग्य, धर्मयुक्त कर्म को करते हैं वे बड़ी हीकर उत्तम सुख को प्राप्त होने हैं ॥७॥

वयं ते अस्याभिन्द्र धम्महूतो सखायः स्याम महिन् प्रेष्ठाः।

प्रातर्बनिः भवन्तीरस्तु श्रेष्ठो धने वृत्राणां मनये धनानाम् ॥२॥२॥

पदार्थ—हे (महिन) बड़े श्रेष्ठ (इन्द्र) सब के सुख देनेवाले (वयम्) हम लोग (ते) आपकी (अस्याम्) हम (धम्महूतो) धन वा यश में आह्वान जिसमें उसमें (प्रेष्ठाः) अतिशय प्रिय (सखाय) मित्र (स्याम) होंगे और आप (प्रातर्बनिः) प्रातः काल में देना जिनका वह (वृत्राणाम्) धर्म के आवरण करनेवालों के (धने) नाश करने में (धनानाम्) धनो के (मनये) विभाग के लिये (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय (भवन्ती) राज्यलक्ष्मीवान् (अस्तु) होंगे ॥२॥

भाषार्थ—जो राजा गुणग्राही, पुण्यार्थी, श्रेष्ठ जनो का पालन करने और दुष्ट जनो का निवारण करनेवाला तथा सबका मित्र होवे उसके साथ सज्जनो को चाहिये कि मित्रता करे ॥२॥

इस सूक्त में इन्द्र, परीक्षक, श्रेष्ठ, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने में इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छबीलसर्वा सूक्त और बाईसर्वा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथाष्टचंस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो ब्राह्मण्यव्यधि ॥१-७

इन्द्र । ८ अग्न्यावर्तितव्यायमानस्य दानस्तुतिर्वेत्ता । १, २ स्वराट्

पङ्क्ति । ३, ४ निष्पत्तिवदुष् । ५, ७, ८ त्रिदुष्टपञ्चः श्रेष्ठ

स्वर । ६ ब्राह्मी उष्णिक् छन्द । ऋषभ स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले सप्तविंश सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में प्रश्नो को कहते हैं—

किमस्य मदे किमस्य पोताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।

रणां वा ये निषदि कि ते अस्य पुग विविद्रे किमु नूतनासः ॥१॥

पदार्थ—हे वेदरात्र (इन्द्र) इन्द्र के नाश करने वाले ने (अस्य) हमके (मदे) आनन्द में (किम्) क्या (चकार) किया (अस्य) हमके (पोता) पालन करने में (किम्) क्या (उ) ही किया (अस्य) हमके (सख्ये) मित्रपन में क्या किया और (य) वा (वा) ना (निषदि) बँटत है जिसमें उस गृह में (रणां) रमण (अस्य) हमके (पुग) सम्मुख (किम्) क्या (विविद्रे) जानने है और (किम्) क्या (उ) और (नूतनासः) नवीन जन जानने है वे (किम्) क्या अनुष्ठान करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में सामान्यता आदि के रमण पालनविषयक प्रश्न है उनके उत्तर अगले मन्त्र में जानने चाहिये ॥ १ ॥

अब किस-किस द्रव्य का सेवन करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र कहते हैं—

मदस्य मदे सदस्य पोताविन्द्रः मदस्य सख्ये चकार ।

रणां वा ये निषदि सचे अस्य पुग विविद्रे सदु नूतनासः ॥२॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जना (इन्द्र) पुग विद्यावाला वंश (अस्य) इस सामन्तना आदि बड़ी आपभिममूह के (मदे) आनन्द में (सत्) प्रमाद से रहित मत्त ज्ञान (चकार) कर और (अस्य) हमके (पोता) पालन करने में (सत्) प्रमाद से रहित सत्य ज्ञान को (उ) भी करे और (अस्य) हमके (सख्ये) मित्रपन में (सत्) प्रमादरहित सत्य ज्ञान का करे (य, वा) अथवा जो (निषदि) बँटत है जिसमें उस गृह अथवा बँटत में (रणां) रमते हुए (अस्य) हमके (सत्) प्रमादरहित सत्य ज्ञान को (विविद्रे) प्राप्त होता है (ते) वे (पुरा) पहिले (नूतनासः) नवीन जन (सत्) प्रमादरहित सत्य ज्ञान को (उ) ही प्राप्त जानते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—मनुष्य लोग मादक द्रव्य के सेवन का त्याग करके सर्वदा बुद्धि, बल, आयु और पराक्रम के वृद्धि करने वाला का सेवन करे जिसमें सदा ही सुख बढ़े ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों की किसका ध्यान करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नहि नु ते महिमनः समस्य न मयधम्मप्रवचस्य विद्य ।

न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नर्किर्दृष्टा इन्द्रियं ते ॥३॥

पदार्थ—हे (महिम्नः) न्याय से दृढ़कृत किया हुआ धन से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले जिन (ते) आपकी (महिम्नः) साहसा का और (समस्य) तुल्यता का कोई (नु) भी (नहि) नहीं (बहुलं) देखा जाता है तथा हम लोग (मयधम्मप्रवचस्य) बहुत धन से युक्तपन के तुल्य कुछ भी (न) नहीं (विद्य) जाने और (नूतनस्य) नवीन (राधसोराधसः) धन धन के तुल्य (नर्किः) नहीं देखा जाता है और (ते) आपका (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (न) नहीं देखा जाता है उनकी उपामता की हम लोग करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी महिमा के समान महिमा, ऐश्वर्यसामर्थ्य के समान सामर्थ्य और स्वरूप नहीं विद्यमान है उसी सर्वव्यापक, सर्वोत्तमी, जगदीश्वर का निरन्तर ध्यान करो ॥ ३ ॥

फिर राजा और प्रजा को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एतत्पत्तं इन्द्रियमचेति येनावधीर्गश्चिस्त्वस्य शेषः ।

वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मास्त्वनाधिदिन्द्र परमो दृशर ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान राजन् (परमः) श्रेष्ठ आप (यत्) जिसको (वज्रः) विदीर्ण करते हैं (त्यत्) उस (एतत्) इसको (ते) आप की (वज्रस्य) बिजुली के समीप से (निहतस्य) गिराये गए का (इन्द्रियम्) मन (अचेति) जानता है (येन) जिससे (वर्गश्चिस्त्वस्य) श्रेष्ठ शिक्षा वाले (ते) आपका (शेषः) शेष है और आप (अवधीः) नाश करें और बिजुली (चित्) जैसे (शुष्मात्) बल और घोषण से (स्वनात्) शब्द से भय देती है जैसे ही आप दुष्टों को भयभीत करिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा बिजुली के समान पराक्रमी, विज्ञान को बढ़ानेवाला, न्याय के व्यवहार में सूर्य के सदृश प्रकाशित होता है वही राजाओं में शिरोमणि समझना चाहिये ॥ ४ ॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वधीदिन्द्रो वर्गश्चिस्त्वस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिष्यम् ।

वृचीवतो यद्वरिपुपीयायां हन्तुं पूर्वे ऋषे भियसापरो दत्त ॥५॥२३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (शेषः) अवशिष्ट (इन्द्रः) सूर्य (वृचीवतः) भविष्य का छेदन प्रशंसित जिसके उस (वर्गश्चिस्त्वस्य) श्रेष्ठ शिक्षा वाले के समान मेघ के (अभ्यावर्तिने) आगे और घूमनेवाले के लिए जैसे जैसे (आयमानाय) सत्कार करने वाले के लिये (शिष्यम्) विद्या देता हुआ (भियसा) भय से (वरिपुपीयायां) विचारणीय मनुष्यों की इच्छा करने हथो की पालनक्रिया में (पूर्वे) सम्मुख (अर्द्धे) अर्द्धभाग में (हन्तुं) नाश करता वा (वधीत्) नाश करे (अपरः) अन्य बिजुलीरूप अग्नि उगमों (वत्) विदीर्ण करता है जैसे बलवान् उपदेशक का हम लोग सत्कार करें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य पूरा अवस्था में विद्वानों से विद्या ग्रहण करके बुरे व्यसनो का त्याग करके उत्तमस्वभावयुक्त होता है वे अपभारण से डरते हैं ॥ ५ ॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

त्रिशच्छतं वर्मिषा इन्द्र साक यव्यावर्सां पुरुहूत अवस्या ।

वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रां मिन्दाना न्यथान्यायन् ॥६॥

पदार्थ—(पुरुहूत) वृद्धता में स्मृति किये गये (इन्द्र) सेना के स्वामिन् (त्रिशच्छतम्) तीस सैकड़ (वर्मिषां) वस्त्र का धारण किये हुए (वृचीवन्तः) राग में आच्छादित करने हुए (शरवे) हिरण के लिये (पात्रां) मनुष्यों के सहनों का (मिन्दानां) विदीर्ण करने और (पत्यमानां) पति के सदृश आचरण करने हुए (साकम्) साथ (यव्यावर्सां) यवों से बने पदार्थों के पाक जिसमें उस सेना में सब लोग (यवस्यां) अन्त में होने वाले (अभ्यान्ति) निश्चित अर्थ जिनमें उन प्रयोजनों की नहीं (आयन्) प्राप्त होते हैं उनका आप सत्कार करिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो वीरपुरुष राजविद्या में निपुण, कार्यों के आरम्भ में दृढ़ पर्याप्त, मित्र वरत्रोवाल होवे वे आपसे सेना में सत्कारपूर्वक रहने योग्य हैं ॥ ६ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यस्य गावावृषा यवस्य अन्तरु शु चरतो रेग्निहाणाः ।

भ सुञ्जयाय तुर्वशं परादावृचीवतो देववाताय शिष्यम् ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् (यस्य) जिसके (अवृषा) चारा और से रक्त (यवस्य) अन्न उत्तम यवों की इच्छा करती और (रेग्निहाणाः) आस्वादन करती हुई (गावो) किरणों के सदृश सेना और राजनीति प्रजा के (अन्तः) मध्य में (शु, चरतः) उत्तम प्रकार चलती हैं (सः) वह (देववाताय) श्रेष्ठ वायु के विज्ञान और (सुञ्जयाय) उत्पादन के लिए (वृचीवतः) छेदन वाले के (तुर्वशम्) मनुष्य का (शिष्यम्) शिक्षा देता (उ) और दुर्गुण को (परा वधात्) दूर करे और अखण्डित राज्य को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो राजा नीति और सेना की वृद्धि करता है वह अखण्डित राज्य को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

द्वयां अग्ने रथिनीं विशति गा वधूमतो मधवा मर्षं सञ्जाट् ।

अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दृणाक्षेयं दक्षिणा पार्थिवानाम् ॥८॥२४॥

पदार्थ—हे ( अग्नि ) धनि के समान वर्तमान जो ( वसुधन्वः ) अग्नी  
श्रेष्ठ वसुधे और ( रविः ) श्रेष्ठ रथो वाले हों जिन ( इन्द्रात् ) प्रजा और सेना  
के जनो को ( अथवा ) प्रशंसित जन वाले ( सखात् ) उत्तम प्रकार से शोभित  
और ( अभ्यावर्त्ता ) जीतने को चारों ओर से वर्तमान ( चापमान ) बाहर  
किये गये आप ( विजितिम् ) बीस ( गा ) गोधों को जैसे जैसे ( ददाति ) देते  
वह आप ( वसुधम् ) मेरे लिए जो ( पार्थिवानाम् ) राजाओं की ( इन्द्रम् ) यह  
( इन्द्राणां ) दुर्लभ नाम जिसका ऐसी ( वक्षिणा ) आपसे दी गई है उससे उनको  
प्रसन्न करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो राजा कुलीन, विद्या और व्यवहार में निपुण, धार्मिक राजा  
और प्रजापति को अमरहित करता है वह धनुष प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥  
इस सूक्त में इन्द्र, ईश्वर, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त  
के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सताईसवाँ सूक्त और चौबीसवाँ अर्ध समाप्त हुआ ॥

॥

अथावर्त्तयामि विजितितमस्य सूक्तस्य अरहाजो ब्राह्मणाय ऋषिः । १ । ३-८

गायः । १ । ८ गाय इन्द्रो वा वेवता । १, ७ निवृत्तिपटुप । ३ स्वराट्-  
त्रिपटुप । ५, ६ त्रिपटुप छन्दः । वेवता स्वरः । ३, ४ जगती छन्दः ।

निपाद स्वरः । ८ निवृत्तिपटुप छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब मनुष्य किरणों के गुणों की जाने इस विषय को, अगले मन्त्र में कहते हैं—  
आ गावो अगमन्तु भद्रमकन्तीदन्तु गोष्ठे रययन्स्वरमे ।

प्रजावतीः पुरुषा इह स्युर्निद्राय पूर्वाक्षुप्तो दुहानाः ॥१॥

पदार्थ—हे ( मनुष्यो ) जैसे ( इह ) यहां ( अस्मे ) हम लोगो के लिए  
( गावः ) किरणों ( आ, अगमन् ) प्राप्त होती है ( उत ) और ( रययन् ) सन्द  
करावे तथा ( मन्त्रम् ) कल्याण को ( अकम् ) करती है वे ( गोष्ठे ) गोधों के  
बैठने के स्थान में ( लोचन् ) प्राप्ति हो और जैसे ( पुरुषा ) बहुत रूपवाली  
( पूर्वा ) प्राचीन ( दुहाना ) मनोरम को पूर्ण करती हुई ( उच्यते ) प्रभात बेलामें  
( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त के लिये ( प्रजावतीः ) बहुत प्रजाधो वाली  
( स्युः ) हों वे आप लोगो के लिए भी हों ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो वृक्षों के लगाने और सुगन्ध आदि से युक्त धूस से पवन के  
किरणों को छुट करे तो वे सब को सुखयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिस्त्युपेहदाति न स्वं मुपायति ।

भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्मित्रे खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्रः ) राजा ( अस्म्य ) इस ससार के मध्य में  
( रयिम् ) विचार्य जन को ( इत् ) ( वर्धयन् ) बढ़ाता हुआ ( अभिल्ये )  
इकट्ठे हुए व्यवहार में और ( खिल्ये ) टुकड़ों में हुए के बीच ( च ) भी ( देवयुम् )  
विद्वानों की कामना करते हुए विद्वान् को ( भूयोभूयोः ) बारबार ( नि, दधाति )  
निरन्तर बारण करता है और ( स्वं ) अपने ज्ञान का ( न ) नहीं ( मुपायति )  
चुराता है और ( यज्वने ) यज्ञ के करने वाले के लिए ( उप, शिस्त्युपेह ) विद्या देता  
है और ( पृणते ) सुखयुक्त करता है ( च ) और ( दधाति ) देता है वह ( इत् )  
ही सबको बढ़ा सकता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—वे ही विद्वान् यथार्थवत्ता है जो निष्कपटता से बार बार प्रतिदिन  
विद्याकोश को योग्य के लिये देते हैं ॥ २ ॥

अब कौन उत्तम ज्ञान है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न ता नशन्ति न दधाति तस्करो नासामामित्रो ध्यधिरा दधर्षति ।

देवाँश्च धार्मिर्धत्ते ददाति च ज्योतिषामिः सचते गोपतिस्सह ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( धामिः ) जिन विद्याओं से वर्तमान ( देवात् )  
विद्वानों को ( यजते ) मिलता और ( दधाति ) देता ( च ) भी है तथा ( ज्योक् )  
निरन्तर ( इत् ) ही ( साभिः ) उन विद्याओं के ( सह ) साथ ( गोपतिः )  
गोधों का स्वामी ( सचते ) मिलता है ( न ) न ( आसाम् ) इनका ( धार्मिः )  
शत्रु और ( ध्यधिरा ) पीड़ा ( च ) भी ( आ, दधर्षति ) तिरस्कार करती है  
( ताः ) वे विद्याएँ ( न ) नहीं ( नशन्ति ) नष्ट होती हैं तथा ( तस्करः ) चोर  
उनका ( च ) नहीं ( दधर्षति ) नाश करता है उन विद्याओं को आप लोग ब्रह्म-  
वर्षा से ग्रहण करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! सब के लिए अधिक सुख करने, नहीं नष्ट होने  
और निरन्तर बढ़ने वाले और चोर आदिकों से हरने के असौम्य विद्यादान ही  
है यह जानो ॥ ३ ॥

यह विद्या किस को प्रप्त होती और किस को नहीं प्राप्त होती है इस  
विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न ता अर्वा रेणुककाटा अस्तुते न सैकृतमभुप यन्ति ता अग्नि ।

वज्रायममं तस्य ता अनु गावो मसैस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ता ) उन विद्याओं को ( रेणुककाटः ) रेणुकाओं  
के रूप के समान अन्धकार हृदय वाले ( अर्वा ) घोंडे के समान बुद्धिहीन विद्या-  
सक्त जन ( न ) नहीं ( अभुते ) प्राप्त होता है और मूढजन ( सैकृतमभुप )  
सत्कारयुक्त की रक्षा करने वाले को प्राप्त होकर ( ता ) उनके ( न ) नहीं ( अभि )  
सम्मुख ( उप, यन्ति ) समीप प्राप्त होते हैं किन्तु वे ( उच्यते ) बहुतों से प्रशं-  
नीय ( अभुते ) निर्भय जन के सम्मुख समीप प्राप्त होती है और ( ताः ) वे  
विद्याएँ ( गावः ) किरणों के समान ( सस्य ) उम ( यज्वन ) विद्वानों के सेवक  
और प्राप्त होते हुए ( मसैस्य ) विचारशील मनुष्य के ( अनु, वि चरन्ति )  
पश्चात् चरती हैं तथा विशेष करके प्राप्त होती हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अशुद्ध आहार और विहार करने वाले, लम्पट,  
चुगुन और कुसंगी हैं उनको विद्या कभी नहीं प्राप्त होती है । और जो पवित्र  
आहार और विहार करने वाले, जितेन्द्रिय, यथार्थवत्ता, सत्संगी, पुरुषार्थी हैं उन  
को विद्या प्राप्त होती है ऐसा जानिये ॥ ४ ॥

मनुष्यों को चाहिए कि अन्ध विद्या की प्राप्ति की इच्छा करे इस विषय  
को अगले मन्त्र में कहते हैं—

गावो मगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य मक्षः ।

इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीददा मनसा चिदिन्म ॥५॥

पदार्थ—हे ( जनास ) विद्वान् मनुष्य जैसे ( प्रथमस्य ) पहिले ( सोमस्य )  
ऐश्वर्य की सेवने वाली ( गावः ) गौएँ बछड़ों को दुग्ध देती हैं जैसे ( गावः )  
किरणों के समान जन और ( मगः ) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला ( गावः )  
उत्तम प्रकार शोभित वाणिया को और ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त  
( मक्षः ) सेवा करने योग्य जन ( मे ) मेरे लिए ( अच्छान् ) देवें और ( याः )  
जो ( इमाः ) ये ( गावः ) वाणिया जिसकी है ( सः ) वह ( इन्द्रः ) विद्या  
और ऐश्वर्य से युक्त सुभको शिक्षा देवें और मैं ( इमा ) आत्मा तथा ( मनसा )  
विज्ञान से ( चित् ) भी ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्ययुक्त जन की ( इत् ) ही ( इच्छामि )  
इच्छा करता हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमानद्वार है । जो मनुष्य आत्मा और  
अन्तःकरण से विद्या की प्राप्ति की इच्छा करते हैं वे सब सुख का भोग  
करते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों का क्या अन्तर्य वर्तमान है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

युयं गावो मेदयथा कृशं चिदभिरं चिन्तुया इप्रतीकम् ।

अग्रं गृहं कुण्ठमद्रवाचो बृहदो वयं वच्यते समासु ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ( युयम् ) आप लोग जो ( गावः ) वाणिया हैं उन  
को ( मेदयथा ) मधुर करिये ( चित् ) और ( अधीरम् ) अमङ्गलस्वरूप और  
अधमचरण करने वाले को ( कृशम् ) क्षीण ( कुण्ठम् ) करिये और ( चित् )  
भी ( सुप्रतीकम् ) उत्तम प्रतीति कराने वाले द्वार आदि जिसमें उस ( मद्रम् )  
कल्याण करने शुद्ध बाहु जल और वृक्ष वाले ( गृहम् ) गृह को ( कुण्ठम् ) करिये  
और ( सभासु ) प्राप्त विद्वानों से प्रकाशमान सभाओं में ( अधवाचः ) जो  
कल्याण करने वाली सत्सभाषण से युक्त वाणियाँ उनको स्वीकार करिये और जो  
( वः ) आप लोगो का ( गृहम् ) बड़ा ( वयः ) जीवन ( उच्यते ) कहा जाता  
है उसको करिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य कोमल, सत्य, धर्मयुक्त वाणी तथा सर्व ऋतुओं में  
सुख करने वाले घर को, मधा को और अधिक अवस्था को करते हैं वे ससार में  
कल्याण करनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥

अब प्रजाओं का कैसे पालन करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

प्रजावतीः सुयवसं रिचन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।

ना वः स्तेन ईशत माधर्षसः परि वो हेतो वृद्धस्य वृज्याः ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे गोवों का पालन करने वाला ( सुयवसम् ) सुन्दर  
पास आदि को ( रिचन्तीः ) भक्षण करती हुई ( सुप्रपाणे ) सुन्दर जलपान के  
स्थान में ( शुद्धाः ) निर्मल ( अपः ) जलो को ( पिबन्तीः ) पीती हुई ( प्रजा-  
वती ) श्रेष्ठ सन्तान वाली गोवों का पालन करता है जैसे आप प्रजाओं का पालन  
करिये और जैसे ( वः ) आप लोगो की प्रजाओं को ( स्तेनः ) चोर और  
( अधवासः ) पाप करने वाला डाकू ( मा ) नहीं ( ईशत ) मारने में समर्थ होवे  
जैसे ( वः ) आप लोगो के सम्बन्ध में ( वृद्धस्य ) रौद्र कर्म के करने वाले का  
( हेतिः ) वज्र इनको ( ना ) मत ( परि, वृज्याः ) परिचर्जन करे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमानद्वार है । जो पिता के सदृश प्रजाओं  
का पालन करते और शुद्ध भोजन और विहार वाली करके पुण्यार्थ करते और  
चोर आदि दुष्टों का क्षेपण करते हैं वे राजा, कामाय और भृत्य प्रशमा करने योग्य  
होते हैं ॥ ७ ॥

फिर उनी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उपेक्षुपचर्चनमासु गोधूपं पृथ्यताम् ।

उपं कृषमस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥८॥२५॥६॥



पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के करने वाले ( ऋषभस्य ) श्रेष्ठ ( सब ) आपके ( बीर्य ) पराक्रम में प्रजाओं के साथ ( उप, पृथ्वीतम ) सम्बन्ध करिये तथा ( रेतसि ) पराक्रम में आपका ( उप ) सम्बन्ध करना चाहिये और ( आसु ) इन ( गोबु ) पृथिवी वा वाणियों में ( उपवर्धनम् ) समीप सम्बन्ध ( उप ) सम्बन्ध करना चाहिये और ( इवम् ) इस राजनीति का ( उप ) सबध करना चाहिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो राजा आदि मनुष्य विद्वान् होकर मभा में परस्पर की एक सम्मति करके विरोध के नाश करने में एकता में प्रयत्न करते हैं वे अत्यन्त सामर्थ्यवाने होते हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्त में गो, इन्द्र, विद्या, प्रजा और राजा के धर्म का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

इस अध्याय में इन्द्र, सोम, सूर्य, प्रातःकाल, राज्य, विश्वेदेव, योद्धा, मित्रत्व, जगदीश्वर, अग्नि, अन्तरिक्ष, पृथिवी, राजा, प्रजा, पवन, कारीगर, न्यायेश उपदेशक, वाणी और विद्या के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमान् परमहंस परिव्राजकाचार्य विरजानन्द सरस्वती स्वामी जी के शिष्य श्रीमान् इयानन्द सरस्वती स्वामी से रचित उत्तम प्रमाणों से युक्त, ऋग्वेद भाष्य के चतुर्थ अष्टक में छठा अध्याय, पञ्चीसवाँ वर्ग और छठे मण्डल में अष्टाईसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

ॐ



## अथ सप्तमोऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ षड्वन्त्यकोनञ्जिह्वस्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि ।  
इन्द्रो देवता । १, ३, ५ निबृत्तिरुट् । ४ निबृत्तिरुण्व । वंशत स्वर ।  
२ भुरिक्पङ्क्तिरुण्व । पञ्चम स्वर । ६ आहो उष्णिक्  
छन्द । ऋषभ स्वर ॥

अर्थ—छ ऋचावाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमत्यै चकानाः ।  
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रयवमवसे यजध्वम् ॥१॥

पदार्थ—ह ( नर ) नायक जनो जो ( मह ) बड़े विज्ञान का ( यन्त ) प्राप्त हात और ( सुमत्यै ) उत्तम बुद्धि के लिये ( चकाना ) कामना करने हुए ( व ) आप लोगों के ( सख्याय ) मित्रपने के लिये ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य के करने वाले को ( सेपु ) शपथ करने हैं तथा ( हि ) जिस कारण जो ( मह ) बड़े विज्ञान का ( दाता ) देनेवाला और ( वज्रहस्त ) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त हाथी वाला ( अस्ति ) है उम ( रयवम् ) रमणीय उपदेशक ( महाम् ) महान् महामय सर्वाध्यक्ष वा ( ऊ ) ही ( अवसे ) रक्षण आदि के लिये ( यजध्वम् ) मिलिये वा मत्कार करिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो जो आप लोगों के साथ मित्रत्व के लिये दृढ शपथ करके मन, मन और धनो से उपकार के लिए प्रयत्न करते हैं उनका आप लोग सर्वदा मत्कार करिये तथा इनके साथ मित्रपन में बर्ताव करिये ॥ १ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

आ यस्मिन्दस्ते नयां मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।  
आ रश्मयो गर्भस्त्योः स्थूरयोराध्वश्शवांसो वृषणो युजानाः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ऐश्वर्य करने वालों के ( यस्मिन् ) जिस ( हस्ते ) हस्त में ( रश्मय ) किरणों के समान ( आ ) सब ओर से ( मिमिक्षु ) मिच्छन करते सम्बन्ध करते हैं तथा ( रथ्या ) मनुष्यों के लिए हितकारक शस्त्र और अस्त्र जिस के ( हिरण्यये ) तेज के विकार से बन हुए ( रथे ) रथ में और ( रथेष्ठा ) रथ पर स्थित होने वाले जन और ( स्थूरयो ) स्थूल ( गर्भस्त्यो ) बाहुओं के मध्य में शस्त्र और अस्त्र हैं तथा जिसके बाहुओं में ( वृषण ) बलिष्ठ ( अश्वसः ) घोड़ों के समान बड़े बिजुली आदि पदार्थ ( आ ) सब ओर से ( युजाना ) युक्त ( अध्वन् ) मार्ग में यानों का ( आ ) लाने हैं वे सुखों से जनो का ( आ ) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमानाङ्कार है । जो राजा शस्त्र और अस्त्र के जानने वाले, श्रेष्ठ, धार्मिक, दूर तथा विमान आदि वाहनों के बनानेवाले शिल्पियों और बिजुली आदि की विद्याओं और विद्वानों का सत्कार करके रक्षा करता है उसी के सूर्य के किरणों के समान यश बढ़ते हैं ॥ २ ॥

फिर वह राजा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृण्वर्ज्री शर्वसा दक्षिणावान ।  
वसानो अत्कं सुगर्भं ह्यो कं स्वर्ख्यं नृतविबिरो बभूव ॥३॥

पदार्थ—हे ( नृतो ) नायक अग्रणी जन जिन ( ते ) आपके ( पादा ) पाद ( दुवः ) कार्य संवन को ( श्रिये ) लक्ष्मी के लिये ( आ, मिमिक्षु ) चारों ओर सोचने हैं और ( शर्वसा ) सब से ( धृण्व ) डीठ ( बर्ज्री ) शस्त्र और अस्त्रों को धारण करनेवाले ( दक्षिणावाद् ) उत्तम दक्षिणावान् ( वृषो ) देखने के लिये ( कम् ) सुख करने वाले सुन्दर ( सुगर्भम् ) सुगन्ध को और ( अत्कम् ) व्याप्तिशील वस्त्र को ( वसान ) धारण करते हुए ( स्वर् ) सुख को ( नः ) जैसे ( इविवर ) जानवान् वैस जो आप ( बभूव ) प्रसिद्ध हो उन आपकी हम लोग सेवा करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जिन आपके आश्रय से अत्यन्त लक्ष्मी, धान, घोड़ना, वाहन, सुख और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है वह आप हम लोगों से कैसे नहीं सेवन करने योग्य है ॥ ३ ॥

फिर वह कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

स सोम आर्षिश्लतमः सुतो भूयस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।  
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देवाततमाः ॥४॥

पदार्थ—हे ( नर ) विद्वानों में अग्रणी जनो ( यस्मिन् ) जिस राजा के होने पर ( पक्तिः ) पाक ( पच्यते ) पकाया जाता है ( धाना ) पूजे हुए अन्न हैं ( आर्षिश्लतमः ) चारों ओर से अत्यन्त मिला हुआ ( सुतः ) उत्पन्न ( सोमः ) ऐश्वर्य का योग वा ओषाध का रस ( भूत ) होता है और जिस ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य-कारक की ( स्तुवन्तः ) प्रशंसा करते हुए ( ब्रह्मकारा ) धन वा अन्न को करने वाले ( देवाततमा ) अतिशय विद्वानों वा पदार्थों को प्राप्त होने वाले ( उक्था ) कहने योग्य वचनों का ( शंसन्तः ) उपदेश देते हुए ( सन्ति ) हैं ( स ) वह आप हम लोगों के राजा ऋजिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो वह धार्मिक राजा न होवे तो सब व्यवहार लोप होवें कि जिसके होने पर धन धान्य और ऐश्वर्य को धारण करती हैं वे धर्मयुक्त प्रजाएँ होती हैं ॥ ४ ॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न ते अन्तः शर्वसो घाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।  
आ ता सूरिः पृणति तत्तुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५॥

पदार्थ—ह जगदीश्वर जिस ( अस्थ ) इस ( ते ) आप ईश्वर के ( शर्वसः ) सब की ( अन्तः ) नीमा किमी में भी ( न ) नहीं ( घायि ) धारण की जाती है ( तु ) और जो ( महित्वा ) बड़प्पन से ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी

को ( वि, वाक् ) वाक्ता है और जिम आपके ( ता ) उन कर्मों को ( कर्ता ) रक्षण आदि किया से ( लब्धीमानः ) उत्तम प्रकार मिलता हुआ ( सुखानः ) शीघ्र कार्य करने वाला ( कुरिः ) विद्वान् ( अणु ) प्राणी वा जलो मे ( वृषेव ) समूह के सदृश सब को ( आ, वृषति ) सुखी करता है वह आप लोगो से स्तुति करने योग्य है ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अनन्त गुण कर्म और स्वभावयुक्त और सब का प्रबन्ध करने वाला, उपासना किया हुआ सुख का देनेवाला ईश्वर है वही सब से उपासना करने योग्य है ॥ ५ ॥

अब ईश्वरत्व में राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एवेदिन्द्रः सुहृन् ऋषो अस्तुती अन्वी हरिश्चिमः सत्वा ।

एवा हि जातो असमात्योजाः पुरु च हुआ इनति नि दस्युन् ॥६॥

वार्थ—हे मनुष्यो जो ( सुहृन् ) सुन्दर पुकारना जिसका ऐसा ( ऋषः ) बड़ा ( हरिश्चिमः ) हरे रंग की ठुड्डी और नासिकायुक्त ( सत्वा ) परिष्कृत से पुरुषार्थ करने और ( इन्द्रः ) ईश्वर की उपासना करनेवाला राजा ( कर्ता ) रक्षा वा ( अस्तुती ) श्रद्धा से सुख करने वाला ( जातः, च ) और प्रसिद्ध ( अस्तु ) हो वह ( एव ) ही ( इत् ) निश्चय से आनन्द देने वाला होने और जो ( हि ) निश्चय से ( असमात्योजाः ) नहीं तुल्य पराक्रम जिसका वह ( पुरु ) बहुत ( हुआ ) बलों की वृद्धि करता है और ( वस्युन् ) वृष्ट कोने का ( नि, हन्ति ) नित्य नाश करता है वह ( एवा ) ही चक्रवर्ती राजा होने के योग्य है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—वही बड़ा राजा है जो नीति के जानने वालों की रक्षा करके बर्षिष्ठ प्रजाधो का पालन करके बोर आदि पापियों को नहीं ग्रहण करता है वही सज्जनों से सेवन करने योग्य है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, मित्रपन, देने वाले और युद्ध करने वाले तथा ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उन्नीसवाँ सूक्त और पहिला वर्ण समाप्त हुआ ।



अथ पञ्चमस्य त्रिसप्तमस्य सूक्तस्य अष्टादशो बार्हस्पत्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, २, ३ त्रिचुत्विष्टुप् । वेदतः स्वरः ।

४ पङ्क्तिः पङ्क्तयः । पञ्चमः स्वरः । ५ बाह्यी उष्णिक्

छन्दः । ऋचमः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा

कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

भूय इद्रांश्चे वीर्याय एको मनुष्यो दयते बभूनि ।

अ रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्द्धमिदस्य प्रति रोदसी उमे ॥१॥

वार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( इन्द्रः ) सूर्य के समान वर्तमान जन ( दिव ) प्रकाशमान पदार्थान्तर और ( पृथिव्या ) भूमि से ( अर्द्धम् ) भूगोल का अर्द्ध भाग ( उमे ) दोनों ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी भूगोल के ( प्रति ) प्रति अर्द्धभाग प्रकाशित होता है और सब से ( अ, रिरिचे ) समर्थ होता है तथा ( अस्य ) इसके ( इत् ) ही आकर्षण से सम्पूर्ण लोक वर्तमान है उस ( इत् ) ही प्रकार से जो राजा ( वीर्याय ) पराक्रम के लिये ( भूयः ) फिर ( बाबूने ) बढ़ता और ( एकः ) सहायरहित ( अनुष्य ) पुवा हुआ ( बभूनि ) घनो को ( दयते ) देता है वही श्रेष्ठ होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा सूर्य के समान श्रेष्ठ गुणों, श्रेष्ठ सहायों और उत्तम सामग्री से प्रकाशमान यशस्वी होता है और जैसे सूर्य सम्पूर्ण भूगोलों के सम्मुख स्थित भूगोल के अर्द्धभागों का प्रकाश करता है वैसे ही न्याय और अन्याय के बीच में से न्याय का ही प्रकाश करे और सब के लिये दोनों को देवे ॥ १ ॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अथा मन्ये सुहृदसुर्यमस्य यानि बाधार नकिरा मिनाति ।

दिवेदिवे सुर्वो दर्शतो भृदि सद्मान्युर्विया सुकतुर्धात ॥२॥

वार्थ—हे राजन् ! जैसे ( सर्वो ) देखने का पूछने योग्य ( सुकतु ) शुभ कर्म करने वाला ( सूर्यः ) सूर्य ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन जो ( अस्य ) इसके ( सुहृत् ) बड़े ( अनुष्यम् ) मेघ के सम्बन्धी का और ( यानि ) जिन वायुदलों का ( बाधार ) धारण करता है और इसको ( नकिः ) नहीं ( आ, जिनाति ) नष्ट करता है और ( उर्विया ) पृथिवी के माथ ( सद्मानि ) स्थानों को ( बात् ) धारण करता है वैसे आप ( वि, भूत् ) होते हैं ( अथा ) इसके अनन्तर ऐसे हुए आपको राजा में ( न्ये ) मानता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य प्रतिदिन मेघ को धारण करके वर्षा के पृथिवी और पृथिवीस्थ पदार्थों का नाश नहीं करके धारण करता है वैसे ही राजा को धारण करके सुख को वर्षा के प्रजा के साथ न्यायकर्मों को राजा धारण करें ॥ २ ॥

अथा चिन्तु चिचदपो नदीनां यदाभ्यो अरंदो मातुमिन्द्र ।

नि वर्षता अक्षमसदो न संदुस्त्वया इच्छानि सुकतो रजांसि ॥३॥

वार्थ—हे ( सुकतो ) श्रेष्ठ कर्मों को उत्तम प्रकार जानने वाले ( इन्द्र ) सूर्य के समान वर्तमान ( चित् ) जैसे सूर्य ( मातुम् ) भूमि का ( अरदः ) आकर्षण करता है तथा ( नदीनाम् ) नदियों के समीप से ( अप ) जलों का आकर्षण करता है और ( वत् ) जो ( आम्भः ) इन नदियों से लैजता ( तत् ) वह ( चित् ) भी वर्षता है वैसे ( अथा ) आज आप ( नू ) शीघ्र करिये और जैसे सूर्य से ( रजांसि ) लोक विशेष ( इच्छानि ) धारण किये गए वैसे आज ( अप-सत् ) उत्तम प्रकार जाने योग्यो में स्थित होनेवाले ( वर्षता ) मेघ ( न ) जैसे वैसे ( त्वया ) रक्षक वा स्वामी आप से प्रजा और राजजन ( नि, सेतुः ) स्थित होते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे सूर्य सम्पूर्ण पदार्थों से आठ धीने रस धारण करके मेघमण्डल में स्थापित करके वर्षाओं में वर्षा के प्रजाधो को सुखी करता है वैसे आप आठ मासों में प्रजाओं से कर लेकर वर्षाकाल में देवें ॥ ३ ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सत्यमित्तम त्वावी अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यापान् ।

अहर्षि परिशयानमर्णोऽवांसुजो अपो अमृच्छां समुद्रम् ॥४॥

वार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के सदृश अपने में प्रकाशमान जगदीश्वर जिससे आपसे बनाया गया सूर्य ( परिशयानम् ) चारों ओर से सोते हुए से ( अहिम् ) व्याप्त होने वाले मेघ का ( अहम् ) नाश करता है और ( अर्णः ) अमर पड़ते जल वा अन्य ( अप ) जलो और ( समुद्रम् ) सागर वा अन्तरिक्ष को ( अमृच्छा ) उत्तम प्रकार ( अम, असुज ) उत्पन्न करता है इससे ( अम्य ) और ( त्वावान् ) आपके सदृश कोई भी दूसरा ( ज्यावान् ) बड़ा नहीं है ( न ) न ( देव ) विद्वान् वा प्रकाशमान और ( न ) न ( मर्त्यः ) साधारण मनुष्य ( अस्ति ) है ( तत् ) वह ( सत्यम् ) श्रेष्ठो में श्रेष्ठ ( इत् ) ही है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिम जगदीश्वर ने जगत् के पालन के लिये आकर्षण करने और वृष्टि तथा प्रकाश करने वाला सूर्य और मेघ बनाया इस कारण से जगदीश्वर के तुल्य कोई भी नहीं है फिर अधिक कहाँ से हो यह सत्य जानिये ॥ ४ ॥

त्वमपो वि दुरो विष्वचीरिन्द्र इच्छमंरुजः पर्वतस्य ।

राजामवो जगतर्षणीनां साकं सूर्य जनयन्यामुषासम् ॥५॥२॥

वार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले जगदीश्वर जैसे सूर्य ( पर्वतस्य ) मेघ के ( इच्छम् ) दृढ़ भाग को भग करना और ( विष्वची ) व्याप्त ( दुरः ) दूरों को प्रकाशित करता हुआ ( अप ) जलो वा प्राणी को ( वि ) विशेष कर वर्षता है तथा ( जगत ) समार के ( जर्षणीनाम् ) मनुष्यों का ( राजा ) राजा होता है वैसे ( त्वम् ) आप ( सूर्यम् ) सूर्य और ( वाम् ) प्रकाश को और ( जवांसम् ) दिन के मुख प्रभात को ( जनयन् ) उत्पन्न करते हुए सबके ( साकम् ) साथ व्याप्त हुए दुःख को ( अरुज ) नष्ट कीजिये और समार के मनुष्यों के राजा ( अमृज ) हजिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सूर्य आदि का उत्पन्न करने वाला प्रकाशक और धारण करनेवाला तथा सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त जगदीश्वर है उसकी आत्मा के साथ निरन्तर उपासना करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, सूर्य और ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तीसवाँ सूक्त और दूसरा वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य त्रिसप्तमस्य सूक्तस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । ५ त्रिचुत्विष्टुप्

छन्दः । वेदतः स्वरः । १ त्रिचुत्विष्टुप् । २ स्वराट् पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिः

छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ त्रिचुत्विष्टुप् । निषादः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं—

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।

वि तोके अप्सु तनये च सूर्योऽवीचन्त चर्षणयो विवाचः ॥१॥

वार्थ—हे ( रयीणाम् ) द्रव्यों के बीच ( रयिपते ) घन के स्वामिन् ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के देनेवाले राजन् आप जो ( विवाचः ) अनेक प्रकार की विद्या और शिक्षा से युक्त वाणिज्यवाले ( चर्षणयः ) मनुष्य ( अणु ) प्राणी वा अन्तरिक्ष तथा ( तोके ) शीघ्र उत्पन्न हुए सत्तान ( तनये, च ) और ब्रह्मचारी कुमार और ( सूर्ये ) सूर्य में विद्याओं को ( वि, अवीचन्त ) विशेष कहते हैं उन ( कृष्टी ) मनुष्य आदि प्रजाओं को ( हस्तयोः ) हाथों में धाँवले के सदृश ( आ, अधिवा ) अच्छे प्रकार धारण करिये और ( एक ) सहायरहित हुए प्रजा के पालन करनेवाले ( अणुः ) हजिये ॥ १ ॥

इत्या सृजाना अनपाहृदयं दिवेदिवे विविधुःप्रसूयम् ॥५॥४॥



पदार्थ—हे (राजन्, तः) वह आप जैसे सूर्य (अथः) जलों को प्रकट करता है वैसे (सत्तः) प्रसन्न (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले (अर्थः) चोड़ों के समान वेग वाले पदार्थों से घोर (अभिमतः) रहित पदार्थों से (सर्वत्र) उत्तम प्रकार प्रकट करने योग्य (अथवा) बल से (पुरावाद्) हिंसकों को सहनेवाले तथा (अप्रवृत्तः) असत्य को नहीं स्वीकार करनेवाले हुए आप (विशेषिते) प्रतिदिन (अप्रवृत्तः) नहीं विचारने योग्य (अर्थः) इन्द्र का सब घोर से स्वीकार करिये और जैसे (सुखान्तः) उत्तम प्रकार निश्चितजन हृत्प को (विशेषितः) व्याप्त होते हैं (इत्यादि) इस हेतु से कर्त्तव्य कर्मों में प्रविष्ट हूँ ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचककुत्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अथर्व से करते योग्य अर्थ को नहीं करता है वह सूर्य के सदृश प्रकाशित यग वाला होता है और जैसे सूर्य दृष्टि करके सब को हवित करता वैसे ही राजा सुभगुणों की वर्षा करके सब को आनन्दित करे ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह तैत्तिरीय सूक्त और चौथा वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथ पञ्चमस्य अर्चिषाशतस्य सूक्तस्य शुभहोत्र ऋषिः। इन्द्रो देवता।

१, २, ३ भिष्वक्पङ्क्तिः। ४ भुरिक्पङ्क्तिः। ५ स्वरान् पङ्क्तिः।

पञ्चम स्वर ॥

अब पाँच ऋचावाले तैत्तिरीय सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में राजा क्या करके क्या करावे इस विषय को कहते हैं—

य जोषिष्ठ इन्द्र तं सु नो द्या मदीं वृषन्स्वभिष्टिर्दान्।  
सैवैष्यं यो वनवत्स्वर्वा वृत्रा समस्तं सासहदुमिश्रान् ॥१॥

पदार्थ—हे (वृषन्) तेजस्वी (इन्द्र) ऐश्वर्य के देनेवाले (यः) जो (जोषिष्ठ) अतिशय बन्धी (महः) हविष हुए (स्वभिष्टिः) अच्छी सङ्गति वाले (वात्सल्यः) दाता वह आप (नः) हम लोगों के लिये (सौख्यम्) सुन्दर घोड़ों और बड़े पदार्थों में हुए को (सु) उत्तम प्रकार (दा) दीजिये और (यः) जो (स्ववत्) अच्छे घोड़ोंवाला हुआ (वृत्रा) धनोकी (वनवत्) याचना करता है तथा (समस्तु) मर्यादों में (अभिष्टान्) शत्रुओं को (सासहत्) अत्यन्त सहता है (तम्) उसका हम लोग सत्कार करें ॥१॥

भाषार्थ—जो अभय देनेवाला और सन्मार्ग में जीतनेवाला तथा दिन रात अपने बल को बढाता है वही सब का सुखी करने को योग्य है ॥१॥

त्वां ह्रीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातो।  
त्वं विप्रैर्भिर्षि पुण्यैरक्षायस्त्वोत इस्सनिता बाजुमर्वा ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःख के नाश करनेवाले राजन् जो (हि) जिससे (अर्वा) चोड़े से समान श्रेष्ठ गुणों के ग्रहण करनेवाले वेगवाने (सनिता) विभाग करनेवाले (त्वोत) आप में रक्षित जन (बाजम्) विज्ञान को प्राप्त होता है उसके सहित (त्वम्) आप (विप्रैर्भिः) मेधावी जनों के माय (पणीन्) प्रशंसितों को (वि, अक्षायः) मुलाह्वये उन (इत्) ही (त्वाम्) आपकी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (शूरसातो) शूर वीर जनों के विभागपूर्ण सन्मार्ग में (विवाचः) अनेक प्रकार की विद्या से युक्त वाणियों वाले (चर्षणयः) विद्वान् जन (हवन्ते) स्तुति करते हैं ॥२॥

भाषार्थ—जो राजा धार्मिक विद्वानों के माय राज्य का पालन करे तो उसकी कोन नहीं प्रशंसा करे ॥२॥

त्वं तौ इन्द्रोभयौ अमिश्रान्दासा वराण्यार्या व शूर।  
वधीर्बन्ध सुचितैर्मिरस्केरा परसु दधि नृणां नृतम ॥३॥

पदार्थ—हे (नृणां) मुखियाजनों में (नृतम) अत्यन्त मुखिया (शूर) दुष्टों के नाशक (इन्द्र) राजन् (त्वम्) आप (ताम्) उन (अमिश्रान्) दुष्ट सब को पीड़ा देनेवाले और (आर्या) धर्मिष्ठ उत्तम जनो को (व) और (उभयात्) दो प्रकार के विभाग करके दुष्ट और पीड़ा देनेवालों का (पुत्रु) सङ्ग्रहों में (वन्धे) अग्नि जैसे बन्धों का बन्ध (वधीः) नाश करिये और (सुचितैर्मिः) उत्तम प्रकार से तृप्त किये गये (अस्केः) चोड़ों से (आ, दधि) विदीर्ण करते हों और धर्मिष्ठ उत्तम जनो की रक्षा करते हों तथा (दासा) देने योग्य (वृत्राणि) धनों को प्राप्त होने हों इससे विवेकी हों ॥३॥

भाषार्थ—जो राजा उत्तम, अनुत्तम, धार्मिक और अधार्मिकों का परीक्षा से विभाग करके उत्तमों की रक्षा करता और दुष्टों को दण्ड देता है वही सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥३॥

किर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

व त्वं न इन्द्रावर्वाभिष्टुती सखा विद्याधुरविता वधे भू।  
स्वर्वासा वद्वर्वाभिष्टुती सखा युष्यन्ते नृमर्षिता परसु शूर ॥४॥

पदार्थ—हे (शूर) शूरवीर शत्रुजनों के नाश करने और (इन्द्र) सुख के देने वाले (यत्) जो (त्वम्) आप (अवर्वाभिः) नहीं मित्रा करनेवालों और

(अती) रक्षाओं से (नः) हमारे (सखा) मित्र (विद्याधुरः) सम्पूर्ण अवस्था से युक्त (अविता) रक्षक (वधे) वृद्धि के लिये (यः) होवे (तः) वह आप (स्वर्वासा) सुख के देनेवाले हुये जीतने वाले हूँ उन् (त्वा) आपकी (वैवाहिता) धार्मिक और अधार्मिक के मध्य में धार्मिकों के ग्रहण करने वाले (पुत्रु) संग्रहों या संग्रहों में (युष्यन्ते) भुष्ट करते हुए हम लोग (वृत्राभिः) पुकारें ॥४॥

भाषार्थ—हे राजन्! जैसे मित्र मित्रके लिये प्रिय आचरण करता है वैसे ही प्रजा के लिये हित आचरण करिये और जहाँ जहाँ प्रजायें आपको पुकारें वहाँ वहाँ उपस्थित हूँ और शत्रुओं के जीतने में प्रयत्न करिये ॥४॥

किर वह राजा कैसा बर्ताव करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

नूनं न इन्द्रापुराय व स्या मर्वा वृद्धीकृत नो भविष्यौ।  
इत्या गणन्तो महिनस्यु चर्षन्दिषि स्याम पायै गोपतमाः ॥५॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःखों के नाश करनेवाले आप (नः) हम लोगों के (वृद्धीकः) सुखकारक (अथ) हूँ उन् (यत्) भी (अपराधः) अर्थ के लिये (युष्यन्) निश्चय कर सुखकारक (त्वाः) हूँ उन् (नः) हम लोगों के (अभिष्टु) अपेक्षित सुख में (व) प्रवृत्त हूँ उन् (इत्या) इस कारण से (गुणतः) स्तुति करते हुए (गोपतमाः) वाणियों को अत्यन्त सेवनेवाले हम लोग (वृत्राभिः) बड़े आपके (पायै) पूर्ण करने और (दिषि) कामना करने योग्य (शर्मन्) युद्ध में (स्वाम) होवें ॥५॥

भाषार्थ—जो राजा अपने और दूसरे का पक्षपानी न होकर प्रजा के रक्षण में यत्न करनेवाला होवे तो सम्पूर्ण प्रजा प्रेम के स्थान में बंधी हुई होकर राजा की दिनरात स्तुति करें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तैत्तिरीय सूक्त आठ पाँचवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथ पञ्चमस्य अर्चिषाशतस्य सूक्तस्य शुभहोत्र ऋषिः। इन्द्रो देवता।

त्रिष्टुप्पङ्क्तिः। अथ स्वरः ॥

अब पाँच ऋचावाले चौतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

सं पु त्वे अग्निर्गिर इन्द्र पूर्वीर्षि व त्वयन्ति विम्बो मनीषाः।  
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पध इन्द्रे अशुंक्षार्का ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या के देने वाले जो (स्व) कोई (त्वत्) आपके समीप से (पूर्वी) प्राचीन (गिर) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों को (व) भी (यन्ति) प्राप्त होन है (च) और श्रेष्ठ गुणों से (सम्) उत्तम प्रकार (अशु) गिनते हैं तथा (विम्बः) श्रेष्ठ गुणों से व्याप्य (मनीषा) गमन करनेवाले हुए परस्पर (वि) विशेष करके प्राप्त होते हैं और (अशुंक्षार्का) वेद के मन्त्रों के प्रर्थ जाननेवालों और यथार्थ उपदेश करने वालों के (पुरा) आगे (स्तुतयः, च) प्रशंसाओं की भी (नूनम्) निश्चय से (पस्पधे) स्पष्टी करते हैं और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले के लिये (अशुंक्षार्का) प्रशंसित और आदर करने योग्य वचनों की (अधि) अधिक स्पर्धा करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

भाषार्थ—हे राजन्! इस समार में कोई योग्य, कोई अयोग्य, जन होते हैं उनमें प्रशंसा करने योग्य मज्जनों के साथ मेल करके उत्तम सहाय बन हुए धर्म से राज्यपालन निरन्तर करिये ॥१॥

किर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

पुत्रुतो यः पुंरगूर्ध्व ऋग्वा एकः पुत्रप्रशस्तो अस्ति युद्धे।  
रथो न मुहे खर्बसे युजानोऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाधो भूत् ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनों (यः) जो (पुत्रप्रशस्तः) बहुतों से सत्कार किया गया (पुत्रप्रशस्तः) बहुतों से उत्तम कराया गया (पुत्रप्रशस्तः) बहुतों में उत्तम (एकः) सहायपरहित (रथः) विमान आदि वाहन (न) जैसे वैसे (मुहे) बड़े (खर्बसे) बल के लिये (युद्धे) विद्वानों के सत्कार और सङ्ग तथा दानों से और (अस्माभिर) बड़े बुद्धिमत् से (युजानः) युक्त हुआ (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य का देनेवाला (अनुमाधिर) हम लोगों के साथ (अनुमाधिर) पीछे से प्रसन्न होने योग्य (भूत्) होवे वह हम लोगों का आनन्दकारक (अस्ति) है उन् राजा को आप लोग भी मानिये ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यों! जैसे घोड़ों और अग्नि आदिकों से युक्त रथ अभीष्ट कार्यों को करता है वैसे ही उत्तम सहायों के सहित राजा राज्य के कार्यों को पूर्ण करने को समर्थ होता ॥२॥

किर वह राजा कैसा होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

न य हिंसन्ति प्रीतयो न बाधिरिन्द्रं न क्षन्तोदुमि पृथ्वन्तीः।  
यदि स्तोतारः श्रुतं यस्तुहसै युगन्ति गिर्बन्तुं च तदस्मै ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ( यत् ) जिस ( इन्द्रम् ) पूर्ण विद्या वाले और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा को ( इत् ) ही ( चोत्तयः ) धन गुणियां ( न ) नहीं ( हिसन्ति ) नष्ट करती हैं और जिस पूर्णविद्या और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा को ( बाणी. ) बाणियां ( न ) नहीं नष्ट करती हैं और जिस पूर्ण विद्या वाले और अत्यन्त ऐश्वर्य्य-युक्त राजा को ( वर्धयन्ती ) बढ़ाती हुई श्रद्धा गुणियां और बाणियां ( अभि, नक्षन्ति ) प्राप्त होती हैं और ( यधि ) जो उस ( सिर्बसम् ) बाणियों से सेवा करने और मांगनेवाले पूर्ण विद्या और अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजा की ( स्तोतारः ) स्तुति करने वाले जन ( यस्मिन् ) स्तुति करते हैं ता ( यत् ) जो ( अस्मै ) इस स्तुति करनेवाले के लिये ( शतम् ) सैकड़ों और ( सहस्रम् ) असंख्य प्रकार का ( वात् ) सुख प्राप्त होता है ( तत् ) यह लोगो को भी प्राप्त हो ॥३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको शत्रु से की हुई विरुद्ध क्रियायें और निन्दित बाणियां नहीं पीड़ित करती हैं उस हर्ष और शोक से रहित राजा को शत्रुन सुख प्राप्त होता है ॥३॥

अस्मा एतद्दिव्यैर्वै मासा भिमिष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।

जनं न धन्वन्ममि सं यदापः सत्रा वाङ्महर्षनानि यज्ञैः ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् जिस ( विधि ) सुन्दर शुद्ध व्यवहार में ( इन्द्रे ) दुष्टों के नाश करनेवाले राजा के होने पर ( मासा ) अन्न खादि महीने ( वाङ्मह. ) बढ़ते हैं और ( यज्ञैः ) विद्वानों के मत्कारों से ( अन्वन् ) सत्क्रिया के समान ( सत्रा ) सत्य कारण से ( यत् ) जो ( हवन्ममि ) दान आदि कर्म बढ़ते हैं तथा ( धन्वन् ) बालुका से युक्त स्थान में ( आपः ) जल ( धनम् ) मनुष्य को ( न ) जैसे वैसे ( सत्, अन्वि ) उत्तम प्रकार चारों ओर से बढ़ते हैं ( एतत् ) यह ( अस्मै ) इसके लिये ( सोम. ) उत्पन्न करनेवाला मैं जैसे ( नि, अघाति ) निरन्तर प्राप्त होता हूँ वैसे आप इसको ( भिमिषः ) सींचिये ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे मत्कार करने योग्य का मत्कार और निर्जल स्थान में हुए का जल का मिलना सुखकारक होता है वैसे ही यज्ञ का अनुष्ठान और श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य सब के भानन्दकारक होते हैं ॥४॥

फिर विद्वानों को कंसा वस्तिव करना चाहिए इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

अस्मा एतन्महाङ्गुष्मस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मुतिभिरवाचि ।

असुक्ष्मा महति वृत्रतुर्ष इन्द्रो विश्वायुरविता बधश्च ॥५॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यथा ) जैसे ( अतिभिः ) विचारशील मनुष्यों से ( अस्मै ) इस उपदेश के लिये ( एतत् ) यह ( अहि ) बड़ा ( आङ्गुष्म. ) प्राप्त होने योग्य ( स्तोत्रम् ) स्तोत्र ( अवाचि ) कहा जाता है और जैसे ( अस्मै ) इस ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य्य के करनेवाले राजा के लिये यह बड़ा प्राप्त होने योग्य स्तोत्र कहा जाता है और जैसे ( इन्द्र ) शत्रुओं का नाश करनेवाला योद्धा ( महति ) बड़े ( वृत्रतुर्ष ) सङ्ग्राम में ( बध. ) बड़ाने और ( अविता ) रक्षा करनेवाला ( विश्वायु, च ) और पूर्ण अवस्थायुक्त ( असत् ) होवे वैसे आप लोगो को भी करना चाहिये ॥५॥

भाषार्थ—जो अविद्वान् हो वे विद्वानों के अनुकरण से अपना वस्तिव उत्तम करें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौतीसवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य पञ्चविंशतमस्य सूक्तस्य नर ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निष्ठात्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । २ पङ्क्तिपङ्क्तिः । पञ्चम स्वरः ॥

अथ पांच ऋचा वाले पंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा के प्रति कंसा उपदेश करें इस विषय को कहते हैं—

कदा मुवत्रधयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।

कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् ! आपके ( कदा ) कब ( रथसयाणि ) वाहन के रहने के स्थान ( भुवनम् ) होने हैं और ( कदा ) कब ( स्तोत्रे ) प्रशंसा के साधन में ( सह-स्रपोष्यम् ) असंख्य जना के पुष्ट करने योग्य ( ब्रह्म ) धन को ( दा. ) दीजिए और ( कदा ) कब ( अस्य ) इसके ( राया ) धन से ( स्तोत्रम् ) प्रशंसा को ( वासयः ) बसाइये और आप ( कदा ) कब ( वाजरत्ना ) धन और धान्य की बढ़ानेवाली ( धियः ) उत्तम बुद्धियों वा उत्तम कर्मों को ( करसि ) करें ॥ १ ॥

भाषार्थ—सब मन्त्र में बैठनेवाले, विद्वान् जन और उपदेशक जन राजा से यह कहे कि आप कब मेना के अंगी और पुष्टि करनेवाले ऐश्वर्य और उत्तम बुद्धियों को करेंगे ॥ १ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

कहिं स्वित्तिदिन्द्रु यन्नुमिर्न न्बीरैर्वीरान्नीळ्यासे जयाजीन ।

त्रिबातु गा अघिं जयासि गोविन्द्रं धमं स्वर्बद्धेस्मे ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सेना के धारण करनेवाले आप ( कहिं ) किस समय में ( स्वित् ) कहिये ( बीरैः ) शूरता और बल आदि से युक्त ( नृभिः ) उत्तम मनुष्यों से ( बीरान् ) श्रेष्ठता आदि गुणों से युक्त ( नृन् ) श्रेष्ठ मनुष्यों की ( नीळ-यासे ) प्रशंसा कीजिए और ( गाः ) पृथिवियों को कब ( अघिं जयासि ) जीतिये और हे ( इन्द्र ) प्रतापी तथा सेना के धारण करनेवाले आप ( गोव् ) पृथिवियों में और ( अस्मे ) हम लोगो में ( यत् ) जो ( स्वर्बद्धे ) बहुत सुख से युक्त ( त्रिबातु ) सोना चादी और तांबा ये तीन धातु जिसमें ऐसा ( धुम्नस् ) धन वा यश है ( तत् ) उसको हम लोगो में ( बेहि ) धारण करिये सो ऐसा करने ( जयाजीन् ) सन्ध्याओं को ( जय ) जीतये ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप विद्वानों के साथ विद्वानों का तथा शूरवीर जनों के साथ शूरवीरों का अच्छे प्रकार ग्रहण करके तथा सन्ध्याओं को जीत कर और पृथिवी के राज्य को प्राप्त कर न्यायाचरण से प्रजाओं का पालन करके बड़े यश वा धन को बढ़ाइये ॥ २ ॥

कहिं स्वित्तिदिन्द्रु यज्जग्निरे विश्वस्य ब्रह्म कृणवः शबिष्ठ ।

कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवन्ममि गच्छाः ॥३॥

पदार्थ—हे ( शबिष्ठ ) प्रतिशय बली ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् आप ( कहिं ) कब ( स्वित् ) कहिये ! ( जग्निरे ) स्तुति करनेवाले के लिए ( यत् ) जो ( विश्वस्य ) अनेक रूप ( ब्रह्म ) धन ( कृणवः ) करेंगे ( तत् ) उसको इसके लिए हम लोग भी करें तथा ( नियुतः ) अत्यन्त श्रेष्ठ गुणों से युक्त ( न ) जैसे वैसे ( धियो ) बुद्धियों को ( कदा ) कब ( युवासे ) भिलाइयेगा और ( गोमघा ) पृथिवी के राज्य से मत्कृत बनो तथा ( हवन्ममि ) ग्रहण करने योग्यों को ( कदा ) कब ( गच्छा ) प्राप्त हुईयेगा ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप सम्पूर्ण धन, पूर्ण बुद्धिया और उत्तम क्रियाओं को कब करियेगा ? अर्थात् शीघ्र इनको करिये ॥ ३ ॥

स गोमघा जरित्रे अश्वस्वन्त्रा बाजभवसो अघिं वेहि पृष्ठः ।

पीपिहीषः सुदुर्वाभिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रक्ष्याः ॥४॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) विद्या और ऐश्वर्य्य के देनेवाले राजन् ( स. ) यह आप ( जरित्रे ) विद्या और गुण के प्रकाश करनेवाले के लिए जो ( गोमघाः ) पृथिवी के राज्यरूप धनवाले ( अश्वस्वन्त्रा. ) बोट हैं सुवर्ण जिनके वे ( बाजभवस. ) जन्म और विद्या श्रवण युक्त ( पृष्ठ ) सम्बन्ध करने योग्य हैं उनको हम लोगों में ( अघि, बेहि ) धारण करिये और ( इष. ) प्राप्त होने योग्य रसों को ( पीपिहि ) पीजिए और ( भरद्वाजेषु ) धारण किया विज्ञान जिन्होंने उन विद्वानों में ( सुदुर्वाभ. ) उत्तम प्रकार कामना पूर्ण करनेवाली ( धेनुम् ) विद्या और विज्ञान से युक्त चारों ओर ( सुरुच. ) तथा उत्तम प्रीतिवालों को ( रक्ष्याः ) प्रीतियुक्त करिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! अपनी प्रजाओं में पूर्ण विद्या और सम्पूर्ण धन को धारण कर और शरीर के आरोग्यपन को बढ़ा के धर्म में रुचि करिये ॥ ४ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तमा नूनं वृजन्मन्यवा विच्छ्रो यच्छक्र विदुरो गृणीषे ।

मा निररं शुक्रदुष्य धेनोराङ्गिरसान् ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥७॥

पदार्थ—हे ( विप्र ) बुद्धिमान् जन ( शक्र ) सामर्थ्य और अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् ( यत् ) जो ( वृजन्मन् ) चलते हैं जिससे वा जिसमें उसकी ( धुम्नस् ) निश्चित ( आ, गृणीषे ) प्रशंसा करने हो ( तन् ) उसकी ( जिन् ) भी ( निः ) निरन्तर प्रशंसा करते हो और ( शूर ) भयरहित और शत्रुओं के मारनेवाले आप ( शूर. ) शत्रुओं को ( जिन्व ) पुष्ट करिये तथा ( शुक्रदुष्य ) शीघ्र पूर्ण करनेवाली ( धेनो. ) वाणी के ( आङ्गिरसान् ) प्राणों में श्रेष्ठों को ( ब्रह्मणा ) बड़े धन वा धन से ( अरन् ) अच्छे प्रकार से ( वि ) प्रमत्न कीजिए और कभी ( अन्यथा ) अन्यथा ( मा ) न करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो राजा आदि जन प्रजाओं का सुख से शोभित कर धन्याय से अन्यथा आचरण नहीं करत वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पंतीसवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमस्य पञ्चविंशतमस्य सूक्तस्य नर ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

१ निष्ठात्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

४, ५ धुरिकपङ्क्तिः । ६ स्वराट् पङ्क्तिपङ्क्तिः

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पांच ऋचावाले पंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा कंसा होकर क्या धारण करे इस विषय को कहते हैं—

सुत्रा मदासुस्तव विश्वजन्वाः सुत्रा रायोऽस्य वे पार्थिवासाः ।

सुत्रा वार्जानामसवो विमुक्ता यद् वेधुं धारयन्वा असूयस्य ॥१॥

**पदार्थः**—हे राजन् ( तव ) आपके ( मे ) जो ( विश्वकर्म्याः ) सम्पूर्ण जन्म सुख जिनमें वे ( सत्ता ) सत्य ( अक्षयः ) आनन्द देनेवाले धर्म ( सत्ता ) सत्य ( रायः ) धन ( सत्ता ) सत्य ( धर्मिकः ) पृथिवी में निहित और ( बाजामासु ) अन्न आदिकों के मध्य ( विश्वकर्म्याः ) विभागों को प्राप्त हुए हैं उनके आप धारण करनेवाले ( अक्षयः ) हुए ( अक्षयः ) इसके अनन्तर ( यत् ) जो ( देखे ) विद्वानों में ( अनुपमम् ) अविद्वानों में हुआ है उसको ( धारयन् ) धारण कराइये ॥ १ ॥

**भाषार्थः**—हे मनुष्यो ! जो इस मसार में बुद्धि और आनन्द के बढ़ानेवाले, विद्या और अन्नादि से युक्त और विद्वानों के साथ सत्संग करनेवाले हैं उनको धारण करके सत्य और असत्य के विभाग करनेवाले हुए ॥ १ ॥

किर मनुष्य कैसा बसति करे इस विषय को कहते हैं—

**अनु प्र येजे जन् ओषी अस्य सन्ना दधिरे अनु वीर्याय ।**

**स्यमगृहे दुधयेऽर्धे च कृतं वृजन्त्यपि वृद्धस्य ॥२॥**

**पदार्थः**—हे राजन् जो ( जन् ) मनुष्य जैसे धारवीरजन् ( अस्य ) इस संसार के मध्य में ( सत्ता ) सत्य ( ओषः ) बल को ( दधिरे ) धारण करते हैं और ( वृजन्त्यपि ) संध्या में ( स्यमगृहे ) एक दूसरे के मिले हुए ग्रहण करनेवाले ( वीर्याय ) पराक्रम के लिए ( अनुम् ) बुद्धि को ( अनुम् ) पीछे धारण करते हैं ( च ) और ( दुधये ) मारनेवाले ( अर्धे ) प्राप्त हुए के लिए बुद्धि का ( अर्थ ) भी ( वृजन्त्यपि ) त्याग करते हैं वैसे ( अनु, प्र, येजे ) यह करना है उसको और उनको आप ग्रहण करिय और हिमको की बजिये ॥ २ ॥

**भाषार्थः**—जो मनुष्य त्याग और दया से युक्त बुद्धि को धारण कर, धर्मयुक्त कर्मों को कर, दुष्टता को दूर कर और युद्ध में विजय प्राप्त करके ओष्ठों की संगति करते हैं वे दिन राति बुद्धि को बढ़ा सकते हैं ॥ २ ॥

किर उत्तम मनुष्य को क्या प्राप्त होता है इस विषय को कहते हैं—

**तं सधोचीकृतयो वृष्णानि पौंसानि नियुतः सञ्चरिन्द्रम् ।**

**समुद्रं न सिन्धवं उक्त्वशुष्का उरुम्यचसं गिर आ विशन्ति ॥३॥**

**पदार्थः**—हे विद्वानो ! जिस ( उरुम्यचसम् ) बहुत ओष्ठ गुणों में व्यापक ( इन्द्रम् ) सत्य धर्म और न्याय के धारण करनेवाले को ( उक्त्वशुष्काः ) कहे बल जिनसे वे ( गिरः ) वाणिज्य ( समुद्रम् ) समुद्र को ( सिन्धवं ) नदियाँ ( न ) जैसे वैसे ( आ, विशन्ति ) सब प्रकार से प्राप्त होती हैं ( तम् ) उसको ( सधोचीः ) एक साथ गमन करनेवाली ( नियुतः ) वायु की निश्चित गतियों के समान किया और ( उत्तम ) रक्षण आदि किया ( वृष्णानि ) दुष्टों के मासर्था को रोकनेवाले ( पौंसानि ) वचन भी ( तवम् ) प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जैसे नीचे चलनेवाली नदियाँ समुद्र को सब ओर से प्राप्त होती हैं वैसे ही धार्मिक राजा को सम्पूर्ण बल, सब रक्षायें और उत्तम प्रकार निश्चित वाणिज्य भी प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

किर राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

**स रायस्त्वामुप सुजा गुणानः पुण्ड्रचन्द्रस्य त्वमिन्द्र वसवः ।**

**परिर्वम्यासमो जनानामेको विश्वस्य ध्वनस्य राजा ॥ ४ ॥**

**पदार्थः**—हे ( इन्द्र ) धन के स्वामिन् राजन् जैसे ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण ( पुण्ड्रचन्द्रस्य ) ससार का स्वामी ( वसवः ) जिसके समान और नहीं ( स ) वह ( एकः ) सहायक ( राजा ) प्रकाशमान राजा है वैसे आप ( जनानाम् ) धार्मिक मनुष्यों और ( पुण्ड्रचन्द्रस्य ) बहुत सुवर्ण जिसमें उसके ( राय ) लक्ष्मी के ( वसवः ) धन के ( परितः ) स्वामी ( वसवः ) हुए और ( गुणान् ) स्तुति करते हुए ( तवम् ) आप ( तवम् ) नदी के समान धन के कोश को ( उप, सुजा ) बनाइये ॥ ४ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । हे राजा लोगों ! जैसे ईश्वर पक्षपान का त्याग करके सबका न्याय से पालन करनेवाला है वैसे ही होकर आप लोग धन के स्वामी हुए ॥ ४ ॥

**स तु भुवि भृत्या यो दुवोषुर्धौ भूमानि रायों जयः ।**

**असौ यथा नः श्वसा चकानो युगेयुगे वयसा चेतितानः ॥५॥८॥**

**पदार्थः**—हे ऐश्वर्य से युक्त ( यः ) जो ( धीः ) प्रकाश ( न ) जैसे वैसे ( दुवोयुः ) सेवा की कामना करता हुआ ( श्वसा ) स्वामी ( श्वसा ) बल से ( चकानः ) कामता करता हुआ ( युगेयुगे ) प्रतिवर्ष ( वयसा ) अवस्था से ( चेतितानः ) जानता हुआ ( भूमानि ) भवण से ( यथा ) जैसे ( न ) हम लोगों के समाचार को सुनता है और जैसे ( स ) वह ( अस ) हो तथा ( रायः ) धनो को प्राप्त हुए हम लोग प्रकाश जैसे वैसे ( युग ) होवें वैसे ( तु ) तो आप सब की बात को ( अभि, भुवि ) सुनें ॥ ५ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में उपमासङ्कार है । जैसे परीक्षक विद्यार्थियों के अध्ययन की परीक्षा करके विद्वान् करता है वैसे ही राजा यथार्थ न्याय को करके प्रजाओं को प्रसन्न करे ॥ ५ ॥

इस युक्त में इन्द्र, विद्वान् और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस युक्त के अर्थ की इससे पूर्व युक्त के अर्थ के साथ सञ्ज्ञाति जाननी चाहिए ॥

यह क्षीरसायी युक्त और आठवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथ पञ्चमस्य सप्तविंशतस्य सुक्तस्य मन्त्राजो बाह्यस्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, ४, ५ विराद्विष्टम् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

२, ३ निष्कृत्यद्वितितदछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पञ्च ऋषिः बाह्ये संतोसर्वे सुक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम

मन्त्र में मनुष्य क्या करे इस विषय को कहते हैं—

**अर्वाग्रथे विश्ववारं त उग्रे द्रे युक्तासो हरयो बहन्तु ।**

**कीरिचिद्धि त्वा हवते स्वर्वाभूमीमहि सधमादस्ते अद्य ॥१॥**

**पदार्थः**—हे ( उग्र ) तेजस्विन् ( इन्द्र ) प्रजा के स्वामिन् जो ( युक्तासः ) नियुक्त किये गये ( हरयः ) घोड़ों के मुख्य शिल्पी मनुष्य ( ते ) आपके ( विश्व-वारम् ) सम्पूर्ण सुख स्वीकार करनेवाले ( हवन् ) सुन्दर वाहन को ( बहन्तु ) प्राप्त करावें और जो ( स्वर्वाभू ) बहुत सुख विद्यमान जिसमें वह ( कीरिः ) स्तुति करने-वाला विद्वान् ( हि ) ही ( त्वा ) आपको ( हवते ) पुकारता है उनके ( सधमाव ) मुख्य स्थानवाले हम लोग ( ऋषीमहि ) समुद्र होवें । और जिन ( ते ) आपके ( अर्वाग्र ) पीछे ( अद्य ) इस समय जो सुख को प्राप्त होते हैं वे ( चित् ) भी इस समय सुखों से भूषित होते हैं ॥ १ ॥

**भाषार्थः**—जो राजा धार्मिक और अनुकूल मनुष्यों का सत्कार करता है उस को मन्त्र बलिष्ठ विद्वान् महा सेवा करते हैं ॥ १ ॥

किर मनुष्य परस्पर कैसा बसति करे इस विषय को कहते हैं—

**ग्रो द्रोणे हरयः कर्पागमनुनानासु ऋज्यन्तो अभूवन् ।**

**इन्द्रो नो अस्य पुर्यः पपोयावृ धृक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥२॥**

**पदार्थः**—जो ( इन्द्रः ) अत्यन्त ऐश्वर्यवाला ( अस्य ) इस ( सोम्यस्य ) ऐश्वर्य में हुए ( मदस्य ) आनन्द का ( धृक्षः ) अन्तरिक्ष के सदृश भूमि जिसकी वह ( पपोयावृ ) बड़े और ( पुर्यः ) पूर्वजनों से उत्पन्न किया गया ( न ) हम लोगों का ( राजा ) प्रकाशमान राजा होवे और जो ( पुनानासु ) पवित्र ( ऋज्यन्तः ) सरल के सदृश आचरण करने हुए ( हरयः ) मनुष्य ( द्रोणे ) परिमाण में ( कर्मा ) कर्म को ( ग्रो ) अच्छे प्रकार ( अभूवन् ) प्राप्त होते हैं और ( अभूवन् ) प्रसिद्ध होते हैं वे धर्मों को भी पवित्र करते हैं ॥ २ ॥

**भाषार्थः**—जो राजा आदि ओष्ठ जन स्वयं पवित्र और ओष्ठ स्वभाववाले और सरल होकर ओष्ठ कर्मों को करके न्याय से हम लोगों की रक्षा करने हैं वे हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ २ ॥

किर मनुष्य क्या करे इस विषय को कहते हैं—

**आसत्तायासः श्वसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अज्वाः ।**

**जमि अथ ऋज्यन्तो वहेयुर्न चिन्तु वायोरमृतं चि दस्येत् ॥३॥**

**पदार्थः**—जो ( आसत्तायासः ) चारों ओर से गमन करनेवाले ( रथ्यासः ) वाहनों में ओष्ठ ( अज्वाः ) घोड़े जैसे वैसे ( अभि, अथ ) चारों ओर से सुननेवाले ( ऋज्यन्तः ) सरल के समान आचरण करते हुए विद्वान् जन ( श्वसानम् ) बल-युक्त ( इन्द्रम् ) राजा को ( नृ ) शीघ्र ( वहेयुः ) प्राप्त होवें और जो ( चिन्तु ) नी इन्द्र को ( अथ ) अच्छे प्रकार ( सुचक्रे ) सुन्दर करता है वह ( वायो ) पवन के ( अमृतम् ) नाशरहित स्वरूप को प्राप्त होकर दुःखों की ( नृ ) शीघ्र ही ( चि, दस्येत् ) उपेक्षा करे ॥ ३ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । हे प्रजाजनों ! जैसे राजा आप लोगों की बुद्धि करे वैसे आप लोग भी इसकी बुद्धि करिये और सब योगाभ्यास करके प्राणों में वर्तमान परमात्मा को जान कर दुःखों का नाश करो ॥ ३ ॥

**वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियतीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।**

**ययां वज्रिवः परियास्यं हों मघा च वृष्णो दयसे वि सूरिन ॥४॥**

**पदार्थः**—हे ( वज्रिवः ) प्रशस्त शस्त्र और धर्म से तथा ( वृष्णो ) युद्ध उत्साह से युक्त ( यया ) जिस दक्षिणा से आप ( मघः ) अपराध का ( परियासि ) सब प्रकार से परित्याग करते हो ( सूरिम् ) विद्वानों ( मघा, च ) और धनों को ( वि ) विशेष करके ( दयसे ) दत्ते हो उस ( अस्य ) इस राज्य के ( मघोनाम् ) बहुत धनो से युक्तों की ( दक्षिणाम् ) बढ़ानेवाली दक्षिणा को ( तुविकूर्मितमः ) अत्यन्त बहुत करने और ( वरिष्ठः ) अत्यन्त स्वीकार करनेवाले ( इन्द्रः ) राजा हुए आप ( वरिष्ठः ) प्राप्त होते हैं इससे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

**भाषार्थः**—वही राजा स्थिर राज्य करने योग्य है जो विद्वानों और धार्मिक जनों पर दया करता और दुष्ट व्यक्तियों का त्याग करता है तथा पुण्यार्थी होकर इत-रूप चक्रवाला हुआ प्रजा के पालन में यत्नवाला होता है ॥ ४ ॥

**इन्द्रो राजस्स स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्मिर्वर्षा वृद्धमहाः ।**

**इन्द्रो इमं हनिष्ठो अस्तु सत्त्वा ता सूरिः पृणति तृत्तजानः ॥५॥६॥**

**पदार्थः**—हे मनुष्यो ! जो ( इन्द्रः ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त और ( स्थवि-रस्य ) स्थूल ( वाजस्य ) अन्न आदि का ( दाता ) देनेवाला और जो ( इन्द्रः ) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजा ( गीर्मिः ) वाणिज्य से ( वर्षास्य ) वर्षे और ( वृद्धमहाः ) बूढ़ों से सत्कार किया ( इन्द्रः ) सूर्य ( वृद्धम् ) मेघ का जैसे वैसे



शत्रुओं का ( हविषः ) अत्यन्त मारनेवाला ( अन्ध ) हो और जो ( पुत्रवानः ) प्रीति करनेवाला ( सखा ) मनोगुण से युक्त ( सुविः ) विद्वान् ( ता ) उन वनों को ( आ, पृथति ) अच्छे प्रकार मुखयुक्त करता है उसका तुम सब लोग सत्कार करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अभय का देनेवाला, विद्या में बढ़ो और आप्तो का सेवक, दुष्टों का मारनेवाला, प्रीतिकर्ता, विद्वान् मनुष्य हो उसी को तुम लोग राजा मानो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजा के कर्मों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह संतोषना सूक्त और नवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवर्षस्याष्टविंशतमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ । ४ निबृत्तमिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप्छन्दः ।

वैवतः स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचावाले अष्टीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को देने विद्वान् की सेवा करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अपादितं चतु नश्चिन्नतमो महीं मर्षद्युमतोमिन्द्रहृतिम् ।

पन्यसी धीति देव्यस्य यामन् जर्नस्य राति चने सुदानुः ॥१॥

पदार्थ—जो ( अपात् ) पैरो से रहित ( इतः ) प्राप्त हुआ ( चित्रतमः ) अत्यन्त अद्भुत गुण कर्म और स्वभाववाला ( सुदानुः ) उत्तम दानवाला ( न ) हम लोगों के लिए ( द्युमतीम् ) विद्या के प्रकाशवाली ( इन्द्रहृतिम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य की प्रकाशिका ( पन्यसीम् ) प्रशंसा करने योग्य ( देव्यस्य ) श्रेष्ठ गुण धरता विद्वानो में हुए ( जर्नस्य ) मनुष्य की ( धीतिम् ) धारणा से युक्त बुद्धि को और ( महीम् ) महीनी वाणी को तथा ( यामन् ) चलते हैं जिसमें उस मार्ग में ( रातिम् ) दान को ( चतु, मर्षत् ) धारण करता ( उ ) और ( चने ) सेवन करता है वह विद्वान् भगवत् करनेवाला होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस यथार्थवक्ता विद्वान् की सबके ऊपर दया, विद्या-दान, निष्कपटना और उत्तम दृष्टि वर्तमान है वही सबसे सत्कार करने योग्य होता है ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या ग्रहण करके सेवा करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

दृगच्चिदा वरतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।

एयमेनं देवहृतिर्वृत्त्यान्मद्रथः गिन्द्रमियसूच्यमाना ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ( अस्य ) हम ( इन्द्रस्य ) राजा के ( दूरत् ) दूर से ( चिन् ) भी ( वरतः ) निशान करने हुए के ( कर्णा ) दानों कान ( घोषात् ) उत्तम प्रकार शक्तिन वाणी से जो ( आ, तन्यति ) अच्छे प्रकार शक्ति करता है और जो ( देवहृति ) विद्वानों से प्रशंसा की गई ( इयम् ) यह वाणी ( एनम् ) हम ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् को ( आ ) चारों ओर से ( वृत्त्यात् ) घूर्णित करे और ( इयम् ) यह ( ऋष्यमाना ) स्तुति की गई और जो ( मद्रथः ) मुख सरीका ( ब्रुवाणः ) उपदेश करता हुआ है उसका वर्तन उसकी आप लोग सेवा करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसका आत्मा श्रोत्रों के द्वारा विद्या से तृप्त होवे और जिसको सम्पूर्ण विद्या से युक्त वाणी प्राप्त होवे उसी का उत्तम प्रकार सेवन करके पूर्ण विद्या को प्राप्त हूँजिये ॥ २ ॥

तं वो धिया परमया पुगजामजरमिन्द्रमभ्यनृप्यकैः ।

ब्रह्मा च गिरं दधिरे समस्मिन्महार्शच स्तोमो भवि वर्धदिन्द्रे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे तुम ( ब्रह्म ) वेद की और ( च ) आप लोगों की ( परमया ) अत्यन्त उत्तम ( धिया ) बुद्धि या कर्म से ( तम् ) उस ( पुगजाम् ) पहिले प्रकट हुए ( अजाम् ) जीर्ण होम से रहित ( इन्द्रम् ) विद्वान् की भी प्रशंसा करो वैसे ( अकै ) गुरों से मैं इसकी ( अमि, अनृषि ) स्तुति करता हूँ और जैसे ( च ) भी ( अस्मिन् ) हम ( इन्द्रे ) अत्यन्त ऐश्वर्य में ( च ) भी ( महान् ) बड़ा ( स्तोमः ) प्रशंसा करने योग्य गुण कर्म और स्वभाववाला ( भवि, बधत् ) बढ़ता है और जैसे आप विद्वानों की ( गिरः ) वेदवाणियों को ( तम् दधिरे ) उत्तम प्रकार धारण कर रहे हैं वैसे हम लोग अनुष्ठान करें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश और पुरुषार्थ से विद्वान् की विद्यायुक्त बुद्धि को स्वीकार करते हैं वे यहाँ स्तुति करने योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

अथ मनुष्य क्या बढ़ावे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

वर्धाथ यज्ञ उठ सोम इन्द्रं वर्धाद्वयस्य गिरं उक्थया च मन्म ।

वर्धाहैनमुषसो यामन्मोर्वाधमासाः शरदां याव इन्द्रम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यम् ) जिस ( इन्द्रम् ) विद्वान् की विद्या को ( यज्ञः ) श्रेष्ठो की संगति आदि स्वरूप और ( उठ ) भी ( सोमः ) प्रेरणा करने वाला विद्वान् ( वर्धाथ ) बढ़ावे और ( यम् ) धन को ( वर्धात् ) बढ़ावे तथा ( उक्थया ) प्रशंसा करने योग्य वक्ता और ( मन्म ) विद्वानों और ( गिरः ) वाणियों को ( च ) भी ( वर्ध ) बढ़ावे और ( अहम् ) इसके अन्तर ( एनम् ) इस ( उक्थया ) प्रशंसा से और ( अकतो ) रात्रि से ( यामन् ) चलते हैं जिसमें उस मार्ग में ( यामाः ) महीने ( शरदः ) ऋतुएं और ( यावः ) प्रकाशयुक्त दिन या प्रकाश ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य को ( वर्धात् ) बढ़ावे वे हम लोगों को बढ़ावे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वानों का सत्कार और संगतित्वकर्म व्यवहार, विद्वान् की विद्या की सेवा और अत्यन्त ऐश्वर्य और पूर्ण धान्य को बढ़ाता है वैसे ही आप लोग सम्पूर्ण श्रेष्ठ व्यवहारों की विमरानि बढ़ावें ॥ ४ ॥

एवा ज्ञानं संहसे असांमि वाह्वानं राधसे च भुताथ ।

महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विधासेम वृत्रत्येषु ॥५॥१०॥

पदार्थ—हे ( विप्र ) बुद्धियुक्त ( असांमि ) उपमारहित को ( संहसे ) बल के लिए ( ज्ञानम् ) विद्या और विनयों में प्रकट हुए को ( राधसे ) भर्त्सना करने के लिए ( भुताथ ) सम्पूर्ण विद्याओं का किया श्रवण जिसने उस के लिए ( च ) भी ( वाह्वानम् ) बढ़ते हुए को ( वृत्रत्येषु ) शत्रुओं से हिंसा करने योग्य संघामों में ( अवसे ) रक्षण आदि के लिए ( महाम् ) बड़े ( उग्रम् ) तेजस्वी को हम लोग ( नूनम् ) मिश्रित ( आ ) सब प्रकार से ( विधासेम ) निश्च सेवा करे उस ( एव ) ही की आप भी सेवा करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जब मनुष्य सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभावों में वर्तमान और-वीर विद्वान् की सेवा कर और विद्या को ग्रहण करके बल आदि को बढ़ावे तो वे कौनसा उत्तम कार्य न निष्ठ कर सकें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, उत्तम बुद्धि और वाणी के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अष्टीसवें सूक्त और नवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवर्षस्य कोनचत्वारिंशतमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । १, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप्छन्दः । वैवतः स्वरः

४, ५ भुरिक्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पाँच ऋचा वाल अष्टीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वहनेर्ग्रिमन्मनो वचनस्य मध्वः ।

अपां नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्य गृधरे गोअग्राः ॥१॥

पदार्थ—हे ( कवे ) अत्यन्त विद्वान् आप ( गृध्रेः ) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करनेवाले अग्नि के सदृश ( कवे ) विद्वान् और ( दिव्यस्य ) सुन्दर इच्छाओं में श्रेष्ठ ( मन्द्रस्य ) आनन्दित होने और आनन्दित करत हुए ( विप्रमन्मनः ) विद्वान् का विज्ञान जिसमें उस ( मध्वः ) माधुर्य आदि गुणों से युक्त ( वचनस्य ) वचन के व्यवहार का ( अपां ) पालन करिये और ( तस्य ) उस ( सचनस्य ) सम्बद्ध हुए की ( गृधरे ) स्तुति करत हुए के लिए ( गोअग्राः ) वाणी उत्तम जिनमें उन ( इवः ) धन आदि वा इच्छाओं का ( नः ) हम लोगों के लिए ( युवस्य ) सयुक्त कीजिए ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! आप ऐसा प्रयत्न करिये जिससे हम लोगों को दिव्य मुख, दिव्य विद्या और दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त होवे ॥ १ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अयमुंशानः पर्यद्रिमुक्ता ऋतवीतिमिर्भूतयुग्युजानः ।

रजदक्ष्णं वि वलस्य सानुं पर्णोर्वाचोमिरमि योधदिन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे ( अयम् ) यह ( ऋतवीतिभिः ) जल के धारण करनेवाले गुणा से ( उक्ताः ) किरणों का ( युजानः ) धारण करता हुआ ( इन्द्रः ) सूर्य ( अद्रिम् ) मेघ का ( परि रजत् ) विभाग करता है और ( वलस्य ) मेघ के ( सानुम् ) शिखर के आकार सेव का नाश करने को ( अमि, वि, योधत् ) सब ओर से विशेषकर युद्ध करता है वैसे ( ऋतयुक् ) सत्य से युक्त होनेवाला ( उक्ताः ) कामना करता हुआ ( योधमि ) वचनों से उत्तम जन का ( अकम्पम् ) रोगरहित और ( परीत् ) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों को सिद्ध कीजिए ॥ २ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! जैसे सूर्य अपनी किरणों से भूमि से जलका आकर्षण कर धारण कर और मेघ के आकार का नाश करके पृथिवी के ऊपर गिराव सम्पूर्ण व्यवहारों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वानों से श्रेष्ठ विद्याओं का आकर्षण कर धारण करके उत्तम विद्याधियों से वर्धित और अविद्या का नाश करके विज्ञान से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के व्यवहारों को सिद्ध करो ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**अथ योतयद्भुतो व्यक्तम् दोषा वस्तोः शब्दं ह्यदुर्निम्न ।  
इमं केतुमदधुने विद्वन्नां शुचिजन्मन उचसंश्चकार ॥३॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सूर्य के सदृश वर्तमान विद्वन् जैसे ( अयम् ) यह ( इन्द्रः ) शीला करने वाला सूर्य ( अद्यतः ) नहीं प्रकाश करनेवाले भूमि आदिकों को और ( अक्षय्यम् ) रात्रियों को ( दोषा ) प्रमातृकाओं को ( वस्तोः ) विन को ( शब्दः ) शब्द आदि मनुष्यों को ( वि, योतयत् ) प्रकाशित करता है और ( अक्षय्यम् ) दिनों के ( चित् ) भी ( शुचिजन्मनः ) सूर्य से जन्म जिसका उस ( उचसः ) प्रमातृ केला की प्रकटता को ( उचसः ) करता है जैसे ( इक्षुम् ) इस ( केतुम् ) बुद्धि की प्रकाशित कीजिये और जैसे इस प्रकाशस्वरूप सूर्य को प्रमातृ केलाय ( अद्यतः ) धारण करें जैसे ( नु ) शीघ्र विद्या के प्रकाश को धारण करिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! आप लोग जैसे सूर्य अप्रकाशक भूमि आदि का प्रकाश करने और आनन्द करनेवाला पवित्रक्षण आदि समग्रों का निम्नण करता है वैसे मनुष्यों के आत्माओं के प्रकाशक हुए विद्या की बुद्धि करनेवाले कर्मों को निम्नण कीजिये और कर्मों का प्रचार कराइये ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**अथ रीचयद्भुतो वक्षानोऽयं वासयद्भुतेन पूर्वीः ।  
अथसीयत क्रतुयुग्मिरथैः स्वर्विदा नार्भिना चर्षणिप्राः ॥४॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जैसे ( अयम् ) यह ( अक्षय्यः ) प्रकाश से रहित वज्र आदिकों को ( वक्षानः ) प्रकाशित करता हुआ सूर्य सम्पूर्ण जगत् को ( रीचयत् ) प्रकाशित करता है वैसे विद्या से सब मनुष्यों को प्रकाशित करिये जैसे ( अयम् ) यह सूर्य ( ऋतेन ) जल के सदृश सत्य से ( पूर्वीः ) पहिले उत्पन्न हुई प्रजाओं को ( वि, वासयत् ) विशेष बसाता है वैसे सम्पूर्ण प्रजाओं को सत्य विज्ञान से समुक्त करिये और जैसे ( अयम् ) यह सूर्य ( ऋतयुग्मिः ) जन के मुक्त करनेवालों से ( अथैः ) महान् शीघ्रगामी किरणों और ( स्वर्विदा ) मुख को जानते हैं जिससे उस ( नार्भिना ) मध्य के आकर्षण आदि वर्तन से ( चर्षणिप्राः ) विद्या आदि गुणों से मनुष्यों के प्रति व्याप्त होने वाला हुआ ( ईषते ) जाता है वैसे सत्य के मुक्त कराने वाले बड़े गुणों से मुक्त देनेवाले आत्मा के आकर्षण से और वस्तुत्व से श्रोताओं को व्याप्त होते हुए जहाँ तहाँ जाइये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन सूर्य के सदृश प्रकाशात्मा होकर अविद्याका विनाश कर और मनुष्यों को विद्या से प्रकाशित करते हैं और सत्य आचरण के प्रति प्रार्थित करते हैं वे धन्य हैं ॥ ४ ॥

**नू गृणानो गृणते प्रेन राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।  
अप ओषधीरपिषा वक्षानि गा अर्वतो नृचक्षसे रिरिहि ॥५॥११॥**

पदार्थ—हे ( राजन् ) विद्या और विनय से प्रकाशमान ( प्रेन ) प्राचीन तथा दीर्घ आयु युक्त आप ( गृणते ) स्तुति करते हुए के लिये ( गृणानः ) स्तुति करते हुए ( वसुदेयाय ) इन्द्र देने योग्य जिससे उसके लिये ( पूर्वीः ) पूर्ण सुखवाले ( इषः ) जन्म आदिकों को ( अपः ) जलों को ( ओषधीः ) घस आदिकों को ( पिन्वा ) नहीं विद्यमान विष जिनमें जन ( वक्षानि ) वज्रालों को ( गा ) घेनु आदिकों को ( अर्वतः ) अथ आदिकों को और ( नृचक्षुः ) मनुष्य आदिकों को ( ऋचते ) प्रार्थित कर्म के लिए ( पिन्व ) सेवन करिये और ( नृ ) शीघ्र ( रिरिहि ) वाचना करिये ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो राजा सत्यवादी है और सत्य बोलनेवालों को प्रमत्त करता है और विद्वानों से विद्या और विनय को प्राप्त होकर सदा ही प्रजा के सुख को चाहता है तथा यज्ञ और उत्तम सुगन्धित फल पुष्प से युक्त वृक्षों से और लता आदिकों से सब को सुखयुक्त करता हुआ, जल ओषधी वृक्ष गौ बौद्धा और मनुष्यों के सुख की बुद्धि के लिये परमेश्वर वा विद्वानों से वाचना करता है वही इस लोक और परलोक के अनन्त आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, सूर्य और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह जनजातीयसर्वा सूक्त और प्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥५॥

अथ यन्मन्त्रस्य अन्तरिक्षात्तस्य सूक्तस्य अन्तरिक्षे आहूतस्य ऋचिः ।  
इन्द्रो देवता । १, १ विराट् मित्रदुष । २ मित्रदुषः अयः । ३ अयः स्वयः ।  
४ सुरिकवृत्तिः । ५ स्वरात्पुष्टिस्तद्वत् । ६ अयः स्वयः ॥

अथ पौष ऋचोवाले वास्तविक सूक्त का आरम्भ किया जाता है उसकी प्रथम मन्त्र में राजा को क्या करना चाहिए इस विषय की कहते हैं—

**इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मद्रायाश्च स्पृहो वि मुञ्चा सखाया ।  
इत न गाय गृण आ निषयाथा गृणानो गृणते यथो वा ॥६॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) राजन् जो ( तुभ्यम् ) आपके लिए ( मद्राय ) हर्ष के अर्थ ( सुतः ) उत्पन्न किया गया सोमलता का रस है उसको ( पिब ) पीजिये उससे ( अथ, स्पृ ) विनाश को अन्त करिये अर्थात् निश्चित रहिए और ( उत ) भी ( हरी ) समुक्त थोड़ी के सदृश वर्तमान राजा और प्रजाजन ( वि, मुञ्चा ) जो कि दुःख को त्याग करनेवाले ( सखाया ) मित्र होते हुए हैं उनकी ( प्र, गाय ) स्तुति करिये और ( स्पृहो ) गणना करने योग्य विद्वानों के समूह में ( निषया ) स्थित होकर ( अथा ) इसके अनन्तर ( गृणते ) सत्य विद्या को धारण करनेवाले की नही प्रशंसा करनेवाले के लिए तथा ( यथा ) सत्य से समुक्त होने वाले के लिए ( अथ ) कामना करने योग्य अवस्था को ( आ ) सब प्रकार से ( वाः ) धारण करिए ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप सोमलता आदि बड़ी ओषधियों के रस का पान कर, रोग रहित होकर, सत्य और असत्य का निर्णय कर, सब मित्रों की स्तुति करके, विद्वानों की सभा में स्थित होकर और सत्य ग्याय का प्रचार करके, दीर्घ ब्रह्मचर्य से विद्याब्रह्म के लिए सम्पूर्ण बालिका और बालकों को प्रवृत्त कराके सम्पूर्ण प्रजाओं को अधिक अवस्था वाली करिये ॥ ६ ॥

अब मनुष्यों को क्या जाना और क्या बीना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अस्य पिब यस्य ज्ञान इन्द्र मदाय कर्त्तव्यं अपिबो विरिषान् ।  
तद्ध ते गावो नर आपो अग्निरिन्द्रु समक्षपीतये समरमे ॥७॥**

पदार्थ—हे ( विरिषान् ) बड़े गुण से विभिष्ट ( इन्द्र ) राजन् ( अस्य ) जिस ( अस्य ) इसके ( मदाय ) धान्य देने वाले ( कर्त्तव्ये ) प्रदान के लिए रस को ( अपिबः ) पान किया उस रस को आप फिर ( ज्ञानः ) प्रसिद्ध होते हुए ( पिब ) पान करिये और जिन ( ते ) आपके ( गावः ) किरणों के सदृश ( नरः ) मनुष्य और ( आपः ) जन और ( अग्निः ) मेघ ( इन्द्रुम् ) जल को जैसे वैसे ( तद्ध, उ ) उसको ही प्राप्त होते हैं और ( अस्य ) इस ( पीतये ) पान के लिए ( सध, अग्निम् ) अच्छे प्रकार व्याप्त होते हुए आप ( सध ) उत्तम प्रकार पान करिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जिस भोजन और पान से बुद्धि और बल बढ़े उसका भोजन और उसका पान करिये और उसका भोजन कराइए और पान कराइये तथा उसका भोजन और पान न करिए और न कराइए जिससे बुद्धि न बढ़े ॥ ७ ॥

फिर राजा और राजा के जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**समिद्धे अथो सुत इन्द्र सोम आ त्वा वदन्तु इग्यो वरिष्ठाः ।  
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥८॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले ( वरिष्ठाः ) प्रतिशय प्राप्त करनेवाले ( इग्यः ) बौद्धों के सदृश मनुष्य ( समिद्धे ) उत्तम प्रकार प्रदीप्त ( अग्नौ ) अग्नि में और ( सुते ) उत्पन्न हुए ( सोमे ) बड़ी ओषधि के रस में ( त्वा ) आपको ( आ, वदन्तु ) सब प्रकार से प्राप्त करावें और हे ( इन्द्र ) दुःख दारिद्र्य के विदारनेवाले जिन ( त्वायता ) आपको प्राप्त हुए ( मनसा ) विज्ञान से मैं आपको ( जोहवीमि ) अत्यन्त पुकारना हूँ वह आप ( महे ) बड़ी ( सुविताय ) प्रेरणा के लिए ( न ) हम लोगों को ( आ, याहि ) सब प्रकार से प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप उत्तम मनुष्यों के माथ बँधों की उत्तम प्रकार परीक्षा कर, उत्तम रसों और अग्नियों को सम्पन्न कर, उसका भोजन कर, एकमत कर और प्रजा जनो की रक्षा करके अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होकर हम लोगों को भी वनयुक्त करिए ॥ ८ ॥

फिर राजा आदिकों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**आ याहि शश्वदुशता क्यायेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।  
उप ब्रह्माणि भृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे यथो धात ॥९॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त जन के देनेवाले जो ( यज्ञः ) सद्विद्या और व्यवहार की बढ़ानेवाला व्यवहार ( नः ) हम लोगों के और ( ते ) आप के ( तन्वे ) शरीर के लिए ( क्याः ) जीवन की ( धातु ) धारण करता है उससे ( अथा ) इसके अनन्तर ( इमा ) इन ( ब्रह्माणि ) धनो को वा वेदों को आप ( महा ) बड़े ( मनसा ) विज्ञानयुक्त चित्त से ( उचसता ) कामना करते हुए विद्वान् के साथ ( शश्वतः ) सुनिए और ( अक्षय्यम् ) निरन्तर ( क्याय ) प्राप्त हूजिए तथा ( सोमपेयम् ) पीने योग्य सोमलता के रस को पीने के लिए ( उप, आ, याहि ) समीप प्राप्त हूजिए ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् राजा आदि जनी ! आप लोग विद्वानों के साथ मेल कर, बुद्धि और बल के बढ़ानेवाले व्याहार और विहार को कर, परस्पर विचार करके ब्रह्मचर्य आदि से अवस्था को बढ़ावें जिससे सब महाभाग प्राप्त होंवें ॥ ९ ॥

**यदिन्द्र दिवि पायै यश्चाम्यहा स्वे सदेने यत्र वासि ।  
अतो नो ब्रह्मर्षे नितुस्वान्तसजोषाः याहि तवर्गो मरुद्भिः ॥१०॥१२॥**

पदार्थ—हे ( गिर्बन्धः ) उत्तम शिक्षित वाणी से स्तुति किए गए ( इन्द्र ) विद्वन् ( यत् ) जो ( पार्थिव ) पालन करने योग्य राज्य में ( बिधि ) कामना करने योग्य में ( यत् ) जो ( अक्षयः ) यथायं और ( यत् ) जो ( वा ) वा ( स्वे ) अपने ( सवने ) स्थान में ( यत् ) जहाँ ( वा ) वा बाप ( अति ) हो ( अतः ) इस कारण से ( नः ) हम लोगों के ( अक्षयः ) रक्षण आदि के लिए ( नियुक्तान् ) नियत करनेवाले ईश्वर के मनुष्य ( सजोवा ) नुन्य प्रीति के सेवन करनेवाले हुए ( अक्षयः ) उत्तम मनुष्यों के माथ ( यत् ) सत्कार करने योग्य न्याय व्यवहार की ( पाहि ) रक्षा कीजिए ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आपको चाहिए कि सदा ही राज्य का उत्तम प्रकार रक्षण, सत्य का प्रचार और अपने मनुष्य सब का ज्ञान और ईश्वर के मनुष्य पक्षपात का त्याग करके महाशय धार्मिक श्रेष्ठ जनों के साथ प्रजा का पालन निरन्तर करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोम ओषधि, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह बालीसर्वा सूक्त और बारहवां वर्य समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चवर्षस्यैकवारिणामस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।  
इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ विष्टुप् छन्दः । अक्षयः  
स्वर । ५ मुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब पाँच ऋचावाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अहेतमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्द्रवः सुतासः ।

गावो न बज्रन्स्वमोको अछेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१॥

पदार्थ—हे ( बज्रिन् ) शस्त्र और अस्त्र को धारण करने और ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले ( यज्ञियानाम् ) यज्ञ का पालन करने के योग्यो में ( प्रथम ) पहिला ( अहेतमान ) सत्कार किया गया जिस ( यज्ञम् ) आहार विहार नामक यज्ञ को ( तुभ्यम् ) आपके लिये और ( सुतास ) उत्पन्न किये गये ( इन्द्रवः ) सोममत्ता आदि के जल ( पवन्ते ) पवित्र करने हैं उनके ( उप-याहि ) समीप आइये और ( गावः ) गौवें ( न ) जैसे ( स्वम् ) अपने ( ओक ) निवास स्थान को वैसे ( अछेन्द्रा, आ, गहि ) अच्छे प्रकार सब और से प्राप्त हजिये ॥ १ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकुन्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! प्रजाजनों से उत्तम गुणों के योग के कारण सब से मस्कार किये गये राज्य के पालन नामक व्यवहार को यथावत् प्राप्त हजिये और जैसे गौवें अपने बछड़े और रथानों को प्राप्त होती हैं वैसे प्रजा के पालन के लिये विनय को प्राप्त हजिये ॥ १ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

या तै काकुत्सुक्ता या वरिष्ठा या शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।

तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्त्ततामिन्द्र गन्धुः ॥२॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) धर्म के धारण करनेवाले मनुष्यों के स्वामिन् ( ते ) आपकी ( या ) जो ( काकुत्सुक्ता ) मध्य भाषण आदि उत्तम क्रिया से युक्त और ( या ) जो ( वरिष्ठा ) प्रतिशय उत्तम ( काकुत् ) उत्तम प्रकार शिक्षा की गई वाणी ( या ) जिससे आप ( ऊर्मिम् ) तर्ग को जैसे वैसे ( मध्व ) मधुर आदि गुणों से युक्त के रस को ( शश्वत् ) निरन्तर ( पिबसि ) पान करने हो और जिससे ( ते ) आपका ( अध्वर्युः ) अपने अहिमाक्य व्यवहार की कामना करते हुए अच्छे प्रकार से ( प्र, अस्थात् ) स्थित होते हो और जिससे ( ते ) आपका ( वज्र ) शस्त्र और अस्त्रों का समूह ( सध्व, वर्त्तताम् ) उत्तम प्रकार वर्त्तमान होवे ( तया ) उससे ( गन्धुः ) पृथ्वीराज्य की इच्छा करनेवाले हुए सम्पूर्ण प्रजाओं का ( पाहि ) पालन करिये ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकुन्तोपमालङ्कार है । राजा और राजा के समासद उत्तम प्रकार मस्कार की विद्या से युक्त मध्यभाषण से उज्ज्वलित वाणियों को प्राप्त होकर उनसे प्रजापालन आदि व्यवहारों को निरन्तर सिद्ध करें ॥ २ ॥

फिर वे किसके लिए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समंकारि सोमः ।

एतं पिब हरिषः स्थातरुष्य यस्येशिषे प्रदिधि यस्ते अश्वम् ॥३॥

पदार्थ—हे ( हरिषः ) अच्छे मनुष्यों से युक्त ( स्थातरुष्य ) स्थित होनेवाले ( एष ) तेजस्विन् राजन् ( यस्य ) जिस ( ते ) आपका ( एषः ) यह ( द्रप्सः ) कुष्टी का विमोह करना ( वृषभः ) सुख का वधनेवाला ( विश्वरूप ) अनक प्रकार के स्वरूपवाला ( सोमः ) बड़ी २ ओषधियों से उत्पन्न हुआ रस ( वृष्णे ) बल आदि के गुण के करने और ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाले के लिए ( सध्व, अकारि ) किया जाता है ( यः ) जो ( प्रदिधि ) अच्छे प्रकार सुन्दर व्यवहार में ( अश्वम् ) भोजन करने योग्य पदार्थ को प्राप्त करता ( एतम् ) इस का आप ( पिब ) पान करिये और इसके ( ईशिषे ) स्वामी हजिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जिस राजा के अनेक प्रकार के उत्तम प्रबन्ध, उत्तम ओषधियों, उत्तम सेना और धार्मिक विद्वान् अधिकारी हैं वही सम्पूर्ण प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुतः सोमो अमुतादिन्द्र वस्यानयं भेयांश्चिकितुषे रथाय ।

एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा वृषस्व ॥४॥

पदार्थ—हे ( तितिर्व ) शत्रुओं के बल को उल्लङ्घन करनेवाले ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जो ( अयम् ) यह ( चिकितुषे ) विचार करने को इष्ट ( रथाय ) सशस्त्र के लिए ( भेयान् ) अतिशय कल्याण को प्राप्त ( वस्याम् ) प्रतिशय वास करनेवाले ( अमुतात् ) नहीं उत्पन्न किये गये पदार्थों से ( सोमः ) बड़े ऐश्वर्यों का योग ( सुतः ) उत्पन्न किया गया है ( एतम् ) इस ( यज्ञम् ) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य के धाप ( उप, याहि ) समीप प्राप्त हजिये ( तेन ) उससे ( विश्वा ) सम्पूर्ण ( तविषी ) बलयुक्त सेनाओं को ( आ, वृषस्व ) सब प्रकार से सुखी करिये ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो राजा छोटे भी सशस्त्र के लिए बड़ी सामग्री को एकट्ठी करते हैं वे शत्रुओं को जीतते हुए सम्पूर्ण प्रजाओं को निरन्तर सुखी करने के योग्य हैं ॥ ४ ॥

फिर वह कैसा हुआ क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

हयाममि त्वेन्द्र याद्वर्वाकरं ते सोमस्तन्वे भवति ।

शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु मास्माँ अब पृतनासु प्र विक्षु ॥५॥१३॥

पदार्थ—हे ( शतक्रतो ) असंख्य बुद्धियुक्त तथा उत्तम कर्म करने और ( इन्द्र ) सब प्रकार से रक्षा करनेवाले ( ते ) आपके ( तन्वे ) शरीर के लिए जो ( सोमः ) बड़ी ओषधि आदि का रस ( याद्वर्वाकरं ) नीचे चढ़नेवाला ( प्र, भवति ) प्रभाव को प्राप्त होता है उसको आप ( याहि ) प्राप्त हजिये और जिस ( स्वा ) आपका हम लोग ( आ, हयाममि ) पुकारते हैं वह आप ( सुतेषु ) उत्पन्न हुए ऐश्वर्यों से ( अस्मान् ) हम लोगों का ( प्र, अब ) उत्तम प्रकार रक्षा करो और ( पृतनासु ) मनुष्यों वा सेनाओं में और ( विक्षु ) प्रजाओं में ( अरम् ) अच्छे प्रकार ( वाव-यस्व ) आनन्द करो या आनन्द कराओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो राजा अपने ऐश्वर्य से सम्पूर्ण प्रजाओं की न्याय से रक्षा करना है वह प्रशंसित, अधिक अवस्था वाला और आनन्दयुक्त वा आनन्द कराने वाला भी होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और सोम के रस का गुण वर्णन करने में इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह इकतालीसवां सूक्त और तेरहवां वर्य समाप्त हुआ ॥



अथ षतुर्बर्षस्यैकवारिणामस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।  
इन्द्रो देवता । १ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । अक्षयः स्वरः । २ निष्टुष्टुष्टुष्टु ।

३ अनुष्टुप् । ४ मुरिगनुष्टुप् छन्दः । षाण्मासः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले ब्यालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषं भर ।

अरंगमाय जग्मयेऽपंधावध्ने नरे ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् राजन् आप ( जग्मये ) विज्ञान की अधिकता के लिये ( अपंधावध्ने ) उत्तम व्यवहारों से धार्य चलने तथा ( अरङ्गमाय ) विद्या के पार जाने और ( पिपीषते ) पान करने की इच्छा करनेवाले ( विदुषं ) यथार्थवत्ता विद्वान् के लिये और ( अस्मै ) हम ( नरे ) अग्रणी मनुष्य के लिये ( विश्वानि ) सम्पूर्ण उत्तम वस्तुओं को ( भर ) धारण करिये और यह भी धारण लिये इनको ( प्रति ) धारण कहे ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो राजा विद्वानों के लिये सम्पूर्ण धन वा सामर्थ्य को धारण करता है और जो विद्वान् राजा आदि के हित के लिये प्रयत्न करते हैं वे सर्वदा उन्नत होते हैं ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

एमेनं प्रत्येतनं सोमैमिः सोमपातमम् ।

अमन्त्रेमिर्जोषिणमिन्द्र सुतेमिर्निदुमिः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप लोग ( सुतेमिः ) उत्पन्न किये गये ( सोमैमिः ) ऐश्वर्यों वा ओषधियों के समूहों से ( इन्द्रमिः ) आनन्दकारक जलों से तथा ( अमन्त्रेमिः ) उत्तम पात्रों से ( सोमपातमम् ) प्रतिशय सोमरस के पीनेवाले ( अमन्त्रेमिः ) सरल धार्मिक जनों की इच्छा करने के स्वभाववाले ( एमम् ) हम ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य के



देनेवाले राजा की ( ईम् ) सब और से ( आ ) सब प्रकार से ( प्रत्येक ) प्रतीति करिये ॥ २ ॥

आचार्य—हे राजा और प्रजाजनों ! आप लोग यथार्थवत्ता तथा राजा आदि विद्वानों में विश्वास करिये और वे आप लोगों में विश्वास करें इस प्रकार दोनों ओर आनन्द बढ़े ॥ २ ॥

फिर परस्पर क्या करें इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिसृष्यथ ।

वेदा विश्वस्य मेधिरौ भुवचन्तमिदेषते । ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनों जो जो ( विश्वस्य ) सम्पूर्ण राज्य का ( मेधिरः ) मेल करने और ( भुवत् ) दुष्टों का दबानेवाला ( आ, ईकते ) प्राप्त होना और राजा के व्यवहार को ( वेदा ) जानना है ( तन्तम्, इत् ) उसी उमकी ( यधि ) जो ( सुतेभिः ) उत्पन्न किये ( इन्दुभिः ) आनन्दकारक ( सोमेभिः ) ऐश्वर्यों से आप लोग ( प्रतिसृष्यथ ) सुशोभित कीजिये तो यह भी आप लोगों को उत्तम प्रकार शोभित करे ॥ ३ ॥

आचार्य—जो उत्तम उत्तम मनुष्यों का सरकार करते हैं वे सबको श्रेष्ठ गुणों से शोभित करते हैं ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

अस्माअस्मा इवन्धसोध्वयो प्र भरा सुतम् ।

कुर्वित्समस्य जेन्यस्य शर्वतोऽमिश्रस्तेरवस्परत् ॥४॥ १४ ॥

पदार्थ—हे ( अस्मा ) नही हिंसा करनेवाले आप ( अस्माअस्मै ) इसके लिये ( अन्धसः ) अन्न आदि के ( समस्य ) तुल्य ( जेन्यस्य ) जीतने योग्य ( शर्वत ) बल के और ( अमिश्रस्तेः ) चारों ओर से प्रशंसित ( सुवित् ) महान् ( सुतम् ) उत्पन्न किये गये को ( प्र, भरा ) धारण करिये इससे ( इत् ) ही हम लोगों का आप ( अवस्परत् ) पालन करने है ॥ ४ ॥

आचार्य—जो विद्वान् सब के लिये सम्पूर्ण उत्तम पदार्थों को समर्पित करते हैं और जिनने सामर्थ्य का धारण करते हैं उतना सब ओरों के रक्षण के लिये करते हैं उन सब को आभ्यशाली निनता चाहिये ॥ ४ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, विद्वान् और प्रजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह ब्यालीतवा सूक्त और चोदहवां वगैरे समाप्त हुआ ॥



अथ अनुष्टुप्स्य विचरवारिज्ञातमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो वेत्ता । १, २, ३, ४ उपलक्ष्यन्व । ऋचमः स्वरः ॥

अथ बार ऋक्षावाले तैत्तिरीयस्य सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

यस्य त्यच्छ्वरं मदे दिवोदसाय रुन्धय ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य प्राप्त करानेवाले ( स ) वह (अयम् ) वह ( सोमः ) बुद्धि और बल का बढ़ानेवाला रस ( ते ) आपके लिये ( सुतः ) उत्पन्न किया गया है उसका आप ( पिब ) पान करिये और ( रुन्धयम् ) मेघ को सूर्य्य जैसे बैसे ( मदे ) आनन्दकारक ( दिवोदसाय ) विद्वान् के देनेवाले के लिये दुःख के देनेवाले दुष्ट का ( रुन्धयः ) नाश करिये और ( वक्त्र ) जिसकी कुकर्म के अनुष्ठान में इच्छा होवे ( स्वत् ) उसका नाश करिये ॥ १ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाक्कमुत्तोपमालङ्कार है । हे राजा आदि जनों ! आप धार्मिक जनों को पीडा देनेवाले मनुष्यों को यथावत् दण्ड दीजिये और वैद्यक-शास्त्र में कही हुई रीति से बड़ी ओषधियों के रस को निकालकर उसका सेवन कर रोगरहित होकर सम्पूर्ण प्रजाजनों को रोगरहित करिये ॥ १ ॥

फिर राजा क्या करें इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

यस्य तीक्ष्णं मद् मध्यमन्तं च रक्षसे ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) बल के देनेवाले ( यस्य ) जिसके ( तीक्ष्णम् ) तेजस्विनियों के मन्त्रों द्वारा उत्पन्न किये ( मध्यम् ) आनन्द के देनेवाले ( मध्यम् ) मध्य मे हुए ( अन्तम् ) और अन्त में वर्तमान की ( च ) भी ( रक्षसे ) रक्षा करते हो ( सः ) वह ( अयम् ) यह ( सोमः ) उत्तम ओषधियों का रस ( ते ) आपके लिये ( सुतः ) उत्पन्न किया उसका आप ( पिब ) पान करिये ॥ २ ॥

आचार्य—हे विद्वान् राजन् ! आप वैसी ही ओषधियों को प्रकट करिये जिन से सब का सुख बढ़े ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

यस्य वा अन्तराम्नी मदे इच्छा आचार्यः ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) सम्पूर्ण रोगों के नाश करनेवाले ( यस्य ) जिस ( अन्तमः ) मेघ के ( अन्तः ) मध्य में ( इच्छाः ) दुष्ट ( वाः ) किरणों को ( मदे ) आनन्द के लिये ( आचार्यः ) उत्पन्न करता है उसके सर्वत्र से ( सः ) वह ( अयम् ) यह ( सोमः ) रोगों को नाश करनेवाला ओषधियों का रस ( ते ) आपके लिये ( सुतः ) निर्माण किया गया उसको आप ( पिब ) पीजिये ॥ ३ ॥

आचार्य—हे विद्वानो ! जिसके परमायु मेघमण्डल में भी वर्तमान हैं ओषधियों से उसका निर्माण वैद्यक रीति से कर और उसका सेवन करके रोगरहित कीजिये ॥ ३ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

यस्य मन्दानो अन्धसो माधौनं दक्षिणे श्वः ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥ १५ ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) वैद्यराज ! ( यस्य ) जिस ( अन्धसः ) अन्न आदि की ( मन्दानः ) स्तुति करते हुए आप ( माधौनम् ) बहुजनयुक्त की और ( श्वः ) बल का हेतु उसको ( दक्षिणे ) धारण करते हो ( सः ) वह (अयम् ) यह (सोमः) ऐश्वर्य करनेवाला रस ( ते ) आपके लिये ( सुतः ) उत्पन्न किया गया उसको आप ( पिब ) पीजिये ॥ ४ ॥

आचार्य—हे मनुष्यों ! जिससे बल, बुद्धि और सुख बढ़े उसी रस और अन्न का निरन्तर सेवन करो ॥ ४ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोम और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह ऋग्वेद के छठे मण्डल में तृतीय अनुवाक, तैत्तिरीयस्य सूक्त और जीवे अष्टक में सातवें अध्याय में ब्रह्महवां वगैरे समाप्त हुआ ॥



अथ अनुविशातयुक्तस्य अनुविशातारिज्ञातमस्य सूक्तस्य बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो वेत्ता । १, २, ३, ४ उपलक्ष्यन्व । गान्धारः स्वरः । २, ५ स्वरानु-  
चित्कण्ड । ऋचमः स्वरः । ३ अमूरी प्रकृतिः । ७ पुरिषप्रकृतिः ।  
८ निष्प्रकृतिः । ९, १२, १६ प्रकृतिः । १०, ११, १३, १४, १५, १६, १७, १८, २०  
२४ निष्प्रकृतिः । १९, २१, २३ त्रिष्टुप् छन्दः ।  
वैकत स्वरः ॥

अथ जीवीत ऋक्षावाले ब्यालीतस्य सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा आदि को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

यो रयिवा रयिन्तमो यो धुमैर्धुम्वत्तमः ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे ( स्वधापते ) अन्न के स्वाभिन् ( रयिवा ) अच्छे धनोवाले ( इन्द्र ) धन के धारण करनेवाले ( यः ) जो ( रयिन्तमः ) अत्यन्त बनावध और ( यः ) जो ( धुम्वैः ) धनों वा यशों से ( धुम्वत्तमः ) अत्यन्त यशोजन युक्त ( सुतः ) निर्माण किया गया ( सोमः ) ऐश्वर्य्य ( मदः ) आनन्द देनेवाला ( ते ) आपका ( अस्ति ) है ( सः ) वह आपसे उत्कार करके स्वीकार करने योग्य है ॥ १ ॥

आचार्य—हे राजा आदि जनों ! आप लोगों को चाहिये कि अपने राज्य में बहुत बनावध विद्वानों का सत्कार करके रक्षा करें जिससे निरन्तर लक्ष्मी बढ़े ॥ १ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

यः शुमस्तुविश्वम् ते राधो दामा मन्तीनाम् ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( शुविश्वम् ) अनेक प्रकार के सुखोवाले ( स्वधापते ) अन्न आदिको के स्वाभिन् ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त ( यः ) जो ( ते ) आपका ( विश्वम् ) सुखयुक्त ( राधः ) बनो की ( मन्तीनाम् ) विचारशीलों की ( दामा ) देने योग्य ( सुतः ) उत्पन्न किया गया ( मदः ) आनन्दकारक ( सोमः ) ऐश्वर्यों का समूह ( अस्ति ) है ( सः ) वह ( ते ) आपके धर्म की कीर्ति करनेवाला हो ॥ २ ॥

आचार्य—जो मनुष्य धन आदि ऐश्वर्य्य से धर्म और विद्या की उन्नति करते हैं वे ही बहुत सुख और धनवाले होते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

वेन बृद्धो न श्वसा सरो न स्वाभिहृतिभिः ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( स्वधापते ) अपने पदार्थों के धारण करनेवाले ( इन्द्र ) राजन् आप ( वेन ) जिस ऐश्वर्य्य से और ( श्वसा ) बल से ( बृद्ध ) बुद्ध ( न ) जैसे बैसे वा ( सरोः ) हिसक ( न ) जैसे बैसे ( श्वसिभिः ) अपनी ( ऊर्तिभिः ) रक्षाधियों से ( मदः ) आनन्द देनेवाला ( सः ) वह ( सोमः ) ओषधियों का रस ( सुतः ) उत्पन्न किया गया ( ते ) आपका ( अस्ति ) है उसकी आप बुद्धि कीजिये ॥ ३ ॥

आचार्य—हे मनुष्यों ! जिस पुत्राव से विद्वान् होकर युवा भी बुद्ध होते हैं उसको निरन्तर संभित कीजिये अर्थात् संवत् कीजिये ॥ ३ ॥

फिर मनुष्य को किसकी स्तुति करनी चाहिए इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

स्वर्गं नो अग्रहणं शृणीषे सर्वसुस्पतिम् ।

इन्द्रं विश्वासाहं नरुं महिष्ठं विश्ववर्षणिम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो मैं ( नः ) आप लोगों और ( स्वः ) उसको ( उ ) वितर्कपूर्वक ( अग्रहणम् ) धन्याय से नहीं किसी को मारनेवाले ( अक्षः ) सेवा के ( पतिम् ) स्वामी ( विश्वासाहम् ) संपूर्ण शत्रुओं की सेनाओं को सहनेवाले ( महिष्ठम् ) अत्यन्त महान् और ( विश्ववर्षणिम् ) धार्मिक मनुष्य काम देनेवाले जिसके उस ( वरम् ) अग्रणी ( इन्द्रम् ) युष्ठाचार शत्रुओं के विनाशक मनुष्य की ( शृणीषे ) प्रशंसा करता है जिसकी आप स्तुति करते हो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोगों को उसकी प्रशंसा करनी चाहिये जो नित्य न्यायकारी, सबको सहनेवाला, महान्, युद्ध आदि राजकर्मों में निपुण, युष्ठा का विदारक, दृढ़ उत्साही, मनुष्य होवे ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यं वर्षयन्तीवृषिः पतिन्तुरस्य राघसः ।

तमिन्वस्य रोदसी देवी छुम्ने सपर्यतः ॥ ५ ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( वः ) जिस ( तुरस्य ) दुःख के नाश करनेवाले ( राघसः ) जन के ( पतिम् ) स्वामी ऐश्वर्य्य में युक्त को ( इन् ) ही ( गिर ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियाँ ( वर्षयन्ति ) बढ़ाती हैं और ( अस्य ) इसके ( देवी ) सुन्दर प्रकाशमान ( रोदसी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी ( शुष्मम् ) बल का ( मु ) भीष्म ( मयम्बत ) जीवन करते हैं ( तम्, इत् ) उसी की आप लोग वृद्धि करके सेवा करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभावों में वृद्धि को प्राप्ति जन की वृद्धि करते हैं वे पञ्चतत्त्वमय राज्य का भोग करते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

तद्व उक्त्वस्यं बृहधेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।

विषो न यस्योत्तयो वि यद्रोहन्ति सखितः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( वः ) जिसके ( सखितः ) तुल्य निवास और ( उत्तयः ) रक्षण आदि कर्म ( विष ) बुद्धिमान् जन ( न ) जैसे जैसे ( वः ) जिसको ( वि ) विशेष करके ( रोहन्ति ) जमाने हैं ( तत् ) उसको ( वः ) आप लोगों के ( उक्त्वस्य ) प्रशंसित कर्म के ( बृहत् ) बढ़ाने से ( इन्द्राय ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिये ( उप-स्तृणीषणि ) आपने योग्य को हम लोग बढ़ावें ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । हे मनुष्यो ! जो विद्वानों के सदृश प्रजा के रक्षा से ऐश्वर्य्य को बढ़ाते हैं वे सब प्रकार से बढ़ते हैं ॥ ६ ॥

फिर राजा क्या करके क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अविदुर्ध्वं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।

सुसुवान्स्तौलामिधौतरीभिरुक्थ्या प्रायुरभवत्सखिभ्यः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे राजन् जो ( नवीयान् ) अतिशय थोड़ी अवस्थावाला ( पपानः ) पालन करता हुआ ( मित्र ) सब का मित्र ( ससुवान् ) अच्छे धनवाला ( प्रायः ) रक्षक हुआ ( स्तौलाभिः ) ध्युल में हुई ( औतरीभिः ) शत्रुओं को कम्पानेवाली सेनाओं से ( देवेभ्यः ) विद्वानों के और ( सखिभ्यः ) मित्रों के लिये ( वस्य ) अत्यन्त काम का कारण ( अचैत् ) बटोर और ( उक्थ्या ) रक्षा करे और सबका मित्र ( अवचत् ) हो वह शत्रु ( वसम् ) बल को ( अविदुर्ध्वं ) पाता है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब का मित्र, युवा, धन धान्य आदि से युक्त, सब का रक्षक, बड़ी सेनावाला, विद्वान् राजा होवे वही धार्मिकों के रक्षण के लिये सत्य बल को प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

अब मनुष्यों को सेवा बर्ताव करके क्या प्राप्त करके क्या करना चाहिए इस

विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

श्रुतस्य पृथि वेधा अयापि श्रिषे मनांसि देवासो अक्रन् ।

दधानो नाम महो बर्चोभिर्बुधैश्च हेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( वेधाः ) बुद्धिमान् ( श्रुतस्य ) मत्स्य के ( पृथि ) मार्ग में ( श्रिषे ) लक्ष्मी के लिये ( अयापि ) रक्षा करता है और ( देवासः ) विद्वान् जन ( मनांसि ) मनो को ( अक्रन् ) करने है और ( बर्चोभिः ) बचनों से ( अहः ) कीर्ति के योग से बड़ी ( नाम ) प्रसिद्धि की ( बुधैः ) दिवाने के लिये ( हेन्यः ) अच्छे रूपवाले शरीर को ( व्यावः ) बरारण करता ( वेधः ) सुन्दर होता और ( वि, व्यावः ) रक्षा करता है जैसे आप लोग भी यत्न करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है । मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा धर्ममार्ग में चलकर धन की उन्नति के लिए मनो को निश्चित करें और धर्म से प्राप्त हुए धन से अनाथों का पालन, विद्या और धन की वृद्धितथा औषधदान और मार्गवृद्धि करके अब दिशाओं में प्रशंसा विस्तारें ॥ ८ ॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर का हित कैसे करें इस विषय को कहते हैं—

यमर्चमं दत्तं वेद्यस्मे सेवा जनानां पूर्वीरातीः ।

वर्षाद्यो वयः कण्टि शचीभिर्धनस्य सातावस्मो अविद्वि ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे राजन् आप ( शचीभिः ) बुद्धियों या कर्मों या प्रजाओं के साथ ( अस्मे ) हम लोगों में ( यमर्चम् ) प्रशंसित अत्यन्त विद्या के प्रकाश से युक्त ( वयम् ) बल को ( वेद्यः ) बारण करिये और कार्य्य को ( सेवा ) सिद्ध कीजिये और ( जनानाम् ) मनुष्यों की ( पूर्वीः ) प्राचीन ( अरातीः ) नहीं दान करने की क्रियाओं को दूर कीजिये तथा ( वर्षाद्यः ) अतिशय श्रेष्ठ ( वयः ) सुन्दर अवस्था को ( कण्टि ) करिये और ( वयस्य ) धन के ( सातो ) संविभाग में ( अस्माद् ) हम लोगों का ( अविद्वि ) प्रवेश कराइये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—प्रजाजनों को राजा की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे राजन् ! आप जो हम लोगों को बलयुक्त, कृपयाता में रहित और बलवर्धन आदि से दीर्घ अवस्थावाले पुरुषार्थी और सब प्रकार से रक्षा करके भयरहित करके धर्म्य वर्ष काम और मोक्ष के साधन में प्रवेश कराइये तो आपकी हम लोग सर्वदा वृद्धि करें ॥ ९ ॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर कहां प्रेरणा करें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र तुभ्यमिन्मधवस्यमम वयं दाने हरिबो मा वि वैनः ।

नकिरापिर्द्वे मस्यत्रा किमंग रध्वोर्धनं त्वाहुः ॥ १० ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे ( अंग ) अंग के तुल्य वर्तमान ( हरिबः ) प्रशंसित मनुष्यों से और ( मधवः ) बहुत धनो से युक्त ( इन्द्र ) पूर्णविद्यावाले राजन् ( दाने ) दान करने के स्वभाववाले ( तुभ्यम् ) आपके लिए ( इत् ) ही देनेवाले ( वयम् ) हम लोग ( मधुः ) होवें आप हम लोगों की ( मा ) मत ( वि, वैनः ) कामना करिये और ( मधिः ) व्याप्त होनेवाला हुआ मैं आपको विद्वद् दृष्टि से ( नकिः ) नहीं ( वदुः ) देखता है तथा ( मस्यत्रा ) मनुष्यों में आप ( किम् ) किस की इच्छा करते हो जिससे ( रध्वोर्धनम् ) धन की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करनेवाले आपको विद्वान् जन ( आहुः ) कहते हैं इससे हम लोग आपका आभयण करें ॥ १० ॥

भाषार्थ—हे राजा और प्रजाजनों ! जैसे आप लोग आपस के लिए दान आदि से और सुख दान से सबको श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरणा करिये वैसे मिल के सत्य न्यायपालन का अनुष्ठान करिये ॥ १० ॥

मनुष्यों को क्या नहीं करके क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

या जस्वैनं इवभ नो ररीया मा तै रेवतः सख्ये रिचाम ।

पूर्वीष्ट इन्द्र निःविषो जनेषु जह्यसुर्वीन्द्र ब्रह्मपूणतः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे ( इवभ ) बलयुक्त ( इन्द्र ) दुःखों के नाश करनेवाले राजन् आप ( जस्वैनं ) धन्याय में दूसरे को धन को अन्यत्र प्राप्त करानेवाले दुष्ट राजा के लिए ( न ) हम लोगों का ( मा ) मत ( ररीयाः ) वीज्य और हम लोग ( तै ) आप ( रेवतः ) बहुत जनवाले के ( सख्ये ) मित्रपने के लिए ( मा ) नहीं ( रिचाम ) झूठ होवे और जो ( तै ) आपके ( जस्वै ) मनुष्यों में ( पूर्वीः ) प्राचीन ( निः-विषः ) सुखकारक क्रियायें हैं उनको दीजिए ( जह्यसुर्वीन्द्र ) उत्पत्ति के नहीं करने वालों का ( अहि ) त्याग करिये और ( अपूरतः ) दुःख के देनेवाले दुर्जन में हम लोगों का ( प्र, बृह ) पूषक करिये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो हम लोगों को पीडा दें उनके शारीर मत करिये और कल्याण में क्रियाओं को प्राप्त कराइये वैसे हम लोग भी इस सब को आपके लिए करें इस प्रकार मित्र होकर अभीष्ट अनार्यों को सब हम लोग प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

फिर वह राजा किसके सदृश क्या करे इस विषय को कहते हैं—

उद्भाषीव स्तनयभियर्त्तान्द्रोराधांस्वरण्यानि गव्याः ।

त्वमसि प्रदिबः कारुधाया मा त्वां दामान् आ दमन्मघोनः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे राजन् जिससे ( स्तनयम् ) शब्द करता हुआ ( कारुधायाः ) विद्वान् शिल्पीजनों का धारण करनेवाला ( इन्द्रः ) विजुल के सदृश वा ( उद्भाषीव ) वायु के दलों के सदृश ( अश्व्यानि ) बाढ़ों में हितकारक ( गव्याः ) गीर्णों में हित-कारक ( राधोति ) सम्पूर्ण सुखों के करनेवाले जनो को ( उत् ) भी ( इर्षति ) प्राप्त होता है और ( प्रदिबः ) अत्यन्त सुन्दर ( मघोनः ) धन से युक्त जनो को बृह ग्रहण करनेवाला है और ( उद्भाषानः ) दवाता जम ( त्वा ) आपकी ( मा ) मेरी ( आ, वभम् ) हिमा करें और धन से युक्त जनो की मत हिता करें जैसे ( स्वः ) आप जो कर चुके ( असि ) है तो आप में कौन नष्ट होता है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है । जिस की मेघों की बटाओं के समान बलवती सेना, विजुली के समान पराक्रमयुक्त वर्तमान है और जिससे सब कुर्षी सग्रह किये जाते हैं वही धन धान्य राज्य और पशु आदि पदार्थों को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

कौन इस पृथिवी पर राजा होने के योग्य है इस विषय को कहते हैं—

अध्वर्यो वीर प्र महो सुतानामिन्द्राय मर स हंस्य राजा ।

यः पूर्यामिन्त नृतनामिर्गीमर्वाह्वे गृह्यताम्वीपाय ॥ १३ ॥

**पदार्थः**—हे (अध्वर्यवो) नहीं हिंसा करनेवाले (वीर) दुष्टों की हिंसा करने वाले (यः) जो (राजा) राजा (मुख्यतम्) प्रशंसा करनेवाले (अध्वर्याम्) मनुष्यों के अर्थ जाननेवालों की (अध्वर्याम्) पूर्व जनों से सेवित (अस्) जो (सुतसामिः) महीन वस्त्रमान (वीरिः) बाणियों से (बाण्यु) वृद्धि को प्राप्त होता है (अस्) ही) वही (अस्) इस राज्य का राजा होने को योग्य हो जैसे आप (सुतसाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों के (अस्) वड़े (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के लिए इन को (अस्, अस्) वारण करिये ॥ १३ ॥

**भाषार्थः**—वही राज्य पालन करने और बढ़ाने को समर्थ होता है जो पदार्थ-वस्तुओं के संहित, उत्तम प्रकार निहित और न्यायेन होने और वही विद्वान् होता है जो निष्ठ जनों से निष्ठ उपवेश सुनता है ॥ १३ ॥

किर अनुष्य न्या करे इस विषय को अगले अर्थों में कहते हैं—

**अस्य मदे पुष वपीसि विद्वानिन्द्रो वृषाण्यमसो अध्वान ।**

**समु प्र होवि मधुमन्तमसै सोमं वीरोय शिप्रिणे विबन्धे ॥१४॥**

**पदार्थः**—जो (विद्वान्) विद्वान्नुक्त जैसे (इन्द्रः) सूर्य (वृषाणि) मेघों का (अध्वान) नाम करता है वैसे (अस्) इस अध्वर्यामियों के समूह के (अस्) आनन्दकारक रस में (अमली) नहीं विज्ञास किये गये (पुष) बहुत (वपीसि) सुन्दर रूपों का निर्माण करके स्वीकृत करे (तस्) उसके प्रति (अस्) जो (मधुमन्तम्) मधुर आदि गुणों से युक्त इन्द्र के साथ (सोमम्) बड़ी अध्वर्यामियों के रस को (अस्) इस (शिप्रिणे) उत्तम दुग्दी और नासिका वाले (वीरोय) अवरहित जन के लिए (विबन्धे) पीने को आप (अस्, होवि) देते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ १४ ॥

**भाषार्थः**—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमाकार है। जो सूर्य के संपूर्ण न्याय और विजय के प्रकाशक, युक्त बाह्य और विहार वाले और महीधरियों के रस को पीने वाले हैं के अनेक प्रकार के पदार्थों को प्राप्त होकर इस जगत् में आनन्द करते हैं ॥ १४ ॥

**पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रैश्च मन्दसानः ।**

**गन्ता यज्ञं पंगवत्पिच्छा वसुधीनामविता काशवायाः ॥१५॥१८॥**

**पदार्थः**—हे मनुष्यों जो (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य को देने वाला (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) अध्वर्यामियों को (पाता) पान करने वाला (वज्रैश्च) शस्त्र और अस्त्रों के समूह से (मन्दसानः) कामना करता हुआ (वज्रम्) मेघ को सूर्य जैसे वैसे वस्तुओं को (हन्ता) मारने (यज्ञम्) श्रेष्ठ क्रियास्वरूप व्यवहार को (गन्ता) प्राप्त होने (पंगवत्) दूर देश से (पिच्छा) भी (काशवाया) शिल्पी जनों का धारण करने वाला और (वसु) बसाने वाला होता हुआ (वीनाम्) उत्तम कर्मों की (अच्छा) अच्छे प्रकार (अविता) रक्षा करने वाला है वह अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (अस्तु) हो उसका आप लोग निरन्तर सत्कार करो ॥ १५ ॥

**भाषार्थः**—जो राजा आदि मनुष्य वैद्यकशास्त्र की रीति से उत्पन्न किये अध्वर्यामियों के रस को पीने हैं तथा शस्त्र और अस्त्र की विद्या से दुष्टों का निवारण कर के न्यायप्रचार नामक कर्म का प्रचार करके सत् कर्म के करने और शिल्पविद्या के जानने वालों को सत्कृत करके आनन्द का त्याग करके श्रेष्ठ कर्मों में मग्न होने के ही यहाँ प्रशंसीय होते हैं ॥ १५ ॥

किर अनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले अर्थों में कहते हैं—

**इहं ह्यस्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।**

**मस्तस्यवा सोमनसाय देवं व्यस्मद्देवो युयवृधे ॥१६॥**

**पदार्थः**—हे विद्वन् आप (सोमनसाय) अच्छे मन के होने के लिए (यथा) जैसे (इहम्) इस (स्वात्) उप (इन्द्रपानम्) अध्वर्यामियों के रस का ऐश्वर्य के पान का रक्षण को (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव के (प्रियम्) प्रीति-कारक (अमृतम्) अच्छे प्रकार स्वादिष्ट (पायम्) जिससे पान करना वा रक्षा करता है उसको (अपायि) पीता है। और जिससे (मस्तस्) आनन्दित होता है तथा (देवम्) श्रेष्ठ गुण कर्म युक्त वस्तु का पान करता है और (अस्तस्) हम लोगों से (देवः) देव भावि से युक्त कर्म का शत्रु को (वि, युयवृत्) विमुक्त करता है और हम लोगों से (अस्) पापाचरण को (वि) पृथक् करता है वैसे आचरण करो ॥ १६ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में उपमाकार है। हे मनुष्यों। जिससे मन में प्रभाव और देव व होवे उसी का पान करना चाहिये और जैसे अपने आत्मा की रक्षा रक्षा करते हैं वैसे अन्न सनी की रक्षा करें ॥ १६ ॥

**वृषा मन्दानो जहि ह्य वज्रं ज्वामिमज्वामि मधवममिज्वा ।**

**अमिपेर्षो अम्याः वेदिशानाम्पराच इन्द्र म भृगो जही च ॥१७॥**

**पदार्थः**—हे (वृष) दुष्टों को मारने वाले (मधवम्) बहुत जनों से युक्त (इन्द्र) दुष्टों के विदारक आप (वृषा) इससे (अम्याः) प्रशंसित हुए (अमिपेर्षो) जहाँ जहाँ की (अम्यामि) दूसरी सम्पत्ति रहित को (अम्याम्) कर्म के विरोधियों (अमिपेर्षो) मित्रभाव रहित वैरियों का (अहि) त्याग करो

(अमिपेर्षाद्) सम्पत्ति सेना जिनकी उन (अमिपेर्षात्) अत्यन्त भ्राजा करने वाले (अम्याः) परिश्रम की ओर अर्थात् पीछे मुड़ किये दुष्टों की (अमि, अम्या) बाधा करो (अ) और अविद्या आदि दोषों का (अहि) त्याग करो ॥ १७ ॥

**भाषार्थः**—हे राजन् सेना के स्वामिन्! आप बहुधर्य और सोमलता के रस के पान प्रादि से स्वयं आनन्दित हुए वीरों को आनन्द देकर सम्पूर्ण शत्रुओं को जीतो ॥ १७ ॥

किर राजा और प्रजापतों को निरन्तर क्या करना चाहिए इस विषय को अगले अर्थ में कहते हैं—

**आसु व्मा णो मधवमिन्द्र पुत्स्वस्मस्य महि वरिवः सुगं कः ।**

**अपां लोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सरीन कणुहि स्मा नो अर्दस् ॥१८॥**

**पदार्थः**—हे (मधवम्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) दुष्टों के मारने वाले आप (आसु) इन (पुत्स्व) वीर मनुष्यों की सेनाओं में (अस्मस्यम्) हम लोगों के लिए (अहि) वड़े (सुगम्) उत्तम प्रकार चलते हैं जिसमें उस (वरिवः) सेवन को (कः) करे (अः) हम लोगों को (स्मा) ही विजयी करें और हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के देने वाले आप (अम्याम्) प्राणों के (लोकस्य) गीघ उत्पन्न हुए अपरध के और (तनयस्य) सुकुमार के बोध के लिए और शत्रुओं को (अर्दस्) जीतने के लिए (अः) हम लोगों को (सरीन) युद्ध विद्या में कुशल विद्वान् और (अर्दस्) अच्छे प्रकार समृद्धि को (स्मा) ही (कणुहि) करिये ॥ १८ ॥

**भाषार्थः**—राजा वंसा बल करे जैसे अपनी सेनाएँ उत्तम प्रकार निहित, जीतने वाली और वनयुक्त होवें और सम्पूर्ण बालक और कन्याएँ ब्रह्मचर्य से विद्या-युक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हुए सत्य न्याय और धर्म का निरन्तर सेवन करें ॥ १८ ॥

किर राजा और मन्त्रीजन कैसे होवें इस विषय को अगले अर्थ में कहते हैं—

**आ त्वा हरयो हर्षणो युजाना हर्षरासो हररमयोऽत्याः ।**

**अस्मवाञ्चो हर्षणो वज्रवाहो हृष्ये मदाय सुयुजो बहन्तु ॥१९॥**

**पदार्थः**—हे अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् जैसे (वृषणः) बलयुक्त (युजाना) जिन के सावधान आत्मा और (वृषरासो) बलयुक्त सेना के प्रभु जिनके वे (वृषरास्य) किरणों के सदृश विजय मुख के वपनि वाले तेजस्वी (अत्याः) सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुण और कर्मों में व्यापी (अस्मवाञ्चो) शत्रुओं से हम लोगों की रक्षा करने वालों को प्राप्त होने और (वृषणः) शत्रुशक्ति के रोकने वाले (वज्रवाहो) शस्त्र और अस्त्रों की विद्या को धारण करने तथा (सुयुजः) उत्तम प्रकार युक्त होने वा युक्त कराने वाले (हरयः) उत्तम प्रकार शिथिल शत्रुओं के मर्दन मनुष्य (वृष्ये) बलकारक (मदाय) आनन्द के लिए (स्मा) आप को (बहन्तु) प्राप्त हो वा प्राप्त करावें वैसे इनको आप प्रीति में (आ) प्राप्त हजिये ॥ १९ ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमाकार है। राजा को चाहिये कि उत्तम प्रकार परीक्षा करके उत्तम गुण कर्म और स्वभाववाले मनुष्यों को राज्य कर्म के अधिकारों में नियुक्त करे तथा आप भी श्रेष्ठ पुत्र कर्म और स्वभाववाला होवे ॥ १९ ॥

**आ ते हृषन् हर्षणो द्रोक्षमस्युर्धुतप्रुषो नोर्षयो मर्दन्तः ।**

**इन्द्र म तुभ्यं वृषमिः सुतानां वृषजे भ्रन्ति वृषमाय सोमम् ॥२०॥१९॥**

**पदार्थः**—हे (वृषन्) वन से युक्त (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न जो (ते) आपके (वृषणः) अलिप्त (वृषणम्) जन को पूर्ण करने वाले (अम्याः) समुद्र आदि के जल के तरंग (अ) अंत वैसे आपको (मर्दन्तः) आनन्द देते हुए (वृषमि) अलिप्त वेदों से (सुतानाम्) उत्पन्न किये हुए (सोमम्) बड़ी अध्वर्यामियों के रस को (वृषणो) बल के और (वृषमाय) वन की इच्छा करनेवाले (तुभ्यम्) आपके लिए (अ, भ्रन्ति) अच्छे प्रकार धारण करने हैं तथा (द्रोक्षम्) जाते हैं जिस विमान आदि वाहन से उन पर (आ) सब प्रकार से (अस्तुः) स्थित होते हैं उनको आप प्रमत्त करिये ॥ २० ॥

**भाषार्थः**—इस मन्त्र में उपमाकार है। हे राजन्! जो सत्यभाव से आपके राज्य के हित करने की इच्छा करते हैं उनको आप सुखी रखिये और जैसे वायु से जल के तरङ्ग उठते हैं वैसे ही अस्त्रों से दुष्टियाँ बढ़ती हैं ऐसा जानो ॥ २० ॥

किर वह राजा जीता होवे इस विषय को अगले अर्थ में कहते हैं—

**वृषासि दिवो वृषमः पृथिव्या वृषा सिन्धुनां वृषमः स्तिर्यानाम् ।**

**वृषो त इन्द्रवृषम पीपाय स्वाह रसो वसुपेयो वराय ॥२१॥**

**पदार्थः**—हे (वृषम) जन्तुओं के सामर्थ्य के प्रतिबन्धक ऐश्वर्य से युक्त जिससे आप (वृषः) सूर्य के (वृषमः) अलिप्त और श्रेष्ठ (पृथिव्याः) भूमि से (वृषा) वपनिवाले और (सिन्धुनाम्) नदियों का समुद्रों के (वृषा) वपनि वाले और (स्तिर्यानाम्) मिले हुए जहाँ चलने और चलनेवाले प्राणी और



अप्राणियो के ( बृधः ) अत्यन्त करनेवाले ( असि ) हैं ( ते ) आप ( बराय ) उत्तम ( वृधो ) सुख के उपनिवाले के लिए ( वीपाय ) पान को ( स्वादुः ) स्वाद से युक्त ( इन्द्रः, रसः ) सोमलता का रस ( मधुमेयः ) महत् के साथ पीने योग्य हो ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप बिजुली, भूमि, नदी, समुद्र, अन्तरिक्ष, स्थावर और जङ्गम पदार्थों की विद्या और उपयोग को जानिये तो आपको बड़ा आनन्द प्राप्त होवे ॥ २१ ॥

फिर वह राजा किसका सत्कार करे इस विषय को कहते हैं—

अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।

अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्द्रमुष्णादश्विवस्य मायाः ॥२२॥

पदार्थ—हे राजन् जो ( अयम् ) यह ( इन्द्रेण ) अत्यन्त ऐश्वर्य से ( युजा ) युक्त होनेवाले राजा से ( सहसा ) बल से ( जायमानः ) उत्पन्न हुआ ( देवः ) श्रेष्ठ गुणवाला विद्वान् ( पणिम् ) स्तुति करने योग्य व्यवहार को ( अस्तभायत् ) स्थिर करता है और जो ( अयम् ) यह ( इन्द्रः ) आनन्दकारक ( स्वस्य ) अपने ( पितुः ) पिता के ( आयुधानि ) हस्त्र और अस्त्रों को स्थिर करता है और ( अश्विवस्य ) अमगल की ( मायाः ) बुद्धियों को ( अनुष्णात् ) चुराता है उसका आप गुरु के सदृश सत्कार करिये ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो धर्मयुक्त व्यवहार को स्वयं करके सर्वत्र प्रचार करते हैं और युद्धविद्या में और उपदेश में कुशल हुए अमगल का सब प्रकार नाश करके कल्याण को उत्पन्न करते हैं वे आपसे सत्कार को प्राप्त हों ॥ २२ ॥

फिर विद्वान् कैसे होवें इस विषय को कहते हैं—

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीर्यं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।

अयं त्रिधातुं दिवि रोचनेषु त्रितेषु बिन्ददमृतं निगूढहम् ॥२३॥

पदार्थ—हे विद्वान्जनों जैसे ( अयम् ) यह सूर्य ( उषसः ) प्रातःकाल-बेलाओं को ( सुपत्नीः ) सुन्दर भार्याओं के सदृश ( अदधात् ) करता है जैसे एक स्त्री के ग्रहणरूप व्रतधारी आप लोग हो और जैसे ( अयम् ) यह परमात्मा ( सूर्यः ) सूर्य के ( अन्तः ) मध्य में ( ज्योतिः ) प्रकाश को ( अदधात् ) धारण करता है जैसे आत्माओं में विद्या के प्रकाश को धारण करिये और जैसे ( अयम् ) यह ईश्वर ( दिवि ) प्रकाश में ( त्रितेषु ) प्रसिद्ध बिजुली और सूर्य में ( रोचनेषु ) प्रकाश-भानों में ( अमृतम् ) भाग से रहित ( निगूढहम् ) अत्यन्त सुप्त अतीन्द्रिय ( बिम्बात् ) सत्त्व रज और तम-स्वरूप जगत् को ( बिम्बात् ) प्राप्त होता है वैसे प्रकृति प्रादि जगत् को जानिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुतोपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जो इस जगत् में विवाहित एक स्त्री के ग्रहणरूप व्रतधारी, विद्या और अविद्या के प्रकाशक, कार्य कारण स्वरूप गुप्त पदार्थों की विद्या के जाननेवाले होवें वे सूर्य, ईश्वर और पदार्थवक्ता जन के सदृश मन्तव्य होवें ॥ २३ ॥

विद्वान्जन ईश्वर के सदृश वर्तमान करें इस विषय को कहते हैं—

अयं द्यावापृथिवी विष्कमायदयं रथमपुनक सप्तरश्मिम् ।

अयं गोषु शक्या पक्वन्तः सोमो वाधार दशयन्मसुत्सम् ॥२४॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जैसे ( अयम् ) यह ईश्वर ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश और भूमि को ( वि ) विशेष करके ( स्वभावात् ) धारण करता है और ( अयम् ) यह सबको धारण करनेवाला ईश्वर ( सप्तरश्मिम् ) सात प्रकार की विद्यारूप किरणों जिसमें उस ( रश्मिः ) सुन्दर सूर्यलोक को ( अयुनक् ) युक्त करता है और ( अयम् ) यह धारण और नहीं धारण करनेवाला परमात्मा ( सोमः ) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाला ( शक्या ) सत्य कर्म से ( गोषु ) पृथिवियों वा घेनु आदि के ( अन्तः ) मध्य में ( उत्सम् ) रूप के सदृश जल से वेदित को जैसे जैसे ( वसयन्मसु ) सूक्ष्म और स्थूल दश प्रकार के भूत प्राणी यन्त्रित जिस में उस ( पक्वन्तः ) पके हुए को ( वाधार ) धारण करता है वैसे आप लोग भी धारण कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! जो सूर्य के सदृश व्याप को, पृथिवी के सदृश क्षमा का, सबके धारण और दुग्ध आदि रसों को और सब जगत् को यथावत् निर्माण करके धारण करता है वैसे आप लोग भी इस सब को धारण करिये ॥ २४ ॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और ईश्वर के गुण कर्मों के वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सञ्ज्ञाति जाननी चाहिये ॥

यह बबालीसर्षा सूक्त और बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ अथर्वशिखण्डस्य पञ्चमस्तोत्रांशस्य सूक्तस्य शायुर्वाहस्य ऋषिः ।

१-३० इन्द्रः । ३१-३३ बुधस्तमा । १, २, ३, ८, १४, २०, २१, २२,

२३, २४, २८, ३०, ३२ गायत्री । ४, ७, ९, १०, ११, १२,

१३, १४, १६, १७, १८, १९, २५, २६, २९ निबृङ्गायत्री ।

५, ६, २७ विराड्गायत्रीछन्दः । चरुजः स्वरः । ३१ आ-

युग्मिच्छन्दः । ऋचमः स्वरः । ३३ अनुष्टुप् छन्दः ।

गायत्राः स्वरः ॥

अथ तीर्थात् ऋचावाले वेतालीसर्षे सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम अंश में राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

य आनयत्परावतः सुनीतां तुर्वशं यदुम् ।

इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( यः ) जो ( युवा ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त ( इन्द्रः ) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का देनेवाला राजा ( सुनीतां ) सुन्दर न्याय से ( परावतः ) दूर देश से भी ( तुर्वशम् ) हिंसकों को वश में करनेवाले ( यदुम् ) यत्न करते हुए मनुष्य को ( आ ) सब प्रकार से ( अनयत् ) प्राप्त करावे ( सः ) वह ( नः ) हम लोगों का ( सखा ) मित्र हो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों ! तुम उस राजा के साथ मैत्री करो जो सत्य न्याय से दूर देश में स्थित भी विद्या, विनय और परोपकार में कुशल, श्रेष्ठ मनुष्य को सुनकर अपने समीप लाता है उस राजा के साथ मित्र हुए वर्त्ताव करो ॥ १ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

अविप्रे चिद्वयो दधंद्नाशुनां चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यों जो ( इन्द्रः ) शत्रुओं का नाश करनेवाला ( अविप्रे ) नुद्धि रहित में ( चित् ) भी ( अयः ) सुन्दर जीवन का विज्ञान को ( दधत् ) धारण करता है तथा ( अनाशुना ) बोझों से रहित शीघ्र जानेवाले वाहन से ( अर्वता ) घोड़े से ( चित् ) भी ( हितम् ) सुखकारक ( धनम् ) द्रव्य को ( जेता ) जीतने वाला धारण करता है वह यशस्वी होता है यह जानना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् राजा बालकों और अशो में अध्यापन और उपदेश के प्रचार से विद्या को धारण करता है वह यशस्वी होकर विना नेना के भी राज्य को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यों ( अयम् ) इस राजा की ( महीः ) बड़ी ( उत ) और ( पूर्वीः ) प्राचीन वेदों में कही हुई ( प्रणीतयः ) उत्तम नीति और ( ऊतयः ) रक्षण आदि क्रियायें हैं ( नास्य ) इस की ( प्रशस्तयः ) श्रेष्ठ कीर्तियाँ ( न ) नहीं ( क्षीयन्ते ) क्षीण होती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो राजाजन नित्य बड़ी राजधर्मनीति को धारण करके पुत्र के सदृश प्रजाओं का पालन करते हैं उनका नाशरहित यश होता है ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को किसका सत्कार करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत च गायत । स हि नः प्रमर्तिर्मही ॥४॥

पदार्थ—हे ( सखायः ) मित्रो ! आप लोग ( ब्रह्मवाहसे ) वेद और ईश्वर के विज्ञान प्राप्त कराने के लिए जिसका ( ब्र, अर्चत ) अत्यन्त सत्कार करो ( गायत, च ) और प्रशंसा करो जिससे ( नः ) हम लोगों के लिए ( प्रमर्तिः ) अजन्मी बुद्धि ( मही ) और बड़ी वाणी दी जाती है ( सः, हि ) वही जगदीश्वर और विद्वान् हम लोगों से उपासना और सेवा करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों ! आप लोग परस्पर मित्र होकर परमेश्वर और सब के कल्याण के लिये प्रवृत्त यथाव्यवस्था तथा उपदेशक का सदा ही सत्कार करो जिससे हम लोगों को उत्तम बुद्धि और वाणी प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

फिर राजा और मन्त्रियों को कसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

त्वमेकस्य वृत्रहन्विता द्वयोरसि । उतेष्टे यथा वयम् ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे ( वृत्रहन् ) मेघ को नाश करनेवाले सूर्य के समान शत्रुओं के मारनेवाले राजन् ( यथा ) जैसे ( वयम् ) हम लोग ( द्वयोः ) ऐसे व्यवहार में ( एकस्य ) महाय रहित के ( उत ) और ( द्वयोः ) राजा और प्रजाजनों के रक्षक होते हैं वैसे जिससे ( त्वम् ) आप ( अविता ) रक्षक ( असि ) हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे हम लोग पक्षपात का त्याग करके अपने और अन्य जन का यथावत् न्याय करें वैसे ही आप करिये ऐसे धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तमान हम लोगों की सेवा ही बुद्धि और मोक्ष होते हैं ॥ ५ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

नपसीदति द्विषः कृणोष्युष्यशंसिनः । नृभिः सुवीर उच्यसे ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् जिससे आप ( द्विषः ) द्वेष करनेवालों को ( कृणोष्युष्यः ) वेद की प्रशंसा करनेवाले ( कृणोषि ) करते हो और उपाय का उत्साहजन करके कर्म को ( अति, न्यसि ) अत्यन्त प्राप्त होते वा प्राप्त करते हो ( उ ) और ( नृभिः ) नायक अग्रणी मनुष्यों से ( सुवीरः ) श्रेष्ठ वीरों से युक्त हुए सब के प्रति ( उच्यसे ) उपदेश किये जाते हो इससे ( इत् ) ही आदर करने योग्य हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप नञ्जायुक्त, विद्वान् होवें तो वेद में कहे हुए धर्म से द्वेष करनेवालों को भी वेदोक्त धर्म में प्रीति करनेवाले उपदेश का विनय से कर सकते हो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अह्यायौ ब्रह्मवाहसं गीमिः सखाययुग्मियम् । गां दोहसे वृधे ॥७॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे मैं (भीतिः) बुधियापुष्ट, मधुर, सत्यवाणियो से (भीतिः) दोहने धुरण करने को (मत्सु) वो के (न) समान (सत्तायन्) सब के मित्र (अतिवन्) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य (अहम्बुद्धिः) वेदों के शब्दार्थ सम्बन्ध और स्वरों के प्राप्त करानेवाले (अहम्बुद्धिः) चतुर्वेदेता विद्वान् को (हृषे) बुलाता और उसकी प्रशंसा करता है जैसे इसको आप बुला और उसकी प्रशंसा करो ॥७॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमासङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् बन वेदपारगता, आप्त, विद्वान् का आश्रय लेकर सन्म विपश्चित् होते हैं जैसे इनके सङ्ग से पुन भी विद्वान् वा चतुर होयो ॥७॥

किर क्या करके राजा ऐश्वर्य को प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं—

यस्य विश्वानि इत्योह्वर्षनि नि हिता ।

वीरस्य पृतनावहः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! (यस्य) जिस राजादि विद्वान् (वीरस्य) मनु के बल की दबानेवाले के (हस्तयोः) हाथों में (विश्वानि) सम्पूर्ण (अवुनि) हथियों को (पृतनावहः) शत्रुओं की सेना को सहनेवाले (नि) निश्चित (ऊचुः) कहते हैं उसके साथ (हिता) दोनों राजा और प्रजा तथा उपदेश देनेवाले और उपदेश देने योग्यपने की रक्षा करो ॥८॥

पदार्थ—जो राजा विद्या और विनय से पुत्र के सदृश प्रजाओं की पालना करे तो सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सुख उसके आधीन ही हावे जिससे उत्तम मन्त्री और प्रशंसित सेना को प्राप्त होकर राजा प्रजाजनों के कल्याण को कर सकता है ॥८॥

किर मनुष्य किसका मिथारण करके किसको प्राप्त होवे इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

वि इवहानि विदद्विषो जनानां शचीपते । इह माया अनामस ॥९॥

पदार्थ—हे (अद्विषः) मेघों के करनेवाले सूर्य के सदृश वर्तमान (अनामस) शत्रुओं के समीप में वज्रता से रहित (शचीपते) प्रजा के स्वामिन् आप (मायाः) कपटों को (इह) काटो और (विद्विषो) मी (जनामासु) मनुष्यों की (इवहानि) निश्चित सेनाओं को करके शत्रुओं का (वि) विशेष करके नाश करिये ॥ ९ ॥

पदार्थ—वह राजा आचार्य वा अध्यापक उत्तम होवे जो छल आदि दोषों का निवारण करके मनुष्यों को धर्म के आचरण से युक्त निरन्तर करे ॥९॥

किर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा बर्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

तस्यैवा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते ।

अहमहि अवस्यवः ॥ १० ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (सत्य) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (सोमपा) ऐश्वर्य की रक्षा करने तथा (वाजानासु) विज्ञान और अन्न आदिको के (पते) पालने और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले (अवस्यवः) अपने अन्न आदि की इच्छा करनेवाले हम लोग (सत्य) आपकी (अहमहि) प्रशंसा करें जैसे (तस्य, उ) उन्हीं को सब लोग पुकारें ॥ १० ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमासङ्कार है। हे राजन् वा विद्वन् ! आप श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव से युक्त होकर प्रजा के पालन में तत्पर सुधील और इन्द्रियों के जीतने वाले जब तक होंगे तबतक हम लोग आपको मानेंगे ॥१०॥

किर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा बर्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

तस्यैवा सः पुरासिंघो यो वा नूनं हिते धने ।

हव्यः स अंधी इषम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे राजन् (सः) जो आप (हिते) सुखकारक (धने) धन में (पुरा) प्रथम से (असिंघो) ये और (यः) जो (वा) वा (नूनम्) निश्चित सुखकारक धन में (हव्यः) पुकारने के योग्य हो (तस्य, उ) उन्हीं (स्य) आपको हम लोग पुकारें (सः) वह आप हम लोगों की (हव्यः) बात को (अंधी) सुनिवे ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा सब के हित की इच्छा करे और सब को धन और ऐश्वर्य से युक्त करता है वह अमिच्छ और निर्बल की बातों को प्रीति से शून्य कर यथार्थ न्याय करता है उसीका सब लोग निरन्तर स्तुकार करें ॥११॥

किर राजा आदिकों को क्या प्राप्त करके क्या प्राप्त करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

धीमिरवीरवीतो वाक्यो इन्द्र अवाय्वान ।

तया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करनेवाले जैसे हम लोग (धीमिः) बुद्धियों का कर्मों से (अवाय्वान्) धन्य करते हुए भीड़ों के (वाक्यम्) वामयुक्त

(अवाय्वान्) सुनने को इष्ट (अवाय्वान्) धोड़ों के सदृश प्राप्त होकर (तया) आपके साथ (हितम्) सुखकारक (धनम्) धनको (जेष्म) जीतें जैसे आप हम लोगों के साथ सुख से बर्ताव करो ॥१२॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमासङ्कार है। जब राजा आदि जन एक सम्मति कर उत्तम सेना के अङ्गों को सम्पादन कर और अन्यायकारी दुष्टों को जीत कर न्याय से प्राप्त हुए धन से सब का हित करें तभी अपने हित की सिद्धि से युक्त होंगे ॥ १२ ॥

किर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

अभूकं चोर गिर्वणो महां इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥१३॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वाणियों से याचना किये गये (चोर) शूरा आदि गुणों से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले आप (महात्) महाशय (वितन्तसाय्यः) अत्यन्त विजय में होनेवाले हुए (हिते) सुखकारक (धने) धनमें (उ) और (भरे) सन्नाम में जीतने वाले (अभूः) हुआये ॥१३॥

पदार्थ—जो राजा सब के हित के प्राप्त होने की इच्छा करता हुआ पुरुषों में शान्ति किये हुए की जाननेवाला और भीड़ों का प्रिय होवे उसके सदा ही विजय से प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य बढ़े ॥१३॥

किर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

या तं कृतिर्मित्रहन्मृज्वस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (मित्रहन्) शत्रुओं के मारनेवाले (मृ) जो (ते) आपकी (मृज्वस्तमा) शीघ्र अतिशय वेग से युक्त (कृतिः) रक्षा आदि क्रिया (असति) होवे (तया) उससे (नः) हम लोगों को (रथम्) विमान आदि वाहन को प्राप्त कराके (हिनुही) वृद्ध कीजिये ॥ १४ ॥

पदार्थ—जो राजा वेग आदि गुणों से युक्त रक्षा से प्रजाओं को प्रसन्न करके उन्नति करे वही निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होवे ॥१४॥

किर वह राजा किससे किस को जीते इस विषय को कहते हैं—

स रथेन रथीतमोऽस्माकेंनाभियुर्वना ।

जेपि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे (जिष्णो) जीतनेवाले (सः) वह (रथीतम्) अतिशय करके बहुत रथों वाले आप (अभियुर्वना) विभक्त होने वाले (अस्माकेन) हमारे (रथेन) वाहन से (हितम्) प्रबुद्ध (धनम्) धन को (जेपि) जीतने हो इससे प्रशंसा करने योग्य होते हो ॥ १५ ॥

पदार्थ—जो राजा प्रशसनीय वाहन आदि से बहुत धन को जीतता है वह प्रशसनीय होता है ॥१५॥

किर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

य एक इत्तं वृद्धि कृष्टीनां विचर्षणिः ।

पतिर्जिज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य (यः) जो (एकः) सहायरहित (इत्) ही (कृष्टीनाम्) मनुष्यों का (पतिः) स्वामी (विचर्षणिः) देखनेवाला (वृषक्रतुः) बल-युक्त बुद्धिवाला (जिज्ञे) होता है (तस्य) उस वीर पुरुष की (उ) ही (वृद्धि) प्रशंसा करिये ॥१६॥

पदार्थ—हे प्रजाजनों ! जो सम्पूर्ण विद्या और श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाववाला निरन्तर न्याय से प्रजाओं के पालन में तत्पर होवे उसको राजा मानो दूसरे कुदाशय को नहीं ॥१६॥

यो वृणतामिदासिंघापिकृती शिवः सत्वा ।

स त्वं न इन्द्र मृक्य ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करनेवाले राजन् (यः) जो (मृक्यताम्) प्रशंसा करनेवाले (नः) हम लोगों के (शिवः) श्रेष्ठ गुणों से व्यापक (शिवः) मङ्गलकारी (सत्वा) मित्र (असिंघो) होते हो (सः, इत्) वही (त्वम्) आप (कृती) रक्षण आदि क्रिया से हम लोगों को (मृक्य) सुखी करो ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आप शत्रुरहित और ससार के मित्र, सबके मङ्गल करनेवाले प्रजाओं में हुआये तो शीघ्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्ध करिये ॥ १७ ॥

किर राजा आदि क्या ध्यान करके क्या करें इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

विश्वं वाजं शमोस्तयो रसोहृत्पाय वज्रिवः ।

सासहीष्ठा अमि स्पृधः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (वज्रिवः) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्रों के चलाने में चतुर और अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् आप (रसोहृत्पाय) दुष्टों के मारने के लिये (वज्रिवः) हाथों के मध्य में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्रों के समूह को (विश्वं)

धारण करिये तथा (स्वयम्) स्तुता करने योग्य सद्ग्रामो के (अग्नि) सम्मुख (सासहीष्ठाः) अत्यन्त सहिये ॥१८॥

भाषार्थ—हे राजन् वा सेना के जनो ! आप लोग सत्य और अस्त्रों के चलाने में चतुर होकर झाड़ू आदि शत्रुओं का नाश करके सहनशील हूँजिये ॥१८॥

मनुष्य कैसे जन की प्रशंसा करें इस विषय को कहते हैं—

**मत्सं रयीणां युजं सखायं कीरिबोवन्म । अस्त्रवाहस्तमं हुवे ॥१९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मैं (रयीणाम्) बनों के (युजम्) युक्त करानेवाले (कीरिबोवन्म) विद्याधियों के प्रेरक (अस्त्रवाहस्तमम्) अतिशय वेद और ईश्वर की जो विद्या उसके प्राप्त करानेवाले (प्रत्यम्) प्राचीन (सखायम्) सबके मित्र की (हुवे) स्तुति करता हूँ वैसे इसकी आप लोग भी प्रशंसा करो ॥१९॥

भाषार्थ—जो सम्पूर्ण जनो के हितकारक, अत्यन्त विद्वान्, सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिए अध्यापन और उपदेश से प्रेरणा करनेवाले, स्थिर मित्र का सत्कार करके प्रशंसा करते हैं वे ही मुण्डाहक होते हैं ॥१९॥

फिर मनुष्यों को कैसा राजा करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको बध्नन् पश्यते ।**

**गिर्वैणस्तमो अधिगुः ॥ २० ॥ २४ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो (सः) वह (हि) जिससे (एकः) सहायरहित (गिर्वैणस्तमः) अतिशयित वाणियों से प्रशंसा करने योग्य (अधिगुः) सत्य-मयनवाला राजा (विश्वानि) समस्त (पार्थिवा) पृथिवी में जाने हुए (बध्नन्) दृष्ट्यों को (पश्यते) स्वामी के सदृश आचरण करता है इससे हम लोगो से सत्कार करने योग्य है ॥२०॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विलक्षण बुद्धि और विद्या से युक्त, पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या का जानने वाला, प्रशंसा करने योग्य गुण कर्म और स्वभावयुक्त और सत्य आचरण करनेवाला जन होवे उसीको राजा करो ॥२०॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर किसकी शोभा करें इस विषय को

अगले मन्त्र में कहते हैं—

**स नो निष्पुद्भिरा पृण कामं वाजैभिरश्विभिः ।**

**गोमंश्रिर्गोपते धृषत् ॥ २१ ॥**

पदार्थ—हे (गोपते) इन्द्रियो के स्वामिन् (सः) वह (धृषत्) तीव्रधर्षण करनेवाले आप (वाजैभिः) विज्ञान और अन्न आदि के करनेवाले (निष्पुद्भिः) निश्चित कारण तथा (गोमंश्रिः) प्रणमित भूमि, गौ और वाणी से युक्त (अश्विभिः) सूर्य और चन्द्रमा आदिकों से (नः) हम लोगो के (कामम्) मनोरथ की (आ) सब प्रकार से (पृण) पूर्ति करिये ॥२१॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप हम लोगो के मनोरथ की पूर्ति करिये तो हम लोग भी आपकी इच्छा की पूर्ति करें ॥२१॥

फिर मनुष्य किसके लिए क्या करे इस विषय को कहते हैं—

**तद्वो गाय सुते सखां पुरुहूताय मस्वने । अं यदृगवे न शाकिनै ॥२२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (अं) आप लोगो के लिए प्रशंसा करते हैं (तत्) वे (शाकिनै) सामर्थ्ययुक्त (गवे) स्तुति करनेवाले के लिए (नः) जैसे वस (सुते) उत्पन्न हुए इस समार में (सखा) सयुक्त मर्य से (पुरुहूताय) बहुतो से प्रणमित (मस्वने) शुद्ध अन्न करण वाले के लिए हो उनकी है (इन्द्र) ऐश्वर्य में युक्त आप (यम्) मुख्यपूर्वक (गाय) स्तुति कीजिये ॥२२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सम्पूर्ण विद्याभा के पार जाने वाले के अध्यापन और उपदेशरूप कर्म से सबका मङ्गल बढ़ता है वैसे ही उत्तम राजा से प्रजा का सुख उन्नत होता है ॥२२॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्तव्य करें इस विषय को कहते हैं—

**न या वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमंतः । यत्सीमुप भवद्गिरः ॥२३॥**

पदार्थ—(यत्) जो जन (गोमंतः) प्रणमित वाणी से युक्त (वाजस्य) विज्ञान का (वसुः) वाम दिलावेवाला (दानम्) दान को (नि) अत्यन्त (यमते) देता है (गिरः) वाणियों को (सीम्) सब प्रकार से (उप, भवत्) मुने वह (न, या) नहीं मारा जाता है ॥२३॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्या और अभयदान देना और सम्पूर्ण विद्वानो से सत्य मुनता है वह इस संसार में विघ्नो से नहीं मारा जाता है ॥२३॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

**कुवित्सस्य प्र हि अजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।**

**शचीमिरप नो वरत् ॥ २४ ॥**

पदार्थ—जो (दस्युहा) दुष्ट लोगों को मारनेवाला राजा (शचीभिः) बुद्धि वाले कर्मों में (कुवित्सस्य) अत्यन्त विभाग करनेवाले के (गोमन्तम्) प्रस-

सित गौवें विद्यमान और (अजम्) चलने हैं जिसमें उसको (अव, वसत्) प्राप्त होता है वह (हि) ही (नः) हम लोगो को (प्र, वरत्) स्वीकार करे ॥२४॥

भाषार्थ—जो राजा दुष्टजनों को दूर करके स्याय व्यवहार के प्रचार के लिए उत्तम जनो का स्वीकार करता है वह बड़े मर्य और असत्य का विचार करनेवाला होता है ॥२४॥

फिर वर्तमान राजा की सब प्रशंसा करें इस विषय को कहते हैं—

**इमा उ त्वा शतक्रतोऽग्निं प्र योन्युगिरः ।**

**इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥ २५ ॥**

पदार्थ—हे (शतक्रतो) अथाह बुद्धि वाले (इन्द्र) भावर देनेवाले (वत्सम्) बछड़े की माता (नः) जैसे बैसे जो (इमाः) ये प्रजायें और (गिरः) वाणियों (त्वा) आपकी (प्र, योन्युः) अत्यन्त प्रशंसा करें उनकी (उ) वित्तों के साथ (अग्नि) सब प्रकार से स्तुति करिये ॥२५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे गौवें प्रेम से अपने बछड़ों को प्रसन्न करती हैं वैसे ही उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियाँ सब की शानन्द देती हैं ऐसा जानो ॥२५॥

किनकी मित्रता नहीं जीर्ण होती है इस विषय को कहते हैं—

**दृष्टान्नं सख्यं तप गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते मव ॥२६॥**

पदार्थ—हे (वीर) वीरता आदि गुणों से युक्त राजन् वा विद्वान् जो आप (गव्यते) गौ के सदृश आचरण करते हुए के लिए (गौः) गाय जैसे बैसे (अश्वायते) घोड़ों के सदृश आचरण करते हुए के लिए (अश्वः) घोड़ा जैसे बैसे (असि) हैं और जिन (तप) आपका प्रेम के भास्वर में बन्धा हुआ (दृष्टान्नम्) बल्लभ नाश जिसका वह (सख्यम्) मित्रपन है वह आप हम लोगो के मित्र (अव) हूँजिये ॥२६॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गौओं में बिल घोर घोड़ियों में घोड़ा प्रसन्न सदा ही होता है वैसे ही सज्जनों की मित्रता अविनाशनी होती है ऐसा सब नाम जानें ॥२६॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

**स मन्दस्वा हन्तो धराधसे तन्वां महे । न स्तोतारं निदे करः ॥२७॥**

पदार्थ—हे विद्वन् (हि) जिससे आप (तन्वा) शरीर से (महे) बड़े (राधसे) धन के लिए (अन्धतः) अन्न आदि से (मन्दस्वा) आनन्दित हूँजिये वा आनन्दित करिये और (निदे) निन्दा करनेवाले के लिए (स्तोतारम्) स्तुति करनेवाले को (न) नहीं (करः) करिये इससे (सः) वह आप जनो को प्रिय हैं ॥२७॥

भाषार्थ—हे राजा और प्रजाजनो ! आप लोग अन्न आदि से सब को आनन्दित करिये । घोर निन्दा न करने योग्यो की मत निन्दा करिये तथा ऐश्वर्य की बुद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न करिये ॥२७॥

अब किसके लिए कहाँ क्या प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं—

**इमा उ त्वा सुतेसुते नचन्ते गिर्वैणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥२८॥**

पदार्थ—हे (गिर्वैणः) वाणियों से प्रशंसा करने योग्य (सुतेसुते) उत्पन्न उत्पन्न हुए इस संसार में (इमाः) ये (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों (वत्सम्) बछड़े को (धेनवः) दुग्ध की देनेवाली (गावः) गौएँ (न) जैसे बैसे (त्वा) आपकी (वसन्ते) व्याप्त हों वे (उ) घोर हम लोगो को भी प्राप्त हो ॥२८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो भेष्ट आचरण करनेवाले हैं उनको भी जैसे बछड़े का वैसे सम्पूर्ण विद्या और वाणिज्या प्राप्त होती है ॥२८॥

फिर कौन उत्तम है इस विषय को कहते हैं—

**पुरुतमं पुरुणां स्तोतृणां विवाचि । वाजैर्भिर्वाजयताम् ॥२९॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो वाणियाँ (वाजैभिः) धन आदिको से (वाजयताम्) प्राप्त करानेवाले (पुरुणाम्) बहुत (स्तोतृणाम्) विद्वानो के (विवाचि) अनेक प्रकार की सत्य धर्म का प्रकाश करनेवाली वाणियाँ जिसमें उस व्यवहार में (पुरुतमम्) अतिशय बहुत विद्यायुक्त व्यवहार को प्राप्त होती हैं वे हम लोगो को निश्चित प्राप्त हो ॥२९॥

भाषार्थ—वे ही बहुतो में उत्तम हैं जो विद्या, विनय और धर्माचरण को प्राप्त हुए हैं ॥२९॥

राजा और प्रजाजन एक भक्ति करें इस विषय को कहते हैं—

**अस्माकमिन्द्र भूषु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।**

**अस्मान् राये महे हिनु ॥ ३० ॥**

पदार्थ—हे (इन्द्र) धन के देनेवाले (अस्माकम्) हम लोगो का (वाहिष्ठः) अतिशय धारण करने वाला (अन्तमः) समीप में वर्तमान (स्तोमः)



प्रसंसादक्य व्यवहार ( से ) आपका बढ़ानेवाला ( सुष्ठु ) होने और जो आपके समीप में वर्तमान अतिशय धारण करनेवाला प्रसंसादक्य व्यवहार हो वह ( अस्मात् ) हम लोगों को ( अहं ) बड़े ( राखे ) धन के लिए ( हिं ) बढ़ावे ॥३०॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो ऐश्वर्य्य आपका वह प्रजा का और जो प्रजा का वह आपका हो ऐसा करने के बिना राजा और प्रजा की उन्नति का नहीं सम्भव है ॥ ३० ॥

अथ व्यापार-विषय को कहते हैं—

अभि सुष्ठुः पृथ्वीनां वर्षिष्ठे सुर्वभस्थान् । उदः कस्तो न शारयः ॥३१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( उदः ) बहुत ( अथः ) बलका उत्सर्जन करने वाला टापू वा तट आदि ( आश्वः ) पृथिवी को प्राप्त होनेवाले के समीप में वर्तमान ( न ) जैसे जैसे ( पृथ्वीनाम् ) प्रसंसा करने योग्य व्यवहार करनेवालों के ( वर्षिष्ठे ) अतिशय बृद्ध ( सुर्वभः ) मस्तक में ( सुष्ठुः ) काटनेवाला ( अभि ) ऊपर ( अस्मात् ) स्थित होता है वह आप लोगों से कार्य्य में उत्तम प्रकार सयुक्त करने योग्य है ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पृथिवियों में जाती हुई नदी के मध्यस्थ टापू और तट समीप में वर्तमान हैं वैसे ही व्यापारियों के समीप में शिल्पीजन वर्तमान हों ॥३१॥

अथ विद्या आदि के ज्ञान से क्या होता है इस विषय को कहते हैं—

यस्य वायोरिव द्रवज्ज्वा रातिः संहस्त्रिणी । सद्यो दानाय मंहते ॥३२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यस्य ) जिसकी ( संहस्त्रिणी ) असंख्य पदार्थ दिये जाते हैं जिसमें वह ( ज्वा ) मज्जल करनेवाली ( रातिः ) दान-क्रिया ( वायोरिव ) वायु के सदृश ( द्रवज्ज्वा ) प्राप्त होती वा शीघ्र जाती है वह ( सद्यः ) शीघ्र(दानाय) दान के लिए ( मंहते ) बढ़ता है ऐसा जानना चाहिये ॥३२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्या आदि के दान में प्रिय जन हों वे वायु के सदृश पूर्ण अभीष्ट सुख को प्राप्त होते हैं और जो शिल्पविद्या की वृद्धि करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥३२॥

तत्सु नो विन्ने अर्थ आ सदां युषन्ति कारवः ।

वृद्धं संहस्त्रातं सुरि संहस्त्रातमम् ॥३३॥२६॥

पदार्थ—जो ( नः ) हम लोगों के ( विन्ने ) सब ( कारवः ) कारीगर जन ( संहस्त्रातम् ) अतिशय असंख्य देनेवाले ( वृद्धम् ) मुख्य शिल्पी ( संहस्त्रातम् ) अतिशय असंख्य पदार्थ काटनेवाले ( सुरिम् ) विद्वान् को ( सु ) उत्तमता से ( आ ) सब प्रकार ( युषन्ति ) स्वीकार करते हैं वे ( तत् ) उस बहुत ऐश्वर्य्य को ( सदा ) सर्व काल में प्राप्त होते हैं और जो इन में ( अर्थः ) स्वामी वा वैश्य हों वे वह इनका उत्तम प्रकार सत्कार कर रखा करें ॥३३॥

भावार्थ—जो जन क्रिया में निपुण विद्वानों और कारीगरों की प्रशंसा करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होकर असंख्य धन देने योग्य होते हैं ॥३३॥

इस सूक्त में राजनीति, धन के जीतनेवाले, मित्रपन, वेद के जाननेवाले ऐश्वर्य्य से युक्त, दाता, कारीगर और स्वामीके कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्ण सूक्त के अर्थ के साथ सज्जित जाननी चाहिये ॥

यह वेताजीसर्वा सूक्त और अग्नीसर्वा सर्वा समाप्त हुआ ॥



अथ चतुर्वर्ण्यस्य बह्वर्ण्यारिक्तसमस्य सुतास्य संयुर्वाहस्य च विधिः । इन्द्रः

प्रवाचं वा देवताः । १ निवृत्तमुष्टुम् । ५, ७ स्वरादमुष्टुम् । १० प्राजापतिः

स्वरः । २ स्वरादमुष्टुम् । ३, ४ भुरिष्टुम् । ५, ६ भिरादमुष्टुम् ।

११ निवृत्तमुष्टुम् । १२ मुष्टुम् । १३ स्वरादमुष्टुम् । १४ प्राजापतिः

वायवी अथः । १५ स्वरादमुष्टुम् । १६ भुरिष्टुम् । १७, १८ भिरादमुष्टुम् ।

विद्वान् पश्चिमवर्ण्यः । १९ अथः । २०

अथ श्रीबृहद्देवतास्य विद्यालीसर्वा सुता का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में

किं शिल्पविद्या को कहते हैं—

स्वामिदि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।

त्वां वृज्रेधिन्द्र सप्ततिं वरस्तां काष्ठास्ववैतः ॥१॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जन ( कारवः ) कारीगर ( वरः ) जन हम लोग ( स्वात् ) आपको ( हिं ) ही ( वाजस्य ) विज्ञान के ( साता ) विभाग में ( वृज्रेधि ) प्रह्वण करें और ( वृज्रे ) जन में ( सप्ततिम् ) वेष्टों के पालनेवाले ( स्वात् ) आपको पुकारें तथा ( वरस्तां ) गोशैलों को जैसे सारथि जैसे ( स्वात् ) आपको ( काष्ठास्व ) किसानों के ( वृत् ) ही पुकारें ॥१॥

भावार्थ—हे जन से युक्त । जो आप हम लोगों के सहायक हों तो आपकी आज्ञा के हम लोग शिल्पविद्या से अनेक पदार्थों को उत्पन्न आपकी वृद्धि करी ॥१॥

किं मनुष्य शिल्पविद्या से क्या पाते हैं इस विषय को कहते हैं—

स त्वं नभिम बज्रहस्तं वृष्णया महः स्तवानो अद्रिवः ।

गामर्धं रथ्यमिन्द्र सं किं सत्रा वाजं न जिग्युषं ॥२॥

पदार्थ—हे ( अद्रिवः ) मेघ से युक्त सूर्य्य के समान वर्तमान ( जिग्युषः ) प्रदुष्ट विद्या वाले ( बज्रहस्तः ) हाथ में अस्त्र और अस्त्र को धारण किये हुए ( इन्द्र ) ऐश्वर्य्य से युक्त ( सः ) वह ( रथ्यः ) आप ( वृष्णया ) निश्चयपने का विठाई से ( महः ) बड़े की ( स्तवानः ) प्रशंसा करते हुए ( सत्रा ) सत्य विज्ञान से ( गामर्धः ) सड़ घाम को ( न ) जैसे जैसे ( जिग्युषे ) जीतनेवाले ( नः ) हम लोगों के लिए ( गाम् ) गो को ( रथ्यम् ) और वाहन के लिए हितकारक ( अश्वम् ) घोड़ों को ( सः, किं ) सकीर्ण करो—इकट्ठा करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे जीतनेवाले घोड़ा जन सड़ घाम में विजय की प्राप्ति होकर धन और प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं वैसे ही शिल्पविद्या में मनुष्य जन बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

किं मनुष्य सङ्ग्राम में कैसा बर्ताव करें इस विषय को कहते हैं—

यः सत्राहा विष्वर्षगिरिन्द्रं तं हृमहे वयम् ।

सहस्रमुक् तुविन्द्या सत्यते मवा समस्तु नो वृषे ॥३॥

पदार्थ—हे ( सहस्रमुक् ) असंख्य पराक्रम वाले ( तुविन्द्या ) बहुत धनों से युक्त ( सत्यते ) विद्वानों के पालनेवाले अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त ( वः ) जो ( विष्वर्षगिः ) विद्वान् मनुष्य ( सत्राहा ) सत्य दिनों में ( इन्द्रम् ) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त को पुकारता है वैसे ( तम् ) उसकी ( वयम् ) हम लोग ( हृमहे ) प्रशंसा करते हैं और आप ( समस्तु ) सशस्त्री में ( नः ) हम लोगों की ( वृषे ) वृद्धि के लिए ( मवा ) हजिये ॥३॥

भावार्थ—उसी की हम लोग प्रशंसा करते हैं जो प्रतिदिन हम लोगों की रक्षा करता है और उसी की हम लोग सशस्त्री में रक्षा करें ॥३॥

किं राजा और प्रजाजन किसकी प्रतिष्ठा करें इस विषय को कहते हैं—

वाधसे जनान्धमेव मनुना धृषी मीळह कृचीवम ।

अस्माकं बोध्यविता महांधने तनूष्वधु सूर्ये ॥४॥

पदार्थ—हे ( कृचीवम ) ऋषा के सवृष प्रशंसा करने योग्य अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् जो ( मनुना ) कोध से ( कृचीवम ) बलयुक्त बल जैसे वैसे ( धृषी ) दुष्टों के वर्णन में ( मीळह ) सङ्ग्राम में ( जनान् ) मनुष्यों की बाधा करते हैं जिससे आप उनकी ( बाधसे ) बाधा करते हो और ( अस्माकम् ) हम लोगों के ( तनूषु ) शरीरों में और ( अधु ) प्राणों में ( महांधने ) सङ्ग्राम में ( विता ) रक्षा करनेवाले हुए ( सूर्ये ) सूर्य्य में प्रकाश जैसे वैसे हम लोगों को ( बोधि ) जनाइये इससे आप आदर करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजन् ! हम लोग दुष्टों के बाधने के लिये और सङ्ग्राम में अपने लोगों की रक्षा के लिये आपका स्वीकार करें तथा आप हम लोगों को सत्य न्यायकृत्य सदा ही जनाइये ॥४॥

किं वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भैरं ओजिष्ठं पपुरि भवः ।

येनेमे चित्र बज्रहस्त रोदसी ओमे सुशिग्र प्राः ॥५॥२७॥

पदार्थ—हे ( सुशिग्र ) सुन्दर ठुड़ी और नासिका युक्त ( जिग्युषः ) प्रदुष्ट गुण कर्म और स्वभाव वाले ( बज्रहस्तः ) हाथ और अस्त्र हाथ में जिसके ऐसे और ( इन्द्र ) अष्ट गुणों के धारण करनेवाले आप ( ज्येष्ठम् ) अतिशय प्रशंसित ( ओजिष्ठम् ) अतिशय बल के देने ( पपुरि ) पालन करने और पुष्टि करनेवाले ( भवः ) जन वा धन को ( नः ) हम लोगों के लिए ( आ, भैरं ) धारण करो ( येनेमे ) जिससे ( ज्ये ) दोनों ( इमे ) इन ( रोदसी ) प्रत्यक्ष और पृथिवी को ( आ ) सब प्रकार से ( प्राः ) व्याप्त होओ ॥५॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप ऐसे गुण कर्म और स्वभाव का स्वीकार करें जिससे न्याय, धूमि, राज्य, सेना और विजय को धारण करने को समर्थ हों ॥५॥

किं वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

स्वासुग्रमवसे चर्षणीसह राजन्देवेषु ह्रमहे ।

विद्धा सु नो विपुरा पिब्वना वसोऽमित्रान्सुवहान्कृषि ॥६॥

पदार्थ—हे ( वसो ) सुख में बसनेवाले ( राजन् ) विद्या और विनय से प्रकाशमान हम लोग ( विद्धा ) सम्पूर्ण कार्य्यों के प्रति और ( देवेषु ) विद्वानों में ( वसो ) रक्षण आदि के लिए ( वसो ) तेजस्वी और ( वसोऽमित्रहः ) मनुष्यों की सेना के सहनेवाले ( स्वात् ) आपको ( सु, ह्रमहे ) पुकारें और आप ( नः ) हम लोगों के ( कृषिः ) मनुष्यों को ( सुवहाद् ) सुख से सहने योग्य ( कृषि ) कार्य्यों और ( विब्वना ) पीतने योग्य मनुष्यों को ( विपुरा ) अथायुक्त करिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो राजा मन्त्री और प्रजाजनों के सुख और दुःख को अपने सवुश जान कर जैसे शत्रुओं का पराभव होवे वैसा उपाय करनेवाला होवे उसी को सब लोग पिता के सवुश मानें ॥६॥

फिर राजा को कहाँ क्या धारण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यदिन्द्र नाहुषीषाँ भोजो नृणां च कृष्टिषु ।

यद्वा पञ्च क्षितीनां घुम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७॥

पदार्थ—( इन्द्र ) प्रजा के प्रिय को धारण करनेवाले आप ( कृष्टिषु ) मनुष्यों में और ( नाहुषीषु ) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओं में ( यत् ) जो ( भोज ) बलकारक घन आदि ( नृणां ) घन ( च ) और होवे उसको ( वा, भर ) धारण करिये ( वा ) वा ( पञ्च ) पाँच तत्वों और ( क्षितीनां ) राजसम्बन्धी भूमियों के मध्य में ( यत् ) जो ( घुम्नम् ) घुड़ यश है अथवा ( सत्रा ) सत्य ( विश्वानि ) सम्पूर्ण ( पौंस्या ) पुरुषार्थ से उत्पन्न हुए बल वर्तमान हैं उनको ( वा ) धारण करिये ॥७॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो आप सम्पूर्ण प्रजाओं को घन धान्य और विद्या से युक्त करिये तो पञ्चतत्त्वनामक राज्य को प्राप्त होकर धननि यश को प्राप्त हूजिये ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

यद्वा तृसौ मघवन्द्रुवावा जने यत्पूरो कक्ष वृष्यम् ।

अस्मभ्यं तद्विरीहि सं तृषादयेऽभिप्रांप्सु सुर्वणे ॥८॥

पदार्थ—हे ( मघवन् ) न्याय से घन इकट्ठा करनेवाले आप ( तृसौ ) विद्या और श्रेष्ठ गुणों से प्राप्त ( वृष्यो ) ब्रह्म करने योग्य ( जने ) मनुष्य में ( यत् ) जो ( विरीहि ) प्राप्त कराइये और ( पूरो ) पूर्ण बलवाले मनुष्य में ( यत् ) जो ( वृष्यम् ) उत्तमों में हितकारक जो बल उसीको प्राप्त कराइये ( सत् ) वह ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिये ( च ) और ( कत् ) कब प्राप्त कराइये और कब ( वा ) वा हम लोगों के ( अभिप्रांप्सु ) शत्रुओं को ( नृषाहो ) मनुष्यों से सहने योग्य सङ्ग्राम में ( पृषु ) सेनाओं में ( सुर्वणे ) हिमन के लिये ( सम् ) अच्छे प्रकार ( वा ) सब ओर से प्राप्त कराइये ॥८॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जब आप उत्तम मनुष्यों में प्रतिष्ठा और दुष्टों में तिरस्कार धारण करें तभी शत्रुओं के विजय के लिये योग्य हों ॥८॥

मनुष्य कैसे गृह को बनायें इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र त्रिधातु शरयां त्रिवरुधं स्वस्तिमत् ।

छर्दिर्वृक्ष मघवन्द्रुशर च मह्यं च यावया दिक्षुर्भ्यः ॥९॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यों में युक्त आप ( त्रिधातु ) तीन सुवर्ण चादी और ताँबा ये धातु जिनमें उम ( त्रिवरुधम् ) जीत उठण और वर्षा ऋतु में उत्तम ( शरयां ) आश्रय करने योग्य ( स्वस्तिमत् ) बहुत सुख से युक्त ( छर्दि ) गृह को ( वृक्ष ) ग्रहण करिये वा दीजिये और जिन ( मघवन् ) बहुत घन बालों के और ( मद्रुम् ) मुक्त धनयुक्त के लिए ( च ) भी ग्रहण करिये वा दीजिये ( एभ्यः ) इन वर्तमानों के लिए ( दिक्षुम् ) सुप्रकाश को ( च ) भी ( यावया ) समुक्त कराइये ॥९॥

भाषार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब ऋतुओं में सुखकारक, धन धान्य से युक्त, वृक्ष, पुष्प, फल, शुद्ध वायु, जल तथा धार्मिक और धनार्थों से युक्त गृह उसको बना कर वहाँ निवास करे जिससे सर्वदा धारोग्य से सुख बढ़े ॥९॥

फिर वह राजा किन का क्या करे इस विषय को कहते हैं—

ये शंख्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृषणुया ।

अथ स्मा नो मघवन्दिन्द्रिर्विषणस्तनूपा अन्तर्मो भव ॥१०॥२०॥

पदार्थ—हे ( शिबंजः ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों से सेवा किये गये ( मघवन् ) बहुत घन से युक्त ( इन्द्र ) शत्रुओं को नाश करनेवाले ( ये ) जो ( धृषणुया ) दीठपन आदि से ( शंख्यता ) बाणी के सवुश धारण करते हुए ( मनसा ) मन से ( शत्रुम् ) शत्रु का ( आबधु ) सब प्रकार से नाश करते हैं ( अथ ) इसके अनन्तर इसकी सेना का ( अभिप्रघ्नन्ति ) सम्मुख अत्यन्त नाश करते हैं उसके साथ ( स्मा ) ही ( अः ) हम लोगों के ( तनूपाः ) अपने और अन्यो के शरीरों के रक्षक ( अन्तर्मो ) समीप में स्थित ( अथ ) हूजिये ॥१०॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो ठग आदि दुष्ट शत्रुओं के बाधनेवाले तथा प्रजाओं के पालन में तत्पर धार्मिक जन ही उनके विश्वास से राज्य के कृत्यों को शोभित करिये ॥ १० ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

अथ स्मा नो वृधे मवेन्द्र नायमवा युधि ।

यदन्तरिक्षे पतयन्ति पयिर्नो दिक्ष्वस्तिग्ममूर्धानः ॥११॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यों के बढ़ानेवाले सेवा के स्वामी ( यत् ) जो ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष में ( पयिर्नः ) पक्षियों के समान ( दिक्ष्वः ) प्रकाशमान

( सिम्बमूर्धानः ) ऊपर वर्तमान थोड़ा जन ( युधि ) सङ्ग्राम में ( सतवन्ति ) जाते हैं ( अथ ) इसके अनन्तर विजय को ( नायम् ) प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं उनके साथ ( अः ) हम लोगों की ( वृधे ) वृद्धि के लिए ( अथ ) प्रसिद्ध हूजिये और सङ्ग्राम में हम लोगों की ( स्मा ) ही निरन्तर ( अथ ) रक्षा कीजिये ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! आप विमान आदि वाहनों को स्थापित कर पक्षियों के सवुश अन्तरिक्ष मार्ग से गमन और प्रागमन करके तथा उत्तम पुरुषों के साथ विजय को प्राप्त होकर सब से श्रेष्ठ हूजिये ॥ ११ ॥

यत्र शूरास्तन्वी वितन्वते प्रिया शर्म पितृणाम् ।

अथ स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिर्विचं यावय द्वेषः ॥१२॥

पदार्थ—हे ऐश्वर्यों के बढ़ानेवाले ( यत्र ) जहाँ ( शूराः ) युद्ध में शत्रु जन ( पितृणाम् ) अपने पिता और स्वामियों के ( तन्वः ) शरीरों को ( वितन्वते ) बढ़ाने हैं और ( प्रिया ) प्रिय ( शर्म ) गृहों को बढ़ाते हैं ( अथ ) इसके अनन्तर ( तन्वे ) शरीर के लिए ( तने ) बढ़े हुए व्यवहार में ( च ) भी ( छर्दिस्त्वम् ) चतनता से रहित ( छर्दि ) गृह को आप ( यच्छ ) ग्रहण करिये वहाँ ( द्वेषः ) शत्रुओं को ( स्मा ) ही ( यावय ) पृथक् कराइये ॥१२॥

भाषार्थ—हे राजन् ! शूर धार्मिक जनो की सत्कारपूर्वक उत्तम प्रकार रक्षा कर शत्रुओं का निवारण कर उत्तम गृहों में पितरों और स्वामी जनो के लिए सुन्दर भोगों को देकर अपने यश का विस्तार करो ॥१२॥

फिर मनुष्यों को कैसे गमनाधिक करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

यदिन्द्र संगं अर्वैतश्चोदयासे महाधने ।

असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाइव भवस्यतः ॥१३॥

पदार्थ—हे ( इन्द्र ) वीर शत्रुओं के नाश करनेवाले ( यत् ) जहाँ ( संगं ) मिलन योग्य ( महाधने ) बढ़े घन धनसे उत्तम और ( असमने ) नहीं विद्यमान सङ्ग्राम जिसमें ऐसे ( वृजिने ) बलकारक ( अध्वनि ) मार्ग में और ( पथि ) प्राकाशमार्ग में ( श्येनाम् ) बाजों को जैसे जैसे ( भवस्यतः ) सुख की इच्छा करने हुए ( अर्बतः ) थोड़े भादि को ( चोदयासे ) प्रेरणा करिये वहाँ आपका दूर भी स्थित स्थान निकटसा होवे ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! युद्ध के विना भी जब जब कार्य के लिए गमन आप करें तब तब शीघ्र ही जाना चाहिये और शिथिलता पैरो से वा वाहन से जाने में नही करनी चाहिये ॥१३॥

फिर वे राजा आदि क्या करें इस विषय को कहते हैं—

सिन्धूरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोश्मनु ष्वणि ।

आ ये वयो न ववैत्तयामिषि गृमीता बाह्वोर्गर्भि ॥१४॥२५॥

पदार्थ—हे राजन् आप ( यदि ) जो ( प्रवणो ) नीच के स्थान में ( सिन्धु-निष ) नदियों को जैसे जैसे ( आशुया ) शीघ्र चलनवाले थोड़ों से वा ( स्वनि ) शब्द के होने और ( अमिषि ) मांस के दखन पर ( वयः ) पक्षी ( न ) जैसे जैसे ( यदि ) पृथिवी में ( क्लोश्मन् ) कोश को ( अनु, ववैत्तति ) अत्यन्त वा बारम्बार प्राप्त होते हैं वा ( बाह्वो ) बाहुओं में ( गृमीताः ) ग्रहण की गई किरणों वा कनारों यथावत् जाती हैं तो दूसरे स्थान में प्राप्त होना कुलभ नहीं है ( ये ) जो ( यतः ) जहाँ से जाते ( आ ) जाते हैं वे भी ऐसा करें ॥१४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यों तुम जैसे जल ऊँचे स्थान से नीचे के स्थान को शीघ्र जाता है और जैसे बाज आदि पक्षी मांस के लिए शीघ्र जाते हैं वैसे भूमि अन्तरिक्ष वा जल में वाहनों से शीघ्र जाओ ॥१४॥

इस सूक्त में राजा वीरसंग्राम गृह शूरवीर और यान कृत्य के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह क्षियालीसर्वा सूक्त और उन्नीसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥१॥

अथैकात्रिंशद्विंशत्यसप्तत्वारिंशत्यस्य सूक्तस्य १—३१ वर्ण ऋचिः । १—४ सोम । ६—१६—२० २१—३१ इन्द्रः । २० लिङ्गोक्ता देवताः । २२—२५ प्रस्तोतस्य सार्जयस्य वानस्तुतिः । २६—२८ रथः । २९—३१ वृन्धुभिर्देवताः । १, ३, ५, २१, २२, २८ लिङ्गुत्तिष्ठद्गुप् । ४, ८, ११, विराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, १०, १५, १६, १८, २०, २६, ३० त्रिष्टुप् । २७ स्वराट् त्रिष्टुप्-छन्दः । जैबतः स्वरः । २, ६, १२, १३, २३, ३१ भुरिक्छन्दः । १४, १७ स्वराट् पङ्क्तिः । २३ आसुरीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १६ बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । २४, २५ विराट् गायत्री छन्दः । वज्रः स्वरः ॥

अब एकतीस ऋचावाले सत्तालीसव सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम वर्ण में कहाँ करके राजा शत्रुओं से नहीं सहने योग्य होवे इस विषय को कहते हैं—

स्वादुक्किलायं मधुमां वताय तीव्रः किलायं रसवां वतायम् ।

उतो न्वस्य पयिवांसमिन्द्रं न कश्चन संस्त आह्वेषु ॥१॥

पदार्थ—हे शूरवीर जनों जो (अयम्) यह (स्वाधुः) सुन्दर स्वाध से युक्त (किल) निश्चय करके (उत) और (अयम्) यह (अधुनाम्) मयुरादि गुणों से युक्त (किल) निश्चय करके (अयम्) यह (लीनः) तेजस्वी और वेगयुक्त (उत) और (अयम्) यह (रसवान्) बड़ी ओषधि का प्रशस्ति रसयुक्त सार है (अयम्) इसके (उत) भी (वधिवान्) पीनेवाले (इन्द्रम्) राजा आदि शूरवीर को (आह्वये) सभाओं में (यु) शीघ्र (का, वन) कोई भी (न) नहीं (सहते) सहता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो अह्वयम्, जितेन्द्रियत्व और युक्त आहार विहारों से शरीर और आत्मा के बल से युक्त होते हैं उनको संभामों में सहने को शत्रु समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ १ ॥

किर मनुष्य कितना सेवन करके क्या करे इस विषय को कहते हैं—

अयं स्वादुरिह मर्दिह आस यस्येन्द्रो बृजहस्यं ममाह ।  
पुरुणि यश्च्योत्ना शम्बरस्य वि नवति नव च देहयोद्हन ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) सूर्य के सदृश प्रतापी राजा और जो (अयम्) यह (इह) इस ससार में (स्वाधुः) अच्छे स्वाध से युक्त (मर्दिहः) प्रतिशय आनन्द देनेवाला (आस) होता और (अस्य) जिसके पान करने से (ममाह) प्रसन्न होता है उसका पान करके जैसे (इन्द्रः) सूर्य प्रतापयुक्त (शम्बरस्य) मेघ के (नव, च) नव (नवतिम्) नब्बे प्रकार मेघगतिओं का (वि, हन्) नाश करता है उस प्रकार से (देहः) बुद्धि करने के योग्य हुआ (बृजहस्ये) संग्राम में शत्रुओं की (पुरुणि) बहुत (च्योत्ना) सेनाओं का नाश करे वही विजयी होवे ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस रस में बाचकलुप्तोपमासकार है। हे मनुष्यो ! जिसका उत्तम स्वाध और जिससे बल बुद्धि तथा पराक्रम बढ़ते हैं उसके सेवन से शत्रुओं को जीत कर निष्कण्टक राज्य का सेवन करो ॥ २ ॥

किर सोम ओषधि क्या करती है इस विषय को कहते हैं—

अयं मे पीत उदियति वाचमयं मनीषामुद्यतीमजोगः ।  
अयं बहुवीरमिषीत धीरा न याम्यो भुवनं कुरुनारे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (पीतः) पान किया गया सोम-लता का रस (मे) मेरी (वाचम्) बाली को (उत्तमीम्) कामना करती हुई (मनीषाम्) बुद्धि को (उत् उदियति) बढ़ाता है जिससे (अयम्) यह उन कामना को (अजीमः) प्राप्त होता है जिससे (अयम्) यह (उत्) छ' प्रकार की (उत्तमी) भूमियों को (धीरः) ध्यान करनेवाला बुद्धिमान् जन (न) जैसे (अभिषीत) निर्माण करता है और (वाच्यः) जिनसे (आरे) दूर वा समीप में (कत्) कभी (वन) भी (भुवनम्) संसार को रचता है यह वैद्यकशास्त्र की रीति से बनाने योग्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस पिये हुए से आणी, बुद्धि, शरीर बड़े और जिससे शास्त्र उत्तम प्रकार ग्रहण किए जाय इसका ही सेवन करना चाहिए न कि बुद्धि आदिकों के नाश करनेवाले का ॥ ३ ॥

किर वह सोम क्या करता है इस विषय को कहते हैं—

अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्माणं दिवा अकुण्ठोदयं सः ।  
अयं पीपुषं तिसृषु पवरस्तु सोमो दाधारोर्बन्तरिक्षम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (अयम्) यह (सोमः) सोमलता का रस (तिसृषु) तीन भूमि आदिकों (पवरस्तु) नीचे क स्थलों में (पीपुषम्) अमृत को (दाधार) धारण करता है और जो (अयम्) यह (पृथिव्याः) पृथिवी से (वरि-माणम्) श्रेष्ठपते को और (दिवा) सूर्य के प्रकाश से (अकुण्ठम्) बृष्टि करने वालों को (अकुण्ठोत्) करता है (सः) वह सब मनुष्यों से उत्तम प्रकार ग्रहण करने योग्य और जो (अयम्) यह (उत्) बहुत (अकुण्ठम्) मध्य में नहीं लपट होनेवाले को धारण करता है (सः) वह यह सब का सुख करनेवाला है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सोमलताकण ओषधि का रस वायु के साथ भूमि को, किरणों के साथ सूर्य को धारण करता है उसको ग्रहण और सेवन करके सब रोगरहित होओ ॥ ४ ॥

अयं विद्विष्वक्षीकमणैः शुक्रसंज्ञनामुषसामनीके ।  
अयं महान्महता स्कम्भैर्नोद्वज्जामस्तभ्नाद्वभो अस्त्यान् ॥५॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (वृषभः) वृष्टि करनेवाला (अस्त्र-स्वाध) बहुत वायु विद्यमान जिसमें ऐसा सूर्य (शुक्रसंज्ञनाम्) शुद्धस्वानो और (उद्वज्जाम्) प्रभातसेनाओं को (अनीके) सेना में (विद्विष्वक्षीकम्) आयकर्मयुक्त यज्ञों जिनका ऐसे (वर्तः) जल को (विषत्) प्राप्त होता है और जो (अयम्) यह (महान्) बड़ा (महता) बड़े (स्कम्भैर्) धारण से (जाम्) प्रकाश को (अस्त्यान्) अस्त्यवात्) ऊपर को ऊँटाला है उसको काम्य का उपयोगी करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाचकलुप्तोपमासकार है। हे विद्वान् जनों आप ! सोम सूर्य के सदृश प्रशस्ति से लेकर प्रवृत्त से विद्याओं को प्रकाशित करके सुख को प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

किर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

धृष्टिं कलुषे सोममिन्द्र इन्द्रा शूर समरे वसुनाम् ।  
साध्यन्दिने सर्वं आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्यासु धेहि ॥६॥

पदार्थ—हे (शूर) भय से रहित (इन्द्र) सूर्य के सदृश वर्तमान सेना के स्वामिन् जैसे (वृषभः) मेघ का नाश करनेवाला (साध्यन्दिने) मध्य दिन में की गई (सन्धे) प्रेरणा में (वसुनाम्) पृथिवी आदिकों के मध्य से जल को धत्पन्त पीता है वैसे (समरे) सङ्ग्राम में (वृषत्) डीठ हुए (कलुषे) पान में (सोवम्) बड़ी ओषधियों के रस को (पिब) पीजिये और (रयिस्थानः) धनो से युक्त हुए (आ, वृषस्व) बलिष्ठ हूजिये और (अस्यासु) हम लोगों में (रयिम्) धन को (धेहि) धारण करिये ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में बाचकलुप्तोपमासकार है। हे राजन् ! जैसे मध्याह्न में वर्तमान सूर्य सम्पूर्ण समीप में वर्तमान जगत् को प्रकाशित करता है वैसे न्याय में वर्तमान हुए आप वादी और प्रतिवादी जनों की व्यवस्था करके राजनीति से न्याय को प्रकाशित कीजिये ॥ ६ ॥

इन्द्र प्र योः पुरएतेव परप प्र नो नव प्रतरं वस्यो अच्यु ।  
मवा सुपारो अतिपारयो नो मवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करनेवाले राजन् आप (पुरएतेव) आगे चलनेवाले के सदृश (न) हम लोगों को (प्र, पश्य) अच्छे प्रकार देखिये और (न) हम लोगों के (प्रतरम्) शत्रुओं के बल के उत्पन्न को (अच्यु) अच्छे प्रकार (प्र, नव) प्राप्त करिये और (नः) हम लोगों के शत्रुओं के बल का उत्पन्न और (वस्यः) प्रतिशय धन को अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये और हम लोगों का (सुपारः) सुन्दर पार जिनसे ऐसे (अतिपारयः) परमन्त पार करनेवाले (मवा) हूजिये तथा (सुनीति) अच्छे न्याय वाले और (उत) नी (वामनीति) प्रशस्ति नीति वाले (मवा) हूजिये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो राजा मनुष्यों की परीक्षा देनेवाला और सब को न्याय मार्ग से ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराने और दुःख से और सङ्ग्राम से पार पहुँचानेवाला और तथा धर्मपूर्वक नीतियुक्त होवे वही हम ससार में प्रमत्ता को पावे ॥ ७ ॥

राजा अपने आशितों के प्रति कैसा बर्ताव करे इस विषय को कहते हैं—

उयं नो लोकमनु नेषि विद्वान्स्वर्बज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।  
कृष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उयं स्वेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) न्याय को प्राप्त करानेवाले राजन् जिस (स्थविरस्य) विद्या और विनय से बृद्ध (ते) आपके (शरणा) शत्रुओं के नाश करनेवाले (बृहन्ता) बड़े (कृष्वी) अष्ट (बाहू) बल और कीर्त्य से युक्त भुजाओं को हम लोग (उयं-स्वेयाम) प्राप्त होवे वह (विद्वान्) विद्वान् आप जिससे (नः) हम लोगों को (उयम्) बहुत (स्वर्बज्ज्यं) अत्यन्त सुख से युक्त (ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश और (अभयम्) भय से रहित (स्वस्ति) सुख (लोकम्) दर्शन वा बुद्धि को (अनु-नेषि) प्राप्त कराते हो इससे हम लोगों से आश्रय करने योग्य हो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—राजा बड़े प्रयत्न से अपने अधीन प्रजाओं को विद्या और भय सुख से युक्त करे जिससे सब प्रजा अनुकूल होवें ॥ ८ ॥

किर वह राजा कित के प्रति कैसा बर्ताव करे इस विषय को कहते हैं—

वरिष्ठे न इन्द्र बन्धुरे धा वहिष्ठयोः अतावन्मर्षाया ।  
इषमा वंसीषां वरिष्ठं मा नस्तारीमप्रघ्नयायौ अयः ॥९॥

पदार्थ—हे (अतावत्) सेनाओं से युक्त (अवधत्) बहुत धनवाले (इन्द्र) ऐश्वर्य्यवान् राजन् (रामः) धन के (अयम्) स्वामी आप (वहिष्ठयोः) अतिशय से चलनेवाले (अवधयोः) शीघ्र पहुँचाने वालों के (वरिष्ठे) प्रतिशय श्रेष्ठ (बन्धुरे) प्रेम बन्धन में बाहुन से (नः) हम लोगों को (आ, वा.) सब प्रकार से धारण करिये तथा (इषम्) अन्न को (आ, वसि) प्राप्त हूजिये और (नः) हम लोगों को (वरिष्ठाम्) प्रतिशय बृद्ध (इषाम्) अन्न आदिकों को (आ) नहीं (तारीत्) धत्पन करिये ॥ ९ ॥

भाषार्थ—प्रजा और सेना के जनों को चाहिये कि राजा से ऐसी प्रेरणा करें कि आप हम लोगों को उत्तम बाहुनों में उत्तम प्रकार बैठाकर अधिक धन प्राप्त कराइये जिससे हम लोगों के बन्धन को कभी मनुष्य न करें अर्थात् हम लोगों को कभी न ठवें ॥ ९ ॥

किर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

इन्द्र बृह मर्षं जीवातुमिच्छ चोदय धिधमयसो न धाराय ।  
यत्किञ्चाह त्वायुर्दिदं वदामि तज्जुषस्व कुचि मा देवर्बन्तम् ॥१०॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सबके लिये सुख के धारण करनेवाले आप (आ) मुझको (बृह) सुखी करिये और (मर्षम्) मेरे लिये (जीवातुम्) जीवन को (इच्छ) इच्छा करिये और (यत्किञ्चाह) सुखों के (न) समान (धिधम्) बुद्धि वा धर्मयुक्त कर्म को और (धाराय) प्रपन्न वाणी को (जीवय) प्रेरणा करिये और (त्वायुः)



भाषकी कामना करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (किम्) कुछ (क) भी (ब्रह्मि) कहता हूँ (तत्) उस (इहम्) इसको (कुक्षम्) सेवन करिये और (ब्रह्मन्तम्) विद्वान् जिसके सम्बन्ध में ऐसा सुझाव (हृदि) करिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है हे राजन् ! जैसे सब जन सुखों आदि धन की इच्छा करते हैं वैसे ही आप अपनी प्रजा के पालन की इच्छा करिये और सम्पूर्ण प्रजायें जैसे उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी, यथार्थ ज्ञान, अवस्था और विद्वानों के संग को प्राप्त होवें वैसे करिये ॥ १० ॥

फिर वह राजा क्या करे और प्रजाएँ उसका किस लिये आश्रय करें इस विषय को कहते हैं—

**आसारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवैहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।  
ह्ययामि शकं पुंरुहृतमिन्द्रं स्वस्ति नो मयवां चास्विन्द्रः ॥११॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अव्यय) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवाला (कः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख को (चातु) धारण करे उसको (हवैहवे) सङ्ग्राम सङ्ग्राम मे (आसारम्) पालन करनेवाले (अवितारम्) जानादि के देने और (इन्द्रम्) प्रविष्टा से दुष्ट जन के नाश करनेवाले (सुहवम्) सुन्दर पुकारना वा सङ्ग्राम जिसका उस (शूरम्) निर्भयत्व आदि गुणों से युक्त (इन्द्रम्) श्रेष्ठ गुणों के धारण करनेवाले (शकम्) समर्थ (पुंरुहृतम्) बहुतों से पुकारे गये (इन्द्रम्) सेना के धारण करनेवाले को (ह्ययामि) पुकारता हूँ वैसे इसको आप लोग भी पुकारो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य जैसे सर्वत्र सहायक परमेश्वर को पुकारते हैं वे वैसे ही राजा का भी सर्वत्र आश्रय करें ॥ ११ ॥

फिर वह कैसा हो और उसकी रक्षा कौन करे इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवाँमिः सुमुञ्जीको भवतु विश्ववेदाः ।  
बाधतां द्वेषो अभयं कुणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (सुत्रामा) उत्तम प्रकार रक्षा करनेवाला (स्ववाँ) बहुत अपने जन विद्यमान जिसके ऐसा (विश्ववेदाः) सम्पूर्ण विज्ञान को जाननेवाला (इन्द्रः) दुष्टता का नाश करनेवाला (अवाँमिः) रक्षण आदि से हम लोगों का (सुमुञ्जीकः) उत्तम प्रकार सुख करनेवाला (भवतु) हो तथा (द्वेषः) द्वेष आदि दोषों से युक्त जनों का (बाधताम्) निवारण करे और (अभयम्) निर्भयपन (कुणोतु) करे उस (सुवीर्यस्य) सुन्दर पराक्रम वा ब्रह्मचर्य वाले के हम लोग (पतयः) पालन करनेवाले स्वामी (स्याम) होवें उनके रक्षक आप लोग भी हूयिये ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो जो राजा सम्पूर्ण विद्या और किये हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य से युक्त बहुत मित्रों वाला और अपने सद्गुण श्रेष्ठ का रक्षक, दुष्टों को दण्ड देनेवाला, सब प्रकार से निर्भयता करता है उसकी रक्षा सब को चाहिये कि सब प्रकार से करें ॥ १२ ॥

फिर राजा और प्रजाजन कैसा वर्तव्य करें इस विषय को कहते हैं—

**तस्य वयं सुमतौ यक्षियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।  
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आरान्चिह्वेषः सनुतय्योतु ॥१३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वयम्) हम लोग (तस्य) उस पहिले प्रतिपादन किये विद्या और विनय से युक्त राजा के और (यक्षियस्यापि) विद्वानों की सेवा सङ्ग और विद्या के दान करने के योग्य की (सुमतौ) सुन्दर बुद्धि में (सौमनसे) उत्तम धर्म से युक्त मानस व्यवहार से (भद्रे) कल्याण करनेवालों से (अपि) भी निश्चय से वर्तमान (स्याम) होवें और जो (स्ववाँ) अपने सामर्थ्य से युक्त (इन्द्रः) विद्या देनेवाला (अस्मे) हम लोगों की (सुत्रामा) उत्तम प्रकार पालना करनेवाला होता हुआ हम लोगों के (आरान्) समीप वा दूर से (चिह्वेषः) भी (द्वेषः) धर्म से द्वेष करनेवालों को (सनुतः) सदा ही (युयोतु) पुष्प करे (स) वह हम लोगों से सदा सत्कार करने योग्य है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे राजा और प्रजाजन ! जिस सुष्ठु, न्याय और श्रेष्ठ गुणों से राजा वर्तव्य करे वैसे इस विषय में हम लोग भी वर्तव्य करें और सब मिलकर मनुष्यों से दोषों को दूर करके गुणों को समुक्त करके सब काल में न्याय और धर्म के पालन करनेवाले होवें ॥ १३ ॥

फिर उस राजा का कौन गुण सेवन करते हैं इस विषय को कहते हैं—

**अथ त्वे इन्द्र प्रवतो नोमिगिरो ब्रह्माणि निरुतो भवन्ते ।  
उरु न राधः सर्वना पुरुषयो गा बज्रिन्नुजसे समिन्द्वन् ॥१४॥**

पदार्थ—हे (वज्रिन्) मारण और अश्वों से युक्त (इन्द्र) राजन् जो (स्व) आप में (निवृत्तः) निश्चित सत्यवाद जिनमें ऐसी (गिरः) श्रेष्ठ वाणियाँ (ब्रह्माणि) धनो वा जन्तो को और (प्रवतः) नश्वों को (ऊमिः) सहर (न) जैसे वैसे (अथ, वज्रन्ते) चलाती हैं और (उरु) बहुत (राध) धनो को (न) जैसे वैसे (पुरुषि) बहुत (सर्वना) प्रेरणायें प्राप्त होती हैं और जिस कारण (अथ) जलो (गाः) भूमि वा वाणियों को और (इन्द्रम्) जानन्दों की (सन्धु, सुवसे) समुक्त करते हो इसने आप श्रेष्ठ हो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो ब्रह्मचर्य आदि श्रेष्ठ कर्मों को करते हैं उनको नीचे के स्थान को जल जैसे और पुष्पार्थों को लक्ष्मी जैसे वैसे सम्पूर्ण विद्या, सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण भ्रामन्व प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

फिर कौन किनसे पुछें और समाधान करें इस विषय को कहते हैं—

**क ई स्तवत्कः पृथास्को यजाते यदुग्रमिन्मयवा विश्वदेवैः ।  
पादाविष प्रहरमम्यमन्यं कुणोति पूर्वमपरं शशीमिः ॥१५॥१६॥**

पदार्थ—हे विद्वान् जनो इस ससार में (कः) कौन (ईस्) प्राप्ता होने योग्य परमात्मा की (स्तवत्) स्तुति करे और (कः) कौन सबका (पृथात्) पालन करे (कः) कौन सत्य का (यजाते) यजन करे कि (यत्) जो (मयवा) बहुत धनवाला (शशीमिः) कर्मों से (विश्वदेवा) सब दिन (उग्रम्) तेजस्वी (इत्) ही की (अवेत्) रक्षा करे तथा (पादाविष) चरणी को जैसे वैसे (अम्यमन्यम्) दूसरे दूसरे को (प्रहरम्) मारता हुआ (पूर्वम्) पहिले वाले को (अपरम्) पीछे (कुणोति) करता है ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे विद्वान् जनो ! हम लोग आप लोगों से पूछते हैं कि इस ससार में कौन ईश्वर की प्रशंसा करता, कौन सब का न्याय से पालन करता और कौन विद्वानों का सत्कार करता है, इन प्रश्नों का कम में उत्तर—जो विद्या के योग से धन से युक्त है वह सर्वदा परमेश्वर ही की स्तुति करता है और जो न्यायकारी राजा पक्षपात का त्याग कर अपराधी को दण्ड देता और धार्मिक का सत्कार करता है यह सर्वरक्षक है और जो स्वयं विद्वान् गुण और दोषों का जानने वाला है वही विद्वानों का सत्कार करने योग्य है वे उत्तर हैं ॥ १५ ॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं—

**भृष्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमभ्यमतिनेनीयमानः ।  
श्चमानद्रिभयस्य राजा चोष्क्यते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६॥**

पदार्थ—हे मन्त्रीजनो जो (वीरः) शूरता आदि गुणों से युक्त जन (उग्रमुग्रम्) तेजस्वी तेजस्वी जन को (दमायन्नम्) इन्द्रियों का नियंत्रण करता हुआ और (अभ्यमन्यम्) दूसरे दूसरे को (अतिनेनीयमानः) अत्यन्त न्याय की व्यवस्था को प्राप्त करता हुआ (एषमानद्रिः) बुद्धि को प्राप्त होते हुएों से द्वेष करनेवाला और (उष्क्यते) राजा तथा प्रजाजन समुदाय का (राजा) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा (इन्द्र) विद्या और विनय को धारण करनेवाला (विशः, मनुष्यान्) प्रजाजनो को (चोष्क्यते) निरन्तर पुकारता है उसको मैं न्यायेन (भृष्वे) सुनता हूँ ॥ १६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो मनुष्य दुष्टों दुष्टों को ताड़न करता, श्रेष्ठों-श्रेष्ठों का सत्कार करता, अन्य की बुद्धि देव कर द्वेष करनेवालों को दण्ड देता और प्रसन्नो का सत्कार करता हुआ सम्पूर्ण वादी और प्रतिवादी के वचनों को पक्षपात सुन के सत्य न्याय को करता है वही राजा होने के योग्य है ॥ १६ ॥

फिर वह राजा क्या नहीं करके क्या करे इस विषय को कहते हैं—

**परा पूर्वेषां सख्या इणाक्रि वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।  
अमानुभूतीरवभृन्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१७॥**

पदार्थ—जो सूर्य के सद्गुण (इन्द्रः) राजा (पूर्वेषां) पूर्वजनों के (सख्या) मित्र से (वितर्तुराणो) विशेष करके अत्यन्त हिंसा करता और (अमानुभूती) अनुभव से रहित जनो को (अवभृन्वानः) नीचे को कम्पाता हुआ (परा, इणाक्रि) त्यागता है और (अपरेभिः) अन्तों के साथ (एति) जाता है वह जैसे सूर्य (पूर्वीः) प्राचीन (शरदः) शरद आदि ऋतुओं को वैसे वर्षों के (तर्तरीति) अत्यन्त पार होता है ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्यलुप्तोपमालंकार है । जो राजा वृद्धजनों के मित्रपन का त्याग करके नीच मित्रों को प्राप्त होता है वह कल्याण से दूर होता है और जो अनभिज्ञ मित्रों का त्याग करके अभिज्ञों को मित्र करता है वही पूर्ण धातु भर भुल से पार होता है ॥ १७ ॥

फिर वह जीवात्मा कैसा होता है इस विषय को कहते हैं—

**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षसाय ।  
इन्द्रो मायायिः पुरुषं ईयते युक्ता हस्य हरयः शता दश ॥१८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) जीव (मायायिः) बुद्धियों से (प्रतिचक्षसाय) प्रत्यक्ष कथन के लिए (रूपं रूपं) रूप रूप के (प्रतिचक्षः) प्रतिचक्ष जर्थात् उसके स्वरूप से वर्तमान (बभूव) होता है और (पुरुषः) बहुत करीर धारण करने से अनेक प्रकार का (ईयते) पाया जाता है (तत्) वह (अथ) इस करीर का (रूपम्) रूप है और जिस (अथ) इस जीवात्मा के (इन्द्र) निश्चय करके (बभू) वयं सख्या से विशिष्ट और (शता) सौ संख्या से विशिष्ट (हरयः) घोड़ों के समान इन्द्रिय अन्तःकरण और प्राण (युक्ताः) युक्त हुए करीर को धारण करते हैं वह इसका सामर्थ्य है ॥ १८ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे विपुली पदार्थ के प्रति सङ्कल्प होती है वैसे ही जीव शरीर शरीर के प्रति तत्त्वभाववाला होता है और अब बाह्य विषय के देखने की इच्छा करता है जब उसको देख के तत्त्वस्वरूपमान इस जीव की होता है और जो जीव के शरीर में विपुली के सहित प्रसङ्ग गाड़ी है उस प्राणियों से यह सब शरीर के समाचार को जानता है ॥ १८ ॥

किर बहु जीव इस देह में कैसा बसाव करे इस विषय को कहते हैं—

**पुञ्जानो हरिता रवे भूरि त्वष्टेह राजति ।**

**ओ विश्वाहा द्विपतः पक्ष आसत वतासीनेषु सुरिषु ॥१९॥**

पदार्थ—जैसे ( कः ) कोई भी सारथि ( रथे ) सुन्दर वाहन के सवरा शरीर में ( हरिता ) से चलनेवाले घोड़ों को ( पुञ्जानः ) जोड़ता हुआ ( सुरि ) बहुत ( राजति ) प्रकाशित होता है वैसे ( त्वष्टा ) सृष्ट्य करनेवाला जीव ( इह ) इस शरीर में ( राजति ) प्रकाशित होता है और ( कः ) कौन ( इह ) इस शरीर में ( विश्वाहा ) सब दिन ( द्विपतः ) द्वेय से युक्त का ( पक्षः ) ग्रहण करता ( आसते ) है और ( उत ) भी ( आसीनेषु ) स्थित ( सुरिषु ) विद्वानों में सूर्य का आश्रय कौन करता है ॥ १९ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! सवा ही सूर्य का पक्ष त्याग के विद्वानों के पक्ष में बसाव करिये और जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को अच्छे प्रकार जोड़कर रथ में, सुख से गमन आदि कार्यों को सिद्ध करता है वैसे जितेन्द्रिय जीव सम्पूर्ण अपने प्रयोजनों को सिद्ध कर सकता है और जैसे कोई वृष्ट सारथी घोड़ों से युक्त रथ में स्थित होकर हुली होता है वैसे ही अजित हस्त्रिय जिसमें ऐसे शरीर में स्थित होकर जीव हुली होता है ॥ १९ ॥

किर मनुष्य कैसे आरोग्य को प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं—

**अगव्युति क्षेत्रमागन्स देवा उर्वी सती भूमिरहरपाभूत ।**

**बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्ठावित्था सते जरिज इन्द्र पन्थाय ॥२०॥३३**

पदार्थ—हे ( बृहस्पते ) बड़ों के पालन करने ( चिकित्सा ) रोगों की परीक्षा करने और ( इन्द्र ) रोग और दोषों के दूर करनेवाले वैद्यराज आपके सहाय से ( उर्वी ) बहुत फल आदि से युक्त ( सती ) वर्तमान ( अहरपा ) चलनेवालों का संभ्रम जिसमें वह ( भूमिः ) पृथिवी ( अगव्युति ) होती है और जहाँ ( अगव्युति ) वो कोश के परिणाम से रहित ( क्षेत्रम् ) निवास करते हैं जिस स्थान में ऐसा स्थान होता है उसको ( देवाः ) विद्वान् हम लोग ( आ, अगन्स ) सब प्रकार से प्राप्त होवें ( इत्था ) इस प्रकार से वा इस हेतु से ( गविष्ठा ) उत्तम प्रकार शिक्षितवाणी की सज्जति में ( सते ) वर्तमान ( जरिज ) स्तुति करनेवाले के लिए ( पन्थाय ) मार्ग को ( प्र ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ २० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो अच्छे वंश होवें उनके साथ मित्रता से रोग रहित, अधिक अवस्था वाले, बलिष्ठ, विद्वान् हो और भूमि के राज्य को प्राप्त होकर जहाँ कहीं विमान आदि वाहनो से जा,आ, कर विद्वानों के मार्ग का आश्रय करो ॥ २० ॥

किर राजा और प्रजाजन कैसा बसाव करे इस विषय को कहते हैं—

**दिदेदिबे सध्वीग्न्यमर्द्धे कुण्ठा असेधद सध्वी जाः ।**

**अहन्दासा इषमो वस्नयन्तोद्व्रजे वर्चिनं शंकरं च ॥२१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ( जाः ) प्रकट हुआ सूर्य ( दिदेदिबे ) प्रतिदिन ( सध्वीः ) तुल्यस्वरूपयुक्त ( कुण्ठाः ) जराब बरसोवाली वा छोटी गई पृथिवी और ( अग्न्यम् ) अग्न्य ( अर्द्धम् ) आधे को ( च ) भी ( असेधत् ) अलग करता है और ( सध्वीः ) निवास करते हैं जिसमें उस गृह के भन्वकार को ( अष ) अलग करता है तथा ( इषम् ) वृष्टि करनेवाला ( उद्व्रजे ) जल जाते हैं जिसमें उसमें ( वर्चिनम् ) प्रकाशमान ( शंकरम् ) शेष का ( अहम् ) नाश करता है वैसे ( अहन्दासा ) निवास करते हुए के समान आचरण करते हुए राजा और प्रजाजन ( बसा ) अपेक्षा करनेवाले हुए बसाव करें ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य और शेष समस्त पृथिवी का आकर्षण कर प्रकाश और अलगयुक्त करते हैं। वा जैसे सूर्य इस पृथिवी के अर्द्धभाग को प्रकाशित करता और बर्षा को करता है तथा अन्धकार का निवारण कर सबको सुखी करता है वैसे ही राजा और प्रजाजन सत्य को श्रेष्ठ अस्तव्य को त्याग कर अग्न्याय का निवारण कर न्याय का प्रचार कर और उत्तम विद्या के उपदेशों की वृष्टि कर सब मनुष्यों की सुखी करें ॥ २१ ॥

किर वे राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा बसाव करें इस विषय को कहते हैं—

**पस्तीक इषु राधसस्त इन्द्र दश काशपीर्दश राजिनींदात् ।**

**दिवीदासादतिविश्वस्य सार्धः शंकरं वसु मर्त्यप्रवीणम् ॥२२॥**

पदार्थ—हे ( इषु ) सूर्य से बहुत अस्वत् ऐश्वर्य से युक्त श्री ( से ) आपके ( मर्त्यिनः ) बहुत मर्त्यों से युक्त ( राधका ) वन की ( दश ) दश ( काशपीः ) काशीं क्षत्रियों की प्राप्त होवेवाली भूमियों की ( पस्तीकः ) स्तुति करनेवाला ( अहम् ) देहा है और ( दश ) दशगुनी सम्पादित करता और जिस ( अतिविश्वस्य ) अधिकारियों की प्राप्त होवेवाले के ( दिवीदासात् ) प्रकाश करनेवाले से प्राप्त हुए

( राधः ) वन को ( काशपरम् ) और शेष में हुए ( वसु ) अलनामक इष्य को हम लोग ( प्रति, अश्वीणम् ) ग्रहण करें उसको ( इत् ) ही ( तु ) शीघ्र आप हम लोगों के लिए दीजिए उसको ही शीघ्र हम लोग आपके लिए दें ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो आपके राज्य में अस्तव्य बनो को देने, वृष्टि करने तथा अधिकारियों के सङ्ग का सेवन करनेवाला जन होवे उसकी रक्षा को आप करिये और जो हम लोगों को वन प्राप्त होवे उसको आपके लिए हम लोग दें और जो आपकी प्राप्त होवे उसको हम लोगों के लिए दीजिये ॥ २२ ॥

किर मन्त्रीजन राजा से क्या प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं—

**दशाश्वान्वरा कोशान्दश वस्नाधि भोजना ।**

**दशौ हिरण्यपिण्डान्दिवीदासादसानिषम् ॥२३॥**

पदार्थ—हे ऐश्वर्य से युक्त राजन् ( दिवीदासात् ) सुन्दर वन के देनेवाले आपसे ( दश ) दश संख्या से युक्त ( अश्वात् ) घोड़ों और ( दश ) दश संख्या से युक्त ( कोशात् ) दशगुने वन से पूर्ण सज्जानों और ( दश ) दश प्रकार के ( वस्ना ) वस्त्रों की और दश प्रकार के ( अधिभोजना ) अधिक भोजनों को और ( दशौ ) दश प्रकार के ( हिरण्यपिण्डात् ) सुवर्ण आदि समूहों को मैं ( असानिषम् ) सवि मान करके प्राप्त हूँ ॥ २३ ॥

पदार्थ—जो दामिक, सूरवीर और सन्तुष्टों के जीतने वाले, राजभक्त और प्रजा के पालन में तत्पर विद्वान् मन्त्रीजन होवें वे छोटे आदि सम्पूर्ण पदार्थों को दशगुने राजा के शरीर से प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

किर बहु राजा अधिकार किसके लिए देवे इस विषय को कहते हैं—

**दश रथान्प्रष्टिमहः शतं गा अर्धर्धभ्यः । अश्वयः पायवेऽवात् ॥२४॥**

पदार्थ—हे राजन् वा गृहस्थ लोगो ! जैसे ( अश्वयः ) भोजन करनेवाला बुद्धिमान जन ( पायवे ) पालन के लिए ( अर्धर्धभ्यः ) नहीं हिंसा करनेवालों को ( प्रष्टिमहः ) नहीं इच्छा विद्यमान जिनमें उन ( दश ) दश संख्या से विशिष्ट ( रथात् ) वाहनो को और ( शतम् ) सौ ( गाः ) गीर्णों को ( अवात् ) देवे वैसे आप भी दीजिये ॥ २४ ॥

पदार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा आदि जन पालन करने योग्य के लिए पशु रथ आदि के रक्षण के अधिकार को देते हैं वे अच्छी सामग्री से युक्त होते हैं ॥ २४ ॥

किर बहु राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

**महि राधो विश्वजन्यं दधानान्मरद्वाजान्स्साहज्यो अभ्ययह ॥२५॥३४॥**

पदार्थ—जो ( साहज्यः ) अनेक प्रकार के न्याययुक्त व्यवहारों को बनाने-वाले का सन्तान ( महि ) बड़े ( विश्वजन्यम् ) समार से वा सम्पूर्ण से उत्पन्न होने योग्य वा सम्पूर्ण सुख को उत्पन्न करनेवाले ( राधः ) वन को ( दधानात् ) धारण करनेवाले ( मरद्वाजात् ) अन्न आदि के धारण कर्ताओं के ( अधि, अवष्ट ) सम्मुख जावे वह राजा बलवती होवे ॥ २५ ॥

पदार्थ—जो ब्रह्मचर्य से शरीर और आत्मा को बलिष्ठ कर और सम्पूर्ण ऐश्वर्य को बड़ाके उत्तम पुरुषों को ग्रहण करता है वही राजा राज्य को बढ़ाने के योग्य होवे ॥ २५ ॥

किर बहु राजा कैसे मित्रों की इच्छा करे इस विषय को कहते हैं—

**वनस्पते वीहवङ्गो हि भूया अस्पस्त्वा मतरणः सुवीरः ।**

**गोभिः संनद्धो असि वोद्ययस्थाथाता तै जयतु जेत्वानि ॥२६॥**

पदार्थ—हे ( वनस्पते ) किरणों के पालन करनेवाले सूर्यके समान वर्तमान ( हि ) जिससे ( वीहवङ्गः ) बलिष्ठ अङ्ग जिनके वह ( मतरणः ) पार करने-वाले ( सुवीरः ) अच्छे प्रकार वीरों से युक्त ( गोभिः ) उत्तम प्रकार शिक्षित बाणियों के साथ ( सन्द्धः ) अच्छे प्रकार तैयार हुए धाप ( असि ) हो इससे ( अस्पस्त्वा ) हम लोगों के मित्र ( भूयाः ) हृदय और ( आस्थाता ) स्थिति से युक्त हुए हम लोगों को ( वीहयस्व ) बृद्ध कराइये ( ते ) आपकी सेना ( जेत्वानि ) जीतने योग्य मनुष्यों की सेनाओं को ( जयतु ) जीते ॥ २६ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि दामिक बलवान् के साथ मित्रता करें जिससे संबंध विजय हो ॥ २६ ॥

किर मनुष्यों को किस से उपकार ग्रहण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्धृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।**

**अपामोज्ज्वानं परि गोमिराहतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२७॥**

पदार्थ—हे विद्वन् धाप ( विष्णुः ) विपुली से वा सूर्य से ( पृथिव्याः ) भूमि वा आकाश से ( वनस्पतिभ्यः ) वृक्ष आदि वनस्पतियों से ( ओजः ) बल ( उद्धृतम् ) उत्तम रीति से धारण किया गया वा ( सहः ) बल ( परि ) सब प्रकार से ( अपामुत्तम् ) सम्मुख धारण किया गया और ( गोभिः ) किरणों से ( अपाम् ) जलों के ( ओज्ज्वानम् ) बलकारी ( परि ) सब धीर से ( आमुत्तम् ) उपवि गये

( इन्द्रस्य ) बिजुली के ( बज्रम् ) प्रहार को और ( रथम् ) विमान आदि वाहन विशेष को ( हविषा ) सामग्री के दान से ( परि, यज ) उत्तम प्रकार प्राप्त हुआ है ॥२७॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब धोर से बल को ग्रहण करके जलों के बलकारी मेघ को जैसे जैसे सुख को बचति है वे सब प्रकार से सत्कृत होते हैं ॥ २७ ॥

फिर राजा को बिजुली से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रस्य बज्रं सख्यतामनीकं मित्रस्य गर्भं वरुणस्य नाभिः ।**

**सेमां नो हव्यवातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गुभाय ॥२८॥**

भावार्थ—हे ( देव, रथ ) सुन्दर बिजुल राजन् भाप जो ( मधताम् ) मनुष्यों की ( जलीकम् ) सेना के सदृश ( इन्द्रस्य ) बिजुली की ( बज्रः ) धमक वा शब्द ( मित्रस्य ) प्राण के ( गर्भः ) मध्य में स्थित और ( वरुणस्य ) ओष्ठ वायु का ( नाभि ) बन्धन है ( सः ) वह ( नः ) हम लोगों की ( इमां ) इस ( हव्यवातिम् ) केने योग्य दान की किया को ( जुषाणः ) सेवन करता हुआ ( हव्या ) ग्रहण करने योग्य को वेता है उसको आप ( प्रति, गुभाय ) प्रतीति से ग्रहण करिये ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वान् जनो ! बिजुली आदि पदार्थों और सम्पूर्ण मूर्त द्रव्यों के मध्य में वर्तमान कर्मों से युक्त सेना को करके विजय से शोभित हुआ है ॥ २८ ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**सपं श्वासय पृथिवीमुत थां पुरुषा तं मनुतां विष्टितं जगत् ।**

**स दुन्दुभे सज्जिन्द्रेण देवैर्दुराद्वीयो अपं सेध सत्रेन ॥२९॥**

भावार्थ—हे ( दुन्दुभे ) दुन्दुभि के सदृश गर्जने वाले जैसे ( स ) वह जगदीश्वर ( पृथिवीम् ) भूमि वा अन्तरिक्ष को और ( उत ) भी ( धाम् ) सूर्य वा बिजुली को ( विष्टितम् ) विशेष करके स्थित ( जगत् ) व्यतीत होनेवाले ससार को ( मनुताम् ) जाने उस ज्ञान से ( पुरुषा ) सम्पूर्ण पदार्थों में हुए ( इन्द्रेण ) बिजुलीरूप इन्द्र से और ( देवैः ) विद्वान् वीरो से ( सज्जः ) संयुक्त भाप ( सत्रेन ) शत्रुओं को ( दुरात् ) दूर से ( वधीय ) प्रति दूर ( अप, सेध ) हराइये और जो ( ते ) आपके कल्याण को जाने उसकी उपासना करके सब को ( उप, श्वासय ) समझाइये ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर ने पृथिवी और सूर्यादि सम्पूर्ण ससार को अपनी सत्ता से स्थापित किया वैसे ही बिजुली सम्पूर्ण द्रव्यों में अग्निव्याप्त होकर मध्य में प्रविष्ट है, ईश्वर की उपासना और बिजुली आदि के प्रयोगों से दूर पर स्थित भी शत्रुओं को जीत कर सब को जिलाओ ॥ २९ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

**आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः हृनिहि दुरिता बार्धमानः ।**

**अपं प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीर्यस्व ॥३०॥**

भावार्थ—हे ( दुन्दुभे ) दुन्दुभी के समान वर्तमान भाप ( नः ) हम लोगों के लिए ( बलम् ) सामर्थ्य को और ( ओजः ) पराक्रम को ( आ, धाः ) धारण करिये और शत्रुओं को ( आ ) सब धोर से ( कम्बध ) हलाइये और हलाइये तथा हम लोगों को ( निः ) अत्यन्त ( हृनिहि ) बरद कराइये और ( दुरिता ) दुष्ट व्यसनों को ( बाधमानः ) नष्ट करते हुए ( दुच्छुनाः ) दुष्ट कुलों के समान वर्तमान शत्रुओं के ( अप, प्रोथ ) जीतने को पर्याप्त हुआ है अर्थात् शत्रुओं को असमर्थ करिये जिससे आप ( इन्द्रस्य ) बिजुली की ( मुष्टिः ) मुष्टि के समान दुष्टों के सारने वाले ( असि ) हो इससे हम लोगों को ( वीर्यस्व ) बलयुक्त करिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप ऐसे बल को धारण करिये जिससे दुष्ट व्यसन, और दुष्ट शत्रु नष्ट होवें और प्रजापति के पोषण करने को समर्थ होवें ॥ ३० ॥

फिर राजा आदि जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केंतुमदुन्दुभिर्वावधीति ।**

**समश्वपणाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनीं जयन्तु ॥३१॥३५।७॥**

भावार्थ—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के विदीन करनेवाले राजन् आप जैसे ( दुन्दुभिः ) नगाडा ( केतुम् ) प्रशसा योग्य बुद्धियुक्त ( वावधीति ) निरन्तर बजत, वैसे ( इमा ) यह ( अश्वपणाः ) महान् पक्षी वाली अपनी सेनाएं ( प्रत्यावर्तय ) लौटाइये और उनसे ( अम् ) यह शत्रुसेनाएं दूर ( आ, जय ) फेंकिये जाँ ( अस्माकम् ) हमारे ( रथिनी ) प्रशंसित रथ वाले ( नरः ) नायक वीर हमारे शत्रुओं को ( जयन्तु ) जीतें और जो विजय के लिए ( तम् चरन्ति ) मन्थक विचरते हैं के ( नः ) हम लोगों को मुखाभित करें ॥ ३१ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि जनो ! तुम लोग दुन्दुभि आदि वादियों से भूषित, हर्ष वा पुष्टि से युक्त सेनाओं को अच्छे प्रकार रखकर इनसे दूरस्थ भी शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर प्रजाओं को धर्मयुक्त व्यवहार से पालन करो ॥ ३१ ॥

इस सूक्त में सोम, प्रणोत्तर, बिजुली, राजा, प्रजा, सेना और वादियों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

इस अध्याय में इन्द्र, सोम, ईश्वर, राजा, प्रजा, मेघ, सूर्य, वीर, सेना, पान, मज, मित्र, ऐश्वर्य, प्रजा, बिजुली, बुद्धिवाद्, वाणी, सत्य, बल, पराक्रम, राजनीति, सघ्राय और शत्रुविजय आदि गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय की पूर्वाध्याय के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह भीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्भिरजानन्दसरस्वती स्वामी के शिष्य श्रीमद्भवानन्दसरस्वती स्वामिबिरचित, सुप्रमाणयुक्त, आर्यभाषाविभूषित, अष्टादशोऽध्याय के चौथे अष्टक में सप्तम अध्याय पंतीसवां सर्ग और छठे मण्डल में सैतालीसवां सूक्त भी समाप्त हुआ ॥

॥३॥



**अथ अष्टमाऽध्यायारम्भः ॥**

**ओ३५ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । यजुर्द्र तन्न आ सुव ॥१॥**

अथ द्वाविंशत्युपस्थाष्टाध्यायारम्भस्य सूक्तस्य शपुर्वाहस्य अविः । तुरपाशिकं पुनिमुत्तम् । १—१० अग्निः । ११, १२, २०, २१ मस्त । १३—१५ मस्तो विनोक्ता देवता वा । १६—१८ पूषा । २२ पुनिर्वाषामुनि वा । १, ४, ५, १४ बृहती । ३, १६ चिराद्बृहती । १०, १२, १७ पुरिषबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ आर्षो जगती छन्दः । १५ निष्प्रतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६, २१ त्रिष्टुप् । ७ निष्प्रतिष्टुप् । ८ पुरिषत्रिष्टुप् छन्दः । जेवत स्वरः । २ पुरिषपुष्टुप् । २० स्वरानुष्टुप् । २२ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ११, १६ उदियाक् । १३, १८ निष्प्रतिष्टुप् । अन्तमः स्वरः ॥

अथ अनुष्टुप् के अष्टमाध्याय का आरम्भ है इसमें बाईस अध्यायवाले अठ्तालिसवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का वर्णन करते हैं—

**यज्ञायज्ञा वो अग्र्य गिरागिरा च दक्षसे**

**प्रप्र व्यसमृते जातवैदसं प्रियं मित्रं न शैलिवध ॥ १ ॥**

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ( नः ) आपके ( यज्ञायज्ञा ) यज्ञयज्ञ में ( गिरागिरा, च ) और वाणी २ से ( अग्र्ये ) अग्नि ( वक्षसे ) जो कि विसरता है उसके लिए ( व्यसम् ) हम लोग प्रयत्न करें । और ( व्यसम् ) नाश से रहित ( जातवैदसम् ) जातवैदस्य अर्थात् जिससे विद्या उत्पन्न हुई ऐसे अग्नि ( प्रियम् ) मनोहर ( मित्रम् ) मित्र के ( नः ) समान तुम लोगों की मैं जैसे ( प्रप्र, शैलिवध ) बारबार प्रशंसा करूँ वैसे आप भी हम लोगों की प्रशंसा कीजिये ॥ १ ॥



आचार्य—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन आप लोगों की प्रीति उत्पन्न करें वैसे आप भी हमारे कार्य साधने के लिए प्रीति उत्पन्न कीजिए ॥ १ ॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे करें इस विषय को कहते हैं—

ऊर्जो नर्पात् स हिनायमस्मयुर्दक्षिणं हव्यदातये ।

मृगदार्जेवविता हव्यं वध उत प्रावा तुनूनाम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( अयम् ) यह ( अन्वयः ) हम लोगों की कामना करनेवाला तथा ( हव्यदातये ) देने योग्य दान के लिए ( अविता ) रक्षा करनेवाला ( मृगदार्जः ) हीरे और ( बाणेषु ) संग्रामों में रक्षा करनेवाला ( मृगदार्जः ) हो तथा ( वधः ) बूझ करने वा रक्षा करनेवाला हो ( उत ) और ( तुनूनाम् ) शरीरों का ( प्रावा ) पालन करनेवाला हो उनको ( ऊर्जः ) पराक्रम के ( नर्पात् ) नपातन कराने अर्थात् न विनाश करानेवाले की अच्छे प्रकार रक्षा कर हम सुख ( बाणैः ) देवें ( सः, हिम ) वही हमारे लिए वध देवे ॥ २ ॥

आचार्य—हे प्रजासेनाजनों ! जो राजा संग्राम वा असंग्राम में सबकी रक्षा करनेवाला निरन्तर हो तदनुकूल वर्तन कर हम लोग उसके लिए पुष्कल सुख देवें ॥ २ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

इषा श्वे अजरो महान्मियास्युचिषां ।

अजसेण शोचिषा शोचुचक्षुषे सुदीप्तिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( श्वे ) विद्या और विनय से प्रकाशित ( अजः ) पावक के समान वर्तमान ( हि ) जिससे ( इषा ) अत्यन्त बलवान् ( अजरो ) जरा अवस्था से रहित ( महान् ) बड़े आप ( अजसेण ) निरन्तर ( अचिषा ) सत्कार वा दीप्ति से ( शोचिषा ) वा प्रकाश से ( शोचुचक्षुषे ) निरन्तर पवित्र करते हुए ( सुदीप्तिभिः ) उत्तम दीप्तियों से सबको ( विभ्रांसि ) विभवेता से प्रकाशित करते हैं इससे हम लोगों को ( सु, दीदिहि ) प्रकाशित कीजिए ॥ ३ ॥

आचार्य—हे राजन् ! आपको चाहिए कि निरन्तर विद्या और विनय के प्रकाश से और दुष्ट व्यक्तियों के नाश से प्रजा की निरन्तर पालना करो ॥ ३ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तं कृत्वात इंसनां ।

अर्वाचः सीं कृणुष्वग्नेर्जसे रास्व बाजोत वैस्व ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान राजन् जस्य ( अर्वाचः ) जो प्राप्त होते उन ( अहः ) महान् अत्युत्तम महात्मा ( देवान् ) विद्वान्जनों से ( यजसि ) सज्जत होते हैं और ( आनुषक्तं ) अनुकूलता में ( इंसनां ) कर्मों को ( कृत्वा ) संगत करते हैं उन ( त्वं ) आपकी ( अर्वाचः ) प्रजा से हम लोग उनकी सज्जत करें ( उत ) और ( अजसे ) रक्षा के अर्थ हम लोगों के लिए ( रास्व ) दीजिये और ( सीम् ) सब ओर से सुख ( कृणुष्व ) कीजिए ( उत ) और ( बाजोत ) अन्नों का ( वैस्व ) सेवन कीजिये ॥ ४ ॥

आचार्य—जो मूर्खों को विद्वान् करते हैं वे महत् अनुकूल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

यमापो अद्रयो बन्ना गर्भमृतस्यु पिप्रति ।

सहसा यो मन्थितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( यम् ) जिस ( अद्रस्य ) जनके ( गर्भम् ) गर्भरूप संसार को ( आपः ) जन ( अद्रयः ) मेघ और ( बन्ना ) किरण ( पिप्रति ) पूर्ण करते हैं और ( यः ) जो ( नृभिः ) मायक मनुष्यों से ( सहसा ) बलसे ( मन्थितः ) मथा हुआ ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( अधि ) ऊपर ( सामधि ) पर्वत के शिखर पर ( जायते ) प्रसिद्ध होता है उस अग्नि को तुम अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ ५ ॥

आचार्य—हे मनुष्यो ! जो सब में व्याप्त होकर रहनेवाले अग्नि को विद्वान् जन प्राप्त होते और मर्ष के प्रदीप्त करने हैं वे मूर्खों के राज्य करने में अधिष्ठाता होते हैं ॥ ५ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

आ यः पुरो मातुना रोदसी उमे धूमेन चावते दिवि ।

तिरस्तमो ददशु ऊर्म्पास्वा श्यावास्वक्षुषो इषा श्यावा अक्षुषो इषा ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम ( यः ) जो ( मातुना ) किरण से ( उमे ) दोनो ( रोदसी ) आकाशपृथिवी को ( आ, पुरो ) व्याप्त होता और ( धूमेन ) धूम से ( दिवि ) अन्तरिक्ष में ( चावते ) सीढ़ता है तथा ( श्यावास्वा ) काली ( ऊर्म्पास्वा ) रात्रियों में जो ( त्वम् ) अन्धकार उसको ( तिरः ) तिरस्कार कर ( अक्षुषः ) लाल रंगवाला ( इषा ) वर्षा का निमित्त है और जिसकी ( श्यावाः ) वेगवती किरणें विद्यमान हैं जो ( अक्षुषः ) कुछ लाली लिए हुए हैं वह ( इषा ) वर्षा करनेवाला सूर्य ( आ, वसुषो ) अच्छे प्रकार देखा जाता है उसे ( आ ) अच्छे प्रकार जानो ॥ ६ ॥

आचार्य—जिस त्रिजलीकम आग के धूमि और सूर्य दिखाते हैं, जिससे अधिक वेगवान् कोई नहीं तथा जो अन्धकार की निवृत्ति करनेवाला है उसका अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

गृहक्षिरणे अचिभिः शुक्रेण देव शोचिषां । भरद्वाजे समिधानो

यविष्ठ्य रे वर्गः शुक्र दीदिहि धमत्पावक दीदिहि ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे ( शुक्र ) शीघ्र कर्म करने ( पावक ) वा पवित्र करने ( यविष्ठ्य ) वा अतीव युवा अवस्था रहने वा ( देव ) देनेवाले ( अग्ने ) अग्नि के समान वर्तमान विद्वन् जैसे अग्नि ( गृहक्षिभिः ) महान् ( अचिभिः ) नेजों से ( भरद्वाजे ) विज्ञानादि के धारण करनेवाले व्यवहार में ( समिधानः ) अच्छे प्रकार देदीप्यमान ( नः ) हमारे लिये ( शुक्रम् ) प्रशस्त प्रकाश वा ( रेवत् ) प्रशस्त ऐश्वर्य से युक्त धन को देता है वैसे ( शुक्रेण ) शुद्ध ( शोचिषा ) व्याप के प्रकाश से उसे ( दीदिहि ) प्रकाशित कीजिये, तथा विद्या और मन्त्रता ( दीदिहि ) दीजिये ॥ ७ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन सूर्य के समान शुभ गुणों में बल वा सुशीलता से लक्ष्मी को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं—

विभ्रांसां गृहपतिर्बिभ्रांसि त्वमग्ने मालुषीणाम् ।

शतं पर्मियैविष्ठ पाण्डरं समेद्वारं शतं हिमाः स्तोतुम्यो ये च ददति ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( यविष्ठ ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त ( अग्ने ) दुष्टों के दाह करनेवाले ( ये ) जो ( स्तोतुम्यः ) स्तुति करनेवाले विद्वानों से ( शतम् ) सौ ( हिमाः ) बूझ वा हेमन्त आदि ऋतुओं तक ( समेद्वारम् ) अच्छे प्रकार प्रकाश करनेवाले को ( ददति ) देते ( च ) और शुभ गुणों को ग्रहण कर दूसरों को देते हैं उनके साथ युक्त ( विभ्रांसां ) समस्त ( मालुषीणाम् ) मनुष्यमन्त्रन्धी ( विभ्रांस् ) प्रजाजनों के नीच जिनसे ( त्वम् ) आप ( गृहपति ) घर के स्वामी ( अग्नि ) हैं वा ( पुमि ) नगरो के साथ इनके लिये ( शतम् ) सौ पदार्थ देते हैं इन कारण हम लोगों को ( गृहत् ) दुष्ट आचरण से ( पाहि ) रक्षा करो ॥ ८ ॥

आचार्य—हे राजन् ! जो इस प्रजा में विद्या और धर्म आदि शुभ गुणों को ग्रहण कराते हैं उनका तुम निरन्तर सत्कार करो और वे आपका भी सत्कार करें ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् जन सतानों को कैसे जिताने हैं इस विषय को कहते हैं—

त्वं नक्षित्रं कृत्वा वसो राक्षसि बोधय ।

अस्य राक्षस्त्वमग्ने रुथीरसि विदा गावं त्वे तु नः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे ( वसो ) वास करानेवाले ( अग्ने ) विजुनी के समान पुरुषार्थी जन ( विजः ) प्रदूत पुरुषार्थ करनेवाले ( त्वम् ) आप ( कृत्वा ) रक्षा से ( नः ) हम लोगों के ( राक्षसि ) समूह बर्णों की रक्षा करो तथा ( अस्य ) इसके ( राक्षः ) जन की ( बोधय ) प्रेरणा करो जिस कारण आप ( विदा ) विज्ञानवान् और ( रुथीः ) बहुत प्रशतायुक्त रथ बाने ( अग्नि ) हैं इन कारण से ( तु ) फिर ( नः ) हम लोगों के ( तुभे ) सन्तान के लिये ( गावम् ) बूझ विलोडन की प्रेरणा करो ॥ ९ ॥

आचार्य—हे विद्वन् ! आप जैसे इन हमारे सतानों की बुद्धि के विलोडन से विद्या प्राप्ति हो वैसे अनुविधान कीजिये तथा जैसे पुरुषार्थी जन धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करता है वैसे ही आप जिज्ञा दीजिये ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

पर्वि'तोकं तनयं पुर्तमिष्ट्वमदधैरप्रयुस्त्वभिः ।

अग्ने हेमांसि देव्या युयोचि नोर्देवानि हरांसि च ॥ १० ॥ २ ॥

पदार्थ—हे ( अग्ने ) पढ़ाने वाले जिस कारण ( त्वम् ) आप (अप्रयुस्त्वभिः) न मिले हुए अर्थात् अलग २ विद्यमान ( अदधैः ) हिसारहित ( पर्वि'भि ) पालना करनेवाले व्यवहारों से ( नः ) हमारे ( सोकम् ) शीघ्र उत्पन्न हुए सतान वा ( तन-यम् ) सुन्दर कुमार की ( पर्वि ) पालना करते हो और ( अदेवानि ) अशुद्ध ( देव्या ) विद्वानों से कहे गये ( हेमांसि ) घनादरों और ( हरांसि ) कुटिल कर्मों को ( च ) जो ( युयोचि ) अलग करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ १० ॥

आचार्य—जो अध्यापक वा उपदेशक पढ़ाने तथा उपदेश करने से शुभ गुणों को ग्रहण करा कर सबके दोषों का निवारण कराते हैं वे ही सदा सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

कौन इस संसार में मित्र हैं इस विषय को कहते हैं—

आ संखायः सवर्तुषां अनुययव्यसृष्टु नव्यसा वचः ।

सृजन्मनपस्फुरात् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे ( संखायः ) मित्रवर्गों तुम ( नव्यसा ) अतीव नवीन पढ़ाने वा उपदेश करने से ( सवर्तुषां ) समस्त कामनाओं की पूर्ण करनेवाली ( अनपस्फुरात् ) निम्नल दृढ़ ( येनृषु ) वाणी को ( अव्यक्तम् ) प्राप्त करिये तथा ( वचः ) अर्थात् वचन की ( उच, आ, सुजन्मन् ) विविध प्रकार की विद्या से युक्त करो ॥ ११ ॥

आचार्य—जो सुदृढ़ होकर संस्र, सुन्दरशिक्षायुक्त, वाणी और विद्या को विद्यार्थियों को ग्रहण कराते हैं वे संसार के सुदृढ़ करनेवाले होते हैं ॥ ११ ॥

अब माता जन सन्तानों को सदा शिक्षा देवे इस विषय को कहते हैं—

या शर्षाय मास्ताय स्वमानवे भवोऽमृत्यु धुक्षत ।

या स्त्रीके मरुतां तुराणं या सुमैरेव्यावरी ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ( या ) जो विद्या और सुन्दरशिक्षायुक्त विद्या पढ़ाने का उपदेश करनेवाली ( मास्ताय ) मनुष्यों के इस ( स्वमानवे ) अपनी विशेष बुद्धि के प्रकाश वा ( शर्षाय ) बल के लिये ( भवोऽमृत्यु ) जिससे मृत्युमय विद्यमान नहीं उस ( अब ) श्रवण को ( धुक्षत ) परिपूर्ण करे वा ( या ) जो विदुषी स्त्री ( मरुतीके ) सुख करनेवाले व्यवहार में ( तुराणम् ) शीघ्रकारी ( मरुताम् ) मनुष्यों के बीच मृत्युमय जिसमें नहीं उस श्रवण को परिपूर्ण करे तथा ( सुमैरे ) सुखों से ( या ) जो शिक्षा करने वा ( एव्यावरी ) दुःख निवारणवाली सन्तानों की शिक्षा करती है वही यहा मानने योग्य होती है ॥ १२ ॥

भाषार्थ—वे ही स्त्रियां धन्य हैं जो अपने सन्तानों को विद्या और सुन्दर शिक्षा करने व कराने को निरन्तर प्रयत्न करती हैं ॥ १२ ॥

भरद्वाजाय धुक्षत द्विता ।

धुनं च विश्वदोहसुमिर्षं च विश्वमोजसम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—जो विदुषी माता ( भरद्वाजाय ) जिसने विज्ञान धारण किया उसके लिये ( विश्वदोहसम् ) जिससे समस्त विज्ञान को पूर्ण करती उस ( धेनुम् ) विद्या युक्त वाणी को ( अब, धुक्षत ) परिपूर्ण करती है और ( विश्वमोजसम् ) समस्त मनुष्यमात्र के पालक ( इक्ष्वं ) अन्न वा विज्ञान को ( च ) भी परिपूर्ण करती है वह ( द्विता ) दोनों विज्ञान वा अन्न की चेष्टा वाली ( च ) भी इस प्रकारिली क्रिया से होती है ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो स्त्रीजन सत्यभाषणयुक्त वाणी और सर्वोत्तम सत्य विद्या को सन्तानों के लिये देती है वे ही देवी विदुषी स्त्रियां बहुत मान करने के योग्य होती हैं ॥ १३ ॥

किं मनुष्य किसकी प्रशंसा करे इस विषय को कहते हैं—

तं व इन्द्रं न सुकृतं वरुणमिव मायिनम् ।

अर्यमणं न मन्द्रं सप्रमोजसं बिष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप जिस इस ( इन्द्रम् ) बिजुली के समान तीव्रबुद्धि के ( न ) समान ( सुकृतम् ) उत्तम बुद्धि वाले ( वरुणमिव ) वरुण के समान ( मायिनम् ) कुतिसत बुद्धि वाले वा ( अर्यमणम् ) न्यायाधिपति के ( न ) समान ( मन्द्रम् ) आनन्द देनेवाले ( बिष्णुम् ) व्यापक जगदीश्वर के ( न ) समान ( सप्रमोजसम् ) प्राप्त हुए पदार्थों के पालने की ( स्तुषे ) प्रशंसा करते हैं ( तम् ) उसको ( व ) तुम लोगों के लिये ( आदिशे ) आज्ञा पालन के अर्थ में उसकी प्रशंसा करता है ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य मृत्यु के समान विद्या-प्रकाशक, व्याध के समान दुष्टों के मारने वाले, आप्त विद्वान् के समान न्याय के करनेवाले, ईश्वर के समान सब के पालन वाले, सत्य के उपदेश करनेवाले तथा धर्म करनेवाले मनुष्य की प्रशंसा करते हैं वे ही इस ससार में परीक्षा करनेवाले होते हैं ॥ १४ ॥

किं विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

त्वेवं शर्षो न मास्तं तुविष्वर्णनर्वाणं पूषणं सं यथा शृता ।

सं सहस्रा कारिष्वर्णभ्य औ आविर्मूहं वरुं करत्सवेदां नो वरुं करत् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ( यथा ) जैसे ( स्वेदा ) मुणोभिन विज्ञान जिसका वह ( न ) हम लोगों के लिये ( स्वेदम् ) दीप्तिमत् ( तुविष्वर्णं ) बहुत गहरे वाले ( मास्तम् ) मनुष्यमवधी ( शर्षं ) बल के ( न ) समान ( अमवर्णम् ) अविद्यमान है अथवा जिसमें उस पदार्थ की ( पूषणम् ) पुष्टि करनेवाला ( करत् ) करे वा जैसे ( अविर्णम् ) मनुष्यों के लिये ( शता ) सैकड़ों वा ( सहस्रा ) सहस्रों ( मूहं ) गुप्त ( वरुं ) धनो को ( आ, सम्, कारिषत् ) सब और अच्छे प्रकार सिद्ध करे और ( मूहं ) विज्ञान वा धनो को ( सम्, आविर्णम् ) प्रकट करे वैसे इनको आप करें ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन विज्ञानदान से गुप्त विद्याओं को तुम्हारे लिये प्रकट करते हैं और आपके शारीरिक और आत्मिक बल को बढ़ाते हैं वैसे इनको तुम बढ़ाओ ॥ १५ ॥

किं मनुष्य परस्पर कैसे बनें इस विषय को कहते हैं—

आ मा पूषन्तु पं द्रव अंसिषु नु ते अपिकुर्ण आष्टणे ।

अथा अर्थो अरातयः ॥ १६ ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे ( पूषन् ) पुष्टि करनेवाले ( आष्टणे ) सब ओर से प्रकाशमान जिन ( ते ) आपके ( अपिकुर्णं ) डपे हुए कर्ण में मैं ( नु ) शीघ्र सत्य की ( शान्तिम् ) प्रशंसा करूँ सो ( अर्थः ) स्वामी हुए आप ( आ ) सब ओर से ( मा ) मेरे ( उप, द्रव ) समीप आओ और ओ ( अरातयः ) न देनेवाले जन हों उन्हें शीघ्र ( अथाः ) हृदये प्रार्थन मारिये ॥ १६ ॥

भाषार्थ—हे पालनीय जन ! आप रक्षा के लिए मेरे समीप आओ, मैं सत्यो-पदेश से तुम्हें विवर्जन करूँ तथा हम सब लोग मिलकर दुष्टों का विनाश करें ॥ १६ ॥

मनुष्यों को क्या न करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

मा काकम्भीरुद्गृहो वनस्पतिमशस्तीवि हि नीनक्षः ।

मोत सरो अह एवा च्चन ग्रीवा आदधते वैः ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् आप ( काकम्भीरम् ) कौको की पुष्टि करनेवाले ( वन-स्पतिम् ) वन आदि वृक्ष को ( मा, उत्, गृहं ) मत उच्छिन्न करो तथा ( अशस्तीः ) और अप्रशंसित ( हि ) ही कर्मों की ( वि, नीनक्षः ) विशेषता से निरन्तर नाश करो और ( सूरः ) सूर्य ( अह, एव ) दिन में ही जैसे ( वैः ) पक्षी के ( ग्रीवाः ) कण्ठों को ( च्चन ) निषेध में ( आदधते ) अच्छे प्रकार धारण करते हैं वैसे ( उत् ) तो हम लोगों को ( मा ) मत पीड़ा देओ ॥ १७ ॥

भाषार्थ—किसी मनुष्य को श्रेष्ठ वृक्ष वा वनर तिन न नष्ट करने चाहिये किन्तु इनमें जो दोष हो उनको निवारण करके इन्हें उत्तम सिद्ध करने चाहिये, हे मनुष्य ! जैसे अपने बाज पक्षी और पक्षियों की गर्दने पकड़ चोटता है वैसे किसी को दुःख न देओ ॥ १७ ॥

किसकी मित्रता नहीं नष्ट होती है इस विषय को कहते हैं—

दृतेरिव तेऽवकर्मस्तु सख्यम् । अचिद्वस्य दधुन्वतः ।

सुपूर्णस्य दधुन्वतः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( अचिद्वस्य ) अलङ्कित घोर ( दधुन्वतः ) वृद्धता से धारण करनेवाले ( दृतेरिव ) मेघ के समान ( सुपूर्णस्य ) अच्छे प्रकार परिपूर्ण प्रसिद्ध ( दधुन्वतः ) विद्या और शुभ गुणों के धारण करनेवालों को धारण करनेवाले ( ते ) तुम्हारी ( अवकम् ) कोरी से रहित ( सख्यम् ) मित्रता ( अस्तु ) हो ॥ १८ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मेघ और भूमि का मित्रवत् व्यवहार है वैसे ही धार्मिक विद्वानों की मित्रता घोर अमर बतमान है ॥ १८ ॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

परो हि मर्त्यैरसिं समो देवैस्तु भिया ।

अमि ख्यः पूषन्पूतनासु नुस्त्वमवा नूनं यवा पुरा ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे ( पूषन् ) पुष्टि करनेवाले ( यवा ) जैसे ( हि ) जिस कारण ( पुरा ) पहिले ( स्वम् ) आप ( न ) हमारी ( पूतनासु ) मनुष्य सेनाओं में ( अमि, ख्यः ) सब ओर से अच्छे प्रकार कथन करते हैं वैसे ( पूषन् ) निषिद्ध ( अर्च्यः ) साधारण मनुष्य वा ( देवैः ) विद्वान् ( उत्त ) और ( भिया ) लक्ष्मी के साथ ( परः ) उत्कृष्ट अत्युत्तम वा ( सम ) समान ( असि ) है इससे ( अवा ) रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जो विद्वानों के तुल्य है वह विद्वान्, जो मनुष्यों के तुल्य है वह मध्यम और जो पशुओं के तुल्य है वह प्रथम मनुष्य है इनको सब जानें ॥ १९ ॥

किं मनुष्यों को कैसी नीति धारण करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

वामी वामस्य धृतयः प्रणीतिरस्तु सनुता ।

देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वैज्ञानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥

पदार्थ—हे ( धृतयः ) कथन करनेवाले ( प्रयज्यवः ) उत्तमता से यज्ञसंघ-दका तुम में ( वामस्य ) प्रशंसा करने योग्य का सम्बन्धी ( वामी ) बहुत प्रशंसित कर्मकर्ता और ( देवस्य ) विद्वान् की ( वा ) वा ( मरुतः ) मरणाधर्मा तथा ( वैज्ञानस्य ) यज्ञकर्ता ( वा ) वा ( मर्त्यस्य ) साधारण मनुष्य की ( सनुता ) सत्यभाष-गादि युक्त ( प्रणीतिः ) उत्तम नीति ( अस्तु ) हो ॥ २० ॥

भाषार्थ—धार्मिक राजा मन्त्रियों का उपदेश देवे कि—आप लोग न्यायकारी तथा धर्मात्मा शक्र पुत्र के समान प्रजाजनों का पालें ॥ २० ॥

किस राजा की पुण्यरूप कीति होती है इस विषय को कहते हैं—

स्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि यां देवो नैति ख्यः । स्वेवं शर्वो दधिरं

नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रं शवो ज्येष्ठं वृत्रं शर्वः ॥ २१ ॥

पदार्थ—( यस्य ) जिस राजा की ( चर्कृतिः ) निरन्तर उत्तम क्रिया ( देवः ) देदीप्यमान ( ख्यः ) सविता और ( क्षाम् ) प्रकाश के ( न ) समान ( सखः ) शीघ्र जिनय को ( परि, एति ) सब ओर से प्राप्त होती वा जिसके ( सखतः ) प्रजाजन ( स्वेदम् ) देदीप्यमान ( नाम ) संज्ञा ( यज्ञियम् ) यज्ञ संपादक और ( शर्वः ) बल को ( दधिरं ) धारण करते हैं वा ( वृत्रम् ) शत्रुओं के नाश करनेवाले ( शर्वः ) बल वा ( ज्येष्ठम् ) प्रशंसित ( वृत्रम् ) वन प्राप्त करनेवाले ( शर्वः, जित् ) बल को भी धारण करते हैं उसका सर्वत्र विजय होता है ॥ २१ ॥

भाषार्थ—जो राजा विद्या और जिनय से युक्त, पुरुषार्थी, बृद्ध प्रतिज्ञा करने-वाला, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी होकर धार्मिक विद्वानों की अधिकार में संस्था-पन कर पुत्र के समान प्रजाजनों को पालता है उसकी इस जगत् में सर्वत्र के समान कीति फैलती है ॥ २१ ॥

भाषार्थ—जो बिदुषी सुभनुरा कसे स्वभाववाली कम्पा हो उसी को बीर  
पुरुष बिबाहे, जिसका लंग भा भीति कभी नष्ट न हो तथा जो सर्वदा सुख के बह  
भली पति से सर्वदा सत्कार करने योग्य है ॥ १७ ॥





पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मैं (अग्निः) सत्कार और अन्नादिकों के साथ (मः) तुम लोगों के (अभिषेकवात्) जो भिक्षा नहीं देते उनके (मुष्नीकवात्) मुख के भिक्षे (अभिषिक्तम्) जो माता नहीं उस (देवीम्) देवीव्यमान विष्णु की (अव-सृज्) उद्धान के समान सर्वोत्कृष्ट वा (विजयम्) प्राण के समान ध्यारे वा (अग्निम्) अग्नि तथा (अव्ययम्) न्यायकारी और (सुखम्) सुन्दर पुत्र वाले जन को वा (आत्मा) रक्षा करनेवाले वा (देवान्) विद्वानों वा (सचित्तारम्) सत्कर्मों में प्रेरणा देनेवाले राजा (अगम्, अ) और ऐश्वर्य्य को (हुवे) कुलाता वा देता हूँ जैसे इनको हमारे लिये सुख बुलाओ वा देखो ॥ १ ॥

आचार्य—जो विद्वान् जन सुपार्श्वों के लिये भिक्षा देते और सबको पुरुषार्थों कर उनके लिये विष्णु की माता वा वरुण आदि को देते हैं वे जगत् के हितैषी हैं ॥ १ ॥

अब मनुष्य निरन्तर क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**सुज्योतिषः सूर्यं दक्षपितृनानागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।**

**हिजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अभिजिह्वाः ॥२॥**

पदार्थ—हे (सूर्य) सूर्य के समान वर्तमान (ये) जो (अनायास्ये) अन-पराधियन में (हिजन्मानः) उत्पत्ति और विद्याप्राप्तिरूप जन्मवाले (ऋतसापः) सत्य से सम्बन्ध करते वा (सत्याः) प्रतिष्ठा करते (स्वर्वन्तः) वा बहु सुखयुक्त (यजताः) समस्त विद्याओं का संग करते (अभिजिह्वाः) वा अग्नि के समान सत्य विद्या से सुन्दर प्रकाशित जिह्वाएँ जिनकी वा (सुज्योतिषः) सुन्दर विषय के प्रकाश करनेवाले विद्वान् हो उन (सुमहः) श्रेष्ठ महान् महाशय (दक्षपितृन्) चतुर पिता और विद्या पढ़ानेवाले (देवान्) विद्वानों को आप निरन्तर (वीहि) प्राप्त होओ वा उनकी कामना करो ऐसा होते पर सर्वदा कल्याण प्राप्त होते ॥ २ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या और धर्म के प्रकाश करनेवाले अध्यापक, उपदेशक वा विद्वानों की सेवा करते हैं वे भी जैसे ही होते हैं ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन किससे सुख क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**उत यावापृथिवी सजमुद हृद्रौवसी सरयं सुबुम्ने ।**

**महस्करयो वरिवो यया नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम (यया) जैसे (रोवसी) बहुत कार्य और (सुबुम्ने) सुन्दर सुख करनेवाली (मिषले) व्यवहारों को धारण करनेवाली (यावापृथिवी) विजुली और भूमि (नः) हमारे (उत) बहुत (हृद्) महान् (सरयम्) आश्रय और (अनेहम्) जन राज्य वा अभियुक्त को सिद्ध करते हैं जैसे (महः) बड़े (वरिवः) सेवन (उत) और (अनेहः) न नष्ट करने योग्य व्यवहार (अस्मे) हम लोगों में (क्षयाय) निवास करने के लिए (करयः) सिद्ध करो ॥ ३ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अध्यापन और उपदेश करने वाले जन सूर्य और भूमि के तुल्य सब को विद्यादान, धारण और धारण देते हैं तथा जो सत्य, यथार्थवत्ता और विद्वानों की सेवा करते हैं वे सर्वथा माननीय होते हैं ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**आ नो रुद्रस्य सुनवो नमन्तामया हुतासो वसधोऽर्हताः ।**

**यदीमर्षे महसि वा हितासो वाधे मरुतो अह्नाम देवान् ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो (यत्) जो (हुतासः) बुलाए हुए (अर्हताः) अग्र-गुरु (वसधः) आदि कोटिवाले विद्वान् जन (वाधे) विलोडन के निमित्त (अर्षे) थोड़ी अवस्थावाले (महसि, वा) वा बहुत अवस्थावाले जन में (हुतासः) हित करनेवाले वा (वसधः) हुटों के रलानेवाले के (सुनवः) सतान (मरुतः) मनुष्य (नः) हमलोगों को (अह्ना) आज (आ, नमन्ताम्) अच्छे प्रकार नमने उन (देवान्) विद्वानों को हमलोग (हम्) सब ओर से (अह्नाम्) चाहें ॥ ४ ॥

आचार्य—जो विद्वान् जन, चक्रवर्ती राजा वा क्षत्रज में पक्षपात छोड़ कर हित के लिये वर्तमान, नम्र, विद्वानों के प्रिय मनुष्य हैं वे यहाँ आग्रहाली होते हैं ॥ ४ ॥

फिर विद्वान् जनो को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**मिष्यन् येन रोवसी तु देवी सिषक्ति पूषा अम्पथेयजवा ।**

**भ्रतवा हव मरुतो यदं याय भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५॥८॥**

पदार्थ—हे (वसन्तः) मनुष्यो (येन) जिन वायु जाति पदार्थों में (रोवसी) प्रकाश और भूमि (देवी) जो कि विष्णुगुणावली हैं उनको (अम्पथेयजवा) मुख्य के आभि से संगत होनेवाला (पूषा) पुष्टि करनेवाला मेघ (सिषक्ति) सीपता है आप इससे (यु) सीप (मिष्यन्) सीपे आइये (यत्) जो (ह) मिष्यन् कर (पूषा) भूमि में वा (प्रविक्ते) प्रकटकर चलने योग्य (अध्वनि) मार्ग से (रेजन्ते) काँपते वा जाते हैं उनके (हवन्) शब्द को (भूमा) सुनकर उनको तुम (याय) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

आचार्य—हे विद्वानो ! तुम सूर्य और पृथिवी के तुल्य प्रकाश और अनाशील होकर सबके प्रार्थनों को सुनकर समाधान देओ, जैसे भूमि आदि लोक अपने अपने मार्ग में नियम से चले हैं वैसे नियम से धर्म मार्ग में जाओ ॥ ५ ॥

फिर विद्वानों को क्या उपदेश कर क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**अभि र्यं वीरं निर्वैद्यसम्बन्धं ब्रह्मया अरितनेवेन ।**

**अवदिद्वमुप च स्तवानो रासदाजो उप महो गुणानः ॥६॥**

पदार्थ—हे (अरितः) स्तुति करनेवाले जन आप (मह) बहुत (वाजान्) अन्नादिकों की (वृत्तानः) प्रशंसा करते हुए (उप, रासत्) समीप में हैं और (स्तवानः) स्तुति करते हुए (हवन्) सत्य की प्रशंसा को (उप, अवत्) सुनें (इत्) ही तथा (नवेन) नवीन (ब्रह्मया) धर्म वा अन्नादि से (व्यम्) उस (निर्वैद्यम्) वागियों से सेव्यमान (वीरम्) वीरवान् तथा (हवन्) परमेश्वर्यवान् वा (च) भी (अभि, अर्षे) सब ओर से सत्कार करो ॥ ६ ॥

आचार्य—हे विद्वन् ! आप सबके प्रार्थनों को सुनकर समाधान देते हुए श्रीर अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति कराते हुए धार्मिक वीरों को और ब्रमाइयों को सर्वदा भिक्षा देवें जिससे इनका ऐश्वर्य्य अन्याय मार्ग में नष्ट न हो ॥ ६ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**ओमानमापो मानुषीरयं धातु तोकाय तनयाय शं योः ।**

**युयं हि हा मिषजो मातृत्वा विश्वस्य स्यातुर्जगतो जनिभोः ॥७॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (मातृत्वा) अतीव माता के समान कृपालु तथा (जनिभोः) उत्पन्न करनेवाली (तोकाय) थोड़ी आयु वाले सतान वा (तनयाय) सुन्दर कुमार सतान के लिये (जम्) सुख करती हैं वैसे (युयम्) तुम (आयः) जनों के समान (अनुक्तम्) अनुष्ठान जन को वा (ओमानम्) रक्षा आदि करनेवाले को और (मानुषी) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओं को (धातु) धारण करो तथा (स्वायुः) स्वायत्त वा (जगतः) जंगम (विश्वस्य) संसार के (हि) जिस कारण तुम (मिषजः) वैद्य (स्वा) हो, वा जैसे ग्यायाधीन सबको सुख (योः) पहुँचाता है वैसे यहाँ वर्तों ॥ ७ ॥

आचार्य—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम आपविन जन को सत्य ग्रहण कराकर सुख करो तथा सब जगत् की रक्षा करने के निमित्त अविद्यारूपी रोग के निवारण करनेवाले होते हुए सब को माता के तुल्य पालो ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**आ नो देवः संविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्ब्रह्मतो जगम्यात् ।**

**यो दत्रवो उवसो न प्रतीकं व्युर्णुते बाधुषे वार्याणि ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (ब्रह्मवात्) दान देनेवाला (हिरण्यपाणिः) हाथ में सुवर्णादि लिये हुए और (जगतः) संग करनेवाला (देवः) विष्णुगुण कर्म स्वभावयुक्त (सविता) सूर्य के तुल्य (आयमाणाः) रक्षक जन (उवसः) प्रभातवेला के (न) समान समय से (बाधुषे) देनेवाले के लिये (प्रतीकम्) प्रतीति करने वाले पदार्थ और (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (व्युर्णुते) आच्छादित करता है तथा (नः) हम लोगों को (आ, जगम्यात्) सब ओर से निरन्तर प्राप्त हो उसको हम लोग सदा सुखी करें ॥ ८ ॥

आचार्य—हे मनुष्यो ! जो दानशील प्रभातवेला के समान सुन्दर प्रकाश करनेवाले जन सबके लिये विद्या और अभयदान देते हैं वे सत्सार में श्रेष्ठ गिने जाते हैं ॥ ८ ॥

फिर मनुष्यों को किससे क्या प्रार्थना करनी योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**उत त्वं सुनो सहसो नो अया देवा अस्मिन्ध्वरे ब्रह्म्याः ।**

**स्यामहं ते सदमिद्रातो तव स्यामग्नेऽर्धसा सुवीरः ॥९॥**

पदार्थ—हे (सहसः) शरीर और आत्मा के बल से युक्त विद्वान् के (सुनो) विद्यासम्बन्धी पुत्र (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशित आत्मावाले (त्वम्) आप (अया) आज (अस्मिन्) इस (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य विद्या प्राप्ति के व्यवहार में (न) हम (देवा) विद्वानों को वा दिव्य भोगों को (आ, ब्रह्म्याः) अच्छे प्रकार प्रकट कीजिये जिससे (अहम्) मैं (सहसः) प्राप्त होने योग्य पदार्थ को पाकर (ते) आपके (दातो) दान कर्म में स्थिर (स्याम्) होऊँ (उत) और (तव) आपके (जवसा) रक्षा आदि कर्म से (सुवीरः) सुन्दर योद्धाओं वाला मे (इत्) ही होऊँ ॥ ९ ॥

आचार्य—हे विद्वन् ! यदि आप अब हमको सुख पहुँचाइये तो हम विद्या देनेवाले महावीर होकर आपकी सेवा निरन्तर करें ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को किसके संग से कैसे होना योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**उत त्या मे हवमा जगम्यात् नासंस्था धीभिर्बुधमङ्ग विप्रा ।**

**अग्नि न महस्तमसोऽसुसुहं त्वर्षं नरा दुरितादभीकं ॥१०॥९॥**

पदार्थ—हे (अङ्ग) मित्र (वास्तवा) सत्य धारण करनेवाले (विप्रा) मेधावी अध्यापक और उपदेशक (नरा) नायक सब में श्रेष्ठजन (त्या) वे (बुधम्) तुम लोगों (धीभिः) उत्तम बुद्धि वा कर्मों से (मे) मेरे (अभीके) समीप मे





किर मनुष्य की राजाधन्यो को नामें इस विषय को कहते हैं—

**रिवातः सत्त्वोत्तमो राज्ञः सुवसनस्य दातुम् ।**

**युनः सुवसनस्य विप्रो वृत्तादित्याभ्यामपिदिति दुवोयु ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मैं (रिवातः) हिसक का माथ करनेवाले वा (सत्त्वोत्तम) सत्य के पालनेवाले वा (सुवसनस्य) सुन्दर वास के (दातुम्) देनेवाले वा (सुवसनस्य) उत्तम अथ और राज्यों को वा (अवितिम्) अवशिष्ट नीति को (सवतः) स्वीर होते हुए (विप्रः) कामना करने योग्य और काम करने वा (यु) मनुष्यों वा (आदित्याम्) किया है अवतलीस वर्ष ब्रह्मचर्य जिन्होंने उन वा (युनः) जवान मनुष्यों वा (दुवोयु) देवन की कामना करनेवालों को तथा (वहः) महान् (राजः) राजाओं को मैं (वापि) प्राप्त होता हूँ जैसे ऐसी को तुम भी प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो और आदि के निकटने और बर्मात्माओं के पालनेवाले, हितादि दोषों से रहित, सब के लिए सुख से निवास देनेवाले, पूर्ण विद्यायुक्त, जितेन्द्रिय, स्वाय से पिता के समान प्रजा के पालनेवाले, पूर्ण जीवनयुक्त, कुष्ट व्यसनों से रहित, गुणवाही जन हो उन्हीं को तुम स्वामी मानो और भद्र हुय्य वालों को न मानो ॥ ४ ॥

विवाहिकों की संतानों के लिए क्या करना योग्य है इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

**धोऽपितः पृथिवि मातरधन्यं आतर्वसवो मुक्ता नः ।**

**विश्वं आदित्या अदिते सुवोषा अस्मभ्यं क्षमे बहुलं वि यन्त ॥५॥११॥**

पदार्थ—हे (पितः) पालनेवाले (धोः) सूर्य के समान तुम हे (मातः) माता (पृथिवि) भूमि के समान तुम हे (अस्मभ्यं) अग्नि के समान प्रकाशालम्बा (अदिते) आता तुम (अस्मभ्यं) प्रोहरहित होते हुए (वसवः) सुख वास के देनेवाले तुम सब (नः) हमको (मुक्ता) मुक्ती करो हे (अदिते) अवशिष्ट ज्ञान और ऐश्वर्यवती पतिता स्त्री जैसे (विश्वे) सब (आदित्याः) पूर्ण की है ब्रह्मचर्य से विद्या जिन्होंने वे सज्जन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (वसवः) बहुत पदार्थ-युक्त (क्षमे) सुख करनेवाले घर को (वि, वसत) देते हैं जैसे (सज्जोषाः) समान एकही प्रीति की सेवने वाली पू बहुत सुख और विद्या को वे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जिनका सूर्य के समान सुन्दर विद्या से पालनेवाला पिता पृथिवी के समान सहृदयीलता आदि पुत्र और विद्यायुक्त माता, अग्नि के समान प्रकाशमान आता वर्तमान है वही सुखी होता है तथा जैसे पूर्ण विद्यावान् जन सम्मार्ग को पृच्छते हैं वैसे ही विद्या पढ़नेवाले पढ़ाने वालों का निरन्तर सत्कार करते हैं ॥ ५ ॥

किर मनुष्यों की किसी इच्छा नहीं करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**मा नो वृकाय हृष्ये समस्मा अघायसे रीरधता यजत्राः ।**

**युयं हि धा रथ्यो नस्तनूनां युयं वक्षस्य वक्षसो बभूव ॥६॥**

पदार्थ—हे (यजत्राः) सत् करनेवालों (युयम्) तुम (वृकाय) बोर के लिए वा (हृष्ये) बोरों में उत्पन्न हुए व्यवहार के निमित्त (समस्मा) अघायसे (वक्षस्य) वक्ष की इच्छा करनेवाले सर्वजन के लिए (नः) हम लोगों को (मा, रीरधता) मत मष्ट करो तथा (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (वक्षस्य) वक्षयुक्त (वक्षसः) वक्ष का (रथ्यः) रथों में साधु उत्तम जो व्यवहार उसके समान (युयम्) तुम (युयम्) हो (हि) जिससे सुख करनेवाले (बभूव) होओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को बोर आदि सुष्ठों का व्यवहार करनी नहीं करनी है और जो बर्मात्मा, अघातप्रभु बर्मात्मा जिन के शत्रु नहीं हुआ तथा सबकी रक्षा करनेवाले हों उनकी तुम निरन्तर सेवा करो ॥ ६ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**मा य एनो अन्यकृतं सुजेम मा सत्कर्म वसवो पश्यध्वे ।**

**विरवस्य हि सत्यं विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्यं रीरिचीष्ट ॥७॥**

पदार्थ—हे (वसवः) वास के हेतु (विश्वदेवाः) सब विद्वानो ! तुम विश्वस्व) संसार के बीच (यत्) जो (वसवो) इकट्ठा करो और (हि) जिससे जिसको (अवय) निवास करो जैसे (रिपुः) शत्रु (स्तन्यम्) अपने शरीर को (स्वयम्) आप (रीरिचीष्ट) निरन्तर करे वैसे उस (नः) तुम्हारे (अन्यकृतम्) और से किये हुए (युजः) अपराध को इस लोग (मा, सुजेम) मत भोगें (तत्) उस कुष्ट कर्म को (मा) मत (कर्म) करें ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो तुम किसी कुष्ट का अनुकरण मत करो, अपने शरीर को मष्ट मत करो तथा और के किये हुए अपराध के संगी मत होओ ॥ ७ ॥

मनुष्य सब मन्त्र हों इस विषय को कहते हैं—

**यम इयं नम आ विवासे नमो दावार पृथिवीमुत साय ।**

**नमो देव्यो नम इमं यमं कृतं विदेतो नमसा विवासे ॥८॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (यमः) नमस्कार करने योग्य ब्रह्म (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (साय) सूर्य को (दावार) धारण करते उस (उग्रम्) तीव्र (यमः) नमस्कार करने योग्य ब्रह्म का मैं (आ, विवासे) सेवन करूँ (देव्यः) विद्वानों के लिए (यमः) जन्म की सेवा करूँ (यमः) सत्कार वा (यमः) जन्म की (इष्टे) इच्छा करूँ उस (यमसा) सत्कार से (एवम्) इनके (कृतम्) किये उत्तम कर्म (यि) और (यमः) अनुत्तम कर्म का (इत्) ही (आ, विवासे) योग्य सेवन करूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! सबसे नमस्कार करने योग्य परमेश्वर के सहायक से हम लोग उत्तम किया को धारण कर और कुष्ठता को निवार विद्वानों के लिए हित सिद्ध कर सका उपकार भवैव करें ॥ ८ ॥

किर सबको कीन नमस्कार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**कृतस्य वा रथ्यः पुतद्विद्वानुत्तस्य पस्यसदो अर्द्धधान ।**

**तां आ नमोमिषुचक्षसो वृन् विश्वान् आ नमो महा यजत्राः ॥९॥**

पदार्थ—हे (यजत्राः) अच्छे व्यवहार का सग करते हुए सज्जनो (रथ्यः) रथों में उत्तम व्यवहार बर्तने वाला मैं (कृतस्य) सत्य के (पुतद्विद्वान्) पवित्र बर्तों वा (कृतस्य) पदार्थ अर्धयुक्त व्यवहार के (पस्यसदो) जो बरों में स्थिर होते उन (अर्द्धधान) अविनष्ट कायों वा मष्ट न करनेवाले पदार्थों वा (उत्तस्य) बहुत बर्तों वा (विष्वान्) समग्र (महा) महाप्राय (यु) उत्तम विद्वान् (वा) आप लोगों को (आ, नमो) अच्छे प्रकार नमस्कार करता हूँ जो हम लोगों को सत्य बोध कराते हैं (ताम्) उन (वा) आप लोगों का (ममोमि) बहुत सत्कारों से हम लोग निरन्तर (आ) अच्छे प्रकार सत्कार करें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम सब से उत्कृष्ट विद्या वाले, बर्माष्ट, परोपकारी जनों ही को सदा नमो, तथा इन से विनय (नमसा) को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

किर कीन सत्कार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**ते हि भेष्टवर्चस्तस्य उ नस्तितो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।**

**सुव्रतासो बर्चो मिथो अग्निर्कृतधीतयो वक्त्रराजस्तस्याः ॥१०॥१२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो (हि) जिससे (ते) वे (भेष्टवर्चस्तः) भेष्ट पढ़ने वाले (सुव्रतासः) उत्तम राज्य वा जनयुक्त (वक्त्रः) भेष्टजन (मिथः) मित्र (अग्निः) अग्नि के समान बुद्धान्त करण पुत्र, इनके समान वर्तमान (कृतधीतयो) सत्य के धारण करनेवाले (वक्त्रराजस्तस्याः) कहनेवाले राजाओं से सत्य के प्रति-पादन करनेवाले सज्जन (नः) हम लोगों के (विश्वानि) समस्त (दुरिता) दुष्टा-चरणों को (तिरः) तिरस्कार को (नयन्ति) पहुँचाते हैं उस कारण से (ते) ही (ते) वे मान करने योग्य हैं ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जिससे विद्वान् बर्मात्मा जन निष्कपटता से औरों के हित साधने वाले, विद्यापान और उपदेश द्वारा सब कुष्ट आचरणों को निवार के सत्य आचरण में प्रवृत्त करनेवाले हैं इसी से सत्कार करने योग्य हैं ॥ १० ॥

किर किसके तुल्य कीन मानने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**ते न इन्द्रः पृथिवी आमं वर्धन् पृथा यनो अदितिः पञ्च जनाः ।**

**सुशर्माणः स्वधंसः सुनीथा मर्वन्तु नः सुव्रातासः सुगोपाः ॥११॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जिससे (ते) वे (इन्द्रः) बिजुली (पृथिवी) अन्तः रिश (आमं) भूमि (पृथा) वायु (अयः) ऐश्वर्यवान् जन और (अदितिः) जन्म देनेवाली माता के समान (सुशर्माणः) प्रशंसित बरों वाले (स्वधंसः) जिन की सुन्दर रक्षा और (सुनीथाः) न्याय विद्वान् वे (पञ्च, जनाः) पाँच प्राणों के समान उत्तम मनुष्य हैं इससे (नः) हमको (वर्धन्) बढ़ावें और (नः) हमारे (सुगोपाः) सुन्दर गो वा पृथिव्यादिकों के रक्षा करनेवाले तथा (सुव्रातासः) उत्तमता से पालना करनेवाले (सज्जन्तु) हो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जिससे विद्वान् जन बिजुली, भूमि, अन्तरिक्ष, प्राण, ऐश्वर्य और माता के तुल्य सबके बढ़ाने वा पालनेवाले हैं इसी से पूज्य होते हैं ॥ ११ ॥

किर कीन नमस्कार के योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**नृ सज्जनं दिव्यं नञ्चि देवा भारंदाजः सुमतिं याति होता ।**

**आसानेयिर्जमानो मियेवैदेवानां जप्त्वं वसुधुवैवन्द ॥१२॥**

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो जो (भारंदाजः) विज्ञान को धारण किये (होता) देनेवाला (सुमतिम्) शोभन बुद्धि को (वसति) प्राप्त होता है वह (नृ) नृपति (दिव्यम्) मनोहर (सज्जनम्) जिसमें स्थिर होता उस घर को (मति) व्याप्त होता है । जो (वसुधुः) इन्द्रों की कामना करने और (अजमानः) यज्ञ करनेवाला (मियेवै) प्रेरणा देनेवाले (आसानेयिः) बैठे हुए ऋत्विजों के साथ (वैवन्दम्) विद्वानों के (जप्त्वं) उत्पन्न होने की (वसुधु) प्रशंसा करते हैं उसका तुम सत्कार करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा के विद्या और जन्म की प्रशंसा करते हैं वे सुख सुख की प्राप्ति होते हैं वैसे बहुत विद्वानों के साथ यज्ञ करनेवाला यज्ञ को सुख-

धित कर समस्त जगत् का उपकार करता है वैसे ही विद्वान् जन पढ़ाने और उपदेशों से सब को प्राज्ञ ( उत्तम ज्ञाता ) कर प्रशसा को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

फिर कौन दूर करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**अप स्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्रे दुराध्यम् ।**

**द्विष्टमस्य सत्पते कृषी सुगम् ॥१३॥**

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ( स्यम् ) उस (द्विष्टम्) अतीव दूर (वृजिनम्) स्वागने योग्य (दुराध्यम्) वा दुःख से बच करने योग्य (रिपुम्) विद्याशत्रु (स्तेनम्) चोर को (सुगम्) सुगम (कृषी) करो, हे (सत्पते) सत्य के पालने वाले आप (अस्य) इसका (अप) दूरीकरण करो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम विद्या का अभ्यास कर शरीर और आत्मा के बल से युक्त होते हुए दुःसाध्य भी शत्रुओं को सुसाध्य अर्थात् उत्तमता से दूरे करो जिससे वे दूर स्थित ही भय से सद्रम के अनुष्ठान करनेवाले हों ॥ १३ ॥

फिर किससे मित्रता कर कौन दूर करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**प्रावाणः सोम नो हि कं सखिस्त्वनाय वावशुः ।**

**जही न्यःत्रिणं पर्णि वृको हि वः ॥१४॥**

पदार्थ—हे (सोम) प्रेरणा देनेवाले जो (प्रावाणः) मेघों के समान (सखिस्त्वनाय) मित्रपन के लिए (नः) हम लोगों को (हि) ही (वावशुः) चाहते हैं वे (कम्) सुख को प्राप्त हो जो (अत्रिणम्) दूसरे का सर्वस्व हरनेवाला (वृक्) व्यवहार-कर्ता का संबन्ध करता है (सः, हि) वही (वृकः) चोर है इस हेतु से इसे आप (मि, जही) निरंतर मारो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यदि धर्मात्मा विद्वान् जन धर्मिष्ठ विद्वानों के साथ मित्रता रखते हैं तो वे निरंतर सुख को प्राप्त होकर मेघ के समान सबको बराने के पुष्ट आचरण करनेवाले छलियों को भीम मारते हैं ॥ १४ ॥

कौन इस संसार में आमन्त्र के देनेवाले हैं इस विषय को कहते हैं—

**यूयं हि ह्य सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिधवः ।**

**कर्त्ता नो अब्ज्वा सुगं गोपा अमा ॥१५॥**

पदार्थ—हे (सुदानवः) उत्तम गुणों के देनेवाले विद्वानों (इन्द्रज्येष्ठाः) सूर्यलोक महान् ज्येष्ठ जिन लोकों का उनके समान वर्तमान (अभिधवः) पदार्थज्ञान के भीतर प्रकाशमान (गोपा) रक्षा करनेवाले (अब्जम्) मार्ग में (नः) हम लोगों को तथा (सुगम्) सुन्दरता से जिसमें जाते (अमा) ऐसे घर की (आ, कर्त्ता) प्रकट करो उस (हि) ही घर में (यूयम्) तुम (एष) स्थित होओ ॥१५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य दुर्गम मार्गों को सुगम करते हैं और उत्तम घरों को बनाकर आप तथा औरों को निवास करते कराते हैं वे ही जगत् में सुख करनेवाले होते हैं ॥ १५ ॥

फिर कैसे मार्ग सिद्ध करने चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।**

**येन विश्वाः परि द्विषो वृषाक्त्रि विन्दते वसुं ॥१६॥१३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो (येन) जिससे वीर जन (विश्वः) सब (द्विषः) शत्रुओं को (परि, वृषाक्त्रि) सब ओर से दूर करता और (वसुं) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है उस (अनेहसम्) न नष्ट करने योग्य और (स्वस्तिगाम्) जिसमें सुख को प्राप्त होते उस (पन्थाम्) मार्ग को हम लोग (अपि) भी (अगन्महि) प्राप्त हो ॥ १६ ॥

भाषार्थ—राजादि मनुष्य ऐसे मार्गों को बनावें जिनमें जाते हुआ को चोरो का भय न हो और द्रव्य का भी लाभ हो ॥ १६ ॥

इस सूक्त में विश्वे देवों के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह इत्याचनवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ सप्तदशसर्गस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिष्वा ऋषिः । विश्वेदेवा वेचता । १, ४, १५, १६ निचुत्तिष्ठदृप् । २, ३, ६, १३, १७ निष्ठदृप्-छन्दः । श्वेत स्वरः । ५ भुरिक्पङ्क्तिःछन्दः । पञ्चम स्वरः । ७, ८, ११ गायत्री । ९, १०, १२ निचुत्तगायत्री छन्दः । वज्र-स्वरः । १४ विराट् जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

अब सत्रह ऋचावाले बावनवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम अन्वमें किस से अधिक सुख होता है इस विषय को कहते हैं—

**न तद्विवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत् शयीमिरामिः ।**

**उज्जन्तु तं सुम्भः पर्वतासो नि हीयतामतिर्याजस्य यष्टा ॥१॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (सुम्भः) जो अच्छे होते हैं वे (पर्वतासः) मेघ (तम्) उसको (उज्जन्तु) कुटिल करें वैसे (अतिर्याजस्य) जो अतीव यज्ञ करने

के योग्य हैं उसका (अथवा) संग करनेवाला वर्तमान है वह (तम्) उस कारण से (विवा) विनये (न) न (मि, हीयताम्) छोड़ने योग्य है (न) न (पृथिव्या) पृथिवी से (न) न (यज्ञेन) हीम आदि कर्म से (न) न (उत्) और (शयीमिः) क्रियाओं से वा (अमीमिः) कर्मों से छोड़ने योग्य है उसे मैं (अनु, मन्ये) अनु-कूलता से मानता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो सुख मेघों से उत्पन्न होता है वह सुख न विनये से, न पृथिवी न सगति न कर्म से होता है इससे यज्ञ करनेवाला ही सुखभागी होता है ॥ १ ॥

फिर कौन मनुष्य निन्दा करने और बर्जने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निर्निस्त्यात् ।**

**तपूषि तस्मै इजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शौचतु धौः ॥२॥**

पदार्थ—हे (अस्तः) मनुष्यो (यः) जो (नः) हम लोगों को (अति, मन्यते) अत्यन्त मानता है (वा) वा (यः) जो (क्रियमाणम्) क्रियमाण (ब्रह्म) धन को अत्यन्त मानता है (वा) वा (निस्त्यात्) निन्दा करने को चाहें (तम्) उस (ब्रह्मद्विषम्) धन के द्वेषीजन को (धौः) कामना करता हुआ विद्वान् (अभि, शौचतु) अब धोर से शोचें (तस्मै) इसके लिए (तपूषि) तेजोमय व्यवहार (ब्रह्मद्विषम्) बाधक (तपूषि) हों ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जो मनुष्य अतिमान, अनाविको से द्वेष और अन्धे सज्जनों की निन्दा करते हैं वे दण्ड देने, निन्दा करने और शोच करने योग्य होते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्य कैसे परीक्षक हों इस विषय को कहते हैं—

**किमङ्ग स्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग स्वाहुरमिशस्तिपां नः ।**

**किमङ्ग नः पर्यसि निघमानान् ब्रह्मद्विषे तपूषि हेतिमस्य ॥३॥**

पदार्थ—हे (अङ्ग) मित्र (सोम) ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले जन (किम्) क्या (स्वा) तुम्हें (ब्रह्मणः) धन का (गोपां) रक्षा करनेवाला (आहुः) कहें, हे (अङ्ग) मित्र (किम्) क्या (स्वा) तुम्हें (अमिशस्तिपां) सामने प्रशसा रखने वाले कहते हैं । हे (अङ्ग) सत्ते मित्र तू (नः) हमलोगों को (किम्) क्या (पर्यसि) देखता है । हे मित्र तू (निघमानाम्) निन्दा प्राप्त (नः) हमलोगों को क्या देखता है (ब्रह्मद्विषे) वेद विद्याद्वेषीजन के लिये (तपूषि) अति तपे हुए (हेतिम्) बन्ध को क्या नहीं देखता (अस्य) इस पर बन्ध प्रहार कर ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम इस धन के रक्षक क्यों नहीं होते हो, स्तुति (प्रशसा) करनेवाले हम लोगों को निन्दा करनेवाले धर्म से मत देखो, जो निश्चय धनपति तथा वेद विद्या से द्वेष करते हैं उनका सग युद्ध बिना मत करो ॥ ३ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

**अबन्तु मासुवसो जायमाना अबन्तु मा सिन्धवः पिन्धमानाः ।**

**अबन्तु मा पर्वतासो ब्रह्मासोऽबन्तु मा पितरौ देवहूतौ ॥४॥**

पदार्थ—हे उपदेश करनेवालो तुम (देवहूतौ) दिव्यगुण वा विद्वानों के संप्रह मे जैसे (जायमानाः) उत्पद्यमान (उवसः) प्रभातबेलाए (मां) मेरी (अबन्तु) रक्षा करें तथा (पिन्धमानाः) नेवन करती हुई (सिन्धवः) नदियां (मा) मेरी (अबन्तु) रक्षा करें और (ब्रह्मासः) निष्कल (पर्वतासः) शील पहाड़ (मा) मेरी (अबन्तु) रक्षा करें और (पितरः) पिता वा पढ़ानेवाले वा ऋतु वसत आदि (मा) मेरी (अबन्तु) रक्षा करें वैसे शिक्षा करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम इस प्रकार युक्त आहार विहार करो जिसमें सब सृष्टिस्थ पदार्थ दुःख देनेवाले न हों और शुभगुणों को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**विश्वदानीं सुमनसः स्याम पर्येम नु सूर्य्यसुधरन्तम् ।**

**तथा करदसुपतिर्वधनां देवां ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥१४॥**

पदार्थ—हे विद्वन् (अवसा) रक्षा आदि के साथ (आगमिष्ठः) अतीव भाने और (बधुनाम्) वसुओं के बीच (वसुपतिः) पदार्थों की पालना करनेवाले और (ओहान) रक्षक आप जैसे हम लोगों का (वेवाद्) विद्वान् (करम्) करें वैसे हम लोग (विश्वदानीम्) सर्वथा (सूर्य्यम्) सूर्यमण्डल जो (उधरन्तम्) ऊपर जो बढ़ता है उसे (वधयेम) देखें और (नु) शीघ्र (सुमनसः) प्रसन्नचित्त (स्याम) होवें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे प्रीति से अध्यापक और उपदे-  
शक विद्यार्थियों को और उपदेश सुननेवालों को विद्वान् करके सुखी करते हैं वैसे ही पढ़नेवालों और उपदेश सुनने वालों को चाहिए कि विद्वान् होकर भी इसका सदा सत्कार करें ॥ ५ ॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को जगले मन्त्र में कहते हैं—

**इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्धमाना ।**

**पर्जन्यो न ओषधोभिर्मयोसुरभिः सुर्वासः सुहवः पितैव ॥६॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (अथवा) रक्षा आदि से (नेविष्ठम्) अतीव समीप को (अत्यन्तः) अतीव आगे जाता वा (सिन्धुभिः) नदियों से (सिन्धुनाम्ना) संयुक्त (सरस्वती) प्रसंसित सरस्वती नदी के समान (सुवसः) शोभन प्रशंसा तथा (सुवसः) शोभन सत्कारवाले (अग्नि) अग्नि के समान (ओषधीभिः) ओषधियों से युक्त (पर्वतः) मेघ (मनोभुः) सुख सुखाने तथा (चित्तेषु) जन्म देनेवाले पिता के समान (इन्द्र) परमेश्वर्यवान् राजा (नः) हम लोगों की पालना करता है वह राजा हम लोगों से निरन्तर सत्कार करने योग्य है ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में उपमालंकार है। जो राजा न्याय और पुण्यार्थ से प्रजा की निरन्तर रक्षा करता है उसकी पिता के समान प्रजाजन पालना करते हैं ॥ ६ ॥

किर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

विरवे देवाः आ गतं श्रुता मं इमं हव्यम् ।

एवं बर्हिर्नि पीवत ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (विरवे, देवाः) सब विद्वानो ! तुम हमारे अति समीप (आ, गत) आओ तथा (हव्यम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (मि, पीवत) निरन्तर स्थिर होओ तथा (मे) मुझ विद्यार्थी के (हव्यम्) इस (हव्यम्) मुने पड़े विषय को (आ, श्रुता) अच्छे प्रकार सुनो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में “नेदिष्ठम्” यह पद मिथ्या मंत्र से अनुवृत्ति में आता है। विद्यार्थियों को चाहिए कि परीक्षा करनेवाले विद्वानों की प्रार्थना कर परीक्षा में सुनाने योग्य समस्त सुना और पढ़ा विषय उनके समीप में निवेदन करें तथा के परीक्षक भी अच्छे प्रकार परीक्षा कर गुण और दोषों का उपदेश दें ऐसा करने पर यचना निर्दोष हो ॥ ७ ॥

किर अग्न्यापक और अग्न्ययन करनेवाले वरस्वर कैसे बर्हति करें इस विषय को कहते हैं—

यो वो देवा वृत्स्तुना हव्येन प्रतिभूवति ।

तं विरव उप गच्छथ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (देवाः) पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वानो (वः) जो (वृत्स्तुना) वृत्त के समान सुदृढ़ (हव्येन) लेने देने योग्य वा प्रशंसित पढ़ने और सुनने से (वः) तुम लोगों को (प्रतिभूवति) प्रत्यक्षता से सुसूचित करता है (तम्) उसके (विरवे) सब तुम लोग (उप, गच्छथ) समीप प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सत्य विद्यादान से सब तुम लोगों को सुसूचित करता है उसे तुम सब प्रतिभूषित करो अर्थात् बदले में सुशोभित करो ॥ ८ ॥

किर मनुष्यों को कैसा विषय करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

उप नः सुनवो गिरः शृण्वन्तवृत्तस्य ये । सुसुक्तीका भवन्तु नः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे राजन् वा विद्वानो (ये) जो (नः) हमारे (सुनवः) सतान हो वे (अनुसूयन्) नागरहित विज्ञान की (गिरः) विद्यायुक्त वासियों को (उप, शृण्वन्तु) समीप में सुनें तथा (सुसुक्तीका) सुन्दर सुखवाले होकर (नः) हमारी सेवा करनेवाले (भवन्तु) हों ॥ ९ ॥

भाषार्थ—पितृजनों को राजनीति वा अपने कुल में यह वृद्ध नियम करना चाहिये कि जितने हमारे सतान हैं वे ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं के ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्य आश्रम को करें, जो इसका विनाश करे उसे राजा वा कुलीन निरन्तर दण्ड दें ॥ ९ ॥

किर मनुष्य क्या कामना कर विद्याओं को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं—

विरवे देवाः अतावृषं क्रतुर्भिर्वनभुतः ।

सुवन्तां सुज्यं पयः ॥ १० ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (अतावृषः) सत्यविद्या को बढ़ानेवालों (हवनभुतः) जो अध्ययन को सुनते हैं वे (विरवे, देवाः) सब विद्वान् आप लोग (अनुभिः) वसन्ताविकों के साथ (पुष्यम्) समाधान करने योग्य (पयः) दूध, जल वा अन्न को (सुवन्ताम्) लेवें ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो अध्ययन करने और परीक्षा कराने को चाहें वे मद करने, कुत्सित बुद्धि वा नाश करनेवाले पदार्थों को छोड़ के शुद्ध आदि बुद्धि के बढ़ानेवाले उत्तम पदार्थों को लें ॥ १० ॥

किर मनुष्य किसके साथ क्या करें इस विषय को कहते हैं—

स्तोत्रमिन्द्रो मरुतूणस्त्वष्टमान्मित्रो अर्यमा ।

इमा हव्या जुषन्त नः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो आप जो (अर्यमाः) जिसके उत्तम मनुष्यों का समूह और (हव्यमा) उत्तम शिल्पीजन विद्यमान हैं तथा (मित्रः) जो कि सबका मित्र (अर्यमा) न्याय करनेवाला और (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् राजा हो उसके साथ (नः) हमारे (स्तोत्रम्) उस स्तोत्र को जिससे स्तुति करते हो और (हव्या) इन (हव्या) के लिये योग्य अन्नादि पदार्थों को (जुषन्त) लें ॥ ११ ॥

भाषार्थ—वे ही मनुष्य चाहें हुए पदार्थों को पा सकते हैं जो सबके लिये श्रेष्ठ पुरुष को अभिष्टता करते हैं ॥ ११ ॥

किर मनुष्य कैसे राजा को करें इस विषय को कहते हैं—

इमं नो अग्रे अच्वरं होतव्यपुनश्चो यज । चिकित्वाभ्यैव्यं जनम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (होतः) देनेवाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्तमान राजन् आप (अच्वरः) उत्तम ज्ञान से (न) हमारे (इमम्) इस (अच्वरम्) न नष्ट करने योग्य न्याय व्यवहार को (चिकित्वाभ्यैव्यं) जाननेवाले आप (वैद्यम्) विद्वानों से सत्कार को प्राप्त हुए (जनम्) शुभाचरणों से प्रसिद्ध जन को (यज) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे राजा प्रजाजन ! आप जो हमारे बीच शुभ गुण कर्म स्वभावयुक्त हो उसी को राज्य करने में अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ १२ ॥

किर मनुष्यों को कौन बुलाकर सत्कार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

विरवे देवाः शृणुतेमं हव्यं मे ये अन्तरिक्षे य उप यविष्ठ ।

ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (विरवे, देवाः) सब विद्वानो (ये) जो (अन्तरिक्षे) भीतर अविनाशी आकाश में (ये) जो (यविष्ठ) प्रकाश में (ये) जो (अग्निजिह्वाः) नख से प्रकाशमान जिह्वा जिनकी (उत, वा) अथवा (यजत्रा) संग करने योग्य हों उन सबके साथ (मे) मेरे (इमम्) इस (हव्यम्) मुने पड़े और जाने हुए विषय को (उप, शृणुते) समीप में सुनो और समीप में (हव्यं) स्थिर होओ तथा (अस्मिन्) हम (बर्हिषि) उत्तम आसन वा स्थान में (आसद्या) बैठ के हम लोगों को (मादयध्वम्) आनन्दित करो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को सदैव जो विमानस्थ अन्तरिक्ष में, वा जो बिजुली की विद्या में कुशल हैं और जो पढ़ाने वा परीक्षा करने में निपुण, बमिष्ट, आप्त, विद्वान् हो उनके निकट जाकर और उनको अपने समीप बुलाकर सत्कार कर हमसे सुनना चाहिये और सुना हुआ सुनाना चाहिये जिससे सुनने में वा विज्ञान में अम न हो ॥ १३ ॥

किर कौन संग करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

विरवे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञियां उमे रोदसी अपां नपां च मम ।

मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुन्नेष्विदो अन्तर्मा मदेम ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (विरवे, देवाः) सब विद्वानो आप (उमे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी के तुल्य सब की रक्षा करने वाले (यज्ञियाः) सज्जनों का संग करने वाले होते हुए (मम) मेरे (वचांसि) वचनों को (शृण्वन्तु) सुनिये तथा (वः) आपके (अपां) प्राणों के (नपां) न विनाश करने वाले (मम) विज्ञान को विरुद्ध मैं (वा, वोचन्) मत कहूँ (परिचक्ष्याणि, च) और सब ओर से कहने के योग्यो की प्रशंसा कर इस प्रकार वर्तमान हम लोग (वः) आपके (अन्तर्माः) समीप स्थिर होते हुए (सुन्नेषु) सुनो मे (इत्)सर्वदैव (मदेम) आनन्दित हो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकुत्सोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों का वचन असत्य नहीं होता तथा जिनका संग सर्वदा सुख और विज्ञान का बढ़ाने वाला है और जो भूमि और सूर्य के तुल्य सब के पालने वाले और विवाद सुनकर पक्षपात को छोड़ न्याय करने वाले हों उनके निकट स्थिर होकर सदैव आनन्द को प्राप्त होओ ॥ १४ ॥

किर मनुष्यों से कौन मित्य सत्कार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

ये के च म्मा महिनो अहिमाया विषो उज्जिरे अपां मधस्थे ।

ते अस्मभ्यमिषये विन्मयायुः सपं उसा वरिष्यन्तु देवाः ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (ये) जो (के, च) कोई भी (महिनः) महान् जैसे (म्मा) पृथिवी के बीच (अहिमायाः) मेघ की कुटिल गतिया (विषः) सूर्य के प्रकाश से (अपाम्) जलों के (सधस्थे) समान स्थानवाले मेघमंडल में (उज्जिरे) उत्पन्न होती हैं जैसे वर्तमान (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (इष्ये) अन्न वा विज्ञान के अर्थ (अपः) रात्रि (उसाः) दिन और (वरिष्यन्तु) पूर्ण (आयुः) जीवन को (अहिमायायुः) सेवें (ते) वे (देवाः) दिव्यगुण वा विद्वान् जन हम लोगों से निरन्तर सेवने योग्य हैं ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस मंत्र में वाचकुत्सोपमालंकार है। हे मनुष्यो ! जो इस वर्तमान समय में दिन रात्रि मनुष्यों के आरोग्य, आयु और विज्ञान के बढ़ाने और मेघ के समान पुष्टि करने वाले हों वे ही सब से सत्कार करने योग्य हैं ॥ १५ ॥

किर वे विद्वान् कैसे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अग्नीवर्जन्पावतं धियं मेऽस्मिन्ध्वं सुहवा सुहृति नः ।

इकांमन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धंसमस्मे ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (सुहवा) सुन्दर प्रशंसित अध्यापक और उपदेशको तुम (अग्नी, पर्वन्तो) बिजुलीय अग्नि और मेघ के तुल्य (अस्मिन्) इस (हव्ये) प्रशंसनीय धर्मयुक्त व्यवहार में तुम दोनों (मे) मेरी (धियम्) बुद्धि की (अध्वतम्) रक्षा करो तथा (नः) हमारी (सुहृतिम्) शोभन प्रशंसा की रक्षा करो जैसे अग्नि और मेघ के बीच (अन्तः) और बिजुलीय अग्नि (इक्षाम्) महान् वाणी



को (अन्व.) और मेघ (वर्षम्) गर्भकृत् (अन्वयत्) उत्पन्न करता है वैसे (अस्ते) हमारी (प्रजापती.) बहुप्रशंसित प्रजायुक्त (इव.) अन्नादि पदार्थों की इच्छाओं को (आ, वसत्) सब ओर से धारण करो ॥ १६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो वस्ति और मेघ के समान सब की बुद्धि के बढ़ानेवाले का रक्षा करनेवाले, सब प्रजाजनों को सुख में धारण करते हैं वे जैसे मेघ पृथिवी पर गर्म को धारण कर ओषधियों को उत्पन्न करता और जैसे अग्नि वाणी को विधान करता अर्थात् बिजुलीरूप होकर तड़कता है वैसे वे सुखों का विधान करनेवाले होते हैं यह आप जानो ॥ १६ ॥

फिर कौन इस सत्कार में आनन्द देनेवाले होते हैं इस विषय को कहते हैं—

**स्तीर्णे बहिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।**

**अस्मिन्नी अद्य विद्ये यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७॥**

पदार्थ—हे (यजत्रा) सग करानेवालों (विश्वे, देवा) सब विद्वानों तुम (अद्य) आज के दिन (अस्मिन्) इस (विश्वे) विज्ञानमय यज्ञ में जैसे मैं (सूक्तेन) वेदमन्त्र मग्न से (महा, नमसा) अन्नादि समूह से (स्तीर्णे) इच्छनादि से आच्छादित (बहिषि) यज्ञकुण्ड में (समिधाने) प्रदीप्य (अग्नौ) अग्नि के बीच (आ, विवासे) सब ओर से सेवन करूँ इस (न) हम लोगों का (हविषि) देने वा भोजन करने योग्य अन्नादि पदार्थों में (मादयध्वम्) सुखी करो ॥ १७ ॥

भाषार्थ—इन मन्त्र में वाक्कलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे इन्धनों से प्रदीप्य अग्नि में वेदमन्त्रों से सुगन्ध्यादियुक्त होन किया पदार्थ सब जगत् को सुखी करता है वैसे भुपात्रों में विद्वानों की अर्घ्य हुई विद्या सब जगत् को आनन्दित करती है ॥ १७ ॥

इस सूक्त में विश्वदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह वाचनार्थ सूक्त और सोलहवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥



अथ वशाचंस्य विपश्चात्तमस्य सुक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य आचि । पूषा वेवता ।

१, ३, ५, ६, ७, १० गायत्री । २, ४, ८ निबृन्वायत्री छन्द ।

अक्षरः स्वरः । ८ निबृन्वायत्री छन्द । गायत्री स्वरः ॥

अब इस ऋचावाले विषयमें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य किसके लिये किसका सेवन करे इस विषय को कहते हैं—

**वयम् त्वा पयस्वते रथं न वार्जमातये । धिये पुषन्नयुजमहि ॥१॥**

पदार्थ—हे (पुषत्) पुष्टि करनेवाले (पयः) मार्ग के (पते) स्वामिन् (वयम्) हम लोग (उ) ही (वार्जमातये) नम्राम का विभाग करनेवाली (धिये) प्रज्ञा के लिये (त्वा) आपकी (रथम्) विमान आदि यान के (न) समान (अयुजमहि) प्रयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—हम मन्त्र में उपमा और वाक्कलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य उत्तम बुद्धि पाने के लिये विद्वानों की सेवा करते हैं वे वेगवान् रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान के समान एक विद्या से दूसरी विद्या की गीघ्र प्राप्त होत हैं ॥ १ ॥

अब स्त्रीपुष्यो को क्या चाहने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**अभि नो नये वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपति नय ॥२॥**

पदार्थ—हे पुष्टि करनेवाले आप (न) हम लोगों की (प्रयतदक्षिणम्) जिससे प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा दी गई उस (वसुम्) मनुष्यों में उत्तम (वसु) धन और (वामम्) प्रशंसित (वीरम्) शुभलक्षणयुक्त पुरुष को (गृहपतिम्) गृहस्वामी को भी (अभि, नय) सब ओर से पहुँचाओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् वा विदुषी! आप हम लोगों के लिये उत्तम पति, उत्तम भार्या, प्रशंसित धन की प्राप्ति कराके उत्तम शिक्षा से धर्म आचरण की प्राप्ति कराइये ॥ २ ॥

फिर विद्वान् जन किसके लिये क्या प्रेरणा करें इस विषय को कहते हैं—

**अदितस्तन्त्रं चिदाष्टुणे पुषन्दानाय चोदय । पणोश्चिद्वि अंदा मनः ॥३॥**

पदार्थ—हे (आष्टुणे) सब ओर से प्रकाशारम्भ (पुषत्) पुष्टि करनेवाले विद्वन् आप (अदितस्तन्त्रम्) देने की अनिच्छा करते हुए (चित्) भी देनेवाले को (दानाय) देने के लिये (चोदय) प्रेरणा देओ (चित्) फिर नी देनेवाले को और अपने (मनः) मन को भी प्रेरणा देओ और (पणैः) जुभा खेलने वाले के भी अन्तःकरण को (चि, अंदा) विशेषता से भरी अर्थात् दण्ड देओ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक उपदेशक वा राजन्! विद्यादि शुभगुणों की प्रवृत्ति के लिये न देनेवालों को भी दान करने के लिये प्रेरणा देओ और जुभा खेलनेवाले पालकियों को भारी अर्थात् ताड़ना देओ ॥ ३ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।**

**साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे (उग्र) तेजस्वी नेतापति आप (वाजसातये) विज्ञान वा धन की प्राप्ति वा सश्रम के लिये (पथः) मार्ग से (चि, चिनुहि) तथ्य करो तथा

(मृधः) संधारो में प्रवृत्त दुष्टों को (चि, जहि) विशेषता से मारो जिससे (नः) हमारी (धियः) बुद्धियाँ कार्यों को (साधन्ताम्) सिद्ध करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजन्! आप उत्तम निर्भय मार्गों को बनाओ उनमें विपश्चामियों को मारो जिससे सब की बुद्धि उत्तम कर्मों की उन्नति करने के लिये प्रवृत्त हो ॥ ४ ॥

फिर राजा से कौन पीड़ा देने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**परि तन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अर्थमस्मभ्यं रन्धय ॥५॥१७॥**

पदार्थ—हे (कवे) विद्वन् राजन् आप (आरया) उत्तम कौड़ा से (पणीनाम्) धूल आदि व्यवहार करनेवाले पुरुषों के (हृदया) हृदयों को (परि, तन्धि) सब ओर से मार्गों (अथ) इसके अनन्तर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ईम्) सब ओर से दुष्टों को (रन्धय) पीड़ित करो और हमारे लिये सुख देओ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जो अपवित्र शिक्षा देनेवाले और छली पुरुष अपने राज्य में हों उनको अच्छे प्रकार दुष्टों जिससे न्यायमार्ग के बीच हम लोग सुखी हों ॥ ५ ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**वि पुषन्मारां तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् ।**

**अर्थमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे (पुषत्) पुष्टि करनेवाले आप दुष्टों को (ईम्) सब ओर से (रन्धय) अर्थात् पीड़ित करो तथा (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (हृदि) हृदय में (प्रियम्) प्यारे पदार्थों की (इच्छ) इच्छा करो (अथ) इसके अनन्तर (आरया) कौड़ा से बँटो के समान (प्रलेः) प्रशंसित व्यवहार करनेवाले के अस्मभ्यम् जनों को (चि, तुव) विशेषता से पीड़ा देओ ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे राजन्! आप दुष्टों को दण्ड देकर श्रेष्ठों का सत्कार कर सब को श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरणा देओ ॥ ६ ॥

**आ रिख किकिरा कुंश पणीनां हृदया कवे । अर्थमस्मभ्यं रन्धय ॥७॥**

पदार्थ—हे (कवे) विद्वन् आप (पणीनाम्) व्यवहार करनेवालों के (किकिरा) व्यवस्थापकों को (आ, रिख) सब ओर से लिखो तथा दुष्टों के (हृदया) हृदयों को (रन्धय) अर्थात् पीड़ा देओ (अथ) इसके अनन्तर (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (ईम्) सुख (कुंश) करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—राजा बाढ़ी और प्रतिवादी अर्थात् भ्रष्टालु प्रतिभ्रष्टालुओं का निष्ठापही पूर्वक न्याय करे ॥ ७ ॥

फिर विद्वान् को कैसे किसके लिये प्रेरणा करनी योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**यां पुषन्मारां चोदनीमारां विमर्षाष्टुणे ।**

**तयां समस्य हृदयमा रिख किकिरा कुंश ॥८॥**

पदार्थ—हे (पुषत्) पुष्टि करनेवाले (आष्टुणे) सब ओर से न्याय के प्रकाश करनेवाले आप (याम्) जिस (मर्षाष्टुणे) विद्या और धन की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करने तथा (आरम्भ) काष्ठ के विभाग करनेवाली भारी की (विमर्षि) धारण करते हो (तया) उससे (समस्य) तुल्य के समान अर्थात् जो सब में बुद्धि वाला है उसके (हृदयम्) हृदय को (आ, रिख) अच्छे प्रकार लिखो और (किकिरा) उत्तम गुणों को विकीर्ण (कुंश) करो फैलाओ ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे राजन्! आप विद्या और धन की प्राप्ति की प्रेरणा के समान राजनीति को धारण करो जिससे सब की न्यायव्यवस्था हो ॥ ८ ॥

मनुष्यों को क्या बड़ाकर किसकी प्राप्ति करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**या ते आष्ट्रा गोऔपशाष्टुणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नसीमहे ॥९॥**

पदार्थ—हे (आष्टुणे) सब ओर से पशुविद्या के प्रकाश करनेवाले (या) जो (ते) आपकी (आष्ट्रा) व्याप्त होनेवाली (गोऔपशा) जिसमें गौर परस्पर सोती हैं और (पशुसाधनी) जिससे पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्तमान है (तस्या) उससे (ते) आपके (सुम्नम्) सुख को हम लोग (ईमहे) जानते अर्थात् मांगते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिस क्रिया से पशु बढ़ें उस क्रिया को बड़ाकर सुख को मांगो ॥ ९ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**सुत नो गोषणि धियममृतां वाजसासुत ।**

**वृत्कृणुहि वीतये ॥ १० ॥ १८ ॥**

पदार्थ—हे पशु पालनेवाले विद्वन् आप (नः) हम लोगों के लिये (वीतये) प्राप्ति के अर्थ (गोषणि) गोश्री को दान २ करनेवाली (उत) और (अमृताम्) पौधों का विभाग करनेवाली (उत) और (वाजसासुत) अन्नादि पदार्थों का विभाग करनेवाली (धियम्) उत्तम बुद्धि की (वृत्) मनुष्यों के पुरुष (वृत्कृणुहि) करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—मनुष्यों को गौ, शरव और भन कान्य की बुद्धि के लिये पशुश्री जनों के समान महान् पुरुषार्थ करना योग्य है ॥ १० ॥



फिर कैसे पुण्य से वन प्राप्त करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—  
रथोत्तमं कपर्दिनमीधानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस ( महः ) महान् ( राधसः ) वन के वा ( रायः ) साधारण वन के ( ईधानम् ) ऐश्वर्य्य से युक्त ( रथोत्तमम् ) जिसके बहुत रथ विद्यमान ( कपर्दिनम् ) जो जटाघट ब्रह्मचारी ( सखायम् ) मित्र विद्वान् उसकी ( ईमहे ) याचना करते हैं उसकी सुख भी याचना करो ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्मचारी होकर विद्या पढ़ा हुआ पुण्यार्थी तथा बहुत वन का स्वामी है उसी से विद्या पढ़कर वन को प्राप्त होओ ॥ २ ॥

अब तीन सब को सुख देनेवाला होता है इस विषय को कहते हैं—

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥३॥

पदार्थ—हे ( अजाश्व ) प्रविनाशी बिजुलीरूप घोड़ेवाले ( आवृणो ) विद्या से प्रकाशमान विद्वान् जिससे आप ( वसोः ) वास करानेवाले ( रायः ) वन की ( राशि ) ठेरी के समान वा ( धारा ) प्राप्ति करानेवाली बाणी के समान ( धीवतोधीवतः ) प्राज्ञ प्राज्ञ के ( सखा ) मित्र ( अशि ) हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्राज्ञ पुण्यो के मित्र, पदार्थ विद्याओं के जानने वाले तथा बनाइय हो वे सब के सुख देनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

फिर किन गुणों से उत्कृष्ट होता है इस विषय को कहते हैं—

पूषणं न्वः जारवमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४॥

पदार्थ—( न्वः ) जो ( स्तुषु ) बहिन के समान वर्तमान उषा का ( जारः ) जीर्ण करानेवाला ( उच्यते ) कहा जाता है उस ( वाजिनम् ) ज्ञान और बल का देने वाला ( अजाश्वम् ) जिसमें बकरी और घोड़े विद्यमान ( पूषणम् ) जो पुष्टि करने वाला है उस आदित्य की हम ( न्वः ) जीघ्र ( उपः, स्तोषाम ) प्रशंसा करें ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे सूर्य रात्रि का निवारण करनेवाला है वैसे ही प्रजाजनों में जारकर्म में वर्तमान मनुष्यो का निवारण करो ॥ ४ ॥

फिर मनुष्य क्या जानें इस विषय को कहते हैं—

मानुदिधिषुमन्वः स्वसुजारः शृणोत नः ।

अतिन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( इन्द्रस्य ) बिजुली के ( अता ) भाता के समान ( मम ) मेरा ( सखा ) मित्र ( नः ) हमलोगों के ( दिधिषुम् ) धारण करनेवाले की ( शृणोतु ) सुने और जो ( स्तुषुः ) भगिनी के समान उषा का ( जारः ) निवारण करनेवाला ( मानु ) माता का धारण करनेवाला है उसको मैं ( अजम् ) कहूँ और उसको सब जानें ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि का मित्र वायु है, और रात्रि का निवारण करनेवाला सूर्य भी है वैसे ही धार्मिक मेरे मित्र और मैं भी उनका मित्र होकर रात्रि के समान वर्तमान अविद्या का हम सब निवारण करें ॥ ५ ॥

फिर मनुष्य क्या जानके किसको प्राप्त होते हैं इस विषय को कहते हैं—

आजासः पूषणं रथे निभृम्मास्ते जनश्रियम् ।

देवं बहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( निभृम्मा ) नित्यसम्बन्ध करनेवाले ( आजासः ) पुष्टिकर्ता सूर्य के किण्वरूप अणु ( पूषणम् ) पुष्टि करनेवाले सूर्य वा ( जन-श्रियम् ) जिसके मनुष्यो की शोभा विद्यमान उस ( देवम् ) दिव्यगुणवाले विद्वान् के ( बिभ्रतः ) धारण अर्थात् पुष्टि करनेवालों और धारण करनेवालों को ( रथे ) रमणीय जगत् में ( आ, बहन्तु ) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ( ते ) वे सर्व बाही हुई वस्तु को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! तुम शरीर और आत्मा की पुष्टि करनेवाले पदार्थों को जानकर और उनसे उपयोग लेकर ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

इस मन्त्र में पूषा और आदित्य के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चपनवी सूक्त और इक्कीसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ बहुवचस्य वदपञ्चानसस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ।

पूषा देवता । १, ४, ५ पायत्री । २, ३ निबृद्गायत्री छन्दः । वदः

स्वरः । ६ स्वरानुष्टुप्छन्दः । ऋषयः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले छपनवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किसको किसके लिए क्या उपदेश करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

य एनमादिदेवति कर्म्मादिति पषणम् । न तेन देव आदिशे ॥१॥

पदार्थ—( यः ) जो ( कर्म्मात् ) कर्म्म करमन्हा नामक अर्थ को जाने वाला ( देवः ) विद्वान् ( पषम् ) बिजुली आदि कपवाले ( पूषणम् ) पुष्टि करने वाले को ( आदिदेवति ) सब ओर से अच्छे प्रकार उपदेश करता है ( इति ) इस प्रकार ( तेन ) उसके साथ मैं अव्यथा ( न, आदिशे ) नहीं सब ओर से प्रशंसा करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सत्य का उपदेश करते हैं वे सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

फिर वह कैसा होता है इस विषय को कहते हैं—

उत वा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्बुधा । इन्द्रो ब्रूषाणि बिभ्रते ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ( बुधा ) युक्त ( सख्या ) मित्र के साथ ( सत्पतिः ) सज्जनो की पालना करनेवाला ( उत ) और ( रथीतमः ) अतीव रथयुक्त ( इन्द्रः ) सूर्य के समान राजा जैसे सूर्य ( ब्रूषाणि ) मेघों को मारता है वैसे ( बिभ्रते ) शत्रुओं को मारता है ( सः ) यह ( वा ) ही कृतकृत्य होता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो सत्य तथा सत्पुरुषों के साथ मित्रता तथा बुद्धियों के साथ उदासीनता करते हैं वे बुद्धियों को निवार कर भेषों का स्वीकार कर सकते हैं ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को कैसा बाधण करना चाहिए इस विषय को कहते हैं—

उतादः पुरुषे गवि श्ररंशुक्रं हिरण्यस्य । न्यैरयद्रुधीतमः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( रथीतमः ) अतीव रथादि पदार्थों से युक्त ( श्ररः ) वीर पुरुष ( अश्वः ) उस ( हिरण्यस्य ) सुवर्णादि युक्त वा तेजोमय ( शक्रम् ) शक्र की ( नि, श्ररंशुक्रं ) निरन्तर प्रेरित करे वह ( उत ) निश्चय से ( पुरुषे ) कठोर व्यवहार में और ( गवि ) वाणी में नहीं प्रवृत्त हो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य कठोर भाषण को छोड़ कोमल भाषण करता है वह सदा आनन्दी होता है ॥ ३ ॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को अपने कर्णों में कहते हैं—

यदद्य त्वां पुरुष्टुत ब्रवाम दक्ष मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४॥

पदार्थ—हे ( पुरुष्टुत ) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त ( दक्ष ) दुःख को मष्ट करनेवाले ( मन्तुमः ) प्रशस्तविज्ञानयुक्त ( अद्य ) आज हम ( मत् ) जिस ज्ञान को ( त्वा ) तुझको ( ब्रवाम ) कहें वह तू ( नः ) हमारे लिये ( तत् ) उस ( मन्म ) विज्ञान को ( सु, साधय ) अच्छे प्रकार सिद्ध कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मनुष्यो को सर्वदा सन्मुख वा अन्यत्र सत्य ही कहना चाहिये जिससे सत्य ज्ञान सर्वत्र बड़े ॥ ४ ॥

इमं च नो गुवेषणं सातये सीषधो गुणम् । आरात्पूषसि भूतः ॥५॥

पदार्थ—हे ( पूषधः ) पुष्टि करनेवाले जिससे आप ( आरात् ) समीप वा दूर से ( भूतः ) सुने हुए ( अति ) हो इससे ( सातये ) सविभाग करने के लिये ( नः ) हमारे ( इमम् ) इस ( गुवेषणम् ) बारीकी भाँति पदार्थों की प्रेरणा करनेवाले को तथा ( पूषधः ) अन्य पदार्थों के समूह को ( च ) भी ( सीषधः ) साधो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जिससे आप आप्त विद्वानों के गुणों से युक्त हैं इससे हम मनुष्यों के सबों को विद्वान् करो ॥ ५ ॥

फिर सब को विद्वानों के लिए क्या इच्छा करनी चाहिए इस विषय को अपने कर्णों में कहते हैं—

आ तें स्वस्तिमीमह आरेअवाहृपावसुम् ।

अद्या च सर्वतातये अथ सर्वतातये ॥ ६ ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ( सर्वतातये ) सम्पूर्ण सुख सिद्ध करनेवाले यज्ञ के लिये ( ते ) तेरे लिये ( अद्या ) आज ( च ) और ( अथः ) आगामी दिन ( च ) भी ( सर्वतातये ) सर्वसुख करनेवाले और पदार्थ के लिये ( आरेअवाहृपावसुम् ) जिसमें पाप दूर पड़े तथा ( उपावसुम् ) वा समीप वन आदि पदार्थ विद्यमान उस ( स्वस्तिम् ) सुख को हम ( आ, ईमहे ) अच्छे प्रकार मँगते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जिससे आप पापाचरण से भ्रमण तथा सब के कल्याण करनेवाले हैं इससे आपके लिये सदैव सुख की इच्छा हम लोग करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में उपदेशक, ओता और पूषा शब्द के अर्थ का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छपनवाँ सूक्त और बाईसवाँ वर्ण समाप्त हुआ ॥



अथ बहुवचस्य सत्यपञ्चाशत्सप्तस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्र-

पूषणी देवता । १, ६ विराद्गायत्री । २, ३ निबृद्गायत्री । ४, ५ पायत्री

छन्दः । वदः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले सत्तावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किसके साथ मित्रता करनी चाहिए इस विषय का वर्णन करते हैं—

इन्द्रा न पूषणा न्यं सुरुयाय स्वस्त्य । हुवेम वावसावये ॥१॥



स्वरः । ५ उच्चैः कृतः । आश्रयः स्वरः ॥

अब वस श्रद्धा वाले उमसकों सुक्त का अंतरण है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करके बलिष्ठ हों इस विषय को कहते हैं—

**प्र तु वीचा सुतेषु वा वीर्याभ्यानि युक्थुः ।**

**हुतासौ वा पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको ( युवम् ) तुम दोनों ( तनि ) जिन ( सुतेषु ) उत्पन्न हुए पदार्थों में ( वीर्या ) पराक्रमों को ( युक्थुः ) किया करते हो उनसे ( वा ) तुम दोनों के जो ( देवशत्रवः ) विद्वानों से द्वेष करनेवाले शत्रु ( हुतासः ) नष्ट हो और तुम दोनों बहुत समय तक ( जीवथः ) जीवते हो यह ( वा ) तुम दोनों को मैं ( तु ) यीश्व ( प्र, बोधा ) उपदेश देता हूँ जिससे तुम दोनों के ( पितरः ) पालनेवाले भी ऐसा ( वा ) तुम दोनों को उपदेश दें ॥१॥

भाषार्थ—जो मनुष्य उत्पन्न हुए मनुष्यों में पराक्रम की उत्पत्ति करने हैं उन के शत्रु विलय (नाश) को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर अध्यापक और उपदेशक कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

**बलिस्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।**

**सुमानो वा अनिता भ्रातरा युवं यमाविदेहमातरा ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) पवन और अग्नि के तुल्य राजप्रजाजनों को ( वा ) तुम दोनों का ( पनिष्ठः ) अतीव प्रशंसित ( बद्ध ) सत्य ( महिमा ) प्रताप वा ( वा ) तुम दोनों का ( सुमानः ) तुल्य ( अनिता ) उत्पादन करनेवाला पिता ( इदेहमातरा ) यहाँ यहाँ जिनकी माता वे ( यन्त्री ) नियन्ता अर्थात् गृहस्थी के बलानेवाले ( भ्रातरा ) भाई वर्तमान हैं उनको ( इत्या ) इस प्रकार से ( युवम् ) तुम ( आ, जीवथ ) जिलाते हो ॥२॥

भाषार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक बिजुली और सूर्य के तुल्य विद्याओं में व्याप्त तथा परोपकारी हैं वे सत्य महिमावाले होते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् जन क्या जानकर कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

**ओक्किवासा सुते सखा अरवा ससो हवामहे ।**

**इन्द्रा न्वग्नी अर्बसुह वृष्णिनां युवं देवा हवामहे ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों जैसे ( देवा ) विद्वान् ( वयम् ) हम लोग ( अरवा ) रक्षा आदि से ( इह ) इस संसार में ( सुते ) निष्पन्न हुए व्यवहार में ( सखा ) अच्छे प्रकार युक्त ( प्रववाः ) और व्याप्त हुए ( वृष्णिना ) प्रशंसित अस्त्र अस्त्र वाले ( ओक्किवासा ) सज्ज और सम्मन्त्र को प्राप्त हुए ( अर्बसुह ) जैसे दो घोड़े ( आह्वे ) भक्षण करने योग्य वास्तव्य के निमित्त वर्तमान जैसे ( इन्द्राग्नी ) पवन और बिजुली की ( तु ) यीश्व ( हवामहे ) प्रशंसा करते हैं वैसे इनकी तुम भी प्रशंसा करो ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणालङ्कार है। जो विद्वान् जन सदा मिले हुए वायु और बिजुली इन दोनों पदार्थों को जानते हैं वे इस संसार में अद्भुत क्रियाओं को कर सकते हैं ॥३॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

**य इन्द्राग्नी सुतेषु वा स्तवतेषुतावृवा ।**

**जोषवाकं वदतः पञ्जहोषिणा न देवा असथश्चन ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे ( पञ्जहोषिणा ) प्राप्त हुई वाणी वा घोषयुक्त ( श्रुतावृवा ) सत्य बढानवाले ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको ( यः ) जो ( तेषु ) उन ( सुतेषु ) उत्पन्न हुए पदार्थों में ( वा ) तुम दोनों की ( स्तवत् ) प्रशंसा करे वा जो ( देवा ) विद्वान् जन ( अथ ) भी ( न ) नहीं ( असथः ) व्यर्थ वाद करते हैं उस सर्वजन के प्रति तुम दोनों ( जोषवाकम् ) श्रुति करनेवाले वचन ( वदतः ) कहते हो वह सर्वजन भी तुम्हारे प्रति कहे ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणालङ्कार है। हे मनुष्यों! सर्व पदार्थों में प्रविष्ट वायु और बिजुली को जानकर ऐश्वर्य को प्राप्त होकर क्ली असत्य क्रिया और लोक विद्वेपी जनो को जान सबके उपकार के लिये सत्य प्रिय वाक्य सर्वदा कहो ॥४॥

कौन मनुष्य पदार्थविद्या को जानने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्राग्नी को अस्य वा देवो मर्षश्चिकेतति ।**

**विष्णो अश्वां युयुजान इयंत एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥ २५ ॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ( कः ) कौन ( अस्य ) इस जगत् के बीच वर्तमान ( मर्षः ) मनुष्य ( विष्णुः ) व्याप्त ( अश्वा ) शीघ्रगामी बिजुली आदि पदार्थों को ( समान ) समान ( रथे ) विमान आदि यान में ( युयुजानः ) युक्त करता हुआ ( एकः ) एक विद्वान् ( देवो ) दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्त ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली को ( चिकेतति ) जानता है वह ( वा ) तुम दोनों को ( आ, इयते ) प्राप्त होता है ॥५॥

भाषार्थ—हे विद्वानो! कौन यहाँ पदार्थविद्या का जाननेवाला, विमान आदि यानों का निर्माण करनेवाला शीघ्रगामी हो, इसका उत्तर पीछे दिया यह तुम सुनो ॥५॥

बिजुली का जानने वाला क्या कर सकता है इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वमात्पुहतीभ्यः ।**

**द्विती श्रियो जिहया वाक्कुचरत्त्रिभ्यस्तपदा न्यक्रमीत् ॥ ६ ॥**

पदार्थ—जो ( जिहया ) वाणी से ( वाक्कुच ) निरन्तर कहता है और जो ( इयम् ) यह ( अपात् ) पराहित ( पूर्वा ) पूर्ण वा अग्रस्थ ( पृहतीभ्यः ) पैरों से की हुई गतियों से ( त्रिभ्यः ) त्रि के तुल्य मुख्य वचन को ( द्विती ) स्थाप कर बिजुली ( वा, अगात् ) प्राप्त होती है तथा ( त्रिभ्यः ) बाकाश और प्रकाश को छोड़ कर सब भूमि आदि पदार्थ रूपी ( पदा ) स्थानों को ( नि, अक्रीत् ) क्रम क्रम से पहुँचती और शीघ्र ( चरत् ) चलती है इसने ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली को जानता है वही मनुष्य बिजुली की विद्या को जाननेवाला होता है ॥६॥

भाषार्थ—हे विद्वानो! आप यदि बिजुली की विद्या को अच्छे प्रकार ग्रहण करो तो सब यानों से शीघ्र जाने को तथा और काम सिद्ध कर सकते हो ॥६॥

कौन विजयी होते हैं इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो यन्वानि बाह्वोः ।**

**मा नो अस्मिन्महाघने परा वक्तुं गविष्ठि ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यों जो ( नरः ) नायक मनुष्य ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली को ( आ, तन्वते ) विस्तारते हैं और ( बाह्वोः ) भुजाओं में ( हि ) ही ( यन्वानि ) वन्यों को धारण कर ( अस्मिन् ) इस ( महाघने ) सप्ताम में हम सब को विस्तारते हैं और ( गविष्ठि ) किरणों की जिनमें मिलावट है उन क्रियाओं में प्रवीण होते हुए जैसे वायु और बिजुली ( नः ) हम लोगों को ( मा, परा, वक्तुम् ) मत छोड़ें वैसे करते हैं उनको हम लोग मिलें ॥७॥

भाषार्थ—जो राजा प्रजाजन बिजुली आदि से प्राप्तेयादि अस्त्रों को बनाय सप्ताम के जीतनेवाले होते हैं वे इस सप्ताम में राज्येश्वर्य से सुख बढा सकते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् जन किस किस से बिजुली का ग्रहण करें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्राग्नी तपन्ति माधा अर्यो अरांतयः ।**

**अप देवास्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे सभा सेनाधीशो जो ( अरांतयः ) मनुजन ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली को ( तपन्ति ) तपाते हैं उनके ( देवांसि ) देवयुक्त कामों को ( अप, कुतम् ) नष्ट करो और ( सूर्यात् ) सवितुमण्डल से ( अधि ) ऊपर जानेवाली बिजुली को ( आ, युयुतम् ) बलवत् करो। हे राजन् ( अर्यः ) स्वामी आप इन शिल्पीजनों को ( मा, अथाः ) मत मारो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे राजसहित राजप्रजा जनो! जो आप लोग सूर्यादिकों से बिजुली ग्रहण करना जानो तो मनुजनों को जीतकर देवीजनों के दूर करने की समय होमो ॥ ८ ॥

कौन उत्तम धन को प्राप्त होता है इस विषय को अपने मन्त्र में कहते हैं—

**इन्द्राग्नी युवोरपि वसुं दिव्यानि पार्थिवा ।**

**आ न इह प्र बन्धतं रुवि विभ्रायुपोषसम् ॥ ९ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के समान सभा सेनाधीशो तुम यदि ( इह ) यहाँ ( नः ) हमारी ( विववायुपोषसम् ) समस्त धातु के पुष्ट करने वाले ( रयिम् ) धन को ( प्र, आ, यच्छतम् ) अच्छे प्रकार देवों तो ( युवोः ) तुम्हारे ( अपि ) भी ( विव्यानि ) अतीव उत्तम ( पार्थिवा ) पृथिवी में उत्पन्न हुए ( वसु ) धन आधीन हो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यों! जो सभा सेनापति बिजुली की विद्या की जानकर तुम्हारे निम्ने लेते हैं वे पूर्ण धातु करनेवाले धर्म से प्राप्त समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

मनुष्य क्या करके बिजुली की विद्या जानें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमैर्मिहवनभुता ।**

**विश्वामिर्गामिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥ २६ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के समान पदार्थों को जानते हुए ( उक्थवाहसा ) प्रशंसित विद्या की प्राप्ति कराने और ( हवनभुता ) हवनों को पुनने वाला ( स्तोमैर्मिः ) प्रशंसाओं से और ( विश्वामिः ) समस्त ( पीतये ) विद्या और उत्तम शिष्यायुक्त वासियों के साथ ( अस्व ) इस ( सोमस्य ) गहौपधियों के रस के ( पीतये ) पीने को ( आ, वसम् ) आओ ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्प्रेषणालङ्कार है। हे बिजुली की विद्या को जाननेयोग्य होते हैं जो विद्वानों से विद्या पाने को प्रयत्न करते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्त में इन्द्र और अग्नि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के धर्म की इससे पूर्व सूक्त के धर्म के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह उनसठवाँ सूक्त और छठीसवीं वर्ण सप्तम्य सूक्त ॥

यद्यपि—हे अनुग्रही ! तुम जो ( कः ) हमारे लिये ( बाजबली ) प्रशस्त विद्यानयक ( इन्द्रः ) सम्पादि यद्यपि श्रीर ( बासु ) श्रीप्रणामी ( अर्बत ) पाँकों को ( विपुल ) पूर्ण करते हैं ( ता ) उव ( इन्द्र ) विजुली रूप अग्नि ( अग्नि, अ )



और प्रसिद्ध धर्म को ( जोड़कर ) विमान आदि यानों को बहाने के लिये संग्रह करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम बिजुली आदि पदार्थों से विमान आदि यानों को बलाकर इच्छाओं को पूर्ण करो ॥ १२ ॥

फिर शिल्पीजन उनसे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**उमा वामिन्द्राग्नी आहुवर्ष्या उमा राक्षसः सह मादुष्यै ।**

**उमा द्वाताराविषा रयीणामुमा बाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥**

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के अध्यापक और उपदेश करनेवाले जैसे ( वाम् ) तुम्हारे समीप स्थिर होकर ( आहुवर्ष्यै ) आह्वान करने को ( उमा ) दोनों ( इन्द्राग्नी ) सूर्य और बिजुली को ( राक्षसः ) बन सम्बन्धी ( आहुवर्ष्यै ) आनन्द देने को ( उमा ) दोनों को ( सह ) एक साथ ( उमा ) और दोनों को ( इष्टावृ ) अन्नादि पदार्थों के वा ( रयीणाम् ) घनादि पदार्थों के ( द्वातारै ) देनेवाले तथा ( उमा ) दोनों को ( बाजस्य ) विमान वा संघाम के ( सातये ) संविभाग के लिये मैं ( हुवे ) स्वीकार करता हूँ वैसे ही ( वाम् ) तुम दोनों को इस विद्या का बोध कराऊ ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य वायु और बिजुली को यथावत् ज्ञान के कार्यों में उनका अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे श्रीपति होते हैं ॥ १३ ॥

फिर मनुष्यों को किन के साथ मित्रता करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**आ नो मय्यैमिरक्ष्यैर्बसुयैर्हृष गच्छतम् ।**

**सखायौ देवौ सखायं शम्भुर्देवाग्रौ ता हवामहे ॥ १४ ॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ( इन्द्राग्नी ) सूर्य और बिजुली के समान वर्तमान वा शम्भुवा सुख की भावना करानेवाले ( देवौ ) विद्वान् ( सखायौ ) मित्र ( न ) हम लोगों को ( सखाय ) मित्रता के लिये ( मय्यैमि ) गौ वृत्त आदि पदार्थ ( अक्षयैः ) अन्नवादिकों में हुए गुणों और ( बसुयैः ) वनादिकों में हुए सुखों के साथ वर्तमान तुम दोनों को हम लोग ( हवामहे ) बुलाते हैं ( ता ) वे तुम दोनों हम लोगों के ( उष, आ, गच्छतम् ) समीप आओ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकस्तुतोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों के मित्र होकर पदार्थविद्या सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे अवश्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

फिर वे दोनों क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।**

**वीतं हव्यान्या गतं पितृतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥ २९ ॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्राग्नी ) वायु और बिजुली के समान वर्तमान अध्यापक और उपदेशको तुम दोनों ( सुन्वतः ) पदार्थविद्या से बहुत पदार्थों को उत्पन्न करते हुए ( यजमानस्य ) शुभ गुण देनेवाले मेरे ( हवम् ) पद विषय को ( शृणुतम् ) सुनो और ( हव्यानि ) उत्तम पदार्थों को ( वीतम् ) प्राप्त होओ वा व्याप्त होओ उनके समीप ( आ, गतम् ) आओ और ( सोम्यम् ) शान्ति नीतमता के जो योग्य है उस ( मधु ) मधुरादि युक्त रस को ( पिबतम् ) पिबो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—मैं मनुष्यों को चाहिये कि आमन्त्रण से विद्वानों को बुलाकर इनका सत्कार कर इनसे अपनी विद्या की परीक्षा कराय प्रबिक विद्या ग्रहण करें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में इन्द्र और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह साठवां सूक्त और उन्तीसवां वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ अष्टावक्रस्यैकवर्षितमस्य सूक्तस्य आर्हत्पत्य ऋषिः । सरस्वती देवता ।

१, १३ निचुजगती । २ अगती । ३ विराड्जगती छन्दः । निवाहः स्वरः ।

४, ६, ११, १२ निचुजगती । ५, ६, १० विराड् गायत्री । ७, ८ गायत्री छन्दः । वज्र स्वरः । १४ पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब चौदह ऋचावाले एकसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में यह बारीकी देती है इस विषय को कहते हैं—

**इयमददाहमसमृणुष्युतं दिवोदासं वध्रयवायं दाशुषं ।**

**वा शश्वन्तमाचुखादावसं पृणि ता तं द्वात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥**

पदार्थ—हे ( सरस्वति ) विदुषी ( वा ) जो ( इयम् ) यह ( वध्रयवाय ) बढ़ानेवाले घोड़ों से युक्त ( दाशुषं ) दानशील के लिये ( रभसम् ) बैग ( आचुख-तम् ) छूटने से छूटे ( विचोवातम् ) विद्या प्रकाश के देनेवाले को ( अचुखत् ) लेती है तथा ( शश्वन्तम् ) अन्नादि वेदविद्याविषय जो कि ( अचुखत् ) रसक तथा ( पृणिम् ) प्रशसनीय है उसको ( आचुखाद ) स्थिर करती है वह ( ते ) आपके ( तविषा ) बल से ( ता ) उन ( द्वात्राणि ) दानों को देती है यह जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो स्त्री विद्या शिष्यायुक्त वाणी को ग्रहण करती है वह अन्नादिभूत वेदविद्या को जानने योग्य होती है वह जिसके साथ विवाह करे उसका अहोभाग्य होता है यह जानने योग्य है ॥ १ ॥

फिर यह क्या करती है इस विषय को उनके मन्त्र में कहते हैं—

**इयं शुभ्यैर्भिर्विसुखाहवाक्यसाधु गिरौषां तविषेभिर्हृमिभिः ।**

**पारावतग्रीमवसे सुवृत्तिमिः सरस्वतीमा विवासेम धीमिभिः ॥ २ ॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो ( इयम् ) यह ( शुभ्यैर्भिः ) बलों से ( विसुखाहवा ) कमल के तन्तु को खोदने वाले के समान ( तविषेभिः ) बलों और ( हृमिभिः ) तरङ्गों से ( गिरौषां ) मेघों के ( साधु ) शिखर को ( अचुखत् ) भङ्ग करती है उस ( पारावतग्रीम् ) धारधार को नष्ट करनेवाली ( सरस्वतीम् ) वेगवती नदी को ( धीमिभिः ) धारण और ( सुवृत्तिमिः ) छिन्नभिन्न करनेवाली क्रियाओं से ( अचुखत् ) रक्षा के लिये जैसे हम लोग ( आ, विवासेम ) सेवें वैसे तुम भी इसको सदा सेवो ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कमलनाल तन्तुओं को खोदने वाला कमलनाल तन्तुओं को प्राप्त होता है वैसे ही पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम विद्या को प्राप्त होते हैं और जैसे बिजुली मेघ के अंगों को छिन्न भिन्न करती है वैसे ही सुन्दर शिक्षित वाणी अधिका के अंगों और संघों को नाश करती है ॥ २ ॥

**सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य वृसवरप मायिनः ।**

**उत क्षितिम्योऽवनीरविन्दो विश्वम्यो अक्षवो वाजिनोवति ॥ ३ ॥**

पदार्थ—हे ( वाजिनोवति ) विज्ञान, क्रिया और ( सरस्वति ) विद्यायुक्त स्त्री तू ( देवनिदो ) जो विद्वानों की निन्दा करते हैं उनको ( नि, बर्हय ) निकाल ( उत ) और ( विश्वस्य ) समग्र ( वृसवरप ) अधिका क्षेत्र करनेवाले ( मायिनः ) प्रशसित बुद्धियुक्त विद्वान् की ( प्रजां ) प्रजा को ( अविन्दः ) प्राप्त हो तथा ( क्षिति-म्बः ) पृथिवियों से ( अक्षवो ) रक्षा करनेवाली भूमियों को प्राप्त हो और ( वृसवः ) इन भूमि के भीतरी देशों से ( विश्वम् ) जल को ( अक्षवः ) बुझाया निकालो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—वही पठिता स्त्री श्रेष्ठ है जो विद्वान् और विद्या के निन्दकों को निकाल विद्या के प्रशसकों ( बड़ाई करनेवालों ) का सत्कार करती और जो भूगर्भाधि विद्या जानने वाली समस्त प्रजा को विद्याशिक्षण करती है ॥ ३ ॥

फिर वह कैसी रक्षा करने वाली है इस विषय को कहते हैं—

**प्र जां देवौ सरस्वती बाजैर्भिर्वाजिनोवति । चीनार्मविश्ववतु ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे सन्तानो जो ( देवौ ) विदुषी ( बाजैः ) अन्नादिकों के साथ ( वाजिनोवती ) प्रशस्तविज्ञान वा क्रिया से युक्त वा ( सरस्वती ) विज्ञानयुक्त वाणी से युक्त ( न ) हमारी ( चीनार्म् ) बुद्धियों की ( अविशी ) रक्षा करनेवाली ( प्र-वतु ) अच्छे प्रकार रक्षा करे उसको तुम स्वीकार करो ॥ ४ ॥

भाषार्थ—मानाजनों को चाहिये कि अपने सन्तानों को वास्तवस्था में अच्छी शिक्षा देकर विद्या से विद्वान् कर उनके साथ अनुल सुख भोगें ॥ ४ ॥

फिर वह किसके सुख क्या करती है इस विषय को कहते हैं—

**यस्त्वा देवि सरस्वत्युपवृत्ते धर्मे हिते । इन्द्रं न हृष्यत्य्ये ॥ ५ ॥ ३० ॥**

पदार्थ—हे ( देवि ) विदुषी ( सरस्वति ) विज्ञानयुक्ता भार्या ( यः ) जो ( त्वा ) तुझे ( हृष्यत्य्ये ) मेघ के हिसन में ( इन्द्रम् ) बिजुली के ( न ) समान ( हिते ) सुख करनेवाले ( धर्मे ) इन्द्र के निमित्त ( उपवृत्ते ) कहता है उस विद्वान् पति की तू सेवा कर ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे पुरुषो ! जैसे पतिव्रता विदुषी स्त्रियां तुम लोगों को सत्य ग्रहण कराकर प्रिय वचन कहती हैं वैसे इनके साथ तुम भी हित करो ॥ ५ ॥

फिर वह क्या करती है इस विषय को कहते हैं—

**स्वं देवि सरस्वत्यवा बाजैश्च वाजिनि । रदो पूषे नः सुनिम् ॥ ६ ॥**

पदार्थ—हे ( देवि ) कामना करनेवाली ( वाजिनि ) प्रशस्तविज्ञानयुक्त ( सरस्वति ) विदुषी स्त्री ( त्वम् ) तू ( नः ) हमारी ( सुनिम् ) सत्य और असत्य के विभाग करनेवाली बुद्धि को ( वाजैश्च ) प्राप्तव्य पदार्थों में ( पूषेन ) भूमि के समान ( अक्ष ) पालो और ( रवा ) विशेषता से लिखो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे बरानने सुन्दर मुखवाली ! तुम पृथिवी के समान सबका धारण करो और प्रजा देखो ॥ ६ ॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं—

**उ स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्चनिः । वृत्रघ्नी वहि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( हिरण्यवर्चनिः ) जिसमें विद्याव्यवहार का वर्तमान है वह ( घोरा ) दुष्टों को दुःख देनेवाली ( वृत्रघ्नी ) श्रेष्ठ की हनने वाली बिजुली के समान ( सरस्वती ) विज्ञान धरी हुई वाणी ( नः ) हम लोगों को सुखी करती ( स्या ) वह ( उत ) भी हमारी ( सुष्टुतिम् ) सुन्दर प्रशंसा की ( वहि ) कामना करती है ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो बिजुली की चमक वमक के समान सुन्दर प्रीति वाक्सी विदुषी स्त्री घर के कार्यों की प्रकाश करनेवाली तथा सन्तानों की विद्या की कामना करती है वही यहां सौभाग्यवती होती है ॥ ७ ॥

फिर वह वाणी कैसी है इस विषय को कहते हैं—

**यस्यां जन्तो अहं तस्मैवर्चसिष्णुरर्णवः । अमुष्यरति रोर्ध्वम् ॥ ८ ॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( अन्धः ) जिस बाणी का ( अन्धः ) अनुष्ठित सरस ( अन्धः ) प्रकाश वा ( अन्धः ) जाने वाले ( अन्धः ) निःसीम ( अन्धः ) समुद्र के मुख्य भागों ( अन्धः ) निरंतर सज्ज करता वा ( अन्धः ) फैलनेवाला ( अन्धः ) प्राप्य होता है उसको तुम जानो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसका आकाश है उसका ही शब्द अनन्त है जैसे समुद्र में जल पूरा है वैसे आकाश में शब्द है वह जानो ॥ ८ ॥

फिर वह कैसी है इस विषय को अपने मन में कहते हैं—

सा नो विद्या अति विषः स्वसृष्ट्या श्रुतावरी ।

अतर्हैव सत्यः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( सा ) वह ( श्रुतावरी ) उषा, प्रभातवेला ( नः ) हमारे ( विद्या ) समस्त ( विषः ) देवी जनों को ( अति ) अतिशय ( अन्धः ) कराती है और ( सूर्यः ) सूर्य ( अन्धः ) दिनों को जैसे ( अन्धः ) व्याप्त होता जैसे ( अन्धः ) और ( स्वसृष्ट्या ) अग्नियों के समान वर्तमान मन विगत प्रभातवेलाओं का संयोग कराती है ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमास्वरूप है । हे मनुष्यो ! जो बाणी अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई सुख और अन्यथा कही हुई दुःख प्रदान करती है । जो सत्यवादी है वे ही विद्या कहना नहीं चाहते जैसे सूर्य समस्त प्रतिमान् ज्यों को प्रकाशित करता है वैसे ही यह बाणी सब व्यवहारों को प्रकाशित करती है ॥ ९ ॥

उत नः प्रिया प्रियास्तु ससर्वसा सुजुष्टा ।

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( नः ) हमारे ( सरस्वती ) वह सरस्वती जिसको बहुत अन्तरिक्ष का सम्बन्ध है तथा ( प्रियास्तु ) सुख देनेवाली प्रिया वा स्त्रियों में ( प्रिया ) मनोहर ( सप्तस्वरा ) जिसके सात धर्मात् पात्र प्राण मन और बुद्धि बहिन के समान वर्तमान तथा ( सुजुष्टा ) अच्छे प्रकार सेवित की हुई ( उत ) और ( स्तोम्या ) स्तुति करने योग्य ( भूत् ) हो वैसे तुम्हारी भी हो ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सब ओर से शुद्धि करनेवाली सत्य बाणी को जानते हैं वे ही प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

फिर वह कैसी है और क्या करती है इस विषय को अपने मन में कहते हैं—

आपृषुषो पाषिबान्युरजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( आपृषुषो ) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध हुए वा विदित हुए ( उत ) बहुत ( उत ) परमाणु आदि पदार्थों को तथा ( अन्तरिक्षम् ) आकाश को ( आपृषुषी ) सब ओर से व्याप्त ( सरस्वती ) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त बाणी हम लोगों को ( निदः ) निन्दको से ( पातु ) बचावे ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बाणी सर्वत्र आकाश में व्याप्त है उसका जान के इससे किसी की भी निन्दा धर्मात् गुणों में दोषोपपन्न और दोषों में गुणोपपन्न कभी न करो ॥ ११ ॥

त्रिष्वस्था सप्तधातः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजैवाजै हव्या भूत् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( त्रिष्वस्था ) तीन समान स्थानों में स्थित ( सप्त-धातुः ) सात प्राण आदि जिसकी धारणा करनेवाले ( पञ्च ) पांच प्राणों से ( जातः ) प्रसिद्ध ( वाजैवाजै ) प्रत्येक व्यवहार वा प्रत्येक सप्राण में ( हव्या ) उच्चारण करने

योग्य ( वर्धयन्ती ) वृद्धि को प्राप्त कराती ( भूत् ) हो उसका युक्ति के साथ अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् जन बाणी के योग को जानते हैं तो क्या क्या बढ़ा नहीं सकते हैं ॥ १२ ॥

प्र या महिमा महिनासु वेकिते धुम्नेमिरन्या अपसामपस्तमा ।

रथैव बहुती विम्बने क्तोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( या ) जो ( महिमा ) बहुपन्न से ( महिना ) बड़ी ( अपसाम् ) कर्म करनेवालों में ( अपस्तमा ) अतीव कर्म करनेवाली और ( रथैव ) रथणीय आकाश के समान ( बहुती ) बढ़ती हुई ( विम्बने ) विभूत्व के लिये ( चिकितुषा ) समझानेवाली ( उपस्तुत्या ) जिससे कि समीप स्तुति करता उससे ( क्तः ) जगदीश्वर ने उत्पन्न की हुई ( सरस्वती ) जिसमें विज्ञान वर्तमान वह बाणी ( धुम्नेभिः ) प्रकाश जो वक्ररूप है उनसे ( अन्धः ) प्रत्येक प्राणी के प्रति भिन्न २ है वर्धात् नाना प्रकार बाणी है ( अन्धः ) उनमें जो ( प्र, वेकिते ) विज्ञान कराती उसको यथावत् जानके सत्य बाणी का अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! विद्या, सुशिक्षा, सत्संग, सत्यभाषण और योगाभ्यासादिको से निष्पन्न हुई बाणी यह व्याप्त वा समर्थ है उसको तुम जानो ॥ १३ ॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फुरीः पयसा मा न आ धक् ।

जुषस्व नः सूर्या देव्या च मा त्वस्त्रेभ्योप्यर्यानि गन्म ॥ १४ ॥

१२ ॥ ८ ॥ ४ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे ( सरस्वती ) बहुत विद्या से युक्त विदुषी स्त्री जो तू ( नः ) हमारे ( वस्यः ) अतीव छोड़ने योग्य वस्त्र आदि को ( अभि, नेषि ) सम्मुख आती है तो तू सुशिक्षित बाणी से हीन हम लोगों को ( मा ) मत ( अप, स्फुरी ) अक्ल करे किन्तु बुद्धिबुद्ध करे और ( पयसा ) विशेष रस से अलग कर ( नः ) हम लोगों को ( मा, मा, वक् ) मत दाह दे और ( देव्या ) समीप प्रवेश करने योग्य ( सूर्या ) मित्रपन्न से ( च ) जी ( नः ) हम लोगों को ( सुवस्त्रे ) सेवे तथा ( त्वत् ) तेरे ( अर्यानि ) अरमणीय ( अस्त्राणि ) निवासियों को हम लोग ( मा, वस्य ) मत प्राप्त हो इससे तू सत्कार करने योग्य है ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विदुषी स्त्रियाँ—जैसे विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त बाणी सर्वत्र अच्छे प्रकार रखाकर सर्वथा वृद्धि देती है या जो सत्यभाषण आदि से दुःख को नहीं प्राप्त कराती उसके तुल्य वर्तमान हैं वे हम लोगों को शोकादिको से अलग कर मित्रता से अच्छे प्रकार सेवन करती और सर्वदैव आनन्दित कराती हैं ॥ १४ ॥

इस सूक्त में बाणी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे

पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह भीमस्वरमहंस परिव्राजकाचार्य परमचिदा श्रीमाध्व विरजामन्त्र सरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमाध्व दयानन्द सरस्वती स्वामी से विरचित सुप्रसादयुक्त मार्गभाषा से विस्तृतिष्ट शब्देभ्यो में चतुर्थ अष्टक में अष्टम अध्याय और वस्तीसर्वा वगैरे चतुर्थ अष्टक भी तथा छठे अष्टक में पञ्चम अध्याय और एकलठवाँ सूक्त भी समाप्त हुआ ॥

॥



अथर्ववेद पठ्यमाष्टकारम् ॥

विश्वानि देव सवितरुवितानि परां धृष । यद्वा तन्न आ सुव ॥ १ ॥

अथर्ववेदस्य विषयवस्तुस्य सुखाय भरद्वाजो महर्षेण्यः ।  
सवित्री देवते । १, २ भुरिष्यद्वित्तुः । पञ्चमः स्वरः । ३  
विश्वानि विष्णुः । ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० विष्णुः । ११, १२, १३  
विष्णुः । १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००

अब विदुषी और अन्तरिक्ष जैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

स्तुते नरां विदो अस्व प्रसन्नाभिनां हवे वरमायो अर्कः ।

वा सुव बुधा व्युषि ज्यो अन्तान्युषुषुः पर्य क वरासि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ( वरमायो ) स्तुति करता हुआ मैं ( अर्कः ) मन्त्रों से ( वा ) जो ( व्युषि ) विशेष दाह के निमित्त ( अन्तः ) जिनकी किरणें विद्यमान हैं ( प्रसन्नाभिः ) विभाग करनेवाले ( वरा ) भावक ( अन्तः ) व्यापनशील विदुषी और अन्तरिक्ष ( अस्व ) इन ( विदः ) प्रकाश के तथा ( ज्यो ) पृथिवी के ( अन्तः ) समीपस्थ पदार्थों को ( सुव ) बहुत ( वरासि ) उत्तम वस्तुओं को ( वरा ) गीष्म ( परि, व्युषुषः ) अच्छे प्रकार अलग २ करते उनकी ( स्तुते ) स्तुति करता है तथा ( हवे ) कहना करता है वैसे हमकी स्तुति कर सुख भी ग्रहण करो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्तरिक्ष और विद्युत् सर्वाधिकारण और सब पदार्थों के बीच ठहरे हुए वर्तमान हैं उनके बीच बिजुली विभाग करनेवाली और अन्तरिक्ष भाषार वर्तमान है उनके गुणों को सब जानो ॥ १ ॥

फिर वे कौनों कौसे हैं इस विषय को अपने मन में कहते हैं—

ता यद्वा विद्युर्मिश्रकृमाणा रथस्य मातुं रथस्य रजोभिः ॥ १ ॥

युक्तं यद्वा रथस्य मिता विमानापो बन्धान्यसि वायो अजान् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम जो ( विद्युः ) पवित्र गुणों से ( यजुः ) सर्वसंगत व्यवहार को ( आ, बन्धान्या ) आक्रमण करते हुए ( रथस्य ) रथगीत जगत् के ( मातुं ) प्रकाश करनेवाले को ( रजोभिः ) परमायु वा लोकों के साथ ( युक्तं ) बहुत ( बन्धान्या ) अपरिमित ( बन्धान्या ) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को ( विमाना ) निर्माण करनेवाले वा ( वायो ) जल जो ( अजान् ) अन्तरिक्षस्थ हैं उनको और ( अजान् ) प्रकृति पदार्थों को ( वायो ) प्राप्त होने हैं और जिनसे सब ( यजुः ) रचते हैं ( ता ) उनको ( अति ) अत्यन्त प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुम वायु और बिजुली को यथावत् जानो तो अमित आनन्द को प्राप्त होओ ॥ २ ॥

फिर वे कौसे हैं इस विषय को अपने मन में कहते हैं—

ता ह त्पदतिर्यदुरध्रमुप्रेत्या विषं ऊहयुः शब्दद्वयैः ।

अनौजवेमिरिषिरैः शब्दयै परि व्यधिर्द्विषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( यत् ) जो ( उपा ) तेजस्वी वायु और बिजुली ( अहयैः ) महान् वेगादि गुणों से वा ( इषिरैः ) प्राप्त ( अनौजवेभिः ) मनोवैग-  
वानो से ( वायुः ) दानशील ( अहयैः ) मनुष्य के ( त्पत् ) उस ( वति ) मार्ग को तथा ( अहयैः ) असमृद्ध व्यवहार और ( विष ) बुद्धि वा कर्मों को ( अहयैः ) निरन्तर ( ऊहयुः ) चलाते हैं वा ( अहयैः ) सोने को ( व्यधिः ) व्यापक को ( ह ) निश्चय से ( परि ) पहुँचाते हैं ( ता ) उनको ( इत्या ) इस प्रकार के वर्तमान जानकर तुम अच्छे प्रकार प्रयुक्त करो अर्थात् कलायन्त्रों में जोड़ो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जब तुम वायु और बिजुली के गुणों को जानोगे तभी पूर्ण ऐश्वर्य को पाओगे ॥ ३ ॥

फिर वे कौसे हैं इस विषय को अपने मन में कहते हैं—

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्योर्प भूवतो युयुजानसंसी ।

शुभं पृथमिषमूर्जं बहन्ता होता यक्षप्रत्नो अध्रुगुबाना ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( ययुजानस्यो ) वेग वा आकर्षणयुक्त होनेवाले हैं वे ( युयुजान ) संयुक्त होनेवाले वायु बिजुली ( नव्यस ) अतीव नवीन ( जरमाणस्य ) प्रशंसा करनेवाले के ( मन्य ) विज्ञान को ( उप, ब्रूवतः ) पूर्ण करते हैं वा जो ( शुभम् ) उदक ( पृथम् ) अन्य ( इषम् ) इच्छा और ( ऊहम् ) पराक्रम को ( बहन्ता ) पहुँचानेवालों को ( अध्रुग् ) किसी से न डोह करनेवाला ( प्रत्नः ) जिसन पहिले विद्या पढ़ी वह ( होता ) ग्रहण करनेवाला पुरुष ( यक्षत् ) प्राप्त हो ( ता ) उनको तुम भी प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो वायु और बिजुली विज्ञान के विषय, बड़े के समान शीघ्र जानेवाले और सब उत्तम २ पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले हैं उनसे जाहे हुए कार्यों को सिद्ध करो ॥ ४ ॥

ता वल्गु दुस्त्रा पुरुशार्कतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।

या शंसते स्तुवते अम्मविष्ठा नमवतुर्गृते चित्ररातो ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे मैं ( या ) जो ( वल्गु ) अत्युत्तम ( वल्गु ) दुःख को नष्ट करनेवाले ( प्रत्ना ) प्राचीन ( नव्यसा ) अत्यन्त नवीन ( वचसा ) परि-  
भाषण करने योग्य ( पुरुशार्कतमा ) अतीव सामर्थ्यवाले ( चित्ररातो ) जिनसे अवभूत दान होता है ( शंसते ) प्रशंसा करनेवाले ( स्तुवते ) वा प्रशंसा पाये हुए वा ( गृते ) साथ उपदेश करनेवाले के लिये ( अम्मविष्ठा ) अनीव सुख की भावना करानेवाले ( वचसा ) होते हैं ( ता ) उनकी ( आ, विवासे ) सेवा करता हूँ जैसे उनकी तुम भी सेवा करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वायु और बिजुली कायल रूप से सनान और कार्यरूप से मूलन, बहुत शक्तिमान्, वेगादि गुण-  
युक्त, कल्याणकारी वर्तमान हैं उनको यथावत् जानो ॥ ५ ॥

फिर उनसे क्या सिद्ध होता है इस विषय को कहते हैं—

ता मुख्यं विमिरुधः समुद्रात्प्रस्य सनुमूहं रजोभिः ।

अरेणुमिषोर्जनेभिर्जन्ता पतत्रिमिरणीसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो बिजुली और वायु ( विद्युः ) पक्षियों के समान ( अहयैः ) जलों वा ( समुद्रात् ) सागर वा अन्तरिक्ष वा ( अहयैः ) जल के ( उपस्थात् ) समीप स्थित होनेवाले से ( पतत्रिभिः ) गमनशीलों के समान ( अरे-  
णुभिः ) रज जिनमें नहीं उभे ( मोक्षनेभिः ) अनेक योजनों से युक्त ( रजोभिः ) ऐश्वर्यप्रद मार्गों से ( मुख्यं ) बलिष्ठ ( सनुम् ) सन्तान के समान वर्तमान को

( नि, अहयुः ) निरन्तर पहुँचाते और ( युक्तता ) पालना करनेवाले ( अहयुः ) योजने योग्य आनन्द की पालना करते हैं ( ता ) उनको तुम जानो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमासङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो बिजुली और वायु विमान आदि यानों को अन्तरिक्ष में पक्षियों के समान चलानेवाले वेग से पहुँचाते हैं उनको समीपस्थ कर अभीष्ट सुखों को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

फिर उनसे क्या होता है इस विषय को अपने मन में कहते हैं—

वि जघुषा रथ्या पातमहिं धृतं हवै वृषणा वधिमृत्पाः ।

दुशस्यन्ता शुभं पिप्ययुर्गामिति स्ववाना सुसृतिं धुरम्पू ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक सज्जनों ! ( वधिमृत्पाः ) जिसमें बहुत बर्तन विद्यमान उस भूमि वा अन्तरिक्ष के बीच ( जघुषा ) जघमील ( रथ्या ) रथ के लिए हितकारी ( जघुषा ) बर्षा तथा ( वधिमृत्पाः ) बल करानेवाले ( वधिमृत्पाः ) मेघ की ( वि, वातम् ) विशेषता से प्राप्त होते हैं और ( सुसृतिम् ) सुन्दर पति की ( स्ववाना ) जीध्र जानेवाले ( धुरम्पू ) पालना वा धारणकर्ता ( वातम् ) वाणी को ( इति ) इस प्रकार के ( जघुषा ) सोने के लिये ( पिप्ययुः ) बढ़ाते हैं उनके ( वधम् ) विद्या विषयक शब्द को तुम ( अहयम् ) सुनो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विमान आदि को चलाने वा संग्राम में जय कराने वा प्रज्ञा और बल के देन, बर्षा करनेवाले तथा सोने जानने और वाणी के हेतु हैं उनको जान कार्यासिद्धि के लिये अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥ ७ ॥

फिर मनुष्य क्या चारण करें इस विषय को कहते हैं—

यद्रोदसी प्रदिशो अस्ति भूमा हेमो देवानामस मर्त्यत्रा ।

तदादिस्था वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुर्धं दधात ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे ( वसवः ) पृथिवी आदि ( रुद्रियासः ) प्राण वा जीव वा ( आदिस्थाः ) काल के अवयवों के समस्त प्रथम मध्यम और उत्तम विद्वानो ! तुम ( यत् ) जो ( वसवः ) उत्तम प्रकाश के वा ( देवानाम् ) विद्वानों के सम्बन्ध में ( अतः ) और ( वसवः ) मनुष्यों में ( भूमा ) व्यापक ( रुद्रः ) अनादर ( रोषी ) वावा पृथिवी को प्राप्त ( अस्ति ) है और जैसे उक्त प्रकार के विद्वान् जल ( तत् ) उसको ( वसवः ) धारण करते हैं वैसे ( रुद्रोयुजे ) रुद्रों के युक्त करनेवाले के लिये ( तपुः ) सताप और ( वसवम् ) अपराध को धारण करो ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो बहुत सर्वत्र व्याप्त, सब को धारण करने वा सब का नियम करनेवाला है उसको धारण कर और अच्छे प्रकार ध्यान कर सुखी होओ और जो ऐसा नहीं करता है उस पर कठोर दण्ड करो ॥ ८ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय को कहते हैं—

य ई राजानाहुतवा विदधद्रजसो मित्रो वरुणमिषेत्तत् ।

गुम्भीराय रथसे हेतिमस्य द्रोवाय विदधत्सु आनवाप ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! ( य ) जो ( मित्रः ) मित्र वा ( वरुणः ) अनादि-  
गुण युक्त जन ( गुम्भीराय ) गुम्भीर ( आनवाप ) सब ओर से नवीन ( वरुणः ) वरुण के लिये ( विद् ) और ( द्रोवाय ) डोह तथा ( रथसे ) युष्ट आचरणवाले के लिये ( अस्य ) इनके ऊपर ( हेतिम् ) बन्ध को ( रथसः ) और लोकजत के ( अहयुषा ) अहयुषों से ( राजानो ) प्रकाशमान सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य सभासेना-  
पति को ( विदधत् ) विधान करता हुआ ( ईम् ) सब ओर से ( विषेत्तत् ) जानता है उसको तुम उत्साह देओ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जैसे सूर्य चन्द्रमा अहयुषों को बाँट और अन्धकार निवारण कर जगत् को सुखी करते हैं वैसे ही विद्यादि शुभगुणों का प्रचार ससार में अच्छे प्रकार समर्थन, सत्य और सत्य का विभाग और सविज्ञानकार का निवारण कर विद्वान् जन सब को आनन्दित करते हैं ॥ ९ ॥

फिर सभा सेनापति जगत् के उपकार के लिए क्या करें इस विषय को कहते हैं—

अन्तरिक्षैस्तनयाव वृत्तिर्धृमता यातं वृत्ता रथेन ।

सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुगतामपि शीर्षा वृत्तस्य ॥ १० ॥

पदार्थ—जो राजा माग ( अन्तरः ) भिन्न २ ( वृत्तः ) लोकों के भूमने के लिये परिधियों से वर्तमान ( वृत्ता ) प्रकाशमान ( वृत्ता ) जिसमें उत्तम नर विद्यमान उस ( रथेन ) रथगीत विमानादि यान वा ( सनुत्येन ) प्रेरणा करने योग्य के साथ वर्तमान ( त्यजसा ) त्याग के साथ ( मर्त्यस्य ) मनुष्य के ( सनुत्येन ) पुत्र के लिये ( वृत्तिः ) मार्ग को ( आ, वातम् ) प्राप्त होवें और मार्ग का विज्ञान कर ( वनु-  
गताम् ) शोध करने वा वाचावालों के ( शीर्षा ) शिरो को ( अपि ) भी ( वनुगताम् ) धिन्न भिन्न करें उनका सबको सत्कार करना चाहिये ॥ १० ॥

भाषार्थ—यदि सभासेनापति मनुष्य सन्तानों का बह्वचर्य और विद्याभ्यास आदि का प्रवर्धन करें तो सब विद्वान् होकर अनेक उत्तम कार्य करते और रुद्रों तथा शत्रुओं के निवारण को समर्थ हों ॥ १० ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

आ परमामिक्त मध्यमामिनिपुक्षिपत्तमवमामिर्वाह ॥

इहस्य चित् गोमंतो वि प्रवस्य दूरी वर्तं गृणते चित्रासी ॥ ११ ॥





फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उत मं ऋजे पुरंधस्य रुधो सुनीरुहे शतं पैरुके च यका ।

शुण्डो दक्षिणः स्महिष्टीन्द्रा वशासो अभिषाचं शुण्डान् ॥९॥

पदार्थ—जो मनुष्य ( अभिषाचः ) सम्मुख सम्बन्ध करते वा ( वशासः ) धर्म को प्राप्त होते हैं तथा ( पुरंधस्य ) जो पहिले प्राप्त होता उस ( मे ) मेरे ( शुण्डो ) कोमलता से प्रिय ( सुनीरुहे ) सुन्दर सेवने योग्य ( उत ) और ( पैरुके ) पालन करनेवाले व्यवहार में ( रुधो ) छोटी क्रिया ( यका, च ) और उनके फलों को ( शतः ) सुखता करनेवाला ( वात् ) देता है उन ( हिष्टीन्द्राः ) हिरण वाले ( स्महिष्टीन्द्रा ) प्रशंसित दर्शन वाले ( शुण्डान् ) बड़े बड़े ( वशा ) दश बोड़े वा रथों को वा ( इत्यम् ) और सैकड़ों को मैं प्राप्त होऊँ ॥९॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो मेरे वशीभूत, प्रीतिपुक्त, महान् (बड़े बड़े) सहायक होते हैं उनके आधीन मैं भी होऊँ इस प्रकार परस्पर का वशभाव हुए पीछे उत्तम अवस्था काय्य कर सकूँ ॥९॥

फिर राजा और सेनापति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

सं वां शुता नासत्या सहस्राभ्यानां पुरुषन्थां गिरे दात् ।

भरद्वाजाय वीर न गिरे दादुता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०॥

पदार्थ—हे ( पुरुदंससा ) बहुत उत्तम कर्मों वाले ( नासत्या ) अवधायक रहित जो ( वात् ) तुम दोनों का ( पुरुषन्थाः ) बहुत प्रकार का मार्ग ( भरद्वाजान् ) बोड़े वा अग्नि आदि पदार्थों की ( गिरे ) बाणी के लिये ( दात् ) सैकड़ों वा ( सहस्रा ) हजारों प्रकारों को ( स्युः, दात् ) अच्छे प्रकार देता है जो ( भरद्वाजाय ) धारण किया विज्ञान जिम्मे उसके लिये वा ( गिरे ) राजनीतिपुक्त बाणी के लिये सैकड़ों और हजारों प्रकारों को ( वात् ) देता जिससे ( रक्षांसि ) गश्म ( इता ) नष्ट ( स्युः ) हो, हे ( वीर ) वीर उमसे आप दुष्टों को ( न ) शीघ्र मारो ॥१०॥

भाषार्थ—हे राजा और सेनापतियो ! जो धार्मिक ध्यायमे राज्य की पालना करने और शत्रुओं से अपनी सेना की रक्षा करने के लिए यत्न करने उनके लिए अवश्य धन और प्रतिष्ठा निरन्तर करो ॥१०॥

आ वां सुम्ने वरिमन्सुरिभिः ध्याम् ॥११॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजा और सेनापतियो ! जिस प्रकार मैं ( सुरिभिः ) अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वानों के माथ ( वरिषम् ) अतीव श्रेष्ठ ( सुम्ने ) सुख में ( आ, ध्याम् ) सब धोर से होऊँ अर्थात् प्रसिद्ध होऊँ वैसा ( वात् ) आप विज्ञान करो ॥११॥

भाषार्थ—राजा और सेनापतियो को सर्वदा धार्मिक विद्वानों का सत्कार करना चाहिये जिससे यह सब के सुख की उन्नति दिलायें ॥११॥

इस सूक्त में अश्वियों का गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के माथ सगति जाननी चाहिये ॥

बहु ज्ञेयत्वां सूक्त और शोभा वर्ण समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथ बहुवचस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो ब्राह्मणस्य ऋषिः । उवा

हेवता । १, २, ३ विराद्विष्टुप् । ३ विष्टुप् । ४ निबृत्तिविष्टुप् छन्दः ।

श्रेष्ठत स्वरः । ५ पङ्क्तिछन्दः । पञ्चम स्वरः ।

अथ स्त्रियां कंसी श्रेष्ठ होती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

उदुं श्रिय उवसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रशन्तः ।

कणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१२॥

पदार्थ—हे पुरुषों जो स्त्रियां ( रोचमानाः ) दीप्तिमती ( उवसः ) प्रभात वेलाओं के समान वा ( अपाम् ) जलों की ( वशासः ) हिमती अर्थात् कूलों को विदारती हुई ( कर्मयः ) तरङ्गों के ( न ) समान ( श्रिये ) शोभा के लिए ( उत्, अस्थुः ) उठनी है वे ( उ ) ही सुख देने वाली हैं जो ( वस्वी ) वसुओं की यह ( दक्षिणा ) दक्षिणा के समान ( मघोनी ) परमधनयुक्त ( अमृत् ) होती है वह उपा के समान ( उ ) ही ( विश्वा ) समस्त ( सुपथा ) सुभ मार्ग वाले ( सुगानि ) जिनमें सुन्दरता से चलें उन कामों को ( कणोति ) करनी है ॥१२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमाकार है । हे पुरुषो ! जैसे प्रभातवेलायें रश्मि करनेवाली होती हैं वैसी हुई स्त्रियां श्रेष्ठ हैं वा जैसे जलतरंगें तटों को छिन्नभिन्न करती हैं वैसे ही जो स्त्रियां दुःखों को छिन्नभिन्न करती हैं और जो दिन के तुल्य ममस्त गृहकृत्यां को प्रकाशित करती हैं वे ही सर्वदा मंगलकारिणी होती हैं ॥१२॥

फिर वह कंसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

मुद्रा ददृक्ष उर्विया वि मास्युते शोचिर्मानवो धामपसन् ।

आविर्वधः कृणुषे शुभममानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २॥

पदार्थ—हे ( उवः ) प्रभातवेला के समान वर्तमान ( देवि ) विदुषी जिससे तू ( भद्रा ) कल्याणकारिणी ( वदुषे ) देखी जाती है तथा ( उर्विया ) बहुकृप हुई घर के कामों का ( उत्, वि, भासि ) विशेषकर उत्तम प्रकाश करती है जिस

( ते ) तेरी ( शोचिः ) उत्तम नीति का प्रकाश ( मानवः ) किरणों जैसे ( भावः ) प्रस्तरिण को ( अपसन् ) जाती प्राप्त होती वैसे ( वसः ) छाती का ( भासिः, कृणुषे ) प्रकाश करती है वा ( महोभिः ) महान् शुभ गुणकर्म स्वभावों से ( शुभममाना ) सुन्दर शोभायुक्त और ( रोचमाना ) विद्या और विनय से प्रकाशित होती हुई सुख देती है इससे अच्छे प्रकार सत्कार करने योग्य है ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । हे स्त्रियो ! तुम चतुरता से सब पति आदि को सतोष देकर, घर के कामों को यथावत् अनुष्ठान कर, नति-विध्यासक्ति को छोड़ और सुन्दर शोभायुक्त होकर सबै पुरुषार्थ से कर्मपुक्त कामों को सूर्य के समान प्रकाशित करो ॥२॥

फिर वे कंसी हों इस विषय को कहते हैं—

बहन्ति सीमरुषासो रशन्तो गावः सुमनाह्विष्या प्रथानास् ।

अपैजते शूरो अस्तैव शत्रुनावन्ते तमो अजिरो न बोद्धा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे स्त्री तू ( अजिरो ) जो शीघ्र नहीं जाता उस पुरुष के ( न ) समान धीर ( बोद्धा ) विवाहित स्त्री ( शत्रुवत् ) शत्रुओं को ( शूरो ) इस वा पराक्रम आदि योग से निर्भय ( अस्तैव ) शत्रु धीर शत्रुओं को अच्छे प्रकार रोकने वाले के समान ( अप, ईकते ) दूर करती तथा प्रभातवेला जैसे ( तमः ) अन्धकार वा रात्रि को ( बाधते ) नष्टश्रेष्ठ करे वा जैसे ( अस्तैव ) माल काली पीली धोली आदि ( वशासः ) पदार्थों को छिन्नभिन्न करती हुई ( वसः ) किरणों सब पदार्थों को ( सीम् ) सब ओर से ( बहन्ति ) पहुँचाती हैं वैसे ( उर्विया ) बहुत पुरुषार्थयुक्त हो । हे पुरुष ! उपा को जैसे सूर्य वैसे इस ( प्रथानाम् ) अत्यन्त सुन्दरता से प्रख्यात आर्या को ( सुभगाम् ) सौभाग्ययुक्त करो ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । हे मनुष्यो ! जो प्रभातवेला के समान सुप्रकाश, सुकृपवती, सूर्य किरणों के तुल्य घर के कामों की व्यवस्था का निर्वाह करनेवाली, शूरवीर के समान व्यथा अपादि परिश्रम की यकावत न मानने वाली स्त्रियां हों उनका निरन्तर सत्कार कर सौभाग्ययुक्त करो ॥३॥

फिर वह स्त्री कंसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

सुगोत तं सुपथा पर्वतैश्च वसते अपस्तरसि स्वमानो ।

सान आ बह पृथुयाममृष्ये रुयि दिवो दृहितरिष्यथ्यै ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे ( स्वमानो ) अपनी दीप्तिपुक्त ( पृथुयामम् ) बहुत पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले ( ऋष्ये ) महान् गुणयुक्त विद्वान् आप इस स्त्री के साथ ( रुयिम् ) लक्ष्मी को ( आ, बह ) प्राप्त कराइये और ( नः ) हम लोगों की रक्षा करिये तथा ( अप ) जलों के समान दुःखों को ( तरसि ) तरसे अर्थात् उनसे अलग होते हो । धीर ( आवते ) निर्वाण होने से ( पर्वतैश्च ) पर्वतों में जैसे गुफा से जाते हो । तथा जो ( ते ) तुम्हारी ( सुगा ) सुन्दरता से जाने योग्य स्त्री वा हे ( दिवः ) प्रकाश की ( दृहितः ) कन्या के समान वर्तमान स्त्री तू पति को ( दृष्यथ्यै ) प्राप्त होने की योग्य हो ( उत् ) और तेरा पति तेरे मन का प्रिय हो ( सा ) सो तू हम लोगों को ( सुपथा ) अच्छे मार्ग से सुख प्राप्त करा ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाकार है । जैसे अच्छी नीति वाले राजजन पर्वतों में भी अच्छे मार्गों को बनाय सब मार्ग चलनेवालों को सुखी करते हैं वा जैसे उपा (प्रभातवेला) मार्गों को प्रकाशित कराती वैसे ही उत्तम परस्पर प्रसन्न स्त्री पुरुष धर्ममार्ग का सशोधन कर परोपकार का प्रकाश कराते हैं ॥४॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे वर्तानें वस्तु इस विषय को कहते हैं—

सा बह योद्यमिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।

त्वं दिवो दृहित्या इ देवी पर्वहूतो मंहना दर्शता भूः ॥५॥

पदार्थ—ह ( दिवः ) सूर्य की ( दृहितः ) कन्या के तुल्य तथा ( उवः ) उपा प्रभातवेला के समान वर्तमान श्रेष्ठ सुख वाली ( या ) जो ( अवाता ) वायुरहित ( उज्ज्वलः ) वीर्यसेवकों से युक्त ( वरम् ) श्रेष्ठ ( जोषम् ) प्रीति से चाहें हुए पति को ( अनु ) अनुकूलता से ( रम् ) तू ( वहसि ) प्राप्त होती ( सा ) वह मुझ पति को ( आ, बह ) सब ओर से प्राप्त हो ( या ) जो ( ह ) ही ( पर्वहूतो ) पूर्व सत्कार करने योग्यों के आह्वान के निमित्त ( मंहना ) सत्कार करने और ( वहांता ) वेगने योग्य ( देवी ) विदुषी तू ( भूः ) हो सो मेरी प्रिया स्त्री हो ॥५॥

भाषार्थ—जैसे उपा रात्रि के अनुकूल वर्तमान नियम से अपने काम को करती है वैसे ही नियमयुक्त स्त्री अपने घर के कामों को करे तथा बहुवच्य के धनन्तर अपने मन के प्यारे पति को विवाह कर प्रसन्न होती हुई पति को निरन्तर प्रसन्न करे ऐसे ही पति भी उस अनुकूल आचरण करनेवाली को सर्वदा धामनिष्ठ करे ॥५॥

फिर वे स्त्री पुरुष परस्पर कैसे वर्तें इस विषय को कहते हैं—

उत्ते वयंश्चिदसतेरपसत्करं च ये पितृभाषो म्युष्टौ ।

अमा सते बहसि भूरि वामसुषो देवि दाशुषे मस्थाय ॥६॥ ५॥

पदार्थ—हे ( उवः ) उपा के समान वर्तमान ( देवि ) मनोहरकृपवती जो तू ( म्युष्टौ ) विविध गुणों से सेवा करने योग्य प्रभातवेला में ( सते ) वर्तमान ( वामसुषे ) सुख देनेवाले ( मस्थाय ) मनुष्य पति के लिये ( अमा ) धरती की ( भूरि )





कारयुक्त होता है वैसे ही पुण्यकर्मस्वभावयुक्त स्त्री पति के सुख के लिए समर्थ होती है जैसे गो बछड़ो को पालती है वैसे विदुषी ( विद्या पंडी हुई ) माता सन्तानों की प्यास बुझा कर सकती है ॥ १ ॥

किं विद्वान् जन कंसे हो इस विषय को कहते हैं—

**ये अग्रयो न श्रोत्रं चक्षुषा न द्विष्यन्ति न च श्रोत्रं चक्षुषा न द्विष्यन्ति न च श्रोत्रं चक्षुषा न द्विष्यन्ति ।**

**अरे कवी हि रण्ययास एषा साकं न गेहं पौष्ट्येभिश्च भूयन् ॥२॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ये ) जो यत्न करते हुए ( हि रण्ययास ) विदुषी के तेष से बड़े हुए ( अरे कवी ) धूमि जिनमें नहीं वे ( अस्तः ) पवनो के समान ( भूयन् ) धनो और ( पौष्ट्येभिः ) पुरुषार्थ बलों के ( साकम् ) साथ ( भूयन् ) हो ( एषाम् ) इन के सम्बन्ध में ( यत् ) जो ( हि ) दोवार वा ( बिः ) तीनवार ( बाधयन्त ) निरन्तर बढ़ते हैं ( च ) और ( इष्यान् ) प्रकाशमान ( अन्वयः ) अनिनयो के ( न ) समान ( श्रोत्रं चक्षुषा ) निरन्तर शुद्ध करते वे भाग्यशाली होते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ—इन मन्त्र में उपमाएँ हैं । जो अग्नि के समान पवित्र हुए पवित्र करनेवाले वृद्धि को प्राप्त हुए बढ़ानेवाले, पवन के समान बलिष्ठ और चक्रवर्ति राजा के समान लक्ष्मी के साथ वर्तमान विद्वान् हो उन्हीं को तुम सेवो ॥ २ ॥

किन् एवो पुरुषो के पुत्र उत्तम होते हैं इस विषय को कहते हैं—

**छरस्य ये मीळहुषः सन्ति पुत्रा याश्चो बु दाष्टिर्मरंभ्यः ।**

**विदे हि माता महो महो वा सेतुभिः सन्धेः गर्भमावात् ॥३॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ये ) जो ( मीळहुषः ) कीर्त्य मीचनेवाले ( छरस्य ) वायु के समान बलिष्ठ के ( पुत्रा ) पुत्र ( सन्ति ) हैं ( याश्चो ) और जिनको ( अष्ट्यै ) पोषण वा धारण करने के लिए ( दाष्टिः ) धारण करनेवाली ( महो ) जो महान् सत्कार करने योग्य हैं ( सा ) वह ( माता ) मान करनेवाली ( आ-अवात् ) अच्छे प्रकार धारण करती है और ( सः इत् ) वही ( पुत्रि ) अन्तरिक्ष के समान विस्तारवाली ( सुधे ) जो सुन्दर प्रसिद्ध होता है उस ( विदे ) जानने-वाले के लिए ( हि ) ही ( महः ) महान् ( गर्भम् ) गर्भ को ( उ ) शीघ्र अच्छे प्रकार धारण करती है उन सबको और उस माता रूप स्त्री को तुम सब भाग्ययुक्त जानो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—ये ही मनुष्य कल्याणक्य होते हैं जिनके माता पिता ऐसे हैं कि जिन्होंने पूरा ब्रह्मचर्य किया हो ॥ ३ ॥

कौन अच्छे होते हैं इस विषय को कहते हैं—

**न व ईषन्ते अनुषोष्यान्तः सन्तोऽवधानि पुनानाः ।**

**निर्यदुहे शुचयोऽनु जोषमनु भिवा तुन्ममूषमाणाः ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो ( ये ) जो ( अनुषः ) जन्मो को ( न ) नहीं ( ईषन्ते ) नष्ट करते किन्तु ( अया ) इस नीति से ( अन्तः ) बीच में ( सन्तः ) सत्पुरुष हुए ( अवधानि ) निन्द्य कर्मों को ( नु ) शीघ्र छोड़ के ( पुनानाः ) शरीर को पवित्र करते हुए होते हैं और ( यत् ) जो ( शुचयः ) पवित्र जन ( अनु, जोषम् ) सेवा के अनुकूल ( भिवा ) लक्ष्मी से ( तुन्मम् ) शरीर को ( उज्जवाणाः ) श्वेन करते हुए ( अनु, निर, दुहे ) अनुक्रम से जन्म पूरा करते हैं वे धन्य होते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्यादि व्रतों को छोड़ मूढ़ होकर, शीघ्र विवाहकर, मनुष्य के अर्थात् हीजड़ा के समान होकर, निर्बल, रोगी और सम्पत्, मनुष्यों के बीच जिसकी कहावत हो रही हो तथा दुष्टव्यसन जिसको होता है ऐसे पुरुष ली चर्च से पहिले ही शरीर को नष्ट भ्रष्ट कर मनुष्य शरीर के फल को न पाकर दुर्भाग्यवश निष्फल होते हैं ॥ ४ ॥

यहां के प्रकार के पुरुष होते हैं इस विषय को कहते हैं—

**अथ न येषु दोहसे चिदया वा नाम पुष्प मार्तुं दधानाः ।**

**न ये स्तौना अयासो म्हा न चित्सुदानरं वासवुपान् ॥५॥७॥**

पदार्थ—( ये ) जिन मनुष्यों ने ( चित् ) निश्चय से ( दोहसे ) कामों के पूरे करने की शक्ति नहीं है वा जो ( अयाः ) प्राप्त होते हुए ( पुष्प ) दुष्ट, प्रणश्य ( वासवम् ) मनुष्यों के इस ( नाम ) प्रसिद्ध व्यवहार को ( वा, वासवाः ) धारण करते हुए हैं वा ( ये ) जो ( अयासः ) बलते हुए ( स्तौनाः ) कोर ( न ) नहीं है और जो ( सुषानु- ) उत्तम दान देनेवाला उन ( उपायम् ) कठिन स्वभाववालों को ( म्हा ) शीघ्र ( न ) न ( अथ, वासवम् ) प्राप्त करे उनका ( चित् ) शीघ्र ( म्हा ) महत्त्व से ( न ) शीघ्र सत्कार करे उनको प्यास बुझा सके ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस अगत् में दो प्रकार के मनुष्य हैं एक शक्ति और विद्या से हीन, दुष्ट कर्म करनेवाले हैं, दूसरे शक्तिमान, श्रेष्ठ कर्म धारण करनेवाले हैं, उनमें जो पुण्यकर्म करनेवालों का सत्कार नहीं करते और श्रेष्ठों का सत्कार करते हैं वे शीघ्र महान् चाहें हुए सुख को पाते हैं ॥ ५ ॥

किं मनुष्य क्या करके कंसे हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**त इदुद्राः श्वसा धृष्ट्या च उमे शुबन्त रोदसी सुमेकः ।**

**अथ स्मिन् रोदसी स्वशोचिरामं वसु तस्यो न रोकः ॥ ६ ॥**

पदार्थ—जो ( इदुद्राः ) दुष्ट सेनावाले ( श्वसा ) बलसे ( उद्राः ) तेजस्वी ( उमे ) दोनों ( सुमेके ) सुन्दर कमवाले ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को ( धृष्ट्या ) युक्त होते हैं ( अथ ) तदनन्तर ( उमे ) ही ( उमे ) इन ( अथवा ) प्रमत्तित मूढता में ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी के बीच ( स्वशोचिः ) अपने ही प्रतिबासा विद्युत् अग्नि ( आ, तस्वी ) अच्छे प्रकार स्थित है और ( न ) नहीं ( रोकः ) बाधायमान है ( ते ) वे सब ( इत् ) ही सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विदुषी की विद्या को लेकर दुष्ट सेनावाले होते हैं उनको शत्रुजन रोक नहीं सकते हैं तथा जो उत्तम धर्मों में निवास करते हैं वे प्रकाशित बुद्धिवासे होते हैं ॥ ६ ॥

**अनेनो बौ मरुतो यामो अस्तनस्य विषमजस्य रंभीः ।**

**अनवसो अनमीध रजस्तुवि रोदसी पृथ्या याति साधम् ॥ ७ ॥**

पदार्थ—हे ( मरुतः ) मनुष्यो ( यः ) तुम्हारा चलन ( अनेनः ) निष्पाप ( अस्तु ) हो और ( यामः ) जिसमें जाते हैं उस ग्रहण के समान जो ( अनवसः ) ऐसा है कि जिसके बोधे नहीं हैं ( अनमीधः ) रथ नहीं हैं ( अनवसः ) अन्न जिसके नहीं हैं और ( अनमीधः ) बलयुक्त मातृ नहीं हैं तथा जो ( रजस्तुः ) जल को बढ़ाता है वह ( चित् ) निश्चय के साथ ( यत् ) जिसको ( अस्तु ) प्रकाश करता फैलाता है वा ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी के बीच निरन्तर ( साधम् ) साधता हुआ ( पृथ्याः ) माया में उत्तम गतिधर्मों को ( चि, याति ) विधेयता से जाता है उसको तुम स्वीकार करो ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमाएँ हैं । हे मनुष्यो ! तुम पक्षपात-रूपी पाप को छोड़ के निर्बल की निरन्तर रक्षा कर भूगर्भविद्या और विद्युत् विद्या को अच्छे प्रकार सिद्ध कर धूमि और उदक तथा अन्तरिक्ष के मार्गों को उत्तम जानें से जाकर मायो ॥ ७ ॥

किन् से रक्षा किये जाने पर भय नहीं है इस विषय को कहते हैं—

**नास्य वर्त्ता न संवृता न्वंस्ति मरुतो यमवश्च वाजसातो ।**

**तोके वा गोषु तनये यमप्यु स व्रजं दत्ता यार्थे अथ घोः ॥८॥**

पदार्थ—हे ( मरुतः ) विद्वानो ! तुम ( वाजसातो ) अन्नादि पदार्थों के विभाग में ( यत् ) जिसको ( गोषु ) गौ आदि पशु वा पृथिवी विभागों वा ( यमप्यु ) जलो वा ( तोके ) संतान ( वा ) वा ( तनये ) पुत्रुमार इन सब में ( यत् ) जिसको ( अथ ) रक्षा करते हो ( अथ ) इस व्यवहार का कोई ( वर्त्ता ) वर्त्तन कराने और कोई ( न ) नहीं है और कोई ( तस्ता ) उक्त व्यवहार का उत्पन्न करानेवाला ( न, अस्ति ) नहीं है ( सः ) वह ( अथ ) इसके अन्तर ( यार्थे ) पार करने योग्य व्यवहार में ( घोः ) प्रकाश के ( अथ ) मेघ के समान शत्रु सेवा को ( वर्त्ता, वृ ) शीघ्र विधीन करनेवाला है ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिनके विद्वान् जन रक्षा करनेवाले हों उनको कहीं से भय नहीं प्राप्त होता, जैसे सूर्य से वर्षा होकर अगत् निर्भय होता है वैसे ही धार्मिक विद्वानों के सब से समस्त राज्य निर्भय होता है ॥ ८ ॥

किं मनुष्य किसके लिए क्या धारण करके क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मार्तया स्वतवसे मरुध्वम् ।**

**ये सहसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मुखेभ्यः ॥९॥**

पदार्थ—हे विद्वानो ( ये ) जो ( सहसा ) बल वा उत्साह से ( सहसि ) बलों को ( सहन्ते ) सहते हैं उनके लिए तुम ( चित्रम् ) अद्भुत ( अर्कम् ) जन्म वा वज्र को ( प्र, मरुध्वम् ) अच्छे प्रकार धारण करो । हे ( अग्ने ) विद्वान् जैसे ( मुखेभ्यः ) सगम आदि जो सग करने योग्य हैं उनके लिए ( पृथिवी ) धूमि ( रेजते ) कम्पित होती है तथा ( स्वतवसे ) अपने बल से युक्त ( तुराय ) शीघ्रता करने और ( मार्तया ) मनुष्यों के सहयोगी ( गृणते ) स्तुति करनेवाले विद्वान् के लिए अद्भुत जन्म वा वज्र को धारण करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमाएँ हैं । हे मनुष्यो ! जैसे बलवती हुई धूमि यज्ञसामग्री की उत्पन्न करती है वैसे ही बड़े-बड़े शूरवीर विद्वानों के लिए अन्नादि पदार्थ और अस्त्र शस्त्र समूह तथा उनकी विद्या की निरन्तर उन्नति करो ऐसा होते से न सहने योग्य मनुष्यों को सहने और पराजय करने को साधर्म्य उत्पन्न होता है यह जानो ॥ ९ ॥

किं किसके सुख कंसे शूरवीर सिद्ध करने चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**स्विर्भिमन्तो अध्वरस्यं विधुषं वृष्यवसो जुहोऽन्वाग्नेः ।**

**अर्चय्यो धुमंथो न बीरा आजन्मानो मरुतो अष्टहाः ॥१०॥**

पदार्थ—जो ( अध्वरस्येभ्यः ) अहिंसामय यज्ञ के समान वा ( जुहोः ) जिनसे हवन करते उनके ( न ) समान ( वृष्यवसः ) जो शीघ्र जानेवाले ( अर्चय्यः ) धूमि के ( अध्वरस्यः ) सत्कारकर्ता ( धुमंथः ) कम्पित हुए पदार्थों के ( न ) समान ( स्विर्भिमन्तः ) विद्या विनयादि के प्रकाश से युक्त ( आजन्मानः ) क्षीयमान अन्न है जिनका तथा ( अष्टहाः ) जो धर्मों से वृष्टता को नहीं प्राप्त होते ( अष्टहाः ) वे पवन के समान बली ( बीराः ) बीर ( विधुषं ) प्रकाश के समान अज्ञान हो उन्हीं से विजय को प्राप्त होवो ॥ १० ॥

**वार्त्ता—**इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। हे राजा आदि जनों! जैसे वज्र के बीच वर्तमान सप्त पीछ ही अन्तरिक्ष को जाती है वैसे शिक्षा के बीच वर्तमान जन शीघ्र विषय के लिए जा सकते हैं जैसे कुतूहल से अग्नि प्रदीप्ति की जाती है वैसे शिक्षा और सत्कार से शीघ्र की सेवा को प्रदीप्ति करना चाहिए जैसे अग्नि की लपटें और सज्ज होते हैं वैसे ही तुम्हारी सेवा के प्रकाश और सज्ज बहुत हैं ॥ १० ॥

फिर मनुष्यों को जिनके साथ सेवा का सम्बन्ध है अधिकारी करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**सं वचन्तु मार्तुं प्रार्थयन्तु कुतस्त्वं सन्तु इवसा विवासे ।**

**दिनः शर्वायं शर्वायं मनीषा विरयो नायं उद्गा प्रसूयन्तु ॥११॥८॥**

**वार्त्ता—**जो ( शर्वायः ) पवित्र ( मनीषाः ) मनस्वी पर्याप्त उत्साही मन वाले ( उद्गाः ) तेजस्वी ( विरयः ) मेघ और ( नायः ) जलों के ( न ) समान ( विवः ) मनोहर पदार्थ के ( शर्वायः ) बल के लिए ( मनुष्यम् ) स्पष्टा करें उन के साथ ( शर्वायम् ) प्राय बढ़ते वा दूसरों को बढ़ाते हुए ( शर्वायम् ) पवनो की शिक्षा जाननेवाले ( शर्वायम् ) प्रकाशमान दृष्टियुक्त ( शर्वायम् ) किया है मनीषीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य जिसने उसके ( सन्तु ) उस ( सन्तु ) पुत्र की ( इवसा ) लेने के व्यवहार से ही ( आ, विवासे ) सेवाता है ॥ ११ ॥

**वार्त्ता—**इस मन्त्र में उपमा और वाक्कलुषोपमासङ्कार हैं। जो मनुष्य सेवा के समान उत्पत्ति करने, प्रकाश के पालने, जल के समान दृष्टि करनेवाले, पवित्र आशययुक्त, तेजस्वी और मनोहर बल के बढ़ानेवाले हों उनके साथ यदि राजा राज्य-शिक्षा करे तो कहीं भी पराजय और अपकीर्ति न हो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में पवनो के गुणों के समान विद्वानों और वीरो के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संपत्ति जाननी चाहिये ॥

यह विद्यासठवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

५०

अथर्ववेदार्थस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य अष्टादशो बार्हस्पत्य ऋषिः । विद्या-  
वधरती देवता । १, ६ स्वराद्वयः । २, १० मुरिक् पक्षितवचनः ।

पञ्चमः स्वरः । ३, ७, ११ निवृत्तिवद्वयः । ४, ५ त्रिवृत्तः ।

१ विराद्विद्वयः । अक्षतः स्वरः ॥

अथ ग्यारह ऋचावाले सरसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में मनुष्यों को शिक्षा सत्कार करना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**विशेषां वः सुतां ज्येष्ठतमा गीर्म्मिश्रावरुणा वावृष्यन्ते ।**

**सं या रश्मेव यमसुपमिष्ठा इा जगौ असंसा क्षासिः स्वैः ॥१॥**

**वार्त्ता—**हे मनुष्यो ( विश्वेषाम् ) सब ( सताम् ) सज्जन जो ( वः ) आप लोग उनमें ( या ) जो ( ज्येष्ठतमा ) प्रतीक ज्येष्ठ ( गीर्म्मिश्रा ) प्रतीक नियम को वर्तनेवाले ( असंसा ) सतुल्य पर्याप्त सब से अधिक ( मिश्रावरुणा ) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशक ( वावृष्यन्ते ) ध्यातव्य करने के लिये ( जगौ ) मनुष्यों को ( रश्मेव ) किरण वा रश्मि के समान ( गीर्म्मिश्रा ) वागियों से ( सः, यमसुः ) नियमयुक्त करते हैं और ( इा ) दोनों सज्जन ( स्वैः ) अपनी ( क्षासिः ) गुणों से मनुष्यों को किरण वा रश्मी के समान नियम में लाते हैं उन अध्यापक और उपदेशकों का सर्वत्र सत्कार करो ॥१॥

**वार्त्ता—**इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। हे मनुष्यो! जो शिक्षा और उत्तम शीघ्र आदि गुणों से ज्येष्ठ, अधर्म से निवृत्त कर धर्म के बीच प्रवृत्त करानेवाले, अध्यापक और उपदेश से सूर्य के समान उत्तम बुद्धि के प्रकाश करनेवाले हो उन्हो का सदा सत्कार करो ॥१॥

**इयं मदां प्र स्थणीते मनीषोयं प्रिया नमसा बहिरिच्छं ।**

**सुन्तं नो मिश्रावरुणावृष्टं कुर्विष्यां बह्व्यो सुदान् ॥ २ ॥**

**वार्त्ता—**हे ( सुदान् ) सुन्दर दान देनेवालों ( प्रिया ) मनोहर ( मिश्रा-  
वरुणा ) अध्यापक और उपदेशको ( बह्व्यः ) तुम दोनों की ( नमसा ) सत्कार वा शान्तादिकों के साथ ( इयम् ) यह ( मनीषा ) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त बुद्धि ( यम् ) मुझ से ( प्र, स्थणीते ) अच्छे प्रकार सब विषयों को आच्छादित करती है सेवा ( यम् ) जो ( बह्व्यः ) तुम दोनों के ( बह्व्यः ) घर के बीच उत्पन्न हुए ( बह्व्यः ) अतीव विद्वान् तथा ( बह्व्यः ) अच्छे प्रकार ( बह्व्यः ) प्राप्त होते हुए और ( तः ) इसारे ( बह्व्यः ) मनुष्यों की नृपुष्टता को प्राप्त ( बह्व्यः ) घर की ( यम् ) समीप से आपसी है यह सब की अच्छे प्रकार प्रवृत्त करने योग्य है ॥२॥

**वार्त्ता—**हे मनुष्यो! जिनके संग से हमको उत्तम बुद्धि और घर प्राप्त होते हैं उनको सर्वत्र युक्त मानो ॥२॥

फिर शीघ्र निरन्तर सत्कार करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**आ सति मिश्रावरुणा सुसुस्तुपं प्रिया नमसा इयमाना ।**

**सं वासन्तः स्यो अपसवे जताम्रुषीमृषिचतसो महित्वा ॥३॥**

**वार्त्ता—**हे ( प्रिया ) सब को सुप्त करनेवाले ( मिश्रावरुणा ) प्राण और उदान के समान प्रिय पुत्रो ( नमसा ) सत्कार से ( इयमाना ) बुलाये हुए तुम दोनों ( वासन्तः ) मनुष्य के ( यम्, आ, वासन्तः ) समीप आओ तथा ( सुसुस्तुपः ) सुन्दर प्रसवे को प्राप्त होओ ( यम्, स्यो ) जो निश्चय से ( महित्वा ) बढ़पन से ( वासन्तः ) यत्न करते हैं वा ( वासन्तः ) अपने अन्न की इच्छा करते हैं वे दोनों ( अपसवे ) सत्त्वानों में ठहरनेवाला ( अपसवे ) कर्म से जैसे हम लोगों को ( स्यो ) प्राप्त होवे ॥३॥

**वार्त्ता—**हे मनुष्यो! तुम अध्यापक और उपदेशको को सदा सत्कार से बुलाकर उनका सत्कार कर विद्या और सरोपदेश को सत्कार के बीच विस्तारो। हे अध्यापक और उपदेशको! तुम प्रयत्न से माता और पिता के समान मनुष्यों को उत्तम शिक्षा देकर विद्यावान् सर्वोपकार करनेवालों को सिद्ध करो ॥३॥

फिर सब मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**अथवा न वा वाकिनां पतपन्तु श्रुता यद्वासुमदितिर्भरन्त्ये ।**

**प्र वा महिं मुहान्ता आयमाना शीरा मर्त्तय रिष्ये नि दीधः ॥४॥**

**वार्त्ता—**हे मनुष्यो ( वा ) जो ( अथवा ) बोधे वा महाशय जनों के ( न ) समान ( वाकिना ) बहुत वेग वा विज्ञानयुक्त ( पतपन्तु ) पवित्र बन्धु वाले ( श्रुता ) सत्य आचार के रखनेवाले ( अथवा ) माता के तुल्य ( महिं ) महान् जन ( यद्वा ) जिस ( पतपन्तु ) गर्व को ( मर्त्तय ) धारण करने को प्रवर्तमान वा ( वा ) जो ( अथवा ) महाशय ( आयमाना ) उत्पन्न हुए ( रिष्ये, मर्त्तय ) मनुज के लिये ( शीरा ) भयङ्कर ( प्र, वि, दीध ) और कारागार में निरन्तर मनु जनों को डस देते हैं उनको अपने शरीर के तुल्य सत्कार करो ॥४॥

**वार्त्ता—**इस मन्त्र में उपमासङ्कार है। हे मनुष्यो! जो कुलीन, जिनका महान् पक्ष, विद्वान् माता पिता से उत्पन्न हुए, उत्तम शिक्षायुक्त, महाशय, माता के तुल्य मनुष्यों पर हुषा करते, वा पढ़ाने और उपदेश करने से सब पर उपकार करते, तथा हुष्टों को रोकते हुए विद्वान् होते हैं उन्हीं की सेवा, संग, उन्हीं से उपदेश और विद्या पढ़ना निरन्तर करो ॥४॥

फिर मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**विष्वे यद्वां मुहान्ता मन्दमानाः क्षुत्रं वृषासो जदधुः सुजोषाः ।**

**परि यद्वां रोदसो विदुर्वा सन्ति स्पशो अदग्वासो अमूराः ॥५॥९॥**

**वार्त्ता—**हे अध्यापक और उपदेशको ( यद्वां ) जो तुम दोनों ( उर्वा ) बहुत पदार्थों से युक्त ( रोदसी ) प्रकाश और पृथिवी के समान विद्या और ज्ञान से युक्त ( यद्वां ) होते हो उन ( यद्वां ) तुम्हारे संग से ( यद्वां ) जो ( मुहान्ता ) सत्कार करनेवाले ( मन्दमाना ) मानव्य वा सत्कार को प्राप्त वा स्तुति करते ( सुजोषाः ) एकसी प्रीति को देनेवाले ( स्पशः ) अविद्याव्यकार का विनाश करने और विद्या-प्रकाश का स्पर्श करनेवाले ( अदग्वासः ) हिंसा को न प्राप्त और हिंसा न करने वाले ( अमूराः ) मूढतादि दोषरहित ( विदुर्वा, वृषासः ) समस्त कामना करते हुए विद्वान् जन ( सन्ति ) हैं वे ही ( विदुः ) निरिच्छत ( अमूराः ) जन वा राज्य को ( परि, अमूराः ) सब ओर से धारण करते हैं उनका वा उन तुम लोगों का सब हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥५॥

**वार्त्ता—**वे ही आप्त विद्वान् जन हैं जिनका पढ़ना उपदेश और संग शीघ्र सकल होता है जिनके संग से हिंसा आदि दोषरहित विद्वान् होकर पक्षपात को छोड़ सब प्राणियों को अपने आत्मा के तुल्य मुक्त देते हैं ॥५॥

फिर कौन यहाँ संग करने योग्य और युक्त के बढ़ाने वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**ता हि क्षुत्रं धारयेधे अनु धन् इहेये सान्नुपमादिव धोः ।**

**इहो नक्षत्र उत विशद्वेधो भूमिमातान्धां क्षासिनायोः ॥ ६ ॥**

**वार्त्ता—**हे अध्यापक और उपदेशको जो ( हि ) जिस कारण से हैं ( ता ) वे तुम दोनों ( अनु, धन् ) प्रतिष्ठित ( क्षुत्रम् ) राज्य वा जन को ( धारयेधे ) धारण करते हो तथा ( योः ) सूर्य की ( उपमादिव ) उपमा से जैसे वैसे ( सान्नुप ) विचार को ( इहेये ) बढ़ाते हो जिनके संग से ( विशद्वेधः ) सब का प्रकाश करने वाला ( इहो ) वृद्ध ( उत ) और ( नक्षत्रः ) जो नहीं नष्ट होता ऐसा होता हुआ ( भूमिम् ) भूमि और ( क्षासु ) मनोहर विद्या को प्राप्त होकर ( क्षासिना ) अन्न से ( क्षासोः ) जीवन को बढ़ाता है उन पूर्वोक्त दोनों तथा उसको जो ( आ, सान्नुप ) सब ओर से प्रकाशित करें वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥६॥

**वार्त्ता—**हे मनुष्यो जो अध्यापक और उपदेशक प्रतिदिन सूर्य के समान विद्याव्यवहार को सम्यक् प्रकाशित कर राज्यजन और आयु को बढ़ाने, सब को सुख की धारणा कराते, जिनको प्राप्त होकर सब जन विद्वान् होते हैं उनका संग निरन्तर करो ॥६॥

फिर कौन कितने समान सेवाधी विद्याधियों को धारण करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

**ता विप्रं वैधे क्षुत्रं पुण्ड्र्या आ यत्सव्यं समृतयः पणन्ति ।**

**न सुप्यन्ते युवतयोऽजाता वि यत्सव्यो विश्वजिन्वा मरन्ते ॥७॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे (अवाताः) पतियों को न प्राप्त हुई (समस्तः) समान पतियों वाली (युक्तः) युवति स्त्रियों समान पतियों को (भरते) धारण करती अर्थात् प्राप्त होती वे (न) नहीं (आ, युक्तः) पूरे सुख को प्राप्त होती क्योंकि और सीते नहीं (युक्तः) सहती हैं (यत्) जो (सह्य) घर को सुखयुक्त करती हैं और (यत्) जो (यः) जल के समान (वि) विविध प्रकार से सुख देती हैं तथा जो तुम दोनों (अठरम्) उदर में ठहरे हुए अग्नि को (पुण्यम्) सुखी करने के लिये (विषम्) बुद्धिमान् पुरुष को (बन्धे) धारण करते हो। हे (विष्वजिन्वा) ससार की पुष्टि करने वाले आप उन स्त्रियों तथा (ता) उन दोनों को निरन्तर सेवो ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकपुत्रोपमालङ्कार है। जैसे समानगुण कर्म स्वभाव कर्म स्त्री पुरुष अत्यन्त प्रीति से विवाह कर कभी विरोध नहीं करते हैं वैसे ही विद्वान् जन और विद्यार्थीजन विद्वेष नहीं करते हैं ऐसे प्रेम के साथ वर्तमान सब सदैव आनन्दित होते हैं ॥७॥

फिर किनके संग से विद्वान् हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता जिहया सदमेदं मुमेधा आ यज्ञं सत्यो अरतिर्भूते मू ।

तदा महित्वं घृताकावस्तु युवं दाह्यते वि चयिष्टमंहः ॥८॥

पदार्थ—हे (घृताली) बहुत घृत और अन्नवाले अध्यापक और उपदेशक जनो (वाग्) तुम दोनों के उपदेश से (मुमेधाः) उत्तम जिसकी बुद्धि वह (अरतिः) सत्य उपदेश को प्राप्त होता हुआ (सत्यः) सज्जनों में उत्तम जन (जिह्वया) वाणी से (आ, इहम्, सवम्) सब ओर से जिसमें विद्वान्जन स्थिर होते हैं उस सत्य बचन को पाकर (ज्यते) सत्य धर्म में (आ, यत्) प्रतिष्ठ होते (यत्) जो (युक्तः) आप दोनों (वाग्धे) दानशील पुरुष के लिये (अंहः) पाप को (वि, चयिष्टम्) विगत बचन करते हैं (सत्) वह (वाग्) तुम दोनों की (महित्वम्) महिमा (अस्तु) हो (ता) उन तुम दोनों का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥८॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिनकी उत्तेजना से तुम लोग विद्या को प्राप्त होओ या उपदेश ग्रहण करो उनका धन्यवाद आदि से निरन्तर सत्कार करो, जिनके संग से मनुष्य सत्य आचरण वाले उत्तम जाना होते हैं वे ही महाशय हैं ॥८॥

कौन विद्वानों के प्रिय वा अप्रिय होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

अ यदा मिश्रवरुणा स्पर्धन् प्रिया धाम युवचिता मिनन्ति ।

न ये देवास ओहंसा न मर्ता अयक्षसाधो अप्यो न पत्राः ॥९॥

पदार्थ—हे (मिश्रवरुणा) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशको (यत्) जो (स्पर्धन्) स्पर्धा करते हुए जन (वाग्) तुम दोनों के (प्रिया) प्रिय (धाम) धाम जिनमें स्थापन करते हैं उन (युवचिता) तुम दोनों हित करने वालों को (न) न (अ, मिनन्ति) नष्ट करते हैं वा (ये) जो (देवासः) विद्वान् जन (ओहंसा) प्राप्त बल वा वेग से (अयक्षसाधः) जो यज्ञ में सम्बन्ध नहीं करते वे (मर्ताः) मनुष्य (न) नहीं नष्ट करते हैं वे (अप्यः) कर्मों में प्रमिद के (न) समान और (पुत्राः) पुत्रों के समान होते हैं ॥९॥

भाषार्थ—जो मनुष्य अध्यापक और उपदेशको का अप्रिय आचरण नहीं करते हैं वे सत्पुत्रों के समान होते हैं और जो अप्रिय का आचरण करते हैं वे शत्रुओं के तुल्य होत हैं ॥९॥

फिर कौन तिरस्कार करने योग्य और सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

वि यद्वाचं कीस्तासो मरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनुनाः ।

आदां ब्रवाम सुत्यान्यक्या नकिदे वैमिथथो महित्वा ॥१०॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको यदि तुम दोनों (महित्वा) महिमा से (वेमिथः) विद्वानों के साथ विद्यावृद्धि के लिये (नकिः) न (यत्थ) यत्न करते हो तो (वाग्) तुम दोनों के प्रति हम लोग (सत्यानि) उत्तम पदार्थों में भी उत्तम (उक्ता) कहने वा सुनने के योग्य विषयों को (आत्, ब्रवाम) पीछे कहे (यत्) जो (कीस्तासः) मेधावीजन (वाचम्) वाणी को (वि, भरते) विशेष-पता से धारण करते हैं और (के, चित्) कोई (मनामाः) विचार करने हुए (चिन्निविदः) उत्तम वाणियों की (सत्यन्ति) प्रशंसा करते हैं उनको सर्वदा तुम पढ़ाओ ॥१०॥

भाषार्थ—राजा और राजजनों को और प्रजास्थ विद्वानों को भी कौन विद्वान् धृष्टी शिक्षा देने योग्य हैं जो निष्कपटता से अपनी शक्ति के अनुकूल पढ़ाने से विद्या प्रचार न करें और जो प्रीति के साथ विद्याओं को पाकर सर्वत्र प्रचार करते हैं वे ही सदा सत्कार करने योग्य हैं ॥१०॥

फिर कौन विद्वान् होते हैं इस विषय को कहते हैं—

अवोरित्था वां छुदिषो अमिष्टौ यवोर्भिषावरुणावस्कंधोब ।

अनु यवगावः स्फुराम्छिप्यं घणुं यद्रणे वृषणं युमजन् ॥११॥१०॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको (यत्) जो (गावः) किरणों वा घेनु हैं उनको (स्फुराम्) स्फूर्ति वाले पदार्थों वा (अजिप्यम्) कोमल वा सरल

पदार्थों के पासने वालों में हुए (अजिप्यम्) बुद्धि प्रगल्भ (अजिप्यम्) अलिप्त को (रते) संशय में कोई (अजिप्यम्) जोड़ता हुआ विषय को प्राप्त होता है हे (मिश्रवरुणा) वायु और सूर्य के समान वर्तमान (अयोः) रक्षा करनेवाले (वाग्) तुम दोनों के (छुदिषः) घर के (अजिप्यम्) सम्पुल यज्ञक्रिया में (वाग्) जो प्रयत्न करता है तथा (अयोः) तुम दोनों के सम्बन्ध में (अस्कंधोब) जो अपने को लचुता नहीं चाहता (इत्था) इस हेतु से (अनु) अनुकूलता से यत्न करता है उसका सदैव सत्कार करो ॥११॥

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको! जो विद्यार्थी जन तुम्हारे काम को अपने काम के समान जानते हैं वेही दीर्घ आयु वाले, प्रशंसित विद्यायुक्त, धार्मिक परोपकारी होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह सरसठवां सूक्त और बारावा वर्ग समाप्त हुआ ॥

ॐ

अथैकादशसंख्याष्टचण्डितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो ब्राह्मण्यन्तः । इन्द्रावर्णी

वेद्यते । १,४,११ चण्डितम् । ८ निचुत्त्रिचण्डितम् । ८ वेद्यः स्वरः । २ भुरिष्

पङ्क्तिः । ३,७,८ स्वरपङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिवर्णम् । पञ्चमः

स्वर । १,१० निचुत्त्रिचण्डितम् । निचुत्त्रिः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले अरसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को अच्छे प्रकार कौन पढ़ाने चाहिए इस विषय को कहते हैं—

अष्टौ वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वदूष कर्वाहिषो यजाम्यै ।

आ य इन्द्रावरुणाविषे अथ महे सम्नाय महे आभवर्षत ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्रावरुणा) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको (य) जो (उद्यतः) उद्योगी (सजोषाः) अपने प्राप्ता के तुल्य औरों का प्रीति से सेवन करता (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (कर्वाहिषः) सखीभित किया जल जिसने उसका और (वाग्) तुम्हारा (यज्) सग करने योग्य शिष्य (आ, यजाम्यै) अच्छे प्रकार संग करने को (अथ) आज (महे) महान् (सुम्नाय) सुख वा (महे) बहुत (इषे) विज्ञान वा अन्न के लिये (अष्टौ) अष्टौ (आभवर्षत) अच्छे प्रकार वर्तमान है उसको तुम दोनों पढ़ाओ ॥१॥

भाषार्थ—हे पढ़ाने और उपदेश करनेवालों! जो आप लोगों के सुख के लिये प्रयत्न करते हुए पुरुषार्थी, प्रीतिमान्, शीघ्रकारी वर्तमान हैं उन पवित्र, जितेन्द्रिय धार्मिक विद्यार्थियों को निरन्तर सत्य का उपदेश करो ॥१॥

फिर कौन यहाँ राजजन उत्तम और सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता हि भेष्टा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।

मधोनां महिष्ठा तुविष्णुं ज्यतेन वृत्रतुरा सर्वस्सेना ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (हि) ही (देवताता) मर्यादबन्धन यज्ञ में (भेष्टा) उत्तम (तुजा) दुष्टों की हिंसा करने वाले (शूराणाम्) निर्भय जनों में (शविष्ठा) अतीव बलवान् (तुविष्णुं) होते हैं और जो (हि) निश्चय के साथ (मधोनाम्) मनाद्यों के बीच (महिष्ठा) अतीव सत्कार करने योग्य (ज्यतेन) सत्य आचरण से (तुविष्णुम्) बहुत बल और सेना से युक्त (वृत्रतुरा) जो मेघ के समान बड़े हुए शत्रुओं का विनाश करने वाले (सर्वस्सेना) समग्र सेनाओं से युक्त सभा और सेनाधीन वर्तमान हैं (ता) वे सत्कार करने योग्य हैं और (ता) वे ही उत्तम अधिकार में स्थापन करने योग्य हैं ॥२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो सत्य न्याय से प्रजा की पालना करने में प्रयत्न करते हुए, सब प्रकार की विद्या और सर्वोत्तम सेनाओं से युक्त, दुष्टों की हिंसा से श्रेष्ठ, मनाद्यों और शत्रुओं की रक्षा करनेवाले ही हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥२॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

ता गृणीहि नमस्येमिः शूरेः सुम्नेमिरिन्द्रावरुणा चकाना ।

वज्रैरान्यः शर्वसा हन्ति वृत्रं सिषक्तघ्न्यो वृक्षनेषु विप्रः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जन (विप्रः) मेधावी बुद्धिमान् आप जिन में से (अन्यः) सूर्य वा बिजुली (वज्रैः) किरण समूह के समान अस्त्रास्त्र और (शर्वसा) बल से (वृक्षम्) मेघ के समान शत्रु को (हन्ति) मारती है और जो (अन्यः) वायु के समान (वृक्षनेषु) मार्ग वा बलों में (सिषक्तः) सीपला है (ता) उन दोनों (इन्द्रावरुणा) वायु और बिजुली के समान (सुम्नेमिः) मुखों से (चकाना) कामना करते हुए (शूरे) बलों और (नमस्येमिः) अन्नों के बीच सिद्ध हुए पदार्थों से सत्कार को प्राप्त हुएों की (गृणीहि) प्रशंसा करो ॥३॥

भाषार्थ—जो सभा सेनापति सूर्य और वायु के समान प्रजा के पालनेवाले, उत्तम जनों से दुष्टों को निवारने वाले, मेघों के समान प्रजाजनों को कामनाओं से प्रीति करते हैं वे सब से सत्कार करने योग्य हैं ॥३॥



किर ये किर के साथ क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**धाम्ना चरन्तं वायुवन्तं विन्ने देवासीं नरां स्वर्गात् ॥**

**मैत्र्य इन्द्रावरुणा महित्वा धीमन् पृथिवि भूतभुवी ॥ ४ ॥**

पदार्थ—( धम् ) जो ( विन्ने, देवाः ) समस्त विद्वान् जन ( नरः, न ) और विद्वानों के बीच अध्यासी ( स्वर्गात् ) अपने पराक्रम से उच्चमी जन (नरान्) मनुष्यों की (नराः) आभी तथा अपनी (न) भी बाणियों को प्राप्त होकर (वायवन्तं) सब आर से बढ़ते हैं ( प्र, पृथ्वः ) उत्कर्षण से इनके ( इन्द्रावरुणा ) विजुली और सूर्य के समान वा ( धीमन् ) निस्तुत ( पृथिवि ) पृथिवी ( धीः, न ) और प्रकाश के समान वर्तमान ( महित्वा ) महिमा से ( भूतम् ) प्रतिष्ठ होयें । वे सब जन मनुष्यों से उत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वायुकुपुतोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो विद्या, धर्म और विनय से बढ़ते हैं उस उत्तमियों के साथ इन प्रजाजनों की पालना करो ॥४॥

किर राजसेनाजन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**स इत्सुदानुः स्वर्गो भूतानेन्द्रा यो वां वरुण दाशेहि स्मन् ॥**

**हुवा स इन्द्रस्तेदास्वान्वसद्वि रयिवत्सव जनां ॥५॥१॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रा, वरुण ) सूर्य और वायु के समान वर्तमान सभासेना-जीवो ( वरुण ) तुम दोनों का ( यः ) जो ( इत्सुदानुः ) उत्तम देवता ( स्वर्गात् ) जिसके अपने लोग बहुत विद्यमान हैं ( भूतानां ) जो सत्य को मजबूत है वह (स्मन्) आस्था में अभयपन ( दाशेहि ) देता है जो ( दास्वान् ) देवता होता हुआ हुवा ( विषः ) वायुवन्तों को ( तरेत् ) तरे और ( रयिवत् ) बहुजनवान् ( जनाम्, न ) जनों को भी ( रयिम् ) धन का ( वत्सव ) विभाग करे ( सः, इत् ) वही सर्वोत्तम और ( सः ) वह राजा होने योग्य है ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वायुकुपुतोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य वर्षा करा कर और वायु प्राण धारण करा कर वह दोनों सब प्राणियों को निर्भय करते हैं वैसे जो सभाम के बीच अच्छे प्रकार सम्मुख हैं उनसे पाये हुए धन का यथावत् विभाग कर सोमहवी भाग भूतों के लिये देते हैं तथा वही सभाम में जो बड़ा जाति उनके लिये उससे सोमहवी भाग देते हैं वे ही विजयी होकर आपस में प्रसन्न होते हैं ॥ ५ ॥

किर राजाजन क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**यं यं द्वाध्वराय देवा इयि वृत्थी वसुमंतं पुष्टम् ॥**

**अस्मे स इन्द्रावरुणाविं स्वात्थ यो मुनक्ति वसुधामश्वस्ती ॥६॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) विजुली और वायु के समान वर्तमान सभा सेनाधीश ( देवा ) देने वाली ( वृत्थम् ) तुम दोनों ( द्वाध्वराय ) जिससे अहि-सामय यज्ञ देने योग्य होता है उसके लिये ( अस्मे ) हम लोगों में ( यम् ) जिस प्रशस्त ( रयिम् ) धन ( वसुधाम् ) बहुत ऐश्वर्ययुक्त और ( पुष्टम् ) बहुत धन्य वाले जन को ( वरुणः ) धारण करो ( यः ) जो ( वसुधाम् ) राज्य को भागनेवाले मनुष्यों की ( अश्वस्तीः ) अप्रशस्ताओं की ( प्र, अनक्ति ) अच्छे प्रकार मवित करता है ( सः ) सो ( अवि ) ही अतीव द्धिर ( स्वात् ) हो ॥६॥

भाषार्थ—हे सभासेनाधीशो ! जो तुम लोग उत्तम बुद्धि और अतुल लक्ष्मी को हम लोगों में धरो तो हम लोग सर्वत्र विजयी होकर विजय, राज्य और ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥६॥

किर तीन राजा योग्य हैं इस विषय को कहते हैं—

**उत नः सुत्राज्ञो देवर्गोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा इयिः स्वात् ॥**

**देवां शुभः पृतनासु साहान्त्र सुयो द्युम्ना तिरु ततुरिः ॥७॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) वायु और विजुली के समान वर्तमान प्रशस्त राजा ( देवाः, पृतनासु ) जिन शूरवीरों की सेनाओं में ( सुयोः ) बलवान् ( साहान् ) सहजशील ( ततुरिः ) उत्तीर्ण होनेवाला सेनापति वर्तमान है । तथा जो ( सः ) शीघ्र ( द्युम्ना ) धन और धनो को ( प्र, तिरुते ) उत्तमता से प्राप्त होता है वा जिसके पराक्रम से ( रयिः ) लक्ष्मी ( स्वात् ) हो ( उत ) और ( नः ) हम लोग ( सूरिभ्यः ) विद्वान् हैं उनके लिये ( सुत्राः ) जो अच्छों की रक्षा करनेवालों की रक्षा करनेवाला ( देवर्गोपाः ) विद्वानों का रक्षक हो वही राजा होने योग्य है ॥७॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वायुकुपुतोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सूर्य के समान प्रतापी, पशु के समान कलबान् विद्यावान् के समान मज्जता और शूरवीरों की रक्षा करनेवाले हों वे सर्वत्र शीघ्र मनुष्यों की जीत के यशस्वी होकर धनवान् होते हैं ॥७॥

किर ये राजाप्रजाजन कैसे करें इस विषय को कहते हैं—

**नू मे इन्द्रावरुणा युष्मन्ता पुष्टं इयि सौमवसाय देवा ॥**

**हुत्वा युष्मन्तो मुहिरस्य धर्षोऽपी न तावा इरिता तरेम ॥८॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य वर्तमान ( नः ) हम लोगों की ( युष्मन्ता ) प्रशंसा करने और ( देवा ) देवताओं राजप्रजाजनों जैसे तुल्य

दोनों ( सौमवसाय ) उत्तम यज्ञ होने के लिये ( रयिम् ) धन का ( पुष्टस्य ) सम्बन्ध करो ( हुत्वा ) ऐसे ( मुहिरस्य ) बड़े के ( धर्षः ) बल की ( युष्मन्ताः ) प्रशंसा करते हुए हम लोग ( तावा ) ताव से ( अपः ) जलो को ( न ) जैसे वैसे ( इरिता ) दुःख से उत्सन्न करने योग्य कष्टों को ( न ) शीघ्र ( तरेम ) तरें ॥८॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वायुकुपुतोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो राजप्रजा जन आपस में प्रीति बाले होकर अन्नादि पदार्थों के लिये धन इकट्ठा करते हैं वे पूर्व और चन्द्रमा के तुल्य प्रतापी होकर जैसे बड़ी नीका से दुःख से तरने योग्य समुद्रों से जन पार होते हैं वैसे ही बड़े २ दुःख और वरिष्ठों का शीघ्र तरते हैं ॥८॥

किर वह राजा कैसा है और उसके लिये क्या उपदेश देना चाहिये इस विषय को कहते हैं—

**प्र सत्राजै बहुते मन्त्र नु प्रियमर्ष देवाय वरुणाय सुप्रथः ॥**

**अयं य उर्वी महिना महिमतः कृत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥९॥**

पदार्थ—हे विद्वन् ( यः ) जो ( अयम् ) यह ( सप्रथः ) सत्कीर्ति से विख्यात और ( महिमतः ) बड़े २ वर्णयुक्त कर्म विद्वान् विद्यमान वह ( कृत्वा ) प्रज्ञा वा कर्म से ( महिना ) और महिमा वा ( शोचिषा ) अपने प्रकाश से ( अजरः ) वृद्धावस्था-कभी रोग से रहित सूर्य जीवात्मा वा परमात्मा के ( न ) समान ( उर्वी ) सूर्यमण्डल और पृथिवी को ( विभाति ) प्रकाशित करता है उस ( वरुणाय ) सब से उत्तम ( देवाय ) धन्य देनेवाले ( बहुते ) बड़े ( सत्राजै ) अच्छे सूर्य के समान विद्या और मज्जता से प्रकाशमान के लिये ( प्रियम् ) प्रीति करनेवाले ( मन्त्र ) विज्ञान की धाम ( नु ) शीघ्र ( प्र, अयम् ) उत्कार देवें ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वान्जनों ! जो सूर्य के तुल्य, जीव के तुल्य वा परमात्मा के तुल्य कुछ गुण कर्म स्वभावी से वेदीप्यमान, विद्या और विनय से युक्त, उत्तम यज्ञ के साथ बाणी जन और शरीर से पिता के समान प्रजाजनों की पालना करने को प्रयत्न करता है उस चक्रवर्ती, सर्वोत्कृष्ट, विद्वान् और सत्कार करने योग्य राजा के लिये राज्य में सत्य नीति की प्राप्ति लोग समझावें जिससे यह सर्वत्र वर्णयुक्त मज्जता हो ॥ ९ ॥

किर ये राज प्रजाजन क्या कर कैसे हों इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं यितं मयं पृतवता ॥**

**यूवो रवो अण्वरं वरीतये प्रति स्वस्व रं वावि पीतये ॥१०॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) विजुली के समान वर्तमान ( सुतपी ) सुन्दर ब्रह्मर्ष आदि अनुष्ठान तप जिनका और ( वृत्तता ) जिन्होंने उत्तम कर्म धारण किये हैं वे सभा और सेनाधीशो जिन ( यूवोः ) तुम लोगों का ( रवः ) विमान भावि यान ( वैवरीतये ) विष्णुओं की प्राप्ति और ( पीतये ) उत्तमोत्तम रस पीने के लिये ( प्रति, स्वस्वम् ) प्रतिदिन ( अण्वरम् ) अहिषामय यज्ञ को ( उप, वाति ) प्राप्त होता है वे ( इमम् ) इस ( सुतम् ) उत्पन्न किये हुए ( मण्वम् ) जिससे जीव धान्य को प्राप्त होता है उस ( सोमम् ) बड़ी २ ओषधियों के रस को ( यितम् ) पिपी ॥१०॥

भाषार्थ—हे राजप्रजाजनों ! तुम प्रतिदिन सोमलता आदि उत्पन्न किये हुए सर्व रोगों के हरने, बल, बुद्धि, पराक्रम बढ़ानेवाले, हिसारहित, महीषविधों के रस को पीकर धर्मात्मा होओ ॥ १० ॥

किर ये क्या करके क्या करावें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रावरुणा मधुम तस्य वृष्णः सोमस्य वृष्णा वृषेथा ॥**

**इदं दायन्धः परिविस्तमस्ये आसयास्मिन्वर्हिषि मादयेथा ॥११॥१२॥**

पदार्थ—हे ( इन्द्रावरुणा ) विजुली और वायु के समान वर्तमान ( वृष्णा ) बलवान् राजा प्रजाजनों ! तुम ( मधुमस्य ) अतीव मधुरादिगुणयुक्त ( वृष्णः ) बल करनेवाले ( सोमस्य ) बड़ी २ ओषधियों के रसों के सेवन से ( आ, वृषेथाम् ) कलिष्ठ होओ जिन ( वाम् ) तुम दोनों का ( इदम् ) यह ( परिविस्तम् ) सब और से सीधा हुआ ( अण्वः ) धान्य है वे तुम ( अस्मे ) हम लोगों में वा हम को ( अस्मिन् ) इस ( वर्हिषि ) अवकाश से ( आसय ) बैठ के ( मधयेथा ) आनन्दित करो ॥११॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वायुकुपुतोपमालङ्कार है । जो सोमलतादि रसयुक्त धान्य वा पान से आप आनन्दित होकर हमको आनन्दित करते हैं वे ही सब से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र वरुण के समान राजाप्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की हससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह अरसद्वयी सूक्त और बारहवीं वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथाष्टवर्षकोलसप्ततिसप्तस्य सूक्तस्य अष्टावर्षो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रा-विष्णु देवते । १, ३, ६, ७ विष्णुविष्णु । २, ४, ५ विष्णुवृष्णः ।

देवतः स्वर्गः । ३ ब्राह्मण्युत्तिष्ठतः । ऋषयः स्वर्गः ॥

अथ आठ ऋचावर्षोऽतःसप्ततयं सूक्तं का अरसद्वय है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और सिलपीजन क्या करके क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**सं वां कर्मैवा समिवा हिंनोमान्द्राविष्णु अपसस्पारे अस्य ॥**

**सुषेवां यज्ञं द्रविषं च पशुमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्राविष्णु ) सूर्य और बिजुली के समान वर्तमान महाराज और शिल्पीजनों जिन ( बाम् ) तुम दोनों को मैं ( कर्मणा ) धर्तीव चाहूँ हुए काम से ( सम् हिनोमि ) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूँ ( अस्य ) इस ( अयसः ) काम के ( धारे ) धार में ( इवा ) धन्नादि पदार्थों से ( सम् ) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूँ वे ( अरिष्यः ) हिसकरहित ( पवित्रः ) भागों से ( न ) हम लोगों को ( पारयन्ता ) पार करते हुए तुम ( यजम् ) संगतिकरण कार्य ( इविणम्, च ) और धन वा यज्ञ को ( जुषे-चाम् ) सेवो धीर हम लोगों के लिये ( यत्नम् ) धारण कीजिये ॥ १ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उप-देशको ! जैसे वायु और बिजुली विमानादिको में अच्छे प्रकार जोड़े हुए गतिरूप कर्म के विषय को स्थान में पाग पहुँचाते हैं वैसे उनकी विद्या में तुमका प्रेरणा देकर जिस प्रकार हम लोग बढ़ावें उस प्रकार बढ़कर निर्विघ्न भागों में हम लोगों को लेजा के धन और यज्ञ की प्राप्ति निरन्तर कराइये उन आप लोगों की सेवा हम लोग निरन्तर करें ॥ १ ॥

फिर वे दोनों कैसे हैं और क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**या विश्वासां जनितां मतोनामिन्द्राविष्णुं कलशा सोमधाना ।**

**अ वां गिरः शस्यमाना अबन्तु प्र स्तोमांसो गीयमानासो अकैः ॥२॥**

**पदार्थ—**हे राजा और शिल्पीजनों ( या ) जो ( विश्वासात् ) समस्त ( मतीनाम् ) बुद्धियों के ( जनितां ) उत्पन्न करनेवाले ( सोमधाना ) जिनके बीच सोम बरते हैं वे ( कलशा ) घट के समान वर्तमान ( इन्द्राविष्णु ) सूर्य और बिजुली जिन ( बाम् ) तुम दोनों में ( अकैः ) मन्त्र वा सत्कारों से ( शस्यमाना ) प्रशंसा को प्राप्त होती हुई ( गिरः ) वाणी ( गीयमानासः ) सुन्दरता से गाई हुई तथा ( स्तोमासः ) जो स्तुति किये जाते हैं वे सब को ( प्र, अबन्तु ) अच्छे प्रकार पालें उन सबों की तुम लोग ( प्र ) अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥ २ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानों ! जो वायु और बिजुली बुद्धि बढ़ाने और सब विद्याओं के धारण करनेवाले वर्तमान हैं उनके अच्छे प्रकार प्रयाग से अर्थात् कार्या में लाने से विद्या, शिक्षा तथा वाणियों की अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥ २ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्राविष्णु मदपती मदानामा सोमं यातुं द्रविणो दधाना ।**

**सं वामञ्जस्वकुर्मिर्मतीनां सं स्तोमांसः शस्यमानासः उक्थे ॥३॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्राविष्णु ) वायु और बिजुली के समान सभासेनापतियों ( मदानाम् ) धानन्दों के बीच ( मदपती ) धानन्द के पालने और ( इविणो ) धन वा यज्ञ के ( दधाना ) धारण करनेवालों ! तुम दोनों ( सोमम् ) ऐश्वर्य्य को ( आ, वात्सम् ) प्राप्त हुआ ( बाम् ) तुम दोनों को ( मतीनाम् ) मनुष्यों के बीच ( अबन्तुमि ) रात्रियों से और ( उक्थे ) वेदस्थ स्तोत्रों से ( शस्यमानासः ) प्रशंसायुक्त की जाती ( स्तोमासः ) स्तुतियां ( सम्, अबन्तु ) अच्छे प्रकार प्रकट करें जिससे प्रीति के साथ तुम दोनों हम लोगों को ( सम् ) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वायु और बिजुली के समान सबक धानन्द के बढ़ाने वाले, मनुष्यों से प्रशंसा किये जाते और विद्या वा धन को अच्छे प्रकार देते हुए प्रयत्न करने हैं वे ही राजकर्म के योग्य होने हैं ॥ ३ ॥

फिर उस राजा को कौन प्राप्त होकर क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

**आ वामन्धांसो अभिमातिबाहु इन्द्राविष्णु सधमादा बहन्तु ।**

**जुषेथां विश्वा हर्बना मतोनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरे मे ॥४॥**

**पदार्थ—**हे ( इन्द्राविष्णु ) वायु और सूर्य के तुल्य वर्तमान सभासेनाधीशों ( बाम् ) तुम दोनों जो ( अभिमासः ) महासमाज ( अभिमातिबाहु ) अभिमान-युक्त शत्रुओं को सह सकते हैं वे ( सधमादः ) समान ध्यान को ( आ, बहन्तु ) प्राप्त करें उन ( मतीनाम् ) मनुष्यों के ( विश्वा ) सब ( हर्बना ) देने लेने योग्य ( ब्रह्माणि ) धनो को ( जुषेथाम् ) सेवा और ( मे ) मेरी ( गिर ) वाणियों को भी ( उप, शृणुतम् ) समीप में सुनो ॥ ४ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! यदि बुद्धि-मान्, धर्तीव बलवान् और शत्रुओं के बल के सहने वाले मनुष्य आपको प्राप्त होवें तो वे सब ऐश्वर्य्य और विद्या को ससार में बिस्तारें ॥ ४ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्राविष्णु तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उह चक्रमाथे ।**

**अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥ ५ ॥**

**पदार्थ—**हे राजा और प्रजाजनों जो ( इन्द्राविष्णु ) वायु और सूर्य ( सोमस्य ) ऐश्वर्य्य का ( मदे ) धानन्द प्राप्त होने पर ( तत् ) उस ( अन्तरिक्षम् ) भूमि और सूर्य के बीच का पोल को ( पनयाय्यम् ) प्रशंसा के योग्य करते हैं उनकी ( बाम् ) तुम ( उह, चक्रमाथे ) बहुत कामना करो और ( वरीयः ) अत्यन्त श्रेष्ठ को ( अप्रथतम् ) विख्यात करो उससे ( न ) हम लोगों के ( जीवसे ) जीवन को तथा ( रजांसि ) ऐश्वर्य्यों को ( अकृणुतम् ) सिद्ध करो ॥ ५ ॥

**भावार्थ—**हे राजप्रजाजनों ! जैसे यह से सोचे हुए वायु और बिजुली समस्त चराचर जगत् को प्रशंसा के योग्य और नीरोग करते हैं वैसे विज्ञात कर उसके हमारे ऐश्वर्य्य और जीवन को अधिक करो ॥ ५ ॥

फिर उन्हें कैसे सिद्ध कर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

**इन्द्राविष्णु द्रविषां वाङ्मानायादाना नमसा रातहव्या ।**

**घृतामुतो द्रविषां धनमम्मे ममुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥६॥**

**पदार्थ—**हे ऋत्विज और यजमानों ! जैसे ( द्रविषा ) होमे हुए पदार्थ से ( वाङ्माना ) निरन्तर ऋद्धि में बढ़े वा बढ़ाने ( अयादाना ) अग्रभाग के भोगने की विभाग करनेवाले धीर ( नमसा ) अन्नादि पदार्थ से ( रातहव्या ) देने योग्य देने वाले ( घृतामुतो ) सब और स जिनकी धी से प्रेरणा होती वे ( इन्द्राविष्णु ) वायु और सूर्य ( अस्ते ) हम लोगों में ( द्रविणम् ) धन और यज्ञ को धरते हैं वैसे तुम ( यत्नम् ) धीरो तथा ( सोमधान ) सामादि द्वाविधि जिसमें स्थापन की जाती और ( ममुद्रः ) अच्छे प्रकार जलत गे लेने है जिसमें वह धनरक्षि वा मेघ ( कलशः ) घट के समान वर्तमान है उसके समान ( स्थ ) होते हो ॥ ६ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे ऋत्विज और यजमान प्रादि जनों ! सुगन्धित और घृतादि पदार्थों का होम स वायु और सूर्य को शुद्ध कर सबके भाग्य की सिद्धि कर सबक सुख को बढ़ाने वाले होओ ॥ ६ ॥

**इन्द्राविष्णु पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दक्षा जठरं पूणेथाम् ।**

**आ वामन्धांसि मदिरापर्यममप ब्रह्माणि शृणुतं हव मे ॥७॥**

**पदार्थ—**हे अध्यापक और उपदेशको ( दक्षा ) दुख के विनाश करनेवालों ( बाम् ) तुम दोनों को जा ( मध्व ) मधुरगुणयुक्त ( अस्य, सोमस्य ) सोम आदि ओषधियों में उत्पन्न हुए हम रस के ( मदिराणि ) धानन्द करनेवाले ( अपर्याप्ति ) अन्न ( अमम् ) प्राप्ति हों उनको ( इन्द्राविष्णु ) वायु और बिजुली के समान ( पिबतम् ) पिबो और उनसे ( जठरम् ) उदर को ( आ, पूणेथाम् ) अच्छे प्रकार भरो फिर ( मे ) मेरे ( ब्रह्माणि ) पढ़े हुए वेदस्तोत्रों को धीर ( हवम् ) नित्य के वेदपाठ को ( उप, शृणुतम् ) समीप में सुनो ॥ ७ ॥

**भावार्थ—**इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य औषधों से शरीर के रोगों का तथा विद्या, सत्संग और धर्म के अनुष्ठान से आत्मा के रोगों को निवार के वायु और बिजुली के समान बलिष्ठ हो विद्याभ्यास करके विद्यापियों की परीक्षा करते हैं वे सब के दुखों को निवृत्त कर आनन्द दे सकते हैं ॥ ७ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

**उमा जियथुर्न परां जयथे न परां जिग्ये कतरश्चनैर्नोः ।**

**इन्द्रश्च विष्णो यवपस्पृधेयां ब्रेधा मङ्गं वि तदैरयेथाम् ॥८॥१३॥**

**पदार्थ—**हे ( विष्णो ) बिजुली के समान व्याप्त होनेवाले ( इन्द्र, च ) और परमेश्वर्य्यवान् वायु के समान वर्तमान तुम दोनों ( यत् ) जो ( सहजम् ) असंख्य सेना समूह है ( तत् ) उसे ( ब्रेधा ) तीन प्रकार ( अपस्पृधेयाम् ) स्पर्द्धा अर्थात् तर्क विनर्क से स्थापित करो धीर उसे ( वि, ऐरयेथाम् ) विविध प्रकार से यथास्थान स्थित कराओ ऐसा करो तो तुम ( उमा ) दोनों ( जियथु ) विजय को प्राप्त होते हो ( न ) नहीं ( परा, जयथे ) पराजय को प्राप्त होते हो तथा ( एनोः ) इनके बीच ( कतरः ) कोई एक ( जन ) भी ( न ) नहीं ( परा, जिग्ये ) पराजित होता है ॥ ८ ॥

**भावार्थ—**हे सेनाबल के प्रधीशों ! यदि आप लोग सर्वदा सेना की उन्नति के लिये और युद्धविद्या की वृद्धि के लिये प्रयत्न कीजिये तो सर्वत्र जीनिये कहीं भी न पराजित हूँजिये ॥ ८ ॥

इस सूक्त में इन्द्र और विष्णु के समान सभा और सेनेश आदि के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की हमसे पूरा सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उक्ततरवां सूक्त और सेरहवां वर्ण समाप्त हुआ ॥

॥

अथ बहुवचस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य अष्टादशो बार्हस्पत्य ऋषिः । आवापुषिष्वी देवते । १ ५ निचुञ्जगती । २, ३, ४, ५ जगतीऽध्वनः । निवाहः स्वरः ॥

अथ छः ऋचावाले सत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में भूमि और सूर्य कैसे वर्तमान हैं इस विषय को कहते हैं—

**घृतवती सुवनानामभिधियावी पृथ्वी मधुदुधे सुपेशसा ।**

**धावापृथिवी वर्णस्य धर्मणा विष्कमिरे अजरे भूरिरेतसा ॥१॥**

**पदार्थ—**हे मनुष्यों तुम ( सुवनानाम् ) समस्त लोकों सम्पन्नी ( अभिधियावी ) सब और से कान्तियुक्त ( उर्वी ) बहुत पदार्थों से युक्त धीर ( पृथ्वी ) विष्णु से युक्त ( घृतवती ) जिनमें बहुत उदक वा दीप्ति विद्यमान है तथा ( मधुदुधे ) जो मधुरादि रसों से परिपूर्ण करनेवाले ( सुपेशसा ) जिनका कोमायुक्त कर्ण वा जिनके

वीक्षितमान सुवर्ण उत्पन्न होता ( सूर्यरैतसा ) जिन से बहुत वीर्य्य वा जल उत्पन्न होता और ( अक्षरे ) जो आजीर्ण अर्थात् क्षिप्त भिन्न नहीं वे ( वषणास्य ) सूर्य्य वा वायु के ( धर्मणा ) आकर्षण = खींचने वा धारण करने आदि गुण से ( विष्कम्भिते ) विशेषता से धारण किये हुए ( आवापृथिवी ) भूमि और सूर्य्य है उन्हें यथावत् जानो ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप भूगर्भ और बिजुली की विद्या को जानो और जो दो पदार्थ सूर्य्य तथा वायु से धारण किये हुए हैं उनसे बल की वृद्धि और कामना की पूर्णता करो ॥ १ ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं—

असत्त्वन्ती भूरिधारे पर्यस्वती धृतं दृढाते सुकृते शुचिंशते ।

राजन्ती अस्य सुवर्णस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चत यन्मनुहितम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( असत्त्वन्ती ) अलग अलग वर्तमान ( भूरिधारे ) जिनकी बहुत धारतों निष्काम ( वषणास्य ) जो बहुत जल से युक्त ( सुकृते ) जो ईश्वर से सुन्दर बनाये वा अक्षरे कर्म करानेवाले और ( शुचिंशते ) पवित्र कर्मयुक्त हैं तथा ( अस्मे ) इस ( सुवर्णस्य ) ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में ( राजन्ती ) प्रकाशमान हैं वे ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी ( अस्मे ) हम लोगों में ( यत् ) जो ( मनु-हितम् ) मनुष्यों का हित करनेवाला है उस ( धृतम् ) जल को ( दृढाते ) पूर्ण करते हैं उस ( रेतः ) जल वा वीर्य्य को ( सिञ्चतम् ) नीचते हैं उन्हें यथावत् उप-कार के लिये प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! सूर्य्य और भूमि ही सब जगत् की रक्षा के निमित्त बहुत उदक आदि पदार्थयुक्त और सब के काम को पूर्ण करते हैं उनको यथावत् जान कर कार्य की सिद्धि के लिए अच्छे प्रकार उनका प्रयोग करो ॥ २ ॥

फिर इनको जान कौन कैसा होता है इस विषय को कहते हैं—

यो वायुजवे क्रमणाय रोदसी मतो दृढाश विषणे स साधति ।

प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विधुरूपानि सव्रता ॥३॥

पदार्थ—हे राजा प्रजाजनों ! जो ( विषणे ) प्रजा और प्रगल्भता के कारण ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी ( वायु ) तुम लोगों को ( अक्षरे ) सरलपन के लिये और ( क्रमणाय ) गमन वा घातगमन के लिये होते हैं उनको ( यः ) जो ( मतोः ) मनुष्य ( दृढाश ) वेता है ( सः ) वह कार्यों को ( प्र, साधति ) प्रसिद्ध करता है और ( प्रजाभिः ) उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ ( विधुरूपानि ) प्रसिद्ध होता है और ( यवोः ) तुम्हारे ( धर्मणः ) धर्म में ( सिक्ता ) व्याप्त रूप ( सव्रता ) समान कर्मों को तथा ( सिक्ता ) वीर्य्य वा उदको को सींचे हुए करते हैं वे ( परि ) सब ओर से सिद्ध करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो भूगर्भविद्या और आवापृथिवी के कर्मों को जानते हैं वे प्रजा, पशु, विद्या और राज्य से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

फिर वे कैसे हैं और क्या प्राप्त करते हैं इस विषय को कहते हैं—

धृतेन आवापृथिवी अमीवृते वृत्तत्रिपा वृत्तपृष्ठा वृत्तावृधा ।

उर्वी पृथ्वी होतृव्यं पुरोहिते ते इन्द्रिमा इज्यते सुम्नसिष्टये ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( विप्राः ) मेधावी बुद्धिमान् पुरुष ( धृतेन ) जल से तथा ( उर्वी ) बहुत गुण और पदार्थों से युक्त ( अमीवृते ) सब ओर से वर्तमान ( वृत्तत्रिपा ) अत्यन्त प्रकाश वा धमकाश घन जिन का ( वृत्तपृष्ठा ) जो प्रकाश वा जल से अच्छे प्रकार सम्बन्ध किये हुए और ( वृत्तावृधा ) तेज से बहते हैं तथा ( होतृव्यं ) होता जन जिनसे स्वीकार होते और ( पुरोहिते ) आगे से हित को धारण करते हुए ( इज्यते ) संग के लिये ( पृथ्वी ) बहुत विस्तारयुक्त जो ( आवा-पृथिवी ) बिजुली और अमृतरिक्त हैं उनकी ( इन्द्रिमा ) प्रशंसा करते हैं ( ते, इत् ) वे ही सब से ( सुम्नस् ) सुख पाते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम बुद्धिमान् जन बिजुली और अमृतरिक्त की विद्या की जाग के कार्यों में लगाते हैं वैसे तुम भी उनका प्रयोग करो ॥ ४ ॥

फिर उनसे क्या करने योग्य है इस विषय को कहते हैं—

सधु नो आवापृथिवी भिमिक्षतां मधुरचुता मधुदुसे मधुव्रते ।

दधाने सधु द्रविण्यं च देवता महि अवो वाजमस्मे सुवीर्य्यम् ॥५॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जो ( मधुरचुता ) मधुर जल के बधनि और ( मधुव्रते ) मधुर जल से काम पूरे करते ( मधुदुसे ) जिनके मधुर काम ( देवता ) को दिव्यरूप ( अस्मे ) हम लोगों में ( मधु ) संगतिवय व्यवहार ( द्रविण्यम् ) धन ( महि ) महान् ( अवः ) धन्य ( वाजम् ) विज्ञान ( सुवीर्य्यम्, च ) और उत्तम पराक्रम को भी ( दधाने ) स्थापन करते हुए ( आवापृथिवी ) सूर्य्य और भूमि यह दोनों पदार्थ वर्तमान हैं उन्हें तुम ( नः ) हमारे लिये ( मधु ) मधुर जल के ( भिमिक्षताम् ) खींचने की इच्छा करो ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे भूमि और सूर्य्य सत्य कर्मयुक्त, इच्छा पूरी करने और मधुरादि रख देने, धन, धन्य, बल और विज्ञान के बढ़ाने वाले हैं वैसे आपका ध्यान करो ॥ ५ ॥

फिर वे कैसे किसके मुख्य और क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

ऊर्ज्मी नो द्यौश्च पृथिवी च पितृतां पिता माता विश्वविदा सुवसंसा ।

संरराखे रोदसी विश्वर्षभवा मनि वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥६॥१४

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( विश्वविदा ) जिन से सर्व सुख को प्राप्त होते हैं ( सुवसंसा ) जिनसे सुन्दर काम सिद्ध होते हैं ( संरराखे ) जो अच्छे प्रकार सुख करते हैं और ( विश्वर्षभवा ) जो सब के लिये सुख की भावना कराने वे ( रोदसी ) बहुपदार्थयुक्त आवापृथिवी ( अस्मे ) हम लोगों में ( रयिम् ) अच्छे प्रकार विभाग को और ( वाजम् ) विज्ञान वा धन तथा ( रयिम् ) धन का ( सम, इन्वताम् ) उत्तमता से व्याप्त हों तथा ( पिता ) पिता के समान ( माता ) सूर्य्य वा विश्वरूप अग्नि ( च ) और ( पिता ) माता के समान ( पृथिवी ) भूमि ( च ) भी ( नः ) हमारे लिये ( ऊर्ज्म् ) धन्य वा पराक्रम को ( विन्वताम् ) सुखपूर्वक परिपूर्ण करें उनकी यथावत् जानो ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! आप जो सूर्य्य पिता के समान, जो पृथिवी माता के समान वे दोनों सर्व सुख देने वा धन और ऐश्वर्य्य की प्राप्ति कराने वा मयल करानेवाले उत्तम क्रियायुक्त और बल वा पराक्रम देनेवाले वर्तमान हैं उनको उत्तम यत्न के साथ कैसे न जानो ॥ ६ ॥

इस सूक्त में आवापृथिवी और उनके समान अध्यापक और उपदेशक वा ऋत्विक् और यजमानों के काम का वर्णन होने में इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तरवीं सूक्त और चौदहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

॥

अथ बहुषस्वेकसप्ततितमस्य सूक्तस्य मरदाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । सविता

देवता । १ जगती । २, ३ निबृज्जगतीच्छन्दः । निषाद स्वरः । ४

विष्टुप् । ५, ६ निबृज्जगतीच्छन्दः । बंशतः स्वरः ॥

अथ च ऋचावाले एकसत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम द्वितीय मन्त्र में फिर राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं—

उदु प्य देवः सविता हिरण्ययां बाहू अयंस्त सवनाय सुकृतुः ।

धृतेन पाणी अभि मण्डते मखो युवां सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥

पदार्थ—जो ( यजः ) यज्ञ के समान सुख करनेवाला ( विधर्मणि ) विशेष धर्म में ( सुदक्षः ) सुन्दर बल जिसका वह ( युवा ) जवान ( सुकृतुः ) उत्तम बुद्धि-युक्त ( सविता ) ऐश्वर्य्यवान् ( देवः ) विद्वान् ( सवनाय ) ऐश्वर्य्य के लिये ( धृतेन ) जल वा धी से युक्त ( बाहू ) प्रशंसा करने योग्य ( हिरण्यया ) सुवर्ण आदि आभूषण युक्त ( बाहू ) भुजाओं को ( जत्, अयंस्त ) उठाता है ( मखः, उ ) नहीं ( रजसः ) लोक के विरोधियों को ( अभि, मण्डते ) सब ओर से भस्म करता है ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् अतिबल से युक्त भुजाधोवाला, अत्यन्त बुद्धिमान्, विशेषता में धर्मात्मा होकर ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये निरन्तर उद्यम करता है वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर फिर सब प्रजा के धर्म में प्रवेश कर जैसे यज्ञ सुख देता है वैसे सुखी करता है ॥ १ ॥

देवस्यं वयं संबितुः सवीमनि अहे ह्याम वसुनश्च दावनें ।

यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भुमनः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् राजा ( यः ) जो ( द्विपदः ) मनुष्यादि दो पगवाले जीव और ( यः ) जो ( चतुष्पदः ) गो आदि चार पग वाले पशु आदि जीवों के ( भुमनः ) बहुकपी ( विश्वस्य ) समग्र संसार के ( प्रसवे ) उस उत्पन्न हुए स्थान में ( निवेशने ) जिसमें सब निवेश करते हैं अधिव्याप्त होकर विराजमान है उस ( संबितुः ) सकल जगत् के उत्पन्न करनेवाले ( देवस्य ) अपने आप प्रकाशमान पर-मेश्वर के ( यच्छे ) प्रशंसित व्यवहार में ( सवीमनि ) उत्पन्न हुए जगत् में ( वसुना, च ) जन के भी ( दावने ) देने में जैसे ( यजत् ) हम लोग उद्यत ( स्वाय ) हैं वैसे तुम ( यः ) जो जिस कारण ( जति ) हो इससे यही राजा होओ ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकसुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे इस जगत् में जगदीश्वर अधिव्याप्त होकर सब की रक्षा करता है वैसे ही इस जगत् के व्याप्त होकर विद्या और विनय से समस्त राज्य को पुत्र के समान पालो ॥ २ ॥

फिर यह राजा कैसा और किससे क्या करे इस विषय को जगते मन्त्रों में कहते हैं—

अदंश्वेभिः सवितः पायुमिष्टं शिषेभिरघ परि पाहि नो गव्यम् ।

हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघर्षस ईशत ॥३॥

पदार्थ—हे ( सवितः ) अच्छे कामों में प्रेरणा देनेवाले राजन् ! ( रक्ष ) आप ( अघ ) अथ ( अदंश्वेभिः ) न नष्ट करने वा न नष्ट होने और ( शिषेभिः ) सुख करने वा संगत विज्ञान करनेवाले ( पायुभिः ) रक्षा के निमित्तों से ( नः ) हमारे ( गव्यम् ) घंटाण अथ और घर की ( परि, पाहि ) सब ओर से रक्षा करो तथा ( हिरण्यजिह्वः ) सुवर्ण के समान सत्य से जिसकी वाणी प्रकाशित है ऐसे होते हुए



( नम्यते ) प्रतीक नवीन ( सुविताय ) ऐश्वर्य के लिए हमारे पुत्रादिकों की ( रक्ष ) रक्षा करो जैसे ( अयशांसः ) और ( नः ) हम लोगों के प्रति ( भाकिः ) न ( ईक्षत ) विघ्नों के करने की समर्थ हो ऐसा करो ॥ ३ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा प्रयत्न के साथ प्रजाओं की अच्छे प्रकार रक्षा कर बाहुओं की मारे वही नवीन नवीन ऐश्वर्य को उत्पन्न कर निरन्तर प्रजाजनों का प्यारा और धार्मिक हो ॥ ३ ॥

**उदु ध्व देवः सविता बभूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्यात् ।**

**अयोन्युजतो मन्द्रजिह्व भा दाशुर्व सुवति भूरि वामम् ॥४॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जो ( बभूनाः ) दमनशील ( हिरण्यपाणिः ) सुवर्ण आदि हाथ में लिये हुए ( अयोन्युः ) लोहे के समान दृढ़ छोड़ी रखने और ( मन्द्रजिह्वः ) सँग करनेवाला ( मन्द्रजिह्वः ) जिसकी आनन्द देनेवाली वाणी विद्यमान वह ( सविता ) ऐश्वर्यदाता और ( देवः ) सुख देनेवाला विद्वान् ( प्रतिदोषम् ) जैसे रात्रि रात्रि के प्रति सूर्य उदय होता है वैसे प्रजा पालन करने के लिये ( उदु, अस्यात् ) उठता है तथा ( दाशुर्व ) दान करनेवाले के लिये ( भूरि ) बहुत ( वामम् ) प्रशमा योग्य कर्म के प्रति ( आ, सुवति ) उद्योग करने में प्रेरणा देता है ( स्व, उ ) वही राजा होने की योग्य होता है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर से नियुक्त किया सूर्यलोक प्रतिक्षण अपनी क्रिया को नहीं छोड़ता वैसे ही जो राजा न्याय से राज्य पालने के लिये प्रतिक्षण उद्योग करता है, एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता तथा सब मनुष्यों को उत्तम कर्मों के बीच ध्यापन करके उन्हें प्रेरणा देता है वही शम वम आदि शुभगुणों से युक्त राजा होने योग्य है यह सब जानें ॥ ४ ॥

फिर राजा किसके तुल्य क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

**उदु अयां उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।**

**दिवो रोहांस्यरुद्रपृथिव्या अरिरमत्पतयस्क चन्द्रम् ॥५॥**

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( सविता ) सूर्यमण्डल ( दिवः ) आकाश की ( रोहांसि ) चढ़ावों की ( अरुद्रः ) चढ़ता है और ( पृथिव्या ) धन्तरिक्ष के मध्य में भूमि के समान ( अम्बम् ) महान् न्याय की ( अरिरमत् ) बर्तावे ( चित् ) और ( पतयत् ) पति के समान आचरण करे वैसे जिसकी ( सुप्रतीका ) सुन्दर प्रतीति करनेवाले काम जिनसे होते ऐसे ( हिरण्यया ) हिरण्य के समान सुदृढ़ सुशोभित ( बाहू ) भुजा वर्तमान हैं वह ( उ ) ही ( उपवक्तेव ) समीप कहनेवाले के समान ( कत् ) कब ( उदु, अयान् ) उदय हो ॥५॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे राजन् ! आप सब सूर्य के समान न्याय और विनय से प्रकाशित सुन्दर दृढ़ अङ्गयुक्त, खेष्ट वर्मज विद्वानों के समान वक्ता होओ । जैसे इस जगत् में सर्वोपकार के लिये ईश्वर से सूर्य बनाया है वैसे ही सब के सुख के लिये राजा बनाया है ॥५॥

फिर वह प्रजाओं के लिये क्या करे इस विषय को कहते हैं—

**वामस्य सवितर्धामसु श्रो विवेदिवे वाममस्मर्य सावीः ।**

**वामस्य हि सयस्य देव भूरिया धिया वाममार्जः स्याम ॥६॥१५॥**

पदार्थ—हे ( सवितः ) ऐश्वर्य के देनेवाले ( देव ) विष्णुयुक्त राजन् ! जैसे ( हि ) जिस कारण से आप ( अद्य ) धन ( वामम् ) प्रशंसा करने योग्य सुख ( उ ) और ( देवः ) भगवते दिन ( वामम् ) प्रशंसा करने योग्य सुख तथा ( विवेदिवे ) प्रतिदिन ( वामम् ) प्रति उत्तम सुख ( अस्मर्यम् ) हमारे लिये ( सावी ) उत्पन्न करो उससे उस ( अया ) इस ( धिया ) प्रजा वा कर्म से ( भूरिः ) बहुत प्रकार के ( वामस्य ) प्रशंसित ( सयस्य ) घर के ( वाममार्जः ) वामभाज अर्थात् प्रशंसित सुख भोगनेवाले हम लोग ( स्याम ) हो ॥६॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जिससे आप हम प्रजाजनों के लिये प्रशंसनीय सुख को उत्पन्न करते और रक्षा का विधान करते हो वैसे हम लोग सुख से भन, घर और प्रशंसित कामों के सेवने वाले होकर आपकी आज्ञा में नित्य वर्ते ॥६॥

इस सूक्त में सविता, राजा और प्रजा के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के धर्म की इससे पूर्व सूक्त के धर्म के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह इकहत्तरवां सूक्त और पञ्चहत्ती वर्ग समाप्त हुआ ॥

॥॥

अथ पञ्चमस्य द्विसप्ततिसप्तस्य सूक्तस्य मरदाओ बाह्व्यस्य ऋषिः ।

इन्द्रासोमी देवते । १ निष्प्रतिष्ठदुः । २, ४, ५ विराट्प्रतिष्ठदुः ।

३ निष्प्रतिष्ठदुः । ४ वज्रतः स्वरः ॥

अथ बह्वारवं सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथममन्त्र में अध्यापक और उपदेशक किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रासोमा महि उदा महिस्व सुर्व महानि प्रथमानि चक्रयुः ।**

**सुर्व सृष्टिं विविदधुर्वर्षं स्वः विस्वा तर्मास्यहसं निदध्व ॥१॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे ( इन्द्रासोमा ) बिजुली और चन्द्रमा ( सुर्वम् ) सूर्य को ( विविदधुः ) प्राप्त होते हैं वैसे ( सुर्वम् ) तुम न्याय-रूपी सूर्य को प्राप्त होओ जैसे यह बड़े कामों की करते हैं वैसे ( चक्रयुः ) तुम्हारा ( तत् ) वह ( महि ) महान् ( महिस्वम् ) अङ्गभन है और वैसे ( सुर्वम् ) तुम ( महानि ) प्रशंसायोग्य ( प्रथमानि ) ब्रह्मचर्य और विद्या ग्रहण और दान आदि कामों की ( चक्रयुः ) करो ( सुर्वम् ) तुम जैसे यह दोनों ( विस्वा ) समस्त ( तर्मासि ) रात्रि के समान अविद्या आदि अन्धकारों को नष्ट करते हैं वैसे अविद्या और अन्याय से उत्पन्न हुए पापों की ( महत्तम् ) नष्ट करो और ( स्वः ) सुख की प्राप्ति करो वा कराओ ( विव, च ) और निन्दक तथा पाषाणियों की निरन्तर नष्ट करो ॥१॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे प्रजाजनों ! जैसे सूर्य को प्राप्त होकर चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशकों का सग कर सब प्रकाशित आत्मावाले हो ॥१॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रासोमा वासयं उपासमुस्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।**

**उप धां स्कम्भयुः स्कम्भनेनाप्रयतं पृथिवीं मातरं वि ॥२॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे ( इन्द्रासोमा ) वायु और बिजुली ( उपासम् ) प्रभातकाल की ( उत् ) और ( सुर्वम् ) सूर्यमण्डल की बसाते हैं वैसे विद्या और न्याय से प्रजाजनों को तुम ( वासयथः ) बसाओ वैसे दोनों ( ज्योतिषा ) ज्योति के ( सह ) साथ ( धाव् ) प्रकाश की रोके वैसे अच्छे व्यवहार को ( उप, स्कम्भयुः ) व्यवहार करनेवाले के समीप रोको वैसे यह दोनों ( स्कम्भनेन ) रोकने से ( मातरम् ) माता के समान वर्तमान ( पृथिवीम् ) पृथिवी को विस्तारते हैं वैसे ही राज्य की ( वि, अप्रचलत् ) विवेकता से विस्तारो और मुल को ( नयथः ) प्राप्त करो ॥२॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उप-देशको ! जैसे बिजुली और पवन सूर्य आदि लोकों का निवास कराते हैं वैसे ही प्रजाजनों को अच्छे उपदेश से मुल में बसाओ ॥२॥

फिर वे किसके तुल्य कैसे बर्ताव करावें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठा हवो वृत्रमहं वा घोरमवत ।**

**प्राणीस्यैरयतं नदीनामा संहद्रानि यप्रधुः पुरुषि ॥३॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको तुम दोनों जैसे ( इन्द्रासोमा ) बिजुली और पवन ( परिष्ठावः ) सब ओर से स्विन होनेवाले ( वृत्रम् ) सूर्यावरक ( अहिम् ) मेघ की ( हवः ) छिन्नभिन्न करते और ( अपः ) जलो की ( आ, यप्रधुः ) व्याप्त होते हैं वैसे अविद्या को नष्ट भ्रष्ट कर विद्या को विस्तारो । जैसे यह दोनों ( नदी-नामा ) नदियों के ( पुरुषि ) बहुत ( समुद्राणि ) उन स्थानों की जिनमें अच्छे प्रकार जलतरङ्ग लेते हैं वैसे ( अर्णासि ) जलो की प्रेरणा देते हैं वैसे भार्गवों के बीच मनुष्यों के अन्तःकरणों की ( प्र, ऐरक्तम् ) प्रेरित करो ऐसे ( वाम् ) तुम दोनों के बीच एक ( धी ) प्रकाश के समान ( अमन्यत ) मानता है दूसरा ( अन्तु ) तदनुगामी होता है ॥३॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उपदेशको ! जैसे वायु और बिजुली मेघ को नष्ट भ्रष्ट कर जल को वर्षाते हैं वैसे कुत्सित शिखा को विनष्ट कर अच्छी शिखा की वर्षा करो ॥३॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रासोमा पक्वमासास्वन्तनि गवाभिर्धनयुर्वस्रसासु ।**

**जगमपुरमपिनदमासु कश्विन्नासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥**

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम दोनों जैसे ( इन्द्रासोमा ) पवन और बिजुली ( जगमासु ) न पकी हुई सामग्रियों के ( जगत् ) बीच ( पक्वम् ) पाक को ( नि, वक्वम् ) स्थापन करते हैं और ( गवाम् ) किरणों के बीच ( इत् ) निश्चित तथा ( जासु ) इन ( वक्वसासु ) नदियों में ( अवपिनदम् ) सुला हुआ ( जगमधुः ) ग्रहण करते हैं तथा इन ( जिन्नासु ) यद्वयुत ( जगतीषु ) सृष्टियों के ( जगत् ) बीच ( वक्वम् ) मुख्य को बारण करते हैं वैसे तुम वर्तों ॥४॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो बिजुली और पवन के समान सब में दृढ़ ज्ञान स्थापन कर नदी के प्रवाह के तुल्य आगे बढाते हैं वे संसार में कल्याण करने वाले होते हैं ॥४॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं—

**इन्द्रासोमा युवमङ्ग तर्हमपस्यसाचं अत्यं स्राये ।**

**युं शुष्मं नयं चर्षणिम्भः सं विज्ययुः पृतनापाहमुत्रा ॥५॥१६॥**

पदार्थ—हे ( अङ्ग ) हे मित्र अध्यापक और उपदेशक ( युवम् ) तुम दोनों ( इन्द्रासोमा ) वायु और बिजुली के समान वर्तमान ( तर्हम् ) युद्ध से लड़ने और ( अपस्यसाचम् ) सतान के बीच व्याप्त होने वाले ( अत्यम् ) अवस्था में उत्तम ज्ञान की ( रराये ) वेओ और ( युवम् ) तुम दोनों ( चर्षणिम्भः ) मनुष्यों के लिये ( अङ्ग )

सेवासी होते हुए ( वृत्तव्याप्तम् ) सेनाओं की सहानुभूति (वर्धनम्) मनुष्यों में उत्पन्न ( वृत्तव्याप्तम् ) करने की ( वृत्तव्याप्तम् ) अन्धे प्रकार युक्त करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे अध्यापक वा उपदेशको ! आप लोग पवन और बिजुली के समान सर्वत्र अनुपस्थित हैं वगैरे होते हुए उत्तम संतानों की उत्पत्ति कर मनुष्यों के हित करनेवाले शरीर और आत्मा के बल को उत्पन्न करें जिससे मनुष्यों की सेना को सह सके ॥ ५ ॥

इस सूक्त में वृद्ध, शीम, अध्यापक और उपदेशकों के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह महत्तरवां सुक्त और सोमहर्षां अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥

अथ अनुसृत्य भित्तव्यतितमस्य सुतस्य सप्तमो बार्हस्पत्य ऋषिः । वृत्तव्याप्तयेवता । १, २ विष्टुम् । ३ विष्टव्यमिष्टुम् कम् । अथतः स्वरः ॥

अथ तीन ऋषिवाक्ये महत्तरां सुक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा जिसके तुल्य होता है इस विषय को कहते हैं—

यो अहिमिस्त्रिभुवनं चतुर्विधं बृहस्पतिराहिरसो हविष्मन् ।

द्विर्विज्यां प्राध्वमैस्तृता न आ रोदसी शुभो रोरवीति ॥१॥

वार्थ—हे राजन् ( यः ) जो ( प्रथमः ) प्रथम उत्पन्न हुआ ( अहिमि ) मेघों का विदीर्ण करने और ( अहिमि ) जल को अन्धे प्रकार सेवने वाला ( बृहस्पतिः ) पृथिवी आदि एक और ( अहिमि ) वायु और बिजुलियों में उत्पन्न हुआ ( हविष्मन् ) जिसमें हुयी होय हुए विद्यमान जो ( द्विर्विज्या ) वो से बढ़ता है उससे युक्त भूमि जिसकी वह ( प्राध्वमैस्तृता ) प्रताप का सेवनेवाला ( नः ) हमारा ( तृता ) पालने वाले के समान ( अहिमि ) वर्षा करानेवाला मेघों को क्षिप्रान्न करनेवाला ( रोदसी ) आकाश और पृथिवी को प्राप्त हो ( आ, रोरवीति ) बिजुली आदि के योग से सब ओर से सम्म करना है उसके तुल्य तुम ही हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जो राजा मेघ का सर्व जैसे जैसे मनुष्यों का विदीर्ण करनेवाला, ज्येष्ठ, महात्मा, धर्माला जनो की पालना करनेवाला, प्रजापति, पृथिवी पर सुख वर्धनद्वारा होकर प्रजाओं में न्याय का निरन्तर उपदेश करे वही पृथिवी के तुल्य समशील और प्रतापवान् तथा प्रजाओं में पिता के समान वर्त ॥ १ ॥

फिर उस राजा को जैसे सेना के अधिकारी करने चाहिये इस विषय को कहते हैं—

अनाय चिद्विषत उ लोकं बृहस्पतिर्दिव्यौ चकार ।

अनन्त्राणि वि पुरो र्वरीति जयन्त्यै र्भिमित्रान्यस्तु सार्धम् ॥२॥

वार्थ—हे मनुष्यो ( यः ) जो ( दिव्यौ ) विद्वानों के बुलाने में ( बृहस्पतिः ) बड़ों की पालना करनेवाले सुर्यलोक के समान ( विषत ) समीप जाने वाले ( अनाय ) मनुष्य के लिये ( लोकम् ) देने योग्य सुख का स्वाद को प्रकाशित ( चकार ) करता है तथा ( पुरो ) सन्तानों में ( सार्धम् ) सहन करता हुआ ( भिमित्रान् ) विरोधी उदासीन जनों को ( जयन्त्यै ) जीतता और ( अन्त्राणि ) मनुष्यों को ( अन्त्राणि ) मारता हुआ तथा ( वि, र्वरीति ) जनों की प्राप्ति होता हुआ ( पुरो ) मनुष्यों के नगरों को ( वि, र्वरीति ) निरन्तर विदीर्ण करता है वह ( उ, चिद्वि ) ही सेनापति होने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो न्याय से प्रजा पालने के लिये प्रसन्न, पूर्णशरीरसम्बलपुत्र, शीर, विद्वान् हीन से सेनापति हों जिससे मनुष्यों के जीतने और उनकी सेना के सहने और उसे क्षिप्रान्न करने तथा विजय और जन को पाने की समर्थ हो ॥ २ ॥

फिर वह होता है इस विषय को कहते हैं—

बृहस्पतिः समस्तपुत्रानि महो ब्रजान् भीमती देव वृषः ।

अपः सिधामन्स्वरप्रवीतो बृहस्पतिर्हन्त्यभिर्भुक्तैः ॥३॥१७॥

वार्थ—हे मनुष्यो जैसे ( महः ) महात्मा ( देवः ) देवीपूज्यमान ( वृषः ) वह ( बृहस्पतिः ) सुर्य के समान देववाणी को पालनेवाला ( गोवतः ) बहुत किरणों के युक्त ( अनाय ) मेघों को क्षिप्रान्न कर ( अन्त्राणि ) जनों की पक्षाधि कर्तृ की पालना करता है जैसे मनुष्यों से ( अन्त्राणि ) न प्रतीति को प्राप्त होता हुआ ( बृहस्पतिः ) बड़े राज्य की अवाध रक्षा करनेवाला राजा ( अन्त्राणि ) दण्ड आदि के साथ प्रजाओं के ( सिधामन् ) काम पूरे करने की इच्छा कर ( अहिमि ) वायु की ( हन्ति ) मारता है तथा मनुष्यों की ( अन्त्राणि ) अन्धे प्रकार जीतता है तथा ( अन्त्राणि ) जनों की प्राप्ति होता और ( वः ) अन्तरिक्ष के समान अवाध सुख को उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जो राजा सुर्य के समान विद्य, विजय और अन्धे सहाय से प्रकाशमान, प्रजाओं की पालना करता और सब के लिये धनवधान होता हुआ पुण्यकर्म करनेवालों की निपुणता करता है वही महो राजाओं में महात्मा राजा होता है ॥ ३ ॥

इस सूक्त में बृहस्पति के मनुष्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह महत्तरवां सुक्त और सोमहर्षां अर्थ समाप्त हुआ ॥

॥

अथ अनुसृत्य भित्तव्यतितमस्य सुतस्य सप्तमो बार्हस्पत्य ऋषिः, सोमहर्षी देवते । १, २, ४ विष्टुम् । ३ विष्टव्यमिष्टुम् कम् । अथतः स्वरः ॥

अथ चार ऋषिवाक्ये महत्तरां सुक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और वैद्य जैसे अन्धे ही इस विषय को कहते हैं—

सोमावृता धार्वैचामसुर्यैः वायिहयोऽरभस्तुवन्तु ।

द्वैर्विभे सप्त रत्ना दधाना शं नीं सुतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

वार्थ—हे ( सोमावृता ) चन्द्रमा और प्राण के तुल्य राजा और वैद्यजो तुम दोनों ( अरुच्यम् ) मेघ के इस कर्म की ( धार्वैचाम् ) धारण करी जिससे ( चाम् ) तुम को ( इष्टव्यः ) इच्छाओं की प्राप्ति ( अरुच्यम् ) पूरी ( अ, अरुच्यम् ) मिले तथा ( द्वैर्विभे ) वर २ में ( सप्त ) सात ( रत्ना ) रत्नीय हीरा आदि को ( दधाना ) धारण किये हुए ( नः ) हमारे ( द्विपदे ) दो पग वाले मनुष्य आदि के लिये ( शम् ) सुख करनेवाले ( सुतम् ) हीनो और ( चतुष्पदे ) गी आदि चौपाये जीवों के लिये ( चम् ) सुख करनेवाले होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो राजा चन्द्रमा के तुल्य और जो वैद्य प्राण के तुल्य सबकी निर्भय और तीव्र रोग करें के सब सुखों को प्राप्त होते हैं जो प्रजा के वर वर में जन और आरोग्य को बढ़ावे के द्विपग वाले चार पग वालों से बहुत सुखों को प्राप्त होते हैं ॥

फिर वे कितनी विचार के क्या उत्पन्न करें इस विषय को कहते हैं—

सोमावृता वि हृतं विष्टुचोमसीव वा नो गयमाविषेय ।

आरे वायिहो निर्वृतिं पराचैरुस्मे भुवा सौधवसानि सन्तु ॥२॥

वार्थ—हे ( सोमावृता ) जोयधी और प्राणों के समान सुख उत्पन्न करने वाले राजा और वैद्य जनों ! तुम ( वा ) जो ( अनीका ) रोग ( नः ) हमारे ( गयम् ) वर वा संतान को ( आविषेय ) प्रवेश करता है उस ( विष्टुचोमसीव ) विष्टुचोमसीव को ( वि, विष्टुचम् ) क्षिप्रान्न करो तथा ( पराचैः ) पराजित हुए पुष्टों की ( निर्वृतिम् ) दुःख देनेवाली कुनीति को ( आरे ) दूर ( वायिहो ) हटाओ, जिस कारण ( अस्मे ) हम लोगों में ( भुवा ) सेवन करने योग्य ( सौधवसानि ) उत्तम अन्नादि पदार्थों में सिद्ध अन्न ( सन्तु ) हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । जो राजा और वैद्यजो रोगों की शरीर के प्रवेश से पहिने ही दूर करते हैं तथा कुनीति और दुष्टता को भी पहिने दूर करते हैं उनके पुत्रवर्ध से सब मनुष्य बहुत धन वान्य और आरोग्यपत्तों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

फिर वे क्या करें इस विषय को अन्ति मन्त्रों में कहते हैं—

सोमावृता युवमेतान्यस्मे विश्वा तन्व मेवजानि वसन् ।

अव स्यतं भुजतं यन्नो अति तन्व बृह हसमेनो अस्मत् ॥३॥

वार्थ—हे ( सोमावृता ) यज्ञ से युद्ध किये हुए सोमलता और वायु के समान राजा और वैद्य ( युवम् ) तुम ( यन् ) जो ( नः ) हमारे ( तन्वम् ) शरीर में ( हसत् ) किया हुआ और ( बृहत् ) लगा हुआ ( एव ) उपस्थादि वा अपराध ( अति ) है उसे ( अस्मत् ) हम से ( भुजतम् ) कुडाओ और हमारे रोगों को ( अव, वसत् ) नष्ट करो तथा ( अस्मे ) हमारे ( तन्वम् ) शरीरों में ( विश्वा ) समस्त ( एतानि ) यह ( अस्मत् ) चौकटें ( वसत् ) स्थापन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! आप वैद्य विद्या का प्रचार कर हमारे शरीरों को तीव्र रोग कर और पुत्रवर्ध में प्रवेश कराके दुःखों को नष्ट कर अन्धे वैद्यों का सत्कार करो ॥ ३ ॥

सिन्धायुधो सिन्धहेतो सुधेयी सोमावृताविह सु सृक्तं नः ।

अ नीं सुकृतं वर्णस्य पाशां गोधायां नः सुमनस्वमाना ॥४॥१८॥

वार्थ—हे ( सोमावृता ) युद्ध जोयधी और प्राणों के समान वर्तमान ( सिन्धायुधो ) तेज आयुधों तथा ( सिन्धहेतो ) वैद्य वज्रवाली ( सुधेयी ) अन्धे सुकृत वर और राजा जनो तुम ( इह ) इस संसार में ( नः ) हम लोगों को ( सु, सुकृतम् ) अन्धे प्रकार सुखी करो तथा ( नः ) हम लोगों को ( वसत् ) उत्तम के समान वसवाय रोग के ( पाशां ) बन्धन से ( अ, सुकृतम् ) कुडाओ और ( सुमनस्वमाना ) सुन्दर विचारवान् होति हुए ( नः ) हम लोगों की निरन्तर ( वसत् ) रक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकमुत्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे मही-कवि और अधिपति वायु सबकी तथा पालना करते हैं वैसे उत्तम राजा और वैद्यजो समस्त उपद्रव और रोगों से निरन्तर रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में वाचक और प्राण के समान वैद्य और राजा के कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

25

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ( तू ) के दोनों ( हथों ) में ( संविधान ) प्रतिष्ठा  
पाजने वालियों के समान वा ( जमिन्दार ) शत्रुजनों को ( विरहुरली ) कपाती

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग  
 अच्छे विचार के साथ अग्नि आदि के सम्प्रयोग से बनाये हुए आयुर्वो के युक्त उत्तम  
 यान द्वारा सर्वदैव शत्रुओं को ताड़ना देखो ॥ ८ ॥



किं राजानुपमं कीदृशं विलसन्ति कुरुते हि—

स्वातुर्बुधः पितरौ वयोधाः कुण्डलेभितः दन्तौबन्तो यमीराः ।

चित्रसेवा इषुबला अमृताः सुवाचीरः सरवो जातसुहाः ॥९॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (स्वातुर्बुधः) स्वादिष्ट अन्तो के भोगने को स्थिर होते वा न्याय करने को समर्थ होते हैं वा (वयोधाः) जो अवस्थाओं को धारण करते हैं वा (कुण्डलेभितः) जो अलि कुक्ष में भी धर्म का आश्रय करते हैं वा (दन्तौबन्तो) प्रशस्ति बहुत शक्ति विद्यमान जिनके वा (यमीराः) जो सभी आश्रय वाले हैं वा (चित्रसेवा) जिनकी चित्रविधिन सेना है तथा (इषुबलाः) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त जिनकी सेना और (अमृताः) जो अहिंसन करनेवाले (सर्तौवीरः) सर्व बल से युक्त (जातसुहाः) जो शत्रुसमूहों को सहित हैं वे (सरवः) बहुत पुत्रों की (पितरः) पिता जैसे धमिष्ठ जैसे विज्ञान और प्रवस्था से बड़े हुए पालनेवाले जन प्रजा की पालना करने हुए धमिष्ठ मनुष्य हैं उनसे तुम प्रजाओं की पालना निरन्तर करो ॥ ९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम सम्य, पिता के समान प्रजाजनों की पालना करनेवाले, बहुत अवस्था से युक्त और दुःख को पाकर स कंफनेवाले, साध्व्य-वान्, गम्भीर भावय, अद्भुत सेना तथा शस्त्र और अस्त्रों की विद्या में कुशल, बल से युक्त, शत्रुसमूह का सहनेवाला और बहुत गुण कर्मों से युक्त जो पुरुष उसी का राज्यविधिजन काम में धमिष्ठ करो ॥ ९ ॥

किं मनुष्य परस्पर कीदृशं विलसन्ति कुरुते हि—

ब्राह्मणासुः पितरः सोम्यासुः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।

पूषा नः पातु दुरितादृताश्चो रक्षा माकिर्नो अधशंस ईशत ॥१०॥२०॥

पदार्थ—हे (पितरः) पिता के समान प्रजाजनों पर कृपा करनेवाले (सोम्यासुः) शान्तिवृत्त गुणों के योग्य (ब्राह्मणासुः) वेद और ईश्वर के जानने वाले विद्वानो ! तुम (न) हम लोगों को अधर्म के आचरण से द्रव्य रक्षो जैसे (अनेहसा) न हिमा कग्नेवाली (शिवे) मंगलकारिणी (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (न) हमारे लिये हो वेसे उपदेश करो जैसे (पूषा) विद्या और विनय से पुष्टिकारक (दृताश्च) सम्य का बढ़ानेवाला (न) हम लोगों की (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (पातु) पालना करे जिससे (अधशंस) चार हम लोगों की (माकि) न (ईशत) मारने के लिये समर्थ हो, हे राजन् तुम इनकी निरन्तर (रक्ष) रक्षा करो ॥ १० ॥

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम लोगों को विद्या और विनय देवें तथा विजुनी और भूमिर्विद्या से सुख से संपन्न करें और अधर्मचरण से अलग रखें तथा जो राजा चोर आदि दुष्टों से निरन्तर रक्षा करे उस सब की तुम निरन्तर सेवा करो ॥ १० ॥

किं भूमि कीदृशं वेगवाली है और युद्ध करनेवाले युद्ध क्यों करते हैं इस विषय को कहते हैं—

सुपुर्णं वस्ते मृगा अस्या दन्तो गोमिः सन्नद्धा पवति प्रवृत्ता ।

यश्चा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषं चः शर्म यंसन् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (गोमिः) किरण वा घेनुओं से (सन्नद्धा) अच्छे प्रकार से बधी और (प्रवृत्ता) उत्पन्न हुई भूमि (मृगः) मृग के समान (पवति) जाती है (अस्या) इसके बीच (वन्) जिसमें डगने हैं वह दंत वर्तमान है जो (सुपुर्णम्) सुन्दर पालना करनेवाले को (वस्ते) उड़ाता है और (यश्चा) जिस संग्राम में (नरः) योद्धा नर (च) भी (सम्, प्रवृत्ति) अच्छे प्रकार दीडते हैं (वि) विशेष ध्यान करते हैं (तत्र) वहाँ (इषवः) बाण (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (शर्म) सुख जैसे (यंसन्) देवें सेवा अनुष्ठान करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो भूमि परमेश्वर ने पालना के लिए बनाई है और मृग के समान भीड जाती है तथा जिसके लिए बहुत संग्राम होता है उसकी प्राप्ति के निमित्त वीरता का सहक करो ॥ ११ ॥

किं मनुष्यों को किससे कैसे शरीर करने चाहिए इस विषय को कहते हैं—

श्वजीते परि वृक्षि नोऽश्मा मवतु नस्तुनः ।

सोमो अविं प्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वान् राजा जो आप (श्वजीते) सीधे चलते हो वह (नः) हम लोगों को (परि, वृक्षि) सर्व प्रकार वृद्धि देओ और (सोमः) जो अध्वरियों का रस निकालनेवाला विद्वान् जैसे (नः) हम लोगों का (तनुः) शरीर (अश्मा) पत्थर के समान दृढ़ (मवतु) हो नैसा (अवि, प्रवीतु) ऊपर २ उपदेश करे और (अदितिः) माता के समान भूमि (नः) हम लोगों के लिए (शर्म) सुख का नर (यच्छतु) देवे ॥ १२ ॥

भाषार्थ—राजा ऐसा प्रयत्न करे जैसे शीघ्र अश्वध्व से विषयाशक्त के त्याग से और व्यायाम से अध्वर्यों के शरीर पाषाण के तुल्य कठिन हों और उपदेशों की सबकी ऐसा ही उपदेश करे जिससे सब दृढ़ शरीर आत्मावाते हों ॥ १२ ॥

किं रानी अपात्र में क्या करे इस विषय को कहते हैं—

आ अङ्घ्रिनि सान्नेयं ज्वन्तीं उप शिबते ।

अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वांसमस्तु चोदय ॥१३॥

पदार्थ—हे (अङ्घ्रिनि) घोड़ों को पटकी देनेवाली रानी तू जो वीरजन (एषाम्) इन शत्रुओं के (सागु) अर्धों को (अर, अङ्घ्रिनि) मर और से निरन्तर काटते हैं तथा (अश्वाज्) नीच कर्म करनेवालों को (उप, जिघ्रन्ते) उपस्थित होकर मारते हैं उन (प्रचेतसः) उत्तम विज्ञानवाले (अश्वाज्) गड़ेर अश्वान् शूरवीर पुरुषों को (समस्तु) संग्रामों में (वीर्य) प्रेरो ॥ १३ ॥

भाषार्थ—संग्राम में राजा के अभाव में रानी सेनापति हो और जैसे राजा युद्ध कराने को वीरों को प्रेरणा दे वेसे ही वह भी आचरण करे ॥ १३ ॥

किं राजा और मृत्यु परस्पर कीदृशं विलसन्ति कुरुते हि—

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्यायां हेति परिवार्यमानः ।

हस्तद्वनो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (हस्तद्वनः) हाथों से मारनेवाला (ज्यायाः) प्रत्य-ज्वा के सबधी (हेतिम्) बन्ध के समान बाण को (परिवार्यमानः) सब ओर से रोकता और (विद्वान्) जानने योग्य को जानता हुआ (पुमान्) पुरुषार्थजन (अहिरिव) मेघ के समान (भोगैः) भोगों के माथ (बाहुम्) अपने स्वामी की भुजा को और (विश्वः) समस्त (वयुनानि) जानो को (परि, एति) सब ओर से प्राप्त होता है वा (विश्वतः) सब ओर से (पुमांसम्) पुरुषार्थों की (परि, वस्तु) अच्छे प्रकार पालना करे उसका सर्वदा सरकार करो ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हं वीरो ! जो राजा समस्त मेघ के समान भोगवृष्टि करता है तथा समग्रविद्यायुक्त होता हुआ मरकी मर और से तृप्ति करता है उसकी सब जन सब ओर से निरन्तर रक्षा करो ॥ १४ ॥

किं रानी कीदृशं हो इस विषय को कहते हैं—

आलाक्ता या रक्षशीर्ष्यथो यस्या अयो मुखम् ।

इद पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥२१॥

पदार्थ—(या) जो (आलाक्ता) विष से युक्त (रक्षशीर्ष्य) रक्ष जाति के मृग के शिर के समान जिपका शिर और (अयो) इसके अनन्तर (वस्याः) जिसका (इष्व, अय) लोहेयुक्त (मुखम्) मुख है उस धारण करनेवाली (पर्जन्यरेतसे) मेघ के जल के समान वीर्यवती (देव्यै) दिव्य और (इष्वै) गमन करती हुई शूर-वीर स्त्री के लिए (बृहत्) बहुत (नमः) अन्न हो ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो रानी शत्रुवैद जानती हुई शस्त्र अस्त्र पकनेवाली है उसका वीरों को निरन्तर सत्कार करना चाहिए ॥ १५ ॥

किं सेनापति सेना को क्या आज्ञा दे इस विषय को कहते हैं—

अर्बसुष्टा परा पतु शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

गच्छामिब्रान् पद्यस्व मामोषां कं चनोच्छिषः ॥१६॥

पदार्थ—हे (शरव्ये) बाणों को व्यापन होनेवालों में उत्तम (ब्रह्मसंशिते) वेद जाननेवाले सेनापति से प्रशंसा पाई हुई सेना तू (अर्बसुष्टा) शत्रुओं के ऊपर पड़ी हुई (परा) हम लोगों से पराङ्मुख (पतु) जाओ तथा (अमिषाद्) शत्रुओं के समीप (गच्छ) पहुँचो (प्र, पद्यस्व) प्राप्त होओ अर्थात् शत्रुजनों पर चढ़ाई करो और (अमोषाद्) परोक्षस्थ शत्रुओं के बीच (कम्, अय) किसी को भी(या) मत (उत्, शिषः) शेष छोड़ो ॥ १६ ॥

भाषार्थ—सेनापति पहले सेना को अच्छी शिक्षा लेकर जब संग्राम में उपस्थित हो तब अपनी सेना को आज्ञा दे कि शत्रुओं के बीच से एक को भी न छोड़ ॥ १६ ॥

यत्र बाष्पाः सम्पतन्ति कुमारः विशिखा इव ।

तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥

पदार्थ—हे राजन् (यत्र) जिस संग्राम में (कुमारः) कुमार अर्थात् जिनका मुँह न हो गया है उन (विशिखाश्च) बिना कोटीबाणों के समान (बाष्पाः) बाण (सम्पतन्ति) अच्छे प्रकार गिरते हैं (तत्रा) वहाँ (न) हमारे लिए जैसे (ब्रह्मणाः) धन के (पतिः) पालक धनकोश का ईश (विश्वाहा) सब दिनों (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे और (अदितिः) भूमि (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे वेसे विज्ञान करो ॥ १७ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जब संग्राम के लिए सेना जावे तब किसी पदार्थ के बिना किसी भूत को क्लेश न हो नैसा अनुष्ठान कीजिये ऐसे किये पीछे आपका अन्न विषय हो ॥ १७ ॥

किर धीरुओं के प्रति जल्दबाजी नहीं करें इस विषय को अपने मन में कहते हैं—

मर्माणि तु वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाभूतेनाहुं वस्ताम् ।

तुरोर्वीरान्धो वर्यस्ते कृणोतु वर्मन्तुं त्वाहुं देवा मयन्तु ॥१८॥

पदार्थ—हैं धीरों की री ( ते ) तेरे ( मर्माणि ) शरीरस्थ जीवन हेतु अंगों को ( वर्मणा ) कवच से ( छादयामि ) ढाँपता हूँ ( सोमः ) ऐश्वर्यसंपन्न ( राजा ) राजा ( कृणोतु ) जल आदि से ( त्वा ) तुम्हें ( कृणु ) अनुकूलता से ( वस्ताम् ) ढाँपे तथा ( वर्यस्ते ) सेना की पालना करनेवाला उत्तम विद्वान् ( धरो ) बहुत ( वीर्यः ) अत्यन्त श्रेष्ठ अन्न आदि ( ते ) तेरा ( कृणोतु ) करे तथा ( वर्यस्ते ) शत्रुओं को पीतते हुए ( त्वा ) तुम्हें ( देवाः ) उपदेशक विद्वान् वा अधिष्ठाता जन ( कृणु, कृणुतु ) अनुकूलता से हर्षित करें वा करावें ॥ १८ ॥

भावार्थ—सेनाध्यक्षों को चाहिये कि सब वीरों के शरीर की रक्षा करनेवाले कवचों को यथावत् करें और सर्वांगीण राजा अभूतात्मक अर्थात् समस्त के समान भोग सबके लिए देवे तथा वस्त्र और शस्त्र आदि पदार्थ भी देवे । और युद्ध करते हुए सब को सब अघ्यस्त हर्ष देवें और उत्साहित करें तथा आप भी हर्ष पावें और उत्साह करें ऐसा करने पर क्योंकि हार हो ॥ १८ ॥

किर सेनाध्यक्ष संभाल में क्या करे इस विषय को अपने मन में कहते हैं—

यो नास्वी अरणो यश्च निष्टथो भिर्वासति ।

देवास्तं सर्वे भूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥२०॥२१॥२२॥

पदार्थ—हे सेनापति ( यः ) जो ( नः ) हमारे ( स्वः ) अपना ( वर्यः ) संधान रहित यथावत् संधान नहीं करता ( यः, च ) और जो ( निष्टथः ) शत्रु के विह्वल करने योग्य दूरस्थ होते हुए तथा अपनी सेना को ( भिर्वासति ) चारों की इच्छा करता है ( स्वः ) उसको ( सर्वे ) सब ( देवाः ) विद्वान् जन ( भूर्वन्तु ) मारें तथा ( यश्च ) मेरा ( ममान्तरम् ) समीप में रमता हुआ ( ब्रह्म ) सर्वव्यापक चैतन्य ( वर्म ) कवच के समान रक्षा करनेवाला हो ॥ १९ ॥

भावार्थ—सेनापति के जो अपने भूत्व उत्साह से युद्ध न करें और जो अपने शत्रुओं के मारने की इच्छा करे उन सबको विद्वान् और शचीय शीघ्र मारें तथा युद्ध के समय सब वीर परमेश्वर ही को अपना रक्षा करनेवाला जानें ॥ १९ ॥

इस सूक्त में वर्म अर्थात् कवच वस्त्र आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के वर्म की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह श्रीमद् परमहंसपरिब्राजकाचार्यपरमविद्वान् श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमद् दयानन्दसरस्वतीस्वामीजी के कृपासे हुए जयभावा से सुश्रुति के छठे मंडल में छठा अनुवाक और पञ्चहतरवां सूक्त और छठाअष्टम भी तथा पञ्चमाष्टक के प्रथमाध्याय में बाईसवां वर्म समाप्त हुआ ॥







प्रकाशकः-

दयानन्द-संस्थान

नई दिल्ली-५



